

श्रीहरि:

# श्रीमदानन्दरामायणस्थविषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
<b>सारकाण्ड</b>		राम-लक्ष्मणको लेकर विरवामित्रका जयक-	
<b>प्रथम सर्ग</b>		पुरको प्रस्थाप और महत्त्वोद्धार	११
मङ्गलाचरण		रामके मायमनसे जनकपुरनिवासिनी सल-	
रघुवंशकी संक्षिप्त वंशावली		गाओंका हर्षोल्लास	१२
रामका महासे बचने करणका हेतु		राजा जनक द्वारा अपनी प्रतिज्ञाकी शोषणा	१४
पुत्रता, महाकाय रामके हाथों रामका मरणका		राज्य द्वारा मनुष्य उठानेका प्रयास और उसमें	
अविष्य फलाना और रामका कौशल्याकी		विफलता, तबामें रामका आगमन	१५
सद्वृत्तमें बंद करके समुद्रनिवासी श्रियिगलकी		सीताका रामको देखना और मुग्ध होकर बन	
सौंपना		ही बन देवताओंसे प्रार्थना करना	१७
महाराज दशरथके साथ कौशल्याका माधव-		रामके हाथों शिवकुण्ड छूटना	१८
विवाह		राजा जनकके आज्ञानुसार सीताका राजसभामें	
दशरथजीका सुमित्रा-कैकेयीके साथ विवाह, महा-		जाना और रामके गलेमें बरसाऊ चलना	१९
राज्य दशरथका देव-दानवयुद्धमें जाना		राजा जनकका महाराज दशरथके पास निमंत्रण	
तब युद्धमें कैकेयीका रथकी टूटी पुरीमें बचना		भेजना, रामादि चारों भ्राताओंके विवाहका निषेध	
होय लगाकर राजा दशरथके प्राण बचाना, जिससे		और सीताके जन्मका वृत्तान्त	२०
दशरथजीका कैकेयीकी से बरदाय देना तथा		राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका क्रमशः सीता-	
अयोध्याको सकुशल लौटना		उत्तिला-भाषणों और धृतराष्ट्रके साथ विवाह	
राजा दशरथ द्वारा जनकका वध और जनकके		और एक मास बाद महाराज दशरथका अयोध्याको	
अंधे भाता-पिताका साथ देना		प्रस्थान	२१
ऋष्यमूक द्वारा पुत्रैश्च का सम्पन्न होना और		मार्वमें राम-परशुरामका साक्षात्कार	२२
अग्निकय प्रकट होकर हवि देना		राम द्वारा परशुरामका गर्वमञ्चन और परशुराम-	
<b>द्वितीय सर्ग</b>		का रामको आत्मकथा सुनाना	२३
पृथ्वीका दुःखित होकर देवताओंके पास		महाराज दशरथका अयोध्यामें पहुँचना और	
जाना और सब देवताओंका श्रीरामपर		उत्सव मनाना	२४
याकर विष्णुमण्डपाकी स्तुति करना और		<b>चतुर्थ सर्ग</b>	
भगवान्की वाकाश्रयणों सुनना, राम-लक्ष्मण-		दीपावलीके अवसरपर पुनः राजा जनकका	
भरत-शत्रुघ्नका जन्म और उन पुत्रोंकी		महाराज दशरथको बुलाना और सद्गुणरत्नका	
बाल-कीर्ति		प्रस्थान	२४
शुभ मतिष्ठका रामादि चारों भ्रात्योंको		जनकपुरमें राजा दशरथका स्तकार और जनक-	
शास्त्रीय शिक्षा देना		पुरसे लौटते समय रास्तेमें उनको बहुतेरे बँटो	
<b>तृतीय सर्ग</b>		राजाओंका भेजना	२५
महामुनि विरवामित्रका राजा दशरथकी		रामका उन राजाओंके साथ और बुद्ध और	
रुपामें जाकर दशरथाचं राम-लक्ष्मणको मोगना,		भरतका मूर्च्छित होना	२६
मार्वमें विरवामित्रका दोनों बालकोंकी चरित्राचरकी		रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणका मुद्रा	
शिक्षा देना और सीताके हाथों ताडुकावध		मुक्तिके आश्रममें सञ्जीवनी बूटी लेने जाना	
		और आश्रमवासियों द्वारा उपरिष्ठ की गयी	

विषय	पृष्ठ
बापामोंकी दूर करने हुआ संजीवनी लाकर मरठकी जीवित करना	३७
महाराज दशरथका पुनि मुदलसे रामके मनिष्यका प्रश्न और उसका संतोषजनक उत्तर पाना	३८
बृंदाका वृत्तांत और उसके द्वारा विष्णु मगवान्-के साक्षित होनेका इतिहास	३९
सौराष्ट्रके एक मित्र साहाय्य तथा उसकी स्त्री कलहका उपासधान	४१
<b>पञ्चम सर्ग</b>	
वर्मदत्त विप्र द्वारा कलहका उद्धार	४५
रामका सीताके साथ अयोध्यामें आनन्द निवास	४८
रामकी संक्षिप्त दिनचर्या	४९
महाराज दशरथका रामसे आनोपदेश सुनाने की प्रार्थना करना और रामका आनोपदेश देना	५१
<b>षष्ठ सर्ग</b>	
नारदका रामको देवताओंका संदेश सुनाना	५१
राम-सीताका परस्पर वनगमनसम्बन्धी परामर्श	५४
रामके राजगमिणिकी संधारी, भुव वसिष्ठका रामके भट्ठोंमें आना और उपदेश देना, अमिषिककी संधारी देखकर मन्यराका दुःखित होना	५५
मन्यराका कैंकेरीके पास जाकर उसे उत्तेजित करना और घरोहरस्वरूप रखे दोनों वरदान भंगितेकी प्रेरित करना, तदनुसार कैंकेरीका कोपजनप्रवेश, राजा दशरथका उसके पास पहुँचना और वरदानकी बात सुनकर विकल होना, प्रातःकाल रामका पिताके पास जाकर प्रार्थना देना	५६
कैंकेरीके रामवनगमनसम्बन्धी वरदान भंगितेके समाचारसे पुरवाधियोंकी व्याकुलता दूर करनेके लिए कामदेवको रामको प्रतिज्ञा तथा नारदके आगमनकी बात बताना	५७
राम-लक्ष्मण-सीताका नवमन	५७
प्रयाग होते हुए रामका विशकुट पहुँचना, अजंतकी कथा तथा वदारथमरण	५८
मरठका ननिहालसे आकर पिताकी क्रिया करनेके बाद विशकुट जाना और रामके अनुरोधसे उनकी परमपादुका लेकर अयोध्या लौटना	६०
रामका अग्निके आश्रमपर जाना	६०

विषय	पृष्ठ
<b>सप्तम सर्ग</b>	
रामके द्वारा विराधका शय	६२
सुतीक्ष्णके आश्रमपर रामका जाना और वहीँ अयस्वके आश्रमपर होते हुए पञ्चवटी पहुँचना, वहाँ जटायुसे मिलना और लक्ष्मणके हाथों सूर्यवक्त्राके पुत्र आश्वका मरण	६३
लक्ष्मणका सूर्यवक्त्राके नाक-कान काटना	६४
रामके हाथों सरदूषण-निशिरा और उनकी चौदह हजार राक्षसी सेनाका विध्वन तथा सूर्यवक्त्राका लंकामें रावणके पास जाना	६५
सीताके अनुरोधसे रामका मृग मारीचके कंधों जाना और रावण द्वारा सीताका हरण	६७
जटायु-रावणयुद्ध, पञ्चवटीकी कुछ विशेष कथाएँ	६८
राम-लक्ष्मणका लौटकर आश्रम पहुँचना, वहाँ परम्योन्मुख जटायुसे रावण द्वारा सीताहरणका वृत्तांत सुनना और रामका मृत जटायुकी अपने हाथों दार्ढ्यता करना	६९
सीताकी व्यग्रभावसे लोभते हुए रामको देखकर पार्वतीका वहाँ पहुँचना और उनके ईश्वरत्वकी परीक्षा करना, कबन्धवध और कबन्धकी वादमकथा	
रामका खनरीके आश्रमपर पहुँचना और खनरीकी मुक्ति प्राप्त होना, वहाँसे रामका सम्पातरोवर जाना	७१
<b>अष्टम सर्ग</b>	
राम-सुग्रीवकी मित्रता और सुग्रीवका रामको खपना दुःख सुनाना	७२
बालि-सुग्रीवयुद्ध और रामके हाथों बालिका मरण तथा रामका बालिकी वरदान	७५
रामका प्रमर्दण पर्वतपर निवास, कालोत्तरमें सुग्रीवकी सेनाकी लोभके विषयमें निश्चित देखकर रामका लक्ष्मणकी भेजना	७६
सुग्रीवका बहुतरे खनरीकी सीताकी लोभके लिये भेजना और हनुमान्-मङ्गल बाविका एक तपस्विनीसे मिलना	७७
मङ्गल बाविका सम्पातीसे मिलना और सम्पातीका खपना पूर्ववृत्तांत बताते हुए सीताके मिलनेका उपाय बताना	७९
<b>नवम सर्ग</b>	
हनुमान् द्वारा समुद्रलङ्घन और मार्गमें नागमाता सुरसासे साक्षात्कार	७९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
हनुमान्जीके द्वारा सिंहकावध, समुद्रपार पहुँचकर रात्रिके समय हनुमान्जीका लङ्का में प्रवेश और लङ्कनीसे बाबासागर	८०	बाबिसे मिलना और वहाँसे चलकर मनुवन होते हुए रामके पास पहुँचकर उन्हें सीताका हाल सुनाना	९८
हनुमान्का रावणके भवनमें जाकर उसकी दाढ़ी-भूँछ जलाना, मन्दोदरीको सीताके सहस्र मुन्दरी देलकर हनुमान्का बहुराजा, सीता और मन्दोदरीके साहस्यका कारण	८१	<b>दशम सर्ग</b>	
हनुमान्जीका सीताके समक्ष पहुँचना उसी समय रावणका सीताके पास जाकर विविध प्रलोचन देना और सीताका रावणको फटकारना	८२	हनुमान्का रामको लङ्काका स्वरूप बतलाना	९९
बातोंते हारकर रावणका सीताको मारनेके लिए ज्वाह होना और मन्दोदरीका रोचना	८३	रामका लङ्काको प्रस्थान	१००
बहुतेरी राक्षसियोंको सीताको डराने-भयमानेके लिए नियुक्त करके रावणका अपने घर जाना	८४	उधर लङ्का में हनुमान्का पराक्रम देखकर रावणका बहसना और रावणसमक्ष जाकर परामर्श करना, विमोक्षणका समझना और रावणसे शिरस्कृत होकर रामको धरणमें जाना	१०१
त्रिजटाका सीताको बाधासन, हनुमान् द्वारा रामस्य वर्चन और प्रकट होकर राममुद्रिका-प्रदान	८५	राम-विमोक्षणमें श्रीजी, रामका क्रुपित होकर समुद्रपर क्षाण्येय बाण चलानेको उद्यत होना और समुद्रका सेतुबन्धके लिए उपाय बताना, रामका समुद्रतटपर शिवालिक स्थापित करनेका निश्चय करके हनुमान्को शिवालिक लानेके लिए काशी भेजना	१०२
हनुमान्का मञ्जुकवाटिका उजाड़ना	८६	शिवजीका हनुमान्को एक प्राचीन इतिहास बताना	१०४
हनुमान्का रावणके भेजे हुए बहुतेरे सैनिकोंको मारना	८७	विध्यपर्वतकी वृद्धिसे देवताओं तथा मनुष्योंकी बनबाहट और बनरत्न मुनिका विष्णुके कोपको शांत करनेके लिए काशीका त्याग	१०६
मेघनादके बहुपाशमें बँधकर हनुमान्का रावणके समक्ष जाना	८८	राम द्वारा हनुमान्का गर्वहरण	१०७
हनुमान्का रावणको समुद्रपदार्थ और रावणका दैत्योंको हनुमान्जी वृँछ जलानेका आदेश देना	८९	हनुमान्का अपनी लागी मूर्तिकी अंक्षण स्थापित करना और रामका बरखान देना	१०८
हनुमान् द्वारा लङ्कादहन	९१	शिवजीका रामको एक प्राचीन इतिहास बताना और रामके आत्मानुसार भस्मका सेतुरचना करना	१११
लङ्का मत्न कर देनेपर सीताके भी जल मरनेकी बात सोचकर हनुमान्का दुःखी होना और आकाशवाणी सुनकर धीरेज धरना	९२	रावणको शुकका समुद्रपदार्थ और उसके द्वारा शुकका विस्तृत होना, शुकके पूर्वजन्मकी कथा	११२
लङ्काका प्राचीन इतिहास, गज-ग्राहकपाके प्रसंगमें राहके पूर्वजन्मकी कथा, गज-ग्राहका सहस्रवर्षव्यापी युद्ध और गजपायु द्वारा गजका उद्धार	९३	रामके आदेशसे बज्जरका लङ्का जाना और बौदते समय रावणका एक महल उखाड़े लगाना	११३
गहड़का एक गजको लेकर भक्षण करनेके लिए विकृत पर्वतपर पहुँचना और हनुमान्का मञ्जुक-वाटिकामें सीतासे फिर मिलना	९४	बज्जरके मुखसे रावणकी वर्णोक्ति सुनकर मुग्धकर रावणके पास जाना और उसके साथ बल्लमुद्ध करना	११४
लङ्कासे छोटते समय एक मुनिके द्वारा हनुमान्का गर्वोपहार	९५	मात्स्यवाक्का रावणको उपदेश	११५
समुद्रके इस पार जाकर हनुमान्का मञ्जव	९६	<b>एकादश सर्ग</b>	
	९७	राम-रावणका युद्धारम्भ	११६
		बावरी सेवापर मेघनादका धातिप्रयोग और रामकी आज्ञासे हनुमान् द्वारा सभी हुई श्रेणगिरि-की जीवपिते सबकी मूर्च्छा दूर होना	११७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
रावणका लक्ष्मणपर वक्तिप्रयोग और हनु- मानका द्रोणगिरि लहे समय कालनेमिसे भेंट	११८	रामका राज्याभिषेक	११९
सत्रागणपर जल पीनेके लिए गये हुए हनु- मानकी मगरीका पकड़ना, हनुमान्के हाथों काल- नेमिका बंध और बहुते बलकर हनुमान्का भरत- के बाणप्रहारसे भूँझित होकर गिरना	१२०	श्रीशिवजीके द्वारा रावको स्तुति	१४०
ऐरावत-धैरावत द्वारा राव-लक्ष्मणका हरण	१२०	राज्याभिषेकोत्सवपर स्वर्गसे महाराज रघु- का साना, रामका बाह्यगो-मित्रों तथा परिवारके लोगोंको उपहार देना	१४१
हनुमान्का राम-लक्ष्मणको सौजने पाताळ जाना, वहाँ मकरध्वजसे भेंट, मकरध्वजका अपनी अन्धका सुनाना और हनुमान्का कामाक्ष्यादेवीके मंदिरमें प्रवेश	१२१	हनुमान्को रामके विविध वरदान और मोहनके समय हनुमान्का कौतुक	१४२
हनुमान्का धैरावतकी पत्नीसे ऐरावत-धैरावत- के मरणका उपाय पूछना और उस नागकन्याका उन दोनोंकी मृत्युका उपाय बताना	१२२	पुष्पक विमान, सुग्रीव तथा विमोदणकी विश्रांति	१४३
रामके द्वारा ऐरावत-धैरावतका बंध	१२४	रामके रघुराजकी समाप्तिका वर्णन	१४४
उस नागकन्याको रामका वरदान, रावणका कुम्भकर्णको बगाना, रावणकी रैरगासे उसका रामरघुविमें जाना और रामके हाथों कुम्भकर्णका निधन	१२५	<b>त्रयोदश सर्ग</b>	
मेघनादका त्रिकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमान् तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	रामके वहाँ जगत्पति जादि भूमियोंका जग- पति, रामका जगत्पतिसे मेघनादका वृत्तान्त पूछना और उसका बताना	१४६
लक्ष्मण द्वारा मेघनादका बंध	१२७	रावण-कुम्भकर्ण जादिकी बन्धकता	१४७
सुलोचनाका सती होना	१२८	भाताकी आगसे रावणका शिवस्त्रिण लेने कलाश जाना और अपने मस्तक काटकर शिवजीको प्रसन्न करना तथा वरदान पाना	१४८
रावणका सीताको रामका कटा हुआ गळी छिर दिखाना	१२९	रावण कुम्भकर्ण-विभीषणका रूप करके ब्रह्मा- की प्रसन्न करना और उनसे वरदान पाना	१४९
मन्दोदरीका रावणकी समझाना और रावणका रामके समझ गळी सीताको काटना	१३०	रावणकी कुनेरपुत्र बलह्वरका ध्यान, मेघनाद- का इन्द्रको पराजित करना और उसका इन्द्रवि- नाश पड़ना	१५०
राम-रावणका भीषण युद्ध	१३१	रावणका बाँधले लड़ने जाना और बालिका उधे अपनी काँधमें रख लेना	१५१
रामके हाथों रावणका बंध	१३२	रावणका मानरराज बालिकसे युद्ध करते जाना और परास्त होना	१५३
<b>द्वादश सर्ग</b>		रावणका राज्य अन्तरण्यसे युद्ध और उसका रावणकी श्राप	१५३
राम-सीताका मिलन	१३३	रावण-बनस्तुमारका मार्गान्तर, रावणकी श्वेत- होमयात्रा और वहाँकी स्त्रियोंके हाथों पिटना	१५४
रामकी अयोध्या लौटनेकी तैयारी और विभीषणके प्रसन्न	१३४	बालि-सुग्रीवकी बन्धकता	१५५
रामका विषदाको वरदान	१३५	ब्रह्मका बालिको किष्किंधाका राज्य देना और हनुमान्को बन्धकता	१५६
उसका व्यवस्था-प्रस्थान, मार्गमें सम्पातीसे भेंट और रामका सीताको विविध रत्न दिखाना	१३६	हनुमान्का सूर्यको निगलना, हनुमान्पर इन्द्रका बलप्रहार, बधनका कोष और हनुमान्को ब्रह्माका वरदान	१५७
उपर बन्धि सीतसे रत्नकर भरतका पितामें रुदनेको तैयार होना और उसी समय हनुमान्को- का पहुँचना	१३७	इन्द्रका राहुको खुर्र देना और हनुमान्को भूमियोंका धाप मिलना	१५८
राम-भरतका मिलन	१३८	रामराज्यके सुखका वर्णन	१५९



विषय

पृष्ठ

**यात्राकाण्ड****प्रथम सर्ग**श्रीविष्वजीसे पार्वतीके प्रश्न और वास्तुर-  
जीका उत्तर

१६१

सहस्र पातलीकिके पुष्पसे कविताका प्रादुर्भाव  
ब्रह्माका पत्नीकिके आश्रमपर जाकर राम-  
चरित्र लिखनेका आग्रह करना

१६२

१६३

**द्वितीय सर्ग**वाल्मीकिका रामावर्णननिर्माण, उसे सुननेके  
लिए देवता-भक्त-नगरादिकोंका आगमन

१६४

रामायण प्राप्त करनेके लिए उनमें परस्पर  
कलह और विष्णुमदवान् द्वारा रामायणकी  
विभाजन

१६५

नारदजीके द्वारा आश्वजीको चार लोक  
प्राप्त होना

१६७

**तृतीय सर्ग**पार्वतीका शंकरजीसे रामदास विष्णुदासके  
परिचयविषयक प्रश्न और छिननीका उत्तर

१६९

सीताका रामसे गङ्गातटपर चलनेकी प्रार्थना  
रामका लक्ष्मणकी यात्राकी तैयारी करनेका  
आदेश देना

१७१

१७२

गङ्गायानासम्बन्धी समाचारसे राजाजन्ममें  
सन्तुष्टासकी लहर

१७३

**चतुर्थ सर्ग**रामचन्द्रका ज्योतिषी बुलाकर उत्तम मुहूर्त  
पूछना

१७४

रामचन्द्रका गंगतटको प्रस्थान  
यात्राकासीय उल्लासका वर्णन

१७५

१७६

रामका महर्षि मुद्गलके आश्रमपर पहुँचना  
महर्षि मुद्गलका अपने नवीन आश्रमसे

१७८

रामके दर्शनार्थ प्राचीन आश्रमपर आना  
और पूछनेपर दाश्रमत्यागका कारण बतलाना,  
रामका मुनि मुद्गलसे सरसूकी श्रेष्ठताके विषयमें

१७९

प्रश्न और मुक्तिका उत्तर

रामके आदेशसे लक्ष्मणका बाण चलाकर  
सरसूके की भाग करके एक भागकी मुद्गलके पूर्व  
आश्रमपर आना

१८०

**पञ्चम सर्ग**सीताका गंगापूजनकी तैयारी करना, कौसल्या  
बारि साधुओं, श्रीहस्तिन स्थिनों तथा बहूतेरे

विषय

पृष्ठ

बाह्यणोंके साथ सीताका सप्तमारोह संभारपूजन  
करना

१८१

रामके दर्शनार्थ अथर्व मुक्तिका आस और  
भाग्यसे प्राप्त होनेवाले कष्टोंका वर्णन करना,  
उनका दुःख दूर करनेके लिए रामका अपने बाणसे  
अलक्ष्य छद्म होना

१८२

कुम्भोदर मुक्तिका रामदूतोंसे नार्त्तनान, वृत्तोंके  
आग्रह करनेपर भी उन्का विना संवदन किये  
जोटना और पूछनेपर कारण बताना

१८३

कुम्भोदर मुक्तिके आशेष सुनकर रामका दीर्घ-  
यात्राकी तैयारी करना, पुष्पक विमानका रामके  
आदेशसे दस योजन विस्तृत और सो बंधका  
ऊँचा होना

१८४

रामका दीर्घयात्राके लिए प्रस्थान

१८५

रामकी चार ध्वजायोंका वर्णन

१८६

**षष्ठ सर्ग**रामका अद्वयबल प्रमाण पहुँचना, वहाँसे  
चलकर काशी पहुँचना और विविध लोकोप-  
कारी कार्य तथा दान करते हुए एक साल  
वहाँ रहना

१८७

काशीमें रामका अनेक तीर्थोंकी स्थापना  
करना

१८८

रामकी गयायात्रा, वहाँ फल्गुनदीमें सीताके  
बाजूकाकी दुर्गा बनाते समय राजा दशरथका अपने  
हार्थी आलूकापिष्ट लेना

१८९

पिताको पित्रवान् देते समय राजा  
दशरथका हाथ में थोखनेपर रामका विस्मित होना,  
लक्ष्मण और सीतासे पूछनेपर सीताका कारण  
बताना

१९२

सीताका आश्वत्थ, फल्गुनदी, गयावाल  
वाहणों, बिल्ली तथा अश्वकी छत्ती देने-  
के लिए कहना और उनके इनकार करनेपर  
श्राव देना, अन्तमें कुर्यकी सत्सीसे प्रसन्न रामके  
पिता दशरथका प्रत्यक्ष प्रकट होना

१९३

**सप्तम सर्ग**

रामकी दक्षिण चरित्रकी दीर्घयात्राका विवरण

१९५

तोतादिमें कन्यकुमारीका रामसे बैठ और  
रामका उसे बरदान देना

१९८

**अष्टम सर्ग**पास्तके पश्चिमी प्रदेशके तोषोंकी यात्राका  
विवरण, तवारीबर बैठकर यात्रा करनी चाहिए या

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
गहों, इस विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर पुष्पक विमानपर निवृत्त करोड़ों ब्राह्मणोंके भोजनका प्रबन्ध	२०० २०१	सभी देशोंमें अन्धकार गतिसे घूमकर घोड़ेका अयोध्या छोड़ना	२२०
रामके पुष्पक विमानको देखकर मन्थान्ध सीधंबासियोंकी विविध रूपनारें	२०३	<b>चतुर्थ सर्ग</b>	
<b>नवम सर्ग</b>		रामके अश्वमेध यज्ञमें सब देवताओं तथा शिवजीका आगमन, राम द्वारा सबका स्वागत- सत्कार होना और राम तथा शिवजीमें कुछ नवी- रञ्जक वार्तालाप	२२१
उत्तर दिशाकी सीधंबासका विवरण, राम- की बदरोनारायण तथा मानसरोवरकी यात्रा, वहाँसे कैलास जाना और यहाँपर सीताका कामधेनु गौ पाना	२०४	अश्वमेध यज्ञमें कुम्भोदर मुनिका आग- मन, रामके साथ वातघोत और कुम्भोदर मुनिका अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रसे रामकी स्तुति करना	२२३
सब सीधोंकी यात्रा करके रामका अयोध्या छोड़ना	२०५	<b>पञ्चम सर्ग</b>	
अयोध्यामें रामका मन्त्र स्वागत यात्राकाण्डकी फलश्रुति	२०६ २०७	विष्णुदासका गुरु रामदाससे अष्टोत्तरशतनाम- विषयक प्रश्न और इनका उत्तर	२२४
<b>यागकाण्ड</b>		रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र	२२५
<b>प्रथम सर्ग</b>		रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रका बाह्यात्म्य	२२७
अश्वमेध यज्ञके लिए रामका गुरु वसिष्ठसे परामर्श	२०८	<b>षष्ठ सर्ग</b>	
वसिष्ठका लक्ष्मणको यज्ञकी तैयारीके लिये निदेश देना	२१०	यज्ञके समय रामकी दिव्यदर्शना	२२८
यज्ञकी साधनियोंका विवरण	२११	<b>सप्तम सर्ग</b>	
<b>द्वितीय सर्ग</b>		अन्धारीपणवृत्तके विषयमें प्रश्नोत्तर	२३१
राम-सीताका यज्ञकी दीक्षा लेना	२१३	अन्धारीपणवृत्ति, माहात्म्य एवं फलश्रुति	२३२
क्षामकर्म घोड़ेकी पूजा करके भृश्रमणके लिये छोड़ना और शत्रुघ्न-सुमन्त आदिका उसको रक्षाके लिये जाना	२१४ २१५	<b>अष्टम सर्ग</b>	
यज्ञसमारोहमें बहुतेरे ऋषियोंका आगमन	२१५	अश्वमेध यज्ञकी समाप्तिपर रामको भवभूष- स्नानके लिए यात्रा	२३६
वहाँ आए हुए ऋषियोंका रामके द्वारा स्वागत- सत्कार और कामधेनुकी पूजा करके शकुन्धालामें बैठना तथा उससे मनचाही वस्तुयें प्राप्त करके सब अम्बागतोंकी इच्छा पूर्ण करना	२१६	यात्राकालमें रामके दर्शनार्थ जनताकी व्यवस्था और रामका लक्ष्मणको सुप्रबन्धके लिए निर्देश	२३७
<b>तृतीय सर्ग</b>		रामका घरमें सपरिवार अधभूषस्थान	२३८
क्षामकर्म घोड़ेके साथ शत्रुघ्नका अनुयायन पहुँचना, वहाँ गौकाकी रक्षावदसे दुसरी होकर बङ्गाकी प्रार्थना करता और बङ्गाका प्रसन्न होकर सन्धे मार्ग देना	२१७	कामधेनु गौ देनेकी उन्नत रामसे वसिष्ठका सीताको दानमें माँगना	२३९
क्षामकर्म घोड़ेका मार्गमें पहुँचना और वहाँके राक्षसे उच्छाद पाना	२१८	तदनुसार रामका सीताको दान देना और गुरुः वसिष्ठकी वतायी योजनाके अनुसार सुवर्णराशि देकर सीताको वापस लेना	२४०
		<b>नवम सर्ग</b>	
		अश्वमेध यज्ञकी समाप्तिपर शिवजीका रामसे वचन माँगना और उनका देना	२४१
		पार्वतीका सीताजीसे वर माँगना और उनका देना	२४३

विषय	पृष्ठ
यज्ञके श्रुतिज्योंको रामका शत्रु और अति- विषोंको उपहार भेंट	२४४
सिंहसनाथीन रामकी नदी-समुद्र तथा अन्यान्य देवताओंके विविध प्रकारके उपहार मिलना	२४५
अयोध्यामें रामका दरबार	२४६
पक्षमें जाये हुए अतिथियोंका प्रत्याग	२४७

—:०:—

## विलासकाण्ड

### प्रथम सर्ग

शिवहृत रामस्तवराज	२४९
-------------------	-----

### द्वितीय सर्ग

रामके द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन और पत्नियों द्वारा रामकी स्तुति	२५७
---	-----

### तृतीय सर्ग

सीतासे प्रजन करनेपर रामका वैहराभावण- वर्णन	२६१
---	-----

अपने दिव्य हुए मानके विषयमें रामका प्रजन और सीताका उत्तर	२६३
---	-----

### चतुर्थ सर्ग

रामकी दिनचर्या और नन्दीजनोंकी स्तुति	२६६
सीताके अगणित अलंकारोंका वर्णन	२६८

### पञ्चम सर्ग

राम-सीताका अलविहार	२७३
--------------------	-----

### षष्ठ सर्ग

राम-सीताके वयनका वर्णन, राम-सीताका विहार	२७६
---	-----

राम और सीताका एक छत्रपरसे बाजारके कोतुक देखना, सीताका एक हीन-हीन ब्राह्मणीको अपना वस्त्रा लिये भील माँगनेपर उद्यत देखना, सीताका उससे उसकी वरिष्ठताका कारण पूछना और उसका बताना, सीताकी उस ब्राह्मणीको एक लाख स्वर्णमुद्रा दिलवाना	२७७
---	-----

सीताका लक्ष्मणके द्वारा सारे देशमें यह घोषणा करवाना कि कोई भी स्त्री बिना वस्त्रान्मूषणके विला- सको न दे। यदि वह वनामावके कारण वस्त्रान्मूषण न कारण कर पायी हो तो उसे राज्यसे दिया जाय	२७८
मगवान् रामकी तत्कालीन विलम्बों	२७९

विषय	पृष्ठ
<b>सप्तम सर्ग</b>	
रामके यहाँ व्यासजीका आगमन	२७९
व्यासजी रामके एक बत्तीसहकी प्रशंसा करना	
रामका व्यासजीसे अगली वन्धुमें बहुत-सी स्त्रियोंका प्राप्त करनेका उपाय पूछना	२८०
व्यासजीके आज्ञानुसार रामका सोरह सीताकी सुवर्णमूर्तियों दान देना, रामके सम्मुख कितनी ही देवदेवानाओंका आकर रामपर मुख होना	२८१
उन स्त्रियोंको रामका वरदान	२८२

### अष्टम सर्ग

गुणवतीका वृत्तान्त, अरण्यमें गुणवतीके पतिका मरण	२८३
--	-----

गुणवतीका अयोध्यामें रामके सम्मुख पहुँचना, रामकी तत्कालीन सीमाका वर्णन	२८४
--	-----

गुणवतीको रामका वरदान मिलना	२८५
----------------------------	-----

विगल नामकी बेधवाका रामके वनवास पहुँचना, राम द्वारा विगलाका वृत्तान्त सुनकर सीताका कुपित होना	२८६
--	-----

क्रोधवश सीताका भरनेको लिए पछाड़ होना, रामकी विकलता, आधी रातके समय रामका गुरु वसिष्ठकी बुलानेके लिए लक्ष्मणको भेजना, गुरुके चरण छूकर रामका क्षय माना	२८८
--	-----

सवेरे सीताका पिगला बेधवाकी बुलाकर बौटना और मारना, विगलाको सीताका क्षाप और उससे उद्धारका समय निर्धारित करना	२८९
--	-----

### नवम सर्ग

रामकी कृष्णव्याज, लोषामुद्रा और आनकी- नीकी गतघोष	२८९
---	-----

लोषामुद्रासे शास्त्रार्थमें सीताकी विजय	२९०
---	-----

विलासकाण्डका आद्भुत एवं विलासकाण्डके पाठकी विधि	२९१
--	-----

—:०:—

## जन्मकाण्ड

### प्रथम सर्ग

यात्रीके मुखसे रामका सीताके अभिप्रेत होनेका समाचार सुनना	२९३
---	-----

सीताका जंगलोंमें खीर करनेकी इच्छा प्रकट करना और इसकी सैवारीके लिए रामका लक्ष्मणको वाधेय देना	२९४
--	-----

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पालकीपर चढ़कर रामका सीता तथा सब परिवारको साथ लेकर बनकी जाना करना	२१५	पुष्पक विमान द्वारा उस समय रामका जो वहाँ पहुँचना और बादमें रामका जो व्यवस्थापन करनेका विषय करना	२०९
इस क्षेत्रगोत्रा वनमें पहुँचना और बनकी शोभाका वर्णन	२१६	स्वर्णमयी सीता बनाकर रामका यज्ञारम्भ, रामके नन्हे रत्न पूर्ण होना और कुशकी उत्पत्तिका वृत्तान्त	२१०
<b>द्वितीय सर्ग</b>		पालकीका कुश-लवकी रामायणकी शिक्षा देना और अल्प समयमें उनका सीसना	२१२
राम-सीताका वनविहार	२१८	<b>पञ्चम सर्ग</b>	
छठे मासमें श्रीवन्ताश्रयनसंस्कारऔर जनकजीसे रामका सीतात्यागसम्बन्धी वार्त्तालाप	२१९	विष्णुदासका रामदाससे रामरक्षास्तोत्रके विषयमें प्रश्न और रामरक्षास्तोत्रका पार	२१२
वनमें, कहाँ कि सीता भाकर रहनेवाली थीं, वहाँपर जनकजीका व्रम्भ	२२०	रामरक्षास्तोत्रका आहारम्भ	२१३
<b>तृतीय सर्ग</b>		रामनामके स्मरणका फल	२१५
रामका सीताको त्यागनेका कारण बतलाना	२२१	<b>षष्ठ सर्ग</b>	
रामका विषय नामक गुठ भरसे भगताके गुठ विचार पूछना	२२२	सीताका बाल्मीकसे पतिवियोग दूर करनेके लिए कोई व्रत पूछना और उनका बतलाना	२१६
उसके मुखसे प्रजाके हृदयकी यह बात भासूम करना कि सीता फितने ही सर्व रावणके यहाँ रह चुकी थी, फिर भी उसे रामने अपना लिया। यह अच्छा नहीं किया। विद्वयका रामको एक शोबीनी काष्ठ चुनाना। कैकेयिका सीतासे रावणकी बाहुति पूछना और सीताका दोबारमें केवल रावणके एक अंगूठेका आकार बनाना	२२३	सीताका बगीचेके रक्षकोंसे मुठभेड़ और विजयी होकर लौटना	२१८
सीताके चली जानेपर कैकेयिका उस अंगूठे के अनुरूप रावणके सारे सरीरकी तसवीर बना देना और इसी समय रामका पहुँचना, तसवीरके विषयमें रामके पूछनेपर कैकेयिका सीताकी बनायी बात बतलाना	२२४	दूसरे दिन फिर उसका उन सीनेसे थुड़ और लवकी विजय	२१९
प्रातःकालके समय सीताको वनमें स्वागनेके लिए लक्ष्मणका प्रस्थान	२२५	रामका लवको पकड़नेके लिये बाल्मीकि ऋषिके आश्रमपर दूत भेजना, इसपर बाल्मीकिदा यह उत्तर देना कि चलो, मैं रामके अपराधीकी लेकर स्वयं वहाँ जाता हूँ	२२०
बाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचकर बदगद भाषी-में लक्ष्मणका सीताको सब वृत्तान्त बतलाना	२२६	<b>सप्तम सर्ग</b>	
<b>चतुर्थ सर्ग</b>		रामका अन्तिम व्रतके निम्ने स्वामर्कण पोषा छोड़ने और गुप्तरीतिसे बाल्मीकिना सीताके साथ रामके यज्ञमें जाना	२२१
रामकी उस आज्ञा पालन करनेके लिए लक्ष्मणका विचार करना—त्रिभुमें उन्होंने कहा था कि लौटते समय सीताके दोनों हाथ काट ले जाना। उस निर्मम कार्यको करनेमें असमर्थ लक्ष्मणका प्राण त्यागनेपर अञ्जल होना और बड़की रूपमें विश्रामसि भेंट	२२७	कुश-लवका रामायणमान सुनकर सबका दुःख होगा और बादमें रामकी उमासे लक्ष्मणका रामा-वणमान	२२७
विश्रामसि सीताकी मुखा बनाकर देना और उसे लेकर लक्ष्मणका अयोध्या लौटना	२२८	रामका उन दोनों बालकोंको पुत्नार बिल-राना और उनका लेनेसे इनकार करना	२२९
अर्धरात्रिके समय सीताके तनसे पुनरुत्पन्न होना	२२८	लक्ष्मण रामके स्वामर्कण पोषेकी पकड़ना और लव तथा लक्ष्मणका संग्राम, लवका हनुमान्, सुमन्त और बरह्मकी काँसमें दबाकर माता सीताके पास ले जाना	२३४
		रामके आज्ञानुसार लवको पकड़नेके लिये	

विषय	पृष्ठ
लक्ष्मणका जाया, लव और लक्ष्मणमें युद्ध	३२५
लक्ष्मणका लवको सहपात्रमें बाँधकर राम- के समक्ष ले जाना, रामके आज्ञानुसार लोनों- का लवपर जलके बड़े उड़ेलना और लवका लक्ष्मण	३२६
लवको छुड़ानेके लिए कुशका जाना	३२७
राम-लक्ष्मण और कुशका युद्ध	३२८

### अष्टम सर्ग

रामका एक मन्त्रीकी वाल्मीकिके पास भेजना	३२९
रामकी समामे वाल्मीकिका सीताको साथ लिये हुए जाना	३३०
रामके प्रति वाल्मीकिकी उक्ति और सीताको हाथी सहित देखकर रामका सन्देश	३३१
सीताकी शपथ, सीताका पृथ्वीमें श्वेद करना और पृथ्वीसे रामकी आर्चना	३३२
पृथ्वीपर रामका कोप और रामका पृथ्वीसे सीताको वापस जाना	३३३
यज्ञमें आये हुए राजाओं और ऋषियोंकी विराई	३३४

### नवम सर्ग

वर्मिला, माण्डवी तथा धृतराष्ट्र आदिका गमिणी होना और यथासमय पुन उत्सव करना, पुत्रोंकी जागतिके अवसरपर रामका उत्साह	३३५
रामका कुलगुरु वशिष्ठसे सब ऋषियोंके पुनाधुम लक्षण पूछना और वशिष्ठका सब बालकोंके लक्षण बतलाना	३३६
पुत्रपत्नी बहियोंके साथ सीताका आनन्दमय जीवन बिताना	३३८
गुरु वशिष्ठसे रामका लव-कुशके उपनयनका परामर्श और अतनयको तैयारियोंके लिये रामका लक्ष्मणकी आदेश	३३९
उत्तमन्य ( उपनयन ) संस्कार समारोह	३४०
उत्तमन्यसंस्कार	३४१
लव-कुश आदि बालकोंका वेदाध्ययन, बालकोंका गुरुगृहसे वापस आनेपर अयोध्या नगरीके उत्साहका वर्णन	३४२
वन्मकोंके सुननेका फल और इसकी महिमाका वर्णन	३४३

विषय	पृष्ठ
<b>विवाहकाण्ड</b>	
<b>प्रथम सर्ग</b>	
रामकी समामे महाराज भूरिकीलिका स्वयंवर पथ जाना	३४५
पथ पड़नेके अनन्तर रामका स्वयंवरमें जानेकी तैयारी करना, रामकी स्वयंवरयात्रा	३४६
रामका अपने पुत्रोंके साथ स्वयंवरमें पहुँचना	३४७
रामका आगमन सुनकर राजा भूरिकीलिकी नगरनिवासिनी महिलाओंकी प्रसन्नताका वर्णन	३४८

### द्वितीय सर्ग

दूसरे रोज रामका स्वयंवर-समामे जाना और रामके इतोंका वहाँ आये हुए राजाओंका परिचय देना	३४९
समामे वम्पिका रामकी राजकन्याका प्रवेश	३५०
वम्पिकाको साथ लिये सुमन्वाका सब राजाओंके समक्ष जाना और वम्पिकाको उन राजाओंकी स्थिति समझाना	३५१
वम्पिकाका सब राजाओंके सामनेसे होकर रामके सम्मुख पहुँचना	३५२
अन्तमें वम्पिकाका कुशके सामने पहुँचना और कुशके गलेमें बरमाला डालना	३५४

### तृतीय सर्ग

सुमन्वाका सुगति रामकी दूसरी राजकन्याको साथ लेकर पहलेकी तरह सब राजाओंका यज्ञ सुनाना	३५५
सुमन्वाका सब राजाओंके सामनेसे होकर लवके समक्ष पहुँचना और उनके गलेमें बर- माला डालना, दूसरे दिन भूरिकीलिका रामके पास आकर विवाहके लिए मुहूर्त निश्चित करना	३५७
विवाहकार्यका आरम्भ	३५८
लव-कुशका विवाहसमयमें पहुँचना और विवाह सम्पन्न होना	३५९

### चतुर्थ सर्ग

विवाहके अनन्तर होनेवाले कोलाहल	३६०
भूरिकीलिकी नगरीसे राम आदिकी विदाई, रामका अयोध्या पहुँचना और अयोध्यावासियों द्वारा उनका स्वागत	३६१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
विवाहोत्सवमें आये हुए बन्दागतोंकी विवाह, रामदासका विष्णुदासको कुत्ते विषयमें कुछ मतिपथकी बातें बतलाना	३५२	का विह्वल होना और नारदका सब झाल बतलाना, यूपकेतुका अपने मोहनस्वसे सब राजाओंकी मोहित करके मदनसुन्दरीकी वरमा	३७५
<b>पञ्चम सर्ग</b>		यूपकेतुका सब राजाओंके साथ युद्ध	३७६
सीता तथा सजाओंके साथ रामका वनमें अगस्त्यके आश्रमपर जाना	३५३	यूपकेतुका बहुत उठाकर अपने कपूर कन्दु- कन्दको मालेके लिए जलत होना और मदन- सुन्दरीकी प्रार्थनासे छोड़ देना, भारतमें एकुब्जसे यूपकेतुका साक्षात्कार और वृद्धि छोड़कर फिर कान्तिपुरीकी जाना	३७७
अगस्त्य ऋषि द्वारा रामका सुत्कार और वनमें रामको पाँच अक्षराओंका भित्तिना	३५४	<b>षष्ठम सर्ग</b>	
अगस्त्यसे उन अक्षराओंके विषयमें रामका प्रश्न और उनका उत्तर, रामके बाप भारतेके लिए उद्यत होनेपर अजनेविषीका प्रकट झूठा और करतूत कन्यायें रामकी अपित करना	३५५	इतके मुखसे यूपकेतुका सब समाचार जात होनेपर रामका कान्तिपुरीके लिए प्रस्थान, कान्तिपुरीमें आतंकपूर्वक रामका पहुँचना	३७८
<b>षष्ठ सर्ग</b>		यहाँ यूपकेतुका विवाह होना, भगवान्की स्तुति करके नारदका प्रस्थान, विवाहकाण्डका अन्तकाल	३७९
सदुसे गंधर्वों और पक्षियोंका आना और रामकी स्तुति करना, अपने एक स्वयम्भ आदिश पुत्रोंकी कुछ मतिपथकी बातें अगस्त्य ऋषिते रामकी बालूम होना	३५६	विवाहकाण्डके अनुष्ठानकी विधि	३८०
गंधर्वोंकी अयोध्या आनेके आता देकर रामका अपनी पुरीकी वापस छोटना	३५७	<b>राज्यकाण्ड (पूर्वार्द्ध)</b>	
अयोध्यामें पहुँचकर उन कन्याओंकी बखिड़के सदा रखना, गंधर्वों और नामोंका अयोध्यापुरीमें पहुँचना तथा विवाहके सुहृत्की निश्चित होना	३५८	<b>प्रथम सर्ग</b>	
<b>सप्तम सर्ग</b>		रामसहस्रनामके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और रामदासका उत्तर	३८१
उन कन्याओंके साथ राम आदिश पुत्रोंके विवाहकी संयारी	३५९	सन्ध्याभार और पक्षीका बालांलाप	३८२
कनकमयी नामकी कन्याके रूप स्वकी विवाह, अन्य कन्याओंके सङ्ग अन्य पुत्रोंका विवाह, राम आदिश आनन्दका वर्णन	३६१	राम सहस्रनाम	३८३
<b>अष्टम सर्ग</b>		रामसहस्रनामका माहात्म्य	३८४
रामके पास कन्दुकक नामक राजाका पत्र आना, कन्दुकककी कन्या मदनसुन्दरीके पास नारदजीका पहुँचना	३६२	<b>द्वितीय सर्ग</b>	
मदनसुन्दरीका नारदजीसे रामचन्द्रजीकी पठेहुँ बचनेका उपाय पूछना और नारदका उडे उपाय बतलाना	३६३	कल्याणके विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर	३८५
नारदका अयोध्या पहुँचना और उनके मुखसे सब हाल सुनकर यूपकेतुका कान्तिपुरीकी बल देना	३६४	रामके पाँच सौ हजार शिष्योंके साथ दुर्वासा- का आगमन और सबके लिए भोजन तथा पूजनके लिए ऐसे फल भोगना, जिन्हें संसारमें किसीने न देखा हो	३८६
यूपकेतुको न देखकर परिवार समेत राम-		रामका पत्रके साथ एक साथ इन्द्रके पास देखना और इन्द्रका कल्पवृक्ष तथा वारिजात स्वर्ग आकर अयोध्यामें राखना देना	३८७
		सीताका कल्पवृक्षकी स्तुति करके उसके द्वारा प्राप्त सागरीसे शिष्यों सकेत दुर्वासाकी भोजन कराना	३८८
		भोजनके बाद प्रकृत दुर्वासाका रामकी स्तुति करके प्रस्थान	३८९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
<b>तृतीय सर्ग</b>		सीताके हाथों मूलकासुरका वध	
रामोपासक तथा कृष्णोपासक को विशेषमें परस्पर मधुर विवाद	४२७	ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा सीताकी स्तुति	४२२
दोनों काष्ठपत्रोंका विवाद निपटानेके लिए आकाशवाणीका होना	४०६	रामके हाथों विभीषणका राजसार्मिक	४२३
<b>चतुर्थ सर्ग</b>		विभीषणके द्वारा मसीभाँति सम्मानित होकर रामका विचटाका सत्कार करना	४२४
एक कोएकी रामका वन्दन	४०७	रामका अयोध्या छोटना	४२५
रामपर आसक्त हो नागरिक स्त्रियोंका आगमन	४०८	लवणामुरसे अस्त भुनियोंका रामके पास जाना और अवन भुनिका लवणामुके पूर्वजन्मका वृत्तान्त	४२५
उन स्त्रियोंकी अनुचित प्रार्थनापर रामका उत्तर और वरदान	४०९	रामको मायासे शत्रुघ्नका लवणामुरको मारनेके लिये मधुवन जाना	४२६
रामका दास-वासियोंको बुलाना, किन्तु वहाँ किसीका उपस्थित न रहना, लवणका अपने दूत भेजकर उन्हें बुलवाना और दास-वासियोंका हरिकीर्तन सुँडकर आनेसे इन्कार करना	४१०	<b>सप्तम सर्ग</b>	
मध्य रात्रिमें एक स्त्री ( मित्रा ) का स्वप्न सुनकर पुष्पक द्वारा रामका उसके पास जाना और उसे वरदान देना	४११	शत्रुघ्न द्वारा लवणामुरका वध	४२८
कुम्भकर्णके दोष पीडककी लंकारपर चढ़ाई करके विभीषणको परास्त करना और विभीषणका रामके पास आकर अपना कुल सुनाना	४१२	अपना सेनाके साथ रामका दिगम्बरके लिए प्रस्थान	४२९
रामपर कंक आकर पीडककी परास्त करके विभीषणको राजगद्दीपर बिठाना कुछ काल बाद मूलकासुरसे परास्त होकर विभीषणका रामकी शरणमें जाना	४१३	पुष्करदा आदि तीन राजाओंके साथ रामका मुमुक्षु वृद्ध	४३०
सम्पन्न राजाओंके साथ रामकी मूलकामु-पर चढ़ाई और मोषण वृद्ध होना	४१४	उन्हें जोतकर रामका मधुरा जाना और वहाँमें यक्षनादि विविध देशोंकी राजा	४३१
ब्रह्माजीके द्वारा मूलकासुरके मरणको शुभ पुस्तिका जाप होना और रामका सीताको लानेके लिए गवहको भेजना	४१५	<b>अष्टम सर्ग</b>	
<b>पञ्चम सर्ग</b>		रामकी किम्बदन्त आदि देशोंकी विषयवस्तु, अरुणार्णवके विविध द्वीपों, द्वीस्थ नदियों और पर्वतोंका वर्णन	४३१
रामके विरहसे सीताकी श्वपाता वर्णन	४१६	<b>नवम सर्ग</b>	
रामसे मिलनेके लिए सीताका विविध मन्त्रोत्पत्ति मानना	४१७	रामकी मन्त्रादि द्वीपोंकी विषयवस्तु	४३५
सीताका मरुद्वीप आरुढ़ होकर प्रस्थान, राम-सीताका मिलाप और मूलकासुरका वध करनेके लिए रथपर सवार होकर सीताका रथ-भूमिकी प्रयाण	४१८	विविध द्वीपोंपर विजय प्राप्त करते हुए रामका वृषोदसापर पहुँचना	४३७
<b>षष्ठ सर्ग</b>		रामकी शाकद्वीप यात्रा	४३८
सीता-मूलकासुरका शक्तता और धार्ढ्यलाप	४२०	रामका पुष्करद्वीप पहुँचना	४३९
		लंकाालोक पर्यंत तक जाकर रामका अयोध्या छोटना	४४०
		जैसे हुए द्वीपोंपर राम द्वारा अपने माइकों और पुत्रोंकी नियुक्ति	४४१
		<b>दशम सर्ग</b>	
		रामका लक्ष्मणसे एक कुरोंके रोदनका कारण पूछना	४४१
		पूछनेपर कुत्तेका व्यर्थ पारनेवाले एक संन्यासी-को अपराधी कहना	४४२
		रामका संन्यासीको बुलवाना और होष प्रभाषित हो जानेपर मुत्तेसे ही अपराधीको	

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
दण्ड देनेके लिए कहना और कुत्तेका संन्यासको कहनेका मर्यादा बननेका व्यवस्था देना	४४३	उत्तका काव्यजिक मारीजिक सुनकर रामका पकड़ होना और वरदान देना	४६०
इस दण्डपर अधिक लज्जाका फलसे कारण पूछना और उत्तका बतलाना, एक दिन एक निश्चय करने के हुए बन्धको लेकर रामके समक्ष आना और गैला	४४४	उन सबको साथ लेकर रामका समक्ष आदिके पास आना और वहाँसे एक वरोवरपर पहुँचना	४६१
रामका उसे आश्वासन देना और बन्धके सबको तैलकी दायमें प्यवाना	४४५	रामके समक्ष रामका धाराहमयका करना वहाँसे रामका मयुरा जाना, वहाँ एकान्तमें रामके पास राखिने लगीका कारण करके समुद्रका वापस	४६२
उसी समय भृङ्गवेरदुग्ध एव और सबका जाना	४४६	कालिन्धी ( यमुना ) को राम वरदान	४६४
उसकी विषयको आश्वासन देकर रामका दुल्लभ मित्रानपर पहुँचकर बाहर निकलना, लगे फले जानपुर और पक्षि अर्थात् अयोध्या जाना	४४७	<b>राज्यकाण्ड ( उत्तरार्द्ध )</b> <b>त्रयोदश सर्ग</b>	
रामका दुल्लभकनसे एक पत्रपत्रे उस रूप करते देखना, उससे बात करना और वापस देना	४४८	समामें बैठे हुए रामका एक मनुष्यको हँसी सुनकर चबरागना	४६५
रामके समक्ष एक गुह्य और उल्लूकका अति-योग दया रामका त्याग	४४९	रामका अपने राज्यमें हँसनेकी भनाही करना	४६६
रामका पूर्वोक्त मातों मृदुकोकी अविष्ट करना	४५०	रामके इस आवेगसे मनुष्यों तथा वनताओंमें आतंक छा जाना और विशेष-पर्यन्तमें ब्रह्माका अयोध्याके एक पीढ़ल वृक्षमें अविष्ट होकर सोराहे हँसना	४६७
<b>एकादश सर्ग</b>		एक दिन समामें किसी दूतको हँसते देखकर रामका हँसना और बाधों वृक्षोंत हुए अपनी हँसीपर दिवार करना	४६८
मृगबाधों लिए रामकी भाषा और वनवर्णन	४५०	कारण ज्ञात होनेपर अनुचरोंको हँसनाला वीरक काट बाँटनेकी आज्ञा देना, उसे काटनेकी गये हुए देवकोंका ब्रह्माकी उल्लङ्घनासे आहत होकर पीत्कार करना	४६८
रामका एक मित्रका बोझा करते हुए अपने साथियोंसे विलुप्तकर वनमें दूत निकल जाना वहाँ सिंहको मारना और मृत सिंहकी अपनी आत्मकमर भुजाना	४५२	बादमें रामकी भाषासे सुनकर जाना, वहाँ पक्षियोंको मारते उनही ही मूर्च्छित होना और रामका अविष्टकी मुलाकर कारण पूछना	४६९
रामका एक काटगामे भुजना वहाँ पार विजयका वृत्रप्राप इष्टामें देखना और अहं कीर्तिव करना	४५२	अविष्टका कारण बतलाना, ब्रह्माकी धृष्टता सुनकर रामकी क्रुण्ठ होना और क्रुद्ध रामकी बहाने बालीकिका समझाना	४७०
रामका उन निजगति पात्रोंलक्ष उनका रामपर मोहित होना और उनको रामका वर देना	४५३	आनन्दराज्यकी महिमा	४७१
<b>द्वादश सर्ग</b>		बालीकिका ब्रह्माकी बुलवाना	४७२
उन वारीके साथ आने चसकर एक स्थानपर रामका साक्ष्य हुआ विजयोंकी देखना	४५५	ब्रह्माका रामकी स्तुति करना और अविष्टकी वी विष्णुगणोंके विषयमें बतल	४७३
उन सब चित्तोंका रामपर मोहित होना	४५६	<b>चतुर्दश सर्ग</b>	
उन सबका वरण करनेके लिए रामकी विचार करना और रामका अस्वधान होना	४५७	अविष्टके प्रस्ता इष्टा द्वारा उत्तर, अश्विनो-कूमारका विष्णुके गण अर्ध-विजयकी साथ देना और	४७८
रामके विषयमें उन द्विजोंकी करुण-वशाच्छ वर्णन	४५८		



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उद्धारके समयका निर्देश	४७४	कंकण देना उस कंकणकी प्राप्तिके विषयमें	
वय-विषयके अंगले जन्मकी कथा, वृद्धा- की स्मृतिसे रामका प्रसन्न होना, महर्षि वाल्मीकिसे रामके कुछ प्रश्न	४७५	अनन्यसे लवका प्रश्न और उन मुक्तिका उत्तर	५००
वाल्मीकिका स्वयं पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, तत्कारवृत्तिपरायण वाल्मीकिता एक विप्रका षष्ठक कमकदल तथा जूने आदि छानना बादमें तपती रेतपर चलते हुए वाद्ययन्त्रका दुष्टी देखकर दमयन्त जूने लौटा देना	४७६	एक रजनीय प्राणीको मरे हुए दुर्देका मांस खाने देखकर काष्ठकका विस्मित होना, उधरे कारण पूछना और उसका बतलाना	५०१
वाल्मीकिका शत्रु विप्रसे अपने पूर्वजन्मका हाल पूछना	४७७	वृद्धकारणके विषयमें महर्षि अवस्थसे लवका प्रश्न और कृषिका उत्तर	५०२
शत्रुका वाल्मीकिसे पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, केरवासल वाल्मीकिकी स्त्रीकी सेवा और मायासन वाल्मीकिका देहान्त और लम्बी स्त्रीका सती होना	४७८	वाल्मीकिकी कथा, राजा षष्ठकका भृगुकी कन्य के साथ बलात्कार और राजाकी भृगुका शपथ	
उनके अंगले जन्ममें कृष्ण नामके कृषि- का भाई एक उषिणीका माना और उसका वाल्मीकिता अन्ध किराणों द्वारा पालित होनेके कारण वाल्मीकिता व्यापवृत्ति स्वीकार करना	४७९	<b>अष्टादश सर्ग</b>	
वाल्मीकिकी गहमियोंका उपदेश	४८०	रामघटाकी रचनाविधि	५०३
उत्ते उपदेश वाल्मीकिता 'मरा-मरा' यह मन्त्र बोलने हुए कठार तप करना और बहुत वर्षों बाद महाविषाका फिर मही माना और अन्ध शोको बाहर निकालना, वाल्मीकिसे मुमुक्षु श्लोकका जन्म	४८१	विष्णुदासका रामबाणपुरके ब्राह्मणोंको राममुद्रा द्रुत शिला दिकनका कारण पूछना और रामदासका उत्तर	५०४
अकारादि क्रमसे रामनामकी महिमा	४८२	बहुत समय बाद एक दुष्ट राजा द्वारा सन्धि ज्ञानेपर उस ब्राह्मणों द्वारा बहु शिला एक मरावाम फेंकना	५०५
<b>पञ्चदश सर्ग</b>	४८३	उस शरीरको बाढ़से हनुमान्जीका उन ब्राह्मणोंकी रक्षा करना और राममुद्रावित्तु शिलाको संरक्षितमें निकालना	५०६
रामराज्यकी विशेषतायें	४८४	बहु शिला दिसाकर हनुमान्जीका उस दुष्ट राज को शूलोपर चढ़ाना और ब्राह्मणोंको मायासन देना	५०७
<b>षोडश सर्ग</b>		<b>एकोनविंश सर्ग</b>	
रामका लव-कुश आदि पुत्रों तथा भरत- लक्ष्मण आदि ब्राह्मणोंको राजनीतिक उपदेश	४८५	रामकी दिनचर्या	५१०
<b>सप्तदश सर्ग</b>		बैद्य और ज्योतिषीसे रामका वास्तुलाप	५११
कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर	४८६	रामकी समा और उसकी घोषा	५१२
विजयवर द्वारा हेमाका उपहरण और उसके साथ लव कुश आदिका भीषण युद्ध	४८७	कुशकी उत्पत्तिके बाद सीताके बर्णन रहनेका कारण	५१३
उस युद्धमें कुशका विजयी होना और प्रसन्न होकर रामका उन्हें एक कंकण देना उस कंकण की प्राप्तिके विषयमें कुशका महर्षि अवस्थसे प्रश्न और उसका उत्तर	४८८	<b>बीसवाँ सर्ग</b>	
हनुमान्जीका मुद्गल शूलिके नामसे सीताजीकी बूटी लकर लम्बी मूर्छा दूर करना	४८९	लवका वसिष्ठसे रात्रिमें सोते समय कानमें धीकधीक सभल होनेवाले सम्बन्ध कारण पूछना और वसिष्ठका उत्तर देना	५१४
लवकी भी रामका एक अंगस्थप्रवेश		रामका रामावतारकी श्रेष्ठ बतलाना	५१५
		मन्त्र, कुर्म, वाराह नृसिंह, शम्भु, वत्सुराम, हृष्ण, लोह तथा कल्कि अवतारके दोषोंका वर्णन	५१६
		राम के रामवतारके सुखाका वर्णन	५१७
		<b>इक्कीसवाँ सर्ग</b>	
		चैत्रनामके समय सीताका दर्शन करनेके लिए बहूतेरी स्त्रियोंका माना	५१८
		रामका पूर्वजन्मके कार्मण्य सिद्धान्तकेन	५१९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
लवका गुरु बहिससे पोषियोंके प्रत्येक वनमें एक ओर था तथा दूसरी ओर राम लिखनेका कारण पूछना और उनका बताना	५२७	सूर्यका वनको ले जाकर रामसे लवका मंगलाना	५२६
रामका एक दासको बरदान देना, रामका एक ही समय ही रूप धारण करके विधायिनी और बालीकिके यहाँ जाना	५२८	रामका अपने राज्यमें धार्मिक आदेश राज्यका उनके पारायणका साहाय्य	५२७ ५५१
<b>चाईसवाँ सर्ग</b>		<b>मनोहरकाण्ड</b>	
राजा मुरखिकिके यहाँसे बहुतरा शीघ्रता जाना और बिना रामको मर्पण किये सीताका उससेसे एक फूल छुँच लेना	५२९	<b>प्रथम सर्ग</b>	
एकादशीके दोन सीताको साढ़ीसे ढँक कर एक तुलसीका पत्र दूटना और उसी समय भारद्वाज का पहुँचना	५३०	रामदाससे विष्णुदासका मारदकणित रामायण ( कचुरामायण ) का सार पूछना	५५५
सोजन परासनेपर मारदक सीतासे संसृष्ट जीवन करनेसे इत्कार करना और रामक पुछने पर कारण बताना	५३३	<b>द्वितीय सर्ग</b>	
सीताका दूटा तुलसीराम टहनीमें ओखनेके प्रयासमें विफल होना	५३४	अवध्यावासियोंका रामसे कुछ उपदेश देनेके लिए प्रार्थना करना	५६०
मारदकी बहावी पुलिसके फिर सीताका प्रयास करना और तुलसीपत्रका नुह जाना	५३५	राज्यके समय दुरोका अमावसीकी उपदेश	५६१
मारदका रामस्तुति	५३६	शावनाष्ट पून पुनर्वासियोंका रामसे बालीकाद एक दिन कंजियोंका रामके उपदेश देनेकी प्रार्थना करना और रामका कंजियोंको भेजनेसे उपदेश दिलवाना	५६२ ५६४
<b>तेईसवाँ सर्ग</b>		भेड़ोंसे प्राप्त ज्ञानके विषयमें रामका हैकेयोसे प्रश्न	५६५
मानन्दरायका पाठ करनेसे एक साधारण सिपाहोका रामभाजी हो जाना	५३८	भुमिशको रामका ज्ञानावदेश	५६६
उसका अन्वय देखकर सब सिपाहियोंका मानन्दरायका आराधनमें लग जाना, सिपाहियोंके कनासे भयङ्कर सब राजाओंका रामके पास जाना	५३९	पाता कोमल्याको रामका गीते बखर्कते आत्मज्ञानका उपदेश दिलाना	५६८
मानन्दरायका अपने अपने घरपुरका सूना होना और यमराजका बहुत शिव आदि देवताओंके साथ धन्यवा जाना	५४०	कामान्दरमें कौसत्वा भुमिश आदिका दहत्याग	५६९
उनकी दुःखाया सुनकर रामका मानन्द-रामायणपर प्रतिबन्ध लगाना	५४१	<b>चतुर्थ सर्ग</b>	
<b>चौबीसवाँ सर्ग</b>		विष्णुदासका रामदाससे रामकी मानसी पूका-विधि पूछना	५७०
रामका मृत सुकनकी वनदुर्गिसे सीनकर वापस लाना	५४२	रामदासका उत्तर और गुरुके लक्षण बताना	५७१
सुमन्वकी जन्मकाजोन राधा	५४३	विभिन्नसत्यक असरोंवाले रामायण	५७२
कृपित यमराजकी बयोभाषर बड़ई	५४४	मानसी पूजाका विधि-विधान	५७३
सब और यमराजमें बयावत पुत्र, सबके रहस्यकी मारसे यमराजकी बहराहट और सूर्य गजबासुका काकर सबको संभलाना	५४५	नन्यकाराष्टकमन्त्र	५७५
		बहिसूनाविधान	५७७
		मन्त्रपुष्पांजलिके विषयमें विष्णुदास रामदासका प्रलोभन और चन्द्र-वृद्धिचन्द्र आदि नौ मन्त्रोंकी कथा	५७८
		उन नौ मन्त्रोंका कठोर सप करना और उन्हें रामका प्रत्यक्ष दर्शन मिलना	५८३
		उन नौ मन्त्रोंकी रामका बरदान	५८४
		<b>चतुर्थ सर्ग</b>	
		अष्टोत्तरशत रामस्मितीपर आदिके विषयमें विष्णुदासका रामदाससे प्रश्न और उसका उत्तर	५८५
		रामदासका विष्णुदासको आध्यात्मिक उपदेश	५८९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
राममुद्राको पूर्ण करनेकी विधिर्था	५९१	किस कामनाकी पूर्तिके लिए किस देवताकी	
महोत्तरगत रामस्मिन्तोमत्रके चेत	६०९	आराधना करनी चाहिए	६७०
<b>एकम सर्ग</b>		रामके रक्षाराशि नामोंका महत्त्व	६७१
रामस्मिन्तोमत्र कादि विविध मन्त्रोंकी		रामवारक मन्त्रका माहात्म्य	६७२
रचनाविधि	६०४	<b>दशम सर्ग</b>	
<b>धृष्ट सर्ग</b>		बेचबासकी महिमा	६७३
रामतोभद्रमें उत्तदैवताओंकी स्थापनाविधि	६२७	चैनस्नान करनेवालोंके लिए कुछ विशेष नियम	६७४
श्रीरामकी प्रिय वस्तुओंका विवरण	६३०	स्त्रियोंके लिए क्षीरक्षर गोरोहण तथा पूजन	
वृत्तिविश्व रामकी पूजाविधि	६३२	विधि	१७९
रामनवमीका उत्त करमेवाले एक विप्रकी कथा	६३७	रामनवमीको रामचन्द्रके पूजनका विधान चैन-	
एक राजामें राजसेवकोंका आकर उस		में आनन्दरामायणके पारामणका विधान	६८०
विप्रको स्ताना	६४०	वन्द्य विधि-विधान	६८१
इनुमान्जीके गर्भनसे राज्यके सब पुरुषोंका		<b>एकादश सर्ग</b>	
मरण, तभीसे उस राज्यमें स्त्रीराज्य होता	६४१	चैनमासके महत्त्वका कारण	६८३
उस राज्यमें पुरुष उत्पन्न न होनेका कारण	६४२	रामका देवताओंको चरवान	६८४
रामनवमी व्रतकी फलश्रुति	६४६	चैनरत्नान करनेवाले नृसिंह ब्राह्मणकी कथा	६८५
<b>सप्तम सर्ग</b>		शम्भु ब्राह्मणकी कथा	६८६
रामशतनाम आदि लिखनेकी रीति और		शम्भु विप्रका एक बहुलियेकी उपदेश	६८९
उपपादनविधि	६४४	शम्भु द्वारा वहाँ आये हुए एक राक्षसका उद्धार	६९१
रामनामकी महिमा	६४५	शम्भु विप्र तथा व्यापकी अयोध्यायात्रा	६९२
राजा बुधितिरका श्रीकृष्णसे रामनामजप तथा		शम्भुके मार्गमें एक सिद्ध तथा हाथीका सामने	
पुरस्कारविधि पूरना और श्रीकृष्णका वक्तव्य	६४७	जाना, उस सिद्ध तथा हाथीके पूर्वजन्मकी कथा	६९३
आनन्दरामायणके पाठ और रानका माहात्म्य	६४९	शम्भुका उन दोनोंके उद्धारका आश्वासन	६९४
रामनामजपकी महिमा	६५०	आगे बढ़नेपर शम्भुकी एक कार्पटिका	
कवित्तोंका लक्षण और कवियोंकी श्रेणी	६५२	( चर्चकारको ) से भेंट और मार्गछाप	६९५
<b>अष्टम सर्ग</b>		शम्भु द्वारा अयोध्याकी शोभाका वर्णन	६९७
देवादिओंके पाठका माहात्म्य	६५३	कार्पटिकके साथ शम्भु विप्रका अयोध्यासे कोटकर	
दानपात्रके विषयमें रामदास-विष्णुदासका		उक्त पूर्व आश्वसित राक्षसका उद्धार करता	७०१
प्रश्नोत्तर	६५४	<b>द्वादश सर्ग</b>	
शास्त्रोंके अध्ययनकी महिमा	६५५	मृगयाके प्रसंगमें रामकी एक खरीदे भेंट	७०२
विविध रामायणोंकी चर्चा	६५६	रामका दुर्गामन्दिरमें आकर बहुतेरे स्त्रियोंकी	
रामभयसके पाठ और रामसम्बन्धी कविता		पूजा स्वीकार करना और बरदान देना	७०५
करनेका फल	६५८	रामनामकी महिमा	७०६
आयुर्वेदाचार्योंके अध्ययनका फल	६५९	रामका मुनियोंकी उपदेश	७०७
मानियोंकी दानपात्रका विचार करना ही		<b>त्रयोदश सर्ग</b>	
चाहिए और ब्राह्मणका भव हृदयनेका कुफल	६६०	इनुमत्कवच और उसका माहात्म्य	७०८
विष्णुदास-रामनाममें रामकी विशेष पूजाके		रामकवच	७१४
विषयमें प्रश्नोत्तर, रामकी पूजाके मास तथा स्त्रि-		<b>चतुर्दश सर्ग</b>	
योंका निर्देश	६६१	सीताकवचके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और	
शोकापूजनकी विधि	६६२	सीताकवच	७१७
महान् पञ्चमोंकी योग्यता और पीनेका माहात्म्य	६६७	सीताहोत्तरगतनामस्तोत्र	७२०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
विषयोक्ति लिए कुछ उपयोगी कल	७२२	वज्राका + सोमवशी राजाओंको साथ लेकर	
रामनामतोषत्रकी रचनाविधि	७२३	रामके पास जाना और जंगल मेंगठाना	७३१
<b>पंचदश सर्ग</b>		रामका इन्द्रको बालमोक्षिके पास भेजना और	
लक्ष्मणकवच	७२९	जालमोक्षिके पराजयसे सोमवशी राजाओंको ईश्वरीय	
भरतकवच	७२७	सीताके पास जाना	७३२
सुगुह्यकवच	७२९	सीताके अनुरोधपर युद्धविराम वज्राका रामसे	
भोजन एवं कौशल करने योग्य राममन्त्र	७३१	वेंकुरूपम पशारनेके आर्पण करना और रामकी	
<b>षोडश सर्ग</b>		स्वीकृति	७३३
रामायणअवतारके काव्यके कर्तव्य	७३८	<b>पञ्चम सर्ग</b>	
गणेशकी शंका और रावके द्वारा समाधान	७३९	रामको परम धाम जानेके लिये जयलक्ष्मण	
मानवीय उत्पत्तिका इतिहास और अन्तरीको		दुपण, दुर्धन, विमोक्षण आदिको अपने साथ ले	
जलका वरदान	७४०	बलनेके लिये सावधान करना	७३४
हनुमन्तसकारोपणविधान	७४१	सङ्गम आप हनु राजाओं, मित्रों तथा पुत्रोंकी	
<b>सप्तम सर्ग</b>		विदाई और उनकी शान्त स्थानपर निपुष्टि	७३५
श्रीरामचन्द्रकीविश्राम और रामायण	७४३	रामके आशानुसार नुहाका व्यवस्था करना	७३६
<b>अष्टादश सर्ग</b>		रामकी लक्ष्मणकी वरदान	७३७
अर्जुनके रुषिकवज्र मोक्ष वरदानका कारण	७४३	<b>षष्ठ सर्ग</b>	
<b>पूर्णकाण्ड</b>		दूसरे दिन सुबहे रामका वज्रमोक्षका नुहाकर	
<b>प्रथम सर्ग</b>		अपने परम धाम जानेकी बात बतलाना	७३८
रामको सरासि हस्तिनापुरसे दूतका आना	७५७	रामके आशानुसार बात आगकर स्वर्गके देव-	
वाल्मीकिका रामकी वेदवशी राजाओंका		शान्तिमें उत्साहका स्फूर्ति	७३९
इतिहास सुनाना	७५८	श्रीशिवजीका रामके समय स्तुति करना	७४०
<b>द्वितीय सर्ग</b>		गणेशपर बैठकर रामनाम मंत्रमुखावसाने जाना	
रामका समयत राजाओंको बुलावना	७५९	और रामका साथ दये सभी अयध्यावासियोंको	
रामका भरतकी सहयोगीपतिके पदपर अभिहित		सान्त्वानिक हाँक प्राप्त होना	७४१
करनेका संकल्प करना, किन्तु भरतका यह पद		<b>सप्तम सर्ग</b>	
स्वीकार न करना वास्तवमें उस पदपर कुछका अभिप्रेत	७६२	हुताके वादग्रस्त मर्यादशी राजाओंकी वसन्तकी	७४३
हस्तिनापुरीपर कर्णके निज परामर्श, रावका		वस्य समायगी तथा अरवन्दरामायणमें भेदका	
सद्वृत्ति और व्यवस्थाकी वरदान	७६४	कारण	७४३
रामका हस्तिनापुरकी प्रणाम	७६५	<b>अष्टम सर्ग</b>	
<b>तृतीय सर्ग</b>		विष्णुदासका रामदाससे आनन्दरामायणकी	
रामका हस्तिनापुर पहुँचना	७६६	अनुप्राणिका पूछना और रामदासका अनुक्रमणिका-	
राम और सोमवशी राजाओंका युद्ध	७६७	सर्व कहना	७४४
उस मीथवा युद्धकी देखकर देवताओंमें भव-		<b>नवम सर्ग</b>	
राहत और शान्तिका उपाय सोचना	७६८	आनन्दरामायण सुनकर फल	७४८
<b>चतुर्थ सर्ग</b>		अनुप्राणविधि	७४९
हुताका ब्रह्मरथ संधान करना और ब्रह्मका		परायणविधि	७५०
कारण रोका	७७०	आनन्दरामायणका संक्षिप्त माहुरण	७५२
		पर्वतीकी और शिवजीका रामदास-विष्णुदास-	
		इति आनन्दरामायणविषयानुक्रमिका समाप्ता	७५३

श्रीसीतापतये नमः  
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्सर्गतं

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ह्या भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## सारकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( दशरथ-कौसल्यापित्राह तथा ऋष्यशृङ्ग द्वारा पुत्रोष्टि पठ )

श्रीवाल्मीकिहवाच

रागे भूमिसुता पुंस्तु हनुमान् पृष्टे सुमित्रामुतः  
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्गर्वादि कोणेषु च ।  
सुप्रीचश्च विभीषणश्च सुवराट् तारासुतो जाम्बवान्  
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥ १ ॥

आदौ रावणमर्दनं द्विजगिरा तीर्थार्दनं सीतया साकेते दशबाजिभेदकरणं पत्न्या विलासटनम् ।  
स्त्रीपुत्रग्रहणं स्नुषार्थमटनं पृथ्वाश्व मरक्षणं रामार्चादिनिरूपणं दयितया स्वीय स्थलारोहणम् ॥ २ ॥  
एकदा पार्वती देवी शंकरं ग्राह्यं दर्शिता । कैलासवासिन नत्वा राममन्त्रार्थैकवत्परा ॥ ३ ॥

पार्वत्युवाच

शंभो त्वया पुराणानि कथितानि ममांतिके । रघुनाथस्य चरितं जन्मकर्मसमन्वितम् ॥ ४ ॥  
कथयस्वाधुना देव मम प्रीतिविवर्द्धनम् । आनन्ददायकं कर्म रघुवीरेण यत्कृतम् ॥ ५ ॥

श्रीवाल्मीकि मुनि कहते हैं कि जिनके बायें भागमें सीताजी, सामने हनुमान, पीछे लक्ष्मण, दोनों दागल शत्रुघ्न और भरत बायव्य ईशान अग्नि तथा नैऋत्यकोणमें कमलः सुप्रीच, विभीषण, तारापुत्र युवराज रुद्रद और जाम्बवान् हैं उनके बीच विराजमान श्याम कमलसदृश मनोहर कान्तिवाले परमपुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥ इस ग्रन्थके सारकाण्डमें ऋषिवाक्यसे दुष्ट रावणका हनन, दूसरे पात्राकाण्डमें सीताके साथ रामकी तीर्थयात्रा, तीसरे पात्रकाण्डमें अयोध्यामें दस अश्वमेध यज्ञ, चौथे विलासकाण्डमें पत्नीके साथ विलास, पाँचवें जन्मकाण्डमें लव-कुशकी उत्पत्ति तथा सीताकी पुनः स्वीकृति, छठे विवाहकाण्डमें लवकुशके विवाहके लिए प्रस्थान, सातवें राज्यकाण्डमें अर्मपूर्वक पृथ्वीका रक्षण, आठवें मनोहरकाण्डमें रामकी पूजा आदिका वर्णन और नवें पूर्णकाण्डमें सीतासहित भगवान् रामचन्द्रके स्वधाम पधारने आदिका सुन्दर चरित्र वर्णित है ॥ २ ॥ एक समय रामचन्द्रजीकी भक्तिमें लक्ष्मण देवी पार्वतीने कहा हूँ शम्भो ! आपने बहुतसे पुराणोंकी सुन्दर कथा मुझे सुनायी । हे देव ! अब आप कृपा करके मेरी प्रीति बढ़ानेवाले रघुवीर रामचन्द्रके आनन्ददायक कर्म और उनके जन्म आदिकी मनोहर

सम्यक् पृष्टं त्वया कान्ते रामचन्द्रकथानकम् । कथयामि सविस्तरं महामंगलकारकम् ॥ ६ ॥  
 आदिनारायणात्प्रसङ्गाऽभून्मरीचिर्विधेः सुतः । मरीचैः कथयथः पुत्रस्तन्सुतः सूर्य उच्यते ॥ ७ ॥  
 सूर्यपुत्रः श्राद्धदेवो मनुर्वरस्वतस्त्विति । स एव प्रोच्यते तस्यैकशङ्कुः पुत्रः प्रतापवान् ॥ ८ ॥  
 इन्द्राकोस्तु विकुक्षिर्हि शशादथ स एव हि । विकुक्षेस्तु ककुम्भश्च स एवात्र पुरञ्जयः ॥ ९ ॥  
 स एवोक्तश्चन्द्रबाहः ककुत्स्थनृपतेः सुतः । अनेनास्त्रस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्ध्रश्च तन्सुतः ॥ १० ॥  
 चन्द्रश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूत्पुनराश्वः प्रतापवान् । शाबस्तो पुनराश्वस्य शाबस्तस्य सुतो महान् ॥ ११ ॥  
 बृहदश्व इति ख्यातस्तस्माज्जज्ञे नृपोत्तमः । कुवल्याश्वो नृपतिर्दृढाश्वस्तन्सुतः स्मृतः ॥ १२ ॥  
 हर्षश्च इति तन्पुत्रो निकुम्भस्तन्सुतः स्मृतः । बर्हणाश्वो निकुम्भस्य बर्हणाश्वनृपोत्तमान् ॥ १३ ॥  
 कृताश्वो नृपतिः प्रोक्तः श्वेनजित्स्मृतः स्मृतः । युवनाश्वः श्वेनजितो युवनाश्वनृपोत्तमान् ॥ १४ ॥  
 मान्धानाश्च महाम्युहिं स एव कथितो ह्यवि । पुरुकुत्सश्च मान्धातुः पुरुकुत्सस्य च पुत्रः ॥ १५ ॥  
 त्रसदस्युर्गिति ख्यातोऽनरण्यश्चापि तन्सुतः । अनरण्यस्य हर्षश्चो हर्षश्चम्याकृष्णः सुतः ॥ १६ ॥  
 त्रिवन्धनोऽरुणाज्जातश्चिवन्धनसुतो महान् । सत्यव्रतः स एवात्र त्रिशङ्कुर्गिति च स्मृतः ॥ १७ ॥  
 सत्यव्रतस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्ध्रः प्रतापवान् । रोहितस्तन्सुतः प्रोक्तस्तस्मान्न हर्षिः स्मृतः ॥ १८ ॥  
 हरितस्य सुतश्चम्पः मुदेवश्चम्पदेहजः । मुदेवाद्रिजयः प्रोक्तस्तन्पुत्रो भरुक स्मृतः ॥ १९ ॥  
 भरुकस्य वृकः पुत्रो वृकपुत्रस्तु बाहुकः । बाहुकान्मथरो जज्ञेऽसमञ्जः समराज्यव्रतः ॥ २० ॥  
 असमञ्जसश्च पुत्रोऽभूदंशुमार्गिति नामतः । तस्य पुत्रो दिलोपस्तु दिलोपाच्च भर्ग्याश्च ॥ २१ ॥  
 भर्ग्यारिश्चाच्छुत्रो जातः श्रुताश्वामः प्रकीर्त्यते । नामस्य सिन्धुर्द्वीपश्च अयुतायुश्च तन्सुतः ॥ २२ ॥  
 श्रुतपर्णस्त्वयुतायोः सुदासस्तस्य कीर्त्यते । मित्रमहः स एवात्र कल्माषांघ्रिः स एव हि ॥ २३ ॥  
 सुदामस्याश्वमकः पुत्रो मूलकोऽश्वमकदेहजः । स एव नारीकवचो मूलकस्य सुतो महान् ॥ २४ ॥  
 नाम्ना दशरथः प्रोक्तस्तस्य पुत्रः प्रतापवान् । नाम्ना त्वंहविहः प्रोक्तस्तस्य विश्वसहः स्मृतः ॥ २५ ॥  
 तस्य पुत्रस्य खट्वाङ्गः खट्वाङ्गादीर्षवाहुकः । दिलीपश्च स एवात्र तस्य पुत्रो रघुः स्मृतः ॥ २६ ॥

कथा मुनाइये ॥ ३-१ ॥ शिवजी बोलें-हे कान्ते । तुमने श्रीरामचन्द्रका कथाविषयक बड़ा अच्छा प्रश्न किया है । मैं उस भङ्गलकारिणी कथाको विस्तारपूर्वक कहता हूँ ॥ ६ ॥ आदि नारायण विष्णुमें शशाजी जायमान हुए । शशासे मरीचि, मरीचिसे कथय, कथयसे सूर्य और सूर्यसे श्राद्धदेव हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन्हाको धैर्यस्वत मनु जी कहते हैं । उनक बड़े प्रतापी इन्द्राकू, इन्द्राकूमें विकुक्षि अथवा शशाद और विकुक्षिक ककुम्भ अर्थात् पुरञ्जय हुए । ककुम्भसे इन्द्रबाहू, इन्द्रबाहूमें अनेना, अनेनासे विश्वरन्ध्र, विश्वरन्ध्रसे चन्द्र और चन्द्रका पुनराश्व नामक प्रतापी पुत्र हुआ । पुनराश्वसे शाबरत, शाबरतसे बृहदश्व तथा बृहदश्वसे कुवल्याश्व सत्यव्रत राजा हुए । कुवल्याश्वसे हर्षश्च, हर्षश्चसे हर्षश्च, हर्षश्चसे निकुम्भ, निकुम्भसे बर्हणाश्व, बर्हणाश्वसे कृताश्व, कृताश्वसे श्वेनजित्, श्वेनजित्से युवनाश्व, युवनाश्वसे माधाता हुए । जो मनारामे त्रसदस्यु नामसे प्रसिद्ध थे । माधातासे पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे फिर दूसरे त्रसदस्यु हुए । त्रसदस्युसे अनरण्य, अनरण्यसे हर्षश्च, हर्षश्चसे अरण्य, अरण्यसे त्रिवन्धन, त्रिवन्धनसे सत्यव्रत हुए । उनका नाम त्रिशङ्कु भी था ॥ १६-१७ ॥ सत्यव्रतसे हरिश्चन्द्र नामक बड़े सत्यवादी और प्रतापी राजा हुए । हरिश्चन्द्रसे रोहित, रोहितसे हरित, हरितसे चम्प, चम्पसे मुदेव, मुदेवसे विजय, विजयसे भरुक, भरुकसे वृक, वृकसे बाहुक, बाहुकसे समर, समरसे असमञ्जस, असमञ्जससे अंशुमान्, अंशुमान्से दिलोप, दिलोपसे भर्ग्याश्च, भर्ग्याश्चसे श्रुत, श्रुतसे नाम, नामसे सिन्धुर्द्वीप, सिन्धुर्द्वीपसे अयुतायु, अयुतायुसे श्रुतपर्ण और श्रुतपर्णसे सुदास हुए । वे मित्रमह और कल्माषांघ्रि नामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ १८-२३ ॥ सुदाससे अश्वमक, अश्वमकसे मूलक, मूलकसे नारीकवच, नारीकवचसे दशरथ,

रथां द्रुतो यज्ञः प्रोक्तस्तस्मादश्वयः स्मृतः । रातो दशम्यान्त्रातः श्रीगमः परमेश्वरः ॥२७॥  
 यस्य तामान्यनन्तानि गृणति मुनयः सदा । विष्णोरश्वस्य कथिता एकवर्तिर्नृपा मया ॥२८॥  
 एकवर्तिर्नृपायात्रं मध्ये रामो विराजते । तस्य ते चरितं कुत्सन संक्षेपाच्च त्रीम्यहम् ॥२९॥  
 इक्ष्वाकुनृपमवरः श्रियो लोकविभूतः । बलवान् सारयुनारोऽप्योप्यार्या पार्थिवो नमः ॥३०॥  
 नाम्ना दशम्यः श्रीमान् जम्बूद्वीपनिमग्नान् । अश्वाम गजय धर्मण मन्त्रेण महताऽऽवृतः ॥३१॥  
 अयोध्यायास्तु माभिध्वे देशे श्रीकौमलद्वये । कौमल्याया महापुण्यः कौसल्याख्यो नृपो महान् ॥३२॥  
 तस्यार्माबुदुदितारम्भा कौमल्या पत्निकायुका । तस्या दशम्येनेद विवहो निश्चिनो बृदा ॥३३॥  
 लग्नार्थं तं मयाज्ञेनु दत्ता दशम्यं नृपम् । पयविनिश्चयं कृत्वा विवाहदिवसस्य च ॥३४॥  
 तदा दशम्यश्चापि साकेते मरयजले । नौकास्थो जलजा कीडां चकं वे मत्रिवधुभिः ॥३५॥  
 निशार्या सेनया युक्तः स्तुतो वागपचरिभिः । स्मर्त्तानप्रकार्यश्च नमस्तुवर्गियोपितः ॥३६॥  
 तस्मिन्काले तु लंकार्या विधिं पश्यन् रावणः । कम्पान्मे परणं ब्रह्मन् नन्व मां वक्तुमर्हमि ॥३७॥  
 तद्वाचनवचः श्रुत्वा कथयामास तं विधिः । कौमल्याया दशम्याद्रामः साक्षाज्जनार्दनः ॥३८॥  
 चतुर्धा पुत्ररूपेण भूत्वा च निहनिष्यति । वंशमेऽहनि लग्नस्य गतो दशम्यस्य हि ॥३९॥  
 दिवधो निश्चिनो विधेः कौसल्याख्येन राजेण । बहिर्धेर्वचनं श्रुत्वा पुष्पकस्थो दशाननः ॥४०॥  
 अयोध्यां सन्वरं श्रुत्वा गतमैः परिदृष्टितः । नौकास्थं तं दशम्यं किञ्च पृष्टः सुदारुणः ॥४१॥  
 वमज निजपादेन तां नौकां सरयजले । तदा सर्वे मृतास्तत्र मरवा निपले जले ॥४२॥  
 दशम्यसुमत्री ही नौकालण्डोपरि स्थिता । शनैः शनैः प्रवाहेण गत्या च गार्गशीं नदीम् ॥४३॥

दशम्यसे ऐदविड लेटनितस निधरट, निधनहमे सटवा हू, सटवा हूसे रापेगाहू हूए । उन्होका नाम रिन्निन  
 भी था । रिन्निन स रपु रपुने क्क और मजसे बहे प्रताया महार ज दशम्य हूए । दशम्यसे मासात् परमेश्वर  
 मयादापुषीतम रामचन्द्रजा जयमान हूए ॥ २८-२७ ॥ उनके अवनत नाम है । जिनका मुनिलग्न सदा  
 गम्या करते हैं । विष्णुसे लेकर ६१ ( इकसठ ) राज पैर जिनाये । उन राजाभोक बाब रायचन्द्रजा  
 प्रकट हूए । उनका बापच मै तुमका लक्ष्मण बटाटा हू ॥ २८ ॥ २९ ॥ इक्ष्वाकुकुलसे अश्व, लग्नाय  
 प्रसिद्ध बलवान् सारिय, सारय नदीके किनारे बसा हुई अयोध्या नगरीके राजा जम्बूद्वीपके स्वासी, बड  
 भारी श्रीमान् राजा दशम्य विशाल सेना रखकर धर्म तथा व्याघ्रपूर्वक राज्यका शासन करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥  
 अयोध्याके पास हू कौमलदेवकी कौमल्यापुरीसे कौसल नामका एक बडा पुष्पारवा राजा राज्य करता था  
 ॥ ३२ ॥ उसकी विवाहके माग्य एक सुन्दरा कौसल्या नामकी स्त्री थी । उसका उसका पिता कौमल्य  
 दशम्यके माग्य विवाह निमित्त किया । बादमे आनन्दक माग्य विवाहके दिनका निमित्त करके उन्होने  
 लग्नके निमित्त राजा दशम्यको मुनानके लिए दूतको भेजा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उस समय राजा दशम्य  
 सारयनदीके बीच नौकापर बैठकर इष्टमित्रों तथा मान्दवोंके साथ जलक्रीडा कर रहे थे । रात्रिका समय था,  
 चारो ओर सैनिक खड़े थे, चारगण स्तुति का रहे थे और रत्नके दीपके प्रकाशसे समस्त नाव जगमगा  
 रही थी । बाबाबूजासे नानप्रकारके नृत्य बान कर रही थी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी समय लक्ष्मणसे राजा रावणने  
 बह्मसे पूछा — हे बह्मन् ! मेरा किसक हाथो मरण होगा ? वह आज स्पष्ट कहिये ॥ ३७ ॥ रावणका बचन सुनकर  
 बह्मने कहा कि दशम्यकी स्त्री कौमल्यासे साक्षात् जनार्दन कल्याण राम यदि चार पुत्रोंके रूपसे उत्पन्न  
 होंगे उनमसे राम तुमको मारेगे । कौमलराजने साक्षुणोसे पूछकर राजा दशम्यके कल्पका जाजसे  
 पाँचवाँ दिन निमित्त किया है । बह्मका यह बचन सुना तो रावण बहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर माग्य  
 अयोध्यानगरीको चल पडा । वहाँ पर और धार बुद्ध करके उसने नौकापर बैठे राजा दशम्यको पराजित  
 किया और पारप्रहारसे नावको तोड़कर सरयुके जलमे डुबो दिया । उस समय और सब तो जलमे डुबकर  
 मर गये । परन्तु राजा दशम्य तथा सुमन्त्र नामका मन्त्री ईवेच्छासे नावके टुकड़ोंपर बैठकर पीरे-पीरे

नतः समुद्रमध्ये हि जीवितार्वाश्वरच्छया । रायणः कामल गन्दा कुन्वा परमसगरम् ॥४४॥  
 कौमल्यास्य नृपे शिखा कौमल्या नां जहार म । नतः प्रमुदिनो लकां ययावाकाशवर्त्मना ॥४५॥  
 दृष्टा तिमिगिन्दे मन्थं वसन लक्षणाणवे चित्ते विचारयामास देवास्ते मम क्षयवः ॥४६॥  
 लकायाश्च दृष्ट्वान्ति कौमल्या गुप्ताविग्रहाः । अनास्तिमिङ्गलापेमां न्यामभूतां करोम्यहम् ॥४७॥  
 इति निश्चिन्य ननमि पेटिकायां निधाय ताम् । मन्थं समर्प्य हृष्टात्मा ययौ लकां दशाननः ॥४८॥  
 तिमिङ्गिलोऽपि तामास्ये धृन्वाऽऽधी व्यचरन्मुग्धम् । अग्रे दृष्ट्वा त्रिषु र्धायं तेन पुद्गार्धमुद्यतः ॥४९॥  
 द्वापे नां पेटिकां स्थाप्य मय्यमं त्रिषुणाऽहमेन एतस्मिन्नन्तरं नौकाम्बुडं त द्वापमागतम् ॥५०॥  
 तदा नौ मन्त्रिनुवर्ता द्वापं तमाकुरुतु । तत्र नां पेटिका दृष्ट्वा समुद्रात्पतिविस्मिता ॥५१॥  
 तस्यां दृष्ट्वाऽथ कौमल्यां ज्ञत्वा वृत्तं परस्परम् । तया मुहूर्तमस्ये द्वापे दशरथो वृषः ॥५२॥  
 मान्धर्वाण्यं विदाहं च चकार मृदिताननः । ततो गङ्गाऽथ कौमल्या सुमन्त्रो मन्त्रिसचमः ॥५३॥  
 प्रपत्ति धत्वा पेटिकायां तद्द्वारं पिदुः पुनः । तिमिगिलो त्रिषु जित्वा चक्रास्ये तु पेटिकां ॥५४॥  
 लकायां रावणश्चापि समाहूय विधिं पुनः । उवाच प्रदमन्वाक्यं तभायां संस्थितः सुष्ठु ॥५५॥  
 विधु तव मृषा वाक्पे रावणेन मया कृतम् । इतो दशम्यस्तोये कौमल्या मोषिता मया ॥५६॥  
 तद्वावणवचः श्रुत्वा मभायां पप्रमभवः । दीधम्बरेण शोभाय अंशुण्याहमिति स्फुरत् ॥५७॥  
 गङ्गा मञ्जुमात्राह किमिदं व्याहनं न्वयाः । विधिं प्रोवाच तर्जं तु जात दशरथस्य हि ॥५८॥  
 तदा विधिं मृषा कर्तुं दशान्मग्रंभ्य मादगम् । तिमिङ्गिला ममार्जाय पेटिकां मय्यगोऽन्तिके ॥५९॥  
 समुद्रादथ ददर्शमी एव तस्यां दशाननः । तदाऽतिचकिनः क्रुद्धस्तान् हतं खड्गमाददे ॥६०॥

रावणवचन सहित गणनदीप का पट्टच । ३८-५३ ॥ वहीम बहन हुए वे दोनों समुद्रमें जा मिले । उधर  
 रावण आ. १४९ में चलेकर कामलनगर में जा पहुँचा और अश्विनक बुद्ध करके गंगा कोसलको जीत लिया ।  
 तदनन्तर कौमल्याका हरण करके वह आनन्दक साथ आकाशमार्गसे लड्डाको चला ॥ ४४ ॥ ४५ ॥  
 गङ्गाम बहने समुद्रमें रहनेवाली तिमिङ्गिल मछलीको देखकर उसने सोचा कि सब देवता मेरे शत्रु हैं ।  
 वही सब बुराकर वे लड्डा कोसलका नरा न ले जायें । इसीलिए इसको यहीं इस तिमिङ्गिलको  
 घरायश्याम सो दू टा टाक हा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ऐसा सोचकर उसने कौमल्याको पिटाटीमें बन्द करके  
 तिमिङ्गिल मछलीको साथ लिया और मय्यं आनन्दक साथ लड्डा चला गया ॥ ४८ ॥ वह मछली उस  
 पिटाटीकी मुखमें चकर मुखपूवक समुद्रमें घूमने लगी । सहसा अपने शत्रुको सामने देखकर उसने बभ्रुक  
 साथ युद्ध करनेका निश्चय किया । ४९ ॥ तदनुसार पिटाटीका एक टापूपर रककर वह तपुसे युद्ध करने  
 लगी । उसी समय वह नावका टुकड़ा भी उसी टापूक किनारे आ लगा ॥ ५० ॥ तब राजा दशरथ  
 तथा मन्त्र उवाच ५१ में उतर पड । वही उनकी दृष्टि उस पिटाटीपर पड़ी । सोचकर देखनपर उसमें  
 कौमल्याको देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । ५२ ॥ बादमें एक दूसरेसे सब बालाको बान करके  
 प्रसन्न हुए और अन्ध मुहूर्तमें वहीपर राजा दशरथने प्रसन्नतापूर्वक कौमल्याके साथ गावर्ग विवाह कर  
 लिया । ५३ ॥ राजा, कौमल्या तथा मन्त्रिबोमें श्रेष्ठ मन्त्री मुमन्त्र ये तीनों पुन पिटाटीमें घुस गये और  
 दकना बन्द कर लिया । मछलीने भी शत्रुका जीतकर उस मन्त्रुकको फिर अपने मुखमें रख लिया । ५४-५५ ॥  
 उधर लड्डाम रावण मुखपूर्वक मय्यके बीचमें बैठा और बलामीको बुलाकर हेरते हुए बोला— ५६ ॥  
 हे बहान् ! मैं आपका बचनको भी सड़ा कर दान्ता । दशरथको जलमें डुबोकर कौसल्याको छुपा दिया  
 ॥ ५७ ॥ परी सभाम रावणक इस बचनको सुनकर ब्रह्माने जोन्से स्पष्ट शब्दोंमें “अंशुण्याह” ऐसा कहा  
 ॥ ५८ ॥ यह सुनकर रावणने पूछा कि यह माणने क्या कहा ? ब्रह्माजी बोले—मरे ! राधा दशरथका विवाह  
 हो गया ॥ ५९ ॥ रावण ब्रह्माक बचनको अमन्थ प्रमाणित करनेके लिये दूसों द्वारा मछलीसे पेटो मंगवायी  
 और उधो ही खान्दकर ब्रह्माजीका दिखलाना चाहा त्यों ही उसमें मुमन्त्रके साथ दशरथ कौमल्याको देखकर



तदाऽनिमभमादेवा सवर्णं चक्रमवर्त्तयत् । हिं करोषि दशास्य त्वं माऽभूना माहमं कुरु ॥६१॥  
 कौन्त्येन स्थापिताऽस्या पेटिकायां स्वयं पुरा । त्रयस्तत्र तु संजाना भविष्यन्पत्रं कोटिशा ॥६२॥  
 भविष्यति कथस्तेऽथ गयोऽर्चं अनिष्यात् । माहमं कुरु माऽग्रव मन्यायुषि दद्यान्नन ॥६३॥  
 यज्ञविष्णु तद्भवतु तदग्रे माऽस्य माघनम् । एतान्दत्तः प्रेपयाय माकेन त्वं सुखी भव ॥६४॥  
 न भविष्यति मद्राणी सृषा जार्नाहि निभयम् । यद्वाप्य तद्भवन्नेव मदना कर्मणो गतिः ॥६५॥  
 तद्विधेर्वचनं तन्यं मन्वा भानो दशमनः । पेटिकां प्रेषयामास माकेन स्वभट्टजैरातु ॥६६॥  
 साकेते पेटिकां गच्छन्वा मद्रास्ते गवय गताः । अयोध्यायाः महानायास्यत्रणो जूवददनात् ॥६७॥  
 अयोध्यावामिनां नृणां कोमलाधिपतेर्गपि । ततः पनविवाहस्य मन्त्रम कोमलाधिपः ॥६८॥  
 कृष्ण स्वगज्यं जामावे ददौ मान्या हि पुत्रिकाय् । तदारभ्य कोमलेन्द्रा प्रानन्दने गवयगताः ॥६९॥  
 ततो राजा दशम्यः सुमित्रा समधेयजाम् । विवाहसपरा पन्ना सकर दायगां विषाम् ॥७०॥  
 कैकेयनृपतेः हन्या कैकेयीं पद्मलाचनम् । विवाहेनाङ्गोद्गाय्यां दुर्गाया परमादरान् ॥७१॥  
 एषाऽन्वानि सप्तसुतकलआप्यकरोन्नुपः । एवं राजा दशम्यः दशम्यं जगर्भावहम् ॥७२॥  
 दानेभोगर्हभरो बभूव जगदो महान् । नाभवत्सन्निभस्त्वय धार्मिकस्यावर्त्तनपतेः ॥७३॥  
 कोमल्या च सुमित्रा च कैकेयी च गिराद्रजे । एताः दुर्गाराः सुभगा रूपयौवनमयुताः ॥७४॥  
 तस्मिन् शसति राज्यं तु स्थितेऽपोष्यापुरि मित्र । देवानां दानवानां च तज्जगत् विग्रहो महान् ॥७५॥  
 तत्र रायभवच्छ्रेष्ठा वरायोप्यर्पितमहान् । त्रयस्तत्र न संदेहानां भुक्त्वा पचन्तो जगान् ॥७६॥  
 प्राचयामास नृपात् गत्वा बुद्धाय मादरम् । ततो मन्वा दशम्यश्चकार कटनं मदम् ॥७७॥  
 एतत्ते तां वदत वक्तिषु धृष्टा । किं कुरु शक्यं त्वं मान्दक त्विदं उमते सन्ततारं निकामं स्त्री ॥७८॥  
 तत्र वदामि राविककां राविकरं कथा । अरं दशम्येन बहु कथा कथिता है ? इमं समयं तमां साहसं मतं कर  
 ॥ ८१ ॥ देख तूने केवल कौसल्याकी ही इसमें ख्याती थी । किन्तु ये एकस एक जान ही गये । वैसे ही इन  
 सानोसे कल हो ही जायेगा । ८२ ॥ राम सा आज ही जन्म ले जग और नू भाग जायगा । भायु जन्म मृत  
 क्या अपने मरना चाहता है ? इसलिये तू ऐसा मन्त्रम व्याख्या ॥ ८३ ॥ जो हानी होंगी सा भाग हानी ।  
 कभी तू कुछ मत कर और इन सानोका दुत हाग इनक ख्यातकी मतवाकर सुना हूँ ॥ ८४ ॥ मग कम  
 कभी झूठ न होंगे । इस बातकी निश्चय रख । कर्मका र्पित कही गहन होती है । वरमं अनुसार जो होवगना  
 होता है, सो होकर ही रहता है ॥ ८५ ॥ इस घटनाकी र्पित हाय इन्कर राजन कुछ डर गया और  
 बहामाकी बातकी सन्धी भागकर वह पिटारी जगन दुता हाग जीम जयाया भेज दी ॥ ८६ ॥ राजा दशम्य  
 आदिकी सकुशल जाय देखकर जय ध्याय स्थिती तथा कास्यदशक राजा आदिका बडा समझना हुई और  
 आश्रय भी हुआ । आदिस कास्त्याधिपतिने वन मदारहके साथ फिरसे विवाह करके अपनी कमनीय कन्या  
 कौसल्या तथा कन्या रूपी राज्य अपन दायाद राजा दशम्यकी दृष्टरूपसे दे दिया । तबल कास्यदशके  
 राजा भी सुखवशी कहलान लग ॥ ८७-८९ ॥ तदन्तर राजा दशम्येन मगधदशक राजाका कन्या सुमित्राका  
 स्वाहकर अपनी दूसरी कन्याप्रिया स्त्री बनाए । ९० ॥ करके इसक राजाका कमलन्दना कन्या ककयाकी  
 स्वाहकर जन्तेन वह आदिसपुत्रक तामरा पला वरागी ॥ ९१ ॥ इन तीनके अतिरिक्त अन्य भी उनकी सात  
 स्त्री स्थिती थी । इस प्रकार आनन्दपुत्रक राजा दशम्य दान-दान-भाग-ऐश्वर्य आदिक द्वारा पुष्पाका शायन  
 कलत हुए कुछ हो गये । परन्तु उस परम धार्मिक राजा दशम्यके कोई सन्तान नहीं हुई ॥ ९२ ॥ ९३ ॥  
 इ प्रिय वाचता । पुत्रक बिना राजाको कर्मवीरन पुत्र मजग बीसन्त, कैकेयी तथा सुमित्रा आदि स्थिय,  
 राजा और विजाल अयोध्यापुरी मूना तथा अन्य राजके मग । उसी समय देवताओं और राजकाय राज्य-  
 के लिए बडा भारी कुछ आरम्भ हो गया ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ उस बुद्धिमे यह भावनावाणी हुई कि 'जिसके कर्म  
 अयोध्यावाँ राजा दशम्य हारे, उसी दशकी विजय होगी । उह बाणकी सुनकर पचनपचने कीज जाकर

एतस्मिन्-दन्तरे तत्र संप्राप्तेऽतिभयान्वहे । भिक्षार्थं स्वस्थं राज्ञा नाविदादिष्टमंभ्रमात् ॥७८॥  
 गङ्गाऽन्तिके विधत्ता मुञ्चः कैकेयीं स्पर्शकौतुकम् । पश्यन्ती स्वस्थं भिक्षं ददत्यं समरांगणे ॥७९॥  
 प्रभवन्मा निज हस्तं चकार जयहेतवे । तथा तु पूर्वं वान्यन्त्रात्मस्यास्य कस्याचेन्मुनेः ॥८०॥  
 कृष्णवर्णं कृतं तेन कथा नेऽप्यववादनः । सुखमग्रे निर्गच्छन्ति नैव लोकाः कदाचन ॥८१॥  
 ततस्तं गन्तुमुद्युक्तं कैकेयीं वामहस्ततः । दंडादिकं ददौ तस्य मुनेर्हस्तेऽतिमोक्ततः ॥८२॥  
 तस्य ददौ वरं विप्रस्तव वामकरा वरम् । भविता वज्रकटिनः कदापि नाश न चक्ष्यति ॥८३॥  
 कैकेयी त वरं स्मृत्वा स्वं चकाराक्षयःकम् । अथ जित्वा रणे दैन्यान् दृष्ट्वा तत्कर्म णथिवः ॥८४॥  
 ददौ वरं दौ तस्य म न्यामभूरी कर्ता तथा । यदाऽहं पार्श्वयस्यामि तदा त्वं देहि तौ मम ॥८५॥  
 तथेव्युक्त्वा नृपः एन्तो यथा स्वजगरीं प्रति । एकदा म निशायां तु मृगयायां महारणे ॥८६॥  
 चकार वाग्विधं चावधीदनचगन् बहून् । एतस्मिन्नन्तरं तत्र रणे वाराणसीपथा ॥८७॥  
 कण्डक्या स्वपिनरी स्वम्कंधे भ्रवणो बहून् । काशीं नेतुं यथा वैश्यो धर्मवाधामयान्निधि ॥८८॥  
 नीरं पातु शिशो देहि चान्वयोधेति य धिनः । तस्यां कण्डके न्यस्य तटाके जनसंनिधौ ॥८९॥  
 गत्वा जले स्वयं कुम्भं न्युज्जतस्थौ जले क्षणम् । कुम्भस्य न्युज्जतः शब्दो बभूव कणिणो यथा ॥९०॥  
 एतद्विधो न हंगम्यधेति जानन्नपि नृपः । वैश्यं राजा द्विषं मन्वा विख्याध म एतन्विणा ॥९१॥  
 वपात भ्रवणम्लोघे हा केन हं प्रमादितः । मननधेनि तद्वाक्यं श्रुत्वाऽभूदिह्लो नृपः ॥९२॥  
 गत्वा जलाद्वत्तवशात् कुत्वाऽऽकुर्यं ताद्रुग । मयं वृत्तं विशुन्यं नं चकार भयविह्वलः ॥९३॥

राजा दशरथस युद्धम सामान्यतः हनका स दर प्रथमा का । तन्नुसार राजा दशरथ वहाँ जाकर दानशेख  
 धर युद्ध करने लग ॥ ७९ ॥ ७७ ॥ उस भयानक संघामय समय राजा के रथका धुग टूट गया, किन्तु देववध  
 णा का का कता नहीं लग ॥ ७८ ॥ त राक पास बैठा मुन्तर भी जाना गनी कैकेयी संगामका कौतुक दख रही थी ।  
 उसने सहसा रणम अपने रथका धुग टूटने दख लिया ॥ ७९ ॥ त काल उसने विजयधामके लिए अपने बाहे  
 हाथका धुरक जगड़ लगा दिया । बचपनम कैकेयीन किसी मोने हुए पुत्रिका मुँह व्याहोसे काल कर दिया  
 था । तब मुनिने उसे शाप दे दिया कि जा, तब नुँद भा अपयथाके कारण ऐसा काल्य होगा कि कोई दखना  
 नहीं चाहता । ८० ॥ ८१ ॥ जब मुनि वहाँन चले लगे, तब कैकेयन प्रक्षिप्यंक काय हाथसे उनका  
 दण्ड कमण्डल डक दे दिया ८२ । इस रुवाम प्रगाध हाकर पुनिने उसे वरदान दिया कि जा तब वापी हाथ  
 समय पहनपर वध जमा कठोर हो आयगा और किसी तरह भायल न होगा । ८३ । कैकेयीने उस वरका  
 स्मरण करके हो खरने हाथको धुरक सही बनकर रथमे लग दिया था । रणम देवदाको जीतनेके बाद  
 राजा दशरथम कैकेयीक इस माहम मरे कार्यका देनकर प्रमनतापूवक उससे दो वर मागनेके लिए कहा ।  
 उसने भी उन दोनों वरको राजाके पास ही परात्तरूपमे रख दिया और कहा कि जब ये मांगू तब  
 आप ये दो वर मुझे दे दीजियेगा ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ 'बहुन अच्छा कहकर राजा अपना दवाक साथ अयाधय  
 लौट आये । एक दिन रात्रिक समय राजा दशरथ जिकार भवनक लिये सनयुके किनारे गहन वनम जा पहुँचे ।  
 वहाँ उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके नदीका जलप्रवाह गक दिया और बहुतसे वनपशुओंको मारा ।  
 उसी समय अरुण अपने बूढ़ तथा अं भता पिताका कविरुध दिहाकर कांधपर उठाये हुए उस वन्य  
 भागसे कापी ले जा रहा था । तभी गर्भति रोहित होकर बूढ़ माता-पिताने अपने पुत्रसे जल मिलानेकी  
 कहा । उनकी सहा ९ ठे ही अरुण कांधरको जलके किनारे रख तथा घड़ेकी टंका करके जल घरने  
 लगा तो उस घड़ेमे हाथीके शब्द जैसा शब्द निकला ॥ ८६—८७ ॥ बनेने हाथीको नहीं मारना  
 चाहिये' इस बातको जानते हुए भी राजा दशरथने उस वैश्य भ्रवणको हाथीके अमसे कण्ठवेधी  
 धाक मारकर बीच दिया ॥ ९१ ॥ 'हाथ मुझ निरपराधको किसने मारा' ऐसा चित्पराकर भवण प्रहामसे  
 अलमे गिर पड़ा । अनुप्राकी बोली सुनकर राजा दशरथ घबड़ा उठे और दौड़कर वहाँ गये । उसको बच-

वारं धावपि तपुत्रवधं भुत्वा लोदनुः । कारयित्वा नृपतिना चिति पुत्रममन्विनी ॥ ९४ ॥  
 दशम्याय तौ शपं ददतुः पुत्रदुःखिनौ । पुत्रशोकादावयोर्हि यथा मृग्युन्मवाप्तिवनि ॥ ९५ ॥  
 यथौ नृपोऽपि नगरीं गुरुं हन न्यवेदयन् । वसिष्ठो नृपतेर्दोषशान्धं तुंगाध्वरम् ॥ ९६ ॥  
 नृपेण कार्यामाम माहेते मय्यनटे । रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशम्यः सखा ॥ ९७ ॥  
 शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छत्तद्विदुःश्रुतवधम् । विमादकाधर्मं चारवागीः संप्रेष्य तन्नुतम् ॥ ९८ ॥  
 रोमपादो मोहयित्वा श्रम्यमृगं समानयन् । वारं स्वयो वने गत्वा ममानिन्पूरुषेः सुतम् ॥ ९९ ॥  
 नाट्यमंगीतवादिर्नविभ्रमातिगानाहर्णः । तन्प्रतापादभृद्वृष्टिः पुत्रोऽपि नृपतेर्भून् ॥ १०० ॥  
 तन्मृष्टो रोमपादस्तस्मै शान्तां ददौ मुनाम् । उशम्योऽपि स्वपुर्णमानपापाम तं मुनिम् ॥ १०१ ॥  
 स तु शङ्खोऽनपस्यस्व निरूप्येष्टं भरन्वनः । प्रणक्षं हि चकाराग्निं दध्नुकृष्टान्वषायमम् ॥ १०२ ॥  
 आविर्भूत्वा स्वयं बद्धिर्ददौ शङ्खे सुपायमम् । शङ्खा विभक्तं स्त्रीम्यस्तर्ककेर्या दृष्टमावनः ॥ १०३ ॥  
 अहरण्यायम हन्नादृगृध्रो शापविमोचकम् । सुवर्षलाऽप्यग्रेयुलया नृम्यभंगारव्यभुजा ॥ १०४ ॥  
 शङ्खा जाना तु सा गृध्री तथा वेधः मुनोपिन । तस्यै तुष्टो विधिः प्राह कैंकेरीपायमं ददा ॥ १०५ ॥  
 प्रक्षिपस्वजनसिरो तदा सै भविता भतिः । अप्सरा त्व पूर्ववच्च भविष्यति न यद्रयः ॥ १०६ ॥  
 तस्मात्मा पायसं नीत्वाऽक्षिपदन्ननिपर्वने । निज स्वरूपं सा लब्ध्वा जगाम सुरमदिरम् ॥ १०७ ॥  
 नतस्तामसां तु कैंकर्यै हनं किंचित् पायसम् । अथ सा भक्षयामासुतर्गभस्मिन्दाऽभवन् ॥ १०८ ॥

ते बाहर निकालकर उसको मुंहसे सब वृणाम्भ नृपा तां जयस काण्ति हुए राजान उस वीर्यवाक्यकर  
 शरंरस बाण निकाला ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ राजाके मुखसे पुत्रप्राप्तकी वत मुनकर वे दोनों अथ अतिशय  
 निराश करने लगे और राजासे चिता बनवाकर पुत्रके साथ जलकर राजाके मित्राए गये । मरते समय  
 पुत्रविद्यागसे दृष्टिसे दोनों अन्धी-अन्ध राजा दशम्यको यह शप दए मय कि जैसे हम दोनों पुत्रप्राप्त  
 कर रहे हैं, वैसे ही तुम भी पुत्रप्राप्त हो मरोगे ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ राजान नगरमें आकर यह सब हुआ मुन-  
 बलिजकाको सुनाया । कुछ दिनों बाद वसिष्ठ राजाको दार्शनिक तथा पुत्रप्रदिक गिने उनमें  
 वरपुत्रके निम्नारे कप्य शृङ्गको पुण्यकर जयमय यज्ञ काधम्या । राजा दशम्यके मित्र जगदशक  
 राजा रोमपादने अपनी शान्ता नामकी कन्या श्रम्यशृङ्गको द दायी । कर्मिक एक बार राजा  
 रोमपादने रंशन वर्षों न होन तथा उन्हें कोई पुत्र न होनक कारण मन्त्रियोंके कल्पानुसार कर्मशृङ्ग  
 गिला विभादकके आश्रमसे वेध्याओंके द्वारा मोहित करवाकर उन्हें अपने देशमें बुलाया । वेध्याये वनमें  
 बगी और साचकर, गाया गाकर, वाजे बजाकर हावभाव, आदि-इन तथा पूजा आदिक द्वारा मोहित करके  
 श्रम्यशृङ्गको ले आयी । उनके यह करानेसे राज्यमें बृष्टि हुई और राजाको पुत्र भी प्राप्त हुआ  
 ॥ ९६-१०० ॥ तब प्रसन्न हुंकर राजा रोमपादन श्रम्यशृङ्गको अपनी शान्ता नामकी कन्या  
 दान करके दे दी । अनएव दशम्य भी उन श्रम्यशृङ्गका अपने नगरमें ले आये ॥ १०१ ॥ उन मुनिने  
 संतानरहित राजा दशम्यसे उष्टि यज्ञ । कर्मकाकर सार लिये हुए अग्निदेवको यज्ञकृष्टसे प्रत्यक्ष प्रकट  
 किया । ॥ १०२ ॥ इस प्रकार अग्निने स्वयं प्रकट होकर राजाको सुन्दर पुत्र देनेवाला पायस त्वार दिया । राजने  
 यह खीर लेकर तीनों मित्रोंमें बाँट दी । तभी कैंकेरीके प्राणको एक गृध्री यह साचकर कि यदि इसका मै ले  
 जाऊँगी तो मेरा गाव छूट जायगा । इस स्वार्थसे खीर छीन ले गयी । कथान्तरः एक समय गुवर्षा नामकी  
 अप्सराओमें उत्तम अप्सराको श्रम्यशृङ्गके अपराधसे बह्मने गृध्री होनेका शप दे दिया । अब फिर उसने  
 स्तुतिके हाथ बह्मको प्रसन्न किया । तब बह्माजने कहा कि अब तुम कैंकेरीके पायसका छीनकर  
 अजनिपर्वतपर फकीगी । तब गुम्हारी पुन पुनर्ति हो जायगी और पूर्ववत् तुम मासय हो जाओगी  
 ॥ १०३-१०६ ॥ इस कारण उस गृध्राने खीर लेकर अजनिमिरिपर दाम दी जिससे वह अपने अप्सरा-  
 रूपको प्राप्त होकर पुन स्वर्ग चली गयी ॥ १०७ ॥ बादमें कौसल्या तथा मुनिप्राने अपने-अपने शरमसे

आमंस्तासां दोहदास्ते पुत्राणां भारिकर्मभिः । पुत्राणां भारिकर्माणि विदुस्ते दोहदैर्जनाः ॥१०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकांठे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नका जन्म )

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्वतरे भूमिर्दशास्यादिप्रपीडिता । अज्ञाता प्रार्थयामास विष्णुं मोऽपि तदाऽब्रवीत् ॥ १ ॥  
भूम्यामवतरिष्यामि भवतु कपयः सुगः । गंधर्वी दृढमीनाम्नी भूम्याः कार्पार्यसिद्धये ॥ २ ॥  
मथराऽग्रे भवत्स्वदा राम्यविघ्नार्थमिद्वये पश्चात्पुनर्द्वापराते कृन्वात्वं कतमदिरे ॥ ३ ॥  
अथ त्रिष्णुर्धनमासि नवभ्यां मध्यमे रवौ । मुनिकागृहमध्येऽथ कौमल्यायाः पुरोऽभवत् ॥  
चतुर्ध्रुवः पीतवामा मेघश्यामो महायुतिः ॥ ४ ॥

माऽपि दृष्ट्वा बालमात्र प्रार्थयामास तं हविम् ततो जातस्तदा बालः सनाद्रुक्मविभूषितः ॥ ५ ॥  
हेमवर्णः कंजनेत्रधन्वाभ्यस्तपनप्रभः सतः मुमित्रापुरतः शेषोऽभूद्बालरूपधृक् ॥ ६ ॥  
आशिर्मनो द्वौ शमलौ कंकेर्याः अश्वचक्रके एवं ते जनिता बालाश्रित्वारः सभरे शुभे ॥ ७ ॥  
देवदंभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाऽधननु ज्ञानकर्मादिमेष्कारान् गुरुणा नृपतिस्तदा ॥ ८ ॥  
करायामास विधिवन्नृत्तुर्वारणोपितः । ज्येष्ठे राम तु कौमल्यात्मनयं प्राह वै गुरुः ॥ ९ ॥  
मुमित्रात्मनयं नाम्ना लक्ष्मणं गुरुव्रवीत् । ततो भरतशत्रुघ्ननामनी प्राह वै गुरुः ॥१०॥

घोडा-घोडा पापस कंकेरीको दे दिया इस प्रकार सबसे पापस लाया और तबन गर्भ धारण किया ॥ १०८ ॥  
आन्दी पुत्रोत्पत्तिके कर्मचिह्नोको देख लया मनकर हावहार पुत्रक द्वारा किये जानेवाले अद्भुत कार्योंको लोग पहले ही समझ गये ॥ १०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकांठे माषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इसी बीच रावण आदि दह राक्षसोंसे घाँवित होकर पृथ्वी माता ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान्के पास गयी और उनसे अपनी तथा धर्मकी रक्षाके लिये प्रार्थना की । तब विष्णुभगवान्ने कहा कि 'मैं तुम्हारे लिये भूमिपर अवतार लूँगा' । ऐसा कहकर उन्होंने देवताओंसे कहा है दधताओ ! तुम लोग भी महाव्रतके लिये वानररूपसे पृथ्वीपर जन्म लो । हनुमन्नी गंधर्वी पृथ्वीकी रक्षाके लिये पहिलेसे जाकर सम्पराहणसे जन्म ले और रामके राक्षसाभियोगमें विघ्न डाले । हनुमन्के जन्मसे बड़ी जाकर कर्मके बड़ा कृन्ना बनेगी ॥ १-३ ॥ कुछ काल बाद साक्षात् विष्णुभगवान् चैत महीनेके कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको मध्य रात्रिके समय प्रसूतिगृहमें कौसल्याके सम्मुख चार भुजाधारी पीताम्बर पहिने हुए वर्षाकिन्तुकाशीन मेघके समान श्यामगरीर तथा तेजस्वी रूपमें प्रकटे ॥ ४ ॥ कौसल्याने वह रूप देखकर भगवान्से बाल्यभाव स्वाकार करनेकी प्रार्थना की । तब भगवान् अर्ध परमे स्वर्णभरणोंसे भूषित, सुवर्णके सहस्र कान्तिसम्पन्न, कंधलके समान नेत्र तथा चन्द्रतुल्य मुख एवं सूर्यके समान तेजस्वी बालक बन गये । बादमें मुमित्राके गर्भमें शेषावतार लक्ष्मणजी बालभावसे प्रकट हुए । फिर कंकेरीके गर्भसे विष्णुके शंख-चक्र अवतार लेकर एक साथ भरत-शत्रुघ्न पदा हुए । इस प्रकार वे चारों बालक शुभ समय, अच्छे लग्न और शुभ नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥ ५-७ ॥ देवताओंने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये और पुष्पवृष्टि की । राजाने गुरु बसिष्ठसे बालकोंका जातकर्म ( संतानके उत्पन्न होनेपर किया जानेवाला कर्म ) आदि संस्कार विधिपूर्वक करवाया । उस उत्सवपर वेण्याओ द्वारा उनके प्रकारका नृत्य भी करवाया गया । बसिष्ठजीने कौसल्याके सबसे बड़े पुत्रका नाम राम रक्खा । मुमित्राके पुत्रका नाम लक्ष्मण और कंकेरीके दोनों पुत्रोंके नाम भरत तथा शत्रुघ्न

रक्षणद्रव्य एवामौ लक्षणैर्लक्ष्यमस्मिन्नि । भग्नाद्भस्वत्वेन अनुष्णः श्रुतश्चैनात् ॥११॥  
 भय धृष्टिरे मर्वे लक्ष्मणो गघवेण हि अनुष्णो भग्नेनपि चकार कौडनादिकम् ॥१२॥  
 लक्ष्मणकृष्णमर्जोर्गन् पुरं स्ते विभूषिताः । केयूरगन्धनाद्याकुण्डलैर्गन्धोभिताः ॥१३॥  
 मृन्मलावद्धरुक्मादिनिमित्तेषु वरेषु च । दोलकेषु च ते मर्वे दोलिता रेजिरे सुखम् ॥१४॥  
 मन्त्रे स्पर्शमयासुन्धणान्पतिमदांनि च । मुक्ताफलप्रत्यर्वाणि शोभयन्ति स्म बालकान् ॥१५॥  
 कंठे रत्नमणिज्ज्ञानमध्यर्द्धीपिनस्त्राचनाः । कर्णयोः स्वर्णमपभ्रान्तार्जुनमुनालकाः ॥१६॥  
 मित्रानमणिमर्जोर्गन्धियुवांगदेयुना । मितवक्त्रान्पद्मशुभा इन्द्रनीलमणिप्रभाः ॥१७॥  
 अग्रे रिग्माणाश्च मस्कारः मस्कृताः शुभाः । ने नान रजयामागुर्मान्धापि विशेषतः ॥१८॥  
 कौमल्या नृपतिश्चाप नानावस्त्रः मुभूषणः । शोभय मामनुर्वालाचानाद्याघनवादिभिः ॥१९॥  
 गमः स्वपितर दृष्ट्वा भोजनस्य स्वगन्धिनः । दृष्ट्वा कवल् पात्राद्वृत्तेन्या म पुनर्यदिः ॥२०॥  
 कौमल्या पालक धर्तु दृष्ट्वा नृपतोहिना । न तस्याः कर्मधर्माद्योगितामप्यगोचरः ॥२१॥  
 पवित्रस्य स्वयं गमः करेण भृद्वेत्त च । कौमल्यास्ये नृपास्येऽपि कवलावकरोन्मुदा ॥२२॥  
 पत्र नानाकौतुकश्च रजयामास गघवः । नानाशिशुक्रोदनकैश्चाष्टैर्मूर्धमार्पणैः ॥२३॥  
 बालकुप्रिमपुद्गश्च गमर्नमुग्नवर्नः । पितर्ग निजचारिर्गर्वादनरोहणादिभिः ॥२४॥  
 तनस्ते बालकाः मर्वे वस्त्रालङ्कारभूषिता । मध्याया पितरं वन्द्य नम्युः मिहामनोपरि ॥२५॥  
 अत्र पित्रोपनीताग्ने गुरुणा पुनिभिर्मुदा । मर्मान्मकम्बरे पष्टे जन्मतः पचमे ममे ॥२६॥  
 जगद्वर्चमकाशस्य कार्य विप्रस्य पञ्चमे । तसौ बालार्धिनः पष्टे वैश्यस्यार्थार्धिनोऽष्टमे ॥२७॥

रक्ष ॥ २० ॥ मनोहर तथा आनन्ददायक होनेसे राम, शुभ लक्षणोंसे युक्त होनेसे लक्ष्मण, प्रजाका भरण-  
 पोषण करनेवाला होनेसे भरत और जयनाथक होनेसे वामदेव उनका गुरुजन नाम रक्ता ॥ ११ ॥ लक्ष्मण  
 रापके साथ और लक्ष्मण भरतके साथ सामान्य रूप करने पर ॥ १२ ॥ लक्ष्मणके कंठे तथा नगुरोके भूषित  
 होनेसे दृष्ट, मन्त्रके तथा कुण्डलोंग मुभूषण तथाका मिकलिकाका गममपहन हुए व बालक मुग्ध  
 दर्शन, गन्धार्धिन तथा वन्द्य बालकस्य वा हुए हित कारण करने हुए बहन ही गन्धर लगत थे ॥ १३ ॥ १४ ॥  
 जगद्वर्चमके पत्रे हुए, पवननिर्मित गीपनक पनक आकरवान एवं निमक अरकागम चर बड़े मोती लटक  
 रहे थे, ऐसे मन्त्र आभूषणोंम उन बालकोंकी जाभा और भी बड़े बड़ी ईश्वरी थी । उनके कण्ठमें विविध  
 मणि तथा वचनस्य मुनीभन ही रहे थे । नानाक कनकके बने हुए रत्नजान्त कुण्डल पहन रहे थे । मिरपर  
 पुन्धराल दाढ पहन रहे थे । पौरोमें मणिर्मणित ज्ञानर सनसना रहे । हृद्योम बान्धन और कमरम  
 कण्ठमें स्वयम्बना रहे थे । चन्द्रमक सहस्र शुभ हाथ्य भरे मुचन चित्रोंके समान छोटे छोटे दांत घनचमा  
 रहे थे । इन्द्रनीलमणिके समान रजस्र कान्तिवान्, रजनाम पन्नाक बल गाने हुए, मस्कारोंसे  
 मस्कृत और वेदनभाससे मन माहू देनेवाले वे कुमार अपने माता-पिताके मनको मुग्ध करने लगे ॥ १५ १६ ॥  
 कौमल्या और राजा दशरथ भी अनेक प्रकार के वस्त्र तथा वधनसा आदि अलङ्कारोंसे अपने बालकोंकी  
 भूषित करने लगे ॥ १९ ॥ राम अपने पिताको मालम भाजन करते देखते तो आकर उससेसे एक  
 ग्राम हाथस लेकर बाहर भाग जाते । राजाके कहनपर कौमल्या रामका पकड़नेके लिए जब दौड़ती तो  
 दाँतोंका भी अगम्य राम उनके हाथ नहीं आने दे । बादम वस्त्रवर्धन आकर पीछे आनन्दपूर्वक  
 अन्न बोधन हाथसे माता विष्णु नृधम बड़ कौर रख रत थे ॥ २०-२० ॥ ऐसी अनेक कौतुकयुक्त बालक्रीडा,  
 वन्देष्टा मधुमन्त्राहा भाषण, बालकाक वृत्तिम पुद्ग, नाना प्रकारकी चालें पुत्रपुम्बन और तरह तरहकी  
 इनाबदा सवारिदिपाय सभार होकर राम आदि चने बालक माता पिताके मनको मुधान तथा आनन्दित  
 करने लगे ॥ २३ ॥ २ ॥ कालान्तरमें सब बालक वस्त्र-आभूषण आदिसे भूषित हो पिताको प्रणाम करके  
 पञ्चमे सिंहमणपर बैठने लगे । तब राजाने कर्षियों द्वारा सानन्द उनका यमोपवीत संस्कार करवाया ।

विद्वद्भिश्चोपनयनमेवं शास्त्रेषु निर्णयः । गुणैरस्यान्सुश्रुतं वेदान् सांगोष्ठ्यनुविधान् ॥ २८ ॥  
 चन्द्रमूर्तोद्भूतानव बालाः शास्त्रादिकान्यपि । भ्रष्टचर्यसमाप्ती ते तीर्थानि जन्मरादरात् ॥ २९ ॥  
 सेनया संविमहिता वसिष्ठेन समन्विताः । क्षमायैः पुनरागत्य साकं तु विविशुर्मुदा ॥ ३० ॥  
 एवं ते मतिमन्तश्च प्रिया गतो वशे म्रियताः । पितरं रंजयामासुः पौरान् जानपदानपि ॥ ३१ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

## तृतीयः सर्गः

( ताड़कविष-अहन्योद्धार तथा सीताभरणम् )

श्रीशिव उवाच

एनिस्मरन्तरेऽयोध्यां विश्वामित्रो वर्यो मुनि । यज्ञसप्तगार्वाय गजानं मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥  
 गर्भं च लक्ष्मणं चापि मया देहि कियदिदम् । गुरुनामस्य राजाऽपि प्रेषयामास तौ तदा ॥ २ ॥  
 जन्मतुर्पञ्चशार्धं गाधिपुत्रं रथस्थिनी । ततः प्रहृष्टो गार्धेयः स्थित्वा कामाश्रमे पथि ॥ ३ ॥  
 प्रभते स्नानयोः स्नानः प्रादाद्विद्यास्तयोर्मुदा । माहेस्वर्गे च मद्विद्यां वतुर्विद्यापरमराम् ॥ ४ ॥  
 शास्त्रीमास्त्रीं लौकिकीं च गन्धर्विद्यां गजाद्वयाम् । अश्वविद्यां गदाविद्यां मन्त्राह्वानविसर्जने ॥ ५ ॥  
 छुनुर्धूमविलोपिनीं बलामनिबलामपि । सर्वविद्यास्तत्त्ववाग्याथ ह्युभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ६ ॥  
 वनैकया द्वितीयाय जघनतुभ्यत्र राक्षसान् । पथि पांशुवनध्वंसकारिणीं ताम तादिकाम् ॥ ७ ॥  
 राक्षसीमेकयाणेन वधान् रघुनन्दनः । अस्मत् सा मुनि एवं शोभयापास कानने ॥ ८ ॥

गार्वायका सा यही मिहान्त है कि बह्मवचस् ( बह्मज की इच्छाकामे ) ब्राह्मणकुमारका यज्ञोपवीत गमने छुटै अथवा जन्मसे पांचव वर्ष होना चाहिये । वर्य बाहुनवाले क्षत्रियका छठ और घन बाहुनवाले वैश्य-कुमारका यज्ञोपवीत आरव वर्ष अवश्य हो जाना चाहिये ॥ २४ २५ ॥ तदनन्तर अच्छे गृहमें गुरुके मुखसे राम-लक्ष्मणन सम ( शिक्षा, नृत्य, दणकरण, निहतं, छन्द और उग्रोत्थि सहित ) चारों वेद, छ. शास्त्र ( व्यास-वेदान्त वादि ) और चौगुठ कला गाना वज्राना आदि ) लोख-पढ़कर हृदयंगम कर लिया । महाचर्यकी समाप्तिके बाद राम आदि चारों भगता भगताको, मन्त्रियोंको तथा गुरु वसिष्ठको साथ लेकर सहर्ष तीर्थयात्रा करने गये । छ. महान्त वृद्धों और अच्छे और आनन्दपूर्णक अयोध्यामें रहने लगे । २८-३० ॥ इस प्रकार बुद्धिमान्, भगता गिनाक परम मत्त, परम प्रिय तथा उनकी आज्ञापर चरनेवाले से चारों बालक पिताको, नगरके लोगोंको तथा उस देशकी प्रजाको अपने लक्ष्यचक्षुषके द्वारा मोहित करने लगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पंच रामतेजपाण्डेयकृतमाया-टीकायां रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीशिवजी बोलि—हे पार्वती ! तदनन्तर मुनि विश्वामित्र अश्वघोष आदि और राजा दशरथसे कहा कि यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम तथा लक्ष्मणको आप मुझे दे दीजिये । गुरु वसिष्ठके तमसानेपर राजाने न चाहुते हुए भी दोनों बालकोंको उनके साथ कर दिया ॥ १ ॥ २ ॥ तदनन्तर गाधिपुत्र विश्वामित्रके स य रणपर बैठकर उनके यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम-लक्ष्मण चल दिये । रास्तेमें कामाश्रममें सबेरे स्नान करके असभ विश्वामित्रजीने स्नान किये हुए राम-लक्ष्मणको विविध विद्यार्थे सिखायीं । महेश्वर ( निम्नजीसे प्राप्त ) माहेस्वरी वतुर्विद्या, शास्त्रविद्या, अश्वविद्या, लौकिकी विद्या रथविद्या, गजाविद्या, दशविद्या, रथ चलानेकी विद्या, मन्दके द्वारा अश्वदिका आवाहन और विसर्जन करनेकी विद्या, भूषणवासको सिटानेवाली बाल और अतिबल नामकी दो विद्याएँ तथा अथान्व सब विद्याओंको प्राप्त करके राम-लक्ष्मण वनवासी अधि-मुनियके मुखके लिये गक्षसोंको मारने लगे । रास्तेमें पाँवकोंको आरकर ला जानेवाली ताड़का नामकी राक्षसीको रघुनन्दन रामचन्द्रने एक ही हाथसे मार डाला । सुन्दकी स्त्री और सुकेतु यक्षकी

गङ्गयो तस्य शपेन कभूय मुदकामिनी । मार्गचक्षु मुवाङ्मुख मुदात्तस्थाः सुतायुधौ ॥ ९ ॥  
 रामघण्टाद्रतिस्त्रिभ्याः कीर्तिता मुनिना पुन मा प्राप्य तद्व्यदहन्वं नन्वा गम्य दिवं गता ॥ १० ॥  
 विश्वामित्राश्रमं रामो गच्छा तद्यज्ञयातकान् । गङ्गयान्निशिर्नैर्वाणैर्जवान् रघुनन्दनः ॥ ११ ॥  
 प्रारम्भं रणयज्ञस्य अकार रघुनन्दनः । हन्वा महमशः धीमान् गङ्गमान् निशिर्नैः शरैः ॥ १२ ॥  
 क्षिप्त्वा बाणेन मार्गचं शतयोजनमगारे हन्वा मुवाङ्मुखं चैकेन बाणेन रघुनन्दनः ॥ १३ ॥  
 स कृत्वा गाधियज्ञस्य ममामि रघुनन्दनः । नाकरोट्टपयज्ञस्य ममामि स्वकृतस्य च ॥ १४ ॥  
 कालानलमग्नौ तं दृष्ट्वा तनूपिहेतवे । धृत्वा जनकगोहे च तन्कन्यायाः स्वर्ययम् ॥ १५ ॥  
 रामलक्ष्मणसंयुक्तौ मुनिस्ते जगत् पर्या । गमनावसरे मार्गे भर्तृश्रमां शिलां मुनिः ॥ १६ ॥  
 मुनिरुपिमहेन्द्रेण भुक्ता रहसि शोभनाम् । गौतमस्यांगनां नाप ह्यहन्वा चानदस्योः ॥ १७ ॥  
 नदना निर्मिताऽहन्वा हिमुक्तो गोः परिक्रमात् । दना पुन गौतमाय विमृज्यंष्टादिकाम्भुरान् ॥ १८ ॥  
 तन्ममरन् मघवा वरं ना भुङ्क्वा मुनिशापनः । महया भगवान् जातः सहस्रलोचनस्ततः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रो निजपादपद्मपद्मना तां गौतमघर्मपत्नीम् ।

निष्कन्मपामङ्गुलरूपयुक्तां चकार देवः कल्पाममृदुः । २० ॥

नदाह्वा जनभ्यानेऽहन्वा गौतमशापनः । गमेण भ्रमनाऽग्रे स्त्रीप्रित्थ्व्यान्गमुद्भूता ॥ २१ ॥  
 कल्पभेदाद्वदन्ति च नपश्चापि केचन । तैव श्रापेऽस्मिन् सर्वेषु कल्पेषु सन्कथा तथा ॥ २२ ॥  
 तवत्नीं मुग्धान्धवैर्यतो धुष्यदृष्टिभिः । दृष्ट्वाऽहन्वा गौतमाय जस्मनुर्जाह्वी शनि ॥ २३ ॥

गौतमिका पहिले बही मुन्दर अपसरा थी । परन्तु बादमें जब उसने भगवन् का ध्यान करने में लगाने  
 नन् उनका शापसे यह कृष्ण रश्मिमा बन गया । उसका शापसे और मुवाङ्मुख पदा गतास पुन उत्पन्न हुए  
 । १-९ ॥ 'रामक बाणसे नदी गति प्राप्ता । इसा अग १० मुनिने 'समे कहे' थी । इसीसे रामचरणसे इस  
 नमय भ्रमर तथा दिव्य शरीर धारण करके वह स्वयंका चला गया ॥ १० ॥ सत्यमेव तथा विश्वामित्रके  
 भाधमम जाकर रघुनन्दनने यज्ञमे निम्न दान्यवनाले सगमने गङ्गामेको अपने ताल बाणसे मार डाला ॥ ११ ॥  
 'मुनि गमचन्दने वही रणयज्ञ ( मुदक्या यज्ञ ) प्रारम्भ कर दिया । धीमान् रमने हुआगे राक्षमाका ताडण  
 व पासे मारकर मार्गचका एक बाणका मारसे सौ योजन ( चार सौ कोस ) दूरपर समुद्रमे फक दिया ।  
 अहान् नूनरे बाणसे आगचक भर्ते मुवाङ्मुका मार डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ विश्वामित्रजाचे राजका तो उन्होंने  
 राजासेको मारकर निविधन समाप्त कर दो । परन्तु अपने द्वारा प्रारम्भ दुष्टयज्ञ । समाप्त नही का अधीन  
 उनका क्रोध जान्ते नही हुआ । १४ ॥ आगमको प्रत्यकात्माने अग्निके मद्गुण उग्र तथा गुडसे अत्रुण दहकर  
 दुनि विश्वामित्रने उनकी मृतिके लिए गमा जनकके यहां उनकी कब्र का स्वरूप मुन्दर राम लक्ष्मणको लेकर  
 जनकपुरको प्रयाण किया । चलने-चलने रास्तेमे मुनिने अहन्वाको देखकर कहा कि यह मुनिवधवारा इन्द्रके  
 द्वारा पाणी बर्या परममुन्दर गौतमका स्त्री है । यह नद विश्वामित्रने राम लक्ष्मणका बनाया ॥ १५-१७ ॥ इस  
 'नाहुर मुग्धवासी महन्वाका बनाकर ब्रह्माने गृध्राका पत्निमा कान्तेवाले बीलमे ऋषिको दे दिया किमी  
 इन्द्रदि देवताको नही दी ॥ १८ ॥ इन्द्रने उस ईरका स्मरण करके कपटमे एकान्तमे उसके साथ भाग  
 किया । तदनन्तर गौतम मुनिके शापसे इन्द्र हजार भग ( येनि ) बाने हो गये । फिर श्रापना कान्तेपर  
 गौतमकी कुवासे ये हजार नैषवासे बन गये । अब विश्वामित्रके क्षुणधम करणनिधि एवं सक्षान्  
 दवतास्वरूप रामचन्द्रने दया करके अपने चरणकमलको स्पर्शसे उस शिखाम्बिका गौतमका घर्म-  
 न्नी अहन्वाको दोषसे मुक्त करके अति अद्भुत स्वरूपवाला मुन्दरी स्त्री बना दिया । १९ । २० ॥  
 रणयज्ञ करने वाले एक स्थानसे मुनिके श्रापसे कापित नगररूपा महन्वाका अरण्यमे प्रमण करते हुए  
 रामचन्द्रने अपने परम पवित्र चरणस्पर्शसे उद्धार कर दिया । २१ ॥ कुछ लोग इस कथ को कल्पमरसे  
 मानते और कहते हैं कि वह कल्पोंमे यह शापका बात एक बीसी नहीं मिलती ॥ २२ ॥ इसके बाद

रामं नीकां फांशमाम् नौकायां वाक्यमब्रवीत् ।

न, विक्रम उवाच

आदावहं क्षालयित्वा पादरेणुं स्तव प्रभो ॥ २४ ॥

यथान्नांकां स्पर्शं दामि नव पादां स्पृष्टुह । नोचेरन्पादरजसा स्पृष्टा नारी भविष्यति । २५ ॥

क्षालयामि नव पादपङ्कजं नाथ दारुदपद्मैः किमन्तरम् ।

मानुषीकरणवर्णमस्मि ते तति लोके हि कदा प्रसीयसी ॥ २६ ॥

अस्मि मे गृहिणी गेहं किं करेभ्यः परं क्षिपम् । इति तद्वचसा कण्ठे विहस्य स्पृष्टुतन्दनः ॥ २७ ॥

तेन संक्षालितपदौ नीकां तामास्तेह सः । ननम्नोर्वा जाह्नवी मे भिक्षितां मुनिभिर्यपुः ॥ २८ ॥

मिथिलार्था ममाहूताः कौटिल्यः पाथिवा वयुः । चण्डाम्याह क्षाम्योऽपि श्रुत्वाऽप्यच्छस्त्रमत्रिभिः ॥ २९ ॥

अनहूतः पुष्पकेण सैन्या परिवारितः । न यया पुत्रविशदाद्राजा दशरथस्तदा ॥ ३० ॥

अन्यादरेर्विदहन ममाहूतोऽपि भक्तिनः । श्रीगमलक्ष्मणाम्भ्यां च विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ ३१ ॥

शर्नपुदा स मिथिली बहिधोपवन यया विश्वामित्रं समानेतुं जनको मन्त्रिभिः सह ॥ ३२ ॥

यावद्वन्तु सनधक्रे तावच्छिष्यः ममायया । विश्वामित्रस्य न रक्षा ननाम जनकस्यदा ॥ ३३ ॥

ततः शिष्यः वरं धृत्वा जनकस्य करण हि नात्रा रक्षसि श्रेवाच वचन स्वगुणैः स्फुटम् ॥ ३४ ॥

त्वासाह माधित्रो राजन् राज्ञो दशरथस्य हि यया पुरा ममानोर्वा वागे श्रीगमलक्ष्मणी ॥ ३५ ॥

तौ मीनोर्मिलयोः पाणिग्रहणं हि करिष्यतः । पर्णकृतं स्वरा खापं रामोऽयं स्वपदयिष्यति ॥ ३६ ॥

अतो वरविधानेन तौ पुरीं नेतुमर्हमि गनुहूतं चापमेतपर्यन्त मा स्फुटं कुरु ॥ ३७ ॥

देवताओं और गन्धर्वों ने तिनके ऊपर दिग्भ्रष्ट पुरुषों की वृष्टि का था, ऐसे राम तथा लक्ष्मण भीतगर्भी महारथ सोपकर जाऊँगा (गंगा) का आर चत पद ॥ २३ ॥ गङ्गातट पर पहुँचकर रामचन्द्र पार उतरने के लिये नाव खींच रहा था कि इतना म एक साववाला बन्दा - २ प्रभो ! २ स्पृष्टुह रामचन्द्रजा ! यदि आप वहाँ की भी पहिले आपका चरणको छुँदि वा नुं, बादम आपका नाभपर बठाकर पार उत्तार दूँ । क्योंकि ऐसा न करनेपर वही आपकी पदरज छूने मरे नाह भी मर्या न बन जाय । क्योंकि पत्थर और लकड़ाम कोई बहुत अन्तर नहीं होता । यह बात अन्तर्मे समिद्ध है कि आपका भरणकी रजस जड़की भां मनुष्य बनातकी सामर्थ्य है । इसीलिये आपका चरण स्थाना आवश्यक है ॥ २४-२६ ॥ वधाक कर छत्रम एक स्त्री है । अतएव मैं दूसरीको लेकर नया कहूँगा । इस अदृष्टे बाणको मुनकर आनन्दकन्द रामचन्द्र हँस पड़े ॥ २७ ॥ बादमे जब उस धोषरने पाँव को लिये, तब रामचन्द्रजा मुनियोंक साथ नाभपर खदार होकर गङ्गा पार हुए और वहाँमे मिथिलापुगीक, ओर चले ॥ २८ ॥ मिथिलस्य मिथिलस्य राजा, आपका एक प्रकीरता छोटा सा समुद्र एकत्र हो गया था । रावण भी बिना बुलाये चारपाक बुन्दसे मुनकर हां लेता तथा मंजिमासे थिरा हुआ आपक विमानपर चढ़कर वहाँ जा पहुँचा । उस समय राजा दशरथ आदर तथा भक्तिपूर्वक जइकक द्वारा बुलाये जातपर भी पुत्रविहसे दया हाँके वारण नहीं आये थे । उसी समय मुनियोंके ईश्वर विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मणक साथ धोरे आनन्दपूर्वक मिथिलाके बाहर एक उपवनमे जा पहुँचे । राजा जनक विश्वामित्रको दिखा लानेक लिए जाता हुआ चहुँते ये एक विश्वामित्रका एक शिष्य नहीं आ पहुँचा । उसकी विश्वामित्रका शिष्य जानकर राजाने नमस्कार किया ॥ २९-३३ ॥ शिष्यन राजाका हाथ पकड़ तथा एकलम मे आकर अपने दुल्हा भोजा हुआ सन्देह भणामोत कह सुनाया ॥ ३४ ॥ उसने कहा - पथिपुत्र विश्वामित्रने कहा है कि मैं अपने साथ राजा दशरथके दो गुरवोर पुत्रों राम-लक्ष्मणका यहाँ ले आया हूँ ॥ ३५ ॥ ये दोनों सीता तथा जलिकाका पातिग्रहण करेदे और आपका पणकृत मनुष रामचन्द्रजा लाय ॥ ३६ ॥ इसलिये वरको ले आनेके विधानसे इन दोनोंको नगरमे लाना चाहिये । अबतक मनुष भङ्ग न हो, अबतक यह वृत्तान्त किसीको न बताइया ॥ ३७ ॥ राजा



न्युक्त्वा जनकं शिष्यः स्वगुरुं प्रार्थमाययौ । जनकोऽपि मुनिं युक्तस्त्वर्णामेव पुनो निजम् ॥३८॥  
 तीर्त्वाद्यैः शोभायित्वा मन्थेन परिवेष्टितः । चरणेन्द्रं पृथक्कृत्य समारम्भेनृषेः सह ॥३९॥  
 सुमेधादिप्रमदाभिर्नानभ्यार्थैर्बनोद्धतः । विद्यार्थिभिरात्रिके गन्ता नन्वा संपूज्य त मुनिम् ॥४०॥  
 यत्नान् इव तौ वृष्टा भुज्वा नद्वृत्तमादरात् । रत्नालङ्कारभूषार्थः सन्कृत्य विधिवन्नुपः ॥४१॥  
 गजपोरुषी ममागेष्व चाभगर्ष सुवीजिर्ना । विश्वामित्रेण मुनिना निनाय मिथिला पुरीम् ॥४२॥  
 ननृत्तुर्वार्यार्थश्च तृष्टुर्वान्द्रमाभाधाः । नैदूनानाम्वाद्यत्रि जगुन्मे तु नटादिषः ॥४३॥  
 तदा तौ वृष्टागेष्व जग्मतुश्चानिजो भित्तौ । भुज्वा च पुनर्नृषेभ्य शर्म आगमन्कश्यपौ ॥४४॥  
 ममाभनवाचिन्ति मुदा जग्मतुश्चानिजो भित्तौ । जंजनेप्रदेदुश्चर्णा वरतुः पृथ्वीश्रुतिभिः ॥४५॥  
 तदा परस्परं प्रोचुः सीतायोग्या चरन्त्ययम् । गमोऽस्माकं रोचने हि रुगेन्वेवं विधिस्तु नः ॥४६॥  
 उभिलायास्तु योभ्योऽयं लक्ष्मणोऽस्मिन् गलभ्रातः । अस्माकं मुकुनस्य तपोरतां पतां शुभो ॥४७॥  
 आगमन्कश्यपौ गम्या भवनार्थेनमोत्तमौ । एव तामां कामिनीनां वचनानि नृपान्मजौ ॥४८॥  
 शुभ्रवतु शुभान्येव शृण्वाम्यौ तौ ददशनुः । ननृत्ने मिलिताः सर्वे नृपाः शेषुः परस्परम् ॥४९॥  
 एतादृशो विदेहेन यदाऽस्माभिः ममागतम् । तदोन्मत्तः कुतो नैव हानयोः क्रियते कथम् ॥५०॥  
 किमृतः स्येन राज्ञोऽयं तीर्त्वा रायाश्च ताऽपिना । किमस्माकं मम हृदयं मानमगोऽयं नः कृतः ॥५१॥  
 एवं तेषां नृपणां च वचनानि नृपान्मजौ । जनको गार्धित्तथादि शुभ्रवृत्ते समन्तः ॥५२॥  
 ततः शनैः शनैर्वीरौ यवक्षेः स्वभिगीक्षितौ । जग्मतुर्वीरौ पापेर्जनकस्य ममा इति ॥५३॥  
 ततोऽनन्तरमुर्वीरौ गजाभ्यां मुनिना सह । तन्मयशरशालायाश्चरविष्टपु राजसु ॥५४॥

जनकजीसे यह कहकर शिष्य ज. ह. अपने गुरुजीके पास लौट गया । राजा भी इस बातकी खबर देकर वहाँ प्रमदनाके साथ अपनी मिथिला नगरकी तारण तथा गार्धित्तजी वनकाजी आदिके राजाकर सहन, कनोकी सून तथा सत्यक होदके मुखाधित उत्तम एवं दमन व हार्षीको आगे करके सेना, सभी राजाओं, सुवधा आदि स्त्रियां और जनक प्रकारके मन्त्रादर भाग्यविक्रान्त लेकर अपनी मार्गीय साथ विश्वामित्र मुनिक पास गई और उनका नमस्कार करके पूजा की । ३८-४० । मुनिसे अनजानकी तरह उन दोनों बालकोंका परिचय पृथक्कर विधिवन् शस्त्र-आयुधम उनका सन्कार करके हाथधार चलाकर चमर इत्यादि हुए जनकजी विश्वामित्रके साथ दोनों पाइयाका मिथिलापुरीमें ले चले ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उस समय कदुवरा शाशवन्त सुन्दर नृप करने लगे । चारण तथा भाट लोग स्तुतिपाठ एवं अर्पणकार करने लगे । नाना प्रकारके राजाके संपुर्ण स्वरय दसों तिलाने पूज उठी । गायकजन सनहूर गायन गान लगे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार जगजगत् तथा भौत मुन्दर राम-लक्ष्मण राजाकी सहायपर आ पहुँच । उन्हें ज्ञान दत्त तथा बीरसे मुनकर प्राजन्तक मार वहिनस हा नगरक सह त्रिभुव नगरके प्रधान दरवाजपर, अपने-अपने पार्की छत्रावर, शराओं और जटाश्रिधर आ वेशी और अपने कणसस्रुत जेबासे उन्हें बह चावल दलती हुई उनपर फुलाका वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ फिर वे आपसमें कहने लगे कि य राम सत्याक या-र भर है । हमको जो भय बहुत प्रिय भवत है । इस लिए ईश्वर भा वैसे ही करे ता अच्छा हो । वे पुन ममागोके युक्त लक्ष्मण उभिलाके योग्य कर है । हुआर चापधम के शला उत्तम, रमणीय तथा सुन्दर बाणबाण राम और लक्ष्मण सीता तथा उभिलाके दत्त हो तो बहुत अच्छा हो । इस प्रकार उनके मन्त्रादर जनकोकी मुनकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई ऊपर युक्त उठाकर उन्हें देखाय लगे । कहने के सह साथ परस्पर कहने लगे—॥ ४६-४९ ॥ जब हुन सब वहाँ आये, तब तो राजा वनवने ऐसा उत्सव मही किया । जब हुन बालकोंके लिये ऐसा मही किया । ५० ॥ राजाने कही बुधकसे सीता रामका तो मही दे दी है ? ऐसा ही वा तो हुन लोगोंको बुलाकर क्षयधामिह क्यों किया गया ॥ ५१ ॥ उनकी बातें राम-लक्ष्मण, राजा जनक तथा विश्वामित्रजीने भी सुनी ॥ ५२ ॥ इधर सरीसृपों वैंडी हुई स्त्रियोंके हाथ लवलोहित के दोनों बीर गने एवं राजेकी क्वनि

विद्यामित्रानुगो तौ दि मुनिभ्राता प्रवामतुः । कदापि मुनिभ्राताया मुनेश्वरे निषीदतुः ॥५२॥  
 एवं सभायामृदाया राज्ञा कन्याप्रतिग्रहे । प्रतिज्ञान मम धनुस्तन्तुज्व त्वमुपस्थितम् ॥५३॥  
 यदाऽर्धात्मा धनुर्विद्या मम परशुधारिणा । तदा दत्तं मया तस्मै धनुस्त्रिपुण्ड्राङ्कम् ॥५४॥  
 तेनैकविंशदार हि निःश्रवा वृषिर्वा कुना । सहस्रबाहुनिहतः स्वपितृघातकाग्नात् ॥५५॥  
 तन्मथिलोत्तरे स्थाप्य जामदग्न्या नृपं धयी । अश्वत्थद्वन्दुः कृत्वा जानकी कोटन व्यघात् ॥५६॥  
 जामदग्न्यन्तेन मीनां शान्ता लक्ष्मीं तदिच्छया ददौ नृपं षण्णार्यं नन्ददुरन्यैर्दगमदम् ॥५७॥  
 पूर्णकृता धनुस्तन्त्र रिन्देहेन स्वधर्म्यरे । ततः सभायामृदाया जनकः प्राह शक्तिः ॥५८॥  
 तस्मात्पुत्र राज्ञा पुरतस्तन्मे चापमनुममन् । शस्त्रागमममानीन वृषेः पञ्चशतस्तु वन् ॥५९॥  
 मीनास्त्रयवगर्थं यन्त्यस्तं परशुधारिणा । नृपः प्राह सभास्ये यो वीरस्त्वय सदसि ॥६०॥  
 करिष्यति धनुः मज्जतं त वै मीना वशिष्यति । तत्तस्मै वचनं श्रुत्वा धनुर्दृष्ट्वाऽचलोपमम् ॥६१॥  
 अधामुशस्तदा सर्वे वधुवः पथिवोत्तमाः । केचिन्मूमेः समुद्रोदु वन्तुः शक्ता न चाभरन् ॥६२॥  
 मूमेरुष्वालिते केचिदूर्ध्वं नेतुं न चाशकम् । सर्वेऽप्युष्वालिते तस्य नृपः शक्ता न चाभरन् ॥६३॥  
 मज्जीकाः कुनस्तस्य मनसाऽप्यविचितित । धनुः मज्जीकृती सर्वाणिषाम् शान्ता पगद्विष्वान् ॥६४॥  
 नदानिगर्वसंरुद्धः सभायां रावणोऽब्रवान् । धनुषः सन्निधिं गन्धो विहसन् जनकं प्रति ॥६५॥  
 येन वै निर्जिता देवास्त्रैलोक्यं स्वयज्ञे कृतम् । आन्दोलितो वृजामिहि कैलसो येन वै मया ॥६६॥

भादकं साथ वीर-धरे राजा जनकके सभासमक्षे जा पड़े ॥ ५२ ॥ वहाँ कीर राम-राम मन्त्र तथा मुनिगण  
 हाथपोसे नीचे बैठे । पञ्चानु सभासमक्षे राजाजोके सभाम्याग बैठ जानेपर विद्यामित्रजोके  
 साथ जाकर वे वालक भी मुनिमण्डपमें मुनिके आगे बैठ गये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सभाकी  
 पर जानपर कन्यादानके लिये निमन्त्र किये हुए धनुषगर उठा । नीचे या डारी ) चक्रानके लिये राजाजोसे  
 राजा जनकसे कहा ॥ ५५ ॥ श्रीविश्वजी कहते हैं—हे पावर्त ! जब परमुराजकीने मुझसे धनुर्विद्या  
 प्राप्त की, उस समय मैंने उनको बहु शत्रुको जलानवाला वस्त्र दिया था ॥ ५६ ॥ तबसे द्वारा उन्हींने  
 इसकासु वर पृथ्वीका क्षत्रियोसे हूय कर वाला और अपने पिताके गालक सहस्रबाहुके भी उध मे  
 मारा ॥ ५७ ॥ तदनन्तर परशुरामजो उस धनुषको राजा जनकके क्षत्रियमें रख जाये । वनपत्तमें जानकाकी  
 उस धनुषकी लकड़ीका धोरा बनाकर लेना करती थी ॥ ५८ ॥ इस व्यवहारसे परशुराम सीताको  
 लक्ष्मी समझने लग और इसी अभिप्रायसे हर एकके लिये दुर्गम बहु धनुष राजा जनकको प्रतिज्ञागलनाथ  
 दे दिया ॥ ५९ ॥ तदनुसार रिन्देहेने उस धनुषको मोनाम्भयम्बरसे प्रणकी जगहपर नियत किया ।  
 पञ्चानु भी सभासमक्षीक भावसे जनकजीने इस मेरे सर्वोत्तम धनुषको सबके सामने रखकर राजाजोको  
 अपने प्रतिज्ञा कह मुनायी । यह धनुष शस्त्रागममें पथि भी वीरों द्वारा निचवकर राजा जनकने बेटा  
 स्वयंवरके लिये वहाँ स्थापित किया था । परा सभाके प्रहस्य राजा जनकने राजाजोसे कहा—‘जो राधा  
 इन सभासमक्षीके सामने इस धनुषकी सज्जित करेगा, उसीको मीना बरेही ।’ राजाके वचनको सुन तथा  
 गवमके समान अकल उस धनुषकी दम्भकर सबके सब राजाजो तथा महाराजाजोने मुख नीचे कर  
 लिया । उनमेंसे कुछ ही उस धनुषकी जमीनसे लम्बि भी नहीं उठा सके ॥ ६१-६३ ॥ कुछ लोनोंने  
 कुछ ऊँचा भी किया तो जमीनसे बिम्बक नहीं उठा सके । बादमें सबके सब चिलकर उठाने लगे लो लो  
 भी वह जमीनसे गुन नहीं उठा । तब फिर उसपर डोरी चढ़ाया तो और भी कठिन काम था । सभामें धनुष  
 चढ़ानेसे सब राजाजोको पराहण देखकर रावण मर्वके साथ धनुषके पास गया और हँसकर रावण  
 जनकसे कहने लगा—॥ ६४-६६ ॥ हे राजन् ! जिस रावणने समस्त देवताजोको जोह किया है, जिसने  
 हीनों लोकोको अपने वशमें कर लिया है तथा अपने ही ही मुजाजीसे जिसने शिवजीके निवासस्थान  
 कैलास पर्वतको हिल दिया है, उस रावणका यदि तुम राजाजोसे जदी सभामें बस बैठना चाहते

तस्य मे जनकाय त्वं वत् पार्थिवममदि । इष्टमिच्छामि किञ्चिन्मित्रं लघुचापे सुगोपये । ७० ॥  
 एवं वदन् दशस्यः स नमो भूत्वा महद्भुजः । गृहीतुं वामहस्तेन चालयामास वै तदा । ७१ ॥  
 न तच्चाल किञ्चिच्च तदा दक्षिणमन्कम् । पुरः कृत्वा गृहीन् तच्चालयामास वै पुनः ॥ ७२ ॥  
 न तच्चाल तदपि तदाभयं शरणः । भुजाभ्यां चालयामास तदा चापं चाल न । ७३ ॥  
 एवं क्रमेण सर्वाभिर्भुजाभिश्चालयन् धनुः । विशदोर्मिकदेशं चापम्योर्ध्वं चक्र सः ॥ ७४ ॥  
 एकोनविंशदोर्मिश्च धृत्वा चैव महद्भुजः । गुणं धूम्यां निपतितं गृहीन् हि दशाननः ॥ ७५ ॥  
 किञ्चिद्भुत्वा विनम्रः स दोष्णा जज्ञाह तं गुणम् । एतस्मिन्महरे तच्च पपात तद्भृदये धनुः ॥ ७६ ॥  
 न तद्विशतिर्भुजाभिश्च चाल दद्याद्भुजः । तदा सभायामुर्ध्वाम्बुः पपात स दशाननः ॥ ७७ ॥  
 मुकुटः पठितो भूमौ मूककञ्जोऽप्यभूत्तदा । तदा विजयमुः सर्वे सभायां पार्थिवोत्तमाः ॥ ७८ ॥  
 तदा प्राणान्तरिकं चाभीद्रावणस्य सभागणे । अर्क्षामि आमयामास तान्ताम्येभ्यो विनिर्ययी ॥ ७९ ॥  
 तदा तं वेष्टयामासुर्मन्त्रिणो राक्षसास्तदा । धनुस्तच्चालने शक्तास्तेऽभरन् नैव यमदि ॥ ८० ॥  
 मदस्त्रेषु दशस्यः स विष्टभुजं तदाऽकरोत् । ततः सभायां जनकः पुनः शरानिशक्तिः । ८१ ॥  
 कोऽपि रीतेऽस्ति भूमौ न किं निर्वीरं हि भूतलम् । चेदस्ति कश्चिन्मदमि तर्हि सोऽयममार्गणं ॥ ८२ ॥  
 ज वदानं करोत्वस्मै दशस्याप नृपाग्रतः । इति नाक्यशगधानमिन्द्रो तौ समस्मर्षी । ८३ ॥  
 ददर्शतुर्गाधिपस्य मुखं तौ स्फुटिभ्रुवां । विश्वामित्रस्तदा प्राह राम नोनिष्ठ राघव । ८४ ॥  
 किमत्र रावणस्याद्य त्वं पश्यामि सभागणे । जीवयन् राक्षसेन्द्रं सज्जं कुरु धनुस्त्रिदम् । ८५ ॥  
 तन्मुनेर्वचनं धृत्वा तथैन्पुनश्चा स राघवः । तदोपायामनाद्रेणारप्रथनाय मूर्ध्निश्वसम् ॥ ८६ ॥  
 निष्कास्य कटाद्वागर्दान् कटं च धृत्वा तदा प्रभुः । मुकुटादि दृढं कृत्वा क्षुर्यः प्राप सभागणम् । ८७ ॥

हा ता भने ही इस ला, किन्तु इस क्षणवक समान हन्के घन्यमे क्या वीरता देखाने ॥ ८२ ॥ ७० ॥ ऐसा कह कर दशमुख रावणने उस वदे भारी धनुषको पहिले अपने बायें हाथसे ही हिलाने चाहा ॥ ७१ ॥ लेकिन वह उतक भा नहीं लिया । तब उसने दाहिने हाथसे पकड़कर हिलाना चाहा, तिसपर भी जब वह नहीं लिया, तब रावणको बड़ा आश्चर्य हुआ और एक माय देना हाथसे उठाना चाहा । फिर सोनसे फिर बारसे इस प्रकार करत-करते जब न गो भुजाय ऐक साथ लगा दी, तब वही वह एक ओरसे कुछ ऊंचा हुआ ॥ ७२-७४ ॥ तब उसने उसीस भुजाओंसे उस महान् धनुषको सम्हाला तथा बीसवीं भुजासे जमानपर लटकती हुई सोनको पकड़कर ऊंचे ही उपरको उठाना चाहा क्यों ही वह धनुष उछटकर उसकी सोनोपर गिर पड़ा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ सब बीसो हाथोने भी रावण उस धनुषको अपनी छातापरसे नहीं हटा सका और उपर मुख किये पृथ्वीपर घडाससे गिर पड़ा ॥ ७७ ॥ उसके सिरका मुकुट हूर जा गिरा और घातकों लाग खन गयी । यह देख सबके सब राजे थिलथिलाकर हंस पड़े ॥ ७८ ॥ रावण बेचारके पमाना निकलने लगा, भस्म घुमाने लगी और मुखसे लार गिरने लगी ॥ ७९ ॥ उसके सब मन्त्रियों तथा सैनिकोंने आकर घेर लिया, परन्तु जब सबसे भी धनुष नहीं उठा ॥ ८० ॥ पहिले हुए सुन्दर रम्भाय रावणका मल-मूत्र निकल पडा रावण जैसे वीरको यह दशा देख राजा जनकको और भी शंका हुई और वे पकड़कर कहने लगे— ॥ ८१ ॥ क्या कोई भी वीर पूर्य इस मूलपर नहीं रहा ? क्या पृथ्वी वीरसे मूय हो गयी ? यदि कोई हो तो इस सभामें राजाओंक सामन रावणको जीवमदान इकर बचाये उनके इस बाक्यरूपी बाणसे पाँड़न होकर राम तथा ब्रह्मराज तिनकी भीहें कोषके भारे पकक रही थीं, विश्वामित्रके मुखभी ओर देखने लगे । तब विश्वामित्र बोले—हे राघव लड़े हो धात्रो और इस रावणके प्राण बचाओ । तुम्हारे दसते रावण मर रहा है । लो ठीक नहीं है । इसे बचाकर धनुषको भी वज्रित करो ॥ ८२-८५ ॥ मुनिके शपथ मुन तथा बहुत बक्या कहकर राम तुम्हें बाबनसे उठ लड़े हूर और मुनिके शपथ किया ॥ ८६ ॥ उन्होंने गसेमेसे हूर जावि जाबूबन उतारकर एत दिवे, कमरको कस लिया,

सँ शसमागतं दृष्ट्वा जनाः सर्वेऽतिविस्मिताः । शक्तिनाः पार्थिवाः सर्वे ददृशुर्नैत्रपंकजैः ॥८८॥  
 एतन्मयं तदा श्रोत्रं किमुत्प्रेक्ष्य शिशुम्ब्रयम् । यत्रास्माभिः स्थितं तृणीं नवायं किं करिष्यति ॥८९॥  
 केचिदःशूरेशास्यं हि दृष्टुं बालः समागतः । केचिद्वर्षास्त्रयेष्टा क्रियते शिशुनाञ्च हि ॥९०॥  
 केचिद्वचः किमर्थं हि द्वारा यत्काम्ब्रनेन हि । केचिद्वर्गाधिपेन चापं ग्रन्थि सुयोजितः ॥९१॥  
 केचिद्वर्षावृद्धया चोदितः किं शिशुम्ब्रयम् वधार्थं चापशमेन विश्वामित्रेण राक्षसः ॥९२॥  
 केचिद्वर्षलं स्वयं मुनिनाञ्च निर्गन्धितम् । चोदितोऽस्यत्र श्रीरामश्चापेऽयं किं करिष्यति ॥९३॥  
 एवं नानाविधास्तर्कान्यावन्कुर्यन्ति पार्थिवाः । तावद्दृष्ट्वाश्रितो रामं जनकः प्राह वाधिदम् ॥९४॥  
 किमर्थं प्रेषितम्ब्रजं मुने बालः समागतो । लघ्वेनैव रावणाच्छात्रं नृपाः सर्वेऽपि कुण्डिताः ॥९५॥  
 तस्मिन्नापे त्वयं बालः किमाह्वयं करिष्यति । यत्तया शिष्यशक्येन पूर्वं चाहं प्रचोदितः ॥९६॥  
 तन्मयं तु मृषेनाद्य चापाद्ये मुनिमत्तमः । कथं बालः कोमलांगः कथं चापं मुद्वर्धय ॥९७॥  
 किं चातकस्तृषाक्रांतः मामारं जोगिष्यति । एतस्मिन्नन्तरे सर्वाः मृषेवाधाः स्त्रियश्च ता ॥९८॥  
 द्विजराजानन्य बालदोर्हण्डदयशोभितम् । हेमवर्णोपमरुचिं गुंजलानुपगंघ्रिणम् ॥९९॥  
 मृत्सलार्कककषणदयशोभितमन्कयम् । दिव्यकुण्डलमुक्तरन्नालकाशोभितम् ॥१००॥  
 सुजंघं सुषदं शूरं सुगानुं सुन्दरोदरम् मुक्कषं मुहनुं कंचुकं चित्रलिशोभितम् ॥१०१॥  
 म्बिताम्यं कोमलोष्ठं च मुदंतावलिगजितम् । सुनातं मुक्कषालं च कञ्जपद्मयिनेक्षणम् ॥१०२॥  
 सुश्रुभावं च सुम्भितार्धं कुचिवालकशोभितम् । मुक्तामणिक्कयन्नादिनानाऽलकाशोभितम् ॥१०३॥

कुण्डलको जन्ती प्रकार कांच लिंगा और वॉरमे सभाके बीचमे आ खड हूय ॥ ८७ ॥ राकको वहाँ खड़े देख सब लोग वच विस्मयम दख गये और शक्ति होकर सबके सब राज राज अपन कामसदृश नानीसे देखने हुए गम्यार कहन या कि यह बालक कौता मय है । अर, कहाँ इन लोगोंके नय होला वहाँ वहाँ यह क्या करेगा ? ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ कोई बहुत लम्बा कि यह बालक कबल रावणका दखनक लिए आया है । किमने कहा कि यह बालक तो मानो मन्त्र न्या है । ममा लगता है ॥ ९० ॥ कोई बालक सब इसने गलेसे हार तथा माना क्या उतार दी है । किमने उत्तर दिया कि इसको विश्वामित्रन धनुष उतारेज लिए भेजा है ॥ ९१ ॥ कोई बाला कि इस बालकको विश्वामित्रन पाशुतपम भेजा है, जितन यह धनुषम दखकर मर जाय ॥ ९२ ॥ दूसरांन कहा कि जहाँ मुनिने इसका कल इलनेक लिए भेजा है । चान्तु राम इस धनुषके विषयम क्या वच सकता है ॥ ९३ ॥ इस प्रकार राजा राम अनेक तरहके तर्क विमर्क कर हो रहे थे कि रामको देखकर जनकने विष्वामित्रसे कहा—हे मुनिराज आपने इस बालकको क्यों भेजा है ? जिस धनुषके विषयमे बड़े-बड़े राज-महाराज तथा मन्त्रणकी भी शक्ति कथित हो गयी वहाँ यह बालक आकर क्या करेगा ? जो आपने पत्न रावण जिमके द्वारा कहला भेजा था, मा सब आज इस धनुषके सामने मूठा हाथ । मगरि कहाँ यह बायस आता बालक और कहाँ यह बति दुर्घय तथा महान् धनुष । शतक य हे भित्तना हो प्यासा नही न हो ता था क्या वह समुद्रका रोख सकता है ? इसी समय मृषेवा आदि शिष्ये सरोज्योस, जालियोस, चोको और छत्रापरसे मन्दर तथा कामल अङ्गुवाल, कमलके सदृश नेत्रवासे, चन्द्रगक भयान मन्दर मुखवासे, बड़ा बड़ी भजाओंमे शोभित, सुवर्णसदृश कान्तिसम्पन्न, तूपुर और सिक-हियोका पावेष पहिने । ९४-९५ ॥ जितक हाथोंमे सिकड़ा और कड शोभित हो यह थे । जिनके सिर-पर दिव्य मुदृद कानाम दिव्य कुण्डल, हृदयपर रुने तथा मणिशेके विशाल हार झलक रहे थे, पैट तथा जलदमे विवला पडे हुई थी । जेयके समान कड श्वनेमे दंडा ही अच्छा लगता था । जिनकी भिक्की ठोड़ी, कोमल कपोल, हसता हुआ मुखचंद्र अनाक की धनिके समान दांत, सुन्दर लम्बी और पतली नाक तथा आल-ल ल हाड थे । माणस्य, मोली रत्न तथा हीरो आदिते बडे हुए अनेक जन्मकरीसे जलकुल,

मुक्तास्त्रपुष्पमालान्यस्तमप्यतिशोभितम् । न्यस्तहारं न्यस्तवस्त्रं बद्धपीताम्बगन्धितम् ॥१०४॥  
 दिव्यमुद्रागुलिलसत्पंकजद्वयसन्करम् । एव दृष्ट्वा स्त्रियो राम सभाङ्गमविराजितम् ॥१०५॥  
 न्यस्तकोदण्डनृणारं शिवघापाभिममुक्षम् । शार्धयामासुप्ताः सर्वा ऊर्ध्वास्य ऊर्ध्वमन्कराः ॥१०६॥  
 वश्यन्त्यो गमने शुभं मोहान्नासायणं विधिम् । साक्षान्नारायणं रामं न ज्ञात्वा ताश्च वै स्त्रियः ॥१०७॥  
 हे शम्भो हे रमाकान्त हे विधेऽस्मत्पुत्राहृतः । व्रतदानादिपुण्यं च चापं सज्जीकरोन्वयम् ॥१०८॥  
 पुष्पाभिर्नः सुकृतं च कर्तव्यं पुष्पवद्धनुः । अयास्य कटुदेशेऽत्र मालां सीता दधान्वियम् ॥१०९॥  
 नो भवत्स्व नेत्राणां साक्षित्यं दृश्येनदिह । मोनया रामचन्द्रस्य वेदिकायां स्थितस्य हि ॥११०॥  
 एतस्मिन्नतरे सीता रामं दृष्ट्वा सभाङ्गणे । दिव्यप्रासादमच्छ्वा सखीभिः परिवेष्टिता ॥१११॥

मोचन्तलामनाद्देगादानंदस्वेदमंजुता ।

सख्यास्तुलस्याः कटे स्वां शोर्नतां क्षिप्य सादरम् ॥११२॥

अवशीन्मधुरं वाक्यं रत्नालंकारमंडिता । किंपणोऽत्र कृतः पित्रा मम अमुष्मरूपिणः ॥११३॥  
 एव रामः सुकुमारगणः कवेदं चापं जगोपयम् । हा विधे किं करोत्पद्य किमस्त्यनर्गतं तव ॥११४॥  
 गमादिनाऽन्यं पुरुषं मनमाऽहं न गोचये । यदि तानो वलादन्य मां दास्यति तदा खड्गम् ॥११५॥  
 न्यजामि शोभितं त्वद्य प्राप्तादवतनादिना । हे शम्भो हे विधे दुर्गे हे साक्षित्रि सरस्वति ॥११६॥  
 हे माधवत्रि स्वरे मानो मधवन्पम वीर्यम् । हे कुरोज्ज्वल रामे हे विष्णो सगनायक ॥११७॥  
 हे फणींद्र निशानाथ हे सर्वे निर्जगदपः । पुष्पाकं शार्धयाम्यथ प्रमार्थं करपल्लवम् ॥११८॥  
 सर्वरेनन्महद्वापं करपीवं तु पुष्पयन् । प्रवेद्यनीयं पुष्पाभिः श्रीरामभुवदंडयोः ॥११९॥  
 चतुर्दश वन्मराणि मुनिवृत्त्याऽनुवर्तिनी । निचगामि वने चाहं धनुः सज्जं करोन्वयम् ॥१२०॥

रक्षा, आन, पुत्रराज, मुक्ता तथा हरे-बोले अनेक रत्नका पुष्पमालाओंसे मनोहर, पीताम्बर और शूकर  
 बस्त्रोंकी पहिने हुए, शङ्ख चक्र गदा वध आदि शुभ चिह्नोंसे चिह्नित करकमलवाले, सभासण्डपके बीच  
 बैठ, दोनों कन्धापर घट्टन और तूणारकी शींसे तथा शिवधनुषके सामने मुन्न किये हुए रामकी दल-  
 कर उन्हें साक्षात् नारायण न समझती हुई वे महिताय जाकागमे विपक्ष शिव, विष्णु और ब्रह्माओं के  
 उनमें हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी-॥ १००-१०३ ॥ हे शम्भो ! हे रमाकान्त ! हे बहान् हमारे  
 पूर्वोपश्रित स्व-ज्ञानजन्य पुण्योसे यह बानक धनुष च्छानमें समर्थ है । १०८ । आप साग हमारे पुष्पप्रतापसे  
 इस धनुषको पुराके समान हुन्का बना दें । जिससे हमारा सीता आज इनके गलेमें बरमान्ग डाले ॥ १०९ ॥  
 हमलोग सीतामहित रामचन्द्रका विशाहका वेदपर बैठे दसबर अपने नेत्रोंको सफल करें ॥ ११० ॥ ठसी  
 समय बम्भो तथा बलद्वारोमे सुगोभित छलियेके साथ दिव्य भवनको छतपर बैठो हुई सीता रामकी सभाके  
 बीच खड़े देख आनन्दके स्वेसे परिप्लुत होकर जोध आसनसे उठ खड़ी हुई । अपनी प्रिय सखी  
 मुन्सीके गलेमें हाथ डाल तथा तनिक भगाडा बंदक आदम्पूर्वक यह मधुर वाक्य बोली-साधुस्वरूप  
 मेरे खिलाने यह कैसे प्रतिज्ञा की है ? वहाँ वे कमल भट्टवाले बालक राम और कहीं यह ध्वस्तके  
 समान जारी तथा कठिन धनुष । यह इनमें कैसे बंध सकेगा ? हा ईश्वर ! तुमने यह क्या किया और क्या  
 करनेका विचार है ? चाहे ओं हां, मैं रामकी छोड़कर दूसर किसीकी नहीं रखेगा । यदि मेरे पिता मुझे दूसरे  
 किसीको देंग तो मैं महाम्बरसे गिरकर मयज मित्र आदिके द्वारा श्राप्य प्राण त्याग दूंगी । हे शम्भो ! हे  
 विधे ! हे दुर्गे ! हे सरस्वती ! हे माधवा ! हे स्वरे ! हे धूर्व ! हे इन्द्र ! हे जलपति वरुण ! हे कुबेर !  
 हे बम्भे ! हे रमे ! हे विष्णो ! हे गण्ड ! हे फणीन्द्र ! हे चन्द्र ! हे समस्त देवताओं ! मैं आज्ञा करके  
 प्रार्थना करती हूँ कि आप सब इस धनुषको फूलके समान हुन्का बना दें और रामचन्द्रके भुजदण्डमें  
 बंध करके उन्हें बल प्रदत्त करें । जिससे राम धनुष च्छानमें समर्थ हो और मुनिवृत्ति धारण करके रामकी

एवं नानाविधैर्वाक्यैः सीतां देवानतोपयत् ।

एवं प्रामादसंस्थायाः सीताया विविधानि च ॥१२१॥

तथा तामा हि नारीणां भृपाणां जनकस्य च ।

वाक्यानि शृण्वन् श्रीरावः किञ्चिन्नुवा स्मिताननम् ॥१२२॥

मयी चापं नमस्कृत्य कृत्वा तं च पदक्षिणम् । पुनर्नन्वा शिवं ध्यान्वा गुरुं दशम्यं नृपम् ॥१२३॥

कौशल्या च गुरुं ध्यान्वा वामहस्तेन तदर्धौ । मन्दहस्तेन दायस्य गुणं धृत्वा भूजयः ॥१२४॥

वामहस्तेन तत्रं तच्चक्रं मदमि क्षणात् । तदा निनेदुर्वाधानि सुष्टुपूर्वादिमागधाः ॥१२५॥

एनस्मिन्नन्तरे गमो वामहस्तचलादनुः । मध्येऽभयन्त्रिषड् तच्छुभं प्रार्चनमुत्तमम् ॥१२६॥

चपमद्भान्महाजादस्तदाऽभ्युदयनागणं चक्रपं धरणी त्वं चानिहयन्मम कयाद्दृष्टम् ॥१२७॥

चुक्षुः सागराः सर्वे निनेदस्ता दिग्धा दृष्ट्वा । तामा निपेतुर्धार्णी शिरः शोषोऽप्यचालयत् ॥१२८॥

वनुगताः सुगन्धाश्च देशस्ते गगने स्थिताः । रात्रयामगुरुं चानि धरणीः समवाक्षिन् ॥१२९॥

स्ववश्या ननृतुः स हि देवास्तोष प्रपेदिरे । तदा निनेदुः मदमि मेधो ददमयो रराः ॥१३०॥

नववाद्यमृताः नव चभृजयनिःस्वनाः । ननृतुर्वरनार्यश्च तुष्टुर्मागधादयः ॥१३१॥

स्त्रियो गवाक्षमधश्च गम पर्वपश्चाक्षिन् तदा म गवणान्धो लज्जयाऽऽनतमस्तकः ॥१३२॥

हृकुट्रेपि हीनश्च मुक्तकल्त्रोऽनिविह्वलः । ममायां न सुख तस्यो नृणो नृकापुर्गो पर्यो ॥१३३॥

गमेषु मद्र तच्चपं दृष्ट्वा नार्यो मुदान्विताः । चक्रुर्ज्येष्ठ्यनेयोपान्कर्ष्य कर्तालिकाः ॥१३४॥

सीताऽपि मुदिता जाता हर्षरोमाचनिर्मग । अनिमेषा कंजतेश्च गममुत्कठिता सभृत् ॥१३५॥

एनस्मिन्नन्तरे राजा जनकः प्राद्व वन्त्रिणः । करिणाम्भामश्च सीतादानवध्वं समुत्सर्जः ॥१३६॥

अनुगामिनी बनकर उनके साथ चौरहु बर तक वनमें भ्रमण करी ॥ १२१-१२० ॥ इस प्रकार विविध वानप्रस्थे सीता देवताओंको मनाने लगी । प्रामादपर स्थित सीताको, उन स्त्रियोंको, राजा जनकको तथा अम्बास्य राजाओंको ऐसे ऐसे वाक्योंको सुनकर मुसकत हुए श्रीराम अनुपको पास गये । वहाँ जाकर उन्होंने अनुपको नमस्कार किया, प्रदक्षिणा की और शिवजीका मन ही मन ध्यान धारके प्रणाम किया बादमें राजाभाम और राजा दशरथ माल्य कौसल्या तथा गुरु वसिष्ठका मन ही मन ध्यान परत प्रणाम किया । फिर वायु हाथसे धनुष और दाहिने हाथसे उनको लीन पकड़कर जणभर में सभाको गमन करे हाथसे धनुषको भुकाकर लीन चला दी । उस समय बाजे बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी और धारणागण गमका यह मान लगे । इससे रामको बड़ा बाहुबलसे उस रत्नम तथा पुगतक जियधनुषको खींचते तीन टुकड़ हो गये ॥ १२१-१२६ ॥ अनुपको दूटनेसे बड़ा घनघोर शब्द हुआ । जिससे समस्त वनमण्डल गुँज उठा । चरती काप रटा । हे पार्वती ! तुम भी उक्त सन्ध मागे चले हमसे बिपट गयी हो । सब समुद्र चलयमान हो गये दिशायें धुभित हो गयीं । नारे दूट-दूटकर पुर्जोपर दिग्ने लगे । लेखनागका सिर घूमने लगा । सुगन्धयुक्त वायु बहने लगे । देवता आकाशसे फूट नरसाने और बाजे बजाने लगे । स्वर्गकी खिड़ी आकाशसे नष्ट करने लगी और देवता आनन्द मनाने लगे । उस समय सभाघरमें भी उत्तम दोल तथा नगाड़े बजने लगे ॥ १२७-१३० ॥ मये-नये बाजो तथा जयजयकारका शब्द होने लगा । बाराङ्गनाएँ नाचने लगीं । धाँह आदि भूति करने लगे । क्षरोक्षेपे स्त्रियें रामपर कुल बरसाने लगीं । तब रावण सुषचाप लज्जामे सिर नीचा किये हुए चिन्ता लगी आगसे सुफुट-रहित हो घबराहटके साथ शीघ्र मिथिलपुरीसे निकलकर लड़ाका भाग गया । वहाँ वह जणभर भी नहीं रुकता ॥ १३१-१३३ ॥ रामने अनुपको लौट हाँवा, यह देखकर स्त्रियें हर्षतिरेकसे जयजयकार करने और तानियाँ बजाने लगीं ॥ १३४ ॥ सीताको लौ शरीरमे मारे आनन्दके रोमांच हो आया । उत्कण्ठापूर्वक निम्बरहित होकर कमलसदृश नयनोंसे वे रामको निहारने लगीं ॥ १३५ ॥ सभी राजा जनकने

क्षणाया निर्जः सैन्यैर्बेष्टयित्वा समन्ततः । नक्षेति ते मग्निश्च यधुरंगेन जानकीम् ॥ १३७ ॥  
 प्रोचुस्ते यधुरं वक्ष्ये प्रयद्वह्मपुत्राः । हे राने कञ्जनयने धन्याऽसि यज्जगदिमनि ॥ १३८ ॥  
 विचक्षोर्द्वेनाथ दशम्यसुनेन च । रामेण धर्मं मदसि चाधुनिष्ठ वगतः ॥ १३९ ॥  
 कर्णिगुष्टमारुह्य राम न्व गंतुमर्हसि । रामकण्ठेऽप्यस्वाय रन्मयानां मुदान्विता ॥ १४० ॥  
 हन्मत्रिणां वनः भुञ्जामाता नन्वा स्वमातरम् । सखीभिः काण्यपुष्टे संस्थितार्यान्मुदान्वित ॥ १४१ ॥  
 तदग्रे नयवासाने निनेदुमधुलानि वै । निनेदुः पृष्ठभागेऽपि न नावाद्यानि वै मुहुः ॥ १४२ ॥  
 चित्रार्णष्टाः कचुकिनः शनयो वज्रपाणयः । रानाकर्णियाधारे हे कुतुबुदीपेतिःस्वनाः ॥ १४३ ॥  
 शयन् ननममर रानां दृष्टं जनैः कृतम् । नमृतुवाग्नायश्च बभूवुर्बन्तनिःस्वनाः ॥ १४४ ॥  
 तुष्टुवृषागथाश्च नटा गानं प्रचक्रिरे । कर्णिगीं वेष्टयामासुः रानादाभ्यः सहस्रशः ॥ १४५ ॥  
 अथाकृद्वाभामर्गाद् विभ्रान्त्यो रुक्मशोभिनाः । तनोऽधर्मस्थाः शनश्रवां यधुशोषमातरः ॥ १४६ ॥  
 जम्हा क्षत्रधारिण्यः स्वर्णदन्त्यमन्त्रकाः । ततः पुरुषवद्वर्णान्निभ्रान्त्यः प्रमदात्मना ॥ १४७ ॥  
 ययुस्तकथयः शनशः शमहस्ताः सभूषिताः । गोपिताभ्याः कचुकिन्यस्तुग्मादिषु संस्थिताः ॥ १४८ ॥  
 ततस्ते मग्निश्च सखे न नाशहनमस्थिताः । स्वसैन्यैर्बेष्टयामासुः रानायाः कर्णिगीं मुत्रा ॥ १४९ ॥  
 चामरैर्व्यजनैः सङ्गो मुहुः रानामरीतयन् । मियो गवाक्षरश्नेश्च राना पुष्पैर्वाकिरन् ॥ १५० ॥  
 एव नानामधुन्माहैः शनैः राना सडिम्प्रभा । नरन्मयरीं मालां विभ्रतीं दक्षिणे करे ॥ १५१ ॥  
 रावं नेत्रकटाक्षश्च पश्यन्ती मुदितानना । ममार्पा रात्रि राना कर्णियाधारकक्ष च ॥ १५२ ॥  
 शनैः पद्मणी ययी राम तद्गवापा मुलांजना । सुमोच निजवाहुभ्या रानमाला मुदान्विता ॥ १५३ ॥  
 चक्रा नमनं रावं पादयोः स्थाप्य वै शिरः । तस्थान्वाहमुर्वा राना सधायामनिलांजना ॥ १५४ ॥

अथ नान्यमाना राजा ही कि मुन्दर हथिनपर बेष्टकर हेमाया दश-वन्धव \* भाग हक न व सातावा यत न  
 माभा ॥ १३६ ॥ \* वदुन अन्ध \* कचकर मा-गण नरन्त जनन-जोक पास वच ॥ ॥ ३ हाथ मा-गण  
 इस प्रकार यधुर बाणाम बहून गे-ह नजना-मना और समन्तवन्धव भाग मुम वन्ध ह ॥ १३७ ॥ मु-ग-  
 दशरथपुत्र रामन सभास यधुर पाद डाला । ज-ही उठकर सजा ही माभा ॥ १३८ ॥ हथिनपर अठवर अना  
 रामक पास चलती है । वहा चलकर अनन्तपुत्रक अभा उनके गलेम यह रन्तली माला ( वरमाला )  
 टाक दी ॥ १४० ॥ माला मन्त्रिधारक इस वाक्यका मुन्दर मानाक वरणास नमस्कार दिया और सहस्र  
 मुनिधोक साथ हथिनाका पादपर सवार ही गयी ॥ १४१ ॥ तनक आग तथा पाद माला प्रकरक  
 मनाहूर वीर वतने लग ॥ १४२ ॥ वदु-विरजा पगादर बाँध और हाथम बत लिये अन्त पुरक संकटां  
 दरबार हथिनाक अग आग आग विन्धान हूँ चलने लग ॥ १४३ ॥ न रानम रानाका दशमक लिय लडा  
 भीरका हटा रहे वे । केन्वाय माचन लगी । विविध वायाक निवाह हन यम । अट लुलि काने और नट गान  
 लग । रानाकी हजारों शक्तिमान ऊँह चर लिया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ उनके पीछे अश्वपर सवार तथा स्वर्णभूषित  
 चण्डर आदि लिये हुए वहुतसी स्त्रिय तथा उनके पक्ष चण्डर सवार संकटा उपमाता ( तादर्या ) बनी  
 ॥ १४६ ॥ उनके पीछे अस्वधारिणी तथा रानका छडिय लिये हुए संकटो पूरा स्त्रिय बनी ॥ उनके बाद जवान  
 स्त्रिय पुरषका वेषवन्धये और हाथम इस्त्र लिये हुए बली । उनके बाद उसा वेषम मुम हाँके रीर कूरता पहिने  
 च.गोदर सवार हाकर अस्त्र लिये हुए कुछ मुन्दरी स्त्रिये बनी ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ उनके बाद विविध व हनापर  
 सवार मन्त्रिगण वरना-अपना मनाक द्वारा रानाकी हथिनीको चरे हुए बने ॥ १४९ ॥ सजागण चण्डर तथा  
 वन्ध रानाकीपर इन्दास रमा । नगरका स्त्रिय गवाक्षमामंन उपपर फुल बरहाने लगी ॥ १५० ॥ इस तरह  
 जनक प्रकारसे राज-यत्रकर धीरे-धारे विजलाके बहुत दक्षिणासी तथा रूढ़ित हाथम नवगम्भीर हार  
 लिये हुए अपने नेत्रकटाकासे रामका देखती हुई रीता सभामण्डले पास जा लया हथिनासे उत्तरकर धीरे-धीरे  
 रामके पास गयी और लज्जापूर्वक रूपसे हाथीसे उनके गलेम बहु रन्तली माला डाल दी ॥ १५१-१५३ ॥

ददर्श सीतां गतोऽपि हारजोमिताहम्बलाम् । जरायुं तां च निजरां ननम गाधिच प्रभुः ॥१५५॥  
 तदा तमं समालिख विश्वामित्रो मुनीश्वरः । निवेशयामि त्रिकैतं च प्रेम्णाऽऽघ्राय मस्तके ॥१५६॥  
 तदा च जनका सीतां गाधिजाके न्यवेशयन् । सीतया गृणार्थेन हृष्टुमे स मुनिस्त्वदा ॥१५७॥  
 मानयामास च मुनिर्जन्यमत्फल्यतां हृदि । ततः सयायां जनको विश्वामित्रं वचोऽब्रवीत् ॥१५८॥  
 प्रमानात्मन रामस्य तामो जानोऽद्य मे मुने । धन्योऽस्म्यहं कुरु धन्यं च यो तौ पितरौ मम ॥१५९॥  
 योऽहं श्रीरामश्च शुश्रेति लोके प्रभां गतः । इत्युक्त्वा गाधिभं नम्रा प्रणनाम रघुपतिम् ॥१६०॥  
 तदा ते पार्थिवाः सीतां हृष्टा तत्र तद्विप्रभाम् । चित्रोर्ध्वा चंद्रवदनां नक्षत्रश्रृंगताडिताः ॥१६१॥  
 बभूवुर्बिकलास्तत्र दुर्दैवं मेनिरे निजम् । केचिन्मूर्छां पशुस्तत्र तास्तमागत्य मैथिलः ॥१६२॥  
 शार्ध्वकामाय नृपतीन्विपण्णान् मदमिच्छितान् । बह्वश्रम्यान्वदनान् लज्जसा ननु बभूवन् ॥१६३॥  
 शुष्माभिर्भेऽहं कन्याया विवाहं विनिवर्त्य च । गंतस्य स्वपुराण्येव कर्णीया कृषा मयि ॥१६४॥  
 तदा ते पार्थिवाः सर्वे मन्त्राश्चक्रुः परस्परम् । यदि यदं विजैतव्यः श्रीरामोऽद्य रणागरे ॥१६५॥  
 गर्धाम्भम् नमये दुष्टे जपे नो न भविष्यति । कुमुदहं नम पाताम्नूणीं गन्वा पुराणि हि ॥१६६॥  
 मुमुहूतं पुनर्योद्धुं याम्पामः सकला बलेः । भविष्यति तदा ज्म्माकं त्रयो वृद्धे विनिश्चयात् ॥१६७॥  
 पदा गमं बाणभिन्नं पश्यामः चित्तं तणे । भविष्यामः कुत कन्यास्तदा सर्वे वयं नृपाः ॥१६८॥  
 गर्दरास्यपमानस्य दुर्त्यं मर्मम्यलं गतम् । त्यजामः पार्थिवाः सर्वे त्रेप्यामो राघवं पदा ॥१६९॥  
 किमर्थमधुना वैरं दर्शनीयं नृपाय वै । इति संमन्त्र्य ते सर्वे नयन्युक्त्वा नृपौचमम् ॥१७०॥  
 कुत्वा भीतारिवाहं च गच्छामः स्वस्थलानि हि । तदा तान् सकलं रन्तु मृताणि जनको मुदा ॥१७१॥

तदा आनन्दरामायण चरणोपर अगती सिर राम तदा रामवार करक सभाये राज राज कुल नीचा मुख विजे हुए  
 मंडी हा गयी ॥ १५४ ॥ उस क्षण मृगभित्तद्वय राजने श्री सीताजी और देखा और मर्यन्त बन्धु  
 होकर उन्होंने विश्वामित्रजीका प्रणाम किया ॥ १५५ ॥ मुनिके ईश्वर विश्वामित्रने रामको कानि जून  
 करके प्रेमसे मादस बिठाया और तबका मिर सूया ॥ १५६ ॥ तब रामा जनकने सीताका भी ले बाकर  
 विश्वामित्रजीको गंदम बेठा दिया । उस समय सीता तथा रामके सहित विश्वामित्रजी बसो हो सीताको  
 प्राप्त हुए ॥ १५७ ॥ वे मन ही मन अपने जन्यका सफल समझने लग । तदनन्तर राजा जनकने सभाके  
 विश्वामित्रसे कहा— ॥ १५८ ॥ हे मुनिराज ! माफकी कृपासे आज मुझे रामचन्द्र बैसा रामाद प्राप्त हुआ  
 है । मे अनेको, अपने माल पिलाका तथा अपने कुलके अन्य सम्पत्ति है ॥ १५९ ॥ क्योंकि मैं रामचन्द्रके  
 अनुग्राहने तत्कारने विन्यास हुआ । ऐसा कहकर उन्होंने विश्वामित्रका तथा रघुनाथरामादि  
 रामचन्द्रको प्रणाम किया ॥ १६० ॥ उस समय वही एकजिन अन्धान् राज बगनाके समान बगनवाले मिर  
 अर्थात् एके हुए दुंदरुफलके सदृश स ३ और चन्द्रमाके सदृश कुलवाण सीतका दबते ही उसके  
 नेत्रकी बाणस बायन हाकर स्पाकुल हो गये और अपना दुर्भाग्य समझन लगे । कुछ वही मुछित  
 हो गये । तब मिथिलक भविष्यति राजा जनकने वही बाकर उन कानि नष्ट हो जानसे मर्यादमुख,  
 दुखी, श्रद्धासे नाथी गरदन करके समझे बैठे हुए राजाजस प्रार्थना की— ॥ १६१—१६३ ॥ कृपा करके  
 मेरी कन्याके विवाहका उत्सव सथापन करके ही आपका अपने अपने नगरीको वाइयेगा ॥ १६४ ॥ तब वे  
 राजे विचार करने लगे कि यदि रामका गुदम जीतन ही हो तो श्री इस कुममयसे हमलोगको विजय  
 लाभ नहीं होता । क्योंकि हमलोग कुमुदराज बाये हैं । अतएव अभी यहाँसे वृत्तव्य अपने-अपने स्थानको  
 जान्ने फिर किसी अन्धे मुहूर्तके दलकके सहित जायेंगे । उस समय रामका रत्नमूर्ति बाधकर और  
 विजय प्राप्त करके हम सब कृतकृत्य होंगे तथा सम्मानजनित हृदयवत् दुखको शान्त करेंगे । इसलिए इस  
 समय राजा जनकसे वैर करना अच्छा नहीं है । सीताके विवाहका करवाकर ही चले । ऐसा विचार करके  
 सब राजाजोंने राजा जनकसे 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा ॥ १६५—१७० ॥ इन्हें राजा जनकने सदैव रघुपति



कल्पयामास चिद्विबुधैर्नाश्नापि शृणुष्वम् ततो गाधिजवाक्येन जिह्वं प्रेष्य वयिणः ॥१७२॥  
 नमानेतु दशरथं तत्प्रतीक्षां चकार सः नेऽपि तन्वा मन्त्रमथ दृष्ट्वा दशरथं नृपम् ॥१७३॥  
 पुनः निवेद्य सकलं तं नन्वा तन्पुरःस्थिताः । वृष दशरथः धृष्टा तुनोऽपि निवरा नरा ॥१७४॥  
 मेन्येन पाण्डुरैः सर्वैः पूर्वाविर्जानन्दैः सह । मिथिलासगमच्छेद्यं तदा दशरथो नृपः ॥१७५॥  
 तदा महोत्सवेनैव नृपं दशरथं पुरम् नेतुं मन्त्रं पुनश्च ननकः वारिधैर्वयौ ॥१७६॥  
 तदा दशरथाय ली दृष्ट्वा कैकेयशत्रुनी । श्रीगमन्धमणास्य कुरः प्रसी व्यर्चिनयम् ॥१७७॥  
 तावद्वायलक्ष्मणाभ्यां युक्तं तं गाधिजमुनिम् स्वोदनायां नृपो नृष्टा निम्नयं वारं मेधितः ॥१७८॥  
 ततो दशरथं नन्वा नमिषु प्रणिपत्य च । गाधिजं जनकः प्राह कावेर्ता समक्षापगा ॥१७९॥  
 ततस्य गाधिजः प्राह समाशाङ्कतमन्त्रयम् । लक्ष्मणाक्षयश्च शत्रुघ्नः कैकेया नन्दनविभौ ॥१८०॥  
 तच्छ्रुत्वा जनकः प्राह राजानं गाधिजगुरुम् । सीता रामाय दास्यामि लब्धा भूमिद्वयाननाम् ॥१८१॥  
 देहजापुर्मितानाम्नी लक्ष्मणापाषाण्याम् । दशरथस्य मे वन्द्योऽश्वनर्कानिध मांडवी ॥१८२॥  
 वतसे वारिके रम्ये रूप्यावनमण्डिते । सीतोर्मिलाभ्यामपि ये कथा निम्य प्रश्रुतिने ॥१८३॥  
 दास्याम्यहं भरताप मांडवी मंडनान्निताम् शत्रुघ्नाय श्वनर्कानिमर्षयाम्यहमादृतम् ॥१८४॥  
 एवं स्तुपाश्वतमथ स्वमर्गाकुरु वारिधः । तथेति जनकः प्राह राजा दशरथो मुदा ॥१८५॥  
 ततो दशरथः प्राह सतानन्दं पुनर्हितम् । महत्प्राजडगोर्धूतं मेधिलामे धिरनं मुनिम् ॥१८६॥  
 कथं लब्धा सुवः सीता तत्पर्वं वक्तुमर्हसि । गतानन्दस्तथैवपुक्त्वाऽब्रवीद्दशरथं नृपम् ॥१८७॥

गतान्द उवाच

सम्यक् पूर्णं त्वया राजन् शृणुष्वैकाग्रमानसः । आमानुषा रूपः कश्चिन्वशास इति विभुनः ॥१८८॥

रामके लिये, पुनर्मन्त्रे लिये तथा राजा जनक लिय सब प्रकारकी वस्तुओंका यथापेक्ष प्रकट कर दिया ॥ १७१ ॥ तदनन्तर विश्वामित्रक वस्त्रोपर राजा जनकन अश्वनरका महाराज दशरथका बुनानका निमंत्रण करके भविष्योकी अयोध्या भेजा । तदुपार में राजा दशरथक पास गया और सब वस्तु, तत् निवेदन करके बाद नमस्कार करके सीमन खड़े हो रहा । इस बुनान्तकी मुनकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७२-१७४ ॥ फिर राजा दशरथ विचोका सेनाके, नगर तथा देसके सब लोगोंको साथ लेकर आनन्दपूर्वक आदि मिथिलापुरीको चल पड़े ॥ १७५ ॥ तब राजा जनक लड़े समारोहपूर्वक आयेनामके साथ एक हाथीको सज्जकर सब राजाओंक संग उनकी आकांक्षीके लिए सामने जाये ॥ १७६ ॥ महाराज दशरथके साथ कैकेयोंके पुत्र भात तथा शत्रुघ्नको देखकर राजा जनक विचारने लगे कि ये गमन्धमण जहाँ बड़ासे आ गये । बादमें जब विश्वामित्रक साथ राम लक्ष्मणको अपनी सेनामें देखा तो आश्चर्यचकित होकर राजा जनकने महाराज दशरथ और मुनि वसिष्ठको प्रणाम करके विश्वामित्रसे पूछा कि ये दोनों राम लक्ष्मणके समान रूपवाने दूसरे बालक कौन हैं ? ॥ १७७-१७९ ॥ विश्वामित्रजीने उत्तर दिया कि रामके अजस्यरूप भग्न तथा लक्ष्मणके अश्वनरक में सीता कैकेयोंक पुत्र हैं ॥ १८० ॥ यह सुनकर राजा जनक गुरु विश्वामित्र तथा राजा दशरथसे कहने लगे कि अयोनिजा, योनिके नहीं उत्पन्न ) तथा पृथ्वीसे प्राप्त भौतिका मे रामके लिए देता है तथा बारंरसे उत्पन्न उर्मिलाको लक्ष्मणके लिए दे रहा है । उन्हें साथ रहना करे । मेरे भाई कुशकाजकी अरकाणि तथा माण्डवी नमर्क मन्दर तथा रूपवीरनसे सम्पन्न हो बच्यार है । जिसका कि सीता तथा उर्मिलाके साथ-साथ बालकर मैंन बड़ी की है ॥ १८१-१८३ ॥ उनमें पृथ्वीसे प्रुविल मांडवीको भरतके लिए तथा श्वनर्क सीको शत्रुघ्नके लिए देता है । हे वारिध ! आप इन चारों पुत्र-वस्तुओंके स्वीकार कर । तब राजा दशरथने सर्व 'समाप्त' कहा ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने राजा जनकके सामने लड़े महत्प्राजकी कोसले उत्पन्न पुनर्हित मुनि सतानन्दसे पूछा कि सीता भरतसेस कैके जाय हुई । तो तब दशरथ आप कहें । सतानन्दने 'बहुत अच्छा कहकर बताया आरम्भ किया ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

य दृष्टु मकलौट्टोक त लक्ष्मीकर्मकृत-परात् चित्तयामास मनसि लक्ष्मीं कन्यां कोम्यहम् ॥१८९॥  
 नृपसत्र निजाके तां रजयामि निगनम् हान निधिन्ध स नृपगतत्वा त्वां महत्तपः ॥१९०॥  
 दृष्ट्वा प्रमत्तामग्र तु लक्ष्मीं वननमत्रां । दुहिता मे भव न्य हि मा प्राह नृपति प्रति ॥१९१॥  
 परतत्राऽप्यहं राजन् धिम् न्वं प्र र्थयाधुना । स चेदाप्यति मां ते हि नर्घहं दुहिता तव ॥१९२॥  
 भविष्यामि न मदेहमन्धे पुस्तका नृपः पुनः । नृपत्वा नीत्र तपो जिष्णुं चकार वरदोन्मुक्तम् ॥१९३॥  
 नन्वा त नृपतिः प्राह दहि कन्या र्था मम तद्राजवचन श्रुत्वा मानुनुङ्गकले हरिः ॥१९४॥  
 पद्मासाय दत्तां श्रेष्ठ स्वयमनर्धे विभुः । तद्विन्वा नृपतिः कन्यां ददश कनकप्रमाम् ॥१९५॥  
 तां दृष्ट्वा माभिलाषः स कन्यां मेने निजां शुभाम् । पमाधनृपतेः कन्यां यथां लोका रदंति च ॥१९६॥  
 आह्वयामानुष्मां रम्यां मवानिर्नैकं जनाम् । श्रुत्वा मानुमुङ्गस्य भूर्वकत्र फलं पुनः ॥१९७॥  
 जानं दृष्ट्वा दधागथ स्वदम्ने नृपतेः मुना । सा त्ववर्धन नृपतेरके चन्द्रकला यथा ॥१९८॥  
 मुकुक्ते च तां दृष्ट्वा पद्मलोऽचितयद्वरे । कर्म देवामया कन्यां ददश योम्यो वरोऽत्र कः ॥१९९॥  
 ततः ममंश नृपतिः स्वयंवरमधारभत् । स्वयंवरेऽथ पद्माया पत्तारम्यं चकार सः ॥२००॥  
 स्वयंवराय यथाय पत्रराकारयन्नृपान् । तेषुपि मृज्जारयुक्ताथ ययुः पद्मास्वयवरम् ॥२०१॥  
 पद्मास्वयवरं श्रुत्वा ययुस्तत्र मुनीश्वराः । ययुर्देवाः सर्गधर्वा दानवा मानवाः खगाः ॥२०२॥  
 नगा नयः समुद्राश्च भूरुहाः कामरूपिणः । ययुर्यक्षाः किकिराश्च राक्षसा रावणादयः ॥२०३॥  
 सर्वान् समगतान् दृष्ट्वा पद्माक्षः प्राह तान् प्रति । आकाशनीलवर्णेन यः स्वर्गं परिलेपयेत् ॥२०४॥  
 ददामि तस्मै पथेय कथं श्रेयं वयो मम । तद्राजपथनं श्रुत्वा दुर्घटं नृपसत्तमाः ॥२०५॥

गलानन्द कोमे हे राजन् आपने जो वृत्तान्त पूछा सो बहुत अच्छा किया । मैं कहता हूँ आप बकलसे  
 मुन । पूवकालय पद्माक्ष नामका एक प्रसिद्ध राजा था ॥ १८८ ॥ उसने सब लोगोंका लक्ष्मीको कामनामें  
 लेकर उसका मतम साधा कि मैं एक हाथ लक्ष्मीका पुत्र बनाऊँ और अपना गोदमें लाइ-व्यार करके  
 बड़ा करूँ । ऐसा निश्चय करके उसने लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिए बड़ा कठोर तप किया ॥ १८९ ॥ १९० ॥  
 जब प्रसन्न होकर लक्ष्मी सम्मन आ बही हुई तो उसने कहा कि तुम मरी पुत्री बनो । यह सुनकर  
 लक्ष्मी राजासे कहा ॥ १९१ ॥ हे राजन् ' मैं तो विष्णुपुत्रान्तक भवोन हूँ—स्वतन्त्र नहीं हूँ । इसलिए कुछ  
 विष्णुकी प्रार्थना करो । मैं यदि कुछ नु-हूँ र लिये दे दूँ तो मैं मृज्जारा पुत्रा हाऊँगी । इसमें सन्देह नहीं  
 है 'बच्छी बात है कहकर राजा पद्माक्षने ताल तब करके विष्णुपुत्रपदातुका प्रसन्न किया । ॥ १९२ ॥ १९३ ॥  
 विष्णुने उस एक श्रेष्ठ मानुनुङ्गफल ( विजौर नीबू अथवा नारंगका फल ) दिया और स्वयं अस्तर्षान हो गये ।  
 राजा पद्माक्षने उस फलका फल । तो उसमें मुखक समान जगमगाती कन्याका चिह्नमान देला ॥ १९४ ॥ १९५ ॥  
 कन्याभिलाषी राजाने बालिकाको देखकर उसे अपनी कन्या ही माना । तबक चित्तकी आनन्द देनेवाला उस  
 रमणीय कन्याको देखकर वहाँके सब लोग भी सद्य 'यह राजा पद्माक्षका कन्या लक्ष्मी है' ऐसा कहने लगे ।  
 तभी उस विजौरके टुकड़ोका मिलाकर फिर समूचा फल बन गया । यह देखकर राजाकी पुत्रीने उसे अपने  
 हाथमें ले लिया । यह बालिका राजाके अंक ( गोद ) में शूलपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति बढ़ने लगी । उसे  
 देखकर राजाके मनमें चिन्ता हुई कि 'यह कन्या मैं किसको दूँ, इसके योग्य घर कौन है' ॥ १९६-१९७ ॥  
 तदनन्तर राजाने विचार करके उसका स्वयम्बर रचाया । उसी रथम्बरमें उन्होंने मल का आरम्भ कर दिया  
 ॥ २०० ॥ स्वयम्बर तथा पत्रके लिए निमन्त्रणपत्र भेजकर पद्माक्षने राजाजीको बुलाया । वे लोग मृज्जार करके  
 बड़े हाड-बाटसे तथाके स्वयम्बरमें जाकर सम्मिलित हुए । स्वयम्बरका समाचार सुनकर बड़े-बड़े मुनीश्वर, देवता,  
 गन्धर्व, राक्षस, मानव, वंशा चहें वेला रूप वारण करनेवाले हग, पर्वत, नदी, समुद्र, यज्ञ, किन्नर और  
 यक्षचरि राक्षस भी वहाँ आ पहुँचे ॥ २०१-२०३ ॥ उन सबको जाया हुआ देखकर राजाने उनसे कहा कि जो

पद्मावीन्वर्षमभ्रातास्तां हर्तुं ते सन्ध्याः । तान् कन्याहरणोद्युक्तान् वृषान् दृष्ट्वा मनिर्जगत् ॥२०६॥  
 चकार संग्रहं तैः स पद्माक्षो लोमहर्षणम् । तद्वाणपीडिता देवा मानवा विष्ण्वा रणे ॥२०७॥  
 बभूवुस्तत्र दैन्यैश्च पद्माक्षो निद्रितो रणे । तत्तन्ने मिलिताः सर्वे नां धर्तुं वृष्टुर्नृपान् ॥२०८॥  
 सा दृष्ट्वा घर्तव्यशुक्तान् जुहावाग्नी कलेवरम् । तामदृष्ट्वा नृपाद्यान्ने विचिन्वन्नगरे तदा ॥२०९॥  
 शमश्रुत्पणेदानि भूमिं चक्रुर्मिन्नतः । स्मशानतन्व्य नगरं तानं वै क्षणमात्रतः ॥२१०॥  
 पद्माक्षनृपतेर्लक्ष्मीसगाज्जलेदृष्ट्वा दश तस्मान्न मुनयो लक्ष्मीं शमयन्ति कदाचन ॥२११॥  
 लक्ष्म्याश्चिनस्य चांचन्य भय शोका बभौऽपि च । भवत्येव महदःसं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२१२॥  
 पद्माक्षो निहते पुट्टे मृपयन्त्यः सहस्रतः । भर्ता महदं शमनं चक्रुस्मा भयनिर्भरः ॥२१३॥  
 ततन्ने दैन्यवर्षाद्या पयः स्वैस्व स्थलं प्रति । एकदा दहिकुंडान्मा पद्मा शक्तिः स्थिरा हरेः ॥२१४॥  
 बह्निर्निर्गम्य कूटस्थ सर्मपे नमृषानिश्च । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकस्थो दशाननः ॥२१५॥  
 विधस्तु जगतीं त्रेनुमाकाशवर्मना ययौ । माग्न्या दृष्ट्वाश्च दहिकुंडे बहिः स्थिताम् ॥२१६॥  
 माग्नो दर्शयामास गवणाय वसोऽब्रवीत् । पुनः पुनः पुनः पुनः ययौ धर्तुं ममस्थिताम् ॥२१७॥  
 तैर्य पद्माक्षनृपतेः कन्या पद्माऽपिमन्निर्भ्रा । तन्दाग्नयश्च श्रुत्वा तां दृष्ट्वा काममोहितः ॥२१८॥  
 यानाज्जवादुपपानं तां धर्तुं माऽनयेऽविद्वन् । तामनये मप्रविष्टां स दृष्ट्वा हान्वाऽहं तत्फलम् ॥२१९॥  
 तत्र प्राह दयाक्यः स स्वया देशं नृपादयः । कृत्वाऽग्नौ वसतिं पद्मे भ्रमग्रन्थाः कृताः पुनः ॥२२०॥  
 तदयं वागम्यान ते मया ज्ञानं वनोदये । पद्मेऽध्वनऽहं त्वां धर्तुं शोधयाम्यनलस्थलम् ॥२२१॥

काई अपने शरीरको आकाशक नीले रंगसे रंग लेगा अर्थात् जो ऐसा बर सकेगा ) उसे ही मैं यह अपने पद्मा नामकी कन्या दूंगा । वह मेरी ही प्रसिद्धा है । राजाके इस दुर्घट बचनको सुनकर वे नृपश्रेष्ठ पद्माके मोदरूपमें मोहित होत हुए उसका बखर हास करतक लिए उद्यत हो गये । देवताओ सन्निहित उन राजाओको कन्याहरणके लिए उत्तम देखकर राजा पद्माक्षन उनके साथ लान्हालक अर्थात् पद्मावतको बुद्ध किया । उनके आगसे पीड़ित होकर सन्मुख तथा दन्ता रणसे भगने गये । परन्तु अन्तमें दैन्यद्वारा राजा पद्माक्ष रणमें मारा गया । तत्पश्चात् वे सब भिन्नकर पद्माको पकड़नेके लिए बड़ बगसे लौटे । उनको पकड़नेके लिए जान देखकर पद्मा अग्निमें कूट पड़ी । उसको मैं देखकर राजाआने उक्त साते नगरमें दृष्ट्वा अग्न्य किश । राजमहल छोड़कर गिरा दिया और बहुतसी इधर उधरकी जमीन खाद ईर्षी । अणधर्म सात नगर भ्रमजान बन गला ॥ २०४-२१० ॥ लक्ष्मीके समस्त राजा पद्माक्षकी ऐसी इशा हुई । इसीलिये मुनि साग लक्ष्मीको कभी नहीं चाहते ॥ २११ ॥ लक्ष्मीसे चितका चंचलता बढ़ती है भय बढ़ता है गल बढ़ता है, मन्द्य मारा जाता है और बड़ा भारी दुःख पाता है । इस बापसे लक्ष्मीसे दूर रहना चाहिए ॥ २१२ ॥ मुझे राजा पद्माक्षके भाते जातेपर राजाका राजागे श्रिये भयभीत होकर राजाके साथ ही मतो हो गये ॥ २१३ ॥ बादमें वे सब देव भी आने अपने स्थानको चले गये । एक समय श्रीहृत्की स्थिराग्निकन्या लक्ष्मी अग्निकुण्डसे बाहर निकलकर पुण्डके समीप बैठी थी । तन्नेमें रावण पुष्पक विमानपर बैठकर भिचरता हुआ अपनाको जालके लिए आकाशमागसे उपर ही निकला । तत्र रावणका भ्राता सरण पद्माको अग्निकुण्डके बहुर बैठी देख रावणको दिखलाकर कहने लगा कि पूर्वकालमें तिम राजा पद्माक्षकी कन्याके लिए दवताआ और समुराका राजाके साथ युद्ध करना पड़े था, वही कन्या अग्निकुण्डके पास बैठी है । सागणके इस बचनको मन तथा पद्माको देख कामसे मोहित होकर रावण उठो हो वेगसे उसको पकड़नेके लिए नीचे कूदा, एते ही बड़ किर अग्निमें प्रवेश कर गयी । उसकी अग्निमें प्रवेश करती गया उस स्थानको देखकर रावण कहने लगा— ॥ २१४-२१६ ॥ हे पद्मे । तुमने रहिने भी अग्निमें प्रवेश करके राजाओ तथा देवताओको बड़ा भारी दुःख दिया है । हे मनोरथे ! तुम्हारा निवास स्थान जान देने बेज किया है । अब मैं तुम्हो सोभनेके लिये सात अग्निकुण्ड आन कालूंग

ह्युक्त्वा बलकर्मैश्च विप्रेचारिण दशाननः । यावन्मृष्यति कक्षायां रावणश्च ददर्श ह ॥२२२॥  
 पच रत्नानि दिव्यानि गृह्णात्वा तानि रावणः । कर्ण्डिकायां संस्थाप्य विमानेन ययौ पुरीम् ॥२२३॥  
 कर्ण्डिकां देवगेहे संस्थाप्य गवणश्च दत्त । गर्भी मन्दोदरीं प्राह संचक्रन्वा रहस्यस्थितः । २२४॥  
 हे मन्दोदरि रत्नानि यया स्वलोपदानि हि । समार्णवानि यत्नेन न्वर्धं सुगमयति ॥२२५॥  
 कर्ण्डिकायां वर्तन्ते गच्छ गृह्णात्वा तानि हि । तदज्ञायवचः श्रुत्वा मा ययौ देवमन्दिगम् ॥२२६॥  
 कर्ण्डिकां नत्र दृष्ट्वा नां नेतुं यतिमन्निर्गता । यावदुचालयामास न चचाल तदा भुवः ॥२२७॥  
 तदा मा लज्जिता गन्वा रावणाय न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा स प्रहस्याच्च स्वयं नेतुं ययौ तदा ॥२२८॥  
 तां माऽप्युचालयामास न चचाल कर्ण्डिका । यदा विजग्मूर्जर्जूर्य्या न चचाल कर्ण्डिका ॥२२९॥  
 तदा स विस्मयाधिष्टो नय मेने दशाननः । तत्रोद्गाह गमाय रावणम्नां कर्ण्डिकाम् ॥२३०॥  
 नावददत्त तस्यां स कन्या ययैप्रभोषणम् । तन्जोहृत्नेत्रमृकान्यामथलूषि रक्षाम् ॥२३१॥  
 तां द्रष्टुं शालिग्राम्या ययुः मुहुरगुवादयः । तदा मन्दोदरीं प्राह तस्यां वृत्तं शोढवम् ॥२३२॥  
 पञ्चशकुन्तान्यादि सर्वं वृत्तं दशाननः । क्रौञ्चमन्दोदरीं प्राह भयभीता दशाननम् ॥२३३॥  
 इयं कन्या प्रवृत्ता च कुर्त्यास्वमहागिणी । तंकां हिमर्थमानीता दाम्पत्येनान्वाहयि चैष्टितम् ॥२३४॥  
 दृष्ट्वा स्ववशापाताय व्यर्जनां सन्दरं ने चालम्हेर्षादृष्ट्वा गुर्वी तारुण्ये किं करिष्यति । २३५॥  
 वधोऽस्यास्तव जनेऽहं मृत्युमेव भविष्यति । स्वापनीया न लकायामियमर्थं रावण । २३६॥  
 इति रावणा पक्षः श्रुत्वा मन्य मेने दशाननः । मन्त्रिभिश्चाथ सम्बन्धं दत्तानां पपत्तदा । २३७॥  
 कर्ण्डिकेयं नान्वाह्यं विमाने स्थाप्य यन्मतः । न्यत्रत्या मय वाकपालं वने गच्छत वेगत ॥२३८॥  
 ततस्ते राक्षसाः स्युः समालय पुष्पकेऽथ ताम् । कर्ण्डिकां तु संस्थाप्य निन्वृथाकाशवर्मना । २३९॥

॥ २२० ॥ २२१ ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ २२७ ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ २३० ॥ २३१ ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ २३६ ॥ २३७ ॥ २३८ ॥ २३९ ॥  
 ॥ २४० ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ २४४ ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ २५० ॥ २५१ ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ २५४ ॥ २५५ ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ २५८ ॥ २५९ ॥ २६० ॥ २६१ ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ २६४ ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ २७० ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ २७६ ॥ २७७ ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ २८० ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ २८३ ॥ २८४ ॥ २८५ ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ २९७ ॥ २९८ ॥ २९९ ॥ ३०० ॥

दशम्यपत्नी तानाह कार्या भूमिगता त्वियम् । स्थापनीया बहिर्नेयं दर्शनाद्व्यकारिणी ॥२४०॥  
 गृहस्थाश्रमयुक्तो यस्तथा च विजितेन्द्रियः । हृदिभेष्यति तद्गोहे कुमारीयं शुभानना ॥२४१॥  
 अगच्छेषु सर्वत्र आत्मरूपेण यः स्थितः । तस्य गेहे चिर कालं स्थास्यर्नार्यं न संशयः ॥२४२॥  
 इति मन्दोदरीवाक्यं श्रुत्वा दूता भविस्तरम् । यावन्ने गंतुमुक्तान्मावन्कन्या वचोऽनवीत् ॥२४३॥  
 यावत्पाम्यहं पुनर्लङ्कां राक्षमानां बधाय च । निधनाय दशम्यस्य सपुत्रस्य समन्त्रिणः ॥२४४॥  
 अथ तृतीयवेलायामागम्यहं पुनश्चिह्नम् । निकुम्भजं पौड्रकं तं शनर्दीर्घं च रावणम् ॥२४५॥  
 इति श्यामि पुनर्गन्वा पुनर्याम्यामित्कपुरीम् । उह चतुर्थवेलायामभूत् मूलकामुग्म् ॥२४६॥  
 कुम्भकर्णमूर्तं शूरे महं पिश्याम्यहं पुनः । वत्तस्था वचनं श्रुत्वा हृदि विडो दशाननः ॥२४७॥  
 ज्ञातास्ते राक्षसाः सर्वे भयभीताः शबोयमाः । रावणधिनयामाम् हतव्याऽयं बालिका ॥२४८॥  
 नीक्ष्यं तद्गच्छं पुनः पृथी दुष्टार रावणः । हतुकामं पतिं दृष्ट्वा मयकन्या न्यवारयन् ॥२४९॥  
 मादमं कुरु माऽयं सन्यायुषि दशानन । भविष्यति बधस्त्वद्य तव नास्या वचो मृषा ॥२५०॥  
 यद्भविष्यति भवतु तवमे न्यत्र कानने । कालान्तरेण यो मृत्युममद्य त्व किमिच्छामि ॥२५१॥  
 इति भार्यावचः श्रुत्वा दूष्णीमाम् दशाननः । ततः मा पेटिका दूर्तनीना यानेन वै जवान् ॥२५२॥  
 पश्यन् वजानि सर्वाणि मीनापै र्मथिलस्य च । कृता भूमिगता दूर्तस्नदा सर्वः करडिका ॥२५३॥  
 ततो ययुः पुनर्लङ्कां दूतास्ते रावणस्य च । न्यवेदयन् रावणाय सर्वं वृत्तं यथाकृतम् ॥२५४॥  
 मा भूमिः सूर्यग्रहणे विदेहेन मथपिता । ब्राह्मणाय द्विजश्रादि तां कर्षयितुमुद्यतः ॥२५५॥  
 पश्यन् मुहूर्तं प्रियः म प्रत्यब्दं वै पुनः पुनः । चिरकालेन दृष्ट्वाऽथ हर्तुं परमोदयम् ॥२५६॥

रावणकी गर्भ में उनसे कहा कि तर्जनीमात्रसे बंध करनेवाली इस पत्तिलीकी बाहर खुली न रहना, बल्कि प्रमानमं गाड़ आना ॥ २४० ॥ गृहस्थाश्रमी होने हुए भी जो शितन्द्रिय होगा, उसके घरमें यह शुभानना कुमारी वृद्धको प्रीति दायी ॥ २४१ ॥ सब बराबरके साथ अपनी आत्माके समान बर्ताव करनेवाली जा होगा, उसके घरमें यह चिरकाल स्थित रहती । इसमें मन्देह नहीं है ( अर्थात् समदर्शी तथा शितन्द्रियके घरमें ही सद्गुणी चिरकाल तक रहती है—इसके यहाँ नहीं ) ॥ २४२ ॥ इस प्रकार मन्दोदरीकी बात सुनकर जो ही तब लोग बल्लेवा उद्यत हुए, त्यों ही कन्या कहने लगी—॥ ३४३ ॥ मैं फिर राक्षसों तथा भयभी और पुनर्लङ्का रावणका बंध करनेके लिए लक्ष्मी आऊँगी ॥ २४४ ॥ पुनः तीसरी बार यहाँ आकर निकुम्भपत्र पौड्रकों तथा सी मिखासे रावणकी भारती । फिर बादमें पुनः चौथी बार आकर कुम्भकर्ण तथा मूलकामुग्मों को भारती । उनके बचनको सुनकर दशाननका हृदय विड हो गया ॥ २४५-२४७ ॥ अब राक्षस भी भयभीत होकर मूलक समेत हो गये । रावणन सोचा कि इस बालिकाको अभी मरवा डालना चाहिये । यह विचार तथा तर्जनी तलवार हाथमें लेकर वह पश्चात्ती तरफ दीडा । पत्तिली इस प्रकार कन्याका माग्नके लिए तलवार देवकर मयदानबर्क कन्या मन्दोदरीने कहा—॥ २४८ ॥ २४९ ॥  
 न दशानन ! आयु जेव रहतपर भी आज ही तुम यह मार्ग मल करो । इसमें सुम्हारी मृत्यु हो जायगी । इन्का वचन श्रवण न होगा ॥ २५० ॥ जाने जो हँसेवाला होगा सो होगा । अभी तो तुम इसे बन्ध मूडवा ॥ २५१ ॥ कालान्तरे हमनेवाली कुम्भकर्ण आत ही क्या तुलान्त हा ? ॥ २५२ ॥ भार्याके इस बचनको सुनकर दशानन बह हो गया । ब्रह्मण् हा उस सपुत्रकाको मोक्ष विधानमें रखकर ले गये ॥ २५३ ॥ सोताने ॥ २५४ ॥ मियल्ला नग्नक वनोंको देखत हुए, वहीपर सब दूतोंन उस करडिकाको भूमिम गाड़ दिया ॥ २५५ ॥ तदनन्तर वह मृत्वा लौट गये और जो किया था, सो सब भूतान्त रावणसे निवेदन कर दिया ॥ २५६ ॥ राजा विदेहन वह जर्मन मूर्खदृष्टके बबमपर एक ब्राह्मणको दान दे दी थी । ब्राह्मणने उस ज्ञानकी जूनवानकी विचार किया ॥ २५७ ॥ प्रतिपक्ष कुम्भ मुहूर्त देखते-देखते बहुत बड़ी बाद

शङ्केषु कर्षयामास भूमिं कृष्यर्थमादरात् । तदा हलनिवासेन निर्गता सा करंडिका ॥२५७॥  
 ता गृहीत्वा स शङ्कोऽपि ययौ भूमिपतिं द्विजम् । स मन्वा तन्निधानं तु हर्षात्प्राह द्विजोत्तमम् ॥२५८॥  
 श्रेष्ठस्तत्र गृह्णीतुं महासाम्यं तत्र द्विज । इमां इत्याशंसंभूतां गृहाण त्वं करंडिकाम् ॥२५९॥  
 निधानपूर्तितां शुभ्रां श्या यन्नेन वाहिताम् । तत्र स द्विजवर्यस्तु तां जमाह करंडिकाम् ॥२६०॥  
 तामार्चाय विदेहाय समामधे ददौ मुदा नृपतिं प्राह वृत्तं तद्विप्रः श्रन्वा नृपोऽपि सः ॥२६१॥  
 उवाच भ्रातृण वक्ष्याम्यथा भूमिः समर्पिता तस्यां लब्धा न्वया चेत् तत्रैवास्तु करंडिका ॥२६२॥  
 विदेहनृपतेवाक्यं श्रुत्वा गच्छ द्विजं पुनः । मया समर्पिता पूर्वं भूमिर्यथा श्या नृप ॥२६३॥  
 नैव करंडिका श्या वसुपूर्णा समर्पिता । यद्भूमौ वृत्तं तन्न तन्नुपस्था न सशयः ॥२६४॥  
 सा सापधर्मैः शृणु गृहाणेवा करंडिकाम् एव नृपस्य विप्रेण कलहोऽभून्मुदाकणः ॥२६५॥  
 तदा मधामदा सर्वं नृपतिं वाक्पद्मव्रजम् । सा कायः कश्चो राज्ञः पश्यास्या किं नुवर्तते ॥२६६॥  
 ता तदोवाटयामास दूतनृपतिमनमः । तस्या दृष्ट्वा वात्सिकां नृ विस्मयं प्राप पार्थिवः ॥२६७॥  
 द्विजस्य कन्वा ययौ मेह पालयामास तां नृपः । तदा स्वेच्छयाद्यगोत्रं नेतुः वसुधैव कुटुम्बकम् ॥२६८॥  
 ववपुः सुरमयाश्च तां कन्वा जनकं नृपम् । मधतां गायनं चक्रन् नृनुधाप्सरोतणाः ॥२६९॥  
 तदा येन निजा कन्वा जनकस्तोऽपि सः । जानकं कान्त्यामास विप्रस्तस्याः मधिलभम् ॥२७०॥  
 ददौ दातारिणं विप्रेभ्यो ननुतुर्गम्योपितः । मातुलङ्गमभिर्गता या मातुर्दुर्गतिमा मृता ॥२७१॥  
 अग्निदासादग्रिगर्भा तथा रत्नावलीनि च । रत्नातर्गनवासाश्च शोच्यन्त जगतीतले ॥२७२॥  
 धरण्या निर्गता यस्मात्तस्माद्गरणिजेति च । जनकेनाग्रिा यस्याऽजानर्गतिं प्रकीर्त्यते ॥२७३॥

उक्तान् तेषां वचनं श्रुत्वा दौ वरुणदाया मुनिः देवकर ॥ २५८ ॥ उस ब्राह्मणने आदन्पूर्वक श्रुत्वा उस लभेजय सन्वात् निजा ददौ चन्वाया । उसी समय दृष्ट्वा कान्ते येन मन्वा निज उवाचो ॥ २५९ ॥ उसको नेत्र यह गृह अभीतके मलिके पास गया और उसको ददौ ल गन्त समझकर मुहूर्त ब्राह्मण कहने लगा हे द्विज ! जाय वदे भाग्यशाली है आपन अज्ज्ञ मुहूर्त मन्वा आरम्भ करवायो । यह हुम्के अग्रभागसे ( अर्धोत्त फारस द्विजका मन्वुत्तम मन्वा कहने है ) मन्वुत्त ( प्राप्त ) मन्वुत्तको गतिसे । मे लज्जामे मन्वा हुं उवा भाग्य दय निजगको लदौ कटिजय लो न आता है । उस द्विजने उसको ले लिया ॥ २६०-२६१ ॥ उसका ले जाकर ब्राह्मणने सध के सामने राजा विदेहको दिया और सब ममाचार कर मन ग । राजा भा यह मुक्कर ब्राह्मण कहने लगे कि मैने लो मन्विस भूमि आपकी समर्पण कर दी है । तब उनमम किला हुई यह पिटाग भी आप ही की है ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ राजा विदेह वचनका मुनकर ब्राह्मण उनसे कहने लगा—हे नृप आपने मुझे भूमि दी दी है ॥ २६४ ॥ यह वनपूर्ण मन्दर तटक गरी दी थी । हमरिय जे भूमिमे वन है वह निविवाद राजाका ही होता है । २६५ ॥ मुझ अवसर्ग न दल और इस पिटागका अर्थ न बत कर । इस प्रकार राजा तथा ब्राह्मण वद झगडा होने लगा । तब सब मधामदान राजासे वना—हे राजन् ! कलहको छोड़ें और देग कि हमस बरा है ? ॥ २६६ ॥ २६७ ॥ तब नृनिर्गम श्रेष्ठ नृपति विदेहने दुतभ सन्तु क बुलवायो । उसमे बालिकाको समार राजा वदे विस्मित हुए । ब्राह्मण ने देही छुडकर घर चला गया । तब राजासे ही उस कन्वाको पाध लिया । तब दैवताश्रके काय बदे और उन्होंने उस कन्वा तथा राजाके ऊपर पुण्यवृष्टि की । मन्वर्ष माने लगे । अस्तसवे नृप करन लगीं ॥ २६८-२६९ ॥ तब राजा जनकने शसत्र होकर उसको अपनी पुत्री श्या । ब्राह्मणके द्वारा विस्तारपूर्वक उसका जातकर्मणकर ( सन्तानके उत्पन्न होनेपर करनेका संस्कार ) करवाया ॥ २७० ॥ विप्रको बहुतसे दान दिये और वनयाओंका गायन करवाया गया । अगत्मे वह कन्वा मातुलङ्गफलसे निकलनेक कारण मातुलङ्गी, अग्निसे बस करनेसे अग्नि-गर्भा तथा रत्नोद निकल करनेसे रत्नावली कही जाने लगी ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ वरणीसे निकलने-

संग्राह्यशिवेन। यस्यासीनेनपथ प्रसीयने । रथाभभृदनेः कन्या तस्मान्पथे हि सा स्मृता ॥२७४॥  
 एवं नमोऽन्यनेनानि सीतायाः सति सो नृप । आकाशनीलवर्णान्वयुषाऽनेन जानकी ॥२७५॥  
 लब्धः रामेन पद्माक्षप्रविजः सफलकृता । एवं नृप यथा शृष्टं तथा स्वां विनिवेदितम् ॥२७६॥

अतस्त्वं स्तुतास्त्वत्र कर्तुमर्हसि भी नृप ।

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तव पूर्व दशरथेन च ॥ २७७ ॥

ममभूतः ययुः पैन्यः सोऽपूर्वः अशुगश्च ते । कोमलो मगधेशश्च कैकयश्च युधाजिनः ॥२७८॥  
 मानवसामानान् राजा जनकोपि मुत्तान्वितः । ततो दशम्यं पूज्य भीमं लक्ष्मणं तथा ॥२७९॥  
 मगतं चापि अशुभं नृपूज्याभरणैर्दभिः । निनाय जनकस्तुष्टः स्वपुरीं परमोत्सवः ॥२८०॥  
 तदा रामे नृपं नृपं गच्छा चालिपिनो मुहुः । यमिष्ठं मभिज नृपं कोकल्यादि प्रणम्य च ॥२८१॥  
 गच्छे दशरथस्याग्रं हं स्त्रीभिर्वन्दुभिः सह । गजाकटो यथावप्रे तेऽप्यभूवन् गजस्थिताः ॥२८२॥  
 नदन्तु वायसपु स्तुवन्तु मागधदिपु मनेन्तु वाग्नाथिपु विवेध नगरीं प्रभुः ॥२८३॥  
 तदाऽऽसीत्समभ्रमः परित्यागा आगाधदम्बने । विष्टुय स्वापठन्यानि ददुवुर्गापुरादिषु ॥२८४॥  
 कट्या निधय बालाश्च ददुर्गं रघुनन्दनम् । राजमार्गगतं गम्य वनगुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२८५॥  
 एवं महोत्सवर्गमस्थलं दशरथः सुतः । यथा वसन्ततोषार्धः परिपूर्णं मनोरमम् ॥२८६॥  
 कृत्वा ज्योतीर्विदा लज्जार्द्रिमस्य विनिश्चयम् । मंडराश्च तोरणानि पलाकाश्च ध्वजास्तथा ॥२८७॥  
 रावणप्रागु सचरं मावणो म्भिलां पुरीम् । पागाधन्दनलिम्बाश्च पुष्पगच्छादिता अप ॥२८८॥  
 गल्लाम्भलाणः पुष्पशोषावस्त चकाशर । ततो मुहुर्दसमये शृणुष्विष्टां निषां शुभाम् ॥२८९॥

क करण ध ॥२८९॥ जनक के द्वारा । पालित हानस जानकी साता ( फात ) के अग्रभागसे प्रकट  
 हनके करण साता और राजा अग्रहकी कन्या हानस बहु पथा कहलायो ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ हे  
 म्हााराज दशरथ इस प्रकार साताके अनेक नाम हैं । आकाशक समान नभस्वर्गक रङ्गवाले  
 रम्य साताका प्राप्त करके राजा पद्माक्षका प्रकृता पूज कर दी । इस प्रणाम का भजन पूज्य सो मेने निवेदन  
 कर दिया । अब मावका व चांग दुषकपुर्ण रथकार करना चाहिये । शिवसे बोल—हननेमे पहिलस  
 राजा दशरथके द्वारा बुद्ध्याने गये उनके अमर कालराज तथा मगधराज युधाजित् नामके कैकयरज  
 अर्जुना स्वा और एनाका साथ लेकर बहे आ पहुँचे । राजा जनकने भी उनको प्रेमपूर्वक स्वागत किया ।  
 पश्चात् राजा दशरथका वस्त्र अ मृदण आदने आर राम लक्ष्मण भगत तथा गनुषकी पूजा करके रावो जनक  
 महान् उत्सवके साथ अपने नगरमे ले गये ॥ २७२-२८० ॥ तदनन्तर रामने राजा दशरथको प्रणाम किया ।  
 राजाने उन्हें हृदयसे आवाहः । फिर रामने वृं बालिका तथा कालरथ आदि साताओंको प्रणाम करके राजा  
 दशरथके आगे उन मित्रया तथा वस्तुशाल सहित हाथियोंपर चढ़कर आगे-आगे चले । उनके पाछे और सब  
 गान गवः, हठ्ट हुकर चले गये । इस प्रकार वायसमूहके मन्दका तुलत, पारणोकी स्तुतिवाका श्रवण करत  
 तथा घेउआओके माचका दम्बट्ट हुण प्रभु रामने नगरेमे प्रवेश किया । उस समय रामके दशरथके लिये  
 नगरकी स्थिति दयाकुट हो उठी । अपने-अपने गृहकार्योंका छोड़ सबका सब बाळकोको जोरमे लिये  
 नगरके दस्तावे अंतस्पर आकर रघुनन्दन रामका वसन करने लगी । राम भय लडकपर आ गये, तब  
 उन्होंने ऊपर पुष्पवृष्टि की ॥ २८१-२८५ ॥ इस तरह महोत्सवके साथ राजा दशरथ राम आदिको  
 लेकर अग्र ( भोजनका सामान ), वस्त्र ( आड़ने-विछानेका सामान ) तथा जल ( नहाने-खोने तथा पीने  
 का पानी ) आदिसे वर्जपूर्ण मजाद्वार वासस्थानपर ( बरके टहलानके स्थानपर ) गये ॥ २८६ ॥ अन्तिमोने  
 ज्योतिषीके द्वारा समस्त दिन निश्चय करीकर समस्त मिथिलापुरीको मण्डरोसे, तोरणसे, पलाकाओंसे  
 तथा रङ्ग मिरङ्गी पञ्जाओंसे सजसा दिया बड़े-बड़े राखीको चबनसे सिपसाया गया । ऊपर जाति-

मुनिसाक्षां स्त्रियः सर्वाः कौमल्याद्यान्तु मानसः । रामादान् परिगल्पादौ नीलगजनपुरःसम् ॥२९०॥  
 कर्कुभांसोपपूर्णश्चतुर्दिक्षु मदीपकम् । सम्भारं स्नापयामासुमेहाद्यधुरःसम् ॥२९१॥  
 नटाभ्यंगं स्वयं चापि कृत्वा मन्दुश्च भातरः । रामादान् पुनः कृत्वा वस्त्रलेकाभूषिताः ॥२९२॥  
 अभ्यर्च्यैकं पद्मं राजा दक्षिणोऽपि यः । ममाह्वयं वृषस्त्रीश्च सभायां स्वस्तिके गुरुः ॥२९३॥  
 मृत्काचिर्निर्मिते राज्ञः पार्श्वे गगने न्यवेशयत् । अग्रे गभाद्रिहस्तकं वा नाः स्त्रियोऽननसज्जनाः ॥२९४॥  
 हरिद्राकुकुमास्त्रिचरणा रंजितरङ्गणे । रसिगो ब्राह्मणैर्गुप्तो राजा रामादिभिर्बुधाः ॥२९५॥  
 कृत्वा गणपतेः पूजां पुष्पाद्वादित्रयं कमलम् । कारयामास दिव्यवस्त्रनिष्ठा देवकस्य च ॥२९६॥  
 ग्रामाचारं कुलाचारं वृद्धाचारं तथा पुनः । देशाचारं च प्रमदाचागदीनकरोन्नुपः ॥२९७॥  
 गोपकृष्णं मण्डपादिकानां पूजयवाचयत् । कौमल्याद्याः स्त्रियः सर्वा हरिणीवकृणोररः ॥२९८॥  
 हेमनन्तैर्दिव्यैर्वस्त्रैर्गुम्फपांगण । जलकश्च नृपैर्गुप्तो महावाद्यपुरःसम् ॥२९९॥  
 रामादीन्म पित्रं गेहं चेतुकावः समाययो । मण्डपे पूजयामास रामादान् जलकस्तदा ॥३००॥  
 हेमनन्तैर्दिव्यैर्वस्त्रैर्गुम्फपांगणदिभिः । तदा विरेजन्ते बालाः सर्वे प्रमुदिताननाः ॥३०१॥  
 तनूस्ते वारणेश्वर्या दिव्यवासर्वाज्जिताः शृण्वन्तो वाद्यघोषांश्च श्रपन्तः पुष्पवृष्टिभिः ॥३०२॥  
 हरिद्रांकितधान्यैश्च मागल्यैर्भीक्तिकादिभिः । मातृभिवारणस्यांषु संस्थिताभिर्बुधैर्गुम्फैः ॥३०३॥  
 एव ते गणवाशाश्च पुरस्त्रोभिर्निरीक्षिताः । प्रमादोपरि संस्थांमर्लाजाभिर्वर्षिता मुहुः ॥३०४॥  
 ददृशुर्नैनान्वये शस्त्राणां स्मिराननाः । वाटिकाः पुष्पवृक्षाणां वरमृन्पात्रनिर्मिताः ॥३०५॥

मूर्तिके पुष्प विखर दिये और लाख लाख स्थानोंमें मोलण तथा लारण करवा दिये । पुष्पलताओं और  
 मूर्त्तिकों द्वारा उस समय वह नगरी जोदही दिव्य मा ३०५ गहन जगो । हरनन्तर शुभ मुस्तम  
 जिस रातको माताके कर्पूरम स्त्रियोंके द्वारा केन्द्रहुन्दा । अर्द्ध मन्त्र गयो । उमा रातय कौमल्या  
 यदि वातायने जीवन जंगलया रामका शान्ति स्त्रिकर जगपण देवक सहित चार सुन्दर घण्टी  
 चारो दिशाअ म स्थापित करके गम नदमण मन्त्र और वायुनको वातचन्द्रिक साथ मातृमित्र स्नान कराया  
 ॥ २९०-२९१ ॥ फिर केन्द्र आदि मन्त्रों जगन जग भा सब मागल्यान स्नान किया । पहिले गत  
 आदिको कश्च तथा मन्त्राओंसे पूरित करके केन्द्रहुन्दा । आकाशमय अर्द्धहु करके मन्त्रों ) राजा  
 दक्षिणो भी स्नान किया । पश्चात् गुरु वज्रिभ गजाका सब मित्रोरो ममागल्यम बुलाकर राजाके  
 बायभागमें मुनानिर्मित स्तम्भिक अंकित । वरि मा मासन , पर वेदया । उस समय मन्त्रोंके आसनमें स्त्रिये राम  
 आदि वात्कीसत समन वटाकर निम्न मुन किम तथा तदा और तने चणाम लगाये अत्यन्त मृशो-  
 मित होन शरी । बाह्याके सहित परिणजीन राजा दक्षिण तरा रामादिके द्वारा गणनिर्जन तथा  
 गथाहवाचन ये दोनों कर्म प्रमम करवाये और तीसरा कर्म निषिक्त दाताकी प्रतिमा करवायी ।  
 राजा दक्षिणमें भी वारमें प्रसन्नतापूर्व रामचार कुलाचार, वृद्धाचार वयाचार तथा प्रमदाचार  
 आदि किया ॥ २९२-२९६ ॥ तदनन्तर जगपूर्ण कृष्ण तथा मण्डप आदिकी पूजा की । मण्डपके आसनमें  
 हरी लाल, पीली तथा जरादार साँड़ियोंको पहनकर कौमल्या आदि स्त्रिय बड़ी सुन्दर दीसन ल्या ।  
 बड़े बड़े बायोंको वज्रवान हुए अन्य राजाओंके सहित राजा जलक भी राम आदिको अपने भवनमें  
 लिखा ले जानके लिये बहाँ आये । मण्डपमें जाकर राजा जनकन नाम आदिका पूजन किया ॥ ३०० ॥  
 उस समय प्रसन्न मुखवाले ये सब वाचक दत्तदार दिव्य कश्चो तथा आभरणोंका पहने हुए बड़े सुन्दर  
 लगने लगे । ३०१ ॥ वाचक ने सब जे कि उत्तम हान्धियोंपर बैठे हुए थे, जिसपर सुन्दर चँवर कुल  
 रहे थे । हान्धियोंपर बैठे हुई माताएँ चानी तरफम बायवार जिसपर मोलियों, माङ्गलिक हृदयमिश्रित  
 पावलो तथा पुष्पोंकी ओझार कर रही थीं । जिनके आगे नगरकी स्त्रिये बड़े चाणसे देन रही थी तथा  
 मनोपरसे वानका लावा बरसा रहा थी । आनन्दधर मुखसे वहाँके दास्तेसे वेस्याओंके मुख



तथा कृत्रिमपुष्पाश्च पत्राकाश्च ध्वजास्त्वथा । वह्निमग्नौषधीनां पुष्पवृक्षविनिर्मितान् ॥३०६॥  
 तद्विन्मधोषमाश्रावि गमनान्निर्गतिनान् । वह्निमग्नौषधाम्यः प्राक्कागन्निनिधान् वरान् ॥३०७॥  
 चन्द्रज्योत्स्नाकृत्रिमाश्च दीपवृक्षान् महमशः । दीपमान्नाश्च व्याघ्रादीन्कृत्रिमान् रघुमर्षिभान् ॥३०८॥  
 शोषधोभिः पूरिताश्च केकोचकोपमादितान् । इदंशुवाग्नेन्द्रिया एवं ते राघवादयः ॥३०९॥  
 तदा देवा विमानस्था ददगुः कौतुकं मृदा । एव नानोन्यैर्वशांता यपुर्जनकर्मदिरम् ॥३१०॥  
 अवलम्ब्य गजेन्द्रैभ्यस्तस्थान्ने मडपागणं । मधुपर्कावधानानि विष्टगदानि च क्रमात् ॥३११॥  
 तयोर्गुरु चक्रतुर्ह्यौषमिष्टगोतमगमर्जा । वाग्माध्यादिमूनिगणैर्बेष्टितौ तुष्टमानभौ ॥३१२॥  
 ततः पूजां वृणां च पुदा दधमधो नृगः । चक्रा गुरुणा पुत्तम्वदा य वडपाङ्गणे ॥३१३॥  
 ततो लग्नमुहूर्ते तान् वर्धमिश्च पृथक्करन् । वदिकासु स्थितान् कृत्वा दग्धन्योऽग्नौ पटान् ॥३१४॥  
 कृत्वा मङ्गलघोषाश्च मुनिभिश्चक्रतुर्गुरु । तदा नृणां मभायां ते शुभ्रतुः सकला जनाः ॥

दुष्पौषैः शोषधान्यैश्च वटपुत्रम्पनीन् शिवः ॥ ३१५ ॥

श्रीदेवाननयो शिवः सुखकरो मित्रः शशा रूपनः सर्वं ते पुनययन्ता दत्त दिवः सर्वां मूर्गेन्द्राः क्षमाः ।  
 नद्यः पुष्पमग्नौषगाणि दिनिजास्तीर्थाणि कंजामनश्रेष्ठो बह्वयमग्नौ उल्लवयः कुर्वतु वो ममन्तम् ॥३१६॥  
 तदेव तमे मुदिन तदेव तमावतं चद्रवतं तदेव । चिदावतं देववतं तदेव कार्दपतेर्यत्स्मरण विषेयम् ॥३१७॥  
 एवं बंगालशूर्ध्व महाबाहूपुरःसरम् । तेषामतः पटान्मुक्त्वा अंगुष्ठयोऽस्तूनतुर्गुरु ॥३१८॥  
 तस्मां ते पाणिद्वयविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाहोमादिकं सर्वं चक्रमङ्गलपूर्वकम् ॥३१९॥  
 तदा महानाघघोषा निजेदुर्गमडपागणं । वनतुरारिनायैश्च अगुर्माध्यावदिनः ॥३२०॥

मनोहर मिट्टा आदि के दत्त हुए गमलो, वृक्षो तथा कूट पत्तियों के बनी हुई बाटिकाओंको, कृत्रिम वृक्षोंको, पत्राकाओंको, ध्वजाओंको, बालिक सज्जम जन्मवान, तद्विन्म के समान रागनाबाल और आकाशम धमकनेवाले नाना प्रकारकी आलसबाजास सब गुणवृक्ष-लता आदिको, हजारों चन्द्रमाओंको चन्द्रनेक कृत्रिम रागवृक्षोंको, रागमात्राओंको, रघुमर्षि एवं दृष्ट बनारहा व्याघ्रमग्न आदिको, शोषधिसं शरेदृष्ट कोर तथा बली आदिको देखने लगे ॥३०६-३०८॥ सब देवता भी आनन्दसे उस कौतुकका देख रहे थे । इस प्रकार विविध उस्तवो महित वे राम आदि बालक राजा जनक के भवनका गव । ३१० ॥ वहाँ श्री तथा हाथियोंसे उतरकर वे मण्डपके आगनम लड हा गये । बाह्यांगिक आदि पुनः पत्त धिर हुए दानो वचक तृप्त वीजन तथा वीटमपुत्र शतानन्दके प्रमथलास मधुपर्क ( मधुनिष्ठित रह ) का विधान और आसन आदिका विधान समस्त करवाया । ३११ ॥ ३१२ ॥ पञ्चान् राजा दशरथन पुत्र खोज-का साथ लेकर महर्ष बापी पुत्रवृक्षोंको पूजा की । फिर पुन मुहूर्त तथा नृपजनक मुनियों तथा दुदतमन्म उक्त-उक्त वधुजों और उन उन बार बालकोंका पृथक् पृथक् बेदियापर बेठाकर उन दग्ध तथाक बाधम वन्दका अह करके मङ्गल-मग्न मन्त्रोंका उच्चारण किया । मघाके कथे अनुष्ठान पुन हाकर उसे मूत्रन गये । तत्रय कहरसे गये पास बाधक तथा पुन वरवधूके ऊपर बरसाले लगे ॥ ३१३-३१४ ॥ तदन्तर्गत दवालयक रजपति, सुखकारक शिव, सूर्य, बह्म शायु, सब मुनि, चन्द्र-अचल जीव, वडा दिग्गज, सप, मृगन्द, लज, नदी, पवित्र सरावर, दैत्य, शाय, वड्या, इन्द्र, अग्निस्वहा तथा मदी-समुद्र आदि तुम लोगोंका करगम करे ॥ ३१५ ॥ काशीवांसे आविष्मनाय जन्मवाला स्मरण हो तुम्हारे लिए मुन्दर लज, शुभ दिन, गृहलज, विद्यालज तथा शिवक सब आय ॥ ३१६ ॥ ऐसे भागलक लब्धो और मायालक बाजोंको ध्यान होम गया । उसके बाद जीवसे वरे हुए वृक्षोंको हटा दिया गया और दानो वारके गुरुमाने "अंगुष्ठोऽस्तु" ऐसा कहा ॥ ३१७ ॥ इस प्रकार उन लोगोंलि निकलर विधिपूर्वक लजका विमलकार्य तथा लावाका हवन आदि सभी कुर्य मङ्गलपूर्वक संपादित कर दिया ॥ ३१८ ॥ तब मण्डपका जंगदाईय बट-बटो बाजोंका विचार होने लगा, वेस्वावे लाधने लगी, बाँट बाँट बर्सावद यदागाव करने लगे ॥ ३२० ॥

नदा मंगलमालयं हृष्टवृम्भे महाज्वरः तदा दानान्यनकाभि चक्रतुम्भौ नृपोत्तमौ ॥३२१॥  
 अथ ते बालकाः भवे दशः स्थाप्य कटीषु च । दानस्य दिवनिताभिर्जगमुम्भे भोजनगृहान् ॥३२२॥  
 यत्रासिञ्चने चक्रुः संपूष्य तथा च सम्पूष । गे रामादिकाः सर्वे स्वस्वपत्न्या पृथङ्मुखः ॥३२३॥  
 चक्रुस्ते भोजनं दृष्ट्वा स्त्राभिः सर्वत्र बाणना । गजा दशम्यश्वाधि सुहृद्भिश्च नृपाचमैः ॥३२४॥  
 पौरजानपदानष्टमुनिभिः परिवारिभिः । जनकस्य गृहे गन्ता चकार भोजनं मृदा ॥३२५॥  
 कौसल्यश्च श्रियः स्त्राभिश्चकुर्भोजनमृत्तमम् । सुमेधया आशितकान्ता वदितश्च मनुमुहू ॥३२६॥  
 एव जनसममुत्साहाद्वाचं जनसो मृदा । अथ ते बालकाः सर्वे स्त्रावाकयान्मामुर्मयिधौ ॥३२७॥  
 स्वस्वपत्न्याः पादयोः स्त्राजगभिर्जनममुहू । चक्रन्त्यष्टचेतमस्ते तस्मा नैमः पृथक् पृथक् ।

कुम्भान्तिष्ठयदाश्च तेषामकेषु ता ददुः ॥३२८॥

श्रीरामः समशप्य भूमिनम तमाया जगन्जगिर्नी मरान्मा चरहतुमुन्दरवनुः कारुण्यपूर्णक्षणः ॥  
 विष्टुदृष्ट्वा च राजमानजनसम्भोजनचूडाभूषिः शोभामाय जगन्त्रयेऽयनुपमा मुक्तागिराजद्वयः ॥३२९॥  
 चतुर्धे दिवसे रात्रौ वंशपात्रभिर्गजिनैः । क्षैपैर्नीगजिनाः सर्वे चिरेनू राधवादयः ॥३३०॥  
 रामादीनां परिवहन्तं ददौ म जनकस्यदा । निगृहान् राष्णेन्द्राश्च शिविकाश्चापि तन्मिनाः ॥३३१॥  
 तुम्भान् दशलभाश्च विष्टुहान् स्वेदनात् ददौ । नानालङ्कारवासामि मोदामीमेवक दिकान् ॥३३२॥  
 ददौ म राधयादिभ्यो वेषां मरुदा न विद्यते । एव सम्मानितास्तन ते बाला जनकेन हि ॥३३३॥  
 पूर्ववदुन्मव शैश्च स्वस्वपत्न्या समन्विताः । गजाकृदा नुन्यर्णतस्तर्गभिः स्वसंहप ययुः ॥३३४॥  
 ततो गजा मामपकं निनाय नृपवाक्यतः । ततः सन्येन स्यपुर्गं गन्तुं पुरां बहिर्ययौ ॥३३५॥  
 साताया निर्वैयुर्मय्याः माशुनेयाः सुविह्वलाः । सुमेधाकृता मघातिथय मौनविविदा व्यसजंयत् ॥३३६॥

नद लाग जलमे सङ्गुल्यतीका न कर नुत्त वरन मर्ग और दानो कृष्णे ते अन्तः दान दिव ॥ ३२१ ॥  
 तदनन्तर वे सब जानक अपनी अपनी दहको कमणपर चढाकर बोले । अदि मान जाके साथ भोजनान्तरम  
 भये ॥ ३२२ ॥ हे जनक ! वही आज्ञाचन करके तुम्हारा मर्ग हमारा ( शिव-पारवर्तव्य ) पुजा करनेके  
 बाद हम के दिन अवकाशपत्नी गतिस्थाने मार आन्तरवृत्तक भाजन निवा और सब स्त्रियाँ ऊन्हे  
 घंकर लड़ा हो गयी । गजा इन्द्र व भी गये राजाक्षेक, मर्ग, क, नगर तथा देशक मर्गोको  
 और मुनिओको साथ न तथा जनक घाटन नगर मर्ग म जनक ॥ ३-३-२०४ ॥ सुमेधसे वार-  
 वार प्रार्थित तथा न लीदन कोमला आदि स्त्रियाँ व भी व मर्ग स्त्रियाँ, न मान जनक भाजन किया ॥३२५॥  
 राजा जनक ददा जनक मर्गोत्त हूँ । फिर उन बालकों प्रसन्न होके शिवको कहनसे मातओंके  
 सन्मुख अवर्त आनी शिवको रोगीपर आता जाता मित्र भवकर लज्जा व किया । पञ्चान नन स्त्रियाँने  
 र्ग जनकी अलग-अलग सम्स्कार करके उनका ग रोग पुत्रुसे व जन परे रनर ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥  
 समस्त सत्कारि अलग इन्द्र मन्दर मरावक, कारण किसे हूँ करणापूर्ण नेत्रावाते, विष्टुके समन  
 वर्तकाले, वीच वरगोका भाजन विष्टे हूँ । शिवार्थ वृत्तान्तिस्वमय गलम मर्गोको माता परन हूँ और म  
 जगत्की आदि वार्धिन, और भूमिलता माताको आज गन्त गीत न न अगुमेर शासकी प्रप्त हूँ  
 ॥ ३२९ ॥ चौधे दिन वीनके पावन जनक हूँ दातकोमे न राजिन तथा पूजित राम आदि चारा  
 आई वरे हूँ शाभादमान हूँ रग ॥ ३३० ॥ गजा जनक राम अदिका ये दहेज दिष्ट दस लाल हवीं, दस  
 लाल पालकियाँ दस लाल घोडे तथा दस लाल ग्य धर्मकर अलंकार, पोशाक, गीर्त तथा दास-दासिण  
 ही । इस प्रकार राजा जनकके द्वारा सम्मानन ये बालक ॥ ३३१-३३३ ॥ अपनी अपनी स्त्रियोंको साथ  
 से तथा हाथीपर सवार होकर नृपगान तथा वरक माय अपने मण्डको लौट वाये ॥ ३३४ ॥ पञ्चात्  
 राजा दशम गजा जनकके बादशुन एक महेना वही व्यतीत करके अपन पुत्रको जानेके लिय रोगके साथ  
 उह पुरीसे बाहर वाये ॥ ३३५ ॥ संज्ञा आदि अभ्युर्ण गेरोम बहुत विह्वल हुकर चली । सुमेधाने उनको

अथ राजा दशरथो जनकं विन्यस्तयत् । तदा दशरथं प्राह जनकः माधुलोचनः ॥३३७॥  
 अमन् कदाप्यमलानास्यो विरहाद्दृढाक्षरः । एतावच्छतर्वर्त्तन् मीनाक्षरं साधिवो मया ॥३३८॥  
 अभुता न्वमिमाम्बुये लालयस्य कुनेष्टनैः । इत्यकन्वा नृपति नन्वा मिथिलां जनको दत्तौ ॥३३९॥  
 तनो दशरथस्यापि स्तुतास्तनयादिभिः । सूर्यः सन्नेन कृपुर्न कथौ मार्गे जनैः सुनैः ॥३४०॥  
 अथ मथ्यन्ति श्रीगमे मैथिलश्रीजनवधम् । निमित्तान्यविधोरणि ददश नृपमनसः ॥३४१॥  
 नन्वा यमिष्ठ प्ररुष्ट किमिदं नृनिपुणव । निमित्तानीह दृश्यते विदमणि ममनतः ॥३४२॥  
 वानप्रस्थमथो प्राह भयमागाति मृच्यते । पुनरप्यथा नेऽथ क्षीधमेव भविष्यति ॥३४३॥  
 मृगाः प्रदक्षिणयाति त्वां पश्य शुभमृचकाः । एवं वै वदनमनस्य वयो धोरनगोर्दितः ॥३४४॥  
 मुणश्चक्षुषि सर्वेषां पामुर्वाहभिरर्हयत् । तनो ददशै परम कामदम्बं महाप्रभम् ॥३४५॥  
 नीलमेघनिभं प्राञ्चो जटामण्डलमंडितम् । धनुःशुद्धस्तं च माक्षान्कात्प्रमिव स्थितम् ॥३४६॥  
 कर्त्तव्यार्थिकं गाय रामप्रश्रियःर्हयम् । प्राप दशरथस्याग्रे रत्नाम्यं रत्नलोचनम् ॥३४७॥  
 तं दृष्ट्वा मथमत्रस्तां राजा दशरथस्त्वदा । प्रत्यादिपुत्रां विस्मृत्य पाहि राहीति चाभवीत् ॥३४८॥  
 ददन्प्रवणिष्यत्प्राह पुत्रप्रणान्प्रयच्छ मे । इति ब्रुवन् राजारमनादप्य रघुनमम् ॥ ४९॥  
 उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधान्प्रदत्तिनेन्द्रियम् । न्व गम इति गच्छाम्ना चरणि क्षत्रियावधम् ॥३५०॥  
 इदं वृद्धं प्रयच्छाशु यदि न्व क्षत्रियोऽगि मे । पुगणं जर्जरं चाप भङ्गना न्वं दत्तमे मुधा ॥३५१॥  
 इदं तु रंभव आपमामेवति चेद्गुणम् । यदि नृदं स्वयं माह्वं न ज्ञेयमि नृपन्मते ॥३५२॥  
 नो चेत्सर्वान्हनिप्यामि क्षत्रियानश्नन्वश्च ॥ इति तदुक्तं नृन्वा राक्षसो बक्ष्यमनवीत् ॥३५३॥

छातीसे लगाया तथा आभ्यासन देकर बिना किया ॥ ३३६ ॥ तब राजा दशरथ राजा जनक लौटकर लिये कहा । राजा जनक आखिरीं मर्षि भरवत् प्रमाण प्रमाण लेते हुए । एतावच्छतर्वर्त्तन् मीनाक्षरं साधिवो मया गद्गदस्वर होकर राजा दशरथसे कहने लगे कि आज तक मेरा साता आदिपुत्र राजा जनक के त किया और अब आजसे आप अपनी कृपादृष्टिसे इनका पालन पोषण करें । मेरा बेटा और राजाको सम्मान करने के राजा जनक मिथिलाको लौट गये ॥ ३३८-३३९ ॥ राजा दशरथ मर्षि मुको, मृच्यते को मथ्यते, राजाओ तथा सेनापति साथ लेकर बीरे-बीरे अपनी नगरोंको चले ॥ ३४० ॥ अथ श्रीगम मैथिल देशमें मैथिल-राज कीस नाम बड़े । तब राजा दशरथको अविधोर आगदुन निवृत्ति । ३४१ । तब वे नृपम्कार करके वसिष्ठजीसे कहने लगे — हे मुनिपुमव ! यह बात धरम है कि चाहे सरक से धरमपुन निलाई दे रहे हैं ? ॥ ३४२ ॥ वसिष्ठ राज बड़ा कि ये भाग्य प्राप्त सुखक है । राजा ने यह ही आपका भय निवृत्त हो जायगा ॥ ३४३ ॥ देवियां शुभम् कर्त्तव्यं शक्ति जाय ला रह है । एतना कहना ही था कि धीरतर साबु कहने लगे ॥ ३४४ ॥ जनक ने मेरे बेटाकी आज्ञा भर ली । दत्तन रहे नैजस्त्री, नीले मेघके समान रंगरामे ऊँची उमराने सोलह, राजन घुड़ लाय करवा निवे, साक्षात् राजके समान लाल गुड़ किए हुए । तत्पर पं महक्यहूँ वा मरने ल, ददन् मया घशाली क्षत्रियोंका नाश करनेवाले परशुरामजी दशरथके लगे लगे ही । ये ॥ ३४५-३४६ ॥ राजा दशरथ स्वयं भासे विवृल हो सत्कार पूजा भुक्तकर आदिआदि करन लगे ॥ ३४७ ॥ इति न ददशरथराजका कहें कहें कि आप मेरे पुत्र रामके प्राण अर्चने परन्तु परशुरामने श्रीधामुर कर राजाका अर्चन कर के रघुनम रामसे इस प्रकार निष्ठुर वचन कहा । भरे क्षत्रियावध गम ! तू मेरे नामों ममारम ३५-३५ वरों प्रविष्ट हुआ किया है ? ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ यदि तू सच्चा क्षत्रिय हो तो मेरे साथ गुड़ कर । पुगणा सदा दृमा घनुष तोहकर मया अपनी बढाईकी मूडी दोग दीक रहा है ? ॥ ३५१ ॥ ओ रघुनमज । यदि तू इस क्षत्रियोंके अनुषंगर सारी पहा डे तो मैं भरे साथ गुड़ न कहंगा ॥ ३५२ ॥ नहीं तो मैं तुम तकको मार डायूंगा । क्योंकि क्षत्रियोंका नाश करना ही मेरा काम है । परशुरामका यह वचन सुनकर रामने कहा — ॥ ३५३ ॥

वयमेकगुणाः स्वामिन् पुरं चैव गृणाधिकाः । गोविप्रदेववर्गीषु राक्षसा नाम्नप्रभिनः ॥३६४॥  
 मर्यतेष्व जीवितानि तव पाशपितानि हि । यथेच्छं घातयन्माकं विप्रैर्पुष्टं करोमि मे ॥३६५॥  
 इति भुवति रामे वै चक्षस्व दशुधा मृगम् । कृष्टं दृष्ट्वा जामदग्न्यं क्षत्रियात्समुपस्थितम् ॥३६६॥  
 अवक्रमो बभूवाथ कुलुषुः यत्तु मामराः । गम्भी दाशगर्धिवीगे दीक्ष्य तं मार्गं च कथा ॥३६७॥  
 धनुगच्छिष्य तद्वृत्तादसौप्य गुणमजया । तुणीगट्टाणमादाय सधायाकृष्य बोध्यवान् ॥३६८॥  
 उवाच भार्गवं रामः मृणु ब्रह्मन् वचो मम । लक्ष्य दर्शय बाणस्य ह्यमोघो गममायकः ॥३६९॥  
 लोकान् पादयुगं चापि वद र्णयं यमाज्ञया । एव वदति श्रीगमे भार्गवो विकृताननः ॥३७०॥  
 संस्मरन् पूर्वधर्मात्तमिदं वचनमब्रवीत् । राम राघ महाबाहो कान्ते त्वा परमशरम् ॥३७१॥  
 पुरण्यपुरुषं विष्णुं जगन्मर्गतयोद्धवम् । बान्धयेऽहं तपसा विष्णुमागधयितुमजया ॥३७२॥  
 गत्वा हि तीर्थे गोमन्दास्तपसा सोम्य श्राद्धिणम् । अहनिंश्च महान्मानं नाशयनमन्यधीः ॥३७३॥  
 यस्याश्वेन मया भूम्यप्यवतारो धृतोऽस्ति हि । भूभाण्डग्याथाप कान्तवीर्ययपेक्षया ॥३७४॥  
 ततः प्रसक्तो देवेशुः शंसन्तक्रमदाधरा । उवाच मां गपुःष्ठ मगन्तुस्सर्पकटः ॥३७५॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन् विहितं ते तपो महद् मच्छिष्यद्वेगेन युक्तस्त्व प्रहि ईदृगपुनवम् ॥३७६॥  
 कान्तवीर्यं पिबृहणं पदर्थं तपसा श्रमः । तनन्निःसप्तकृत्वस्त्वं ह्यस्या क्षत्रियमडलम् ॥३७७॥  
 कृत्स्नो भूमि कश्यपाय दत्ताश्रान्तिवृथायह । त्रेनायुगे दाशगर्धमन्वा रामोऽहमध्ययः ॥३७८॥  
 जगत्स्ये परया यकन्या सदा रह्यमि दा पुनः । मनेजः पुनरादास्ये श्वयि इत्तं मया कृतम् ॥३७९॥  
 वदा तपश्चरैहोके तिष्ठ त्वं मक्षणो दिनम् । हन्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवस्त्वया सर्वं मया कृतम् ॥३८०॥  
 स पर विष्णुश्च राम जातोऽस्मि ब्रह्मणाऽर्चितः । यदि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वैव पुनराह्वनम् ॥३८१॥

हे स्वामिन् ! हम एक गुणवाने तथा आप जनेक गुणवाने हे । रघुवर्ज, राम जी, काश्यान्, देवता तथा स्वीगर  
 शास्त्र नही उडाते ॥ ३६४ ॥ ऐने और इव मयने आपक चरणोंमें आसन अरण कर दिया है । आप जैसे चाहें  
 सेवा करें । यदि चाहे तो मार डालें परन्तु मैं शास्त्रमक साथ कुछ बराणि नही कहेंगा ॥ ३६५ ॥ रामक  
 ऐसा कहनेपर क्षत्रियोंक नाशकम्वकष आनन्दम्व ( परशुराम ) को कुछ शयकर इमथा रोपने लगी ।  
 भार्गव और अन्यकार छत्र गण तथा माली समुद्र दुर्धित हो उठे । तब तस्मिन्पुत्र वीर रामन श्री परशुरामको  
 देखत दसकर उनके हृदयसे बहुत सज्ज लिया और दोनों मन्त्र तथा भयंममे बाण निकाल और उत्तपर चला  
 तथा उन्मृष्टक से स्मर जलव चरशुराससे कहने मम हे ब्रह्मन् । श्री ब्रह्म मुनिप और मुने लक्ष्य  
 बताइए । मे । बाण लाली गली जा सकता ॥ ३६६-३६८ ॥ शंभु ही पुत्र या तो लोकोको विद्ध करनेकी  
 आत्मा दक्षिण भयवा अपने ही चरणोंको । रामक इस वचनको सुनकर विष्णुमुख हंस हुए परशुरामने  
 पूर्वं वृत्तान्तको स्मरण करने हुए कहा-हे राम । हे महाबाहो । मैं आपको जगन्की उत्पत्ति,  
 विपत्ति तथा प्रलयके कारणम्वकष पुराणपुरा साक्षात् परमेश्वर विष्णु समस्तता हूँ । वधपमम मेन गोमन्ता-  
 दीर्घं जाकर बाणश्रुवदारी विष्णुमगवानुको जिनके एक अंशसे मेन संसारम भूवार हन्य करने तथा  
 कान्तवीर्यको धारनके लिए प्रयत्नार लिया है, उन्हें अपने तपसे प्रसन्न किया । तब प्रसन्नमुख होकर शस्त्र-  
 चक्षुनापचक्षारी उन देवाने पूछते कहा ॥ ३६९-३७१ ॥ श्रीभगवान् बलि - हे ब्रह्मन् ' तप करना उाडक्य त  
 उठ कहा हो । मेने तेरे तपोवल्को जान लिया है । नरे चिदत्तम युक्त होकर तू हैद्वयश्रेष्ठ तथा अपने श्वाको  
 मारनेवाने कान्तवीर्यको मार । जिसके लिए तूने तपका परिश्रम किया है । बादमे इक्कीस बार कनिय-  
 सदुदायका नाश करके समस्त पृथिवी कश्यपका राज देकर शान्त हो । पश्चात् त्रेतायुगमे मैं धर्मानकी  
 वापरणी राम होकर उत्पन्न होऊँगा । तब तू परम भविषे मुझे देखगा । उस समय मैं तूसे दिया हुआ  
 छत्रना तेज लौटा लूँगा ॥ ३६६-३६८ ॥ तदनन्तर ब्रह्मणे एक दिन तक तू तप करवा हुआ संसारम

भव मे सफल जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो । नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्कृत्य भक्तिभावन ॥३७२॥  
 तमः कारुणिकानत राघवचन्द्र नमोऽस्तु ते । देव यद्यन्कुत पुण्य मया लोकजिगीयसा ॥३७३॥  
 तन्मर्त्यं नव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते । ततो मृक्त्वा शरं गमयन्कर्म भस्ममान्करोत् ॥३७४॥  
 ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीगमः करुणामयः । जामदग्न्यं तदा प्राह ररं शरं येन मः ॥३७५॥  
 ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो रामप्रवर्त्तन् । यदि मेनुःप्रहो गम तवाग्निं मधुसूदन ॥३७६॥  
 त्वद्भक्तभगवन्त्वाहं मम सक्तिः पदाऽस्तु र्वं । तथेति राघवेगोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥३७७॥  
 पूजितस्त्वदनुज्ञातो महेंद्र चलमन्त्रगात्रं , राघवेन त्रिना देवाः मगरो गवधो महान् ॥३७८॥  
 महम्मवाद्भुता बद्धः सोऽर्जुनो भार्गवेण हि । इतः क्षणेन समरे सोऽद्य श्रीभार्गवोऽपि च ॥३७९॥  
 जितस्त्वदनुपा बाणमोचनाद्राघवेण हि । एवं श्रीगमचटम्य पीरुषं किं वदाम्यहम् ॥३८०॥  
 अथ राजा दशरथो गमं मूर्तमिवागतम् । दृष्ट्वास्मिन् शरणे नेत्राभ्यां जलमुत्सृजम् ॥३८१॥  
 ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचितः पुर्णं ययौ । अयोध्यायां मुमक्षोऽपि नृप श्रुत्वा समागतम् ॥३८२॥  
 नगरीं शोभयामास पताकाभ्रजतीरणाः । शार्ङ्गोदं पुष्पकुन्धं गमं प्रपृथयौ जवान् ॥३८३॥  
 भयो नदन्तु वायेषु राजा पुत्रैः गुहजर्जः । विवेश नगरं पौरैः वश्यन्तुग्यादिकं पथि ॥३८४॥  
 रामादयः स्वपत्न्यां ते राजभार्या ययुः पुमीम् । ननुतुर्वाग्नयार्थं नृपतुर्मागभादयः ॥३८५॥  
 एव राजा गुहं गन्वा शतर्कः स्वीयमग्रनि । रामपूजाः कारयन्वा ददौ दानान्यनकथः ॥३८६॥  
 तदाऽन्तःपुरप्रसार्यः सुरदः पार्थिवदपः । रामार्दान्पूजयामागुस्तथा दशरथ नृपम् ॥३८७॥

३८१. ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्द्वारि हो गये । मेन भी तब वंग हो किया ॥ ३७७ ॥ हे गम ! वहाँ आप बह्मसं  
 प्रतिष्ठित होकर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं । मेरे तनम स्थित अपना तज आपन को फिर आज साहस्य  
 कर लिया है ॥ ३७८ ॥ आपको दर्शनमें मेरा जन्म सफल हो गया । हे भक्तिभावन ! हे जगन्नाथ ! हे  
 करुणाताम्र ! हे गमचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे देव ! लोकोको जीतनेकी इच्छासे मेन औ जो कम  
 किया है, वे सब आपके बाणको समर्पित है ( मर्थात् इन्हें आप अपने बाणको लक्ष्य बनाकर मर्त्य कर दें ) ।  
 तब रामने बाण छोड़कर उनके नमोका भजन कर दिया ॥ ३७९-३८० ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर करुणामय  
 भगवान् व रामन परशुरामसे कहा कि तुम कर मगो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ ॥ ३८१ ॥ यह सुनकर प्रसन्न  
 मनस भार्गवने रामसे कहा—हे मधुसूदन गम ! यदि आप मेरपर अनुग्रह रमन हों तो मुने सदा आप  
 अपने भक्तानामय तब अपने विषयमें मिले भक्ति प्रदान कर । तब रामचन्द्रजाने 'सवागु' कहा । तदनन्तर  
 परशुराम इन्हें नमस्कार तथा परिष्कार करके ओर जात्रा लेकर महेंद्राचलकी ओर चल दिये । जिस  
 रावणसे इतना क्रोको जाता था, उस मगर्ग महान् रावणको महम्मवाद्भु भगुन बांध लिया था । उन्ही  
 भर्तुगको व'गुगामन बुद्ध करके क्षणभंगव मार डाला था । उन परशुरामको भी रामने ऊहीके  
 दिये हुए धनुषपर बाण चड़ाकर जीत लिया है पार्वती । इस प्रकार रामके पुरुषार्थका वर्णन भी  
 कहा तक कर । उनके वसन्त ईका आन नही है ॥ ३८६-३८७ ॥ पश्चात् राजा दशरथ रामको मन्कर  
 लौट हुए की ताह आदिगन करने त्वके जागु बहने लगे । ३८९ ॥ वारमे प्रसन्न मन होकर वे स्वस्थ  
 चिन्तन भगवत्पुर्ण को चल पड़े । उधर अयोध्यामें समन्वने जब राजा दशरथके आगमनकी बात मनी तो  
 उन्होंने दशरथकी वनका, धजा तथा सौरणासे खूब सज्जाया और हाथी लेकर रामको लेनेके लिए आये  
 भाये । ३८२-३८३ ॥ राजा दशरथने पुत्र-मित्र तथा तत्परनिवासिधके साथ रामसे नृप्य आदि  
 दत्तन हुए बाजि-गायके साथ नगरमें प्रवेग किया ॥ ३८४ ॥ राम आदिने भी अपनी मित्रोंके  
 साथ हाथियोंपर बैठकर पुरामे प्रवेग किया । वेक्षायें नृत्य करने लगीं तथा भाद आदि स्तुति करने लगे  
 ॥ ३८५ ॥ राजाने घर जाकर बालकोसे लक्ष्मीका पूजन करवाया और अन्न प्रकारके दान दिये ॥ ३८६ ॥  
 पश्चात् सुहृदों कपा राजाओंने कस्तुरि-अलङ्कारसे राम धारिकी और राजा दशरथकी पूजा की ॥ ३८७ ॥

दशरथोऽपि तान्सर्वान् पूजयामास वैभवं । ततस्ते सुहृदः सर्वे नृपाश्च स्वस्थलं ययुः ॥३८८॥  
 ग्रीत्वा युष्माजितं राजा स्थापयामास स्वर्गतिकम् । रामाद्या रमयामासुः स्वस्वदारैः स्वसद्यसु । ३८९॥

पान्त्युवाच

श्रीविष्णोस्तु चिदंशेन जामदग्न्यस्त्वया स्मृतः ॥३९०॥

तद्वचनं श्रुत्वा किं ब्रुव मे सद्यसं प्रभो ।

श्रीशिव उवाच

अष्टावंशेन पिष्टुता अवताराश्च विष्णुता ॥३९१॥

रामकृष्णवतारी च पूर्णरूपेण तौ धृतौ । वरिष्ठौ सकलेष्वेवावतारेषु हि तानुभौ ॥३९२॥

तयोरेपि वरः पूर्वः सत्यसदो जितेन्द्रियः । ज्ञेयो रामावतारो हि नानेन सदृशः परः ॥३९३॥

कृष्णः कृष्णरुचिर्ज्ञेयः श्रीरामो रुक्मसंरुचिः । एवं गिरिन्द्रजे प्रोक्तं सीतायाश्च स्वयंवरम् ॥

अस्य सर्गस्य श्रवणान्मंगलं लभ्यते नरैः ॥३९४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे सीतास्वयंवरौ नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

### चतुर्थः सर्गः

( रामका सत्रु राजाओंके साथ युद्ध तथा विष्णुको वृन्दाका शाप )

श्रीशिव उवाच

अथ सीतायुतः भीमान् रामः साकेतसंस्थितः । बुभुजे विविधान् भोगान् राजसेवापरोऽभवत् ॥ १ ॥

शरत्कालाश्विने माम्नि जनकेन स्वमन्त्रिणः । आह्वानाय च राजानं प्रेषितास्त्वरितं ययुः ॥ २ ॥

तानामतान्दशरथः शीघ्रं सत्कृत्य सादरम् । पप्रच्छागमने हेतुं तेऽपि नत्वा तस्मृचिरे ॥ ३ ॥

दीपावस्पर्शस्तवार्यं त्वां स कुटुम्बं समन्त्रिणम् । पौरजानपदैः साकमाह्वयामास ते सुहृत् ॥ ४ ॥

तत्प्रेषां वचनं श्रुत्वा दूतानाज्ञापयन्नुपः । कथ्यतां नगरे राष्ट्रं गमनं मिथिलां प्रति ॥ ५ ॥

राजा दशरथने भी उन समय अनेक विभवोंसे सत्कार किया । बादमें वे सब सुहृद् तथा राजा लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३८८ ॥ किन्तु राजाने प्रीतिपूर्वक युष्माजित्की रोक लिया । राम-लक्ष्मण तथा भरत आदि भी अपनी-अपनी मन्त्रियोंके साथ जाकर अपने-अपने महलोंमें रमण करने लगे ॥ ३८९ ॥ पावतीजी कहने लगी—हे शिवजी ! श्रीविष्णुके चिदंशसे परशुरामजीका अवतार आपने बताया और उसीसे आपने रघुपति रामचन्द्रजीका भी अवतार बताया है । फिर इन दोनोंमें क्या अन्तर है ? सो कहकर मेरी प्रार्थना कर लीजिये । श्रीशिवजीने उत्तर दिया कि विष्णुभगवानने अपने अंशसे कुछ आठ अवतार धारण किये थे । उनमेंसे राम तथा कृष्णका पूर्ण अवतार था । सब अवतारोंमें से दो अवतार श्रेष्ठ थे ॥ ३९०-३९२ ॥ उन दोनोंमें भी सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय रामावतार उत्तम था । रामके समान और कोई नहीं था ॥ ३९३ ॥ कृष्णको कृष्णरुचिवाले तथा रामको रुक्मरुचिवाले जानो इस प्रकार शिवजीने गिरिन्द्रतमया ( पावती ) को सीताका स्वयंम्बर कह सुनाया । इस सर्गको सुगमेवाले अनुष्योंको मङ्गल लाभ होता है ॥ ३९४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना-भाषाटीकायां सारकाण्डे सीतास्वयंवरौ नाम तृतीयः सर्गः' ॥ ३ ॥

श्रीशिवजी बोले हैं देखि । श्रीमान् राम सीताके साथ अयोध्यामें विविध राजभोगोंका सुख भोगने लगे ॥ १ ॥ शरत्कालके आश्विन महीनेमें राजा जनकने अपने मन्त्रियोंको महाराज दशरथको बुलानेके लिये भेजा । वे शीघ्र अपोष्या जा पहुँचे ॥ २ ॥ राजा दशरथने उनका आदर सत्कार करके आनेका कारण पूछा । मन्त्रियोंने नमस्कार करके कहा— ॥३॥ आपके मित्र राजा जनकने सुकुटुम्ब आपको मन्त्रियों, पुत्रवासियों तथा

नुमृहते ततो राजा हस्त्यश्वपतिभिः । पौरजानपदैः शक्यैः कविभिर्गजैः ॥ ६ ॥  
 गजैः पृष्टे समाजगमुर्गजैश्च विगजितः । रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाम्ने स्वलंकृताः ॥ ७ ॥  
 कीयस्पाद्या राजदागः स्नुषाभिस्ताः पृथक् पृथक् स्नन्माणिक्यमुक्तादिशोभितासु वरासु च ॥ ८ ॥  
 काष्ठीषु समामाना दौहिता वेश्मणर्णवैः । धातुकाभिः स्वदामीभिर्ययुर्वस्वादिभूषिताः ॥ ९ ॥  
 प्रायत नृपतिं श्रुत्वा जनकः पौत्रवासिभिः । प्रत्युज्जगाथ हर्षेण निनाय नगरीं प्रति ॥ १० ॥  
 राघवोपनिनादथ कुन्दुमाना महास्वनेः । शार्ङ्गनाना नृत्याद्यैर्गोपकानां च गायनैः ॥ ११ ॥  
 शार्ङ्ग मार्ग महामोक्षारुढ्याणां कदम्बकैः । पुष्पवृष्टिविवर्षाभिर्ययौ नृपगृहं नृपः ॥ १२ ॥  
 ततो गृहाणि स्म्याणि पुरितान्यभ्यगिभिः । प्रविशेत् नृपश्रेष्ठो जनकेनातिमानितः ॥ १३ ॥  
 ततो नानासमुत्साहमिष्टार्कनृत्यगायनैः । वसंगभरणं सर्वान् ज्ञातान् च विशेषतः ॥ १४ ॥  
 मणिरत्नादिदीपैश्च हृदुर्नीराजनैरपि । जनकः पुत्रगामास दीपावल्यां महादिने ॥ १५ ॥  
 दीपोत्सवमहापुण्यवर्त्तिराज्यं प्रवर्त्तते । आनन्दः सर्वलोकानां मंगलानि गृहे गृहे ॥ १६ ॥  
 मध्यमोद्वर्तनाद्यैश्च वरपक्षाभयोन्नतैः । गोदामदामीदानैश्च हस्त्यश्वपतिभिः ॥ १७ ॥  
 चकार तुष्टान् ज्ञातान् जनको नृपतिं तथा । नृपपत्नी स्वदुहितृगोप्यास्थादिकान् कमान् ॥ १८ ॥  
 उतः प्रस्थानमकरोद्गुरौ दशरथो नृपः । ततो राजा दशरथः सैन्येन पवित्रैः ॥ १९ ॥  
 पथो वनेः सुनेर्माण सुहृन्मन्त्रिपुरसरः । एतस्मिन्नतरे मार्गे पीताय धनुषा वरा ॥ २० ॥  
 मग्नमाना नृपतयः पूर्वैरमनुस्मरन् । अमरुवाताः ससैन्यास्ते रुक्मधूर्नुपतिं पथे ॥ २१ ॥

दशरथस्योक्तं सहितं दोष्वालीक उत्सववर वृत्ताया है ॥ ४ ॥ उनका यह वचन सुनकर राजान इतने  
 द्वारा मिथिला जल्लेका समचार सारे मार्गो तथा नगरोंमें कहला दिया ॥ ५ ॥ फिर गुप्त मुहूर्त देखकर  
 राजा आचारुव, राजारुव तथा पैदल सैनिकको साथ लेकर नगर तथा राष्ट्रके लोगोंके साथ हाथपर  
 लवाह हुकर चले ॥ ६ ॥ राजाके पीछे सुन्दर जनकाद वारण करके हाथीपर सवार होकर राम,  
 लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चले ॥ ७ ॥ उनके पीछे कौसल्या आदि राजाकी सभए की अपनी-  
 अपनी पुत्रवधुओंके साथ रत्न मणिक्य-मानी आदिसे सुशोभित उत्तम हथिनियोंपर जल्ल-जल्ल सवार  
 न बैठचारी सिवाहियों, वाप्रथो तथा वसिष्ठोस चिरी हुई वस्त्र आदिसे कूटित होकर चल गयी  
 ॥ ८ ॥ ९ ॥ राजा दशरथका अग्रमन सुनकर राजा जनक पुरवासियोंको साथ लेकर स्वागत करनेके लिए  
 तब और राजा दशरथको नगरमें ले आये ॥ १० ॥ रास्तेमें जगह-जगह वालोंका घोषनाद और नगाहोना  
 म्युल निनाद होने लगा, वागमन्त्रार् नाचने लगी, गायकों गान हान लगे तथा बड़े बड़े महत्वाकी  
 बटारियोंपर स्थित स्त्रियोंके मण्ड फूलोंको बीजार करने लगे । इस प्रकार राजा दशरथ राजवचनमें पढ़ये

११ ॥ १२ ॥ पञ्चान् जनकसे सम्मानित हुकर मन्त्र-जल आदिसे परिपूर्ण भवनोमें पधारे ॥ १३ ॥  
 बादमें विशेषरूपसे राजा जनकने सब आमाताओंके विविध उत्सवोंमें, मिष्ठान्नमें, नृत्यमें, गायनमें, वस्त्रमें,  
 जलकारमें तथा मणिरत्नमय वस्त्रोंका आरतीसे दीपावलीके शुभ दिन बारम्बार पूजन तथा सत्कार किया  
 ॥ १४ ॥ १५ ॥ दीपोत्सवक महापुण्यसे राजा बलिका राज्य आरम्भ हुआ था । इससे सब लोगोंके आनन्द  
 हुआ तथा घर-घर मंगल होने लगा ॥ १६ ॥ राजा जनकने उन आमाताओंके अंदरमें सेल और चन्दन आदि  
 लगा तथा गुलाबजल छिड़ककर इत्र आदि लगाया और उन्हें सुन्दर पकवान जिमा तथा हथी, घोड़े, रथ,  
 गाएँ, व्याडे, वास तथा वासिएँ देकर अजाइयो और राजा दशरथका सन्तुष्ट किया । तदनन्तर क्रमशः  
 राजको, स्त्रियोंको, अयोध्यानिवासियोंको और अपनी सखियोंका भी राजा जनकने मण्यञ्ज कसूरुँ देकर  
 हन्तुष्ट किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर अब कि राजा दशरथ राजाओं, मन्त्रियों, सेना तथा मित्रोंके साथ  
 बार-बार अयोध्याको जा रहे थे । उसी समय उन राजाओंने जिनका कि सीतास्वयम्बरमें मल्लभंग हुआ  
 था, उस वरका स्मरण करके असह्य सेनाओंके साथ आकर राजा दशरथका घेर लिया । उनको देका

तान्द्रष्टा नृपतीश्वार किमर्थादात्तमिदम् । मन्त्रिभिर्मन्त्रयामास जनकः स्वजनरपि ॥२२॥  
 १॥ स्मन्तरे गमः श्रुत्वा चिन्तागरे निजम् । निमग्नं पितरं शीघ्रं ययौ लक्ष्मणसंयुतः ॥२३॥  
 नन्वा दशरथ गमः किञ्चिन्नञ्च इदं जगौ । तान गजन्न कर्तव्या चिन्ता सति मयि स्वया ॥२४॥  
 क्षणादत्र बोधयामास पश्य त्वं कर्तुम् मम , ततो गमवच्च श्रुत्वा राजाऽऽलिरय गृह्यतमम् ॥२५॥  
 प्राड पट्वापका बालस्त्व कथं योद्धामच्छमि । अरण्ये सकुटुम्बोऽहं वेष्टेनोऽस्मि नृपाधर्मः ॥२६॥  
 अहमेव गमिष्यामि योद्धुं गम्य चार्हिनाम् । तत्रात्रवचनं श्रुत्वा रामस्तं पुनरजर्वात् ॥२७॥  
 यदा मे कुठितो अक्ष पठ्यामि न्व गार्धभजे । तदा मे कुरु साहस्यं तद्वदत्र स्थितो भव ॥२८॥  
 म्या चार्हिनां सकुटुर्वा त त न्व गच्छ मद्विना । इन्धुवन्वा पितरं नन्वा सज्जीकृत्य शरासनम् ॥२९॥  
 जगाम गन्धमास्तुता लक्ष्मणोऽपि तमन्वगान् । ता दृष्ट्वा भरतश्चाप शत्रुभ्योऽपि जगाम सः ॥३०॥  
 तान्द्रष्टा दशसाहस्रौ राजसेनामचोदयत् । तत्रस्ते गार्धवाः सर्वे रथस्थं न गच्छतमम् ॥३१॥  
 निर्गीर्य दशबाधसुः स्वसेनायां परस्परम् । समागतोऽयं श्रीगमः स्वपितृस्यन्दनस्थितः ॥३२॥  
 एष वै सुमहच्छ्रीमान् धिर्दया मम्यकाग्रते । चिराजन्मुज्ज्वलस्कन्धः कोविदारध्वजो रथे ॥३३॥  
 दशगधाह्वया तस्य रथे चर्खापूरिते ध्वजचदपताकोच्चकोविदारो स्थितस्त्रयम् ॥३४॥  
 एवं वदन्नस्ते सर्वे रथेयान्धुः समाययुः । ततोऽभवन्महद्युद्धं धीर तन्त्र परस्परम् ॥३५॥  
 असः शस्त्रामन्दिपालं क्षतध्मभिः परस्परैः । रामस्य मानकान् हृत्वा गजानो राममन्वयुः ॥३६॥  
 तं वर्षर्षमहाशस्त्रबाणव्याप्य दिगम्बरम् । तान्द्रष्टा नृपतीन् सर्वान् राममेवाभिसम्पुखान् ॥३७॥  
 लक्ष्मणः प्राट्पञ्चोद्य भरतोऽपि च शत्रुहो । स्वामितारकद्वोरयासीद्युद्धं सुदारुणम् ॥३८॥  
 शतो नृपतयः सर्वे शस्त्रार्थमर्तुं तदा । ते विष्वा भूर्च्छितं वक्रुः स्पन्दनास्पतितो धुवि ॥३९॥

१०। चनगर राजा दशरथ मन्त्रियों तथा स्वजनोंको पास बुलाकर विचार करने लग्य कि यह क्या बात है ? ॥ २२-२३ ॥ अपने पिताको चिन्तासमुद्रमें डूबा मनकर राम लक्ष्मणके साथ उनका पास गया ॥ २३ ॥ पिता दशरथको नमस्कार करके राम नम्रतापूर्वक कहने लगे—हे नात ! हे राजन् ! मेरे रघुसे हुए मायका चिन्ता नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ मे अणभयम इन तबना मार जाऊंगा । आप मर कोकाल दक्षिण । रामके वधनको मुनकर राजाने उनका आलिंगन करके कहा हे राम , छ वर्षका बालक तु क्या युद्ध करेगा ? इस अरण्यमें सकुटुम्ब मुझको इन नीच राजाभोग का प्रग है । इसलिये मैं ही इनको मारूँगा और तू सेनाका रक्षा कर । पिताके इस वधनको मुनकर राम इनमें फिर कहने लगे—॥ २५-२७ ॥ जब आप मेरी मातिका रणाङ्गणमें कुच्छिन्न हाते देखे, तब मेरी सहायता गरिएगा । तबतक आप मर रहनेसे यहीं रहकर सकुटुम्ब अपना सनाकी रक्षा कर । ऐसा कहकर रामने पिताका नमस्कार किया और धनुषकी ठोक करके रथपर चढ़कर बने दिया । उनके पीछे लक्ष्मण भी गये । उन दोनोंका जाते देख भरत और बाबुछ भी उनके साथ चल दिए ॥ २८-३० ॥ इन सबकी जाते देखकर राजा दशरथने दस हजार मानकीर्ति मना उनके साथ भजी । तबसे सब राज रथस्थित रामको आते देख अपनी सेनामें एक दूसरेका दिकने लग कि यह राम अपने पिताके रथपर चढ़कर आ रहा है । यह बड़ा तजम्बी है । विजाल शालावाने पेडके समान केस तथा गोर्धत कर्धवाले राम रथमें कोविदार , कथनार या रत्नकाञ्चन ) के ध्वजा लग ये हुए अपने पिताकी आज्ञासे उनका ही रथपर सवार होकर आ रहा है । ऐसा कहकर वे सब राज युद्ध करनेके लिए रथ लेकर चले । पश्चात् परस्पर बड़ी भारी युद्ध होने लगा ॥ ३१-३५ ॥ वे सब एक दूसरेपर अश्व, गान्ध, तीर, शीप तथा करते बलाने लगे । वे राजे रामके सेनिकोंको छोड़कर रामपर सपटे ॥ ३६ ॥ वे लोग आकाशको व्याप्त करके बड़े-बड़े शस्त्रों तथा बाणोंकी वर्षा करने लगे । इन सब राजाजाको अकेले रामके साथ युद्ध करते दस लक्ष्मण, भरत तथा बाबुछ भी दौड़े पड़े और उनमें शरकासुर तथा कर्तिकेयकी तरह भयानक युद्ध होने लगा । तब कुछ



मरुतं ववितुं दृष्ट्वा शत्रुध्वं विन्यधुः शरैः । तं चापि विगृह्य कृत्वा दृढकुर्वन्मणं नृपाः ॥४०॥  
 ववर्तुनिर्गन्तव्यं ध्वजं व्याकुलं गणे । तपसं गपसं चापि संरक्षन्मण्यन्नुपाः ॥ १॥  
 ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि लीलया समरागणः । पश्यन्तु जालरथश्च कौमल्याद्याः सातृषु ॥४२॥  
 सीतया भ्रातृपत्न्याषु पित्रा मन्त्रिकेष्वप्ये । दृष्ट्वा कुर्वन् महत्तपसं चायन्यामणं नान्नुपाः ॥४३॥  
 शुक्रवर्णनदुग्धं प्राधिपदान्भोधमि । मोहनाखणं केषान् हि मोहयामास राघवः ॥४४॥  
 लुप्तं सक्तं सैन्यं हस्त्यश्वाभ्यमकुलम् । ततो मूर्च्छितमालोक्य मरुतं कैकेयी गणे ॥४५॥  
 करिष्याः शीघ्रमुत्प्लुत्य शुशोचाकं निधाय तम् । ततो दृष्ट्वाप्यपि कौमल्याद्या नृपत्रियः ॥४६॥  
 सात्वचिन्वाऽथ तान् गमः सौमित्राग्रहं व्रजत । हता विदूरे सौमित्रे मुद्रलभ्य तपोनिधेः ॥४७॥  
 आश्रमोऽस्ति हि तस्य न्व गन्वा बहोः युमानहा । सर्जो विन्यादिकाः सर्वा शीघ्रमानय लक्ष्मण ॥४८॥  
 मुनेस्तपःप्रभावेण बहवः सति तत्र वै । तथेति लक्ष्मणो गत्वा स्पन्दनस्थस्त्वगन्वितः ॥४९॥  
 अवलम्ब्य स्याद्दीरः सचिवेशाश्रमं मुनेः । निशान्तिः स बहुर्कः समाधिचिरमे मुनेः ॥५०॥

याथा कृत्वा शुभा बहोः प्राप्स्यसे त्वं न चान्यथा ।

कालातिक्रममीत्या स लक्ष्मणोऽपि रघूत्तमम् ॥५१॥

पुत्रं निवेदयामास हुनस्तं राघवोऽनर्वात् । निवारयित्वा बहुकान् विना मुक्तेस्त्वरान्वितः ॥५२॥  
 आनय त्वं शुभा बहोमां धृष्टं च मुनेः कुह । सोऽपि राम इया गत्वा निवार्य बहुकान् क्षणात् ॥५३॥  
 बलात्कारेण वा बहोर्गृहीत्वा राममागतः । मरुतं शीरयामास विशल्यं कृत्वा सानुजम् ॥५४॥  
 ततः समुत्थितं दृष्ट्वा कैकेयी वरत मुदा । ततोऽपि परमं चक्रे कैकेयी पितरं तदा ॥५५॥  
 राघवे मां समालिख्य मरुतं पश्यिष्यजे । ततो राज्ञोऽतेमदृष्टः समालिख्य रघूत्तमम् ॥५६॥

राजाश्वीन जन्मोष्ठं वरतकां वधकरं मुञ्चन कर दिया और वरदसे विरपद । ३७-३९ ॥ भरत-  
 को पृथ्वीवर गिरा देकर राजाश्वीन जन्मोष्ठं गणपतको भी निद्रा किया । उनको भी गिराकर वे राज  
 लक्ष्मणको और सीत । ४० ॥ उपर भी बाणोंकी वर्षा करके व्याकुल कर दिया । इस प्रकार राघव  
 रामको भी राजाश्वीन बाणोंसे बाण्डादित कर दिया ॥ ४१ ॥ बादय भारामन्दन समरक वेदानम  
 पालिकोंकी सिद्धियोंमें लगी हुई चिकामसे देखती हुई कौमल्या आदि माताआके, सीताके तथा  
 अपने भाइयोंकी स्त्रियोंके समक्ष राजाको और मन्त्रियोंके सामने अपने बड़े भाई रघुवका टंकोर करके उत-  
 पर वायव्यासन बढ़कर उससे उन राजाओंको सुख पत्नीको तरह उठाकर समुद्रके किनारे फेंक दिया । बाकी  
 लोगोंका गमने मन्दारवसे मुञ्चन कर दिया ॥ ४२-४४ ॥ हथी, घोड़े, रथ तथा वेदमोको समस्त सेना-  
 को बर्माजल लिटा दिया । रणमें भरतका मुञ्चन देल कैकेयी हथिनील बतरी और उनका गाधमें  
 लेकर बिलाप करने लगी । तदनन्तर राजा वज्राय तथा उनकी स्त्रियें कौमल्या आदि भी बिलाप करने  
 लगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तब रामने सबको आश्वासन देकर कहा—लक्ष्मण ' यहाँसे कुछ दूरपर एक हरीनाथ  
 पुच्छपुनिका आश्रम है । वहाँ जाकर तुम कल्याणकारिणी शर्मावती आदि बूढ़ियोंको ले जाओ  
 ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ मुनिक लयके प्रभावसे वहाँ अनेक प्रकारका अस्त्र उरी हुई हैं । बहुत अण्डा' फटकर बाहर  
 लक्ष्मण राघव बढ़कर शीघ्र मुनिके आश्रममें गये । वहाँके बड़ाचार्योंने उनका बूढ़िये सेनेसे  
 राका और कहा कि तुम मुनिके समाधिसे उठकर उनसे पूछकर ही बूढ़ियें ले जा सकते हो—अन्यथा  
 नहीं । समय बीत जानेके डरसे लक्ष्मणन आकर रामसे सब हाल कहा । रामने फिर कहा कि उन  
 बड़कोंको अस्त्रके बिना हाथसे हटाकर छोड़ ही उन गुप्त अद्वियोंको ले जाओ । मुनिके मत डरो । रामको  
 आज्ञा पाकर वे वहाँ गये तथा बलश्रमोंके बिना ही बड़कोंको हटाकर उन अद्वियोंको लेकर रामके पास  
 लौट आये । तब रामने भरतके शरीरसे बाण निकालकर उन्हें अङ्गीक्षे भीषित किया । बाणोंको रक्तसे देखकर  
 कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई । उसने रामको आर्क्षिजून करके भरतको छातीसे लगा लिया । राजासे भी प्रसन्न

दर्शान्नानोन्यवस्तुनश्चकार गुरुणा द्विजैः । ननस्ते करवः सर्वे हाहाकृत्य मुनीश्वरम् ॥५७॥  
 इव निवदयामासु समाधिविगमे मुनेः । स मुदलोऽपि तच्छ्रुत्वा विस्मयेनामर्षीदृष्टुम् ॥५८॥  
 कोलक्षमणः किमर्थं कस्याश्नुयातोऽहम्द्रुमम् । विदित्वा सकल वृत्तभागच्छन्नं स्वरान्विताः ॥५९॥  
 नधेति ते दशम्यं गन्वा प्रोचुस्त्वगान्विताः । कस्त्वं किमर्थमार्नाता वल्ल्यो लक्ष्मणहस्ततः ॥६०॥  
 तान्दृष्ट्वा क्रोधसंयुक्तान् राजा चिन्तातुरोऽमर्षात् । अहं दशम्यो वल्ल्यो भरतार्थं ममाश्रया ॥६१॥  
 आर्नाता मुनये सर्वे प्रुध्व नतिपूर्वकाः । अहमप्यागमिष्यामि मुनिं सांत्वयितुं ब्रवात् ॥६२॥  
 ननस्ते मुनये सर्वे वृज्जामाद्यवर्णयन् । ध्रुत्वा गमस्य पितरं क्रोधं सहस्य केगतः ॥६३॥  
 दर्शनाय मां तं चक्रं तावद्दृष्टो नृपः पुरः । वदध्वा करसपुटं तं प्रणमंत नृपोत्तमम् ॥६४॥  
 श्राययन्तं समुन्ध प्य पूजयामास सादरम् । गमाद्या नृपपुत्राश्च कौमल्याद्या नृपस्त्रियः ॥६५॥  
 श्रणम्याथ मुनिं स्तुत्वा तस्यमुद्वलभायया । सुमत्या पूजिताः सर्वा राजदारा विशेधतः ॥६६॥  
 ततो दशम्यः प्राह मुनिं स्तुत्वा पुनः पुनः । मयाऽपराधितं राजा सम्यक्तां तत्त्वया मुने ॥६७॥  
 मुनिर्दशम्यं प्राह क्षुपकारो महान् कृतः । नोवेत्कर्षं दर्शनं मे ध्यानस्थस्य सुतस्य ते ॥६८॥  
 भ्रागमस्य मसीतस्य नृपेपस्य हि मायया । इति तस्य वचः ध्रुत्वा दृष्ट्वा तुष्टं मुनीश्वरम् ॥६९॥  
 उवाच नृपतिर्नरवा किञ्चित्प्रष्टुमना मुनेम् । श्रुत्वा नृपस्य स मुनिर्हृदयं प्रष्टुकायुक्म् ॥७०॥  
 एकस्मिन् तुलसीखट्वर्नीत्वा तं नृपमेव सः । वप्रच्छ किं ते वांछाऽस्ति वदस्व कथ्यते मया ॥७१॥  
 विसमर्षीदशम्यः श्रीरामस्य हि मांवि यत् । श्रिताहितं सविस्तारं श्रातुमिच्छे मुनीश्वर ॥७२॥  
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरमर्षीत् ।

मुदल उवाच

साक्षान्नारायणो विष्णुः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥ ७३ ॥

हाकर रामका हृदयसे लगाया । उस समय उम्हाने आनन्दसे गुप्त तथा काहूणो द्वारा जनक उत्सव कराये ।  
 उधर समाविष्ट निवृत्त हाथपर सब बटुकाने हाहाकार करके मुनिका सब हाल सुनाया । तब मुदल मुनि  
 निर्मित हाकर बटुकांसे कहने लगे—॥ ५९-६० ॥ जानो, यह लक्ष्मण यौन है, किस लिये और किसके  
 कहनसे घृष्टियां से गया है । शोध इस बातका पता लगाकर जानो ॥ ६१ ॥ 'अच्छा कहकर उन्होंने  
 दशम्यके पास जाकर पूछा कि तुम कौन हो और तुमने लक्ष्मणक द्वारा जादिय क्यों मंगवायीं है ? ॥ ६० ॥  
 उन्हें कुछ रखकर राजा चिन्तापूर्वक कहने लगे कि मैं राजा दशम्य हूँ । लक्ष्मण मेरे कहनसे भरतके लिये  
 जादिय ले आया है । मेरा नमस्कार कहकर मुनिसे यह सब वृत्तान्त कह दें । मैं भी मुनिको सम्मानके  
 लिये शोध ही आ रहा हूँ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ लोटकर बटुकाने मुनिका राजाका नाम आदि बहुत सुनाया । रामके  
 पिताका नाम मुना से मुनिने आशको राक तथा शोध जाकर राजासे मिलनेका विचार किया ही था कि  
 इतनेमें राजा दशम्य स्वयं आकर सामन सबे हा गये और हाथ जाह प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे ।  
 तब यह होकर मुनिने उनका सादर पजा का । राम आदि राजाके पुत्र तथा कौमल्या आदि राजाकी  
 स्त्रियो भी मुनिका प्रणाम करके उनका स्तुति करना हुई मरी हो गयी । मुदल मुनिका भार्या सुमतिने  
 विशेषरूपसे राजाकी स्त्रियांका सम्पर्क किया ॥ ६३-६६ ॥ राजाने बारम्बार स्तुति करके मुनिसे कहा—हे मुनि !  
 मुझसे जो अपराध हुआ है । उसको क्षमा करें ॥ ६७ ॥ मुनिने महाराज दशम्यसे कहा कि नहीं, तुमने  
 मेरा बड़ा भारी उपकार किया है । नहीं तो ध्यानयोग्य और मायासे मनुष्यका रूप धारण किये हुए हीताके  
 सहित आपके पुत्र रामका दशन मुझे कैसे मिलता ? मुनिके वचन सुन तथा उन्हें प्रसन्न देखकर राजाने  
 नमस्कार करके उनसे कुछ पूछना चाहा । इतनेमें मुनि राजाके हृदयकी बात जान गये और एक और  
 तुलसीकी छाडीमे से जाकर वे स्वयं राजासे कहने लगे—हे राजा ! कही, कुम्हारी क्या पूछनेकी इच्छा  
 है, मैं उसका उत्तर दूंगा । ६८-७१ ॥ राजाने कहा—हे मुनीश्वर ! रामका परिष्य कंसा है ? मैं उसका

भूभारहरणार्थाय तत्रापि वरदानतः । मयतीर्णोऽस्ति न्वतो हि तत्र पुण्यमहोदयान् ॥७४॥  
 अधर्मस्य विनाशं च वृद्धिं धर्मस्य सादरम् । निर्दलनं हि दुष्टानां मज्जनानां च पालनम् ॥७५॥  
 कर्मिष्यति सहानेप तत्र पुत्रो रघूरमः । दशवर्षमहम्राणि दशवर्षशतानि च ॥७६॥  
 कर्मिष्यति महद्राज्यं गते स्वयि दिवं नृप । समर्द्धोपपत्तिभार्य भविष्यति नृपो महान् ॥७७॥  
 इी तो भविष्यतः पुत्रौ चतस्रश्च स्नुषास्तथा । चतुर्विंशतिर्षोत्राश्च पौन्यस्तु द्वादशैव हि ॥७८॥  
 भर्मण्याणां प्रपौत्राद्या भविष्यन्ति सुतस्य ते । कियद्दिनैरयं वृंदाक्षर्यं भोक्तुं हि दंडके ॥७९॥  
 गमिष्यति ततः पथान्महद्राज्यं कर्मिष्यति । ततश्च वचनं श्रुत्वा नृपः प्राह मुनिं पुनः ॥८०॥

दशरथ उवाच

का वृंदा कस्य भार्या सा कथं शसो हरिस्तया । तन्मयं विस्मरेणैव कथयस्व मुनीश्वर ॥८१॥

मुद्रल उवाच

पुनः जलधरेणामोद्यद् भूशंकरस्य च । वृंदापतिव्रतबलादभिनं विष्णुना तदा ॥८२॥  
 शान्त्वा तद्दृष्टितपश्चात् पार्वत्या धर्मणादिना । जालंधरपुरं गत्वा तदन्यपुटमेदनम् ॥८३॥  
 पातिव्रत्यस्य संगाय वृंदायाश्चाकरोन्मनिम् । अथ वृंदाकरा देवी स्वप्नमध्वे ददर्श ह ॥८४॥  
 मर्तारं महिषारूढं तैलम्यक्तं दिगंशम् । दक्षिणाशागतं मुण्डं तमसाऽप्यावृतं तदा ॥८५॥  
 ततः प्रवृद्धासा शाला तं स्वप्नं स्वं विचिन्तती । कुत्रापि नालभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु ॥८६॥  
 वनः सखीद्वययुक्ता नगरोद्यानमागता । वनाद्वनान्तरं याता ददर्शान्तां च भीषणी ॥८७॥  
 गङ्गायौ मिहवन्मादौ दष्टानयनभीषणी । तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽनीव पलायनपरा तदा ॥८८॥  
 इदं सापमं शान्तं मक्षिष्यं मौनमास्थितम् । ततस्त्वनकदमसंजय निजशाहुलतां मयात् ॥८९॥  
 मुने मां रक्ष शरणमागतामिव्यभाषत । ततस्तथा वचनं श्रुत्वा ध्यानं मुक्या स र्वं मुनिः ॥९०॥

हेतु-अहित जानना नाहता ह ॥ ७२ ॥ राजाको तात शनकर मुनि पृष्ठान् कहने लगे—साक्षान् नारायण तथा सधर्म्यारो पमार्दन विष्णुभगवान् पृथ्वी सा सार उतावने तथा पूर्वजन्ममें आपको वरदान देनेके कारण आपका पुण्य-प्रतापसे स्वयं अन्तर है । वे भयभया नाश करके वसुकी वृद्धि करगे । रामचन्द्रजी दुष्टको दमन करके भोजन-चा पालन करगे हे नृप ! आपके देवलोक चल जानेपर ये दस हजार दस सौ वर्ष तक राज्य करते । वे समर्द्ध-पति भविष्यति और महान् राजा हो ॥ ७३-७७ ॥ इनके दो पुत्र भी बार पुण्यवर्धन होगी चोखेस गान और वाग्दे पातिव्र होगी । आपके पुत्र रामके पत्नीसे असम्भवे भवे । कुछ दिनोंके लिए वे दण्डकारण्यमें वे दस मास शांति पण्डित जायस उसके बाद विनाल राजा बनना वह मुनिक राजाके फिर मुनिसे कह ॥ ७८-८० ॥ राजा दशरथ बोले वृंदा कौन थी तथा किसकी पत्नी थी ? तमसे भगवान्की तथा शाप दिया ? हे मुनेश्वर ! वह सब विस्तारपूर्वक कहें ॥ ८१ ॥ मुद्रल उवाच—दुर्जकारणसे जलधर नामका एक देव था । नृप ! उसका बड़ा पतिव्रता स्त्री थी । उसके पतिव्रतक वरसे वह राजा के साथ युद्ध करके भी नहीं हारा । तब भगवान् विष्णु पार्वतसे उसका कारण जानकर उनके कथनानुसार जालन्धरपुर गये । वहाँ वे रामचन्द्रका भजन करके वृन्दाका पतिव्रत भङ्ग करनेके लिए उन्होंने उसके साथ भोग करनेका विचार किया । तभी वृन्दादेवीने स्वप्नमें अपने पति के तस्से नहाये, मने शरीर, भीमपर चढ़कर दक्षिण दिशाको आले, फिर मुंडाव तथा तमसे आच्छादित देखा । जब वह वाला जागी तो स्वप्नपर विचार करने लगा गोपुर छल तथा अंदारी आदिपर उस कहीं चंद नहीं मिला ॥ ८२-८६ ॥ तब वह अपनी दो पत्नियोंको साथ लेकर नगरके बाहर आगम मन बहुलान लगे । वहाँ एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे के वसे वह जब फिरने लगी, तब उसकी भयानक मिहक समान गर्जन करनेवाले और भयंकर दंत तथा नखवाले दो राक्षस दिखाई दिए । उनका दल तथा विह्वल होकर वह इधर-उधर भागने लगी । उसे उहाँ सहसा शिखोंसे युक्त एक मौनव्रतधारी शांत तपस्वी दिखायी दिये । तब वह अपनी दोनों भुजारूपिणी

उन्मील्य नयने वृंदा हृदि दृष्ट्वाऽत्रकःकृतः । निष्ठु त्वं बालिके क्षत्र मा मयं कुरु सर्वथा ॥९१॥  
 इत्युक्त्वा पुरतो दृष्ट्वा राक्षसो मुनिसत्तमः । निर्भर्त्सयती हुंकारैः क्रोधेन महता वृतः ॥९२॥  
 तौ तद्दुर्कारतस्तौ पल्लवपत्रौ तदा । तन्मध्यं मुनर्दृष्ट्वा वृंदा सा विस्मयाच्युता ॥९३॥  
 प्रणम्य ईदृशबभूवौ मुनि वचनमब्रवीत् ।

वृन्दीवाच

रक्षिताऽद्य त्वया घोरान्नयादस्मात्कृपानिधे ॥९४॥

किञ्चिद्विभ्रममिच्छामि कृपया तद्वदस्व याम् । उलंघने हि मे मर्ता रुद्र योद्धुं शक्तः प्रभो ॥९५॥  
 न तत्रान्ते कथं बुद्धे तन्धे कथय सुश्रुतः । मुनिरसद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वपर्वक्षत ॥९६॥  
 तावन्कृपा समायाती तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ । उतस्तद्भूलतामंशाभयुक्ता गगनांतराद् ॥९७॥  
 शय्या कणाधोदागत्य वानरावग्रतः स्थितौ । क्षिरःकवंचदन्तौ च दृष्ट्वाऽब्धितनयस्य सा ॥९८॥  
 पपाव मृच्छिता भूयौ भर्तृव्यसनदुःखिता । कर्मदण्डव्रतैः मित्ता मुनिनाऽऽधासिता तदा ॥९९॥  
 रुदित्वा सुचिरं वृंदा तं मुनि वाक्पमब्रवीत् ।

वृन्दीवाच

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीव्यर्त्त मुने प्रियम् ॥१००॥

त्वमेवास्य पुनः शक्तो जीवनाय मयो मम ।

मुनिरुवाच

नाय जीवयितुं शक्तो रुद्रेण निहतो युधि ॥१०१॥

तथापि त्वत्कृपायिष्टः पुनः सजीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वा तर्द्धं यावत्तावत्सागरनंदनः ॥१०२॥  
 वृंदाबालिग्य तद्वचनं चुर्चुर प्रीतमानसः । अथ वृंदाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हृषितमानसा ॥१०३॥  
 रेमे तद्वचनमभ्युत्था तद्युक्ता बहुवामरम् कदाचित्पुनस्तस्याने दृष्ट्वा विष्णु तमेव हि ॥१०४॥

लताएँ उसका गलम डालकर भयमत्तभावसे कहने लगी। हे मुने ! आपकी करुणसे आया हूँ मुझे अवश्यकी  
 रक्षा करिए । उसके हम आर्त्त वचनको सुना तो श्याम छोड़कर मुनिने उसे अपने हृदयसे छिपटी  
 हट पाया । अब वे उससे रहने लगे—बालिके ! तुम यही निर्भय होकर रहो । ८९-९१ ॥ उसे इस प्रकार  
 सम्झाकर मुनिसे भेरे डराने तथा हुंकार करत हुए उन दोनों राक्षसोंको अपने सामने देखा । तब क्रुद्ध होकर वे  
 भी हुंकार करने लगे । उनका हुंकारसे घबरा कर वे दोनों राक्षस भाग गये । मुनिके इस अद्भुत सामर्थ्यको  
 देखा तो वृंदा आश्चर्यचकित होकर भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगी, वृन्दा बोली हे कृपानिधे ।  
 मुझे वापस इस धार संकटसे बचा लिया । अब मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ । सो कृपा करके  
 कहिये । हे शम्भु ! मेरा गति जलंधर शिवजीसे गुड करने गया है । हे सुव्रत ! वह वहाँ किस वशासे  
 है, यह मुझे बताइए । मुनिने उसको बात सुनकर कृपापूर्वक ऊपरकी ओर देखा तो उपरसे दो वन्दर  
 बाघे और मुनिको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये । उनके हाथोंमें वृंदाने अखिलतन्त्र जलन्धरका  
 कट्टा क्षिर, हाथ तथा घड़ देखा । यह देखतेके साथ ही वह पतिविगोचके दुःखसे दुःखित तथा पर्युषित होकर  
 घबराकर गिर पड़ी । तब मुनिने उसके मुँहपर कण्ठमुका जल छिड़का और तत्पश्चात् करके गीत किया  
 ॥ ९९-१०१ ॥ बहुत समय तक रोनेके बाद वृंदा कहने लगी—हे कृपानिधे ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मेरे प्रिय  
 पातकों जीवित कर दें ॥ १०० ॥ मेरी भयमय आण ही इसको जिलानेमें सफल है । मुनि बोले—कुछमें  
 शिवजीके द्वारा निहत जलन्धरको जीवित करना असम्भव है । फिर भी तुमपर दण्ड करके मैं इसे जीवित  
 करता हूँ । ऐसा कहकर वे अन्तर्याम हो गये । इतनेमें सागरलन्दन जलन्धर प्रकट हो गया और आनन्दसे  
 वृन्दाका आलिङ्गन करके मुझे चुम्बन करने लगा । वृन्दा ने भी अपने पतिको देखा तो प्रसन्न होकर उस वनमें  
 बहुत दिनतक उसके साथ रमण करती रही । एक दिन सयोगके अनन्तर उसी जलन्धरको विष्णु के रूप में

निर्बन्धः क्रोधमपुनः वृद्धा वचनमवतीतम् ।

पुनः उवाच

तव ज्ञानं हरे शीलं परादाराभिगामितः ॥ १०५ ॥

स्व ज्ञानोऽसि मया मय्यङ्गमायी ग्रन्थधनापम । यो न्वया मायया हौ तौ स्वकीयो दक्षितौ मय ॥ १०६ ॥  
 नावेव राक्षसी भून्वा तव भार्या विनेष्यतः जयविजयनामाना शाली कृत्रिमरूपिणी ॥ १०७ ॥  
 च चापि भार्याद् दानो वने कायेमहायया । अत्र सर्वेश्वरोऽपि त्वं यत्ने त्रिष्वौ ममागता ॥ १०८ ॥  
 पुण्यशीन्मुनीन् तौ कपिरूपधराभौ । अतस्ते वानरगन्तु संगतिर्दंडके वने ॥ १०९ ॥  
 इदं रूपधरः शिष्यो यन्नाश्च्येति वेषग्रहम् । इत्युक्त्वा मा तदा वृद्धा प्रविवेश हुताशनम् ॥ ११० ॥  
 वनो जालधरो दैव्यो निहतो युधि शशुना । तस्माद्वाजभिदानीं तौ कुम्भकर्णदशाननौ ॥ १११ ॥  
 चर्त्ता मायामय्ये तौ लकायामधुना स्थितौ । नीत्वा वनकर्जा बला पंचरथास्तु मातृवत् ॥ ११२ ॥  
 शल्यिन्वाऽथ पण्मामान् रामबाणान्मरिष्यति । समोऽपि बालिनं हन्वा सुग्रीवण समन्विनः ॥ ११३ ॥  
 क्रियाभिः सागरं बध्नुष्व मीतामादाय यास्यति । यात्रापहविलासांश्च समर्द्धपप्रक्षणात् ॥ ११४ ॥  
 कर्षिष्यति दयितया बंधुभिश्च यथाभुक्षम् । इदं गोप्यं न्वया राजन् कथनीयं न कुत्रचित् ॥ ११५ ॥

श्रीगणेश उवाच

इत्युक्त्वा मुद्रलः सर्वं भावि गमय्य कौतुकान् । चरित् वक्ष्यामाम्य पदा यद्यन्कणिष्यति ॥ ११६ ॥  
 तन्मर्वं नृपतिः श्रुत्वा तुष्टः पप्रच्छ तं पुनः । पूर्वजन्मनि कश्चाहं किं मया सुकृतं कृतम् ॥ ११७ ॥  
 तन्मर्वं वद मां ममन यस्मात्तानो इतिः पुनः । मम साक्षाद्रामचंद्रो लक्ष्मीः सीता न्वभूत्सुता ॥ ११८ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपमाह पुनर्मुनिः ।

मुद्रल उवाच

आसीन्मद्याद्रिदिपये करवीरपुरे पुनः ॥ ११९ ॥

बाह्यणो धर्मविन्दश्चिदमदन इति श्रुतः । विष्णुव्रतकरः सम्पत्तिवर्णपूजारतः सदा ॥ १२० ॥

राम तौ श्रुद्ध होकर चिन्कारतो हुई बुन्दा बाली-हे हर ! तुम्हारे इस परमप्रेममनस्पी व्यवहारको चिन्कार है ॥ १०१ ॥ येने अब जाना कि तुम मायावी तथा बनावटी तपस्वी हो । तुमने अपने निजी दो दूतोंको वानर-समूह मुद्रा दिखलाया था, वे ही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी रक्षाका हरण करेंगे । वे दोनों कृत्रिमरूपधारी उग्रवज्रय तुम्हारे पार्षद थे ॥ १०२-१०३ ॥ सर्वेश्वर हानपर भी तुम स्त्रीके वियोगसे दुःखी होकर वानरोंके साथ वनमें बसकर लगाभोग । तुम्हारे वे दोनों पुण्यशील-स्थूल शिष्य भी वानर बनने । उनसेसे तार्क्ष्य नामका निरा बटुहण चरण करेगा । और भी बहुतसे वानर दंडकवनमें तुमका भिरग । इतना कहकर बुन्दा अग्निमें प्रविष्ट हो गयी ॥ १०८-११० ॥ इस प्रकार बुन्दाका पालित स्वहित होनेके बाद जलन्धर वास्तविकरूपमें मन्त्रक द्वारा भास गया । हे महाराज दशरथ ! इस भाषक कारण इस समय रावण कुम्भकर्ण जन्म लेकर समुद्रके बीच लक्ष्मी विवास करने है । वे गन्धर्वासे जनकको पुत्री सीताका ले जाकर छ भास तक मायाको तरह चरन करनेके पश्चात् रामके बाणोंसे मारे जायेंगे । राम भी बालीको मारकर मयीवके साथ पत्थरोसे समुद्रको रंध्र तथा उस पार जाकर सीताको ले आयेंगे । पश्चात् प्राणप्रिया सीता तथा बन्धुओंके साथ राम सीधणका, राम तथा विनास करते हुए समर्द्धोंको रक्षा करेगा । हे राजन् ! यह गोप्य बात किसीको न बतलाइएगा ॥ १११-११५ ॥ श्रीकृष्णजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार मुद्रलने रामका समस्त भावो चरित बतल दिया ॥ ११६ ॥ इन सब वानरों पुन तथा प्रसन्न होकर राजा दशरथने फिर पूछा कि मैं कौन था और मैंने कौनसे मन्त्र किसे थे कि जिससे साक्षात् वगवाद् रामरूपमें मेरे पुत्र बने तथा साक्षात् लक्ष्मी सीता होकर मेरी पुत्रवधू बने । हे महाराज ! यह सब हाज मुझे कह सुनाइये ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ यह पुनकर मुद्रल मुनि राजासे फिर बतल गये । मुनि बोले—हे राजन् ! सहाय्यपर करवीरपुरमें परम धर्मज्ञ धर्मवत्त नामसे विख्यात एक ब्राह्मण

आदशाक्षरविद्यायां जगनिष्टोऽविधिप्रियः । कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ॥१२१॥  
 गच्छां तुर्यावशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् । हरिपूजोपकरणान् प्रगृह्य व्रजता तदा ॥१२२॥  
 नेन दशा समायाता रक्षर्भी भीमनिःस्वना । चक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निनग्ना रक्तलोचना ॥१२३॥  
 दिग्भ्रम शुष्कमाभा तयोष्ठी घर्षस्वना । तां दृष्ट्वा भयमंत्रस्तः कपितावयवस्तदा ॥१२४॥  
 पूजोपकरणैः सर्वैः पयोमिश्राहनद्वलात् । संस्मृत्य यद्वरेणाम तुलसीयुक्तवाग्निं ॥१२५॥  
 मोऽहनद्वारिणा तस्मात्तन्पापं लयमागतम् । अथ संस्मृत्य मा पूर्वजन्मकर्मविपाकजम् ॥१२६॥

म्यां दशायजवीतीत्रं दंडवच्च प्रणम्य सा ।

कलहोवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशमेनां गताऽस्म्यहम् ॥१२७॥

मन्त्रं तु पुनर्विप्र याम्यहं गतिमुत्तमाम् ।

दुःखल उवाच

तां दृष्ट्वा प्रणतामार्तां वदमानां स्वकर्म च ॥१२८॥

अतीव विन्मिक्तो विप्रस्तदा वचदमब्रवीच्च ।

चर्मवत् उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वं दशार्मीदृशीं गता ॥१२९॥

कुतः प्राप्ता च किंशीला तन्मयं विस्तराद्वद ।

कलहोवाच

मौराष्ट्रनगरे ब्रह्मण भिक्षुनामाऽभवद्विजः ॥१३०॥

नस्याहं गृहिणी भवतु कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा । न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कुतम् ॥१३१॥  
 नापितं तस्य मिथ्यान् भर्तुर्वचनभगया । पाककाले यथा नित्यं यद्यच्चान्नं मनोरमम् ॥१३२॥  
 तत्तत्पूर्वं स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्भर्त्रे निवेदिनम् । एकदा स पतिमित्रं समं हृतं न्यवेदयत् ॥१३३॥  
 नैव शृणोति मे पत्नी यदाकथं किं करोम्यहम् । तेन श्रन्वा तु सकलं क्षणं मंचित्य वै हृदि ॥१३४॥  
 उवाच भर्तृनि किंचिच्छ्रुत्वा तां ते वदाम्यहम् । निषेधोक्त्या वदस्व त्वं गृहिणी सा करिष्यति ॥१३५॥

रहता था वह विजयपुर के राजाको करनेवाला, भली प्रीति विष्णुपूजामें रत, सदा कारहु बक्षरके भजन (ध्यानमें) भगवत् नामसेवाप । के श्रममें निष्ठा रखनेवाला तथा अश्यागतोंका प्रेमी था । एक बार वह कार्तिक-में राजजागरण करके लीले मह्य पूजाकी सामग्री लेकर हरिमन्दिरमें जा रहा था कि रास्तेमें सहसा उसने एक भयानक धमधम शब्द करते हुई, देडे रातोवाली, जीमकी हिलामी, नितान्त नाम लाल नेत्रोंवाली, जिसके गरीरका खद मोह मूख गया था—ऐसी लम्बे होठों और नन्न शरीरवाली एक राजशाको आते देखा । उसको देखकर काह्मण घणसे कांप उठा । तब वह समस्त पूजाकी सामग्री तथा जल आदि कंक-कंककर उसको रखने लगा । वह नागायणका नाम लेता हुआ उसके ऊपर तुलसीपत्र तथा जल फेंकता जाता था । वस, इसीसे जानायास उस राजाकोके सब पाप धुल गये और उसको पूर्वजन्मके कर्मोंका रमरण हो जाया ॥ १२६-१२८ ॥ तब वह काह्मणको दंडवत् प्रणाम करके रहने लगी । कलहा बोली—हे विप्र । मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके कलस्वरूप इस रक्षाको प्राप्त हुई हूँ । हे महार्द्र ! मौराष्ट्रनगरमें भिक्षुनामका एक काह्मण रहता था । मैं उसकी कलहा नामकी बड़ी निष्ठुर स्त्री थी । मैंने कभी वचनसे भी पतिकी भलाई नहीं की ॥ १२७-१३१ ॥ रसोईमें कभी मैं मिथान बनाती तो पतिसे झूठा बहाना करके तथा उसकी बात टालकर भिठाई नहीं देती थी । भोजनके समय प्रतिदिन जो जो बच्ची खींच बनाती पहिले उसको मैं खा लेती थी तब पतिको देती थी । एक दिन मेरे पतिने आकर अपने एक मित्रसे कहा कि मेरी स्त्री मेरी बात नहीं मानती । मैं क्या करूँ ? उसके

न वाक्येन कार्यादि यन्निर्दिष्टं वा छित्तम् । तथेति मित्ररात्रयेन बृहमेव परिर्भव ॥१३६॥  
 मामाह दायते मा त्वं भोजनार्थं समाह्वय । मम मित्रं महद्दुष्टं मच्छुत्वा स्वपतेर्वचः ॥१३७॥  
 तदा मर्ता मयोक्तः स मित्रं मे साधुमन्मतम् । समाह्वयाम्यश्वनार्थमर्घ्यं वासपोषणम् ॥१३८॥  
 ततो मया समाह्वयः स्वयं गन्ता वने सखा । तद्वत्स्व निषेधोक्त्या कार्यमाज्ञापयन्वतिः ॥१३९॥  
 तदा मे पितुरष्टा ध्याह । स्वपनिर्भव । मामाह दायते भ्रातृ न करिष्याम्यहं पितुः ॥१४०॥  
 तदा स्वपतेः श्रुत्वा मया विप्रा निषेधिताः कया धिक् धिक् कृतो मर्ता कथं भ्रातृ करोषि न ॥१४१॥  
 त्वयमेव न ज्ञातामि का गतिं मे वरिष्यति ततः पुनः न मामाह एकजनस्य वा कुतः ॥१४२॥  
 तत्र निषेधप्रत्यक्षं वा विस्मयं कुतः प्रिये । तस्यैव वचनं श्रुत्वा मयाऽष्टादश भूमिगाः ॥१४३॥  
 तन्निमित्तान्नु भ्रातृव्यं पकाभ्यानि कृतानि हि ततः पुनः न मामाह प्रिये मृगु वचो मम ॥१४४॥  
 मया महार्दान्वा मिष्टपाकं भुञ्जता ततः वाम् । स्वीयोच्छृष्ट स्वयं विप्रान् पतिवेषणमाचर ॥१४५॥  
 त्वमया कथितं श्रुत्वा स पानधिक्कृतः पुनः कथमर्दान् स्वयं भुञ्जता पथाद्विशम्भमर्पयेत् ॥१४६॥  
 त्वमर्घ्यं निषेधोक्त्या भ्रातृं धात्रीं चकार सः । पिष्टदानादिकं कृत्वा मामाह स वतिः पुनः ॥१४७॥  
 महोपोषणं त्वयं करिष्यामि न त्वयः । तस्यैव वचनं श्रुत्वा पिष्टान्नेन स भोजितः ॥१४८॥  
 ततो देववशाद्भुता विस्मृत्य प्राह मां पुनः । नान्वा पिष्टान् शिरस्वाद्य मुर्धार्य परमादरात् ॥१४९॥  
 ततो मया शौचकूपे जीन्वा पिष्टा विमर्जिताः । ततः सिन्नमना विप्रो हाहेत्युक्त्वा म्रियेऽमरत् ॥१५०॥  
 ततः विचिन्त्य मामाह पिष्टान्मा त्वं बहिः कुतः । तदोर्णार्थं शौचकूपे मया पिष्टा बहिः कृताः ॥१५१॥  
 ततः पुनः न मामाह पिष्टान्नाथं धिपस्व मा । तदा त्वार्थं मया धिमास्ते पिष्टाः परमादरात् ॥१५२॥

'मम' यह सुनकर जनम विचार किया ॥ १३६-१३८ ॥ तदनन्तर उसके घर परिसर का कुछ कहा का,  
 'मे' कहती हूँ । उसने कहा 'हे मित्र' । तुम अपना रक्षास उल्टा बात कहा करो, तब वह तुम्हारे मनो विषय  
 का एक प्रत्यक्ष प्रमाण और तुम्हारा अक्षेप निश्चय होगा । मित्रका बात सुन तथा 'महत्त' अच्छा करने  
 में पति घरपर आया ॥ १३५ ॥ १.६ । वह सुनकर कहने लगा-हे मित्र ! घर मित्रको तुम क्यों चामनके स्थिति  
 न सुनाया करो । वह बड़ा दुष्ट है । पतिके इस वचनका सुनकर मैं कहा कि तुम्हारा मित्र ब्राह्मणों में  
 कहा गया मज्जन है । उसका मैं आज ही भोजनके स्थिति सुनाता हूँ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ तब मैं स्वयं जाकर पतिके  
 'मम' का सुनाया । तब मेरा पति विपरीत रूपमें ही काम करने लगा ॥ १३९ ॥ एक दिन मेरा पति अपने  
 'मम' की मरणातिथि जानकर बतने लगा 'हे भ्रातृ' । मैं आज अपने पिताका आज्ञा नहीं करूँगा ॥ १४० ॥  
 तब सुनकर मैंने उसके कहने पर उत्तर देकर ब्राह्मणोंका निमंत्रण दे दिया और पतिके कहा कि तुमको विस्कार  
 है 'ओ भ्रातृ' पिताका आज्ञा भी नहीं करूँगा ॥ १४१ ॥ तुम ऐसे भ्रातृ की जानते । इसलिये मैं जान तुम्हारी  
 क्या पति होगी । तब उसने कहा कि यदि करना है तो 'मम' एक ब्राह्मणको निमंत्रण दे दना आधिक  
 तब ही नहीं करना । परवान-मिठाई आदिमें अर्घ्य लक्ष्य नहीं करना । वह सुनकर मैंने एक साथ अठारह ब्राह्मण-  
 'मम' निमंत्रण दे दिया । भ्रातृके लिए जनक प्रकारके सम्मान देना । फिर पतिने पुनः कहा कि आज तुम  
 अपने घर लौट जाओ मैं आज्ञा करके बातें अपने ऊपर आज्ञा ब्राह्मणोंको परोसता ॥ १४२-१४३ ॥ वह सुन-  
 कर मैंने पतिकी विस्कार और कहा कि तुमको विस्कार है । पदों स्वयं जाकर पञ्च ब्राह्मणोंको भोजन करानेके  
 स्थिति कहने हूँ ॥ १४६ ॥ इस प्रकार विपरीत कथनोंसे पतिने मेरे द्वारा विचित्रता जाह्न करवायी । निन्दित  
 'मम' करके फिर कहोत सुनकर कहा-॥ १४७ ॥ मैं आज कुछ भी न जाकर उपवास करूँगा । वह सुनकर  
 मैंने उन्हे कुछ मिठाई लिलायी ॥ १४८ ॥ बादमें देववशात् सुनकर पतिने मुझे कहा कि इन पिष्टोंको  
 'मम' के समान किसी पवित्र स्थानके अन्नमें फेंक जाओ ॥ १४९ ॥ यह सुनकर मैंने इन पिष्टोंको मे जाकर वास्तव-  
 में फेंक दिया । यह देखा तो वह विप्र हाथ-हाथ करने लगा ॥ १५० ॥ जनवर शोककर मुझसे कहा कि  
 'मम', वाक्यसे पिष्टोंकी बहुत न निकालना । तब शौचकूपमें उतरकर मैंने इन पिष्टोंका निष्कार लिया

एवं मया कदा भर्तुर्वचने न कृतं तदा । कलहप्रियया नित्यं मरुद्विषममना यदा ॥१५३॥  
परिणेतु ततोऽन्यां वै मनश्चक्रे परिर्मेम । ततो यत् समादाय प्राणस्त्वको मया द्विज ॥१५४॥  
अयं वदन्वा वक्ष्यमाना मां नित्युर्यमर्किकराः । यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमवृच्छत ॥१५५॥

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म फलं शुभमथाशुभम् । प्राप्नोन्मेषा च तत्कर्म चित्रगुप्तावलोकय ॥१५६॥

कच्छहोनाथ

चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं वन्येण्मामुवाच ह ।

चित्रगुप्त उवाच

अनया तु शुभं कर्म कृतं किञ्चिन्न विद्यते । १५७॥

मिथुनात् सृज्यमानेषु न मर्तमि तदपितम् । अतश्च वसुकीयोन्मां स्वनिद्रायाञ्च तिष्ठतु ॥१५८॥  
एति ह्रंष्टि मदा नृषा नित्यं कलहकाणिणी । विष्टुता शूकरीयोन्मां तस्मात्तिष्ठन्वियं यम ॥१५९॥  
पाकमांडे सदा भुक्ते गुप्ते चैका पतन्तः । तस्माद्दोषाद्विडालाऽन्तु स्वजाताऽन्यमक्षिणी ॥१६०॥  
भर्तारमपि चोद्दिष्य हान्मघातः कृतोऽनया । तस्मान्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठन्वेक्यऽभिनिदिता ॥१६१॥  
मनश्चैषा मरुदेशे प्राप्तिव्या हरेर्भट्टेः । तत्र प्रेतशरीरस्या चित्रं निष्ठन्वियं तमः ॥१६२॥

ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा वृनन्वशुभकारिणी ।

कच्छहोनाथ

ततो दर्तः प्रापिताऽहं मरुदेशं क्षणाद्द्विज ॥१६३॥

दत्त्वा मेतक्षरीरं मां गतास्ते स्वस्म्यत्तं प्रति । साऽहं पंचदशाब्दानि प्रनंदं ह स्मिता किल ॥१६४॥  
सुखद्व्यां पीडिताऽत्सर्पदुःखिता स्वेन कर्मणा । ततः धूर्त्वाडिता नित्यं शरीरं वणिजस्त्वहम् ॥१६५॥  
प्रतिश्व दक्षिणे ग्रामा कृष्णवर्ण्यास्तु संयमे । तत्रार संभ्रिता यात्रसावतस्य शरीरतः ॥१६६॥  
उच्यतेऽणुगर्णदूरमपाकृष्टा बलादहम् । ततः क्षुब्धामवा दृष्टो ममत्या न्वं मया द्विज ॥१६७॥

॥ १५१ ॥ फिर पतिव कहा—दखा, कहीं इनको किसी साथिय न डालना । तब येन ल जाकर उस पिंडोका बड़ आदरपूर्वक साथैजलम डाल दिया ॥ १५२ ॥ इस तरह मुझ वल्कलप्रियामे जत्र कर्मो मां पतिकर लीघा लोत्पर कहा हुआ काम नहीं किया, तब दुःखित हाकर उसन अपना दूसरा बगल करला निश्चित किया । हे द्विज ! अब येने जहर खाकर अपने प्राण त्याग दिये ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ तब यमदूत मुझ बोधकर यमराजक पास ले गये । यमराज मुझे बोलकर चित्रगुप्तसे कहने लगे ॥ १५५ ॥ यमराजने कहा—चित्रगुप्त दखो, इसने अच्छा कर्म किया है या बुरा, जिससे इसको वैसा ही फल दिया जाय ॥ १५६ ॥ कलहा कहने लगा—यह सुनकर चित्रगुप्त मुझ घमकात हुए कहने लगे कि इसने तो कोई अच्छा कर्म कमा किया नहीं । यह मिष्टान्न बनाकर खाली था परन्तु अपने पतिकर नहीं देली थी । इसलिये यह बगुलीको योनिम जाकर अपना हाँ बिछा खानवाले वर्जितगो बने प्रतिदिन मगका तथा पातल द्रव्य करनेके कारण यह मिष्टा भक्षण कानवाले बूकग्यानिम पड़ा है । हे यम इसपर उधर छिपकर आज्ञा जनानके पासमे अकली हा खानवाली यह बिल्ली बने ॥ १५७ ॥ १६० ॥ पातक उद्देश्य इसने आत्मघात किया है । इस कारण यह अभिनिन्दित प्रेतयानिमे अकली रहे ॥ १६१ ॥ हे यम ! इसने दूतोंके द्वारा मरुदेशमे भेज दवा बाहिये, वहाँ जा मया प्रेत बनकर यह बहुत काल पर्यन्त निवास कर ॥ १६२ ॥ यह पापिनी उपपुंस सभी धर्माधिको भागे । कलहा बोली—हे द्विज ! तब यमदूतने खब ही भयम मुझ मरुदेश पहुँचा दिया ॥ १६३ ॥ वहाँ प्रेतयोनिमे डालकर वे अपने स्थानको चले गये । मैं पन्द्रह वर्ष तक प्रेतयानि रहे ॥ १६४ ॥ अपने किए हुये कर्माके अनुसार मैं सदा भूखप्याससे अत्यन्त दुःखिनी रहने लगी । इस प्रकार नित्य भूखस पांडल ही एक बनिमकी दहम बैठकर मैं दाक्षायम कृष्णवर्णाक संगमपर आसी । वहाँ आकाशिव तथा विष्णुके गगान मुझे बरबस उस वर्जितके शरीरसे अलग करके दूर भाग दिया । तदनन्तर हे द्विज



त्वद्धस्ततुलसीवारिमंस्पर्शाद्रतपातका      तन्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्ता भवाम्यहम् ॥१६८॥

योनिश्चयादग्रभावाद्ग्रहमाह च प्रेगभावतः । मामुद्गर मुनिश्चष्टु न्यामह अरण्य गन्ध १६०.॥

इत्थं निश्चय्य कलहावचनं द्वितीयं तत्पारक्रममयविस्मयदुःखयुक्तः ।

तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलच्चित्तवृत्तिर्ध्यान्य चिरं सुवचनं निजगाद दुःखात् । १७० ॥

इति श्रीशतकौटिरामयगितांगतं श्रीमद्भक्तनन्दरामायणे वात्सलीकीये सारकांडे

वृत्ताशापकश्चाख्यानं ताम वदुर्यः सर्वः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

( धर्मदेन द्वारा कलहाका उद्धार )

**धम्मदत्त उवाच**

त्रिलयं याति पापानि तीर्थदानप्रतादिभिः । प्रेतदहं स्थितायाम्ने तेषु नैवाधिकारिता ॥१॥

त्वद्गुलानिर्द्वन्नादस्मात् स्थिन्नं च मम मानयम् । नैव निर्धृतिमायाति त्वामनुदुगुन्य दःखिताम् । २॥

पातकं च त्वान्पुत्रं योनित्रयविषाकृजम् । नैवान्पैः क्षायते पुण्यैः श्रेतन्व चातिगर्हितम् ॥३॥

हस्मादाजन्मजनितं यन्मया कतिक्वचनम् । तत्पुण्यम्यार्धभागेन सदृतित्वमवाप्नुहि ॥४॥

कार्तिकव्रतपुण्येन न सामर्थ्यं याति सर्वथा । यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि ततो ध्रुवम् ॥५॥

**મહાત્મા કુચાચ**

इत्युक्त्वा कर्मदत्तोऽसौ पावतामन्यषेचयत् । तुलसीमिश्रतोयेन आवयन् द्वादशाक्षरम् । ६ ।

तावत्प्रेतस्य निर्मुक्ता ज्वलद्ग्निसिखापमा । दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यशोर्वशी ॥५॥

ततः सा दंडवद्भूषो प्रपन्नाम यदा द्विजम् । उवाच सा तदा चाक्यं हृष्यद्गदमापिणी ॥८॥

बल्लभ शाय

त्वत्प्रसादाद्दिज्ञश्चेष्ट विमुक्ता निर्याददम् । पापाब्धा मञ्जमानयास्त्वं नीभूताऽसि मे ध्रुवम् ॥९॥

मूखो मरती एवं भ्रमण करती हुई मैंने यहाँ रुककर देखा । १६५-१६७ ॥ यहाँ तुम्हारे हाथक जल तथा नुल्लकीमे मेरे सब पाप दूर हो गये हैं । इस कारण हे प्रियेन्द्र ! अब ऐसी कृपा करो कि जिससे भावो नीन पीनियोंसे मेरी मुक्ति हो जाय । हे मुनिचैष्ट मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ । तुम मर्या इस प्रेतपीनिसै भी उद्धार करो । ब्राह्मणने कलहाके वृत्तान्तका सुना तां उसक पापकमस भव विम्वय तथा दुःखमे इस और उसकी इस ग्यानिपूर्ण दशाको उन्कर कृपासे चक्षुचित्त हो और मरुत दग्धक सोचकर दुःखस इस प्रकार सुन्दर वचन कहना आरम्भ किया ॥ १६८-१७० ॥ इति श्रीगतकोटिरामचरितातपस्ते श्रीमवानन्द-रामायणे वाल्मीकीये 'अ्यानन्ता' भाषाटीकायां मारकाण्डे वृन्दाणापकलहाख्यानं नाम चतुर्थ सर्गः ॥ ४ ॥

१) चर्मदत्त बोले—तीर्थ, वान तथा पत्तके द्वारा पाप क्षीण होता है, परन्तु प्रेतशरायम रहनस तुम्हारा उनपर अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ तुम्हारी इस दुर्दशाका देखकर मल मन बहुत दुर्लभ हो रहा है। अबतक तुम्हारा इस दुःखसे उद्धार न होगा, तबतक मुझको शान्ति नहीं मिलेगी ॥ २ ॥ यह नैऋ प्रेतत्व और तीन योनिओको भोगनेवाला तुम्हारा भवान् पाप साधारण पुण्योस क्षण न हुआ ॥ ३ ॥ इस कारण जन्मसे लेकर अबतक किये हुए अपने कार्तिकदत्तके पुण्यका आधा भाग मैं तुमको देता हूँ। उससे तुम सद्गतिको प्राप्त होओगी ॥ ४ ॥ कार्तिकदत्तके पुण्यके समान यज्ञ-दान-तीर्थ आदि कोई भी नहीं हो सकता। यह बात निश्चित है ॥ ५ ॥ मुनि मुड्डल कहने लगे—हे राजन् ! इतना कहकर चर्मदत्तने उग्यो ही उसके ऊपर तुलसीदत्त तथा जल छिड़ककर द्वादश अक्षरोंका मंत्र सुनाया। स्थो ही प्रेतयोनिसे मुक्त होकर वह जलती हुई अग्निकी लपटके समान दिव्य रूप धारण करके उर्वरोंको सहज सुन्दर स्त्री बन गयी ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब वह ब्राह्मणके शरणोंकी वण्णवत् प्रणाम करके सहर्ष गङ्ग जाणीसे कहने लगी ॥ ८ ॥ कहता बोली है द्विजोमें ओह द्विज । आपकी कृपासे मैं नरकमें जानेसे बच गयी। पापसमुद्रमें डूबती हुई मुझ अपिनीकी बचाकर आपने

मदन उवाच

इत्थं मां वदतीं विप्र ददशादानमदरात् विमानं मुन्दरं पूज्यं विष्णुरूपधर्मयोगैः ॥१०॥  
अथ सा तद्विधानस्यैविमानं चाश्रमेपिता । पुण्यशीलसुशीलार्थव्ययोगणसेविता ॥११॥  
तद्विमानं तदाऽऽवयद्भवेदतः सविस्मयः । पथान् ददयद्भूषां दृष्ट्वा तौ पुण्यरूपिणौ ॥१२॥  
पुण्यशीलसुशीला च समुत्थाप्याननं दिग्भम् । समम्भनस्त्वयन् वानीं प्रोचत्तुर्धनसमुत्तमां ॥१३॥

गंगाधर उवाच

माधु ताम्र द्वित्रभेदं यस्मिन् विष्णुतः मदा । दीनानुकर्षी धर्मो विष्णुस्तपसायताः ॥१४॥  
आनन्दान्वास्वत्या द्यौस्तद्वक्तुं कार्तिकव्रतम् । तत्र तत्पार्थदत्तेन पुण्यं द्विगुण्यमागतम् ॥१५॥  
स्नानपुष्पस्यार्चभागेन यदम्भ्यः पूर्वकर्मजम् । जन्मान्निग्नानोद्धृतं तेषां तद्विजयं गतम् ॥१६॥  
स्नानेनैव गते पार्थ यदम्भ्यः पूर्वकर्मजम् । द्वित्रिजगत्पार्थस्य विमानमिदमागतम् ॥१७॥  
वैकुण्ठं नायते माधो नानाभोगयुता न्वियम् । दीपदानधर्मः पुण्यैस्तैजसं रूपमाश्रितम् ॥१८॥  
तुलसीपूजनार्थं कार्तिकव्रतकैः शुभैः । विष्णुमाभिष्यता ब्रह्मा त्वया दत्तैः कृपानिधि ॥१९॥  
स्वमर्थस्य भवस्थान्ते भार्यया सह पास्पमि । वैकुण्ठहवनं विष्णोः मान्निष्यं च तत्पुण्यताम् ॥२०॥  
ते धन्याः कुतः पुण्यतामे तेषां च मकरा मयः । यैर्वैष्णवाऽऽश्रितो विष्णुर्धनदत्त त्वया यथा ॥२१॥  
सम्पत्पाराशितो विष्णुः किं न यच्छति देहिनाम् । औत्तानपादियेनैव ध्रुवचै रक्ष्यपितः पुरा ॥२२॥  
यस्मात्सम्पत्पाराश्च दहिनी एति मधुमतिम् । ब्राह्मणहोतौ नारैन्द्रा बन्वायामगन्ताम्भुग ॥२३॥  
विमुक्तः सन्निधिं प्राप्नो जानोऽनं कवचं हृत् । ब्राह्मोऽयं द्वित्रयो नाम्ना भीविष्णोश्चिन्तादभूत् ।  
एतस्मिन्वाऽवित्ता विष्णुस्तुलान्निष्यं प्रवास्यासु । बहुमदमदध्यानि मायादिवयुतस्य ते ॥२४॥

भावका कामे किया है ॥ १॥ मुझे भुक्त करने लग कि इस बातका कहना हा कहना उरने लगा कि आकाशमार्गमे विष्णुरूपधारी गंगात पुष्प एक सुधा विधान उत्तर रहा है ॥ १०॥ बादमे विमानमे बैठे हुए पुण्यशील तथा पुण्यशील आदिने कलह का विधानमे बैठा लेशा और अस्वभाव उरवा तथा बोलने लगी ॥ ११॥ भवदत्तको यह विमान देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसमे पुण्यारण तथा पुण्यशील सुशीलका देखकर उनमे परमाण्ण स्तब्धता आगम किया ॥ १२॥ उन दोनाने भी उस विमान द्वित्रको लका देख करों अधिनन्दन बरक समंयुक्त वातामे कहा ॥ १३॥ वानीं गये कहने लग — हे द्वित्रधरा वहेन्द्रा, तुम बन्ध हो । तुम दीनान्तर दया करत हो, बभका जानने हो जो सदा विष्णुधर्ममे रत रहने हुए विष्णुक स्तब्ध तत्पर रहने हा ॥ १४॥ तुमने जो वैष्णवसे ही कार्तिकमासका व्रत बरक करके उस पुण्यका श्राधा प्राप्त दान दिया है, इससे तुम्हारा पुण्य दुगुणा हो गया है ॥ १५॥ तुम्हारे आज्ञा पुण्यमे इसक स्वरगे जन्मके कायकमोका प्राप्त हो गया ॥ १६॥ तुम्हारे करारमे हुए तुलसीपूजनके जलके स्नानसे ही इसके पुण्यमे किये हुए सब पाप दूर हो गये हैं । अब दिग्ग-पावरणके पुण्यसे इसके लिए यह विमान आया है ॥ १७॥ हे माधो ! तुम्हारे दाददानके पुण्यसे इस तपस्वी रूपे वारण करनेवालाको हम विविध रूपे भगवन्त लिए वैकुण्ठ के वा गये है ॥ १८॥ हे कृपानिधि ! तुम्हारे दिए हुए तुलसीपूजन तथा कार्तिकव्रतके पुण्यसे यह विष्णुधर्मवानके सौन्दर्यका प्राप्ता हुई है ॥ १९॥ तुम भी इस जन्मके अन्तमे स्वामिन्त वैकुण्ठमे जाकर विष्णुक सौन्दर्य तथा सत्पताको प्राप्त होवा ॥ २०॥ हे भवदत्त ! वे लोग बन्ध है और बड़ भवैरमा तथा सख्य आत्मवास है, जिन्होंने कि तुम्हारी तरह विष्णुकी वाराचना की है ॥ २१॥ सत्य शक्ति पूजित विष्णुधर्मवान् मनुष्यको क्या नहीं देते ? त्रिद्वान् पूर्वधर्ममे रागा उत्तानपादक पुनका प्रुण्यपर रक्ष्यपित किया ॥ २२॥ जिनके नामस्मरणमात्रमे ही मनुष्य सत्पताका श्राधा हो जाता है । प्रार्थन समये मन्त्रमे एकदा दया गवन्त जिनके नामका स्मरण करनेमे मुक्त हुए विष्णुके सौन्दर्यको प्राप्त हुआ और अब नामका प्राप्तल बना । ब्रह्म को विष्णुका चिन्तन करके विजय नामका इतरपाक बना था ॥ २३॥ इसी प्रकार तुमने भी विष्णुधर्मवानका पूजन किया है ।

तन ुषे क्षयं प्राप्ते यदा यम्यसि भूतलम् । धुर्यवशोऽङ्गवो गता विरयानस्त्वं भविष्यसि ॥२६॥  
 नाम्ना दशम्यस्तत्र आयांश्चयवुनः पुमान् हर्तायेवं तदा मार्या पुण्यस्यैवार्धभागिनी ॥२७॥  
 कलहा कैकेयी नाम्नो भविष्यति न सञ्जयः । तत्रापि नव मासिष्यं विष्णुर्दाम्यति भूतले ॥२८॥  
 आन्मान तद् पुण्यत्वं प्रकल्प्यामकार्यकुत गमनाम्ना रावणादीन् हन्वा राज्यं हरिष्यति ॥२९॥  
 तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुर्मनुष्टिकारणान् न यहा न च दानानि न तीर्थान्यधिकारिणैः ॥३०॥  
 जनस्म्यग्रेऽपि धर्मज्ञ निम्बं विष्णुव्रते स्थितः । त्यक्तवात्सल्यैर्दमोऽपि भक्तत्वं स्वदर्शनः ॥३१॥  
 कार्तिके माघवे माघे वैश्वे ममवतुष्टये । प्रन्यन्दं त्वं धर्मदत्तं प्राणभ्यामी मदा भव ॥३२॥  
 एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः । माघपानपि शाश्वदि वैष्णवांश्च सदा भज ॥३३॥  
 यष्टिकाभरणालं वृन्ताकादीनि साद मा । एवं त्वमपि देहानि वद्विष्णोः सर्वं वदम् ॥३४॥  
 शान्तोपि धर्मदत्तं न तद्वक्तव्यं यथा वयम् । पुण्यशीलमुशीलाकृतौ जयश्च विजयस्तथा ॥३५॥

धन्योऽमि विप्राश्च यतस्त्रयंतद्व्रतं कृतं तुष्टिकं जगद्गुणैः ।

यद्वर्धभागान्मफलान्मुगरेः प्रणीयतेऽस्माभिर्मयि मलोचनाम् ॥३६॥

मुदल उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुचदिश्य विमानगौ । तथा कलहया माहूँ वैकुण्ठभुवन गतौ ॥३७॥  
 धर्मदत्तोऽप्यसौ गजन् प्रन्यन्दं तद्व्रते स्थितः । देहानि परमं स्थानं मार्याम्यामन्विनोऽम्भगात् ॥३८॥  
 बहून्यन्दमहसावि स्थित्वा वैकुण्ठमभनि । ततः पुण्यक्षये जाते जानोऽमि त्वं नृपो महान् ॥३९॥  
 विभिः स्त्रीभिर्देशरथ ते विष्णुः पुत्रर्ता गतः । समोऽयं लक्ष्मणः तेषो भरतेऽब्जोऽस्त्रिभुहा ॥४०॥  
 एवं सर्वं यथाऽऽख्यातं यथा पृष्टं स्वया मम । धन्यस्त्वं यस्य ननयः साधान्नागयणोऽभवत् ॥४१॥

इसलिए तुम भी दोनों स्त्रियों के साथ कई हजार वर्ष परोक्ष उनका सानिध्यको प्राप्त होओगे ॥ ३५ ॥ तत्पश्चात् पुण्य क्षाण होनेपर जब तुम पुनः पृथ्वीपर आओगे, तब सूर्यवंशमें बड़े प्रख्यात राजा बनोगे ॥ ३६ ॥ दोनों स्त्रियाँ तुम्हारे साथ रहेंगी और तुम श्रीमान् दशरथ नामके राजा बनोगे । उस समय यह आध पुण्यकी आगिनी कलहा नि स दह कैकेयी नामकी तुम्हारी बीमारी खोती होगी । वहाँ पृथ्वीपर भी भगवान् सदा तुम्हारे सन्निकट रहेंगे ॥ ३७ । ३८ ॥ वे प्रभु ब्रह्माओकर कार्य साधन कानक लिए अपने बापको तुम्हारा पुत्र बनाएंगे तथा रामनाम धारण करके रावण आदिको मारकर राज्य करेंगे ॥ ३९ ॥ विष्णुकी प्रसन्न ब्रह्मबाल तुम्हारे जन्मसे लेकर किये हुए इस व्रतसे बहकर कोई उज्ज, दान तथा तथ्य आदि नहीं है । ४० ॥ इस कारण भारी भी तुम भगवन्, निम्ब निम्बलुक व्रतमें स्थित और मातर्ग रम्भ आदिसे रहित होकर धर्मदर्शी बनो ॥ ४१ ॥ हे धर्मदत्त ! प्रतिवर्ष कार्तिक, वैशाख, चैत तथा माघ इन चारों महानौम प्रातःकाल ज्ञान करके तुम एकादशीका व्रत और तुलसीका पूजन करो । श्राद्धाण, गौ तथा विष्णुभक्तोंकी सेवामें तत्पर रहो करो ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ भक्त, सीनौर तथा रंगन आदिका खाना छोड़ दो । हे धर्मदत्त ! ऐसा करनेसे तुम भी यय-विजय तथा पुण्यशाल-मुशाल आदि हम लोगोंकी तरह विष्णुके उस परम पदकी उनको भक्ति प्राप्त हो पायेंगे हा प्राप्त होजाओगे ॥ ४४ । ४५ ॥ हे शाहण्यध्र ! तुम धन्य हो क्योंकि तुमने जगद्गुरु विष्णुकी स तुष्ट करनेवाला यह व्रत किया है, जिसके अभाव पुण्यमाग्न प्रभावत हमनाम भी मुर्गान् भगवान्की सन्निधत्त को ( ममानलोकको ) प्राप्त हुए है ॥ ४६ ॥ मुदल बोले—इस प्रकार वे दोनों धर्मदत्तको उपदेश दे तथा विमानमें बैठकर कहलाके साथ वैकुण्ठपारमको चले गये ॥ ४७ ॥ हे गजन् ! वह धर्मदत्त भी प्रतिवर्ष उस व्रतको करने देहान्त होनेके बाद दोनों स्त्रियोंके साथ परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥ बहुत वर्षों परोक्ष वैकुण्ठ-पारम रहकर पुण्यक्षय होनेके बाद वहाँ आकर वहाँ तुम इतने बड़े राजा बने हो । ४९ ॥ तुम अपनी हीनो द्वितीयोंके साथ वहाँ आये । विष्णुभगवान् तुम्हारे पुत्र राम बने, वैश लक्ष्मण बने, बह्म भरत बने तथा यय जम्बुध्व बने ॥ ४० ॥ जो तुमने पूछा था, वह सब मैंने तुमको कह सुनाया । तुम धन्य हो । क्योंकि साक्षात् नाशयण तुम्हारे पुत्र हुए हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशिवजी

इन्द्रकथा वृष्टिं वृष्य विमर्जं मुनिमतम् । आश्रित्य गणं भूमिषि मेने च कृतकृत्यताम् ॥४३॥  
 तदा राजा स्वयैन्द्रेण महार्षिममन्वितः । अयोध्यामगमच्छ्रद्धां गोपगृहान्मन्दितान् ॥४४॥  
 नृपसत्तममात्राय मन्त्रिणः परवामिनः । एताकानोरणार्थं च दिव्यचन्द्रमेषरैः ॥४५॥  
 नगरीं भूयगित्वा ने नृन्महाकाटिपंगलैः । निन्यः कन्दमहिनं गजानं नगरीं प्रति ॥४६॥  
 गमयामासमात्राय गोपगृहान्पक्रिय । कट्यां निधाय चान्द्रश्चित्रः स्थित्वा निजैः कर्तैः ॥४७॥  
 स्वर्णकुम्भार्थं च वर्षः पुष्पकृष्टिभिः । कुश्रिन्माभोपतिं स्थित्वा वंसदीपादिपंगलैः ॥४८॥  
 आनिकागणैश्च गजानं भगवं आनिकार्कैः । पूजयति स्म मां मत्वा गजमार्गे वृषकं पृथक् ॥४९॥  
 एवं नानाममृताहैर्नैर्नैर्वाभोपिताम् । इक्ष्वाकूनां त्रिनादं च मायकानां च गायकैः ॥५०॥  
 भीमोद्धवमवार्यैश्च स्त्रीमकपुष्पकृष्टिभिः । ययौ स्वमिविर राजा वीर्यमानः सुचामरैः ॥५१॥  
 ततस्तान् जनकामात्यान् वञ्चालकारवाहनैः । सन्कृत्य भोजनांश्च श्रेयसाम्भ्यैः ॥५२॥  
 एवं ययौ नृन्मनेषु जङ्गलो वारिकेषु च । निन्य मिथिलां गमयानृभिः पार्थिवेन च ॥५३॥  
 उत्तमोत्तमः पूज्य लोकवामभ्य गायकम् । रामोऽपि गमयामास लोकाभिर्नृपतिं तदा ॥५४॥  
 धामं पृथुमिर्जनकजा लक्ष्मी श्रीगन्धर्वलक्ष्मा । लग्नाभ्येकदशे ययौ रजोयुक्ता यभूव ह ॥५५॥  
 तदा तर्जुनकः भूत्वा पृथ्वीधिर्मन्त्रिभिः सह । अयोध्यामगमच्छ्रीं राजा प्रपूज्यगन्ध तम् ॥५६॥  
 परस्परं वसन्तिभ्य माकेनमिधिकाधिपौ । नृन्मवाचममृन्माहैर्मयोध्यां विविशुः सुखम् ॥५७॥  
 ततो महावसन्महैर्नानामंडपनोरणैः । कटलीम्भमानाभिर्भिलुङ्गैः सुचामरैः ॥५८॥  
 अतर्जुम्यण्डपैश्च शट्पाथैः मर्दपैः । किकिणीञ्चालपौषैश्च विनानदीवरजिभिः ॥५९॥

बोले कि लेका कहकर प्रतिने राजाकी पूजा को और कह विना किया । राम महाराजा आनिद्वन्द्व करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य सम्प्रा ॥ ४३ ॥ तब राजा दशरथ अपने पवित्र अपनी सेवाके साथ पुरंदार तथा अटारिगमे गये और रामकी अयोध्यापुगीको गये । ४४ ॥ राजाका आगमन सुनकर भक्तिभयों तथा पञ्चामियाके वनाकाओं तथा नगरोंमें गगनेको राजा तथा महोपर चन्द्र विहकवाकर नृत्य और माणिक्य मात्र गाँवके साथ मधुगुप्त राजाको नगरमें गे अथ ॥ ४५ ॥ ४६ । रामकी आरा जनिक मन्त्रों अपने बाल्यकोका कमरपर उठाकर पुरंदार तथा अटारिगको पस्त्रिबोपर जाकर सड़ा हो गयी और अपने हाथसे उत्तर मुवर्ण-पुष्पकोकी वृष्टि करने लगी । कुछ मित्रगो पार्थ से भगवत्पूजक करके और कुछ माणिक्य दीप लेकर रास्तेमें भागने लगी हो गयी और कुछ राजमादोंमें जगह-जगह मन्त्रिकों आगनी आगसे रामके सहित राजाकी पूजा करने लगी ॥ ४६ ॥ ४७ । इस प्रकार अनेक उत्सवोंमें पुन वैष्णवोंके नृत्य तथा नगाडोंके गानों एवं गाँवकोंके गाँवोंके साथ मन्त्रिकों द्वारा लोके मित्रों द्वारा को दिया पुनःपुनः आकादिस तथा सुन्दर धमरोंमें बीजगमाय हुए हुए राजा दशरथ अपने मित्रिभ्य गये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तदनन्तर कश्च, कन्दुवार, कश्चानादि बाहन तथा वाजन आदिमें राजा जनकके मन्त्रियोंका मन्त्र करके उन्हें मिथिला भेज दिया ॥ ५० ॥ इस प्रकार राजा जनक उत्तम उत्तम उत्सवोंमें रामका उनकी सेनाओं तथा राजा दशरथकी मिथिलापुगीमें सुलले गे ॥ ५१ ॥ राजा जनक रामको सदा सन्तुष्ट राखनेकी चेष्टा करत थे । राम भी अनेक स्त्रीपुत्रों द्वारा राजाको आनन्दित करने थे । सुन्दरी तथा शुभा जानकी रामसे छः महेंता छोटी थी । विष्णुके ग्वाहृवें वर्षमें वे राजस्वना हुई ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ यह समाचार सुनकर राजा जनक अपनी स्त्रियों तथा मन्त्रियोंके साथ अयोध्या गये । राजा दशरथने भी उनका भगवानों की ॥ ५५ ॥ अयोध्यागति तथा मिथिलाधिपति दोनों परस्पर जी भगवत्पूजक मिले । तदनन्तर नृत्य वाद्य आदि उत्सवपूर्ण सुखसे अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ ५६ ॥ पञ्चान् विविध मण्डपों, तौरों, केचक स्तम्भों, पुष्पोंकी मालाओं, ईजक दण्डों, चामरों, चार दरवाजोंके लण्डों, पण्डा-वर्द्धिवाचक शब्दों, छंदा छंदा घण्टियोंके समुदायके शब्दों, शीशों, चंदों तथा दीपपत्तियों द्वारा



स्कटिकस्य च लिङ्गस्य कर्मणाम् यथाविधि । लोकानां शिष्यार्थाय कृत्वा पूजनपूजनम् ॥७७॥  
जानक्या दत्तपद्मानन्देद्यादि ममर्ष्य च । ब्राह्मणान्पूज्य दानाद्यन्तोष्य कृत्वा तदाशिवः ॥७८॥  
तुलसी च गुरुं घेतुमशक्यं मुनिपादपम् । पूजयन्वा रविं देवं ब्रह्मपूजं विधाप्य च ॥७९॥  
गुणोन्मुखं च परागर्भा कथां श्रुत्वा तु सीतया । गुरुं पुनः प्रपूजयत्य बन्धुभिः परिवेष्टितः ॥८०॥  
प्राग्वन्तश्च मुदुः पन्नयन् ब्राह्मणैः परिवर्तितः । नातिकूलकषिण्याग्रगुणभानम्बुदादितमैः ॥८१॥  
स्वर्जनिप्रापयमाद्यैः एकान्तैर्घृणपाशिवैः । उपाहारं सुखं कृत्वा ताम्रं पारंगुणं च ॥८२॥  
दिव्ययस्त्राणि मंगुलान्पूज्यऽऽदर्शं निर्जं मुरम् । निर्गन्धिनश्च चंद्रयाऽऽरुह्य स्वयं दत्तपूजनम् ॥८३॥  
वेष्टिता मन्त्रिदूतार्थैर्नृपनिगूःमम् । पादगोहं नतो गन्वा ना, प्रणम्यार्चनं मनः ॥८४॥  
मध्या प्रदक्षिणां कृत्वा यन्वा राजगृहं प्रवे । निहामयस्यं राजानं कृत्वा शिष्या तदाश्रया । ८५॥  
योग्यार्थैर्यनेकानि कृत्वा गङ्गा विमर्जितः । ययौ स्वयं दत्तमाश्रय्य नृपं कृत्वा पुनः पुनः ॥८६॥  
तूर्यगंतनिनादं च नर्तनं वारिपोषिताम् । ययौ स्वयं गुरुं रामः स्वयं दत्तवत्सलं च ॥८७॥  
भूमिज्जादत्तपादाभ्यां चमनायामनादिकम् । गृहीत्वा तद्वडिगोत्रं कृतं वत्सं न्यवेदयन् ॥८८॥  
सरं वृत्तं कौतुकेन हस्यगोत्रादिप्रगल्भः । स्मरित्वा भूमिकन्यां दिव्ययस्यादिभूषिताम् ॥८९॥  
नतो सन्वाह्यमये सगन्वां वाऽथ मथति । स्नान्वा माध्याह्निकं कर्म चकार स्थनदना ॥९०॥  
निर्व्यं यत्र करोन्स्नानं मरुगुनिर्मले जले । नदाख्ययाऽभवत्तूर्यं गमनीयमिति स्पृष्टम् ॥९१॥  
तद्विष्णुं त्रिशुने चंद्रमसि विश्रवतः । माध्याह्निकं च सपाद्य ब्राह्मणपौत्रैर्विभज्जतः ॥९२॥  
इष्टं सुवर्णपात्रेण विषदाम् घनेषु च । परिष्कृतेषु जानक्या सीतया गनितैश्च वान ॥९३॥  
कलत्रकणमजीर्णमिकिर्णान् पुनरिषु । नदन्त्य मंजुन चक्रं राघवं दत्तपूजितः ॥९४॥  
करगुह्यं विधापय्य भुक्त्वा ताम्बूलपुनमम् । नतः दत्तपदे गन्वा निर्गं कृत्वा तु सीतया ॥९५॥

पुनरिस्त्राणि मगध लब्ध्वा सुस्त्राणि मद्रिम् धनुर्गोष्ठीं करं पुनः श्वेत्पुन्याऽथ बहुभिः ॥९६॥  
 पुनरागमोद्यानकं दानं दृष्ट्वा तु कानुकम् च । राधयः पतननश्चगन्वा स्वार्थं गृहं पुनः ॥९७॥  
 मायंमध्यादि मध्याद्यं पुनर्दृष्ट्वा मयिस्त्रिभुम् श्रुत्वा भवत्या पुनः पूज्यं कृत्वा चैवापहारकम् ॥९८॥  
 गन्तकांचनमणिवपनिर्मितं संचके चरं दिव्यशामादनम् च मयं मानया स्तुनायकः ॥९९॥  
 हास्यमानांविनोदयान्द्रा चक्रे ततः परम् । एव नानावसुधमर्हनिनायाकममाः सुखम् ॥१००॥  
 एकदा राधयः राज्ञा ज्ञात्वा सुहृन्वाक्यतः । चापहृन्वाक्यतश्चापं चारित्र्याप्यमानुषः ॥१०१॥  
 माताचार्यायणं विष्णु मन्त्रादृषद्भुक्त्वेन । पश्यन्तु राजधनेनैव हार्दं भवं विधाय च ॥१०२॥  
 रामं नामाणकम् हि भूयस्हरणाय च । मत्ता जाताऽस्य तं लोकं वदन्त्यज्ञानबुद्धयः ॥१०३॥  
 भनः पृच्छामि ते राम मयया माहितम्नव किंचिच्छेनापदजनं नाजयाज्ञानज्ञां मतिम् ॥१०४॥  
 रागव्यादिगेषु त्वयि नैवोपशम्यति । तन्निस्तु ननं श्रुत्वा गजानं राधनोऽन्वर्त्त ॥१०५॥

धोराम उवाच

मृषा गजानं प्रवक्ष्यामि तव ज्ञानार्थमुत्तमम् । पृणोतु मम मानसं कौमल्याऽपि तव प्रिया ॥१०६॥  
 नश्यत् भामते चैनदविद्यं मायाद्वयं नृप । यथा शुक्रो गीर्धमानः काचभूम्या जलरूपं च ॥१०७॥  
 यथा गजो मर्षमायो भृगुर्नये जलरूपः । तद्वदन्मनि भामोऽप्य कल्प्यते नश्यतोऽनुर्थः ॥१०८॥  
 प्रज्ञानदष्टिर्भानस्य मन्यते न तु पांडितः । आत्मा छुट्टा निन्येर्लोकः सच्चिदानन्दभ्रमः ॥१०९॥  
 पम्पाशाक्षेन विश्वेशा व्रजाद्याः सकला वयम् । स्थित्युत्पत्तिविनाशार्थं नानारूपाणि मायया ॥११०॥  
 वाचते नटवद्राजन्त तेष्वामक एव मः । यथा पद्मं न स्पृशति जलं मायां तथा मलः ॥१११॥  
 आत्मा निन्यो न स्पृशति परमानन्दप्रदः । वेदागाग्नुर्माषु मामकेति च या मतिः ॥११२॥

तथा तस्मात्स्वभावः लोचनं दृष्ट्वात्मा ज्ञातुं साक्षात् साधु भोराम करत ये ॥ ९५ ॥ फिर वस्त्र पहिन तथा

नां तां हिमं वसुधायणं नवर वस्त्रजं का मायं रत्नपरं सवारं हाकर बुद्धिमानं वगैराचार्य इत्येतं, भाग्य

तु न गायनं सुखं तथा न च द्रव्यं दृष्टं पुनः अथन परं वा नास्त्येवादि नित्यं कर्म करत और

मायं दृष्टं मयं भविष्यति भविष्यत्का पुनः करत ये सा कल्पका भोजनं करत गन्तकानन तथा मायन

मनः इत्येवमदिष्टं महत्त्व साक्षात् साधु दृष्ट्वात्मा तथा विनस्पृशतं गयनं करत ये । इस प्रकार

न गयने सुखप्रदं बोरु वयं वंत्तं यत् ॥ ९६-९७ ॥ एक समय सुनि दृष्टं तथा गुरु वंत्तं वंत्तं वंत्तं

और रामक वंत्तं वंत्तिका देव राजा दृष्ट्वात्मा रामका मायं नृ नामाण समसकर एकान्तं वंत्तं वंत्तं

ध नभाव तथा विनस्पृशतं दृष्टं लगेना ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इत्येवमं वंत्तं वंत्तं मायायण हा नृमन भूमि

धार इत्यं कल्पक ज्ञात मर धर अज्ञान ज्ञिया है गय अज्ञान दुक्त वंत्तिका लगे कहत है । इस कारण

है राम । तुरन्तये मायासे मोहेन ये वंत्तना करत है कि त्वं ज्ञातका उपदेश टकर मेरा अज्ञान दूर कर दे

॥ १०३ ॥ १०४ ॥ इत्येवमं वंत्तं वंत्तं गुरु आदिम भोरु मेरा बुद्धि कर्म ज्ञाति तथा मयका अनुभव नहं करत ।

मिताके हम वंत्तका मंत्तकर राम राजा दृष्ट्वात्मा ज्ञान/ १०५ ॥ धोरामने कहा - हे राजन् । मैं आगया —

ज्ञ नलाभक ज्ञि उत्तम उपाय देता हूं । तमे आद्य तथा आद्यका प्राणायाम और मेरी माता कौमल्या भी ध्य नसे

मन ॥ १०६ ॥ हे नृप । मायासे उत्पन्न यह समस्त सत्त्व आत्माय त्मो प्रकार मूत्र माहित होता है जैसे

कि मीमांसा सारा, रत्नमे जल, रत्नमे मीमांसा तथा भूमिमायिकाय मलिन माहित होता है । अज्ञानों लग

वत् आभ सको धी नित्य तथा अज्ञान समजने हैं परन्तु दृष्टित माय तो इससे विभक्ते ही मानते हैं । उनके

मनम अरमा बुद्धि नित्य तथा सच्चिदानन्दस्वरूप है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उनके अज्ञानसे समस्त ज्ञिके

स्वामी ब्रह्मादि स्या हम मद्र प्राणों मायाके अपान हाकर जगत्का मियति उत्पत्ति तथा विनाशक ज्ञि नटनी

तर्ह विविध रूपाको धारण करने है किन्तु आत्मा स्वयं जिस म आभन नही होता । जिस प्रकार कमल

एव जलका स्पर्श नही करता उसी प्रकार असक, ज्ञि और परम आनन्दस्वरूप आत्मा भी मायासे निर्विज

उपसंहृत्य बुद्ध्या मन्यम्य ब्रह्मणि चिह्नते । यद्यनिकनिष्ठायनेऽथ नचन्मारायणममम् ॥११३॥  
 एवम् त्वं सधर्मावन मुच्यसे भवमकटान् मन्य शीत्वं दया जातिः क्षमा चेद्विगनिग्रहः ॥११४॥  
 अहंसा भवतु ते 'क्त'दमाराधनुषनम इत्याद्या ये गुणा राजन मान् भजस्य तिरंगम् ॥११५॥  
 रीर्यं द्युतं विशद च मान्यर्थे दंसमय च । शीरे तंभं भय त्रं च शोक निषवर्तनम् ॥११६॥  
 चेन्विप्रयत्नानां च सत्पुना मानभजनम् । निदा पेशुन्यमानश न्यत्र दूर स्वनी नृप ॥११७॥  
 त्वं स्वया नपस्तम् पुनस्व यर्षधन मम तस्मद्भानोऽस्म न्यचोऽह कोपन्यायानृपो नम ॥११८॥  
 यन्मया कथ्यते चैन्द्रीनमस्तन अतम् । सापत्नोऽपि प्रयत्नेन कथनीय न कुत्रचित् ॥११९॥  
 नशमयचनं धृत्वा त्वात्पादला नृपः । सङ्गजपरिपूर्णम् गोमाक्षितवपुषः ॥१२०॥  
 प्रणमाम राधवम्य च । बृहभावनः । तला रामः पुनः प्रह पित्रं निर्दलाशयम् ॥१२१॥  
 नेद पश्य न्यया र जन्तु नदनादि शिशु मने कायया लातेभ्य मम उपशमकाशणम् ॥१२२॥  
 ननुमव च मां नित्य भज नोवन गावाम् । मन्त्रिस्तो मदनपाणो मणि भक्ति ददा कुरु ॥१२३॥  
 इन्दुकवा पिनेगी नत्या गृहान्वाजा नयोः प्रभुः । यर्या कथमगाहः श्रुतामः मनिकेननम् ॥१२४॥  
 कदा सातुर्गुहं गत्वा सीतया भोजनं व्यवधान् । कदा आगृहेत्येव कदा पत्नीः पितुः स्वयम् ॥१२५॥  
 कदा दशरथं दातुं भोजनार्थं निजे गृहे । भार्यापुत्रादिभिर्पुत्रं पर्यावरणं ममन्विनम् ॥१२६॥  
 कदा रामः समाहित्य भोजयामास मादरम् । श्रुतामदशेवार्थं ते तपोवननिवायिनः ॥१२७॥  
 अयोध्यानगरीमन्य द्वारपरिनिषेधताः । शनैः प्रत्यहं रामं दृष्ट्वा स्तुत्या पुनः पुनः ॥१२८॥  
 आनिध्यं गृह्णाथस्य गृहान्वा तुष्टमानसाः । ममपचादनान्येव इस्थन्वा पुष्पकथादिभिः ॥१२९॥  
 रमयित्वा ग्यानाथं जपुः स्वं स्व वराश्रमम् । यत्र यत्र हि ममस्य प्रानि जीन्वा विदेहजा ॥१३०॥

पृक्तं हे । अहंसा पुनः स्वा साध्यास ममया ह्येवम अन्तः प्रम नोऽपि द्वार, ममस्त प्रवनाभवा छात्र-  
 कर यत्र जा ह्यमने मयार हे उसयो चिपन ह्यस अभिज्ञ सा, यत्र मने ज्ञान तथा जो रश्चरको मवय  
 भात दसैकर आय इस भवम पुनः पुनः हो जायम । हे राजन ! पहले ज्ञान मयभावन, पवित्रता, दया  
 शान्ति, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, अहंसा, भगवद्भक्त तथा इतने मयार प्रवृत्तन अदि गुणाकी निरालर आका  
 र ॥ १०६-११५ ॥ इ नृप शीर, दुःखा, दुःखी, पीषणर मन्त्र, लोभ भय, दास ज्ञान निमन्याय कामम  
 दृष्टि, नद-विप्र साधु रुन्यास आदिक, मानभ, निन्दा और चुल्लानकी आदिना अपन पिता दूर कर द  
 ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ इ नृप आपन पुनःकायम लय करक पुनः, पुनःकायम लोका था । इसी कारण से आपके  
 द्वारा कोसल्याक ममसे पुनःकायम मायमाद हुआ है ॥ ११८ ॥ वह जो मैंने आपकी आज्ञाकारी मने नम वचन-  
 दाना उपदेश दिया है, उसे आप ज्ञान मनम हो मन्देगा किमासे बहिरगा नही ॥ ११९ ॥ रामके इस  
 उपायका भूतसे ही राजाके मनस मायावृत्त भाद दूर हो गया और सङ्ग वसे परिपूर्ण तथा गोमाक्षित मरीर  
 र कर हृद भानभावसे राजा दशरथने रावक चरणार्क करन, की । इस प्रकार निमल त्रयच ले पितासे  
 राम फिर कहते लग - ॥ १२० ॥ १२१ ॥ हे राजन ! एक प्रणाम करनी आपका अनित नही है । मायासे  
 मनुष्यदह्या की मरा इससे उगहात हाण । इस कारण भव सदा अपहरभावम मनम हा मंग भजन किया  
 कर । मन तथा प्रणको पुनः भयण करके भेगे हृद भक्ति कर ॥ १२२ ॥ ऐसा कह तथा माता पिताकी  
 आज्ञा लेकर औरामने उनकी नमस्कार किया और रथपर सवार होकर अपने भवनका बन गये ॥ १२४ ॥  
 वे सीताके साथ कभी माताके महलसे आकर भोजन करते, कभी माद्योंके भवनसे और कभी पिताके साथ  
 वलिभ बेटकर भोजन करते थे । कभी पिता पुत्रो ब्राह्मणों तथा नायिकोंके साथ पिता दशरथको अपन भवम  
 बुलाकर सादर हृदयपूर्वक भोजन कराते थे । प्रान्दित सैकड़ोंकी सख्यासे भक्तोंसे भुजिजन भी श्रीरामचन्द्रका  
 दशन करनेके लिये अयोध्या आते रहते थे । वे विना रोकटोक भानर जाकर रामका दर्शन तथा स्तुति करते  
 और रामके द्वारा किये हुए सत्कारको ग्रहण करके प्रसन्नतापूर्वक बीच-सात दिन सही रहकर अपने-अपने



तस्य चकार सा साध्वी हास्यक्रीडाभनादिकम् । विवाहानन्तरं रामः ममा द्वादश सीतया ॥१३१॥  
 रमयापास साकेते महाक्रीडाभुजःसम् । महस्रवर्षविज्ञेयं श्रेष्ठ वर्षं कृते पुणे ॥१३२॥  
 शतवर्षं च त्रेतायां द्वापरे दशवर्षजम् । कलेमानेन चोद्धृत्य शुन्यद्वारान्निधिकमान् ॥१३३॥  
 एवं श्रीरामचद्रेण भोगा श्रुताः सुगेषमाः । पश्मिन् श्रुतौ च यदुद्धृत्य फलपुष्पादिकं शुभम् ॥१३४॥  
 नत्सर्वं सर्वदेशमाद्रामे साकेतमस्थिते । अनावृष्टिर्न वै कुत्र नस्कराणां भयं न हि ॥१३५॥  
 हिमार्दानां भय नार्सादयोध्याविषय प्रिये । युधाजिनाय केकेयीभ्राता मग्नमातुल्य ॥१३६॥  
 निनाय भरतं स्वर्ग्यराज्ये शत्रुघ्नमश्रुतम् । कौतुकेन नृपं पृष्ट्वा केकेयीं प्राणिपत्य च ॥१३७॥  
 एवं रामस्य मागल्यं बालन्वेडापि सुखावहम् । वे नृध्यात् नरा भक्त्या न नेषामस्त्यमगलम् ॥१३८॥  
 एवं यथा त्वया पृष्टं तथा सर्वं मयोद्दिनम् । रामेण चरितं यच्च नृणां मागल्यदायकम् ॥ ३९॥  
 एवं गिरौद्रजे प्रोक्तं बालर्लालादिकौतुकम् । रामचन्द्रस्य संक्षेपात्तत्र ग्रान्त्य सुखावहम् ॥१४०॥

इति श्रीमत्काटिरामचरितातर्पणे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

रामदिनचयावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामका दण्डकवनमें प्रवेश )

श्रीशिव उवाच

एवं त्रेतायुगे रामं नगयां सीतया सुखम् । क्रीडत नारदोऽर्केन्द्रे ययावाकाशवर्त्मना ॥१॥  
 अथ रामो मुनिं पूज्य सीतया लक्ष्मणेन च । शुश्राव वचनं तस्य सुरैर्विज्ञापितं च यत् ॥२॥  
 निहत्य रावणं युद्धे ततो राज्यं कुरुष्व हि । अंगीकृत्य रघुश्रेष्ठस्तं मुनिं च व्यसर्जयत् ॥३॥  
 अथ रामोऽब्रवीत्सीता मम राज्यमभिषेचनम् । कर्तुं कामोऽस्मि तत्राहं विघ्नमुन्पाद्य दण्डकम् ॥४॥

अधमको भले जाते थे । जो काम करनेसे राम प्रसन्न होते थे, पतिव्रता सीता उन-उन हस्य-क्रीडा तथा भासनादिका विधान करती थीं । विवाहके बाद रामने बारह वर्ष तक सीताके साथ अयोध्यामें आनन्द पूर्वक विलास किया । कलियुगके हजार वर्षोंके बराबर सत्ययुगका एक वर्ष जानना चाहिये । कलियुगके सो वर्षोंके बराबर त्रेतायुगका एक वर्ष और कलियुगके बारह वर्षोंके बराबर द्वापरका एक वर्ष होता है ॥१२५-१२७॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रन बारह वर्ष तक देवताओंके योग्य भोगोंका भोग । रामचन्द्रजीके अयोध्यामें रहते समय जिस ऋतुमें जो पुष्प-फल आदि होना चाहिए, वह सब नियमसे उत्पन्न हुआ करने थे । कभी अनावृष्टि नहीं हुई और भरोका भय नहीं रहा । हे प्रिये पार्वती ! उस राज्यमें कभी किसीको हिसक पशुओंका भय नहीं हुआ । एक दिन युधाजित् नामक केकेयीका भाई तथा भरतका मामा बड़ा आया और राजासे पूछतया केकेयीको मनाकर शत्रुघ्नसहित भरतका अपने राज्यमें ले गया । ॥१३४-१३६॥ बाल्यावस्थामें ही मङ्गलस्वरूप तथा सुखदायक रामके अरिदको जो मनुष्य भक्तिभावसे सुनता है उसका कभी अमङ्गल नहीं होता । ॥१३८॥ इस प्रकार मनुष्यमात्रके लिए कल्याणकारी श्रीरामचन्द्रका चरित्र मैं तुमको कह सुनाया ॥ १३९॥ १४०॥ इति श्रीमत्काटिरामचरितातर्पणे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये बालचरित्रे भाषाटीकराया सारकाण्डे रामदिनचयावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीशिवजी बोले—इस तरह अयोध्यानगरीमें सुखपूर्वक सीताके साथ क्रीडा करते हुए रामके पास बारहवें वर्षमें एक दिन आकाशमार्गसे नारद मुनि प्यारे, १॥ सीता तथा लक्ष्मणके साथ रामने मुनिकी पूजा की और उनके मुखसे देवताओंका यह संदेश सुना कि आप पहले रावणको मारकर पश्चात् राज्य करें रघुश्रेष्ठ रामने भी 'बहुत अच्छा' कहकर उद्द विदा किया ॥ २॥ ३॥ तदनन्तर राम सीतासे कहने लगे—हे सीते

गच्छामि गयपादानां वधार्थं लक्ष्मणन च । अगच्छायां वमत्र न्यं कौमल्या पारिव भक्त ॥५॥  
 नदीमवचनं श्रुत्वा प्रणिपत्य गच्छनमम् उवाच सा वारुणं वनं मां त्वं नय प्रभो ॥६॥  
 कौमल्या नृवं त्रैलोक्यं मति तानि वदाम्यहम् । मन्त्रवयं प्रयाणं मे दंडकं हि श्रुत्वा सह ॥७॥  
 धनप्रयाणं मामाह भर्ता मे कन्यकामिहजः । वानजं कौमल्या मे दृष्ट्वा कश्चिद्विजयप्रणीः ॥८॥  
 अन्यन्मनसोऽपि पूर्वं गुरानपि मयादिदम् । बडा चापानिकं शायः यज्जितुं न्यं मयागण ॥९॥  
 चतुर्दश वनमराणि मुनिपुत्रपुत्रवर्तिना । विचित्रिष्याम्यस्येह धनुः मज्जं करोम्वयम् ॥१०॥  
 तन्मन्य कुत महावयं प्रयाणादंडकं न्वयाः । अन्यच्छुन मया पूर्वं गयानमनुनमम् ॥११॥  
 तत्र मीनां त्रिनां गयो न गतोऽस्मि हि दंडकम् । तस्यान्वं मां गृह्येष्टं दंडकं नेतुमर्हसि ॥१२॥  
 नम्योनावचनं श्रुत्वा दक्षिणैर्विद्वोऽब्रवीत् । विहस्य गच्छः श्रमात् सवाल्लेख्यं विदेहजाम् ॥१३॥  
 अथ राजा दशरथः श्राममस्यामिपेचनम् । वावर नृपदे कतुमुपुक्तः पादं वै गुरुम् ॥१४॥  
 यथैवगच्छपदे राममभिषक्तं त्वमहाय । तद्वाजवचनं श्रुत्वा गुरुर्दशरथ नृपम् ॥१५॥  
 कौमल्यागृहमानीय बोधयामास वै गदः । राजन् नृणु न्यं कौमल्यामुमित्रं गृणुतं त्रिमे ॥१६॥  
 श्रवणस्य वधार्थं हि रामः श्रो दंडकं यनम् । गमिष्यात लक्ष्मणेन मीनरा कैकयीवरम् ॥१७॥  
 तस्यान्वमवचनं पर्या मभागनभिवचिनुम् । कायस्य मुमंत्रेण ममाहूय नृपादिकान् ॥१८॥  
 आशमविहताद्राजन् नाक्षणम्यापि क्षाप्तः । अचिरादेव स्वर्तुं न्यं यमिष्यमि पार्थिव ॥१९॥  
 कामिष्वेथ रामराज्यान्मरं पश्यतु वै पुनः । अनास्थाद्विमानम्यन्त्रं पश्यमि महोत्सवम् ॥२०॥  
 दुर्लभा भाविनी रम्य ब्रह्मदीप्ता नृशेखर । इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं तेन राजा सभां वर्या ॥२१॥  
 रामराज्याभिषेकाय समारम्भकरोन्मृदा । दूतां आर्यामाम नृपान् दशरथस्तदा ॥२२॥

पितृजी मेरा राज्याभिषेक करना चाहते हैं, वरन् मेने उनसे बिछन राजा करके गवय आधिकः सायनक लिए लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्य जानेवाले हैं। तब य. गृहपर माता कौमल्याका और महारानीकी सेवा करती ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामकी यह वचन सुनकर राजा नृपतेन रादक वरुण पर गिर पड़ी और बहुत पधुर वचन बोली—इ प्रभा ! मुझ भा अन्ते ताय वनक ले चलिए ॥ ६ ॥ इसमें लोच कारण है । उन्हे मे वनना है । एक ही यह कि अन्त्यवस्था में मेरे हावका गवा दण्डकारण्य जाने राजा के कि तुम अपने दंतिक साथ बचवासे करोगी । मा आपकी साथ वनम जानेसे इस ब्रह्मदीप्ता कीत सत्य है जायवा ॥ ७ ॥ ८ ॥ दूसरा कारण यह है कि जब आप सभाके बीच स्वयंवरन समय घुष सशस्त्रि चले थे । तब मेने देवताओंसे प्रार्थना की थी—हे देवताओं ! यदि राम पुत्र वरुण लो के शीघ्र नय तक मुमिष्टिनि जाय करके वनप विचरण करेगा ॥ ९ ॥ १० ॥ अतएव आप मुझे वनय ल जाकर मरी प्रणिजका भी मया वनम । मगरा कारण यह है कि मेने सर्वोत्तम गमायन महाजणम यह मुवा है कि मीनाक बिना राम अब तकभी वनय नहीं गये । सो आपकी मुझे दण्डकारण्यम साथ ले चलना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ मीनाके उचन मुनकर गमन उनका मालिङ्गन करके "नपातु" कहा ॥ १३ ॥ इधर राजा दशरथ रामका गुरगजपदपर भणिक करतवा निश्चय करके गुरु वमिष्टत कहा कि आप श्रीरामका युव गमपदपर अधिपक कर । इस बातको सुनकर वे राजा दशरथका कौमल्याके प्रवचन ले साथ और एकान्तम कहने लगे— ॥ १४-१५ ॥ हे गमम् । आप तथा मे कौमल्या और मुमित्रा मेरे वचनको सुनें । राम केन्द्रीक वरुण मीना तथा लक्ष्मणको साथ लेकर राजाकी मन्त्रेक लिए कल हा दण्डकारण्य अले जायेंगे ॥ १६ ॥ इसलिय अन्जानकी मरु अ प चुपचाप रामका अधिपक करनेके लिए मुमन्त्रक कहकर तब नामची भेजवाए और समस्त राजाओंको निमन्त्रित कीए ॥ १७ ॥ हे पार्थिव ! श्रीरामके विरुद्ध तथा गृहणक गारसे आप कीष्ट स्वर्ग सिधायन ॥ १८ ॥ बादमें कौमल्या रामके राज्यात्मनको देखेगी और स्वर्गीय विमानसे कैटरर आप भगदरिसे वह उत्तव देखेगी ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! भविष्यकी रक्षा ब्रह्मादिकोंके लिए भी दुःखनीय होती है । गुरु वमिष्टत यह वचन

कपोतशः मयाद्रमुर्नानाभमन्निवाभिनः । नगरीं शोभायामासुर्नानाभिन्नपञ्चोत्तमैः ॥२३॥  
 वनाकाभिरुगणैश्च हेमदृम्यमनोरमैः । गुम्फाहारायाम मुमद्य नृपमणिषम् ॥२४॥  
 यः प्रभाने मध्यकाले कन्यकाः स्वर्णभूषितः । निष्टुन्तु षोडश गताः स्वर्णगन्तदिभूषिताः ॥२५॥  
 चतुर्दन्तः मयाशानु ऐरणनकुलोद्भवः । नानार्ताधोदकैः पूर्णाः स्वर्णहस्ताः सहस्रशः ॥२६॥  
 स्थाप्यतां तत्र वैद्ययज्ञमणिं क्रांति वा नव । श्वेतच्छत्रं गन्तव्यं मृत्कामणिगिराजितम् ॥२७॥  
 दिव्यमाल्यानि वस्त्रादिदिव्यान्वाभरणानि च । मूनयः संस्कृतास्त्र निष्टुन्तु कुक्षपाणयः ॥२८॥  
 नर्तकशो चारुमन्याश्च गायका वैदिकास्त्रया । नातावादिषदुक्ता शङ्खयुक्ता नृपांगणे ॥२९॥  
 हस्तयज्ञयज्ञाता सहस्रिन्नु मायुधाः । नगरे गानि निष्ठुनि देवनायननानि च ॥३०॥  
 तेषु प्रवर्ततां पुत्रा नानावर्तिभिर्गायताः । राजानः शोघमापान्तु नानोपायनपाणयः ॥३१॥  
 ह्यादिदप रमिष्टुन्तु रथेन मृगनन्दनम् । गन्वा मन्थानिनस्त्रेण सर्वं हृषं न्यवेदयन् ॥३२॥  
 निधितवावरुक् गाय यो गमिगसि ददकात् । चतुर्दश मयास्त्र निष्ठुन्तु मदन्य गवणम् ॥३३॥  
 वधुना मोक्षया सार्वं नतो गजपं कमिष्यामि । लौकिकं श्रुतमादित्य स्त्रीकुरुष्व पितुर्वचः ॥३४॥  
 अथ त्वं तीक्ष्णया मार्पमुपवामं यथाविधि । कृत्वा युविर्भूमिश्चारी भव राम त्रिनेद्रियः ॥३५॥  
 इत्युक्त्वा रथमकुरु दृष्ट्वा राम मन्त्रक्षणम् । जानकीं चापि यं गुरुर्षयी गजगृहं पुनः ॥३६॥  
 कीमल्या च सुमित्रा च रामगज्याभिषेचनम् । मृगार्जपं धुन्वा श्रागुगोरास्वान्त्रेद्रममन्त्रिने ॥३७॥  
 यस्तुः पूजनं देव्यान्त्रिद्रिजोपशमगृहे । इतिदानं शान्तिपाठमृनिद्रममन्त्रिने ॥३८॥  
 अथापगच्छे सौभर्या दास्यां पुत्रीं तु मयरा । शोभितां नमरीं दृष्ट्वा पृष्ट्वा दृष्ट्वा यथि स्त्रियाम् ॥३९॥

मूनकर राजा दण्डवत् सभाय गये ॥ २३ ॥ वडा मन्त्राच रामक राजाभितकक वास्ते सब सामग्री बुटचार्य  
 और प्रमत्ततापूर्वक दूताया भेजकर राजाआका रत्नवाण ॥ २४ ॥ उस समय आभरमोमे गृहेवाले अनेक  
 मन्त्राभर भी वही आ पत्र व दूताने चित्र कीचित्र छत्रा, पताका और लारगोन नगरीको मजाग ॥ २५ ॥ गजान  
 ॥ नगर उत्तर तथा मन्त्रेद्र मन्त्रक बल्लभ मन्त्रिज जिने गये । राम देखि न मन्त्रो मन्त्रक आका रं कि  
 च सबर ही सुनकर बल्लभमोमे अलकृत केलाग और चार चार गलाकल लेगवत कुंठम उपपर मृगन तथा  
 रानो अदिम अलकृत सोलह हर्ष मन्त्रकजय उपस्थित रहन अहिसे वही अनेक लीचोंके जन्तसं दमिपूज  
 मन्त्रक ॥ २६-२७ ॥ तन या नौ बंधुवर, मन्त्री और मन्त्रगाम सुशोभित रत्नजटित दण्डवाले छेत लच  
 पत्तर, मन्दर मन्त्रक, मन्दर बन्ध तथा दिव्य आभूषण भी लैगव ॥ २८ ॥ राम आदि मन्त्रागोमे मन्त्रुत  
 न नजन हाथमे वृत्ता स्थित दृष्ट लैगव ॥ २९ ॥ ३० ॥ ननकिच केवारी, गायक, वैद्योष करमन्त्र विद्र तथा  
 मन्त्र प्रकार राजा बहानमे कुगर शिल्पा मिलकर राजमन्त्रक सामन माना-बजाना प्रारम्भ कर ई ॥ ३१ ॥  
 राजा, राजे, रथ और दण्ड मन्त्र बन्ध चारण काके वाहर लई रहे । नगरन वही वही देवान्य है, वही-वही  
 मन्त्रक सामन्त्रियोले प्रेमपूर्वक पूजा का नाच और सब राज मन्त्र लेनेकर उपस्थित हो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इन  
 मन्त्रक वामिद्र रथपर मन्दर हार् और मृगनन्दन रामक पास गये । रामन उनका आदरपूर्वक आमन स्थित  
 मन्त्र बुनि ले उन्हें सब मन्त्रान्न मन्त्र व दृष्ट कला — ॥ ३२ ॥ हे राम । तुम निर्मितनाम हो । वल्ल तुम दण्डकवनको  
 जाने आओगे । वही चीनहु सर्व रत्नकर गलाको मन्त्रगे । उनके पञ्च भई मन्त्रमण तथा मीनाके साथ  
 दण्डतापूर्वक राज्य करण । मन्त्राच मन्त्रावहार निधानक लिए पिनाक बचनको मान ओ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥  
 मन्त्र तुम मीनाक साथ पवित्रतापूर्वक विधिवत् बहाकर रह और पृथ्वीपर गयन करो ॥ ३५ ॥ ऐसा कह  
 और राम-दण्ड तथा काल से मिलकर गुणदेव रथपर सवार हुए और वहीसे राजमन्त्रको बल दिये ॥ ३६ ॥  
 मन्त्रान्न कीसन्ध्या और सुमित्रा गुरुद्वक मुनसे रामक रज्याभिषेकको मृग मूनकर भी स्नेहवत दिव्योको  
 मन्त्रकी हस्तमे मुनियोकी मन्त्र मन्त्र पूजाहथो तथा शान्तिपाठसे देवीका पूजन करने लगी ॥ ३७ ॥ ३८ ॥  
 रामहृके समय छत्रपर लड़ी दासीपुत्री मन्त्राने नगरको सुशोभित देखकर रामकी एक बुद्धियासे इसका

भुन्वा भ्रामगगज्याधौ ययौ केकेन कैकयम् मयै वृत्तं निवेद्याय तूष्णीमामीत्तदा क्षणम् ॥४०॥  
 न च द्रुत्वा कैकयी चापि नय्यै भूणमप्ययन । एतस्मिन्नन्तरे वाण्या देववाक्यान्नुमोदिता ॥४१॥  
 नृप इष्टा तु कैकेयी भर्तृयन्याद् न पुनः मृदं कथं न च नृप इति हतभाभ्याऽपि वेद्ययदम् ॥४२॥  
 गमे गजपदं गमे क्रीमन्वापाञ्च कैकयि दार्या भवेत्पामि न्वं हि अतो मद्बचनं कुरु ॥४३॥  
 वरणं न्यामभूतेन गजस्य भ्रामगताय हि । नृपं प्रार्थय गमस्य द्वितीयेन वनेन च ॥४४॥  
 दंडकारण्यगमनं चतुर्दश समाः पदा । ओषागारं प्रविश्याद्य कुरुष्व यन्मयेतिष्ठम् ॥४५॥  
 नन्मयगेक स्यादित मन्त्रा सापि नयाऽकरोन् । मोहिता साऽविवेकेन श्रीगणधमुरेच्छया ॥४६॥  
 ततो निशार्या रक्षा सा ज्ञाना क्रोधशृङ्गस्थिता गन्वा तत्र नृपः शीघ्रं ददर्श कैकयीं तदा ॥४७॥  
 विर्कायमाणकेशां तां त्यक्त्वाऽन्तकामदनाम् । भूमौ अगता तां दृष्ट्वा ज्ञान्वा तस्या मनोमनम् ॥४८॥  
 रामाय दंडकारण्यं यौवराज्यं मुक्तय च वराभ्यां याचिन ज्ञान्वा हेन्युक्त्वा मूर्च्छितोऽभवत् ॥४९॥  
 पदाने तन्मुसंवेण वृत्तं द्रुत्वा नृप ययौ । कैकेयी मदिता पृष्ट्वा सुमंत्रं प्राह सा तदा ॥५०॥  
 श्रवानयस्य भ्रामग इष्टं न वाञ्छिते नृपः सोऽप्याह गमे नृपानेमपृष्ट्वा नानयाम्यहम् ॥५१॥  
 तदा धनैर्जुगः प्राह शीघ्रपानय गधवम् । सुमंत्रोऽप्यनयामाम गधवं पार्थिवारुया ॥५२॥  
 तता तपे नृप गन्वा भुन्वा कैकेयजागिरा । आन्मार्तं दंडके वाम वन्दानं पितुः पुत्र ॥५३॥  
 नयेऽपर्गाचकारुषु नृपं वचनमत्र्यान् । मा ते शोकोऽस्तु हे नान क्वं गन्त्रामि दंडकान् ॥५४॥  
 नृपमवचन भुत्वा हाहेन्युक्त्वा नृपेऽब्रवीन् । मा विहाय कर्षं धारं विपिनं सन्तुमिच्छसि ॥५५॥  
 तस्य तद्वचन भुत्वा मान्वयामात्र गधवः । ब्रह्म प्रतिज्ञा निस्तीर्णं शीघ्रं यास्यामि ते पुत्रम् ॥५६॥

+ 'नृप' पूछा ॥ ३९ ॥ उसके पुत्रन रामन राजग भित्तिका नाने सुनकर वह भी झ फैलवाक पास गयी और सत्र  
 'नृप' ने सुनकर क्षण भर चुपचाप खड़ा रहा ॥ ४० ॥ इसका ज्ञान सुनकर कैश्यान उसका आना एक आशू-  
 रण न दिशा । इतनेव देवता प्रोसा प्र ग तथा मान्त्रकाल साहित मंधरा कैकरीका प्रमृष्ट धरकर उस इरातो  
 दुई कहने लगी । अर मृद गगन गज्यामियेकरा समानात्र सुनकर तू प्रसन्न क्यों हुई ? ऐसा ज्ञात होता है  
 कि तूरा भाव तुझन मरु गय है । यदि सानका श्राव्य मरु गया तो आ कैकयी । तूरा बौद्धवाक दाता  
 बनका पयार । इस कारण ज से बड़ी, वैसा कर ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अपने पति राजा दशरथक पास घातर रखस दो  
 बराम्मे एकक द्व ग नु भवतन लिए गज्य सींग और द्वारे वरक द्वरा चौकल बयक लिए रामका पेंदल दण्डका  
 रणमन भीम तू अभा नापभवन्म चली जा ॥ ४३-४४ ॥ उसने भी आनमचन्द्र तथा देवताआका हच्छस  
 और अविवेक कारण साहित साधका उत कथनका मयता हितकारक सपझकर बैरा हो विचा ॥ ४५ ॥  
 साधरात्रक समय जब राजकी ज्ञात हुआ कि कैकयी कावमचनम है, तब व उनर प स गये और दया कि  
 कैकयी मित्रक ज्ञात प्राप्त, भूषण तथा वरणाका कवकर घर्नीपर एही हुई है । पञ्चान जब राजा दशरथने  
 उसने अभिप्रायका ज्ञात तो उसके कथनानुसार दो बराम्मे एक द्वारा रामका दण्डवारण्यवास और  
 दूसरक द्वारा भरतकी यौवराज्य दनका काल देवाकार करके पृष्टि हो गये ॥ ४७-४९ ॥ प्रातः काल मंत्रो सुमंत्र  
 इस वृत्तान्तकी सुनकर राजाके पास गये । सुमंत्रके पृष्टिपर कैकयान कहा ॥ ५० ॥ राजा रामनो दनका  
 चाहते हैं । याआ, उन्हें यहाँ बुला ल्याओ । सुमंत्रने कहा कि राजासे बिना पूछे मैं रामका यहाँ नहीं ले आ  
 सकता ॥ ५१ ॥ तब राजात धर्मके काल कि 'रामको शांति न आओ ।' सुमंत्र भी महागजकी आज्ञास शीघ्र  
 रामको ले आये ॥ ५२ ॥ तबने राजाके पास आकर कैकयीकी वाणीसे अपने दण्डवारण्यवास तथा पिताका  
 पूर्वकालमे बरवान वरका हाल सुना तो 'सभास्तु' कहकर स्वीकार किया । उन्होंने राजासे कहा--हे तात !  
 आप शोक न करें, मैं अभी दण्डकारण्य जाता हूँ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ रामका वचनसुनकर राजा दशरथ कहने लगे -  
 हे राम ! तुमको छोड़कर तुम बनये कैसे जाओगे ? ॥ ५५ ॥ पिताके इस कलम वचनकी सुनकर राम उन्हें

इदानीं गंतुमिच्छामि ज्येष्ठे मातुश्च हृच्छयः । मानसं च समाश्रम्य सानुनीय च ज्ञानक्रीम् ॥५७॥  
 अतान्य पादौ हंदिन्वा नव यास्य सुखं वनम् । हन्युक्त्वा तौ परिक्रम्य मानसं द्रष्टुमाययी ॥५८॥  
 नत्वा स्वमानसं गमः समाश्रम्य पुनः पुनः । नत्वा प्रदक्षिणाः कृत्वा तामार्धं च ययौ गृहम् ॥५९॥  
 सर्वं वृत्तं तु मीतां च कथयामास गणयः । मीतया लक्ष्मणेनापि वनं गतुं पुनः पुनः ॥६०॥  
 प्रार्थितश्च तथेन्मुक्त्वा न्वयामास गणयः । सर्वस्वं ज्ञापयान्दत्वा मीतयाऽग्निममन्वितम् ॥६१॥  
 पद्मयमेव शनैश्चात्र ययौ गमो नृपान्निकम् । गच्छतं पथि आगमं पद्मया दृष्ट्वा पूर्णकम् ॥६२॥  
 शम्परेण ते वृत्तं भ्रष्टं व्याकुलमानसाः । चतुर्वृत्तान्त्वामदेव कथयामास आदरात् ॥६३॥  
 नागदागमनं रामपतिज्ञौ शरणाय च । वृषादिकं सविष्कारं विष्णु मनुजरूपिणम् ॥६४॥  
 शीतः श्रुत्वा गतकलेशा ह्यभूवन्पथि संस्थिताः । नतौ नत्वा नृप गमः कंकरी वाक्यमब्रुवान् ॥६५॥  
 अम्यामतोऽहं शिपिनं गतुम ज्ञां हृदय म म् । तवः सा बलकलादीनि दर्शयामादिकांश्च ॥६६॥  
 गमन्तान् परिधायाथ स्वयमानामशिक्षयन् । तद्दृष्ट्वा कंकरी माह गुरुः कोपेन मन्मथयन् ॥६७॥  
 अहं शिपिनि दुर्वृत्ते गम एव त्वया वृत्तः वनवामास दृष्टे त्व मीतार्थं किं प्रदास्यमि ॥६८॥  
 हन्युक्त्वा दिव्यरश्माणि मीताय च गुरुर्ददौ । राज्ञा दशार्थोऽध्याह्न मुमत्र स्थमावय ॥६९॥  
 गम्यमास्तु गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः रामः प्रदक्षिण कृत्वा पितरौ स्थमस्मृतम् ॥७०॥  
 मानसा लक्ष्मणेनाथ चोदयामास मागथिम् । कौमन्या च मुमित्रां च तातमाश्रित्य वै पुनः ॥७१॥  
 समाश्रम्य जनान् रामश्चममानीशमाययौ । मादवाये मिते पते पंचम्यां परमेऽहनि ॥७२॥  
 प्राप्य क्षाष्टादयं वर्षं गणवाय महात्मने । आयातद्वनप्रयाणं हि स्वपुण्यात्ममानवम् ॥७३॥

मानवता देने का वन कि ये आपका इतिहास पूरा करके जाय गुरोस जोड़ जाऊगा ॥ ५६ ॥ परन्तु इस समय तो मैं जाना ही चाहता हूँ । जिससे कि माता कंकरीके हृदयका शाक दूर हो सके । माताको आश्वासन दे तथा मानवा समझावर मे आ रहा हूँ । तब आत्मक जगणको प्रणाम करके मुखसे वनको प्रधान कहेंगे । यह कहकर राम उन दोनोंकी परिक्रमा करके स्थान करनेके लिये माता कीगन्याक गम गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ माताको समझाकर कानक माद वाग्मशर समझा तथा प्रदक्षिणा करके उनको आज्ञा अर्पने महत्कर्म गये ॥ ५९ ॥ वहाँ ज कर आगमन सीताको मन्मथ वृत्तान्त कह सुनाया । जब सीता और लक्ष्मण वाग्मशर अपने माद वनय न जलतकी प्रायश की, तब 'अवस्था' कह तथा ज्ञेय काशणको सर्वस्व दान इकर सीता तथा शिपिनी माद लेकर माद लक्ष्मण सथ वनत हो राजाके पास आये । गमनेमे पुरवानीवन रामकी पैदल आने दख तथा एक दुसरेमे सब वृत्तान्त जानकर तब चिन्तापूर हो तब मादव मुनिने प्रेमसे उन लोगोंका नागदका आगमन, रामका इतिहास गणनका वच तथा विष्णुका मनुजकथ धारण करना यदि वृत्तान्त चिन्तासे कह सुनाया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ गमनेमे तब चतुर्वामोजन उनकी यह बात सुनकर मान्त हो गये । गमने राजाके पास जा तथा उन्हें लक्ष्मण करके कंकरीसे कहा ॥ ६२ ॥ हे मन्मथ मैं वन जानके लिए गजार हा गया हूँ । आप मुझ आज्ञा द । तब उनमे गम मीता तथा लक्ष्मणको पहिनेके लिय वनक लक्ष्मण दिव ॥ ६३ ॥ गम स्वयं उन्हें पदितकर सीताका वनत पहिना लियलाने लगे । यह देखकर मुनि वसिष्ठ कह हुकर कंकरीकी धमकाने हुए पहने लगे—॥ ६४ ॥ ओ नड ! अरी शिपिनि ! अयि दुर्वृत्ते ! तूने केवल रामक वनवामका वर मोगा है । तब मीतको पाहेनेके लिय वनकल कहे देखो है ? ॥ ६५ ॥ यह कहकर सीताके गम लुके दिव्य कथ दिव्ये । राजा दशार्थ वने —हे मन्मथ । तब ले जाओ । उस स्थपर सवार होकर वनचरीके प्रिय वे सीता वनकी ज गये । बादमे गमने माना पितकी प्रदक्षिणा की और माना तथा लक्ष्मणको साथ कर स्थपर सवार हुए । तब सारथाका रथ चलानेकी आज्ञा दी कौमन्या, मुमित्रा, पिता तथा अन्य जनोकी न उ गन लेकर राम चल गये और सीता ही तमसा नदीके तीरपर जा पहुँचे । अकारहमे धरके माद गुकन जम्भयन्मीकी शुभ दिविकी महारमा रामने अपने नगरसे चलकर तमसाके किनारेकी ओर प्रयाण किया था

इत्याद्या निर्जगद्धृस्नदा नन्मार्गमन्त्रिक्याम् । अमन सुभाषे श्रुतना रामस्य ब्रह्मो वनम् ॥ ७४ ॥  
 उपर्वकां निशां तत्र भृगुकेपुर यथा । गुहेन नानिवभाषि तत्र गर्त्रि निनाय सः ॥ ७५ ॥  
 गुहानर्तवैरुक्षावैर्यथैव गणयो जटाम् । प्रभने सानयाऽऽह्य नीकापी लम्पणेन सः ॥ ७६ ॥  
 प्रययामास मरुत्तु सुमत्र नगरी प्रति । गुहेन्दुं वाहयामास नीकां चञ्चलानिभिस्तदा ॥ ७७ ॥  
 गमायध्यगतां गंगां प्रायेयामास जलिकां । देवि रामे नमस्तेऽस्तु शिवृत्ता वत्तकमनः ॥ ७८ ॥  
 रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजने । सुगमाभोपहारं च नानाचक्षिभिर्गहना ॥ ७९ ॥  
 ह्युक्त्वा पश्यतु गन्धा गमो गुह नदा । विमर्शयित्वा त्वंकां निशां नान्या शनैः शनैः ॥ ८० ॥  
 बाण्डाजाश्रमं गन्वा तस्यां तेनानिमानिधः । तत्रः पयाने यमुना नान्वां गन्वा महाननम् ॥ ८१ ॥  
 बल्लभ्यैराश्रम गन्वा तस्यां तेनानिपुत्रिणः । चित्रकूटे लक्ष्मणश्च पण्डिताका मनोमाम् ॥ ८२ ॥  
 कृत्वा मांसेर्मुमां दुर्नेयं दत्त्वा गृध्रनमः । तस्यां नम्यां मुन्य प्राया मानया स्वगृहं यथा ॥ ८३ ॥  
 गयनामनपाकादिदेवकीनां प्रथक् पृथक् तत्रामान्यविधाः । आलास्यस्वान्निविगर्जितः ॥ ८४ ॥  
 ईर्ष्यैर्लज्जैर्नो दुर्नेयं मानकलादिभिः । सृतांश्चरणामानिधय चक्रन्ते दग्धुः यथा ॥ ८५ ॥  
 एकदा निद्रित राम भानाके सन्निगोक्ष्य च । गन्तुः काकम्नदागन्त्य तन्वस्तुडं च त्रयकृत् ॥ ८६ ॥  
 सानांगुणं मृदु रक्तं विददागमिषाजया । निद्राभगमपाद्रुते सानया न निरागिनः ॥ ८७ ॥  
 सानांगुणं तु काकेन भिन्नं दृष्ट्वा गृध्रनमः । अभिद्रवन् रक्तस्यर्भापिकान् धुमोच सः ॥ ८८ ॥  
 कृताप्यर्गतिमस्याम्रमयाद्रुकांडतोलेके । स्वशरणमागतस्यस्य पुनरागदवाक्यनः ॥ ८९ ॥  
 ईषिकाक्षेण काकस्य चिमेद नयन क्षणान् । एव सानाङ्गीनुकाति कुर्वन्तस्यां भूत प्रभुः ॥ ९० ॥

॥ ८१-८६ ॥ इस समय हज़ारों देवताओं ने मायम इतना उत्साह किया वनम जा। इस समयका अन्तक  
 राम बहुत दया ॥ ८४ ॥ २ वही एक रात्रि निवास करके ३३ हज़ार गण। तत्र निवासका एक दिन  
 मर्यादित प्रकर इस रक्तका चट्टा दिखाया ॥ ८५ ॥ सदा रामने निद्रा कर हुआ लय हुए घटवृत्तक दुर्बल जटा  
 बंध ॥ गन्तकर सीता तथा लक्ष्मणक साथ सीते पर गहरा दुःख ॥ ८६ ॥ वहाँसे स्वसहित सुमन्त्रको  
 आँछा लौटा दिया तब निवासगतन स्वर क्षणमे तर्जिमान के साथ घितकर तावका लता आरम्भ किया  
 ८७ ॥ सानांगने दोष घातन जाकर ग द्वात्रिंशो प्रयत्न का औं कना ॥ ८८ ॥ इति राम ॥ आपका नमस्कार है।  
 मे राम तथा लक्ष्मणके साथ चलने सरजन्त लीला कर आरम्भ तत्र गन्तुः पूरक मास-मदिरा आदिके उपहास आपकी  
 दया ईर्ष्या ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ इस रात्रि जा तथा वहाँ एक रात्रि निवास करके रामने निवासका लौटा दिया और  
 पीरे पीरे च कर आरम्भ करे आरम्भ जा पट्टे ॥ ९० ॥ इतना अन्तक अपि दग्ध कर गहर सय ॥ सदा प्रयागमे  
 यमुनाको पर करके चने और महारन ॥ विवृद्ध ॥ मे स्थित वाचार्थिक आश्रम का पट्टे ॥ वहाँ उनसे  
 प्रतिन होकर दृष्ट ॥ चित्रकूटमे रामने लक्ष्मणके एक सदास्व पण्डिता पुनरागो ॥ ८९ ॥ ९० ॥ मुमों के मांसकी  
 द्रिद कर गृध्रनम ॥ न सानांग तथा भाईके साथ सम्पत्तक भरका तरह उसमे रहने लय ॥ ८९ ॥ गयनका  
 वैदिका, खानिका, जिनिका तथा इतना आरिक् रवान विविध वेतो और चलाओर निमेषण किया गया ॥  
 रघुन इति रम्भक लय ॥ ८४ ॥ वहाँ उपज हारवले बंद सृष्ट फल तथा भूतमास आरिक्, जैसे अपने  
 मयनमे सुभाषणोंका सत्कार करन ॥ वे जैसे ही सत्कार करन लय ॥ ८५ ॥ एक समय सीताका गान्धे सिर रख-  
 कर रामका साने देख इन्द्रका पुत्र जयन्त कीजा बनकर वहाँ आया और अपने राम तथा सीतेमे बारम्बार  
 नोताक द्रिदके लाल आँकेका मांस खापकी इच्छाम उस विचारों करने लगा ॥ सीताव एतकी निद्रा भग हा जात्रके  
 भयसे उसको नहीं हटाया ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ जागनेके बाद रामने सीताके भूतका कोरु द्वाग विदारित देखकर  
 रक्त रज्जित मुखवाले प्र गते हुएकीपर सीकका अन्न छोडा ॥ ८८ ॥ वहाण्ड मरने उस अन्नके घाममे जव किरीने  
 ब्यस्तकी रक्षा नहीं की ॥ तब नारदके कहनेपर वह रामको शरणमे आया ॥ उस समय क्षणपरमे रामने  
 सीकके अन्नसे अन्नका केवल एक भाँख काइकर इसे जीवनेदान दे दिया ॥ इस प्रकार सबके प्रभु राम विविध

पुमत्रोऽपि पूर्णं गत्वा नृपं हृतं न्यवेदयन् । मोक्षये राजा राघवेति जपन्स्त्वं जीवितं अर्हो ॥९१॥  
 नृपं मृतं गुरुर्ज्ञान्वा तैः श्रोण्या निधाय नमः । पूजानिमगगद्गर्नः कंकेत्याप्तनयानुषी ॥९२॥  
 आनयामास मरुतशुश्रूणी वेगमन्वदा । नातुभावापि वेगन स्त्रीं पूर्णं मन्त्रिवेशनुः ॥९३॥  
 मायावशादितं कृत्वा शान्ता विष्कृत्वा सागरम् । मरुता पितरं बहि ददौ सगुणमकरो ॥९४॥  
 योगिणां यात्ररस्ताश्च जग्मुर्न म्यायिना दिग्म् । पितुरुक्तकार्यादि कर्म कृत्वा सविस्तरम् ॥९५॥  
 संलग्नं ताडयामास सातुरग्र पुनः पुनः । प्राधनोऽप्यभिवेकार्थं राज्यमर्ताचकार न ॥९६॥  
 ततो मन्त्रिजनैः साकं सातृभिः पूजामिभिः । परावर्तयितुं रामं ययौ न मरुतस्तदा ॥९७॥  
 गुह्यं न मानिषश्चापि भाग्दामाधमं ययौ । तपोवलेन भूयर्त्तुं निर्धाय मरुतं मुनिः ॥९८॥  
 ममन्य पूजयामास तं नन्वा भगतोऽपि यः । मुनिमदांशनपथा चित्रकूटोऽग्रजं ययौ ॥९९॥  
 दृष्ट्वा रामं तु शालायां मीडया च पुनः स्थितम् । कन्दा तेन लिङ्गितश्च सर्वं पृथ न्यवेदयत् ॥१००॥  
 रामः भूत्वा मृतं त्रावं मन्वा मदादितं तदाश्च । स्नान्या विज्ञाजति कृत्वा ययां शान्तां निजागमरौ १०१॥  
 तनून् प्राधयामास भगतो गुरुणा सह राज्यार्थं गघवश्चारे नेत्युवाच पुनः पुनः ॥१०२॥  
 प्र सोपवेश्वर तत्र हर्षेण भगवन्मदा । चकार निग्रहं तस्य शान्ता गुरुमचोदयत् ॥१०३॥  
 रामास्तथा गुरुभक्तं 'मरुतं राधयन्मदा । भूभागदृग्पाधाय विष्णुः पाक्षत्रपूजयः ॥१०४॥  
 अथ जातार्त्तमि देवानां वचनाद्धारणदिकान् । हनुं मच्छन्ति रामोऽयं मा त्वं निग्रहमाचर ॥१०५॥  
 ततो शान्ता हरिं रामं भगतो राममब्रवीत् । राज्यार्थं पदकं देहि तयाः सेवां क्रोम्यद्दम् ॥१०६॥  
 जगत्कलधारी च वमापि नमगद्गदिः । प्रताप्यो तव राजेन्द्र त्रयाणि च चतुरस्र ॥१०७॥

चान्यथ करने लग्यो ॥ ९१॥ उपर मुमन्त्रन अनपसुनंम जाकर राजा उवाचयता सब वृत्तान्त सुनाया । राजाने  
 र्भः हा राघव हा राघव ' करने-करने प्राण छोट दिये ॥ ९२॥ तब गुरु वसिः ने मृत राजा के परीरका तलक  
 नाकमें रखकर दिया और गुणजित्क नमस्स दिके दानो पुन भवन प्रयुक्तका दनाक द्वारा दुरस्त दुख्वाया । वे  
 शान्ता शान्ता भगवत नगरमे जाये तथा मातृक गुरुवका मुनकर उम विस्वात्मन छो । भरतन सितक काररका  
 मरुत नदीकी बाग्यामें अस्तिमस्वार दिया ॥ ९२-९४॥ चार गुरुयोको माताएं स्वर्गमें माध स्वर्गलोक  
 का नष्टी गयो । भरतने शिवाको उत्तरदिपाय विस्तार महिष की ॥ ९५॥ नदनन्तर भरत जग्मुन्मन माताकें  
 मासन मपराको बाग्यवार प दा और माताक दृष्टार कटापर भी भरतने राज्य रही स्वोकर किया ॥ ९६॥  
 पद नृ वे मन्त्रिया, माताओ तथा दुरवापि तके साथ रामको लोटा जानेके हेतु बनकी गये ॥ ९७॥ ॥ १००॥ भरत  
 निप दगज द्वारा मन्मार्तिन प्रकार भाग्दामक आश्रमन पधार । मुनि अपन तपावलिसे पृथ्वीपर स्वर्गकी रचना  
 करने सेना महि भरतका सलार किया । तदन्तर भरत उसको प्रणाम करके उनक वतलाये हुए रास्तसे  
 चित्रकूटमें अपने बड़े भाई रामके पास गये ॥ ९८॥ १०१॥ पदशालमें सीता तथा लक्ष्मण सहित रामका देखकर  
 भरतने उन्हें प्रणाम किया तदनन्तर रामने आनिहित हुआ उन्होंने सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया ॥ १००॥  
 रामकी कृपु मुनकर राम मन्दविला नदीपर गये । वही स्नान करके विलाज्जात दी और भरतपर  
 मित्र अपन पणशालामें लोट आय १०१॥ गुरु वसिष्ठकी साथ लेकर भरतने रामसे राज्य स्वोकर करने-  
 के लिये वाग्यवार प्रार्थना की । तिसपर भी राम उसका बार-बार अस्वीकार ही करते गये ॥ १०२॥ तब भरत  
 कृष्णक आसनपर बैठकर मनन ( उपवास ) करने लग । उनकी कृपा तथा अहन्नीय देखकर रामने गुरु  
 वसिष्ठसे भरतको समझानेके लिये कहा ॥ १०३॥ रामकी आज्ञासे गुह्य भगवका समझाते हुए कहा कि ये  
 विष्णुस्वरूप पृथुलम राम भूधार हृष्ट करनेके लिये इस पृथ्वीपर अवतरे हैं । ये दत्तात्रेयक जनुरोधसे  
 गवण आदिको मारने जा रहे हैं । इस कारण तुम हठ मन करो ॥ १०४॥ १०५॥ तब भरत रामसे साक्षत  
 त्वर जाकर उनसे बोले-हे राम ' राजकार्य करनेके लिए आप अपनी सदाई दे दें । जटावत्कलधारी  
 मैं उनकी निष्ठा सेवा पूजा करता हुआ स्वर्गके जाह्नव रहूँगा । पशु है राजेन्द्र । यदि कर

कृत्वा चतुर्दशे वर्षे पूर्णे गुह्ये रवी त्वहम् । प्रवेक्ष्याम्यनलं ताम्रं सन्धमेतद्भवो मम ॥१०८॥  
 तत्तस्य वचने भुक्त्वा तथेभ्युक्त्वा रघून्ममः । राज्ञार्यं स्त्रीयपदयोः पादुके रत्नभूषिते ॥१०९॥  
 बद्धौ रामस्तदा तस्यै तनस्तं स व्यमर्जयन् । गृहीत्वा पादुके दिव्ये मरनो रत्नभूषिते ॥११०॥  
 मस्तकोपरि ते वदुष्व कृतकृत्यममन्यत । तनो नत्वा रघुश्रेष्ठ परिक्रम्य पुनः पुनः ॥१११॥  
 सैन्येन मातुमिः शीघ्रं राममामन्त्र्य सो ययौ । सप्रार्थयन्कैक्या भा रामचन्द्रं पुनः पुनः ॥११२॥  
 मयाऽपराधितं ताम्रं तन्संवर्ष्यं रघून्मम । ताम्राह रामचन्द्रोऽपि न त्वया मेऽपराधितम् ॥११३॥  
 मच्छदान्मथाराक्ष्याश्च वाण्या मोहितातदा । सुप्तं राज्ञश्च स्वपुत्रीं न क्रोधोऽस्ति मम त्वयि ॥११४॥  
 इत्युक्त्वा रामचन्द्रेण भरतेन न्यवर्तत । भरतः पूर्वमार्गेण ययौ स्वनगरीं मुदा ॥११५॥  
 सर्वान् स्थाप्य नगर्यां तु नदिग्राममकल्पयन् । तस्यै स भरतस्तत्र स्थाप्य सिंहासनोपरि ॥११६॥  
 रामस्य पादुके दिव्ये फलमूलाग्रनः स्वयम् । राजकायाणि भवाणि यावन्ति पृथिवीपतेः ॥११७॥  
 तानि पादुकयोः सम्यङ्निवेदयन्ति राघवः । गणपन्दिबमान्येव रामाममनकाक्षया ॥११८॥  
 स्थितो रामार्पितमनाः माक्ष्माद्रक्षमुनिर्यथा रामोऽपि चित्रकूटादौ नमन्मुनिभिर्गदतः ॥११९॥  
 चकार मीनया क्रीडां विपिने रम्यपर्वते । मनःशिलासुनिर्मुक्तं वीनाया मालकंजकोत् ॥१२०॥  
 गन्धयोश्चित्रवल्लीः स चकार निवहन्ततः । पुष्पाकणदलैश्चित्रैः कोमलैः कुसुमदिभिः ॥१२१॥  
 एवं क्रीडन्मुखं रामस्तस्यै पत्न्याऽनुजेन च । नागराम्नां तदा जायु रामदर्शनलालसाः ॥१२२॥  
 दृष्ट्वा सज्जनमहार्घं रामस्तन्याज्ज तं गिरिम् । अन्वगन्मोतया स्रात्रा क्षत्रेराश्रममुत्तमम् ॥१२३॥  
 नत्वाऽत्रिंशानितम्नेन तस्यै तत्र दिनप्रथम् । गृहस्थामनुभूया तां सीताऽवर्वचनाचदा ॥१२४॥

निश्चयन समयपर बहुत मोरगं ता मै चोदह वय समाप्तक दिन सूर्यास्तक समय अनिम प्रवेश कर जाऊंगा । हे राम ! मेरी इस प्रतिज्ञा का अर्थ सत्य समझे ॥ १०६-१०८ ॥ उनके इस वचनका सुनकर रघून्मम रामने 'तथाग्रतु' कहा और राज्यक लिए अपन पादुके रत्नभूषित पादुकाएँ लेकर उन्हें बिछा किया । भरतने उन रत्नभूषित पादुकाओंका लेकर माथे चढ़वा और अपन आपसी कुलश्रेष्ठ सम्पत्ति । पश्चात् रघुश्रेष्ठ रामको बारम्बार प्रणाम करके परिक्रमा की और उनका आता लेकर भारत माला और सेनाके साथ तुरन्त अयोध्याको मोर चल दिगे । उस समय कैकयी पुन पुन रामसे प्रार्थना करने लगी—॥ १०९-११२ ॥ हे राम ! हे पुत्र्योत्तम ! मेरा जो अपराध किया है, उसे क्षमा कर दो । रामने कहा—माताजी ! तुम्हारा कोई अपराध नहीं है । ११३ ॥ परी इच्छासे ही सरस्वतान मेघराके वाक्यसे तुम्हको मर्झित कर दिया था । हे अम्ब ! अब तुम शुभपूर्वक अयोध्या जानो । मुझ तुमपर कुछ भी काय नहीं है । ११४ ॥ ऐसा कहनेके बाद कैकयी रामके कथनानुसार भरतके साथ नगरका लौटी । भरत भी सत्य जिस मागसे आये थे, उसी मार्गसे अपनी नगरीको लौट गये ॥ ११५ ॥ वहाँ जा तथा सबका नगरमें पहुँचाकर उन्होंने नन्दोपास वसाया । वहाँ भरत सिंहसनपर रामको दिव्य सह्याङ्गे रत्न तथा फलमूल स्रात्र रहने लगे । राज्यक जो-जो काम आते थे उन सबको भरत-जी सह्याङ्गेके सामने लाकर प्रतिदिन निवेदन कर दिया करते थे । इस प्रकार रामसे मन लगाकर रात्रि-दिवसको गिनप हुए भरत साक्षात् ब्रह्मभूतकी भाँति समय व्यतीत करने लगे । उसपर राघ भी पुत्रियोसे सत्कार प्राप्त करके सानन्द चित्रकूट पर्वतपर रहने लगे ॥ ११६-११६ ॥ उस पवित्र लया मनोहर वनमें राम सीताके साथ क्रीडा करते थे । मैतिलिकी सुन्दर गिलापर चन्दनादि चित्तकर राम सीताके मस्तकपर तिलककी रचना करते थे ॥१२०॥ अपन कोमल हाथोंसे सीताके कामल गालपर चित्रावलीका निर्माण करते थे वृक्षोंके कोमल-कोमल लाल फलों और अनक प्रकारके फूलोंसे सीताको सजाने थे ॥ १२१ ॥ इस प्रकार क्रीडा करते हुए राम अपनी आशुप्यारी फली तथा अनुज लक्ष्मणके साथ शुभपूर्वक रहते थे । वहाँ अनेक नागरिक रामके दर्शनकी अभिलाषासे सदा उनके पास आते रहते थे ॥ १२२ ॥ इस प्रकार लोगोंका आवागमन देखकर रामने उस पर्वतको छोड़ दिया और पाई अश्वमेध तथा सीताको लेकर अश्वमेधके उत्तम आश्रमकी ओर चल



नत्वा तथाऽऽलिङ्गिता सा तदंके मकुपाविशत् । अनुसूया तदा सीता पूजयामास मादरम् ॥१२५॥  
 दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा । दृष्ट्वा द्वे ददौ तस्यै निर्मिते मक्तिमंयुता ॥१२६॥  
 अंगरागं च सीतार्यं ददावन्नेभ्यः सा प्रिया न त्यज्यतेऽङ्गगोभा त्व कदापि जनकात्मजे ॥१२७॥  
 शान्तिव्रत्यं पुष्पकृत्यं राममन्वेहि जानकि कुशली मयको यातु न्यया आत्रा पुनर्गृहम् ॥१२८॥  
 भोजयित्वा यथान्वाय रामं सीताममन्वितम् । अविर्विमर्जयामास रामो नत्वा ययौ वनम् ॥१२९॥  
 एवं वर्षमतिक्रांतं, रामस्य गिरिकामिनः । यथासुखं लक्ष्मणेन जानक्या सहितस्य च ॥१३०॥  
 एवं गिराद्रजेऽयोध्यापुर्या रामेण यत्कृतम् । चरित्रं तन्मया किञ्चिद्वदन्ने विनिवेदितम् ॥१३१॥

इति धोषतकोटिशामनरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

अयोध्याचरित्रे दण्डकवनप्रवेशो नाम अष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( रामके द्वारा विराध और खर-दूषणका वध )

श्रीशिव उवाच

अथ रामः सीतया तु लक्ष्मणेन समन्वितः । ययौ स दंडकारण्यं मज्जं कृत्वा मनद्वजः ॥ १ ॥  
 मंत्रे ययौ स्वयं रामस्तनूयुः जानका ययौ । तस्याः पृष्ठे स सीतारिषयो वृनक्षरासनः ॥ २ ॥  
 वने दृष्ट्वाऽथ कासारं स्नान्वा पीत्वा जलं मुखम् । भुक्त्वा फलानि पक्वानि तस्थुस्तत्र क्षणं त्रयः ॥ ३ ॥  
 एतस्मिन्नतरे तत्र विराध नाम राक्षसम् । तं च दृष्ट्वा तयां च महामत्स्यं भयानकम् ॥ ४ ॥  
 करालदंष्ट्रावदनं दापयत स्वर्गावनतः । कामामव्यस्तशूलप्रश्रवितानंकमानुषम् ॥ ५ ॥  
 मक्षयत गजं व्याघ्रं महिषं वनगोचरम् । उपरापितं धनुर्वृत्वा रामो लक्ष्मणमवर्षीत् ॥ ६ ॥

दिय ॥ १२३ ॥ अत्रि ऋषिका नमस्कार करनेके बाद वनस सम्मानित हुकर व वही तीन दिन ठहरा । अत्रिके कहनसे सीता कुट म स्थित मनसूयाक पास गयी ॥ १२४ ॥ नमस्कार करनेपर उन्होंने सीताका आलिङ्गन किया और सीता उनके गौरम बँड गयी । पश्चात् मनसूयान उनका आदर-सत्कार करके पूजन किया ॥ १२५ ॥ तदनन्तर विश्वकर्माके बनाय दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ मूषम वस्त्र प्रेम तथा भान्तपूर्वक सीताको दिये ॥ १२६ ॥ अत्रिका प्रिया मनसूयाने सीताका महाभर आदि रत्न भी अङ्गाम लगानेके लिए दिये और कहा— हे जनकात्मजे । यह रत्न तुम्हारे अङ्गावरण कभी नहीं उतरेगा ॥ १२७ ॥ हे जानकी ! पतिव्रत धर्मकी निभाती हुई तुम रामको अनुगामीनी बना । यथासमय राम तुम्हारे तथा भाई लक्ष्मणक साथ सकुण्ड पर लौट जायेंगे ॥ १२८ ॥ तब अत्रिन सीता सहित रामकी यशोवित भोजन कराकर विदा किया । राम भा नमस्कार करके चले दिये ॥ १२९ ॥ इस तरह रामका सीता तथा भाईके सहित मुखपूर्वक पर्वतोपर निवास करते हुए एक वर्ष बीत गया ॥ १३० ॥ हे गिरिन्द्रज ! अयोध्यापुरीमें रामन जा काम किया था, वह मय मैंने तुम्हारे सामने कृत मूनाया ॥ १३१ ॥ इति धोषतकोटिशामनरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे अयोध्याचरित्रे २० रामायणाण्डेयकृतं अयोध्या'मायाटाकाया दण्डकवनप्रवेशो नाम अष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

शिवजी बोल—हे गिरज ! इसक बाद राम बड़ भारी सज्जकृत धनुषको हाथमें लेकर सीता तथा लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें गये ॥ १ ॥ भाई भागे स्वयं राम, पीछे सीता और उनके पीछे हाथमें धनुष धारण करके लक्ष्मण चले ॥ २ ॥ वनमें एक सरोवर देखा तो मुखपूर्वक स्नान करके जल पिया और पके कटाको खाकर अंगवर तोलान वहाँ विभ्राम किया ॥ ३ ॥ इतनहीमें उन्होंने अपनी ओर आते हुए बड़े घमानक विराध नामके राक्षसको देखा ॥ ४ ॥ वह अपने बिकराल शक्तियोंने मुखकी फँल तथा अमानक गर्जन करता हुआ सब लोगोंको डराने लगा । उसने अपने भालेकी नोकमें दीधकर बहुतसे मनुष्योंको घारण कर रक्खा था । वह वनचर व्याघ्र, हाथी और महिष आदिको भी मार-मारकर जा रहा था । यह देख राम

रश्मि त्वं जानकीमत्र मंहनिष्यामि राक्षसम् । म हू दृष्ट्वा रमानाथ लक्ष्मण जानकीं तदा ॥७॥  
 कीं युगमिति ते तौ ब्रूह ततो रामस्य मन्त्रशतान् । नामकर्म निरु मन्त्रं कैकेयपात्रे च पन्थनम् ॥८॥  
 नद्रामवचन श्रुत्वा विहस्य राक्षसाऽब्रुवात् । मां जानामि त्वं राम विराधं लोकत्रिभुवनम् ॥९॥  
 मङ्गलान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमिति मयाः यदि चित्ते तु भिज्जास्मि त्यक्त्वा सीता निरयुधौ १०॥  
 पलायितां न चेच्छीघ्र मथयामि पृथामइम् । इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामात्रं तु मभिदूतुचे ॥११॥  
 रामश्चिच्छेद तच्छीघ्र शरेण प्रहसन्निव ततः क्रोधितराताम्ना व्यादाय विकटं मुखम् ॥१२॥  
 राममस्य द्रवद्रामश्चिच्छेद परिघातनः पदद्वयं तदा मय इवाभ्येन यया पुनः ॥१३॥  
 उत्तोर्यचंद्राकारेण निहतो राघवेण मः । ततः पाता समालिख्य प्रशशम रघूत्तमम् ॥१४॥  
 देवदुन्दुभ्यां नेदुर्दिवि देवगणमिताः । ननो विगच्छावात् पृथक् विमानयतः ॥१५॥  
 नन्वा राम निजं वृत्तं कथयामास मदम् । दुर्भाग्याऽहं जगन्तु पुन विराधः शुभः ॥१६॥  
 इदानीं मींचितः श्रापान्धया कालांशुगदने । इत्युक्त्वा राघव म्पुनः विमानेन ययौ दिशम् ॥१७॥  
 विराधे स्वर्गते गमो लक्ष्मणेन च मीनया । जगाम शरभगस्य वन सर्वमुखारहम् ॥१८॥  
 शरभग वतो नन्वा तेन सम्मानितो बहु । तस्यो तत्र निशामेक्षी शरभगो मुनीश्वरः ॥१९॥  
 तस्मै समर्प्य स्यं पुण्यमारुहेह विदि तदा । म्पुन्या तं न विमानेन वेदुण्डं परमं ययौ ॥२०॥  
 ततः शर्मः सुतीक्ष्णस्य ययावाधममुत्तमम् । नन्वा तं पुजितस्तेन मुनः सस्यो रघूदहः ॥२१॥  
 एतस्मिन्नतरे तत्र नानाधमविधामिनः । पुनयो राघवं द्रष्टुं समाजगम् । महमयाः ॥२२॥  
 सर्वे ते राघवं नन्वा म्पुन्या निन्युनिजं निजम् । आधम सीतया आका चक्रुः पूजां मां वस्तगम् ॥२३॥

वसुधैव कुटुम्बकम् अमणजे वाचना ५ ॥ ६ ॥ हे - रामण ! तुम यहाँ जाकर सीता को रक्षा करो । मैं इस दुष्ट  
 राक्षसको मारूँगा । यह राक्षस समर्पित राम, लक्ष्मण तथा जानकीका दोषकर वाला तुम कोत हो । तब  
 रामने अपना नाम, नाम तथा कंकथीका कृप्य सब कुछ कह सुनाया ॥ ७ ॥ ८ ॥ राक्षस वचनक सुनकर राक्षस  
 हँसा और कहने लगा-हे राम ! क्या तू लोकविद्यात विराधक नही जानता ? ॥ ९ ॥ परे इस डरेस राव मुनि  
 इस वनका छाड़कर भाग गये हैं । यदि तुम देना जाओ चाहते हो तो पात तथा मन्त्रको छाड़कर भाग जाओ ।  
 नही तो तुम जानकी के अधो लो जाओ । इतना कहकर वह रजस स लोका पकड़ने लडा ॥ १० ॥ ११ ॥  
 तब हँसन हुए रामने उसके दोनों हाथोंका अपने बाणस काट दिए । तब विराध दुष्ट हा लया विकट मुख  
 फँसाकर रामको ओर दौडा । तब रामने आत लगा दोडकर उसका दोनों पैरोंका भा काट डाला । फिर वह  
 सर्पकी तरह मुसस सानेक लिये प्रपला ॥ १२ ॥ १३ ॥ तब रामने अपने अस्त्र-बाणकर वणन वनक सिंको  
 श्री काट डाला और वह मर गया । यह देख साता रामका आलिङ्गन करके उसका प्रशंसा करने लगे ॥ १४ ॥  
 तस्यो आकाशमे देवताओके नगाडे वजन लगे । पद्मात् विराधके शरीरस एक दिव्य पुष्प प्रकट हुआ ॥ १५ ॥ वह  
 रामको प्रणाम करके बड़े आदरसे अपना कहानी सुनाते हुए कहने लगा-पूव समयस में एक मुन्दर विशाधर  
 था, पन्तु पुतासा अधिन मुसका शपथ दकर इस दशाका प्राप्त करा दिया ॥ १६ ॥ आज बहुत कालक बाद  
 आपने मुसका इस आदर युक्त किया है । यह कह और रामका स्तुति करके वह विमानमे उडकर स्वयं चला  
 गया ॥ १७ ॥ विराधके वन जलेश्वर राम लक्ष्मण तथा सीताके साथ सर्वमुखदासक शरभग मुनिक वनस  
 पधारे ॥ १८ ॥ उनको न्यस्तकर काँके तथा उनसे सम्मानित हुकर वे एक रात्र वही ठहर । मुनिश्रम शरभगने  
 अपना सब पुण्य उनक चरणस शरणस करके रामके सामने ही चित्तास प्रण किया और उनको स्तुति करके  
 विमानपर उडकर दिव्य रूपसे वेदुण्ड धामको चला गया ॥ १९ ॥ २० ॥ तस्ये रामने मुनीश्वर मुनिके मुन्दर  
 आधमकी आर प्रण किया । वही पहुँचनवर रामने पुनिवा नमस्कार किया पुनि उनका बहूत सत्कार  
 करके अपने वही ठहराया ॥ २१ ॥ वही आरमके वणनार्थ चिचि आनमासे हुनरा पुनि आव थे ॥ २२ ॥  
 व सब सीता तथा लक्ष्मणके सहित रामको नमस्कारकर और उनको स्तुति करके उन्हें अपने-अपने सम्ममन से

एकस्मिन् त्रिगते वा पंच सम दिनानि वा । पञ्चवारं तु मासं वा मार्गशामयथापि वा ॥२४॥  
 त्रिमासान्पचमासं वा पटुर्दृष्टादशाक्षरा । मासं संवत्सरं वापि स्वाश्रमेषु रघुनमम् ॥२५॥  
 सम्प्राप्य चक्रुर्गतिर्व्यपारिकं चोत्तमैवम् । पञ्चदासुतेन धीगन्धैव पूज्य भिमर्जयन् ॥२६॥  
 अमर्त्यं हि गमेन न च रपाणि दृढके । आश्रमेषु मृगीनां च सतिस्त्रीनानि च मृतम् ॥२७॥  
 बहवो निहतास्तत्र राक्षसा अमरा नदा । राक्षसेण सह आत्रा क्रीडताऽऽनिकन्यया ॥२८॥  
 नानाधाराशमपुष्पवनोपवनभूमिषु । नदीजलनटकट्टिदिग्गदिस्थलेष्वपि ॥२९॥  
 जन्वाग्रभाट्टाक्षुदिनानादृक्कलेषु हि । चकार मीनया क्रीडां रामो देव्या यथा शिवः ॥३०॥  
 अप गमो यथा कुम्भसंभवस्यानुजश्रमम् । मुसक्तिः पूजयामास राघव मीनयान्निनम् ॥३१॥  
 ततः सीतापुतो गमः शनैर्भ्रातृ मृदान्वितः । अगम्येगश्रमं प्राप नानावृष्टिगिराजितम् ॥३२॥  
 प्रत्युद्गम्य मृनिधार्पि मृनिभिरदुर्भर्तुनः । राघवं तं समाल्लिख्य स्वाश्रम तेन सो यथा ॥३३॥  
 अथ तं पूजयामास राघवं कुम्भसंभवः । रामोऽपि मानिगम्येन तस्यो न च कियदिनम् ॥३४॥  
 ततः स्तुत्या रमानाधमगम्यो मुनिमनयः । ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थं व्यापितं पुनः ॥३५॥  
 अश्रुयो बाणतूणां तद्गुणं रत्नधूपितम् । ननो रामो मुनेर्वंशार्द्राक्ष्या उत्तरे तटे ॥३६॥  
 यथा पंचवटीं गम्यां रामो दृष्ट्वाऽथ पक्षिणम् । जटायुषः नमःकारमरुणान्मजमुत्तमम् ॥३७॥  
 मन्वाप स्वर्पितुवापि सभाप्याथ विदेशं तम् । तत्र कृत्वा महाशालां यथा पूर्वं कृत्वा गिरं ॥३८॥  
 मृगमार्गैर्दाल दत्त्वा तस्यो रामो यथासुखम् । मीनां संरक्षयामास जटायुः पक्षिणं स्वयम् ॥३९॥  
 राघवस्य पंचवटीयां मीतया क्रीडनः सुखम् । मार्गैर्गणैः संस्मरन्नि स्त्रिंशत्क्रान्तानि पार्वति ॥४०॥  
 चने शूर्पणखापुत्र तपनं मां वनामकम् । भवा ददौ दिव्यगन्तुं तं मावो न ददर्श मः ॥४१॥  
 तद्गृत्वा लक्ष्मणाः शङ्क वृथान्वह्यार्थं भक्त सः । वृथगुल्मे हतः मां वनतो राघवमब्रवीत् ॥४२॥  
 जान और विधिवत् पूजा करने ॥ २३ ॥ व एक दो दिन, पांचवत् मास अथवा पूरे वर्ष भर आपन आश्रममें रहकर रघुनम रासका प्रतिष्ठित अधिकारधिक सेमसे आतिथ्य करने और आपन पत्नी तथा मातृक सहित रासका पूजन करके शिव करने से ॥ २४-२५ ॥ इस तरह मुनियों के आश्रमों में प्रत्येक एक रासके मूलन नीचे दिया गया है ॥ २६ ॥ वहाँ भाई लक्ष्मणके साथ लक्ष्मण करते हुए रामने बहुतसे राक्षसों-की मार केली ॥ २७ ॥ रामने अनेक आश्रमों, दामोप पुत्र घर वनाम नदीके जलमें, तानाक्षोम पर्वतके शिवद आदि स्थानों, जामुन, आम, केला, दाल आदि अनेक फलों तथा लवङ्गजोमें सीताके साथ शिव-पार्वतीकी तरह क्रीडा की ॥ २८ ॥ २९ ॥ तत्पश्चात् राम कुम्भज श्रृंगके छोट भाई मार्कण्ड मुनिके आश्रमपर गये । उन बुद्धिमान मुनिके भा संन्यासहित लक्ष्मणी पूजा की ॥ ३१ ॥ वहाँमें चलेकर सीता तथा भाईके साथ राम विविध वृक्षांम मंडित अगम्य मुनिके आश्रमपर गये ॥ ३२ ॥ वहाँ मुनि अगस्त्य अन्य मुनियों और ब्रह्माचारियोंके साथ आग आर्य और रासका अतिशून्य करके आश्रममें ले गये ॥ ३३ ॥ उन्होंने रामकी विविध पूजा की । उनसे पूजित होकर रामने वहाँ कुछ दिन निवास किया ॥ ३४ ॥ मुनिश्रेय अगस्त्यने रामकी प्रशंसा की और इन्द्रके द्वारा प्रदत्त तथा उसके लिये पहिलेसे ही रक्ता हुत्रा घटुष रासको दिया ॥ ३५ ॥ अक्षय आगवासे दी तूणीय (तम्बक) तथा रत्नजटित सम्पदारी दी । पश्चात् रामने मुनिके कथनानुसार मीतमी नदीके उत्तरी किनारेपर स्थित अगस्त्य पंचवटीकी ओर प्रस्थान किया । रामनेम उनको पर्वताकार अरुणपुत्र एवं उनके पितृका श्रेष्ठ भिव जटायु नामका पक्षी मिला । उससे सम्भाषण करके वनमें भागे बड़े । चित्रकूटकी नगरी बह्मेश्वर भी उन्होंने पणकुटी वनवासी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ मृगोंके मांसकी बलि देकर राम ब्रह्मन्त्रसे रहने लगा । पक्षिराज जटायु तब मीतमीकी रक्षा करने लगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे पार्वती ! पंचवटीमें रामको सीताके साथ कीडा करते हुए सदैव तीन वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४० ॥ उस वनमें शूर्पणखाका पुत्र साम्ब एवं करता था । वह देखकर ब्रह्मने एक दिव्य लक्ष्म उसे दिया, पर इस बातका साम्बको पता नहीं लगा ॥ ४१ ॥ जब लक्ष्मणने

प्रायश्चित्तं प्रकटयन् मां वद त्वं रघूत्तम । रामोऽप्याह हतः पावो राक्षसो न मुनिर्हतः ॥४३॥  
 तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणस्तुष्टमात्रमाश्रयितच्छ्रुतम् । तन्ममरन्ती पुनर्दुःखं राक्षसी कायरूपिणी ॥४४॥  
 विचंचार शूर्पणखा नाम्नी च मर्ववातिनी । एकदा पचवट्यां सा रामं दृष्ट्वाथ रामसी ॥४५॥  
 पुनर्दुःखमवाक्रीता धृत्वा रूपं मनोहरम् । कापय्यदृष्ट्वा श्रीरामं सानुजं हनुमता ॥४६॥  
 उवाच मयूरं वाक्यं वञ्जालकास्मंडिता । कौ पुनर्वा का स्त्रियं रम्या किमर्थमागता वनम् ॥४७॥  
 कुतः समागतावत्र वञ्जधुना गच्छतः पुनः । तनस्या वचनं श्रुत्वा रामः सर्वं न्यवेदयन् ॥४८॥  
 ततः सा राघवं प्राह भर मर्ता मम प्रभो । सोऽप्याह दयिता मेऽस्ति बहिस्तिष्ठति लक्ष्मणः ॥४९॥  
 प्रार्थयामास भीमिषि सा तं सोऽप्युत्तर ददौ । अहं दागोऽस्मि रामस्य त्वं तु शयी भविष्यसि ॥५०॥  
 ततः क्रोधेन सा सीतां धर्तुं वेगेन दुदुवे । तदा ता राघवः प्राह ममाय शर उत्तमः ॥५१॥  
 चिह्नार्थं लक्ष्मणाय त्वं नीत्वा दर्शय वेगतः । मद्भागदर्शनाकार्यं सिद्धिं नेष्यति लक्ष्मणः ॥५२॥  
 हन्युक्त्वा राघवो बाणं ददौ नय्यं क्षुण्णवपम् । मन्यं मन्वा गमवाहप सा ययौ लक्ष्मणं पुनः ॥५३॥  
 लक्ष्मणाय रामबाणं दर्शयामास राक्षसी । स बुद्ध्वा दृष्ट्वा त्रयोम्ल संघातं शगयने ॥५४॥  
 हृषीच बाणं वेगेन रामनाम्नाकितं शुभम् । स शगे गथसी गन्वा घ्राणकर्णौष्ठद्वयान् ॥५५॥  
 संछिन्वा रामतूणीर विरेष क्षणमाश्रयः । घ्राणकर्णौष्ठद्वयान्नातगहिता माश्रयि राक्षसी ॥५६॥  
 हाहनाम्पीति जल्पती ययौ बभूवृषगदिकान् । दृष्ट्वा स्वमां तारशीं ते विशिरगन्तृषणाः ॥५७॥  
 तन्मुखात्सकलं वृण श्रुत्वा ते क्रोधमंश्रुताः । चतुर्दश महाधौरान् गक्षमान्प्रेषयस्तदा ॥५८॥

उस क्षणकी जेवर उस घने वनके सब वृक्षों और लक्ष्मणकी बाट डाली । उस वृक्षपुत्रके साथ साम्प्रभो मारा गया । यह देखकर लक्ष्मण रामसे कहने लगे — ॥ ४२ ॥ हे रघुनाथ । आप मुझे प्रत्याश्रयान्निवारक कोई प्रायश्चित्त बतायें । तब रामने कहा - तुमने तो राम्ब नामके राक्षसको मारा है, न कि मुनिको ॥ ४३ ॥ ४४ । यह सुनकर लक्ष्मण प्रसन्न हुए । उधर पचवट्ट रुख घाटण करम्बाली भाम्बकी माता सुगन्धला राजधानी जव यह सुना तो पुनर्मरणक दुःखसंश्रित होकर बारम्बार गुणका स्मरण करने लगे । कौनसे सबका मार डालने की इच्छासे इधर-उधर विचरने लगा । एक दिन पचवटीन रामकी देखकर वह राजसी पुनर्दुःखसे व्याकुल हो उठा और मनोहर रूप घाटण कर मीना-लक्ष्मण सहित रामकी मारनक लिए उद्यत हो गया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वह वरष तथा अन्यकारसे मनकर उनक पास जा पहुँचा और इस प्रकार मयूर वचन ब्रह्म सता तुम जानो तथा यह सुन्दरी स्त्री कीत है और यहाँ वनस तुम सब भिस लिए आये हो ॥ ४७ ॥ कहते आ रहे हो और अब मात कहें जनका विचार है ? उसक प्रश्न सुनकर रामन अपना सब वनजन्म कह सुनाया ॥ ४८ ॥ तब वह बोली हे प्रभो कृपा करके आग मेरे प्रति बन । उनसे रागने कहा कि मेरे पास तो यह मेरा प्रिय पत्नी विद्यमान है । इसलिए तुम बाहर लड़े मेरे छोटे भाई लक्ष्मणके पास जाओ । ४९ । रामके कथनानुसार शूर्पणखाने बाहर जाकर लक्ष्मणसे अपनी इच्छा प्रकट की । लक्ष्मणने कहा कि मैं तो रामका राम हूँ तुम मेरी स्त्री बनकर क्या करोगी । मेरे साथ तुम्हें भी दानी बनना पड़ेगा । ५० । यह सुनकर शूर्पणखा आरस लौठ हो गयी और सीताकी पकड़नेके लिए बड़े वेगसे आगई । रामने उसे रोककर कहा कि यह मेरा सुन्दर बाण वह बाणके लिए ले जाकर लक्ष्मणका दिवाआ । मेरे बाणको देखते ही लक्ष्मण तुम्हारा इच्छा पूरा करेगा । ५१ ॥ ५२ । यह कहकर रामने छुरक अमान तोरण एक बाण उसको दिया । रामकी बातकी मत्त सम्प्रत यह राक्षसी बाण लेकर फिर लक्ष्मणके पास गयी ५३ ॥ वहाँ जाकर उसने लक्ष्मणको रामका बाण दे दिया । लक्ष्मण बड़े भाईका अभिप्राय समझ गया और अनुपपन्न होकर रामनामसे अंकित उस शुभ बाणको छोड़ दिया । वह बाण लक्ष्मण के पास गया और उनक नाक, कान, भेड़ नाक मतलबोंको काटकर पुनः क्षण भरमे रामकी तरफमम लौठ गया । कान, नाक आठ तथा स्तनोंमे रहित वह राक्षसी ॥ ५४-५६ ॥ 'हाथ में मारी गया' इस प्रकार चिन्ताता हुई सर-दूषण आदि अपन भाइयाँके पास जा पहुँची । बाह्यकी यह

तान् रामः क्षणमात्रेण चतुर्दशशर्ममम् । संवदस्य निजं लोकं प्रेषयामास लीलया ॥६९॥  
 तान् राक्षसान् मृतान् ध्रुत्वा स्वगन्धाम्ने त्रयः क्रुधा । पुद्गलं निर्ययुः सैन्यैः सहस्रं च चतुर्दश ॥६९॥  
 रामोऽपि बभूव सीतां च गुहायां स्थाप्य वेगतः । चकार राक्षसैर्धृष्टं शस्त्रैर्धृष्टवावहम् ॥६९॥  
 चतुर्दशमहस्याणि स्त्रीरूपाणि गवतः । कृत्वा तेषां च पुनः शरैस्ताम्रार्द्रपल्लवात् ॥६९॥  
 इन्द्रा स्त्रर दूषणं च तथा त्रिशिरस्य ग्रैः । तनुश्चमहसांस्तान्प्रेषयामास स्व पदम् ॥६९॥  
 मुहूर्तेन तु रात्रेण महस्याणि चतुर्दश । मित्रा सेना स्वराष्ट्रं निहता मौनमीडटे ॥६९॥  
 स्वरायाः कटकाश्च स्थिताम्बश्च विकटहम् । क्षेत्रं स्यात्तं श्वं चकार तदेव प्राप्सते भुवि ॥६९॥  
 जनस्थानं भूमिगणां हरी वस्तुं गृह्णहः । अथ सीता समानिष्य राक्षसं प्रशशस सा ॥६९॥  
 अथ तां जानकीं प्राह रामो गृह्णि मादहम् । सीते त्वं त्रिविधा ध्रुत्वा रजोरूपा वमानले ॥६९॥  
 राक्षसं मे मन्त्ररूपा वम छाया तमावपी । पचयत्या दशरथस्य मोहनार्थं वमात्र वै ॥६९॥  
 तद्रामवचनं ध्रुत्वा तथा सीता चकार सा । ततः शूर्पणखा लंकां गन्वा रावणमवसीत् ॥६९॥  
 धिकं त्वा राक्षमराजान् कृतं चरितं वेन्मि यः । चतुर्दशमहस्या मा सेना स्वद्वन्द्वभूमिः सह ॥७०॥  
 मानुषेणैव गमेन जनस्थाने निषानिना । तन्मया वचनं ध्रुत्वा तां मृष्टा तादृशी तदा ॥७०॥  
 मिहामनाश्च बालाश्च पुनः वसन्तु मां स्वमात् । वद किं कारणं मुद्रे प्राह सा राक्षसेधरम् ॥७०॥  
 क्व गन्तां जानकीं दृष्ट्वा मया चित्तं त्रिविधम् । गवणार्थं विनेष्यामि धनुं तां तन्पूरीयता ॥७०॥  
 गारुडानेन सीताऽहं दशमेन तु रावण । सीमित्रिणा पचयत्यामाहवा रावणस्य च ॥७०॥  
 मायोऽपि मे हनः पुनश्चादमानो निषर्कम् । मचापार्थं कृतं मुद्रे वधूमिस्ते निषानिनाः ॥७०॥

इस देखकर विजिरा, और और दूषण उसक पुनः सब मयाकार मुनकर प्रसन्न हुए और प्रशान्त  
 राजाओंको उसी समय समझे लड़कत लिये बंजा । ५७ । ५८ ॥ तब रामने चौदह बाणोंसे क्षणमात्रमें सीता-  
 पुत्रक उनको मारकर अपने लोक भेज दिया ॥ ५९ ॥ उनके मारे जानकी मयाकार मुनकर स्वर आदि  
 मानो राक्षस मुद्रे होकर चौदह हजार मन्त्रिकोंक साथ मुद्रे गिरा निकल पड़े ॥ ६० ॥ राम भा सीता तथा  
 लक्ष्मणका एक क्षणमें स्वर और सीता मन्त्र-कहनासे प्रहार करते हुए, राजाओंक साथ प्रशान्त मुद्रे करने लगे  
 ॥ ६१ ॥ उस समय राम अपने चौदह हजार रूप बनाकर उनके सामने गय और समभूमिमें उन सबका  
 मर मर्दन कर डाला ॥ ६२ ॥ उन्मुने स्वर, दूषण, त्रिशिरा तथा चौदह हजार राक्षसोंक बाणोंसे मारकर  
 अपने काम भेज दिया । ६३ । इस प्रकार मुनमानस रामने चौदह हजार मन्त्रिकों तथा स्वर आदिकों कीतमी  
 नराक मितारे मार डाला ॥ ६४ ॥ जहाँ ये स्त्र दूषण त्रिशिरा जानकी भाई कटकरसे रहने थे । वह स्थान विकटक  
 न मने प्रसिद्ध था और उसीका लोग आम्बक भी कहने थे ॥ ६५ ॥ तदनन्तर समुन्दर रामने बहु स्थान  
 विकटक ( श्वम्बक ) बाह्यलोको लियाम करनेक लिए दान दे दिया । यह सब देखकर सीता रामका आलिंगन  
 करते उनकी प्रणमा करने लगे ॥ ६६ ॥ एक दिन राम एकान्तमें सातास मन्दर कहने लगे—हे  
 मान ! मुझ सीता बालोंक कारण करके रजोरूपमें अग्निमें सम्भरकसे जगती तरह मेरे साथ  
 जगती और तमावपी बनकर रावणको मोहित करनेके लिये वही पचयत्यां निवास करो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥  
 तब उस वचनको सुनकर सागान वंसा ही किता । लक्ष्मी मुनग्या लंकामें जाकर रावणसे  
 बात — ॥ ६९ ॥ हे रामसंगत ! मुझरे जैसे राजाको धिक्कार है, जो दूनोंके हाथ मुझे रावणकी दशाका वसा  
 मज दगता । चौदह हजार सेना सहित मुझरे भाइयोंको मनुष्यरूपवाले रामने वण्डकारण्यमें मारकर गिरा  
 दिया । उसक इस वचनको सुन तथा उसका बहु दगा देन मिहामनसे कुछ ऊँच होकर यह अपनी बहिनसे  
 बुदने लगी कि मुझ होनेका क्या कारण है, मो बनजाओ । तब यह राक्षसेधर रावणसे बोली— । ७०-७२ ॥  
 त्रिविधमें स्त्र लक्ष्मणको देखकर मैंने त्रिशिर त्रिशिर या कि इनको रावणके लिये ले आऊँगी । यह विचारकर मैं  
 इसको पचयत्य लिये कामने बनी ॥ ७३ ॥ हे रावण ! इतनेहीमें एक वचनसे मेरी यह दगा कर दी । रावणके

यद्यस्ति पौरुषं किञ्चित्तादौ सीता ममानय । नोपेदधोमुत्तुस्त्रिष्ठ यथा स्त्री महामर्तुका ॥ ७६ ॥  
 तनस्या वचनं श्रुत्वा मान्वयामास तां स्वसाम् । तौ रामरश्मणी हन्वा तव शोकाग्रमार्जनम् ॥ ७७ ॥  
 करोम्यहं लोहिनेन तयोः मेदं भवस्व मा । एत नानाविधैर्वाक्यैः मान्वयित्वा स्मरसां ब्रुहुः ॥ ७८ ॥  
 स्वहितस्यापदेष्टारं मानुलं वपसि स्थितम् । ययौ रथेन मार्गञ्च तस्मै वृत्तं न्यवेदयत् ॥ ७९ ॥  
 सोऽथ तं वीपयामास भागिनयं मुहुर्महः । विश्वामित्राध्वरे त्यक्तपात्मानं न न्यवेदयत् ॥ ८० ॥  
 रामारूपया एवं रत्नं रजतं लक्ष्मभूषितम् । श्रुत्वाऽत्र रादि वन्किचिद्रामं गन्वा विभेम्यहम् ॥ ८१ ॥  
 केन ते शिक्षिता बुद्धिर्विषं लक्षादिचातिनी । आप्तरूपोऽस्मि कः शत्रुपेनेयं शिक्षिता मतिः ॥ ८२ ॥  
 कथां न कुरु रामस्य तं दृष्ट्वा न्य मग्निभ्यमि । ततः क्रोधेन त आह वदि नायादि कथयम् ॥ ८३ ॥  
 मया सहि वविष्यामि त्वामतः कुरु महचः । धृत्वा त्वं सुगरूपश्च रावस्त्यामनुयाम्यति ॥ ८४ ॥  
 त्वं शब्दं कुरु रामस्य लक्ष्मणस्तेन गाम्यति । ततस्तां जानकीं वेगान्तरुद्धा स्वामानराम्यहम् ॥ ८५ ॥  
 लकायस्तद दास्यामि र्वायग ज्यादुमादात् । इति तस्यावदं दृष्ट्वा मार्गचीं दृष्ट्वाचिनयन् ॥ ८६ ॥  
 रामहन्तान्मृतिः श्रेष्ठ माऽस्तु रावणहस्ततः । इति निधित्य मार्गचण्डेयमुक्त्वा पर्यौ तदा ॥ ८७ ॥  
 रावणेन त्वं स्थित्वा गन्वा पञ्चवटीं शनि । धृत्वा हेममयाधिप्री मोहयामास जानकीम् ॥ ८८ ॥  
 सा छाया तामनी रष्टा मृग रावणमनरीत् । कीडावर्षं मां मृग पैम धृत्वा देहि स्मृतम ॥ ८९ ॥  
 मृगश्चक्ष्णभिर्भागः करोमि कंचुकीं स्वयः । ततस्तदा चन्दर धृत्वा ज्ञान्वा मयं रघुनम ॥ ९० ॥

बहुरूप लक्ष्मणने पंचवटीय मेने यह रमा को है ॥ ७६ ॥ उन्होंने बिना किसी कारण तपस्या कर । हुए भरे प्राण-  
 प्रिय पुत्र साम्बन्धो श्री मार डाला । तब मुक्त लक्ष्मण करवके स्थित मर-भ्रमणादि भाइयों रामके साथ पुष्ट किया ।  
 किन्तु उसने उन्हें भी मार डाला ॥ ७७ ॥ यदि रत्न मुक्त भी बल है तो सीताका हर्षण कर नहीं तो पतिक मर  
 जानपर विश्वास नहीं तो त ह नीचा मुहू आक भेडा रह ॥ ७८ ॥ उसने वचन सुनकर रावण अपनी बहिनको  
 समझाने लगा और बोला कि मैं राम-लक्ष्मणका मारकर उनके मुँहसे तुम्हारे नाकाधुका साजन कर्कण-नृम  
 हन्ता न हूँ ॥ इस प्रकार अन्तक वाक्योंसे उसने सीताको जोरजोर समझाया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ रावण  
 बैठकर बहु हितक उद्देश करतवाले तथा लक्ष्मण स्थित करने मामा मार्गचक पास गया और उसे सब हाल कह  
 सुनाया ॥ ८९ ॥ तब मार्गच अपनी भाव रावणका बेर-बेर दराता हुआ ठाना कि रामने मुहू विश्व मित्रक  
 पंजके समय बाणसे उदाकर समुद्रक किनारे फेंक दिया था ॥ ८० ॥ तबसे मैं रत्न, रत्न, रजत ( चादी ),  
 स्वयं, सभा ॥ तथा रमणी आदि नामोंके रकार अक्षर मुनये आरम्भ हूँ पर जाना है । अर्थात् रामके  
 भयसे मैंने इन सब चीजोंसे प्रेम करता भी छाड़ दिया है ॥ ८१ ॥ लंकाका नाम करतवासी यह भवना तुमको  
 किसने दी है ? वह मित्ररूपमें छिपा हुआ दुम्हारा मनु ही है, जिसने तुमको यह मति दी है ॥ ८२ ॥ उसकी  
 बात मन पनी, नहीं तो वारे जायाये । यह सुना तो मुहू होकर रावण मार्गचसे बोला-यदि तुम रामक  
 पास नहीं जायाग तो मैं तुम्हें मार डालूँगा । इसणये मरा कहा जान सो । मृग मृग बनकर जय रामके  
 पास जायाये तो राम मुहू रि पंछ चल रहे । बनमें दूर से जानकर तुम रामके जैसा स्वर बनाकर 'हो लक्ष्मण'  
 ऐसा चिल्लाया । तब लक्ष्मण भा आधम छोडकर तुम्हारे ओर चल गये । इस समय मे भाव सीताको अपनी  
 लंका उठ लाऊँगा ॥ ८३-८४ ॥ यदि मेरा कार्य सिक ही जायगा तो मैं तुम्हको लंकाका सखा राज्य दे  
 दूँगा । उनके आग्रहका सुनकर मार्गचने मनमें विचार किया कि रावणके हाथसे मरनेका अवकाश रामके हाथसे  
 मरना अच्छा है । यह मित्रक करक मार्गच 'बहुन लक्ष्मण' कहकर रावण सवार होकर रावणके साथ पञ्च-  
 वटीको उनी समय चल पडा । वही जाकर समने सुवर्णका पुग बनकर सोलका मोहित कर लिया ॥ ८६-८८ ॥  
 तब समीपगमयी स्यासारणी मंता मृगको देखकर रामसे बोली—हे रघूनाम राम । इस मृगको पकडकर मुझे  
 दे दो । मैं उसके साथ प्रडा करूँगी ॥ ८९ ॥ और यदि बाणसे मारकर ला दो तो मैं उसके चन्देकी सीमा  
 बनाऊँगी । सीताके वचन सुन गया मुहू सोर-समझकर रघूनाम राम सीताकी रक्षाके लिये माई लक्ष्मणको

सीताया रक्षणं बंधु मरुताप्याशु मृगं ययौ । ततः पलायनं चक्रे मृगो गमं विकल्पेण ॥१०१॥  
 रामशरणेन भिरांगः शब्दं दीर्घं चकार मः । हा सीमित्रे यमागच्छ हा हागच्छस्व कानने ॥१०२॥  
 इत्युक्त्वा रामवदात्ता ममारु हृषिर्न ययन् । व शब्दे जानका भुञ्चा चोदयामास लक्ष्मणम् ॥१०३॥  
 सोऽप्याह रामवचन मेदं नीत्ते भयं त्यज । ततः सा न पुनः प्राह जानाति तत्र वेष्टितम् ॥१०४॥  
 अग्नस्तोपदेशेन मूर्तिं रामस्य चांशुषि । अथवा मेऽस्मिन्सोमिन् बहिः प्राणास्ववाग्यहम् ॥१०५॥  
 तन्कुरुचचनं पश्याः भुञ्चा चान्धा महदुपमम् । जानकीं ग्रह सीमित्रिर्वाणः मृगु यचो मम ॥१०६॥  
 रामवादी सुरकुन्द रञ्जनस्यो मम न्वया । ताडितं वाक्यश्रेणाह भोऽयमयस्याचमत्कृतम् ॥१०७॥  
 तथापि शृणु मडाक्ष यन्मयाऽप्योच्यते हितम् । मर्त्यतां धनुषो रेखा कृतां स्वप्नगोऽधुना ॥१०८॥  
 न्वदभगार्थं दुरासो दुर्बलगतं महजमाम् । मा ममकुलं वयस्रेयां प्राणः कुरुगदंरपि ॥१०९॥  
 इत्युक्त्वा धनुषः कृत्य कृन्दा रेखा ममनतः । बाणदेशे पचयन्ताः सीमित्रिः परिपोषणम् ॥११०॥  
 नन्वा सीतां ममभ्युत्था यथा राम नृगान्वितः । गन्तस्मिन्नगरे तत्र रावणो बिलुहपशूक् ॥११०१॥  
 गन्वा पचयद्वाह रेखापथं बहिः स्थितः । जागृयतेति न चोत्था मूर्च्छां मरुतां म रावणः ॥११०२॥  
 ताञ्छायाययौ मता भिक्षा तस्मै मर्यापतुम् । यथा दार दीर्घदम्ना गृहाप्त्वन्यत्रवीच तम् ॥११०३॥  
 तदा बिलुः पुनः प्राह सीतां पकडलोचनाम् । अर्थाकरोम्यन्तरेण बिलायेतौ मयाऽपिताम् ॥११०४॥  
 गार्हस्थ्य क्षेत्रघवज्य राक्षसु न्व ममिच्छामि । तदि रेखां ममुल्लस्य मा भिक्षां दातुमर्हसि ॥११०५॥  
 तद्विधुवचनं भुञ्चाऽवमोऽधुमेति शक्तिना रेखाबहिः सव्यपादं दम्बा दीर्घेलपच्छरा ॥११०६॥  
 गृहाप्तेमा वगं भिक्षामिति न प्राह जानकी । तनादशाध्यस्तां धुञ्चा भिभूरुषं विसृज्य च ॥११०७॥  
 मरवाहे रथे सीतां सम्यप्याव न्ववतन् । यवदृष्टति पेपेन तावदुदृष्टो वटाधुषा ॥११०८॥

निपुण करके सीमं मृगकं पीछे चल ॥१०१॥ दृष्टि ना रामक भागे दीप्ता हुआ उन्हें बहुत दूर जंगलमें दीड़ा  
 ले गया ॥ १०१ ॥ वही वंशले कपल हकड़ वह सीमं रामक स्वरमें चिल्लाते लगा हा नन्दमण मे चनम  
 मग गया ज छ अ. प्रो । १०२ इत्या कहकर मार च न्व वमन करते दुध मर गया । उस शब्दको नन्वा  
 जानक न न्वमप्या जानक पीछे रह ॥ १०३ ॥ उच्यते बाल-ह सीते ! यह रामका वानव नहीं है, मत रग ।  
 मन्वा रिह कहते लगे कि सीमं कुरुते अविश्रयका काय गया ॥ १०४ ॥ गुप्त चरतके कहेके अनुसार  
 रामका मन्वा अवतार नामक मर जनपद मुझ भांगना च १०५ हा । १०६ बाद गया, मे दुष्टाग अभिल गा  
 पुने लगे होत ॥ १०७ और जभा मर न कृती ॥ १०८ ॥ सीताक इस वचनक मुनकर मुभित्तात्त सक्षम जानका  
 काय हे पाता । मरी बाल मन्वा ॥ १०९ ॥ रामकी आज्ञासे गृहहारी रक्षास मन्वा पुनका मुमन जा बाणम्भी  
 बालाम लायि किआ है उच्यते फल गुप्त जीव पात्राग ॥ ११० ॥ तो सी मरे कहे हुए इस हिनकारी वचनको  
 न्व ली । मे यमुपले गृहहारे कान्ते भाग वह रेखा सीते का है ॥ ११०१ ॥ यह गृहहारा रक्षाके लिए और दुष्टाके  
 मन्वा कृष्णवीर्य तथा महादुध मर उच्यते कहेवाली हा ॥ ११०२ के मन्वा का वानेवर सी गुप्त इस रक्षाका  
 उच्यते नहीं करते ॥ ११०३ ॥ ऐसा कहकर यमुपका क. रस पक्षमणन वचनको बाहर लाईका भक्ति सीताकी  
 कान्ते और रेखा सीते दी ॥ ११०४ ॥ तदनन्तर सीताको प्रणाम करके वचन प सीते रामकी ओर चम दिव ।  
 मन्वा समक्ष रामका भिभूरुषा मन्वा मन्वा करके वचनको बाहर लाकर मन्वा का हाथ खड़ा हो गया और  
 मन्वा वमहारी कहेकर चम हा रहा ॥ ११०५ ॥ ११०६ ॥ तब छपाया सीता उसको भिक्षा रनेके लिये बाहर  
 लायी और हाथ बहाकर भिक्षासे 'भिक्षा लो' ऐसा कहा ॥ ११०७ ॥ तब कमलके ममान मेजोवासी सीतासे विधुने  
 कहा कि मे रेखाक भिक्षास वचन हुई भाले नहीं लता ॥ ११०८ ॥ यदि तुम रामक मूर्स्याधमकी रक्षा करना  
 चाहती होतो तो रेखाके बाहर आकर भिक्षा दी ॥ ११०९ ॥ धिपुके इस वचनका मुनकर 'कली काव र लगे'  
 इस शब्दसे बाये बायेको रेखास बाहर लाकर और मन्वा हाथ करके ॥ ११०६ ॥ जानकी 'वह भिक्षा लो' ऐसा  
 कहो । सीता रावणने उनको पकड़ लिया और भिक्षाका मन्वा पाव उवा सीताको गयोके मन्वा विभ्रमकर पीछे

चकस तमुलं पुङ्खं गवणेन स पक्षिगद् । निजपद्भ्यां मदेनाथ चूर्णीकृत्य रपोलमम् ॥१०९॥  
 मगवर्षो विनिष्विष्य बभञ्ज तदनुमहेत् । मुकुटं न दश मंदिष्य कृत्वा देहं तु जर्जरेत् ॥११०॥  
 मूर्च्छितं गवणं कृत्वा तां सीतां मन्यवनेयम् । स्वस्थाभूतो दशाम्योऽपि ताडयामास तं पदा ॥१११॥  
 क्रोधेन मदनाविष्टः पक्षिणा जर्जरीकृतः । ततो जटायुः पतितो यमन् रक्तं मुखेन सः ॥११२॥  
 ततो विहायमा सीतां निनाय रावणः पुनः । रावणमेति अल्पनी सीताऽभून्पस्तलोचनम् ॥११३॥  
 उच्यते चरधाथ पथि स्वाग्रणानि सा । दृष्ट्वाऽथ पर्वते प्रोच्यैः मस्वितान् पच वानरान् ॥११४॥  
 प्राप्तिपत्कपिमध्येऽथ पूवनार्थं गृध्रमम् । ततो दशाम्यस्तां नीत्वा लक्ष्मीं च अन्यवेशयत् ॥११५॥  
 प्रार्थयामास तां सीतां नोत्तरं मा दर्शय नदा । तस्याः संरक्षणार्थाय गक्षमांश्च महम्भुजः ॥११६॥  
 आशययदशम्भुः स स्वयं मेहं विवेकं ह । नदेन्द्रो अक्षवाक्येन पायसं वर्षेत्पुष्टिदम् ॥११७॥  
 दर्शय रक्षसि सीतार्थं तेन तुष्टा बभूव सा । ममर्ष्य पायसं किञ्चिद्रामाय लक्ष्मणाय च ॥११८॥  
 मुराजनिधये दत्त्वा दृष्ट्वा धेनुं च खेचरान् । हन्वाऽथ विजटां किञ्चिद्विषयमास जानका ॥११९॥  
 ममज्य रावणेनापि राक्षसार्थं चोडय । प्रेषिता रामवानार्थं ते कवधेन भक्षिताः ॥१२०॥  
 यत्र यत्र पचवट्यां रामराणभयान्मृगः । चक्षुरा गीतगीतारे मस्थानि तत्र तत्र हि ॥१२१॥  
 स्थानिसहान्यनेकानि जायन्ति च पुगणि हि । मृगस्य पतितं यत्र नूपुरं परिभावत ॥१२२॥  
 नूपुराख्यो महाग्रामः प्रोच्यते गीतगीतारे । रामराणप्रहारिणः पचलाभोऽप्यतद्भुवि ॥१२३॥  
 मृगो यत्र महोत्तमत्र चापल्यग्राय इयते । गीतगीतारे ग्राहभूयां रामवानहतो मृगः ॥१२४॥  
 पतितो यत्र तज्जिह्वं दृश्यतेऽद्यापि मानवः । मौमित्रचापजा रेखा पचवट्याः समन्ततः ॥१२५॥

सीता । वह भावा जा मृग था, तभी जटायुन उसे देख लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ तब पक्षिराज जटायुन रावणके साथ तुपुत्र बुद्ध किया । अपने पाँवों और चारों तरफ मार-मारकर उसके रथका चुर-चुर कर दिया ॥ १०९ ॥ अगले गवडाका पीठ डाला । उसका बड़ा भाग घुप लाड़ दिया । मुमुक्षुकी काट डाला और उसके शरीरको जर्जरीत कर दिया ॥ ११० ॥ इतना ही नहीं, रावणका मूर्च्छित करके वह सीताका सीटा लान लगा । तभी रावण भी खरब होकर उसका पक्षिम मारने लगा ॥ १११ ॥ बड़ा क्रोध करके रावणने पक्षीको और पक्षीने रावणको जर्जर कर दिया । अन्तमें जटायु घायल होकर चरनगर गिर पड़ा ॥ ११२ ॥ तब रावण सीताको लेकर अकाशमार्गे लङ्काकी ओर चल पड़ा । रावण हाँसा मोची मौलिस 'हा राम-हा राम' चिन्त्यने लगी ॥ ११३ ॥ उसी समय उन्होंने तीन एक उन्नत पर्वतक शिखरपर बैठ हुए पाँच बानर सुपीय-दुमान् आदिवा केवा और अपनी माँटों की काट तथा उसके दुक में अपने गहने बाँधकर वही गिरा दिए । उधर दक्ष-मुख रावणन सीता को ले जाकर लंकाके अमाकिनीकाम रखा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ प्रेम करनेके लिये उसने सीतासे बड़ी प्रार्थना की, परन्तु सीता किसी प्रकार सहमत नहीं हुई और न उसकी बातोंका कुछ उत्तर ही दिया । उनका रक्षाके लिये रावणने वहाँ हजारों लक्षसिय निगुप्त कर दीं ॥ ११६ ॥ उनको रक्षा करनेकी आज्ञा देकर रावण अपने मङ्गलम पसा पड़ा । इसी अवसरपर बट्टाके कहनेसे इन्द्रने वहाँ जाकर वद घर तक भूखको मिटाकर सन्तुष्ट रखनेवाला पायस ( सीर ) एकान्तमें सीता को दिया । इससे सीता बड़ी प्रसन्न हुई । उन्होंने राम तथा लक्ष्मणके नाम उसमेंवे कुछ पायस निकाला ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ कुछ वेवताओंको दिया । कुछ गीतों तथा पक्षियोंकी खिलाया और बाँट-सा विजटाको देकर बादमें बची हुई थोड़ीसी खीर जानकीने स्वयं खाया ॥ ११९ ॥ उदनन्तर रावणने सलाह करके सोलह राक्षसोंको रामको मारनेके लिये देवा, परन्तु वे सब रास्तेमें ही ककश-के द्वारा का डाले गये ॥ १२० ॥ उस समय पचवटोंमें रामके हाथके भयमें जहाँ-जहाँ मृगख्यी मारीच गया था, तैसीकी किनारे वहाँ सर्वत्र अनेक कामवाले स्थान स्थापित हुए । जिस जगह रोकने हुए मृगका नूपुर गिर गया था, वहाँ नूपुरपुर नामका बड़ा भारी गाँव बस गया । रामके राणवे ताडित होकर चपल नेत्रोंवाला मृग जहाँ मृगकीनर गिर गया था, वहाँ बड़ा भारी चापल्य नामका गाँव बस भी गया हुआ दोकता है । गीतगीतोंके किनारे



अद्यापि दृश्यते स्पष्टा नदीरूपा भयस्त्रया पाषाणभूम्भ्या तत्रैव रावणस्य पदं महत् ॥१२६॥  
 अद्यापि दृश्यते सीमं गतंरूपं नतोन्मः । स्वराद्यैर्बुद्धममये पञ्चवट्या विदेहजा । ॥१२७॥  
 गुराणां गोपिना मर्मा मलयापि तत्र दृश्यते । तथा गमो लक्ष्मणोऽपि पञ्चवट्यां सदेव हि ॥१२८॥  
 दृश्यतेऽद्यापि भो देवि नञ्जनर्तान्दृष्टिभिः । अज्ञानदृष्टिमग्ने तु दृश्यते प्रावरुप्तिभिः । ॥१२९॥  
 रामतीर्थं राघवकृतं सीतान्द्रुमगणपङ्कजे । वीर्यं तत्र तु सीतभ्यां दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ॥१३०॥  
 गयेन सीतया पत्रं स्रज्यायां पञ्चनेपरि । कुत पूर्वं तु सपनं रामस्रज्यागिरेः स्मृतः । ॥१३१॥  
 अस्याकृपाणि दृश्यतेऽद्यापि तत्र तृणानि हि । गमोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा भ्रुव्या सीताचरोऽप्युमम् ॥१३२॥  
 निवेदित लक्ष्मणेन कोशाभ्रम्पञ्चयेनया । निमित्तान्यनिधोरापि दृष्ट्वा चैव समवतः ॥१३३॥  
 पत्नी पञ्चवटीं प्यत्रस्तत्र सीतां दर्शयन् न । ततो बालुभञ्जतु दर्शयन् सकलाञ्जनान् ॥१३४॥  
 विचिन्वन्मर्चतः सीतां शुभराजं ददयन् मः । ततः स पश्चिन्नमया रावणन हर्ता प्रियाम् ॥१३५॥  
 ज्ञात्वा तं योजयामास बहिना जंविनक्षत्रे । तत्पृथग् कन्यमांसं क्षिप्त्वा स्नान्वा रघूत्तमः । ॥१३६॥  
 यया दक्षिणमार्गेण विचिन्वन्मृदुवप्रभुः । पूर्वदग्निहोत्रं स चकार हृषभार्थया ॥१३७॥  
 गतस्त्रिचतरे देवि त्वया प्रोक्तम्वह पुनः । त्वया यद्य जपो नित्यं क्रियते गद्यवस्य हि । ॥१३८॥  
 सोऽयं स्त्रीदिरहात्स्वस्य मृदादभ्रमते बने । तत्रेति वचनं भ्रुव्या तदा त्वामनुवं त्वदम् ॥१३९॥  
 देवि वातात्मदाविष्णुभ्यश्च रामो बहवते । शिष्यार्थं सकलांल्लोकान् मृडवब्रुवते बने ॥१४०॥  
 नार्गमणो दर्शयाम्यः सर्वदाऽत्रेति शिष्ययन् । नर्माविषयज दुःस्वमीदृशं भयकारकम् । ॥१४१॥  
 दर्शयन् सकलांल्लोकानिति सोऽब्राह्मणे बने । इति मद्रचनं श्रुत्वा तत्परीश्वार्थमुपवा ॥१४२॥

यहां रावणभूमि, पदराल घटना, वा रामवापसि निहत्त ह कर मृग गिरा था ॥ १२६-१२७ ॥ उसका चिह्न वहाँ ज्ञान भी मनुष्यको दिखाई देता है मुनिब्रह्मन् लक्ष्मणक अनुप दाता सीता हृद रेत पञ्चवटीक आरों आर मान भी चकानक नदीक रूपको घातक हुए गये दिखाई देता है । उस पाषाणमयी भूमिमें रावणक वहा माली पदचिह्न एक खद भी गडके रूपमें अब भी दिखाई दे रहा है । पहले लरके रावण कुछ करके समय पञ्चवटीमें बिदहजा क्षातको जिस गुफामें उनके प्रति रामने शिवाया था, वहा भी विद्यमान है ।  
 १. इति 'तत्रचन' तथा सीता महारामाभाये हरेव राम लक्ष्मणका वहाँ बहान होता है और सीताक स्थापित होचें इस समय भ. दिख.ई देते हैं ॥ १२६-१३० ॥ जिस पवनपर रामन लक्ष्मण निर्वाच करके सीताके साथ लवन किया था वह रामलक्ष्मणगिरिक वापस प्रमिष्ट है ॥ १३१ ॥ वहाँक दृष्ट आत्र सो लक्ष्मणकर दिखाई देते हैं । इसर रामने लक्ष्मणको आया देखा तब उसक मुखसे सीताक वहा वृत्तवचनको गुन । ॥ १३२ ॥ यह सन हुआ लक्ष्मणन कामपूवक सीमा बहता हुए तथा विस्मयके साथकहा था । राम आरा आर बल्यन्त पवनक बकुलीको दक तथा बकाकर शीघ्र हा पञ्चवटी म गये तो वहाँ सीता नहीं दिखाई दी । पञ्चात् मनुष्यमवसे वे समस्त कनके पनु-रका तथा जड़ वृत्ती आरसे से ताक पना पूछन और सीताको सर्वथ दुःखन गये । इतनमें पृथराज बटावु देखादी दिया । उस पञ्चाके मुहसे गुन कि लक्ष्मण प्रिया सीताका हृदय कर से क्या है ॥ १३३-१३४ ॥ मरणोपरान्त जगद्गुरु कपलागुप्तर रामने उसका अग्निवस्कार किया । उसको शक्ति तथा तुलिक लिए रामने अन्य गुन मर्दक मांससे पिण्डबान किया और स्नान आदि किया था ॥ १३५ ॥ पञ्चात् सर्वेभर राम बूठ वृत्तको उरु सीताको जोजते हुए दक्षिणक ओर बने । रस्तमें से ताक लक्ष्मणमें कुहाकी सीता बनकर उसाके साथ रामने अग्निहोत्र किया ॥ १३६ ॥ इसी बीच हे देवि पावला ! तुमने मुझसे प्रवन किया था--हे प्रभो 'आप नित्यप्रति जिन रामका नाम जपा करते हैं ॥ १३७ ॥ वहा राम स्नाक विष्टसे वृत्ती तरह बलने मारे-आरे फिर रहे हैं । पुन्हा वह कथन सुनकर मैंने तुमसे कहा-- ॥ १३८ ॥ हे देवि ! यह क्षात्वा विष्णु भगवान् राम बनकर पृथ्वीमण्डलके लोगोंको शिक्षा देनेके लिए वनर गूढका तरह भ्रमण कर रहे हैं ॥ १३९ ॥ वे सबको यह उपदेश देते हैं कि मनुष्यको लक्ष्मण आसक्त रही होना चाहिए । स्थाविचक आसक्ति ऐसे ही दुःख

त्वं गताऽसि समीपं श्रीराघवस्य तदा वने । सीतारूपेण तं रामं त्वया प्रोक्तं शुभं वचः ॥ १४३ ॥  
 रामं राजीवपद्मस्य मायये पश्य जानकांम् । कीदृश्याप्र मया मर्धमेहि शीघ्रं मुनी मव ॥ १४४ ॥  
 त्वदुक्तं राघवः श्रुत्वा विहस्य त्वां वचोऽब्रवीत् । जानाम्यहं त्वं कार्याति सीतान्त्वं मामि वेपथयम् ॥ १४५ ॥  
 त्वं किं सीतारूपेण मोहयस्यस्व मां वने । एवं पुनः पुनः प्रोक्ता पदा स्वं राघवेण हि ॥ १४६ ॥  
 तदा त्वया तत्स्वरूपं ज्ञातं मम्यं मयेतिम् । ततो नन्वा राघवद्रं प्रार्थयिष्या पुनः पुनः ॥ १४७ ॥  
 मायनाऽसि पुनर्मां न केनाप्यभिसरेष्यसे । त्वं का त्वं किमिति प्रोक्ता राघवेण पुन पुनः ॥ १४८ ॥  
 या त्वं सा दंडके जाना त्वं क्व नाम्नांशिका वने । त्वं लज्जिताऽसि राघवेण यत्र तत्र नय स्यसे ॥ १४९ ॥  
 तस्मिन्नापुनरात्मनाऽऽसीन्नगरं दंडके वने । ततस्मां राघसीमेयः जन्मनुदासेणां दिशम् ॥ १५० ॥  
 यद्वो निदता मामं राक्षसा धाररुणिणः । एतस्मिन्नतरेऽरण्ये कर्षणेन धृती तदा ॥ १५१ ॥  
 श्रीरामलक्ष्मणौ मागे योजनाधतपादुना । दृष्ट्वा तं शिरसा हंसं बाहू निच्छेदनुमदा ॥ १५२ ॥  
 ततः स दिव्यरूपोऽभून्नवा रामं वचोऽब्रवीत् । पदा राघवेण जोडं ममणो वरदानतः ॥ १५३ ॥  
 केनाप्यवध्यम्यहममाराकं मुनीश्वरम् । रक्षो भवो न शमोर्द्धं मुनिना प्राह मां पुनः ॥ १५४ ॥  
 त्रेतायुगे यदा रामलक्ष्मणौ योजनाधतौ । छेत्त्यनन्ते महाबाहू नदा शयान्प्रमोक्षयसे ॥ १५५ ॥  
 ततो राक्षसदेहोऽहमन्द्रमन्यद्रवं रुपा । संऽर्पि व सं ग मा राम शिगदेशं याताडयत् ॥ १५६ ॥  
 तदा कुक्षौ शिरःपादपुगलं च गतं क्षणात् । ममदत्तगान्धर्व्युनभून्मे वचनाडनात् ॥ १५७ ॥  
 सुखाभावः कथं जीवेदगमिन्पमगाधिपः । तदा मा प्राह कथया जठरे ते मुख भवेत् ॥ १५८ ॥  
 बाहू ते योजनायाभावघ्नं शीघ्रं मविश्वतः । तदारब्धात्र दहृष्या लब्धं वद्वक्ष्याम्यहम् ॥ १५९ ॥

तया अमर्यादा काय वनती है ॥ १४१ ॥ इस बातोंका वनत ने तथा लज्जित शिरा दन्तक लिए राम वनमें  
 दधर-ज्वर अमण कर रहे हैं । मेरे इस उत्तरको सुनकर तुम उनकी पत्नी, लेनका उद्यत हुई ॥ १४२ ॥ उस  
 समय तुम सीताका रूप बनाकर श्रीरामके पास गयी और उनसे कहा—॥ १४३ ॥ हे कमलसदृश  
 मेथोजाल राम अपने सामने खड़ी मुझ जानकीको देखा । अम्मा, मेरे साथ इस वनमें कौंडा करके  
 मुक्त प्राप्त करो ॥ १४४ ॥ तुम्हारे कवनको सुनकर राम हैम और कहा मैं जानता हूँ कि तुम कीन हो  
 ॥ १४५ ॥ अपने सीताका रूप धारण करके मुझ यद्यो मैं हिन नरका हूँ ? इस प्रकार जब रामन वारम्बार  
 कहा ॥ १४६ ॥ तब तुमने मेरे कहनेके अनुसार रामका वाग्वचन स्वरूप पहिचान और उनकी पुनः पुनः  
 मायना करके जमा मंगा ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ तदनन्तर तुम रजनीक केलात पर्वतक शिखरपर मेरे पास लौट  
 आयी । जहाँपर रामन तुमसे पूछा था कि तुम कीन हो ? वहाँ क्या आयो हो और तुम्हारे नामका अम्बिका तो  
 दधरकारण्यम रहती है । यह सुनकर तुम रुज्जित हुई । जिससे वहाँपर लज्जित नामका एक नगर बस गया ।  
 उदन्तर से राम-लक्ष्मण वीरगणों और सब दिशे ॥ १४९ ॥ १५० ॥ उन्हीं मायम बहुतसे धार  
 राक्षसोंको मारा । कसी जङ्गलमें कर्षणे लग वनोंको पकड़ लिया ॥ १५१ ॥ उसमें चार-चार कोसके  
 लम्बे हुए थे । उधे सिरसे रहित देखकर उधेक वालों हुए राम-लक्ष्मणन काट काटे ॥ १५२ ॥ तब वह दिव्य  
 रूप धारण करके नमस्कारपूर्वक रामसे कहने लगा—पहले मैं राघवोंका राजा था । बहुतसे मुझे कर दिया था  
 कि तुमकी कोई नहीं नाश सकेगा । इस सर्वसे मैं एक दिन मुनीश्वर अष्टावक्रका बुद्धि दन्तकर हूँ पदा ।  
 हरेपर उन्हीं बुद्ध होकर मुझका नाप दिया कि तू राक्षस हो जायगा । मेरे प्रार्थना करनेपर फिर व जाने—  
 ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ जता पुनम जब राम-लक्ष्मण तैरी इन योजना मेरे विस्तारवाली भुजाओंको काटने, तब तु  
 नापसे मुक्त हो आवगा ॥ १५५ ॥ राक्षस होकर एक दिन मैंने इन्द्रक ऊपर थावा भिषा । उ होने कुम्भ  
 होकर मेरे मस्तकपर वज्र मारा ॥ १५६ ॥ जिससे मेरा सिर और शरीर पीर पेटमें घुस गये । परन्तु चक्र का  
 वरदान प्राप्त होनेसे मेरी मृत्यु नहीं हुई ॥ १५७ ॥ तब मैंने इन्द्राशोक अचिरनि इन्द्रसे प्रार्थना की कि मैं बिना  
 मुझके किस प्रकार की सङ्गा । तब उन्होंने कृपा करके कहा कि जा, तेरे पेटमें मुख हो जायगा ॥ १५८ ॥

तिष्ठन्त्यग्रे मत्तगादिमुनीनां परिचारिकाः । श्वरीदर्शनार्थं स्वं तत्र याहि रघूक्ष्म ॥१६०॥  
 कथयिष्यति सा सीताशुद्धिं ते रघुनन्दन इन्दुक्त्वा राघवं नत्वा स्तुत्वा स्वर्गं ययौ मुवा ॥१६१॥  
 ततो रामो लक्ष्मणेन श्वरीसंनिधिं ययौ । साऽपि सपूज्य भ्रातारं विद्वेर्षेर्वनसमर्थः ॥१६२॥  
 चित्तमारोदुमुधुक्ता राघवः प्राह हर्षिता । ऋष्यमूकगिरिवग्रे सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह ॥१६३॥  
 वर्तते तस्य सख्येन सीताशुद्धिं लभिष्यति । गच्छ राम इतस्त्वग्रे पंचानाम् सरोवरम् ॥१६४॥  
 तत्तटके तु वृक्षाणां फलानि विविधानि च । भक्ष्यस्व त्वं जलपीम्भा याहि सुग्रीवसंनिधिम् ॥१६५॥  
 इन्दुक्त्वा श्वरी रामं नत्वा बद्धिं यिवेश सा । रामसदर्शनान्मुक्तिं प्राप्ता वैकुण्ठमाययौ ॥१६६॥  
 ततो रामः शूनैर्भ्रात्रा ययौ पंचामरोवरम् । फलानि भक्षयामास पीन्वा तज्जलप्लुतमम् ॥१६७॥  
 ततः शूनैर्ययौ मार्गे ऋष्यमूकाचलं प्रति । पश्यन्वनानि सर्वत्र चितयामास जानकीम् ॥१६८॥  
 एव गिरीन्द्रजे प्रोक्तमाख्यं चरितं तव । श्रीरामस्य ससीतस्य लक्ष्मणेन युतस्य च ॥१६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितावर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( राम-सुग्रीवसंघी और वाल्मिख )

श्रीशिव उवाच

अथ रामो लक्ष्मणेन ऋष्यमूकाचलं प्रति । ययौ घृतधनुर्वणिने नेत्रे सर्वत्र चालयन् ॥ १ ॥  
 ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवेणाथ तौ दृष्टौ ऋष्यमूकस्थितेन हि ॥ २ ॥  
 सुग्रीवस्तौ तदा दृष्ट्वा चतुर्भिर्मन्त्रिभिर्धृतः । संशय्य मारुतिं प्राह चालिना प्रेषिनाशुभौ ॥ ३ ॥

जीव ही तेरे हाथ की गाजन-गोजन भर लम्बे हो जादंगे । तबसे मैं जो कुछ इन हाथोंके बीच आ जाता है, आ जाता है ॥ १५२ ॥ यहाँसे आगे मतङ्ग आदि मुनियोंकी परिचारिकायें रहती हैं । हे रघुत्तम ! आप वहाँ जाकर श्वरीसे मिलें । १६० । हे रघुनन्दन ! वह आपको सीताका पता बतायेगी । इतना कहकर उसने आपकी स्तुति की और नमस्कार करके वह सानन्द स्वर्गको चला गया ॥ १६१ ॥ तदनन्तर राम लक्ष्मणको लेकर श्वरीके पास गये । श्वरीने उनके अच्छे-अच्छे पुष्पों तथा फलोंसे उनका पूजन-सत्कार किया ॥ १६२ ॥ बादमें चित्तारोहण करते समय हृष्यपूर्वक वह रामसे बोली कि आगे ऋष्यमूक पर्वतके शिखरपर मन्त्रियोंके साथ सुग्रीव रहता है । १६३ ॥ उसकी मित्रता प्राप्त करनेसे आपको सीताका पता मिल जायगा । हे राम ! आप यहाँसे चलकर पंचामरोवर जायें ॥ १६४ ॥ उसके किनारेपर लगे हुए वृक्षोंके विविध फल खा तथा जलपान करके आप सुग्रीवके पास जाइएगा ॥ १६५ ॥ इतना कहकर श्वरीने रामको प्रणाम किया और अग्निमें प्रवेश कर गयी । इस प्रकार रामके दर्शनमात्रसे मुक्त होकर वह वैकुण्ठवाम सिधारी । १६६ ॥ तदनन्तर राम भाई लक्ष्मणके साथ पम्पासरोवर गये । वहाँके सुन्दर फल खाकर सरोवरका निर्मल जल पीया ॥ १६७ ॥ पश्चात् धीरे-धीरे ऋष्यमूक पर्वतको ओर चले । रास्तेमें चारों ओर दूरे-भरे वनोंकी शोभा देखकर राम वास्वदार जानकीका स्मरण करने लगें । १६८ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! यह मैंने तुमको सीता लक्ष्मण तथा श्रीरामका किया हुआ चरित्र कह सुनाया । १६९ ॥ इति शतकोटिरामचरितावर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इस तरह राम हाथमें धनुष बाण लिये और नेत्रोंसे चारों ओर देखते हुए लक्ष्मणके साथ ऋष्यमूक पर्वतके पास पहुँचे । १ ॥ वहाँ शिखरपर बैठे सुग्रीवने पर्वतके पास जाते हुए राम-लक्ष्मणको देख लिया । २ ॥ उन्हें देखकर सुग्रीवने अपने चारों मन्त्रियोंकी बुलवाया और उनसे मन्त्रणा

मां हनुं पृथक्कोऽडौ मन्त्रीरौ नगकुनी । इतोऽस्माभिः प्रगन्ध्य मत्रं भृशु मयोच्यते ॥४॥  
 गच्छ जानीहि मत्रं नै बहुभूत्वा द्विजाकृतिः । ताभ्यां समापण कृत्वा जानीहि इदं तपोः ॥५॥  
 यदि नो दृष्टहृदयो मन्त्रां कुरु कगमनः । माभुन्वे स्मितवक्त्रोऽभूरेवं जानीहि निश्चयम् ॥६॥  
 तथेति बहुरूपेण गन्वा नन्वा गृहमम् । कौ पुनः पुरुषस्याप्यविति पश्यन् आकृतिः ॥७॥  
 नन्दनं लक्ष्मणः प्राह पूर्ववृत्तं सन्निधयम् । शरणीनपनाद्रामः सख्यं कर्तुं समागतः ॥८॥  
 गुह्यं देवाय तच्छ्रुत्वा स्वरूपं आकृतिध्वजः । अकार नञ् प्रकट स्वीयं वृत्तं न्यवेदयत् ॥९॥  
 मन्त्रं धर्मविशेषाय धर्मं शान्तुमर्हयः । तथेति आकृतेः स्तब्धे मस्मिन् नो बभूवतुः ॥१०॥  
 उपगतं गिरिपूर्ध्वेन खणादेव महाकपिः । वृक्षच्छायां समाश्रित्य तौ स्मिन् गमन् लक्ष्मणौ ॥११॥  
 गुह्याय साहसिगन्वा गमधूर्तं न्यवेदयत् । ततः प्रशान्त्य शब्दं च सुप्रानो गव्येन हि ॥१२॥  
 अकार मन्त्रं योगेन समालिख्य परम्परम् । वृक्षच्छायां स्पर्शं शिष्टा निष्टगर्भं ददौ कपिः ॥१३॥  
 दर्शय मइतादिष्टाः सर्वे श्रवतस्त्रिवरे । लक्ष्मणस्त्वमसीन्मर्त्यं सुग्रीवं वृत्तमन्मनः ॥१४॥  
 तच्छ्रुत्वा मकलं वृत्तं सुग्रीवः स्व न्यवेदयत् । सर्वे गणुष्व मे वृत्तं बालिना यत्कृतं पुरा ॥१५॥  
 मयपुत्रा दुर्मदश्च किङ्किधामेकदा गतः । कृत्वा च दीर्घशब्दं तु बालिनं ममुपाह्वयत् ॥१६॥  
 न चन्वा निर्वेयी बाली जपान दृढमुष्टिना । बुद्धाव तेन संविद्यो जगाम स्वगुहां प्रति ॥१७॥  
 अनुद्गात तं शाली बालिपृष्ठं त्वहं गतः । बालो ममाह निष्ठं त्वं बाह्यगन्तार्यहं गुह्याम् ॥१८॥  
 अनुकन्वाऽऽधिय म गुहां मामसंकेन नियेयी । गुहाद्वारमनया त्वं निर्गतं सन्निरीक्ष्य च ॥१९॥

पर ४ । हममान्ने कहा कि इन दोनोंकी बालीने बड़ा है, ऐसा ज्ञात हुआ है ॥ ३ ॥ वे दोनों तरफ सारण कर भाग्य बाँध कर घण्टा लेकर मुझे मानने आ रहे हैं । इस कारण हम लोगोंको दर्शन कहीं अन्यत्र मान जाना पड़ेगा, अथवा तुम मेरा बात माना और बाह्यगन्तार्यहं धारण करके गह्वरवाली बनकर उनके पास आओ और उनके साथ जानचान करके उनके द्वारका अधिप्राय जान लो ॥ ४ ॥ यदि उनके द्वारका विचार इतना ही हो तो पहले माइने आकर हाथकी अंगुलीमें करने करना और यदि अच्छा बिनाग रण्य हो तो हंसकर भी और निहारना । वय यही मनेन निश्चिन है, याद रखना ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनुसार हनुमान् बहुत अच्छा कर और गह्वरवालीका स्व वारण करके गमके पास गये और नमस्कार करके कहा — 'पुरुषोंमें सिद्धके समान काय और जाना कौन है ?' ॥ ७ ॥ तब लक्ष्मणने उनका अन्तः मूर्च्छावृत्त कह भुनाया और कहा कि शत्रुकी कहनेसे ॥ ८ ॥ मय पुत्रीके साथ मित्रता करनेके लिये गही काये है ॥ ९ ॥ यह सुनकर हनुमान्ने अपना अहली स्वल्प प्रणम किया और अपना भी सब हाथ कह भुनाया । ॥ १० ॥ साथ ही वह भी कहा कि आज दोनों मेरे कन्धेपर बैठकर गवतार चल । 'गवाहनु' कहकर वे दोनों साकृतिके कन्धेपर बैठ गये । ॥ ११ ॥ महाकपि हनुमान्नी की कर हाथभरमें धर्मके शिखरपर आ गये वहाँ राम-लक्ष्मण एक वृक्षकी छायामें बैठे ॥ १२ ॥ हनुमान्ने बाँधर रामका सब समाचार सुनेदको कह सुनाया । पश्चात् सुनावने अग्नि जलादी और उसे वाली बनकर रामके साथ शीघ्र मित्रता कर ली और परस्पर वे दोनों गले मिले तब स्वयं सुनावने अपने हाथसे वृक्षकी शाखा लोडकर रामको निष्टानेके लिए दे दी । तब तब लीम प्रहस्य हुए और बैठ गये । लक्ष्मणने अपना सब वृत्तम मयावको सुनाया ॥ १३-१४ ॥ यह सुनकर सुग्रीवने भी अपना सब हाल बतान हुए कहा—हैं मय ! पण बालिने मेरे साथ जो कुछ किया है, वह सब आज सुन ल ॥ १५ ॥ एक समय मय दानवका पुत्र दुर्मद किङ्किष्का शत्रुमें गया । वही आकर वह जोरसे चिन्तावा और बालिको मुठके लिये ललकारा ॥ १६ ॥ सो नमकर बालि बाहर आया और दुर्मदका दहन आरम्भ तक भुक्ता मारा । इससे धवराकर वह अपने वृक्षकी ओर भागा ॥ १७ ॥ उसके पीछे बालि और बालिके पीछे भी भी भागा । वही आकर बालिने मुक्त कहा कि तुम बाहर कहे रहा, मैं गुफाके भीत जाना हूँ ॥ १८ ॥ यदि एक रूहोनेमें मैं बाहर आ जाऊँ तो मुझे मरा समझ लीना । ऐसा कहकर वह गुफाम चला गया । उसके कथनानुसार एक महीना बीत गया,

मिथैर्न मनसा वाली दुर्मदेन हनस्मिन्नि । हनस्मिन्ननरे भुम्भा किञ्चिद्वा विपुवेदिनाम् ॥२०॥  
 गुहाद्वारि शिखामेका निधाय दुर्मदस्य च । यन्नतो मार्गगेथार्थं किञ्चिदामागतः स्वयम् ॥२१॥  
 मां दृष्ट्वा विपवः सुखे वेगाच्चक्रुः पलायनम् । अनिच्छन् मन्त्रिणो मां तन्ददे मन्थवेशयन् ॥२२॥  
 ततो इत्था रिपु वाली दृष्ट्वा मां स्वपदस्थितम् । मृगाश्च नगरान्मां च दहिन्यध्यावृत्तदा ॥२३॥  
 ततः स सखदेशेन शब्दयामास दुन्दुभिम् । भूम्पां सुग्रीवराना पः च वप्यो भवेदिति ॥२४॥  
 ततो लोकान्वरिकस्य शृण्वमूको मयाऽऽश्रितः । एकदा दृढाभिनाम ईशो मां हि भूयःशृक ॥२५॥  
 बुद्धाय बालिनं रावो ममाह्वयन् सीतयः । ततो बालो समागत्य धू-श मृग कोण ॥२६॥  
 हस्ताभ्यां तच्छिगच्छिन्वा नोत्थिन्वाऽक्षिपद्भ्रुवि । पपात तच्छिगो हान मन्मथाश्रममात्रधा ॥२७॥  
 रक्तवृष्टिः पपातोर्ध्वमनङ्गोऽप्यश्रपन्कुशा । यथागतोऽग्नि मे वारिन् गिरि शाय ममापने ॥२८॥  
 एवं सुमस्तदारभ्य ऋष्यमूकं न यान्यमौ । प्रतिज्ञां नै क्रोष्यद्य सीतां यात्र ममान् ॥२९॥  
 यदा नीता रावणेन तदा दृष्ट्वा मयाञ्च मे । कृष्णोत्तरीये शिखानि पश्यत्यभूत्ताने हि ॥३०॥  
 ह्युक्त्या दर्शयामास सुग्रीवो भूषणानि हि । तानि दृष्ट्वाऽचरोऽबभूव रामस्य निधय यदा ॥३१॥  
 त्वयारुहानि सीतायास्तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणोऽभ्ररोन । न वैश्वहं समस्तान् वैश्वय मुनिमशानि हि ॥३२॥  
 वदते यानि दृष्टानि मया निज्य मृदुह । ततो रामोऽतिमत्तुष्टो लब्ध्वा सीतामनन्यत ॥३३॥  
 सुग्रीवरचनाद्रामः प्रत्ययार्थं तदा क्षणम् । पादांगुष्ठेनाक्षिपत्तदूदं दुभेः शिर उन्नमम् ॥३४॥

किन्तु वह बाहर नहीं आया । मैं जब गुहामें निकलता हुआ स्थिर रहा तो मनमें निश्चय हुआ कि दुर्मद दानवन बालीको मार डाला । उसी समय यह सुनकर कि शत्रुद्वारा शिखामेका था मैंने ही न निकलकर एक बड़ा भारी शिलास शूक दिया और निश्चय कर लिया कि अब दुर्मदका मार्ग रुक गया है । अब चल करके भी बाहर नहीं निकल सकेगा । तब मैं अपनी चिरिचिया मगरिका चला आया ॥ १५-२१ ॥  
 मुझे देखनेके साथ ही सब मनु भाग गये और मेरी इच्छा न रहनेपर भी मन्त्रिण ने मुझे माई देना प्रस्ताव देना दिया ॥ २२ ॥ पछान् वारिन् भी कृष्णो मारकर घर आया और मुझे अपने घरपर खेता दम्बा ला चुका । चढ़कर उसी समय नगरमें बाहर निकल दिया । २३ ॥ तब ही तब दृष्ट्वा उसने टिपारा पिटवाकर तल्ला दिया कि जो कोई मूर्खको शरण देकर क्षमा करेगा, वह मेरा अस्मायी होगा और मार डाला जाएगा ॥ २४ ॥  
 यन्नतो सब दशोम पुनकर मैंने इस क्रूरमूक गिरिका आश्रय लिया । यहाँकी क्या यह है कि एक दिन दृष्ट्वा नामक ईश मेमका रूप धरकर रात्रिमा ममय बाल का यही मम और उसका पुत्रक निवेष्टनकरा ।  
 काल अकर अपने हाथमें उसकी सीत एकद ला और खींचकर उसका शिर बडम उठा डलवा चुगाकर दूज 'दश हे राम' उसका वह शिर मलङ्ग कपिके आश्रममें जा गया ॥ २५-२६ ॥ इससे मम दूकालिक ऊपर भी चढ़ दिया । तब उन्होंने न प करके इस बात दिया कि 'अरे बालि' यदि मम पत्रत मया आश्रमक बात तु आवेगा न तुला मर जायगा' ॥ २७ ॥ इस बातसे डरकर वाली 'यहाँ' कभी नहीं जाता । हे राम' मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं तूको शरण हो ले जाऊँगा ॥ २८ ॥ उस रावण उनका ले जा रहा था, तब वही वंछे हुए मैंने आकाशमें दम्बा दा । उस समय स तान अपनी साड़ीद बांधकर कुछ आतूयण जाने रुक थे । व यहाँ है, अब उतरे ॥ २९ ॥ इसका कहकर सुग्रीवने आभूषण निवेष्टा । उन्हें देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—'हे भाई' तुम इन्हें देखकर ठीक ठीक वनमात्रा कि ये मन्थक है या नहीं । वने क तनन ले जायाके आभूषण दम्बा दा । यह सुनकर लक्ष्मणन कह कि ये सबका ना नही पहचानता, पर तु पावनी जंगलीके पुत्रके नाम कः कह कह सकता है कि ये सीत के ही हैं । कारण कि मैंने प्रणाम का उ समय कबल उनके पाव देते हैं —मन्थ कह नही दस । यह सुनकर राम प्रमत्त हुए और 'अब साता 'मल मया' ऐसा समझा ॥ ३१-३३ ॥ तदनन्तर दूकाल विश्वास दिलानके लिए, उसी समय रामने मम दावके नेट्टेदे मारकर बुबुभके बने विशाल शिरको

दशयोजनपर्यन्तं तथा शणेन वै पुनः । चक्राकागन् मम तालान् दृष्ट्वा देहे सहेः प्रभुः ॥ ३५ ॥  
 म्यायान्मुष्टेन मीमित्रेः पदे किञ्चिद्विषये च । अत्र कृत्वा पदमर्गं तु शेषांशेन स्थित भुवि ॥ ३६ ॥  
 मग्रीवप्रन्वयार्थं हि मम तालान् विभेद मः । शुश्रूषामेकदा तालकलादि स्थापितानि हि ॥ ३७ ॥  
 बलिना मम नीनानि नेन परं ददर्श मः । नमोऽपन्वयि शुभाश्च मविन्दन्तीति बानरः ॥ ३८ ॥  
 न्यजिष्वाद्वाध तान् छेत्ता यस्मे हना न संशयः । तत्र दृष्ट्वा गमयामन्त्यं तस्मिन्प्रन्वयमपि मः ॥ ३९ ॥  
 मुग्रायन् पुनः प्राह गघवं तुष्टमानसः । बालिन मुग्नाधेन पुन दत्ताऽपि मालिका ॥ ४० ॥  
 यां दृष्ट्वा विष्वो मुष्टं तनूयार्थां भवन्ति हि । या पुरा कडपरनेव तपसा दुःकरणं च ॥ ४१ ॥  
 शिवाद्दृष्ट्वा पिता पुत्रमिन्द्रं तेनापि बालिने । प्रान्य पिता मालिका लं बलं कटे दधान्यसौ ॥ ४२ ॥  
 तस्यास्त्वं दग्धनाद्राम गतमर्थो भविष्यसि । तत्राशयं चिन्तयस्व चेन्न तेऽद्य जयो भवेत् ॥ ४३ ॥  
 त्वस्य वचनं श्रुत्वा गमः स्वयं तमब्रवीत् । यः आगन्माचनः पूर्वं मम तालान् विभेद च ॥ ४४ ॥  
 शब्दं त्वं मम शक्तिं न किञ्चिद्विषयां च बालिनव । निश्चये निद्रित दृष्ट्वा हर तन्वर्धिका शुभाम् ॥ ४५ ॥  
 नयेन गमवक्त्रेण किञ्चिदप्येव पश्यताः । मचकृत्वा कदाचन तामला वाग्वं दर्श ॥ ४६ ॥  
 ततो गमाज्ञया गन्ता ममादृयाथ बालिनव । मुष्टं चक्रार मुग्रावः श्रं गमाऽपि ददर्श तम् ॥ ४७ ॥  
 नमानस्यो नो दृष्ट्वा शिवपातविशङ्कया । न श्रुत्वा च तदा चणं गमः संदर्श न्यवर्तत ॥ ४८ ॥  
 मुग्रावो गघव प्राह मां घातयामि बालिता । यदि मदनं दाह्य न्यमय अहि मा विषो ॥ ४९ ॥  
 त्वस्य वचनं श्रुत्वा मुग्रायस्य गघूनमः । बन्धय माम् मुग्रावकटे मालां तु बन्धुना ॥ ५० ॥

इस पत्र दिया ॥ ३४ ॥ वह इस दोस्तकी दूतपर आ गया । जिस आकाशमें सारे जगत्पर जमे हुए सात तालवृक्षोंको दगा हो गमने पृथ्वी पर जेपक अंशमें स्थित आसमने नीचता अपन पातर ऊपरसे दबाकर उस शपको सीधा किया और बाधन उस गगन वृक्षका एक ही बागम बाह बाध ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऐसा करके इन्होंने सुग्रीवको विश्राम दिला कि गध भी मरना वरन और बालीको मारने ममार्थ है । तब मगधको बात है कि पापीम अपनी गुणोंमें लालच कुछ बात बचसे ये । उनमें मान कर कोई उदा ने गया । बालीने दत्ता तो उस वहाँ कलकी जगत् मप्रीमाला दिया । तब जगत मगको शप दे दिया कि तो तेरे ऊपर सात तालवृक्ष जमे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तब गधने भी कहा कि तू मुष्ट वृक्षाका काटना, कहा मुष्ट मारना इसमें मन्दह भली है । इसी समयमें जगत् मगम दगाकर मुष्ट कका निश्वास हो गया ॥ ३९ ॥ तब ममने होकर मुग्रावम कहा - मुग्रावम इन्होंने बालीक एक माला दी थी ॥ ४० ॥ तब मगमने उसके शप मुग्रा वृक्षात हो जाते है । तबने बाली तब कालपर वर गगन कथनको जिधलीसे मिली थी । कथनत म कथन अगले दृष्ट्वा ही और इन्होंने बालीको अर्पण हो । धीतपूर्वक अपित की हुई यह मालाका जाती भदा । गधम पत्रिने रहत है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे गम ! तमको दलनक साथ ही तब भी कर्तव्य हो जायेगे । अलगह हर विषयमें नोई उपाय माला । जिसमें आपका विचार हो ॥ ४३ ॥ मुग्रावक इन वचनका सुनकर गमने, जिसका वचनके द्वारा मम तालवृक्षोंको काटकर शपम मुक्त किया था उस गमीने कहा कि तूम मेर कथननुसार निधित्वा-म जाकर गमके समक्ष जय विवाले गोता रहे तब उसने गधसे उन मुष्टम मालाको जगत् माला ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तथानु अद्वय दृष्ट्वा मगका ज आवे अनुसार निधित्वा तारीम गग और गगद्वय से उस मालाका चुराकर इन्होंने दे जाया ॥ ४६ ॥ तत्पन्तर गगका अज्ञ से मुग्रावने बालीक पास जाकर उसको मुष्ट के लिये मालाका और मुक्त किया । उस मुष्टका गम देत रहे थे किन्तु उन दोनों भाइयोंको समान स्वयान् देव धोनेन कही मित मुग्राव हो न मग जाय इस आशयके कारण गमने बागपर बाध नहीं छोड़ । तब मुग्राव रामक पास लोट आया और गमसे बोला कि मुझे आप बलीके हाथों बंदी मरवाना चाहते हैं ? यदि मुझे मारनकी हो इच्छा हो तो हे विषो ! आप ही मार डाल ॥ ४७-४८ ॥ सुग्रीवक इस वचनका सुनकर



श्रीगणेशाय नमः पूर्वं धनेन शत्रुणेन हि । इत्यादिभिर्यथाज्ञातैश्च मत्ता तव मया तदा ॥६९॥  
 अधुना प्रार्थयामि स्वामिन् पण्डितम् । अन्यकथास्तदा दत्ता तद्गौ प्राणान् रणायणे ॥७०॥  
 अद्भुतं तदा रामः कारयामास कविकवाम् । अथ राम म सुग्रीवो गज्यार्थं प्रार्थयत्तदा ॥७१॥  
 रामस्तमेव गजान् चकार लक्षणेन सः । अथ यत्किमप्यन्त्य वस्तुं रामोऽब्रवीत्तदा ॥७२॥  
 प्रवर्षणनिमित्ते प्राच्यशिवरे स्फटिकोद्भवाम् । रम्भां दृष्ट्वा गृहीतं रामः पञ्चपुष्पसमन्विताम् ॥७३॥  
 निनाय वापिकान् मासान् चतुरः श्रीमद्भद्रहः । एकदा लक्ष्मणः स्नान्ता यावद्रामं समन्तातः ॥७४॥  
 साञ्चिक्या मीनया युक्तमाराद्रामो निर्माक्षितः । मीमित्रिणा वन्दिता सा पद्मगुणैः लघं शयी ॥७५॥  
 एवं नामीतदा मीताविशेगो सधवश्च हि । सुग्रीवोऽथ पुरीमण्ये चकार गजपुस्तकम् ॥७६॥  
 एकदा इतुमद्रवियाडानगन्म भगवद्भद्रम् । प्रवर्षणमिगजान्तां तोयं द्वे रामलक्षणे ॥७७॥  
 एतस्मिन्वन्तरे रामो दृष्ट्वा प्राप्तं शम्भुत्पम् । क्रोधेन प्रेषयामास सुग्रीवाय लक्ष्मण च सः ॥७८॥  
 मोऽपि गत्वाऽथ किञ्चिदां भण्ययामास जानकम् । आगतं लक्ष्मणं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वलः ॥७९॥  
 याकृतिं प्रेषयामास मीनान्तर्यं हि लक्ष्मणम् । स गत्वा तं मान्दयिन्वा किञ्चिदाभिनयत्तदा ॥८०॥  
 एतस्मिन्वन्तरे तारां प्रेषयामास चानरः । साऽपि गत्वा सख्यकक्षां मन्थितं तं ददर्श ह ॥८१॥  
 लक्ष्मणं पान्दयामास वयोभिर्मधुरानिजाः । समाहृतानि मन्यानि रामार्थं प्लवगेन हि ॥८२॥  
 सुग्रीवे च न्वया कापो मा कार्याऽथ हि देवः । ततो लक्ष्मणहन्ते मा शृत्वा राजगृहं ययी ॥८३॥  
 दृष्ट्वा गृहीतवराजन्तनामरात्म चञ्चलः सः । सुग्रीवं लक्ष्मणः प्राह विस्मृतोऽपि रघूनमम् ॥८४॥  
 वाली येन हतो वीरः स बाणस्त्रां प्रतीक्षत । तामय वालिलो मार्गं शर्मिष्यमि जया हतः ॥८५॥

हावो मरनेके शत्रुसे जन्मान्तरगतित्वं शुभ मतिर्भी प्रप्तं हाभा । वालिले फिर कहा—यदि आप मेरे पास आते तो मैं तुम्हें आपका संज्ञाका बना दवाना तथा राज्यात् सोनाको लाकर छोन आपभरमे आपको दे देता ॥ ६९-७० ॥ अन्तु, अब मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अद्भुतका रक्षा करिएगा । इतना कहकर वालीने उसी समय रणार्थम प्राण छुट दिया ॥ ७० ॥ तदनन्तर रामने अद्भुतसे उसका क्रियाक्रम करध्या । बादमे मुषावने रामने वह राज्य ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ७१ ॥ तब रामने लक्ष्मणको भजकर सुग्रीवको वहाँ-के राजा बना दिया । अतः राम वरसाहमे कहो जन्मसम निवास करनेका विचार करने लगे ॥ ७२ ॥ तदनुसार उन्होंने वहाँ प्रवर्षणनिमित्तके उच्च तिलरूप मन्दार पत्त-भण्डाकी लताओंमे वेष्टित एक रमणक गुफा देखी ॥ ७३ ॥ वस, राम वहाँ गइकर शौभिके वार महान चित्ताने लगे । एक दिन लक्ष्मण स्नान करके सब भावे तो रामको सन्तुष्टगयी मीतासे युक्त देवा । लक्ष्मणने उन्हें पूजा म किया तब ही मीता अपने रति रामके बायां हृदय तिष्ठित हो गयी ॥ ७४ ॥ (७५) इस तरह उस समय भी रामने सीताके विषेण नहीं हुआ था । उधर सुग्रीव अपना पुरांमे उत्तम रं तिल राज्य करने लगा ॥ ७६ ॥ एक बार इतुमद्रक कहनेपर सुग्रीवने जानरेको बुझाया । उस समय राम-लक्ष्मण प्रवर्षणनिमित्तपर रहने थे । ७७ । तबो रामने वारदकतुके प्राप्त देवा तो जानसे लक्ष्मणकी सुग्रीवके पास महायताका स्मरण दिताने लिये भजा । उन्होंने वहाँ जाकर किञ्चिन्वाक जानरीको डराना आरम्भ किया । लक्ष्मणकी आय सनकर सुग्रीव भी भयसे विह्वल हो उठा ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ तबने लक्ष्मणकी शान्त करनेके लिये हनुमान्की भजा । उन्होंने जाकर लक्ष्मणकी समझाया और अपने साथ किञ्चिन्वामे ले आये ॥ ८० ॥ उमा समय जानर सुग्रीवने तोशको भेजा वह जाकर महलके बान्चाली दाखानमे खड़े गयी । इनलमे इसल लक्ष्मणकी आन देवा । ८१ ॥ तारां भावे मधुर शवनीसे लक्ष्मणकी समझाकर शांत करने हुए कहा—हूँ दवरणी 'जानरके राजा सुग्रीवने रामके नामके लिये जानरीको बुलवा भेजा है । आप काय म करें । इतना कह सदा लक्ष्मणकी हाथ पकडकर भरम राजा सुग्रीवके पास मे गयी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ उन्हें देख राजा नृजीव विह्वलमे उठकर खड़े हो गये । तब लक्ष्मणने सुग्रीवसे कहा कि गुम रघुकुलमे उत्तम



त्रिमन्यन्तपरुषं वदन्तं लक्ष्मणं तदा उवाच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभापसे ८३ ॥  
 गणकार्यार्धमनिशं जामनिं न तु विष्मयः । इन्धुक्त्वा तं पूजयित्वा सूर्यवेणुं च मरुतिः ८४ ॥  
 चकार लक्ष्मणं शान्तं सुग्रीवोऽप्यथ वानरैः । शान्ता न राघव नन्वा दशयामास वानरान् ८५ ॥  
 राघव म तदा ब्राह्म सुग्रीवः प्लवगाधिपः । देव पश्य यमायां नो वानराणां महाविभूम् ८६ ॥  
 अथ गुहाधिपतयः पञ्चान्यष्टदश स्मृताः । ततो र माजया सीतशुद्धयर्थं तान् दिदेश सः ८७ ॥  
 तेषु सर्वान्तु विविधान् वानरान् प्रेष्य मन्त्रात् । यस्यां दिशि जाम्बवानमङ्गदं वायुनन्दनम् ८८ ॥  
 नल सुपेण शुभं मेदं मन्त्रेपयत्तदा । मामाङ्गदनिवर्तय नचिदुष्य भविष्यथ ८९ ॥  
 ततो रामो मुद्रिकां स्वी ददौ चारुविषम्करेः । भजामाक्षयुक्तेषु सीतार्थं दायतां रहः ९० ॥  
 ततो रामो निजं मन्त्रं ददौ तस्मै हनुमते । तन्मन्त्ररूपं लक्ष्मिने कृत्वा तु जपलेखने ९१ ॥  
 ल-घ्वा सामर्थ्यमतुलं लकां गन्तुं न मरुतिः । नन्वा रामं परिक्रम्य जगाम कपिभिः सह ९२ ॥  
 यदन्त राघवः ब्राह्मः चित्रगटे पुगं कृतम् । मनःशिलाशाम्भिलक सीताभासे विनिर्मितम् ९३ ॥  
 ण्डयोः पञ्चवल्क्यादि र्सीतार्थं कथयन् गृहम् । तवस्ते प्रारथनां सर्वे पश्चिमादिषु दिक्षु च ९४ ॥  
 तपितास्ते समापाना न दृष्टा मेति न त्रसन् । तदापदायाः प्लवगा, र्सीतार्थं चक्रमुर्वते ९५ ॥  
 मन्वाऽयं व वणश्चेति राक्षसाञ्छ शोऽर्पयन् । साद्राक्ष्यान्ते वगन्दद्गः गुहाद्रागद्विनिर्गतान् ९६ ॥  
 जगार्थं मप्रविष्टस्ते गुहाया वानरोत्तमम् । तस्या तान् सञ्छन्मनूष्यो दिशान्गदार्शव हि ९७ ॥  
 अजिह्वतानि निर्मिर वध्रमस्तु इनस्तनः । तत्र रत्नमयं दिव्यं गेहं दृष्ट्वा खयं शुभाम् ९८ ॥

रामजी भूत गये हो । ८४ । जिस वज्रमे तब गाला मारा गया था , तभी वानर गान्धर्वों को प्रतिका कर रहा  
 ८५ । आज मैं तुम्हें साकार जन भागि आया गया है । सीता मार भंज दूंगा । ८६ । लक्ष्मण जब स प्रकार  
 गान्धर्वों को बरन कहने कर तब हनुमान् कहता कि आप हम कठोर बचन को क्या निकाल रहे हैं ?  
 ८७ ॥ रामके कारक तिरा कुंआ वानर दिन पंचे गहना है । उनका कहकर त गान्धर्वों को लक्ष्मणको पुजा  
 कन्वाय श्री उनको शान्त करवाया । तबान् सर्व व वानरोंको लेकर रम्य मन्त्र मन्त्र । वहाँ जा लय,  
 न राखी तिरकलाकर प्लवगा अप मन्त्र के कहा— देव दाँव, वानरोंको वानरों सेता आ रहा है  
 ८८ । इसमें अङ्गद पञ्च वानरों है । नरवानर गान्धर्वों अजाम व वानरोंको खोज करके  
 ८९ । सब दिशाओं में वहुतसे जाना वानरों में मन्त्र देया । उनमेंसे जाम्बवान, अंगद, हनुमान् नल  
 व सुपेण तब मैदना दक्षिण दिशि मन्त्र और कह दिया कि एक मासके अंतर सेताको सुधि लेकर लौट  
 आ , तभी तं तुम सबका मन्त्र देया जायगा । ९० ॥ तब रामन ज , गान्धर्वों हनुमान्के हाथोंम  
 और कहा कि यह मन्त्र नामक अचित्त वानरों नामक नलाका वान । ९१ । वदने अपना मन्त्र  
 मानुका दिया । जिसके कि एक मास कर जन वान तिरकला कर लौट जा अनुस सामर्थ्य प्राप्त  
 वानरों पञ्चान् हनुमान्ने रामका प्रणाम किया । लो । निज करके नलेक मास चल दिये ॥ ९४ ॥ ९५ ॥  
 नन्त समस्त गान्धर्व विषयूम किता हुआ मन्त्र पत्र हनुमान्को समाने हुए कहा कि एक समय मैं सीताक  
 मन्त्र मन्त्रिका तिरक तवा कर लोचन पलकलाका रचना की था । उ वानका तुम सीतासे  
 पकान्तम कहना । जिसमे कि उनका मुंहारा विद्या ही जय । इसके बाद वान , विभिन्न दिशाओं के  
 कर दिये । ९६ । ९७ ॥ कुछ कालके बाद वहुतसे वानरों आकर सुग्रीवसे कह कि आपको सीता न  
 नहीं दिखाई दी , उपर अङ्गद दि वानर सी सीताको खोजने हुए जन डगर-डगर भ्रमण कर रहे थे । ९८  
 नन्त गोम्ती खोजवाले वहुतसे पक्षा दह ॥ ९९ । १०० । यह देखकर वानरों पीछित वानरोंमें उत्तम वे वानर  
 करके अभिलाषासे उर गुफामें घुसे , उनमें जान नागे उन्हें अङ्गद दिन बच गये । १०० । वे उस  
 अकारमं डगर उधर पटकने लगे अचानक वहाँ उन्हें रत्नमय दिव्य दो भवन तथा उनमें एक सुन्दरी स्त्री दिखायी

नञ्चावधत्ता निजं वृत्तं न्यद्रुतं धोतुमुग्रताः । तान्पूज्य कथयामास चैनं वृत्तं तु योगिनी ॥१०२॥  
 हृष्यानाम्ना मुना विश्वकर्मेणः सा बहुधनम् नृनान लोपयामास ददौ तस्यै पुरं महत् ॥१०३॥  
 अत्र स्थित्वा चिरं कालं यदा गतुं समुद्यता । सा मां प्राहात्र रामस्य प्रसीक्षां कुरु गच्छति ॥१०४॥  
 समागच्छन्त्य रामस्य कृत्वा पूजनमुत्तमम् । इन्दुकवा मादित्र यानां राघव सम्यगे मया ॥१०५॥  
 स्वयदभेति नाम्नाऽहं हेमायाः परेषारिका । अभुता वन पुष्पाकवाहायं किं करोम्यहम् ॥१०६॥  
 तनय्या वचनं श्रुत्वा मन्त्रा स्मीयदिनवश्यम् । तामृनुवाक्याः सर्वे नस्त्वं कुरु गृहाद्वहिः ॥१०७॥  
 इन्दुका सा सधैर्नर तैः सहैव ययी बहिः । तद्विगच्छादिकर्मायनयनैर्वानैश्चिदा ॥१०८॥  
 न ज्ञातं च तथा केन सागणं च बहिः कृतम् । मां वि मन्त्रा पूज्य राम देहं त्यक्त्वा दिवं ययी ॥१०९॥  
 तनस्ते वानरा ज्ञान्वा गुहाया स्मदिनव्ययम् । शिषणा, सामरं दृष्ट्वा तस्थूः प्राप्याश्चरने ॥११०॥  
 जटायोः कीर्तनं चक्रं रामकार्यं स्मृतं पुरा । तच्छ्रुत्वाऽहं स यपातिः तान्दत्तु यः समुद्यतः ॥१११॥  
 तेषां श्रुत्वा मूर्तिं वन्दोर्दत्तशतैश्च जलावलिम् । तेषां श्रुत्वा पूज्यं न मानावृत्तं न्यवेद्यत् ॥११२॥  
 ननराजतमयेऽन्यैर्लैक्यां वर्ततेऽभुता । अशोकविकाशानु तान्नाऽन्येनां प्रपश्यथ ॥११३॥  
 अहं पक्षवहानां नाम मया गन्तुं न शक्यते । गृध्रान्वाद्दृष्ट्वाऽहं सीता मन्दृश्यते मिते ॥११४॥  
 आशा जटागुपा पूर्वगृहीयाहं बलाद्विभू । स्पृष्ट्वा मन्त्रा तामस्त्रानो बंधुमथा मखे ॥११५॥  
 पक्ष्मया भस्मसाक्षात्ता मे पक्षी पतिताकुर्मो । जटागुः स मयश्च गतो देवानां पुनः ॥११६॥  
 अहं तदा वसुदेवश्चन्द्रशर्माणमुत्तमम् । मुनिं नन्वा तदा तस्मै निजपुत्रं निवेदितम् ॥११७॥

टी ॥ १०१ ॥ इसका वृत्तान्तवा गुननक' अस्मिन्नाम वनराज कहा—अपना वृत्तान्त मुना, तम कोन है और दुम्हारा क्या नाम है ? यह कहिना उन सबका सम्मान करन कहन पठा—॥ १०२ ॥ विश्वकर्माका हमा-  
 नामस प्राप्तइ एक कथा थी । उसन जख महुअवजाका वृत्तान्त बरक प्रसन्न किया । तब उन्होंने उसका यह बड़ा भार नगर दिया ॥ १०३ ॥ यहाँ वहुी कालतक निवास करि जब बहु ज्ञान मयो, तब न्यसने मुसका  
 कता कि यह' बहुत कालतक निवास करी हई तुम रामके आगमनवा प्रसादा करी ॥ १०४ ॥ उन  
 रामका उत्तम प्रकारस पूजन करनक बाद तुम भा चये आना इतना कहकर बहु कही गयी । इसी कारण  
 अब मे भी रामक पास जाना चाहता हूँ ॥ १०५ ॥ उमा हेमकर के स्वरप्रभा नामवा दया है । अब आप  
 लोग गहू कह कि मे अतः जे जहाँ केनस सहयता करे ॥ १०६ ॥ उसको इस बातका सुन तब बहुत  
 दिग आनन्द भूताइ हुआ अखवर मे सब उती बली कि हुनका इस प्रकारस बहुर करी ॥ १०७ ॥ यह  
 गुनकर उरने उन सबका अदना अदना आज मुझी ॥ १०८ ॥ उमा कान्धर वानरीका यह नही मा म  
 हा पाव कि उ' अस्मिन् और किस मां न कह करी ॥ १०९ ॥ यह मा रामक पास चला गया तथा उनका  
 पुगी करक स्वयं दिखाए ॥ ११० ॥ ११०६ पत्र १ के मध्य के अन्त अर्धविक्रितिका दश श्लोक उदास ही  
 स दक दिनार १५ और उपास करी ॥ १११ ॥ वानराजक प्रसन्न रामके निज प्रपन्नक देवनान्त  
 जटागु' वर चर पढी । वही रह्यवाया सवाग जो उनका स्व जगक निज उदय वा यह जनक मुखस  
 रजक कायक लिय जटागुका मरण तथा प्रसन्न सुनकर भाई जटागु, जटागुकी हक मियां समुद्रतटपर गया ।  
 पश्चात् उन वनेगवा वृत्तान्त सुनकर उनकर मेलका समचार कह मुनाया और कह ॥ १११ ॥ ११२ ।  
 यहाँ समुद्रका पार करके ही वानराका द्वारापर तुम अहं दत्त सकत ही ॥ ११३ ॥ मे पान्तस रहित हूँ ।  
 इस कारण वहाँतक नहीं जा सकता, गृध्रका हाथ नख होता है । अतएव मे सीताका परतपर सेवा हई  
 लज्जासे यहाँके दास रहा हूँ ॥ ११४ ॥ मर गले न हुनका कारण वह हाँ मे एक बार अपने बम्के दर्पसे भाई  
 जटागुके साथ उठकर मृगका स्पर्श करनके लिए आकाशम उठा । रह्य मुग्धा गमास जटागु जलम लया ।  
 तब मेने अपनी पीछसे दत्तकर उसका रक्षा की । जिससे कि मया देना पावे मरम हा ययी और मे  
 पपा जटागु दोनों ऊँचस गिर पड़ । जटागु तब भी सवस था । मुझसे मुझन मेन चन्द्रशर्मा नामक मुनिके

तदा सां स मुनिः प्राह यदा त्वं जानरोत्तमान् । सीताशुद्धिं कथयसि तदा पक्षौ सविष्यतः ॥११८॥  
 पश्यतां निर्गदी पक्षी कोमलौ सां क्षणादिह । यदा नीता रावणेन पुनः सीता विहायमा ॥११९॥  
 मन्दुत्रेण तदा दृष्टः कथितः चापि सां तदा धिक्कृतः स मया क्रोधात्मा त्वया न विमोचिता ॥१२०॥  
 तदागम्य गतः क्रोधादप्यपि न सभागतः । इन्धुस्त्वा तान् कर्षान् पृष्ट्वा स मया तिसृगन्धदा ॥१२१॥  
 अथ ते जानराः सर्वे प्राचुः स्वं स्वं यत्नं तदा । न कोऽपि गमने शक्तः शनयोजनमागरे ॥१२२॥  
 तदा स जांबवान् वृद्धः स्तुत्वा तं मारुतिं ब्रुहः । जन्मकर्मादि संश्रद्धयल्लोकं गन्तुं दिदेश तम् ॥१२३॥  
 सोऽपि श्रुत्वा मधुघोषं चकार रुह्य पवतम् । निजभगवद्भूमिगतं कृत्वा मग्धात् राधवम् ॥१२४॥  
 एवं गिरीन्द्रजे प्रोक्तं किष्किधाविषये कृतम् । अग्निं रावरेणैवं पुनः पापप्रणाशनम् ॥१२५॥

इति श्रीषातकोटिगमचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दगमागणे सायकाद विट्किन्वाचरित्रोद्धृतः सर्गः १ ८ ॥

### नवमः सर्गः

( हनुमान्का लंकारमें जाकर सीताका पता लगाना और लंका जलाना )

श्रीगणेश उवाच

अथ उद्गीय हनुमान् यथावाकाशवर्त्मना । तद्दृष्ट्वा नठले ज्ञातुं सुगमां नागपातम् ॥ १ ॥  
 प्रेषयामासुरभगाः सां शीघ्रं तन्पूगे वर्षा । नाना मां मारुतिं प्राह रिशं न्वं वदतः सम ॥ २ ॥  
 स प्राह स्फुरीरस्य कार्यं कृत्वा त्रिषाम्पदम् । दृष्ट्वा तस्यास्तु निर्वन्ध उपरर्धेन तदा कथिः ॥ ३ ॥  
 विवर्धितं तथाऽप्यास्यं तदा सप्तमो बभूव हः । अगुष्टमावन्मम्याः स वक्ष्ये गन्तव्यं विनिर्गतः ॥ ४ ॥

पास जाकर प्रणाम किया और अपना वृत्तान्त उन्हें सुनाया ॥ ११५-११७ ॥ तब मुनिने कहा कि जब तुम जानरोको सीताकी खबर मनाओगे । उर्दी ममर तुम्हीग पाव्य पुन तम लावोंगे ॥ ११८ ॥ दृष्ट्वा, मेरे शरीर-मे देखे कोमल पोखे क्षणभरमें निकल आयी । उस समय जब रावण सीताका आकाशमार्गमें ले जा रहा था ॥ ११९ ॥ उसी समय नरे पुरन उसका देखा ता आकाश मुखमें कह । तब मैं उसका बहुत बिकराना और कहा—खरे दृष्ट ! तूने सीताका घुड़िया बयो नहीं ? ॥ १२० ॥ तब यह कृत्ति हनुमान् नरे नामसे चला गया और आज तक नहीं छोड़ा । इतना कह तथा जानरां पूछकर सीताकी भी वहाँसे चला गया ॥ १२१ ॥ तब जानरां परस्पर एक दूसरेमें अपना-अपना बल पूछा ता पता लगा कि लो ५ जन विस्तारमान मधुघोषको लोंघनेके लिये कोई समर्थ नहीं है ॥ १२२ ॥ तब बृद्ध जाम्बवान्ने हनुमान्को बारंबार प्रशंसा की । उनका जन्म तथा वंश कह सुनाया और उन्हें लज्जा जानेका अ दश दिवा ॥ १२३ ॥ हनुमान्जो भी जाम्बवान्के शब्द सुन तथा अपना पुण्यार्थ स्मरण करके परतपर बढ़कर कृत्तिके उदय हुए । अपने भासों उन्होंने परसको जमीनमें घसा दिया और रामका स्मरण करने लगे ॥ १२४ ॥ हे विरुद्धत्र , इस प्रकार पहिल किया हुआ रामका दिविकन्वाचस्त्रि मेने तुमको सुना दिया । जो कि अवलमायसे पापोका नाश कर देता है ॥ १२५ ॥ इति सायकाद्विजयचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दगमागणे सायकाद विट्किन्वाचरित्रोद्धृतः सर्गः १ ८ ॥

शिवजी बाल—तदनन्तर हनुमान् उड़कर आकाशमार्गसे लंकाकी गले यह देखकर उनके बलकी उत्तम लनके लिये देवनाओंने नामोंकी माता मूर्माका भजा । वह शीघ्र मार्गमें हनुमान्जी के सामने जाकर बजो हो यही और मुख फाड़कर हनुमान्तम कहने लगे कि तू आकर मेरे मुखमें प्रवेश कर । मैं तुझे ख.कैगी ॥ १ ॥ २ ॥ हनुमान्ने उत्तर दिया कि मैं श्रीरामका कार्य संपादन करनेके बाद आकर तुम्हारे मुखमें प्रवेश करूँगा । परन्तु उसका अधिक आग्रह देखकर बसिने अपना शरीर बढ़ाया ॥ ३ ॥ यह देखकर सुरस ने भी अपनी काया और अधिक बढ़ायी । तब हनुमान् अंगुष्ठमायका सूक्ष्म रूप धरके उसके मुखमें प्रविष्ट होकर

ज्ञान्वा साऽपि बल तस्य स्तुत्वा त प्रययौ दिवम्, अथाधिचचनान्मार्गे मैनाकः पर्वतो महान् ॥ ५ ॥  
 जलमध्यान्प्रादुरभूद्विश्रान्त्यर्थं हनुमतः । नानामणिमयैः नृहस्तस्योपनि नगकृतिः ॥ ६ ॥  
 भूत्वा यान्त हनुमन्तं प्राह मैनाकपर्वतः । आगच्छासुतकल्पानि जग्वा पक्ककल्पानि च ॥ ७ ॥  
 विश्रम्यात्र क्षणं पश्चादभिष्वसि यथासुखम् पुरा गिराणामिद्रेण युद्धमार्गात्सुदारुणम् ॥ ८ ॥  
 तदा दशरथेनाह मोचिनोऽस्म्यत्र मन्विनः अतस्तदुपकारं हि निस्तर्तुं निर्गतोऽस्म्यहम् ॥ ९ ॥  
 गच्छतो रामकार्यार्थं न च विभ्रान्तिहेतवे तदा न हनुमानाह रामकार्यं न मे श्रमः ॥ १० ॥  
 विश्रामः स्वामिकार्येऽत्र न कुरोम्यद्य भक्षणम् । मैनाकस्त पुनः प्राह स्वस्पर्शान्पावयस्व माम् ॥ ११ ॥  
 तथेति स्पृष्टक्षिप्रः कराग्रेण ययौ कपिः । किञ्चिददूरं गतस्यास्य छाया छायाग्रहोऽग्रहीत् ॥ १२ ॥  
 सिंहकाशम सा घोरं जलमध्ये स्थिता मदा । आकाशगामिना छायामाकम्पाकुम्भ्य मक्षती ॥ १३ ॥  
 तथा गृहीतो हनुमोऽश्विनयामास वीर्यवान् केनेदं मे कृत वंगरोधनं विघ्नकारिणा ॥ १४ ॥  
 एवं विचिन्त्य हनुमानधो दृष्ट प्रसारयन् । तत्र दृष्ट्वा सिंहिकां तां तदस्ये न्यपतत्कपिः ॥ १५ ॥  
 तस्यात्रजाल निष्काम्य तां हत्वाऽग्रे ययौ पुनः तमोऽग्रेर्दक्षिणे कूले लंकां कृत्या तु पार्श्वतः ॥ १६ ॥  
 पयान् पार्लकार्या तत्र तां रावणस्यसाधु । कौचं हत्वा सिंहिकावल्गुकां गधौ विवेक्ष मः ॥ १७ ॥  
 तदा लङ्कापुरी नाम्नी राक्षसी त व्यनर्जयन् । हनुमानपि तां वाममूर्ष्टिनाऽवजयत् ॥ १८ ॥  
 तदा स्मृत्वा ब्रह्मावयं सा प्राहभ्रमूरी पुरी । ब्रह्मणोक्ता पुरा चाह यदा त्वां धर्षयेत्कपिः ॥ १९ ॥  
 तदा रामो रावणस्य वधार्थमत्र यास्यति । ज्ञातं मया रावणस्य वधं रामः कुरिष्यति ॥ २० ॥  
 जिनं त्वया गच्छ लंकांमहोके पश्य जानकीम् ततो विवेश हनुमोल्लङ्कां पश्यन्त्ययौ तदा ॥ २१ ॥

पाठ बाहर निकल आये ॥ ५ ॥ तब सगसा नन्दवा बल जान और मृति फाँके स्वर्गको चली गयी ।  
 पश्चात् समुद्र के कहनेसे महेन्द्र मैनाक पर्वत जलके बीचसे हनुमान् के विश्राम की स्थिति आश्रय देका उठ  
 मड़ा हुआ । नाना मणिमय शिखरों के ऊपर मनुष्यका स्थ धारण करके मैनाक पर्वत आज हर हनुमन् जैसे  
 बाग़ की आहूत और गंद लहलहाने की कोकी लाइया । ५-७ । तब पश्चात् रावण के विश्राम के लक्षण सुखपूर्वक  
 ज्ञान आइया । पूर्वजन्म पर्वतों के इन्द्र के साथ दक्षिण युद्ध हुआ था ॥ ८ ॥ उस समय रावण ने मुझे  
 लक्ष्मण था तबसे मे वही आकर रहता है । मे उनके उपकारने उक्त हाँके स्थि ही आपक समयसे  
 उपन्यस्त हुआ है । ९ । मे इमंस्थि वि रामकार्य के लिए आते हुए आज हर उपर विश्राम करके ज रहे तब  
 नम हनुमान् के कया वि क्या राम के कार्यसे मुझे श्रम होगा ? अब त्वमोक्त कार्यमे ही सदा विधान ही  
 रहता है । इमंस्थि मे वही महरकन धावन आदि नहीं कर सकन । तब फिर मैनाक के कहा-अच्छा, कपस नम  
 आपन हाथसे श्रम करके ला मुझे पवित्र कर ॥ १० ॥ ११ । 'तथा' वह हनुमान् ने उसे उसके शिखरों के ऊपर  
 चढ़ा पड़ा । जब कुछ दूर आ । वह तो उनका छायाका किसी छायाग्रहने पकड़ लिया । १२ ॥ वह सिंहा की  
 बाग़ की धार गल्लमा थी । वे सदा जलमे रहा कान्त की और आकाशमागमे उड़ने हुए पक्षियों की छाया  
 पक्षी के खींच नीचे और ला जाता थी ॥ १३ ॥ उसके पकड़नेपर वल्लवान् हनुमान् सोचने लग कि किसे राम के  
 कामसे विघ्न डालने के लिए मना कर निक दिया । १४ । वह विचारकर हनुमान् ने नीचे देखा तो सिंहिका  
 राक्षसों की दखकर उसके पदमे ही चढ़ पड़ा ॥ १५ ॥ उन्हने उसका आँख निजाल ली और नम मार बाँका ।  
 वह जैसे भाँव वर तो समुद्र के दक्षिण किनारे स्थित लङ्का के वल्लमे स्थित पारल्लहमे जा पहुँच । वहाँ  
 रावण की लड़की खींचनी सिंहिका के समान मारकर रात्रिक समय लङ्काम प्रवेश किया ॥ १६ ॥ १७ ।  
 तब उन्हें लङ्का नामकी राक्षसी के नामसे लगी । हनुमन् ने उसकी भी अवज्ञा के बाँव हाथका एक मुक्का मारा  
 ॥ १८ ॥ उस समय ब्रह्मा के वाक्यका स्मरण करके लंका आँखों के भी मरकर बोली कि वृकालमे ब्रह्माने  
 मुझे कहा था कि जब कोई वातर तेरा अपमान करेगा ॥ १९ ॥ अब राम रावणका वध करने के लिए यहाँ

ददर्श लङ्कां तां रम्पां गोपुगाटालम्बिताम् । दृष्ट्वाभीचतुष्काट्यां त्रिकटुशिसरस्थिताम् ॥२२॥  
 पश्यन्ममन्ततः सीतां प्रतिमेहं स मारुतिः । गुहायां निहितं कुम्भकर्णं दृष्ट्वा मयानकम् ॥२३॥  
 दृष्ट्वा विभीषणं रामकीर्तने हृष्टमानवम् । दृष्ट्वा सुलोचनायुक्तं निहितं मेघनिःस्वनम् ॥२४॥  
 ययौ राजगृहं राज्ञौ गवणं मदसि स्थितम् । दृष्ट्वा स्वयं वायुदेवो दीपरात्रीर्च्यलोकयन् ॥२५॥  
 अकरोद्वस्त्रहीनास्तान् रावणदोन्म मारुतिः । उत्पुकेनाकरोद्भस्व हूर्चं च रावणस्य च ॥२६॥  
 राक्षसीः कोटिशो नद्याः कृत्वा तोयधराज्यविः । वधं ज लीलया तृणीं दृष्ट्वा तृच्छेत् न तर्जयन् ॥२७॥  
 तदाऽनिविह्वलाः सर्वे प्रोनुस्तेऽथ परस्परम् । क्रुद्धाऽथ जानकी सन्यं नः प्राणात्ममुपागताम् ॥२८॥  
 नन्तुन्वा तुष्टचित्तः स ययौ रावणमद्गुहम् । अदृष्ट्वा जानकीं तत्र ययौ पुष्पकमुत्तमम् ॥२९॥  
 गवणं निहितं दृष्ट्वा वेष्टितं स्त्रीकदम्बकैः । दृष्ट्वा मन्दोदरीं तत्र मातुषमिति शक्तिनः ॥३०॥  
 लक्ष्मणोक्तादिचिह्नानि पर्यस्तुम्यां ददर्श न , तथापि सीतामदृशी दृष्ट्वा वयग्रमताम्बुभूम् ॥३१॥

पार्श्वपुराण

कथं मन्दोदरी सीतामदृशी राक्षसीमिता । मानांशांशाशजाः सर्वाः स्त्रियथेति भृतं मया ॥३२॥

श्रीशिव उवाच

तृणेषु कारणं देहि सीतेषु विष्णुना चिता । तेनैव विष्णुना पूर्वपियं मन्दोदरी चिता ॥३३॥  
 एकदा कैकसी मत्ता रावण प्राह दुःखिता । शेषोच्छ्वासो न तल्लिङ्गं गतं चाद्य रमानलम् ॥३४॥  
 शिवादानोय मां देहि आत्मलिङ्गमनुत्तमम् । तन्मासुचर्चनं भुन्वा गाणनादरदोन्मग्नम् ॥३५॥  
 मामाह रावणो वाक्यं द्वौ वरौ देहि मां प्रभो । आत्मलिङ्गं च मन्मात्रे पन्त्यर्थं पार्श्वतो यम ॥३६॥

अर्थ । सो अब मैंने जान लिया कि राम रावणका मारेगा ॥ २० ॥ तुमने लङ्काको जित लिया । जाओ, लङ्कामें पुष्पकर अणोकवाटिकामें जानकीकी सेवा । तब हनुमान सीताकी गोजने हुए लङ्कामें पुष्प ॥ २१ ॥ उन्होंने पुष्पहार तथा अतिरिक्तोंसे माँहत रम्य लङ्कापूरीकी देखा । वह त्रिकूट पर्वतके शिखरपर स्थित बाजारों, मठकी तथा औरोंसे रमणीक लग रही थी ॥ २२ ॥ हनुमान स्व और प्रत्येक घरमें जाताको देहकर मुक्तम सोन हुए कुम्भकर्णको देख ॥ २३ ॥ उन्होंने रावणामक काँतसे यमसमस्त विभ पणको और सुलोचनाके साथ साथ हुए मेघनादको देख ॥ २४ ॥ तदनन्तर राजभवनमें जाकर रात्रिके समय सभामें स्थित रावणकी देखा । वह देखकर वायुपुत्र हनुमान्ने दीपकोको बुला दिया ॥ २५ ॥ हनुमान्ने उन रावणारिको गन करके रावणकी बाढ़ी-मुछ आदिको सुझाओंसे जलाने भय कर दिया ॥ २६ ॥ कराड़ो राक्षसियोंको नष्ट कर दिया । सेकबेलमें गजके पड़ोको फोड़ डाला और तृणोंसे इतनेर सिगाहियोंको पूलमें खूब पीटा ॥ २७ ॥ अतिशय दिह्वल होकर वे सब परस्पर कहने लगे कि सबमूच सीताका हम सींगोपर बद्ध हुई है । अब हम लोगोंका प्राणान्तकार निकट आ गया है ॥ २८ ॥ यह सुता तो संतुष्टचित्त होकर हनुमान् रावणके मदमें गये । वहाँ भी जानकीको न देखकर पुष्पकविमानमें गये ॥ २९ ॥ वहाँ रावणको द्विषोंके लोभसे वेष्टित होकर सोता हुआ देखा । साथ ही मन्दोदरीका दृष्टकर 'यही सीता है क्या ?' ऐसी आनका बोले लगे ॥ ३० ॥ परन्तु जब लक्ष्मणके कथनानुसार सीताका मुखाकृति मिलाते लगे तो तन्नी गिनी । फिर भी उसको सीताके समान देखकर आश्चर्यचकित हुए ॥ ३१ ॥ पात्रहीजीने पूछा—हे सराशिव । राक्षसी मन्दोदरी सीताके महज कैसे थी ? मैंने तो सुना है कि सताकी सब स्त्रिये सीताके अंशांशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ श्रीशिवजी कहने लगे—एक बार रावणकी मत्ता कैकसीने दुःखित होकर रावणसे कहा कि शेषनागके तन्त्राससे मेरा तित्त पूजा करनेका शिक्कलिन जानात्म चल रहा है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सो तुम एक उत्तम ऋषि शिखरोंसे सारकर पुष्प ला दो । मत्ताके वचनको चला न अपने गायनसे वरदान देनेके लिए राजी करके मुझसे रावणने कहा—हे प्रभो ! मुझको दो वर दीजिए । एवसे मरी माताके लिए आत्मलिङ्ग और इससे

तस्यैव यत्नं श्रुत्वा त्वं दत्ताऽसि गिरिगृहे । दत्त्वाऽऽत्मलिङ्गमप्रोक्तो मया त्वं यदि रावण । ३७।  
 मार्गे लिङ्गं भूमिमस्थ करोषि तद्द्वंद्वं पुनः । नाग्रे गच्छामि तत्स्थानात्तत्रैव च वसाम्यहम् ॥ ३८।  
 तथेति रावणश्चोक्त्वा देव्याः लिङ्गेन सो ययौ । तदा त्वया स्मृतो विष्णुर्लेनाङ्गचन्दनादिना । ३९।  
 कृत्वा मन्दोदरी नारी मयदहस्तेऽर्पिता शुभा । मां निनाय मयः शीघ्रं पाताले स्वीयमदृष्टहम् ॥ ४०।  
 ततो द्विजस्वरूपेण विष्णुः प्राह दशाननम् । प्रतापितः शिवेन त्वं दत्त्वा दुर्गां तु कृत्रिमाम् ॥ ४१।  
 पाताले मयगेहे मां गोपिताऽस्ति शिवेन हि । विविच्यमि त्वं स्वर्लोकं भूलोकं चेति संकया । ४२।  
 स्वीयं मत्त्वा तु पातालं तत्र त्वं न मवेक्ष्यसि । त्वज्जेमां कृत्रिमां दुर्गां पश्य तां मयमद्यनि । ४३।  
 गिरिद्वजां महारम्यां पत्नीं कृत्वा मुखं भज । तद्विप्रवचनं मयं मत्वा मामेवैव पुनः । ४४।  
 विहस्य रावणः प्राह ज्ञातं तेऽन्तर्गतं मया । अर्पिता कृत्रिमा देवी मां तां गोपय स्यात्तले ॥ ४५।  
 त्वं वाम्बधुना चैवं त्वद्वं नेष्यामि गोपिताम् । ह्युक्त्वा त्वां विमृज्याथ पातालं गन्तुमुद्यतः ॥ ४६।  
 तावन्मार्गे सन्पशुकाग्रतः शतं द्विजं तदा । आत्मलिङ्गं धृण हस्ते शुद्धं च वचनात्मजम् ॥ ४७।  
 यात्राश्ववर्धं शकां स्वाग्रहमेध्यामि वेगतः । द्विजवेणुधरो विष्णुर्नदा प्राह दशाननम् । ४८।  
 अनिक्रान्ते मुहुर्नऽथ लिङ्गं स्थाप्य ब्रजाम्यहम् । तथेति रावणश्चोक्त्वा तत्करे लिङ्गमर्पयत् । ४९।  
 ततो मूरस्य मां वागप्रवहिताऽभूच्चिरं प्रिये । अनिक्रान्ते मुहुर्नऽथ लिङ्गं मार्गमेध्यामि । ५०।  
 पश्चिमे स्थाप्य भूधरां स ययौ स्वीयम्यलङ्घितः । तदा स रावणश्चापि मूरं कृत्वा पथाविधिः । ५१।  
 लिङ्गं दृष्ट्वा भूमिमस्थं तच्छिञ्चात्तदधरा । तदा भूधरां गतं लिङ्गं शिरः किञ्चिच्चालनं । ५२।  
 अभूद्वर्गा कर्णध्रुमदृशी तच्छिञ्चःस्थले । गर्तायां तच्छिञ्चाश्चापि कर्णध्रुमं कृतम् । ५३।

पत्नी खदानके लिङ्गमुद्धे पार्वतीको दे दीक्षा ॥ ३५ । ३६ ॥ हे 'गंगादेवी' उग्रवं वरपाला नन्दन मेने तुमको  
 उसे दे दिया और आत्मलिङ्ग भी देकर उससे कहा—हे रावण ! देव गर्दि तू इस लिङ्गको मांगत नहीं और  
 रावण दिग नो दे आगे न जाकर वही गृह जाऊंगा ॥ ३७ । ३८ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर रावण देवी पावती  
 तथा लिङ्गको लेकर चला गया उस समय तुमने विष्णुभगवानका स्मरण किया तब उन्होंने अपने अङ्गक चन्दन  
 आदिगैऽमन्दादर का मन्दरी रम्य बनाकर मय दानवका दिया । उस लेकर मयदानव पालाया अपने मनाहर अकतको  
 रखा गया ॥ ३९ । ४० ॥ तब विष्णुभगवानो साक्षात्वा रूप धारण करके रावण रावणसे कहा—हे दशानन !  
 शिवजी ने तुम्हको उग्र लिया उन्होंने यह भजना पावती तुमका दी है ॥ ४१ ॥ असलको तो शिवजीने  
 पाताले मयदानवत धरम लिङ्ग रखा है । उन्होंने यह सच्चा कि तुम स्वर्ग तथा भूलोकमें ही नालोवे  
 ॥ ४२ ॥ अपना वामशिर पाताले में न खानागे इस कारण तुम इस कृत्रिम दुर्गा को तो छोड़ दी और मय-  
 दानवत धर जेकर अथवा पावतीको देहु निकालो । ४३ । उस अथवा मन्दरी पार्वतीका पत्नी बनाकर  
 रख भागो । विश्वके उस वचनका सच मानकर पुनः रावण मेर पास आया ॥ ४४ ॥ वह हैवकर चाला कि  
 मेने अपना हृदयगत अभिप्रायको जान लिया है । आपने अमल पावतीको रसतलमें छोड़कर मुझे तकली  
 पावती दे दी है ॥ ४५ ॥ इसका अब अपने पास हा रचिए । मैं तो उस लियो हुई पार्वतीको ही से आकरा  
 इनका वह तका तुमको देने स्मरणकर वह पाताले में जानके लिए लटन हुआ ॥ ४६ ॥ रावण लघुशङ्का करनेकी  
 इच्छावश उराने साक्षात्वा कहा—हे द्विज मेरी प्रार्थना स्वीकार करके सगणभरके लिए इस शिवलिङ्गको अपने  
 हाथमें लिये रहा ॥ ४७ ॥ मैं अभी लघुशङ्का करके तुम्हारे पास आ रहा हूँ । द्विजनेष धारण करनेवासे  
 विष्णुभगवान्—हे दशानन ! यदि अधिक देर लगेगी तो मैं लिङ्गको वहीपर रखकर चला जाऊंगा । अच्छी  
 बात है, कहकर रावणने शिवलिङ्ग उनके हाथमें दे दिया ॥ ४८ । ४९ ॥ रावण अब लघुशङ्का करने लगा तो  
 बहुत देर तक मूरकी अवण्ड घाग धरने रहा । अधिक समय बीत जानेपर माथरके पश्चिम किनारे लिङ्गको  
 रखकर विष्णुभगवान् अपने स्थानको चले गये । उसने पश्चात् रावण भी विविधत् मूरतया करके वही छाया  
 ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लिङ्गको जमीनपर रखवा देखकर उसके सिरकी हिलाया, परन्तु भूमगत लिङ्गका सिर नहीं हिल्य

भुजः कर्मोर्मिं लिङ्गं गच्छन् तद्वदिति हि । नतः शिखमनाभूय्यो पालां सवणो ययौ ॥५४॥  
 मयमेहे निगेऽप्यथ देवीं मन्दोदरीं व्रजम् । मयं सप्रार्थयामास ददौ तां सवणाय सः ॥५५॥  
 ततो विवाहं निर्दम्य पाणिहं ददौ मयः । सवणाय ददौ शक्तिममोघां शत्रुघानिनीम् ॥५६॥  
 दृष्ट्वा मन्दोदरा मयः प्राह मन्दोदरीमिति । तां नाम्ना सवणस्तुष्टमया स्वीयपथलययी । ५७ ।  
 ततो मात्रा धिक्कृतः स पुनस्तत्रुं श्यरान्वितः । शोकर्णं सवणो गन्वा तप्त्वा लब्ध्वा शिधेश्वरान् ॥५८॥  
 त्रैलोक्यं स्ववशे कृत्वा लकायां राज्यमाप यः । तस्मान्मर्मानामुमानेयं दृष्ट्वा मन्दोदरा प्रिये ॥५९॥  
 लकायां चापुपुत्रेण सवणाद्रे विनिद्रिता । मयोऽप्यासीम् लकायां गृहं कृत्वा यथामुत्थम् ॥६०॥  
 मययं पुर्णयो नाम महान् धीरः प्रतापवान् । सखीं विनिद्रितो गेहे ब्रह्मदत्तवरणमुधाः ॥६१॥  
 दशस्यहस्तातन्मन्युर्विधिनाक्तं विचिन्त्य च । तस्य वस्त्रं मारुतिना हृतं सदमि वै पुरा ॥६२॥  
 तन्निक्षपद्वं मयपदेकं सवणस्य कपिस्तदा । विर्माणस्य पर्यंकं वसनं सवणस्य च ॥६३॥  
 शिखण्डस्य ज्ञानशीलं लकायां च भुहुः कपिः । यथावशो कर्त्तव्यं वृक्षमादमडिताम् ॥६४॥  
 ददर्श तत्र शत्रुं च शिशुपामास पादयम् । तन्मूलं राक्षसमध्वे ददर्शान्निकल्पकाम् ॥६५॥  
 एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाक्षधारिणाम् । भूर्मा शयाना शोचन्ती रामगमेति भाषिणीम् ॥६६॥  
 कृताथोऽहमिति प्राह दृष्ट्वा मर्तां स मारुतिः । शिशुपामगशास्त्राग्रपल्लवाभ्यन्तरे स्थितः ॥६७॥  
 पुरा दृष्टानलंकारान् तस्य देहे ददर्श न । कनः किलकिलाशब्दवर्षयी तत्र दशाननः ॥६८॥  
 ददर्श सवणः स्वप्ने कपिः कश्चिन्ममारुतः । अशोकवर्त्तिकाया सा दृष्टा तेन विदेहजा ॥६९॥

॥५४॥ उसका गिराभागवा जगह कानक देवकी तरह गलहा हो गया । तब उस शिशु भी कर्णशंभुकी तरह  
 कृश हो गया । ५५ । अतएव पृथ्वीक कर्णक सदृश वह निद्रा मोर्ण नामसे विख्यात हुआ । जब शिखमन  
 होकर सवण बुझाव पाने के चला गया । ५६ । मयक वरम गुन्दरा मन्दोदरीको देखकर मयसे सवणन  
 प्रयत्न की । तब मयने सवणको वह कन्या दे दी । ५७ । इस प्रकार मयन कन्याका विवाह करके सवणको  
 दृष्टम बहूत सा वल्लभापण आदि दिया और शत्रुघानिनी, अमाघ दृष्ट गति भी दी ॥ ५८ ॥ उस दवाका  
 इस मन्द अर्थात् सुख दलकर सवणन उसका काम सम्पादन रत्ना और उसका लाभ सन्तुष्ट होकर  
 सवण अपने रथानका चला गया ॥ ५९ ॥ वही मर्ताक धिक्कारकेपर सवण फिर गावणके पास जाकर  
 न कर लगी । अन्तम अपनी तपस्याक चलन सवणने ब्रह्मसे वर प्राप्त करके तानी लोक व्रजन कर लिया  
 और लङ्कास राज्य करने लगा । हे प्रिय पावती इस कारण हनुमान् सैनाक समान मन्दोदरीको सवणके  
 दे लङ्कास सौत हुए दास थे । बादमे तब मय दास के लङ्कास घर बनाकर स्वपूर्वक रहने लगा  
 ॥ ६० ॥ प्रताप मयका भई मय सवणके समक्ष अपने भवनमे सा रहा था । विचारशील हनुमान्  
 दृष्ट क दास मयका सवणके हाथ मृत्यु कर नक विचारमे उसक कर्णक ले जाकर सभासुमे सवणके  
 तपर और बादमे सवणके वस्त्र के जतर विनापणके पल्लवर रख दिया ॥ ६१-६३ ॥ पुन हनुमान्  
 दृष्टम ज्ञानकीजाको खोजन लगे । खोजने-खे जेन वृक्षो तथा पासदीसे मुण भित अशोकवारिनाम गये ॥ ६४ ॥  
 वन उह एक अशोक जिष्वा ( शराम ) क वृक्ष दिक्षापी दिवा । उसके नीचे राक्षसियोंके बोधमे अननि-  
 मया उनके जीका विगजघन दवा ॥ ६५ ॥ उस समय शुष्क तथा दीन मुख होकर भलीन वस्त्र धारण  
 कर हुए भूमिपर मावी हुई रोगा दुर्जित मल्ल रामका नाम जप रही थी । उनके सिरके बालोंमे  
 मृत्यु आदि घर जानेने सैदुन बंद गर्व था ॥ ६६ ॥ सोलक दर्शनमे अपनेको कृतार्थ समझते हुए हनुमान्  
 इस शिष्यातृकी एक गच्छाके जगभागमे पत्तीमे छिन्कर बैठ गये ॥ ६७ ॥ उस समय सैनाक करीवर  
 के तटार गही दिक्षार्थ दिव, मितको कि हनुमान् पहिले सूर्यवके पास देखा था । इतने कुछ कोलाहलके  
 लय सवण वहाँ का पहुँचा । ६८ ॥ क्योंकि सवणको स्वप्नमे दिक्षार्थ दिया कि कोई बल्लर छाया है और उसने

रासहस्रान्मृगः शीघ्रं लब्धुं तां धनयास्यहम् । कपिर्हृष्टः राघवाय निवेदयन् मुकुतम् ॥७०॥  
 आगमिष्यति उच्छ्रित्वा रामो मां निहनिष्यति । इति निश्चिन्त्य स ययौ श्रीभिः मवेष्टितो मुदा ॥७१॥  
 नृपुत्राणां धरति धृन्वा विहत्याऽऽसीद्विदेहता । रावणो जानकांमाह मां दृष्ट्वा किं विलम्बसे । ७२॥  
 राय वनचरं राज्यमष्ट न्यक्तगुहजतम् । पित्रा ह्यन भोगहीन यदा न्ययतिनिष्ठुम् ॥७३॥  
 एकान्वामिनः (विषाष्टयश्चकलधामिणम् , तं न्यक्त्वा मां स वज्रवाद्य त्रैलोक्येऽप्यमहाबलम् ॥७४॥  
 अमरोमिः सेवित मां भाग्ययुक्तं पदमिदम् । स्त्रियो मन्दोदरीमुत्थयन्त्या भक्तिपत्त्यहर्निशम् ॥७५॥  
 मया राज्यं न्वदर्शनं कृतमग्नि भजम्ब माय । मया स्वर्गायनं च पि त्वदर्शनं कृतं महत् ॥७६॥  
 इति नानाविधवाक्यैः प्राथयामास रावणः । उवाचाऽभ्युदरी सीता निभाय तृणमन्तरे ॥७७॥  
 राघवादिभ्यः नूनं भिक्षुवत् कृतं न्यायः । रहिते राघवाभ्यां न्व शुनीव हविस्त्वो ॥७८॥  
 हतवानपि मां नाकतन्फलं प्राप्स्यसेऽपिवा । यदा रामशराणां विद्वानिवधुर्मवान् ॥

भविष्यति एषे राम जानकीं पानुष तदा । ७९ ।

शुन्वा रक्षोऽधिपः क्रुद्धो जानक्याः पुरुषात्तम् । वाक्यं क्रोधमभावेष्टः पुनर्वचनमब्रवीन् ॥८०॥  
 भविकी लक्ष्म्या विद्वान्दनातानिर्वाचिगन्ध मर्माऽपि स्थिता न पुंश्च पुनरो लक्षणावस्रः ।

तथी यास्यन्पुंर्विषदमनुनेनाश अटिलो जयः श्रीरामे स्थात्र मम बहुगोपेऽथ तु भवेत् ॥८१॥  
 तद्वाचणवच. शुन्वा जानकीं प्राह तं पुनः । पृष्ट्वाक्षरपरागरेव यत्पुं चम्पेऽपि ॥८२॥  
 स्वमक्षर्माणं चन्दारि लोच । ओकमसुं पठ । एवं तया जतो वाक्यमाश्रयः स दशाननः ॥८३॥

अत्र, कवचम जाकर राजा निहता पुनः सेनाका ३॥१॥ ६२ ॥ 'गमनं तु यम पौंश्च मानकं लिप् । मे  
 चयकेन साताका निगमकार कर्मका ता मेरी नरान् दावकर बह वानर राजमे बहना ॥ ७० ॥ सी मुनकर राव  
 धरी आयेग ओ मुस माने ॥ ७१ ॥ एका निहतर नरक ७ वर पित्रा मां माय न्याय साभन्द उधर चन्द पला ॥ ७२ ॥  
 नृपुत्रेर्षीः धृतिमन्त हा सीताता धवला गदा और इन्द्रान मुस नाच कर लिया । तथ रावणान सीतासे कहा-  
 तु मुससे लजवा मेरी है ॥ ७३ ॥ वनम अक्षय कामनाय राजमे नय मुनजनाय राहत, मिह्रान, माय-  
 हान, तदा मय लिप् निर्देश ॥ ७४ ॥ तवात्मन्दा येन जय और वन्दन भज्यत अदि मुसक छिन्नवेदी )  
 यास्य बन्दवाने रामपो छानकर तु जिलावर्षाव और महाबलवान् मुस रावणका भावयल और मेरी सेवा  
 कर ॥ ७५ ॥ मे अक्षयओम तेवित और भावयलद् होकर महान् पदार स्थित है । मेरी सेवा करनन्द मेरी  
 मन्दोदरी आदि विधे भी रात दिन मेरी इमिरी बनना रहेगा ॥ ७६ ॥ मेने अपना राज्य तथा अपना भावक  
 मुसका दे दिया है । तु मेरी वनकर रहे ॥ ७७ ॥ इत लहू अनय प्रचारक वाक्यसे रावण प्रारना करने लगा ।  
 तब बीनम तिनका आह करके तथा लीच मुख निच हुए सीवान कहा- ॥ ७८ ॥ अर बाबा । क्या इम  
 शक्तिता है । रामके इम पू भिक्षुका मय चरण करके और २ मल्लमण का अनुमिर्मानय वज्रम जेम कुभा हवि  
 बर्षाद् दयवना रामरा पुनश्च आदि लेकर भावे, जः प्रकार पू पुंश्च लेकर मग आया है । अर नीच ।  
 स्वका फल मुसकी शीघ्र मय आदम । अब रामके वानम विद्वानिनगर हाकर पू गिरया तब मुने  
 यह पना जन भावना कि राम मनुष्य है या और क ई यह मुन का मन्त्रनाचिप रावण मुनित हाकर जानक को  
 कटोरे धवन कहता हुआ बोला- ॥ ७९-८० ॥ 'इक लक्ष्म आकर इवत ओके धी, मुस मन्त्रन हो जायेगे ।  
 मरमणसाहत वह राम भी मय समझ दुद्धम नही खड रह मरणा । यहाँ आग मो मनुषके सहित वह बली चारी विपनिम  
 पठ जगा । यहाँ उम जगधारी रामकी जत नही जाये और मुने भी आनन्द न प्राप्त होगा' ॥ ८१ ॥ रावण-  
 की इस बातको मुनकर जानकाय कहा-चारी चरणोत्र छुटे अक्षर तथा भाववाने चारी चरणम अशरोका लोच  
 करके मय इसी क्षणको फिरसे पड़ी । वही हाल मुस जागोका होता । इहनेका भावय यह है कि ८२वें  
 श्लोकमेसे चारी चरणोत्र की न वि और न ये चार अक्षर निकल जायेंगे यह अर्थ होगा कि मनुष्ये दयावदन  
 रावणके ऊपर भीध ही विपति आ येने अर्थान् वह दूर जागा । लक्ष्मणके साथ राम मुदसे मा हटेने ।



द्वाभ्यो भौतवर्ज्यानां त्वद्गुणस्य सम्भरः । धृत्वा करेण तत्पार्श्वं मन्दोदर्या निषेधितः ॥८३॥  
 नादृष्टः सति बह्वर्ज्यजनां कृपाकृशाम् । ततोऽवरोदश्यावो राक्षसाविकृताननाः ॥८४॥  
 यथा मे वसता मता मविध्यति सकामना । तथा यतश्च त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥८५॥  
 यदि मायद्वयादभ्यं मच्छय्यां तर्जिनन्दने । तदा मे प्राणगन्नाय हन्ता कुरु मातुषोम् ॥८६॥  
 तदा मीना पुनः ग्राह्य वचनं न दद्यामि नम् । वान्यन्वेऽहं समानीता पेटिकास्था त्वया पुनः ॥८७॥  
 तदा मे वा वचः प्रोक्तं न च किं विस्मृताऽसि हि । अपुनःऽहं सम्भ्रूयामि यास्यामि त्वरितं पुनः ॥८८॥  
 त्वं च पुनर्मे पादनिर्दन्तु च मयेगिणम् । तत्स्त्राय वचनं सत्यं कर्तुमशक्यताऽस्मदहम् ॥८९॥  
 या चन्तुपास्यपायैर्निहत्य समदम्भवः । ततोऽवस्थापुर्गता गत्वा पुनर्यास्यामि त्वम्पुरा ॥९०॥  
 ननु मज्ज शोडशं न मातामहस्युद्भूतम् । शतशीर्षं रावणं च तापोदरनिवासिनम् ॥९१॥  
 न दास्याहं यं पादुकेन लसथामागतं पुनः । अहं तृतीयवलायां सर्वाभ्र्यामि तानुभा ॥९२॥  
 तदा रक्षायस्थलं गत्वा पुनयं स्याम्यहं जवान् । कुम्भकर्मोद्भवं वीरं मूलकासुरनामकम् ॥९३॥  
 अथ व तुयवन्तयापामयं पृथकेण हि । अहमव हनिष्यामि शिवशणं रणागण ॥९४॥  
 अन्यथापि स्मरता त्वं पुनः पादोद्विगतोदितम् । यद्वा त्वया च त्वया गत्वा कौसल्यानृपता इतो ॥९५॥  
 मृद्वीकास्थो पुनस्त्यक्ता भ्रातृते देवयागतः । अनुम्व मलुकामोऽसि यतोऽहमाहता त्वया ॥९६॥  
 न च महे तुयं भुज्य गमः शोच हनिष्यति । इति सीतावाक्यवाणाभक्षममस्थलोऽपि सः ॥९७॥  
 तथा तृतीया निजं मेहं लाजतश्च दशाननः । एव दशानने पाते राक्षस्यो रावणाज्ञया ॥९८॥  
 जितकीं तो स्वशब्दश्च तथा भ्रातृकमिन्दुः । आभ्यावदीपस्यार्द्धार्धभयन्त्यः करार्दाभः ॥९९॥

अनुज सहित राम जी पदों पर आकर गुरुदेव से राम की विजय की, तब मुन बड़ा हृष हुआ । इस प्रकार ब्रह्मा ने संभाषण करके सीता के दशानन को जान लिया । ८३ । ८४ ॥ तब रावण तलवार उठाकर सीता के पैरों पर आकर दण्ड मारने लगा । उस समय मन्दोदरी ने उसका हाथ पकड़कर रावण और कहा कि तुम्हारे पैरों पर आकर दण्ड मारना है । ८५ । ८६ । इस वचन को सुनकर तब रावण मानुषों नाम का छोड़ दो । तब रावण ने मुन्ना को लाजता सीता को जाना दो कि सीता निज तरह के मम भय से मर वक्ष्य है, वेसा तुमलाग जाओ अन्यथा सीता को वे मर जाने के रा ॥ ८७ ८८ ॥ यदि दो महान्त आतर वह मर, शय्यापर न आये नीचे से मानुषों की आकर मर जलाने के लिए तैयार करना, तब मे इस का आर्जना ॥ ८९ ॥ सीता निज दशमुख रावण से बहुत रणा-जय पू चत्वावस्था में मुझ पेट से साहस यहाँ ल आया था ॥ ९० ॥ न समर्थ जा जान मैंने कहा था, क्या उसे मूल मय ? मैंने कहा था कि अभी मैं जाता हूँ परन्तु फिर यहाँ जा रहा आऊंगा । ९१ । और वह इसलिए कि मे भाई, पुत्र तथा सना सहित तुझे मार डालूंगा । अब मैं जल पथ से सत्य करने आया हूँ । ९२ ॥ राम के हथोड़ों की वीर तर बन्धुओं तथा सीता की मरवा कर व्याघ्र पुन आया । पुन ने तसरी बार भी तब जगाम आऊंगा । ९३ ॥ उस समय मातामह ने जल के पास स्थित निधुम्भक पुत्र पीठुकी तथा सीता की पातर में रहनेवाले सीतेवाल रावण की जा कि वे स्वकी सहयता से लड़ना आया, वे सीता की आकर उन दासों को मारेंगे ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ पञ्च तु अपने स्थानों की आकर फिर सीता की तर से जाओ आऊंगा और कुम्भकर्मक पुत्र वीर मूलकासुर का वध करूँगे ॥ ९६ ॥ तब कि जानसे यहाँ आकर मे इसे रणागणन मारेंगे । ९७ ॥ पूर्वकाल में जा ब्रह्माजीने कहा था, वह भी मरण कर ले । उनके कहने से तूने कीमत्य और राजा दशरथ का हारण किया था । ९८ ॥ देवयोग से फिर तूने उन्हें अयाध्यास दृष्टि दिया था । इससे पता लगाता है कि तू मरना चाहता है । इसीलिए तूने तुझसे प्रेम करना कहा है । ९९ ॥ अब धर जा और सुख में जाने कर । राम तुझे शाय मारेंगे । इस प्रकार राणा के वक्ष्यस्वों वाणसे विशाद्विद्व हाकर दशानन लज्जासे चुनबाप अपने घर चला गया । दशानन के ने जानेपर उसकी आत्मा से राक्षसों से अपने भयानक शब्दों से, मूल वाक्यों से, मुँह काड़कर, तलवार तथा

नित्रयं त्रिजटाभार्या विर्मण्यप्राप्तिराऽनुगा । ताः सर्वा राक्षसावेगद्वारकपमाहाय मादरम् ॥१०१॥  
 न भीषयन्व रुदन्ती नमस्कृत्य जानकीम् मुनिर्हृगवन् । स्वप्ने स्या इष्टोऽष्ट जन्तुकीम् ॥१०२॥  
 मोचयामास दृष्ट्वेमां लक्ष्मीं हन्वा तु गवणम् । राक्षसो गोमयहृदे तैलाभ्यक्तो दिग्भरः ॥१०३॥  
 यथाऽष्ट दृष्टः स्वप्ने हि तस्माद्विना न साहसम् । कार्यं सेव्या सदा चेयं रामादमयदायिनी ॥१०४॥  
 पुष्पाभिर्दुःखिता चेष्टा भयेन चानयिष्यति । इति तस्त्रिजटायाकपं श्रुत्वा तस्यभुवेगकुलाः ॥१०५॥  
 तृणीमेव तदा माना दुःखार्त्तिकविदुषाश्च सा । इदानीमेव मरणं कैरागयेन ये भवेत् ॥१०६॥  
 दंष्ट्रा वेणी समान्यधर्महन्त्राय मात्स्यनि । यन्मया स्वीयशार्ङ्गलेख्यमस्ताडितः पुनः ॥१०७॥  
 तस्माद्विनाः पीडयति योऽयने स्वकृतं मया । मया विनागः सोमिषिस्त्राविनी गीतमावृत्ते ॥१०८॥  
 प्रायश्चित्तं करोम्यद्य तस्य त्वक्त्वाच्च ज्ञातम् । एवं निश्चिनर्तुं तां मरणायाय जानकीम् ॥१०९॥  
 दृष्ट्वा शनैर्वापुर्भुवो रामवृत्तं न्यवेदयन् । आमाकननिर्गमाच्च स्वसाक्षादर्शनावधि ॥११०॥  
 मविस्तारं कथं नर सीतातोपाशमादरात् । मीमांसे कथं तन्मये श्रुत्वा साक्ष्यमानया ॥१११॥  
 किं भवेत् श्रुतं कदाचिन्ममो वृष्टोऽधवा निधि । येन ये कर्णपीयूषश्चनं समुदीरितम् ॥११२॥  
 न दृश्यतां महाभागः शिखादी ममाग्रतः । तच्छ्रुत्वा ननुमे गन्था नत्वा नामवर्षात्पुनः ॥११३॥  
 रामदूतो ददौ तस्यै गवणस्यागुणायकम् । तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा नत्वा नामवर्षात्कविम् ॥११४॥  
 सर्वं कथय तद्वृत्तं यथा दृष्टं स्वयाञ्च हि । तदा तां सावित्र्यामाय रामो मन्त्रकथयस्थितः ॥११५॥  
 जानकोद्रेः समागत्य हन्वा राक्षणमाहरे । त्यां नम्यति मय साने त्यजन्त्वं मय वाक्यतः ॥११६॥

कोटिप्रायः सत्त्वनास सत्ताका दगने लगी । १०१-१०० । उदा समय विभाषण का प्रसंग अनुगतमत्ता त्रिजटा  
 गवणाने अब सबकी ऐसा करनेसे राक्षस और उनके सहका समझाकर कहा कि इस गीतों हुई जानकीजाकी तुम  
 लोग दगना नही प्रशुन नमस्कार कर । मैं आज स्वप्नव रामकी सुन्दर चिह्नास मुक्त देखा है और यह  
 भा देता है कि उम्हा । जानकी की लड़का लड़की अन्त्या तथा राक्षसकी मर जाता है । तब लगाये हुए  
 गवण गवणक महत्तम दिख गया है ॥ १०१-१०३ । मेरे आज यह स्वप्न देखा है । इस कारण हन् सतानका  
 साहस नही करना चाहिए । रामसे अवश्य दियानवाया इस जानकी तुम्हें स्वा वरना चाहिए । १०४ ॥  
 यदि तुम लोग जो कुछ राक्षसों को यह अज्ञानवान रामके द्वारा तुम्हें मरवा जायगा । त्रिजटाक हम वाक्यकी  
 मुनकर सब राक्षसिय म्पुल्ल होकर तुम हो गयी । १०५ ॥ उन सबके भा जानेपर दुःखित होकर सत्ता  
 भारे-भारे कहने लगी कि इसी समय मेरा मन्त्र जिस उपायसे हो सकता है । १०६ ॥ हाँ, यह मेरे सिरके  
 दाँतकी लम्बी लट पाला लगाकर लिए बहुत अच्छा तरह काम आया । उस समय जो मैं बदनरूपों बाणों-  
 से लड़नगका बाँधा था । १०७ ॥ उसके कण्ठमें य राक्षस मृत रह रहा है । यह मैं अपने किये हुए  
 कर्मोंका फल प्राप्त रहा हूँ । मैं ग मता तदर्थ किनारे मुझका निर्दय मुक्त नमस्कारों का अवकाश था ॥१०८॥  
 उसका मैं आज प्राण धर प्रोचविषय कहेंगे । इस प्रकार मरना निश्चय किये हुए जानकीको दगकर वायुपुत्र  
 हनुमान्ने धीरे धीरे रामका पुनर्ता स्तामा प्रणम्य किया । उन्हा-उ राक्षस अशक्तसे जानने मतभेद सेकर  
 सत्ताको देखते नकन । सारा पुनर्ता विस्तारपूर्वक प्रमसे र्म तान सत्ताके लिए मुन्य दिया । वह सब पुनर्ता  
 मुनकर सत्ता वाश्रयचकित होकर सोचने लगी कि क्या यह मैं कोई मन्त्र सत्ता मुन रहा हूँ अथवा राक्षस  
 समयका स्वप्न देख रहा हूँ । विचने मेरे कलाक लिए अमृतके सभास यह नकन सुनया है । १०९-११२ ॥  
 वह शिखादी मर सामन आकर दर्शन दे । यह मुना तो हनुमान् उनके सामने प्रकट हो गये और नमस्कार  
 करके उन्हें रामका पुनर्ता पुन मुनाया । ११३ ॥ फिर विषास दिखानेके लिए रामकी अंगूठी निकाल-  
 कर सत्ताको दी । रामकी मुद्रिकाकी देख तथा नमस्कार करके सत्ता बोली । ११४ ॥ हे कवि । जैसा  
 कि मुझे देखा है, मर सब हाल आकर रामसे कह गया । अब हनुमान् सत्ताको वाश्रयसत बकर कहने लगे  
 कि राम मेरे कन्धपर सवार हो वागसनापतिदीक साथ यहाँ आकर दुष्टमे राक्षसको मारेगे और बापको





तत्र उत्प्लुत्य हनुमान् तोरणेन समन्ततः । निष्पिपेष क्षणादेव सगक्रान्तिव पुरयः ॥ १५१ ॥  
 हृत्वा तान् राक्षसान् सर्वास्त्रिभो वेगेन मारुतिः । तालवृक्षं समुत्पद्य जघान जंबुमलिनम् ॥ १५२ ॥  
 तान् सर्वान्निहताञ्छुन्वा पञ्चसेनापर्वन्पुनः । गवणः प्रेषयामास हनास्ते तोरणेन च ॥ १५३ ॥  
 वायुपुत्रेण वेगेन लक्षराक्षससंघताः । स तानापि पृताञ्छुन्वाऽथ पुत्र प्रेषयत्तदा ॥ १५४ ॥  
 कपिना मारितः सोऽपि मर्षन्त्यो मृदुरेण च । ततः स प्रेषयामास पुत्रमिद्वजितं पुनः ॥ १५५ ॥  
 ततः स रथमारुहः कीदृशश्चमवेष्टितः । पृष्ठं चकार कपिना जलैरसं स दुर्धरैः ॥ १५६ ॥  
 तदा पुच्छेन सैन्यं कृत्वा प्राकारमुत्तमम् । निष्पिपेष तोरणेन राक्षसान्मारुतिः क्षणात् ॥ १५७ ॥  
 ततो बृहत् समुत्पाद्य मेघनादमनादयन् । वृक्षेण भिन्नमर्वागो मेघनादोऽविशद्गुह्यम् ॥ १५८ ॥  
 एतन्मिन्नन्तरे प्रया प्रार्थयामास मारुतिम् । ब्रह्म तु मानयन्नेऽद्य त्वं लङ्कां याहि राक्षसम् ॥ १५९ ॥  
 नक्षेत्र्यसीचक्रं ययौ मेघनादं ययौ विधिः । विधिः प्राह मेघनादं कं गतोऽद्य पराक्रमः ॥ १६० ॥  
 गच्छ मेऽस्तेन तं वदस्वा विदुग्ने समानय । स ब्रह्मवचनं श्रुत्वा मेघनादः पुनर्ययौ ॥ १६१ ॥  
 ब्रह्माश्वेनाथ वदस्वा समानयामास राक्षसम् । ततो राक्षसाश्वेन ब्रह्मन्तः प्राह मारुतिम् ॥ १६२ ॥  
 कम्प्यं तुनः समाशानः प्रेषितः केन वा वद । ततः स रामवृत्तं हि कथयामास विस्तरात् ॥

ततस्तं वाधयामास राक्षसं वायुनन्दनः ॥ १६३ ॥

विमुक्त्य मीन्याद्भृदि शत्रुभावनां शत्रुत्वं गतं शरणागतप्रियम् ।

सीतां पुष्कल्य मपुत्रवन्धवो राक्षसं नमस्कृत्य विमुक्त्यसे भयात् ॥ १६४ ॥

यादन्तगाभाः क्षयो महाबला इर्मिदुल्लया नखदंष्ट्रयोधिनः ।

गया । १४९ ॥ उसकी सेनाको देखकर कपिसेम कुञ्जर हुआ) व समान देर हुआन्त बहुत जोरसे गर्जन किया । तब राक्षसोंने वायुनाम हनुमान्का अस्त्रकोश गहरा आरम्भ कर दिया ॥ १५० ॥ हुआन् भी रणमें दूर पड़े और मरठनेका लड़ू उन सैन्यापत्तियों तथा राक्षसोंको चारा आरस तारणक द्वारा क्षणभरमें पीस डाला । १५१ ॥ उन सबको मारनेके बाद मारुतिन वेगसे एक ताड़का वृक्ष उखाड़कर उससे जम्बुमालीको समाप्त कर दिया ॥ १५२ ॥ उन सबका मार गये मुनकर राक्षसों पाँच और सैन्यापत्तियोंको भेजा । हनुमान्ने तोरण मार ॥ १५३ ॥ से उन्हें भी मार डाला । १५४ ॥ वायुना हनुमान्ने साक्षा राक्षसों साथ उन पाँच सैन्यापत्तियोंको भी मार डाला, वह मुनकर राक्षसों आगे अक्षयनामक पर्वतों भेजा ॥ १५५ ॥ तब हनुमान्ने उसको भी पुन्दरमे मार डाला । अब राक्षसोंने आगे इन्द्रजित मुल मेघनादको भेजा । १५६ ॥ वह एक कण्ड राक्षसास वीर्यवान् तथा रथपर सवार होकर वहाँ आया । वह अपने दुर्गम अस्त्राश्वाम हनुमत्क साथ युद्ध करने लगा ॥ १५७ ॥ हनुमान्ने सैन्यको शोकतन किया अपना पुलका हो गई बनया और तोरणमें उन सबका क्षणभरमें मार डाला ॥ १५८ ॥ वायु एक वृक्ष उखाड़कर उसमें मेघनादको मारा । जिससे पायल होकर वह एक पुनर्न जा पुता ॥ १५९ ॥ उस समय ब्रह्मान् हुआन्तुम प्रार्थना की कि तूम धरे ब्रह्मास्त्र ब्रह्माश्व, का मान लो रा और उसमें बँधकर लंकाय राक्षसों पास जाओ । १६० ॥ उन्होंने नकारा कहकर अङ्गीकार कर लिया । तब ब्रह्मा मेघनादक पास गया और कहा—हे मेघनाद ! तुम्हारा पणक्रम आज कहाँ चला गया ? ॥ १६१ ॥ मर मे वाणमे उन जानरको वीर्यकर अपने पिताके पास ले जाओ ब्रह्माके वचनको मुनकर मेघनाद वहाँ गया और हुआन्को ब्रह्माश्वम वीर्यकर राक्षसोंके पास ले आया । तब राक्षसोंके कथनानुसार ब्रह्मन्त पुच्छने लगा— ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ बतला तु कौन है, कहाँ आया है और तुज किन्ने भेजा है ? तब विस्वास रामका वृत्तान्त मुनकर हनुमान् राक्षसोंके समान्त स्नेह— ॥ १६४ ॥ ओ राक्षस ! तुम्हारे प्रपन्न हनुमान्को हूँ हृदयसे निकाल द और शरणागतीके दिव रामका ध्यान कर । यदि स ताको भाने करके पुन तथा बन्धकोंके साथ जाकर रामको तमस्तार करेगा तो तू निर्मल हो जायगा ॥ १६४ ॥ सिहके समान महाबलवान्

लक्षा ममाक्रम्य त्रिधासुरेति ने नाथद्रुतं देहि रघुनमाय ताम् ॥१६५॥

जीवन् रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुहृद्रेरपि शंकरेण ।

न देवराजाङ्गनो न मृत्योः पानाल्लोकानपि संप्रविष्टः ॥१६६॥

शुभं हितं पवित्रं च वायुपुत्रवधः स्वतः । प्रतिजग्राह नैवमीं त्रियमाण इवापधिम् ॥१६७॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा मारुतः प्राह राक्षसः । विनिश्चिता येन देवान्मन्य मे पौरुषं त्वया ॥१६८॥

न दृष्टं रत्नासै न्यथै गृणु किञ्चिदुदासि ने । पचाङ्गपाठकश्चायं पश्य ब्रह्मा कुतो मया ॥१६९॥

प्रतीहारम्वयं सूर्यः शशी चन्द्रवराः कुतः वरुणोऽयं जलप्रहो मार्जकः पवनस्त्रिह ॥१७०॥

अग्निः कुतोऽयं रजको मान्यकारः शवापतिः । इडवाणि नैवभ्रात्र क्षाप्यश्वाश्च सुरस्त्रियः ॥१७१॥

मार्तण्डो नापिध्रुव गणपः स्वर्गलोकः । मन्दाग्रा ग्रहाः यम् मे सोपातीत्यनामने ॥१७२॥

शिशुवेवान्परैश्च पृष्टो देवी मया कृतः आङ्गलितश्च कैः कानः इमेमेवपि निनिर्गणः ॥१७३॥

कश्च ममग्रे विलप्यमीन्वत्सल गमातामवमांमि दूरधीः ।

क ९४ गमा कनयो वनेचरो मिदन्मि मुग्धावपुत नरधरम् १७४॥

इत्थं क्त्वा हनुमन्कस्त्वं दशस्य ममास्थितः । तदा निवाम्यामम गवणं यं विमोषणः ॥१७५॥

परदूतो न हन्तव्य इत्यादिवचनं स्मरन् । ततः क्राधममारिष्टो राक्षसो लोकगवणः ॥१७६॥

दूताताशापयामास छेदनं यं तु सांगुणम् । तद्वानवचनः श्रुत्वा रक्षताम्ने महस्वजाः ॥१७७॥

स्वापुर्ध्वं छेदयामासुः कुशरककचादिभिः । आयुधान्येव जनद्वन्द्वमुच्छ्रायामवतः ॥१७८॥

बभूवुः क्षुब्धचूर्णानि तस्य गोष्णोऽपि न व्यथा । तन्निन्द्य दशकयः मम रुति वाक्यनवर्षान् ॥१७९॥

न शीघ्र गोपयन्त्यत्र स्त्रीषु मृत्युमपि कर्तुं शतम् । यतस्त्वं च दृष्ट्वाऽयं येन वानोऽयं मे भवेत् ॥१८०॥

और लगे तथा दीतमे लड़खाल करके छात्रों के लिये प्रथम नर काटने, मरने पड़े वहाँ न माताका ल जाकर रामको द दे ॥ १६५ ॥ अब पुन राम जीतित नहीं छुड़ग ॥ यह लगे लगे मरने के, न हो सकने करे, चाहे तु अपने प्राण वचनेक लिये देवराजको अंगन में जा । चाहे अधराने या पाताल लोकमें जाकर लिये, चहे कुछ कर ले ॥ १६६ ॥ निम्न उस दृष्ट रावणने हनुमानकी शुभ हितने मत होय वचनवा नही माना । जैसे मुझसे पुन्य और्वध नहीं खाता ॥ १६७ ॥ रावणने हनुमानको बल मनकर कहा कि मेन सब देवगओका जीत लिया है । मेरे पुरुषार्थने तु वही बनता । इसलिये उधरे बकवास कर रहा है । मृत नै तुम कुछ मुगता हूँ । देख, कहुआको मेने पञ्चाङ्गपाठक बना दिया है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ लगेको प्राद्वर, चन्द्रमान छिन्नरा, वरुण को जल धरनेवाला, पवनकः आग्ने, पवनवायव्य, अग्निको सोडा, मार्तण्डो इडको मान्य, इडवाणि यगराजको हारपाल देवताओकी स्त्रियोंको दक्षिण, मार्तण्डका नाडे, मन्दाग्रिने ग्रह का रत्नक लड़ख और मन्तल-मृच आदि सासी ग्रहको मेन अपने आसनकी सँवैय बना लिया है । वसी देव पातालगनाको मेन लखोंको मृत्युनेवाली बाँध बनाया है । कैलासकी मेन हरे हिलाया था । कुशरक भा मेन जीत लिया है ॥ १७० ॥ १७१ ॥ त पञ्चद्वन्द्वमे अधम वानर । त मर आग क्या तुया प्रलय करता है ? तु बडा हा मई जायता है । अरे ! जनकाया राम मेरे सामने क्या बीज है । मनुष्यमे नाथ रावका तो नुशान लहे । मे मा नो जानूँगा ॥ १७४ ॥ इतना कहकर दशानन रावण बाच सुभाम उनको मारने दोडा । तब विमोषणने स्वयं, रोककर कहा कि तुमने दूतको मारना खत्याव है । पछा, लीगोहा इतानदान राजान राव नरक निराहित था । आज दी कि इस वानरकी पूछ कार डाला । रावणने राजा पाकर हुजारी राजन अरुण-अरुण हुजारी और नक्षत्र ( नारा ) आदि हथियारोंसे उनका पूछ काटने लगे । इस समय हनुमानजीने जेदक अपनी पूछ हिला दी । त्यक हिलनमात्रसे उन हथियारोंके सैकड़ो टुकड़ टोकर फिर पर ॥ १७५ ॥ नाथ तुम नून हा मये परन्तु हनुमानजीका बाल भी बाँका नहीं हुआ । यह खबर दशानन मारतिस कह लग ॥ १७६ ॥ और पुरुष अपनी मृत्युके उपायको भी लियाकर नहीं रहत । इसलिये साफसाफ बता दे कि तरो कुछ किस उपायसे नष्ट होगी ॥ १८० ॥

तदाऽपरन्वं स्वं प्राह कपित्थञ्च मृपां नः । मन्वा दशस्यन्त प्राह पुनः सन्त्यं वदेति च ॥१८१॥  
 तदा स माहतिस्नृणी क्षणचित्ते क्यचित्तयन् । मन्पितुश्च सखा वहिस्तस्मान्नास्ति भयं मम ॥१८२॥  
 तस्मान्पुच्छ दीपयित्वा लंकां दग्धा कपोदहम् । तन्मन् रावण प्राह माहतिः सदसि स्थितः ॥१८३॥  
 पुच्छं मे वह्निना दाघ भविष्यति न चक्ष्णः । तत्तस्य चचनं श्रन्वा गवणो निजकिंकमन् ॥१८४॥  
 आज्ञापयामास पुच्छं दीपयित्वा प्रयत्नतः । लङ्कार्यां दग्धनीयौघ्यं दृष्टुं न मद्भय भवेत् ॥१८५॥  
 सर्वेषां मद्विपुणा च तथा चक्रस्वगन्धताः । तैलार्जैः क्षणपट्टैश्च राक्षसा वमनैरपि ॥१८६॥  
 पुच्छं सवेष्टयामासुस्तदा पुच्छं व्यवर्द्धत । ततो वमनद्विजैश्च वन्द्यकोशान्पितुश्च च ॥१८७॥  
 तन्पुच्छं वेष्टयामासुर्गृहवर्धनेकतः । ततः पुरुषनारीणां लंकास्थानां नृपास्तथा ॥१८८॥  
 बलादच्छिद्य वम्हाणि चक्रुः सवान्दिगम्भगत । ततः शय्यामडयैश्च कचुर्काः कचुकानपि ॥१८९॥  
 पौराणां राजगोष्ठान्च ने वम्हाणि ममनयन् । दृष्ट्वाऽपूतिस्तु पुच्छस्य ममास्थानां नृपस्य च ॥१९०॥  
 दक्षभायैः ममस्यैश्च लांगुलं वेष्टयस्तदा । श्वजोर्णापपताकाभिधिप्राणा वमनैरपि ॥१९१॥  
 मन्दोदर्यादिवर्मैश्च विक्षणा वमनादिभिः । वेष्टयन्कपिलांगुलं ततः मीनां यगृथराः ॥१९२॥  
 नज्जान्वा माहतिश्चापि पुच्छं प्रति प्रदर्शयन् । तदा कलद्रलक्ष्मार्कद्रुक्षार्थं प्रतिमन्वति ॥१९३॥  
 तैलार्थं च घृतार्थं च स्नेहपार्श्वं ममनयन् । नारीभिर्गायत्रीदीपार्थं शिशूनामपि नो घृतम् ॥१९४॥  
 आमन्त्र्योपुरुषा नम्रा लज्जा नारीन्परस्परम् । तन्मन्दोदयामासुर्बद्धना भक्तकर्मणः ॥१९५॥  
 प्रदीप्य नावाग्नपुच्छं ततो माहतिश्चर्वाद् यदा स्वीयमुखेनार्थं लज्जमानेऽयं राजतः ॥१९६॥  
 बाह्व प्रज्वालयेदत्र तदा ज्वाला भविष्यति । तन्माहतिवचः श्रुत्वा दयच्छ दशाननः ॥१९७॥  
 शान्तपुच्छकार्यं न म तन्पुच्छं नन्दमाननैः । तावत्तच्छिद्यजाः श्वश्रुकृर्चा दग्धा तद्भवन् ॥१९८॥

तिसपर जब हुनुमान्ने अपने-के अन्तर बतलाया तो भा बानक, मम न माकर रावणने फिरसे कहा कि मच-मच बतला ॥ १८१ ॥ तब माहति मानस विचारन लग निजनि सर पिताके मित्र है इसलिये पुत्र उतकी कोई बात नहीं है ॥ १८२ ॥ इसी-लिये अपनी पूँछ जलवाकर मैं लङ्काकी ही जला छाड़ूँगा । यह चिन्तनकर समाधि स्थित रावणने हुनुमान्ने कहा-॥ १८३ ॥ मेरी पूँछ जलसे जल सकती है, यह पक्की बात है । यह सुनकर रावणने अपने नौकरोंका बुलाकर आज्ञा दी कि प्रयत्नपूर्वक इसकी पूँछ जलाकर इसे नगरभरम घुमाकर दिखाना दो । जिसमें कि समस्त शत्रुओंका मेरा डर लगन लगे । मौकरोने भी बैठा ही मिय और शास्त्र हो राजमान सन तथा वम्हाका तैलम भिगाकर पंछपर लगाट दिया । वरन जब कुछ कम हो गये, तब बाजारके गोशालोंसे बपड़े नुकाकर घाक तस्य लाकर और रावणका आज्ञासे उन्हीसे लका-  
 न मर न गिरेके वस्त्र छीनकर हुनुमान्की पूँछपर लगाट । ऐसा करके उन्हीन सार तस्यके लोगोंको नगा कर दिया । तथापि जब पूँछ नहा लंका तो जग्गाके मध्य । मजदूरों । कचुर्कयाँक बागे, पुरवसियों तथा राजाके मन्त्रिक दाघ लाकर लगाट दिये । सिक्कर भी जब दगा नहीं पडा तः ममासदों तथा राजाके दाघ लाकर लगाट दिये गये । श्वजार्थ तथा पताकाएँ ला-लकर लगाटी गयी । गनी मन्दोदरी, स धु-महात्माओ तथा भिक्षुओंके दाघ उतार-उतारकर लगाट दिये और सीताकी भा साड़ी उतारनेके लिए कुछ दत्त दौड़े ॥ १८४-१८५ ॥ यह सबकर हुनुमान्ने पूँछ बहाना बन्द कर दिया । तब प्रथम चरणे तल जादिके लिए कोलाहल होने लगा । वे देख सबके यहाँका धी नुवा लेल उठा लये । यही तक कि किसी घरमें दाघकके लिए शैल और बान्नीर लिए भी धी नहीं देव पाया । १८६ ॥ १८७ ॥ समस्त ग्यो-नुर्योको लज्जा छाहकर नङ्गा हुना पडा । जब व हुनुमान्की पूँछ घोंवनासे चौककर अग्निके द्वारा जलान लगे ॥ १८८ ॥ परन्तु अग्नि प्रदीप्त नहीं हुई । उस समय हुनुमान्ने कहा कि यदि लज्जित रावण स्वयं अपने मुखसे फूँककर जलाये तो अग्नि बर सकती है । हुनुमान्की बात सुनकर रावण तुरन्त आगे बढ़ा । १८९ ॥ १९० ॥ गयो ही उसने अपने मुखसे अग्निका फूँकना प्रारम्भ किया, गयो ही उसके सिरोके बाल तथा दाढ़ी-मूँछ जल गयी ॥ १९१ ॥ रावण जब अपने

तदा विशद्भुजैः स्वीयमुखोपरि दक्षाननः । ताडयद्बहिर्गांघर्थं जहृ राक्षसस्यदा ॥१९९॥  
 हास्य चकार हनुमान्मदा क्रुद्धः स रावणः । नीयतां मर्कटशायमिते दूतान्वरोऽवतीव ॥२००॥  
 ततो दूताः कपिं निन्पुर्लङ्कायां ते समन्ततः । शृङ्खलाभिर्दृष्टुं वदुष्व आभयमागुदगत ॥२०१॥  
 बाधघोषदीर्घशब्दैर्द्वैष्टिनं शम्भुधारिभिः । एवं देवा सर्वलङ्कां दृष्ट्वेहोष स मारुतिः ॥२०२॥  
 धृत्वाऽनिष्टस्वरूपं तु दृढवधविनिर्गतः । यथाभ्यान् नम्रणाञ्च तद्यथै ध्वमेव हि ॥२०३॥  
 ततः पश्चिमदिक्मंस्थं लंकाद्वारं समानयत् । दिष्काम्य तोष्णं द्वागजधानं द्वागसकान् ॥२०४॥  
 हत्वा स्वरक्षकांश्चापि प्रासादेषु समन्ततः । ददावर्गिनं सपुच्छेन लङ्कां दग्धां चकार सः ॥२०५॥

तदा कोलाहलध्यापीन्लङ्कायाः प्रविभक्तये ।

निद्रितानपि बालांश्च त्यक्त्वा नार्यो गृहाद्वहिः ॥ २०६॥

दुःखुः प्राणरक्षार्थं दग्धनसलकाम्भदा क्रमेण रावणदीनां प्राभादान् ज्वालयन् कपिः । २०७॥  
 तां रावणमयीं दग्ध्वा जलान् पुच्छेन ताडयन् । प्रभवन् राक्षसा दग्धा मुनयान्ति चक्रिरे ॥२०८॥  
 तदा स रावणः क्रुद्धो राक्षसैर्दशकोटिभिः । ययौ घोरैर्धु मारुतिना तान् ययान् तोरणेन सः २०९॥  
 धातयामास पुच्छेन चदुष्व चैकत्र कोटिभः । नर्धय लालसां पुच्छं रावणस्य च ममके ॥२१०॥  
 मन्तव्यं तत्रैव दग्धामकरोन्मारुतिः सुगान् । तन्पुच्छवह्निना दग्धो भूडिोऽभूदक्षाननः ॥२११॥  
 कपिः शौराधकीर्त्यर्थं रावणं न जघान सः । यतिनं पित्रं दृष्ट्वा दृष्ट्वा दग्धान्स्वगक्षयान् ॥२१२॥  
 आन्मनः प्राणरक्षार्थमिन्द्रजिद्विभरं ययौ । कपिलक्ष्मणप्रीत्यर्थं मेघनादं जघान न ॥२१३॥  
 एव सर्वान्निनिज्जिन्य मोघुरष्टालमण्डिनाम् । दग्ध्वा लङ्कां सविध्वानं ययौ भाग्यमुनमम् ॥२१४॥

बाँसो हाथोसे आग बुझानेके लिए अपने मुखोपर परापर धपड़ मारने लगा । तब राक्षस जागोसे सिलसिलालाकर हँस पड़े ॥ १९९ ॥ हनुमान जी हँसने लगे । यह देखकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और आज्ञा दी कि इस दृष्ट वानरको पकड़ ले आओ ॥ २०० ॥ तब दून लोग हनुमान्क बड़ी मजदूग सौकणोसे बाँधकर ले गये और नगरमे चारों ओर घुमया ॥ २०१ ॥ घुमाने समय उनके साथ बड़ बड़ बाजे बजे रहे थे । बहुतसे बालक तथा राक्षसारी लोग उनको घेर हुए थे । इस प्रकार दिनेन भारी लंका देखकर सायकालके समय हनुमान् धूम रूप बाधन करके झटपट व्यवगमसे निकल गये और कूदकर दग्धावतार जा मड़े । उसके पूर्व ही बह्मपास को अपने स्थानपर छोट गया ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ वहाँसे चल्कर ये पश्चिमी द्वारपर जाये । वहाँ फाटकका सम्भा उखाडकर उससे समस्त द्वारपालों को मार डाला ॥ २०४ ॥ अनक रक्षक राक्षसोंको भी मार मारया और अपना पूछकी अग्निसे सब महलीय आग लगाकर सारी लंकाको जला दिया ॥ २०५ ॥ उस समय लंकाके प्रत्येक घरमे बड़ा भारी कोलाहल होने लगा । निद्रा कपने बालकोंको सोने हुए छोड़कर ही घरोंसे बाहर निकल पड़ी ॥ २०६ ॥ उनके घरों तथा बालोंमे आग लगी हुई थी और वे अपने प्राण बचानेके लिए इधर उधर भागने लगे । हनुमान्ने क्रमशः आग जकर रावणक महलीय भी आग लगा दी ॥ २०७ ॥ रावणकी सभाको जलाकर वहाँक राक्षसोंको अपने पूछसे खूब पाटा और सब राक्षस जलने तथा अनेक प्रकारके शब्द करके चिल्लाने लगे ॥ २०८ ॥ तब रावण क्रुद्ध हो दह करोड़ राक्षसोंको साथ लेकर हनुमान्से लड़नेके लिए गया । हनुमान्ने उन सबको उमो लहके छत्रोंसे आघ डाला और करोड़ोंको एक साथ पूछमे बाँधकर लंकापूर्वक रावणक मिरपर दे मारा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ इस प्रकार मारनेसे उधकी चमड़ी क्षणपरमे जल उठी । उनकी पूछको अग्निमे जलकर दजानत भूडिज हो गया ॥ २११ ॥ परन्तु हनुमान्ने यह सोचकर उसको जानसे नही मारा कि यदि रामके हाथसे मारा जायगा तो उनका यश बढ़ेगा । पिताको गिरा हुआ तथा अपने राक्षसोंको जलने देख इन्द्रजित मेघनाद अपने प्राणोंकी रक्षाने लिए एक गुफाघ घुल गया । हनुमान्ने लक्ष्मणकी प्रमत्तताके लिए उसको भी जादित छ ड दिया—मारा नहीं ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ इस तरह सबको जीत तथा पुरस्कार और अंतरियोंसे मंहित विशाल लंकाको जलाकर हनुमान् उसमे



तटे पुच्छं स्थापयित्वा जलजान् रक्षन् कपिः । तत्रैवैः शान्तं स्व कृत्वा लास्यमुत्तमम् ॥२१५॥  
 निजकृष्णञ्च धृष्टेण श्रेष्ठेण मायरेऽक्षिपत् । ननः कपिः क्षणं नृप्यो स्थित्वा सती त्वनिन्द्य ॥२१६॥  
 दाहयामास हृदये मन्वा दग्धा विदेहजाम् । आत्मानं गर्हयामास स्थित्वा मागररोधसि ॥२१७॥  
 धिम्धिष्मां शनरं घृष्टं स्वामिपन्थाश्च दाहकम् । निश्चयन मया दग्धा आनकी रामरोषदा ॥२१८॥  
 न विचारः कृतः पूर्वं लङ्कादाहेऽवशेकिना । आत्मवानं कोम्यद्य पुच्छवधेन चात्र वै ॥२१९॥  
 किं रामदेवकं स्वाभ्यं दशयेऽथ विगर्हितम् । गमन्तु श्रुत्वा भीताया वृत्तं दीर्घं मरिष्यति ॥२२०॥  
 तद्दुःखेन स मौर्मिशर्मिष्यति न मथयः । तयोदुःखेन सुग्रीवश्च दर्शं ता च वै रुमा ॥२२१॥  
 तं श्रुत्वा सोऽङ्गदश्वापि मरिष्यन्त्यलिलातिनः । तारऽपि पुत्रशोकेन नृपे तष्टेऽहं वानराः ॥२२२॥  
 प्रार्त्तं पंचदशे वर्षे मग्नोऽपि मरिष्यति । गमद्दुःखेन कोमल्या मुमिका पुत्रदुःखतः ॥२२३॥  
 तथा सा कैकेयी दुष्टा मवानधेकरी नु या । शत्रुघ्नो बभूवुःखेन रामार्थं मृनयश्च तै ॥२२४॥  
 राघवा रामवक्ताश्च मविगः सुहृदमन्या । सीतापितुः कुल सर्वं कोमल्याः पितुः कुलम् ॥२२५॥  
 मुमित्रायाश्च कैकेयास्तेषां सवधिनमन्या । नष्टं राजकुले जाते प्रजा स्वच्छानुवातिना ॥२२६॥  
 मरिष्यति न महेदमनः म्थाभ्यजगमम् । भूमिक्याः प्राप्तिनः सर्वे यदा नष्टास्तदा दिशि ॥२२७॥  
 इत्यकन्यविहीनानां दवा नाशं मना इव । अकाले प्रलयं दृष्ट्वा तदां मृष्टिं प्रनिर्मिता ॥२२८॥  
 पश्चात्तापेन धाताऽपि मरिष्यति न मथयः । एवं कमेण मद्मांडं नश्यत्येव न संशयः ॥२२९॥  
 एतद्वाननिमित्तोऽहं विधिना निश्चितः पुनः । इत्युक्तवान् संदेन वेदस्यामार्थपुयनम् ॥२३०॥  
 दृष्ट्वा माऽऽकाशजं वाणीं दभूव बहूदपंता । मा कुरुन्व कपे संदं न दग्धा आनकी शुभा ॥२३१॥

मागरके किनारे गया ॥ २१४ ॥ वही नृप्यो पुच्छक वडे प्रायको किनारेपर रखकर जलजन्तुओंको बचाते हुए  
 हनुमान् त समुद्रकी तरङ्गोंमें अपनी टंघें तथा उत्तम पुच्छको गंतव्य किया ॥ २१५ ॥ वही उन्होंने दुर्यसे गन्ध  
 मम वपनस्य सा त्याग किया । तदनन्तर ने क्षणकर शांति रह । बादमे वे सीताका सोच तथा उनकी कुल नपी  
 समझकर आर-जीरसे छर्ती पीटने लगे । समुद्रतटपर खड़े होकर उन्होंने अपने निन्दा की ॥ २१६ ॥ २१७ ॥  
 न्याम की स्त्री सातका जलानवान मुझ संगेव मुख टनरका दरम्यार धिक्कार है । रामको संतव देनेवाली  
 उनकीको मैंन भस्मसे जला दिया ॥ २१८ ॥ अविगको मैंन लङ्का अलानेसे पहिले यह विचार नहीं किया ।  
 जब मे गन्ध पुच्छ बांधकर मात्मघात कर दूंगा ॥ २१९ ॥ ये भव अपने इस निन्दित मुखको कैसे दिखाऊंगा ।  
 मैं मायाका यह हाल सुनने ही प्राण त्याग देगे । २२० ॥ उनके दुःखसे दुःखित मुमित्रापुत्र एकमण भी अवश्य  
 कर जावेगे । उन दानोके दुःखसे सुग्रीव और सुग्रीवक दुःखसे उनका स्त्री रुमा भी प्राण त्याग देगी ॥ २२१ ॥  
 यह समाचार सुननेके साथ ही मरुन्त प्यारसे पला हुआ प्राण भी प्राण छोड देगा । तब पुच्छलोकसे  
 कुरु और राजको विद्योगसे सब वातर भी प्राण दे देगे ॥ २२२ ॥ पन्द्रह वर्ष कीत जानेपर भरत भी मर  
 जावेगे । रामके विद्योगह कोमल्या पुत्रविगीरसे मुमित्रा तथा भरतके विद्योगसे यह मनर्थकारिणी तथा दुष्टा  
 कैकेयी भी मर जायगी । भाईक दुःखसे शत्रुघ्न, रामके दुःखसे मुनिलोच एवं दधुवशी रामके भक्त मन्त्रिजन  
 ह्या मित्रवर्ग भी प्राण दे दंग । सीताके शिवा जनकका मूल, कोमल्याके पिताका कुल, मुमित्राके पिताका  
 कुल कैकेयके पिताका कुल तथा उनके भा संगे सम्बन्धो लाभ प्राण त्याग देगे । राजकुल नष्ट हो जानेपर प्रजा  
 नष्ट कारिणी हो जायगी ॥ २२३-२२६ ॥ तब यह निमन्हेह स्थावर-जङ्गम तथा प्राणियोंका नाश करने  
 लग्ग । जब पृथ्वीपर सब प्राणी मार डाले जायेंगे । तब स्वर्गलोककामी देवता और पितर भी इत्यकव्यस  
 र्जन होकर मृतक संगे हो जायेंगे । अवश्यका प्रलय तथा अपनी रत्ना मृष्टिका बिनाश देखकर पद्मासायसे  
 केन्द्रह विधाता भी मर जायगा । इस प्रकार क्रमशः समस्त ब्रह्माण्ड ही नष्ट हो जायगा । इसमें सन्देह  
 नहीं है । २२७-२२८ ॥ ब्रह्माजीने इनके विनाशका कारण मुझ ही बनाया । हनुमान् एना संदुर्बल कहने  
 का जो मरनेके लिए उत्पन्न हो गये । २२९ ॥ उसी समय यह आनन्ददायिनी आकाशवाणी हुई कि मैं

आम्भानं दर्शयित्वा तां शीघ्रं गच्छ रघूदहम् । तां वार्तां हनुमज्जुत्वा बभूव हर्षपूर्वितः ॥२३२॥  
 द्रुमं तां जानकीं द्रष्टुमशोकवनिकीं ययौ । तावरदर्शं संकायां सुवर्णवेष्टितां सुवम् ॥२३३॥  
 उत्कारणं वदाम्यस्य तच्छृणुष्व गिरीन्द्रजे । अर्म्मद्रिषिवमे देवि त्रिकुट इति विश्रुतः ॥२३४॥  
 क्षीरोदेनान्वृताः श्रीमान्पूजनायुतश्रुतिधनः । तारुणं विभूतः पर्यङ्कं त्रिभिः मृगैः पर्यानिधिम् २३५  
 दिशः स रोचयन्नास्ते रौप्यायमदिरभ्यर्चयः । तस्य द्राण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥२३६॥  
 उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीड सुग्योपिदाम् । दम्बिन्मरः सुविपुलं लसत्काचनपंकजम् ॥२३७॥  
 कुमुदोपपङ्कजहारजलपत्रश्रियोर्देवम् । नैनन्कृतम्वा पदयति न वृजंवा न नास्तिकाः ॥२३८॥  
 तस्मिन्मरमि दुष्टान्मा विरूपोऽन्तर्जलाग्रयः । बाभोवृषाहो गजेन्द्राणां दुग्धधर्वो महाबलः ॥२३९॥  
 अथ दंतीज्ज्वलमुखः कदाचिद्रजयुधपः । आतमाम हवाकानः कण्ठेणुवदियगतिः ॥२४०॥  
 दृष्टितः पान्कामोऽयमवतीर्णश्च तत् सगः । पिबन्मरस्य ततोयं ग्राहस्तसुरपथतः ॥२४१॥  
 सुतीनः पकजवृते सुवमप्यमनः करो । गृहीतस्तेन गैत्रेण ग्राहणादिवकीवसा ॥

गतो आकर्षते तीरं ग्राह आकर्षते जलम् ॥२४२॥

पञ्चर्तीनां कण्ठेनां कोशतीनां सुदारुणम् । नीयते पंकजवने ग्राहेणान्यन्तमूर्तिना ॥२४३॥

तथाऽऽहुर युगपति कण्ठेनां त्रिकुण्डमाणं तस्मा बलीयसा ।

त्रिकुण्डशूर्तनाधयोऽपरं गत्वा पार्थिवप्रहास्तरयितुं न चाशकन् ॥२४४॥

तवोर्पुदमधूदोरं दिव्यवर्षनदम्भकम् । शक्यैः सयतः पार्थिविप्रयन्नगतिः कृतः ॥२४५॥

वेष्टयमानः सुपारंस्तु पार्थिवार्गदृष्टिधा । विस्फूर्जितमहाशक्तिर्निःक श्व महाबान् ॥२४६॥

कविश्रेष्ठ ! शेर न करो । कल्याणकारिणी जानकीका नहीं जली है ॥ २३१ ॥ उनसे मिलकर तुम शीघ्र रघूदह  
 रामके पास जाओ । उस गहनवालीको मुनकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३२ ॥ वे जानकीको दम्बनके  
 लिए शीघ्र अशाङ्कवनमें गये । वहाँ जाकर हनुमान्ने कुछ सुवर्णपाण्डित घर्ती देखी ॥ २३३ ॥ हे गिरीन्द्रजे ।  
 उमक्य कारण मैं बताता हूँ, सुनी-हूँ दीव ! त्रिकुट नामके पासके एक श्रेष्ठ पर्वत था ॥ २३४ ॥ वह चारों  
 ओर तीरसमारसे घिरा हुआ सुन्दर शाष्पागुल तथा इस हजार योजन ऊँचा था । वह उतना ही गालाईमें  
 भी था । वह आँदा, लाल और मानक तीन शिखरोंसे इसी दिशाओं तथा आकाशकी व्याप्त किये हुए था ।  
 उसके एक भागमें महात्मा भगवान् वरुणका अनुमान् नामक दक्षिणोंका श्रीहरिस्थान एवं उद्यान था ।  
 उसमें विजय सुवर्णकमलसे युगाभित्त एक तालाब था ॥ २३५-२३७ ॥ जो कि बुढ़ा, लाल कमल प्रदेत  
 कमल तथा आलपय जैसे कमलोंसे अतीव सुन्दर प्रतीत होता था । उनको कुलधन, वन और नग्निक लोग  
 नहीं देख सकते थे ॥ २३८ ॥ उसी जगाममें ठिया हुआ महाबलवान् बड़ा कठिनाईमें पकड़ा जानेवाला  
 तथा गजेन्द्रोंकी भी प्रसन्न बनाने एक दुष्ट अमरमच्छ रहता था ॥ २३९ ॥ जिसने समय प्रदेत रति तथा  
 श्वेत सुखवाला भजोमें मुख्य एक गजराज पानसे आकुल होकर हर्षनिधाम पहरा हुआ वही आया ॥ २४० ॥  
 वह पानी पीनेकी इच्छासे च्यो ही पानीमें उतरा और पानी पीन लगा र्यो ही ग्राह उसके पास आ पहुँचा  
 ॥ २४१ ॥ कमलवनसे डूंक तथा हाथियोंके मुखोंके बचन स्थित उस हाथोंको उस भगवानक तथा अति सम्मान  
 चाहने एकड़ लिया ॥ २४२ ॥ जब वह हाथी ग्राहका तीरकी ओर खींचन लगा । उसके माँवकी हृदयिणी  
 देखती और दूसरे बिल्लाती ही गृह पई और जलमें ठिया हुआ ग्राह हाथीका कमलके वनमें दूर खींच से गया  
 ॥ २४३ ॥ जब भगवाणे हुए उस सुवर्णित गजका ग्राह बन्धूक बोले जलमें खींच रहा था, तब हृदयिणी  
 पत्नीन मुखसे शब्दन करने लगी और दूसरे तथा पछे रहनवाले हाथी दीन होकर बिल्लाने लगे, पर कोई उसे  
 बचा नहीं सका ॥ २४४ ॥ उस मज तथा ग्राह दोनोंमें देवनाजोंके हजार भयें मक वीर मुट होता रहा ।  
 भक्तमें भजराज जैसे वरुणपाल तथा अति भयानक एवं बड़ नागपाशमें बँधकर सर्वथा असमर्थ हो  
 गया । तब लम्बकल वर्ष तथा महाशक्तिसम्पन्न होता हुआ भी वह गजराज बिल्लाने तथा महान् पीरमर

व्यथितः स निरुन्वाहो गृहानो धोःकर्मणा । परमापदमागतो मनवाङ्मन्यद्वयम् ॥ २४७ ॥  
 एकाग्रो निगृहीतत्मा विशुद्धेनावरान्मना । प्रगृह्य पुष्कराग्रं कौचं कमलोत्तमम् ॥ २४८ ॥  
 नैवेद्यं मनसा यन्मया पूजयिष्या जनादेनम् । आप द्विबोधमन्दिच्छन्नाजः श्रोत्रमुदीरयत् ॥ २४९ ॥  
 हन्कृतेन स्तब्धेनैव मुषीतः परमेश्वरः । आरुह्य गरुडं त्रिष्णुगजगाम सुरोत्तमः ॥ २५० ॥  
 श्राह्यस्तं गजेन्द्रं च न ग्राह्यं च कलाश्रयान् । उज्ज्वलपद्मेनात्मा तरसा मधुसूदनः ॥ २५१ ॥  
 अलम्ब्य दारपाणाम् चक्रं चक्रेण माधवः । मोचय मम न गेहं पाशेभ्यः श्रवणागतम् ॥ २५२ ॥  
 आसीद्वज्रः पुरा पांड्य इन्द्रसुम्न इति श्रुतः । एकदा स तपोनिष्ठो बभूव ध्यानतत्परः ॥ २५३ ॥  
 यदृच्छया ययौ तत्र कुम्भजन्मा वृषाधिकम् । ध्यानस्थः स तपो नैव मुनिं वेद समागतम् ॥ २५४ ॥  
 ददौ श्रापं मुनिर्भूय दृष्ट्वात्मन तु नोन्वितम् । तपोमदेनमभ्यासस्य यस्यान्मोन्वितोऽपि माम् ॥ २५५ ॥  
 अतो मय गजो आतो मदेन विरिनेऽपि च । स श्रापं तृपति श्रापं च प्रणम्य पुनः पुनः ॥ २५६ ॥  
 विचारं प्रार्थयामास मुनिः प्राह हरेः कृपया । अविर्भाते त्रिमुक्तिस्ते यदा ग्राहो परिष्यति ॥ २५७ ॥  
 पुरा तदैव गधवंस्त्रध्मगणेशमेवितः । सः स्यात्सिद्धमर्कडा कर्तुं हृद्ः समागतः ॥ २५८ ॥  
 मरस्यधमर्पणार्थं न दृष्ट्वा स देवतं विभुम् । मन्थितं च यद्देहं कर्तुं गन्धर्वैः स व्यचिन्तयत् ॥ २५९ ॥  
 स्वयं भूम्या जले लान्मन्थादी स्वकरोष हि ददुः प्रुम्भा कथयन् शास्त्रा तमश्रपन्मुनिः ॥ २६० ॥  
 ग्राहवन्मे घृणी वादी तम्पाद्ग्राहो भवात्र वै । तेन मयायितः प्राह इगिस्त्वामुदरिष्यति ॥ २६१ ॥  
 एवं तौ पूर्वश्रापेन एनिनावतिसकटे । इगिरुदभृत्य तौ नाभ्यां ययौ स्वीयस्थलं पुनः ॥ २६२ ॥

करने लगा ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ उस आ पुरातन ग्राहसे अब न होकर मजगत् दुष्पी और निरुसह हो गया ।  
 उस समय इस प्रकारकी परम विपत्तिको प्राप्त हुकर अब श्री इन्द्रिका चिन्तन करने लगा ॥ २४७ ॥ तदनन्तर  
 इन्द्रियोंका निबह करके उगने एकाग्र मन तथा गूढ़ अन्तःकरणस गुणोंके समान उत्तम एक कमलगुम्फ  
 मूँडके अग्रभागसे पकड़कर जालत भाँदमे मन ही मन जनार्दन भगवान्का आश्रय ले, पूजन, ध्यान तथा नैवेद्य  
 अर्पण करके विपत्तिसे छुटकारा पानेके हेतु मनःशुद्ध किया ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ उसका स्मृतिसे प्रसन्न परमेश्वर  
 स्त्रोतम भगवान् विष्णु स्वयं गरुडवर सवार होकर वहाँ आये ॥ २५० ॥ उन अवसर आत्मा मधुसूदन  
 भगवान् उन ग्राह तथा वज्रका जलसे पीये ही बाहर निकाला ॥ २५१ ॥ उन्होंने जलमें रहनेवाले  
 जलका आने चपसे मार डाला और गरणगत वज्रगजको पाशोंसे छुटा दिया ॥ २५२ ॥ यह हाथी पूर्व  
 जन्मसे पांड्यवंशी इन्द्रसुम्न नामका राजा था । एक बार उसने छद्म करके तप करना आरम्भ किया  
 २५३ ॥ जब यह तप कर रहा था, तभी उसके पास अगस्त्य मुनि एकाएक जा पहुँचे । ध्यानमें स्थित  
 राजाको मुनिके आनेका कुछ पता न था ॥ २५४ ॥ मुनिने अपने आनेपर राजाको जड़े होते न देखकर  
 शाप दे दिया कि तपक क्षमण्डसे मेरे आनेपर भी तुम जड़े नहीं हुए ॥ २५५ ॥ इसलिए काँझ ही तुम वनमें  
 नदन्मत्त हाथी ही जाओ । यह सुनकर राजा इन्द्रसुम्न बारम्बार मुनिको प्रणाम करके शापसे मुक्त  
 करनेकी प्रार्थना करने लगा । तब मुनिने कहा कि तुमको ग्राह ( मगरमच्छ ) पकड़ेगा, तब प्रभुके हाथसे  
 मन्मथी मुक्ति होगी ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ उन्हीं दिनों हृह नामक गन्धर्व विशिष्ट अप्सराओंको साथ लेकर उस  
 राजावसे अलकीडा करनेके लिए आया ॥ २५८ ॥ उसने देखा कि उस सगरके अलम्ब जड़े होकर देवक  
 मुनि बहुत देरसे अधमर्षण अर्थात् तम्पुर्ण पापीको मष्ट करनेवाले मन्थका कप कर रहे हैं और अभी बाहर  
 निकलना नहीं चाहते । तब यह उनका बाहुर निकालनका उपाय सोचने लगा ॥ २५९ ॥ तदनन्तर स्वयं  
 जन्मे दुर्बली मारकर वह अपने हाथसे उनके पाँवोंको पकड़कर खींचने लगा । यह देखकर मुनि उसको  
 चिन्तित गये और शाप दिया-॥ २६० ॥ तुम ग्राहकी तरह मेरे पाँव पकड़े हैं, इसलिए तू यहाँपर मगर-  
 मच्छ बनेगा । पुनः अन्धर्वके प्रार्थना करनेपर मुनिने कहा कि धीरे धीरे तेरा इस शापसे उद्धार करोगे ॥ २६१ ॥  
 इस प्रकार पूर्व जन्ममें प्राप्त शापके कारण ब्रह्मिण्य भोजन सकलमें पड़े हुए उन गधपशुका भगवान्ने उद्धार

क्षुधितेनाथ ताक्ष्यं प्रापितः प्राह तं हतिः । गच्छ भयम् वसिने मत्प्रसादकलेवरे ॥२६३॥  
 ययौ ताक्ष्यः सरः पुष्पं तावद्भ्रमंगुधराट् । कलेवरांतिकं प्रापस्त निहन्त्य स्वमेघराः ॥२६४॥  
 पदेनेकेन भ्रमंगमपणेन कलेवर । पुन्रा ताक्ष्यं शुद्धदेशं मक्षगार्धमवश्यम् ॥२६५॥  
 तावन्धीमार्णवे त्रिवुनदवृक्षं समीक्ष्य सः । आपामचिस्त्वरोच्चैस्तु सदस्ययोजनं शुभम् ॥२६६॥  
 वृष्ठास्त्रायां विशालायां यावत्तर्था म पश्चिमाट् । तावद्भ्रमजं तच्छायां बालविन्दैरधोमुखः ॥२६७॥  
 तपस्विः वह्निमाहर्षिश्चकालं मम श्रिताः । तांस्त्वाहशान्तिनिके कथायं तच्छायायमशक्तिनः ॥२६८॥  
 पुन्रा स्वचक्षुना श्लाघां वत्राम गमने पुनः । ततो दृष्ट्वा कश्यपं स्वतानुं नन्वा व्यजिहपन् ॥२६९॥  
 वद शुद्धां भुवं मेऽद्य कुर्वेऽहं यत्र भोजनम् । तदा तं कश्यपः प्राह शनयोजनमागरे ॥२७०॥  
 लोकानास्त्री शुद्धभूमिस्तत्र त्वं कुरु भोजनम् । तपितुर्वचनाद्वृद्धौ ययौ ताक्ष्यः क्षणेन सः ॥२७१॥  
 प्रोषयोः पभयोः श्लाघां म्याप्य तान्मक्षयन्मुदा । तस्यकौम्भिरास्तिस्त्रयुगाणि त्रीणि चाभवन् ॥२७२॥  
 त्रिकुट इति नाम्ना म लङ्कायां गिरिराडभून् । तेषु भूमेषु तां शास्त्रां ताक्ष्यः संस्थाप्य संपयौ ॥२७३॥  
 बालस्त्रिष्याम्भोऽन्ते ते वयुर्विष्णोः परं पदम् । त्रामाच्छायां जन्तुनां या लङ्कायां भृगुमूर्तेषु ॥२७४॥  
 प्रावभूतां चैवनेन न विदुस्तां तु राक्षसाः । लङ्काऽग्निना द्रव्यभूता मर्दयन्तां क्षपाचरान् ॥ ७५॥  
 एषान् तदमेतामालङ्काभूमिर्दोषमयी । तां दृष्ट्वा चक्रिती वेगादने मानी ययौ कपिः ॥२७६॥  
 दृष्ट्वाऽघोके पुनः सीतां तामाह कपिकुञ्जरः । मन्त्रकन्धमंस्थिता गममय वश्यसि जामकि ॥२७७॥  
 सा प्राह मोक्षितामन्यैर्मां रामो न सहिष्यसि । नीचा पुनर्मुद्रिकां त्वं रापवाय समर्पय ॥२७८॥

किया और दोनोंको साथ लेकर अपने घास पत्रार । २६३। तदनन्तर भूम गहन श्रीहृदिसे आहारकी प्रायना की । श्रीहृदिने कहा कि जाओ, सरोव क लक्षण घरे हुए मज साहके शरीरकी ला म्ने । २६३ ॥ गच्छ महा वये हो उन कलेवरीके पास भ्रमंग नामक एक गुधराजकी इला । दानव हो पश्चिमोक्त ईश गच्छने उस मार दाला । २६४ । तन्वभ्रान् एक टांगस आ भङ्गका तथा दूसरी टांगस मज पात्रक शीरकी पकड़कर उन्हें आनक लिए कोई शुद्ध स्थान लोजने लगे । २६५ । उत्तरम वरुडकी श्रीसागरमें एक जम्बूनद ( सुवर्ण ) का गुफा दिमायी दिया । सह लम्बाई चौड़ाई तथा ऊंचाईमें हजार योजन परिमाण वाला था और दानवस बहा ही सुन्दर मगता था ॥२६६॥ पान्धराज शरद जाकर उगी हो उसको एक शाखापर बैर, तैमे ही उसको बह शाखा टूट पड़ी । उसके टूटनेस उमर बहान कालम रहनकले साठ हजार बालस्त्रिष्य श्रुति छपे मुख हाकर गिरने लगे उनकी यह दशा देखकर पान्धराज गच्छक मनम क्षयशक शापकी शका समा गया ॥ २७३ ॥ २६८ ॥ अतएव उस शाखाको नीचमें पकड़कर वे आकाशमें फिर प्रथम करने लगे । तभी इन्द्र अपने पिता कश्यप दिमायी पडे । तब तमस्कार कन्के उनसे निवेदन किया— २७५ ॥ आप कई ऐसी पवित्र जगह पालाएँ, जहाँ मैं भोजन कर सकूँ । तब कश्यपने कहा कि सौ योजन विस्तृत लका नामकी विशुद्ध भूमि है, वहाँ जाकर तुम भोजन कर सकते हो । अपने पिताकर बात भङ्गाकार करक गच्छ क्षणपरम लङ्का जा पहुँच ॥ २७० ॥ ॥ २७१ ॥ बालस्त्रिष्य श्रुतिसे सहित मासाको अपनी ईवी पालापर घरे हुए वे आनन्दसे उन भूम शरीरोंकी स्ताने लगे, जिन्ह पयाम पकड़ लये थे । उन मजग्राह तथा गीषके शरीरसे निकली हुई हड्डियाँ वहाँ होन बड़े भारी गिरार खड हो गये ॥ २७२ ॥ उन लोका लङ्काम पवनराज त्रिकुट नाम पद गया । गच्छने उन्होंने शिखरापर उस शाखाका रख दिया और चले गये ॥ २७३ ॥ वहींपर तपस्या पूरी करके वे बालस्त्रिष्य श्रुति विष्णुके परम पदकी प्राप्ति हो गये । लङ्काम उन शिखराक मध्यमें स्थित शाखा पायाशक समान हो गया था । इसी कारण रक्षस लोग उसे नहीं पहचान पाये थे । जब हनुमान्ने लङ्काको अग्निसे जलाया, जब वह इवित होकर राक्षसोंका मर्दन काही हुई गिर पड़ी । उसके रखसे लङ्काकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी । यह लोका रखकर हनुमान् चकित हो गये और गर्भ ही संताके समीर भाये ॥ २७४-२७५ ॥ लङ्केकवधसे लोकाकी नृपपद स्थित देखकर कपिपुञ्जर हनुमान् लोकासे बोले हे जानकी ! आप मेरे कन्धे-

इत्युक्त्वा तत्करे सीता ददौ श्रीराममुद्रिकाम् । ततस्तां मारुतिः पृष्ट्वा नन्वां शत्रुं ययौ पुनः ॥२७९॥  
 आरूढ सुवेलाद्रि पूर्णं तमकरोद्भिषिम् एतस्मिन्नतरे नक्षा ददौ पत्रं सविस्तरम् ॥२८०॥  
 यथाकृतं मारुतिना लकार्थं तस्य सूचकम् । तद्गृह्य मारुतिर्वैशान्त्या पृष्ट्वा विधिं पुनः ॥२८१॥  
 तत उद्गीय वेगेन यथावाकाञ्चक्येना । कुर्वन् शब्द महाघोरं कर्षीनामूर्ध्वतस्तदा ॥२८२॥  
 उद्भिष्यतग किंचिन्पपात भुवि मारुतिः । ततो दृष्ट्वा कर्षीन्तत्र दृष्ट्वा मुनिमत्तमम् ॥२८३॥  
 किंचिद्वैममाविष्टसं मुनिं प्राह मारुतिः । यथा श्रीरामकार्यं तु कुतमस्ति मुनीश्वर ॥२८४॥  
 यानीयं पातुमिच्छामि दर्शयस्व जलाशयम् । तर्जन्या दर्शयामास मुनिस्तस्मै जलाशयम् ॥२८५॥  
 ततः स मारुतिर्मुद्रां मणिं पत्रं मुनेः पुरः । मन्थाप्य नीरं पातु वै ययौ कामारमुत्तमम् ॥२८६॥  
 ततस्तत्र कपिः कश्चिन्मुद्रिकां मुनिमनिवौ । कमण्डलीं प्राक्षिपन्त्य पर्या तावच्च मारुतिः ॥२८७॥  
 गृहीत्वा त मणिं पत्रं मुनिं पप्रच्छ मुद्रिकाम् । मुनिभ्रमं ज्ञया तस्मै कमण्डलुमदर्शयत् ॥२८८॥  
 ततः कमण्डलीं नृणां मुद्रिकामवलोकयन् । तावददर्शान्वनेयस्नस्मिन् भोगममुद्रिकाः ॥२८९॥  
 दृष्ट्वा महस्रशस्तत्र चकितः प्राह तं मुनिम् । कुतस्त्विमा मुद्रिकाश्च वद का मम मुद्रिका ॥२९०॥  
 एतासु त्वं मुनिश्रेष्ठ तदा तं मुनिप्रवीन् । यदा यदा वायुपुत्रः सोतां तां राघवाश्रया ॥२९१॥  
 लकां गन्वा समानीता घृष्टमुद्रास्तदा तदा । मद्ग्रे स्थापितास्नाथ कपिभिश्च कमण्डली ॥२९२॥  
 निक्षिप्तास्नाम्बिमाः यदा पश्यताम् स्वमुद्रिकाम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा यतगर्वस्तमजवीत् ॥२९३॥  
 कियंतो राघवाश्चात्र ममापाता मुनीश्वर । मुनिस्तं प्राह निष्कारस्य गणपस्वाद्यमुद्रिकाम् ॥२९४॥

पर सवार हो जायें, तो मैं आपको ले चलकर आज ही रामका दर्शन करा दूँ ॥ २७७ ॥ जानकीने कहा—मुख दूसरा कोई छुड़ाकर ले जाय, इस बातको समझान राम सहन नहीं कर सकेगा। इसलिए तुम इस अंगूठीको ले जाकर रामका दे दो ॥ २७८ ॥ इतना कहकर साताजान हनुमानके हाथमें वह मुद्रिका दे दी। तब हनुमानजी से ताका आज्ञा ले तथा नमस्कार करके शीघ्र ही लौट पड़े ॥ २७९ ॥ उन्होंने समुद्रके किनारे वाले पर्वतपर चढ़कर उसे घूर्ण कर डाला। उस समय बह्मासन विस्तारपूर्वक एक पत्र लिखकर उन्हें दिया ॥ २८० ॥ जिसमें यह लिखा था कि लयाय अकर मारुतिने क्या-क्या काम किया है। उसको लेकर बह्माजी ब्रह्मा ले तथा उन्हें नमस्कार करके हनुमान् पुनः वह में उड़कर श्रीरामजीसे पार तथा महान् वानरोकी तरह गल करते हुए जंगलसे चल पड़े ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ उत्तर दिशा की ओर कुछ दूर आगे जाकर मोचे उत्तर में वहाँ उन्होंने एक मुनिको चिराममान देखा ॥ २८३ ॥ तब कुछ भयम भावने लगा हे मुनीश्वर! मैं श्रीरामका काम करके आ रहा हूँ ॥ २८४ ॥ वहाँ मैं पानी पीनकी इच्छासे आया हूँ मुझे कोई जलाशय बतलाइये। तब मुनिने उन्हें तर्जनी अंगुलि से जलाशय बतला दिया ॥ २८५ ॥ तदनन्तर हनुमान् अंगूठी, सूत्रामणि तथा पत्र मुनिक पास रखकर उस उत्तम तालाबकी ओर चल पीने गये ॥ २८६ ॥ इतनेमें किसी बन्दरने आकर रामकी मुद्रिकाको मुनिक पास रख कर कमण्डलुमें डाल दिया। उधरसे हनुमान्जी आ आ पहुँचे ॥ २८७ ॥ सूत्रामणि तथा पत्रके विषयमें उन्होंने मुनिसे पूछा कि मुद्रिका कहाँ गयी? मुनिने भौंटेके सनेतसे कमण्डलु दिखाया ॥ २८८ ॥ जब हनुमान्ने कमण्डलुमें देखा तो उसमें श्रीरामकी हजारों मुद्रिकाएँ दिखायी दीं। तब हनुमान्ने आश्चर्यवक्ति होकर मुनिसे पूछा कि इतनी अंगूठियाँ कहाँसे आयीं, सो बताइए ॥ २८९ ॥ २९० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आप यह भी कहिये कि इनसे मेरी मुद्रिका कौन-सी है? मुनिने उत्तर दिया कि जब-जब श्रीरामकी आज्ञासे हनुमान्ने लका में जाकर लालका पता लगाया है और अंगूठियों मेरे नामने रखी हैं तब-तब बन्दरोंने उन्हें इस कमण्डलुमें डाल दा है। वे ही ये सब हैं। इनमेंमें तुम अपनी अंगूठी खोज लो। मुनिक इस वाक्यको सुनकर हनुमान्का गर्व खर्च हो गया। तब उन्होंने मुनिसे कहा— ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ हे मुनीश्वर! यही जिसने राम जाय है? मुनिने कहा—कमण्डलुमेंसे अंगूठियाँ निकालकर

कमंडलोरंजलिमिन्ददाऽथ मुद्रिका मुहुः । बहिः क्षिपन्माकृतिं स नानं नामा ददर्श सः ॥२९५॥  
 पुनः कमंडलीं कृत्वा मुनिं नम्या कपिः क्षणम् । चिन्तयामास मनसि मादृजैः शतशः पुनः ॥२९६॥  
 समानीतास्ति सीतायाः शुद्धिः का गणनाऽयमे । इति निश्चिन्त्य मनसि गतगर्वमदा कपिः ॥२९७॥  
 पुनर्दक्षिणामणेष ययौ यत्रांगदक्षिणः । प्रायोपवेद्यनम्यास्ते त दृष्ट्वा तुष्टमानसाः ॥२९८॥  
 बभूवुर्नानाः सर्वे समालिख्य तं मुहुः । ज्ञात्वा तन्मुस्तः सीता दृष्ट्वाऽप्योक्वने न्विति ॥२९९॥  
 ययुस्ते गधवर्मांश्च मार्गे सुग्रीवपालितम् । दृष्ट्वा मधुवनं सर्वे दृष्ट्वा तु वालिनंदनम् ॥३००॥  
 फलानि मलयामामुर्धधिवक्त्रो न्यपेययत् । तन्यते ताडयामामुर्धधिवक्त्र कपीश्वरम् ॥३०१॥  
 ज्ञात्वा तं मानुष्यपि सुग्रीवस्पांगदादयः । स गत्वा सकलं वृत्तं सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३०२॥  
 सोऽपि श्रुत्वा जनकजा दृष्ट्वा तैरिन्धमन्यत । नोचेन्मधुवनं रम्यं कथमश्नन्ति वानराः ॥३०३॥  
 ततो विमर्जयामास दधिवक्त्रे कपीश्वरः । मा निपेयस्त्वया कार्यं क्वं शीघ्रं प्रेषयस्व तान् ॥३०४॥  
 समीतकं ततो गत्वा दधिवक्त्रस्तथाऽकरोत् । ततः सुग्रीववचने भुत्वा तेन समीक्षितम् ॥३०५॥  
 ययुस्ते वानराः सर्वे गमन्त्वा पुरःस्थिताः । ततो दर्शयन्माकृतिः स ब्रह्मपत्रं न्यवेदयत् ॥३०६॥  
 दत्त्वा शूडामणिं रामं काकवृत्तं न्यवेदयत् । लब्ध्वा सकलं वृत्तं ज्ञात्वा माकृतिना कृतम् ॥३०७॥  
 लकायां वायुपुत्रेण गमस्तुष्टो बभूव सः । समालिख्य हनूतं गधवो वाक्यमत्रयात् ॥३०८॥  
 तवोपकारिणमहं न पश्याम्यस्य माकृते । कर्तुं प्रत्यूषकारं ते धन्योऽसि जगन्नाथ ॥३०९॥  
 परिश्रमो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः । अतस्त्वममं भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुत्र ॥३१०॥

यत्पादपयुगलं तुलसीदत्ताद्यैः संपूज्य विष्णु पदार्धमनुत्तमं प्रेषति ।

गित लो ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ अब हनुमान् कमण्डलुमें अजली भर-भरकर बरम्बर अंगूरों वहर निकालने लगे । पर वही जनकी भक्त नहीं हुआ ॥ २९५ ॥ तब फिरसे ऊन्ह कमण्डलुमें भर दिया और मुनिका तमस्कार करके क्षणभरके लिए वे मनमें विचार करने लगे कि आह ! पहिले मेरे जैसे सैकड़ों हनुमान् जाकर सीताकी खबर ले आये हैं तो मेरी कीन-सा गिनती है यह निश्चय करके धीरे-धीरे मार्गमें घबड़घबड़े त्यागकर दक्षिणमार्गमें नहीं अङ्गुठादि बानर बँडे थे, वहाँ गये । उपराली दशमैं बँडे हुए वे सब बानर हनुमानकी देवकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २९६-२९८ ॥ वे सब उम्भ-वारवार हृदयमें लगाने लगे और उनके मुखसे यह मुनकर कि मैं सीताकी प्रणोकवाटिकामें देख आया हूँ ॥ २९९ ॥ तब सबके सब तुलसी रामका और बलपड, रास्तेमें ऊन्ह सुग्रीवका भूर्धिल मधुवन दिखाई दिया । तब सब बानर वालिक पुत्र अङ्गुलसे पूछकर ॥ ३०१ ॥ उस वनके फल खाने लगे । जब उसके रखक दधिमुवन रोका तो वे उसको मान लगे ॥ ३०० ॥ यह जननपर भी कि यह सुग्रीवका मामा है तबपि उस पंडकर ही छोडा तदनन्तर दधिमुवन जाकर सब हाल सुग्रीवको कह सुनाया । यह सुनकर सुग्रीवने समस्त लिखा कि ऊन्होंने जनकहन राका पता पा लिया है नहीं तो वे लगे मधुवनके फल खाकर खाते ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ पश्चात् कपीश्वर मुद्रावने दधिमुवनको ॥ ३०४ ॥ मुद्राकर गेलगा और कहा कि उन्हे रोका मत, यही भेज दो ॥ ३०४ ॥ सुग्रीवकी बात मानकर उमने ॥ ३०५ ॥ लिखा । पश्चात् वे सब बानर दधिमुवन सुग्रीवका आदेश सुनकर ॥ ३०६ ॥ रामके पास गये तथा ॥ ३०७ ॥ उनके उनके समस्त खंड हे गये । तब हनुमान्ने सहर्ष ब्रह्मका दिया हुआ पत्र रामको अर्पण किया ॥ ३०८ ॥ ब्रह्म-दत्त-चरित कीवका वृत्त कह सुनाया । सो मुनकर राम ब्रह्म हनुमानका किया हुआ ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ब्रह्मके पत्रसे राम क्षतिग्रस्त समुष्ट हुए तदनन्तर राम हनुमान् ॥ ३१० ॥ कहे कि कहे वन— ॥ ३१० ॥ हे माहत्तु तुमने मेरा बडा उपकार किया है इस उपकारका प्रत्युपकार करके लिये तुम कृत्र नहीं मूलता । सम्पुन तुम संसारमें घन्य हो ॥ ३१० ॥ इस संसारमें साक्षात् परमात्मिका मेरी परिभ्रम । आलिङ्गन ) दुर्लभ है, वह तुमको प्राप्त हो गया । इस कारण हे हरि-पुत्र 'तुम प्रिय भक्त हो ॥ ३१० ॥ जिन विष्णुके दाता चरणकमलका तुलसापत्र तथा जल आदिसे पूजन

तेनैव किं पुनरमौ परित्यज्यमूर्त्तिं रामेण वायुपुत्रयः कृतपुण्यपुंजः ॥३११॥

रामं स मारुतिः प्राह भानुमीनोऽतिक्रुपितः मयाऽपगाधितमिति सुद्रावृत्तं मुनेर्वचः ॥३१२॥

तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽपि विहस्योवाच मारुतिम् ' मयैव दर्शितं मार्गं कौतुकं मुनिरूपिणा ॥३१३॥

त्वद्दर्शपरिहारार्थं मुद्रिकां मन्करे त्विमाम् । कनिष्ठिकायां त्व पश्य समानीता स्वयाद्य वै ॥३१४॥

ता राममुद्रिकां दृष्ट्वा श्रीरामस्य करागुलौ । ननाम कृतवर्गः स रामं विष्णुममन्यत ॥३१५॥

मन्यन्त्यस्यैव कृपया पौरुषं चेत्यमन्यत । एवं गिरीद्वजे प्रोक्तं चरित्रं सुंदराभिधम् ॥३१६॥

रामार्थं वायुपुत्रेण कृतं सर्वार्थदायकम् ॥३१७॥

इति श्रीमत्तकोटिरामचरितार्तांगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
सुन्दरचरित्रे सीतामुद्रिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

## दशमः सर्गः

( राम-रावणसेनाका संघर्ष )

श्रीशिव उवाच

अथाह मारुति रामो मां वदस्व सविस्तरम् । लंकास्वरूपं ज्ञात्वा च प्रतीकारं करोम्यहम् ॥ १ ॥

तद्रामरचनं श्रुत्वा कथयामास मारुतिः । लंका दिव्यपुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥ २ ॥

सर्गाप्रकाशमहिता स्वर्णाङ्गलकमधुना । परिखामिः परिश्रुता पूर्णभिर्निर्मलोदकैः ॥ ३ ॥

नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीमिश्रश्रुता । गृहैर्वैचित्रशोभाढ्यैर्मणिरत्नभमयैः शुभैः ॥ ४ ॥

पश्चिमद्वारमापाद्य गजवाहाः महस्रजः । उत्तरद्वारि तिष्ठन्ति वाजिवाहाः सपत्नयः ॥ ५ ॥

दशकोटिमिता सना विविधायुधमण्डिता । लंकायाः परिता व्याप्ता सतर्का रक्षते पुरीम् ॥ ६ ॥

कारक मनुष्यमात्रं विष्णुक अनुपम पदको प्राप्त करता है । उन्हीं साक्षात् रामके द्वारा आलङ्कित होकर वायुपुत्र हनुमान् यदि महान् पुण्यशाली बन जायें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ३११ ॥ तदनन्तर उसके शरीर कापते हुए मारुतिने रामसे अपना गर्वरूपी अपराध, मुद्रिकाका वृत्तान्त तथा मुनिका वचन कह सुनाया ॥ ३१२ ॥ यह सुना ता रामचन्द्रने हँसकर कहा कि यह कौतुक मेने ही मार्गमें मुनिरूप धारण करके दिखलाया था ॥ ३१३ ॥ यह काम मैंने तुम्हारे गर्वको छुड़ानेके लिये ही किया था । यह देखो, जिस मुद्रिकाको तुम ले आये थे, यह तो मेरे हाथका कनिष्ठिका अंगुलीमें विद्यमान है ॥ ३१४ ॥ रामके हाथमें रामकी अंगुली देखो ता गवें छोड़कर हनुमान्ने समस्कार किया और उन्हें साक्षात् विष्णु माना ॥ ३१५ ॥ और यह भी माना कि इन्हींको कृपासे पुत्रमें भी पौरुष आ गया है । हे गिरीद्वज ! रामके लिये वायुपुत्रके द्वारा किया हुआ सर्वार्थसाधक सुन्दर चरित्र मैंने तुमको इस प्रकार कह सुनाया ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥ इति सप्तकोटिरामचरितार्तांगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटीकायां सुन्दरचरित्रं सीतामुद्रिर्नाम नवमः सर्गः ॥ १ ॥

शिवजी बोले—हे पार्वती ! रामने मारुतिसे कहा—तुम हमको विस्तारसे लंकाका स्वरूप बताओ । लङ्काका स्वरूप जानकर मैं प्रताकारका उपाय सोचूँगा । १ ॥ रामकी बात सुनकर मारुतिने कहा—हे देव ! त्रिकूट पर्वतके शिखरपर वह लङ्का नामकी दिव्य पुरी बसी हुई है ॥ २ ॥ उसके चारों ओर सोनेका गढ़ है तथा वह सोनेकी अँदरियोंवाले पवनोसे सुगोभित है । निर्मल जलसे परिपूर्ण खाईसे वह नगरी घिरी हुई है ॥ ३ ॥ अनेकानेक उपवनोसे सुन्दर, दिव्य वाक्लिपोंसे आवृत तथा चित्र विचित्र शोभावाले मणियोंके समूहोंवाले सुन्दर महलोंसे सजी हुई है ॥ ४ ॥ उसके पश्चिमी द्वारपर हजारों गजवाहक तथा अभ्यारुह लिपिही लड़े रहते हैं । ५ ॥ दस करोड़ पैदल तथा सशस्त्र सैनिक विविध षट्पात्वासे सुसज्जित होकर लङ्काका

निष्ठुन्यर्धदमंख्याना गताश्चर्यवत्तयः । रक्षयन्ति मदा लका नानाश्रुकुशलाः प्रजा । ७ ॥  
 यत्कर्तव्यं विधेर्लका शतज्जाभिश्च संयुता । एवं स्थितायां देवेश मृगु त्वहामचेष्टितम् ॥ ८ ॥  
 दशाननवर्लाघम्य चतुर्धाशो मया हरः । दम्बा लकापुरीं स्वर्णप्राकारं धरिन्त्य मया । ९ ॥  
 शतान्यः संक्रमाश्चैव नाश्रुता मे रघुदह । देव नरदशेनादेव लका मरुतीभवेनृनः । १० ॥  
 सुवेलादिशोचरेऽस्मि पुरतःकाऽस्ति पश्चिमे । निकुम्भिला दक्षिणेऽस्ति तत्रास्ते योगिनीवटः ॥ ११ ॥  
 पूर्वे च लघुलङ्काऽस्ति सा मध्ये कालिमडिता । भिक्षुशेखरं रम्ये मनुजानलधरिणा । १२ ॥  
 भ्रम्यान् कुरु देवेश गच्छामो लवणार्णवम् । तन्माकनेर्वचः श्रुत्वा सुग्रीवं प्राह राक्षसः ॥ १३ ॥  
 मृग्यावमन्त्रिकान् सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय । इदानीमेव विजयो मृहृतस्त्वद्य वर्तते । १४ ॥  
 आभिनी शुक्लदशमी प्रवर्णार्धममन्त्रिता । शुभाऽद्य वाजरथेषु गच्छामो लवणार्णवम् ॥ १५ ॥  
 रक्षन्तु गृधराः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः । नलो भयम्प्रथमः पृष्ठे नीलोऽथ रक्षतु । १६ ॥  
 मुपेयः मन्वपाशं मे जांयवाग्निरे मम । गजो गवाक्षो गवयो मैदर्वतेऽथ वानराः ॥ १७ ॥  
 रक्षितेभिरवाश्वोश्च चतुर्दिक्षु समन्ततः । रक्षन्तु दानवीं सेनां दिविदावास्तथाऽधरे ॥ १८ ॥  
 सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः हस्तपातिनः । आरुह्य मारुतिं चतुर्गच्छाम्यर्धेऽङ्गदं ततः ॥ १९ ॥  
 आरुह्य लक्ष्मणो यानु सुग्राव स्वं मया मद् । आगच्छस्वेति चाज्ञाप्य हारीन्द्रासः मलयम्पणः ॥ २० ॥  
 प्रतस्थं दक्षिणाश्रयां सेनामध्यगतो विभुः । तदा ते कपयश्रकर्षुःशुःकारान् भयानकान् ॥ २१ ॥  
 वादयामासुवाद्यानि पणयानकणोक्तैः । वाणैर्द्रुनिनाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥ २२ ॥  
 गतास्तदा दिवागत्रं क्वचित्तस्थूर्न ते क्षणम् । अभवच्छकुनः लकां गच्छतो राघवस्य हि ॥ २३ ॥  
 ते सर्वे समनिक्रम्य मलयं च तथा गिरिम् । आयुश्चानुपूर्व्येण ते सर्वे दक्षिणार्णवम् ॥ २४ ॥

आगे मारुत रक्षा कर रहे है ॥ ९ ॥ उनमे विजय सुरसे लकी है और उसके गढ़पर अनेक लोपे भी रखे हुई है । हे देव ! इस दणमे भी आपको इस दामने वहाँ जाकर जा कुछ बिदा, सा गुनगुन ॥ ७ ॥ ८ ॥  
 मैंने कहाँ जाकर गवणकी चौलाई सना मार डाली है । लङ्कापुरीके जलाकर स्वर्णप्राकार गिरा दिया है ॥ ९ ॥ हे रघुदह ! मैंने तब सदा सुरसे ताड डाला है । हे देव ! अब आपके नाममात्रके ही लका पुनः मरम्भ हो जायगी ॥ १० ॥ उसे लकाके उत्तर सुवेलादि है । पश्चिम पालंका है । दक्षिण निकुम्भिला है । जहविर योगीनीवट दिखमान है । ११ ॥ पूर्वकी ओर लघु लंका है, जिसका मध्यभाग बड़ा ही रक्षणीक है । उस निकुम्भके निखरपर वसी हुई लक्ष्मणकी पैंने अपनी पूर्वोक्त आगसे जला दिया है ॥ १२ ॥ हे देवेश ! सब भाग प्रस्थान कर । हम लक्ष्मण सार मनुदकी धार बले । माहलिके वान सुनकर रामने सुग्रावने कह्य ॥ १३ ॥  
 हे सुग्रीव ! समस्त यानिकोको प्रस्थान करनेक लिए जागा द दो । आज इसी समय विजयप्राप्तिका शुभ मूर्त है ॥ १४ ॥ आज भयजनक्षत्रके शुभ आश्विन शुभ दशमीकी शुभ तिथि है । हे वनरथेश ! हमसब आज लङ्कागणवरकी ओर अवश्य प्रस्थान कर दें । १५ ॥ बड़े बड़े ययानि वानर सेनाकी आज गेहे और वगैरह रक्षा कर । आगे मलय तथा पीछे नाल रक्षा कर । १६ ॥ मुपेय मेरा बाई और तथा जाम्बवान् मरी द द्विती बगलमे रहे । गज गवाक्ष, गवय और मैद के सब वानर अग्निकोण, नैऋत्यकोण वायव्यकोण तथा ईशानकोणमे रहकर वानरी सेनाकी चोतरका रक्षा कर । शत्रुओका मारनेक निपुण द्विविद आदि वानर भी सेनाकी सब ओरसे घेरकर चले । मायलिक कन्धपर सवार हाकर भी आगे चल्ता है और मरे पीछे अंगदके कन्धपर सवार होकर लक्ष्मण चले । हे सुग्रीव ! तुम भी मेरे साथ चलो । इसी प्रकार अन्य सब वानरोंकी 'बलो' ऐम' आज देकर लक्ष्मण सहित राम सेनाके बीच होकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये । उस समय वे वानर सपानक भूमिकार करने लग्य ॥ १७-२१ ॥ वे डोव, मृदंग तथा गीके सुन्न सहज बाजे बजाने लगे । कृशकृष्ण धारण करनेवाले तथा श्रेष्ठ हाथिलोक समाप्त कीर सब वानर सगणपर भी विश्वास न करके चल्ने लगे । लंकाके लिए प्रस्थित रामकी मञ्ज-मञ्ज राहुम दोल पड़े ॥ २२ ॥ २३ ॥ वे लक्ष्मणवैद्य तथा



कृतः सेनानिवामश्च राक्षसाभिर्मरुते । चकूर्मन्त्रं सागरस्य तरणार्थं प्लवंगमाः ॥२५॥  
 लङ्कायां वायुपुत्रेण कृतं दृष्ट्वा स रावणः । प्रहृष्टादीर्घदा प्राह कथमग्रे भविष्यति ॥२६॥  
 एकेन कपिनाऽऽमाकं पुरतो ज्वालित्वा पुगी । दष्टा मीना वनं भयं राक्षसा निहता रणे ॥२७॥  
 ममानिलाश्रितः पुत्रः कर्मायाबिहतो रणे । तदा ते मन्त्रिणः सर्वे ददुर्घये दशाननम् ॥२८॥  
 गजन्तुपेक्षितोऽस्माभिर्मरुतोऽवमिति स्फुटम् । वयं तवाश्रया कुर्मा जगन् कृत्स्नवानरम् ॥२९॥  
 कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसंश्रमम् । त्वया योस्य कृतं नैनघ्नद्रवा जानक्ये हता ॥३०॥  
 यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता । सर्वं सम करिष्यामि स्थस्थचित्तो भव प्रभो ॥३१॥  
 देहि देव ममानुहा इन्वा रामं सलक्ष्मणम् । सुग्रीवं चानराधैवागमिष्यामि पुनः शृणु ॥३२॥  
 कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा तदा प्राह विभाषण । महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्यैकतन्परः ॥३३॥

विलोक्य कुम्भश्रवणादिर्दैन्यान्वचप्रमत्ताननिविश्येन ।

विलोक्य कामानुष्मप्रमत्तो दशाननं प्राह विशुद्धवृद्धिः ॥३४॥

न कुम्भकर्णेन्द्राजतो च राजस्त्वया महापार्श्वमहोदरो ती ।

निकुम्भकुम्भो च तयाऽतिक्रियः स्यात्तुं न शक्ता युधि राधयाग्रे ॥३५॥

सीतां च सत्कृत्य महाधनन दत्त्वाऽभिरामाय सुखा भव त्वम् ।

नोचेन्न रामेण विमोक्षसे त्वं शुभः सुरेन्द्ररपि शंकरेण ॥३६॥

अथ शुभं रावणः स विभाषणवचो हितम् । आत्मनः प्रतिजग्राह नैत्रार्थो मील्यकाग्रम् ॥३७॥  
 कान्तेन नोदितो दैन्यो विभाषणमथाप्रसीद् । श्वधुरूपेण शत्रुस्त्वं जातो नास्त्यत्र संशयः ॥३८॥  
 योज्यस्त्वैवविधम्यादृत्य दन्नि तदेव तम् । उचिष्ट मच्छ दुरुद्धे धिक् त्वां रक्षःकुलाश्रम ॥३९॥  
 रावणेनैवमुक्तः स श्रुत्वा विभाषणः । चतुर्भिर्मन्त्रिभिर्युक्तां ययौ शिराधवातिकम् ॥४०॥

अन्वचन होने हुए प्रमत्त दक्षिण समुद्रपर जा पहुँच ॥ २४ ॥ रामन उस वानरी सेनाको समुद्रक किनारे  
 वापस लहरा दिया और सब वानर मिलकर समुद्रक पार करनेकी समस्यापर विचार करने लगे ॥ २५ ॥ उधर  
 लङ्कावा वायुपुत्र हनुमान्च कुम्भको रत्नकर रावणन प्रहृष्टादि मन्त्रियोंको बुलाकर पूछा कि अब आगे क्या  
 होगा ॥ २६ ॥ एक हा वानरने हमारी सम्पूर्ण लंका तगरा जल्य दी । उमने सीताको देख लिया, वनकी उबाड़ा  
 और राजाको मार डाला । २७ ॥ मेरा अनिश्चय प्रिय छोट पुत्रको भी रणमें उमने समाप्त कर दिया ।  
 मैं सब मन्त्रों दशाननको घेर लिया हूँ कहन लगे ॥ २८ ॥ हे राजन् ! यह तो हम लोगोंने वानर समझ-  
 का मरका उल्टा कर दी थी । अब यदि आप आज्ञा दें तो हम समस्त सेनारको वानररूप्य कर दें ॥ २९ ॥  
 तब कुम्भकर्ण राक्षसेन्द्र रावणसे कहा—आपने यह उचित नहीं किया, जो जाकर जानकीको उल्टा लाये ॥ ३० ॥  
 उचित आपने अज्ञानम यह अदुचित काम किया है । क्योंकि मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा । हे प्रभो !  
 मैं मन्त्रिन्त रहे ॥ ३१ ॥ आप मुझका आज्ञा दें तो लक्ष्मणसहित राम, सुग्रीव और सब वानरोंको मारकर  
 मैं भयम लौट आऊँ ॥ ३२ ॥ कुम्भकर्णकी बात सुनकर भगवद्भक्तोंमें धैर्य तथा भयान् रामकी भक्तिमें लौकीन  
 उमने प्रमत्त कुम्भकर्ण और दैत्यको और दृष्टि डालते हुए कामानुज दशाननसे विचारपूर्वक कहा—

३३ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! कुम्भकर्ण, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिक्रिय भी युद्धमें  
 मैं जीतने नहीं डर सकूँ ॥ ३५ ॥ इसलिए आप रामका दबुर धनसे स्तब्ध कर और उन्हें सीता  
 सम्पन्न करके सुखसे रहे । नहीं तो सुरेन्द्र तथा शंकरका शरणमें जानेपर भी आपकी ये अवधि नहीं छोड़ने  
 ३६ ॥ इस प्रकार शुभ तथा हितभर विभाषणक वचनको भी रावणने अपने प्रतिकूल ही समझा ॥ ३७ ॥  
 कान्ते प्रेरित देव रावणने विभाषणसे कहा—नितन्देह तू श्वधुरूपमें मेरा शत्रु है ॥ ३८ ॥ यदि और कोई  
 कुम्भ ऐसा कहता तो मैं उसका ज्यों समय मार डालता । जो दुरुद्ध ! मेरे राक्षसाश्रम । तुझे धिक्कार

रावणश्चापि तं ज्ञात्वा तेन मार्गं चकार सः । इन्मतोद्धेस्तारे लंकां च सिद्धतोभवात् ॥४६॥  
 कारयित्वा तृणं पुस्तकं मित्रं विभाषणम् । लंकायाश्च राज्यायं वानरैरभ्यषेचयत् ॥४७॥  
 तदा विभीषण आह रामचन्द्रो विदस्य च । न्यासभूता त्विदं लंका तावन्कालं तवास्ति मे ॥४८॥  
 राज्ञा रावणे इन्वा तव दास्याम्यहं शुभम् । इन्मतास्त्वय नाम्ना लङ्कां ख्यातिं गमिष्यति ॥४९॥  
 इन्मल्लङ्काद्धेस्तारे वर्ततेऽद्याप पावात । विभीषणाद्रावणान्ते रामस्तां मोषयिष्यति ॥५०॥  
 एतद्विचारे तत्र गगनस्थः शुकोऽब्रवीत् । प्रेषिता रावणनेत्रं मुग्धां प्राह वेगतः ॥५१॥  
 न्दमाह रावणो राजा तव नास्त्यर्थोऽप्यलभः । अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव ॥५२॥  
 किञ्चिन्नां याद्वे हरिभिस्त्वं वैरं कुरु मामया । तं धृत्वा वानराः शीघ्रं वचन्धुर्लोकधनेः ॥५३॥  
 शार्दूलश्चापि सेनां तां दृष्ट्वा धर्मभाषत । तच्छ्रुत्वा रावणश्चापि दीर्घचिन्तापरोऽभवत् ॥५४॥  
 गमः समग्रयत्नाय वृद्धकान्ते स्थितः क्षणम् । विभाषणेन सुग्रीवमकृतिभ्यां समान्वितः ॥५५॥  
 तीक्ष्णार्थं जलधेर्गुण्यं सस्थितो वन्धुना पुनः । सर्वतां वचनं भ्रातु रावणाय सागरः ॥५६॥  
 मेघवद्भजनां कुर्वन् कामहस्तेन धिक्कृतः । अद्यापि सागरस्तत्र तूष्ण्यामेव न विद्यते ॥५७॥  
 उतः संमज्ज्य रामस्तु तदा सागररोधसि । प्रायोपवेशने चक्रं दर्शनास्तीर्य वेगतः ॥५८॥  
 दिनद्वयमतिक्रम्य तृतीयदिवसे तदा । उत्थाय दमोदयनान्पुनरलक्ष्मणमवात् ॥५९॥  
 पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधमांस्तु पागतम् । नार्मिनन्दति दुष्टात्मा दयनार्थं यमानय ॥६०॥  
 जानाति मानुषोऽयं मां किं करिष्यत् वानरैः । अथ पश्य महाबाहा शोषयिष्यामि वारिधिम् ॥६१॥  
 पञ्चषांषेवायं गच्छतु वानरा विगतजराः । त्वय्युक्ता चारमाकृत्य सदधे वीणमुत्तमम् ॥६२॥

है । उठ, यहाँसँ निकल जा ॥ ३६ ॥ रावणक इस प्रकार धिक्कारनेपर विभाषण अपने चार मन्त्रियोंको साथ  
 लेकर आरामक समाधि चला गया ॥ ४० ॥ रामन पारधय पृथ्वर उभके साथ मित्रता कर ली । तदनन्तर  
 रामने हनुमान्के समुद्रके किनारे रताकी लंका बनवाकर उसमें अपने मित्र विभाषणका लंकाराज्यके राजाके  
 पदपर वानरो द्वारा अभिषेक करवा दिया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब रामने हुम्कर विभीषणसे कहा—मित्र ! यह  
 लंका तुम्हारे पास स्वतन्त्र पराङ्मुखमें रहनी ॥ ४३ ॥ जबतक मैं रावणका भारकर तुम्हें लंका न दे  
 दूँ, यह लंका हनुमान्के नामसे प्राप्त हुई ॥ ४४ ॥ हे पावता ! वह हनुमान्का लंका अभी भी समुद्रके  
 किनारे विद्यमान है । रावणका अन्त हो जानपर राम उस विभाषणसे दुड़ा लगा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर आकाश-  
 में स्थित कुछ बाला—हं मुग्धा । मुल बड़ा र्ण्यवत् स रावणन तुम्हारे पास भजा है ॥ ४६ ॥ रावण रावणने  
 कहा है कि हमने तुम्हारा कोई हानि नहीं की है । यदि मैं राजपुत्र रामका स्वाका हरण कर लाया तो इससे  
 तुम्हारा क्या हानि हुई ॥ ४७ ॥ उन्होंने कहा है कि नून हमार साथ वन्धुता न काक वेदाकी लेकर  
 भाषक्या लोट जाओ । इतना कहना था कि वानरोने उस राक्षसका पकड़कर लट्का देज गेमे जकड़  
 दिया ॥ ४८ ॥ उसके साथ गुणरूपसे आया हुआ दूसरा शार्दूल नामका राक्षस उस विचाल सत्ताके देखकर  
 रावणक पास गया और वानरी सेनाका पराक्रम कह सुनाया । सो सुनकर रावण रडो भरी चिन्ता  
 में पड़ गया ॥ ४९ ॥ इधर रामचन्द्रजी भी एकात्मन जाकर विभाषण, सुग्रीव तथा हनुमान्के साथ मंत्रणा करने  
 लगे ॥ ५० ॥ तदनन्तर वे समुद्रके जलमें कुछ दूर जाकर सबका बात मुनिके लिये सङ्ग हो गयी । बादमें रामने  
 मेघकी तरह गर्जन करके बल हाथसे सागरका धिक्कारा और कहा कि तू अभी तक चुप हो है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥  
 मंत्रणा पूरा करके राम सागरके किनारेपर आगम और कुशा बिठाकर वनमान करने लगा ॥ ५३ ॥ दो  
 दिन बिताकर तीसरे दिन कुणसनसे उठ लड़े हुए और मध्मगह कहा— ॥ ५४ ॥ हे अन्ध लक्ष्मण ! देखा,  
 यह दुष्टात्मा वारिधि मुझ यही आया जानकर भी मुझसे मिलने या मेरा दर्शन करने नहीं आया ॥ ५५ ॥  
 यह समझता है कि यह मनुष्यमात्र है । यह पराङ्मुख कर लेगा और मैं वानर भी क्या कर लूँगे । हु महा-  
 बाहा ! देखा, मैं आज इसका साक्ष लूँगा ॥ ५६ ॥ तब तानर बिना किसी कठिनाईके पीवसे चल्कर उस पार

तदा चञ्चल वसुधा दिग्ध्व सममृताः । चुल्लुभे मागरो वेदां भवाद्योत्तममन्यसा ॥५८॥  
 निमिषकङ्कणा भीताः प्रवसाः पवित्रमु । एतस्मिन्चतरे साक्षान्मागरो दिग्ध्वरूपधृक् ॥५९॥  
 शनैरुपायन रामं समर्प्य प्रणनाम सः । अथ तुष्टाव दीनान्मा प्रार्थयामास राघवम् ॥६०॥  
 यमय देहि मे राम संकामार्गं ददामि ते । इति नदन्तं श्रुत्वा राघवः प्राह सागरम् ॥६१॥  
 असौप्रोऽय महाबाणः कस्मिन्देहे निपात्यनाम् । लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यास्य पयोनिधे ॥६२॥

सागर उवाच

गमोक्तप्रदेशोऽस्ति द्रुमकल्प इति श्रुतः । प्रदेशस्तत्र बहवः पापान्मानो दिवानिहम् ॥६३॥  
 श्रावन्ते सां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पान्यता शरः । गमेग मृक्तो घाणोऽसौ क्षणादार्थमंडलम् ॥६४॥  
 हत्वा पुनः समागत्य तूष्णीरे पूर्ववन्निधतः । ततोऽबर्षाद्रघुश्रेष्ठ सागरो विनयान्वितः ॥६५॥  
 मयि सेतुं कारयस्व नलेनोपलनिर्मितम् । विश्वकर्मासुतश्चायं वरं लब्धोऽस्त्यनेन हि ॥६६॥  
 द्विजस्य जाह्नवीतोये शालिग्रामस्यनेन हि । त्यक्तस्तदा तेन सप्तः पपाणादि तर्पित्यनि ॥६७॥  
 नन्दमादिति शापोऽयं वा पश्या स स्मृतः । हन्युक्त्वा राघव नन्वा ययौ मिधुर्दृश्यताम् ॥६८॥  
 नन्दमाज्ञापयामास सेनार्थं रघुनन्दनः सेतुमयममाणस्तु विनेन श्वाप्य राघवः ॥६९॥  
 नवग्रहाणां पूजार्थं पापणाशत्रु वादरम् । नन्दस्तेन मर्याप्य पूतं तत्र भद्रोदधी ॥७०॥  
 ततः सागरसंपोगे स्वनान्मा लिङ्गमुत्तमम् । स्थापयार्थाति निश्चिन्त्य मारुतिं वाचयमन्वीत् ॥७१॥  
 काशीं भन्वा शिरालिङ्गमाननीयमनुत्तमम् । मुहूर्तस्ये नौचेन्मे मुहूर्तात्तक्रमो भवेत् ॥७२॥  
 नद्रामवचनं श्रुत्वा तथेन्युक्त्वा स मारुतिः । यथावाक्यमाशेषं क्षणाद्वागमर्षी मम ॥७३॥

मा सकल । इतना कहकर रामने वसुधपर बाण चढ़ाकर टीरा सीची ॥ ५७ ॥ उस समय पृथ्वी न पि लकी, सब दिशाओंमें अँधेरा छा गया, समुद्र भयसे झुच्य हाँकर अपने किनारेसे चार कोस भागे बढ़ गया ॥ ५८ ॥ खीन, तिमि तथा क्षय नामकी मछलिये और मगरमच्छ आदि जलजंतु स तप्त तथा व्याकुल हो गये । तब समुद्र दिव्य रूप धारण करके प्रकटा और रामको रत्नकी भेंट द तथा नमस्कार करते दौतभावसे प्रार्थना करने कहने लग्य- ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे राम ! कृपा करके आप मुझ अवशमानसे । मैं जानकी लज्जा जानका गमता अभी देना है । तमके वचनका सुनकर रामने कहा- ॥ ६१ ॥ हे पयोनिधे ' यह मेरा महाबाण ममोम है, छपे नहीं जा सकता । बलगाओं इसे कहाँपर मिराऊँ । इस बाणका कोई लक्ष्य बताओ ॥ ६२ ॥ सागरने कहा हे राम ! उसर दिशामें द्रुमकल्प नामका देव है । वही बहुतर पापी बाधकर रहत है । वे द्रुमको रात-दिन सताते हैं । हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस बाणको वही ही गिरादिए । तबतुम्हारे रामने बाण उड़ा तो उसने जाकर क्षणभरम समस्त आभारमण्डलको मार डाला और पुनः वापस लौटकर रामके तरकसमें जड़वन् स्थित हो गया । बादमें सागरने विनयपूर्वक रघुश्रेष्ठ रामजसे कहा- ॥ ६३ - ६५ ॥ हे राघव ! आप मेरे हृदय नरके द्वारा पत्थरोंका पुस घँघवाएँ । नल विश्वकर्माका पुत्र है । उसने जलपर पत्थर तरानेका वर प्राप्त किया है ॥ ६६ ॥ एक बार इनने एक काष्ठणका धूँध शालिग्रह उत्खनन गङ्गाजीके प्रसंगे फेंक दिया था । तब इनने आप दिया कि जो, तेरा राजा कथर की बानीसे लेंगा । ६७ ॥ यह बाण भी वर मन्ता जायगा । तबने कहा तथा रामको नमस्कार करके समुद्र अदृश्य हो गया ॥ ६८ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने नलको एक शीघ्रन्की आज्ञा दी । सेतु बाँधने समय पहिले गणेशजीकी स्थापना की गयी ॥ ६९ ॥ पश्चात् नवग्रहाकी पूजाके लिए नलके हाथसे सागर नी पाषाणोंको समुद्रमें स्थापना करवाई गयी ॥ ७० ॥ इसके बाद 'अपने नाम- ७१ ॥ से सागरके सङ्गमपर उसमें शिवलिंग स्थापित करेगा' ऐसा निश्चय करके रामने आदित्यसे कहा- ॥ ७२ ॥ हे नन्दमान् ! तुम काशी जाकर शिवजीसे एक उत्तम जिन मुहूर्तमाघमें माँग ले जाओ । नहीं तो मेरा यह दुष्ट मुझ तक जायगा ॥ ७३ ॥ रामकी आज्ञा सुनकर हनुमान्ने 'स्वास्त्यु' कहा और क्षणभरमें उड़कर

तत्रागत्याय मां नत्वा रामकार्यं न्यवेदयन् । तच्छ्रुत्वाऽथ मया देवि राघवाय हनूमते ॥७४॥  
 द्वे लिप्ते द्यपिते श्रेष्ठे तनोऽहं कपिमब्रुवम् । मयाऽपि दक्षिणे गंतुं पूर्वमेव विनिश्चितम् ॥७५॥  
 अगस्मिन्ना विदोषेण यास्यामि राघवाश्रया । एवं तद्वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह मां पुनः ॥७६॥  
 कदा विनिश्चितं पूर्वं त्वयाऽत्र कुम्भजन्मना । तत्पुनर् मां वदस्वाद्य कृपां कृत्वा ममोपरि ॥७७॥  
 तन्मारुतिवचः श्रुत्वा तनोऽहमब्रुवं कपिम् । मारुते त्वं मृणुष्वद्य पूर्ववृत्तं वदामि ते ॥७८॥  
 कदाचिन्मार्गः श्रामान्स्नान्वा श्रानमर्दोभवि । श्रानमर्दोक्तमगम्यर्थं सर्वदेहिनाम् ॥७९॥  
 तत्रन्विलोकयाचक्रे पुरो विध्वं धराधरम् । ममास्तापसहारी रेखावाग्विपरिष्कृतम् ॥८०॥  
 रूपद्वयेन कुर्वन् स्थावरेण धरेण च । माभिरुपेन यथार्थाख्यामुर्चयितुमतीनिमाम् ॥८१॥  
 अथ त्वं नारदं दृष्ट्वा विनश्यत् प्रपुञ्जगाम सः । गृहमानीष विधिवन्पूजयामास सादरम् ॥८२॥  
 गन्धममथालोक्य नभापेज्जनतो गिरिः । अधमघः परिहृतस्त्वदधिपजमा मम ॥८३॥  
 त्वदशमशिमहसा महमाध्यातरं तमः । मङ्गलाधिकरं चाद्य सुदिनं चाद्य मे मुने ॥८४॥  
 प्राकृर्नः सुवृत्तरद्य फलितं मे विगर्धितः । धराधरत्वं कुलिशु मान्यं मेऽद्य भविष्यति ॥८५॥  
 इति श्रुत्वा तदा किञ्चिदुच्छ्रुत्य स्थितरान्मनिः । पुनरुच्ये कुलिनरः सश्रमापन्नमानसः ॥८६॥  
 उच्छ्रामकवर्णं बद्धन् बहिः सर्वाथकोविदः । नवार्हं मार्जयाभ्यद्य हन्येदं क्षणमाश्रितः ॥८७॥  
 धराधरणागामर्थं मेवादी पूर्वपुरुषः । वप्यते समुदायानदहमेको दधे धराम् ॥८८॥  
 गौरीगुरुत्वाद्विमयानाधिपस्यास्य भृशताम् । सम्यन्धिन्वापशुभनेः स एको मानभृत्सताम् ॥८९॥  
 न मेरुः स्वर्णपूर्णव्याघ्रन्नमानुनयाऽधवा । सुगन्धनया वाऽपि कपि मान्यो यतो मम ॥९०॥

आनन्दाश्रमांसे ( शिवकी ) नाराणसा ( काशी ) नगरीमें आया ॥ ७३ ॥ वहाँ आकर उन्होंने मुझको  
 नमस्कार करके रामके कापके लिये निवेदन किया । हे देवि ! उस निवेदनका सुनकर मैंने रामके लिए  
 हनुमान्को दो उत्तम लिपि दिये और कहा कि हे कपि ! मैंने भी दक्षिण दिशामें जानका बहुत दिनामें निश्चय  
 कर रखी है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ यह निश्चय अगस्त्य मुनिक समझ हुआ था । पर बादमें सोचा कि जब विष्णु-  
 रूपसे रामको आज्ञा होगी तभी जाऊँगा । मेरे मुखमें यह सुनकर मारुतिने मुझमें फिर प्रश्न किया— ॥ ७६ ॥  
 आपने पहिले कब और कहाँपर कुम्भजन्म ( अगस्त्य ) क साथ यह निश्चय किया था । यह सब हाल कृपा  
 करके कह ॥ ७७ ॥ मारुतिकी बात सुनकर मैंने कहा हे मन्त्र । मैं तुम्हको पूर्ववृत्तान्त बताता हूँ, सुनो  
 ॥ ७८ ॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि नेर्मदा नदीके पवित्र जलमें स्नान करके समस्त देवुधारी प्राणियोंको  
 सब कुछ देनेवाले श्रीवाराहेश्वर शिवकी पूजा करके जा रहे थे । रास्तेमें संसार भयके तापको दूर करने-  
 वाला तथा रेखाके जलमें परिणत विध्वपर्वत सामने दिखाई दिया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ वह स्थावर तथा जंगम  
 इन दो रूपांसे इस वभूमती पृथ्वीको यथार्थ ताम प्रदान कर रहा था । ८१ ॥ नारदका देखकर वह पर्वत  
 शायने आया तथा उन्हे अपने घनपर ले जाकर सादर विविध पूजन किया ॥ ८२ ॥ नारदजीका थम दूर  
 हो जानेपर विष्णुचक्र विभ्र होकर कहने लगा कि आपके चरणरजसे मेरा पापपुञ्ज नष्ट हो गया ॥ ८३ ॥  
 हे महापुने ! आपके दैहिक तनके संगसे अनेक मनोव्यथा पैदा करनेवाला मेरे हृदयका अन्धकार दूर हो  
 गया । आज मेरे लिए बड़ा शुभ दिन है ॥ ८४ ॥ चिरकालसे अजाजित मेरे प्राकृत गुण आज सफल हो  
 गये । आजसे मैं पर्वतोंमें माननीय पर्वत माना जाऊँगा । ८५ ॥ यह सुनकर मुनिने कुछ लम्बो साँस ली ।  
 यह देखा तो घबराकर पर्वतने कहा हे सब अर्थोंको जाननेवाले ब्रह्मन् ! इस अद्भुतसका क्या कारण है ?  
 आपने हृदयका संद मैं अणभरमें मार्जित कर दूँगा ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ पूर्व पुरुषोंने यह आदि सब पर्वतोंको  
 मिलाकर पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ बतलाया है, पर मैं अकेला ही उसको धारण कर सकता हूँ ॥ ८८ ॥  
 अभी गौरीका पिता होनेसे पर्वतोंका अविर्पति होनेसे तथा पशुपति शिवका मध्यवर्ती होनेके कारण केवल  
 हिमाश्व ही सज्जनोके मानका पात्र है ॥ ८९ ॥ मेरी समझमें तो सोनेसे बना हुआ तथा रत्नमय शिखरोंवाला

परं शतं न किं शैला इलकलनकैलयः । इह संति मनां मान्या मान्यास्ते तु स्वभूमिषु ॥९१॥  
 महेददेहमंदोहा उदरैकयाश्रिताः निषधश्रीषधिधोऽश्वत्थोऽप्यम्लमिषप्रभः ॥९२॥  
 नीलश्च नीलानिलयो वंद्यो मदलोचनः । सर्पाक्षयः स मलयो गगनं नद्याप रंजनः ॥९३॥  
 हेमकूटविहङ्गायाः कूटोत्पदास्तु ते । किञ्चिदर्थोऽप्ययाशा भारमद्या न ते सुखः ॥९४॥  
 इति विषयवचः श्रुत्वा नागदो दयचिन्तयत् अहंशंशंशंमगो न महत्पापं कुरुते ॥९५॥  
 श्रीशैलपुरुषाः किं शैला नेह सन्यपलश्रियः येषां शिखरमात्रादित्येन मुक्तये मनाम् ॥९६॥  
 प्रयास्य बलमालोच्यमिति ध्यान्वाऽम्रवांशमुनिः सन्धयुक्तं हि मयता गिरिवारं विदुष्वता ॥९७॥  
 परः शैलेषु शैलेन्द्रो मेरुस्त्वामवमन्यते । मया निश्चायितं चैवत्रयं चापि निवदितम् ॥९८॥  
 मयवा मदिधानां हि कैव चिन्ता महान्मनाम् । प्वयस्वन्तु तुभ्यमित्युक्त्या यया स ध्योमवन्मना ९९॥  
 गतं मुनीं निनिदं स्वमताशोद्विषमानयः । चित्ते विचारयासाम मगं ध्येय्य कथं विनि ॥१००॥  
 मेरु प्रदक्षिणं कूर्पाभिरधमेव दिशकरः । सप्रहसंगमो नूनं मन्दमानो बलाधिकम् ॥१०१॥  
 इतः निश्चिन्य विद्याद्विर्वृधे य मृधेक्षणः । निरुध्य त्राध्वमध्वान स्वमोऽभूद्भगनागणे ॥१०२॥  
 ततः प्रयाते सूर्योऽर्जो दिशि वास्यां समुद्यतः । गंतुं रुद्धं स्वपथानं दृष्ट्वाऽभ्यस्योऽभयविरह ॥१०३॥  
 योजनानां महसं द्वे द्वे शते द्वे च योजने । यः स्वस्थनिमेषार्द्धाद्यानि नापि सिं स्थितः ॥१०४॥  
 गते बहुतिथे काले प्राप्नोर्दाच्या भुजार्द्रताः । चण्डरभ्यः कुर्यान्शनमत्तापनाप्तिः ॥१०५॥  
 पाश्चात्या दक्षिणान्याश्च निद्राप्लुहितलोचनाः । धमिता एव दृश्यते मत्तग्रहमवशम् ॥१०६॥  
 स्वाहास्वधावष्टु सरवर्जिते जपनीतने । पंचयज्ञक्रियालोपाचक्रभ्य भुवनत्रयम् ॥१०७॥

क्या दयताआका निवासस्थान हालपर भी परु विनय माननीय नहीं है ॥ ९० ॥ क्या पृथ्वीका धारण करने-  
 का मन्त्र संकरो पवन इस मन्त्रप्रवृत्ति है ? क्या वे सभी पवते सज्जनस मान्य है ? नहीं, यदि है तो  
 स्वयं अपने-अपने स्थानपर ॥ ९१ ॥ उदयाचल मन्द है । वह राक्षस का आश्रय देनेका कृपा करनेवा ही समझ  
 ते विगर्भतिर ओषधिमात्र धारण करता है । अन्धानल निम्न हो गया है ॥ ९२ ॥ नीलाग्निर नाम  
 चण्डिका सज्जनमान है । मन्दराचल मन्दहृदि है । मलय पर्वत सूर्योका घर है । रंजित निर्धन है ॥ ९३ ॥ हेमकूट  
 का विकूट आदि केवल कूट उत्पदावाले ही है । किञ्चिदा, कोश ओ सत्य पर्वत भी पृथ्वीके बलको  
 धारण करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ९४ ॥ विन्ध्याचलकी इस बातको सुनकर नारादन मनमें विचार किया कि  
 विन्ध्या चलो महत्त्वके योग्य नहीं होता ॥ ९५ ॥ क्या इस मन्त्रम श्रीलोक आदि पर्वत निमेष कान्ति-  
 मन्त्रम तथा मन्त्रकी वही है ? किन्तु विचारका दण्डमात्रसे शुद्ध अन्त करणवाले महान् पुरुषोंको मुक्ति मिल  
 सके है ॥ ९६ ॥ अतएव आज इसके बलको परीक्षा करनी चाहिए । ऐसा विचार करके नारद मुनिने कहा —  
 कूट पर्वतोंका हल डंक उठाने किया है ॥ ९७ ॥ पर पर्वतोंमें अत्र मेरुपर्वत तुम्हारा अपमान करता है । वह  
 मुझे भी अपनको बटकर मानता है । बस, गद्दी कारण है कि मैं सत्त्वा जात स्थित्या और यह वाद  
 मुझ में बह रही ॥ ९८ ॥ अथवा हम जैसे महात्माओंको इस बातकी क्या विता है । तुम्हारा कल्याण  
 ही इतना बड़बर के ध्योपमार्गसे चले गए ॥ ९९ ॥ नारद मुनिने चले जानपर बलिशय चिन्ताबुल होकर  
 विन्ध्याचलने अपने कापका बड़ा निन्दा की और साचने लगा कि मेरी इतनी बड़ा महिमा क्यों है ? ॥ १०० ॥  
 इस बात मन्त्रों सहित मुरनागण प्रतिदिन उसकी परीक्षा करते हैं । सम्भवतः इसीसे उसको अपने  
 कान्तिदय तथा महत्त्वका अभिमान है ॥ १०१ ॥ ऐसा निश्चय करके विन्ध्याचलने उसकी समृद्धि देखने-  
 के लिये अपना करीब बहुत ऊँचका चढ़ाया और शून्य रास्तेका राहकर आकाशकी वागमं तथा हो गया  
 ॥ १०२ ॥ प्रातःकाल सुनिं दक्षिण दिशकी ओर जानेका प्रस्थान किया । वह चम्पा रुका देखकर वे वही  
 आदर । जब बहुत दिन बीत गये, तब सुनिं प्रचण्ड किरणमयके छाये पूर्व तथा उत्तर दिशाके लोच  
 चले ॥ १०१-१०२ ॥ पश्चिम तथा दक्षिण दिशाके लोचोंकी आँखें निद्रासे दूदी रही । वे जब

मयः सुग विधेर्जङ्गपादगमि तद्विनेर्गुहम् । प्रार्थयाम'मुधात्रैस्य स मुनिर्विहृतोऽभवत् ॥१०८॥  
 तदाऽगमिर्मयोक्तः स वज्रं त्वं दक्षिणदिशम् प्राक्पाशेन गिरिं बद्ध्वा मां सिद्धं त्वं मयस्त्वमाप् ॥१०९॥  
 अहमप्यचिरेणैव तव मेदास्तुतये सेनो श्रीगणपतये याच्यानि दक्षिणां दिशम् ॥११०॥  
 इति मद्रचनं श्रुत्वाऽगमिस्तुष्टमनान्तदा । मुक्त्वा कार्णी ययौ विष्य लोपायुद्रामपन्वितः ॥१११॥  
 तमगम्य सपन्नाय दृष्ट्वा विष्णोऽतिक्रियतः । अतिस्वर्गतो भूत्वा विनिमुग्धनीमित्र ॥११२॥  
 आश्वासमादः क्रियतां किं करोमोति च प्रदीप्त तद्विन्ध्यवचनं श्रुत्वाऽगमिः प्राह च मादरम् ॥११३॥  
 चिन्ध्य साधुगमि पादो मां च जानामि तत्पुत्रः । पुनरागमनं चेन्मे तावन्स्वर्गतो भव ॥११४॥  
 इत्युक्त्वा दक्षिणामाशमगमि स ययौ तदा । वेपमानो गिरिः प्राह पुनर्जन्माद्य मेऽभवत् ॥११५॥  
 उच्छित्तो द्वाद्वाद्विंशः स मुनि पश्यति दक्षिणे । नागमं तं मुनि दृष्ट्वा पुनः स्वर्गोऽवतिष्ठते ॥११६॥  
 प्रथमो वा वायव्यो वा द्वागमिष्यति वै मुनिः । इति चिन्त्यमहामात्रोर्मिगिराक्रीडनन्विधनः ॥११७॥  
 नासापि मुनिगणानि नाद्यपि गिरिरस्थते । अरुणेऽपि च तन्काले कालताऽश्वात्कालयत् ॥११८॥  
 जगन्मार्गपदवापोर्नृ- एवं बह्वानुमचरैः । स मुनिर्दण्डकं गत्वा मद्रकं मय्यन्ददि ॥११९॥  
 करोति मन्त्रनीक्षां च तस्माद्यस्याम्यहं कपे । इत्युक्तो मातुलिः कट्यां मया देवि विमर्जितः ॥१२०॥  
 जगायाकाशमार्गेण शोभं गतं स मातुलिः । किञ्चिद्वर्ममवाप्तिष्ठो विषद्वयमपन्वितः ॥१२१॥  
 दृष्ट्वा गयवो ब्रान्वा मुग्धीवारीन् उच्येऽप्रसीत् । इहान्तिक्रयो मेऽद्य मरिष्यति मयम्वहम् ॥१२२॥  
 कुन्वा तिमं मेकतं च सेनादौ स्थापयामि वै । इत्युक्त्वा वानगान् मर्शन्मुनिभिः पग्निष्ठितः ॥१२३॥

श्री देवता सा अन्ताद्वय एह और मलय ही विद्यमान निम्न ही देव है । १०८ ॥ मत्तारम मद्राहा मयपाका-  
 दवत्वार, अग्निहोत्र तथा पंचमशकी क्रियाओंके लिए हो जानम होनाः एक हीय उर ॥ १०९ ॥ अहम्  
 कदाभीके कहनेसे देवता अग्नि जाकर विन्ध्य पर्वतके गुरु आश्रय मुनिसे प्रार्थना की । तब मुनि पश्चात्तर यहाँ  
 काजाय आवे ॥ १०८ ॥ मैंने (गिरिजाने) आश्रय मुनिसे कहा कि तुम दक्षिण दिशाकी ओर जाओ, वहाँ जाकर  
 विन्ध्यपर्वतको अपने बायाँपक्ष कीधर निम्नलिख पावस मया भजन करना ॥ १०९ ॥ कदाचित्तरमे ही को  
 मुहूर्तमे देव देव करनेके लिए मेतुक्वयपर रामको पूजा प्राप्त करनेके लिए मैं प्र ही दक्षिण प्रवेक्षमे जाऊँगा  
 ॥ ११० ॥ मेरे इस कदनका मुनकर अमन्त्रमुनि प्रमत्तपूर्वक उमा समय वाकी छोटकर अपना ही  
 मोपायुद्राके हाथ विन्ध्यपर्वतको और चल पड़ ॥ १११ ॥ स्वयंसे मुनिका दक्षक विन्ध्यपर्वत कपेन  
 लता और मया पृथ्वीमे पुन जाना चाहता ही, इस प्रकार अन्धविद्या छोट कर पावस वरक जाना कि  
 मैं आपका राम है । मुझे कुछ आशा दनका वृत्ति कर । विन्ध्यका वात मुनकर अमन्त्र मुनि बोले— ॥ ११२ ॥  
 ॥ ११३ ॥ हे विन्ध्य तुम मानु पर्वत तथा बर्द्धमन् ह और मुझे अभी भगत जानने ही । अतः जवनक मैं  
 उपमस होत्वर पुन यहाँ न आऊँ, तब तक तुम इस प्रकार वाधनमम मोधा सिर पिउ कर रहा ॥ ११४ ॥ इतना  
 कहकर अगस्त्य दक्षिणकी ओर चले गए । तब कल्पित होकर विन्ध्यमे कहा कि आजक दिन मया पुनजन्म  
 हुआ है ॥ ११५ ॥ बायू बधं बाद जब जाते सिर उठकर दक्षिणकी ओर देखा तो मुनि नहीं दिखायी दिये ।  
 तब फिर तपमे बीसे ही मोधा सिर कर लिया ॥ ११६ ॥ आज, कन या परसोतर मुनिको यहाँ अवश्य  
 मा जाना चाहिये । इस प्रकार तावता हुआ विन्ध्य इही चिन्ता करने मया ॥ ११७ ॥ पर न दे मुनि आज  
 तक जाये और न वर्तत मया वृत्ति । कायकी गतिवा जाननवाय मूक सारकी अमन्त्र मा उसी  
 समय करने चाहेंका हीक लिया ॥ ११८ ॥ तब मुनिके मयासे उदय पूर्ववत् पुन स्वयं हुआ । ने अगस्त्य  
 मुनि दण्डकवनमे जाकर मेरे कवनका स्मरण करने हुए मेरा प्रतीता कर रहा है, इस कारण है अपि हुआ ।  
 मैं यहाँ अत्यन्त जाहेंका । हे दाव । इतना कहकर मैंने वादन्तिका काजीमे बिदा किया ॥ ११९ ॥ १२० ॥ तब  
 मातुलि कीध्व आकाशमार्गेस रामके राह चले । उस समय मेरे ही लिए प्राप्त करके उनक मनमे कुछ अधिमान  
 हुआ ॥ १२१ ॥ रामने इस गयको जान लिया और मुग्धव जातिन कहा कि प्रतिकाका मुहूर्त काता जा रहा  
 है । इसलिए मैं बायूका लिए जानका सेमुके इस ओरपर स्थापित किये देता हूँ । तदनुसार मया मुनियों और

सैकतं स्थापयामास लिङ्गं रामो विधानतः । तदा तस्मात् नमसि क्षीप्तुम् रघुनन्दन ॥१२४॥  
 शत्रुघ्नो मणिः शोभे स्तारकोटिपनोपमः । तं वरध मणिं कण्ठे क्षीप्तुम् रघुनन्दनः ॥१२५॥  
 वरधुर्बर्धनैर्बर्धैरसामगधैर्गुभिः । दिग्वाधैः पावसाधैश्च पूजयामास तान् हनीत् ॥१२६॥  
 दत्तस्य हनयस्तुष्टा राघवेणातिपूजिताः । ययुः स्वीयाभ्यान् मागे शान्ददौ स माकृतिः ॥१२७॥  
 पश्येत् पारुतिर्विमान् पुय केन शूजिताः । तेऽप्यनुतिष्ठमाराधय राघवेर्णव पूजिताः ॥१२८॥  
 तत्तं वा वधनं भुन्वा कोषाविष्टोऽभ्यर्चितयत् । इवाऽहं भमितस्तोन रामेणय प्रवारितः ॥१२९॥  
 इधं वदन्ययौ राम क्रोधात्स्वीयं पदद्वयम् । भुवि कृताद्य पतितस्तदा भूमौ पदद्वयम् ॥१३०॥  
 गतं कविस्तदा रामममरीकिं न मे स्मृतः । नीताशुशिर्षया लको मत्पार्श्वेति साऽयं हि ॥१३१॥  
 तस्य मेऽघोषवापोऽत्र कशीं प्रेष्य त्वया हनः । किमर्थं भमितश्चाहं वदीन्यं ते इदि स्थितम् ॥१३२॥  
 वधविष्यन्मया हात चेत्पूर्वं दृष्टं तव । कशीं पदं तदि गत्वा किमर्थं लिङ्गमानये ॥१३३॥  
 पदं स्वदर्थमार्जुनमशरं लिङ्गमवमम् । नयाऽप्यन्यं समानीतं तवाग्रे किं करोम्यहम् ॥१३४॥  
 तव क्रोधयुतं वाक्यं किञ्चिद्दुर्बलमन्वितम् । रामः भुत्वा कदि प्राह कथं त्वं वदत्यवागसि ॥१३५॥  
 पथतन्कणपितं लिङ्गं समुत्पाटय त्वं बलात् । स्थापयामि त्वपार्श्वे त्वं कस्या विश्वेश्वरादिधम् ॥१३६॥  
 गन्धर्वकत्वा पारुतिः स सैकतस्येश्वरस्य च । पश्येत् मस्तके पुनः क्लेशान्दोलयन्मुहुः ॥१३७॥  
 भुवि तत्कथं पुच्छ पपात हवि भूजितः । जटसुर्वानतः सर्वं न पचलेज्जरादा ॥१३८॥  
 पश्यो भुन्वा माकृतिः स गतगर्वस्तदाऽभवत् । ननाम परया मन्त्रया प्रार्थयामास तं मुहुः ॥१३९॥  
 मायाऽपराधितं राघव तत्क्षमस्व कृपानिधे । तदाह माकृतिं राघवस्त्वं मर्हिलगोचरे न्विदम् ॥१४०॥

कनरोंको बुझाकर रामने विधिवत् दाम्बुक लिङ्गको स्थापित कर दिया । पश्चात् भगवान् रामने क्षीरानुध मन्त्रि-  
 गणसे कहा ॥ १२२-१२४ ॥ स्मरण करते ही करोटी सुर्पके समान प्रभंगाली बहु पाणि आकाशमातसे आ-  
 गया । तब रघुनन्दन रामने उस मणिका कठम बीच लिया ॥ १२५ ॥ उस मणिसे प्राप्त धन, वस्त्र, आभरण,  
 अन्न, धनु, दिव्य वस्तुओं तथा पायस आदिले रामने मुनिपाका पूजन-संस्कार किया ॥ १२६ ॥ श्रीरामसे  
 दुःख प्राप्त करके असन्तुष्ट वे मुनि भवन-जयसे आनन्दित हो जा रहे थे, तभी रघुनाथ उन्हे पारुतिन देस लिया  
 ॥ १२७ ॥ तब हनुमान् उनसे पूछा कि आपकी पूजा किसने की है ? उन्होंने उत्तर दिया कि रामन  
 निर्वालयकी आराधना तथा स्थापना करके हम लोकोका पूजा की है ॥ १२८ ॥ हनुमान् उनकी बात सुनो लो-  
 ग्ग हँकर विचारन श्रमे कि रामन आज मुझसे मर्प इतना परीक्ष्य करके उठा है ॥ १२९ ॥ यह विचारने  
 हुन वे क्रोधसे रागसे पाछ गये और जायसे उन्होंने अपने बानो बाँकोंकी जमीनपर पटक । इससे उनके दोनों  
 पाँव पुर्णतः धँस गये । बादमें हनुमन् रामसे कहा कि क्या आपका मेरा स्मरण नहीं था ? जिस हनुमान्ने  
 जब मैं सेताकी लाँच की थी और लोटकर अपना उनको खबर दी थी ॥ १३० ॥ १३१ ॥ तब हनुमान्का  
 जत्र आपन कशी भेजकर ऐसा उपहास किया ? यदि आपके मनमें यह था तो फिर मुझे इस तरह  
 मर्प क्यों सताया ? ॥ १३२ ॥ यदि मुझ जयका अभिप्राय मस्त हो जाता तो मैं कभी कशी जाकर  
 मैं को निर्वाज्य न करता ॥ १३३ ॥ इनमेंसे एक आपके लिए और दूसरा उत्तम निर्वाज्य भवन जिये ले  
 न था है । अब मैं इस आपका निर्वाज्यका बड़ा कई ! ॥ १३४ ॥ इस प्रकार कुछ श्लेष तथा बर्बलुक  
 अनुभासक वाक्य सुनकर रामने कहा कि हे कप ! तुम्हारा कहना सत्य है ॥ १३५ ॥ अब तुम यदि  
 इस मेरे म्याचित लिङ्गको पूँछम स्पर्शकर उत्तरे को तो मैं तुम्हारे काजसे काय हुए विश्वेश्वरलिंगको यही  
 तुम स्थापित कर दूँ ॥ १३६ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर हनुमान्ने उस बालके लिङ्ग उपर आगम पूँछ  
 मर्पकर बारम्बार धुब जोरसे झिलझा ॥ १३७ ॥ जिससे सहसा उनकी पूँछ टूट गयी । वे जमीनपर निर पड़े  
 होय द्रुष्टिहीन गये । परन्तु बालुका लिंग तनक भी नहीं हिला । यह देखकर सब वावर हुँकने लगे ॥ १३८ ॥  
 तब न पारुति स्वस्थ हो स्था मर्प जाँड़कर पतिले रामको नमस्कार करके प्रायना करन लगे ॥ १३९ ॥

विश्वनाथमिदं लिङ्गं स्वीयं मस्थापयामास सादरम् ॥ १४१ ॥  
 मारुतेर्ध्वं लिङ्गाय दत्तं रामो वरं तदा अमरं विष्णुनाथमारुते न्वन्प्रतिष्ठितम् ॥ १४२ ॥  
 यमादी एजयन्त्यत्र ये नगं लिङ्गमुत्तमम् । रामेऽवगाभिध सेतौ तेषां पूजा कृता भवेत् ॥ १४३ ॥  
 इत्युक्त्वा न पुनः प्राह रामो गजोदलोचनः । मर्त्यं यन्ममार्जीतं त्वया लिङ्गं महत्तमम् ॥ १४४ ॥  
 जिह्वयाऽस्य तच्छृण्वामस्तु देवालये त्वरम् । अनर्चितमवन्त्यां तदप्रतिष्ठितमक्षयम् ॥ १४५ ॥  
 अग्न कालान्तरेणाह नन्वापि स्थापयामि वै । तत्र च वर्तनेऽद्यापि लिङ्गं विश्वेश्वरान्तिके ॥ १४६ ॥  
 अग्रनिष्ठायितं भूम्यां न केनापि प्रयोजितम् । पुनः प्राह कपि रामस्त्वमत्र टिक्ताङ्गुलः ॥ १४७ ॥  
 वस भूम्यां गुमपादः स्मरन्स्वर्गायितं त्विदम् । नतः कपिः स्वीयमूर्तिं स्थापयामास स्वाश्रितः ॥ १४८ ॥  
 छिन्नपुच्छा गुमपादा सा तत्राद्यापि वर्तते । पतिनो मूर्च्छिता यत्र मारुतिस्तत्र तद्वत् ॥ १४९ ॥  
 बभूव मारुतेर्नाम्ना तीर्थं पापप्रणाशनम् । रामस्तत्राकरोन्पुण्यं स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥ १५० ॥  
 स्वाश्रेण स्थापयामास मूर्तिं तत्र रघुद्वजः । सेतुमाधवनाम्नी सा वर्तनेऽद्यापि पार्वति ॥ १५१ ॥  
 स्वनाम्ना लक्ष्मणापि चकार तीर्थमुत्तमम् । ततो रामः स्वहस्तेन स्पृष्ट्वा मारुतिर्लाङ्गुलम् ॥ १५२ ॥  
 चकार पूर्ववद्रूपं दृढगतिप्रसादितः । तन्पुच्छवेष्टनाज्जातः कृशो रामेश्वरस्तकः ॥ १५३ ॥  
 स तथैव कृशोऽद्यापि तत्रास्ति शिवमस्तकः । तदारभ्य न्यक्तगवश्चाभूद्रामे स मारुतिः ॥ १५४ ॥  
 ततोऽहं संकृताल्लिङ्गादाविर्भूय रघुद्वजम् । अत्रुचं देवि तत्सर्वं मृणुष्व ते वदाम्यम् ॥ १५५ ॥  
 गणवेन्द्र मृगश्रेष्ठ मृगु वृत्तं पुरातनम् । एकदाऽहं पुरा भूम्यां मलिनाम्बरमयुतः ॥ १५६ ॥  
 मिथार्थं कीर्तुकादिप्रसङ्गेनाविचरं सुखम् । श्वर्षणामाश्रमायेषु द्यतदतं सां चिकीर्षय च ॥ १५७ ॥

हे राम ! मग्न हो गया था हुआ ही, उसे क्षम कर । क्योंकि अब भुगतिनि है । तदनन्तर रामने कहा  
 है मारुति तुम मर ग्यायित लिङ्गसे उत्तरकी ओर इस विष्णुनाथ नामक अपने लिङ्गकी स्थापित करो ।  
 'तथास्तु बहकन मारुतिने सादर शिर्वालिङ्गकी स्थापना कर दो ॥ १४० ॥ १४१ ॥ तब रामने उस मार्गलिङ्गको  
 वरदान दत्त हुए कहा हे माम्म तुम्हारे द्वारा स्थापित विष्णुनाथलिङ्गकी पूजा नये बिना जा सेतुबधराभे-  
 श्वरकी पूजा करोगा उसकी पूजा क्या ही जयमें ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ इतना करके रामने फिर हनुमान्से कहा  
 कि जो तुम मेरे लिए उत्तम लिङ्ग लाय हो ॥ १४४ ॥ वह विश्वनाथलिङ्ग यो हो इस देवालयमें पड़ा  
 रहे । बहुत ही गान्ध यह उत्तम लिङ्ग परलोपर अपूजित हो पड़ा रहेगा । ॥ १४५ ॥ आगे चलकर बहुत दिनों बाद  
 उसकी भी मैं अवश्य स्थापना करूँगा । वह लिङ्ग अभी भी वहाँ विश्वेश्वरलिङ्गके पास पड़ा हुआ है । ॥ १४६ ॥ न  
 अभी उसका प्रतिष्ठा हुई है और न कोई उसकी पूजा हो करना है । रामने फिर हनुमान्से कहा कि तुम्हारे पूछ  
 यहीपर छिन्न हुआ है । अब तुम मर्जीपर भूमिमें छिन्नपुच्छ तथा गुमपाद होकर अपने गर्वका स्मरण करते हुए  
 पड़ रही । तब हनुमान्ने अपने आस वही आगे मूर्ति स्थापित कर दो । ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ कभी भी वहाँ  
 हनुमान्की विपश्यत और गुन पाँचका मूर्ति विद्यमान है । जहाँपर मारुति मूर्छित होकर गिरे व, वह उनमें  
 स्थान कार्तिके नामसे पवित्र तथा पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ प्रसिद्ध हुआ । वहाँ ही रामने भी अपने नामसे  
 एक उत्तम तीर्थ बनाया ॥ १४९ ॥ १५० ॥ रामने वहाँ आगे अगका एक मूर्ति भी स्थापित कर दी । सेतु  
 माधव नामकी वह मूर्ति अभी भी वहाँ प्रस्तुत है ॥ १५१ ॥ हे पावति ! लक्ष्मणन भी वहाँ अपने नामका उत्तम  
 तीर्थ स्थापित किया । पश्चात् रामने अपने हाथसे छूकर हनुमान्की पीठकी पूर्ववत् सुन्दर तथा हृद सन्धिपुक्त  
 बनाकर हनुमान्को प्रसन्न कर लिया । पीठसे लपटे जाकेक कारण रामेश्वरका मस्तक कुछ दिन गया  
 था ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ वह शिवमस्तक अभी भी वंसा ही बिपटा है । तबसे हनुमान् रामके समक्ष सर्वथा  
 गर्वरहित हो गये । ॥ १५४ ॥ हे देवि ! उस समय जानुके लिङ्गमें प्रकट होकर मेने रघुद्वज रामसे जो कुछ  
 कहा था, वह सब तुमको सुनाता हूँ । ज्ञान देकर मुझे ॥ १५५ ॥ मैं कहूँ - हे राघवन् ! हे रघुश्रेष्ठ  
 तुम्हें मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ । एक समय कीमुक्ताक्ष मैं पुराने कपड़े पहिन तथा ब्राह्मण



मद्रूपमोहिताः सर्वा अपिपत्न्यः सहस्रशः । भग्नपृष्ठे ताः समात्तमुत्सृज्य भिवांशिताः अदि ॥१५८॥  
 तदा ते चुचुभुः सर्वे मामहात्वा मनीष्वराः । ददुः शापं महाघोरे क्रोधसन्निभमानसाः ॥१५९॥  
 स्वयं मोहिताः कार्यस्त्वया नृणां दुष्टिनाम । पतन्वद्य ग्नेरंगं त्विगं ध्रुवि च नो गिरा ॥१६०॥  
 एवं द्वित्रिपदाः शमीरुतस्त्रिगं तदा ध्रुवि । द्वित्रिचतुष्टयस्य मे राम मनोऽहं शुभलां तदा ॥१६१॥  
 द्विजनाथोऽप्यदृष्ट्वा मां आमुः स्व स्त्र गृहं प्रति । तस्त्रिगं वदुषे भूष्यां गगनं व्याप्य तस्त्रिगम् ॥१६२॥  
 तद्दृष्ट्वा चकिना देवास्तुत्यान् द्रष्टुमश्रुतः । पश्यन्तस्त्वय्य कोऽनन्दवान् नमस्कारं वेधयः ॥१६३॥  
 तदा मामेत्य स विधिभंशद्वयं न्यवेदयत् । अकल्पे प्रलयस्य च शम्भोऽनेन परिच्यति ॥१६४॥  
 तदा मया पूर्ववत् तं विधिं मया च मादयम् । विशूनां वेधसे दत्तम् छेत्तुं सोऽब्रवीच्च माम् ॥१६५॥  
 कथं तेऽहं दाम्नेऽहं स्वमेव छेत्तुमश्रुतम् । ततो मया कर्मद्वयं कृतानि तस्य सख्ये ॥१६६॥  
 विशूलेनापि क्षिप्तानि भूष्यां निर्वाणानि हि । न ज्ञानान्तरं लिङ्गादिर्ज्योतिर्मयानि द्वादश ॥१६७॥  
 कर्माः सीमनाधश्च ज्यम्भको मल्लिकार्जुनः । नागेन्द्रो वैद्यनाथश्च कार्पासिध्वेश्वरस्त्वहम् ॥१६८॥  
 केशरेशो महाकाशो मयेशो घृष्मणेश्वरः । एश्वरकेशश्च जया उषानिलिङ्गमयाः शुभाः ॥१६९॥  
 गन्धमादननाम्नेशो मेरोरीशानदिक्स्थितः । आर्षाधिपः न कन्यापि मानसस्यासिगोचरः ॥१७०॥  
 तदा तं मुनयः सर्वं धिक् बुद्ध्या तु लङ्घनः । ददुः शापं पुनर्लिङ्गं मया तु गिरिजाप्रिय ॥१७१॥  
 ततः प्रलयवतिष्ठ गन्धमादननामकम् । तन्मेरेकत्र भूक्तमैकशब्दात्तद्वि ॥१७२॥  
 तदिह द्वाविंशत्यंशं दातव्यं मामगन्धमादः । गन्धमादननाम्नेऽहं भग्न पश्यन्तं शयय ॥१७३॥  
 गन्धमादननाम्नेऽहं त्विगं द्वादशम् निदधुः । मन्त्रनिष्ठलिङ्गस्य हं मन्त्रानामन्तिके स्थितम् ॥१७४॥

मया धरकर आनन्दसे भिक्षाक लिए धृष्टिभार विधर रहा था । इस प्रकार कृष्ण ने आधमय धूमता हुआ  
 पुनः देवमय सर्वत्र अपिपत्न्य' मर कश्यप साहित्य हो गया । पातयाक राजनपर भी व नहीं रही और मर  
 पक्ष के दूधमय जगो ॥ १५६-१५८ ॥ तब वे सब मुनें जो मुन्य न पहिचलकर बहुत चरारप और कुछ हीकर  
 ३ होने मुझ कहा भयानक काप दे दिया ॥ १५८ ॥ उन्हात कथा—अरे कथम आहूय ! तुने रति कलक लिए  
 जगता रिश्ताका साहित्य कर लिया है । हमस तर रतिका साधन अहं अयान् लिङ्ग हमारे कहारा कटकर ममान  
 ३ गिर पड़ ॥ १६० ॥ हू राम ! उनक मयम द्वितवयचारा मय लिङ्ग कटकर तुमल जमानपर गिर पड़ा ।  
 मयम मे अन्तर्गत हो गया ॥ १६१ ॥ मुन्य न देखकर वे द्विजान् शिवभा अपन-अपन पर सती भयो ।  
 मदनन्तर वेह लिङ्ग शय प्रकार बहोत आकाश तक व्यत्य हो गया ॥ १६२ ॥ यह देखकर बहोत बहुत चोहत हुए  
 ३ उनका अन्त दलनक लिए उठत हो गया । कट का वय तब दना मदानपर भं बलाना । जब मर लिङ्गका  
 मय नही मिला ॥ १६३ ॥ तब मर मय आकर दान हुए उन्हात पड़ा—हू कथम । इसम तों अकाशम हो  
 ३ होना कहोता है । १६४ ॥ मने कहोता पूर्वकृष्णन मुन्य कर सादर उनक हाथम उस लिङ्गका कादनक  
 ३ अपना जिह्म दा दिया । सब कहोत कहोता— ॥ १६५ ॥ मयम भावक अयका कम कट सकता है । काप  
 ३ मय बाह । हू मयम 'तब मने उन मयक बहोत दुष्ट कर डाल ॥ १६६ ॥ फिर मयम हो उठाकर उनका  
 ३ काप हवर उठकर पक दिया । वे हो वे 'हो दुष्ट बहोत बारह मयम' हू नमस भववाह हुए ॥ १६७ ॥  
 ३ मयम मय, सामनाय, मयमकथर, मयमका मुन्य, नागम, वयनाय, काश विभनाय केशरेश्वर, महाकाश,  
 ३ और शुभलावर मयमारह मुन्य उठात हू ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ बारहवा लिङ्ग मयमादन पञ्चक शान कापवान  
 ३ मयपर बहुत काल तक लयत रहकर भा मयम मयुगम उठत नश मया ॥ १७० ॥ तब मुनयाने तिमक  
 ३ शिवका पहिचलकर पुनः दर दिया—हू गिरिजाप्रिय ! तुम्हारे फिर लिङ्ग हो जाय ॥ १७१ ॥ तदनन्तर  
 ३ मयम नेह मयका मयमादन नामक उत्तरी शिपर प्रलयवायुस उठकर यहाँ आ गया ॥ १७२ ॥ हे यमव !  
 ३ मय मयम शिपरको तुम यहाँ रतिमा समुद्रक संगपर जलमे डक सकत हो ॥ १७३ ॥ काहोता मयमादन

एतावन्कालपर्यन्तं नैदं केशिद्वन्द्वोक्तिम् । अयं त्वया शब्दार्थद्वन्द्वं स्पष्टं विमोक्षयम् ॥१७५॥  
 स्वप्रतिष्ठितसिंहास्यं प्रमदादवनीतले । स्याद्विंशतं त्विदं लिखं यस्मात्तस्माद्रूपतम ॥१७६॥  
 अस्य लिख्यं यज्ज्योतिर्मदीयं स्वप्रतिष्ठिते । याम्यम्यद्य संकतेऽत्र लिखे हेतौ मिरा मय ॥१७७॥  
 ज्योतिर्लिख्यं द्वादशमं तव रामेश्वराभिषेकम् । इदं त्वया जनाः सर्वे ज्ञायाम्यं रूपतम ॥१७८॥  
 पूजात्मवादिकं कर्म यच्चरिंश्चरिद्रिरा मय । त्वैव लिखे त्वत्तर्कमस्तु रामेश्वरे मया ॥१७९॥  
 अहं चापि पुनेर्वाक्यादगस्त्येवद्विरापि च । स्वकृत्वा कार्त्तमागतोऽस्मि त्वत्स्थितेऽस्मिन्वसाम्यहम् ॥  
 प्रथमेस्तेषु वने यः पुमान् रामेश्वरं शिवम् । शब्दरन्त्यादिसापेक्ष्यो मुच्यते तदनुग्रहम् ॥१८१॥  
 सद्यं शब्दाद्यं रघुश्रेष्ठं वरं येन जनाः मया । एतानां र्थमादयिष्यन्ति मणिकर्णेश्वरं मय ॥१८२॥  
 मनेतद्वचनं श्रुत्वा प्रममो रघुनाथकः । जगाद् स्वाम्या सेतुवधे रम्येष्टं परिषयति ॥१८३॥  
 संकल्प्य निपतो भूत्वा गृहीत्वा सेतुवन्मुक्ताम् । करदिकामिर्यन्नेन गत्वा वारम्भसीं दृष्ट्वा ॥१८४॥

शिव्या तां रात्रुतां त्यक्त्वा वेण्यां बान्दुकगदिकाम् ।

आनीय गगारलिलं रामेश्वरमभिषिष्य च ॥१८५॥

समूहे स्थकवद्भारो ब्रह्म प्राप्नोन्मसद्वयम् । संकल्पेन विना गंगा रामेश्वरं नामभिष्यति ॥१८६॥  
 जागता चेष्टदा ज्ञेयः संकल्पः पूर्वजन्यनि । कुतोऽस्तीत्यत्र मद्वाक्याभात्र कार्पा विचारणा ॥१८७॥  
 एवं नानावरान्तामो यावज्जिह्वय मोऽज्जरीत् । तावच्चत्र समापातः कुम्भजन्ता मुनीश्वरः ॥१८८॥  
 जनाद्यं सकरो रामं रामोऽपि प्रलयाय तम् । वदा मुनिः पादं गमे प्रमोदात्तरं राघव ॥१८९॥  
 दर्शनं विद्वन्नायस्य त्रातं मेऽथात्र वै विगात् । जघात्र तुष्टेर्जोवा वै लिखमत्र करोम्यहम् ॥१९०॥  
 इन्दुकृत्वा स्थापयावाप्तुं स्वनाम्ना लिखामृतमम् । रामेश्वरमिदं दिग्भाषे कुम्भजन्ता मुदान्वितः ॥१९१॥

जिन गुम्हारे प्रतिष्ठित मणिकी ईशानदिगाद्यं वाम ही विद्यमान है ॥ १७४ ॥ इतन समय तक इसकी किसीने  
 नहीं देखा था । पर आज बान्दुकहिन तुमने इस मोक्षप्रद लिखकी स्पष्ट देखा लिया है ॥ १७५ ॥ गुम्हार द्वारा  
 स्थापित लिखकी यहमासे ही पृथ्वीपर इसकी प्रतिष्ठा हुई है । इस कारण है रघुनाथ । इस लिखकी जो स्थापित  
 है, वह ज्योति गुम्हारे द्वारा स्थापित बान्दुकप्रद निगम मेरे कहनेसे आज ही चली आयगी ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ है  
 रूपतम । आजके बान्दुकी ज्योतिर्लिख गुम्हारे स्थपित रामेश्वर ही दुनिराकिसब अनुयाय प्रोत्सह होया ॥ १७८ ॥  
 मेरे कवनसे पूजा आदि सब उपचार तदा गुम्हारे रामेश्वर जिनका ही होगा ॥ १७९ ॥ मेरे या आगम्य मुनिक  
 तथा गुम्हारे कहनेसे काजी चौकर यहाँ का गया है और अब गुम्हारे इस लिखके ही निगम कहना ॥ १८० ॥  
 जो अनुया सेतुवन् रामेश्वरको प्रणाम करेगा, वह मेरी कृपासे बहुरथा आदि उपागक योसे भी मुक्त हो  
 पायगा ॥ १८१ ॥ हे रघुश्रेष्ठ । आप मुझे यह वर दें कि सब लोग मुझ स्नान करानके लिए सदा काशिका  
 मणिकर्णिकाका जल लाकर बहाया करें ॥ १८२ ॥ हे पृथ्वी ! मेरे इस वचनके मुनकर भीराय हविष होकर  
 होने कि जो अनुया सेतुवधे स्नान करके रामेश्वर लिखका दर्शन करे ॥ १८३ ॥ फिर इस संकल्पसे सेतुकी  
 बान्दुकाके काँवरमे रखकर प्रेम तथा यत्नसे कार्त्तमे से जाकर गंगाके प्रवाहमे डालने और उस काँवरको वही  
 छोड़कर दूसरी काँवरक द्वारा गंगाजल लाकर उससे रामेश्वरका अभयंक करे ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ कहाँ उस  
 काँवरको की समुद्रमे फेंककर निःसंदेह बहूपदको प्राप्त होये । जकाक इस संकल्प व होगा, सब सब रामेश्वर  
 जाना व होगा ॥ १८६ ॥ कदाचित् कोई जागया हो वही जानना चाहिए कि उसके पूर्वजन्यता उपलब्ध था ।  
 मेरे कहनेसे आप यह बातमें लगे कि भी संदेह न करें ॥ १८७ ॥ इस प्रकार राम वचनक हर दे रहे थे, तभी  
 वही कुम्भजन्म ( कास्थ ) मुनि आ पहुँचे ॥ १८८ ॥ उन्होंने वहाँ जाकर जिन तथा रामको प्रणाम किया ।  
 सब रामने भी मुनिसे प्रणाम किया । कास्थ मुनि रामसे कहा— हे राघव । आपके अनुग्रहसे मुझे आज  
 बहुत दिनके बाद निम्ननायका दर्शन प्राप्त हुआ है । इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है । इसलिये मैं भी  
 वहाँ एक लिख स्थापित करता हूँ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ इसका स्मरण आगम्य मुनिने भी अपने वाक्ये एक उत्तर

पूजयामास तल्लिगमगस्तीश्वरनामकम् । नन्वा स्तुत्या विश्वनाथं रामं रामेश्वरं तथा ॥१९२॥  
 दृष्ट्वा पुगतनं लिङ्गं गंधमादननामकम् । पत्नी स्वीयाश्रमं सुहृः कुंभजन्मा हुनीश्वरः ॥१९३॥  
 सेती रामेश्वरस्यैव देवि देवालये ह्युभे । दिव्याग्नेय्यामगस्तीश्वमीशान्यां गंधमादनम् ॥१९४॥  
 वर्तेतेऽद्यापि द्वे लिङ्गे कश्चिज्जानाति वा व वा । प्रविद्धोऽभूच्च रामेश्वरः स्वर्गमृन्वुरमानते ॥१९५॥  
 ततो रामाश्रया सेतुं नतः कर्तुं मनो दधे । किञ्चिद्दत्तसमाविष्टस्तत्तत् राघवेण हि ॥१९६॥  
 पावदेकां शिलां त्यक्त्वा नलोऽन्यां प्राक्षिपच्छिलाय ।

तावत्परंगकछोर्धः सागम्य इतस्ततः ॥१९७॥

गच्छतिस्म शिलाः सर्वास्ता दृष्ट्वा विस्मयमानसः । गदगर्वस्मदा गमं नलो वृत्तं न्यवेदयत् ॥१९८॥  
 राघवः ध्रुत्वा नलं प्राह रामनि द्वेऽश्वरे मम । दृषदोः संधिसिद्धयर्थं पृथग्विलिखतां द्वयोः ॥१९९॥  
 सर्वत्रैव लिखित्वा हि दृढः मधिर्मणिप्यति । तथेति रामवचनानया शक्रे नलस्तदा ॥२००॥  
 कृतः षड्दिनैः सेतुः सप्तयोजनमुत्तमः । कृतानि त्रयमेवाह्वा योजनानि चतुर्दश ॥२०१॥  
 द्वितीयेन तथा चाह्वा योजनानां च विंशतिः । तृतीयेन तथा चाह्वा योजनान्वेकविंशतिः ॥२०२॥  
 चतुर्थेन तथा चाह्वा द्वाविंशतिरिति श्रुतम् । पंचमेन त्रयोविंशयोजनानां चतुर्विंशतिः ॥२०३॥  
 विस्तृतो द्वादश प्रोक्तो योजनानि दशम्ययः । एव एवध सेतुं य नलो वानरमत्तमः ॥२०४॥  
 ये मञ्ज्वंति निमज्जयति च वरान् ते प्रसन्नं दुस्तरे वार्ध्या येन तरति वानरभटान् संतारयतेऽपि च ।  
 नैते प्रावशुणा न वारिधिगुणा नो वानरगणा गुणाः भीमराघरधेः प्रतापमहिमा नोऽयं सप्तज्जम्भते ॥२०५॥  
 तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां सप्त द्रुतम् । आरुह्य मारुतिं गमो लक्ष्मणोऽप्यंगदं तथा ॥२०६॥  
 जगाम बाधुबल्लकासंनिधिं सेनया वृरः । अमरुयाताः सुवेलाद्रिं करुद्दुः प्लवगोलमाः ॥२०७॥

नलः स्थापित किया । नुनिम आनन्दक साथ रामेश्वरक अग्निकाणन उसको म्यापना को ॥ १९१ ॥ इस प्रकार नुनिने अग्निकाणन नामक 'लमका' पूजा करके विधनाय, रामेश्वर एवं श्रीरामको स्तुति तथा प्रणाम करनेके अनन्तर पुगतन गंधमादन निगका दर्शन किया और प्रसन्न होकर अपने आश्रमको चले गये । ॥ १९२ ॥ १९३ ॥  
 ६ देवि । सेतुबंध रामेश्वरके देवालयमें ही आग्नेयकोणमें अमरुतोश्वर तथा ईशानकोणमें गन्धमादनेश्वरका 'लम' अभी भी विद्यमान है । उन्हें कोई इन नामोंसे जानता है और कोई नहीं भी जानता । रामेश्वरका लिङ्ग पर्व, बाताल तथा मृग्य इन तीनों लोकोंमें प्रतिष्ठित हो गया ॥ १९४ ॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे नलने कुछ पर्वयुक्त होकर पुल बांधना आरम्भ कर दिया । रामको इस गर्वका पता लग गया ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ इसके बाद नलने जलमें एक पत्थर डालकर दूसरा ऊपर ही दृष्ट, 'वो ही नमुवकी तरंगित लहरियोंसे सब जिलाई' उपर-उपर छितराने लगे । यह दृष्टा हो लिखमन हो तथा पर्व दृष्टाकर नल रामके पास गये और सब वृत्तान्त निवेदन किया । १९७ ॥ १९८ ॥ यह सुनकर रामने नलसे कहा कि मेरे माथके 'रा म' के दो अक्षर रत्नरोको एक साथ मिलानेके लिये होने गिलाओकी बगलमें लिख दो । १९९ ॥ ऐसा लिख देनेसे नल एक दूसरेके साथ हड़तासे जुड़ जायेंगे और संधि ( मीम ) न रहेगी । नलने भी 'तथास्तु' कहकर रामके अध्यानुसार ही किया ॥ २०० ॥ ऐसा करनेपर पाँच दिनोंमें ही योजन लम्बा, सुन्दर और दृढ़ सेतु बन गया ।  
 पहिले दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन दत्तकीस, चौथे दिन बाईस और पाँचवें दिन सैंईस योजन पुल बंधा । इस प्रकार ही योजन पूरे हो गए । २०१-२०३ ॥ उसमें भी बाग्दु योजन एकमात्र पत्थरका ही धक्का पुल बनाया गया । इस तरह वानरोत्तम नलने सेतु बांधकर तैयार किया ॥ २०४ ॥ जो पत्थर पर्व चूने और दूसरोंको चुकाते हैं, वे ही दुस्तर नमुदमें स्वर्ग तरंगे तथा दूसरोंको सारने लगे मये । यह गुण व पत्थरका है, न समुद्रका और न वानरोंका । परन्तु यह गुण ही केवल दत्तव्यसनय रामका ही है । जिनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥ २०५ ॥ उक्त युद्धके बाद वानरगण ही शेष सब शहर कर गये । राम हनुमान्के कंधे तथा लक्ष्मण भद्रके कंधेपर चढ़कर वायुदेवसे सेनाके साथ लंकाके पास

सतः सैन्ययुक्तो रामः सुवेलार्द्रि ययौ युद्धा दिव्यं गणयो लंकापारोहायम् शुभम् ॥२०८॥  
 सुवेलार्द्रि महारम्यं तरुवाहिविराजितम् । ददर्श लंकां विस्तीर्णां रामश्चित्रज्वाकुलम् ॥२०९॥  
 चित्रशामादयवाधौ स्वर्णप्राकान्तोरणाम् । परिस्त्राभिः श्वघ्नीभिः सकर्मैश्च विराजिताम् ॥२१०॥  
 प्रामादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरम् । पश्यंत कपिसैन्यं तं सन्दर्शं रघुद्वजः ॥२११॥  
 सतो रामेण मुक्तः स शुको गन्वा दशाननम् । कपिसैन्यं दर्शयंत बोधयामास रावणम् ॥२१२॥  
 सीतां प्रयच्छ रामाय लंकागज्ये विभीषणम् । कुत्वा तं शरणं याहि नो चेदामास मोक्षसे ॥२१३॥  
 तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधान्मृकं धिक्कृत्य वै मुहुः । दूर्तैर्गहाद्वहिः कुत्वा रामसेनां व्यलोकयन् ॥२१४॥  
 शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं वरिष्ठो जसविचमः । त्रयजन् कतुभिर्देवान् विगेवो राक्षसैर्भूत् ॥२१५॥  
 वज्रदष्ट इति ख्यातस्तर्दको राक्षसो महान् । मांमास याचितं दृष्ट्वा मुनिना कुमजन्मना ॥२१६॥  
 शुकभार्यावपुर्धन्वा नगर्मासं समर्पयन् । तदा शमः शुकस्तेन त्वं श्यो मवमा विष् ॥२१७॥  
 रक्षःकृतं पुनर्ष्यान्नाज्ज्ञात्वा तन्प्राथितोऽमरीत् । रामस्य दर्शनं कुत्वा बोधयित्वा दशाननम् ॥२१८॥  
 न्यं प्राप्स्यसि निजं रूपं तस्माज्जानः शुको द्विजः । सुवेलशिवरे मंस्थः ममञ्च कपिभिन्नाः ॥२१९॥  
 सचनार्थं गिषु रामोऽङ्गदं लंकाप्रोदयत् । सोऽपि रामाज्ञया गन्वा नानानीन्युत्तरैस्तदा ॥२२०॥  
 भवणं बोधयामास सुभाषां लांगुलामने । मंस्थितोऽमीतवद्वालिनपः स्वस्थमानसः ॥२२१॥  
 शृणु रावण मद्वाक्यं हितं ते प्रवदाम्यहम् । सीतां सत्कृत्य सधनां प्रयच्छ राघवं जवान् ॥२२२॥  
 मयं नागयणं विद्धि विद्वं न्यत्र राघवे । यन्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो यवसागरम् ॥२२३॥  
 तस्मिन् मक्तिपूतास्ते ह्यतो रामो न मानुषः । मद्वाक्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे ॥२२४॥

का पट्टे । वानरों में उत्तम अमरुद वानर सुवेल पर्वतपर जा चढ़े ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ उनके पीछे राम भी  
 घणना सेनाके साथ सहर्ष सुवेर्गगिरिपर गए । वहाँ जाकर राम लंकाके देवाओं के लिए उसने एक सुन्दर  
 शिवरपर चढ़ा ॥ २०८ ॥ वह पर्वत चढ़े मन हर वृजों तथा लन भोंसे भडित था । वही रामन बड़ा विस्मृत,  
 रंग विरगी स्वजाओसे व्याप्त, अनेक प्रकारके भयनोंसे मघन, स्वर्णरु गड तथा तोरण युक्त स्तम्भ, सुगों तथा  
 संगोसे विराजित लंकाका दसा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ वहाँसे रामने एक प्रासाद ( महल ) के ऊपर विस्तीर्ण  
 प्रदेशमें बैठकर कपिसेनाको देखते हुए दशकन्धर रावणको देखा ॥ २११ ॥ तदनन्तर रामन कैद किये  
 हुए शुकको छुड़वा दिया उसने जाकर रावणको वानरा सेना दिखानी और भयभाषा— ॥ २१२ ॥ नुम  
 सीता रामनो वे दो, लङ्काका राज्य विभीषणको दे दो और रामकी शरणमें चल जाओ । नहीं तो राम  
 नुमको जंघित नहीं छोड़ेंगे ॥ २१३ ॥ यह सुनकर ब्राह्मण पागल रावणन शुकको बार-बार धिक्कारा और  
 दूर्तसे बाह्य निकलकर रामकी सेना देखन लगा ॥ २१४ ॥ शुक पहिले एक भेष ब्राह्मण था । उसने वज्र  
 द्वारा देवताओंको प्रसन्न किया था । इस कारण राक्षसोंसे उसका विरोध ही गया ॥ २१५ ॥ तदनन्तर एक  
 दिन वज्रदण्ड नामक राक्षसन भगस्त्व मुनिको शुकसे भासात्र भाँगने देखकर शुकको स्वर्णका रूप धारण  
 करके मनुष्यका मास पकाकर मुनिको परास दिया । तब मुनिने क्रुद्ध होकर शुकको भाष दे दिया कि जा,  
 तू सीधे राक्षस हो जा ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ पुनः शुकने प्रार्थना करनेपर मुनिने ध्यान धरके देखा तो मानुस  
 हुआ कि यह तो एक राक्षसका कृत्य है । तब मुनिने कहा—हे शुक ! तू रामका दर्शन करके और रावणको  
 समझाकर फिरसे अपने स्वस्वको प्राप्त हो जायगा । इसी कारण जब वह शुक पुनः ब्राह्मण हो गया ।  
 फिर रामने सुवेल पर्वतके शिवरपर बैठकर वानरोंको आमन्त्रित किया और तपुकी सूचना देनेके  
 लिए अंगरको लंका भेजा । उसने जाकर रामकी आज्ञासे अनेक नोतिवाकों द्वारा रावणको समझाया  
 ॥ २१८ ॥ २२० ॥ उसने अपनी पूँछका मोड़ा बनाकर उसपर बैठे हुए अंगवने निर्भय होकर स्वस्व मनसे  
 रावणको समझाते हुए कहा— ॥ २२१ ॥ हे रावण ! मैं तुमको हितका उपदेश देता हूँ, मुनी । मेरी कलाह  
 मानी और मनसे सीताका सत्कार करके कटपट रामको दे जाओ ॥ २२२ ॥ रामकी आज्ञाद नारायण रामनो

एवं नानाविधैर्वाक्यैरंगदेनानिबोधितः सोऽथ नैन्युत्तराण्यप्य नाशृणोद्दानस्य च ॥२२५॥  
 उवाच क्रोधमयुक्तो वानरः स दशाननः । भीषयमेऽद्य किं मां त्व रावणं लोकगणम् ॥२२६॥  
 येन सर्वं जिता देवाः कैलासः कपिलो मया । तस्य मेऽग्रे मर्कटं त्व कथ्यसे किं मुधाऽथ हि ॥२२७॥  
 क्षणेन राघवो हन्वा हन्वा सूर्यावमारुती । हन्वा विभीषणं चान्नं च वानरान् मक्षयाक्यहम् ॥२२८॥  
 रावणस्य वचश्चेन्ध श्रुत्वा ग्राह्यादथ तम् । जानाक्यहं पीड्यं ते बलिपशुविनूर्णित ॥२२९॥  
 शिवपादांगुष्ठं मारुतप्रकलामरीचिनः । सहस्रार्जुनवीगन्ममभवक्रीडनमृग ॥२३०॥  
 श्वेतद्वीपस्थप्रमदाक्षरताडितमन्मथः । विष्णुपुत्रोऽथ वै ब्रह्मा मरीचिस्तन्मुत स्मृतः ॥२३१॥  
 तन्मुतः कश्यपस्य पुत्रोऽभूदिन्द्रिनामकः । तेनैव पुत्रकाले तु बभूव्वा कागशूहस्थित ॥२३२॥  
 पर्यकोपरि सचट्टमन्मथालिनानन । इति तद्वाक्यं श्रुत्वा वानरजितः स दशाननः ॥२३३॥  
 दूतानागावयामास ताडनीयो मुखे न्वयम् । तथैत्युक्त्वा राक्षसाग्ने स्रष्टवस्ताः महस्रशः ॥२३४॥  
 अगदं दृष्टुः शीघ्रं तान् दृष्ट्वा वानरोत्तमः । सर्वशामास पुच्छेन तान्मवान् क्षणमात्रतः ॥२३५॥  
 रात्रिणाभ्येषु सताड्य स्वकराभ्यां मुहुर्महूः । तद्वस्तपादौ पुच्छेन पूर्वं बभूव्वा सविस्तरम् ॥२३६॥  
 ततश्चोड्य वेगेन पर्या प्रामादमस्तकः । मुखेलादौ राघवेन्द्रं तारियः स विहायमा ॥२३७॥  
 अगदं राघवो दृष्ट्वा प्रामादान्वितमन्मथः । उवाच किं कृतं बाल प्रामादोऽयं न्वया कथम् ॥२३८॥  
 ममानीनोऽत्र लकाया मित्राण्येष पुगी मया । त्रिपिताम्नि ततो मित्रवन्निव द न सृष्टास्यहम् ॥२३९॥  
 मद्राक्षवचः श्रुत्वा चक्रिणः स तदागदः । प्रामादमन्मथे दृष्टोर्धाक्षिभ्यामाह राघवम् ॥२४०॥

और उनसे द्वेष करने छाड़ ॥ जिन्के चरणमगदकी जहाजका आश्रय लेकर जानी लोग भलिते पवित्र मन होकर इस समारुपों समुद्रको अनायास पार कर जान है, वे राम मनुष्यमान नहीं है । हे राजन् ! यदि अपने कुलको कुशलता चाहत होओ तो परा बहा करो ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ इस प्रकार विविध वाक्योंसे अहोरे उते बहुत हमसाया, परन्तु उमने अहदका एक भी नीतिपूर्ण वाक्य नहीं मना ॥ २२५ ॥ प्रत्युत मुड़ होकर रावणन अहदमे कह—अर नीच । तू आज सब जागोरो ह्मनेवाले मुझ रावणको डराने आया है ॥ २२६ ॥ मरे । येन सपूर्ण देवताओंको जीतकर कैलास तकका बंधा दिया है । ऐसे मुझ बीरके सामने न मर्कट । तू क्यों व्ययक, बकवास कर रहा है ॥ २२७ ॥ मैं क्षणभरमें राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण तुझे और सब वानरोंको मारकर खा मरना दूँ ॥ २२८ ॥ इस प्रकार रावणका गर्वचरा तकर मुनकर अहदने बहा है बलिपशुमे विनूर्णित । हे शिवपादांगुष्ठसे मानस कैलाससे पीडित ! हे जानाक्यह ! तू पीड्यं मे ' हे श्वेतद्वीपक' त्रिपिताम्नि हाथसे लाडित मुनवाने रावण ! मैं तेरे बलको जानता हूँ । हे मां मुझ मानस है कि विष्णुके पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिक पुत्र कश्यप, कश्यपके पुत्र इन्द्र और इन्द्रके पुत्र बालिने तुमके मुहुक ममथ बांधकर कारागारमें डाल रखवाया । वही तुम्हारा मुख चारपाईमें बंधनके कारण मरे मन्मथसु भर जाता था । अहदके इन वाक्यवपी बाजोंन विठ होकर रावण नर्तित हो उठा ॥ २२९-२३३ ॥ उमने इनको आभा दी कि मार मारकर इसका मुंह बाल कर दो । तब अहदने कहार हुआगो राजस हाथमे शस्त्र लेकर अहदकी ओर मपटे । उन्हें देखकर वानरीसम अहदने अपने हाथकी मारसे उन सबको क्षणभरमें घराबायो कर दिया ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ तदनन्तर पुच्छसे रावणके हाथ नीच कर भलि बंधकर अहदने उसके मुखोपर खूब तमाच लगाये ॥ २३६ ॥ तत्पश्चात् कहांसे उठकर अहद जंगल आकाशमार्गसे मुखे पर्यंतपर रामके पास लौट गया । उड़ते समय रावणका मन भी उनके सिरपर बैठकर चला आया ॥ २३७ ॥ गमने अहदकी मस्तकपर बहुत निचे जाते देखकर अहदने बलिपुत्र ' तुम इस महलको क्यों उठा लाये ? ॥ २३८ ॥ मैंने लंकापुरी मित्र विभीषणको बर्षण कर दी है । इसलिए मैं ही मित्रकी इस बातको छुड़ी नहीं सकता ॥ २३९ ॥ रामकी यह बात मुनकर अहद चकित हो गये जब अहदने स्मरकी ओर भांसे की थी अपने सिरपर बकान देखकर रामसे

न जालोऽयं यथा राम प्रामादो मन्दकेन मे । स्थापितश्च तंकायाः समानीतस्त्रांतिकम् ॥२४१॥  
 पुनर्नीत्वाऽयं लंकायामेनं संस्थापयाम्यहम् । इत्युक्त्वा पश्चिन्नाथ रावणस्याज्ञयागदः ॥२४२॥  
 प्रामादं पूर्ववत्स्थाप्य लंकायां स ययौ पुनः । सुवेलादौ रावणेन्द्रं मत्वा ह्यसं न्यवेदयत् ॥२४३॥  
 यच्चकृतं तु लंकायां संवादं रावणस्य च । रामोऽपि भुत्वा तुल्यदं शिष्यत्वं तं परिपुन्यजे ॥२४४॥  
 अथ आगमचक्रोऽपि सुवेलादौ स्थितस्तदा । लंकया चापमादाय सुभोच अग्रमुत्तमम् ॥२४५॥  
 तेन सुत्रसदस्यापि किरीटदशकं तथा । लंकायां राक्षसेन्द्रस्य प्रामादे तस्थितस्य च ॥२४६॥  
 चिच्छेद निमिषार्धेन कर्षानां पश्यतां प्रभुः । एतस्मिन्संतरे तत्र रामाग्रं तस्थितो मरान् ॥२४७॥  
 न दत्तं जानसीं भुत्वा रावणेनांगदाप्यतः । क्रोधेन महताधिष्टः सुग्रीवः प्लवगाग्रणीः ॥२४८॥  
 यथावृष्टीय लङ्कायां दशार्घ्यं राक्षसपुत्रम् । प्रामादमस्थितं जगदीनं प्रव्यदमानवम् ॥२४९॥  
 सुग्रीवो रावणं मत्वा जघान दृढमुष्टिना । पतयामास भूम्यां तं परमिहामनामदा ॥२५०॥  
 पकतुस्तो बाहुपुटं तुमुनं गेयहर्षणम् । उर्ध्वार्धिकगद्गदस्तः कर्षाशतश्लेदेवरी ॥२५१॥  
 तदानींजगर्गंगः स रावणः कविपलनः । दुद्रुचे बाहुपुटं वन्यस्त्वा गेहं विलज्जिता ॥२५२॥  
 तदाऽऽच्छिद्य तन्मुकुटं ययौ रामं कर्षाश्वः । ननाम रावणं भक्त्या हृषं सर्वं न्यवेदयत् ॥२५३॥  
 तं समालिख्य रामोऽपि सुग्रीवं प्राह सादरम् । मामपुटं कथं बन्धो यतस्त्वूर्ध्वं दक्षाननम् ॥२५४॥  
 त्वजीवितं विषमं चेत्तर्हि किं सीतया मम । भविष्यति न सौख्यं हि मेऽद्य साहसं कुरु ॥२५५॥  
 ततो मेरीभृदंगाधैर्यैस्ते वावरोचमाः । लङ्कां स्पृष्टयामासुश्चतुर्द्वारिषु संस्थिताः ॥२५६॥  
 तदा तं मुकुटं रामोऽङ्गदाय रावणस्य च । ददौ तुष्टो दशेन्द्राय लङ्कां रोहू प्रचोदयत् ॥२५७॥

बोले—॥ २४० ॥ हे राम ! मुझे तो इस बातका पता भी नहीं था कि मेरा मन्त्रकपूर भक्तान है और मेकसे उलझकर वहाँ आपके पास तक चला आया है ॥ २४१ ॥ मैं इसको फिरले जाकर लङ्कामें रख आता हूँ । इतना कह और रामजी आज्ञा पाकर अगद गुरन्त लीठे ॥ २४२ ॥ वे उस प्रसादकी पूर्ववत् लङ्कामें रखकर पुन रामक पास आ गये और नमस्कार करके सब वृत्तान्त लिखदल किया ॥ २४३ ॥ लङ्कामें जाकर उन्होंने वो कुछ किया था और रावणके साथ जो संवाद हुआ था, वह सब रामसे कहा । तो मनकर रामने उनको हृदय-से लग लिया ॥ २४४ ॥ तदनन्तर श्रीगमचन्द्रजीने सुवेलादिपर लड हाकर लानापूर्वक एक उत्तम वण भद्रपत्र चढाकर छोड़ा ॥ २४५ ॥ उससे लंकाके मङ्गलपर स्थित राक्षसेश्वर रावणक इसी मुकुट तथा हजारों छत्र कहकर अणभरम वातुनके समक्ष आ गिरे । इतनेके रामके सामे बड़े मुग्धवने जब अमरके मुखसे यह सुना कि रावण सीताको देनेके लिये तैयार वही है । तब आनन्द कृपित हांकर वावरोमे भप्रणी सुगव उठकर लंकामें वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि मङ्गलपर छत्र तथा किरीटरोहित प्रत्यस्त स्पष्ट मनसे रावण बैठा था ॥ २४६-२४७ ॥ वहाँ जाकर सुगवने रावणको ओरसे एक मुक्का मारा । जिससे दक्षानन सिंहासनसे जसीनपर गिर पड़ा ॥ २४८ ॥ तदनन्तर कर्षाश्व स्पर्श तथा राक्षसेश्वर रावणका आपसमें घोर भक्त्युद्ध होने लगा । वे एक दूसरेको उठा-उठाकर चित्त-रट करने लगे । जिससे कि उनके हाथ-पैर तथा छात्रा लग निमंम प्रहारके कारण बड़ी घाट लगती थी ॥ २४९ ॥ इन्तम सुग्रीवकी दारसे रावणके सब बन्ध अर्जित हो गये । सब रावण बाहुपुट करके लङ्काके मारे चरमे चला गया ॥ २५० ॥ उसी समय उसका मुकुट छान्कर कर्षाश्वर सुग्रीव रामके पास आ गये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके सब समाचार कहा ॥ २५१ ॥ रामने सादरके साथ सुग्रीवका आलिखन किंदा और कहा—हे बन्धो ! तुम हमसे बिन कह चुकते रावणके साथ युद्ध करने क्या चल गये ? ॥ २५२ ॥ वही तुम्हारे प्राण संकटमें पड़ जात तो हम सीताका पा करके भी कोन-सा रुक मानन । अरम कर्म ऐसा साहस नहीं करना ॥ २५३ ॥ बादमें वगाडा मृदंग तथा तुम्हारे भावि बाव वज्रत हुए सब वावरोपडाआदे लंकाको घेर लिया और चारो दरवाजोंको रोककर लड़े लो गये ॥ २५४ ॥ तत्पश्चात् रामने यह रावणका मुकुट प्रसन्न होकर सेनापति अगदको दे दिया और लंकाको घेरनेके लिये

अङ्गदं दक्षिणद्वारं वायुपुंश्च तु पश्चिमम् । नतं येन्येव प्राग्द्वारं सुपेगं दक्षमौनरम् ॥२५८॥  
 ययुस्ते राघवं नग्वा लंकां स्वस्वयत्नैर्पुनाः । तां लंकां कुरुषुः सर्वं चतुर्दारेण वानराः ॥२५९॥  
 दशार्धोऽपि गृहं गत्वा सुर्यावज्ज्वलिकृतः । वस्यी तूष्णीं स रहसि स्मरन्मुप्रायपौरुषम् ॥२६०॥  
 माली मुमाली च तथा मान्यवान्मान्यवाचस्यः । मातामहा रावणस्य ते समन्वय परस्परम् ॥२६१॥  
 दशाननं बोधयितुं तेभ्यस्त्वेको ययौ जरात् । मान्यवानिति नाम्ना यो बुद्धिमान्नेदमयुतः ॥२६२॥  
 प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशान्तेनातरात्मना । मृणु राजन् वधो मेऽद्य भन्ता कुरु यथेष्टमितम् ॥२६३॥  
 यदा प्रविष्टा वनरीं जानकां रामयस्त्वया । तदादिं पूर्णं दृश्यते निमित्तानि दशानन ॥२६४॥  
 घोरानि नाशहेतूनि तानि मे वदतः गृणु । स्वराः स्वनिर्निधोया मेघाः प्रतिघण्टकराः ॥२६५॥  
 शोणितान्पमिवर्षन्ति लंकायुष्मेन सर्वदा । मीदन्ति देवलिङ्गानि स्थिद्यन्ति प्रचलन्ति च ॥२६६॥  
 कालिका पादुर्दन्तः प्रहसतेऽग्रतः स्थिताः । स्वरा गोपु प्रजापते मृषका नकुलः सह ॥२६७॥  
 काजारेण तु पृष्यते पद्मगा गरुडेन च । कगलो विकटो बृंहः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ॥२६८॥  
 कातो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते । एतान्यन्यानि दृष्टानि निमित्तान्युद्भवति च ॥२६९॥  
 प्रतः कुलस्य रक्षार्थं शान्तिं कुरु दशानन । सीतां सन्कृत्य सधनां रामायाश्च प्रयच्छ भोः ॥२७०॥  
 मातामहवचश्चेन्ध आत्मा तं रावणोऽजवीन् । रावेण प्रेषितो नूनं मायमे त्वमवर्गलम् ॥२७१॥  
 गच्छ बुद्धोऽपि रभुस्त्व सोढुं सर्वं त्वयोदितम् । इतो वा कर्णपदवीं दहन्येतद्रथस्तव ॥२७२॥  
 इत्युक्तः स रावणेन मान्यवान्स गृहं ययौ । रावणापि ममां गत्या चोदयामास राघवान् ॥२७३॥  
 पूर्वद्वारं तु पूषाञ्च वज्रदंष्ट्रं तु पश्चिमम् । नरान्तकं दक्षिणं तम्रचरं च महोदरम् ॥२७४॥

वना ॥ २५७ ॥ अङ्गदको दक्षिणी दरवाजाए, वायुपुंश्च हुनुमानको पश्चिम द्वारपर, नतको सेनाके साथ  
 पूर्वद्वारपर और धुवमको उत्तरी दरवाजापर जानेका कथा ॥ २५८ ॥ वे सब राघवको नमस्कार करके अपनी-  
 अपनी सेना लेकर गये और लंकाके चारों दरवाजाका रानकर खड़े हो गये ॥ २५९ ॥ उपर रावण भी सुभीकके  
 हाथसे मार स्ताकर घायल हो घर जाकर एतन्तम मन मारके बैठ गया और सुग्रीवके पुत्र्य भक्त  
 स्मरण करने लगा ॥ २६० ॥ तब रावणके माना माली, मुमाली तथा मान्यवान् इन तीनों आइयोंन आदसम  
 गये की और रावणका समझाने के लिए इन तीनोंसे बुद्धिमत् तथा हलके मान्यवान् उनके पास गया  
 ॥ २६१ ॥ ॥ २६२ ॥ बड़े शान्तिपूर्वक वार राक्षसावर रावणका समझाते हुए कहने लग - हे राजन् 'मरी  
 बात सुन ल, फिर जेबा आपका इच्छा हो वेंसा करिएगा ॥ २६३ ॥ हे दशानन । जबसे राघवकी प्यारी सीता  
 नकाम जायी है, तबसे यही बराबर अपशकुन हो देखने में आत है ॥ २६४ ॥ वे सब मयानक और  
 नाजके निमित्त है । उनका मैं कहता हूँ, आप सुन । मय तीव्र गजनक बन्द करने हुए लकामें गरम खूनको  
 सतत वर्षा करता है । निर्गलन सिद्ध रखना आत है । वे कभी पसीमत है और कभी काँपने लगत हैं  
 ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ माग लड़ा कालीकी मूर्तिएँ पीने पीते दीन निकालकर हैंकती हैं । गाधोक पेटके गधे पंदा  
 हाड हैं । बूढ़े न्याली तथा बिलियोंसे लड़त है, माँघ गरुडक साथ घुड़ करत है । कभी-कभी कराल काल  
 मिर मुझए काल-पीले पुरुषका रूप धारण करके लोगोंको पकड़त । हुमा बीलता है इनके अतिरिक्त और भी  
 अनेक अशकुन एकट हुत दाखत है ॥ २६७-२६९ ॥ इसलिए हे दशानन 'कुलकी रत्नाके स्थिे मान्ति  
 पारण करो और सीताका आदर सत्कार करके घनुर घनक सहित शीघ्र राघवका सोप जाओ ॥ २७० ॥ यह सुनकर  
 रावणने अपने दावासे कह कि मगरव तुम रमक द्वारा यही इस प्रकार अवर्गल (उपहार) दाते करनेके  
 लिय भेज दिये हो अस्तु, जो हुआ सो हुआ । अब तुम यहाँसे निकल जाओ । बुढ़ तथा सगे दावा होनेके जाने  
 इन्की वलें मैंन सह ला । तुम्हारा दाते हमारे कानोको जन्दादे दे रही है ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ रावणके  
 एना कहनपर मान्यवान् अपने घर चला गया । रावणने भी लकामें जाकर रत्नभोको आज्ञा दी ॥ २७३ ॥  
 हरनन्दर लंकाके पूर्वद्वारपर पूषाका, पश्चिमी द्वारपर वज्रदंष्ट्रको, दक्षिणी द्वारपर नरान्तकको और उत्तरी

प्रेषयामास सैन्येन वस्त्रार्थेनोपिताम् जघात् वन्वाग्नेऽपि नन्वा न रावणं संगरं ययुः । २७५ ॥  
एवं रामगवणयोः सैन्यानि च परस्परम् । ययुस्तानि सम्मुखानि संगगर्ध महास्वनैः ॥ २७६ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय सारकाण्डे  
युद्धपरिते रामरावणसेनासंगीनाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

## एकादशः सर्गः

( श्रीरामके द्वारा रावणका वध )

श्रीशिव उवाच

अथ ते राक्षसाः सर्वे द्वारेभ्यः क्रोधमुन्मिष्टाः । निर्गत्य सिद्धिपालैश्च स्वर्गः कुलैः परस्वर्गः ॥ १ ॥  
कुन्तैः शरैः शतघ्नीभिः संक्रम्यैः शक्तिभिर्दृष्टम् । निजघ्नुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः ॥ २ ॥  
राक्षसांश्च तदा जघ्नुर्वानस जितकाशिनः । पूर्वैर्द्वावैः पर्वतैश्च मुष्टिभिः कर्ताडनैः ॥ ३ ॥  
ते हर्षश्च गजैश्चैव रथैः काञ्चनसन्निभैः । रक्षोब्धघ्ना युयुधिरे नदयन्तो दिशो दश ॥ ४ ॥  
एवं परस्परं चक्रुर्बुद्धं वानरराक्षसाः । नलो जघान पद्माश्च वज्रदंष्ट्रं स मारुतिः ॥ ५ ॥  
नरतकं स तारेयः सुपेणस्तं महोदरम् । चतुर्धाशिवशेषेण निहतं राक्षसं बलम् ॥ ६ ॥  
तदांमदाद्याश्चत्वारो महाबाधमहोत्सवैः । प्रणेमु राममगन्ध जयघोषप्रचुरिताः ॥ ७ ॥  
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादो ययौ तदा । सर्पास्त्रद्वयाकुलं रामं चकार वंशुवानरैः ॥ ८ ॥  
रामः सम्मार दाक्ष्यं च ताक्ष्यैः सर्पैर्न्यवारयत् । ततः स्वस्थो ब्रह्मवगदतर्धानं गतोऽधुरः ॥ ९ ॥  
सर्पास्त्रद्वयशली व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः । चवर्षं शरबालानि ब्रह्मास्त्रं मानयस्तदा ॥ १० ॥  
क्षणं तूष्णीमुवासाथ रामः स वंशुवानरैः । ततः स्वस्थो रघुवैद्यो ददष्ट पतितं बलम् ॥ ११ ॥  
मूर्च्छितं ब्रह्मपाशैस्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् । चापमानय सौमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुरान् क्षणात् ॥ १२ ॥

द्वारपर महोदरको वस्त्रार्थके वानसे लघुष्ट करके श्रीशिव सेनाके साथ वन दिया वे लोग भी रावणको नमस्कार करके युद्धभूमिपर गये ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ इस प्रकार राम-रावणकी सेनाएँ परस्पर युद्ध करनेके लिए प्रीत्य गजन करती हुई एक दूसरेके सम्मने जा दटी ॥ २७६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे 'यथोक्ता' अष्टाष्टकायां रामरावणसेनासंगीनाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

शिवजी बोले—बादमें वे सब महाकाय तथा महाबली राक्षस बड़े क्रोधक साथ दरवाजोंसे निकल-निकल कर बछीं, तलवार, त्रिशूल, मल्ल, बाण, तीक्ष्ण तथा शक्तिव लेकर वानरो सेनाको रहताक साथ मारने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ विजयो वानर भी वृषा, पत्थर, पर्वत, भुक्क तथा शम्पकासे राक्षसोंको पीटने लगे ॥ ३ ॥ उधर राक्षस भी दशों दिशाओंको भुज्जते हुए धीड़े, हाथी तथा सुवर्णमयूर तथापर आरुढ़ होकर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार वानर और राक्षस आपसमें मड़ल लग । नलन धूम्राक्षकी और मारुतिने वज्रदंष्ट्रको मारा ॥ ५ ॥ तारेयुत ब्रह्मदने नरान्तकको मारा और सुपेणने महोदरका मार डाला । इस प्रकार राक्षसोंकी सेना चार भागोंसे केवल एक भाग बाकी रही और सब मार डाल गयी ॥ ६ ॥ तब अंगददि चारों बीरोने जयज्वनि करते हुए सोल्हाह बाकेगाजेके साथ रामके पास जाकर प्रणाम किया । ७ ॥ अपने सैन्यको निहड देखकर मेघनादने सर्पास्त्रसे अधिकार थाई लक्ष्मण तथा वानरो सहित रामको आकुल कर दिया ॥ ८ ॥ तब रामने गारुडास्त्रका स्मरण किया । उसने आकर उस सर्पास्त्रका निवारण किया । तब वह अमर मेघनाद ब्रह्माके वरक प्रतापसे अन्तर्धान हो गया और सभी राक्षसोंकी चलायेके कुशल इन्द्रजित् बलशित होकर आकाशसे चारा तरफ ब्रह्मास्त्र द्वारा लोगोंकी मर्मा करल लग । उस समय ब्रह्मास्त्रकी मर्मादा रसनेके लिये कधु तथा वानरो सहित राम रावणके लिए भुप हो गये । तदनन्तर जब स्वस्थ होकर रावणने निहारा तो अपनी सेनाकी





अन्तर्हितानां समाद्या दशने आपुमहवे । ततः सरोजपाथाय गच्छतः स्वयमत्रिणः ॥ ३० ॥  
 अतिनादः प्रहसन्तश्च महानाददगमुखाः । दन्तप्रवृत्तकुम्भश्च देवान्कनकान्तर्का ॥ ३१ ॥  
 सारणाद्यः धर्मेभ्यः युक्तः सन् । तान्मर्षानिगदाशस्ते हत्वा तस्यैव त्रिजिताः ॥ ३२ ॥  
 तदा कुम्भनिकुम्भैः ह्यैव कुम्भकर्गोमुनेनर्मा । रक्षणः प्रेषयामास युद्धार्थं नौ प्रजगमतुः ॥ ३३ ॥  
 तदा कुम्भो प्रमत्तवता निहतश्च रणानिरे । अगदेन निकुम्भश्च हतः शुम्भा दशाननः ॥ ३४ ॥  
 अतिकायं स्वायपुत्रं प्रेषयामास मयाम् । अतिकायेन मीमित्रिः कन्या मंगमृन्धणम् ॥ ३५ ॥  
 शरेण धानयामास लङ्कायां तच्छिखरे महत् । तदा यथा गच्छतः स स्वयं युद्धाय वेगतः ॥ ३६ ॥  
 मुहूर्त्तमत्रनर्त्यको देष्टुम् पुष्पायामभिः । रणे विमेषण दृष्ट्वा कोपाच्छक्तिं मुमोच सः ॥ ३७ ॥  
 पृष्ठे विमेषण कन्या यदाग्रं स लक्ष्मण । हृदि मर्ताडितः अक्षयः पपान भुवि लक्ष्मण ॥ ३८ ॥  
 लक्ष्मण नगरीं नेतुं न यथा स दशाननः । न च वाल्मीकिस्तस्य मीमित्रिः शेषरूपिणः ॥ ३९ ॥  
 न नेतुकामं हनुमान् हृदि मृष्ट्वा व्यपहृत्य । तेन मुष्टिप्रहारेण पपान रुधिर वसन् ॥ ४० ॥  
 आनयामास मीमित्रिं मारुतिः कपिशर्दिनीम् । ग्वाहृदो रावणाऽपि चिन्त्याम मारुते शरैः ॥ ४१ ॥  
 ततः कुट्टन सभेण बाणेन हृदि तडितः । माश्वरज रथं गतं गच्छो धनुरोजमा ॥ ४२ ॥  
 छत्रपताकां तरुणा विच्छेद शिरसायकं । प्रथमद्वेण विच्छेद तत्किराटं रविप्रभम् ॥ ४३ ॥  
 ततस्तं व्याकुलं दृष्ट्वा रामो गच्छतमवर्तमानम् । गच्छाद्य लङ्कायाश्चतः शतम् एव बल मय ॥ ४४ ॥  
 ततो लञ्जानतश्चिरा यथा लङ्का दशाननः । रामोऽपि लक्ष्मण दृष्ट्वा मुञ्चतः प्राह मारुतेय ॥ ४५ ॥  
 द्रोणाबल समर्थाय जीवयन् तथा कथान् । तथेति स रामो ब्रूवात्तं श्रुत्वा स दशाननः ॥ ४६ ॥  
 मार्थयित्वा कालमेव तद्विज्ज्ञापयन्चोदयत् । स गच्छा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत् ॥ ४७ ॥  
 तत्र शिष्यः परितृप्तो मुनिवपधरः स्थितः । मारुतिश्चाथव दृष्ट्वा जलं पानु चिवेश तम् ॥ ४८ ॥

महानाद दगापुत्र ददगपुत्र निकुम्भ, देवान्तर्क तथा कनकान्तर्क आदि मीमित्रिका भरा ॥ ३०-३१ ॥ सारणादि  
 देशोने भा बहू नर्मा मया लवर वागवर्गके साथ युद्ध किया । बहू आदि वागवर्ग उन सबको मारकर पर्वत करने  
 लगे ॥ ३२ ॥ अब कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भ तथा निकुम्भको रक्षण न युद्ध न किया जाता ॥ ३३ ॥ मुमित्र पुत्र लक्ष्मणने  
 उनके साथ यत्र युद्ध करके उनके मिराका वागम काटकर लङ्काय फाट दिया । तब राम को मर्षा लक्ष्मणके लिए  
 निजल पडा ॥ ३४-३५ ॥ उसके साथ मित्र मुहूर्त्त तथा पुष्पसे लाग भा गया । रक्षण न होने विभीषणको  
 देखकर उपर शक्ति प्रहार किया ॥ ३६ ॥ यह देखकर लक्ष्मणने विभावणको पछे कर लिया और स्वयं  
 आग स्वयं हा गया । जिससे वह शक्ति लक्ष्मणके हृदय में लगी और वे घट नसे पृथ्वपर गिर पड़े ॥ ३७ ॥ उन्हें  
 मगरम उट स के लेके लिय दशानन आग बढ़ा और उनका उठाना चाहा, पर प्रयावता स्वरु लक्ष्मणका एक  
 हाथ भा रावणसे नहीं गया ॥ ३८ ॥ उस समय अथवर दयकर हनुमान् रावणकी छात में एक मुक्का  
 मारा । उस मुष्टिप्रहारसे रावणके मुखसे रुधिर निकलन लगा और वह भरतागर गिर पडा ॥ ४० ॥ तदनंतर  
 मरुति लक्ष्मणका कोपरेभाभ उठा न आय । तब रावण रथपर स्वार होकर महतिका बगोंसे बीचन लगा  
 ॥ ४१ ॥ यह देखकर युद्ध रामने रावणके हृदयमें बाण मारा और अथव तथा ध्वजा सहित रथका, सारथीको,  
 ननुयका छत्रका तथा पताकाको नेत्र ताधेन बाणोंसे काट मिराया अथववाकर बाणसे उठान उसका सूर्यके  
 समान लम्बा किगट भा पाट डाला ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पश्चात् रावणका व्याकुल देखकर रामने कहा —जा,  
 लङ्कामें जा और आश्वस्त होकर कल फिर भरा बल देखना ॥ ४४ ॥ तब रावण नीचा मुख किये लङ्कामें  
 चला गया । रामने लक्ष्मणका मुष्टित दयकर मारुतिसे कहा — ॥ ४५ ॥ पुष्पवत् द्रोणाबल लाकर लक्ष्मणको  
 जिन्नाओ । 'तथापु' कहकर हनुमान् घट पडा । इस बातका पता लामपर दशाननने कालनमसे प्रार्थना  
 करके उसका हनुमान्के रास्तमें दिखत उठने लिय भजा । उसने मारकर हिमवत् पर्वतके पास एक तपो-  
 वनकी रचना की ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वही बहुतसे शिष्योंकी साथ लेकर वह स्वयं मुनिवेष धारण करके बैठ गया ।

मुनिना मानितमपि जरकुम्भः उद्दृष्टः । शरुतिः प्राह हस्तिर्मे देव तेन भविष्यति ॥४९॥  
 तं पुनः प्राह स मुनिस्तटाकं निकटस्थितम् । शरुतिक्षिणी विधाय त्व जलं विव यथास्तुतम् ॥५०॥  
 आगच्छाशु पुनश्चात्र सुमं निष्ठु इमां निवसम् । जानामि न नदृष्टाऽहं लक्ष्मणश्चेन्निधनस्त्विति ॥५१॥  
 गृह्णाण यत्रान् मत्सम्भवं यैत्र परपत्नि नं गतिम् । गोपितं त्वय शर्धर्वयं नं नदं नेतुमिच्छामि ॥५२॥  
 प्लवगानां जीवनार्थं लङ्कायां वेगनः कपे । मनस्व लब्धविद्यं मन ददम्य गुरुदक्षिणाम् ॥५३॥  
 तथेति शरुतिर्गन्वा कासारमपिवज्जलम् । विधाय नेत्रे तापस्वप्नवन्मकरं तदा ॥५४॥  
 सोऽपि तां दारुणामात्र धृत्वास्मे मा ममार ह । वनोऽन्तरिक्षे मा प्राह दिव्यरूपा तु शरुतिम् ॥५५॥  
 पुनर्वा मुनिना स्तुत्या प्राथिता न रतिर्मया । दत्ता समाऽस्मि त्वनो मे निष्कृतिस्तेन कीर्तिता ॥५६॥  
 धान्यमालीति विरुपक्षाऽप्यगः पूर्वं भगवतरे । प्राश्रमे यस्त्वया दृष्टः शालने मर्महामुरः ॥५७॥  
 रात्रिप्रेषितो मार्गे स्थितस्त जहि वेगतः । तथेति शरुतिर्गन्वा मुनिं प्राह त्वगान्वितः ॥५८॥  
 मुष्टिं बद्ध्वा दृढां योगां गृह्णाण गुरुदक्षिणाम् । हस्त्युक्त्वा ताडयामास हृदि न मुष्टिना नदा ॥५९॥  
 पपात भुवि रक्तं स यमन् प्राणान् जहौ क्षणान् । गतः क्षारानधि गत्वा जिह्वा ययमन्ममात्र ॥६०॥  
 शोणाचलं गृहीत्वा स चायदूच्छति शरुतिः । विहायमाऽन्त्रेमेव लङ्कां तावच्च वं पति ॥६१॥  
 भरतेन शूरं मुञ्चत्वा पर्वतो भुवि पतितः । मर्तं शरुतिर्दृष्ट्वा समोऽयमिति विह्वल ॥६२॥  
 उवाच मधुरं वाक्यं कथमत्र ममागतः । जितं किं रात्रौ न न्वं गण न्यक्त्वा पलायितः ॥६३॥  
 एवमुक्तोऽपि भगवः पुनस्त मरुतिं वरम् । मत्वाऽयं राक्षसश्चेति तदधे निशित शरम् ॥६४॥

शरुति रचनमें मुनिका जाग्रत देखकर उक्त म जल पीनेके लिए गये ॥ ४९ ॥ मुनिने शरुतिकर सम्मान  
 किया और जल पीनेके लिये उनको एक भरा घड़ा दियाया । तब हनुमानने कहा कि इतनसे मेरी तृप्ति नहीं  
 हुआ ॥ ५० ॥ तब मुनिने उन्हें एक तालाब दिखाया और कहा कि यहाँ जाकर तुम जीखेको बन्द करके  
 आनन्दपूर्वक जल पी लो ॥ ५० ॥ बादमें आकर यहाँ मर नाम शरुतिकर बैठा । मुत्र जानदृष्टसे पता लग  
 गया है कि लक्ष्मण उठ खड़ा हुआ है । इसलिए अब चिन्ताका कोई बाध नहीं है ॥ ५१ ॥ दूसरी बात  
 यह है कि मैं तुम्हें कुछ ऐसे मन्त्र पलाऊँगा कि निजने तुम्हें कम्बों डार। शक्ति बहुत पल्ल दिखलाई दे  
 जायगा, जिसका कि तुम ल जाना चाहते हो ॥ ५२ ॥ उसको लक्ष्मण से जाकर तुम बाबरोंको गोप्य जिला  
 स्केन हो । इस प्रकारकी विद्या मुमसे ग्रहण करनेक बाद तम्र पुन गुरुदक्षिणा भी देनी होगी ॥ ५३ ॥ 'दहन  
 चच्छ' कहकर शरुतिने लालाखपर जाकर जल दिया परन्तु तब वह दहनक कारण उस समय एक ककरने  
 जाकर उन्हें बकड़ लिया ॥ ५४ ॥ तब शरुतिने उसका मुँह पकड़कर चीर डाला । जिससे वह मकरी भर  
 गयी । पश्चात् वह दिव्य रूप धारण करके आकाशम चक्रा लक्ष्मिने शरी ॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें एक मुनिने  
 नृमको दुराचार करनेक लिए कहा परन्तु जब मने उन्हें रति नहीं दी । तब उन्होंने मुम मकरी होनेका काव  
 रकर कहा कि तेरा निस्तार शरुतिसे होगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्ममें मे दन्वमाली नामकी विरुपक्ष अक्षरा यो ।  
 ३० आयममें जो एक मुनि बैठा हुआ आपने देखा है, वह शालनेमि नामकी महाक राक्षस है । ५७ ॥ रात्रिने  
 उसको आपके मार्गमें बिज्ज राक्षसके लिए भेजा है । आप लक्ष्मण जाकर उसको मार डालें । 'मच्छी वात  
 है' कहकर शरुति मुन्त वहाँ पहुँचे । ५८ ॥ उन्होंने दृष्ट मुक्का बँधकर 'यह लो अपनी गुरुदक्षिणा' ऐसा  
 कहते हुए उसको छातामें बोरते मुक्का मारा ॥ ५९ ॥ उस प्रहारमें वह जर्मकार लुटक पड़ा । उसके मुँहमें रक्त  
 बहने लगा और सणघटमें वह मर गया । तदनन्तर क्षारमोवर जा तथा गन्धर्वोंको बँतकर द्रोणाचलको  
 जिसे हनुमान् आकाशमामने जा रहे थे कि रात्रिमें भरतने जाण मान्का उनके हाथमें वह पवद गिरा दिया ।  
 हनुमान् चरतको देख उन्हें अगमन सम समझकर खबर गये ॥ ६०-६२ ॥ उन्होंने मधुर वाणीमें कहा—हे  
 मम ! आप यहाँ कहसि और क्यों जा गये ? क्या आपको राक्षसने जेल लिया ? अगला रण क्षेत्रकर आप  
 यहाँ भाग क्यों हैं ॥ ६३ ॥ शरुतिक इतना कहनेपर भी भरतने उन्हें राक्षस समझकर मारनेके लिए एक

बाणहस्तं तमालोदयं ह्यभुकारं विधाय सः । नैवारं गणधधेनि मत्वा प्यात्वा क्षणं हृदि ॥६५॥  
 भर्तुं मारुतिः प्राह रामदत्तोऽद्य मे बलम् । रक्षयिष्ये त्वं तद्भिर ता भ्रुत्वा तं भरतोऽब्रवीत् ॥६६॥  
 बंधुता मयं रामेण कुतो नृप सभासमः । तव जातं मारुताय दंडकाण्यवामिना ॥६७॥  
 तत्तत्तं मारुतिर्भूतं मन्त्रावय रघवस्य तु । भरतेनेषुणा दत्तं गिरिं धृत्वा ययौ पुनः ॥६८॥  
 लङ्कां गन्वा न बह्विभिर्जीर्यामय लक्ष्मणम् । जानकांश्च भरतस्य रामं वृत्तं न्यवेदत् ॥६९॥  
 पुनर्नीत्वा यथास्थानं तं संस्थाप्य सदाचलम् । लक्ष्मणो जीवितश्चेति संभाव्य भरत पुनः ॥७०॥  
 पयासाकाशमागेण लङ्कां गन्तुं मनो दधे । नृपानाकाशायामास साकेव भरतोऽपि सः ॥७१॥  
 साहाय्यार्थं रघवस्य लकां गन्तुं मनो दधे । ततः नमोऽपामर्शिनो रावणः प्राह राक्षसान् ॥७२॥  
 गच्छध्वं त्वरित दत्ताः पानाले तौ महाबलौ । ऐरावतो महातुल्यवक्त्रा मैरावणो महान् ॥७३॥  
 तयोर्मे कथनीयं हि युद्धवृत्तं वयस्ययोः । तथेति ते गता दत्तास्ती तद्वृत्तं न्यवेदयन् ॥७४॥  
 तौ श्रुत्वा विह्वलात्मानौ लङ्कार्या समरस्थितौ । राम च लक्ष्मण इतु निशार्या तौ समागतौ ॥७५॥  
 ददधन्तुस्तौ पुरुषस्य परिधे हि हनुमनः । कर्पानां तत्र सेनायास्तदाकाशान्महाबलौ ॥७६॥  
 निपेततुः कपानां तु सेनायां रामलक्ष्मणौ । किंचिद्विनिद्रितौ दृष्ट्वा शिलार्या मगरथमान् ॥७७॥  
 निन्यतुस्तौ शिलां क्षीय पानालं भिजमन्दिताम् । एतस्मिन्नन्तरेऽपि सेनायां रामलक्ष्मणौ ॥७८॥  
 मारुतिः पादमार्गेण तयोः पातालवापरी । एतस्मिन्नन्तरे मागं लङ्कादिक्षिणदिक्कटे ॥७९॥  
 त्रिकुम्भिलार्यां स्वपतिं कपोतीं प्राह सुरिणो । नाथाय नमोऽस्य मे भोक्तुं स्पृहयते मनः ॥८०॥  
 स प्राहाय समानीतौ वर्तते रामलक्ष्मणौ । रमानलं हि दत्ताभ्यां देव्यग्रैर्नो वधिष्यतः ॥८१॥  
 अथ श्वस्तद्वये जाते माममानीय तेष्वप्ये । तदाकथं मारुतिः श्रुत्वा किंचित्तोषयुनो ययौ ॥८२॥

और तेज बाण अनुपपर बहाया ॥ ६४ ॥ उनको हाथमें बाण लिये उस मारुति भू भू करके मनमें यह सोचकर कि ये राम नहीं है ॥ ६५ ॥ भरतसे बोल कि 'हे रामका दत्त है । आज तुम देख लो ।' उनका यह वारय मनकर भर्तन कहा ॥ ६६ ॥ दण्डकाण्यवामो मेरा भाई रामके साथ नम्रहान समानण कहा हुआ ? सो विमता पूर्वक कहो । तब मारुति भरतका सब हा मुनकर भरत द्वारा दिये हुए उस पर्वतको पूरा उठाकर चल गये ॥ ६७-६८ ॥ लङ्का में जा तथा मरिचोग लक्ष्मण तथा जानकां जीवित करके उन्होंने रामको भरतका समानार नष्ट मवाया ॥ ६९ ॥ फिर उन्होंने तै जाकर दण्डका की दुमके स्थानपर रत्न आय जीत भरतको लक्ष्मणक जीवित हो उठना शुभ समाचार भी सुना दिया ॥ ७० ॥ उनका काम करके हनुमान पुन वही नेत्रोंके साथ लङ्का में लोट आये । तब भरतन अर्ध दाम सब राजाओंको एकत्र करके तनुम जाकर रामको सहायता देनेका विचार किया । तभी सभाम में रावणने भा रामकोका वृत्तकर कहा- ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ हे दत्त ! तुम सोम कीश पातालमें जाकर वहाँ रहनेवाला महान् उग्र ऐरावण तथा महात् महारावण इन दोनों मेरे मित्रोंका मदक युद्धका समाचार जाना ॥ 'तथागत' कहकर बहुत वहाँ गये और उन दोनोंको सब धृत्वा लिवकर कर दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ यह सुनकर वे दोनों बड़ी अनुरक्तता साथ लङ्कामें आ पहुँच और रात्रिके समय रामलक्ष्मणका हुरा करनेके लिय रामक आनन्दम भये ॥ ७५ ॥ वहाँ सब दोनोंने जानकीकी सेनाके चारों ओर हनुमान्को पू डका बना हुआ दृष्टि परिध दखा । सब महाबलान् उर दत्ताने आकाश मागेसे कूदकर कर्पियोंका सेनासे प्रवण किया । वहाँ रामलक्ष्मणको एक शिलापर युद्धभूमि सेकर सोन हुए देख उन दोनोंने उस शिला समत रामलक्ष्मणका गहा लिया और पानालमें ले गये । रास्तेमें लङ्काके दक्षिण किनारे त्रिकुम्भिला गुफामें स्थित एक गणवता कपोलिका अपने पतिसे कह रही थी कि हे नाथ ! आज पुनो नरभास सानेकी इच्छा हो रही है ॥ ७६-८० ॥ पतिने कहा-आज दो दत्त रामलक्ष्मणकी रसातलमें ले जाये हैं । ये दोनों देखीके सम्मुख मारे जायेंगे ॥ ८१ ॥ कल उनका वध हो जानेपर मैं

नावददृशं तद्द्वारि संस्थितं मकरध्वजम् म धृत्वा तं हनुमन्तं पश्यन् मकरध्वजः ॥८३॥  
 कम्बं कुतः समावातः स्ववृत्तं प्राह मारुतिः गमदूतम् लङ्कायाश्चार्जनीं रामलक्ष्मणौ ॥८४॥  
 निद्रितौ निशि दैन्याभ्यामत्र पातालमद्य हि । तयोः शोधार्थमायातयेन्न वेन्मि वदस्व तौ ॥८५॥  
 तन्मारुतिवचः श्रुत्वा न प्राह मकरध्वजः । पिता मे चनेत्रे तत्र भेदेर्णाजनिस्संभवः ॥८६॥  
 मत्तुल्या चकितः प्राह हनुमान् मकरध्वजम् । हनुमतः कुतः पत्नी नोऽब्रवीन्मारुति पुनः ॥८७॥  
 यद्वादाहं पुरा कृत्वा सागरे शनिलं कृतम् । यदा पृच्छं मारुतिना तदा तद्रूपमिदम् ॥८८॥

कठाल्लेभ्या बहिर्द्वयकः सागरे सोऽपतनदा ।

मरुर्वा मक्षिनः सोऽपि तस्यां जातः सुतोऽस्यदम् ॥ ८९ ॥

मत्तुल्या मारुतिः प्राह सोऽयमेव न संशयः । तदा ननाम पितरं तथा वृत्तं न्यवेदयत् ॥ ९० ॥  
 कामाख्या वलिं कर्तुं निधितौ पूर्वमेव हि । तत्रानेन यदोद्युक्तं तद्गुं गन्वा सुगेतयो ॥ ९१ ॥  
 यः कामाख्याः पुनः कर्तुं नयोर्दानं विनिधितम् । गच्छ देवालये गन्वा तत्र स्थित्वा हाम्ब तौ ॥ ९२ ॥  
 ततः स मार्गतिर्गत्वा प्रमरणुध्वरूपयुक् । देवालये प्रविश्याथ कषायानि स्वध मः ॥ ९३ ॥  
 नावदैन्यौ मरायानी पूतार्थं द्वारि मस्थितौ । शनैर्देव्याः स्वर्णैव मारुतिम्नौ वचोऽब्रवीत् ॥ ९४ ॥  
 पूजा कार्या मयासेन मतीरौ गमदक्ष्मणी । वनोद्भवः फलं पुष्पादिभिः सम्पक् प्रपूजितौ ॥ ९५ ॥  
 वृनकोटण्डदूर्गांगी वन्यगुप्पैश्च शोभिनी देवालयस्य किञ्चिद् द्विद्वारमुद्वाह्य वै शनैः ॥ ९६ ॥  
 मनुष्यैर्ध्वं प्रेषणीयात्तत्र मामद्य मानवी येन केन प्रकारेण यो मामद्य प्रपश्यति ॥ ९७ ॥  
 मविष्यति निधवेन मे ऽधो नाभ्येव संशयः । तदेवमवचनं श्रुत्वा तहां गन्वाऽम्बिकां मुदा ॥ ९८ ॥

नर निर नरमाम ला हुवा । इस बातको सुनकर मारुति कुछ समुद्र तक आगे बढ़े ॥ ८२ ॥ आगे जाकर उन्होंने उसका द्वारपर मकरध्वजका बड़ा दान । उस मकरध्वजका मारुतिका बकड़ लिया और पूछा—॥ ८३ ॥  
 तुम कौन हो और कहीं आये हो ? मारुतिने अपना परिचय दिया कि मैं रामका दूत हूँ । सोते हुए राम-लक्ष्मणको लङ्कासे दूर दक्षिण तक ले जाकर यहाँ पातालमें अज ही ले आये है । मैं उन दोनोंकी खोज करने यहाँ आया हूँ । यदि तुमको उनका कुछ पता हो तो बताओ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ मारुतिके इस वचनको सुनकर मकरध्वजने पूछा कि मेरी पिता अजयनीक्या हनुमान् वही कुण्डलोमें है ? ॥ ८६ ॥ यह सुना तो हनुमान्ने चकित होकर पूछा—अरे हनुमान्की स्त्री ही कौन सी थी कि जिससे तु पैदा हुआ ? उसने मारुतिको उनसे कहा—॥ ८७ ॥ उस हनुमान्ने उवाची जाकर अपनी पत्नी मुद्रम-लक्ष्मी की थी । उस समय उन्होंने तुम जमा हुआ बच्चा निकाल कर जन्म पृथ दिया था । उसे एक मच्छराने ला लिया । वस, उसीसे तुम्हारे पैरों में उसका गुंथ है । ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ यह सुनकर मारुतिने कहा कि यदि ऐसा है, तब तो मैं ही अजयनीगुंथ हूँ । यह बात सच्चा सत्य है । तब मकरध्वजने अपने पिता हनुमान्को प्रणाम किया और सब समाचार भी कह-नाया ॥ ९० ॥ उसने कहा कि जब वे दोनों असुर महर्षि राम-लक्ष्मणको लङ्का लिये लका गये थे, उससे पूर्व ही उन दोनोंने राम-लक्ष्मणको कामाक्षी देवीके सामने बलिदान देनेका प्रस्ताव कर लिया था । तदनुसार कल उन दोनोंका देवीक सम्मुख बलिदान देना निश्चित हो चुका है । तब, देवालयमें जाकर खड़े हो जाओ और वहाँसे उन दोनोंको उठा ले जाना ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ तत्पश्चात् मन्नाद् ग्रहराके समान स्रष्टा रूप धारण करके देवालयमें घूम गये तथा बन्दर आकर बुधबाप लड़े गये । उनी समय मारुतिने भीतसे खोले जैसा स्वर बनाकर कहा—॥ ९३ ॥ ९४ ॥ बाबू तुम कौन हो ? मैंने तुम्हें ही भोगे पूजा कर ली और बादमें धनुष तथा तूणीरकी धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण नामके लोग मनुष्योंको बन्धक तथा फल और पुष्पमालासे सुगोभित करके जीवित ही मेरी देवालयके लिए तनिक-सी निवाह सोलकर चोरते चोरते कर ली । कोई मनुष्य परि धात्र कभी प्रकार तनिक भी मुझको देखेगा तो वह अवश्य मर जायेगा । देवीके इस आदेशको

वनभौ पूजनं दैन्यौ गवाक्षेणैव चक्रतुः । पकाभपायसादीनां राक्षसीन् प्रमुषोचतुः ॥१९॥  
 ग्रंथामृतपटांश्चापि कोटिशस्त्रौ मुमोचतुः । कोटिशः फलमारैश्च गवाक्षेण मुमोचतुः ॥१००॥  
 तन्मर्व मक्षयित्वा स मारुतिः प्राह नौ पुनः । किं दत्तं ग्रसमात्रं ये भोजनं क्षुधिनाऽऽम्बरम् ॥१०१॥  
 ददंष्या वचनं श्रुत्वा तौ दैन्यावनिस्मितौ । दूतैर्वलुश्च हडाश्च तथा स्त्रीयपुरोकमाप् ॥१०२॥  
 मक्षणीपवदार्यान्तौ गिरिनिव मुमोचतुः । राजगृह दिषु स्वेषु यद्यदस्त्वस्मि मंचितम् ॥१०३॥  
 तथापि दूतैर्गनीव देव्यं क्षीयं मुमोचतुः । तदा कोलहलआसीन्प्रतिगेहे पुरोकमाम् ॥१०४॥  
 रामोऽप्येव बालकानां मक्षयवस्त्वप्यपि कश्चिद् । ततस्तौ वन्यपुण्याद्यैर्मृषिनौ रामलक्ष्मणौ ॥१०५॥  
 धनकोदंडनूतंगे द्वारेणैरारिनी भ्रिये । तौ दृष्ट्वा मारुतिर्नन्वाऽऽलंग्य श्रीगमनलक्ष्मणौ ॥१०६॥  
 कपाटानि तदोक्त्या दैन्ययोः स प्यनजंयन् । ततो रामो लक्ष्मणेन बहिर्द्वालयात्तदा ॥१०७॥  
 निर्गत्य श्वजालेस्त्रौ जपान क्षणमावतः । सेनकान् सुहृदादींश्च तयोवाणेर्जपान सः ॥१०८॥  
 पुनस्तौ जीवितौ दैन्यौ पुनश्चेन निषानितौ । शतवारं हतावेव नामीन्मृत्युमयोमदा ॥१०९॥  
 ततोऽनिविस्मिनो भूत्वा त्वरन्गन्वा स मारुतिः । इतस्तनो भ्रमन्पूर्या नारी रहसि सन्धिनाम् ॥११०॥  
 ऐरावतभोगपत्नीं पप्रच्छ मरणं तयोः । सा प्राह नागकन्याश्च क्लेनानेन धर्षिता ॥१११॥  
 मैरावतोऽपि सां नित्यं दुष्टबुद्ध्याश्च पश्यति । उभाभ्यामपि च कौडां दानं नास्ति बलं मयि ॥११२॥  
 मित्रं त्वेको विपुस्त्वेकस्त्रिति दःस्तं तयोर्मम । अनस्तयोर्वधे तुष्टिर्मम वापि मविष्यति ॥११३॥  
 मारुते यदि रामो मां स्वस्त्रियं हि करिष्यति । तर्हि कथयाम्यद्य तयोमृत्युर्पतो भवेन् ॥११४॥  
 तच्छ्रुत्वा मारुतिः प्राह यदि श्रीगममारतः । न मविष्यति ममस्ते मचकस्तर्हि ते पतिः ॥११५॥

मुनकर दोनों देवोंने समझ लिया कि आज देवी भक्तों की प्रति हुमण्डल मस्तन हुई है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ बादम  
 दाने गवाक्षभांसे ही देवाका पूजन किया । बतागे, मिठाई, मा-पूए तथा खीर आदि भी भगवत्से  
 भीतर डाल दिया ॥ ६६ ॥ करोड़ों पञ्चायतके घरे मन्दर डंडने और करोड़ों फलोंके डेर वहीसे भीतर  
 डाल दिये ॥ १०० ॥ वह सब खाकर मारुति कुतः उनसे कहने लगे—क्या तुमने कवलमात्र भोजन दिया  
 है । मैं तो अभी बहुत भूखी हूँ ॥ १०१ ॥ देवीके इस वचनकी मुनकर के दोनों दैत्य बड़े विस्मयमें पड़ गये  
 और अपने दूतों द्वारा दुकानोंका माल तथा नगरवासियोंके सब खाद्य पदार्थ मृगवाकर उसके पर्वतमहा  
 डेरको भीतर डाल दिया । अपने राजगृहमें भी जो कुछ खानेपीनेकी चीजें संचित कर रखी थीं, वे  
 भी नीकरोसे मंगवाकर देवीको समर्पण कर दीं । इसमें पुरवासियोंके प्रत्येक घरमें बड़ा भारी कोलाहल  
 मच गया । बच्चोंको खानेके लिए भी कहों कुछ नहीं बचा । तदनन्तर कोदण्ड ( वलुष ) तथा सूगौर ( तरकस )  
 धारण करके हुए रामलक्ष्मणकी धम्प पुण्यांसे पूजा करके द्वारके राल्ने वीरमें देवीको मर्षण कर दिया ।  
 उन्हें देखकर मारुतिने नमस्कार किया और उन दोनों हनुमान्को हृदयसे लगाया । अब हनुमान् किबाड़  
 कोलकर बाहर आये और उन दोनों दैत्योंको ललकारा । बारम्बार म-लक्ष्मण भी देवानयसे बाहर निकल  
 आये और उन्होंने गरसबुदायकी वर्षा करके उन दोनों राजसोंको क्षणभरमें मार डाला । १०८—१०९ । पर  
 वे दोनों राखल फिर जी गये । रामने फिर उन्हें मारा तो फिर जी गये और फिर मारा । इस प्रकार उन  
 दोनोंको उन्हने सौ बार मारे । परन्तु उनकी मृत्यु नहीं हुई ॥ १०९ ॥ तब चकित होकर भावति उनकी मृत्युके  
 उपायकी कांजमें हथर-उधर भ्रमण करने लगे तो नारीके एक एकान्त स्थानमें स्थित ऐरावतकी भागपत्नी  
 ( गवत् ) को देखा और उससे उन दोनोंके मरणका उपाय पूछा । उसने कहा कि मैं एक नागकन्या हूँ । मेरे  
 साथ ऐरावतने कन्यात्कार किया है ॥ ११० ॥ १११ ॥ वैरावण भी मुझे कुदृष्टिसे देखता है । इन दोनोंको रतिदान  
 देनेकी सामर्थ्य मेरेमें नहीं है ॥ ११२ ॥ एक मेरा मित्र है और एक मनु है । पर उन दोनोंमें मुझ दुःख ही  
 मिश्रता है । अतः इन दोनोंके मारे जानेपर मुझको तो आनन्द ही होगा ॥ ११३ ॥ किन्तु हे मारुते ! यदि राम  
 मुझे अपनी स्त्री बतावे तो मैं वह उपाय बतावा सकती हूँ, जिसमें कि वे दोनों मारे जा सकें ॥ ११४ ॥ यही

भविष्यति गमचन्द्रश्चक्षेयुक्त्वा तमाह मा । अमगनकदा पूर्वं चालेः कटकगोपितान् ॥११६॥  
 मोचयामासतुम्ही हि तेन तुष्टाश्च पटवदाः । तावचुस्ते युशब्धं त्रि मग्णाद्रक्षितं वयम् ॥११७॥  
 यथा तथा युश चापि त्वायो मग्णाद्वयम् इत्युक्त्वा ते मित्राश्चात्र ते नीत्वाऽमृतमृतमम् ॥११८॥  
 तद्रक्तविदून् स्पृष्ट्वा ते प्रकुर्वन्ति मनीषिणो । अमगन्ते तयोर्निद्रास्थाने मन्यधुना कपे ॥११९॥  
 कोटिशुभान्महर्षय मोऽपि तान्महर्षयान् । तत्रैकं शरणं प्राप्य अमरं माह मारुतिः ॥१२०॥  
 कुरु मन्त्रकर्म मयं यत्तु भुक्तकविन्दुम् । तेषां भोगपत्न्याः पदपदोऽपि तथाऽकरोत् ॥१२१॥  
 ततो निहन्त्य तो दैत्यो पुनर्वर्णं गृह्णहः । अर्धिपितृ तयोः क्वान्ते राज्ये त मकरध्वजम् ॥१२२॥  
 यावद्गन्तु मन्त्रकं तावन्मरुतिनाऽर्धितः । नगकन्यागृहं गन्वा नानाविश्वविचित्रितम् ॥१२३॥  
 दृष्ट्वा तां वारुणदत्तां वरुणदत्तांमण्डिताम् । शृवा करेण तद्रक्तं किञ्चिन्मृत्वा स्मिताननम् ॥१२४॥  
 यक्षश्च मन्त्रकं भग्नं स्वयंभवेन गृह्णतः । तनयनया प्रार्थितः स रामश्चो पुनश्च वीत् ॥१२५॥  
 त्यक्तवा देहं भुव गन्तु भूया ब्राह्मणकन्यका । तद्वद्व्या चिरं कालं तृतीये न्व त् जन्मनि ॥१२६॥  
 द्वापरे द्वापकयां हि मय पत्न्यां भविष्यति । तद्रामचक्रं धृत्वा रामाग्रेऽग्रे प्रविश्य सा ॥१२७॥  
 कन्याकुमारी नाम्नायां तृदिवकन्याऽदिभोगेभ्यः । मारुतेः स्मृधपत्न्याऽभूत्तदा गमो मुदान्वितः ॥१२८॥  
 राज्ये कृत्वा मन्त्रिणं च लक्ष्मण मकरध्वजः । अकरोत्तं स्मृधपत्न्यं श्रेयं अन्त्याण्डधारकम् ॥१२९॥  
 ततः क्षणात्तुष्टां तुम्ही लंकां भोगमलक्ष्मणा । भोगमलक्ष्मणा दृष्ट्वा गुर्याशयांश्च गतवाः ॥१३०॥  
 नावातिथ्यं मुहुनन्वा रभून्मोऽपूरिता । गमोऽपि सकलं वृत्तं मुप्राशदीन्यवेदयन् ॥१३१॥

एतत्परं मरुतिने कहा कि यदि भोगमलक्ष्मण राज्य कुशाग्र गन्तु तत् तदा ना राम तुष्टारे पति वर्गे ॥११५॥  
 एवं 'तुष्टां' कहकर उसने कहा कि पूर्व समयमें एक बार य. ५० क. ६०। काटकर व्यापित अमरीको  
 त्त तेषां भोगपत्न्याऽमृता दिता था । इसमें मनुष्य होकर उन अमरीको उन क्षाम कता कि मुझ दाना  
 ने हम लोकांका मनसे बकाश है ॥११६॥ ११७॥ इत्यदि वेस भा होगा, हम तुम दोनोंकी मृ-तुमे रवा  
 करगे । इतना कहकर वे सब भेवर वहीं रहने लगे । वह, ये भेवर ही हम समय उलभ अमृत लाकर  
 हमका विन्दुओंसे इस दोनोंके रक्तके मग्न करके वायस्व त मजीव का दिया बरन १ । इत्य 'व भेवर अनी  
 ओ उन दोनोंके मन्त्रकहोम विद्वान् है ॥११८॥ ११९॥ वे कन्याका मन्त्राह है । तुम इह माय दाना ।  
 तत्त कथनान्तरा इत्युक्तान्ते उकर सणभगमे उन सब भेवरीको मार दाना । उनमें शरणन व य दृष्ट एक  
 दैव्यम माहतिन कहा - ॥१२०॥ तुम जाकर गणवगता भोगपत्न्य, क पल्लवका भानमय लकर दायक द्वारा  
 गण दुर कंधेकी मन्त्र बन्दर हो अ-दग्मे लक्ष्मणा कर हो । रवेरेमे वेसा ही निग ॥१२१॥ वादम राम-  
 कन्दने वाणसे उन दोनों राजका को मार दाना और उनक स्थानमें गजरासनाय मकरध्वजम् अभिविष्ट कर  
 दिया ॥१२२॥ इतना करके उन्हीने इस ही बहोने कन्दके नीरारी की, यो ही मरुतिने रामसे प्रार्थना का कि  
 शप नागकन्यके घर चलकर भक्त चित्र विचित्र माता देखे ॥१२३॥ मन्त्रो तथा मन्त्रद्वारांमे मण्डित मुन्दर  
 नृववाली इस कन्याका हाथ पकड़े तथा कुछ हेमकर उसक पल्लु कर कैडकर अपने भारसे उसक पल्लुको तोड  
 डाले । यह सब कर लेनेके बाद इस कन्यासे प्रार्थित रामने उनसे कहा- ॥१२४॥ १२५॥ तू इस दहको छोड-  
 कर पृथ्वीपर जा । जहाँ ब्राह्मणकन्याना शरीर धारण करके बहुत कालक तप कर-के बाद तामने जन्म तथा  
 दानक युगमें तू मेरी पत्नी बनगी । रामके सुन्दर तथा मधुर वाक्यके, सुनकर वह रामके साधन ही अग्निम  
 उल कर गयी ॥१२६॥ १२७॥ जन्मान्तरमें वह क-शकुमारी नामकी द्विवक्या होकर पृथ्वीपर उत्पन्न हुई ।  
 जब राम मरुतिके कन्देपर प्रसन्ननाम्नक आकृष्ट हुए ॥१२८॥ मरुतिनेतन भकरध्वजन भी अपने राजका  
 पत्नी मन्त्रीको सौध दिया और कन्त्याण्डकी शरण करनेके बादके अवतारस्वरूप लक्ष्मणको अपने कंधेपर  
 बैठा लिया ॥१२९॥ इस प्रकार दोनों भाई राम-लक्ष्मण क्षणभंग्य लड्डा जा पड़े । श्रीराम तथा लक्ष्मणकी  
 स्तनकर गुणोच मोहि सब जानर यह प्रसन्न हुए और बारम्बार भालिङ्गन तथा प्रणाम करने लगे । रामने श्री

दैन्यौ रामेण निहन्तौ ध्रुत्वा सदासि रावणः । गक्षमाश्चक्रिन् प्राह पूर्वकृतं मयान्वितः ॥१३२॥  
 मानुषेणैव मृन्मये छाह पूर्वं पितामहः । अतो नारायणः मांश्चान्मानुषोऽभून्ममंशयः ॥१३३॥  
 रामो दशरथिर्भूत्वा मां हतुं समुपस्थितः । यदाऽनरण्यः पूर्वं हि मम हन्तौ दीक्षितो मया ॥१३४॥  
 शमश्च तदा तेन क्षयवशोऽहमेव हि । उत्पन्नमेव मम शत्रुं परमात्मा सनातनः ॥१३५॥  
 ममैव त्वां पुत्रपौत्रवर्धनं नन्दनिष्पन्नं । इत्युक्त्वा मम मया नाकं योऽभुत्वा ममयो मम ॥१३६॥  
 भ्रमराग्नौ गधयो मां समरे मम हनिष्यति । शिरोऽथ कुम्भकर्णं तमानयध्वं त्यजान्विताः ॥१३७॥  
 वतस्ते तां गुहां गन्वा वच्छासेन विकर्षिताः । यानायाते प्रचक्रन्ते कुम्भकर्णोदरे मृदुः ॥१३८॥  
 तदेकत्र बाहुपार्श्वेन कृन्वाऽथ गक्षमाः । गन्वा तदनिर्गम्यन्ता निजस्तुम्न दुर्गैः पदैः ॥१३९॥  
 शिलाभिस्ताडयामासुश्चाश्वैरुर्ध्वचूर्णयन् । काष्ठभारैर्बहादाह देहे चक्रुर्बाह्वया ॥१४०॥  
 तदा प्रबुद्धोत्थाय सूकरान् महिषान् वगन् । कोशिशः स्वमुखे भिष्यत् जलवापीर्निशोप्य सः ॥१४१॥  
 गन्वा नन्वा राक्षसेन्द्रं बोधयामास रावणम् । एकदाऽहं वनं गत्वा हृष्टा तं नारदं मुनिम् ॥१४२॥  
 पृष्टवांस्त्वं कुत्र यामि कुतश्चागमनं कुतम् । मम प्राह देवलोकादयोध्यां प्रति गम्यते ॥१४३॥  
 रावणादीन् स्थे हतुं विष्णुर्जानोऽत्र मानुषः । देववाक्यान्वर्गयितुं रामं मन्त्राभ्यहं जयान् ॥१४४॥  
 इत्युक्त्वा मां गतः सोऽथ प्रेषयामास रावणम् । इति श्रुत्वा मया पूर्वं तवाग्रे तस्मिन्नेदिनम् ॥१४५॥  
 अतोऽप्येवाद्यं गमय सीतां स्वस्थं कुरु प्रभो । इति तद्वचनं ध्रुत्वा रावणस्तं यचोऽनवीत् ॥१४६॥  
 निद्राव्यामेऽक्षिणी तेऽथ गच्छ निद्रां मुखं कुरु । तद्वधाः क्रुधवचनं ध्रुत्वा नन्वाऽथ रावणम् ॥१४७॥

वहीना रावण रावणाचार मुख्य कर्तिकी कह सुनाया । १३० ॥ १३१ ॥ उपर भर। सभाय रावणने जब ऐ। रावण  
 तथा मंगवणकी ध्रुत्वा रावणाचार मना तां घटराकर मयभात भावनं अयना पदवृत्तान्त राक्षसोस कहने  
 लगा ॥ १३२ ॥ उसने कहा कि पितामह यद्वाने मुझे पहचने हैं यह मन्त्रा है वि तंग भरण मनुष्यके द्वारा  
 होगा । इसमें शक होता है कि ये राम स ज्ञान नारायण ही मनुष्यरूप धारण करके आये हैं , इसमें संदह  
 नहीं है ॥ १३३ ॥ इन रामने मुन नारदके लिए हां दशरथपुत्र अवतन स्वाकार किया है और यहाँ आकर  
 उपस्थित हुए हैं । जब मैं पुत्रवत्सल्य ( दीक्षाको प्राप्त या मन्त्रद्वयनिरत ) अनरण्य नामके सुदक्षणी  
 राजाका मार डाला था । १३४ ॥ उस समय राजने मुझे शाप दिया था कि मेरे वंशज सनातन पुरुष  
 परमार्थमा उपजल हूँ ॥ १३५ ॥ वे तुम्हें पुत्र पौत्र तथा वाचवो सहित मारेंगे । इतना कहकर रावण  
 स्वर्ग चले गये । बरा, अब वहाँ ममप आ गया है ॥ १३६ ॥ राम मुन समरम अवश्य मारगे तुम्हें  
 आकर शीघ्र भू-भरणको भणकर यहाँ ले जाओ ॥ १३७ ॥ वाचमव सब जब उस गुफामें गए, जहाँपर  
 कुम्भकर्णका मारा था । तब तो उसके लम्ब तथा धन्वान् ज्वायमें आनर्पित हुँकर वे सब वग्न-वार उसके  
 गेटमें आने जाते रहे ॥ १३८ ॥ यह देखकर वे बड़े चकराये और एक एक से धिल तथा बाहुबलका आश्रय  
 लेकर किसी प्रकार उसके शरीरके पास पहुँचे । वहाँ जाकर इतने हुए वे रातो तथा पड़ोस पाटकर उसे  
 जमाने लगे ॥ १३९ ॥ तबपर बहूतरे पत्थर फट पाड़े तथा अट्टासे चुचकवाया, पर उसकी नींद नहीं टूटी ।  
 तब राजापां आग स उसपर बहुतस लकड़ीक डर डालकर जलाने लगे ॥ १४० ॥ तब वह किसी प्रकार उठा  
 और कनोडो सुअर तथा भाट-भाट भैंसाका साथ तथा जलपान करके उसने एक आवलीको मुखा दिया ॥ १४१ ॥  
 तबश्चा वह राक्षसेन्द्र रावणके पास गया और समझाकर कहने लगा कि एक बार मे वनमें गया था । मैंने  
 वहाँ नारद मुनिको देखकर पूछा- ॥ १४२ ॥ है महु मुने ! आप कहींसे आये और कहाँ जा रह है ? उन्होंने कहा  
 कि मैं देवलाकसे अवध्या जा रहा हूँ । १४३ ॥ वहाँ रावणादिको मारनेके लिए साक्षात् नारायण अवतरे  
 हैं । उन भगवान् रामको देवताओंक कथनानुसार जन्म करीया स्मरण करानेके लिए मैं योसे आ रहा  
 हूँ । १४४ ॥ इतना कहकर वे चले गये । उन्होंने ही रामको भेजा है । इस प्रकार जो मैंने सुना था, सो कह  
 सुनाया ॥ १४५ ॥ इसलिए तुम सीता रामको सम्पण करके वनमें भिषता कर लो । यह सुनकर



[illegible]

हनुष्का स्मरितं गन्धा मेघनादो निकुम्भिलाम् । रक्तमाल्याभारधरो हननापोपचक्रमे ॥ १६६ ॥  
 स्थूथं दिव्यशस्त्रार्थं जयार्थमभिचारकैः योगिनां वृष्टाघोभृष्टा गुहायां सन्धिनो रहः ॥ १६६ ॥  
 तोयानिलानलव्याघ्रमर्षराक्षसकटकैः आत्मनः पणितः कृत्वा पारिधानं सप्त दुर्गेमान् ॥ १६७ ॥  
 होमकुण्डाध्वतः सर्पवद्भवा कृष्णमधोमुखम् । रक्तपुष्पांवरधरो रक्तचदनलेपितः ॥ १६८ ॥  
 रक्तपुष्पाभरा गुह्या सर्पवधनेच्छाभिः । सर्दिगम्रपलाशोदुम्बरभल्लानकास्थिभिः ॥ १६९ ॥  
 समिद्धमोषमोषादिभल्लानकफलैरपि । अकृतिवचाजपूरकृष्णधनुर्गोचरैः ॥ १७० ॥  
 अपामर्गवदरिकानलदालकबधूकैः । नरमुंडः समामैश्च विभीतकफलादिभिः ॥ १७१ ॥  
 सर्पपटं च मण्डूकस्वरदंतस्नायुलोमभिः । नानावनचराणां च भार्मरपि समन्त्रकम् ॥ १७२ ॥  
 इत्थं चकार होमं स निर्माण्य नयने रहः । विभाषणीऽपि तं दृष्ट्वा होमभृष्टं मयावहम् ॥ १७३ ॥  
 प्राह रामाय सकलं होमार्थं दुरात्मनः । समाप्यते चेद्दोमोऽयं मेघनादस्य दुमतः ॥ १७४ ॥  
 स चाजस्यो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः । अतः श्लाघ लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम् ॥ १७५ ॥  
 यस्तु द्वादश वषाणि निद्राहारविवर्जितः । तेनैव मृष्ट्यानादंष्ट्रा जहाणाऽस्य दुरात्मनः ॥ १७६ ॥  
 लक्ष्मणोऽयं यदाऽयोध्यापुर्यास्त्रामतुर्निर्गतः । तदादि निद्राहारादाम्र प्राप्तः स रघूत्तम ॥ १७७ ॥  
 सेवार्थं तव गजेन्द्र शार्तं मयामदं मया । तवा रामातथा गन्वा लक्ष्मणेन विभाषणः ॥ १७८ ॥  
 हनुमत्प्रमुखैर्वीरैर्यथैः सर्वदा हृतः । लक्ष्मण दर्शयामास होमस्थानं निकुम्भिलाम् ॥ १७९ ॥  
 अङ्गदस्कंधपाकृष्टं बहुयस्त्रेणाश्व कंटकान् । उदालयामास सीमात्रजघान राक्षसाच्छरैः ॥ १८० ॥  
 गारुडास्त्रेण सर्पाश्च पर्वतास्त्रेण दाहूणः । अनलं श्वातमकरोत्पञ्चन्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥ १८१ ॥  
 प्राशयामास हनुमाननिलं क्षणमाश्रितः । जलं संशोषयामास वायव्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥ १८२ ॥

मेरा थल दख ॥ १६४ ॥ इतना कहकर मेघनाद नुरन्त निकुम्भिला नामकी पञ्चमो गुफामें गया । वहाँ लाल  
 फूलाकी माला तथा लाल यस्त्र धारण करके वह हवनकी तयारी करने लगा ॥ १६५ ॥ दिव्य रथ, दिव्य अस्त्र  
 तथा अजलाश्व लिए अभिचाराक्रिया करनेका निश्चय करके वह गुफाके भीतर सांगीर्जाकटक पास एकान्तमें जा  
 बैठा ॥ १६६ ॥ उसने वहाँ अपने सुरक्षाके लिये अग्नि जल वायु सिंह सप्त राक्षस तथा कांटोमें मगने पागो और  
 सात दुर्गे बना लिये ॥ १६७ ॥ होमकुण्डके ऊपर भागमें अधोमुख करके एक बाला सर्प बाँध दिया । तदनन्तर  
 रक्त पुष्प तथा रक्तावर धारण करके कराराम रक्त वन्दन लगाया ॥ १६८ ॥ लाल फूल, अदोह, गुजा, सन्तो,  
 चन्दन, ईल, बेर, आम पलाश तथा मलयवका लकड़िये, समिधा, उई, मास, भल्ल तककी गुठली, आक, नम,  
 मोक्षपूर, कृष्ण घनुरा नैऋ, चिचिडा, वर, चित्रक, दालक, बधूक, नरमुण्ड, चरवा, विभीतकफल, सर्पसण्ड,  
 मण्डूक, चर्म, दांत, स्नायु, आत, मर्म तथा नाना वनचरोके भास आदिस दसने मन्त्राञ्जनापूर्वक एकान्तमें  
 हवन प्रारम्भ कर दिया । सहसा विभाषणने होमके प्रधानके घूँकी उड़ने देखा ॥ १६९-१७३ ॥ तब उन्होंने  
 रामसे कहा-दर्शिये, उस दुरात्मान ने होम प्रारम्भ कर दिया है । यदि उस द्रुवुद्धि मेघनादका होम निर्विघ्न  
 समाप्त हो गया तो फिर ह राम ! वह दैत्यो तथा दक्काग्राम भी अगेय हो जायगा । इसलिए श्रीम  
 लक्ष्मणके द्वारा मैं उसका मरवा दूँगा ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ जो मनुष्य बारह वर्षतक निद्रा तथा आहारस रहित  
 रहा हो, उसीसे सहजान मेघनादकी भृशु कहाँ है ॥ १७६ ॥ लक्ष्मण जब अधोऽध्यासे निकले है, तबसे निद्रा  
 तथा आहार त्यागकर इन्होंने आपका सेवा की है यह मैं मन्त्रा मूर्ति जानता हूँ । पञ्चान् रामकी आज्ञासे  
 लक्ष्मण तथा हनुमान आदि वीर सनापतियोंका साथ लेकर विभाषण वहाँ पथ और लक्ष्मणकी निकुम्भिला-  
 का होमस्थान बताया ॥ १७७-१७९ ॥ वही जाकर लक्ष्मणने अङ्गदके कन्धपर सवार होकर अग्निबाणसे  
 कांटोको जलाकर राक्षसोंकी मार डाला ॥ १८० ॥ उन्होंने गारुडास्त्रसे सर्पों तथा पर्वतास्त्रसे दांतवाले  
 सिंह आदि जन्तुओंका समाप्त कर दिया । उन्होंने मेघास्त्रसे अग्निकी शान्त किया । हनुमानने लगभरमें

परिषेच्यपि नष्टेषु तत्राट्टा गिरोः स्थलम् । यथाबुन्वाटितु कोधाद्बुभान्वोगिनीवटम् ॥ १८३ ॥  
 तदा तं दर्शयामास वटस्थां योगिनीगुहाम् । गुहापिधानपपाणं हनुमान्वादघट्टनः ॥ १८४ ॥  
 चूर्णीकृत्य गुहामध्यं मेघनादं व्यनर्जयन् । तदा स मेघनादोऽपि न्यक्त्वा होमं स्वराजितः ॥ १८५ ॥  
 कोधाविष्टो रथे स्थित्वा ययौ लक्ष्मणममुत्तमम् । शर्मन्तः पर्वतार्धमर्मभिर्द्रिनिर्जोकिभिः ॥ १८६ ॥  
 चकार लक्ष्मणेनैव युद्धं तत्तारकामयम् । सौमित्रिरपि घण्टीघ्नं रथमध्वान्धनुर्वजम् ॥ १८७ ॥  
 तद्बृद्धं कवचं सूर्यं विभेदं सुषमं वनः । ततः सोऽन्येन धनुषा मुक्त्वा शणान्महामशः ॥ १८८ ॥  
 पद्मशमेवास्मिन् भूम्या चिच्छेद कवचं गिरोः । तदा बृद्धः स सौमित्रिवाणेनैद्रजितश्च हि ॥ १८९ ॥  
 सशरं दक्षिणधुरं धारयामास नद्गुह्ये । तदा स कामहर्षेण मेघनादोऽतिविह्वलः ॥ १९० ॥  
 दृष्ट्वा लक्ष्मणं हनुं घृत्वा शुलमनुजमयम् । तं चापि मार्गणेनैव यश्रुतं चापमन्कम् ॥ १९१ ॥  
 मेघनादस्य सौमित्रिश्छिन्वा गवणमभिधौ । धारयामास लकाया तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १९२ ॥  
 तदा स्वादाय स्वमुक्तं शवणिलक्ष्मणं ययौ । लक्ष्मणोऽपि शरं दिव्यं गमनं मार्कतं शुभम् ॥ १९३ ॥  
 सुषोच रघुनीकस्य कृत्या चित्तमदागतम् । स शरः सशिरश्चाप श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥ १९४ ॥  
 प्रमथ्येद्रजितः कायान्पातयामास तच्छिरः । ततः प्रमुदिता देवाः सौमित्रे पतितुष्टुः ॥ १९५ ॥  
 पुष्पाणि विकिरन्ती वै चकूनीगजनं मुहुः । गतधमः स सौमित्रिः शम्भमापूरयदणे ॥ १९६ ॥  
 भ्रुत्वा मीना शंखनादं त्रिजगत् प्रेम्ण सादरम् । शुभाय सकलं वृत्तं तदा कथामनुनोष मा ॥ १९७ ॥  
 ततस्त्वन्मेघनादस्य शिरः संगृह्य मारुतिः । राघवाय दशयितुं स्वयामास लक्ष्मणम् ॥ १९८ ॥  
 तदा स वानरैर्युक्तोऽद्भुतस्थः सविभीषणः । नानावायनिनादंश्च सौमित्रौ गणवं ययौ ॥ १९९ ॥  
 नत्वा तं दर्शयामास मेघनादस्य तच्छिरः । तद्बृद्धाऽऽदिश्य सौमित्रि रामस्तुष्टोऽभिरुचदा ॥ २०० ॥

बाबु पी लिया और लक्ष्मणने बायव्याम्बमे जलको सुका दिया ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ उन सब घण्टों नष्ट हो  
 जानपर भी जब अमुका स्थान नहीं दिखाया दिया तो हनुमान बुद्ध होकर योगिनीवटकी ओर गये वहाँ  
 उभे योगिनीवटवाली गुहा देख गये, सुरज गुणने द्वारपर लगे हुए, बाबरको हनुमानने आत बाबर  
 चूर्ण कर डाल्य और भीतर जाकर मेघनादका मन्त्रकारा । तब मेघनादने भी तुरन्त होम छोड़ दिया  
 , १८३-१८५ ॥ तदनन्तर काचक साथ रथपर सवार होकर वह लक्ष्मणके समक्ष गया और अत्यन्त शक्ति, पर्वत  
 तथा मन्त्रजाली नाचवाते उनको जीतनेका इच्छासे आवाजक बुद्ध करने लगा । लक्ष्मणने भी अत्यन्त शक्ति  
 छोड़कर उसके अश्व, रथ, धनुष, वदना, हनु काच तथा सायपाका क्षणभरमे छिन्न भिन्न कर दिया । तब  
 मेघनाद भी दूमरा बाण से लया नीच हो खड़े हो द्वाारा क्षण छोड़कर अपने यवचको काटन लगा । उस  
 समय लक्ष्मणने कृपु होकर अपने बाणसे द्वाजितका बाणके मल्लि दाहिना ह.५ काटकर हथीके घस्मे गिराया  
 वह विह्वल होकर मेघनादने बाय हाथमे विष्णु स्मृत्या ॥ १८६-१८७ ॥ वह उनमे विजय लेकर लक्ष्मणका  
 मानके लिए रीस । तब मेघनादके विष्णु स्मृति छोड़े लणकी भी विजय युद्ध लक्ष्मणन बाणसे ही काटकर  
 मेघनके दास गिराया । यह देखकर लक्ष्मणने मदक बड़ा आश्चर्य हुआ । १८८ ॥ १८९ ॥ तब मेघनाद मुँह फाड़-  
 कर लक्ष्मणकी आर सुपटा । तब लक्ष्मणन भी रामका ध्यान करके मेघनादमे अक्षिप्त दिव्य बाण छोड़ा । उस  
 व गन जाकर गगरी सहेत, शोभायुक्त तथा शरीर तुरन्त नै मेघनादके शिरका घडसे अलग करके घरतीपर  
 गरा दिया । यह देखकर देवतागण अतीव प्रसन्न हुए और लक्ष्मणकी स्तुति करने लगे ॥ १९३-१९५ ॥ वे  
 नन्तर अमुकी वृष्टि करके आरता उतारन लगा । तब लक्ष्मणने शान्त होकर निजयज्ञश्रवणया ॥ १९६ ॥  
 वह शोभायुक्त मुनकर सीताने मित्रताकी सेवा और उसके मुहमे युद्धका समाच सभाचार मुनकर वे बहुत  
 ही प्रसन्न हुई ॥ १९७ ॥ इधर हनुमानजीने मेघनादका शिर लेकर रामका दिल्लानक लिए लक्ष्मणसे शोध  
 बाणको कहा ॥ १९८ ॥ तब लक्ष्मण विभीषण और वानरोंको साथ ले तथा सत्रुदके कंठपर सवार होकर  
 अमक बाजे-बाजेके साथ रामके पास गये ॥ १९९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामकी प्रणाम किया और

रावणोऽपि भुजं दृष्ट्वा श्रम्या पुत्रवध तथा पशान पुत्रदूषेन सभार्या मृजितो भुवि ॥२०१॥  
 क्रोधान्न सङ्गमुग्रस्य ययौ हंतुं चिद्दृष्ट्वा । सुशर्धो नम मेधार्पी मयी त मन्थवारयन् ॥२०२॥  
 ममङ्ग तन्करं धृत्वा मरुद्वने स न्यगन्धितः । उवाच नानिमपुक्तं वचन रावणं तदा ॥२०३॥  
 कथं नाम दशग्रीव कोपान्स्त्रीवधमिच्छामि प्रम्माभिः सहितो युद्धं कृत्वा राम मल्लक्षणम् ॥२०४॥  
 प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमिन्पुक्तः स न्यवर्तन् । मुलोचनाऽपि कांतस्य सुतं कैदुर्मृषितम् ॥२०५॥  
 दृष्ट्वा यमार्णवं स्वीयपुत्रः पतित भुवि तत्र विलापमकरोत्सृज्या तन्वीरुपाणि सा ॥२०६॥  
 भुजोऽपि मात्स्यवन्तां स लब्ध भूम्या क्षणेन हि । स्थलोद्दिवाश्रितं प्राह मां खेद भज भामिनि ॥२०७॥  
 साक्षाच्छेषशमधर्तृर्होऽहं मुक्तिमागतः । न्व चापि गम्या श्रीराम तन्या याचस्व मच्छिरः ॥२०८॥  
 तच्चांदास्पर्शितं रामोऽपि तेतां न विज्य चाहि माम् । मुलोचना पटित्वा सा लिखितान्यक्षराणि हि ॥२०९॥  
 नृणां पृष्ट्वा रावणाय मदादर्थं विभूषिता । यया गार विविरुषा ना हृष्टा वानराजमाः ॥२१०॥  
 मीनेयं रावणेनाद्य भयाद्रमं विमोक्षता । इति मन्दादृष्ट्वा मीनाया दर्शनच्छ्रया ॥२११॥  
 शिविकां वेष्टयामासुस्तान्वा तां न मुलोचनाम् । शिविकावाहशम्पेनाययु श्रीगारवं पुनः ॥२१२॥  
 मुलोचनाऽपि श्रीरामं वनाम शिरसा मुहुः । भर्तुः शिर कांतमाणां तां गमो राक्षसवर्षात् ॥२१३॥  
 कृपया तव भर्तारं करोम्यस्य मज्जोषितम् । मा निश्रम्याद्यवद्वत्वं रोचते चेददस्य मम् ॥२१४॥  
 तदा सा प्राह श्रीराम पुनः मीमित्रिहस्यतः । कुतो भवेन्नन्मरणं मोक्षद औग्र्यस्य मा ॥२१५॥  
 इत्युक्त्वा राघवं दन्वा समित्तं कपिराकृतः । कृत्वा शिरः पतेन्नत्र लब्ध्वा सा भर्तुमतिताः ॥२१६॥  
 लङ्कायास्तौ समानीय भुजौ गत्वा तिकुम्भिलाम् । भर्तुर्देहेन मयोऽप्य विवेश प्रि यथाविधि ॥२१७॥

मेघनादका चटा सिर दिखाया । उस उग्रर रावण लक्ष्मणकी छ तम तथा लिखित और बहुत आनन्दित  
 हुए ॥ २०० ॥ रावणने वहन पुत्रका कटा दृष्टा होकर कहा । मेघनाद मेको मृत्यु पुत्र ना मृषित होकर मर्याम  
 ही जमीनपर गिर गया । २०१ । रावण वह यशस्वक कर्त्तृ तन्कर मीना मायाव गिर गया । उस  
 समय मणार्णव नामके युद्धमान भवेन उसका शीघ्र और मका लङ्का रहता ही भ्रमन हुआ मम एकदकर  
 नानिपुक्त लब्धेश इन हुए कहा । २०२ ॥ २०३ । त दशग्रीव मे रावणने आपने नव हवा करना पाय  
 है । हमारे साथ चलकर युद्ध करो । राम मे मन्दादृष्टा मका जाकर को अन्ता क्या बनाओ इस तरह  
 समझानेपर रावण शान्त हो गया । उधर मुलोचना जगद पात्र मदनद्वी कर्त्तृनिर्माणन तथा बाणपुक्त  
 होय अपने स मन पृथ्वी पर दल दलकर जान पुण्या देव मन्दादृष्टा कर्त्तृ निष्ठा करत रही । २०४ । २०५ ।  
 तब इस कटी भुजा व जगद पात्र अपने समन जमानवर न भागलो तब दृष्टा होत है २०६ ऐसा लिखकर  
 मुलोचनाको अश्व मन दिश । २०६ ॥ २०७ । उसने यह भी लिखा कि मैं साक्षात मेघावतार लक्ष्मणके  
 बाणसे मरकर पुक्तिका पतित हुआ हूँ । अब तुम मेको पास लेकर मया सिर सीता । ये तुमको अवश्य  
 मका सिर दे दगा । इस लिखित तथा अतिम प्रवेश करके मने, अन्तुपदिनी वने । मुलोचना उन रत्नायितन  
 लक्ष्मणकी पहचान करके प्रवेश हुई । तत्पश्चात् रावण और मन्दादृष्टा म आज्ञा ले तदा अ. भा. अ. धारण करके तह  
 व अर्ध म औरकर धारामा पास चली । पानभाषण उसको दलकर यह समझा कि रावण ने दलकर सीता रामके  
 पास भेज दी है । ऐसा समझकर वे इनक दर्शनको इच्छा से दोड़ पड़े । २०८ २०९ ॥ पास ज. कर धानकाको  
 पर लिखा पर अब मरकी होखालेमे क्या लता कि गह वृक्षचना है तो वे सब जानर रामके पास दोड़ गये  
 । २१० । मुलोचना श्रीरामके पास पहुँची तो सिर नवाकर प्रणाम किया और पतिके सिरको प्रातिक लिखे  
 प्रार्थना की । तब रामने कहा—॥ २१३ ॥ मैं तुमपर कृपा करके कुम्हार पतिके अर्चन कर देता हूँ । तुम अतिमे  
 प्रवेश करनेका विचार छोड़ दो । ब. ने, यह पमन्द है ? ॥ २१४ ॥ उसने कहा हे मन्दादृष्टा ! फिर ऐसे मोक्षप्रद  
 लक्ष्मणके हाथसे मृत्यु इन्हे कहाँ प्राप्त होगी ? इसलिये अब आप इन्हें न जिलाएँ । २१५ ॥ इतना कहकर उसने  
 फिर रामको प्रणाम किया और कपिराज मुगावके आज्ञादुसार पतिके सिरको पाकर हमने हुई वह मतकि

सुलोचना दिव्यरेहा वैकुण्ठ पतिना ययौ । रावणोऽपि मुहन्मित्रैः पुनर्योद्धुं ययौ गम् ॥२१८॥  
 ततो रामेण निहताः सर्वे ते राक्षसा युधि । लङ्कायां रावणः क्षिप्तः शरेण राघवेण यः ॥२१९॥  
 ततः कुन्वा रामाग्निः कृत्रिम मयहस्तनः । ययौ मीनां दशयिर्न रावणोऽशोककाननम् ॥२२०॥  
 एतस्मिन्मन्तरे ब्रह्मा बोधयामास जानकीम् । कुनमस्ति रावणेन कृत्रिमं गममच्छिरः ॥२२१॥  
 तद्दृष्ट्वा मा भजन्मया स्वेदं स्वमधुनाऽधले । इति मयाप्य तां मीनां ब्रह्माऽन्तधानमाययौ ॥२२२॥  
 रावणोऽपि समागच्छ दशमामास नच्छिरः । मीनां ग्राह हतो रामस्त्वधुना स्व भजन्मयाम् ॥२२३॥  
 तदा साऽधोमुखी ग्राह नयैवाह शिमानि हि । रामवर्णश्च पश्यामि पतिशानि रणांगणं ॥२२४॥  
 इति तद्वाक्शराधाननाडिनः स दशाननः । ययौ तूर्णं स्वयं मेढं लङ्कायाऽवनमन्दा ॥२२५॥  
 अथ रामाङ्गया सर्वे लङ्कां प्राकटमडिताम् । ईषिताश्चऽहस्तास्ते वानराः कोटिशः क्षणात् ॥२२६॥  
 ज्वालामासुः सप्त दशानां बहिं मुहूर्णदुः । तदा कोलाहलमार्वाञ्जलादाहं पुनः यथा ॥२२७॥  
 दग्धां स्वनर्गां दृष्ट्वा स्वगृहाण्यपि रावणः । दृष्ट्वा दग्धानि कपिभिर्मघास्त्रं समुने जवान् ॥२२८॥  
 तेनासीदनलः शान्तमददृष्ट्वा कषयो ययुः । ततः स रावणः शुक्रवचनाद्विदमि स्थिताम् ॥२२९॥  
 गुरां प्रविश्य चैकाने मीना हे मं प्रवक्रमे । लङ्काद्वारकपाटादि वदुष्या सर्वत्र यस्तनः ॥२३०॥  
 होमद्व्याणि सगृह्य यान्मुक्तानि यथा पुनः । रक्तावगादिनो मुण्डमाक्षी मेनस्तनम्विनः ॥२३१॥  
 परिस्तीर्षाथ शुश्राणि होमकुण्डमवनतः । आदशाहवालकानां शिरोभिर्ममिलोहितैः ॥२३२॥  
 एव स विपुषानार्थं चकार हवनं गृहः । उन्मिथ धुत्रमालोक्य राम ग्राह विभीषणः ॥२३३॥  
 यदि होमममापिः एषाक्षदाऽज्ञेयो भवेद्यम् । ततो रामो हरीन्मन्त्रप्रणयामास सादगम् ॥२३४॥

गलेपर रखकर जोड़ दिया । २१६ ॥ पश्चात् नकाय पतिनी के लिये उसे गिलाकर मयान्त्रिण पतिके कलेरके साथ अग्निमें जलकर लती हो गयी ॥ २१७ ॥ तदनन्तर सुलोचना दिव्य रेहा धारण करके पतिक साथ वैकुण्ठ चली गयी । ऊपर रावण पुनः बन्धुजों तथा मित्रोंको साथ लेकर रणभूमिमें मुट्ट करने गया । २१८ ॥ वहाँ रामने तब राजाको जो मारकर रावणका राणमें उठाकर नकाय पैक दिया ॥ २१९ ॥ तदनन्तर रावण मयदावके हाथसे रामका नकली मस्तक बनवाकर सीताको दिव्यरातेके लिए अशोकवनमें गया । २२० ॥ वहाँ इधो बीच ब्रह्माने सीताको पहचाने ही बता दिया था कि रावण रामका नकली सिर मुझे दिखायेगा । यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये । इसका बाद रावण उनका पास पहुँचा और रामका मस्तक दिखलाते हुए कहा—हे सीता ! देखा, मेरा रामका प्यार इतना है । अब तूमें मेरी सेवा करनेके लिये तैयार हो जाओ ॥ २२१-२२२ ॥ यह सुनकर सीताने न वे मुख करके कहा—मैं तो रामके बाणसे कहकर गणमल्लीमें गिरे हुए गम हो सिरोको दसना चाहता हूँ । २२३ ॥ सीताके इस वाक्यकी वागमें ताड़ित होकर दशानन उन्मिथ हो मौर दूँह नीचा करके चुन्वाय अपन महत्तम चला गया ॥ २२४ ॥ तबो रामकी आज्ञासे करोड़ों वानर रावण पासके पूले से लेकर प्रागाहो ( हवमियों ) से युधित लंक नगरीमें पुन चले ॥ २२५ ॥ उन्होंने अचानकसे बाणों औरसे आग लगा दी । उस समय नकाय प्रथम नकादहनकी ही तरह महान् कोलाहल तथा इहोकार मचान लगा ॥ २२६ ॥ रावणने मगर तथा अपन मकानाको जलने देखकर बेधाम्ब छोड़ा ॥ २२७ ॥ उससे रामका गान्त देखकर कर्पिसमूह धास गया । पश्चात् रावण दैत्यगुरु कुम्भकार्यके कथनानुसार एकान्तकी एक गुफामें गया और मौन धारण करके होम करने लगा । उसने बीतरफासे लंकाके दरवान अष्टी तख्त बंध कर लिये ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ पहले मेरा जो-जो हवनके द्रव्य बहे है, वे सब एकट्टे कर लिये । उसने अपने गम करीरमें लोह लपट लिया । गलेमें मुण्डोकी माला पहिन ला । मृत पुरुषके गर्दिको आसन बनाया ॥ २३० ॥ होमकुण्डके चारों ओर मन्त्र रख लिये और इस दिनमें प्रथम उत्पन्न बलकोके सिर तथा मांस और स्मिर म एकान्तमें जलुओंके नालके लिये हवन कारम्भ कर दिया । ऊपर उर होमके धुँओंको देखकर विभीषणने नमसे कहा—॥ २३१ ॥ २३२ ॥ हे राज ! यदि होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो रावण सर्वथा जयेय हो

प्राकारं लक्षयित्वा ते गन्वा रावणमन्दिरम् । हन्वा गश्ममृन्दं नद्गुहायुक्ततत्परम् ॥२३५॥  
 न ददृशुर्गुहाडारं यत्र होमं चकार सः । तत्र च भग्मानाम् प्रभाते कर्मव्रतया ॥२३६॥  
 विभीषणस्य भार्या तान् होमस्थानममुष्ययन् गुहापिधानपाषाणानगदः पदघट्टनैः ॥२३७॥  
 मूर्ध्नि यित्वा रावणञ्च ताडयामास मूर्ध्निना वानगन्तेऽपि तं धुर्धनद्वयमामृगद्वयम् ॥२३८॥  
 न दत्ते वानरा दृष्ट्वा सूर्णीमिव स्थितं त्रिषु ममानयन्केशपाशे घृन्वा मदोदरी शुभाम् ॥२३९॥  
 विलपतीं मुक्तनीवीं विह्वलां हनकचुकीम् दृष्ट्वा त्यक्त्वा तदा होममुदतिवृत्तगन्धिवः ॥२४०॥  
 ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रोतृवातिकम् ततो मदोदरी प्राह कुरु न्वचनं मम ॥२४१॥  
 दत्त्वा सीतां राघवाय राज्ञे कृत्वा विभीषणम् तदर्थं मयारुण्य कर्तुमर्हमे वै मुखम् ॥२४२॥  
 ततस्या वचनं श्रुत्वा तं न प्राह दशाननः रामो विष्णुश्च मा सीता जानामि प्राणवृद्धये ॥२४३॥  
 रामहस्तादर्थं लब्धुं हता सीता पुरा मया । रामहस्ताभ्यक्तदेशे गच्छामि परमं पदम् ॥२४४॥  
 त्वया कार्या क्रिया मे हि प्रविशुस्वानल ततः । ततः सुखं मया मुक्ता गमिष्यमि पर पदम् ॥२४५॥  
 हन्युक्त्वा प्रपयी धौर्ध्वं रथे स्थित्वा त्वगन्धिवः । राजद्रोहादिनिर्गच्छभये मुण्डी चिलोक्तिः ॥२४६॥  
 मुकुटः पतिनाश्रिप्तः सरिशो रावणो हृदि । ततो ययौ रथभ्रष्टं चक्षुः निशितः शरैः ॥२४७॥  
 विधाय कुत्रिणीं सीतां मयेन स दशाननः । पडयता वानराणां च स्वयमेव सीतां वधान वै ॥२४८॥  
 दिव्येन शितसंज्ञेन दृष्ट्वा ते तु प्लवगमाः । हाहंत्युक्त्वा दुःखितस्ते ययुः रामं निवेदितुम् ॥२४९॥  
 तावद्वेधाः समामन्य रामादीन् प्राह सादरम् । कुत्रिमेव हता सीता या स्वेदं भजनाय हि ॥२५०॥  
 ततोऽप्लवर्धनमममद्विधिक्षेपि प्लवगमाः । रामादा मयवचनेन तुष्टा मुह्यन्ति निरयूः ॥२५१॥

आर्यमा । तब रामन सब वानरोका सादर बुलाकर मुहूर्ते नियम सेना ॥२३४॥ वे सब परबोत्ता लीचकर रावणके मन्दिरमें बस गये । उन्होंने वहाँ उस गुफाकी रक्षा करनेमें जे राजाको मार डाला ॥२३५॥ परन्तु जहाँ रावण हुक्म करता था, उस गुफाकी दरवाजा किसीको नहीं मानूम था । तब प्रातःकालके समय विभीषणकी स्त्री मरमान हाथके मन्त्रके जे सबको हामस्थानका दरवाजा बना दिया । द्वारपर लग हुए पाषाणकी छान मारपर अगले पीछे दिवा और भीतर जाकर रावणको मुक्कीसे मार डाला । अन्यान्य वानर भी उसे वृक्षांसे पाटने लग , २३६-२३७ ॥ फिर भी रावणकी चपचाप बैठा दावकर वानर सबकी स्त्री मन्दादरीकी केश पकड़कर वहाँ खींच लाये । २३८ ॥ अगला मुन्दरी स्त्रीका जीवा दुर्ह, मुक्तकच्छ वानरहित तथा विह्वल देखकर रावण शमन अउरी ७ क ३३५६६ दृष्ट्वा २४० । इस प्रकार एक हीनका भङ्ग करके सब वानर रामके पास भाग गये । तब मन्दोदरीसे कह—हूँ नाथ । तुम अब भी मरी वान भान लो । २४१ ॥ सीता रामका देकर विभीषणकी लंकाका राज्य दे दो और नर साथ चक्कर चलन लय करो । तुमको रत्न में भस्म प्राप्त होगा । स्त्रीका बात सुनकर दशानन कह हे प्राणवन्धु । मैं जानता हूँ कि राम साक्षात् विष्णु तथा सीता साक्षात् लक्ष्मी है ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ यह जानकर ही मैं रामके हाथसे मरनक लिए सत्ताका यहाँ ले आया हूँ । रामके हाथसे मरकर मैं राम पर प्राप्त करूँगा ॥ २४४ ॥ बादमें तुम भी मेरी क्रिया करके तथा अग्निमें सगा दे कर सावपूर्वक भरे साथ परम धाम प्राप्त करोगा ॥ २४५ ॥ इतना कह तथा रथपर मँडार हाकर वह लडाईके लिए चले पड़ा । राजमहत्स निकलत ही उसका फिर मुहूर्ते हुए एक मुन्दी दिखायी दिया ॥ २४६ ॥ जमता चित्त विचित्र मुकुट भी गिर पड़ा । यह देखकर रावण मनमें धवगया । फिर भी तुमने समझभूमिसे आकर बहुत नजासे वाणीकी वर्षा की । २४७ ॥ तदन्तर मयदानवसे एक सबका सीता बनवाकर उसने वहाँ वानरीक सामने अपने रथपर रखकर बाट डाला , २४८ ॥ तब पारवान्त जलवासे सीताको कटती देख हाहाकार करते हुए सब वानर यह समाचार रामके पास निवेदन करने गये , २४९ ॥ इतनमें सहाने आकर राम आदिकों सबे आदरसे समझाकर कहा कि यह कुषिम सीता मारो गयी है । तुम लोग हुन्ती मत होओ ॥ २५० ॥ इतना कहकर बड़ाजा मन्तर्धान हो गये और वे सब वानर और राम आदि वीर बहुधाक्य-

तदा त मानलिः क्षीय देवेन्द्रचचनार्धम् । शशास्त्राजिमहिनमहानिप्लजशोभितम् ॥२५२॥  
 वञ्छप्रममायुक्त राघवाय न्यवदयन् तमारुह्य तदा रामधकार कदन मदन ॥२५३॥  
 आश्रयेन तदाश्रये देव देवेन राघवः । अस्त्रं राक्षसजस्य जघान परमाश्रुचिन् ॥२५४॥  
 ततस्तु तसृजे घोर राघवः सार्वभौमम् । गमः सर्पास्तनो दृष्ट्वा मोषणांश्च मुपौच सः ॥२५५॥  
 असीः प्रविहने युद्धे रामेण दशकधरः । पातन्यं समृते घोरं वायव्यास्त्रेण राघवः ॥२५६॥  
 तदम्बं विनिवार्यामो बह्वयस्त्रं यमृजे पुनः । पर्जन्याम्ब्रेण पोलस्त्यश्चकार विफलं तदा ॥२५७॥

नामानामयुतं तुरगनियतु मार्द्वस्थानां शतं पत्नानां शतकोटिनां समवे त्वेका कथया नृतिः ।

एवं क्षोटिकचघनर्तनविधावका प्वनिः क्रिक्रिणेविंशताः महारथेना ग्मुनेः कोददघटाग्ने ॥२५८॥  
 तदा ये कौतुकं द्रष्टुं समाजगम् मुग मुदा । गधवाः किन्नरा यक्षा विमानजनसंस्थिताः ॥२५९॥  
 तदाऽशनिध्वजं रम्य शार्णाक्षिच्छद राघवः । न दृष्ट्वा रामचन्द्रोऽपि ध्वजहीनं तथ निजम् ॥२६०॥  
 मारुतिं प्राह वेगेन क्षण निष्ठु भ्रजोपरि । तथेभ्युक्त्वा मारुतिः स गालमुत्पात्य वंगतः ॥२६१॥  
 यत्ना रामस्य दिग्बे तस्मिन्मर्था स्वयं मुदा । न मारुतिप्लजं दृष्ट्वा रावणः मधमंगणे ॥२६२॥  
 तलं लज्जं मातलिनं तुरगान्शायुनदनम् । एन्द्रं धनुस्तच्चच्छद नवबाणस्रवगान्धवः ॥२६३॥  
 वातात्मजमानलिनीं मृच्छतीं पतितीं भुवि । क्षणमात्रेण स्वस्थोऽभूलदा म वायुनन्दनः ॥२६४॥  
 तदा रामो वायुपुत्रकन्धे स्थित्वा ग्णातजरे । चकार तुमुलं पृष्ठं रावणेन भयावहम् ॥२६५॥  
 रावणः परिधण्य मंताद्यं मारुतिं हृदि । चकार भूलज्जन वगात्पपात स पुनश्चाव ॥२६६॥  
 तदा सस्मार रामोऽपि स्वरश्च ममंगणे । तावद्वयः शृगादयायया खदद्यतः स्थितः ॥२६७॥

स सृष्ट होकर बुद्ध करनक' निकल पड ॥ २५१ ॥ इसी समय एन्द्रक जाजा-सार उनका साथी साथ  
 अम्ब गम्बाम अर नया घाटीमे तुन हूय रमका अकर रमक कास आरा और उनसे रमवर सकार हाकर  
 करनक लिए कहा तब रामन उस रवपर सव रह कर महान् बुद्ध किया ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ बरवाका बा-  
 वालाम परमधन रामन रक्षसाक राज. रावणका आनय अम्ब अपन आनय अम्बस तथा देवात्त दशर  
 शान्त किया ॥ २५४ ॥ तब अम्बविन् रावणन धार गगन्य छाडा । रामन सर्पाका दलकर गारुडारण छ  
 ॥ २५५ ॥ इस प्रकार जब रामन बुद्धकी अवन अम्ब स प्रविहृत कर दिया, तब रावणने एक दूसरा भय  
 मयाम्ब फका । रामन उनका उतर वायुभ्रम कर दिया ॥ २५६ ॥ इस अम्बका निवारण करके रामने उस  
 आनयारण सठपा । तब रावणन उस चपा अम्बस पिपन कर दिया ॥ २५७ ॥ दस हुमां हाथा, दस लाल घाड  
 डेडु सी रथ तथा एक कर्गह चल सतकाव नष्ट होतपर एक कथ-बवा नुय होता है । इस प्रकारक कराड  
 कथ-बवा हुनपर एक किकर्गिण र घटका को डवन हुना है, परन्तु रगुपति रामक कथन आधे प्रहरनक  
 घण्टका अटारव करनम हा बासा किकर्गियाका डडि हूई ॥ २५८ ॥ इस समय इन कौतुकका दर्शनक लिए  
 आक राम सठक विमानपर आरुह्य दवना, गन्धर्व, किन्नर तथा यक्ष-नाग इकट्ठे हो गये ॥ २५९ ॥ तभा  
 गवणन अम्ब बाणसे रामक वज्र तथा भ्रजका काट दिया । रामचन्द्र अपन रमक परनामे होन दलकर  
 मारुतसे दाल कि गुम जयभरक लय मन्द से सर रहका भ्रजका पास बैठ जभा । 'तथास्तु' कहकर मार्द्व  
 कट एक तरफका वृक्ष उखाडकर रामक दिव्य रथपर रख दिया और आनन्दसे उसीपर आ बैठ । मारुतकी  
 भ्रजका दलकर रावणन रणगणस बडा पुरतंक सान तात्तवृक्षका, छमकी मातलि सारणीका, जम्भोका,  
 वायुनन्दन हनुमान्क तथा एन्द्र धनुषकी नी बाणसे काट डला ॥ २६०-२६३ ॥ तब वातात्मज हनुमान्  
 तथा मातलि मृच्छन हाकर जमालपर गिर पड़े, परन्तु क्षण हा भ्रमे वायुनन्दन सचत हो गये ॥ २६४ ॥  
 तब राम हनुमान्क कंधपर सवार हाकर रावणक साथ रणागणमे सनामक युद्ध करने लगे ॥ २६५ ॥ एकाएक  
 रावणन मारुतकी छ नापरमदा मारकर मृच्छन कर दिया और हनुमान् उसी समय फिर वृक्षोपर गिरपड़े ॥ २६६ ॥  
 तब आनयामन अपन रथका स्मरण किया । भ्रजमरम आकाशसे आकर वह रथ गुह्यभूमिमे उनके सामने

दारुकः सारधिर्ब्रह्म यत्र शस्त्राण्यनेकशः । तदा पर्व तु यत्राग्नि मर्वदा गहडो ध्वजे ॥२६८॥  
 पश्मिञ्छलेष्वथ सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकः । मेघपुष्पश्च चन्वागो वायुवेगा ह्योत्तमाः ॥२६९॥  
 यत्र छत्रं चरं दिव्यं हेमदण्ड विगजते । आसरे च शुभ्रे यत्र शार्ङ्गं च भ्रतुगददे ॥२७०॥  
 ततो गमः शरैस्तीक्ष्णैर्दशस्यस्य रथं क्षणात् । चकार चूर्णं साहचं तु रावणं चापनर्जयन् ॥२७१॥  
 तदाऽन्यग्धमासूढो रावणो राघव ययौ । ततो राघः शरैस्तीक्ष्णैर्दशाननशिरीसि सः ॥२७२॥  
 चिच्छेद तानि भगने मन्वा तोषयुतानि हि । रामहस्तान्मृतिर्जायाऽस्माक चेति विविन्य च ॥२७३॥  
 चन्दनं कर्तुकामानि भगन्नाथ रणाजिरे । सस्मिन्नानि पतन्ति स्म राघवस्य पदोपरि ॥२७४॥  
 राघःशिरांसि दृष्ट्वाथ विदीर्णास्यानि खान्धुनः । मां हन्तुं प्रदवंतीति मन्वा भीत्याच्यनाडयत् ॥२७५॥  
 शरीरैः शतशः क्षीयं तदद्भुतमिवामयत् । शतमेकोत्तरं छिन्न शिरसां चैकवर्चसाम् ॥२७६॥  
 शतभूर्जो रावणस्य चैकोत्तरसहस्रकम् । छिन्नं तत्कल्पभेदेन वदन्तान्यपि केचन ॥२७७॥  
 दृष्ट्वा तु रावणस्यान्तं विभीषणमतेन सः । नाभिदेशेऽमृतं मस्य कुण्डलाकामस्थितम् ॥२७८॥  
 पावकास्त्रेण तच्छीघ्रं शोधयामास राघवः । ततः शिरास बाहुभिच्छेद रावणस्य सः ॥२७९॥  
 एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ । तयोर्युद्धमधूदोर तुमुल रोमहर्षणम् ॥२८०॥  
 ततो दारुकवाक्येन मर्मदेशे व्यताडयन् । ब्रह्मास्त्रेण रघुश्रेष्ठः समरे दशकन्धरम् ॥२८१॥  
 स शूरे हृदय भिन्ना हन्वा न तु दशाननम् । रामतूणीरमाविश्य मेने न कृतकृत्यताम् ॥२८२॥  
 रावणस्य च देहोन्मथ ज्योतिर्गादित्यवस्फुरत् । प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ॥२८३॥  
 तदा देवास्तुष्टबुस्तं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । नेदुः स्वे देववार्धनि ननुश्राव्यगोगणाः ॥२८४॥  
 तदा मंदोदरी भर्ता सह देहं विसृज्य सा । यया वैकुण्ठमयनं रावणेन मुदान्विता ॥२८५॥

सटा हा गया ॥२६७॥ जिस रथका दारुक सारथी था, जिसपर अनेक शस्त्र थे, जिसपर गदा-पद्म तथा  
 अजापर गहड विराजमान थे । २६८ ॥ जिस रथमें उत्तम वायुवगवाले शंख, मुदाव, बलाहक तथा मेघपुष्प  
 थे चार घोड़े जुते थे ॥ २६९ ॥ जिसमें दिव्य तथा सुन्दर सुवर्णदण्डवाला छत्र विराजमान था । जिसमें दो  
 मनोहर चमर तथा रक्षणीय शार्ङ्ग नामका धनुष रत्ना हुआ था । तब रघुनन्दन राम उस रथको देख तथा परि-  
 क्रमा करके सानन्द उसपर सवार हो गए और अपने शार्ङ्ग धनुषका हाथमें ले लिया । अब राम अपने तीक्ष्ण  
 बाणोंसे क्षणभरमें रावणके अस्त्र सहित रथको चूर्ण करके रावणका लज्जकारने लगे । तब रावण दूसरे रथपर  
 सवार होकर रामके सामने गया । रामने पुनः तीक्ष्ण बाणोंसे रावणके दसों शिरोंको काट दिया । वे सिर  
 गगनमंडलमें जाकर 'हमारी मृत्यु रामके हाथोंमें हुई है' यह साबकर ईमान हुए आकाशमें रणक्षेत्रमें रामके  
 पाँवोंपर जा गिरे ॥ २७०-२७४ ॥ रामने आकाशत मुख फाड़ हुए उन शिरोंको अपनी ओर आते देखकर यह  
 समझा कि ये मुझे खा जानका आ रहे हैं । इस प्रकार रामने डरकर भट सैकड़ों बाण उनपर बला दिये । यह  
 दृश्य बड़ा ही अद्भुत था । इस प्रकार एक से एक बार उसके शिरको रामने काटा ॥ २७५ ॥ २७६ ॥ कोई-  
 कोई विद्वान् कल्पभेदसे यह भी कहते हैं कि सौ सिरवाले रावणके शिर रामने एक हजार एक बार काटे थे  
 ॥ २७७ ॥ परन्तु जिसपर भी जब रावणको मृत्यु नहीं हुई, तब विशेषणके कहनेके अनुसार रामने उसके  
 नाभिदेशमें स्थित अमृतकूण्डको अपने अग्निमस्त्रसे सुझा डाला और बादमें उन्होंने रावणके शिरों तथा  
 बाहुओंको काटा ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ इस प्रकार जब रावणके एक सिर तथा दो हाथ बाकी रह गये, तब पुनः  
 राम-रावणका रोमांचकारी तुमुल युद्ध हुआ ॥ २८० ॥ तदनन्तर रामने दारुक सारथीके कहनेपर ब्रह्मास्त्रसे  
 क्षणभरमें दशकन्धरको नाभिमें मारा । २८१ ॥ उस बाणने उसके हृदयको छेद तथा रामके तरक्तमें जाकर  
 अपने आपको कुतकृत्य समझा ॥ २८२ ॥ उस समय रावणके मृत शरीरसे सूर्यके समान प्रदीप्त तेज निकल-  
 कर देवताओंके सामने ही रघुनन्दन रामके दह्य प्रवेश कर गया ॥ २८३ ॥ तब देवताओंने स्तुति करके



ततो विभीषणेनैव रामो रावणमन्त्रिक्याम् । कारयित्वा लक्ष्मणेन लङ्कायां त विभाषणम् ॥ २८६ ॥  
नीत्वाऽभिषेकयित्वाऽथ न्यामभूना तदन्तिके । वायुपुत्रकृता लङ्का माचयामास राक्षसान् ॥ २८७ ॥  
विभीषणादिभिः शीघ्रमशोकं प्रेष्य माहतिम् । मीनार्पे सकल वृत्तं श्रावयामास राघवः ॥ २८८ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
युद्धचरित्रे रावणखरो नामकादशः सर्गः ॥ १२ ॥

## द्वादशः सर्गः

( रामकाण्डाभिषेक )

श्रीशिव उवाच

अथ तां दिव्यवस्त्रैश्च धूपयित्वा विदेद्वाम् । सुस्नातां शिविकामस्थां वेष्टितां चेत्रपाणिभिः ॥ १ ॥  
निन्युः श्रीरामसामिष्य सुग्रीवाद्यास्त्वसन्विताः । नानाराद्यसमुत्साहैर्नर्तनेवारयापिताम् ॥ २ ॥  
ततोऽधरुक्षयानात्मा पङ्कश गत्वा शूनैः पतिम् । ननाम साता श्रीराम लज्जिताऽऽस्तास्पतेः पुरः ॥ ३ ॥  
रामोऽपि दृष्ट्वा तां सीतां शुद्धां शान्वापि तां पुनः । सर्वथा प्रत्ययार्थं हि तदा वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥  
यथेच्छं गच्छ भंडेहि त्रिपुरेहनिवासिना । न त्वाममाकराम्यथ वक्ष्यामि प्रार्थितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥  
तद्रापवचनं श्रुत्वा कारयित्वा चितां शुभाम् । लक्ष्मणनाथ सुस्नाता साता वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥  
रामादन्यं चेतसाऽपि नाहं जानामि पापक । यद्ददमि वचः सन्धं तां हं त्वं शतला भव ॥ ७ ॥  
इति सा शपथं कृत्वा त्रिविशालमुत्तमम् । ततः स दशगव्यं च तथा दशगव्यं च ॥ ८ ॥  
वचनाच्छानर्क्यं शुद्धां शान्वा । तामग्रहन्निभुः । सुभूषितां पावकं स्वाकं संस्थापता शुभाम् ॥ ९ ॥  
पञ्चरट्यां स्वयं वत्तं पुरा भस्वतां च पावकं । आलिङ्ग्य जानका रामा मनजाक सन्धवशवत् ॥ १० ॥

पुनः वेत्रवाजे, गगनमण्डलगत दिव्य मृग वज्रने लग्न तथा अप्सराए नृत्य करत सर्गा ॥ २८४ ॥ उर्वर मन्दादरा  
मन्दसं पातक साथ अपना पाञ्चशौतन दह छडकर वेंकुण्डलामका प्रस्थान कर गया ॥ २८५ ॥  
नीत्वा रामन लक्ष्मणका मजा और विभीषणम रावणका क्रिया करवाया और लङ्काव विभाषणका अभिषेक  
करवाकर उमक पास वायुपुत्रका न्यास ( घरहूर ) रक्शा हुई लङ्काका राक्षसस छुड़व, दिया ॥ २८६ ॥ २८७ ॥  
तदनन्तर रामने विभीषणादक साथ हुनुमान्की सातीक पास भजकर सब समाचार कहलाया ॥ २८८ ॥  
ततः श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे बालमाकाण्डे सारकाण्डे युद्धचारित्र्य उपखण्डे भाषाटकाका  
रावणखरो नामकादशः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीशिव उवाच—हे प्रिय ! तदनन्तर नुगाव आदि वानर सुमनाहूर वस्त्रों तथा भूषणसे भूषित, स्नान कर-  
के पालकोपर सवार, वत हाथमें लिये हुए सिपाहियोंसँ चिरा हुई वेदहाक ! अनेक बाजाक सुन्दर शब्दोंके  
सहित तथा मेषयाजोंके धृत्यके साथ शान् रामक पास ल आये ॥ १ ॥ २ ॥ साता कुछ दूर हा सवारसरसे  
आकर घारेघारे अपने पति रामके पास गया तथा उन्हे प्रणाम करके कुछ लज्जित होता हुई उनके सामने  
कह हा गयी ॥ ३ ॥ राम सीताको शुद्ध चरित्रवाला समझकर भा मंत्रसाधारणका विश्वास दिलानके लिये  
कह लगे— ॥ ४ ॥ हे शत्रुके घरसे निवास करनेवाला बंदहा ! तुम जहाँ चाह, वहाँ चला जाओ । धाकात् बह्या  
कह ता भा मै तुम्हे अपने पास नहीं रख सकता । ५ ॥ रामका ऐसा वाक्य सुनकर साताने स्नान किया और  
कमन्त सुन्दर चिता रचवाकर आनन्दकी प्रार्थना करता हुई बोली— ॥ ६ ॥ हे पावक ! यदि मैने रामके  
केन्द्र मन्थ पुरुषका चित्तसे भी चिन्तन न किया हो तो तू शतज हो ना ॥ ७ ॥ साता ऐसा कहकर अग्निमें  
जल कर गयी । तब प्रभु रामन अग्निदेव तथा राजा दशरथके कहनसे जानकीका पवित्र तथा पतितता  
कहकर स्वीकार कर लिया । यह बात सीता जानती थीं जिनको कि रामने पञ्चवटामें स्वर्ण अग्निको खोद

तामसी राजसी चैव सार्विकी या त्रिधा पुरा । जाता रावणवानार्थं मा जार्तिकत्र वै तदा ॥११॥  
 ततो देवः स्तुतो रामध्वन्द्रेण समरे मृताम् । यानगादीन् सुधावृष्ट्या जीवयामास सादरम् ॥१२॥  
 तत्रैकं वानरं रामोऽदृष्ट्वा पप्रच्छ मारुतिम् । राघवं मारुतिः प्राह कुम्भकर्णेन भक्षितः ॥१३॥  
 यदि क्षिचित्तस्य कपर्दखकेशास्थिलोहितम् । तर्हिऽमविष्यत्पतितं तर्ह्येवामृतवृष्टितः ॥१४॥  
 अमविष्यज्जोषितः स सर्वं विद्धि रघूत्तम । सुधावृष्ट्या राक्षसगन्ते जीवयिष्यति वै पुनः ॥१५॥  
 इति भीत्या पुराऽस्माभिः सर्वं त्यक्त्वा महादर्यः । तन्मारुतेर्धैवः श्रुत्वा यमराजं वपलोकयत् ॥१६॥  
 यथोऽपि भान्या रामाग्रोऽर्पयत्तं प्लवमानमम् । त दृष्ट्वा राघवस्तुष्टस्तदाऽऽहो नमःकुत्तमम् ॥१७॥  
 गतुं ददौ मातलिने सोऽपि नत्वा रघूत्तमम् । रथेन वाजियुक्तेन ययौ मध्वतः पुरीम् ॥१८॥  
 रामस्तु मंगलस्नानं कर्तुं संश्रायितोऽपि हि । विभीषणेन मगतं स्मृत्या नांगीकार सः ॥१९॥  
 ततः सर्वैर्नारैश्च पुष्पकं चारुणोह सः । रथेन दारुकश्चापि गरुडो मकरध्वजः ॥२०॥  
 विभीषणश्चरुणोह पुष्पकं राघवाङ्गया । ततस्ते निर्जगाः सर्वे राममात्मन्य ख ययुः ॥२१॥  
 दृष्ट्वा रामे दशार्थो विमानेन ययौ दिवम् । अथ तं राघवं प्राह पुष्पकस्य विभीषणः ॥२२॥  
 राघव ते श्रुष्टमिच्छ मि तच्च मा वक्तुमर्हसि । ऐरावणगृहे राम यदा पातालमुत्तमम् ॥२३॥  
 पुन गतस्तदा तूष्णीं किमर्थं त्वं स्थितः प्रमो । कथं तौ न दत्तौ दृष्टौ तर्देव क्षणमावतः ॥२४॥  
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा विदुस्य राघवाऽश्रवात् । भ्रमराणां वधः पूर्वं विधिना मारुतेः करात् ॥२५॥  
 प्रोक्तस्तस्मान्मया तूष्णीं प्रताप्य मारुतः कुतः । अन्वच्छापि जगत्या हि मारुतेः पौरुषं जनाः ॥२६॥

दिया था । इस समय भगवान् रामचन्द्रन जन्हा जानकाका आलापन करके अपनी गोदमें बैठे स्थित  
 ॥ ८-१० ॥ जिस साताने पूषकात्ममे रावणवधक लिए लामगा, राजसी तथा सार्विकी ये तीन भूर्तिर्ये  
 घारण का थी, वह उस समय पुनः एक हो गयी । ॥११॥ पश्चात् सब देवताओंने मिलकर रामकी  
 स्तुति की । रामने इन्द्रसे कहकर समरमें मर हुए वन-का सुधावृष्टिमें ज वित करवाया ॥ १२ ॥  
 उनमें एक घानरका न देखकर रामने आर्हसि पूछा माहसतन उत्तर दिया कि माहूम होता है, उसे  
 कुम्भकर्ण खा गया । १३ । ह रघूत्तम ! यदि उस वानरका नाव, कस अथवा लाहित आदि कुछ भी  
 रणभूमिमें शय हाता तो वह अवश्य इस अमृतवर्षामे जर्जित हो जाता । यदि कह कि अमृतवर्षामे राक्षस क्यों  
 नहू आये तो इसका उत्तर यह है कि उनका तो आदिष्ट हो जानक डरसे हम आगेन पहलें हो समुद्रमें फक  
 दिया था । मारुतिक इस वचनका सुनकर रामने यमराजका आर दसा उनके देखनेसे हो यमराज डर  
 गये और उस बन्दरका रामके आग लाकर खड़ा कर दिया । यह देखकर राम प्रसन्न हो गये । बादमें रामने  
 मातालेक स्वर्ग जन्मका आज्ञा दे दा । वह भा रामका प्रणामकर तथा अश्वयुक्त रथ लेकर इन्द्रपुरीकी चला  
 गया । १४-१५ । तदनन्तर विभीषणन रामका विघ्नशान्तिकारक मङ्गलान्नान करनेके लिये कहा । जो किसी  
 विघ्न, आपात तथा राग आदिक बाद किया जाता है, पर रामने भारतका स्मरण करके उस अंगीकार नहीं  
 किया । १९ ॥ बादमें समस्त बन्दरोंके साथ रामका पुष्पक विमानपर सवार हो गये । रथसहित दारुक, गरुड  
 और मकरध्वज भा उसपर चढ़ गये ॥ २० ॥ रामका आज्ञा पाकर विभीषण भा विमानाम्बु हो गये । तभी  
 सब देवता रामका आदेश पाकर स्वर्गका चले गये ॥ २१ ॥ राजा दशरथ या कि जनकचन्द्रिकाके अग्निप्रवेशके  
 समय विमानपर बैठकर म, पी पे भा रामसे पूछकर स्वर्गका चला देव । इसके उपरान्त पुष्पक विमानपर  
 स्थित विभीषणन रामसे कहा— ॥ २२ ॥ हे राम ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । कृपा करके आप उसका  
 उत्तर दें । हे राम ! अब आप पातालमें ऐरावणके पहुँच गये थे । २३ ॥ उस समय ह प्रमा ! आप पुन क्यों  
 हो गये थे । उस क्षण आपन उन दुष्टोंका म र क्यों नहीं डाला ? ॥ २४ ॥ यह प्रश्न सुन ता राम कुछ मुस्करा-  
 कर बाने कि पूर्वकालमें किसी समय ब्रह्मान 'उन भन्दरका वध हुमात्रके हाथसे हुना' ऐसा कह दिया  
 था ॥ २५ ॥ इसी कारण मैंत पुन हाँकर वह काम मारुतिपर ही छाड़ दिया था और इसीलिये मैंने मारुतिकके

मदंतु येन श्रीरामलक्ष्मणौ मोक्षितौ पुनः । प्रमुखाभ्यां हि वानात्ते सोऽयं श्रीरामसेवकः ॥२७॥  
 इति पौरुषवृद्धयर्थं मारुतेर्जगतीतने मम दामस्य बलिनस्तथा नृणां स्थितं मया ॥२८॥  
 नोपेक्षुर्भूतमात्रेण पयि हतुं न किं क्षमः । ईषिकस्येण काकस्य येन नेत्रं विदारितम् ॥२९॥  
 क्षतपोजवर्षन्तं मारीषोऽर्धौ पतत्रिणा । पुनः येन मया स्यक्तः सोऽहं किं कुण्ठितस्तदा ॥३०॥  
 तयोर्वेषे तु वानात्ते न शम्भार्यं प्रतीक्षितम् । मारुतेः पौरुषार्थं हि सत्यं वेदं विभीषण ॥३१॥  
 इति रामवचः ध्रुत्वा मारुतिः स विभीषणम् तदा प्राह विद्वस्याथ किं त्वं तदिष्मृतोऽसि हि ॥३२॥  
 संतुक्तात्ते राघवेण यदे दृष्ट्वा मयि स्थितम् लांगूलं खड्गितं पूर्वं त्रिगोन्पाटनहेतुना ॥३३॥  
 तस्य मे राघवाग्रे हि किं बलं मन्यसेऽत्र हि । किं विलम्बो राघवाय तयोस्मृगयोर्बधे ॥३४॥  
 वधिता निजदामस्य कीर्तिश्च विभीषण । इति तन्मासनेर्वाक्यं ध्रुत्वा रामं विभीषणः ॥३५॥  
 ननाम परया भक्त्या ततः सम्यगपूजयन् । अथ रामः पुष्पकस्यः मीनया प्रार्थितो मृदुः ॥३६॥  
 तद्वाक्पथगौरवान्पटुसिजदार्यं वरान्ददौ । वस्त्रात्कृत्वा भूषाभिः पूर्वं तष्टौ विधाय च ॥३७॥  
 त्रिजटे वचनं मेऽयं शृणु मंगलदायकम् । कार्तिके माधवे माघे चैत्रे माघचतुष्टये ॥३८॥  
 स्नान्वाञ्च विदिनं स्नानं न्वर्प्रीन्यर्थं नरोत्तमाः । करिष्यन्ति हि तेनैव कृतकृत्या परिध्यामि ॥३९॥  
 यैर्नस्त्रिदिनं स्नानं न कृतं पूणिर्मोर्ध्वतः । तेषां मामकृतं पुण्यं हरं च वचनान्मम ॥४०॥  
 मन्यन्वापि शृणुस्व त्वं दीयते यो वने मया । प्रशुर्भानि गृहाप्येव तथा आद्वहर्षापि च ॥४१॥  
 क्रोधानिहंनं दद्यानि विचित्रतन्हुतान्यपि । त्रिजटे तानि नुभ्यं हि शृण्वन्त्यत्वं मयोच्यते ॥४२॥  
 षाडशीचमनस्यगं तिलहीनं च तर्पणम् । सर्वं तन्त्रिजटे नुभ्यं तथा आदृतमदक्षिणम् ॥४३॥

यहाँ प्रतीक्षा की। दूसरी इच्छा यह थी कि समाज में लोग मार्कटिके बलकी भी जान जायें कि मार्कटिके पासालमें रामकी हत्यारामलक्ष्मणकी सुहाया था, वही यह रामका सेवक हनुमान् है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकार जगन्मने अपने बलवान् सेवक हनुमान्के पुण्य रंकी प्रसिद्धि करनेके लिए ही मैं वहाँ था ही गया था ॥ २८ ॥ नहीं तो क्या मैं उनको रामनम ही दृष्टारमात्रसे नष्ट नहीं कर सकता था ? जिमने सीकके अम्त्रसे ही काक जयन्तका नेत्र फोड़ डाला ॥ २९ ॥ जिमने ज्ञानसे मानेवरने भी योजनाकी दूतेपर समुद्रमें फल दिया । वह मैं तब क्या कुण्ठितशक्ति हो गया था । कभी नहीं । मैंने पासालमें उनको मार्कटिके नियम किमी शम्भकी राह नहीं देखी थी । हे विभीषण ! तुम सब मानो कि मैं उस समय केवल हनुमान्के बलकी शक्ति करनेके लिए ही चुप हो गया था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ रामका यह वचन सुनकर हमने हुए मार्कटिके विभीषणसे कहा-कहा तुम उस बलकी भूल गये, जब सेतु बाँधनक समय रामन दूतकी कुछ गंवयूक्त देखकर स्थापित मित्रवत्ति उगाहनेके बहाने मेरा पूँछ तोड़वा डालो गो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐस मुझ निवर्त्यका अन्य रामचन्द्रके सम्मुख किसी शिक्कीसे नहीं है । रामचन्द्रको उन दोनों मसूरीकी मारनेमें क्या देर लगती ? कदापि नहीं । हे विभीषण ! रामने कबल अरन दामकी ( मरी ) कीर्ति बहानक लिए ही वेषा किया था । मार्कटिकी बात सुनकर विभीषणने रामकी परम धनिसे प्रणाम करके प्रेममें अच्छा तरह पूजन किया । पश्चात् रामने विमान पर बैठे हुई सीताके कहनेसे उनके वाचयका आदर करन हुए प्रसन्न होकर त्रिजटाको बरदान दिया । पहले उसको वस्त्र-अन्नकार आदिस संतुष्ट करके कहा-हे त्रिजटे ! तुम मेरी प्रकृत्यधरी बाणी सुनो । कार्तिक, मंगाल, माघ और चैत्र इन चार महानोमें पहलेक तीन दिन सभी मन्थ्रेषु तुमको प्रसन्न करनेके लिए मे स्नान करोगे । इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगी ॥ ३४-३६ ॥ जो मनुष्य इन चार महानोमें पुण्यसे लेकर तीन दिन स्नान न करे, उसका सारे महानेका फिदा हुआ पुण्य मेरे कहनेसे तुम दण्ड कर मेना ॥ ४० ॥ और यह भी बर बता है कि जयविज स्नानमें विविधवस्तु किये हुए आद्व (पाद वस्त्र आदि भी यदि क्रोधसे किये गये हों तो वे भी तुम्हारे ही होंगे) । और भी सुनो, बिना सेल सब पक्ष घेजे तथा बिना किलके तर्पण करनेके पुण्य भी तुम्हारे होंगे । हे त्रिजटे ! वधिणासे

इति दत्त्वा वरान् रामस्त्रिजटायरमान्वितः । म विभीषणसुग्रीवमकरष्वज्जवानरैः ॥४४॥  
 ययौ विहायसा सीता दशयन् कौतुकानि सः पश्य भीते पुरीं लङ्कां तथा रणभुवं शुभाम् ॥४५॥  
 पश्य सेतुं मया चतुर्णि शिलाभिर्नवणार्णवे एतच्च दृश्यते तीर्थं सेतुवधमिति स्मृतम् ॥४६॥  
 इत्युक्त्वा गृहीयन् राक्षसेन्द्रस्य वक्रपतः । वृषकाटुवि चोर्नार्थं धृत्वा कौटुम्भमुत्तमम् ॥४७॥  
 धर्मं च सेतुं तत्कौटुया धनुःकोटिरिर्वार्यते । अतएव हि तर्नीर्थं स्नानान्कैवल्यदायकम् ॥४८॥  
 कौटुम्भपाणिर्नाम्नाऽऽर्याद्राममुनिश्च तत्र हि । एतस्मिन्ननरे तत्र अपातिः स ययौ तदा ॥४९॥  
 तमालिङ्ग्य रामचन्द्रम् प्राह स्मिनपूर्वकम् । चधोर्नाम्नाऽत्र तीर्थं त्वं कुरु सेतौ महत्तमम् ॥५०॥  
 तथेति रामवचनाद्भानुः मनोषकाम्यया । तीर्थं चकार मष्पानिर्जटागुमिति विधुनम् ॥५१॥  
 ततो रामाज्ञया यानं वेशानिश्चरगेह सः ततो यानेन तां मातां दर्शयन् कौतुकानि हि ॥५२॥  
 ययौ रामेश्वरं पश्य तथा श्रीरघुनन्दनः सीतेऽत्र पश्य भद्रार्थमेकाने मस्थितं पुनः ॥५३॥  
 अत्र दर्शेषु शरणं कृत् पश्य विदेहजे नवग्रहार्थं प्रक्षिप्तान्पाषाणान्पश्य सागरे ॥५४॥  
 तूष्णामेव स्थित पश्य सागरं मम वक्रपतः एव तां दर्शयन् रामः किष्किषां प्रययौ भवान् ॥५५॥  
 वानराणां त्रियः सर्वा विमाने स्थाप्य राघवः । ययौ तां दर्शयन् सोतां कौतुकानि ममन्ततः ॥५६॥  
 प्रवर्षणगिरिं पश्य श्रम्यसूकाचलं तथा । पंपासरोवरं पश्य कृष्णं भीमरथीं शुभाम् ॥५७॥  
 पश्य पचवटीं रम्यां गोदातीरनिगजिताम् । अगस्नेराश्रमं पश्य सुनीक्षणस्याश्रमं तथा ॥५८॥  
 पश्चादत्रराश्रमं सीते चित्रकूटं समीक्ष्य कालिदां जगद्धीं पश्य भाद्राज्याश्रमं तथा ॥५९॥  
 इत्युक्त्वा जानकीं रामो भारद्वाजार्थिनस्तदा तस्यां तस्याश्रमे यानादवरुद्ध यथासुखम् ॥६०॥

शून्य सब आदर भी तुम्हींको प्राप्त हूँगे । ४१ ॥ ४२ ॥ इस तरह दहतर दर दर राम त्रिजटा सरमा, निर्वीर्यता सुधीय, मकरध्वज तथा वानरोंके साथ भगवान् रामसे सौभाग्यसे सम्पर्क कौतुक दिखाने हुए चल दिष्टे । राहमें राम वीर है सीत । इस लता लगरीकी तथा इस गुन्दर रणभूमिकी देखो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ यह कारसमुद्रमें मेरा बाँधा हुआ मित्यओका विशाल सेतु है । यह सामन सेतुग्रन्थ नामका प्रसिद्ध तीर्थ दिखाई दे रहा है ॥ ४५ ॥ इतना कहते ही बाद रामचन्द्रजी राक्षसेन्द्र विभीषणके वचनानुसार विमानसे नीचे उतरे और अपना उत्तम शूष सेवर उसकी लोकसे सेतुको तोड़ दिया । वहाँपर स्नान करनेसे मोक्षपद देनेवाला धनुषकोटि नामका तीर्थ बन गया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ दारपाणि नामकी रामका मूर्ति भी वहाँ स्थापित हो गयी । इतनेमें वहाँ संपाती आ पहुँचा । ४९ ॥ रामने उत्तकी आरिगन करके प्रसन्न मनसे कहा कि तुम यहाँ सेतुपर अपने भ ईके न भका एक महान् तीर्थ स्थापित करो । ५० ॥ तब धनु कटकर रामकी आज्ञाके अनुसार संपातीन अवन भाईकी आज्ञाकी मान्य करनेवा हुक्कामे वहाँ जटायु नामका प्रसिद्ध तीर्थ बनाया ॥ ५१ ॥ बादमें रामजी जजमे मष्पान धो भी वृषक विमानपर चढ़ा लिया गया । श्रीरघुनन्दन राम सीताके साथ रामेश्वरकी पूजा करनेके विमानपर तवार हावर साताका मय दुष्ण दिवान हुए बाद—देखो सीत । इस एकान्त जगहपर मैं भवणा करनेके लिए देस्ता था । ५२ ॥ ५३ ॥ हे विदेहजे । इन कुशाओंपर मैं सोता था । देखो, ये नौ पाषाण सेने समुद्रमें नवग्रहेक, पूजाके लिए रहने थे । ५४ ॥ देखो, मेरे कहनसे यह समुद्र अब भी वृष है । इस प्रकार वरान् वरान् हुए रघुनन्दन राम क्षणभरमें किष्किषा आ पहुँचे । ५५ ॥ वहाँमें सुग्रीव आदि वानरोंकी मित्रोंको विमानपर बैठाकर पुन रुद्र स्थल स ताको दिखाने हुए दे जाने बड़े ॥ ५६ ॥ रामने सीतासे कहा देखो यह प्रवर्णन गिरि है, यह श्रम्यसूक पर्वत है, यह पंपासरोवर है यह पवित्र कृष्णा तथा भीमरथी नदी है । ५७ ॥ भाद्राज्याश्रम नगर विराजमान यह रमणीक भस्मही है । उपर अगस्त्य तथा सुनीक्षण मुनिके आश्रमका देखो । ५८ ॥ हे सीते । अग्नि मुनिके इस आश्रमको तथा चित्रकूट पर्वतकी शोभाका देखो । समुद्रा गंगा तथा भारद्वाज जीके आश्रमका देखो । ५९ ॥ जानकीसे यह कहकर राम विमानसे नीचे उतरे और भारद्वाज जीके आश्रम करनेपर उनके आश्रममें सुखसे

माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूर्णं वर्षं चतुर्दशं भास्वाजोऽपि तपसा स्वर्गं निर्माय भूतले ॥६१॥  
 पूजयामास श्रीगर्भं भीतिघ्नान्ममभूतम् । रामोऽपि हृदि समन्वयं पारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥६२॥  
 अयोध्यां गच्छ भग्नं मद्भूतं कथयस्व तम् । मावायं मृद्वेरे मे पूर्णं कथय केवटम् ॥६३॥  
 तथेति गृहकं गन्वा केषिणं न्यवेदयत् । गृहकांऽपि मुदा युन्मन्त्रा गमानिकं ययौ ॥६४॥  
 ततोऽयोध्यां दृष्ट्वा वीरान्पारुतिः स विहायमा नदिग्रामेऽपि भग्नः पूर्णं वर्षं चतुर्दशं ॥६५॥  
 नागते रायसे यदि मन्त्रद्वोऽभून्प्रवेशितम् । शत्रुघ्नं भग्नः प्राह गवणेन गणांगणे ॥६६॥  
 भीतामलक्ष्मणीं शीघ्रं हतो मन्त्रेऽथ नागर्षी । अकर्मिणा मया मर्त्यं नृपा एते वर्तयन्ताः ॥६७॥  
 लकां गन्वा रघवस्य साहाय्यं कर्तुमिच्छता । मोक्षमग्निं विश्वाभ्यथ श्वावस्वानलं गते ॥६८॥  
 त्वं गच्छ पार्थिवर्षेण हन्वा पृष्ठे दशाननम् । मोक्षयेन्वा जनकजां ततो नः पाग्लोकिकम् ॥६९॥  
 रामादीनां त्रिषुभूतां कर्तुमहमि सादरम् । इति वृद्धाकथमाकर्ण्य पांग जानपदा नृपाः ॥७०॥  
 शत्रुघ्नीं मातरः सर्वा उर्मितायां त्रिषथ ताः । मूर्धजाया मज्जिणश्च पौग्नार्यश्च सेवकाः ॥७१॥  
 भग्नं वेष्टयामासुः स्वेदादिह्लानमानसाः । भग्नं सान्वयन् सर्वान्यर्गो नां मर्त्यं नदीम् ॥७२॥  
 त्रिषां कृत्वा ततः स्नान्वा दृष्ट्वा दानान्यनेकदाः । यत्र प्रदक्षिणाः कृत्वा यदि प्यान्वा रघुनमम् ॥७३॥  
 सर्वा नां लक्ष्मणं वीरं तत्त्वा मातृगुरुं मुनीन् । अरुण्यदेवतां प्यान्वा श्वनगभिमुखः स्थितः ॥७४॥  
 गवां न्यस्नेक्षकः सायं प्रतीक्षन् सन्ध्यां सणम् । मरान्कोलाहलभ्रागीनदा श्रीगुरुषोः कृतः ॥७५॥  
 ग्नमिमज्जनरे स्वस्वम् दद्यात् वापुनरुतः । प्रवेष्टुमुत्तमं वैराग्यं शत्रुदम्बनः ॥७६॥  
 अत्र शान्तभूतं शक्यं सुषथा सेवयन्निव । मा विशम्भानलं वीरं रघवोऽथ समागतः ॥७७॥

६१-६२ ॥ उस गोज चौदह वरको माघ शुक्ल चतुर्दश थी । भास्वाजने अपने तपोवृत्तिसे पृथ्वीपर  
 ६३-६४ ॥ स्वर्गको रचना कर दो ॥ ६१ ॥ समस्त स्वर्ग पराधीन उन्हात मत। तथा जानकी समस्त आरामका  
 ६५-६६ ॥ भीति पूजक तब मन्त्रार विष्णु । भग्न-भर भग्न विचार करके पारुतिस कहा ॥ ६२ ॥ अयोध्या  
 ६७-६८ ॥ रकर भरतको तथा भूमिभरपुर जाकर भरतिय भिन्न भग्नार, भको मेरा सब समाचार सुना दो । ६३ ॥  
 ६९-७० ॥ उन् भच्छर कहकर हुमातुन निपादराजक पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया । वह प्रसन्न होकर  
 ७१-७२ ॥ तमक पास गया ॥ ६४ ॥ वहांसे पारुति आकाशमगस जात मयाया गये । वही जाकर देखा कि नदीगाव-  
 ७३-७४ ॥ ७२ ॥ चौदह वर्ष वन जानवर भी रामक न लोचनके कारण अग्नि अलाकर उसमें प्रवेश करनेको तैयार।  
 ७५-७६ ॥ एक क्षणसे कह रह्यो - मेरा समझम ता ऐसा आ गया है कि रावणने युद्धम राम-लक्ष्मणको मार डाला है ।  
 ७७-७८ ॥ कारण ये अद्वैतक नहीं लोह । इन्द्राग्नि, मेरा मद राजाभाका भग्नो भर्षी सेनाक सहित कुन्वा भजा  
 ७९-८० ॥ हे व सब लंका जाकर रामका महायत्ना करे । मैं तो आज मूर्धास्तके समय अग्निमें प्रवेश कर आऊंगा

८१-८२ ॥ परन्तु तुम राजाओंके साथ लका जा तथा युद्धम रावणका मारकर जनमनन्दिनीको मुदा  
 ८३-८४ ॥ पश्चात् राम आदि तुम गन्वा भाइयाका तुम भाइयपूर्वक पारुतीका क्रिया करना । भग्नको  
 ८५-८६ ॥ यह बात सुनकर दशक और नगरक कोत राजालाग, शत्रुघ्न, सब माताएँ उर्मिला आदि सभस्त स्त्रियाँ,  
 ८७-८८ ॥ दम्पत्य आदि अश्विगण पुत्रकी शिष्य तथा सेवनवान आकर जारा आगस भरतको घेर लिया और दुःखी हाकर  
 ८९-९० ॥ रोने लगे । तब भरत सबको समझा-सुझाकर सरयु नदीके किनारे गये । ९१-९२ ॥ वहाँ का तथा  
 ९३-९४ ॥ करके चिन्ता रखया और अन्तक दान दिव पश्चात् अग्निका मात प्रदक्षिणा करके उन्हात रघुनम  
 ९५-९६ ॥ गान किया ॥ ७३ ॥ लखननर सीमा तथा जार लक्ष्मणको समझकर करके मानाओं, गृहजनों तथा  
 ९७-९८ ॥ जी प्रणाम किया और आनन्द दवताका स्मरण करके उत्तराभिमुख होकर सवे हो गये ॥ ७४ ॥ भरत  
 ९९-१०० ॥ इन्द्र गढ़ाये हुए मूर्धास्तकी प्रतीक्षा करने लगे । उस समय सभी रथी-मुखाम महान् हाहाकार मच  
 १०१-१०२ ॥ सभी नायुन्मन हुमातुने आकर अग्निप्रवेश करनेका उद्युक्त भरतसे कातिपूर्ण रावणवर होकर  
 १०३-१०४ ॥ कहने लगे यह मधुर वचन कहा - हे वीर, अग्निमें प्रवेश मत करिए । श्रीराम सीता तथा लक्ष्मणके साथ

सीतया लक्ष्मणेनापि भाग्यदात्राभ्रमे प्रति । वानरैः सहितं रामं श्रम्य पश्यसि निश्चयान् । ७८ ।  
 रामोऽत्युत्कृष्टितस्त्वां हि द्रष्टुमस्ति जटाधर । इति तद्वाक्पुष्पावृष्टिसेचिनो भरतो मुदा । ७९ ॥  
 बह्विं नत्वा परावृण्य ननाम राघुनन्दनम् । मानं मारुतिश्चापि नन्वाऽऽलिख्य मविस्तरम् । ८० ॥  
 श्रावयामास श्रीरामपुत्र मनीषकारकम् । तच्छ्रुत्वा भरतस्तपः शोभयामास नां पुरीम् । ८१ ॥  
 अयोध्यां नीरणाद्यैश्च पौरैः प्रपुञ्जयाम तम् । मस्तके पादुके वद्ध्वा पुष्कल्याश्च धारणम् ॥ ८२ ॥  
 माघस्य मितपंचम्यां शमे पंचदशेऽब्दके । प्रधाने भरतो याम्ये ददर्श पुष्पकं स्वयम् ॥ ८३ ॥  
 ननाम राघव दृष्ट्वा साष्टांगं भरतस्तदा । गमोऽप्यालिख्य भरतं कुन्वा रूपायनैकशः । ८४ ॥  
 एककाले जनान् सर्वान्पुष्पकं च परिपश्यजे । आदौ पश्चाच्च रामेण कृतमालिगन तदा । ८५ ॥  
 रामान् दृष्ट्वा ह्यवगमयानां ननाश्रामन्मुचिस्मिताः । समश्वासयाम भग्न राघवः सख्यलोचनः ॥ ८६ ॥  
 ननाम शिरसा मातृशोभां चाप्पकृन्धनम् । ततो वाद्यनर्तनाद्यनन्दग्रामं यया शनः । ८७ ॥  
 इमश्चक्रमोदितनं च तैलभ्यस्य तु वधुभिः । तदिष्टमिच्छकरोद्राप्तो नानामागन्धर्वस्तुमिः । ८८ ॥  
 नवनाद्यमुयांराश्च नेदुः सर्वत्र मृग्यगः नायो नीराजयामासु स्तनीषं गघुनमम् । ८९ ॥  
 ततः सीता तमस्कृत्य कौसल्याद्याश्च मानराः । वसिष्ठं ब्राह्मणान्ब्रह्मान्वदनीयान्यथाक्रमम् ॥ ९० ॥  
 ततः सीता ममालिख्य कौसल्याद्याश्च मानराः । स्नापयामासुर्मग्न्यद्वयैश्चिपुःसरम् । ९१ ॥  
 वस्त्रालकारभूषाभिः सुशुभे जानकी तदा । भरतः पादुके ते तु राघवस्य मुपूजिते । ९२ ॥  
 योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिययुतः । ततोऽनिविनयाग्रहं भरतो गघुनदतम् । ९३ ॥  
 राज्यमनन्यासभूतं मया निर्याप्तं तव । कोष्ठसारं च लं कोशं कुतं दक्षगुण मया । ९४ ॥

आज आ गये हैं । आप वानरो समेत उन्हें कल सज्जित देखते ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥  
 देखनेके लिए घर ही उत्कृष्टित हो रहे हैं । इस प्रकार हनुमानकी वाक्पुष्पावृष्टिसे मितित होकर भरत सदैव अग्निके पाससे लीट आये और वायुनन्दनकी प्रणाम किया । मारुतिने भी भरतको नमस्कार तथा आलिङ्गन करके श्रीरामकी मनीषकारक तथा मविस्तर सब समान्यार गना दिया । गत गुना ही भरतने प्रसन्न होकर अयोध्या नगरको नीरणा पत्ताकी आदिसे समुचितकर तथा पत्र मित्रिक साथ ले और हाथीको आने करके रामकी गदाचक्र मन्त्रकार वधुकर रामकी अगवाना करन गये ॥ ९० ॥ पन्द्रहवें वर्षका माघ शुक्ल पञ्चमीका प्रातःकाल आहू मुनिराम भरतने पुष्पकर्षितानकी आकाशसे देखा । ८३ ॥ भरतने रामके दशन करतक साथ ही उनको साष्टांग प्रणाम किया । रामने भरतकी आशान करनेक शरणाक साथ अनेक हव धारण करके एक ही समय सब लोगोंके साथ अन्त्य अन्त्य मिले । किसीके साथ आनिगन आये ता पड़े नहीं होते पाया ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ बहुतसे रामाकी दस्तर पागोंको बना धारा विस्तर हुआ । रामने भरतको दृढ़ उन बैठाया और उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ८६ ॥ पश्चात् उन्होंने नाताओंकी मन्त्रक सज्जकर प्रणाम करके गुरुपत्नी अरुण्वतीका प्रणाम किया । बादम नाव गाना तथा बाजोंके साथ छोरे छोरे राम मन्दीरामय पवारे । ८७ ॥ वहीं जाकर रामने क्षौर कराया और शरीरमें पन्नादि सुगन्धित द्रव्य मल तथा तेल लगाकर अनेक मंगलकारी वस्तुओंमें सब वस्तुओंके साथ मंगलस्नान किया । ८८ ॥ चाने सरफ नवेनये बाजोंके सुन्दर घोष होने लगे । शिवसे स्तम्भश दीपकीसे कौमल्यानन्दन रामकी आरवी उतारने लगी ॥ ८९ ॥ सीताने भी अपनी शोभाका अरुण्वतीका, वसिष्ठको, ब्राह्मणोंको तथा और-और वन्दनीय जनोंको यथाक्रम प्रणाम किया ॥ ९० ॥ इसमें अनन्तर कौसल्या आदिन सीतका छापीसे लाकर मणालिक दृष्टसे स्नान कराया ॥ ९१ ॥ उस समय जनकनन्दिनी नये नये अलङ्कारोंमें सज्जकर बड़ा सुन्दर लगने लगी । भरतने रामकी पादुकाका पूजन करके रामसे पांवाम नमस्कारके पहिना दी । तदनन्तर अग्न दिनत भावसे भरत गघुनायजीसे कहने लगे- ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ है प्रभो ! आपका पराहृस्वरूप राज्य मेन आजतक चलाया । है जगप्राथ ! आपके पुण्य प्रतापसे मेने यहाँके कोठार, कोश तथा सेनाको बड़ाकर दसगुना कर दिया है । अब आप अपने इस मगरका, देशका तथा

त्वयेज्ज्वा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम् । तथेति राघवञ्चोक्तवा भरतं सन्पदेशयत् ॥१५॥  
 ततः स दिव्यवस्त्राणि परिधाय रघूत्तमः । सीतया रथमारुह्य शयशोपेर्जनस्थनैः ॥१६॥  
 वार्तागनानृत्यगीर्तर्ययौ निजपुरीं प्रति । पाग्नःपैश्च लोषम्या ववर्तुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१७॥  
 चकुरीगजनं भार्गवं नानाजलिपुरःसरम् । रामो रथात्तदोत्तीर्य सीतां मप्रप्य वै गृहम् ॥१८॥  
 पुष्पकं ग्राह्य गच्छत्तं कुवेरं बहू सर्वदा तथेति रामवचनाञ्जगाम पुष्पकं तु तत् ॥१९॥  
 अथ रामः समामभ्ये विवेश कपिभिः सह । ददौ कपिभ्यो मोहानि वस्तुं रम्याणि मादरम् ॥२०॥  
 अथ रामस्य राज्याभिषेकं गुरुस्तदा । चकार सुगृह्णै वै महाभगलपूर्वकम् ॥२१॥  
 हनुमत्प्रमुखापैश्च चतुर्विधुजल शुभम् । सनानीष नृपैः सर्वैर्महाबाहवपुःवरम् ॥२२॥  
 उग्र च तस्य जग्राह पृष्ठसन्धः स लक्ष्मणः । दधार मन्दपार्श्वस्थश्चामरं अतस्तदा ॥२३॥  
 शत्रुघ्नो वामपार्श्वस्थो दधार व्यजन शुभम् । हनुमन्पादुके दिव्ये दधार पुस्तः स्थितः ॥२४॥  
 वायव्यादिचतुष्कोणमस्थितस्ते महीजगमः । सुर्यावाद्यास्तदा चर्म्मश्चत्वारो राघवेक्षणाः ॥२५॥  
 सुर्यायो जलपात्रं च वरादर्शं विभीषणः । दधार हस्ते तां कूलपात्रं स बालिनन्दनः ॥२६॥  
 रत्नकोशं जांबवाश्च दधार वेगवनरः । नस्थौ मिहामने रामः स्पृष्ट्वां कोषवर्हणः ॥२७॥  
 सीमात्रचामपार्श्वेऽथ सत्तानिः सस्थितोऽभवत् । वायवार्श्वे भग्नस्य गुहकः सस्थितोऽभवत् ॥२८॥  
 शत्रुघ्नचामपार्श्वेऽथ सस्थितो मकरध्वजः । हनुमद्दाम्पार्श्वं च गरुडः सस्थितोऽभवत् ॥२९॥  
 सुपादादिचतुर्णां ते चामपार्श्वेषु सस्थिताः । आचित्रगर्थाविजयसुमित्रगरुकास्तथा ॥३०॥  
 नानागजोपकरणवृत्तहस्त्य महीजनः । ययुर्दयासुगः सर्वे यक्षगर्भकिन्नराः ॥३१॥  
 औषध्यः पर्वता वृक्षाः सागराश्चाथ निम्नराः । मालाश्च कांचना वायुर्देदौ वामवचोदितः ॥३२॥

राज्यका पालन त्वयं करें । यह सब और 'तपाम्नु' कहकर रामने भरतको अपने पास बैठा लिया  
 ॥ १५ ॥ १६ ॥ तदनन्तर राम और सीता दिव्य वस्त्र धारण करके रथपर सवार होकर अथ-जयकार तथा वाज  
 गानेके साथ नारांगनाभोका ताच-गान देवदेव मुनें हुए अपनी शिव अवाध्यात्मको चले । नगरमें प्रवेश करनेपर  
 नगरकी नरियोंने छत्ते तथा वाद्यं पर बहकर भक्त प्रवारके पुष्पोंकी वर्षा की ॥ १७ ॥ १८ ॥ वे रास्तेमें विविध  
 पूजाकी सामग्रसे रामको आगता उतारने लगी । रामने विमानमें उत्तरकर सीताकी महत्त्वमें भेंट दिया और  
 पुष्पक विमानसे कहा कि तूम कुवेरके पास जाकर सदा उन्हीकी सेवा करा ' रामको आज्ञाका स्वीकार करके  
 पुष्पक विमान कुवेरके पास चला गया ॥ १९ ॥ २० ॥ अथ राम सब कपियोंका साथ लेकर सभाभवनमें गया ।  
 पश्चात् कपियोंका निष्पन्न करके लिए उत्तम-उत्तम भक्तान् दिये गये ॥ २०० ॥ तदनन्तर गृह वर्तिष्ठने शुभ  
 मुहूर्तमें बड़े धूम-धामसे रामका राज्याभिषेक ठाना ॥ २०१ ॥ हनुमान् बादिल भंडार चले शत्रुघ्नोका शुभ  
 जल भोगवापी । दश-देशाक्षरके राज-महाराजे बुलाये गये । नाना प्रकारके वाज बजे लक्ष्मणन पीछे खड़े  
 होकर रामके ऊपर छत्र लगाये । रामकी पादुका हाथमें लेकर हनुमान् उनके सामने खड़े हो गये ।  
 शम्भो और सुन्दर पत्नी लेकर शत्रुघ्न सड़े हुए और रामकी बांहों और चरकर लेकर भरत खड़े हुए गये  
 ॥ २०२-२०४ ॥ रामके नेत्रसदृश शिव तथा भोजस्त्री मृगश आदि मित्र वायव्य आदि चार कोनोंमें  
 विराजमान हो गये ॥ २०५ ॥ मयावने जलपात्र, विभीषणन सुन्दर दण्ड, बालिनन्दन अंगदने पात्रदान  
 तथा मेघवाक् जंबवानने अपने हाथमें श्रीरामके वस्त्रोंकी पिटाही ले ली । तब धराम जाकर महा-स्तिकिया  
 लगे हुए शत्रुघ्नस्य मिहामनपर निद-जमान हो गया । लक्ष्मणके वामभागमें लंपाती, भरतके रामभागमें  
 निपादराज, शत्रुघ्नके वामभागमें मकरध्वज तथा हनुमान्के वामभागमें गरुड खड़े हुए । नृपति आदि चारों दिनोंके  
 वामे चित्रग, विजय सुमित्र तथा शार्ङ्ग खड़े हुए । २०६-२१० । बड़े-बड़े राजस्त्री रामे हाथमें भक्त  
 प्रकारकी भेंटें लेकर आये । सब देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नरगण वहाँ आकर उपस्थित हो

सर्वरत्नममापुक्तं  
प्रजगुर्देवगंधर्वा

मणिकंचनभूषितम् । ददौ हारं नन्देन्द्राय स्वयं शक्रस्तु यत्किनः ॥११३॥

नन्दतुर्वारयोपिनः । देवदून्दुमयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात सात ॥११४॥

ततोऽकम्बं स्तुतिमहं भरतेनाभिपूजितः । ११५॥

श्रीशिव उवाच

सुग्रीवमित्र परमं पवित्रं गीतकलत्रं नरमेघनाम्रम् ।

काकपयपात्रं क्षतपत्रनेत्रं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११६॥

समागमार निगमप्रचारं धर्मावतारं हनभूमिभारम्

सदाऽधिकारं सुखमिषुमारं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११७॥

लक्ष्मीविलासं जगतीं निवासं लक्षाविनाशं भुरनमकाशम्

भूदेववासं शरादिन्दुहासं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११८॥

मन्दारमालं पद्ममे रम्यलं गुणविशालं हनममृतालम् ।

कल्यादकालं मृगलोकपालं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११९॥

वेदांतगानं सकलैः समानं हुताग्निमानं त्रिदशप्रधानम्

मर्नेन्द्रयानं विगतविमानं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२०॥

इषामाभिगमं नयनाभिगमं गुणाभिगमं वचनभिगमम् ।

विश्वप्रणामं कुतभक्तकामं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२१॥

लीलाशरीरं रणरङ्गधारं विश्वैकमारं रघुवंशहारम् ।

गंभीरनादं जितमयंवाद् श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२२॥

खले कृतानं स्वचने विनीतं गामोर्णानं मनसा प्रवीतम् ।

गये । ओषधि, पर्वत, वृक्ष, समुद्र तथा नदियाँ भा भा पहुँचा । इन्द्रकंठ का भज हुए वायुन आवर रामकी एक गुल्मर कंचनका माला पहनाया । १११ । ११२ ॥ पञ्चांग स्वयं इन्द्रन का भाकर सब गन्धोसे युक्त तथा सोनस सुशोभित हुए राजा रामको समर्पण किया । ११३ ॥ इन्द्र, और गन्धर्व उनका गुण मन ली । सब अप्सराय और क्षाणिकनये मात्सर्य लगी देवताओंके नगर वज्रने लगे और आकाशस कूनोंकी मर्दी होने लगी ॥ ११४ ॥ बादमें भरतके द्वारा पूजित होकर मैं ( शिव ) रामकी स्तुति करने लगा । ११५ । श्रीशिवजी बोले—सुग्रीवक मित्र, परमपावन, सीताक पति, मेघक समान प्रियम अरावधाले वरुणाके मिथु और कमलके सहस्र तैयोंवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ । ११६ । सप्त रसागरसे कलनोंकी पार करनेवाले, वेदोंका प्रचार करनेवाले, धर्मके साक्षान् अवतार, भूभास्को हरण करनेवाले, अद्विष्ट स्वल्पवाले और सुखके सर्वोत्तम सागर श्रीरामचन्द्रको मैं बड़ा नमस्कार करता हूँ ॥ ११७ । लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, जगत्के निवासस्थान, लक्ष्मिका विनाश करनेवाले भयनोंको प्रवर्णाशत करनेवाले, ब्राह्मणोंको शरण देनेवाले और आर्यदीय चन्द्रमाके समान शुभ हास्य करनेवाले श्रीरामचन्द्रका मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११८ । मन्दारको माण्ड धारण करनेवाले, रसाल वचन कालतवाने गुणोंम महान् सात काल वृक्षोंका भेदन करनेवाले, राक्षसोंके काल तथा देवलोक्तके पालक रामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ । वेदांत्के गेय, सबके साथ समान वर्ताव करनेवाले, शत्रुके मालका मर्दन करनेवाले, गज्जदका सवारी करनेवाले तथा अन्तरहित श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ । ११९ । १२० ॥ उगमरूपसे मनाहर नगनोंसे मनोहर, गुणोंसे मनोहर, हृदयग्रही वचन जोलनेवाले, विश्वचन्द्रमाय और भक्तजनोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ । १२१ ॥ लीलाभाषक लिए शतर धारण करनेवाले, रणस्थलीमें धीर, विश्वभरके एकमात्र सारभूत, रघुवंशमे श्रेष्ठ, गंभीर वाणी बोलनेवाले और समस्त शत्रुओंकी जीतने वाले श्रीरामचन्द्रको मैं प्रतिक्षण प्रणाम करता हूँ । १२२ ॥ दुष्टजनोंके लिए कठोर हृदयवाले, अपने भक्तोंके प्रति



राक्षस्य शीतं वचनाद्वीक्ष्य श्रीरामचन्द्रं मननं तमासि ॥१२३॥

श्रीरामचन्द्रस्य वगाष्टकं त्वां सवेगं देवि मनोहर खे ।

पठन्ति भणन्ति गृणन्ति भक्त्या ते स्वीयकामान्प्रलभन्ति निन्यम् ॥१२४॥

इति स्तुत्या रामचन्द्रं तमासि पश्चित्तस्त्रहस्रम् । एतस्मिन्मन्तरे तत्र राजा दशरथो महान् ॥१२५॥

दृष्ट्वा रामं मयीत च विमानस्थोऽर्धमाश्रितः । स्तुत्या राम परान्मानं राज्यस्थं वधुवेष्टितम् ॥१२६॥

उवाच रामं संतुष्टः सुगतीकविराजितः ।

दशरथ उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं धन्यो तौ पितरौ मम ॥१२७॥

धन्यो देशः कुलं धन्यं यस्यां राज्याभिषेचनम् । पश्याम्यद्य महाबाहो धन्या मा जननी तव ॥१२८॥

पा कौसल्या ममुस्माद् नेत्राभ्यां तेष्वपि पश्यति । हृत्पुत्रवत्तं राजानं नमाम न रघुनमः ॥१२९॥

कौसल्याया राजदाराः सर्वे ते पौरवामिनः । लक्ष्मणो भरतश्च शत्रुघ्नस्तेऽव मन्त्रिणः ॥१३०॥

नमस्काराभूषं चतुर्विमानस्थं युदाम्बिताः । तान् राजाऽपि पृथक् पृष्ट्वा सर्वदेवगणैर्गुणैः ॥१३१॥

पूजितो रामचन्द्रेण मया सह न्यवर्तन । ययुः स्व स्वं पदं सवे मया राज्ञा सुरास्तदा ॥१३२॥

गमेऽभिषिक्ते गजेन्द्र सर्वलोकमुवावहे । यगुधा मत्स्यमपन्ना कलवतो महारुहाः ॥१३३॥

गर्भदानानि पुष्पाणि गन्धवन्ति चक्राश्विरे । मह्यं शतमश्वानां धेनूनां रघुनदनः ॥१३४॥

ददौ शतं वृषाणां च द्विजैर्मयो वसु कौटिल्यः । सर्वकारिसमप्रख्यां सर्वरत्नमयीं अजम् ॥१३५॥

मुद्रोवाय ददौ प्रीत्या राधयो हर्षसंपुनः । अवतनं ददौ भेष्टं राक्षसेन्द्राय राधयः ॥१३६॥

अंगदाय ददौ दिव्ये गन्धो चाद्रुभूषणे । चद्रकौटिल्यप्रतीकांशं मणिरत्नविभूषितम् ॥१३७॥

मानाये प्रददौ हारं प्राप्या रघुकुलोत्तमः । ना तं हारं ददौ वायुपुत्राय सा मनास्विनी ॥१३८॥

वितस्त्रमाववाप्य सावकदं त्रिनका गुणगानं कर्त्ता है, मनमात्रक विषय, प्रेमस गान करन योग्य तथा वचनोंसे पहलू बनन स्तव्यक श्रीरामचन्द्रका से समस्त नमस्कार करदा है ॥ १२३ ॥ ते रति । गुहारे प्रति कहें हुए श्रीरामके इस सुन्दर अष्टकका जो मनुष्य भक्तिसे पढ़ेगा अथवा सुने सुनायेगा, वह अपनी अभिप्रेत रामन ओंको निज प्रान्त करेगा । १२४ । रामचन्द्रको इतनी स्तुति करके ज्यों हैं से उस सभासे बैठा, यों ही सूरिक समान नेत्रस्वा राजा दशरथ विमानपः सवार होकर मन्त्रमुद्रायेके साथ वहाँ आकर सत्तक सहित चन्द्रभोसे बैठित तथा राजाशेपर स्थित पुष्पवहूप राम परमान्माका देखकर स्तुति करन लग्य ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ दवताओक समूहक परिवर्धित राजा दशरथ प्रमथ हाकर जान । उन्होंने कहा—मैं धन्य हूँ, मैं कृतवृत्त्य हूँ मेरे म.ता-पिता धन्य है । १२७ ॥ मेरा देश तथा कुल भी धन्य है कि जो मैं आज तुम्हें राजाशेपर अभिषिद्धित देख रहा हूँ । इ महाबाहो । तुम्हारी माता कौसल्या भी धन्य है, जो तुम्हें इसाहूतके अपने नेत्रासे देख रहा है । तदवन्तर रामने उन राजा दशरथको प्रणाम किया । १२८ । १२९ ॥ स्व कौमन्ता आदि राजाकी मित्रागने पुरवासिदोने, भरत अश्वघने तथा मन्त्रियोने प्रमुदित होकर विम.नये विम. राजा दशरथको प्रणाम किया । राजाने भी एक-एक करके उन सबसे कुशल पूछा । फिर देवताओं तथा पुत्रों साथ से और रामचन्द्रसे पूजित हाकर उन्होसे वहाँसे प्रस्थान कर दिया । भर तथा रामाके सहित के सब देवता अपने अपने काम सिचारे । १३०—१३२ ॥ सब लोगोका सुख देनेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा रामका अभिप्रेक हो जानपर पृथ्वा धन-धान्यपूर्ण हो गयी और नही कल्पनेवाले भी वृक्ष कल्पने लगे । १३३ ॥ सुषम्बरहित पुष्प भी सुगन्धित होकर सुगन्धित हान लगे । रघुनन्दन रामने संकल्लो बैल, हजारी पात्रं तथा करोड़ों रत्न राजाणाका दान दिये । उन रामने प्रमथ हाकर सूरक समान चम्पकनेव सा तथा अनेक प्रकारके रत्नोंसे निमित्त एक माता प्रीतिपूर्वक मुद्रोषको हों और एक सिररच राक्षसेन्द्र विभीषणको दिया । १३४—१३६ ॥ उन्होंने अंगदको दिव्य चातुर्वन्द दिये । रघुकुलमणि रामने सीताको करोड़ों चन्द्रकाके समान चमकासे बजियों तथा

नेन हारेण शुश्रूमे मारुतिगारिवेण च । तदा दष्टा हनुमन्तं रामो वचनमब्रवीत् ॥ १३९ ॥  
 मारुते त्वां प्रसन्नोऽस्मि वर वर्य कांक्षितम् । हनुमानपि तं प्राह तत्त्वा रामं ब्रह्मृषीः ॥ १४० ॥  
 त्वन्नाम स्मरतो राम मनस्तुष्यति नो मम । अतस्त्वन्नाम मननं स्मरन्स्थास्यामि भूतले ॥ १४१ ॥  
 यावन्स्थास्यति ते नाम लोके तावन्कलेशम् । मम तिष्ठतु राजेंद्र वरोऽयं मेऽभिकोक्षितः ॥ १४२ ॥  
 यत्र यत्र कथा लोके प्रचरिष्यति ते शुभा । तत्र तत्र गतिर्मेऽस्तु श्रवणार्थं सदैव हि ॥ १४३ ॥  
 देवालयान्नदीतीरतीर्थाद्यापि जलाशयात् । विनाऽन्यत्र स्थले वेस्तु कथा पङ्चदिकोर्ध्वतः ॥ १४४ ॥  
 रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम् । कल्पाने मम सायुज्यं प्राप्स्यमनात्र संशयः ॥ १४५ ॥  
 तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते । स्थितं स्यामनुयासूरेति भोगाः सर्वं समाश्रया ॥ १४६ ॥  
 आमागमयननेषु प्रजसेटकमयसु । वनदुर्गपर्वतेषु सर्वदेवालयेषु च ॥ १४७ ॥  
 नदीषु क्षेत्रतीर्थेषु जलाशयपुङ्खु च । वाटिकोपवनाश्वन्धवटवृन्दावनादिषु ॥ १४८ ॥  
 त्वन्मूर्तिं पूजयिष्यन्ति मायया विघ्नशानये । भूतप्रेतपिशाचाद्याः नश्यन्ति स्मरणान्नव ॥ १४९ ॥  
 ये चान्ये वानराश्च ह्ययोध्यां समुपामताः । अमून्यामरणैस्त्रैः पूजिता गयवेण ते ॥ १५० ॥  
 सुर्यावप्रमुखाः सर्वे वानराः मविर्भाषणाः ।

मकरध्वजमपातिगुहकाः पथिवादयः । यथाहं पूजितास्तेन रामेण वमनादिभिः ॥ १५१ ॥  
 ततः सर्वभोजनार्थं गयवः संस्थितोऽभवत् । रामेण प्राणादुत्तयो गृहीतायेति मरुतिः ॥ १५२ ॥  
 निर्गह्योर्हीय वेगेन रामाग्रे भोजनस्य च । त्रिपदायां स्थित पार्श्वे हंस पक्वान्नपूरितम् ॥ १५३ ॥  
 निनाय वामहस्तेन धृत्वा च विहसन्मुदा । स्वयं भुक्त्वा रामशेषं प्राक्षिपद्धानशर्नाप ॥ १५४ ॥

रत्नासे विभूषित हार सत्रेण समर्पण किया । मरुतिवर्मीसीतान भी रामका दिया हुआ वह हार वायुपुत्र हनुमानको दे दिया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ उस हारके पीरवस हनुमान बड़ ही मगामित होने लगा । वह दबकर रामने हनुमानसे कहा — ॥ १३९ ॥ हे मारुते ! मे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ जो चाहो सो वर माँगो । तब प्रसन्न हनुमानने रामको नमस्कार करके कहा — ॥ १४० ॥ हे प्रभा ! आपका नाम स्मरणने मेरा मन अब भी तृप्त नहीं हुआ है । अतएव जबतक आपका नाम भूतलमें विहमान रहे जबतक मैं आपका नाम स्मरण करता हुआ इस लोकमें अवित रहूँ हे राजन्द ! यहाँ मेरा अभिलषित वर आग पुत्र हूँ ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ लोकमें जहाँ कहीं भी आपकी यावत्र कथा हातो हो, वहाँ वह कथा मुनिक स्थित जानेंगे मरी अप्रतिहत गति हो ॥ १४३ ॥ देवालय, नदीतीर, तीवस्थान तथा शिवली आदि जलाशयको छोड़कर अन्य स्थानों पर छः घड़ोंके बाद नित्य आपको कथा हुआ करे ॥ १४४ ॥ रामने कहा अच्छा, तुम मुक्त हाकर सुखसे भ्रमण्डलपर निवास करो कल्याणक समय तुम मरी सायुज्य पुनिकी प्राप्ति होगी, इसमें संदह नहीं है ॥ १४५ ॥ इसके पश्चात् जानकीजी प्रसन्न होकर बोलीं हे मारुते ! तुम जहाँ कहीं रहोगे, वहाँपर मेरे आर्णावर्दिसे तुमका सब भगवत्पदाय प्राप्त हो जायगा करन ॥ १४६ ॥ ग्राम बाग, नगर, गोशाला, रास्ता, ठाँठ गाँव, घर, वन, जिला पर्वत, सब देवालय, नदी, तीर्थक्षेत्र, जलाशय, पुर, वाटिका, उपवन, पौषल, वट तथा वृन्दावन आदि स्थानोंमें प्रसन्न अपने विघ्नाका शान्त करनके स्थित तुम्हारी मूर्तिको पूजा करेंगे । तुम्हारा नाम स्मरण करनसे ही भूतप्रेत तथा पिशाच आदि दूर भाग जावेंगे ॥ १४७-१४८ ॥ इसके बाद रामने अगच्छाम जो अन्य वानर आय वे, उस सबका भी बहुमूल्य भोजन तथा वस्त्रोत्त सरकार किया । १४९ ॥ श्रीरामने रत्नादिसे सुवीर आदि वानरो विभीषण, मकरध्वज, संपाती तथा निषादराज आदि राजाओंका भी यथायोग्य पूजा की ॥ १५१ ॥ उसके पश्चात् सबको साथ लेकर रामचन्द्रजी प्राशन करने बैठे । रामके पाँच ग्राम ग्रहण करके तृप्त हो जानेंके साथ ही हनुमान् सब दृढ़कर रामके पास भा पहुँच और उसके सामने पाँचपर खड़ा हुआ पक्वान्नेसे परिपूर्ण सुवर्णका थाल बाएँ हाथसे उठाकर आकशमें चले गये और रामके उस भोजनशयका स्वयं आनन्दसे

तदा विभीषणाद्याश्च स्वीयवाचाणि वेगनः । विमृष्य मरुतिं मृग्या स्वया वस्य कुरुतं स्थितिः ॥ १५५ ॥  
 तन्निभं गयचोच्छिष्टं बुधुनुः सभ्रमान्विताः । महान् कोलाहलधामात्रामोच्छिष्टार्थमावगतः ॥ १५६ ॥  
 मानसामो तन्निगद्य दृष्ट्वा जहननुस्मदाः । एवं नानाकौतुकानि कुरुन्तो राघवोन्निवे ॥ १५७ ॥  
 सुग्रीवाद्याः सुखं तन्भुज्जोषयन्तः क्रियद्दिनम् । एतन्मित्रजनैः तत्र पुष्पकं च समपुनः ॥ १५८ ॥  
 प्राह देव कूवेरेण प्रेषितं न्यामह पुनः । मामाह पन्कुवेरश्चन्द्रगुप्तश्च स्व गृहम् ॥ १५९ ॥  
 जिनस्त्वं रावणेनादौ पश्चाद्रामेण निजिनः । जनस्त्वं गयच निन्य वह यावद्वेदेभ्यः ॥ १६० ॥  
 यदा गच्छेद्रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठं याहि मां तदा । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह सुग्रीवादीन्यथास्थिते ॥ १६१ ॥  
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्वहिर्वस तथेति । रामवचनाद्दानराद्यान्यथास्थिते ॥ १६२ ॥  
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्वहिः स्थितम् । चकार राज्य धर्मेण लङ्कायां स विभीषणः ॥ १६३ ॥  
 अग्राम राज्यं पानाले धर्मेण मकरध्वजः । चकार तार्क्ष्यः मरुतिं यौगजदण्डे जिने ॥ १६४ ॥  
 दाशाम राज्यं कपिभिः किष्किन्ध्यायां कर्षाश्वरः । मृङ्गवेरपुरे राज्यं मुहुकथाकरोन्मुदा ॥ १६५ ॥  
 नन्या राम दायुपुत्रो ययौ तप्तुं हिमालयम् । सर्वे विभीषणाद्याश्च वचसे समसेहतनि ॥ १६६ ॥  
 दर्शनार्थं राघवस्य साकेतं प्रययुः सदा । पञ्च मय दिनान्यत्र स्थित्वा भोगघर्वातिकम् ॥ १६७ ॥  
 यातायातं सदा चक्रुः स्वम्यराजशाद्वृत्तमम् । रामोऽपि राज्यमखिलं अग्रामाखिलवन्मलः ॥ १६८ ॥  
 अनिच्छतं हि मौमित्रि यौवरा.देऽभ्यवेचयन् । लक्ष्मणः परया भक्त्या रामसेवायोगोऽमवत् ॥ १६९ ॥  
 विश्वामित्राध्वरे पूर्वं रणयागस्य पूजना ।

स कृता या राघवेण सा कृता स्वपदे तदा । रणयागः मयिस्त्वासाद्वर्ष्यते मृणु पार्वति ॥ १७० ॥

स्थाने तथा नीचे बानरोके आगे पंक्ते लगे ॥ १५२-१५४ ॥ यह देखकर विभीषण आदि भक्त भी जोष्ट अपन-प्रपन्न वालोंको छोड़कर हनुमान्की प्रशंसा करके कहने लगे कि तुमने बहुत उत्तम काम किया ॥ १५५ ॥ यह कहकर वे स्वयं भी सदैव आदरसे मार्जलिका केरा हुआ रामका उच्छिष्ट प्रसाद पाने लगे । उस समय रामकी बूझके लिये बड़ा भारी कालहल भव गया ॥ १५६ ॥ राम और सीताने यह दस्ता ता प्रकल्प होकर दूरने लगे इस प्रकार विजिघ्र कोटावे करके सीता और रामको प्रमत्त करने हुए गुणिव आदि मित्र कुछ दिन वहीं रहे । इतनेमें पुष्पक विमान पुनः वहाँ आया ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ वह रामन कहने लगा—हे देव । कूवेरेने मुझको आपक पास वापस भेंट दिया है । हे गृहपति ! कूवेरेने आ कुछ मुझसे कहा है, वह मुनिने ॥ १५९ ॥ उन्होंने कहा है कि पहले तो रावणने तुमको मुझसे जीता था और बारम्बार हमने तुमको रावणसे जीता है । इस कारण तुम आकर तबतक राम ही को सब री देनेका काम करो, जबतक कि भूमण्डलभर रहे ॥ १६० ॥ जब रघुश्रेष्ठ राम वैकुण्ठ धाम चले जायें, तब तुम मेरे पास चले जाना । यह मृतकर रामने विष्मन्को आज्ञा दी कि शुभाव आदि मेरे मित्रोंको उनके स्थानपर पहुंचाकर जोष्ट ही अयाध्या लौट आओ और राजमहलके दरवाजेक बाहर खड़े रहो । तदनन्तर विभीषण जाकर लङ्कामें समपूर्वक राज्य करने लगे ॥ १६१-१६३ ॥ मकरध्वज पानालमें धर्मपूर्वक राज्य-शासन करने लगे । मरुदने युवराजपरपर ईगतांका अभिषेक किया ॥ १६४ ॥ किष्किन्धामे कर्षाश्वर तृतीय राज्य करने लगे । मृङ्गवेरपुरमें निषादराज आनन्दने राज्य करने लगा ॥ १६५ ॥ दायुपुत्र हनुमान् रामका नमस्कार करके तप करनेको हिमालय चले गये । फिर भी विभीषण-सुग्रीव आदि मित्र पौनर्व अथवा साठवें दिन अयोध्यामें श्रीरामका दर्शन करनेके लिए आया करते थे और वे श्रीरामके पास पौन-सात दिन निवास करके चले जाते थे । इस प्रकार उन लोगोंका अपने-अपने राज्यसे श्रीरामके पास आना जाना लगा रहता था । सभी लोगोंके प्रिय राम भी सम्पूर्ण राज्यका चालन करने लगे ॥ १६६-१६८ ॥ स चाहनेपर भी रामने लक्ष्मणका युवराजके पदपर अभिषेक कर दिया और वे भी रामको संशय तत्पर हो गये ॥ १६९ ॥ रामने पूर्व समयमें विश्वामित्रके यज्ञके समय जिस युद्धरुषी यज्ञकी समाप्ति नहीं की थी, उस रणयज्ञको इस समय अपने राज्यपदपर स्थित हो जानेपर पूर्णाहुति की । हे पार्वती ।

रणांगणं यत्कुण्डं तत्र वै स्यलप्यनम् । तच्च वेदविधानं हि ब्रह्ममखं प्रकीर्तितम् ॥१७१॥  
 कर्मणश्च पटाटोपो ज्ञेयः शम्भुवणम्भनः । संघात्रेन स्रक्चर्मोर्जये पाषाणमर्पणम् ॥१७२॥  
 शम्भुणा मनशोधार्थं क्रियते यदृणांगणे । भूमौ शराणां विस्तारः परिस्तरणमुत्तमम् ॥१७३॥  
 परिममूहनं चैवै यदिक्षालानलो महान् । मृदेण बाणरूपेण मानादुनिममर्पणम् ॥१७४॥  
 रक्तधारा वमोर्धारा हाहाकारो भयानकः । म ॐकारवपटकारोपो ज्ञेयो रणाध्वरे ॥१७५॥  
 अग्नेर्ज्वाला शम्भुनेत्रोभ्रुवः स्वेदमृगो रणे ज्वालात्रिचयग्रान्तर्यं पृथदाज्यस्य सेननम् ॥१७६॥  
 यत्तद्वत् तु वीराणापस्त्रपांचनमुत्तमम् । ज्ञानेन सह जीवस्य बलिदोषवलिः स्मृतः ॥१७७॥  
 वै वेदलोभिनो जीवा बलिदोषहराः स्मृतः । रामहस्तान्मूर्तिन्यक्का ये कुर्यन्ति पलायनम् ॥१७८॥  
 देहवन्धश्च मुक्तास्ते बलिमक्षणदोषतः । पूर्णादुतिः सिरोभिर्दि ज्ञेयस्मिन्नब्रह्मक्षिणाः ॥१७९॥  
 उच्चाटने हि सन्धेन वीराणां जयहेतवे । नञ् यदप्रदानं च ज्ञेया मा दक्षिणाऽध्वरे ॥१८०॥  
 मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिस्तुष्टं विश्वामिवेषनम् । जयमन्त्रादनं पुष्टं श्रेयःसंपादनं हि तत् ॥१८१॥  
 चराचरणामानन्दो ज्ञेयः स निजमोजिगाम् । भूतानां नयेन विश्वमोजनं सम्प्रकीर्तितम् ॥१८२॥  
 एव मुवाहुना युद्धं राघवस्य रणाध्वरः । तथा गाधिजयस्तुष्टिर्दो नो ज्ञेयो महेश हि ॥१८३॥  
 कृताञ्जलसमाप्तिस्तु विश्वामिवेषनं वै पुरा विश्वामिनो न रामेण दृष्टाञ्जलं रणाध्वरे ॥१८४॥  
 कालानलं पुनस्तस्य सुन्दरं राउकरोन्मतिम् । कृत्वा भूमेर्महन्वात्र विश्वामिवेषणं हि ॥१८५॥  
 पात्रस्य प्रोक्षणं कृत्वा विश्वामिवेषणमादरात् । रामः शूर्पणखायश्च घ्राणं वर्णां विभेदयत् ॥१८६॥  
 श्राणादुतिर्गो रामेण विश्वामिवेषणः । मार्गश्च कवन्धश्च पंच ते निहताः क्षणात् ॥१८७॥

उस रणरूपी यज्ञका में विस्तारमें वर्णन करता है, पुनः ॥ १७० ॥ उस रणयात्रामें युद्ध कुण्ड था । नमस्स न  
 पागना ही वेदविहित बहुसन्न था ॥ १७१ ॥ शम्भुकी मन्त्रवाट ही कर्मकी सागरा थी । रणांगणमें तन्त्रोका  
 मील सुन्दरके लिये उत्तर जा पत्थर धिमे जान थे, वही मुक्त स्वतन्त्र, मजिना था । भूमिमें बाणोंका फैला-  
 फेलाकर रखना ही उत्तम कुण्ड आदिका आभरण था । शीरवा ही उनका परिममूहन ( वन्दन ) था । महान्  
 कालरूपी मर्ग ही यज्ञकुण्डका भाग था । उसमें बाणरूपी सुन्दर मावकी आहुतिमें समर्पण की जाती थी  
 ॥ १७२-१७४ ॥ शिवकी घागी ही वसुधा थी । भयानक हाहाकार ही ओंकार तथा वधूकारका नाद था  
 ॥ १७५ ॥ शम्भुकी चमक ही कामकी जलर था । पर्वतका बहना ही घुमी था । शीर पुष्पोंका उत्तम  
 अन्नमोजन ही अधिक ज्वालाकी शक्तिवा पृथदाज्य मीषनरूपी उपाय था । जन्ममूर्ख जोको कहर-त्याग  
 ही दीपदान था ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ जो शरीरमें मसता रखवाने के, वे ही पुत्रका सामग्री तथा दापवा ले  
 भागनवाले माने जाते थे । ओ रामके हाथसे न मरकर बहूंस भाग जाते थे । वे दन्धिधरण करनेके दावसे  
 वेदरूपी वधनमें ही बड रत जाने थे-पुन मदीं होने थे । उस युद्धरूपी यज्ञमें सिरोका बट कटकर गिरना ही  
 नारियलके द्वारा ही जानवाली पूर्णादुति थी । चित्रजन्मभक्त लिये अपनी दाहिनी ओरसे बाँरीको दूर करना  
 ही ब्रह्मक्षिणा थी । उस यज्ञमें मृत पुष्पोंका विजयवन ( वृक्षारक का प्रति ) ही दक्षिणा थी ॥१८०-१८१॥ वेदता-  
 लोंके द्वारा जो पुष्पवृष्टि की जाती थी, वह बाह्यमोका अभिवेषन था । युद्धमें विजय प्राप्त करना ही यज्ञका  
 फल था ॥ १८२ ॥ चर अवरका आनन्दलाभ ही ज्ञान गात्रवालेका आनन्द समझा जाता था । पशुपती  
 आदि जलोकी मूर्ति ही विश्वामोजन कहा जाता था ॥ १८३ ॥ इस प्रकार रामका जो मृगारुमें युद्धरूप यज्ञ राक्ष-  
 साँके साथ आरम्भ हुआ, वह जोर गाधिपुत्र विश्वामित्रका यज्ञ दोनों साथ ही आरम्भ हुआ ॥ १८४ ॥ उनमेंसे  
 विश्वामित्रजीने तो अपना यज्ञ समाप्त कर लिया था । परन्तु रामने अपने यज्ञमें कालानलको अतृप्त टेलकर  
 अपना युद्धयज्ञ समाप्त नहीं किया था । अतएव उसका क्रुत करनेवा इच्छा करके रामने विश्वामित्रके परिवर  
 से पुष्पोंरूपी पात्रका प्रोक्षण ( पुष्टि ) करके शूर्पणखाके नाक-कान कटकर प्रेममें विश्वामित्र आहुतियें  
 की ॥ १८५-१८६ ॥ रामने विश्वामित्र, चर, दूषण, मानेश तथा कवन्धको क्षणभरमें मारकर पंचघाणा-

शिखाबन्धविमोक्षार्थं शयरी भवबंधनात् । कृता मुक्ता तु रामेण जलस्पर्शनहेतवे ॥१८८॥  
 नैश्योर्निहतो बाली दत्तं तदुधिरं तदा । काथिलकपूरं दग्धा कुम्भकर्णस्तथौदनः ॥१८९॥  
 पक्वान्नमिंद्रजिह्व ज्ञेयः शाकार्थं राक्षसा हताः । वरान्नं सारणो ज्ञेयः प्रहस्तो वटकः स्मृतः ॥१९०॥  
 निकुम्भः पर्यटो ज्ञेयः कुम्भस्तु लवणं स्मृतः । पायसार्थं कालनेमिस्त्वतिकायः स शर्करा ॥१९१॥  
 क्षीरमैरावणो ज्ञेयो घृतं मैरावणः स्मृतः । दध्यौदनः ममामौ तु आहवे च स रावणः ॥१९२॥  
 हत्वा निवेदितः पात्रे तस्य कालानलस्य च । उच्छिष्टपुत्रलिप्तपानः केशवकीकसादिनाम् ॥१९३॥  
 संन्यातोऽत्र रणे ज्ञेयस्तदा तृप्तो बभूव सः । ततो रणाञ्जरस्मात्त राघवेण विसर्जनम् ॥१९४॥  
 अयोध्यायां प्रवेशो हि कृतस्तत्ते वदाम्यहम् । अध्वगवभृयस्थानं ज्ञेयं राज्याभिषेचनम् ॥१९५॥  
 भगलानि समस्तानि यज्ञांगविहितानि हि । ज्ञातव्यानीति रामेण रणयागो विसंज्ञितः ॥१९६॥  
 एवं प्रोक्तो मया देवि रणयागः सविस्तरः । रामोऽथ परमात्मापि कार्यान्वहोऽतिनिर्मलः ॥१९७॥  
 कर्तृत्वादिविहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा । स्वानन्देनापि संतुष्टो लोकानामुपदेशकृत् ॥१९८॥  
 चकार विविधान् धर्मान् गार्हस्थ्यमनुलङ्घ्य च । न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥१९९॥  
 न व्याधिजं भय चामीद्रामे राज्यं प्रशासति । औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत् प्रजाः ॥२००॥  
 सीतया बन्धुभिः मारुतैः साकेतं सुखमाव सः । इदं युद्धचरित्रं ते प्रोक्तं देवि मया तव ॥२०१॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥



इति धर्म दी ॥ १८७ ॥ जिसका गाँव खोलनेकी जगह रामने शयरीको संसारबन्धनसे छुटाकर मुक्त कर  
 दिया । रामने बालीको मारकर उसके रुधिररूपी जलसे नेश्रोमें स्पर्श किया । लंकाको जलाकर कालानलके  
 लिये ढाल तथा कटो बनायी । अर्थात् लंका ढाल-कटोके स्थानमें गिनी गयी । कुम्भकर्णरूपी मात,  
 मेघनादरूपी पकवान और सब राक्षसोंका शाक बना । अन्य उत्तम पदार्थोंके स्थानपर सारण मारा गया ।  
 प्रहस्त बटा, निकुम्भ पायस, कुम्भ नमक, कालनेमि खीर, अतिकाय शक्कर, ऐरावणरूपी दूधमे  
 मैरावणरूपी घी तथा अध्वगवभृयके स्थानपर रावणको मारकर रामने कालानलके पालमें परोस दिया ।  
 कालानलने इन सबका भोजन करके बेश, चर्म तथा अस्थियोंका जूठन रणमें छोड़ दिया । तब वह तृप्त हुआ ।  
 उसके पश्चात् रामका अयोध्यामें प्रवेश करना ही रणरूपी यज्ञको समाप्ति अर्थात् रणयज्ञका विसर्जन हुआ ।  
 वही रामका राज्याभिषेक ही यज्ञके अन्तका अध्वभूयस्थान था ॥ १८८-१९१ ॥ अव्याप्य मांगलिक कार्य  
 उस यज्ञके अंग थे । इस प्रकार रामने सांगोपांग रणयज्ञ पूरा किया ॥ १९६ ॥ हे देवि ! मैंने तुमको उपयुक्त  
 प्रकारसे समस्त रणयाग कह सुनाया । तदनंतर साक्षात् परमात्मा, कार्यमनुदायके अचिष्टात्ता, कर्तृत्वादि  
 अभिमानसे रहित, सदा निर्विकार स्वरूप, निज आनन्दसे ही संतुष्ट तथा सब प्राणियोंको सदुपदेश देनेवाले  
 राम भी बृहस्पतिवर्मा धालद करने हुए अनेक धर्मोंका आचरण करने लगे । उनके राज्यकालमें कोई भी  
 स्त्री विधवा होकर रोती नहीं थी । किसीको सौंघ तथा व्याज आदिका भय नहीं था और न किसीको  
 रोगका ही भय था । रामने भी समस्त प्रजाको, पिता जिस प्रकार अपने सगे लड़कोंका पालन करता है,  
 उसी प्रकार पालन किया । हे देवि ! यह मैंने तुमको रामका युद्धचरित्र कह सुनाया ॥ १९७-२०१ ॥ इति श्रीमत्त-  
 कोटि शतचरितंतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

## त्रयोदशः सर्गः

( अगस्त्य-रामसंवादः )

श्रीशिव उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं मुनिभिः कुंससमवः । ययौ रामेण समानमानितः स उपाविशत् ॥ १ ॥  
 उपविष्टाः प्रदृष्ट्वा च पुनर्यो रामपूजिताः । संदृष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमब्रुवन् ॥ २ ॥  
 कुशलं ते महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन । दिष्टयेदानीं प्रपद्यामो हतशत्रुपर्दिम ॥ ३ ॥  
 दिष्टया त्वया हताः सर्वे मेघनादादयोऽसुराः । हन्वा रभोगणान्सर्वान् कृतकृत्पुण्ड्र जीवसि ॥ ४ ॥  
 इति तेषां वचः श्रुत्वा रामस्तान्प्राह सुम्पितः । किमर्थमादौ पुष्पाभिर्मेघनादोऽयं कीर्तितः ॥ ५ ॥  
 इति रामवचः श्रुत्वाऽगस्तिस्तरुवलोकितः । कुंसयोनिस्तदा रामं प्रीत्या वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥  
 शृणु राम यथा वृत्तं मेघनादस्य चेद्दिनम् । जन्मकर्मवशाप्राप्तिं संक्षेपाद्ब्रूयामि ॥ ७ ॥  
 पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो मङ्गणः सुतः । तृणविदुमुतायां स पुत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ८ ॥  
 निर्ममे विश्रवा नामधेयं वेदनिधिं शुभम् । भगद्वाजमुतायां च विश्रवा निर्ममे सुतम् ॥ ९ ॥  
 श्रेष्ठं वैश्रवणं तस्मै प्रमत्तोऽभूद्विधिश्चिरात् । विधिर्वैश्रवणायाध तृष्टस्तनयमा ददौ ॥ १० ॥  
 मनोऽभिलषितं यानं धनेश्वरमसंहितम् । पुष्पकं चाप्येकदाऽमौ द्रष्टुं विश्रवमं ययौ ॥ ११ ॥  
 पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता । नन्या ज्ञातं तदा प्राह न स्थानं ब्रह्मणा मम ॥ १२ ॥  
 दत्तं मध्ये मया कुत्र तद्विचार्यं ब्रह्म माम् । विश्रवा सपि तं प्राह विश्वकर्मविनिर्मिता ॥ १३ ॥  
 लंका नाम्नी पुरी श्रेष्ठा यागरेऽस्ति सुमङ्गिता । त्यक्त्वा विष्णुभयार्द्रया विविशुस्त रसावलम्बम् ॥ १४ ॥  
 सुखं त्वं वस तस्यां हि तथेष्ट्युक्त्वा धनेश्वरः । गत्वा तस्यां चिरं कालमुत्तमं पितृममतः ॥ १५ ॥

श्रीशिवजी बोले— हे प्रिये ! एकदिन बहुतसे मुनियोंके साथ अगस्त्यमुनि श्रीरामका दर्शन करने आये । रामसे सम्मानित होकर वे सब बैठे ॥ १ ॥ अन्यान्य मुनि भी रामसे पूजित होकर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये । रामके वृक्षोंपर सबने अपना कुशल संनमनाया ॥ २ ॥ और कहा— हे रघुनन्दन ! बड़े हर्षकी बात है कि शत्रुको मारकर सकुशल आपको हम लोग राज्यसिंहासनपर विराजमान देख रहे हैं । हे भरिन्दम ( शत्रुओंको भँसा दिखलानेवाले ) ! आपने बड़े चापसे मेघनाद आदि सब असुरोंको मार गिराया है । उन्हें मार तथा कृतकार्य होकर आप विराजमान हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसका ऐसा वचन सुनकर राम कुछ मुसकराते हुए बोले— आपलागाने सब राक्षसोंसे मेघनादका नाम पहले क्यों लिया ? रामका यह प्रश्न सुनकर वे सब मुनि अगस्त्य मुनिका मुख देखने लगे । यह देखकर अगस्त्य बहुत प्रेमपूर्वक रामसे बोले— ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राम ! मैं आपसे मेघनादका चरित्र, जन्म, कर्म तथा ब्रह्मापस्तिका वृत्तान्त संक्षेपमें कहता हूँ, आप सुनें ॥ ७ ॥ हे राम ! सत्ययुगमें पुलस्त्य नामके ब्रह्मपुत्रने तृणविन्दुकी पुत्रोंस तीनो लोकोंमें प्रसिद्ध वेदवेत्ता विश्रवा नामका पुत्र उत्पन्न किया । विश्रवाने मारुताओंको पुत्रोंसे वैश्रवण नामक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया । कुछ दिनोंके बाद वैश्रवणकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने उसको उसका मनोवांछित पुष्पक विमान, अश्वश्च धनेश्वर तथा कुबेरकी पदवी प्रदान की । एक दिन ब्रह्माके दिये हुए तम सुन्दर पुष्पक विमानपर सवार होकर धनाधिप कुबेर अपने पिता विश्रवाका दर्शन करने गये । वहाँ आकर कुबेरने पिताको नमस्कार करके कहा— हे पिताजी ! ब्रह्माने मुझे निवासके लिये काई स्थान नहीं दिया है । अतः आप विचार करके कोई भेरे रहने योग्य स्थान बताइए । विश्रवाने कहा— विश्वकर्माकी बनायी हुई एक सुन्दर और श्रेष्ठ लंका नामकी नगरी समुद्रके बीचमें विद्यमान है । विष्णुके शरसे दीप्त लोग उसे छोड़कर पातालमें चले गये हैं ॥ ८-१५ ॥ तब जाकर उसमें सुखपूर्वक निवास करो । 'तथास्तु' कहकर कुबेर पिताके कथनानुसार जाकर बहुत काल

कस्मिंश्चित्काले हि सुमार्त्तनाम राक्षसः । दृष्ट्वा व्यवचक्षूसां पुण्यकेतु ददर्श यः ॥१६॥  
 हिताय चित्तयामास राक्षसानां महायनाः । केकसीं ननयामाह गच्छ विश्रवसं मुनिम् ॥१७॥  
 वरयस्व मुनेस्तेजःप्रतापात्ते मुनाः शुभाः । मविष्यन्ति घनाभ्यक्षतुल्या नो हितकारिणः ॥१८॥  
 सा मंज्यायां ययौ शीघ्रं मुनेश्वरे व्यवस्थिता । लिखन्ती भुवि शार्दापुष्टेन चाधोमुखा स्थिता ॥१९॥  
 तामपृच्छमुनिः का त्व साप्सह भवं वेनुमहमि । तनो ज्ञान्वा मुनिः सर्वे ज्ञान्वा तां प्रन्यमायत ॥२०॥  
 ज्ञातं तवामिलपितं मत्तः पुत्रानभाष्यमि । दाहणायां तु वेलायामागतामि मुमक्ष्यमे ॥२१॥  
 अतस्ते दारुणां पुत्री गच्छयौ समविष्यतः । साऽत्रवीन्मुनिशार्दूलं स्वर्णोऽप्येयंविधौ सुगौ ॥२२॥  
 तामाहान्तिमजो यस्ते भविष्यति महायतिः । ततः सा मुपुत्रे पुत्रान् यथाकाले सुमक्ष्यमा ॥२३॥  
 रावणं कुम्भकर्णं च कौचीं शूर्पणखां शुभाम् । कुम्भीनर्भो कनार्याम् तृतीयां न विभीषणम् ॥२४॥  
 रावणः कुम्भकर्णश्च त्रयो दहितरक्तया । द्यूताः प्राणिमन्त्राश्च यधुर्मुनिहिमकाः ॥२५॥  
 एकदा रावणो मात्रा लिखार्थे प्रपितः शिवम् । कर्तुं प्रमत्तमरुगेत् यत्कामं कम दुष्करम् ॥२६॥  
 किञ्चित्स्त्रीयं शिरश्छित्त्वा वीणां पटञ्जस्वर्गमुदुः । कृत्वा पाठं हि देहस्य तन्मूत्रं शिरसस्तथा ॥२७॥  
 तदयं पादयोः कृत्वा शकृन्नगुल्लामस्तथा । तत्रोः कृत्वाऽन्त्रमालाभिः श्वनशोऽय सहस्रशः ॥२८॥  
 एवं कृत्वा स्वदेहस्य वीणां पटञ्जस्वर्गमुदुः । चकार स्वसुखेनैव गाधिवं वायनं शुभम् ॥२९॥  
 तदा नदीश्वरं प्राह शकरो लोकशकरः । शिरः संधाय हस्तेन न्वया वान्पोऽय रावणः ॥३०॥  
 आन्मल्लिगं गक्षमं ह्यौ शकरो न प्रदाम्यति । हृदयं हि मया ज्ञातं शोभोस्त्वं याहि स्वस्थलम् ॥३१॥  
 हत्युक्त्वा प्रेषणीयः स रावणः स्वस्थलं न्वया । इति शोभोर्वचः श्रुत्वा ययौ नदीं स रावणम् ॥३२॥

तक बहो रहे ॥ १५ ॥ पश्चात् निम्नो समय गुमा यो राक्षसने अपनी पुत्रोंको साथ लेकर पृथ्वीपर भ्रमण करते समय पुण्यकेतुको देखा । १६ । तब मशान्वा सुमार्त्तने राक्षसोंका हित सोचकर अपनी लड़की केकसीसे कहा कि तुम विश्रवा मुनिके पास जाकर पुत्रोंके नज-प्रतापसे सुन्दर पुत्रोंको प्राप्तिके लिये वर माँगे । वे पुत्र वृषरक्त समान प्रतापी तथा हमलोभोरे हितकारी होंगे । १७ ॥ १८ ॥ तदनुसार सायकालके समय मुनिके पास जाकर सोचकर अट्टेया घृतकं कुरंदता हुई वह नाचा मुख करके खड़ी हो गयी ॥ १९ ॥ मुनिने उससे पूछा—तुम कौन हो ? उसने कहा कि आप स्वयं इस बातको समझ सकते हैं । तब मुनिने ध्यान करके सब कुछ जान लिया और उससे बोले—॥ २० ॥ मुझे मन्त्रम हो गया कि मुझसे तू पुत्र पाता चाहती है, परन्तु हे मुमक्ष्यमे । तू इस भयानक समयमें यहाँ आयी है । इसलिये तूझमें दो भयानक राक्षस पुत्र उत्पन्न होंगे । तब वह पुनिशार्दूलसे बोली—हे महायति ! क्या आपसे भी मुझे ऐसे ही पुत्र प्राप्त होंगे ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ तब मुनि बोले—अच्छा जा, तेरा आशिरी पुत्र बड़ा वृद्धिमान होगा । पश्चात् उस सुन्दर कमरवाली केकसीने यथासमय तान पुत्र उत्पन्न किये ॥ २३ ॥ रावण कुम्भकर्ण, कौची, शूर्पणखा, कुम्भीनसी और सबसे छोटा तीसरा पुत्र विभीषण उससे उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ उनमेंसे रावण, कुम्भकर्ण और तीन लड़कियें वही वुराचारिणी, जाकप्रतिषी तथा मुर्निहृषक हुई । २५ ॥ एक दिन रावणको माता केकसीने रावणको शिवजीके पास स्थि लेने भेजा । केकसीपर जाकर रावणने शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये बड़ा दुष्कर काम किया । २६ । उसने अपने सिरका कुछ भाग काटकर बाँधा बनायी । सिरसे वीणाका मूलभाग बनाकर अपनी देहसे उसका पृष्ठभाग तैयार किया । बाँधस उस बाँधाका अग्रभाग बनाया और अँगुलियोंसे बाँधाकी छूटियें तैयार की । अपने पेटके भीतरकी धातोंने सँजड़ों एवं हज्जरी तार बनाकर अपने शरीरसे ही बाँधा रची । पश्चात् पद्यों आदि स्वरोसे रावणने अपने मुखसे ही मंत्रोंके समान सुन्दर वादन आरम्भ किया ॥ २७-२९ ॥ तब शोभोका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकर तन्दीश्वरसे बोले कि तुम अपने हाथसे रावणका सिर संधान करके उससे कहो कि शंकरजी तुम जैसे राक्षसको आर्यात्मि बन्नी न होने । मैं शिवजीके भूदसकी बात जानता हूँ ।

शिरः मरोज्य हस्तेन शिवोक्तं न न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा रावणश्च पि ममतिक्रम्य तां निशाम् ॥३३॥  
 चकार पूर्वज्ञानं द्वितीयविभक्ते पुनः । नन्दिना शकरश्चापि पूर्वज्ञं न्यवेदयत् ॥३४॥  
 इत्थं दश दिनान्येव गतानि रावणस्य च । अथ तन्कर्मणा तुष्टः शकरो गायनेन च ॥३५॥  
 भूत्वा प्रमत्तस्तं प्राह वर वाय वेति वै । दृष्ट्वा शङ्खं गरणोऽपि शिवा तेन संधितः ॥३६॥  
 वरयामास मन्मात्रे क्षान्मलिंगं तथा मम पत्न्यर्थं पावनीं देहि तथेत्थुक्त्वा ददौ शिवः ॥३७॥  
 गृहीत्वा गंतुकामं तं पुनः प्राह हस्मदा मतोमार्थं न्वया कीर दशवार निर्जं शिरः ॥३८॥  
 सङ्गेन छेदित यस्मात्तस्मात्तेऽद्य शिरांसि हि दत्तं विशङ्खन्वापि भविष्यन्ति गिरा मम ॥३९॥  
 ततः स रावणस्तुष्टो मिमिक्षालिंगमयुतः । विनश्यतो दशग्रीवः सारथ्येन गन्तुमुद्यतः ॥४०॥  
 कल्पमेदाञ्छतशिराः शतवारं प्रवर्द्धितः । स शोकः स्वशिरोभिर्हि शतद्रुपभुजः कचिन् ॥४१॥  
 तस्माद्दि हनवान् विष्णुस्त्व त मार्गं प्रतार्य च । तथैवाब्धेस्वटे त्रिंशं शोकपूर्णं रावणास्वया ॥४२॥  
 गृहीत्वा स्थापितं पूर्वं रावणोऽपि गृहे पर्या । मन्दोदरीं हरेर्वाक्यमल्लञ्जरा मयमुनां शुभाम् ॥४३॥  
 मानुः कार्यममपाद्य तूष्णीमेवातिलज्जितः । मन्दोदयाऽकमन्ध्वीयं निवाहं तोषपूरितः ॥४४॥  
 दृष्ट्वा कदा धनाभ्यस्य पुष्पकस्यं तु कैकसी । पुत्रान् धिकारयामास पूर्वं पदा मृतोपवाः ॥४५॥  
 मापत्न्यवधु ये दृष्ट्वा जायते नात्र लज्जिताः । ते मानुश्चनं ध्रुव्या ययुर्गोक्षमृगनवम् ॥४६॥  
 दशवर्षमद्वयाणि कुम्भकर्णोऽकरोत्तपः । विभीषणोऽपि धर्मात्मा सत्यधर्मपरः पथः ॥४७॥

‘मन्त्रिण तुम अपने स्थानको वापस चले जाओ’ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर उसको उनके स्थानपर भेज  
 दा । तब रावण शिवका यह वचन सुनकर रावणके पास गये ॥ ३२ ॥ उन्होंने अपने हाथसे उसका सिर  
 घड़से जोड़कर शिवका वचन उसको कह सुनाया । रावण यह सुनकर भी उस रानको वहीं रहा और दूसरे दिन  
 फिर उसी विधिसे शिवजीका गुणगान करने लगा । शिवजीने उस दिन भी अपना संदेश नन्दोके द्वारा रावण  
 को कहला भेजा । परन्तु रावणने फिर भी अपना गायन उसी प्रकार दस दिनतक जारी रखा । तब शंकरजी  
 ‘सारा उम भयानक कर्म तथा मनोहर गायनसे प्रसन्न हो गए और उसमे कहा-वर मांगो । ऐसा कहकर  
 शिवजी ने उसका वह सिर भी घड़से जोड़ दिया । तब उसने शंभुसे वर माँगा कि आप मेरा माताके लिए वारिम-  
 लिंग तथा पत्नी बनायेके लिए मुझे पार्वती जोको दे दें जिये । ‘तथाऽन्तु’ कहकर शिवजीने उसको वे दोनों चीजें  
 दे दी ॥ ३३-३७ ॥ जब उनको लेकर रावण चलने लगा, उस समय शिवजी कहने लगे-हे वीर ! तुमने  
 मुझको प्रसन्न करनेके लिये अपना सिर बस बार सत्रवारसे काटा है । इसलिये मेरे कथनानुसार तुम्हारे बस  
 फिर तथा बीस भूजायें हो जायेंगी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तब रावण प्रसन्नतापूर्वक दस सिर और बीस हाथवाला  
 बनकर पार्वती तथा शिवलिंग लेकर अपने स्थानकी ओर चला ॥ ४० ॥ कहीं-कहीं कल्पभेदसे रावण सौ बार  
 मरतक काटनेसे सौ सिर तथा सौ सौ हाथवाला भी कहा गया है । ४१ ॥ बादमें रास्तेसे ही विष्णुमगवान्  
 रावणके हाथसे तुमको ( पार्वतीको ) छोन ले गये । तब तुम (पार्वती ) भी श्रीहरिको बोला देकर उनसे  
 क्षमा हो गयीं । विष्णुकी तरह तुमने रावणके हाथसे शिवलिंग भी छोन लिया और उस लिंगको समुद्रके  
 किनारेपर ही भोक्कण नामसे स्थापित कर दिया । तब रावण खाली हाथ लौट गया और विष्णुके कानागुहार मम  
 राक्षसकी सुन्दरी पुत्री मन्दोदरी उसको प्राप्त हुई ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ माताके कार्यका सम्पादन न कर सकनेके कारण  
 वह बहुत लज्जित हुआ और कुछ भी नहीं कह सका । पश्चात् मन्दोदरीके साथ विवाह करके वह मनुष्ट हुआ  
 ॥ ४४ ॥ एक समय उसकी माता कैकसी घमपति कुबेरको पुष्पक विमानपर बैठा देखकर अपने पुत्रको विस्कार-  
 कर कहने लगी कि तुम लोग नरुहक तथा मृतक सारा ही ॥ ४५ ॥ अपने सोतेसे भाईका उत्कर्ष देखकर  
 तुम छोटीकी लज्जा नहीं खाती ? माताके इस कह वचनको सुनकर वे दोनों भाई दूनहीस भोक्कण महादेवके पास  
 गये ॥ ४६ ॥ वहाँ कुम्भकर्णने दस हजार वर्ष तपस्या की । तबसेसा विभीषणने श्री सत्यवतंवचन होकर



पंचवर्षमहस्याणि पादांशुष्टेन तस्थिधान् । दिव्यवर्षमहस्य तु व्रमाहरो दशाननः ॥४८॥  
 पूर्णे वर्षमहस्ये स्वं शीर्षमग्नौ जुहाव मः । एवं वर्षमहस्याणि नव नस्यानिचक्रमुः ॥४९॥  
 मध्य वर्षमहस्ये तु दशमे दशमं शिरः । छेत्तुं कावस्य धर्माग्न्या प्रवक्षोऽभूः प्रजापतिः ॥५०॥  
 उधाव वचनं ब्रह्मा वर वस्य कौशितम् । तदोधाव दशास्यममवस्यन्व कुणोप्यहम् ॥५१॥  
 सुपषणागयज्ञेभ्यो देवेभ्यश्चामुर्गयि । त्वक्तः शमोर्महाविष्णोर्मानुषा मे तुणोपमाः ॥५२॥  
 तथेत्युक्त्या विधिस्तस्मै दश शीर्षाणि मदी । विर्भाषणाय मद्बुद्धिममगन्वं ददी मुदा ॥५३॥  
 विमोहितं मरस्यत्या देवेद्रादकांक्षिणम् । कुम्भकर्णं विधिः प्राह वरं वरय वाञ्छितम् ॥५४॥  
 सोऽपि न वरयामास्य निद्रांमणाणमिहो शुभाम् । पाण्यार्माये चैकदिनेऽशनं मत्ताऽपि दत्तवान् ॥५५॥  
 ततोऽन्तर्द्धानमगमद्विधिस्तैऽपि गृहं ययुः । सुमाली वरलब्धांस्तान् ज्ञान्वा दीद्रेत्रमनमान् ॥५६॥  
 पलाहान्निभंयः प्रायान्प्रहस्ताद्यैर्भुव सुखम् । मधिकाकयादश्व स्योऽपि निष्कास्य धनद यन्मादृशः ॥५७॥  
 लकापुर्या राक्षसस्तु लकागज्यं चकार मः । धनदः स्तिग्धं पृष्ठां स्पृश्या लङ्कां महादशाः ॥५८॥  
 गन्वा कैः कस्यसिग्वरं तपसाऽप्यञ्छिताम् । तेन सत्पमनुग्राह्य तेनैव परिनदिनः ॥५९॥  
 अलका नगरी तत्र निर्मम विष्वक्कर्मेणा । दिक्पादन्वमनुग्राह्य शिवस्य वरदानतः ॥६०॥  
 रावणो विद्युज्जिह्वाय ददी शुषणस्यां तदा । पारिवर्द्धं ददी तस्मै दंडकारण्यमुत्तमम् ॥६१॥  
 मातृत्वसुः सुतान् शंभुं शिशिः श्वरदूषणान् । माहाययार्थं ददी तस्मै तन्कांते तु मृतेऽचिरात् ॥६२॥  
 कुम्भीनमीं ददी हर्षान्मधुर्देत्याय गवणः । ददी मधुवनं तस्मै पारिवर्द्धमनुनमम् ॥६३॥  
 खड्गजिह्वाय तां कौचीं ददी प्रेम्णा दश ननः । परलङ्कां पारिवर्द्धं ददी तस्यै मनोरमम् ॥६४॥

पार्विके अगुष्टेपर पांच हजार वर्षतक लङ्का गृह्यकर तप किया और उस हजार वर्षतक नेत्रन धूम्र पकर दशाननने तपस्या की ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हजार वर्ष पूरे हो जानेपर वह अपना एक भिर क टकर अग्निमें होम देता था, ऐसा करत करत नौ हजार वर्ष चल गया ॥ ४९ ॥ अब दस हजार वर्ष पूरे हुए और रावण अपना दसवीं भिर काटकर आगमें होम करत कर लिए तीसरा हुआ, तब प्रज,पति ब्रह्मा उसपर प्रसन्न हुए ॥ ५० ॥ ब्रह्माने कहा—ह उत्स । तू अपना इच्छित वर मांग । तब रावणने कहा कि मैं गण्डम, मर्षाम यज्ञांसि, देवताकोसे, अमुंगेसे आर ( ब्रह्मा ) से, शंभुसे तथा विष्णुसे भी अडकल्लका वर मांगता हूं और मधुवन तो मेरे लिए तिनरक बराबर है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तयाम्बु कहकर ब्रह्माने रावणकी दस भिर दिये और विर्भाषणको मुबुद्धि तथा अमरत्व दिया ॥ ५३ ॥ इन्द्रपदका इच्छा रखनवाले कुम्भकर्णसे ब्रह्माने कहा कि अपना अमिर्जयित वर मांगो ॥ ५४ ॥ तब सरस्वतीके द्वारा माहुमें पडकर कुम्भकर्णने छः महान तकको न द मांग । तदनन्तर ब्रह्माने उसकी छः महोनेतक सना और फिर भोजन करना तथा छः महोनेतक फिर तपन का वर दिया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गए और वे जोय भी अपने घर चले गये । सुमाली अपने शौहिनोंको वर प्राप्त किए हुए जातकर प्रारत आदिके साथ व नालने निकलकर निर्मम मादम पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ ५६ ॥ कथनानुसार रावणने लंकान कुशका निकलवा दिया और वहाँ स्वय गण्डसाका लेकर लंकाका राज्य करने लगा । सब महान् यशस्वी कुशने अपने पिताने पृथुवर लङ्काको छोड दिया और कैलासके सिखापर जाकर तपभ्रमसे किवक प्रसन्न किया । उन्होने उनसे मित्रता जोड़ी और उन्हें के कहनेसे वहाँ विश्वकर्मा द्वारा बालका पुरी बनवायी और शिवजीके वरदानके निष्पादकी बदवी प्राप्त की ॥ ५६-६० ॥ बादमें रावणने अपनी सुपणसा नामकी बहिन विद्युज्जिह्वाकी ब्याह दी और उससे दंडकारण्य उसको रहेजमें दे दिया ॥ ६१ ॥ बाह हो दिनों बाद जब उसका पति मर गया । तब रावणने अपनी सीसीके लडके शिशिरा सरदूषण आदिको उसकी सहायताके लिए भेजा ॥ ६२ ॥ रावणने कुम्भीनभी नामकी बहिन मधु रंत्यको ब्याही तथा मोष्ठ मधुवन उसको रहेजमें दिया ॥ ६३ ॥ दशाननने अपनी कौची नामकी बहिन खड्गजिह्वा रावणको

वैरोचनस्य दौहित्रीं वृक्षज्वालेति विष्णुनाम् । स्वयंदत्तां वृद्धोवाह कुम्भकर्णाय रावणः ॥६५॥  
 गन्धर्वराजस्य मुनीं शैल्यस्य महान्मनः । विभीषणस्य भार्यायै सगमां स मुदाऽवहन् ॥६६॥  
 ततो मन्दीदरीं पुत्रं मेघनादमर्जोजनन् । जानमात्रस्तु यो नादं मेघवन्प्रचकार ह ॥६७॥  
 ततः सर्वं ऽश्वत्थमेघनादोऽयमिति वै जनाः । मुहुष्यो कुम्भकर्णोऽपि निद्राव्याप्तो विनिद्रिवः ॥६८॥  
 ततः स रावणश्चापि देवगन्धर्वकिन्नरान् दृष्ट्वा कपोष्णान्नागान् द्विपस्तेषामपाहरन् ॥६९॥  
 घनदोऽपि च तच्छ्रुत्वा रावणस्याक्रमं तदा । अधर्मं मां कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयन् ॥७०॥  
 ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदलयम् । विनिजिन्ध धनाप्यञ्ज जहार तस्य पुष्पकम् ॥७१॥  
 अलकायां यदाऽऽसीन्म सैनया रावणस्तदा । निशायामेकदा आनुः कुबेरस्य सुतेन हि ॥७२॥  
 प्रायिषा सा पुरः रम्भा सकार नियतं दिनम् । अज्ञानवृत्ता वेगेन ययौ स्वान्पुगस्वना ॥७३॥  
 रावणोऽपि च तं दृष्ट्वा बलादिव प्रभुक्तयान् । चिगन्मुक्ताऽथ वृत्तं सा क्रीवेर संन्यवेदयत् ॥७४॥  
 क्रुद्धः सोऽपि ददौ आप रावणाय महान्मनः । अद्याभ्य दशास्यश्चेद्देवतां स्त्रियमुनयाम् ॥७५॥  
 हठाच्छोक्षति चेन्नहि क्षणमात्रान्मरिष्यति । इति शपथं रावणोऽपि शुश्रूव चरवाक्यतः ॥७६॥  
 तदारभ्य स्त्रियं काममनिच्छन्तीं न धरयेत् ततो गर्भं च ब्रह्मं निजिन्ध ममरेऽसुरः ॥७७॥  
 स्वर्गलोकमगात्पुनः देवराजजिषायया । ततो रावणमभ्येत्य ब्रुवन् त्रिदशेश्वरः ॥७८॥  
 तच्छ्रुत्वा सहसाऽऽगत्य मेघनादः प्रतापवान् । कुन्त्या वृद्ध महाशेरं जिन्वा त्रिदशपुङ्गवम् ॥७९॥  
 इन्द्रं घृत्वा दृढं वक्ष्या मेघनादो महाबलः । मोक्षयिष्या स्वपितरं गृहोन्वेन्द्रे ययौ पुरीम् ॥८०॥  
 ब्रह्मा तु मात्स्यामाम देवेन्द्र मघनादनः । दत्त्वा वरात्राशुसाय ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥८१॥

ती तथा उसको दहेजमें अविष्णु मन्दीदर परलका पुरी दे दी । ६४ । वैरोचनकी दौहित्री ( नतिनी ) प्रसिद्ध  
 वृक्षज्वालाका उसका पितान कुम्भकर्णक रिये रावणका दी । ६५ । महाराम गन्धर्वराज शैल्यकी मुता  
 सगमाको रावण विभीषणके लिय ल आया । ६६ ॥ तदनन्तर मन्दीदरीसे मेघनाद पुत्र उत्पन्न हुआ । जो  
 निर्वेश होनेके साथ ही मेघको तरह गर्जन करने लगा था । ६७ । इसीलिए सब लोग उसका मेघनाद  
 कहने लगे । कुम्भकर्ण गुफाम जाकर सो गया । ६८ । उधर रावण देव, गन्धर्व, किन्नर, क्षत्रोच्चर और  
 नागवां मार मारकर उत्तका शिरोका व्यवहरण करने लगा ॥ ६९ ॥ जब कुबेरने रावणका इस प्रकार  
 दुराचार सुना, तब उन्होंने अपने दूता हाता कटला भजा कि हे रावण ! तू ऐसा अधर्म करना छूट दे  
 ७० ॥ यह सुना ही रावण और भी क्रुद्ध होकर कुबेरके यही गया तथा उत्तको जीतकर पुष्पक विमान  
 छत लाया ॥ ७१ ॥ जब रावण अपनी सेनाके साथ अलकापुरीमें था । उसी समय रावणके भाई कुबेरके  
 पुत्र नलकुबेरकी प्रार्थना स्वाकार करके रम्भा अप्सरा पुङ्गके वातावरणको न जाननेके कारण एकाएक  
 नियत दिनपर आकाशसे वही आ पहुँची । उसके पीछेने सुन्दर एवं मनोहर नृपूरकी श्वनि हो रही था  
 । ७२ । रावणने उसको सहसा देखकर उसके साथ हठान् भोग किया । बहुत देरके बाद उससे मूल हो  
 रम्भाने आकर वह सब हाल कुबेरके पुत्रको बह्नु पुताया ॥ ७३ ॥ तब क्रुद्ध नलकुबेरने रावणको साथ दठे  
 हुए कहा—' हे दशास्य ! आजसे यदि तूमे किसी भी तुम्हको न चाहनेवाला बली स्त्रीसे हठान् भोग करोगे  
 तो उसी क्षण मर जायाने ।' इस शपथको दूतके मुखसे रावणने भी सुन लिया । ७४ ॥ ७५ ॥ तबसे  
 रावणने अपनेसे विमुख स्त्रीका अवमान करना छूट दिया । तदनन्तर पुङ्गमे यमराज तथा ब्रह्मको  
 जीतकर वह देवराज इन्द्रका मारनका इच्छासे शाप ही स्वर्ग गया । त्रिदशेश्वर इन्द्रने रावणके सामने  
 आकर उसको कैद कर लिया ॥ ७६-७८ ॥ पित्तको कैद किया हुआ सुनकर प्रतापी मेघनाद शाप वही  
 आ पहुँचा तथा मयानक पुङ्ग करके इन्द्रको जीत लिया ॥ ७९ ॥ तब महाबलवान् मेघनादने अपने पित्त-  
 को छुड़ा लिया और इन्द्रको पकड़ तथा बाँधकर अपने नगरमें ले लाया ॥ ८० ॥ पश्चात् ब्रह्माने इन्द्रको

इन्द्रजिह्वाय तस्याभूजदारम्य गधुनम् । रावणादपि यश्चाभीहलिष्ठः ममरपियः ॥८२॥  
 मेघनादादयश्चेति तस्मान्प्रोक्तं तवाग्रतः । एतन्मेनीश्वरैः पूर्वं तन्निमित्तं मयेरितम् ॥८३॥  
 रावणो विजयी लोकान्सर्वान् जित्वा क्रमेण तु । जित्वा बह्वैर्निर्झरैश्च वायुर्मांशं ययौ सुदा ॥८४॥  
 कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिधोपमैः । तदा भीता शिवं देवी दोर्मर्या सा वसिष्ठावजे ॥८५॥  
 शिवोऽपि बाष्पादाद्गुणैर्न कैलासमूर्धनि । भारं दत्त्वा गिरिं स्वयं चकाराथ सूरः शुभे ॥८६॥  
 तदा तद्गिरिमम्भन्वलिमंधिषु दोर्लभाः । विंशश्चापि रावणस्य नात्रापन्नर्हिता क्षणात् ॥८७॥  
 स तेनाक्रन्दयामास स्वस्ममम्भद्वचोरयन् । तदा नन्दीश्वरेणापि शमोऽयं रावणेश्वरः ॥८८॥  
 चक्षुर्लं कर्म यस्याचे कथितुन्वपनोऽगुर । वानरैर्मर्षितुर्पथैव नाशं गच्छामि कोपितैः ॥८९॥  
 ततः कालान्तरेणायं शम्भुर्नैव विमोचनः । शमोऽप्यगमयन्वाक्यं ययौ हृदयपत्तनम् ॥९०॥  
 बहिर्गतं नृपं श्रुत्वा सहस्राजुर्ननमकम् । मध्याह्ने रावणध्वके गेशर्या शिवराजनम् ॥९१॥  
 अधस्तस्मात्सर्मदायां भुजपाशैश्च सेतुवत् । स्वस्मयामास नीमेष जन्मकांडां गतोऽर्जुनः ॥९२॥  
 वेष्टितोऽयुननागमिस्नतोय रावणं तदा । प्लावयामास ध्यानस्थं ज्ञानस्वन्कर्मणाऽर्जुनः ॥९३॥  
 श्रुत्वा ध्यानादिकं सर्वं युद्धं चक्रेऽर्जुनेन सः । तेन बद्धो दशग्रन्थः कण्ठे रन्तुं मुनाय तम् ॥९४॥  
 ददौ दशाननं प्रीत्या काष्ठनिमित्तहरितवत् । कियत्कालान्तरेणैव पृथक्स्वनं स नोचितः ॥९५॥  
 ततोऽनिवन्धनायाश्च त्रिषांमुर्हतिपुङ्गवम् । ममरे ध्यानमापीनं पथाङ्गं नैवैर्ययी ॥९६॥  
 धृतस्तेनैव कक्षेण बालिना दम्भकन्धरः । आभयित्वा तु चतस्रः समुद्रान् रावणं हरिः ॥९७॥

मेघनादसे जुहाया और रोससोको वर देकर बह्मा अपने घवनको चले गये ॥ ८१ ॥ हे रघुनय ' तबसे मेघनाद-  
 का इर्झिन् नाम पड़ा । जो कि रावणसे जो अधिक बलवान् तथा युद्धनयन था ॥ ८२ ॥ इन्द्रजिह्वा मेने  
 आपक सामने मेघनादका पहले नाम लिगा । इन अधिपतिने इसका कारण कहल ही बता दिया था ॥ ८३ ॥  
 निजगर्भिल रावणने कर्मणः सब लाकेवा जानकर बह्वि निर्झरि, वायु तथा ईशानको जोत लिया और तारसे  
 अपनी अंगरक समान भुजाशेस कैलास घवनका उडासे गया । उस समय डरकर पार्वती दवा शिवज से  
 लिपट गयी ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ पश्चात् शिवने अपने बाय पाँवक अंगुठसे उस एवंगको दवा दिया । जिससे  
 कैलास घीरे घीरे नीचे बँसने लगा ॥ ८६ ॥ उस समय पर्वतके नीचे आ आनेसे रावणकी बीसों भुजावें  
 दब गयी और वह स्वप्नेसे बँधे हुए चोरकी तरह चिल्लाने लगा । उस समय नन्दीश्वरने भी रावणकी  
 शाप देने हुए कहा— ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे अमुर ' तुम्हारे कानरके समान चंचलता होतके कारण ब्रह्मवानगे तथा  
 मनुष्योंसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी ॥ ८९ ॥ बहुत कालके बाद शिवजीने उसे छुड़ा दिया । छूटनेके साथ ही  
 वह आपका घुल गया और शिवजीक वचनका तिरस्कार करके युद्ध करनेके लिए हैद्वयराजके नगर-  
 का गया ॥ ९० ॥ बह्म जाकर पूछा तो ज्ञत हुआ कि सहस्राजुन नामवाला वहाँका राजा वहाँ उपस्थित  
 नहीं है । तब रावण समझा नदीके किनारे जाकर उसके बीचसे एक टापूपर बैठकर मध्याह्न समयमें शिवजी-  
 का पूजन करने लगा । ९१ ॥ उससे नीचकी ओर राजा सहस्राजुन अलकोडा कर रहा था । उसने अपनी  
 भुजाक्यों सेनुसे खेन-खलम उस नदीके जलप्रवाहको रोक दिया । उस समय हजारों पित्तों उसे घेरकर  
 जलकोडा कर रही थीं । परन्तु उस अलप्रवाहके रुक जानेसे शिवके ध्यानमें स्थित रावण जलमें बहने  
 लगा । इस घटनाको देखकर उसने जान लिया कि यह काम सहस्राजुनका है । यह जानते ही वह तुरन्त  
 ध्यान छोड़कर सहस्राजुनके पास गया और उनको युद्धके लिए ललकारने लगा । तब उसने रावणके गलेमें  
 रस्सी डालकर बाँध लिया और अपने पुत्रको खेनके लिए लकड़ों के बने हुए हाथीकी तरह दे दिया । कुछ  
 दिनोंके बाद पुलस्त्य मुनिने जाकर उसको वहाँसे छुड़ाया ॥ ९२-९३ ॥ बादमें रावण बल सचय करके  
 वानरसेन बालीको मारनेकी इच्छासे समुद्रके किनारे ध्यान भरकर बैठे हुए नानरराजके पास जाकर घीरेसे घेरे

किंकिणीं स्वीं ययौ वेगादग्रे दृष्टुंगदं विशुम् । प्रीत्या नं चुंबनं दातुं दोम्पां कथीं न्यवे शयन् ॥९८॥  
 तदा बाहोश्चननान्कक्षाम्य पतितो भुवि । तं दृष्ट्वा स्वजनान् स्वीय दर्शयामास वै मुदा ॥९९॥  
 प्रेक्षस्योपरि पुत्रस्य वचनभाषीभुव चिरम् । आमान्माऽङ्गदम्बस्य धारधीनान्नोऽसुरः । १००॥  
 स्वयमेव ततो बाली प्रधृक्काले गते मनि । ददावार्जुं दशम्याय तेन सग्न्यं चकार सः । १०१॥  
 रावणः स पुनः स्थित्वा पुष्पके व्यचरन्मुखम् । पश्यन्ननाविधान्नीमन् ययौ पलायमुत्तमम् ॥१०२॥  
 तत्र दृष्ट्वा पुं रम्पं बलः काटिर्वाग्रमम् । तत्ततोऽननेजस्रन्पुष्पकं न चनाल वै ॥१०३॥  
 ततः स्वयं ययौ तूर्णामक एव दशाननः । पुं प्रीत्यवतृडाारत्वा ददर्श च वामनम् ॥१०४॥  
 कोटिसूर्यप्रतीकाशं पातकोशेयवामनम् । चतुर्भुजं सप्तर्त्तीकं हाररक्षणतन्परम् ॥१०५॥  
 स्वीं प्राह स दशग्रीवः कोऽयं राजाऽस्मिन् मां वद । तूमी स्थितो वासनस्त्वमपि नोत्तरं रिपोः । १०६॥  
 तदा स्वीं वधिर मन्वा स विवश इत्येगुदम् । तत्र दृष्ट्वा बलिं वन्द्या मारिकीडनकम्पम् ॥१०७॥  
 तस्यौ तत्र श्रृणं तूर्णीं बलेलक्ष्मीं व्यलोकयतु । तावद्दूरे बलेहस्तान्क्रोडापामोऽनङ्गवि ॥१०८॥  
 तमनेतुं रावणाय बलिराज्ञापयत्तदा । रावणोऽपि तमनेतुं ययौ पाषाणिकं जवात् ॥१०९॥  
 प्रोच्चचल भुवः पासं करेण न चनाल सः । विशहोभिः क्रमेणार्थी यावन्पासं प्रचालयन् ॥११०॥  
 तावदंगुलयः सर्वाः पापभागेण पीडिताः । न निध्रमु पापनलाच्चूर्णिना रुधिराण्डुनाः ॥१११॥  
 सदा शुभ्रोऽद्य दीर्घे स चिरकल दशाननः । ततो विहस्य दास्या तं पापमार्तीयं वै बलिः ॥११२॥  
 धिग्धिकं कृत्वा रावणं तं गृह्णामिन्कापयद्धहिः । ततो धृतो राजदूर्नस्तदुच्छिष्टैस्तु पोषितः ॥११३॥

की ओर जा लडा हुआ ॥ ९९ ॥ तब बालीने उसको काँखत उठता देवाकर चारों समुद्रोंक चौतरफा घुमाया ॥ १०० ॥ पश्चात् अपनी किंकिणीया पुरासे ले गया । वहाँ जाकर उसने अपने पुत्र अङ्गदको देखा । ज्यो ही वह अङ्गदका प्रेमसे चूमकर लिय अपनी भताओमें उसे कगरपर बैठाने लगा ॥ १०१ ॥ त्यों ही हाथोंके दित्तनेसे गणन बाँसमें नैने जमीनपर गिर गया । सको डमकर गिये प्रसन्नतापूर्वक स्वजनोंको दिखाने लगी ॥ १०२ ॥ उसके ऊपर पुत्र अङ्गदकी पालना बाँधकर नैच रावणका मुख करके उन्होंने बहुत दिनोंतक बाँधकर रक्खा । तिस रावणका मुख अङ्गदका मुखपराम धुलता रहा ॥ १०३ ॥ तदनन्तर स्वयं बलीने ही रावणका आर्ती आज्ञा दे दी और उसने मित्रता कर ला ॥ १०४ ॥ गणन पुन पुष्पक विमानपर सवार होकर आनन्दके साथ विचरने लगा । अनेक बीरोंका देखता हुआ वह पालाम जा पहुँचा ॥ १०५ ॥ वहाँ काटिसूर्यके सहस्र प्रकाशमयी उस नदरीके तजसे प्रतिहत होकर मुखपर विमानको गति रूक गया ॥ १०६ ॥ तब उससे उत्तरकर दशानन वृषबाप अवैला ही पुरीकी आर धल पडा । उसने पुरान प्रवेश करनेके बाद वामनरूपधारी आपका देखा ॥ १०७ ॥ कराला सुरीक समान तजम्बा आपने पाताम्बर धारण कर रक्खा था । आप चतुर्भुज हाकर लक्ष्मीके साथ वहाँ रहत हुए राजा बलिके द्वारकी रत्ता कर रह थ ॥ १०८ ॥ उस दशग्रीवत आपसे पूछा कि इस नगरका राज कीन है, बताओ । रावण कुछ देर वृषबाप खडा रहा, पर आपने उस अपना शत्रु समझकर कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ १०९ ॥ तब आपका बहुत समझकर वह बालिके सधनमें धुसा । वहाँ उसने राजा बलिके अपने लक्ष्मीके साथ चौपर खेलत देखा ॥ ११० ॥ वहाँ वृषकेसे खडा होकर वह बलिकी राजधलामोको क्षणभर देखता रहा । इतनेमें राजा बलिके हाथसे छटककर सीसा दूर जा गिरा ॥ १११ ॥ उसी समय बलिके रावणको उस पानको उठा लानेके लिए कहा । रावण भी उसे उठानेके लिये सीध ही उसके पास जा पहुँचा ॥ ११२ ॥ वह उसे एक हाथसे उठाने लगा । पर वह पाँसा हिल्य सक नहीं । तब रावणने दो, तीन, चार करके वनों हाथोंमें उन पाँसोंको उठानेकी चेष्टा की, परन्तु ती भी वह नहीं हिला ॥ ११३ ॥ प्रयुक्त उसके सब हाथोंकी अंगुलियों पामेके दाहसे दब गयी और कुचल जानेसे खून निकलने लगा परन्तु वे निकली नहीं ॥ ११४ ॥ अतएव दशानन बहुत जोरसे चिल्लाने लगा । तब

अश्वानां शकुतं नीत्वा प्राक्षिपत्प्रत्यहं बहिः । एकदा द्वापरे गन्वा प्रार्थयामास त्वां मुहुः ॥ ११४ ॥  
 त्वया स्वपादलग्नः स्वपदांगुष्ठेन खेड्यः । तदाऽग्निमुदितो लकां चिरकालेन गवणः ॥ ११५ ॥  
 ययौ मेने निजं जन्म द्वितीयं जातमयं वै । रावणः परमप्रीत एव लोकान्ममरावणः ॥ ११६ ॥

कर्तुं तान्स्ववशाभिन्यं नभ्राम दुष्पकस्थितः ।

दृष्ट्वाकदाऽत्र माकृते पूर्वजं तव दीक्षितम् ॥ ११७ ॥

अनरण्यं संगरेण चकार पतितं रणे ।

तदा शमोऽनरण्येन सदृशे रघुनन्दनः ॥ ११८ ॥

भूत्वा त्वां संगरेणैव सकुटुम्बं बधिष्यति इत्युक्त्वा स गतो नाक गवणोऽपि पुनर्न ययौ ॥ ११९ ॥

सनत्कुमारमेकांते मन्त्रिगणैकदाऽभ्युः । नत्वा पप्रच्छ देवेषु को यश्चेति सादरम् ॥ १२० ॥

मुनिः प्राह महाविष्णुं तच्छ्रुत्वा प्राह तं पुनः ।

विष्णुना ये हता युद्धे राक्षसाद्या लभन्ति काम् ॥ १२१ ॥

गतिं चेति मुनिः प्राह ते मुक्तिं यानि दुर्लभाम् ।

पुनः पप्रच्छ तं नत्वा केनोपायेन वै हरेः ॥ १२२ ॥

मविष्पत्पत्र मे मृत्युम्यदा तं मुनिगन्त्रीन् । त्रेतायां नररूपेण रावो विष्णुर्भविष्यति ॥ १२३ ॥

अपोष्यायां तदा तेन कृत्वा वैरं सुदारुणम् । मममादृशं कुरुष्व त्वमात्मनः परमात्मनः ॥ १२४ ॥

तेन गच्छामि मुक्तिं त्व तच्छ्रुत्वा स दशाननः ।

विरोधार्थं जनकजामहरद्वीपमीनयान् ॥ १२५ ॥

अश्लोके रक्षिता तेन मातृवत्स्ववधेच्छया ।

राजा बलिकी एक राखीने शीघ्र पत्तिकी उठाकर राजाको दे दिया ॥ ११४ ॥ बलिके उसी समय रावणको विककार-  
 कर अपने महलसे निकाल दिया । बाहर राजा बलिक दूतोंन लसकी फिर पकड़ लिया और अपने जूठनसे  
 उसका पोषण करने लगे ॥ ११५ ॥ रावणको सोढोकी लीर उठा-उठाकर बाहर फेंक आनेका काम सोंपा गया ।  
 कुछ दिनों बाद एक दिन रावण द्वारपर स्थित आप विष्णुके पास आकर नगरके बाहर जाने देनेकी प्रार्थना  
 करने लगा और आपके चरणोंपर गिर पड़ा । तब आपने अपने पाँवके अंगुलि उसको आकाशकी ओर  
 उछाल दिया । जिससे रावण बहुत बलके बाद प्रसन्नतापूर्वक अपना लङ्काज जा पहुँचा ॥ ११६ ॥ ११७ । यह  
 आज मेरा दूसरा जन्म हुआ है, ऐसा मानन लगा । तब बन्दी रावण पुनः प्रसन्न होकर पूर्ववत् सब लोकोंको  
 अपने बसाव करनेकी इच्छासे पुष्पकपर चढ़कर निरगति इधर उधर भ्रमण करने लगा । उसने एक दिन  
 अयोध्यामें आपके पूर्वज दीक्षित ( सामान्यकी दीक्षा लिये हुए ) राजा अनरण्यको देखा । उनके साथ युद्ध  
 करके रावणने रणमें उन्हें हरा दिया । तब अनरण्यने उसका शाप दिया कि मेरे वशमें जन्म लेकर रघुनन्दन  
 नाम सकुटुम्ब तुमको मारेंगे ॥ ११९ ॥ १२० ॥ इतना कहकर वे स्वर्ग सिंघार गये तथा रावण अपने नगरको चला  
 गया ॥ १२१ ॥ उस राक्षसने एक दिन सनत्कुमारकी नमस्कार करके एकान्तमें पुछा—हे मुने ! कृपा करके मुझे  
 यह बताइए कि देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ देवता कौन है ? ॥ १२२ ॥ मुनिने विष्णुको श्रेष्ठ बताया । यह सुनकर वह  
 असुर रावण फिर बोला कि विष्णुने आजतक जिन राक्षसोंको मारा है, वे किस गतिको प्राप्त हुए हैं ? ॥ १२३ ॥  
 मुनिने कहा—वे सब उत्तम तथा दुर्लभ मुक्तिकी प्राप्त हुए हैं । उस राक्षसन फिर प्रश्न किया कि किस उपायसे  
 मेरी मृत्यु श्रीहरिके हाथों हो सकती है ? मुनिने उसका प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि त्रेतायुगमें विष्णु  
 अयोध्यामें मनुष्यका रूप धारण करेंगे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ उस समय उनसे घोर वैर करके उन परमात्मा  
 रामके हाथों तुम अपना वध करवा लेना ॥ १२६ ॥ इससे तुम मुक्तिपत्रको प्राप्त हो जाओगे यह बात  
 मन्त्रों रसकर रावणने रामके साथ विरोध करनेके लिए ही गौतमी नदीके छेदे मनकनन्विनी सोढाका

एकदा नारदं दृष्ट्वा नत्वा पप्रच्छ रावणः ॥१२६॥

भगवन् ब्रूहि मे योद्धुं कुत्र सन्ति महाबलाः ।

योद्धुमिच्छामि बलिभिस्त्व जानामि जगत्त्रयम् ॥१२७॥

मुनिर्ष्यान्वा चिरान्प्राह श्वेतद्वीपनिवासिनः । महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ॥१२८॥

विष्णुपूजार्ता ये वै विष्णुना निहताश्च ये । त एव तत्र सज्जता सजेयाश्च सुरासुरैः ॥१२९॥

तच्छ्रुत्वा रावणो वेगान्ममप्रिभिः पुष्पकेण तेः ।

योद्धुकामो यस्यै गवश्चैतद्वीपान्तिकं युदा ॥१३०॥

तन्प्रमादनेज्जम्कं पुष्पकं नाचलन्पुः ।

त्यक्त्वा विमानं प्रययौ स्वयमेव दशाननः ॥१३१॥

प्रवितन्नेव तद्द्वीपं घृतो हस्तेन योषिता ।

भञ्जन्त्या कस्यचिदास्या पुष्पाण्यानयितुं वनम् ॥१३२॥

तया पृष्टः कुतः कोऽपि प्रेषितः केन वा वद । इत्युक्त्वा लीलया र्धाभिर्हमर्ताभिर्मुहुर्मुहुः ॥१३३॥

मुखेषु ताडितो हस्तैर्भ्रांमिनोऽधोमुखं विभ्रम् । ध्रुवैकं तत्पदं तारुभिः क्षिप्तः कन्दुकवन्मुहुः ॥१३४॥

परस्परं हि क्रीडद्भिः कया त्यक्तस्तु लीलया । पयान परलङ्कायां क्रीचायाः शौचदूषके ॥१३५॥

कृच्छ्रादस्ताद्विनिर्मुक्तस्तामां स्त्रीणां दशाननः ।

आधर्यस्तुल्यं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मतिः ॥१३६॥

विष्णुना ये हता युद्धे तेषामेतादृशं बलम् । तर्ह्यत्र निहतस्तेन श्वेतद्वीपं वज्राम्यहम् ॥१३७॥

मायं विष्णुर्यथा कुप्येनथा कार्यं कोऽप्यहम् ।

इति निश्चिन्त्य श्वेदेहीं जहार रावणो वनात् ॥१३८॥

हरण कर लिया था ॥ १२५ ॥ अपन बचकी इच्छासे ही उसने सीताको अभीक्ष्णमें रखकर माताके समान रक्षा की थी । एक बार रावणसे नारद मुनिने देखकर ताम्रकार किया और पूछा — ॥ १२६ ॥ हे भगवन् । आप कृपा करके यह बताइये कि मुझसे लड़नेवाले कयान् लोग कहाँ है ? मे वलवानोंसे युद्ध करना चाहता हूँ आप तीनों लोकके लोगोंका जानते हैं ॥ १२७ ॥ मुनिने सन्निक देर ध्यान करके कहा कि श्वेतद्वीपके लोग लड़े भारी शरीरवाले होते हैं और वे निज भगवान्की पूजासे लगे रहते हैं जो लोग विष्णुके हाथों मारे जाते हैं, वे ही सुरी तथा असुरोंसे लज्ज हाकर वहाँ जन्म लेते हैं । १२८ ॥ १२९ ॥ यह सुनकर प्रसन्न रावण अपने मन्त्रियोंके साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर सर्व तथा वनके साथ उन लोगोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे श्वेतद्वीपकी ओर चल पड़ा । १३० ॥ परन्तु उस द्वीपकी कान्तसे चौं चकाकर उसका विमान रुक गया । तब रावण विमान छोड़कर पैदल चलने लगा । १३१ ॥ द्वीपमें धूमन ही एक स्त्रीने उसको एक हाथसे पकड़ लिया । वह किसीकी दासी थी और वनमें पुष्प लेने जा रही थी ॥ १३२ ॥ उस स्त्रीने रावणसे पूछा कि तू कौन है और तुझे यहाँ किमने भेजा है ? वना । इतना कहकर कुछ स्त्रियाँ बारम्बार हाँसकर लीलापूर्वक उसके मुखपर तमाचे लगाने लगीं । बादमें उसका शीव पकड़ तथा उसको ओंछे सिर घुमाकर गेंदकी भाँति दूर फेंक दिया । १३३ ॥ १३४ ॥ अन्तमें एव दूसरके साथ खेलती हुई किसी एक स्त्रीने ही यह काम किया था । इस प्रकार पैदलपर रावण परलङ्कासे शीव के शौचालयमें जा गिरा । १३५ ॥ इस प्रकार रावण उन स्त्रियोंके हाथोंसे बड़ी कठिनईसे फूटा और आश्चर्यचकित होकर यह दुष्ट विचारने लगा— ॥ १३६ ॥ ओहो ! विष्णु जिनको मारते हैं, वे लोग नातने बलवान् हो जाते हैं । इसलिए मैं भी उनसे मारा जाकर श्वेतद्वीपमें आऊँगा ॥ १३७ ॥ अब मैं वही काम करूँगा कि जिससे विष्णु मेरे ऊपर क्रुद्ध हों यही सोचकर वनमें रावणने

बानभेवं महालक्ष्मं स जहारावनीतुनाम् ।

माद्वन्पालयामास स्वयः काङ्क्षन्वधं निजम् ॥१३९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वालिमुप्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि न्वन्मुखात् । रवीन्द्रो बानराकारो जहात इति तच्छ्रुतम् ॥१४०॥

अगस्त्य उवाच

मेरो स्वर्णमये पूर्वं सनाथां वक्ष्यः कदा । नेत्राभ्यां पठितं दिव्यमानंदाभ्रजलं तदा ॥१४१॥

तद्गृहीत्वा करे बद्ध्वा व्यान्वा किञ्चिदत्यजत् ।

भूमी पठितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः ॥१४२॥

तमाह दृष्टिषां वन्त न्वमत्र वस सर्वदा ।

एवं बहुलये काले गतेर्भस्मिन् सुधीः ॥१४३॥

कदाचित्पर्वटन्देरी कलम्कार्भन्नुद्यतः । अपश्यदिव्यमलिलां वार्धां मणिशिलाचिताम् ॥१४४॥

पानीयं पातुमममवशं छायाय कपिम् । दृष्ट्वा प्रतिकर्षि मन्त्रा निपपात जगत्तरे ॥१४५॥

तत्रादृष्ट्वा हर्षि शीघ्रं बहिरुत्फुल्लं संययौ । अपश्यत्सुन्दरीं नरामात्मानं विष्मयं गतः ॥१४६॥

ततो दर्शय मन्त्रवा सोऽन्यजद्वीर्यमुत्तमम् । तामपार्प्यैव तद्वीर्यं बालदेशेऽप्यतद्गुपि ॥१४७॥

बाली सममवत्तत्र शुकतुल्यपराक्रमः ।

आतुरप्यागपत्तत्र तदानीमेव भामिनीम् ॥१४८॥

दृष्ट्वा कामभञ्जो भूत्वा प्रीत्यादेहेऽमृतजन्मदत् । वीजं तस्यास्जः सद्यो सुप्राप्तो बलवानभूत् ॥१४९॥

अहं यं समादाय गत्वा सा निद्रिता कर्माचिन् । प्रभातेऽपश्यदान्मानं पूर्ववद्बानराकृतिम् ॥१५०॥

तद्गृह्यं तु विधिः श्रुत्वा किञ्चिद्वाराज्यमुत्तमम् ।

ददौ स बानरेन्द्राय पुत्राभ्यां तत्र संस्थितः ॥१५१॥

वैदेहोका हाण कर लिया ॥ १३८ ॥ उसने यह भी जान लिया था कि ये हाथालू बननिगुता लक्ष्मो हैं ।  
 १३९ ॥ उसने अपने अपने वधनी इच्छा करके बाताको माताक सपान वाला था ॥ १३९ ॥ श्रीरामचन्द्र  
 बोला हे मुने ! मैं जानके मुँहसे बालि और गुमारके जन्मकी कथा सुनना चाहता हूँ । मैंने सुना है कि स्वयं  
 सूर्य तथा इन्द्र बानराकार बालि-गुमारके स्वयं उत्पन्न हुए थे ॥ १४० ॥ अगस्त्य मुनि बालि—मेरे पर्वतके  
 स्वर्णशेखरपर एक बार भरी सपने सहसा बह्मके नक्स दिव्य बानरनाथ निकल पड़ा ॥ १४१ ॥ बह्मजीने  
 उसको हाथमें ले तथा कुछ समय परनके पश्चान् अमानवर डाल दिया । गिरनेके साथ ही उससे एक  
 महान् कपि उत्पन्न हो गया । १४२ ॥ तब बह्मान उससे कहा—हे वस ! तू सदा यही रहो । नहीं रहते हुए  
 कुछ दिन दोहनेपर वह अत्रनिर्जः कपि किसी समय मेरे पर्वतपर पुनः प्रकट होकर मूल कार्यके लिए एक समय  
 मा पहुँचा । उसने वहाँ मणिकी शिलाभामिनी दृष्टि स्वच्छ जलवाली एक बावली देखा ॥ १४३ ॥ १४४ ॥  
 तब वह बाली पीने लगा हा उसे अपना छाया दिखाई दी । उसे अपना प्रतिपत्ता समझकर वह जलमें  
 गूँद पड़ा ॥ १४५ ॥ किन्तु उसने जब उसको दूसरा बानर नहीं दिखाई पड़ा, तब वह उछलकर बाहर निकल  
 भागा । बाहर निकलनेके साथ ही वह एक सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया । यह देखकर उसको बड़ा  
 आश्चर्य हुआ ॥ १४६ ॥ बादमें जब इनने उसकी सेवा हो कामवश उनका वीर्य निकलकर उस स्त्रीके बाली-  
 रर जा गिरा ॥ १४७ ॥ उससे इन्द्रनुम्य पराक्रमी बानर बालि पैदा हुआ । उनी समय सूर्यवन भी वहाँ जा  
 पहुँच ॥ १४८ ॥ उस सुन्दरी कामिनीको देखकर वे भी कामादुर हा उठे और उस स्त्रीके गर्दनपर उनका  
 मट्ठा पीस गिर पड़ा । जिससे उसी समय बलवान् बानर सूर्यव उत्पन्न हुआ ॥ १४९ ॥ उन दोनों पुत्रोंको कहीं  
 न जाकर वह स्त्री सो गयी । प्रातःकाल होतेपर उसने फिर अपने आपका बानररूपमें पाया ॥ १५० ॥

मृतेर्ध्विरजस्याभूद्वाली पूर्वा कपाश्वरः । एवं ते कथितं राम यथा पृष्टं त्वया यम ॥१५२॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

पदाऽनौ बालिना बंधुः किष्किन्धाया बहिष्कृतः ।

तदा तस्यैव सचिवः श्रीमज्जपवननन्दनः ॥१५३॥

न वेद किं बलं नैजं बालितुन्यपगक्रमः । इति रामवचः श्रुत्वा पुनस्तं प्रतिब्रवीत् ॥१५४॥

अगस्तिगवाच

केयरीनाम विख्यातः कपिरञ्जनपर्वते ।

तस्यास्तां च शुभे पत्न्यौ बान्धविकदा गिरौ ॥१५५॥

प्लवंगस्थाञ्जनीनाम्नी स्थिता तावच्च खागदा ।

पपात रायमभवः पिष्टो गृध्रोमुखान्द्रुचि ॥१५६॥

यदा नीतस्तु कैकेय्या कराङ्गुश्रया शुभः पुत्र । तं पिष्टं मक्षयामास वानरी अमृजोषसम् ॥१५७॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र मार्जारास्या समागता । पतिना रहिते ते द्वे क्रीडत्यौ वसतः तपोः ॥१५८॥

अदरत्पवनो बंगावृष्ट्या वायुस्तद्वरः ।

अञ्जनीं प्रार्थयामास तथा मोगं चकार सः ॥१५९॥

तथैव प्रार्थयामास मार्जारास्यां च निर्भर्तिः । तयाऽकरोद्रुतिं तत्र सोऽपि पर्वतमूर्धनि ॥१६०॥

तपोस्ताभ्यां समुत्पन्नो बानर्षी मातृमात्मजः ।

मार्जार्याः समभूद्वोरः पिशाचो धर्षरत्ननः ॥१६१॥

चैत्रे माति सिते पक्षे हरिदिन्यां मषार्धमिधे । नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिपुवदनः ॥१६२॥

अर्धार्चत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीकुतः । बदन्ति कल्पभेदेन पुधा इत्यादि केचन ॥१६३॥

बालभारेणपि च पूर्वं दृष्टोऽथ विभावसुम् ।

मत्वा एकफलं चेति त्रिपुत्तुर्लसितोत्प्लुतः ॥१६४॥

वह वृत्तान्त सुनकर इन्द्राग्निने बानरेन्द्र ऊँझविष्णुको किष्किवा नगरीका उत्तम राज्य दे दिया । तद्दीपर वह अपने दोनो पुत्रोंके साथ रहने लगा ॥ १५१ ॥ उस ऊँझराजके मर जानेपर किष्किन्धापुरीका राजा बलीश्वर बाली हुआ । हे राम ! जो आपने पूछा, मेरे वह सब कह दिया ॥ १५२ ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—मम शत्रुओंको बर्हाने किष्किन्धासे बाहर निकाल दिया था, उस समय इनके मन्त्री थे वायुनन्दन हनुमान् भी साथ थे ॥ १५३ ॥ पर इनकी बालीके समान अपना बल क्यों नहीं दाद आया ? रामके इस वचनको सुनकर मुनि अगस्त्य फिर कहने लगे—॥ १५४ ॥ अञ्जन पर्वतनिवासी केठरी नागसे दिव्याल कपिकी से वानरी मिले थी ॥ १५५ ॥ किसी समय उस कपिकी अञ्जनी नामकी स्त्री पहली बेटी थी । इतनेमे आकाशसे किसी गृध्रोंके मुखसे छूटकर वायसका एक पिण्ड आ गिरा ॥ १५६ ॥ यह पिण्ड गरी था जो कि पहले कैकेयीके हाथसे एक गृध्रों छीन ले गयी थी । उस अमृततुल्य पिण्डको वानरीने खा लिया ॥ १५७ ॥ इतनेमे वही वह दूसरी मार्जारास्या वानरी भी था पहुँची । पतिकी अनुपस्थितिमें वे दोनो क्रीडा कर रही थी । तभी उन दोनोके कसबोंको पवनने उड़कर उँचे उठाया तथा उनकी जीघोंको देस दिया । पश्चात् अञ्जनीके प्रार्थना करनेउसके साथ बाहुने भोग किया ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ उसी प्रकार निर्भर्तितने मार्जारास्यामें प्रार्थना कर्के एवंतके शिखरपर उसके साथ रसि की ॥ १६० ॥ उन दोनोसे उन दोनोय—वानरीसे मातृमात्मज हनुमान् तथा मार्जारसे मोर धर्षरत्नन पिशाच उत्पन्न हुआ ॥ १६१ ॥ वैश्व शुक्ल एकादशीके दिन ममानक्षत्रमें रिपुवदन हनुमान्का जन्म हुआ था ॥ १६२ ॥ कुछ पण्डित कल्पभेदसे चैत्रकी पूर्णिमाके दिन हनुमान्का वृष जन्म हुआ, ऐसा कहते हैं ॥ १६३ ॥ वे हनुमान् बाल्यकालमें ही सूर्यको देस तथा उर्ध्व पक्षा पक्ष छान्नकर उसको लेनेकी



योजनानां पञ्चशतं वायुवेगेन मारुतिः । राहुस्तस्मिन्दिने दशं ययौ सूर्यं रघूत्तम ॥१६५॥  
तत्र दृष्ट्वा धर्तुकामं रवेरग्रे कपिं स्थितम् । तदा रादुर्मयादेव रविं हुक्त्वेन्द्रमाययौ ॥१६६॥

राहुः प्राह शर्चानाथ सव पीडां कतोम्यहम् ।

दत्तः पूर्वं त्वया सूर्यः पीडां कर्तुं सुरेश्वर ॥१६७॥

तत्र विघ्नं समुन्मथं तन्मं शीघ्रं निवारय । तत्राहुवचनादिहः समाकृत्य गोपि ॥१६८॥  
देवेयुतो ययौ वेगाद्दर्शं प्लवगं पुरः । तदा मुमोष तं वज्रं मथवा मारुतिं प्रति ॥१६९॥

वज्रशतान्मारुतिः स्वाह पपात गिरिकन्दरे ।

तदा भग्नो हनुस्त्वस्य हनुमानिनि वै यतः ॥१७०॥

कुर्याति गतोऽयं सर्वत्र तदा वायुश्चक्रोप ह ।

सात्वयित्वा हनुमत् स्वव स्तुम्भोऽभवत्तदा ॥१७१॥

वायुस्तस्माज्जनाः सर्वे निपेतुर्धर्णीतले त्रैलोक्यं श्ववज्रात् हाहाकारोऽभवदिवि । ॥१७२॥  
तदा भिकृत्त्य देवेन्द्रं वेधा वायुं ययौ जवात् ।

प्रार्थयामास तं जत्वा पुनर्वायुं बध्नीऽब्रवीत् ॥१७३॥

देवेन्द्रस्यापराधं त्वं सन्तुमर्हसि कंषन । तव पुत्राय दास्यामि वरानप्य हनुमते । ॥१७४॥  
तदा तुष्टोऽभवद्राघुश्चाल पूर्ववत्पुनः । अभूत्सर्जीचितं सर्वं त्रैलोक्यं क्षणमात्रतः ॥१७५॥

तदा ददौ वगन् जज्ञा मारुतिं पुरतः स्थितम् ।

मविष्यसि स्वममरो वज्रदेहो वरान्मम ॥१७६॥

ते कुण्ठिता गतिर्माजस्तु कुशाप्यंजनिसंभव । मविष्यसि हरौ भक्तिस्तव नित्यमनुत्तमा ॥१७७॥

त्वं विष्णोरपि साहाय्यं करिष्यसि वरान्मम ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे वेधा राहुः सूर्यं ययौ पुनः ॥१७८॥

इच्छते लीलापूर्वक ऊपरको उछले ॥ १६४ ॥ उस समय मारुति वायुवेगसे पाँच सौ योजन ऊपर उठ गये थे । हे रघूत्तम । उसी दश ( अमावस्या ) के दिन राहु भी प्रसन्नेके लिए सूर्यके पास गया, किन्तु उन्हें एकड़नकी इच्छासे करे हनुमान्को देखा । तब राहु डरा और सूर्यको छोड़कर इन्द्रके पास जा पहुँचा ॥१६५॥१६६॥ मची-पति इन्द्रसे राहु बोला—आप मैं आपको ही सताऊँगा । क्योंकि पूर्वकालमें आपने मुझे सतानेके लिये सूर्यको दिया था । ॥१६७॥ परन्तु उसमें इस समय विघ्न उपस्थित हो गया है । अतः उसका आप निवारण करें, नहीं तो मैं आपहीको दुःख दूँगा । इस प्रकार राहुके कथनानुसार इन्द्र गजपन सवार होकर देवताओंके साथ सूर्यके पास गये तो वहाँ उनके सामने हनुमान्को खड़ा देखा । तत्काल इन्द्रने उनके ऊपर वज्रप्रहार किया ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ वज्रके आघातसे हनुमान् नीचे गिरिकन्दरामें जा गिरे और उनको दृढ़ी देवी हो गयी । जिसमें कि उनका हनुमान् नाम पड़ा ॥ १७० ॥ उनका यह नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया । यह देखकर उनके पिता वायुदेवने क्रुपित होकर अपनी गति बन्द कर दी ॥ १७१ ॥ वायुके बन्द हो जानेसे सब लोग मर-मरकर धरती-पर गिरने लगे । तीनों लोक मृतक जैसे हो गये और देवलोकमें भी हाहाकार मच गया ॥ १७२ ॥ तब वहाँ इन्द्रको भिस्कारकर शीघ्र वायुके पास गये और नमस्कार करके प्रार्थनापूर्वक कहा—॥ १७३ ॥ हे कंषन ! तुम देवेन्द्रके अपराधको क्षमा कर दो । मैं तुम्हारे पुत्र हनुमान्को बर देता हूँ ॥ १७४ ॥ तब प्रसन्न होकर वायु पुनः पूर्ववत् बहने लगा । अतः क्षणमात्रमें तीनों लोक फिर जीवित हो गये ॥ १७५ ॥ पञ्चान् बहाने सामने खड़े मारुतिको बर दिया कि तुम मेरे वचनसे कथ्यवेह होकर समर हो जाओगे । ॥ १७६ ॥ हे अंजनीपुत्र ! तुम्हारी गति कहीं भी प्रतिहत न होगी और नित्य श्रीहरिमें तुम्हारी उत्तम भक्ति बनी रहेगी ॥१७७॥ मेरे वरदान-से तुम विष्णुकी सहायता करनेमें भी समर्थ होओगे । इतना कहकर वहाँ अन्तर्धान हो गये और राहु पुनः

श्रीराम उवाच

देवैरेण कथं दत्तो रविस्तस्मै स गृह्ये । तत्सर्वं विस्तरंणैव कथयस्व भगवतः ॥१७९॥

अगस्तिरुवाच

सुधापात्रादयं राहुर्देवोऽभूदमरः स्वयम् । प्रहोऽष्टमोऽमकसोऽपि यदाऽवांछदस्य सुगन् ॥१८०॥

शीलां कर्तुं तदा देवाः सूर्यं सौमं ददुस्तु वै । ज्ञात्वा धर्मजनाः सर्वे निजकमादिदेतदे ॥१८१॥

मोक्षायैष्यन्ति राहोश्च अग्निं भास्करं प्रति । यदा यदा मय्यत्रापरागो जगतीतले ॥१८२॥

तदा तदा जना धर्मनिजप्रत्यर्थमादरात् ।

तोषयित्वा सदा राहुं तौ तस्मान्मोचयन्ति हि ॥१८३॥

एतत्सर्वं मया प्रोक्तमुपशमस्य कारणम् । जन्म कर्म चरादानं पारुतेष्वपि विस्तृणु ॥१८४॥

अनन्तद्वलमादान्मयं को वा छक्नोति वर्णितुम् । स एकदा मुनानां हि चाश्रमेषु कुशादिकान् ॥१८५॥

चकारेतस्ततः सर्वान्धर्षयन्मुनिनालकान् । तस्य तत्कर्म मुनिविदेषु अतोऽज्ञानश्रुतः ॥१८६॥

अधारमय कपिश्रेष्ठ न शास्यसि स्वपौरुषम् ।

यदाऽन्यस्य सुवात्स्नीयं क्लृप्तं श्रोष्यसि विस्तृणु ॥१८७॥

मविष्यति तदा पूर्वस्मृतिस्तौ रौरुषं पुनः । अतः सुप्रविशसिन्धुषु विस्तृतः स्वप्राक्तमः ॥१८८॥

यदा स्तुतो आरवता पुरा प्रायोपवेशने तदा स्मृतिस्तस्य ज्ञाता स्वचलस्य हनुमतः ॥१८९॥

इतत्तु सर्वमाख्यात त्वया पृष्टं मया तव । यथा तथा साविस्मरं कपिश्रेष्ठोऽष्टितम् ॥१९०॥

तम त्वं परमेश्वरोऽपि सकलं जानासि विद्वानदृक्

भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलनामाक्षौ विक्रान्तोज्झितः ।

भक्तानामनुवर्त्तनाय सकलां कुर्यान् क्रियामहति

चाशृण्वन् मनुजाकुतिर्मम एवो भासीश्व लोकाधिप ॥१९१॥

सूर्यके पास गया ॥ १७९ ॥ श्रीरामजीने पूछा कि इन्द्रजित् सूर्य राहुका क्यों द दिया था ? हे मुनीश्व ! यह क्या आप विस्तारसे कहें ॥ १८० ॥ अगस्ति ऋषि बोले — हे राम ! देव राहु सुधापात्रमें सुधापान करके अमरत्वको प्राप्त हो गया था । बादमें जब वह अष्टम घर हो गया, तब उसने देवताजनों से सुधा देना चाहा । यह देखकर देवताजोंने सूर्य तथा चन्द्रमा राहुका दे दिया और यह सोचा कि संतारके लिये अपने अपने कामके लिये धर्मके द्वारा राहुमें सूर्य तथा चन्द्रमाको छुड़ा लेंगे । उसीके अनुसार सूर्य-चन्द्रको जब-जब ग्रहण लगता है, तब-तब मनुष्य अपने कार्यसंघनक लिये आदरपूर्वक दान-धर्मसे राहुका मनुष्ट करके उससे सूर्य-चन्द्रको छुड़ा लेते हैं ॥ १८०-१८३ ॥ इस प्रकार मैंने ग्रहणका कारण तथा माहात्म्य जन्म-कर्म आदि बुलाने लक्षितार आपको कह सुनाया ॥ १८४ ॥ पूरी तरह हनुमान्‌के बल-प्रतापका वर्णन कौन कर सकता है । उन्होंने एक दिन मुनियोंके आश्रममें जाकर उनका बालकको चराया धमकाया और कुशा आदि सब सामग्री इधर-उधर बिखेर दी । उनके इस कामका देखकर मुनियोंने अजनीमूल हनुमान्‌का श्राप देते हुए कहा — ॥ १८५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! आजसे तুম अपने पृथ्वार्यन्त्रों भूल जाओगे और जब कभी दूसरोंके मुखमें अपना बल विस्तारसे सुनाने ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ तब स्मरण होगा । जे सूर्योदयके पक्ष गहन समय इसी कारण आपने पृथ्वार्य भूल भये थे । बादमें समुद्रमंथनके समय जब जलका दूध उनका स्तुति करके उनके बालका स्मरण दिलाया, तब हनुमान्‌को तुरन्त अपना बल याद आगया था । १८८ ॥ १८९ ॥ यह सब मैंने आपके पूछनेके अनुसार विस्तार करके हनुमान्‌ तथा रावणका कार्यकलाप कह सुनाया ॥ १९० ॥ हे राम ! आप परमेश्वर हैं, ज्ञानदायक हैं सब कुछ देखते हैं, भित्तियरहित आप भूत-मनिस्य-वर्तमान तीनों कालका क्रियाके विज्ञ और सबके साक्षी हैं । सबोंके अनुरोधसे आप समस्त क्रियाकलाप करते हुए मनुष्य बनकर मेरे वचनको

धीशिव उवाच

स्तुनैव राघवं तेन पूजितः कुम्भसंभवः । स्वाश्रमं मुनिभिः सार्धं प्रययौ शुभविग्रहः ॥१९२॥  
विन्ध्याचलं निजं रूपं स मुनिर्नैव दर्शयत् । पुनरुन्वास्यति गिरिधेति मन्वा तु तद्वपान् ॥१९३॥

रामस्तु सीताया सार्द्धं भ्रातृभिः सह मंत्रिभिः ।

ससारीय रमानापो रममाणोज्ज्वलगृहे ॥१९४॥

अनासक्तोऽपि विषयान् बृहज्जे प्रियया सह । हनुमन्प्रभूतैः सङ्गिर्वाजरैः परिसेवितः ॥१९५॥  
गणधे क्षामति भुवं लोकनाथे रमानापो । वसुधा मम्यमंयसा कलवन्तश्च भूरुहाः ॥१९६॥  
जनाः स्वधर्मनिन्ताः पतिभक्तिपराः स्त्रियः । नाशयन्पुत्रमरण कश्चिद्राजनि गणधे ॥१९७॥  
समाकृष्ट विमानावप्य गणधरः सीताया सह । वानरैर्भ्रातृभिः सार्द्धं मन्त्रपारायणि प्रभुः ॥१९८॥  
अमानुषाणि कर्माणि चकार बहुशो भुवि । लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूनमः ॥१९९॥  
कोटिशः शिवलिंगानि स्थापयामास सर्वतः ।

अज्यमेधादिविधिषान् यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ॥२००॥

चकार परमावन्दो मानुषं वसुगस्थितः । सीतां ना रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः ॥२०१॥  
अज्ञाय रामो धर्मस्य राज्यं परमधर्मवित् । कथाः सस्यापयामास्य सर्वलोकमलापहाः ॥२०२॥  
एकादशमहर्माणि सैकादशसमानि च । त्रेतायुगमवान्येव वर्षाणि रघुनन्दनः ॥२०३॥  
चकार राज्यं धर्मेण लोकवन्द्यपदांशुजः । कलेर्मानेन हेवानि लक्ष्मण्येकादशैव हि ॥२०४॥  
सैकादशव्रतान्वज्र रामो राज्यं चकार सः । एकपत्नीयतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः ॥२०५॥  
यस्यैकमेव लक्ष्मीर्मातुः पत्नीवाक्यं श्रुतया । गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षितुं नरान् ॥२०६॥  
सीता त्रेम्याऽनुवृत्त्या च प्रभवेण रमेन च । भर्तुर्जनोद्धारसार्धं भावज्ञा सा हिवा मिया ॥२०७॥

सुनते हैं । हे ईश ! सब लोगोंसे पूजित हुंकर आप बड़ी ही गोप्यतासे प्राप्त हो रहे हैं । ॥१९१॥ धीशिवजी बोले-  
इस प्रकार रामकी स्तुतिपर तथा उनसे पूजा-सम्कार प्राप्त करके गुप्तविग्रह आस्य मुनि, सब धुनियोंकी  
साथ लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥ १९२ ॥ जात समय मुनिने अपना रूप विन्ध्याचलको इस तरह  
नहीं दिखाया कि वह कही फिर उठकर न लडा हो जाय ॥ १९३ ॥ उधर रामचन्द्रजी सीता, मन्त्रिगण  
तथा भ्राताओंके साथ संसारी जीवोंके समान कौडा करते हुए अपने घरमें रहने लगे ॥ १९४ ॥ आसक्त न होते  
हुए भी अपनी प्रिया सीताके साथ ऐहिक विषयोंका आनन्द लेने लगे । हनुमान् यदि अच्छे वानर बीड़रि-  
की सेवामें लग गये ॥ १९५ ॥ रमानाति तथा लोकनाथ रामके शासनकालमें जरा घन-आनन्दपूर्ण हो गयी, भूच  
खुब फलने लगे ॥ १९६ ॥ मानवगण अपने-अपने धर्मपर कलने लगे और स्त्रिये पतिभक्तिपरायणा होकर  
रहने लगीं । रामके राज्यमें माता-पिताके जीते जी कहींपर पुत्रमरण नहीं होता था ॥ १९७ ॥ वे प्रभु राम-  
सीता, स्वमन आदि पाद्यों तथा वानरोंके साथ विमानपर सवार होकर अबनीसत्यपर विचरते थे ॥ १९८ ॥  
पृथ्वीपर उन्होंने अनेक लोकोत्तर कार्य किये । परमात्मा रामने लोगोंको उपदेश देनेके लिए सर्वत्र करोड़ों  
शिव-लिंग स्थापित किये । परमाणन्दस्वरूप परमेश्वर रामने सन्तुष्टका रूप धारण करके बहुतेरी दक्षिणावाजे  
विविध अज्यमेध यज्ञ किये । वसुधाको दुर्लभ अनेक योगसाधनोंसे रामने सीताको सन्तुष्ट किया ॥१९९॥ २००॥  
॥ २०१ ॥ परम धर्मज्ञ रामने न्यायपूर्वक राज्यका शासन करके लोगोंके पापोंको दूर करनेवाली अनेक कथाएँ  
स्थापित कीं ॥ २०२ ॥ त्रेतायुगके ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त लोगों द्वारा बन्दनाय चरनकमलवासे रघुनन्दनने  
धर्मपूर्वक राज्य किया । कलियुगके द्वादशमें रामने पद्मी-आनन्द-लाल-ग्वारह वर्षतक राज्य किया ।  
राजर्षि राम सर्वदा पवित्र रहकर एकपत्नीयत्वमें स्थिर रहे ॥ २०३-२०५ ॥ जिनके लिए पत्नीका भाव्य और  
साथ एक समान था । उन्होंने समस्त गृहस्थाश्रमके कार्य एकसाथ लोगोंको शिक्षा देनेके लिए किया था

युक्ता तं रंजयामास राजानं राघवं मुदा । एवं गिरीन्द्रे प्रोक्तं रामराज्योन्नरोद्धवम् ॥ २०८ ॥  
परितं रघुनाथस्य यथा पृष्टं त्वया मम । श्रवणात्सर्वपापघ्नं महामंगलकारकम् ॥ २०९ ॥

सारकाण्डमिदं देवि वे शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।

तेषां मनोरथाः सर्वे परिपूर्णा भवन्ति हि । २१० ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
अर्गस्तिरामधिवनार्वतीसंवादे त्रयोदशः सर्गः । १० ॥

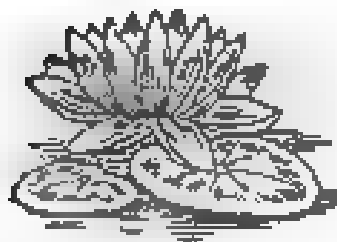
प्रथमसर्गे श्लोकाः ॥ १०९ ॥ द्वितीये ॥ ३१ ॥ तृतीये ॥ १९४ ॥ चतुर्थे ॥ १७० ॥ पंचमे ॥ १४० ॥  
षष्ठे ॥ १३० ॥ सप्तमे ॥ १६६ ॥ अष्टमे ॥ १२५ ॥ नवमे ॥ ३१० ॥ दशमे ॥ २७३ ॥ एकादशे  
॥ २८८ ॥ द्वादशे ॥ २०२ ॥ त्रयोदशे ॥ २१० ॥ एवं सारकाण्डस्य पूर्णश्लोकसंख्या ॥ २५५८ ॥

॥ २०६ ॥ सीता प्रेमके अनुकूल वर्तवसे, नश्वरासे, लज्जासे, डरसे, पातिव्रत वर्मसे, मनोहरभावसे तथा  
परिके मनोभावकी जानकर उसके अनुसार व्यवहारसे राजा रामकी प्रेमपूर्वक आनन्दित करने लगीं ।  
हे गिरीन्द्रजे ! इस प्रकार मैने तुमको रामके राज्यकालके कादका सब वृत्तान्त कह सुनाया, जंसा कि तुमने  
पूछा था । यह रामचरित श्रवणमात्रसे सब पापोंका नाशक तथा महामंगलकारी है ॥ २०७-२०८ ॥ हे  
देवि, जो लोग इस सारकाण्डको श्रद्धासे सुनते हैं, उन नरश्रेष्ठोंके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं । इसमें तर्क  
भी सन्देह नहीं है ॥ २१० ॥ इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
अर्गस्तिरामधिवनार्वतीसंवादे पं० रामतंजपाण्डेयकृत 'जपोत्तमा' भाषाटीकाया त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस सारकाण्डके पहिले सर्गमें १०९ श्लोक दूसरेमें ३१, तीसरेमें ३६४, चौथेमें १७०, पंचवेंमें  
१४०, छठेमें १३०, सातवेंमें १६६, आठवेंमें १२५, नववेंमें ३१०, दसवेंमें २७३, ग्यारहवेंमें २८८, बारहवेंमें  
२०२ तथा तेरहवेंमें २१० श्लोक हैं । इस प्रकार इस सारकाण्डमें कुल २५५८ श्लोक हैं ।

✽ इति श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डं समाप्तम् ✽

श्रीरामचन्द्रार्पणम्स्तु



श्रीरामचन्द्रो विजयतेतराम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽहया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

—॥॥॥—

## यात्राकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( रामायणकी उत्पत्तिका वृत्तान्त )

सं'पावत्युवाच

सारकांडं त्वया शंभो कीर्तितं बहुपुण्यदम् । मया श्रुतं तु पृच्छामि यत्तद्वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥  
कथं कृता वाजिमैथा राघवेण बलीयसा रामादीनां चतुर्णां हि सन्ततिं वद । २ ॥  
स्वपुत्रचन्धुपुत्राश्च कथं स्त्रीभिः सुयोजिताः । दशवर्षपदम्पणि दशवर्षशतानि च ॥ ३ ॥  
तथैकादश वर्षाणि त्रेतायुगभवानि हि राज्यं कुत त्वया प्रोक्तं विस्तचराद्वस्व माम् ॥ ४ ॥  
यानि यानि चरित्राणि राघवेण कृतानि हि । ताति तानि हि कृत्स्नानि विस्ताराद्वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥  
इति देविवचः श्रुत्वा शंभुस्तां पुनरब्रवीत् ।

श्रीमहादेव उवाच

मम्यक् पृष्टं त्वया देवि राघवस्य कथानकम् ॥ ६ ॥

ममापि हर्षः संजातस्त्वद्वदानि तद्वान्तिकम् । चरितं रघुनाथस्य षटकोटिश्विस्तरम् ॥ ७ ॥  
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् । वाल्मीकिना कृतं पूर्वमेकदा तद्वदामि ते ॥ ८ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीपार्वताजी बोली—हे शंभो ! आपने अतिपुण्यदायक सारकाण्डकी जो कथा कही, सो मैंने सुनी परन्तु अब मैं जो आपसे पृच्छती हूँ, वह कृपा करके कहें ॥ १ ॥ अञ्जवान् रामने अश्वमेधयज्ञ किस प्रकार किये ? राम आदि चारों बाह्योकी कौन-कौन-सी सन्ततियां हुईं ॥ २ ॥ रामने अपने पुत्रों तथा बाह्योके पुत्रोंका किस प्रकार और कौन-कौन सी स्त्रियोंके साथ विवाह किया ? आपने कहा है कि रामने त्रेतायुगमें प्यारह हजार प्यारह वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । अतएव ये सब बातें विस्तारपूर्वक कहें ॥ ३ ॥ ४ ॥ रामने जो जो चरित्र किये हों, वे सब आपके द्वारा सविस्तार कहनेके योग्य हैं ॥ ५ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर शम्भुने कहा । श्रीमहादेवजी बोले—हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा किया कि जो रामकी कथा पृछी ॥ ६ ॥ इससे प्रसन्न होकर मैं तुमको रघुनाथजीका सौ करोड़ एलोकमें कहा हुआ चरित्र सुनाता हूँ । ७ ॥ जिसका कि एक-एक अक्षर पुरुषोंके सहान् पापोंको नष्ट करनेवाला है । वाल्मीकिने जो कथ्य

बाल्मीकिस्नेहदा स्नानं जगाम नमसां नदीम् । शिष्येण सहितो गन्वा भूमौ स्थाप्य कर्महन्तुम् ॥ ९ ॥  
 आचम्यकं तु मंषाद्य कृत्वा श्रीचरिर्धि नवः । पादद्वन्द्वानि स्नानार्थं दर्शयत्पि स वै मुनिः ॥ १० ॥  
 न च हर्षं नमसां नरे कौतुकमुत्तमम् । कौचयुग्मे हतः कौचो निषादेन पतन्निषा ॥ ११ ॥  
 कौचीं शोभ्यमानिष्टा दिक्पापानिदुःखिता । विवृक्ता पतिना तेन द्वित्रेन सहचारिणा ॥ १२ ॥  
 तस्मिन्प्रेषेण मनेन पन्निषा सा हनेन च । तथाविधं द्विज रष्ट्रा निषादेन निषानिनम् ॥ १३ ॥  
 ऋषेर्धर्मान्मनस्तस्य कावच्यं समवयत नवः करुणयाऽऽदिष्टस्यधर्मोऽपि नि द्विजः ॥ १४ ॥  
 निशम्य रुदतीं कौचीमिदं वचनमब्रवीन् । ना निषादपतिनां न्वमममः श्लाघनीः ययाः ॥ १५ ॥  
 यत्कौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् । तस्यैव ध्रुवध्विन्ना यभूव हृदि वीक्षतः ॥ १६ ॥  
 शोकार्त्तनाम्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया । चिन्तयन्म महाशयश्चकार मनिसागं यतिम् ॥ १७ ॥  
 शिष्ये चैवाजवीडाकमिदं स मुनिर्धुमरः । पादद्वन्द्वोऽभ्यगममातर्त्रीत्यन्यमस्मिन् ॥ १८ ॥  
 शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो ये शोको भवतु नान्यथा शिष्यस्तु तस्य श्रुत्वा मुनेर्वाक्यमनुत्तमम् ॥ १९ ॥  
 प्रविजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः सोऽभिषेकततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्व्याविधिः ॥ २० ॥  
 तमेव चिन्तयन्मृगपुष्यवर्तनं वै मुनिः । पादद्वन्द्वजम्भनः शिष्यो विनीतः भुजवान् भुरोः ॥ २१ ॥  
 कलत्रं पूर्णमादाय ग्रहपञ्च जगाम ह । स प्रविश्याश्चमपदं शिष्येण सह धर्मवित् ॥ २२ ॥  
 उपविष्टः कृपाशान्ध्याश्चक्रे ध्यानमास्थितः । तत्राजगाम लोकादी कर्ता ब्रह्मा स्वयं प्रभुः ॥ २३ ॥

पहिले एक ममयने किया था, सो पुनः गुनाया है ॥ ९ ॥ एक समय बाल्मीकिमुनि अपने शिष्य भारद्वाजको साथ लेकर तमसा नदीपर स्नान करनेके लिए गये, वे रामसे समानपर कर्महन्तु, राम तथा आचम्यक शौ- चादि कर्ममें निवृत्त होकर उठे हैं। इसमें कुशा यज्ञ का कर्म स्नान कर, के लिए चले ॥ ९ ॥ १० ॥ त्यों ही उन्होंने तमसा नदीके तटपर एक उत्तम कोठक बना। बहुत बहुत नि एक निषादेने बाणने और तथा कौचोके ऊँटुमेंसे ओच (बूले) को मार डाल्य ॥ ११ ॥ जब कौचो गोखानुर होकर अनिदुःखसे विलाप करने लगी। यह बेचारी अपने सहचर, तामेके समान लाल मस्तकवाने, मत और बाणसे मारे गये अपने पनि पक्ष से विवृद्ध गयी थी। निषादके द्वारा मारे गये उस पक्षीकी बसा दम्बर धर्मात्मा बाल्मीकि ऋषिके मनमें बड़ा करुणा उत्पन्न हुई। पञ्चान उस कौचोके दयाजनक रुदनको मनमेंसे करुणावान्त ही और 'यह बड़ा खचम हुआ ऐसा विचारकर मुन बोले-॥ १२-१४ ॥ अरे निषाद तुन एक कामायक जोहके कौच पक्षीको मार डाला है। इसलिए तू भी मलक बघौतक प्रतिष्ठाको नहीं प्राप्त होगा मर्यात् बहुत काल पर्यन्त शोचित नहीं रहगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार अनुष्टुप्-छन्दोबद्ध बाणो सहसा अपने मुखसे निकल पड़नेके कारण अश्रु-पावन तथा ओचके गमकस पीड़ित उन ऋषिके मनमें 'मोह। इस निषादको मैंने यह क्या कहु दिया। कर्मों ही मुझे बड़ा भारी पाप लग गया' ऐसी चिन्ता होने लगी ॥ १६ ॥ ओह! यह तो मुझसे क्या भारी अपयश देनेवाला काम ही गया। ऐसी चिन्ता करते हुए मनमें कुछ निश्चय करके महामतिमान् मुनिश्रेष्ठ बाल्मीकि अपने शिष्य भारद्वाजसे कहा-॥ १७ ॥ बन्स! शोकवश होकर मैं निषादको साथ दे दिया। यह हुआ तो अनुचित, तथापि शोकसे बुझित होनेके कारण मेरे मुखसे आठ ममरोवासे बार-बारणोक्त समान पदोंसे विनिष्ट तथा लाल-रक्तपर गाने योग्य यह अनुष्टुप् छन्द श्लोकस्वरमें (यशस्वमें) ही प्रवृत्त हो अपयशस्वरूप न ही ॥ १८ ॥ पञ्चान मुनिके इन श्रेष्ठ वाक्यों सुनकर उनके प्रसन्नवदन शिष्य भारद्वाजने 'यह श्लोक आपके इच्छानुसार यशस्व हो होगा' ऐसा कहकर उनकी बातका सम्मनन किया। इससे बाल्मीकि उनके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ तदनन्तर तमसा नदीके जलमें यथाविधि स्नान आदि कृत्य करके वे महर्षि 'मेरा अपयश कैसे यशस्वमें परिणत हो जाय' ऐसा विचार करते हुए अपने आश्रमकी ओर चल गये ॥ २० ॥ उनके पीछे उनके विद्वान् और विनम्र शिष्य भारद्वाज भी बल्ल्या बड़ाधरकर चल पड़े ॥ २१ ॥ आश्रममें पहुँचनेपर भी वे 'निषादको दिया हुआ शाप यशस्वमें कैसे परिणत हो' इसी बातका मनमें

चतुर्भुजा महाभोजा इष्टं च मुनिपुंगवम् । शार्ङ्गार्द्धैश्च तं दृष्ट्वा सहस्रोन्माद्यं वास्यतः ॥२४॥  
 प्रजित्तिः प्रयतो भूत्वा तस्यो परमविस्मयः । पूजयामास तं देव पादाभ्यां सनवदनैः ॥२५॥  
 अगम्य विधिवच्चैत्रं पृष्ट्वा चैव निगमयम् । अयोपविश्वं वगवामस्तनं परमाचिरे ॥२६॥  
 महर्षये वाष्परीकये तदिदेशायनं ततः । मध्याह्ना समनुष्ठानः सोऽप्युवाविग्रहामने ॥२७॥  
 उपविष्टे तदा तस्मिन् साभान्नलोकगितामहे । तद्रूपेणैव वनसा कान्त्योकिर्ध्यानमास्थितः ॥२८॥  
 पाशान्विता कृतं कृतं वैष्णवपुद्गिता यस्यास्तं साकुरुं कौच इत्यदक्षरणम् ॥२९॥  
 शोचभेवं पुनः कौचीमुपलोकयिमे जगौ पुनरतर्गतमना भूत्वा लोकप्राप्तयः ॥३०॥  
 तमुवाच ततो ब्रह्मन् महमन् हृदिपुंगवम् । श्लोक एव त्वया ददो नात्र कुर्या निचरणा ॥३१॥  
 मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् बभूवेयं सगस्वरी । रामस्य चरितं हृत्पन्नं हृत् सभृषिसद्वन ॥३२॥

धर्मान्मनो गुणचरो लोके रामस्य धीमनः ॥३३॥

पृथं कथय धीरस्य यथा ते नाददन्तु नम् । रक्षस्य च प्रकाशं च यद्दर्शं तस्य धीमतः ॥३४॥  
 रामस्य सह सौमित्रैः कीशानां रक्षसां तथा । वैदेह्याभैव यद्दर्शं प्रकाशं यदि वा रदः ॥३५॥  
 तन्वाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति । न ते रागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ॥३६॥  
 इह रामकथां पुण्यां श्लोकवद्वा मनोरमाह । पाशान्वाप्यति गिरवः सरितश्च महोत्तले ॥३७॥  
 तन्वद्वाप्यरणकथां ताकेषु प्रचरिष्यति । पाशान्वाप्यति त्वत्कुता प्रचरिष्यति ॥३८॥

विचार करते हुए वे धर्मिक मुनि शिष्टाके साथ बैठकर अन्त्याम्य हाते करने लगे ॥ २४ ॥ इननेसे बड़ी समस्त लोकके कर्त्ता चतुर्भुज प्रभु महानिबन्धी बड़ा उन मुनिप्रेम्से मिलनेके लिए जा बुँचि ॥ २५ ॥ उनको अचानक आते देखकर वास्पोकि मुनि विस्मयान्वित तथा डरक् हो गये । परन्तु वे दुरन्त हाथ जोड़कर नम्रतासे उनके सामने जाव हो गये ॥ २६ ॥ पण्डित धीरसे मन्त्रों स्थिर करके मुनिने बड़ाजोश कुशल समाचार पूछा तथा वाद्य, आर्घ्य, भक्षण, स्तुति, प्रणाम आदिसे उनका हलकार किया । बड़ाजीने भी उनके साथ आदिका कुशल पूछा और अको लिए बिठाये हुए आसनपर धर्य बैठकर वास्पोकिजीकी जो आसन्नपर बैठनेके लिए कहा । लोकोके साजान् पियामह बड़ाजीके आश्रयपर बैठ आनपर उनकी आज्ञासे वास्पोकि क्षमि से बैठ गये ॥ २६-२७ ॥ किन्तु उस समय भी उनका मन श्रीवक्ताके विषयमें ही साज रहा था कि पावो अन्त करण तथा निर्दोष जेकोर मित्रा वैष्णव रत्नवाले उस आश्रय यह बड़ा कष्टप्रद काम किया ॥ २८ ॥ जो कि सुन्दर होली जोम्नेजामे, निर्दोष तथा कामके बगीचन उस पत्नीको बिना काम ही मार हाथा और मैने भी उस आश्रयसे जाव के विरा, जो की बड़ा लगाव काम हुआ । ऐसे विचारसे मान और लोकमें दुःख हुए वास्पोकि कीबहा लोक करने हुए फिर पड़ो बात करने सोचने लगे । बादमें उन्होंने आश्रयको साथ ऐसे समय जो लटक कहा था, उसीको उन्होंने बड़ा जी के सम्मुख कहा । उसको सुकर बड़ाजी हँसकर मुनिसे कहने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे बड़ान् ! तुम्हारे एकाएक कहा हुआ यह क्लक वगैरे कामें परिचित हो जायगा । इसमें तुम शक्ति भी मंजव न करना । यह तो मेरी इच्छा तथा प्रेरणासे ही तुम्हारे मुखसे यह सरस्वती प्रवृत्त हुई है ॥ ३१ ॥ हे पुरोश्चर ! तुम मेरी आज्ञासे पश्चिम घाटवार् अग्निज्योतिषके ग्यामी वर्य बुद्धिमान् राजा रामको संपूर्ण चरित रचो ॥ ३२ ॥ वैजंताली क्या बुद्धिमान् लजका जो चरित तुमने नारकसे सुना है, वह तथा और जो गुप्त या प्रकट चरित हो, उसको तुम रचकर प्रकाशित करो ॥ ३३ ॥ सुधियानुत लक्ष्मण उद्विग्न रामचन्द्र, हानरीका, सब राजसोका तथा सीताका कुल जयथा प्रकट की जो वृत्तान्त तुम न जानते होमे, वह सब की मेरी कृपासे जान जाओगे और रामके चरित्रसे भरे हुए उस काव्यम निर्मित तुम्हारी राणी वसन्त नहीं होनी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तुम ऐसे ज्योतिष हो मनको जानन्द देनेवालो पवित्र रामकथा लिखो । बचनक संसारमें मयोन्मत्त रहेंगे, उक्तक तुम्हारे रची हुई रामकथा की जोरायें प्रकाशित होयो रहेगी । ज्योतिष तुम्हारी रचो हुई रामकथा पुष्पीवन्धनपर विरत रहेगी, तबतब तुम मेरे ऊपरके लक्ष भीरेके सब लोकोमें

तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मन्त्रलोकेषु निवन्स्यसि । इन्पुष्पका भगवान् ब्रह्मा स्वयं रामस्य धीमनः ॥ ३९ ॥  
 चरित्रं श्रावयामास देववाचयैः सुपुण्यदैः । तत्स्वनर्गादिना ब्रह्मा तत्रैवांतरधीयत ॥ ४० ॥  
 ततः सन्निभ्यो भगवान् मुनिर्विस्मयमाययौ । तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः ॥ ४१ ॥  
 मुहुमुहुः प्रोपमाणाः प्राहुश्च भुस्तविस्मिताः । समाक्षरं शतभिर्मैः पादैर्गीतो महर्षिणा ।

मोघनुव्याहृणाज्जुयः शोकः श्लोकत्वमायतः ॥ ४२ ॥

तस्य बुद्धिरियं वाता महर्षेर्भावितात्मनः । कुन्तं रामायणं काम्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥ ४३ ॥

उदात्तवृत्तार्थपदैर्मनोर्मैस्तदाऽप्य रामस्य चकार कीर्तिमान् ।

समाक्षरैः श्लोकवैर्यशाध्वनो मुनिः स काव्यं शतकोटिममितम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितास्तोत्रं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये याज्ञकाण्डे

श्लोकोन्वितिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

श्रीशिव उवाच

वाल्मीकिना कृतं देवि शतकोटिप्रविस्तरम् । रामायणं महाकाव्यं अमृदुर्मुनयश्च ते ॥ १ ॥  
 आभवे उत्पठति स्म कथयति स्म ते मुदा । तच्छ्रोतुममगः सर्वे विमानैश्च दिवि स्थिताः ॥ २ ॥  
 ध्रुत्वा सर्वे सविस्तारं वाल्मीकिं पुष्पवृष्टिम् । ववर्जुजं पश्यदस्ते प्रशंसन्मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥  
 ततो देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नरा । मुनीश्वरा गुह्यकाश्च वारिधाः पद्मभस्त्वहम् ॥ ४ ॥  
 परस्परं ते कलहं चक्रुः कार्ष्णार्धमादगाद् ब्रह्माद्या निर्जराः सर्वे पन्नगान्दित्तिजान्नराः ॥ ५ ॥  
 वयं काव्यं विनेष्यामो दिव वाल्मीकिना कृतम् । दिविजाः पन्नगाः प्रोचुर्विनेष्यामो रसातलम् ॥ ६ ॥

सुखसे रहोने । इतना कहकर स्वयं भगवान् ब्रह्माने पुष्पध्रुव देववाच्यों द्वारा बुद्धिमान् रामका चरित्र उन्हें कह  
 सुनाया । पश्चात् मुनिसे पूजित होकर ब्रह्मा वहींपर अन्तर्धान हो गये ॥ ३९-४० ॥ तब शिष्यों सहित भगवान्  
 वाल्मीकि मुनिको बड़ा भारी विस्मय हुआ और उनके शिष्य उस श्लोकका बारम्बार आनन्दसे गान  
 लगे ॥ ४१ ॥ महर्षिने समान अक्षरवाला तथा बार चरणों युक्त जिस श्लोकको गाया था, उसको ये शिष्य भी  
 प्रसन्न होकर आश्रयसे परस्पर कहने-सुनने लगे ॥ ४२ ॥ उस श्लोकका मुनि शोकवश बार-बार कहते थे ।  
 अन्तमें वही शोक श्लोक ( यह ) रूपमें परिणत हो गया । पश्चात् उन श्रद्धालु महर्षिकी यह इच्छा हुई  
 कि मैं इस प्रकारके श्लोकोंमें समस्त रामायणका निर्माण करूँ ॥ ४३ ॥ अन्तमें उन कर्त्तिमान् मुनिने मनको  
 आनन्द देनेवाला तथा जिसमें उचार चरित्र भरे अपौरुषेय ज्ञान प्राप्त हो, ऐसे पद और समान  
 अक्षरोंवाले सौ करोड़ श्लोकोंवाला महाकाव्य ( रामायण ) रचा ॥ ४४ ॥ इति श्रीशतकोटि-  
 रामचरितास्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये याज्ञकाण्डे याज्ञिकायां श्लोकोन्वितिरामायणकथनं  
 नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे देवि । वाल्मीकि मुनिका बनाया हुआ सौ करोड़ श्लोकसमक उस महाकाव्य रामा-  
 यणको सब मुनिधोने अपकाया और मेहपूर्वक उसे खाने आश्रमोंमें पढ़ने तथा सुनने लगे । उसको सुननेके लिए  
 सब देवता विमानोंमें बैठकर आकाशमें छा गये ॥ १ ॥ २ ॥ उन लोगोंने विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण रामायण सुना  
 और मुनीश्वर वाल्मीकिकी स्तुति करके अयजवकार करते हुए उत्तम पुष्पवृष्टि की ॥ ३ ॥ बादमें देवता, गंधर्व  
 यक्षा, नाग, किन्नर, मुनिमण्ड, गुह्यक, राजे-महाराजे, ब्रह्मा तथा मैं सब एक साथ उस रामायण महाकाव्यकी  
 प्राप्तिके लिए परस्पर आदरपूर्वक झगड़ने लगे । ब्रह्मादि देवता पन्नगों, दैत्यों तथा मनुष्यों कहने लगे  
 कि इस वाल्मीकीय काव्यको हमलोग स्वयंसे ले जायेंगे देख तथा पन्नग कहने लगे कि हम



कथं काव्यं गद्यस्य चाग्रे वाचनं शुभम् । अपाश्रयाः सधूयन्ताः प्रोचुः काव्यं हि भूतलान् ॥७॥  
 नेतुं त्मानजं स्वर्गं न दास्यामां वयं त्विदम् । काव्यापेक्षिति ते चक्रः कलहं रामदृष्टवम् ॥८॥  
 ततो देवि ज्ञानं मर्शं चैव यथैव निर्जितम् । गन्ताऽहं तन्तुं क्षीरान्धौ शेषदयं ह्यश्विनम् ॥९॥  
 विष्णुं स्तुत्वा तु बभौर्नैव नानाविधैर्गवि । नानापूजोपहारैश्च पूजयित्वा सविस्तरम् ॥१०॥  
 कृतवान् गन्तव्यादि तेन विष्णुवृत्त्यन । पप्रच्छ मां तदा विष्णुः किमर्थं वै धिनोऽस्म्यहम् ॥११॥  
 पूज सर्वं मया देवे कश्चित् कृत्यविष्णुम् । काव्यायं कलहं भूत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः ॥१२॥  
 त्रिधा विभज्य काव्यं तत् छपनं भक्तवन्मलः । त्रयस्त्रिंशत्कोटिलक्षमहर्षाणि पृथक् पृथक् ॥१३॥  
 क्षतानि स्त्राणि श्लोकाश्च त्रयस्त्रिंशदुभयद्वयान् । दशाक्षरानि नाम्नान्महान्महज्जयन् रमापतिः ॥१४॥  
 द्वेऽधरे वाचमानाय मयं देवे ददां हरिः । उपदिशाम्यहं कारणां तेष्वनकालं मृगां भूमी ॥१५॥  
 रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति । लक्ष्मीगरुडशेषेभ्यो वाचमानेभ्य आदरान् ॥१६॥  
 मन्त्रत्रयं पृथक् विष्णुर्ददौ तेष्वोऽनिहपिनः । शपान् निनाप पातलं लक्ष्मीर्ददौ मन्दरान् ॥१७॥  
 पृथिव्यामेव गरुडस्तं दधर महामनुम् । शपुः शेषान्पन्नगाद्याः सर्वे पातालशामिनः ॥१८॥  
 स्वर्गे प्राप्नुमहालक्ष्म्यान्तं मनुं निजराटपः । लक्ष्म्यान्प्राप्तुमहामन्त्रं सर्वे भूतलवामिनः ॥१९॥  
 मन्त्रशालात्तन्मन्त्रं त्रयं गुह्यं भाग्यन्दत्ते । ततः पूर्वैश्चभागान्महर्षो विष्णुः पृथक् पृथक् ॥२०॥  
 एवं विभागं देवेभ्यो द्वितीयं पामध्याः । पुनश्चरेभ्यो नागेभ्यश्चतुर्थं च गन्धुगमम् ॥२१॥  
 ततो देवा निजं भागं स्वर्गे निष्पृमुदा न्यदाः । पातले पन्नगाद्याश्च निन्धुर्माणं मुदा निजम् ॥२२॥

श्लोक इमं रमापत्यमं न जानय । ८-९ । कौतुक इतः पाठ्येन पारिव्रज्ये तयोः सुन्दरं रामचन्द्रियं विजितं द्वे ।  
 तत्र राजाश्रमांशौ चन्द्रि ज्ञानेन कथं किं ह्ययं इयं काव्यकां भूतलवर्गं न तं स्वर्गं ते ज्ञानं देवौ श्री-  
 नदीं पालाशम् । इतः प्रकारं यः पठेत् तत्पुण्यं कर्त्तुं परस्परं रामद्वयं चारुज्ज नाना स्तोत्रं ॥ ७ ॥ ८ ॥  
 हं दाव । पश्चात् येन उक्तं सर्वगो सगलं दृष्टावत् इन्द्रं करनेने रीका और उन सबका भाव लेकर वे क्षत्र-  
 सभुषे शेषकाव्यं गद्यन करनवान् विष्णुधर्मनाथक पाम गद्या और राजा प्रकारका पुत्र ही कन्दर्पम  
 विस्तारपूर्वक पूजा करके अनेक वेदमन्त्रों को ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर उनका सामने बायें राजा-  
 बाला शरभ किया । उससे विष्णु भगवान् जान और कहने लगे कि तुमने मुझका वरों जगता ? ॥ ११ ॥  
 हरि ! तब मैं सब हाल साफ साफ कहूँ मुलाय । उगच्छयता विष्णुभावात् रामाज्ज मशकाठाक लिए हो-  
 दावे कलहका मुनकर हैं पद ॥ १२ ॥ उन भक्तवन्मल भगवान्ने जगत्परम उक्त काव्यक शीत भाग कर दिये ।  
 उनमसे अनेक भाग लेनाम करत लेनाम लाल, लेनाम हजार तान सो लेतास लक्ष्मीका बना उन रमापतिने  
 रस रस भक्तरोवाले मन्त्रका का विभाजन किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ दावी दो अक्षर श्री दत्तेने द हं अक्षरोंका  
 वाचना करन लिये मुझ ( शिव ) का द दिया । वे कालोंमें पड़ता हुआ अन्तकालमें उन्हीं को अक्षरोंका  
 अनुष्ठानके कालमें उपदेश करता है ॥ १५ ॥ हं पावेता ! उन ही अक्षरोंको ही तुम 'राम' नामका तारक-  
 मन्त्र समझो । अर्थात् उही दो अक्षरोंका 'राम' उक्त तारक मन्त्र है । पश्चात् इहे आरम्भमें मन्त्रने-  
 पर विष्णु भगवान्ने भविष्य प्रसन्न होकर लक्ष्मी, गरुड और शेषनामका भी जलन-जलन लेने मन्त्र प्रदान  
 किये । शेष भगवान् जवन मन्त्रका पातलमं लक्ष्मीर्ददौ और गरुड उक्त महाभक्तकी बड़ी वाचसे पृथ्वीपर  
 ले लिये ॥ १६ ॥ १७ ॥ शेषक द्वारा पातालमं गया हुआ मन्त्र पातालवामी मन्त्रोंका प्राप्त हो गया ॥ १८ ॥  
 स्वर्गमें लक्ष्मीके द्वारा वह मन्त्र सब दमतामन्त्रका किये और भूतलवामी लोगोको वह मन्त्र पदकर प्राप्त  
 हुआ ॥ १९ ॥ हं निरोद्धवे । उन मन्त्रोंका गुणमन्त्र मन्त्रनाथनेस जाना जा सकता है । तदनन्तर रामावधके  
 किये हुए राजा भागोंको विष्णुने जलन-जलन कर दिया ॥ २० ॥ उनमसे लेनाम कौटु लेतास लाल  
 लेतास हजार तान सो लेतास १२२२२२२२२२२ मन्त्रोंका एक भाग उन्हींने लेतामन्त्रोंको दिया । १२३ १२३२२२ का  
 दूसरा भाग मुनीश्वरोंका पृथ्वीतलक लिए दिया और १२३२२२२२२२ का तीसरा भाग नागोंको दिया । २१ ॥

आर्माद्रागो मुनीनां दिव्यचक्राणि मिमिक्षात्मजे । तस्य विविस्तर वक्ष्ये विभक्तो विष्णुना यथा ॥२२॥  
 समद्वयं सवपु विभक्तः सवधा पुनः । सत्यवचनं लक्षाणि पर्यस्रान्तेमिनानि हि ॥२३॥  
 महर्षाणि तर्षानि विमर्षाणि तथा पुनः । सप्तदशविंशतिभिः श्लाकाश्चेति पृथक् पृथक् ॥२४॥  
 विभक्त सवधा उरि सवद्वयं विष्णुना । चतुर्लोकैः शेषभूता माधमाकाय वेषसे ॥२५॥  
 ददा विष्णुस्तुष्टमना । न सत्यं च भक्तितः । पुष्पाद्वापमाय वपयोर्द्विविधः कृतः ॥२६॥  
 कोट्यो द्वे द्वाविंशच्च लक्षाणि हि तथा पुनः । महर्षाणि तर्षाणि तथा पचशतानि हि ॥२७॥

प्रयाविंशच्च ते श्लाकाः षडशशतानि मनुः ।

एव विधा कृतो भार्गो विष्णुना वपयोस्त्रिविधः ॥२८॥

शाकडापादिकापानां पंचानां च पृथक् पृथक् ।

समस्यापि च वपुः समं दर्शिता यथा । तत्राद्रागा विभक्ताश्च ताञ्छृणुष्व ब्रवीम्यहम् ॥२९॥  
 अथ हि हि लक्षाणि सप्तं द्वे शतानि हि । सर्वं च तथा श्लोका एकरिंशच्छुभप्रदाः ॥३०॥  
 विभक्त्य पर्यु द्वीपेषु द्विर्षाः स्वाकिसन् । त्र्यम्बोद्वापगो भूता नववर्षेषु सादरम् ॥३१॥  
 विभक्तो विष्णुना दत्तं यथा श्लाकाश्च त्र्यम्बोद्वापहम् द्विपचशात् लक्षाणि तथा गिरिवरात्मजे ॥३२॥  
 सप्तदशार्धकनयतिश्लाकाः एव तथा पुनः । सप्तशतानि सप्तशतानि हि नवधा कृतः ॥३३॥  
 शेषमकमक्षर श्रीर्गति सर्वत्र विष्णुना । नववर्षेषु तत्पुत्रं तत्सर्वत्र न्योजयन् ॥३४॥  
 नानानामनु मन्त्रेषु न तस्य नियमः कृतः । विमर्षाणि महाविष्णुर्दृश्यमगमयदा ॥३५॥  
 अग्रे कलावरे देवि दशम्यो बुद्धिमत्तमः । निजबुद्धिस्तदेव वेदानां च पृथक् पृथक् ॥३६॥  
 शतश्रेयं खण्डानि कश्चिपि क्रतूने च । ज्ञान्या मर्दाधिका विद्या भविष्यन्तीति वै कला ॥३७॥

देवता अग्रे भागकी खंडी प्रमप्रनाम देवताकर्म ज गये । पञ्चगव्य अग्रे भागकी सप्त पातालमे ले गये ।  
 हे गिरि वरज । उसका सोलह हिस्सा पृथगावर २२ भाग । चतुर्लोक के भागकी भा जिस प्रकार विष्णु  
 भागवान् बाँटा । स हम् पृथक् । किन्तु उस कह नुसार है ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस पृथ्वीतलके भागकी विष्णुने  
 ३२ व भाग द्वापाम बाँटा । उनमेंसे हर एक द्वीपका चार कर ड छिन्नर लाल उर्ग्रास द्वार संताल स  
 ( ४०६१०००० ) प्लाक दिव । उन भागमेंसे नव द्वाप चार प्लोक विष्णु प्रसन्न होकर अपने भक्त सत्त्वकी  
 भागपूर्वक माँगपर द दिव । उन भागमेंसे भा पुनः द्वीपवाल भागका भाग किये ॥ २४-२७ ॥ पुष्कर-  
 द्वापक अगले दो वर्षों खंडी का भा कगड अद्भुत म लक्ष्मी नौ हजार पाँच सौ तईस ( २३८९५२३ ) पौडमासर  
 पञ्चम्य ३०० क दश-वर्ष करके द दिव । २८ २९ ॥ पञ्चात् विष्णुवावागद शाकडाप, कौचद्वीप,  
 श सप्तद्वीप, पञ्चद्वीप और कुण्डाव इन पाँच द्वीपक हिस्साका भी उसमेंसे हर एकके अन्तर्गत नौ-नौ  
 देश में बाँट दिया । उनका किनारा किनारा मिला स, कर्तुता है ॥ ३० ॥ उनमेंसे हर एक वर्षको अद्भुत लाल  
 दो हजार सौ सौ एकताम ( ६००२७२९ ) गुन्दर प्लोक प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार ओहर्तने छः द्वीपक  
 भागकी विभक्त करके अगले सत्यवचन अवतार के भागकी भा उनके अन्तर्गत भारत आदि नौ वर्षोंका खंड  
 प्रमस बाँट दिया ॥ ३२ ॥ हे देवि, जेना विष्णुन उसका विभाजन किया वह तुमसे कहता है । हे गिरि-  
 वरात्मजे । ज्ञान सत्य गुरुत्व द्वाप पाँच ( ५२३१०००० ) सप्ताक्षरिका मन्त्र रूप प्लाक उन्होंने बराबर-  
 सप्तानर नौ भागमें बाँटकर नवा प्लाका द दिव । ३३ ॥ ३४ ॥ शेष वच " श्री " इस एक अक्षरकी  
 विष्णुने नवी खण्डोंक लिए छाड़ दिया । यह सब प्रकारके मन्त्रोंम लगाया जा सकता है । इसका कोई  
 नियम नहीं है । इस प्रकार विध जन करने व द विष्णुभगवान् अदृश्य हो गये । ३५ ॥ ३६ ॥ हे देवि ।  
 भागे चलकर कश्चिपुम बुद्धिमानोंम जेठ दशवदन रावण कम बुद्धवान्, व्याकुलचित्त सया अत्याहु  
 काहणोंकी देखकर अपने बुद्धिके प्रभावसे वेदाक संकड़ा भाग अलव-अलव करके उन काहणोंके

धीमायुषो व्यग्रचित्तास्तेषां योग्यानि रम्यं श्रीरुद्रोऽपि पुनरेति व्यामदवधौ भुवि ३०  
 भाववानो हि नर्थाय काव्याश्रयागणान्पुनः । भगद्गुणचर्चान्तरैश्च विविधानि हि ३१  
 पृथक् पृथक् समदशं पुण्यं हि कर्मिभ्यः । भागं विनिह्य च सह-द्रुष्टुं कर्मिभ्यः ३२  
 भागाद्भारतवर्षान्तर्गतान्गारं विभूष्य च । मद्यमो यममर्थश्च यदा शासनं न शक्नुयति ३३  
 मरुत्स्यास्तटे व्यस्यो व्यग्रचित्तो भविष्यति । एतन्मित्रस्यैव यदा नशदाय महान्तरे ३४  
 चतुःश्लोकैर्विष्णुर्दत्तैरुपदेशं कर्मिभ्यः । लब्ध्वा तान् नाम्दधादि गर्दितां गणयन्मुहः ३५  
 कीर्तयन् मुख्यं गन्वा मुनिं स-र्वज्ञमुततम् । तच्छ्रुत्वा च व्याममुनये गन्वा व्यग्रचित्तमपि ३६  
 लब्ध्वा व्याममुनिः श्लोकास्तान् यथैव गच्छति । शान्तिं लब्ध्वा तदन्तेषां विष्णोश्च कर्मिभ्यः ।  
 तेषामेवार्थमादाय पुण्यं पश्येदगम् अष्टादशमहसं हि श्रीमद्भागवतमिदम् ३७ ।  
 कर्मिभ्यस्तथादशमं रम्यं उन्मनोहरम् । भगवत्कथान् एव शशी भिन्ना भविष्यति ३८  
 पुराणानां च सर्वेषां शान्तिर्लोकैर्वै रीतिरे । पृथक् च स्मृतौ व्यसः श्रीमद्भागवतं शतम् ३९  
 कर्मिभ्यस्तथादशमं रम्यमपि विविधं हि च । रघुपुण्यपुण्यमपि मां मयं विभूष्य च ४०  
 भागाद्भारतवर्षान्तर्गतान्गारमायणां भुवि । कर्मिभ्यस्तथादशमं पृथक्पृथक् पुनश्चरत् ४१  
 तस्माद्भारमायणादेव मां मुद्रित्य मादगतम् । पश्चिद्विहिमिति भूम्नां कीर्तयेत् वै कथानकम् ४२

गमायणां शजं विद्धि श्लोकमायमपीह यत् ।

पार्वत्युवाच

शशो ते द्रष्टुमिच्छामि नः त्वयः वारदो मुनिः । ४३ ।

स्वयं ज्ञान्वा विधिमुखाद्भगवन्पानकनामुनाम् । तन् गमचरितश्लोकांश्चतुश्चोपदेशयति ४४ ।  
 येः कर्मिभ्यस्तथादशमं रम्यमपि मुनिर्भागवतं वम् । तान्श्लोकाश्चतुश्च मां कृपया वक्तुमहंसि ४५ ।

योग्य वक्तावेगा । इत्येव ! इसके अतिरिक्त स्वयं धीकृष्ण भी पृथ्वीपर व्यासका रूप धरकर अवतार लगे और मनुष्यके कहलानेक लिए भारतवर्षके भागवान् रामायण के अर्थसे विविध प्रकारके पृथक् पृथक् सबह पुराण रचने । वे सर्वोत्तम तथा बड़ा भारी महाभारत नामका सुन्दर इतिहास भी लिखने ॥ ३०-४१ ॥ जो भारतवर्ष पर रामायणके भागका मारण होगा । उन भारत आदि श्लोका निर्माण करनेपर भी जब व्यासजीको समझ न होगा, तब वे व्यास होकर सख्तती नदी के किनारे बैठेंगे । उसी अवसरपर ब्रह्माजी भी विष्णुप्रदत्त चार श्लोकोका नारदको उपदेश करेंगे । नारदजी उन श्लोकोको प्राप्त करके अपनी सख्त वीणाको आरम्भ कर बजान तथा मुन्दर स्वरसे गाते हुए पद्मपत्रोंके पुत्र व्यास मुनिके पास जाकर उनको उन श्लोकोका उपदेश देंगे ॥ ४२-४५ ॥ व्यास मुनि उसी रामायणके चार श्लोकोका प्राप्ति करके बड़े शान्त चित्तसे उनका विस्तार करेंगे । उनके अर्थका आशय लेकर वाम उदात्त अर्थवाले, अष्टादश हजार श्लोकान्तक, रमणीय और मनको मनको मोह लेनेवाले अष्टादश 'श्रीमद्भागवत' नामक सहस्रपुराणका निर्माण करेंगे । इसकेलिए भागवतका भाषा भी भिन्न प्रकारकी होगी अर्थात् अन्यत्र पुराणोंमें उनका लेख विवक्षित होगा ॥ ४६ ॥ ४७ । हे शिवे ! सब पुराणोंकी भाषा वाक्प्रीत्यायके समान हो है । तथापि भूत रामायणके कर्ता व्यास भलग ही गिने जायेंगे । वेदव्यास भूमि भारतवर्ष पर रामायणके भाषका मार ग्रहण करके और भी बहुतसे मनोहर उपपुराण बनायेंगे इसी प्रकार उस रामायणका मारभाग लेकर अन्यत्र मुनीश्वर छ. शम्भुका निर्माण करेंगे । हे तिरिजे ! पृथ्वीमण्डलपर और भी जो कुछ श्लोकात्मक तथा पद्यरम्य कथा मिले तो उसे भी तुम रामायणके अर्थसे ही उत्पन्न समझो । पावतीजी बाली --- हे शंभो ! मैं आपके मुखान्बिन्दसे रामचरित्रके उन चार श्लोकोको सुनना चाहती हूँ, जिन पापनाशक श्लोकोको नारद ब्रह्माके मुखसे सुनकर व्यासको सुनाया था ॥ ४६-४८ ॥ जिनके आवापव व्यासमुनि अपूर्व भागवत अर्थका रचेंगे, उन चार श्लोकोको कृपा करके



रामायणान्यनेकानि पृथग्ग्रे मुनीश्वराः । भागाङ्गारतखण्डान्तर्गतात्कुभोद्धवाद्यः ॥६९॥  
 करिष्यंत्यत्र शनशस्तानि सर्वाणि पार्वति । चान्दर्माकायादिना देवि न हेयानि मर्माणिभिः ॥७०॥  
 सारकाण्डं पुन देवि यदुक्तं च मया तत्र चान्दर्माकायाश्च तच्चापि सारमुद्धृत्य वै मया ॥७१॥  
 निषेदितं च सधुना पृष्टं रामकथानकम् सुविस्तारवदम्प्रेति त्वया तस्मान्नयोदितम् ॥७२॥  
 भानं रामचरित्रस्य शनकोटिप्रविस्तरम् पचाननाङ्गपदं देवि दिव्यैर्वर्षार्तुदैरापि ॥७३॥  
 रामायणं सविस्तारं व्याख्यातुं न क्षमस्मिन् । यन्निमित्तं च मुनिना स्वतपोभिरनुत्तमम् ॥७४॥  
 अतः संक्षेपमात्रं हि सारं सारं निगूह्य च । कथयिष्यामि न्वर्थात्परं यात्राकाण्डं शुभावहम् ॥७५॥  
 रामदासो यथाऽग्रे हि विष्णुदास इदं विनि । शनकोटिमितान्न ज्ञानदृष्ट्या चाहं तथा तव ॥७६॥

इति श्रीशनकोटिरामचरित्रासंगतार्थमदानंदरामायणे यात्राकाण्डे

रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

### तृतीयः सर्गः

( गंगा-समुद्रगमपर जानेका तैयारीके लिए दोनोंको रामकी आज्ञा )

पांचतुवान

को रामदासः कुत्रस्यो विष्णुदासश्च कः स्मृतः । कथं वर्तयति गुरुमन्त्रमां कथय विस्तरात् ॥ १ ॥

भाषितं चान्

भारते दण्डकाण्ये गोदानाभौ विराजिते । संवेज्जज्ञे नृमिह्याण्यो मुनिग्रे भविष्यति ॥ २ ॥  
 रामनामा तु सत्पुत्रस्तच्छिष्यो विष्णुगित्यपि । गुह्यनिष्यो गममेवामक्तौ नित्यं भविष्यतः ॥ ३ ॥  
 दास्यत्वाज्ञानकीजानेस्तावुभौ भूमुरेजसा । रामदासाविष्णुदासादिनि लोके परां प्रथाम् ॥ ४ ॥  
 समिष्यतोऽग्रे भो देवि गौतम्या दक्षिणे तटे । रामदासं पितुः श्राद्धं गुयायां भविष्याय च ॥ ५ ॥  
 पृथिव्यां यानि नाथानि तानि गत्वा यथाक्रमम् । अध्यापयिष्यति अज्ञानं गोदानाभौ गृहप्रेम्भी ॥ ६ ॥

भारतवर्षमें प्रचलित रामायणक भागक आधारपर अगस्त्य आदि भक्त्यन्व मुनि भा मेकडो रामायण लिखेंगे । पर विचारशील पुरुषोंको उन्हें वात्सकीय रामायणमें पृथक् न समझना चाहिये । ६९ ।, ७० । हे पार्वती । पहले जो मैंने तुमको सारकाण्ड सुनाया वह भी चान्दर्माकाय रामायणका सार ही था ॥ ७१ ॥ उसके बाद जो तुमने रामको सविस्तर कथा सुनी वीर मैंने सुनायी, उसका एक अंग इतोंकोमे विस्तार है । हे देवि । पञ्चमुत्तमे में दिव्य अस्त्र वर्षोंमे भो सम्पूर्ण रामायणका व्याख्या करतम समर्थ नहीं है तब फिर औरोंका तो कहना ही क्या है । इसका रचना चान्दर्माकि ऋषिने अपने तपोबलम का था ॥ ७२-७४ ॥ इसलिये सारमात्र लेकर संक्षेपमे मे तुम्हारी मननताके हेतु मनोहारी यात्राकाण्ड सुनाऊंगा , ७५ ॥ जिस सी करोड़ इलोंकोकी रामायणकी आगे चलकर रामदास विष्णुदासको सुनाएंगे, वही मे ज्ञानदृष्टिसे देख कर तुमको सुनाता हूँ ॥ ७६ ॥ इति श्रीशनकोटिरामचरित्रासंगतार्थमदानंदरामायणे यात्राकाण्डे 'क्योत्स्ना' भाषाटीकायां रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ।

पार्वतीजीने पूछा—हे महाराज । रामदास कौन और कहाँके हैं ? ये विष्णुदास कौन हैं ? रामदास विष्णुदासको क्यों विस्तारसे रामायण सुनायेंगे, यह भी कह सुनाइये ॥ १ ॥ शिवजीने उत्तर दिया कि भारतवर्षक दंडकारण्यमें गोदावरीके मध्यप्रदेशीय बन्धक क्षेत्रमें आगे चलकर नृसिंह नामके एक मुनि होंगे ॥ २ ॥ नृसिंहमुनिके पुत्र रामदास और रामदासके शिष्य विष्णुदास होंगे । ये दोनों गुरुशिष्य निरन्तर रामकी भक्ति करनेवाले होंगे ॥ ३ ॥ सीतापति रामके मदन्य दास होनेके कारण ही ये दोनों रामदास तथा विष्णुदास नामसे संसारमें परम प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे । हे देवि । आगे चलकर ये ही रामदास गौतमी नदीके दक्षिण तटपर तथा गंगामे घाटाका श्राद्ध करके पृथ्वीके समस्त तीर्थोंका भ्रमण करनेके बाद गृहस्थाश्रम स्वीकार करके

एकदा विष्णुदामः स श्रुत्वा नानाविधाः कथाः । रामदाममुष्मात्माकाण्ड रामायणोद्भवम् ॥ ७ ॥

श्रुत्वा किञ्चिन्प्रष्टुमना रामदाम वदिष्यति ।

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वक्तुमिहार्हम् ॥ ८ ॥

सायकाण्डं मया स्वतः श्रुतं रामायणस्थितम् । न किञ्चिन्मोक्षवर्त्येणोर्जि जानक्या गवयस्य च ॥ ९ ॥

श्रुतोऽत्र कापि राज्यस्य विस्तारोर्जि च न श्रुतः । कथं यागाः कुतास्तेन मन्तनिष्पत्त्य न श्रुता ॥ १० ॥

मुतानां बहुवृत्ताणां विवाहादिकमश्रुतम् । तत्सर्वं विष्णुगच्छतः श्रुतमिच्छामि मे गुरो ॥ ११ ॥

तत्त्वं नदं महाभाग रघुर्वारस्य चैष्टितम् । रम्यं पवित्रमानन्ददायकं पातकापहम् ॥ १२ ॥

रामदास उवाच

सम्पत् पृष्टं त्वया वन्म रामचन्द्रकथानकम् । भगलं रघुनाथस्य प्रोच्यते वन्मविष्णुम् ॥ १३ ॥

मायधानमनाम्ब तच्छृणु पातकनाशनम् । यथा श्रुतं मया पूर्वं तृष्ट्यर्थं ते वदाम्यहम् ॥ १४ ॥

इत्थां दशाननं रामो राज्यं निहतकटकम् । अयोध्यायां मुक्तिपुष्पं ममामर्जितमनमः ॥ १५ ॥

न दुर्भिक्षं न चौर्यं च नापमृत्युर्न चैनयः । न दुर्दृष्टिश्च भयं चिन्ता जयाधयश्च कदाचन ॥ १६ ॥

न मित्रार्थी न दुर्धनो न शापात्मा न निन्दुरः । न क्रोधो न हृतघ्नोऽपि रामे राज्यं प्रशामति ॥ १७ ॥

एकदा जानकी कान्तमेकान्ते ग्राह लज्जिता । स्मितवक्त्रा चाकृन्तामा दिव्याञ्जुष्माग्निउता ॥ १८ ॥

सायकव्यग्रहस्तां सा विनयावतलानना । शमं राज्ञायपत्राधं रावणाने मम प्रभो ॥ १९ ॥

किञ्चिद्विस्तुमिच्छामि यद्यनुज्ञां करोषि हि । विशापयामि तर्हि त्वां धर्ममूलं महीदयम् ॥ २० ॥

गोदावरीके गडवर्ती गोविन्दे छात्राकी अनेक शास्त्रोक्तों अध्ययन करारंगे ॥ ४-६ ॥ उभी अक्षरपर किसी दिन विष्णुदाम रामदासने बहुतों कथा सुनते-सुनते सायकका सायकाण्ड मन्तर कुछ प्रश्न करनेकी इच्छासे कहते हैं 'गुरो' ये आपस जो प्रश्न करवका इच्छा करना है, उसका पूर्णकर्तव्य उत्तर देनेमें आप समर्थ हैं । हे गुरो ! मैं आपसे रामायणका सायकाण्ड जो मन्त्र लिखा, पान्ति उभो देने की भी महाराजी जानकी अवस्था राजा रामचन्द्रका कोई सुखद सवाद नहीं सुना और न उनके राज्यका विवरण ही मन्त्र पाया । उन्होने कैसे और किस प्रकार यज्ञ किये ? उनकी सेवनाका विवरण भी नहीं सुनाने मिला । राम तथा उनके भाइयोंके पुत्रोंके विवाह आदिक वर्णन भी मैं नहीं सुन सका । गुरो ! यह सब मैं आपसे श्रीभगवते विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ ७-११ ॥ इसलिये हमें मन्त्रभाषा श्रावण-वन्दनोक्तोंका वर मनोहर पावन, आनन्ददायक तथा गाना-छाहण चरित आप मुखसे सुनगर् ॥ १२ ॥ रामदास राजा 'हे वन्म' तुम रामचन्द्रकी कथा-विषयक यह बड़ा ही उत्तम प्रश्न किया है । रघुनाथजी के इस भावविशेष चरित्रको मैं विष्णुगच्छे वर्णन करता हूँ ॥ १३ ॥ उनकी कथा ध्वजमाश्रम जन्म-जन्मान्तक सायक-मन्त्र का देना है । उनके सने जैसे सुना है, वैसा ही तुम्हारी प्रशंसनाके लिए कहना है, जब सायकका शासन सुना ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजी दशानन रावणको मारकर मोक्षदायिनी अयोध्यानगरीमें रहने का नातिपूर्वक निर्धारक राज्य करने लगे ॥ १५ ॥ उनके राज्यमें कभी भी अकाल नहीं पड़ा और चोरा नहीं हुई । किन्तु अकाल या कृत्स्न मरण नहीं हुआ । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी तथा मूगासे सताकर नाश पड़ितोंमें लग्न का चिन्ता और राजविद्रोहोंसे आसमान ईशिये ( विधनिये ) भी उनके राज्यकारणमें लगापर नहीं आया । उनके राज्यमें कोई दुर्दृष्ट, मयभीत चिन्तानुर या रोगपीडित नहीं रहता था ॥ १६ ॥ उनके राज्यकालमें कोई भ्रष्टारी, दुराचारी, पापी क्रूर, माया और कुलघ्न भी नहीं होता था ॥ १७ ॥ गये सुख-शान्तिक समय एक दिन हास्ययुक्तमुख-वाली, सुन्दर नासिकायुक्त एवं देवियोंके योग्य अर्चनानामें दिभूषित जानकी कुछ लज्जावृद्ध एकान्तमें अपने पिय पति रामसे रहने लगे । उस समय जानकीके हाथमें मनोहर चमर था । ऐसी दशामें वे चित्तसे नंथा सुन किये हुए बोलो-हे कमलपत्रके समान नयनोंवाले रावणके शत्रु तथा मेरे पाय राम । यदि

तत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीं प्राह गधरः । हे माने कजनयने मम प्राणहृत्पदे ॥२१॥  
 श्रीघ्न वदस्व यनेऽस्मिन्नेति तत्काव्याप्यहम् । इति गधरमभ्यानवचनैर्जनकाम्बजा ॥२२॥  
 निवर्गं शोणूगैषपतिपूर्णाऽजयोत्पतिम् ।

श्रीसोतोवाच

यदा त्वं राक्षसश्रेष्ठ दण्डकं वचनापितुः ॥२३॥

मया सीमित्रिणा साकं पूर्वं म्यनम्राट्टनः । मृगधेगपुत्रं बन्धा जगद्व्यास्रगणे यदा ॥२४॥  
 नौकायां स्थितमभ्याभिर्माग्राभ्यां तदा पृग । मकन्धित मया किषिषन्वां वध्याम्यहं प्रभो ॥२५॥  
 देवि गमे नमस्तेऽस्तु निवृत्ता वनयागतः । गर्भेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥२६॥  
 सुगमांमोषहारैश्च नानाबलिभिर्गदूता । इत्युक्त वचनं पूर्वं तज्ज्ञान भवताऽपि च ॥२७॥  
 ततश्चतुर्दशै र्षं विमानेन यदाऽऽगतम् । तदा भगवन्शुधनर्कामन्याविहातुरा ॥२८॥  
 अहं तद्विष्मृता रामा स्मृतिर्जानास्य मे प्रभो । तन्मन्त्रकल्पपूर्वम् गतुमर्हसि जाह्नवीम् ॥२९॥  
 मया मातृचपुमिस्त्वामिति ते श्रावयाम्यहम् । तेचने यदि ते चिके न न्यामाज्ञापयाम्यहम् ॥३०॥  
 इति सीतावचः श्रुत्वा गदस्य रघुनन्दनः । सीतामालिख्य बाहुभ्यां हर्षवन्तामुवाच सः ॥३१॥  
 एतद्वचनवातुषं कुतो जानासि मेधिलि । न तने वचनं देवि गङ्गा प्रति मर्मव ननु ॥३२॥  
 वचनापव वेदहि श्वो गन्ता जाह्नवीं प्रति । क ते बाह्यार्जन् दापये गङ्गां यन्तु वदस्व मे ॥३३॥  
 तच्छ्रुत्वा तत्रैव स्थातुं सेनायोम्यसमं मृदु । शत्रुं कर्तुं हि फथान दानाज्ञापयाम्यहम् ॥३४॥  
 यतः सीताऽनर्वाहक्यं पुनः भोगमचोदिता । पत्र गङ्गा च सरयू मगताऽस्ति रघूदह ॥३५॥

जाय मुझे आज्ञा है तो मैं आपके कुछ निवेदन करना चाहता हूँ । वह योग निवेदन धर्ममामन मया कर्म्यु  
 वधकारो होगा । १८-२० । राम सीताका वचन सुनकर कहने लगे हैं कमजनय तो हे मम प्राणहृत्पद  
 सीते । तुम जो कहना चाहो, सो शीघ्र कहो । मैं उस अभ्यापन करनेकी तैयार हूँ । इस प्रकार राजक मभ्यानभर  
 वचनास जनकनिन्दनी नानाप्रका सहस्रसं निवर्णन लक्षण उठा और दातम करने लगे—श्रीमानाज्ञा बोली—हे  
 राक्षसश्रेष्ठ । जब बाद निनाक बहुमपर दण्डकाण्य जानक लिए मुझे तथा मुनिवापुष लक्ष्मणको साथ लेकर  
 अयोध्या लगे, मैं चले थे और जब मृगधेगपुर में सर आकृषी मदासं मावपर हमलोग मदा हूँ थे । उस  
 समय भगवन्तों भाग रक्षाकी बीच मानासे मन तो मकन्द किया था । हे प्रभो ! वह मैं आज आपका सुनाता  
 हूँ ॥ २१-२० । मैं गंगाको नमस्कार करके कहा था—हे देवि । जब मैं गम तथा लक्ष्मणक साथ  
 वनयावन लोचना, इस समय मुगध, मल्लन तथा जनक प्रकाको पूजाकामपान तुम्हारी पूजा करनेको ।  
 उस समय कह रहा था इस वचनका जानने भी मना था ॥ २६ । २७ ॥ पश्चात् चोदह वप बाद जब हमलोग  
 विमान द्वारा इनमे लगे तब भरत शत्रुघ्न और माना कोवन्ताके वियोगसे अनुर होकर कश्यप से उस बातको  
 पूछ गयी । हे प्रभा ! आज मुझे उस बातका पुनः स्मरण आया है । मत्तव मरे उस संकलरको पूरा करनेके लिए  
 माताओं, भाइयों तथा मुझे लेकर आपको बंगाल के तरवार चलना चाहिये । यही मेरा आपस प्रार्थना है ।  
 यदि आप उचित नमस्ते नो करेंगे । मैं आपका इस बातका आज्ञा नहीं दूँ । कदाकि सीता पनिरो आज्ञा देना  
 मयसे है चान्तु उचितव उचित परामर्श देना न्याय्य और धर्मशुभत है । २८-३० ॥ जायक इस  
 बातको सुनकर राम बड़े प्रसन्न हुए और आनन्दित करके मातासे सहर्ष कहने लगे—॥ ३१ ॥ हे मेधिली !  
 इस प्रकारका वचनवातुषं सुनमे कदासि आ गया ? तुम्हारा वह वचन मेरा कि प्रति वही, प्रत्युत मरे ही प्रति  
 का ॥ ३२ ॥ हे वेदहि ! तुम्हारे कथनानुसार मैं वस ही बंगालों चलनेके लिए सेना हूँ । हे शिवे !  
 तुम्हारी जिस अहं और जिस लोचको चलनेको इच्छा हो, वह कहो ॥ ३३ ॥ इस बातका जानकर  
 मैं वही सेनाको ठहलनेके लिए स्थान और मार्ग साफ-सुथरा करनेके लिए दूतोंको आज्ञा दे दूँ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार  
 रामके वृत्तनेपर सीताने कहा—हे रघुनन्दन ! जहाँ गंगा और सरयूनीका संगम हुआ है, वहीपर गंगाको

तत्र गङ्गाक्षरं देवे गतुमिच्छति मे मनः इति श्रीगोपचः श्रुत्वा तथेन्दुक्त्वा ग्धूदहः ॥३६॥  
 द्वागालु समाहूय पर्यगच्छाथ जानकाम्, अज्ञापयन् तं रामः क्षीय गच्छ ममाजया ॥३७॥  
 लक्ष्मणं वचनं मे एव कथयन् सविस्मरम् । शायथ्यः सो ममोद्योगः सीतायार्थं कौतुकान् ॥३८॥  
 मरुगुमङ्गलं गङ्गापूजनार्थं नया मह । मान्भिर्मन्त्रिभिः सैन्यः सुदृढिर्भस्तेन च ॥३९॥  
 गजपदेन सुरिस्थं जनैर्विभ्रपथानुसृतम् । सेनानिवेकस्थानानि योयनाद्धान्तगाणि च ॥४०॥  
 पूरिताममनोयार्थैः कल्पनीयानि च पृथक् । इति गमवचः श्रुत्वा म मवति त्वगन्वितः ॥४१॥  
 आत्ताप्रमाणमिन्दुक्त्वा नन्वा गम पुनः पुनः । कथयामास सौमित्रि रामवाक्यं भविष्यत् ॥४२॥  
 तद्वाक्यवचनं श्रुत्वा सीताज्यपदस्थितः । समाया मन्त्रिभिर्दुर्को लक्ष्मणा दूतमन्त्रयान् ॥४३॥  
 अङ्गीकृतं गमनाक्यमिति गम वदन्व नन् । तच्छ्रुत्वा त्वग्नि दूतः कथयामास गद्यवम् ॥४४॥  
 समाया लक्ष्मणश्चापि दूतानातापयन्दा । रुक्मदण्डकान् त्रिवोष्णापपुनः विभूषितान् ४५॥  
 गच्छन् त्वग्निं गृपं कथयन् अनानुरि । जयोभ्याया सधनप सो मायार्थं ममुद्यमः ॥४६॥  
 इथेन्दुक्त्वा जवाद्वा गजवार्मांश्च सर्वतः । दीर्घस्दरेण ने प्रोचुश्चाध्वं कृत्वाऽऽत्मनन्करान् ॥४७॥  
 हे जनाः मृगुन स्वस्थाः यः सीतागमयोर्मृग । मय्योगोऽस्मि दूतार्थं मग्वाः सङ्गम शति ॥४८॥  
 मागीरध्या सुदृढिश्च सावरोधैर्बलैः सह । इति मन्त्राव्य मकन्दा जनान् माकेतवामिनः ॥४९॥  
 ते दूता राजमवने लक्ष्मणं न पुनर्ययुः । मन्त्राव्य ते जनाश्चाग गमोद्योग न्यवेदयन् ॥५०॥  
 समाया लक्ष्मणश्चापि समहृयन् जनैः पान् । तप्तकानिष्टिकाकागन्दुष्कमसु नैष्टिकान् ॥५१॥  
 लोहकभांश्चर्मकारान् मिलिकमार्दिनैष्टिकान् । कणविकयकनैश्च काहनिर्जावकाणिः ॥५२॥  
 वानोष्टुष्टिदग्धाश्च मर्दिपैर्जलवर्दिनः । नानाकर्मसु निष्णाना रजमुकुटालधारिणः ॥५३॥

उक्त होते तद्वर जानेका पर मनच इच्छा है । लक्ष्मण इय इच्छावा सुनकर रामन 'तुम अच्छा' ऐसा कहा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तदनंतर जानकीको बहुतक भीतर भेज तथा द्वागालुको बुलाकर गमने कहा—तुम मेरी आज्ञाने अभी लक्ष्मणके पास जाकर मेरा आदेश उनसे कह दो, जन्मे कहना कि बल प्रात काल माताको इच्छामे तुम्हारे, मानका, मन्त्रियों, सेनाका, भरत शापन, पुत्रवर्गी जना तथा आश्वर्क साथ मरुगुके संगम-पर गङ्गावाका पूजन कानके लिए सूय मायमे मेरा जाना निश्चित हुआ है । इस लिये मन्त्रमे दो दो कागज भले अस्त्र परिपूर्ण निगिर तैयार कराओ, रामके इस वचनको सुनकर वह दूत बहुत अच्छा, जो आज्ञा कह तदा रामकी बारम्बार ममस्कार करते वहीसे सोच चल पड़ा, लक्ष्मणके पास जाकर उनसे विस्तारसे रामकी आज्ञा सुना दो । ३८-४९ ॥ बुवरज्यपदपर स्थित तथा मन्त्रियों, साथ सशस्त्रे विराजमान रुक्मणने जब रामके आदेशको दूतके मुखसे सुना तो उससे कह— ४० ॥ तुम जाकर श्री रामसे कहा कि आपकी आज्ञाक अनुसार सब कार्य ठीक हो जायगा । दूतने जाकर सीधे ही रामको यह सन्देश सुना दिया । ४१ ॥ तब लक्ष्मणने सोनेके दण्ड धारण करनेवाले रत्न-विरेणो वगैरी विरपर दाँधे तथा सुन्दर पायाक पहिने हुए बहुतसे विवाहियोंको बुलाकर उन्हें यह आज्ञा दी— ४२ ॥ तुमलाग सीधे नगरभरम घूमकर सब नगरवासियोंको रामचन्द्रजीके कल बाजाके लिए प्रस्थान कानेका समाचार सुना आओ । ४३ ॥ तेषामनु कहकर वह दूत नगरकी सड़कोपर घूमघूम तथा हाथ उठा उठाकर ऊँच स्वरसे सब लोगोंको सुनाने लग— ४४ ॥ 'हे नगरवासीयो ! छान देकर सुनो राम और सीता कल अन्तःपु वरिणी श्रिया, संग-सर्वविषयो और सेनाको साथ लेकर मरुगुनदोंके संगमपर गङ्गाका पूजन करन्व लिए जादो आओध्यावामी लोगोंको यह समाचार सुनाकर वे पुन लक्ष्मणजीके पास जायये और बोल कि हमनेव नगरके सब लोगोंको रामजीकी याचका समाचार सुना आये । ४५-५० ॥ तदनन्तर लक्ष्मणने नौकरोंके द्वारा एकजण बढ़ाई हुई पाषाणवाल कुम्हार, लक्ष्मणके काममे कुल ल संगतराम ॥ ५१ ॥ लोहार, चमार, भौत-मकान कादि बनानेमे बहुत राजगीर, सीधा बेचने तथा सरोदनेवाले बनिये, लकड़हारे, कपड़ेके धेरा-समूके



एतानाहापयामास तोषणाद् भानादिभिः । समानितान्म र्गभिर्वि कृत्यामास मादम् ॥५४॥  
समुद्योग सध्वस्य सोतायाः श्वो ध्वः सह । श्वदुर्मागो विधानव्यः समः कर्कशजिनः ॥५५॥  
निम्ना भूमिः समा काया उवा भूमिः समानपि च । छिद्यतां पात्रेना वृथा मागम्या दुःखदायकाः ॥५६॥  
वाप्यः कृषास्तडागाश्च गोधनाया सहस्रशः । नवीनाश्चापि कृतव्याः सतोया निर्जले वने ॥५७॥  
सेनानिवेशस्थानानि याजनादे मविस्तरे । कल्पनं पानि पु माभिः पूरितान्पमवारिभिः ॥५८॥  
सुख्यो गम्या विधानव्याः पाकशाला माभलयः । चर्मगृहाणि कायाणि तूर्णश्चापि सहस्रशः ॥५९॥  
आरक्तसुपर्णगच्छादितानि चित्रितानि हि । नानागृहाणि कायणि पूरितान्पमवारिभिः ॥६०॥  
पुष्पाणां वाटिकाः कायाः शतशोऽप्य सहस्रशः । मार्गं मार्गं कौतुकायं निर्गो विव्राण्यनेकशः ॥६१॥  
नरस्कथगताश्चित्रवाटिकाश्च सहस्रशः । पुष्पाणां वाटिकाश्चरुमृपात्रनिर्दिताः सुभाः ॥६२॥  
मार्गं मार्गं गाधकानां स्थलान्यपि सहस्रशः । समानिशमस्थानेषु हृन्म्यश्चरधवाजिनाम् ॥६३॥  
सहस्रशो विधातव्याः शालाः पुष्पाणादिभिः । सुगन्धचर्दनमार्गाः सेवनीयाः समंततः ॥६४॥  
नेमिरेखाणि वा मार्गं विचित्रधर्मनगृहाः । पुष्पगच्छादनीयास्ते इवः सन्तु समततः ॥६५॥  
मृगभिर्गतचित्रैश्च हृन्मुष्टरधवाजिनः । वस्त्रालङ्कारवप्टाभिः सेवनीयाः सहस्रशः ॥६६॥  
शकटेषु तथोद्गेषु चरणेषु गच्छादेषु । शतव्यं परिधा वणाः शक्यः कर्मुकान्यपि ॥६७॥  
स्थापनीयानि शतशो विधानव्या ध्वजा अपि । चतु र्षपि विधानव्या ध्वजा रामरथेषु हि ॥६८॥  
हनुमत्कविदागण्टजेन वागाकिताः शुभाः । चतु र्षपि रधनीयाः पताकाः स्पन्दनेषु हि ॥६९॥  
हरितश्चेतपातन लक्षणाः पद्मनीमनाः । गजपृष्ठं सध्वार्थं हरिद्वर्गाङ्किताननम् ॥७०॥

निर्माणमें निम्न दर्जों, रंगों तथा जल-दानवाले भिक्षु तथा अग्राज्य नामा कमोंमें कुशल, रस्ती बटने-  
बल्ल और कुन्तल चढ़ानवा आदि प्राति भूतों को मनाम दुलाकर बस्त्र आदिसे नत्कार करके प्रसन्न किया  
और आदि-पूथक उनसे मनाम ॥ ५० ॥ बल्ल राम तथा से एक साथ मोथे तथाके लिए जानेवाले  
हैं। सो तुम लोग उनके सम्पूर्ण सम्पत्ति बँकड़ पत्थर बँकड़कर ताक-सुधरा कर दो ॥ ५१ ॥ रास्तेको जँची-  
नीची जमीन बराबर कर दो। मो. व. इ. म. दायाँ पक्ष तथा वृक्षाको काट डालो ॥ ५२ ॥ रास्तेकी बावड़ी,  
होने तथा तावादीको गच्छ कर दो और निर्जन वन में से कड़ा तालाब खूँ आदि खोद दो ॥ ५३ ॥  
बाधे आधे हो जनपद रैनाक जित भिक्षु, दानाकर अन्न जलस सम्पूर्ण कर दो ॥ ५४ ॥ सुन्दर दवा  
तली काके भोजन लभ और गृह नयाद करे। जगह जगह भक्ष तथा घासके मन्तार लगा दो ॥ ५५ ॥  
पके हुए लाल खण्डास दाये हुए विष विविध चमाम प्रचुरम् चम अन्न मल गोपित करके रखना दो  
॥ ५६ ॥ मयम रवान स्थान पर बरदा तथा हज. ॥ ५७ ॥ नक्षत्र में दानेन्द्र के लिए दीवारोंपर रंग विभिन्न  
विष लोच दो तथा भस्मादिनादिके लिए बच वायव्य पुण्यवाटिका में लगा दो ॥ ५८ ॥ नर पृतलियाँ  
कंधेपर रख हुए कूर्पाय ममम अथवा जमानद. हा हूँ ॥ ५९ ॥ मनाम मनाम स्थान स्थानपर  
सैकड़ों हजाराँ वाटिकाएँ तयार कर दो ॥ ६० ॥ पथ-पथपर मयनाको मयनगालाये रख दो।  
सेनाके हर एक सन्निवर्गस्थानमें दान तथा घासमें पूर्ण अन्नक अन्नगालाय और सुस्तिगालाये तैयार  
कर रखो, बरदान तथा गुण्य आदिके सम्पन्न जल हर राहोंमें छिड़कवा दो तथा भिक्षु-  
विपिन घासीवाले बरदाक लम्बू बनाकर जगह-जगह गाड़ दो और उनपर विविध रंगको पुष्पमाछाएँ  
दांग दो। उनके चारों ओर चानार लगा दो ॥ ६१-६५ ॥ तमाम हाथी धोरे, कँट तथा रथोंको बल्ल  
बल्लकारसे अलंकृत करके तथा घण्टे आदि बाधकर सुनजित कर दो ॥ ६६ ॥ बैलगादियोंमें कँटोपर और रथ  
आदिपर धनुष-बाण, सुहृद, शक्तिधे, तीप अथवा बन्दूकें रख दो ॥ ६७ ॥ रास्तेके चोतखा और दरवाजे  
आदिपर खेज्राएँ गाड़ तथा बाध दो। रामजीके चारों ओर खेज्राएँ बाध दो ॥ ६८ ॥ उन चारों  
स्थानोंपर हनुमान, कोविदार, गहद और नाणक विह्वावाली रताकार होनी चाहिये ॥ ६९ ॥ वे खेज्राएँ हरे,

रुक्मसाणिकयश्चितं सितच्छत्रोपशोभितम्, स्थापनीय महादिव्य मुक्ताहारविराजितम् । ७१॥  
 सीतार्थं करिणीपृष्ठे नीलवर्णं महासनम् । रुक्मनिद्रुमवदूर्यग्नमुक्ताविराजितम् । ७२॥  
 मुक्ताफलहेमसंतनुगुणैराच्छादितं वग्म् । सिद्धं कार्यं महादिव्यं स्वर्णकुम्भविराजितम् । ७३॥  
 पुष्पमालास्तोत्राणि वधनीयानि वै पथि । नृत्यंतु वारवेद्याश्च स्तुतिं कुर्वन्तु वन्दनः । ७४॥  
 द्रव्यैर्वस्त्रैरामरणैः पूजाद्रव्यश्च गौरसः । पार्जनानाविर्धेर्दिव्यं पूर्णाया शोचमाः । ७५॥  
 अन्यथापि मया नोक्तं पद्यघोम्य हि तत्पथि । सिद्धं कार्यं हि योगेन येन तुष्यति राघवः । ७६॥  
 इति सन्दिश्य मेधावी लक्ष्मणः सह भविभिः । माय मन्ध्यादिक कर्तुं जगाम निजमन्दिरम् । ७७॥  
 सौमित्रेराज्ञया तऽपि तथा चकुर्यधोदिताः । सतुष्टान्ते यथायोग्यं राममन्तोपदेतव । ७८॥  
 रामोऽपि सीतया सार्द्धं मन्दिरे रत्ननिर्मिते । मञ्चके पुष्पगव्यायां सांतामालिग्य वै दृढम् । ७९॥  
 रुक्मनेपथ्यमुक्ताभिर्दासीभिश्च मुहुर्मुहुः । श्रीजिनो बालव्यजननिशि मुष्टः सुखं तदा । ८०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाचाकाण्डे दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः । ३ ।



### चतुर्थः सर्गः

( रामका सरयूके दो खण्ड करना )

रामदास उवाच

तत्रः प्रातः समुत्थाय ध्रुत्वा वाद्यध्वनिं तथा । गायनं वदिभिर्भातं सांतया महं राघवः । १॥  
 कृत्वा नित्यविधिं सर्वं दत्त्वा दानानि विस्तरात् । ज्योतिर्विद् समाहूय गोपालाभिधमनमम् । २॥  
 नमस्कृत्याञ्च सपूज्य भूषकं गवयोञ्जयीन् । मे गोपाल महाबुद्धे त्वरे वृत्तेऽहं द्विजानमः । ३॥

पीले, खेत और नीले रंगकी सुन्दर बनी हूँ। गगनचर लोक हाथोंपर हर रंगक मस्तमूलकी महा-विष्णु लगाकर उसपर मुक्तके हार डाल देने चाहिये और सोना तथा माणिक्यसे रचिन बहुभूषण, दिव्य, गरम सुन्दर तथा खेत छत्र भी लगा देना चाहिए । ७० ७१ । ७२ दुमरा हविगन्धा पाठपर माणिक्य दिव्य मृगण, विद्रुम (सूते), वैदूर्यमणि, रत्न मोती तथा गजमुक्ता लगा हुआ हूँ। जरीदार एवं बहुभूषण आम् । विष्टाहर तैयार करो और उसके होदेपर बहुतसे छोटे छोटे मृगणक काटन ही जगा दो जिससे कि वह अधिक सुन्दर प्रतीत होन लगे ॥ ७२ ७३ । रास्तेमें फूलोंकी मालाएं और तोरण बांध दो । श्रद्धासे नाचन तथा वदामण स्तुतिपाठ करने लग जायें ॥ ७४ ॥ बहुतसे रथाम चर, अभूषण सुध दहा, पूजाके द्रव्य तथा अच्छे अच्छे वस्त्रन आदि सर लिये जायें ७५ ॥ जो कुछ दिने र कहा हो, गो भी सब जरूरी सुविधाएं सुलभ रहना चाहिये । जिन्हें देखकर रामचन्द्रजी प्रसन्न हो जायें ७६ बुद्धिमान् लक्षण रंग आता देकर सायंकालीन नन्द्या-वन्दन करनेक लि' मंत्रियोंक साथ मनामवनसे बाहर आकर अपने मङ्गलमें भले सधें ॥ ७७ । लक्ष्मणकी आज्ञाके अनुरार कार्यागर लोगोंन प्रसन्नतासे रामदाके गृहक लिये पश्चायोग्य सब सामान ठीक कर दिया । ७८ । उपर रामचन्द्रजी भी अपने रत्ननिर्मित भवनमें कुलोका अवस्थापर सीताजीको दृढ़ आलिंगन करके राधिकी मुखपूर्वक सोये । सोतेकी जरीदार साड़ियाको पहिन दार्भिय बार बार उनपर बालव्यजन ( पंखा ) डुलाने लगीं ॥ ७९ ८० । इति श्रीमदानन्दरामायणे वाचाकाण्डे माषाटोकायां दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः । ३ ॥

रामदास बोले—प्रातः कालके समय वन्दियके गायन और वाजोंके मधुर शब्दको सुनकर सीतामहिन् राम जाने । १ ॥ तब नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उन्होंने अनेक तरहके दान दिये और गोपाल नामके ज्योति-सीको बुलवाकर रामने नमस्कार तथा पूजा करके कहा—हैं ब्रह्मगानं श्रेष्ठ और महाबुद्धिमान् गोपाल महाराज ।

यात्रार्थं जाह्नवीतीरं गन्तुमिच्छामि शीघ्रतः । अतो बृहतीं दानव्य मय्यभ्युदयाविधिर्य च ॥४॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा गोपालः प्रह गाययम् । पञ्चाङ्गपटु विचार्य नम दृष्ट्वा बलावलम् ॥५॥  
 गम्य शर्जिष्यपञ्चक्ष मूर्ध्निस्त्वय्य वतने । स्वयमेव महाङ्घ्रिपुः पुण्यनक्षत्रमण्डितः ॥६॥  
 तस्य वक्ष्ये फलं गङ्गान् मायधानमना मृण । भृष्यन्तु पुनयः सर्व मृणोतु ते गुरुमहान् ॥७॥  
 न योगयोगं न च लग्नलग्नं न चास्काचद्रवल गुरोश्च ।

योगिन्य गङ्गान् तद्वर काले सर्वानि कार्याणि करानि पुण्यः ॥८॥

अप्यञ्जाम मुनस्यै प्रस्थानं कुरु शीघ्रतः । दत्तो मया बृहतीं दानव्य यात्रार्थं श्रुनायक ॥९॥  
 इति तस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मण गायकोऽब्रवीत् । सर्गमृदगण्यकाङ्क्षाऽऽनकमोमृतैः ॥१०॥  
 तालघर्षदृढभिर्भ्रमैश्च नवभिर्महान् । सेनायाः सूचनायै हि कर्तव्यः प्रथमो ज्वनिः ॥११॥  
 नर्थेन गमयन्नाद्दुर्लभांश्चपयनदा । नवराष्ट्रध्वनिं तेऽपि चक्रमञ्जलसुध्वरम् ॥१२॥  
 ततो गमो द्विजयुक्तो वामपटेन पुण्यधरा । धृतेन प्रचुर आह मणेशादीन् प्रहृष्य च ॥१३॥  
 चकार प्रोक्तविधाना रमिष्ट प्राह वै ततः । अग्निहोत्राणि मेऽद्यैव स्थापितानि तु पुष्पके ॥१४॥  
 नेतुमर्हमि मे मानुर्वभूभिः पुण्याभिनः । विमानं कर्णिवद्धा पुष्पमालागतिशोभिता ॥१५॥  
 मोतांगम्यर्शनां मार्गं मां स्पर्शतु गजैरिध्वजम् । ततः पप्रच्छ वैदेही केन यानेन मेधिलि ॥१६॥  
 गमिष्यसि वद त्व मां तदवाप्तापराध्यहम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा माता ध्यात्वा क्षण हृदि ॥१७॥  
 मा प्राह भृष्टिना गम्य कर्णिया गमनं यम । गेचने यदि नै चिते तर्ह्यस्तु श्रुनायक ॥१८॥  
 नक्षत्रा वचनं श्रुत्वा यानमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । सीतार्थं दिव्यवस्त्राणि ददा मानुस्तथैव च ॥१९॥

ये आपसे एक प्रश्न पूछता है ॥२॥३॥ आज मे ताध्यायक केसेव लिग संगीतीके तटपर आना चाहता हूँ । अतः  
 तब सूत्र विचारकर कोई अच्छा मूर्त बतलाइए ॥४॥ रामचन्द्रजीका प्रश्न सुनकर गोपाल परिश्रितने पञ्चाङ्ग  
 द्ये तथा प्रहोक्त कलाबलवा विचार करके रामसे कहा— ५ ॥ हे रामचन्द्रलक्ष्मण सपान सुन्दर नवनौकासे राम ।  
 आज प्रथम प्रहरम गणनक्षत्रमे युक्त बहा अच्छा इतर है ॥६॥ उसका फल मे भापसे कहता हूँ । हे  
 गङ्गान् । आप, मत्र भुति लोग तथा आपके गुरु बलिष्ठता भा उमकी ध्यानसे सुने ॥७॥ अच्छे योगसे युक्त  
 न गङ्गापर भा, अच्छे लालमे मेकरन न होनार भा तारा चन्द्रमा और पुष्पक बलसे धूम्य हानपर भी, शुभ  
 योगीकीके अभावम भी तथा बलिष्ठकारी राहूके सशिकट धन्यपर भा बवल एक पुष्प नक्षत्रक रहनेमात्रसे हा  
 यात्राके सब इष्ट कार्य सिद्ध होजा है ॥८॥ हे राम इस समय नक्षत्रम आप सीताक साथ प्रस्थान करे ।  
 हे तपनायक । यात्राक लिए मेरे यह अच्छा मूर्त बतलाया है ॥९॥ उन्हो यह समय सुनकर रामजीने  
 लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण ! मय्य सवाकी सूचना देवक ॥१०॥ भो, यदग, पणव नगाडे कोल सुडहो,  
 प्र मे छेता तथा दुन्दुबा मे ना प्रसारक बाज ओरसे बजाय जाय ॥१०॥११॥ 'अहो अच्छा' कहकर  
 रामकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मणने दूतासे आना दो । उन्होने मधुर रीतिसे नवीं बाजे बजवाये ॥१२॥  
 रामक बाई रामन पक्ष्मण तथा अपने पुनोहित बलिष्ठकी साथ कर गणपतिपूजन किया और भीसे  
 परिश्रित आहू करके बलिष्ठकीमे कहा कि मेरा बहाक लाइस न्यापित का है अनियोजी, माताआकी तथा  
 बहू लि पुत्रविधाकी निमानपर चढ़ाकर भा चल । राम लाश्रम अनिष्टय सुशोभित तथा मोतासे  
 छेताके गजयव सवार रूपकी मार्गम पिक । आतु गङ्गान् लानत पूजा—हे मेधिलि । तूम किस स्वारीपर  
 चलाता है जो पवनद हो, उस सवाक लिए न आज्ञा द है । रामजीके इस वाक्यकी सुनकर सीताजीने  
 हृदयमे मन्म विचार किया ॥१३-१७॥ फिर प्रसन्न होकर रामसे कहा—हे तपनायक ! यदि आप कहें तो  
 मैं इच्छा हृदयनापर चलमेकी है ॥१८॥ सीताजी इस हृदयकी आज्ञाकर रामजीने लक्ष्मणकी सीताके  
 साथ रीतिसे ज्वार बजवायेकी आज्ञा दी । तथान् गङ्गा सीताकी तथा अपनी माताआकी पहिजनके लिए

तथा दत्त्वा बंधुपत्न्यादेव्या च पित्रोः त्रिसह । ततो दत्त्वा बन्धुपुत्रं च विप्रान्दत्त्वा ततः परम् ॥२०॥  
 दत्त्वा चत्वारि बंधुव्यः स्वयं नग्राह समनः । तत्पुत्रा शम्भुपुत्रेणैकानि स्वयित्वा विदेहजाम् ॥२१॥  
 नत्वा मानुषैरुवाच सारिभिः परितोषितः । आरुह्य विधिका रामः सभां प्रति समाप्यते ॥२२॥  
 ततः सिंहासने तिष्ठन्वा लक्ष्मण पाह गच्छः । द्वितीयं मन्त्रनायं द्विजप्रायश्चित्तिः पुनः ॥२३॥  
 आज्ञापनायः स मित्रं तन्मन्त्रा गच्छति तम् । आज्ञा प्रमत्तं निन्दन्त्या गताः पश्यन्स्वनिमृत्तमाम् ॥२४॥  
 कर्तुं दत्तं तन्त्रेणैव बन्धुपुत्रं मेघपथा गतः । ततः प्राउ स्फुटतः पुनः सावित्रिमादगन् ॥२५॥  
 सुमन्त्रः स्थाप्यतां पुर्याः लक्ष्मणं ममाक्षयम् । मन्त्रनायं न भगता पश्चादागतुं श्रुता ॥२६॥  
 मन्त्रपुष्टे स्वं समागच्छ ततः सतापुत्रं चतुः । तस्यापुष्टे च न्याप्यन्तं सुमित्रा मानुषच्छतु ॥२७॥  
 मन्त्रपुष्टे पादवी रम्या दर्शिता भगवत्य मा । अनुगच्छतु तन्त्रदे अतर्कान्यनुगच्छतु ॥२८॥  
 शत्रुघ्नस्य प्रिया भार्या विमानः पुर्यां गतः । मानुषिस्ताः समयां तु पश्यत्यः कर्तुं कं मुदा ॥२९॥  
 सताप्याः कर्त्तव्याश्च स्थापयित्वा सगार्त्तित्वम् । आरुह्य स्वया शत्रु ततोऽह गजमाधये ॥३०॥  
 तथेति रामवचनान्ध्या ताः करिष्ये मः । भगवतां चार्त्तं गम्य समागच्छन्त्यगन्विनः ॥३१॥  
 सभागत लक्ष्मण त दृष्ट्वा रामो घटामताः । सुमन्त्राय दत्तां वस्त्रं तदर्थांतां पुर्यां न्यधानु ॥३२॥  
 ततो मूर्त्तगमये धृत्वा लक्ष्मणमन्त्रकम् । सिंहासनास्मदुपस्थे महानागान्तिकं गयो ॥३३॥  
 गजं प्रदर्शय कृत्वा मोषनेन स गच्छतः । गजदन्ताद्वेनास्त्रोह नागं सुसु शनैः ॥३४॥  
 तदा दृष्ट्वा निधोपाम् नयवायस्यगन् यगन् । वादयामासुर्गोमोगान् गजदन्ताः सहस्रशः ॥३५॥  
 बभूवुर्गजदन्ताश्च नम्रुर्बभूवुर्गोपिनः । वादयन्ति स्म वाणानि गजवाजिरथापि ॥३६॥  
 जयशब्दान् वेदपोषान् द्विजाश्च कर्महास्वनेः । केऽपि पिच्छोद्भूय चित्रं गजदण्डविगानितम् ॥३७॥

दिव्य वस्त्र दिये ॥२९॥ अतः भाज्याका, उनका शिराको और गुह्यगताको मन्दर वस्त्र दिये । उनके बाद पुष्प-  
 रगिपुत्रो, अथवा वादयणको तथा अतः चतुर्जाको नये कण्डे देकर स्वयं रामने भी नूतन वस्त्र पहना । अनेक  
 प्रकारके शस्त्र भी बांध लिये और सीनाको बाँधवा करनक लिये देहा ॥ २० ॥ २१ ॥ तदनन्तर रामजी गुह  
 नया मानाओंको लभकर २२ ॥ तदा मन्त्रियपथो साधुः पालकीपर सवार होकर सभाभवन ( कचहती )  
 गये ॥ २२ ॥ वही सिंहासनपर आरुह्य होकर रामने लक्ष्मणसे कह कि दूमरा दूधना देनेके लिए पुन भी  
 रकारके राजे वज्रानवा आता दे दो । लक्ष्मणने 'जो आज्ञा बन्धुपुत्रोंको उत्तम रीतिसे बाजे बजवानेकी  
 आज्ञा की । आदेश पाते ही तब दूतोंने मेघपथानके समान वाज्याका निनाद किया । इसके उपरान्त रामने  
 पक्षः लक्ष्मणसे कहा—॥२३-२५॥ हे भाई ! मेरी आज्ञाके अनुसार तब वही नगरकी रक्षा करनेके लिए  
 सुभवका छोड दो । आदेश भन्त और उनके पाछे शत्रुग्न चले तथा मेरे पीछे सुम चलो । तुम्हारे पीछे तोला  
 और सानाक पाउ तुम्हारा भी उमित्रा २६ ॥ २७ ॥ उनके पीछे भरतया प्राणप्रिया सुन्दरी मांढवी  
 और मारकाक पाछे शत्रुघ्नक प्रिया भार्या धनकीर्ति वन् ॥ २८ ॥ नगरकी शिराके साथ मातां विमान-  
 पर सवार होकर आनन्दसे समागह देवता हुई आये २९ ॥ तूम जाकर सीता आदि सब दियोको हवि-  
 नियोपर चढा आओ । तबक बाद मैं गजवर सवार होऊँगा ॥ ३० ॥ तो सुनकर लक्ष्मण कुरन्त चल दिये और तब  
 सबकी हविनिधोपर सब र करारकर जा धु ही रामके पास लोट आये ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणके मा जानेपर यस्तिमाव  
 रामने नन्वा समन्त्रकी विह्वस्वरूप वस्त्र दिय तथा आका के लिये नगर जीप दिया ॥ ३२ ॥ उसके बाद शुभ  
 मुहूर्तमें लक्ष्मणके मन्दर हाथको पकडकर र म सिंहासनम उठ और उत्तम हाथीक पास गये ॥ ३३ ॥ हाथीकी  
 प्रदक्षिणा करनेके राम गजदन्तकी रानी हुई सीटापर पांच रखकर सुसुपूर्वक धारसे उसपर सवार हो गये  
 ॥ ३४ ॥ उस समय हजारों राजसेवक सुन्दर एवं मशहोर शब्द करनेवाले हुन्दुषि आदि नवविध वाद्योंको बजाने  
 लगे ॥ ३५ ॥ वहीपर अनेक प्रकारके शब्द होने लगे, वेदवाणें नाचने लगा और हाथी तथा घोड़ोपर नाना  
 प्रकारके राजे बजये जाने लगे ॥ ३६ ॥ विप्रलोक उल्लेख से जयजयकार और वेदध्वनि करने लगे । एक

चापरं वीजयामास विजयः पार्श्वमस्थितः । अन्यस्तु बालम्वजनं वीजयामास पृष्ठतः ॥ ३८ ॥  
 कलत्रैः श्वत्साहमर्ककाहारैस्तु शोभितम् । रत्नदण्डं सुविस्मृणं शयमन्यो दधत् तत् ॥ ३९ ॥  
 तापुष्टं गजमारुह्य लक्ष्मणः शीघ्रमापयी । सीतायास्ताः समाजग्मुः सान्निभिराजपुत्रैः ॥ ४० ॥  
 परस्यत्यः कौतुकान्मेव जलरर्घः समंततः । पुष्पकं चापि गगनमार्गेष्वत्र शूनैः शूनैः ॥ ४१ ॥  
 जगाम संस्थितास्तत्र पुनार्यो रघूत्तमम् । पश्यन्गोऽथ कौतुकानि श्वर्कः पुष्पकदिग्भिः ॥ ४२ ॥  
 ततस्ते तुरगारूढा गजारूढा रथे स्थिताः । नेपिरेस्त्रोपमाः सर्वे स्थिताग्ने रावपार्श्वयोः ॥ ४३ ॥  
 चक्रुः प्रणामान् भ्रूगमं सस्थिता हारश्चक्रुः । रामोऽपि कञ्जदस्ताभ्यां प्रणामानम्यनदयन् ॥ ४४ ॥  
 एव मञ्जुदि राजेन्द्रे रावचक्रे शूनैः पथि । गजोपरि सर्वाणाम्हे नटा गमने प्रचकिरे ॥ ४५ ॥  
 परं पश्यन् स रामोऽपि पुष्पागमदिकौतुकम् । इहान् चित्राणि चैष्यानां नृन्यानि विविधानि च ॥ ४६ ॥  
 सुस्वरागव्यं वाद्यानि शृण्वन् मार्गे शूनैः शूनैः । वेष्टितमुरगिण्या सेनया च समंततः ॥ ४७ ॥  
 प्राप सेनानिशामाव कल्पितां श्रवमुत्तमाम् । अपोष्णामिदं तां दृष्ट्वाऽवतरद्वायवो गजान् ॥ ४८ ॥  
 अश्विनं च प्रणामांश्च पुनर्भारकृणान् ब्रुवुः । लक्ष्मणस्य करं धृत्वा स्वकरेण रमापतिः ॥ ४९ ॥  
 कस्यमेहं संप्रविश्य कस्यो विद्वामने पुनः । सीतायास्ताः स्त्रियः सर्वा विविशुर्वस्त्राणि ॥ ५० ॥  
 ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । साकाशाः क्रोशमात्रेऽथ शतान् पृथक् पृथक् ॥ ५१ ॥  
 पार्श्वेऽस्यां दिशि स्थ मे वचनात्स्थापयस्व भोः । योजनोपरि सार्धमत्र त्वर्हादितु समततः ॥ ५२ ॥  
 नियोजयस्व शतशो बाजिवाहान् ममाश्रया । तयैरपूरया लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वे चकार तः ॥ ५३ ॥  
 सतो रिपैः सुदृष्टिश्च विविधान्निर्मनोरथैः । धृतेन श्राद्धश्रेण भोजनं गणयो व्यधान् ॥ ५४ ॥

और कहा होकर विजय रत्नजड़ित इन्द्रबाल्य तथा मयूरपंखसे निर्मित चपर लेकर रामके ऊपर स्थान  
 लगा पीछेकी ओर दूसरा जयनामक सेवक एका क्षणने लगा ॥ ३८ ॥ सीसरा सेवक मयूरपंखकास  
 मुणोपित, हजारों मुन्नाममामोदे बणित्त लगा रत्नजड़ित रथदेवाला मुनिगाम मत्र तान्कर कहा हो  
 गया ॥ ३९ ॥ उनके पीछे हाथीवर सवार होकर लक्ष्मण भीमतासे चल दिये । लक्ष्मणके हाथोंके पीछे  
 सीता आदि स्त्रियो जादियेमेसे चारी औरके दृष्टोंको देखती हुई चली । पुष्पकविमान भी पीछेपीछे  
 आकाममार्गसे उड़ता हुआ गया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तस्यपर बैठी नगरनिवासिनो स्त्रियें कोनूक देगता हुई  
 रामचन्द्रजीके ऊपर जानन्दने पुष्पवृत्ति करने लगी ॥ ४२ ॥ तदनन्तर बृहस्पवार, गजसवार और रथसवार  
 सैनिक रामके दोनो ओर पलिवट्ट होकर चले हो गये ॥ ४३ ॥ हाथकी तरह कतावट्ट सरे उन संनिधोने  
 रामको प्रणाम किया । रामने भी अपने करकमनोसे उनके प्रणामोको स्वीकार किया । ४४ ॥ जब इस प्रकार  
 श्रीराम इजेन्द्रपर सवार होकर पीर घं रे बने, तब दूसरे गजोंपर बैठे हुए गायकगण अपनी-अपनी बाणा  
 लेकर मयूर गान करने लगे ॥ ४५ ॥ रामचन्द्रजी राक्षस पुष्पक महाबल बागीकर इन्द्र, अनेक तापुष्ट  
 बाबागोंका अवलोकन करने, देवाओंके विविध नृत्योंके देखने, मनको हण करनेवाले बाबाको सुनते,  
 लक्ष्मण कौतुकोको निहारत तथा चारों ओर कतुर्गमणी सेनाके घिरे हुए घोरघोरे सेनानिशामके निर  
 कल्पित उत्सव दिविरमें आ पहुँच । उस स्थानको दूसरी प्रयत्नके समान सुरक्षित देखकर राव हाथोंसे  
 उतर पडे । ४६-४८ ॥ उस समय रथो संनिकाके द्वारा बारम्बार किये हुए प्रणामोको स्वीकार करके अपने  
 हाथसे लक्ष्मणका हाथ पकडकर रमापति राम तापुने गये और वहाँ सिंहासनपर विराजमान हो बये ।  
 सीता आदि स्त्रियें भी अपनी-अपनी गवार्थोसे उतरकर सम्बुजोंमे आ बिराजि ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पश्चात्  
 श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम मेरे आज्ञानुसार सीमाकी सब निगाओंमे एक-एक कोसकी दूरीपर मैकट्टे  
 कियाही बछर आलग सड़े कर दो और बाटो दिशाओंमे एक-एक यजनकी दूरीपर तँकड़ों पुष्पा  
 नियुक्त कर दो । "ओ बाबा" कहकर लक्ष्मणने सब ऐसा ही प्रबंध कर दिया ॥ ५१-५३ ॥ पश्चात् बाह्यणों

तापुर्लक्ष्मिणां दत्त्वा नानाविधं च आदरात् । मुखशुद्धिं स्वयं कृत्वा तस्यां मिहामने पुनः ॥२२॥  
 श्रुत्वा शास्त्रपुराणानि वेदान्तांश्चारी सादरम् । सार्यमध्यादिकं कृत्वा हृत्वा होमं यथाविधि ॥२३॥  
 मिहामने समासीनो वेश्यानां नृत्यगुत्तमम् । पश्यन् शृण्वन् गायन् च नीत्वा यामद्वयां निशाम् ॥२४॥  
 ततः सुप्वाप पर्यङ्गे सीतया सह राघवः । द्वितीयं दिवसे तत्र स्थित्वा रामस्तु कौतुकैः ॥२५॥  
 नीत्वा समग्रं सुदिनं तृतीये दिवसे पुनः । पूर्ववद्वाद्यघोषाद्यैः शनैः स्थानांतरं ययौ ॥२६॥  
 कचिदिनमतिक्रम्य कचिद्द्वे त्रीणि राघवः । स्थित्वा पश्यन्कौतुकानि शृण्वन् जनकात्मजाम् ॥२७॥  
 शनैः शनैर्ययौ मार्गं मासेनैकेन राघवः । प्राप जाणं मुद्रयेन त्यक्तमाश्रममुत्तमम् ॥२८॥  
 राममागतमाश्रय मुद्रलो नूतनाश्रमात् । भार्गीण्या दक्षिणतः प्राप रामान्तिकं तदा ॥२९॥  
 तं दृष्ट्वा राघवश्चापि नत्वा सम्पूज्य सादरम् । रामो गेहे समार्मानं पप्रच्छ चित्तयान्मुनिम् ॥३०॥  
 त्वयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं मुनिमत्तम । तत्त्वं वद महाभाग यथावच्च भविस्त्वम् ॥३१॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्रलो वाक्यमब्रवीत् । अथ धन्योऽस्म्यहं राम निवृण्वन् वनवासिनः ॥३२॥  
 यस्यां पश्यामि नैवार्म्यां चिरकालेन रागव । भग्नप्राणरक्षार्थं यदा नीता ममाश्रमात् ॥३३॥  
 दिव्यौषध्यस्तदा जातं पूर्वं ते दृष्ट्वेन मम । यथाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं तद्वर्तमानं ते ॥३४॥  
 माम्निच्य मात्र गङ्गायाः परम्वा जपे नात्र वै । इति भवा यथा त्यक्तमाश्रमोऽयं महत्तमः ॥३५॥  
 अत्र सिद्धिं गताः पूर्वं शतशोऽथ सहस्रशः । मुनीश्वरा यथाप्यथ तपस्तपः कियद्दिनम् ॥३६॥  
 इति राम समाख्यातमाश्रमस्य च मोचने । कारणं च त्वया पृष्टं किमग्रं श्रोतुमिच्छामि ॥३७॥

तथा शिवके साथ बैठकर रामने चलमिश्रित माता प्रकाशक आदेशों पर पकवानों का भोजन किया । २४ ॥  
 सादरसे साह्यणों को तान्त्रिक तथा अनेक प्रकारकी शिक्षणाय देकर रामने मुखशुद्धि के लिए ताबूल साया  
 और पुन मिहामनपर आ विराज । २५ ॥ तदनन्तर वेदान्त आदि सत् शास्त्रों तथा पुराणों को कथाको  
 प्रेम और श्रद्धासे शान्तिपूर्वक सुना । सार्यकाळ होमेपर पुन यथाविधि संध्यावदन तथा हवन  
 आदिस निवृत्त होकर मिहामनपर आ सुशाभित हुए । वहाँ रात्रिके दो पहर तक वेश्याओं का नृत्यगान  
 देखन सुनन रहे ॥ २६ ॥ २७ ॥ तदनन्तर राम सीताके साथ चलंगपर शान्त करनको चले पय दूसरा  
 भी सारा दिन रामने आनन्दसे वही शृण्वर विराणा तीसरा दिन आनन्द कावगाजेक साथ धीरे धीरे  
 दूसरे पदावली और वड ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसी प्रकार कहीं एक दिन, कहीं दो और कहीं तीन दिन तक निवास  
 करन हुए राम जानकों को प्रमत्त करने तथा विविध कौतुकों को देखते रहे ॥ ३० ॥ इस प्रकार एक मास  
 यात जानपर वे मुद्रल आपिके छोड़ हुए एक पुराने तथा पवित्र आश्रममें आ पहुच ॥ ३१ ॥ रामको अपने  
 पुरान आश्रमपर आये सुनकर मुद्रलकाय भार्गीणों के दर्शन तदपर स्थित अपने नवगत आश्रमसे दर्शन  
 करनके लिए उनके पास आये ॥ ३२ ॥ राघवने उन्हें दम्बर नमस्कार किया और उनकी विचित्र पुरा को ।  
 पञ्चान तान्त्रिक देकर आदर्शपूर्वक आसनपर बैठाया और उनसे सप्रस्तापूर्वक कहा— ॥ ३३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !  
 आपने इस आश्रमको क्यों छोड़ दिया / हे महाभाग इसका कारण विस्तारसे आप हमें कह सुन दय  
 ॥ ३४ ॥ यह सुनकर मुद्रलमुनि कहन लगे—हे राम ! मेरा घन्य धाम्य है कि जो मैं आज बहुत दिना बाद  
 वनवाससे लौट हुए आपको अपनी आँखों देख रहा हूँ । पूर्वकालमें मरतके प्राणोंको रक्षा करनेके लिए जब  
 आप मेरे आश्रममें दिव्य औषधि ले गये थे, तब मुझे आपका दर्शन मिला था । अब मैंने इस आश्रमको  
 क्यों छोड़ दिया, इसका कारण आपसे कहता हूँ । ३५-३६ ॥ हे प्रभो ! मैंने इस विशाल आश्रमका केवल  
 इतिहास छोड़ दिया है कि यहाँपर रंगा भग्ना सरयु इन दोनों पवित्र नदियोंमें कोई भी नदी नहीं  
 है ॥ ३७ ॥ इस आश्रममें निवास करके हजारों मुनीश्वरोंने सिद्धि प्राप्त की है और मैंने भी कुछ दिनों  
 तक यहाँ रहकर तपस्या की है । परन्तु क्या करें, किसी तीर्थके न होनेसे इस स्थानपर बड़ा  
 कह है ॥ ३८ ॥ हे राम ! यह तो मैंने आपके पूछनेके अनुसार इस आश्रमको छोड़नेका कारण कह

तन्मुनेर्बचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः । किं कृत्वा तेऽत्र वसतिर्भविष्यति मुने वद ॥७१॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह मुद्रलः यद्यत्र मग्गुनद्याः संगमो हि भविष्यति ॥७२॥  
 जाह्नव्या मय्येह चार्धं बन्धये राम यथाशुभम् नक्तस्य वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः ॥७३॥  
 किमर्थं मग्गुः श्रेष्ठा कुनः प्राप्ता भगवन्तम् तत्रं वद महाभाग भविस्तारं मयाग्रतः ॥७४॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्रलो वाक्यमब्रवीत् । तत्रैव शग्निं राम मन्मुखान्छ्वीनुमिच्छामि ॥७५॥  
 तर्हि ते सप्तवक्ष्यामि नृच्छृणुष्व रघूनमः । शंखासुरो बहान्दन्वो वेदान् पूर्वं जहार हि ॥७६॥  
 क्षिप्त्वा तंश्च समुद्रे हि स्वयमार्मान्महोदधौ । तदर्थं च त्वया मानस्यं वधुर्नृन्वा महत्तमम् ॥७७॥  
 इतः शंखासुरो वेदास्त्वया दत्तास्तु वेधसे । ततो हर्षेण महता पूर्वरूपं त्वया धृतम् ॥७८॥  
 तदा हर्षेण नेत्राचं पतिताश्चाश्रुमिदवः । हिमालये ततो जाता नदी पुण्या मुहोदका ॥७९॥  
 साक्षान्नारायणस्यैव आनन्दाश्रममुद्भवा । धर्मेर्बिन्दुमरः प्राप तस्मान्च मानसं ययौ ॥८०॥  
 एतस्मिन्नन्तरे राम पूर्वजन्मे महत्तमः । वैवस्वतो मनुर्धृष्टमुक्तो गुरुमब्रवीत् ॥८१॥  
 अनादिमिदाऽप्योध्येय विशेषेणापि वै मया रचिता निजदासाधमत्र यज्ञं करोम्याहम् ॥८२॥  
 यदि ते रोचते चित्ते तच्छ्रुत्वा गुरुर्ब्रवीत् । अत्र तीर्थं वरं नास्ति नास्ति श्रेष्ठं महानदी ॥८३॥  
 यद्यत्रैवास्ति ते चित्तं यष्टुं नृपतिमत्तम । आनयस्व नदीं रम्यां मानसान्पातकाह्वयम् ॥८४॥  
 तद्गुरोर्वचनद्विजा मनुर्वैवस्वतो महान् । टण्ठकृत्य महच्छापं सन्दधे शरमुत्तमम् ॥८५॥  
 स शरो मानसं क्षिप्त्वा तस्माद्विष्कास्य तां नदीम् । अयोध्यामानयामाव वधानं दर्शयन्निव ॥८६॥  
 शम्भानानुसारेणायोध्यायां प्राप वै नदीं मुहोदधीं पूर्वदशं मिलिता रघुनन्दन ॥८७॥

मुनाया । आगे क्या पलना है, मा कहिये ॥ ७० ॥ मुनिक इस बातपर स्तब्ध होकर रामने कहा—हे मुने आप  
 यह बताइये कि क्या करनेसे आप फिर इस आश्रममें निवास कर सकत हैं ? ॥ ७१ ॥ रामके प्रेमपूर्ण वचनको  
 मुनकर मुद्रल क्रपित कहा—यदि वहाँपर सरयू और गंगाका संगम हो जाय तो मैं बड़े सुखसे रह सकता हूँ ।  
 इस बातको मुनकर रामने पुनः उनसे पूछ लिया— ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे महाभाग ! सरयू नदीका इनका भोग  
 माह्वान्त्य क्यों है और यह कहाँसे भगवन्तर आयी है ? इन बातोंका निस्तारसे वर्णन करिए ॥ ७४ ॥ मुद्रल  
 कहा—हे प्रभो ! अब अपना ही चरित्र यदि मेरे मुखसे सुनना चाहते हैं ॥ ७५ ॥ तो हे रघूनम ! मैं  
 आपको सुनाता हूँ, मुनि पतिव्रत कथा शंखासुर नामका एक बड़ा धारो राक्षस हुआ था । वह सब वेदोंको  
 हर से गया ॥ ७६ ॥ उसने उर र जाकर समुद्रमें डूबो दिया तथा स्वयं भी उसी महासागरमें छिप गया  
 उसको मारनेके लिए आपन बड़े भारी मन्त्रक रूप धारण किया ॥ ७७ ॥ और उसको मारकर वेदोंकी रक्षा  
 की । वेदोंको लेकर आपन सदाका दिया और प्रमत्ततापूर्वक पुनः अपना पूर्वरूप धारण कर लिया ॥ ७८ ॥  
 उस समय आपके भेषोक्त मानसाश्रुकी बंद टपन पड़ी । हिमालयपर गिरी हुई आप नारायणके उग्र हर्षाश्रुको  
 बूँदोंने एक पवित्र तथा निर्मल जलखला नदीका रूप धारण कर लिया । आगे चलकर वे कासार और  
 कामारसे मानसरोवरके रूपमें परिणत हो गयी ॥ ७९ ॥ ८० ॥ हे राम ! उसी समय आपके पूर्वज महात्मा  
 वैवस्वत मनुने व्रत करनेकी इच्छा करके अपने गुप्तके कहा— ॥ ८१ ॥ इस अयोध्यापुराके अनादिकालमें स्थित  
 रहनेपर भी मैंने अपने निवासके लिए इसकी कुछ विधेयतापूर्वक रचना करवायी है । इस कारण यदि आप  
 कहें तो मैं इस नगरीमें यज्ञ करूँ । तब गुहने कहा कि इच्छिए, मैं तो यहाँ कोई पवित्र तीर्थ है और मैं कोई  
 बड़ी नदी ही हूँ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इसलिये यदि आपकी यही व्रत करनेकी इच्छा हो तो हे नृपतियोर्मि श्रेष्ठ नृप !  
 मानसरोवरसे सुन्दर तथा पार्यकी नष्ट करनेवाली एक नदीको यहाँ से जाइए ॥ ८४ ॥ गुहने इस वचनको सुन-  
 कर महान् राजा वैवस्वत मनुन अपने विशाल धनुषका चढ़ा तथा टंकोर करके बाण चलाया ॥ ८५ ॥ वह बाण  
 मानसरोवरको घेदकर उसमेंसे निकलती नदीके आगेआगे चलकर रास्ता बिलाने हुए अयोध्या से जाया ।  
 बाणके मार्गका अनुसरण करती हुई वह नदी अयोध्या आयी तथा वहसि आगे जाकर पूर्वी महा-

आनीता सा शरैर्भव शरयुश्चेति कथ्यते । सरावगन्तमुद्गता सरयुश्चेति केचन ॥८८॥  
 नतो मर्गाग्धेदेयं कथितक्रोधवद्विना । विनिर्दग्धान् पूर्वजान् वै सागरान् प्रेषितुं दिवम् ॥८९॥  
 भार्याग्धो समानीता स्वल्पाद्राज्यममुद्गता । तपसा सकृत् तोष्य सरयुः मिलिताऽथ सा ॥९०॥  
 वरदानाच्छ्रुत्वा जभोगेष्वा स्पर्शानि गविष्यति । अग्रे सागरपर्यगमेनां गङ्गां वदति हि ॥९१॥  
 तत्र पारसमुद्गता सा विष पाति जाह्नवी । इयं तु नेत्रमभूता किमद्याग्रे वदाम्यहम् ॥९२॥  
 कार्त्तिकर्पमहम्भ्रं कोटिवर्षश्चतुर्गोप । महिमा सरयुनद्याः कोऽपि वक्तुं न वै श्रमः ॥९३॥  
 इति राम सवालुपान यथा पृष्टं त्वया मम । मुनेभ्यश्चनं धृत्वा लक्ष्मण ग्राहू राघवः ॥९४॥  
 सरयुमानयस्वात्र श्वरं मुक्त्वा ममाहृषा । तथेति रामवचनाद्भूत्वा चाप स लक्ष्मणः ॥९५॥  
 श्वरं मुक्त्वा तटं विष्वा सरयुमानयन्धृणात् । सरयु मा दिशा भूत्वा मुद्गताध्रममाययौ ॥९६॥  
 जाह्नव्या मिलिता सापि तां दृष्ट्वा राघवोऽब्रवीत् । अत्र स्थित्वा लक्ष्मणेन दारितेयं महानदी ॥९७॥  
 अनो दद्रीनि नाम्नाऽत्र त्वगि स्पर्शानिमेष्यति । दद्रीयं जगतीमप्ये वदर्याध यवाधिका ॥९८॥  
 भविष्यति न संदेह्यन्त रायाद्विभेदः । ननः सीतां समाहूय राघवो वाक्पमब्रवीत् ॥९९॥  
 मुद्गलस्याध्रमेऽत्रैव मा वीता सरयुर्नदी । पश्य मौषिषिणा मुक्त्वा श्वरं मन्नामचिह्नितम् ॥१००॥  
 नार्गभिर्मातृभिः सीते पुष्पकेणानिभाक्षणा । वृद्धा मा सरयुर्वत्र संगताऽस्ति महानदी ॥१०१॥  
 जाह्नव्या मगधे स्वं हि गच्छस्व गुरुणा द्वित्रैः । पुनरित्वा सविस्मरं यथोक्तं वचनं पुरा ॥१०२॥  
 आगच्छस्व ततः शीघ्रमत्र त्वं मम मन्निधौ । विशेषान्मुद्गलस्याधि मन्निधावष्ट वै पुनः ॥१०३॥  
 नर्गानसरयुनद्या भार्याध्यास्तु मगधे । पूजनं च मया साकं कर्तुमर्हसि मैथिलि ॥१०४॥

सागरस मिल गयी ॥८८॥८९॥ शरके द्वारा स्पर्श आनम लोग उसको सरयु नदी कहने लगे । जबवा सरोवरसे निकलकर आनेक कारण उसका 'सरयु' नाम पड़ा, कुछ लागाका ऐसा कथन है ॥८८॥ उसके बाद राजा भगवत् पाकिष्ठ मुनिका कोषागिनय जलाये तप जबत पूनज सागर गुप्तोका स्वर्ग भेजनेकी इच्छासे आपके चरणारविन्दसे प्रादुर्भूत मासीरयी गंगाको ले आय । बादम शकरजीको तपसे प्रसन्न करके उस नदीको सरयुसे ला मिलवाया । ८९ ॥९०॥ शकरभगवान् के वरदानस गंगाको बड़ी भारी प्रसिद्धि हुई तथा समुद्र तक उसको लाय गया कहने लगे ॥९१॥ हे प्रधा आपके चरणकमलोंसे निकला हुई गया समस्त विष्वको पवित्र करने लगी । वैसे ही आपके वज्रजलसे उत्पन्न होकर यह सरयु भी लोगोंको पावन करने लगी । हे भगवन् ! अब मैं आगे क्या कहूँ ? ॥९२॥ कराड़ी वशीम भी इस सरयु नदीकी महिमाका वचन कोई नहीं कर सकता ॥९३॥ हे राम ! आपन अं पूछा था, सीतैन कह सुनया । मुनिके इस वाक्यको सुनकर रघुर्नसि राघवन्दजीने स्तम्भसे कहा— ॥९४॥ सुम बाण छोड़ तथा सरयुके तटका भेदन करके उसे यहाँ ले जाओ । लक्ष्मणने वंसा हो किया और वह सरयु दो भावोंम विभक्त होकर सागरमें मुद्गलकृष्णिक प्राचीन आश्रममें जा पड़्या ॥९५॥९६॥ उसको अकेली ही नहीं, किन्तु जाह्नवीके सबम सहित आयी हुई होकर राघवने कहा कि लक्ष्मण दारण (चौर) करके इस नदीको यहाँ ले आवे है ॥९७॥ इस लिए इस अगहपर दही नामकी प्रसिद्ध नगरी बसगी । वह दही नगरी पृथ्वीतलम बदरीनाथ नामने श्री जीधर बढ़कर पुनोत होगी ॥९८॥ इसमें संदेह नहीं है । विशेष करके आपके यहाँ निवास करनेसे इसकी और भी अधिक शक्ति होगी । पश्यन् रामने सीताको बुलाकर कहा— ॥९९॥ सीत ! देखो, सुमियापुत्र लक्ष्मण लेने नामसे चिह्नित बाण छोड़कर सरयु नदीको यहाँ मुद्गल मुनिक आश्रममें ले आय है ॥१००॥ अब सुम हमारी माताओं, अन्य स्त्रियों, मुद्गलों तथा भ्रातृणोंको साथ स तथा इस पुष्पक विमानपर स्वार होकर जहाँ सरयु तथा गंगाका संगम है, वहाँ जाओ और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार विधिवत् उनकी पूजा कर जाओ ॥१०१॥१०२॥ वहाँसे लौटकर सीत ही मेर तथा इन मुद्गल मुनिके सम्मुख इस नवीन सरयु तथा मन्वही सागरीरयीके संगमका



तथेति रामवचनमयीकृत्स्न विदेहजा । पूजार्थंभारवादानु रिवेश वसनगृहम् ॥ १०५ ॥  
इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकण्डे सरयूद्रिषाकरणं नाम चतुर्थं सर्गः ॥ ४ ॥

### पञ्चमः सर्गः

( कुम्भोदरोषारूपान )

श्रीरामदास उवाच

ततो गृह्णन्वा समारात् पूजार्थं जानकीं जवात् । कौसल्यादिश्च भूभिस्तु पुष्पकं चारुगोद सा ॥ १ ॥  
कणेन हृदा सारपूर्वत्र सा गङ्गाया शुभा । सङ्गवाऽस्ति महाभेष्टः तत्र प्राप विदेहजा ॥ २ ॥  
पतिं विनाऽग्नित्वा नारी सीमामुल्लङ्घ्य न व्रजेत् । स दोषोऽत्र न विज्ञेयः सीतायात्रा विदामसा ॥ ३ ॥  
उचीर्ष सा विमानाग्रयान्नमस्कुत्वाऽप्य सङ्गमम् । पुरोभक्ता चोदिता सा नारिकेल सवायमम् ॥ ४ ॥  
यमीरिष्यै समर्प्याश्च स्नात्वा चैव यथाविधि । सगमं पूजयामास चोपस्कारैर्यथाविधि ॥ ५ ॥  
सुगमासोपहारैश्च पक्वान्नेर्बलिमिस्तथा । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्द्रुक्काहारैः सन्वदनैः ॥ ६ ॥  
दिव्यैरभरणैर्मित्रैर्वीर्यनादैः सविस्तरम् । ततः सुवासिनीः पूज्य पूजयित्वा त्वरुभतीम् ॥ ७ ॥  
वसिष्ठं ब्राह्मणांश्चापि भोजयामास विस्तरैः । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्द्रुक्काहारैः ॥ ८ ॥  
सुवासिनीर्ब्राह्मणांश्च तोषयामास मेधितो । स्वयं कृत्वोपहारं न राघवार्थमुपोषिता ॥ ९ ॥  
यया यानेन शीघ्रं सा राघवस्थान्तिकं मुदा । ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि सीतया गुरुणा द्विजैः ॥ १० ॥  
गङ्गायोः सङ्गमे चक्रे पूजनं स यथाविधि । यथा कृतं च विदेहा तस्माच्छापि श्रुताधिकम् ॥ ११ ॥  
ततः सहस्रशो विप्रान् भोजयामास सादरम् । दत्त्वा दानान्पनेकादि गोदस्तिरयवाजिनाम् ॥ १२ ॥  
ततो हृत्कथा स्वयं तमः सीतया बन्धुभिर्जनैः । सिंहासने समासीनो सीमिश्रिमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥

मेर साथ मिलकर पूजन करो ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ तब विदेहराजकी पुत्री सीता "ओ माया" कहकर पूजाकी सामग्रियों केनेको संव्रम गयी ॥ १०५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकण्डे भाषाटीकायां सरयूद्रिषाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासजीने कहा—आपने जानकी पूजका सब सामान लेकर कौसल्या आदि वासुकी तथा अन्य बहुतोंके साथ श्रीमतासे पुष्पक विमानपर आ बेंछें ॥ १ ॥ क्षण भरमें विदेहराजकी पुत्री सीता उस पुराने सङ्गमपर जा पहुँचीं, जहाँपर कि सरयू पवित्र गङ्गा नदासे मिली है ॥ २ ॥ पत्नीकी पतिके बिना जागेकी सीमा नहीं लाधनी चाहिये । यह दोष उहाँ सीताको नहीं कम सकता । क्योंकि सीताका गमन आकाशमार्गसे हुआ था । ३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीता विमानसे नीचे उतरती और सङ्गमका नयस्कार किया । पश्चात् पुरोहितके कथनानुसार सीताने वाहन ( ऐपन ) सहित नारियल भागीरथोंको समर्पण करके उसमें बिभित् स्नान किया । फिर सुरा मांस-पकवान आदिका बलिसे दुपट्टा आदि सुन्दर वस्त्रोंसे, दिव्य आभूषणोंसे, मुक्ताके हारसे, चन्दनसे तथा शायन आदिकी पूजाके उपकरणोंसे विधिवत् तथा विस्तारपूर्वक सीताने संगमका पूजन किया । नदभार परतिपुत्रमसी लोहागिन सिंघोंको पूजा करके सीताने अकम्बलीका पूजन किया ॥ ४—७ ॥ तब उनकी तथा वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणोंको भोजन कराके सुवासिनी सिंघोंको दुपट्टे, बोटियों तथा दिव्य आभूषणोंसे सीताने सजुष्ट किया । स्वयं निराहार रहकर सीताने रामके कल्याणार्थ उपवास किया ॥ ८ ॥ ९ ॥ तब तब विमानपर सवार होकर आनन्दसे सीतापूर्वक रघुनन्दन रामके पास आ गयीं । रामने भी सीताको, गुरु वसिष्ठकी तथा मित्रोंको साथ लेकर सीताजी की हुई पूजासे लोगुने धूम-धाम तथा विधिले गङ्गा-सरयूके सङ्गमको पूरा की ॥ १० ॥ ११ ॥ वहाँ उन्होंने बड़े आचरमसे हजारों मित्रोंको भोजन कराया । अनेक नारिये, हाथी, घोड़े तथा

ज्ञानव्यो मम कामोऽत्र गर्भान्व गृह्यम । ममाचारान् कुरुष्व न्वं श्रामनं यन्मयोच्यते ॥ १४ ॥  
 प्रत्यक्षाणि गृह्यो वा वानप्रस्थाश्रमी यानः । यः कश्चिद्वा ममायानि यधिकः स ममाज्या ॥ १५ ॥  
 मया यपूजितो नैव मनु देवः समन्ततः । मयाऽदृष्टो गतः कश्चिन्दा वः श्रामनं मम ॥ १६ ॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा चक्रे स लक्ष्मणः । च्यवनो मुनिवर्षेभ्यु हान्वा गमं समागतम् ॥ १७ ॥  
 दशनाथे ययौ शीघ्रं गमेणार्पि मुपूजितः । स्थित्वा मम वस्त्रमेहे राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥  
 गम गर्जितपत्राक्ष गङ्गायाः दक्षिणे तटे । आश्रम कीकटे देशे ममास्ति परमः शुभः ॥ १९ ॥  
 कंदमूलफलार्थे हि विघ्नं कुर्वन्ति माताधाः । ममाश्रमे गजदाम्नेभ्यो रक्षा विधीयताम् ॥ २० ॥  
 च्यवनस्य वचः श्रुत्वा टण्डुलस्य महद्भुजः । व्रणं मुक्त्वाऽऽश्रमं तस्य वग्निः ५ गिस्त्रोपमायुः ॥ २१ ॥  
 चकार तैसां वागेन दूष्टैर्गतं च दक्षमाम् । गमत्राणकृता रेखा यत्र तत्र पुरी शुभा ॥ २२ ॥  
 गमरेन्द्रेति नाम्नाऽऽर्साक्षया चैव मता नदी । च्यवनश्च गतो हृष्टो राघव वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥  
 निधः स कीकटो देशो वर्तते गघनदज नव वाक्याद्भविष्यन्ति तत्र पुण्यस्थलानि हि ॥ २४ ॥  
 गहि त्वयाऽथ दक्षव्यं वचनं मे मुवाप्पदम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वाक्यं गमममब्रवीत् ॥ २५ ॥  
 कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या नु पुनपुन । आश्रमस्ते महत्पुण्यः पुण्यं गजवन परम् ॥ २६ ॥  
 नविष्यति न मन्द्रेतो मम वाक्यान्मूर्त्तिम् ॥ च्यवनस्तेन मनुष्टो गम रष्टाऽऽश्रमं ययौ ॥ २७ ॥  
 पतस्मिन्नन्तरे तस्य मंत्रे गमेण निधिते । प्रत्यहं कीटिप्रो विप्रा भुञ्जन्ति यतिभिः सह ॥ २८ ॥  
 कुमोदरो मुनिः प्रागतुर्माचारगणिक तदा । गङ्गायात्राप्रसंगेन ययौ गन्तुं समुद्यतः ॥ २९ ॥  
 ममागतः प्रयागान् च दूतादृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः । हे दूता उन्नयं देशं गृह्यं कस्याजया स्थिताः ॥ ३० ॥

यह उद्ग दानम दियो ॥ १३ ॥ उनका भोजन कराने के बाद भाई-बन्धुओं तथा अन्योन्य लोगों के साथ सीता तथा स्वयं रामने भी भोजन किया । तत्पश्चात् मिहिराश्रमपर चंद्रका उच्छाने पदमगले कहा—॥ १४ ॥ हे रघूनाथ ! मे इस जगह तो दिन तक निवास करोगा । इसलिय मेरे कहनेसे तूम सीमापर मह दूताका आज्ञा दी कि कोई भी यात्री, ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा गन्यासी चित्ता मेरी पूजा गठन किये न जान पाय । यदि कोई मर्या गया और मुने ज्ञात हुआ तो मे दूतोंको दण्ड दूंगा ॥ १४-१६ ॥ रामने वचन ममकर लक्ष्मणन वसी ही आज्ञा दे दी । उधर च्यवन मुनिने जब गुना कि जहाँ रामचन्द्र आगे हुए हैं तो वे रामके दशनाथ वरी आए । रामने उनकी पूजा की । पश्चात् तत्रमे मुन्दर आमनयर विराजमान होकर मुनिन रामसे कहा— ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे कर्मवचके ममाय मेचोचने राम । ममय देजम गङ्गाके दक्षिणी तटपर मेरा एक परम समर्पक आश्रम है । १९ ॥ वरन् मेरे उस आश्रममे मगय दशक दूत फल-मूल आदि लेनमे बड़ा निधन कायते हैं । इसलिय आप उन विध्वंसे मेरी रक्षा करें । २० ॥ च्यवनकी बात सुनकर रामने मनुष्यका रक्षण करके एक बाण छँटा । जिसमे च्यवन आश्रमके चारों ओर गार्हके समान गहरा एकोर खिच गयो, जिसको लाधना उन दूतोंके लिय असंभव हो गया । जहाँ रामके बाणकी रेखा खिची थी, वहाँपर “राम-रेखा” नामकी सुन्दर नगर वसी और गमरेखा नामकी नदी भी प्रवर्तित हो गयी । इसके बाद च्यवनकवि प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीसे बोले—॥ २१-२३ ॥ हे रघुनाथ ! कभी कीकट देश निरा माना जाता है । आपके कहनेसे यह भी पुण्यस्थान अवश्य बन जायगा । इसलिय आप मुझे रुख देनेवाला कोई वचन आज कह । मुनिक इस वचनकी सुनकर रामजीने महर्ष कह्य—॥ २४ ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वर ! मेरे कहनेसे कीकट देशमे गया, पुनपुनी नदी, आपका आश्रम तथा गजवन ( गजगृह ) पुण्यस्थल होंगे । इसमे आप कुछ भी सदेह न मानें । श्रीभगवान्के इस वचनसे मंगल होकर च्यवनकवि रामजीसे आज्ञा लेकर अपने आश्रमकी चले गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके बाद रामजीके द्वारा स्थापित अग्रक्षेत्रमे प्रतिदिन करोड़ों बाह्यण और धति प्रोजन करते रहे । २८ ॥ ऐसा होनेपर एक दिन गङ्गायात्राके प्रसङ्गमे कुम्भोदर नामके मुनि प्रयागसे रामजीकी भोजनशालाके लिए नियत की हुई सीमापर आये । वहाँ दूतोंको देखकर वे बोले—हे दूतो !

आकाशचुबिनन्विता इमेऽग्रे कस्य वै खडाः । हनुमन्कोविदामडजेप्रकाशोकिताः ॥३१॥  
 संतनीलहरिर्वातरणाः परमशोभनाः । दृश्यतेऽग्रे पताकाश्च भूयते जयनिःस्वनः ॥३२॥  
 ततस्तु वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा प्रोचुस्त्वगन्विताः । रामो राज्ञीयपत्राभ्योऽयोध्यायाः पालकः प्रभुः ॥३३॥  
 सोऽग्रे यात्रार्थमायानो वयं तस्यास्तथा स्थिताः । सप्रसन्नस्य रामेण निर्मितं चात्र रत्नैः ॥३४॥  
 सुधारस्तु सुखं गच्छतु कृत्वा शीघ्रा मुर्व प्रव्र । तमेपां वचनं श्रुत्वा परिहृत्य मुनिः पुनः ॥३५॥  
 आगतो येन मार्गेण तेन मार्गस्य मयपौ । गच्छन्तं न मुनिं दृष्ट्वा रामदूताम्बगन्विताः ॥३६॥  
 स्मृत्वा मार्गे मुनेस्तस्य वचनं प्रोचुगदगन् । क्रियते त्वं परावृ-य मुने गच्छसि वै पुनः ॥३७॥  
 आगतोऽसि पथा येन तेनैव त्वं वदस्व नः । इति तेषां वचनं श्रुत्वा निवन्धान्मुनिरप्ययौ ॥३८॥  
 तूष्णीं स्थित्वा क्षणं ध्यान्वा निमग्नं कृतवान् हृदि । इदानीं राक्षसोऽश्वोऽप्या यात्रां कृत्वा गमिष्यति ॥३९॥  
 नानादेशेषु सर्वत्र नृणां तद्दर्शनं कथम् । भविष्यति तदाऽन्यत्र गमतीर्क्षानि भूतले ॥४०॥  
 भविष्यन्ति कथं नृणां महत्पापपराणि च । कथं रामेश्वर भूम्नां भविष्यन्ति गतिप्रदाः ॥४१॥  
 अतः किञ्चिन्करोम्येषु येन रामस्तु भूतले । यावद्दर्शनं सर्वत्र साधया सह यास्यति ॥४२॥  
 अनेन लोकश्रेष्ठोऽपि मतिष्यति न मशयः । इति निधिन्य स मुनिः प्राह दूतान्मयचिद ॥४३॥  
 दृष्ट्वा मृणूत ये वाक्यं कृतो येन दशाननः । नम्रपुत्रो मन्थुपुत्रं कृतं तार्थसेवनम् ॥४४॥  
 तथा यज्ञः कृतो नैव तस्यान्न नादमडिनयाम् । दीयतां मय मार्गां हि स्वस्तिर्वचनं मम ॥४५॥  
 कथनीयं गवनाय यात्रायज्ञान् करिष्यति । इति तस्य वचनं श्रुत्वा विमस्याविष्टमानसः ॥४६॥  
 दत्त्वा मार्गं ज्ञापमान्या दृष्ट्वा रामांतिकं ययुः । रामं जन्तां सुनेस्तस्य कर्णे श्रुत्वा न्यवेदयन् ॥४७॥  
 राक्षसोऽपि मुनेस्तस्य श्रोत्रार्थमिमांशमुत्तमम् । मर्दं दृष्ट्वा सभामध्ये चकार स्तम्भितः स्फुटम् ॥४८॥

राम लोग जिसकी आज्ञासे यहां रहते हैं ? ये मामान गमनस्पर्शों तथा चित्र विचित्र हनुमान्, कोविदार, गहर और बाणम जिह्वित इवेन मीन, हरित एवमं शेन रंगका दशम मन्दर वलाकार जिसकी पट्टरा रही है ? यह प्रसन्नद जिसकी मुनई द रहा है ? ॥ ३६-३७ ॥ मुनिक वचन सुनकर दूत वाले — कमलमयन और अयोध्याके राज्यक प्रभु रामचन्द्रजी यात्राके लिए यहां आय हुए हैं । उनको मत्त से ही हम लोग यहां उपरिचल है । उन्होंने रामजीके द्वारा स्थापित अभयधन यहां है । यदि आप भूत हैं तो सुखसे वहां बसिए और भोजनदिक करके जायें । उनके वचन सुनकर मुनि लोट पड़ और जिन मार्गसे जायें वे, उसी मार्गसे फिर आने लगे । बात हुए सातवीं दण हाथ दूत लोग उनको राह राककर वादर जान — इ मुने । आप जिस मार्गसे जायें वे, उसी मार्गसे फिर लोट क्यों जा रहे हैं ? आप जिन मार्गसे आय हो, उस हम लोगोंको बताए । इनको इस बायह पर वचनको सुना तो बुचबास लड़ होकर बायें दर हनुमन् बोध करके मुनिको विचार किया कि यदि इस समय गमचन्द्रजी यात्रा करके अयोध्या चले जायें ॥ ३३-३९ ॥ तब अयोध्या दशोक मन्थुपुत्रों को उनका दर्शन कैसे मिलेगा और दूसरे स्वामीपर मन्थुपुत्र वरुण वड वामको लड़ करनेवाला रामतीर्थ कैसे बनगा ? अनेक मोक्ष-दायक रामेश्वर कैसे स्थापित होंगे ? इस लिए आज मैं कोई ऐसा उपाय करता हूँ कि जिससे रामचन्द्रजी संसारमें सब स्वामीपर यात्राके उद्देश्यसे संप्रदायक साध जायें ॥ ४०-४२ ॥ इस यात्रामे लोगोंको भिक्षा भी मिलगी । इनमें सन्देह नहीं है । एका विचार करके कुछ ईमान हुए मुनिन दूतासे कहा — ॥ ४३ ॥ हे दूतो । मेरे वचन सुनो । जिसने बाह्यपुत्र दशानन राक्षसको मारा और मार्ग एव पुत्रक सहित न दीर्घसेवन किया और न यज्ञ द किया, उस रामके अन्नको मैं नहीं आऊंगा । आप लोग मुझ जाने दें । मेरी बात रामसे कहियेगा । उस मनकर वे अन्नप्य तीर्थयात्रा तथा यज्ञ करेंगे । मुनिक इस वचनको सुनकर वे सब जाये हुए दूत शापके दरसे मुनिको मार्ग देकर रामचन्द्रजीके पास गये । वहाँ पहुँचकर रामजीको प्रणाम करके उनके कानमें उस मुनिकी वचनको कहते निवेदन कर दिया ॥ ४४-४७ ॥ श्रीरामने भी मुनिक उस राम भविष्यकी बातकर सब बात

मन्त्रिभिर्वन्द्युभिर्धनं वसिष्ठेन पुण्येभ्यः । मन्त्रयित्वा पुनर्वाक्यं सत्यं मेने रमापतिः ॥४९॥  
 ततो निश्चितवान् रामः समाभ्ये पुण्येभ्यः । श्रद्धी कार्या दीर्घयाया यशः कार्यास्ततः परम् ॥५०॥  
 ततो रमाज्ञया दृष्टा यत्त्वाऽप्येषां पुनर्वाक्यं । तद्वत् च सविस्तारं सुमंत्राय न्यवेदयत् ॥५१॥  
 सुमन्त्रोऽपि च तद्वत् श्रुत्वा वसुधनानि च । उष्ट्राश्वरथनागाद्यः श्रेयसासाह सादरम् ॥५२॥  
 पुष्पकं च तदा प्राह रामः शक्तिस्त्वामिदं हि । यद्यप्यथ गिरा मे त्वं शीघ्रमेव यथानलम् ॥५३॥  
 उष्ट्राश्वरथनागाद्यैर्निवाप्तं च ततोदरे । करिष्यमि सविस्तारं तथा विस्तीर्णतां मज्ज ॥५४॥  
 सर्वथा कारसाहार्थं शक्तिस्तु यथामुक्तम् । क्षमिन्काले ह्यस्मिन्महद्वप कदापि च ॥५५॥  
 यथाकामा मया शक्तिस्तव दत्ता न संशयः । तच्छ्रुत्वा रामवचनं पुष्पक इक्ष्ययोजनम् ॥५६॥  
 ममवस्त्रधाञ्च हि षड्वर्धनं द्वियोजनम् । इनादालेश सोपानैर्हैमरत्नोद्भवैश्चितम् ॥५७॥  
 कोटिभूर्यश्रनोकाश्च नानाधातुविशिष्टम् । कलशः सतसाहसैर्हैमग्नविषद्वितैः ॥५८॥  
 जालरजैर्गवार्जैश्च धुन्काहर्गिरेभूपितम् । कपटैर्दपेणैः श्रुतैर्जलवन्त्रभूतैर्भूतम् ॥५९॥  
 पुष्पाणां वाटिकाभिश्च नानावर्णिनिनादिनम् । वर्षमस्तकृत्वा यत्र यत्रशेष्य सहस्रशः ॥६०॥  
 त्रिधायां मण्यभिश्च प्रमा विस्मार्ग्यति हि । गोपुर्गाणि च भासन्ते श्वतशोभ्य सहस्रशः ॥६१॥  
 तत्र प्राथमिकायां तु पर्त्ता श्रीराघवाक्षया । उष्ट्राश्वरथनागादीन् दृष्ट्वाश्वरोदयमनदा ॥६२॥  
 द्वितीयायां कण्टकयान् तृतीयायां मृगजान् । तृतीयायां चान्दराशीन् पाकामत्राणि वै ततः ॥६३॥  
 पचम्यां तु श्वतशोभ्यं ततः श्वतशोभ्यं कशः । तत्र ऊर्ध्वं राजशहानश्चेष्टुश्चवाणान् ॥६४॥  
 अष्टमायां राजकोट्यान् वक्त्रधान्यविनिमिगन् । इदृशालास्ततः श्रेष्ठा दासीदामास्ततः परम् ॥६५॥  
 नटादीनां ततः साल्प यवर्त्तनां ततः परम् । ततो बीजानघिमांश्च तैम्यः श्रेष्ठोस्ततः परम् ॥६६॥  
 गच्छति तुमर्ग्ये तान् पचदशयपिना ततः । रथपोर्याम्भनोऽप्यूर्ध्वं गजार्थैश्च ततः परम् ॥६७॥

सभामे मुसकाते हुए कहो ॥ ४९ ॥ मन्त्रियो, बन्धुआ तथा पुराहित वसिष्ठजीके साथ परामर्श करके रमापति  
 रामन कुम्भोपर मुनिके वाक्यका सत्यममल माना ॥ ४९ ॥ इसका बाद सभामे पुराहितके साथ परामर्श करके  
 यमचन्द्रजीने निश्चय किया कि बहुतसे दीर्घयाया और उसका बाद यज्ञ कत्ना चाहिए ॥ ५० ॥ ऐसा निर्णय  
 हुआ जातके बाद रामचन्द्रजीकी आज्ञासे दूतने मयाख्या जाकर गन्त्री सुम्न्यस सब हाल विस्तारपूर्वक कहा ।  
 सुमन्त्रने जो कुछ समाचारको सुनकर सादर वस्त्र-धन आदि ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी आदिपर रुदका-  
 कर रामजीके पास भेजा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तब रामने पुष्पकविमानसे कहा—तुम्हारेमे जगार गति है । अतएव  
 तुम अपने बलके अनुसार विस्तृत बनो । क्योंकि तोययात्राके समय ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी जादि भी  
 पुम्हार ऊँट ही भिन्नसे करंगे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ कामके अनुसार अर्थात् जैसा कार्य हो, वैसा तुम्हारा बल भी हो  
 जाय । ऐसी बात तुम्हें मैने बो है । इसमें संशय नहीं है । रामजीके इस वचनको सुनकर सो मट्टालिकामों  
 और छाने तथा रत्न आदिसे संपूर्णवाला, करादा मृगोंकी कान्तिवाला, अनेक प्रकारको धातुमोसे  
 विभिन्न, सुवर्ण तथा रत्नजटित सहस्रशः कलशसे युक्त, श्रेष्ठियोक द्वारा विभूषित, सिद्धियों तथा चिकोसे  
 युक्त, काषधके कटको तथा संकटों कञ्चारेसे जामित भिन्न-भिन्न प्रकारके पल्लवों द्वारा कलरवित, पुष्पवाटि-  
 कायसे वण्डित, जिनमें संकटों-हजारोंका संख्यामे प्रशान द्वार बासित हो रहे थे, इस प्रकार यह पुष्पकविमान  
 सर्वविध साधनोंसे सम्पन्न, शत योजन लम्बा तथा दो बाजन ऊँचा हो गया ॥ ५१-५२ ॥ ऐसा हो जातेपर  
 मयायान् रामचन्द्रजी आज्ञासे दूतने गहलो रत्नका मट्टालिकामे ऊँट, घोड़ा, रथ तथा हाथी आदिको चढ़ा दिया ।  
 दूसरी पल्लिको मट्टालिकामे काष्ठका ढेर तथा घास, आबलो-ममल आदि तोतरी मट्टालिकामे बलसमूह,  
 शीर्षमें बीजनाश्वके पात्र, पाँचवांमे शीप आदि, छठीमे अन्य विविध प्रकारके गन्ध, सातवीं मट्टालिकामे राज-  
 धरानेके बाहुन, आठवींमे राजकीश, नवीं मट्टालिकामे वस्त्र-धन आदिसे युक्त श्रेष्ठ वाजार, दसवीं मट्टालिकामे

आरोहयस्ततो दूतान् राज्ययोग्याधिकारिणः । सुहृन्पुत्रजनस्य भिन्नुपाभ्यादलिकान्ततः ॥६८॥  
 ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य सुहृदश्च पुनोक्तमः । ततो भोजनशालाश्च विशिष्टचैव मनोरमाः ॥६९॥  
 पाकशालास्ततः पञ्च स्त्रीणां शौक्तं ततो रजः । तत उर्ध्वं हि कर्भूनां मानुषां च गृहाणि च ॥७०॥  
 तत उर्ध्वं राघवस्य मया सिंहासनान्विता । ततोऽप्यूर्ध्वं च सीताया मेहं नानामखावृतम् ॥७१॥  
 ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य क्रीडास्थानं तु सीतायाः । ततोऽप्यूर्ध्वं पट्टिमार्गा राज्ञा सुहृदां स्त्रियः ॥७२॥  
 ततः स्त्रीणां सभायं हि सप्त शालाः शुभावहाः । चित्रशाला द्वादशश्च वयसां पञ्च वै ततः ॥७३॥  
 पुष्पासमदीकानां हि पञ्च शालास्ततः शुभाः । ततोऽप्यूर्ध्वं तु शालायां घटीयत्रादिकौतुकम् ॥७४॥  
 कृपाघादीनां ततः शाला न्येका रम्याऽतिविस्तृता । ततोऽप्यूर्ध्वमग्निहोत्रशाला भोगघवस्य च ॥७५॥  
 ततः शिवार्चनभ्यैका शाला श्रेया शुभावहा । विप्राणां च ततः शालाः शाला विद्यार्थिनां ततः ॥७६॥  
 यतीनां च ततः शाला पाथशाला ततः परम् । जलशाला ततः श्रेष्ठा जलपत्रान्विता ततः ॥७७॥  
 ततोऽप्यूर्ध्वमार्द्रवस्रशोणार्धमनुत्तमाः । शतशालास्त्रिंशः पूर्णाश्चकुस्ते रामसेवकाः ॥७८॥  
 रामोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वा आरोह स्वयं तदा । ततो नदत्सु राघवेषु स्तुवन्सु मायधदिषु ॥७९॥  
 नर्तन्सु वारनारीषु पताकासु चलन्सु च । प्रकाशयन् दश दिशो विमानं राघवाज्ञय ॥८०॥  
 अगमन्पूर्वदिग्भागात् प्रतीर्ध्वा तपनोपमम् । विहायमा वायुवेगं किंकिणीजालमण्डितम् ॥८१॥

यथा प्रयातमिमूर्ध्वं श्रीरामस्त्वजचिह्नितम् ।

विष्णुशस उवाच

कथं रामस्य चन्यागो ध्वजाः पौक्ताः पुरा न्वया ॥८२॥

तन्मयं भिन्नेरेणाद्य श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।

श्रीरामस्य उवाच

शेषेणैव स्पृणुष्यन्तु स्वपितृस्यदनस्थितः ॥८३॥

राम तथा राज्ञिषाको, भारहवीर अट्टालिको, बारहवीर वेण्याओको, तेरहवीर पहलवानोको, चौदहवीर वैद्यक चलनेवालोको, पंद्रहवीर श्रेष्ठ पुत्रसवारको, सत्सहस्राम हाथियो तथा हाथोपर सब री करनेवालोको, सप्तहवीर बन्दूक आदि छाननेवालोको अठारहवीर राजवंक अधिकारी दूतको और उन्नीसवीर रामचन्द्रक मित्र गदाओने अपन दया एवं रिशवा आदिक साथ स्थान पाया । बासुवी कक्षास नगरके मित्रोका स्थान मिला । इसके बाद वीर भारतनशाला बननी, भारतनशालाओंके ऊपर पांच पाकगृहको स्थान मिला और उनके ऊपर रिशवोंके दस भावनगृह बन । उनके ऊपर बाहरी तथा माताओंके गृह, बादमें तद्वासनसे अष्टकृत राजसभा, राजसभके ऊपर बहुदन्त्या सखियोंके युक्त सीत जका गृह बना और सीताजीके गृहके ऊपर सीता सहित रामका श्रेष्ठ-स्थान बनाया गया । श्रीरामस्थानके ऊपर मित्राको रिशवोंको स्थान मिला । इसके बाद मित्रोंकी रक्षासे स्थि-  
 त्त्वदायक मान अट्टालिकादि निमित्त क गयी । स्वसभास्थानके बाद बारह विजशालाये और पाँच पट्टि-  
 मार्गादि निमित्त क गयी । पट्टिशालाके बाद सुन्दर पुत्र आदिक पाँच स्थान बनाये गये । उनके ऊपर चौदहवीर सात घटीयन्त्र आदि रखे गये । बादमें अग्नि विस्तृत एवं रम्य एक शाला द्वाघादि जन्तुओंके स्थि-  
 त्त क गयी । उसके ऊपर अग्निहोत्रगृह और अग्निहोत्रगृहके ऊपर शिवजीके पूजनका स्थान, इसके बाद  
 जल विधशाला, विद्यार्थीशाला, मन्यासाला, पाठशाला, जलमन्त्रारि युक्त पन्द्रह जलशाला और  
 पञ्चशालाके बाद मीले करतीका सुवर्णका उत्तम स्थान बना । इस प्रकार रामचन्द्रजीके सेवकोंने इस सी-  
 तान्याओंसे इन अट्टालिकाओंके पूर्ण किया ॥ ६२-७८ ॥ इस प्रकार सर्वदा पूर्ण देखकर रामचन्द्रजी स्वयं  
 विमानपर बैठे । रामचन्द्रजीके बैठनेके बाद बाजे बजने और आटोके द्वारा स्तुति करने एवं वेण्याओंके  
 बजनेपर दूसरे रिशवोंको प्रकाशित करता हुआ सूर्यके समान तेजस्वी तथा वसनके समान वेगवाला राम-  
 चन्द्रजीको विजाने बिह्वित बहु विमान रामके आशानुसार पूर्वदिशाते पश्चिमकी ओर प्रयाणके लिए चला

अतः सोप्यस्य रामस्य कोविदारध्वजः स्मृतः । बाणध्वजाकितरथमारुह्य तादिकां वने ॥८४॥  
 जघानैकेन बाणेन तस्माद्बाणध्वजः स्मृतः । छिन्नं वज्रध्वजं दृष्ट्वा रावणेन स राघवः ॥८५॥  
 ध्वजेः कोट्यापुपुत्रं तस्मान्प्रोक्तं कपिध्वजः । रणे विमूर्छितं दृष्ट्वा रामो मातलिनं तदा ॥८६॥  
 स्थितः स्वीयरथे दिग्धे तस्मान्च गरुडध्वजः शुक्लायां हि पताकायां कोविदारोऽस्ति वै शुभः ८७॥  
 बाणः शुभोऽस्ति नीलायां हरितायां तु माकृतिः पीतायां गरुडो ज्ञेयः श्रीरामस्यदनोपरि ॥८८॥  
 चतुर्णु स्यदनेष्वेवं चत्वारः कीर्तिता ध्वजाः । कोविदारध्वजो रामः श्रीरामो बाणध्वजः ॥८९॥  
 कपिध्वजो राघवेन्द्रो भूपेशो गरुडध्वजः । एवं नामान्वनंतानि प्रोक्ष्यते राघवस्य हि । ९०॥  
 तस्माद्रामध्वजाः प्रोक्ताश्चत्वारश्च मया नव । वज्रध्वजांकितरथे स्थित्वा रामेण संगतः ॥९१॥  
 कुतस्तस्माद्बाणवेदं तं वदन्त्यग्निध्वजम् । अतो रामध्वजस्यैकमेव चिह्नं न विद्यते ॥९२॥  
 तस्मान्छिष्य मया प्रोक्ताश्चत्वारो गधत्रप्रियाः । कोविदारंकितरथे सुमनः सारथिः स्मृतः ॥९३॥  
 बाणध्वजांकितरथे सुतश्चित्ररथः स्मृतः । बाधुपुत्रांकितरथे सारथिर्विजयः स्मृतः ॥९४॥  
 रामस्य दारुकः सप्तः स्यंदने गरुडाकिते । एव शिष्य त्वया पृष्टं श्रीरामध्वजकारणम् ॥९५॥

तथा पूर्वं मया तच्च त्वामेव निवेदितम् ॥९६॥

इति श्रीमदानन्दनामावर्णे याज्ञिकाष्टे भूभोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( पूर्वदेशके तीर्थोंकी यात्रा )

श्रीरामदास उवाच

तनो रामो विमानेन गन्वा किंचित् पश्चिमाम् । दिशं यथो प्रयागं च त्रिवेणीं यत्र वर्तते ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा कि आप ( रामदास ) ने रामकी चार ध्वजार्यें जो पहले कहीं थीं, उन्हें अब विस्तारसे कहें । श्रीरामदास बोले—बाह्यकालमें रघुनाथजी अपने पिताके रथपर बैठे थे—३२-६३ । इसलिये वह रामका रथ कोविदारध्वज कहा जाता है । बाण-ध्वजासे चिह्नित रथपर बैठकर एक ही बाणसे वनमें ताड़काको मारनेके कारण वे बाणध्वज कहलाये । रावणके द्वारा वज्रध्वजा कटनेके बाद महावीर हनुमान्का ध्वजापर बैठानेसे वे कपिध्वज नामसे प्रसिद्ध हुए । रथमें मातलिको मूर्छित देखकर अपने रथपर गरुडको बैठानेसे गरुडध्वज हुए । किस ध्वजामें किसका चिह्न है, सो बताते हैं । यथैव पताकायां कोविदार, नील पताकायां बाण, हरितायां माकृति, पीत पताकायां गरुड । इस प्रकार रामजीके रथपर स्थित चिह्नोंको जानना चाहिए ॥ ८४-८८ ॥ इस तरह चारों रथोंपर चार ध्वजार्यें देने कहीं ॥ कोविदार ध्वजावाले राम बाण ध्वजावाले श्रीराम ॥ ८९ ॥ कपिसे चिह्नित ध्वजावाले राघवेन्द्र और गरुडसे चिह्नित ध्वजावाले भूपति । इस प्रकार रामचन्द्रके अनन्त नाम हैं ॥ ९० ॥ इसलिये मैंने तुम ( विष्णुदास ) से रामकी चार ही ध्वजार्यें कहा हैं—वज्रसे अंकित ध्वजावाले रथपर बैठकर रामचन्द्रजीने मुद्र किया था । राघवेन्द्र नामवाले रामकी अग्निध्वज कहते हैं । रामचन्द्रकी ध्वजाका एक ही चिह्न नहीं है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसलिये मैंने छोटकर रामकी अति प्रिय ध्वजाओंको ही कहा है । कोविदार ध्वजासे चिह्नित रथपर सुमनः, बाणध्वजसे चिह्नित रथपर चित्ररथ और कपिध्वजसे अंकित रथपर विजय नामके सारथी कहे गये हैं । रामकी गरुडांकित रथपर दारुक सारथी रहता है । इस प्रकार ओ तुम ( विष्णुदास ) ने श्रीरामकी ध्वजाका कारण पूछा, तो मैंने आज तुमसे कहा है ॥ ९३-९६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे याज्ञिकाष्टे भाषाटीकायां भूभोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम विमान द्वारा कुछ पश्चिम दिशाकी ओर जाकर प्रयाग पहुँचे ।

कोशभावे विमानं तन्मुक्त्वा गदः ममीनया । पद्भ्यां शनैः शनैरेव त्रिवेणीमगम ययौ ॥ २ ॥  
 नारिकेलं वायनेन समर्प्य रघुनन्दनः पतुर्गुल्मानं हि केशवन्धं सभूषणम् ॥ ३ ॥  
 इदौ सखिष सीतायाः स्वं सौम्यधाकरोत् । तद्वपणार्थं धनुर्धरेण वपनं रघुनन्दनः ॥ ४ ॥  
 मातुमिः कारयायास कृत्वा चैकमुपायम् । द्वितीये दिवसे प्राप्ते कृत्वा भ्रातृं सतर्पणम् ॥ ५ ॥  
 वायवायं नायमासे कामं कृत्वा सविस्तरम् । अष्टवीथीं ततो गत्वा दत्त्वा दानान्बनेकैः ॥ ६ ॥  
 दृष्ट्वाऽतपवटं रम्यं निद्रास्थानं निजाकये । किञ्चिद्दिहस्य भोरायः सैन्या आशुभिः सह ॥ ७ ॥  
 पूजां कृत्वा त्रिवेण्याय वर्जुर्दिव्यैः सुभूषणैः । गगाजलैः कान्तदुग्धमान् शलशोऽथ मदमघः ॥ ८ ॥  
 पूरयित्वा विमानाग्र्यं दधाप्य शीघ्रं पुरोहितान् । पूजयित्वा सविस्तरं नत्वा चैव पुनः पुनः ॥ ९ ॥  
 तान् पृष्ट्वा पुष्पकै र्स्थित्वा वयावकाशवर्मना । विन्ध्याचलं समाश्रित्य यत्र दुर्गा तु वर्तते ॥ १० ॥  
 तत्र स्नान्वा शीघ्रं विधिं पूर्ववत् विधाय सः । तं विन्ध्यावासिनीं पूज्य वर्जुसाम्पणादिभिः ॥ ११ ॥  
 कृत्वा दानान्बनेकानि शोभ्य तीर्थपुरोहितान् । ययौ काश्यां पुष्पकस्थः भ्रातायः मीनया मुमुक्षुः ॥ १२ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे काश्यां काशिकायाः पुष्पकं तु नत् । कोटिसूयप्रतीकाशं दृष्ट्वा पश्चिमतो दिशम् ॥ १३ ॥  
 यत्र प्राची काश्याभिमुखमगच्छन्त महोन्नतम् । चक्रम्यकान्तिदकैश्च सनशोऽज्ञानयोः स्थिताः ॥ १४ ॥  
 केचिद्नुश्च दावाग्रिस्तत्र परतमस्तके सूर्यमधिष्मृतः पथा भ्रमणाद्भ्रातिमाय सः ॥ १५ ॥  
 इति केचिन्ननाः श्रेष्ठः केचिद्नुश्च यमुनिः । वारदस्तु तमापाति केचित्तत्र वभापिरे ॥ १६ ॥  
 वान्धमौ गविः स्पर्षात् केचिद्गोणावतान्वितः । वातुपुत्रोऽपमिति ते श्रेष्ठः काशीनिवासिनः ॥ १७ ॥  
 केचिद्नुः शशी स्पर्गान्मृगेण विनिवानितः । केचिद्नुश्च विश्वश्च केचिद्नुः सुदर्शनम् ॥ १८ ॥

अक्षरपर वि पतिमरावना त्रिकोण विद्यमान है ॥ १ ॥ त्रिवेणी से एक कस दूर भोराम जानकोडाके  
 साथ विमानसे उतर गये और चारे चारे करके ही निवेणोके सगमपर गये ॥ २ ॥ वही जाकर रघुनन्दनने  
 त्रिवेणीको नारियल समर्पण करके भूषणोसे गुणा हुआ जानकाका कषकाश ( पूजा ) चार  
 शीगुल लगा काटकर त्रिवेणीमें प्रवाहित कर दिया । पश्चात् स्वयं भी "प्रयत्ना मुग्धने श्रेष्ठ" के अनुसार  
 और करवाया । तबसे उसी प्रकार माताजी, मातृजी तथा जनान्ध सबे-सर्वान्धयोक्तों को और कर  
 थाया । तदनन्तर सबने उपवास करके दूसरे दिन तपण तथा धातु किया । पश्चात् यथार्थिधि साथ महाने-  
 भर वही कल्परास दिया । उसके उदगन्त प्रवाणक प्रसिद्ध "त्रिवेणी", वर्जुमाधव, माम्पनाय, भोरहाज, नाग-  
 बाणुकी, जसवट, राज भूमय आदि आठ तीर्थों ( महानाथों ) की यात्रा की और विप्राका जनेक प्रकारके शत्रु  
 दियो । १-६ ॥ वपन शलवकादीन निद्रास्थान अक्षवटको देखकर राम कुछ मुस्कराये । पश्चात् सीता तथा  
 मातृजीके साथ मिलकर सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों त्रिवेणी महाराजके पूजा की । उसके बाद हजारों  
 वस्त्रवट गङ्गाजलसे भरवाकर जल विमानपर बरखा दिये । तीर्थक पुरोहितोंका विमानसे पूजा तथा सत्कार  
 दिया । तदनन्तर उनको नमस्कार किया और उनका अग्रा लेकर राम विमानपर सवार हो गये । तत्पश्चात्  
 अकाशवातेसे विन्ध्याचल पधारे । वही किष्कंधासिनी दुर्गातीका त्रिवेणी मन्दिर है ॥ ७-१० ॥ वही रामने  
 स्नान किया और पूर्ववत् वहीवर जो तथैविधिसे पावन किया । वस्त्र तथा आभूषण आदि सामग्रोसे  
 विन्ध्यावासिनी देवीकी पूजा की ॥ ११ ॥ अनेक जल देवर वहीके पुरोहितोंको प्रसन्न किया । पश्चात् श्रीराम  
 सेनाके साथ पुष्पकविमानपर सवार होकर मुसुबुबक काश्याके चले ॥ १२ ॥ उस समय काशीनिवासी जन  
 उठ करेकी सूरके समान अवकाशमात्र तथा अग्निउदयवल विमानको पश्चिम दिशासे बालीसी ओर आते देखकर  
 हजारोंकी संख्यामें महलोंकी छतोंपर चढ़ गये और उसके विषयमें ऊनद लक-विनक करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥  
 कोई कहने लगा कि यह पर्वतके ऊपर बसालि जग रही है । कोई कहता कि सूर्य राखडा धूमकर हवर-उवर  
 चटक रहा है ॥ १५ ॥ कोई कहता कि यह तो तारक बुद्धि भाषेको जा रहे है । किसीने कहा कि स्वर्गसे सूर्य  
 गंध गिर रहा है । कोई कहता कि यह श्राणाचलका लिये हनुमान् भी जा रहे है ॥ १६ ॥ १७ ॥ कोई कहने





धर्तुं वर्षधं गणायाम्पटे रथं दृष्टव्यम् । काश्यामघापि तन्नाम्ना धृष्टोऽस्ति परमः शुभः ॥ ३६ ॥  
 तथा चकार रामोऽपि धनुर्वधनमुत्तमम् । दृश्यते प्रव्यहं यत्र काश्यां रामः ससीतया ॥ ३७ ॥  
 चकार पंचममायां कार्तिकम्नानमुत्तमम् । काशींशमं वपयेकं चकार धर्मवत्परः ॥ ३८ ॥  
 तीर्थयात्राभिः सर्वान् सन्तर्प्य च पूयकं पूयकं । रत्नैर्द्विरर्प्यर्वाभ्योमिरश्चापरणधेनुभिः ॥ ३९ ॥  
 निवित्रैश्च दशाऽपत्रैः स्वर्णगोप्यादिनिर्मितैः । अमृतस्नादुपकान्तैः वापसेश्च सशर्करैः ॥ ४० ॥  
 सगोमयैश्चान्नदानैर्धान्यदानैरनेकधा । गन्धचन्दनकपूरैस्ताम्बूलैश्चारुधामरैः ॥ ४१ ॥  
 सतूलैर्भृदुपयैर्कंदीपिकादर्पणासनैः । शिविकादापदाक्षीभिर्वाहिनैः पशुभिर्गृहैः ॥ ४२ ॥  
 निमज्जजपनाकाभिरुल्लोचैश्चंद्रचक्रभिः । नानावर्तमहाभङ्गैः सध्वजाराण्यादाभ्यः ॥ ४३ ॥  
 वर्षाग्नमदानैश्च गृहोपमकरमयुतैः । उपानयनादुपकभिश्च यतैश्चापि तपास्वनः ॥ ४४ ॥  
 योग्यैः धनुर्दूलैश्च मृदुलैश्चित्रकम्बलैः । दण्डैः कमण्डलुयुतैश्चार्जुनैर्मृगमम्भरैः ॥ ४५ ॥  
 कोपानैश्च मर्चैश्च पत्रिचारककाञ्चनैः । मण्डपिण्यादिनाम्नैरातम्यैश्च महाधनैः ॥ ४६ ॥  
 धनुर्वीर्यदानैश्च मिषजां जीवनादिभिः । महपुष्पकसधारलेसकानां च जावनैः ॥ ४७ ॥  
 रमादर्शनमन्त्रैश्च पत्रदानैरनेकशः । प्रक्षमं प्रपाथद्राघणं हं मन्तुंऽन्नदृक्केष्वनेः ॥ ४८ ॥  
 उवाञ्छादनकायैर्धर्मैर्वाकालोचितैर्वहु । रात्रौ पाठप्रदपेष वादाभ्यजनकादाभ्यः ॥ ४९ ॥  
 पुष्पगणपाठकांश्चापि प्रतिदेवालय धनैः । देवालये नृत्यगात्रकरणाधरनकशः ॥ ५० ॥  
 देवालये सुधाकार्यैर्जीर्णोद्धारनैकशः । चित्रलेखनमूर्त्यश्च रङ्गशालादमण्डनैः ॥ ५१ ॥  
 आरतिर्कैर्गुग्गुलैश्च दशांघादिमुधूपकैः । कपूरैश्चैव शयैश्च दवाद्याधरनकशः ॥ ५२ ॥

एक कल्याणकारी तीर्थ बनाया ॥ ३६ ॥ गतात्रोक वटपर उल्लोच सुन्दर पञ्चरात्राका एक पाट बनवाया, जो कि  
 अभी भी काशीमें हनुमानपाठके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ ऐसा प्रकार रामचन्द्रन मा उत्तम पाट बनवाया, जो  
 कि आज दिन मा कल्याण रामधटक नामसे वर्तमान है । पश्चात् रामन सताक साथ पञ्चगङ्गाय स्नान  
 किया । उस समय कार्तिकका उत्तम मास था । इस प्रकार रामने वधभर काश्या में धर्मवत्पर हाकर लनास किया  
 ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पश्चात् समस्त तीर्थयात्रियोंको पृथक् पृथक् रात सुषण, वरुण, अश्व, भाभरण, गान, सतीर्चनदिक  
 विविध पत्र, अमृतगुल्य पकवान तथा शर्कराभिजित दूधदानस प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥  
 नय दानदानस भी उन्हु संतुष्ट किया । बहुतका मुगयित चन्दन, कपूर, ताम्बूल, मनाहूर चमर, कामल  
 मः धरे हुए गदे सकिए, दौवट, दर्पण, भासन, पाछका, दासदमा, बहून, पशु तथा धवन दकर प्रसन्न  
 किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥  
 बहुतको विचित्रविचित्र वज्रमन्त्रताका, चाण्डाका वारिनाक समानानमल वारिना, शक्ति-  
 दाना, बड़बड़ शंख बन करक ध्वजारध्वज, वर्षाग्नदान तथा गृहस्थाका सामग्रा दकर प्रसन्न किया । विप्रोंको  
 उपजट तथा सन्यासी यतियों और तपस्वि गेका लड़ाई, उनका वाय क मल रेसका बरत, कम्बल, दण्ड-कमण्डलु,  
 विचित्रविचित्र मृगधर्म, कोपान, ऊँचे-ऊँचे लटोले, सरक मड, उसका रत्नाक लिए तथा इवसापी और शक्ति-  
 सत्कारक लिए सुवर्ण तथा बहुन-सा धन दकर संतुष्ट किया ॥ ४१-४६ ॥ देवाका उनका जादिकाक साधनमूत्र  
 बहुतसे औषध दान देकर, लेसकोको औचिकके साधनमूत्र बहुतसे गुस्त्रकसमूह देकर, बहुतको बहुमूल रक्षाघर  
 दान देकर और बहुतको लिए भन्नक्षेत्र सोलकर सन्तुष्ट किया । बहुतका चाण्डालगुप्त पीसरक वाला बन  
 दकर तथा बहुतको हेमन्तक पाण्य काष्ठ आदिके वास्तु द्रव्य दकर प्रसन्न किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥  
 धर्मकालोचित छत्र तथा आच्छादन देकर आनन्दित किया । बहुतको रात्रिके समय पढ़नेके लिए  
 दवादिका प्रबन्ध कर दिया । बहुतको शरीरमें अभ्यङ्ग ( मालिश ) करनेके लिए उल मादि सुवन्धित  
 द्रव्योंका दान देकर राजी किया ॥ ४९ ॥ हर एक देवालयमें पुराणपाठ करनेवालोंको धन देकर संतुष्ट  
 किया । देवालयोंमें अनेक नृत्य गीत करवाये । उनका जीर्णोद्धार करवाकर नूना पुतया दिया । उनमें बहुतसे विच  
 बनवा दिये । उनमें केशर आदि रङ्ग तथा माला आदिका प्रबन्ध करवा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ देवदूतको

पञ्चावृत्तानां स्तवनैः सुगन्धस्तवनैरपि । देवार्थं मुखयार्थं च देवाद्यानर्गनकशः ॥५३॥  
 महापूजार्थं मान्वादिगुम्फतार्थं च कालवः । शरमेरीमृदगादिवाचनाईः शिवालये ॥५४॥  
 घण्टामडुककुम्भादिस्नानोपकरणैः । स्नेहमाजनेन च सुगन्धैर्गन्धकर्मैः ॥५५॥  
 जपहोमैः स्तोत्रपाठैः शिवनामोच्चभाषणैः । रामकीडादिमयुक्तध्वनैः समप्रदक्षिणैः ॥५६॥  
 एवमादिभिरुदण्डैः क्रियाकाण्डैर्गनेकशः वर्षमेकमुपित्वा तु कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥५७॥  
 दीनानाथांश्च सत्पुत्र्यं नन्वा विश्वेश्वरं त्रिभुम् । नम्रचर्यादिनियमैर्भक्तानामप्येन च ॥५८॥  
 मन्यमम्भाषणेनापि तीर्थमेवं श्रमाद्य च । नन्वा पुनर्विश्वनाथं कालगजं गणाधिपम् ॥५९॥  
 अमपूर्णां दण्डपाणिं दृष्ट्वा स्तुत्या प्रणम्य च । अनुज्ञातः शिवेनाथं त्रिमानेन गच्छतमः ॥६०॥  
 यथावाकाशमार्गेण गमाया दर्शने तटे । कर्मनाशां नदीं दृष्ट्वा क्यवनस्याश्रमं ययौ ॥६१॥  
 रामचन्द्रः पुण्यकस्थः स्नान्वा नत्वा मुनीश्वरम् । रामतीर्थं च रामेन चकार तत्र राघवाः ॥६२॥  
 निजराणकुली रेखां दर्शयामास तान् जनान् । कण्ठ्या अप्यधिकान्यत्र दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥६३॥  
 ययौ यानेन दिव्येन स्वर्णभद्रस्य सममम् । यानि याने हि तीर्थानि गच्छन्तं गामप्यति ॥६४॥  
 उत्तरोत्तरतप्तेषु दानाधिक्यं कश्चिदिति । यत्र यत्र गच्छन्ते गमिष्यन्ति ममीकया ॥६५॥  
 तत्र तीर्थान्यनेकानि मन्त्रिष्यन्ति महान्ति च । केचोऽपि तेषां संरुपां दिव्यकुंजां प्रमो यवेत् ॥६६॥  
 तेषु तीर्थानि शृणुनि षड् श्रेयानि मर्तापिभिः । रन्ध्रानां चैव चन्दारि सीतायाः श्रमं स्मृतम् ॥६७॥  
 षष्ठमजनिपुत्रस्य सर्वत्रैव विनिश्चयः । रामः स्नान्वा स्वर्णभद्रगगयोः सममे मुदा ॥६८॥  
 त्रिरात्रं समतिक्रम्य गण्डकीसगमं ययौ । कस्मिंस्तीर्थे त्रिरात्रं च पञ्चरात्रमथ कचिन् ॥६९॥

निम्न आशुती गुग्गुलु दण्डां, घण्टा, दीप, बध्म आदि जनक वस्तुओं के लिये दानार्थी ॥ ५३ ॥ देवताओं के लिये  
 पञ्चावृत्तक स्नानका प्रवन्ध, मुर्गावृत्त गुल्मवृत्त आदिसे स्नानका प्रवन्ध मुखयार्थ पान आदिका प्रवन्ध,  
 तथा उनके लिये उद्यान आदिका प्रवन्ध भी करना दिया ॥ ५३ ॥ मन्त्र शिवालये पिकाल पूजाके लिये माला  
 गूँथनेका प्रवन्ध, शंख, तगाडा नृदम आदि वाजोवा प्रवन्ध एवं घड़ी घंटा कलश गजुवा तथा स्नानके सामानका  
 प्रवन्ध कर दिया । मार्जनके लिये प्रवेन दम्भ तथा मुग्धचित्त द्रव्य चन्दन, वैश्रव, अगर, लगर, बध्म आदिके  
 स्नेहना भी इस भी प्रवन्ध करवा दिया । इसी प्रकार देवालयमें जप, हार, स्तोत्रपाठ, उच्च शिवनामोच्चाराण  
 प्रदक्षिणा तथा चैवर लेकर रामकीडा आदि अन्यान्य प्रियाई करते हुए रामने कार्त्तिकमें एक वष विनाया  
 वहाँके अनेक तीर्थ किये । उन्होंने दीनानाथ विश्वेश्वर भस्वान् शिवका संनृष्ट किया । अनुकालमें भी  
 कृतार्थ्य धारणकर तथा दण्डपादका अनुष्ठान करके तीर्थके नियमोंका पालन किया । अन्नम विश्वनाथको,  
 कालशेरवका, गणाधिपको, अमपूर्णाको तथा दण्डपाणिको बारंबार नमस्कार करके तथा उनकी स्तुति करके  
 सदैम आनेकी आज्ञा माँगी । उनसे अनुज्ञात होकर रघूनम राम विमानपर सवार हुए ॥ ५४-६० ॥ और  
 मान्वादिमार्गसे गङ्गावतीके दक्षिण तटकी ओर चल दिये । राधेमें उनको कर्मनाशा नदी मिली । बादमें  
 क्यवनमुनिके आश्रमपर पहुँचे ॥ ६१ ॥ पुरस्क त्रिमानसे उत्तरकर रामचन्द्रभी व स्नान करके मुनिके दर्शन किये और  
 वहाँ जयने नामसे तप्तेश्वर तथा रामतीर्थ स्थापित किया ॥ ६२ ॥ वहाँ अपने मायवालीको अपनी बनायी हुई  
 आणका रत्ना दिखलायो अन्तमें वहाँपर कार्त्तिक भी आधिक दान पुण्य कके दिव्य विमानके द्वारा शोणभद्र  
 तथा गङ्गाके सङ्गमपर गये । उसी प्रकार आगे भी राम जिन-जिन तीर्थोंमें जायेंगे, वहाँ-वहाँ उत्तरात्तर अधिक  
 दान करेंगे वहाँ-वहाँ राम सीताके साथ प्यारेग वहाँ-वहाँ अनेक बड़े-बड़े तीर्थ करेंगे । जिनकी संख्याको शेष-  
 नाग भी नहीं बता सकते ॥ ६३-६६ ॥ परन्तु विवागशील लोगोंको उनमें भी छ तीर्थोंको मुख्य समझना चाहिये ।  
 चार चार भाइयोंके, बीच-बीच सीता तथा छड़ी हनुमानका । इनके विषयमें कभी भी संदेह नहीं करना चाहिये ।  
 और राम शोणभद्र तथा गङ्गाके सङ्गमसे स्नान करनेके पश्चात् वहाँ तीन रात निवास करते प्रसन्न मनसे

सप्तमं कचिच्छापि पक्षमेकमथ कचिन् । अष्टादशैकविष्टुष्टा त्रिमासं च कचिन्प्रभुः ॥७०॥  
 चकार वासं तीर्थेषु धर्मान् कूर्मं यथासमम् । गंडकीप्रगमे कात्या नेपाले जगदीश्वरम् ॥७१॥  
 दृष्ट्वा हरिदाक्षेत्रं ययौ रघुकुलोद्भवा । गर कुतश्च न नीर्धनि मर्तो गि रघुनन्दनः ॥७२॥  
 पुनः पुनः समम च ययौ जाह्नविदक्षिणे । वैकुण्ठनगरं गत्वा जरासन्धपुरं ययौ ॥७३॥  
 वैकुण्ठाया जले स्नात्वा ततो रामो ययौ श्यामम् । पद्मगुणधामतटे पुरं श्रुत्वा तद्यानमुचमथ ॥७४॥  
 नत्वा विष्णुपदं दिव्यं पुनर्यानान्तिकं ययौ । तां निशा ममनिकम्प प्रभाते रघुनन्दना ॥७५॥  
 स्नातुं फल्गुनदीतीरे ययौ तीर्थं द्विजैः सह । एतस्मिन्नन्तर सीता मर्त्याभिः परिदेहिता ॥७६॥  
 ययौ स्नातुं फल्गुनद्यां स्नात्वा पूजय मुवामितीः । मैकते मा क्षण तस्थौ पूजनार्थं महेश्वरीम् ॥७७॥  
 बालुकापचपिर्दध दुर्गां कर्तुं समुद्यता । गृहीत्वा रामहस्तेन पाद्रीं मा सिकतां तदा ॥७८॥  
 सव्येन कृत्वा पिंडं तु यावन्मा पाणिना धृत्वा । व्यापयामास तारत्तुं ददर्श जगतीतन्त्रात् ॥७९॥  
 विनिर्गतं दृष्ट्वा शश्वत्तुल्यं कर्तुं शुभम् । दक्षिणं विनतस्त्राञ्च गृहीत्वा विष्णुपदमम् ॥८०॥  
 गच्छन्तं धृतत्वं रम्यं तद्दृष्ट्वा कीर्तुकं पुनः । द्वितीयं व्यापयामास भुवि पिंडं तु मैकतम् ॥८१॥  
 मोऽपि नातः पूर्ववच्च श्रवणश्रोत्रं शनम् । ददां पिडान् कीर्तुकं ततः श्रान्ता विदेहजा ॥८२॥  
 मनसा पूजय दुर्गां मा ययौ वान स्वगन्धिनः । तद्दृष्ट्वा न मर्त्याभिस्तु ज्ञात रामेन वाऽपि न ॥८३॥  
 तथापि कथिनं नैव किं रामो मां वदिष्यति । इति भान्या ततो गमः पञ्चनर्थं विगाय च ॥८४॥  
 प्रेतपदं तमायाय पिडदानमथाश्रितम् । कनिष्ठिकाया निष्कारण निजनामांकिनीं शुभाम् ॥८५॥  
 काचनीं मुद्रिकां गत्वा दक्षिणाभिमुखस्तदा । अपहन्तेति मंत्रेण चकार भुवि राषयः ॥८६॥

गंडकीक सङ्ग्रामकी ओर मिथारे । श्लोकमें प्रमत्त निम्न ग्यानेपर होने रत्त, वही पांच रात कहीं मात रात, वही एक पक्ष, कहीं मठारह दिन, कहीं इकानेस दिन और कजो तीन मास पर्यन्त मुखसे निवास किया । गंडकीके सङ्ग्राममें स्नान करके श्रीहरी नेपालमें पगुर्पनिवृत्त, वर दशानवं मये ॥ ६७-७० ॥ बादमें रघुकुलभूषण राम हरिहरसेव गये । इस प्रकार रघुनन्दन राम तत्रं करने समय बीच बीचमें बार-बार गङ्गाके दक्षिण सङ्ग्रामपद पधारत थे । बारम् वैकुण्ठ नगर हो गङ्गा जगन्नाथक राजनृज नगर गये ॥ ७१-७३ ॥ पञ्चान् वैकुण्ठके जलमें स्नान करके श्यामी गये । फल्गु नदक पुरी १४११ विमानको छोड़कर दिव्य विष्णुपदके दर्शनार्थ गये । दशान कातिक बाद पुनः यात्राके पास लौट आये और गतिवा जगो व्यतीत करके मंथरे ब्राह्मणोंके साथ फल्गुनदीके पवित्र तीर्थमें स्नान करने गये । इनमें काचिनेम विष्णु मुई सातासी फल्गुनदीपर स्नानार्थ पक्ष री । वही उन्होंने स्नान करके मोहनिगि स्थितोंकी पूजा की । पञ्चान् देवी महेश्वरीकी पूजा करनेके लिए संकत-प्रदेशमें जाकर बालुके पांच पिण्डोंमें दुर्गाजीकी प्रतिमा बनानेको उत्तन हुई । जायें हाथमें नीली बालुका लेकर उन्होंने बाहिने हाथसे पिण्ड बनाकर ज्यों ही पश्चादर रक्षणा चाह, त्या ही उन्हें पृथ्वीतलसे निकलता हुआ अपने समुद्र महाराज दशरवक्त्र सुन्दर हाथ दिखायी दिया । उनका दाहिना हाथ सीताके हाथसे उस उत्तम पिण्डको लेकर पुनः धरतीमें प्रविष्ट हो गया । यह देखकर सीताके मनमें बड़ कीर्तुल हुआ । बादमें फिर सीताने पिण्ड बनाकर जमीनपर रखार, उसको भी पूर्ववत् वह हाथ से गया । इस प्रकार सीताने एक-एक करके एक ही बाठ पिण्ड दुर्गाकी पूजाके लिये रखे और उन सबको मधुका हाथ से गया । यह देखकर सीता द्वार गयी ॥ ७४-८२ ॥ अन्तमें उन्होंने दुर्गाकी मन हो मन पूजा की और विमानके पास लौट आयीं । उस वृत्तान्तको न ही सखियें जान सकी और न राम हो जान पाये ॥ ८३ ॥ सीताने भी राम हमको क्या कहेंगे, इस तरहके बारे उस वृत्तान्तको छिपा रखा । बादमें रामने जब पञ्चतीर्थ करनेके बाद प्रेतशिलापर जाकर पिण्डदान दिया और उन्होंने अपने हाथका अनामिका भेगुनास रामनाम खुरी हुई सुन्दर मुद्राकी अंगुठी निकालकर दक्षिणकी बांच मुख करके 'अपहृता' इत्यादि मंत्रसे जमानपर तांच रेखाएँ कांची, जो कि वही जमीनी स्नान

रेखाश्रयं नदद्यापि दुःखते तत्र वै स्फुटम् । आस्तीर्य स कृष्णस्त्र पिण्डान् मन्त्रमुवाञ्छुः ॥८७॥  
 तिलाग्रिमधुमं युक्तां दानुं रामः समुद्यतः । सव्येन पाणिना पिण्डं गृहीत्वा रघुनन्दनः ॥८८॥  
 यादव्यदयति भूम्यां तु न ददर्श पितुः करम् । तदाश्रयेण निरास्ते रामपुत्रस्तत्राश्रिताः ॥८९॥  
 निष्कामस्यत्र मर्षेण पितृणां दक्षिणाः कराः । न दृश्यते तत्र पितुः कारणं नात्र विग्रहे ॥९०॥  
 रामोऽपि विस्मयाविष्टश्चकितः प्राह लक्ष्मणम् । जानीये कारणं किञ्चिदत्र त्वं बुद्धिमानमि ॥९१॥  
 स प्राह राघवास्माभिर्यदा मोदावर्गे गतम् । इन्दुदीपकपिण्याकपिण्डदाने तदा करः ॥९२॥  
 अस्माभिः स्वपितुर्दृष्टः सोऽत्र नैव प्रदृश्यते । ममापि जानमाश्रयं सानां त्वं प्रष्टुमर्हसि ॥९३॥  
 तच्छ्रुत्वा जानकी शीघ्रं प्राह किञ्चिद्भयानुरा । मयाऽपराधितं किञ्चिन्नख्यम् रघुमम ॥९४॥  
 वनस्या वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तौ पुनः । वद त्वयं न मेतन्म्यं कारणं किं ममातिकम् ॥९५॥  
 यथा वृक्ष तया सर्वे राघवाय निवर्तितम् । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह कः माभी तत्र कर्मणि ॥९६॥  
 सा प्राह पुत्रपुत्रोऽस्ति दृष्टः स नेन्युवाच ह । तदा शमः सोतया स फलहीनः स कीवटः ॥९७॥  
 मय मे वचनाञ्चूत यतो मिथ्या त्वयेतिवम् । पुनः सा राघव प्राह फलगुः साक्ष्यं प्रदास्यति ॥९८॥  
 साऽपि रामेण पृष्टाऽथ नेन्युवाच भयानुरा । साऽपि शमा रामस्तस्याऽश्वोमुखी मम वाक्यतः ॥९९॥  
 बहू यस्मान्मृषा चोक्तं त्वया मन्येपि कथये । ततः सोता पुनः प्राह साक्ष्यं मेऽत्र निवापिनः ॥१००॥  
 दास्यंति मे द्विजाः सर्वे तदा मन्निकटस्थिताः । तेषु पृष्टा राघवेण नेन्युवर्धयविद्वत्तः ॥१०१॥  
 दद्याः साक्ष्यं नहिं तामः शपे नम्रु प्रदास्यति । निवारिता कथमेयं तदा सीतेनेति चिन्त्यते ॥१०२॥  
 तस्मिन्ना जानकी शपे ददौ तीर्थनिवासिनः । भुम्भाकं नात्र मदृष्टिः कदा द्रव्यैर्मविष्यति ॥१०३॥

दिखायी देती हैं । उन्होंने उनको कृपा बिछाकर उसपर तिल धूप प्रघुआदिसे युक्त सक्नुका पिण्ड रखना प्रारम्भ किया । रामने जब दाहिने हाथसे पिण्ड लेकर अमानकी ओर देखा तो उन्हें अपने पिताका हाथ नहीं बीछा । वहकि बाह्यण भी आश्रयान्वित होकर रामसे कहने लगे—॥ ८८-८९ ॥ यहाँ सब लोगोंके पितरोंके दाहिने हाथ पिण्ड लनके लिये निकलते हैं, पर आपक पिताका हाथ क्यों नहीं निकला । इसका कारण समझमें नहीं आता ॥ ९० ॥ तब रामने विस्मित होकर लक्ष्मणसे पूछा—हे लक्ष्मण ! तुम बुद्धिमान् हो, क्या कुछ इसका कारण जानते हो ? ॥ ९१ ॥ लक्ष्मणने कहा—हो माई ! जब हम लोग गंगे द्वारा गये थे, तब तो इन्दुदीपकके पिसानका पिण्डदान दते समय अपने पिताका हाथ दिखाई दिया था, वह यहाँ नहीं दिखाई देता । इस बातका हमको भी आश्चर्य है, आप इसका कारण जानकीसे तो पूछें ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ यह सुनकर जानकीने पक्का उर्ध्व और बोली—हे रघुनाथ ! आप खभा कर । मुझसे कुछ अपराध हो गया है । ९४ ॥ वह सुनकर रामने कहा कि घराने तथा दरजनकी कोई बात नहीं है । ओ हाँ, सों साफ-साफ कहो ॥ ९५ ॥ तब जानकीने जो घटना बटी थी, सो स्पष्ट कह सुनायी । यह सुनकर रामने गुम्हा-इस बातका शाखी कौन है कि हमारे पिताने मुझसे हाथसे पिण्डदान ग्रहण किया है ? ॥ ९६ ॥ सीताने अपना बवाह पासके आश्रयकी बताया, परन्तु उससे पूछनेपर वह इनकार कर गया । तब सीताने उसका शाप दिया कि अरे दुष्ट ! तू झूठ बोलता है इसलिये मगघटेशम तू फलशून्य होकर रहेगा ॥ तब सीताने कलगुनदीको अपना साखी बढाया ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ परन्तु रामके पूछनेपर वह भी अपने इन्कार कर गयी । इनपर सीताने उसको भी शाप दिया कि तू सत्य बातमें भी झूठ बाली है, इसलिये तू मघामुखी (अन्तर्मुखी) होकर अश्रेणी । तब सीताने कहा कि मेरी साखी गहक रहनेवासे उस समय मेरे पास खड़े बाह्यण देने । उन्होंने भी बिल्कुल होकर रामके पूछनेपर ना कर दिया ॥ ९९ १०१ ॥ वे लोग विचारने लगे कि “यदि ऐसा ना हो तुम लोगोंने सीताकी उस समय पिण्ड देनेसे रोका क्यों नहीं । ऐसा कहकर कही सत्य कहनेपर राम हमसे शाप दे दे” सीताने उसको भी शाप दिया कि आखो, तुमछोन इन्धते कभी तृप्त न होकर भारे-भारे किरने । तब जानकीने

द्रव्यार्थं सकलान् देवान् ब्रह्मणं दीनरूपिणः । ततः सा जानकी प्राह ओतुःसाक्ष्यं प्रदास्यति ॥ १०४ ॥  
 सोऽपि पृष्टो नेत्युवाच रामं सीता सशप ताम् । पुच्छाम स्वपुरः कृत्वा पत्रा मन्त्रिकद्वेऽपि तन् ॥ १०५ ॥  
 मृपेरितं यतस्तस्मात्पुच्छे षष्पृश्यतां भव । ततः सा जानकी प्राह गीर्मे साक्ष्यं प्रदास्यति ॥ १०६ ॥  
 सोऽपि पृष्टा नेत्युवाच रामं सीता सशप ताम् । अपवित्रा भवाग्रे त्वं यम वाक्येन धेनुके ॥ १०७ ॥  
 ततः सीताश्चत्थपुच्छं साक्ष्यार्थं प्राह राघवम् । स पृष्टो नेत्युवाचाश्च सं सीताऽप्यावपुच्छा ॥ १०८ ॥  
 भवाचलदलरुचि हि मद्रिराऽयन्यपादप । पुनः सीता पक्षिं प्राह यम मार्गी प्रमाकरः ॥ १०९ ॥  
 स पृष्टः प्राह सुध्यं हि सुष्टिर्जाता पितुम्नव । एतस्मिन्नतरे तत्र विमानेनार्कवर्चसा ॥ ११० ॥  
 राजा दशम्यो रामभाग्यपालिष्य वै पदम् ॥

प्राह स्वया तारितोऽहं नरकादतिदुस्तरात् । मेधिन्याः पिण्डदानेन जाता मे तृप्तिरुचमा ॥ १११ ॥  
 तथापि लोकशिषार्थं गयाभद्रं त्वमाचर । पितरं प्राह रामोऽपि किमर्थं हि त्वयाऽत्र वै ॥ ११२ ॥  
 स्वया सिक्तापिण्डं सगृहीतो वदस्व माम् । स प्राहात्र गयार्थां तु बहुविधानि राघव ॥ ११३ ॥  
 मरंदि आद्रुमयधे कृता तस्मात्परा भवा । इति रामं समाभाष्य गृहीत्वा राघवादपि ॥ ११४ ॥  
 किञ्चित्कन्यं विमानेन यया दयस्वस्तदा । ततो गमः प्रेतगिरौ पिण्डदान विधाय च ॥ ११५ ॥  
 गन्वा प्रेतशिनायां च दत्त्वा काकवलि ततः धर्माग्न्य ततो गत्वा कुर्वकोनपदेषु हि ॥ ११६ ॥  
 सक्तुना च तिमार्ग्यश्च पायमैश्च सशर्करैः । पृथग्वै पिण्डदानानि वटभ्रातृं विधाय च ॥ ११७ ॥  
 अष्टमीर्थो ततः कृत्वा ततः मध्यां स्थलत्रये कृत्वा यथाविधानेन दत्त्वा दानान्यनेकराः ॥ ११८ ॥  
 गदाधरं ततः पूज्य महाविभवं पूर्णरुम् । सेनयामाम तोयंश्च जूतवृक्षं सर्काकटम् ॥ ११९ ॥

एको मुनिः कुमकुशाग्रहस्तभृतस्य यूने मलिनं दयार ।

आम्रश्च मिक्तः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्वयर्थकरो प्रपिदा ॥ १२० ॥

चितारकी साजी देनेके लिए कहा । उसने भी पूछनेपर ना कह दिया । सीताने उसे भी जाप देने हुए कहा कि उस समय मेरे समझा पूछ किसे खड़े रहनेपर भी आ मुन ना कह दिया है । इसलिए जा नही पंछ भ्रष्टुन हो जायगी । तब जानकीजीने गौका साक्षी दत्तेर लिए कहा । १०२-१०६ ॥ रामके पूछनेपर उसने भी ना कह दिया । सीताने कहा है धनु । पर शपसे तेरा मुख अरबित हो जायगा । १०७ ॥ पश्चात् सीताने पीपलके वृक्षकी साती दनक लिए रामके मधुमुख उपस्थित किया । जिसका नाम अश्वत्थ था, परन्तु जब वह भी इन्कार कर गया तो सीताने जाप करने भाव दिया कि तू भाजसे जचलदल हो जायगा । तब क्षणमे सीताने कहा कि मूर्ख मेरी साक्षा दम । रामके पूछनेपर मूर्खने कहा कि यह बात सत्य है । इस कायसे आदक पिता अवश्य मनुष्ट हुए है । इतन्म सूचक सनात कर्त्तमान विमानपर खडा होकर स्वयं महाराज दशम्य नहीं भा पड़ेंगे । रामका दृष्ट आश्चर्यजन करने ने जाते है राम ! तुमने यशार्थम तृप्तको पार दिया है । मेबिनीके पिण्डदानसे हम बड़ो ही तृप्ति मिली है ॥ १०८-१११ ॥ तो भी लोकशिषाके लिए तुम मरथ्य द्रु अवश्य करो । रामने पिताम पूछा कि आगत यहाँ इतनी जल्दी आत्यकपिह क्यों ग्रहण किया ? इसका क्या कारण है ? दशरथने कहा है राम ! गगन पितृदानके समय ब्रह्म ब्रह्म निम्न उपस्थित होत है । इसीलिए मैने स्वरा को थी । इतना कहकर राजा दशम्य रामके हायम भी कुछ कथ्य । विनृ-अम्र ग्रहण करके विमान द्वारद वहाँसे चले गये । पश्चात् रामने प्रेतपर्वतपर पिण्डदान दिया ॥ ११२-११५ ॥ वहाँसे वे प्रेतशिना मये । वहाँ काकवलि देनेके बाद परमंवन गये । वहाँ एकानपद मयानमे तिल-पावस तथा शकरारो मुक्त सक्तुके पृषक्-पृषक् करके अनेक विष्ट दिये और वटभ्रातृवार्थ सम्पदन किया ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ तदनन्तर अष्टमीयो की । तीनों नियतस्थानोंमे सम्ध्यावन्दन करनक बाद विधिबन् बहुमसे दान दिये ॥ ११८ ॥ अनेक विषयोसे गदाधरकी पूजा की और मयधरेणस्य आसक्तुसका जलसे सेवन किया ॥ ११९ ॥ कहा भी है किसी

कृत्वा विष्णुपदे पूजां विमानागोपणादिभिः । सावप्रवसनिक्रम्य यथायां रघुनन्दनः ॥१२१॥  
 विमानेन ययौ शार्चां दिशः संतोषयन् जनान् । कल्गुनद्याम्नटे पूर्वं विमानं यत्र मस्थितम् ॥१२२॥  
 तत्र रामगयानाम्ना भूमिभिर्गुरुतार्यन् । रामेश्वरी रामतीर्थं वनेने तत्र पावनम् ॥१२३॥  
 रामोऽपि कल्गुनद्याश्च गङ्गायाः संगमं ययौ । गयावहिः कल्गुरेव शेका सा तु महानदी ॥१२४॥  
 ततो ययौ दृढरूप नूतनाश्रमधुनमम् । यस्मिन्नुदम्बहा गङ्गा जाह्नवी रावनाशिनी ॥१२५॥  
 ततोऽग्रं ज्ञानकीं ज्ञान्वा भूमौ दिव्यं प्रदाम्यते । तस्या दिव्यरुद्धे रामस्तोत्रपादौ चक्रार सः ॥१२६॥  
 ययौ च पृथक् तत्र सति तीर्थानि सर्वतः । मातया च कुत तत्र स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥१२७॥  
 ज्ञान्वा भविष्यत्यग्रे मनीषं चेति मविस्तरम् । यदा भूमौ यदास्थामि दिश्य तार्थं तदाऽस्तु मे ॥१२८॥  
 रामस्त्वनेन विमानेन गतश्चोत्तरादिर्नृप । ज्ञान्वा पुरो तथा गङ्गां यत्रास्ति परमार्थदा ॥१२९॥  
 ययौ यत्र गङ्गायामस्ति विन्वेश्वरोऽपि च । ततः शर्वजनायेश नन्दा रावणनिमित्तम् ॥१३०॥  
 ततः क्षुण्णविमानेन पर्यन्तानास्थलानि सः । ययौ भागीरथीमस्यायत्र भिन्ना मिता पुनः ॥१३१॥  
 प्रयागाद्यात्रनक्षत्रमानं देजे रघूदहः । ततो गङ्गां शर्वमशंगमदस्य पुष्पकेन सा ॥१३२॥  
 गत्वा स्नात्वा ततो यत्र कालिदीर्गगताऽग्रहे । तत्र गत्वा रघुशुभ्रस्ततः पर्यन् स्थलानि सः ॥१३३॥  
 नानापुण्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा श्रीगुरुतेजसम् । पूर्वमागन्तीरस्थं दृष्ट्वा दानान्पुनरेकशः ॥१३४॥  
 ततः श्वेतैः पुष्पकेन दृष्ट्वा नानाविधान् सुगन् । दृष्ट्वा नाना नदीः सर्वा नानादेशान्विलस्य च ॥१३५॥  
 गोदातीरे स्वनाम्ना तु कृत्वा गिरिमनुत्तमम् । सप्तगोदावरीमेदमंगमेषु महोदधी ॥१३६॥

एक मुनिने तुषागुन् हाथन जन्का पहा न्केर आसृष्टक मूलम जल दिया । उसमे आसृष्टम मिच गया और  
 गिर भी दृष्ट हो गये । इसोके आधारपर 'एक त्रिपा द्वयर्चयते' का कहावत प्रचलित हुई ॥ १२० ॥  
 इसा प्रकार प्रतिदत्त विष्णुपदकी पूजा करत और विमानपर बैठकर धूमत फिरत हुए रामन गयामे एक  
 दर्श स्मृतोत किया ॥ १२१ ॥ पञ्चान् सब लोकोको आभासन दे तथा विमानपर सवार होकर रघुनन्दन पूर्वकी  
 ओर चल दिये । कल्गुनदीके किनार जहाँ रामका विमान रुका हुआ था ॥ १२२ ॥ उस जगहको वहाँके विज  
 गम्गया कहन लग । पवित्र रामेश्वर नामका रामतीर्थ अभी भी बहू विद्यमान है ॥ १२३ ॥ राम वहाँमे चल  
 कर पङ्गु तथा गंगाके संगमपर आये । गयाके बाहुगे घावम पङ्गु नदी है उसका विस्तार बहुत बडा  
 है ॥ १२४ ॥ बादमे मुगल ऋषिके वर्जित आश्रमका ओर गये । जहाँपर पाप हरण करनेवाला गंगा  
 उत्तरवाहिनी होकर बहता है ॥ १२५ ॥ आगे चलकर एक जगह जहाँ कि उहें विश्वास था कि यहाँ जानकी  
 भूमिमे प्रवेश करके दिव्य रूप धारण करती, अपने नामका एक उत्तम तीर्थ स्थापित किया ॥ १२६ ॥ उसके  
 बाद रुद्रमण आदि आहवाके नामसे भी जन्का तीर्थ स्थापित दिये । लीनाने भी वहाँ, यह विचारकर  
 कि भविष्यमे सर नामका यहाँ बडा भारी तीर्थ होगा एक आन नामका तीर्थ स्थापित किया । उन्होंने यह  
 विचार कि जब ये दिव्य रूप धारण करेगी, सब यहाँ दिव्य तीर्थ होगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ पञ्चान् राम  
 विमानमे बैठकर उस जगह गये, जहाँ कि बरुवाणकारिणी उत्तरवाहिनी नामकी गंगा तथा एक नगरी विद्यमान  
 थी ॥ १२९ ॥ और जहाँपर शीघ्र गंगामे विन्वेश्वर नामका पवत खडा है । वहाँसे आगे चलकर शारामने  
 नखण ज्ञान स्थापित वैद्यनाथजीका दर्शन किया ॥ १३० ॥ तदनन्तर विमानमे बैठकर अनेक बनाकी शाभा  
 दखन हुए वहाँ गये, जहाँमे कि श्वेतजल पुष्प गंगा बीचो बीचसे दो भागमे बँट गयो है ॥ १३१ ॥ वह स्थान  
 प्रयागसे ली योजनका दूरापर था । पञ्चान् राम विमानके द्वारा वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि गंगा सहनमुखी हो  
 कर समुद्रमे मिली है ॥ १३२ ॥ उस जगह गंगा-मनुदमङ्गमसे स्नान करनेके बाद कालिन्दी-समुद्रके  
 संगममे स्नात किया । वहाँपर रामन अनक मनोहर पुष्पित बनोपवन देखे, अनेक तीर्थोके दर्शन किये  
 और साथ ही पूर्वी सागरके तटपर स्थित जगदान् परम गुरुदेवत्मके भी दर्शन किये तथा अनेक दान दिये  
 ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ वहाँमे चलकर अनेक देवताओके दर्शन करते हुए अनेक लखियोंकी लीधकर गोदावरीके

स्नान्वा दक्षिणमार्गेण ततो रामो ययौ पुनः । पूर्वदेशे नृपनिर्मितानिः पूजितोऽपि च ॥१३७॥  
गृहीत्वा स्वकर्त्रेभ्यस्तैः सहैव पुनैः शनैः । विमानेन मुखेनैव तीर्थान्यन्यानि सेवितुम् ॥१३८॥  
श्रीरामो याम्यदित्रानि दक्षिणार्धमुखो ययौ । एवं प्रोक्त्वा पूर्वदेशयात्रां रामेण या कुता ॥१३९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे अष्टाकाण्डे पूर्वदेशयात्रायावन्तं नाम षष्ठं सर्गः ॥ ६ ॥

## सप्तमः सर्गः

( श्रीरामके द्वारा दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रा )

श्रीरामदास उवाच

ततो रामः समुल्लस्य मनस्यनीध मनोरमम् । तान्तां महानदीं कृष्णां पश्यन् पुण्यस्थलानिमः ॥ १ ॥  
ततो ययौ नार्गमिह रामः पानकनामकम् । कृष्णाऽऽदि सगमे स्नान्वा दद्यात् दानं निःस्पृहः ॥ २ ॥  
पश्यन्नातास्यलज्जयेव ययौ शशङ्कया । स्नान्वा स नीलगङ्गायां दृष्ट्वा श्रीमच्छिवं तेनम् ॥ ३ ॥  
तत्रैव कृष्णायां जेगा नीलगङ्गेरि नमः शार्ङ्गलज्जितम् दृष्ट्वा पुनर्जन्मनिवारकम् ॥ ४ ॥  
शिवरेखरस्य शिखरादुन्नतकुण्डे विमलं च भीमकुण्डे ततः स्नान्वा नद्या निवृत्तिनगमे निः ।  
तुङ्गभद्रार्णगमेऽपि महानदीमग्रेऽपि विमलं भवनाश्रित्यां ततो दृष्ट्वा सार्धवलम् ॥ ६ ॥  
नारसिंह ततो गन्वा कुन्ता स्वध्वजदक्षिणाः गन्वा पुण्यगिरीं तत्र विनाकीर्णगङ्गायां च ॥ ७ ॥  
पश्यन् पुण्यस्थलानीशान् दृष्ट्वा पद्मामशेरम । किष्किषायां ततो गन्वा सूर्याश्रयः संपूजितः ॥ ८ ॥  
सूर्याश्रयार्णवस्थं विमानेन विहायवा । प्रवर्षणगिरौ स्नान्वा सुदीर्घां रम्भां प्रदत्तवन् ॥ ९ ॥  
वैदेहीं कौतुकाद्रामः किञ्चिन्कृत्वा विमाननम् । द्वितीये भीमकुण्डेऽथ स्नान्वा गन्वा पद्माननम् ॥ १० ॥  
स्नान्वाऽगस्त्यकुण्डमध्ये पश्यन्तीर्थान्यनेकशः कनकगिरिस्थं शम्भुं तन्वा सपृथग् राघवः ॥ ११ ॥

किंवारे आये । वहाँ उन्होंने अपने नामवा एक उत्तम पर्वत नियत किया । बादमें सगरके साथ गङ्गातीरे सङ्गममें स्नान किया । पश्चात् वे दक्षिणमार्गमें पूर्वका ओर आ गये । वहाँ अन्य राजाओंका पुजित नाम सम्मानित होकर और उनसे कर लत हुए उनको भी साथ लेकर चोरेचोरे विमानक द्वारा अन्यान्य तीर्थोंको देखनेकी इच्छासे दक्षिण भारतकी ओर बने । इस प्रकार रामकी पूर्वप्रदेशकी यात्रा समाप्त हुई ॥१३५-१३९॥  
इति श्रीमदानन्दरामायणे अष्टाकाण्डे अष्टाव्याख्या भाषागोकाया पूर्वदेशयात्रावन्तं नाम षष्ठं सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—वहाँसे राम मनोहर मन्वन्त र्व हात हुए महानदी तथा कृष्णाका पार करके अन्याय पवित्र स्थानोंका देखत हुए पानक तृप्तमहतीर्थ गये । पश्चात् कृष्णा तथा समुद्रके सङ्गममें स्नान करके उन्होंने अनेक दान पुण्य किये ॥ १ ॥ २ ॥ वहाँसे विविध वनोंक सीन्दर देखते हुए राम शार्ङ्गल पर्वतपर पधार । वहाँ नीलगङ्गामें स्नान करके श्रीमच्छिवका दर्शन किये ॥ ३ ॥ वहाँपर कृष्णा नदीका ही नाम नीलगङ्गा पड़ गया है । पुनर्जन्मके निवारक शार्ङ्गलज्जितको देखकर शिवरेखरके शिखरसे निकले हुए अष्टकुण्डमें स्नान किया । इसके अनिरुक्त भीमकुण्ड, निवृत्तिसङ्गम, तुङ्गभद्राके सङ्गम, महानदीके सरोवर और भवनाश्रित्यमें स्नान किया । वहाँ महाप्रतापी नरसिंहजीका दर्शन किया तथा स्तम्भकी प्रदक्षिणा की । वहाँसे श्रीम पुण्यगिरिपर आकर विनाकिनी नदीमें स्नान किया ॥ ४-७ ॥ बादमें अनेक आश्रमों तथा विविध पुण्यवनोंको देखते हुए पद्मासरोवर और वहाँसे किष्किषा गये । वहाँ सुग्रीव आदिन रामका विविधन् पूजन-साकार किया ॥ ८ ॥ वहाँसे सुग्रीव आदि वानरोंका साथ ले तथा विमानपर आरुढ़ होकर आकाश-मार्गसे प्रवर्षण गिरिपर पधार । वहाँ जानकीकी अपना निवासगुफा देखकर आराम कुछ हुई । फिर भीमकुण्डमें स्नान करके पद्मानन कार्तिकेय स्वामीका दर्शन करतक लिए गये ॥ ९ ॥ १० ॥ अगस्त्यकुण्डमें

धीमदः कदा दृष्टुः मन्त्राद्विदेहः पुनः परिदा ज तं नन्वा तृमिपननमभितम् ॥१२॥  
 स्नानं काभ्यधारां नाथयाद्वि राय च । ततः शेषचरं गन्वा स्नाना पुष्करिणीजने ॥१३॥  
 यद्दृष्टुः पुनर्धिया पंचनीशः रिता न म । तृणवृक्षवृक्षानामभ्यं श्रीकालहस्तिनम् ॥१४॥  
 पूजां यदीकार्त्ता गमः शिवद्वारायाम् । एकाग्रश्च पश्य सर्वतोर्थं विनाश च ॥१५॥  
 कामक्षामयिका नन्वा स्नाना येन श्रीजने । नन्वा वरदाजं च पलितोर्थे नतो ययौ ॥१६॥  
 पश्चिधनुनामानं पश्चिधो पश्य नीयता पुष्पकं नतः शीघ्रं क्षीरनद्यां विगाढ च ॥१७॥  
 नन्वा शिविजयं तत्र नगेशादयं चतुष । मुक्तिर्नन्वा गच्छेत् नन्वा नमस्काचलम् ॥१८॥  
 मणिमुक्तानंदनारे वृद्धाचलमगानतः वृद्धाचलेन संपश्य वटपालं नता ययौ ॥१९॥  
 वटपालेश्वरं पश्य ततः श्रीमुष्टिमस्थानम् । तत्र यत्पराद च संरूप्य जगदीश्वरम् ॥२०॥  
 चिदम्बरमध्यागच्छद्गंगादेव मुक्तिदम् । लिखिता पत्रं शृणुय शिलायां ताण्डशकुनिः ॥२१॥  
 काशीं च तमस्मान्तरां गिरिक्षेदं नतो ययौ । नन्वा अश्वपूरेण च वैद्यनाथं प्रणम्य सः ॥२२॥  
 येनागम्य नतो गन्वा शंखमुत्तरां विगाढ च । छायावनं नतो दृष्ट्वा ययौ गौरीश्वरकम् ॥२३॥  
 वेदागम्य नतो गन्वा नन्वा मध्याजने शिवम् । स्नानाऽथ वृद्धकावेरीं कुवकोणं विलोक्य च ॥२४॥  
 श्रीनिवासं नतो दृष्ट्वा दृष्ट्वा वृद्धावनं शुभम् । मार्गनाथं नतो दृष्ट्वा भीष्मं च ददर्श सः ॥२५॥  
 प्रयागमाध्वं नन्वा गन्वाऽऽम्रशिरसः स्थनम् । शिलायां कश्चनीलायं यन्वाऽथ कमलाचलम् ॥२६॥  
 त्र्यम्बकं समभ्यर्च्य गयार्वाधे विगाढ च । दक्षिणद्वारकायां च श्रीगोविन्दं प्रणम्य सः ॥२७॥  
 जैपालस्य पुरं गन्वा गन्वा चागम्येश्वरम् । विघ्नेश्वरं नमस्कृत्य पुनः सध्यापितं स्वयम् ॥२८॥  
 स्नाना वै नवरात्रौ ययौ देव्याश्च वननम् । स्नाना वेतालनाथे वै तीर्थीणि सागरस्थ च ॥२९॥

स्नान करके अनन्त नये देखे । कनकाशिर पर विराजमान मन्वाका दर्शन करके उत्सवा पूजा की ॥ १२ ॥ बादमें धीमदका दर्शन करके पश्चिमी पर प्रसिद्ध अक्षवेदकाको नमस्कार किया । तदनन्तर तृमिपनन ( विरदति नगर ) में स्थित गौविन्दराजका दर्शन किया ॥ १३ ॥ वहाँ कश्मिष्ठागम स्नान करके त्र्यम्बकाद्वि किया । वहाँसे शेषचरपर जाकर पुष्करिणीक जलमें स्नान किया ॥ १४ ॥ वेददृष्टा भगवानको पूजा-अर्चा करनेके बाद पंचनीशमें स्नान विगाह प्राप्त मुक्तानन्दरतीके तत्पर विराजमान भाकालहस्तीश्वरका पूजन करके राम शिव तथा त्रिपुण्ड्री शिव शिवक जी और विष्णुपूजा गये । वहाँ एकाग्रेश्वरकी पूजा करके सभी भाषाओंमें भगवान् कहें किया ॥ १५ ॥ तब कामाक्षी देवीको नमस्कार करके वेगदताक रावण जन्म स्नान किया । वहाँसे आगे वरदाजका दर्शन करके पवित्रार्थ गये ॥ १६ ॥ वहाँ पुनः तथा विद्याना नामक दो पक्षियोंकी पूजा करके सोनाक साथ विमानपर बैठकर शीघ्र ही क्षारनदीपर पधारे, वहाँ स्नान कर और त्रिविक्रमका दर्शन करके अश्वपूरे गये । स्मरणभारसे मुक्ति देनेवाले अकलाचकको नमस्कार करके मणिमुक्त नदीके तटपर स्थित वृद्धाचलपर गये । वहाँ वृद्धाचलेश्वरका पूजा करके वटपाल गये ॥ १७-१८ ॥ वहाँ वटपालेश्वरकी पूजा करके मुक्ति लार्थ गये । वहाँ गजवशह्वरी पूजा करके दर्शनभाजसे निर्वाण भद देनेवाले चिदम्बरेश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँपर शिलायें जेवनायकी लिखी हुई ताण्डवचित्रावली देखी ॥ २० ॥ २१ ॥ पछत्तु कावेरीको पार करके सिद्धोज गये । बादमें अश्वपूरेण और वैद्यनाथकी प्रणाम करके भ्रमण श्वेतारम्भ पधारे वहाँ कालमुक्तीमें स्नान किया । वहाँसे छायावन हालत गौरीश्वर गये । वहाँसे वेदारण्य आकर मध्याह्न निवका दर्शन किया । पछात्तु वृद्धकावेरीमें स्नान करके रुक्मकागन देखा । २२-२४ ॥ वहाँसे आगे श्रीनिवासका दर्शन करके चिन्ताकर्षक वृद्धावनकी आर गये । तदनन्तर मार्गनाथका दर्शन करके अचलके दर्शनार्थ आये गये ॥ २५ ॥ वहाँ प्रयागमें वेणीश्वरका दर्शन करके जाऊणिरस राजक स्थानपर गये । वहाँकी भंतमें बाकागके समान लीलाकमलाचल देखा ॥ २६ ॥ बादमें स्वर्गेश्वरकी पूजा करके गयार्वाधमें स्नान किया और दक्षिण द्वारका और श्रीगोविन्दकी प्रणाम किया ॥ २७ ॥ वहाँसे जैपाल नामक नगरमें आकर



स स्नात्वा भैरवे तीर्थे प्रार्थकांनस्थित निजम् । अवरुह्य विमानाद्यन्वद्वयौ भवैर्जनैः सह ॥३०॥  
 गन्वा रुक्मणकुण्डेऽथ स्वरकुण्डेऽपि विगाह्य च । अग्नितोषे ततः स्नान्वा धनुष्कोट्यां विगाह्य च ॥३१॥  
 स्नात्वा जटापुनीर्थे हि गन्वा त गधमादनम् आदा नन्वा विभनाय पुगाऽऽर्चनं हनूपता ॥३२॥  
 रामेश्वरं ततो नन्वा कृत्वा गंगामिषेचनम् काचरुमादिकं न्यक्त्वा धनुष्कोट्यां रघूचमः ॥३३॥  
 कोटितीर्थं धनुष्कोट्यां चकार कृपमुनमम् । क्षेत्रपापप्रज्ञांन्यर्थं दृष्ट्वा श्रीसेतुमाधवम् ॥३४॥  
 नानादानादिकं कृत्वा सममेकं विलिख्य च बाहनाकटदेवानां महोन्माहान्विधाय च ॥३५॥  
 क्षेत्रपापप्रज्ञांन्यर्थं कोटितीर्थं विगाह्य च । नन्वा द्वागन्धगगन नीन्वीध जलधेः पुनः ॥३६॥  
 पिहायस्त विमानेन स दर्भशयनं ययौ । स्नान्वा निक्षेपिकातीर्थेऽन्नाम्रपर्वच्छिखसंगमे ॥३७॥  
 गन्वा स्नान्वा रामचंद्रो दत्तो दानान्पनेकशः । नन्वाऽऽध्वेन्यग्मस्थं तं स्कन्दं मयज्य राघवः ॥३८॥  
 ताम्रपर्णीतटेऽनघं पश्यन्पुष्पस्थलानि सः । नन्वेकटनाथांश्चाकृत्वा सोमोद्रिमापयौ ॥३९॥  
 कन्याकुमारिकां दृष्ट्वा सिन्धुतीरनिवापिनीम् । प्रतीक्षतीं शीघ्रमार्गं विभ्रतीं मालिकां करे ॥४०॥  
 तामाह रघुवीरश्च वरं वरय सुव्रते । सा प्राद राघवं नन्वा चिगमस्मि वनस्थिता ॥४१॥  
 अहं बुभुक्षुता पित्रा सुरेद्राव विनिश्चिताः । विशदर्थं यमानानां सुरेद्रो योजन स्थितः ॥४२॥  
 तव पाशोपमं भूत्वा यया विते विनिश्चितम् । आगमिष्यसि रामोऽत्र परपिष्याम्यहं तदा ॥४३॥  
 पित्रा मन्त्रिष्ये शास्त्रा सुरेद्रो विनिश्चितः । योऽपि मन्त्रेदन्विष्यतु योजनेऽप्यपि वर्तते ॥४४॥  
 विवाहोपकृणादि मन्मात्रा यत्कृतं पुरा । पित्रा तत्सागरे क्षिप्तं कोषाविष्टं राघव ॥४५॥

अमरेश्वरका वर्चन किया । पश्चात् रामचन्द्रने पूर्वसमरमे कपन द्वारा स्थापित विष्णेश्वरका दर्शन किया ॥ ३८ ॥ वहाँके लक्ष्मणकुण्डमें स्नान करके दक्ष नगर गये । फिर वैनायकीर्थमें स्नान करके सागरके जगह जल-  
 प्रवाहको पार करके ॥ ३९ ॥ एकान्तमें स्थित भैरवतीर्थ गये । वहाँसे पैदल चलने हुए सबक साथ साथे गये ।  
 जाने जाकर रुक्मणकुण्ड, रामकुण्ड, अग्नितोष, धनुष्कोटिसभ्ये और जटापुनीर्थमें स्नान किया । वहाँके  
 गधमादन पर्वतपर गये । वहाँ पूर्वसमरम हनुमानका क द्वारा स्थापित हुए विभनायका दर्शन किया ॥ ३०-३२ ॥  
 पश्चात् रामेश्वरको नमस्कार करके उन्हें एक जलसे स्नान कराया । बाह्य रामन नामो काचके पत्थरको  
 धनुष्कोटि तीर्थमें फेंक दिया ॥ ३३ ॥ उस धनुष्कोटि तीर्थमें रामन काटितर्थ नामका एक कूप खुदवाया ।  
 बादमें क्षेत्रपापकी शक्तिके लिए श्रीसेतुबंध माधवका दर्शन किया ॥ ३४ ॥ वहाँपर जनक दानपुण्य  
 करते हुए रामने एक माय निवास किया । जनक बाहनाम्ब देवताओंका बहुभस्म भी वहाँ मन्त्रका  
 ॥ ३५ ॥ पश्चात् पुनः क्षेत्रपापकी शक्तिके लिए कोटितीर्थमें स्नान किया । द्वागन्ध गगनायकी  
 नमस्कार कर तथा विमानके द्वारा समुद्र पार करके दर्भशयन नामके तीर्थको गये वहाँ निक्षेपिकाक जलमें  
 और ताम्रपर्णी तथा सागरके संगममें स्नान किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ भी जनक दान दिदे । पश्चात् रामने  
 धनुष्कोटके तटपर विराजमान कालिकेय स्वामीको पूजा की ॥ ३८ ॥ बादमें बाह्यर्णीके किनारे किनारे राम  
 जनक पवित्र स्थानको देखते तथा नवनेकटेश्वरीकी पूजा करते हुए तांशद्रि गये ॥ ३९ ॥ पश्चात् सिन्धुतीर-  
 निवासिनी कन्याकुमारिकाके दर्शन दिये, जो कि हाथम माला लिये उन्हीं ( राम ) की राह देख रही थीं ॥ ४० ॥  
 राजकीये उससे कहा है सुव्रते ! वर मांगो सब उसने रामको नमस्कार करके कहा है राघव ! मैं बहुत दिनोंसे  
 सब वारण करके आपकी प्रतीक्षामें यहाँ लगी हूँ ॥ ४१ ॥ मैं एक मुनिकन्या हूँ । मेरे पिताने मुझे सुरेन्द्रकी  
 देना निश्चित किया और उनको विवाहके लिए बुलाया भी था । जो कि अब भी यहाँसे एक योजनकी  
 दूरीपर विद्यमान है ॥ ४२ ॥ परन्तु मैंने जब आपकी तीर्थयात्राका समाचार सुना तो मनमें यह निश्चय कर  
 लिया कि राम जब यहाँ दाशके निमित्त आयेगे, तब मैं उन्हींसे विवाह करूँगी ॥ ४३ ॥ पिताने जब मेरा  
 यह हृद निश्चय देखा तो सुरेन्द्रको छोटा दिया । वह मेरे लिए दुःखित होकर एक योजनपर जब  
 भी जाता है ॥ ४४ ॥ हे राघव ! मेरी माताने विवाहके लिए जो सामग्री एकत्रित की थी, वह सब मेरे

अत्रापि दृश्यते पश्य तरुर्नैतिर्गतं वृद्धिः । अथ स्वया तारिनाऽह मां दार्मीं कर्तुमर्हसि ॥४६॥  
 जन्वा मय्या ह्यभिप्राय तावाह रघुनन्दनः । एकपर्णाश्वर्न मेऽपि ज्ञेयमन्यसि कुमारिके ॥४७॥  
 अथ कृष्णावतारं स्वं भक्त मां नात्र मथयः । तद्रामवचनादेव यमस्य नियमैरपि ॥४८॥  
 यावद्वापः स्थिता भूम्या तावद्धन्वा कलेवरम् । तशब्देन दहाने जायवती जनिष्यति ॥४९॥  
 जायवतीति नान्ता सा कृष्णपर्णा भविष्यति । रामो ययौ सुहृद् च पयोऽर्णी सविग ह्य मः ॥५०॥  
 आद्यननं ततो गन्वा तास्रपर्णीतटे स्थितम् । विनिद्रितं क्षेपयुष्टे लक्ष्मीगरुडसेवितम् ॥५१॥  
 ज्ञानव्या तास्रपर्णी मां स्वस्या पश्चिमव हिनी । अनन्तशयने गन्वा पश्यतीर्थ विगाह्य च ॥५२॥  
 जयतीर्थे मन्मथतया विगाह्य सीतया प्रभुः । ततो गन्वा विमानेन धर्माधर्मसरोवरे ॥५३॥  
 स्नान्वा जनादेन गन्वा पश्चिमे स्थितगोधमि । दर्शेऽथ र्ध निर्माया च गंगाधराब्धिगमम ॥५४॥  
 स्नान्वा जनादेन पूज्य नारीगान्धर्विलोक्य च । अथ श्रीरामचन्द्रं स न ययौ लोकशिक्षया ॥५५॥  
 परिदृश्य ततो रामो घृतमालां विगह्य च । कृतमालां ततः स्नान्वा मिन्धुनद्यां विगाह्य च ॥५६॥  
 गन्वा गजेन्द्रमोक्ष च तास्रपर्णीतटस्थितम् । तस्रपर्णयुद्धमे नान्ता गन्वा मैगलतीर्थकम् ॥५७॥  
 गन्वा चन्द्रकुमाररूप गिरि श्रीरघुनन्दनः । ततो ययौ विमानेन दृष्ट्वा दक्षिणकाशिकाद् ॥५८॥  
 नन्वा काशाविश्वनाथं चंपकाण्यमाथयौ । चित्रगंगाजले स्नान्वा नन्वा हरिहरौ शुभौ ॥५९॥  
 ततो रामो विमानेन मधुपुर्णां विवेद्य मः । वेगवती जले स्नान्वा नन्वा तं गौन्देश्वरम् ॥६०॥  
 मोनाक्षीमाचिका नन्वा वक्रट द्वावदे गिरौ । कावेगमध्यतिलपं श्रीरामशयनं ययौ ॥६१॥  
 मातृभूतेश्वरं नन्वा नन्वा तं जयुकेश्वरम् । रगनाथ ममभूतस्य हरिनारी ततो ययौ ॥६२॥

पिलान एकदृशकर मगुद्रम एकवा सी ॥४५॥ सप्तमाम । अत्र भी तरुनीक द्वारा नद्वर नद्वर कर लाहर आ  
 रहा है । हे प्रभा ! आज यहाँ आकर आगन मुजस नार विगाह है । अब आप इसा नद्वर मुज अपनी दामो  
 खना न । ॥४६॥ उसक अभिप्रायको जानकर रघुनन्दन समने कहा—हे कुमारिके । हम जन्मम तो मित अविचल  
 एकपत्न्य वर धारण कर रहस है ॥४७॥ अ म यत्रकर कृष्णावतारम मे त्व अवता प्राप्त हाऊगा । हममे  
 संकट गती है । रामचन्द्रके कथनानुसार जयलक र म गृहीतकर नद्वर तबकर चर यम निरभयलनपूर्वक  
 जीला रहा । तदनन्तर अपने तपोव्रतमे जमीर हूँ वर जाऊँगा रहा । पत्र ह कर ज. पश्यती न. मकी कृष्ण-  
 पत्नी वने । वहीमे राम नुरन्द मय तथा पयोऽर्णीमे स्नानकर न स्रपर्णीर तटपर स्थित अ ज्ञानन्त धेवर  
 पधार, जहाँ भगवान् विष्णु मथ्या तथा गण्डम मेविन द्वारा शयनागपर शयन कर रह थ ॥४८-४९॥  
 उनक दशन करक पश्चिमकाशिको न. साणीर मटपर मय ॥५०॥ स्नान करके पयतीर्थपर अनन्तशयनके दर्श-  
 नाथ गये ॥५१॥ मन्ता महित भगवान् जगुन र जकर मरगमट. म स्नान किया और वारमे नदीमे विमान-  
 पर सवार होकर धर्माधर्मलामक सरोवरपर गये । वहाँ राम करके पश्चिम मगुद्रतटपर विराजमान जनादेन-  
 के दर्शन किये । अमावस्या तथा पूर्णिमाको गंगा तीर मगुद्रके सङ्गमपर स्नान करके इन्होंने जनादेन मगवान्-  
 की पूजा की । उनके आगे स्वं राज्य देखकर श्रीराम त्यागका शिक्षा दत्तक निर्मित आगे नही बड़े । ॥५३-५४॥  
 वहाँसे लौटकर रामन भूतमाया, कृतमाया तथा मिन्धुनदम गान किया ॥५५॥ वर तास्रपर्णीके तटपर  
 स्थित गजेन्द्रमोक्ष गये । जहाँसे ता स्रपर्णी निकली है उस जाहु स्नान किया । वहाँसे मैराज तीर्थ गये ॥५७॥  
 वहाँसे चन्द्रकुमार पवतपर गये । पश्चात् विमानके द्वारा दक्षिणकाशा गये ॥५८॥ वहाँ विश्वनाथका  
 वसन करके चम्पकारण्य पधार । वहाँ चित्रगङ्गामे स्नान करके दशनमायसे कथ्यण करनेवाले हरिहरका  
 दर्शन किया ॥५९॥ व दमे गमने विमानपर बैठकर मधुपूरीमे प्रवेश किया । तदनन्तर वेगवतीके पवित्र  
 जलमे अवताहन करके जगदिव्याप्त सौंदर्यकर दर्शन किये ॥६०॥ तदनन्तर सीतेश्वी देवीके दर्शन किये ।  
 ब्रविर्दगिरिपर वेंकटेश्वरके दर्शन किये और वावराक मण्यमे निवास करनेवाले श्रीरामशयनका दर्शन  
 किया ॥६१॥ पश्चात् मातृभूतेश्वरका दर्शन करके जयुकेश्वरके दर्शनार्थ पधार । वहाँसे रजनाप आकर

श्रीगणेशाय नमः स्नात्वा हैमवर्णं तले । शान्तिप्रार्थनं नमस्कृत्य रामनाथपुरं ययौ ॥ ६३ ॥  
 स्नान्वा कृष्णधारया मुनिदुर्गं प्रपूज्य च । उदयगिरौ ततः कृष्णं नम्र्वा लुंणाचमयौ ॥ ६४ ॥  
 तुमन्तदावष्टे भूमिगिरौ नम्र्वा तं शारदाय । कृष्णधार्यां ततः शम्भा शम्भुं कोटेश्वरं शिवम् ॥ ६५ ॥  
 शम्भां चूर्णदेवीं देवीं नम्र्वा मुद्देश्वरं हरम् । गुणवेश्वरं नम्र्वा नम्र्वा धारेश्वरं ततः ॥ ६६ ॥  
 गौरीश्वरं नमस्कृत्य नम्र्वा भगेश्वरं शिवम् । गोकर्णं च ततो गम्य तं प्रणम्य महाबलम् ॥ ६७ ॥  
 हरीहरेश्वरं नम्र्वा पश्यन्महाबलमेकशः । जगदग्न्य महेन्द्रादौ नम्र्वा भीमेश्वरं ययौ ॥ ६८ ॥  
 भीमं महाबलं नम्र्वा ययौ कौलपुरं ततः । करवीरपुरं गम्य कृष्णधार्यां तु मगध ॥ ६९ ॥  
 स्नात्वा रामो विमानेन गङ्गालक्ष्मीश्वरं ययौ । स्नात्वा घटप्रभायां तु पश्यन् पुण्यस्थलानि हि ॥ ७० ॥  
 महादेवं नमस्कृत्य नम्र्वा मङ्गलार्जुनश्वरम् । कामानन्दोदयं च वक्रतुडं विनोदकं च ॥ ७१ ॥  
 नारायणोदये स्नान्वा नारसिंहं प्रपूज्य च । पांडुरंगं नमस्कृत्य चट्वरतां विमानं च ॥ ७२ ॥  
 ययौ भीमार्जुनं तु चट्पदां च ततो ययौ । ततः प्रेमपुरं गम्य नम्र्वा सार्धं दशभुजम् ॥ ७३ ॥  
 नीलदुर्गां विलोकयथ नाना पश्यन्महाबलानि हि । तुलजापुरमस्थां तां देवीं नम्र्वा ययौ ततः ॥ ७४ ॥  
 माणिक्यामयिकां दृष्ट्वा पश्यन्नीलां च गणेश्वरः । यार्गाधर्मं धर्मधर्मं दृष्ट्वा तत्राष्टमिधामम् ॥ ७५ ॥  
 पंचनाथं नमस्कृत्य वज्रगणेशं ययौ । नगेशं च विलोकयथ विमानेन च गणेशः ॥ ७६ ॥  
 स्नान्वा पूर्णबगमे तु गोदाया उतरे तटे । स्वनाम्नाश्च पुनः कृत्वा मुदलं श्रममाययौ ॥ ७७ ॥  
 बाणनाथं ततः स्नान्वा विष्णुकेनामुयगमे । गोदानाभावव्रतकेऽथ स्नान्वा नम्र्वा त्रिविक्रमम् ॥ ७८ ॥  
 कृत्वा परां स्वनाम्ना तु पुनः गोदावरीतटे । अंबिकां तु नमस्कृत्य चटिकां परिपूज्य च ॥ ७९ ॥

उनकी पूजा की । बादमें जिनकाही लक्ष्मीकी ओर गये ॥ ६३ ॥ श्रीगणेशाय । दण्डनेके बाद हैमवर्णके पवित्र  
 जलमें जाकर स्नान किया । पश्चात् शान्तिप्रार्थना नागवार करके रामनाथपुर पड़ा ॥ ६३ ॥ वहाँ कृष्ण-  
 धारामें अवगाहन करके अनन्तर मुद्देश्वरदरीके शान्तिदुर्गकी पूजा की । पश्चात् उतरी नामक कृष्णकी गंगा  
 कर्मके शान्तिप्रार्थनाके ओर चले ॥ ६४ ॥ वहाँ मुद्गभद्रा मदीमें स्नान करके भृङ्गिगिरिपर विराजमान  
 शारदादेवीके दर्शन किये । पश्चात् कृष्णधार्या होने हुए कोटेश्वर गये ॥ ६५ ॥ वहाँमें एक बिका दुर्गके दर्शन  
 करने हुए मुद्देश्वर शिवके दर्शनार्थ पधारे । पश्चात् भगेश्वर और उसके उपरान्त धारेश्वरके दर्शन किये  
 ॥ ६६ ॥ फिर गौरीश्वर तथा भगेश्वरके दर्शन किये । फिर गोकर्णेश्वर, जमदग्न्य तथा महेन्द्र पर्वतपर विराजमान  
 भीमेश्वरके दर्शन किये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तदुपरांत यौम और मङ्गलार्जुनका दर्शन करके श्रीराम काशीपर पधारे ।  
 पश्चात् करवीरपुर जाकर कृष्णा और वेणुके सङ्गममें स्नान किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर विमानेश्वर होकर राम  
 गङ्गादेवीश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँ घटप्रभामें स्नान करके वहाँके अन्यत्र पुण्यस्थल देखे ॥ ७० ॥ फिर  
 महादेवको नमस्कार करके मङ्गलार्जुनके दर्शनार्थ गये । बादमें नारायणके तटपर विराजमान अर्जुनशिव वक्र-  
 तुडके दर्शन किये ॥ ७१ ॥ बादमें नीला मदीमें स्नानकर तथा नगसिंहका पूजन करके पांडुरंगका पूजन और  
 चट्पदायामें स्नान किया ॥ ७२ ॥ तदुपरांत भीमानदीके सङ्गम तथा पंचनाथमें स्नान किया । फिर प्रेमपुरमें  
 जाकर उन्हीमें सार्धं दश भुजा दर्शन किया ॥ ७३ ॥ वहाँ नीलदुर्गाका दर्शन करके बहुतमें स्नानका  
 अवलोकन किया । पश्चात् तुलजापुरमें जाकर वहाँ देवीके दर्शन किये और बादमें भार्गव दे  
 ॥ ७४ ॥ भागे जाकर माणिक्य धर्मके दर्शन करके अन्यत्र पवित्र तीर्थोंमें श्रीरामने भ्रमण किया ।  
 पश्चात् अंबापुरमें विराजमान योगेश्वर प्रभाका दर्शन किया ॥ ७५ ॥ बादमें वंशनाथको नमस्कार करके  
 वज्रगणेशपर पधारे । वहाँसे विमान द्वारा नारीश्वरके दर्शनार्थ गये ॥ ७६ ॥ पूर्णके संगममें स्नान करके  
 नादवरीके उत्तरी किनारेपर अपने नामसे रामने एक पुरी बनायी । वहाँसे मुदल अधिके बाधम-  
 पर होते हुए बाणसीर्थ गये । वहाँ स्नान करके विष्णुकेनाक मनोहर भीमेश्वर गये । तत्पश्चात् गोदावरी  
 और अम्बिका नदीमें स्नान करके त्रिविक्रमके दर्शन किये ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ वहाँपर जो गोदावरीके तटपर

आत्मतीर्थेऽतः स्नान्वा नत्वा विज्ञानमीश्वरम् । महालक्ष्मीं विलोकयाम्य बडवासंगमं ययौ ॥८०॥  
 प्रतिष्ठानं विलोकयाम्य स्नान्वा वृद्धैल्लसगमे । शिवनन्दासंगमेऽथ नृसिंहं पतिपूज्य सः ॥८१॥  
 र्जीयताम्ना स्नातनीर्थे प्रवरसंगमं ययौ । सिद्धेश्वरं नमस्कृत्य निवासाख्यं पुरं ययौ ॥८२॥  
 तद्वासं पुरं गत्वा पश्यन्नानाभ्यलानि मः । ययौ गोदातटेनैव पुण्यस्थलं रघूदहः ॥८३॥  
 गत्वा कद्रुसंगमे तु विनतासंगमं ययौ । जनस्थानं ततो गत्वा ययौ ज्येष्कमीश्वरम् ॥८४॥  
 दाक्षिणार्त्यनृपतिभिर्मणितः पूजितोऽपि च । गृहीन्वा करमारुखं तेभ्यस्तैः सहितो ययौ ॥८५॥  
 एवं दक्षिणपार्थेयं या कृता राघवेण वै । सा मया विस्तरेणैव कथिता ज्येष्ठावधि ॥८६॥  
 इति श्रीमदानन्दरामायणे याज्ञिकाण्डे दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

### अष्टमः सर्गः

( राम द्वारा भारतवर्षके पश्चिमी प्रदेशकी तीर्थयात्रा )

विष्णुदास उवाच

गुरो जातोऽस्ति सदेहो मम विषे वदान्यहम् । स त्वया लिखतां स्वाभिन् साधवो हि कृपालवः ॥ १ ॥  
 यानारूढः न कर्तव्या यात्रा चेति श्रुतं मया । कथं यानेन रामेण कृता यात्रा स्वयेरिता ॥ २ ॥  
 इति जातोऽस्ति सदेहो मम त त्वं निवारय । इति शिष्यवचः श्रुत्वा गुरुः प्राहाम्य तं पुनः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

यदा यात्रा न कर्तव्या छत्रचामरधारिणी । गता द्वीपाधिपत्येन कार्या मांडलिकेन तु ॥ ४ ॥  
 पृथिवीशस्य देवस्य लग्नोदकवरस्य च । तथा मत्तधिपस्यापि गमनं न पदा स्मृतम् ॥ ५ ॥  
 तस्मात्तावत् त्वया कार्यः सदेहो राघवं प्रति । आहवा रामनद्रस्य कृपाऽपि च तैर्जनैः ॥ ६ ॥

अपने नामकी पुरो बसायी । फिर अम्बिका तथा चंडिकाकी पूजा की ॥ ७९ ॥ पश्चात् आत्मतीर्थमें आकर स्नान किया । दादमें विज्ञानेश्वरका दर्शन करके बडवासंगमपर स्नान किया ॥ ८० ॥ फिर प्रतिष्ठानपुरको देखकर वृद्धैल्लसगममें स्नान किया । शिवनन्दादे संगममें स्नान करके उन्हींने नृसिंहकी पूजा की ॥ ८१ ॥ तदनन्तर अपने नामके रामतीर्थको देखकर प्रवरसंगमपर गये । वहाँ सिद्धेश्वरको नमस्कार करके निवासस्थपुर गये । ८२ ॥ वहाँसे नुपुरनगर गये तथा और भी बहुतसे स्थान देखे । गोदावरीके तटपर होते हुए रघूदह राम पुण्यस्थल गये । ८३ ॥ वहाँसे कद्रुके संगमपर गये । वहाँसे आगे विनताके संगमपर गये । वहाँसे जनस्थान और वहाँसे ज्येष्केश्वर गये ॥ ८४ ॥ रास्तेमें दाक्षिणात्य राजाओंके द्वारा सम्मानित और पूजित होते हुए राम उनसे अपना कर उगाहते और उनका साथ नते हुए आगे बढ़े ॥ ८५ ॥ इस प्रकार ज्येष्ठावधि की हुई रामकी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा मैं तुमको कह चुनायी ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे याज्ञिकाण्डे 'जोत्था'मस्यातीकार्या दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो मेरे हृदयमें एक संशय है । वह मैं आपके सम्मुख कहता हूँ । आप उसको दूर करें । क्योंकि साधु महात्मा स्वभावसे कृपानु होंते हैं ॥ १ ॥ मैंने सुना है कि मवारोपर बैठकर यात्रा नहीं करनी चाहिये । फिर आपने जो कहा कि श्रीरामने विमानपर सवार होकर यात्रा की सो क्यों ? ॥ २ ॥ यही मुझ संदेह है, इसे आप निवृत्त करें । शिष्यके वचनको सुनकर गुरुने कहा । ३ ॥ श्रीरामदास बोले—  
 शास्त्रमें यह भी लिखा है कि ऐसे छत्रचामरधारि पुरुषका पैदल यात्रा नहीं करनी चाहिए, जो किसी द्वीपका अधिपति राजा हूँ । हाँ, मांडलिक अर्थात् किसी एक मंडलके राजाको तो पैदल हो यात्रा करना उचित है ॥ ४ ॥ वड़े पृथ्वीपतिको, देवताको, जिसका विद्वह होना हो ऐसे सरको तथा मन्त्रधोणको पैदल चरकर यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥ ५ ॥ अतः तुमको श्रीरामकी विमान द्वारा यात्रामें कितो प्रकारका भेद नहीं

अभिष्टिष्ठ पुण्यं तु को वेदेवगृहेष्टितम् । इदानीं रामचन्द्रस्य शृणु तं प्राक्तनीं कथाम् ॥ ७ ॥  
 पर्वकदासचन्द्रस्तु पुनः यत्र तु निद्रितम् । योन्या पर्वते तत्र गन्वा स्थित्वा दिनप्रथम् ॥ ८ ॥  
 मन्मृगागिरीं गत्वा गन्वाऽगस्तेस्तु काश्रमम् । सूर्यश्चगन्वाश्रमं गन्वा ययौ चैतपुत्रं ततः ॥ ९ ॥  
 पुण्येश्वरं नमस्कृत्य शिवलीये विगच्छ च । शृष्ट्वा रम्यं देवगिरिं विगजश्लेष्ममापयी ॥ १० ॥  
 मन्तापुरस्थां देवीं तां गन्वा पश्यन्त्यतानि वा । देवताष्टे नारायणं गन्वा रामश्च यौनदा ॥ ११ ॥  
 यकार विधिवत्स्नानं पयोपण्यां बंधुभिर्जनैः । स्नान्वा ताप्युद्गमं गमः स्नानाभ्यन्तः पर्वतोत्तमम् ॥ १२ ॥  
 गन्वा स्नान्वाऽथ रेकयाग्नौत्तमं परिपूज्य च । पश्चिमाभिमुखः पञ्चदशानां पुण्यस्थलानि हि ॥ १३ ॥  
 ताप्याश्च संगमे स्नान्वा नर्मदायाश्च संगमे । महानदीजले स्नान्वा प्रभातं च नदीं ययौ ॥ १४ ॥  
 पञ्चसाम्बतीनां च संगमेषु विगच्छ च । सौराष्ट्रस्य सोमनाथं दृष्ट्वा म भ्रमती नदीम् ॥ १५ ॥  
 पञ्चदशानां स्थलान्येव दृष्ट्वा द्वाय ययौ ततः । गाम्भ्यां विधिवत्स्नान्वा द्वायान्यां विदेशं यः ॥ १६ ॥  
 अनादिभिर्दा सप्तसु पुगीषु प्रथितं शुभम् । दृष्ट्वा कृत्वा तीर्थविधिं दत्त्वा दत्तान्यनेकजः ॥ १७ ॥  
 पञ्चमूर्तीर्षानि मन्त्रानि पुण्यानि त्वनन्दनः । शायमान्येनैव विधिभिर्मन्त्रितः पूजितोऽपि च ॥ १८ ॥  
 शृङ्गिण्या कश्मास्य स्व मेघमनैः सहितो ययौ । पश्यन्त्यतः सप्तदेवैः पञ्चपुण्यस्थलानि सः ॥ १९ ॥  
 पुष्पकस्थः शनैः यौवा दशवनं केलुकानि च । ययौ पुष्करार्थं वै नृपः सर्वत्र मवृत्तः ॥ २० ॥  
 विमाने चतस्रः गमः कोटिशो ब्राह्मणान् सदा । भोजयामास दिव्यवर्तः पायसैः शर्करादिभिः ॥ २१ ॥  
 विमाने वै स्थिताः पूर्वमयोध्यापुरवासिनः । तथा ये पूर्वदेवताया दक्षिणान्या नृपाश्च ये ॥ २२ ॥  
 वाचिमात्वा नृपा एवं ते वनंवाहनैः सह । रामेणालिखितम्बं वसन्ताश्रमादिभिः ॥ २३ ॥

करना चाहिए । उसी समयचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार और लोग भी विमानपर सवार हुए ॥ ६ ॥ ईश्वरकी आज्ञा के तीन समय सक्ता है ? भयं कृम्य कोशमकी प्राप्तिन कथा सुनी ॥ ७ ॥ पञ्चमूर्ति नामके चत्वार औरत १५ पर्वतपर गये, वहाँ सोताके साथ उन्होंने प्रथम निद्रा ली थी । वहीपर उन्होंने तीन रात्रि निवास किया । ८ ॥ सप्तसु पुर्वतपर जाकर बनेक मन्त्रहर स्थानोंमें प्रथम विरा । वहाँसे भगवत्स्य पुनिके आश्रमको गये शृङ्गिण्या मूर्तिस्थान पुनिके आश्रममें यथा ॥ ९ ॥ वहाँ पुण्येश्वरका नमस्कार किया, शिवलीयेमें स्नान किया, रामलीक देवगिरि देवा और वहाँसे विगजश्लेष्म गये ॥ १० ॥ वहाँ मन्तापुरनिवासिनी देवको नमस्कारकर बनेक स्थानोंको देखने हुए देवतागम जाकर अर्चनका प्रणाम किया । तीनों महिष रामने शृङ्गिण्या जाकर पयागनी नदीमें विधिवत् स्नान करके बन्धुमहित लयीके उदमस्थानमें स्नान किया । पञ्चान् पञ्चमूर्तीके पर्वतपर जाकर देवाओं स्नान काको भोकारभ्यको पूजा के और दक्षिणकी ओरके अनेक स्थान देख, जो कि बड़े पवित्र थे ॥ ११-१३ ॥ महानदीर तापी तथा नर्मदाके सामने स्नान करके महानदीके जलमें स्नान किया और वहाँसे प्रभातसेत्र गये ॥ १४ ॥ वहाँ पञ्चसाम्बतीके साथमें स्नान करके सौराष्ट्र ( गुजरात ) केनै मांमनाथजाका दर्शन किया । वहाँसे भ्रमती नदी गये । रम्यमें अनेक स्थानोंको देखने हुए राज्यदार दृष्टं गये । वहाँ गोपलीये विधिपूर्वक स्नान करके द्वायवली ( दारिका ) में प्रवेश किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो कि राजा पुनिकेमें अनादिभिर्दा, मन्त्रिभू और बकी ही मुन्तर पुरी है । वहाँ तीर्थविधि सम्पन्न करके अनेक दान दिये ॥ १७ ॥ इस प्रकार अनेक लीयोंको देखने तथा पश्चिमके राजा-महाराजाओंसे सम्मानित और पूजित हुए तथा उनके भजना कर लेने और उनके साथ पुण्य स्थानोंको देखने हुए राम सरस्वतीके किनारे-किनारे बने रहे । पुष्करपर स्थित राम महाराजी लीताको राममें अनेक कौतुक दिखाने तथा राजाओंको साथ में हुए पुष्करराज का पर्व ॥ १८-२० ॥ रामचन्द्रजी विमानपर भी प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मणोंको सुन्दर भोजन देकर बनेक मालपूजा आदि तथा मिषाद्युक्त और भोजन कराने थे ॥ २१ ॥ इतना ही नहीं, बल्कि लीता भी जो ब्रह्मपुत्रकी लीता नाम विमानपर पहुँचे ही गये हुए थे तथा जन्म भी जो बलिब देवके

पूजिता मानिता शायन् मादर ते यथाशुक्लम् । न कश्चिद्विन्तारकं हि चकार पुष्पके नरः ॥२४॥  
 चित्रा कण्टवृणादीनां जलस्यापि न कस्यचित् । एका चित्रा तु तत्रास्ति क्षुद्रोद्यो मे कथं भवेत् ॥२५॥  
 वाञ्छन्ति सर्वे तत्रैकं भिषकं चूर्णं प्रदास्यति । निद्रायास्तत्र शान्तिद्वयं चाद्यद्योर्निरंतरम् ॥२६॥  
 शानस्तत्र महानामाद्रिमानं वाक्यापिनाम् । गंतैर्नैव कटाक्षश्च कण्ठाभिर्वचनादिभिः ॥२७॥  
 मणिदीपैर्दिने रात्रिं न जानाति स्म तत्र वै गच्छद्दिने कदा यानं याति रात्रावपि क्वचित् ॥२८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं पुष्करध्वजंस्तदा महानादः श्रुतो गम्यो धनुलः श्रुतितोषकृत् ॥२९॥  
 शार्ङ्गान्पुरोङ्गतः कवचकंकणादीन्पि च । कन्ताडनगोतादिसूदंशपणवोद्भवः ॥३०॥  
 नववाद्यममुद्गतो घटीयत्रममुद्भवः । यानवशात्किंकिणीनां पनाकारवसभवः ॥३१॥  
 वार्गगताकर्पटनटकिंकणीसंभवोऽपि च । वाग्गणाश्चायुधोपूद्दिमशूकपिसम्भवः ॥३२॥  
 वीरभ्यो वेदशेषव्यः शिष्येभ्यश्च समुन्वितः । नटजातकस्यदिभ्यां मायधेभ्यः समुन्वितः ॥३३॥  
 गोदोहसंभवश्चापि स्याजामहिपिदोहजः । दाधिसंयनमभूतः शिशुना रोदनोद्भवः ॥३४॥  
 शिशुमवकस्यकद्वृक्षलाभ्यः समुन्वितः । नानान्त्रोद्भवाश्चापि पिष्टचक्रसमुद्भवः ॥३५॥  
 धुनपाचिनपक्वान्नप्रकाशकणोद्भवः । नारदादिमुनिश्रेष्ठधुनवीणादिमभवः ॥३६॥  
 पुगणकथनोद्गतो हरिकीर्तनसंभवः । गमनाममहमादिस्तोत्रपाठसमुद्भवः ॥३७॥  
 नारीपुरुषपेषणकार्ये ककणसंभवः । सादप्रक्षालनाद्यादिनानाकार्यसमुद्भवः ॥३८॥

राजा श्रीम, पुण्डरीक राजा लाग तथा पश्रिम देशक राजागण ए उन सबका भी सेनाजो और दाहनी सहित  
 रामने विधिवत अन्न-वस्त्र-आभरण आदिसे सब सन्चार किया । उन्हें पूर्ण आदर और मुक्त दिया । पुष्पक-  
 विमानपर कोई भी मनुष्य पृथक् भोजन नहीं बनाया था । सब रामहृक भाजनालयमें भोजन करने थे ।  
 इसलिए न तो किसीका काष्ठ तथा मृणाली चिता थी जो न जलती यदि वहाँ किसीको कोई चिन्ता थी तो  
 स्वल्प गर्हा नि अच्छी भूख कैसे मग । जिसमें कि कुछ अच्छा अच्छा भोजन करें ॥ २२-२५ ॥ वहाँ सब लोग  
 रेशम चूक पागको इच्छा रखते थे । वह रश्मिदा था तो केवल निद्राकी । क्योंकि हर समय नाना प्रकारके  
 वाजोली ध्वनि हुआ करता था ॥ २६ ॥ वहाँ यदि कोई भय था तो केवल वारागताओंका विमानमय लोगो  
 का आवाजोन भीत, नेत्रकटाक्ष, अनेक प्रोत्साह, मधुर वचनो तथा मणिमय हाथोके कारण रात-दिन एक-  
 था प्रणत हुंता था । यान कभी दिनमें थावा करना था और कभी रातमें ॥ २७ ॥ २८ ॥ इतनेमें हे शिष्य  
 पुष्करनाथक आसर्वाणक बड़ा कीमती, मनहर और ध्वनमयकारा घण सुनायो पड़ा ॥ २९ ॥ जिसमें  
 वरपाञ्चक मधुर वजन थे ककण वजन थे तारिका वचनी थी गान हे रहा था, सुदृढ़ तथा मगहें आदि  
 वाद्यमयूह बज रहे थे, घटिय बज रही थी, यानके घट बज रहे थे और अरु कड़कड़ा रहे थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥  
 वारागताओंका कथल कथनम सेवी हुई अद्वैतिकाएँ बज रहा थी और हाथी विघ्नाह रहे थे । घोड़े  
 द्वितीहता रहे थे । आयुध सनसता रहे थे । ईर मलमल रहे थे । मगर केका बाणी बाल रहे थे ॥ ३२ ॥  
 गच्छा लोग हाँक लवा रहे थे । वेदपाठ हो रहा था । छात्रगण अध्ययन कर रहे थे । नटोका नाटक हो  
 रहा था । वाग्ग तथा भाट विरुदावली बजात रहे थे ॥ ३३ ॥ गौआक शङ्खना घघर शब्द हो रहा था ।  
 वक्त्रियों तथा धैर्य के दाहनका शब्द भी सुनाया दे रहा था । हाछ विद्योनेका घर-घरर निनाद हो रहा था ।  
 बालक ने रहे थे । बालकोंक शृंगोकी शिकड़ियों का शब्द हो रहा था । अनेक वाद्य बज रहे थे । आटा पीसनेकी  
 चक्कियोंका घरघरहट हो रहा थी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ धीमे पकथे जान तथा तले जात पकवानोंका छूँ छूँ शब्द हो  
 रहा था । नारदादि मुनियोंका वाग्गदिका मधुर शब्द हो रहा था ॥ ३६ ॥ पुगण वाँच जा रहे थे  
 हरिकीर्तनी ध्वनि हो रहा थी । विष्णुसहस्रनाम तथा शिवमहिम्नास्तोत्रादिके पाठका शेष हो रहा था ।  
 नारिकेली कोई कन्तु कुत्ते तथा मेहवा आदि पीसनेके समय ककणका शब्द हो रहा था । उनके बाद-  
 प्रक्षालनक समय शंखरका शंखर, कडोकी कणकणाहट, छड़ोंका छलछलहट, बिजुओंकी छमछम-

एवं नानाविधं भुत्वा पुष्करस्था जना ध्वनिम् । निशिते पश्चिमामाशां किमेतदिति विह्वलाः ॥३९॥  
 केचिद्भुर्नन्दिघटास्त्रराड्यं ध्रुपते महान् । केचिद्भुविमानेन गच्छतींद्रो दिवं प्रति ॥४०॥  
 केचिद्भुः समायाति रंभाघण्टरसश्च खे । केचिन्मेषध्वनिं श्रोतुः केचिर्देरावतं त्विति ॥४१॥  
 केचिन्मेषुः समायाति सागरः किं लयं विना । केचित्मेषुस्त्विदं शेषं वायुपुत्रस्य शब्दितम् ॥४२॥  
 केचिन्मेषान्त्रिराजस्य शब्दितं प्रोचुरुत्तमम् । केचित्प्रोचुश्च गधर्वा विमानस्था भटति खे ॥४३॥  
 केचित्प्रोचुर्नामिकन्याः कुर्वन्तीदं मुगापनम् । कुर्वन्तश्चेति तर्कश्च ददृशुः पुष्पकं महत् ॥४४॥  
 राममागतमाज्ञाय तोषपूर्णां बभूविरे उषायनानि संगृह्य प्रेमनिर्भरमानसाः ॥४५॥  
 प्रस्पृज्यगुस्तदा रामं दृष्ट्वा नत्वा रघूत्तमम् । मेनिरे जन्मसाफल्यं राघवेणाविमानिताः ॥४६॥  
 राघवोऽपि विमानाघयादवरुह्य द्विजोत्तमान् प्रणिपत्य समाभाष्य प्रतिपूज्य सविस्तरम् ॥४७॥  
 तैस्तीर्थवासिभिर्द्युक्तो ययौ पुष्करमुत्तमम् स्नात्वा सचैलं विविना तीर्थश्रद्धां विधाय च ॥४८॥  
 दत्त्वा दानान्यनैकानि काश्याः कोट्यधिकानि तु । द्रव्यालंकारवस्त्रार्चस्तोषयामास भूतुरान् ॥४९॥  
 ततस्त्वंरम्यतुङ्गादो विमानेन ययौ पुनः । एवं पश्चिमयात्रां ते वर्णिता राघवस्य हि ॥५०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८॥

## नवमः सर्गः

( रामकी उत्तरभारतीय तीर्थयात्रा और वहाँसे लौटकर अयोध्या आगमन )

रामवास उवाच

उत्तराभिमुखो रामस्ततः पश्यन् स्थलानि सः । ययौ पर्वततीर्थं च ततो ज्वालामुखीं ययौ ॥ १ ॥

हट तथा पापवेषका मनोहारी निनद हो रहा था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके नन्दोत्तम मिश्रित तथा रणीभूत ध्वनिको शान्तिके शांत समयमें पश्चिमकी ओर सुनकर पुष्करनिवासी लोग चकित हो गये ॥ ३९ ॥ कोई कहने लगा कि नन्दोत्तमके घंटका यह सज्ज मुनाई देता है । कोई कहने लगा कि इन्द्र विमानपर बैठकर स्वर्ग जा रहे हैं ॥ ४० ॥ कोई कहने लगा कि रम्भादि अम्भराज आकाशमें जा रही हैं । कोई मेषकी गर्भना बतलाने लगा । कोई ऐश्वर्यकी घिघाह कहने लगा ॥ ४१ ॥ कोई कहने लगा कि विशा प्रलयशक्तिके हो समुद्र उमड़ा आ रहा है । कोई कहने लगा कि वायुपुत्र हनुमान्का गर्जन हो रहा है ॥ ४२ ॥ कोई कहने लगा कि पश्चिमराज महदका शब्द हो रहा है । कोई बोला कि ये तो मन्थर्व मेष विमानपर बैठकर आकाशमें घूम-फिर रहे हैं । ४३ ॥ कोई कहने लगा कि नागकन्धारे गान कर रही हैं । इस प्रकारके अनेक तर्क-वितर्क करते हुए वे लोग पुष्पकको देखने लग्य ॥ ४४ ॥ बादमें जब रामचन्द्रजाको आते देखा तो सब लोग बड़ ही प्रसन्न हुए । रामको देखकर सब लोग हापमें अनेक तरहकी भटे ले-सेकर प्रेमपूर्वक उनके सामने गये । श्रीरामको प्रणाम करके उन्होंने अपना जन्म उपलब्ध माना श्रीरामने भी उन सबका सरकार किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ पश्चान् श्रीरामने विमानसे नीचे उतरकर द्विज लोगोमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका नमस्कारपूर्वक पूजन किया और बादमें उन शायबालिपोंके साथ विस्तारसे वार्तालाप करते हुए उत्तम पुष्कर नगरमें अवेश किया । वहाँ सबस्त्र स्नान करके विविधन् तोषश्राद्ध किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँपर रामने काशीसे काटिगुणा अधिक दान-पुण्य किया द्रव्य अलंकार, वस्त्र तथा अन्नादिसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया बादमें उनसे आज्ञा लेकर वे विमरन द्वारा आगे बढ़े । इस प्रकार हे पावतो ! मैंने रामकी पश्चिम भारतकी तीर्थयात्रा कह सुनायी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे श्योत्सनांषाष्टीकायां पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम अनेक स्थलों एवं उत्तरके पर्वतों तथा तीर्थोंको देखते हुए वहाँसे

पश्यन् स्थलानि सप्राप तमौ श्रीमणिकर्णिकाम् । करतोयानदीनोद्ये स्नान्वाऽग्रे न ययौ विभुः ॥ २ ॥  
 तम्यो दीपमाकण्ये पथेर्जनं गधवः । कर्मनाशानदोस्पर्शान्कर्मलोपाधिकघनम् ॥ ३ ॥  
 गङ्गीवाह्यगणादुभयः स्वस्नानं कीर्तयान् । गन्त्रा देवप्रयागं चालकनन्दानटेन वै ॥ ४ ॥  
 नरनारायणौ गन्त्रा दर्शनान्मुक्तिर्दी नृणाम् । बदरिकाश्रमे रामः केदारेश लिलोक्य मः ॥ ५ ॥  
 हिमाद्री देवगर्भवमेविते धातुमडले । महापथं ततो गन्त्रा ययौ तन्मानस सरः ॥ ६ ॥  
 यम्पद्भिर्मिता गङ्गा सरयुः पापनाशिनी । कर्जानि यत्र हेमानि यत्र ईमाः महस्रयः ॥ ७ ॥  
 रक्तनेत्राघ्रिवदना मुक्ताभक्षणतन्पराः । यन्प्रदेशे चित्रभूम्प्रा देवगर्भवकिमराः ॥ ८ ॥  
 अप्सगोभिस्तथा सूर्गभिः कीडां कुर्वन्पहर्जनम् । तत्र स्नान्वा मानसेऽथ गन्त्रा चिन्दुसरोवरम् ॥ ९ ॥  
 स्नान्वा दानादिकं कृत्वा हिमालयगिरिस्थिताम् । दृष्ट्वा जलप्रभां दिव्यां मेरुश्चमदृशीं पगम् ॥ १० ॥  
 गधवः सीतया सर्वेश्वरश्च स पुष्पकां प्रणमनं । सुरेन्द्रार्चगतिम् चतुर्गतनम् ॥ ११ ॥  
 प्रक्षणा सहितान्देवान्पूजयामास विस्तरः । विधिर्न पूजयामास कामधेनुं न्यवेदयत् ॥ १२ ॥  
 विमानाग्रे कामधेनु मस्थाप्य रघुनन्दनः । सुगन्धवादिभिः साकं कैलासमगमयत् ॥ १३ ॥  
 रामभागनमाप्ताय कैलासे गिरिजापतिः । प्रत्युज्जगाम पार्वत्या रामचन्द्रं वृषस्थितः ॥ १४ ॥  
 अक्षुभागतमाहाय गधवः पुष्पकाज्यात् । अवस्य नमस्कृत्य शिवनालिंगिनः स्थितः ॥ १५ ॥  
 उमासपि र्भातामालिष दिव्यालंकारचन्दनैः ।

पूजयामास वस्त्रार्चः सूर्यकोटिमप्रभः । तारके नूपुरे दिव्ये केयूरे चूडकदम्बम् ॥ १६ ॥  
 किकिणीयमयुक्तगुणानां चन्द्रभाष्करो । र्भातवभूषणौ हरान्मणिमुक्तादिचित्रितान् ॥ १७ ॥

ज्जान्यामुत्री गये १॥ वहाँसे आता वहूँर के स्थानोंको देखन हुए श्रीमणिकर्णिका तीर्थवर का पहुँचने । वहाँ करताया नदामें स्नान किया, परन्तु उसको पार करके आगे नदी गये ॥ २ ॥ श्रीराम करतायाका पार करनेमें प्रायश्चित्त मुक्तकर रहने लौट पड़े । क्योंकि कारदोष यिम्ना है—कर्मनाशानदोस्पर्शान्कर्मलोपाधिकघनसे, गङ्गीमें हाथोद्वारा लेनेसे तथा घमका अपन मुक्तम बलान करनम प्राप्तोका किया हुआ धर्म मह हो जाता है । वहाँसे वे देवप्रयाग गये । पञ्चान् अलकनन्दाके किनारे किनारे चलकर अनुष्ठाका दर्शनमात्रसे मुक्ति देनवासे नरनारायणका दर्शन किया । श्रीरामने बदरिकाश्रमके बाद केदारेश्वरका दर्शन किया ॥ ३-५ ॥ इसके अनन्तर राम अनेक घातुओम मंडित हिमाद्रिपर गये, अहाँ कि अनेक देवता तथा गन्धर्व निवास करते हैं । बावमें महापथ गये और कहते उस सर्वमिद्व मानमरचणपर पधारे ॥ ६ ॥ जहाँसे कि पापाका मष्ट करनेवाले पंग तथा सरयु निकली है । उस मानमनानरमें अनेक सुवर्णकमल बिजे हुए थे वहाँ मोती गुनधे तत्पर, लाल मेरु, लाल पग तथा लाल मुखवाने हजारी राजहम निवास करत थे । उस प्रदेशकी पिप बिचित्र भूमिपर अप्सरसा तथा निवासे सहित अनेक दक्षगधर्व और किशराक समूह आड़ा कर रहे थे । उस मानसरोवरमें स्नान करके श्रीराम चिन्दुसरोवर गये ॥ ७-९ ॥ वहाँपर स्नान करके तथा अनेक दान देकर हिमालयपर गये । वहाँ मेरुपर्वतपर स्थित बहुसभाके समान एक दूसरी मनोहर अक्षरुमा देखी ॥ १० ॥ वहाँ राम सीता तथा अन्य सब लोकाके साथ विमानपरसे उतर पड़े और इन्द्रादिकाका साथ लेकर प्रणाम करत हुए चतुर्मुख ब्रह्माका आर्तिद्वन किया । ब्रह्मा सहित अन्य सब देवताओकी रामन विस्तारमें पूजा की । पञ्चान् ब्रह्माने श्री श्रीरामका विधिपूर्वक पूजन किया और उन्हें सादर कामधेनु समर्पित की ॥ ११ ॥ १२ ॥ बावमें रघुनन्दन सब देवताओं सहित ब्रह्माकी तथा उस कामधेनुकी विमानपर चढ़कर कैलास पर्वतपर पधारे ॥ १३ ॥ कैलासपर श्रीरामको आगे पुनकर गिरिजाके पति शिवजी पार्वतीके साथ तन्दीश्वरपर सवार होकर रामचन्द्रको लेने आये ॥ १४ ॥ राम शिवजीको आते देखकर पुष्पकपरसे नीचे उतर गये और शिवजीको प्रणाम किया । शिवजीने रामका आर्तिद्वन किया । पार्वतीने भी सीताका आर्तिद्वन करके दिव्य चन्दन आदिके पूजा की । अनन्तर प्रसन्न होकर उमादेवीने सीता महारानीको भूयंके समान शीजिवलि अनेक साभूषण और वस्त्र दिये ।



ददौ जनकनदिन्यै शर्वरीं तोषपूरिता । ततः शमुस्मदा प्राढ राघवं पूज्य वैश्वर्यैः ॥१८॥  
 राम त्वन्नाभिकमले मञ्जाऽयं चतुराननः । ततो जातो विधेयार्हं नन्दनाट्टद्वयवृत्तकाः ॥१९॥  
 पौत्रस्तव रघुधेष्टु तत्राज्ञापयिष्यालकः । महारः कियते राम आतया तव मादरात् ॥२०॥  
 यदा मया तु प्रत्ये तदा शर्प कर वे मयम् । परशाख्यवधाञ्जीनेस्तोषैरामां करोमि हि । ॥२१॥  
 कीदृशं तव राजेदं सुख कांडस्व सीतया । कियत लोकाश्चकार्यं जानामि तव चेष्टतम् ॥२२॥  
 एव नानाविधैस्तस्य शारिर्ष्यगीड्य राघवम् । दद्यां विदध्मनं छत्रं चाग्नेये वषट्कोत्तमम् ॥२३॥  
 पात्रपात्र भोजनस्य पात्रं हंसं मनोगमम् । करुणे कुण्डले बाहुभूषणे मृदुटोचमम् ॥२४॥  
 राघ प्रस्थापयामास चतुष्पा चिन्तामणं हृदि । हृदि चिन्तामणिं दृष्ट्वा राघवं च विदेहजा ॥२५॥  
 प्राहतिहासिता रामं शीघ्रं चिन्तामणिस्तव । वधेति राघवोऽप्युक्त्वा विमानेन जनः सह । ॥२६॥  
 ययौ बत्वा शंकरं हि कृत्वा यज्ञाधेष्टवनाम् । भाकारयित्वाश्च विधिं मार्तकेनाश्वराय हि । ॥२७॥  
 भागीरथ्यास्तटेनैव हरिद्राव ययौ जवाद् , कुरुक्षेत्रं विगाथाय इन्द्रप्रस्थं ततो ययौ ॥२८॥  
 दृष्ट्वा वधुवनं रम्यं ययौ हुन्दावनं ततः । गाकुलं वांश्च रामस्तु गोवर्धनमगाच्छनः ॥२९॥  
 गत्वाऽधारविकां पुण्यां क्षिप्रान्तरविगारिताम् । महाकालं पुरस्कृत्य पश्यन्तीर्धान्यनेकशः ॥३०॥  
 दृष्ट्वा गजद्वयं क्षेत्रं सागरं कृपमंक्ष्य च । ययौ मुनेर्मिशाम्पये गोमत्यां स विगाथ च । ॥३१॥  
 सूतं पौराणिकं दृष्ट्वा सीतकादीन् प्रपूज्य च । स्नात्वा तद्वनवर्तसंस्थं रघून्तमः ॥३२॥  
 तमसां तां विगाथाय ददर्श नगरीं निजाम् । राममागतमाज्ञाय सुमित्रो वेगवधरः ॥३३॥

दां कमण्डल, दो सुन्दर चुड़िएँ, छोटछोट धुवन्नाक राघवस युक्त करवनी, चन्द्रलके समान कालि-  
 मान से सीमन्तभूषण और मणि तथा मोतियाक हार आ दिया । पञ्चानु शिवजीने भी अनक विषमदोष  
 राघवका पूजन करके उनसे प्रणत किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे राम ! आपके नाभिकमलसे ये चतुरानन बह्ना हुए ।  
 इन बह्नासे मैं पैदा हुआ और राघव करनके कारण मया नाम रख पडा ॥ १६ ॥ हे रघुनाथ ! इस प्रकार मैं आप-  
 का पौत्र हुआ । हे राम ! आपका आज्ञाका पालन करत हुए आपके आज्ञाक अनुसार मैं प्रत्येकालमें तीनों  
 भाकाका सहार करता हूँ । तब क्यों बहु पापे आपका ग्ही लगना, जो आज आप हाक्षाभार वग होकर  
 भी राघववधसे बहुदुःखी हो आकापवादक भयसे नाचग्या करन निकल है ? ॥ २० ॥ २१ ॥ अबदा ठीक हो  
 है, मैं समझ गया । हे राम ! आप बहु तब लानशिखाके निचे कांड गाव कर रह है । यदि ऐसा है तो आप भले  
 हों सीताक सहित काका कर । लोकमर्षाशको स्थापित करनके अनारक और कुछ भी आपकी प्रीतिआ प्रया-  
 जन नहीं है ॥ २२ ॥ इस प्रकार अनक रामचरितस आगमका स्तुति करनके बाद शिवजीने उन्हें सिहावन,  
 एक छत्र, हा घमर, एक उत्तम घागा, पानकन डिब्बा, भोजन करनके लिए सुन्दर सानका पाल, कण्ठ, कुण्डल,  
 कड़े और मुकुट दिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ उदनन्तर रामक गलम भन्तामणि बाँचकर उन्हें विदा किया । सताने रामक  
 हृदयपर चिन्तामणि रखकर उनसे कुछ लज्जपूर्वक कहा- अच्छा, यह चिन्तामणि आपका रही  
 और यह कामऽनु मेरी । श्रीराम जो 'बहुन अच्छा' कहकर क्हास सब लायाके साथ विमानपर सवार हो शंकर  
 भावान्को नमस्कार करके चल दिये । चलन समय वे शंकर भगवान्की भावी वज्रकी मूर्चना दत गये । बह्नाका  
 भी एक मासके बाद होनेवाले यज्ञमें आयोडाग आनेके लिए कहा ॥ २५-२७ ॥ यहाँसे भागीरथीके किनारे-  
 किनारे हरिद्रा गये । वहीँसे शीघ्र ही कुरुक्षेत्रमें स्नान करन इन्द्रप्रस्थ ( दिल्ली ) गये ॥ २८ ॥ वहीँसे मनोहर  
 मयुरापुरी होकर हुन्दावन पधारे । गच्छ दमकर वे मादधन पर्वतपर गये ॥ २९ ॥ बाइसे शर्प बने,  
 परम पवित्र अवन्तिका ( उज्जैन ) मणिको गये, जो कि सिता नदीके किनारेपर विद्यमान है । वहीँ ग्ही-  
 कालेश्वरका वीरभूजन करके अनक शुभ तीर्थ देखन हुए गजद्वय ( हरिनाथपुर ) और तथा सागरकूपको  
 ॥ १ ॥ पश्चात् मैमिषारण्य गये । वहीँ गोमतीमें स्नान किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर पौराणिक सूतका वीरभूजन करके

अयोध्यां भूपयामास घोर्षेनानःविधध्वजैः । लोर्णभ पताकाभिः पुष्पहारैर्मनोरमैः ॥३४॥  
 शोधयित्वा राजामार्गान् सेषयित्वा नु चंदनम् । विकीर्णं सुसुर्मंदं चैवेलिहीपैर्विगजितान् ॥३५॥  
 वरुणं द्रुं पुरस्कृत्य मेनया परिवेष्टितः । पत्न्युज्जगाम राजेंद्रं पुष्पकस्थं तरान्वितः ॥३६॥  
 दंडवत्प्रणिमन्याथ दत्त्वा चोपायनानि तन् । आलिङ्गितो राघवेण येने स कुतकृत्यताम् ॥३७॥  
 ततो वायनिनादैश्च नर्तनं वारयोपिताम् । वेदधोर्षदिजानां च राभतीर्षं ययौ शर्मा ॥३८॥  
 स्नात्वा तन्मरयूतोये यत्र तीर्थं सुपुष्पदम् । स्वयमेव कृतं पूजं नित्यकर्मार्दमादरात् ॥३९॥  
 वमिश्लोक्तविधानेन कृत्वा वैकुण्ठोपणम् । दधिधातुं विधायथ दत्त्वा दानान्पनेकशः ॥४०॥  
 तृतीये दिवसे रामो विमानेन विहायमा । पुर्यां विलम्ब्य प्राकरान् हेमरत्नविनिर्मितान् ॥४१॥  
 अयोध्यां प्रोमितां गम्या गोपुगद्वालमंडिताम् । वीथीहट्टममावृत्तां चतुष्पथविराजिताम् ॥४२॥  
 पश्यन् स्त्रीयं राजममाद्वारं प्राप रघूत्तमः । यानं भूमडलं प्राप्य सुवभातीन्स्विरं तदा ॥४३॥  
 ततः सुमंत्रपत्नीमिर्दध्योदन्विनिर्मिताः । बलयः कर्म्यपावस्था जलनैलघटाम्बुधा ॥४४॥  
 सीताराघवयोर्देहादुत्तार्य शतशम्भदा । नीत्वा न्यक्त्या विदूरेतु स्नात्वा रामगृहं ययुः ॥४५॥  
 ततो रामो विमानद्वयादवरोह्य स रघुभिः । नगरैस्तनूषनिमिः सभायां सविषेध ह ॥४६॥  
 तस्थौ मिहासने राश्वितामणिविराजिनः । तस्थुर्नृपाः सभायां श्रीराघवेणानिमानिताः ॥४७॥  
 सीताऽपि निजगेहं सा दिचित्रगन्तनिर्मितम् । कामधेनुं पुरस्कृत्य प्रविवेशाविद्वर्षिता ॥४८॥  
 ततो रामः कामधेनुमभूतैरपाधितः । परमान्नैः पदसंघं मोलयामास भूगुरान् ॥४९॥

शौनकादि ऋषियोजित पूजन और जहूँवैतल नामके करोड़ोंके स्नान किया । ३२ । तमसा नदीमें अथवाहूत करके राम अपनी नगरीको चल गये । ऊपर आराधको जाते मुत्तकर भुपवनसे शटवट अनेक प्रकारकी बड़ी बड़ी पताकाओं तथा भजार्थमें अयोध्या नगरीको सजवा दिया । अनेक नोरण बँधवा दिये । ३३ । ३४ ॥ राजमार्गोंको साफ कराकर चन्दनक अगसे छँडकाव करा दिया । उनपर लिप्य और नाना रंगके फूल बिछवा दिये । जगह-जगह घोगहोपर दीपक तथा पूजाकी सामग्री रखवा दी । ३५ । पश्चान् सुमंजस कारणेन्द्र (हृषीकेश) को आगे करके सेनासहित स्वयं पुण्यकस्थित राजा रामकी भगवानो करने गये ॥३६॥ उन्होंने उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके अनेक उत्सव दिये । बादमें मंत्री सुमंत्र रामसे आनिमित्त हाकर अपने आपको कुतकृत्य समझने लगे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर राजेराजे करारागतात्रक कृत्य तथा सहाय्योंके वेशघोषके साथ राम धीरे-धीरे रामकीर्षपर गये ॥३८॥ वहाँ जाकर उन्होंने सगुरुके जन्मसे स्नान किया । वह बड़ा पवित्र तथा उत्तम तीर्थ स्वयं रामके ही नित्यकर्मके लिये निर्मित हुआ था ॥ ३९ ॥ वहाँ उन्होंने वमिश्लोके कथनानुसार विधिमान् एक उपवास किया, दधिधातु किया तथा अनेक दान दिये ॥ ४० ॥ तोगरे लिप्य भोगाम विमानके द्वारा आकाशमार्गसे नगरके मुखनिर्मित प्राकारोंको जाकर पुरद्वार तथा सुन्दर अटारण्योसे मुशामिट मनोहारिणी अयोध्यामें प्रवेशे । ओ मल्लियों, गड़कों, बाजारों तथा घोगहोमें बड़ी ही भली लग रही थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बहुत दिनों बाद आज उन्हें अपनी राजसभाके द्वारका दर्शन प्राप्त हुआ । वहाँ जाकर वे यानपरसे उतर पड़े । विमान की भूमरपर उतरकर सुतपूजक खड़ा हो गया ॥ ४३ ॥ तब सुमंत्रकी निषेध दधि-ओदन-से युक्त काँसके पात्रमें रखी हुई वलिर्ष तथा जल-तलसे पूर्ण सैकड़ी घट सीता तथा रामके देहपरसे उतार तथा दूर से जाकर छाड़ आयी और स्नान करके रामके चदनमें गयी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अंतराम भी विमानपरसे उतरनेके बाद नगरको तथा अन्य राजाओंके साथ समाभवनमें गयारे ॥ ४६ ॥ चित्रामणिले सुरोर्मित हृदयवाले राम मिहासनपर आ विराजे तथा उनके सम्मर्गत होकर अन्य राजे भी यय-स्थान बँठ गये ॥ ४७ ॥ महारानी सीता भी कामधेनुको लेकर प्रसन्नतापूर्वक चित्र-विविध रत्नोंसे निर्मित अपने जहूँमें गयीं ॥ ४८ ॥ पश्चात् श्रीरामने कामधेनु से प्राप्त वृत्तसे निर्मित घड़समय उत्तम पक्वानों द्वारा

अर्वाङ्गलांस्तर्पयित्वा स्वयं कृत्वाऽश्वं नदा । निद्रार्थं नृपरीन् पाप्ने कथमवाप्तापयन्दा ॥५०॥  
 पचरात्रं नृपान् प्रीत्वा स्थापयित्वा स्वयमिधौ । बभ्राजन्नागानुगैरन्योपयित्वा मनिस्त्रयम् ॥५१॥  
 तान् प्रोवाच रमानाथः प्रवदकरमपुरान् । मम यज्ञागनुगै रष्टा तन्पृष्टर्गः पुनः ॥५२॥  
 आगन्तव्यं जानपदैः स्वसैन्यैर्नागरैः सह । इत्थं ज्ञां गृहीतव्यं क्षीणीकृत्य नृपोत्तमाः ॥

ययुः स्वं स्वं पुरं देशं स्ववर्तः परिवेष्टिताः ॥५३॥

मुग्धीवाद्यान्वानराश्च परिव्राजममन्त्रितान् । आज्ञापयित्वा वयानि श्यापयामास स्वानिकैः ॥५४॥  
 राजिमेषामन्तरं हि प्रेषयिष्याम्यहं निरति । ऊो दुदुभिनिर्घोषं स्वपुर्वं घोषयन्दा ॥५५॥  
 मकारम्य जनैः सर्वैरगोष्ठानगरीरिचर्तैः । यैः कश्चिदत्र पथिकैर्मित्रपार्जनैः पूज्यताम् ॥५६॥  
 पारङ्कगोम्यहं भूम्यां राज्यं सीताममन्त्रितः । निजगार्हस्थ्यमालम्ब्य ये व्रतन्ते नरोत्तमाः ॥५७॥  
 ते हर्षन्तु सुखं पाकं स्वस्वमेहेषु भक्तिनः । निर्वन्धो मम व ह्येयो वर्तितव्यं वधामुखम् ॥५८॥  
 इत्याज्ञाप्य जनान् रामः सुखं तर्थां त सीतया । ययोध्यायां तु सर्वत्र वेदपोषो गृहे गृहे ॥५९॥  
 वगसन्ति सङ्गन्माहा वर्तनं वाग्योषिताम् । बभूवुश्च वृग्णानि कीर्तनानि हरेः कथाः ॥६०॥  
 एवमासीन्सुमं तुष्टा साकेतनगरी शुभा । एवं प्रोक्तं मया शिष्यं यात्राकाण्डमनुत्तमम् ॥६१॥  
 ये नृप्यन्ति नरा वरुणा तेषां यात्राफलं भवेत् । यात्राधनार्जनोद्योगे यात्राकाण्डमिदं स्मृत् ॥६२॥  
 पठित्वा ये तु गच्छन्ति सुखेनायाति ते गृहम् । ममद्वन्द्यादिपापानि कृतानि भवनरैः सकृत् ॥६३॥  
 यात्राकाण्डमिदं जप्त्वा शुद्धिस्तेभ्यो भविष्यति । सर्वतीर्थावगाहैश्च वत्फलं परिर्कीर्तितम् ॥६४॥  
 यात्राकाण्डमिदं श्रुत्वा तृच्छतं प्रतिपद्यते । धनार्थं धनमाप्नोति क्षापी कामानराध्नुयात् ॥६५॥

राष्ट्रगोप्ति सेकर बाण्डाल लकड़ों वपोंचित भोजन कराके लूट लिया । बादम रजाओक हाथ स्वयं आज़न करके राजाओको लप्लास बिमानमे तथा अन्त्यान्म महर्गेमे जायेकी आज्ञा दी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस प्रकार पाँच दिन तक उन लंघानों बड़े ही प्रेम तथा सत्कारसे रामने अपने भजनमें रक्खा । बादम वस्त्र, अन्नकर तथा अन्न आदि दे और उन्हें घली घँति प्रमत्त करके अपने-अपने स्थानको आनका आज्ञा दी । जब वे हाथ जोड़कर जानेके लिए तन्मुख लड़े हुए, तब रमानाथ रामने फिरको ऊँट यज्ञके मुखमध्यपर यज्ञक संगभूत अन्नके पीछे-पीछे चलनेके लिए ससैन्य और प्रजा सहित आनक लिये कहा । वे गंगे उस आज्ञाको स्वीकार करके अपनी-अपनी मैनके साथ अपने-अपने देश तथा नगरकी ओर चल दिये । परिवार सहित मुण्डव आदि आनरीको रहनेके बान्ने बहुतसे भवन देकर अपने यहाँ रक्खा और कहा कि जन्मभक्त बजने पञ्चाङ्ग तुम मातेको बिदा करने । बादमें भोगरामने अपने मकरन्द दिहारा पिठवाकर कहला दिया कि आजमे सेकर मेरे नगरवासियों तथा अन्य वासी लोगोंको अन्न भोजन बनाकर यहाँ जाना चाहिये । सब लोग तबतक हमारे भोजनालयमें भोजन कर, जब तक कि मैं भूमिपर राज्य करूँ । हाँ, जो गृहस्थाश्रमी हो, वे अपने ही भवन-अपने घरोंमें अन्नपूर्वक मुख्ये भोजन बनाएँ । उनके लिये भोग मात्रह नही है । ५१-५८ ॥ यह आज्ञा देकर राम सीतके साथ मुख-पूर्वक चले गये । तबमे अयोध्या नगरीमे घर-घर बेरघ्वनि होने लगी । ५९ ॥ प्रगल्भान होने लगे, सोनसहू बागभाओका नृत्य होने लगा तथा पुराणपाठ और हरिकथाएँ होने लगी ॥ ६० ॥ इस प्रकार पक्ष समस्त पुरो धानन्ति हो उठी । ह शिष्य मैंने तुम्हको घली घँति उनम यात्राकाण्ड सुनाया ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस यात्रा-कारको अतिपूर्वक अध्ययन करेगा, उसे समस्त यात्राये करनेका फल प्राप्त होगा । यदि मनुष्य राजासे जानेके पक्षमें अपना धन कमानेके लिये जाये तबमे इसकी पुनकर जाय तो वह मुखपूर्वक और कृतार्थ होकर चलेगा । यदि मनुष्यने बहुहत्यादि जैसे घोर पाप किये हों तो वे भी इसकी मन्त्रसे दूर हो जाते हैं और अज्ञो शुद्ध हो जाता है । सब तीर्थोंकी यात्रा करनेसे जो फल होता है, वह इस यात्राकाण्डको पढ़ने तथा सुननेसे प्राप्त हो जाता है । चन्की इच्छावालेको धन और कामकी इच्छावालेको फल मिलता है ॥ ६२-६५ ॥ इस

पापी धूनी भवेत्सद्यो यत्राकाण्डश्रवादिना । यः कश्चिन्प्रातर्कृत्याय कृतशौचविधिर्नरः ॥६६॥  
 तीर्थानां च वरं काण्डमिदं पुण्यं पटिष्यति । तस्य रामश्च संतुष्टः पूरयिष्यति वाञ्छितम् ॥६७॥  
 सर्वतीर्थाविगाहस्य फलं तस्य भवेद्भुवम् । यानि कानि च पापानि जन्मांतरकृतानि च ॥६८॥  
 तानि सर्वाणि नश्यन्ति यात्राकाण्डश्रवादिना . ६९ ।

इति श्रीमत्कोटिरामचरितस्तोत्रगतश्रीमदानन्दरायायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे  
 रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

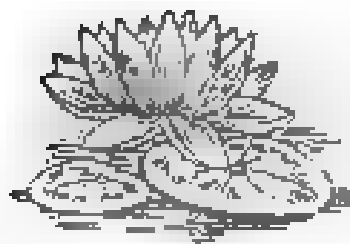
यात्राकाण्डे च सर्गः चै नवः प्रोक्तः मनोविधिः ।  
 पञ्चविंशोत्तराः सप्तशतश्लोका भवापहः ॥ १ ॥

काण्डको सुननेसे पापी पुरुष भी पवित्र हो जाता है । जो प्राणी प्रातःकाल उठ तथा स्नानादि करके इस पवित्र यात्राकाण्डको पढ़ेगा तो श्रीरामकी अनुकम्पासे उसके सब मनोरथ पूरे होंगे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उसे सब तीर्थोंकी यात्राका फल मिलेगा बन्ध-जन्मान्तरक जो कुछ पाप हों वे सब इस यात्राकाण्डको सुननेसे अवश्य नष्ट हो जायेंगे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितस्तोत्रगतश्रीमदानन्दरायायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे १० राम-तेजपाट्यवृक्ष'ज्योत्स्ना'भाषाटोकायां रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

इस यात्राकाण्डमें नौ सर्ग और भवभयको दूर करनेवाले ७३५ सात सौ पन्तीस श्लोक कहे गये हैं ॥ १ ॥

✽ इति श्रीमदानन्दरायायणे यात्राकाण्डं समाप्तम् ✽

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु



श्रीरामचन्द्रो विजयवेरगाम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## यागकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( अश्वमेध यज्ञके लिए सामग्री एकत्र कानेका निर्देश )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समामध्ये एकदा गुरुपञ्चमीम् । कुम्भोदरमुनेर्गायत्रीर्ध्यानां यथा कृता ॥ १ ॥  
इदानीं तस्य वाक्येन वाजिमेषं करोम्यहम् । यज्ञोपकारणानि त्वं लक्ष्मणाप नदस्व हि ॥ २ ॥  
समुद्रवै शुभे लग्ने श्यामकर्णाग्निपुच्छकः । तुरङ्गो दिव्यवस्त्राद्यभूषणिव्या विमुक्तताम् ॥ ३ ॥  
पृथ्वीप्रदक्षिणार्थं हि तत्पृष्ठेऽधुरसंख्यया । सेनया सह शत्रुघ्नः सुमंत्रेण महाशिरात् ॥ ४ ॥  
तद्रामवचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमः । ज्योतिर्वित्सहितो दृष्ट्वा समुद्रवै शुभोदयम् ॥ ५ ॥  
आज्ञापयत्स सौमित्रि सभायां राजसन्निधौ । सौमित्रेऽद्यदिनाज्ज्ञेयो सुहृत्तः सप्तमेऽहनि ॥ ६ ॥  
दीक्षार्थं रामचन्द्रस्य वाजिमेषाल्यकर्मणि । रामतीर्थे यरुभूमिः शोचनीया हलादिभिः ॥ ७ ॥  
सुवर्णनिर्मितैर्दिव्यैर्वाक्षणैः सह सन्वरम् । दशकोशमिताऽयोध्यासहिः सर्वत्र लक्ष्मण ॥ ८ ॥  
समा कर्करहीना तु लिप्ता चन्दनजातिभिः । मण्डपश्च विधातव्यः सर्ववाग्निदितः शुभः ॥ ९ ॥

श्रीरामदासने कहा : इसके अनन्तर एक दिन सभामें रामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठसे कहने लगे — हे गुने । कुम्भोदर ऋषिके कथनानुसार मैं तीर्थयात्रा की । अब उन्हींकी बातसे मैं अश्वमेध यज्ञ भी करना चाहता हूँ । यज्ञकी ओ-जो आवश्यक वस्तुएँ हों, कृपया आप लक्ष्मणको बतला दीजिए ॥ १ ॥ २ ॥ किसी अच्छे मुहूर्त और शुभ लग्नमें श्याम रङ्गवाले जिसके कान, पैर और पूँछ हों, ऐसे घालेकी मुन्दर बत्तों और आभूषणोंसे सुसज्जित करके पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए छोड़ा जाय ॥ ३ ॥ तदनन्तर उस यज्ञीय घोड़ेकी रक्षा करनेके लिए दस हजार सेनाके साथ सुनस्त और शत्रुघ्न प्रस्थान करें ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजी को इन बातोंको सुनकर वसिष्ठजीने ज्योतिर्विद्योंके साथ अच्छे लग्न तथा अच्छे नक्षत्रसे संयुक्त एक वदिया मुहूर्त देखा और सभामें हूँ रामचन्द्रजीके सामने लक्ष्मणजीसे बोले—हे लक्ष्मण ! रामचन्द्रके यज्ञकी दीक्षा लेतेना शुभ मुहूर्त आजस ठीक सातवें दिन है ॥ ५ ॥ ६ ॥ सबसे पहला काम यह है कि इस अश्वमेध यज्ञके लिए रामतीर्थके भूमि सुदर्पके बने हुए हलों द्वारा साड़ियोंके साथ जोतकर सुद्ध की जाय । अयोध्याके चारों ओर दस कास तककी जमीन परतारकर बराबर कर दी जाय और ऐसी साफ की जाय कि उसमें कहीं कुछ भी कङ्कड़-पत्थर न रहने

जम्बूवाघ्रादिनगानां च शाखामिः कुसुमैरपि । पल्लवैश्च विचित्रैश्च कदलीस्तम्भमण्डितः ॥१०॥  
 समन्ततस्तोरणानि बन्धनीयानि यत्नतः । पुष्पद्वाराः फलादीनां मालाश्च विविधाः शुभाः ॥११॥  
 वेद्यः सहस्रशः कार्याः सुधया श्लेषकादिभिः । करणीयं महकुण्डं सन्सामिध्येन मृन्मयम् ॥१२॥  
 कुंडोपरि महत् कार्यं गोमुखं च मनोरमम् । सुदिरम्य विचित्रं हि वसोधारार्थमुत्तमम् ॥१३॥  
 मितरक्तामिनैश्चैव नीलपीतादिभिः शुभैः । नानादृषदचूर्णैश्च क्षुपधातुविनिर्मितैः ॥१४॥  
 ननावर्णैर्विलेख्यानि स्वस्तिकानि समन्ततः । कमलानि विचित्राणि तथा श्लेषदलानि च ॥१५॥  
 सङ्कुचकगदापद्मवल्लुपश्च सहस्रशः । कुसुमानि विकीर्णानि यज्ञभूम्यां समन्ततः ॥१६॥  
 चतुर्विंशच्छुभाः कार्या यज्ञस्तम्भा महोच्छ्रिताः । विनिर्मिताः सुवर्णेन युक्ताहारविभुङ्किताः ॥१७॥  
 त्रितयं सर्वतोभद्रं कुण्डमध्येऽभ्यर्चयतम् । लेखनीयं तथा कुडं नानावर्णैर्विचित्रितम् ॥१८॥  
 द्रुतं कार्याणि पात्राणि यज्ञार्थं मम पश्यतः । दैवाः किलोपकृणा वरुणस्य यथाऽऽवरे ॥१९॥  
 आमनानि श्रुयाणां च निद्रार्थं च सहस्रशः । वासोगेहानि कार्याणि तूर्णैः पर्णैश्च स्वर्पदैः ॥२०॥  
 पाकशाला विधातव्या कार्या शालाऽश्ननस्य च । आपिशाला विधानव्याः श्लोशालाश्च शुभावदाः ॥२१॥  
 यज्ञोपकरणानां च शाला परमसुन्दरी । सभा कार्या नृपाणां च वरदस्त्रैर्विचित्रिताः ॥२२॥  
 आमनार्थं महार्हाणि वस्त्राणि च समन्ततः । आस्त्रीर्याणि तथा राजपुत्रभागाभयानि च ॥२३॥  
 पश्चिपिच्छैः सुकापांसभेदैः सम्पूरितानि हि । कश्चिपूपबर्हणानि विचित्राणि महानि च ॥२४॥  
 स्थावरीयानि मदसि महार्हाणि तु लक्ष्मण । स्थावरीयानि पानार्थं पात्राणि विविधानि च ॥२५॥  
 नानारसैः पूरितानि तथा पक्वकलादिभिः । नानासुगन्धद्रव्यैश्च सर्वानानाविधैरपि ॥२६॥

पार्थे । फिर केसर-चन्दनसे स्त्रीपकर वह भूमि पवित्र करनी होगी । उस भूमिपर ऐसे मण्डप बनाये जायें, जो सुन्दर हों और कहींसे कटे-फटे न हों । ७-९ ॥ जामुन-आम आदि फूलोंकी शाखाओं तथा फूलों-पत्तोंसे खूब अच्छी तरह सजाकर केलके आम्बोके फाटक बनाये जायें और मण्डपके चारों ओर फूलों और फलोंकी भाछाएँ लटकाई जायें ॥ १० ॥ ११ ॥ मण्डपके भीतर ईंट और चूनेको पक्की जोड़ाई करके एक हजार वेदिवाँ बनवायी जायें । वहाँ ही मिट्टीका एक बड़ा घारी कुण्ड बनाया जाय । लेकिन यह मैं अपने सामने बनवाऊँगा । कुण्डके ऊपर खैरकी लकड़ोंका एक सुन्दर गोमुख बनाया जाय, जो ब्रह्माचार्योंके काममें आवेगा । सफेद लाल, कासे, नीले और पीले पत्थरोंका चूर्ण तथा उपधातु ( गेरु-बंधक आदि ) के चूर्णसे जगह-जगह रङ्ग-बिरङ्गे स्थानिक लिखे जायें और श्लेषदल कमल बनाये जायें ॥ १२-१५ ॥ जहाँ वहाँ शस्त्र सज, गदा पद तथा फूल-पत्तियोंकी चित्रकारी की जाय ॥ १६ ॥ सोंलके चौड़ीस यज्ञस्तम्भ बनाय जायें, जो सूत्र ऊँचे हों और उनपर मोती-भाणिक आविकर काम किया गया हो । कुण्डके पास बन्धवेवराके निमित्त सर्वतोभद्र बनाया जाय और वेदोंके चारों ओर अच्छे-बच्छे चित्र बनाय जायें । यज्ञके लिए जितने पाशोंकी आवश्यकता होगी, वे सब घेरे सामने बनाये जावेंगे । प्रायः वे सब पात्र सोनेके होंगे, जैसे ब्रह्मादेवके यज्ञमें वे ॥ १७-१९ ॥ व्याघ्रोंको बैठने और सोनेके लिए घरके, अण्डोंके अथवा छप्परेके हजार घर तैयार करने होंगे ॥ २० ॥ मण्डपकी एक ओर पाकशाला ( रसोईघर ) रहेगी, दूसरी ओर अन्नशाला ( भोजनभवन ), तिसरी ओर श्रुति-शाला ( मुनियोंके ठहरनेकी जगह ) और एक ओर सुन्दर स्त्रीशाला ( स्त्रियोंके रहनेकी जगह ) बनेगी ॥ २१ ॥ एक बड़ा या और सुन्दर भक्तान पक्षकी सब सम्पत्तियें रखनेके लिए बनेंगी । बच्छे-बच्छे कपड़ोंसे सजाकर राजाओंके लिए कई महफिलें बनायी जायेंगी । बैठनेके लिए बड़ियां बड़ियां कालेन-गलीचे आदि मंगाकर बिछाये जावेंगे । पक्षियोंके पख्तों या रुइसे घरी कितनी ही सुन्दर लकियायें राजाओंकी लगानेके लिए रखी जायेंगी । सबको जल पीनेके लिए विविध प्रकारके पात्र रखे जावेंगे ॥ २२-२४ ॥ सभाभवनमें जल पीनेके लिए सुन्दर तथा बहुमूल्य बर्तन रखे जायेंगे । कितने ही पके हुए फलोंके तरबतरसे भरे

मर्त्यविचित्रैर्मयूरैश्च मादकवस्तुभिः । नानासुगन्धैर्लेख्यैश्च कृत्वा कृत्वाः सहस्रशः ॥२३॥  
 स्थापनीयाश्चन्दनैश्च सुगन्धैश्चानि वि नानोपकल्पकानां नाम्बूनाना सहस्रशः ॥२४॥  
 स्थापनीयानि पात्राणि चायगणि सहस्रशः । व्यञ्जनानि वि चित्राणि तथादर्शविचित्रिणाः ॥२५॥  
 स्थापनीयाश्च कीठार्थं कीडोपकरणानि च । स्थापनीयानि मर्त्यमृताणां निचित्रानि च ॥२६॥  
 मृत्पात्रममराः कार्याः शतशः पुष्पशटिकाः । जलपात्राणि कार्याणि सर्वत्र विविधानि च ॥२७॥  
 मानाविचित्रवर्णानां वयसां वजराः शुभाः । हेमगन्धर्वकैर्लेख्यैश्च प्रजालनमनेर्लेख्यैः ॥२८॥  
 कमनीयाश्च भूषणैश्चोपासायैः प्रपूजिताः । वधनीया मंडपेषु नानैर्लेख्यैश्चमरोमणः ॥२९॥  
 भूषयंतु सुपथाश्च सुगायन्तु हि गावकाः । वादनीयानि वाद्यानि बहूनि विविधानि च ॥३०॥  
 पूजोपकरणैश्च शस्त्राणि पूजितानि हि । पृथक् पृथक् मन्त्रास्वेव स्थापनीयानि लक्ष्मणः ॥३१॥  
 तथा ऋषिपत्न्यां तु द्वाभ्यां ममिधमथा । दण्डाः कमण्डलुपुलाः स्थापनीयाः सहस्रशः ॥३२॥  
 बहिर्वासांश्च कोपीनान् चन्दनैश्चानि वि । पूजाद्रव्याणि हव्यानि जलकुम्भाः सहस्रशः ॥३३॥  
 शीतार्थं मृत्तिकाः शुद्धा दंतकाष्ठानि पादुकाः । गैरिकश्च मुस्तशुद्रपत्रं नानावस्तूनि कल्पय ॥३४॥  
 तथा नरावसायां तु पूजकशायनेरुजः । सौभाग्यद्रव्यैर्गुणानि सुगन्धैः पूजितान्यपि ॥३५॥  
 वायनाजं विचित्राणि स्थापनीयानि लक्ष्मण । कुर्याः कञ्जलानां च पात्राणि कुरुमानि च ॥३६॥  
 करठस्थानिरम्पाणि भूषणान्पुञ्जवस्तूनि च । ठगिद्रादीनि वस्तूनि कनुकयो वस्त्रानि च ॥३७॥  
 स्थापनीयानि चयञ्जनचमरादीनि सादरम् । सुहृदा लेखनीयानि पत्राणि च समस्ततः ॥३८॥

॥ २३ ॥ यह कड़ाह की उपस्थित रहे । अनेक प्रकारके द्रव, कण्डाजल, कंदडाजल, कस्तूरी और कसरका  
 चन्दन सहस्र लक्षोंके लिए तैयार करना चाहिए ॥ २५ ॥ २६ ॥ विविध प्रकारके स्थापित मद्य तथा अन्य  
 मद्यक वास्तुएं तैयार की जायें । बहुत किम्बड़े सुगन्धित तन्वीस धरे हुए कान्ठके द्वारा तो पड़ सही तैयार  
 रहे । बहुतसे बलवान् सुगन्धित चन्दन और मलय रक्ख रहे । विविध सामग्रियोंके साथ हारों तन्त्रियोंके  
 जानके जोड़ समान्यताकर रखे जायें ॥ २७ ॥ २८ ॥ हजारों चमर हारोंके लिए मँग भेजे चाहिये । सातके  
 लिए गरुड तन्त्रोंके पत्राजल तैयार रहे । पुष्ट तैयारके लिए अनेक अनेक दर्पण भेजना लिये जायें  
 केवलके लिए जिहनी भी सामग्रियाँ हो सके भेजनाकर रख ली जायें । देव विदेशके राजाओंके विष  
 भेजकर सभाश्रवणमें बागे और दण्ड दिये जायें ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे पुष्टीके समान भेजनाकर बहि-  
 र रखे जायें । कोली-दीने दूधपर हजारों कोहरे बनने जायें, जिनसे तथा जलकी धारा बहुत रहे  
 लाल, पीले, हरे तथा बैंगनी आदि रंगोंके पत्रोंके विजड़े लाकर भव्यपत्र बागे और लटक दिये जायें और  
 हीरा, मोता पत्ता और मृगा आदिके कड़ाह वस्त्रों द्वारा वे सजाये जायें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ विजयाम  
 इन पक्षियोंके आसन करनकी सब सामग्री धरी रहे । बहीपर नाचनेके लिए सुन्दर सुन्दर वेपथव गुलाबो  
 जायें । दूध देनेवाले साथ सामान्य पुष्ट देनेके लिए नियुक्त किये जायें । मानवाले योग गाय और ब्रह्मावस्था  
 विविध प्रकारके वाज वस्तु ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब राजमन्त्रज्ञान प्रलय अलग पूजन करनकी सामग्रियोंसे पुष्ट  
 रक्ख रखे रहे । ऋषिपत्नियोंके लिए कुला, वस्त्र, कमण्डलु तथा समिधाका विशेष प्रबन्ध रहे । ऊपर  
 श्रवणके लिये वस्त्र और नीचे पहननेके लिये कीपील, बल्कल वस्त्र, भृगुचर्म, पूजनकी सब सामग्रियाँ, हवत  
 करनकी सब वस्तुएँ, जलसे धरे हुए हजारों मड़े आदि बहोपर ला-लाकर रखे जायें । हाथ पवित्र करनेके  
 लिए शुद्ध मृत्तिका, दानील, लवङ्ग तथा मुस्तशुद्रिके लिये बहुतसे मजन आदि बहीपर रखे रहे ॥ ३५-३६ ॥  
 इसके तरह नारीतभासे या पूजाके बहुतसे पात्र रहने चाहिये । कोहलके लिये सुमसूचक रोख-सेदुर आदि  
 सुगन्धित वस्तुओं की रक्खी रहे । सुन्दर दर्पण लाकर रखे जायें । काण्डके दुमदुमधरे बलान आदि भी  
 बही उपस्थित रहें ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ बहुत-सी वांसकी बनी हुई सन्तुकोम सुन्दर और बसवभासे हुए बाजूबज  
 रखे रहें । हन्दी-लोखी आदि चीजे और कनुको आदि वस्त्र लाकर रखे जायें । पंखे और बमरादिक

गन्धमुद्राङ्गितान्यद्य तथा दत्ता महाजनाः अनकाय प्रेषणायाः कंकणनूपमभिधौ ॥४३॥  
 मन्त्रायाः सृष्टिवागाः पितरं प्रति रुक्मण । श्यामाङ्घ्रिः श्यामकर्णश्च श्यामपुच्छः पितः शुभः ॥४४॥  
 महाहस्तेभ्योऽस्त्रैश्च द्रव्यशोभासनेन च शोभनीयश्चापगर्भमुक्ताहारिणेनोरपः ॥४५॥  
 हर्षाभिः शुक्लाभिश्च वेर्णावधविभूषणैः । तस्य भाले हेमपत्रे लेखनीयः स्फुटाक्षरैः ॥४६॥  
 क्रोमलेन्द्रस्य रामस्य यतांगतुरगो हयम् । ज्ञेयः सर्वैर्नृपैर्मुक्तः कर्तुं भूम्याः प्रदक्षिणाम् ॥४७॥  
 वस्त्राभिर्यतः तेनाश्वो बंधनीयोऽयमुत्तमः । मोचेत् क्रोडाश्च निजान् पुरस्कृत्य नलैः सह ॥४८॥  
 स्वकुटुम्बनागर्भश्च तथा ज्ञानपदैः सह । आगन्तव्यं नृपतिभिर्प्रेक्षां गाक्षानुवर्तभिः ॥४९॥  
 यज्ञधूममयोप्यायां युद्धं जित्वा महोद्धतान् । एवं यत्र बंधयित्वा मुक्तमणिविचित्रितैः ॥५०॥  
 अवनमैः दाभयित्वा मिदुः कार्यश्च मदपे मिदुः कार्यः स शत्रुघ्नः सैन्येन परिवेष्टितः ॥५१॥  
 श्यामदण्डोऽश्वारूढश्च सुप्रवेण समन्वितः नानापुष्पनटानां च जलकुमान् महत्प्रभः ॥५२॥  
 नानाद्रव्यान्मृदश्चापि शत्रुघ्नेनानयन् वि । शोभनीया पुरी रम्या पताकाध्वजतोरणैः ॥५३॥  
 दण्डस्य मुधा देया तथा प्राप्तादमस्तके । देवालयस्य तरेऽयं चित्रशाला मनोरमाः ॥५४॥  
 लेखनीया विधानव्या रत्नदीपाः मदैव हि । पूजापकरणादीनि प्रतिदेवालयेष्वपि ॥५५॥  
 श्यामपत्रं पत्रस्तानि वायान्याज्ञापयन् मोः । राजमार्गाः शोभनीयाः सेवनीयाश्च चदर्नैः ॥५६॥  
 मोक्षमार्गेषु सर्वत्र चित्राणि विविधानि च । लेखनीयानि रम्याणि मुक्ताहाराः समन्ततः ॥५७॥  
 प्रवालमणिवैद्यैकाग्रमार्गैश्च फटिकादिभिः । नानाविधाश्च कुसुमहाराः पत्रफलादिभिः ॥५८॥  
 बंधनीयाश्च सर्वत्र जालमंत्रैर्विशेषतः । एवं यद्यन्मया प्रोक्तं तत्कुरुष्वधिधारतः ॥५९॥

नाकर रक्ष जाय और अपन मित्रार्क आय हई चिट्ठियां भेजत रहौ रवर्सा रत् ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ आब  
 ह रामचन्द्रजीकर मुद्रा तथा हुआ पत्र लेकर दूत मित्रिये जवक, कामर तथा चक्र आदि राजाभोके  
 पास जाय । तदनंतर क्याम पुच्छ तथा क्याम पैयाल छोडैका ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बहुभूष्य वस्त्रो और आभूषणोसे  
 राजा जय । उसे स नवी जगार और वणावत्र आदि गहन पतन से जय । एक मन्त्रपत्रपर ये स से साफ  
 अक्षरान लिखकर घड़क भाषपर बाँध दिया जाय-॥ ४५ ॥ ४६ ॥ "कासचन्द्र महाराज रामचन्द्र ! यह  
 राजा पांडु भूमिमें प्रदक्षिणा करनेके लिए छोड़ा गया है । सद्यः दश-दशान्वरक राजाआका जान हो कि  
 जिसम बल हो, वह इस सुन्दर पौरको बाँध ले, नरा ना अपन दशवासिया, अपना मना तथा कुटुम्बिकाके  
 साथ इस घटक पौष्ट-पौष्ट चलता हुआ हमारी राजभूमि अर्थात् अवाध्याम आकर मुझसे मिले" ॥ ४७-४९ ॥  
 इस आशयका पत्र लटकाया जाय । रात्रिमें जा जा उच्छ्वस राज मिले । इनसे युद्ध कर-करके इन्हें परास्त कि ।  
 जाय अनेक प्रकारके झाड़-फातूस आदिस सजा करके एक सिद्धमंडप बनाया जाय । इसक अनंतर  
 अपना पुरी सनाके साथ शत्रुघ्नजी मुमन्त्रका साथ लिये हुए घाटपर सवार होकर उस घाट घाँटेकी रक्षा  
 वरनक किए प्रस्थान कर । उसक पश्चात् बहुत सी पवित्र नरियोकी मूर्तिका और हजारो यज्ञोम जल  
 भर भरकर शक्कलजोके द्वारा माँवाया जाय ॥ ५०-५२ ॥ अवाध्याम जितन मा दवालय हा, उन सबको  
 चुनेसी पुतवाया जाय । सद्यः मयानोकी भी सफाई की जाय । देवालयोके चोतर नाना प्रकारको चित्रकारियो  
 की जाय । हर एक देवालयस हए रोज पूजन करनेकी साधनियां भेजी जाय ॥ ५३-५५ ॥ हे रुक्मणजी !  
 भाज ही आप सब प्रकारके वाज मँगाकर रखनेकी आज्ञा दे दीजिए । अवाध्याके सब राजमार्ग खूब अच्छा  
 तरह साफ किया जाय और उनपर अन्दनका लिहवाव किया जाय । राजमार्गके सब बड़े-बड़े महलोंकी  
 दीवारोपर विविध प्रकारके चित्र बनानेकी आज्ञा दे दी जाय । जगह जगहपर मोतियोका मालाये लटकाये  
 जाय ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ प्रवालमणि, वैद्युर्यमणि, कामोद और स्फटिकादि मणियोकी मालाये, फूलोकी मालाये  
 तथा पत्र फलका मालाये हर एक मकानोपर लटकाई जाय । इस प्रकार मैंने जो कुछ बतलाया है, उसे कर



तद्गुणेर्वचनं श्रुत्वा तथेन्युक्त्वा स लक्ष्मणः । काम्य माय नम्यते गुणेर्वाक्याच्छ्रुताधिकम् । ६० ।

इति श्रीभक्तकाटिरामचरितनाम श्रीमदनन्दरामायणे बालमीकीय पाणकाण्डे  
योगोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( पञ्चमें सावधानी रखनेके लिए रामका लक्ष्मणको आदेश )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समीपस्तु मुहुर्ने मममेतदिति । मदनीतोद्धर्तनायैः स्नान्ना कुन्वाञ्जनादिकम् ॥ १ ॥  
तूर्णनादैर्द्विजानां च वेदयोगैर्विशेषतः । पौगण्ड्याणां गायनंश्च पौगण्ड्यं च जयस्वनैः ॥ २ ॥  
आगन्त्य मङ्गले रम्ये तर्प्यां चित्रामनोपारि । ददौ कौशेयवस्त्रापि गुरुं रामस्वरुन्धनीम् ॥ ३ ॥  
पौगांश्च पौरपत्नीश्च मातृश्वश्च मुवापिनाः । क्षत्रूश्चापि द्विजान् सर्वान् जनकं मुहुर्नम्यथा ॥ ४ ॥  
वधूंश्च वधुपत्नीश्च वयस्यश्च ततः परम् । मन्त्रिणश्चाथ बीमांश्च दामदार्मीन्नाम्नथा ॥ ५ ॥  
नरनर्तकवद्यादीन् सारथ्याश्च ततः परम् । आच्छादालादिकान् दद्यात् ततः सीतां ददौ वरम् ॥ ६ ॥  
हेमन्ततुमप्लुतं सूक्ताभाषिकं मुक्तिनम् । रत्नकाऽर्माजनीलार्धमध्ये मध्ये विचित्रितम् ॥ ७ ॥  
सूक्तापशालघोषार्धमणिभिः सर्वतो वृतम् । आदशचिम्बमट्टं विष्टं चैवोपमं महत् ॥ ८ ॥  
ततः स्वयं रामचन्द्रः पतङ्गशेषमुत्तमम् । हेमतत्त्वाकृतं नानावल्लीपुष्पाविवित्रितम् ॥ ९ ॥  
दधामन्यत्तत्परीयं वामोप्लकारमण्डितः । व्यञ्जनाशेषमात्रार्थमणिद्वयविराजितः ॥ १० ॥  
केयूरकुण्डलैर्मुक्ताहारैश्च कटकैर्धृतः । ततो नशिपुर्धर्मस्तं सूक्तानां स्वस्तिकोपरि ॥ ११ ॥  
निवेष्ट्य राघवः सीतामाहूय बहुकैर्निजैः । निवेष्ट्य रामवामांगे मुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १२ ॥  
शयेन काश्यामाम्य विघ्नश्चादिपूजनम् । पुण्याहादिवयं चापि ददौ दीक्षां ततस्तथोः ॥ १३ ॥

भावार्थः । तुम उनके विषयमें कुछ मत तोचा बिचरो । मैं स्वयं सब सोच लिया है । इस प्रकार गुरुवरको आज्ञा पाकर लक्ष्मणने सिर झुकाकर स्वीकार किया और सब काम उससे भी सीगुना बढ़-बढ़कर किया, ऐसा कि गुरु बलिष्ठजीने कहा था ॥ ५८-६० ॥ इति श्रीभक्तकाटिरामचरितनामश्रीमदनन्दरामायणे बालकाण्डे पाणकाण्डे बालमीकीय योगोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा — इसके बाद सातवें दिन सीताजीके साथ-साथ रामचन्द्रने मकलन आदिका उबटन लगाकर स्नान किया, अजन लगाया और तुड़ही आदि बाजो, वेदपंजी, नगरकी स्त्रियोंके गंगा और पुण्यास्थियोंकी मयध्वनिके साथ ॥ १। २ ॥ जाकर उस सुन्दर मंडपमें एक विशालतपर बैठे । तब गुरु बलिष्ठतथा अरुण्यतीको उन्होंने सुन्दर-सुन्दर रेझमी वस्त्र दिये । इसके अनन्तर पुरवासियोंको, पुरवासिनी भारियोंको, माता-सोको, बहुओंको, साधुओंका, नगरनिवासा सब विप्रोंका, मित्रोंका, बान्धवोंको, परिवारके लोगोंको, दान्धवों-का, नारियाँका, समवयस्क मित्रोंका, मन्त्रियोंका, सेनपतियोंको, सैनिकोंको, दास-दासियाँको, ॥ ३-५ ॥ नटो-नतनोंको, बन्दीजनोंको, वेश्याओंको और बाण्डाऊसे लेकर ऊँच जाति तकके प्रत्येक मनुष्यको अच्छे-अच्छे कपड़े देकर जिसमें सुनहले तारकर काम बना हुआ था, मंती-मणिक आदिके सुन्दर पारो और लटक रहे थे, ऐसे नीलम तथा पुष्कराज आदि मणिजैसे सुज्जित एक सुन्दर वस्त्र सीताजीका दिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब वर्पणकी तरह चमकती हुई एवं विजलीकी तरह जिसमें नेत्र था और सुवर्णके तारका जगह-जगह बेल-बूझा बना हुआ था, ऐसे एक वस्त्रको लेकर रामचन्द्रजीने स्वयं पहना ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऊपरमें एक छपरना धारण किया । तरह-तरहके आभूषण पहने । जब रामचन्द्र के कानोंमें कुण्डल सुनने लगे, माताकी नालाई बलमें बढ़ गयी और हाथोंके सब गहने हाथोंमें पहन लिये गये । तब बलिष्ठजीने सीतियोंके चौहके ऊपर रामचन्द्रजी तथा

ध्वजागपविधानेन स्थापयन्वाध्वजाचमन् । रामेण दग्धायाश्च दुरुः शोडश भृत्विजः ॥१४॥  
 गानधुज्ज्वल मज्जतोऽध्वर्युः सकलकर्माधरः । ब्रह्माऽध्वर्युः स्वयं ब्रह्मा होता मार्गधमुतो ह्यध्वरः ॥१५॥  
 उडनऽध्वर्युः कृत्वा निदा गुरुयो जनकस्य च । यमे चध्वर्युः शर्मिना कश्यपाया मुनीश्वराः ॥१६॥  
 वृषाणा राजिमेष हि राघवेण महामना । अन्विजः पाटश्रुवास्त्रवाऽज्ये नवकर्मसु ॥१७॥  
 एवम् पृथक् संज्ञाताः अनशस्ते मुनाधराः । कण्ठेऽग्निश्च पते कृत्वा पात्राण्यायाश्च विस्तरान् ॥१८॥  
 दशमकर्णं जपित्वा मोचयामास भूतले । मण्डपं प्रदक्षिणां कर्तुं तस्य संरक्षणाय हि ॥१९॥  
 मयूरदं मुमन्त्रेण सैन्येनापुनरुपया । शत्रुघ्ने प्रेषयित्वाऽप्य नृणां तस्थौ द्विजेगुरुः ॥२०॥  
 यज्ञघाटे मुनिगणपुरिते नरपुनटे । रामोऽग्रे सानया नृणां तस्थौ मण्यन कथाः शुभाः ॥  
 कृत्वा जिनयगे दासः कृष्णपाणिः कृतोचितः । कोटिधूमप्रनाकाशस्तस्थौ य गुरुमन्त्रिधी ॥२१॥  
 तदासायां प्रहृष्टायां भ्रातरः पुष्करच्छत्रः । स्नाताः सुवासना मयं रेत्रिरे मुष्टयल्लङ्घनाः ॥२२॥  
 तन्महिष्यस्य मुदिता निष्कयस्यः सुवाससः । दीक्षाशालापुरात्रमुन्मथालिमा वस्तुपाणयः ॥२३॥  
 तदा विनेदुवाद्यानि ननृतुरार्योपिनः । एतस्मिन्मन्तर उव मयायना मुनीश्वराः ॥२४॥  
 दिने दिनेऽध्वमेधस्य वार्ता भव, महश्चतुः । कश्यपोऽग्निभरद्वाजौ विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥२५॥  
 वाकण्डेयो मूकण्डश्च कननो मुद्रलोऽसितः । जमदग््न्यो देवलश्च व्यासो नागपणः क्रतुः ॥२६॥  
 विशाङ्को नारदश्च तुम्बुरुगालवो मुनिः । शिवदासो भानुदास्यो हरिदासो महानयाः ॥२७॥  
 शिववर्मा रुद्रवर्मा शिवधर्मा मुनाधराः । एकभृगश्चतु मृङ्गः सप्तभृङ्गश्चिभृङ्गकः ॥२८॥  
 तिकमांडा भृगुश्चैव मार्गवो पाशपतिस्तथा । धौम्यः दण्डार्थकपादस्त्रिपादधोर्ध्वबाहुकः ॥२९॥

सानाओंको बिठ्ठाया और अपने शिष्यों तथा ऋषियों के साथ-साथ सबसे पहले रामचन्द्रजीके द्वारा मण्डप-  
 गोश आदि का पूजन तथा पुष्पाहुज्जन कराया और सीता तथा रामचन्द्रजीका यज्ञघं, दाता दी। ध्वजारक्षणको  
 जो विधि होता है, उसके अनुसार दशजातेण और रामचन्द्रजी के द्वारा सातह ध्वजियोंका वरण कराया  
 ॥ १०-१४ ॥ सम्पूर्ण कर्मोंका जाता बसिष्ठ स्वयं अध्वर्यु बन । तब बहुत ज पढ़ा देने और दाता के  
 निश्चायिकों। एतानन्द उद्घोषा देने, जो जनकजी के पुत्र थे। इसके अनन्तर कश्यपादि मुनियोंका राम-  
 चन्द्रजीके आश्रितों बनाकर वरण किया ॥ १५-१८ ॥ इनकी अतिरिक्त, जो सकेहो अर्द्धदाका रामचन्द्रजीने  
 अन्यत्र कायोंको करनके लिए वरण किया। उन सबने अचानक मुद्राएं ज पन चापन करके दशके पासोंका अपने-  
 अपने स्थानपर रखा, विविधवर्ण के यज्ञघर्णों घाटका पूजन कराया और वृषाणा राजिणावर्त परिक्रम करनेके  
 लिए उसे छात्र दिया ॥ १९ ॥ २० ॥ उसको रक्षाके लिए मन्त्रोंके साथ शत्रुघ्नजी भजकर भगवान् रामचन्द्रजी  
 अपने गुरुजनके पास चुपचाप न बैठे। उस दलभूमिमें जहाँ दशग ऋषि आकर बैठे हुए थे  
 रामचन्द्रजी भी सानाओंके साथ एक किनारे बैठकर सुभ कथायें सुनने लगे। उस समय रामचन्द्रजी केवल बाते  
 मृगका चर्म धारण किये और हाथमें कुत्रा लिए हुए एक सारंगण बजाय थे फिर भी उनमें कहीं दो सुन-  
 का तंज था और वे गुह बसिष्ठके पास बैठे थे ॥ २०-२२ ॥ यज्ञकी दीक्षा हो जानेपर सब आता  
 पूजका भालाये तथा अण्ड अण्डे चबडे पहले बहुत ही सुन्दर दाख पकृत थे। उनकी स्त्रियाँ  
 भ गलमें सोनेके कण्डे और हाराम सुन्दर वस्त्र पहन हम गालवला अनेक वस्तुओंका उपहार लिये हुए उसी  
 यज्ञशालामें आ पहुँचों ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर राजा चले और रेवार्ड नाचने लगे। उसी समय  
 बहुतसे ऋषिगण आ पहुँचे । अश्वमेध यज्ञका खबर पाकर हजारों महर्षिगण आ-आ कर एकत्रित होते जा  
 रह थे। जैसे कश्यप, अग्नि, चन्द्राज, विश्वामित्र, गौतम, मार्कण्डेय, मूकण्ड, कश्यप, मुद्रा, असित, जाम-  
 दग्न्य, देवल, व्यास, नारायण, क्रतु, विमलद्वज, नारद, तुम्बुरु, गालव, शिवदास, भानुदास, महानयस्वी  
 हरिदास, शिववर्मा, रुद्रवर्मा, मुनाधर शिवधर्मा, एकभृग, शिभृङ्ग, चतुर्भृङ्ग, सप्तभृङ्ग ॥ २५-२८ ॥ विष्णुवाच,

ऊर्ध्वपादधोर्ध्वनेत्रधोर्ध्वस्यस्त्रिदिगम्बधा । वृद्धगौतमनामाऽथ । पर्णादधद्रमस्तकः ॥३१॥  
 आरभ्यगौ मनेषोऽथ जात्रालिः कुम्भमम्बः । दधीचिः शौनकः सूतः मुनीश्वरो लोमशस्तथा ॥ ३२ ॥  
 वाल्मीकिश्चापि दुर्वासा मुनिर्वेदनेधिर्महान् । एते चान्ये च मुनयः स्त्राशिष्यवृत्तयादिभिः ॥३३॥  
 केचित्पर्णाशनाः केचिद्वायुभक्षस्तथाऽपरे । कुशाग्रजल्पानाश्च । केचित्पक्वाशनास्तथा ॥ ३४ ॥  
 मिश्राशनास्तथा केचिन् पद्मसाशनाः परे । अथश्वाग्रनिनः केचित्पक्वमभाषणाः परे ॥३५॥  
 केचिद्वल्कलपत्रीताः केचित्कायापवास्त्रिणः । मृगचर्मभगः केचिन् कौचदाकाशवास्त्रिणः ॥३६॥  
 वृषपल्लववस्त्राश्च । केचित्पंचाग्निमाधकाः । धूम्रपानव्रताः केचिन् केचित्पक्वपणाः परे ॥३७॥  
 एवं । नानावनागमगिरिदिग्गांश्रमादिषु । रामिनस्ते ममायानाः सदागमः सवालकाः ॥३८॥  
 सशिष्या रामचन्द्रस्य द्रष्टुं यतोन्मथ वरम् । दशदिग्धो मुनिव्रष्टाः कोटिशश्च दिने दिने ॥३९॥  
 तान्मर्यान् रामचन्द्रोपि प्रत्युन्धानामनादिभिः । मधुपर्कादिपूजाभिस्नोषयामस्य । मादगम् ॥४०॥  
 यत्तवाटे महारम्ये कामधेनुं मृत्तमः पूजयामास । विधिवद्वर्त्मगमणैरपि ॥४१॥  
 सुवर्णमृगभूषाभिः । किंकिणान् पुगादिभिः । एव ता शोभयित्वाऽथ । प्रार्थयामास राघवः ॥४२॥  
 धेनो मागमभूने त्वमश्वानि द्विजदिकान् । दानमर्हस्यध्वरे मे प्रसीद जगदधिके ॥४३॥  
 एवं संप्रार्थ्य सां कामधेनुं रामः प्रणम्य च । वयम् च । पाकशालायां पट्टकुलामनोपरि ॥४४॥  
 अथ मां सुरभिस्तुष्टा पट्टमाश्रानि मादगम् । ददां जनकनन्दिन्य सा देवाभ्यः कर्मणि ॥४५॥  
 नार्तिनकार्यं च तत्रार्त्तात् पाकशालायां चैकदा । इच्छाशनेः सदा पुष्टा बभूवुर्मुनिमनसाः ॥४६॥

शुभु मार्गक वृहस्पति, पौष, कृष्ण एकाद, विषाख, ऊर्ध्वपाद ऊर्ध्वनेत्र ऊर्ध्वस्य, त्रिजिगा  
 वृद्धगौतम, पर्णादि, चंद्रमंशक, । ३० । ३१ ॥ कप्याभ्यः, मरुद्ग, जात्राल, अमस्त्य, दधाचि, शौनक, सूत  
 मुनीश्वर, लोमश, वाल्मीकि दुर्वासा । य एकसे एक विद्वान् मुनिगण तथा और भी कितने ही ऋषि अपने  
 स्वामुखी तथा शिष्योंके साथ आत जा रहें थे ॥ ३२ । ३३ ॥ उनमें वृहस्पति ऐसे थे, जो केवल पत्ते खाकर रहते  
 थे । कोई वायु पीकर रहते थे । कोई कृष्ण अथवागम जल लेकर पाल और उससे बाल पावन कर रहे थे ।  
 वृहस्पति भी थे जिन्होंने भोजनको त्याग ही दिया था ॥ ३४ ॥ कुछ ऋषि भिस्त्रास खाते थे, कोई दूसरेके  
 बालों भोजनको करते थे ( अपने हाथमें आग नहीं चूते थे ) और कितने ही ऐसे थे जो किसीसे माँगना पसन्द  
 नहीं करते थे । कोई कोई तो किसीसे संपादन हीं नही करते थे ॥ ३५ ॥ कुछ मुनि बल्कल वस्त्र पहने हुए थे  
 कोई मेषदा कपडा धारण करते थे, कोई मृगचर्म पहने थे और कोई दिगम्बर ( नंगे ) थे ॥ ३६ ॥ कुछ मनुष्य  
 पृष्ठके पत्तोंसे शरीर ढाँके हुए थे, कोई पञ्चाग्नि तापस्वानाम थे, कोई धूम्रपान ( गाँत्रे और चरस ) का रस  
 पिये थे और कोई-काई ऐसे थे, जिनका सब प्रकारका इच्छार्थ समाप्त हो गयी थी ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार कितने ही  
 जङ्गलों बगीचों पर्वतों, किलों और आश्रमोंके निवासों ऋषि अपनी रभी तथा बच्चोंके साथ नहीं आ पहुँच  
 थे ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रके उस अधोमुख राजका देवनेके लिए दसों दिशाओंसे करोड़ों ऋषि इसी तरह अपने  
 शिष्यादिकां साथ वहाँ प्रतिदिन आ रहे थे । रामचन्द्र भी उनका प्रत्यक्षन सासन, मधुपर्कदिन पूजन  
 तथा मादर करने थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसी मन्त्रभूमिमें रामचन्द्रने विचित्रपूर्वक अनेक वस्त्रों और जाभूषणोंसे  
 कामधेनुका पूजन किया । उसकी सींगें सोनेके मट्टाई तथा किंकिणी और नूपुर भादि पहनाये । इसी तरह  
 उसकी अन्वृत्त करके रामचन्द्रने प्रार्थना की—॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे सूरसागरसे उत्पन्न होनेवाली कामधेनी  
 तुम हमारे अतिथिरूपमें आये हुए साहस्रोंके भस्त्रादिक दानसे कृत रहना । हे जगदम्बिके ! तुम मेरेपर  
 प्रसन्न होओ ॥ ४३ ॥ इस प्रकार बिनती करके एक गलीवा विद्याकर भोजनशाला ( रसोईघर ) में ले आकर  
 कामधेनुकी दीर्घ दिया । ४४ । इसके पश्चात् उस सूर्यने प्रसन्न होकर मादगपूर्वक छहों रमके भस्त्र  
 शीलाको दिये । सबसे पाकशालामें न ही कोई मट्टी मल्लो भी और न कोई पदार्थ बनाया जाता था । लेकिन

य न्यान्कामान् रामचन्द्राश्चतयामास चेतमि । तान्तिनुभौ मणी आद्य कल्पयामासतुर्दुनम् ॥४७॥  
 तथा भ.ताऽपि यान् कामाश्चिन्तय.मास चेतमि । कामधेनुर्ददा तान्तिज्जलान् त्रैलोक्यदुर्लभान् ॥४८॥  
 मन्त्रेन यमकाटे हि हिजार्थश्च समनतः । पत्तिषु भूमिजादीनां परिवेषणकर्मणि ॥४९॥  
 स्त्रोणां ककणनदश्च शुश्रुवे नृगुणधनिः । अथ र.मथ मीयिधिं समहृयेदपन्नरीन् ॥५०॥  
 र्माचाचारान्यमाहृय मम वाचराज्य मादग्म् । आज्ञापयस्व श्रीप्र त्वं शासनं यन्मयोच्यते ॥५१॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थश्चर्मा पतिः । यः कश्चिद्वा ममायानि पयिकः स समाजया ॥५२॥  
 निवार्यो गृह्याभिर्न कदाप्यध्वरे मम । समाज्ञां न प्रतीक्ष्य कोपः कार्यो न कस्यचित् ॥५३॥  
 इति रामचचः श्रुत्वा तथेत्थं कवा स लक्ष्मणः । र्माचाचारान् समाहृय राघवोक्तं न्यवेदयत् ॥५४॥  
 ततो रामः पुनः प्राहः समाहृयास लक्ष्मणम् । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्चर्मा पतिः ॥५५॥  
 मुनीनां दीपना शलाः शिष्याः सम्यन्धनस्तथा । पीरा जानपदस्थास्तु तेषां सवधिनः स्त्रियः ॥५६॥  
 दार्मादामज्जनाः सर्वे यद्यद्राजने लक्ष्मण । मामपृष्टा तु तन्नेषां दत्तव्यं ह्यविचारितम् ॥५७॥  
 अन्यजायधि सर्वाद्धि तोषयध्व निरस्तुग्म् । न केषामभिलाषा च विकला हि विधीयताम् ॥५८॥  
 मयोध्यां कामधेनु च जानकी कीर्तुमर्णम् । नितामणिं गुण्यकं च राज्यं कोशदिकं च मे ॥५९॥  
 एतेष्वपि च धौ यद्वै याचयिष्यति तन्नया । न दत्तं चेति वै श्रुत्वा ममानोपो भवेच्चयि ॥६०॥  
 अनौ ज्ञात्वा भयं मनो ददस्व पविचारम् । पाञ्चमङ्गलः कृतश्चेद्धि मच्छिगंहा भविष्यति ॥६१॥  
 सदा स्मर गिरं मे न्वमिमां लक्ष्मण मादग्म् । इति रामकृतां शिक्षामगीकृत्य स लक्ष्मणः ॥६२॥

तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितम् ॥६३॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदामन्दरामायणे प्रागुक्ताग्रे

लक्ष्मणाज्ञाकारणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

वहापर आय हूए सब जगधि इच्छा माजन कर करके प्रसन्न हो रह थे । ४५ । ४६ ॥ जिन जिन वस्तुओंका राम-  
 चन्द्रजीने अपने मनमें चाहा उन सबका उनका ही मालिकी ( बौद्धधर्मणि तथा चिन्तामणि , न जानकी वातमें  
 पूरा कर दिया । ४७ ॥ इसी तरह माताजीने जो कुछ चाहा, सो कामधेनुमें त्रैलोक्यकी दुर्लभ वस्तुओंको भी  
 दकर उनको इच्छा पूरी की । यज्ञभूमिके चारों ओर जब बाह्याश्रम मण्डला माजन करनेके लिए बैठी थी  
 और स्त्रियाँ उनका भोजन परसनेके लिए आती थी तब उनके भूषणोंकी प्रचुर ध्वनि सुनायी देती थी । इसके  
 सदनमें रामचन्द्रजीने लक्ष्मणकी बुलाकर कुछ प्रकार समझाया - । ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हमारी यज्ञभूमिके आस-  
 पास रहनेवाले निवासियोंको सादर बुलाकर हमारी तरफसे यह समझा दो कि आजमें नकर जा कोई  
 ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी, मुनियोंकी पत्नियाँ, उनके बच्चे, मित्र, सम्बन्धी, पुरखासी, देशनिवासी और  
 उनके सम्बन्धी, जो कोई यहीं आ जाय, उसे कोई न राके । उसका सत्कार करनेके लिए मेरी आज्ञाकी प्रतीक्षा  
 करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ५१—५३ ॥ रामचन्द्रजीने आज्ञानुसार लक्ष्मणजीने सब आस-पासके  
 निवासियोंको जाकर समझा दिया । कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणको बुलाकर कहा कि मुनियोंकी  
 स्त्रियों तथा बच्चों आदिका अथवा जगत्समस्तका जिस किसी वस्तुकी आवश्यकता हो, वह बिना हमसे पूछे  
 उनके इच्छानुसार देते जाओ ॥ ५४—५७ ॥ बागडालसे लेकर विप्रनके प्रत्येक प्राणिक सन्तुष्ट कर । किसीको  
 किसी प्रकारका कष्ट न हान पाये । किसीका कोई अभिलाषा विकल न हो । मयाया, कामधेनु, साता,  
 बौद्धधर्मणि गुण्यक विमान, राज्य तथा कोशदिक इन सब वस्तुओंको भी हमसे यदि तुमने इनकार किया  
 तो मैं तुम्हारे ऊपर बहुत न राज होऊंगा । इसलिये धीरे काधस उरते हुए बिना किसी प्रकारका विचार  
 किए सब अभ्यागतोंको उनकी अभिलषित वस्तुएँ देने जाओ । तुम किसीकी माँग साक्षी करोगे  
 तो तुम्हें मेरा छिर फाड़नेका पातक भोगेगा ॥ ५८—६१ ॥ हे लक्ष्मण ! सदा मेरी इन बातोंका हवाल

## तृतीयः सर्गः

( रामके यज्ञीय अश्वका मय ओर घूमकर अयोध्या लौटना )

श्रीरामदास उवाच

अथ शुक्रप्लवा वार्ता राघवेण महात्मना । यज्ञांशः श्यामकूर्मः स पूर्वदेशं पयो जगत् ॥१॥  
 शत्रुघ्नेन च सैन्येन प्राप्तो भर्गवर्धनतटम् । एतस्मिन्नन्तरे रामः स्वप्रतापं प्रदर्शयन् ॥२॥  
 चकार कौतुकं तत्र शत्रुघ्नस्य पुगे महत् । त्रस्यन्ते महदेश न्यक्त्वा गङ्गादटं प्रति ॥३॥  
 शबन्धाम् । श्यामकूर्मस्यावदार्मदुर्नेषिना । गङ्गायां च महापूगे यत्र नैकाऽपि कुटिता ॥४॥  
 शत्रुघ्नेनापि तद्दृष्ट्वा कुटितां गतिर्वीक्ष्य च । कालातिक्रमर्भान्या स निवृत्तिनं व्यवितयन् ॥५॥  
 आदादेशापि मे विघ्नमुत्पन्नं गमने मदम् । ग्रामे प्रायमिके यदुत्पन्नमिहावननं तथा ॥६॥  
 महीदानीं राघवचन्द्रप्रतापेनाम्नु मे सतिः । निश्चिन्त्येभ्य स शत्रुघ्नो रथस्थो जाह्नवीतटे ॥७॥  
 स्थित्वा प्रोवाच गङ्गां प्रतिपृष्टव मविरुद्धम् । शृण्वन्सु सर्वलोकेषु मुनिदेवगणेषु च ॥८॥  
 देवि मङ्गे महापूगे यदि सन्त्ये शृण्वमे । दीयता यदि संधा मे श्रापं सैन्ययुतस्य च ॥९॥  
 इति शत्रुघ्नवचनं श्रुत्वा मा जाह्नवी तदा स्ववेगं गन्धायामाय रगेदरं चाप्रदर्शयन् ॥१०॥  
 पङ्क्तिर्वाञ्जो तदा श्राप परं तीरं ययो क्षणम् । तथा सैन्येन शत्रुघ्नः समुपव्रतः समावर्तौ ॥११॥  
 मागधारव्यं महादेश स एव कीकटः स्मृतः । पूर्ववत् महापूगे जाह्नव्यां मयभूव ह ॥१२॥  
 प्रतापं राघवचन्द्रस्य सर्ववृक्षा महाहृतम् । चक्रुस्ते जपयन्दांश्च सीतारामाग्नयया मुदः ॥१३॥  
 इत्यश्वकूर्मस्ततः शीघ्रं ययौ पूर्वदिशं प्रति । मगधेशो नृपश्चाथ श्रुत्वा तुरगमागतम् ॥१४॥  
 प्रत्युज्जगाम सैन्येन पुरस्कृत्याथ वारणाम् । नितायाश्च पठित्वा गङ्गातटत्र पुरं निजम् ॥१५॥

रथना नूतना नहीं । रामचन्द्रजीका शिक्षाका बङ्गाकार करने लदमणजले बीमा ही पिवा, जेता रामन कहा था ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ दोन आश्रितवाटिच मनजितमय, महान् इत्यादि ॥ ६० ॥ रामचन्द्रजीके विचारे 'अयोध्या' मगधाटीवात्समन्विते योगकाण्डे लक्षणान्तोकरणं नाम द्वितीयं सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासजी फिर कहते हैं—रामचन्द्रजीक द्वारा छोड़ा हुआ वह यज्ञका अङ्गस्वरूप श्यामकूर्म घोड़ा अयोध्यासे बड़े जोकें साथ पूर्व दिशाका आर चल्य ॥ १ ॥ चलते चलते शत्रुघ्न, समस्त तथा विशाल सैन्य के साथ वह अश्व आकर भागीरथा गंगाके तटपर पहुँचा । उधर रामचन्द्रजीने अपनी मोहमा दिखानेका इच्छासे शत्रुघ्नजीके सामने एक विचित्र कौतुक उपस्थित किया । यह यह कि गङ्गाके तट परकी आश्रित गङ्गातट पहुँचनेपहुँचने उनका नाम जो कुछ भी बन या यह सब सम्मान हो गया । गङ्गाका बाटसे एक स्थानपर उनकी नौका भी रुक गयी ॥ २-४ ॥ शत्रुघ्नने उस दारुण समयका दत्ता तो दह ही जानके भयसे मन ही मन सोचने लगे । मोह ! यज्ञ ही श्याम इतना बड़ा विघ्न हो पहुँचा । यह वही महावत चग्गिनाथ हुई कि 'वहने ही श्यामके रथकी आ गिरी' ॥ ५ ॥ ६ ॥ अब मुझे इस समय कदल रामचन्द्रजीके प्रतापका भराता है । उसीसे मेरा निवार होगा । इस प्रकार निश्चय करके शत्रुघ्नजी रथपर बैठे ही बड़े जाह्नवीके तटपर आकर कहने लगे— ॥ ७ ॥ हे महापूज्यालिनो मेरे । इति राघव । यदि मगधान् रामचन्द्रजी सन्चारित हो तो आप सेनासहित मुझे रास्ता दे दीजिए । ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार शत्रुघ्नके रथकी सुनकर बङ्गाजीने वेदको सन्द करके अपने पथ परसे शत्रुघ्नकी रास्ता दे दिया । ॥ १० ॥ तब सणभरमे आइ और पैदल सैनिक आकर गङ्गाके उस पार पहुँच गये । इस तरह समस्त शत्रुघ्न समुपव्रत साथ महादेश आचम्य आ पहुँच, जिस देशको वाक्य था कहने हे उन के गोले पार उतर जानेके बाद गङ्गाका प्रवाह पूर्ववत् बहाता ही गया ॥ ११ ॥ १२ ॥ मगधजिवाजी जोर रामचन्द्रके आभूत प्रतापकी समझकर सीतारामके नामका जयजयकार करने लगे ॥ १३ ॥ वहाँसे अश्वमेध यज्ञके लिए छोड़ा हुआ श्यामकूर्म घोड़ा पूर्व दिशाकी आर चल्य । राम मगधेश छोड़के आया हुआ सुनकर हाथीकी खराँवर चढ़ तथा सेनाको लेकर मगधानीके लिए गये । मोहके परतकम रथे हुए यज्ञको पहुँचकर उसकी नगरमें ले गये

पूज्यादरात्म्यैर्न्य तं अनुष्णं विभवेर्निजैः । समस्तं निजकोशादि ममर्प्य भगधाधिपः ॥१६॥  
 पांगन् जानपदान्स्वस्त्रीः सुहृत्तनयमग्निः । पौरपत्नीर्जानपदपरनीर्विश्राम् पुणेधमम् ॥१७॥  
 प्रेषयामास माकेने बाह्वैरश्वः प्रति । स्वयं सैन्येन तुंगपण्णान्मुलक्ष्य च ॥१८॥  
 अनुष्णवागनुवर्ती वद्महन्पुटो ययौ । एवं सवेऽपि राजानो ज्ञातव्याः सर्वदिविस्थिताः ॥१९॥  
 न केनापि श्यामकर्णो वद्धो नृपतिना भुवि । इन्द्रार्घ्यनिर्जरेर्नापि नासुरार्घ्यैः कदाचन ॥२०॥  
 ततो राज्ञी पूर्वदेशानगरमकलिगकान् । तथा नानाविधान्देशान् विलम्ब्य जलधेस्तटम् ॥२१॥  
 दृष्ट्वा नृपकुलैर्पुको दक्षिणाभिमुखो ययौ । गोदावरीं नदीं तीर्त्वा देशमीश्र च द्वाविहम् ॥२२॥  
 अतिक्रम्यारवाराख्यं देशं समतिक्रम्य च । काश्चाप्रदेशान्सकलान्पश्यन्नानाविधान्मुमान् ॥२३॥  
 कावेरीं समतिक्रम्य चोलदेशं विलम्ब्य च । संतुवध ततो दृष्ट्वा पश्चिमाभिमुखो ययौ ॥२४॥  
 ताम्रपर्णीं विलम्ब्य च समतिक्रम्य कैलान् । द्विषट्प्रकारान् देशांश्च गोकर्णं च ततो ययौ ॥२५॥  
 कृष्णार्तीरप्रदेशांश्च समतिक्रम्य षोटकः । कर्णाटकं महादेशं समतिक्रम्य सत्तरम् ॥२६॥  
 कोकणं समतिक्रम्य उत्तरेऽनूपैः सह । भीमान्देशान् समकलाञ्छयामकर्णः शुभावहः ॥२७॥  
 पश्यन् ययौ महाराष्ट्रं गौतमीं तं विलम्ब्य च । विदर्भं समतिक्रम्य पयावामीरमण्डलम् ॥२८॥  
 मालव समतिक्रम्य तीर्त्वा पुण्यां महानदीम् । तीर्त्वा स भ्रमरीं पुण्यां समतिक्रम्य गुर्वरम् ॥२९॥  
 प्रमार्भं च ततो गत्वा ययावानर्तमुत्तमम् ।

मौवीगन् समतिक्रम्य ययौ राज्ञी स माथुरान् । मौराष्ट्रान्यमतिक्रम्य मरुदेशं ययौ हयः ॥३०॥  
 धन्वदेशमतिक्रम्य ययौ सागस्वतानह । मत्स्यान् देशानतिक्रम्य ययौ राज्ञी स माठरान् ॥३१॥  
 शूरसेनानतिक्रम्य पांचालान्तुग्यो ययौ । कुरुक्षेत्रं ततो गत्वाऽतिक्रम्य कुरुजंगमन् ॥३२॥  
 देशं कैकेयमुल्लंघ्य ययौ काश्मीरमुत्तमम् । मिल्हदेशं गौडदेशं यक्कदेशं ययौ हयः ॥३३॥  
 धवर्नाम्नाप्रदेशांश्च समतिक्रम्य वैगनः । पश्यन्नानाविधान् देशान् करतोयातटेन वै ॥३४॥

और बट भारवक साथ अपना संपत्तिसे राजकुमारों पूजा को । समस्त निज कोशादि राजकुमारों अर्पण करके पुरवासियोको, अपने बटुभक्तों, जनपदवासीसोंको एवं अपने मित्र-बान्धवोंको बाहुनोंके साथ अश्वमेष यज्ञमें अगण्ठा भज दिया । किन्तु स्वयं सेनाके साथ अनुष्णके दशवर्ती होकर ययौय अश्वके चरणोंको लक्ष्य करके साथ-साथ चले । इसी तरह सब देशोंके राजा लोग राजकुमारके दशवर्ती होकर अश्वके पीछे-पीछे चले ॥ १४-१९ ॥ पृथ्वीपर किमी भी राजाने श्यामकर्ण बाहुको नहीं बाँधा । न स्वयंमें इन्द्रादि देवताआने और न पाताललोकमें अतुराने उसे बाँधा । २० ॥ उसके बाद थोड़ा बहुत बटुकलिगादि अनेक देशोंमें होना हुआ समुद्रतटपर पहुँचा । २१ ॥ वहाँसे नृपसमूहके साथ बहु दक्षिण दिशामें गया । फिर गोदावरी नदीको पार करके आंध्र, द्विषट्, कारवार नामके देशोंका अतिक्रमण करके नाना प्रकारके मनीहर प्रदेशोंमें घूमता हुआ कावेरी नदीको पार करके चोलदेशमें आ पहुँचा । वहाँमें समुद्रतटपर सेतुबन्ध रामेश्वर होकर पश्चिम दिशामें गया ॥ २२-२४ ॥ वहाँसे बहु थोड़ा ताम्रपर्णी नदीको लाँघ तथा कैल देशका अतिक्रमण करके गोकर्ण तीर्थमें आ पहुँचा ॥ २५ ॥ वहाँसे कृष्णा नदी उत्तरकर बहु थोड़ा कर्णाटकमें पहुँचा ॥ २६ ॥ वहाँसे कोकण देशको पार करके उत्तरेऽशीय राजाओंके साथ मीमा नदीको लाँघता हुआ महाराष्ट्रमें आ पहुँचा ॥ २७ ॥ वहाँपर गौतमी नदीको लाँघकर विदर्भ देशमें होता हुआ आभीरमण्डलमें पहुँचा ॥ २८ ॥ वहाँसे मालवा होता हुआ महानदी पुण्याका अतिक्रमण करके गुजरातमें पहुँचा ॥ २९ ॥ वहाँसे प्रमार्भ तीर्थमें आकर जानत देशको गया । फिर सोवाण आदि देशोंको पार करके थोड़ा मथुरा प्रदेशमें गया । वहाँसे सीताष्ट्र देशको लाँघकर मरुदेश ( मारवाड़ ) में पहुँचा ॥ ३० ॥ उसके बाद धन्व नामके देशका अतिक्रमण करके सरस्वतीके तीरपर गया । वहाँसे मत्स्य देशमें घूमता हुआ माठर देशमें गया । ३१ ॥ उसके बाद बहु श्यामकर्ण थोड़ा कुरुक्षेत्र, पञ्चाल, कुरुक्षत्र, पांगल एवं कैकेय देशमें भ्रमण करता हुआ कश्मीर गया । वहाँसे मिल्हदेश,



परस्परं वियोगोऽयं ममर्हेन तु लक्ष्मण जायते तत्र युक्तिं त्वं मत्तः श्रुत्वा कुरुष्व ताम् ॥५३॥  
 तमसायास्तटे शालां कुन्वाऽयं महर्ता शुभाम् घोषणीयम् सर्वत्र महाद्दुर्भिनःस्वनैः ॥५४॥  
 येषां वियोगस्तर्गन्वा तमसातटशोभिनाम् । शालां प्रवेशयस्व हि स्वानां योगोऽस्तु तत्र हि ॥५५॥  
 चतुष्पदादिवस्तूनि ज्ञान्वा यस्य लघून्यपि । तत्रैव स्थापनीयानि स्वं स्व गृह्णन्तु ते जनाः ॥५६॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तथैन्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा सकारं तन्मर्त्येन योयः परस्परम् ॥५७॥  
 मर्त्ये तत्र जनाः प्रापुः स्वानां स्त्रीचालमत्रिणाम् । चतुष्पदादिवस्तूनां तत्र लाभो बभूव ह ॥५८॥  
 यत्किञ्चिद्विस्मृतं येन वद्दुष्टाऽभ्येन च तदा । शालायां स्थापितं दृष्ट्वा त्वयं जग्राह तत्र सः ॥५९॥  
 एव आरामयते हि ममर्तः संश्रूय ह । न तत्र शुश्रूवे हृन्दः कर्णेऽप्युक्तो जनेस्तदा ॥६०॥

तनम्ये पाथिगाः सर्वे तस्यैव मनसि च सु ॥६१॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतांतथोमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय यागकाण्डे अष्टादशमं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

### चतुर्थः सर्गः

( रामका कुम्भोदर मुनिसे साक्षान्कार )

श्रीरामदास उवाच

अथ ते ऋत्विजः सर्वे मंगलविधिषु शुभैः । यम्यक् प्रवर्तयामासुर्वाजिमेधे यथाविधि ॥ १ ॥  
 तत्रर्षिजो वाजिमेधे गन्तव्योऽयं वामनः । ममदस्या विरेजुम्ने यथा दृष्टहृणोऽध्वरे ॥ २ ॥  
 एतस्मिन्मन्त्रे तत्र सुरेशसहितैः सुरैः । स्वामिना विष्णुराजेन पार्वत्या वृषमस्थितः । ॥ ३ ॥  
 महेश्वरो यज्ञघाटं रामाहूतो यथा गणैः । शिवमागतमाज्ञाय मन्थुर्दम्याय लक्ष्मणः । ४ ॥  
 वारणेंद्र पुरस्कृत्य पनाकाध्वजतारणैः । नानावाद्यमुद्योपश्च वारस्त्राणां प्रनर्तने ॥ ५ ॥

कहा—॥ ५२ ॥ यहाँ भोटक कारण परस्पर त्यागाका विद्याग हा जाता है । असएव मैं एक युक्ति बतलाना हूँ । उसको कहे । ५३ ॥ तमसा नदीके तटपर एक लड़ी याग शाला बनवायो था वृद्धगुणी पिष्टवा वो कि भूने-भटकोको खोजना हो तो तमसा नदीके तटपर जहाँ नयी शाला बनी हुई है, वहाँ जाओ । वहाँपर भूले-भटकों-को खोज पाओगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ लोगोंको खड़ीम लकर छाटी छाटी भा खोयो हुई वस्तुएँ खोज-खोजकर वहाँ रखी हैं । वहाँ जिस-जिसकी जो-जो वस्तु हो, वह अपनी-अपनी वस्तु ले ले । इस प्रकार रामजीके वचन सुनकर लक्ष्मणने कहा—अच्छा महाराज ! ऐसा ही करेगा । इसके बाद लक्ष्मणजीने ऐसी व्यवस्था की, जिससे सबका अपने निवृत्त वाग्धवागे मिलान होने लगा । ५६ । ५७ । विधुक्त वन्धु वहाँ गये और सबको अपने अपने स्त्रो-पुत्र-मिनादि और नकुण्डादि पाशु सभी मोई हुई चीजे मिल गयी । जहाँ-कहाँपर जिससे जो वस्तु बूझसे छूट गई, उस वस्तुको राजानुधरने तथा जिसने देखी एवं जिसको मिली, उसने वहाँ शालामें रखवा दी और जिसकी वह वस्तु थी, उसने वहाँ जाकर ले ली । ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार श्रीरामजीके यज्ञमें ऐसी भोट हुई कि जिसके कारण कानमें कहा हुआ भी शब्द मनुष्योंका नहीं सुनाई पड़ना था । ६० ॥ राज भगवान्के दशन करके सब राजा लोग अपने-अपने स्त्री-पुत्र मित्रादिकोका लेकर अलग-अलग तन्मुखों ( लेखों ) में रहने लगे । ६१ । इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय यागकाण्डे अष्टादशमं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर सब ऋत्विक् मंगलमय कुन्वोंके साथ-साथ शास्त्रानुसार सशस्त्रमेध यज्ञ करवाने लगे ॥ १ ॥ उस समय यज्ञमें रत्नमय आभरणों और धरुनाको पहिने हुए ऋत्विक् ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे इन्द्रके यज्ञमें सुशोभित होते थे ॥ २ ॥ उसी समय वहाँ रामजी के कुन्वोंसे बैलपर चढ़कर महादेव और पार्वतीजी आयीं । उनके संग इन्द्रादि देवता, स्वाधिकारिकेय, गणेशजी एवं प्रमदादि सब गण भी आये ॥ ३ ॥ महादेवजीका आगमन सुनकर सम्पूर्ण नगर भवजा-पत्तिका आदिसे सजाया गया ।



संपूज्य शंकरं भक्त्या चानयामास महत्तमम् । एव नम एवान्यग्रे शम्भोऽपि शंकरम् ॥ ६ ॥  
 नमस्कृत्य समान्निव्य विश्वेश गिरिजाश्रितम् । हेमाग्रे मन्त्रिद्वय हेमपात्रे स्वहस्ततः ॥ ७ ॥  
 पादप्रक्षालन शमोश्चकार मीढा प्रभुः । हानामि हस्तयोर्मां गन्तादिचित्रया ॥ ८ ॥  
 जलधारां यथार्थाम्या मौवयाम्नाय जनना । तस्मै गता मन्त्रां हृत्वा दशमपास्वरा ॥ ९ ॥  
 अनिमेषाः कञ्जनेत्रकटाक्षाः मन्त्रिगणद्वय । तस्मै श्रुत्वा मन्त्रं अमन्त्र न विदुः के वयं न्वित ॥ १० ॥  
 तुष्टुस्तत्र कर्चिने सुगः श्रोगाग्रं मुदा । चन्दोः तुष्टु केचिन् प्रवद्वयमम्बुदाः ॥ ११ ॥  
 एव निजैरमस्यानां मन्तोपमत्र वै ह्यभूत् । अतोऽयम् तथैदं दृष्ट्वा रूप कोटिरविप्रभम् ॥ १२ ॥  
 अथ रामः सौम्या हि शंकरं गिरिजामपि । स्वयं संपूज्य सकलान् देवान् सौमित्रिणा कर्षयन् ॥ १३ ॥  
 पूजयित्वाऽत्रर्षाद्वार्य शंकरं लोकशंकरम् । अथ पञ्चोऽस्म्यहं वद दशनात्तर सौम्या ॥ १४ ॥  
 अथ मे सूर्यवशोऽस्मिन् जन्म म कल्पयतः शनम् । इति रामस्य वचनं श्रुत्वा स शशिभूषणः ॥ १५ ॥  
 विदुष्य राघवं प्राह वेत्ति माया हरं नव न्वन्न भिक्तमन्त्रे ब्रह्मा ज्ञानमन्त्रमाप्नुनाश्वराः ॥ १६ ॥  
 मरीच्याद्याः सन्धुः पोत्राः सप्तहर्ताजमः । मरुतेः कश्यपः पुत्रः सृष्ट्युपनिषदायकः ॥ १७ ॥  
 कश्यपात्मविता जज्ञे पौत्रपौत्रमन्त्र प्रभा । रवेज्जानः सूर्यश्चन्द्रश्च नव जन्म वै ॥ १८ ॥  
 त्वद्वशमभवः सूर्य किं मां मोहयसि प्रभो । देवानां कार्यमिदृशमर्ताणोऽसि मायया ॥ १९ ॥  
 कुरु कीडां यथेच्छ त्वं यात्रापजार्दिकीपुङ्गवः । शिशां कर्मणि लोकानां वदस्यस्व राष्ट्रते तव ॥ २० ॥  
 इति श्रुत्वा शंभुवाक्यं मां गार्गी त्रिभुव्य च । वदस्व इममपि तु त्वम्भुगुप्तमन्त्रिर्मा ॥ २१ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र महाजगम् महामगः । गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धास्त्रिधा चागम्यमां मयाः ॥ २२ ॥  
 लोकपालाश्च दिक्पालाश्च समस्तजितरश्मिनः । नवग्रहाः पटुतवाः पश्चिमवारास्तथा ॥ २३ ॥

वेण्याओक नाम्ना प्रकारके नाम और अन्य तरह के नामों के साथ हार्थीपद सहकर लक्ष्मणजी उनकी समार्वानके लिए गये ॥ ४ ॥ ५ ॥ वे भी पूर्वक शंकरमगवान्को यज्ञमण्डपमें ले आये । रामजीन भा उनकी आते दया ता पौत्र सात पद भा वन्दर शंकरजोया प्रणाम किया । शिखमार्वताका मन्त्र र करके सृष्टिशग्य मित्रामनवर देताया । मन्त्राक मध्य रद्वय रामने अपने हाथ परमन्त्रमिल एक वरने मन्त्राक पदम दोनोका पदप्रक्षालन किया । मन्त्राक पदमन्त्र के चन्दोपर गिरावन् जलधारा आने । मुग्धत दवतामण निमित्तमय वज्रम औरम् ॥ १० ॥ ११ ॥ अन्तम जाया दवता चित्रमिन्दस हो भव । नव भूतिक जान नगे रहा कि मे कीज है । १२-१० । उय सार वदमण गद्व । तव श्रोगाम्य द्व और म । मां । म काकी मुक्ति करन लग । ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ म प्रभ । म ना ओ । म मन्त्रा कटि माकी कार्तिके समान प्रभाका । अन्तम सौत्य दमकर देवताका अनाव प्रमन्त्र हुई । १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

ऋक्षाणि त्रिदशयोगा कर्णानि च राज्ञयः । सर्वान्तरः सर्वे मगगश्च नदा अपि ॥२४॥  
 मगगराणि नद्यश्च वायुः कृशकृष्णधरः । घृन्वा जगमरुपाणि यद्युक्ते यज्ञमण्डपम् ॥२५॥  
 ममामृतञ्च संपत्तिर्गुदको मकरध्वजः । ममापर्यो म लङ्काया राजर्षेश्च विभीषणः ॥२६॥  
 मर्निना राघवेणापि यज्ञं तस्युः प्रयुजिताः । त्वन्निके स्थापिताः पूर्वं सर्वशम्भु प्लवंगमाः ॥२७॥  
 एतांस्मन्नन्तरे तत्र ममाशानो मुनिश्चरः । कुम्भोदरो महानेत्राः सीमाचारैर्विलोकितः ॥२८॥  
 तं दृष्ट्वा मयभीतास्ते सर्वे प्रोचुः परस्परम् । हा कष्टं पुनरागतः सोऽयं कुम्भोदरो मुनिः ॥२९॥  
 यात्राश्रमो राघवस्य यन्मिस्तो बभूव ह । यद्वाक्यादश्वमेधोऽपि सर्वेषां यज्ञभूव ह ॥३०॥  
 महान् भ्रमोऽयं पुंस्तु भ्रमतां जगतीदले । अयुनाऽपि ममाशानः किमग्रे वै पुनश्चयम् ॥३१॥  
 कर्मण्य न न तद्विप्रो राघवस्यापि विदकः । एष नानाविधा राज्ञः सीमाचारगणैरेतः ॥३२॥  
 मृण्मयं कुम्भोदरस्तुर्णी ययो यज्ञभूव प्रति । सदागमनपूर्वं स सीमाचारैर्विवदितः ॥३३॥  
 धावद्विर्धमानश्च स्थलद्वान्निन्दुरान्विर्धैः । राम राम महाबाहो हे लक्ष्मण मृणु प्रभो ॥३४॥  
 यात्रायज्ञश्च यद्वाक्यात्तु समाशानः स वै पुनः । कुम्भोदरो मुनिभृष्टो राम त्वमपि निष्ठुरः ॥३५॥  
 तद्दुस्तरचर्तं श्रुत्वा सर्वे तरुनीन्सुकाः । त्यक्त्वा स्त्रीषानिकर्माणि चोत्सृज्य स्तुतिदृष्टया ॥३६॥  
 क्रान्तिजो राघवः सीता न भयं मेतरे मुनेः । कुम्भोदरो यज्ञवाट ययो सविविर्लोकितः ॥३७॥  
 अतिस्वर्गः स्थूलशिराः उपामकृषः मण्डूकः । म्यलेंदरः पिगनत्रः सर्पिणीनां जटाधरः ॥३८॥  
 चीरवासाः स्वपादः खड्गभ्रमो महामुनिः । पुत्रा किंभिन् समुपुनो घृतदण्डकमण्डलुः ॥३९॥  
 तं दृष्ट्वा मरुता लोका मयं प्रादुः स्वचेताम् । पूजयेम सस्मृत्य मथुन्य च परमपरम् ॥४०॥  
 एतांस्मन्नन्तरं राघः शीघ्रं प्रत्युज्जगाम नृप । माष्टाणि प्रणयन्वाव करे घृन्वा तु मण्डपम् ॥४१॥

दिव्य चरण एवं मांसराशोवा गण आया ॥ २४ ॥ समूह लक्ष्मण, दत्तात्रेय तथा मन्मथ, कवासो भीमाश्व । नवो  
 गृह, छत्रा अगुर्वी, सातो सम्बन्धर एवं तिथि नक्षत्र याग करण राश पवन वृक्ष समुद्र तट नदी कृष्णतालाव तथा  
 अन्य सुखम प्राप्ती सभा आने जलम कर घाटण करक गणक यज्ञम आये ॥ २५-२४ ॥ मृधगज सभाति, निषादराज  
 एवं मकरध्वज आये तदनन्तर सभा राजसोक सब लक्ष्मण विभीषण आयाये ॥ २६ ॥ मगगान् रामान् सबको  
 पूजा का ओर भयन समाप्त वेटाया बन्दर पहनस हा वही टिक थे ॥ २७ ॥ इयं समय महातेजा  
 कुम्भादर मुनि आये । गुरु भूमिका साम पर निवास करनवालोने उन्हे भाल हुए देखा ॥ २८ ॥ वे देखकर बड़े  
 भयभ भ हुए और बोले अह ! बड़ कष्टका यात है । यज्ञ ता फिर व कुम्भादर मुनि आये ॥ २९ ॥ जिनके  
 कारण मगगान् रामका यात्रका कष्ट हुआ था, जिनके कारण हम सबको अभ्यस्य हो गया ॥ ३० ॥ धड़के  
 पोरदवस मगगान् इधरसे उधर उधरसे इधर घूमन हुए कल्पित कष्ट भाग । अब यह फिर आये है । अब  
 भागे क्या करग, सा हमलाग नही जानत । यह रामवाना नडा निन्दक है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सभाचारी  
 सभीकी वाणियाकर मुनत हुए, कुम्भादर बुधच प यज्ञभूमिम आये ॥ ३२ ॥ उनका अनेक पूर्व हा बड़ वेगसे  
 भागल-कापत हुए दूतीने आकर राघव निवेदन किया- ॥ ३३ ॥ हे राम ! हे महाबाहो लक्ष्मण हे प्रभा ! आप  
 लोग मुने । जिसके वाक्यस अबन गाथा और यज्ञीक आ है वही कुम्भादर मुनि फिर आये है । हे राम आपके  
 ऊपर इनका बड़ा कठर भाव है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस तरह इनके वाक्य सुनकर सब भयन अपने कायोंका  
 छोटकर उन्हे दावतका उठे ॥ ३६ ॥ क्रान्तिक लाग, सातो तथा रामजी मुखिस भयभ भ नही हुए । उनके देखते-  
 देखते वे कुम्भादर मुन यज्ञभूमिम आ पहुँच ॥ ३७ ॥ जा बड़ नाट थे जिनका मस्तक बड़ा था जिनका नाड़ियाँ  
 उमड़ो थीं, जिनके शिरास कण थे । ना सटाई पहन हुए तथा स्तूल उदरवाले थे पेलवाल जिनके नत्र थे । वे  
 कीर्पन पहिन तथा जटा घाटण किए थे ॥ ३८ ॥ धर पहिन हुए व छोट छोट हाथोवाल थे । कुवा हेंनर  
 जिनके मुँह का गही थो और जा दण्ड-कमण्डलु घाटण किए हुए थे ॥ ३९ ॥ उनका दलकर सम्पूर्ण अनसमुदाय  
 सबके पहिनके कुवाको मुन गुन और स्मरण कर-करक मन हु मन भदधीत हुआ ॥ ४० ॥ उसी समय राम

आनयामास श्रीगणेशो ददौ हैमामन वरम् कुम्भोदरो धुनिः प्रीतिं भूमौ वडकमडम् ॥४२॥  
 स्थापयामास श्रीराणि ननाय रघुनायकम् । रामः प्रीतिं कराम्णां तं प्रपुन्यात् प्रसीदाम् ॥४३॥  
 गाढमालिङ्ग्य ब्राह्मणो ततो मुनिमभयत नाह योऽयौ वदनार्थं त्वया रात्रययातकः ॥४४॥  
 इति रामश्चोर्वैश्यानिः संताडिनो हृदि । कुम्भोदरस्तत्रोवाच यदृशटे रघूचमम् ॥४५॥  
 राम राम महानाहो न क्रोधः किमनो मयि । प्रपरात्यस्म्यहं ते हि क्षमस्व रघुनायक ॥४६॥  
 न मया स्वार्थमिदमर्थं दोषारोपः कृतस्त्वयि । कृतः परोपकारार्थं तथा कीर्त्यं त्वयि च ॥४७॥  
 शिक्षार्थं सकलान्लोकात् उच्छ्रितं च त्वयापि हि । यत्ने तु नयः सर्वे तव मन्त्रेऽन्ननिर्मिते ॥४८॥  
 श्वश्रो भोजनं चक्रुस्तथा धुक मयाऽपि च । तदा कुतो महत्कीर्तिस्त्वन मे रघुनन्दन ॥४९॥  
 इति निश्चिन्त्य हृदये मया पूर्वं हिनाय हि । लोकाणां च कुतो यन्नमन्यपि दोषानुकीर्तनैः ॥५०॥  
 नोन्नेषान्नाममुद्योगः कथं राम भवेत्तव । यत्र यत्र च देशेषु तीर्थेषु वनेषु च ॥५१॥  
 आश्रमाश्रमश्रावेषु नदीपनगिरिष्वपि । ये ये जनाश्च सर्वत्र नानाकर्मसु तत्पराः ॥५२॥  
 तव दर्शनलामस्तु तेषां जतः सुखप्रदः । तत्राहं कारण मन्ये चान्मानं रघुनन्दन ॥५३॥  
 ममालम्ब्युपकारस्तु जनैः सर्वत्र कीर्त्यते । कुम्भोदरप्रसादेन नः सीतलामदर्शनम् ॥५४॥  
 ज्ञातं विषयलुब्धानामिति मे कृतकृत्यता । जानासमन्तं कीर्तिस्त्वयि दोषानुकातं नान् ॥५५॥  
 तवापि कीर्तिः सर्वत्र जानाश्च रघुनन्दन । रामेश्वरश्च सर्वत्र रामतीर्थान्यनैकशः ॥५६॥  
 यावदुभूय्यां प्रसीयेत तावत्कीर्तिस्तथापि च । अन्यच्च लोकशिक्षार्थं जाना मद्रक्षरकारणात् ॥५७॥  
 कुम्भोदरेष धुनिना राघवस्य महान्मनः । दोषारोपः कृतः पूर्वं कथं नो न भविष्यति ॥५८॥  
 स्वदोषपरिहागर्थं राघवेण महान्मना । तीर्थयात्रां कृत्वा पूर्वमस्माकं का कथा पुनः ॥५९॥  
 इति स्मृत्वा भयं चित्तो सर्वत्र जगतीयते । कम्प्यन्ति जना यात्रां स्वदोषशालनाय हि ॥६०॥

बड़ा गाथावाले आये और कुम्भादरको गालाजू प्रणाम करके हाथम हाथ मिलाते हुए, यज्ञमण्यम ने आगे  
 और ऊँह सुवर्णनिर्मित आसन बैठनके लिए दिया ॥ ४२ ॥ कुम्भादर ने भी आग्रह ही भूमि पर उष्य नमनकन रख  
 कर रघुनायक रामको प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ राम ने मोंद्र मूलको हाथस उठा लिया और बहुतआस हृदालिङ्गन  
 करके बान हे भगवन् । रात्रययातक मे आपकी खन्दता कर्तन योग्य नहीं है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ राम तरह रामक  
 वाक्यवाणसे हृदयमे विद्ध कुम्भोदर रामसे कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे राम । हे महाबाहो ! आपकी इस तरह  
 मेरे ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए । मे आपका अपग्राही हूँ । मुझ क्षमा कर ॥ ४७ ॥ मेने स्वार्थमिदिके  
 लिए आपके ऊपर दोषारोपण नहीं किया था । किन्तु संसारका उपकार करनेके लिये, आपकी कार्तिवृत्ति-  
 के लिए और संसारकी शिक्षित करनके लिए ही मेने ऐसा किया था । सो आपन जान ही लिया होगा ॥ ४८ ॥  
 ॥ ४९ ॥ जैसे इन मुनिगोन आपक अन्नअंशम सकल दार भोजन किया है वैसे ही मेने भी भोजन किया है ।  
 आपकी और मेरी कीर्ति कैसे हो, पहलेसे ही यह निश्चय करके मनाके हितके लिए मेने आपकी निन्दा की  
 थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अनन्धा हे राम । विभिन्न तीर्थों तथा देशोंके लिए आपकी यात्रा नहीं होनी । विविध तीर्थ,  
 तथा, वन बर्गचा तथा आश्रमोप मा मनुष्य नावा कर्मान लिख हा रहे है, उनका जो आपका सुखप्रद दर्शन-  
 लाभ हुआ । उसमे मे अपनेको ही कारण मानता हूँ ॥ ५१-५३ ॥ सब मनुष्य सभी जातु मेरे इस उपकारका  
 कीर्तन करते है । वे कहते है कि कुम्भोदरको कुत्राम ही हम लोगको सर्वान्तरिके दर्शन मिल गये ॥ ५४ ॥  
 आपके ऊपर दोषारोपण कर दस विषयी जनाका भी आपका दर्शन प्राप्त हुआ । इससे मे कृतकृत्य हो गया  
 और चारो तरफ आपकी कीर्ति फैल गयी ॥ ५५ ॥ जवनक भूमण्डलपर विविध राघवर महादेव और रामतीर्थ  
 रहेगे, तावतक आपकी कीर्ति संसारमे स्थिर रहेगा ॥ ५६ ॥ और फिर मेरे दुर्वचिके कारण ही यह लोकशिक्षा  
 भी हो गयी कि कुम्भादर मुनिन अब रामबाहो दोष लगाया तब हमलोको कैसे न लगेगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥  
 प्राचीन समयमे महात्मा रामचन्द्रने दोषको नष्ट करनेके लिए तीर्थ किया था तो फिर हमलोकोका ही कहना

न्वपि ब्रह्मणि पूर्णे च दोषारोषः कथं भवेत् । पद्मपत्रे जलस्थश्चो न घटेन यथा तथा ॥६१॥  
 यस्य भ्रमगमात्रेण ब्रह्माद्विप्रलये भवेत् । ब्रह्मादांतेगतान् जीवान् हर्गमि त्वं यदा मुहुः ॥६२॥  
 तदा दोषानुरोपन्ते किं घटेन जनार्दन सर्वपां च ह्य मृत्युर्दिदधानि तवाज्ञया ॥६३॥  
 तत्र संख्यात्र का कार्या न्यया दोषः कुतस्मिन्निति यथा चित्राणि कुड्ये हि निर्जीवनानि सहस्रशः ॥६४॥  
 संसर्जितानि तेनैव तत्र दोषो मयस्कथम् । तथा स्वमपि श्रीगाम त्रिधा भूत्वा त्रिभिर्गुणैः ॥६५॥  
 सृष्टिं करापि रजसा सत्त्वरूपेण पालनम् । तमोरूपेण सहारं विधिरिन्पुञ्जितान्मकः ॥६६॥  
 अस्माभिस्तत्र तीर्थार्थं तीर्थयात्रा विधीयते । तव तीर्थस्तु किं राम तीर्थीभूतगुणस्य च ॥६७॥  
 सवतीथयु मुरुया या कीर्त्यते स्वधुनी भुवि । तव दक्षिणपदस्यांगुष्ठाग्रजनिता तु सा ॥६८॥  
 त्रयोद्विरजसः स्वर्गान्पवित्रा कीर्तिना भुवि । तव पादरजोमिश्रा दृश्यन्तेऽद्यापि सा मिता ॥६९॥  
 रजोत्पद्यापि दृश्यन्ते तव भार्गवर्षोजले । इति नानादिर्धार्क्यस्तोषयामास राघवम् ॥७०॥  
 अष्टोत्तरशतं यातु श्रीमद्रामस्तनेन च । स्तुत्वा राम राघवण पूजितः स्थितवान्मुनिः ॥७१॥  
 तमोऽपि गुरुसान्निध्ये तस्यो मनामपन्वितः । निद्रामनेषु सर्वत्र तस्मिन्ने सकला जनाः ॥७२॥

इति आगतका दृगभर्चरितास्तगतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे

कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद सविस्तरम् । कुम्भोदरेण मुनिना यस्तोत्रं समुदीरितम् ॥ १ ॥

अष्टोत्तरशतं नाम्नी राघवस्य शुभप्रदम् । श्रवणे तस्य मे प्रीतिर्जाताऽस्ति कथयस्व तत् ॥ २ ॥

हा भैया है ॥ ५९ ॥ इस तरह पृथ्वीतलपर मनुष्यमात्र अपने चित्तमें सदका अनुभव करके स्वदासपरिहाराय  
 तार्थयात्रा करेगा ॥ ६० ॥ जैसे कमलके पत्रेपर जख्म स्पर्श नहीं हो सकता, वैसे ही आप पूर्ण रह्य़ा दोषारीय  
 नहीं हो सकता ॥ ६१ ॥ जिसके भ्रम द्रुमात्रसे ग्रहणाण्डमें प्रत्यक्ष हो जाता है वही आप ब्रह्माण्डास्तगत सब जीवो-  
 क्तों अन्तर्में विस्तार करने हैं ॥ ६२ ॥ तब है जनार्दन भगपर कायागत कैसे हो सकता है ? अब आप ही  
 की आज्ञासे मुझे सबका सब काती है ॥ ६३ ॥ तब आपन कितने दोष किये ह ? इसकी गणना कीन कर  
 सकता है ॥ ६४ ॥ जैसे किसी ने मिट्टीपर चित्र लिखा और फिर च्यान अपने हाथमें मिटा दिया । तब उसमें  
 क्या रस्य हो सकता है । उसी तरह आप भी तीनों गुणोंसे तीन तरहके अर्थों सह्य-विद्युत्-पित्त-रूपमें  
 परिणत होकर रजोगुणसे सृष्टि, सत्त्वसे पालन और तमोगुणसे सहार करने हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इस काम  
 आपकी प्रसन्नताके लिए हम तार्थयात्रा करते हैं । स्वतः तार्थस्थाय आपका तीर्थोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ६७ ॥  
 जिस गङ्गाको याग सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ मानत है, वह गङ्गा आपके दाहिने पैरके अग्रदेस उत्पन्न हुई है ॥ ६८ ॥ वह  
 यागके चरण रजस्वशसे ही पवित्र माना गया है । इसी कारण यह आज तक श्वेत दिखाई पड़ती है ॥ ६९ ॥  
 आज भी गङ्गाजीमें आपकी चरण-पु दाख रहती है । इस प्रकारक वात्सवीसे कुम्भोदरमुनि भगवान् रामको  
 प्रसन्न किया ॥ ७० ॥ इसके बाद रामाष्टोत्तरशतनामसे रामकी स्तुति करके और रामके द्वारा पूजित  
 होकर वे यथास्थान बैठ गये ॥ ७१ ॥ रामजी भी गुरुके समीप हीनांक साथ जा बैठे । अन्याय साथ भी अपन-  
 अपन आसनोपर विराजमान हो गये ॥ ७२ ॥ इति श्रीशतकोटरामचरितास्तगतश्रीमदानन्दरामायणे  
 कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीविष्णुदास बोल -हे गुरु । मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । जो प्रश्न मैं पूछना चाहता हूँ, उसका  
 आप विस्तृत उत्तर दीजिए ॥ १ ॥ कुम्भोदर मुनिने रामके जी अष्टोत्तरशत नामोंका शुभप्रद स्तोत्र कहा

श्रीरामदास उवाच

मृषु शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्टं त्वया मम । अष्टौत्तरशतं नाम्नां त्वदस्य वदाम्यहम् ॥ ३ ॥  
 सर्वेश्वरः सर्वेश्वरः सर्वभूतोपकारकः । सर्वेषामुक्तागर्थं यः साकारो निराकृतः ॥ ४ ॥  
 स मन्त्रयेव लोकेऽस्मिन् समस्तभयनाशनः । यदा यदा हि लोकानां भयमुत्पद्यते तदा ॥ ५ ॥  
 अरुणीर्षाकरोन्मूर्छमान् दृष्ट्वा परिमदेनन् । मन्त्रपूज्यवरादादिरूपेण परमार्थदृक् ॥ ६ ॥  
 तच्छालेषु च सर्वेषु सर्वगह्वरकाकृत् । पापुर्ना मम पितामां मत्पुत्रां मत्पुत्रायकः ॥ ७ ॥  
 उपकृत् निराकारः सदाकारेण जायते । अत्राप्य जायतेऽनन्तो विभुनो भूः पारमः ॥ ८ ॥  
 यदा तदाऽवतरति भक्तानामनुकम्पया । धीमान्धी देवदेवेशो लक्ष्मीनारायणो विभुः ॥ ९ ॥  
 अशेषैः शत्रुचक्षुष्यां देवदेवादिभिः सह । शेषोऽभूत्लक्ष्मणो लक्ष्मीनारायणो शत्रुचक्रे ॥ १० ॥  
 ज्ञातो भगवत्पुत्रो देवाः सर्वेऽपि मानसाः । मानसं पुरं सर्वेऽपि देवानां भयशान्तये ॥ ११ ॥  
 तत्र नारायणो देवः श्रीराम इति विश्रुतः । सर्वलोकपक्षागव भूमी स्वयमवानरत् ॥ १२ ॥  
 ध्यानपात्रेण देवेशो महापातकनाशकृत् । कीर्तनश्रवणाम्नां च हृत्पाकोटिनिवाणः ॥ १३ ॥  
 कलौ स कीर्तनेनैव सर्वं पापं ह्वयोदति । राम रामेति रामेति ये वदन्त्यतिपापिनः ॥ १४ ॥  
 पापकोटिमदस्य स्थानुदगतिं तान्पथा । अष्टौत्तरशतं नाम्नां तस्य स्तोत्रं वदाम्यहम् ॥ १५ ॥

ॐ अक्षय धीरामचन्द्रनामाष्टौत्तरशतमवस्य भव्या ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । जानकीवल्लभः  
 श्रीरामचन्द्रो देवा । ॐ बीजम् । नमः शक्तिः । श्रीरामचन्द्रः कीलकम् । श्रीरामचन्द्रश्रीमर्थ  
 मये विनियोगः । ॐ नमो भगवते राजाधिगजाय परमात्मने हृदयाय नमः । ॐ नमो भगवते  
 विद्याधिराजाय हृदयश्रीवाय शिखे स्वाहा । ॐ नमो भगवते जानकीवल्लभाय नमः शिखायै वषट् ।

है, उनके सुननेकी मरी प्रबल इच्छा है । वह कहिए ॥ ३ ॥ श्रीरामदास बाल-हं महाबुद्ध शिष्य ! मुनी !  
 तुमने अच्छा सवाल पूछा है । मैं तुम्हें रामाष्टौत्तरशतनामस्तोत्र सुना रहा हूँ ॥ ३ ॥ राम सबभर है, सर्वेश्वर है,  
 और सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले है । ये निराकार होते हुए भी संहारक काश्चात्कार्य संहारक  
 मनुष्यदेह धारण करते हैं ॥ ४ ॥ जब जब प्रजाको भय होता है, तब-तब उस भयको नष्ट करनेके लिये ये  
 इस लोकमें अवतार होते हैं ॥ ५ ॥ अवतारों होकर ये मन्त्र-पूज्य-वरादादि रूपसे धनशत्रुमाका विनाश  
 करते हैं । भगवान् जो कुछ करते हैं, वह सब परमात्माकी इच्छासे ही करते हैं ॥ ६ ॥ ये भक्तवत्सल प्रभु  
 हमदर्शी हैं । साधुओं और भक्तोंके उपकारार्थ निराकार होते हुए भी अत्यकालमें ही साकार हो जाते हैं ।  
 ये भूतभावन प्रभु अनन्त एवं अज हैं और इन्ही नामोंमें प्रसिद्ध हैं । ये समय समयपर भक्तोंपर अनुकम्पा करके  
 अवतारों होते हैं । ये देवदेव इन्द्रके भी पातक हैं । ये द्यौस्तानमें उड़ने करते हैं और सर्वत्र व्यापक हैं  
 ॥ ७-९ ॥ ये हैं लक्ष्मीनारायण जिसके देवाके साथ ब्रह्मात्मके भवणान्तर्य रामरूपसे संभारम अवतारों हुए ।  
 जेय लक्ष्मण बने । लक्ष्मी जानकी बनी और भगवान्के पार्श्व शम्भु अथवा भरत-शत्रुघ्नके रूपमें उल्लस रहे  
 और सब देवता मानस बन ॥ १० ॥ ११ ॥ जो श्रीराम एही नामसे प्रसिद्ध हैं, ये साक्षात् नारायण हैं और  
 लोकोपकारार्थ संहारक स्वर अवतार हैं ॥ १२ ॥ उन भगवान् रामके ध्यानमात्रम भगवत्पूजक भी नष्ट  
 हो जाते हैं । ये कीर्तन श्रवण करनेसे कोटि हृत्पाकोटि पापका जो निवारण करते हैं ॥ १३ ॥ ये भगवान्  
 कलियुग नाम कीर्तन करनेसे ही सब पापोंको नष्ट कर देते हैं । जो पौर पापी जो राम-पुत्र उच्चारण करते हैं तो  
 राम उनका सहस्रकोटि पापोंसे उद्धार कर देते हैं । उन भगवान्के बहु संहारनामस्तोत्रकी कक्षा है ॥ १४-१५ ॥  
 रामचन्द्रके इस महानर रामनाम मन्त्रके बड़ा ऋषि है । अनुष्टुप् छन्द है । जानकीवल्लभ ध्यानपात्रमः  
 इतक रहता है । ॐ बीज है । नमः शक्ति है । श्रीरामचन्द्र कीलक है । श्रीरामचन्द्रार्थ इतक विनियोग है ॥ १॥  
 है । ॐ हृदयमें बैठे हुए राजाधिराज परमात्माम्बरुप भगवान्को बारम्बार नमस्कार है । मस्तकम विराजमान  
 विद्याधिराज हृदयोऽयं भगवान्को नमस्कार है । शिखायै विराजमान जानकीवल्लभ भगवान्को नमस्कार और

ॐ नमो भगवते रघुनन्दनायामिततेजसे कवचाय हुम् । ॐ नमो भगवते क्षीराश्विनव्यस्याय  
नारायणाय नेत्रत्रयाय त्रीषद् । ॐ नमो भगवते सत्यकाशाय रामाय जज्ञाय फट् । इति षडंगन्यासः ।  
एवं अंगुलिन्यासः कार्यः ।

अथ ध्यानम्

मन्दारकृतिपुण्यधामविलसद्वधःस्थलं कोमल छातं फांतमहेन्द्रनीलवधिराभामं सहस्राननम् ।

वर्देऽहं रघुनन्दन सुरपाते कोदण्डदीप्तः । गुरुं रामं सर्वज्ञमनुसेवितपदं सीतामनोवह्नुमम् ॥१६॥  
सहस्रदीर्घो वै तुभ्यं सदस्त्राक्षाय ते नमः । नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥१७॥  
नमो जीमूतवर्णाय नमस्ते विश्वतोमुख । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शेषशायिने ॥१८॥  
नमो हिरण्यगर्भाय पञ्चभूतान्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये देवानां हितकारिणे ॥१९॥  
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वदुःखनिपूदन । शंसचक्रमदापभ्रजटमुकुटधारिणे ॥२०॥  
नमो गर्भाय तन्वाय ज्योतिषां ज्योतिषे नमः । ॐ नमो वासुदेवाय नमो दशरथान्वज ॥२१॥  
नमो नमस्ते राजेन्द्र सर्वमम्पद्मदाय च । नमः कारुण्यरूपाय कैकेयीप्रियकारिणे ॥२२॥  
नमो दांताय शोभाय विधामिश्रप्रियाय ते । यज्ञेश च नमस्तुभ्यं नमस्ते क्रतुपालक ॥२३॥  
नमो नमः केशवाय नमो नाथाय शार्ङ्गिणे । नमस्ते रामचन्द्राय नमो नारायणाय च ॥२४॥  
नमस्ते रामचन्द्राय माधवाय नमो नमः । गोविन्दाय नमस्तुभ्यं नमस्ते परमान्मने ॥२५॥  
नमस्ते विष्णुरूपाय रघुनाथाय ते नमः । नमस्तेऽन्नापनाथाय नमस्ते मधुसूदन ॥२६॥  
त्रिविक्रम नमस्तेऽस्तु सीतायाः पतये नमः । वासनाय नमस्तुभ्यं नमस्ते राघवाय च ॥२७॥  
नमो नमः श्रीधराय जानकीवल्लभाय च । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश कर्पाय नमो नमः ॥२८॥

षट्दश है । बाहुओम कवचरूपेण विद्यमान अमिततंजा उन रघुनन्दनको नमस्कार है, जिनके हुम्कारमात्रसे सब वस्तु नष्ट हो जाते हैं । नेत्रोम त्रीषद् अर्थात् त्र्योतिस्त्वंग विद्यमान तथा क्षीरसागरमें स्नान करनेवाले भगवान्को नमस्कार है । अस्त्रस्वरूप फट्स्वरूप और संप्रकाश स्वरूप रामको नमस्कार है । इस प्रकार भगवान्को छहों अक्षरोंमें न्यास अर्थात् विराजमान करे । इसी तरह अंगुलियामें न्यास करे । अब यहूँसे एक पल्लोकमें रामका ध्यान करके स्ताव आरम्भ होता है । जिनकी मंगोहर आहुति है । जो पश्याम है । मालाओसे जिनका वक्षःस्थल सुगोमित हो रहा है । जो कोमल एवं सान्त्व है । जो सुन्दर महेंद्रनं लमणिकी कान्तिकें समान मुखोमित हैं । जो धनुर्वदकी शिखामें संसारके गुरु हैं । ममार जिनके चरणोंका पूजना है, उन मुखवटि तथा सीताके प्राणमल्लभ रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१६॥ हे राम ! सहस्र भस्त्रकवाले आपको नमस्कार है । शेषके समान कान्तिवाने आपको वमस्कार है । हे विश्वतोमुख ! आपको नमस्कार है । अच्युतको नमस्कार है । शेषशायीको प्रणाम है ॥१७॥ हे हिरण्यगर्भको प्रणाम है । पञ्चभूतान्माको प्रणाम है । मूलप्रकृतिको नमस्कार है ॥१९॥ हे सर्वलोकनाथ । सब दुःखोंको दूर करनेवाले ! आपको प्रणाम है । हे शंस चक्र उदापय तथा नटा-मुकुट धारण करनेवाले राम ! आपको नमस्कार है ॥२०॥ गुरुस्वरूप आपको प्रणाम है । तस्वस्वरूपको प्रणाम है । ज्योतिषो-र्षी श्री ज्योतिषीको नमस्कार है । वसुदेवके पुत्रको प्रणाम है । दशरथपुत्र रामको प्रणाम है । २१॥ हे राजेन्द्र ! सब संरक्षित देनेवाले आपका प्रणाम है । हे दयाके मूर्तस्वरूप तथा कैकेयीके प्रिय करनेवाले ! आपको नमस्कार है ॥२२॥ दात, शान्त एवं विश्वामित्रके प्रियकर्मी आपको प्रणाम है । हे यज्ञेश ! हे क्रतुपालक ! आपको प्रणाम है ॥२३॥ केशवको नमस्कार है । शार्ङ्गिकीको नमस्कार है । रामचन्द्रके निम् नमस्कार है । नारायणके लिए नमस्कार है । २४॥ हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है । हे माधव ! आपको प्रणाम है । हे गोविन्द ! हे परमात्मन् ! आपको नमस्कार है । २५॥ हे विष्णुस्वरूप रघुनाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे दोनोंके नाथ मधुसूदन ! आपको प्रणाम है ॥२६॥ हे त्रिविक्रम ! हे सीतापते ! हे वासव ! हे रामचन्द्र ! हे

नमस्ते वसन्तीभाय कम्पनशहस्रारिणे । नमो राजानय न नमस्ते नन्दनयन ॥ २० ॥  
 नमो नमस्ते काकुत्स्थ नमो दासदशाय च । विभाषणपरिशरनमः मङ्गाभाय च ॥ २१ ॥  
 धामुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते शक्राग्रि । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिन्दु-च ते नमः ॥ २२ ॥  
 मदमङ्गलिरूपाय नमस्ते गुरुपीनय । यथाज्ञाय नमस्तेऽस्तु ममलान्तराय च ॥ २३ ॥  
 सरदूषणवद्वे श्रीमृमिदाय ते नमः । अम्बुनाथ नमस्तुभ्यं नमस्ते सेतुबन्धक ॥ २४ ॥  
 जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमो हनुमदाश्रय । उपेन्द्रचन्द्रशाय प्राणेश्वरधनाय च ॥ २५ ॥  
 नमो बालिवहस्य नमः सुप्रोदशान्वद् । कामदम्भमदम्भवेदराय शरये नमः ॥ २६ ॥  
 नमो नमस्ते कृष्णाय नमस्ते मङ्गाश्रय । नमस्ते विनृषक्ताय नमः शत्रुघ्नपूर्वज ॥ २७ ॥  
 अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः शत्रुघ्नमेवित् । नमो निम्बाय सत्पाय बुद्ध्यादिशारङ्गाय मे ॥ २८ ॥  
 अद्वैतमङ्गलाय ज्ञानगम्याय ते नमः । नमः पूर्णाय रम्याय साधकाय चिदात्मने ॥ २९ ॥  
 अयोध्येष्टाय श्रेष्ठाय चिन्माश्राय परमन्त्रे । नमोऽश्वयोदाग्याय नमस्ते पाषाणिजने ॥ ३० ॥  
 सीतागम्याय लेख्याय स्तुत्याय वामेष्टिने । नमस्ते बाणहन्ताय नमः कोदण्डधारिणे ॥ ३१ ॥  
 नमः कवचबद्धने च बालिवहने नमोऽस्तु ते । नमस्तेऽस्तु दशप्रोत्रप्रणसहस्रकारिणे १०८ ॥ ३२ ॥  
 अष्टोत्तरशतं नाम्नां शम्भुबन्धुस्य पावनम् । रत्नप्रोक्तं भक्त भक्त सर्वपातकनाशनम् ॥ ३३ ॥  
 प्रचरिष्यति तल्लोके प्राणवष्टवशान्वितम् । तस्य कीर्तनमात्रेण जना पापपति सद्गतिम् ॥ ३४ ॥  
 तावद्विजृम्भने नव अग्रदन्त्यपुरःसरम् । पावनापाष्टक्यवत् पुरुषो न हि कीर्तयेद् ॥ ३५ ॥  
 तावन्कलेमंहोन्माहो निःशक्तं सर्ववर्तते । वाचच्छ्रारामचन्द्रस्य शतनाम्नां न कीर्तनम् ॥ ३६ ॥  
 तावद्यममेटाः शून्याः सचरिष्यन्ति निर्मयाः । वाचच्छ्रारामचन्द्रस्य शतनाम्नां न कीर्तनम् ॥ ३७ ॥  
 तावन्स्वरूप शम्भुस्य दुर्बोधं माण्डिनी स्फुरद् । पावकं निष्ठुता रामनाममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३८ ॥  
 आपका बारम्बार प्रणाम करता है ॥ २० ॥ हे आपका ! हे जानकावल्लभ ! हृषीकेश ! कन्दर्प ! मे आपको बारम्बार प्रणाम करता है ॥ २१ ॥ हे पद्मनाभ ! हे कीर्तन हृदयकारिन् ! कमलनयन ! लक्ष्मणनयन ! मे आपको पुनः पुनः प्रणाम करता है ॥ २२ ॥ हे काकुत्स्थ ! दासादर ! सकण्ठ ! विभाषणमर्यादक ! आपका मे पुनः पुनः प्रणाम करता है ॥ २३ ॥ हे धामुदेव ! शक्राग्रि प्रद्युम्न ! अनिन्दु मे आपको पुनः पुनः प्रणाम करता है ॥ २४ ॥ हे मदमङ्गलिरूप ! पुरुषपीनय ! यथाज्ञाय ! आपका कीर्ति प्रणाम है ॥ २५ ॥ हे सरदूषणहन्ता ! श्रीमृमिद ! अम्बुत ! सेतुबन्धकारिन् तम ! आपका कीर्ति प्रणाम है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन ! हनुमदाश्रय ! उपेन्द्रचन्द्रशाय ! प्राणेश्वरधनकारन् ! आपका कीर्ति प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे बालिवहस्य ! सुप्रोदशान्वद् ! कामदम्भ ! महुच्छुद्धर हरे ! आपका कीर्ति प्रणाम है ॥ २८ ॥ हे कृष्ण ! शरदोषण ! शत्रुघ्न ! शत्रुघ्नपूर्वज ! मे आपको सहस्रो बार प्रणाम करता है ॥ २९ ॥ हे अयोध्याधिपते ! शत्रुघ्नसन्निधि ! निम्बामत्य ! बुद्ध्यादिशारङ्गाय ! आपका प्रणाम है ॥ ३० ॥ हे अद्वैत महात्म्य ! ज्ञानगम्य ! साधक ! पूर्ण ! रम्य ! चिदात्मन् ! मे आपको प्रणाम करता है ॥ ३१ ॥ हे अश्वयोध श्रेष्ठ ! चिन्माश्र ! परमशम्भु ! महानकारक ! शत्रुघ्नजन् ! आपका प्रणाम है ॥ ३२ ॥ हे सीतासेध ! स्तुत्य ! परमेष्ठिन् ! बालिवहस्य ! शत्रुघ्न ! मे आपको अनेक प्रणाम है ॥ ३३ ॥ हे कवचबद्ध ! पापिहन्त ! दशप्रोत्रप्रणसहस्रकारिन् ! मे आपको पुनः पुनः बारम्बार करता है ॥ ३४ ॥ समुत्तमं पापाका मष्ट करतवास्तु श्रेष्ठ एवं पावन रामचन्द्रका बहु अष्टोत्तरशतनामरत्नाय मेने तुमसे कहा ॥ ३५ ॥ हे शिवा ! जो प्राणी अपने दुर्गतिवश इस शीघ्रम प्रणाम करते हैं । उस स्वीकृति के पठनमात्रसे व सद्गतिको प्राप्त होगे ॥ ३६ ॥ बह्महृगति के व तभीष्क उन्मत्त करती हैं, जब तक पुरुष इस स्वीकृति वक्त नहीं करता ॥ ३७ ॥ प्राणायाम मध्य तक करिकर वक्त रहता है जब तक वह रामचन्द्र ! इस स्तुति का अन्त वक्त नहीं करता ॥ ३८ ॥ तब तक सर्वदूर यमराजके पाँदा विषय विवरण करते हैं, जबतक प्र गो इस स्तुति का वाक नहीं करता ॥ ३९ ॥ जब तक रामका स्वयं राजावाको

संतिनं दृष्टिं चित्तं धृतं संस्मारितं मुदा । अन्यतः शृणुष्वन्मर्षः सोऽपि मुञ्चेद पानकात् ॥ ४८ ॥  
 उग्रहत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति । रामस्तोत्रं साममेकं पठित्वा मुञ्चते मरः ॥ ४९ ॥  
 इत्यप्रतिग्रहदुर्भान्ज्यदुर्गलायादियम्भवत् ॥ पापं सकृन्कीर्तनेन रामस्तोत्रं विनाशयेत् ॥ ५० ॥  
 श्रुतिस्मृतिपुण्यनिहायामवशकानि च । अर्हति नाम्नां श्रीरामनामकीर्तिकलापपि ॥ ५१ ॥  
 अष्टोत्तरशतं नाम्नां सोनारामस्य पावनम् । अस्य संकीर्तनदेव सर्वान् कामोल्लभेश्वरः ॥ ५२ ॥  
 पुत्रार्थं लभते पुत्रान् धनार्थं धनमाप्नुयान् । स्त्रियं प्राप्नोति पत्न्यर्थं स्तोत्रपाठश्रवादिना ॥ ५३ ॥  
 कुम्भोदरेण मुनिना येन स्तोत्रेण राघवः । स्तुतः पूर्वं यज्ञवाटे तदेनर्वा मयोदितम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीमत्तपोदिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आगच्छाण्डे

श्रीरामनामाष्टोत्तरशतस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामकी दिनचर्या )

श्रीरामदास उवाच

मथ कुम्भोदरे दिव्ये आसनोपरि संस्थिते । यज्ञस्तम्भे श्यामकर्णं ध्वजध्वस्तं हि श्रुत्विजः ॥ १ ॥  
 तस्याङ्गानि सपस्तानि पृथङ् मन्त्रैर्यथाविधि । सङ्मन्त्र्यपि शमित्रा तं निहन्पूर्विजपुङ्गवाः ॥ २ ॥  
 तन्मासखण्डराज्यात्कैर्होमं चक्रुः सविस्तरम् । तथा नानाविधैर्द्रव्यैः सकृपायमगोधृतैः ॥ ३ ॥  
 मध्वाकतिलद्वयैः समिधाभिश्च सादरम् । गोधूतेन वसोर्धारां बह्वै र्गूलामसृण्डिताम् ॥ ४ ॥  
 गोमुखेनोर्ध्वचक्षुः ददुर्मर्षैः सविस्तरम् । चिकाल होमकुण्डे यावद्यज्ञसमापनम् ॥ ५ ॥  
 नदा धूमचर्यन्यासमाकाशं च समन्ततः । नद्यापि दृश्यते शुभ्रं नीलार्णं प्रहस्यते ॥ ६ ॥  
 चैत्रश्रास्त्रं महापुण्यं वसन्तर्तौ सुखावहे । एवं प्रवर्तयामासुर्वाजिमेध मुनीश्वराः ॥ ७ ॥

दुर्वाङ्घ्र रहना है, जबतक इस उत्तम स्तोत्रमें निष्ठा नहीं होती ॥ ४७ ॥ जो इसकी पड़ता ओर कीर्तन करता है, जो इस चित्तम धारण करता है, प्रेमसे स्मरण करता है और जोरसे सुनता है, वह भी पापकोसे छूट जाता है ॥ ४८ ॥ जो ब्रह्महत्यादि पापोंकी निवृत्ति चाहता हो, वह पुरुष एक महीने इसका पाठ करे ॥ ४९ ॥ इसके एक बार कीर्तन करनेसे मनुष्य दुष्प्रतिग्रह, दुष्प्रज्य तथा बुरायादित्रय बापोंसे छूट जाता है ॥ ५० ॥ भुक्ति-भृति पुराण-इतिहास-आत्म (देव) और स्मृति इसकी चोलहूँ कलाको भी नहीं पहुँचते ॥ ५१ ॥ श्रीसीतारामके इस एवम अष्टोत्तरशतनामका जो मनुष्य पाठ करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । इसका पाठ एवं ध्वज ध्वजसे पुत्रार्थको पुत्र, धनार्थको धन और स्त्री चाहनेवालेको स्त्री मिलती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अगस्त्य मुनिने जिस स्तोत्रके द्वारा लक्ष्मेश यज्ञमें रामचन्द्रकी स्तुति की थी, वही स्तोत्र मैंने तुमसे कहा है ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आगच्छाण्डे श्रीरामनामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदास बोले - इसके अनन्तर कुम्भोदर मुनि दिव्य आसनपर बैठ गये । उधर श्रुतिवक्ता लोगोंने यज्ञस्तम्भमें श्यामकर्ण अश्वको बाँध दिया ॥ १ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसक अंगोंको शास्त्रानुसार मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणोंने उसका वध किया ॥ २ ॥ तब धूमध्वजसे हुए धौंड़के मालखण्डों एवं सकृपायस गोधृत आदि नाना द्रव्योंसे श्रुतिवक्ता लोग ध्वज करने लगे । ३ ॥ वे हँ मधुम घन हुए तिल, दूर्वा, समिधा तथा गोधूतकी अखण्ड एवं स्थूल वसोर्धाराको अग्निमें छौंड़ने लगे ॥ ४ ॥ चिकाल प्यन्त जब तक यज्ञ समाप्त नहीं हुआ, तबतक वे ऊपर बैठे हुए गोमुखक द्वारा होमकुण्डमें समस्त आहुति देने रहे ॥ ५ ॥ इसके सम्पूर्ण आकाश-मंडल धूमध्वजसे व्याप्त हो गया । उसीके कारण आज भी आकाश ध्वज नहीं, नीला ही दीखता है । सुखावह वसन्त ऋतु एवं पुनीत चैत्रमासमें इस तरह वे पुनीश्वर लोग वह अभ्येय यज्ञ कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥





न तो माषाह्निक कर्तुं यगुरनां यगु नदीषु । कृत्वा माषाह्निकं कर्म मन्त्रा तु यज्ञमदपे । २६॥  
 इमं मनं तु मन्त्रं नामरत्नं एव स्थितः । दशश्रीवाश्रागशक्तं तस्युद्दिष्टाय मनोपरि । २७॥  
 नक्षत्रमणान् प्रपूज्याथ भरतेन स शत्रुहा । मन्त्रं च हेमपात्राणि सर्वथा पुस्तस्तदा ॥ २८॥  
 जानकीं त्वरयामास परिक्षणकर्मणः । भयं सोताभिन्ना रम्या नवा सा मांढरी शुभा । २९॥  
 धूनकानिर्मलविषम्यः मुह्यन्मन्यः महस्रशः । परिक्षणकर्मणि चक्रस्ता यज्ञमदपे ॥ ३०॥  
 नानावघटगर्भश्च कामधेनुमुद्धवः । गुनाश्रयादकाः सर्वे तोषभापुस्तदाऽश्वरे ॥ ३१॥  
 मातादीनां हि न रीगां तदा यज्ञस्य मदपे । नृपुण्णा किंकिणीनां शुश्रूषे यवतो ध्वनिः ॥ ३२॥  
 यथेच्छं रुजतां सर्वं धान्यतां यद्वदि स्थितम् । मां शुका भोजने कार्यं न्यक्तव्यं यत्नं रोचते ॥ ३३॥  
 अथाचिन्तानि देवानि पक्षाशानि यथाह्वयं । असंहिताज्यधाराऽथ कार्या राघवशामनात् ॥ ३४॥  
 गृधरां किंचिद्भुज्जे नेति नेति द्विजाः पुनः । इति भोजनकाले वै शुश्रूषे सर्वतो ध्वनिः ॥ ३५॥  
 किंचिदपेक्षितं स्वामिन्निति तमेण प्रार्थिताः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वं राजता व्यघ्रनादिभिः ॥ ३६॥  
 उत्तरुणोर्दक्षकः कश्चुदि मुनीश्वरैः । ततो गृह्णावनादला मुनयस्ते तु निर्जराः ॥ ३७॥  
 गृह्णावा इममुद्रां हि राघवेण पृथक् पृथक् । ममर्षितां दक्षिणार्थं जगमुर्वायस्थलानि हि ॥ ३८॥  
 ततः पृथिव्याराधैः कथितैरेव पार्थिवाः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वं चक्रुर्वैष्णवास्ततः परम् ॥ ३९॥  
 स्नायां भोजनशालासु पूर्वं धुक्त्वाऽधरस्त्रियः । सारता मुनिपत्नीभिस्ततस्ताः भत्रियास्त्रियः ॥ ४०॥  
 चक्रुर्वै भोजनं सर्वाः सीतया प्रार्थिता मुहुः । ततो वैष्णवास्त्रयश्चक्रुः पौन्यं यस्ततः परम् ॥ ४१॥  
 ततः शूद्रास्त्रयवर्णापि मुदा चक्रुश्च भोजनम् । शालासु पुष्पाणां च ततो चान्नराक्षसाः ॥ ४२॥  
 क्रद्धाः पौरा ज्ञानपदायकमुर्ध्वान्नमुत्तमम् । ततः शूद्रादयः सर्वे ततः पार्थिवसुवकाः ॥ ४३॥

कृत्वा च नृणां मन्त्राह्निकं कर्तुं यगुरनां यगु नदीषु । कृत्वा माषाह्निकं कर्म मन्त्रा तु यज्ञमदपे । २६॥  
 २६ । माषाह्निकं कर्म करके से यज्ञमण्डपमें निश्चितस्थानमें मुखाभिनिमित्त अक्षत रश्मि जात य । इस तरह  
 अपना अपना कृत्वा तमास्त करके दत्ता भा । इत्युक्तनवर विरजो य ॥ २७॥ बादमें मन्त्र, नक्षत्रमण एवं शत्रुघ्न  
 उत्तरा पूजा करके गुवणक भोजनपत्र उत्तरक सञ्जन रत्न दत्त य ॥ २८॥ तब भगवान् रामचन्द्र भोजन परासनके  
 लिए सत्तका आज्ञा दत्त य । तब सीता, जानकी, माण्डवी, अलकाति एवं हजरा मित्रपत्नीयां परामखा धी  
 । २९॥ ३०॥ नाना प्रकारका उन उत्कृष्ट भोजनसामग्रियों से मुन आदीक अत्यन्त प्रसन्न हुए य । ३१॥  
 जिस समय सीता प्रभुते विषयीयजमण्डपमें भोजन परासता थी, उस समय नृपुणो एवं किंकिणीका मधुर ध्वन  
 सब सुनाई पड़ता था ॥ ३२॥ सब लोग यथेष्ट भोजन करें, जा उसद हा सा मणि, भोजनक विषयमें व ई किसी  
 तरहका शका न कर और जिसका जा पदार्थ न रुक, उस छाह द । बिना मांग ही यथेष्ट पक्वान्न दा और उनका  
 कोशिक अक्षण्ड पृथ्वारा डाला । इस प्रकार रामचन्द्र पारवषकाका आज्ञा दत्त य ॥ ३३॥ ३४॥ परारावसे ले  
 कहते थे और लाज्य, ब्राह्मण कहते थे 'नही' । इस प्रकार भोजनकालमें सब यही ध्वनि सुनाई पड़ता था । ३५॥  
 भगवान् रामचन्द्रजा कहते थे-भगवन् ! क्या चाहिये ? इसक उत्तरमें ब्राह्मण सब पाण्डूय है' ऐसा कहते  
 थे । इस प्रकार आनन्दक से सब पक्षका हुवा सीत हुई विप्रगण भोजन करत थे ॥ ३६॥ भोजनोत्तर ठण्ठे  
 एवं उणादिकसे हस्त-कस्त शुद्ध करके व ताम्बूल खात थे ॥ ३७॥ इसक बाद राम द्वारा दक्षिणाथ समर्पित  
 स्त्रणमुद्राका लेकर व मुन आर एवं हजरा दरपर बस जात थे ॥ ३८॥ इसक बाद पृथक् उपचारास राजालाग  
 भोजन करत थे । तदुपरांत वैष्णव भोजन करता थे ॥ ३९॥ तदुपरांत वैष्णव भोजनशालामें पड़त दवाङ्गनायक,  
 किं मुनिपत्नीयां और उनक बाद क्षीरमपत्नीयां भोजन करत थी । तदनन्तर सभ्य विषयी सातको भ्रायना-  
 पर भोजन करत थी । इसक बाद वणिक्स्त्रिययां तदुपरांत पुनरारिवां एवं गृहपत्नीयां भोजन करत थी ।  
 पुष्पाक भोजनशालामें बालक, राक्षस, ऋक्ष, पुरवासा, दूता इ एवं राजनयक ये सब क्रमसे भोजन करत थे

न कश्चित् क्षुधितस्तत्र नासीत्कस्य निषेधनम् । ततो रामः सहस्रिभ्रैर्वंधुभिः सचिवैर्दामिः । ४४ ।  
 चकार भोजनं स्वस्थः सीतया प्रायितो मुहुः । पावतो भूमिकणिका धार्जनस्तोषविद्वः ॥ ४५ ॥  
 यावत्पुद्गलि गगने तावन्तो राघव ध्वरे । प्रत्यहं भोजनं चक्रुर्विप्रास्तस्त्रियोऽपि च ॥ ४६ ॥  
 सभूमिर्मन्त्रिपत्नीभिस्तथा देवपत्निभिः । चकार भोजनं सीता दिव्यान्तैः स्वस्थमानसा । ४७  
 ततश्चतुर्थप्रहरे मयी कन्या तु मंडपे । कथं विः कीर्तनगीतिः शास्त्रवादैः सुपुण्ड्रैः ॥ ४८ ॥  
 वातस्त्रीणां नृत्यगीतैर्भिन्ने रामो दिनभयम् । नृत्यं यथादिकं कुरु । पुनर्नृत्या यथाविधि । ४९ ।  
 पूर्वोक्तैस्तु कथाद्यैश्च निशायाः प्रहरद्वयम् । मर्गाक्रम्य निद्रार्थं मर्वाणास्तपश्चदा । ५० ।  
 भत्वा स्वस्वस्थत्वं सर्वे निद्रां चकुर्यथामुदम् । पट्टकलासने धूम्या सीतया स त्रिोद्वेयः । ५१ ।  
 चकार निद्रां श्रीरामो हृदि चिन्त्येष्टदेवताः । आतामसो नरेन्द्राणां विप्राणां मानसं हनम् ॥ ५२ ॥  
 पृथक् पृथक् च नारीणामशस्त्रवध उज्यने । यतः स सीतया युक्तश्चकार धारणं प्रभुः । ५३ ।  
 एवमासीत्प्रत्यहं वै दिनचर्याऽध्वरे प्रभोः ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाकाण्डिकासचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे  
 यज्ञ रश्मे रामदिनचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

## सप्तमः सर्गः

( अज्जारोपणव्रतकी भाँझिमा )

श्रीरामदास उवाच

सौत्वेऽहन्यवनीपल्लो याजकान्सदमस्पतीन् । अद्भुजयन्महाभागान् यथावत्सुसमाहितः ॥ १ ॥  
 अथ चैत्रे सिते पक्षे राजानः प्रतिपत्तिथौ । अज्जारोपणायामसुविधिनाऽध्वरमण्डपे ॥ २ ॥  
 श्रीविष्णुदास उवाच

आरोपिता अज्जाः प्रोक्ताः पार्थिवैर्यज्ञमण्डपे । गुरो तेषां विधानं वा सम्यग्ब्रूतुं त्वमर्हसि ॥ ३ ॥

॥ ४०-४३ ॥ किसीके लिए भोजनका निषेध नहीं था । वहाँपर कोई भूखा नहीं रहता था । सबके भोजन कर लेनेके बाद रामचन्द्रजी स्वयं सीताके साथसाथ प्रार्थना करनेपर अपने पुत्र, मित्र, बन्धु एवं सचिवोंके साथ भाजत करते थे ॥ ४४ ॥ पृथ्वीमें जितनी श्रेणियाँ हैं जितने जलखिन्दु हैं तथा आकाशमें जितने नक्षत्र हैं उतनी संख्यामें ब्राह्मण प्रभृति पुरुष एवं स्त्रीसमूह रामचन्द्रके यज्ञमें प्रतिदिन भोजन करते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रके भोजनोपरान्त श्रीसीताजी भी साम, मन्त्रिपत्नी तथा देवपत्नीयोंके साथ दिव्य अन्न खाती थीं । ४७ ॥ पुनः ओषे पहर यज्ञमण्डपमें सभा करके कथा, हरिकीर्तन, पुण्यप्रद आश्मचर्चा तथा वेदशास्त्रोंके मुख्यगान द्वारा राम अवशिष्ट समय बिताते थे । ४८ ॥ पुनः सायंकाल मन्त्रया एवं हवनकृत्य पूर्ण करके कथारिके द्वारा रात्रिके ही प्रहर बिताकर सब लोगोंकी रायन करना आज्ञा देत थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सब सब लोग अपने अपने स्थानोंपर सानन्द शयन करते थे । राय भी अपने इष्टदेवताका हृदयमें स्मरण करके भूमिपर पट्टुकुलासन बिछा तथा जितन्द्रिय होकर सीताके साथ सोते थे ॥ ५१ ॥ राजाओंकी आज्ञा तोड़ना, ब्राह्मणोंका मानमर्दन एवं स्त्रियोंकी पृथक् कथ्या करना अशस्त्रवध कहलाता है । अतः भगवान् रामचन्द्र सीताके साथ ही सोते थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार यज्ञमें भगवान्का यह प्रतिदिनका काम था ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाकाण्डिकासचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे दशारम्भे रामचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—सौत्यपर्वके दिन राजा रामचन्द्रने सावधान होकर याजकों एवं सुरस्योंकी यथावत् पूजा की ॥ १ ॥ चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदाके दिन राजालोग विधिपूर्वक यज्ञमण्डपके ऊपर अज्जाओंकी स्थापना की । २ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने कहा कि राजा लोग यज्ञमण्डपके ऊपर अज्जा

श्रीरामदास उवाच

मम कद्रवः कृतः क्षिप्य त्रया लोकोपकारकः । सावधानमना भूत्वा शृणुष्व त्वं मयोच्यते ॥ ४ ॥  
 नो रम्यं व्रतं चेदं त्वैवैष्ट्या ममागतम् आरोपिता ध्वजाः सर्वैर्यज्ञवाटे तदा सृता ॥ ५ ॥  
 ते चैव द्विष्टा गृह्णामेवर्णीया ध्वजा नृभिः । मधुशुक्लदशम्यां च पुण्यायां प्रतिपत्तिर्यौ ॥ ६ ॥  
 अथवा रोष्णीयादने श्रीरामनवमीदिने । मधुशुक्लदशम्यां वा दशम्यामाश्विने मिते ॥ ७ ॥  
 अथवा ज्येष्ठेतिपदि शुक्लपक्षेऽपि भो द्विज एते कल्या मया प्रोक्ता व्रतस्यास्य तयाग्रतः ॥ ८ ॥  
 अथवा मघशुक्लमि ध्वजारोपणमुत्सवम् व्रतं पराहर्षं पुण्यं राममन्तोपकारकम् ॥ ९ ॥  
 य कुर्याद्विष्णुभक्त्यै ध्वजारोपणमज्ञेयम् मधुपूजने विमिचार्यैः किमन्यैर्बहुभारिणैः ॥ १० ॥  
 द्वेष्टमागमदम् तु यो दद्याच्च कृत्वाश्विनं तत्फलं समवाप्नोति ध्वजारोपणकर्मणः ॥ ११ ॥  
 ध्वजारोपणमुत्सवं स्थानेन गंगास्नानमुत्तमम् । शयना तुष्टीसेवा शिवलिङ्गप्रपूजनम् ॥ १२ ॥  
 अष्टोत्सवमहोत्सवमहोत्सवं महत्तमम् सर्वेषां पहरं कर्म ध्वजारोपणसंज्ञितम् ॥ १३ ॥

तानि सर्वाणि वक्ष्यामि शृणु त्वं गदतो मम ॥ १४ ॥

अथ चैव मिते पक्षे व्रतं हि प्रतिपत्तिर्यौ । मधुशुक्लदशम्यां वा नवम्यां राघवस्य वा ॥ १५ ॥  
 कार्यं वाऽऽश्विनमासस्य दशम्यां शुक्लपक्षके उत्तमशुक्लप्रतिपदि दशम्यां वा विधीयताम् ॥ १६ ॥  
 अथ चैत्रमसे हि कार्यं चैत्रद्वितीयेन । अतिक्रान्ते चैत्रमासे कार्यं चैत्रपर्वण्यम् ॥ १७ ॥  
 चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रधाने प्रयतो नरः । स्नानं कुर्यान्मयन्नेन दन्तधावनपूर्वकम् ॥ १८ ॥  
 ततः कृत्वा निम्पकर्म पश्चाद्विष्णु ममचैवेन । चतुर्भिर्वाङ्गैः सार्द्धं कृत्वा च अग्निवाचनम् ॥ १९ ॥  
 सार्द्धाश्च त्वं प्रकृतीन् ध्वजारोपणकर्मणि । ध्वजध्वनी च गायत्र्या प्रोक्षयेदस्रमंयुनी ॥ २० ॥  
 पनाकयोर्लेखनार्थं वननेषाञ्जनीमुनी । गृध्रं चतुर्भुजं सार्द्धं च वननेषं प्रपूजयेत् ॥ २१ ॥  
 धनारं च विधानार्थं पूजयेत्कुम्भकटवे । हरिद्राग्नाद्वार्यः शुक्लपुष्पविशेणः ॥ २२ ॥

रामदास उवाच । यो उत्तम ध्वजारोपणका यथा विधानं है : यह कृता करके भूत बन्ताइए ॥ ३ ॥ श्रीरामदासजीने  
 -नन दिना-हैं क्षिप्य । तुमसे अच्छा प्रश्न किया है । यह प्रश्न लोकोपकारक है । तुम सावधान होकर सुनो ।  
 मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥ ध्वजारोपणस्यो व्रतके समयको प्राप्त जानकर राजाओं व वज्रपण्डितसे ध्वजाओंका आरोपित  
 करना आरम्भ कर दिया ॥ ५ ॥ व्रतका समय न हो तो चैत्र शुक्लपक्षको प्रतिपदं विष्णुमन्दिरके ऊपर  
 ध्वजा आरोपित कर ॥ ६ ॥ अथवा रामनवमी दशमा तथा द्विजगदशमीको ध्वजारोपण करे ॥ ७ ॥ अथवा  
 शिवशुक्ल प्रतिपदाको ध्वजारोपण कर । ये तीनों विधिजो ध्वजारोपणके लिए उत्तम होते हैं जो मेरे तुम्हें  
 बताने दो ॥ ८ ॥ अब मैं ध्वजारोपण व्रतका विधान बतलाना हूँ । यह व्रत रामको अत्यन्त प्रिय और  
 अमोघ पुण्यात्मादक है ॥ ९ ॥ इस विषयमें अधिक बहान्नी आशयकता नहीं है । जो प्राणी विष्णुमन्दिरके ऊपर  
 ध्वजारोपण करता है, उसकी सहायिक दत्ता भी पूजा करे ॥ १० ॥ कृत्वा विष्णुको हजार तोंका सुवर्ण  
 दत्तम जो फल प्राप्त होता है, वही फल ध्वजारोपणका भी है ॥ ११ ॥ ध्वजारोपण कर्मके समान न गङ्गास्नान  
 है न तुलसीसेवा और न शिवपूजा ही है ॥ १२ ॥ यह कर्म इतना उत्तम है कि इसको करनेसे रात्रि पाद गूठ  
 हो जाते हैं ॥ १३ ॥ इसका सब विधान मैं तुम्हें बतलाना हूँ—सना ॥ १४ ॥ इसको करनेका चैत्रदि मास  
 उत्तमक समय है ॥ यदि इत्यन्तमें पहला समय न मिले तो इनमें प्रथम ही ध्वजारोपण करे ॥ १५-१७ ॥ चैत्र  
 शुक्ल प्रतिपदाको प्राप्त काल दन्तधावनपूर्वक स्नान कर ॥ १८ ॥ फिर निम्पकृत्यसे निष्कृत होकर विष्णुभगवान्-  
 की पूजा करे । तदनन्तर चार गङ्गापौसे अग्निवाचन कराके नन्दीप्राद करे और वस्त्रावृत्त ध्वजाओंको  
 राघवोपमसं प्रोक्षित करे ॥ १९ ॥ उन ध्वजाओंमें गृध्र और हनुमान्जोंका चित्र बना रहे । फिर उसपर सूर्य चन्द्र-  
 यक्ष एवं हनुमान्जोंकी पूजा करे । तदनन्तर दो घण्टापर हरिद्रा, अक्षत, दुर्गा एवं विशेष करके श्वेत पुष्प-

वतो गोचर्ममात्रं तु स्थण्डिलं चावलिप्य च । माषावाग्निं स्वगृहोक्त्या धनवागादिकं क्रमम् ॥ २३ ॥  
 नृशुयान्पायसेनैव घृतेवापोचर अन्नम् । प्रथमं धीरुषं सक्तं विष्णोर्नुकं च यवनः ॥ २४ ॥  
 ततश्च वैनतेयाय स्वाहे-पष्टदुर्वास्तदा । मन्त्रोक्त्यादुर्वाश्च कुन्वा स्वाहेति होमयेद् ॥ २५ ॥  
 सोमो धेनुं मधुमार्यं शुद्धपात्रयनमनः । कौमनं मन्त्रं त्रयेणत्र शान्तिपूजयति मन्त्रिणः ॥ २६ ॥  
 रात्रौ आगणं कुर्यादुपकटं हरेः शुचिः । एवं तत्रदिनं कार्यं पूजनं परमोन्मत्तैः ॥ २७ ॥  
 तथैव आगणं कुर्यान्निष्पं सुकीर्तनैः । ततो दशम्यामृषयि मधुःपायं त्रयी शुचिः ॥ २८ ॥  
 प्रातः स्वस्वत्वा निष्पकं नमोऽप्याय ततः परम् । गन्धपुष्पादिभिर्देवानर्चयेत्पूर्ववत्क्रमान् ॥ २९ ॥  
 ततो मंगलवाचैश्च शुक्लपाठैश्च शोचनैः । नृत्यैश्च स्तोत्रपठनेनैवेद्विष्णुराज्यं स्वजम् ॥ ३० ॥  
 देवस्य द्वादशे वा शिखरे वा हृदान्वितः । सुस्थिरं स्थापयेन्मन्त्रं च जज्ञस्तत्र मुष्णोर्मिमम् ॥ ३१ ॥  
 पथपुष्पाद्यर्चनैर्दीर्घैर्दिव्यधूपैर्मनोरमैः । बह्व्यमोजपादिसंपूजनैर्वैश्वैश्च हरिं यजेत् ॥ ३२ ॥  
 आपनिवर्धमारुष्य दशम्यवपि सप्तदि । पञ्चयोः पूजनं कुन्वेकादश्यां हरिमिषयि ॥ ३३ ॥  
 आरोपणीयां शिखरे पुनो वा यथामुखम् । अथवा रोपणीयां हि दशम्यां नो चजोत्तमां ॥ ३४ ॥  
 नवम्यां वा द्वितीयायां चतुर्थ्यामष्टमीं दिने । एतयां वा रोपणीयां तौ पूर्वं पूजयन् यथाविधि ॥ ३५ ॥  
 ततश्च प्रतिपद्येव मार्गो नैतरे दिने । पूर्वोक्तैश्च हरेः कार्या न मासेऽन्यत्रेषु च ॥ ३६ ॥  
 माषाग्निचतुर्दश्यामेवं शमोर्गृहे चजो । नदीभूयश्चित्तौ कुन्वा रोपणीयां यथाविधि ॥ ३७ ॥  
 आश्विनस्य विनाष्टम्यां मधोर्वा गिरित्रागृहे । नवम्यस्य चतुर्थ्यां हि श्रोत्रो गणपयगृहे ॥ ३८ ॥  
 मार्गशीर्षे हृष्टपष्टम्यामेवं मार्गहमगृहे । एव हि सर्वदेवानामुन्माहविचसेष्वपि ॥ ३९ ॥

१. धन और विधानकी पूजा करे । तत्परान् गोचर्ममात्रं स्थण्डिलके ऊपर परिसमूहनादि पञ्चधूमस्कार करके स्वशास्त्रोक्त गृहोक्त विधानसे कुण्डमें अग्नि स्थापित करे ॥ २०-२३ ॥ पुनः क्रमजः पायस और यवने आचार-आज्यभाग नामकी अष्टान्तकृत जादुति दे । अथवा माषाराज्यभागकी जादुति लेकर पुनः क्रमजः पायस जोड़े घृतकी अष्टोत्तरकृत जादुति दे । प्रथम जादुतिर्वा पुरुषमुनके मर्गसे और दूसरी जादुतिर्वा विष्णोर्नुकं दम मन्त्रसे द ॥ २४ ॥ फिर बकरके निर्मित आठ जादुतिर्वा और बाइलिके निर्मित आठ जादुतिसे हुक्म करे 'नरुह्यम स्वाहा' मन्त्रसे बहली आठ जादुतिर्वा एवं 'माकनये स्वाहा' इत मन्त्रसे दूसरी आठ जादुतिर्वा दे ॥ २५ ॥ पुनः 'सोमो धेनु' मन्त्रका उच्चरण करके संपन्नपूर्वक हुक्म करे । तदनन्तर और मन्त्रोक्ता अथ और जानिहूनका पाठ करे ॥ २६ ॥ १. प्रिय'में श्रीहरिके समीप आगरण करे । फिर दशमीकी परमत्रयणके साथ भगवान्की पूजन करे ॥ २७ ॥ निष्प हरिकीर्तन करके तद्वराभि स्थान्त आगरण करे । द्वादशे दिने प्रातः स्नान-संध्यादि निष्पकृत्योमे निवृत्त होकर पूर्ववत् पूजनसम्भारसे माषान्की पूजा करे ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसके बाद मंगलमय वाक्-वाक्के साथ स्तावपाठ करते हुए स्वजाकी विष्णुमन्दिरमें ले जाय ॥ ३० ॥ मन्दिरके द्वार तथा मन्दिरपर पुष्पमालामें सुगंधित पञ्चजक्का स्थापित करे । ३१ ॥ वहाँ गन्ध, पुष्प, जलत, धूप, दीप एवं मधु-मोज्यादि पुष्प नैवेद्यमें श्रीहरिका पूजन करे । अथवा प्रतिपदासे लेकर दशमी तक चरमे पञ्चजाओंकी पूजा करके एकादशीकी विष्णुमन्दिरके शिखर या द्वापर उन पञ्चजाओंका स्थापित करे । अथवा दशमाकी ही स्थापित करे । ३२-३४ । अथवा द्वितीया, चतुर्थी, पञ्चमी, अष्टमी तथा नवमीकी सुविधानुसार समय देखकर उपर्युक्त विधानसे पूजा करके स्वजा स्थापित करे ॥ ३५ ॥ किन्तु इनका प्रारम्भ प्रतिपदाकी ही होता है । श्रीहरिके निर्मित पञ्चजारोपण पर्वान्त मामोमें ही करे, अन्य मामास नहीं । ३६ ॥ इसी प्रकार माघकृष्ण चतुर्थीका शिवालयपर पञ्चारोपण करे । उस पञ्चवाहें वर्षाविष मन्दी और बङ्गीकी अंकित करे ॥ ३७ ॥ आश्विन शुक्ल अष्टमीकी या वैश्वके नवम्यामे मार्गशीर्षके मन्दिरपर पञ्चा कहुराये । मार्गषष्ठ चतुर्थीकी अष्टमके मन्दिरपर पञ्चारोपण करे । ३८ ॥ मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमीकी मन्दिरपर पञ्चास्थापन करे । इस ईक्ष्वाक वेवताओंके उत्सवदिनमें ही यह कार्य सम्पन्न करे ॥ ३९ ॥

मधुर्जाश्विनमासेषु विना विष्णोर्न चेतरे । एव देवालये स्थाप्य शीमनौ तौ स्वज्ञोत्तमौ ॥४०॥  
 मंथ्य विष्णुं विधिवत् चित्तघाटय विना ततः । प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तोत्रमेवदुदीरयेत् ॥४१॥  
 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वमन्त्रेण । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥४२॥  
 येनेदमनिल जातं यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् । लयमेष्यति यत्रैतत् प्रपतोऽस्मि माधवम् ॥४३॥  
 न जानाति यं देव सर्वं भक्तादप्यः सुगः । योगिनो यः प्रवर्तते तं वदे शानरूपिणम् ॥४४॥  
 अतश्च तं यस्माभिर्ध्यामंर्ध्या यस्य चैव हि । पादादभ्युच्च वै पृथ्वी तं वदे विश्वरूपिणम् ॥४५॥  
 यस्य अत्र दिशः सर्वा यश्चतुर्दिनकृच्छरी । ऋक् यामयजुषो येन तं वदे नमरूपिणम् ॥४६॥  
 यन्मुखाद्वाक्त्रया जाता यद्वाहोरमयन्नृपाः । वैष्णवा यरूपोक्तो जाताः पद्भ्यां शुद्धस्वजायत ॥४७॥  
 मनमश्रुता जातो दिनेशश्चक्षुष्यता । प्राणेष्वः पवनो जातो मूलादग्निज्जायत ॥४८॥  
 पापमदाहमात्रेण वदन्ति पुरुषं तु यम् । स्वभावविमलं शुद्धं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥४९॥  
 धीर्गांधिग्रायिन इव मनश्चक्षुष्यजितम् । सङ्कल्पस्मरं विष्णुं भक्तिगम्यं नमस्कृत्य ॥५०॥  
 प्राथम्यादीनि भुजानि नन्माध्याणीद्वयाणि च । सुशुष्माणि च येनाप्यस्तं वदे सर्वतोमुखम् ॥५१॥  
 यद्ब्रह्म परमं धाम सर्वलोकोत्तमोत्तमम् । निर्गुणं परमं सूक्ष्मं प्रपतोऽस्मि पुनः पुनः ॥५२॥  
 निर्विकारमजं शुद्धं सर्वतो वह्निर्माधुर्यम् । यस्मापनति योगीन्द्राः सर्वकारणकारणम् ॥५३॥  
 एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः । श्रीष्टोकाच्च ग्याप्य भूतात्मा भुक्तं विषयगम्यम् ॥५४॥  
 निर्गुणः परमानन्दः स मे विष्णुः प्रसीदतु । इदमस्थोऽपि दुष्कपो मायया मोहितोऽत्मनाम् ॥५५॥  
 शान्तिर्ना सर्वधर्मस्तु स मे विष्णुः प्रसीदतु । चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंचभिरेव च ॥५६॥  
 हृद्येन च पुनर्दाम्भ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु । शान्तिर्ना कर्मणा चैव तथा भक्तिमतां नृणाम् ॥५७॥

चेत्र आश्विन तथा कार्तिक इन तीन मासोंमें विष्णुको शिवाय अन्य देवतायाक लिए स्तुतिपत्रोंमें नही करना चाहिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार चित्तघाटय ग्यणकर देवालयपर स्तुतिपत्रोंमें स्तुति करके विधिवत् विष्णुको पूजा करे । तदनन्तर प्रदक्षिणा करके इस स्तोत्रका पाठ करे— ॥ ४१ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे हृषीकेश ! हे महापुरुषपूर्वज । आपकी जनकणः प्रणाम है ॥ ४२ ॥ जिससे यह समस्त उत्पन्न हुआ है, जिसके आधारपर टिका हुआ है और जिसमें लय होगा, मैं उन माधव भगवान्को प्रणाम करता हूँ ॥ ४३ ॥ जिसका महादि देवताओं में शान्ति नहीं जानन और योगी जिनकी प्रशंसा करने हैं, उन परब्रह्म परमा माका मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४४ ॥ अतश्च जिसकी नाभि है आकाश जिसका मन्त्रक है और जिनके चरणोंमें भूमि उत्पन्न हुई है, मैं उस महाकां प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥ विष्णुए जिनके कान हैं, मुख एवं चन्द्र जिनके नभ है, ककुत्साम एवं यजुर्वेद जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उस देवताको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४६ ॥ जिसके मुखमें वायु, दाहमें अग्नि, उत्तरवल्गुमें वात और गैर्वाणें शुद्ध उत्पन्न हुए हैं, उन ईश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४७ ॥ मध्यमावतः निर्मल, निरञ्जन, निर्विकार एवं शुद्ध परमात्मक नामरूपरसमात्रने समस्त पापमृद्ग मष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥ जिसके मनमें चन्द्रमा, चक्षुष्य में प्राणोंमें पवन एव मुखमें अग्नि उत्पन्न हुआ है, उस परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥ आरम्भोत्तम गायन करनेवाले, भक्तोंके प्रेमा, भक्तिगम्य, अघराजित और अनन्त-स्वरूप विष्णुका मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५० ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूत, तन्मात्रा, एकादश इन्द्रियां और सूक्ष्म प्राणिसात् जिनमें उत्पन्न हुए हैं, उन सर्वतोमुख भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो बहुत है, सर्व-लोकोत्तमोत्तम है निर्गुण है एवं परम सूक्ष्म है, उस परमात्माको मैं पुन प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ योगेन्द्रज जिसकी निर्विकार अज, शुद्ध, ईश्वर एवं ससारका भादि कारण कहे हैं, उस परब्रह्मको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५३ ॥ जो विश्वमाका और अण्वय है, जो एक होता हुआ भी अलग-अलग पञ्च महाभूतों एवं तीनों लोकोंमें व्याप्त है, उस भूतात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५४ ॥ जो निर्गुण है, परमानन्दस्वरूप है और हृद्यमें रहने हुए जो जिस प्राणीकी आत्मा मायासे पुरुष है, वह उससे दूर है ॥ ५५ ॥ जो शान्तिबोका सर्वत्र है । वह विष्णु

गतिदाता विश्वभूयाः स मे विष्णुः प्रसीदन् । जगद्धितायै यो देवमाश्रित्यतया ॥५८॥  
 यमर्चयति त्रिविधाः स मे विष्णुः प्रसीदन् । यम मनसि च मनः सर्वदाऽऽनन्दविग्रहम् ॥५९॥  
 निर्गुणश्च गुणाधारः स मे विष्णुः प्रसीदन् । परेभ्यः परममदः परमपरतरः प्रभुः ॥६०॥  
 भिन्नपद्म परिशेषः स मे विष्णुः प्रसीदन् । प इह कीर्तयेन्नित्यं स्तोत्राणामुत्तमम् ॥६१॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं मरीचयेत् । य इह कीर्तयेन्निष्णुं ब्रह्मजंश्च प्रपूजयेत् ॥६२॥  
 आचार्यं पूजयेन्पश्चादभिषिञ्च्य दत्तादिभिः । ब्राह्मणान्भक्तयेन्पश्चात्तुक्तिनः सन्ध्यामपण ॥६३॥  
 पुत्रमित्रकलशार्घ्यैश्चभूमिः सह वाचयन् । कुर्वीत पात्राणां शिष्यं नारायणपरायणः ॥६४॥  
 यस्त्वेतन्कर्म कुर्वीत ध्वजरोपप्रभुनमम् । तस्य पुण्यफलं बभूवे मृणुष्व सुममादितः ॥६५॥  
 दध्नां ध्वजस्य सर्वज्ञं वाचयन्तं वायुना । तच्चन्द्रवपुषात्तानि नश्यन्त्यत्र न सशयः ॥६६॥  
 भद्रापाकपुष्को वा युक्तधेन्मन्त्रपातकः । ध्वजं विष्णुगृहे कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६७॥  
 वावहिनानि वसन्ति ध्वजो हविर्गृहोपरि । नाशायमहम्नाणि इरेः समीपमाश्रुयाम् ॥६८॥  
 आग्नेपितं ध्वजं दृष्ट्वा येऽभिवदन्ति धार्मिकाः । तेऽपि सद्यो विमुच्यन्ते सुखपातकलोदभिः ॥६९॥  
 आग्नेपितं ध्वजं विष्णुगृहे पुन्यन्वकं पटम् । कर्तुः सर्गाणि पापानि पुनानि निमिषार्धतः ॥७०॥  
 एवं शिष्यं यथा प्रोक्तं यथा गृहं स्यात् यमः । ध्वजरोपप्रमादन्त्यं मविधानं मनोरमम् ॥७१॥  
 सप्तगतां प्रानेषद् दत्त्वा चैश्वर्यानां नुरैः । अग्नेपिता ध्वजाः सर्वे द्वितीयाणां पृथक् पृथक् ॥७२॥  
 शान्ता राम महाविष्णुं तर्पेत्तच्छरमंडपे । कृत्वा चैकदिनं स्तब्धवायवोरेषु पूजनम् ॥७३॥  
 ध्वजस्य पूजनं गेहे नवगच्छ सपाचरेत् । पश्चाद्वक्तव्यनुसारं वा चैकगत्रमथापि वा ॥७४॥  
 यज्ञोष्मादग्निनाभं कृतमेकदिनं नृपैः । चक्राश्च राघवापि पूर्वमेव ध्वजोत्थरम् ॥७५॥  
 माघमासे कृष्णपक्षे चार्द्रमासे द्विवाग्रतः । तदा ध्वजमोहोर्चयैः शुश्रूषे गगनागणम् ॥७६॥

मुझपर प्रसन्न हो ॥ ५८ ॥ बार-बार प्रविष्ट् जिनको प्रत्यय हुवन करत है, कभी दादा और कभी रीति-पाँच तथा फिर दादा ध्वनिक हुवन करत है, वे विष्णु पर ऊपर प्रसन्न हो ॥ ५९ ॥ जो जानिया, कभी एवं भक्तिको गति है जो विष्णु है, वे विष्णु पर ऊपर प्रसन्न हो । जो संसारक निकर निष्ट गरीर धारण करते है ॥ ६० ॥ जिनको निदान् पूजा करत है । मन्त्रालय जिनको सदा भावन्तविग्रह कहते हैं, वे विष्णु मुझपर प्रसन्न हो । जो निर्गुण है और मरुण भी है । जिनका मन्त्र, परमानन्द, परमहमा एवं विग्रह इत्ये नामोसे पोचव गिन्ता है, वे विष्णु पर ऊपर प्रसन्न हो ॥ ६१ ॥ ६० ॥ जो पुरुष इस जन्म स्तत्रिक' पठ करत है, वह समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक में पुजित होता है । जो इसका कीर्तन करता है वह पत्र'मह-कन्या'दिक साथ सत्यवगायण होकर इस स्तात्रना कांतन करे पञ्चान् रिक्त' बह्म एवं आचार्योको पूजा करे । बारमे बह्मणपावन कराये ॥ ६२-६४ ॥ जो पुरुष ध्वजारोपण करता है । इसका पुण्यफल सावधान होकर सुनो ॥ ६५ ॥ अग्नेपित ध्वजाका दध्म वायुम जैसे-जैसे हिलता है तैसे-तैसे उस पुरुषका सब पाप नष्ट हुआ जाता है ॥ ६६ ॥ विष्णुमन्दिरक ऊपर ध्वजारोपण करनेसे एक महापातक तथा सभी पाप नष्ट हो जात हैं । वह आग्नेपित ध्वजा जितन दिनों तक हरिमन्दिरपर मूर्जोच्चिन् भह्मी है, उतने सहस्र पुनर्पन्त ध्वजारोपणकर्ता श्रौहविके समीप रहता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ जो व पितृ पुरुष ध्वजाकी वन्दना करते हैं, वे कोटि उपपातकोसे दृढ़ जान है । ६९ ॥ बह्म आचारित ध्वज जगने धम्म कीगती हुई विगितायम आग्नेपितक पापोंको नष्ट कर रती है । हे शिष्य ! तुमने जो अनीहुर ध्वजारोपणम'हान्त्य पृष्ट, वह सब विविधर्षक मैने कहू ॥ ७० ॥ इमल्लि' चैत्रशुक्ल प्रतिपदको अथा हुआ जानकर राजाजान द्विर्जाको ध्वजमेका अग्नेपित जिन यज्ञमण्डपम स्थित राम का महाविष्णु सप्तधन्व ही वे रात्रे ध्वजाका मन्त्रेअवने सम्बुजोने ब्रह्म-वज्रय पूजन करने स्या । ७१-७३ ॥ पूजा नहराय पर्यन्त कथवा अपनी शक्तिसे अनुसार करे । अथवा एक ही रात बने ७४ ॥ यतो-

इदं चरित्रं परमं मनोहरं श्रीमद्भरतागणेश्वरानुसन्धितम् ।

परंति शृण्वन्ति नगः सुपुण्यद भवेच्च तेषां नियतं विचिन्तनम् ॥७७॥

८।१ श्रीशानकादिरामचरित्रातर्गने श्रीमदाम्बदास एने वात्माकीय वागकाटे

अक्षारोपणप्रसं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( अवभृथस्नानोत्सवका वर्णन )

श्रीरामदास उवाच

अथ चैत्रमिने पक्षे नवम्यां रामतन्मनि तदाऽवभृथस्नानार्थं वाजिमेषकनाप्तये । १ ॥  
चक्राव सुचनां शङ्खं गधवाय गुरुः स्वयम् । न्वरथ माम् तं राम रचिताभयान्मुनिः । २ ॥  
वसिष्ठवचनं श्रुत्वा रामो लक्ष्मणमधवीत् । मद्यावभृथस्नानार्थमुन्मर्षमनं मम ॥ ३ ॥  
रामतीर्थं स्वयां ज्ञान्वा करणीयं मयोचयते । आहापनीया राजानो निजैरन्यैर्गजादिभिः ॥ ४ ॥  
मञ्जीवनाः मावरोधास्तिष्ठध्वमिति महपे । मिदं कार्यं निजं सैन्यं शिवकारयवाराणम् ॥ ५ ॥  
अक्षपतिसमायुक्तं तुरगोष्टमर्जयुतम् । नवधाधध्वनिः कार्या तूर्यादीनां स्वनोऽपि च ॥ ६ ॥  
पताकाश्च ध्वजाश्चापि तोरगादि वमततः । मुक्ताश्चालपुष्पाणि हाराश्चाध्वरमडपात् ॥ ७ ॥  
हन्धर्तायां रामतीर्थपर्यंतं मैकनेऽपि च । कदलीनां मदास्तंभाश्चैषुदङ्गाः समंततः ॥ ८ ॥  
पुष्पाणि वाटिकाश्चापि मृन्पात्रादिषु निर्मिताः । स्थापनीयाश्च सर्वत्र नृत्यंतु शायोपिताः ॥ ९ ॥  
संचर्तायो रामतीर्थमागश्चन्दनरारिभिः । पुष्पैश्चाच्छादनीयो हि पट्टकुन्दादिभिस्तथा । १० ॥  
अन्यच्चापि यथायोग्यं यजोक्तं च मया तव । तत्कुटुम्बावलिजलेन मायपट्टाद्विचारितम् । ११ ॥  
तथैन्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि तथा मयै चकार मः । अथ ते अश्विजश्वकुसमनोऽष्ट सविस्तरम् ॥१२॥

राम दासनक निमित्त राजाओं तथा राजर्जों ने एक ही दिनमें सब कृत्य सम्पन्न कर लिये था । ७५ ॥ इसी तरह मायकृष्ण चतुर्दशीको शिवजीके सम्मुख ध्वजारोपण किया । उस ऊँचा ध्वजासे गगनमण्डल अचल सुशोभित हुआ ॥ ७६ ॥ ध्वजारोपणविधानसूत्रके इस परम मनोहर एवं पुण्यत्रय चारदका जो लाग पड़न और और चलत है उनका चिन्तितार्थ अवश्य पूर्ण होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीशानकादिरामचरित्रातर्गने श्रीमदाम्बदास एने वात्माकीय वागकाटे अष्टमः सर्गः समाप्तः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहते लगे—चैत्रशुक्ल रामनवमाका अवसंध घटके कलप्राप्त्यर्थं अवभृथ-स्नानके लिये स्वयं गुरु वसिष्ठन रामको सूचना दी और सूर्यनाथके भयसे डरता करनक निद्रा कहन लग । १ ॥ २ ॥ वसिष्ठके वाक्य सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज अवभृथ स्नानके लिए मैं उत्सवपूर्वक रामतायकी जाऊँगा अतः उस समयका जो कर्तव्य है, सो सुनो । ३ । राजाओं की आज्ञा दी कि वे अपना-अपनी सेना एवं हाथी-बाघोंके साथ अन्तःपुरकी स्त्रियोंका लेकर यत्रमण्डपमें आएँ ॥ ४ ॥ इसी तरह जब सब बाहरी लोग भी आ जायें, तब अपनी सेना, हाथी, घोड़े, शिविका एवं ऊँटोंकी भी ल आओ । नवान तथा प्राचीन वाद्योंकी ध्वनिके साथ सब लोग रामतीर्थ चले । ५ ॥ ६ । उज्जमण्डपके चारों ओर पताका ध्वजा, तोरण, मुन्नामाला, प्रवाल एवं पुष्पोंके हारोंसे सजावट कर दी जाय ॥ ७ ॥, रावतीचं पर्यंत रतले प्रदेशमें से हजारों पताकाएँ बाँध दी जायें और चारों ओर हस्तदण्ड एवं कदलीके महान् स्तम्भ खड़े कर दिये जायें । ८ । गमनोंकी कूडकारी सजा दी जाय और सबव वेश्याएँ नृत्य कर । ९ । रामनवमका माय मन्दनके जलसे मिचकाकर पुष्पों तथा पट्टपुष्पोंसे आच्छादित करा दिया जाय ॥ १० ॥ और जो जो कुल करने योग्य है, किन्तु जिसको मैंने नहीं कहा है, वह सब बिना पूछे ही विचारपूर्वक सब व्यवस्था कर दो । इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने



राजिवाहे रथे बद्धि पात्राणि म्याप्य गन्धर्व मर्ता चामेव न दुरुवाधोदन्विजः तद् ॥११॥  
 मुनयो वेदघोषाश्च सर्वे चक्रुः समन्ताः न सत्र दूधपाकदु सन्ध्व कक्वमाजिनम् ॥१२॥  
 यमो जनेः जनैर्मर्गे सुरा वन्दिजनैः स्तुतः अग्रे गताः पतकभिजम्बुश्वस्तः पाम् ॥१३॥  
 ततस्तै नूर्यघोषाणां कर्तारस्तुतमिभ्यः । ततस्ते राजदत्ताश्च त्रिवोष्मीपः मुदडिनः ॥१४॥  
 ततो बंदिनट्टाश्च वारस्त्रिणा ततो गणाः । ततो देवाः सगन्धर्वाम्भतो गमः स र्मावयः ॥१५॥  
 ऋषिभर्जनैर्ययौ बह्विमधुनः स्यन्दनम्विनः । ततो मुनिध्वजः सर्वे ऋषिपत्न्यम्वतो ययुः ॥१६॥  
 ततः सत्रियपत्न्याद्याः द्विपः सर्वाः जनैर्ययुः । ततस्ते सत्रियाः सर्वे नाना हवमम्विताः ॥१७॥  
 ततस्तेषां हि सैन्यानि ततोऽन्ते राजमेवकाः । भद्रशाश्वत्कर्णानां च वारस्त्रिणास्ततः परम् ॥१८॥  
 ततश्चोष्टास्तु वागानां शकटाः शक्रपूरिताः । तद्वकागस्तश्चक्रव चमकमस्ततः परम् ॥१९॥  
 भूमिमानप्रकर्तारो रज्जुकुट्ट लहस्तकाः । ययुर्व्याक्रम सर्वे तदा परमोन्मर्गः ॥२०॥  
 तदा निनेदूर्वाद्यानि ननुदुर्वाद्योपितः । मुनिपदिवपत्न्यम्वन्तं ययुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२१॥  
 यामे वन्दिजनाद्याश्च तुष्टुव स्तुनन्दनम् । पट्टादिस्वरान् गन्धर्वाः प्रवृत्तुः पथि ते मुदा ॥२२॥  
 चक्रुस्तै वेदघोषाश्च मुनयः स्तरस्त्रिकम् । तत्र गमः जनैर्मर्गा कौतुकान्ते ममन्ततः ॥२३॥  
 चक्रुस्तु जनकनन्दिन्या ययौ चामर्वाञ्जतः । तत्र रामस्य मार्गं हि सीताया मुत्पद्यद्भुजम् ॥२४॥  
 द्रष्टुं कोलाहलं चक्रुः भंसदान्मकला जना । तनस्तास्तादृशामासुः घनगो चेजपाणयः ॥२५॥  
 विश्लेषेण तदामीन्म महान् कोलाहलो द्विजः । तन्मर्गं गायो दृष्ट्वा ध्रुवः च प्राह लक्ष्मणम् ॥२६॥  
 एते सर्वे पुष्पकस्याजनाः सीतां च सा सुखम् । पश्यन्तु कलहो माऽस्तु नथाम्ब्वति स लक्ष्मणः ॥२७॥  
 सत्तानारोहयामास पुष्पके तान् जनान् मुदा । ततस्ते पुष्पकाग्रहा जना राम मनोरमम् ॥२८॥

'कच्छा महागज' कच्छर सङ्गण रावराज राजा है । इसके बाद कच्छिप्राणा गन्धर्वगण गमर्वा द्रु कृत्त करन लग्न ॥ ११ ॥ १२ ॥ षोडश मुनि ययम ऋषि पत्न्याम्वतो ययम्वन्तं जमर्वा मान और नामक वर्यामद करार गुरु वसिष्ठ भी रथम बैठ गये ॥ १३ ॥ जङ्गमन्त्रा रामचन्द्र सुवर्णानांस्त रथकर चक्रुः तत्र ऋत्विक् लोग वेदघोष करने लगे ॥ १४ ॥ चन्द्र नन्दास स्तुतय न हान हुए राम षोडशौ रामर्वाञ्जका चले । आगे-बागे पताकाधोसे मुक्त हाया, उसके बाद षोडश, उसके बाद वाडीवर सः हुए मुदम्वन्त तथ थाजा वजालेवाले और उनके बाद सुन्दर पगखी पहने हुए दण्डवत् राजा न चले ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसके बाद वन्दिजन, उसके बाद वीरगवृन्द, उसके बाद देवता तथा गन्धर्व चले ॥ १७ ॥ तदनन्तर स्यन्दनम्व तथा बह्विमधुक ऋत्विक् जनसे परिवेष्टित राम और सीता चली । इसके बाद ऋषि और ऋषिपत्नियां चली ॥ १८ ॥ उसके बाद राजपत्नी प्रभृति सम्पूर्ण स्त्रियां चली । उसके अनन्तर द्विविध व हनापर चक्रुः हुए गन्धर्व ॥ १९ ॥ उसके बाद उनकी सेना तथा अन्य राजसेवक चले । उसके बाद वाद्यवादक चले ॥ २० ॥ उसके बाद वाणेशे स्तर क्रोट और गहरोसे भरे शकट चले । उसके बाद लोहक र गन, चटई तब चमक र चलन लगे ॥ २१ ॥ उसके बाद भूमिकी ताप-जाल करनेवाली रस्सी एवं कुदाल हथके लिए मजदूर चले लगे । इस तरह आनन्दमय बहु सम्पूर्ण जनसमुदाय चलने लगा ॥ २२ ॥ उस-बाद बाद वज्रगण और मेरुगर्ह नाचने लगी । मुनिपत्नियां और राजपत्नियां रामपर पुष्पवृष्टि करने लगी ॥ २३ ॥ मागम वन्दाजन स्तुति करत लग, गन्धर्व माने लगे और मुनिद्वीग उन्मस्वरसे वेदघोष करने लग ॥ २४ ॥ इस प्रकार जनकर्तान्दिन सातक साथ दिविध कौतुक देखते हुए राय चले ॥ २५ ॥ उस समय राम एत नीताक वसानके लिए परम्वर लम्हना हुई जनम स कोलाहल मच गया । उसका शान्त करानेके लिए पुलिम् उड म जनताको ताडना दमे लगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ जब अधिक कोलाहल होने लगा तब रामने देवा और कुटुम्ब वक्क लक्ष्मणसे बाल - ॥ २८ ॥ तुम ऐसी व्यवस्था करो कि जिससे जनता हमारा दर्शन कर सकें और कलह शान्त हो जाय । इन सबकी पुष्पक विमानपर सटा लो । लक्ष्मणने कहा 'बहुत अच्छा' ॥ २९ ॥ इस प्रकार रामकी आज्ञासे सबकी पुष्पकपर चढ़ा लिया गया । तब

जानकीमहित यान्ति ददशुः पवि र्व शनः । केरिद्विचुर्ये धन्वाः परिपूर्णमनोरथाः ॥३१॥  
 अथ राम मर्मान च पञ्चमोच्च महोत्सव । केचिदसुख नो पन्थी विनम्रं न सुजन्मदी ॥३२॥  
 ययोः पुण्यचर्यस्य नः सागराषदशनम् । एतं ददृष्टुः श्रान्ते स्त्रियः सर्वाः पस्परम् ॥३३॥  
 समन्त्रं पुष्पके स्थातुं प्रार्थयन्ति स्म जानकीम् । तदा सा जानकी प्रह लङ्घनं पुरतः स्थितम् ॥३४॥  
 स्त्रियः सर्वास्त्रया शीघ्रं नार्गदाशामु पुष्पके । आगेहर्णाया मे वाक्यान् प्रार्थयन्त्यत्र मां मुहुः ॥३५॥  
 लक्ष्मणोऽपि नश्येन्पुन्या ताः स्त्राः सर्वाश्च पुष्पके । स्वस्याऽऽगोहयामास साशिलासु यथासुखम् ॥३६॥  
 ततस्तां पुष्पके रुढास्तु गजालपटान्तरैः । ददशुः सीतया रामं वषट्पुः पुष्पवृष्टिभिः ॥३७॥  
 मृदङ्गशङ्खपणवन्पुष्पांनकगोष्ठुवाः । वारिणाणि विचित्राणि नेदुश्चावभृथोत्सवे ॥३८॥  
 नर्तक्यो ननु नहरा गायका गृधरा जगुः । वीणा वणु लोहनादकृतेषां स दिवसपुष्कत् ॥३९॥  
 चित्रवज्राताकार्येमेमेन्द्रम्यन्दनार्चभिः । स्वलंकृतैर्मर्देषु निर्यपु रुक्ममालिनः ॥४०॥  
 यदसुजपकाभ्योत्तकुरुकेकयकोयकाः । कम्पयन्तो भुव सैन्यैर्यजमानपुगःसराः ॥४१॥  
 सद्यश्चिन्विद्वज्रेहा जग्नपापग भूयसा । देवापामृगन्धर्वास्तुगुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥  
 स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धमगृण्य मरैः । चिन्विपन्थाऽभिपिवन्था विजडविचिर्ध रसैः ॥४३॥  
 तैलगोरवगन्धोदहग्निमान्द्रकुंकुमैः । पुष्पिलताः प्रलिपन्त्यो विजडवार्धयोवितः ॥४४॥  
 एव नानामयुग्माहै श्रीरामश्च मर्मानथा । पश्यन्तानाकौतुकानि स्यन्दनेन जनैः सनैः ॥४५॥  
 अगमन्तर्यतीरे रामवीर्य शुभावहम् । अवकृष्ट रथाद्रामः सीतया सरयुजले ॥४६॥  
 स चकार जेहेष्टि तैर्जत्विग्भिः परिसारतः । पार्नामवाजावभृथ्वधरित्वा ते वसुत्विजः ॥४७॥  
 सवे रामहृदे निष्ठा यजमानपुगःसरा । आचान्त रनाथयाञ्चक्रुः सरयवां सह सीतया ॥४८॥

पुष्पकस्य जनता रास्तेमे जाते हुए सप्त रासका प्रसन्न दग्गन लगे ॥ ३० ॥ वे कहते लगे—हम घन्य हैं और परिपूर्ण मनोरथ हैं, जो अपने गेजान सीता के सम दम्प रह ह । कोई काल कि हुनाते जन्मवाता माता पिता क्षय है । जितके पुण्यसे हमको सातारासके दग्गन ह रह है ॥ ३१ ॥ इस तरह कौतुक देखते हुए श्रीराम समे जा रहे थे सब आशान्य रिजवां पश्यर चित्र वज्रके पुष्पकसे बैठकर लिए जानकीसे प्रार्थना करने लगे ॥ ३२॥३३ ॥ इसको प्रार्थना सुकर सोत जैन रामन चैंडे लक्ष्मणसे कहा— ॥ ३४॥ ये रिजवां नारम्भार पुससे प्रार्थना कर रहा है । अब मेने अज से इनको भी पुष्पकविमानवा स्वांग लाम बैठा दो ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजीने उत्तरमे बहुत आच्छा कहकर उन रिजगवा ज्ञ अ पश्यका नारीशालाम बैठा दिया ॥ ३६ ॥ लक्ष्मण जानक हार व सरासोमसे सीताको डेवन और पुष्पकाने वषो करने लगी ॥ ३७ ॥ उस अवधुवस्तानो-न्यवके उपलक्षसे लगन मृदङ्ग, शक्ति, पणव ( डोल ), वधुर्धानक नगाई एवं गोमुख ( मेरी ) प्रभृति विचित्र विचित्र वाद्योको बजान लगे ॥ ३८ ॥ नर्तक्य प्रसन्न होकर नाचन लगीं । गायकसमूह गायन गाने लगे और कोषायण प्रनृत घंटावा गजर आरागता गुञ्जिन करने लगी ॥ ३९ ॥ चित्र-विचित्र प्यवा-यता-काशीसे सुगोष्म हाथी पीड तथा रथोंके द्वारा सजे हुए घोड़ाशोक साथ सब राजे चल रहे थे ॥ ४० ॥ यदु, सुजग, काभज, कुरु केकय एवं कोमलवंशी राजाकोका वृन्द श्रीरामको आगे करके पृथ्वीमण्डलको कयाता हुआ चल रहा था ॥ ४१ ॥ सद्य, कूर्बिक् एवं काहृणवृन्द वदपोष करने लगी और देवता, ऋषि, मित्र एवं गन्धर्व पश्यवृष्टि करने लगे ॥ ४२ ॥ गन्ध, माला, ज सुवण एवं वस्त्रांन जलंकृत नारियां विविध रसोंको छिडकती हुई वृक्षोंके साथ विहार करने लगी ॥ ४३ ॥ वस्त्रां भी तैल, गौरस, गन्धांक इरिद्रा तथा गोजर कुमकुम पुष्पांवर उडन्ती हुई उनके साथ चलने लगी ॥ ४४ ॥ इस तरह अनेक प्रकारके आनन्दमय कौतुक देखते हुए श्रीराम और सीता रथक द्वारा घरे घीरे मन्ूरे तै रस्य शुभावहर मसीअपर पहुँचे और वहां उतर पड़े ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ऋत्विजोंसे परिवहित श्रीराम सन्यके जलम अर्वाष्टि करने लगे । ऋत्विक् लोगोंने इनको वतीके साथ सवात्र एवं अवधुव स्नान करवाया ॥ ४७ ॥ काहृण लग रामतीर्थके सन्युबलमे सीताके

धनुष्येन पुण्डरीकैर्नानातीर्थजलैस्तदा । रमयिषेक ते चक्रमुखा मंत्रमुनीश्वराः ॥ ४७ ॥  
 देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् । सुमुखं पुष्पपाणिं देवपिम्बिमानवाः ॥ ४८ ॥  
 सत्सुस्तत्र तपः सर्वे वर्षाश्रमयुतः नमः । मगधतकेनश्रमिन्नाम्ना मुक्ताः स्वयन्तकान् ॥ ४९ ॥  
 मगधस्य रामोऽश्वमेधं पश्चिपञ्च स्वयम्भुवः । सुमुखे निवसन् दिव्यकंकणाभ्यां सुमण्डितः ॥ ५० ॥  
 कैयगम्यां कुण्डलाभ्यां मुकुटाभिरुच्यते । नानागुणैर्होत्रैश्च शक्तानां नृपुणैरिभिः ॥ ५१ ॥  
 इति चित्तामणियुतः कठे कीर्तुममरितः । विजयविजयेभ्योः प्रमथा दीपिताम् ॥ ५२ ॥  
 कोटिदुर्मप्रसीकाशः गिरिवारा वरनोऽपि । नानागुणैर्होत्रैश्च शक्तानां नृपुणैरिभिः ॥ ५३ ॥  
 अर्धात्विभ्योऽददात्काले यथास्मार्थं न दक्षिणाः । स्वयम्भुवोऽपि नृपुणैः शोभन्तुम्भुगताम्भुन ॥ ५४ ॥  
 कामधेनुमलंकृत्य गुह्यं दानुं समुद्यतः । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः ॥ ५५ ॥  
 भस्तिर्मा नदिनी नाम्नी कामधेनुमुत्तमा । नानागुणैः प्रवेष्टुमंशुवः स्वयम्भुवः कोटिदुर्म ॥ ५६ ॥  
 तस्यैवास्मन् कामधेनुमर्थं योऽपि गच्छतः । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः ॥ ५७ ॥  
 बावाम्भुवः शुभां सीतां मालकां यद्विजगत् । त्र्यम्बकं गच्छन्त्याश्च दशैर्भगवद्भ्यः प्रभुभिः ॥ ५८ ॥  
 इति निधित्य स गुरुस्तदा प्रादुर्भूतमा । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः ॥ ५९ ॥  
 यदि दास्यसि देवा ये मांसाद्विजायन्तः । नानागुणैः प्रवेष्टुमंशुवः स्वयम्भुवः कोटिदुर्म ॥ ६० ॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठस्य जनाम्भुन । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः ॥ ६१ ॥  
 केचिदुन्मेषैर्होत्रैश्च किं भ्रातृ जटायुश्च हि । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः ॥ ६२ ॥  
 केचिदुन्मेषैर्होत्रैश्च किं भ्रातृ जटायुश्च हि । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः ॥ ६३ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामः श्रुत्वा तच्च गुरोर्वचः । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः ॥ ६४ ॥

साय श्रीरामको आघमन कराकर स्नान करवाने लग्य ॥ ४८ ॥ नृपुणैः शोभन्तुम्भुगताम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ४९ ॥  
 तस्यैवास्मन् कामधेनुमर्थं योऽपि गच्छतः । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ५० ॥  
 बावाम्भुवः शुभां सीतां मालकां यद्विजगत् । त्र्यम्बकं गच्छन्त्याश्च दशैर्भगवद्भ्यः प्रभुभिः ॥ ५१ ॥  
 इति निधित्य स गुरुस्तदा प्रादुर्भूतमा । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ५२ ॥  
 यदि दास्यसि देवा ये मांसाद्विजायन्तः । नानागुणैः प्रवेष्टुमंशुवः स्वयम्भुवः कोटिदुर्म ॥ ५३ ॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठस्य जनाम्भुन । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ५४ ॥  
 केचिदुन्मेषैर्होत्रैश्च किं भ्रातृ जटायुश्च हि । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ५५ ॥  
 केचिदुन्मेषैर्होत्रैश्च किं भ्रातृ जटायुश्च हि । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ५६ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामः श्रुत्वा तच्च गुरोर्वचः । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ५७ ॥  
 यदि दास्यसि देवा ये मांसाद्विजायन्तः । नानागुणैः प्रवेष्टुमंशुवः स्वयम्भुवः कोटिदुर्म ॥ ५८ ॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठस्य जनाम्भुन । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ५९ ॥  
 केचिदुन्मेषैर्होत्रैश्च किं भ्रातृ जटायुश्च हि । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ६० ॥  
 केचिदुन्मेषैर्होत्रैश्च किं भ्रातृ जटायुश्च हि । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ६१ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामः श्रुत्वा तच्च गुरोर्वचः । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ६२ ॥  
 यदि दास्यसि देवा ये मांसाद्विजायन्तः । नानागुणैः प्रवेष्टुमंशुवः स्वयम्भुवः कोटिदुर्म ॥ ६३ ॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठस्य जनाम्भुन । नृजन्तूनां चित्तगमाम्भुन वसिष्ठः स स्वयंभुवः कोटिदुर्म ॥ ६४ ॥

मीनायाः स्वकरेणैव घृत्वा वामकरं मुदा । ममायां गधत्रां प्राह तमिष्टं नोपयन्मुदा ॥६७॥  
 स्त्रीदानमन्त्रो वक्तव्यः सीताशत करोमि ते नद्येति पत्निवृन्देषु वमिष्ठश्च यथाविधि ॥६८॥  
 महीवकरं स्त्रीदानं गधपेण मभषिदम् । चक्षित च तदाऽभूर्द्धं सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥६९॥  
 ददमानं न कथामातदार्थादतिचित्रवत् । तदा सीतां मुनिः प्राह मन्वृतेतिष्ठ बालिके ॥७०॥  
 मम पिताऽपि गधेण त्वां मन्येत्तु मुनोपमाम् । तन्मृतेवचनं श्रुत्वा सीता सा त्विन्नमानया ॥७१॥  
 गजन्धनेक्षणा माधवी मुने, पृष्ठे हासयितुम् । वभूजश्रपूर्णनेत्रा सा रोमांचितदिग्धा ॥७२॥  
 मनो रामः पुनः प्राह तमिष्टं विनयाच्चितम् । गृह्णाण मुग्धे चापि सीतायै हृषिके पुनः ॥७३॥  
 मया तेषेण कैलासे मन्मथेऽनोपदायिनी । ममऽपि दातुमानीता तच्छ्रुत्वा गुरुव्रतीन् ॥७४॥  
 राम राम महाप्राज्ञो त्वरोदायै च दक्षितम् । याचिता त्वं चन्तोष मया तेऽस्तु पुनः शुभा ॥७५॥  
 अग्राः कुरु तुल्यधनं सुवर्णनं गन्तव्यम् । अष्टवारं प्रतुलितं सीतया रुक्ममुत्तमम् ॥७६॥  
 सां दत्तव्यं न्यया प्राप्ता पुनः सपदि मद्विरा । अन्यत्किंचिच्छृणुष्व त्वं वचनं यन्मयोच्यते ॥७७॥  
 धेनुं चितामणिं सीतां कीम्बुधं पुष्पकं पुर्गम् । स्वयं राज्यं मयोऽथ वां त्वं चेत्कस्य प्रदाम्यमिह ॥७८॥  
 अग्रे कदा तदाऽऽता मे रथ्या त्वया भविष्यति । मम तावद्गदोपेण बहुकनेशा भविष्यसि ॥७९॥  
 मर्कटः ममर्धो राजन् विना यश्चरामिन्दुभिः । तच्छृणुष्व विप्रेभ्यो न्वं मुखं परिचारतः ॥८०॥  
 तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा मथन्पुष्पका रथूनधः । सीतां तुल्यधामारोप्य सुवर्णेनाष्टसंख्यया ॥८१॥  
 तस्मिन् प्रनिजग्राह गुरोः माधवी स्मिताननाम् । दिव्यालङ्कारहीनां तां कंचुर्कान्तस्त्रयगुताम् ॥८२॥  
 तदा निनेर्ध्वार्थानि चतुर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । मुग्धक्षणे विषानग्नाः सीताराशौ मुदान्विता ॥८३॥

व्या—“तब, अब रामजी क्या करते हैं” ॥ ६५ ॥ इस तरह गुरुका वचन सुना सी रामजीने हँसकर संकेतसे  
 सनका और गुरु दोनोंको धुल दिया ॥ ६६ ॥ इह गुरुवर सभाय हा आनन्दपूर्वक अपन हाथसे सीताका  
 धन = १ रुक्मकर मन्मथलगा प्रसन्न करने हुए धन ॥ ६७ ॥ ‘गुह्येव’ आप स्त्रीदानका मन्त्र बालिके,  
 मे सुनता सीता कहती है ‘वमिष्ठजनभा’ रथ हनु’ कहकर रामक द्वारा दिये हुए स्त्रीदानका यथ विधि  
 स्वीकार कर लिया । म रामग सम्पुर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् आश्रय चक्षित रह गया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस  
 शासन सारा ममार चित्रलिखित सा सीतया किसे का प्रपत्ता दृष्टकी भा मुनि नहीं रहो । तब मुनि वलिष्ठ  
 सताय बने —सीने । मरे पीछे आकर बैठो ॥ ७० ॥ रामजीने मर गिये तबहुं दान किया है । मैं तुमको  
 पुन ही तरह प्रसन्नता है । इस तरह मुनिक वचन मनकर दृष्टिवा साध सीता मुनिके पीछे अंकर बैठ गयी ।  
 इस समय उग्रह गौरव गये हो गये और वे दृष्टकूटनर होने लगे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तदनन्तर चित्तव रामजी  
 त रामजी ने वाम मैन प्रसन्न होकर कैलास पवनपर सीताका मन्मथो ग र दी थी । अत इस मनस्तापदायिनी  
 मन्मथका ही लालने र । कि कि आपका दनर लिख हा मैन इसके मगाया था । यह मुनकर गुरु वलिष्ठ  
 बने— ७३ ॥ ७४ ॥ हे राम ! हे महाप्राज्ञ । मैन आपकी उपायता बसनेके लिए ही स्तनको मंगाया था ।  
 अग्राव अथ मेरे द्वारा ही हुई अथ मला ७५ ॥ आपकी या जाय । ७६ ॥ हे गुरुतम । सुवर्णके बराबर इसको  
 लीजिए । आप वार सीतान्तर चित्तवा स्वर्ग हो, उन मन्त्र दकर मे । क्रात्रासे आग पन सीताको ले लें । और  
 भी जा मे कहना है ममपुन ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ धेनुका नाम , चित्तमणि, सीता को पुष्प रत्न, पुष्पक विमान,  
 अष्टसंख्यया व मला राज्य यदि आप किसे को दो तो मेरे अनामगजन्म दोषमे अत्यन्त दुखी होगी ।  
 क्योंकि आनन्द आपने कभी मे मने उ जा कह नहीं की है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अत हे राजन् ! मुनिनिर्दिष्ट  
 गन वन्मथका पीछेकर जा रह्या हा, विना बिचार कन्मथो को देकर आप सुखी हो ॥ ८० ॥ इस तरह गुरुके  
 वचन मनकर गुरुतम म मने कहा— वदन् अन्ता पुद्गल’ और सीताका अठ वार सुवर्णने लीकर उनसे  
 खपम ले लिया । ८१ ॥ तब केवल कंचुका वरत्र पट्टने तवा दित लकागसे रहित भी सीता प्रसन्न हो गयी । इसके  
 अनन्तर वार वजन लगे और विमानपर बैठो हुई देवागसार प्रसन्न होकर सीताराशके ऊपर पुष्पवृष्टि करने

पूर्वाधिकानलंकागन्धदेहे जानकी दधौ । जनाः सर्वे सुसन्तुष्टास्तदाऽऽमन्मुदिताननाः ॥८४॥

अथ सीता पतिं नम्या तन्पार्श्वे सस्थिताऽभवत् । स्मिताननाऽऽनन्दमग्ना लज्जिता गमलोचना ॥८५॥

नवो रामोऽप्यनेकानि कृत्वा दानानि विस्तारान् । कृत्स्निकमदस्यगुण्यादीनान्यभिगणावरैः ॥८६॥

स्वीयतार्तामृपांश्चित्रमुद्गदोऽन्याश्च सर्वशः । अर्भीक्ष्णं पूजयामास वस्त्रालंकारभूषणैः ॥८७॥

सर्वे जनाः सुललितोन्मणिकुण्डलस्रगुष्णीपकचुकदुकुलमहापरिहारैः ।

नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृद्धनुष्टुप्त्रयः । कनकमेखलया विरेजुः ॥८८॥

इति श्रीजितवाटिगामचरितगतने श्रीमदानन्दरामायण वाग्मीकायै वागकाण्डे

अवभृथोत्सववर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

## नवमः सर्गः

( अश्वमेध महायज्ञकी समाप्ति )

श्रीरामदास उवाच

श्रीरामेऽवभृथस्नाते शंभुर्ब्रह्मादिभिः सुरैः । रामै वैदमन्त्रैः स्तुत्या प्रन्युवाच पुनः स्थितः ॥ १ ॥

अथ धन्या वयं सर्वे यच्चो म्नात सुमंगलम् । पश्यामो वाज्यवभृथे मातया वधुभिः सह ॥ २ ॥

अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव दयानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठकालो भविष्यति ॥ ३ ॥

त्वं चाप्यंगीकुरुष्वाय देहार्म्म सुवहन्धरान् । अन्यस्मश्चात्र प्रन्यवद् येन ते दर्शनं भवेत् ॥ ४ ॥

तथा कुरु रघुश्रेष्ठ तीर्थायात्स्मै वगन्तव । अन्यानि च त्वया पूर्वयानि भूम्या कृतानि हि ॥ ५ ॥

यात्राकाले मुनीर्थानि लिंगान्यपि निजाख्यया ।

तेषामपि वरानय वद त्वं मम वाक्यतः ॥ ६ ॥

पुरीषु श्रेष्ठाऽयोध्येय त्वया वाच्याऽद्य राघव । नदीषु सरयुः श्रेष्ठा वर्गः कार्पाऽद्य मद्गिरि ॥ ७ ॥

तच्छुश्रूवचनं श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । हर्षकालेऽब्रवीद्राघवं यन्त्रैलोक्योपहारकम् ॥ ८ ॥

लगी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ अब जानकीजाने पहलेसे भी अधिक आभूषणोंको अपने शरीरमें पहना तो उससे जनता अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ ८४ ॥ इसके बाद पतिका प्रणाम करके बैठती हुई सीताजी आनन्दमग्न होकर लज्जापूर्वक रामके पास बैठ गयीं । तदनन्तर रामजीने खूब दान दिये एवं कृत्स्निक, सदस्य, राजे, मित्र, सहज तथा अपन भाई वन्धुओंका वस्त्राभूषणोंसे भली भाँति सत्कार किया ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय रामजीके यज्ञमें सब पुष्प मनोहर मणियोंसे अटित कुण्डों एवं मालाओंका पहिन तथा बहुतमन्य पगड़ी कन्की ओर दुषट्टीमें सुशोभित हो रहे थे । इसी तरह कुण्डल, रत्नअटित आभूषण तथा स्नानका मेखला ( तागड़ी ) से सुशोभित निजों भी विराज रही थीं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणं यागकाण्डं नव रामोत्सववर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—श्रीरामने जब अवभृथ स्नान कर लिया, तब बहूनादि देवोंके साथ महादेव रामजीकी स्तुति करके कहने लगे—॥ १ ॥ आज हम लोग धन्य हैं, जो सीता एवं वन्धुओंके सहित आपको यह अश्वमेधका अवभृथ स्नान किये हुए देख रहे हैं, जो अत्यन्त मंगलकारक है । २ 'ह देवदेव' हे कृपानिधे ! यह समय हम लोगोंके लिए बड़ा हर्षप्रद है । अतः यह सदा अत्यन्त श्रेष्ठ और पुण्यवर्द्धक क्षण है । ३ ॥ आप भी इसकी अर्ज्ञाकार करें और इसके लिए अच्छे एवं बहुतसे ऐसे वस्त्र दें कि जिससे हमलोगोंका प्रतिबन्ध आपका दर्शन मिलता रहे ॥ ४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस तीर्थके लिए भी बहुतसे वस्त्रोंका दान प्रणाम करते समय पहले भी आपने जिन तीर्थ एवं लिंगोंकी स्थापित किया है, उनको भी मेरे कहनेसे आप वन्दान दें ॥ ५ ॥ हे राघव ! आप मेरे कहनेसे आप ऐसा कह दीजिये कि सब नागरिकोंके लिए श्रेष्ठ यह अवसर नगरी है एवं

श्रीराम उवाच

यत्प्रार्थितं त्वया शंभो तदेव हृदि मे स्थितम् । मृणुष्व वचनं मेऽथ यदुपनिषोष्यते शुभम् ॥ ९ ॥  
सर्वेषामेव पाप्मानां श्रेष्ठार्थं मयैवेन । वैजान्तान् कार्त्तिकः श्रेष्ठः कार्त्तिकान्वाय एव च ॥ १० ॥

वाघमासाद्धर्मार्थं चैत्रमासो भविष्यति ।

चैत्रमासेऽप्यवज्जन्म मम यस्मात्तथा पुनः ॥ ११ ॥

राजिनेश्वरभूषेषु स्नानेऽपि विशेषतः । सर्वेषामधिकथाम्बु जगृप्ते वाक्पणोग्वात् ॥ १२ ॥

चैत्रमासे कृतं दत्तं हुतं स्नानं निश्चिन्तितम् । सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमप्युच्चार्या विशेषतः ॥ १३ ॥

सर्वसु प्रथमा चेयं पुगीषु नगरी मम अयोध्या मुक्तिदात्री तु भविष्यति गिरा मम ॥ १४ ॥

अन्यत्र यत्कृतं पुण्यं यत्प्रियवचनैः शुभम् । तदत्र दिवसकेन भविष्यति पुनो सदा ॥ १५ ॥

पुगीर्णां नगुरां संया गङ्गधानो शुभप्रदा ।

त्वयाऽस्यैवाचितो यस्माद्विद्वत्सहमादरात् ॥ १६ ॥

तव वाक्याद्गौरवेण तव कारयाः शतविका । भविष्यति पुनो नैऋत्ययोध्या मम वल्गवा ॥ १७ ॥

नदीषु मरुदेव्यं श्रेष्ठाऽस्तु कचनान्मम । मरुदूमहती नाम्ना नदी भूता भविष्यति ॥ १८ ॥

अस्मदपि मया चेदं रामतीर्थं निर्निर्मितम् । निजनेत्र प्रकाशेन तीर्थेषु मुकुटोपमम् ॥ १९ ॥

भविष्यति न सदेहः सर्वपातकनाशनम् ।

एषा पानि पृथिव्यां हि मया तीर्थानि वै पुनः ॥ २० ॥

लिङ्गान्यपि स्वीयताम्ना कृतानि तानि शक्य । स्नाने दर्शनावागमैर्मुक्तिराऽन्यत्र संतु वै ॥ २१ ॥

रामतीर्थे चैत्रमासे प्रत्यब्दं भुवि मानदं । स्नानेऽप्यविधित्वा मय्यद्वैतियनैर्मम वक्ष्यते ॥ २२ ॥

यत्कुरुष्वश्वाश्वमेधेन यदोमेधेन वै कुरुम् । एकलं सोमयागन तत्सर्वत्रेऽप्यवगारनात् ॥ २३ ॥

सूर्यश्रेष्ठे कुरुष्वेव यत्कुर्यः स्नानदानतः ।

तत्कुर्यः स्यान्मयी स्नानादयोध्यायां सुरेश्वर ॥ २४ ॥

नदिवाय उत्तम सरयु नदी है । शिवदेव का यह कथन सुनकर इतना हुए राम स्वयं शिवदुर्गोपकारिणों वाणी बोलें ॥ ७ ॥ ८ ॥ और अपने कहा-हैं शम्भो । आप जो वादन्त है, वही मेरे भी भनव है । आप मेरी बात सुनिये । मैं हरेपुत्रक यह कल्याणमय वाक्य कहना हूँ । ९ । मय्युक्तं पासोऽपि नैऋत्यस्य सप्तमं भागं हागा । वैजान्तसे कार्त्तिक, कार्त्तिकसे माघ एवं माघ महानस भी नैऋत भाग हुआ । इसी मासमें मरा जन्म हुआ है । इसलिए भी यह जन्म मास श्रेष्ठ है । १० । ११ । अश्वविवाह अवश्य स्नान होने लया आपके व नगरीयसे भी यह महोना सत्त्वम श्रेष्ठ होगा ॥ १२ ॥ चैत्र मासमें यत् स्नान-दान आदिमा कोटिगुण प्रदा हागा । अयोध्यामें किया हुआ मुकम तो और भी अधिक पुण्यप्रद हागा ॥ १३ ॥ यह मेरी पुगी सब नगरियाए उन्म है तथा मेरी वाणासे यह मुक्तिदात्री भी अवश्य होगी । १४ । और जगह किया हुआ कृपा ज्ञान के २० वीं वीं फलदायक होता है, किन्तु यहाँ किया हुआ पुण्य एक ही दिनमें फलदायक हागा ॥ १५ ॥ वम पुत्रराम शुभप्रद पुगी यदुगकी समयमें क्योंकि आपन मुझसे वर मांग है ॥ १६ ॥ अतएव आपने वाक्पणोग्ममे यह मरा शिवा अपाङ्गपुगी मुणोंव आपको काशीसे भी सौगुना श्रेष्ठ हागा ॥ १७ ॥ मेरे वचनमें मर्यु सब नानि-बोम श्रेष्ठ हागी । समु जैसी मदी न है और न हागी ॥ १८ ॥ इसमें भी मेरी वनाया हुआ यह २ मन्त्रों आन प्रदायक सम्पूर्ण लोकोव मुमुट सद्यः हागा ॥ १९ ॥ हे शक्यको । मैंने अपने नामसे भू-मपर त्रि-मया तार्ज एवं त्रिर्वाङ्गम्यद्विपित किये हैं वे सब स्नान-दर्शन एवं पुजनसे मुक्ति दतनाय तथा सर्वपापनाशक हागा । इसमें कोई सन्देह नहीं है । २० । २१ ॥ मनुष्यको प्रतिवर्ष चैत्र मासमें विष्णुपूर्वक, यम निरमादिके साथ रामतीर्थसे स्नान करना चाहिये ॥ २२ ॥ अश्वमेध, गामेध एवं सोमयाग करनेसे जो फल प्राप्ता होता है, वही फल रामतीर्थपर स्नान करनेसे मिल जाता है ॥ २३ ॥ सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें स्नान-दान करनेसे जो फल हागा है, वही फल चैत्रम अयोध्यास्नान करनेसे

अयोध्यायां रामतीर्थे सरयुजलध्वजः । तत्रैव तस्मात् शोभमानिनाः ॥२५॥  
यथा मार्गे प्रयागे हि स्नानार्थं तुल्यमिह । अत्रैव तस्मात् शोभमानिनाः ॥२६॥

द्वारकायां यथा प्रोक्ता वैशम्पेयः । तत्रैव तस्मात् शोभमानिनाः ॥२७॥

अयोध्यायां नगरीयं तथा चैव तस्मात् शोभमानिनाः ॥२८॥

कृष्णार्णवं नरैर्मन्युना वचनान्मम सर्वदा । सर्वदा च तस्मिन् प्रथमः सकलैर्जनैः ॥२९॥  
एतावत्कालपर्यन्तं मार्गशीर्षे प्रयागे हि । अत्रैव तस्मात् शोभमानिनाः ॥३०॥

यथा देवेषु प्रथमस्त्वं महेश्वरतथा मनुष्यैः ।

तस्मिन् प्रथमश्चास्तु तथाऽशेषाः पुराणवदि ॥३१॥

चैत्रे मासे तु संप्राप्ते सर्वे देवाः सवासवाः । बहिर्जलसमाश्रित्य तिष्ठन् हि ममाश्रया ॥३२॥  
प्रत्यहं चैत्रमासेऽथ यथेदानीं समागताः । आगतव्यं तथा सर्वैर्लोकपातकामिभिः ॥३३॥  
सहैवतुरैः स्त्रीभिर्वैषां यन्मनैर्वा मम । रामतीर्थे प्रगतव्यं सर्वम् भुवि शकर ॥३४॥

चैत्रमासेऽथगाहार्थं वचनान्मम सर्वदा ।

इति रामवचनं श्रुत्वा गिरिजा प्राह जानकीम् ॥३५॥

मीने वरास्त्वगा देवा इदानीं वचनान्मम । नरैर्वा च हितार्थं हि सर्वलोकोपकारकाः ॥३६॥  
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह सादरम् । पृथिव्यां मम तीर्थानि यानि सन्ति सदृशानि ॥३७॥

अत्रापि च सदृच्छ्रेष्ठं यत्र स्नानं मयाऽधुना ।

तेषु चैवतुर्थाया या यावद्वैशाखसमवा ॥३८॥

मिता तृतीयाऽथार्याऽथानार्यी भस्तु सादरम् । स्नानार्थं श्रीतलमौरीयद्वक स्थानमुत्तमम् ॥३९॥  
वीमादयद् ममैकं पुत्रपीत्रप्रवर्द्धनम् । सर्वदा रामतीर्थेऽथ वा मे तीर्थे ममास्ति हि ॥४०॥

इति दत्ता वरान्मार्गशीर्षीसूक्तो रामपश्चिर्धः ।

ततो गमं गुरुः प्राह शनैश्च यत्नमवृषम् ॥४१॥

प्राह होता है ॥ ३८ ॥ जो जो देवता सरयुजलध्वज रामतीर्थमें स्नान करत है, वे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ३९ ॥ जो कठ मार्गमागमें प्रहसमानका है कानिचन कजोका पंचम नाम स्नान करनेका है और द्वारकायें चक्रार्थपर वैशाखमासका जो फल है, वहां फल अत्रैव तस्मात् रामतीर्थपर चैत्र मासमें स्नान करनेका है ॥ २६ ॥ २७ ॥ अत्रसे उनका मेरे कहनेसे सरयु सत रोम चैत्रका पहला महीना समझे ॥ २८ ॥ आज तक मार्गशीर्ष ( अग्रहण ) सबसे प्रथम मास माना जाता था, पर आजमें चैत्र प्रथम मास समझा जायगा ॥ २९ ॥ जैसे देवताओं पर पहले आप ( गिरि ) हैं, इसी तरह मासोंमें प्रथम चैत्र और पृथिवीमें प्रथम अयोध्या समझी जायगी ॥ ३० ॥ जैन इस समय आप लोग यह आये हैं अभी तरह प्रतिवर्ष चैत्र मासमें आये और मेरी आज्ञासे सरयु तटपर आश्रम बनाकर निवास करें ॥ ३१ ॥ ३२, बड़े आतुर ( रोगी ) एवं स्त्रियों भी जिसके पास ओ कुछ हो, उसी मनुष्यको भद्रा प्रसिद्ध भद्र देने तथा चैत्रमासमें स्नानार्थ यहाँ आया करें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर पार्वती ने सोन से बोली—हे मीने ! आप भी इस समय मेरे कहनेसे सर्वलोकोपकारक एवं विशेष करके स्त्रियोंका हितकर धर प्रदान करें ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पार्वतीके वचन सुनकर सीताजी बोली—पृथिवीपर जिनने भी भद्र सर्व है और यहाँ जो महाश्रेष्ठ तीर्थ है, जिनमें मैंने स्नान किया है, उन सब तीर्थोंमें चैत्रकी चैत्रमास लेकर ईश्वरजी अथवा तृतीया पर्यन्त स्त्रियोंको स्नान करना चाहिये । यह श्रुतश्रवण स्नान कहलगा ॥ यह स्नान एक मास होता है । यह स्नान सौभाग्य देनेवाला एवं पुत्रपौत्र वृद्धवृद्धा है । मम तथा नगमताओंके मार्गमागमें मेरा तीर्थ है ॥ ३६-३९ ॥ इस प्रकार कर देकर सीताजी चुप हो गयीं, इनके बाद गुरु वशिष्ठ रामजीसे बोले

तद्गुरोर्वचन श्रुत्वा तथेष्टमुक्त्वा मृदुदः आरुगोह मथ शीघ्रं मानपान्निर्जनैः सह । ४१॥  
ततो नेदुर्दुन्दुभयो मेरोणा निःस्त्रनास्तनः मृदंगपणवादीनां महाधोषाः समस्तनः । ४२॥

वेदघोषाश्च मधश्च जघशब्दा द्विजेभिः ।

वभूवुर्मंत्रप्रबन्दाश्च ननुतुथाऽन्मरोमगाः । ४३॥

नानोत्सवैः पूर्वैरुच्य कौतुकादि समस्तन । पञ्चम्ययौ गमचन्द्र, शनैरन्वरमडपम् । ४४॥  
अवस्था रथान्छीर्ष नीत्याऽग्नि प्राक्षिपन्पुनः । यत्कुण्डे रमचन्द्रः सीतयात्विजर्जनैः सह । ४५॥

पूर्णावृत्तिं ततो दत्त्वा वस्त्रैरभरणैः फलैः ।

कुत्वाऽथ पूजनं चापि यज्ञपात्राणि तथैव । ४६॥

ततो विसर्जयामास यज्ञाने दक्षिणां सह दातुं तानुत्विज-मर्वांश्चौमिद्रिग्यवेऽब्रवीत् ॥ ४७॥  
कोशागारं लक्ष्मणद्याः पर्वमेष्ट्वन्विजस्तथा नीत्या दत्ताभिगङ्गुय नृणां स्थेष ततः पाम् । ४८॥

गद्येच्छयाऽमितं यैश्च गृहीतमुत्तमं वसु ।

तस्याश्चमे प्राणपीथं बाहूनाद्यश्च तत्त्वया ॥ ४९॥

ततो मुनिजनान् सर्वान् देयं त्रिपुल्लहस्तवः, तद्रामवचनं श्रुत्वा लक्ष्मणोऽपि तथाऽकरोत् ॥ ५०॥  
ततो विसर्जयामास भोजयित्वा मधूतपः । कन्विजानान् सवृणानान् राजिमेषाख्यक्रमेण । ५१॥  
ततो राशेऽमरान्सर्वान् शिवाद्यान्त्रिवैविजैः, पूजयामास विधिवद्वस्त्रालकास्वाहनैः । ५२॥

ददौ कोशान्मनुग्मान् केषां च शिबिकां ददौ ।

केषां रथान्गजान्केषां ददौ दम्भान्यर्पाधरः ॥ ५३॥

एवं पृथ्वीपतीश्चापि सायरोषान् मसेवकान् । वस्त्रैरभरणैर्यानि, पूजयामास भोजनैः ॥ ५४॥  
ततो रामः स्वशरीरे दिव्यवस्त्राणि सन्दर्शौ । तदा तं पूजयामासुर्बालिभिर्विविधा नृपाः ॥ ५५॥

किं अथ यज्ञमण्डपको घटना बाहिये ॥ ४०॥ इस तरह गुरुजीके वचन सुने तो राम 'नथास्तु' कहकर शीघ्र सीता एवं कृत्रिक, लीलीक साथ मधुपर चढ़ ॥ ४१॥ उस समय गंगादे वज्रमे लग, मेरीके मन्द होने लगे और मृदंग-पणव प्रभृति वाद्योंके धधसे सब दिग्ययें दशास्त हो गयीं ॥ ४२॥ बाह्येण वेदघोष तथा जयजय-कारके शब्द करन हुए वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण कान लगे और नम्रगय नाचन लगी ॥ ४३॥ पहलेकी तरह विविध उपवी एवं कौतुकोंका देसन हुए गम शर्न, गर्न यज्ञमण्डपम् गये ॥ ४४॥ जहाँ उन्होंने शीघ्र रथसे उतरकर सायकी अभिको वज्ररुमें छोड़ दिया । आरम सन्तः एवं कृत्रिकोंक साथ पूं हित करन लगे । उन्होंने दम्भ-आभूषण एवं फरोंसे अभिकका पूजन करके यज्ञपात्रोंका विसर्जन कर दिया और यज्ञाश्रमं श्रुतिजोंको विपुल दक्षिणा देनेकी आज्ञा देन हुए, रामने लक्ष्मणसे कहा ॥ ४५॥ ४६॥ ४७॥ हू लक्ष्मण ! इन सब श्रुतिजोंका कोषागारमें ले जाकर कहकि पहरेदारोंकी हटा दो और तुम चुपचाप बल्लग खड़े हो जाओ ॥ ४८॥ जिसको जिसनो इच्छा हो, उसको बिना शक टोक उतना द्रव्य ले लेने दो । लिया हुआ द्रव्य बाह्यनोंके द्वारा इनके अश्वमपर पहुँचवा दो ॥ ४९॥ फिर खुनहाथ मुनियोंको दान दो । इस तरहका वचन सुनकर लक्ष्मणने भी रामजीके कथनानुसार ही दान दिया ॥ ५०॥ तदनन्तर अश्वमेध यज्ञम जिनका वरण हुआ था, उस श्रुतिजोंको भोजन कराके रामजीने विभजित किया ॥ ५१॥ इसी तरह समस्त देवताओंको भी विधिवत् वस्त्र-अलंकारोंसे पूजित करके विभजित कर दिया ॥ ५२॥ उनमेंसे किसीको रामचन्द्र-जीने खजानेके साथ धोड़े दिये, किसीका अच्छः-अच्छी पालकी दी, किसीको हाथी, किसीकी घोड़ और अच्छे-अच्छे कपड़े तथा गहनोंका उपहार कर सम्मानित किया ॥ ५३॥ ५४॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने स्वयं कण्ठे रहने । उस समय समस्त देवताओ तथा रागाओंने माना प्रकारकी भेट दे-देकर रामचन्द्रजीका



सरिस्सद्गुहा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ।

घौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजगुरुपायनम् ॥५६॥

सीतया न महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः । बभूविः सेव्यमानः स विरजेऽग्निरिवापहः ॥५७॥

तस्मै जहार चन्द्रो हंस वीरवराभनम् । वरुणः सलिलम्रात्रि क्षातपत्रं शशिप्रभम् ॥५८॥

वायुश्च बालम्भजने धर्मः कीर्तिमयी सजम् ।

इन्द्रः किरीटमुःकट दण्डं संपन्न यमः ॥५९॥

नद्या मग्नमय धर्म मारुती ह्यामुत्तमम् । दशचन्द्रमसि रुद्रः शतचन्द्रमशाम्बिका ॥६०॥

सोमोऽमृतमयानन्धास्त्वष्टा रूपाश्रय रथम् । अग्निराजगर्व चापं सूर्यो रश्मिमयानिवृन् ॥६१॥

भूः पारुके योगमयी घौः पुष्पावलिपन्वहम् ।

नाट्य सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च सेचराः ॥६२॥

ऋषयश्चाशिवः सायाः समुद्रः शंखमाभजम् । सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीर्यमहात्मनः ॥६३॥

ततो ददुर्नृपाः सर्वे स्पन्दनास्तुरगान् गजान् । त्रिविक्रानोशृपान् खड्गान् दाम्पिर्दासोपूखेरान् ॥६४॥

सीतायै नृपपन्नपथ देवपन्नपथः महामताः ।

वसुलकारयानानि मातृन्वान्यथ कंचुकीः ॥६५॥

कीटोपकरणादीनि ददुस्नाः पक्षिपजगन् । ततस्तैः पूजित सर्वैः सीतया रघुनायकः ॥६६॥

आकरोह रथ दिव्यं वद्विना वन्दिभिः स्तुतः । स्वस्त्राभिनृपपन्नारिमानेन मुनीश्वराः ॥६७॥

विहायसः ययुः सर्वेऽयोध्यायां नृपतेर्गृहम् ।

ततो रामो रथेनैव पूर्वोक्तैरुपर्वैः शनैः ॥६८॥

विदेशं नगरीं रामः स्तुतः स्तुतेश्च मागधैः । छत्रं दधार सौमित्रिर्मुक्तजालविराजितम् ॥६९॥

भरतस्तालम्बजनं अनुधन्यामरद्वयम् । ताम्बूरपात्रं सुग्रीवस्तोषपात्रं तु वायुजः ॥७०॥

नलः ह्रीविनपात्रं च बालिजो मुकुरं चरम् ।

वामःकोश गन्धमेद्रो भूपपात्रं हि जाम्बवान् ॥७१॥

पूजन किया । ससारकी नदियां, पर्वत, समुद्र हाथी, घड़, मृग, पक्षी, आकाश और पृथ्वीपर रहनेवाले सब प्राणियोंने अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार भगवान्‌को भेंट दी । उस समय रामचन्द्रजी सीताजीके साथ सिंहासनपर बैठे हुए थे । चारों ओर उनका सेवामे तन्तून थे । रामचन्द्र उस समय दूसरे वर्गिके मद्रुग देवीव्यमान दीख रहे थे । १५-१७ । उस समय भगवान्‌को कुंवरने एक सोनका सिंहासन दिया । वरुणदेवने जलकी वर्षा करनेवाले और चन्द्रमाली नाई इज्जत छत्र दिया । वायुने चमर दिया । धर्मराजने माला दी । इन्द्रने एक बहुमूल्य किरीट दी । यमराजने दण्ड दिया । ब्रह्मने कवच दिया । हरस्वतोने हार दिया । उसी तरह रहने दस बारवानी एक तलवार, पार्वतीने शतचन्द्र तलवार, चन्द्रमाने अमृतमरे घड़े, त्वष्टा ( विश्वकर्मा ) ने एक सुन्दर रथ, अग्निने अग्निकी तरह चमकता हुआ आजगद नामक एक धनुष, सूर्यने नमोमय बाण, पृथ्वीने योगमयी पारुकाएँ, आकाशने कुन्नोंके ढेर, गन्धर्वोंने ताप-गाने-बाजे आदि, ऋषियोंने मन्त्र अशोर्वादि, समुद्रने कल, नदियों लया बड़े-बड़े मछी और पर्वतोंने भगवान्‌की रथके रास्त दिये । १८-६९ ॥ इसके अनन्तर राजाओंने रथ हाथी, घोड़े, पालक़े, गधे, बैल, कर्ण, दास और रैत आदिके उपहार दिये । फिर राजाओंकी रानियों और देवताओंकी देवियोंने नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण, गन्धकी आदि भाङ्गलिक वस्तुयें, खेलके सामान, ढोलनेवाले सुन्दर पसियोंके पीजरे आदि सीताको दिये । इस तरह सीताके साथ रामचन्द्र सबसे पूजित हुंकर एक दिव्य रथपर सवार हुए और बन्दीजनोंने भगवान्‌की श्रुति धारण की । बहुतरे मुनिजन अपनी स्त्रियों और राजाओंकी स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़कर

मानाफलानां पात्राणि पूजापात्राण्यनेकजः । सुगन्धद्रव्यपात्राणि दधुस्ते सन्निवचमाः ॥७२॥

एवं सुगन्धवस्तूनि प्रक्षिपन् धारयोषिताम् । वृक्षेषु सीतया रामो विरेजे स्यन्दने स्थितः ॥७३॥

सुगन्धद्रव्यपूर्णैश्च जलपत्रैः करे धृतैः ।

वारुङ्गनानां वस्त्राणि नृपादीनां च राघवः ॥७४॥

चित्रितान्यकमोद्गर्गैः किंशुकानिव माधवे । स्नेहैः सुगन्धैः राधासराद्रवस्त्रेषु राघवः ॥७५॥

क्षिप्त्वा परिमलादीनि चित्रितान्यङ्गमोन्पुनः । नर्तनसु धारयोषितसु बाधेषु निनदन्सु च ॥७६॥

स्तुवन्सु वदितुं वृक्षेषु पुष्पवृष्टिविराजितः ।

ययौ राजगृहद्वारं रामो राजपथा शनैः ॥७७॥

भार्गो कुम्भप्रदीपैश्च दध्योदनविनिर्मितैः । बलिदीपैः पूर्णकुम्भैः राजभार्गो पुरस्त्रियः ॥७८॥

अक्रुर्नीराजनं रामं स्वस्त्यर्थं सीतया वृतम् । अवस्तु रथाद्रामो सीतयाऽग्निं निजे गृहे ॥७९॥

स्थाप्य स्त्रीरामभां गत्वाऽऽरोह स्वयमामनम् ।

ततस्ते पार्थिवः सर्वे प्रणम्य रघुनन्दनम् ॥८०॥

राजा मुकुटरत्नौषधप्रभाभिः पदपंकजैः । विरेजतु रघवस्य वदा सिंहासनोपरि ॥८१॥

मुकुटस्थावतसानां परागैः पूजिते चरैः । प्रपतुर्नितरां शोभां रक्तोत्पलनिभे परे ॥८२॥

सीमतस्थचन्द्रसूर्यस्तमागिषवदीप्तिभिः ।

सुरपार्थिवपत्नीनां सीतायाः पादपंकजैः ॥८३॥

विरेजतुः परमैश्च केशधधप्रमूर्जैः । सुस्पष्टितपत्नीर्गमः पूजिते कनकोज्ज्वले ॥८४॥

ततः सभायां भीरामं स्तुत्वा देवैर्महेश्वरैः । धारमस्तधराजेन धारामेण वि पूजितः ॥८५॥

आकाशमार्गसे अयोध्याकी ओर चल इन्द्र राजचन्द्र भी पूजाके लक्ष्मणोंके साथ रथपर सवार होकर राज-महलकी ओर बढ़े। जब रामचन्द्र आकाशमार्गीय दक्षिण दृष्टि हुए उस समय भगवान्की एक भतृङ्गी शोका थी। रामजी सीताजीके साथ रथपर बैठे थे। लक्ष्मण अपने हाथोंमें छत्र भरत पंथा, भद्रपुष्प धमर, सुगन्ध पानदान, हनुमानजी जलकी लारो, नन्द उगलदान अद्भुत अ इना विर्भाषण कपड़ोंकी घेटी और आम्बवान् पुष्पदानों लिए दृष्टे थे। इसी प्रकार उनके पुरोके पात्र गुजाकी सामग्री और अनेक सुगन्धद्रव्यक पात्र इतके अच्छे-अच्छे मन्त्री ले-लेकर चले। मन्त्रियों के मन्त्री वेण्याओंके ऊपर सुगन्धकवड़ा आदिके इत्रोंकी वर्षा करते जा रहे थे। उस समय विविध प्रकारके सुगन्धित तथा रङ्गीन फौवारे छूट रहे थे, जिससे सबके कपड़े एक विचित्र रङ्गके दिखाई दे रहे थे। इन्हीं भीम हुए और रङ्गीन कपड़ोंपर रह रहकर रामचन्द्रजी स्वयं गुलालकी वर्षा करके उन्हें और भी विचित्र बना देते थे। इस तरह वेण्याओंके नृत्य, बाजे-वालोंके बाजों, वन्दीजनोंकी स्तुतियों और देवताओंकी प्रणवृष्टिके साथ राज राजमार्गसे चलते हुए रामचन्द्रजीके महलकी ओर जा रहे थे। ६४-७७॥ रास्तेमें स्थान स्थानपर जगसे करे कलश और वही भास आदिकी बलि दिखलायी पड़ती थी। सीतारामके चलानकी कारण मैं अपने आकाशिनी निर्वर्ण भगवान्की भारती उतार रही थी। महलके फाटकपर पहुँचकर रामचन्द्रजी रथसे उतर पत्र और सीताजीके साथ अपने यज्ञ-धवनमें गये। राजीय अग्निकी देशगृहमें स्थापित करके वे राजसभामें जा पहुँचे, सभाके सुन्दर सिंहासन-पर भगवान् आसीन हुए। तब देश देशान्तर्गसे आये हुए राजाओंने उन्हें प्रणाम किया। जिस समय वे राज अपनां मस्तक झुकाकर अपने मुकुटका रामचन्द्रजीके चरणोंमें स्पर्श करा रहे थे, उस समय भगवान्की एक विचित्र शक्ती दिखानी देती था। जब उन राजाओं, शनिवों और दैत्योंने सीतारामको प्रणाम तथा

प्राप्याज्ञां रामचन्द्रस्य सावरोधैः सुगदिभिः ।

प्रस्थानं स्वस्थलं गतुं चकार वृषमण्डितः ॥८६॥

नृपेन्द्रियोऽपि सीतायाः प्राप्याज्ञां पूजितास्तथा । यानान्पाददुः सर्वास्त्रयोध्याया विनिर्गयुः ॥८७॥

अथ ते पार्थिवायाश्च प्राप्याज्ञां गच्छन्त्य च । सावरोधाः सर्वेऽप्यश्वाश्च रथोपरारुह्यानि वै ययुः ॥८८॥

ययौ शिवोऽपि कैलाशं सम्पलोकं विधिर्वयौ ।

इन्द्राद्या निजैः सर्वे स्वर्गलोकं ययुर्मदा ॥८९॥

अथर्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मादिनः । सर्वे मुनीन्धगयाश्च स्वभामानि ययुस्तदा ॥९०॥

ततो रामः पूर्ववच्च शशम जगतीतलम् । रेमे जनकनदिन्या चिरकालं यथाशुभम् ॥९१॥

चपन्तिरेण कालेन वाजिमेषाः पृथक् पृथक् ।

उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा विशद्वर्षेः कृता दश ॥९२॥

इत्थं श्रीरामचन्द्रेण दशमे तुगाध्वरे । प्रतिपाज्य गुरोर्वाक्यं सर्वस्वमपि भूमुरान् ॥९३॥

दत्तं किल महाराज्ञा तथा च दिक्चतुष्टयम् । अग्निश्चन्द्रो दक्षिणार्धं हि दत्तं चेति मया श्रुतम् ॥९४॥

अग्निभिस्तस्त्वनर्द्धं गवगार्धं सादरम् ।

कृपाशुभिः पालनार्थमिति शिष्यानुभूयते ॥९५॥

एव शिष्य त्वया पृष्टं गच्छद्रस्य मंगलम् । चरितं तन्मया किञ्चित्तवीर्यं यत्तत्समम् ॥९६॥

इदं यः प्रातरुत्थाय यागकाण्डं मनोऽस्मिन् । पठिष्यति नरः पुण्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥९७॥

पुनार्थी प्राप्नुयान्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।

यागकाण्डमिदं श्रुत्वा वाजिमेषफलं लभेद् ॥९८॥

होमकाले श्राद्धकाले चातुर्यास्यादिकेऽपि । जपस्यानार्चनारमे पूर्वं नित्यं पठेद्दिदम् ॥९९॥

पुनः कर लिया और जब वचनाओंके साथ शत्रुगजने रामस्तवराजसे रामचन्द्रजी स्तुति और पूजा कर ली । तब रामचन्द्रजीसे आज्ञा ले नेकर सब लोग अपने-अपने घरोंको प्रस्थान करन लगे । ७८-८६ ॥ राजाओंकी रानियाँ भी सातार्ज की आज्ञा पाकर अपने-अपने रथोंपर सवार हुई और अयोध्यासे अपने-अपने घरोंको जाने लगी । इसी प्रकार सब राजे रामकी आज्ञा पाकर अपनी-अपनी राजधानीको छोड़े । तब शिवजी अपने कैलासकी, कृष्ण मन्वलोकी और इन्द्रादि देवता स्वर्गलोकका चल गये ॥ ८७-८९ ॥ इसके बाद श्रीरामानु अग्निक् और सूर्य्य आदि भी अपने-अपने आश्रमोंको विदा हुए । रामचन्द्रजीने फिर पूर्वोक्तिसे अपना राजकाज संभाल लिया और विरमाळ तक हीताजीके साथ विहार करते रहे । प्रति दूसरे वर्ष इसी तरह अश्वमेध यज्ञ करते हुए रामचन्द्रजीन बीस वर्षमें दस अश्वमेध यज्ञ किये । दसवें अश्वमेधमें गुरु वसिष्ठके आज्ञानुसार भगवान् अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान दे दी । मैने तो यहाँतक सुना है कि रामने पारो दिशाये दक्षिणाक्षर्य अग्निजोको द डाली थी ॥ ९०-९४ ॥ किन्तु उन दयालु अग्निजोने फिर इसे बड़े आदरके साथ भगवान्को लौटा दिया और कहा — 'हे प्रभो ! इसकी रक्षा आप ही कर सकते हैं-हम नहीं । इस कारण यह सब आप अपने ही पास रखिए' । इस प्रकार हे शिष्य ! जैसे तुमने रामचन्द्रजीके मङ्गल-कार्यका प्रश्न किया वैसे ही मैने भी तुम्हें बतलाया और रामचन्द्रके यज्ञसम्बन्धी चरितोंको सुना दिया । जो कोई सबेरे उठकर इस सुन्दर यागकाण्डको सुनेगा, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी । वह यदि पुनार्थी होगा तो उसे पुत्र मिलेगा और धनार्थी होगा तो धन प्राप्त होगा । इस यागकाण्डको सुननेसे अश्वमेध

रम्यं पवित्रं रघुनायकस्य श्रीमन्चरित्रं तुरगाध्वगेद्वयम् ।

पठन्ति शृण्वन्ति जनाः सुपुण्यं लभन्ति नैत्रं खलु वाञ्छितं हृदि ॥ १०० ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे

रामोत्तरामानगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

यागकाण्डोद्भवाः सर्गा नवैव परिकीर्तिताः । सपादषट्शतश्लोका रामदासेन वर्णिताः ॥ १ ॥

यज्ञका फल प्राप्त होता है किसी प्रकारका हवन आदि करते समय, आहुतिकालमें, ज्ञानुर्मासिमें, व्रतमें, अप, क्षयान और पूजनके पहले तथा इस यागकाण्डका पाठ करना चाहिए इन रम्य तथा पवित्र अश्वमेध-यज्ञसम्बन्धी रामचरित्रको जो लोग पढ़ते और सुनते हैं, वे अपनी अभिलषित कामनाओंको पूर्ण कर लेते हैं ॥ ९५-१००

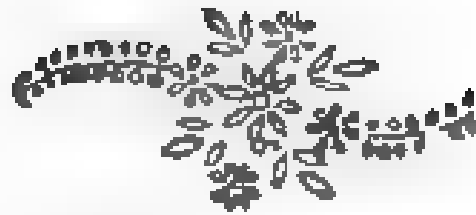
इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना' -

मायाटीकासमन्विते यागकाण्डे यज्ञसमाप्तिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ।

इस यागकाण्डमें कुल तो सर्गों और ६२५ श्लोकोंका रामदासने वर्णन किया है ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्ड समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्राय नमस्तु



श्रीमीतापाये नमः  
श्रीबाल्मीकिमहामुनिवृत्तशतकांटरामचरितान्तर्गत—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽह्वया भाषाटीक्याऽऽटीकितम्

## विलासकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( शिवकृत रामस्तवराज )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते श्रद्धुमिच्छामि तद्वदस्व सविस्तरम् स्तुतो रामः शिवेनात्र येन रामस्तवेन हि । १ ॥

त रामस्तवराजं मे विस्तरेण प्रकाशय ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽज्यवीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स मावधानमनाः शृणु । प्रोच्यते रामचन्द्रस्य स्तवराजो मयाऽधुना ॥ ३ ॥

यत्परं यद्गुणाधारं यज्ज्योतिर्मल शिवम् । तदेव परमं तत्त्वं केवल्यपददायकम् ॥ ४ ॥

श्रीरामेति परं जाप्यं ताम्बकं ब्रह्मयज्ञिनम् । ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥ ५ ॥

श्रीराम राम रामेति ये वदन्त्यपि सर्वदा । तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥

स्तवराजः पुरा प्रोक्तः शिवेन परमान्मना । तमहं मयवक्ष्यामि हरिश्चयानपुरःसरम् । ७ ॥

तावद्वयाग्निशमनं सर्वघ्नोघनिहन्तनम् । दारिद्र्यदुःखक्षमनं सर्वसपत्न्यदायकम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो । मैं यह जानना चाहता हूँ कि शिवजीने किस रामस्तवराजसे राम-चन्द्रजीकी स्तुति का घो ॥ १ ॥ कृपा करके आप मुझे वह रामस्तवराज बताकर दीजिये । इस तरह अपने निष्यकी वत सुनकर श्रीरामदासने कहा— । २ ॥ हे वत्स । तुमने तुमसे बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हें वह स्तवराज बतलाया हूँ, मावधान होकर सुना ॥ ३ ॥ जो सत्तारम सबसे श्रेष्ठ है, जो सब रुद्गुणोंका आधार है, जो एक निर्मल एवं एविश ज्योति है, वह ही परम प्रधान तत्त्व है और भो शपददायक है ॥ ४ ॥ बड़े-बड़े विद्वानोंका कहना है कि ‘श्रीराम’ यह सर्वोत्तम ताम्बक मन्त्र है और ब्रह्महत्या प्रभृति ग्हात पातकोंका नाशक है ॥ ५ ॥ जो सज्जन सर्वदा ‘श्रीराम’ नामका जप करते हैं, उन्हें जन्मक में से -मारये रहत है, तदनक सामारिक भोग मिलते हैं और शरीर स्वाम करनेपर मुक्ति मिल जाती है ॥ ६ ॥ जो मैं तुमसे कहनेवाला हूँ, इस स्तवराजको शिवजीने स्वयं मुझसे कहा था । उसीको आज मगवानुक्त श्रान करके मैं तुमसे कहूँगा ॥ ७ ॥ यह तीनों ( वैदिक, दैविक और भौतिक ) तापोंको नष्ट करनेवाला,

विज्ञानफलदं पुष्पं मोक्षफलदायकम् । नमस्कृत्य प्ररक्ष्यामि रामं कुम्पमनासयम् ॥ ९ ॥  
 अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे । द्यायेन्मन्दपद्मरोर्मले रत्नसिंहासने शुभे ॥ १० ॥  
 तन्मध्येषुदलं पद्मं नानारत्नोपशोभितम् । स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम् ॥ ११ ॥  
 पितृरासनमार्मीनमिन्द्रनीलवसनधनम् । कोमलांशं विशालाक्षं विद्युद्वर्णाङ्गराश्रुतम् ॥ १२ ॥  
 भानुकान्तिप्रतीकाशं किरीटितं वराजितम् । रत्नशैवेयकैर्गुणवस्कुडलमञ्जितम् ॥ १३ ॥  
 रत्नकंकणमजीमन्तिपुत्रैरलङ्कितम् । श्रीवन्मर्कटभूभोरम्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ॥ १४ ॥  
 चिन्तामणिपद्मायुक्तं रत्नमालाभिगञ्जितम् । दिव्यरत्नममायुक्तं मुद्रिकाभिरलङ्कितम् ॥ १५ ॥  
 कर्पूरागुरुकस्तूरीदिव्यरत्नानुलेपनम् । तुलसीकुटुम्बदागुण्यमाल्यैरलङ्कितम् ॥ १६ ॥  
 गन्धवं दिभुजं वीरं रामसौपत्तिकाननम् । योगशास्त्रप्रमिस्रं योगेश योगदायकम् ॥ १७ ॥  
 सदा सौमित्रिभस्वमनुष्यैरुपसेवितम् । विशाधरसुराधीशमिन्द्रमर्षवर्चिभरः ॥ १८ ॥  
 योगोद्देनारदारकं स्तुयमानमहर्निशम् । विश्वामित्रवसिष्ठार्चकं पथिः परिसेवितम् ॥ १९ ॥  
 सनकादिमुनिश्रेष्ठैर्योगिशुन्दैः समावृतम् । रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ॥ २० ॥  
 मंगलायतनं देव राम राजीवलोचनम् । सर्वज्ञास्त्रार्थतत्त्वज्ञमनन्दमतिमुन्दरम् ॥ २१ ॥  
 कौसल्यातनयं रामं धनुर्वाणधरं हरिम् । एवं सर्वदिग्देषदिग्गुणं यज्ज्योतिर्ज्योतिषां परम् ॥ २२ ॥  
 प्रहृष्टमानसो भूत्वा सभायां वृषभध्वजः । सर्वलोकहिनार्षेयं तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥ २३ ॥  
 कृताञ्जलिप्लुतो भूत्वा चिन्तायन्तुष्टं हरिम् ।

श्रीनिव सभाय

पदेकं तत्परं नित्यं यदनन्तं विदात्मकम् ॥ २४ ॥

पापसमूहका नाशक, दारिद्र्य और दुःखका दमन करनेवाला तथा समस्त सम्पदाओंका दाता है ॥ ९ ॥  
 यह विज्ञान (ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान) का फल देनेवाला पवित्र और मोक्षका साधक है । ये श्यामस्वरूपवर्णी  
 राम-कृष्णका ध्यान करके यह स्तवगान रामकी वत्सा रहा है ॥ १० ॥ योगीश्वर आदिके कि यह अयोध्यानगरे-  
 के रत्नोंसे सुसज्जित एक मन्दिर भवनमें कल्पवृक्षक नीच पर, रत्नसिंहासन, जिसमें ताता प्रसारक मणियाँ  
 सुशोभित अष्टदल कमल है, उसके ऊपर बड़े हुए राजाके मुखी शक्ति तेजोमय रामचन्द्रजीका ध्यान करे ॥ १०-११ ॥  
 रामचन्द्रजी अपने पिता (महाराज अयोध्या) के आसनपर बैठे हैं । इन्द्रसेन मणियों की शक्ति जिसकी श्याम मूर्ति है,  
 जिसके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी बड़ी आँखें हैं । विशालाक्षी ताँह काफला पंताम्बर पहिन हुए हैं, जिसमें करोड़ों सुषोंके  
 समान प्रकाश है, अमृतकरा किरीट धारण किये हैं । इस लक्ष्म अचन्द्रम तथा कोमलम मणि है और गलेमें  
 चिन्तामणि तथा किनने हो रत्नोंका मालाधर है । उनकी रत्नसिंहासन बहुमूल्य रत्नोंसे असी श्रेष्ठियों पड़ी  
 हैं ॥ १२-१५ ॥ कर्पूर, लज्ज और कस्तूरी से मिला गया चन्दन । इसके सारे शरीरमें लगा हुआ है । तुलसी  
 तथा कुन्द-मन्दार आदिके पुष्पोंसे जिसका श्रद्धाव विरा हुआ है । जिसके चेहरे से भजनों हैं, होठोंपर मन्द  
 मुस्कान है, जो योगशास्त्रके जानने पर मन्त है । अथवा भरत-शास्त्रम जिसकी सेवामें लगे हुए हैं, विद्याधर,  
 दत्ता, मित्र, गन्धर्व और नास्त्यदि जो देवता । जो निज निजकी शक्ति किया करत हैं । विश्वामित्र-वसिष्ठादि  
 महर्षि जिसकी परिचर्यामें लगे हुए हैं । मनुक राम इन चमत्कृत, सनत्कुमार आदि मुनि दर्शनाथ स्वदे हैं । जो रघुवंश-  
 में सर्वप्रधान वीर तथा धनुर्वेदमें निपुण हैं । जो मंगलभरत हैं । नमस्कृत समान जिसके नेत्र हैं, जो सब शास्त्रोंके  
 सत्यत, आनन्दमूर्ति, अतिशय मुन्दर कोमलकाके सुवन हैं और धनुष-बाण धारण किये हैं ऐसे भगवान्  
 रामचन्द्रका ध्यान करे । जो सब ज्योतिषोंमें श्रेष्ठ है । ऐसे अद्भुत स्वस्वका ध्यान करके इससे श्रद्धा  
 होकर शिवजीने संसारके कल्याणार्थ वानों हाथ जोड़कर भगवान् रामचन्द्रकी स्तुति की ॥ १६-२३ ॥

यदेकं व्यापकं लोके नृपं चिन्तयाम्यहम् नमोऽस्तुतेऽयं व्याप्य राममकन्यविबुधये ॥२५॥  
 विज्ञानहेतुं विमलयतामं प्रज्ञानसंदिग्धगुरुरेव ह्यहम् ।  
 अरामचन्द्रं हरिनादिदेव विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥२६॥  
 कविं पुराणं पुरुषं परेशं मनननं योगिनर्मथितारम् ।  
 अणोरणीयाममनन्तरीवं प्रणेश्वरं राममहं भजामि ॥२७॥

नारायणं जगन्नाथमभिगमं जगत्पतिम् । कविं पुराणं चर्मादां गद्यदशमाम्बुजम् ॥२८॥  
 राजगजं रघुवंशं कौमन्वानदवर्द्धनम् । भगं करेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥२९॥  
 सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं ज्ञानकीवल्लभं प्रभुम् । ममिद्विपूर्वजं ज्ञानं कामरं कमलेश्वरम् ॥३०॥  
 आदित्यं रविमोक्षनं धृतिं सुयमनामयम् । आनन्दरूपिणं योग्यं राघवं करुणाकरम् ॥३१॥  
 जगद्गन्धं गोमूतिं रामं वरशुभाग्निम् । वाक्पतिं वरं वाच्यं भाग्यतिं पक्षिवाहनम् ॥३२॥  
 श्रीशङ्खधारिणं रामं चिन्मयानदावग्रहम् । हलधरिणमोक्षानं वल्लभं कृपानिधिम् ॥३३॥  
 श्रीवक्त्रं कलानाथं जगन्मोहनमन्मथम् । मन्मथकर्मवन्हादिस्वभागीमन्मथम् ॥३४॥  
 रामदेवं जगद्योनिमनादिानघनं हरिम् । गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजनमनोहरम् ॥३५॥  
 गोपानं गोपरीश्वरं गोपकन्यामपावृणम् । विष्णुपुंज्यं त्रिकाशं तमं कृष्णं जगन्मयम् ॥३६॥  
 गो-गोपिकायमाक्षीप्यं वेणुवन्दननन्धम् । कामरूपं कलावंतं कामिनीं कामरं प्रभुम् ॥३७॥  
 मन्मथं मधुगन्धार्थं माधवं मकरध्वजम् । श्रीधरं श्रीकरं श्रीं श्रीनिवासं परत्वरम् ॥३८॥

शिवजीने कहा—जो एक है, जिससे बहुत सारा मंत्र और कुछ है ही नहीं । जो अमर, नित्य एवं अविनाशो है । जो अकेला रहता हुआ भी समस्त विश्व में व्याप्त है, मैं भगवान् के गो स्वरूपका उपासक हूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जो विज्ञानके लक्षण है, जिसकी निर्मल और विज्ञान भाव है, जो पूरा मनको अवस्था में लियेको निष्कल होकर दर्शन देता है ऐसे श्री हरि, आदिदेव तथा विश्वेश्वर रामवन्द्यो मैं वन्दना करता हूँ ॥ २६ ॥ जो स्वयं कवि हैं, सबसे बृद्ध हैं, सबके स्वामी हैं, कनातन हैं तथा योगियोंके भी स्वामी हैं । जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, जिनमें अमर पराक्रम है, जो समस्त परमेश्वरों का प्रभु हैं, मैं रामचन्द्रका मैं भजन करता हूँ ॥ २७ ॥ नारायणस्वरूप, समस्त जगत्के स्वामी अविनाश मुन्दर व गणेश तथा दशरथजीके तनय रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ जो राजाओं के भी राजा हैं, जो रघुवंश में मन्मथ हैं, जो कौमन्विकों का नित्य बहानेवाले हैं, जो जगत् के लक्षण हैं, जो संसारके गुरु हैं, जो सत्यस्वरूप हैं, जिनको मन्मथ ही प्रिय है, जो गोपनायक पति हैं जो लक्ष्मणके वर भ्राता हैं, जिनका काल स्वभाव है, जो अपने भक्तों को कामनाओंको पूर्ण करने हैं, कमल सरस जिनके तन है, जो आदित्य पुत्र हैं, जो सूर्यरूप हैं, जो शिवरूप और श्रीगणेशमय हैं जो आनन्दके मास्त्रा मूर्ति हैं, जो सौम्य प्रकृतिके हैं और जो करुणाके भण्डार हैं ॥ २९-३१ ॥ जो जगद्विजय पुत्र ( परपुरुष ) हैं, जो अभिरूपादि कामनाओंको पूर्ण करते हैं, जो लक्ष्मीपति हैं, जिनका पत्नी ( मन्मथ ) वात्सल्य है, जो लक्ष्मी और शार्ङ्गनामक वनुष धारण करते हैं, जिनका नित्य आनन्दमय शासन है जो हृत्को धारण करने में जगत्समस्त हैं, जो लक्ष्मीके प्रिय हैं, जो सब कलाओंको जानते हैं जो मन्मथके पुरुष करने में समर्थ हैं, जिसके वरों बिनाश नहीं होता जो मन्मथ-कर्म-वन्हा आदि हृत् धारण करते हैं और जो अविनाशो हैं ॥ ३२-३४ ॥ जो अमरके पुत्र, मन्मथ मन्मथ जगत्-संरक्षण रहित, इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले, इन्द्रियोंके पति, जगत्पति, तारिणीय मनको धारण करनेवाले और गोओंके रक्षक हैं, ऐसे राम-कृष्ण तथा जगन्मय भास्वरों मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो गोओं और गोपियोंसे विरे रहते हैं, जो वशी ब्रह्ममें सत्पद रहते हैं जो जड़ जैसा बाह्यो वैसा अपना स्वरूप बना लेते हैं, जो समस्त कलाओंसे पूर्ण हैं, जो कामनावाले मन्मथों का कामनाओंको पूर्ण करते हैं और कामदेवरूपसे स्वामी

भूतेश भूपति मङ्ग भूतिर्द भूरिभूषणम् । बहुदुःखहर वीरं दृष्टवानवमर्दनम् ॥३९॥  
 श्रीनृसिंह महाधिपं महातं दीप्तनेत्रमम् । चिदानन्दमय नित्यं प्रणव ज्योतिरूपकम् ॥४०॥  
 आदित्यमण्डलगतं निखिलाधिस्वरूपिणम् । भक्तिप्रियं वरुनेत्रं भक्तानामोषितप्रदम् ॥४१॥  
 कौमल्येय कलामूर्तिं काकुत्स्थ कमलाप्रियम् । सिंहासने समार्यतनं नित्यव्रतमकल्पयम् ॥४२॥  
 चिन्तामित्रप्रियं दातृ स्वदाग्नियतव्रतम् । यत्तत्र पञ्चपुरुष यज्ञपालननृपम् ॥४३॥  
 सत्यमथ जितक्रोधं शरणगतवन्मलम् । परेकलेशपहरणं त्रिबीषणवरप्रदम् ॥४४॥  
 दशग्रीवहर रुद्रं केशव केशिमर्दनम् । बालिप्रशमनं वीरं सुर्यावेष्टितराज्यदम् ॥४५॥  
 नरवानरदेवंश्च सेवितं हनुमन्प्रियम् । शुद्धं सूक्ष्मं परं शीतं सारकनद्वारुणिणम् ॥४६॥  
 सर्वभूतान्मभूतस्य सर्वधारं सनातनम् । सर्वकार्यकर्तारं निदानं प्रकृतेः परम् ॥४७॥  
 निरामयं निराभासं निरवयुं निर्ञ्जनम् । निर्यानन्दं निगकारमर्देन तपसः परम् ॥४८॥  
 परात्परतरं नित्यं सत्यानन्दचिदान्मकम् । मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥४९॥  
 भूतोद्भव वेदविदां वसिष्ठमादित्यचन्द्रानिलमुषभावम् ।  
 सर्वात्मकं सर्वगतम्वरूपं नमामि राम तमसः परम्नाह ॥५०॥  
 निरञ्जनं निष्प्रतिमं निर्दीप्तं निराश्रयं कारणमादिदेवम् ।  
 नित्यं प्रबं निषिष्यस्वरूपं निरतरं राममहं भजामि ॥५१॥  
 भवाधिपतिं भगवांस्तं भक्तिप्रियं भानुकुलप्रदीपम् ।  
 भूताधिनाथं भुवनाधिपत्यं भजामि रामं स्वर्गोपदेवम् ॥५२॥  
 सर्वाधिपत्यं रणमर्षारं सत्यं चिदानन्दमुत्तम्वरूपम् ।  
 सत्यं शिवं सत्यनहृषिवासे ध्येयं पगनन्दमहं भजामि ॥५३॥

मनको उद्दिष्ट किया करता है। जो भयुराकारवासी है सो लक्षण कौन है ? जो एकाग्रवज्र, श्रीघर, श्रीकर, श्रीम, श्रीनिवास, परात्पर, भूतेश, भूपति, मङ्ग ( कल्याणमय ), भूतिर ( सर्वसम्पत्ति का दाता ), भूरिभूषण, ( बहुत से भूषणोंका वाचन करनेवाला ), सर्व प्रकारके दुस्खीरो हरनवासे वीर और दुष्ट दानवोंका विनाश करनेवाला है, जो श्रीनृसिंह महाधिपणु, महान् दीप्तिशाली चिदानन्दमय, नित्य, प्रणव, ज्योतिरूप, आदित्यमण्डलगत विराजमान, निखिलाधिस्वरूप भक्तिप्रिय, वमललाचन, भूतोकी कामना पूर्ण करनेवाले, कौमल्यवाले सुवर्ण, कलामूर्ति, काकुत्स्थ, कमलाप्रिय, सिंहासन सीन, नित्यव्रती और पापहरित है । जो चिन्तामित्रके विषय, दातृ ( चितन्दिश्य और एकवचनावती है । जो यत्तत्र, पञ्चपुरुष, पञ्चकी रक्षामि तत्त्व, स्वयस्वरूप, जितक्रोध शरणगतवन्मल, सब मलजोश्री हरनवाले विमोक्षणकी वरदान देनेवाले, रावणका विनाश करनेवाले, रुद्र, केशव, केशिमर्दी, बालिप्रशमक, वीर सुर्यावकी ईश्वर राज्य देनेवाले, नर-वानर और दैवताओंसे सेवित, हनुमान्से सेवित, शुद्ध, सूक्ष्म, शान्त महास्वरूप, सब प्राणियोंके हृदयमें गृहमन्त्राजे, सर्वधार, सनातन सब कुछ वर्तनी घर्तनी, प्रकृतिके मूल कारण, निरामय, निराभास, निरवयु, निरञ्जन, निर्यानन्द, निराकार, वर्द्धत, तमोगुणके परे, सर्वश्रेष्ठ, नित्य, सत्य, आनन्द और विमलस्वरूप हैं । उन श्रीरामचन्द्रोंकी मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ । ३९-४९ ॥ जो संस्कृतक जन्मदाता है, विद्वानात्र भूष है, सूर्य-चन्द्रमा और ब्रह्म में त्रिकोण प्रकार है, जो सत्यमा सर्वस्वरूप और नमोगुणसे पर है । ऐसे रामचन्द्रोंकी मैं प्रणाम करता हूँ । ५० ॥ निरञ्जन, निष्प्रतिम निर्दीप्त, निराश्रय सर्वगण आदिदेव नित्य, भूत, दिव्य और स्वरूपसे परे रामचन्द्रोंकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥५१॥ जो रागराज्य महासागरके लिए महाजक सहज है, जो भरतके बड़े भ्राता, भक्तिप्रिय, भानुकुल प्रदीप, भूताधिनाथ, भुवनर्षी ब्रह्माणके अधिपति और भवरूप योगके देव हैं, उन रामचन्द्रोंकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥५२॥ जो सबके अधिपति, शुद्धविद्यामें कुशल, स्वयस्वरूप



कार्यक्रियाकारणप्रमेय कवि पुगण कमलायताभम् ।  
 कुमारवेष करुणामयं तं कल्पद्रुमं राममहं भजामि ॥५४॥  
 प्रेतास्वनाथं मर्यादकृतं दयानिधिं दण्डविलासहेतुम् ।  
 महाचक्रं घटनिधिं मुरशं महावनं राममहं भजामि ॥५५॥  
 वेदान्तेश्वरं करिमांशिताश्मनादिमध्यान्मन्त्रिन्यमाद्यम् ।  
 जगोच्चरं निमलमेकरूपं परात्मा राममहं भजामि ॥५६॥  
 अक्षोपशदान्धस्पर्शदिद्वयमजं हृदि राममनन्दमूर्तिम् ।  
 अपारम्प्यं दण्डस्पर्शमेकरूपं नमोऽभि राम नमसः परस्तान् ॥५७॥  
 सत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुगणं स्वतंत्रं पुरितविधायकम् ।  
 राजाधिगतं राममण्डलस्थं विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥५८॥  
 योगाद्रूपवर्गीं मेढ्यमानं नागयणं निमलमण्डदंष्ट्रम् ।  
 लताशस्मिन्निधं जगदकलाधरां चिदानमयं मुकुन्दम् ॥५९॥  
 अक्षोपविद्याविपतिं नमामि राम पुगणं नमसः परस्तान्  
 विभूतं विजयमूर्तं परमं सत्तद्रसाद्यं रघुवशनायम् ॥६०॥  
 अचिन्त्यमव्यक्तमननरूपं ज्योतिर्मयं राममहं भजामि  
 अक्षयमगारविकारहानमानन्दमूलमुखाभिगमम् ॥६१॥  
 नारायणं विष्णुमहं भजामि ममभ्यासि नमसः परस्तान् ।  
 मुनीन्द्रगुह्यं पापेपूर्णमेकं कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम् ।  
 परात्मा यन्त्ररूपं पवित्रं नमामि रामं महतो महानम् ॥६२॥

यथा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो दैवनाथश्च । आदिन्यादिप्रदायश्च न्वमेव रघुनन्दन ॥६३॥  
 तापसा ऋषयः मित्राः साध्याश्च गुरुपत्नया । मित्रा वदाश्च यज्ञाश्च पुगणं धर्मसाहिताः ॥६४॥

सचिदानन्द सुखस्वरूप, सत्त्व, जिव सञ्चलन व दृश्यमं निवास करनवाले और परमानन्दस्वरूप रामचन्द्र-  
 जन्मा मे प्रणम करता है ॥ ५३ ॥ ३। कलानि नागण अक्षय, कवि, घाणाया, पुराण पुरुष, कमलसराक्ष  
 विलास नयनी मुक्त, निधुं कुम्ब रत्नधाना, करुण मय तारा कलत्रवृत्त समान मयका अभिलाषा पूरा करनेवाले  
 है, उन रामचन्द्रका मे प्रणाम करना है ॥ ५४ ॥ विलासक नयन रह (कमल, क समान नयनाले, दयानिधि दण्ड  
 निमाशक एकमात्र दृष्ट, महाय चक्राके निवान, पुरुष और सत्तत्त्वस्थस्वरूप रामचन्द्रजाको मे प्रणाम करता  
 है ॥ ५५ ॥ वेदान्तवैद्य कवि इन्द्र, अदि मध्य ओ अन्तसे रहित, अचिन्त्य, सवक आदिम उत्पन्न  
 होनवाले, चतुर्गदि इन्द्रियास आवाचक निमल एकरूप और नागयणस दन रामचन्द्रजाको मे प्रणाम करता  
 है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ सत्त्वस्वरूप, पुराण पुरुष केवल अरुन प्रकाशस समस्त विषयका प्रकाश देनेवाले, राजा-  
 धिराज, रविमण्डलमे निवास करनेवाले और दिग्गज उररन्द रामचन्द्रजाको मे प्रणाम करता है । योगाद्रोके  
 समूहसे सेवावान, नारायण, निर्मल, आदिदेव, निधु, जगत्क एकमात्र स्वामी, हार, चिदानन्दमय और  
 मुकुन्दस्वरूप रामचन्द्रका मे प्रणाम करता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समस्त विद्याओके सम्भार, तमसे परे, पुराणपुरुष,  
 भर्मातिमाका दनवाल, नमोदक दिक्कारास पुण्य और सवकी आनन्द देनेवाले रामचन्द्रजाको मे प्रणाम  
 करता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ नागयण विष्णु सर्वज्ञ नमस पर कृदिकोक दानम मा कठिनाईसे आनेवाले,  
 परिपूर्णरूप एक, कलानिधि, कल्मषनाशक, परम पवित्र और वडास भी बड़े रामचन्द्रजाको मे प्रणाम करता  
 है ॥ ६२ ॥ हे रघुनन्दन । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवेंद्र देवता तथा आदित्यादि यह सब कुछ तुम्ही हो । तपस्वी,

वर्णाश्रमास्त्वथा धर्मा वर्णधर्मास्तथैव च । नागा यक्षाश्च गन्धर्वा दिक्पाला दिग्गजा दिग्गः ॥६५॥  
 वयमोऽष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादश स्मृताः । ताराका द्वादशादित्यास्त्वमेव रघुनायक ॥६६॥  
 सम द्वीपाः समुद्राश्च नदा नद्यस्तथा द्रुमाः । स्थावरा जंगमाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥६७॥  
 देवनिर्घृणस्तुष्पाणा दानवानां दिवौकषाश्च । माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुनन्दन ॥६८॥  
 सर्वेशस्त्वं परं ब्रह्म त्वद्रूपं विश्वमेव च । त्वमश्वरं परं ज्योतिस्त्वमेव रघुपुंगव ॥६९॥  
 शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् । राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥७०॥

ततः प्रसन्नः श्रीरामः प्रोवाच वृषभध्वजम् ।

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं गिरिजाकांत वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥७१॥

श्रीशिव उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश श्रीराम करुणानिधे । तवाद्य दर्शनेनैव कृतार्थोऽहं न संशयः ॥७२॥  
 धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पुण्योऽहं पुरुषोत्तम । अद्य मे सफलं कर्म सद्य मे सफलं तपः ॥७३॥  
 अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं ध्रुम् । अद्य मे सफलं सर्वं त्वत्पदाभोजदर्शनात् ॥७४॥  
 अद्वैतं विमलं ज्ञानं त्वमज्ञानम्मरणं तथा । त्वत्पदाभोरुहद्वन्द्वे सद्भक्तिं देहि राघव ॥७५॥  
 ततः परं सुसंप्रीतो रामः प्राह सदाशिवम् । गिरिजेश महामाया पुनरिहं ददाम्यहम् ॥७६॥

श्रीशिव उवाच

वरं न याचै रघुनाथ युष्मत्पदान्वभक्तिः सततं ममास्तु ।

इदं प्रियं नाथ वरं प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वापिदमेव याचे ॥७७॥

श्रीरामदास उवाच

इत्येषमीडितो गमः प्रादानस्मै परांतरम् । तेनोकल्पवरायाय ददौ नानावरान् बहून् ॥७८॥

कृषि, मित्र, साध्व, मुनि, विप्र, वेद, दक्ष पुराण तथा घर्मोत्ता सहिता ये सब तुम्हीं हो ॥ ६३ ॥ ६४ ॥  
 हे रघुनायक ! वर्ण आश्रमधर्म, वर्णधर्म, नाग, यक्ष, गन्धर्व, दिक्पाल, दिग्गज, दिग्गण, वसु, दोनों काल,  
 एकादश रुद्र ताराएँ और द्वादश आदित्य ये सब तुम्हीं हो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ काली द्वार, समुद्र, नद, नदियाँ  
 तथा वृक्ष आदि स्थावर जङ्गम समस्त वस्तु तुम्हीं हो । देव, त्रिपैकु मनुष्य, जानव, वृत्ता, माता,  
 पिता, भ्राता, मैं भी सब तुम्हीं हो । ६७ ॥ ६८ ॥ तुम्हीं सर्वेश हो, स्वराज्य स्वराज्य ब्रह्म हो, बहु संसार भी  
 तुम्हारा ही रूप है, तुम अक्षर हो, परम प्रधान अनादि हो । और मैं कहीं तक ब्रह्माज्ञा हे रघुनाथ ! मेरे सब  
 कुछ एकमात्र तुम्हीं हो ॥ ६९ ॥ शान्त, सर्वगत, सूक्ष्म, परब्रह्म सनातन, जगत्पति और राजीवलोचन  
 रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ । इस प्रकारको भक्ति सुनकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे कहा—हे गिरिजाकांत !  
 मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ । जो भी चाहो, सो उत्तम वर माँग ला ॥ ७० ॥ ७१ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे  
 राम ! हे करुणानिधे ! जहाँ आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मैं आपको इस प्रसन्न मूर्तिको ही देखकर कृतार्थ  
 हो गया ॥ ७२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! मैं घम है और अनिशय पवित्र है । आज मेरे सब कार्य सफल हो गये ।  
 मेरी तपस्याएँ सफल हुई, मेरा ज्ञान सफल हो गया और शास्त्रोक्त ध्यान करना भी सार्थक हो गया । आपके  
 इन चरणकमलोंका दर्शनसे ही मेरा सब कुछ सफल हो गया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे कृपानाथ ! यदि आपको वर ही  
 देना हो तो मुझे अपना अद्वैत तथा विमल ज्ञान दंजिए । मुझ अपने नामका वातन करानेकी शक्ति और अपने  
 इन चरणकमलोंका सद्भक्ति दंजिए ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर अतिशय प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे  
 कहा—हे गिरिजा ! हे महाभाग ! मैं तुम्हारे अभिलषित वरोंको देनेके लिए प्रसन्न हूँ, माँगो ॥ ७६ ॥ शिव-  
 जीने कहा—हे रघुनाथ ! मैं कोई वरदान नहीं चाहता । मैं चाहता यही हूँ कि सदा आपके चरणोंमें मेरी भक्ति  
 बनी रहे । हे नाथ ! मुझे यही वर प्रिय है और यही देनेके लिए मैं आपसे बारम्बार अनुरोध करूँगा

एवं शिवेन यः प्रोक्तः स्तवराजः शुभाग्रहः स एवाद्य त्वया पृष्टस्तवाग्रे कथितो मया ॥७९॥  
 जयं श्रीरघुनाथस्य स्तवराजो ह्यनुत्तमः । सर्वमौभाग्यसंप्रदायको मुक्तिदः स्मृतः ॥८०॥  
 कथितो गिरजेऽनेन तेनादौ सारसंग्रहः शुक्लशुक्लवरो जित्यसाव स्नेहान्त्रकीर्तिदः ॥८१॥  
 यः पठेच्छृणुयादापि त्रिमन्थ्यं श्रद्धयान्वितः । अक्षद्वन्द्यादिपापानि तन्ममानि बहूनि च ॥८२॥  
 हेमस्नेयसुरापानगुरुतृन्पापुनानि च । गोवधशुषपापानि चित्तान्संभवानि च ॥८३॥  
 सर्वैः प्रमुक्त्यसौ पापैः कल्पायुःशतौ ह्येव । मानसं याचिकं पार्षं कृपणा समुशर्जितम् ॥८४॥  
 श्रीरामस्मरणेनैव व्यपोहति न यशसः इदं मन्यमिदं सन्यं मन्यं नैवान्यदुच्यते ॥८५॥  
 रामः सत्यं परं ब्रह्म रामान्किञ्चिन्न विद्यते । तस्माद्रामस्वरूपं हि रामः सर्वमिदं जगत् ॥८६॥

श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव रावर्ष्य राजेन्द्र राम रघुनाथक राघवेश ।

रानाधिराज रघुनाथक रामचन्द्र दामोदरमय भवनः शरणागतोऽस्मि ॥८७॥

अङ्गुलामलकोमलोत्पदलज्जामास रामाय चक्रामाय प्रशमामाय निर्मलगुणशामाय रामान्मज ।  
 ध्यानारुढमुनीन्द्रमानमगरोद्दसाय संसारविध्वंसाय स्फुरदीजसे रघुकुलोत्तमाय पुंसे नमः ॥८८॥  
 एवं शिष्य मया प्रोक्तो यथा पृष्टस्त्वया मया । स्तवराजो राघवरूप शरणान्पापनाशनः ॥८९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डं बाह्योकाद्यै

शंकरकृतरामस्तवराजो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( राम द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि त्वयं मां वक्तुमर्हसि । त्रयोध्यायां राघवेण सीतयाऽतिसुरूपया ॥ १ ॥

॥ ७७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार स्तुति कान्तर रामचन्द्रजने शिवजीके इच्छानुसार वर दिया और अपने मनसे भी उनको बहुतसे ऐसे वर दिए, जिनको जिनजीने माना ही नहीं था ॥ ७८ ॥ इस प्रकार शङ्करजीका कहा हुआ शुभदायक 'रामस्तवराज' मैंने तुम्हारे पूछनेपर कह सुनाया ॥ ७९ ॥ यह रामचन्द्रजीका स्तवराज सब स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है । यह सब प्रकारके नीमाय, सम्पत्ति और मुक्तिकी देनेवाला है ॥ ८० ॥ शिवजीने वेदोंका सारअंश निवासकर इसमें रख दिया है और यह अत्यन्त अलङ्कारयुक्त है । किन्तु तुम्हारे सन्ने प्रेमके वशीभूत होकर मैंने तुमको बतलाया है ॥ ८१ ॥ जो प्राणा पृथक् गाम या तंतों कालमें इसका पाठ करता है, उसके महाहत्या जैसे महान् पापक तथा सुवर्णका चुगना महापान गुरुके विछीनपर सेटना, गोवध, किसी प्रकारके मानसिक पाप आदि जो संकटों कलमें एकत्रित हो गये हो, वे सब श्रीरामस्तवराजके स्मरणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं । यह खान बिल्कुल सच है । इसमें किसी प्रकारका धोखा न समझना चाहिए ॥ ८२-८५ ॥ रामचन्द्र सत्य परब्रह्म हैं । उनसे बढ़कर और कोई है ही नहीं । अतएव यह समस्त ससार रामका ही स्वरूप है ॥ ८६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! हे रघुपुङ्गव ! हे राजाजीमें श्रेष्ठ ! हे रघुनाथक ! हे राघवेश ! हे राजाधिराज ! हे रामचन्द्र ! मैं एक अकिञ्चन राम आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८७ ॥ नवविकसित निर्मल नील-कमल-रस सरोवरे जितना आनन्द स्वरूप है, जिनको किसी प्रकारकी कामना नहीं है, जो पूर्ण मान्तमूर्ति हैं, जो निर्मल गुणोंके राशिस्वरूप हैं जो ध्यानालङ्कार मुनियोंके मनमानसक हल हैं, जो अपने भ्रूभङ्गमात्रसे संसारको विध्वंस करनेमें समर्थ हैं, ऐसे रघुवंशधर तथा परम पुरुष रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने तुम्हारे आत्मानुसार यह वापराशिनामक स्तवराज तुम्हें सुना दिया ॥ ८९ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे पंच रामनेत्रपांडेस्कृत 'व्योम्ना' भाषाटोकासमन्विने विलासकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि त्रयोध्याम परम रूपवती सीताके

कथं भुक्ता वग भोगः॥ किं क्रियाचरितं शुभम् , चरितं तस्य सकलं वद परमलदायकम् ॥ २ ॥

श्रीसमदास उगाव

सम्यक् पृष्टं त्वया क्वम मावधानममः भृश । ग्गर्दाक्षा वाजिसेवर्दाक्षा च सधुन्दमः ॥ ३ ॥

निर्वाण्य सीतया मेघेऽर्वाऽप्याद्या बंधभिः सुखम् । जानकीं रजय माय नानावीर्यमनोहरः ॥ ४ ॥

तत्किञ्चिद्गुणं मांसज्यं पिलामचग्निं शुभम् सवया कायवेदत्रय अङ्गान्मङ्गलप्रदम् । ५ ।

कः कुम्भं चामि नक्तं नयाः काडां च न क्षमः । अनः गयेनः किञ्चिद्दुष्यामि तव सुम्निधी । ६ ।

अप सीकृन्मूने राधः पावेन्या शकरो यथा । तं डां नकार कलमेऽप्यायां स नशाऽकरो ॥ ७ ॥

हंसरत्नपथे दिव्यगेहे चतुष्टयमग्निमे । निद्रास्थान राघवस्य वनोत्तु शशमग्निमसु ॥ ८ ॥

मिलौ रत्नोपल यत्र हेमनः पंक्तोर्ध्वं यत्र हि यत्र मन्त्राः स्फुटिकाश्च यत्र मारकनोद्धताः १५

प्रतोन्यः सुतश्च रम्याः केषु नृणां दिग्भिरिव । मुहुर्गुरुज्ज्वला यत्र भिन्नपथिवचिचिनाः । १० ।

यत्र हेमवती भूमिर्यत्र सुक्ताभयं शुभम् । वितानं पृथङ्द्वारैश्च सुक्तागुच्छैर्विमलितम् ॥१॥

ऐमंतं तु मयान्ध्रं भिनिवस्त्राण्यनेकशः । यथायुतमनुष्यैश्च समदो नैव जायते ॥१२॥

एव तद्विस्तृतं रम्यं रत्नदीपै रंराजितम् । हेमकुम्भा विराजन्ते प्र पाशोऽङ्गेषु चित्रिताः । १३॥

यत्र चित्राष्टयनेकानि सौहयन्ति सुगीदक्षाम् । यत्र हसमया तम्याः पर्यक्षाश्चरन्ति विनाः । १४ ।

हेमकौशेयसम्पत्तनुपद्विगुणिताः । महादेवसन्तः पुष्पज्जलैर्गच्छन्ति वाः शुभा. ॥१५॥

धनुष्कोणे लोमानमुक्तावपैर्विमलिताः । येषु । द्रव्याः कश्चिदस्त्वथोपशब्देभ्यो च ॥ १६ ॥

कैवल्यक्षमयान्तेषु चामगणि महानि च । गोपुण्ड्रशालम्बनेमभेदादिति मनि हि १७

साथ रहते हुए रामचन्द्रजीने किस प्रकारके भाग्य और कोन-कोनसे गुण काय किये । उस प्रकार समस्त भक्तव्यायक रामचरित काय गुणको गुनाइए ॥ १ ॥ २ ॥ अ रामरासने कहा — हे बाल ! तुमने बहुत ही सनम प्रश्न किया है । मातृवत् होकर मैं मना । रामचन्द्रजीने जब रामदासों को कथामय पत्रोंसे बोला इन रामदासोंका काम गुण कर दिया । तब मैंना तथा अपन सब आनाआके साथ राम मुकुपूर्वक रहने लगे । उ तब न विविध प्रकारके भाग्य भाताना प्रतप्त किया । ३ ॥ ४ ॥ उनमें दिव्य लोका लय अ॥ ज परम मकरदायक है हे तुम गुनाइए । स का रामका यह चरित्र श्रवण करनेसे काय गुण प्राप्त है ॥ ५ ॥ मैंना तथा रामके समस्त चरित्र कहनेका शक्ति न। हमारे अथवा विज्ञान भी नहीं है । अतएव मैं उनका स श्रवण गतिसे तुम्हें गुनाऊंगा ॥ ६ ॥ अ रामचन्द्रजीने अन्तर रामचन्द्रजी, सादुर पत्रक सुन लगे वक्तव्य सीधे कथामय पत्रों अशेषतासे । तब निदान करने लग ॥ ७ ॥ मुद्रा तथा जनक प्रकारके भाग्य में रहित एक वंशुम्हके समान दिव्य मयनरा चन्द्रमा राज स्वच्छ तथा मुन्दर रामचन्द्रजीका मयमय था ॥ ८ ॥ जिसको दावागत रत्नोंके पश्यन लोका के परम जने पत्र थे । जिसमें चारों ओर स्फटिक और मरकत भाग्य अभिलेखे हुए थे ॥ ९ ॥ जिसमें तारम अ दि विभिन्न क लय वने हुए थे । जिसमें चारों ओर दासोंके सव रहनस वह मयन विभुज रत्नलयाका दिवाण बना था । रत्नारामे कितने ही चित्र लगे हुए थे ॥ १० ॥ उन भयनकी मुग्ध सोचकी पा, जिसमें क दिवाकों दाससे दिके हुई चरितों लगी थी । ११ ॥ जिसमें स्तनक तारसे वने हुए, कर्णोंके आदरे जगदलयाई होती हुई थी । वह भयन इनका विभाव था कि उसमें दम हजार पुराणोंके म इ सहस्रों भय जाना था ॥ १२ ॥ उस प्रकार वह मयन बड़ा चम्कत लया माकु-मुन्दर था जो उसमें रत्नके दापके जला करत थे । दासदक अशेषतासे मानक कलश चित्रित किये हुए थे ॥ १३ ॥ एक हजारों चित्र लयका गुण कर देते थे । और कुछ डेसकर विद्योका अपन नन-वदनकी भी सुवि नहीं रह जाती थी । वह मुद्राके वंशुम्हके सनेक चिन्तर विद्ये हुए थे ॥ १४ ॥ चिनार मुकुणके तार और रत्नकी दती दूई चारों पडे थी । जो भयन कीमती कण्ठा और दूनीसे सजा हुआ था ॥ १५ ॥ जिसके चारों चारों कर्णोंमें मातियोंके बड़े-बड़े मुखे लटके हुए थे, जिसमें मकरलकी जटाऊ तकियाये लगी हुई थी ॥ १६ ॥ कही मरेके पक्षोंके मय-वद

चतुष्कोणेषु सर्वेषां मन्त्रकानां महोज्ज्वलाः । रत्नदीपाः प्रकाशन्ते सदैवाग्निशिखोपमाः ॥ १८ ॥  
 उशीरव्यञ्जनादीनि चामरादीनि सन्ति हि । यत्र साम्बूलपात्राणि हेमग्लोद्भवानि च ॥ १९ ॥  
 तथा निष्टीमनार्थं हि पात्राणि रुज्ज्वलानि च । यत्र रंभोपमा दाम्प्यः शतशो रत्नभूषिताः ॥ २० ॥  
 चामरैर्वीजयन्त्यश्च सीतारागावहनिर्गमः । यत्र हेममयाधिरा वद्वास्ते रंजनाः शुभाः ॥ २१ ॥  
 ये यामे नृपपन्नोभिः श्रीसीतायाः समर्पिताः । येषु वै केकिनो वंसाः सारसाः सारिकाः शुकाः ॥ २२ ॥  
 लावकाः कीकिलायाश्च नामा येऽस्य पतत्रिणः । नामाश्चन्दान्प्रकुर्वन्तः शतशस्तेषु सन्धिताः ॥ २३ ॥  
 तेषां शब्दस्य शिष्य न्वा किं प्राकट्यं वदाम्यहम् । ये रामस्मरणेनैव जीवन्मुक्ता न मंशयः ॥ २४ ॥

पक्षिण ऊचुः

जयतु राघवो जानकीयुतो जयन्वसिलराजराजकेसरः ।  
 दशस्थात्मजो लक्ष्मणाग्रजो जयतु मापतिस्तटिकांतकः ॥ २५ ॥  
 जयतु कौशिकस्याध्वरं मनो जयतु रक्षसां भागको महान् ।  
 जयतु गौतमाहव्ययास्तुतो जयतु जानकीनाममानितः ॥ २६ ॥  
 जयतु नः पतिश्चापमंडनो जनकजावगेन्मुक्तमालया  
 नृपमभागणे कौशिकानुगः परमशोभितश्चादिहर्षितः ॥ २७ ॥  
 जयतु भूमिजग्नयोस्तदा मुदा निजकरोत्पले स्थाप्य राघवः  
 कमलहस्तकनाकरोक्षति स ग्धूनन्दनः धातु नः सुखम् ॥ २८ ॥  
 जयतु भूमिजालिंगितो महान् जनमनोहरश्चातिशोभनः  
 पाशुगमदं घृत्य वै धनुर्निजपितुस्तदाऽदर्शयन् बलम् ॥ २९ ॥  
 जयतु सीतया भोगकृच्चिरं जयतु कैकर्याप्रेरितो वनम्  
 जयतु पर्वतैः वासकृच्चिरं जयति योऽत्रिणत पूजितो वने ॥ ३० ॥

चमर रखे हुए हैं । कहीं सुरमायका चमर रखता है । कहीं सालके और कहीं खरूरके बहुतसे पंखे रखे हुए हैं ॥ १७ ॥ फलंगके चारों ओर अच्छी रोशनी देनेवाले अग्निशिखा महा रत्नमय दीपक रखे हुए हैं ॥ १८ ॥ बहुतसे खय आदिके पंखे तथा चमर रखे हैं भगवान्के उस विद्यासम्भवनके पात्रदान सुवर्णके हैं उसमें अगह-जगह होरा-यथा आदि रत्न अड़े हुए हैं ॥ १९ ॥ जितने जगालदान हैं, सब चांदीके हैं । वहाँ अनेक प्रकारके गहने पहने रंभा जैसी सैकड़ों सुन्दरी नागियाँ राम और सीताको पखा हाँक करती हैं । त्रिमं मोंके कितान ही पिण्डे बँधे हुए हैं ॥ २० ॥ उनको धूम कापी हुई रानियोंने तोताजीका उपहारमें दिया था । जिनमें मयूर, हंस, सारस, मैना, बटेर, कोयल आदि सैकड़ों प्रकारके पक्षी जिनकी ही तरहकी आँखें होन रहे थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे गिर्य ! वे पक्षी क्या बोलते थे वह मैं तुम्हें स्पष्ट बतके बतलाता हूँ । शब्दों के मन्देह नहीं कि वे पक्षी बारम्बार रामका नाम लनसे जीवन्मुक्त हो गये थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ पक्षी चन्द मोतापति रामचन्द्रजीकी जय हो, जसिलराजराजेश्वरकी जय हो राघवधरमज रामचन्द्रजीकी जय हो । लक्ष्मणाग्रज रामकी जय हो । श्रीपति और साइकके नाशक रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ २५ ॥ विद्यानिर्गके यक्षमें जानेवाले, राक्षसोंके विनाशकारी, गौतम-अहंता तथा जनकजीसे सम्मानित रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ २६ ॥ हमारे स्वाकी, पंकरके पशुको खण्डन करने तथा सीताजीके हाथकी जयमाळा पहिननेवाले, परशुरामके दिये हुए धनुषको बढ़ाकर भिन्न वंशरथको अपना पराक्रम दिखानेवाले ॥ २७-२८ ॥ सीताके साथ विद्यास करनेवाले, कैकेयीको प्रेरणासे वनको जानेवाले, धिरकाल तक धिक्कृतपर निवास

जयतु स विराधस्य धानकुञ्जयतु दूषणादिप्रमर्दना ।

जयतु यो भृगं मोक्षयद्भवाञ्जयतु यः कबंधं क्षणाञ्जहौ ॥३१॥

जयतु वालिहा सेनकारको जयतु रावणादिमर्दकः ।

जयतु स्य पद प्राप सीतया मगलान्नानकृन्मुदा ॥३२॥

जयतु वाक्यनो भृगुस्य यः सकलभूतल पर्यटनं चिरम् ।

जयतु यासकल्लोकक्षिप्तया जयतु जानकी रंजयन् स्थितः ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

रघुवरस्य पत्न्याक्षिप्तिः कृतं नवकमुनयं यः पठिष्यति ।

तपननिर्गमे भक्तितन्पने निजमनोऽर्पितं मंगमिष्यते ॥३४॥

एतादृशे रम्यगेहे मया शिष्यं प्रवर्णिते । सीतया स सुखं रेखे चैकपत्नीवत्स्थितः ॥३५॥

अथ सा जानकी देवी रंजयामास राघवम् । स्थितं मन्त्रकवये तं निजकीडादिकौतुकं ॥३६॥

मन्त्रकस्थं श्रीरामस्त्वेकदा सुखनिर्भरः । मन्तार्योदर्यमालोक्य वर्णयामास तां मुदा ॥३७॥

हे सीते कञ्जन्पने जगन्ना त्वं कथं स्थिता । जानाम्यहं विलम्बेन तेन न्व निमिताऽपि न ॥३८॥

त्वद्रूपमरुतीं नान्धां पश्यामि जगतीतले । प्रतिपन्नद्रकलया स्पर्शयन्ति नखानि ते ॥३९॥

नखमध्या रक्तवर्णाः शुभा दादिमकीजवद् । अगुशो चतुर्लो रम्यौ शिखंमुष्टोपयो तव ॥४०॥

मृदूले तु पादगले कञ्जपत्रांतरोपमे । समे रेखाश्च जयुते स्वस्तिकादिसुचिह्निते ॥४१॥

सीते तेष्वर्धभागौ तौ तिलोर्मौ मांसलो गुर्धौ । अक्षिरी मृदूलौ पीतौ नृपस्त्रावदनोचितौ ॥४२॥

शटमूले दधिजेन स्पर्द्धते रक्तवतुले । पादपुष्टं समे पीने कोमले लोमवर्जिते ॥४३॥

करनवाले, जत्रि बादि कृषियोगे पूजित रामचन्द्रजीका जय हो ॥ ३० ॥ जिन्होंने विराधको मारा था और दूषणादि राक्षसोंका संहार किया था । जिन्होंने मृगस्वधारी मारीचको मृच्छि दी थी और क्षणमात्रमें कबंधका विनाश कर दिया था, ऐसे रामचन्द्रका जय हो ॥ ३१ ॥ वालिका मरनेवाले, समुद्रमें सेतु बांधनेवाले, रावणादिके नाशक सीतको लंकसे वापस लाकर अपने राजमहिमामण्डप मुण्डभित और मगल-स्तन करके पवित्र रामचन्द्रको जय हो ॥ ३२ ॥ कुम्भोदर बाह्यकी अज्ञासे चिरकालतक समस्त पृथ्वीका पर्यटन करनेवाले लार्काहिदके निर्मित जम्बुद्वीप वन करनेवाले और सानाजीको प्रसन्न करते हुए स्थित रामचन्द्रको जय हो ॥ ३३ ॥ आरामदासजी कहन लगे—महं राजाओं द्वारा किए हुए, नौ करोड़ोंका स्तौत्र वर्धाश्रुतुमें जो कोई पाठ करेगा, उसकी मनाऽमिच्छित कामना पूरी होगी । जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ, ऐसे सुन्दर महत्त्व रामचन्द्रजी सीताके साथ मुम्बुद्वीप एकपत्नी वन वारण करके विहार करते थे । उसी प्रकार सीताजी भी नाना प्रकारक कौतुक करकरके रामचन्द्रजीको प्रसन्न करती थी ॥ ३४-३६ ॥ एक दिन रामचन्द्रजी पर्वणपर बैठे थे । सहसा वे सीताके सौन्दर्यको देखकर कहने लगे—हे कमलनयने सीते ! मैं अपने मनमें बार-बार यही सोचता रहता हूँ कि तुम्हें ब्रह्माजीने कैसे बनाया होगा । मेरा तो जहाँतक स्थान है कि तुम्हारी रचना ब्रह्माजीने नहीं की है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जबकि कोई दूसरा कारणकर तुम्हारी रस शोभाको बनानेके लिए नियुक्त किया गया होगा । क्योंकि तुम्हारे सदन करवनी नारी मैंने संसारमें कहीं देखी हो नहीं । तुम्हारे पैरोंके नाखून अपनी अनुपम छत्र द्वारा चन्द्रकलासे राजा मारनेके लिए उतावले हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ नाखूनोंकी लाली बनारदानेकी तरह लालक रही है । तुम्हारे चतुर्लकार और सुन्दर अंगुडे बच्चोंके मंगुडोंका नाई कोमल दासत है ॥ ४० ॥ तुम्हारे चरण कमलकी पद्मद्विपके सदन कोमल और सुन्दर हैं । उनमें पत्रादिकी शुभ रेखाएँ स्थिती हैं और मेहावर लगे हुई हैं । पाँवोंके ऊपरका भाग सुन्दर तथा सुकोल है । उनमें नखें नहीं दिखाई देती । इसीसे तो वे चरण बड़ी-बड़ी राजपियोंके पूज्य हो रहे हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तुम्हारे पैरोंके बीचका हिस्सा मन्त्रककी तरह मुलायम है, दोनों गुच्छ लाल-लाल चतुर्लकार और मध्ये

तत्र गुम्फौ रक्तवर्णौ वर्तुलौ श्यामलौ शुभौ । अथे गोपूष्पमृदुले वर्तुले मांसले शुभे ॥४४॥  
 निलोदरे मृदुले पीने क्षशिरे मृगले वरे वर्तुलौ ने महाजान् मायनौ चीजस्वरत् ॥४५॥  
 भास्त्रंभोपमे चीरु मायनौ न्वतिकोमलौ दानौ धनौ वर्तुलौ तौ विलासौ मे सुखोचनौ ॥४६॥  
 जषनं मांसलं रम्यं वर्तुलं गजकुम्भवत् । पानं विलासं सुस्निग्धं मम चिषैकमोहनम् ॥४७॥  
 नाह ते वर्णने शक्तो रतिम्यानस्य भाविनि । गंभीरा वर्तुला नाभिस्तद रम्या प्रदृश्यते ॥४८॥  
 रतिप्रप तु जटरे दृश्यते निमृषेगिवत् । मृगराजस्य कटिना तुन्यस्ने कटिकलमा ॥४९॥  
 रम्यं त्रयोदश सुधर्मं मृदुलं मांसलं शुभम् । विलासं पीनवर्णं च पुत्रोत्पत्तिविश्ववक्त्रम् ॥५०॥  
 वक्षस्य शकलेनेष स्पृष्टे तद मांसलः । पृष्ठस्नभः कोमलश्च निम्नो लोमविर्वर्जितः ॥५१॥  
 पार्श्वेऽतिमृदुले पीने मांसले लोमवर्जिते । कुक्षी पीने लोमहीने मांसले किंचिदुच्यते ॥५२॥  
 इदं कोमलं रम्यं मांसलं रतिमुन्नतम् । विस्तीर्णं लोमहीनं च सुखेजग्ध मोक्ष्यदं मम ॥५३॥  
 हेमकुम्भमानी द्रौ कुक्षौ पीनौ धनौ शुभौ । गजसुडादंतुल्यौ पीनौ ने कोमलौ धृजौ ॥५४॥  
 कुशा रम्याः कोमलाश्च तेऽहुन्धो जनकान्मजे । रक्ते पाणिजले शम्भरजमन्त्र्यादेविहिते ॥५५॥  
 मांसले कोमले प्रोन्चः सुरस्वामण्डने वर । कपृष्ट लोमहीने मांसल कोमले शुभे ॥५६॥  
 पीनौ स्पर्धी वर्तुलौ ते जत्रुस्ने मांसपूरितः । कर्कशंऽतिपीनश्च भवतिप्रप उन्नतः ॥५७॥  
 वक्ष्ये निम्नं सुपीनं ते त्र्यधुक्तं वर्तुलं मृदु । प्रवालविमलशम्भरकः कोमलो धनः ॥५८॥  
 सीते तेऽधोऽधो जाति मृगोऽमृतमक्षिभः । कुटपुष्पकलिकया स्पृष्टन्ते दशनास्त्र ॥५९॥  
 सांद्राः कृत्रिमवर्णश्च कृष्णवर्णा सनोदगः । हेमपुष्पैर्हेमनतुर्ध्वश्चिविविचित्रिताः ॥६०॥

हैं । जंघाये लोको पूँछके समान गायदुम एवं माटी लाली हैं । ४३ । ४४ ॥ उनमें न तो कहीं एक भी रीज दिखाई देते हैं न शरीरकी नसे हो । दानो जपन का मूल ( विलोमे नावू ) की तरह मोटे और वर्तुलाकर हैं ॥ ४५ ॥ तुम्हारे दाँता ऊँठ केवक मन्त्रका नाई मट और कायल हैं । उनका सुन्दर वर्ण और उनकी सुन्दर कटा मुझे बहुत अच्छी लगती है ॥ ४६ ॥ मग्नभाग भी माटा, सुन्दर और हाथाक पस्तकनी तरह वर्तुल है । वह पीतवर्ण, लामहुँन, गुच्छिकण तथा मनोमोहक है ॥ ४७ ॥ हे सीते ! तुम्हारे रतिम्यानकी वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ । तुम्हारा नाभी भा गहरी बटुलाकार और सुन्दर है । ४८ ॥ तुम्हारे पेटमें तीन रेखाएँ होन बेनीक समान दिखती पड़ती हैं । तुम्हारी कमर घृगराज (विह) की तरह पतली है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा उदर सूक्ष्म, मृदुल और मांसल है । इसमें कहीं भा लाव नदी सिव ई पड़ता । वह तीन वर्णका है और उसकी देखनेमें भावी पुण्यार्थिका मृचना मिलती है । ५० ॥ वक्षस्त्रणकी तरह माटी लाली तुम्हारी पीठकी रीढ़ है । दोनों पार्श्वभाग लो अतिकोमल होनेसे झगड़ ही बनत है । काय की पीठवर्ण, लोमहीन, कुक्ष उँकी एवं मोटी लाली है । ५१ ॥ ५२ ॥ हृदय कोमल, रम्य, मांसल, पीला और ऊँचा है । वह लोमहीन है और बहुत दूर तक फैला हुआ है । वह हृत्तमें विकना साम्य होना है । इसलिए मुझे वह बहुत सुन्दर प्रियता है । ५३ ॥ स्वर्णकलशकी नाई मोट और कटोर तुम्हारे दोनों कुक्ष हैं । तुम्हारी दोनों भुजाएँ हाथोंकी सूँडकी तरह मोटी, कोमल और सुन्दर है ॥ ५४ ॥ पतली सुन्दर और कोमल तुम्हारे हाथोंकी उँगलियाँ हैं । तब, ध्वज, मकर तथा मन्त्र्यादि चिह्नो युक्त लालस्याल तुम्हारी दोनों हथेलियाँ हैं ॥ ५५ ॥ उभरी तरह उनका घृमपाव भी लोमहीन, मांसल, कायल और सुन्दर है ॥ ५६ ॥ वर्तुलाकार, मोटे तारे, मांससे अच्छे तरह भरे हुए और शङ्खकी नाई तुम्हारे दोनों कंधे हैं । पीठमें तीन सुन्दर रेखाएँ हैं । ५७ ॥ तुम्हारा वक्षपाव भी निम्न, पीन एवं कोमल है । प्रवाल और दिग्धफणकी तरह लाल, कायल और रसमय तुम्हारा चिबुक है ॥ ५८ ॥ हे सीते ! मृगको तरह मधुर तुम्हारा मधरोष्ठ है । कुशका कलिकाकी समिवल करनेवाले तुम्हारे दाँत हैं ॥ ५९ ॥ उनमें बत्तीसी पड़ी हुई हैं । पान खाने खाते वे काने हो गये हैं । उनमें जहाँ-तहाँ मृगवर्ण लालकी

ऊर्ध्वाधरः कोमलस्ते रक्तवर्णो विभान्ययम् । अंशु घ्राणमुन्नमं ते दिव्यं भाति मनोहरम् ॥६१॥  
 तव नेत्रं कंजपत्रनुव्ये दीर्घं मनोहरे । हरिणानेत्रमदृशे कामवाणाविव प्रिये ॥६२॥  
 तव कर्णौ घनौ पीनौ बहुभारमहौ वरौ । तव सीतेर्जतिमुद्दिनस्थे प्रोच्ये गण्डस्थले शृण्वे ॥६३॥  
 कृशे भ्रूवौ चापनल्ये कृष्णवर्ण मुकोमले । ललाटं तव विस्तीर्णं मानल हि समं मृदु ॥६४॥  
 गङ्गाकुलोपमः सीते सीमतस्तव सुन्दरः । हेमन्ततृप्तमानास्ते केशाः स्निग्धाः सुकोमलाः ॥६५॥  
 मस्तकस्तव सूक्ष्मश्च वनमूलो मांसलः शुभः । वेशावन्धो वरः सीते जघने पतितस्तव ॥६६॥  
 चण्डपुष्पोपमो वर्णः सौकुमार्यमपि प्रिये । माते तवाननस्पृष्टौ शशाङ्कः क्षयमाप सा ॥६७॥  
 त्वन्नन्त्रविजिता सीते मृगी धावति कातने । सीते त्वद्भ्रुकुटिर्भृङ्गि चाप भग्न मया पुरा ॥६८॥  
 तव नेत्रकटाक्षेण मृतीनां मदनोद्धवः । नेत्रयोर्मदव चांचल्य मकरान् लज्जपत्यहो ॥६९॥  
 तव ग्रासे शुको दृष्ट्वाऽऽन्मानं धिक्करोति हि । दृष्ट्वापुः शोणिमां ते सौकुमार्यमपि प्रिये ॥७०॥  
 तद्विकारतरोश्वापि रक्तः कोमलपल्लवः । लज्जया हरिदो भाति त्यक्त्वा सर्वाथां सुरक्तताम् ॥७१॥  
 सौकुमार्यं तथा त्यक्त्वा लज्जया ते घनोऽपि सा । एव किं किं मया कान्ते र्मोदये तव जानकि ॥७२॥  
 वर्णनीयं महर्दिव्यं तव ब्रह्माऽपि कुण्ठितः । हन्युकन्या रायवः मीनां प्रीन्या तां परिषम्बजे ॥७३॥  
 तच्छ्रुत्वा वर्णनं श्रापं लज्जयाऽधः कुलानना । किञ्चिन्निपताननं कृत्वा तस्थार्धकं पथेऽथ सा ॥७४॥

श्लो० श्रीकटकटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये  
 सोतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

निष्कारण की हुई है । इससे वे और भी सुन्दर मान्य होत हैं ॥ ६० ॥ तुम्हारा ऊपरा हाठ भी कोमल और रक्तवर्ण है । कोमल और ऊँची तुम्हारी नासिका है, जो वरों सुन्दर दीखती है ॥ ६१ ॥ कमलकी पशुद्वियोंकी नादं सुन्दर तुम्हारा दानों आँख हैं । उन्म चाहे हरिणीक नयोंको तरह कह जाँ या कामवाणको भाँति विनाकपेक कहो ॥ ६२ ॥ तुम्हारे दानो कान भी घन और पीन हैं । वे दहतस गहनोंका खोस सह सकते हैं । तुम्हारे गण्डस्थल भाँति कोमल और उँच हैं ॥ ६३ ॥ पल्लव-पल्लवों और काले रंगको तुम्हारी दोनों भीह धनुषाकार दीखती हैं । तुम्हारा ललाट खूब चौड़ा और बराबर है ॥ ६४ ॥ तुम्हारी सींग गंगाके तटको तरह सुन्दर दीखती है । सींगके तारको भीत सुन्दर, चिकन और कोमल तुम्हारे केशोंका कटाव है ॥ ६५ ॥ तुम्हारा मस्तक सूक्ष्म, बलुन, मांसल और सुन्दर है । तुम्हारे केशोंका शोणीक्य अभिनव झूलना है ॥ ६६ ॥ चम्पाक फूलकी तरह तुम्हारा सुन्दर वर्ण है । उसी तरह उसम कामलता भी है । हे सीते ! तुम्हारे मुखसे होठ करनेक कारण चन्द्रमाका क्षयरोग हो गया ॥ ६७ ॥ तुम्हारी लाँलाह हार मानकर मृगियां वनको भाग मयों और जघर-उधर दौड़ती फिरती हैं । हे जनकात्मज ! सब पूछो तो उस समय धनुषयज्ञम तुम्हारी इन भीहोंसे स्वर्धा करनेके ही कारण मैंने धनुषको तोड़कर उसके टुकड़-टुकड़े कर दिये थे ॥ ६८ ॥ मुझे पुरा विश्वास है कि तुम्हारे नेत्रोंके कटाक्षसे बड़े बड़े तपस्वियोंके हृदयम भी कामका वेग प्रादुर्भूत हो जायगा । तुम्हारे नेत्रोंकी चंचलता मच्छालियोंको भी भात कर रही है । तुम्हारी नाक देखकर सीते अपनेको बार बार चिक्कारत हैं । तुम्हारे हाँठाका लालिमा और कोमलता देखकर आश्वत्थका लाल और नया पत्ता लज्जाके मारे हरा हो गया है । तुम्हारी लालिमाके आगे उसको लालिमा नहीं टहर सकती । हे कान्ते ! मैं तुम्हारी सुन्दरताका कहीं तक वर्णन नहीं करूँ, ६९-७२ ॥ इसक वर्णनम धनुषमुख ब्रह्मा भी हार मान लेंगे । ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने सीताको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ ७३ ॥ इस तरह अपना बड़ाई सुनकर सीता भी लज्जासे नीचा मुँह करके बैठ गयी । फिर थोड़ा धुमकाकर पतिव्रतकी गीतम जा बैठी ॥ ७४ ॥ इति श्रीमत्कटकटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंच रामलक्षणवाच्यविरचित ज्योत्स्ना भाषाटीकायां सोतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥



## तृतीयः सर्गः

( सप्तमं कृतं आध्यात्मिकं प्रदत्तं ते उत्तरं रामका देहमायया-वर्णनं )

श्रीरामदास उवाच

अथ सा जानकी राम विनयाहुजिनाऽब्रवीत् । राम राजीवपद्मां किंचिन्प्रष्टुं मम प्रभो ॥ १ ॥  
 वांछाऽस्ति चेन्मङ्गोपायां तर्हि पृच्छाम्यहं नव । मन्माता चर्तुं श्रुत्वा गन्धर्वः प्राह जानकीम् ॥ २ ॥  
 पृच्छस्व सीते यत्तंऽस्ति प्रष्टव्यं मां मुखेन ननु । सा शक्ता मम रम्भोऽहं गुह्यं चापि वदामि ते ॥ ३ ॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तस्या ग प्राह जानकी । मम मम महाबाहो किंचिदुपदिशस्व माम् ॥ ४ ॥  
 येन मम तव मन्त्रान् भवेन्नेव महोज्ज्वलम् । तन्मन्त्रावचनं श्रुत्वा रामचन्द्रोऽब्रवीद्ब्रुवः ॥ ५ ॥  
 सम्यक् पृष्ट्वा त्वया गीते मृणुर्वैकाग्रमानसा । मम ज्ञानाय ते वक्षिष्ये परं कौतूहलं शुभम् ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सुखिदानन्दरूपाद्यदमागम्य । तद्विच्छया । उद्वेगवशाऽऽर्मांश्चिदुः शुद्धो विनिर्गतः ॥ ७ ॥  
 आत्मनामा । मातृभूतबुद्धेर्नैरुपमवतः । शुद्धमन्त्रांशं करणं विना चान्मन इति ॥ ८ ॥  
 तस्यान्मनस्य चन्वरो भेदास्ते वधवः स्मृताः । तृयावस्थस्तत्र वरस्तो जाग्रदवस्थकः ॥ ९ ॥  
 स्वप्नावस्थस्तृतीयश्चावतः । सुषुप्त्यवस्थकः । हृदयाकाशस्थस्थान मनोवेगो बहिर्गमः ॥ १० ॥  
 यतोदुर्बुनिषातश्च मनोवेगस्य खडनम् । मायायोगस्तनस्तस्य पूर्वसंस्कारनिग्रहः ॥ ११ ॥  
 ततः कुबुद्धिहेतौर्हि भवाण्यष्टनं चिरम् । दम्भस्य निग्रहस्तत्र पंचभूतात्मिका स्थिरा ॥ १२ ॥  
 आत्मनः पर्णकूटिका विश्रान्तिस्थानमरिक्ता । कामक्रोधलोभमपस्तथाशक्तुननं स्मृतम् ॥ १३ ॥  
 मोहस्य निग्रहस्तत्र शुद्धमायाश्रयस्तवः । रजारूपा तु या माया जठराग्नी तदा स्मृता ॥ १४ ॥

श्रीरामदास कहते लग- कुछ देर बाद राजा और विनयसे सलूचाती हुई सीताजी रामधरसे बोली-  
 हे प्रभो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ । १ ॥ यदि आप आज्ञा दें तो पूछूँ । सीताजी वाणी सुनकर राम-  
 चन्द्रजाने कहा- ॥ २ ॥ हा प्रभो ! ज- कुछ भी तुम्हारी इच्छा हो, आनन्दपूर्णक पूछो । किसी प्रकारकी शङ्का  
 मत करो । यदि कोई गुप्त बात होगी, वह भी मैं तुम्हें बतल दूँगा । ३ ॥ इस तरहकी बात सुनकर  
 सीताने कहा- हे महाबाहो राम ! कुछ आज कोई ऐसा उपदेश दे, जिससे मैं आपको अच्छी तरह समझ  
 लूँ । इस बातका सुनकर रामने सीतासे कहा । ४ ॥ ५ ॥ हे देवि सखे ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी  
 है । मैं अपने वास्तविक तत्त्वको तुम्हें अच्छी तरह समझाता हूँ मत एक म करके सुनो । आत्मज्ञान प्राप्तिके  
 लिए मैं तुम्हें कौतूहलजनक बान बना रहा हूँ । ६ ॥ रामचन्द्रजी कहने लगे- हा, चित् और बानन्दरूप एक  
 महान् सगर है । उसकी इच्छारूपा तरङ्ग एक परम पवित्र आत्मावास्वरूप हिन्दु निकला । इसका नाम  
 पड़ा 'आत्मा' उसका माता हुई बुद्ध, बुद्ध और तन्मय अन्तःकरण उसका पिता हुआ ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस  
 आत्माके चार भेद हुए हैं । आत्माके चार भाई कहलाये । उनमें सबसे श्रेष्ठ हुई तृतीयावस्था, उससे कुछ  
 स्थूल जाग्रदवस्था, फिर स्वप्नावस्था और सबसे निम्न श्रेणीकी सुषुप्ति अवस्था हुई इन सबका हृदयाकाश  
 स्थान है और मनावासे ये अवस्थाएँ कभी कभी बह- भी हो जाती हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ मनकी दुष्ट सियोंका खण्डन,  
 उनके आवेगपर आधान और मायाक पावसे पूर्वसंस्कारकी दमन करना हाता है ॥ ११ ॥ यदि बुद्धि किसी  
 तरह दूषित हुई तो इस तंताग्रूपो घोर जलमें बहुत दिनों तक आत्माको भटकना पड़ता है । उस समय  
 पंचभूतात्मक आत्माको स्थिर करके दम्भका निग्रह करनेकी आवश्यकता होती है । १२ ॥ केवल आत्मा-  
 रक्षिणी ही एक ऐसी पर्णकूटी है जहाँ कि गान्ति मिलती है । अन्यत्र सब जगद् बलेश ही है । उस  
 पर्णकूटीमें काम, क्रोध, लोभ, माहादि शत्रु नहीं जाने पाते । आशाकी भी वहाँ गति नहीं है । वहाँ मोहका  
 भी निग्रह हो जाता है । वहाँ ही शुद्धसात्त्विकी मायाका आश्रय प्राप्त होता है । उस समय जब कि रजोगुणमयी

नाम्नाश्चिन्मायायाः विशेषश्च तत्र स्मृतः । सुखान्नामो महाकलेशः सोऽकर्मगन्तव्यः ॥१५॥  
 विवेकस्याश्रयस्तत्र भक्त्युद्रेकममागमः । अविवेकवधभाषि ह्युन्नादेन समागमः ॥१६॥  
 अज्ञानतमोपायः सिगुणाश्रयमशानि । लिङ्गमयनिग्रहस्तत्र मदस्य रुचकोत्थितः ॥१७॥  
 निग्रहो मय्यहम्भाषि ततोऽद्वैतानिग्रहः । विधोमो लिङ्गद्वैतस्य मायाभर्मकयत्ना ततः ॥१८॥  
 हृदयाकाशगमनमानन्दकमुत्तमं ततः । मायान्यासश्चतुर्थश्च सान्निभया प्ररण स्मृतम् ॥१९॥  
 सान्निभक्या मायया सार्धं हृदयाकाशमुत्तमम् । महाकाशे प्रणयनं सच्चिदानन्दमञ्जके ॥२०॥  
 प्रवेष्टुन सागरं हि मुक्तिरूपयाऽऽमनः शुभा । मापुज्या सा परिच्छेया मुक्तिर्मुक्तैवतुष्टये ॥२१॥  
 एव मयेव ते मोक्ष्या भीते सञ्ज्ञानपेटिका । वेदवर्गं गृहार्थं ज्ञानमतिनाशकैः ॥२२॥  
 मञ्जानन्दैः रञ्जदशलोकरुनैः प्रसूतिना । मन्त्रपिता गृहाथ त्वमस्मां वृद्ध्याऽवलोकय ॥२३॥  
 भविष्यति मम ज्ञानमप्याः सम्यग्विचारतः । तद्रामवचनं धृत्वा मोक्षं मञ्जानपेटिकायाम् ॥२४॥  
 निजहृन्मन्दिरं स्थान्य बुद्धिदृष्ट्या मुहुर्मुहुः । मय्यमुद्वेष्टय तूष्ण्यां मा मुहूर्तमवलोकयतु ॥२५॥  
 तदा ज्ञानवद्वयं सकलं निजकीर्त्या विदेदजा । विद्वयं शृणु मय्य सा ननामधिपकजे ॥२६॥  
 आनन्दनिमगा ज्ञाना सागराध्रुवमन्विता । आनन्दोऽकुल्लोभाश्चा गूर्णामासीत्तदा क्षणम् ॥२७॥  
 आनन्दनिर्वहता भीता दृष्ट्वा सा राघवंऽब्रवीत् । पेटिकाया त्वया साते किं दृष्टं तोषकरकम् ॥२८॥  
 कल्विद्रव्यं तदाज्ञारं कञ्चिच्छुद्धं मम त्वया । सञ्ज्ञानं वद मां संते यथा ज्ञानं त्वया हृदि ॥२९॥

माया कदराभिर्भर रहती है ॥ १३॥ १४॥ तब तमोगुणयो मायाका वियोज हो जाता है । इसमें सुखका भाव नहीं रहता और चारों ओर कराल दुःखकी घटाई घिरो दिखाई देती है । उसके अगे मोक्षमञ्जुका दर्जा जाता है ॥ १५॥ उसी समय हृदयमें त्रिविक उपजता है । साथ ही भक्तिका भी उद्रेग होता है । अज्ञान मल हो चलता है । उन्मादसे रनह हो जाता है । तब एतद्वाम इस कदरीगेका सबसे प्रधान बलम्ब यह है कि जिस तरह भी हो मम अज्ञानसे जबकी मुक्तिके काया करे । जब ज्ञानी मदका निग्रह कर सता है जब अदि लिङ्गनिग्रहा कहमाने लगता है ॥ १६॥ १७॥ माया निग्रह करके मस्तरका और मस्तरक बाद यह म्भुकरका निग्रह करना चाहिए । जिस समय सधन निजनिग्रही हो जाता है अर्थात् मदकी वधये कर जाता है । उसी समय मायाके परारण होगया समय जाता है ॥ १८॥ आनन्दम माया और है ही क्या, इन्ही काय-कायिद्वयोके संघसे मायाका निर्माण हुआ करता है । इसके परारण हो जानेपर प्राणीका आनन्द ही आनन्द रहता है । जब पापादा र ग हो जाता है, उस समय सान्निभका भावका प्रादुर्भाव होता है । उस सान्निभकी मायाके साथ प्राणी उत्तम हृदयाकाशका भुव अगुच्य करने लगता है । उससे भी उत्कण्ठ होनेपर महाकाशका निर्माण होता है । मत्, चित और आनन्द ये तमो वही सदा जितमान रहने हैं ॥ १९॥ २०॥ इसी महान् समुद्रम मूढ जानका आत्माकी कलाणदन्दिनी मुक्ति कहने है । धार प्रकाशकी वही हुई मुक्तिदोसेसे उगाना सापुत्र्य मुक्ति कहते हैं । हे साध ! मुह्यार स्नेहवत यैः यह जानका पिढारी सोलकर रत्न सी । इसमे वह सर्ववाले बदके सारक परिपूर्ण तथा अज्ञानकृद्धको नष्ट करनेवाले यहह ग्लोकस्पी रत्न भी हुए हैं । इन्हीके द्वार मेरा मुख्य शब्द जाना जा सकता है । यह पिढारी मे मुभ्य अर्पण करता है । इसे समुत्तली और आनन्दगिष्टिसे रसी । बारबार इन बातोंका समन करो तो मुझे अच्छी तरह समझ लाया ॥ २१-२४॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर सतने उस जानकी पिढारीकी अपन हृदयमें रत्न लिया । फिर उसे सोलकर बुद्धिदृष्टिमें कुछ देर देखनी रही ॥ २५॥ तब सोचने अपने सब ओडाओका नद जाना और हैमकर रामकदरीकी प्रणाम किया ॥ २६॥ सोलाका उस समय एक महान् आनन्दका अनुभव हुआ । उनकी आत्मामें भीमू भा गये, गारारक रोगरु खड हा गये और बायीं दिके लिए स तजा अपन आपकी मा भूषकर रुप हो गयीं ॥ २७॥ इस प्रकार सोलाकी आनन्ति देखकर रामचन्द्रजान पूछ — हे सोन ! तुमने उस पढीय क्या क्या नृसिदामक काँजे देखी ? जिससे तुम्हें ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ २८॥ क्यों, अब तो मुह्यार अज्ञान दूर

ज्ञानं त्वया वा न ज्ञानं येषु मन्द्यामि च्चक्षुषां ।

यदि किञ्चिन्वया नाभ्यां ज्ञानं तद्दोषायाम्यदम् ॥ ३० ॥

इति रामवचः श्रुत्वा निमग्नाऽऽनन्दयागरे मंचकभ्यां रामचन्द्रं जानकी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

श्रीनरनाम

राम रामणदर्पणं त्वद्वत्ता ज्ञानपेटिका । मयाऽवलीकिता बुद्ध्या लब्धं ज्ञानं तव प्रभो ॥ ३२ ॥

निर्गुणो निर्विकारस्त्वं कीदृशं सकला न्वया । मयगृहीता भूषां कृत्वा लाकटिनाय हि ॥ ३३ ॥

पेटिकायां यथा ज्ञानं मया तत्प्रवृत्तादि ते त्वया पचदशउल्लेख्यं गुह्यमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

प्रकटं तत्करोम्यद्य तवाग्रे रघुनन्दन । सर्वेषां मन्दवृद्धानां हिताय ज्ञानमिदमे ॥ ३५ ॥

अनानां सम्बोधयितुं चरित्रं भवताऽत्र यत् । कुतस्तस्य विशारेण ह्यात्मज्ञानं लभेभ्यः ॥ ३६ ॥

सन्निधानन्दरूपी यो विष्णुर्ज्ञेयः स सागरः । भृशरहस्यादीन्वा विष्णोर्थां ज्ञापये शुभा ॥ ३७ ॥

स वै ज्ञेयस्तरंगोऽत्र तथान्मांशुलवः शुभः । बहिः कुतः सागरान्म आन्मात्स्यः कथ्यते भुवि ॥ ३८ ॥

बुद्धिस्तु जपनी चैव कीमत्या साऽत्र कथ्यते । शुद्धमर्थातःकरण विना तस्यात्मनः स्मृतः ॥ ३९ ॥

रात्रा दशमो ज्ञेयः धामान्मन्वपरक्रमः । तस्यान्मनश्च चत्वारो भेदास्ते बन्धवः स्मृताः ॥ ४० ॥

रामभौमिनिभरतशत्रुघ्ना एव चार हि । तयैवमध्यस्तपु वरः स त्व दशरथान्मजः ॥ ४१ ॥

ततो जाग्रदवस्थश्च लक्ष्मणः सोऽत्र कथ्ययते । स्वप्नावस्थश्चतुर्थीयश्च भरतोऽपि निगद्यते ॥ ४२ ॥

अक्षरः सुषुप्त्यवस्थस्तु ज्ञेयः शत्रुघ्न एव सः । हृदयाकाशं तन्म्यानमयोप्याऽत्र स्मृता तु ता ॥ ४३ ॥

मनोवेगो बहिर्यात्रा विश्वमित्राश्वरे ममः । मनोदूर्वातिघानश्च तार्जिकाया वधोऽत्र सः ॥ ४४ ॥

मनोवेगस्य यो मगः स धनुर्भग उच्यते । मायायोगमनस्तस्य मयापिग्रहणं स्मृतम् ॥ ४५ ॥

पूर्वसंस्कारनिशदो ज्ञामदरनेचनिग्रहः । ततः बुद्धिहेतोहि कैकेय्या वरदानतः ॥ ४६ ॥

हुआ ? अच्छा, अब बताओ कि ये तीन हैं - मुख नृपन जगत् मनस कया सम्पत्ता है ? ये तूतरे पुँतरे यह पुरना आहता हैं । तुमने मुझे जामर पा मही ? यदि हमें हमको जाननेम सब भी दृष्ट कतर हाँगी तो मैं समझाईगा ॥ २६ ॥ ३० ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीकी आज्ञा सुनकर साताजी और जो आदित हा यहाँ और रामचन्द्रसे कहने लगीं ॥ ३१ ॥ माताजी हाली-हे रघुनन्दन । हे रामणके बनेका नष्ट करनेवाले राम ! आपने मुझ जो यह ज्ञानकी पिटरी दी है, उसे मैंने अपनी जालदृष्टिम धृष गौर करके देखा और मुझे आपका ज्ञान प्राप्त हो गया । ३२ ॥ आप निर्गुण और निराकार है । फिर भी मर साथ समारम आपन आ जा लीलाते की है, उनका उद्देश्य एवमात्र लोकाहन है । मैंने इस पिरारि में आ जा देखा है, यह बतलाते हैं । आपने पन्द्रह ग्लानियोंमें मुझे जो उत्तम ज्ञान दिया है उसे मैं आपके सम्मुख प्रकट करती हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उससे समारके समस्त ज्ञानियोका उपकार होगा अर्थात् उन्हें जो ज्ञानका प्राप्त हो जायगी । ३५ ॥ शत्रुघ्नांको समझानेके लिए आपन इस जालीमन्त्रमें आ जो चरित्र जिये है उनपर बच्छी साह विचार करनेसे नि सन्वेह आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है ॥ ३६ ॥ साच्चदानन्दस्वरूप विष्णु भगवान् ही सागर हैं । भगवान् भी पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छा करते हैं, वही उस सागरकी मर है । उसका जो एक बिन्दु आत्मज्ञान है'कर बाहर आ जाता है । वही आत्मा कहलाता है । उसकी बुद्धिरूप अनन्त कीमत्या है । शुद्ध और सलो गुणमय अन्तःकरण उस आत्माका निवास होता है, सो साक्षात् श्रीऽश्वरजी हैं । उस आत्माके चार भेद आपने कतसाये हैं । वे चार भाई राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नसब हीकर विद्यमान हैं । उनमें तुरायावस्थाको श्रेष्ठ कहा है । सो इन चारों भाइयोंम बड़ आप ही है ॥ ३७-४१ ॥ ज एदवस्थास्वरूप लक्ष्मणजी हैं, स्वप्नावस्थास्वरूप भरतजी तथा सुषुप्ति अवस्थास्वरूप शत्रुघ्नी हैं । हृदयाकाश व्याप्त जो आपने कहाया है, यह यही जगोका है ॥ ४२ ॥ मनोवेगका दूर होना जो आपने कहा, वही मनो विश्वामित्रके बजने आपकी यात्रा है । मनकी दूर्वातिघाका घात ही तार्जिकावध है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ मनोवेगका संजम ही अनकपुरमें धनुष दूरना है । वहाँ मेरा पापिग्रहण होना ही मायाव

भवारण्येष्टनं प्रोक्तमटनं दंडकेष्ट तै । इभस्य निग्रहस्तत्र विराघस्यात्र निग्रहः ॥४७॥  
 आत्मनः षण्णकुटिका पंचमनान्यकश्च सः । देहोऽयं पंचवदिका विश्रान्त्यर्थं तदाव मा । ४८ ।  
 कामस्य निग्रहः प्रोक्तः खरम्यात्र विनिग्रहः । क्रोधस्य निग्रहश्चापि दूषणस्यात्र निग्रहः ॥४९॥  
 लोभस्य मर्दनं तुत्र त्रिशिगनिग्रहोऽत्र हि । तत्राशाकुनन प्रोक्तं प्राणेनात्र विरूपणम् ५० ।  
 तस्याः सूर्यणापाश्च मोक्षस्य निग्रहः स्मृतः । मृगमार्गचपाभोऽत्र शुद्धमायाश्रयजनः । ५१ ।  
 ममाश्रयस्ते वामांगे सात्त्विक्या दंडके वने । रक्षोऽपि न या माया जडागर्भे स्मृता शुभा । ५२ ।  
 मम रजस्वरूपायाः प्रवेशश्चानलेऽत्र मः । तामस्याश्चैव मायाया रियोमश्च तदा स्मृतः । ५३ ।  
 मम तमःस्वरूपाया हरणं रावणेन हि । सुखाकाभो महान्वदेष्टस्त्वतो मद्विग्रहस्ततः । ५४ ।  
 शोकवेगस्तत्र प्रोक्ताः कवचस्य वधोऽत्र मः । त्रिवेकस्याश्रयस्तत्र सृजोवस्याश्रयोऽत्र मः ॥५५॥  
 मन्त्युद्रेकस्यामश्च तत्र लाभो हनुमतः । अत्रिवेकवधः प्रोक्तश्चात्र वालिवधस्तथा । ५६ ॥  
 उन्माहेन तत्र संराः सा विभीषणमैत्रिकी । अज्ञानतमणोपायः सेतुबंधो महोदधौ ॥५७॥  
 त्रिगुणाश्रयमेव वै लिङ्गदेहादये श्रमे । त्रिकृपाचक्रगम्यायां लकायां रघुनन्दन । ५८ ।  
 मदस्य निग्रहस्तत्र कुमकर्णवधस्त्वया । निग्रहो मन्मसस्यापि मेघनादवधोऽत्र मः ५९ ॥  
 तत्र दृक्कारण्यातश्च रावणस्य वधस्त्वया । मायानामैक्यता चापि त्रिविधा या ममैक्यता ॥६०॥  
 विषोमो लिङ्गदेहस्य लकास्यागस्त्ययाऽत्र मः । इदयाकाशममगनतयोध्यायमत पुनः ॥६१॥  
 आनन्देकमुखं तत्र राज्यभोगस्त्वया योऽत्र हि । मायास्यागस्ततश्चैव वाल्मीकेनाश्रमे मम । ६२ ।  
 न्यायोऽत्र भावि श्रीराम त्वया योऽत्र प्रकाशितः । सात्त्विक्या ग्रहणं पञ्च पुनर्मे ग्रहणं स्मृतम् । ६३ ॥  
 सात्त्विक्या मायया सार्द्धं तयोर्थोमो मया सह । तत्रश्च इदयाकाशे महाकाशे विलापयतु ॥६४॥

योग है ॥ ४५ ॥ परमपुराणका दर्पवज्जलन ही पूर्ववर्णनका निग्रह है । इसका अन्तर दंडकेष्टरूपिणी वीरकीके  
 बरदानसे आपका दंडकारण्यामे घुसना ही भव रूपम भटकना है । दम्भका शोक एता ही विराघवध  
 है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पंचमनान्यक आत्मरूपिणा षण् कुटी जो आपने बतलायी, वह यह शरीर ही है । जो आपके  
 विहार करनेके लिए एक उपयुक्त स्यात् है । ४८ । कामका निग्रह करना ही खर गधगाका वध है और क्रोधका  
 निग्रह दूषणका वध है ॥ ४९ ॥ लोभका निग्रह त्रिशिगका वध रहा मया है । आशाका पिच्छर ही आपने बगलाया,  
 वह ही सूर्यणापाका विरूप करना है । मार्गच मृगका वध करना ही मोक्षका निग्रह है । मृगवज्जलनमे आपने  
 जो तन्त्रगुणमयी मुख्य आपने वामभागस परवत् कला या वह ही जोड़ माय का आश्रय है । रजोगुण-  
 रूपस मेरा अग्निस प्रवेश करना ही त ममी मायाका विना है । न ॥ गणनामे वरा रावणके द्वारा हृरण हुंता  
 ही सुखाभाव है । उन्माहाराहमारा विनाश होना ही महावध है ॥ ५०-५४ ॥ इसके बाद कवचका वध करना  
 ही शाकभङ्ग है । सृष्टिवत्ता मित्रता ही आश्रय है । ५५ ॥ भान्तके उदरका व्याघ्र आपकी उग्रमायाका मिलना  
 है । वालिका वध करना ही अज्ञानका वध करना है । ५६ । इसके बाद विभीषणका साथ मेरा हुंता ही  
 उन्माहका नष्ट है । समुद्रमे सेतुबन्धन ही अज्ञानन उदरका हार है ॥ ५७ ॥ आपका त्रिकुट पवनपर उग्र  
 हारना ही लिङ्गारोप दहमे त्रिगुणका आश्रय करता है ॥ ५८ ॥ कुम्भकगता वध मे मदका निग्रह है ।  
 मेघनादका वध मन्मसका निग्रह है ॥ ५९ ॥ आपन जो रावणका वध किया है वह ही अहकारका नाश है  
 मायाकी एकता जो आपने कही, वह इस लोनाका एकत्र हो जाना है । ६० । लकाका न्यायता ही लिङ्गदेहा  
 नियोग है । फिर जयोध्याके लिए दयान करना ही इदयाकाशका भवन है । ६१ । आपका राज्यभोग  
 करना ही एकमात्र आनन्दका अनुभव करना है । फिर मायाका व्याप जो आपने जगत्मा ही सात्त्विक  
 वाल्मीकिके आश्रममे मेरा रक्षण देना ही होगा । सात्त्विका मायाका ग्रहण जो आपने बतलाया ही मेरा  
 पुनर्ग्रहण कर मेरा होगा । ६२ ॥ ६३ ॥ सात्त्विकी मायाके साथ रहने जो आपने कहा, सो धरे साथ आपका

अयोध्यातर्गामग्रे वृक्षे प्रणि नेत्यमि । प्रवेशत मगरे हि सचिदानन्दमंशके ॥६३॥  
 नमस्त्वं परम्यजग विगुह्यवर्णीतम् । नृणां न्वया मेव मुक्ति मयूढात्मवर्जिता ॥६४॥  
 एवं ददन्त्या तम कृत रमे सुदृशम् । तन्मवं जगोधार मेषां च दिवाय हि ॥६५॥  
 कर्तव्यमप्यकृत्य कर्मात् तस्य हि तव निर्गुणस्य नमः । सचिदानन्दरूपेणः ॥६६॥  
 इत्य स्वयोपदिष्टा मे श्रुता मज्जानपेदिता । अह नस्या विवर्णे जगन्मुक्ता न संशयः ॥६७॥  
 इहे तामायण मये पञ्चषा मर दक्षितम् । एज्जदण्ड्याकृतं कपटं नदामज्जदम् ॥६८॥  
 ज्योत्स्नमयं यो वै कपटे हार विभक्ति हि । नमन्मुक्तः खणदेव भविष्यति नमोत्तमः ॥६९॥  
 देहगमायणं नाम तम यन्वधित स्वया । नेदशं कथित केन न कोऽप्यग्रे नदिष्यति ॥७०॥  
 मम प्रीन्योपदिष्ट हि स्वयंनद्वुनन्दम् । इत्य कोऽपि न जानाति ब्रह्मदानामराचरम् ॥७१॥  
 गृहं मयं सुदर्शनं मन्त्रं ज्ञानप्रकाशितम् । देहगमायणं चैतच्छ्रुणानातकापदम् ॥७२॥  
 इति श्रीतारकः श्रुता प्रत्यक्षं गायत्र्युक्तम् । विदेहतनवे साधिय धन्याजनि गजगामिनि ॥७३॥  
 मय्यजितनाम्ना बुद्ध्या न्याय मज्ज नपेदिता । विचिन्तयन् स्वयं नय दृष्टव्यां यथास्मितम् ॥७४॥  
 बुद्ध्या ज्ञानं मम ताने मेहजाकृतिरुताह । कथनंयमिदं देहगमायणं न कल्पयित् ॥७५॥  
 मय्यद्वुत्तमं शोक्तं तव प्रीत्या विदेहते । दानिकाय न दानार्थं न मित्रकाय शठाय च ॥७६॥  
 ममकाय विवर्णे परागमय स । मन्त्रितायातिक्रान्तिदकाय जहाय च ॥७७॥  
 कर्त्ता नतनु वै गृहं भविष्यति न संशयः । महत्से नमः कश्चित्ताम्यन्येनस संशयः ॥७८॥  
 नपेदितामरा हि मया ते मनुर्गणिम् । देहगमायणं चैतद्वृत्तिमृक्तिप्रदं वरम् ॥७९॥

[illegible]

इत्युक्त्वा राघवः सीतां पर्यङ्के मन्मथिहते । सुष्याप सीतया रात्रौ दामीमिर्वीजितः सुखम् ॥ ८२ ॥

इति श्रीमद्भक्तिकविप्रवरिचरितार्त्तने श्रीमदानन्दरामायणे आनन्दरामायणे विलासकाण्डे

देहगमावर्ण नाम तृतीयः सर्गः ॥ १ ॥

### चतुर्थः सर्गः

( सीताके विविध अलङ्कारोंका वर्णन )

श्रीरामदास उवाच

चतुर्नाभ्यवशिष्टायां निशायां रघुनाथकम् । उद्वेधनाथं सप्राज्ञं निशायावहिः स्थिताः ॥ १ ॥

वन्दितो मागधाः पुनः नर्त्तकश्च नटादयः । वादयामामुर्वाद्यानि नचतुश्चाप्मणेगणाः ॥ २ ॥

जगुर्लोकमीतानि स्तोत्राणि विविधानि च । प्राधानिकीं स्तुतिं श्रोतुः कलकण्ठैर्ननोरसैः ॥ ३ ॥

शिवेश्वर, पञ्चलचिन्मविनाशदशो दशम्भजा भगवती हि सरस्वती च

दशाष्टमोवापणा नव दिव्यदुर्गा देव्यः सुगन्तु नृपते तव सुप्रभातम् ॥ ४ ॥

भानुः जग्री इतवृषी गुरुशुकमन्दा गह्वः सकेतुरदिर्दिदितिरादिनेयाः

जयादयः फल्गु, पुरुषोत्तमेन्द्रो, रुद्रः क्रोतु मन्त्र तव सुप्रभातम् ॥ ५ ॥

पृथ्वी उल ज्वरन्मरुतपुष्कराणि समद्रपोऽपि भुवनानि चतुर्दशैव ।

शैला वनानि मरुतः परितः पवित्रा गङ्गादयो विदधन्ता तव सुप्रभातम् ॥ ६ ॥

दिक्पद्मेनदग्विल दिशिभा दिगीशा नगाः सुपर्णभुजगा नगरीरुचश्च ।

पुष्पानि देवगदनानि विलानि दिव्याम्यन्याहृतं विदधन्ता तव सुप्रभातम् ॥ ७ ॥

वेदाः षडङ्गमहिताः स्मृतयः पुराण काव्य मदागमपथो मुनयोऽपि दिव्याः ।

व्यासादयः परमकारुणिका ऋषयः गात्राणि वै विदधन्ता तव सुप्रभातम् ॥ ८ ॥

चंदानका निचाड सैन गुन्ड बल्ला दिया । यह देहगमावर्ण भुक्ति तथा मुक्ति दोनोंका फल देनेवाला है ॥ ८१ ॥

इतना कहकर रागचरित ने सीताके साथ रत्नजाटन पलङ्कपर मा गय और दक्षिणी पना झरने लगी । ८२ ॥

इति श्रीमद्भक्तिकविप्रवरिचरितार्त्तने श्रीमदानन्दरामायणे आनन्दरामायणे विलासकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासजी कहने लग — जब रात्र राहो रत्न बाकी रह जावो थी, तबो भावनाका जगानेके लिए बंदीबन्ध, मागध, मृत, नाथनवाली केपारने और नर आदि लोग रगिजालते बाहर आकर बाजे बजाते थे और नर्तकों नाचना थो ॥ १ ॥ २ । अन्य लोग मा मङ्गलगायन विविध प्रकारके स्तोत्र व उनका अपने कोमल कण्ठमे प्रान बालका स्तुतिगी किया करने व । वे कहने थ ॥ ३ ॥ हे नृपते ! समस्त विधनसमूहको जष्ट करतमे निगुण विघ्नधर ( गणेश ) दशरामजी भगवती पार्वती, सरस्वती, अग्निमानकी मूर्ति अष्टभैरव-गण, ती दिव्य दुर्गाएँ तथा अगस्त्य देवतागण व सब जयका प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ४ ॥ गुरु, चंद्रमा, मङ्गल, बुध, पुन शुक्र, शनि गह्व, वेद, विश्व तथा अतिरिक्त पुत्र वंशदि देवता, अष्टा दिग्गु और भद्रेश व सब आपने प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ५ ॥ पृथ्वी उल आगे वयु तडाग, सप्त पर्वत, चतुर्दश भुवन, सैन्, वन और भुवनविस्मात गङ्गा आदि नदिगी आपका प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ६ ॥ समस्त दिक्पद ( दशों दिशाएँ ), दिग्भज, विष्णु नाम, सुपर्ण, वरुणोना लन्तारं पवित्र हवालय और निरिकन्दराएँ ये सब सर्वदा आपका प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ७ ॥ षडङ्ग साहित्य चारों वेद, स्मृति, पुराण, काव्य, अष्टमे अष्टमे गताथ साहाय्य आदि ग्रन्थ, व्यास आदि दिव्य मुनिगण तथा ऋषियोंके गात्र आपका प्रभात मङ्गलमय करे ॥ ८ ॥

इति वदित्तैः सूर्यः स्तोत्रैर्भागादभिः स्तुतः । नानाप्रतिमभूदेव दूर्वाणां पञ्जरस्थितैः ॥ ९ ॥  
 स्तुतो चादित्रनिनर्दनगवायध्वनैरपि । सुप्रबुद्धो बभूवाय गमचन्द्रः सर्वतया ॥ १० ॥  
 आदौ प्रबुद्धा मा भीमा पञ्चबुद्धो ग्युतनः । रामः सुरग्युताश्वानं सानर सार्धं गुरुम् ॥ ११ ॥  
 चित्तामणिं कामधेनुं चित्तवामास चैवमि । ततः सोडाग्रे स दूर्गां गतां च तीर्थवृत्तपत् ॥ १२ ॥  
 चित्तवामास कौसल्यां गुरुपत्नीं स्वमन्त्रम् । ततो नन्वा गमचन्द्रं दित्यामृतम् ॥ १३ ॥  
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं कमान् । दंष्ट्रुद्वि चक्रागव रामचन्द्रः सविस्तरम् ॥ १४ ॥  
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमान् । हृत्पदं च त्रैलोक्येता कृत्वा देवार्चनं गृहे ॥ १५ ॥  
 ददौ दानान्यनेकानि मातृणेभ्यो यथाक्रमम् । एतन्मित्रनरे स्नात्वा सोऽपि द्रव्यं प्रपूज्य च ॥ १६ ॥  
 देवान्तरनीन्द्रिजाश्च स्वाध्वर्तन्या यथाक्रमम् । ततो नन्वा गमचन्द्रं नृपायै यन्ननः स्थिता ॥ १७ ॥  
 अथ रामो वसिष्ठस्य मुवात्पौराणिको कथाम् । सातथा मातृभियुक्तो बहुभिश्च सहजनेः ॥ १८ ॥  
 मध्यकं श्रुत्वा कचित्तेन पूजयामास तं गुरुम् । ततो नन्वा गुरुं रामो गुरुपत्नीं च मानम् ॥ १९ ॥  
 सर्वां मारुतं विशोभं पट्टितान् वैदिकान् गुनीन् । योगनिष्ठान् योगिन् विप्रान् ज्योतिर्विद्वन्धरा ॥ २० ॥  
 मामां रक्षांस्तार्किकांश्च मन्त्रशास्त्रविशारदान् । धर्मशास्त्रवेदार्थं ब्रह्मज्ञान्यान् वयोविकान् ॥ २१ ॥  
 पूजयामास धीगमः सातथा प्रणमाम नन् । अथ साता द्वेनपात्रे पूजोपकरणार्थं सा ॥ २२ ॥  
 गृहीत्वा स्वमूर्तीभिश्च नन्वा सुभिमर्षयत् । न तोययत् सः संपूज्य पञ्चार्चनरतिपिणैः ॥ २३ ॥  
 विवित्रैः पायभासैश्च सा तां धेनुमर्षयत् । ततः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रार्थयान्नम जानकी ॥ २४ ॥  
 कामधेनो नमस्तुभ्यं पञ्चान्नादीनि वेगतः । दिव्यान्नानि भूतुरभ्यो तार्कादिभ्यस्त्वमर्षय ॥ २५ ॥  
 इति सा प्रार्थनां कृत्वा कामधेनोस्तु जानकी । तद्वयो रुक्मबाजाणि स्थापयामास कौटिहा ॥ २६ ॥

इस प्रकार बहुतसे बन्दीजन, भण्ड, मत्त आदि तथा पाण्डु परिक्षिप्तक मृदु वचनो द्वारा जगद्ये जानवर संताके साथ-साथ रामचन्द्रजी साकर उठ जात थे ॥ ९-१० ॥ चन्द्र सत्ताजी उठती, फिर रामचन्द्रजी जागते थे । साकर उठनेपर रामचन्द्रजी देवताओंका, मुनियोंका, पितृका, मनाको मरु, गृह ( वसिष्ठ ), चित्तामणि और कामधेनुकी मन ही मन स्मरण करने लगे । उन्होंने सातजा भा दूर्गा, गङ्गा, सरस्वती, गङ्गा ( दशरथजी ) अपनी माता गृहपति प्रदत्ता और अपनी नाम जोनन्ता आदिका सबरे सों उठकर स्नान किया करती थीं । इसके अनन्तर नमनानुवक रामचन्द्रजीकी प्रणाम करके वे अपन नित्यकर्मम लग जता थी ॥ ११-१२ ॥ उधर रामजी भी जोबाद बुद्धि निष्ठ होकर अच्छा तरह दासों करने थे । १३ । तदन्तर रामजी पर नाकर गानादि निष्कणित कर धरपर पीट जान और अग्निहावविधिक साथ देवताओंका पूजन करते थे ॥ १४ ॥ तब बह्मजीके राज इन थे । इसी बीच माताजी भी स्नान करके दूर्गपूजनसे निवृत्त होकर देवता अग्नि, ब्राह्मणों और जोमन्ता आदि साधुओंको क्रमशः प्रणाम करके पञ्चान् रामचन्द्रजीकी परचन्दना करती और उनके पास जा बैठती थीं ॥ १५ । १६ ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी गृह वसिष्ठके मुखसे पुराणोंकी कथा सुनने थे । उन समय सब माताजी, भाई तथा मित्रमण्डल रामचन्द्रजीके साथ ही रहता था । १७ ॥ तब सावधानीके साथ कथा सुनकर गम गुरुवसिष्ठकी पूजा करते थे । फिर गृह, गुरुपत्नी तथा अपनी माताओंका प्रणाम करके माताओं, ब्राह्मणों, पंडितों, वैदिकों, मुनियों, जन्निष्ठ तथा तप निष्ठ, ब्राह्मणों, ज्योतिषियों सांसारिका, तार्किका, मन्त्रशास्त्रम निपुण विद्वाना और वयोवृद्ध ब्रह्माम्त्रियोंकी साताके साथ-साथ रामचन्द्रजी विविध पूजा करने थे । इनके पञ्चान् साताजी एक लवणके पात्रम पूजनको सामग्रियों लेकर । १८-२० ॥ रुक्मियोंके साथ सुरभा ( कामधेनु ) की पूजा करती थीं और उनके पक्षवान तथा विषय रातेसे तैयार किये गये हावप्यात्रोंको खिलाकर उसे प्रसन्न करती थीं । फिर प्रदक्षिणा करके इस प्रकार कामधेनुकी स्तुति करती हुई कहती थीं—॥ २१ ॥ २४ ॥ हे कामधेनो ! आपकी

दिव्यान्नेः परिपूर्णानि चक्रा सुगमिस्त्वरे ।

ततः शीघ्रं हेमवार्त्तशृङ्गाभानि पृथगजवान् ॥

परिवेषणार्थं सन्तुष्टा ययौ नूपुरगजिनः ॥२७॥

एतस्मिन्नन्तरे रामधोपाहागर्धमादगतु । विप्रनिष्ठान्मन्त्रिणश्च ममहूर मङ्ग्यशः ॥२८॥

उपाविशद्भोजनस्य शालायां तैः समन्वितः । रुद्रमण्डले तु मर्ये ते तैर्मरे देवमा. स्थिता. ॥२९॥

पीतकीशेषरुक्माभेपिना रुक्ममण्डनः । पूजिता गदवेणापि गन्धमन्त्रादिभिर्बुद्धा ॥३०॥

सुभी रुक्मर्षिपदसु रुक्मपात्राणि च पृथक् रंभावन्त रिविचित्रायां भूमौ न्यस्तानि तन्पुरः । ३१॥

हेमोद्भवानि पानीयपात्राण्यपि पृथक् पृथक् । सोमपात्रानि चित्राणि रत्नदीपयुक्तानि च । ३२॥

स्थापयामासुः श्रीरामवन्द्युपन्यस्वगान्विताः । एतस्मिन्नन्तरे सर्वैः श्रुतो मनुजनिस्वनः ॥३३॥

नूपुराणां किकिर्गीर्णानां ककणानां मनोरमः । रत्नवीर्यकमालानां धर्षणादुन्धितो महान् । ३४॥

तं मनुलस्वनं श्रुत्वा कम्पायं श्रुते स्वनः । इति सदिग्धचिन्ताम्ये व्यग्रनेत्रैस्तेस्ततः । ३५॥

अपश्यन् आकुणाद्याभतावर्णानां न्यलोकयन् । तडित्पूतोपमां दिव्यां शनकोदिरविमषाम् ॥३६॥

धर्म्याशुलिषु सर्वत्र पादयोर्विविधानि च । मन्मथकचलपनकादिचिह्नान्युज्ज्वलानि च ॥३७॥

ददशु रत्ननित्राणि हैमाभ्यामरत्नानि ते । तत्र ऊर्ध्वं किकिर्गीर्णानां पादपोर्नूपुराणि च । ३८॥

शृङ्खला विविधा रम्यास्तथा गुर्जरदेशजाः । नानानूपुरमेवाय ककणान्युज्ज्वलानि च । ३९॥

रत्नककणशर्भाणि दिव्यरत्नकोटयानि च । मदृशुप्ते हि मीतावा मणिकयचित्रितानि च ॥४०॥

तस्याः कटया ददशुप्ते पीतकीशेषमुज्ज्वलम् । सुक्त जालरुक्मननुपुष्पराजिभिर्जितम् । ४१॥

नवीनं गतिर्वाचन्यान्वहतमंजुलनिःश्वतम् । आदर्शैर्विधर्मयुक्तं गुणवामोदमोदितम् ॥४२॥

बक्षोपरि ददशुप्ते रशनां रुक्मनन्तुनाम् । रत्नकङ्कुगशर्भाभिः किकिर्गीर्भादराजिताम् ॥४३॥

नमस्कार है कृपा करके आप साधु-ब्राह्मणोंके लिए प्रवृत्त तथा दिव्य लला प्रबन्ध कर दे । ज नवीजी इस प्रकार प्रार्थना करत कराहा मुद्रणक पात्र कामधे, क पास भोगवाकर रखवा दती थी और कामधेनु उन सबका विविध प्रकारके पकवानोस भर दिया करती थी । उही हेमपात्रोभसे सब परार्थ ले लेकर युवतियों नूपुरके शब्दसे उस रत्नमण्डपका शब्दावमान कन्ती हुई अभागिनोका परीमती थी । २८-२७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी अपने साथ हजारों ब्राह्मणों तथा हित-मित्रोंको सादर बुलाकर पाकशालासे मुद्रणक पौडापर बैठ-समय पाल कोणय रहत तथा मुद्रणसे विभूषित विप्रमण एवं मित्रमण्डपका रामचन्द्रजी

अनेक उपचारोस पूजन करत थे ॥ २८-३० ॥ वही मुद्रणको निपाहयोपर घडोमें जल भर भरकर रखी था । पास ही जल धनके लिए छ ट-छोट बहुतसे मुद्रणक बनत रखे हुए थे । उनको भटपट उठा उठाकर रामचन्द्रजीकी आदृत्यपूर्ण लोकर उनके सामने रख दिया । इतनाम सबको एक मनहूर ध्वनि सुनाई दी । जो नूपुर, किकिणी और ककणके मयथसे निकला हुआ शब्द मानूम पड़ता था ॥ ३१-३४ ॥ उस मञ्जुल मल्लका धुनकर यह कैसा शब्द सुनाई दे रहा है । इस तरह सोचते हुए व्यग्र नेत्रासे लोग उधर-उधर देखने लगें ॥ ३५ ॥ ३६ . पृष्ठ देर बाद लापान साताजोंको आते देखा । वे अनेक विभूत्युज्ज्व एवं सेकहो सूयोंकी भांति प्रकाशमयी थी । जिनके पाशोंको अगुनियोंसे मञ्जुली-कमल आदिके आकारवाले देहाव्यमान आभूषण परे थे ॥ ३७ ॥ रत्नोंके चमकते चित्र विचित्र स्वर्णके आभूषण मुख भित्त हो रहे थे । किकिणीके ऊपर दोनों पैरोंसे नूपुर थे । उसके ऊपर विविध प्रकारका मुद्र मेषलागे पड़ा थी । अनेक सरदक नूपुर और नाना प्रकारके उज्ज्वल ककण हाथोंसे पड़ हुए थे । सीताजीकी कमरन एक रेशमी बस्त्र था जिसमें मातिकाकी झालर लगे हुई थी और मुद्रणके सारे म फूल-पत्तीकी चित्रकारी बनी हुई थी ॥ ३८-४१ ॥ गतिकी चंचलतावश उससेसे एक मधुर ध्वनि निकल रही थी । उनको साड़ीमें जगह जगह मयूर, सिंह, वृष,



कैटिमिहृष्यान्नर्गाचित्रादिचित्रनाम् । पान्थकहर्मिभान्कृष्णमाण्डप्रमण्डिताम् ॥४४॥  
 तस ऊर्ध्वं ददृशुस्ते पदकान्युज्ज्वलानि हि । रत्नकलापमान्येषु हैनान्गमणानि च ॥४५॥  
 मङ्गाचनमृगलानि काचद्रुमयुतानि च । नान्यस्तन्निविचित्राणि मुकुटमण्डितान्यपि ॥४६॥  
 नानामाणिक्ययुक्तानि दीप्तिमन्पुञ्जस्त विहि तन् ददृशुस्ते दिग्गान् रत्नमहापद्मविचित्रिनाम् ॥४७॥  
 त्वपरन्त्युतान्हातामृताहाराम् मृगलाः । मृतिनाम् रुक्मजत्रय चरमाला विचित्रिताः ॥४८॥  
 पुष्पमालाः कांचनजः मारिका रत्नमण्डिताः । रुक्मगुटान्त्रिका माला हेमजात्रिकलाञ्जिताः ॥४९॥  
 प्रवालमणिमुक्तामम्भिश्चित्राश्चित्राश्चित्रिताः । चतुर्भुजकलिका मरुता हेममालिकाः ॥५०॥  
 कण्ठे मंगलवृक्षं च पेटिका रत्नभूषिता । कांचनानां मुखमण्डलं मणोनां विविधानि च ॥५१॥  
 गुच्छैः कण्ठभूषणानि मुक्तागुच्छपुतान्यपि ददृशुस्ते हि मीनायाः कण्ठे हेमन्यनेकशः ॥५२॥  
 रत्ननामदृशान्येव ग्रीवायां भूषणान्यपि । प्रवालमणिमाणिक्यपरचिह्नान्पुञ्जकानि च ॥५३॥

मुक्तागुच्छान् कांचगुच्छान् प्राणगुच्छैर्विवित्रितान् ।

प्रवालमणिगुच्छाश्च

रत्नपुष्पादिगुक्तितान् ॥५४॥

ततो ददृशुस्ते सर्वे धातुलकचकचुकीम् । हेमन्तुमवा चित्रा मुक्तामाणिक्यगुक्तिताम् ॥५५॥  
 आदर्शविवसयुक्तां पुष्पार्जिविराजिताम् । मयूरशुक्लशृङ्गं लवणैस्तनुनिर्मितैः ॥५६॥  
 चित्रितां श्रमषमणाद्रौ मलयतां ददं ततो । ततो ददृशुर्भुजयोः केयूरे रत्नमण्डिते ॥५७॥  
 वज्रकंकणसादृश्ये हेममाणिक्यनिर्मिते । रत्नविशचित्राश्च वृजयोः पेटिकाः शुभाः ॥५८॥  
 हेमदन्तुमवर्तवमानगुच्छैः सुमण्डिताः । प्रवालमणिमुक्तानां नानागुच्छैरुक्ता अपि ॥५९॥  
 तदधः करयोः सर्वे ददृशुर्भूषणानि ते । रत्नमाणिक्यमुक्तानिश्चित्रिणी हेममम्बरी ॥६०॥  
 करचूडी दीप्तिमती हेमपुष्पादिचित्रिणी । काचकंकणधरणी चन्द्रवर्षावर्मा निष्ठा ॥६१॥

व्याघ्र और मृग आदिके चित्र बने थे । पान्थ, कृष्ण, हरे, नील और काले मणि स्वाकस्थानपर लगे हुए थे ॥ ४२-४४ ॥ उनके ऊपर लामान देता कि भस्मिभालके आभूषण पड़े हैं । कहीं सोनकी तनीरें हैं, कहीं कांचन काज खरा है और कहीं तरहरतनुक रत्नोंकी सजावट है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कई तरहक मणियोंक आभूषण देखायमान हो रहे हैं । नी रत्नीय जडा हुआ हार है । मातिकाका माला है । सोनकी जंजीर है । मातमाला, गुच्छ एवं रत्नका मातम पड़ा हुआ है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ मृगोंकी माला, रुक्मकी माला, रुक्म और गुच्छाका मिश्रित माला, मुक्तामणि प्रविनका माला, पक्षाल तथा अन्यान्य मणियोंसे मिश्रित माला चपाकी कलिक मक्षान बने हुई मुवर्णके भाजा, पेटिका मंगलसूत्र, रत्न-उत्तित पेटो, मुवर्ण तथा वृक्ष मणियोंके बने हुए गुच्छ और मातियोंक मुक्ताको आगेन साताके गलेमें देता ॥ ४९-५२ ॥ डीक कण्ठक ममान हास लका धाराक आभूषण भी दाख पड़ते थे । उनमें भी प्रवाल और मणि माणिक्य आदि लगे थे । मातियोंके गुच्छे कांचके गुच्छ और रत्नके गुच्छोंसे वे रत्न-विरंगे मालूम होते थे । इसके अन्तर लामान सोनजडीकी माली देता । वह भी सुवर्णके तारोंसे बना, मुक्तामणि-माणिक्य आदिसे सजा और कलास गुम्फन था जिसमें मयूर और तोनोंक चित्र बन थे, ऐसे वृक्षोंसे चित्रित एवं चन्द्रविन्दुओंसे भोगी तथा अग्र-चिपटा हुई बड़े सोनगी । इसके बाद सातार रत्नमण्डित कागुवन्दपर लामोंकी लट्ट पड़े ॥ ५३-५७ ॥ यह भी विचित्र प्रकारके रत्नोंसे जड़ित थी और उनकी भाष से चित्र-विचित्र मालूम दनी थी । फिर जिसमें जडीके काज किये हुए थे सोनका उस कमन्टिकापर लामाकी लट्ट पड़ी ॥ ५८ ॥ उसमें भी सुवर्णके तारोंके बड़े-बड़े गुच्छ लटक रहे थे । जगह-जगहपर प्रवालमणि-मुक्ता आदिकोंके गुच्छे लटक दाख रहे थे ॥ ५९ ॥ फिर दाना हाथाम जो और आभूषण थे उन्हें लंगोने देखा । वे भी रत्न-माणिक्य और भीती आदिसे चित्रित सुवर्णके बने थे ॥ ६० ॥ हत्योके दोनों कंकण सुवर्णके पुष्पोंसे सजे हुए

तदुक्तं चः ककुपानि हेमजानि घनानि च । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिधित्रिजान्मुञ्जलानि च ॥६३॥  
 प्रवालमणिमुक्तानां कण्ठावाशिचित्रितान् । कर्णयोः सारिके दिव्ये ह्यर्वायो रत्नमण्डिते ॥६४॥  
 तदूर्ध्वं ककुपान्येव पुष्पवल्ग्वकिनानि हि । दन्ताज्जुपमार्दने रत्नहेमोज्ज्वलानि च ॥६५॥  
 अमुलीषु ददृशुस्ते मुद्रिका रुक्मनिर्मिताः । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिर्नीलपारकतैरपि ॥६६॥  
 प्रवालचन्द्रकान्तैश्च सूक्तैर्विचित्रितैः । नानापुष्पोपमा दिव्याः प्रतिपर्वयमाभिराः ॥६७॥  
 ततो ददृशुः सीताया रम्यं जण्डेतिमोज्ज्वलम् । दिव्यं मयूरं चित्रं च वररुक्मचिनिर्मितम् । ६७ ।  
 मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्विराग्नैः । सुमण्डितम् । लविर्नैर्निकादीनां वरगुच्छैः सुवेष्टितम् । ६८ ॥  
 ततो ददृशुः सीतायाः कर्णयोर्मणानि ते । मकरध्वजमारुह्ये तादृके रत्नचित्रिते ॥६९॥  
 मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्गुम्फिते सोज्ज्वले वरे । रत्नपुष्पादिभिधित्रैश्चित्रिते रश्मिमास्वरे । ७० ॥  
 ततो भ्रमरिके दिव्ये रुक्मरत्नविचित्रिते । मुक्ताभिर्गुम्फिते रम्ये हेमपुष्पाणि च तथा ॥७१॥  
 कर्णयोः मृत्तलाश्चित्रा ददृशु रुक्मनिर्मिताः । मुक्तागुच्छैर्गुम्फिताश्च रत्नमाणिक्यमण्डिताः ॥७२॥  
 आकर्णायामां च सीमन्तपर्वन्त मालयाश्रयोः । हार्त्तदूकमालानि माणिक्यमण्डितानि हि ॥७३॥  
 मुक्तागुच्छैर्गुम्फितानि वैदूर्यचित्रितान्यपि । तनून्तदूर्ध्वं सीताया ददृशुः शिरसि द्विजाः ॥७४॥  
 सीमन्तरोचरे याम्ये केतोषु सञ्चिरात्करो । रुक्मज्जो रत्नवैदूर्यमणिमुक्ताविचित्रितौ ॥७५॥  
 नीलकाशपीरुकांतश्च निद्रमैरतिशोभिनी । चन्द्रयूगाविव स्वायम्भामा दारयतो दिशः । ७६ ॥  
 निद्रिले तिलक रत्नमणिमुक्ताविमज्जितम् । दैवं दिव्यमुज्ज्वलं च कोटिदूर्ध्वमवधम् ॥७७॥  
 ततो ददृशुः सीतया मुक्तहार्महेमोज्ज्वलम् । नागरत्नविचित्रं च सर्वाभूतिनकावधि । ७८ ॥  
 वृद्धावणि च ददृशुस्ते जनकेन समर्पितम् । नानारत्नविचित्रं च मुक्तागुच्छविराजितम् ॥७९॥

थे । कौशकी बनी हुई बुढ़ीरक मध्यम वे सूर्य और चन्द्रमाकी नाई म लूम पड़ते थे ॥ ६१ ॥ उनके ऊपर-  
 नीच सुवर्णके माट म ट कड़ पड़े थे , वे भी नाना प्रकारके रत्नसे विचित्र दाहि घारण कर रहे थे ॥ ६२ ॥  
 उन्होंने ऊपर प्रवालमणि मुक्ता आदि रत्नोंसे एक-एक दिव्य सारिकों बना थी ॥ ६३ ॥ उनके भी ऊपर  
 रत्नविभिन पूनी और लताआसे काटत कंकण पड़े थे ॥ ६४ ॥ उमलियोद सुवर्णकी बनी रत्न, माणिक्य,  
 नीलम, मरकत भाँप आसिसे आटित अन्क आँडेवां थी । वे भी प्रवाल, चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त आदि  
 रत्नआसे विचित्र म नुम हुआ थी ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर सब लगान सीताकी नासाभणिकी देखा,  
 जिससे एक दिव्य स्वर्णमयूर बना हुआ था । वह भी नाना प्रकारके मणियोंसे अलंकृत था ॥ ६७ ॥ उससे भी  
 मणि-माणिक्य और माणिक्यके भूषण लटक रहे थे ॥ ६८ ॥ इसके बाद ज्योति सीताके कर्णभूषणोंको देखा । जिनसे  
 मकरध्वजके सदृश विविध रत्नोंसे चरित शुभके थे । उनसे भी मणि-माणिक्य और वातिदोष लुब्धे लटक  
 रहे थे । रत्ननिर्मित पुष्पोस वे मूरके समान ददृश्यमान हू रहे थे । ६९ ॥ ७० ॥ फिर ज्योति सीताके कानोंसे  
 पड़ी दो भ्रमरिकामोको देखा । वे भी दूर्ध्वर्णकी बनी तथा रत्नोंके जड़वसे विचित्र विचित्र मनुम होती थीं  
 ॥ ७१ ॥ फिर उन्होंने सीताकी उस रत्नगुच्छावलिदेखा, जो सुवर्णकी बनी तथा रत्नजटित थी और उसमें  
 भी माणिक्यके गुच्छे लटक रहे थे ॥ ७२ ॥ कानसे लेकर सीमन्त पर्वन्त ललाटके जगल-जगल स्वर्ण मणिपत्रके  
 बाधूषण हारके समान मालूम पड़त थे ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर सबन सीताके दन्तकी और देखा, जहाँ केशसे  
 सूर्य और चन्द्रमा दिखाई पड़ने थे । वे भी सुवर्ण-रत्न-वैदूर्य मणि-मुक्तासे विचित्र थे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ नीलम कतमार  
 कोतादिक मणिआसे वे कतिवय जामित हो रहे थे , वे अपनी अनुपम कानिसे हमरे दूर्ध्व-चन्द्रमाके समान दसों  
 दिशाओंसे प्रकाशित कर रहे थे ॥ ७६ ॥ ललाटम रत्नो और मणि मुक्ताओंसे बना हुआ तिलक था । वह भी  
 सुवर्णका बना था और कोटि सुवर्ण समान उसका प्रकाश था ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने सीताके सीमन्तमे  
 प्रतिष्ठित सीतामात्र एक बुद्धामणि देखा, जो वेणीसे लेकर तिलक पर्वन्त अपनी छटा दिशा रहा था ॥ ७८ ॥

ततो ददशुः शिरसि मुक्ताजालानि भूसुराः । हेमस्ततन्तुमुफितानि रत्नपुष्पसुतान्यपि ॥८०॥  
मणिर्वैद्यकारणीरविद्रुमैश्चित्रितानि हि । तदूर्ध्वं पुष्पजालानि सुगन्धीनि व्यलोकयन् ॥८१॥  
ततो वेण्यां भूषणानि ददृशुस्ते नराणि हि । नानावभूषणमान्येव माणिक्यचित्रितानि हि ॥८२॥  
पल्लवांतरवर्तीन्यतिदीप्तयुज्ज्वलानि च । हेमस्तन्तुमयान् गुच्छान् मुक्ताहारविमिश्रितान् ॥८३॥  
लम्बमानान् ददृशुस्ते मणिमाणिक्यसंयुतान् । वेण्यग्रेमस्थितान् रम्यान् पुष्पापाडममन्वितान् ॥८४॥  
एवं सीतां ददृशुस्ते श्रमन्त्यस्तविभूषणाम् । सर्वालङ्काररहितां तां द्रष्टुं कोऽपि न क्षमः ॥८५॥  
दिव्यालंकारस्तनानां प्रभया हतलोचनाः । वामहस्तेन पात्रं च दत्वा दक्षिणसंकरे ॥८६॥  
दधानां पञ्चशरणां रत्नोत्पलकरां वराम् । पद्मास्यां पञ्चपत्रक्षीं पञ्चगर्भस्वरूपिणीम् ॥८७॥  
दिव्यकर्पूरगन्धैश्च चन्दनैरपि चर्चिताम् । स्फुरन्मजीरशरणां दिव्यकंकणमण्डिताम् ॥८८॥  
स्वपदालक्तवर्णेन गतिं दर्शयतीं निजाम् । रत्नागदधरां सीतां ददृशुस्ते द्विबाहवः ॥८९॥  
गजेन्द्रगमनां रम्यां दिव्यपुष्पैः सुशोभिताम् । दिव्यमंदाकसुममालाभिश्च सुशोभिताम् ॥९०॥  
कस्तूरीकृततिलकां कुंकुमेन सुशोभिताम् । हरिद्रया कज्जलाद्यर्चमण्डितां च स्मिन्ताननाम् ॥९१॥  
इति दृष्ट्वा जानकीं तेऽभूवन् वित्रोपमास्तदा । आत्मानं न विदुः सर्वे सीतापौर्णद्वयविमिताः ॥९२॥

इति श्रीपातकोटिरामचरितातमंत्र श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे

सीताञ्जलकारवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥



इसके अनन्तर उन राजाओंने शिरपर मुशोभित मोतियोंको देखा, जो मुवर्णके तारमें गुंथे थे और उनके बीच-बीचमें रत्ननिर्मित पुष्प पत्रे हुए थे । ७९ ॥ ८० ॥ वे भी मणि वैद्यकारणीर-विद्रुम आदिस चित्रित थे । उसके बाद उनके ऊपर लगे हुए सुगन्धित फूलोंको देखा ॥ ८१ ॥ तदनन्तर वेणीमें लगे हुए सुन्दर आभूषणोंके ऊपर लगे हुए अतिशय दीप्तिमान् हो रहे हुए सुवर्णके तारोंसे बने गुच्छ मातियोंके हारसे मिले तथा मणि-माणिक्यसंयुक्त थे । वे वेणोंके अवभागमें लटक थे और उनमें नाना प्रकारके फूल गुंथे हुए थे ॥ ८२ ॥ ८४ ॥ सीताने बोलके इतने बहुतसे आभूषणोंको निकाल दिया था । फिर भी सब प्रकारके अलङ्कारीको धारण किये हुएके सहस्र देखनेवाली सीताको लोगोंने देखा नहीं, किन्तु कोई भी अच्छा तरह नहीं देख सका ॥ ८५ ॥ क्योंकि उन अलंकारोंके प्रभाके आगे लगती दृष्टि ही नहीं ठहरती थी । सीताके बाएँ हाथमें एक पाद पा और दाहिने हाथमें कमल था ॥ ८६ ॥ उनमें पञ्च कमलसरासे थे । रत्नोंसे बने हुए कमलकी नाई सीताके हाथ थे । कमलक समान मुख, पञ्चपत्रके समान आँखें तथा करलीके लम्बेके मातरी भागके समान कीमल स्वरूप था । दिव्य कर्पूर तथा चन्दनसे उनका समस्त शरीर चर्चित था । समझम करता हुआ मंजीर पाँवोंमें था और दिव्य कंकण सीताके पाँवोंमें पड़े थे । ८७ ॥ ८८ ॥ रत्नवर्णके शरणोंसे वे अपनी मन्द गति दिखा रही थी । रत्ननिर्मित विजायड हाथमें पड़े थे । इस प्रकारकी सीताको लोगोंने देखा ॥ ८९ ॥ गजेन्द्रके समान उसकी मन्द गति थी । दिव्य पुष्पोंसे मुशोभित तथा दिव्य मंदार चर्चित मालाओंसे अलंकृत होकर करतूरोंका तिलक लगाये हुए थी, उनकी आँखोंमें काजल लगा था और वे मन्द-मन्द मसका रही थीं । इस प्रकारकी सीताको देखकर देखनेवाले चित्रलिखित जैसे हो गये और उनके सौन्दर्यसे विस्मित होकर वे सब अपने आपको भूल गये । ९०-९२ ॥ इति श्रीपातकोटिरामचरितातमंत्र श्रीमदानन्दरामायणे 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः  
( रामसीताका जलविहार )

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता क्षणेनैव चकार पश्विषणम् । देमवात्रेण मर्षेण पक्षाभिविधैर्मुदा ॥ १ ॥  
कापधेनुहर्षैश्च मण्डकान् पूर्णपूतितान् । वटकान् फेनिकांश्चापि पायमान्युज्ज्वलानि च ॥ २ ॥  
पण्डकान् लङ्दुकांश्च कृष्णान्दण्डकान्स्तथा । मुष्टपुनन्दुकुतान् दारिणीं घृतं मधु ॥ ३ ॥  
पृथक्कान्तद्रोणेषु जानकी पर्यवेपयन् । शर्कराः क्षेतर्णाश्च नदं गण्डशर्कराः ॥ ४ ॥  
मणिचयुपचारैश्च संभूतं तक्रमुत्तमम् । घृतपाचितशाकाश्च क्षुद्रक्षुद्रा कविप्रदाः ॥ ५ ॥  
तिलवस्मिन्नश्चटकानार्द्रकं नीजपूरकम् । आज्ञार्दानां रगांश्चापि रभादानि कलान्यपि ॥ ६ ॥  
एवमादीन्यनेकानि चोष्यन्नि विविधानि च । तथा नेष्टानि पेयानि जननी पर्यवेपयन् ॥ ७ ॥  
वतो रामः महन्मित्रैः कथां कुर्वन् सुमेन सः । अकरोदुपहारं च कण्ठदि विधाय सः ॥ ८ ॥  
सर्वेषां निजहस्तेन ददौ तावुलमुत्तमम् । स्वयं भुक्त्वाऽथ तावुलं वापायि पश्विषणसः ॥ ९ ॥  
बद्ध्वा वस्त्राणि सर्वाणि दृष्ट्वादर्शे निज मुत्तम् । अकथं शिविकां दिव्यां मुक्तागुच्छविगठितम् ॥ १० ॥  
हैमी रत्नादिभिश्चित्रां ययी निजगृहाद्वदिः । चन्दुभिः सचिवैर्गिरैर्मर्म्भिः सर्वत्र देशितः ॥ ११ ॥  
स्तुतो वन्दिजनैः सर्वैर्ययी स जानकीगृहम् । तत्र नन्वाऽथ कौमल्यां तथा मानयथाक्रमम् ॥ १२ ॥  
आशीर्वादिभिरुत्तमभिर्ययी रामः समां वगम् । तत्र विहामने स्थित्वा स त्रिभिर्नक्षत्रैर्गिरादिभिः ॥ १३ ॥  
राजकार्याणि सर्वाणि चकार नीतिमतरः । शृङ्गाम राज्य धर्मेण बुद्धिमाध्याकलोचनः ॥ १४ ॥  
आर्क्षन्वा स्थितिं सर्वं स्वराज्यस्य च सर्वथा । शृङ्गाम राज्य धर्मेण गण्यो दीपलोचनः ॥ १५ ॥  
अथ सीतोपहारं स्वसर्गाभिर्योभिलादिभिः । देवगणां कामिनीभिः स्वमृधिश्वकरोन्मुत्तम् ॥ १६ ॥  
कण्ठदि विधाय स भुक्त्वा तावुलमुत्तमम् । परिधाय हविहर्म्यं तथा रत्नां तु कञ्चुकां ॥ १७ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे मित्र ! इनके अन्तर मन्त्राने क्षण भरमें सबके अर्थ रस्य हुए सुवर्णके पात्रोंमें विविध प्रकारके पकवान परोसे । वे पकवान काष्ठ, मुक्त, दान, लवण, निषे ह्वा थे । उनमें मण्डक, पूतनपूत, वटन फेन, दण्डका बनी सात खाति, पण्ड, लङ्दु, कुम्भ, पण्ड, निष्टा, बट, दूध घो, गह्वर अदिकोंका जानकी ने ने अत्यन्त प्रीतिमिलित पात्रोंमें परोसा ॥ १-८ ॥ मर्षेण गण्डक, लाज गण्डक, जीरा मिले आदि समाला डाडकर बना हुआ राज्या, यम छोड़ हुए ताना प्रकारके शाक, चटनी तिलकी बना हुआ टिकिया, मुक्ता वाजपूरक, अमक रस, कम आर्द्रक फल, रसा प्रकार नूतने लायक तरह-तरहके अन्धार, चानर लवक जिनका हुआ तरहकी चटनी और यनक लायक तन्मई आदि वस्तुओंको मानाजाने परोसा ॥ ४-७ ॥ इसकी प्रीति राजावदत्ताने मित्रोंके साथ बंधक-जुत हुए भावनेकिया और हाथ बाकर सबका आगे हाथसे पान दिया । फिर स्वयं भी पान खाया और कपड़े बदले ॥ ८ ॥ १॥ इसके बाद सब प्रकारके अन्न-पान बोधकर आशुतेम मुख प्रका और मानिलेके गुच्छामे सजाई हुई पालकोपर सवार हुंकर घासे बाहुर निकले । बन्धव, मन्त्र, मित्र तथा दूत, वे सब चरी औरसे रामचन्द्रजीको घेरे हुए थे ॥ १० ॥ ११ ॥ वदोजन गन्धध भगवान्की स्तुति करते चलते थे । इस तरह मन्दकी अपने साथ लिये हुए वे मानके भवनमें जा पहुँचे, वही राजा कौमल्या तथा अन्य मन्त्राओंको आगम करके उनसे आशीर्वाद लिय और उन मानाका भा साध लिय हुए सभामवनमें पहुँच । वही मन्त्रिण तथा लक्ष्मणदिक आताओंके साथ मिहामनगर में ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर राज्यमन्त्राचो समस्त कार्यको खूब अच्छी तरह सोचविचारकर किया । रामचन्द्रजी गुप्तचरो द्वारा अपने राजाके सब सन्तानार मानूम करके धर्मपूर्वक शासन करते थे ॥ १४ ॥ उपर सीताजीने भी अपनी देरराजियो बहिनो तथा सखियोंके साथ भोजन किया, हाथ घोया और सम्बलका उत्तम बाँडा खाया । हर रंगकी साड़ी तथा लाल रङ्गकी चाली जिसमें सुवर्णके

हेमतन्तमुष्णाद्या मुक्ताजालवगुम्फिताम् । गेहान्तर्देश्युपवनशालायां सस्थिताऽभवत् ॥१७॥  
 मखीभिर्वेष्टिता रम्या घृताऽधोकोरपर्यया ततो दिव्यामलङ्काराभिजदेहे दधार मा ॥१८॥  
 ये मया कथिता नैव पूर्वव्यस्तान् भवेण नान् । कस्मैषां वर्णने मको मयेदत्र नमोऽयम् ॥१९॥  
 चतुरास्यः कुण्डितोऽभून्पञ्चास्यश्च षडाननः । उन्नतःश्रवाश्च मग्रास्यः महसास्योऽपि वर्णने ॥२०॥  
 श्रुत्वा सीतामुपवने गतां ते जलधन्विणः । जलधन्वाणि सर्वाणि चकर्मृत्कानि वेगतः ॥२१॥  
 गन्धमञ्जुकमस्या सा सीता चामरवीजिता । जलधन्वाकौतुकानि वदन्तं नगरीरुधः ॥२२॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामो राजकार्याणि कुम्भनशः । कुम्भा यथो ममाशः स निजगेह तु रन्तुभिः ॥२३॥  
 तदा दुन्दुभिनिघोषा नववाद्यम्बना अपि । शुक्लानां गोमुखानां च मेरीणां तुमुकस्वनाः ॥२४॥  
 वधूपुर्यश्च सन्दाश्च न्यादीनां स्वनाः शुभाः । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवृर्मागधादयः ॥२५॥  
 न स्वन जानकी चाप श्रुत्वा चोपवने स्थिता । मञ्जुमेघ मयुजीर्य मञ्जुकाधो वरानना ॥२६॥  
 वामहस्ते कर्माणीं तां घुपपात्रं च दक्षिण । धृत्वा करे मा वैदेही रामं प्रन्युज्जगाम वै ॥२७॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामस्यकन्या नां शिञ्जिकां वदि । रिमज्ज मकलौल्लोकान विवेश धन्तुभिर्गृहे ॥२८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे दाम्यः शनशो रुद्रमभ्युपगताः । गधवाग्ने दूतवृन्ता स्वम्भकर्मसु तन्पराः ॥२९॥  
 काचित् व्यजनेनैव बीजयामास वेगतः । दधार चामरे काचिन्काचिशमनमूनमम् ॥३०॥  
 काचित् बलपात्र सा काचिन्निघोषनम्य च । पात्र दधार काचित् जलकुम्भ मनोरमम् ॥३१॥  
 काचिदधार रत्नाणां कोशं काचित् कर्मकम् । काचिदधार तूर्णार काचिन्मङ्गलं दधार मा ॥३२॥  
 एवमादीन्यनेकानि तदोपकरणानि ताः । जगृहू रामचन्द्र तं वेषयामागुहादान् ॥३३॥  
 ततो रामः सुनैःपङ्कजां यथो जनकनन्दिनीम् । स्थितां तत्र प्रतीक्षन्तीं पतिं जलरुहेक्षणम् ॥३४॥

गरींसे जगह जगह बेल-बूटे बने थे, उसे पहिना और उसके साथ मवनके भीतर ही बने हुए उपवनमें जाकर  
 बैठी ॥ १५-१७ ॥ यहीं सखियोंने उनके चारों आस पंग लिया और सीताने विविध प्रकारके आभूषण पहने  
 ॥ १८ ॥ जिन कोइस संकरीको से बड़ परिचयक राम साजकर पहने कह आया है उस यही पूर्ण-  
 रूपमें वर्णन करनेमें कोई श्रेय पुण्य मयई होगा ॥ १९ ॥ सीताकी इस अलौकिक आभाका वर्णन करनेमें  
 चतुरासन सह्य, पञ्चवक्त्र शिख, षडानन स्वात्मिक निवेद्य, नान मुत्तवाने उन्नत श्रवा और हठार मुख ताने शेषनाग-  
 न भी बुद्धि कुण्ठित हो गया ॥ २० ॥ जलधन्वक अधिर्कार्योत्त जब सुना कि माताजी उपवनमें आ गयी हैं, तब  
 उन्होंने सब कोरारोको बरं वेगके साथ छुड़ दिया ॥ २१ ॥ तरनंतर मणिकी बनी हुई चौकीपर बैठकर  
 सीता कोरारोको कौतुक तथा वृद्धोकी आभा देखन लगी और दामियां मताक ऊपर खबर दुजाने लगी ॥ २२ ॥  
 इतनम रामचन्द्र भी राज्यमन्त्र को सब काम करके पाद्योंके साथ अर्चन भजनमें आये ॥ २३ ॥ उस समय  
 दुन्दुभोके शब्द, नवीन बाजोंकी ध्वनि और शङ्ख, ताम्र, बेली आदिका घनघोर प्रहर होने लगा ॥ २४ ॥  
 विविध वक्त्रवन्त्राके मन्द और तुम्ही आदिकी ध्वनि सुनाई देने लगी, वेगवार नाचन लगीं और बन्दोजन  
 वाजानको स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ इन बाजोंक स्वर सुनकर सीता भी घबड़ाइके साथ चौकीपरसे  
 उतरकर बायें हाथम सारी तथा एक उपपात्र लेकर रामकी ओर चली ॥ २६ ॥ २७ ॥ इतक  
 रामचन्द्रजी भी पालकोसे उतरे और मंत्र लागोका विद करके आताआक साथ घरके भीतर गये ॥ २८ ॥  
 इतनम विविध प्रकारके मकलुओंकी पहने हुए सैकड़ दासियां भरण भरना काम करनेके लिये बौड़  
 रही ॥ २९ ॥ कोई भगवान्को पंखा चलाने लगी, किसीने चमर ले लिया, कोई आसन बिछाने लगी,  
 किसीने पानदान किसीने उगालदान किसीने सुन्दर उज्जवात्र और किसीने कपड़े रखनेकी पैटी सम्हाल ली,  
 कभी दासोंने रामजीको घनुष से लिया, किसीने तरकस लिया और किसीने लखवार से ली ॥ ३०-३२ ॥  
 इन तरह रामकी सब भक्तियोंकी सब दासियोंने चारों ओरसे घेरकर सम्हाल लिया ॥ ३३ ॥ इसके बाद



बुध्नुष्य सत्त्वा दिवोष्टु पूर्णयामाव तन्तुर्त्तौ । मुकुन्वा तत्कञ्चूर्णमधयन्निव हृदयेन ताम् ॥६३॥  
 हुमाच कच्छुर्ध्वगमः सोनायाः स्वचरेण सः । उद्भावं वन्द्य इन्द्रेण तद्वर्धोरु ददर्श यः ॥६४॥  
 रेतः करेण तर्ज्यागो रामश्चाकरोन्मुद्रा । मानायाकरोवद्दृशाद्रामर्त्तयोः स्मिन्नानताः ॥६५॥  
 एवं पम्परा क्रीडां चक्रतुर्दम्पती युता । कः समर्थस्त्वयोः त्राडां यद्विस्तारं निवेदितुम् ॥६६॥  
 यत्रस्मिन्नन्तरे राम येनार्थं तु मुकुन्वाद् । कर्तुं ययौ स गौमित्रिः समग्रं तु हञ्जनात् ॥६७॥  
 निषेधितः स दार्ढ्याभिर्वनङ्गागच्छतिः स्थितः । ता जनुः समरो नायं राम गन्तुं च न क्षमम् ॥६८॥  
 स्थितो भवत्यसौमित्रे रामो रक्षाभिः सीतया । कर्गेति जलपन्थेषु जलक्रीडां यथाशुक्लम् ॥६९॥  
 पुनस्तथाः शब्दं मौमिप्रेयुष्माभिर्वचनेन मे । निवेदनाय रामः प्रयत्नयै हि लक्षणाः ॥७०॥  
 समागतस्यामर्त्तान्तिनो यास्याम्यहं गृहम् । तत्पत्न्यामु तदा लंका दामो यन्वा रघूत्तमम् ॥७१॥  
 वल्लभितेर्नहिः स्थित्वा भवर्थातः शोचयिष्यामि । हययामस्य मौमित्रेर्दर्शितं शोचयनं शून्यैः ॥७२॥  
 तदामोवचनं श्रुत्वा जनयमानं जननीम् । वल्लभितुं न निर्गतं न गच्छतु वचनाः स्वयम् ॥७३॥  
 जलस्थोः प्रभुः स्नात्वा देहमुद्धतं नदिभिः । सुगन्धद्रव्यैर्गार्ह्यं कृत्वा रुर विप्रादिभिरनः ॥७४॥  
 रीतकोशेषवर्त्तमानि परिधापयत्युत्तमा । ददुश्चन्द्रेयस्यापि हेमलव्वकितानि च ॥७५॥  
 दार्ढ्याप्यथापि दामोदरो गगार्थे शिवात्रयानि हि । तौ जामतुः कृष्णविरमागणाश्चञ्चलमुद्रम् ॥७६॥  
 तत्र पूर्वोत्तराभिर्कैर्दानावचनैः । प्रमित्यादानैश्च पन्कामयेदुममुद्रवम् ॥७७॥  
 देवीभिः स्वर्णजम्बिष्व पत्रेषु वसिष्ठपितम् । हृन्नाथैश्च गुरुणा महन्विषयमन्वितः ॥७८॥  
 सन्निभिर्नैर्गुणैश्चापि रामोऽन्नस्तोषयाम सः । तत्प्रात्र धोजयामस्य आनन्दो यामरेण सा ॥७९॥  
 भविनोर्दंष्ट्रादुग्रदंष्ट्रे रज्जुयायाम राघवम् । पत्रं कृत्वा मौजनं तु कृत्वा काञ्चूलचरणम् ॥८०॥

तब राम भी हमने हुए कुछ समय कादल मूकम सनाको मार देत थे ॥ ६३ ॥ मौन के दिव्यसदृश लाल  
 हाथों को शयनचक्र में कई बार चमा, उनका पुत्राका मन्त्र बिना और चोरीका कण्ड लालकर अपनी छातीमें  
 निपटाया ॥ ६४ ॥ रामने स लकी कोष्टु आ-क- व-काको हटा दिया जिसमें कदलाक सम्भक्त समान उनकी  
 कायस्थ चमत्तें लियेई पहले लगी ॥ ६५ ॥ तब रामने भी हुमाचकर रामका माना लाने डाली । इस तरह राम  
 और मान म ॥ विष प्रकारका म ॥ हटा का ॥ ६६ ॥ मान और रामको कोडाके अविस्तार वर्णन करकेकी  
 माधवों मन्त्र किमय ह ॥ ह शिवा ॥ गृहमें गगनपदमैश्च पुष्पैश्च ॥ वा है ॥ ६७ ॥ इसके अगलद  
 मोहन से ॥ ह ॥ को मुकुन्वा दृष्ट ॥ तब लक्ष्मणने रामको किने आदिको भी बुलवा लिया ॥ ६८ ॥  
 लक्ष्मण रामको मुकुन्वाके ॥ त ॥ ६९ ॥ लक्ष्मणने क हकदर पहुँचे, तसे ही सुखियोने उन्हें राका और कहा कि कभी  
 रामचन्द्रका पान आनेका अना नही रहे । क्योंकि वे इस समय ग-कोटा कर रहे हैं ॥ ६९ ॥ ६६ ॥  
 उनसे लक्ष्मणने कहा—अच्छा, मुद्रा जाकर रामसे कहा कि हारकर लक्ष्मण भोजनको सूचना देनेके लिए सहे  
 हैं ॥ ६७ ॥ तुम्हारे ऐसा कह देनेपर मैं अन्दर चला जाऊँगा, लक्ष्मणके आज्ञानुसार उनसेसे एक दासी  
 रामके समीप गयी और लजाती हुई पदको अटम पीर धीरे उनसे लक्ष्मणके आनेको कहर सुनायी  
 ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ दासकी दास सुनकर रामने लक्ष्मणके हाँलाको अचयनके बाहर निकाला और स्वयं  
 भी निकल आये ॥ ६९ ॥ तब गरम अण्डे मीना और रामने गरीयसे लगे हुए सुगन्धित उबटन आदिको  
 पीया ॥ ६९ ॥ उसके बाद रेशमके पीले कपड़ पहन । उस गृहस्थ में मैं कपड़ाको दास-दासियोंको दे दिया ।  
 फिर पुष्पोंसे सुगन्धित मांससे चलेकर दोनों भोजनमांस अ पाने ॥ ६९ ॥ ६९ ॥ वहाँ पूर्वोक्त भोजन-  
 सामग्री का अर्पण कामसेलुने उन्मत्त लक्ष्मण उदित आदिके हुए सुगन्ध-प्राप्त सुगन्धों ही रामकोसे  
 परोते हुए लक्ष्मणनेके बनेक सुगन्धों, मिश्र, मन्त्रिणा एवं वन्धु आ-योंके साथ साथ हुए रामचन्द्रजी बहुत  
 प्रसन्न हुए । भोजन करत समय साहसी पसा भरता हुई दो-दो-चम चिन प्रसन्न करनेवासी कितनी

सीताममपित राक्षसस्यो मृगवन् कथाः सुखम् । मन्त्रिभिर्यन्धुसिधिरैर्गोहातः सुदमि प्रभुः ॥७१॥  
 सीताऽपि भोजनं कृत्वा दिव्यफलंकारमण्डिता । निद्राशालां सभासीनां सखीभिः परिवहिता ॥७२॥  
 चकार सारिभिः क्रीडां दामीभिर्वीजिता सुदा । कुर्वन्ती रघुनाथस्य प्रतीक्षां द्वास्त्रोचना ॥७३॥

इति श्रीमच्छतकादिरामचरितगतो श्रीमदनन्दरामायणे वाल्मीकीये आसत्काले

चण्डीरावर्णने नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ६ ॥

### षष्ठः सर्गः

( राम तथा सीताकी दिनचर्या )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो यन्धुमिश्र निद्राशालां ययौ पुदा । स्तुतो वदिजनाद्यैश्च विवेकैकान्तमन्दिरम् ॥ १ ॥  
 विषज्यै लक्ष्मणादींश्च दामीभिः परिवारितः । ददर्श जानकीं निद्राशालायां रघुनन्दनः ॥ २ ॥  
 याऽपि कालाऽज्जनं राम सातेक्रीडां विहाय च । प्रत्युज्जगाथ गमाय सखीभिर्नृपुण्यना ॥ ३ ॥  
 नत्वा राम करे धृत्वा मन्त्रके मन्यवेशयन् । दत्त्वा पातुं जलं तस्मै ददौ सांचूलमुत्तमम् ॥ ४ ॥  
 अतश्चकार श्रीरामो निद्रां सीताममन्त्रितः । दामीभिर्वीजित्वापि पर्यङ्गे रत्नभूषिते ॥ ५ ॥  
 मुहूर्तमाशुत्थाय घृणार्थोक्तपर्वणा । तस्यौ सीता मन्त्रकाधस्ततो रामोऽप्यबुध्यत ॥ ६ ॥  
 दृष्ट्वा समुन्धित राम दग्धा पातुं जलं पुनः । ददौ सीताऽयं तांचूलं राघवायानिर्दिष्टम् ॥ ७ ॥  
 रामदास्यस्तथा रामं वीजयामासुरादरात् । केकिपक्षममुहूर्तंशामरं ह्वयभूषितं ॥ ८ ॥  
 सीतादास्यस्तथा सीता वीजयामासुरादरात् । धेनुपुच्छाङ्गवैदिर्यश्चमार्द्धममर्हितः ॥ ९ ॥  
 ततः सीताकरं धृत्वा द्वास्त्रावल्या तुमण्डपम् । ययौ गमोऽङ्गणोद्भूतं तस्यौ तदध आसने ॥ १० ॥

हो धर्म भी करतो जाता यो । इस प्रकार भोजन करके रामने सीताके हाथोंसे दिया हुआ पान खाया ॥ ६३-७० ॥ तदनन्तर मन्त्रियों वन्धुओं तथा गिर्यादिकोंके साथ विविध प्रकारकी बातें कहने-सुनते हुए सभाभवनमें पधारें ॥ ७१ ॥ तदनन्तर सातान भा भोजन किया । कपड़े बदले और नाना प्रकारके झलकारीको पहनकर अपने शयनागारमें जा बैठे । अहाँ सीताको मलियाँ भी उन्हे चारी आरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ७२ ॥ सीतावहाँ बैठे हुई सारिका / मैना, के साथ खिली तथा ह्वय-ह्वयकी बातें करता हुई रामचन्द्रजीके आनका प्रतीक्षा कर रही थीं । यह सब करते हुए भी सीताकी आँखें रामको देखनेके लिए द्वारपर ही लगी हुई थीं ॥ ७३ ॥ इति श्रीमच्छतकादिरामचरितगतो श्रीमदनन्दरामायणे वाल्मीकीये 'अदोत्सना'भाषाटीकायां विष्णुशर्मादे पंचमः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—सभाभवनमें कुछ देर बैठनेके अनन्तर राम अपने वन्धुओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शयनागारकी ओर चले । बंदाजन भगवान्की स्तुति करने लगे । निद्राशालाके पास जाकर रामने लक्ष्मण आदिकोंके विदा कर दिया । दासियोंके साथ वे भोजन गये और वहाँ बैठे हुई सीताको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ सीताने भी जब देखा कि रामजी आ गये हैं, तब अपना मैनाके साथका लेल दान करके सीरे-धोरे उनकी ओर कही । उन्हें प्रणाम किया और हाथ एकदकर पलंगपर बैठा लिया । फिर पीनेके लिए अल दिया और उत्तम तांबूल खिलाया ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजी रत्नभूषित पलंगपर सो गये और दासियाँ पंखा चलाने लगीं ॥ ५ ॥ अग भरके बाद सीता पलंगमें नीच उठरी, तब रामजी भी आग गये ॥ ६ ॥ सीताने जब देखा कि वे भी उठ हैं, तब फिर पीनेके लिए जल और खानेकी पान दिया ॥ ७ ॥ रामकी दासियाँ रामकी और सीताकी दासियाँ सीताकी पंखा चल रही थीं । उन दासियोंके हाथमें मोरके पंखोंका बना हुआ पंखा था और उत्तमें सुवर्णके मूड लगी हुई था ॥ ८ ॥ कुछ देर बाद रामचन्द्रजी सीताका हाथ अपने हाथमें पकड़े हुए एक अंगूरी लताओंके बने सुन्दर मण्डपमें पहुँचे और उसके आँगनमें एक आसवपर बैठे



उपमर्दणसंस्पृष्टः सीतारामस्थितो मुदा । हस्म्यश्रोष्ट्रमप्रिगजदूतैः कृत्रिमनिर्मितैः ॥ ११ ॥  
 हेमरत्नहस्तिदन्तसंभूतैरनिचित्रिनैः । क्रीडां घृष्टवनेनैव चकार सीतया मुमुक्षुः ॥ १२ ॥  
 ततः पक्षिकुनैः सर्वैः पञ्चस्थैः समानया । क्रीडां चकार आरामो दामोनिर्वीजितो मुदुः ॥ १३ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतयाऽऽकृष्टाग्निः पुनः । समायपुष्करमार्षो ननृतुः शनकसादा ॥ १४ ॥  
 चक्रुर्गोतं सस्वरां ताः षड्वस्त्रमयमन्त्रिणम् । तनूनाभ्यो बलकूटान् दक्षत रम्यणि ज नकी ॥ १५ ॥  
 निमज्जयामास ताः सर्वास्ततो राघवमब्रवीत् । स्थित्वा प्रसादवर्षेऽयं कौतुकं हृज्जं त्वया ॥ १६ ॥  
 इष्टमिच्छाम्यहं राम शीघ्रमुत्तिष्ठ गणव । तन्मोहावधनान्नामः प्रसादं प्रते सीतया ॥ १७ ॥  
 गत्वा दिव्यायने स्थित्वा गन्धार्धं रुक्मभूषिनैः । रत्नोद्भरकपाटैश्च मृकाजामविमञ्जिनैः ॥ १८ ॥  
 राजवीर्या इष्टव्रातं ददर्श जनकानुकम् । सीतार्पं दशेयमाय कौतुकात्रि मु गणवः ॥ १९ ॥  
 स्त्रीषदक्षिणहस्ताभ्य तर्जण्या मुदिताननः । एतस्मिन्नन्तरे हृष्टे द्विजवन्ती तु भीक्षया ॥ २० ॥  
 दृष्ट्वाऽलङ्कारवस्त्रार्थहीना कटिपूजाऽभका । गच्छन्ती राजमार्गेण कृशा भिक्षार्थमुद्यता ॥ २१ ॥  
 तौ तादृशौ निरुह्याय दाम्यद्वयं विदेहजा । वयन्तं भूषणाद्यैश्च किमर्थं रहिता ह्यमि ॥ २२ ॥  
 मा प्राह तार्थयात्रार्थं न्यक्त्वा मां तानलालिना । तानमेहे मनो मर्ता ततोऽपि जरठो मृतः ॥ २३ ॥  
 गुरुमेहेऽनिकायां वनेति आनगे मम । न शेषकः कोऽपि मेहेऽप्युना सीतेमरिचि वै मम ॥ २४ ॥  
 गम्मान्न मन्थलङ्कारवामासि जनकान्मते । इति तस्या वचः श्रुत्वा रामरुचं वन्निरीक्ष्य सा ॥ २५ ॥  
 निजालङ्कारवामासि ददौ तस्यं विदेहजा । बाष्पार्थो मा पुनः प्राह गच्छ न्वं लक्ष्मणं यदि ॥ २६ ॥  
 हेममुद्रा लब्धपिताम्बु गुराण मम तथा । तथेति जानकीं पृष्ट्वा मा ययौ लक्ष्मण तदा ॥ २७ ॥

६ ॥ १० ॥ रामकी सीतार तर्किया समे ये और सीता रामके सामभावम बैठी थीं । वहाँ तकली हाथी, पार, ऊँट मंत्री और राजदूत आदिक भवनीन प्रथम हुए थे । उनक साथ राम तथा सीतान बड़ा दीरहतक सेन्वाह किया । उनमे बहुतसे मिन्तोन सुनार, शरीरहीन एवं रत्नाके वन हुए थे और उनपर बहिया रंग ई का हुई थी ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर पित्रमम बैठे हुए बहुतमे पक्षियाक साथ रामन क्रीडा की । उस समय भी तन्मिर्ष पक्षा श्रवण रहो थी ॥ १३ ॥ इसके बाद सीता द्वारा बुलई हुई बहुतमे नताकयी आकर वही बाचने-गाने लगी । १४ ॥ ये वरणात षट्पञ्चमय मुन्दर भीम गानाकर बहुत दर तक उड़ गुनानी रहो । इसके बाद सीतान उनको बहुतमे वन्त्र-अलकार आदि ददर्श विदा किया ॥ १५ ॥ उनको विदा करके सीता रामसे कृतम लगी — आज हमारे यह इच्छ है कि आपके साथ छनपर बैठकर बाजारका कौतुक देखू ॥ १६ ॥ उन्हे और जन्ती बलिय । तदनुसार राम सीताके साथ प्रसादपर गये । १७ ॥ वहाँ एक दिव्य मासनपर बैठकर भवर्षके बने हुए शरीरसेन जिनमे विविध प्रकारके रत्नोक दरवामे लगे थे और मोद्रियोकी सासरें लटकी हुई थी ॥ १८ ॥ उनमेसे ही ये राजमार्गके जनमनुशयका कौतुक देखने लगे और सीताकी भी दर्हिने हाथ-की तर्जनी अंगुलीके सनेरसे चित्राने लगे ॥ १९ ॥ इसी बीच सीताने देखा कि एक बाहुगकी पत्नी बरन मल-दुआकी स्वागे नङ्गी बन्ती आ रही है । उसकी कमरपर एक बण्वा है, उसकी दुबली-मलली देह है और उसके बाकारसे मानूस पड़ता है कि वह पिता मांगनक लिए बाजार आयी है ॥ २० ॥ २१ ॥ उसको यह दशा दन्दकर सीताने रामी द्वारा उसे अपने पास बुलवाया और पूछा कि तुम इस तरह बिना बरन और आभूषणके बाजारमें किसलिए घूब रही हो ? ॥ २२ ॥ उसने कहा कि मेरे पतिदेव बरमे मुझे बकेली छाड़कर दीप-लगाके लिए चले गये । मैं अपने पिताकी बड़ी दुष्टागे बैठी थी । इसलिए अपना घर छोड़कर पिताके पास लगी तो वहाँ पिताकी बुढ़ावस्थाके कारण परतोक चले गये थे ॥ २३ ॥ बरन्तोपुत्रीमे मेरे पिताके कई छोटे छोटे बच्चे बर्वाग् मेरे भाई है, किन्तु मेरा तथा बन्धोका पालन करनेवाला इस बंसारमें कोई नहीं है ॥ २४ ॥ इसी कारण है जनकायमज । भरपास बरन और आभूषण नहीं है जिन्हे मैं पहनूँ । इस प्रकार उसकी बातें सुनकर सीताने एक बार रामको और देखा और अपने सब वस्त्राभूषण उत्तारकर उस विधवाकी

पूषाधिकानलकायन् स्वदेहे जानकी पुनः । तथार दिव्यवासांसि हेमनूद्भवादि सा ॥२८॥  
 लक्ष्मण ब्राह्मणा गन्वा सीतावत्क्यं न्यवेदयत् । ददौ तस्य लक्ष्मणोऽपि हेममुद्रास्त्रैव सः ॥२९॥  
 सीतारकपाह्वमिता मृषा येने न तद्वचः । कः समर्थो रामगजये मृषां वक्तुं मनेदिति ॥३०॥  
 अथ सीताऽपि सौमित्रि स्वां शर्पां प्रेष्य वै तदा । प्रयोधवायां नद्या गच्छे घोषयामास दुन्दुभिम् ॥३१॥  
 सप्तर्षीषेषु सचत्र पृथग्दर्शेषु सादरम् । काशिमता पुमान् वारि विना सदस्रभूषणः ॥३२॥  
 पृथ्वारैर्बया कातो यदेवे यन्पुरे कदा । तद्राक्षसास्तु मे दण्डो रामस्यापि विशेषतः ॥३३॥  
 इति मथिष्ठितं शान्वा स्वकोष्ठैः स्वांवरः पृष्ठे । वस्त्रालङ्कारभूषाविर्ममया वा द्वित्रादयः ॥३४॥  
 सप्तर्षीपुनृपतमश्चेत् सीतामुपिष्ठितम् । मत्रदुन्दुमिघोषेण भृत्वा चक्रुस्तथैव च ॥३५॥  
 तदारभ्य जगन्त्या न कश्चिद्विगतभूषणः । नारी वा पुरुषो वाऽऽप्यात् कुत्राप्यवनिजानवात् ॥३६॥  
 एवं नानाकीतुकानि भूष्या सीताऽकरोन्मृश । अथ रामः सर्वा गन्वा पुनर्यामे वतुषके ॥३७॥  
 चकार राजकर्मणि धर्मेणैव स्वबन्धुभिः । जटनाटक्वेड्यानां कौतुकानि महानि च ॥३८॥  
 ददर्श स समासम्ये स्तुतो मागध्वदिभिः । ततः सर्वान्विमृज्यवाथ पयो सीतागृह प्रभुः ॥३९॥  
 सापसखादिकं कृत्वा दुःखा होमं पथाविधि । उक्तो मघादिभि पूज्य मास्रणांभादि रावनः ॥४०॥  
 नानोपहारनेषेय दग्ध सैम्यः स्वयं प्रभुः । कुञ्जोपहारं शीगमः मृत्वा पीराणिही कषात् ॥४१॥  
 कार्त्तनैर्हरिदासाणां वंश्यानां नर्वनैरपि पीरोदितामिर्वाताभिर्गायकानां च गायनैः ॥४२॥  
 सार्धैर्यानां निश्चा नीरवा पयो निद्रास्यत्तं धनैः । उक्तो गहनप्रकारैः स जगाम जानकीं प्रति ॥४३॥

६ दिव्य और कहा कि तुम लक्ष्मणक पास चला आया और उनसे मेरे ब्राह्मणों के एक लाख स्वर्णमुद्रा ले लो । 'बहुत अच्छा' कहकर वह ब्राह्मणी लक्ष्मणके पास गया ॥ २८-२९ ॥ इसके अलावा सत्तान फिर उससे दुस गहन महार लिख और गुप्तगन राजास बन हुए बहुतसे सुन्दर वस्त्रोंको भी चारण किया । २८ ॥ तबसे ब्राह्मणा लक्ष्मणक पास गयी और सीताको आज्ञा मुराजी , लक्ष्मणने जानकीके कपटानुसर उसे एक लाख स्वर्णमुद्रा दे दी ॥२९॥ ब्राह्मणीको बातपर लक्ष्मणका दुस भा सधु नही हुआ । क्योंकि रामचन्द्रजीके राज्यमें किसीका कुछ बालनका साहस ही बस हा बनना था ॥ ३० ॥ अपने पत्नी सत्तान लक्ष्मणके पास एक दासा हाथ यह कहला बना कि मेरी मातास बचनके समस्त राजासे दिदास पिटादा दी और सातों दास तथा विश्वामित्र दवाय भी कहला दी कि कोई मन्त्र और पुरुष ऐसा न दिवाजी वे कि जिसके सारापर बाढ़वा वस्त्र और आभूषण न हो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ मेरे गुप्तवर इस बातसे डाह नेनकी सर्वत्र घूमते रह । फिर कहा किस दश या कितना राष्ट्रमें कोई वस्त्र भूषणाविहीन देला जायगा ही उस देशके राजाकी भेरा तब रामचन्द्रजीका आज्ञाके अनुसार घर दण्ड भुगतन पड़ा । ३३ ॥ मेरी यह आज्ञा सुनकर सब राज जवन दहका प्रजाका जवन सजानके इच्छास उत्तम वस्त्राभूषण तैयार करवाकर बंधवा रे । समस्त ब्राह्मणादि द्विजातियोंको अच्छे अच्छे वस्त्र-अलङ्कारोंसे बल्लूत करायें ॥ ३४ ॥ हदनुसार सत्तों दासके नुरातयाने राजदुन्दुभ द्वारा धायन साताजकी उस धायणाका मुन-मुनकर विविधत् उसका पालन किया ॥ ३५ ॥ तबसे सत्तोंक भयसे जगतालमें कोई ऐसा मनुष्य नही दिजाई देता था, जो सुन्दर वस्त्राभूषण न पहन हा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सीताजीन प्रथामण्डलमें न जाने कितने कीतुक किये । हदनन्दर शोध प्रहुर रामचन्द्र अपने धानाजोंके साथ सप्ताध्वजमें गये ॥ ३७ ॥ बहुतों धरुपुषक राजके आदेशक कार्य सम्पन्न किये । फिर गदोक नाटक और धेरमाजोंके विविध प्रकारके नृत्य देखे, बन्दीजनोको स्तुतिया सुनी और सबकी विदा करके फिर सत्तोंके जवनको छोड़ गये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ रामकी सप्तादिक नित्यकृत्य करके विविधन् हुवन किया । गन्धादिक अनेक उपचारोंसे शिवजी तथा ब्रह्मणोंका पूजा की ॥ ४० ॥ उन सबकी विविध पकवानोंका नेवेल देकर स्वयं भोजन किया । पुराणोंको कथारें सुनीं । हदनन्दर भगवद्गुणोंका कर्तन सुना और वेम्पाओंके नृत्य देखे । जयवदवाहियोंके गुणल-प्रसन पूछे और

साऽपि श्रुत्वा नाशय रत्नदीपैः मखीयुता । ततः स सीतया दामः पर्वङ्गे रत्नविश्रिते ॥४४॥  
 चकार सीतया क्रीडां रञ्जयामास जानकीम् । ततस्तौ दपती निद्रां चक्रतुर्वीजितौ शुभः ॥४५॥  
 दासीभिर्व्यजनैश्चित्रैश्चामरैर्द्वैमधूषितैः । एवं रामेण सा सीता सुसमाप्य पतिव्रता ॥४६॥  
 सीतया राघवश्चापि सुखमाप्य विशेषतः । एवं नानाकौतुकानि प्रत्यहं रघुनन्दनः ॥४७॥  
 चकार सीतया सार्द्धं परिपूर्णनोरयः । कदा चन्द्रस्य ज्योत्स्नावामरणे सञ्चनः प्रभुः ॥४८॥  
 चकार सीतया निद्रां कदा प्राप्तादमरुतकं । कदा प्राप्तादन्तरे वाऽपि गवाक्षपवनैः शुभैः ॥४९॥  
 सुखमाप्य कदा रामः कदा रहसि मदिरैः । कदा कनकमृङ्गलामवितानमुमंचके ॥५०॥  
 कदा द्राक्षामण्डपाधो जलमञ्चमपीपतः । काचभूम्यां रुक्मभूम्यां मणिभूम्यां कदाऽपि वा ॥५१॥  
 स्फटिकादिमुभूम्यां हि कदा सुखाय राघवः । कदा स पुष्पके वाऽपि रम्यशालान्तरं कदा ॥५२॥  
 कदा स चित्रशालायां कदोर्नीलग्नये गृहे । कदा पुष्पमये मेहे कदा रंभावनये वरे ॥५३॥  
 कदा पुष्पवाटिकायां कदा वृक्षोर्ध्वमञ्जनि । मृङ्गलावृक्षसंबद्धदोलके रत्नविश्रिते ॥५४॥  
 कदा काष्ठमये दिव्ये मंचके रत्नभूषिते । कदा चकार तुलसीवाटिकायां रघुनन्दनः ॥५५॥  
 निद्रां जनकनदिन्या समापामभवा कदा । कदा द्वारोर्ध्वप्रासादे कदैकस्तम्भमञ्जनि ॥५६॥  
 कदा स्वगृहदेहन्यां कदा वृदावनैऽपि च । एवं स सीतया रेमेऽज्योत्स्नायां रघुनन्दनः ॥५७॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितातर्गणे श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये

सीतारामयोर्दिनचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( रामके द्वारा वेषांगनाशौकी वरदान )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं तथा स्नातुं सधावपि । सिध्यैः समागमौ व्यगमौ पुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १ ॥

गायकोके गायन सुनने-नृतने खापी रात बिताकर वे गायनाशरम मयन करनेका बन । हुरि आदि रत्नो द्वारा प्रकाशित मार्गसे चलते हुए राम सीताके पास पहुँचे ॥ ४१-४३ ॥ सीता भी रत्नविभूषित वेषाके प्रकाशमें अपनी मनेक रुक्तियोंके साथ रामचन्द्रके पास मयी और राम सीताके साथ एक रत्नजाटित मल्लपर बैठ गये ॥ ४४ ॥ रामने कुछ देर तक सीताको प्रसन्न करनेके लिए कुछ खेल किया । फिर दोनों सो गये और दासियाँ वला मल्ले लगी ॥ ४५ ॥ इस तरह रामके द्वारा सीता तथा सीताके द्वारा राम विविध प्रकारका आनन्द लुटते रहे । जिनकी समस्त कारनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं, ऐसे भगवान् रामचन्द्रजीकी यह नित्यकी दिनचर्या थी । उनके यहाँ निगूँ ऐसे तेले कोतुक हुआ करता थे । कभी विशाल मञ्चनके आँगनमें, कभी प्रासादपर और कभी खिहकीदार बरिण कमरेमें राम सोते थे ॥ ४६-४९ ॥ कभी जहाँ अनेक प्रकारके मणियोंकी मृङ्गलाय लटकती थी ऐसे चाँदनीकले किसी एकान्त कमरेके सुन्दर मंचपर, कभी मंगूरकी साड़ीके नीचे, कभी जलधनके समाप, कभी काचभूमिपर और कभी स्फटिकादिसे निर्मित सुन्दर मणिभूमिपर रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कभी पुष्पके विमानपर कभी रञ्जशालामें, कभी चित्रशालामें, कभी छसकी टट्टियों-बाले घनेमें, कभी फूलोंके घरमें, कभी कदलीवनमें, कभी पुष्पवाटिकामें, कभी वृक्षके ऊपर बनी हुई तोपहीमें, कभी वृक्षके बेंधी अंजोरोंसे बने हुए झूलपर, कभी काष्ठोंके बने हुए दिव्य मंचपर और कभी तुलसीकी बनी हुई वाटिकामें रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५२-५५ ॥ कभी रामचन्द्रजी सीताके साथ समापमञ्चमें, कभी द्वारके किसी एक ऊँचे प्रासादपर, कभी केवल एक स्तम्भपर बने हुए मकानमें, कभी अपने घरकी देहलीपर और कभी वृदावनमें सीताके साथ शयन करते थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति आभातकोटिरामचरितातर्गणे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये च० रामदेवपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकसुमन्विते विलासकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

ममागतं मुनिं भ्रुवा तं प्रत्युद्गम्य गधवः । ननाम शिखा मक्या निनाय निजमदिगम् ॥ २ ॥  
 दत्ता वगमनं तस्मै द्विजेभ्यश्चापि वै पृथक् । दत्त्वाऽऽमनानि दिव्यानि चकार पूजनं पृथक् ॥ ३ ॥  
 कामधेनुं दूर्वा इन्दुर्वणिग्वा मयैवगधि । व्यासं तं सोनयामाय मुनिभिर्मानकीपतिः ॥ ४ ॥  
 तां पुन दक्षिणां दत्ता प्रवदुकासम्पुटः । पप्रच्छ कुशलं तस्मै व्यासाय रघुनन्दनः ॥ ५ ॥  
 सीता तं वीजयामाय वयम् पश्यवतीकृतम् । दक्षिणामन्तरे व्यासो रामाय कुशलं निषम् ॥ ६ ॥  
 निवेद्य पृष्ट्वा तन्मेष तमाह कीदृकान्पुनः । राम राम महाबहो यथा राज्यं न्वया मुनि ॥ ७ ॥  
 भुज्यते न तवाऽन्येन केनापि पृथिवीभृता । पुन भुक्तं न कोऽप्यग्रे भोज्यते पृथिवीपतिः ॥ ८ ॥  
 अन्यत्वेऽथ महर्षयेकपत्नीयत्वं प्रति । दृष्ट्वातिविस्मयधिते जायते मे रघूत्तम ॥ ९ ॥  
 कः सङ्गताय तारुण्यकामदावानलं वृष्टः । पदस्थे धीयने कपि न्यवेनास्मिन्वते क्षमः ॥ १० ॥  
 इति व्यासवचः श्रुत्वा रामो व्यासवचोऽब्रवीन् मया त्रयः कृताः सति नियमा मुनिमत्तम ॥ ११ ॥  
 सुवादिनिर्गतं वाक्यमेकमेव विनिश्चिन्तम् । न कियते मृगं तच्च लोचयते ह्यवरं पुनः ॥ १२ ॥  
 अन्यस्मीता विनाऽन्या स्त्री कामलया मदशी मम । न कियते पतयन्ती मनसाऽपि न चितये ॥ १३ ॥  
 तथा पं हन्तुमिच्छामि वशेनैकेन कापतः । निहन्त्यने तर्दकेन तान्य बाण सुक्राम्यहम् ॥ १४ ॥  
 इत्थं त्रयः कृताः पूर्व नियमान्दत्तं भो मुने । मत्प्रा एव बन्धवग्रेऽप्यङ्गितास्तव वाक्यतः ॥ १५ ॥  
 तथैवास्मिन्वति योऽप्याह व्यासः श्रीगधवं तदा । पुनराह मुनिः श्रीमान् व्यासः श्रीगधव प्रति ॥ १६ ॥  
 एकपत्नीयतस्याप्य कलेनापरजन्मनि । त्वं कृष्णरूपेण बह्वीर्नारीभोक्ष्यसि गधव ॥ १७ ॥  
 तन्मृनेर्दधने भुम्वा विदुष्य गधरोऽवधीन् । यद्वाथ कामिर्नार्भोक्तुं कृष्णरूपधरोऽप्यहम् ॥ १८ ॥

श्रीरामदास कल—एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करनी तथा चैत्र रामनवमीको स्नान करनके लिए अपने शिष्योंके साथ व्यासजीके आश्रममें आये। उनके माथ बहुतसे मुनि भी थे ॥ १ ॥ मुनिका आगमन सुनकर राम स्वयं आगवाती करनके लिए गये। उनके पास बहुतबड़े रामचन्द्रजीने बड़ा भक्तिके माथ प्रणाम किया और अपने भवममें ले गये ॥ २ ॥ उन्होंने व्यासजीको एक उत्तम आलापन बिछाया। इसके बग़ाए अन्य ऋषियों एवं शिष्योंको भी मन्दिर आसनपर बठाकर और विधिपूर्वक कामधेनु तथा रत्नों द्वारा उत्तम बस्तुओंसे उन मुनियोंकी अलग अलग पूजा की और सब मुनियोंके साथ व्यासजीका रामने भोजन कराया ॥ ३ ॥ ४ ॥ बादमें सीतल और दक्षिणा दी। सब रामने हाथ जोड़कर भगवान् व्याससे कुशल-मङ्गल पूछा ॥ ५ ॥ सीताजी उस समय व्यासजीका कन आल रही थी। इसके बाद व्यासजीने रामको अपना कुशल-मङ्गल सुनाया और बहुत रमे—हे महाबाहो राम। आप जैसा राज्य हम पृथिवीपर कर रहे हैं, वैसा किसी राजाने नहीं किया और कियेकम भी कोई नहीं करेगा ॥ ६-८ ॥ उनके अनिच्छित आप जैसे महिवालका एक पत्नीयत पालन करना देखकर मेरे मनमें तो बड़ा आश्चर्य होता है। ९ ॥ इस ज्ञानमें ऐसा कीन राजा है, जे तरुणाईन रामरूपी वावानरको सहनेमें समर्थ हो। उसे जेव बधवार रक्कर अवान का न्यारुमे एकजन्मगतवारी केवल आप ही हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार व्यासजीका बात सुनकर रामने कहा हे मुनिमत्तम। मैं अपने लिए तोन नियम बना लिये है। एक यह कि—॥ ११ ॥ एक बार मेरे मुत्तसे जो बात निकल जाय वह ध्रुव हुंको है। प्राणमन्दुट जानेपर भी बात नहीं बदलगे। दूसरी बात यह कि—सीताकी सादर सत्कारकी सम्मत्ति स्वीकार मेरे लिये कीसल्लके समान जाता है। दूसरी स्त्रीको मे अपने मनमें भी नहीं पावता। १२ ॥ १३ ॥ तीसरी बात यह कि—मे जिसे शोध करके मानता चाहता है उसपर केवल एक बाण छोटता है। उससे उसे मार डालता है, दूसरी बाण नहीं उड़ता ॥ १४ ॥ हे मुनिराज। ऐसा मेन नियम बना रक्खा है। आपके आशर्वादसे मेरे ये नियम आविष्ट मानसे चल रहे हैं। वेदव्यासने कहा—हे राजन्। जैसी आपकी इच्छा है, वैसा हो होगा। और मुनिये, जो आप इन जन्ममें एकवर्तमानका पालन कर रहे हैं इसके कन्से दूसरे जन्ममें आप बहुतसी स्त्रियाँ पारंगे ॥ १५-१७ ॥ इस कार व्यासजीकी बात सुनकर रामने कहा—हे महामुने!

द्वारिकायां यदाऽत्र हि द्वापरे मुनिमगम । धेन जनेन दनेन निषमेनावस मुने ॥१९॥  
 बहुनारीनिधयेन प्राक्कर्मोनि वदन्व मा । इति रमयचः श्रुत्वा वृषामो राधवमवतीन् ॥२०॥  
 सम्यक्पुष्टं त्रया राघ दानं ते पवडभ्यदत् । एकपन्तात्रनादेव यद्यपि न्व न स्त्रीर्वाह ॥२१॥  
 लभिष्यसि तथाप्यथ दानं तव वदाम्यहम् । शान्तावाग्मुखाणम् मुनिमेकां गधूनम् ॥२२॥  
 एव षोडशमूर्तीश्च काश्य एवं पृथक् पृथक् । देहि न्व मरयुनद्याम्नोरे शिष्येभ्य आदरात् ॥२३॥  
 वसालकृष्णभूषार्थैर्दक्षिणाभिध ताः शुभाः । अनेन बहुनारीध्व लभिष्यश्यन्व वन्मनि ॥२४॥  
 तथेति राधवश्चापि मूर्तीं कृत्वा मनोरमाः । ददौ ताः सम्युनयां ब्राह्मणेभ्यस्तु षोडश ॥२५॥  
 ततस्ते मातृष्वास्तुष्टा रात्रायाजोद्देर्मुदा । दत्तमेकगुणं गजन् महस्यगुणित पुरा ॥२६॥  
 अन्त्यकं वचनादानकलं तव भविष्यति । षोडशस्त्रामहस्याणि न्व लभिष्यसि निधयन् ॥२७॥  
 तथास्तिवन्धाद्वरामोऽपि तनो विप्रान्द्वयमजेयत् । श्रगम्य पूजितं व्यास ददावाक्तां स्पृष्टहः ॥२८॥  
 अर्धकदा रामचन्द्रः सोतया मरयुनटे । मधुपामे वसुगेहे स्थितः कीडां चकार मः ॥२९॥  
 एतस्मिन्नेतरेऽयोध्यां नानादेशनिवाधिनः । गमतीर्थे मधौ ज्ञातुं समाजम्भुः सदस्यताः ॥३०॥  
 सुरा यक्षाः किन्नराश्च गन्धर्वाः पन्नगा नगाः । बह्वक्ष्यश्च परितः मवास्तीथानि हुतया नृपाः ॥३१॥  
 अप्सरस्यः पन्नगाश्च खगाः क्षेत्राणि शनराः । अर्धका देवपत्न्यो ज्ञान्वाऽस्पृष्ट्यां विदेहजान् ॥३२॥  
 परम्परं ताः समन्त्र दिशांघे राधर्ष मति । समाजम्भुर्दिन्यवस्त्ररन्ताभरणभूषिताः ॥३३॥  
 राममादर्यसभ्रान्ताः कामबाणप्रर्षाडिताः । ता दृष्ट्वा रामदूताग्ने पप्रच्छ रक्षगस्त्रिधा ॥३४॥  
 युवं किमर्थं सश्रमा निशीथेऽथ मयावहे । कथयध्व हि नः सर्वं मा शङ्कां कुरुतत्र हि ॥३५॥  
 ता उचू राधव द्रष्टुं सभावाता नयं स्त्रिषः । अधुना चेद्वाधवस्य दर्शनं न भविष्यति ॥३६॥

७.११ द्वापदम कृष्णरुपसे से बहुत सी स्त्रियोंके साथ भोग करनेवा सही, लेकिन वह कौन-सा ऐसा वत अबदा दान है जिसकी करनम में प्राक्कर्म जन्ममें बहुत सा नाशिकाका या मकूण ॥ १८ ॥ १९ ॥ द्य मरयव कहा—  
 है राम । आपने बहुत ठाक मन्त्र किया है मैं आपको यह दान दनलाता हूँ । यद्यपि एक नाशिकाके पुण्यम  
 हा आपका कितनी ही स्त्रियाँ मिलेंगी । तथापि वह दान सब में देता हूँ । सोन के समान भारत मुचर्णकी  
 एक मूर्ति बनव दिये । फिर उसी तरह सान्त्र मूर्तियाँ तैयार करा के और इन्हे विविध प्रकारके बम्भो-पूजगान  
 भूयत करके समूह नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दे सकिये । २०-२३ ॥ ऐसा करनेसे आप अपने जन्ममें  
 बहुत सी स्त्रियाँ पायेंगे । २४ । रामचन्द्रने उसे स्वीकार किया । तदनुसार उन्होंने कान्ताको सान्द्र मूर्तियाँ  
 बनायी और मरयु नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दिया । २५ ॥ उन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर राघवकी यह  
 आज्ञावाँद किया कि आप इस समय जा कुछ हम लोगोंको दे रहे हैं मां सदस्यगुणा होकर आपका प्राप्त हो  
 ॥ २६ ॥ हम लोगोंके आशीर्वादसे आपको यह फल अवश्य प्राप्त होगा । इसके बाद सन्त्र नही है कि  
 क वही भविष्यमें सान्द्र हजार स्त्रियाँ मिलेंगे ॥ २७ ॥ रामजाने भा कहा कि राज है मेरा हा है । और  
 उन स्त्रियोंको तथा ब्राह्मणोंको भली भाँति पूज करके बिदा किया । २८ ॥ एक बार राम येनमानम सम्यु-  
 न्दर हीनाजीके साथ पटगुह ( तम्बू ) में विहृत कर रहे थे । सभी क्षेत्र रामनवमापर मरयुनयन करनक  
 लिये हजारों रात्रो अशोष्या आ पहुँच ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे देवता, यक्षा, किन्नर, गन्धर्व, वज्रग, पर्वत,  
 शशिवा, समस्त तार्य, मुनि, राजे, भक्षरादे, खग, क्षेत्र, नन्दर आदि वही सान्त्र करनेके निमित्त आये ।  
 क दिन देवताओंकी स्त्रियाँ सब कि सोत जो न पिक घर्ममें थीं, सब आपगत न यह करके विविध प्रकारके  
 वन्धाभूषण पहनकर रामचन्द्रजीके साथ गयीं । ३१ ॥ ३२ ॥ वे सबकी सब रामके सौन्दर्यको देखकर पागल  
 हो गयी थीं । उन्हें देखकर रसकोन पूछा— ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तुम लोग कौन हो ? आर्यो रासके सबक वही कि  
 लिये आयो हो ? साफ-साफ बतला दो, धबकाओ नहीं ॥ ३५ ॥ उन्होंने कहा कि हम सब स्त्रियाँ रामचन्द्रको

जातो वधस्तदाऽप्यमाकं जीवितानि नदीजले इति तामां वचः श्रुत्वा दूताग्ने राघवं जवात् ॥३७॥  
 दास्या निवदयामासुः स्त्रीवृत्तं तन्मविस्तरम् । श्रुत्वा दासीमुखोद्गमः सैकते मन्त्रके स्थितः ॥३८॥  
 समाहूय स्त्रियः सर्वा ददर्श रघुनायका । ताश्चापि दृष्ट्वा श्रीगमं मेनिरं कृतकृत्यताम् ॥३९॥  
 नतस्मा राघवं श्रुत्वा लज्जयाऽधोमुखः स्त्रियः । पाङ्तिनाः कामवाणैश्चनस्थः श्रीगममन्त्रिणौ ॥४०॥  
 ताः पप्रच्छ राघवोऽप्यागमदम्पथाथ करणम् । सा राघवं तदा प्रोचुः सर्वं वेत्ति स्वर्मेश्वर ॥४१॥  
 श्रुत्वा तामां गमचन्द्रो हृदयं प्राह ताः पुनः एकपत्नीव्रतं मेऽस्मि चैतज्जन्मनि मेः स्त्रियः ॥४२॥  
 न श्रेय मे मृषा वाक्य गम्यातां स्वस्थलं जवात् । माऽभूदवमो मद्राज्ये राजा वै निरयप्रदः ॥४३॥  
 इति राघववाग्द्वार्णमिन्नमर्मस्थलाः स्त्रियः । ययुर्मुखां क्षणादेव मिकतायां सहस्रशः ॥४४॥  
 सा मुखाविह्वला दृष्ट्वा रामो विह्वलमानसः । नारीः संशेषवद् प्राह हे नार्यः अपतां मम ॥४५॥  
 वाक्यं श्लेधापहं बोधय दापरे कृष्णरूपशृङ्ग । अहं ब्रजे भविष्यामि नन्दगोपेशपालिने ॥४६॥  
 तदा देवास्तु गोपाला भावि मद्वरदानतः । भविष्यन्ति सुरेशश्च नन्दस्तत्र भविष्यति ॥४७॥  
 भविष्यथ तदा युय गोपिकाः सकला ब्रजे । कुन्ताकपूरिष्यामि पथेच्छं वाञ्छितं तदा ॥४८॥  
 रागकीडां हि पुष्पाभिः कशिष्णामि न मशयः । बुन्दावने तु कालिंयां सैकते निशि वै चिरम् ॥४९॥  
 भवन् स्वस्थचिन्ताश्च गच्छन्त्वं स्वस्थलं मुन । इति रामवचोरूपसुधया जीविताः स्त्रियः ॥५०॥  
 किञ्चिन्नृपहृदो रागं नत्वा जम्बुनिजं स्थलम् । एतस्मिन्तरे तत्र मधुस्तानार्थमादरात् ॥५१॥

मायापुर्याः समायाना रम्या गुणवती शुभा ।

श्रीरामचन्द्रे उवाच

का मा प्रोक्ता गुणवती किशीला कस्य कन्यका ॥५२॥

देखनेके लिए आयी हैं । यदि इसी समय हमको राग्यक दर्शन नहीं मिले तो हम सब इस सुरयू नदीमें कूदकर  
 अपने प्राण दे देंगे, ऐसी बात सुनकर दूतगण तुरन्त रामके पास गये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ पहुँचकर  
 उन्होंने दासियों द्वारा रामचन्द्रजीके पास गये समाचार कहनाया और स्त्रियोंके उस वृत्तान्तको दासियोंने  
 विस्तारपूर्वक रामको सुना दिया । दासियोंके मुखसे यह सुनकर रामने उन सब संयाज्ञनाओंको बुलवाया ।  
 पास पहुँचकर स्त्रियोंने भगवान्‌के दखा । दवाङ्मनाओंने उनको उस सत्यको छावकी दखकर अपनेको कृत-  
 कृत्य समझा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उन्होंने अजित्म होकर भगवान्‌की प्रणाम किया और कामवाणमे पीड़ित होकर  
 वहाँपर बैठ गयीं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ रामने उनके अगमनका कारण पूछा । उन्होंने कहा—माय सबके ईश्वर हैं, मला आपसे  
 कौन बात छिपी रह सकती है । आप सब कुछ जानते हैं ॥ ४२ ॥ उनमें गनकी बात जानकर रामने कहा—हे  
 हे स्त्रियो इस जन्मसे ता मे एकपत्नीव्रतवाणी हैं ॥ ४३ ॥ मैं जा कह रहा हूँ उसे मित्रता सब समझना ।  
 अच्छा, अब तुम लोग अपने-अपने ईश्वर जाओ । ऐसा करा कि जिससे मेरे द्वारा किसी प्रकारका अक्षम  
 न हूँ क्योंकि जिस राजाके राज्यमें अधम हाता है, उसे नरकगमा होता रहता है ॥ ४४ ॥ इस तरह  
 रामको जाते सुनकर कामवाणसे पीड़ित वे दवाने स्थित क्षणभंगम पहुँच हो गये ॥ ४५ ॥ उनको मूर्ख  
 देखकर विह्वलमनस्क रामचन्द्रजी उनका सन्ताप दत्त हुए कहने लगे—हे नारियो ! मेरी बात सुनो, इस तरह  
 अपने मत होओ ॥ ४६ ॥ जो मैं कहता हूँ, उसे सुनकर तुम्हारा सब लड़ हू हो जायेगा । दापरसे मैं  
 कृष्णरूपसे गोपश नन्द द्वारा पान्ति लज्जमे जन्म लूँगा । उस समय समस्त राजा मेरे आशीर्वादसे योग  
 होने हन् नन्दरूपसे जन्म लगे और तुम सब उन गोपालोवा गोपिणी होओगी । उस समय मैं तुम लोगोंकी  
 समस्त कामनाएँ पूर्ण करूँगा ॥ ४७-४८ ॥ कृदावनमें ययुनाकी रतीमें शत्रिके समय तुम लोगोंके साथ मैं  
 रासकीडा करूँगा ॥ ४९ ॥ अब तुम लोग स्वस्थ दाकर अपने-अपने स्थानको जाओ । इस तरह रामके वचन-  
 रूपी सुवासे जीवित और किञ्चित् सन्तुष्ट होकर वे अपने-अपने स्थानको लौट गयीं इसके अनन्तर माया-

तद्वदस्य मविस्मरः कस्यामीन्ममदा पुनः । इति शिष्यवचः भूत्वा रामदासीऽप्रकीर्णः ॥५६॥

इति श्री तन्वत्किरास्यचरितार्णवे श्रीमदानन्दरामायणे चान्मीकीये विलासकाण्डे  
इत्युत्तरीकरणे नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

### अष्टमः सर्गः

( विंगला वेश्याके कारण गणेश मीनाका कोष )

अथ रामदास उवाच

आसीत्कृतपुणस्याने मायापुत्री द्विजोत्तमः । आत्रयो देवअर्पेति वेदवेदांगपरमः ॥ १ ॥  
अनिवेशोऽग्निशुश्रूषी मौरत्रतपगणः । पुर्यसागधयन्नित्यं मायासूय इवापरः ॥ २ ॥  
तस्यातिवपस्यार्पीन्नाम्ना गुणवती सुता । अपुत्रः स इति शिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥ ३ ॥  
एमेव पुत्रवन्मेने स च तं विदुषद्वयी । तौ कदाचिद्वन पानी कुशेभ्यद्वयार्थं ॥ ४ ॥  
हिमाद्रिपादे वेमेव चैरस्तुतागिनधनः । नातर्त्ता राक्षसं घोरमपश्येतां पुनःस्मितम् ॥ ५ ॥  
मयविह्वलमर्वाह्वयमयो परायितुम् । निहती रक्षसा तेन कृतातममरूपिणा ॥ ६ ॥  
तौ तन्मौदप्रभावेण धर्मशालनया पुनः । वैकुण्ठभुवन पानी नाना विष्णुगर्भस्तदा ॥ ७ ॥  
पावत्रीचं तु यनाम्नां सूर्यपूजादिकं कृतम् । कर्मणा तेन गन्तव्यो विष्णुस्मरणं बभूव ह ॥ ८ ॥  
श्रुत्वाः सौम्य गणेशा वैद्यराः शक्तिपूजकाः । तदेव प्राप्नुवन्तोह वरपः मागव यथा ॥ ९ ॥  
एकः स पचथा जातः कियथा नामभिः किल । देवदत्तो यथा कश्चिन्पुत्राद्याह्वानमावाभ ॥ १० ॥

ततश्च तौ नद्वचनाभिदर्शनौ विमानयानौ गविवचः कुरुताम् ।

तत्तन्वद्वशी हरिगन्निधानगो दिव्यांगनाचन्दनमोगमोगिनी ॥ ११ ॥

एक-स एक गुणवती नमकी मन्दा-या' वहां दय-वानक निमित्त आया, विष्णु-मन्त्र पुछा - हे पुत्र ! वह गुणवती कौन थी ? विस्तीर्ण पुनः था और उसका शोच-स्वभाव कैसा था ? तब अपने बिसती स्था-था ? सा कृपया विस्तारपूर्वक आप मुझे बतलाया । इस प्रकार विष्णुनामकी बात सुनकर आरामदास ने फिर कदना आरम्भ किया । १०-१३ इति तन्वत्किरास्यचरितार्णवे श्रीमदानन्दरामायणे चान्मीकीये पञ्चमोऽध्यायः नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास ने कहा बहुत निवेदन वत है कि जब सत्ययुगक अन्तमें मरु ११ म सब वदनेद-एषार जून अग्निमोत्रका दवगर्मा नामक एक ब्रह्मण रहता था । १ ॥ यह अनिर्विद्वज्ज, अभिमानी, मयकी आराधना करतकामों तथा दूसरे शूरवीरों का नरस्व था । २ ॥ उसका वृद्धावस्थाम एकमात्र गुणवती नामकी कन्या प्राप्त हुई थी, उसका कोई पुत्र नहीं था । सो उसने गुणवतीका विवाह चन्द्र नामके अपन एक शिष्यक साथ कर दिया ॥ ३ ॥ दवगर्मा चन्द्रक पुत्रक समान मानता था । उसी परतु चन्द्र भ दवगर्माका अपन पिता महब समझता था । एक दिन वे दोनों कुशा तथा लक्ष्मण नामके द्वि-जनलम गये ॥ ४ ॥ जात जात के दोनों हिमवान् पवतये समीप पहुँच और इधर-धर घूमने लगे । उसी समय उन्होंने अपने मामन एक बड़े चारी राजनको देखा । ५ ॥ उस दयकर भाले हुनक अंगे दिविल आ गये जिनमें नामकी माधव्य नहीं रही और पमराजके समान उत्तमिक । ६ ॥ वह दोनों-द सब-प्रभाव तथा अपनी धर्म शीलतासे विष्णु कोक गये । विष्णु-क तथा उत्तम-वृत्ति-विवा-ने ग-ये । ७ ॥ वह जन्मभर मृगीदि देवताओंका पूजन किया था । इस कारण उत्तमर विष्णु-मन्त्र तद्वत् प्र-प्त हुआ । ८ ॥ इन संसारमें गैव, सौर, गणेश, वैद्यरा तथा शिव पूजक वे सब भगवाणक परत उसी नर-मन्त्र के जन्म-मार्गका वर अनुदमें जाता है ॥ ९ ॥ वह अकेला ईश्वर-म और चर्मक उधा-न पीक-ह-म-मन्त्र-मन्त्र-है । जैसे अकाल पवतल किसी का पुत्र, किसीका भाई, वि-मन्त्र-म-म-मन्त्र-मन्त्र-है । अन्ति जन्म-मन्त्र-मन्त्र-है । १० ॥ इसके अनन्तर

ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुधौ । विदुर्मर्जदुःस्वार्ता निललाप भृशतुल्य ॥१२॥  
 सा गुदारस्फुरान्मशान्विक्रीप शुभकर्मकृन् । तपोश्रक्ते यथाशक्ति परलोकक्रियां तदा ॥१३॥  
 तन्निष्करोर पुरे वाम चक्रं प्रसूनेजीविनी । विष्णुपत्तिरग शांता सन्पशूना जिनेन्द्रिया ॥१४॥  
 प्रताष्टक नया मध्यशानन्ममरणात्कृन् । एकादशीश्रव मध्यक् सेवन कार्तिहरण च ॥१५॥  
 माये चंद्र नाभदेऽपि स्नानानि प्रतिवस्मरम् । मेमाज्जन विष्णुगेहे स्वस्तिकादिनिवेशनम् ॥१६॥  
 नित्यं विष्णो पूजनं च मकन्या तत्परमानसा । इत्थं प्रताष्टक मध्यक् सा चकारातिभक्तिनः ॥१७॥  
 एकदा सा गुणवती पौराणिकमुवेन हि । श्रुत्वा महत्फलं शिष्य साकेते समुज्जले ॥१८॥  
 चंद्रस्तानस्य केवलपदायक जनसंयुता ययौ श्रावणनगरीं रामतीर्थेऽवमच्छुभा ॥१९॥  
 मैकदा रायत्रं द्रष्टुं समुत्सैकतस्थितम् । वामोमेहे रदः पन्था ययौ वंशुममन्नितम् ॥२०॥  
 पूजापात्राणि हस्ताभ्यां विभ्रतीं द्वाग्दम्भिता । प्रतीहारेण रामाय वेदिना सा विवेक ह ॥२१॥  
 वामोमेह ददर्शाथ मातया रघुनायकम् । रत्नमंचकमलजन धृताधोकोपवर्धणम् ॥२२॥  
 क्रांतं सारिभिः शार्धैः पीतया लक्ष्मणेन च । कैकेयीनयाम्भ्यां च सस्तीर्तः परिवर्जितम् ॥२३॥  
 मगुरपिच्छमभूतचामरैः परिवर्जितम् । रत्नचित्ररुक्मपदे नूपरे पदयोर्वरे ॥२४॥  
 विभ्रन्तं रथनां कय्या रत्नरुक्मविभूषिताम् । रत्नरुक्मपदे दिव्यकङ्कण कययोर्वरे ॥२५॥  
 विभ्रन्तं भुजयोर्दिव्यकेयूरे रत्नमुपिते । कण्ठदेशे हीम्तुम च हृदि चित्तामणिं शुभम् ॥२६॥  
 विभ्रन्तं विविधान्हागन् रत्नवाणिक्यनिर्मितान् । तथात्र लक्ष्मणज्योतिषं मुक्ताहारान् विचित्रान् ॥२७॥

मे कानो मेमुष्टभुवनम् रहते याने । उम्हे विमानसी सज्जगी मिले यी और मूयंके समान उनका तेज था ।  
 विष्णुके समान उनका रूप था और उनके सरारमे दिव्य चन्दन लगा रहता था ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् जब  
 गुणवतीने मुना कि मेर गिता और वलि दोनों विभी राधाम दुःखा मार जाने गये है । सब उसे अतिशय दुःख  
 हुआ और वह विषाद कारण रग्यो ॥ १२ ॥ फिर धरम को कुछ मार-मताह था, सब बच जाया और अपनी  
 भक्तिके अनुसार उनका पारलौकिकता निरा पूर्णका । तबसे वह मोक्ष मागकर स्वामी हुई उसी तगरमे रहकर  
 अपना जेवन बिताने लगा । गुणवती विष्णुका भक्ति करती हुई सत्य-गौच जिनेन्द्रितादि गुणोसे पूर्ण हो  
 गयी ॥ १३ ॥ १४ ॥ उभने अपन मावन भरम कवल अछ प्रत विषे थे । वह एकादशी व्रत, कार्तिकका  
 सेवन मागंशाग, चैत्र तथा माघमे प्रतिवर्ष स्नान लिया करता थी ; वह विष्णुके मन्दिरमे बहारी देती तथा  
 मर्त्यिकादि रचने थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ भक्तिसे और माविधान हृदयमे वह नित्य विष्णुका पूजन करती थी ।  
 इस तरह इन आठो प्रतीको श्रद्धासमन करती रहा । हे शिष्य ! एक दिन उसमे एक पौराणिकसे सुना कि  
 चैत्रमासमे कणाश्रक सरयूजलका बड़ा माहात्म्य है और चैत्रमासमे तो वहाँ स्नान करनेमे महज्ज ही में मुक्ति  
 मिल जाता है । यह सुनकर बहुतमे आदमियोंको साथ लेकर गुणवती चैत्रस्नानके लिए अयोध्या आयी  
 और उसी रावन नगरमे टिक गयी । १७-१८ ॥ एक दिन गुणवती जहाँ सरयूकी रेलीमे रामचन्द्रजी  
 ठेरा डाले हुए थे, वहाँ जा पहुँची । उस समय रामचन्द्रजी पटगृहके किसी एकान्त कमरेमे लक्ष्मण और  
 सीताके साथ बैठे थे । फागुनपर पहुँचकर गुणवतीने प्रतीहारी द्वारा सन्देश भेजा और स्वयं पूजापात्र हाथमे  
 लिये बाहर ही खड़ा रहा । प्रतीहारोंके लौटनेपर वह अन्दर गयी ॥ २० ॥ २१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने  
 देखा कि रामचन्द्र सीताके साथ रत्नजटित मक्षपर बैठे थे और तर्किया लगी थी ॥ २२ ॥ भगवान्  
 राम सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न मारिका और पक्षिके साथ खेल रहे थे । सबियाँ सारी औरसे  
 धेरकर खती थी । २३ ॥ मयूरके पक्षनाके बने हुए पक्षे चल रहे थे । उनके दोनों पक्षोंमे रत्नजटित नूपुर  
 और कमरमे रत्नजटित मञ्जला पड़ी था । दोनों हाथोंमे जडाऊ कंकण पड़े थे । २४ ॥ २५ ॥  
 हाथोंमे सुवर्णके रत्ननूतिल दिव्य केयून् थे । कंठमे कीम्बुभण्णि तथा हृदयमे विस्तामणि था । राम विविध  
 रत्नोंके जडाऊ हार पहन थे । सुनहले तथा चित्र विचित्र मोतियोंके हार उनके गलेमें पड़े थे ॥ २६ ॥ २७ ॥



तुलसीकाण्डाद्वाराश्च पु पदगाननेकशः प्रवालमणिद्वाराश्च मुद्रयाः कान्तनोद्धवाः ॥२८॥  
 पदकानि विवित्राणि रत्नमणिश्च रत्नचरि । रत्नाकलाः रत्नदृशात ईकानि विवित्रेणान् ॥२९॥  
 रत्नमणिश्च रत्नमयुक्तान्मुद्राणि विवित्रेणान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥३०॥  
 अगुलीष्वपि विभिन्नं हस्तप्रोमृदिकाः शुभाः रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥३१॥  
 रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥३२॥  
 विभिन्नं रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥३३॥  
 नानामणिमयुक्तं कलशैरिति शोभते । मुक्ताप्रवालैर्युक्तं रत्नमयुक्तं ॥३४॥  
 एव गुणवती रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥३५॥  
 सौमनस्यं रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥३६॥  
 तद्वैरुपदसाद्यैः सुभीतस्तथा तदाद्ययम् । रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥३७॥  
 इति रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥३८॥  
 दास्यः संति तथा रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥३९॥  
 कथं त्वं ब्राह्मणी चेन्महदस्यैव शुभमने । रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥४०॥  
 शृणुष्व त्वं गुणवति कुण्डलधरे वदाम् । रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥४१॥  
 भजिष्यमि तदा मां नृ सारूपेण न सक्षयः । रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥४२॥  
 यश्चन्द्रनामा सोऽङ्गो भजिष्यति मत्पुत्रं मम । रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥४३॥  
 तदा कुरुष्व दास्यं मे यत्ते मनसि वनेते । रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥४४॥  
 नत्वा श्रीराघवं सांतां ययौ सा स्वस्वन्तं प्रते । रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् रत्नमयुक्तान् ॥४५॥

वे गुणसौके कादर्य। गायत्री, पूजार्थी मन्त्रा, प्रवाह आ गणितकी बनी साक्षा पढ़ने हुए थे । गवेष विचित्र प्रकारके  
पदक पड़े थे, जिनमें रत्न और धर्मिक चिह्न निकल आया था । रत्नफल तथा कमलका नाई उनका आकार  
था । वनम अगहू अगहू रत्न और धर्मिक चिह्न निकल रहे थे । इन गवेषमणि में बहु चित्र-  
विचित्र मान्यता बढ़ती थी । उपमे जहाँ तहाँ रामकी पूजा मिले हुए थी । २० । ३१ । इन हाथोंकी लँगडियोंसे  
मुन्दर अंगुठियाँ पहनये वे भी रत्न मुक्ताभाषिक भाँति न निकल पाएँ सतर्कों । बन हुई थी ॥ ३१ ॥ उनमें भी  
रामका नाम लिखा था और वह भी ॥ ३२ ॥ दंत धर्मिक चिह्न निकल रहा । रत्न तथा मुक्त्या जड़ित कुण्डल  
उनके कानोंमें झूल रहे थे । वे पुष्पाक्षर माला अनुक्रम अवधार तथा सूयक समान गम्भीर हार धारण किये थे  
॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मुकुटमें विविध प्रकारके गंजीक वस्त्र लगा रहनेसे वह और भी सुन्दर लग रहा था । उसमें  
भी अगहू-अगहू मुक्ता-प्रवाल-चंद्रमा आदिका सुन्दर काम बना हुआ था ॥ ३४ ॥ इस तरह करड़ी सुवर्ण समान  
हाथकी तथा सुवर्णकी भाँति जिनका वर्ण था, कंचनवर्ण समान जिनके नेत्र थे, शङ्खमाल समान जिनका  
मुख था और कमलकी भाँति हाथ थे । राम रामका गुण जान देखा और प्रणम किया । रामदेवने उसे उठाया  
और उससे विविध प्रकारके उपचारोंसे रामकी पूजा की ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और घेरे दिये । जिसके साथ अतिशय  
प्रसन्न होकर कहने लग कि “तुम्हारी ओ इच्छा हो सो कर माँग ला” ॥ ३७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर  
वह बोली—हे राजाद्वारा राम ! मैं आपसे ये हजारों शायियाँ है, बीस ही मुंडा था अपनी एक दासी  
बना लाजिए । इसकी ऐसा करने सुनकर मुखराने हुए राम कहने लगे— ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तुम शायरी हाँकर  
ऐसी अशुभ बात क्यों कह रही हैं ? यदि मुझे मेरी सेवा करनेकी इच्छा है, तो मैं बनकर जाऊँ ॥ ४० ॥  
हे गुणवती ! मुनी, क्षापामुम में कृष्णरूप प्राण करके अवतार लेगा । तब द्वारिकाम तुम मेरा स्त्री  
होकर इच्छानुसार मेरी सेवा करेंगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उस समय देखभर्मा यादवधनु सबाजित  
तुम्हारा पिता होगा, चन्द्र अद्भुतनामका मेरा मित्र होगा और तुम सर्वसाधा नामका मेरी पटरानी होओगी

आयुःशेषं समाप्त्वाथ गंगायां कृण्वन्निजम् । सन्त्रस्तान्मयवधे न्यक्त्वा नाकं चिरं गता ॥४६॥  
 ततः कालान्तरेष्वात्मन्यवाजितनया भुवि । बभूव पत्नी कृष्णस्य दूषणे द्वाकापुरि ॥४७॥  
 एकदा पिण्डलान्मनी वक्ष्या राज्ञी विनिद्रितम् । पीनया दिव्यवर्षेण ययौ सा राघवं सहः ॥४८॥  
 विहाय नृपरादीनि स्वनवन्ति पदोः झतः । हस्तगतो निर्गन्धनी दिव्यस्त्रिभिभूषिता ॥४९॥  
 सीतामयान्वकपन्तो कामषाणप्रवीडिता । मण्डिता पुष्पमालाद्यैर्मण्यैरतिशोभिता ॥५०॥  
 अज्ञाता द्वाग्यार्जः सा निद्रितैर्मन्त्रकं ययौ । स्वकरेण पदस्पर्शं कृत्वा राघवं प्रबोधयत् ॥५१॥  
 तदा प्रभुदः आशमन्तां ददर्श पुनःस्थिताम् । सा घृत्वा हृदये शार्दूलं प्रार्थयामास राघवम् ॥५२॥  
 राम राजावपत्रक्ष मया तेऽद्यापराधितम् । त्वं भूमय कृपां कृत्वा मयि चानुग्रहं कुरु ॥५३॥  
 त्वत्पया वचनं भूया ज्ञानं नां कामपीडिताम् । तां समाश्रयितुं ग्राह्य राघवः कञ्जलोचनाम् ॥५४॥  
 एकपत्नीयत मेऽस्मिन्मये त्वं वैन्मि पिण्डले । अनन्वस्वकामपूर्वये वदामि तच्छृणुष्व हि ॥५५॥  
 यदाऽहं मथुगामये अजात्यौ कृष्णरूपघृक् । याम्याम मातुलं कस्य हन्त्वा स्वाभ्यामि नन्युगं ॥५६॥  
 तदा भक्तिव्यामि त्वं मां कृत्वारूपेण पिण्डले । गच्छ दाम स्वरूपेण निष्ठु त्वं क्रमवेक्ष्यनि ॥५७॥  
 आयुःशेषं निवर्त्तये देहं विमृश्य बहुश्रुतम् । इत्युक्त्वा पिण्डलां गतो दशकाक्षां भगान्निद्रिता ॥५८॥  
 शिक्षयासासु द्वारम्यान्दासान्दामीर्विनिद्रिताः । ततः मार्गं प्रवाप्याथ वंश्याहृतं न्यवेदयत् ॥५९॥  
 तच्छ्रुत्वा जानकी कृष्णस्यैवा पवङ्गमुत्तमम् । राघवं प्राद मकोशा कथं न हं प्रबोधिता ॥६०॥  
 तदवगम्य मया तातमेकपत्नीयतं मुखा । भुगदी गिरिर्गङ्गा नृपी नपाज्ज बोधिता ततः ॥६१॥

॥ ४१-४३ ॥ इस समय जेना मुहुरा इच्छा होनी वैसा मरा सेवा कर जना इस प्रकार रामकी बात सुनकर गुणमयी बहुत प्रसन्न हुई । ४४ ॥ वह रामचन्द्र तथा साताकी प्रणाम करके अपने द्वैररह लौट गया । इस प्रकार वह अ. ५१ मे चरन्तात करके अपने माचरीन साथ हस्तिद्वार चली गयी । वहाँरह उसकी जितनी आयु शेष थी, उस समय करके एक दिन स्नात करनेकी गायना गयी और वही लक्ष्मण राजाकर स्वर्गान्तना चली गये । ४५ । ४६ ॥ अस्मान्मय गुणवती सप्तजितुकी पुरी होकर जन्मों और कृष्णकी पत्नी बतकर द्वारकामे निवास करने लगी ॥ ४७ ॥ एक दिन पिण्डला नामकी एक वधवा राजिव समय रामचन्द्रके पास पहुँची । उस समय राम साताके साथ एक दिव्य पत्तनपर सो रह थे । वह बही गयी ॥ ४८ ॥ नृपराजि वात्वेवाले जाभूषणानी पैरोस उतारकर वह सुन्दर कपड़े पहने मयवश हथर उभर देवना आ रही थी । साताके भगम उसके अङ्ग अङ्ग वीप रहे थे और वह कामके बाणसे पीडित थी । उसने मुर्गान्त पुराका मान्ता तथा अनक आभूषण पहन रखवा था जिससे वह बड़ा सुन्दरी मालूम पड़ती थी । ४९ ॥ ५० ॥ जिस समय द्वारकासागण निद्रित थे तब पृथग्मे सातर चला आयी और रामचन्द्रकी मचके पास जा पहुँची । उसने हृदय रागके गैर शृंकर उन्ह उगाया ॥ ५१ ॥ राम आज गये और सामने उस पिण्डला वधवाकी दया, तब वह जागस रामके पैरोका एकद्वार प्रार्थना करने और कहने लगी—हे राम ! हे राजावपत्रक्ष ! आज मैं बड़ा भारी अवरुच किया है । मेर ऊपर कृपा करके आप उस कामा कर दें और मेरेपर दया कर ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने सम्मस्त स्थिति कि वह कामपीडित है । तब उस आश्रितन दनके लिए कहन लगे— ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ कि इस जन्ममें मैं गच्छन्तीयमयानी हूँ । अनन्त तृगरी कामवासनाको अन्तिका आ उपाय बनलाना है, उसे साधसान होकर मुना । ५५ ॥ जिस समय कृष्णरूपवाग मे जन्म मथुरा माऊगा और कंसको मरकर उस गुरीमे ठहरेगा तब हे पिण्डले ! तुम वचन के रूपमे मेरा सेवा करोगा । जात्री, मेरे आशीर्वादसे तुम इस गगरवो शय आयु वितारकर कंसके यहाँ दासी होऊंगा म्वा मता । के भयसे रामने केवल इतना कहकर उसे विदा कर दिया । ५६-५८ ॥ तब उन्होंने द्वारका तथा दाम दासी आदिकाकी जगकर डाँटा-फटकारा और साताकी जगकर उस वैश्याका सम्मन बनाने कह सुनाया । ५९ ॥ सो सुना तो आशित होकर जानकी शय्या छोड़कर उठ खड़ी हुई और रामसे कहन लगी कि वह आर्या थी, तब तुमने मुझे

तां विमुञ्च्य चिरादद्य ज्ञातुं ते चरितं मया । सृष्टा त्वया प्रतिज्ञातं पुनः वराममुनेः पुरः ॥६२॥  
एकपत्नीश्रवणं मेऽस्ति कौमल्यामदृशी मम । प्रन्यास्त्रीनि सृष्टा वाक्यं कथ्यसे त्वं पुनः पुनः ॥६३॥  
क गतं तद्भवस्तेऽद्य क गतं तद्वचनं तव । अर्थैव जीविह स्त्रीयं त्वजानि सम्युज्जले ॥६४॥

वेश्यायाः पृष्ठसल्लानां शय्यां नाय स्पृशाम्यहम् ।

वेश्यामक्तस्थामिन त्वां दृष्ट्वा द्वेषो भवेत्त्वयि ॥६५॥

सृष्टायां मयि च दृश्य वेश्यामक्तस्य ते भवेत् । वेश्यामक्तपवित्रस्य चिरं गच्छेत् न विप्रति । ६२॥  
इत्युक्त्वा राघवः नन्वा देहत्यागयमुद्यता । पर्या वेगेन मयं वस्त्रमेधानिहिम्नया । ६३॥  
गच्छतीं राघवो दृष्ट्वा मुक्तकञ्जः प्रदुर्बलः । मन्त्रमाज्जानर्त्ता शृण्वो मुञ्जन्त्या मकनेऽप्यले ॥६४॥  
अत्ररीन्मधुरं वाक्यम रूपं त्वं विशदये । शृणुष्व वचनं मे त्वं दिव्यं नै प्रवक्ष्याम्यहम् ॥६५॥  
मयि ते श्रवणं प्रत्ययो न भवेत्त्वयि । दुष्टं यद्वर्त्तापि त्वं तदहं प्रवक्ष्याम्यहम् ॥६६॥  
वद सीमा जनकजे मा क्रोध भज भारिनि । हात रामयन् शृन्वा जानर्त्ता प्राङ् राघवम् ॥६७॥

जानवदुवाच

राम मूषामह किं ते येन दिव्यं ददामि ते । अनलम्बन्मुरोद्धतो नयने शशिमाङ्गरी ७२॥  
रामस्ते जलार्धं राम पृथ्वीय विभृता त्वया । शेषरत्नमयवशाथ लङ्घयामिपुनः बहिः ७३॥  
शास्त्राणि त्वमस्तजानि सर्वाण्यत्र न संशयः । दृष्टव्यमिह तन्मयं तव रूपं न संशयः ७४॥  
न दुष्टं ते दिव्यार्थं किञ्चित्प्रश्यामि राघव । किं ब्रूयामधुना तेऽत्र येन मे प्रत्ययो भवेत् ७५॥  
एकमेवास्ति जानेऽहं तन्कुरुष्व रघुनम । इदानीमेव स्वगुरुं समाह्वय रघुदह ७६॥

वयो नहीं जगया ? ॥ ६० ॥ आग नुम्हारा एकपत्नीश्रवण मान्य हो गया । विन्या आपी, उसके मय चुरचुर भोग कर लिया और जब वह वयो गयी, तब मय जगया ॥ ६१ ॥ बहुत दिनों बाद आज तुम्हारी यह पाल खरा है । इस दिन राममुक्तिराममान जा एकपत्नीश्रवण पारण करनेकी काम खादी थी, सो सब दाग था ॥ ६२ ॥ 'वयो न न' रामन - अर्थात् वयो कहा - 'वास्तवमे एक पत्नीश्रवणारी है । तुम्हारे सिवाय संसारकी सम्स्त निर्वा मरे लिए कोमलदाक समान है । तुम अर्थ मरे ऊपर रह रही हो । ६३ ॥ तब साता और भी तमककर कहने लगी कि तुम्हारी यह प्रतिज्ञावाली बात कही गयी ? वह बात कहा गया ? अज हाँ मैं सहेके जगम दृक्कर प्रणवा जवन समाप्त कर दूँगी ॥ ६४ ॥ मैं ऐसी सादवापर अब नहीं सोना चाहती, जिसपर कि एक वेश्याको बैठ लग चुकी है । तुम्हारे जैसे वेश्या-मक्त राजाकी जो दशा होनी होगी, सी होगी । लेकिन यह समझ रखिये कि वेश्यामक्त राजाका राज्य जगदा दिन नहीं ठहरता ॥ ६५ ॥ इतना कहकर सीताने रामको प्रणाम किया और अपना देह स्वाग करनेक लिए पटगृहसे बाहर होकर सन्मुखे तीरकी ओर चली ॥ ६६ ॥ सीताको जाती देखकर राम भी पीछेसे दौड़ पड़े और जलक जग पहुँचनेसे पहले ही उन्हें रेतोंमे पकड़ लिया । ६७ ॥ तब वे सीठ-साठ बातोंमे कहने लग-हे बिदेहजे । पर ऊपर इतना ताराज मत होओ । मरी बात मुनो-यदि मेरी बातपर विश्वास न हो तो मे मान्य खानेको भी लेवार हूँ ॥ ६८ ॥ ७० ॥ हे सीठ ! बादा, क्या कहता हा ? हे भारिनि ! इस तरह वयो कोप करता हो ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर सीताने कहा-मैं तुम्हें कुछ कहनी सो हूँ नहीं । फिर तुम कसम किसलिए मानको तैयार हो ? वयो दिव्य पराक्षा कराना चाहते हो ? फिर यदि मैं विव वयोका लेना भा चाहूँ, तो मैंने हूँ । अग्नि तुम्हारे मुखसे निकला है, सूर्य-चाप्रमा तुम्हारे दावो में है, समुद्र तुम्हारा निवासस्थान है, लोको तुमने अपने ऊपर रख छोड़ा है, राघ तुम्हारी राधा है, सो व भी रक्षयणके रूपमे बाहर बने हुए हैं । ७१-७३ ॥ इसमे कोई सन्देह नहीं है कि सम्स्त शास्त्र तुम्हारे मतसे जायमान हुए हैं, मैं जिनर दस्तों हूँ, वो कुछ भी देखती हूँ, तब तुम्हारा ही रूप है ॥ ७४ ॥ मैं कोई भी दुष्ट दिव्य (कसम) नहीं देखती,

पद्मोत्तस्य शयनं कृत्वा ने प्रणम्यो मम । भविष्यति न सदेहमनं कुरुष्व रघून्मम ॥७३॥  
 इति सोमवचः श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । दिव्यं मीमांसितमहयं वसिष्ठं प्रपद्यतदा ॥७४॥  
 लक्ष्मणः शिविकारुद्धः पुरद्वारान्निवृत्तः यथा । मम कथावद्वाक्यं श्रुत्वा द्वाग्मुद्राटवत्तदा ॥७५॥  
 गत्वा पुनर्वा लक्ष्मणः स मुनेर्द्वारं स्थितोऽभवत् । वसिष्ठोद्धारो दाम्प्यः वसिष्ठाय न्यवेदयत् ॥७६॥  
 तनूग्रीवे लक्ष्मणं द्वाग्मागतं न्यवि सभ्रमान् । प्ररुधन्वा वसिष्ठोऽपि तच्छ्रुत्वा विह्वलोऽभवत् ॥७७॥  
 त्रिगीवे लक्ष्मणश्चात्र किमर्थं मां समागतः । इति विह्वलचित्तः स ममाहूयाथ लक्ष्मणम् ॥७८॥  
 पप्रच्छ रामनम्प्राथ कारणं मुनिवत्तम । न कथा लक्ष्मणः प्रहृष्टं येन समागतोऽसि हि ॥७९॥  
 कारणं तत्र जानीमि समुचितं त्वुनैव हि । शिविकार्जुनार्जुना द्वाग्द्वारद्विप्ने मुनिवत्तम ॥८०॥  
 इति श्रुत्वा मया वाक्यमरुधन्वाऽनिप्रार्थितः । शिविकापामरुधन्वा स्थित्वा श्रीमन् ययौ गुरुः ॥८१॥  
 तन्पुष्टे शिविकामस्थः मीमांसितं न्यवेदयत् । रत्नद्रोणमकाशम् घेष्टितो धैर्यपाणिभिः ॥८२॥  
 ममागतं गुरुं ज्ञात्वा प्रपद्येऽहम् रघून्मम । दत्तामनं वसिष्ठारं मीनया प्रणमाम मः ॥८३॥  
 कृत्वा पूजां मविस्तारं वस्त्रैरामरणादिभिः । कथयामास मकले पिगलावृत्तमादगतु ॥८४॥  
 कथयामास सीतायाः क्रोधराजशान्तिप्रभुः । दिव्यं रातुं न किञ्चित् दृष्ट्वाऽन्यत् मीनया मम ॥८५॥  
 विनिश्चितं ते पद्मोर्दिव्यं तने पदाम्बुजम् । मनसाऽपि न धुन्ता मा मया वेद्याऽथवा वरा ॥८६॥  
 इदं चेद्वचनं सत्यं स्पृशामि तर्हि त्वत्पदं । इन्मृक्त्वा राघवः शीघ्रं वसिष्ठपदयोः करो ॥८७॥  
 स्वीयौ सम्थाप्य शिखा प्रणमाम गुरुं पुनः । स्रग्दृष्ट्वा लज्जिता सीता ज्ञात्वा शुद्धं रघून्मम् ॥८८॥

जिससे मर मनम विचार हो ॥ ७३ ॥ वहन न ७ मात्र विचारकर मीन ना यही निश्चय किया है और आप भी वही करें । आपने गुरु , वसिष्ठ ) को बुलाकर यदि आप इतक पैरोंकी साथ या ल को मुख विश्वास हो जायगा । हे रघून्मम । ऐसा करतम मर हृष्टता किन्ती प्रकाशना मया नहीं रह सकया । प्रताप आप यही कर ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इस प्रकार सीताका वचन ममकर रामन मुन्त डागे द्वारा लक्ष्मणको वचनया और वसिष्ठको पास भजा । ७६ ॥ पायकोपर चत्कर मयाण रात्रु मगर मरु । वही पहलद राम फटक लायवाकर सरन्त रघु वीरुक्त इत्यादिपर आ मरु । डायलने राता द्वारा लक्ष्मणको आनेका म दश वसिष्ठ क पास भजवाया ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ प्राची रतक ममर रदनको द्वारपर आन मुनकर वसिष्ठ तथा अरु मनी राता पदराहम विह्व हो गये ॥ ७९ ॥ वे सोचने लगे कि आधी रातकी लक्ष्मण मेरे पास क्यों जाय । इस प्रकार व्याकुलताक साथ उन्होंने लक्ष्मणको अपने पास बुलाया ॥ ८० ॥ और आनेका कारण पृछा । वसिष्ठका प्रणाम करके लक्ष्मणने कहा कि आपका रामने स्पर्श किया है ॥ ८१ ॥ आपको बुलाने का कारण मैं भी नहीं जानता । हाँ, यह जानना है कि आप अभी उठकर मेरे साथ चले । बाहर पालकी सवार है ॥ ८२ ॥ इस तरह लक्ष्मण द्वारा रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने प्रार्थना करनेपर वसिष्ठ उठ भा अपने साथ लिय हुन सटपट चल दिय ८३ ॥ उनके दाएँ-बाएँ लक्ष्मणनी पालकी चला जिस समय वसिष्ठ राजभवनपर पहुच तब चारों ओर रतने के दापकोका प्रकाश फैल रहा था । अनेक पहोदार अपने-अपनी मीकरीपर उठ हुये थे और बहुतसे वसिष्ठका धनन्त साथ चले गये थे ॥ ८४ ॥ जब रामने सुना कि गुरुजी आ गये है तो उठ तथा बाँझ दूर आगे उ कर मिले और संतके साथ उनको प्रणाम किया । फिर एक निष्ठ आसनपर बैठकर अस्त्र-भूषणोंस विभिनत् पूजन करनेक पञ्चान् उस पिगला वेष्टाका वृत्तान्त कह दिया ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ फिर यह बात भी रागायो, जो कोषमे सीताने रामका कहा थी । फिर कहन लगे कि सीताको विश्वभक्त के किसी भी शान्तिपर विश्वास नहीं है ८७ ॥ अन्तमें आपके चरणोंकी शयन खिलानपर राजा हुई है । मैं कभी मनस भी इस वेष्टा तथा अन्य विसा म्माके साथ रनमङ्ग नहीं किया है ॥ ८८ ॥ यदि मेरा ये बात सच है तो मैं आपके पैर दूर र साथ लाता हूँ । ऐसा कहकर सटपट रामने वसिष्ठजीके पैर पकड़ लिये ॥ ८९ ॥ फिर अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । यह देखकर सीता लज्जित हो

प्रणम्य वेङ्गपादं तं लभस्वेति प्रमादयत् । ततः सीता गुणेः पत्न्येदौ चित्राणि भक्तितः ॥१३॥  
 भूषणादि पराज्येन दिव्यरत्नानि सादात् । रामेण पूजितवापि वसिष्ठः पूर्ववन्निष्ठा ॥१४॥  
 सहितः शिषिकामस्थस्तुष्टः स्वीयगृहं ययौ । तत्र सीतां समालिङ्ग्य रामो निद्रां चकार सः ॥१५॥  
 प्रभाते विंगतां दास्या समाहूयाय जानकी । धिग्बिषकुन्वा सख्यं धिस्तां ताजयामास वंशिताम् ॥१६॥  
 सीतोवाच तदा वेश्यां वस्मान्मंघापरश्वितम् । भविष्यसि त्रिवका त्वं मधुरार्या हि कुम्भिका ॥१७॥  
 वेङ्गया प्रार्थिता प्रहृ कृष्णस्त्वमुदगिष्यति ॥१८॥  
 भ्रुत्वा तौ वंशिता वेश्या मोषयापराप्त राघवः ।

एवं नाराकोतुकानि चकार रघुनन्दनः । सीतां सम्ज्जयामास स्वचरित्रैर्धनोर्मिः ॥१९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे सीताञ्जकारवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

### नवमः सर्गः

( सूर्यग्रहणपर रामकी कुरुक्षेत्रयात्रा )

श्रीरामदास उवाच

एकदा शीतया रामः कुरुक्षेत्रं स्ववंशुभिः । ययौ सूर्योपरामे वै स्नातुं गुष्पकसंस्थितः ॥ १ ॥  
 तत्र देवाः सगन्धर्वाः किन्नराः पन्नया ययुः । नानाऽऽभयेभ्यो हृन्वः पार्थिवाश्च सहस्रशः ॥ २ ॥  
 तत्र स्नात्वा रवौ प्रस्ते राघवः सीतया सह चकार नानादानानि हस्त्युष्ट्रस्थवाजिनाम् ॥ ३ ॥  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे नानोपायनपाणयः । ययुस्ते राघवं दृष्टुं राजपत्न्यश्च जानकीम् ॥ ४ ॥  
 अथ सीता राजपत्नीः समालिङ्ग्य वरामने । सखीभिर्मुनिदारैश्च सुखं चोपाविशतदा ॥ ५ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतया पूजिता स्थिता । लोषामुद्राञ्जवीडाकय जानकी रंजयन्मुदा ॥ ६ ॥  
 हे सीते कञ्जनयने धन्याऽसि गजगामिनि । किञ्चिद्वर्णय रामस्य शौर्यं श्रुतितोषदम् ॥ ७ ॥

गर्वां और उन्हें विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी परम पवित्र हैं ॥ १२ ॥ तब सीताने प्रणाम करके रामसे प्रार्थना की कि मेरे भूख भी, थाम मुझे क्षमा करें । इसके अनन्तर सीताने गुष्पत्नी अरुण्यको विविध प्रकारके आभूषण भस्त्रादि दिये । रामचन्द्रजीने छिन्न वसिष्ठजीकी पूजा की । मोड़ी देर बाद गुष्पत्नीके साथ-साथ बालकीपर बैठकर वसिष्ठजी अपने घरको चले गये । तदनन्तर राम भी सीताका आर्जजन करके सो रहे ॥ १३-१४ ॥ सबरे दासी द्वारा सीताने विंगला वेश्याको बुलवाया । उसे बार-बार विश्काय और बांधकर ससियोंके हाथों पिटाया ॥ १६ ॥ इसके पश्चात् उस वेश्यासे कहा कि तूने आज बड़ा भारी अपराध किया है । हमसे भविष्यमें अब तु जन्म लेगी, तब तेरे शरीरमें तीन कुबह होंगे और तूझसे सब घृणा करेगी ॥ १७ ॥ तदनन्तर उस वेश्याने अनेक प्रकारसे सीताकी प्रार्थना की । तब सीताने कहा—'अच्छा, वा तेंरा उदार कृष्णके हाथों होगा' । तब जब रामने सुना कि विंगला बँधी पिट रही है, तब उसे दृढ़ता दिया ॥ १८ ॥ इस तरह राम विविध प्रकारके कौतुक करके अपने मनोहर चरित्रसे सीताको प्रसन्न करने रहते थे ॥ १९ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये १० रामतेजपाण्डोपरचित्त'व्याख्या'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक बार रामचन्द्रजी सीता तथा अपने समस्त भ्राताओंके साथ कुष्पक विमानपर सवार होकर सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्र गये । १ ॥ वही समस्त देवता, गन्धर्व, किन्नर, पद्मर तथा कितने ही आश्रमोंके मुनि और हजारों राजे आये हुए थे ॥ २ ॥ जब सूर्यग्रहण लगा, उस समय सीताके साथ रामने स्नान किया तथा हाथी-घोड़े ऊँट और रथ आदि सब दिया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर वहाँ आये हुए राजे अनेक प्रकारके उपाहार ले-लेकर रामका दर्शन करने आये और रानियाँ भी सीताको देखनेके लिए उनके साथ आयीं ॥ ४ ॥ जब रानियाँ सीताके पास पहुँचीं तो उन्होंने बड़े आदरके साथ उन्हें उनकी सखियों और मुनिपत्नियोंके साथ एक सुन्दर आसनपर बिठलाया ॥ ५ ॥ सीताके विविध वस्त्र पहन कर लेनेके बाद मुनिपत्नियोंके आग्रहपरकी लोषामुद्रा सीताको प्रसन्न करती हुई चढ़ने लगीं—॥ ६ ॥ हे कवलनेत्रे

तपस्या यत्नं श्रम्या वर्णयामास जानकी । स्वपाणिग्रहणान्तर्युः कुरुक्षेत्रावधि कथाम् ॥ ८ ॥  
 लोपासुद्राऽपि तन्नुन्वा विहस्य प्राह जानकीम् । सर्वं योग्यं कुरुं सीते राघवेण महान्मता ॥ ९ ॥  
 एक एव वृथा क्लेशः कृतस्तेनेति वेदुम्यहम् । महान् श्रमः सेतुवधे किमर्थं हि कुरुः पुनः ॥ १० ॥  
 कथं न कथितं कुम्भजन्मने गण्येण हि । सगार्धं चुटुकं कृत्वा पीत्वेम लवणार्णवम् ॥ ११ ॥  
 शुष्कं कृत्वा कपीन्मार्गोऽभविष्यदन एव हि । वृथा ते भविताः सर्वे जानताः सेतुवधने ॥ १२ ॥  
 इति तस्या वचः श्रुत्वा समस्तं जानकी तदा । लोपासुद्रां विहस्य ह लोपासुद्रं पतिव्रते ॥ १३ ॥  
 मम्यवकृतं राघवेण धनसेतोर्वधनं वरम् । तत्कारणं वदाम्यद्य मृणु त्वं स्वस्थमानमा ॥ १४ ॥  
 मृणुन्विता ममाधत्ता महावधं पाषाणस्त्रियः । बाणेन शोषणीयधेन्मामगो राघवेण हि ॥ १५ ॥  
 मविष्यति तदा इत्या बहुवधेति संकितम् । उल्लसनीयो जलधिधेद्रामेण विहायमा ॥ १६ ॥  
 तदा रामं मनुष्यं च कदा ज्ञास्यति राघवः । इनुमपृष्ट्वा लब्धं मन्तव्यं येनपरे तटे ॥ १७ ॥  
 लक्षां प्रति तदा रामपीड्यं किं वदन्ति हि । यदि तीर्त्वा प्रमत्तव्यं बाहुभ्यां राघवेण हि ॥ १८ ॥  
 नोत्सृज्यतीयं विप्रस्य मृतं चेति विशंकितम् । चेन्मूनिः कुम्भजन्मा च प्रार्थनीयः पतिस्तव ॥ १९ ॥  
 रामेण चुटुकं कर्तुं तदा तल्लवणावुधेः । मन्त्रित राघवेणापि तदा हि मविस्तारम् ॥ २० ॥  
 पीतोऽयं जलधिः पूरे भूतं क्रोधादगमिना । मयद्रागद्विस्मयको यस्यान्धारान्वमागतः ॥ २१ ॥  
 सर्वथा मृगयन्सारः स कथं पतुमहेति । स ऋषिर्धमं वक्ष्येन चुटुकं तु कर्षिष्यति ॥ २२ ॥  
 मविष्यति ममाकीर्तिः सर्वत्र जगतां तले । मृगयान् बाह्वगेन स्वकायापि निजोन्निभिः ॥ २३ ॥  
 कारित येन रामेण सोऽयं वेतीति शंकितः । न भूतिं प्रार्थयामास राघवो धर्मतन्परः ॥ २४ ॥  
 एवं यमस्य रामेण स्वकीर्त्यं सेतुवधनम् । कुरुं केतापि न कुरुं न कोऽप्यग्रे कर्षिष्यति ॥ २५ ॥  
 येन रामेण जलधौ शिलाः सतारिताः पुरा । सोऽयं दाशरथी रामधेति रुपाति गतो हवि ॥ २६ ॥

सीते ! हे राजर्षामिनि ! तुम धन्य हो । हमारे कानोको मानन्द होवाले रामजीके किसी पौस्यका से  
 वर्णन करो ॥ ७ ॥ लोपासुद्राक बहुत बहानपर सीताजी वषने विबाहमे लेकर चुटुकाको मना पर्यन्तका समस्त  
 वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ८ ॥ लोपासुद्राने क्या सुनकर साताम कहा—हे सीत ! महात्मा रामचन्द्रन  
 छलक ओ कृष्ण किया वह बहुत टंक किया । केवल एक जानम चुक दये और उन्हावन इतना क्लेश  
 उठाया । मैं नहीं समझ पाया कि मनुष्यपर चढ़ाई क्यों समय रामसे समुद्रम सेतु बनानेका कह क्यों किया  
 ॥ ९-१० ॥ उन्होंने आश्चर्यजोसे क्या नहीं कह दिया । मैं एक अजन्म से मन्दिर लणभरमे उस सारे समुद्रको  
 पी पी ॥ ११ ॥ समुद्र सूख जाता और कषियेका लवण जमक लिये मार्ग मिल जाता । नाहक सेतु बांधनेके  
 लिए उठो उन बातसेका कह दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार लोपासुद्राकी बात सुनकर समस्त प्राण मे साताम कहने  
 लगे । हे पतिव्रत लोपासुद्रे ! रामने जो मनु बांधा, वह बहुत अच्छा किया । मैं उनका कारण जो  
 बतलाती हूँ, मैं एक प्रधान होकर दूत ॥ १३-१४ ॥ वहाँ माया हुई ये राजर्षानिर्वाणी भी शान्तचित्तसे मेरी  
 बात सुने । यदि राम अपने बाणसे समुद्रका भूतान से उठनेसे प्रक्षिप्तकी दृष्टा होनेकी आकांक्षा हो ।  
 यदि राम आकाशमार्गसे समुद्रको लाध जाने लो राक्षस और बानर यह कैसे जानने कि राम मनुष्य है  
 यदि हम मान की पेटपर चढ़कर चल जाते ॥ १५-१६ ॥ तब रामका वर दगदग देम पड़ता ? यदि  
 हाथसे लैरम दूग दूग बार चल जाते ॥ १७ ॥ तब उन्हें यह ल्याम होता कि बाह्यकके मन्त्रको कीते कौपु ।  
 यदि आपन पति से रामसे उमे सीतेका प्रार्थना करनेकी सोचने तो यह विचार होता कि एक बार अममस्य इस  
 समुद्रका पी पुन है और मृगयामाग बाधर निकाला है । इससे यह ल रा है । १८-२१ । उसी मन्त्रके  
 समान लारे समुद्रकी आकाशजो कर्म पियेगे । मान लिया जाय कि रामक कहनेसे अममस्यजी समुद्रकी पी  
 जान तो ममारसे रामका वडा अययन होता कि रामन अपना मतलब साधनेके लिए एक बाहुणकी  
 मृग लिये था । इन्ही बातोंकी साचकर बर्णित्या रामने अममस्यसे समुद्र पीनेकी नहीं कहा ॥ २२-२४ ॥  
 इन बातोंका खूब अच्छा तरह सोच विचारकर हो रामचन्द्रजीने अपनी कीर्तिश्रुतिके लिए समुद्रपर सेतु

इति सीतायामिहः पा लोचामुद्रा जिता तदा । नृणीमाप क्षणे नवीनमायां लक्षितः उभयम् । २७।  
 नतो विहस्य वैदेही लोचमुद्रां प्रवृत्तयन् । मुनिपत्नीश्च सपूज्य प्रार्थयामास तां मुद्राः ॥ २८॥  
 मयाऽपराधित तैऽद्य तत्त्वमस्य वनिप्रणे । स्नेहान्प्रसंगवशोक्तं मयद्वये गमयौहयन् । २९।  
 मय्यर्तुगणिना गमे पौरुषं चेति चेद्भूम्यहम् । इति संप्राप्य ताः मया मुनिपत्न्यन्वर्णमर्जयन् । ३०॥  
 पूजिता नृपपत्नीभिर्ययौ सीता मधुचमम् । नतो गमोऽपि पृथ्वीर्धौ, पूजितो गजवन्निभिः ॥ ३१॥  
 ययौ स नगरीं तुष्टः सौमया गरुडे स्थितः । ये ये समानतास्तत्र कुरुक्षेत्रे राघवेहे ॥ ३२॥  
 ते सर्वे स्वस्थानं जायते रामदर्शनदृष्टिनाः । गमोऽपि नगरीमध्ये पुरस्त्राभिषुद्धः पथि ॥ ३३॥  
 नौगात्रिनः कुम्भदापैर्ययौ निजगृहं मुता । रेमे जनकनन्दिन्या चिरकालं यथामुत्तमम् ॥ ३४॥  
 एवं रामेण माकेनपुर्णामननिकन्यया । नानाकीडाकीनुकानि कृतान्यनिमग्नान्यपि ॥ ३५॥  
 यथा कुना राघवेण सुतं कीडा च सौमया । तर्धर्वाभिलया रेमे लक्ष्मणोऽपि यथामुत्तमम् ॥ ३६॥  
 मांडव्या सातव्यापि रेमे रामो यथा स्त्रिया । तर्धैव श्रनकीन्यापि दृष्टुमनः कीडनेन्यभ्यान् ॥ ३७॥  
 एवं ते स्त्रीपपत्नीभिः पौराः कृताः वचकिरे । तर्धैव विविधद्वीपास्मानादेशनिगमिनः ॥ ३८॥  
 रेमिरे तैऽपि पत्नोभिः स्वीयामिर्मृदिताः सुखम् । सौमया राघवो रेमे यथा गीर्वा म शक्रः ॥ ३९॥  
 गमे आसितसज्ज्येऽत्र न कोऽपि जगतीगले । परदामनो वैश्यागर्भा मादकवस्तुभुक्त ॥ ४०॥  
 न दग्धिर्नैव रोमी चिन्ताग्रस्तो न विह्वलः । न पापान्मा जडो नावीर्यं गीरो नार्थं क्रियकः ॥ ४१॥  
 एवं शिष्य मया प्रोक्तं त्रिधापवन्ति वरम् । सौमया रामचन्द्रस्य माकेने मादकदर्शं नृणां ॥ ४२॥  
 विलासकाण्डमेतद्दे पः पठिस्थिति मानवः । शान्तः काले च मध्यं ह्ये निशायां रामपत्निर्वा ॥ ४३॥

यथाया या । जिस कालक न तथालक विमल किया था और न आज कोई वर मया, इस उद्देश्य कद  
 दिया था । २९ । अब सब कोई परस्पर कहते हैं कि जिन रामन मनुष्य जिनसे तैय दिया था वे ही य  
 उपायक पुत्र राम हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार मानाही वाचोम लाणाबुद्ध पराम्प ही गयी । और एक दिन उस  
 २९ सभाके चर्चाके बाद हुई न कुछ लज्जित-सा हा गयी ॥ ३० ॥ फिर हमकर स माग मायानुद्रा तथा  
 अज्ञान्य मुनिपत्नियोंकी पुत्रा का और बारम्बार प्रार्थना करके कहा—॥ ३० ॥ मन में प्रार्थना की है, उस आप  
 प्रसाद कर । आप ही मनुह तथा प्रमन आ जानकर मेरे इस प्रकार रामके योगका वजन किया है ॥ ३१ ॥  
 हमारे पतिदेव रामसे भी कुछ पराजय है, यह सब आपका स्वामी आगम्यके हूँ । आशा कीजिए है । इस  
 प्रकार विनती करके सोतावे उन मुनिपत्नियोंकी विदा किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर राजागिनी द्वारा पूजित  
 हुकर सत्ता रामके पास आयी गयी । राम भी उन दश-देश-संगस म ये हुए राजाधरस विलसत ही हावा-  
 पाहोका उनहार लकर पूजित हुए और प्रसन्नतापूर्वक सागाके साथ गरुडवर सवार हुकर अवोषणाकर चल  
 पडे । ३१ ॥ ३२ । सुवन्दनके समय कुरुक्षेत्रमें जो लोग स्नान करन अथवा न रामके दर्शनसे हावित  
 हा-हाकर अपने-अपने घरके आयेन बये । राम भी अथवा रामे पदचक्र दार्शनिक नियोक द्वारा मोहावित  
 हुए हुए अपने मन्त्रोम गये । इनके बाद फिर बहुत कालपरन्तु रामचन्द्रजी सत्ताके साथ विहार करते  
 रहे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस तरह रामने सोताके साथ अथवा रामे विविध प्रकारके क्रीडा-क्रीडा किया ॥ ३५ ॥  
 इस तरह राम सोताके साथ आनन्द करन थे, तब इस तरह लक्ष्मण सोताके साथ युधपूर्वक विलास  
 करन थे ॥ ३६ ॥ इस तरह भरत सोताके साथ तथा अश्वध्व सुनकोनिक सागके हा करन थे ॥ ३७ ॥ पुनः सो-  
 ता न न विविध दूर और दशके नगरी या अवनी-गना विरजाके साथ प्रसन्नतापूर्वक योग-विलास करते  
 थे । राम भी सोताके साथ इसी तरह आनन्द करते थे जैसे ईश्वर परवर्तीके साथ शंकरजी स्वच्छन्द  
 विहार करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ रामके शासनकालमें कोई भी मनुष्य दूसरेकी नियोपर आसक्त तथा वैश्यागर्भो  
 नहीं था । न कोई किसी तरहकी मादक वस्तु ही खाता पीता था ॥ ४० ॥ रामके राज्यमें कोई दण्ड,  
 दण्ड, चिता-तुर, विह्वल पापी, मर्त्य और जयवा हिमक नहीं था ॥ ४१ ॥ हे शिष्य ! मेरे सुन्द्रे इस प्रकार  
 रामका सुन्दर विलासकाण्ड कह नूनाया । जिसमें राम और सीताका सबके लिए सुन्दर चरित्र मरा हुआ है ॥ ४२ ॥

स जंगो रापवः साक्षाद्भुवि मानवरूपयूक् । विलासकाण्डपडनादनार्थं वनमाप्नुयात् ॥४७॥  
 भोगानाप्नोति भोगार्थी पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् । विलासकाण्डमेतद्वै गमयकन्येकमानवः ॥

यः शृणोति नरः कश्चित्स्य सुखं प्राप्नुयाद्भुवि । ४५ ।

विलासकाण्डश्रवणाक्षरः वायान्प्रवृत्तयति । विलासकाण्ड परमं रम्यं जनमनोहरम् ॥४६॥  
 आनन्ददायकं चित्रं श्रुतिमौख्यप्रदं महत् । ये पठन्त्यथ शृण्वन्ति सर्वान्कामान् लभन्ति ते ॥४७॥  
 भोगार्थी प्राप्नुयाद्भोगान्भोगार्थी प्राप्नुयाच्चित्तप्रसम् । कामानाप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥  
 निशापो मंचके स्थित्वा निजपत्न्या पठेत्तु यः विलासकाण्डं वचनसं तस्य पुत्रो भविष्यति ॥४८॥  
 अथवा मंचके स्थित्वा सुखिवेश्याय तत्पूजः । द्वितीये मंचके स्थित्वा स्वयं दयितव्यः सह ॥४९॥  
 यः शृणोति निशापो हि विलासकाण्डं मनोरमम् । एतन्काण्डं पवित्रं च परमामान् पुनः पुनः ॥५०॥  
 तस्यापुत्रस्य पुत्रः स्यात्पुत्रं कार्यं विचारया । पुत्रार्थमत्र भोगव्यं मंचके ह्यपरिष्य च ॥५१॥  
 भोगव्यं नान्यकामेषु मन्त्रकर्मनरैः कदा । विलासकाण्डमेतद्वै स्त्रीकामस्यैः पठेन्नरः ॥५२॥  
 त भवार्थं प्राप्नुयाद्रूपार्थं नवमार्थैर्न संशयः । कुमारी शृणुयादेतन्पश्येत् काण्डमुत्तमम् ॥५३॥  
 पुनः पुनस्तु वचनसं लक्षिष्यति नरं पतिम् । विलासकाण्डमेतद्वै यः शृण्वन्ति वराः स्त्रियः ॥५४॥  
 मौल्यलक्ष्या न कदा हा विहीना भवन्ति हि । मर्तुगपुष्पपुटयर्थं क्षीमिन् स्नानपूर्वकम् ॥  
 भवर्णाय विलासकाण्डमेतन्काण्डं मनोरमम् ॥५६॥

रम्यं चित्रं मधुरं पवित्रं विलासकाण्डं हि यथैतदुदंडम् । पात्रादिना पश्यन्त्यथ प्रदंडं धर्मैककुंडं भवरोगदहं ॥  
 इति श्रीशत साठिगमचरितस्तोत्रं धामशानन्दरामायणे विलासकाण्डे कुरुक्षेत्राचार्येण नाम नवमः सर्गः ॥ ५ ॥

जो मनुष्य इस विलासकाण्डका प्रालम्बन मन्त्रवाङ्मय वा रत्निके समय रामचन्द्रक समीप पाठ करता है, उसे मनुष्यरूप मान्य विषये हुए सञ्जान् राम ही समझना चाहिये । मनका इच्छा रखनेवाला मनुष्य विलासकाण्डका पाठ करनेसे मन पाता है, भोगार्थी भोग पाता है, पुत्रार्थी पुत्र पाता है और जो व्रणी इसकी सुनता है, वह मन्त्रात्म युग्म ग्रहण है ॥ ४७-४८ ॥ विलासकाण्डका श्रवण करनेसे पापों पापसे छूट जाता है । यह विलासकाण्ड बड़ा सुन्दर और मनको मनको युगनेवाला काण्ड है ॥ ४९ ॥ यह आनन्दरामक एवं विचित्र कथाओंसे भरा हुआ है । इसको सुननेसे मनको आनन्द मिलता है, जो लोग इसे सुनते अथवा पाठ करते हैं, उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं । ४७ ॥ इसमें धर्मार्थी धर्म पता, वनार्थी मन पाता, कामार्थी काम पाता तथा मोक्षार्थी मोक्ष पाता है ॥ ४८ ॥ रत्निके समय जो मनुष्य छः एहीमेसक अपनी रत्निके माथ बैठकर इस विलासकाण्डका पाठ करेगा, उसका पुत्र मिलेगा ॥ ४९ ॥ एक मन्त्रवर व्यासको बैठाकर उसके आगे स्वयं अपनी पत्नीके साथ एक दूसरे भस्वर बैठकर रत्निके समय जो इस मनोरम विलासकाण्डको भी महीनेतक बार-बार सुनता है, उस मनुष्यके भी पुत्र होता है । इसमें किसी मनुष्यका कष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है । पुत्रको कामनावालेको मन्त्रपर बैठकर इसे सुनना चाहिए । ५०-५२ । किसी दूसरी कामनावानेको मन्त्रपर बैठकर यह कथा न सुननी चाहिए । जो स्त्रियोंका इच्छाम इसका पाठ करता है, उसका नौ महीनेके स्त्री भवसा मिल जाता है । यदि कुमारी कन्या पतिको कामन्त्रसे इस काण्डको सुने तो उसे सुन्दर पति मिलता है । जो वयसा स्त्रियाँ इसको सुनेंगी वे कभी भी अपना हीमाख्यलक्ष्मसे विहीन न होगी क्योंकि उनका सीहाय अटल रहेगा । समस्त नारियोंका अपने पतिको आयुष्य बढ़ानेके लिए स्नान करके यह विलासकाण्ड सुनना चाहिये ॥ ५३-५६ ॥ क्योंकि यह विलासकाण्ड डैलके कण्डकी तरह मीठा विचित्र, मधुर तथा पवित्र है । यह पाठदि करनवालेके पत्नीको मार भगनेवाला और भयंका एकवात्र कुण्ड तथा भवरोगके लिये दंडके समान है । इस काण्डमें नौ मर्त्यतया २७८ प्रयोग हैं ॥ ५७ ॥ इति आशतकाठिरामचरितस्तोत्रं श्रीमदानन्दरामायणे वान्मकये ९० रामतजप प्रहङ्गल ज्यत्ना पाठ टाकाया विलासकाण्ड नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

❀ इति श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डं समाप्तम् ❀



श्रीसीतापदये नमः

श्रीशाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

# आनन्दरामायणम्

‘उपोत्सना’ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## जन्मकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( रामका उपवनदर्शन )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सीतया स साकेते बंधुमिश्रितम् । क्रोडां चकार विविधां दुर्लभां त्रिदशैरपि ॥ १ ॥  
एकदा रघुवीरस्तु सोऽन्तर्वत्नीं विदेहजाम् । ज्ञात्वा धात्रीमुखानुष्टो ददौ दानान्त्यनेकशः ॥ २ ॥  
भाक्ष्यान् भाज्याभास कोटिशः प्रत्यहं मुदा । चकार नानालंकारान्वीनान् रत्ननिर्मितान् ॥ ३ ॥  
सातायै दिव्यवार्त्तासि हेमतन्तूद्भवान् च । हरितान्यथ पीतानि रक्तानि चात्रितान्यापि ॥ ४ ॥  
कारयित्वाऽथ कुशलैर्जनैः सूक्ष्माण्य रथवः । विस्तृतान्यतिदीर्घाणि पुष्पवत्सुलधून्यपि ॥ ५ ॥  
महर्षाण्यतिरम्याणि ददौ कन्यै मुदान्वितः । अभ मासे द्विर्नायेऽद्वि रामो द्विजवरैः सह ॥ ६ ॥  
वसिष्ठेन पुंसवनसंस्कारं विधिपूर्वकम् । स चकारोत्सवैर्दिव्यैः सीतायाः परमादरात् ॥ ७ ॥  
सुमेधां जनकं चापि समाहूय सविस्तरम् । जनकः परमर्षतुष्टः सोऽन्तर्वत्नीं निजां सुताम् ॥ ८ ॥  
दृष्ट्वा पुंसवनोत्साहे सीतारामौ प्रपूजयत् । नानालंकारवार्त्तासि हेमतन्तूद्भवानि च ॥ ९ ॥  
हरितान्यथ पीतानि सूक्ष्माण्यथ लघूनि च । विस्तीर्णान्यथ दीर्घाणि सीतायै स ददौ मुदा ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—श्रीरामचन्द्रजी सीता भरतादिक भ्राताओंके साथ चिरकाल तक देवताओंको भी दुर्लभ करारें करते रहे ॥ १ ॥ एक दिन रामचन्द्रजीने किसी भायके मुखसे सीताके गर्भिणी होनेका समाचार सुना तो विविध प्रकारका दान दिया ॥ २ ॥ सबसे लेकर प्रतिदिन करोड़ों खाद्योंको हर्षपूर्वक रामचन्द्रजी भोजन कराते थे । वनेक प्रकारके रत्नोंसे जटिल नवीन अलंकार, सुवर्णके तारोंके कामदार दिव्य वस्त्र और हरे, लाल तथा छींटके कपड़े बनाकर रामने सीताजीको दिये, जो घड़े लम्बे चौड़े और फूलसे हल्के थे ॥ ३-५ ॥ वे वस्त्र बहुमूल्य और सुन्दर थे जब एक मास व्यतीत हो गया और दूसरे महीनेका दूसरा दिन आया, तब रामचन्द्रजीने भूद वसिष्ठ तथा बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ दिविपूर्वक और सोत्साह सीताका पुंसवनसंस्कार किया ॥ ६-७ ॥ उस पुंसवनसंस्कारके उत्सवमें रामचन्द्रजीने सीताके पिता दुहिमान् जनकजी तथा माता सुमेधाको भी बुलाया । यह समाचार सुनकर जनकजी बहुत प्रसन्न हुए और सीताको गर्भिणी देखकर पुंसवनसंस्कारके समय ही सीता तथा रामचन्द्रजीकी पूजा भी, वात्सा

हस्त्युष्टस्यतुरगान् दार्ढ्यादाभ्यान्मनोगमान् । त्रिविकाखाणि वाक्पाणि ददौ गमाय भादरम् ॥११॥  
 एव तपूज्य श्रीगमं मोक्षं च जनकः स्त्रियाः । मय्यानिनो गववण ययौ स्वां मिथिलां पुरीम् ॥१२॥  
 अथ रामः भीतया स रेमे सन्तुष्टमानसः । गमांतिभाराकान्ता म्ना भीता मन्यस्तभूषणा ॥१३॥  
 पादुषणानिवा र्क्षिता कृणाऽपि निनगं ययौ । एकदा गधवे पाज्या धूवयाभाम जानकी ॥१४॥  
 मयन्त्राऽऽगममधऽय रतुमस्ति त्वया सह । तथोपवनमधोऽपि माकेतनागगट्टहि ॥१५॥  
 तदाऽप्याभ्यान्मियाय कयं श्रुत्वा साहृष लक्ष्मणम् । गमोऽध्वरीच्छृमां वाचं मधुगं स्मिन्पूर्विकम् ॥१६॥  
 हे सीमवेऽय मीनया जताऽऽगममृतास्तहि । मया रतु तनस्त्र हि सूचिनोऽपि मयाऽधुना ॥१७॥  
 मधेति रामवाक्यं मोऽप्युगमंकृत्य लक्ष्मणः । गन्वा सभायामाहृष ह्यस्याभाम सेवकान् ॥१८॥  
 चित्रोष्णीषान्देशपाणीन्शह वाक्य भिन्नाननः । कथनीयं हृद्मध्ये द्यारामं यानि जानकी ॥१९॥  
 राषवेण नतो यूय वणिजस्त्वरर्यान्नि । ननः सीमित्रिवचनाच्छ्रुत्वा ते वेत्रपाणयः ॥२०॥  
 चित्रोष्णीषा रुक्मदण्डा राजमार्गं चतुष्पथे हृद् वीक्ष्यामूर्ध्वहस्तास्तदा प्रोचुर्महाध्वरैः ॥२१॥  
 पीगथ वणिज सर्वे तथाऽप्ये व्यवसायिनः । मृष्वंतु हृष्टहृदयाः सीतोद्यानं प्रगच्छहि ॥२२॥  
 राषवेणाभ्यनुज्ञानैर्भवद्विगम्यतां पुरः । एवं सर्वानिवेशाय जामुने रुक्मण चराः ॥२३॥  
 दूतनाज्ञापयामास पुनः सीमित्रिगदगन् । गमोगेहानि विशाणि क्षागवेणु समंततः ॥२४॥  
 कल्पनीयानि वेगेन शोधनीया भुवः शुभाः । जनयन्त्राणि सर्वाणि शोधनीयानि सादरम् ॥२५॥  
 मानापांमप्यवस्तूनि सुग्रीबानि महाति च । स्थापनीयानि च तत्र वन्नाप्यनिलघूनि च ॥२६॥  
 एवमर्दीम्यनेकानि कल्पनीयानि सादरम् मृगावणीयाः शमादाः सर्वे क्षारामभमवाः ॥२७॥  
 दिव्यवस्त्रस्तोत्राण्यर्घ्यकापुच्छैर्वंगतिनाः । तथेति दूताग्ने सर्वे लब्धा चक्रुस्त्वगान्विताः ॥२८॥

प्रकारके मुनद्वेले गहने तथा वस्त्र आहारे पीने, मान गम रतु हुए तथा कृत्वा हरह हलक थे । उन्हें प्रसन्नतापूर्वक सताजो दिया । साथ ही दावो पोर रथ की, मुदर दाम-दामो तथा पालकी आदि रामचन्द्रजीको दिया । ॥ ११-१२ ॥ इस प्रकार राम और सीताको गुमा करके जनकजी अपनी स्त्रीके साथ मिथिलापुरीके लौट गये ॥ १३ ॥ उधर रामचन्द्रजी प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ विहार करते रहे । यथेके भासे लदो तथा स्मरत भूषणाका स्थ, पीन मुख और इन्द्र अद्भुताली भी सीताजी बहुत ही सुन्दर दीखती थी । एक निम सीताने किमी घाटके द्वारा रामचन्द्रजीके पास गह सन्दन कहला बजा कि आज मागके साथ बाहरक दर खेमे दूमनकी मरो इच्छा है ॥ १३-१५ ॥ उस बातके सुखसे यह सवाद सुनकर रामचन्द्रने रुक्मणक वृत्तया और मुन्दराने हुए कहने लगे 'हृदयण' आज माना गये साथ नगरके बहुरवाले वगीचन भूमने जाना चाहती है, सो उसका सब प्रव से ठीक कर दता । रुक्मणजी 'नपाशु' कहकर सभावे गये और सेवकीको बुलाकर जन्दी तैयारी करनक आज्ञा दी । रंग-विरंगा पगड़ी पहने तथा हाथमें सेतके दण्ड लिये सिपाहियोंसे रुक्मणने कहा कि आज रामचन्द्रजी सासाक साथ बगि व आरंग । नृपत्यम जाकर नगरके क्षपाखियोंसे कह दो कि वे स्नान अन्धस अपनी दूकान बढाकर भागे खाली कर दें । इस प्रकार रुक्मणकी आज्ञा सुनकर ॥ १६-२० ॥ रंग विरंगो पगड़ी पहने तथा नुमहरे डंड लिये हुए सिपाही बीरास्ते, पन्ने, बाजार और कंचोंमें हाथ उठाकर जंग जंगसे बहने लग ह पुरवासियों, व्यापारियों तथा व्यवसायियों । बाव लोग प्रसन्नतापूर्वक हमारी आज्ञा सुनने जायें । आज मानाजो बग चर जायेंगे । इसलिए आप सब पहले ही से वहाँ चयें । इस प्रकार सबको सुनाकर वे दूत लोग फिर अपने दपोड़ीपर कर्षां रुक्मणके पास लौट जाये । २१-२३ रुक्मणजीने फिर उनकी आज्ञा दी कि वगीचने तुम लोग जाओ और स्थान पर माना प्रकारकी रहनेकी जगहे बनाओ और दर खेके खानों औरकी जमीन धूँध अखी मरह माफ करा दो । व्यवसायीकी भी परीक्षा करके उन्हें ठीक कर दो ॥ २४ । २५ ॥ विविध प्रकारकी मांगलिक वस्तुये और महीन कपड़े आदि लाकर वहाँ रखी । जो जो चीजें आवश्यक समझी जायें, वे सब प्रस्तुत रहें । वगीचेके

लक्ष्मणो राघव गत्वा नन्दा त श्राह भारद्वाज । श्रुत्वा राम गोपयैव वर्तते गृध्रनन्दन ॥२९॥  
 कुर्यात्सिद्धं हि क्रियान् सीतापाम्भवः प्रियो । सुन्दीमित्रैश्चः श्रुत्वा ज्ञानकी राघवोऽजयीव ॥३०॥  
 भीते यान् वदाद्य न्वं वत्ते मनसि रोषणे । पद्ममयवनं श्रुत्वा शिविका श्राह ज्ञानकी ॥३१॥  
 रामोऽपि रोचयामास शिविकामेव वै तदा । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणश्चापि शिविके गन्धर्वपिते ॥३२॥  
 हेमन्तनृजैर्वैश्वः सर्वत्र वेष्टिते शुभे । आनयामास हतैः मन्मुकाजाल वगाजने ॥३३॥  
 आरुगोहाय श्रीगमः शिविकां वन्या मुदा । वनः सीता पण्डुगता पश्मिपविभूषिता ॥३४॥  
 कृशमयष्टिदांशमिदं गृह्णा यथा शनैः । शिविकामारुगोहाय पृष्टुलमनोपवर्धणः ॥३५॥  
 दार्म्यमिषीजिता चापि धृतार्थोद्भूतवर्धणः । दधात शिविकामारुगोहाय पृष्टुलमनोपवर्धणः ॥३६॥  
 निमुक्तं च मुक्ताभिः सीता स्वीयकरेण तम् । मुक्ताजालगदाक्षेत्र पश्यन्ता भा मुहुर्मुहुः ॥३७॥  
 राजमार्गमन्येव कर्तुकानि समन्ततः । ददर्श नृप्य वेङ्गानां सर्वाभिः पत्रिता वृता ॥३८॥  
 गतरसे चान्ववाः सर्वे वन्धुरान्यश्च मानवः । शिविकापूरतविष्टा दिव्याम् च पृथक् पृथक् ॥३९॥  
 ग्रमे ते भ्रातरः सर्वे ततः सर्वाश्च मानवः । कान्ताद्याः चन्द्रवन्धवश्च सर्वेषां पुरतो गुरुः ॥४०॥  
 पर्व ते प्रयधुः सर्वे पश्यन्तो गधर्वं मुहुः । ननुतुर्वातार्यश्च नेदुवागन्त्यवेकशः ॥४१॥  
 तपुर्वुरदिनः सर्वे सीतां च गृन्नायकम् । एव नानासमुन्वाहरागम म यथा मुदा ॥४२॥  
 राघवः सीतया युक्तः सैन्यं सर्वत्र वेष्टितः शिवश्च वामागेर म समीतो गृध्रनन्दनः ॥४३॥  
 वामोर्गेहेषु सर्वे ते तम्युः पौराः समन्ततः । इडाः समन्ततश्चापन्ननृनुर्वातार्यपितः ॥४४॥  
 वामोर्गेहरूप सीताया भित्तयो वन्द्यनिर्मिताः । पञ्चकोशमितायामाश्रयनं स्नातोऽपि च ॥४५॥  
 पञ्चकोशमितागमे मत्र रेमे विरेहजा । ददर्श ज्ञानकी मन्मथगाम नृपसीकरदम् ॥४६॥

सब चवन अच्छी तरह सजाये जायें । उनमें कपड़की झालरें, तोरण और मानिक के गुच्छ लटकाने जायें । वहाँ पहुँचकर दूतोंने लक्ष्मणजीके आज्ञानुसार सब गूँड तुल्लन डोक कर दिया । २६-२८ ॥ तब लक्ष्मण रामचन्द्रजीके पास गये और ज्ञापन करके सादर कहन लग्ये—हे गृध्रनन्दन ! मैंने भाईकी आज्ञास पूरी लेवारी कर दी है । अब क्या आप और सीताजीके लिए सवारी लानेका भा आज्ञा द दें ? इस प्रकार लक्ष्मणको वणी सुनकर रामचन्द्रजीने सीतासे कहा—सीत ! वनव्याप्त, आज तुम्हें कौनसी सवारी चाहिए ? सीताजीने रामजीकी बात सुनकर रामकी पसन्द की और रामजीने अपने लिए भी पालकी हो माँगी । रामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणन रामोस विभूषित श गालकिर्वाँ मँगवायो, जिनका सुनहन कामक ओहार पड़ से और चारों ओर गोतिबेक सम्बलटक रहे थे ॥ २९-३१ ॥ तब प्रसन्नपूर्वक रामचन्द्रजी रामकीपर सवार हुए और सोनसे भूषणका पहन हुए सता भी दासियोंके हाथक सहारे सने सने जाकर पालकपर बैठे । उसमें चारों ओर तकिये लगा हुई थी । दासियाँ वैसे चलने लगी । ओहार डाल दिया गया और पालकी चमक रही । चलनेमें सीताजी पालकीके आगेसेसे उन हथ्योका देखती वाली थी, जो वहाँपर थे । उससे अनन्तर रामचन्द्रजीके ओर भाई भी तथा उनकी क्रियें और मातार्थ अलग-अलग दिव्य पालकियोंपर बँड-बँडकर चली । आगे आगे भाइयोकी, फिर माताओता, फिर सीतादिक पत्नियोंकी और सबसे आगे गुरु वसिष्ठजीका पालका चली ॥ ३४-४० ॥ इस प्रकार सब जग रामचन्द्रजीका वधान करते हुए चल जा रहे थे । वेङ्गाने नाच रङ्गी थी और नाना प्रकारके दाने सब रहे थे । बन्दीगण सीता और रामजीकी बन्दना कर रहे थे । इस प्रकार किसने हें तपके उत्साहेन साथ वे सब बरीसे पहुँच । रामचन्द्रजी सीताके साथ साथ सेनाजने धिरे हुए एक तम्बूमें उतरे । ४१-४३ ॥ इसका बाद भीर लोग भी तम्बूओमें टिके । साथ ही समस्त गतरससी लोग भी चारों ओर तम्बूओमें इहर गये । चारों ओर हल्ल रुम पयो भीर वैज्यायें नाचने लगी । ४४ । जिस स्थानपर रामचन्द्रजी अपने पुरवासी गालकिर्वाँके साथ लहरे थे,

रसालयं रमालम्भैश्चोक्तैः शोकवाणम् । तलैर्ममार्द्धैर्हिनारैः शलैः सर्वत्र शालितम् ॥४७॥  
 सपुनैः सपुनार्कैश्चोक्तैः श्रीकुरुं द्विज । दुर्गाभयं स्वपुरुषिः कपिर्विशं करिष्यकैः ॥४८॥  
 यत्न श्रमः कृत्वाकार्त्तकुर्वन् मनोरमम् । सुधाकलममारमिरभाभिः परिभाषितम् ॥४९॥  
 सुरैर्गन्धापि नारदैः रक्तमण्डपवन्निक्षुपः । शार्ङ्गैश्चापि जम्बुर्बोद्धपुनैः प्रपूरितम् ॥५०॥  
 मन्दान्दोलितवर्षकदलीदलयक्षया । विश्रभाय भमापनानाहुपनमिनाध्वगान् ॥५१॥  
 पुष्पाग इव पुष्पागपल्लवैः कम्पद्वयैः । कलपन्नमिवलोलैर्मल्लिकाभ्यकम्पनम् ॥५२॥  
 त्रिदीपंदाडिमैः स्थापितं दर्शयन्नुरागवत् । माधवीध्वरूपेण श्लिष्यतमिव कानने ॥५३॥  
 उदुवर्गवरैर्ननकलशालिभिः । नक्ष्त्राण्डकण्टिकविघ्नमननमिव सर्वतः ॥५४॥  
 पनमैर्वननामार्गैः शुक्लार्गैः पलाशकैः । फलपानाद्विरहिणा पचन्यक्तैर्विवाहृतम् ॥५५॥  
 कदम्बवादिनो नीशान्दष्टा कंटारकिर्त्तविव । समन्तो भ्राजमानं कदम्बककदम्बकैः ॥५६॥  
 ममेकमिध मंगेश शिखरैरिव राजिनम् । राजादनेश्च मदनेः सदनेरिव कामिनाम् ॥५७॥  
 ममन्तः पटुवर्तकृच्चैः पटुकृतोक्तम् । कृतज्ञस्त्वकैर्वातमधिष्ठितवकैरिव ॥५८॥  
 कर्मदोः करारैश्च करजैश्च कदम्बकैः । मदम्बकावृत्तमधिप्रन्युद्गतैः करैः ॥५९॥  
 नीशजिनमिदोर्दीपैः गजचक्रकोरकैः । सपुष्पशालमलीमिध जितपद्माकारभ्रियम् ॥६०॥  
 कश्चिन्नलदलेरुच्चैः कश्चिन्काञ्चनकेतकैः । कुतमार्त्तनकमालैः शोभमानं कचिन् कचिन् ॥६१॥  
 कर्कन्धुवन्धुजीर्वाश्च पुनर्जीर्वाविरजितम् । मर्तिरुकेरुदीमिध करुणैः करुणालयम् ॥६२॥

उसका विस्तार गाँव बामका था । गाँव कालके समस्त योन् मनोरमे जहाँ रामचन्द्रजी उद्भूत थे, सोनाजी प्रसन्नभावके विहार करने और उस सुन्दर वन चको खुद अच्छी तरह देखने लगीं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ उसमें रमालक वृक्ष बामनभक्त रमके आलम्ब और कणोकके वृक्ष शोकका दर्श करनेवाले थे । ताल, तमाल, द्विस्ताल और शालक वृक्ष चारों ओर गुणाघिन हो गये थे ॥ ४७ ॥ सपुनके वृक्षोंमें वज्र बगोचा वपुः ( स्वर्ग ) मरण लय रह गया और रत्नयुक्त भीरुके बहुत थे । अगस्त्यके वृक्षोंमें रम्भार शांभवात्मा तथा कंदके वृक्षोंमें कपिल-वर्गका हो रहा था ॥ ४८ ॥ वनलक्ष्मीके वृक्षोंके समान सङ्कुच । वरद्वय ) के वृक्ष लगे हुए थे, अमृतफलका नाई देखनेसे लज लग रहा था ॥ ४९ ॥ सुन्दर गङ्गातीरे नारकीके वृक्षोंमें गङ्गाधरपत्नी शांभा हो गयी थी । नानीर, अंशीर, वीजपूर आदिके वृक्ष भी उत वगैराम रुद्र वाम नहीं थे ॥ ५० ॥ धीरे-धीरे बाधुक शोकसे झूमता हुआ कैतका पत्ता मानो एक हुए वगैरहियाको हाथके मतलसे विश्राम करनेके लिए चुन्ना रहा था ॥ ५१ ॥ पुष्पागको तरह पुष्पागक पल्लव कम्पल्लवके समान थे और नक्ष्त्रिकाके गुच्छे स्तनके समान दीखत थे । ५२ । मनारके कट हुए फल मानो अपना हृदय फाड़कर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे । मूचरका खुद लम्बान्चीहा वृक्ष था, जिसमें असंख्य फल लगे हुए थे । बहुत कण्टा वृक्ष फलकी वारण किये हुए साक्षान्त मन्तरी वगैरानुके सट्टा मालूम पड़ता था । उपवनकी नारकें समान दन्तलके वृक्ष तथा नानेकी नाकके समान पद्मागके वृक्ष लगे हुए थे । कष्ट-वित्त पुष्पवाले कदम्बके वृक्षों को देखकर रोमांच हो जाता था ॥ ५३-५६ ॥ नयेकके वृक्ष को देखकर ममेरुशृङ्गकी पेट आ जाती थी । राजाइनक वृक्ष कामोदीकी भदनक भवन मण्डप देखने थे ॥ ५७ । चारों ओर लगे हुए पटुवर्तके वृक्ष पटुवर्तके मरण दीखत थे । वृक्षके गुच्छे जैसे हुए अगुलेके सट्टा मालूम पड़ने थे ॥ ५८ ॥ जहाँ जहाँ कौंद, करीर, कंद, कदम्ब आदिके बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले वृक्ष हुआ हैं हाथ उठाये पाचकोके समान मानुष पड़ने थे ५९ ॥ गजचक्रक तथा कोरगाक वृक्ष मानो आरना बनकर उस बगोचकी मांगी उभार रहे थे । पुनोसे लहे हुए ममरके कृष्णमल्लवमका लोभावा भी पराजित कर रहे थे ॥ ६० ॥ कहीं कम्पकाने हुए बलौवाले कम्पके बड़े-बड़े वृक्षोंसे, कहीं सुनहली वनकीक छोटे छंदे पौंचमि, कहीं कुतमाल और मलमानके वृक्षोंसे बहु बगोचा गुणाघिन हो रहा था ॥ ६१ ॥ वर, वपुजाय तथा पुनजायक वृक्ष लगे थे । तटु, इक्षु, कदण आदि वृक्षोंसे बहु बगोचा करुणालय हो रहा था । एकले हुए मङ्गुके पुनोको देखकर मालूम होता

गलन्मधुककुसुमैर्धराह्यधरं हरम् । स्वदन्तमुक्तमुक्ताभिरर्पयन्मिवानिधम् ॥६३॥  
 सर्जार्जुनाञ्जनैर्वीजैर्व्यञ्जनैर्वीज्यमानवत् । नारिकेलैः ससर्जैर्गुहृतच्छत्रमिवांबरैः ॥६४॥  
 जमदैः पितुमन्दैश्च मंदारैः कोविदारकैः । पाटलातिविर्णीधौटाशाखोटैः करहाटकैः ॥६५॥  
 उदङ्गैश्चापि शेदुङ्गैर्गुडपुष्पैर्विराजितम् । वकुलैस्तिलकैश्चैव तिलकांकितमस्तकम् ॥६६॥  
 अक्षैः प्लक्षैः सल्लकीभिर्देवदारुहरिद्रुमैः । सदाफलसदापुष्पवृक्षवल्लिविराजितम् ॥६७॥  
 एलालवंगपरिचकुलंजनवनावृतम् । जम्बूआम्रातकमल्लगशेलुश्रीपणिर्वर्णितम् ॥६८॥  
 श्लोकशेखरं रम्यं चन्दनै रक्तचन्दनैः । ह्रीतकीर्णिकारधात्रीयनविभूषितम् ॥६९॥  
 द्राक्षावल्लीनागरल्लीकर्णवल्लीशतावृतम् । मल्लिकायूथिकाकुन्दमदयन्तीसुगन्धितम् ॥७०॥  
 तुलसीवृक्षपङ्क्तिं शिवन्त्यगस्तिद्रुमैर्घृतम् । भ्रमरभ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलंकृतम् ॥७१॥  
 अलिच्छलागतं कृष्ण गोपी रत्नमनेकशः । सुगन्धवार्तं सुस्वदं कामसञ्जनकं परम् ॥७२॥  
 नानाभृगवणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम् । नानासरित्सरःस्रोतैः पल्लवैः परितो घृतम् ॥७३॥  
 उत्सृजतमिवार्थं वै पतन्पुष्पैरितस्ततः । कैकिकेकारवैदूगत्कुर्वन्तं स्वागतं किल ॥७४॥  
 एतादृशं पुष्पवनं जानकी तद्दर्श सा । हृष्टाऽभूदर्शनेनैव विचचार त्वितस्ततः ॥७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमद्वाल्मीकीये

अन्मकाण्डे नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

था कि मानो जिनकी घण्टीका रूप धारण किये हुए हैं और अपने ही हाथसे अपनेपर मोलियोंकी वर्षा कर रहे हैं । ६३ ॥ ६३॥ सर्ज, अर्जुन, बीजपूर आदिके वृक्षोंसे ऐसा मालूम होता था कि वे सब बगीचोंकी पंखा झल रहे हैं । नारियल तथा खजूरके वृक्ष छत्र धारण करनेवाले सेवक जैसे थे । अमर, पितुमन्द, मन्दार, कोविदार, पाटल, तिलिगी, धौटा, शाखाट, करहाटक, ऊँचे चण्डेवाले शेदुङ्ग और गुडहलक वृक्ष भी उस बगीचमें यत्र-तत्र लगे हुए थे । वकुल और तिलकके वृक्ष उस बगीचके मरतकपर तिलकके समान मालूम पड़ते थे ॥ ६४-६६ ॥ अक्ष, प्लक्ष, सल्लकी, देवदारु, हरिद्रुम, सदाफल, सदापुष्प और वृक्षवल्ली आदिके वृक्ष भी उस बगीचमें लगे हुए थे ॥ ६७ ॥ इलायची, लौंग, मरिच तथा कुलंजनके वृक्षोंसे वह समस्त बगीचा भरा हुआ था । जामुन, आम, भल्लातक, श्रीपणी आदि वृक्षोंसे उस बगीचकी रंगीली शाखा देखते ही बनती थी ॥ ६८ ॥ श्लोक तथा श्लोकवनके वृक्षोंसे रमणीय एवं चन्दन, हरीतकी, कर्णिकार, आंबला आदिके वृक्षोंसे वह विभूषित था ॥ ६९ ॥ जिनमें सैकड़ों अंगूरकी लताएँ तथा पानकी बेलें लगी हुई थीं । मल्लिका, जूही, कुन्द और मदयन्ताके वृक्षोंसे वह बगीचा सुगन्धित हो रहा था ॥ ७० ॥ उसमें कितने ही नुस्सा, सहिजन तथा वगस्तके वृक्ष लगे हुए थे । जिनपर औरोंकी श्रेणी बनकर काट रहो थी, ऐसी मान्दतीके वृक्षोंसे वह अलंकृत था ॥ ७१ ॥ जिस समय मान्दतीके समीप औरा आता था, तब देखनेवालेके हृदयमें यह उद्बेला होती थी कि मानों श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ विहार करनेके लिए आये हैं ॥ ७२ ॥ उस बगीचमें बहुतसे नृन शोकद्विषा भरा करते थे, विविध प्रकारके पक्षी बोलते रहते थे, कितनी ही नदियों झालावों, स्रोतों तथा गडहोंसे वह बगीचा घिरा हुआ था ॥ ७३ ॥ बगीचके वृक्षोंसे गिरे हुए फूल कितनी बानीकी बनरागिने समान लगते थे । मयूरोंकी आवाजसे ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों वह बगीचा अपने यहाँ आनेवालोंका स्वागत कर रहा है ॥ ७४ ॥ इस प्रकारके उस सुन्दर उपवनको सीताने देखा । देखते ही उनका चित्त प्रसन्न हो गया और वे इधर उधर घूमने लगीं ॥ ७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमद्वाल्मीकीये

अन्मकाण्डे ९० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( रामसीताका उपवनविहार )

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता राघवेण रम्योपवनभूमिषु । क्रीडन्त्यकां विविधाम्बिदरैरपि सस्तुताः ॥ १ ॥  
 कदा वनानःश्रमं रे कदा पद्मगुह्येष्वपि । कदाऽऽम्रवृक्षच्छायायां कदा पुष्पवनेषु सा ॥ २ ॥  
 कदा मा जलयन्त्राणां सम्यक्पद्मद्वारामने । कदा सरोवरतटे कदा नद्यान्तरेऽपि च ॥ ३ ॥  
 नौकास्था मरुतोद्ये मा रामेणकरोकदा । कदा रात्री जनकांडा मा रिताऽपि कदा मुदा ॥ ४ ॥  
 कदा तटके नौकास्था कदा रमावनेषु मा । कदा वृक्षोपशमेषु कदाशीतगुह्येष्वपि ॥ ५ ॥  
 कदा मा सगुनश्रां निर्मिनेषु गुह्येषु वा । कदा कृत्रिममंदेषु पुष्पमंदेषु मा कदा ॥ ६ ॥  
 कदा मा चित्रशलायां पुष्पकेश कदा मुदा । कदा मा केतकीपण्डे दर्दकम्पममवनि ॥ ७ ॥  
 कदा नौकोपशमैरुक्ता गम्याः मैकने कदा । एकस्मिन्मोर्धममंदेषु मार्गभिः परिवेष्टिता ॥ ८ ॥  
 कदा रामेण रम्यि कदा दोलकसंस्थिता । पर्यङ्कधकमध्यस्था कदा मा दाडिर्मावने । ९ ॥  
 वृक्षमरुदपर्वङ्कमग्निना राघवेण हि । चकार मा कदा क्रीडां पौडुगंभी वृधुदरी ॥ १० ॥  
 हरिद्वयपुत्ररक्तजम्बुका जानकी वर्मा । गोपविन्दा निज देहं मोना वृक्षदर्शनेः ॥ ११ ॥  
 सकार न्याकुल रामं विनोद्रेन स्मिरानना । ज्ञान्वाभ्मान राघवेण मुष्टां मम्यमिवविष्णु च ॥ १२ ॥  
 दृष्ट्वा गन्धमाद्रामं नन्दते दोलनेऽकरोन् । एवं सीताराघवयोः क्रीडनं परमाद्भुतम् ॥ १३ ॥  
 विस्मारेणैव को दत्तुं समर्था युधिर्वाते । एक एव ममर्थोऽभूदान्मोक्तिर्बुनिष्पन्नः ॥ १४ ॥  
 शूनकोटिमितं तेन चरितं दर्शितं तपोः । मारुतां मया यस्माद्विचिध्य त्वां प्रवर्षति ॥ १५ ॥  
 वारम्भीणां कदा नून्य सीताऽऽगमे ददर्श सा । कदा शुश्राव वाद्यानि मञ्जुलानि महतीं च ॥ १६ ॥

श्रीरामदासजी कहते हैं— हमके राज सीता रामचन्द्र दोनों के साथ उस रमणीक उपवनमें देवताओं द्वारा प्रणीत विविध प्रकारकी वृक्षाएँ बनते लगीं ॥ १ ॥ कभी उस वनमेंके रंगलेप, कभी तप्तवृक्षे भीतर, कभी शालग्रामकी छायामें कभी फूलोंकी झरझरमें कभी पौडुगोंके समीप बने हुए किसी एक सुन्दर वासनपर, कभी मरुतोद्यके तटपर और कभी नदीके समीप जाकर विहार करती थीं ॥ २ ॥ ३ ॥ कभी वे नौकापर सवार होकर सरयुकी प्रागम्य रामके साथ विहार करती थीं । कभी रात्रिके समय और कभी दिनमें ही बालक-को-लेकर लगे जाती थीं ॥ ४ ॥ कभी सरोवरमें नौकापर कभी बालक बरम कभी वृक्षके ऊपर बने हुए मन्दपमें, कभी पण्डे इन जानकी कभी मरुदके भाँवर इन राम भवनमें, कभी वनावटी मकानोंमें, कभी पुष्पमन्दों कभी विमल-... कभी पण्डे विमानपर कभी मकल नयन और कभी एक स्थानके ऊपर बने ममयम राम राम ॥ ५ ॥ ६ ॥ कभी नौक के ऊपर बने रंगलेप, कभी मरुकी बेलोंमें कभी अवनी रंग-... एक स्थानके ऊपर बनी हुई जंगल अन्तराल कभी रामके साथ एकलव्य कभी झुलेपर बैठकर, कभी चक्रादर पर झुपक कभी अन्तरके चर्च-चर्च और कभी किसी वृक्षके समीप पड़े हुए पल्लवपर गारे-गारे मञ्जुल सीता रामके साथ सदा क्रीडा करती थीं ॥ ७-१० ॥ वे कभी हरे रङ्ग के कण्ड तथा लाल कंचकी पहनकर रामके साथ क्रीडा करती हुई वृक्षोंके समीप जाकर रामकी न्याकुल कर देती थीं और स्वयं किसी किसी मुकामों रहती थीं । जब वे मञ्जुषी कि रामने तब निज देहं दोरती हुई आतीं और रामके गलेमें गले-हियाँ डालकर उनके हृदयमें निज जगल करतीं । इस प्रकार सीता तथा रामका अद्भुत कोनूष हुआ करता था ॥ ११-१३ ॥ इस विमल मूर्त के कानकी माधुर्य क्या किसीमें है ? हाँ एकमात्र महर्षि वाल्मीकिजी मगर ही हैं । जिन्होंने ही कलोट गलकोण उनके चरित्रोंका वर्णन किया है । उनसेसे काय माय लेकर मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १४ ॥ १५ ॥ कभी जेतानी उस वनमेंके वन्याओंके नृत्य देखती को

कदा विप्रकथा रम्यारवेन्द्रजातानि वा कदा । कदा दशगोहणादिकीपुकाणि ददर्श मा ॥१७॥  
 कदा स्नानोद्भवं दिव्यं ददर्श कीपुं कं महत् । कदा राजानं सौशुम्नं नृपचन्द्रविनिर्मितम् ॥१८॥  
 कदा कुत्रिग्रहमन्त्रादिनानाकपाणि वै वने । सीता ददर्श कुशलधृशान्यान्मयुतान्यपि ॥१९॥  
 एवं सीताऽन्नाममये मायमेकं निनाय सा । ययी रामेव नगरो नृपयोगीनादिभिः श्रुतैः ॥२०॥  
 सौधस्थाभिः पुष्पतीभिर्वणिना कुमुदादिभिः । सीताजिना कुम्भदर्पदीपैर्दण्डोदनोद्भवैः ॥२१॥  
 मायर्नलमर्षपापीनानाचलिमिरादगन् । ययी निजगृह सीता राघवेण यमन्विता ॥२२॥  
 एवं नानाकीपुङ्गव नानादीहदरुणैः । रामानां रञ्जयामास माडपि रामं स्वलीलया ॥२३॥  
 षष्ठे मासे स्वयं प्राप्ते सीताया राघवो मुदा । सीमन्तोन्नयनं चैव वसिष्ठेन चकार सा ॥२४॥  
 सुमेधा जनक चापि समाहृषादरेण हि । दृष्ट्वा रानान्यनेकानि मास्त्रणेभ्यो स्थूतमः ॥२५॥  
 जनकः पूजयामास रामं स्वान्धुमयुतम् । कीमन्त्यादाश्च सकेनवासिनो वसनादिभिः ॥२६॥  
 पीराश्च मुहदः सर्वे भोजनार्थं विदेहजम् । स्वस्वमेह पृथङ्निन्युः श्रीराधादिभिर्हस्तवैः ॥२७॥  
 नानावाद्यनिनादश्च चारुसौन्दर्यगायनैः । स्त्रीभुक्तपुष्पपर्णमिनानाकीपुङ्गवर्जैः ॥२८॥  
 नानादेशानिवासिन्यः कीटिश्रृङ्गा नृपट्टिवयः । मध्याजगूरुप्राण्यापां सीता द्रष्टुं मुदान्विताः ॥२९॥  
 तस्यां सैन्यश्च सर्वत्र वेष्टेना नगरां ययी । ताः मया नृपचन्द्रश्च सीतायाः परमान् वरान् ॥३०॥  
 देहवान् पूजयामासुदिग्धपादांश्चिरादगन् । ददुर्वस्वाश्च तकारान् दिव्याभिविचित्रितान् ॥३१॥  
 स्वस्वदशोद्भवैर्दण्डैर्नानाशस्तुविशष्टगन् । जनकी पूजयामासुस्त्राः सर्वाः पाशिवस्त्रियः ॥३२॥  
 स्थित्वा सा मायमेकं तु जग्मुर्दशं निजं निजम् । अर्धकदा तु श्रौतमः सुमेधा जनक तथा ॥३३॥  
 सीतायाः पुरतः जाह गुह्य रहसि हस्मिन्मम् । सीतामदृष्ट्वा साभिभ्ये तप्याश्च विरहेण तासु ॥३४॥

कभी मरुतम तथा चरघोऽन्नाममये मायमेकं निनाय सीता । कभी विविध प्रकारक चित्र दस्तकी थी, कभी माजीगरी और चाम्पय चरकर नन्दरवान के इन्द्रज सेव दवा करता था ॥ १६ ॥ १७ ॥ कभी स्नानके सुन्दर कौतुकी तथा पुष्पधन्यमे वेष्ट कम्पुन्याक जाय तब कभी बनाबटा हाथ आदिके विविध रुपाको देखा करता थी ॥ १८-१९ ॥ इस तरह सीता ने उस वीरवच एक महाना बिताया । फिर नृप-गीतादिक देखती-सुनती हुई रामचन्द्रके साथ करन नगरी अशोकाका पीठ प्राणी ॥ २० ॥ जब सीता और रामने नगरमें प्रवेश किया, उस समय नगरके मित्रोंने अशोकावर चरकर इन दोनोपर कुन्तीकी बर्षा की, भारती उतारी और पट्टी, चाप, उदं, दण्ड तथा मरुतो आदिके वस्त्र दिये । तब राम सीता के साथ अपने मरुत्तकी गये ॥ २१ ॥ २२ ॥ इस तरह विविध प्रकारका नृपरास रामन मताकी तथा मताम रामको मानन्दित किया । २३ ॥ जब गंधका छत्र पहना जाय तब गंधन लयने कुम्भगुप्त वसिष्ठके द्वारा साक्षात् सीमन्तोन्नयन संस्कार कराया । २४ ॥ सुमेधा और जनकके पास निमग्न नृपकर उन्हें अपने वही बुजगवा और बाहुगैकी रामने विविध प्रकारक दान दिये । २५ ॥ जनकने आकर सता तथा आने सब पाइयेके साथ बैठे हुए राम और कीमन्तार्द्र माताभोजा नाना प्रकारके वस्त्रपूजणां द्वारा स्नान किया ॥ २६ ॥ अर्धकपाली नागरिकों तथा मित्रोंने रामचन्द्र और सीताको आने पही भोजन करनेके लिए बुलाया ॥ २७ ॥ जनक बहोके साथ-साथ वरावाकी नृप-मान हुन मित्राके हाथसे पनेका वस्त्रां हुई और कितने ही तरहके सेव-नमाजे हुए ॥ २८ ॥ उस समय सीताकी दस्तके लिए अनेक रुपाकी राजरविगी अशोका प्राणी । २९ ॥ उनके साथ कभी हुई सेनासे विश्वर बहु अवादा नगरी और भी सुन्दर लयने लगी । उन रामिने अन्नादि देदेकर सीताकी इच्छा पूर्ण की और आनन्दपूर्ण बहुतम वस्त्र-अन्वार तथा अपने देशके विविध वस्तु देकर सीताकी वृत्ता की ॥ ३०-३२ ॥ वे रात्रिमें एक पट्टीना अर्धकपाले रहकर अपने अपने बेसोको लौट गये । एक दिन जब कि सुमेधा, जनक, सीता तथा रामचन्द्र एकात्म्ये बैठे थे । तब रामने कहा — हे महाराज ! सीताकी अपने पास न क्षण तथा अजगर भी उनसे विमुख होकर मैं नहीं रहूँ गा । जब सीताके पास पट्टेव

मयाऽऽगत्य तन्मुनेन्द्रमुधया स्वास्थ्यमाप्स्यते । आत्मानं विद्वत् दृष्ट्वा सीतामात्रिष्यमाश्रये ॥ ३५ ॥  
 अधुना जानकी दृष्ट्वा कामो मेऽतीव बाधते । पञ्चमाशोर्ध्वतः सग गर्हयन्ति मुनीश्वराः ॥ ३६ ॥  
 प्रसृत्यमे पञ्चमार्गं रवी स्वाम्भ्यं प्राप्यते पुनः । पञ्चमार्गैर्युतः सङ्गादवन्धोः क्षाणनेति ॥ ३७ ॥  
 अत्र किं करणीयं हि वद त्व शशुराद्य माम् । चेन्म्रेपर्णाया सीतेपं मिथिलां प्रति वै मया ॥ ३८ ॥  
 उहिं तत्रापि मे गन्तु मविष्यति समुद्यमः । किञ्चिन्कालं तु सीताया वियोगो येन मे भवेत् ॥ ३९ ॥  
 उवाच स विधानव्यधिन्तिनोऽस्ति मयाऽपि च । लोकापवादमन्याऽहं रजकोक्तच्छलादपि ॥ ४० ॥  
 गङ्गाया दक्षिणे तीरे वाल्मीकेगश्रमे शुभे । न्यजायि जानकीं शुद्धां किञ्चित्कालानरात्पुनः ॥ ४१ ॥  
 एका ममानयिष्यामि प्रत्यय सां प्रदास्यति ततोऽनया चिर कालं नानामोक्षान भजाम्यहम् ॥ ४२ ॥  
 जनकाय न्यया तत्र निजपत्न्या सुमेधया । वाल्मीकेगश्रमे गन्वा स्थेवं वर्षाणि पञ्च वै ॥ ४३ ॥  
 तथेन्धगोचकाराथ जनकोऽपि सुमेधया । मोक्षायार्ग्यं चकाराथ विदम्य नद्वचः पतेः ॥ ४४ ॥  
 अथ गयो ददाशज्ञां मस्त्रिय जनकं मुदा । म गन्वा मिथिलारज्ये स्वाय मम्याप्य मंत्रिणम् ॥ ४५ ॥  
 यया सुमेधया शीत्रे वाल्मीकेगश्रमे मुदा । किञ्चिदार्म्यदासैर्न्यवातिवारणवेष्टिनः ॥ ४६ ॥  
 नानोपवारात्मनार्थं मगृक्ष शकटादिभिः । चकार गेहं विपुलं वाल्मीकेष्व सुखावहम् ॥ ४७ ॥  
 सर्वसंपत्तिमयुक्तं बहुगोमहिर्षायुतम् । पूरितं धान्यसंप्रेशं वर्षाभरणादिभिः ॥ ४८ ॥  
 कामारोपवनागमपुष्पवाटिशतावृतम् । गवाक्षैश्चन्द्रकान्तानां कषाटैश्च समन्वितम् ॥ ४९ ॥  
 कृष्णागुरुसकर्पूरीशीमाल्यादिमोदिनम् । काचिर्नाश्वनारद्वरन्नपर्यङ्कमण्डितम् ॥ ५० ॥  
 हम्पागवतपिक्केकांशुकनिनादिनम् । सुकशुच्छविनानार्थैः क्षाभिन चित्राश्चाग्रतम् ॥ ५१ ॥

जाता है तो इनके मुखचन्द्रकी सुधासे स्पर्श हो जाता है । जिस समय मुझने कुछ भी भवराहत होता है, उस समय मैं सीताके ही समीप रहता हूँ ॥ ३५-३६ ॥ इस समय सीताका दन्तकर मुख कामपाक हो रही है और मुनियोक्तो सलाह यह दे कि यथ वक्त हो जानपर पाँच महीने बाद स्नाप्रसङ्ग करना निन्दित है ॥ ३६ ॥ प्रसव हो जानपर पाँच महीने बाद हो स्त्री स्वस्थ होती है । बिना पाँच महीने बात प्रसङ्ग करनेसे बाल्मीकी हानि हो जान है । ऐसे असमयप्रसक्त समय मुख बचा करना चाहिए, सो आप बताइये । यदि मैं सीताका मिथिला भज दता हूँ तो कुछ भी वहीं जाता पढ़ता । किन्तु मैं कुछ दिन तक सीतासे छला रहना चाहता हूँ । जिस तरह मेरा इच्छा पूर्ण हो, वही इस समय करना चाहिए । येन तो यह साच स्वस्ती है कि लोकापवादके दरसे जानकी सह साक्षात् ध्यानात् गङ्गाके दक्षिण सटपर दान्तात्मिक गावत्र भाधमम कुछ समयन लिए परम शुद्ध जानकी को छोड़ दूँ । थोड़ा दिन बाद वापस ले आऊँगा । फिर मैं इनके साथ चिरकाल तक नाना प्रकारक भागाकी भाग्यमा ॥ ३७-४२ ॥ उस समय आपका अपनी सुमंत्रक साथ बाल्मीकिक भाधमपर जाकर पाँच वर्ष परान्त निवास करना होगा ॥ ४३ ॥ गुमथा और जनकने रामका सलाह स्वाकार की और सीताने भी हैसकर पालिका कहना मान लिया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने जनकको अपने दश जानकी आजा दी । वे अपने दश गर्द और राज्यका सब भार मंत्रीपर छोड़कर अपनी स्त्री सुमेधाके साथ बाल्मीकि आश्रमको चल दिव । चलते समय अपने साथ कुछ वास, शाली, सैन्तिक तथा हाथी-घोड़े भी ले लिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सीताके लिए बहुत सी सामग्रियाँ गन्धमापर लदवाकर साथ ले गये । महर्षि बाल्मीकिक आश्रमका जनकने सब सुखाका भण्डार बना दिया ॥ ४७ ॥ जनकजीके वहाँ पृथक्पृथक् बहुत आश्रम सब सम्पत्तियों एवं बहुत नौ गोशाला और भेगास भर गया । विविध प्रकारके अन्न और माँति-भाँटके वस्त्राभूषण से वह पूरा हो गया ॥ ४८ ॥ अन्नके पाल सेकड़ो पसर, जपवत्, बगीच वगैरह तथा कुर्छेदार हो गये । चट्टकने मोक्षक मरवा तथा फटकावाल अन्न भवन बने ॥ ४९ ॥ कृष्णागुरु, कपूर, लस तथा विविध प्रकारक सुगन्धित पुष्पास वह आश्रम सुगन्धमम हो गया । जगह जगह पर सीनेकी जलाराम सत्र रत्नोक पञ्च १६ हुए थे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कुतूह, काष्ठल मधुर तथा तीव्रके मन्दीसे



एवं मनोहर गेहं सीतार्थं जनकोऽकरोत् । श्रीः साक्षाद्-तुमुद्युक्ता यस्मिन्निवसितुश्चिरम् ॥५२॥  
किं दुर्लभं हि तत्रास्ति वर्णनीयं मयाऽद्य किम् । यस्या नैश्वक्यक्षेण शक्रादीनां विभूतयः ॥५३॥  
बाल्मीकीये सर्वज्ञं जनकोऽपि न्यवेदयत् शुनिधाम्पतिमनुष्टो मने स्वतपनः कठम् ॥५४॥

इति श्रीमत्कौटिलिरामचरितान्तर्नि श्रीमदनन्दरामायण बाल्मीकीये जन्मकाण्ड द्वितीयः सर्गः । २ ।

## तृतीयः सर्गः

( राम द्वारा सीताका त्याग )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामं तु कौसल्याञ्जरीद्वहसि मस्थिता । सीतां सीमोल्लवनायै शीघ्रं प्रेषय राघव ॥१॥  
तस्मात्तुर्वचनं श्रुत्वा तथेन्पुनन्वा मविस्तरात् । सलक्ष्मणा निजाम्बु प्राह यन्मन्त्रिनं पुनः ॥२॥  
बाल्मीकेश्वर्यं भीमास्यागादि च सकाशम् । अथ मासेऽष्टमे प्राप्ते गधां गर्जावलोकनः ॥३॥  
एकस्मिन् जनकं प्राह वीजना लक्ष्मणेन हि । कल्पयित्वा मेष देवं रजकोक्तं त्वदश्वयम् ॥४॥  
न्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भात इवपरः । त्रिमामान्पंचमामाढां सम् मामान्सुषुद्धमिह ॥५॥  
अन्तर्वत्नी न गम्येति शास्त्राज्ञां रजकच्छन्नात् । त्वां त्यक्त्वा पालयिष्यामि निकटे वस्तुमश्रमा ॥६॥  
त्वां दृष्ट्वा चंदनदनां कामो मंशान् बाधते । त्वद्विपागस्तु निर्वन्धादिना मंश्वरं कथं भवेत् ॥७॥  
तस्मात्कृताऽयं निर्वन्धः सत्यंविद्धि मनोरमं । पचयपानवरणं पुनरागन्धं मंडान्तकम् ॥८॥  
लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं शपथं हि करिष्यसि । भूमौर्वरमार्गेण स्थित्वा मिहामनोपरि ॥९॥

यह आश्रम शब्दावमान हो रहा था । यत्र तत्र मूर्तिवोका सालरवाली चौरनियां टेंगा हुई थी और बहुत-सी तसबीर भी जहाँ-तहाँ टेंपी थी ॥ ५१ ॥ जनकजी ने सत्यक लिए इस प्रकारका सुन्दर भवन बनाकर तंगार कर-  
वाया । यदि ऐसा दिव्य भवन साताजाक बाग्य बन गया तो इसमें आश्रय हो गया है । जहाँ निराह करनके  
निर्मित शाखान् लक्ष्मणा जानबाला हा, वहाँ कीर वरगु बुर्बभ हा सकती है । जिसके कट-क्षमात्रसे इन्हादि  
देवताओंकी भा सम्पत्तिही बनत-व्यवहारा है । उसकी विषयमें मैं कहा तक बगन करूँगा । जनकजी ने  
महापि बाल्मीकिभा भी वह सब बात बतला दी, जिन्हें सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुए और साताक उस चावी  
भाग्यमनको जन्मान भवनी तप-रका फल समझा ॥ ५२-५४ ॥ इति श्रीमत्कौटिलिरामचरितान्तर्नि श्रीमदन-  
न्दरामायणे ५० समस्तवर्षाण्यवचित् ज्ञान्ना भाषट्कासकन्वित जन्मकाण्ड द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन एकान्तमें कौसल्याने रामसे कहा कि अब समय हो गया है । शीघ्र  
सीताको अपनी सामास कहो अलग भेज दो । माताकी बातका रामने स्वीकार किया और वह भी बतलाया,  
जिसका निर्णय बहुत दिनों पहले कर चुक थे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर वह भी कहा कि मेरा इस समय सीताका  
त्याग करना उचित है । कुछ दिन बाद आठवीं महाना लगनपर रामने सीताका एकान्तमें बुलाकर समझाते  
हुए कहा—देवि ! इस दिन एक छोटीने तुम्हारे विषयमें बड़ी कुतूहल भालाचन का वो उसीक बहाने मैं तुम्हें  
कुछ दिनोंके लिए वनमें छोड़ दूँगा । इससे दुनियां समझेगी कि मैं लाकाववादमें बहुत भरता हूँ । दूसरी  
एक बात यह है कि गमस तंगारे, पांचवें भयना सातवें महानेके स्त्रिका चलन नहीं करना चाहिए ।  
यह शास्त्रोंकी आज्ञा है । इसलिए उस चावाकी बातोंक आधारमें तुम्हें दूर रखकर मैं शास्त्रोंक आज्ञाका  
पालन करूँगा और पास रहनेमें यह न हो सकेगा कि मैं तुमसे न दूँ ॥ ३-६ ॥ क्योंकि तुमका बेलनसे  
मुझे काम सनाने लगता है । तुम्हारा विदाग भा दिया किमी बहानेक गद्दी हो सकता था । इसलिए मैंने  
ऐसा प्रवन्ध किया है और इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे अक्षरशः सत्य समझो । पांच वर्षके  
मांतर हो चुक फिर यहाँ आज्ञागी और संसारकी दिखानेक लिए तुम्हें बाध मेंनी हुमी ॥ ७ ॥ ८ ॥ अब

यदा गच्छामि वातासं जगत्या एजिता तदा भुवं स्तुन्वा मीषयिन्वा त्वामके स्थापयाम्यहम् ॥१०॥  
 पुत्राभ्यां च मया सीते ततो मोगानवाक्यमि मत्स्वकः कुडो ज्येष्ठस्तव पुत्रो भविष्यति ॥११॥  
 सुभक्तवः प्रभावेन भविष्यन्पपरो लवः । बान्धीकेगधमे चैव कुमारी द्वौ भविष्यतः ॥१२॥  
 अग्रे गन्वा च त्वन्निष्ठा त्वद्यागं च गुहादिकम् । मसुमेधन सकलं कृतमस्ति ममाश्रया ॥१३॥  
 कुहूश्वाद्य मया पञ्च मुच्यते जनकान्मते । सात्त्विकी त्वं पथापूर्वं दंडके भीतमानदे ॥१४॥  
 मद्वाभागे स्थिता यद्वन्मे बाभागे च बाधुना । बान्धीकेगधमे गन्तुं शुभद्वयविमिश्रिता ॥१५॥  
 भूत्वा स्वमाश्रये स्थित्वा मद्रिधारां प्रदर्शय । तत्रापि त्वां कुक्षोन्पनौ दास्यामि दर्शनं गृहः ॥१६॥  
 तथेति रामवचनाजानकी सा मितानना रजस्तमोमयी स्वयां छाया निमाष सावरम् ॥१७॥  
 आशयस्य बाभागे मन्वरुपा लयं ययौ ततो रामः गर्भा गन्वा रत्नो ज्ञानैकविग्रहः ॥१८॥  
 मद्रिधिर्यशस्वाश्चंदलशुक्लैर्योर्वैरुः । ममननो वेष्टितः संस्तुतौ विहासनीपरि ॥१९॥  
 तत्रोपविष्ट राजानं सुहृदं पश्यन्पारि । हास्यप्रायकयाभिश्च हासयन्तः स्थिताः प्रभुम् ॥२०॥  
 कथं प्रसगात्प्रच्छ रामो विजयनामकम् । धीरा जानपता ना म किं वदन्ति शुभाशुभम् ॥२१॥  
 सीतां तां मातरं रा मे भानुन्वः केकर्यामथ । न येनद्य त्वया ब्रूहि क्षापितोऽमि ममापरि ॥२२॥  
 इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदन्ति ते । कृतं सुदुष्करं कर्म रामेणाविदितात्मना ॥२३॥  
 तयाप्येवं वदन्ति स्वी क्षनास्तथे वदाम्यहम् । कितुं हन्वा दशग्रीव सीतामाहूय राघवः ॥२४॥  
 अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेद्यं प्रत्यपादयन् । कान्दूय हृदयं तस्य संतामभागज सुखम् ॥२५॥

समय तुम अब एक दिग्भ्य सिंहासनपर बैठकर सूर्यके विनयमार्गम पाताळको जाने लगानो । तब मैं भूमिकी प्रार्थना करके या धमकाक तुम्हें वापस ले लूंगा और अपने गोदम बिठाऊँ ॥ १० ॥ १०॥ उस समय तुम अपने दो बेटोंको लिय हुए मेरे साथ रहकर विविध प्रकारके नृत्य भगाना । मेरे द्वारा तुमसे एक पुत्र होगा, जिसका नाम पनेगा कुडो और दूसरा बेटा ज्येष्ठि । वे त्म्या वके प्रभावसे उत्पन्न होंगे, जिसका नाम होगा लव । इस प्रकार बान्धीकेक आश्रमपर तुम्हारे दो पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ तुम्हारी मात के साथ जनकजी पहले ही उस आश्रमपर जा चुके हैं और उन्होंने तुम्हारे आश्रमकी सब समस्यायों प्रस्तुत कर दी है । १३ ॥ आज मैं तुमकी जैसा कह रहा हूँ है अनकारमते । तुम्हें यही करना पड़ेगा । जहाँ जहाँ समय गंतियोंके लट-पर तुमने अपनी दो भृतियों बनाया थी । उसी प्रकार इस समय भी अपना दो स्वयं बनाओ और पहलकी माई इस समय भी तुम सात्त्विक रूपम मेरे साथ आगम निवास करा ॥ १४ ॥ १५ ॥ और दूसरे स्वरूपसे बान्धीकेके आश्रमपर रहकर ससारको मेरे विधोगका दुःख दिखानाओ । आश्रमपर भी जब कुशकी जन्म होगा, उस समय आकर मैं तुम्हें एकस्तिम दर्शन दूंगा । १६ ॥ रामकी बात सुनकर सातान मन्त्र मुनकराहटके साथ 'सवास्तु' कहा और रजानुगमयी तथा तमनगुगमयी संत' अपना छाया रामक दाक्षिण भागमें बैठ करीं और सत्वरूपसे रामके पास आगम किलात हो गयीं ॥ १७ ॥ इसक बाद रामचन्द्रजी समासनमें गए । वहाँ मन्त्रणानुगत मन्त्रियों तथा कितने ही दरबारियोंसे वेष्टित होकर बैठे । गिनोन उस समय भगवान्को विविध प्रकारसे पूजा की । तत्पश्चात् तद्गुह्यतद्गुह्यको हंजी-दिस्लगाका वात कर-करक वे परस्पर मनोविनोद करने लगे । १८-२० ॥ प्रसंगवश रामन विजय नामक एक मुस्तवरस पुष्टा कि इस समय भयाव्यावसा आंग मुन किस् होटस देखते हैं । उनका दृष्टम मेरा शासन अच्छा है या खराब ? इनक भविष्यक सत्ता मेरा मात, भा, भाइया अथवा केकदक प्रोत जागक हृदयम कसा भव है ? किता प्रकार दरी मत, जो कुछ मायूम है साकसाक बनला दा । तुम्हें मेरा शयन है । इस प्रकार रामक पृष्ठनपर विजयन कहा—हे देव ! आपक किये भवान् कायीकी सराहना करते हुए लय प्रशंसा हा करते हैं ॥ २१-२३ ॥ फिर भी आपक विषयम कुछ लोगोंका जा दूसरा राय है । उसे भी महत्ताता हूँ व कह रहे कि रामने रावणका मारकर सीताको उससे छुड़ाया और बिन कुछ साधन-वचार अपन धरन बिठाक लिया । हम नहीं समझते कि रामका

या हता विजने पूर्वं रावणेन बने तदा । अकम्पादपि दुष्कर्मं योपि न्यमर्षदं भवेत् ॥२६॥  
 यादृग्भवति नै राजा तादृश्यो नियताः प्रजाः । इति नानाविधा वाक् । प्रवदन्ति पुनैकमः ॥२७॥  
 अन्पत्किंचिन्प्रवक्ष्यामि सन्निवृत्तकोदिनम् । दूर्मागंगा स्वराजकी भार्या कीधवद्वेन मः ॥२८॥  
 रजकः प्राह भो गंडे योऽहं रामो न मेभिर्काप् । रावणस्य गृहे दृष्टं स्थिताममीचकार य ॥२९॥  
 यथेच्छं गच्छ गंडे न्व नाहं रामवदाचरे । गच्छता च मया मार्गे रजकेन मर्षाग्निम् ॥३०॥  
 इति राम श्रुत्वा पुनर् न्वया दृष्टं निरेदितम् । वन्पश्यमि हितं च त्र ननु सख रघू नम ॥३१॥  
 श्रुत्वा गडचरं रामः स्वजनान्पर्ववृच्छत । नेऽपि तन्वाऽत्रवन् राममेयमेव नम संशयः ॥३२॥  
 नतो विमृज्य सचिवान्विजयं सुहृदस्मथा । प्राह्य लक्ष्मणं रामो वचनं येदममवीत् ॥३३॥  
 लोकापवादस्तु महान्मर्तामाधित्य मेऽप्रयत्न । मर्ता प्रातः सवार्ताय वाल्मीकेऽपमर्तातिके ॥३४॥  
 त्यक्त्वा सीर्यं रथेन त्वं पुनर्मयाहि लक्ष्मण । दृश्यमे यदि वा किंचिदत्र वा हनवानमि ॥३५॥  
 छिन्वा सीताश्रुजं लोकमन्ययार्थं ममानय । हनुक्त्वा लक्ष्मणं रामः कैकेयीं द्रष्टुमाययौ ॥३६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सीतां कैकेयी गृहमि स्थिता । पप्रच्छ कौतुकान्प्रापे भिनीलेख्य दृष्टाननम् ॥३७॥  
 मामत्र दर्शयस्वाय तां प्राह जानकी तदा । मयाऽवलोकिनो नैव कदाऽपि स दृष्टाननः ॥३८॥  
 यदा हतुं पंचनदयां मां प्रप्तो गौतमातटे । तदा दृष्टस्त्वंगुप्यो मया दक्षिणपादजः ॥३९॥  
 तन्मीतावचनं श्रुत्वा कैकेयो प्राह तां पुनः । यथा दृष्टस्त्वयागुप्यस्तथा भिनी लिख्यस्व हि ॥४०॥  
 तथेति जानकी लेख्य तदंगुष्ठं भवानकम् । कैकेर्य दर्शयामास तामामंश्य गृहं पर्या ॥४१॥

हरम कैसा है जो इतना भार्य होकर भी लौटा हुई माता के साथ फिर करते हुए सुखी हो रहे है ॥२६॥ २७॥ जो सीता उस दुष्ट के द्वारा हरी गयी और कई वर्ष तक उसका प्रेम रही, उसका लिए रामकी कुछ शास्त्रने विचारनेकी आवश्यकता क्योंकर नहीं मान्य हुई । उनका बात बिलग वे पाते एक बार कोई दुष्कर्म जो कर में तो कोई इति नहीं उठा सकता । लेकिन इसका प्रसन्नता तो प्रजा के ऊपर पड़ेगा । बहुत साधारण नियम है कि जिस देशका जैसा राजा होता है, प्रजा भी वैसी ही हुआ करती है । इस प्रकारको वाने बहुतोंके धृष्टं मुनी गयी है । एक घोड़ीने भी एक बात आरके बारेमें कही थी सो भी कहता है । उसने काश्मिरा जयनी मरिचिचरिणीका सबोधित करके कहा । मरी को गप्पें । मैं वह राम नहीं है, जिन्होंने क्यों रावणके वरमें रही हुई सीताको अङ्गीकार कर लिया है । मरी जहाँ इच्छा हो जा मैं रामकी तरह कभी नहीं कहेगा और तुम नहीं स्मूंगा ॥२६-३०॥ मैं रावणसे कहा जा रहा था, तब घोड़ीकी बात सुनी थी । सो पुनःनेपर आदमी बतलाती । अब आप जो अच्छा समझें, वह करें । निजकी बातें सुनकर रावणकाजीने अपने मित्रसे भी इस विषयमें छल-ताड़ की । उन जानीने भी रही कहा जो विजयने बतलाया था । इसके बाद रावणभटजाने मरिचियों तथा विजयको बिदा कर दिया और लक्ष्मणको बुलाया । लक्ष्मणसे राजने कहा— तू लक्ष्मण सीताके कारण मरारमें लोग हमारी बातें निन्दा कर रहे हैं । हमसे भी बहकर अवधार होनेकी आशंका है । इसलिये कल मगरे तुम सीताकी रूपम बिदाकर मुनि वाल्मीकिके आश्रमपर छंड आओ । इस वादक विपरीत यदि तुम कुछ कहने तो मुझे हमारी हत्या करनेका वाव समझा । हाँ, इतना और करता । मनसे लौटते समय सीताकी एक भुजा भी काटकर सेवा करना जिसे दिनाकर मैं आलोचनालोको विश्वास दिला हूँगा । इतना कहकर राम कैकीके पास चल दिये । इसी बीच कैकेयीने आश्रममें बीठी बने करतेकरने सीतासे कहा—मन । इस दोवारपर रावणका चित्र लिखकर हमें दिखाओ कि वह दितवा बहा था । इसके उत्तरमें सीताने कहा मैंने रावणको कभी देखा ही नहीं ॥ ३१ ३२ ॥ हाँ, जब वह पंचवटीमें मुझे हाथोंके लिए गया था, तब मैंने उसके दाहिने पैरका अंगूठा देखा था । सीताका उत्तर सुनकर कैकीने कहा—अच्छ, उसका अंगूठा जैसा रखा हो, वही इस दोवारपर लिख दो । जानकीने कैकेयीके कथनानुसार दोवारपर उसके भवानक अंगूठेका चित्र लिखकर रिया दिया और बोली देव बाद अपने

अगुष्ठोपरि कैकेय्या वधायोग्यो दशाननः । लिखितः स्वेन हस्तेन रामं द्रष्टुं कुबुद्धितः ॥४२॥  
 हावडार्थं समापार्तं दृष्ट्वा सा सभ्रमान्विता । भिक्षुनिके राधराय ददायामनमुत्तमम् ॥४३॥  
 रामोऽपि नन्वा कैकेयीमामने सम्पितोऽभवत् । ददर्श भिनौ लिखितं विचित्रं तं दशाननम् ॥४४॥  
 रामः पप्रच्छ केनात्र लिखितोऽर्थं दशाननः । कैकेयी कथयामास सीतया लिखितस्त्विति ॥४५॥  
 यत्र यत्र मनो लभ्य रमयते इति तत्सदा । स्त्रियाधरित्र को रंनि शिराद्या मोहिताः स्त्रियाः ॥४६॥  
 कैकेयीवचनं श्रुत्वा रामो मदाप्रनाः । सीताश्रयं समावृत्तं कैकेयीमाह विस्तरान् ॥४७॥  
 लक्ष्मणेन त्यजाम्यम्भ्रं च, सीतां जाह्नवीतटे । सीताश्रयं वने छित्त्वा समानयतु पट्टिरा ॥४८॥

सीमित्रिस्त्वां तथा पौरान्दर्शयिष्यति निश्चयात्

सीतया लिखितो यस्मान्स्वभुजेन दशाननः ॥४९॥

सीतयावयमालक्ष्य नदृष्टे लक्ष्मणो मया । न चोदितश्च तां हिम्रा मञ्जयिष्यति वै क्षणात् ॥५०॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा कैकेयी मुदिताऽभवत् । सीताया विरहाद्रामो नैव राज्यं प्रशङ्क्यति ॥५१॥  
 सेवायं रामचन्द्रस्य लक्ष्मणोऽपि न शङ्क्यति । तदा भोरामराज्येन यगतो मे प्रशङ्क्यति ॥५२॥  
 इति मन्त्रित्य हृदये कैकेयी मुदिताऽभवत् । रामोऽपि नन्वा कैकेयीं सुमित्रां स्वीं च भातरम् ॥५३॥  
 समावृत्तं च कैकेयीगोहे यजाममादरान् । श्रावयामास सकलं वृत्तं सीताश्रयं प्रभुः ॥५४॥  
 नन्वा सुमित्रां कौमल्या रामः सीतागृहं ययी । सीतया दत्तपाद्यार्थासनमर्गचकार सा ॥५५॥  
 समावृत्तं च कैकेयीगोहे यददृष्टमादरान् । श्रावयामास तत्कुन्म्वं वृत्तं तं जानकी मुदा ॥५६॥  
 तच्छ्रुत्वा जानकी प्राह कैकेय्या वचनान्मया । अगुष्ठ एव लिखितस्त्वयोर्ध्वं लिखितो धिया ॥५७॥  
 अगुष्ठस्यानुरूपेण दशारूपो दुष्टबुद्धिनः । मन्वीनावचनं श्रुत्वा जानकीमाह रावणः ॥५८॥

महलोको नसी गयी । सीताको बली जानेपर द्वेषवश कैकेयीने रामको दिखानेके लिए उस अगुठके अनुसार रामके पुरे शरीरका चित्र अपने हाथसे बना दिया । ॥ ३९ ५२ ॥ इसमें कैकेयीन चेला कि राम हमी ओर आ रहे हैं । सब झटपट उसने उस दीवारके पास ही रामजीको बैठनेके लिए आसन बाल दिया । रामने वही पहुनकर कैकेयीको प्रणाम किया । फिर आसनपर बैठ गये । थोड़ा ढर बाद रामका दृष्टि उस धने हुए रावणक चित्रपर पड़ी ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ रामने पूछा वहाँपर रावणका चित्रकिसने बनाया है ? उत्तरमें कैकेयीन कहा कि आपकी बहू सीताने यह चित्र लिखा है । जहाँ जिसका मन लगा रहता है, वार बार उसीको याद आती रहती है । यह एक माधारण निरम है । और फिर स्त्रियोंके चरित्रको कोन जान सकता है । निश्चित दशान भी तो स्त्रीचरित्रका पार नहीं पा सक और वे भी मोहित हो गये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ कैकेयीकी बातें सुनकर मनस्वी रामचन्द्रजाने कैकेयीकी वह बातें भी बहलायीं जो सभामें विजयक मुँहसे सुनी थीं । इसी सिलसिलामें उन्होंने यह भी कहा — माता ! कल सबदे लक्ष्मणके साथ मैं सीताको गंगाजाके तटपर भेज रहा हूँ । वह उसे वहाँ छोड़ देगा और भय तथा गुरुवर्षासियोंको दिखानेके लिए भेर कतुन्से सीताका एक हाथ भी काट लायेगा । बसकि सीताने उसी हाथसे तो रावणका यह चित्र बनाया हुआ । म्पीहत्याक भयसे मैं उसे मारनेकी आज्ञा नहीं दूंगा । लेकिन अब उसके हाथ नहीं रहेंगे तो वह जियेगी कैसे ? वनके हिसक जोश ही उसको छा जयेंगे ॥ ५७ ५८ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और मनही मन सोचने लगी कि सीताके विरहने दुखी हाकर राम राज्यका काम नहीं कर सकेंगे । लक्ष्मण भी रामकी सेवामें लगे रहनेके कारण राज्यका पार अपने ऊपर नहीं लगे । उस दशामें विषम होकर राव वरे बेटे भरतसे राज्यका काम करनेके लिए माग्रह करेंगे । यह सोचकर कैकेयी प्रसन्न हुई । रामजा भी कैकेयीको प्रणाम करके अपने महलोंको चले गये । वहाँ अपनी माता कौमल्या तथा सुमित्राको आदिसे अगतक सीतासन्ध्याभी सब धृत्वा कह सुनाया । फिर कौमल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे सीताके भवनमें जा पहुँचे । सीताने पाद्य-अर्घ्य-आचमनोपादिसे उनकी पूजा की और रामजी एक आसनपर बैठ गये । इसके

कौटिल्यबुद्धिर्कंकश्याः समग्रां वंशपदं प्रिये । इत्युक्त्वा राघवः सीतामादिरयाम्ये चञ्चुव मः ॥५९॥  
 सीतया इमपयंते भुक्त्वा मोगान्मपुष्कलान् । विनोदार्थं रूपपतिः प्राह रात्रौ विदेहजाम् ॥६०॥  
 स्त्रीणां माने समर्पणां वाञ्छितं वाञ्छते मनः । काते वाञ्छावद्भवन्त्येव ते दास्यामि निश्चिनम् ॥६१॥  
 इति राघवचः श्रुत्वा भाविकार्येण गत्रिता । सा प्राह गणर्वं गम नमोर्स्तिरस्थितांस्तकृत् ॥६२॥  
 मूर्तोनामाश्रमाश्चापि कृपिपन्नाश्च तद्वनम् । वाञ्छते मे मनो द्रष्टुं शोच प्रपद्य तत्र माम् ॥६३॥  
 इति सीतावचः श्रुत्वा तथाऽस्मिन्निष्ठे रघून्म । प्राह र्षाने लक्ष्मणः आ तेष्वपि स्या मयज्ञया ॥६४॥  
 पुनः प्राह रघुभेष्टः माने ने कौडनादिभिः । जयस्थासादिकं सर्वं विस्मृतं तन्मया पुरा ॥६५॥  
 तन्करोम्यधुना माते गताया न्वपि कानरम् । इत्युक्त्वा जनका रामः मुखं मुखाप मंचके ॥६६॥  
 सीतापि चित्तयापाम यत्र माता पिता मम । किं मां न्यूनं हि तत्रास्ति किञ्चिद्वस्त्वादिकं मह ॥६७॥  
 नाहनेन्या विद्यन्तुर्गो मरुता दास्या ममन्विता । लक्ष्मणेन रथे स्थित्वा गन्तामि मुदिता मुन्मत् ॥६८॥  
 इति निश्चिन्त्य सा रात्रौ मुखं मुखाप मंचके । अथ प्रभाते मान्धाप स्नात्वा स्नानं रघून्मम् ॥६९॥  
 पक्कान्नादानि सन्दात्रे पर्यवेपथुनमम् । उपहारे कुने मर्षा स्वयं कुन्वोपहारकम् ॥७०॥  
 पृष्ट्वाभिन्नादिकाः श्रौत्वा तवः श्रुतः प्रगम्य च । सज्जानोरस्थितान् पृष्ट्वाऽमूर्तान्द्रष्टुं समुद्यता ॥७१॥  
 वाः पश्यन्तु र्गर्वापुक्ता दास्या मस्मात् लक्ष्मणम् । ततोऽसौ लक्ष्मणे आत्रा चोदितम्ना ययौ जराकुण्ड ॥७२॥  
 दास्यामस्या तुल्यया यमीनां कृत्वा रथस्थिताम् । ययौ दक्षिणामार्गेण च युवंमान्म जगद्गरीम् ॥७३॥  
 इन्द्राद्या निर्जेताश्चक्रः सीतायन्मामेपन्क्रियाम् । उल्लस्य तमसां पुण्यां गोमतीं जाह्नवीमपि ॥७४॥  
 यमुनां तां महापुण्यां तथा मंदारकिर्ना नदीम् । द्वितीयां तमसां पुण्यां समुल्लस्य म लक्ष्मणः ॥७५॥

बाद उन्होंने वह वृत्तान्त बतलाया, जो मन्थाम तथा कंकशाक धवनम हुआ था। सीताने कहा कि माता कंकशोके कहनुम मैंने केवल रावणरा नेरका जगता बतलाया था। बाकी उन्हा अगला कननाम रावणका सारा शरीर प्रताप होना। इस तरह सीताके बचन सुनकर राघव कहा प्रिये ! मैं कंकशाका कुन्वित्ताको चली-यावि जानता हूँ। इसका महकर समस्त सीताका अगला दुःखाने लगा लिया और वह दूरतक उनका मुँह चूमने रहे। फिर विनोद करने करने रही निक नये। अन्ती दर बाद राघव सीताको कहा—प्रिये ! मैं जहाँतक जानता हूँ, मन्थिनी प्रिये मिलन है च मे चला करके । दुःखानी भा किमी धनपुकी छपटा है ? यदि हा हा बननाया, मे अवाप दूँगा ॥५९-६०॥ इस प्रकार राघव का लक्ष्मण धनवज सीताने गङ्गातटनिवासो कृपिपन्न आश्रमो और बलाका समनका दूखता प्रकट की और कहा कि मुख जोप नही भत्र ही जये। राम सीताका माग स्थाकार करके कानन म-माने कम ही लक्ष्मण पुष्ट गङ्गातटपर ले जावने। थोटा देर बाद फिर वापि—सीत बहूत दिनम तुम्हारे माय भाग-विदासमे मे इसका स्थित हो गया कि तय, तय, ध्यान, धारणा और सब कुछ दूख गया था। यदि तुम कुछ श्रिके लिए कहा चला जाओगी तो मैं कुछ भजन-स्तवन करूँगा। इस प्रकार बात करके राम में गया सीता भा अगल मनमे माया लगी कि जहाँपर मेरा दिवा माता आदि परिवारके सब लोग चिटम न है वही किमी वस्तुके दस्तता न ही नही सकी। अगल मे साथ कुछ न ले जाऊँगी ॥६०-६१॥ अब कनका दिन मैं सीत नहं साजन दूँगी, वरि अगली रात्रियो रात्रियों और लक्ष्मण साथ दूँगी। तुम उनको अवश्य आऊँगी। यह निश्चय करके सीता सी आनन्दपूरक मा गयी ॥६२॥ ६३॥ सबसेरे सीताने उठकर स्नान किया और भजन बतलाया। उधर राघवने भी स्नान कर लिया और सीतान करने बैठे। सीतान बने प्रेमसे प्रेमसर उठे आत्रन रागव। तदनन्तर राग भोजन किया ॥६४॥ फिर उभिला आदि बहूत ने पूछकर सीताओकी प्रणाम किया और गङ्गातटके बलाक रहनवाने मुल्लोकी देखनके लिए जानके सीता हा गयी ॥६५॥ उन्होंने सब मानके लिए लक्ष्मणका बुलाया। रामचन्द्रके ज्ञानानुसार लक्ष्मण शीघ्र रथ लेकर भा पहुँच ॥६६॥ सीता अपनी रुखियो, दासियो तथा तुलसावृक्षके साह गयमे सीता और लक्ष्मणने दक्षिण मार्गमे गङ्गातटकी ओर पवनवेगके समान रथको चलाया ॥६७॥ ७४॥

चित्रकूटोपन्यकारां वाल्मीकेगन्धमांतिके । पिप्पलाधो मैथिलीं तां सरुपा दास्या वरासने ॥७६॥  
निवेद्य नत्वा स ग्राह साश्रुनेत्रः सगद्गदः । लोकापवादमर्त्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥७७॥

दोषो न कश्चिन्मे मातर्मञ्छाश्रमपदं मुनेः ।

इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य सख्या दास्याऽपि वीजिताम् ॥७८॥

ययौ रथेन मौमित्रिः पूर्वभागैर्ग आहूतीम् । शिष्यैः श्रुत्वाऽथ वाल्मीकिर्जनकेन सुमेधसा ॥७९॥  
ययौ स्त्रीभिर्द्विजैर्पुक्तः पूजयामास जानकीम् । शिषिकायां सभिवेदय वीजितां वामरादिभिः ॥८०॥  
नागावाघनिनादैश्च श्वेयानां नर्तनैर्वरैः । स्ववनेर्मार्गवादीनां नटादीनां सुमायनैः ॥८१॥  
निनाय अमकः सीतां वाल्मीकेगन्धमे मुदा । मुनिपत्न्यो वन्यपुष्पैर्वैवर्तुर्जानकीं मुदा ॥८२॥  
जानकीशिविकाद्यै र्हे दूदुर्बुर्वैवर्तुण्यः । एव विवश सा सीता वाल्मीकेगन्धमं मुनेः ॥८३॥  
चमूर्त्तराजन दीपैर्मुनिपत्न्यश्च जानकीम् । जानकी हेमपर्यङ्के घृताधोकोपरहर्षणा ॥८४॥  
सुसमायाभमे तस्य वाल्मीकेश्च तपस्विनः । जानकीं पूजयामाशुर्मुनिपत्न्यः पृथक् पृथक् ॥८५॥  
दिव्यास्तेर्वनमंभूतैर्वन्यपुष्पैर्निरन्तरम् । श्रुत्वा परान्मनो लसार्णे मुनिवाक्येन भक्तितः ॥८६॥  
दोहदान् पूरयामासुः सीतपास्ता मुनिस्त्रियः । शिविकासंस्थिता सीता ददर्श वनकौतुकम् ॥८७॥

यथापूर्वं तु साकेते सुसमाय विदेहवा ।

तथा मुनेराभमेऽपि सुसमाय पतिव्रता ॥८८॥

इति श्रीशतनोटिरामचरितामर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये  
अन्मकाण्डे सीताया वाल्मीक्याश्रमगमनं नाम तृतीयः सर्गः । ३ ॥

जब वे वरम पवित्र यमुना, मंदाकिनी तथा लमसा नदीको पार करके चित्रकूटकी तलेटोमें वाल्मीक्याश्रमके समीप पहुँचे, तब लक्ष्मणने रथको रोका और एक पीपल वृक्षकी छायामें आसन बिछा दिया । तब सुखिपोंके साथ सीताजी तसपर जा बैठी ॥७५॥ ७६॥ तब आखिमें आसु भरकर गद्गद कण्ठसे लक्ष्मणजी कहने लगे—माता ! लोकापवादके भयसे रामचन्द्रजीने आपको इस वनमें छोड़नेके लिए मुझे आज्ञा दी है । इसमें मेरा कोई दोष नहीं है । जब आप पहलें ऋषि वाल्मीकिके आश्रमपर चली जायें । इतना कहकर लक्ष्मणने सीताको परिक्रमा की और प्रणाम किया , उस समय दासी और सखियाँ सीतापर पला झल रहें थी ॥७७॥७८॥ फिर वे अपने रथपर बैठकर उमी भागसे अयोध्याके लिए लौट पड़े, जिधरसे गये थे । उधर वाल्मीकिने कुछ शिष्योंसे यह वृत्तांत सुना तो जनकजी, सुमेधा तथा कितनी ही स्त्रियों और ब्राह्मणोंके साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ सीता बैठी थी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताको पूजा की । फिर उन्हें सुन्दर पालकामें बिठाया और अपने आश्रमकी ओर चले । राममें बनेक प्रकारक बाजे बज रहे थे । वैश्यग्ये नाच रही थीं और माट विस्दावली बखान रहे थे । गृह-परमक आदि सुन्दर गायन गा रहे थे ॥ ७९-८१ ॥ जब सीताजी आश्रमपर पहुँच गयीं, उस समय मुनिपत्नियोंने सह्य उत्तपर विविध प्रकारके वनफूल बरसाये ॥ ८२ ॥ उन्होंने आरती उतारी और एक सुवर्णनिर्मित पलंगपर बिठाया ॥ ८३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीताको बड़ा आनन्द मिला । आश्रमकी ऋषिपत्नियोंने अलग-अलग सीताको पूजा की ॥ ८४ ॥ उस दिनसे कितने ही तरहुके दिव्य वन, वनके सुस्वाद फल तथा फूल आदि दे-देकर सीताको सब स्त्रियें प्रसन्न किये रहती थीं । क्योंकि उन स्त्रीगोंने वाल्मीकिसे सुन रक्खा था कि साजा कोई साधारण स्त्री नहीं साक्षात् विष्णुभगवानकी भार्या लक्ष्मी हैं । जब इच्छा होती सब सीता पालकोपर सवार होकर वनको देखनेके लिये जाया करते थीं । सीताजी जो सुख वयोध्यामें मिलता था, वही वहाँपर भी मुलम था ॥ ८५-८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये अन्मकाण्डे ९० रामतेजपाण्डेयविरचितभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( बाल्यौकिके आश्रममें लव-कुशका जन्म )

श्रीरामदास उवाच

मम मङ्गातटं मन्दा लस्यपोऽचिन्तयद्बुद्धि । स्वेच्छया कौतुकास्मीनां मया शुद्धां सत्यक्तवान् ॥ १ ॥  
 मय्येकाग्रशान्त्यर्थं आश्रमात् प्रविषाण्यहम् । एवं सति पुनस्तेन किं मयाकृतं तदः ॥ २ ॥  
 वनारसीशाश्वजं शिष्या मयस्त्वेन्यतिदुर्बलम् । मयापि शपथं धुन्वा न दृष्टः स निश्चित्य च ॥ ३ ॥  
 मधुना किं करोम्यत्र कथं राघवं प्रगम्यते । सीताशूत्रं विना दृष्ट्वा रामो मां किं वदिष्यति ॥ ४ ॥  
 छेत्तुं सीताशूत्रं शक्तो यविष्यामि कथं त्वहम् । यथाऽहं पुत्रवन्निर्घं पालिनो लालितस्त्वपि ॥ ५ ॥  
 मधुनाऽपि विशास्यत्र रामायास्त्वं न दर्शये । एवं निश्चित्य सौमित्रिभिर्वा कर्तुं मनो दधे ॥ ६ ॥  
 एतस्मिन्मन्तरे तत्र विश्वकर्मा विधेर्गिरा । कुटारहस्तो विपिने बभ्राद्य तल्लक्ष्यधक् ॥ ७ ॥  
 तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह त्वं मे साहाय्यमाचर । कुटारेण तर्ह्यश्लिन्वा चितार्थं वेदि मां वचात् ॥ ८ ॥  
 पथेच्छं वसु दास्यामि त्वामहं निषयेन हि । सोऽप्याह लक्ष्मण रौरं चितार्हेतुं वदस्व माम् ॥ ९ ॥  
 मौमित्रैः कथयामास पूर्वदृष्टं सौमनस्यम् । तच्छ्रुत्वा मरुत नम्रः मौमित्रि प्राह तस्मिन्तः ॥ १० ॥  
 अन्धार्थे स्त्रीयकुगणं वा सुहायं स्वराशुत्रम् । ब्रह्म सीताशूत्रं कृत्वाऽधुना दास्यामि ते वचात् ॥ ११ ॥  
 हस्त्युपस्था लक्ष्मणं कृत्वा जानकीशूत्रमुच्यमानम् । गच्छन्मांसास्थिरनायुक्तपूरिवं कंचुकोपुनम् ॥ १२ ॥  
 सीतालङ्कारमहितं सस्याधिष्ठुर्विचिह्नितम् । ददौ लक्ष्मणहस्ते तं स्वयमनर्दधं शणात् ॥ १३ ॥  
 सीताशूत्रं समादाय लक्ष्मणोऽपि पुरीं गच्छ । वनप्रियं निकस्माद्वा वात्पातिभूतिभूतसम् ॥ १४ ॥  
 दर्शय नगरीं मयीषां मारीहीतगृहोपमाम् । विवेशाधोमुखः पुर्यं गत्वा मदसि राघवम् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास उवाच उच्चर मङ्गातटके समाप्त पट्टवकर सम्मग्नान् जानने वनव क्षात्रा किं अद्यपि लक्ष्मणे लोटनेपर मेने ही जग्निमे दक्ष्मण सीताको पवित्र किया था । फिर भी रामचन्द्रजीन सीता माताका परिद्वान कर दिया है ॥ १ ॥ इसमें दा करण है । एक तो रामचन्द्रजीन अपनी कायवासना कम करनी है, इससे कामको आजाका पालन करना है । जन्तु, रामके आरणानुसार येन सीताका परिद्वान तो कर दिया, किन्तु एक और आज्ञा थी कि 'लोटन समय सेनाको एक भुजा भा काटकर लेते जाना' । यह बहुत ही काटन काम है । उस समय रामजीने कसम देखा दिया था, इसलिए विलय बातचीत भी नहीं कर सका ॥ २ ॥ ३ ॥ जब मे क्या कहें ? कैसे मधुन पास लोटकर जाऊँ ? यदि मे बिना हाथ लिये मुझे लोटने तो क्या बहुत मोर फिर यदि हाथ काटना चाहूँ तो कैसे कहूँ । किन्तुने करने जबके समान धरा हुन्कर किया, उन सीताके साथ यह काम ईका काम करनेके लिये मे वगैरे आगे सब सकूँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि पही आगमे अच्छकर घर जाऊँ । रामको कुछ हो न दिखारूँ तो अच्छा हो । इस प्रकार विचार कामके लक्ष्मणन पिटा बनानेका निश्चय किया ॥ ६ ॥ इसी बीचमे कक्षाके आज्ञानुसार विश्वकर्मा एक बड़ईका रुख चारण करके हाथमे कुन्हु ही लिये वनमे घूमते फिरत बहुत ही दृष्ट ॥ ७ ॥ एक जने विश्वकर्मास कहा—कृपया आप अपनी कुन्हुआसे थोड़ीसी ककड़ी काटकर मुझे पिटा बनानेको दे दीजिये ॥ ८ ॥ आप जितना घन मींगो, दूंगा । बड़ईने कहा—हे वीर आप अपने लिये पिटा बन लेका कारण हा जूँ बलाइये ॥ ९ ॥ लक्ष्मणन जाइस बल्लक तारा पुतान्त बता दिया । उसे लुनकर मुरकगते हुए विश्वकर्मानि कहा ॥ १० ॥ इसको तो बातके लिये आप अपने इस बहुतसूर सरीरको आगमे पठ जलाइये । मैं अभी क्षणभरमे सीताका हाथ बनाकर आपके देता हूँ ॥ ११ ॥ तबनुसार तनिक ही देरमें विश्वकर्माने सीताका ऐसा हाथ बना दिया, जिसपर हाथर बह रहा था, मांसके लोचने झूल रहे थे और कन्धकी वही हुई थी ॥ १२ ॥ सीताके इस हाथमे सब विश्व निष्ठमान थे और जनकुर पड़े थे । उस हाथका लक्ष्मणके हाथमे लेकर विश्वकर्मा अन्धधौन हो गये ॥ १३ ॥ तब लक्ष्मण बहु मुजा लेकर अयोध्यापुरीकी

दशरामाय सीताया भुजं कङ्कणमण्डितम् । तं निरीक्ष्य भुजं गमोऽर्धोमुखः प्राह लक्ष्मणम् ॥ १६ ॥  
 कैकेयी सुरदः पौगन्धुमर्षान् जानपदाश्रितान् । सीताभुजा दर्शनीयकम्बयाऽथ मम शामनात् ॥ १७ ॥  
 तथैत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि स चकार यथोदितः । भुजं संक्षयामास पेटिकायां निधाय सः ॥

कैकेयी हं भुजं दृष्ट्वा तुतोष निवर्गं हृदि ॥ १८ ॥

रानीऽपि सीतारहितः परान्मा विज्ञानरक्तवन् आदिदेवः ।

मन्यन्त्य भोगानखिलान्निर्गतो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविनाम् ॥ १९ ॥

अथ सीताऽपि वाल्मीकेर्मुनिपत्नीमिराभवे । प्रपद्यं पूजिता इत्यै, सुखं तस्यै मुदान्विता ॥ २ ॥  
 एवं पश्यद्वयं नञ् नीन्वा सीताऽऽश्रमे मुनेः । सुदिने मृगुचे रात्रौ पुत्रवन्न रचिषमम् ॥ २१ ॥  
 गतस्मिन्नन्तरे गत्री तात्वा तं ममर्थं प्रभुः । राघवः कैकेयीमात्राघटां मुह्यन्वाऽथ वधुता ॥ २२ ॥  
 पुत्रकस्य ततस्तस्मिन् स्थित्वाकाशयथा ययौ । वाल्मीकेराश्रमे वेसान्मवन्धुम्नं तनाम सः ॥ २३ ॥  
 तुतो वान्मीकिना विप्रार्पणैरेव रघुनमः । जनकमादिवम्काराधकार विधिपूर्वकम् ॥ २४ ॥  
 मातायाः पुरतः पुत्राननमालोकयन्मुदा । ददौ दानान्यनेकानि मयस्त्रामरण्यपि ॥ २५ ॥  
 चकार विधिवन्नुदा पुत्रजन्यमहोत्सवे । देवदूतमपो नेद्वर्वधुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ २६ ॥  
 स्रवाः सीतां शिशुं रामं नन्तु से मुरस्त्रियः । नेदुज्ज्वलायानि नन्तुवर्षारशोपितः ॥ २७ ॥  
 तद्वनुमागभावाश्च सीतां रामं शिशुं मुहुः । ऋषिपत्न्यः शिशुं सीतां रामं दीपैः मधूषिकाः ॥ २८ ॥  
 पृथङ्नीराजनं कुन्वा जगुर्भीतं हि सुस्वयम् । वस्यार्थः पूजयामास ताः मत्रा रघुनन्दनः ॥ २९ ॥  
 सातागर्भा विदेहोऽपि पूजयाशम विस्तरान् । वान्मीकिस्तु कुर्वन् आर्तिं चकार विधिना शिशोः ॥ ३० ॥

अ २ उक्त पढ़े अयोध्यामें धुनन ही लक्ष्मणन दखा कि एक ही दिनमें अयोध्यापुरी सबया ओहने हो गयी है ।  
 ज ३०८ ॥ २०८ उक्त पढ़े और सारी भूल उठनी दीक्षसी है । यह मन्त्र मिल्कर उस दिन  
 अयोध्यापुरी ठेसो लग रही थी, जैसे बिना स्त्रोका बिना घर । लक्ष्मण जान जाते महलोंमें पहुँचे और  
 २ मन्त्रद्वज की सीताका साथ दिगलयाया । इस कङ्कण विमान्त सीताका भुजाको देखकर रामन अपना  
 म नम, पुका मिया और १४-१६। इस ल जाकर माना कैकय, मरे मित्रो, राजाओ एवं पुत्रवासियो-  
 का निम्नता रा, यह मेरी आज्ञा है ॥ १७ ॥ 'पुत्रात्' कहकर लक्ष्मणने भी आज का वालन किया और एक  
 पेटामे सम्हालकर सीताकी भुजा रत ला ॥ १८ ॥ कैकयन सीताका भुजा देखो तो बहुत प्रमथ हुई ।  
 हवन २ मन्त्रद्वज सीताका शिशुक हाकर सब सासारिक आयाक त्याग दिया और लक्ष्मणको समान  
 आता जीवन विमान्त ॥ १९ ॥ उधर सीता जो भी बन्धनमय आश्रमपर यहाँकी मुनिपतियोमें पूजित  
 है, तो हुई मानन्द जीवन वितान लगी ॥ २० ॥ इस तरह ही महानी यत्नपर सीतान शुभ दिन और शुभ घड़ामे  
 एक पुत्रवन्तका जन्म रता ॥ २१ ॥ उसी समय रामनन्दका भी घर ममान्तर मिल् गया और राजिको  
 अपन पुत्रक विमानपर पहुँकर लक्ष्मणजोक साथ आकाशम गत भीद न्मीकिजोक आश्रमपर जा  
 पहुँच और लक्ष्मण तथा रामन मुनिका प्रणाम किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर वान्मीकिन आश्रममें  
 उपोष्यत थाइसे साहसिक साथ वन्नका विधिवन्त जात्यमोरे संस्कार किया ॥ २४ ॥ सीताक समस्त राम-  
 चन्द्रन हर्षपूर्वक बैठका मुख दखा और अनेक प्रकारक वस्त्र-आभरण आदि दान करके साहसिको दिये ॥ २५ ॥  
 उस पुत्र-जन्मका प्रसन्नताम रामन नान्दानुस्त्राहार्द किया । दवताआन प्रसन्न होकर दुन्दुभी वजायो  
 और उनपर फूल बरसाये ॥ २६ ॥ सीता और सीताके पुत्रका मुख देखकर दवाहूनाय नाचने लगी । उधर  
 जनकजोक द्वारा नियुक्त व वजाये दाल वजाये रग और दराय नाचने लगी ॥ २७ ॥ वन्दीजन सीता और  
 रामको स्तुति करत लगे । ऋषीकिशने मुन्दर धन्य वन्नका हाथक जन्मकर राम, सीता तथा नवजात  
 शिशुक आस्ता उतार, और विविध प्रकारक महान्मान पाये । रामन अनेक तरहक वस्त्र, मूदणोसे वनका  
 संस्कार किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ महायज जनकन भी राम और सीताका विविचन्त पूजन किया और वान्मीकिने



शान्तिर्धर्मो धीमनो वसुधावृक्षैश्चान्ध्याः कुशाह्वयः । सन्निहितो राघवाग्रं निधिनो बालकस्य हि ॥३१॥  
 एवं बालममुन्मादेनीत्वा सप्त निशां सुखम् । तत्रस्थान् मण्डलानां सप्तत्राणमनस्य हि ॥३२॥  
 दस्माद्गतां बहिर्गन्धेदाभयादस्मा वै मुनेः । स वै दक्षयो महेदव अनुसूया न सञ्जयः ॥३३॥  
 इत्युक्त्वा सकलान्दृष्ट्वा मुनीन्मन्त्रा पुनः पुनः । सीतामामभ्य धीरासो बाल आत्राऽऽरुणोद यः ॥३४॥  
 विहायसा कृणाम्याप साक्षं नृनुनन्दनः । प्रवक्ष्य विमानात्म पूवत्रिद्विना शुद्धे ॥३५॥  
 अथ राघो वातिनेधशतं कर्तुं मनो दधे । कु वा स्तनमर्थी मीना वक्तात्तकारभूषिताम् ॥३६॥  
 पापनीं भलिनां दृष्टां मनुर्निदरायताम् । मनुर्विद्वेषिणीं वृणां चारुक्रमाज तनयाम् ॥३७॥  
 भर्तारं वातुमिच्छन्तीं मदा कलहकारिणीम् । परभुक्तां पावर्णां भर्तुर्विवायलोपिनीम् ॥३८॥  
 कृषीषेभ्यश्चवर्तिनीं नष्टां मुनीं नन्तां मनीं श्रियम् । व्यक्त्वा कुशमयीं विप्रैः कार्या पन्ना स्वकनमु ॥३९॥  
 ईमी कार्या तामुर्वध रक्ष्यैः कार्या तु राजर्णाः । शूर्तः कार्या ताम्रमयीं स्वस्वकर्मप्रसिद्धये ॥४०॥  
 अथवा सर्ववर्णैश्च कार्या पन्नी तु कांचनी । रामोऽपि कृत्वा सीकर्णमग्निहोत्रं चकार यः ॥४१॥  
 रावणेन यदा नीता सीताया ददके तदा । हेम्नोऽभावात्पुत्रमयीं कृत्वा रामेण जपको ॥४२॥  
 अन्ये कुशमयीं पन्नी विधाय गृहमेधिनः । अग्निहोत्रमुपामन्ते विन्ध्यस्यागोऽनेगर्हितः ॥४३॥  
 न्यमिन्नावतीं वाधा मनुर्विद्वेषिणीं तथा । अभाने वा पत्न्याञ्जान कान्याज्या मनीं आदु ॥४४॥  
 पक्षे पक्षे नवम्बां हि स्नानं धरभृथाविधम् । कर्तुं निधितवान् रामस्तदा विप्रैः पुरोधमा ॥४५॥  
 मातृगेभ्यस्तरे तीरे वज्रधूवि चकार यः । अप्रयागान्मुद्गलस्याश्रमो यावच्च दक्षिणे ॥४६॥

त्रिभिर्गुणैः कुशासे अभिनेक करते हुए शान्ति-वाट किया ॥ ३० ॥ शान्तिके निमित्त आह्वाहित कुशासे शान्ति की थी । इसीकार उन्होंने रामक सम्बन्ध ही उस वक्ताका लभ्य हुए रखी ॥ ३१ ॥ इस तरह गाना प्रकारके उत्साहम वह रात वही बितायी और पिछली रातका रामने अप्रमदके लोगोसे कही कि जो कोई मनुज मेरे यहाँ आनेका सम्पाकार कियासे कहना, वह मेरा शत्रु होगा और मैं उसका दंड दिख दिसा न रहूँगा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर रामने अवाध्या वायस आनक लिए जागते आका मीत और मुनिगोका प्रणाम किया । फिर सीताम दूरकर गणवटजी लक्ष्मणके साथ विमानपर आकड़ हुए और बाढ़ा दरम लयोजन जाकर निजका दण्ड अगती मन्त्रापर सा गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कुछ दिव बादनक बाद रामने सी अभ्यवसेध वज्र करनेका विचार किया । उस समय सीताला थी नहीं । इसलिए रामने सुग्रीवकी सलाह बनाकर वज्र करनेका निश्चय किया । क्योंकि ताम्रवै निखा है कि वापिन मैला कुपेली, दुष्ट स्वभ वकी, निन्दा करनेवाली, दातसे लड़ाई करनेवाली, क्रूर प्रकृतिवाली, मोट्टिन, स्वाधीनो मारनकी इच्छा रखनेवाली, सदा लड़ाई करनेवाली, कलहा, स्वामीको आजाक प्रतिकूल चरनेवाली और स्वच्छाचारिणी स्वा यदि ला जाय, मेरा जाय वा किसीक हाथ भगा लो जाय अवका स्वयं भग जाय तो उसको त्यागकर ब्राह्मण कुशाकी शपथ सुग्रीवकी, वैद्य बीडीका और शूत्र नासकी स्त्री बनाकर उस दि कर्म करे ॥ ३६-४० ॥ अथवा समर्थ्य हाथपर सब शान्तिके लोग सुग्रीवकी सलाह बनाकर अपना काम चलायें । इन्हीं शास्त्रीय मान्यभोस रामने सुग्रीवकी सलाह बनाकर अपना वज्र आरम्भ किया ॥ ४१ ॥ पहले जब दण्डक बनमें सीता हार ली गयी थी और रामकी रामेश्वर स्थापनाके समय साताकी मायवकता पड़ी थी, तब उन्होंने सुग्रीवके अभावसे कुशाकी ही सलाह बनाकर रामभाका स्थापना की थी ॥ ४२ ॥ कुछ गुरुम्य नारीके अभावसे कुशाकी स्त्री बनाकर अत्यहोष करने हैं, वह भी ठीक है । कहनेका मतलब यह कि स्त्रीके अभावसे किसी प्रकारकी स्त्री व्यवस्था बना लेनी चाहिए । क्योंकि स्त्रीके बिना कोई भी दार्जिक कार्य सम्पन्न नहीं होता । कुछ आचार्योंका मत है कि — “अग्निचारिणी, पार्विना तथा स्वाधीसे श्रेष्ठ करनेवाली स्त्रीका बुराके लिए परिहृत्य कर देना चाहिए” कुछका यह मत है कि “परिहृत्य न मी करे तो कोई हानि नहीं ।” ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने श्रेष्ठक नवमीको एक अभ्यवध वज्र पूर्ण करनेका निश्चय किया और भागीरथीके उत्तरी तटपर बजराण बननेकी बात

अहंपुनस्तस्माच्चकार स्वर्णलंगलैः । यस्याश्वमस्य सामिष्ये मागीरध्वस्युदम्बहा ॥४७॥  
 स्वयमवस्थाञ्च जानक्या यद्वर्णं चकार सः । उज्जानद्वयो द्रुपु ई चकार स्वर्णनिर्मिताम् ॥४८॥  
 वामांगस्था गुणरूपा जानद्वयस्य सास्त्रिकीम् । विभ्रन्मर्देव श्रौगमो जानकी लोकमातुरम् ॥४९॥  
 यत्रान्ते स्वर्णजा सीता ददौ स्वगुणे प्रभुः । एवं यज्ञज्ञनेष्वत्र गुरवे सप्तमूर्तयः ॥५०॥  
 याः समर्पिता रामेण तामा दानफलेन हि वेङ्गुसीमदसंस्पृशेध्वं सीतां अत पुनः ॥५१॥  
 द्वारकायां कृष्णरूपो विवाहेनोद्दिश्यति । प्रतियज्ञे कथामकर्णमश्वं रामो गुणोच ह ॥५२॥  
 चतुर्दिनाश्चतुर्दिक्षु परिक्रम्य ययौ हवः । एवं सर्वेषु यामेषु च यौ बाधो पृथग्जवान् ॥५३॥  
 पुष्पकस्थः स अनुधनो ह्यगस्तां चकार ई । एवं मदा यज्ञराटे विरेत्रे दीक्षया विभुः ॥५४॥  
 एवं च नवतिसख्या रामेण नर ई कुतः । स्वयमवस्थापि प्राग्म्य रामो यज्ञस्य मौडकोत् ॥५५॥  
 गंगाया दक्षिणे तीरे सुदृढस्याश्वमोडसि हि तत्र नस्यान्तिके गंगोदरतीरे च वदन्वहे ॥५६॥  
 दिनानि दश वान्मोकिनिशायां सज्ययोरपि । श्रौगमरक्षया चक्रं बालकस्यभिर्मन्त्रणम् ॥५७॥  
 कुम्भं नाम तदा चक्रं मुनिरकादशे दिने चकार सर्वसंस्कारान् मुनिः श्रीगणेशज्ञया ॥५८॥  
 एवं स बालकस्तत्र वदुषे मातृलालितः जनकश्च सुमेधा च नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५९॥  
 धोभयामास दौहित्रं नानास्वाग्रवत्सादिभिः । बालोऽपि रजपाशाय स्वकोडा भविद्दहनाम् ॥६०॥  
 एकदा निद्रित प्रेते दृष्ट्वा बालं मुनेः पुरः अन्यक्रमेणि व्यग्रा च मर्त्री स्वायाश्चमातुरम् ॥६१॥  
 जनकं चापि सा सीता दृष्ट्वा सर्वो-वदिमनान् । आश्विने रविवारे च तर्था स्नान्तुं समुद्यता ॥६२॥  
 मुनिं च बालरथायां कुन्वाड्य समर्पा ययौ । दास्या मागेण गन्तुकी ददर्श वपि वानरीम् ॥६३॥  
 कर्तिष्कधम्मकेषु विप्रतीं पच बालकान् ता दृष्ट्वा शश्विगुं स्मृत्वाऽचिनयज्जानकी हृदि ॥६४॥

द्वाराया गया । प्रथमसंस्कार भूतान्तर्गतां प्राध्वन्यन्तः जितना स्वान्ता या, वह सुवर्णक हस्तसंज्ञा जाता गया ।  
 जानकी उस पञ्चगव्याके पास गंग की एक उत्तरका ओर गङ्गा बह रही थी । ४६-४७ ॥ इसके अनन्तर रामने  
 भूर्भुवः स्वो सीताके साथ यज्ञकार्य प्रारम्भ किया । वह सुवर्णका सीता अज्ञानी कोणाको देखनेके लिए खड़ी  
 गयी थी, किन्तु अज्ञानिवाकी दृष्टिसे सा सीता-वकी जानकी संग रामके वामभागमें निवास करती थी ॥४८-४९॥  
 प्रत्येक यज्ञके समयमें ही जानकर राम वह स्वर्णमयी सीता अपने एक वस्त्रिका दाज दे दिया करते थे । इस  
 प्रकार प्रत्येक यज्ञकी पूर्णतापर स्वर्णमयी सीता दान-दत्त व मत्त सी माता-बाबा दान किया । उस दानके फल-  
 स्वरूप आज वृष्णाद्वयाराम उनका मानहु ॥ ५० ॥ एक ही विप्रती मिली । प्रत्येक यज्ञमें राम अपना ध्यामकर्ण  
 छोड़ा दिव्यजयके लिए म्हाटन थे । वह चार दिनें च ग और धूमकर लोट अर्था करता था । सायसे शत्रुघ्न  
 पुष्पक विमानपर बैठकर बाइकी रक्षाके लिए आया करते थे और रामचन्द्रजी दाज लेकर यज्ञशालामें बैठे  
 रहते थे ॥ ५१-५४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीने निम्नान्व यज्ञ पूर्ण किया और अन्तिम सोर्वा यज्ञ का प्रारम्भ  
 कर दिया । ५५ ॥ गंगाके दक्षिण तटपर भूतान्तर्गतां नामके एक अश्विका माधम बा और उत्तरकादिनी गंगाके  
 तटपर ही नामके कि सम्भारक समय रामके पुत्र कुशका रामरक्षा-भरत अभिवेक कर रहे थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥  
 गवारुहे दिने वान्मोकिने वपुस्का नामकरण करके रामके आजानुसार सब संस्कार किया ॥ ५८ ॥ कृष्ण  
 भी बड़ लाहन्वारक साथ समय विलास हुआ करने लगा । जनक और मुन्वा अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्रों  
 और ध्यामन्त्र आदि गन्ध-लहरेके अलङ्कारान् अलङ्कृत करके रत्न थे । कृष्ण अपने कौतुके से जानकीजीके  
 प्रसन्न किया करता था । एक दिन कुश वान्मोकिने पास पालनपर सी गया । सन्धिर्वा अन्य कामोंमें व्यस्त  
 थी । सीताके माता-पिता कहीं धूमन चल गये थे । उस राज आश्विन मासके रविवारका दिन था ।  
 इसलिए सीताने नराम रत्नान् करनको इच्छा की । सप्ताने वान्मोकिर्जाके वपुस्को देखने रहनेके लिए  
 कह दिया और स्वयं एक दासीका साथ लेकर हमसाकी आर चल बड़ी । रास्तेमें सीताने देखा  
 कि एक वानरी अपने पाद कृष्णको कमर-बन्धे और मस्तकपर बैठाये बनी जा रही है । उसे

शिष्ययोनीं जन्मवन्मा शान्त्या बालकानहो । स्नेहात्महेतु मीपन्ने विद्मर्षा मानवदेहजाम् ॥६५॥  
 एकं चापि निजं बालस्यकत्रा गेहेऽप्यगम्यन्ते मया विमृष्टया स्नानं धुम्यत्र भणिकं मुसम् ॥६६॥  
 इति धिक्कृत्य चन्मान परिवृत्ताश्रमं पर्या । एतस्मिन्नन्तरे गेहे बालर्षादिर्मुनिपुंगवः ॥६७॥  
 गतः स लघुशकारं कार्थार्थं बटरो सताः गृहीत्वा सा कृतं प्रत्याघ्नौ मीना बहिः पुनः ॥६८॥  
 हास्या मदं नदीं गन्तव्यसि स्नानं चकार वै । मष्ट्याऽऽ मुनिपालं दार्षं निःश्वस्य वै मुहुः ॥६९॥  
 मीनाशापमयाचकं तर्वांलं स पूर्ववत् तपोवनेन तं प्रोक्ष्य जीवयामास वेगनः ॥७०॥  
 शान्तदृष्ट्या तीव्रतया मुनिना नावलोहितम् । ततः सोऽपि मुस्नाता दाम्प्या गेहं शनैर्ययौ ॥७१॥  
 कर्त्ता गृहीत्वा तं बालं स्वयन्पुंगवैःस्वना । प्रोक्षेऽप्ये बालकं दृष्ट्वा मुनिं वप्रवृत्त जानकी ॥७२॥  
 प्रोक्षे कस्याः शिशुश्चाय मोऽपिरष्ट्वा नदा कुशम् । कटिप्रदेशे जानक्या रिक्तमयं परमं यतः ॥७३॥  
 नमस्कृत्य ततः मीनां परं वृत्तं न्यवेदयत् । अंके निधाप तं बालं मीनाया दम्परीन्मुनिः ॥७४॥  
 प्रसादान्मम वैदेहि द्वितीयोऽप्य गुप्तम्भव । यच्च तद्य लो बालना लव्यस्माद्विनिर्मितः ॥७५॥  
 बालर्षाकैर्वचनान्माऽपि शिशुं जप्याद् जानकी । मुनिस्त्रयोनाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः ॥७६॥  
 जानक्यादिर्मस्कागन् लवभ्यापि चकार मः । तदा निनेदृशानि भूयसा मेऽपि दिव्यकृपाम् ॥७७॥  
 बर्षजानकीं बालीं बालर्षाकिं कुसुमैः मुराः । चकार जनकभ्यापि सुवेधा परमोन्मदान् ॥७८॥  
 कर्मण विधायकन्तो मोक्षपुत्री विरेजतुः । धनुर्विद्यामश्वविद्यां शिक्षयामास तौ मुनिः ॥७९॥  
 कुन्तं रामारण स्वीयं कृतं तौ शिक्षयन्मुदा यस्मिन्नानन्दगर्भं च चरित्रं गणवस्य हि ॥८०॥  
 कुमारौ स्वरसपन्नौ मुन्दरावधिनारि । तन्त्रीलयममाधुक्तौ भाषतौ चैतुर्वने ॥८१॥  
 तत्र तत्र मुनीनां तु समाजेषु मुकरिणौ । सायन्तारपि नो दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽनुवन् ॥८२॥

देखकर उन्होंने अपने मनमें साक्षात् कि निर्जयानका स्त्री होकर भी यह जानगी किन्तु प्रेमसे बच्चोंको अपने साथ रखती है । कुछ मानवचारिकी शान्तिहीनो धिक्कार है जो अपने एक लवकेको बाध्यगपर छोड़कर हमसा स्नान करने जा रहा है ॥ ६९-७५ ॥ इस तरह अपनेका धिक्कारकर सीता वहाँसे फिर बाध्यमकी लौट पड़ी । इसी बीच बालर्षीकिजा स्वयन्पुंगव बननेके लिये जाट्ट चले गये थे । विद्यार्थी भी अपने अपने कामसे पहले ही चले जा चुके थे । रामसंग सारा पहुँची । उसीसम वृजको उठा लिया और बालीके साथ हमसाकी आर चला गयी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उधर बालर्षीकि लौटकर आये तो उनकी निगाह बाल्लेपर पड़ी । उसपर बच्चेको नदी देखा । ऐसी अवस्थामें मुनिगत्रन एक लवकी सीमा ली और सीताके हाथके अपने अपने लपोक्ष्य हाथ लवसे कुशके लगान ही एक बालक और बना दिया ॥ ६८-७० ॥ परराष्ट्रके कारण उन्होंने अपनी आनन्ददृष्टिसे यह नदी देखा कि सीता कुशको अपने साथ ले गयी है । कुछ दूर बाइ स्नान करके सीता भी दार्षिके साथ वीरे धीरेसे कुटियाम आयी ॥ ७१ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि कुशके समान ही भस्करादिके जिधुधित एक बालक बाल्लेपर बड़ा सो रहा है ॥ यह देखकर सीताने कपिसे पूछा कि यह किण्का बच्चा है ? उधर जड़िने देखा कि कुश ही सीताकी कमरपर है, यह उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ फिर उन्हें नमस्कार करके बालर्षीकिने यह वृत्तान्त बतलाया, जिसके कारण उन्मद समा बच्चा बनाना पड़ा था । उसके पञ्चान् मुनिन प्रियकारकर लवकी सीताकी गोदमें दे दिया और कहा— ॥ ७४ ॥ रवि । हमें भी मुहान्ता । तब सीताने उम बच्चेको भी बगीकार किया । मुनिन कहा— हम दोनोंमें उदष्टकुश हीना और वनिष्ठ (छोटा) लव ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने स्वका भी जातकम आदि संस्कार किया । इस समय विविध प्रकारके जात्र गत्र । स्वर्गमें देवताओंने भी मंगलवाद्य बजाकर जानका, जिन्नु लव शान्तिभक्तिके उधर कुशोंकी बर्षा की । दुमेधा तथा जनकन विविध उपसर्ग दिये । प्रमत्ता दोनों पुत्र बड़े हुए उन्होंने अनेक निष्ठाओंका अध्ययन किया और महर्षि बाल्लोकिने उनको अनुविद्या तथा मन्त्रविद्या भी सिखायी ॥ ७६-७९ ॥ फिर अपनी बनायी सम्पूर्ण रामायणकी भी उन्हें शिक्षा दी । जिसने रामचन्द्रजीका आनन्ददायक चरित्र वर्णित था ॥ ८० ॥ अश्विनीकुमारकी मूर्ति सुन्दर देखनेवाला बालक मधुर स्वरसे

गन्धर्वेजिह्व किमरेषु भुवि वा देवेषु देवालये  
पातालैष्वथ वा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सवषु च ।  
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं दृष्ट्वा दिशः सर्वतो

न शायीदृशमीतवाद्यगरिमा नादशि नाश्रवि च । ८३ ॥

एव स्तुतश्चिरस्थितैर्मुनिभिः प्रतिवासरम् । आसते सुखमेकांते वाल्मीकेराश्रमे चिरम् । ८४ ॥  
रुक्मकं कणमञ्जुपुष्पं विभूषितौ । केयूरमल्लहारकुण्डलैर्गतिशोभितौ । ८५ ॥  
निजकीडाकौतुकैश्च वाल्वाक्यैर्मनोहरैः । सीतां सुमेधां जनक रञ्जयामासतुर्मुनिम् । ८६ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे

कुशलवज्रजन्मकथनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( रामरक्षा-महामंत्र )

विष्णुदास उवाच

श्रीरामाश्रया प्रोक्तं कुशलं अभिमंत्रणम् । कुत तेनैव मुनिना गुरो तं मे प्रकाशय ॥ १ ॥

रामरक्षां वरं पुण्यां बालानां शक्तिकारिणीम् ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदामोऽध्वरीद्वयः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्भक् पृष्ट त्वया शिष्य रामरक्षाऽधुनोच्यते । या प्रोक्ता शशुना पूर्वं स्कंदार्थे तिरिजां प्रति । ३ ॥

श्रीशिव उवाच

देव्यञ्च स्कंदपुत्राय रामरक्षाभिमंत्रणम् । कुरु तारकघाताय समर्थोऽयं भविष्यति । ४ ॥

हन्तुक्त्वा कथय मम रामरक्षां शिवः स्त्रियै । नमस्कृत्य रामचन्द्रं शुचिर्भूत्वा वितेन्द्रियः ॥ ५ ॥

श्रीशिवजीने जनकजीके साथ वनमें रामचरित्र गाया करते थे ॥ ८१ ॥, जहाँ-तहाँ मुनियोंकी मण्डलीमें जब वे दोनों सुकुमार बालक रामचरित्रका गायन करन थे तो सबके मुँहमें सहसा यह वाक्य निकल पड़ता था कि हम लोगोंने अपनी लम्ब आधुमें गंधर्वों किल्लरों, मनुष्यों, देवताओं पाताललोकवासियों, ब्रह्मलोकवासियों एवं सारे ब्रह्माण्डवासियोंका अनन्त गायकाके गायन सुन है लेकिन उनमें कहीं न हा मैंने इस प्रकार वाद्यकारकी निपुणता देखी और न गायनमें ऐसी विद्यास हा पायी । ८२ ॥ ८३ ॥ इस तरह सब ऋषियोंसे प्रशंसित हाकर वे दोनों एकान्तमें बाल्मीकीके आश्रमपर रहा करते थे । गुवर्णक कङ्कण, तूपूर, केयूर, करमनी, हार तथा कुण्डल पहननेसे वे और भा गुन्दर दाखत थे । ८४ ॥ ८५ ॥ प्रतिदिन उनकी मनोहर बाललीला देख देखकर मुनि, सीता, सुमेधा और जनकजी मारे खुशीक फूले नहीं समाते थे । ८६ । इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतजपाण्ड्यकृष्णमायादेवासमन्विते जन्मकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

विष्णुदासने कहा है मुन्दब । जिस रामरक्षा-मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिमंत्रण किया था, उसे हमको बताइए ॥ १ ॥ क्योंकि मैंने सुना है कि वह रामरक्षामंत्र बड़ा पवित्र सुन्दर और वासकोंकी शक्ति प्रदान करनेवाला है । शिवजीने कहा—इस प्रकार शिवजी प्रार्थना सुनकर श्रीरामदास कहने लगे—हे प्रिय शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है मैं तुम्हें वह रामरक्षामंत्र बतलाता हूँ, जिसे एक बार शिवजीने पार्वतीकी स्वाभिमार्तिकेयकी रक्षाके लिए बतलाया था ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! आज एशमन्दके

अथ ध्यानम्

रामे क्रीडददं निजकरकमले दक्षिणे बाणमेकं

पद्माङ्गागे च निरयं दक्षतममिमं सासितूपीरभारम् ।

दामेऽवामेव सङ्ख्या मह मिलिततनु जानकीलभ्यणाभ्यां

इयामं रामं भजेऽहं प्रणतजनमनःसेदविच्छेददक्षम् ॥ ६ ॥

अथ भीमरक्षास्तोत्रमंत्रस्य बुधर्कादिककविः श्रीरामचंद्रो देवता राम इति बीजम्

अनुष्टुप् छन्दः आरामार्थान्यर्थ जपे विनियोगः ।

चरितं रघुनाथस्य अनकोटिप्रविस्तरम् । एकैकमक्षरं पुनो महापातकनाशनम् ॥ ७ ॥

स्यान्न नीलोत्पलद्वयस्य राम रजर्विलोचनम् । जानकीलक्ष्मणोपेनं जटाबुकुटमदितम् ॥ ८ ॥

सामित्पूषधनुर्बाणशर्णि नकचगन्धकम् । ध्वनीलया जगन्वाहुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥ ९ ॥

रामरक्षां पठेन्मृतः पपधनो मरंकावदाम् । शिरो मे राघवः पातु मातं दशरथान्मजः ॥ १० ॥

कीमन्वेदो हर्षो पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुता । प्राणं पातु मत्प्रशता मुखं सीमित्रिवन्मलः ॥ ११ ॥

जिह्वां विद्यानिधिः पातु कंठ भरतवदितः । स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ॥ १२ ॥

करीं सौतपतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् । पार्श्वे रघुवरः पातु कुक्षीं इक्ष्वाकुन्दनः ॥ १३ ॥

मध्यं पातु खड्गधर्मी नाभिं जांबवदाश्रयः । सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ॥ १४ ॥

ऊरु गधूनमः पातु पुच्छं रक्ष कुल्यांतकम् । जानुनीं सेतुकृन्पातु जपे दशमुखांतकः ॥ १५ ॥

कटीं विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिल वपुः ।

एतां गमयलापेता रक्षां यः मुकृती पठेत् । स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥ १६ ॥

पातालभूरतन्मोक्षचण्डिकाग्रचण्डिकाग्निः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥ १७ ॥

गमेति राममद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् । नरो न लिप्यते पापैर्भूतिक मुक्तिं च विंदति ॥ १८ ॥

रक्षाय तुम्ह रामरक्षामन्त्र बतया रहा है । अथ ध्यानम् । जिन रामचन्द्रजाक बाग हाथमे वनुष, दाहिने हाथमे एक बाण और बाँयापर बाणमे भरा हुआ तरकस है । जिनकी बायी तथा दाहिनी ओर लक्ष्मण और सीता हैं । भक्तोंके मनको पढ़ा नष्ट करनेमे निष्ण आरामचन्द्रजीका ये मन्त्रन करता है ॥ ५-६ ॥

विनयांगक अनन्तर—सी करंठ लंबोमे विस्तारसे वर्णित भगवान् रामके चरित्रका एक एक अक्षर महान् गणोका भी नाश करता है । तालकमलकी नाई प्रशम तथा राजीवलोचन, जिनके आसपास लक्ष्मण तथा जानकाजी विराज रही हैं । जिनका मस्तक जटा बुकुटसे अलंकृत है । तन्दवार, तरकस, वनुष और बाणको लिये ज' राजसोंकी यमराज महेश भीषण दीन्व है । जो जगत्की रक्षाके निमित्त अपने इच्छानुसार जगतोत्तलपर अवतरण हुए हैं, ऐसे राजकी ध्यान करके सब कामनाओंकी पूर्ण करने तथा पापोंका नाश करवाने रामरक्षामन्त्रका पठ करे । रामचन्द्र रामचन्द्रजीका नाम मेर स्मरकी रक्षा करे ॥ ७-१० ॥

दशरथमजे ललाटकी रक्षा करे । कीमन्वेद मन्त्रकी, विश्वामित्रप्रिय कानोंकी, मत्प्रशता नाककी और सीमित्रवन्मल मुखकी रक्षा करे ॥ ११ ॥ विद्यानिधि जिह्वाकी, भरतवदित कंठकी, दिव्यायुध दोनों कन्धोंकी, भगवत्कार्मुक भुजाओंकी, सौतापति हाथोंकी जामदग्न्यजित् हृदयकी, रघुवर पार्श्वभागकी, इक्ष्वाकुन्दन पेटकी, खड्गधर्मी शरीरके मध्यमागकी, जांबवदाश्रय नाभिकी, सुग्रीवेश कमरकी, हनुमत्प्रभु हृदयकी, गधूनम दोनों पुच्छकी रक्ष कुल्यांतक गुदाकी और दशमुखांतक मेरी जाँधोंकी रक्षा करे ॥ १२-१५ ॥

विभीषणकी राम बनवासे रीतिका और राम सार गदरेका रक्षा करे । जो मनुष्य रामके वन्तसे परितुष्ट हत रामरक्षामन्त्रका पाठ करता है वह चिरायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी और विनयी होता है ॥ १६ ॥ पाताल-चागे, भूमिचारा, व्योमचारी और छमचारा कोई भी भूत श्रेतादि बाधा रामरक्षा-मन्त्रसे अभिषेचित बनपर दृष्टका नहीं कर सकते । जो मनुष्य राम, रामभद्र अथवा रामचन्द्र इस नामका स्मरण करता है, वह पापसे

अगजैर्ब्रह्मवैष्णवैः रामनाम्नाभिभक्षितम् । यः कठे धारयेत्तस्य करम्याः सर्वमिदम् ॥१९॥  
 अथपञ्चजानमेदं यो रामकवचं पठेत् । अघ्नाहनातः सर्वत्र लभते अयममलम् ॥२०॥  
 आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामःश्यामिमां हरः । तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधर्काशिकः ॥२१॥  
 रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली । ककुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौमल्यानन्दवर्धनः ॥२२॥  
 वेदानवेष्टो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः । जानकीवल्लभः श्रीमान्प्रमेयपराक्रमः ॥२३॥  
 हृष्येतानि जपेयित्वं मद्भक्तः भद्रं नृणां नृपः । अथमेधायुतं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः ॥२४॥  
 सन्नदः कवची मङ्गो चापराणधरो युवा । गच्छन् मनोरथोऽस्माकं रामः पातु मनहस्रणः ॥२५॥  
 सहस्रौ रूपमपन्नौ मृकुमारौ महाबली । पुण्डरीकविशालाक्षौ चरिष्यन्ताजिनां वरौ ॥२६॥  
 कमललाशनी रातो सायसी ब्रह्मचार्णिणौ । पुत्री दशरथस्येता आतर्गं रामलक्ष्मणौ ॥२७॥  
 धन्विनी वदनिहिंशी काकपक्षधरी श्रुतीः । वीरो मां पथि रभेता तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥  
 सूर्ययौ सर्वमन्त्रानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् । रघुःकुलनिहतारौ शयेतां नो रघूत्तमौ ॥२९॥  
 आत्तमज्जधनुवात्रिपुष्पशानधयाद्युगानिपगमगिर्ना ।

रघुणाय नमः रामलक्ष्मणाव्ययतः पथि मद्वद गच्छताम् ॥३०॥

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सुकलापदाम् । अमिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्म नः प्रभुः ॥३१॥  
 रामाय रामभद्राय रामचद्राय वैभवे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥३२॥  
 श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम श्रीराम राम राम भगवान्ज राम राम ।

श्रीराम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं मर राम राम ॥३३॥

लोकाभिरामं रणरंघधीरं राजीवनेत्रं रघुवज्जनाथम् । कारुण्यरूपं करुणाकरं त श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥  
 दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य रामे च वनकान्तमजा । पुण्डरी माहतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥३५॥

विष्णु होकर मुक्ति और ब्रुति का भागी होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ सम्मत् जगन्को जीतवाने इस रामरक्षा-  
 मन्त्रको जो बगुन्य कष्टम्य कर नेता है तो संसारकी सारी सिद्धियाँ उसके हाथमें पा जाती हैं ॥ १९ ॥  
 जो प्राणी इस वज्रपंजर रामकवचका पाठ करता है, उसकी आज्ञा कहीं भी नहीं टूटती और सर्वत्र उसकी  
 विजय होती है ॥ २० ॥ स्वप्नमें यह रामरक्षामन्त्र शिवजीने जैसा बतलाया था, स्वप्ने सोकर उठते ही विष्णु-  
 भित्रने उसी तरह लिख दिया ॥ २१ ॥ राम, रामर्षि शूर, लक्ष्मणानुचर, बली काकुत्स्थ, पुरुष, कौमल्या-  
 नन्दवर्धन, वदन्तवेद्य यज्ञेश, पुराणपुरुषोत्तम जानकीवल्लभ, श्रीमान् तथा अप्रमेय पराक्रम इन नामोंका श्रद्धा-  
 पूर्वक जप करनेवाला भक्त इस हजार अक्षमय यज्ञ करवा कर पाता है । इसमें कोई संशय नहीं है  
 ॥ २२-२४ ॥ सन्नदकवची, मङ्गो, चापबाणधर, युवा और लक्ष्मणके साथ जाते हुए श्रीरामचन्द्र हमारे मनो-  
 रथोंको रक्षा करें ॥ २५ ॥ नरम, रूपमपन्न, मृकुमार महाबली, कमलकी नाई बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, पीतांबरधारी,  
 कल-मल खानेवाले, उदारप्रवृत्ति मण्ड्यो, ब्रह्मचारी, धन्वी, निर्यशघारी तथा काकपक्षीको धारण किये दशरथके  
 दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण रातमें जाते समय हमारी रक्षा करें । संसारी जीवोंके माधार, चतुर्धरिषों-  
 में श्रेष्ठ, राक्षसकुलके विनाशक राम और लक्ष्मण मेरा रक्षा करें ॥ २६-२८ ॥ त्रिंकुल तैयार धनुष जिसपर  
 बाण बड़ा है, उसे लिये और अक्षय बाणवाले तूर्णरको कहे रामलक्ष्मण रक्षा रास्तेमें हमारे अग-आगे चलें  
 ॥ २९ ॥ जो कलावृक्षके आश्रम ( वनीका ) सम्मत् विपत्तियोंके निगम ( समाप्ति ) और हीनों लोकोंमें  
 श्रीराम ( सुन्दर ) है, वे श्रीमान् रामचन्द्रजी हमारे प्रभु हैं ॥ ३१ ॥ राम, रामभद्र, सर्वत्रेश, रामचन्द्र, रघुनाथ,  
 तथा सीताके पति रामचन्द्रजीकी मैं प्रणाम करना हूँ ॥ ३२ ॥ हे श्रीराम, हे रघुनन्दन राम, हे भरताम्रज  
 राम, हे रणकर्कश श्रीराम, हे राम, हमको करण दीनार ॥ ३३ ॥ संसार भरमें अतिशय सुन्दर, संप्रामर्शे निगुन,  
 कमल तरीके नेत्रोंवाले, रघुवज्रक स्वामी कहनाकी मूर्ति और दयाके चण्डार श्रीरामचन्द्रकी मैं शरणमें हूँ ॥ ३४ ॥  
 जिनकी राहिली और लक्ष्मण, बाई और सीता और सामने हनुमानजी उपस्थित हैं, ऐसे रघुनन्दन रामकी मैं

गोष्पदीकृतवारीशं वधकाकृतगजमधु वामायणमहामलारन्नं वदेऽनिलत्मजम् ॥३६॥  
अशेष तिष्ठ दूरे त्वं रोगास्तिष्ठतु दूतनः । शरीरार्थं मदाऽस्माकं हृद् रामो धनुर्धरः ॥३७॥  
मनोजवं मारुततुल्यवेगं त्रिनेत्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।

वानात्मकं वानस्पृश्यमुखं भोगमर्तुं क्षणं प्रपद्ये ॥३८॥

राम राम तव पादपङ्कजं धिक्प्रियमि मय्यवन्धमुक्तये ।

वन्दितं सुगन्धेद्रुमालिनिष्करोयितं वनमि योगिमिः मदा ॥३९॥

रामं लक्ष्मणपूर्वजं शृंगरं मीनारतिं सुन्दरं काकुत्स्थं कलुषार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।  
रामेन्द्रं सत्यमन्त्रं दशमन्त्रनयं उग्रामन्त्रं शान्तिप्रदं चन्द्रे लोकाभिगमं शृङ्खलनिनन्दं गणपं रावणारिम् ।  
एतानि रामनामानि प्रातुर्नृणां यः पठेत् । अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥४०॥

माता रामो मन्विता रामचन्द्रः स्वामी रामो मन्मथा रामचन्द्रः ।

सर्वम् मे रामचन्द्रो दद्यात्तु नान्यं जने नैव जान न जाने ॥४१॥

भीरवनामासृजमन्त्रार्थं जस्रं जारनी चेन्मनसि प्रविष्टा ।

हालाहलं वा प्रउपान्तं वा मृन्पोषुषं वा विष्टतां प्रविष्टा ॥४२॥

भीमन्दारं जयशन्दमभ्यं जयदयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःशतकुन्वी शृङ्गायनाय जयशिरःपादुद्विजकोटिहन्त्रा ॥४३॥

एव गिरीन्द्रं प्रोक्ता रामश्चा मया तव । मयोददिष्टा या स्वार्थैर्विशामित्राय वै पुरा ॥४४॥

श्रीरामदास उवाच

इति शिवेनोपदिष्टा भूषा देवी गिरीन्द्रजा । रामश्चो पठित्वा सा स्कन्दं समभिमतयत् ॥४५॥

बन्धना करता है ॥ ३५ ॥ जिह्वा स मुद्रका गीके खुरमर जलवाला बनाया, राख्मोंका मच्छड़ोके समान मछ किया और जो रामायणका महापात्राक मुख र नर्त, ऐसे वनकुमार हनुमाइजोंका मे प्रणाम करता है ॥ ३६॥ हे पाणोंके समूह ! तुम हमसे दूर रहो और ह योग्य । तुम हमारे पाससे भाव जाओ क्योंकि हमारे हृदयमें धनुर्धारी रामचन्द्रजी बैठे हुए हैं ॥ ३७ ॥ मनके सरल जिनकी गति है, वायुके सरल जिनका वेग है, जिन्होंने दृष्टियोंको बणाये कर दिया है जो बुद्धिमानोंमें भ्रम है ऐसे वायुके पुत्र, रानरी सेनाके सेनापति और धा, रामचन्द्रजीके दूत हनुमानकी मे शरण में ॥ ३८ ॥ हे राम ! हे राम ! साक्षात्क बन्धनोंसे मुक्त होवक लिए सुरनर इन्द्रादि तकके मस्तक में पूजन आयेके चरणोंका मे नम्रा प्रणाम करता है । क्योंकि योगी लोग भी सब सर्वथा उन चरणोंके बिछरम छान रहते हैं ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणके ज्येष्ठ भ्राता, शृंगरमें भ्रष्ट, लोकाके पति, परमस्त्ववान्, कनुस्त्वके वगज, कलुष के वाग्विद, गुण के निधि, बाहुणोंके प्रिय, धर्मके उत्तम, राजाकाके राजा, सत्यप्रतिमं दशरथके पुत्र, ध्यामकप, शान्तिके मन्त्रिष्वम्य, संहारक आवन्ददाता, शृङ्गणके तिलक-स्वरूप, शृङ्गणके एवं रावणके शत्रु रामचन्द्रजीको मे प्रणाम करता है ॥ ४० ॥ जो प्राणी सबेरे उठकर इन नामोंका पाठ करता है, वह यदि अपुत्र हो तो उस पुत्र मिलता है और वनकी इच्छा रखनेवाला हो तो वन मिलता है ॥ ४१ ॥ राम ही मेरे पिता है, राम ही माता है, वे ही मेरे स्वामी और मन्त्रा हैं । दयालु श्रीराम-चन्द्रजी ही मेरे सर्वस्व हैं । उन्हें छोड़कर मे और किसीको नहीं जानता—किसीका नहीं जानता ॥ ४२ ॥ जिसके हृदयमें रामनामासृजमन्त्र ज्यों संजीवनो विद्यमान रहता है, वह हालाहल, प्रलानल अथवा मृत्युके मुखमें भी श्मो न कूद जाय, उसको कहीं भी भय नहीं है ॥ ४३ ॥ पहले कामन्द, बादमें रामनाम फिर जय सन्द, फिर रामनाम, फिर ही बार जयसन्द जोड़कर ( जयन्ति भाराम जय राम जय जय राम ) इत्नीत बार जय कलेवाला प्राणी कलेकी कल्पद्रुमाओ जैसे महात् पातकोंको भी नष्ट कर देता है ॥ ४४ ॥ हे पावर्त ! मेरे दुम्हे वह रामरसामन्त्र बतलाया है, जिसे एक बार स्वप्नमें मैंने मद्रुधि विश्वामित्रको बतलाया था । श्रीराम-दासने कहा—इस प्रकार शिवजीके बतलाये ॥ ५ ॥ रामरसामन्त्रको गुत्कर पावर्तोंजोने स्वर्गमार्गके भयम उन्हीं

सम्यास्तेजोवलेनैव जघान तारकासुरम् । यडाननः खणादेव कुतकुन्योऽमवन्पुरा ॥४७॥  
 सैवेयं रामरक्षा ते मयाऽऽख्याताऽतिपुण्यदा । यस्याः भ्रवणमात्रेण कस्यापि न भयं भवेत् ॥४८॥  
 वाल्मीकिनाऽनया पूर्वं कुशाय ह्यभिषेचनम् । कृतं बालप्रहारां च शान्तिपथं मा मयोदिता ॥४९॥  
 बालानां ग्रहशान्त्यर्थं जपनीया निरन्तरम् । रामरक्षा महाभेष्टा महाधौघनिवारिणी ॥५०॥  
 नास्याः परतरं स्तोत्र नास्याः परतरो जपः । नास्याः परतरं किञ्चिन्मन्यं मन्य वदाम्यहम् ॥५१॥

इति श्रीमत्कौटिल्यामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे

रामरक्षाकथनं नाम पंचमः सर्गः ॥



## षष्ठः सर्गः

( लवका अयोध्यासे कमलपुष्प लाकर माता सीताको देना )

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकी प्राह वाल्मीकिं मुनिर्पुंगवम् । कथयस्व ब्रत येन रामयोगो भवेन्मम ॥ १ ॥  
 तत्सीतायचन भुज्वा वाल्मीकिस्तां नचोऽजकीद् । प्रतिपदिनमारभ्य यावन्मा नवमी मिता ॥ २ ॥  
 तावत्परदिनं माने ब्रतं कुरु मयोच्यते । प्रतिपदि रामचन्द्रपादुके घातुनिमित्ते ॥ ३ ॥  
 कृत्वाऽर्च्यं नवकमलैर्दंदि मंत्राञ्जलिं शुभाम् । ततः पुत्राननाभ्यां त्वं जन्मकाण्डं शुभं शृणु ॥ ४ ॥  
 अष्टादशकमलैश्च द्वितीयायां शुभाञ्जलिम् । मंत्रैर्दंदि पूजनान्ते पतिपादुकेभ्योर्मुदा ॥ ५ ॥  
 पतिं विना ह्यिया नान्यत्पूजनीयं हि देवतम् । जन्मकाण्डं द्विवारं तु शृणु भक्त्या शुचिव्रते ॥ ६ ॥  
 एवं वृद्धिर्नवाब्जैश्च कार्या माते दिने दिने । नवम्पामेकाशीत्यब्जैः पूज्यस्व भर्तृपादुके ॥ ७ ॥  
 नववारं जन्मकाण्डं पुत्राभ्याभ्यां सुखं शृणु । ततो दशम्यां सुस्नानैर्कार्पातिं द्विजदंपर्षन् ॥ ८ ॥  
 संपूज्य वस्त्राभरणैर्भक्तियस्वाग्र धैर्यालि । दत्त्वा तेभ्यो दक्षिणास्त्वं विसर्जय प्रणम्य तान् ॥ ९ ॥

मंत्रोंमें अभिमन्त्रण किया ॥ ४५-४६ ॥ उसी मन्त्रके तज और बलसे यडाननने तारकासुर जैसे महान् रात्रुको मारकर अपनी काम पूरा कर लिया था ॥ ४७ ॥ वही रामरक्षणमंत्र मैने तुम्हें बतलाया है । जिसके एक बार अवण कर लेनेसे संसारमें किसीका मर नहीं रह जाता ॥ ४८ ॥ इसी रामरक्षा मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिषेक किया था । वाल्मीकीका दुःख दूर करनेके लिए इसे मैने तुम्हें बतलाया है ॥ ४९ ॥ वाल्मीकीका यह शास्त्र करनेके लिए सदा इसका जप करना चाहिये । यह महान् मंत्र है । यह बड़े बड़े पापोंके समूहको नष्ट कर देता है । इससे बढ़कर कोई स्तोत्र है ही नहीं । मैं तुमसे सच सच कहता हूँ कि इससे श्रेष्ठ और कोई मंत्र नहीं है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीमत्कौटिल्यामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमः रामनजपाब्देव-विदधित्प्योस्ताभापाटीकासम्बन्धिते जन्मकाण्डे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा - एक दिन सोनाजी मुनियोंने श्रेष्ठ वाल्मीकिसे कहने लगीं कि हमें कोई ऐसा ब्रत बतलाइए, जिससे मैं फिर अपने पतिदेव ( राम ) को प्राप्ति कर लूँ । १ । सीताकी उस प्रार्थनाको सुनकर वाल्मीकिने कहा कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी पर्यन्त अर्थात् नौ दिनका मैं जो ब्रत बतला रहा हूँ, उसे करो । प्रतिपदाकी घातुसे बनी रामकी चरणपादुकाका पूजन करके नौ कमलके फूलोंसे मंत्राञ्जलि दो । इसके अनन्तर अपने पुत्रोंके मुखमें आनन्दरामायणके जन्मकाण्डकी कथा सुनो । २-४ ॥ फिर द्वितीयाकी पादुकाकी पूजा करके अठारह कमलोंकी पुष्पाञ्जलि दो । स्त्रीके लिए पतिके अतिरिक्त दूसरा कोई पूज्य देवता नहीं है । बादमें द्वितीयाकी दो बार जन्मकाण्डकी कथा सुनो ॥ ५ । ६ । इस तरह प्रतिदिन कमलके फूलोंकी संख्या बढ़ाती हुई नवमीको ८१ फूलोंसे पतिकी चरणपादुकाको मंत्राञ्जलि दो और कथाकी भी संख्या बढ़ाती हुई दशमीको अपने पुत्रोंके मुखमें नौ बार जन्मकाण्डकी कथा सुनो । दशमीको स्नानादि नित्यकर्म करनेके



अनेन प्रसूतयेन जन्मकाण्डश्चादपि । अविगन्पनिना योगं प्राप्स्यसि त्वं विदेहजे ॥१०॥  
 संयोगीकरणं नाम व्रतं चेदं सुगुण्यदम् । ये कुर्वन्त्यत्र मनुजाः स्त्रीमैवोर्मं लभन्ति ते ॥११॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह तं पुनः । बह्व्यञ्जानि साकेने पुण्यागमजलाशये ॥१२॥  
 सन्ति कल्पत्रयं वन्तुं समर्थस्मिन्निह वनेते । रामाक्षया गमर्तुः क्रियते रक्षणं सदा ॥१३॥  
 उन्मीतापचनं श्रुत्वा तत्पुत्रः संस्थितो लवः । अन्नजीन्मातरं माक्य पञ्चदशवयःस्थितः ॥१४॥  
 अम्बाराक्षस व्रतभ्याद्य त्वं कुरुष्वानिवादिह । अन्नान्यहं प्रदास्यामि समानीय निरन्तरे ॥१५॥  
 तल्लवस्य वचः श्रुत्वा विहस्याल्लिख्य बालकम् । चतुर्भ्यः तन्मुत्तं सीता लव वचनमब्रवीत् ॥१६॥  
 पद्मजानि कथं वन्तः त्वं समानीय दास्यसि । त्रमस्यार्तं रामर्तुः क्रियते रक्षणं सदा ॥१७॥  
 तन्मातृवचनं श्रुत्वा लवः प्राहाथ मातरम् । अम्ब न्वन्त्यन्यपानेन बालमीकेः शम्भुविद्यया ॥१८॥  
 तथाशीर्षिर्मुनेश्चापि रामस्यापि भयं न मे । पश्याम्य पराक्ष भेदश्च मामनुज्ञानुमर्हसि ॥१९॥  
 इत्युक्त्वा मातरं कृत्वा बालमीकिं परिपश्य च । शशीभिरीडितस्ताम्यया वृत्तग्रीवाकर्मुकः ॥२०॥  
 वस्त्रालंकारसयुक्तस्त्वैकाकी गन्धमादिभूतः । यया लवस्त्रयोध्याया श्रीविहीना जवेन सा ॥२१॥  
 क्रीडोपरि स्थं स्थाप्य पद्मजामागममायया । नावन्मन्त्राद्भयमये गता आगमरक्षकाः ॥२२॥  
 भोजनार्थं स्वगेहानि लयोऽञ्जानि तदाऽहरम् । पुनः स्वस्यदने स्थित्वा गन्वाऽऽश्रमपद मुनेः ॥२३॥  
 नन्वा मुनिं मातरं स्वीं पकजान्यर्पयन्मुह्यत । मुदिता जानकी चापि वनागम्यमथाकरोत् ॥२४॥  
 एवं सप्तदिनान्यञ्जान्यानिशमाय बालकः । न त्रिदशमर्तुनाम्ने नोपनेऽञ्जानं चैन हि ॥२५॥  
 अथाष्टमीदिनेऽपोध्या पृथक्त्व लवो यया । आगमस्य बहिः स्थाप्य स्थं पद्मजा यथा लवः ॥२६॥

पश्चात् ६१ द्विजदम्पतीकी वस्त्राभूषण आदिन दूजा करके उन्हें भोजन कराओ और दक्षिणा देकर विदा करो । उस व्रतराजक करन तथा जन्मकाण्डकी कथा सुनने से जोश हो तुम्हारे प्रति तुम्हें निश्च जायेंगे ॥७-१०॥ इस व्रतका नाम ही संयोगीकरण व्रत है । जो रात्रि व्रत पूर्ण करने करता है उसे अपने भ्रियजनकी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥ जान्मीकि मुनिकी आज्ञा सुनकर सत्तान बड़ा कि अन्नान्यहं प्रदास्यामि व्रतचवाल पर दस बहुत कमल होता है, बड़ी ही इतन फूल मिल सकत कि जिनके से अपना व्रत पूर्ण कर सकूँ । लेकिन कहते उन्हें लायेगा कौन ? रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वही बहुत रक्षक उन पश्याम्य रक्षकाकी करत है ॥ १२ ॥ १३ ॥ स ताकी बात सुनकर पास आउ लवने, जिनकी अवस्था पाँच बरकी हो चुका थी, मातासे कहाना ॥ १४ ॥ बी । तुम आजमे आना व्रत प्रारम्भ कर दो, मैं निश्च करारक फूल लाकर तुम्हें दूँगा ॥ १५ ॥ लवकी बीरतापूर्ण राणी सुनकर मन्ता हैतो और छतीसे लगकर उसका मुख नयनी हुई कहने लगी— ॥ १६ ॥ बेटे तुम फूल कैसे लाओगे ? वही रामके असम्य सिपाही उनकी रक्षा करत है ॥ १७ ॥ सीताकी आज्ञा सुनकर लवने कहा—माता ! तुम्हारे पवित्र स्तनोके दुग्ध, महर्षि बाल्मीकिकी सिखायी हुई ताम्रविद्या और उनके आशीर्वादके प्रभावसे मैं रामसे भी नहीं डरता । आप मुझे आज्ञा दी और मेरा पुरस्कार देखे ॥ १८ ॥ १९ ॥ इतना कहकर लवने माता तथा बाल्मीकिकी प्रणाम किया । फिर उनका आगावाँद लेकर अश्रु-क्षण सहित एक रथपर जा बंटे और उस जगन्नाथकी ओर बढ़, जो बहुत शिरोसे नानिहान हो चुकी थी ॥ २० ॥ २१ ॥ बनीनके एक कोस आगे ही लवने अपना रथ रोक दिया और पैरुल ही बराचम जा पहुँच । दोपहरका समय था । बनीनके रक्षक भोजन करनेक लिए अपने-अपने घर जा चुके थे । इसलए लवका फूल लेनेमें कोई बाधा नहीं हुई फूल लेकर लवने अपने रथपर रखा और आश्रमकी ओर चल दिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ वही पहुँचकर खबरे माता और बाल्मीकिकी प्रणाम करके फूलकी सामने रखा । जानकीने भी इसव्रतके साथ व्रत प्रारम्भ किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार सात दिन तक लव बराबर फूल ले गये, लेकिन रामके दूताको कुछ भी पता नहीं लगा । आठवीं दिन अष्टमी तिथिकी रोमकी तरह लव फिर वही गये । रामकी बाहर राका और सरोवरदय पहुँचकर निर्भीक भावसे फूल लाकर लवने लगे । संयोगवश उस दिन सिपाही लोग भोजन करके बगीचेमें पहुँच

गन्वाऽऽरामस्य काशर गृहीत्वाऽञ्जानि निर्मयः। शनैर्यावद्वय प्राप गावदारामपाऽऽययुः ॥२७॥  
 ते न दृष्टुं त्व साध्यं पप्रच्छुर्विष्मयान्विताः। न त्व दृष्टः कदाऽस्माभिः श्रीगमानुचरेषु हि ॥२८॥  
 कदारम्य रामसेवा त्वया चार्क्षीकृता रद। यदस्त्वं निर्मयोऽञ्जानि गृहीत्वा गच्छामि प्रभुम् ॥२९॥  
 राघदूतवचः श्रुत्वा विहस्याह लवोऽपि सः। वाग्मीवपनुबग्धारं न रामदर्शनं वय ॥३०॥  
 दासोऽहं मुनिराजस्य वाग्मीकेः शुद्धचेतसः। तदाज्ञया वै नीयन्ते कमलानि मया मुदा ॥३१॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा वाग्मीकीय लवं तदा। ज्ञात्वा दूताः पार्श्वीय क्रोधाद्जनमश्रुवन् ॥३२॥  
 तमस्त्वया न दृष्टोऽय न नः पृष्टस्त्वया पुनः। ताञ्जापिर्वाऽपि रामेन नीयतेऽञ्जानि प्रत्यहम् ॥३३॥  
 न हातमेतदस्माभिस्त्रिदानीं निष्ठु मा व्रज। अषराष्यसि रामस्य त्वां नेष्यामी रय प्रभुम् ॥३४॥  
 इत्युक्त्वा तस्य पन्थानं कुरु रामसेवकाः। चतुर्दश शस्त्रहस्ता सशका रामगो वदा ॥३५॥  
 तान्दृष्ट्वा ह्यनन्दनश्च त लवोऽप्याह विहस्य च। दूयं गच्छतु भागवतं मनुष्यं मन्मादरात् ॥३६॥  
 यद्यस्ति पौंड्रं रामे कर्तुं याष्यति मां प्रति। तत्तस्य वचनं श्रुत्वा क्रोधाद्दूता वचोऽश्रुवन् ॥३७॥  
 कथं वत्स मर्त्यकावस्त्वमित्थं वल्गसे मुधा। वदन्ता त्वां वयमंवाद्य विनेष्यामी रयूचमम् ॥३८॥  
 इत्युक्त्वा ते लवं धर्तुं यदुस्तस्य रथातिकम्। तान्दृष्ट्वा निकटं प्राप्तान् रामदूतान्सर्वोऽपि सः ॥३९॥  
 दमस्कृत्य महत्वाय श्रगन्मवाय वेगनः। अब्रशत्तान्पुनर्वाक्यं माऽऽगन्तव्यं समान्तिवम् ॥४०॥  
 मार्गवैरथुना पुष्पान् रयजापि राघवान्तिके। इत्युक्त्वा तान्पुनर्दृष्ट्वाऽऽन्त्यानं धर्तुं समुपगतान् ॥४१॥  
 रागाग्रं माधिवद्भार्गवीलयाऽन्वरमण्डपे। चतुर्दश रामदूता लवमार्गगतार्चिताः ॥४२॥  
 विप्रेर्मुर्च्छन्ताः सर्वे रामाग्रे जाह्नवीतटे। शतशो रामदूतास्ते दृष्ट्वा चक्रुः पलायनम् ॥४३॥  
 लवोऽपि विजयी शीघ्रं पूर्ववत्साधनं यथा। समर्पाऽञ्जानि मीतार्थं सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥४४॥

मये ये ॥ २५-२७ ॥ लवको फुट लिय देखकर विष्मयपूर्वक से बोले—इसने तुम कमा रामचन्द्रजीके सेवकोंमें बहुत देखा है ॥ २८ ॥ तुमने कब नौकरी की है ? जो इस तरह निर्धन होकर कमलके फूल ले जा रहे हो ॥ २९ ॥ उन दूतकी बात मनकर हमने दृष्ट्वा लवने कहा—मेने जो अभी तक रामको देखा भी नहीं है ॥ ३० ॥ रामका नहीं मैं मूर्ख विचारमयिका मजक है । उन्हीके आज्ञानुसार मैं यहासे फूट ले जाता हूँ । किन्तु तुमने आज ही हमको देखा है । इसके पहले कभी नहीं देख पाया ॥ ३१ ॥ इस तरह अपनेको वाग्मीकिका सेवक बतलानेपर हमको समझमें आया कि यह कोई वजतकी मनुष्य है । यह जानत हो के मारे क्रोधके लयतमा लठे । उन्होंने कहा—॥ ३२ ॥ तुमने न रामकी आज्ञा ली, न हम लोगोंसे पूछा और रोज फूल ले जाते हो ॥ ३३ ॥ यह बात हमको मान्य नही थी । लग्न, सब ठहरो । तुम रामचन्द्रजीके अग्रगणी हो । अतएव हम तुम्हें उनके पास ले चलेंगे ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर उन लोगोंने लवका चाला रोक लिया । जब एक मी चौडह मशम्र मंजिकेने लवको घर लिया । तब लवने रघुवर बंटे ही बंटे उनकी ओर देख तथा हँसकर कहा तुम लोग रामके वश जाकर हमारा नृनान्त कहो ॥ ३५ ॥ यदि राममे कुछ सामर्थ्य होगी तो वे स्वयं मेरे सामने आवेंगे एक पौष वर्षके वचनकी ऐसी बातें मुनकर दूतोंने जोवपूर्वक कहा—॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे वचने ! तुम क्यों मरना चाहत हो, जो ऐसी बड़बड़का बर्न करत हो ? तुम्हो बांधकर हमों लोग उनके पास अभी लिये चलते है ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर लवको पकड़नेके लिए कई दून आन बड़े । उनकी निकट देखकर लवने तुरन्त अपने अनुषका टकोर करके उसपर एक बाण चलाया और उनसे कहा—भावधान ! मेरे पास न आना ॥ ३९ ॥ ४० ॥ नहीं मानगे तो मैं इसी घटुष और बाणसे तुम लोगोंको उठाकर रामके पास फक दूंगा । ऐसा कहकर लवने देखा कि वे लोग फिर भी उन्हें पकड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ ऐसी यस्यामें लवने बाणोंसे दूतोंको लड़ाकर कता और वे गङ्गाके समीप रामकी पत्तना कार्ये मूर्च्छित होकर का तिरि । इस प्रकार लवका पराक्रम देखकर रामके जो सेवकी सैनिक बहुत बचे थे, वे सब हृषद-जवद जान गये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब विजयी होकर वे अपने आश्रमकी ओर गये । वही पट्टाकर लवने कमल

चतुर्दश रामदत्ताः स्वरूपचिन्ताश्रयेण ते । सर्वे वृक्षं राघवाय कथयामासुगदरात् ॥४५॥  
 उच्छ्रित्वा तत्रचन्द्रोऽपि विस्मयाविष्टमानसः । सहस्रदूतानागमन्मन्त्रिणाय यचोदयत् ॥४६॥  
 लोकोऽप्यथ नश्यत् स साकेतं पूर्ववत्तथैव । मह्यं रामदत्तास्ते तत्र योद्धुं समुद्यताः ॥४७॥  
 लवस्तानाह युष्माकं स्वामिना राघवेण हि । यदा नीता वने त्यक्त्वा जयश्रीम् गता तदा ॥४८॥  
 युष्माकं राघवस्यापि एच्छर्षं राघवं पुनः । युष्माभिर्वा मया युद्धं कर्तव्यं मरणोन्मुखैः ॥४९॥  
 सीतारयागे तु युष्माकं स्वामिनः पौरुषं न वाम् । इति ते लवदाम्बार्थमिन्त्यममंस्यलाभदा ॥५०॥  
 दूताः श्रुत्वाणि सुमुगुर्लघोपरि महस्वनैः । लोकोऽपि व्यापमकृष्टं रामदूतान्स्वमार्गजैः ॥५१॥  
 प्राक्षिपन्पूर्वद्वारं तच्छ्रुत्वापि निश्वस्य च । आश्रमो यदा दत्ताश्रकः सर्वं पलायनम् ॥५२॥  
 ययौ लवः स चित्रवीर्यं स्वयम्कमलान्वितः । आश्रमं जातरं नन्वा सर्वं वृक्षं न्यवेदयत् ॥५३॥  
 पुत्रस्य पौरुषं भ्रुत्वा लोकोऽजानकी तदा । वृक्षं निवेदयामासु रामदत्ता मधूचमम् ॥५४॥  
 मूर्च्छां लवशरैः प्रक्ष्पा मित्स्वदेहा मन्त्राग्नेये । राम राम महाबाहो मृण्मन्पूर्वमादरात् ॥५५॥  
 पञ्चवर्षपञ्चालेन वयस्य पराजिताः । राज्ञीकेर्नृपविद्यः स न ज्ञेयो लक्ष्मणादिभिः ॥५६॥  
 तद्वदे मंत्रयस्त्राय त्वमुपायं रघूत्तम । सीतान्यागादिवचनैर्नस्त्वपि च बालकः ॥५७॥  
 चकार निन्दा श्रीराम सन्मीस्त्रैक एव यः । लोकोऽपि वचनैर्वृत्तं कृन्तनमालम्ब्य राघवः ॥५८॥  
 ममस्य सचिर्वदन् बाल्मीकि प्रेषयज्ञवान् । नन्वा मुनि रामदूतो राघवाक्यं न्यवेदयत् ॥५९॥  
 एते सिन्धो महावीरः लोप्यशप्यन्ति नैव मम । तं प्रेषयायवा तेन त्वमागच्छस्व मन्मथम् ॥६०॥

सीताको दिया और उस दिनका सारा हाल कह सुनाय ॥४५॥ जो दूत रामको राजास्थानमें गिरे के, वे बहुत  
 देर तक मूर्छित पड़े रहे । जब जेतना भागी, सब सादा उन्होंने रामको लम्का सब समाचार सुनाया ॥४६॥  
 जो मुनकर रामचन्द्रजीको से, बड़ा आश्चर्य हुआ : उन्होंने किससे एक हजार दूतोंको बगीचेकी रसवालीके  
 लिए निम्न कर दिया ॥ ४९ ॥ दूसरे दिन अर्थात् नवमीको जब फिर पून लेनेके लिए बगीचेमें जा पहुँचे ।  
 लवने दूतोंको देखकर कहा कि जिस दिन तुम्हारे प्रभु रामने सीताको वनमें लेव दिया उसी दिन उनकी  
 लवभी भी निरा हो गयी ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ मूर्च्छे पाहिए कि तुम राघवके पास जाकर लड़ाई करनेसे इनकार  
 कर दो । तुम मरणोन्मुख हो । अथवा मैं मूर्छी पाहता कि तुम्हारे साथ युद्ध करूँ ॥ ४९ ॥ सीतावने  
 रामनेवाले तुम्हारे प्रभु रामके साथ सणम करना मुझे उचित नहीं प्रचता । इस प्रकार लवके बचनकी  
 बाणोंसे मंत्रिकोंके हृदय विदीर्ण हो गये ॥५०॥ तब उन्होंने लवपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी । उपर लवने भी  
 अपने बाणोंसे मंत्रिकोंके प्रहार बचाते हुए अपने बाणोंसे उनको उठा-उठाकर रामके बाण फेंकना आरम्भ  
 किया । बोलीं देरमें ही जब दूत बगीचा छोड़ छ डर भाग निकले । तब लव अपनेको विजयी मानते हुए रोजकी  
 तरह पून लेकर आश्रमको लौट गये । वही पहुँचकर लवने सीता माताको प्रणाम किया और उस दिनका  
 भी बारा हाल सुनाया ॥ ५१-५३ ॥ बैठका दुष्टार्थ मुनकर सीता परदे प्रमत्त हुई । इधर रामचन्द्रके दूतोंने  
 लवके पास जाकर सब अपनी भाषणोंकी कह सुनायी ॥ ५४ ॥ जिनको लवने अपने बाणसे उठाकर  
 रामके पास फेंका था, वे लीज बायन हुँकर बहुत देर तक मूर्छित अवस्थाम ही रहे रहे । जब होचमें जाये  
 तो कहन लगे हे राम ! हे महाबाहो । मैं जो कह रहा हूँ, उसे तनिक कान देकर सुनिए । आज हम सब  
 बाल्मीकिके एक शिष्यसे, जिनको अवस्था अभी राँव बर्यकी है, परास्त हो गये । मेरा तो गहनक विभाव  
 है कि बाणके ज्ञाता लक्ष्मण आदि भी उसे नहीं हरा सकते । ५५ ॥ ५६ ॥ हे रघुत्तम ! उसे भागनेके लिए  
 भाग कोई उपाय कोचिए । सीतात्याग बाणिकी बातें दुम्हत्कर उस एकाकी बालकने हमारी और भावकी  
 भी भरपूर निन्दा की है । उनको बातें सुनी गी मंत्रियोंसे परामर्श करके रामने तुरंत वई दूतोंको बाल्मीकिके  
 आश्रमपर भेजा । वे दूत बाल्मीकिके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके रामका मन्देश इस तरह सुनाये लगे  
 ॥ ५७-५९ ॥ रामचन्द्रने कहा है कि आजका महावीर मिथ्य सब हमारा अपराधी है । उसे या तो हमारे

विस्मृत्या पूर्वमेव त्वं नाहूतोऽसि क्षमस्व तत् । तद्दुदत्तवचनं श्रुत्वा तमीयं मुनिरब्रवीत् ॥६१॥  
 शिष्याभ्यां च । अहमेव याचयामि त्वं व्रज । तथेति शमदुतोऽपि मुनिं नत्वा ययौ मत्सम् ॥६२॥  
 जनमेव मावि ह तमादौ रामो मुनिं मत्सम् । नाहूयामास शिष्याभ्यां लौकिकीं रीतिमाश्रितः ॥६३॥  
 स्वीयव्रतसमाप्तिं साऽकरोत्सीताऽपि सादरम् ।

विष्णुदास उवाच

अशक्तश्च कथं कार्यं मनमेतद्वदस्व माम् ॥६४॥

श्रीरामदास उवाच

काचिनस्यापवा रौप्यस्याथवा ताम्रनिर्मिते । कार्ये द्वे पादुके रम्ये राषवस्य यथासुखम् ॥६५॥  
 अकारे कमलानां च पुष्पैरञ्जलिरीति । एकाशीतिदंतीनां न शक्तिः पूजने तदा ॥६६॥  
 पूजनीयानि पुष्पानि नव शक्याश्चरा सुखम् । स्वशत्रुस्था पूजनं कार्यं विमिश्रितं परित्यजेत् ॥६७॥  
 अनेकदूरगस्यापि संयोगश्च भवेद्भवान् । भाविकार्याणि वेगेन भविष्यन्ति न संशयः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये

जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

## सप्तमः सर्गः

( राम लक्ष्मण आदिका लव-कुशके साथ युद्ध )

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामोऽपि धर्मान्मा चरमे तुग्गाध्वरे । हयं शृणोच शत्रुघ्नस्तस्य पृष्ठे ययौ ब्रवान् ॥१॥  
 दक्षिणां पश्चिमामाशामुत्तरां तुग्गोशमः । अतिक्रम्य तथा प्रार्चीं यज्ञस्थानं न्यवर्तत ॥२॥  
 नृपतिभ्यः समस्तेभ्यः शत्रुघ्नो वसु कोटिशः । गृहीत्वा तेनृपैर्युक्तस्तूरगस्यानुगो ययौ ॥३॥

दूतोंके साथ भोज सीजिए अथवा आप स्वयं अपने साथ लेकर हमारे यज्ञमण्डपमें आइए ॥ ६० ॥ भूलसे मैंने आपको पहले निमन्त्रण नहीं दिया था, सो क्षमा कीजिएगा । इस प्रकार दूतोंके मुखसे रामका संदेश सुनकर महर्षि वाल्मीकिने कहा— ॥ ६१ ॥ हम अपने शिष्योंके साथ स्वयं यज्ञमण्डपमें आगेंगे, तुम लोग जाओ । रामके दूतोंने ऋषिराजके वचन सुनकर प्रणाम किया और वहाँसे प्रस्थान करके रामको यज्ञशालाको चल पड़े ॥ ६२ ॥ राम इस भावी घटनाको पहिलेसे ही जानते थे । इसीलिए लौकिक रीति निभाते हुए शिष्योंके साथ वाल्मीकिजीको पहले यज्ञमें नहीं बुलाया था । ॥ ६३ ॥ उधर सीताने भी नौ दिनवाला व्रत समाप्त कर लिया । विष्णुदासने पूछा जो लोग भाग्यवर्धन हैं, वे इस व्रतको कैसे करेंगे ? सो बताइए ॥ ६४ ॥ श्रीरामदासने उत्तर दिया— यदि सुवर्णकी पादुका न बनवा सके तो चांदीको बनवा ले, वह भी न हो सके तो लोहेकी दो चरवापादुकाई बनवाना चाहिए ॥ ६५ ॥ यदि उतने कमलक फूल न मिल सकें तो साधारणतया किसी भी फूलकी अजली दे । यदि इक्यासी द्विजदम्पतीको पूजा करनेकी सामर्थ्य न हो तो नौ द्विजदम्पतीको ही पूजन करे । उसके भी अभ्यर्थन अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करे, लेकिन उनमें कजूवीं न होने पाये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इस व्रतको करनेसे चाहे कितनी ही दूरीपर रहन्वा भी प्रियजनका मित्राद्य अवश्य हो जाता है । इसके अतिरिक्त जितने भी भविष्यके कार्य होंगे वे सब सम्पन्न हो जायेंगे । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचरामतेजपाण्डेयकृत ज्योत्स्ना भूपादौकासमन्विते जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास बोले—इस प्रकार रामचन्द्रने ९९ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर लिये, अन्तिम सीधे यज्ञके लिए भी थोड़ा अभिविक्त करके छोड़ा और गणपति उसको रक्षा करनेके लिए उसके साथ गये ॥ १ ॥ दक्षिण, पश्चिम, पूर्व और उत्तर दिशाकी प्रदक्षिणा करके थोड़ा रामचन्द्रजीके यज्ञमण्डपकी ओर लौट पड़ा ॥ २ ॥ रास्तेमें कितने ही राजाओंसे अनेक प्रकारकी भेंटें ले लेकर उन राजाओंको अपने साथ लिये शत्रुघ्न अश्वमेध

सेनया चतुरगिण्या च दशमाहस्रमंख्यया । नक्षिमन्विमाने क्रययः सर्वे राजपश्यन्त्या ॥ ४ ॥  
 शास्त्राणाः क्षत्रिया वैद्याः समाजभूः सहस्रजः । चरमाध्वरम्भव इष्टं गणेशोन्मवसागताः ॥ ५ ॥  
 राजर्षीक्रिये मंगुश्च सायनी भूमिज्ञान्मती । अनाम यज्ञवाटस्थ सर्पाय सानया सुस्तम् ॥ ६ ॥  
 मार्गे वृत्तमष्टौ दिविकाम्या हि जानकीम् न विदुः पांडिताः परे रजाश्च जपि पथेनरे ॥ ७ ॥  
 सुमेधया जनकोऽपि ययौ राधाध्वर प्रणि । क्रीडाङ्गनारे पूर्व यज्ञवाटान्मुनीश्वराः ॥ ८ ॥  
 कुल्या धर्मकुटी स्मृतां ताभ्या युक्तः प सीतया । बालम् किर्णोद्यमानः पण्डित्यां विदेहब्राम्ह ॥ ९ ॥  
 रूपसेनानिरासेषु जनकश्च सुमेधया स्वर्ग-प्रेत ययौ नृणां रामेणायी निमेषिना ॥ १० ॥  
 बाष्पार्तिहरि प तो श्राद्ध न्यम्नाल्लक्षणमण्डितौ । जटाचारः च तर्था सादापूर्वा महाधिर्यौ ॥ ११ ॥  
 यत्र तत्र च सायनी पुरे वाधिपु सवनः । रामश्च प्र अग रेता शुभप्रयदि राघवः ॥ १२ ॥  
 श्रीधन्मकांडाङ्काड नि न नेदन्त्य न गालको । यदा समेन्द्रं चाह्ला गाधनां सकल नदा ॥ १३ ॥  
 न प्राप्ति नञ्चाभ्यां प यदि ह्निचिन्दराभ्यां हि हलि ना चाग्रही ॥ १४ ॥  
 तथाक्तं अपिणा पूर्वं तत्र तत्र उपमायन ए ना तु मुश्रव क हुम्भा पू यदा हलि ततः ॥ १५ ॥  
 अपूर्वरघवच नाहिने स्थ गमभिः दुर्व्यू वाल'भ्या' राघवः ॥ १६ ॥  
 अथ कर्मान्तरे रामः सम्हाय मुनीश्वरान् । गजध्वज 'रत्न' च 'प' ०८।अथ नैममान् ॥ १७ ॥  
 पैगणिकाञ्छन्दचिदो गणकात्र चिन्मयमान् । नातादीशान् नेष्टु प म'था उद्गात् द्विजादिकान् ॥ १८ ॥  
 यज्ञशटे तु तन्पूज्य राधाया नम्रो गवतः । ते सर्वे हृष्टमनसा राजानो काश्यादयः ॥ १९ ॥  
 राम ना दासी दृष्टा विस्मिता निनिमेषकाः । अयोध्याये सर्वे पश्यन्मथानगोः ॥ २० ॥  
 इमी रामस्य सदृशी विचाद्रिवमिरीदिरी । जटिरी यदि न स्थिता न वल्कलधारिणी ॥ २१ ॥

विशेषं नाधिशच्छामो गघनस्याग्नयोस्तदा । एवं गंधदनां तेषां विस्मितानां परस्परम् ॥२२॥  
 तदाऽऽह रामदूतोऽपि लवचाणलवं स्मरन् । रामचंद्रं यतुवाटस्थितं वै मध्रमेण हि ॥२३॥  
 लवमंगुलिना वीरं दर्शयन् मुहुर्महः राम राम महाबाहो तमेन पश्य वै लवम् ॥२४॥  
 येनाम्माकं शरीरं प्रक्षिप्य तव मणिर्धौ । नीलानि कनकाञ्जनानि मुगंधानि निरंतरम् ॥२५॥  
 मीनान्यागनिमित्तेन वेन नेनापि वा मुहुः । कृता निंदा गरितेन त्वदण्डकार्थना प्रभो ॥२६॥  
 तव दण्डभयादेव परितो विलोपितः । स्थवत्रभणानि शस्त्राण्यपि विहाय च ॥२७॥  
 धूनानि वल्कलादानि दीनरूपोज्ज्वलं दृश्यते । त्वयाऽयं दण्डनीयोऽयं यधुमारानिमर्षितः ॥२८॥  
 इति स्वदूतवाक्यानि मृण्मयपि मृण्मयः । प्रेम्णाऽवलोकयामास सुधाक्षिप्यां शिशू मुहुः ॥२९॥  
 मल्लापि मभागस्थात्रममृत्तव यथाक्रमम् । राघवं स्वयितृव्यांश्च वमिष्टु प्रणिपत्य च ॥३०॥  
 उपाचक्रमतुर्गातुं वीणे गणयतः शुभे । ततः प्रवृत्तं मधुरं गांधर्वं गीतमुनमम् ॥३१॥  
 श्रुत्वा तन्मधुरं गीतं राममोहमवाप ह । ताम्यां श्रुतं स्वचरितं विलासादप्यनुक्रमात् ॥३२॥  
 ययदाचरितं पूर्वं सीतया सह मौल्यदम् । ततोऽपराधं श्रीरामः प्रसन्नवदनावुजः ॥३३॥  
 उवाच तौ समग्रं वै श्वो मेघं मम मन्त्रिणौ । तवेति रामवचनं तावंगीचक्रतुम्बदा ॥३४॥  
 तनो रामो लवं ग्राहं मे यद्यप्यपराधितम् । त्वया पूर्वं तथापि न्यां तुष्टोऽहं नात्र शिष्ये ॥३५॥  
 त्वद्गीतिमचन्त्रिणादि श्रवणादयं मे मनः । परं विश्रान्तिमापन्नं त्वत्कृतं क्षमिन् मया ॥३६॥  
 अभुता मद्भयं त्यक्त्वा न्वं सुखं विनरात्र हि । तद्रामवचनं श्रुत्वा नयो गघनमनीत् ॥३७॥  
 मयाऽपराधितं राजस्तव दर्शनकाम्पया । मदपराधिनं मृन्वाग्राहनीऽहं यनस्त्वया ॥३८॥

और वे आपसमें कहते लगे—२०। एक बिस्मसे निकले दूसरे प्रतिबिम्बका भीत में दोनों बालक विचुल  
 रामचन्द्रके समान हैं। यदि इनके परस्पर अटान रहे और बल्लव सन् दसरे दिये जायें तो इनमें तथा  
 राममें कोई अन्तर ही नहीं रहे जाता। जब सब लोग विस्मित होकर परस्पर इस प्रकार बात कर  
 रहे थे। तभी तबके बागमें बगचवाले गारकी पाटका हमरा करता हुआ रामका एक दूर घबड़ाकर  
 बोला—२१-२३॥ हे राम! हे महाबाहो! दोनए, यही लव है। जिसने अपने बाणोंसे लठकर  
 मुझ आपके पास फेंक दिया था और मृगशिव कनककमलके कलीको हटाने सोडकर मे जाया करता  
 था ॥२४॥२५॥ आपकी मोनत्परादयक बातक लेकर इसीत वदे परस्परें साथ आपकी निन्दा की की ॥२६॥  
 जाम होता है कि आपके दण्डस डरकर इसी रथ तथा वरप्रामरण त्याग दिव है और वल्कलसस  
 आदि पहन तथा दीनरूप धारण करके आया है। किन्तु मेरा यह परामर्श है कि इस अस्मिमानोंकी अवश्य  
 दण्ड दीजिए ॥२७॥२८॥ इस प्रकार इनकी बातें सुन करके भी रामाण्ड अपना अमृतमरी तौमोसे  
 उन वल्कोयो प्रेमपूर्वक रख रहे थे ॥२९॥ लठकीन तथापि पहुंचकर वहाँ बैठे हुए लोगोको प्रणाम करके  
 रामको, लक्ष्मण आदि अपने चाचरोंको तथा वमिष्ट आदि मुहजनोंको प्रणाम किया और सीता  
 वजाने हुए रामचरित्र मान लिया। उस समय मध्याम जैसे गांधर्व गायनका श्रम बरसने लगा ॥३०॥३१॥  
 राम उनका मधुर गान सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। गायनमें रामके उस चरित्रका वर्णन था, जो अन्तसे लेकर  
 विलासकाण्ड पर्यंत सीताके साथ उन्होंने किया था ॥३२॥ गान-गति दीपहृका समय ही गया। लव  
 रामचन्द्रम प्रसन्नतापूर्वक उन बन्वास कहा—अच्छा, आज समय अधिक बीत चुका। इसलिये रहने दो। कम  
 मेरे पास फिर आना और मुझ सारी गमायण सुनाना। रामकी बातको उन्होंने जट्टीकार कर लिया  
 ॥३३॥३४॥ इसके अनन्तर रामने लवसे कहा—यद्यपि तुम हमारे अपराधी हो फिर भी मैं तुमपर प्रसन्न  
 हूँ। तुम्ह कोई दण्ड देनेकी इच्छा ही नहीं होती। तुम्हारे गायनोंमें अपनी चरित्रवली सुनकर मेरा हृदय  
 मान्य हो गया है और तुमने जो क्षमा किया था, उसे क्षमा करता हूँ ॥३५॥३६॥ अब तुम मुझसे  
 दूरी नहीं निर्भय होकर जहाँ चाहो मूमो। इस प्रकार रामकी बातें सुनकर लवने उत्तर दिया—राजन्! उस समय

अथ ते दर्शनं नैव पश्यन् वृद्धिर्न गतम् । कानिर्न मदनी जना नवाद्यं गायनादपि ॥३९॥  
 इत्युक्त्वाऽऽर्च्योद्धृत्य स्नानं कृत्वा पशुमुग्रतः । मन्त्राचार्यो मृतुकामो ह्यलं श्रीय निरीक्ष्य च ॥४०॥  
 रजोऽप्युतं द्रुमु सयोर्भस्मेन प्रदाययन् । दीपमानं सुवर्णं तौ न गच्छन्तु दुर्लभा ॥४१॥  
 गच्छन् हेम्ना किमेतन् धात्री वै वन्द्योर्भोजनं । कृशारजोऽकलनेन च हि न्यमानयोः सदा ॥४२॥  
 इति सत्यं च तदथ जन्मदुर्मृतिमश्लिषिषु । आर्यान्कृत्वा स्वचक्षितं रामो ह्यतिविस्मितः ॥४३॥  
 कुशोऽपि सकलं पुनः चान्मोर्किं मानसं तथा । निरेद्य बाह्वी स्नातुं कौतुकेन ययौ सुतम् ॥४४॥  
 लघो धूनोनां शिशुभिः शिशुकांडनमाचरन् । एतस्मिन्ननरे यत्र तत्रः क्रीडां चकार ह ॥४५॥  
 बालकैस्तत्र सत्राप्तान्तरंग भ्रमकारिणः । व्यक्त्वा क्रीडां तत्रः शीघ्रमग्रे धृन्वीर्यजातिके ॥४६॥  
 पुत्रे वरेषु शिशुभिः पूर्वम् मीडनं व्यधात् । ततः सौ पुण्यकं प्राप्तं दृष्ट्वा वदं तुङ्गवम् ॥४७॥  
 शान्ता बालकान् सर्वे शकुन्ताया विदधन् ते । दूनानां क्षापयामासुर्मुन्यतां तुरगः सुतम् ॥४८॥  
 लवस्तानागतान् दृष्ट्वा शयस्यासुग वै वृणुषु । समन्त्रं नान् सुमोवाथ नीलपा शिशुमयुतः ॥४९॥  
 सप्तार्चस्तदा यानं हस्त्यध्वरुणितम् । शकुन्तेनापि र्दन्तः खेऽभूत्तदुभयगोपमम् ॥५०॥  
 तद्वृत्त्वा रामचन्द्रोऽपि प्रेषयामास मादगम् । सुग्रीवमद्भुतं नील र्भन्दं जाम्बवन्तं वलम् ॥५१॥  
 सुषेनं भरतं वायुपुत्रं तार्क्ष्यं विभीषणम् । सुपेण पार्थिवान्मर्यान् स्वस्वामिन्वलेषुतान् ॥५२॥  
 द्विविदं दधिधनं च बानगन्धकाश्वजम् । ते लव दृष्टुमर्थाद्युदं चक्रुस्त्वरान्विताः ॥५३॥  
 तानागतान् लघो दृष्ट्वा कस्यचिन्वितं भुवि । दूनाभ्यामोचनार्थमायतस्य वरासनम् ॥५४॥  
 तूणीरं च स्वयं धृत्वा ययौ रोदुं न्यगन्वितः । दण्डकृत्य महबाणं चितयामास चेतसि ॥५५॥

मेन जा अपराध बिना था, उसका उद्देश्य एकमात्र यही था कि मैं किसी प्रकार आपसे मिलूँ। आपसे भी मेरा अपराधका क्षमाग करके भी मुझे क्षमाया हो वरग दिया की ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ भाव भावक दर्शन करने ही मेरा मुख्यार्थ था वर यथा भी मैं एक साधक रामचरित नामक बरी कीर्ति भी बड़ा ॥ ३९ ॥ इसका कटकर लव पुत्र हुआ और अपने भ्रातर साथ साथमका जानकी तैयारी करने लगा। उसर रामने उन बच्चोंके लिए दस हजार स्वयंप्रदाय भस्मन दितवादी। किन्तु उन्होंने बहुत मन नहीं लिया। उन्होंने कहा—राजन् अरध्वज फल मन्वर आपसे बितानजाले हम समराक्षालाभ आपकी इस सुवर्णशक्तिको लेकर क्या करते। वस, आप अपनी कृपादीप्त हमारी रक्षा करने दीजिए ॥ ४०—४२ ॥ इस प्रकार उस दानद्वयका पारोपान करके वे दोनों बाल्या कि बालक पास बने गये। जन्माके मृत्मे भरना शक्ति सुनकर रामचन्द्रजा यह विस्मित हुए ॥ ४३ ॥ उसर कुल आश्रमपर पहुँच ला वहाँ बाल्याकि तथा साक्षात् उस दिनका वृत्तान्त सुनकर और मनन करनेके लिए बाल्याका भय गये ॥ ४४ ॥ इसर लव कुंड पुनर्जन्माके साथ संन्यस लगा। इसी बीच वहाँ ब लव भरत रहे, उमा लवका साथमेचकर घोडा चारों ओर घूमकर रामकी मन्त्रालाये जा रहा था। उसे दलत ही को कुलवध अन्तर्ने भेज लिया। लवन जागे कटकर घोडका पकड़ा और अपने कुटिराक बिनार ल जाकर एक वृक्षमे बाँध दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ लवके फिर मल्लत लगा। उमा समथ स, काश्रम पुण्यक विमानपर बैठे हुए शकुन्तेन दक्षा ला बहुत हंस। उन्होंने सोचा कि यह बाल्याने सेलवन्द किया है। शकुन्तेन इतनेम कहा जायो और पारका वहाँम छान ल म लो। इत लवके पास पहुँच। लो ही लवन एक लिनका वृक्षया और वायव्य मन्त्रम अभिमन्त्रित करके उनपर दाल दिया। उमके दालने ही बडा जोरस जोधा चलन लगी और शकुन्त तथा उनके सोनके हाथी, घोडे, रथ और आकाशमे भीरीकी तरह उड़ने लगे ॥ ४७—५० ॥ यह समाचार सुनकर रामने अपने गद्दीके मुखाभ, बङ्गव, नील, जाडवान् मल, दूमन्त्र, भरत, हनुमान्, परशु, विभीषण, सुपेण तथा देव-देवतान्तरसे शय हुए राजासोको शकुन्तकी दहायताके लिए भेजा। इनके अतिरिक्त द्विविद-दीधवन्त आदि बानर तथा मकरध्वज आदि भीर गर्वके साथ मुद्गभूमिकी ओर बौद परे ॥ ५१—५३ ॥ इसी वीर्य सेनाको साथमे देवकर लवने एक साधारण बलुपको, जो पारा छुटानेके लिए आये हुए किसी संनिकका गिर परा पा,

पितृव्याद्याः स्थिता यान् मयाऽपि पुनरुत्तमम् । रुद्धमेव च गोद्वयं मया च ममगंगणे ॥५६॥  
 कथं त्रीणिनामघं शुभतेषु प्र अयम् ॥ ५७ ॥ न च वना वरकनार मा न तदुनिगाववाः ॥५८॥  
 महिष्यति कथं दृष्ट्वा कर्तव्यं हि मय उच्यते । तदा तदात्पु नोऽह चेद्भवा गच्छामि तं मुनिम् ॥५९॥  
 बान्धवाकिशिक्षिता विद्या न ह साऽप्यहं भवन् । अत्र कथमाय यच्च विना युद्धं करोम्यहम् ॥६०॥  
 इति निश्चित्य मनसि मेवमुच्यते तदा नन् प्रमत्तने किमर्थं मा युष्माभिन्नेन वेगनः ॥६०॥  
 न सीतावन्युलभोऽहं पौटनारोहेहाय हि सीताकरोताम्हम् मा मेवं वेद्य भो खलः ॥६१॥

सीताप्योच्छ्वितोऽग्रानिन्दयन्निर्गन्धिव पीरुषम् ।

विदग्ध न स्फुट लोकान्दशतायं समर्पि च ॥ ६२ ॥

इति स्ववाक्यदर्शनेन हृदयान्तः कथं पुनः साहयामास मन्त्रान् मोदनाय तं विमुञ्च्य च ॥६३॥  
 ततो लवः स विजयां मुमन्तु नूनं तथा कुन्वा स्वकृतयोः प्राश्नं शुभया शीघ्रनदनम् । ६४  
 मुग्धाश्च च मुदा भूत्वा मानार्थं तान् प्रदर्शयन् । दृष्ट्वा सीतां विदग्धं पीरुषं मोदनाय ममोहितान् ॥६५॥  
 पुरात्तान् मोचयामास रक्षयामास तान् मूढः तावतावताधरः श्रुत्वा लक्ष्मण वाक्यमनवान् । ६६॥  
 ईदृश पीरुष वधा रावणेनापि ना कृतम् यथा कृतं बालकं कुर्याय किमत्र वै ॥६७॥  
 गदामिवन्तं श्रुत्वा लक्ष्मणः प्राद ग वध मा विदेह नवा कारं घृणाद तश्चिन्तुं शक्यम् । ६८॥  
 न्यन्मन्त्रिभारान्तर्यामि विदो मुपाशु मथा । न्यक्वा नवत्र नवा गवाः दा यथा जवान् ॥६९॥  
 सेनया सर्वैर्युक्ता प्राप्तायवमानिन्दवत् । तमागतं चक्षुषान् लवऽप तन्मृगा यथा ॥७०॥  
 न दृष्ट्वा बालकं मय कृपया लवणोऽन्नवान् । मा शिशो न्व कुम्भाय भादय मन्पुरस्त्रिद ॥७१॥

इसका हावस निजा वला तराम खीर जोन पुनरुत्तमम् । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 छान्—मरे चाचा आदि युद्ध करनक लिय सामान्य । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 चलाऊता स्वजनको कथ करमपर माना गोता मया शक्य । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 अन्तर्यामि में क्या कहें ? यदि युद्धसे मुझे मेरा नाना । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 निष्कल है आरोग्य । अन्तर्यामि नमस्कार । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 गया मिथ्या तमक मयका मर मरत पुन क मे क्या । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 आ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 सह नया । दृष्ट्वा सीतां विदग्धं पीरुषं मोदनाय ममोहितान् । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 यथ जवान्को आभन प्रात तम मया । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 एवमा इमं प्र न दृष्ट्वा नवन अपन यचनम् । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 माहनायस वरा ज्योत्स्न मारा मलाका मुदित पर हि । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 मुमन्तु और भयखा जोन कायमे । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 इमसतापूवक मानाव तम न तव और मया । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 सातीन उह लवक हा म । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 मेतिवको मादिन मया । ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 हे लक्ष्मण ! इस प्रकार का व्यवहार तो मया आ गी दिख सका जा, जैसा कि यहाँ वह ठीकरा दिखा रहा है । इस विषयम वग वन्ता बाटिय वर मे वद ओ नही संच सका है इस प्रकार रामकी बात सुनकर लक्ष्मणन नदी-आप वर जलता न कर । मे अभी आता है और क्षणमात्र मे उस वचनको बन्दा बनाकर आपक पास जाता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥  
 एक बड़ी सेना और मान्यवक साथ लक्ष्मण चला ही देखे आश्रमके पास जा पहुँचे । जब लवने सुना कि लक्ष्मण आया है तो वे स्वयं उनके सामने गये । लक्ष्मणन जब उस सुन्दर और सुकुमार किन्तु वार



न ममर्थोऽपि रं स्थानं गच्छ नोद्येन रं स्थानं ॥ ७२ ॥  
 त्वयाऽपराधिनं बलं राक्षस्य सुहृदं ॥ ७३ ॥  
 नीतान् वीरान् मरुत्पथं वं जितुं ॥ ७४ ॥  
 तस्मैमित्रैर्वचः श्रुत्वा लज्जोऽर्जुनस्तमवर्जित ॥ ७५ ॥  
 मीमांसयेत् युवयोः परीकृतं न स ॥ ७६ ॥  
 धुरीं जित्वाऽथ ममेरे मातुः ॥ ७७ ॥  
 तस्या विनिष्कृतिं चतुर्हं कुरुमत्र मम ततः ॥ ७८ ॥  
 न स्थातव्यं ममाग्रेऽत्र गच्छन् वं विधोपमा ॥ ७९ ॥  
 लक्ष्मणाया धनुर्धरं शत्रुर्धरं क्रुधा ततो नृपश्च स्वयं ॥ ८० ॥  
 धारामर्तविधादथ ॥ ८१ ॥  
 भिक्षुदेहा लोहेनाका प्रेचु गग ॥ ८२ ॥  
 उपायं चिन्तयन् ॥ ८३ ॥  
 माहाय्यं कुरु मीमित्रेयं दि ॥ ८४ ॥  
 इन्द्रोच्चैः लक्ष्मणायानि गच्छं ने ॥ ८५ ॥  
 लक्ष्मणाय लक्ष्मणायानि गच्छं ने ॥ ८६ ॥  
 ततः कोधवर्णनात्मा लक्ष्मणो वंगवपः ॥ ८७ ॥

बालकका रामन देग तो दुःख-का बह- गे—देग, व-च । अब मैं अथा हूँ । मेरे सामने किसी तरहका दुःखाने करना । तुम मेरे सामने नगे ठहर सकत । जाओ, चले जाओ, नहीं तो तुम नहीं बच सकाग । अभी हम तुम्हारे मुँस बाँधे रामचन्द्र पुनः है । इसलिए नहीं मार रहा हूँ । हे बालक ! मुझ कई बार रामका अपराध किया है । मैं सब बरत हूँ । फिर भी मैं तुमका नहीं मारूँगा । ७१-७२ ॥ यदि तुम्हें अपने बाणोंका लाभ हूँ तो तुम्हें जिते लोगका मार लिया है । उन्हें लाकर हम दंडा और पाइ-कों लाकर मेरे साथ रामचन्द्रका जणव चला । ७३-७४ ॥ इस तरह लक्ष्मणका बात सुनकर सबन कहा—बचारी सातक ऊपर अपना शत्रु ! दिखलानेले तुमका और रामका मैं अच्छा तरह जानता हूँ । सातक ऊपर तुम्हारा जो पुच्छ चला था, वह उदार नही बच सका । सातक दुःखका दूर करनेके लिए हो महर्षि पाशपावन मेरा रचना का है । ७५-७६ ॥ अब मैं तुम शत्रुका आतकर सातका दुःख दूर करूँगा । तुमने भालाभाला सातक पाव कपटक धरुवा किया है । उसका प्रत कर करनेके लिए हाँ मैं यहाँ आया हूँ । सातक दुःखका अग्निम तुम्हारेका पुच्छका जल बुझा है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ तुम लोगोंका चाहिए कि मर सामने हट जाओ । इस प्रकार लक्ष्मणका चलावा बाणोंस लक्ष्मणका हृदय विरान हा गया । ७९-८० ॥ अतः क्रुद्ध हुँकर सब एक साथ लक्ष्मणका बाणों करके लगे । लक्ष्मणका अग्निम उनका लक्ष्मणका निराकरण किया और लक्ष्मणका साथ बाण हुए मन्त्र-सन्निध अदिको अपने बाणोंस उठा उठाकर रामक यन्त्रमण्डपमें फक दिया । लक्ष्मणका बाणोंस अहत मन्त्रा अग्निम वहुम जहाँतहाँ पाव हा गया वे और उनसे धीवर बह रहा था । इस दशा में सब रामक पास जाकर नूने लगे—हे राम ! इस लक्ष्मणका पुच्छका से बँड बाण करा दख रहे है । ८१-८२ ॥ लक्ष्मणको मारनेके लिए काट हमरा उपाय सोचिये । हे राम ! लक्ष्मणका शत्रुके अन्ध-गन्धस नहीं मर रहा है । हे कपूर-सल ! यदि लक्ष्मणको बाँधत दखना चाहत हो तो उनका सहायना करिये । लक्ष्मणका बाणोंके प्रहारसे बहूँ बचाइए । इस तरह वहाँका समाचार सुनानके बाद राम दाताका बतलाया, जो लक्ष्मण रामक विपरम कहा था । उनकी बात सुनकर राम कुछ दूरतक चुप बैठ रहे । ठहर लखन दख दायास लक्ष्मणका बाणक कर दिया और वे दसों बाण लक्ष्मणक शरीरमें सिरस लेकर पृच्छतक धुम रर थ ॥ ८३-८६ ॥ ऐसे सबस्थान लक्ष्मण कापसे बाण-

दृष्टेति व्यग्रचित्तः सः क्षणं सञ्चिन्त्य च दृष्टे । मत्प्राप्तेन लब्धं वदन्वा माश्वं गच्छे न्यवेदयन् । ८८ ।  
 मत्प्राप्तं मानयस्तूर्णी ययौ गम लक्षोऽपि सः । गधवस्य समानीतं दृष्ट्वा लक्ष्मणमनघोत्तु । ८९ ॥  
 आनयति सुखं स्वीयं कौतुकं दर्शयञ्जनान् । मद्यन्नायं कुत बन्धो त्वयन् विद्रि बहुजम् । ९० ॥  
 द्विजहत्यामय स्पन्द्या धानयस्त्वनमश्च हि । गम प्रोवाच मौक्तिकिर्नाथं लक्ष्मणं स्थिति । ९१ ॥  
 भक्त्याद्यर्थया चापि नाय किं ताडितोऽस्मिभिः । अयम् देहे धनं चैकमापि किं दृश्यते त्वया । ९२ ॥  
 तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह प्रष्टव्यो बान्धवस्त्वया । केनोपायेन ते मृत्युर्भवेदिति समाश्रितः । ९३ ॥  
 गोपायन्ति निर्जं मृत्युं न शूरा बधशङ्कया । न वदन्त्यनृतं कदापि स्ववलेनैव जीविनाः । ९४ ॥  
 ततः पृष्टो लक्ष्मणेन लवः प्राहाथ लक्ष्मणम् । जलस्य सेचनमृद्धिं स्वीयां ज्ञात्वा पुनर्गता । ९५ ॥  
 कपय्यदृष्ट्या लोकान्निह दर्शयन् स्वपराक्रमम् । जलस्य सेचननाथ मृत्युर्मे निश्चितो भवतु । ९६ ॥  
 ततस्तु वचनं श्रुत्वा शिलायां तं निवेश्य च । सेवनं तोयकलशैः कारयामास लक्ष्मणः ॥

अयोध्यावासिभिर्नारायणपुरुषैः परमादरात् । ९७ ॥

चतुर्मुखं च चतुर्भुजं च चतुर्दशं च । त्रिदशं च त्रिदशं च त्रिदशं च । ९८ ॥  
 आनयित्वा अलं शीघ्रं निषेच लवबान्धवम् । यथा यथा जलं हि सेचनं चात्रिरे जनाः । ९९ ॥  
 तथा तथा लवस्तथ व्यवर्द्धनं घनो यथा । ममनालप्रमाणोऽधुदृष्ट्या भामपराक्रमम् । १०० ॥  
 ततस्तं लक्ष्मणः प्राह त्वया लव मृषेरितम् । नाप तव बधोपायः स्वदृष्टयर्थं कुतः सतु । १०१ ॥  
 लवोऽप्यादाय मौक्तिकं कौटिल्येन प्रतापयन् । यथा तैलधने दीपो प्राद्विपते प्रगच्छति । १०२ ॥  
 तथायुयः क्षये मेऽपि दृष्ट्वा वश्यं भणं निवसम् । नद्रात्रय मानयन्मन्य सेचयत्तं स लक्ष्मणः । १०३ ॥  
 अलेर्गर्गैः समानीतैः पूर्ववच्च पुनः पुनः । कपटोपायमार्गेण सेचनं चात्रिरे जनाः । १०४ ॥

बहुल हो उठ । उन्होंने कई समय लवपर चलाये, लेकिन जब - हे बन्धु ! तब ही लव को घबरा उठ । लव घर उन्हीन न जान बधा साँचा और लव बहुत मयस लवका साथ लिया और बाँका भी साथ लेकर मयाध्यामे रागक वास ल लाय ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ बह्मरायका मयाध्यामे रखनक लिए लव भी पुपपाय लक्ष्मणक साथ चल रये । जब रामन लवका दस्ता गा लक्ष्मणक बहुत । यद्यपि मे जानता हूँ कि यह मेरा ही पुत्र है । फिर भी मसारको मिट्टी दनक लिय मे ला गा दता हूँ कि । इज्जतवाक भवका दूर कारक आज ही इस माय दानो । इसन बह्म अदराय निय है । लक्ष्मणने उन्तर दिना कि यह मिथो शम्भामयस बह्म भरेण ॥ ८९-९१ ॥ हमने तथा चरतर्जने इसपर कितना हूँ ब र लम्बाएक प्रहार किय है, किन्तु दलित न । इसक गरीरमे कही कोई घाव दाखता है । ॥ ९२ ॥ रामन कहा - इससे पछा कि नू निम इकर मेर सकेगा । जो सच्च घुरधार हात है, वे अपने मृत्युके उपायका भी नहीं छिपात । सन्न बार कभी झूठ नहीं मानत ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ इस प्रकार पूछनेपर लव कुछ सोचत लग । एक बार महर्षि वाल्मीकिने लवसे कहा था कि तुझ्दारे ऊपर जितना अस डाला जायगा, तुम उतने ही बढ़ाग । इना बातका हवाल करके लवने ममारको अपना पराक्रम दिखाने-के लिए लक्ष्मणसे कहा—जलसे संचनपर मेरी मृत्यु होगा ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ सबसे बात सुनवर लक्ष्मणने लवको पास ही एक पत्थरपर बिठाया और पानक भकास नहलाने लग । अयोध्यावासि बहुतसे नरनारा बड़े मोदरके साथ लवपर जल डालने लग । बार मुँहवाले बड़-बड़ कमजक फाट बेल रये हाथा, धाड़, और औरपर लट-लटकर कराँकोका सख्यामे वहाँ आन लग और वे सब जगक ऊपर डाल दिय गये । जैसे-जैसे पानी पड़ता था, त्यो त्यो लव मेयक समान बढ़ने जात था । बहु परम बार बड़-बड़ने जब सात ताड़की ऊँचाई तक बढ़ा ॥ ९७-१०० ॥ तब लक्ष्मणने कहा - लव ! जान हाता है कि नुम झूठ बाल हो । तुमने मेरनके लिये नहीं, अपने बढ़नेका उपाय बताया था ॥ १०१ ॥ लवने भी लक्ष्मणका बह्मकाकर कहा—व पक अब बुझनेवाला होगा है तो उसकी भी कितनी बड़ जाया करता है । उसी तरह आनुके फव हानेसे मे भी बड़ रहा हूँ । अबकी बार भी लक्ष्मणने लवका बात सब मानी और उसी तरह लवक ऊपर जलक कलसे डालते रहे ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ बह्मणीसे

अस्मान्नेन विनिर्मुक्तः प्रचक्षत लयन्तः । भुजावाक्कलयाभाम् मधोरु बाललीलया ॥१०५॥  
 तं दृष्ट्वा दृढवुः सर्वे न्यक्त्वा तोयघटानपि । शकुन्मूत्र प्रमुच्यन्तो हृत्ककलया लवेक्षयाः ॥१०६॥  
 एतस्मिन्मन्त्रे कीदृशं गगायां गच्छन्तान्कुशः । पप्रच्छाद्य मृदुतीरं किमर्थं नीयते उवाच ॥१०७॥  
 जनाः प्रोचुर्नर इतुम्स्माभिर्दीयते जलम् । विस्मर्त्तन्वावाक्येन तच्छ्रुत्वा न ययौ कुशः ॥१०८॥  
 मंगुष्ठं स्वाश्रमाच्छाप तूर्णारं देगवत्तरः । लव योवपितुं चापं दण्डकृन्वाऽध्वरम्यले ॥१०९॥  
 कुशचापञ्चनि भूत्वा सन्ध्यां तूर्ण्यो लवः क्षपम् । मनो दृष्ट्वा कुशं शप्त ययौ योर्दं न लक्ष्मणः ॥११०॥  
 तं दृष्ट्वा न कुशः प्राह छलिनी जानकीलवौ । त्वया गमेण लोकेषु नयोः कर्तुं विनिर्मुक्तिम् ॥१११॥

अहं आहोर्दंश्च मां बाल लवश्च न मानय ।

युवयोः वीरुषं मायां शिशुवर्त्नीति वेदम् ॥११२॥

गन्तकदेशान्कलन्वालासदर्थं पुरयोर्वलम् । न ममाग्रं स्फुटं कार्यं युवाभ्यामुपहासकम् ॥११३॥  
 वाग्मार्कशिखिनां विद्यां गम्यन्वाग्रं दृष्ट्वे । इत्युक्त्वा तमुल्लस्य दृष्टं विद्वन्नेन चकार यः ॥११४॥  
 आगन्तुं युवा जानकीवे लक्ष्मणोन्मृष्टमार्गयाः । गमायषान्कुशो ज्ञत्वा द्वेष एवात्र लक्ष्मणः ॥११५॥  
 जानोऽर्पति यथे मय्य गच्छाच्छ मुसौष मः । सायधर्मं पुनश्चक्षुष न मद्विमान्यं दधे ॥११६॥  
 जानन्तु दृष्टं पितुर्दंष्ट्रा जाना येन मय विनि । तदूरया स्वगगनात्तमं योमिवः कुठेना मनिः ॥११७॥  
 भयभीनः पृथिव्यां हि पषाण लक्ष्मणो ग्धान् । व्यूतं दृष्ट्वा श्वयं तत्र दीक्षायाकोऽपि वेगतः ॥११८॥  
 धृत्वा चापं च तूर्णारं यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः । चाप संघातज्ज्ञानं योमिवेर्जीवेनाशया ॥११९॥

जल भर-भरकर आता जा रहा था और स ही लगाकर लवकर जलकी जाग दाला जाता था ॥ १०५ ॥ उसी समय सबके देखन हा इसन सब बह्मस्वर सृष्ट गया और भगार् गया बाल डीबल हुआ दीहने लगा । उसको देखकर वहाँके सार नर-नाग अपने अपने कमरानो छ ड-छारकर भाग गये । उसक उस बिकराम कपका देखकर बहुनोकी बालियां मुन्न गयी । कई गजका सो सारे डरके गमाय टट, तब हा गयी । १०५ ॥ १०६ ॥  
 उपर कुश बन्वाको तरह प्रसन्न-कृतता गङ्गाजाक किनारे गया । वहाँ उसन देखा कि बहुतसे लोग पानी भर रहे हैं । उनसे कुशन पूछा—कुम्हला इनका पानी क्यों भरे लिये जा रह हो ? ॥ १०७ ॥ उन्होंने कहा—  
 सबकी मारनेके लिए । यह मुनकर कुश अपने आधमपर गया और बनुष-बाण लेकर लवको छुटानेके लिए रावकी यज्ञशालाके समीप जा पड़ा और घ-घका भेड़ण डकार किया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ कुशके बनुषकी टंकार मुनकर जब कुछ देखके लिए जान लड़ा हा गया और रगमे घुट करके लिए लक्ष्मणके सामने जा पहुँच । ॥ ११० ॥ लक्ष्मणको देखकर कुशन कहा—कुशन और रामन लव तथा स ताके साथ बड़ा छल किया है । उसका बह्म सनके लिए मैं आया हूँ । मुझको लवका तरह साधारण बालक न समझना । तुम लोगोंको बोरना क्या और छान छट बन्वोपर ही चर सकती है यह मैं जानता हूँ । सीमाके बन्वकर्मी बहकना अस्मिन् तुम्हारा भल जब कुश है । अब जगता उपहास करानेके लिए मेर मामने लड़नेको अवधं अपने हैं । अच्छा, यदि तुम्हारा यज्ञ इच्छा है तो वाग्मार्किका भिषाजी सिवा मात्र मैं कुम्हं और रामका दिमाता हूँ । ऐसा बनुकर कुशने लक्ष्मणके साथ तुम्हें कुछ पण्डित कर दिया ॥ १११—११४ ॥ लक्ष्मणने मुझपर जितने बात बलाये, वे सब भय गये । लक्ष्मणकी मदिव्यवर्त्तने मुझसे जात हो चुका था कि अब लक्ष्मणके मिश्र और कोई वार बाकी क्या हा नहीं है कि, जिसके साथ घुट करके मारनेकी आवश्यकता है । यह सीचकर आधमके अनुसार उसने बाजाका मारनेम कई अणगध न समझकर उन्हें मारनेके लिए गच्छास्त्रका प्रयोग किया ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उस गच्छास्त्रको अपने ऊपर आते डालकर लक्ष्मण सिटपिटा गये उनको सारी बाजुरी भूल गयी और मूर्छित होकर स्वसे पृथ्वीपर गिर पड़े । लक्ष्मणकी रपसे गिरते देखकर राम रोषित होते हुए भी बनुष बाण लेकर दौड़े और लक्ष्मणको बचानेके लिए उन्होंने कुशके छेदे हुए गच्छास्त्रपर अपना बह्मस्त्र छेड़ दिया । बह्मस्त्रके पहुँचनेपर गच्छास्त्र आकासमें ही ठंढा हो



भविष्यति समस्तं हि वृत्तं बालकयोः शुभम् । ततो मन्त्री मुनेर्वाक्यं राघवाय न्यवेदयत् ॥ १३९ ॥  
कुशं लवै समाहूय बाल्मीकिरपि तौ मुदा । समालिख्य कथाभिस्तौ निनाय रजनीं सुसम् ॥ १४० ॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितावर्गि श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे  
कुशलकयोः पराक्रमवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( रामका सीताको पुनः स्वीकार करना )

श्रीरामदास उवाच

अथ प्रभाते रामेण समहूतावुभौ शिशू । नन्वा मुनिं मानस्य सभायां त्वमतुर्मुदा ॥ १ ॥  
बाल्मीकिराहूय बालौ जटाकृष्णाजिनावर्गः । जन्मकाण्डं न्वेकमेव जगामुभौ पितुः पुरः ॥ २ ॥  
जनैः श्रुत्वा स्वचरितं रामोऽभूदतिविस्मितः ॥ ३ ॥

ब्राह्मन् जनाश्चपि सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः । ज्ञात्वा साराकुमारौ तौ सन्नोषं परमं ययुः ॥ ४ ॥  
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे लवबाणस्रपीडिताः । शत्रुघ्नाद्या ययुन्नत्र यानस्थायास्त्रजीविताः ॥ ५ ॥  
अंगदाद्याः पार्थिवाश्च मोहनासैकजीविताः । ययुः सवान्ताः सर्वे लक्ष्मणोऽपि ययावरुक् ॥ ६ ॥  
सर्वे नत्वा रामचन्द्रं तस्युन्मत्स्यतिकै मुदा । अथ समन्व रामोऽपि तौ विसृज्यादरेण हि ॥ ७ ॥  
राक्षसेन्द्र लक्ष्मणं च शत्रुघ्नं मकरध्वजम् । खगगात्र गुपेण च ज्ञावन्तं वचोऽनवीत् ॥ ८ ॥  
आनयध्वं मुनिवरं समीतं देवममितम् । अद्यास्तु पर्यदा मये प्रत्ययो वै सभागमे ॥ ९ ॥  
संगाया दक्षिणे तीरे सभाकार्याऽऽयत्वा शुभा । करोतु शपथं सीता ममाग्रे जाह्नवीतटे ॥ १० ॥  
मुनीधरायाः सर्वे तौ जानन्तु गतकल्मषाम् । तथा ममापि बाल्मीकिं शुद्धिं जानंतु वेगतः ॥ ११ ॥

अथ मसाम ये दोनों रामायण गाने पहुँचग, उस समय सारा वृत्तान्त ज्ञात हो जायगा । ॥ १३८ ॥ तदनुसार मन्त्री सीता आया और बाल्मीकिने जो कुछ कहा था, सो रामको बतला दिया । उधर बाल्मीकिने लव और कुशको पास बुलाकर हृदयसे लगाया और अनेक प्रकारकी कहानियाँ कहते हुए रात बितायी ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इति श्रीभक्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणं प० रामस्तजपाण्ड्यकृत-  
'व्यासकृत'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास बोले--दूसरे दिन सबरे रामने उन दोनों बाल्मीकीकी बुलवाया और वे अपनी माता तथा मुनि बाल्मीकिको प्रणाम करके रामकी सभामें गये ॥ १ ॥ वटा एवं बलकल वस्त्र धारण किये हुए उन बच्चामें उस दिन बाल्मीकिके आज्ञानुसार केवल जन्मकाण्डका गान किया । ॥ २ ॥ रामने जब अपना चरित्र सुना तो बड़े विस्मित हुए । सभामें बैठे हुए लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और जब यह जाना कि ये सीताके बेटे हैं सो बहुत ही प्रसन्न हुए । ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसी समय लवके बाणोंसे पीड़ित लक्ष्मण-शत्रुघ्न आदि भी वहाँ आ पहुँचे । उनके साथ अङ्गद-हनुमान् आदि जो लवके मोहनास्त्रसे मूर्छित हो गये थे, वे भी आये । वहाँपर सबान रामको प्रणाम किया और उनके समीप आकर बैठ गये । तब रामने अपने मंत्रियोंसे सलाह करके लव कुशको विदा कर दिया ॥ ५-७ ॥ तदनन्तर विभीषण, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, मकरध्वज तथा अङ्गदको सम्बंधित करके राम बोले--तुम सब आकर बाल्मीकिके साथ सीताको यहाँ ले आओ । आज इस सभामें यह निश्चय किया जायगा कि सीताका क्या अपराध है । इसी पुनीत जाह्नवीके तटपर सीता गणपति स्वीयगी । यहाँपर आये हुए समस्त श्रुतिगण जिससे यह समझ जाय कि सीता सर्वथा निष्कलंक तथा पापोंसे रहित है । साथ ही हमारी जोरसे बाल्मीकिकी भी परीक्षा होगी । इस प्रकार रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणादि बाल्मीकिके पास गये और उन्होंने

इति तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणाद्या मर्ही गताः । उच्यतेऽथोक्तं रामेण वाल्मीकिं लक्ष्मणादिकाः ॥ १२ ॥  
 रामस्य हृदयं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत् । समर्चयन्तु मुमंत्राद्यान् लक्ष्मणाय नमस्कृत्य च ॥ १३ ॥  
 गुप्ताभिः कथनीयं यद्वाक्यं श्रीगणेशं प्रते । श्वः करिष्यति वै मीमांसा श्रवणं जनममदि ॥ १४ ॥  
 योगितां परमो देवः पतिरेको न चापरः । इति विना गतिः काञ्च्या भार्याश्चान्ति जगन्त्रये ॥ १५ ॥  
 लक्ष्मणाद्यास्ततः सर्वे राममाश्रित्य ते पुनः । मुमंत्रादीन्वतुर्वीराप्राधवाय नमस्कृत्य च ॥ १६ ॥  
 वाल्मीकिवचनं श्रुत्वा त्रिभुवनं । वाल्मीकिवचनं श्रुत्वा त्रिभुवनं श्रुत्वा त्रिभुवनं श्रुत्वा त्रिभुवनं ॥ १७ ॥  
 मुमंत्रं मरुतं वायुपुत्रं शानरनायकः । समाश्रित्य चतुर्भुवनं न पुनरनानमन्वत ॥ १८ ॥  
 सीतया पालिताः सर्वे वयं लवजितास्त्विति । कथयामासुः श्वरामं मुमन्त्राणां कश्चिन्नर ॥ १९ ॥  
 द्वितीये दिवसे कृत्वा सर्वां श्रेष्ठां मनोरमाम् । सर्वांशस्या समाहृत्य रामां यत्नमवाब्रवीत् ॥ २० ॥  
 मृगयः पार्थिवाः सर्वे भृगुत स्वयम्भानमाः । मीमांसाः श्रवणं लोकां विजानन्वतुर्न तु वत् ॥ २१ ॥  
 इत्युक्त्वा राघवेणाय लोकाः सीतादिदशवः । ब्रह्मणा धातुना रचनां श्रुत्वा नमस्कृत्य च ॥ २२ ॥  
 सवानराः समाश्रित्यस्तद्विषयं दृष्टुमुद्यताः । ततः मुनिवरम्भुनं सर्वं नमस्कृत्य च ॥ २३ ॥  
 अग्रतस्तं मुनिं कृत्वा यांनी किं शिदधाश्मुनी । शानरनायकं नमस्कृत्य च ॥ २४ ॥  
 दृष्ट्वा लक्ष्मीमिरायांतीं श्रीविष्णोर्नुयायिनीम् । वाल्मीकिं पुनरुवाच नमस्कृत्य च ॥ २५ ॥  
 तदा मन्त्रे जनीधम्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः । मातामहायो वाल्मीकिं कृपया श्रवणमब्रवीत् ॥ २६ ॥  
 इयं शश्वरये सीता सुवृत्ता धर्मचारिणी । श्रवणं पापान्मुगं न्यक्त्वा समाश्रममपीषत् ॥ २७ ॥  
 लोकापवादमीतेन यमुनादक्षिणे तटे । प्रत्यर्थं दास्यते मास्य तदनुज्ञादुमर्हसि ॥ २८ ॥  
 इमौ तु सीतावनयो कुशम्भतो लवो मया । लवोऽर्चिर्निमित्तः श्रीनामयन्त्रस्यप्रचेनमा ॥ २९ ॥

जो कुछ कहा था, सो कह सुनाया ॥ ८-११ ॥ रामके मनकी बात जानकर वाल्मीकि कहता — आज तुम लोग जाओ और रामसे कह दो कि कल मन्त्रादि जाकर सीता सब लोकोके रामने शपथ खाएगी ॥ १२-१४ ॥ त्रिभुवोके लिए पतिके सिवाय और कोई देवता नहीं होना । मीमांसा, योगिता और नर ही क्या सबकी है । पतिके बिना स्त्रीके लिए लोकमें और कोई गति भी नहीं है ॥ १५ ॥ तब लक्ष्मण और बहूमे लौट आये । रामने उनके मुखसे वाल्मीकि का संदेश सुना तो राम प्रसन्न हुए । वे लोग वहाँसे लौटने समय मुमन्त्र आदि करों दोरीकी, जिनको कि रखने बन्दी बना ब्रह्मणा धातुना रचना से ॥ १६ ॥ उन सबकी अपनी छान्तिसे जागकर मिले और यह समझा कि इन लोकोका राजा म हुआ है ॥ १७-१८ ॥ तब सबने अपना हाथ आगमन हुए कहा कि यद्यपि राजा हम लोकोका नहीं कर दिया था किन्तु सीताने पूर्णरूपसे हमारी रक्षा की ॥ १९ ॥ हमने दिन एक विशाल सभा आयोजित की गति । उसमें सब लोकोको सम्मोहित करके रामने कहा—हे देशविद्वजसे आये हुए श्रवणों आज हम सभा आप लोगोंके समक्ष सीता शपथ खाएगी । इससे आप लोगोंको उसके गुरुत सभा कुपित होना नम जयगा । इस प्रकार रामके वचन सुने ही सब लोग मन्त्राका देखनेके लिए उठावने लगे उठे । नन्व भी यह समाचार पहुँच गया । अतएव इस दिव्य शपथकी देखनेको छालमासे बिलने ही वायुण, रुद्रिय, वज्र तथा श्व वहाँ आ पहुँचे ॥ २०-२२ ॥ थोड़ी देर बाद सीताके साथ वाल्मीकि भी सभामें पहुँचे । आगे आगे वाल्मीकि थे और उनके पीछे नीचा सिर किये सत्ता मन्दगतिसे सभामें आयीं । उस समय सीता और वाल्मीकि देखकर ऐसा समझा था कि मानों विष्णुके पंखे पीछे लक्ष्मी चली आ रही हैं । सीताका दन्त ही लोकोका जयजयकार किया और वाल्मीकिजी सभाके बीचमें पहुँचकर रामसे कहने लगे— ॥ २३-२५ ॥ हे राम ! कुछ दिन हुए जब आपने लोकापवादके भयसे सीताको मेरे आश्रमके समीप लौटवा दिया था । आज वह ही सीता आपके सामने शपथ खाएगी, आप इसके लिए आज्ञा दें । सीताके इन दोनों पुरोमें कुश आपका तथा लव ( लक्ष्मी चूरीसे ) बनाया हुआ मेरा बेटा है । उसे मैंने सहस्र सीताके इरस बनाया था । ये दोनों बेटे

मुनाजिमौ तु दूषणौ तथ्यमेवब्रवीमि ते । प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो रघुकुलोद्भवः ॥३०॥  
 अनृतं न स्मराम्युक्तं यथेमी नव पुत्रही । वदन्पुत्राणां कल्पकं तपश्चर्यां यथा कृता ॥३१॥  
 नोषडनोयां फल तस्या रघुरेययादि मे धेनो । इन्द्रकन्या गायनस्यकिंक्षिणे स्थाप्य वै कृष्टम् ॥३२॥  
 तत्र विन्दस्य रामाकं तस्यानप्याप्रता मुनिः । रामोऽपि तौ समालिख्य गूढ्यवप्राय सादरम् ॥३३॥  
 लक्ष्म्य वस्तके हस्त संस्थाप्य आदीश्वरः । प्रतिस्वतरे बालं पूर्ववन्मोऽकरोन्व तम् ॥३४॥  
 तनो रामोऽपि तौ मीना दृष्ट्वा व दृष्टवान्निनाम् । अज्ञात इव मग्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥३५॥  
 स्वया धुनः समानाः मीनायाः सा पदगतम् । पुनः तमानयन्नाथ वेदस्ति रश्मिस्तथा ॥३६॥  
 नयेन्पुत्रान् लक्ष्मणोऽपि पेटिद्यान्निहितं भुजम् । मीनायाः पुनो राम दर्शयामास सादरम् ॥३७॥  
 मीनाभुजोषमं दृष्ट्वा भुज मासादिभिरुत्तमम् । पञ्चदशान्तरे काले क्षामन् सर्वेऽतिविस्मिताः ॥३८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र पश्यन्तु मकरेणापि । भुजः स मुपगतां प्राप्ते विश्वकर्माद्वयः क्षणात् ॥३९॥  
 तद्दृष्ट्वा कीनुक्तं लोकाः प्रभुदमर्ताभिर्मताः । रामोऽपि विस्मितः प्राह वान्मीकिं प्रणिमस्य च ॥४०॥  
 एवमेव मङ्गप्रज्ञं पश्यन् मा पश्यन्तु ॥ पन्थायो जनिता मया तत्र वाक्यैरकिल्बिषैः ॥४१॥  
 लक्ष्मणमपि दृष्ट्वा मे धेनोः । प्रत्यक्षं मया । ईदृशीं पुनस्तत्रेन मन्दिरं समवेक्षिता ॥४२॥  
 सेव्यं लोकाः । इन्द्रकन्यायाऽपि न । पुनः । सा । मया रश्मिका नद्वयान् सन्तुमर्हति ॥४३॥  
 मया जनेन । लोकाः । इन्द्रकन्यायाऽपि न । पुनः । सा । मया रश्मिका नद्वयान् सन्तुमर्हति ॥४४॥  
 तथापि लोकाः नद्वयान् सन्तुमर्हति । पुनः । सा । मया रश्मिका नद्वयान् सन्तुमर्हति ॥४५॥  
 दृष्ट्वा । उग्रावधौ । सा । मया रश्मिका नद्वयान् सन्तुमर्हति ॥४६॥  
 मया । उग्रावधौ । सा । मया रश्मिका नद्वयान् सन्तुमर्हति ॥४७॥

अथाध्यायः कथं है । कोऽ भ यद्धा इत्यसमन नही टिक सका । विवाताका मे दसवी पुत्र है । आर्य  
 ततः मे वदत ॥३०॥ नही काणा । इत्येक वरीयक हैन धार तपस्या को है । यदि सोता किसी तरह भी  
 बाधाधारिण्य है । ततः मे द ह सोता नद्वयान् सन्तुमर्हति । इत्येक कथकर बादमांकिने मुनाको रामके  
 दाहिना बगल तथा सचनो बायीं बगल दिहना । दिसा लोच स्वयं उषके सामने एक ऊँचे भासनपर बैठे । रामने  
 दृष्ट्वा स्मरन् उष बचनका आलोकन किया, माया, मुद्रा और लयके मस्तकपर अपना दाहिना हाथ रखकर  
 कुलक सजाए हुए अवतराकन उल्लास भाव बसा दिश ॥ ३०-३४ ॥ इसके अनन्तर रामने सीताकी धोर देखा  
 तो सीताको दानो मग्राह उग्रावधौ पोटक देवी । उग्रावधौ मग्राह उग्रावधौ लक्ष्मणका आज्ञा दी कि उस समय  
 भी सीताका भुज दाह्यार उग्रावधौ पुन दिशान्तर दे, यदि बहु बुराधिन रात्रिसे रखी हो तो वहाँ से  
 जाओ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणने 'वदन् पुत्राणां कल्पकं तपश्चर्यां यथा कृता' भुजा साकर रामके सामने रख दी  
 ॥ ३७ ॥ इत्येन दिन दसदशर भी टिक सीताकी अज्ञातीके समान लटकते मायके लोचड़े तथा रुधिरसंप्लुत  
 भुजाधका दृष्ट्वा समस्त जितने जग वेदेये वे बरे विस्मित हुए ॥ ३८ ॥ इसी बीच लोगोंके देखते ही वेमछे  
 बहुत विश्वकर्माकी बनायी भुजा गायब हो गयी । यह गीतुक देखकर लोगोंकी ओर भी आश्चर्य हुआ । तब  
 रामने विस्मित हाकर व आश्चर्य कहा—हे महाशय ! मुझे तो मायकी बातसे ही विश्वास ही गया था कि सीता  
 वरय दक्षिण है ॥ ३९-४१ ॥ मग्राह भी मैंने सीताका कथय दलो थी । उस समय देवताओंके समस्त कथन  
 मेमेवर ही मैंने इसे अङ्गीकार किया था ॥ ४२ ॥ तबपि लोकपवादके भयसे पवित्र समस्तकार भी मैंने सीताका  
 पटित्याग किया । माय नर इम अग्रावधौ लम्बा कर ॥ ४३ ॥ यह भी मैं जानता हूँ कि कुल मेरा पुत्र है और  
 लक्ष्मणको मायने मैं ताके न पछाड़े बनाया था ॥ ४४ ॥ यह सब हुने हुए भी इन संसारवालोंका विवाध  
 दिशानेके लिए सीता इस सभ मे लपवत ॥ ४५ ॥ यदि इम जनसमाजम और इस संसारने सीता कुछ निज  
 ही नहीं तो मैं इसको किससे अङ्गीकार कर लूँगा । उस समय सीताको लक्ष्मणको देखनेके लिए बहुत बैठे हुए  
 सब लोग उत्सुक हो रहे थे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सभामें रोगी कपड़े पहने सीता कड़ी हो गयी और हाथ

राधादयमहं चेद्वि मनसाऽपि न चिन्तये । तर्हि मे धरणी देवि विवर्त दातुमर्हसि ॥४८॥  
 एव शय्याः सीतायाः प्रादुर्गम्यन्महादुनम् । भूतलादिव्यमन्वर्थं सिंहासनमनुनमम् ॥४९॥  
 हुतो विचरमाणेण समानात् मनोरमम् । जगन्नेत्रप्रियमाण तद्विव्यदेहं रविप्रथम् ॥५०॥  
 मूर्द्ध्वा आनक्तो दोर्भ्यां भृश्या दृष्टितर निजाम् । स्वायत्तर्षाणि तामुक्त्वाऽऽमने मा मन्यवेशयन् ॥५१॥  
 वस्त्रालङ्कारमग्नयसुगन्धं पूज्य मैथिलीम् । मपार्निग्माथ मदेवी बीजयापाम् सख्यम् ॥५२॥  
 तदा ज्ञानैः शून्यैर्मग्ना गुण विहाय न त्वभूत् । सिंहासनस्थं वेदेहीं प्रविशन्तीं रम्यतलम् ॥५३॥  
 इष्टाऽऽकाशस्थिता दधत्स्व सदास्तु मन्त्रमन्त्रं निगन्तुमिदं देहीं वरपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥५४॥  
 साधुवादश्च सुमहान्वभूद्य सुर्कोर्किता । वन्नरिषे च भूषो च सर्वे स्थावरजङ्गमम् ॥५५॥  
 तदा यभूव चक्रितं सीताक्षपणदर्शनान् । ऊचुस्ते वसुधा वान्धो वानराश्च नगदिकाः ॥५६॥  
 केचिच्चिन्तापरः केचिदासन्ध्यानपरायणाः । केचिद्रासं निरीक्षन्तः केचित्सीताप्रचेतयः ॥५७॥  
 गृह्णन्तं वाचं तन्सर्वं तूष्णींभूतमचेतनम् । प्रविशन्तीं भुवं सीतां दृष्ट्वा समोदितं जगत् ॥५८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रविशन्तीं ह भूतले । विदेहतां तदा स्पृष्ट्वा वामहस्तेन संभ्रमान् ॥५९॥  
 यां दधात करेणादौ घृन्त्या हस्तेन त्रै भुवम् । ततश्चां प्रार्थयामास भुवं स रघुनन्दनः ॥६०॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

देवि त्वं सर्वलोकानां निवामस्थानमुत्तमम् । अमि लोकेकमात्रा त्वं महानीगोर्ध्वतः सदा ॥६१॥  
 वर्तसे पुष्परूपा त्वं वसुधा सकलान् जनान् । स्वजगदार्द्रार्थाम्भुव करोषि विश्वतृप्तिदाः ॥६२॥  
 एवं भूर्मा त्वं स्वराजलक्ष्मीमम विष्णोः प्रिया शुभा त्वमेवास्तत्र मे शक्तिर्निमिताऽमि सर्वेव हि ॥६३॥  
 निजोद्गाहदासि त्वं धानूर्प्रान्या जगन्मदा भ्रमापुक्ता त्वमेवासि सूक्तापुक्तादिकर्मसु ॥६४॥

जोरपर सीता ने निगाह लगा उपर भूत करके बोली—॥ ४७ ॥ हे पृथ्वी माता ! यदि रामके सिवाय अन्य किसीको मैं अपने हृदयसे भी न चाहती हूँ तो आप मुझे ऐसी अगद दाजिए कि जिससे मैं आपसे समा जाऊँ ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सीताके प्रार्थना करनेपर दुर्लभ एक द्वार सिंहासन पृथ्वीके भीतरसे निकला । उसको बड़े-बड़े नाग अपने शिरपर उठाये हुए थे । सूक्त समाज दर्शयमान उन नागका शकाक था ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इतनेमें सीता पृथ्वी देवीने अपना दानो भूजर्भसे सीताका स्वागत किया । फिर छानेसे लगा तथा गोंदमें लेकर उन्हें उस गिहासनपर बिठाकर दिया । इसके अनन्तर वज्रअलंकार माला-माला आदिसे सीताकी पूजा की और छानासे आकर गन्ता मलन लगी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इसके बाद सीरे-सीरे वह गिहासन पृथ्वीके भीतर धुमने लगी । सिंहासनपर गड़ी हुई सीताको पातालमें जाती देखकर आकाशमें स्थित सारी देवागना, उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ आकाश और पृथ्वीमें देवताओं और मनुष्योंने साधुवाद किया । सीताकी उस शय्यको देखकर समस्त स्थावर-जंगम प्राणी चकित हो गये और अपनी सुधि-बुधि भूलकर परस्पर बात करने लगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उनमें कुछ लोग चिन्तित थे और कुछ स्वाममान । कुछ लोग रामकी देख रहे थे । कुछ लोग अपनी सुधि-बुधि भूलकर सीताकी ओर निहार रहे थे ॥ ५७ ॥ गृह्णन्तंभरके लिए वही सारा समाज स्त्र हो गया । सीताको पृथ्वीके भीतर समाती देखकर समस्त संसार सुख हो गया ॥ ५८ ॥ राम सीताका पृथ्वीमें घेनती देखकर अपने सिंहासनसे कूद पड़ और पृथ्वीके पास जा पहुँचे । वे उनका हाथ अपने हाथसे पकड़कर इस प्रकार पृथ्वीसे प्रार्थना करने लगे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे देवि ! आप सारे संसारकी निवासभूमि हैं । समस्त जगत्की माता होकर महानोरके ऊपर आप स्थित हैं ॥ ६१ ॥ आप पुष्परूपा हैं । समस्त जनोंको हर प्रकारकी सम्पत्तियाँ देनेकी स मध्य रखती हैं । आप अपने उदरसे अनेक प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न करके सबको रक्षा करता हैं । आप दुःख, सदरा और विषयको प्रिया रखती हैं । आप आदिर्लक्षि हैं और देने ही आपकी बनाया है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ आप अपने उदरसे भोजि-भोजिके घातु निकालकर



जानकी तब कन्येयं सभूषणं मेऽधूना ग्रिह । कन्यादानं कुरु मुदा न्वया पूर्वं कृतं न हि ॥६५॥

प्रसोदं देवि नोनेन्ये न्वयि कंधा भविष्यति ।

श्रीरामदास उवाच

इति मंत्रादिना चापि गन्धर्वेण महात्मना ॥६६॥

जारी काटिन्यथावान्या जामृणेद्रुघवेग्निम् । उर्नः शनैः सन्नाम्रिता सा जयाव ह ॥६७॥

तां गच्छन्ती पुनर्दृष्ट्वा भुव रामो धृतामाय । रभूव क्रोधनाम्राश्रमदा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥६८॥

चापमानय मौमित्रं शिक्षयेद्भू भुव त्रिमाम् । मन्त्रुगेपमशपेन वसुधेयं विदेहशम् ॥६९॥

यामय दास्यति भिप्रमस्य घात न रोच्ये । ततोऽगो लक्ष्मण नान्तं करे कोरुण्डमुत्तमम् ॥७०॥

पृथा न्यारोपय कृत्वा शर्मन्धानमातनोत् । तदा वयो महन्नापुशुभुमे लवणार्णवः ॥७१॥

तासा निपेतुर्धरणीं मधुवुः सरजा दिशः । चक्रमे धरणीं मार्प श्राद्धान् वदती मृदुः ॥७२॥

कृत्यां जानकीं पृथा रायस्यांके न्यसेद्यत् । भोगमधयोः पृथ्वी श्रिमा नमनं व्यधात् ॥७३॥

तदा मे देववासानि नेदुः कुमुदवृष्टिभिः । ववर्जुजानकीं राय देवमना मृदान्विताः ॥७४॥

ततो रामोऽपि तां दृष्ट्वा पदयोर्नमनीं भुव । स्वक्रोधं शान्तमकरोत्कगभ्या चापमार्गणौ ॥७५॥

विसृज्योत्थापयामास स्वकरेणानिं प्रभुः । ततः सा गधवं नरश प्रमाद्य च पुनः पुनः ॥७६॥

दत्त्वा विदेहकन्यार्यं च मिहामनमुत्तमम् । सार्तां स्तुत्राऽव तां दृष्ट्वा तथा मंजूनिनार्गव च ॥७७॥

आमन्त्र्य रायवं पृथ्वी क्षणादनदिताऽभवत् । तदा सीता जनाः सर्वे पुनर्जाना तु मेनिरे ॥७८॥

अथहर्म्यैः प्रणमुस्तां चक्रुः पूर्वां वृषक् वृषक् । ददौ दानान्वनेकां तदा गतो मुदा न्वितः ॥७९॥

नववायनिनभ्राश्च सम्बभूवुः समन्ततः । ननुतुर्गदनायथ तुष्टुर्नन्दिमामवाः ॥८०॥

ममारी लामाका प्रातिपूर्वक प्रदान करती है । मृत्त और अमृत्त जितन भा कम है, उनमे माय क्षमरुका है ॥ ६४ ॥ यह सीता आपका कन्या है । इस नाते आप मरा सात है । आपने विवाहके समय कन्यादान नहीं किया था, सा अब कर दीजिए ॥ ६५ ॥ हे देवि ! आप मरपर प्रसन्न हो जायें । नहीं तो मैं आपको ऊपर पुट्ट हो जाऊंगा । श्रीरामदास कहते हैं—रामके इस तरह शर्पणा करनेपर भी पृथ्वीने उनको एक न सुना । क्योंकि लवणावस हा नारिकेली हस्त काटिन हुआ करता है । सीता भी देखीं पृथ्वीतलम समाती जा रहा थी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ अनव करनेपर भी जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरी बातोंपर कुछ ध्यान नहीं दे रहा है तो मार शब्दक उनका अंगि लाल हो गयी और लक्ष्मणसे बोला—॥ ६८ ॥ लक्ष्मण ! मरा वसुध ता उठा लाया, मे पृथ्वीका उसक दुताप्रह्वय उण्ट दे दूँ । मेरे छुरे पट्टम तीरण आपसे डरकर यह सातको लौटा देग । इस से मारना नहीं चाहता, चाहता हूँ केवल साताको हसक हाथोंसे लौटना । तदनुसार तुरन्त लक्ष्मण वनुध उठा लाये । रामने उस लेकर राधा ठाक किया और बाण चढ़ाया । उस समय जारास आप वलन लगा, सनुधम प्रलम्बदसकी लहर उठने लगी, सारे दूट-दूटकर गिरने लगे और चारों दिशाएँ धूलसे आन्ठादित हो गयी । ऐसी अवस्थासे ‘जाहि जाहि’ करती हुई पृथ्वी काँपने लगी और उरुने अपने हाथों साताका उठाकर रामकी गोदमे बिछा दिया । इसके बाद पृथ्वीने सिर मुकाकर रामके चरणोंको बन्दना की ॥ ६९-७३ ॥ उस समय स्वर्गमे दक्षताक्षेन दक्षराज वन में और राव गया सोतापर पुलोकी वर्षा की ॥ ७४ ॥ इसके बाद जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरे चरणमे मुकी हुई बिनती कर रही है तो आपना कंस शान्त कर लिया तथा वसुध-बाणका पारत्याद करके अपने दलो हाथोंके पृथ्वीको उठाया । इसके अनन्तर पृथ्वीने फिर भगवान्को दाद-बाद नमस्कार किया, शर्पणा की और सीता तथा वह पुष्पमेय सिंहासन रामको समर्पण कर दिया । फिर सीताका स्तुति की । चाहाने भी पृथ्वीकी विधिवत् पूजा की । तत्पश्चात् रामकी आज्ञा लेकर क्षण भरके भीतर ही पृथ्वी मन्तर्धान हो गयी । उस समय वनमे बैठे हुए कोमले सीताका पुनर्जन्म समझा ॥ ७५-७८ ॥ सब कोमले सीताकी विधिवत् पूजा की और बक-भक्तिकर करके प्रणाम किया । तब रामने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ७९ ॥ माँति-माँतिके रबीज दाने दिये,

सीतायाः स्वयथो यत्र जाह्नव्या दक्षिणे तटे । सीताकुण्डमिति ख्यातं तत्र त्रीणि वभूव ॥ ८१ ॥  
 पातालस्यै जलं पुण्यं सन्ततमनलोपमम् । दर्शनेऽपि नहीरौ भीमोष्णश्चाप्यजान्मान् ॥ ८२ ॥  
 तत्र जानकीदण्डं स्मरणञ्जयनाशनम् । चतुर्मुखपुण्ड्रपर्वं स्त्राभिः सेव्यं तदा मुनिः ॥ ८३ ॥  
 ततः सीतायुतो रामः पुत्रं यथा महितो मुदा । वस्त्रहस्तपुष्पाभ्यां स्नानं स्वयम्बुजह्वरम् ॥ ८४ ॥  
 चक्र कथितान्महैः पूर्ववच्च सविशरम् । अथ पञ्चशतं पूजयत् कृत्वा स्तूपतपः ॥ ८५ ॥  
 जानक्यादिर्महत्कारान् लब्ध्वय विधिनाऽकरोत् । चकार ज्ञानादात्मनि ह्वान् सपुण्ड्रं भक्तितः ॥ ८६ ॥  
 ततो मुनीषां पञ्च पूजयामास पथिमान् । जनकं च मुनेषां च पूजयामास राघवः ॥ ८७ ॥  
 विमर्ज्य शरीरमर्थान् कण्डिवज्रो ये क्षमामताः । द्विजाद्यास्तान् च नार्थैश्च नोपयामागुण्डरात् ॥ ८८ ॥  
 ततो त्रिसुवर्णविश्रांथ एदिवैः सह राघवः । इमाराम्या सीताया च बन्धुभिश्चागमन्पुगेम् ॥ ८९ ॥  
 नीराजितः पुण्डरीकविर्गणस्थो रघून्मथः । भीमया जनयाम्भरी च यथा निजगृहे प्रति ॥ ९० ॥  
 तदा मदीन्मवश्यामीदयोऽप्यायां समन्वतः । विश्रुत्वालेन वैदद्या दर्शनं च जनैः कृतम् ॥ ९१ ॥  
 ततो नृपादिकान् पूज्य विमर्ज्य रघुदहः । जनकं च मुनेषां च ददामासी निजं पुंगवम् ॥ ९२ ॥  
 ततः सीतायुतो रामः पुनर्यात्र बन्धुभिः सह । पूर्ववच्च सुप्तं रेव विश्रुत्वाले रघुदहः ॥ ९३ ॥  
 रामेन सीतया सार्धं सहस्राणि त्रयोदश । वपाण्यत्र कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजात्मनः ॥ ९४ ॥  
 एकादश सहस्राणि वप्सराणि महानि च । तथैकादश वर्षाणि माया एकादशैव तु ॥ ९५ ॥  
 दिनान्शकादर्शवाच्च रामेन सीतया सह । त्रयोऽप्यायां कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजात्मनः ॥ ९६ ॥  
 एकादश सहस्राणि चैकादश दिनानि च । समदोषवर्षापाका रामेऽप्युत् कल्पभेदेन ॥ ९७ ॥  
 दशवर्षहस्याणि दशवर्षशतानि च । गयण सीतया राज्यं कस्मिन्कल्पे कृतं द्विज ॥ ९८ ॥

इति श्रीमत्कोटिशम्भरितत्तर्गेन श्रीमदात्मरामायणे श्रीमदीकाये

अन्मकाष्टे जानकीग्रहणं समाप्तम् सर्गः ॥ ८ ॥

वेदशास्त्रोंमें नृसंहिता और बन्द जनों तथा मागवान् पवित्र प्रकाश मिली है ॥ ८० ॥ जानकीके रहिणी तटपर जहाँ सीताके बाध ली थी, वहाँ सीताकुण्डक नामसे एक विश्रुत तीर्थ बन गया ॥ ८१ ॥ सीताके उष्ण उन्मत्तास निकलनेके कारण आज भी वहाँ जलिके सरस तरता हुआ पवित्र जल निकलता रहता है ॥ ८२ ॥ इस जानकीकुण्डके स्मरणमात्रसे सब भय नष्ट हो जान है । अपने पतिकी आनुर्मुखा लिए विधियोंको इसमें स्नान करना चाहिये ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीता तथा अपने पुताके साथ रामने यज्ञलका अवश्य स्नान किया । यह जबमूष एकादश और पूर्वकविल स्नानके सरस हो जन्महुक माय हुआ । इस प्रकार रामने सो यज्ञ पूज करके त्रिषुवर्षक लवका जलकर्मोद संस्कार किया । सनेक प्रकारके दान दिये और देवताओंका विधिवत् पूजन किया । इसके अनन्तर यज्ञमें भाग हुए समस्त ऋषियों तथा राजाओंकी पूजा की और जनक तथा मुनेषाका भी पूजन किया । इसके बाद ऋषियों तथा कन्दियोंका यज्ञार्थसे सन्तुष्ट करने बिदा किया ॥ ८४-८८ ॥ साथ ही जाह्नवी तथा रेवाओंकी भी बिदा किया और सीता, राम तथा बन्धुबन्धुओंके साथ राम जानकी अपाध्यापुगका गये ॥ ८९ ॥ अपाध्यामे उठे ही राम हाथ पर सवार होकर पहुँचे, सीता ही गायक मिश्रोंन उनकी भारती उतारों और सब लोग अपने महलोमें गये । उस समय अयोध्यामें चारों ओर महान् उत्सव हो रहा था । बहुत दिनोंसे विपुल सीताका ज्योतिन दर्शन पाया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ कई दिनों बाद रामने जनक, मुनेषा तथा अन्य राजाओंका अपने-अपने नगर जानेकी आज्ञा दी ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर फिर बहनेके समान रामबन्धुजी सीता तथा पुत्रोंके साथ आनन्दपूर्वक अयोध्या में रहने लगे ॥ ९३ ॥ किसी कल्पमें रामने सीताके साथ लगभग हजार वर्ष तक राज्य किया, किन्तु कल्पमें गायत्र हजार वर्ष तथा किसी कल्पमें गायत्र हजार वर्ष गायत्र बार और गायत्र दिनतक राज्य किया ॥ ९४-९७ ॥ किसी कल्पमें रामने दस हजार वर्ष सो वर्ष तक राज्य किया है ॥ ९८ ॥ इति श्रीमत्वाटिशम्भरितत्तर्गेन श्रीमदात्मरामायणे पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

## नवमः सर्गः

( रामादिके व लक्ष्मीका उपनयन-संस्कार ।

श्रीरामदास उवाच

अधोभिन्ना मांडवी च भुतकीर्तिः मर्दव ताः यधुवृत्तगान्किचिदनर्चन्यो महोदराः ॥ १ ॥  
 नामां चकार मीमासा कौतुकानि च मादयत् तामां पुमवन्तादीनि विविधानि स्थूयमः ॥ २ ॥  
 आहूय पन्था वनकं काश्याम स चन्धुभिः दौष्टान् पूग्मानामुक्तामां पौंसुहृन्मियः ॥ ३ ॥  
 तायां सर्वान् समुत्सहान्तेव कृन्ता स्थूयमः वल्गुलसाम्भूयामिन्नेषणाय ताः सुवृक्ष ॥ ४ ॥  
 अधोभिन्ना मा तनय सुपुत्र परमोदयम् । ततः सा मण्डरी पुत्र सुपुत्रे परमे दिने ॥ ५ ॥  
 वता सा भुतकीर्तिश्च सुपुत्रे यमकी कृता दान्तां रेकोमिलाया द्वितीयस्तनयोऽभवत् ॥ ६ ॥  
 तथाऽवस्थु मांडव्याः पुत्रः कान्तामन्दयत् ततः स दिगम्बराय कृन्ता रामः पुत्रक पुत्रक ॥ ७ ॥  
 चकार गुरुणा विमललोन्माहं पति ॥ ८ ॥ ततः कान्तामन्दो जगत्पुत्रके ॥ कनिष्ठकः ॥ ८ ॥  
 मांडव्याः पुत्रः जगत्पुत्रः ॥ ९ ॥ ततः कान्तामन्दो जगत्पुत्रके ॥ कनिष्ठकः ॥ ९ ॥  
 एवं कृत्वा च लमा ल सुकृपा विधाय ॥ १० ॥ ततः कान्तामन्दो जगत्पुत्रके ॥ कनिष्ठकः ॥ १० ॥  
 तेषां सत्य मया प्रोक्ता मलेपेगा ॥ ११ ॥ ततः कान्तामन्दो जगत्पुत्रके ॥ कनिष्ठकः ॥ ११ ॥  
 तदयमागुर्वायानि चरुः पुण्डरीकः । मन्त्रैः पितृभिर्बुधान् बालकान् सूर्यसन्निभान् ॥ १२ ॥  
 राजद्वारि महानागादुन्मयश्च नृपज्ञा ॥ १३ ॥ ततः कान्तामन्दो जगत्पुत्रके ॥ कनिष्ठकः ॥ १३ ॥  
 वादयन्ति स्म नृगणि तदुत्तरेन्द्रिमागभाः । नगरी शोभयामासुः पनाकाध्वजकारणः ॥ १४ ॥  
 सुहृदः पारिवः सर्वे रामादीनां च पूजनम् । सर्वे गभरणाश्च चक्रिरे ते पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥  
 ददुर्दानानि विप्रेभ्यो रामायां चैव च ते । वाद्यान् भाजयायामुः ध्यातानि चकुरादयम् ॥ १६ ॥

श्रीरामदास बाले—कुछ काल बाद उमिला, माण्डवी तथा भुतकीर्तिने साथ साथ गर्भ धारण किया ॥ १ ॥  
 सोते ने इस समयपर बड़े सजायाओं को और रामन विधायक पुनवनादि संस्कार किये ॥ २ ॥ इस संस्कारके  
 समय जनक तथा सुमेधाको भी रामने बुलवा दिया और इन्हीके हाथ यह कार्य सम्पन्न हुआ । पुरवासिनी  
 मित्रोने उमिला, सीता उमिला हुई, स पूर्ण किया ॥ ३ ॥ रामने इस प्रकार उत्सव करके अनेक तरहके  
 भोजन और दायाएँ दी ॥ ४ ॥ इसका बाद समय पूरा होनेपर उमिलान एक परम तेजस्वी पुत्र उत्पन्न  
 किया और तब वह मित्र माण्डवी के भी एक पुत्रम्पत् उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर भुतकीर्तिक एक साथ दो  
 पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद उमिलाने एक पुत्र पुत्र और उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ इसी प्रकार कलालारमें  
 मण्डवी के भी एक और पुत्र हुआ । रामने अपने कृत्तरह रामके साथ उन पुत्रोंका जातकर्ममादि संस्कार  
 किया । तबमलक ज्येष्ठ पुत्रका नाम भक्त और ज्येष्ठ बेटका नाम चित्रकटु पड़ा ॥ ७ ॥ ८ ॥  
 माण्डवीके ज्येष्ठ पुत्रका नाम पुत्रक तथा पलिनका लता नाम पड़ा । इसी तरह भुतकीर्तिके ज्येष्ठ पुत्रका  
 नाम सुवाह तथा कनिष्ठ बेटका नाम सुपुत्रकेन पड़ा ॥ ९ ॥ १० ॥ गुह रसिष्ठने विविधपूर्वक सबका नामकरणदि  
 संस्कार किया । हे शिष्य । गृहोंपर मैंने कुछ बर्तन एक ही एक पुत्रका नाम बतलाया है । इनके सिवाय भी  
 बहुतसे पुत्र हुए । प्रत्येक पुत्रके जन्मसमयपर देखतागन हर्षपूर्वक अपने बाजे बजते और उनपर तथा उनके  
 मला-पितरपर दुष्पाकों वृष्टि किया करते थे । रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार रामद्वारपर बड़े-बड़े उत्सव रचाये  
 जाते, गेय-नये गाये बजते और वेग्याएँ कुद करता थीं । बन्धीयन तथा सुह माणव का-आकर विविध  
 प्रकारको भुतिर्वा किया करते थे । पताका-ध्वजा तथा तोरणदिनोंसे अधोभ्या नवरीका शृङ्गार किया बहता  
 था । रामके मित्र हमस्त राजे जनक प्रकारके वस्त्राभूषणोंको देसकर जनका पूजन करते थे ॥ ११-१५ ॥  
 राम-लक्ष्मण भादि चारों भ्राता भी शाहूणोंको धार देते उन्हें भोजन करते एवं नान्दीभात्यादि हस्तोंको



ललाटकदिवसोभित्तिविस्तोर्णो यथा समौ । सर्वनेत्रो मर्देत्रये तथा प्राप्स्यति नान्यथा ॥३३॥  
 अस्त्रिर्धा तर्जनी प्राप्य तथा रेखाऽरुव दृश्यते, कनिष्ठपुनर्निर्गता दीर्घाग्रिष्वं यथा भवेत् ॥३४॥  
 कमठपृष्ठकठिनावकर्मकणौ कर्णौ । तन्मर्देन गिरीरुक्थ पादौ चाप्यनि कोवलयौ ॥३५॥  
 पादौ समामर्शौ रक्तौ समौ सूक्ष्मौ सुशोभनौ । ममगुणैः स्वदेन स्निग्धार्चदशमूलकौ ॥३६॥  
 स्वप्नपामिः कररेखाभिश्चारकभिः सदा सुखा । निद्रायाः कुलद्वयेन राजगजा भविष्यति ॥३७॥  
 उन्मत्तावनमुन्मत्तकिङ्कणाभिरस्थामि चतुर्णां दाक्षिण्यं तन्ममम् । महर्षयश्चमूचकम् ॥३८॥  
 धारका मूत्रके रस्य दक्षिणारांतनो यदि । यद्यश्च मानमधुनोर्पदि शीघ्रं तदा सुखः ॥३९॥  
 विस्तीर्णो बाधिलौ स्निग्धौ भुजावस्थ सुखोचितौ । वामावर्तौ सप्रलंभौ भुजौ भूरक्षगोचिती ॥४०॥  
 भीरुस्रवचचकान्त्रमस्थकोदंडदंडभृन् । तथाऽरुव कणा रेखा यथा स्तरास्त्रिदिवम्पतिः ॥४१॥  
 द्वात्रिंशदशनधायं वक्त्रं बुद्धिगेषरः । कौचदुर्मुहं माभ्यम्बरः सर्वेभ्यगधिकः ॥४२॥  
 मधुपिगलनेत्रोऽपी नैनं श्रीमन्वदति कचिन् । पंचरेखा ललाटध्वु तथा सिद्धोदगः शुभः ॥४३॥  
 ऊर्ध्वरेखांकितपक्षो निःशमन्पद्मगन्धवान् । आन्तरद्वयाभिः सुखमो महान्धनवानपम् ॥४४॥  
 एव कुशं निरीक्ष्याथ सर्वान् रष्ट्रा कमेण सः । लवार्दानां मन्त्रिहानि पूर्ववन्प्राह रथपम् ॥४५॥  
 ततः प्रीतमना रामः पूजयाम स तं गुरुम् । वर्षगमर्णश्च ययौ हर्षांतनो गृहम् ॥४६॥  
 एतस्मिन्तरे सीता भूमिदण्डवरागते । मन्त्रिणा चामर्गद्विर्पदोर्ध्वोभिः परिर्वीजिता ॥४७॥  
 सखीभिः सेविता रम्या धृताभोकोपवहेणा । सुतु म्ब निगमर्तौ सुखं चन्द्रनिभं वरम् ॥४८॥

हाथ, पसलियाँ और मुँह में जो जन्म रेखाएँ हैं, जो य, न, म, र, क, शता हैं ॥३२॥ मस्तक, कमर और छाती में होन विस्तीर्ण हैं, जो सब दिशों में जो जन्म रेखाएँ हैं, जो य, न, म, र, क, शता हैं ॥३३॥ हाथकी एक रेखा ठीक तर्जनी पर्यन्त चला गया है, जो य, न, म, र, क, शता हैं ॥३४॥ कनिष्ठकी पीठके समान कड़े-कड़े इसको हाथ राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहा है । इसके कामल, यशस्वर, लाल, पतले, सुन्दर और बराबर एंडीवाले पैर को इसके राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहा है ॥३५॥ पादौ को ललाटे की रेखाएँ यह बतलाती हैं कि यह सदा सुखी रहेगा । इसका निद्रा कमल और सुख है । इससे यह जाना जाता है कि यह बच्चा भविष्यमें राजाश्रंका भी राजा होगा । इसका निद्रा कमल तथा धर्म, सत्य, सत्य है और नाभि गहरी तथा सस्त्रिणावर्त होकर लाल रङ्गकी है । ये सब भी महान् ऐश्वर्यकी सूचना दे रहा है । मन्त्रिणा चामर्गद्विर्पदोर्ध्वोभिः कहला गया है कि मधुपत्यागके समय जिसके निद्रासे भूषको केवल एक बार दक्षिणार्धतः दृष्ट और उन्मत्त की गले मछली तथा साहूके समान गन्ध निकले तो यह मनुष्य राजा होगा ॥ ३३-३९ ॥ ४०-४८ ॥ बड़ी मछली और चिकनी भुजाएँ मुख भोगने लायक हैं । लम्बे और वामावर्त हाडूदण्ड कर्णों की रेखाएँ य, न, म, र, क, शता हैं । आन्तर, वक्त्र, चक्र, कमल, मस्तक, बापु तथा वण्ड आदिके आकारको लेनी रेखाएँ य, न, म, र, क, शता हैं । जिससे ज्ञात होता है कि यह देव-ताओंका भी राजा होगा ॥ ४१ ॥ इसके मुखमें पूर उ, म, र, क, शता हैं । शङ्ख समान सुन्दर इसकी श्रोत्रा है । श्रोत्र पक्षी जगहा, हंस तथा मयूक समान गमना । इसका स्वर है । इससे ज्ञान पड़ता है कि यह संसारके समस्त राजाओंसे बहकर होगा ॥ ४२ ॥ मधु ( शङ्ख ) के समान निगल वर्ण इसको आने हैं, इसके ललाटमें पाँच रेखाएँ हैं, सिंहके समान उदर है, इसके पैरोंकी रेखाएँ उदरकी मयी है, इसके श्वासस कमलकी गन्ध बाड़ी है और सुन्दर-सी नासिका है । इन सब लक्षणोंसे ज्ञात होता है कि यह ब्रह्माचार्य मन्त्रिसम्पन्न बालक है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कुरुके लक्षणोंका बतलाकर बसिष्ठने बाकी लव आदि बालकोंके भी लक्षण बतलाये । सुवन्तार रामने अनेक प्रकारके बन्धों और आभूषणोंसे बसिष्ठकी पूजा की और उनकी बाझा लेकर रामचन्द्रकी छवते महलमें चले गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बड़ी साजाजी पूरके दिने हुए सुन्दर सिंहासनपर बैठी थी । किन्नरी ही शायियाँ चँबर पक्षे आदि सब रही थीं । बहुत-सी सखियाँ सरह सरहका सेवानें लगी थीं । उस समय सीताजी भी वहाँ सकिया लगाकर बैठी हुई दर्पणमें अपना मुख देखा रही थी । अब उन्होंने सुना कि

रामस्यागमनं श्रुत्वा सचचालासुनाम्बवात् । ततो ददर्श श्रीरामं बालकैः परिवेष्टितम् ॥४९॥  
 स्वकन्यां पुष्पकेतुं च दधानमनरं शिशुम् । तथैव दक्षिणे हस्ते दधानं चागदं शुभम् ॥५०॥  
 कुशं लवं पुरस्कृत्य सुभाषां तं जनैः सुनैः । तन्पृष्ठे सा ददर्शाथ लक्ष्मणं बालकान्वितम् ॥५१॥  
 तर्धं कन्यां पुष्करं च दधानं दक्षिणे करे । तन्पृष्ठे मग्नं सीता ददर्श हृदितामना ॥५२॥  
 चित्रकेतुं शिशुं कन्यां दधानं लक्ष्मणमग्नितम् । तथैव दक्षिणे हस्ते सुबाहुं चक्रेक्षणम् ॥५३॥  
 तन्पृष्ठे सा ददर्शाथ सङ्गुप्तं जनकान्मजा । रामश्चापि विध्वंसं ममापातं सुनैः सुनैः ॥५४॥  
 एवं सा राघवं दृष्ट्वा सीता प्रपुञ्जगाम तम् । क्षिप्रन्मञ्जीरञ्चना पौतकीरोषधारिणी ॥५५॥  
 कराम्बां पुरतो यातं लवं धृत्वा चुतुं च सा । निधाय तं लवं कन्यां धृत्वा हस्तेन तं कृपम् ॥५६॥  
 ययौ सुनैः सा रामेभ्य चदनी स्वस्थलं पुनः । सतीर्धर्वेहिना मीमांसा रजयामास राघवम् ॥५७॥  
 अथ रामोऽपि भीतायाः स्थित्वा मिहामनोपरि । अक्रुयोः पुनश्चापि बालकान्मग्निधारां च सः ॥५८॥  
 सीतायै दर्शयन् प्रीत्या लातयामास सादरम् । सीतायै राघवः प्राह ममायां गुरुणा पुरा ॥५९॥  
 यान्पुक्तानि सुचिह्नानि शिशूनां तानि चिह्नान् । धृत्वा राममुवाचानि माता तावत् परं ययौ ॥६०॥  
 राघवः प्रह्वं वैदेहोर्मिलापार्वाजिनम् । सीतेऽङ्गदं चित्रकेतुं लक्ष्मणाके निवेशय ॥६१॥  
 तन्नामरञ्जनं धृत्वा सीता धीमं शिशू ययौ । तावदुन्वाय सीमिविलज्जया संतुमुद्यतः ॥६२॥  
 तं मन्तुकामरामोऽपि दृष्ट्वा तौ मादृर्वा तथा । श्रुतकंति कजनयमञ्जवाऽचादयत्तदा ॥६३॥  
 ताम्बां धृतोऽथ सीमित्रिः स्मितस्माभ्यामुपाविशत् । तावत्तदक्रुयोः सीता तन्पुत्री सन्त्यवेशयत् ॥६४॥  
 तद्वच्च मग्नस्पर्शके निवेशय तद्यपुष्करौ । शृङ्गनाके सुबाहुं च पुष्पकेतुं न्यवेशयत् ॥६५॥  
 ततः सीता पुनः प्राह स्मिताभ्यः मे रघूदहः । राउशतूर्मिलापार्वा स्वैव स्वाभिनयादरात् ॥६६॥

राम आ रहे हैं तो आसनसे उठ खड़ी हुई । उभरसे राम भी बालकों के साथ सीताके समक्ष आगये । ४९-५९ ।  
 उस समय वे अपनी बायीं बाँधने धृतनु तथा दाहिनी गोदमें मंगदको लिये हुए च और सब कुश बाने-बाने चल  
 रहे थे । उनके पीछे बालकोंको लिये लक्ष्मणकी भी आने हुए सीताने देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लक्ष्मण सबको गोदमें  
 लिये थे और पुष्करका मग्न दर्हिने हाथकी उँगली पकड़ाये चल आ रहे थे । उनके बाद सीताने भरतको आते देखा  
 ॥ ५२ ॥ वे भी चित्रकेतु नामक बच्चको बायीं गोदमें लिये और दाहिना बाँधमें कवचकी नाई बाँधोवन्ते सुबाहु  
 नामक बेटको लिये हुए थे । ५३ ॥ उनके पीछे सीताने शृङ्गनाको देखा । वे रामजाके शम्भोंको लिये धीरे-धीरे  
 म्हुँकी ओर आ रहे थे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार उन्हें आते देखकर सीता रामका आर बढ़ी । कमरकी करघनी  
 और शूद्रर्षटिका अपनी कमरुतकी धारि कर रही थी और गरीब रजमों सीताम्बर सुशोभित हो रहा था  
 ॥ ५५ ॥ उन्होंने रामके पास पहुँचते ही लवका मुझ पुत्र । फिर गाँवमें उठा लिया और कनको दाहिने हाथ-  
 की उँगली पकड़ाकर रामसे बात करना हुई चली । उस समय भी च, रों आगते कितने ही सखियाँ घेरकर सीता  
 तथा रामको प्रसन्न करती हुई चल रही थीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी सीताके मिहासनपर  
 बैठ गये और बच्चोंको गाँवमें लेकर खेलाने लगे । कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने साताकी बाँधले मुने हुए  
 बालकोंके मुख लक्षण कह मुनाये । जिन्हें सुनकर साता बहुत प्रसन्न हुई । ५८-६० । उमिखा साताके ऊपर  
 पला मल रही थीं । इसी समय रामने सीतासे कहा कि अङ्गद और चित्रकेतुको मे आकर लक्ष्मणकी गोदमें  
 बिठा दो ॥ ६१ ॥ रामकी यह बात सुनकर सीता मटपट बच्चोंके पास पहुँची और उन्हें लक्ष्मणकी गोदमें  
 बिठाना ही चाहती थी कि लक्ष्मण राजाके मार चलनेको तैयार हो गये ॥ ६२ ॥ लक्ष्मणकी आते देखकर  
 रामने बाँधोये संकट कर दिगा, जिससे धृतिकोटि और माण्डवीने लक्ष्मणको पकड़ लिया । तभी सीताने  
 सब दोनों बच्चोंको लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दिया । ६३ ॥ ६४ ॥ इसी प्रकार भरतकी गोदमें सब और पुष्कर  
 तथा शृङ्गनाकी गोदमें सुबाहु और पुष्पकेतुकी बिठलवाया ॥ ६५ ॥ इसके बाद मुस्कराह हुए रामचन्द्रने

सतस्ता दृष्टुः सर्वाः यन्मभिलक्षिता धृताः । व्यजनैर्वाजपयासुः स्वं स्व कांठ सुनञ्जिताः ॥६७॥  
 एवं नानाकौतुकानि भोजनामनकर्मसु । कारयामास वैदेह्य बंध्यादीनां रघूत्तमः ॥६८॥  
 अथ रामो वसिष्ठ म एकदा प्रापयमग्रवीम् । कुशस्थां लवस्यापि वतवन्धो विधीयताम् ॥६९॥  
 तथेति गुह्या प्रोक्तस्ततो रामः शुभे दिने । गणकान् स समाहूय मंत्रयामास सादरम् ॥७०॥  
 कुशाय पंचमं वर्षं क्वचिन्न्यूनं लवाय च । ज्ञात्वा तै वणकाः सर्वे गुरुमुकादिकं बलम् ॥७१॥  
 दृष्ट्वा पंचांगपट्टेषु राशयं राक्षसमग्रम् । मासपस्याहमे प्रोक्तो द्वादशे वसिष्ठस्य च ॥७२॥  
 वैश्यस्य षोडशे वर्षे वतवंधो मुनीश्वरैः । जन्मात् पट्टे तथा गर्भान्मममेकमेव रूपस्य च ॥७३॥  
 वतवंधो त्रिधातव्या यन्नतश्च वनार्थिनः । मत्त्वर्चमकामस्य कार्यो विप्रस्य वचमे ॥७४॥  
 रातो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे । विद्वद्भिषोपमपनमेव क्षात्रेषु निर्णयः ॥७५॥  
 जतो गर्भान्च षष्ठेऽहरे पुत्रयोश्चैव रघूत्तम । मुखं कुरुपनयनं गृह्यते ऋणु सादरम् ॥७६॥  
 अथारभ्य पंचदशदिने दशं कुशाय ह । पश्चात्तरेण त श्रुत्वा मुहूर्तं रघुनंदनः ॥७७॥  
 गणकान् धनराशयैः पूज्य लक्ष्मणमग्रवीम् । आकारणीया राजानाः सुहृदश्च मुनीश्वराः ॥७८॥  
 सार्वपुराः सर्वराज्यं स्मृत्यज्ञानपदैः गृह । गृह्णारणीयाऽयोध्येय वसिष्ठाः सप्त सादरम् ॥७९॥  
 धोषर्षाद्यास्तथा माधवमूढेषु सुधाः शुभाः । दद्याच्चित्राणि लेख्यानि प्रासादेषु समंततः ॥८०॥  
 देशालयेषु सर्वेषु सुधा देवा मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि स्यात्पर्वता वलयः पृथक् ॥८१॥  
 वधनीयाः पलाकश्च रोषणीया वरजा अरि । मयद्वयस्तोरणानि बंधनीयानि लक्ष्मण ॥८२॥

सीतासे कहा—अब उभिला, अतस्तेति तथा माण्डवी अपने अपने पतिवोको पंसा डले ॥ ६६ ॥ इस बातको सुनकर वे रिणदी बनाने के मारे बढ़ते भाग जाती हुई । किन्तु ससियौ शौकर उन्हे पकड़ मासों और अन्तमें उन्हें रामके आज्ञाानुसार अपने अपने पति गोपर पंसा डलान पड़े ॥ ६७ ॥ इस तरह भोजन, भासन तथा भासनके समय गणचन्द्रजों कोना तथा भ्राताजाके साथ विविध प्रकारके कौतुक किया करते थे । ६८ ॥ कुछ दिन चं गोपर एक दिन वसिष्ठसे रामने कहा — अब कुश और लवका वतवन्ध ( यज्ञोपवीत-धरकार ) कर दालना चाहिये ॥ ६९ ॥ वसिष्ठने कहा—अग्रही बत है । एक पवित्र दिवसको रामने बहुतसे अयोधियीको बुलाकर हल्लह की ॥ ७० ॥ जब अयोधियीको यह बात मानुष हुई कि कुशका पौषर्ष वर्ष चल रहा है और लवका षष्ठ वर्ष है । सब उन्होंने गुरु कुशादिका बलादस बला ॥ ७१ ॥ पंचांगमें सब देख-सुनकर उन्होंने रामसे कहा—आहुणका उपनयन काडवें सर्वमें, सत्रियका बारहवें वर्षमें और वैश्यका सोलहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार होना चाहिये । यह बत-बते अधिवोने कहा है । अपना वस्त्र बदानेकी इच्छा रखनेवासी विप्र-को गर्भसे पौषर्ष वर्षमें, वंस्पृष्टिकी कामकायासे राजाको छठ वर्षमें एवं वनवृष्टिकी इच्छा रखनेवासी वीरको ब-ठवें वर्षमें ही उपनयन-सांकार करना उचित है । यह सास्त्रोका निर्णय है ॥ ७२-७३ ॥ अतएव हे रघूत्तम । आपके बच्चोंका गर्भसे लेकर यह छटां वर्ष चल रहा है । इनलिए इस समय इनका कतवन्ध करना अतिव्यय व्ययकर है । अब बच्चोंके वतवन्धके लिए सुन्दर गृह बनवाता हूँ, सो मुनि ॥ ७४ ॥ आपसे पन्द्रहवें दिवस कुशके यज्ञोपवीतका पवित्र मुहूर्त मिलता है । इस प्रकार एक पक्षके बाद यज्ञोपवीतका मुहूर्त सुनकर राम-चन्द्रजोंमें अनेक प्रकारके वतवन्धसे उन बच्चोंका पूजा की और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त राजाओं, विप्रों तथा मुनियोंके पास विप्र-मन्त्र भेजकर कहना दो कि सब लोग अपनी रिणदी, पुरवासिचों बना देशवासियोंके साथ इस उपनयनसंस्कार के उत्सवमें मेरे यहाँ पधारें । इस अवोभरा नगरीका अच्छी तरह तयवन्धो । इतकी आप वस्त्रों की हातो साइयोकी साफ करवा दो ॥ ७५-७६ ॥ महलोंको घनेसे पुतवा दो । बटारियों और कीबागोपर नाना प्रकारके चित्र बनवाओ । अयोध्याके समस्त देवालयोंको घूनेसे पुतवाकर उनमें नाना प्रकारकी चित्रकारियां करवाओ और तरह-तरहके पुजनका प्रबन्ध कर दो ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ चारों ओर पलाका

वेशः कार्या रुचमयस्यो बन्धनायाश्च यस्याः भू. र्गो. न. ॥ १८३ ॥  
 अन्येष्वपि यथायोग्यं यद्यजानामि लक्ष्मणः तन-कुम्भ. ॥ १८४ ॥  
 सद्रूपवचनं भुत्वा तथेत्युक्त्वा म. लक्ष्मणः । तथा चकार तन्मयं यथा रामेण शिक्षितः ॥ १८५ ॥  
 ततो मुहूर्ते श्रीरामः स्नानसम्पन्नपूजकम् कृत्वा कुमारैर्देवा यभुक्तोभिश्च चभुक्तिः ॥ १८६ ॥  
 नानालंकारवस्त्राणि परिधाय तैः सह पुण्याहवचनं चक्रे गुरुं पूज्य कृपाश्रितान् ॥ १८७ ॥  
 नांदाभादादिकं कृत्वा प्रतिष्ठां देवतस्य च । चकार मंगलैस्तूर्ध्वनारैः सीताममन्त्रितः ॥ १८८ ॥  
 ततो ययुः कोटिशस्ते पार्श्वे च मुनीश्वरा । यमदोषात्पद्माश्च यशोधाः महाहनाः ॥ १८९ ॥  
 तैः साऽयोध्या तदा व्यसमा विरेजे निवर्तते तदा । ततो मुहूर्ते दिवसे वसिष्ठो माह्वर्णयुतः ॥ १९० ॥  
 रामस्याथ कुशस्याथ मध्ये घृता वर ददम् । उवाच पद्मानन्दे सुस्वरैश्च भुगभुजैः ॥ १९१ ॥

प्यान्वा श्रीगणनायक विधियुतां शंसु विधि माधव

लक्ष्मीं शैलमुता विधेस्तु दयितामिदं सुगम्यान् ग्रहान् ।

पुण्यान्स्वावरनिम्नगाश्च मुमुर्नाम्स्त्रयोऽपि कुलप्रादिकां

तान् मानगमादरेण वटव भूषणमदा मंगलम् ॥ १९२ ॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव नागवत् चन्द्रवत् तदेव ।

विद्यामलं देववत् तदेव सीतापतेर्यन्मरण विषेयम् ॥ १९३ ॥

एति नानामंगलशयैस्तूर्ध्वोर्ध्वमनोहरैः । ओंकारचोर्ध्वः म गुरुर्मनोचोर्ध्वः पट तदा ॥ १९४ ॥  
 रतस्तं राघवस्याह्ने निवेश्य हवनादिकम् । विधिं कृत्वाऽथ कौषं न दण्डं चाथ कमण्डलुम् ॥ १९५ ॥  
 बहुध्वादी रुक्मजां मौजो बबन्धेणाजिनं तदा । ततः कुशाथ म गुरुर्गायत्रीमुपदिष्टवान् ॥ १९६ ॥  
 मण्यर्चयन्नदीनि स कुशाथोपदिष्टवान् । कुम्भोक्तवाधेना शीघ्रं कुर्यादाचमनं तथा ॥ १९७ ॥  
 सगवामो और जगह-जगहपर आज्ञा अ. र. रित करो । मुख्यका वंशिका बनवायो जायै ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ इनके सिवाय भी आज्ञा बात तुम्हें मानुम है और अन्न न बनवाय है, उन्हें भी ठीक कर देना ॥ १९४ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनो तो 'जो आज्ञा' ऐसा कनक ॥ १९५ ॥ इस दिन मुक्त था, उस रोज उबटन लगाकर उन कुंभ रो तथा सीता और माद्योंके साथ रामने स्नान किया । नाना प्रकारके वस्त्र-अलंकारों पर पड़न । सोमप्र तथा निम्नगणमें साथ हुए कृषियोंका पूजन करके पुण्यान्नान्न नान्द्राधाद, देवमाओंको स्थापना आदि कार्य पूरुनी और नगादेक बंगलम्ब निमादके साथ राम तथा सातान सम्पादित किया ॥ १९६-१९७ ॥ इनके बाद सानों हीपोंके करोड़ों राजे तथा ऋषि अपने-अपने परिवार एवं वाहनाक साथ वहाँ आ पहुच । उन लोगोंने सारी क्योण्या भरकर बड़ी सुन्दर मानुम पड़ने लगे । पञ्चापर्वत मुहूर्तके अवसरपर बहुतसे शाहूणाके साथ वसिष्ठजी राम और कुशके सम्मुख एक सुन्दर कपड़ेका पर्दा बाँधकर बाँडे तथा स्पष्ट स्वयं मङ्गलपाठ करने लगे ॥ १९८-१९९ ॥ उन मङ्गलमय श्लाकाका अर्थ इस प्रकार है- एणेत, सरस्वती, शिव, कदा, विष्णु, छत्ती, पार्वती, ब्रह्माणी, इन्द्र, समस्त देवता, सम्पूर्ण यह, पवित्र पर्वत तथा नदियाँ, अग्नि-अच्छ ऋषि, अपनी कुलदेवी तथा माता पिता इन सबको प्रणाम करके आगलोग प्रायश्चित्त करें कि जिस अर्चकेका यज्ञोपवीत सत्कार होनेवाला है, उसका कल्याण हो ॥ १९२ ॥ वही लग्न लग्न है, वही दिन दिन है वही विद्याबल तथा देवबल है, जिसमें सातापात रामचन्द्रका स्मरण किया जाय ॥ १९३ ॥ इस तरह विविध प्रकारके मङ्गलमय मन्त्रोंका पाठ करके गुरु वसिष्ठने ओंकार चक्रके साथ पर्दा लाल दिया । तदनन्तर वसिष्ठन लव-कुशको रामकी मोदमें बिठाकर हुक्मादि विधियोंका सम्पन्न किया । इसका अन्तरात् कुशका सुवचन तागत इती करणनी पहनायी, मृगचर्म बाँधा और कौपीन पहनायी । फिर उन्नत-अन्न-दत्त ॥ १९४ ॥ कुशको राग्यनी मक्का उपवेश दिया ॥ १९५-१९६ ॥ फिर ब्रह्मचर्यव्रतको नियम आदि बतलात हुए कहन लगे कि शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये



इन्वान् जिह्वां विशोषय कृत्वा मलविशोधनम् । स्नान्वाऽभ्युद्देवर्तमन्त्रैः प्राणानायम्य पत्नयः ॥१८॥  
 उपस्थानं रथेः कृत्वा संशययोरुभयोरपि । अग्निर्कार्यं ततः कृत्वा ब्राह्मणानभिवाचयेत् ॥१९॥  
 मृगयामुक्तगोत्रोऽहमभिवाचय हन्यपि । धारयन्मेतन्नां दण्डापवीताजिनयैश्च ॥२०॥  
 अनियेषु चरेद्भैरवं ब्राह्मणेष्वात्मवृत्तये । वाचयतो गुर्वनुहातो भुञ्जीताश्रमकृन्मयन् ॥२०॥  
 एकान्नं च मयवनीयाण्युद्धेऽभनीयाचथाऽऽरदि । द्विशः नैव भुञ्जीत दिवा कापि द्विशोऽयम् ॥२०॥  
 सायवातद्विजोऽर्ज्यायादग्निहोत्रविधानमिन् । यधु मांय प्राणिर्दिवा मास्कगलोकर्तुं जले ॥२०॥  
 क्षियं ययुषिरोऽन्तिष्ठे परिवादं विमर्जयेन् । यद्येष्टचेष्टो न भवेद्गुरोर्नयनगोचरे ॥२०॥  
 न नाम परिगृह्णीयान्परोक्षेऽभ्यविशेषम् । गुह्यनिदा भवेद्यत्र पारवादस्तु यत्र च ॥२०॥

भुक्ता पिपास स्थानस्य शान्त्यर्थं वा तनोऽभ्यतः ।

न माश्रा न पितुः स्वस्त्रा न स्वर्गकान्तर्गतता ॥२०॥

बलवर्तीन्द्रियाप्यत्र मोहवत्स्थितिकोविदान् । एवमादान्यनेकानि ब्रह्मचारिव्रतानि हि ॥२०॥  
 तस्मै गुरुभोषदिव्य रवी दानान्यनेकशः । भोजयामास तं माश्रा सह मानोत्सर्वस्तदा ॥२०॥  
 कारयिन्वाऽथ पालाशपूजनं विधिपूर्वकम् । तेनापि कुशशब्देन देवकस्य विमर्जनम् ॥२०॥  
 चकार राघवेर्गैव सीतया स गुरुस्तदा । ततो रामो नृपतिभिर्जनकेनापि पञ्चिजः ॥२१॥  
 चकार धनवस्त्रार्थस्तुष्टान् रिषान् नृपादिकान् । आर्चाङ्गालोत्पला रामस्तोषयाग्राम मादरम् ॥२१॥  
 एवं नानाभयुन्मार्हर्मायमेकं निनाय सः । रामा विमर्जयामास नतस्तान्पार्थिवदिकान् ॥२१॥  
 एवं कालांतराशमो ब्रह्मवर्षं लब्धस्य च । चकार पूर्ववद्वर्षसमाह्वय नृपादिकान् ॥२१॥

गये हैं, उनके अनुसार जोचसे निवृत्त होकर दाँत तथा जोष साफ कर लेनेके बाद वरुण देवत से सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रोक्त पाठ करता हुआ स्नान करे । फिर आचमन-प्राणायामादि करके दोनों भागकी सूर्यका उपाख्यान करना चाहिये । इसमें पश्चात् हवन करके ब्राह्मणका प्रणाम करे ॥ ६७-९९ ॥ प्रणाम करते समय यह भी कहना जाय कि अनुक्त काशका अनुक्त अग्नि मे आगकी प्रणाम करता हूँ । उन्मेषाष्टमके मोक्षो अथवा जहाँ तक हो सक, सुपाय ब्राह्मणोंके यहाँसे निष्ठा प्रोत्साहन अपना जीविका बनाय । किसीकी निन्दा न करे तथा मोनसतकी पालन कर और जब गुह्यकी अनुमति मिल जाय, तभी भोजन करे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ सदा केवल एक ब्रह्मका भोजन करे । ध्यादाँत तथा किसी आपत्तिमय कार्यका आ जानपर भी दिनमें दो बार भोजन न करे । ब्राह्मणको चाहिये कि केवल सूर्य शाम भोजन करे । मधु तथा पातका ब्राह्मण, गार्गिहृषा, जलमें सूर्यक प्रतिबिम्बका दर्शन, स्त्रीप्रसंग, वासी और बूझा भोजन तथा दूसरेकी निन्दा इन कामोंको छोड़ दे । गुह्यके सामान भजन इत्यानुसार जो चाह, सो न कर दाल ॥ १०२-१०४ ॥ पराजमे भी बिना विशेषण लगाये गुह्यका नाम न ले । जहाँपर गुह्यकी निन्दा हो रही हो अथवा उनकी ठठोली की जाती हो, वहाँ काम टाँककर बैठे या दूरसे उठ जाय । अपनी माता, बुद्धा अथवा बहिनके साथ भी एकान्तमे न बैठे ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं । वे बड़े-बड़े पाण्डित्योंको भी बातकी बातमें विचलित कर देता है । इस प्रकार गुह्यके बहुतसे उपाख्य ब्रह्मसम्बन्धी नियम बतलाये ॥ १०७ ॥ इसके अनन्तर अनेक तरहके दाँत दिये गये । भुक्तकी माताके साथ भोजन कराया गया ॥ १०८ ॥ एवं विधिपूर्वक पलाशका पूजन कराया । फिर कुल, सीता तथा रामके द्वारा ब्राह्मण देवताओंका पूजन कराया ॥ १०९ ॥ इसके बाद बहुतसे राजाओं तथा जनकजाने रामका पूजन किया । रामने बहुतसे जन-वर्षों द्वारा जाये हुए राजाओं तथा ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करके अयोध्यानिवासी ब्राह्मणोंसे लेकर ऊँचसे ऊँचे कुल उनके लोगोंको सादर प्रशंसा किया ॥ ११० ॥ १११ ॥ इस तरह माना प्रकारके उत्सवोंके साथ एक महानका समर्थ बिलाकर वेदमानीमें जाये हुए राजाओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा किया ॥ ११२ ॥ कुछ समय बीतनेके बाद बड़ी तरह उत्सवोंके

ततस्तौ बालकौ रम्यौ वेदाध्ययनमुत्तमम् । चक्रतुर्गुरुमन्त्रिभ्यो विधिवद्द्विसप्तमौ ॥११४॥  
 एव तेषां तु बालानां सर्वेषां रघुनन्दनः । अत्रवधविधानानि यथाकाले महोत्सवैः ॥११५॥  
 चकार गुरुणा विधेः समाहूय नृपादिकां । विशेषेणैजपुत्राभ्यां चकार स महोत्सवैः ॥११६॥  
 अकरोदाधिकं किञ्चिन्न न्यूनमकरोद्विभुः । ततस्ते बालकाः सर्वे नम्रचर्यवते स्थिताः ॥११७॥  
 चक्रन्ते गुरुमन्त्रिभ्यो वेदाध्ययनमुत्तमम् । अथ रामोऽपि वैदव्या बालकैः परिवारितः ॥११८॥  
 विरेजे स्कन्दगणपादिभिर्देव्या यथा छिवः । अथ ते बालकाः सर्वे कृत्वाऽध्ययनमुत्तमम् ॥११९॥  
 वेदादीनां गुरुमुत्ताल्लब्ध्या ज्ञानं गुरोस्त्वनतः । जगृह्मन्त्यानि वै कर्तुं सेनया गुरुमन्त्रिभिः ॥१२०॥  
 पृथिव्यां भरते स्रष्टे यानि तान्यानि तानि ते । कृत्वा समाययुः पञ्च मार्गैः स्वां नगर्गाश्वनैः ॥१२१॥

बालान्समागतान् श्रुत्वा शोभयिष्या निजान् पुगीम् ।

अन्युज्जगाम सौमित्रिः पुष्कृत्याश्च वारजम् ॥१२२॥

ते दृष्ट्वा लक्ष्मण नेमुप्तेनानिमित्ता अपि । नानोन्मर्षययुर्बाला अयोध्याया गृहं गति ॥१२३॥  
 मार्गे मार्गे पुगसांभिः सौधस्थाभिस्तु वपिनाः । वृष्टिभिः कुसुमार्शना दीपैर्नार्गाज्जिता अपि ॥१२४॥  
 ततस्ते बालकाः सर्वे सभायां रघुनन्दनम् । नेमुप्तेनानिमित्ताश्च ययुः सीतागृहं ततः ॥१२५॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सीतोर्मिला सा बाह्वी यथा । श्रुतकान्तिश्च वेगेन चक्रनीराजनं पृथक् ॥१२६॥  
 दम्पोदनधर्यदीपैः पकानैर्भर्तुलवाधितैः । सर्पैर्लवणमार्पणोपकुर्मैश्च सादरम् ॥१२७॥

ततस्ते बालकाः सर्वे नेमुः सीतां पृथक् पृथक् ।

ततो नेमुः स्वमानस्य पूर्वं नन्वा पितामहोः ॥१२८॥

ततस्ते बालकाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः

ब्राह्मणान् भोजयामासुः कोटिशस्ते पृथक् पृथक् ॥१२९॥

साथ सब लालको बुलाकर लवका यज्ञोपवीतसंस्कार किया ॥ ११३ ॥ फिर वे दोनों बालक गृह वसिष्ठके पास विधिपूर्वक वेदाध्ययन करने लगे । इसी रीतिसे रामचन्द्रने रामयन्मण्यवर लक्ष्मण भरत आदिके बन्धु-का भी व्रतबन्ध-संस्कार कराया और अपने लड़कोंसे कहकर उत्सव-दानादि किये । उसमे किसी प्रकारकी स्थिरता नहीं हान दी । वे बच्चे भी संकृत होकर विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करने हुए गुरुके पास वेदाध्ययन करने लगे । यह सब हुआ जानके साथ साक्षा तथा पुत्रोंके साथ बैठे हुए रामचन्द्रजी पार्वती, नणेश तथा स्वामिकांतिकेयक साथ बैठे । राजाके सहज सुन्दर लगते थे । इसके बाद जब उन बालकोंने अच्छी तरह विद्याध्ययन कर लिया तो एक विशाल सेना, गुरु तथा किनने हो मन्त्रियोंको साथ लेकर तीर्थयात्रा करनेको निजसे ॥ ११४-१२० ॥ पृथ्वीके भरतर्षभमे मिलने तीर्थ है, उत्र करके बीच महीनेमें वे सब बालक अयोध्या वापस आ गये ॥ १२१ ॥ लक्ष्मणने जब सुना कि लड़के तीर्थयात्रामे अयोध्या लौट आये हैं तो बहुतसे गार्जे-गार्जे तथा हाथी-गाँड़े साथ लेकर अगवानी करने गये ॥ १२२ ॥ जब उन्होने लक्ष्मणको देखा तो मस्तक झुका-झुकाकर प्रणाम किया और लक्ष्मणने उनको अपनी छत्तीसे श्या-स्याकर आलिंगन किया । फिर अनक प्रकारके उत्सवोंके साथ उनका महलामें लक्ष्मण । रास्तेमें अयोध्याकी नगरियां अटारगियोपर चढ़-बढ़कर उभरकर फूलोंकी वर्षा करतीं और आरती उतारतीं थीं । इसके बाद बालकोंने राजदरबारमें जाकर रामको प्रणाम किया और बहुते सीताके बहुलोक गये । वहाँ पहुँचनेपर सीता, उषिला, माँडवी तथा वृत्तकीर्तिने बल्लग-बल्लग उन बालकोंकी आरती उतारी । पकवान, दही, पान, तुलके बने पकवान, सरसों, धमक, जड़व तथा पानी भरे कलश आदि ढरकड़कर नजि दी गयी । इसके बाद उन सबोंने कौसरवा बादि तथा पिता और माँयोंको प्रणाम करके सीता आदि माताओंको प्रणाम किया ॥ १२३-१२६ ॥ उसके बाद जब बालकोंने माँति-भाँतिके दान दिए और अलग-अलग करोड़ों शत्रुओंको भोजन कराया ।

एवं नानोत्सवास्तत्र बभूवुः रामभक्तानि । अथ ते बालकाः सर्वे स्पर्शनारिषु सस्थिताः ॥१३०॥  
 दिव्यवस्त्राणि चित्राणि परिधाय समंततः । जयोज्यागजमार्गेषु हृष्टेषु च चतुष्पथे ॥१३१॥  
 आराधोपवमारण्यशटिकासु नदीतटे ममनागमने चक्रुः सेनया मंत्रिबालकैः ॥१३२॥  
 एवं साकेतनगरे बालकैः सीतया सुखम् । रेमे स बंधुभिर्भुक्तभिरं राजा रघुवहः ॥१३३॥  
 एवं शिष्य मया प्रोक्त जन्मकांडमिदं तव । कृशद्दीनां च जन्मानि वर्धितान्यत्र विस्तरात् ॥१३४॥  
 रम्यं पवित्रमानंददायकं च मनोहरम् । पुत्रपौत्रप्रदं जन्मकांडमेतत्सुखावहम् ॥१३५॥

जन्मकांडमिदं पुण्यं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।

तेषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च वियोगो न भविष्यति ॥१३६॥

जन्मकांडमिदं ये श्रुत्वा शृण्वन्ति मानवाः ।

तेषां स्त्रीणां वियोगो हि न कदाप्यत्र जायते ॥१३७॥

जन्मकांडमिदं पुण्यं याः शृण्वन्त्यत्र वै स्त्रियः । स्वपुत्रवियोगो न तां गच्छन्ति यथा समा ॥१३८॥

श्रायं देशान्तरं तीर्थं ये गताश्च चिरं नराः । तेषामगमनार्थं हि जन्मकांडं पठेद्विदम् ॥१३९॥

येषां भार्याणि कार्याणि लब्धुं न्यस्यते मनः ।

तैर्नरैः पठनीयं वै जन्मकांडं दिने दिने ॥१४०॥

पूर्वं दिने चैकादशं दिवारं चापरे दिने ।

एव नवदिनं बुद्धिमन्त्रैस्तु क्षयोऽपि हि ॥१४१॥

कार्यं नरैः स्वस्थचित्तस्तेषां कार्यं भविष्यति ।

वर्षमेकं पठेद्देवपुत्रोऽपि सभे सुतम् ॥१४२॥

पुत्रार्थं शान्नुशान्नुश्च धनार्थं धनमाप्नुयान् ।

एतान् कार्याश्च कर्माणि जन्मकाण्डभक्त्यल्लभेत् ॥१४३॥

इस तरह रामचन्द्रजीके भवनमें बनेक प्रकारके उत्सव हुए । वे सब रथ, हत्थी, घोड़े आदि सवारियोंपर सवार हो-होकर बगीचे, उपवन, वन तथा नदीतट आदिपर अयाच्याकं चौराहों तथा बाजारमें बनेक प्रकारके वस्त्र-आभूषण पहनकर मन्त्रियोंके लड़कोंके साथ आने जाने लगे ॥ १३६-१३७ ॥ इस तरह उस साकेतपुरीमें उन बालकों तथा सीताके साथ मानन्दपूर्णक रामचन्द्रजी रहने लगे । हे मित्र ! यह जन्मकाण्ड देने तुम्हें सुनाया । जिसमें कुश आदि बालकोंकी विस्तृत जीवनी वर्णित है । १३३ ॥ १३४ ॥ यह जन्मकाण्ड पश्य रम्य मानन्ददायक, मनोहर, सुखसौभाग्यका देनबाला और पुत्रपौत्रादिका दाना है । जो लोग जन्मकाण्डको सुनते हैं, उनका कभी अवन पृथ्वीआदिके वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता । जो लोग भक्तिपुवक इस जन्मकाण्डका श्रवण करन है, उनका अपना स्वर्ग का भी विषाग कभी नहीं होता । यदि स्त्रियाँ इसे सुनती हैं तो उन्हें अपने स्वामीसे कभी वियुक्त नहीं होना पड़ना बलिक लड़कोंके समान वे अन्यधर कामन्दसे अपना जीवन वितातीं हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ यदि किसीके परिवारका कोई अनुप्य किसी तीर्थ या परवेशको चला गया हो तो उस लौकिक लिए इस जन्मकाण्डका पाठ करना चाहिए । जिसको अपना कोई भारी कार्य सिद्ध करना हो उसको चाहिए कि पहल दिन एक बार, दूसरे दिन दो बार, तीसरे दिन तीन बार, उस भक्तसे बहुत-बढ़ते नवें दिन नौ बार जन्मकाण्डका पाठ करे । तबें जितसे एक-एक पाठ पढ़ाता हुआ फिर नवें दिन केवल एक पाठ करे । इस तरह यदि स्वस्थचित्तसे इसका पाठ किया जाय तो प्रत्येक कार्यकी सिद्धि हो सकती है । यदि इस विधिसे एक वर्ष पर्यन्त जन्मकाण्डका पाठ किया जाय तो पुत्रहीन व्यक्ति भी पुत्र प्राप्त कर सकता है । १३७-१४२ ॥ कह्योका

आनन्दरामायणमध्यसंख्यं आजन्मकार्त्तं दुनयप्रदे च ।

पारायणं संश्रवणं तथा वा करोति यो ना स लभेत्सुपुत्रम् ॥१४४॥

इति श्रीमच्छनकोटिरामचरितार्णवे श्रीमदानन्दरामायणे बालमोक्षोदे जन्मकाण्डे

कुशलयादौनां जन्मकथनप्रसन्नविस्तारो नाम दशमः सर्गः ॥ ९ ॥

— — — — —

जन्मकाण्डे सर्ग आनन्दरामायणे नवमेऽंशः । चतुस्तराष्टशतश्लोका विष्णुदास रामदासाभ्यामुपदिष्टः ॥१॥

उपवनदर्शनम् ॥ १ ॥ उपवनश्रीङ्गा ॥ २ ॥ सीताख्यामः ॥ ३ ॥ कुशलवोत्पत्तिः ॥ ४ ॥ रामरक्षा ॥ ५ ॥

कमलहरणम् ॥ ६ ॥ पुत्रार्थी संग्रामः ॥ ७ ॥ सीताग्रहणम् ॥ ८ ॥ बालानामुपनयनम् ॥ ९ ॥

मतलब यह कि जन्मकाण्डका पाठ करनेसे पुनर्जन्म, पुनर्जन्मार्थी घन तथा किसी भी प्रकारकी कामनावालेकी कामनापूर्ण हो सकती है इस आनन्दरामायणके मध्यमें स्थित जन्मकाण्ड सत्त्वगुणाधिक है । श्री मनुष्य इसका पारायण करता या सुनता है, उस सपुत्रको प्रार्थित होती है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरित-संस्मरते श्रीमदानन्दरामायणे बालमोक्षोदे पंच रामलेखणकाण्डेऽविरचिते ज्योत्स्ना भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे दशमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस जन्मकाण्डके कुल नौ सर्ग तथा अष्ट सौ चार श्लोकों द्वारा श्रीरामदासने विष्णुदासको उपदेश दिया है । ॥ १ ॥ उन नवों संगोप से कथानें वर्णित हैं । ( १ ) उपवनदर्शन, ( २ ) उपवनश्रीङ्गा, ( ३ ) सीताख्याम, ( ४ ) कुशलवकी उत्पत्ति, ( ५ ) रामरक्षा, ( ६ ) अथ द्वारा कमलहरण, ( ७ ) पुत्रोंके साथ रामका संग्राम, ( ८ ) सीताका पुनर्ग्रहण और ( ९ ) बालकाका उपनयनसंस्कार ।

इति श्रीमदानन्दरामायणे जन्मकाण्ड समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

— — — — —

श्रीमतीतापतये नमः

श्रीबाल्मीकिमहासुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## विवाहकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( स्वयंवरके प्रसंगमें रामका राजा भूमिकीर्तिको पुरीको प्रस्थान )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सभापथ्ये सविभिः परिवेष्टितः । तस्यो मिहामने रम्ये ब्रह्मोपशोभितः ॥ १ ॥  
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्दूतः समाययौ । नन्वा ममाया श्रीरामं प्यामिदुत न्यवेदयत् ॥ २ ॥  
पूर्वदेशाधिपतिना राज्ञा श्रीभूमिकीर्तिना । श्रेयिनोऽस्मि महत्तु द्रष्टुं स्वप्नादपकृजे ॥ ३ ॥  
पत्रं पाठन्वा श्रीरामं कार्या मत्स्वामिने कृणु । हन्युक्त्वा समदूनस्य को एव समर्पयत् ॥ ४ ॥  
रामदूतोऽपि सौमित्रेः पुरस्कारपत्रमाह्वत् । स्थापयामास वेगेन गन्वा तस्थौ निजस्थलीम् ॥ ५ ॥  
ततः स लक्ष्मणः पत्रं चरन्धनवेष्टितम् । समुद्रादय राघवः प्रपथात् सज्जलस्वनः ॥ ६ ॥  
हृषिकृशिमपुष्पं चैरङ्कितं कुकुमान्वितम् । दर्शनादेव मांगल्यसूचकं तोषकारकम् ॥ ७ ॥  
उवाच पत्रलिखितरक्षसलक्ष्मणः जनैः । स्थितः श्रीरामपुत्रोऽपरमहासनातिके ॥ ८ ॥

श्रीमान् श्रीगणेशेन्द्रो जयतु दशशिरस्तेजसार्थं जगत्पते

कौतुकायां नृपेशो दक्षयतनयश्चेति नाम्नाऽवतौणः ।

तस्याहं भूमिकीर्तितं पदजलहृद्योगन्धमावातु कामः

कृन्वा नैज शिरस्तु अमरवदनिष्ठं शार्थनां प्रार्थयामि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले—एक दिन रामचन्द्र सभाम अपने राजसिंहासनपर बैठे थे । उनके ऊपर सुन्दर छत्र लगा हुआ था और उनके चारों ओर कितने ही मंत्री बैठे हुए थे । इसी समय एक दूत आया और वह अपने प्रभुका संदेश सुनाने लगा । उसने कहा—पूर्व देशके अधिपति महाराज भूमिकीर्तिने आपके परणोका दर्शन करनेके लिए मुझे भेजा है । आप मेरे स्वामीपर कृपा करके यह पत्र पढ़ लीजिए । इतना कहकर उसने वह पत्र रामके दूतको दे दिया । उस दूतने लक्ष्मणके हाथमें दिया और प्रणाम करके पुर पर चले गया । १-५ ॥  
लक्ष्मणने सुन्दर कपड़ेमें बैठे हुए उस पत्रको खोला और मधुर स्वरसे बीचकर रामको मनाने लगा । पत्रपर दुर्गके फूल बने हुए थे और कुसुमक छोटे पड़े थे । जिसे देखनमात्रमें वह मांगल्यसूचक तथा आनन्ददायक प्रतीत होता था ॥ ६ ॥ ७ । पत्रमें जो लिखा था, उसे रामके पास जाकर बीरेबारे लक्ष्मण ने पढ़ा— ॥ ८ ॥ रघुवंशमें उपर श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जो राम रावणको मारनेके लिए दशरथके पुत्र

मम पीत्र्यावुमे राम चपिका सुमतीति च । तयोः स्वयंवराय सायाताश्च बहवो नृपाः ॥ १० ॥  
 नभुपुत्रैर्वधुभिस्त्वं स्वमुताभ्यां च संविधिः । सुहृन्नैस्तथा पौरैः सावरोधः स्वसेनया ॥ ११ ॥  
 अगच्छस्व मम पुरं यधि कृत्वा महत्कृपाय् । दिकतां प्रार्थनां मे त्वं वा कुरुष्व त्विमां प्रभो ॥ १२ ॥  
 इति पत्रार्थसाकर्ण्यं स्वस्थचित्तो रघूनमः । स्वयंवरं ततो गन्तुं गुरुणा निश्चयं व्यधात् ॥ १३ ॥  
 ततोऽमरीन्म सौमित्रिमद्य सेनां प्रषोदय । शोऽहं गच्छामि पुत्रार्थां स्वया मंत्रिजनैः सह ॥ १४ ॥  
 भ्रातेनार्थं पुष्पाक पुत्रैः शत्रुघ्नमप्युतः । स्वयंवरं सावरोधः पौरैर्जनैर्ददौः सह ॥ १५ ॥  
 विजयो नगरीं गन्तुं शक्तितुं स्थापितो मया । अयं वै वसुमेधाभिः बहिर्येथानि लक्ष्मण ॥ १६ ॥  
 पथान् शोधयन्वद्य नानादत्तास्त्वरान्विताः । गच्छन्तु सकला कार्यः पुष्पकेण विहायता ॥ १७ ॥  
 तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा चक्षत स यथोदिनम् । राघवेण समामभ्ये प्रबद्धकरसंपुटः ॥ १८ ॥  
 ततो द्वितीयदियसे प्रसाधे रघुरन्दनः । स्नानं निन्द्यविधिं कृत्वा निनाया शीतं स पुष्पके ॥ १९ ॥  
 स्थापयामास कुण्डेषु भुज्ज्वा सह नुरञ्जनैः । ततः सीतां समाहूय स्वयंभास राघवः ॥ २० ॥  
 ततः त्रिपलदा सर्वाः दीनाया रुक्मभूषिताः । यानमभिरुह्यः शीघ्रं दिव्यवस्त्रादिमण्डिताः ॥ २१ ॥  
 ततो रामो गजारूढो वरच्छत्रोपगोभितः । यथाश्रे चामरावैर्जीवितश्च मुहूर्तद्वयः ॥ २२ ॥  
 रामाग्रे चाणारूढो ययी शीघ्रं गुरुन्तदा । राघवस्य पृष्ठभागे करिस्थो लक्ष्मणो ययौ ॥ २३ ॥  
 ततः कुशायास्ते सष्टौ बाला जम्भुर्गजस्थिताः । ततो भरतश्चक्रुः प्रो नामतुर्गजमस्थिनौ ॥ २४ ॥  
 ततः सर्वे मंत्रिणश्च पौग जानपदादयः । नानाकहजमस्थास्ते ययुः सर्वे स्वरान्विताः ॥ २५ ॥  
 चतुर्दन्ते शुक्लवर्णं वारणमवमोद्भवैः । मस्थिनो राघवो रेजे मुक्तामालाविराजिते ॥ २६ ॥  
 एवं रामः सुनैर्माणैर्बन्दिमगाधमप्युत । कृष्वत् वाद्यनिनादाश्च ययौ पूर्वदिशं सनैः ॥ २७ ॥

होकर कीर्तन्यासी काचमे आये है । मैं सूर्यकीर्ति भ्रमरकी नाईं उनका चरणकमलोंको सौधन्वी कामन्दसे  
 राव-दिन प्रार्थना करता गृहता हूँ ॥ १० ॥ हे राम । मेरी चपिका तथा भुमति नाचकी दो पीत्रियाँ हैं । उनके  
 स्वयंवरमें बहुतसे राजे आये हुए हैं । अतएव आपस की प्रार्थना है कि अपने भ्राताओं पुत्रों, भ्राताओंके  
 पुत्रों, मंत्रियों, मित्रों, घरकी मारिणों, पुरवासियों तथा मेजाके साथ घेरे इहाँ ग्वारं हे प्रभो । मेरी इस  
 प्रार्थनाको विफल मत कीजिए ॥ १०-१२ ॥ इस प्रकार उस पक्षी जागेका स्वस्थचित्त होकर रामचन्द्रजी-  
 ने सुना और स्वयंवरमें आयेक लिए गुरु बहिरुम निश्चय किया । इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि आप  
 मेनी भेज दो । कल हम, तुम, अथ, कुजा, मंत्रियों, घन्ते तथा भुम पीगोंके पुत्रों, मित्रों तथा पुरवासियोंको साथ  
 लेकर स्वयंवरमें चलेंगे । विजयको आगच्छना तथा दणको रत्नाक लिए नियुक्त कर दिया जाय । हे  
 लक्ष्मण ! तुम आज सभी ठाम्भूकनात आदि भज दो ॥ १३-१५ ॥ अग्यष्ट कुछ दूतोंको रालता डाक  
 करनेके लिए आगे भेज दो । चरकी मारी स्त्रियोंको पुष्पक विमान द्वारा पहल ही भेज दो ॥ १७ ॥ लक्ष्मणने  
 रामको सब बातें मान लीं और जैसा उन्होंने कहा था, सो सब करके दिया । १८ । दूसरे दिन रामने  
 सबरे उठकर स्नान और नित्यकार्य करनेके अनन्तर सब भ्राताओंके साथ बैठकर आज्ञा किया ।  
 मन्निहोत्रकी अग्नि बँगाकर पुष्पक विमानपर चलो ॥ १९ ॥ इसके बाद सीताको चुनाया और बन्दी  
 तैयार होनेके लिये कहा ॥ २० ॥ सीता आदि नारियोंने सुनहले वस्त्र तथा आभूषण पहने और पुष्पक विमान  
 पर आ बैठी ॥ २१ ॥ इसके बाद राम एक मुन्दर हाथीपर बैठकर चले । उस समय उनके ऊपर ज्येष्ठ छत्र  
 लगा हुआ था और सेवक उनपर चैवर डाल रहे थे ॥ २२ ॥ सबसे आगे गुरु बसिठका हाथी था, उसके पीछे  
 राम और रामके पीछे लक्ष्मणका हाथी था ॥ २३ ॥ उनके पीछे भुम आदि प्राणी इन्हीं और भरत-शत्रुघ्नका  
 हाथी चल रहा था ॥ २४ ॥ इन सबके पीछे मन्त्री तथा पुरवासी अनेक प्रकारको सवारियोंपर सवार होकर  
 पीछतासे चले जा रहे थे ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी ऐरावतके कुलमें उत्पन्न चार दातवासे तथा मोतियोंके शुभो-  
 वृणोमिष्ठ हाथीपर बैठे हुए बड़े सुन्दर लग रहे थे ॥ २६ ॥ इस तरह धन्वीजन-आगाध आदिकोंके हाथ

लवार्चनेश्वरा बला सुनन्दा वाक्पद्मश्रीन् पदयन्त शालिक बाल लव श्रीगणेशाय नमः ॥३२॥  
 स्त्रीकर्म स्वल्पवयसं मीनालालिपुनमम् वान्मीक्षिकुपया लवविष्टं रम्प कुशानुजम् ॥३३॥  
 पुणोर्वनं मुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां दृष्टुः । कुशाके चपिकेर ते श्रमा पङ्क्तिस्त्वताऽथ हि ॥३४॥  
 तथा स्वमपि मो भुम्भे लवाके मस्थिता भव इति तस्यां च श्रुत्वा सुनन्दायाः स्मिन्तानना ॥३५॥  
 लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवननानना । समलित्तित्रयाद्भ्यामपयाभास मालिकाम् ॥३६॥  
 तदा निनेदुर्वाणानि जगुन्मं मायकास्तदा । ननुर्वाणामर्थं तुदुर्वाण्डिमागधाः ॥३७॥  
 भूरिकर्तिवृत्तुष्टो लवाके सुमतिं नदा । शीघ्रं निनेयमाम पञ्चपूर्णमनोन्मः ॥३८॥  
 तोषमाप रघुश्रेष्ठः पीता ग्रामादसंस्थिता । जालरघ्रः सपत्नाक लव दृष्ट्वा तुतोष सा ॥३९॥  
 ततः सर्वभूषान् पूज्य मूरिकर्तिनृपोत्तमः । प्रार्थयामास शिखरवर्चनमगुप्तः स्थितः ॥४०॥  
 विवाहकीतुक दृष्ट्वा भवद्विगम्यतामिति । तथेते ते नृपाः प्रोचुर्गुणमस्थलादि हि ॥४१॥  
 रामासं मयं कर्तुमयमर्थां गतश्रियः । श्रान्तानना मनोन्मादाः कामवापप्रपीडिताः ॥४२॥  
 रामोऽपि बन्धुमित्रार्थयथी वामस्थल मुदः । प्रथमं दिनं गन् भूरिकर्तिः ममाययौ ॥४३॥  
 पुणेधसोपविष्टः ममन्वा राम रचोऽववान् । द्रष्टव्यो लज्जितामः मुमुहूर्तः मुस्तावदः ॥४४॥  
 माममीदृक् रामाय तन्नादाश्रयकमुकम् । उमयोम्व मण्डपयाः कायाप्यावापय प्रमो ॥४५॥  
 तथेति राघवशोकत्वा वभिष्टु चादयत्तदा । सोऽपि गमाकृया ज्योतिःशास्त्रज्ञः परिवेष्टितः ॥४६॥  
 मुहूर्तं कथयामास पञ्चमंडलि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकर्तिगणेशं लग्नपदिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाकी आसं चलनका सुकल किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुबाहु, पुंकर, तेल, भिन्नकेतु तथा अंगदको छोटता हुई वह लवके पास पहुँची ॥ ३१ ॥ जब सुधात लवका आर दमन लगा तब सुनन्दा बाला न्हे बोले । इस बालकको देख, यह रामका पुत्र है । यह प्रणम विमान करना चाहता है । इसकी यादो उमर है । सीताके द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है । वाल्मीकि वृद्धाश्रम इस जन्म में इस प्रांत हुई है और यह कुशका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू मानन्द इस अपना दात बनाकर इसके मनेय बरमाया डाल दे जिस तरह तुम्हारी बहिन चम्पिका नृपकी मादम बेटी ने उगा तरह आ तुम्हें तू भी लवकी सोचसे बँठ जा इस प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्कगया और सज्जावत मस्तक मुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके मनेय बरमाया डाल दी ॥ ३४-३६ ॥ उस गाय मस्तक प्रकारक बान बज, गाववाने गाने गाये, वेमार्थे नाचने लगी और चन्द्रोन्नत स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महागज भूरिकर्तिने प्रसन्न होकर सुमतिकी लवकी मादम बिठा दिया ॥ ३८ ॥ वह देखकर रामचंद्रजी तमा अटारीपर बैठी सीता दोनों प्रसन्न हुए । जब सारीजोसे सीताने लवका मादम मुमतिकी बेंग दल ता उनकी प्रमप्रताका ठिकाना मही रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकर्तिने वही आये हुए गव राजाओंका पूजा करके विनयपूर्वक प्रार्थना की—॥ ४० ॥ जब माप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर आइया । राजाओंने भी उनकी बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने देवपर चल गये ॥ ४१ ॥ वे सब राज रामसे मुद्र करमम असमयें ॥ अतएव उनकी श्री नेष्ट हो गया था, मुख दृष्ट्वा गया था, उससे भग हो गया था और बेचार कामक बाणोंस पादित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने भाइयों और बचचोक साथ प्रमप्रतापूर्वक डेरेपर गये । इसक बाद दूसरे दिन राजा भूरिकर्ति रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुराहित उनक साथ था । वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा लव-दिक्क तथा सुत्रदायक मुहूर्त विचारिए । फिर कहा है राम । मनेने बरणाके मस्तक मुक्त रासकी प्रार्थनाकी बलीकाद करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हो, उनक लिए माता दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ “अच्छा” कहकर रामने बसिप्रकी आर सक्त किया । बसिप्रने रामकी आज्ञासे ज्यतिवशास्त्रको जाननेवाने किहने ही पंडितोंके साथ विचार करके उनके पाँचरे दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया । इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे भूरिकर्तिने गणेशजी, लग्नपदिका, गणकी, पण्डितों, वैदिक आदिकों तथा रामके साथवाले बंधुजनों को

काचिन्पक्वो भोजनं तु काचिन्पाकस्य मत्किंवाप ।

काचिन्मकरगदना पुनःकेश ययौ जगत् ॥४६॥

धाननासिगिना कारिणिक्कास्य ऋपने कम्प । ययौ वंगेन लज्जना चरत्रावाटनस्यकम् ॥४७॥  
 क्षालयन्ती ययौ पादावेक प्रक्षाल्य कामिनी । पञ्चजयह माल्यं तु नावच्छ्रया मवापयम् ॥४८॥  
 मीनया समचन्द्रं हि शीघ्रं दृष्ट्वा मा तदा । काचिद्दर्शं नृस्यमाना दूरं कृत्वा पतेर्मृगम् ॥४९॥  
 दृष्ट्वा राक्षसं द्रष्टुं ग्रामादेः द्रष्टव्यदृष्ट्वा । काचिद्विनिर्दिष्टा मत्री स्वकस्या निद्रां नराभिरिता ॥५०॥  
 विनिर्णयकज्ञा मन्दलंवा निद्राकान्विता । नेत्रभ्यां कुचिनान् केशान् चामयन्ती जराश्रयी ॥५१॥  
 स्वकचाऽस्वकां हि काचिन्वा कुर्वन्तं करमांजलिम् । ययौ वंगेन ग्रामाद् अन्वा राखययाम् ॥५२॥  
 काचिद्भजे कनूदी मा कर्तव्यं चापरे कुजे । कर्तुकामा ययौ शीघ्रं तथैव प्रसदोत्तमा ॥५३॥  
 काचिदेके पदे कृत्वा नृपुणर्दानि भाषिनी । अपरे कर्तुकामा स तथैव कृत्वा त्रयस्य ॥५४॥  
 कथयन्ती शुभां वार्तां सापन्थुः पृथः स्थिता । श्रुत्वा रामे मवापन्त दृष्ट्वा मत्राणांविनी ॥५५॥  
 कचिन्मित्रपतिं पात्रे कुर्वन्ता पश्यपश्य भूमी न्यक्त्वाऽष्टपात्रं मा ययौ रामं निर्गक्षितम् ॥५६॥  
 काचिन्मत्वा दिव्यत्रया कुर्वन्ता मप्रदक्षिणां । नृक्षीं च महादेवं श्रुत्वा राम ययौ जगत् ॥५७॥  
 काचिद्रज्जुयुग्मं कुर्ये कृपां तस्यांभुषणा । स्वकचा मन्त्रयुग्मं कुर्ये दृष्ट्वा दुर्निमानना ॥५८॥  
 काचिन्महालोक स्तन्यं गृहं पश्ययन्ती वधः कुचरोवालकं श्रुत्वा तथैव मा ययौ जगत् ॥५९॥  
 काचिन्मा परिधायान् चम्रं कच्छं करेण मा । कर्तुकामा ययौ वंगान् देवातुल्यमनकम् ॥६०॥  
 एव कर्मापनेकानि कुर्वन्त्याः पुनश्चिदा । चिदापानि मवापि ययौ रम निर्गक्षितम् ॥६१॥  
 दृष्ट्वा रामं यजमर्थं ना पवर्षुः पुनश्चिदांनः । उन्मत्तं परस्परं नार्यः शत्रोऽद्वैतसंस्थिताः ॥६२॥  
 भन्या सा रामजनेनी कीमन्त्या या स्थूतवम् । सुपुत्रं मन्त्राजितं परिपूर्णजीरथा ॥६३॥

भोजन कातो थी और पाई भोजन बना महीना मा उसको जगता एक छोटाका भागी । कोई कालोको  
 वेशा २४॥ थी, वह केशक हाथसे धाये हो दौड़ पड़ा । किमोका पति अचिन्त कर रहा था । इसनय  
 रसका आगमन सुना ली स्वादीका हाथ छिड़कर जोड़ आये । कोई अपने पतिके पैर धो रही थी, इसने  
 एक पैर धोकर दूसरा पवता हुआ कि उसे खबर लगी कि स राके गहिर गम्य था रहे है, वह नृगन्त  
 ओडकर आनापुन चढ़ गता । कोई पतिक साथ कथापर मंत्री थी ॥४६-५०॥ इससे उसको ओमोका कात्रल  
 सुंभरमे पक गया । वह भा यह समाचार पावे ही ओमोका सामनवाले वायाका इटाही हुई दीरी ॥५१॥  
 कोई उदहन लया रही थी, वह एक हाथसे सडा मट्टानता हुई दौड़ पड़ा । किमोका पति कामोन्मत्त होकर  
 आगमन कलना चरता था । वह भा एक हाथसे साडी मट्टानते हुई चली आयी । ५१॥ ५३॥ कोई  
 कामिन नृपुण पहन रही थी । वह कनल एक ही पैरमे उसे पवनकर मरना ओमोका दौड़ पड़ी ॥५४॥ कोई  
 पतिर बल कर रहे था । वह जहीनक बात कर चुकी थी वही हा छुडकर दौड़ आयी ॥५५॥ कोई पतिक  
 लिए भोजन बना रही था, वह भी पायको ओका मने छुडकर उसको देखने लिए दौड़ पड़ी ॥५६॥  
 कोई गान कर लूणसी लया । महादेवको प्रदक्षिणा कर रत था वह भा रामका आगमन सुनकर उसे मन्त्रा  
 हा छुडकर भाग चली । ५७॥ कोई चन्द्रनृग मन्त्रां वरुण पाना करने गया थी, वह रम्भा और दश  
 नृगमे ही एककर चढ़ पड़ी ॥५८॥ कोई लकाजक मन्त्रां देव पला रही था, वह मन्त्रकका थियो हुए ही दौड़  
 आयी ॥५९॥ कोई भोजन ओमोका कामोन्मत्त अचिन्त आता थातो थी, वह मादे काह पते  
 हुए ही चली आयी ॥६०॥ यह प्रकार उनक लगन का रम्यो हुई मिथ्या अथवा अपना काम छुडकर  
 रामके दमानक लिए छुटन और छुटपन आ खड़ा हुं ॥६१॥ दक्षीणर पैरे हुए रामको देखकर रिश्या  
 उनपर फूटीकी चर्का करता हुई आपसमे इस प्रकार बातें करती थी-॥६२॥ रामका मला पीछला मन्त्र



काश्चिद्वृक्ष सा धन्या सीता जनकनदिनी । यस्या विव धरममुरीकृत्नेऽत्र सा ॥६४॥  
 काश्चिद्वृक्षस्तथा तर्हि जानकया दृष्टकर ॥६५॥ पूर्वजन्मनि यन्पुत्राद्वानतः प्रियाऽभवत् ॥६५॥  
 काश्चिद्वृक्षं च मन्दमारुपास्तु जगतीतले म तादृश्यो न जा ॥६६॥ स्व गन्धेन इत्यपगः ॥६६॥  
 इति नानाविधा वाचस्तर्गा भृष्वन् रघुनमः यत्रो म गजम गग नृपकल्पामन्दिरम् ॥६७॥  
 तत्रावहत् सागेन्द्राद्विदेशे व्रजमदिग्म् । तस्थी मृगेन जनिवग वंदुमिवालके प्रभुः ॥६८॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

स्वयंवरात् भूरिकोक्तः पुत्रं प्रति श्रीगणेशमन्त्रं प्राप्तं प्रथमं सर्गः । १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( राजा भूरिकीर्तिकी पुत्री चम्पिकाका स्वयवर ,

श्रीरामदास उवाच

अथापरदिने तर्हि भूरिकीर्तिः समाययी । नन्वा प्राद रघुलेष्ट मभामागन्तुमर्हसि ॥ १ ॥  
 तथेति राघवश्चोक्त्वा बालकं स्वमभूषितं । कनकनूतनयथेष्टु कचुकोष्णापमण्डितः ॥ २ ॥  
 द्रुतं पिथाय त्रिभुवनं कटेव बोधय यतः । भूषितं गृह्णति छात्र शिष्येकार्थः समाययी ॥ ३ ॥  
 मन्वाथ ये नृपाः पूर्वमावनेषु च संस्थिताः । भुम्गा राम ममागन्तं सधनकलन्पुरो ययी ॥ ४ ॥  
 चक्रः सर्वे राघवाय प्रणामस्वाधिवेत्तमाः । नेपां नामानि रामाय दार्ढ्यशब्दं प्रथक् प्रथक् ॥ ५ ॥  
 विशोर्णाश रामदूतः श्रोतुर्व धेनुपाययः । वसु लकरभूषाभिभूषितः सुदितानवाः ॥ ६ ॥  
 गजगज नृपधाय कर्णार्द्रपथ स्थितः । चित्रवस्त्रे प्रणामांश्च करोति त्व विलोकय ॥ ७ ॥  
 राघवेन्द्र नृपधाय श्रीमान् द्रविडदेशजः । ननुकण्ठो प्रणामांश्च करोति त्व विलोकय ॥ ८ ॥  
 दोनानाथ नृपधाय विदर्भेऽपथे स्थितः । अश्वनाथः प्रणामांश्च करोति त्व विलोकय ॥ ९ ॥

जिनहोंने १५ विराज राम जैसे पुत्रको जन्म दिया ॥६३॥ कोई कहन लगी कि जनकनन्दिनी सीता  
 यही है कि रामचन्द्रजी जिनके अवरगमक प्राप्त करन हे ॥६४॥ कोई नाथ-नाथ हुआ है कि सातान  
 -जन्ममें दुष्कर स्वप्न का ची, तिरक प्रमादस से आज राजराज रामचन्द्रजी त्रिश दशू बना हैं ॥६५॥  
 द्रुत निगो कहने लगी कि हम लन वडा अमागिना हैं, जो सातका दसा होकर भा रामका सवा तहो कर  
 नेकी ॥६६॥ इस तरह नाता प्रकारका बात सुनत हुए रामचन्द्रजी राजभास खडकर हावासे उत्तर और  
 न ना भूरिकीर्ति द्वारा सजाम हुए जवनमें गये और सजा, अज्ञाता तथा बालकोक साथ टिक ॥६७॥ ६८॥  
 इति श्रीमत्कोटिरामचरितं नमन श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे प्रथमः सर्गः । १ ।

श्रीरामदास बोले इससे बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति स्वयं रामक पास पहुँचे और प्रणाम करके  
 राम को—हे रघुलेष्ट ! अब समाप्त चालिए । 'अच्छा' कहकर रामन को सुवर्णक आभूषण पहने,  
 न के सुवस्त्र बने अच्छे-अच्छे दान धारण किधे, परतलेमें सज्जित कमरबन्द कसा और शिर्विकापर बैठकर  
 बालकोक साथ सभाभवनका आर चले । १-३ । जो राज बहल हा स समामे बकर बैठे हुए थे, वे  
 गजका आगमन सुनकर सकचका उडे जाय रामक सामन जा पहुँचे । ४ ॥ उन्होंने भगवानको प्रणाम  
 किया । राजा विरकी एग दशो दोड़े और हाथमें बत लिये हुए रामक दूत ऊपर-ऊपर बालकर इस प्रकार लनका  
 न वनमान लगे—हे राजाओंके भा राजा राम ! देखिए कणाटक देशका रहनवाला यह विजय नामका राजा  
 बन्दका प्रणाम कर रहा है । ५-७ ॥ इसर दसिए हे रामदेव ! यह द्रविड देशका निवासी कम्बुकण्ठ नामका राजा  
 बन्दका प्रणाम कर रहा है । यह विदर्भ देशका अधिपति अनाथ नामका राजा आपका

महाराज नृपथाय भागध विषये स्थितः । परतपः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥१०॥  
 सीताकान्त नृपथायमवनिभ्यः प्रत्ययान् । उद्यवहुः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥११॥  
 रघुवीर नृपथाय स्थितो हृदयपतने धनयन्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥१२॥  
 हे राम नृपतिशाय युग्मेन स्थितो महान् युगेगम्ने प्रणामाश्च करोति त्वं विलोकय ॥१३॥  
 कामलद नृपथाय हारद्वारस्थिता महान् नापान्दये वज्रकीर्तनः करोति नमनं तव ॥१४॥  
 अयोध्येन नृपथाय कालगविषये स्थितः हेमामदस्तटेऽप्येव करोति नमनं तव ॥१५॥  
 रानपारे नृपथाय नागरचनमस्थितः पाट्योऽयं मतिमान् शूराः करोति नमनं तव ॥१६॥  
 एव तेषां प्रणामांश्च भावयन् स्वभगादिभिः । विद्वज्जंघर्षाभिर्बालैः सभायां मन्त्रिभिः प्रभुः ॥१७॥  
 तत्र सिंहासने दिव्ये पश्चिमायां ततो दक्षिणः । उपाविशन्म पूर्वोत्पलवचामरमण्डितः ॥१८॥  
 रामस्य सभ्ये सीतामर्दिर्ककेयवनयोः स्थिताः । तन्मन्त्र्या रामयामे कुशाया मन्त्रिबालकाः ॥१९॥  
 अश्वत्थसव्ये सतम्बुः सुमन्त्राद्याः शूमन्त्रिण । नभयामुनरे याम्ये पत्नी मर्दे नृपादिकाः ॥२०॥  
 नैमिरेखोपमास्तम्बुः स्वसुहृन्पुत्रमन्त्रिभिः पञ्चिमाभिमुख्याः सर्वा ननृतुर्वीर्योपिताः ॥२१॥  
 अट्टालसंस्था विमाद्या ददृशुः कानुक महत् । ततो नदन्मृ चक्षुषु धूपेषु प्रज्वलन्सु च ॥२२॥  
 नतन्मृ चारुनारायु पायन्मृ मागधार्दपु म्नुवन्मृ चक्षुषु सभायां नृपवीरिके ॥२३॥  
 शिविकस्थे दिव्यवस्त्रदिव्यलकारमण्डिते । नवरत्नमहामालाधूतस्य करोपये ॥२४॥  
 ते सुपाञ्चमनू रम्ये यमाग्रस्थ विरजतुः । नयानैवकटाक्षं मित्तममस्थला नृपाः ॥२५॥  
 चक्षुर्विक्रताः सर्वे कामरागविशेषतः । न नदा लेभेर शर्मे शुष्ककर्णार्द्रनालुकाः ॥२६॥  
 समीता चरिकानाम्नी बहुलोणा द्वेषे ह । ईशदोणाश्च सुमतिः सर्वा वा सखिवेश ह ॥२७॥

प्रणाम करता है, इसे दर्शाया ॥ १० ॥ हे राम । दिव्य, सभ्य देशकर रहनेवाला यह परत्तप नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १० ॥ हे भावकांत । अग्निदेशका निवासी और महापलायनाधी यह उपदाहु नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ ११ ॥ हे रघुवीर । यह हेमनगरका रहनेवाला प्रदीप नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १२ ॥ हे राम । युग्मेन नामक रहनेवाला यह युष्म नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ हे कामलद । हे हृदयपतने नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ १३ ॥ १४ ॥ अथाप्ययं 'सुहृन्पुत्र' कहिये देशम रहनेवाला यह हेमामद नामका राजा आपको प्रणाम करता है ॥ हे पाट्यार । नागरचनकर रहनेवाला युद्धनार तथा अति पराक्रमी पाण्ड्य नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ रामचन्द्र को सबकी आज निहाय तथा संस्त आदिके लोगों के प्रणाम स्वीकार करके अपने आताओं और बालका के साथ सभाभवनमें प्यारे । वहाँ पश्चिमकी तरफ रखे हुए एक दिव्य सिंहासनपर पुर्वका और मुख करके बैठे । उस समय भी उनके ऊपर कुछ लगा था और चमर चले रहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ रामकी दाहिनी सभ्यमें लक्ष्मण भरत आदि आता बैठे । बायीं ओर कुश आदि सह लड़के तथा मन्त्रिगुरु बैठे । अश्वत्थका दाहिनी बगलमें सुमन्त्रादि मन्त्री बैठे । सभाकी उत्तर और दक्षिण पश्चिम गालाकार बनाकर सब रत्नमय पुत्र तथा मन्त्रिशके साथ बैठे थे और पश्चिमकी ओर मुख करके वेसपायें नाच रही थीं ॥ १९-२१ ॥ अतोऽयं परतप' हुए शत्रुण यदि नगरनिवासी वहाँका कोतुक देख रहे थे । इसके अनन्तर जब वर वर वरना लग्यो । उसके पुत्रको मगनिव उड़ने लगी, वेसपायें नाचने लगी मागध-नट आदि विविध प्रकारके गायन करने लगे और वन्दन व लहलहाकर स्तुति करने लगे । उसे क्षयद शिविवाप सड़कर दिव्य वस्त्र तथा अलंकार पहिने नवरत्नकी बनी एक बड़ी-सी माला हाथीव लिये वे दोनों सुन्दर । कन्यायें सभामें आ पड़ची । उनके लेखकट भ्रम मायल तथा कामके बाणसे विदीर्णहृदय होकर कितन ही राजा विकल हो गये । उनके हाँड और तालु सुख गये । उस समय कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था । ये समस्त शक्तिवाणसे चमकते तथा ईशानवाणसे सुमति नामवाली कन्या प्रविष्ट हुई

अथोपमाता वृद्धा सा धृतहस्ताग्रयणिका ममोया च ऐकानाम्यै दक्षिणस्थान्पृथक् पृथक् ॥२८॥  
क्रमेण वर्णयामास तदा नृपतिमसमात् । तथाऽन्या च ममाप्राध धृतहस्ताग्रयणिका ॥२९॥  
मुनन्दाकथाऽतिउग्रहा सुमर्यै नृपतीन्क्रमात् । वर्णयामयोऽसम्मानुत्तमाना पृथक् पृथक् ॥३०॥  
अथ सा चण्डिका प्राह नीन्वा तां नृपतेः पुरः । अत्रैकाग्र्यां चापमाना नन्दा सामर्ग्याजिता ॥३१॥  
राजकन्ये अपिकेऽत्र मृणुष्व यच्चनं मम । एत नृप वर्णयाम पश्य त्व मदनोपमम् ॥३२॥  
पांश्याऽयं मतिमान्नाम्ना नाशयत्तनमस्थितः । शूरा रथ्या नृपत्रेष्ठः प्रज्ज्वालनतन्धनः ॥३३॥  
यदि ते रोचते चित्ते वरयैन्नमनुत्तमम् । अथ त्वं मदिरा भूत्वा नाशयत्तनमस्थिता ॥३४॥  
क्रीडस्व मुदिताग्नेन वरप्रायःपराजितम् । नन्दीन्तं चपिता भूत्वा द्वयैर्वाक्यमनुत्तमम् ॥३५॥  
न च वन्ध मनस्तस्मिन्ननृपतो मतिमन्तस्य । बोधयामास नन्दा तन्मन्त्रे गन्तुं नृपन्तम् ॥३६॥  
तदाऽन्यं नृपतिं नन्दा नीन्वा तां शिविकास्थिता । चण्डिकां प्राह चैव पश्यन्तं शान्तिके नृपम् ॥३७॥  
कलिकविषयस्थोऽयं नाम्ना हेमाङ्गदो यदान । को देशो वाणदण्डाणां तस्य गण्डव्यालदिपु ॥३८॥  
मुक्ताजालानिगुच्छाश्च राजन्ने कमलानने । त्वं नाना मदनमयः । गच्छैः सागरस्य च ॥३९॥  
पश्यन्ती कौतुकं बाले कमेपि कण्डनादिचक्षुः । तस्य साङ्गस्य दे त्वं मां मुञ्चताऽयं कन्यके ॥४०॥  
त्युक्ताऽपि तथा तन्यी नन्दया चण्डिका नृपे । तन्मन्त्रे नन्दा न च वन्ध न्य गन्तुं नामचोदयत् ॥४१॥  
सपत्नीमयमालस्य सपत्नीकस्यजिप्यति । अमहानिति शक्यं नन्दया मुञ्चिताऽपि सा ॥४२॥  
तनोऽन्य नृपतिं गन्वा नन्दा प्रोवाच चण्डिकाम् । पश्यन्तं नृपतिं मुञ्चे हरिद्वानिवापिनम् ॥४३॥  
नीशान्वयममुद्धृतं ह्यवधाचिव निशाकरम् । यदातां नृपन्तस्य कान्यां जयति मण्डले ॥४४॥  
यज्ञकीर्तिरिति ख्यातः पृथ्वीश्वः प्रमदाप्रियः । यथैतं नृप पुरि रुक्मभूषणभूषितम् ॥४५॥

॥ २२-२७ ॥ चम्पिकाके साथ एक जहाज़ / धई । गङ्गा में, जो नवम एक छाटा नी। लड़ा दिखे थी । वह दक्षिणको तरफ घड़े राजाओंक वृणन करने लगी । २८-३० ॥ मुकुन्द, चम्पिकाकी एक राजाके सामने लायी । उस समय भी चम्पिका पालसीपर बैठा था और चरण चर चर रह थे ॥ ३१ ॥ मुकुन्द चम्पिकाका सम्बोधन करके कहत लगा—हे राजकन्य चम्पिके ! तू अने पुत्र देना, यह कामदेवके समान सुंदर भति बुद्धिमान् पाण्डव नामक राजा नागपत्न्यक रहितवाया बड़ा पराक्रमी, रथा, सब राजाओंमें श्रेष्ठ और प्रजापालनमें उत्तम है । ३२ ॥ ३३ । यदि कुछ अच्छा लग तो इसको मन्त्र कद लो । तुम इसकी राजरानी बनकर नागपत्न्यमें आनन्दक साथ अ-शुभसे बचोगे । चम्पिकाकी ये बातें उसे दुर्घर्षक तथा व्यर्थ-सां जान पड़ी । उस राजापर उसक व्यवसन नहीं उठी और दूसरे राजाके पास चम्पिका संकेत किया ॥ ३४-३६ ॥ फिर मुकुन्द जिह्वामय वैरा चम्पिकाका दूसरे राजाके सामने ले जाकर कहने लगी । ३७ ॥ हे वालिके ! इसे देखो यह महान् काश्यप देशका रहस्यवान्, हेमाद्रय नामका राजा है । इसके गण्डमधस्वर हाथियोंका गजमुक्ताओंमें बने मूर्च्छाग्रकन रहत है । इसकी राती बनकर तुम गङ्गोत्री की विटकिरीस सनुदकी लहरोंक कोयल इतनी हुई बिहार करागो । अब, अब इसे पण्डित करके तुम हमकी समस्त मित्रोंकी प्रधान बन जाओ ॥ ३८-४० ॥ इतना कहते-जनमपर भा उसका मन उस राजापर गया जमा और बाग बदनका संकेत किया । ४१ । क्योंकि चम्पिका यह स्वीकार हुआ कि इसके यहाँ सपत्नी मौन का दर है । दूसरे “अमहान् शब्दका प्रयोग करके नन्दान भी खडा-सा संकेत कर दिया था ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर दूसरे राजाके पास पहुँचकर नन्दा कहने लगी—हे मुखे ! इस राजाको देखो, यह हरिद्वारका नवासी है ॥ ४३ ॥ जैसे सनुदसे चन्द्रमाका उत्पत्ति हुई है उसी प्रकार यह पवित्र तीर्थ राजाक वंशमें उत्पन्न हुआ है । अनेक राज्योंकी करमेसे जवन भरमे इसकी कति फर्म चुकी है ॥ ४४ ॥ इसलिए लोग इसे मजकीति कहत हैं । सुवर्णके आभूषणोंसे सज्जित इस राजाको तुम घर लो । यह बिल्लूत भ्रमादका मालिक है और

अस्याद्य महिषी भूत्वा गङ्गार्यागिषास्परा । नैकास्मा पश्यमि त्वं ह वर्येन नृपोत्तमम् ॥४६॥  
 अस्य पत्नी वरिष्ठा त्वं मय माऽग्रे व्रजावले । इत्युक्तं त्रि तया तस्मिन्नेव वचन्ध निजं मनः ॥४७॥  
 त्वं वरिष्ठा मा भवेति नन्दयाऽग्रे व्रजेष्वा चोदय नाम मा नन्दाग्र्ये गन्तुं नृपोत्तमम् ॥४८॥  
 नन्दाऽग्र्यस्य नृपं नान्ता चरिकां प्राह वंगतः । पश्येन नृपतिं सुधे शृङ्गेनाह्वये वरे ॥४९॥  
 द्वेषं कमेति वै राज्यं सुपेणोऽप्यनुत्तमः । तुमहा वाद्युपेमाश्च यस्य पत्नी सूर्यादृष्टः ॥५०॥  
 यस्यांगणे वारनागेनृपस्य पत्निरज्ञानशम् वर्येन चापिके यं नानन्दवदानमम् ॥५१॥  
 अस्य च महिषी भूत्वा जन्मना कल्पवर्षां कुरु । तस्मिन्नेव लुप्तं श्रुत्वा तथा वाक्यमनुत्तमम् ॥५२॥  
 न वचन्ध मनस्तस्मिन् नृपती ता न नोदयन् अयं मा चेदिति नन्दा नन्दाऽग्र्यं नृपतिं क्षणम् ॥५३॥  
 निनाय त्रिविक्राम्वां तां चरिकां प्राह मादम् । पश्येन नृपतिं वन्द्यं त्वं हृदयपतने ॥५४॥  
 मह्यं नृपवशस्य भूषणं कल्पवर्षमम् प्रकथय इति नन्दाऽग्र्यं वदन्तः शृणु महारथी ॥५५॥  
 वर्येन नृपं माऽग्र्यं गच्छ हेमवत्सुविणि । अन्तर्ध्वं वदति भूत्वा रेवायां पतिता मह ॥५६॥  
 करिष्यामि जलजोडां चरिष्ये शृणु मद्रज । इत्युक्तं त्रि तया नन्दा न वचन्ध मनो नृपे ॥५७॥  
 वर्येन नृपं मेति नन्दाऽग्र्यादमहारथी । नृपाग्र्यं ते कथं द्वे श्रेया इत्येव वदन्तमा ॥५८॥  
 पृथु सा नानृपाणां सा वर्णनं नि पृथक् पृथक् स्तुतिष्यन्त्येव । शुश्रूषन्ती नृपाग्र्यमा ॥५९॥  
 जगाम शिवाकामस्या सतन्दा भरतानुत्तम । सुमन्त्रादीन् ज्ञाप्य श्रुत्वा श्री राममान्त्रणा ॥६०॥  
 ततः प्रोवाच मा नन्दा पश्येन भरतानुत्तम । कोमलेन्द्रियं शमस्य गन्धमकोदरोपमम् ॥६१॥  
 अपेक्षया चानिने रामराजकाक्यानुवर्तिनम् वर्येन तस्मिन्नेव वन्द्यं वन्द्यं स्वमा भव ॥६२॥  
 इत्युक्तापि तया तन्वी शत्रुघ्ने तिज्जमानमम् । न वचन्ध भृशं संतापयन्तं गतुं चकार ताम् ॥६३॥

त्रिवर्णोत्तम वरिष्ठा प्रेम करला है । आज यदि तुम हमरा साथ रह करोगे तो मैं बहुत बड़ा बड़ा राजा को अपूर्व लक्ष्मिणी देखांगी । मेरी जान मान तो जीव इसी जगता पति बन कर जाये । अब आज्ञा मिल रही है । ऐसा कहतेपर भी उसका मन उस राजा पर नहीं रमा और जगें चलेगा महल निवा । ४५-४८ । नन्दा भी दूसरे राजा के सम्मुख पहुँचकर कहते लयो 'इत्युक्ते' इस राजा की आज्ञा । यह राजा ने नामिक दशमे रहता हुआ राजा नरसी है । इनका गुणन नाम है । ननु के मत में देवकी ने बहुतसे छोटे दसके पक्ष हैं किन्तु ही मृगीको तन्व नेवावालो निगी भी इनके ही है । इसके अतिरिक्त राजा वर्यायें सोचने रहती है । हे चरिष्ये नृ इमे पश्यन्त कर ले । देख ले राजा नृपक राजा इत्या भी मुँह है । राजमर्दिनी बनकर तु अपना जीवन सुकल कर ले । उस राजा को वर्याग्र्य कह कर लक्ष्मिणी राजा । न राजापर भी नहीं रमा और नन्दा को लगे वर्या के लिए भोले किया । उसके संतान ने ही चरिष्ये को स्वस्थि पक्ष भरण भरमे एवं दूसरे राजा के पास पहुँचकर बोली है बाल । इस राजा को देखकर वह वैद्व्यपतनका रहनवरा, कनकक रुद्रा कायल तथा सरस्वतीनका वंशज है । यह वर्या पाँदा एवं महारथी है और प्रत्यक्ष हम नामसे विद्वान है । ४९-५५ । इसकी वरकर तु अपने साथ सम्मन्य पदवर पहुँची । इसकी महिषी बनकर तु पति के साथ नर्मदा नदी में सानन्द विहार करोगी ॥ ५६ ॥ तया कहतेपर भी वह चरिष्यिका को ऊँझा नहीं लया । क्योंकि नन्दा ने भी कहा था— 'न नृपमा वर' यानी इसे मत पसन्द कर' दूसरे 'ममहारथी' शब्दसे भी तिस्कार ही किया था । इसलिए वह भी अन्ता नहीं लया । नन्दा के दुष्टक वर्या को यह श्रुत महकती थी ॥ ५७ ॥ ५८ । इस प्रकार अनेक राजाओं के पुत्र पुत्र वर्या तथा स्तुतिक अन्तर्गत लक्ष्मिणी का सुनती हुई पालकीपर बैठा ही चरिष्ये राम के मन्त्रा मन्त्रादिकों को लपकर अवगत कर पास पहुँची ॥ ५९ ॥ ६० ॥ नन्दा ने कहा— ये भरत के लड़के हैं किन्तु राम के संगे भाई जैसे मान्य पद है ॥ ६१ ॥ ये लयोपामे रहते हैं और राजा राम को आज्ञाओं का पालन करते हैं । चरिष्ये नृ इन्ही के साथ विवाह करके धनकीर्तिके बहिन बन जा ॥ ६२ ॥ इन्ना कहनेपर भी शत्रुघ्ने उसका मन नहीं

ततः सा भरतं नीत्वा नन्दा तामाह मञ्जुलम् । शत्रुघ्नस्याग्रं चैनं हँकेषा जट्रोद्भवम् ॥६४॥  
 रामसेवारतं शतं पुषानं दयित्वाप्रियम् । वर्येन बालिकेऽथ माहम्या मरयुजले ॥६५॥  
 करिष्यमि जलकीडां नौकाया भग्नेन हि । तनयान्संज्ञया नन्दा लक्ष्मणं चपिकां जवात् ॥६६॥  
 नीत्वा सौमित्रिकीनि तां वर्षयामास मादगम् । पश्येत्तं लक्ष्मणं बाले सुमित्राजट्रोद्भवम् ॥६७॥  
 जयोष्मत्तामिनं रामसेवाभक्तं मनोहरम् । वर्येन चपिकेऽथ मेघनादप्रमर्दनम् ॥

शेषांशमभवं सौमित्राया वीरस्वया मव ॥६८॥

सर्वान् भुन्वा रामसेवाभक्तान् पन्वीपुनानपि । छत्रचामादीनां च रोचयामास ताम् सा ॥६९॥  
 ततस्तन्मज्ञया नन्दा श्रीगमाद्ये स्वयवरम् । नीत्वा तामाह मधुरं स्तोतुं तं ग्युनन्दनम् ॥७०॥  
 मइते चपिके देव येन पश्यमि राघवम् । धन्योऽहमपि या रामं दृष्ट्वा स्तोतुं पुरः स्थिता ॥७१॥  
 काहं मंदमतिर्नामि क रामो गुणसागरः । नाहं नन्मवने शुक्ला बाष्पीकिर्यत्र कुण्ठितः ॥७२॥  
 छतकोटिमितः श्लोकैश्चरित्र राघवस्य च । सुमित्रा दर्शितं तच्च श्रुतकोट्यश्रुतमितम् ॥७३॥  
 तस्याह वर्णनं किञ्चिन्करोमि यन्छणुष्व तत् । सूर्यवशभूषणं श्रीदशमयनुदात्मजम् ॥७४॥  
 कौमल्यातनयं रामं माध्वाभागत्यगं विभुम् । ताटिकास्तकरं वीरं गाधिराष्ट्रपालकम् ॥७५॥  
 महन्योद्धारिणं श्रेष्ठं शिवनार्यकण्ठदनम् । जानकीवन्द्यं च रघवं जामदग्न्यदवानलम् ॥

नृपवर्द्धकज्ञेनार भगवदणदयिनम् ॥७६॥

ताताबापालकं भ्रात्रा वीनयाऽप्यवामिनम् । विराधमर्दनं इवाशं सारद्वयमर्दनम् ॥७७॥  
 त्रिशिरामृगमारीचकरन्धवालमर्दनम् । समुद्रवधेन लकराभसान्तकरं प्रभुम् ॥७८॥  
 रावणतपप्रहारीं सीतया राज्यकारिणम् । तीर्थपूजप्रकर्तारं रत्नाकीडजनन्याम् ॥७९॥

रामा और रामो बल्लभकारकत किया ॥ ६३ ॥ इसक बाद नन्दा चम्पिकाको लिय हुए भरतक सामने पहुँचकर कहते लगी —ये शत्रुघ्नक बड़ भाई अन्न के लोको के लक्ष्मणे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥ ये भी रामकी सेवा करते हैं । इन मान्ते युवा एवं दयित्वाप्रिय भरतको घर ले तो तुम इवी तथा भरतके साथ समूक जलमें विहार करोगे । हे भी शोक नहीं अब नो चपिकका लक्ष्मण पकर नन्दा लक्ष्मणके सामने पहुँचो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वह चपिकासे कहते लगी—छ सुमित्र के लक्ष्मणे उत्पन्न लक्ष्मण हैं । ये अयाऽऽगमे उत्पन्न हुए चामकी सेवा करते हैं । तु इन मन्दर, मेघनादका नाश करनेवाले और श्रेष्ठ भगवान्के अंगमें उत्पन्न लक्ष्मणके साथ ग्राह करके अमिलाकी महिम्न बन जा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ सऊ भाई नेको रामक मेजक, समुद्रमर्दहीन तथा ग्राह मृगकर उसने सीतो बाइपोमसे किमंका भी लही पलाइ किया ॥ ६९ ॥ इसक बाद चपिके मकेत करनेपर वह भागे बरती हुई रामचन्द्रजीके सामने जा पहुँचा । तब भ्रात्री रामकी स्तुति करती हुई इस तरह बोली—॥ ७० ॥ हे चम्पिके ! मुहतरा महोभय है, जो तुम रामचन्द्रजीको रक्ष रही हो और मैं भी अब हूँ जो रामकी स्तुति करनेके लिए इनके सामने उपस्थित हुई हूँ ॥ ७१ ॥ कहां मैं एक मादमनि गर्रा और कहां गुणोंके लणर रामचन्द्र । मैं इसकी स्तुति कानम कैसे समझ हा सकती हूँ जब कि बन्माकि जैसे महान् कवि भी पूरी सीरसे वर्णन नहीं कर सके ॥ ७२ ॥ जन्तोरे सो करोइ प्रनामान हो वजन किया है भी कवल इनके भी करोइ अशोकी स्तुति हुई है ॥ ७३ ॥ मैं अपनी बुद्धिके अनुसार य ईन्में स्तुति कर रही हूँ, सो मुम । ये सूर्यवशके भूषण, महाराज वंशरथके पुष, कौमल्याके मनय और सवठरायक मञ्जु नारायण है । इन्होंने दृष्ट ताइकाका वध करके विश्वामित्रक यमकी रक्षा की है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इन्हन अहंन्याका आपस मुक्त किया और शिवधनुष तोडा है । ये सीताके वल्लभ, वरगुरात्मके कोपकपी बनके दयामय, राजाओंक समूहको ओतनेवाले तथा भरतके जीवनदाता है ॥ ७६ ॥ ये पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, काई उदा सीत के साथ कनोंमें रहनेवाले, विराधके नाशक, श्यामरूपधारी और कर-दुपमके नाशक हैं ॥ ७७ ॥ त्रिशिरा तथा मृगरूप धारण करनेवाले मासीचके वधकर्ता, कवन्य तथा नासिकी मारनेवाले, समुद्रम सेतु बाँधनेवाले और लंकानिवासी एकसेके पिता-

जानकीन्यासकर्तारं भीताग्रहणतन्त्रम् । कुशलवत्प्रजाश्रयां च पाउपर्यं पुष्टकारिणम् ॥८०॥  
 एकपत्नीयत्वं ज्ञानं सन्ध्यायनतन्त्रम् । एकवाणसमन्वयाननामानं मरुनिश्वजम् ॥८१॥  
 कोविदारध्वजं वामध्वजं वज्रध्वजं शुभम् । तार्क्ष्यध्वजं पुरुषकर्म्यं तार्क्ष्यवायुज्वहनम् ॥८२॥  
 नानागजावनमभ्यसुनादीन्मन्त्रिजोभितम् । वाहिहामनामीनं छत्रवाणसमण्डितम् ॥८३॥  
 वरयेनं चापिकेशं मीनकां यज्ञं गणम् । नवर्षश्चाश्वत्थं मण्डोपाधिपेशपि च ॥८४॥  
 बाणः दन्तीचो गच्छेन्नान्यं सः खेदोवा , नवर्षश्चाश्वत्थं मण्डोपाधिपेशपि च ॥८५॥  
 हनुका नद्या बाला नवर्षपुण्या विधेर्वज्रम् । न वरन्ध्रं मणो मणे सीतां मन्मथ्य चपिका ॥८६॥  
 एकपत्नीयत्वं सधं सीतया क्षयजेनि च ।

खेदं मा चर तन्कण्ठे मालां मा रुरु चादिना ॥८७॥

तत्तत्सर्वतया नदा तां निनाय कुशं प्रति । प्रोवाच मधुरं शक्यं कुशवर्णनद्विपित ॥८८॥  
 एन एवान्पवयस श्रीशायनतनयं कुशम् । ननर्कान्तरे दुर्गं जोगुं मार्यानिनं शुभम् ॥८९॥  
 लवाग्रतं धनुर्दनिगुणं विनयान्वितम् । पित्रा नमामस्तु नानदीकिञ्चिद्विनिश्चितम् ॥९०॥  
 एनं हृणीष्व बाले त्वं सुरमानसस्तुतम् । नवरत्नमयीं मालामय्य कण्ठे सुखं कुरु ॥९१॥  
 इति नन्दावचः श्रुत्वा चपिका सा स्मितानवरा ।

मुमोच मालिकां कण्ठे मयकगम्पां कुशस्य हि ॥९२॥

तदा निनेदुर्वाधानि तुष्टुर्बन्दिमानध्या । लज्जपाउधोमुनी गेते सभायां कुशबालकाः ॥९३॥  
 तदा सुखो भूरिकीर्तिः कुशकिं चम्पिकां शुभाम् । स्थापयाम म वेगेन पश्यन्मु नृपनीपु च ॥९४॥

शक महाप्रभु है । ८८ ॥ रावणको मारनेवाले सीताके साथ राज्य करनेवाले, तीर्थ-यशकर्ता एवं सीताके साथ विहारकारी है । ८९ ॥ इन्हीं सीताका त्याग किया और फिर वापस बुला लिया इन्हीं अपना यज्ञ पूर्ण करनेके लिए अपने बेटों स्वर्ण के साथ भी पुष्ट किया था ॥ ९० ॥ ये एकपत्नीयत्वं, वाण, सन्ध्यायनी, एक वाण तथा अस्तमयन-मधारी है । ये वा वारध्वज, वामध्वज वज्रध्वज तथा गरुडध्वज हैं । पुरुष, गरुड तथा हनुमान्जी इनके वाहन हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ये वरुणस राजाओंके युवकुमार हैं और मालिकाके प्रकाशसे इनका चरण सुगन्धित रहता है । ये एक अन्धे सिंहासनपर बैठा है और उसपर सुन्दर छत्र चमर गोमित्र रहता है ॥ ९३ ॥ हे चम्पिके ! तू इन्हें वर ले और सीताके साथ रहनी हुई इनकी सेवा कर । ये नवी मण्डा एवं माता दीपाके अधिपति हैं ॥ ९४ ॥ ये किन्ना अन्य रथाविषयक बालाका वाणकी नाई समझत है । अब तू किसी प्रकारका सोच-विचार न करके यह नवरत्नोंकी माला इनके गन्धर्व डाल दे ॥ ९५ ॥ इस प्रकार नन्दाके समझाने-पर भी भाग्यवश तथा सीताका स्मरण करके राजा भी उसे मन्त्र नही जाय । ९६ ॥ दूसरे नन्दाने भी अपने दण्डनमें कहा था कि एकपत्नीयता है, दुर्मेण सीतया अभव । सीताके साथ रहना पसन्द न कर ॥ ९७ ॥ तत्प्राप्त चम्पिकाके सन्तान नन्दा उसे वशके सामने ले गया और इस तरह कुशकी भी वर्णन करती हुई कहने लगी- ॥ ९८ ॥ इनकी देखो, इनका अभी थोड़ा उमर है । ये रामके तनय तथा सीताके पुत्र हैं । इनका नाम कुश है । ये लवके बड़े भाई हैं । अभी इनका विवाह नहीं हुआ है । इसलिए ये भार्याही हैं, ये धनुर्वदनिगुण, विनीत स्वभाव पिताके साथ समान करनेवाले और महानुत्त वाग्मीकके शिष्य हैं ॥ ९९ ॥ १० ॥ अतएव मन्त्रियों और वैज्याओंसे सम्मान इन कुशको पसन्द करके तू इनके कंठमें यह नवरत्नमयी माला डाल दे । ९१ ॥ इस प्रकार नन्दाकी बात सुना तो हँसकर उसने अपने हाथोंसे कुशके कलेस परमाला डाल दी ॥ ९२ ॥ उस समय विविध प्रकारके वाज वज्र उठे और नन्दोजन तथा भ्रातृ ने खुश की । उस सभामें लज्जासे नीचा गुन बिसे बैठा हुआ बालक कुश ही सुन्दर लग रहा था ॥ ९३ ॥ उस समय प्रसन्न होकर राजा भूरिकीर्तिने सब राजाओंके सामने ही चम्पिकाको कुशकी गोदमें बिठा



मैत्रं नृपं वयसि शिशिना सा मुनन्दया । ओदयामास तां वृद्धा माता निन्दे नृपतम् ॥ १४ ॥  
 मुनन्दा दानिकामाह मृणुम् मृगलोचनं । पश्येत् नृपतिं मय्ये द्रविदं विषये स्थितम् ॥ १५ ॥  
 कम्बुकण्ठाय भेटुं कान्तिपुर्यां निगमनम् । एनं नृपं पूर्णाध्याय मां व्रतन्त्य दशेनम् ॥ १६ ॥  
 कान्तिपुर्यामननं त्वं सर्वलोचनोन्मये । क्रौञ्चं मत्तस्य निर्वाणे हेमकञ्जिगारिते ॥ १७ ॥  
 विष्णुं चरदग्जान्द शिवोक्तमवकाशम् । पूजयन् मदास्तेन कम्बुर्यावनृपेण च ॥ १८ ॥  
 पूर्णाध्यायं त्वं मां मां मां मां नृपतम् ॥ दानि कृद्वाचः श्रुत्वाऽग्रे तां गन्तुं प्रचोदयत् ॥ १९ ॥  
 मुनन्दाऽन्धं नृपं नीन्दा मुमतिं शक्यमवर्तन् । पश्येत् नृपतिं मृगये मत्तमानङ्गमिति ॥ २० ॥  
 कर्णोद्विगयस्य स्य विजये चादिगोनम् । कमलस्य कञ्जहस्त कमलमिगमुज्ज्वलम् ॥ २१ ॥  
 श्मितायं कनकपत्रं विजयस्यपुत्रस्थितम् । मृणुम् वचनं मृगये पूर्णाध्यायं नृपतम् ॥ २२ ॥  
 अरुणं त्वं महिषः मृगये वने कृद्वाचदंजलम् । मुग्यं नृपेण क्रीडस्य मदास्य मृणु मां व्रज ॥ २३ ॥  
 मदास्य मृणु मेन्मुक्ता भ्रुवा शक्यमनुनम् । मदेति मुनिता दाना चोदयामास तां पुनः ॥ २४ ॥  
 एवं जानातृपणां च वर्णनानि पृथक् पृथक् । स्तुतिरूपनिषेधीनि भ्रुवा द्वयार्थानि वार्तिका ॥ २५ ॥  
 न वरय मेवः कामिभूपती तेषु सा नदा । वनज्वा शिविकामर्या मुनन्दा च सुनः क्रमान् ॥ २६ ॥  
 अतिक्रम्य रामप्रतिपालकानपि पुनश्च । युपकेतुं शिशुं नीन्दा वार्तिकां शक्यमवर्तन् ॥ २७ ॥  
 मुनन्दननयं बालं युपकेतुं मनोहरम् । पितृव्यं रामनमदयवाक्यानुवर्तितम् ॥ २८ ॥  
 एन पश्य बालिके त्वं सावधानमना भव । वरयेत् युपकेतुं प्राग्ग्रे मच्छ नृपतम् ॥ २९ ॥  
 मैत्रं वरय मच्छाग्रे वृद्धया केति चोदिता । मुनन्दा वादयामाग्रे गन्तुं सुमतिः पुनः ॥ ३० ॥  
 सुवाहुं पुष्करं लघमेवं सा सुमतिः पुनः । विप्रकेतुपुष्करं च न्यक्त्वा सा तु त्वं वयो ॥ ३१ ॥

॥ १३ ॥ यहाँ सा मुनन्दाने "एनं नृपं मा वरय ( एनं राजाको मत कर, ) यह दृष्यन्क वाक्य कहा था जिससे सुमतिने आगे चलकर का संकेत किया। तब वह उसे दूसरे राजाके समान ले गयी ॥ १४ ॥ और कहने लगे—हे मृगलोचन ! इस मुरार राजाका दण्ड, यह द्रविददेशका निवास है ॥ १५ ॥ इसका कम्बुकण्ठ नाम है। यह कान्तिपुर्याम कहते हैं। तु इस मरुत को अब किसी अन्य राजाको दखनको इच्छा मत कर ॥ १६ ॥ कान्तिपुर्यामे तु अतिशय शिवाल गुणकमलसे युक्त अनन्त सचताम्भ इसका साथ सानन्द विहार करेगी और इसका साथ वरदराज नामक विष्णु भगतात् तथा "मदेति न मक शिवका पूजन करेगी। साधारण राजाओंको तरह हों और भी न छोड़, इसको पर ले। इस प्रकार वृद्धा मुनन्दाकी बात सुनकर सुमतिने उस आगे चलकर संकेत किया ॥ १७-१९ ॥ तब मुनन्दा उस दूसरे राजाके पास ल जाकर कहने लगी—हे मुग्य ! हे मत्तमानङ्गमिति । तु इस राजाका दण्ड ॥ २० ॥ यह कर्णोदक दण्डका रङ्गनाया विजय नामक राजा है। कमलके समान इसका मुख है और कमलके ही समान इसका रूप-रंग भी है ॥ २१ ॥ इसका मुख सदा मुस्कुराता रहता है। कमलकी कलियोगी नई इसकी आँख है। यह विजयपुष्करा नामकी है। तु मेरी बात मानकर इसे अपना पति बना ले ॥ २२ ॥ इसकी राजमहिषी बनकर तु बना तथा कृष्णा नदीके जलसे सानन्द विहार करेगी। मेरी बात मानकर तु और आगे मत बढ़ ॥ २३ ॥ "मदास्य मां मृणु ( मेरी बात सुन )" यह बात सुनकर उसने मुनन्दाकी आगे चलकर संकेत किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार अनेक राजाओंके वर्णन जो वास्तवमें निषेधमय थे, किन्तु ठहरस हासिवाक्य मात्राम पड़ते थे। ऐसे लघुश्लोक वाक्योंको मुन-मुनकर बालिकान उन राजाओंमें किसीका भी नहीं पसन्द किया। तब मुनन्दा शिविकाम रंटी हुई सुमतिका मेकर छोड़े-छेदे रामक मन्त्रिगणोंको लाँघकर युपकेतुव सामन गयी और कहने लगी— ॥ २५-२७ ॥ ये मृणुम् के सुन्दर पुत्र युपकेतु है। ये विष्णु ( ताऊ ) रामके शाने पर कृगल्लवके अनुगामी हैं ॥ २८ ॥ हे बालिके ! तु अब अपना मन सावधान करके इन्हें देख। हे नृपतम् ! अब भाग न जाकर तु इसीको अपना पति बना ले ॥ २९ ॥ "मां एन वरय अये मच्छ ( इसे न कर, आगे न ले )" यह सद्युक्त वाक्य सुमतिने



लक्ष्मिनेश्वरा बालां सुनन्दा वाकरमन्त्रशान् । पश्यन् बालिके बाल लव श्रीगणेशान्मन्त्रम् ॥३२॥  
 श्रीकामं स्वल्पवयसं सीतालालिनमुत्तमम् । वाष्पभीतिकुर्या लववक्षि गम्य कुशानुवम् ॥३३॥  
 कृणोर्ष्वनं सुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां कुरु । कुशांके चपिकेय वे स्वया यद्वत्स्थिताऽयं हि ॥३४॥  
 तथा स्वमपि यो मृगधे लवांके मास्थिता भव । इति वक्ष्या वचः श्रुत्वा सुनन्दायाः स्थितानना ॥३५॥  
 लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवननानना । मुमन्निर्निजराहुभ्यामपेयामाम मालिकाम् ॥३६॥  
 तदा निनेदुर्वायानि जगुस्ते गायकास्तदा । नन्तुर्वाग्नापथं तुष्टुर्वर्न्दिमणध्याः ॥३७॥  
 भूरिकर्तिर्नृपस्तुष्टो लवांके मुमन्ति तदा । शीघ्र निवेशयामाव रत्निपूर्णमनोमयः ॥३८॥  
 तोयमाप रघुशृष्टः सीता प्रामादसंस्थिता । जालरश्मैः सपन्नोऽक लवं दृष्ट्वा तुनोष सा ॥३९॥  
 ततः शर्माण्णान् पूज्य भूरिकानिर्नृपोत्तमः । प्रार्थयामास पितृवयचर्नैस्तपुस्ततः स्थितः ॥४०॥  
 विवाहकौतुकं दृष्ट्वा यवद्विर्गम्यतामिति । तथेति ने नृपा प्रोत्तुर्पदुर्वांमस्थलानि हि ॥४१॥  
 रामायं मगरं कर्तुमममर्था गनश्रियः । स्नानानना मनोन्मादाः कामवाणप्रपीडिताः ॥४२॥  
 रामोऽपि बन्धुमित्रालेख्यो वासस्थान मुदा । अघावरे दिन गम भूरिकानिः समापयौ ॥४३॥  
 पुणेधसोपविष्टः सञ्ज्वा राम वचोऽवर्त्तान् दृष्ट्वा जम्नादामः मुमुहूर्तः सुखावहः ॥४४॥  
 मायर्माकुरु रामाद्य त्वन्पादाश्रयकामकम् । उभयोस्तत्र मण्डपयोः कायापवासापय प्रभो ॥४५॥  
 तथेति राघवश्चोक्त्वा पविष्ट चोदयतदा । सोऽपि गमाङ्गया ज्योतिःशास्त्रतः रत्निपेटितः ॥४६॥  
 मुहूर्तं कथयामाव पञ्चमंऽहनि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकानिर्गणेश लग्नपत्रिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाकी आगे बन्दनका सकल किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुवाहु, मुष्कर, तदा, शिरकेतु तथा भगदको छाड़ती हुई वह लवके पास पहुँचा ॥ ३१ ॥ जब मुमन्ति वकी आर दयन लगा सब सुनन्दा बाल्य-हे बाले । इस बाल्यको पस यह शम्भका पुत्र है, यह अपना विवाह करवा चाहता है, इसको थोड़ी उमर है । सीताके द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है, य लव १५ वर्ष का है, इसका नाम है उत्तम । या प्राप्त हुई है और वह कुशाका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू सागरद्वीप अपनी पोत बनाकर इसका गलेमें बरमाणा डाल दे, जिस तरह तुम्हारी बहिन भगिष्ठा कुशकी गलेमें चोरी है उसी तरह या तुम्ह ! तू भी नवकी गोदमें बैठ जा । इस प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्कगदी और लज्ज दश भरतक सुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके गलेमें बरमाणा डाल दी ॥ ३४-३६ ॥ उस समय अन्क प्रकाशक बार बज, गायत्री गाने गाये, वेश्यायें नाचने लगी और बड़ीजन स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महाराज भूरिकानिने प्रसन्न होकर सुमस्तिको कबकी गोदमें बिठा दिया ॥ ३८ ॥ यह देखकर रामचन्द्रजी तथा भेटरेवर बैठ सीता बीबी प्रसन्न हुए । जब करीबोसे सीतान लवकी बादम मुमनिका बैरा देख, त उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकानिने वहाँ बादे हुए सब राजाकाका पूजा करके दिनपूर्वक प्रार्थना की— ॥ ४० ॥ जब आप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर आइएगा । राजाश्रीन भी उनको बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने डेरेपर चले गये ॥ ४१ ॥ वे सब राज राजस मुद्र करनम असमय ॥ अतएव उनकी भी नष्ट हो बसी या, कुछ मुहूर्त गयः या जन्माहु भग हो गया या और कनारे कामके बाणोंसे घेरेपित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने भाइयो और बन्धुके साथ प्रसन्नतापूर्वक डेरेपर गये । इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकानि रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुर्गाहुन उनका हाथ प्या । वे रामके समझ बैठे और कहा कि कोई अच्छा समन-दिवस तथा सुखवाक्य मुहूर्त निम्नागिए । फिर कहा—हे राम ! अपने चरणोंके भक्त मुख दासकी प्रार्थनाको प्रकीकार करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हैं, उनके लिए जागा दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ "मच्छा" कहकर रामने बलिष्ठकी ओर लकेत किया । बसिन रामका आज्ञासे स्थितिवास्तवकी जाननेवाले कितने ही पण्डितोंके साथ विचार करके उनके दायरे दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया । इसके अनन्तर प्रसन्न बनने भूरिकानिने गणेशजी, लग्नपत्रिका, गणकी, पण्डितों, वैदिक आदिको सब रामके साथवाले बंधुबन्धों और



सीतादिभिर्वर्णीषु संस्थितामस्नवा पथि । प्रामादोपरि संस्थाभिर्नारीभिः पुष्पवृष्टिभिः ॥ ६६ ॥  
हरिद्रापीतधान्यैश्च मागस्यैर्मौक्तिकैरपि लाजाभिर्होमपुष्पैश्च वसिन्वावीक्षिता मुहुः ॥ ६७ ॥  
लम्पतुर्वालिकावेवं पद्मस्यौ कौतुकानि हि । ददर्शतुर्वादिकाश्च पुष्पैर्वृष्टिभिर्निर्मिताः ॥ ६८ ॥  
तथा कृत्रिमवृथाश्च एतावाश्च ध्वजस्तथा तथोपश्रियवान्वृथान् वह्निस्पर्शविदीपितान् ॥ ६९ ॥

शतदस्थानेष्वधीभिः पुरितान्कृत्रिमान् जनान् ।

नथा व्याज्रादिकान्हिम्नानेष्वधीभिः प्रपूरितान् ॥ ७० ॥

तडिन्मम नान् गगने प्राकाशनीष्वधीभगान् ।

कैकेचक्रोपमादीश्च चन्द्रज्योत्स्नान् कृत्रिमाः ॥ ७१ ॥

एव ददर्शतुर्नानाकौतुकानि नृपात्मजौ तत्पत्नी भूरिकीर्तेश्च मन्वा मण्डपमुत्तमम् ॥ ७२ ॥  
नानाप्रहोन्मयैर्वालो चापमच्छत्रमण्डितौ अवलम्ब्य मत्तेन्द्राभ्यां नस्थतुर्मण्डपागणे ॥ ७३ ॥  
मधुपर्कविधानानि विष्टादीनि वै क्रमम् । तैर्गुरु चक्रवर्ती ब्राह्मणैः पण्डितैश्च ॥ ७४ ॥  
ततो वस्त्रैः पूजनं च सर्वतः रघुनन्दनः । चकार गुरुण युक्तमन्दा म मण्डपागणे ॥ ७५ ॥  
ततो लम्पमुहूर्तं न कुशं चम्पिदयं गुरुः । तथा लवं गुपत्यापि पृथग्वेदिकयोस्तदा ॥ ७६ ॥  
कृत्वा मुमक्षिर्ता चोदी दपन्योरन्तरे पटो । धृन्शोभयोः पृथक् चित्रौ नूतनौ हेमततुजौ ॥ ७७ ॥  
नानामगलतोषांश्च मुनेदिशकमुर्मुरा । आगन्मर्वे जनागत्स्फी शृण्वतो मंगलस्वनान् ॥ ७८ ॥

इति श्रीमत्कौटिल्यामचरितम् । ३० । मदानन्दर ३ । ३० । राज्ञोऽन्मोकीये

३ । कौटिल्यामचरितम् । ३० । मदानन्दर ३ । ३० । राज्ञोऽन्मोकीये

एवं वन्दोजनोंकी स्तुतियां सुनत हुए राजा भूरिकीर्तिके मन्मोकी खोर चले जा रहे थे ॥ ६५ ॥ सीतादिक माताएँ हरिनि गोवर बैठे थीं । अर्जुनगोवर बैठे हुए नगरभारिनी नारियाँ उनपर फूल बरखा रही थीं । हाथ बीचमें हस्तीमें रंगे पंखे एक अत्र, मागस्य मौक्तिक, धानके लावे और मधुपर्कके बने फूल भी बरसते जा रहे थे । वे नारिना कुश लक्ष्मी प्रेमधरा हरिम निहार रही थीं । इस तरहके कौतुक देखत हुए वे दोनों बालक चले जा रहे थे । सरवम गुप्ताकी वर्ण ज्ञास सभी वाटिकाएँ, कृत्रिम वृक्ष, पताका, ध्वजा, तमालेंक बने हिम वृक्ष जा आगकी चिनगारी पाकर जलने लगत थे ॥ ६६ ६६ ॥ उन्हें और पादोपर बैठे हुए लोर्वाष्टिपूष अनाजरी मनुष्यो, भस्मासे भरे हुए व्याज आदि हिंस जन्तुओं, औषधिके संयोगसे बिजलीकी भाई चमकत हुए मगलमणी ज्योतिषया मयूर आदिके छत्रों हुए चक्रोको वे राजे कौतूहल भरी आँखोंसे देखते जा रहे थे । ७० । ७१ । इस प्रकार मागम अनेक कौतुकाका देखते हुए वे राजा भूरिकीर्तिके उत्तम मंडपमें पहुँच । उस समय लोग म महान् उत्साह दिवायी पड़ता था । उन दच्चोपर लव लगे थे और दिव्य चमक चल रहे थे । वहाँ पर्वचक्र से शर्यसे उलने और मण्डपाद्वकस पहुँचे ॥ ७२ ॥ ७३ । उनके गुरुजनोंने ब्राह्मणोंके साथ मधुपर्कके विष्टा आदि विश्व सम्पन्न किये । ७४ ॥ इसके अनन्तर गायने साता हवा गुहजनोंके सार उस मण्डपमें उन नानो बह्म की पूजा की ॥ ७५ ॥ तदनन्तर लानका मुहूर्त आनेपर गुरु वसिष्ठने कुशकी चम्पिकाके साथ एवं लवकी नूतनिके साथ अश्व-अश्व वेदीपर बिठाया ॥ ७६ ॥ इस तरह दोनों बर-वचनकी मकली तरह विडकारके उनके बीचमें एक-एक पर्दा डाल दिया और सब लोग चुरचाप गुरु वसिष्ठके मुखसे उच्चरित नाना प्रकारके मागस्य श्रुतोंकी सुनने लगे ॥ ७७ ॥ ७८ । इति श्रीमत्कौटिल्यामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दर मागणे राज्ञोऽन्मोकीये पं० रामनेमपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते विवाह-काण्डे तृतीये सर्गेः ॥ ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( रुच-कुशके विवाहका वर्णन )

श्रीरामनाम उवाच

श्रीसीता रघुनायकश्च गिरिजा शंभुगणेशम्नया

नन्दीपण्डितकल्मषिणौ च भरतः कजोज्ज्वलः शशुहा ।

सर्वे ते मुनयः सुराश्च दिनिकाग्र्योर्धादिनद्यो नवाः

दिवरात्राः शशिमास्करो च हनुमान् कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥ १ ॥

तदेव सप्त सुदिने तदेव ताराचल चद्रवल तदेव । विद्याचल दैत्यल तदेव मीनायतेयन्मरण विधेयम् ॥

एवं मंगलपौषैश्च नानावाद्यपुरःसरम् । तनुस्त्रयः पट्टा मुक्ताभिरुपुष्पादभिति स्मरन् ॥ ३ ॥

तयोस्ते पाणिग्रहणविधान विधिपूर्वकम् । लाजहोमादिक सर्वं चक्रुर्मंगलपूर्वकम् ॥ ४ ॥

तदा महावाद्यघोरा निनेदुर्मण्डपागणे । ननुतुर्वागनायश्च तदा मागधचन्देनः ॥ ५ ॥

तनुर्मंगलगीतानि तुष्टुवृत्ते महाध्वनैः । तदा दानान्यनेकानि चक्रुस्तप्तौ नृपोत्तमौ ॥ ६ ॥

भूरिकीर्तिरामचन्द्रौ महानां पशुर्गतिः । अथ तौ बालकौ वर्यौ निजकटगोनिवेश्य वै ॥ ७ ॥

सीतौर्मिलादिभिः स्नेहिर्जामतुर्भाजनगृहम् । तत्र गौरीदेवी पूज्य चक्रुश्चाग्रमिचनम् ॥ ८ ॥

ततः कुशध्वजिभ्या सुमत्या सह लोचने च । चक्रुर्मोजनं चोभौ स्त्रीभिः सर्वत्र वेदितौ ॥ ९ ॥

भात्रा सहोपनयने विवाहे भार्यया सह । अन्येन नैव भोक्तव्यं भुक्तं चेत्पतिः स्मृतः ॥ १० ॥

रामोऽपि यन्भुमिः पौरैः सुहृद्भिः पार्थिवोत्तमैः । चक्रात् मोजनं भूरिकीर्तैः समन्नि वै मुदा ॥ ११ ॥

एवं सीताऽपि नारीभिश्चकार भोजनं तदा । भूरिकीर्तैः स्नुषाभिः सा प्रार्थिता वदित्वा मुदा ॥ १२ ॥

ततो नानाप्रसुत्साहान् भूरिकीर्तिश्चकार सः । अथ तौ बालकौ वर्यौ स्त्रीवाक्यैर्मार्तुगन्निभौ ॥ १३ ॥

स्वधर्ममभिधी चापि स्त्रीभिः सर्वत्र वेदितौ । स्वस्वपत्न्याः पदयोः शिरोम्भ्यां नमनं मुदा ॥ १४ ॥

श्रीरामवाच कहते हैं—शामा, राम, गिरिजा शिव, गणेश, नन्दी, स्वापिकर्तिकृष्ण, लक्ष्मण, भरत, शशुप्ता, महारा, समस्त रुष्य देवता देत्य गार हाथ, तदा त्रिवाणल, चन्द्रमा, सूर्य एवं हनुमान्जी ये सब साथ सोयाका करण करे ॥ १ ॥ वही लगन है, वही मदिन है और ताराचल तथा चन्द्रवल भी वहा है, त्रिवाण कि लीलापति र मन प्रनका स्मरण किया प्राय ॥ २ ॥ अनेक प्रकारक वाजोंके साथ इस तरह मंगल-घोष करनेके अनन्तर "अनुपमहम्" ऐसा उच्चारण करत हुए अनिष्टजन अन्त पत्रका दूर कर दिया ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक हुवनदि हुवनक साथ साथ उन दोनों वर वधुजाके पाणिग्रहण करवार किले ॥ ४ ॥ उस समय यन्त्रपक्ष महावाद्यघोष हुए वेणु एवं लो मागध और चन्दी जनके मुनिपाठ हुए और गाने गाये गये । उस समय उस दोनों राजाओं ( राम और भूरिकीर्ति ) ने अनेक प्रकारक दान दिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ दोनों सम्बन्धी उस समय दहे आनन्दित थे । तदनन्तर दोनों बालक अपनी अपनी स्त्रियों को कमरपर बिठलाकर सीता-सीतादिजाके साथ भोजनगला गये । वही उन्होंने शिव पर्वत की पूजा की और अग्रसिचन-विधि सम्पन्न की ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब सब त्रिवासे वेदिन यन्त्रिकाके साथ वैष्णव कुशान और मुनिके साथ लवने भोजन किया ॥ ९ ॥ क्योंकि शास्त्रका कहना है कि ज्येष्ठपक्ष कार्त्तिके माताके साथ एवं विवाहमें अपनी स्त्रीके साथ वैष्णव घर भोजन करे और कितोंके सह्य नहो यदि किसी औरके साथ भोजन करे तो गुरु अतिव्र कहा जाता है ॥ १० ॥ उधर राम भी अपने भाइयों, पुरवारियों, सम्बन्धियों और राजाओंके साथ महाराज भूरिकीर्तिके भवनमें गये और वही भोजन किया ॥ ११ ॥ उसी तरह सीताने भी स्त्रियोंके साथ जाकर भूरिकीर्तिकी वरुणोंके प्रार्थना करनेपर उन्हींके वही भोजन किया ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् राजा भूरिकीर्तिने विविध प्रकारक उत्सव

चक्रतुम्बोषमण्यौ ते तत्रापि स्मिताननम् । वधुराश्वे ने मर्चे निष्कपीता विरेजिरे ॥१६॥  
 कृकृमांक्षितपादौ ते ददतुर्बलभङ्गयोः । एष नानामधुम्यद्देगतेर्ज्ञानं दिनप्रथम् ॥१७॥  
 चतुर्थे दिवसे गत्वा वधवाश्रितगतिर्न । दापैर्नीलगतिर्न चामौ वाञ्छकीर्तौ विरेजतुः ॥१७॥  
 ततस्तौ बालकौ पन्थोः स्वमण्युं निवेश्य च चक्रतुम्बां उच्यते नृपं कुशकी मण्डपांगणे ॥१८॥  
 मातृश्रृङ्गादिकास्तु पश्यन्तु च मयादम् । पार्श्वे भूरिकानिः कुशाय च लताय च ॥१९॥  
 ददौ तुष्टमना शीघ्रं गमयन्मधुदहितः । निधुनाम्बुजमेन्द्रांश्च शिशिकाश्चापि तन्मिताः ॥२०॥  
 तुरंगान्यश्च निवृत्तं निवृत्तान्मन्दानन्ददी । जाम्बां पृथक् पृथक् पीवीषशम्बां द्रव्यपुरितान् ॥२१॥  
 नानालङ्कारवामांसि गा दायाः सैजकांस्तथा । ददौ नाभ्यां भूरिकानियेषां सम्पन्नानि यने ॥२२॥  
 एवं मन्त्रानितुस्तेन श्रीगणेशे भूरिकीर्तिना । सपत्नीकाम्यां पुत्राभ्यां सज्जन्ताभ्यां मधुनितः ॥२३॥  
 सीतया च भूमिः परैः सुदृजिभ्रातृभिर्नृपैः । पृथक्पृथक् स ययौ स्वीयमण्डपम् ॥२४॥  
 चतुर्थी ततो गम्यो मयमेकं निनाय सः । चक्रा पीतया कीर्तौ नौकासंस्थौ महोदधौ ॥२५॥  
 ततः स्नुषाभ्यां श्रीरमौ ययौ निजपुरीं सुखम् । अयोध्याया रिजयोऽपि भुज्या गम्यं मयागतम् ॥२६॥  
 यः पुरीं रक्षणार्थं हि गमेगातापितः पुरा । स पुरीं शोभयामास पताकाध्वजदीर्घाः ॥२७॥  
 वरमेव पुरस्कृत्य नृपं नृपपुरःसरम् । रिजयो गमयामासो राम प्रयुष्टयौ जवात् ॥२८॥  
 अथो नदामु वायेतु गम्यो बालैः सुदृजैर्नरैः । स्नुषाभ्यां सीतया च भुज्याभिर्भ्रातृभिः पुरीम् ॥२९॥  
 निवेश्य सीतया परैः पश्यन्मण्डपिकं पथि । तदा वेद्या नननुस्त्वपुर्वान्द्रमागधाः ॥३०॥  
 स्वस्वपत्न्युतौ बालौ वर्यामक्योः स्थितौ । तदा विरेजतुम्बां श्रीमिः पुष्पैः सुवर्षितौ ॥३१॥

वि० १ । उन दोनो बालकों ने विश्वरूप के चक्र में माला के पास बैठ कर तथा अपना साथ मण्डप में बैठ कर अपनी-  
 अपनी स्थिति की वन्दना की ॥ १६ ॥ १७ ॥ उस समय ३ वरवा उल्लस्य प्रसन्न होकर मन्द-मन्द मुसका  
 रहे थे । बालक होने के कारण वे बड़े मन्द-मन्द हास्य ॥ १८ ॥ इसके बाद उन दोनों बहुमोल कुमकुम-  
 ल रंग हुए अपने-अपने पथिकों के साथ रथ दिये । इस वरत ताला मन्त्रों के उन्सों के साथ तीन दिन बीते  
 १९ ॥ चतुर्थ दिन ॥ इस समय वायस वर गायाम देवक रथकर चक्र कुशकी आरती की गयी । उस समय  
 का दसवीं सन्दर्भ देखने ही योग्य थी ॥ २० ॥ इसके अनन्तर ने राजा का एक अलग अपनी रजा की बाठ-  
 में विद्वत् कलापद्वय तन्त्र करने लगे ॥ २१ ॥ मातामह आदि विद्वत् मण्डप में बैठे यह कौतुक देख रही थीं ।  
 विश्वरूप भूरिकीर्तिन अपने दोनों आमाताओं को खूब सल्लेख आदि भी दिये ॥ २२ ॥ राम के सम्बन्ध में  
 राम ने होकर उन्होंने उन्हें एक लाख हाथी, इतनी ही गजधोरण, पाँच लाख घोड़े, एक लाख रथ, अस्त्र-  
 २३ ॥ ताला ही सम्पत्ति के जलद्रव्यम भरकर दोनो देवदुर्गों को ॥ २४ ॥ २५ ॥ इनके सिवाय विद्वत्  
 उन्सों के प्रचार, उन्स गाय, उन्स दान आदि का दान दिये कि जिसका गिनती सम्भव नहीं थी ॥ २६ ॥  
 २७ ॥ चतुर्थ दिन ॥ इस दिन राम ने मन्त्र ध्यानासन पर समाधि लेता हुआ पुनः वाय हाथीवर सवार होकर  
 २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥  
 ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥  
 ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥  
 ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥



कुशः स्त्रिया चंपिकया जलक्रीडां करिष्यति । तस्य दक्षिणहस्तस्य कक्षं रुक्मनिर्मितम् ॥५०॥  
 सरयूजलमध्ये तु पतिष्यति महोज्ज्वलम् । तत्र तोये कुमुदस्य वक्षस्य कुमुदती ॥५१॥  
 स्वसां दृष्ट्वा कंकणं तद्गृहीत्वा सप्र यास्यति । कुशोऽपि संकषार्थं हि वाणं सन्धारयिष्यति ॥५२॥  
 सरयुक्षीपणार्थं हि मनद्वयं भविष्यति । ततः सा कुमुदं गत्वा सरयुः प्रार्थयिष्यति ॥५३॥  
 सोऽपि दृष्ट्वा कुशं कुमुदं स्वसामादाय सादरम् । कुजमागत्य तं नत्वा स्वसां तस्मै प्रदास्यति ॥५४॥  
 रत्नानि कक्षं दत्त्वा तेन सरयुं कर्तिष्यति । एवं कुमुदनीभार्याऽपि नस्यान्या भविष्यति ॥५५॥  
 तस्यां कुशान्मुननयोऽतिविनाम्ना भविष्यति । चंपिकाया दुहितरः सभविष्यन्ति नो सुताः ॥५६॥  
 अतियेः ध्रुववंशोऽपि चिरं विस्तारयेष्यति । एवं कुशस्य द्वे पत्न्यौ वर्धिते शिष्य वै मया ॥५७॥  
 अथ स्त्रीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां कुशः सुखम् । तथा स्त्रीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां लयोऽपि च ॥५८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दराधायगे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे  
 कुशलवयोर्विवाहवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

### पञ्चमः सर्गः

( रामका अर्घ्यकन्याओं और नामकन्याओंको जलदेवीके वंशसे छुड़ाना )

श्रीरामदास उवाच

एकदा स्यूरीरः स सीतया बालप्रभुभिः । पौर्मन्त्रिजनैरिष्टैः पुष्पकस्थो ययौ वनम् ॥ १ ॥  
 वक्ष्यमानार्कलुकांश्चि रजयन् जानकीं मुदा । ययां स दण्डकारण्यमगस्तेराश्रमान्तिकम् ॥ २ ॥  
 राममागामाक्षर्यं कुम्भजन्मा सुतीक्ष्णः । प्रत्युद्गम्य रघुश्रेष्ठं निनाय कराभ्रमं प्रति ॥ ३ ॥  
 ततः स गुनिवर्यस्तु स्नात्वा गह्वरि संस्थितः । अक्षपूर्णं महालक्ष्मीं चिंतयामास चेतमि ॥ ४ ॥

श्री रामदास कहते हैं - एक दिन सीताजी के साथ बालप्रभुओं, पौर्मन्त्रिजनों के साथ पुष्पकस्थान में जाया। वक्ष्यमानार्कलुकांश्चि रजयन् जानकीं मुदा । ययां स दण्डकारण्यमगस्तेराश्रमान्तिकम् ॥ २ ॥ राममागामाक्षर्यं कुम्भजन्मा सुतीक्ष्णः । प्रत्युद्गम्य रघुश्रेष्ठं निनाय कराभ्रमं प्रति ॥ ३ ॥ ततः स गुनिवर्यस्तु स्नात्वा गह्वरि संस्थितः । अक्षपूर्णं महालक्ष्मीं चिंतयामास चेतमि ॥ ४ ॥  
 श्री रामदास कहते हैं - एक दिन सीताजी के साथ बालप्रभुओं, पौर्मन्त्रिजनों के साथ पुष्पकस्थान में जाया। वक्ष्यमानार्कलुकांश्चि रजयन् जानकीं मुदा । ययां स दण्डकारण्यमगस्तेराश्रमान्तिकम् ॥ २ ॥ राममागामाक्षर्यं कुम्भजन्मा सुतीक्ष्णः । प्रत्युद्गम्य रघुश्रेष्ठं निनाय कराभ्रमं प्रति ॥ ३ ॥ ततः स गुनिवर्यस्तु स्नात्वा गह्वरि संस्थितः । अक्षपूर्णं महालक्ष्मीं चिंतयामास चेतमि ॥ ४ ॥

श्रीरामदास कहते हैं - एक दिन सीताजी के साथ बालप्रभुओं, पौर्मन्त्रिजनों के साथ पुष्पकस्थान में जाया। वक्ष्यमानार्कलुकांश्चि रजयन् जानकीं मुदा । ययां स दण्डकारण्यमगस्तेराश्रमान्तिकम् ॥ २ ॥ राममागामाक्षर्यं कुम्भजन्मा सुतीक्ष्णः । प्रत्युद्गम्य रघुश्रेष्ठं निनाय कराभ्रमं प्रति ॥ ३ ॥ ततः स गुनिवर्यस्तु स्नात्वा गह्वरि संस्थितः । अक्षपूर्णं महालक्ष्मीं चिंतयामास चेतमि ॥ ४ ॥

तदा तत्तपसा तुष्टऽऽविर्भव्य सुरेश्वरी । ददौ तस्मै पाथवेन पूरितं पावगुणम् ॥ ५ ॥  
 अक्षरपूर्णा मुनिः प्राह मध्याह्न्यान्तु विप्रधानं हि । पटाक्षानि यथेष्टानि निष्काम्य तव मार्मिकी ॥ ६ ॥  
 सर्वेषामग्रतः शीघ्रं कर्मेतु परिशेषणम् । इत्युक्त्वा साऽन्नपूर्णा त मुनिमन्तरिणे तदा ॥ ७ ॥  
 लोणमुद्रा पुनः पत्नी मध्याह्न्यान्तिकास्थवेशतः । विज्वान्नानि विचित्राणि सर्वेषां पुनस्तदा ॥ ८ ॥  
 सर्वाचनानां विप्रणां चक्रणं परिशेषणम् । अथ पुनं पृथुमेष्टु कंकणं रत्ननिर्मले ॥ ९ ॥  
 ददौ मुदा कुम्भजन्मा सीतार्यं दिव्यकण्डले । एव संपूजितस्तेन मुनिना रघुनन्दनः ॥ १० ॥  
 सहितोऽगस्तिना स्थिन्दा पुष्पके पूर्ववत्पुनः । पश्यन्ती दण्डकारण्ये कीतुकानि सप्तततः ॥ ११ ॥  
 विचित्रा रघुश्रेष्ठो दर्शयामास मैथिलीम् । नानावृक्षान्यर्चयामास नदीः पक्षिकुलान्पुनः ॥ १२ ॥  
 पञ्चाभ्यारमरो नास ददृशामौ भ्रमत् सतः । तप्तटे राघवो रात्रौ निवस्यमङ्गोच्छ्रुता ॥ १३ ॥  
 एतस्मिन्ततरे रात्रौ नृपसमस्तर्मा शुभम् । शुभाच मधुर मीनं सीतया मंचके प्रभुः ॥ १४ ॥  
 तेजदि सर्वे शुभ्रवृक्षस्तन्मयं गीतं च सुस्वरम् । अदृष्ट्वाऽप्यममस्तत्र तदा स रघुनन्दनः ॥ १५ ॥  
 पप्रच्छ कुम्भजन्मानं गीतं नृपं कुनस्त्रिदम् । श्रुत्वा मुनिनार्दकं वदन् नव सविस्तरम् ॥ १६ ॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तमर्गस्तत्रोऽजयीन् । रामरात्रौवचश्च किन्त्वं वेत्ति न वै त्रिदम् ॥ १७ ॥  
 गर्वानेतान्मन्मथेन वृत्तं आदायितुं मुदा । येन्मां पृच्छसि तर्ह्यत्र तवाग्रे प्रदाम्यहम् ॥ १८ ॥  
 पुन गन्धर्वराजस्य पुन्यः पथं मनारमा । अजगत्का मुदा कीडां चक्रुश्च सरोवरे ॥ १९ ॥  
 एतस्मिन्ततरे राम नागकण्ठाः सरोवरात् । कीडार्थं निर्वयूः सप्त बहिरासयौवनाः ॥ २० ॥  
 तागां परस्परं मैत्रीं बधून् रघुनन्दन । तत्र तां नागकन्वाथ तथा गन्धर्वकन्यका ॥ २१ ॥  
 धामायानं सदा चक्रुः कीडार्थं मयमस्तटे । मया मुनिना तत्र मुदुर्वाक्यनिवारिताः ॥ २२ ॥

उही समय तक तपस्या में प्रसन्न हो रहे दत्तात्रेयकी भी अक्षर पूर्ण प्रकट हो गयी । उन्होंने अक्षर पूर्णानी मोरस गण एक एक दिया ॥ ५ ॥ और कहा कि इस दण्डवर्द्धमसे विविध प्रकारके एकत्रान निकाल निकालकर पुष्पादीकी सबके आगे पगस दे । इतना कहकर अन्नपूर्णा अन्नघान हा गयी ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर जब कि अक्षरपूर्ण ने साध्वी नदी किनारे समस्त रामकी पूजा कर ली, तब अक्षरपूर्णकी पत्नी सीतामुद्रान उही पाथवेसे एकत्रान निकाल निष्कारकर सबके आगे पगस दिया । मौजनीपरान्त प्रमत्त मनवासे रामको अक्षरपूर्ण ने एक जोड़ा कण्डुक और दोनाका कुण्डल दिये ॥ ८-१० ॥ इस प्रकार आक्षरपूर्ण से संस्तुत हाकर राम अक्षरपूर्णकी अपने साथ कि इस सबके साथ पुनः एक धिमलपर जा बडे और दण्डकारण्यमें चारो ओर विविध प्रकारके कीतुक इकट्ठे हुए इधर-उधर घूमने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ रागस्तन नानी प्रकारके वृक्ष, पर्वत, नदी, पत्नी आदि साक्षात् दिखाने हुए वे पञ्चासर नामक गगनगगर पहुँच और वहाँपर रामने रात्रिपर निवास किया ॥ १३ ॥ रात्रिक समय जब कि राम संकोच साथ अपनी शय्यापर सोने थे, तब उन्हें मोठे-मोठे गीत और नृत्यकी ध्वनि सुन पड़ी ॥ १४ ॥ उनको भिन्न-भिन्न नामके साथकालने आ बहू सुस्वर ध्वनि सुनी किन्तु अक्षरपूर्ण नहीं जान पड़ी । तब तमने अक्षरपूर्ण पूछा कि पुनिधेय । आप मुन यह बातलाइए कि यह नृत्य गानकी ध्वनि कहाँसे आती है ॥ १५ ॥ १६ ॥ स विस्तरपूरक हमें बतलाइए ॥ १५ ॥ १६ ॥ रामकी बात सुनकर महर्षि अगस्त्यन बहुत ही राधाकलावन राम । क्या अब यह वृत्तान्त नहीं जानते ? ॥ १७ ॥ अगस्त्य यदि नमोस कहलाना चाहते हैं तो मैं आपको मुन रहूँ ॥ १८ ॥ आजस बहुत दिनों पहले गन्धर्वराजकी पाँच सुन्दर कन्या । जिनका कि राजोषमं भी नहीं हुआ था, अन्नपूर्णाके इस सरोवरमें जलरोछा निकाल करले ॥ १९ ॥ हे राम । उनो समय एक बार उस सरोवरसे सात नगा-कन्यार्य भी अलक्रीडा करनेको निकली । उनको भी व-व-क-व की ओर यौवनका रंग अभी नहीं क्या था ॥ २० ॥ तदनन्तर उन गन्धर्वकन्याओं और नागकन्याओं परस्पर मित्रता हो पयी और वे नित्य उस सरो-वरमें जलक्रीडा करनेको आने-जाने लगी । उसी सरोवरपर तपस्या करते हुए एक तपस्वीने उनको कई बार



माऽऽमन्त्र्य च पन्निकुटे रोते ता जलभावनः । जना यन्मन्त्रं कथं यथाज्ञाभ्युत्तरन्तम् ॥ २३ ॥  
 इन्द्रेण बोधिताश्चापि तत्तपोधमनं प्रति । मुनिव्याधि नवीनाश्च दृष्ट्वा स्थापार्थिना नदा ॥ २४ ॥  
 विना स्थापेन तासां न दण्डं सम्मन्त्रयद्गुरुः । अन्वयं ह्यराभ्युक्तं जलद्वीपः प्रचीदयत् ॥ २५ ॥  
 तद्वाक्यजलदेव्यस्ता मया ह्येवमस्मिन्निभू । निन्वृष्टं च बलदेव यश्च केषां गतिर्न हि ॥ २६ ॥  
 गंधर्वाः पन्नगा यत्र गतुं शक्ता न चाभवन् । ततोऽन्ते न मुनिः स्वर्गं गतस्तत्र सस्थिताः ॥ २७ ॥  
 ताः सर्वा जलदेवीनां मेहं मन्त्रयुता प्रयाः । यः वृत्तमाधुनिरुत्तराद्ध राम स्मयप्रदम् ॥ २८ ॥  
 ता सद्य जलदेवीनां जलाभगतमस्य ते । कुर्वन्त नृन्यगीतानि तामां संश्रूयते ध्वनिः ॥ २९ ॥  
 एवं राम यथा गृहं त्वया सर्वं मया नदा । वृत्तं त्वया प्रकथितं कुरु येन हितं भवेत् ॥ ३० ॥  
 मर्वाभिर्नागकन्यानां गांधर्वीणां तथा विभो । मुनिना बोधितं यन्मन्त्रं तदा स्मितापतिर्मुदा ॥ ३१ ॥  
 लक्ष्मण प्राह मे चावमानयाश्च क्षणादहम् । मुक्त्या प्राणमात्रं यामि दग्ध्वा देवी उल्लसिताः ॥ ३२ ॥  
 कन्यकाः पन्नगानां च तथा गंधर्वकन्यकाः । इति तद्वाक्यं कथं न श्रुत्वा सीमित्रिरादरात् ॥ ३३ ॥  
 श्रीवं स्थापं सत्पूजार्थं दद्यात्तत्र गव्यं प्रति । नतः कोदण्डशृङ्गस्य दण्डकृत्य रघूदहः ॥ ३४ ॥  
 श्वं जग्राह तूर्णम् निजनामांस्तत्र शतम् । तदा चत्वारो धरणा चतुष्टयं समं सागराः ॥ ३५ ॥  
 वही घोमरो वायुः प्रोत्थयत् । दिशोऽप्यनः । तामा निपतुर्वरणी द्रुतुर्वनचांगणः ॥ ३६ ॥  
 पन्नगाः कपना आयन् चतुष्टयं हतं पन्ना । तज्जला जलद्वयस्ताः भुक्त्वा चावपनि बहत् ॥ ३७ ॥  
 भयभीताः समाजमुस्ताभिः सर्वाभिरादरात् । प्रणमन्ताम्यदा राम शालिकास्तास्तु हृदय ॥ ३८ ॥  
 राधवायापयामासुदिव्यभूषणभूषिता । राविव जलदेव्यस्ताः प्राथयामासुगदरात् ॥ ३९ ॥  
 राम राम महाशङ्काऽस्माभिवदपराधितम् । तन्क्षमस्व रघुश्रेष्ठ मां संव स्वपतत्रिणम् ॥ ४० ॥

राककर कहा—॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

न कश्चित्सर्ववशेऽभून्स्त्रीषु शस्त्रप्रहारकः । त्वयाऽपि रक्षिता पूर्वं स्त्रीन्वाद्भूर्जाहवीजटे ॥४१॥  
 यदाऽनया तु क्षपयः कृतो मैथिलकन्यया । ताटिकादिराक्षमपु यन्कृतं वाणमोचनम् ॥४२॥  
 मल्लपत्नीषु न्वया पूर्वं वन्सर्वेषां हिनाय च । इति तामां वचः श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः ॥४३॥  
 स्थापयामास तूणीरे पूर्ववत् स्वभार्यमाणम् । ततस्तमिः पूजितः स तदा दृष्टो ग्धूतमा ॥४४॥  
 जलदेवीर्ददावाज्ञां स्वस्थलं गम्यतामिति । एतस्मिन्नन्तरे तत्र संधर्वाश्चाथ पन्नगाः ॥४५॥  
 विदिन्वा सकल रामकृतं रामानिकं धनुः । नन्वा रामं मयीतं च तथा तं कुम्भमभवम् ॥४६॥  
 वृषाणान्यनेकानि समर्प्य रघुनन्दनम् । उचुस्ते संजुल वाक्य प्रवृद्धकरमपुटाः ॥४७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

जलदेवाज्जबदान् वालिकाभोचनं तामं पञ्चमः सर्गः । ५ ॥

### पष्ठः सर्गः

( गन्धर्वों तथा नागोंकी वारह कन्याओंका लक्ष्मणादिके पुत्रोंके साथ विवाह होनेका निश्चय )

गन्धवपन्नगा ऊचुः

राम कञ्जानन स्वामिन्मोचिता वालिकास्त्वया विवाहान्नाजस्कानां पुत्रेभ्यः कर्तुमर्हसि ॥ १ ॥  
 अथ धन्या त्वं सर्वे नः कुलं पवनं कृतम् । त्वया राम महात्रहोतारिताः स्मो वयं प्रभो ॥ २ ॥  
 सप्तजन्मसु यत्पुण्यं कृतमस्ति रघूदह । अस्माभिस्तेन सम्बन्धम्वयाऽद्य भवतु प्रभो ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा सीतया स रघूदहः । अङ्गाकुम्भं वचस्तेषामगमितमरलोकयत् ॥ ४ ॥  
 तदा प्राह कुम्भजन्मा राघवं वचनं मुनिः । रामान्यास कुमुदस्य स्वयां नाम्ना कुमुदती ॥ ५ ॥  
 त्वयि प्राप्ते हि वैकुण्ठं कुशपत्नी मरिष्यति । चापिकायां न तनयो भविष्यति रघूदह ॥ ६ ॥

कर दें । हमपर इन बाणोंकी क्षाप मत छोड़िये । ४॥ अब तक आपक पुत्रांचराचरि पक्षोपर शस्त्रका प्रहार करने-  
 वाला कोई भी नहीं हुआ है । आपने भी वत रामचन्द्र के बिना भीताका लिये जाते हुई वृक्षोंकी इसी  
 लिये रक्षा की थी कि वह स्त्री थी । इसके लिये आपने जो ताड़कापर शस्त्र छेड़ा उसका कारण यह था कि  
 ५॥ ब्रह्माचारिणी थी । उसे तो आपने ब्राह्मणोंके कल्याणार्थ मरवा था । उनके ऐसा करनेसे बात सुनी तो  
 मुमुक्षुसक रामने अपने बाणकी फिर तरफसे रक्ष लिया । इसके बाद उन जलदेवियोंसे पूजित रामने  
 प्रसन्न होकर उनसे कहा कि अब तुम लोग अपने स्वयंकी उज्जा । इसके अन्तर उन गधर्वों और  
 पन्नगोंने ( जिनकी कारणसे जलदेवियोंके कष्टसे थी ) अब पट्ट समान रूप समा तो रामने पास अपने और  
 सीता, राम तथा अगस्त्यकी प्रणाम करके उन्होंने रामकी विविध प्रकारकी नेट दी । तदनन्तर हाथ जोड़कर  
 इस प्रकार कहने लगे—॥ ४१-४७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये  
 पष्ठे रामतेजपाण्डेयकृत ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे पञ्चमः सर्गः ५ ॥

गन्धर्व तथा पन्नगमण कहने लगे हैं कमल सरोवर तेषांवालि राम आपने हमारा पुत्रियोंको उन  
 जलकन्याओंके हाथसे जैसे छुड़ाया है, उसी तरह अब इनका विवाहभी अपने पुत्रोंके हाथ कर लीजिए  
 ॥ १ ॥ आज हम अपनेको बच्य समझते हैं । आज हमारा कुल पवित्र हो गया । हे प्रभो ! आपने हमारा  
 ब्रह्मचर कर दिया ॥ २ ॥ हमने अपने मातृ जन्ममें जो पुण्य किया था, उसके प्रतापसे आज हमारा और  
 जन्मका सम्बन्ध हो जाय । ३॥ श्रीरामदासनं कहा—इस प्रकारकी बात सुनकर महारानी सीता और रामने  
 उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अगस्त्यकी ओर निहारने लगे ॥ ४ ॥ अगस्त्यने कहा है राम जब  
 आप वैकुण्ठधामको चले जायेंगे, तब कुमुदती कुशकी पत्नी होगी । हे रघूदह ! कुशकी वर्तमान स्त्री चम्पिकाके

कुशान्पुत्रः कुमुदन्धामविधिस्तु भविष्यति । राज्यकर्ता वंशकर्ता स एवाहं भविष्यति ॥ ७ ॥  
 अतस्त्वमधुना राम नागकन्याः कुरु विना । मम स्वममपुत्रेभ्यः प्रयच्छ विधिना द्विजैः ॥ ८ ॥  
 पञ्चगन्धर्वकन्याश्च यूपकेतुं कुरु लग्नम् । विना स्वपञ्चपुत्रेभ्यः प्रयच्छ रघुनन्दन ॥ ९ ॥  
 रामसेन विवाहेन यूपकेतुः शिशुस्तनः । अग्रे वन्ती मदनेन कम्बिष्यन्वरां शुभाम् ॥ १० ॥  
 एव रामसुताः सर्वे स्वभर्ताभ्यां यथामुसम् । कौटिल्यिष्यति पौत्राप्तवान् भविष्यति प्रपौत्रकाः ॥ ११ ॥  
 प्रपौत्रस्य प्रपौत्रं त्वं दृष्टुः सीताममन्वितः । सुखं यास्यसि वैकुण्ठं बन्धुभिर्नमरीष्यते ॥ १२ ॥  
 एव ध्रुवा मुनेर्वाक्यमर्माहृत्य रघूदृढः । तामां नामानि पश्यन् गन्धर्वान्पञ्चगानवि ॥ १३ ॥  
 तदाऽब्रवीन्म गन्धर्वः स्वपूर्वाणां भविष्यताम् । तामां नामानि रामाग्रे पञ्चानां सम्पद्यते ॥ १४ ॥  
 चट्रेका चंद्रवदना चञ्चला चपला चला । एवं नामानि पञ्चानां क्रमेण रघुनन्दनः ॥ १५ ॥  
 भन्वाऽवलोकयामास पञ्चगान्तेऽपि चाब्रवन् । कज्जानना कज्जनेया कज्जोषी च कज्जावती ॥ १६ ॥  
 कलिशा कमला चैव मालवी मम कर्मिनीतः । एवं नामानि पञ्चानां क्रमेण रघुनन्दनः ॥ १७ ॥  
 ध्रुवा ताः पुष्पके स्थाप्य तैर्निद्रामकरोन्निति । प्रथममने श्रीरामः दृष्ट्वा स्नात्वा यथाविधि ॥ १८ ॥  
 गन्धर्वस्नमाध्वारि तदा च वन्द्यमर्मात् । एभर्तृनेभ्यः साकं विवाहार्थं स्थानलग्नम् ॥ १९ ॥  
 नैव योग्यं समागन्तुं नन्दलोकान्वाहिना । ताम्भारदृष्ट्वा मडाकर्म सुहृदः सकलाः शुभम् ॥ २० ॥  
 यत्नं गत्वा निजस्थानं स स्त्रियश्च महज्जनः । आगतस्य विवाहार्थमयोध्यां मे यथासुखम् ॥ २१ ॥  
 अबुताऽहं तु गच्छामि पुनश्च क्षयेन हि । विद्यायमा दिक्षानेन पद्माकाश्वजमालिना ॥ २२ ॥  
 तथेति रामवचनात्त गताः सःस्थले नि हि । मोक्षाय मुनिना नाभिर्वालिकाभिः सुतैः स्त्रिया ॥ २३ ॥  
 विहायसा पुष्पकस्यो ययी पश्यन्वनानि मः । ययीष्यां प्रदरेणैव मुदा प्राप रघूदृढः ॥ २४ ॥

कोई पुत्र नहीं होगा ॥ ५ ॥ ६ । हाँ, कुमुदतसे कुशके अतिथि नामका पुत्र उत्पन्न होगा और वही पुत्र राज्यकर्ता एवं वंशका सहनेवा होगा । इससे है राम । कुशका छोड़कर बाकी सब कुमारोंका विवाह दन कन्याओंक साथ कर दोजिए । इनमें से पाँच गन्धर्वन-वाओंको यूपकेतु तथा कुश लग्नके अतिरिक्त पाँच पुत्रोंका व दोजिए । ॥ ९ ॥ पाँच पञ्चपुत्र पुत्रेण राजसविवाहके क्रमसे एक अच्छे स्त्रीके साथ विवाह करेगा ॥ १० ॥ हाँ राम ऐसा करनेसे सब घर अदन-अदनी स्त्रियोंक साथ सुखपूर्वक विहार करने । उनके पीछे प्रपौत्र जार्हि भी होंगे ॥ ११ ॥ दक्षान जाय अगे प्रपौत्र प्रपौत्रोंका जगकर सीता अपने बन्धुओं और पुत्रवासियोंसे साथ वैकुण्ठयामको जायेंगे । इस घर से आनन्दपञ्चमा बात सुनी ता उन्होंने बड़ीकार कर लिया और इन गन्धर्वों-पद्मावत उरका कन्याओंक नाम पूछने लग्य ॥ १२ ॥ १३ । गन्धर्वराज अपने पाँच कन्याओंका नाम बतलाने दूग ये व—चान्दवा, चन्द्रवदना, चञ्चला चपला और कला ये इनके नाम हैं ॥ १४ ॥ कन्याओंका नाम पूनकर राम उनके बाद देखने लग्य फिर पत्रग दन प्रकार अपनी सात कन्याओंके नाम बतलाने लगे—कज्जानना कज्जनेया, कज्जाया, कज्जावती, कलिशा कमला और मालवी ये सात नाम हैं । इस रीतिसे सबका नाम सुनकर रामने इन कन्याओंको पुत्रके विमानपर चढ़ा लिया और सब स्त्रियोंक साथ सोगये । इसके अगे राम शान्तवाक्य नमय राम दृष्ट और दीव्यपुष्प स्नान-हवन आदि किया ॥ १८—१९ ॥ फिर वे इन गन्धर्वों तथा पद्मावतीको बुलाकर कहने लगे हे गन्धर्व तथा पद्मसुता । मे गन्धर्वोंका विवाही बनू ॥ है । इस कारण मे अपने बन्धुओंक अदन न ना पत्रगा ॥ १ । कलावलाका आ सकूँगा और न गन्धर्वोंक यहाँ स्वर्गलोकको ही अपने बन्धुओंका विवाह करने जा सकूँगा । इससे जाय गूढ़रग बेरी बात सुनें ॥ १६ ॥ २० ॥ आपलोग अपने-अपने घर जायें और इनका विवाह करनेके लिए वहाँसे स्त्रिया तथा बन्धु-वाचकों साथ आनन्दपूर्वक मगदग वधायें ॥ २१ ॥ कुल देर बाद मे अपने विमान द्वारा अकालपणसे अपना नगरोका चला जाऊँगा ॥ २२ ॥ “बहुत अच्छा” कहकर वे गन्धर्व तथा पद्मग अपने अपने स्थानको अगे गये । इससे रामचन्द्रजी भी

नीराजितः पुस्तुभिर्विशेषं चित्तमंदिरम् । वसिष्ठमुदहे तां सर्वाः प्रेषयामस्य राघवः ॥२५॥  
 अथ गमः पञ्चमः सौमित्रमिदमब्रवीत् । आत्मानं यो राजानः सुदृष्टश्च सुनीक्षरः ॥२६॥  
 सतिपुराः सर्वाश्च स्वस्वजनपदैः सह । शृङ्खलायश्चोद्धेयं परिष्ठाः सम्पदाश्च ॥२७॥  
 शोधनीयास्तथा शोधनपदैः नृपा शुभा । तथा चित्राणि लेख्यानि प्रापादेषु मर्मतः ॥२८॥  
 देवालयेषु सर्वेषु नृपा देवा मनीषमा । लेखनीयानि चित्राणि क्लृप्यः स्थापयता पृथक् ॥२९॥  
 वपनीयाः पञ्चाङ्गाश्च शेषाणि च स्वता अपि । नमोऽस्तोभ्यानि यथर्थायानि लक्ष्मण ॥३०॥  
 बधः कर्षां क्लृप्तमदयो वधनायाश्च मण्डपाः । शृङ्खलायाश्च इत्युपश्रितविकश्च सहस्रशः ॥३१॥  
 कर्ध्वर्ध्वः पद्मगेष्ठी वस्तुं गेहानि वै पृथक् । कुक्ष्य नृपनाभ्यश्च पत्तार्यः पूरितानि च ॥३२॥  
 अन्येषां यथायोग्यं यद्यस्तानि लक्ष्मण । तत्र कुक्ष्यं यथाकं मया तव रघुदह ॥३३॥  
 तत्रापचर्चनं यन्वा तथेष्टकदा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्परं यथा शेषेण शिक्षितः ॥३४॥  
 अथ गन्धर्वराजं नृपा वै मम पत्नयाः । महादुःखं यथोपायं ययुः शीघ्रं मुदान्विताः ॥३५॥  
 सर्वा मानवरूपेण हस्त्यश्वाश्च मस्थिताः । गन्धर्वावपि गन्धर्वेण गणकेतोपवन ययुः ॥३६॥  
 तत्र स्नानागतान् श्रुत्वा प्रयुष्टस्य रघुदहः । नानायायानि नदिश्च नृप्यं रागमां पुगम् ॥३७॥  
 नान्वा सन्धापयामास निम्नोर्णेषु गृहेषु यः । अथ त्रेहदा राघः यमाया संस्थितः सुखम् ॥३८॥  
 ज्योतिर्विदः समाहूय वसिष्ठं तन्पुनोद्यमः । पृथग्विवाहान्कृतं स गृहर्ताननिगलान् ॥३९॥  
 सम्यक् विचारयामास वपमं चैव मरिचकम् । ज्योतिर्विदस्तदा पोचुर्गृह्णानि यौक्यवान् ॥४०॥  
 पश्चान्तरेण वैशाखे द्वौ गृहर्तौ शुभावदी । तथा द्दुर्गद्वौ द्वौ ज्येष्ठे पश्चान्तरेण ते ॥४१॥  
 शिवेन मार्गशीर्षे चैव वीर्यं मार्गशान्तुतेऽपि च । तौ द्दुर्गद्वौ चैव चक्रुर्गमननिश्चयम् ॥४२॥

उन बाँलकाआ अवन पुगी त । एत कि मय एत ॥३५॥ एकर आकाशमगत रातक घनाका  
 सेगते हुए बहामि बल दिये और एक घण्टा में अब हम आ गये ॥३३॥ ३४॥ सर्वां गृहवनेषु पुष्पाणिनी  
 मिथोने लरकी बारसी उमारी और उन के दोनो ओर जो नज निज ॥३७॥ अनन्तर रामने  
 रागमे लक्ष्मणसे कहा एक गमाओ, गाविकी और पुनि और यो निम्नवण भज को कि सब छोड़ अपनी  
 स्थिति तथा पुष्पाणिनी के साथ प्रवेश । पछान । मान गेह ॥ ३८॥ समेन अयोध्या मगधिका शृङ्गार करो ॥३६॥  
 अयोध्याके सब मकान पुनि पुनवाये जाओ और उपाय नगे और विविध प्रकारके विष बनाये जायें ॥३७॥  
 समस्त देवदेवीय अन्ध तरे पुनइ के प्राद और एतय आ एतद्विद्व सनाकर पूजयका सुप्रबन्ध किया  
 जाय ॥३८॥ ३९॥ पताक । वीधी जायें कवहारपण कि । एत और मदिगके चारों ओर शीघ्र बाधे  
 जायें । जहाँ नही मुर्गा मरी वीही वनवादी जायें । इजारा । ॥ ४०॥ यानि वायविकाका शृङ्गार किया  
 जाय । गन्धर्वगणाने गृह ॥ ४१॥ अनन्तर गगन दत्तवाक्य न । अच्छी तरह अथ दत्त आदिक प्रबन्ध कर दो  
 ॥ ३८-३९ ॥ हे लक्ष्मण । जो है कह चुका हूँ, वह जो ज मने भी चलाया है और तुम जानते होओ सो भी  
 ठीक कर ली ॥ ३३॥ रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने तेषां ज्योतिर्विदों का नाम, लक्ष्मण सब प्रार्थना कर दिया  
 ॥ ३४॥ उनके अनन्तर विश्वामित्र और नाना वज्र नदी मन्त्रिणी ने पञ्चा विचार सब रूपपूर्वक अयोध्याको  
 कल दिये ॥ ३५॥ उस समय समस्त सर्व मय लक्ष्मण दिये दोगे पीडे तथा रथपर सवार होकर  
 अयोध्या आये । गन्धर्व भी अपनी विज्ञान सेनाक साथ मारेपुर का गृह ॥ ३६॥ ३७॥ इसके बाद सब  
 रागवन्धनीने सुना कि वे लोग अयोध्या जा गये है तो मिथर प्रताप राजा और नाचक साथ नगरीमे  
 से जाये और लुप्त लम्बे पीडे भयममे उनकी ठहराया । इसके अनन्तर एक समय राम सब लोगोंके साथ  
 सभामे बैठे तो वसिष्ठ तथा बनेक ज्योतिर्विदोंकी बुलावा और निम्नके लिए अन्ध-अन्ध दुर्गमका अच्छी  
 तरह विचार करतका कहा । ज्योतिर्विदोंने रामने आज्ञाकार अनिष्ट मन्त्रशारे गृहर्त विचारकर कहा कि एक  
 एक बीतनेपर वैशाख मासमें दो गृहर्त हैं । एक पक्षके अनन्तर ज्येष्ठ मासमें भी दो ही गृहर्त हैं ॥ ३८-४१ ॥ दो

लवस्याथ मगदस्यापि विवाहौ तैर्विनिश्चिनौ । ज्योतिर्विद्विर्विनिश्चिनौ चैव ॥ ४३ ॥  
 चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहौ तैर्विनिश्चिनौ । ज्येष्ठे मासि क्रमेणैवं पक्षे पक्षे पृथक् पृथक् ॥ ४४ ॥  
 तक्षस्याथ सुबाहोश्च विवाहौ मार्गशीर्षके । पञ्चांग्रेण रामाग्रे ज्योतिर्विद्विर्विनिश्चिनौ ॥ ४५ ॥  
 यूपकेतोरंगदस्य चित्रकेतोर्विनिश्चिताः । माघमास्ये विवाहाश्च ज्योतिःशास्त्रविशारदः ॥ ४६ ॥  
 पुष्करस्याथ तक्षस्य सुबाहोः फाल्गुने शुभे । विवाहा निश्चिताः स्निग्ध रामाग्रे गणकैस्तदा ॥ ४७ ॥  
 एवं विनिश्चिताः सर्वे विवाहा द्वादश क्रमात् । ज्योतिर्विद्विर्विनिश्चिताश्च श्रुत्वा तानर्चयन्निभुः ॥ ४८ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे  
 द्वारणविवाहविनिश्चयो नाम अष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( नागों तथा गंधर्वराजकी कन्याओंका विवाह )

श्रीरामदास उवाच

अथ तै गणकाः सर्वे वसिष्ठस्य पुण्यधमः । कुमारीणां विभागोश्च चक्रुः श्रीराघवाग्रतः ॥ १ ॥  
 कज्जाननां लवस्याथ कज्जार्धमगदाय च गणका निश्चयं चक्रुः कज्जार्धौ चित्रकेतवे ॥ २ ॥  
 कलावतीं पुष्कराय तथा तक्षाय कालिकाय सुबाहवे च कमलां मालतीं यूपकेतवे ॥ ३ ॥  
 गणकैः सप्त ता एव नगरकन्या विनिश्चिताः । चंद्रिकामगदाय च चन्द्रास्यां चित्रकेतवे ॥ ४ ॥  
 चञ्चलाकन्यां पुष्कराय तक्षाय चपलां तथा । सुबाहवे तु सचलां प्रोचुस्ते गणकादयः ॥ ५ ॥  
 एव गंधर्वकन्यास्ताः एव विप्रैर्विनिश्चिताः । एव हि निश्चयं कन्या गणकादीन् रघून्तमः ॥ ६ ॥  
 विसृज्य मैथिलीं मत्वा सर्वं शूचं न्यवेदयत् । ततो ययुः कोटिश्रुत्वे पार्थिवश्च सुनीश्वराः ॥ ७ ॥  
 समद्वीपांतरस्थाश्च सावरोधाः स च लकाः । नानावाहनमस्थाश्च पौर्वर्जानि पर्दनिर्जितैः ॥ ८ ॥

मुहूर्तं मार्गशीर्षमे तौन मुहूर्तं माघमे और तौन तौ मुहूर्तं फाल्गुनमे बनगया । इस तरह उन बारहो कन्याओंके विवाहका लगन चल गया । तबसेतर धर्मिक लोग साथसाथ उन ज्योतिर्विदोंके वैशाखमासी लगनमें लव और अङ्गदके विवाहका मुहूर्त निश्चित किया । चित्रकेतु और पुष्करका विवाह ज्येष्ठमासकी लगनमें निश्चित हुआ । तब और सुबाहुका विवाह एक पक्ष बाद मार्गशीर्षके पुनः पक्षमें निश्चित किया ॥ ४२-४५ ॥ यूपकेतु, अङ्गद तथा चित्रकेतुका विवाह माघ मासमें निश्चित हुआ । ४६ पुष्कर, तक्ष तथा सुबाहुका विवाह रामके समक्ष देवे हुए ज्योतिर्विदोंने फाल्गुन मासकी शुभ लगनमें निश्चित किया ॥ ४७ ॥ इस तरह क्रमशः बारहो विवाहोंके निश्चित हो जानेपर रामने ज्योतिर्विदोंको विनियत पूजा की ॥ ४८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पञ्चमोऽध्यायविनिश्चयविभागोऽष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे - उपर्युक्त प्रकारसे निश्चित हो जानेपर रामके सामने ही वसिष्ठ तथा ज्योतिर्विदोंने उन कन्याओंके विवाह के कर्क रहने के लिए कि कौन सी कन्या किसको दी जाय ॥ १ ॥ कज्जानना नामकी कन्या लवके लिए, कज्जार्धमगदा के लिए पञ्चमासी चित्रकेतुके लिए, कलावती पुष्करके लिए, कालिका तक्षके लिए, चपला सुबाहुके लिए और सचला सुबाहुके लिए देनेके लिए उन ज्योतिर्विदोंके निश्चित किया । इस तरह उन पाँचों गंधर्वकन्याओंके विवाहोंके निश्चित हो जानेपर रामने सादरपूर्वक स्तुतिविद्योते किया और स्वयं सैनिकों के साथ जा पहुँचा । जो कुछ सभामें निश्चित हुआ था, सो उन्हें कह देनाया । इसके बाद सातों द्वीपोंमें रहनेवाले कर्गोंके मुहूर्त और तथा रात्रि अपने परिवार और प्रजा समेत नागा प्रकारको सवारियाँपर सवार होकर अवोध्य भाग ॥ ४-८ ॥ उस समय उन लोगोंसे सारी अवोध्य भर

रैः साऽयोध्यापुगे न्यासा विरेजे निर्गता तदा । ययौ विभोपणश्चाथ मुग्धाकोऽपि प्लवंगमैः ॥ १९ ॥  
 ययौ स भूरिकर्तिश्च पुत्राभ्यां र्जवमादगतः । ययौ स जनकश्चापि युधात्रिन्म ययौ तदा ॥ २० ॥  
 कौमल्यायाः सुमित्राया चैकवाद्याः समाच्युः । अधगामस्तु वैशाखशुक्ले द्वित्रयर्षेः सह ॥ २१ ॥  
 पुगेथगा सुहृद्भिश्च स्नानमभ्यगपूर्वकम् । कृत्वा लवाय मागन्धर्वानाथैः स्त्रीः प्रबोदयन् ॥ २२ ॥  
 ततो मुहूर्तमभये वधुच्छिष्टं निद्या लवम् । सम्पन्नं किञ्च मुनेकाद्रीं सोनाद्या मागन्तदा ॥ २३ ॥  
 स्वयं मन्तुर्मुदा तवाभ्युपनादैः मन्त्रालकाः । अथ रामो देवकस्य प्रतिगो ब्राह्मणैः सह ॥ २४ ॥  
 आदौ कृत्वा गणपतेः पूजां सम्प्रत्यक्षाविधिः । पुण्याहादिवर्षं चरपि कृत्वा पूर्वं सविस्मरम् ॥ २५ ॥  
 अकार विधिवन्नुष्टः पूजयामास वै मुनीन् । ततो मुहूर्तमभये गत्वा पञ्चगमदिग्म् ॥ २६ ॥  
 लवस्य कञ्चनयनाविवाहं विनियतयन् । चतुर्थे दिवसे वशावस्थे रत्नदीपकैः ॥ २७ ॥  
 नीराजितस्तदा रामो विरेजे मण्डपे स्थिता । ततो निव्रजगृहं गत्वा पूर्वोक्तैरुन्मत्तादिभिः ॥ २८ ॥  
 लवेन कात्याभास लक्ष्मीपूजनमुत्तमम् । ततो दानान्यनेकानि दत्वा स रघुनन्दनः ॥ २९ ॥  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तथा ते पञ्चगा अपि । सुहृदश्चाथ गंधर्वाः पौगन् जनपदादयः ॥ ३० ॥  
 पूजयामासुः श्रीरामं रत्नैरामरणादिभिः । तथा नान् लक्ष्मणादीश्च कृष्णाद्याश्चापि बालकान् ॥ ३१ ॥  
 ततस्तान् नृपवन्द्यश्च सुहृत्पत्न्यः पृथक्पृथक् । नागवन्द्यश्च गंधर्वपत्न्यश्चान्येभ्यः स्त्रियः ॥ ३२ ॥  
 सीतायाः पूजयामासुर्वर्गैर्गणैरगादिभिः । सीताऽपि ताः सुहृत्पत्नीस्तथा पार्थिवकामिनी ॥ ३३ ॥  
 पूजयामास विधिवद्वस्त्रैरामरणादिभिः । रामोऽपि सुहृदः पौगन् गन्धर्वान्पन्नगाभूषान् ॥ ३४ ॥  
 रत्नैरामण्यैर्नैः पूजयामास स दम् । एवं वैशाखामासे तु मिने पक्षे लवस्य च ॥ ३५ ॥  
 कृत्वा विवाहं रामः स कृष्णपक्षे तु माधवे । अकार परेद्वर्गाद्विवाहं अगदस्य च ॥ ३६ ॥  
 चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहो रघुनन्दनः ज्येष्ठमासे शुक्लकृष्णपक्षयोःकरो-मुदा ॥ ३७ ॥

ययौ और नह बहुत ही सुन्दर दीखने लगी । बहुतस वनगोको साथ लिए हुए मुग्धा, अपन दोनों बेटोके साथ राजा भूरिकर्ति, इनके सिवाय विभोपण, जनक, मुग्धाजन्, कौमल्या तथा सुमित्राके बन्धु-बान्धव आदि भी अयोध्यामें आ पहुँचे । इसके बाद वैशाखके शुक्लपक्ष में पुनर्जित तथा विरोके साथ रामने अष्ट-पूर्यंक स्नान किया और लवको कञ्चनयन कर देने लिए निजपैरुके करवा । १९-२० ॥ सात दिवस माताजीने जब मुहूर्त आया, तब वचके जड़े रत्नदी-नेत्र तथा उबरन लेकर लवके जरीरस लगाया और बड़ा नया नमन्हे आदि आगत राम आत्मार्क से न स्नान भी करा । किया । अथ राम लक्ष्मणके साथ मुहूर्तपक्षाका स्वाध्याय का । २१ ॥ २४ ॥ स्नानके पूर्व यथाविधि गणपतिकी पूजा की और निम्नगत तीन प्रकारका पुण्याहवास्य किया । इसके अनन्तर मेहमानोंके साथे हुए मुद्रिकाका पूजा करके जगह सज्जुष्ट किया । राम मुहूर्तमें पञ्चगोके वहाँ गये और वहाँ कञ्चनयनाके साथ लवका विधिवत् विवाह सम्पन्न किया । चौथे दिन रामकी छिटनीमें ७४ हुए रत्न-दीपकास रामकी आगती उत्तरी गयी । उस समय राम संताके साथ बहुत ही सुन्दर दीख रहे थे । इसके अनन्तर पूर्वोक्त उत्तरोंके साथ राम अपने घर गये वहाँ लवके हाथोंसे अच्छी तरह लक्ष्मीपूजन कराया और अनेक प्रकारके दान दिये । २२-२६ ॥ इसके बाद उन दान दानान्तरसे आये हुए राजाभा, पन्नगों, सम्बन्धियों, पुत्राभिया और जनपदवासियोंने विविध प्रकारके दानों और आभूषणोंसे राम-कृष्ण तथा सब बालकोंका पूजा की । इसके पञ्च गणियों, सम्बन्धियोंकी स्त्रियों, गामपत्नियों तथा गंधर्व आदिकी स्त्रियोंकी सोता आदि स्त्रियाँ वस्त्र और आभूषण देकर विधिवत् वन्दित किया । रामने भी सम्बन्धियों, पुत्राभियों, गन्धर्वों और पन्नगोंकी वस्त्राभूषणसे अच्छी भाँति पूजा की । इस तरह वैशाख मासके शुक्लपक्षमें लवका विवाह सम्पन्न किया और कृष्णपक्षमें पूर्ववत् उत्साह समेत अङ्गरका विवाह किया ॥ २०-२६ ॥ उसी प्रकार ज्येष्ठक शुक्ल और कृष्ण-

ततः सर्वान्नुपादीश ददावज्ञां सुदृशितान् । ततः पुनस्तात्नाह्वय पूर्ववन्मार्गशीर्षके ॥२८॥  
 तमस्याथ सुवाहोश्च विवाहानकगोत्रमभुः । ततः सर्वान्नुवान् रामो ददावज्ञां सुदृशितान् ॥२९॥  
 ततः पुनस्तात्नाह्वय माधवास सुदन्नुपान् । गुरकेतारगदस्य चित्रकेनोर्महोन्मर्दः ॥३०॥  
 विवाहानकगोत्रामः पश्चिदन्न व्यमर्जयत् । पुष्करस्याथ लक्ष्म्य सुवाहोश्च महोन्मर्दः ॥३१॥  
 अकारकाङ्गुने मानि विवाहान् जानकीधरः । एवं कृत्वा विवाहांश्च रामो ददावज्ञां सादरम् ॥३२॥  
 नृपैः संपूजितः सर्वान्पूज्याक्षां नृपतान् ददौ । पूजयित्वा मुनींश्चापि विमर्षं समूद्रहः ॥३३॥  
 गधर्वपन्नगाः सप्त ते सकेनेऽत्र मन्थिताः । राम मुहुरा न ते नैज स्थल जग्मुर्मृदान्विताः ॥३४॥  
 मन्थिणः प्रेक्षयन्मातुः स्वस्वरानेपु ते पृथक् । पदा रामः स वैकुण्ठमग्रे गच्छति कालतः ॥३५॥  
 तदा सातानिकेन्द्रोकोन्मे गच्छन्ति न मलयः । अथ रामः पन्नगानां गन्धर्वानां च सद्यतु ॥३६॥  
 वाधिकेपुंसवेष्वत्र सारंगधः मुहुरर्जनः । शीरः स्वायम्भोजनादे गन्वा हर्षाकरोन्मदा ॥३७॥  
 तदा महोत्सवश्चामनसोऽप्याया गृहे गृहे । आनन्दः सकलानाम्योआमीन्कुत्राप्यमगतम् ॥३८॥  
 अथ तेषां गधर्ग पुत्राणां च पृथक् पृथक् । अष्ट कृत्वा तु गेहानि पृथक्कृत्वा च शान्तयः ॥३९॥  
 तेषु ते स्थापिताः स स्वस्वस्थोऽस्यां पृथक् सुखम् । तथा त लक्ष्मणायाश्च पृथगेहेषु नाथवा ॥४०॥  
 पर्वमेव स्थापिताश्च स्वस्वपत्न्याः सुदन्विताः । सुमित्रायाः स र्माभिश्च स्त्रीषुगेहेऽवसन्सुखम् ॥४१॥  
 केकेपी भरतस्याथ गेहे पद्मसुराया वा । तस्यौ सवृत्तमेहेऽपि नाममेकं पद्यासुखम् ॥४२॥  
 एवं सा पुत्रयोर्गेहऽकर द्वयं सुदन्विता । कामन्या ना रामगेहं तस्यौ सीतानिसेविता ॥४३॥  
 ते सर्वे च विवाहः पुत्रा निवर्तयन् च सकेः । स्वदासीगोधनाद्यैश्च सुखमायुः पृथक् पृथक् ॥४४॥  
 अथ ते लक्ष्मणायाश्च कुशाया चानद्या अपि । स्वस्वगेहेषु वै प्रातः स्नात्वा होमाम् शिवार्चनम् ॥४५॥

पश्चात् विवाहान् कृत्वा पुष्करस्या विवाहं कृत्य किं ॥ २७ ॥ इसके बाद सब राजाओं और मुनियोंको अपने-अपने घर अपने-अपनी आज्ञा दी । फिर म. ॥ २८ ॥ म. सबन बुद्ध कर राज और मुहुरा विवाह किया । बादमें सबको अपने-अपनी का अ. मन्थि दकर साथ म. म. पुष्पाय और सुषकुका विवाह सम्पन्न किया ॥ २८-३० ॥ माधवे जाय मेहमन्त्रिका विवाह करके अपने फ. गुने मायम पुष्कर, तथा तथा सुवाहका विवाह किया । इस तरह के ही विवाहोंका करके म. म. सब महामन्त्रिक म. पूजा की और उनका पूजन स्वीकार किया । सब सबन अपने-अपनी राजा, तथाका जनका अनुमति दी । इसी तरह उन मुनियोंका भी विधिपूर्वक पूजन करके अपने-अपनी आज्ञा पायी आज्ञा का आज्ञा ॥ ३१-३३ ॥ किन्तु गन्धर्व और वल्लभगण अथ भ्यामे ही रहे । वे अपने-अपनी मुनियोंका राजकी भेंटकर रामके पास रहने लगे । वे सब तक अपनापन रहने जब तक राम अपने वैकुण्ठस्थाना नहीं चले जायेंगे । रामके चले जानेपर वे भी सातानिके र. कर्को पते जायेंगे । इसके अ. रिल कापिक उत्सवों और त्योहारोंपर राम अपने घरके मित्रों मित्रों तथा सखियों के साथ पदों और गधर्वगणके यहाँ जाकर भोजन आदि करते थे ॥ ३४-३७ ॥ उन दिनों अर्थ धनम धन पर उमर मनाय जात थे : उस समय सबन मानद था । कही भी किसी प्रकारका भयगन नहीं दिखता पड़ता था । ३८ ॥ इसके पश्चात् रामने उन बारहों पुत्रोंके लिए अलग-अलग घर बनवाये और विधिपूर्वक शास्त्रिपांडु कर्को उनको अपनी-अपनी मित्रोंके साथ उन घरोंमें बसा दिया । उसी तरह लक्ष्मण आदि भ्राता भ्राता राम अलग अलग महलमें अपने-अपनी मित्रोंके साथ सुखपूर्वक रह रहे थे । मुनियोंके पुन लक्षण अपने महलमें आनन्दपूर्वक रहते थे ॥ ३९-४१ ॥ केकेपी एक महाना भरतके यहाँ और एक महाना शत्रुघ्नके यहाँ रहा करती थी । इस तरह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहती हुई वह सुखे समय बिता रही थी । कौसल्या से ताका सेवा सदन करती हुई रामके महलमें रहती थी ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे सब भ्राता और उनके पुन अलग-अलग अपनी सवारों, सेवक, दासी, शोधन आदि अपाः सम्पत्तियाँ रखकर आनन्द ले रहे थे ॥ ४४ ॥ यह सुनकर विद्यम वा कि मन्मथ आदि सब भ्राता और कुल आदि

गोद्विजार्चादि संपाद्य तनस्ते शयनं ययुः । नन्वा रामं जानकीं ते तस्युर्दिव्याभनोपरि । ४६ ॥  
 तेषां मर्वाः स्त्रियश्चापि स्नान्वा दुर्गा प्रपूज्य च । गन्वा सीतां प्रणेषुमनास्तस्युः सीताञ्जयाऽऽवने । ४७ ॥  
 तनस्ते लक्ष्मणाद्याः कुशाद्याः स्वगुरोर्भुव्यात् । कदा पीतागिर्की श्रुत्या जामुः स्वं स्वं गृहं प्रति । ४८ ॥  
 ततः सर्वे रामगेहे समाहूता मुदान्विताः । उपाहारान् पृथक् चक्रुर्मध्याह्ने भोजनान्वपि ॥ ४९ ॥  
 एवं तेषां स्त्रियश्चापि समाहूतास्तु सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुः सीतागृहे सदा । ५० ॥  
 कदा मुदा स्वीयगेहे राधवेणाथ सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुस्ते ब्रह्मणादिभिः । ५१ ॥  
 एवं तेषां भुविर्वालिः प्रापतुर्निर्गमः सुखम् । सीतागर्भा कदा नामोत्कलङ्कः कापि कस्य हि । ५२ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितम्सर्गः श्रीमदानन्दरामायणे वात्समीय विवाहकाण्डे

हाराविवाहवर्णने नाम सप्तमः सर्गः । ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( शशुभनतनय नृपकेतु द्वारा मदनमुन्दरीका हरण )

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा दक्षिणे हि शिवकात्या महापुरि । कबुकटो नृपः श्रीमान्निजकन्यास्वयंवरम् । १ ॥  
 कर्तुंकामो नृपान्सर्वानाह्वयामास सादरम् । तदा ते पार्थिवः सर्वं पत्राणि हि पृथक् पृथक् ॥ २ ॥  
 पूर्वैरमनुस्मृत्य कुशस्यापि स्वस्य च । स्वयंवरे स्वीयमानभगेनोद्भूतहृन्निश्चितम् । ३ ॥  
 प्रेषयामासुर्नृपतिः न ययुश्च स्वयंवरम् । तेषां पत्राणि सर्वाणि कबुकटो ददत्तं सः । ४ ॥  
 सर्वेषु लिखितस्वेक एवार्थस्त्वं वदाम्यहम् । यदि नायानि रामस्य बालकास्ते स्वयंवरे ॥ ५ ॥  
 वयं सर्वे तर्हि यामो जंचुद्वीपान्तरस्थिताः । तेषामेवमभिप्रायं ज्ञात्वा स नृपतिस्तदा ॥ ६ ॥  
 न ममाहूय श्रीराममाह्वयामास पार्थिवान् । स्वयं चापि स्मरन्तं तदेवं रामधुवयोः । ७ ॥

बालक मयरे स्नान करके हूयन, शिवार्चन एवं गो-ब्रह्मणोकी पूजा करत थे, तब रामके पास जाते और वहाँ सीता तथा रामकी प्रणाम करके निष्प्राप्तनपर बैठते थे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी स्वयं स्नान और दुर्गापूजनसे निवृत्त होकर सीताके पास जाती ऊँह प्रणाम करती और आज्ञा पाकर दिव्य आरात्तापत्र बैठती थीं । ४८ ॥ इसके बाद वे सब लोग गुरु नमस्के मुक्तसे पुराणोकी कथा सुन सुनकर अपने भवनोकी जाया करत थे । दोपहरको रामके नृत्यांशपर साथ साथ जलपान तथा भोजन करत थे । उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी सीताके नृत्यांशपर सीताके वहाँ ही आकर जलपान तथा भोजन करती थीं ॥ ४९-५० ॥ कभी-कभी वे लोग राम और बहुतसे ब्राह्मणोको अपने वहाँ बुलाकर भोजन कराते थे ॥ ५१ ॥ इस तरह उन बन्धुओं और बालकोंके साथ सीता तथा राम बड़े सुखसे जीवन व्यतीत कर रहे थे । किसीके साथ कभी किसी तरहका झगडा नहीं होता था ॥ ५२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वात्समीय पंच रामतजपाण्ड्यविरचित-भारवाटीकासहिते विवाहकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय दक्षिणकी शिवकांतपुरीमें वहाँके राजा कम्बुकण्ठने अपनी कन्याका स्वयंवर करनके विचारसे सब राजाआके वहाँ निमन्त्रणपत्र भेजकर बुलवाया । किन्तु कुशलके कारण वे महाराज कम्बुकण्ठके वहाँ नहीं आये और एक-एक पत्र लिखकर भेज दिया । कम्बुकण्ठन एक-एक करके सब राजाआका पत्र देखत ॥ १-४ ॥ उन सब पत्रोंन एक ही चर्चा थी । वह यह कि यदि रामचन्द्रके छठके तुम्हारे स्वयंवर न आय तो हम सब जम्बूद्वीपके राज तुम्हारे वहाँ आयंगे—अन्यथा नहीं । राजा कम्बुकण्ठन उनके अभिप्राय समझकर रामचन्द्रजाके पास निमन्त्रण व भेजकर बाकी सब राजाओंकी बुलाया । कम्बुकण्ठको स्वयं भी वह बात बाद था गर्भा कि राजके पुत्रने चम्पिका और सुमतिके स्वयंवरसे



चापिकासुमनिपाणिग्रहर्षाय ॥ ८ ॥  
 वृगमनम् । ततस्ते पारिव्याः सर्वे भुचाराव हिनगरम् ॥ ८ ॥  
 समद्रीपानरम्भाश्च ययुः कानिपुगी प्रति । अथ तां कञ्चुकुष्ठम् कन्यां यदनमुन्दरीम् ॥ ९ ॥  
 प्रासादसंस्थितां दृष्ट्वा नारदः स्वात्ममाययी । सखीभिः सा मुनिं पूज्य विनयान्पुनः स्थिता ॥ १० ॥  
 पप्रच्छ नारदं प्रकम्पा रिनयावनता शूनः । कुतः समागतः स्वामिन् गम्यते काधुना यद ॥ ११ ॥  
 ययतां दर्शनेनाद्य पात्रिभ्यः परमं गता । इति तस्या वचः श्रुत्वा कञ्चिन् स्मिन्वा मुनिस्तदा ॥ १२ ॥  
 तामह बाले स्वलोकादागतोऽस्म्यधुना त्वहम् । अयोध्यायां गौधवस्य पुत्राणां तु पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥  
 मेहे संभोक्तकामोऽप्य निगतोऽस्मि विहायवा । एनभिर्मन्नतरं कातिपुर्वाः सैन्यानि वै वहि ॥ १४ ॥  
 दृष्ट्वा कैवा हि सैन्यानि मतीति हृदि चिन्तितम् । ततः पाथमुवाच्युन्वा तव चक्ष स्वयंवरम् ॥ १५ ॥  
 तदा विनिश्चितं चित्तं मया रामः स्वयंवरे । अत्रैवास्ति क्षागतश्च तं पश्याम सत्रालकम् ॥ १६ ॥  
 नैवास्ति क्षागतश्चेदं नहि यास्याम्यतः परम् । स्वयंवरो विना रामं न भविष्यति सान्मजम् ॥ १७ ॥  
 पश्याम्यश्वैव तं रामं पृथाग्ने गमनं मम । निश्चिन्त्येवं समायान्तस्ततोऽदृष्ट्वा ग्धूतवम् ॥ १८ ॥  
 कथं रामो नागतोऽत्र चेति पृष्ट्वा नृपा मया । नृगामिप्राथमाकर्ण्य तदा खिन्नं मनो मम ॥ १९ ॥  
 समद्रीपवति रामं वधुशालकमयुतम् । स्वयंवरमनाहुप त्वन्वित्रा निश्चितं नृपैः ॥ २० ॥  
 जघुताऽहं प्रमद्व्रामि माकेनस्यं ग्धूनमम् । मन्दभाग्याऽसि बाले त्व स्तुपा राघवमत्पतेः ॥ २१ ॥  
 यतो जाताऽसि नैवात्र विचित्रा कर्मणा गतिः । इत्युक्त्वा बालिकां पृष्ट्वा नारदो गन्तुमुद्यतः ॥ २२ ॥  
 ततः संप्राथयामास नारदं बालिकम् मुदुः । खिन्नचित्ताऽनुपूर्णाधीस्तानास्या स्फुरिताधरा ॥ २३ ॥  
 रामाचितननुर्मुग्धा यतर्थागदम्बरा । येनाहं मुनिपथांश्च स्तुपा भीराववरस्य च ॥ २४ ॥  
 भविष्यामि तथा कार्यं न्यथा त्वां शरणं गता । इत्युक्त्वा मुनिवर्यस्य पादयोः स्थप्य सा शिरः ॥ २५ ॥  
 चकार करुणं बाला तदा तां मुनिरवनीत् । मा चिन्तां कुरु रंभाकं मुमुक्षुश्च बालिके ॥ २६ ॥

ययस वैर कर लिया ॥ ५-७ ॥ इसके अनन्तर जब सब राजाओं ने यह मुन जिदा कि राम नहीं आयेगे, तब न कञ्चुकुष्ठके यहाँ पहुँचे । उपर कञ्चुकुष्ठकी कन्या यदनमुन्दरीका अट रीवर देलकर नारदजी आन्यास-  
 मायस उत्तर आये । यदनमुन्दरीने तस्त्रिंश क साव अकर नारदको पूजा की और उन मुनिके सामने जा बैठी  
 , ८-१० ॥ फिर मुनिपूर्वक नारदम पृछन लगा—स्वामिन् । आप इस समय कहाँसे जा रहे हैं और  
 मय कहीं नारदों से कहाए ॥ ११ ॥ आपक दयनस्य से आज परम पवित्र हो कयी । इस प्रकार उसकी  
 वत मुनी ला याहा मुसककर नारद कहन लग्य—ह बाल । इस समय मे स्वर्गनाकस आ रहा हैं और  
 नमक सब पुत्राओं यही अलग-अलग भोजन करनक न्यत्र अमाया जा रहा हैं । आज समय मेने कार्त्तिकपुरी  
 नारदक बाहर सेना बैली । उस देलकर मुज यहा कोटुहल हुआ । रादउम एक पविकसे पृछनेपर जात हुआ  
 कि यही तुम्हारा स्वयंवर है ता यह हावा कि जहाँ तक है, रामचन्द्रजा अपन बालकी समत यहा अवश्य  
 जाये होंगे । बालो, बहो हें दयन कर ल । यह निश्चा करक मे यहाँ आया, किंतु रामचन्द्रजीको नहीं बेला हो  
 राजाओंसे पूछ कि राम यहाँ नहीं आये ? उन लोगोंने जा कारण बतलाया, उससे मरा मन बहुत खिन्न  
 हुआ ॥ १८-१९ ॥ मन्दहृदयक अधिपति राम तथा उनके लहकावा न बूल सका निश्चय करके ही तुम्हारे पिताने  
 ओर-ओर राजाओंका बुलाया है ॥ २० ॥ अच्छा, अब मे भगव्याम रामचन्द्रजीकें पास जा रहा हूँ । हे  
 कन्ये ! तुम अमाया हो, जो रामचन्द्रजी जैसे राजराजका पतेहू नहीं बन रहें हो । कमकी भी बड़ी विचित्र  
 बन होनी है । ऐसा कह और कन्यासे पृछकर नारदजा जाने लगे । तब वह कन्या यदनमुन्दरी सिद्ध मन,  
 हनु भरी माँसो, स्नानमुख, कौमल हुए अवरो तथा रमाचन शरीर होकर गद्गद बाणोंसे इस प्रकार विनय  
 कन्यो हुई कहन लगी—आप कोई ऐसी पुक्ति करिए कि जिससे मे रामकी ही पताहूँ बनू । मैं आपकी चरणमें  
 हूँ । ऐसा कहकर उसने अपना मस्तक मुनिराजके चरणाम रख दिया और रोने लगा । तब नारद मुनिने कहा—

भविष्यमि त्व रामस्य स्तुत्या यत्न करोष्यहम् । हृद्युव वा सा ममाद्यास्य स्वमार्गेण मुनिर्ययौ ॥२७॥  
 एतस्मिन्नेकरेऽप्याध्यापुयाः स्वन्दनमन्वितः । यूपकेतुर्न पश्यन्ममार्गाभाययौ ॥२८॥  
 किञ्चित्सैन्ययुतो बालस्तमसारां निराश्रयः । यावन्सध्यादिकं कर्तुमुपविष्टस्तदा मुनिम् ॥२९॥  
 ददर्श नारदं नन्या पूजयामास साक्षरम् । ततः पश्यन् मुनये पुरातनः पुरःस्थितः ॥३०॥  
 कृतः समागतं चेति मच्छ्रुत्वा नारदो मुनिः । सर्वं वृत्तं परिभार कथयामास बालकम् ॥३१॥  
 मच्छ्रुत्वा सकलं वृत्तं नन्या तं नारदं मुनिम् । अत्रैव बालको वाक्यं मक्रोधः संभ्रमान्वितः ॥३२॥  
 मुने नृपाणां सर्वेषां इषवृद्धिश्च राघवे । वा जना साऽद्य सर्वेषां ज्ञेयाऽनर्थकगी जवान् ॥३३॥  
 कपुकटादिभूषणानां सारं पश्याम्यहं यणे । यणे व्यक्तपणा मर्मान् जित्वा नामानयाम्यहम् ॥३४॥  
 हृद्युवन्वा स ययौ क्वाति पञ्चमेऽहनि सैन्या । नारदोऽपि ययौ रामं द्रष्टुं श्रोतमनास्तदा ॥३५॥  
 रामेण वञ्चितः प्रेम्णा भोजनार्थं निमग्नितः । जय भोजनवलाभां यूपकेतुं रघुत्तमः ॥३६॥  
 मदृष्ट्वा लक्ष्मणं प्राह यूपकेतुर्न दृश्यते । बालेषु तु भोजनार्थं लक्ष्मणात्र समाह्वयः ॥३७॥  
 तदा स मालतीं गत्वा प्रपच्छ लक्ष्मणीं जवान् । सा प्राह वनमध्येऽद्य किञ्चित्सैन्ययुतो गतः ॥३८॥  
 वृक्षमेतद्यथाचरन्स गत्वा रामं जगद् इ । अथ रामो भोजनादि सपाद्य मुनिना मुदा ॥३९॥  
 ययौ समायामासीनस्तं मुनिं वाक्यमनरीन् । पञ्चममृदिनान्पत्रं स्वेयं मद्रचनान्वया ॥४०॥  
 तथेति नारदः प्राह सभायां संस्थितः सुखम् । अथ रात्रीं यूपकेतुमट्ट्वा रघुनन्दनः ॥४१॥  
 उपाहारं कर्तुंकामः पुनर्लक्ष्मणमवधीन् । आकारय यूपकेतुं नायं दृष्टो मया शिशुः ॥४२॥  
 तथेति रामवचनात्पुनर्गत्वा तु मालतीम् । पश्यन् यूपकेतुं स सा प्राह नागतस्त्विति ॥४३॥  
 ततः स विद्वलौ भूत्वा रामं वृत्तं परवेदयन् । रामोऽपि नागतं भूत्वा ययुष्यां विद्वलौऽभवन् ॥४४॥

हे रामाह । हे बालक ! तू मे किसी एक चीज के लिये न कर, उठ ॥ २१-२६ ॥ तू अवश्य रामकी पत्नी ह  
 बनोगा । मैं इससे लिए उठाना कहूँगा । तब वह और राम इसमें अंतर न करके आकाशगंगसे खल  
 दिये ॥ २७ ॥ इसी समय यूपकेतु राघवसे बैठकर अयाध में निषण्ण और नारदके पासको देखते हुए तबसा नदीके  
 किनारे पहुँच । २८ ॥ उस समय यादो-सी सन उनको मर गयो । उसके साथ हृद्युवने लगामें स्नान किया  
 और सभामें नन्दन करवकी ओर में थे । नारदकी आज्ञा । तब उनको प्रणाम करके सादर पूजन किया ।  
 इसके बाद नारद मुनिने चित्तारपूर्वक उस कन्या मदनमुरली व सारा वृत्तान्त कहा । उसे सुनकर आनन्द और  
 धनराहृष्टमें पूर्ण होकर वृषभनृत्त कहा ॥ २९ ३० ३१ ३२ ॥ मुनि । इस समय जो सब राजा रामसे ईषवृद्धि  
 रखते हैं, वह उनको लिए अनर्थकारिणी सिद्ध होगी । ३३ ॥ कपुकण्ट आदि गताओका बल में सभामें भीतम  
 पहुँचकर देखता है । हे मुनिरज । मैं आपकी कृपासे उन सबको वाचकर मदनमुरलीको लिये जाता हूँ । ३४ ॥  
 ऐसा कहकर यूपकेतु अपना सनाक साथ पाँचवें दिन कनिष्ठा में पहुँच और नारदजी प्रसन्नतापूर्वक रामका  
 भोजन कराने के लिए अयाध्या खले गये । ३५ ॥ वहीं पहुँचते-ही रामने प्रेम्से नारदजीका पत्रन करके भोजनका  
 निमन्त्रण दिया । जब भोजनका समय हुआ, तब यूपकेतुको न दलहर रामने लक्ष्मणसे कहा कि इस समय  
 यूपकेतु नहीं दिखायी देता । हे लक्ष्मण ! और-और बालकाके साथ उसे भी भोजन करने के लिए बुलाओ  
 ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार लक्ष्मण मालतीके पास पहुँच और यूपकेतुको पूछा । उसने  
 कहा कि मैं अपने साथ बोलो-सा सेवा लेकर बनकी गये हूँ ॥ ३८ ॥ यह वृत्तान्त लक्ष्मणने जाकर  
 रामको सुना दिया । तत्पश्चात् मुनिक साथ राम भोजन आदि करके अरने सभाभवनमें गये और  
 वहीं बैठकर नारद मुनिसे कहनेसे पाँच-पाँच दिन यही हो उठर जाइये । 'सवाम्नु'  
 कहकर नारदजी भी उठर गये । तत्पश्चात् भोजनके समय रात्रिमें भी यूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणसे  
 कहा—यूपकेतुको बुलाओ । आज पने दिनभर उस बालकी नहीं देख पाया है । ३९-४२ ॥ 'बहुत बच्चा'  
 कहकर लक्ष्मण फिर मालतीके पास गये और यूपकेतुको पूछा । उसने कहा कि मैं अभी तक

ततः सा जानकी श्रद्धा विह्वला स्निग्धमानसा । मुद्राव गदगद्रे सा सर्वे तूष्णीं कथं स्थिताः ॥४५॥  
 इति तान् प्राह वैदेही तदा सर्वेऽतिविह्वलाः । शकः कोपादागतं वेगेन मन्त्रोपाधौ ममूषताः ॥४६॥  
 तदा तान्विह्वलान्द्रष्टुं नाभ्यः प्राह गवतम् कांतिवृत्तं युपकेतोः प्रयागादिप्रसादरात् ॥४७॥  
 तस्मिन् राधयः श्रद्धा किञ्चिन्मृगमस्तदा लक्ष्मण प्राह वेगेन जन्मनोऽद्यैव मच्छतु ॥४८॥  
 सेनया चतुर्गणिका जवान्कांतिं कुशादिभिः मध्येन लक्ष्मणशोकत्वा खायाहागन्विधाय मः ॥४९॥  
 सेनया चालकैरगच्छन्नुत्तमं प्रेषयन्निद्रि । शर्म नन्वाध अश्रुणाः शीघ्रं ह्यन्दनमस्थितः ॥५०॥  
 यथा कांतिवसीपं स पयोऽहनि मुदान्वितः एतस्मिन्नतरे कांतिपुर्यां तत्र स्वयंवरे ॥५१॥  
 तमायां राजशार्ङ्गाः मस्थितान्ते मुदान्विताः । मय सा शिविकामहऽऽयथा मदनमुन्दरी ॥५२॥  
 किञ्चिन्म्लानमुक्ती दुःस्वास्परवी नाभेरितम् । कुटोषमाना तां सर्वान् दर्शयामास पार्थिवान् ॥५३॥  
 युपकेतुस्तदा वेगाद्भवा तूष्णीं मभांगणम् । मोहनत्वं तिसृन्वयथ मोहयामास तां मभाष ॥५४॥  
 मोहितमोहनामणं न्यस्तां तद्वाक्यैर्भुवि । रणेन शिविकां गन्वा धृत्वा मदनमुन्दरीम् ॥५५॥  
 निज्ञाभिधानं मश्राड्य तां तुष्टामकरोत्तदा । अथ सा जग्यामाम तत्र मदनमुन्दरी ॥५६॥  
 हृमोच मानां तत्कण्ठे नवरत्नमयी शुभाम् । ततः स युपकेतुर्दिग्धे मदनमुन्दरीम् ॥५७॥  
 निवेश्य कांतिपुर्यां स व दोगेत्वा स्थितोऽभवत् । नागाह दयतां धीरास्त्वेवानीं च भयं त्यज ॥५८॥  
 जिन्वा सर्वान्नुपानश न्वया मन्त्राभ्यह पुनर् । ततस्त्य वचनं श्रुत्वा सा प्राह वचनं तदा ॥५९॥  
 बहवः सति राजानस्त्रमेकः स्वल्पसेनया । प्रमत्तयानानि सैन्यानि तेषां पश्य समन्वतः ॥६०॥  
 कथं युद्धं भवेदत्र सा कुरुगद्य मंगम् । शीघ्रं मां नय मध्येन ततो रामेण सेनया ॥६१॥

बहो लोट ॥ ४५ ॥ यह युग ला वि ॥ ३ हाक रक्षमण रक्षम कहा । जब रामन यह मुना तो आत्माभोक  
 साधनार्थ व भी विह्वल हो उठे ॥ ४६ ॥ जानकीने मुन ला चहु भा विह्वल तथा स्निग्ध होकर दीवती हुई  
 रामको जाम गृहवा और कहा कि अब शीघ्र युपकेतुका आगमिष्ठ देखकर भी चुपचाप बैठे हैं ॥ ४७ ॥  
 कह भुनकर सब लोग बचड़ा उठे और भोजन स्थापनकर उस रत्नका लैवारी कर दिये ॥ ४८ ॥ इस प्रकार  
 सबका व्याकुल देखकर तारदत्त ने रामन कांतिपुरादा वृत्त में बदलाग और युपकेतुके प्रस्थानको भी  
 बात कह मुनयो ॥ ४९ ॥ यह हाल मुना तो रामको धारा गन्ताय हुआ और गुरम लक्ष्मणको आज्ञा दी कि  
 मया चतुर्गिणा सेना लेकर जायान अभी जानेपुरी जायें । 'अश्रुत मच्छा' कहकर लक्ष्मणने भोजन  
 कांद कर क रत्नम ह सेना और कुरु आदि वीर कायवाक मय शस्त्रको कांतिपुरी भजा रामको प्रणाम  
 करके लक्ष्मण रथपर सवार हुए और प्रमत्त रथक प्रस्थान कर लिये ॥ ५०-५० ॥ इस तरह असौध्यासे  
 बलकर ठक लगे दिन शत्रुधन कांतिपुराग पास पहुंच गये । उधर कांतिपुरासे स्वयंवर हो रहा था ॥ ५१ ॥  
 सभ मंडपम बहुतम राज हटपुर्वक बं हुए थे । इतनेमें मदनमुन्दरी पालकंम बंठा हुई मभाष आयी ॥ ५२ ॥  
 उस समय वह दुःखय नारदका जानीका प्रमत्त कर गयी थी । इस कारण उसका मुख दुःखवाया हुआ था ।  
 मभाष पहुंचकर वृद्धा वार्ता न स्व राजाओंको दितल्याया ॥ ५३ ॥ वही समय वेगके साथ युपकेतु समाभवनमें  
 पहुंच और मोहनामका प्रयाग करके उन्होंने सारी मभाका भूँढन कर दिया । ५४ ॥ मोहनामसे मोहित  
 होकर शिविकावाहकोन भी शिविका जमीनपर गल सी । इतनेमें रथपर खंडे हुए युपकेतु शिविकाके पास  
 पहुंच और मदनमुन्दरीका हाथ पकड़कर अपना नाम बताया, जिससे वह बहुत प्रसन्न हुई और वीर मूण्नेमु-  
 न वरकर उसने उनके गलथ वह नवरत्नमयी वरमाया हाक दी । तब प्रसन्न होकर युपकेतुने मदनमुन्दरीको  
 रथमें बिठा लिया ॥ ५५-५७ ॥ तब कांतिपुरासे बाहर निकलकर वे एक स्थानपर रुक गये । वहापर उन्होंने  
 मदनमुन्दरीसे कहा कि अब तुम किसी प्रकारका भय न करो ॥ ५८ ॥ मैं तब राजाओंको पीतकर तुम्हारे  
 साथ अवध्यापुगे लूंगा । युपकेतुकी बात सुनकर उसने कहा - ॥ ५९ ॥ वे राज बहुतसे हैं और तुम अकेले  
 हैं, तुम्हारे साथ सेना भी थोड़ा सी है और देखो न उनकी असंख्य सेना चारों ओर पड़ी हुई है ॥ ६० ॥

युद्धं कुरु नृपैर्धैरिं मृणु मदचनं प्रभो । मा साहसं कुरुस्वभ्रातृये त्वां मुहुर्मुहुः ॥६२॥  
 इति वरुणा वचः श्रुत्वा तामाश्रम्य पुनः पुनः । उपमहारधामाय मेदनास्र म लीलया ॥६३॥  
 तदा ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा तानां वधुं वल्लभ । शत्रुघ्नतनयेनेति स्त्रीवाक्यैः स्यदने स्थिताः ॥६४॥  
 निपैद्युः कोटिशो योद्धुं स्वस्वसेनावृता जवान् । घण्टिकायाः मुमुक्षुषाश्च पूर्वदेरेण दधिताः ॥६५॥  
 दृष्ट्वा तु नमिमांसेन ददृशुस्तं रघुस्थितम् । युक्तं मदनमुन्दर्या विभ्रतं मानिकां हृदि ॥६६॥  
 ततस्तं दृष्ट्वाः सर्वे नानाशस्त्राणि मनीकाः । वृषकेतुस्तदा धैरादुणःकुम्भ्य मददनुः ॥६७॥  
 कायव्याघ्रेण तन्मसर्वाभुद्वय दशदितु मः । प्राक्षिप-पार्थिवान् सैन्यैर्नानावाहनमस्थितान् ॥६८॥  
 तदा स कंबुकण्ठोऽपि पूर्वैर्ममनुस्मान् । चंपिकायाः सुमुखाश्च स्वयवरममुद्धवम् ॥६९॥  
 निमेषान्तिजकन्याया वैगतो हृष्य व्रजान् । महाक्रोधान्तिर्वहो म स्यमन्येन परिवेष्टितः ॥७०॥  
 कुर्वन् दुर्दमिवोपाश्च युद्धार्थं वृषकेतुना यूपकेनुरपि श्रुत्वा हृन्दभीतीं महत्स्वनम् ॥७१॥  
 कान्तिपूर्युत्तमहाश्रुतः मरिच्यतो र्था टण्डुकुम्भ्य मदच्चापं मन्दधे शरमुत्तमम् ॥७२॥  
 ये ये वीराः पुण्ड्रारान्निगताश्च वहेः अने । तान् जघान क्षणादेव प्रेनद्वारिं रुगेध मः ॥७३॥  
 तं दृष्ट्वा यूपकेतोश्च कंबुकण्ठः पराक्रमम् । ययौ स्वयं स्यन्दनेन प्रेतमप विदार्य च ॥७४॥  
 शेषसैन्येन सयुक्तो यूपकेतुं क्रुधा जवान् । तददृष्ट्वा यूपकेतं म मया त्वं पञ्जरं कुरु ॥७५॥  
 किमेतान्मशकान् हन्त्वा पौरुषं मन्यसे जड । हन्तुं कवा सप्रभिवार्णयूपकेतुं जघान मः ॥७६॥  
 तान्बाणानागतान् दृष्ट्वा यूपकेतुनिर्जैः शरैः । नोद्विष्ट-वा नवशरणस्तन्चापं पार्थिवं स्वजम् ॥७७॥  
 कवचं मुकुटं छिन्त्वा जघान तुण्णानपि पद्भ्यां । तदा कंबुकण्ठो गदामादाय दृष्टूवे ॥७८॥

ऐसी अवस्था में युद्ध कैसे कराये ? अब जन्म सशपथ न कर । भुज पात्र अरोध्या पड़वा दो और बहुसे राध-  
 पन्द्रजकी विजाल मेला लेकर भाजी, तब युद्ध लगे दे लो । ऐसे समय में हम करना सोच नहीं है । मैं  
 शर-बाण यहाँ किन्ती करती है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इस प्रकार मदन-मन्दरीका वन जाकर उन्होंने उसे आश्रि-  
 त दिया और मोहलायत्रका संवरण कर लिया । ६३ ॥ जब उन रजजल गिराके मुल्लभ मला कि शत्रुघ्न-  
 क पुत्र यूपकेतुने मदनमन्दरीका हरण किया है तो अपने अपने रथापर सवार हो-होकर बड़ा-बड़ी सेना  
 लिए वेग से साथ व अड़नेको निकल पड़े । एक ही गपान और लड़नेवाक बातें का ही । वेर उन लागीक मनमें  
 था, दूसरे अथ मदनमन्दरीके हरणस उत्क हवावा और भय है । ६४ ॥ ६५ ॥ फिर दया था,  
 मनुके रथके पहियाका रास्ता दखन हुए व चल और घोड़ा ही तर जाकर उन्होंने दखा कि यूपकेतु मदन-  
 मन्दरीके साथ बंठा है और उसक गलेमें बरमाना पड़ा हुई है । ६६ ॥ हतव हो गये राजाजी व एक साथ  
 उस कीर बाणकपर किलने ही आगोका प्रहार कर दिया । तु वगुन म वगके साथ आने धनुषका टङ्गीर  
 किया । ६७ ॥ और वायव्य अश्रका प्रवार करके उन स्व रज जवा रथ, बाहुन तथा मेला मदन उहाकर  
 दूर फेक दिया ॥ ६८ ॥ महाराज कम्बुकण्ठ भी पूर्वोक्त मया वगके विन्यकर हम समय वैरवम अपनी  
 राधाका हरण देखकर अपनी सेनाके साथ दवरनस गुरु करवा लिए ददुभका घण्ट धनत हुए निकल  
 पड़े । यूपकेतुने भी जब दृष्टकवी गजनी लनी तो का-रपुराव उनगे हाथार पदंश्च और अपने धनुषका टङ्गीर  
 करके उसपर एक ठलमे बाणका संघान किया ॥ ६९-७० ॥ इस पृष्ठ पर जो-जो बाण निकलते, उनको अपने  
 बाणारी यूपकेतु बराबर मारत जाते थे । इसमें थोड़ा ही दखे वह दूध मृतकी व भर गया । ७१ ॥ इस तरह  
 यूपकेतुका पराक्रम देखकर राजा कम्बुकण्ठ हतव अथन रथपर सवार होकर उन बाणोंको रेंदत हुए वकी हुई  
 सेनाके साथ यूपकेतुके सामने जा पहुँच और ओघम भरकर उनकी कट-अव न परे साथ सशपथ कर । ७२ ॥  
 ७३ ॥ अरे जय ! इन मच्छटोका मारकर क्या न अपने पौरयणो पौरव मानता है ? ऐसा कहकर कम्बुकण्ठने  
 तीन बाणोंसे यूपकेतुपर प्रहार किया । ७४ ॥ उन बाणोंका अपना और जान दखकर यूपकेतुने अपने ती बाणोंसे  
 कम्बुकण्ठके बाणों, धनुष, सारथी, ध्वजा, कवच और मुकुटको काट राला और घोड़ोंको भी मार दिया । तब

तावन्महमथा वाणैर्यूपकेतुश्चकार ताम् । ततो वदन्वा दृष्टां मुष्टिं कम्बुकण्ठान्विरान्वितः ॥७९॥  
 हृदये यूपकेतोष्णा जघानाचलमग्निभाम् । तदा स यूपकेतुम् श्वशुरं स्वदनोपरि । ८०॥  
 प्वजे वचनं वेगेन सङ्गं जग्राह सम्भ्रमात् । कम्बुकण्ठशिख्येणं कर्तुं न समुपस्थितम् । ८१॥  
 दृष्ट्वा पुनश्च करे तस्य मखङ्गं सम्भ्रमान्विता । तस्माद् नन्वा माञ्जशी तदा मदनमुन्दरी ॥८२॥  
 विह्वला विगतोन्माहा वेपथी क्षुब्धलोचना । मम तानं कम्बुकण्ठमेतं इति कथं प्रभो ॥८३॥  
 मसिकापतनं पूर्वं शप्ते रक्षस्यया कृतम् । सुखाग्ने पयमेव दुःखकर्मावलम्बितम् । ८४॥  
 मद्याक्यामैव हन्व्यस्तस्मै चार्थं धारयाम्यहम् । एवं मदनमुन्दर्या वचः श्रुत्वा विह्वलः सः ॥८५॥  
 करादिमुग्र्यं च सङ्गं स्वशूनं चोदयन्मुदा । सेनया स पृथी यावत्पथाऽप्योभ्यां पुरीं प्रति ॥८६॥  
 तावद्दुर्दुभिनिर्षोदानग्रे शुभ्राव सेनया । पुनश्चापं दृष्ट्वा कृष्य यूपकेतुस्तदा पथि ॥८७॥  
 कस्याग्रं वाहिनी चेति चिन्तयामास चेतयि । ततः शरं सुमोर्चकं निजनाभाकिञ्च वत्सत् ॥८८॥  
 योजनान्तरसेनायां शरः शत्रुधनमग्निधौ । पपान तत्पराग्रे तं दृष्ट्वा स चकितस्तदा ॥८९॥  
 शरपुच्छं यूपकेतोर्नाम दृष्ट्वाथ शत्रुहा । निश्चितवान्यूपकेतुर्भागोऽग्रे वर्तते ध्रुवम् ॥९०॥  
 ततश्चापे स शत्रुधनः प्वनाम कितमुत्तमम् । शरं संधाप्य विमुक्त यूपकेतुं सुमोच ह ॥९१॥  
 स शरो यूपकेतोश्च ममकादूर्ध्वतस्तदा । अपतन्पृष्ठभागे स तं ददर्श पितुः शरम् ॥९२॥  
 तदा दृष्टो यूपकेतुः कुवन्दुर्दुभिनि म्वनान् । गन्वा वेगेन शत्रुधनं दृष्ट्वात्पुन्य रथादधः । ९३॥  
 ननाम पितरं पत्न्या कम्बुकण्ठं प्रदर्शयन् । तदा तं मुह्यद् शान्ता मोचयामास शत्रुहा । ९४॥  
 कम्बुकण्ठमुखाच्चकृन्वा सर्वं वृत्तं सविस्तरम् । शत्रुधनः प्राधितस्तेन मुह्यदा तन्पुरीं ययौ ॥९५॥

कम्बुकण्ठ पैदल ही गदा लेकर दौंचला ॥ ७७ । ७८ ॥ यूपकेतुने अपने बाणसे उनकी गदाके भी हजार टुकड़ कर दिए । उसके बाद उस गदासे यूपकेतुने नाभपर कटार धुंसा भारा । तब यूपकेतुने अपने समुक्त कम्बुकण्ठकी रथकी प्वजामे बाण लिया और सिर के टुकड़े लिए नेत्रके साथ तलवार उठायी ॥ ७९-८१ ॥ इस तरह सिर कोनका उड़ान पक्ष हाथमें खड़ा लिए यूपकेतुका देखकर मदनमुन्दरीने प्रणाम किया और आसामे आँसू भरकर कहा - ॥ ८२ ॥ हे प्रभो ! सर पितर कम्बुकण्ठका आप क्यों मारना चाहते हैं ? पहले ही नामस सबका गिर पड़ने के समान मानने मुझके प्वनाम इस दुःखदायी कर्मको क्यों भगवाना है ? ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ज.प मेरी बात मानकर इन्हें मत मारिए । मैं आपसे यही प्रार्थना करती हूँ । यह कहती हुई मदनमुन्दरी विह्वल हो गयी , उसका उन्माद नष्ट हो गया या वह काँप रही थी और नेत्रोंमें आँसूकी धाराएँ बहाती जा रही थी । इस प्रकार मदनमुन्दरीकी बात मँनकर यूपकेतु मुक्तरी और मद्गन फेरकर अपने सारथीकी रथ चलातेका संकेत किया । वे अपनी सेनाके साथ अयोध्यापुरीकी ओर चले ही थे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इतनेमें आरंभे दुर्दुभोका घाव मुनार्थ पड़ा । अब अपना यूप सम्हालकर सोचने लगे कि आगेसे यह किसकी मेला आ रही है । यह साचकर उन्होंने अपने नामसे अर्कित एक बाण वेगपूर्वक छोड़ा ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ वह बाण उड़ता हुआ एक योजन तक गया और जहाँ सेना पड़ी हुई थी, वहाँ पहुँचकर शत्रुधनके धरणोंके भागों गिरा । उस बाणकी देखकर शत्रुधन चकित हो गये । ८९ ॥ फिर बाणका बूझम यूपकेतुका नाम देखकर शत्रुधनने निश्चय लिया कि यूपकेतु आगे आगमन ही है ॥ ९० ॥ तबतत्पर शत्रुधनने भी अपने नामसे अर्कित एक बाण उठाकर यूपकेतुकी ओर छेड़ा ॥ ९१ ॥ वह बाण यूपकेतुके ऊपरसे हीला हुआ पँछे जा गिरा । यूपकेतुने अपने पिताका बाण देखा ॥ ९२ ॥ तब प्रमत्त होकर दुर्दुभो जैसा गर्जन करते हुए वेगके साथ शत्रुधनके पास पहुँचे । वहाँ पिताको देखते ही वे रथसे कूद पड़े और अपनी रथी मदनमुन्दरीके साथ जाकर शत्रुधनकी प्रणाम किया और प्वजामे बाँध हुए कम्बुकण्ठको दिखाया । शत्रुधनने उन्हें अपना सम्बन्धी समझकर छुड़ा दिया ॥ ९३॥ ९४ ॥ फिर शत्रुधनने कम्बुकण्ठके मुँहसे ही विस्तारसे साथ समस्त वृत्तान्त सुना । इसके बाद कम्बुकण्ठके

कालिपुर्या वदिः स्थित्वा कंबुकंठमनेन सः । आकारणार्थं लप्राय रामं दत्तान्प्रचोदयत् ॥ ९६ ॥  
 सदा ते कंबुकंठस्य सप्रधनस्यापि वेगदः आकारणार्थं श्रीराम यमुर्दूता मुदाभिरगाः ॥ ९७ ॥  
 इति श्रीशतकोटिशतमचरितोत्तमि श्रीमदालन्दरामायणे विवाहकाण्डे मदनमुन्दरीहरणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

## नवमः सर्गः

( रामका वंशचिन्ता )

श्रीरामदास उवाच

मन्वाऽप्येष्यापुरीं दत्ता रामं वृत्तं न्यवेदयन् रामोऽपि श्रुत्वा तद्वृत्तं मीढार्यं संन्यवेदयत् ॥ १ ॥  
 ततो मुहूर्ते श्रीरामः मावेरोधानुजैः सह । पौरैर्जनपदैः सर्वैः सुहृद्भिः सेनया सह ॥ २ ॥  
 नागदेन ययौ कालिमाषां मुक्तिपुरीं प्रति । ततः श्रुत्वा कंबुकंठः शीघ्रं गमयमागतम् ॥ ३ ॥  
 स प्रमुद्रस्य त्रिनयासम्भ्रा सगृजपन्मुदा । ययकेन ततः पृथ्वा वरजस्थं पुरीं शनैः ॥ ४ ॥  
 वास्त्रीनृन्पगोदैश्च तूर्यदोयैर्निनाय सः । ततः कालिपुरीं गम्यन्नाः स्त्रियः प्रामादस्थिताः ॥ ५ ॥  
 दृष्ट्वा रामं ययकेन ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । ततो रामः शनैरेस्तुं कल्पितं शृङ्गशमम् ॥ ६ ॥  
 मत्वा दृष्ट्वा मुहूर्तं तु पूर्वोक्तकौतुकैः सुखम् । ययकेनेविवाहं स चकार यामोन्मर्षः ॥ ७ ॥  
 ततो विवाहं निर्धृत्य कंबुकंठेन पूजिताः । उन्मथश्चक्षुषादातदभ्यदासीजनदिभिः ॥ ८ ॥  
 ययौ मदनमुन्दर्या रामोऽप्येष्यापुरीं विज्राम् । ततो विवेश नामगीं नेदुर्वाद्यानि वै तदा ॥ ९ ॥  
 सञ्जनुर्वारनार्यश्च नुह्वुर्भाषादयः प्रामादस्थाः स्त्रियो रामं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ १० ॥  
 मार्गे नीराजितः श्रीभिर्विवेश निजमन्दिरम् । कारयित्वा गमापूजां ददौ दानान्यनेकधा ॥ ११ ॥  
 मुहुरा पूजयामास राभवो वसनादिभिः । ततो विमर्जयामास सर्वान्स्वस्वस्थल प्रति ॥ १२ ॥

शार्पका करनेपर उसके साथ ही कालिपुरी गये ॥ ९४ ॥ वहाँ कम्बुकण्ठकी सन्तुष्टिसे मन्वुक्त नगरके बाहर ही ठहरे और रामको बुलानेके लिए दूतोंको भेजा ॥ ९६ ॥ उसी समय मन्वुक्त नवा कम्बुकण्ठके इन श्रीरामको बुलानेके लिए प्रसन्नतापूर्वक चले पडे ॥ ९७ ॥ इति श्रीशतकोटिशतमचरितोत्तमि श्रीमदालन्दरामायणे पंच रामनजपाश्वेयविरचित'पञ्चोत्तम'भाषातः कामर्दिन विवाहकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदास कहने लगे वे इन अयेष्यापुरीमें पहुँचे और रामका कालिपुरीका सब हाल कह सुनाया । तो गुणकर रामने सीतासे कहा ॥ १ ॥ इसके पश्चात् अच्छे मुहूर्तमें राम अपने अंतःपुरकी नारियों, पुष्पागारियों, बनगादवासिनी, समस्त सम्बन्धियों, नारद तथा सेनाके साथ आदिमुक्तिपुरी अर्थात् कालिपुरीको चले गये । जब कम्बुकण्ठने सुना कि रामचन्द्र पुरीके निकट आ पहुँचे है, सब आदरपूर्वक स्वागत करने लगे । यही पहुँचकर सविनय प्रणाम किया । इसके अनन्तर राम तथा ययकेद्वारा पूजन करके हाथीपर बिठाकर चोर-खीरे पुरीको चले ॥ २ ॥ रात्रिमें वेज्यादे नाचत-गाता यौ और दूहड़ी आदि विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे । उधर जब नगरकी स्त्रियोंने आन देखा तो राम और पुष्पकुमार पुष्पवृष्टि करने लगे । तत्पश्चात् राम जनसासेमें पहुँचे ॥ ३ ॥ ४ ॥ यहाँ अच्छा मुहूर्त देखकर पूर्वोक्त कौतुकोंके साथ बड़े उत्साहसे दूपकनूका विवाह किया ॥ ५ ॥ विवाहकी सब रीतियाँ पूरी हो जानेपर कम्बुकण्ठस पूजित हाकर कितने ही श्रुथो, घोड़े, रथ, पैदल सेना, दास-दासा आदिके साथ मदनमुन्दरोंको लेकर अपनी अयाध्यापुरीको चले दिये । मन्त्रोन्नाक पास पहुँचकर व अपनी नगरमें पुनः तो विविध प्रकारके बाजे बजने लग ॥ ८ ॥ ९ ॥ येथ्याँ नाचने लगे और मागध-बन्दीजन स्तुति करने लग । नगरवासिनी महिलाएँ अंतरियोंपर चन्द-चक्रकर रामपर फूल बरसाने लग्य और कुछ स्त्रियाँ मार्गमें आरती उतारने लगी । इस उत्साहसे राम अपने बहुत गये । यहाँ उन्होंने लक्ष्मीकी पूजा की और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर विमर्जनमें लगे हुए

अथ सप्त कुमाराश्च तवाद्याः स्वस्ववेद्यमनि पशुः, कोटो पृथक् स्त्रीभ्यां कुशश्चण्डिकाऽकरोत् ॥१३॥  
 चंपिकायां दुहितरः कुशाज्ञानाः शुभं नयः कुशस्याग्रे कुमुद्वर्था भविष्यन्त्यष्ट शुभवः ॥१४॥  
 भविष्यति तथा कन्या नैका चंपिकायाः कन्या । इत्येव, शुभोऽन्तिद्विरिति नाम्ना राज्यं कञ्चिद्वि ॥१५॥  
 चतुर्दश सुमत्याद्याः स्त्रियः सर्वाः क्रमेण हि । तृपुत्रस्वतयास्तु कर्णैकाऽपि पृथक् पृथक् ॥१६॥  
 स द्वादशशतं पौत्रर्षीर्वाश्वं मनोरमा । त्रयविंशद्वामचन्द्रा लालयामास सीतया ॥१७॥  
 कुमुद्वर्थाभाविपुत्रमहिताः शिशवः शुभाः विंशच्छामावस्ते तथा वीर्यवर्ताडिप्रथाः ॥१८॥  
 चतुर्विंशन्मिनाश्वमन मवाभोद्वाहित नृपैः तथा आगश्वपौत्रं च नृपकन्या शनैकशः ॥१९॥  
 काश्चिन्मन्त्रेणैव काश्चिद्वाहमयोगतः । काश्चिद्वाहमयोगेन काश्चिद्वैवहकर्मणा ॥२०॥  
 परिणीताः पौरुषेण तामां संकथा न विद्यते । तामां हि संततिं वक्तुं कः समर्थो भवेद्विद्व ॥२१॥  
 एवं स यूपकेनैव विवाहश्चाम, शुभः । सपद्य नादः श्रीमान्मभायां रघुनन्दनम् ॥२२॥  
 रामनाममहत्तमं सर्वोक्तं मानभाक्तनः । मनुजैः श्रगद्य पृष्ठा यथावाकाशकर्मना ॥२३॥

आरामदास उवाच

एवं रामेण साकेतपुर्यां भोगाश्रितं सुखम् । सुकामैर्वा वणेनऽथ कः समर्थो भवेन्नरः ॥२४॥  
 एक एव समर्थोऽभूद्वाल्मीकिस्त्वयमां तिरिः । शतकोटिमितं येन नानाकीडादिवस्युतम् ॥२५॥  
 वर्णितं रामचरितं महासंगलकारकम् । यन्मनुजैश्च नया किञ्चिच्चद्रे परितर्जितम् ॥२६॥  
 एव रामस्त्वयाधारा पुत्रैः पौत्रैः समन्वितः । प्रभारं पौत्रपौत्रश्च रजयामास जानकीम् ॥२७॥  
 एवं विवाहकाण्डं च शिष्यः परं परितर्जितम् । त्वमर्थः पवित्रं च श्रवणान्मगलप्रदम् ॥२८॥  
 विवाहकाण्ड परमं ये शृण्वन्त्यपि मानवाः । न स्यान्मः पुत्रपौत्रश्च वियोग ताप्नुवति हि ॥२९॥

सम्बन्धियोंका समूह अदि वेदकृत पुता की ओर सेवया अपन घर जानकी अनुमाह दी ॥ १३ ॥ इसके बाद लव आदि माता तमारा अपना अपना स्थिराक साथ अपना अपना महत्ताम विहार करने लग और कुश अपनी स्त्री चम्पिका के साथ पालि करना लग ॥ १४ ॥ इस तरह कुश पुता व द कुशने चम्पिकास नी कन्यायें उत्पन्न कीं । कुमुद्वर्थासे आठ पुत्र और चम्पिकासे ८ पुत्र, कुशासे १२ पुत्र भा बादम उत्पन्न हुये । कुशाका सबसे बड़ा पुत्र अतिथि अवध्यापुत्र के बाद करना ॥ १५ ॥ १६ ॥ इनके सिवाय सुमाह आदि पौरुष स्त्रियोंने कमशः आठ आठ पुत्र और एक एक कन्या उत्पन्न की ॥ १७ ॥ इस तरह राम सेताक साथ बारह सौ पौत्रों तथा तसे कुमुद्वर पौत्रराज, लव न वायन करने लगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार कुमुद्वर्ताके भावों पुत्रों पौत्रोंकी भी मिलाकर बीस सौ पौत्र और बीस सौ पौत्रों में १३ ॥ १४ ॥ जिनका रामने अच्छे अच्छे राजभक्ति साथ दिवाह कर दिया और रामके पौत्रोंका दिवाह जनक राजकुमारियोंका साथ हुआ ॥ १९ ॥ उनमेंसे कुछ कुमारीयां स्वयंवरसे आयीं, कुछ गणेशविवाहमें आयीं कुछ गणेशविवाहमें आयीं और कुछसे शुभ विवाहसम्बन्ध हुआ ॥ २० ॥ इनके सिवाय पौत्रोंके पुत्रोंयन उत्पन्न राजकुमारों की रामका महलोच आयी, जिनका कोई संख्या ही नहीं है । ऐसी स्थितिमें उनका संतान नाभी कीन होने संकट है ॥ २१ ॥ इस प्रकार यूपकुन्या अन्तिम शुभ विवाह सम्पन्न हुआ आनंदन तरदन समाप्त करने कर कुश राममहत्ताममें इति शान्तिपूर्वक रामकी स्तुति करके जानकी आजा मंगल की ओर आकाशमगल चल गये ॥ २२ ॥ २३ ॥ आरामदासन कहा— इस तरह रामने बहुत समय तक सुख भोगा, उसका वंशन करनेमें कोई भी प्राणा समर्थ नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ बस एकमात्र त्वस्या वाल्मीकिजा उत्तर वंशजस समर्थ हुए थे जिन्होंने सौ करोड़ कलाकोमें नामा प्रकारको पदाओं सहित रामचरितका वर्णन किया । यह रामचरित परम महत्त्व काक है । इसका स्मरण करके ही मैं तुम्हारे समक्ष कुछ करनेमें समर्थ हुआ हूँ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस प्रकार राम अपनी बयोध्यापूरीमें पुत्र, पौत्र, पौत्र पौत्र एवं श्रवणक पुत्राक साथ रहते हुए सताको अह्लादित करते रहे ॥ २७ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने भी सगुनक पवित्र विवाहकाण्डका वंशन किया, जो सुननेमें सर्वथा महत्त्वदायक है ॥ २८ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्दर्मं धनार्थी धनम् प्लुतम् । कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ २० ॥  
 श्रीकामुकैर्नरेभिरुपदर्शय निरुताम् । विवाहकाण्डं परमं प्राप्नुवंत्यत्र ते वधुः ॥ २१ ॥  
 पतिकामा कुमारी येन्यन्त्याभोपत्रिपन्निकाः । विवाहकाण्डमेतद् मनोज्ञं परिसंप्लुयात् ॥ २२ ॥  
 समर्थैश्चैत्यष्टेनन्दपुण्याडाञ्च मर्कतः । इह स्त्रिया मुञ्च भुक्वाऽप्योमिदिवि मोदते ॥ २३ ॥  
 मधवा कण्ठ्यादेवया नारी काण्डमुत्तमम् । विवाहाच्च कदा भया विद्योम आमुयात् सा ॥ २४ ॥  
 समदशदिनेभ्यः कार्यं श्रीकामुकैर्महूः । अनुष्ठानं वर्षमेकं स्यादपि स्त्रियमाप्नुयात् ॥ २५ ॥  
 प्रथमे दिवसे सप्तं पट्टद्वी न परेष्टानि । त्रयमे दिवसे मर्गाक्रमेण संपठेत्तव ॥ २६ ॥  
 दशमे दिवसेऽथैव सप्तसंवत्सरे व क्रमान् । एव समदशदिनेऽनुष्ठानं स्मृतं पुनः ॥ २७ ॥  
 मधवा सकल काण्डं प्रथमे दिवसे पठन् । परेष्टानि द्विगुणं हि त्रयमे दिवसे क्रमान् ॥ २८ ॥  
 नववारं पठन्चेद् दशमे दिवसे ततः । अष्टवारं पठेन्नाह सप्तसंवत्सरे क्रमान् स्मृतः ॥ २९ ॥  
 एवं नरो वर्षमेकमनुष्ठानान्निष्ठप लभेत् । विमग्नवक्त्रां च कृतायां दिव्यरूपां मनोहराम् ॥ ३० ॥

विवाहकाण्डं परमं पवित्रमानन्ददं मङ्गलकारकं च ।

श्रीदं मनोज्ञं भुविर्पाकपदं वै मर्गः मदा मश्वरणीयमेतत् ॥ ३१ ॥

आनन्दरामायणमध्यमंश्च विवाहकाण्डं परमं हि वधुम् ।

सृजति नक्त्या सुविमानवासे लभन्ति कामान्त्रिलोकमनोहान् ॥ ३२ ॥

इति भाषातन्त्रादि रामचरिते तर्गुडं श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डं रत्नवक्त्रविमलमकचनं नाम त्रयोमं सर्गः ॥ ९ ॥

विवाहकाण्डं सर्गः आनन्दरामायणे तर्गुडं भाषातन्त्रं । पञ्चमनाम्नः स्वर्गः पञ्चमनाम्नः ॥ १ ॥

आ मनुष्य विवाहकाण्डका श्रवणं करतं हे, ज धरता मया तथा पुत्र पावस कार्यं भी त्रिपुन नहा हान ॥ २९ ॥  
 इसका मुननम धर्मार्थी धर्मका, धनार्थी धनका, काम कामका और मोक्षार्थी मोक्षका का लता है ॥ ३० ॥ जो  
 लोग स्वार्थ के लोभ से हैं, उन्हें साधय कि निरन्तर इस विवाहकाण्डका पाठ किया क । इससे उन्हें स्वर्ग  
 लक्षण प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ अच्छे परिस्थि पतना इका स्थानवासी कुमारी यदि सन्निपूर्वक इस काण्डको सुने  
 तो मन्दर पति ॥ ३२ ॥ आ सत्य क मनुष्य इस काण्डका पढ़ना या सुनना है तो वह इस जन्ममें स्त्रीक  
 साथ गुण्य भोग कर स्वर्गमें अप्सराओंक साथ विहार करेगा हे । जो स्वर्गवा नारी इस काण्डकी सुनती है वह  
 कभी पलायनयावका दुःख नहीं पावे । जो लोग मया साहचर्य हो मग्न दिवसे एक काव्युक्तिक प्रमसे एक वर्ष  
 तपना अनुष्ठान कर ऐसा जन्मसे मूल मानव को स्वा प्राप्त कर सकता है । ३३ ॥ ३४ ॥ इसका तम इस तरह  
 है पहले दिन एक सप्त, दूसरे दिन १० सप्त तीसरे दिन तीन सप्त इस क्रमसे चार दिन तो सर्गाका पाठ करे ।  
 फिर दसवें दिन अठ सप्त और धारहवें दिन सप्त सप्त एस एक एक इतना हुआ सप्तह दिनम पूरा कर । विवाह  
 नाच महो अनुष्ठानकी विधि बनल या है । ३५ ॥ ३६ ॥ अथवा बने पढ़ना पढ़ना राज विवाहवाक्यका एक बार  
 पाठ कर जाय, दूसरे राज दो बार, तीसरे राज तीन बार, इस कीर्तने करता हुआ चारवें दिन भी बार इस  
 बारका पाठ कर और धारहव राज सठ बार चारहव दिन सप्त बार इस विधानसे पढ़ाया हुआ सप्तह्वे दिन  
 केवल एक बार पाठ करे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इस तरह एक वर्ष तक अनुष्ठान करनेसे यह पुण्यकार्य मुख्यतः, अच्छी  
 भासिका और दिव्य रूपवाली मनोहर स्त्री प्राप्त है । ३९ ॥ लोगोंका चाहिए कि इस परम पवित्र, स्वादायक  
 कतिमुलदायक तथा आनन्द दनकाल विवाहकाण्डका निरूपण पठ कर ॥ ४० ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस छरे  
 विवाहकाण्डको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनने हे २ अथवा सब कामनाओंका प्राप्ति कर लेते हैं ॥ ४१ ॥ इति श्री  
 सकात्रिदिवचरित तर्गुडं श्रीमदानन्दरामायणे वाक्यं कार्यं ॥ ४२ ॥ रामायणपठेयविरचित उपोक्तना मयाटीका-  
 सहिते विवाहकाण्डे त्रयोमः सर्गः ॥ ९ ॥

एष विवाहकाण्डो नृणो सर्वो हि और उनमें पांच सी पद्य या दोक कह गये है ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डं समाप्तम् ।



श्रीरामायणे नमः

श्रीवल्मीकिमहाभुनिकृतशनकोटिरामचरितान्तर्मतं—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया आगटीकयाऽऽधीकृतम्

## राज्यकाण्डम् (पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः

( रामसहस्रनाम )

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो प्रोक्तं त्वया पूर्वं ममांतिके । विशादकाण्डं चरमसर्गेऽत्र पातकापहे ॥ १ ॥  
रामनामसहस्रं नादत्तं मदीन्मनः । सुतोक्तं सभायां स रामचन्द्रः स्तुतमिदं ॥ २ ॥  
तस्कीदृशं रामनामसहस्रं मां प्रकाशय । कथं सूतन कथितं सुनीनामग्रतः पुरा ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्पदं त्वया शिष्यं सावधानमना भूषु । रामनामसहस्रं च सुतोक्तं प्रवदामि ते ॥ ४ ॥  
यथा न्वया कृतः प्रश्नः शौनकेन उवाच कृतः । श्रुत्वा प्रहृष्टोऽसौ तदाकथ्यं शौनकं नैमिषे वने ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच

एकदा सुखमार्जानौ पार्वतीपरमेश्वरी । अयोध्याक्षिप्रदृष्टाहू लोकलक्षणात्परौ ॥ ६ ॥  
इन्द्रादिलोकपालैश्च सेविता च परात्परौ । जग्मेतां पारपरच्छ्रुत्वा तदा चर्माननुकमात् ॥ ७ ॥

पारंगुवच

मयाय जगतां राध मईश परमेश्वर । न्यन्त्रमादान्मया ज्ञानं धर्मशास्त्रपनुत्तमम् ॥ ८ ॥  
मायश्चित्तं तु पापानां श्रुत्वा सर्वमरीकतः । ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं वक्तुमर्हसि ॥ ९ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो रामनाम अभी अभी आप मुझसे कह चुके हैं कि पातकोंको नष्ट करने-  
वाले विशादकारमें नारदने सुतोक्त रामसहस्रनाम सभामें रामचन्द्रजीको स्तुति की थी ॥ १ ॥ २ ॥  
वह रामसहस्रनाम कैसा है और किस प्रकार आनन्दजीन पुनियोंके समक्ष उसे प्रकट किया था । सो आप  
मुझसे कहें ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर  
सुनो । मैं तुम्हें सूनाका कहा हुआ रामसहस्रनाम सूनाता हूँ । आज जिस तरह तुम मुझसे पूछ रहे हो, उसी  
तरह शौनकेन स्तुतीसे सूनाता था । उनका प्रश्न सुनकर नैमिषारण्यमें सूतजीन शौनकसे कहा—एक समय  
लोकलक्षामें सरस्व शिव और पार्वती गम्बहिरां डाले हुए आनन्दबुद्धके बड़े थे ॥ ४-५ ॥ सर्वश्रेष्ठ देवता शिव  
और पार्वतीकी सेवामें इन्द्रादि लोकपाल उपस्थित थे उस समय शिव-पार्वतीमें कोई घापिक चर्चा चल  
रही थी । समय पाकर पार्वतीने शिवजीसे कहा—हे हुम्नारे प्रभु जगन्के प्रभु, सर्वज्ञ एवं परमेश्वर ! आपकी  
होपासे मैंने समस्त धर्मशास्त्र ज्ञान लिया । पापोंका प्रायश्चित्त किस तरह हो सकता है, सो भी पुन चुकी ।

श्रीमहादेव उवाच

मृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् । सनत्कुमारविघ्नेशसंवादं पापनाशकम् ॥१०॥  
उपविष्टं गणाध्यक्षमेकान्ते शशिपत्य च । सनत्कुमारः पप्रच्छ सर्वधर्मविदां वरम् ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

मया च सर्वधर्मतः सर्वविघ्नविनाशन । द्विजदम्पाद्वरं धर्मं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१२॥  
त्रिना भवन्त धर्मस्य धर्मा नास्ति जगत्त्रये ।

श्रीगणेश उवाच

साधु पृष्टं त्वया मन्त्रन्सर्वलोकोपकारकम् ॥१३॥  
मया चिरं कृतं कर्म स्मरितं भवताऽनघ पुराऽहं गजरूपेण जातः पर्वतसन्निभः ॥१४॥  
ततो हृक्षान्यधुन्याद्य मुनिविद्यां समाश्रमम् । तदा मया मुनिगणा निहता बहवो बलात् ॥१५॥  
हृहकारो मदान्मत्तोद्वाग्वानां समन्ततः । तदा हृष्यावहृष्येण वेष्टितः पतितोऽस्म्यहम् ॥१६॥  
निःसंतं मृतुल्य मां पतितं त्रीक्ष्य मे पिता । आराध्य जगतामीशं राम सर्वहृदि स्थितम् ॥१७॥  
प्रत्यक्षपकरोद्देव मदेतो गधुनन्दनम् । तदा प्रोवाच ममवान् भीरवः पितर मम ॥१८॥

श्रीराम उवाच

प्रमत्तोऽस्मि महादेव किं मां प्रार्थयसे प्रभो दास्यामि यदर्माष्टं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१९॥

श्रीमहादेव उवाच

द्विजहृत्पासनादि मम पुत्रमिमं प्रभो । निष्पापं गुरु देवेश यद्यस्ति मयि ते दया ॥२०॥

श्रीगणेश उवाच

सद्येत्युक्त्वा तदा तेन कृपयाहं निमीक्षितः । तत्पुणाल्लुब्धं चैतन्यो निर्मलज्ञानवृद्धिः ॥२१॥  
चतुर्भिर्गणपदैश्च स्तुत्वा तं प्रणतोऽभवम् ।

धन आप मुबारक कुल करके बहूदृष्ट्यादि मद्रापाणोंका निष्कृतका कोई उपाय बनलाइए । श्रीशिवजी बोले—  
हे देवि ! मैं तुम्हें अतिशय गुरु तथा पापनाशक सनत्कुमार और गणपतिका सम्वाद सुनाता हूँ ॥ ७-१० ॥ एक  
समय जब कि गणेशजी एकान्तमें बैठे हुए थे तब सनत्कुमारने जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे  
भगवन् ! समस्त धर्मोंको जाननेवाले तथा विघ्नका विनाशक हूँ प्रभो पुत्र श्रद्धाहृत्पाका विनाश करनेवाला  
भीई धर्म जतलाइये ॥ ११ ॥ १२ ॥ आपके समक्ष लोका लोका काई भी धर्मका वक्ता पुझे नहीं दीखता ।  
गणपतिने कहा—हे बह्मन् ! तुमने मुझसे बहुत अधिक प्रश्न किया है । इससे तारे ससारका उपकार होगा ॥ १३ ॥  
तुमने एक ही बातसे पूछने किये हुए मेरे सत्र कर्मका इमरण दिला दिया है । पूजकालमें मैं गजरूपमें संसारमें  
कत्तमा था और पर्वतकी भाँति लम्बा चौड़ा मया डाल डोका था । १४ । उस समय मैंने पहले तो बहुतसे वृक्ष  
चसादे । फिर मुनियोंकी हिला आरम्भ कर दी । मैंने मगने अपरिमय बचसे कितने ही मुनियोंका वध कर  
वापी बन बैठा ॥ १५ ॥ १६ ॥ मेरे हाँस-हवास निकालने न रह तथा एक मृतककी भाई मेरी आकृति हो गयी ।  
मेरी दशा देखकर मेरे पिताने संसारक महाप्रभु रामकी आराधना का, इससे प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी मेरे पिला-  
के सम्मुख बाये ओर कहने लगे । रामचन्द्रजी बाल हैं महादेव ! मैं तुम्हारा ऊँचर अति प्रसन्न हूँ । कालाजो,  
तुम किसलिए इस प्रकार मेरी प्रार्थना कर रह हो ? तुम्हारा कामका भाँव तात लोकमें दुर्लभ होगा तो भी मैं  
कुछ पुर्ण करूँगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हूँ प्रभो ! तब पुत्र गणेशका बहूदृष्ट्या लगा गया है । हे देवेश !  
जबि आशकी मुसपर दिया हो तो उसे निष्पाप कर दीजिए ॥२०॥ श्रीगणेशजी सनत्कुमारसे कहने लगे—इस प्रकार मेरे  
पिताकी आज्ञा सुनकर रामचन्द्रने अपना कृपाभरी दृष्टिसे एक बार मेरा ओर देखा । उनके देखते ही मैं चैतन्य हुआ  
गया । मेरेमें एक निर्मल ज्ञानका वस्त्रण संचार हो गया ॥ २१ ॥ तब बहुतसे गण-पणों द्वारा मैंने भगवान्की

श्रीरामचन्द्र उवाच

द्विजहत्यामहस्यस्य प्रायश्चित्तं वदामि ते ॥ २२ ॥

अथ नामसहस्रं मे हत्याकोटिबिनायकम् । इति गुह्यं ददौ रामस्त्वं नामसहस्रकम् ॥ २३ ॥  
तस्य तद्ग्रहणादेव निष्पापोऽहं तदाऽभवम् । दशरथ्यास्मि देवानां पूज्योऽहं मुनिसत्तम ॥ २४ ॥  
सहस्रप्रेतदधीयानो राघवस्य महान्मना । नाम्नां सहस्रं लोकेषु प्रख्यापय महामते ॥ २५ ॥

सनत्कुमार उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि मणाधिप । न्यग्रमादान्मयाऽधीतं रामनामसहस्रकम् । २६ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इति विज्ञाप्य देवेशं परिक्रम्य प्रणम्य च । नदादि मत्तर्तं जप्त्वा स्तोत्रमेतद्रानने ॥ २७ ॥

अवाप परमां सिद्धिं पुण्यपाणविवर्जितः ।

श्रीपार्वत्युवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश तदहं सर्वकामदम् ॥ २८ ॥

नाम्नां सहस्रं मां ब्रूहि यद्यस्मि मयि ते दया ।

श्रीमहादेव उवाच

अथ वक्ष्यामि भो देवि रामनामसहस्रकम् । शृणुष्वैकमनाः स्तोत्रं गुह्यं गुह्यतरं महत् ॥ २९ ॥

ऋषिर्विनायकश्चास्य सन्तुष्टोऽहम् उरुषते । परब्रह्मान्मको रामो देवता शुभदर्शने ॥ ३० ॥

ॐ अस्य श्रीरामसहस्रनाममालामंत्रस्य विनायक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीरामो देवता  
महाविष्णुरिति बीज गुणभृत्सिर्गुणो महानिति शक्ति मन्त्रिदानन्दविग्रह इति कीलकं श्रीराम-  
श्रीस्पर्धे अपे विनियोगः

ॐ श्रीरामचन्द्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः । सीतापतये गर्जनाभ्यां नमः । रघुनाथाय मध्यमाभ्यां नमः ।  
भरताग्रजाय अनामिकाभ्यां नमः । दशरथात्मजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । हनुमत्प्रभवे करतलकर-  
पृष्ठाभ्यां नमः । श्रीरामचन्द्राय हृदयाय नमः सीतापतये शिरसे स्वाहा रघुनाथाय शिखायै वषट् ।  
भरताग्रजाय कवचाय हुस् । दशरथात्मजाय नेत्रत्रयाय धौषट् । हनुमत्प्रभवे अस्त्राय फट् ।

स्तुति की और उनके चरणोंमें स्नात गया । फिर रामचन्द्रजी कहने लगे—तुम्हारे द्विजहत्याके पापसे उद्धार पानेका  
अवसर मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ मेरे 'रामसहस्रनाम' का जप करीब ब्रह्महत्याओंका पाप भी नष्ट कर देता है ।  
ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने अपना गुप्त सहस्रनाम मुझे बताया और उसके ग्रहणमात्रसे मेरे पाप नष्ट हो  
गये । तभीसे है मुनिसत्तम ! मैं देवताओंका भी पूज्य हो गया हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम भी इसी रामसहस्रनामका  
पाठ करते हुए ससारमें इसका प्रचार करो । सनत्कुमारने कहा—मैं धन्य हूँ । मुझपर आपकी बड़ी कृपा है ।  
आपहीकी दयासे मैंने रामसहस्रनाम पा लिया । मैं कृतार्थ हो गया । श्रीशिवजीने कहा—इस तरह उस सहस्र-  
नामकी जानकर सनत्कुमारने गणेशजीकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और तभीसे नित्य इसका जप करके पुण्य-  
पापसे विवर्जित होकर वे परम सिद्धिमें प्राप्त हुए । पार्वतीजी बोली—हे देवेश ! सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले  
रामसहस्रनामको मैं भी जानना चाहती हूँ । यदि आपकी मुझपर दया रहती हो तो मुझे बताइए । शिवजी कहने  
लगे—हे देवि ! मैं तुम्हें वह पुनीत सहस्रनाम बतलाता हूँ । तुम भी सावधान मन होकर उस गुह्यसिगूह  
स्तोत्रकी सुनो ॥ २५-२९ ॥ इस रामसहस्रनाम मंत्रमय स्तोत्रके ऋषि विनायक हैं और साक्षात् परब्रह्म राम  
इसके देवता हैं ॥ ३० ॥ ॐ अस्य श्रीराम' इस मंत्रसे विनियोग करके 'श्रीरामचन्द्राय' कहकर अंगुष्ठ, 'सीता-  
पतये' कहकर तर्जनी, 'रघुनाथाय' कहकर मध्यकी अंगुली, 'भरताग्रजाय' कहकर अनामिका, 'दशरथात्मजाय'  
कहकर कनिष्ठिका, 'हनुमत्प्रभवे' कहकर दोनों करपृष्ठोंका न्यास करे । फिर 'रामचन्द्राय' कहकर हृदय,  
'सीतापतये' कहकर शिर, 'रघुनाथाय' कहकर शिखा, 'भरताग्रजाय' से दोनों बाहुयूथ, 'दशरथात्मजाय'

अथ ध्यानम्

ध्यायेदज्ञानुवाहं धृतगुणधनुषं बद्धपद्मप्रस्थं  
 पर्वण्यं चागो वमानं नयकमलप्रस्थिं नेत्रं प्रमन्नम् ।  
 रामाकारदुर्भीताशुसुकमलामिललोचनं नागदाभ  
 नानालकारदीप्तं दधत्सुरजद्रागण्डलं रामचन्द्रम् ॥३१॥  
 वैदेहमहितं सुगन्धतले हंसं महामण्डपे  
 मध्ये पुष्पमहासने भणिमये वीगमने भस्मिदम् ।  
 अग्रे वाचयति प्रमन्नसुते तच्च मुनिभ्यः परं

ध्यातव्यं भरनादिभिः पवित्रं राम भजेच्छ्यामलम् ॥३२॥

सीमर्णमन्त्रे दिव्ये पुष्पके सुविगजिते । मूले कल्पनगे, स्वर्णपीठे सिंहाष्टमयुते ॥३३॥  
 मृदुस्लक्ष्णातिरे तत्र ज्ञानकया सह सस्थितम् । रामे नीलो-पलङ्क्यामं द्विभुजं धीतवाससम् ॥३४॥  
 स्थितवक्त्रं सुखासीनं पद्मपद्मनिभेषणम् । दिगीन्द्रकंशुकुण्डलैः कटकादिभिः ॥३५॥  
 आश्रयानं ज्ञानमुदाहर वीगमनमिदम् । इष्टमन्नं स्वनयोम्य ज्ञानकया, मन्त्रपाणिना ॥३६॥  
 वसिष्ठवामदेवाद्यैः सेवितं लक्ष्मणादिभिः । शरीर्यामगो रम्ये मणिपिक्त रघूद्वयम् ॥३७॥  
 एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं रामनामसद्वक्त्रम् । हन्याकोटिपुनो वाऽपि सुक्यते नात्र संशयः ॥३८॥  
 ऐरामः भीमान्महाविष्णुजिष्णुर्देवादिनाः । तत्र सा नायकं नम्यं शश्वतः सवसिद्धिदः ॥३९॥  
 राजीवलोचनः क्षीमोऽश्रुगर्भो रघुपुंगवः । रामभद्रः सदाचारो राजेन्द्रो ज्ञानकीर्णतिः ॥४०॥  
 अग्रगण्यो वरेण्यश्च वरदः परमेश्वर जनार्दनः । जितामित्रः परार्थकप्रयोजनः ॥४१॥

ये दोनों नेत्र छुए तथा 'हनुमत्प्रणवे' कहकर मुद्रा की बजाये । अब ध्यानम् जिनका वाजानु बाहु है, जो धनुष-  
 बाण धारण किये हैं, ध्यातव्य भागकर बैठ है, पद्म पद्म पहने हैं । पुनः कमलप्रस्थे होकर करनेवाली जिनकी  
 दोनों आँखें हैं, जिनके वाजानु सीताजी धँडे हैं । मंता तथा राम दोनों आपसमें एक दूसरेके मुखकी शोभा  
 देखनेमें संलग्न हैं, नवीन मेघके सदृश जिनका मुख है, जिस विविध प्रकारके बालकागसे झलकते तथा लम्बी  
 लम्बी ऊँठा धारण करनेवाले रामचन्द्रका ध्यान कर ३१ ॥ कल्पवृक्ष नेत्र मंभर्ज के माथ एक सुन्दर सुवर्णके  
 मण्डपमें पुष्पनिमित्त महापद्म, जिसमें लगे प्रवारकी मणियाँ रहती हैं, उसपर श्रीराम श्रीरामसे बैठे हुए हैं ।  
 उनके सामने बैठे हनुमान्जी मुनियोंकी परम सन्धकी ध्यः ॥ ३२ ॥ तथा रहते हैं । भरतादि तीनों ध्याता जिनकी  
 जगल-बगल ध्यः है । ऐसे ध्यामस्वरूप रामका भजन करे ३३ । सुवर्णनिमित्त दिव्य पुष्पक विमान कल्पवृक्षके  
 नीचे रखता है । जिसमें आठ सिंह लगते हैं । जो कोषल और निरुक्त है, ऐसी गर्हगर होताके साथ बैठे हुए  
 हैं नीलकमल सरीसे जिनके नेत्र हैं दो भूतार्थ है, नील वस्त्र है, सुसुगन्ता हुआ मुख है और वे आनन्दसे  
 बैठे हैं । किरीट, हार, केशूट कुण्डल और कटकादि । वे सुगन्धित हो रहते हैं । वे एक ओर ज्ञानपुद्ग धारण  
 किये हैं । दूसरी तरफ बायें हाथसे सीताके रत्नाको सहता रहते हैं ॥ ३३-३५ ॥ वसिष्ठ, वामदेव तथा  
 लक्ष्मणादिक जिनकी सेवामें तत्पर हैं । क्षीमाश्रु नगराम जिनका राज्य भिन्न हो चुका है । ऐसे रघूद्वय  
 रामचन्द्रजीका ध्यान करने सर्वदा इस राममहत्त्वनामका पाठ करना चाहिए । ऐसा करनेसे यदि किसीको  
 करोड़ों हत्यायें भी लगीं हैं तो दूर हो जाना है । इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिए ॥ ३६-३८ ॥  
 ॥ ३६ ॥ अब सहस्रनाम कहते हैं -राम, ध्यामानु, महादिधु, जितानु, सबको जीवनवाले, देवहितावह  
 ( देवताओंका कल्याण करनेवाले ), तत्त्वात्मस्वरूप नारवज्ज, शास्त्रन, सर्वसिद्धि ( सब प्रकारकी सिद्धियों-  
 को देनेवाले ) ॥ ३९ ॥ कमल सरीसे नेत्रवाले ध्यानम, रघुपुंगव ध्यः, रामभद्र, सदाचार, पुनीत  
 आचारवाले ) राजेन्द्र, ज्ञानकीर्ण पति ॥ ४० ॥ सदा अनेतर, वरेण्य ( सर्वश्रेष्ठ ), वरद ( करदायक )

विश्वामित्रप्रियो दत्ता शत्रुनिष्ठशत्रुतापनः । सर्वज्ञः सर्ववेदादिः शरण्यो बालिमर्दनः ॥४२॥  
 ज्ञानमन्योऽपरिच्छेदो नाम्नी सत्यव्रतः शुचिः । ज्ञानगम्यो दृढमज्ञः सारथ्यमो प्रतापवान् ॥४३॥  
 पुनिमानसमवान् धीमो जितक्रोधोऽश्मर्दनः । विश्वरूपो विशालाक्षः प्रभुः परितृप्तो दृढः ॥४४॥  
 ईशः सङ्गधरः श्रीमान् कौमल्ययोऽनसूयकः । विपुलामो महोरस्कः परमेष्ठी परायणः ॥४५॥  
 सत्यव्रतः सत्यवर्धो गुरुः परमधार्मिकः । लोकेशो लोकवपश्च लोकान्मा लोककृद्भिष्टुः ॥४६॥  
 अनादिर्भगवान् सेव्यो जितबाहो रघुदहः । गमो दयाकरो दक्षः सर्वज्ञः सर्वपावनः ॥४७॥  
 प्रद्युम्नो नीतिमान् गौमा सर्वदेवमयो हरिः । सुन्दरः पीतवामाश्च मूत्रकारः पुरातनः ॥४८॥  
 सौम्यो महर्षिः कोदण्डः सर्वज्ञः सर्वकोविदः । कविः सूर्याववरदः सर्वपुण्याधिकप्रदः ॥४९॥  
 मरुपो जितगिषद्वर्गो बहोद्वारोऽघनाशनः । मुक्तीर्निगदिगुरुयः कात्तः पुण्यकृतसमः ॥५०॥  
 अकरमपश्चतुर्बाहुः सर्वारामो दुरासदः १०० मित्रभाषा निवृत्तान्मा म्पुनिमान् शीघ्रवान् प्रभुः ॥५१॥  
 धीमो दातो धनस्थामः सर्वायुधविशालः । अध्यात्मयोगाभास्वरः सुमना लक्ष्मणाग्रजः ॥५२॥  
 सर्वतोर्वमयः शूरः सर्ववृत्तफलप्रदः । यत्तम्यरूपो यज्ञेशो जगत्प्रणयजितः ॥५३॥

परमेश्वर, अनर्दन जितामित्र ( शत्रुओंको पराजित करनेवाला ), परायणप्रतापन ( परायणकार करना ही जितना स्वभाव प्रतापन है ), विश्वामित्रको प्रिय जाना शत्रुओंके जाननेवाले शत्रुनाशन ( शत्रुका लानेवाले ), सर्वज्ञ, सर्ववेदादि समस्त वेदके आदि कारण ), सत्यव्रत, सत्यवर्धन वालिक परस्व करनेवाले ), ज्ञानगम्य, परिच्छेद नाम्नी ( कुशल बना ) सत्यव्रत, शुचि, पवित्र, ज्ञानगम्य ( ज्ञानद्वारा जानने योग्य, दृढव्रत ( स्थिर बुद्धिकाले, मरदहसी, प्रतापवान्, काम्यवान्, दौर, जितक्रोध ( जिन्होंने पापको जित लिया है ), अश्मर्दन ( शत्रुको नीचा रितानवाले ) विश्वरूप ( समस्त ही जितका स्वरूप है ), विशालाक्ष ( बड़ी बड़ी भालवाले ), प्रभु समस्त जगत् ईश्वर ) परितृप्त ( सतर्क ) ॥ ४२-४४ ॥ ईश ( सब संसारके स्वामी ), सङ्गधर ( लक्ष्मण धारण करनेवाले ), श्रीमान् कौमल्य ( कौसल्याके पुत्र ), अनसूयक ( किसीसे ईर्ष्या न करनेवाले ), विपुलाम ( जिनके छत्र चौड कण्ठे हैं ) महोरस्क ( जिनकी विशाल छाती है ), परमेष्ठी ( जो ब्रह्मास्वरूप हैं ), सत्यवतपरायण ( सत्यव्रती ), सत्यवर्ध ( सत्यप्रतिज ), गुरु ( सराप्रभु ), परम धार्मिक, लोकेश ( सब लोकोंके ज्ञाता ), लोकवपश्च ( सब लोकोस वपश्चर्माण ), लोकान्मा ( सब लोकोंके भाग्या ), लोककृत् ( लोकोंके रचयिता ), बिष्टु ( सरयात्री ) ॥ ४५ । ४६ । अनादि ( जिनका आदि नहीं है ), भगवान् ( सर्वसम्पत्तिशाली ), सेव्य ( सेवा योग्य ), जितबाह ( मायाका जाननेवाले ), रघुदह ( रघुवर्णके उवागरकर्ता ), दाम दयाकर, दयाके लालिम्बरूप, दक्ष ( सब कामोंमें निपुण ), सुव्रत, सर्वपावन ( सबको पुरात करनेवाले ), प्रद्युम्न ( प्रद्युम्नभक्त ) नीतिमान् गौमा ( सवरत्नक ), सुवद्वमय, हरि, सुन्दर, पीतवामा ( पीत वस्त्र धारण करनेवाले ), पुरातन मूत्रकार ( सर्वप्रचान मूत्रकार अर्थात् मूत्ररूपमें वर्षोंके रचयिता ), पुरातन ( सबसे प्राचीन ) ॥ ४७ । ४८ । सौम्य ( जिनका मरुत्त प्रभाव है ), महर्षि, कोदण्ड ( वनस्पति ), सर्वज्ञ, सर्वकोविद ( सब विषयोंके पूर्ण परिचित ), कवि, सूर्याववरद ( सूर्योपका अथवावर देनेवाले ), सर्वपुण्याधिकप्रद ( सब पुण्यास भी अधिक करनेवाले ) ॥ ४९ । अध्या जितगिषद्वर्ग ( जिन्होंने अपने बलसे शत्रुके भय-उन्नाहारी छत्रोंका जित लिया है ), महोद्वार ( जो सबसे उदार है ), घनाशन ( पापका नाश करनेवाले ), मुक्ती ( जिनकी सुन्दर कीर्ति है ), नादिगुण्य ( जो सबके आदि गुण्य हैं ), कात्त ( सर्वप्रद ), पुण्यकृतसम ( पवित्रविचारमयप्र ) अकरमय ( पापहित ) चतुर्बाहु ( चतुर्भुज ), सर्वविश ( सबके निवासस्थान ), दुरासद ( बड़ी कठिनाईमें शत्रु १०० मित्रभाषी ) मुक्तास्त्रो हुर गते करनेवाले ), विपुलामा, मित्रकी भाग्या स्वभाव है, मा म्पुनिमान्, पीतवाम और सबके प्रभु हैं । दौर, दाक्ष ( उदारप्रकृति ), धनस्थाम ( धनकी नई स्वाम्यस्वरूप ), सर्वायुधविशाल ( सब शस्त्रास्त्रोंमें निपुण ), अध्यात्मयोगाभास्वर ( अध्यात्मयोगके निवास ), सुमना ( सुन्दर चित्तवाले ), लक्ष्मणाग्रज ( लक्ष्मणके बड़े भाता ), ॥ ५०-५२ ॥ सर्वोर्वमय, शूर ( महाभारत में प्रतापी ), सर्ववृत्तफलप्रद ( सब वृत्तोंके फलदाता ) यत्तम्यस्वरूप

वषाध्वगुर्वर्णी धनुजिन्पुरुषोत्तमः । शिवलिंगप्रतिष्ठाता परमात्मा परमेश्वरः ॥ ५८ ॥  
 प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः पूर्णः परपुरुजयः । अनन्तदृष्टिर्जनन्दो धनुर्वदो धनुर्वरः ॥ ५९ ॥  
 गुणकरो गुणश्रेष्ठः सन्निदानन्दविग्रहः । आभवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशाखदः ॥ ६० ॥  
 विनातान्मा दीतगगनपस्वीशो जनेश्वरः । कन्यागः प्रवृत्तिः कल्पः सर्वेशः सर्वकामदः ॥ ६१ ॥  
 अक्षयः पुरुषः साक्षी केशवः पुरुषोत्तमः । लोकाध्यक्षो महाकायो विशीषणवरप्रदः ॥ ६२ ॥  
 आनन्दविग्रहो ज्योतिर्हनुमत्प्रमुख्ययः । आशिषुः महतो भोजो मन्यवादी बहुधनः ॥ ६३ ॥  
 सुखदः कारणं कर्ता भववन्धविमोचनः । देवचूडाभरणेना शस्त्रधरो ब्रह्मवर्धनः ॥ ६४ ॥  
 संसारहारको रामः सर्वदुःखविमोक्षकृत् । विद्वत्तमो विश्वकर्ता विश्वकृद्विश्वकमे च ॥ ६५ ॥  
 नित्यो नित्यतकन्यागः सानाशोकविनाशकृत् । काकुत्स्थः पुण्डरीकाक्षो विश्वामित्रभयापहः ॥ ६६ ॥  
 मारीचमथनो गमो विराधवधपरिहृतः । दुःस्वप्ननाशिनो रम्यः किरीटधारि विदयाधरः ॥ ६७ ॥  
 महाधनुर्महाकायो भीमो भीमपाकमः । तत्त्वस्वरूपमन्वतमन्वतवादी सुविक्रमः ॥ ६८ ॥  
 भूतान्मा भूतकृन्त्यामी कालज्ञानी महागुहः । अनिर्विण्णो गुणधामो निष्कलकः कलकहा ॥ ६९ ॥  
 स्वभावभद्रः हनुमन्तः केशवः स्थानुराश्वरः । भूतार्ता शत्रुनाशिनः स्वविदुः शाश्वतो ध्रुवः ॥ ७० ॥  
 कवचो कुण्डली चक्री खट्वा भक्तजनप्रियः । अमृत्युर्वन्मरुद्विना मर्त्यजन्मवर्गोच्चरः ॥ ७१ ॥  
 अतुल्योऽप्यमेयात्मा सर्वान्मा गुणसागरः २०० । सदा समान्मा समगो ब्रह्मायुःकुटुम्बमण्डितः ॥ ७२ ॥  
 अजेयः सर्वभूतात्मा विश्वकसेतो महावपाः । लोकाध्यक्षो महाब्रह्मरसमो वदाक्षरमः ॥ ७३ ॥

। यज्ञके मूर्ती रूपः ), यज्ञेश ( यज्ञके स्वामी ), जगत्समरणजित ( कुडाला और धनुष दानोंस रहित ),  
 वषाध्वगुह ( धर्म और आश्वमेके गृह ), धनुजिन् ( धनुषीको जितनेवाले ), पुरुषोत्तम ( सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ ),  
 शिवलिंगप्रतिष्ठाता ( लिंगविद्य शिवलिंगोंके संस्थापक ), परमात्मा, परमेश्वर परमाणुभूत विश्वके प्रमाणस्वरूप ),  
 दुर्ज्ञेय ब्रह्म कटिगाईमें जानने योग्य ), पूर, परपुरुजय ( धनुजननाशक विजता ), अनन्तदृष्टि ( अपारदृष्टि ),  
 आनन्द, धनुर्वदके जना, वन्धारे गुणकर, गुणक भण्डार ), कृष्णेश ( सब गुणोंमें श्रेष्ठ ), सन्निदानन्दविग्रह  
 ( सन्नि चित्त आनन्द इन तीनोंके जिनका समीप बना है ), अक्षयद्य ( सबके धनदाय ), महाकाय,  
 विश्वकर्मा विशाखद ॥ ५३-५९ ॥ विनात आत्मकात्मा, सातगा ( रामाहुंमगुन्त ), तपस्विक ( तपस्विधिक  
 स्वामी ), जनेश्वर, कन्याग ( कन्यागस्वरूप ), प्रवृत्ति सदा प्रसन्न ), कल्प, स्थिति तथा प्रलयाकालके  
 अधिपति ), स्वप्न, सर्वकामद अक्षय, पुरुष, साक्षी केशव, पुरुषोत्तम, साक्षाध्यक्ष, महाकाय,  
 विमोक्षणवरप्रद ॥ ५७ ॥ ५८ आनन्दविग्रह आनन्दक पत हन ), ज्योतिस्वरूप, हनुमात्के त्वामी,  
 अनिर्विण्ण, आशिषु ( दीर्घसम्पन्न ), सहजशाल, भोजो, मन्यवादी बहुधन ॥ ५९ ॥ सुखदाया,  
 कारणस्वरूप, कर्ता, भववन्धनसं छुड़ानेवाला, देवताओंके धनुष, ब्राह्मणभक्त अक्षुण्णके उद्यापक  
 ॥ ६० ॥ समानगगनसे तारनेवाले, सदा दुःखान छुड़ानेवाले, अनिर्विण्ण विद्वत्, विश्वव्यपित्,  
 विश्वकर्ता, विश्वक कलत्र रम्यस्वरूप ॥ ६१ ॥ नित्य कन्यागस्तनय, सानाशोकनाशक, कलपुत्ररूप,  
 कामन्वयन, विश्वामित्रभयाहारी ॥ ६२ ॥ मारीचधर्ता, गम, विराधवधन विग्रह, दुःस्वप्ननाशिवारक, रमणीय,  
 किरीटधारी, दवाधिपति ॥ ६३ ॥ विशाल धनुष धारण करनेवाले विशालनाय, व्यापक भवनाक पराक्रम-  
 सम्पन्न, सन्दाक मूर्तरूप, तन्वीक जना तन्वीविषयक भक्ता, असाधारण वराक्रमी ॥ ६४ ॥ ज्ञानमात्रके  
 सखी सबके स्वामी, समयके धारत्री, विनाशहारेश्वरी, सदा प्रसन्न, गुणधाम निष्कलक, कलकहा ॥  
 ६५ ॥ स्वभावतः कल्याणकारी, धनुनाशक, केशव, विश्वकारी, ईश्वर, अक्षयके आदि सम्भु अक्षित-  
 ननय श्वार्थ, नित्य, अटल ॥ ६६ ॥ कवचधारी, पुण्डरीकाक्षी चक्रधारी, खट्वाधारी, भक्तजनप्रिय, अमर,  
 अजन्म सबके विजता, सर्वेश्वरी ॥ ६७ ॥ सर्वान्मा, अमरमेयात्मा स्वर्दिमा, गुणसागर २०० । सदा सन्,  
 प्रवृत्ति, समान्मा, समगो, ब्रह्मायुःकुटुम्बमण्डित ॥ ६८ ॥ अक्षय, सर्वभूतात्मा, विश्वकसेत महाकाय,

सहिष्णुः सद्गतिः शास्त्राविश्वसे निवेदयुतिः । अनींद्र उज्जितः प्रांशुर्ध्वद्रो वामनो बलिः ॥७०॥  
 धनुर्वेदो विधाता च सप्तः विष्णुश्च शक्रः । इमो मर्गाचर्गोविदो रत्नगर्भो महद्व्युतिः ॥७१॥  
 व्यासो वाचस्पतिः सर्वदर्पितसुरभदेतः । जानकाग्रहः श्रावत् प्रकटः प्रातिवर्द्धनः ॥७२॥  
 समशोऽनीन्द्रियो वेशो निर्देशो जाम्बवन्प्रभुः । मदनो मन्मथो वरार्पो विश्वरूपो निरञ्जनः ॥७३॥  
 नारायणोऽग्रणी साधुजटाधुप्रानिवर्द्धनः । नैकरूपो जगन्नाथः सुरकार्यहिताः प्रभुः ॥७४॥  
 जितक्रोधो जितारविः प्लवगाधिपराज्यदः । वसुदः सुभुजो नैकमाया भव्यः प्रमोदनः ॥७५॥  
 क्षण्डाशुः सिद्धिदः कल्पः शरणागतवर्मलः । श्रुतदो गगहर्ता च मन्त्रतो मन्त्रभावनः ॥७६॥  
 सौमित्रिवन्मलो धृष्टो व्यक्तव्यक्तस्वरूपवृत् । रविष्ठो ग्रामगोः श्रामाननुकूलः प्रियवदः ॥७७॥  
 अतुलः सान्निभो धीरः अगमनविद्यावदः । ज्येष्ठः सर्वगुणोपेतः शक्तिमान्महाकांतकः ॥७८॥  
 वैकुण्ठः प्राणिनां प्राणः कमलः कमलाधिपः । गोवर्धनवरो मन्मथरूपः कारुण्यसागरः ॥७९॥  
 कुम्भकर्णप्रभेता च गोपिगोपालवचनः ३०० । साधारो व्यापको व्यापको रेणुकेयवलापहः ॥८०॥  
 पिनाकमयनो वद्यः समर्थो गरुडध्वजः । लोकत्रयाश्रयो लोकभरिवो भरताग्रज ॥८१॥  
 श्रीधरः संयविलोकयार्ता नागायणो विभुः । मनोरुपो मनोवेगी पूर्णः पुरुषपुंगवः ॥८२॥  
 यदुश्चेष्टो यदुपतिर्भूतावयः सुविक्रमः । तजोधरो धराधरश्चतुर्भुजमहानिधिः ॥८३॥  
 बाणधधनो वद्यः शान्तो भरतमदितः । सुदर्शनगो समारात्मा कोमलागः प्रजागरः ॥८४॥  
 लोकोर्ध्वगः शेषशायी शिराधिधितिलवाष्मकः । आत्मज्योतिरदानात्मा महत्सर्गचिः सहस्रपाद् ॥८५॥  
 अमृतांशुवर्हागर्तो निवृत्तार्थव्यसृष्टः । त्रिकालज्ञो मुनिः सार्त्ता विहायसर्गादिः कृता ॥८६॥  
 वर्जन्त्यः कुमुदो भूतावासः कमलन्यासनः । आरम्यवधाः श्रोकसो वाग्हा लक्ष्मणाग्रजः ॥८७॥  
 लोकाभिरामो लोकानामर्तः सेवकप्रियः । सनातनतमा मधुदयामला राक्षसातकः ॥८८॥

व्यापकः स्वामी, मण्डाहः अमृत, वदनीयः वे. ॥७६॥ सहिष्णुः सहति, शासकः, विश्वयानि परमकान्ति-  
 सत्त्वयः अनींद्र ( इन्द्रसे धर्मः ) तद्रमयः । अनींद्रः उज्जितः, वामनः, बलिः, ॥७०॥ धनुर्वदविधाता, प्रह्लादः,  
 विष्णुः, शक्रः इत्ये, सर्गचिः, गर्विकः रत्नगर्भः मन्मथः ॥७१॥ व्यासः, बृहस्पतिः, सप्तः अभिमानः  
 अमुराके धातकः, जानकः जवनः, श्रावन् प्रकटः, प्रीतिवर्द्धनः ॥७२॥ समशः, अतीन्द्रियः, वेशः, निर्देशः,  
 जाम्बवान्के स्वामी मदनः मन्मथः, सरवदारा विद्वन् निरञ्जनः ॥७३॥ नारायणः, अग्रणी, साधु जटाधुके  
 प्रतियवकः, अनाकरूपः, जगन्नाथः दवकादगधकः, प्रभुः ॥७४॥ जितक्रोधः, लघुविजेता, सुग्रीवराज्यदायकः,  
 वसुदाता, सुभुजः विविधमायधरी, मन्मथः प्रमोदनः ॥७५॥ क्षण्डाशुः, सिद्धिदायकः, कल्पः, शरणागत-  
 वर्मलः, अगदः रोगहर्ता मन्त्रज्ञः मन्त्रभावनः ॥७६॥ सुदर्शनप्रभः, धृष्टः व्यक्त-अव्यक्तरूपधारी, रवित्तः, ग्रामीणः,  
 धीमान्, अतुल्यः, प्रियवर्त्तः ॥७७॥ अतुल्यः सर्वः सान्निभः धीरः, यदुविद्यार्थः निगुणः, ज्येष्ठः, सर्वगुणसम्पन्नः,  
 शक्तिमान्, ताडकाके धानकः ॥७८॥ वैकुण्ठः, प्राणिपः प्राणः, कर्मठः, कमलधरिः, गोवर्धनधारी, मन्मथ-  
 रूपधारी, कारुण्यसागरः ॥७९॥ कुम्भकर्णकः नाशकः, गोपिगोपालवचनः ३००, साधारो, व्यापकः,  
 व्यापको, रेणुकेयः ( परशुरामके कलनाशकः ) । ३०० धनुषधनकः, वद्यः समर्थः, गरुडध्वजः, लोकाभिरामो आश्रयः,  
 लोकभरितः भरतके वडे अना ॥८१॥ श्रीधरः, सहति, व्यापकः नागायणः, विभुः, मन्मथः, मनो-  
 वेगी, पूर्णः, पुरुषपुंगवः ॥८२॥ यदुश्चेष्टः यदुपतिः, भूतावासः, सुविक्रमः, तजोधरः, धराधरः, चतुर्भुजः,  
 महानिधिः ॥८३॥ बाणधधनः वद्यः शान्तः, भरतवन्दितः सुदर्शनः, गभीरात्मः, कोमलागः, प्रजागरः  
 ॥८४॥ लोकोर्ध्वगामी, शेषशायी, शिराध्वनित्यः, अमलः, आत्मज्योतिः, अदीनात्मा, सहस्रार्चिः, सहस्रवरणः  
 ॥८५॥ अमृतांशुः, महीगर्तः, त्रिपयकः, मृदुलः रक्षितः, त्रिलोकजः मुनिः सार्त्ता, विहायसर्गादिः कृता ॥८६॥  
 वर्जन्त्यः, कुमुदः भूतावासः, कमलन्यासनः आरम्यवधा, आवासः, वाग्हा, लक्ष्मणाग्रजः ॥८७॥ लोकाभिरामः, लोका-

दिव्यायुधधरः श्रीमानप्रमेयो जितेन्द्रियः । मृदेववद्यो जनकप्रियकुम्प्रपितामहः ॥८९॥  
 उत्तमः सत्त्विकः सत्यः सन्ध्यामन्धस्त्रिविक्रमः । सुवृत्तः सुगमः सूक्ष्मः सुषोणः सुखदः सुहृत् ॥९०॥  
 दामोदरोऽभ्युतः शङ्को वामनो मधुराधिपः । दवकीनन्दनः शौरि शूरः कैटभमर्दनः ॥९१॥  
 सप्तनालप्रमेया च मिश्रवशप्रवर्धनः । कालध्वरूपो कालान्मा कालः कल्याणदः ४०० कलिः ॥९२॥  
 सवस्वरो ऋतुः पक्षो क्षपणं दिवसो युगः । राघवो विधिको निलेपः सर्वव्यापी निराकुलः ॥९३॥  
 अनादिनिघनः सर्वलोकपूज्यो निराग्रयः रमो रसज्ञः सारज्ञः लोकसारो रसात्मकः ॥९४॥  
 सर्वदुःखातिगो विद्याराशिः परमगोचरः शेषो विशेषो विगतकल्मसो रघुपुङ्गवः ॥९५॥  
 वर्णश्रेष्ठो वर्णभाज्यो वर्णो वर्णगुणोज्ज्वलः कर्ममाक्षी गुणश्रेष्ठो देवः सुखप्रदः ॥९६॥  
 देवाधिदेवो देवाधिदेवामुरनमस्कृतः । सर्वदेवमयश्चक्रो शार्ङ्गपर्णी रघूत्तमः ॥९७॥  
 मनोगुप्तिरङ्कारः प्रकृतिः पुरुषोज्ज्वलः । न्यायो न्यायी नयी श्रीमान् नयो नमधरो ध्रुवः ॥९८॥  
 लक्ष्मणविश्वम्भरो भर्ता देवेन्द्रो बलिमर्दनः । बाणारिभर्तनो यज्ञानुत्तमो मुनिसेवितः ॥९९॥  
 देवाग्रणीः शिवध्यानतन्परः परमः परः सामगोपः प्रियः शूरः पूर्णकीर्तिः सुलोचनः ॥१००॥  
 अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो दशस्यद्विपकेसरी कलानिधिः कलानाथः कमलानन्दवर्धनः ॥१०१॥  
 पुण्ड्रः पुण्याधिकः पूर्णः पूर्वः पूरयिता रविः जटिलः कल्मषघ्नो नमभजनविभावयुः ॥१०२॥  
 जयी जितारिः सर्वादिः शमरो भवभञ्जनः । अलकरिणुराचनो रात्रिष्णुर्विक्रमोत्तमः ॥१०३॥  
 आशुः क्रन्दपतिः शब्दागोचरो रजनो लघुः । निःशब्दपुरुषो माया स्थूलः सूक्ष्मो ५०० विलक्षणः ॥१०४॥  
 आत्मयोनिस्थोनिश्च समजिह्वः सहस्रपात् । मनात्तननमः सार्वी पेशलो विजिताम्बरः ॥१०५॥  
 शक्तिमान् शस्त्रभृन्नथो गदाधरधांगभृत् । निर्गहो निर्विकल्परश्च चिद्रूपो वीतसाध्वसः ॥१०६॥  
 सनातनः सहस्राक्षः शतमूर्तिर्धनश्रमः इन्द्रगोकशयनः कठिनो द्रव एव च ॥१०७॥  
 धूर्पो ग्रहपतिः श्रीमान् समर्थोऽनर्थनाशनः अधर्मशत्रु रघोष्णः पुरुहूतः पुरस्तुतः ॥१०८॥

रिमर्दन, सबकाप्रय, सनातनस्तम, मधुश्यामल, राक्षसान्तक ॥ ८९ ॥ दिव्यायुधधर, श्रीमान्, अप्रमेय, जितेन्द्रिय, विश्ववैद्य, गिताङ्क द्वियन्तर्, प्रपितामह ॥ ९० ॥ उत्तम सत्त्विक सत्य, सन्ध्यामन्ध, त्रिविक्रम, सुवृत्त, सुगम, सूक्ष्म सुषोण, सुखद, सुहृत् ॥ ९१ ॥ दामोदर, अभ्युत शङ्को, वामन मधुराधिपति, देवकीनन्दन, वासुदेव, शूर, कैटभमर्दन ॥ ९२ ॥ सप्तनालप्रभन्त, मिश्रवशवर्धन, कालध्वरूपो, कालान्मा, काल, कल्याणद ४०० कलि, ॥ ९३ ॥ सवस्वर, ऋतु, पक्ष, क्षपण, युग, सन्ध्या विधिक, निलेप, सर्वव्यापी, निराकुल ॥ ९४ ॥ अनादिनिघन, सर्वलोकपूज्य, निराग्रय, रम, रसज्ञ, सारज्ञ, लोकसार, रसात्मक ॥ ९५ ॥ सर्व दुःखातिग, विद्याराशि, परमगोचर, गद्य, विलय, विगतकल्मस, रघुपुङ्गव, ॥ ९६ ॥ वर्णश्रेष्ठ, वर्णभाज्य, वर्ण, वर्णगुणोज्ज्वल कर्ममाक्षी, गुणश्रेष्ठ, देव, सुखप्रद ॥ ९७ ॥ देवाधिदेव देवाधि देवामुरनमस्कृत सर्वदेवमय, चक्रो, शार्ङ्गपर्णी, रघूत्तम ॥ ९८ ॥ मन बुद्धि अङ्कार प्रकृति, पुरुष अव्यय, न्याय न्यायी नयी, श्रीमान्, नय, नमधरो, ध्रुव, ॥ ९९ ॥ लक्ष्मण-विश्वम्भर, भर्ता, देवेन्द्र, बलिमर्दन बाणारिभर्तन, यज्ञा उत्तम मुनिसेवित ॥ १०० ॥ देवाग्रणी, शिवध्यानतन्पर, परम, पर, सामगोप प्रिय, शूर पूर्णकीर्ति, सुलोचन ॥ १०१ ॥ अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, दशारवद्विपकेसरी, कलानिधि कलानाथ कमलानन्दवर्धन ॥ १०२ ॥ पुण्याधिक पूर्ण पूरयिता, रवि, जटिल, कल्मषघ्नो ध्वस्त करनेवाले, अग्नि ॥ १०३ ॥ जयी, जितार्ति, सर्वादि, शमन भवभञ्जन, अलकरिणु अचल, रात्रिष्णु विक्रमोत्तम ॥ १०४ ॥ आशु क्रन्दपति, शब्दागोचर, रजन, लघु, निःशब्द, पुरुष, मायो, स्थूल, सूक्ष्म ५०० विलक्षण ॥ १०५ ॥ आत्मयोनि, अवांनि, समजिह्व, सहस्रपात् सनातननम, सार्वी, पेशल, विजिताम्बर ॥ १०६ ॥ शक्तिमान् कल्पभृत्, नाथ, गदाधर, रथाभृत्, निर्गह, निर्विकल्प, चिद्रूप, वीतसाध्वस ॥ १०७ ॥ सनातन



जगन्मोक्षं बृहद्मोक्षं धर्मधेनुर्धनमनः । हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मान् मुक्ताष्ट मुचिक्रमः ॥ १०९ ॥  
 शिवपूजार्त श्रीमान् भवानो विष्णुर्बृहन् नरो नारायण इयाम कपर्दी नीललेहिवः ॥ ११० ॥  
 रुद्रः पशुपति स्थानुविशामित्रो द्वित्रेश्वरः । मातामहो मनमिया विविचिर्विष्टम्भवा ॥ १११ ॥  
 अक्षोभ्य सर्वभूतानां चण्डः मन्यपराक्रुष्टः । बलस्त्रियो महाकन्य कल्पवृक्ष कलाभा ॥ ११२ ॥  
 निदाघस्तपनो मेघः शुक्रः परवन्धवहाद् वसुधवा कठयवाह प्रसप्तः विश्वभोजनः ॥ ११३ ॥  
 रामो नीलोत्पलश्यामो ज्ञानचन्दो महाशुनिः । कवन्धमयनो दिव्य कम्बुग्रीव शिवमेव ॥ ११४ ॥  
 सुशो नील सुनिष्कमः मुलम शिशिरात्मकः । प्रममृष्टोऽतिथि गूर प्रपाथा वाचनाशकृत् ॥ ११५ ॥  
 पवित्रपादः पारागिर्मणिपूगे नभोगतिः । उतापणो दूष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःपहो बलः ६०० ॥ ११६ ॥  
 अमृतेशोऽमृतवपुर्धर्षो धर्मः कृपाकरः । भगो विष्ण्वानन्दित्यो योगाचार्यो दिव्यमतिः ॥ ११७ ॥  
 उदारकीर्तिक्रयोगो बाहुमयः सदमन्त्रयः । नक्षत्रमभी नाकेश स्वधिष्ठानः वडाश्रयः ॥ ११८ ॥  
 चतुर्वर्गकलं वणशक्तिव्रणकलं निधिः । निधानगर्भो निधोजो निर्गमो व्यक्तवर्द्धनः ॥ ११९ ॥  
 श्रावणश्च शिवारम्भ शान्तो मद्रः समन्तमः । भूजाया भूकद्रनिर्भरणो भूतनाहनः ॥ १२० ॥  
 अकायो भक्तकायस्थः कलशनी महारदुः । परध्वंशतिरचलो विविक्तः अविमागरः ॥ १२१ ॥  
 स्वभावभद्रो मध्यस्थः समारम्भनाशनः । वेद्यो वैद्यो विद्यहोता सर्वार्थमुनीश्वरः ॥ १२२ ॥  
 सुरेन्द्रः कारण कर्मेकरः कर्षो ह्यशोभजः । धर्मोऽश्रुधर्मो धात्रीशः मकल्यः सर्वोपपतिः ॥ १२३ ॥  
 परमार्थगुरुर्दृष्टिः सुचिराभितरवलः । विष्णुर्जिष्णुविभुर्धर्मो यज्ञेशो पशुपालकः ॥ १२४ ॥  
 प्रभुविष्णुर्धर्मिष्णुश्च लोकपालः लोकपालकः । केशवः केशिहा काव्यः कविः कारणकारणम् ॥ १२५ ॥  
 कालकर्ता कालशयो वासुदेवः पुरुष्टनः । आदिकर्ता वराहश्च वामनो मधुसूदनः ॥ १२६ ॥  
 नारायणो नरो हंसो विश्वकसेनो जनार्दनः । विश्वकर्ता महापद्मा ज्योतिष्मान्पुरुषोत्तमः ७०० ॥ १२७ ॥

सम्पाद्य, शतमूर्ति, सनमद, हृन्मण्डोवशासन, कटिन् द्व ॥ १०९ ॥ सूर्य, बृहन्मोक्षं श्रीमान् धर्मधेनु, धनधेनु, नारायण अक्षर्यशेष, रुद्रोक्त, पुरुष्टन गणपति ॥ ११० ॥ जगन्मोक्षं, बृहद्मोक्षं, धर्मधेनु, धनधेनु हिरण्यगर्भ, ज्योतिष्मान्, मुक्ताष्ट, मुचिक्रम ॥ १११ ॥ शिवपूजार्त, श्रीमान् भवानो विष्णुर्बृहन् वेशी नर, नारायण, इयाम, कपर्दी, नीलोत्पलहिवः ॥ ११२ ॥ रुद्र, पशुपति, स्थानुविशामित्र, द्वित्रेश्वर मातामह, मातरिषा, विरिष्वा, विष्टम्भवा ॥ ११३ ॥ अक्षोभ्य सर्वभूतानां चण्ड मन्त्रपराक्रम, बलस्त्रियो, महाकन्य, कल्पवृक्ष, कलाभा ॥ ११४ ॥ निदाघ, तपन, मेघ, शुक्र, परवन्धवहाद्, वसुधवा, कठयवाह प्रसप्त, विश्वभोजन ॥ ११५ ॥ राम, नीलोत्पलश्याम ज्ञानचन्द, महाशुनि, कवन्धमयन, दिव्य, कम्बुग्रीव शिवप्रिय, ॥ ११६ ॥ सुशो, नील, सुनिष्कम, मुलम, शिशिरात्मक अममृष्ट अतिथि, गूर प्रपाथा वाचनाशकृत् ॥ ११७ ॥ पवित्रपाद पारागिर्मणिपूगे नभोगति उतापण, दुर्धर्ष, दुःपह, बल ६०० ॥ ११८ ॥ अमृतेश, अमृतवपु, धर्मो, कृपाकर, भग, विष्ण्वान्, आदित्य, योगाचार्य, दिव्यमति ॥ ११९ ॥ उदारकीर्ति, उदनी बाहुमय, सदमन्त्रय, नक्षत्रमाना, नाकेश, स्वधिष्ठान वन्द्यः ॥ १२० ॥ चतुर्वर्गकल वणशक्तिव्रणकल निधि, निधानगर्भ निधोजि, निर्गमो व्यक्तवर्द्धन ॥ १२१ ॥ श्रीहन्मोक्ष, शिवारम्भ शान्त, मद्र समन्तम, भूजाया भूति, भूतनाहन ॥ १२२ ॥ अकाय, भक्तकायस्थ कालशनी महारदु, परध्वंशति अचल, विविक्त, अविमागर ॥ १२३ ॥ स्वभावभद्र, मध्यस्थ, समारम्भनाशन, वैद्य वैद्य विद्यहोता, सर्वार्थमुनीश्वर ॥ १२४ ॥ सुरेन्द्र, कारण, कर्मेकर, कर्षो, अशोभज, धर्मो, अश्रुधर्मो धात्रीश मकल्य सर्वोपपति ॥ १२५ ॥ परमार्थगुरु, दृष्टि सुचिराभितरवल, विष्णु, जिष्णु जिभु यज्ञ यज्ञेश यज्ञपालक ॥ १२६ ॥ इभु दिष्णु प्रसिष्णु लोकपाल, लोकपालक, केशव, केशिहा काव्य, कवि, कारणकारण ॥ १२७ ॥ कालकर्ता काव्यशय, वासुदेव पुरुष्टन, आदिकर्ता, वराह, वामन मधुसूदन ॥ १२८ ॥ नारायण नर, हंस, विश्वकसेन जनार्दन विश्वकर्ता, महापद्मा, ज्योतिष्मान्

वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरचिन्तः । नारसिंहा महाभीमा वज्रदंष्ट्रो नवायुधः ॥१२८॥  
 आदिदेशो जगत्कर्ता योगीशो गरुडध्वज । गोविन्दो गोशनिर्गोम भूपतिर्भुवनेश्वरः ॥१२९॥  
 पद्मनाभो हृषीकेशो धाता दामोदरः प्रभुः । त्रिविक्रमस्त्रिकोकेशो भक्तेशः प्रीतिवर्धनः ॥१३०॥  
 सन्ध्यामी शाश्वतस्वज्ञो मन्दिरो गिरिशो ननः । वासनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपबल्लभः ॥१३१॥  
 भक्तप्रियोऽम्बुतः सत्यः सत्यर्कानिर्दृतिः स्मृतिः । कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा श्रुतिवर्द्धनः ॥१३२॥  
 बदरीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतः प्रभुः । भूतावाप्तो महाबाला श्रीनिवातः श्रियः पतिः ॥१३३॥  
 तपोवाप्तो मुदावासः सत्यवासः सनातनः । पुरुषः पुष्करः पुण्य पुष्कराक्षो महेश्वरः ॥१३४॥  
 पूर्णभूतिः पुष्पगन्धः पुष्पदः प्रीतिवर्धनः पूर्णरूपः । कालचक्रप्रवर्त्तनसमाहितः ॥१३५॥  
 नारायणः परं पतिं परमात्मा सदाशिवः । शंखी चक्री मदी शङ्खो लांगूली मुसली हन्त्री ॥१३६॥  
 किरीटी कुण्डली हारी मखली कवची ध्वजा । योगी जेता महावीर्य शत्रुघ्न शत्रुनाशन ॥१३७॥  
 शास्ता शास्त्रकारः शास्त्रं शंकरः शंकरमुत्त । सर्वोपाधिभक्तः स्वामी मामवेदप्रिय सम ८०० ॥  
 पवन सहितः शक्तिः सम्पूर्णज्ञः समृद्धिमान् । स्वर्गदः कामद श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिदायकः ॥१३९॥  
 भोमदः पुण्डरीकाक्षः क्षीराब्धिकृतकतनः । सर्वान्मा सर्वलोकेशः प्रेरकः पापनाशनः ॥१४०॥  
 वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः सर्वदेवनमस्कृतः । सर्वव्यापी जगन्नाथ सर्वलोकमहेश्वरः ॥१४१॥  
 सर्वस्थित्यन्तकृदेवः सर्वलोकसुखावहः । अक्षयः शाश्वतोऽनन्त क्षयवृद्धिविजितः ॥१४२॥  
 निर्लेपो निर्गुण सूर्यो निर्विकारो निरञ्जनः । सर्वोपाधिनिर्मुक्त सनात्मात्रव्यवस्थितः ॥१४३॥  
 अविकारी विभुर्निन्य परमात्मा सनातनः । अचलो निश्चलो व्य.पा नित्यवृक्षो निराश्रयः ॥१४४॥  
 व्याप्तो युवा लोहिताक्षो दीप्त्वा शोभितपापणः । आजानुवादुःसुमुखः सिद्धस्त्वन्धो महाभुजः ॥१४५॥  
 सम्भवान् गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वनेजसा । कालात्मा भगवान् कालः कालचक्रप्रवर्त्तकः ॥१४६॥

पुराणोक्तम् ७०० । १२० । वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः, सूर्यः, सुरचिन्तः नारसिंहः, महाभीमः, वज्रदंष्ट्रः, नवायुधः ॥ १२८ ॥ आदिदेवः, जगत्कर्ता योगेशः गरुडध्वजः, गोविन्दः, गोपतिः गोप्ता, भूपतिः, भुवनेश्वरः ॥ १२९ ॥ पद्मनाभः, हृषीकेशः, धाता, दामोदरः, प्रभुः, त्रिविक्रमः त्रिकोकेशः महाेशः, प्रीतिवर्धनः ॥ १३० ॥ सन्ध्यामी, शाश्वतस्वज्ञः, मन्दिरः, गिरिशः, ननः, वासनः, दुष्टदमनः गोविन्दः गोपबल्लभः, ॥ १३१ ॥ भक्तप्रियः, अम्बुतः, सत्यः सत्यर्कानिर्दृतिः, स्मृतिः, कारुण्यः, करुणः व्यासः, पापहा, श्रुतिवर्द्धनः ॥ १३२ ॥ बदरीनिलयः, शक्तिः, तपस्वी, वैद्युतः, प्रभुः भूतावाप्तः, महाबालः श्रीनिवासः, श्रीपातः ॥ १३३ ॥ तपोवासः, मुदावासः, सत्यवासः, सनातनः, पुष्करः, पुण्यः, पुष्कराक्षः, महेश्वरः ॥ १३४ ॥ पूर्णभूतिः, पुष्पगन्धः, पुष्पदन्तः, प्रीतिवर्द्धनः, पूर्णरूपः, कालचक्रप्रवर्त्तनः, समाहितः ॥ १३५ ॥ नारायणः, परं पतिं, परमात्मा, सदाशिवः, शंखा, चक्री, मदी, शङ्खी, लांगूली, मुसली, हन्त्री ॥ १३६ ॥ किरीटी, कुण्डली, हारी, मखली, कवची, ध्वजा, योगी, जेता, महावीर्य शत्रुघ्न शत्रुनाशन ॥ १३७ ॥ शास्ता शास्त्रकारः शास्त्रं, शंकरः, शंकरमुत्त, शास्त्र्याः, शास्त्रिकः, स्वामी, मामवेदप्रियः, समः ८०० ॥ १३८ ॥ पवनः, सहितः, शक्तिः, सम्पूर्णज्ञः, समृद्धिमान्, स्वर्गदः, कामदः, श्रीदः, कीर्तिदः, कीर्तिदायकः ॥ १३९ ॥ भोमदः, पुण्डरीकाक्षः, क्षीराब्धिकृतकतनः, सर्वान्मा, सर्वलोकेशः, प्रेरकः, पापनाशनः ॥ १४० ॥ वैकुण्ठः, पुण्डरीकाक्षः, सर्वदेवनमस्कृतः, सर्वव्यापी, जगन्नाथः, सर्वलोकमहेश्वरः ॥ १४१ ॥ सर्वस्थित्यन्तकृदेवः, सर्वलोकसुखावहः, अक्षयः, शाश्वतः, अनन्त क्षयवृद्धिविजितः ॥ १४२ ॥ निर्लेपः, निर्गुणः, सूर्यः, निर्विकारः, निरञ्जनः, सर्वोपाधिनिर्मुक्तः, सनात्मात्रव्यवस्थितः ॥ १४३ ॥ अविकारी, विभुः, निन्यः, परमात्मा, सनातनः, अचलः, निश्चलः, व्य.पा, नित्यवृक्षः, निराश्रयः ॥ १४४ ॥ व्याप्तः, युवा, लोहिताक्षः शोभितपापणः, आजानुवादुःसुमुखः, सिद्धस्त्वन्धः, महाभुजः ॥ १४५ ॥ सम्भवान्, गुणसम्पन्नः, अपने नेजसे दीप्यमानः, कालात्मा, भगवान्, कालः, कालचक्रप्रवर्त्तकः ॥ १४६ ॥

नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सनातनः । विश्वकृद्विश्वभोक्ता च विश्वगोप्ता च शाश्वतः ॥ १४७ ॥  
 विश्वेश्वरो विश्वमूर्तिविश्वात्मा विश्वभावनः । सर्वभूतमुहूर्च्छातः सर्वभूतानुत्पन्नः ॥ १४८ ॥  
 सर्वेश्वरः सर्वज्ञः सर्वदाऽऽभितव्यमलः । सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वभूताश्रयस्थितः ॥ १४९ ॥  
 अभ्यन्तरस्थमममलेता नारायणः परः । अनादानिधनः स्रष्टा प्रजापतिपतिर्हरिः ॥ १५० ॥  
 नरसिंहो हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वदावर्णी । जगत्सम्भूयधैव प्रभुर्नेता सनातनः १०० ॥ १५१ ॥  
 कर्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिर्राश्वरः । महत्समूर्धा विश्वात्मा विष्णुविश्वरूपधरः ॥ १५२ ॥  
 पुराणपुरुषः श्रेष्ठः सहस्राक्षः सहस्रपान् । तन्त्र नारायणा विष्णुर्वामुदवः सनातनः ॥ १५३ ॥  
 परमान्धा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः । परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परान्तरः ॥ १५४ ॥  
 अरूपः पुरुषः कृष्णः शाश्वतः शिव ईश्वरः । नित्यः सर्वगतः स्थाणु रुद्रः मार्क्षी प्रजापतिः ॥ १५५ ॥  
 दिग्गजगर्भः सविता लोककल्लोकसुखिभुः । अङ्गावच्छेदो भगवान् श्रीभूर्नीलपतिः प्रभुः ॥ १५६ ॥  
 सर्वलोकेश्वरः श्रीमान् सर्वज्ञः सर्वताम्रः । स्वामी सुर्जालः सुलभः सर्वगः सर्वशक्तिमान् ॥ १५७ ॥  
 नित्यः संपूर्णकामश्च नैमगिकसुहृन्मुखः । कुर्याद्युषजलधिः शरण्यः सर्वशक्तिमान् ॥ १५८ ॥  
 श्रीमन्नारायणः स्वामी जगता प्रभुर्गोपकः । मन्त्र्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥ १५९ ॥  
 रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की परान्तरः । अयोधेशो नृपश्रेष्ठः कुशचालः परन्तपः ॥ १६० ॥  
 लवचालः कजनेत्रः कजार्धः एकजाननः । सीताकाण्ठः सौम्यरूपः शिशुजीवनतन्परः ॥ १६१ ॥  
 सेतुकुन्निवस्तुस्थः शर्वरीसन्तुनः प्रभुः । योगिध्वजः शिवध्वजः शास्त्रा गवणदर्पहा ॥ १६२ ॥  
 श्राव्यः शरण्यो भूतानां सर्वश्रतार्थाष्टदयकः । अनन्तः श्रीपती रामो गुणभूभिर्गुणो महान् १००० ॥  
 एवमादीनि नामानि क्षमयान्यपराणि च । एकैकं नाम रामस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १६४ ॥  
 सहस्रनामकन्दं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् । सर्वसिद्धिकरं पूज्यं शुक्तिभुक्तिफलप्रदम् ॥ १६५ ॥

काल्पकल्पवर्त्तक ॥ १४६ ॥ नारायण, परंज्योति परमात्मा सनातन, विश्वकृत, विश्वभोक्ता, विश्वगोप्ता, शाश्वत ॥ १४७ ॥ विश्वेश्वर विश्वमूर्ति विश्वात्मा, विश्वभावन सर्वभूतमहन्, शाश्वत सर्वभूतानुत्पन्न ॥ १४८ ॥ सर्वेश्वर सर्वज्ञ, सर्वदा आभितव्यमल, सर्वग सर्वभूतेश सर्वभूताश्रयस्थित ॥ १४९ ॥ अभ्यन्तरस्थ, अभ्यन्तरस्थ, नारायण, पर, अनादिनिधन, स्रष्टा प्रजापति हरि ॥ १५० ॥ नरसिंह, हृषीकेश, सर्वात्मा, सर्वदावर्ण, बली, स्थवर तथा जगत् विश्वरे प्रभु, नेता, सनातन १०० ॥ १५१ ॥ कर्ता, धाता, विधाता, सर्वके पति ईश्वर, महत्समूर्धा, विश्वात्मा विष्णु, विश्वरूप, अरव्य ॥ १५२ ॥ पुराणपुरुष श्रेष्ठ, सहस्राक्ष, सहस्रपान्, तन्त्र, नित्य, नारायण वामुदव, सनातन ॥ १५३ ॥ परमान्धा परब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, परंज्योति, परं धाम, पराकाश, परान्तर ॥ १५४ ॥ अरूपः कृष्ण शाश्वत, शिव, ईश्वर, नित्य सर्वगत, स्थाणु, रुद्र साक्षी, प्रजापति ॥ १५५ ॥ दिग्गजगर्भ, सविता सङ्कृत, विष्णु अङ्गावच्छेद, भगवान्, श्रीभूर्नीलपति, प्रभु ॥ १५६ ॥ सर्वलोकेश्वर श्रीमान् सर्वज्ञ, सर्वताम्र, स्वामी, सुर्जाल सर्वग, सर्वशक्तिमान्, प्रभु ॥ १५७ ॥ संपूर्णकाम नैमगिकसुहृन्मुखः, कुर्याद्युषजनवि सर्वके शरण्य ॥ १५८ ॥ श्रीमान् नारायण, स्वामी, सर्व भूतार्थके प्रभु, ईश्वर मन्त्र्य कूर्म वराह, नृपति, वामन ॥ १५९ ॥ राम, कृष्ण, बौद्ध, कल्की, परान्तर अयोधेश, नृपश्रेष्ठ वल्लभे पति, परन्तप ॥ १६० ॥ लवके पिता, सेतुकुन्निवस्तुस्थ, शर्वरीसन्तुन, प्रभु योगिध्वज, शिवध्वज, शास्त्रा, रावणदर्पहा ॥ १६१ ॥ श्राव्य शरण्य, आभितार्थके अनन्त श्रीपति राम गुणभूत निर्गुण महान् १००० ॥ १६२ ॥ यहाँ रामसहस्रनाम पूर्ण हुआ । इसी तरह और वा मन्त्रान्ते बहुतसे नाम हैं, जिनकी गणना ही नहीं की जा सकती । रामका एक-एक नाम सब प्रकारके पापोंको हरने तथा सहस्रनामका फल देनेवाला है । यह रामनाम सब प्रकारकी समृद्धियों एवं

मन्त्रात्मकमिदं सर्वं व्याख्यातुं सर्वमंगलम् । उक्तानि तव पुत्रेण विघ्नराजेन धीमता ॥१६६॥  
 सनत्कुमाराय पुरा तान्युक्तानि मया तव । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स तु ब्रह्मपदं लभेत् ॥१६७॥  
 तावदेव बलं तेषां महापतकदंनिदाम् । यावन्न श्रूयते रामनामर्पचाननध्वनिः ॥१६८॥  
 मन्त्राग्नेश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । शरणागतशानी च मित्रविद्रवामघातकः ॥१६९॥  
 मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा वीरहा तथा , कोटिकोटिमहस्त्राणि क्षुपगपानि यान्यपि १७०॥  
 संवत्सरं कमाञ्जलपद्मा प्रत्यहं राममग्निधी निष्कण्टकसुखं भुक्त्वा ततो मोक्षमवाप्नुयात् १७१॥

सुत उवाच

एवं शौनक पार्वत्यै रामनाममहस्रकम् यथा शिवेन कथितं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७२॥

श्रीरामदास उवाच

यथा शिष्य त्वया पृष्टं रामनाममहस्रकम् तन्मूलोक्तं मयि स्तरं मया तेऽद्य निवेदितम् । १७३॥  
 अनेन रामं मदति नारदः स्तुतवान्मुनिः । रामनाममहस्रं भुक्तिमुक्तिप्रदेन च ॥१७४॥

श्रीरामनाम्नां परमं महस्रकं पापापहं सौख्यविवृद्धिकारकम्  
 मवापहं भक्तजनैरुपालकं स्त्रीपुत्रपौत्रप्रदमृद्धिदायकम् ॥१७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वान्माकीये राज्यकाण्डं

पूर्वाह्णे रामसहस्रनामकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( कल्पवृक्ष और पारिजातके पृथ्वीपर आनेका कारण )

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वया रामनाममहस्रं राघवस्य च यवानं कल्पवृक्षेर्मुले कथितं स्वर्णपीठके ॥ १ ॥

सिद्धिप्राप्त करनेवाला और भक्ति-मुक्तिका दाता है । हे पार्वति ! मैंने अभी जो सहस्रनाम तुम्हें बतलाया है, यह मन्त्रात्मक और सर्वमंगलकारक है । इसे तुम्हारे पुत्र पणेशजाने स्वयं पद्मकुमारको बतलाया था उसे मैंने आज तुमसे कहा है जो कोई इस सहस्रनामको पढ़ता और सुनता है, उसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है ॥ १६६-१६७ ॥ महापतकहर्षी मतवाले हाथियोंका बल तभी तक रहता है, जब तक रामनामरूपी पंचानन ( सिंह ) की गर्जना नहीं सुनायी देती । १६८ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्या, मद्य गुरुको शब्दापर शयन करनेवाला तथा चोर हो । जो शरणागतको मारनेवाला, मित्रके साथ विश्वासघात करनेवाला, माता पिता, भ्रूण ( गर्भस्थ संतान ) तथा वीर मनुष्यकी हत्या करनेवाला हो तथा जिसने समान्य करीखा पाप किये हों, वह भी यदि श्रीरामके पास बैठकर एक संवत्सर पर्यन्त प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करे तो संसारभ्रम निष्कण्टक सुख भोगकर अन्तमे मोक्ष पाता है । १६९ ॥ १७० ॥ सुतजी बोले हे शौनक ! शिवजीने पार्वतीको जिस प्रकार रामका सहस्रनाम सुनाया था वही मैंने आज तुम्हें बताया है । १७१ ॥ श्रीरामदासने कहा - हे शिष्य ! जैसे तुमने हमसे रामका सहस्रनाम पूछा वैसे मैंने तुम्हें बताया । उसी सहस्रनामसे नारदने सभासे रामजीकी स्तुति की थी । क्योंकि यह स्तोत्र भक्ति-मुक्ति स्व कुछ देनेवाला है । १७२-१७४ ॥ यह रामका सहस्रनाम पापका नाशक, सौख्यवर्द्धक, सांसारिक पापका नाशक भक्तजनोंका पालक और स्त्री-पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्तिका देनेवाला है । १७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमः रामतेजःपाण्डेयविरचित'अयोध्या'भाषाटीकासहितः राज्यकाण्डे पूर्वाह्णे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामका सहस्रनाम बताते समय कहा था कि कल्पवृक्षके नीचे

सदेहस्तेन मे ज्ञानः कन्यशुभः कथं भुवि । मयोध्यायां रामगेहे स्वर्गलोकान्समगताः ॥ २ ॥

मम मे मंशयं छिपि कृपां कृत्वा ममोपरि ।

सम्पक् पृष्टं विष्णुदाम मावधानमनाः शृणु ॥ ३ ॥

एकदा राघवं दृष्टुं दुर्वासो मुनिरभ्यगात् । शिष्यः पटिमहस्रैश्च वेष्टितोऽचिनयन्पथि ॥ ४ ॥

विष्णुर्मेनुजरूपेण रामो जातोऽत्र वंशपटम् । तथापि लोकान् रामस्य दर्शयिष्यामि पीरुपम् ॥ ५ ॥

एवं निश्चित्य साकेतं मुनिः शिष्यं विवेश ह । चित्तस्य सोऽहं कक्षांस्तः सीतागेहं पथी मुनिः ॥ ६ ॥

सीतागेहे महद्दरसन्निधौ मुनिपथमम् । दुर्वासस शिष्ययुक्तं दृष्ट्वा रं श्रेयसाणयः ॥ ७ ॥

श्रीघं निवेदयामासुर्दास्या रामं रहः स्थितम् । रामोऽपि श्रुत्वा मग्रासं मुने प्रप्युज्जगाध सः ॥ ८ ॥

नन्वा तानानयामास सद्यः स्नातनमर्पयत् । एतस्मिन्नन्तरे रामं निष्ठुन्म मुनिमनमः ॥ ९ ॥

अत्रवीन्मधुरं वाक्यं शिष्यः सर्वत्र बहितः । अद्य सर्वमहसाणां मुपशमममापनम् ॥ १० ॥

अतो भोजनमिच्छामि मपिघेन्वनलैर्विना मिदमन्नं मुहूर्तेन मशिष्याय ममर्पय ॥ ११ ॥

मद्य मनोऽभिनयित नानापक्वान्तमयुतम् । तथा मां रूचनार्थं हि शमाः पुष्पाणि म नयः ॥ १२ ॥

अदृष्टान्यानयश्चाद्य गार्हपत्यं चैवप्रशमयि । नोच्येन्नहं ममार्थोऽस्मीत्युक्त्वा मां न्यं विमर्जय ॥ १३ ॥

तन्मुनेर्वचने श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दन । सर्वमगाहृत चेति विनयेनात्रर्चन्मुनिम् ॥ १४ ॥

तद्गमवचने श्रुत्वा तुष्टस्तं मुनिरग्रवीत् । स्नात्वा मग्नां शीघ्रं न्याम गच्छामि त्वर्गं कुरु ॥ १५ ॥

मदुक्तं मफलं कर्तुं सिद्धं यर्थं च जानकी । तथेत्युक्त्वा भुवि रामः स्नानार्थं च स्वयर्जयत् ॥ १६ ॥

तदा ते लक्ष्मणाद्यद्वयं चैव शीघ्रं जानकीं तथा । कुशं च बालकाः सर्वे तेऽभूवन् भयविह्वलाः ॥ १७ ॥

स्वर्णनिर्मित चोकोपर बेंडे हुए भगवानका कपाल करे ॥ १ ॥ सो मुनिकर भुजे यह संदेह ही रहा है कि कल्प-  
कृत स्वर्गलोकसे रामचन्द्रजीक भवसम बेंसे आया । मुनपर कृपा करके आप इस संशयका निवारण  
कीजिये । श्रीरामदासजीने कहा — हे निष्ठागुरु, तुमने बहुत अच्छा बात पूछा है । सावधान होकर मुनो  
॥ २ ॥ ३ ॥ एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये सड़ हजार शिष्योस परिवेष्टित दुर्वासो मुनि  
अयोध्याको जा रहे थे । रामने ज न-ज्ञान दुर्वास ने स च कि स्वर्ग विष्णुभगवान् मनुष्यका रूप धारण करके  
मनारम आये है यह मैं जानता हूँ । फिर भी आज मगरक साधारण मनुष्योका ये उनका गौरव दित-  
लाऊंगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ एक निम्नव काके स अन्न शिष्योके स य अयोध्या नगर म प्रविष्ट हुए और सबको साथ  
लिये हुए बाठ चौक लाँचकर सीताक भवनमें जा पहुँच ॥ ६ ॥ नागरिक विष्णाल द्वारपर जिधों समेत  
आये हुए दुर्वासो रसकर लीदागेने गुराल रामचन्द्रजीको सबक दी । यह समाचार सुनते ही भगवान्  
दुर्वासो मुनिक पास आ पहुँच । उन् प्रणाम किया और सबको वड़े आदर समेत भवनके भीतर ले गये । वहाँ  
बैठनेके लिये उन्हें सुन्दर स सम दिया । अ सम्पर बेंडे हुए दुर्वासो बड़ मधुर वाणीम रामचन्द्रजीसे कहा  
महाराज ! आज एक हजार वर्षका मेरा उपवासवन पूरा हुआ है । इस कारण मेरे शिष्योस साथ मुने भोजन  
चाहिए । इसके लिये आपको केवल एक मुहूर्तका समय मिलेगा और वह भोजन मर्ण, कामधेनु नरा अन्निको सहा-  
यतासे न तैयार किया जाय । वन, एक मुहूर्तमें मनु मने इच्छाक अदृक्क भोजन मिले । जिसमें विविध प्रकार-  
के पक्कवान सन्निमित्त रह । यदि मय भवता मर्हन्त्यत्र बने रहना चाहत होओ तो शिष्योको पूजाके निमित्त  
मुने ऐसे फूल मँगवा दो, जिन्ह भवगत विभोने न देवा हो । यदि ऐसा न कर सकत हो तो माफ साक यह दो  
कि मैं ऐसा कालम असमर्थ ह । यह कहकर मुने विदा कर दी । -- ११ ॥ मुनिको खातोको मुनकर समझते हुए  
राम नमत पूर्वक बोले—“मुने सब कुछ आगेकार है” ॥ १४ ॥ रामकी बातसे प्रमत्त होकर दुर्वासोने कहा कि  
मैं सीता सरसूय स्नान करके जाता हूँ ॥ १५ ॥ हुनने कयलागुमार सब चीजोकी सेवाओंके लिए अपने आताको  
तथा सीताकी भी शं घत के लिए कह दना । ‘अच्छा’ कहकर रामचन्द्रजीने दुर्वासोको स्नान करनेके लिये

ऊचुः पस्पर सर्वे रामन्यस्तेक्षुणाः शनैः । किं याचितं हि मुनिना किं समोऽग्रे कश्चिन्नि ॥१८॥  
 विना गोवह्निमग्निभिः कथमन्नं प्रदास्यति । ततो गते मुनौ रामः पत्रं सौमित्रिणा तदा ॥१९॥  
 विहृत्य बद्ध्वा बाणे तन्ममोव ग्ररमुत्तमम् । तं शरो व युवगेन शीघ्रं गन्वाऽमरावतीम् ॥२०॥  
 सुधर्मायां सुर्वैकस्तेद्रव्याग्रे यवान् ह । तं शरं मयवा दृष्ट्वा चक्रिषो भयविह्वलः ॥२१॥  
 कम्पायमिति चोक्त्वा तद्रामनाम व्यलोकयन् । सुवर्णमन्त्रितं बाणपुच्छमथ पापदाहकम् ॥२२॥  
 उतो गत्वा राघवस्य शरोऽयमिति देवागृहम् । तस्मिन्बन्धं विमुक्त्यार्थं पत्रं तन्वा पपाठ च ॥२३॥  
 एतस्मिन्नन्तरे बाणः पुन श्रीगधर्वं ययौ । विदेशं गमन्तुगारे पूर्वमन्यस्थतोऽभवत् ॥२४॥  
 मयवाऽपि सुधर्मायां श्रावयाम स निर्जगन् । राममुद्राकितं पत्रं भयदिग्भयसंयुतः ॥२५॥  
 मयवस्त्वं पुनं तिम्रु स्तर्गेदं स्त्रीमदा श्वरे मन्त्रियोगमृणुष्वारय याचितोऽस्यधुना त्वहम् ॥२६॥  
 विना गोवह्निमग्निभिश्चान्नं शिष्यैर्वृत्तेन च । वरैः षष्टिगहमेव तथाऽन्यैर्मुनिमनसैः ॥२७॥  
 सहस्राब्ददुधितैर क्रोधिनाऽतिनषस्विना । दुर्वाभ्यां मुहूर्तान् मयाऽप्यंगीकुर्वं हि तत् ॥२८॥  
 याचिष्याम्यपि पुष्पाणि तेनादृष्टानि मानवैः । मयागोहृत्य सकलं स्नानार्थं ते विमज्जिताः ॥२९॥  
 अतः शीघ्रं कल्पवृक्षपारिजाती ममुद्रजौ । प्रपश्यन् क्षणमां त्वमन्त्रित्वेन मादमन् ॥३०॥  
 मा रावणाश्चरन्त्येव प्रतीक्षां त्वामिषोः कुरु । एवं संशय्य न्यूनं नृगानिद्राः सुरैः सह ॥३१॥  
 समन्याय कल्पवृक्षपारिजाती विशुद्धमः । विमनेन मुनिधेकः श्रीगामनसः ययौ ॥३२॥  
 इन्द्रमागतमाशुष्य तं प्रत्युद्गम्य लक्ष्मणः । प्रयोध्यायां तितथेन्द्र ममाभ्य रघुनन्दनम् ॥३३॥  
 कल्पवृक्षपारिजाती मयवा रघुनन्दनम् । गमयन् तन्वा श्रामन् स उपाविशदामते ॥३४॥  
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं दुर्वाभा मुनिग्रवीन् । गत्वा त्वं पश्य राम तु किं केरोन्यधुना गृहे ॥३५॥

भेद दिया ॥ १६ ॥ इधर लक्ष्मणार्थिक आशा, जानकी और राम आदि वाचक मयके सब भयत विह्वल हो गये और वे रामका और विनिग्य दृष्टि देखने हुए अपने मतों कहने लगे कि मुनिने वही अ मुनि वस्तुमें मानी है । देखो, राम सब क्या कह लगे । विना गो, मणि तथा अग्नि किसे प्रकार भोजन तैयार करके देत है ॥१७॥१८॥ मुनिके जब जानेपर राम ताड़ने से लक्ष्मणके पास एक लिखत था । इसे अपने बाणमें बाँध कर क्षुण्णपर चढ़ाया और छोड़ दिया । बहुत बाण चढ़ते रहाने परसे राम जानकीपुर में जाकर मन्त्रार्थ नामकी देवसभामें इन्द्रके सामने गिरा । उस बाणकी इन्द्रने दया ता स भेंट होकर बहा ॥१९॥२०॥ 'यह बाण किसका है ?' यह कहकर रामपर लिखे गमक नामकी देवा और पदार्थ लेकर पढ़ा । पत्र से जान आया बाण रहसि फिर रामर्जके सुन्दरन लौट आया ॥ २१ ॥ २४ ॥ मय और विमना युक्त इन्द्रने बहुत पत्र समझे बैठे हुए देवताओंका गुलाब ॥ २५ ॥ इस समय लिखा था - 'है इन्द्र तुम स्वर्गमें सुखी रहो । मैं साथ तुम्हारा स्मरण किया करता हूँ । हाँ, इस समय तुम्हें नमन जाना दे रहा हूँ । आज एक हजार वर्षोंके भूसे एवं उग्र क्रोधी दुर्वाभा मुनि अपने साठ हजार अच्छे शिष्योंके साथ मेरे यहाँ आये हुए हैं । वे ऐसा भोजन चाहते हैं कि जो भी मणि अथवा अग्निके द्वारा न बना हो । साथ ही उन्होंने शिबपूजनके लिए ऐसे पूज माँगे हैं, जिन्हें अन्तक अनुष्ठान न देखा हो । देखे उनकी गाँ मंत्रकार बन गयी है । इस समय मैं उन्हें स्नान करनेका भेद दिया हूँ ॥ २६ ॥ २६ ॥ इन्होंने तुम सहपत्र कल्पवृक्ष और पारिजात, जो कि हरसामरमें निकलते हैं, क्षणभरमें आदरपूर्वक मेरे पास भेंट दी ॥ ३० ॥ देखो, कहीं रावणका विनाश करनेवाले मेरा बाणकी प्रतीक्षा न करने लगना ।' इस प्रकार वह पत्र देवताओं की सुनाकर इन्द्रदेव पुरात सबके साथ ममण करके कल्पवृक्ष और पारिजात ले तथा देवताओं समेत विमानपर चढ़कर अयोध्यापुरीमें जा पहुँचें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणने जब यह जान कि देवराज इन्द्र भी गये हैं तो उनके पास गये और आदरपूर्वक सजाव्याने रामके पास ले आये ॥ ३३ ॥ इन्द्रने पारिजात तथा कल्पवृक्ष रामकी आर्पण करके प्रणाम किया । फिर एक

अस्माकं कल्पितं किंचिदन्नमस्त्यथा न वा :

चितायुक्तोऽस्ति वा तूष्णीं संस्थितोऽन्यथ किं कृतम् ॥३६॥

बहिः सपादितं सर्वं मया यद्यन्नं पाषाणम् । रहः स्थितः अनैर्दृष्टा शीघ्रं त्वं याहि मां पुनः ॥३७॥  
 वयेन्मुक्त्वा मुनिं शिष्यः स पर्यो रत्नमद्गृहम् । तत्र दृष्ट्वा कल्पवृक्षपारिजातौ सन्निर्वृतौ ॥३८॥  
 सन्निर्वृतौ रामं च मुदितं सीतयाऽन्नितम् । ततश्चूर्णं ययौ शिष्यः पराङ्मुखः मुनिं प्रति ॥३९॥  
 कथयामास सकलं यथावृत्तं निरीक्षितम् । तच्छृत्वा शिष्यवचनं दुर्वासा विस्मयान्वितः ॥४०॥  
 ययौ शिष्यः परिवृतो विदेशं नृपनेर्गृहम् । न मुनिं रायवो दृष्ट्वा प्रत्युद्गम्य पुनः पुरैः ॥४१॥  
 नमस्कृत्य सूर्योदयार्द्रायासनमुत्तमम् । ततो मुनेः पूजनं स शिष्यस्य (घृतमयः) ॥४२॥  
 चक्रा सीतया साद्व लक्ष्मणारिभिरन्वितः । पाणिनामयस्नानानि नेषितान्यत्र मानवैः ॥४३॥  
 ददौ शंभोः पूजनार्थं रामो दुर्वाससे तदा । तानि दृष्ट्वा मुनिस्तूष्णीं तैश्चकारेश्वरार्चनम् ॥४४॥  
 ततः सर्वान्मुरारिष्वज्य परिवेषणक्रमेण । बोधयामास भोगवो जानकीं स्तम्भनेन सः ॥४५॥  
 ततः सा जानकी वैद्यादिष्वालंकारमण्डिता । कल्पवृक्षपारिजातौ सम्पूज्य नूपुरस्वना ॥४६॥  
 पाशाणि कल्पवृक्षाश्चः स्थापयामास कोटिशः । सीतां तु प्रार्थयामास कल्पवृक्षं नगोत्तमम् ॥४७॥  
 क्षीरमागधभूतं देवानां चितितप्रदं । दुर्वाससे कल्पवृक्षं सशिष्याणाञ्च तोषय ॥४८॥  
 तन्मीमांसनं श्रुत्वा हेमवाशाणि कोटिशः । विशर्माः पूरयामास क्षणारकल्पवृक्षस्तदा ॥४९॥  
 तैरन्नैर्द्वयपात्रेषु जानकीं परिवेषणम् । क्षणञ्चकार मनुष्यः क्षुमिलचंचिकदिभिः ॥५०॥  
 वतस्तुष्टौ मुनिर्देवः शिष्यैश्चानपादगन् । चकार रघुक्षीरेण प्रापितः स मुहुर्मुहुः ॥५१॥  
 ततः कुन्दः शंजनं हि करशुद्धिं विशासः सः । तांभूतं दक्षिणां चापि ज्यादं रघुनाथकात् ॥५२॥

आसनपर जा बैठे ॥ ३८ ॥ उधर सायूक पिनासे दुर्वासाने अपना एक शिष्य भेजा और उससे कहा-  
 “जब जाकर देखो कि राम इस समय क्या कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ मैंने जो जो बताया था, उसमें कुछ भ्रम उभर  
 है या नहीं । जयवा अभी तक किताब में हम दृष्टि ही नुसार बैठे हैं । ३६ ॥ यदि घर जायानुसार काम कर  
 रहे हैं तो अवतक क्या क्या किया है । मैं जैसा कहा था, वे सब चीजें उन्होंने इकट्ठी कर ली या नहीं ।  
 नहीं छिपकर गुप्तगुप्त वह सब देखो और जीप मेरे पास नोट आओ । ३७ ॥ “अच्छा” कहकर शिष्य राम-  
 चन्द्रजीके धनमय आभूषण । बड़ी कल्पवृक्ष, परिजत, कुन्द, देवताओंकी मण्डली एवं प्रसन्न रह्य जया सीताको  
 देखकर फिर दुर्वासा मुनिके पास लोट गया और जंग देवा था, सब समाचार कह सुनाया । शिष्यको बात  
 सुनकर दुर्वासा बोले बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४०-४० ॥ जानकीके बाद शिष्योंको साथ लेकर वे रामचन्द्रजीके गुन्दर  
 मन्त्रमें पहुँचे । मुनि दुर्वासका देख देवताओंके साथ उभर । रामचन्द्रजीने बड़े आदरके साथ समस्त शिष्यों  
 समेत मुनिके प्रणाम किया और बैठनेके लिये उनमें आसन देकर सीता तथा लक्ष्मणारिके साथ उनकी पूजा  
 की । मन्त्रान्त पारिजातके फूल नहीं देव दे ॥ ४१-४३ ॥ ही उन कूर्छोंको शिष्यपूजनके विभिन्न पुनिके आनन्द  
 रक्ता । दुर्वासने उन्हें एक बार विभिन्न त्रेत्रंमि देवा और नुचाव निक तथा सब देवताओंका पूजन किया  
 ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और जानकीका भावन परमेश्वरकी आज्ञा दी ॥ ४५ ॥ सब दिव्या-  
 लङ्कारोंको धारण किये सीताके कल्पवृक्ष और पारिजातका पूजन करके कराडो दत्तन लाकर उनके गीब रख दिया  
 और इस प्रसन्न प्रार्थना करने लगी- ॥ ४६-४७ ॥ “हे सारनाथस्य जायमान तथा देवताओंकी अभिजाया पूर्ण  
 करनेवाले कल्पवृक्ष ! आज शिष्योंके समस्त दुर्वासको साथ सन्तुष्ट कर दजिग” ॥ ४८ ॥ सीताको आर्पण सुनकर  
 लक्ष्मणने कल्पवृक्षने करोड़ों पाशोंको विविध प्रकारका आनन्दमायियोंसे भर दिया । उन लक्ष्मणोंको उमिठादि-  
 के साथ सीताके मुखके पाशों पराडा और महर्षि दुर्वासने प्रसन्न होकर अपने समस्त शिष्योंके साथ  
 रायचन्द्रजीके द्वारा प्रकृत हुनेपर भोजन करना आरम्भ किया ॥ ४९-५१ ॥ भोजन करनेके बाद उन्होंने

ततः सुगणां पुत्रो वेदशर्करः सविस्तरम् । दुर्वासा राघवं स्तुत्वा । तमाहानदनिर्घरा ॥५३॥  
 राम गर्जोदपत्रात् त्वं साऽऽजगद्दीनरः । अत्र रावणधनार्थमवर्तणोऽस्ति वेङ्कयदम् ॥५४॥  
 जनांस्तत्त्ववीक्षणं कर्तुं मयैतन्नाशितं तव । विना गोवह्निमगिमिर्दिक्ष्यान्ने रघुनन्दन ॥५५॥  
 प्रयुजान्वप्यरष्टानि मानसैर्द्वैतैः तले । किं राम दुर्घटं तव यस्य भूपङ्कमावतः ॥५६॥  
 कयो रक्षादिदानां न जायते समजोऽपि यः । मन्दरं मज्जमानं तु दृष्ट्वा त्वं क्षीरसागरे । ५७ ।  
 कूर्परूपेण जातोऽपि धर्तुं तु मन्दराचलम् । विष्कामितानि रत्नानि तदा देवैश्चतुर्दश ॥५८॥  
 तत्र स्यादश्वमाश्वेभ्य मयै जानाम्यहं प्रभो । सक्तोऽसौ सोमः कामधेनुः कौस्तुभश्च सुधा विषम् । ५९ ॥  
 ऐरावतश्चाप्सस्तप्तः कल्पवृक्षो भिषग्वरः । तर्जुनश्चः परिक्रान्तो मुरा ज्येष्ठश्चि राघवः ॥६०॥  
 चतुर्दश सुरत्नानि विष्कामितानि पुरा त्वया । देवैश्चोक्तानि तान्येते मोक्षयन्ति कृपया तव ॥६१॥  
 त्वदाकाशालिनः रावें कङ्कगयाश्च निर्वराः । पर्वणा औन्नोपायास्त्वया सर्वे पृथक् पृथक् ॥६२॥  
 कल्पिता येन रामेण यत्र किं दुर्घटं तव । समाभिलषितं भोज्यं दातुं त्वत्कौतुकं मया ॥६३॥  
 अद्यावलोकितं राम जनानपि पदं दिनम् । त्वं कथां सवसेकानां जनपथापि पालयस्व ॥६४॥  
 अस्माकं प्रतिदत्तान् त्वं मे क्षमस्वाद्यावितम् । एवं वचनाविषं स्तुत्वा तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥६५॥  
 रामकामय्य दुर्वासा ययोऽस्मिन्निः स्वमाश्रमम् । अथ तान्निर्जान्प्र ह गम्यः कनकलोचनः ॥६६॥  
 कल्पवृक्षमारिजातीं गृह्णाम्यस्य दिवम् । तद्रामाचनं श्रुत्वा वाक्पतिः प्राह राघवम् ॥६७॥  
 यावत्कालं तिष्ठामि त्वं भूम्यां तावन्नशात्तमः । अवाध्यायां तिष्ठतस्तौ कल्पवृक्षपुत्रद्वयौ ॥६८॥  
 त्वां च वेङ्कण्डमाश्राने दिव तौ यास्यतो हवः । तथेति तन्मुखुराः प्रतिनष्ट पथः प्रभुः ॥६९॥

हाय पाया और रामस हाथभूत होकर आ ॥ ५२ ॥ फिर उद देवताओं के सामने हो केरवाचनों द्वारा  
 निरुपस्थित रावण-जनों की स्तुति की और अ पदम पदपद हाथ कट्टन लगे ॥ ५३ ॥ ह राम हे कमलदल  
 सरोज नमस्कार भगवन् । ते जानता हैं कि तुम कालान् जगदीश्वर ह और रावणका विनाश करनेके लिए  
 इस बरातकरकर माय हो ॥ ५४ ॥ तबरा जनाको तुम्हारा पीछे दिखलानेके लिए ही देते गो-वह्नि और  
 मणिसे न सिद्ध हुआ जल तथा कल्पवृक्ष कट्ट पृथ पृथनेक निमित्त मणि यः । ह राम ! तुम्हारे लिए यह  
 कुछ दुर्घट कार्य नही है । तुम्हारा अभूषण सब इत्यादिक स्वताम्रका भाँ विनाश एक उद्भव ईता है । जिस समय  
 मन्दराचलकी क्षीरसागरम तुमने इवतें देख ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ जब कूर्परूप बरकर उठ अपनी पीठपर  
 ठठा लिया था । उस समय एकमात्र तुम्हारी सहायतासे ही देवताओं की क्षीरसागरम ये नौट्ट दल निकाले थे  
 ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तिनक राम ह—रक्षमा, बन्दम, कामधनु, कौस्तुभ, सुधा, चिर, ऐरावत, अप्सरस, कल्पवृक्ष,  
 चन्द्रवती, जन्नेधमा, परिक्रान्त, मुरा और अमृत ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उम चौहो रत्नोंको तुमने चौदह  
 देवताओंको और द्वा और तुम्हारा ही इपाए वे सब जलमन्त्रवृक्ष उनका उपयोग कर रहे हैं ॥ ६१ ॥  
 गकरादिक समस्त पत्ता तुम्हारी ही आशाना पालन के ते है । इस अवतुम स्थित सब प्राणिमात्र जीवनका  
 जपाय तुम्ही करते हो ॥ ६२ ॥ तब यदि तुमने हमारे इच्छानुसार आजनकी सायधिये उठा दीं  
 तो इहमे बाई आश्रयका बात नही है । यह तो मुझ इन साधारण भगवत् कल्पवृक्षों तुम्हारा कौतुक दिखाना  
 था, छा दिखा दिया । ६३ ॥ ह राम ! तुम्हें समस्त साक्षात् रक्षक, स्रष्टा तथा संसारक ज्ञातक हो ॥ ६४ ॥  
 तुम्हीं हमारे गतिदाता हो । पुरुष जो कुछ घटि हुई हो सा ज्ञान कर दो । इस तरह माना प्रकारके वाक्यों द्वारा  
 स्तुति करके दुर्वासान कोरम्बार प्रणाम किया और रामकण्ठकी मजा लेकर सब मिथ्योंको क्षाय लिये क्षुभ  
 अपने आश्रयको चल दिव । इनक अनन्तर रावण-जनों अब स्वताम्रोंसे पदा—कल्पवृक्ष और परिक्रान्तको  
 लेकर जब आप लोग भा मदन लाकका जाते जायें । इन प्रकार रामकी बात सुनकर देवगुरु पृथस्वति कहने  
 लगे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ “जबतक भाव भूमण्डलमे रहेंगे, तबतक कल्पवृक्ष तथा परिक्रान्त ये दोनों भी इस  
 कपोलाने ही रहेंगे ॥ ६७ ॥ जब भाव अपने वेङ्कण्ड लककी भावे लगेंगे, तब वे भी आपके साथ अपने



पुष्पके स्थापयामास कल्पवृक्षसुरदुर्मौ । ततस्ते राघवं नरवा यशुरिन्द्रादिकाः सुराः ॥७०॥  
 स्वर्गलोकं सुसंतुष्टा राघवेणातिपूजिताः । एवं प्राप्ता कल्पवृक्षपारिजातौ सुवं दिवः ॥७१॥  
 तयोरेतत्कारणं ते प्रोक्तं पृष्टं यथा त्वया । तदारभ्य सुरतश्च पुष्पकम्भी विरेजतुः ॥७२॥  
 सार्केते सीतया रामस्ताम्यां सुसुमवाप सः । कल्पवृक्षतले दिव्यपर्यङ्गे सीतया सह ॥७३॥  
 नानाभोगाव्राधचन्द्रः स बुभोज चिरं सुखम् । अतः पूर्वं मया रामभ्यान् कल्पतरोः स्थले ॥७४॥  
 सहस्रनामसर्केते प्रोक्तं शिष्य तवाग्रतः । तदारभ्य पारिजातवृक्षांशः शतशो भुवि ॥७५॥  
 पारिजातनगा जाता वर्तन्तेऽद्यापि तेऽत्र हि । नानेन सदृशं पुष्प वर्तते रामतोषदम् ॥७६॥  
 कल्पवृक्षांशरूपाश्च शतव्यास्तत्र - मानवैः । अश्वत्थाः सेवनाद्यैश्च सर्ववाञ्छितदायकाः ॥७७॥  
 पुण्याधिक्येन सेवन्ते नोपेक्षते युगत्रये । पापाधिक्येनापि सेवां नरा वाञ्छन्ति नो कलौ ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरिततर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

चम्पिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

### तृतीयः सर्गः

( रामोपासक तथा कृष्णोपासकका परस्पर मधुर विवाद )

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो भूम्पां रामकृष्णौ परौ भुनौ । मया वसानतारेषु कृष्णाणामुभौ पुनः ॥ १ ॥  
 तयोरेपि च कः श्रेष्ठस्तन्वं वद ममाग्रतः । यं श्रुत्वा सर्वदा दस्य श्रोत्र्येऽहं चरितं शुभम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं विष्णुदास सावधानमनाः शृणु । रामवतारः श्रेष्ठोऽत्र विज्ञेयः सर्वदा नरैः ॥ ३ ॥  
 अस्मिन्मये पूर्ववृत्तां कथां शृणु मनोहराम् । दिवाभ्यां वादरूपेण कीर्तिता पुण्यदायिकाम् ॥ ४ ॥

वार्तनं । रामने सुरगुरु बृहस्पतिकी बात स्वीकार कर लो ॥ ६९ ॥ देवताओंने उन दोनोंको पुष्पक विमानमें  
 रखकर भगवान्की प्रणाम किया और राम हांगी पूजित होकर सब अपने अपने लोकको चल गये ॥ ७० ॥ इस  
 प्रकार कल्पवृक्ष और पारिजात स्वयंसे मृग्यलोकमें आय । उनके बानेका जो कारण था, वह तुम्हारे प्रश्नानुसार  
 देने कह सुनाया । तभीसे दोनों सुरतक पुष्पकमें विराजमान रह ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ अबोध्याम सीताके साथ  
 रामचन्द्रजी उन्हीं वृक्षाँके नीचे दिव्य पर्यङ्गके ऊपर विहार करते हुए विविध प्रकारके सुलोकों भोगते थे  
 ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ इसलिये मैं रामराहस्यनामका कथन करत समय कल्पवृक्षके नीचे रामका ध्यान करनेकी  
 कहा था । तभीसे पारिजातके निकट अत्र पृथ्वीतलमें उत्पन्न हुए और वे आज भी इस परततलमें  
 विद्यमान हैं । इसके समान रामचन्द्रजीकी प्रसन्न करनेवाला कोई दूसरा कुल नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ कल्पवृक्षके  
 मंशसे पोषल वृक्षकी भी उत्पत्ति हुई है उसकी कारावला करतेस सब प्रकारका कामना पूर्ण होती है ॥ ७७ ॥  
 मग्य युगोंमें पुण्य अधिक था । इस कारण लोग पोषकके वृक्षको आराधना करते थे । किन्तु कलियुगमें पापकी  
 अधिकता होनेके कारण लोग उसका पूजन नहीं करना चाहत ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरिततर्गते श्रीमदा-  
 नन्दरामायणे च० रामतेजफण्डेयविरचिते'ज्योत्स्ना'प्रभाषाशकामप्रनिहत राज्यकांडे पूर्वार्द्धे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

विष्णुदासने कहा--हे गुरो ! भगवान्के बात अवतारोंमें राम-कृष्ण दो कलसार ओष्ठ माने जाते हैं ।  
 वह मैंने पहले सही बात सुना है ॥ १ ॥ अब तब हमको यह बातलाए कि इन दोनों अवतारोंमें राम और कृष्णमें  
 कोन बड़ा है । जिसको आप ओष्ठ बातलायेंगे, मैं सर्वदा उसीका चरित्र सुना करूँगा ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा--  
 हे विष्णुदास ! तुमने ठीक प्रश्न किया है । सावधान मन हाँकर सुनो । इन दोनों अवतारोंमें मनुष्यको  
 सबको अवतार ही ओष्ठ समझना चाहिए ॥ ३ ॥ इसके लिए एक मर्तद्वर कथा आपसमें दो जाह्नवीके

अयोध्याविषये कश्चिद्विजो रामाह्वयस्तभुव । द्वाकायां तथा विप्रः कृष्णारुयोऽभूत्परः सुखी ॥१॥  
 सकतुः संवनं चोर्ध्वं सर्वदा रामकृष्णयोः । तादेकदा माधवसौ प्रयागे मिलितौ द्विजौ ॥ ५ ॥  
 तौ स्नात्वा त्रिवेण्यां हि माधवं परिपूज्य च । कथां पौराणिकमुवाच्योत्तुं तदुत्तरः स्थितौ ॥ ७ ॥  
 सुभ्रातुः कथास्तत्र प्रसंगादावयस्य च । रामायां तो रामभक्तः स भुत्वा राधेचमन्कथाम् ॥ ८ ॥  
 तद्वत्सं पूजयामास मुदा पौराणिक तदा । कृष्णारुपः क्रोधसंयुक्तस्तदा चचनमन्वरीत् ॥ ९ ॥  
 किं क्लेशिनोऽयं रामस्य कथां श्रुत्वाऽतिहर्षितः ।  
 पूर्वोऽपि ब्रूयाच्चासत्सवं मृडोऽर्थाति वेषयहम् ॥१०॥  
 नान्यरुचरित्रं कस्यापि पापतं ध्रुनितोपदम् । यथा कृष्णस्य मे रम्यं नामकाडापुरःसरम् ॥११॥  
 तत्कृष्णवचनं श्रुत्वा रामारुपः प्राह सन्मिनः ।

रामोपासक उवाच

रामः क्लेशो कथं प्रोक्तस्त्वया कृष्णः कथं सुखी ॥१२॥  
 कथं कृष्णस्य ते रम्यं चरितं दृग्निपदम् । कथं रामस्य मे रम्यं चरितं नेरितं त्वया ॥१३॥  
 यदाद्य विस्तरेणैव मृण्वन्वेदे समासदः ।

कृष्णोपासक उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राम सावधानमना, मृणु ॥१४॥  
 यदापि राधवस्थाथ कृष्णस्य चरितं त्वहम् । क्लेशद तोषदं तर्था मृण्वन्वेदे समासदः ॥१५॥  
 तत्र रामस्य जन्मादौ जगः शपः पितुः पुरा । शपस्यादावपि पुनः तद्धेतो राधेन हि ॥१६॥  
 लंकां तद्विपरी नानौ प्रारमे दुःखमदृशम् । मम कृष्णस्य जन्मादौ तत्पित्रोः सौख्यदायकैः ॥१७॥  
 विनाहमंगलैः कस्य पूजयामास सादरम् ।

विवादरूपमें बहल गयी थी । वह कथा परम पुण्यदायिनी है, उस सुनो । ८ एक समय अयोध्यामें राम नामका एक ब्राह्मण रहा करता था । उसी तरह द्वारकापुरीमें कृष्ण नामका विद्वान् विप्र रहता था ॥ १ ॥ वे दोनों सदा राम और कृष्णकी उपासना किया करते थे । एक समय मधु म नेपे रावण के लटपर उन दोनोंको भेंट हुई ॥ ५ ॥ उन्होंने त्रिवेणीमें स्नान किया और देणामायनको पूजा करके तिसा करके एक पौराणिकके पास गया सुननेकी इच्छासे जा बैठे ॥ ७ ॥ वहाँ कथा सुन रहे थे । उनमें कही रामका प्रमेद जा गया । उसे सुनकर वह राम कोषवाला मातृण बहुत प्रसन्न हुआ और हर्षपूर्वक पौराणिकका भली भाँति पूजा की । इससे कृष्ण नामवाला ब्राह्मण मार कोषक लाल हो गया और कहने लगा जगन्को कष्ट देनेवाले रामकी कथा सुननेसे तुम्हें क्या लाभ हुआ, जो तुम इसने प्रसन्न हो और तुमने व्यासकी ऐसी पूजा की । मेरी समझमें तो यही बात है कि तुम बड़ धूर्त हो ॥ ५-१० ॥ मृगंसा और क्लिष्टका चर्चि इत्यादि सुंर नहीं लगाया, जितना भीकृष्णका । क्योंकि उस चरित्रमें विविध प्रकारकी लीलाएँ भरी हुई हैं ॥ ११ ॥ कृष्ण नामक ब्राह्मणकी यह बात सुनकर रामोपासक मुसकाता हुआ कहने लगा कि तुमने रामचन्द्रकी कैसे दुःखी बतलाया और कृष्णको सुखी ॥ १२ ॥ तुमने कृष्णचरित्रको कैसे पापनाशक बतलाया और रामचन्द्रजीका नाश होना भी वसन्द नहीं किया । तुम इसे विस्तारपूर्वक कहो । जिससे ये समासद भी सुनें । कृष्णोपासक कहान्हे राम ! तुमने बहुत डोक प्रबन किया है । अब सावधान होकर सुनो ॥ १३ ॥ १४ ॥ मैं रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र इन दोनोंका चरित्र सुनाता हूँ । उनमें रामचरित्र कंवा बलशत्रु और कृष्णचरित्र कितना सुखकर है, सो सब समासद सुनसे जायें ॥ १५ ॥ तुम्हारे रामके नयके पहल ही उनके पिताका श्रावणके म्मिका श्राव मिल चुका था । उसके भी पहले उनके माता-पिताको रावण अपनी लंकासे उड़ा ले गया था । इस प्रकार रामके जन्मके पहले उनके माता-पिताको

रामोपासक उवाच

रे रे मृगु त्वं दर्वुदे न स शणो वरोऽपितः । १८॥

यत्पथादादुपुषस्य मृरस्य तनयस्यभृदः तथा मद्राममीन्या लो नीतारपि विसर्जितौ ॥१९॥  
 दद्यात्थेन तत्पितरौ जन्मादौ पौरुषं निवदम् । तव कृष्णस्य जन्मादौ पित्रोः कारागृहस्थितिः ॥२०॥  
 राजभोगनिषेधार्थं शणो यदकुलाय च । जन्मापि बद्विशालायां वियोगश्च तयोरपि ॥२१॥  
 सहोदरवधभावि उद्धोर्मार्तुलेन हि । न बाहुश्च वैश्यश्च यस्य ताताभूमौ स्मृतौ ॥२२॥  
 मोरक्षकस्य तनयः प्रवासः शैशवंऽपि च ।

पत्नेण पोषितश्चापि कनीयान् बलमद्रतः एव नानाविध दुःखं तव कृष्णस्य नो मुखम् ॥२३॥

कृष्णोपासक उवाच

आत्मार्थं तव रामेण ताटिका स्त्री विदारिता । नार्थं विमोचितो बाणः पित्रोः खेदो वियोगनः ॥२४॥

रामोपासक उवाच

द्विजपत्न्या निहता दृष्ट्वा मम रामेण ताटिका । मुनिपुत्ररक्षणार्थं मुदा गताऽप्येतौ शिशू ॥२५॥  
 तव कृष्णेन रक्षार्थमान्मनः एतना दना । तथाऽऽत्मार्थं प्राणिहिमा बहु तेन कृता वजे ॥२६॥  
 गोपैश्च सङ्गनिस्तस्य तथैव गोशरक्षणम् । गोवधः सर्पघातश्च सगवाजिवधस्तथा ॥२७॥  
 राक्षभवृषघातश्च चौर्यं घ्नन् वनेऽटनम् । कंचलावरणं शोऽपजन्पोऽप्यप्रपीडनम् ॥२८॥  
 तुतूहृभ्यां पीडनं निर्व्यं गोपालोच्छिष्टसेवनम् । आत्मार्थं याचितं चासं द्विजस्त्रीभ्यो वने वृद्धः ॥२९॥  
 इन्द्रध्वजपूजनं दिष्टुद्वाचारप्रलोचनम् । परस्त्रीगमनं ज्येष्ठनारीभिः क्रोडनं चिरम् ॥३०॥

कितना क्लेश हुआ । इसक विपरीत हमारे कृष्णके जन्मके पहले कंसने उनके माता-पिताको वैवाहिक तथा मङ्गलमयी साम्प्रदायिक पूजा की थी । रामोपासकने कहा—अरे दर्वुदे ! वह रामचन्द्रके पिताको गन्धर्वों, वल्कि वरदान मिल गया । जिसके प्रसादस्वरूप विपुल महाराज दशरथके घरमें रामचन्द्रदि चार भादयोका जन्म हुआ और हमारे रामचन्द्रज के दुःखसे ही रावण उनके माता-पिताको ले जाकर भी बयोधन लौटा गया था । १६-१९ ॥ जन्मके पहले ही अरे रामचन्द्रजीमें इतना पौरुष था । तुम्हारे कृष्णके जन्मके प्रथम ही उनका माता-पिता बारागारमें बन्द थे । दूसरे बदकृष्णको राजभोगनिषेधके निमित्त गृहे ही बाध प्राप्त हो चुका था । उनका जन्म भी हुआ तो जेलखानमें और वहाँ पाली ही देखें माता-पितासे वियोग हो गया । कृष्णके कितने ही सगे भाई मामाके द्वारा पहले ही मार डाले गये । उनको जो हजिय माता-पिता मिले थी, वे न तो सत्रिय थे और न वैश्य ॥ २०-२२ ॥ तुम्हारे कृष्ण एक ग्वासेके लड़के बने । इस प्रकार वे गंशवाम्बामें ही प्रवासी हो गये । औरत उनका रक्षा की और तुम्हारे कृष्ण बलरामसे छोटे थे । इसीलिए कृष्णको खेनक प्रहार का दुःख भिन्न, मात्र दुःख भी नहीं । २३ । कृष्णोपासक बोला—अपनी रक्षा करनेके लिए तुम्हारा रामन ताडका नामवाला एक स्त्रीका बध किया और रामके वियोगसे उनके माता-पिताको महान् क्लेश हुआ । २४ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामन बाह्याणोंको हत्या करनेवाली स्त्री ताडकाको मारा था और शिशु । २५ ॥ यज्ञरक्षाके लिए उन्हें पिता दशरथने प्रसन्नतापूर्वक मुनिके साथ भेजा था । २६ । किन्तु तुम्हारे कृष्णने कृष्ण पत्नीको मारा था । इसी प्रकार उन्होंने आत्मरक्षणके लिए वज्रमे और भी बहुत सी प्राणिहिंसार्थ की थी ॥२६॥ गोवधशालोका साथ था और वे गावोंकी ही रक्षा करते थे । उन्होंने गौ ( धेनुकास्तुर ) पत्नी ( वक्रास्तुर ) दाहि ( केसी ), राक्षस तथा वृष आदिना मारा, चोरी की, जुआ खेले और वनोंमें इधर-उधर घूमते रहे । तीस वर्षी तथा अश्वपते बचनेके लिए अपने ऊपर केवल एक कच्छक डाले रहते थे ॥ २९-३० ॥ भूख-थ्याहसे दुखी होकर आशुकीका जूउन खाते थे । बचने लिए उन्होंने वनमें बाह्याणोंकी वियोगसे बार-बार क्लेश मीपा । २९ ॥ इन्द्रध्वजपूजन आदि वृद्धोंकी कुलपरम्परासे चलनवाली प्रथाका उन्होंने लोप किया । वे परस्त्रियोंके साथ वृद्धों

नमनस्वीदर्शनं वह्निपाशनं दामवन्धनम् । उन्मूलनं च यमयोर्ध्वपुपितसैवनम् ॥३१॥  
 रोदनं नवनोतार्थं मुद्गमोत्रा प्रताडनम् । गोमोपिकासु चास्नेहः पूर्वस्थलविसर्जनम् ॥३२॥  
 कृता रजकहत्या च शुद्ध मद्रियवत् कृतम् । गजहत्या मल्लहत्या पुद्गं मातुलमर्दनम् ॥३३॥  
 नैष्ठुर्यमाश्रवणेषु राज्यप्राप्तिस्तथैव च । नृपाज्ञावर्जनं चापि क्रीडा दास्या कुरुपया ॥३४॥  
 पुद्गात्पराजयश्चापि रिषवे पृष्टदर्शनम् । गिरी दग्धः परैर्ज्ञातः स्वायस्थलविमोचनम् ॥३५॥  
 अधितारनिवासश्च पलान्कीहण कृतम् । मौमासुरपरद्रव्यहरणं पाशनुतः ॥३६॥  
 स्वीयगोत्रवधार्थं हि पांडुजायोपदेशितम् । घर्नैः स्तेषावनेपाश्च वृधार्थं सङ्गरः सुर्गैः ॥३७॥

कृष्णोपासक उवाच

किं त्वं जल्पसि मृण्वद्य तव रामस्य कामिनः । कस्य सा दुहिता मृदि कृतः स वर्णमङ्कुरः ॥३८॥  
 श्लिवचापस्य भंगेन शिवस्याव्यपराधितम् । आमदग्न्यमानमङ्कुरणं मुद्गलस्य च ॥३९॥  
 आज्ञां विना लक्ष्मणेन तद्वन्द्यस्रोदिताः शुभाः सदारण्यचरः स्वार्थं पशुहिंसापराधिनः ॥४०॥  
 वनाश्रमी वन्यजीवी मांसाहारी धनुर्धरः । व्याघ्रकर्मेतः शीतपर्जन्योष्णप्रपीडितः ॥४१॥  
 पादगार्मी चर्मवासा जटाशृङ्गलशान्धवी । रमध्रुवागी तरुच्छाय श्रपी पात्रविचलितः ॥४२॥  
 राक्षसेन हता परनी तव रामस्य कानने । परन्त्यर्थं हि कृतः शोकस्तथा दास्या प्रपूजितः ॥४३॥

रामोपासक उवाच

राक्षेण भोचिता परनी कृता छायामयी पुरा । न सा दासी तु शवरी मुनिसेवनतरपरा ॥४४॥

धीर अग्नेसे बड़ी स्त्रियाके साथ खेचते फिरत थे । वे नङ्गी नारियोंकी देखते थे । उन्होंने मिट्टी खाकी और फिटने ही बार दो लोगोंके जूठन तक खाये थे । रस्सीसे बांधे गये तो समन्त-अर्जुन नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला ॥ ३० ॥ ३१ ॥ पोटसे माखनक लिए रामे लगत थे और मल्ला यश दाके द्वारा बार बार पीटे भी गये । अंतमें अपनेसे अतिशय प्रेम रखनेवाली गोपिकाओंक प्रति निडुराई करके उस पवित्र वृजधामको छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ मथुराम राजकी हत्या की और , खाने हाकर ) क्षत्रियोंके समान युद्ध किया । उन्होंने गलहत्या और मल्लहत्या करके मामाकी भी हत्या की ॥ ३३ ॥ अपनाईं साथ निडुराई करके उन्होंने राज वाया । फिर भी एक दूसरे राजाकी आज्ञामें बंधकर रहे । बादमें एक कुहप दहीके साथ जीवा की ॥ ३४ ॥ शुद्ध हुवा वो उसमें बराभिस होकर शत्रुको पीठ दिखायी और पर्वतपर जाकर छिपे । शत्रुओंने अपनी समझसे उन्हें जला ही दिया था । फिर अपने स्थान मथुराकी छोड़कर समुद्रक किनारे जाकर रहन लगे । वहाँ भी बरबस बहुतेरी स्त्रियोंका हरण किया । भीमासुरके द्वयोका उन्होंने चुराया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अपने माइयो तथा पुद्गम्बियोंके भावनके लिए पाण्डवोंको उपदेश दिया । लोगोंक उन्हें स्वमन्त्रक मणिकी चोरी लगायी । एक वृक्षके लिए उन्होंने श्वेताओंके साथ संग्राम किया ॥ ३७ ॥ कृष्णोपासक कीला—क्या व्यर्थ बकवास करते हो, सुनो । मान मैं तुम्हारे कामी रामकी करनी तुम्हें सुनाता हूँ । बताओ, जिसको उन्होंने अपनी भाया बनायी थी वह वर्णसंकर कन्या थी या नहीं ? ॥ ३८ ॥ शिवजीका वनुष तोड़ करके शिवका अपराध किया । परशुरामका शान भङ्ग किया । मुद्गलकी आज्ञाके बिना ही लक्ष्मण द्वारा उन्होंने सतायें तोड़ मगवाई । जङ्गलमें हथर-उधर चूमते हुए पेट भरनेके लिए पशुहिंसा करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत दिनों तक वनमें आश्रम बनाकर रहे । वनके फल मूल तथा मांस खाने और वनुष चारण किये बहेलियाका काम करते रहे । सर्वदा बेघारे जोत-आउर तथा बेहूके सताये रहने थे ॥ ४१ ॥ पैदल चलते, चमड़ा पहिनते, बड़े-बड़े नख तथा जटा-शृङ्गल चारण किये रहते थे । बड़ा-बड़ा दाढ़ी-मूँछ रखाये पैदोंकी छायामें रहकर समय बिताते थे । उनके पास एक पात्र थी त्यों रहता था कि जिसमें छा पी सकें ॥ ४२ ॥ वनमें उनकी स्त्रीको एक राक्षस चुरा ले गया । उसके लिए विविध प्रकारका विलास करते रहे और उनकी पूजा एक दासी शवरीने की ॥ ४३ ॥ रामोपासकने

जीवन्मुक्ता तत्कृपया मोक्षमात्रं हवित्रता । तत्र कृष्णरत्नं ताः पत्नीर्धौर्म्यंन्ययापि स्रजवः ॥४५॥  
त्रित्वाङ्गुलं बलादेव हनाः पूर्वं सहस्रशः । स्त्रीभिश्च स्त्रिया रजः कपकोतश्च नारदात् ॥४६॥  
सर्वतो कामपूर्वकं निष्ठे निष्ठाग्नवर्जितः । दंभुर्मा भोषिका वृका मातृतुल्यारयोभिकाः ॥४७॥

कृष्णोपासक उवाच

मधुना तत्र रामस्य पशुमीक्षया न निद्रितः । बंधुपराम्पिता वारा सुग्रीवस्य यथासुखम् ॥४८॥  
बानरैश्च कृता वैत्री स्पर्शितं दुन्दुमेः शवम् । निर्विकं हतो रालो साहाय्यं बानरैः कृतम् ॥४९॥  
बानरो यस्य वै यानं वृथा दाता विदारिताः । सागरो रोषिनो येन लब्ध्वा सा ज्वलित्वा यत् ॥५०॥

रत्नोपासक उवाच

हरिद्रेव सुदाम्ना वै कृष्णेन वैत्रिकी कृता । न ज्ञेया बानरास्तेऽपि सर्वे देवाश्चरुषिकाः ॥५१॥  
छापटयेन हतो येन जरासंधो निम्बकः । साहाय्यं सर्वदा यस्य कृतं गोपवर्जने बने ॥५२॥  
गोपालस्य कृतं यानं कीदृशं सर्वदा बने । ज्वलित्वा येन सा काशी सुहृदुष्मी विरूपिता ॥५३॥  
शिवभक्तेन तमरः कृतो बाणेन सदरप । शिरेनापि कृतं पृष्ठं चैव न निद्रितो ब्रह्मः ॥५४॥  
रैः पीड्यो जितो यस्य येन शृण्णं परम्परायाम् । कृता विषमना चात्र पारिजतापेगादिभिः ॥५५॥

कृष्णोपासक उवाच

तवापि ममपुत्रेण सुदृढदो रणे जितः । शिवभक्तदशास्तेन रामेण तमरः कृतः ॥५६॥  
द्विजहत्या कृता येन मुनिना निद्रितोऽपि यः । तथा मितं जितो यस्य दंभुर्जेन विभोषणः ॥५७॥  
परमेष्ठिन्यता पत्नी पुनर्येनाभिता सुखम् । निद्रुपैश्च कृतं पत्न्यां स्वांगी काष्ठा न पूरिताः ॥५८॥

कहा—हमारे रामने अपनी छायामयी पत्नीको राजसके हाथसे छुड़ाया था । जिसकी तुम दासी कह रहे हो, वह दासी नहीं, बल्कि मुनियोंकी सेवामें तत्पर बानरी थी ॥ ४४ ॥ रामचन्द्रजीकी कृपासे वह जीवन्मुक्त हो गयी और उसे मोक्ष मिल गया । किन्तु तुम्हारे कृष्णको परितोषकी आज्ञा थी उनके सङ्गण भाग रहे हैं ॥ ४५ ॥ कृष्णकी हवारों स्त्रियोंको भर्त्सनसे दण्डितोंके हाथ से गये थे । कृष्ण दूरे स्थित थे । उनकी एक स्त्री ने तो उन्हें दान दे दिया था और बादमें उसी समयसामान नारदसे उन्हें लीदा ॥ ४६ ॥ सब स्त्रियोंकी कामपूर्तिके लिए उन्हें घत रात भर बाधना पड़ना था । सोनी भाइयोंने उन बड़ी स्त्रियोंके साथ शीशु की थी, जो माताके प्रभाव थी ॥ ४७ ॥ कृष्णोपासक कह—तुम्हारे राम दंभुर्जके भयसे रात रात भर जगा करते थे । बड़े भारीकी हथी लाशकी रामने बड़ी हँसी-मुँहके साथ पृथ्वीके दे दी थी । बानरोंके साथ उन्होंने मैत्री की और दुन्दुभा नामक राजसके हाथकी स्पर्श किया । वाहि बेकारके बिना किसी अपराधके मार डाला । बानरोंने उनकी सहायता की ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तमर ही उनकी सवारिका काश देते थे । बिना किसी प्रयोजनके उन्होंने रात रात गृष्णको काटकर गिरा दिया । सागसे पुत्र बनाया और साँकी सुन्दर लज्जापुरी लम्बाई की ॥ ५० ॥ रामोपासक को यह—तुम्हारे कृष्णने एक वरिष्ठ ब्राह्मण सुदामाके साथ निवृत्ता की थी । जिन्हें तुम बानर कह रहे हो, वे बानर नहीं, बल्कि बानरका हठीर धारण करके सब देवता रामकी सेवाको माये थे ॥ ५१ ॥ तुम्हारे कृष्णने कष्ट करके व्यर्थ जरासंधका शव करवाया था । बनेमें सदा गोपगण उनकी सहायता करते रहते थे ॥ ५२ ॥ उन्होंने मोषोंको अपनी सभासे भगवत् और सदा बनेमें दूधर-उधर भेजते रहे । उन्होंने काशी बानरोंकी लम्बाई दाँत और अपने लगे वाले स्त्रीकी कुम्प कर दिया ॥ ५३ ॥ शिवभक्त बाणामुर्के साथ उन्होंने गुड किया और स्वयं शिवकी भी उनके साथ गुड करना कहा । मिथुवाणने उनकी पूज निन्दा की ॥ ५४ ॥ बानरोंने उनके पीत्रको जीतकर अपने बहाने कर लिया और पारिजतादिको देते समय अपनी स्त्रियोंमें भी उन्होंने भेदभाव किया ॥ ५५ ॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे रामके बैठनेकी जो अपने समस्त बाँध लिया और रामने द्विजभक्त राजसके साथ गुड किया था ॥ ५६ ॥ उन्होंने ब्रह्महत्या तक कर ली और मुनि बगलने उनकी बन्नी हरहु निन्दा की । अपना काम उनकीके लिए रामने राजसके भाई विभीषणकी छोड़कर निव

यानारुढा कृता पात्रा वेश्याः स्पृष्टास्तथा रहः । इतिव्रतायां सीतायां दोषारोपः कृतोऽपि च ॥६९॥  
पुत्रं हंतुं कृता पात्रा शूद्रसिंहवधौ कृतौ । पत्नीसत्ताऽऽश्रिता येन पस्याशा पालिता नृपैः ॥७०॥

रामोपासक उवाच

अते कृष्णस्य ते शापाद्र्यच्छेदो ऋभूद्विज । अग्निना लोपिता यस्य नगरी द्वारका शुभा ॥६१॥  
स्वगोश्रम्य बधस्त्वन्ते मद्यपानादि यत्कुले । दर्शनं कर्जुनायान्ते येन मित्राय नार्पितम् ॥६२॥  
स्वस्थानं गमनं येन कृत्वमेकाकिना तथा । स सतोऽपि कृतस्त्वन्ते व्याधेनाप्येन पत्रिणा ॥६३॥

कृष्णोपासक उवाच

तव रामेण समरः पुत्रेणापि कृतो महान् । तथा सीता मया त्यक्ता चेति लोकं प्रवार्य च ॥६४॥  
बाल्मीकेराधर्मं गत्वा दृष्टी सीतासुतौ रहः । पिण्याकेन तथेकुधा पिंडदानादिकं कृतम् ॥६५॥  
दंडके तव रामेण स्वपित्रे भ्रमताऽर्पितम् । तथैरावणभृक्तायाः स्पृष्टः स मयका स्पले ॥६६॥  
तथाऽसत्यच्छेदनार्थं महान् यतः कृतो मुहुः । स्वमित्रिण्य श्रेष्यायुःपूर्व्यं सन्नतोऽपि च ॥६७॥  
कारितो पमराजेन पूर्वजेन लवादिभिः । पुष्पास्वादनमात्रादिपन्न्याः सिद्धा तथा कृता ॥६८॥  
मम कृष्णेन बालत्वे लीलया पूतना हता । हतास्त्वं मुराद्याश्च शृतोऽङ्गुरया गिरिस्तथा ॥६९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण बालत्वे लीलया शटिका हता । मारीचाया हतायापि पर्वतास्तारिता जले ॥७०॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णस्वरूपेण मोहिका मोहिता । अजे । मोहिता राधिका श्रेष्ठा मदनस्यापि मोहिनी ॥७१॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण देवानां मोहिताः स्वीयरूपतः । देवपत्न्यो रदो रात्रौ मारुतुन्या विचित्रिताः ॥७२॥

हताया ॥ ५७ ॥ दूसरेके घरमें रहो हुई स्त्रीको लाकर घरमें रख लिया । फिर उसी स्त्रीके साथ निकुराई की । बहुत मो स्त्रियाँ कामयाबीके लिये पतुंनों, किन्तु उनकी कायना उन्होंने पूर्ण नहीं की ॥५८॥ सवारोपर बलकर तीर्थयात्रा की । एकान्तमें वेश्यागमन करके पतिव्रता सोतापर हठमूठका दोषारोप किया ॥ ५९ ॥ उन्होंने अपने पुत्र लव तकको मारनेकी आज्ञा द दी और सम्बुक्त शूद्र तथा सिंहका वध किया । ६० । रामोपासकने कहा—हे द्विज ! अन्तमें तुम्हारे कृष्णका आह्वानके आपसे वश नष्ट हुआ था । उनकी द्वारिका-पुरीको समुद्रमें लव कर लिया ॥ ६१ ॥ उन्होंने मद्यपान करवाकर अपने कृदुम्बियोंका खस किया । अन्तिम समयमें अपन अतिप्रिय मित्र अर्जुनको भी दर्शन नहीं दिया ॥ ६२ ॥ उन्होंने अकेले ही यहसि मोलोककी यात्रा की । एक बहेलियेके साधारण बाण द्वारा उन्होंने अपना अन्त किया । ६३ ॥ कृष्णोपासक बोला—तुम्हारे रामने अपने पुत्रके साथ महान् संग्राम किया था । “मैंने सीताका परित्याग कर दिया है” ऐसा संसारको दिसलाते हुए मो बाल्मीकिके आश्रमपर आकर भुषकेसे सीताको और अपने बेटेको देख आये । पिण्याक और शूद्रोंके फलसे अपने पिताको पिम्बवान दिया । ६४ ॥ ६५ । सब दण्डकारण्यमें हथर-उथर धूम रहे थे, सब भी इन्हीं फलोसे पिताका आठ किया था । ऐरावत द्वारा भंगे हुए मयको उठाकर पुष्पोत्तममें ले आये ॥ ६६ ॥ असक्त्य काटनेके अपराधपर रामने एक मह्ययज्ञ किया । मन्त्रियोंको श्रेष्ठ आयुकी प्रतिके निमित्त अपने बेटे बेटेकी पमराजसे लड़ दिया और केवल फूल कुंव सेनेसे स्त्रियोंको भी उन्होंने दण्ड दिया ॥ ६७ । ६८ । हमारे कृष्णने बाल्यकालमें खेल-खेलमें ही पूतनाको मार डाला । वृषासुर आदि दैत्योंको मारकर गोवर्धन निरिका उमल्लियोपर उठा लिया ॥ ६९ ॥ रामोपासकने कहा हमारे रामने बाल्यकालके समय खेल-खेलमें शटिका तथा मारीचादि कितने ही राक्षसोंको मार डाला और पानीमें पत्थर तैराया ॥ ७० ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे शत्रु कृष्णने अपने सुन्दर रूपसे

ताः कृतार्याः स्वराद्यतो जातास्तु गोपिकाः । तद्भूलोन्मिष्टस्वरसं दासी रामस्य भक्तितः ॥७३॥  
धीत्वा यस्यैव वरतो ब्रजे सा राधिका अभूत् । अतो मे राघवो धन्यो यस्यैका दयिताऽयं हि ॥७४॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन परम्यथ सहस्राणि हि धोडश साष्टोचरशतान्यत्रोद्गाहिताश्च विधानतः ॥७५॥

रामोपासक उवाच

मम रामस्वरूपेण सर्वास्ता मोहिताः स्त्रियः । मातृवन्मोहितास्तेन वीरेण पुरुषार्थिना ॥७६॥  
कृष्णेन रत्तिकामेन मोहिता गोपिकाः स्त्रियः ।

\* कृष्णोपासक उवाच

मजेन्द्रो मम कृष्णेन लीलया निहतो दिज्ज ॥७७॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण नारैर्द्ररिपुरशपदो हवः ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापेन यमुना खडिता त्वभूत् । ७८॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापेन खडिता जाह्नवी त्वभूत् ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन वै स्वर्गादानीतः सुरपादयः ॥७९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण स्वर्गादानीतो सुरपादयौ ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन स्वपुरोर्मातुश्चापि सुता मृताः ॥८०॥

सुजीविताः समानीताः सप्त ताभ्यां निवेदिताः ।

वज्रको समस्त गोपियोंको मोहित कर लिया और राधाशामवासी उस सुन्दरीको मुग्ध कर लिया था, जो अपने असाधारण सौन्दर्यसे कामदेवकी भी लजाती थी ॥ ७१ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने अपने सौन्दर्यसे देवर्षियोंको मोहित किया था । वे सब रात्रिके समय एकांतमें रामके पास पहुँचीं । किन्तु उन्हें रामने अपने माताके समान माना और वरदान देकर कृतार्थ किया । वे ही जन्मांतरमें गोपिकाएँ हुईं । उस समय रामचन्द्रके मुखसे सायबूलके निकाले हुए पोंगको पीनेवालों दासी दूसरे जन्ममें राधा हुई । इससे मेरे रामचन्द्र प्रभु हैं । क्योंकि वे एकपत्नीयतापारी हैं ॥ ७२-७४ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णचन्द्रजीने सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंके साथ विविध विवाह किया था ॥ ७५ ॥ रामोपासकने उत्तर दिया कि हमारे रामचन्द्रजीने अपनी सुन्दरतासे सप्ताश्वती समस्त नारियोंको मोह लिया था, किन्तु स्त्रियोंके भावसे नहीं—अपितु माताके भावसे । क्योंकि हमारे राम वीर और पुरुषार्थी थे ॥ ७६ ॥ कृष्णने गोपियोंकी नारियोंपर मोहिनी डाली थी अपनी कामवासनाकी पूर्तिके लिए । कृष्णोपासकने कहा—हे दिव्य । हमारे कृष्णने खेल खेलमें कुबल्यापीड हथियोंको मार डाला था ॥ ७७ ॥ रामोपासक बोला—मेरे रामने अष्टावक नामक राजाको खेल-खेलमें मार डाला था । कृष्णोपासकने कहा—मेरे कृष्णने अपने प्रतापसे यमुनाकी धारा क्षिप्त कर दी थी । ७८ ॥ रामोपासकने कहा—मेरे रामके प्रतापसे गंगा क्षिप्त हो गयी थी । कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्ण अपने पराक्रमसे कल्पवृक्ष ले आये ॥ ७९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे

रामोपासक उवाच

मम रामेण साकेतं सप्त मर्याः सुजीविताः ॥८१॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पौरुष्याद्विप्रस्य जीविताः सुताः ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण सचिवः सुमित्रो जीविताः पुनः ॥८२॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन द्रौपद्याः संधितं हि फलं तरो ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण वैदेयाः संधितं तुलसीदलम् ॥८३॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापञ्च जनान्संदर्शितः पुरा दुर्वाससाऽनयाञ्चा सा भोपिकानां कृता वृजे ॥८४॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापञ्च जनान् मन्दर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽनयाञ्चा सा कृता रामस्य तत्पुरि ॥८५॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन रूपाणि बहून्मम कृतानि हि ।

रामोपासक उवाच

बहूनि राघवेणापि स्वरूपाणि कृतानि हि ॥८६॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन मिश्राय दत्तं स्वर्णमयं पुरम् ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण मिश्राय दत्ता स्वर्णमयी पुरी ॥८७॥

कृष्णोपासक उवाच

धर्म्यग्रहे कुरुक्षेत्रे स्नानं कृष्णेन मे कृतम् ।

रामचन्द्रजीने अयोध्यामें बड़े बड़े स्वर्गसे कल्पवृक्ष तथा धारिजातकी मंगा लिया था । कृष्णोपासक बोला— हमारे कृष्णजी अपने गुरुजीके मरे हुए सात पुत्रोंको ममपुरीसे लक्ष्म और उन्हें जीवित करके अपने गुरुजीको दे दिया था । रामोपासकने कहा—हमारे रामचन्द्रजीने अयोध्यामें मरे हुए सात भनुष्योंको जीवित कर दिया था ॥ ८० ॥ ८१ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णने द्रौपदीके मननानुसार बिना फलवाले वृक्षमें भी फल लगा दिया था । रामोपासक बोला—हमारे रामने भी सक्ताके कहनेपर तुलसीदलके दो टुकड़ोंको जोड़ दिया था ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ कृष्णोपासक कहन लगा—हमारे श्रीकृष्णजीने जंगलमें दुर्वासिके अश्र मंगितेपर उनकी पाँच पुरी की थी ॥ ८४ ॥ रामोपासक बोला—हमारे रामने भी अयोध्यामें दुर्वासिके अश्र मंगितेपर उनकी इच्छा पूर्ण की थी । इससे हमारा रामका प्रताप सब संसार देख चुका है । ८५ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने अनेक रूप धारण किये थे । रामोपासकने कहा—हमारे राम भी ज्वरसे लौटकर अयोध्या आनेपर अनेक रूप धारण करके सबसे एक साथ मिले थे । कृष्णोपासक बोला—श्रीकृष्णने अपने मित्र सुदासकी सुवर्णकी मगरों दे डाली थी । रामोपासकने कहा कि हमारे रामने भी अपने मित्र विशोदणको सोनेकी सक्ता दे दी थी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने सूयग्रहणपर कुरुक्षेत्रमें जाकर स्नान किया था । रामो-



राज्यकण्डम् २७५

अथैवम् कुरुक्षेत्रे रामेणाप्यवगाहितम् ॥८८॥

मे रामस्य वचश्चेकं मन्यमेव च मन्यथा । ते कुरुक्षेत्रे घनेऽरुणि वचनान्दत्तवानि हि ॥८९॥  
 रामस्य मे शङ्कवेकः सन्निर्दलनक्षमः । विष्णुस्तत्र कृष्णस्य चद्रोऽङ्गु मार्दवाः ॥९०॥  
 एका ह्रीं नम रामस्य ते कृष्णस्य वङ्मित्रयः । कन्याऽग्रया विना नान्या इत्या रामस्य वै मम ॥९१॥  
 स्त्रीणां क्षयां विना बद्धीऽसृग्वाः कृष्णस्य ते द्वित्र । रमन्ति गतिमप्यदृष्टं मार्केते ममगुण्ये ॥९२॥  
 मन्धेऽस्मटे पथिने ते स्थितिः कृष्णस्य वै तर । कपुत्रय मे रामस्य कृष्णस्यैकोऽप्यनस्य ॥९३॥  
 गौमणिः पुष्पकं वृषी कटके मुनिनाऽङ्घ्रिते । एतन्मृतेऽधुनाऽतुल्यो नमोऽप्य ॥९४॥  
 एतानि मम रामस्य नव रत्नानि मते हि । मणिद्वय पारिजातस्त्रिवं रत्नत्रयं नव ॥९५॥  
 कृष्णस्य मनि मो विश्वं तं तं ईश्वरिभ्य इथा । ममदीपेभ्यो भयो मम पूर्वीश्वरं दित ॥९६॥  
 ईश्वर अमरीश्वरं लक्ष्मेश्वरं द्वय ममगुण्य । इति न मम रामस्य मृत्युं कृष्णं विचिन्व ॥९७॥  
 मम चाप द्वि कोट्यष्ट वस्त्राभयः । पतत्रिणाः । विद्रोहपूरजं मम नव नित्य द्विजोऽप्य ॥९८॥  
 यद्य मित्वायन उग्र मज्जन चाक्षरद्वयम् । मम पान पुष्पकं तप्तपुत्री तौ दिनुः सप्त ॥९९॥  
 अयादि पान्यने मम दत्त दत्त द्विजोऽप्य ॥ रामनाथपूरस्यैव मम रामस्य मे नृपः ॥१००॥  
 तत्र कृष्णेन किं रत्नं वद मम मेऽप्य ॥ वरात्पदनिधं वदुधारी म रामविलम्ब ॥१०१॥  
 तारक मे रामनाथ कथायां सुदुर्जनान्मदा । मृत्युन्मुखास्तान्मार्गं द्विजोऽप्यदिति त्वयम् ॥१०२॥  
 अतएव त्वमपि सर्वत्र मरयोन्मुमान् । स्वीयन्मुदुः शिष्यपति ष्येण रामोऽधुना मिति ॥१०३॥  
 त्वया प्रागिति कोऽर्थं वदा तप्तवनादर्थं । राममेति रामेति नाम भूयाऽमुदार्पते ॥१०४॥  
 यथावमहिमा चोक्तं त स्वीयधुना मुदुः । वान्मर्माकिनऽप्यन एव पूर्वतन्वार्गित कृतम् ॥१०५॥

राज्यकण्डे कहा कि हमारे रामजी की ली पुदुर्लभमे स्थान लिया था ॥ ८८ ॥ पर राम सद सत्य बचन बोले कि, किन्तु तुम्हारे इ शक्ति बहुत सी बने लगी है । मया भी ॥ ८९ ॥ पर रामका एक वाक्य बहुत मर्मजनक लिख पवांश है, किन्तु तुम्हारे हृदयक व जने विलन बाध भिन्न है । ॥ ९० ॥ हमारे रामका वैवर्क एक ह्रीं लोका है और तुम्हारे कृष्णकी बहुत सी मित्राई है । वन्मोका कथाक मतिरित हमारे रामकी कोई और कथा नहीं है, सर्वत्र तुम्हारे कृष्णका वृत्त में एको मयाय है, जो विना रत्नक है । हमारे राम सरपूके तत्पर भयोभागो रहते है । ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसका विद्वान् तुम्हारे कृष्ण पथिना सगुटक विनारे रहते है । मम रामके तीन व है । और तुम्हारे कृष्णक कवन एक कई है ॥ ९३ ॥ हमारे रामके पास नमगुण्य गौ, मणि, पुष्पक, कपुत्रय, पारिजात मुनि अगस्त्य हाथ दिग हुए राकटुक, ऐरावत वरमे उत्पन्न वदुन्म कृषी व ली रत्न कदा विद्वान्म मदन है । हे विष्णु ! तुम्हारे कृष्णक पास दो मणि तथा पारिजात वर मे ही मीन रत्न है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ तत्र मल्ल एक कृष्णका वने मय मृति करने ह्ये ? रामकथना मात हाथोके स्वामी एवं रामाकोच मा वान्दत है ॥ ९६ ॥ राम ईश का है और जयदाश वी, उनम रामा विद्वयदाय है । तत्र मेरे रामके वरात्पद कृष्णकी मम मनी । उनके पास मन्द है और अश्व सत्यक है । मे व हाथोकी इच्छा पून करनेका वरा तत्पर रहते है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ विष्णु पास मित्रासन है, दो वमर एवं लव है, विष्णु पुष्पक विद्वानकी कथारे है और पितके मरुत पुणवान दो वट है । विष्णु लन दिया हुआ रामनाथपुर नाम की विद्वान है, तुम्हो वरमो कि तुम्हारे कृष्णन वरा चोत्र रत्नक दा है जो ज्ञानरत्न विद्वान है । साधन विद्वती की मदा पर रामका वजन करत है ॥ ९९ ॥ १०० ॥ वरनाथ वरनाथुक प्रागिभोका शिष्यी पुन-पुनकर रामशरक पण गुणवता करत है । इतिरिष्ट साराके लण मल्ल समय कहत है — रामका स्थान कर भया, यद्यका मजन करो ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ मृत्यु मर्माको मायात्र तिके निर्मित ही मरको वठानशाने माय की रामनाथका वरवारण करत भवत है ॥ १०३ ॥ विष्णुके नामकी ऐसा माहना है, वे उन रामकी स्तुति करता है । इतिरिष्ट

जनकोटिमित श्रेष्ठ यस्मिन् रामायणं द्विज । कृष्णार्दानां चरित्रं हि संति सनर्गदानि हि ॥१०६॥

श्रीरामराम उवाच

एव तयोर्विचरन् द्विजोश्च परस्परम् । बध्वाकाशजा राजा नां तौ सर्वे च सुभ्रुवः ॥१०७॥

रामस्तथा स्तुतिः केषामपि कर्तुं घटेन न इति तां खेचर्गं क्षणीं श्रम्य मर्षं राममदः ॥१०८॥

चक्रजं पञ्चनान्दहन्तीति चोदयति स्म नायिकाः । तं रामोपामकं सर्वे वर्षतुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१०९॥

त्रिजरा अपि ते सर्वे त्रिमान्धा मुदान्विताः । तं रामोपामकं प्रीत्या वर्षतुः पुष्पवृष्टिभिः ॥११०॥

तदा कृष्णोपामकं स लज्जया नतमस्तकः । तं रामोपामकं नत्वा प्रार्थयामास वै मुदः ॥१११॥

तदा रामोपामकोऽपि न नत्वाऽर्द्धाभ्यर्च्य दृष्ट्वा । उवाच भभ्रुव वाक्यं शृणु कृष्ण द्विजोत्तम ॥११२॥

न नन्दयुगोः पृथगस्मिन् रामो न रामनोऽन्यो वयमुदवसनुः ।

तथाऽप्ययोऽप्यापूर्यान्वले मलक्षणे धावति मे मत्तपा ॥११३॥

यतः स्तुतो मया रामः कृष्णस्य निदत्तं कृतम् । तवैष्यं रा द्विजश्रेष्ठ वेत्ति तौ द्वौ नमाविति ॥११४॥

राम एवायं कृष्णश्च कृष्ण एवात्र रामवः । उभयोर्नान्तरं विप्र कौतुकाच्च मयेरितम् ॥११५॥

मानयन्त्यतरं यौ ना तयोः श्राममकृष्णयाः ।

परस्परं सौ निरये पतिष्यति न संशयः । स्वद्वर्षपरित्यागं येष्वर्थां गमयः स्तुतः ॥११६॥

इन्पुष्पा मांस्त्वयिन्वा तं रामः कृष्णादयं द्विजम् । नृणां तयोः मयापश्ये ममावद्विः सुपूजितः ॥११७॥

तवर्त्ता माघमामाने स्वं स्वं देशं प्रजगमनुः । तस्माच्छ्लिष्यावतरेषु न राममदज परः ॥११८॥

अनुस्त भज भावेन तस्यैव चरितं शृणु । यदन्यदणयाम्यग्रं महापगन्तकाकम् ॥११९॥

इति श्रीमन्काटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदनन्दरामायणं रज्जकाण्डं पूर्वाह्नं

श्रीरामकृष्णोपामकयोर्विवादी राम स्तुतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

बहुत दिन पहले आत्मानिने रामायण बनस्य था ॥ १०५ ॥ जिसकी मालमात्रः श्री कलौड है और तुम्हारा समस्त कृष्णचरित्र उससे सम जाता है ॥ १०६ ॥ अतः राम और कृष्ण नैजम राम व दोनों इस प्रकार परस्पर विवाद कर रहे थे, तभी आकाशवाणी हुई - "रामक साथ स्तुति करनेवा राम और कृष्ण नही है" । उस उन दोनों तथा अन्य लीपोंने सुना । इस प्रकार राम आकाशवाणी सुनकर बनी बैठे हुए समस्त सभासद रामकी अवधारण कर रहे हुए तालियाँ बजाने लगे और उस गान परस्पर परस्पर बोले ॥ १०७-१०९ ॥ इतना ही नहीं, अन्तर्गत भी विमानोंपर आ-आकर स्वयं रामायणकर हुए बरसान लगे । तब उन्होंने नतमस्तक होकर कृष्णोपामकने रामोपामकता प्रणाम करके जाते-जाते दिसना के ॥ ११० ॥ १११ ॥ राम, रामकने भी उसे प्रणाम करके छातीसे लगा लिया और बोले— ॥ ११२ ॥ हे द्विजोत्तम ! न कृष्णम पृथक् राम है, न राम-ने पृथक् कृष्ण है । फिर भी अयोध्या नगर के राज्य में भागद्वित्व आकाशवाणी गमकता है अतः की मेरी प्रार्थना है ॥ ११३ ॥ इसी कारण अब मैं रामका स्तुति का और कृष्णको निन्दित । यह सब केवल तुम्हारी ईर्ष्यासे कहा-सुनी हुई । वही तो वास्तवमें मे दोनोंका समान समझता है ॥ ११४ ॥ राम ही कृष्ण है और कृष्ण ही राम है । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । अभी मैं जा कुछ कहा, वह सब कौतुकमय था ॥ ११५ ॥ का अनुभव राम और कृष्णम अन्तर मानता है । उसे तरकामों जाना पड़ता । इसमें कोई संशय नहीं है । केवल तुम्हारा मत दूर करनेके लिए अभी आकाशवाणीन भी रामकी स्तुति की थी ॥ ११६ ॥ ऐसा कह तथा कृष्णनामक द्विजकी सान्त्वना देकर सभासदोंमें पूजित जाता हुआ राम विप्र सभ में प्रस्थाप बैठ गया ॥ ११७ ॥ माघमास अत्यन्त ही अत्यन्त न दोनों अपन-अपन दण्डका लोट गया । इस लिये मैं कहता हूँ-हे शिष्य ! समस्त अवतारोंमें रामायणकरे सहस्र कोई भी अवतार नहीं है ॥ ११८ ॥ अतएव तुम उन रामका भजन करो और रामकी वह कथा सुनो जो आगे चलकर मैं सुनाऊँगा ॥ ११९ ॥ इति श्रीमन्काटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदनन्दरामायणं रज्जकाण्डं पूर्वाह्नं तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( रामका मौ धियोको वरदान एवं मृतकामुपशमन )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः शिष्य समामस्थो जनैर्वृतः । ददर्श द्राक्षावल्लीनां मण्डपे काकपुत्रमम् ॥ १ ॥  
 उभयोर्नेत्रपोरेकनेत्रमृत्तिसमन्वितम् । अनिदीनं कुरुं व्यग्रदृष्टिं दीर्घम्वरं चलन् ॥ २ ॥  
 मृदुमृदुश्च पदवनमात्मानं शब्दपूर्वकम् । तं दृष्ट्वा चमृपाक्षिः स्मृत्वा कोपं पुरा कृतम् ॥ ३ ॥  
 उवाच काकं भोगमः तुम्हमगच्छ मेऽन्तिकम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा द्राक्षावन्त्यश्च मरुपात् ॥ ४ ॥  
 शीघ्रमृष्टीय काकस्तु रामादे सदग्निं शितः । राघवं वश्यन्दौर्जयं स चकार मृदुमृदुः ॥ ५ ॥  
 तदा तं राघवः ब्रूह कम्पयिष्टमानसः । नेत्रचिन्ता वगन्म्याद् काकपाथम् मौ प्रति ॥ ६ ॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा काकः प्राहाननीपतिम् । कृपावलाकनं रामं नमस्कृतुं नव मर्षदा ॥ ७ ॥  
 किं वरंमौर्व्यभारिह्य सुखदायकम् । तन्मृपाक्षचनं श्रुत्वा रामस्तं वाचयममवात् ॥ ८ ॥  
 द्वापान्तरेषु यद्वृत्तं मयिष्यं नमोऽयं न । श्रुत्वा त्वं च ममत्वं तन्नेत्रत्रिपरेऽस्तु नम् ॥ ९ ॥  
 भाविकादांणि सदात्रि काकत्वं वाचं । चरन् नृणां पश्यन्तु ते मया शकुनाश्च शितम् ॥ १० ॥  
 स्थिरत्वे स्थिरकार्याणि मने स्वमयिन्दरात् । भविष्यन्ति हि कार्याणि ममगां शकुनं मयिनि ॥ ११ ॥  
 पश्यन्तु सकला भूमा जनाः कार्याणिदने । श्रुतिं गृहप्रदेशे तु वामभागे न वेदतिः ॥ १२ ॥  
 रामेन दक्षिणं भग्नं पादं ते समन् ददा । लोद्यानामस्तु शकुनं महामंगलकारकम् ॥ १३ ॥  
 प्रतदशार्हपिठाय यदि मर्शो भवन् नै । माउस्तु तदि मयिभोपां प्रेतानां मम वात्स्यतः ॥ १४ ॥  
 अन्वकाळे मानसस्य वाञ्छिं नैः पूरितम् । प्रेतदशार्हपिठस्याप्यश्राज्जायतु सन्नराः ॥ १५ ॥  
 प्रेतस्य वशजः कथिपद्योतस्य वात्स्यम् । तत्ते स्वशार्हदिदिशः तु स पदा हरिष्यति ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहत है—हे राम ! एक दिन कटुवर मनुष्य ने । घरे हुए रामचन्द्रजी तबामे बैठे थे ।  
 तभी अंगुष्ठा हलामें । कम एक कोएक दया । कि वह एक ही नमसे दानों सेमोका काम ले रहा है । कीआ  
 भवनी भाकृतिस भोतवन, शब्दार्थ । उर पश्यन्तु और चमृपा दीवना है ॥ १-२ ॥ रामचन्द्रजीने  
 देना कि यह घर वा मरा कंर पन रहा है और काककाव करके बालता भी जाता है । उसकी यह दशा  
 देखकर दमक हृदयम दशा भाया और भान पदु । किसे हुए कामका धरण करके कोएत बोले—हे काक ।  
 मु । मर पास आ । यह नुनकर कोआ देव त म न । तो उहा और रामके भागे आकर बैठ गया । सभा  
 ग वह रामकी दण्डत हुआ जर शम्मा । च न न गया ॥ ३-४ ॥ रामने कोएत कहा—तू अपने वेवाके  
 सिवाय जो कुछ भी घर लाता चह, मयि न ॥ ५ ॥ इस प्रकारकी बात सुनकर पृथ्वीवर्त रामसे कोआ  
 कहने लगा—हे राम । मेरे ऊर दम तदु पदा भावकी कृपादृष्टि बनी रहे ॥ ६ ॥ कवन इस लोकमें सुख  
 देनेवाले अन्य वरदानोंका तकर पे नया कहें ॥ ७ ॥ कोएका बात सुनकर रामचन्द्रजीने कहा—किसी  
 इंगान्तरमे भा हानवाला भूत, अविध्य और नरमानकी सब बातें तुम्हारा आँखोंके सामने रहेंगी ॥ ८ ॥  
 होवाने मयो । भविष्यके सब कयोंका तुम मर वरदानके पाल लगे । मनुष्य कहीं जाये समय सदा  
 तुम्हारा शकुन देखा करगे ॥ ९ ॥ जब तुम बैठ रहोगे, तब देखनेवाले पथिकका काम रुक जायगा और  
 रम चलने कोने ता उनका कार्य काम पुन हो जायगा । इस प्रकार लोक तुम्हारा कहून देखेंगे ॥ १० ॥  
 रामप्रवेश या गृहप्रदेशके समय तुम जिसकी दाहिनी ओरसे निकल जाओगे, वह परम पद्मलक्षारक  
 मयुन होगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ प्रेतके दशार्हपदकी जब तक तुम नहीं छू लोगे, तब तक उस प्रेतकी  
 रूपति करापि नहा हागा ॥ १३ ॥ यदि प्रेतके दशार्हपिठकी नहीं छुड़ीगे तो उसके घरवाले आग समझेगे  
 कि भभा प्रेतके इच्छा पूरी नही हुई है । प्रेतका कोई वंकर, तुम जिनजिन चीजोंकी वही छुओगे,



ताः सर्वा रापवः शब्द किमर्थमिदं वृषके । रायं गमनायः सर्वास्तप्यं मां कटवतीं स्त्रियः ॥३४॥  
 ननु त्ववचनं श्रुत्वा विलज्जन्तः पुरास्त्रियः । अवाङ्मुखाः सन्निताहं वन्युर्ध्वं येन सघनतः ॥३५॥  
 तासु काचित्पदा राव नगरज्जाग्रोदिवः । नरं प्रजनि प्रभवो पदर्थमागता वयम् ॥३६॥  
 उपैक्षणीया नो राव वर्यं सर्वाः स्त्रियश्चरा । इति तं वादमिश्राय शृत्वा स रघुनन्दनः ॥३७॥  
 प्रभवोन्वधुरं वाक्यं शृणुष्वं प्रवरोत्तमाः । एकान्तार्थाग्रतः पेटेति मातृनुन्याः स्त्रियो मव ॥३८॥  
 इतराः सकला मीतारदित्येह जन्पनि । गन्तुं च निजमेतानि मा माप्स्यन्ति जन्तु मयि नृपे ॥३९॥  
 राजवं क्षामति भो नार्यः क्षमित्वा रोऽपराधितम् । इति ता रामराश्वत्थीः कामवाणप्ररोदितः ॥४०॥  
 ताहिनाथ त्रिणेपेव निपेतुर्मोक्षिता इवि । पतितास्ता त्रिगीश्याय सर्वा गमोऽतिविद्रुतः ॥४१॥  
 ता उवाच पुनः शीघ्रं शृणु राश्वथैः कृतान्वितः । शृणुष्वं मे वचो नार्यः गच्छन्त्या वना सह ॥४२॥  
 युष्माकं न भवेत्पटितं न ह्योऽपि मे भवेत् । नतः शृणु न मे वाक्यं यागे पूर्वं सपात्रिणि ॥४३॥  
 गुरवे कृतमजार्थं सीतायः शतमूर्तयः । ना तं फलेन युष्माभिर्द्वारे क उतं रिम् ॥४४॥  
 करिष्यामि न मदेहः कृष्णरूपेण वै सुखम् । वानानृपाणां युष्माभिर्ध्वजं दारिद्र्यमदः ॥४५॥  
 भामसुखं युष्माकं नदतिरिति वै यदा । तदा सर्वा मोक्षयामि हता तं जघनीसुखम् ॥४६॥  
 करिष्यामि विशदार्थं युष्माभिर्द्वारकापुरि । स्थापादनाहमप्यानुर्ध्वतोऽभ्याः अतं स्वदम् ॥४७॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तृष्टास्ता पुरवोपिताः । नृका राम वदुः सर्वाभ्युर्ध्वं स्वं ध्वं गृहं गति ॥४८॥  
 ततः श्रोस्ता त्रिमूर्त्यामीरामो दानीः मनाहृतता रष्टा कामपि नो दत्त्वां गमो दामाप्तदाहवत् ॥४९॥  
 तेष्वप्येकं न दृष्ट्वा स दारवात्मान्ममाह्वयत् । तानप्यदृष्ट्वा रामस्तु रक्षकाश्च समाह्वयत् ॥५०॥

देखा कि वे सब पुरवासिनी स्त्रियाँ वृषके अनङ्कार पहले हैं । जावान राजकी उठा हुआ देखकर उद्भूत प्रणाम किया और अपना मस्तक पृथीपर रखकर शिखर प्रकारसे अङ्गुली स्तुति करने लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उससे राजने पूछा कि तुम सब यही इतना रविम किम जित आयी हो ? मुझ सब-सब बनना दो ॥ ३४ ॥ रामकी बात सुनकर वे पुरवासिनी स्त्रियाँ सन्वित हुईं इन्हें माया नाच करने पुरवाण सबी रह गयी ॥ ३५ ॥ किन्तु उससे एक शिखर होकर कहा—हे वधा । आप सब जानते हुए भी हमसे आनेका कारण पूछ रहे हैं ? हम जिन जित आया है, आप वह सब जानते हैं ॥ ३६ ॥ हे राम ! अब आप हमारा उपकार न कीजिये । इस प्रकारकी बातोंसे राम उनका वीरभाव समझ गये और मोक्षी भावसे समझाने हुए कहने लग- १ मन्दगिरी । मैं लक्ष्मीवन्द्यामी हूँ । मेरे लिए इस अन्त्ये कोताके सिवाय समारकी सब नारिणी माताके सन्तान है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुम सब अपने-अपने घरोंको जाती जाव । मेरा आ है । मेरे ऊपर तुम सब पाव न माओ ॥ ३९ ॥ अब सब वे प्रकाश नासक हैं तत्काल एकाचनयं नहीं हो सकता । कामो, मेरे तुम्हारा व्यवसाय जग किया । यह मुना तो कामरूपसे पीड़ित वे स्त्रियाँ रावके वाक्यरूपी बाणसे विड और मूर्छित होकर पृथीपर गिर पड़ी । उनका इस प्रकार गिरा देखकर गणपन्थी बहुत विचल हो गये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वे कृपावरक उनसे कहने लगे—हे नारियो । मैं तुम्हारा धनाभाव जानता हूँ, किन्तु केवल एक वारकी गतिन तुम लोगोंकी इच्छा नहीं भोगी और मेरा धन का भोग हो ज सदा । इसलिए मेरी बात सुनो—अब नद नदति किम गजने यज्ञमे तेने कोताकी भी वृषणकी स्तुति हो राज दी है । उन्हीके फलसे दानमे मैं दान्य हारद वृत्ति दिनातक तुम सबके साथ संदा करवाय ॥ ४२-४३ ॥ तुम सब उस समय अनेक दास्योंकी वरिणी हुंकर जन्म लीगी । अब भीनायुत तुम लदको बुरा है ज सदा सब मैं वही पट्टेकर उस मातंग और नृप उससे उद ऊँगा । तुम सबका विवाह करका-पुत्रं होना । उस समय तुम्हारा मलय सोलह हजारसे भी ऊपर रहेगा और मैं मैं हो रहेगा ॥ ४४-४७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने जगदाश्वकी प्रणाम किया और पुरवाण अपने-अपने घरोंको लौट गयीं । उन शिखरोंके विड करके रामकाजीने दक्षियोंको बुलाय, किन्तु

वेष्टप्येकं न दृष्ट्वा स गवदध्वानिर्विस्मिनः । विमानाद्वाग्धोरुहं मौमित्रि वै समाह्वयत् ॥५१॥  
 उर्मिला रामराक्ष्य तच्छ्रुत्वा च चालयत्पतिम् । उर्मिलाचालनाच्छाप्र प्रवृद्धोऽभूत्स लक्ष्मणः ॥५२॥  
 रामराक्ष्यं सोऽपि ध्रुत्वा रतिशालावहिर्ययो । दन्तं प्रत्युत्तरं राम ययौ वेगेन लक्ष्मणः ॥५३॥  
 एतस्मिन्नगरे रामो मेदन् नगगद्गदिः । शुश्राव स्नातृन धार क्रिमिदं चेति विस्मिनः ॥५४॥  
 ततो दृष्ट्वा स मौमित्रं पर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । लक्ष्मणो रामराक्ष्य तच्छ्रुत्वा दत्ताभिजितस्तदा ॥५५॥  
 श्रेष्ठ्य दूतान्कीर्तनस्थानादह्वयामास वेगनः । रामदूतास्तदाचुन्मनः कथं आरामकीर्तनम् ॥५६॥  
 अवमग्न विहायास्त गन्तव्यं स्वामिन प्रति नेषेय केचिदनुष्ठे पात्रनीया तु संतर्कः ॥५७॥  
 प्रमोहावाऽद्य चास्माभिर्नो चेन्नः पातक स्पृशेत् । केचिदनुग्दिं तस्य कीर्तनं मङ्गलप्रदम् ॥५८॥  
 स्वाग्पाक्षामगदोषघ्नं कथं न्यक्त्वा प्रगम्यताम् । केचिदनुः कीर्तनस्थानं भ्रूवाऽस्मान्म सुखी भवेत् ५९  
 इति सदिग्धचित्तास्ते न नदा राघव ययुः । ततो लक्ष्मणदूताम्भे रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥६०॥  
 ततः किञ्चित् क्रोधयुक्तः मौमित्रिं प्राह राघवः । मन्कीर्तनममामकाकाहं दण्डयितुं क्षमः ॥६१॥  
 तथाप्येतच्च बोधय हि किञ्चिच्छितां कर्तव्यदम् । इत्युक्त्वा तां तु रुदतीं पुनः ध्रुत्वा वदिः प्रभुः ॥६२॥  
 विमानं प्राह गच्छाद्य वदिः पुर्याः स्त्रिय प्रति । वधेति गमवाक्येन ययौ नन्नगगद्गदिः ॥६३॥  
 यत्र माऽतिविलासं स्त्री करोति सगृह्यते । तामजननिभां नारीं रुदतीं राघवोऽब्रवीत् ॥६४॥

राम उवाच

किं ते दुःखं वदन्नाद्य का त्वं रोदिषि वै कथम् इति रामरचः भ्रुवा सा राम राक्ष्यमब्रवीत् ॥६५॥  
 धिरकालं करोम्यत्र रोदनं रघुनन्दन त्रय भुत न्वया राम किञ्चिन्पुण्यसयान्मुनेः ॥६६॥

यहाँ कोई दासी नहीं दिखायी दी । सब सेवकोंको बुलाया । उनमेंसे भी कोई नहीं बाला । तब गहरेदारीको पुकारा, किन्तु उनमेंसे भी कोई नहीं बाला । जिससे रामचन्द्रजीको बड़ा विरमद हुआ और विमानके ऊपरवाली भीटारीसे लक्ष्मणको पुकारा । रामचन्द्रकी आज्ञान् उपस्थित की मुनायी दी । और उगन तुरन्त लक्ष्मणको बुलाया । जागनेपर लक्ष्मणने भी रामकी आज्ञा मुनी और तब तक उनकी बातकी प्रत्युत्तर देकर तुरन्त रतिशालाके बाहर आकर वेगसे रामचन्द्रजीकी ओर चले ॥ ४८-५३ ॥ इधर रामचन्द्रजीने नगरके बाहर किसी स्त्रीका रोदन सुना : "हे गह रुग है !" यह कहकर वे बड़े विस्मित हुए ॥ ५४ ॥ तब तक लक्ष्मण भी आ पहुँचे और रामने उन्हें सब बुलात सुनाया । लक्ष्मणने तुरन्त अपने दूतोंको उस स्थानपर जानेकी आज्ञा दी, जहाँपर कीर्तन हो रहा था । लक्ष्मणके दूतोंने वहाँ पहुँचकर रामके दूताने कहा—बल्लो, रामचन्द्रजी कबसे तुम सबको बुला रहे हैं । उन सबने जवाब दिया कि बिना रामकीर्तन समाप्त हुए मधूरा छोड़कर हम ठक कैसे आये । उनमेंसे किसीने कहा कि सेवकोंका धर्म है, स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ॥ ५५-५७ ॥ यदि उनकी आज्ञा न मानगे तो हमको पातक लगेगा । उनमेंसे कोई बोल उठा कि यह रामकीर्तन तो विविध प्रकारके पातकोंको नष्ट करनेवाला है । सब इतको छोड़कर चली आयेने ॥ ५८ ॥ कुछ लोगोंने कहा कि जब वे हमको कर्तनमें भाग्य मुनये तो प्रसन्न होये ॥ ५९ ॥ इस प्रकार मममज्जसमे पड़कर वे लोग रामके पास नहीं आये । इधर लक्ष्मणके दूतोंने रामके पास आकर उनका हाल सुनाया । ६० ॥ तब किञ्चित् क्रोधयुक्त रामने लक्ष्मणसे कहा कि यद्यपि मैं कीर्तन सुननेमें मग्न सेवकोंको दण्ड नहीं दे सकता ॥ ६१ ॥ किन्तु यह भी उचित नहीं है कि मैं उन सबको कुछ शिक्षा भी न दूँ । इतना कहकर रामने फिर वह नगरके बाहरवाला रोदन सुना ॥६२॥ तब उन्होंने विमानको आज्ञा दी कि नगरके बाहर कोई स्त्री रो रही है तुम उसके पास चलो । 'बहुत मज्जा' कहकर विमान चल पड़ा और सगुरूं तटपर जा पहुँचा, जहाँपर वह स्त्री विलाप कर रही थी । अञ्जनके समान उस काली-काल्टी स्त्रीको देखकर रामने पूछा—॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तुम्हें क्या कह है ? तुम कीव हो और क्यों इस प्रकार रो रही हो ? रामकी बात सुनकर उस नारीने कहा—॥ ६५ ॥

निर्मिता विधिना पूर्वं निद्राजाम्नीं स्वहं प्रभो । दशं तेन मय स्थानं कृमकर्णं चिरं सुखम् ॥६७॥  
 यावत्कालं स्थिता राम स त्वया निहतो म्ये ततो मष्टनिवासाऽहं गता शीघ्रं विधिं प्रति ॥६८॥  
 तेन त्वां प्रेतित्वा राम नतः प्राप्ता निवर्णं पुनरेव । सोमाचारभयादस्यां नगर्यां न गतिर्मह ॥६९॥  
 तत्रैव सस्थिता राम शीघ्रं च सरयुतटे । मे स्थानं वद रामाद्य यत्र स्वास्थ्याम्यहं सुखम् ॥७०॥  
 ततस्या वचनं श्रुत्वा मयसो वाक्यमब्रवीत् । स्मृत्वा दूतकृतं पूर्वं तदा क्रोधेन चोदितः ॥७१॥  
 निद्रे मृणु पदो मेऽद्य ते स्थानं कीर्तयाम्यहम् । राधात्मानो नरा मूर्ख्या ये मृण्वन्ति हि कीर्तनम् ॥७२॥  
 पुराणभवनं वैश्यठनं पूजनं जपम् । तपो ध्यानं च होमादि यद्यत्र कुर्वन्ति पापिनः ॥७३॥  
 तेषु च तिष्ठ मद्राकयार्द्धानरेवनरेष्वपि । अडे बालेऽद्य गुर्दिण्यामुखा मोक्षरोऽश्विने ॥७४॥  
 तथा विद्यार्थिनि भ्राते भ्राते जगत्कामुके । एतेषु ते स्थलं दत्तमेतान्मोक्षय महरात् ॥७५॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सा तुष्टा प्रणमय हम् । ययौ गमः स्वनगरीं सुखं निद्रां चकार वै ॥७६॥  
 तदारम्भं पुरोक्तेषु वार्त्तं निद्राऽकरोन्मुखम् । राधात्मनाम्नो निद्रा बाधते पुण्यकर्मसु ॥७७॥  
 तदारम्भं मेवकेषु नरेष्वप्यवनांतले । निद्राप्रस्थेषु पुण्यात्मा मइमेव्यपि कश्चन ॥७८॥

शुभ्राश्च तर्कार्तनादि चकार पूजनादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

अथान्धा सप्तवर्षाणि कथां मीतापशृङ्करीम् ॥७९॥

कृमकर्णस्य पुत्रस्य निकुम्भस्य च गुर्विणी । प्रभून्पथं पितुर्महं गता द्राघातरं त्रिधा । ८०॥  
 रात्र्यादिवधे जाते तस्यां जातस्तु पौंड्रक । मायापुर्वां सनधिराः अतद्वधकरः पुनः ॥८१॥

हे प्रभो यह बहुत समयकी बात है कि जब बह्मज मुझे बनाए था । मेरा नाम निद्रा है जोर बह्मजने मुझपर दया करके कृमकर्णका देहस रहनका दिया । तब मैं बड़े आनन्दसे उसमें रहने लगी ॥ ६९ ॥ ७० ॥ लेकिन आपने उसे भी मार डाला । मर रहनका एक झण्डा था, उस भा आपने उजाड़ दिया । ऐसा व्यवस्थापन रक्षो-कल्पती हुई मैं बह्मज पास गया और ऊह अपनी गाथा सुनायी । उन्होंने मुझ आपके पास में आ और मैं इस जगह जा पड़ी । सं गारकायिक मयस इस नगराव घुसनेका साहस नहीं हुआ । इसलिए इसा सरयूके किनारे बेड़ी बेड़ी बिलाप किया करता हूँ । हे राम ! अब आप कृपा करके मर रहनके लिए कोई स्थान बतला दीजिए, जहाँ मैं रह सकूँ ॥ ६८-७० ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर रामचन्द्रकी बहुत दूतकी बातें सोचकर कुछ गुस्मा आ गया और निद्रासे बात—॥ ७१ ॥ हे निद्रा ! मुना, मैं तुम्हें तुम्हारे रहनेके लिए स्थान बतलाता हूँ । जो पानी मृणुप मर कांतन मुने जार्य और ये पुराणभवन, वैश्यठ, पूजन, जप, ध्यान आदि जो कुछ भी करने रहने, उनमें गुप्त लपका क्या बसाआ जो लाभ होत प्रकृतिक हो, न चाहे देखता हों वा मनुष्य, अह, बालक, गमिणी स्त्री, प्रभोत्तर भोजन करनेवाले, विद्यापी और चके हुए मनुष्योंमें तुम रहो । जो कोण उगाधा आगत हो, उन लोगोंमें मैं तुम्हें रहनके लिए स्थान देता हूँ । मर करवानस तुम इन्होपर अपना मोहजाल फैलाओ ॥ ७२-७५ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह प्रसन्न हुई और उससे चक्रान्तकी प्रणाम किया । जबर रामचन्द्र की अपनी नगरीमें लौट आये और रातभर बूढ़ मच्छों तरह सोये ॥ ७६ ॥ तभीसे ऊपर कहे हुए लोकोंमें निद्रा निवस करने लगी । इसलिए यदि पापी मनुष्य कोई पुण्यकर्म करने लगता है, तब उसे निद्रा मत्ताती है ॥ ७७ ॥ तभीसे पृथ्वीमण्डलमें निद्रासे सेवकोपर बचना मोहजाल फैलाया । सहस्रों निद्रानु मनुष्योंमें कही एक मनुष्य भी मुरिबलसे ऐसा मिलेगा, जो अवन-नीर्तन आदि शुभ कर्म करनेका पुण्यात्मा हो ॥ ७८ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—मर मैं सीताके मतसे मरी एक दूसरी क्या सुना रहा हूँ ॥ ७९ ॥ कृमकर्णके पेटे निकुम्भकी गमिणी स्त्री अन्धवादी करनेके लिए किसी दूसरे द्विमें रहनवाने अपने पिताके घर गयी थी ८० ॥ जब रामके साथ युद्ध करके रावण बल समेत गड़ हो

श्रौणानदीनद्ये चर्मोद्धारणः क्षीरमाशरे । महायान्दोहदहनसोद्वेजविन्वा विभीषणम् ॥८२॥  
 शताननेन चै सार्धं लक्षारण्य धकार च । ततो विभीषणे गच्छ गन्वा सर्वे न्यवेदयतु ॥८३॥  
 सोताविर्षणाम्यां चै रामो लक्षां ययौ हृतम् । निहन्य रावण सेना युद्धे गमे त्रिनेत्र नम् ॥८४॥  
 विर्मेषणात् ता लक्षां हन्वा न पीण्डक ददौ । अथैकदा समामप्यं स्वयं च विभीषणः ॥८५॥  
 ययौ विषण्णः सन्निवृत्तः सन्निवृत्तः सन्निवृत्तः । नन्वा राम माधुनत्रधोऽङ्गुलम् कपित्वापरः ॥८६॥  
 उवाच सख्यैः पुनः लक्ष्याः प्रभवत्तुम्भिर । गच्छ रावणपशाध ग्राहि मां शङ्खप्रवणम् ॥८७॥  
 मूर्तुर्लक्ष्मणं कुरु कुरु ज्ञानः पुत्रः पुत्रः पुनः । दर्शन्यको वृद्धपुत्रे बालकमवध धीमनः ॥८८॥  
 मक्षिकाभिः स्वयमनजलस्य विदुषिर्महः । गोद्वारा नरकः श्रुत्वा न्यक्तुर्नयकुलशेषम् ॥८९॥  
 तस्या तोष्य ज्ञाण नदरेगानिर्गतिः । पातालस्य राक्षसैश्च लंकारां समुपागतः ॥९०॥  
 मया तेन तु पणाम्य कुरु युद्ध महामयम् । मां जिह्वा म पूर्णं थाक्मदाह मचिरे, श्रिया ॥९१॥  
 मधुगो गुमपागं भूमजेन पलायितः । दर्शन्यमार्गेण लक्ष्या योजनोपरि ॥९२॥  
 मत्री बाहुविर्गम्य विमरन्वर्गं समगतः । मूर्तुर्लक्ष्मणः समुत्पन्नस्तुम्भे विवर्द्धितः ॥९३॥  
 मूलकासुरनाम्नाऽन्यः पणं रुपति गतोऽधुना । सगर तेन मायुक्तमार्गे त्वां तु विभीषणम् ॥९४॥  
 हन्वा लक्ष्मणं प्राप । ततो गच्छामि स्वयम् । धनिना निद्रो येन निद्रम पकल कुलम् ॥९५॥  
 त राम सगरे हस्तद्वयं गच्छामि ह विदुः । आगमिष्यति सोऽत्रापि त्वां योद्धुं शत्रुनन्दन ॥९६॥  
 हदानो शङ्कते च प्र वत्सुकम्भं मृतम् । तत्रस्य मकलं वृत्तं श्रुत्वा रामोऽतिविस्मितः ॥९७॥  
 लक्ष्मणं ग्राह्य वेमेन धनिवन्तं जगतांते । स्वस्वगन्धर्विष्यन्मयान्दर्शन्यकाशधुना ॥९८॥

मया ना इस शब्द पीछे नाशका पुत्र जन्म हुआ । ८२ ॥ श्रौणानदी के तटपर मायापुत्री नामकी नदरी-  
 में एक सौ सन्तानों का राज्य रहता था । उसका २०० नृपति थे । शीघ्रसे उस राज्यकी सहायतासे विभीषण-  
 की परास्त कर दिया और शतानन रावणके साथ एकसाथ राज्य स्वयं करने लगा । उस समय विभीषण  
 रामके पास गया और उन्होंने अपना सब धन व गुजरा ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ गिरकी उस दुःखमयी कहानीकी  
 सुनकर राम सता और विभीषणके साथ एकसाथ चले दिए । वही मूर्तुनकर उन्होंने उस सौ मुँहवाले रावण  
 तथा पीण्डकका मारा और फिर विभीषणका उनके निशानेपर विजयकर अवस्था छोट जाये । इसके बाद  
 एक दिन राम अपनी रुपाय बैठे थे । जब अपनी स्त्री, जब तथा मन्त्रिक साथ विषण्ण आये वैसे हुए विभी-  
 षणने कहा - हे राम , हे रावणपताक । मैं क्षात्रकी शरणमें , मरी रुपा काजिए । ८४-८५ ॥ बहुत दिनों-  
 की बल है, जब मूल नदाजम कुम्भकर्णके एक पुत्र हुआ था । कुम्भकर्णने वही द्वारा उस लक्ष्मणसे उल्लंघने  
 छोड़का दिया । वही धनुर्मात्रसे उसके मुँहमें मधुकी एक एक बूंद टपकाकर उसका रक्षा की । वह हम समय  
 बका हुआ है । जब अपने लोगोंके मुँहसे यह सुना कि रावण भर पिता तथा वृद्धिवाला नाम लिया है  
 ८८ ॥ ८९ ॥ तब उस तटस्थ द्वारा उसने वहीका मर्त्य करके वर प्राप्त कर लिया । वरक प्रभावसे गवित  
 होकर बालादवासी राजाको सहायतासे उसने सदापर चढ़ाई का दी । मैं छ महीने तक उसके साथ  
 घमासान युद्ध किया । अन्तमें उसने इसे परास्त करके सदापर अधिकार कर लिया । ऐसा अवस्थामें मैं  
 काधी रातकी अपने पुत्र, स्त्री एवं मन्त्रियोंके साथ एक सुन्दरक गमनमें आया ॥ ९०-९२ ॥ एक मोजन दूर  
 भाग आनपके ठहुर गया जब रात्रि अन्तमें हो गयी । तब आने बड़ा और आणके पास जा पहुँचा । वह मूल  
 नक्षत्रमें पैदा हुआ तथा वृद्धीके लोचने उसका पात्रर मोक्षण हुआ है । इसीलिए लोग उसे मूलबामुर कहते हैं ।  
 युद्ध करते-करते एक बार उसने मुँहसे कहा था कि हम रामभूमिमें पहले तुमको मारकर सदापर अधिकार कर लेने-  
 के बाद मैं उस रावणके पास आऊँगा, जिनमें मैं बिना तथा मो वृद्धता महार किया है ॥ ९३-९४ ॥ तथा मधुमिमें  
 रामको मारकर मैं अपने पिताकासे उल्लंघन हो जाऊँगा । हे शत्रुनन्दन मैं अद्वैतिक जानता हूँ, कीध हो वह आप-  
 से भी युद्ध करनेके लिए आवेगा ॥ ९५ ॥ ऐसा अवस्थामें आप भी उचित समझ ली कर । विभीषणका हाक



तथेति रामवचनाद्गताध्यायनदा । लङ्घयन्नेति वेगेन गन्ता रताः समागतौ ॥१०॥  
 प्रोचुः समाया श्रीराम तूराणां वनना जे ते । केचिन्नृपा बालर्षेति तदायां तथुनन्त ॥१००॥  
 केचिन्न पालर्षे-याज्ञां तत्र नन्कनण भृण । चपकाया मुमन्याश्च स्वययाममुद्रयम् ॥१०१॥  
 दुःखं हृदयमस्यं यसदद्याये गर्व व हि । पूाकेतुगणकाभिन्नवर्मस्थला पुनः ॥१०२॥  
 मृन्का मदनमुन्दर्या दुःखं काप्युद्रव नृगाः । अन्तां न पालर्षेत्यद्य तत्र गधव मन्त्रयो ॥१०३॥  
 गान्तिना यैरनयाहा ते सुर्यायाथा नृपेनमाः । स्वकोटिर्विर्लभ्युक्ताः समायाताः मदस्यधः ॥१०४॥  
 तदुद्भवचनं श्रुत्वा रामो गर्जयन्नेतनः । प्राह माणघातांस्ते स्मूरयति स्रग्धराः ॥१०५॥  
 यादी इत्या कोषकणि तान्गच्छामि तनस्वहृषः । इन्द्रक्या नुदिने रामः सेनया बहुभिर्मेरात् ॥१०६॥  
 मृन्कायुग्धातार्थपादौ पुर्वा प्रदियंशौ । विचिन्मन्ययुते पुर्वा युपकेतु न्यवेशयत् ॥१०७॥  
 कुशावाः यत्त पालास्ते गमेण मद निर्वपू । विमाने मकत्वा सेनां स्थापयामास गधनः ॥१०८॥  
 तावत्ते पाणिवाः सर्वे नानावादनमस्मिन्नाः । वेष्टेनाः स्वस्वमन्यैश्च तन्वा गम्य पुरः स्थिताः ॥१०९॥  
 शान्गम, स्थापयामास विमाने मैन्यमयुतम् । अष्टादशपरमिर्नः कविभिः कपिगद् ययो ॥११०॥  
 आरुहोह विमानाग्र्य कपिमी गधराज्ञया नतः सीतां विज्ज राम स्वय स्थित्वा तु गूपके ॥१११॥  
 पश्यन्नानाविधान् देशान्ययी लङ्का विहायसा । यात्राकाळे यथा वानरवताऽऽपीतथा पुनः ॥११२॥  
 नतो रामं समायातं श्रुत्वा स मृन्कागुणः । ययी लङ्कावहिर्षेद्वृषु तद्यवेण वर्त्कीयसा ॥११३॥  
 दशकोटिविन्ना सेनां विभ्रन् न वरदपिता । तनस्ते राधमाः पद्भिर्निहन्तुः प्लवगान् मुहुः ॥११४॥  
 वानरा राक्षसाश्चापि निहन्तुस्तन्द्रवर्जगः । एव वभूव तदुद् तमुन्म दिनमपकम् ॥११५॥

मुनकर राम बड़ विस्मिन्न हुए । १०॥ नून लङ्कागम उन्हीन कहा 'क ससारम जितन रात्र है, उनक पास  
 दुन अजर बाध बलवा जो । १०॥ लङ्कागम रामक आज, नुसार दुन बने। दुनोने बाध लौकर रामसे कहा-  
 हस लोभ सब राजाओंक पास है अथ । उनम कुछ रात्र तो आभी आभ'का पालन कर रहे है और कुछ  
 नहीं । ११॥ १००॥ इसका कारण यह है कि आभीका ओर गुप्तिक समयवक समय उनके हृदयम जो सोच  
 उपवा था, वह अब तक उपा राये बना है । फिर पुन १०१ क रहे उनका हृदय बलव विदोष हो चुका  
 है । १०२॥ १०२॥ जब वे मदनमुन्दरीकी उस अनमो मभाका याद करत हैं तो उनका पलेज टुकड़े-टुकड़े  
 हो जाता है । इन्ही कारणोसे वे आभी आभ'क पालन नही करना चाहत ॥ १०३॥ जिन मुखार बाहि  
 नृपनिधान आभ'का आभ'का पालन किया है, वे अपन दम्बन समय मगोधा आ रहे है ॥ १०४॥ कून्पी  
 रात मुनकर रामचन्दने कहा—वे नोन रात्र बचतक हुआ साथ ईर्ष्याभाव रखने हैं ? मन्तु, पहले  
 कुम्भकगके बड़ मृन्कागुको बाककर जब कोरापर भी चढ़ाई करेगा । इस प्रकार निरुद्ध करके रामने  
 मुख दिन और मुद्रांम अपनी निगल सेना तथा स्वमण करत आदि आताओके साथ मृन्कागुकी माग्यके  
 लिय आगोषास प्रमदान कर दिया १०५, १०६॥ पुनोके बाहर जाकर उन्हीन कुछ सेनाके साथ गूपकेतुकी  
 मगोधाकी रक्षाक लिए लौढ़ दिया और बाकी कुछ आदि सार सहकाको आने साथ ले गये ।  
 रामने रात्राक समय सारी सेनाको पुनक विमानपर बिठा लिया ॥ १०७॥ १०८॥ रामने रामके  
 कून्पाओ रत्र भी अपनी अपनी सेनाके साथ जाकर रामसे मिल गये ॥ १०९॥ उन लोगोंकी भी  
 रामने विमानम बिठा लिया । इस यात्रामें मुखर मठाहृषय चन्दरीके साथ बाय थे ॥ ११०॥ उनको भी  
 रामने पुनकपर बिठाल लिया । इसके अनन्तर सीताको हाडकर राम विमानपर बैठे । आकाशमार्गमे  
 जनक सीताकी वेशुते हुए वे लङ्काकी ओर बढ़े और अल्प समयमें ही निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच गये । उपर  
 जब मृन्कागुने यह समाचार सुना ता रामचन्दके साथ मुख करनेक लिए दस करोड सेना लेकर लङ्काके  
 राहगवाले घेरावध बा डठा ॥ १११ ११२॥ उस समय लङ्काके दरबारमे बहु बड़े घमण्डमें था । फिर क्या  
 हुआ था, रात्रागम वानरीको आतोसे मारने लगे । वानरमुखने पहारक बड़-बड़े टुकरी दिया पुनोसे

तत्र ये ये मृता युद्धे शनरास्त्रान्समाकृतिः । द्रोणावलं समनीय जीवयामास पूर्वम् ॥११६॥  
 दनः ता राक्षसा मुना चतुर्धाहायसेविता । तान्कष्टान् राक्षसेन्द्रः स दृष्ट्वा कोपयुतस्तदा ॥११७॥  
 मन्त्रिणश्रोदयामास तथा सुनापननेन चक्रे । तानागतान् रणभुव रामदाराः सहस्रशः ॥११८॥  
 अनाभीभिर्हस्तपञ्चैर्भिन्दिपालमृगुण्डिभिः । पर्विवैः पट्टिरी शूलैः कुतैः सङ्क्रैविमर्दयन् ॥११९॥  
 तेऽपि ताजैस्त्वमालैश्च हितालैश्च दृक्पन्नमैः । शालैः शिलाभिः शरैश्चैवैरान् समर्दयन् रणे ॥१२०॥  
 पुनयुद्धे भद्रवार्मानुमुक्त गमहर्षणम् । मत्तमान् मन्त्रिणः सर्वान्पन्था सेनापतानपि ॥१२१॥  
 रामदाराः क्षणमेव चक्रुः सयमरागान् । तान् मवान्निहतान् भ्रूवा क्रोधेन मृत्कामुरः ॥१२२॥  
 सप्त द्विपरवे कियन्वा किञ्चिद्वन्मन्युनो दयो नमागत नृपा दृष्ट्वा ययुर्धाद्व महस्रशः ॥१२३॥  
 ववर्षुः क्षुरजानश्च चक्रुर्दुर्भित्तिस्तनान् । तान्मवान् मधुमेन्द्रः स च ताः क्षुब्धं मूर्च्छितान् ॥१२४॥  
 तान् मूर्च्छितान् पान्दुरा पादुं तेन पुनर्धनुः । मुनयश्च मन्त्रिणश्च राक्षसास्तथा चक्रे ॥१२५॥  
 तान्मवान्मुच्छिन्न् बाणश्चक्र मृत्कामुरः । मृ आत्ममन्त्रिणो दृष्ट्वा कुपय्या बालका ययुः ॥१२६॥  
 ततो बभूव तुमुल युद्धं सङ्क्रमदपणम् । ननः क्रुशः स्वबाणैर्विलंकापी मृत्कामुरम् ॥१२७॥  
 प्राप्तिपददृमभ्ये स पवण पुनश्चन्दितः । ततोऽभिचामिक होमं स्वशस्त्रार्थमुनमम् ॥१२८॥  
 कर्तुं निवेद्य स गुहां दृष्ट्वा द्वापय्यनेकशः । ततो विभीषणः प्राह होमभूमि निर्गदय च ॥१२९॥  
 गघन कल्पवृक्षाघः सम्मिश्रितं धनुर्वहितम् । होमं क्रोन्त्ययं दृष्टः प्रेषयन् कपीन्पुनः ॥१३०॥  
 होमे सभासंऽजेषः स मन्त्रिण्यति महामुनः । एतन्मिषनरे ज्ञात्वा ययौ रामं सुर्ययुतः ॥१३१॥  
 नन्वा तं राक्षसार्थं पूजयामास सादरम् । तदाऽऽह राक्षसं नत्वा वरस्वरमै मयाऽर्पितः ॥१३२॥

प्रहार करवा आरम्भ कर दिया । इस तरह गान दिन तक उन दोनों सेनाओंमें चमामान युद्ध होता रहा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ उस समयमम जा जो काल मरते थे वो हमारा वो द्रोणावल पञ्चवानो औषध लाकर उन्हें जीवित कर दिया करत थे ॥ ११६ ॥ मन्त्रियों तब राक्षसोंका एक चौकाई सेना रङ्ग पथी गेय सब मार जाने लगे । मृत्कामुरने जब देखा कि अब बाँधेन राक्षस अब रण गते है तो युद्ध हाकर अपने मन्त्रियों, सेनापद्यों और सेनाको भेजकर उसने सदा बरताके साथ लड़नेका लखवा । तब जब रामदलक दोरीन दया कि राक्षसोंका और भी सेना आ गयी है और वे अपनी माणो, मन्त्रियों, बालका आदिसे मेरी सेनाको मारकर हर किये इ रहे हैं तब वेभी ताल, लमल, द्विपाल आदि दृष्टो तथा पवनकी वही वही चट्टानोंको लेकर फिर तुमुल युद्ध करने लगे और थोड़ी ही देरमें मन्त्रियों, सेनापति तथा सेनाको समस्त पटुवा दिया ॥ ११७-१२१ ॥ जब मृत्कामुरने मना कि वह सेना भी ताक दो लगी तो मन्त्रियोंके समक्षमा उठा और स्वयं एक दिव्य रथपर सवार हो तथा धनुर्धरकी भवा साथ लेकर लड़नेका चल पडा । मन्त्रियों पञ्चवर्णा राजाओंन जब उसे लड़नेको तैयार देखा तो वे हजारों रात्रे भी परिकर औषध औषध गैदान्मे आ गये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उन लोगोंने दृष्टोको घनघोर मर्दानके साथ उस राक्षसपर बाणवर्ष प्रारम्भ कर दी, लेकिन मृत्कामुरने क्षणभरमें उन लोगोंका भुञ्छित कर दिया । १२४ ॥ जब राजाओंका मुच्छिन्न देखा तो रामनन्दका आज्ञासे सम्मन आदि मन्त्रों अपना-अपनी सेनाके साथ लड़नेके लिए आ उठे । मन्त्रों भी बेहाश हो गये तो वृष आदि वल्क जाकर लड़ने लग ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ वृष आदिके पहुँचनेपर वही सीधमें युद्ध हुआ । कुछ देर बाद कुशने अपने बाणोंसे मृत्कामुरका उठाकर फेंक दिया और वह लड़नेको आजारम जा गिरा । किन्तु तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उत्तम शस्त्र तथा नय प्राप्त करनेकी इच्छासे एक काररम पुन गगा, इर बन्द कर दिया और वहाँ आभिचारिका क्रियाके अनुसार हवन आदि करने लगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ जब विभीषणने हवनके पूरीकी देखा तो आहोकी मण्डलाय कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए रामचन्द्रके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—हे राम वह दुष्ट कन्दराम वृद्ध हवन कर रहा है, जनार्ण कि जानराके भोजित । यदि कहीं हवन सम्पन्न-हो गया तो फिर वह किसेसे भी नहीं खाता या सकेगा । इसी बीचमें बहुतसे देवताओंके साथ

यदा वीराज मे मृत्युर्भवत्विति पुरा मम । अनेन याचितं राम तपोन्तेऽङ्गीकृतं मया ॥१३३॥  
 अतोऽस्य पुरुषान्मृत्युर्न भविष्यति राघव । सीहस्तान्मरणं चास्य विद्धि त्वं रघुनन्दन ॥१३४॥  
 अन्यत् किञ्चित् प्रवक्ष्यामि काष्णं मरणेऽस्य हि । एकदा शोकयुक्तेन पुराऽनेन द्विजाग्रतः ॥१३५॥  
 सीताचंडीनिमित्तेन जानी मे हि कुलध्वजः । इति वन्निष्ठुर वाक्यमुक्तं तन्मुनिभिः श्रुतम् ॥१३६॥  
 तेष्वेकस्य मुनिः क्रोधाद्दी शप्यं हि राक्षसम् । या चंडीति त्वयोक्ता साऽर्थैव स्वां मारयिष्यति ॥१३७॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तं जघान स राक्षसः । तज्जीत्या मुनयः सर्वे तृष्णाभूतः स्थिता पुरा ॥१३८॥  
 तस्मात्तन्मुनिवाक्येन ममापि वरदानतः । सीताहस्तान्मृनिश्चास्य भविष्यति न संशयः ॥१३९॥  
 अतः सीतां समानीय तयैव जहि राक्षसम् । इत्युक्त्वा राममार्गं पयौ वेधा निजं गदम् ॥१४०॥  
 रामोऽपि ब्रह्मवचनं श्रुत्वा प्राह विभीषणम् । मूलकासुरहोमाय न कार्यं विघ्नमद्य हि ॥१४१॥  
 सीतायामत्र यातायां विघ्नं कार्यं प्लवंगमैः । इत्युक्त्वा गच्छं प्राह रामः पुष्पकमस्थितः ॥१४२॥  
 अयोध्यां गच्छ शीघ्रं त्वं वायुपुत्रेण मद्गिरा । नामवाक्यं वदेहीं स्वपुत्रे तां निवेश्य च ॥१४३॥

समन्तस्तां दृष्ट्व्यः पथि गन्तुं मारुतिः ।

तथेति रामवचनमुरगीकृत्य सादरम् । तानुभौ राघवं नत्वाऽयोध्यां शीघ्रं प्रजग्मतुः ॥१४४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे

शतनारीवरप्रदानं मूलकासुराख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः । ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( राम-सीताविरह )

श्रीरामदास उवाच

अथ भूमिसुताऽयोध्यापुर्यां सा हृदि गच्छवम् । स्मरंस्वामीनद्विरहाद्व्याकुला नाप शं क्षणम् ॥ १ ॥

ब्रह्माजी वहाँ आ गये ॥ १२९-१३१ ॥ रामन उनको प्रणाम करके विचित्र पूजन किया । थोड़ा देर बाद ब्रह्मजी रामसे कहा-हे रघुनन्दन ! बहुत दिनोंका वात है, मूलकासुर घंर तपस्या कर रहा था । अन्तमे योगनेपर मैने उसे यह वाक्यन दिया था कि तूमे किसी वीरके मारनेसे नहीं मरेगा ॥१३२॥१३३॥ अतएव पुरुषके हाथसे इसकी मृत्यु न होगी । यह किसी स्त्रीके हाथों मारा जा सकेगा । १३४ । एक कारण यह भी है कि एक बार लोकाकुल होकर मूलकासुरने एक ब्राह्मणमंचलीके समक्ष कहा था कि चंडी सीताके कारण ही मेरे कुलका नाश हुआ है । इस निष्ठुर बातको सुनकर एक ऋषिने उसको शाप दे दिया कि जिस सती-साध्वी सीताके लिए तू ऐसे अपमानजनक मन्त्रोंका प्रयोग कर रहा है, वही सीता तुझ भी शीघ्र ही मारेगी ॥ १३५-१३७ ॥ मुनिका शाप सुनकर मूलकासुरने उसे तुरन्त मार डाला । फिर उसके घरसे शेष ऋषि चुपचाप बैठे रह गये । मेरे कहनेका मतलब यह है कि उस ऋषिके शाप तथा मेरे वरदानसे सीताके हाथों ही इस अपमकी मृत्यु होगी । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १३८-१४० ॥ रामने ब्रह्माजी वाते सुनकर विभाषणस कहा कि आज मूलकासुरके यज्ञमें विघ्न डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । अब सीता यहाँ आ जायें, तब वाकरोको उसके यज्ञमे विघ्न डालनेकी आज्ञा दी जायगी । फिर राम उससे कहने लगे—तुम जाओ और सीताका अपनी पीठपर बिठाकर यहाँ से जाओ ॥ १४१-१४३ ॥ चलते समय रास्तेमें हनुमानजी दृष्टसे उनको रक्षा करते रहेंगे । रामचन्द्रकी आज्ञाको सादर स्वीकार करके वे दोनों वहाँसे अयोध्याके लिए चल पड़े १४४ । इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गं श्रीमदानन्दरामायणे ५० रामतेजपाण्डेयचरितसंज्ञोत्तनाभावादीकारहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा—उधर रामचन्द्रजीके चले जानेपर सीता अयोध्यामें श्रीरामका स्मरण करती हुई उनके बिलोपसे व्याकुल रहा करती थीं । क्षण भरके लिए भी उनके हृदयको चन नहीं मिलती थी ॥ १ ॥

प्रासादे सा कदा तस्मै कदा प्रासादमूर्धनि । कदा द्वाक्षामदपथः कदा सन्वस्तभूषणा ॥ २ ॥  
 कस्तूरीणां कदा नृत्यं दर्शं जनकान्मजा । कदा जयार्थं रामस्य कार्तवीर्यमपूजयन् ॥ ३ ॥  
 कदाऽऽकरोच्च तुलसीशिवस्थानान् प्रदक्षिणाः । मन्मथानि विप्रेभ्य पाठयमान जानकी ॥ ४ ॥  
 गोमयेनाजनेय सा कुड्यां कन्वाऽर्च्य जानकी । अकरोन्मन्यद् पुच्छवृद्धिं स्वांगुलिमावृतः ॥ ५ ॥  
 छतस्त्रीयसूक्तस्य जयार्थं राघवस्य सा । दुर्गायाः पूजनं निरूप्य भकार नियतव्रता ॥ ६ ॥  
 गणेशं मातुर्निष्कम्भं स्थण्डिले स्थाप्य प्रेमाः । चक्रं दृष्ट्वा द्वागणिं गणेशं संचयञ्जलम् ॥ ७ ॥  
 कार्तवीर्यस्य यंत्राणि स्थापयामास जानकी । भक्तके राघवेन्द्रस्य पूजयामास मवदा ॥ ८ ॥  
 कदा सुमीभूषणा सा न्यक्तालङ्कारमण्डना । जलघ्रांतिके निद्रा नाप तद्विह्वलितना ॥ ९ ॥  
 कदा निरीक्ष्य प्रासादे काकमादं विदेहजा । यदि शीघ्रं राघवस्य दर्शनं मे भविष्यति ॥ १० ॥  
 तर्हि त्वं गच्छ बेगोन नो चेदत्र स्थितो भव । तन्मार्गं वचनं श्रुत्वा काकमूढस्य वेगनः ॥ ११ ॥  
 तेन किञ्चिन्मयाश्रिता वचनं ग्राह्य जानकी । शृणु त्वं राववाग्यानि मां स्पर्शं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥  
 कदा चंद्रं निशि ग्राह्यं त्वं शृणु शान्तले कर्षे । श्रीरामं मां शृणुष्याथ स्वकर्षे, मुखकार्पणः ॥ १३ ॥  
 शुक्लपक्षे द्वितीयायां सीताऽलङ्कारमण्डिता । स्नान्वा प्रासादं शयनमर्वाभिः परिभ्रष्टिता ॥ १४ ॥  
 अपश्यच्छाश्विनं हर्षादेनं रामोऽयं पश्यति । अन्तरेणाथ रामस्य सुयोगो मां भवेदिति ॥ १५ ॥  
 रागे यते कदा सीता हविद्राक्जलदिकं । नान्मानं भूषयामास हविषन्वपिनं विना ॥ १६ ॥  
 खंदनं पुष्पमालाश्च पुष्पशय्यां विदेहजा । नांशीचक्रा श्रीरामचित्रहान्तलीहिता ॥ १७ ॥  
 शकुनान् सा ददर्शाथ श्रीरामदर्शनेच्छया । तुष्टाऽभूच्छकुनैः श्रुत्वा शीघ्रं रामममागमः ॥ १८ ॥

वे कभी अटारीपर कभी छतपर और कभी अंगुली की लाठीमें अपने बस्त्राभूषण उतारकर बैठो रहती थीं ॥ २ ॥ कभी वेद्यामंत्रोंके नृत्य देखकर जो बहलाना चाहता और कभी रामचन्द्रको निजदकामनामें कार्तवीर्य भगवान्का पूजन करती थी ॥ ३ ॥ तुम ही गोपल भाविके वृद्धोंको प्रदक्षिणा करती थीं ब्राह्मण द्वारा मन्थु-सूतका पाठ करवाती थी ॥ ४ ॥ कभी पृथ्वीपर गोबरके हनुमानजीकी प्रतिमा बनकर पूजन करती और हर रोज एक भगुल उत्तकी पुच्छ बनाया करता थी ॥ ५ ॥ ६ ॥ रामचन्द्रकी जयके लिए ब्राह्मण द्वारा ही ही कदाका पाठ करवाती और दुर्गाजीकी पूजा करती थी ॥ ६ ॥ गणेश, माधति तथा शिव, इनको अलग विद्याकर दरवाजे बाद कर लेती ॥ फिर लिहकीसे उत्तपर जलधारा डाला करती थीं ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजीके भक्तपर कार्तवीर्यके यंत्र स्थापित करके सदा सर्वदा उनका पूजन करती थी ॥ ८ ॥ कभी सहेलियोंमें बैठो बैठो अपने अस्कारोंको फेंक देती और सस्त्रियां उन्हें लीटारके पास में आकर मुलायकी बहा करतीं, फिर भी निद्रा नहीं आती थी ॥ ९ ॥ कभी अटारीपर बैठ हुए कोएकी देखकर सीता कहने लगती—‘यदि तुझ गोप रासचन्द्रके दर्शन होनेवाले हों तो ऐ कोए । तू यहाँसे उठ जा, नहीं तो बैठ’ सीताको मान नुनकर कोआ उठ जाता ॥ उससे सीताके हृदयको बहुत कुछ दास देव आया करता था ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके बाद सीता पवनसे कहती—‘हे पवन ! तूमे वही रासचन्द्रका स्पर्श करके पुत्रं स्पर्श करो ही बड़ा उपकार हो’ ॥ १२ ॥ रात्रिके समय कभी-कभी चन्द्रमासे विनय करती—‘हे चन्द्रदेव ! तूमे अपनी टहो किरणोंसे रासचन्द्रके करीरका स्पर्श करके उन सुखवागिनी किरणोंको मेरेपर डालो ॥ १३ ॥ शुक्लपक्षकी द्वितीयाकी सीता विविध प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंको पहनकर सस्त्रियोंके साथ प्रासादके ऊपर जाती और इस वादनासे चन्द्रदेवका दर्शन करती कि राम आज जहाँ कहीं भी होंगे, चन्द्रमाका दर्शन अवश्य करेंगे । ईश्वर चाहेगे तो शीघ्र ही हमारा और उनका मिलन होगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ जबसे रासचन्द्रजी गये थे, तबसे उन्होंने अपने करीरमें न हल्दी लगायी, न आँखोंकाजल दिया और न किसी प्रकारके वस्त्राभूषण पहने ॥ १६ ॥ औररामचन्द्रके विरहानुसृत पंडित सोलाने चन्दन, पुष्प, फूलोंका लाला, फूलकी लाल्या आदि कुछ भी वहीं मजूकीकाद किया ॥ १७ ॥ रामके दर्शनोंकी इच्छासे ही सदा शकुन उड़ाया करती थीं । यदि

मवेदिति ससीयुक्ता ददौ सर्वान्पुष्पकराः । कदा पश्यदं सोता न यया राषवं विना ॥१९॥  
 नैका दस्यौ कारि सीता स्वाम्यने द्वर्तनं जहौ । न मिहान्न न नाम्बुज न सीतं केशवधनम् ॥२०॥  
 अंगीचकार श्रीगमश्मिहान्नलोदरा । मक्षपणं म नानेन गुरुरेणाकरोन्कदा ॥२१॥  
 माकरोन्सम्मितं वक्ष्ये नोदराप्यऽन्त्र इदं मा । अन्याभिर्भोगैः नानूनं गुरुष्टमवन्कदा ॥२२॥  
 पर्यङ्के अयनं सीता नकरोद्राषव विना । गुरुं न ददशेन्यं शुभं विष्टयादम् ॥२३॥  
 न दधौ वसनं चित्रं न चित्रां कंचुकीं दधौ । न वप्यौ दान्दुज मा देहव्यगणभूमिषु ॥२४॥  
 न वप्यौ वरपुं स्नातुं यया नोपवनं वनम् । भ्रातृम न यया सीता न तथा पुष्पाटिकापु ॥२५॥  
 न चकार स्वतो दृग् मागम्यानि विरेहजा । वक्ष्यमि दित्रवर्त्म धर्मोत्थामास जानकी ॥२६॥  
 नियमानकरोन्नाना देवीनां च इषड् प्रथक् । निर्मलं जनधन्यं दायं निम्न विरेहजा ॥२७॥  
 चरकानां पदं मास्तमर्पयामि हनुमते । पण्डिताय गणगज प दास्यामि पुष्पान्वितान् ॥२८॥  
 धिट्टान्नेनापि नैवेद्यं ते दास्यामि गणायिष्व । दमे न्यां बालदानं च दशशायि प्रमोद मे ॥२९॥  
 चण्डिके त्वां प्रदास्यामि रक्त जिह्वोद्व न्यदम् । मृदुवन्नं मायमपुष्कं बलिद्विपममन्त्रितम् ॥३०॥  
 क्षीघ्रं रामो जपं प्राप्य शिशुभियांतु वै पुगम् । मंदवारं करिष्यामि वचं नोपोषणान्वदम् ॥३१॥  
 नोपपोषयामि मधुरं नोपपोषयाम्यहं धृत्वा । सायमेकं करिष्यामि जनान्येवं सविष्णुगान् ॥३२॥  
 कृष्णपक्षे तृतीयायां चतुर्थ्यां वा महेश्वरि । किञ्चिन्किञ्चिन्मामि मांमि तिलवृद्धिं निपाय च ॥३३॥  
 गुहेनाह तिलन्मोक्षये वाचस्त्रुं गमदर्शनम् । भविष्यते कुशलार्थं लक्ष्मणार्थं च वपुमि ॥३४॥  
 मन्त्रं नवगर्भं च सखीभिश्च करोम्यहम् । एकस्मिन्नेव दिवसे नवभिः प्रमुदस्ये ॥३५॥

रावण मन्त्र उठ जाता जो बड़ा हर्ष हुआ था । वे समझता कि तब ही रामकन्दर्वाक दशन होगा । इसी क्षणमें सखियोंको वे मिठाईकी बोटवा बी । जबकि राम पादश गये, तबसे वे किसाके घर नहीं गयी ॥ १८ ॥ १९ ॥ तभीसे सीता वही सवेरों नहीं बैठती, गगरये जबटन नहीं लगाती, घिसाई नहीं खाती, नाम्बुज नहीं चरानी और अपने वेशवा भी नहीं मंगान्ती दी । जबसे राम गये, तबसे उन्होंने किसी पुष्पक साथ सम्भोजन नहीं किया ॥ २० ॥ २१ ॥ तथा किसीने गुरुगकर नहीं बालों, ऊपर सूँठ उठाकर किसीको कोर नहीं निहारना, तभी किसी एकदने उठ नहा दास दाया और कभी भी उल्टी आगमाको चैन नहीं मिली ॥ २२ ॥ तबसे विरह पीन सीतान कभी गणायर भजन नहीं किया और विरहसे पीने पड़ रहा, अपने मुखमण्डलक शांति नहीं देखा । न उन्होंने कथा रहूँ बिरह करके रहने और न रहूँ बिरहो चाली ही घाटन की । तबसे वे कथा दम्भारक चोखदवर नहीं पडा हुई ॥ २३ ॥ २४ ॥ करवून न करनेको नहीं गये और किसी वन या उपवनमें सीर करने नहीं गयी । किसी अंगीच तथा पुष्पाटिकामे भी नहीं गयी ॥ २५ ॥ तबसे उन्होंने कोई मंगलिक कार्य नहीं किया । अनेक प्रकारकी गुरु देदेवर उन्होंने साहसियोंको प्रसन्न किया और कितने ही लखके सब करक अनेक देवियोंको इत्राल की । इस तरह बहुतसे सतीको करके वे अपने उन मन्त्रियोंको विनार्त रह्यो ॥ २६ ॥ २७ ॥ सदा इन लख सतीकी मानकी सी—हे ईश्वर ! और तबसे यदि रामचन्द्रजी विजयी होकर अपने साइयों और राम समेत जंघा बगोषवा वापस आयेगा तो हुआदज । वे बड़ा मनी भावा बनवाकर आपको पहनाऊँगा । मणजरी । आपको पूरी कोर लड़ुना भाग्य करे । अनेक प्रकारके पक्वान बनवाकर आपको समर्पण करूँगे । हे पुँ ! मेरे ऊपर प्रसन्न हँओ । यदि राम लोट आएँ तो आपके लिए बलिदान करूँगे । हे चण्डिके ! मैं आपको विविध प्रकारके रसदिह अन्नो तथा बलिद्विपके साथ अपनी जीभका रक्त चढ़ाऊँगी । लंच मज्जुलवारका सत करूँगी । एक महुँने एक मिठाई और या न खाऊँगी ॥ २८-३२ ॥ हे महेश्वरी ! हनुवतकी मुनीया तथा कंचुकीको दोदपाड़े मुझ साथ लिये खाऊँगी । वह वत तब तक चरता रहेगा, जब तक मुझे लक्ष्मणारि आतामोके साथ श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन नहीं मिल्यो ॥ ३३ ॥ हे चण्डिके ! यदि मुझे

रविवारे करिष्यामि रवेऽहं पूजनं तव । इत्थं दिने दिने सीता नियमानकरोचदा ॥३६॥  
 आश्वपौरर्घ्यदानं च कारयामास जानकी । न सा सुखाय रात्री तु दिवा वा वरचरिणी ॥३७॥  
 एव दिने दिने सीता श्रीगमविग्राहुरा । न क्षमाय क्वापि देशे श्रीगमापितमानसा ॥३८॥  
 एव सा उषिलाद्याश्च चणिकाद्यापि वै स्त्रियः । स्वस्वस्वामिब्रियोगाभिज्वलिता व्याकुलाः क्षणम् ॥३९॥  
 न सुप्तं क्वापि वै प्रापुः स्वकांतापितमानसाः । सर्वास्ता नृदुर्नारिणो मणिभूमी पृथीरस्रः ॥४०॥  
 काचिभर्तयति क्रीडामयूषं न मुदा तदा । शुक्रं न पाठयन्त्यन्या १०००स्यं कुतूहलात् ॥४१॥  
 लालपेक्षकुलं नान्धा नालापयनि मानिकाम् । अपगाऽनीव मत्तमा नैव सेलति सारसैः ॥४२॥  
 मेजिरे न विलासं ता रेमिरे नैव मदिरे । मर्खाभिरुचिरे नालं वीणावाद्यं न शुश्रुवुः ॥४३॥  
 कल्पद्रुमप्रसूतं यद्रवतन्तुसुधोपमम् । मदारकुसुमामोदं न पपुर्मधुर मधु ॥४४॥  
 योगिन्य एव ता श्रुधा नासाग्रन्यस्तलोचनाः । अलक्ष्यग्यानमधानाः स्वनस्यापितमानसाः ॥४५॥  
 चद्रकांतमणिच्छन्ने स्रग्द्वारिकणटवैः । क्षण रातायने स्थित्वा जलपत्रेक्षण कचिन् ॥४६॥  
 रचयन्ति क्षण क्षय्या दीर्घिका मोचिनीदलैः । वीज्यमानाः मर्मीभिस्ताः क्षीतलैः कदलीदलैः ॥४७॥  
 इत्थं पुनसमां रात्रिं दिनं ता मेतिरे सदा । कथं विद्वद्गणां कृत्वा विह्वलाः मन्त्रगाः स्थिताः ॥४८॥  
 एतस्मिन्नवरे सीता निगमैश्च वतादिभिः । ममानीनावाज्जनेश्वराम्बुलीयतुः पुरीम् ४९॥  
 प्राक्पुरञ्च भृजो वामः सीताया नयनं तथा । सुचिह्नं मन्यमाना मा किंचित्पुष्टाऽभवत्तदा ॥५०॥  
 अप ती कंपनोद्भूतगह्वरी सदनि स्थितम् । अयोध्यायां वृषकेतु वृषं कथयतो जवात् ॥५१॥  
 तच्छ्रुत्वा वृषकेतुः स हृत्त मीतां न्यवेदयत् । सा तु तुष्टमनाः सीता तस्मिन्नेव दिने शुभे ॥५२॥

सीता नेरे प्रभुका दर्शन मिल जाय तो मैं अपना सहैलियों के साथ मकरानका चत करेगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे  
 मूर्य भगवान् ! प्रत्येक रविवारको मैं आपका विधिवत् पूजन करूँगी । इस प्रकार रामके वियापवान् दिनोंमें  
 सीता प्रतिदिन अनेक प्रकारकी भोगी गाना करती थी ॥ ३६ ॥ वे वाद्यगाने अस्वंगान बजाती रहती थी ।  
 रात-दिन कभी नहीं सोती थी । इस तरह रामके वियोगसे दुःखिनी सीता कहीं भी सुख नहीं पाती थी  
 ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसी तरह उषिला और चणिकादिक स्त्रियाँ भी अपने-अपने स्वामियों के वियोगरूपी  
 जलिनसे दग्ध होकर व्याकुल रहती थी । वे समस्त स्त्रियाँ अपने महलोंकी मणिगयी भूमियोग्य  
 लोट-लोटकर दिन काटती थीं । उन्हें समाजके किसी भी प्रेक्षण मानन्द नहीं मिलता था ॥ ३९ ॥ ४० ॥  
 उनमेंसे न कोई श्रीरामपूर नचाती, न विजरेमें बैठे हुए तानका पहाती, न पाले हुए नेवलको प्यार करती,  
 न मैना पहाती और न कोई रंग सारसोंके साथ खेलवाड ही करती थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन्होंने किसी सुलका  
 उपमान नहीं किया । महलमें उन्होंने आनन्द नहीं लिया । वे न अपने सहैलियोंके साथ हँसी-दिल्लगी  
 करती थी, न वीणा वज्रानों और न मुनती थी ॥ ४३ ॥ कल्पवृक्षके पुष्पसे उत्पन्न कुसुमकी समृतसरीली  
 भुगन्धिका को उपयोग नहीं करती थीं । ४४ ॥ वे नाटिकां योगियासे तमान अपनी दृष्टि नासाग्रभागमें  
 रोञ्कर रात-दिन अपने-अपने पतियोंका ध्यान किया करती थीं । उन्होंने अपना-अपना मन अपने-अपने  
 पतियोंकी वरपण कर दिया था ॥ ४५ ॥ वे अराखमें लगे हुए छन्दकार मणिके समीप, जिनमें सदा  
 रातके समय आलकी चर रा बहा करती थी, वहाँ बैठकर कुछ देर खड़ीको निहार करती थीं ॥ ४६ ॥ कभी  
 कमलके पलकी शय्यापर सोनी और हाथियास कनक पत्तिका पद्या झलवाती थी ॥ ४७ ॥ इस प्रकार एक-  
 एक रात्रिको पुनः समान मानकर बड़े सन्तपसे विह्वल हँकर क्षम्य बिताती थीं । जब सीता इतनी  
 कठिन यंत्रणा पाग रही थी, तब समय गरुड और हनुमानजी वहाँ आ पहुँचे । तब सीताको बायीं बाँध  
 तथा मुँहा फड़कने लगी । इस शुभ शकुन मानकर वे अपने मनमें कुछ प्रसन्न हुई ॥ ४८-५० ॥ थोड़ी देर बाद  
 गरुड और हनुमान्जी राजसभामें बैठे हुए वृषकेतुके पास पहुँच और उन्होंने रामका संदेश सुनाया । ५१ ॥  
 उसे सुनकर वृषकेतुने सीताको बतलाया और रामके आज्ञानुसार सीता उसी दिन कुछ वाद्यगो, पुरोहितों

रामचन्द्रपादाङ्गुलिं गच्छन् वेगवत्तरम् अग्निहोत्रं पुरःस्थं स्रुत्वाग्निं प्रपुणेधमा ॥५३॥  
 पतिं विनाऽग्निना नाग्नी मीमांसुस्तदप्यनं प्रजेन । मदीयाऽहं न विज्ञेयः मीमांसो विहायमा ॥५४॥  
 मये प्राप्ते प्रवामोऽपि क्षाणामुक्तोऽग्निनिधिः सह । पतिना गृहीतानां च न दोषः कथ्यतेऽत्र हि ॥५५॥  
 भूमिर्गर्भाक्षयार्थं न हेतुश्चरितं चरेत् । ननः स गृह्यायाम् माकृतिर्मा व्यसंतः ॥५६॥  
 पश्यतो विविधान् देशान् मीमांसकां ययौ मुदा । ददर्श कल्मषभाधः पुण्यकस्थं रघूत्तमम् ॥५७॥  
 ननामं चित्ता सक्त्या माऽवक्यं स्वभाविषात् । तां दृष्ट्वा गघनः प्राह सोमे नैऽप्य ह्यनं कथम् ॥५८॥  
 विवर्णमभ्यष्टिप्ते कृशाश्च एतिलक्ष्यते । तटामवचनं श्रुत्वा जानकी सन्मिरानमा ॥५९॥  
 विलम्बयती विनोदेन राघवं प्राह मादरम् । स्वाभिमुख्यद्विहादेतत्सर्वं त्वं विद्धि राघव ॥६०॥  
 न निद्रासि न आगर्षि नाङ्गनासि न गिराम्यदम् । व्यासस्य हं केवलं त्वं योगिनोव वियोगिनी ॥६१॥  
 निद्रादविद्रनयना स्वप्नेऽपि न तवाननम् । आनदि सर्वथा यन्मे मंदभाष्या विलोकये ॥६२॥  
 स्वदाननश्च निनिधिं विविधं भूषणं । भूषणं । उद्दिनोऽपि न चालोकि तपं वै स्ववतुकायथा ॥६३॥  
 त्वदात्मपममात्मप कल्पयन् किल काकलाम् । कोऽकिनोऽपि मयाऽऽकृणो नालङ्घ्यकोर्णकथंया ॥६४॥  
 नाना यथाश्च निवमा जयार्थं तव राघव । कुर्वन्वा मम वैवाभून्मुखां त्वद्विरहाग्निना ॥६५॥  
 ततो विहरस्य श्रीरामस्वामलिंग्य पुनः पुनः । स्वार्थांस्तन्तुनोऽप्युष्टुः वर्षी चित्राचराभृतम् ॥६६॥  
 अथावशरिणे राघवः स्नान्वा स्नातां विदेहजाम् । अश्वविद्यां शूद्रविद्यामस्त्राहानविसर्जने ॥६८॥

तथा अग्निका साथ लेकर गहड़पर जा बैठी ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ यह एक नियम है कि स्त्री बिना अग्निके अपने  
 गर्वकी संभाको लपिकर नहीं रहती । अग्निका साथ ने लेना यह दाय नहीं रहता ॥ ५४ ॥ दूसरे एक  
 जगह नाश यह भी बताया है कि यदि किसी प्रकारके स्त्रियोंका व्यवहार हो जाय तो अग्निको साथ लेकर  
 यह प्रवास भी कर सकता है । यदि उस समय यह वृत्तिसे विमुक्त हो तो उसको ऐसा कर्मपर कोई दाय नहीं  
 लाता ॥ ५५ ॥ सरस्वतीकविवागिनियो मया उल्लेखोंके चाहिए कि वे देवताओंका अनुकरण न कर । अन्तु,  
 स ना गहड़पर सवार हुई । हत्यारण मीमांसको रण बरन लग्य और मीमांस रास्तक अलक दशाकी देखनी हुई  
 मीमांसकी करक लगी । इस प्रकार बहुत मोघ लक्ष्मण पहुंचकर उन्होंने देखा कि रामचन्द्रजी वहाँ कर्मभूतक  
 नीच बैठे हुए हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वहाँ पहुँचाने उतरकर उह ॥ ५८ ॥ रामचन्द्रका प्रणाम किया । रामने कहा—संत ।  
 मैं देखता हूँ कि तुम्हारा मुह कुम्हलया हुआ है और शरीर दुर्बल हो गया है । रामकी बात सुनकर मुम्कराली  
 हुई सोता लज्जाके साथ कहने लगी—हे स्वामिन् ! यह सब आपका विरहका प्रभाव है ॥ ५९-६० ॥ मुझ ने  
 सोच काती है, न जाय हो पाती हूँ और न जायाँ पता हूँ । आपसे विमुक्त होकर योगिनोके समान सदा  
 आपका ध्यान किया करता हूँ ॥ ६१ ॥ निद्राकी वृत्ति मरी और स्थानम जापके ही मुझको रस्ता करती  
 है । उसीसे इनका आनन्द मिथता है ॥ ६२ ॥ आपके मुलका प्रतिनिधित्वरूप चन्द्रवा भी उदित होता है  
 ता मुझे अच्छा नहीं लगता, स्नानका दूर करनेका कामना भी उसकी बात निहारनेको मन नहीं करता  
 ॥ ६३ ॥ यद्यपि तुम्हारी ही बीबीका सखी कोकिलको रोम होनी है, किन्तु वह भी मूनेको इच्छा नहीं होनी ।  
 उसकी बोल बानीको मुझके समान लगती है ॥ ६४ ॥ यद्यपि तुम्हारे अङ्गोंके स्पर्शके समान ही मधुर चूने  
 मीमांस मिली वायु भी है किन्तु उमका भी मैंने कभी आनन्द नहीं किया ॥ ६५ ॥ आपकी निजपके लिए मैं  
 विविध प्रकारके प्रता और उपशान्तोंको करता रहूँ । आपकी विरहाभित्तिसे संतप्त होकर कारण कभी मुझे  
 गुल नहीं मिला । ६६ ॥ इसके अन्तर हैमकर रामने बार-बार सोताको अपने छातीसे लगाया, स्नानम्पर्क  
 किया और होठोंको चुमा । ६७ ॥ इनके बार-बार होने दिव रामने स्नान किया, सोताको भी स्नान करवाया  
 और सब अस्त्रविद्या आभरविद्या एवं उनके आवाहन तथा विसर्जनकी रीति विस्मरली । कहनेका तात्पर्य यह कि  
 उन्होंने जोड़े ही समयव भीषाकी समस्त धर्मद्वयी निष्ठा दे दी । रामका आज्ञासे लक्ष्मणने स्व तैयार

शिशुयामास सकला धनुर्विद्यां सविस्तराम् । रामाज्जवा लक्ष्मणोऽपि रथं सिद्धं चक्रार स' ॥ ६२ ॥  
 दारुकाः सारथिर्यस्मिन् ब्रह्माण्यस्त्रायन्नेकशः । गदायथं तु यत्रास्ति यत्रास्ति गरुडो ध्वजे ॥ ७० ॥  
 यामेभन् शैव्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकाः । मेघपुष्पश्च चत्वारो बाधुनास्तुग्गोचरा ॥ ७१ ॥  
 यत्र छत्रं चरं दिव्यं हेमदंडं विराजते । यस्मिन् शुक्ले धामने द्वे यस्मिन्कीलादिरुक्मज्जम् ७२ ॥  
 तं रथं रावयो दृष्ट्वा ज्ञानको वाक्यमब्रवीत् । सीते स्थित्वा स्यदनेऽस्मिन् जहि त्वं मूलकासुरम् ७३ ॥  
 तथेति रामवाक्याच्छ्रयां सीता प्रचोदयत् । माममी साऽपि तं नन्वा परिक्रम्य पुनः पुनः ॥ ७४ ॥  
 आरुगेहं रथं वेगाद्घोरा धर्धरनिःस्वना । ण्डस्मिन्ननरे रामप्रेरिता ज्ञानरोषयाः ॥ ७५ ॥  
 लक्षां गत्वा पूर्वश्वं हवनाच्च प्रचालयन् । ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीराघवं पुनः ॥ ७६ ॥  
 ययौ स्थित्वा रथे योद्धुं कोपेन मूलकासुरः । मार्गे भुवि पपाताम्य मुकुटः स्खलितो भुवि ॥ ७७ ॥  
 आनिवर्त्यसुरो रणभूय जवात् । सीताछायाऽपि सैन्येन ययौ मालक्षणादिभिः ॥ ७८ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकाण्डे पूर्वाध्याये सीताकिरहो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामके द्वारा राज्यका विभाजन )

श्रीरामदास उवाच

अथ छाया टणत्कृत्य शार्ङ्गं तन्व्यं महद्भुजः । ययौ रणभूय वेगात्तां ददर्शसुरोऽपि नः ॥ १ ॥  
 कगलदंष्ट्रानयनां विद्युत्पिशाचिरोरुहाम् । तालजघां शूर्पपादां दरिद्रकपां घनप्रभाम् ॥ २ ॥  
 लोमशां प्रललच्चिह्नां विदीर्णास्यां महच्छिराम् । तां दृष्ट्वा कौभङ्गिः स भीतः प्राह स्खलद्विरा ॥ ३ ॥  
 का त्वं समागताऽस्य किमर्थं योद्धुमिच्छसि । मम सर्वं वदस्व त्वं मदमे वा स्थिरा भव ॥ ४ ॥

नित्या ॥ ६५ ॥ ६९ ॥ उस रथका दारुक सारथी था, विविध प्रकारके जन्त्र शस्त्र एवं गदा-यथ उसमें रखे थे और रथक ऊपर गरुडसं अंकित पताका फहरा रही थी ॥ ७० ॥ उसमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चार घोड़े जुते हुए थे ॥ ७१ ॥ उसपर बड़िया छत्र लगा था और सुरणक ण्ड लगे दो सफेद चमर रखे थे । उस रथमें जगह-जगह सुवर्णको कंकड़ें लगी हुई थीं ॥ ७२ ॥ इस प्रकार इस सुसज्जित रथका देखकर रामने सीतासं कहा - सीता भव नुम इस रथपर बैठकर मूलकासुरका सारो ॥ ७३ ॥ सीताने रामकी बात बड़ीकाय का और अपनी दामल छायाकी प्रेरित किया । उस तापसी छायारूपिणी सताने बार-बार रामकी प्रदर्शिका की और धर्धर वाद करत हुए रथपर जा बैठी उसी समय रामके द्वारा प्रेरित वानर लक्ष्मण पहुंचे और उन्होंने मूलकासुरको हवनकर्मसं विचलित कर दिया । फिर लोटकर वे वानर रामके पास पहुंचे और सब समाचार सुनाया । ऊपर मूलकासुर बुझित होकर रथपर आ बैठा और संग्रामके लिए तैयार पड़ा । जात-जात रास्तेमें एक जगह उसका मुकुट माथसे खिसककर जमीनपर गिरा और वह स्वयं भी फिसलकर गिर पड़ा ॥ ७४-७७ ॥ फिर भी वह लौटा नहीं, उसी गवक साथ रणभूमिमें पहुंचा । इधर सीता भी रथपर बैठी और अपने लक्ष्मणादि वीर सैनिकों के साथ रणभूमिमें और चल पड़ी ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा-इसके अनन्तर उस छायायुगी सीताने अपने धनुषका विकराल टंकीर किया और संग्रामभूमिमें जा डटी । तब मूलकासुरने भी उन्हें देखा ॥ १ ॥ उस समय सीताके वड़े बड़े दांत, बराबरी कीर्ति, विजयके समान पीतवर्णकं केशपाश, तालकी नाई लम्बी चौड़ी जाड़े, सुपकी तरह चौड़े पैर, कन्दराके समान भयावना तथा मयक समान काला मुँह, लम्ब्याकी जंघा और बड़ा भारी माया था । उन्हें देखकर कृष्णकर्णके बटने धक्काकर कहा-॥ २ ॥ ३ ॥ तुम कौन हो ? यहाँ रुद्ध करनेके लिये क्यों आयी हो ? इन बातोंका



यदि जावितुमिच्छासि न भयम् । अथ तदा तदा विमानं गृह्णामि ॥ ५ ॥  
 तमुवाच तदा छाया गिरा निर्देयी गिरात् । मूलकापुराणां यती यो नृपः ॥ ६ ॥  
 यन्मिमिक्षां नृपः महं तदा तदा प्रविष्टा । मन्त्रपात्रेन विदुः पूर्वं नृपः ॥ ७ ॥  
 तस्यानुष्ठानं गमिष्यामि नृपः । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ ८ ॥  
 ततः मोक्षं धनुर्धरा छायां वपुः नृपः ॥ ९ ॥  
 ददृशुर्नरः सर्वं पृथक्कृतमास्थितः । मानसां गुरुवर्गस्तु कल्पवृक्षतले स्थितः ॥ १० ॥  
 हृष्यमाणिक्यपथके दामोभिः परिर्द्विजितः । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ ११ ॥  
 युद्धं ददृशुः तन्महायामुलकायुः । मूलकापुराणां यती यो नृपः ॥ १२ ॥  
 छित्त्वा स्ववाणजालं स्नानं पुनर्वाणान्मुषोच सा । चतुर्भिस्तुमान् हन्वा युद्धं कुरु च धनुः ॥ १३ ॥  
 मा विमोद विभिर्वाणैस्तदा यज्ञां मदातुरः । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १४ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १५ ॥  
 एवं तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १६ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १७ ॥  
 एवं तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १८ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ १९ ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ २० ॥  
 तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा । तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा तदा ॥ २१ ॥

उत्तर दो ओर यदि गुरु करने का प्रिय होता तो उसे भोग दृष्टि जाना । जिसका लक्षणक लिए कृत्यं  
 दुष्टाय नहीं है । यही हा दर बाद सीता आकाशम गमक साथ विमानपर बैठे हुई दिखायी पड़ी ॥ ४ ॥ ५ ॥  
 वही हंस अपना मनधार बाणों पर चलाया भा मयल हुई सीता कहने लगी । ह मूलकापुर ! इस समय  
 उप एवं कारण रिय मे घटित कराना है । तमक करण गुरुता साथ नृप नृप ही गया था और तन्म  
 वस्तु ही गया था, वही सीता मे है । तमन मर वक्षाना, एक वक्षानका मर डाला है ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसक वरस  
 आग गुरु मारकर मे उरक आग मे हा जलन । इनता नृपक म तान अपना मनुष उठाया और वक्षान  
 बाण बाणों मे मूलकापुर पर प्रहार किया ॥ ८ ॥ तदा तन्मन उप दत्तन भा अपना धनुष वक्षालकर सावाक  
 उपर कई बाण चलाये । उन दानक उस मनुष्य युद्धका दानक लिए मे बहुतन राज तथा मानर पुत्रक  
 विमानपर बैठे थे जिसका हनुमन्त न सटावनी वृत्ति जीवित कर दिया था ॥ ९ ॥ १० ॥ हा दर बाद मानरीक  
 दत्ता छि राग हाताके साथ व वृक्षक छाया मे स्थानाटन मानपर बैठे ॥ १० ॥ बहिर्वा पला सल रही  
 है और उनक बाणपथ तकिया लगी हुई है ॥ ११ ॥ रामचन्द्रना वृक्ष वक्षक छाया मे सावा तथा  
 मूलकापुरका युद्ध दत्तन रहे । सीता मूलकापुरका औरसे बाण बाणों का प्रयोग साथ काटकाटकर अपने  
 वक्षोंका उसक ऊपर छाड़ना जान थी । चार बाणों सातान मूलकापुरक रथ मे नुते थे और तागसे उसक  
 बाणका मुकुट, धनुष तथा कवच काट डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ ऐसी अवस्थामे वह वैद्य दीडता हुआ गया और एक  
 दूसरे रथपर सवार हुंकर फिर सीता मे युद्ध करनेक लिए भा डटा ॥ १४ ॥ वही पदुवन ही उसन सीतापर  
 वक्षमन्त्र छाड़ा । से तामे मेधात्मका प्रयोग करके उसके वक्षपरका बलि कर दिया ॥ १५ ॥ फिर उसने सीता  
 पर पर्वताश्च छोड़ा । सीतामे पर्वताश्च छोड़कर उसका निवारण किया । इसके अनन्तर वेणु सार उसन  
 सर्पद्विज कलापा । सीतामे मरुदन्त्र छ डकर उसे बर्ध कर दिया । १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार सीता और  
 मूलकापुरमे सात दिन अव्यन्त महान् युद्ध होता रहा । तदात्तर कुचैत हाकर सातान मूलकापुरका बाण करनेके  
 लिए अपना एक महान् भस्त्र चलाया । जिससे पृथ्वी वक्षमाले लगी और रुद्र अपने सर्पदाका कविकट  
 बर्धनी लहरे उछालने लगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ इसी दिशाएं धूमके वक्ष हो गया और उन वक्षपरवाणिनी

निनेदुर्ववाधानि देवाद्याकाशमाश्रिताः । वषट्तेः कुमुदछायां गम रीतां मुहुमुहुः ॥ २२ ॥  
 ततो निवर्त्य सा छाया ययौ मीनान्कि पुनः । नन्वा गम च रीतां च सातादहं लयं यया ॥ २३ ॥  
 तदा निनेदुर्ववाधानि ननुतुश्चाप्सरोमयाः । तुष्टुमुममिव यश्च जगुर्गीत नटादयः ॥ २४ ॥  
 ततः सुगमैः सर्ववैद्याः आगमयं ययौ । नन्वा गम च रीतां च तुष्टुम जनकीं मुदा ॥ २५ ॥

बह्मिनीच

वनकवाग्मजे गणवप्रिये जनकभारगुरे भक्तपालिके ।  
 दशगन्धान्मजप्राणजह्नुमे तव पदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ २६ ॥  
 मूलकामुग्धातिनि गमरक्षिते रामसंचिते ।  
 राममोहनि स्वदनाश्रिते स्वप्नदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ २७ ॥  
 गममञ्जकाभिष्टिते रमे रामरञ्जिते गमलालिते ।  
 गमसंस्तुते रामरञ्जिते स्वप्नदाश्रिते शिरोऽस्तु मे ॥ २८ ॥  
 लोकपावनि शोरने वरे भूमिकन्दके लाकपालिके ।  
 पयलोचने धरात्मजे परे स्वप्नदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ २९ ॥  
 कंजलोचने नागगमिनि स्वयम्भूषणे रम्परूपिणि ।  
 रुक्मभूषिते मौक्तिकशक्तिने स्वप्नदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ ३० ॥  
 तत्पुद्गलने विश्रवामिनि नमवमि सर्वदा स्वयमेवकान् ।  
 मुनिविभूतं सदा दुःखदायिके स्वप्नदाधुजातिः शिरोऽस्तु मे ॥ ३१ ॥

सीताके उस महान् अश्वत्थ बातकी जगत् मूलकामुग्धा की प्रार्थना करने कर दिया ॥ २० ॥ उसका पद  
 रत्नानं राजद्वारपर जा गिरा । हम सबके लक्ष्मी के हो । प्रणाम कर गया ॥ २१ ॥  
 उधर देवताओं ने प्रसन्न होकर अपनी दुन्दुभी बज डी जपने लगे । विभव की वीर्य के आकाश में भाँवे और  
 राम तथा सीतापर उन्हीने गुणवृष्टि की ॥ २२ ॥ हम सब साक्षात् प्राण प्राणमय होकर रामके समीप  
 पहुँची । वहाँ वह राम तथा सीताकी स्तुति की प्रणाम करके उन्हीने प्रणाम किया ॥ २३ ॥ उस  
 समय फिर देवताओं ने अपने मण्डपाय शत्रुघ्ने और अश्वत्थाने नमस्कार । मन्त्र कर्तव्यवादिकोंने सीता-  
 की स्तुति की और नटान उनका यज्ञगान किया ॥ २४ ॥ बादा दिन बर बर बढ़ा । मन्त्र दक्षिणोक्त साथ  
 रामचन्द्रके पास पहुँच और उनका नवा मीनान्कि प्रणाम करके हम सब रम्परूप में जपने लगे । कहाने कहा-हे  
 वनकात्मजे ! हे सुवर्णदंश दमकनेवालों भद्रमूर्ध्निधारीणी सन्त ! हे गणप्रिये ! हे भोक्ता पालन करनेवाली  
 माँ ! हे रामचन्द्रकी प्रियसा ! हम ऐसा आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलकी ओर  
 बना रहे ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे मूलकामुग्धातिनि ! हे रामरक्षित हे रामसंचित ! हे रामकी दुग्ध कर्नेवाला !  
 हे रथपर आरुढ़ होकर दुष्टोंका दण्ड कर देनेवाली संतु ! हम आज्ञा दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे  
 चरणकमलका श्रमर बना रहे ॥ २७ ॥ हे गमक साथ दिव्य निहाननपर बैठनवाला ! हे वक्षो ! हे राम-  
 जीविते ! हे रामलालिते ! हे रामसंस्तुते ! हे रामरञ्जिते सौन ! हम आज्ञा दो कि हमारा मस्तक सदा  
 तुम्हारे चरणकमलका श्रमर बना रहे ॥ २८ ॥ हे लाकपालि ! हे श्वा ! हे भजे ! हे वरे ! हे भूमिकन्दके !  
 हे लोकपालिके ! हे पयलोचने ! हे धरात्मजे सीते ! हम आज्ञा दो कि हमारा मस्तक सर्वदा  
 तुम्हारे चरणकमलका मधुर बना रहे ॥ २९ ॥ हे कंजलोचने हे नागगमिनि हे स्वीयसत्सुखे ! हे  
 रम्परूपिणि ! हे रुक्मभूषिते ! हे मौक्तिकशक्तिने सन्ते ! हम आज्ञा दो कि हमारा मस्तक  
 सर्वदा तुम्हारे चरणोंका शिर बना रहे ॥ ३० ॥ हे कमल सराव मुखवाली सौन ! हे विभवसने  
 तुम सब अपने मस्तकी रक्षा करनी हो । ऋषियोंको दुःख देनेवाले राजाओंको दुःख देनेवाली  
 हो सीते ! तुम ऐसा कुछ करो कि जिससे हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका भूझ बना रहे ॥ ३१ ॥

त्वन्मुखेक्षणान्नमः पतिः प्राप मक्ष्यं रामसन्निधे ।  
 त्वद्गुणैर्लक्षणहृदिजना मृगी त्वत्पदावुत्तलिः जिगेऽस्तु मे ॥३२॥  
 कुशलमंत्रिके जलम्हानने जलहृदेष्वग्रे पापदाहिके ।  
 मधुसूदने नृपुञ्जने त्वत्पदवुत्तलिः जिगेऽस्तु मे ॥३३॥  
 द्रष्टुमृत्तम ते रिमन्मने तेऽधरः शुभो विमन्त्रिभः ।  
 अद्य वै त्वया मन्त्रकामो माम्निो रणे न हि धिक् ॥३४॥  
 प्रकृषेरितं सक्कमुत्तमं मार्कण्डेये पटुणि यः पुमान् ।  
 सर्ववाञ्छां लभति मेऽत्र नाशानुवाप्सुमां रामसन्निधिन् ॥३५॥

इति स्तुत्याऽमर्त्रिका वस्त्ररुक्मण्डनैः । मर्तां राम च मूर्त्यं राघवेणापि पूजितः ॥३६॥  
 प्रययौ राघवमन्त्र सन्त्यक्तं लोभमन्त्रं नतो विमंषयः प्राह लक्ष्मणं न त्वया पुनः ॥३७॥  
 ममामरमिदानीं त्वं मां कृतां प्रोक्तं नयेते प्रतिन्यायं तदाश्वं मधुनन्दनः ॥३८॥  
 विमानेन ययौ लंकांमध्ये विमानं प्रापः सके विभीषणं राज्ये लक्ष्मणं त्वत्पदेचयत् ॥३९॥  
 तदा महोत्सवस्यार्थानन्दस्य ॥ ४०॥ तदा विभीषणो रामं मर्तां तं हृदिभ्रमणादिकान् ॥ ४०॥  
 दक्षैराक्षणी रत्नैः पूज्यः न राघवः अक्षयमस सत्वेभ्यः स्वीयं रामाय राक्षसः ॥४१॥  
 तदा कपिलवाराहमूर्तिः रामं पूजित्वा रामन्तं रोचयन्मानं रोडपि राघवाय तां ददौ ॥४२॥  
 मनसा कपिलेनैव पुनः मूर्तिं विनिरित्वा विष्कालं लक्ष्मणाय लब्ध्वा प्रयवना तु या ॥४३॥

हे रामसन्निधे तुम्हें देखते हैं । जो राक्षस मन्त्रकाम ने मर्ता को मारा । तुम्हारी आँखोंकी गोभा देखकर मृगी लजित हो जाती है । इस प्रकार पदरत्न सन्त्यक्त है मर्ता । हमें तो अन्धकार है कि हमारा मन्त्रकामदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमण वा रहे ॥ ३२ ॥ हे तुम स्वामी सा । हे कामन्त्रके समान मुखवाली । हे कमलके समान आँखोंवाली । हे राम की लज करनशाली । हे मर्ते स्वरवाली ! हे नृपुत्र सहा मधुर स्वरवाली सीते ! हमें आशावात हो कि हमारा मन्त्रकामदा तुम्हारे चरणकमलोका भीरा बना रहे ॥ ३३ ॥ हे भुक्तुराहृत मरे मुखवाली सीते ! तुम्हारी आँखों वदने मन्दर है । विष्कालके समान तुम्हारे लाल ओष्ठ हैं । आज तुमने संश्रामभूषणमन्त्रकाम का मन्त्र उच्चारित किया । मन्त्रलोका उद्धर हो गया ॥ ३४ ॥ भीरुमन्त्रादने कहा मा प्राणकाण्डके समान भूषणों द्वारा तुम्हारे चरण सदा हमें नौ राक्षसोका पाठ करता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और मन्त्र समस्त राम रामकन्दर्जक मन्त्रावली गोलता है ॥ ३५ ॥ इस तरह सहायक स्तुति के एक विविध प्रकारके मन्त्रमूल्यान राम और मर्ताको पूजा की । रामने भी भूषणजीवन विविध पूजन किया ॥ ३६ ॥ तत्पश्चात् रामने आज्ञा दी कि समस्त दक्षिणके राज्य प्रजा अपने लोकको लौट गई । अब विभीषणने भगवान् रामसे कहा कि पहले जब मैं ने राक्षसों मारनेके लिए लंकामें आये थे तो पिताकी आज्ञा न मानकर कारण आवन नाग 'म प्रवेग रही किया था ॥ ३७ ॥ किन्तु अबकी बार आप मेरे घर पधारकर पुनः कृतार्थ कीजिए । रामने इह प्रयत्न स्वीकार कर ली और अपने पुत्रक विमानपर बैठकर लंकामें अपने मित्र विभीषणके भवनमें पधार । वहाँ पहुँचकर रामने विभीषणका अभिषेक करके लंकाके राजमहिषसनपर बिठाया । इस मन्त्र लक्ष्मण उडा ऊपर बनाया गया । इसके बाद विभीषणने राम, सीता तथा लक्ष्मणरदिका विविध रत्नों और वस्त्राभूषणोंसे मन्त्रकाम किया । तत्पश्चात् उन्होंने अपना सारी सन्तति रामको समर्पण कर दी ॥ ३८-४१ ॥ उस समय विभीषणकी सारी सम्पत्तिमेसे रामको कपिलवाराहकी मूर्ति भण्डी लगी । जिसको पूजा रावण स्वयं करता था । विभीषणने रामकी वह मूर्ति दे दी ॥ ४२ ॥ उस मूर्तिके विषयमें ऐसा पुना माना है कि कपिल भगवान् अपने मनःशक्तिके उस मूर्तिके रचना की थी । बहुत दिनों तक कपिल मुनिने स्वयं उसको पूजा की । उसके बाद वह इसके हाथ स्थ गयी ।

तं लिखा रावणेनैव प्रमाणीता निर्जा पूर्णम् । यां सदा पूजयाम लक्षार्थं रावणधिरम् ॥४४॥  
 विभीषणेन सा दत्ता राक्षसाय दुपन्मयी । तां मुनि स्थापयामास विमाने रघुनन्दनम् ॥४५॥  
 ततः रम्याऽथ रामेण देवैर्वर्णकैर्देवा उल्लेख निजा मन्त्रा शिक्षावृक्षमुत्तमम् ॥४६॥  
 दर्शयामास रामाय यत्र पूर्वं स्थिता स्वयम् । ततो वामकरेणैव रामस्य हि कानिष्ठिकां ॥४७॥  
 घृत्वा दक्षिणहस्तस्य पीता वक्षसं नन्दनम् । स्तनाभ्यङ्गस्यैव पूर्वं यत्र यत्र हृदं धत्ते ॥४८॥  
 रामं नीत्वा तत्र तत्र दर्शयामास जानकी । ततश्चां त्रिजटां नीत्वा प्रश्नैर्गमरणादिभिः ॥४९॥  
 कुम्भादतिवृष्टां रामाग्रे मातां वक्ष्यमसीत् रमणः रमिता पूर्वं गक्षसीग्रहर्भतिनः ॥५०॥  
 मनुज्या सावर्नीयेय सर्वदा रामे न्वरा । इन्दुज्ज्वा मरमाह्वने त्रिजटाकरमर्पयत् ॥५१॥  
 ततो वामस्थलमोता यथा रामेण सा कृतैः । तत्र निवृत्तितादीनि दृष्ट्वा नामास्थलानि हि ॥५२॥  
 पुष्पकस्थो यथा रामो विभीषणममन्त्रितम् । निजपश्य याचय लक्षार्थं मन्यवेशयत् ॥५३॥  
 रामः करे धनुर्धत्वा लक्षार्थं पणिस्तदा प्रः क्षिणेष्टम् देवाङ्गमयाम्भाम सुन्दरम् ॥५४॥  
 ततो विभीषणं प्राह वचनं रघुनन्दनम् । राक्षसेष्टम् । याच राक्षार्थं भ्रातृन् तत्र ॥५५॥  
 ततो रामो विमानेन यथा शूद्र निहारमा । विभीषणम् । राक्षार्थं तस्यैवानुमतेन च ॥५६॥  
 मन्त्रापरिस्ताऽप्यन्वेष्टां दूःखोर्षी नी मन्त्रिपयि । अमुं यथा यथा दत्तं नदं मुद्राण विभीषण ॥५७॥  
 मम नाम्नाकितं तीक्ष्णं तत्र प्रणाम्य राक्षसम् । नवमया बाणहना देव रक्षां धर्षयिष्यति ॥५८॥  
 मुद्राणहस्तं त्वां कश्चिच्च विपुर्वेद्यिष्यति । इष्टुं शक्तं तद्दी राण विभीषणकरे प्रभुः ॥५९॥  
 प्रणमाम मुद्रां रामं बाणदम्भो विभीषणः । ततो रामो विमानेन पश्यत् देशान मरोरमान् ॥६०॥

जब रावणने इन्द्रो सगम करके उग्र पराजित किया । तब वा य उम मुनिको इन्द्रसे छीन लाया  
 और बहुत समय तक उमका पूजन करता रहा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आज उसे ही विभाषणने रामको अर्पण  
 कर दिया । रामरक्ष प्रमत्त उसे अपने पुष्पक विमानपर रखवा ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् अपने पति  
 रामऔर एहमणात्र दवरो तथा उग्र आदि उल्लेख साथ सदा राम गिजाया रक्षके नीचे पहुँचो, जहाँ रावणक  
 हर ले जानेपर बहुत दिन तक रह चुका था । राम मुनिकर सी गले बनसाया कि यह चही स्थान है । अहाँ  
 आपसे विमुक्त होकर मैं बहुत दिनों तक यही स्थान पर आस्तित्व राखकर रहित हुआकी उँगली पकड़कर सीता  
 अणिकवाटिकामे डकर उधर घूमती हुई उन स्नानीको पदपद्मे लगी, जहाँ स्नानादि कृत्य करती थी ।  
 यवती घूमती सीता विजटाव स्नानपर पहुँची और विनय प्रकारक मन्त्राभरणोंने त्रिजटाका सत्कार  
 किया ॥ ४६-४९ ॥ उग्र विजटा प्रसन्न हो मयो ता विभीषणकरे मंत्रों सगम सताने कहा—जिस समय  
 राक्षसियाँ अपना भगानक मुद्र विमानर मुखे रखती तब काचो बी तब यह त्रिजटा हो मेरी रक्षा करती थी ।  
 हे सरमे मैं तुमसे विनयपूर्वक कहती हूँ कि सर्वथा तुम मेरी सहायता इका सम्मान करना । इतना कहकर  
 सीताने त्रिजटाका हाथ राम के हाथोंन पकड़ दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह घुम-फिरकर राम सैनाक साथ  
 डेरपर पहुँचे और लक्षार्थ मन्त्रीको राजशकी दखमात करके निज छोटकर विभीषणको अपने साथ लिये  
 हुए ही प्रयोषाको प्रणाम कर दिया । अन्त में विभीषणके प्रार्थना करनेपर रामने उसकी रक्षाके लिए  
 अपना वज्र उठाकर बड़े दण्डे साथ लक्षार्थे चारी और घुमाया और इस प्रकार करने लगे हे राक्षसेष्ट ।  
 मेरे तुम्हारी रक्षाके लिये यह वज्र घुमाता है । मेरे चतुर्ती यह देव शत्रुके लिए दुस्तर होगी । तुम्हें यह बाण  
 भी दे रहा हूँ इसे सहज करो ॥ ५२-५३ ॥ इसमें मेरा नाम लिख हुआ है । यह मुद्रा तुम्हारे प्राणोंका रक्षक  
 होगा । एक बात और भी है । यह यह कि तुम इस बाणको लिय हुए मेरे वज्रको इस रेखाको  
 लाँघोगे तो तुम्हें यह कोई कष्ट नहीं पहुँचावगी ॥ ५४ ॥ मेरा बाण जब लिये रहोगे, उस समय कोई  
 शत्रु भी तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करेगा । इतना कहकर रामने अपना बाण विभीषणको दे दिया  
 ॥ ५५ ॥ बाणको हाथोंमे लेकर विभीषणन रामको प्रणाम किया । इसके अनन्तर राम पुष्पक विमानपर

पूजितो दानमानैश्च नृपैः स्वतर्गि यवी । नदा निनेदुःखानि ननुतुश्चाप्यसौगन्धः ॥६१॥  
 मन्वृजगास श्रीराजं दूषकेतुः सन्ध्याम् । प्राचादशिश्वगच्छाः पौरनाथैः सहस्रशः ॥६२॥  
 सातो राम निरीक्ष्यश्च वरपुः पुष्पवृष्टिभिः नना विवेश श्रीगमः । यथा नं पार्थिवैः सह ॥६३॥  
 विवेश स्त्रीयमेहं मा जानकी तुष्टमानना । गेहे कापलवजहर्मान रामो न्यवशुपद् ॥६४॥  
 एकदा राघवस्तुष्टः अनुत्थाय हि तां दर्श मन्ताउपि स पु । सन्ध्यां स्वर्मांश्च नियमारिकान् ॥६५॥  
 मङ्गल्ययामास सर्वोन्नांश्चकार यथायेधि । उवाच नन्यनेकानि सर्वेषा माऽकरोन्मुदा ॥६६॥  
 एकदा मुनयः सर्वे यमुनातीरवासिनः । आजगम् राघव दृष्टुं भयाक्षुण्णक्षयः ॥६७॥  
 कृत्वाऽग्रे तु मुनिश्रेष्ठ भार्गवैः स्वयत्नं द्विजा । अमर्यादाः सशिष्यास्ते रामादभयकांक्षिणः ॥६८॥  
 तान् पूजयित्वा परया भक्त्या शकुन्दादहः । उवाच मधुरं वचनं हपेयन् मुनिमण्डलम् ॥६९॥  
 करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् । धन्याऽस्मि यदि पूष मां प्रीत्य दृष्टमिदमगन् ॥७०॥  
 मुदुष्कर वा यन्कार्यं भवतां न-करोम्यहम् । मन्त्रायन्त मां अन्य ज्ञायणा दर्शनं हि मे ॥७१॥  
 तत्तु त्वा मदमा दृष्टव्यमनो वचयममर्चनम् । मधुना मां मण्डयः पुन रास कृते पुन ॥७२॥  
 आमादनीय धर्मान्मा देवत्राक्षणपूजकः । तस्मै तु मे महादेशो दत्तो गन्तव्यनुचमम् ॥७३॥  
 तं प्राहानेन यं हपि म तु भर्माभविष्यति । शरणम्यानुना तस्मै भार्गव कुर्यान्नमी स्मृता ॥७४॥  
 तस्मां तु लवणो नाम गन्धर्वा धर्मविक्रमः । प्राहोदृष्टान्मा दर्शयते देव्यश्चण्डिसक ॥७५॥  
 मधुः स तव हस्तेन मृतः पूष यनस्तदा । मधुमत्तनामाऽभन्त पुनान्दनुचम ॥७६॥  
 पण्डितः लवणेनाथ वयं त्वां शरणं गताः । तत्तु त्वां राघवोऽप्यह मा भार्गव मुनिपूजकः ॥७७॥

बैठे और अनेक देशोंको देखने हुए अशोकगको चल पड़े ॥ ६७ ॥ राघव एक रातत्रय भट्टाहा स्वीकार करने  
 हुए व अनी नगरमें पहुँच । रामक वहाँ पहुँचनेपर नामा प्रकारक खर दान और जमगापु नानी ॥ ६९ ॥  
 पुष्पकनु बहुतसे लागोंको साथ लिये हुए रामकी भगवाना करने पड़े । अमाशानि शक्तिमा मरियोन कोटेश्वर  
 चढकर माता और रामका दर्शन कर करके उनपर पुनारी कृति की । तब बाद राम अगक महिमाशोक साथ  
 अपने समाधवनमें गये । साता अपने महलमें चली गयी । बादम रामचन्द्रज ने वहाँ गिल्लवारान्त भक्तिसे स्थापना  
 की ॥ ६२-६४ ॥ एक दिन रामचन्द्रजाने अगले हारकर बहुत भक्ति करके राघव दृष्ट ॥ ६५ ॥ राघव विद्यामणलम  
 जिन वलों और निरमाका मनीषा माता से, रामका वने विवि विध ने ममेन सम्पन्न करके उनका उद्यापन भी  
 पन्न के साथ किया ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ एक दिन अनुरा तटपर राघवाने मधु कर्ष लवणापूर नामक रामममे अरर्मल  
 गकर रामके पास आये ॥ ६९ ॥ एक रातान भयव चरन चरित्त अयन अयन यनाथ और ह्वारोष  
 प्रविक सम्प म एकत्रिन हारकर रामके पास जा पहुँच ॥ ६९ ॥ राघव उन माता विवदन् पूजक किया  
 और उनका प्रमन्न करने हुए इस प्रकार करने लगे— ॥ ७० ॥ मुनिमण आग माग शिष्य भार्गव मेरे पास आये  
 है ? आपकी जा आज है, उस पूजा यन्त्र मागे से नाना है । मैं अगले रात्र मगगा है जो आप लय मुने  
 इत्यनेक लिए भरे यहाँ पड़े ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ यदि कोई भवस्त हारकर जाय माता मा ॥ ७३ ॥ करनके लिए  
 करावर प्रस्तुत है । क्योंकि राघव मने लगे दयसा सहज है । आपमाल जिना से उचवतः पुन सेनकको  
 आशा दीमि ॥ ७४ ॥ इस प्रकार रामकी नाम मुनकर उरगमे करवत नामक प्राप्ति गन्तद हारकर कहने  
 गये—हैं राम ? बहुत दिन हुए, मधु नामका एक मन्त्र देना था था वह व हाणका पुत्रक एवं वडा धर्ममा  
 था उसकी इस सन्तुदवतान प्रमन्न हारकर शिवज ने इस एक विष्णु दिना और कहा— ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तुम  
 इस विष्णुसे जिसे मागगे, वह अहम् हा जागता रावमक छोड सारे वधमर्ककी कुम्भीनमी नामका  
 मारी थी । उससे लवण नामके एक राघवको उपाधि दते । जो ७७ ॥ मन्त्र ह्वारोष दूषव ह्वार देवनाथों  
 और ब्रह्मणोंके लिए दुष्कराया है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ राघव आगे मधुनामक नामको दया था । इसलिये  
 कापडा मधुसूदन नाम था था । मधुके समान ही माय लवणापूरसे अनुभाकर हम आपको शरणम जाये

लवणं नद्याविध्यामि गच्छतु विगतज्वगः । इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि शत्रुघ्नं सदसि स्थितम् ॥७८॥  
 अद्य त्वामभिषेक्षामि मधुरागज्यकारणात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाचयमत्रवीत् ॥७९॥  
 नाङ्गीकरोम्यहं राज्यं त्वं मा निजपदात्प्रभो । न दूरं कुरु राजेन्द्र माधवामीनि ते मुहुः ॥८०॥  
 तत्तम्य वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य रघून्ममः । तथैव भगवत् प्राह न मौड्यद्वोचकार तत् ॥८१॥  
 ततो रामः सुबाहुं च युपकेतुं द्विजेभ्यैः । अभिषिक्त्याम्रवीद्वाक्पथं शत्रुघ्नं पूरुतः स्थितम् ॥८२॥  
 इत्था तस्मै शरं दिव्यं निजनामाङ्कितं शुभम् । अनेनैव हि बाणेन लवणं लोककटकम् ॥८३॥  
 इनिष्यामि क्षणादेव घृत्रं देवपरिधया । स तु संपूज्य तं शूलं गेहे गच्छति काननम् ॥८४॥  
 मक्षणाथ हि जंतूनां धातुं कर्तुं समुद्यतः । स तु नायाति सदनं यावद्वनचरो भवेत् ॥८५॥  
 नावदेव पुद्गारि निष्ठु त्वं घृतकायकं । योन्म्यने स त्वया कूटस्तदा बाणेन घानय ॥८६॥  
 अनेनैकेन बाणेन क्षणादेव ममिष्यति । त इत्था लवणं क्रूरं तद्वने मधुमक्षिते ॥८७॥  
 निर्माय मधुगनाम्नीं नगरीं यमुनातटे । तस्यां स्थाप्य सुबाहुं च पर्नीभ्यां बालकैः सह ॥८८॥  
 युपकेतुं च विदिषानगरे शत्रुनिपूदन । सस्थाप्य दयिताभ्यां च मेन्वेन बालकैः सह ॥८९॥  
 ततो यमान्तिकं याहि शीघ्रं शत्रुनिपूदन । अश्वानां पचमाहर्षं स्थानां च तदधेकम् ॥९०॥  
 राजानां षट्सतान्पेव पत्नीनामधुनश्रयम् । आगमिष्यान्ति त्वन्पश्चादग्रे साधय राक्षसम् ॥९१॥  
 आगते त्वयि पश्चाद्वि नृपान् जेतुं पुनस्त्वहम् । गतुमिच्छामि तस्मात्तव शीघ्रमागच्छ मां प्रति ॥९२॥  
 इत्युक्त्वा सृष्टपर्वघ्राय शत्रुघ्नं रघून्न्दनः । प्रपयामास तौ वैप्रैरार्शीभिरभिनन्दितः ॥९३॥  
 शत्रुघ्नोऽपि नमस्कृत्य रामं मधुवनं यथा । निनाय पूजनार्थं तां मूर्तिं सोऽश्वत्थमनः प्रियाम् ॥९४॥  
 अग्रे समेष्य शत्रुघ्नं ततः श्रीरघुनन्दनः । सुबाहुयुपकेतुं तौ स्वस्वसौभ्यां च बालकैः ॥९५॥

॥ मुनिश्रेष्ठ ज्येष्ठमकी यात सुनकर रामने कहा है कर्णियों आप लोग मत डरें ॥ ७९ ॥ ७७ ॥ आप सब अपने-अपने आश्रमकी जाते जायें । मैं उस दुष्ट लवणामुरको मारूँगा । उनसे इतना कहकर राम शत्रुघ्नसे बोले — शत्रुघ्न । आज मैं तुम्हारा अभिषेक करूँ तुम्हें मधुरा राज्यका भोजेगा । उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा — हे राजेन्द्र । मुझे राज्य नहीं चाहिए । मेरे ऊपर क्या करके आप मुझे अपने चरणसे दूर न कीजिए । इसके बाद रामने वही बात भगवत्से कही और उन्होंने भी अस्वीकार कर दिया ॥ ७८-७९ ॥ तब रामने सुबाहु और युपकेतुको नैवार करके अनेक साहायोंके साथ उनका अभिषेक किया और सामने बैठे हुए शत्रुघ्नका सपने नामसे आहुत बाण देते हुए कहा कि आजोंके लिए कटकस्वरूप लवणामुरको तुम इसी बाणसे क्षण भरमें इसी तरह मार डालोगे, जैसे इन्द्रने वृषानुरको मारा था । वह लवणामुर सदा घरमें उस विशूलका धूमन करके अहलमें पशुओंको मारतक लिए चला आया करता है । सो तुम ऐसा ही समय उसके घर पहुँचो, जब वह वनकी भक्षा गया हो । उनके द्वारपर तबतक बैठे रहो, जबतक वह वनसे न लौट आवे । जब वह आवे तो उसे भीतर जानेका अवसर मत दो, द्वारपर ही छेड़-छाड़ करके घुड़ शुरू कर दो । वह भी तुरन्त कोधातुर होकर लड़ने लगेगा तब तुम इसी बाणसे उसे क्षणभरमें मार डालोगे । उस दुष्ट लवणानुरको मारकर मधुवनमें ॥८२-८३॥ यमुना तटके तटपर मधुरा नामकी नगरी बना तथा उसमें स्त्री-अन्धों समेत सुबाहुको बिठाकर विदिषा नगरीमें वन्चो तथा सेनाके साथ जाकर युपकेतुकी राजगद्दीपर बिठा देना । यह सब काम करके है मधुनिपूदन । तुम फिर मेरे पास लौट आओ । तुम आगे-आगे जाओ, तुम्हारे पीछे पाँच हजार घोड़े, द्वाँई हजार रथ, छः सौ हथियार और लाख हजार पैदल सैनिक तुम्हारी सहायताके लिए भेजा है । जब तुम वहसि लौट आओगे, तब मैं एकबार फिर राजाओंको जोहानके लिये यात्रा करूँगा ॥ ८८-९२ ॥ इतना कहकर रामने शत्रुघ्नका भाषा सूँघा और अनेकज आगेवाँड देकर उन साहायोंके साथ भेज दिया ॥ ९३ ॥ शत्रुघ्न भी रामको प्रणाम करके मधुवनकी ओर चल पड़े । साथमें रासकी दो हुई वह कपिल वाराहकी मूर्ति भी लेते गये । रामने अब किसीके साथ

श्रेयसामाप्तं सैन्यैश्च दार्पादामैश्च गोधनैः शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण शिक्षितः ॥९६॥  
 हत्वा तं लवणं वेगान्मधुगमकरोत्पुर्णम् शकानान् जनपदाधिक्रे माधुगन्दानमानतः ॥९७॥  
 मथुरायां सुबाहु तं म्याप्य स्त्रीभ्यां सुतादिभिः । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्वृषकेतुं विदिशानगरे तथा ॥९८॥  
 तस्याप्यसैन्यैः शत्रुघ्नो मथुरायां कियदितम् । स्थित्वा सुबाहुः मूर्तिं तदा तुष्टो ददौ सुखम् ॥९९॥  
 अद्यापि मथुरायां सा मूर्तिस्तत्रैव वर्तते शत्रुघ्नोऽप्येतत् सैन्यं शीघ्रं रामांतिकं ययौ ॥१००॥  
 सर्वं वृत्तं रावणाय कथयामास नादगन् , अथ कदा म मरतः कंकेपीनन्दनो महान् ॥१०१॥  
 बुधाजिता मातुलेन साहजोऽगान्मर्मनिकः । रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा मध्वर्चनायकान् ॥१०२॥  
 तिस्रः कीद्रीः पुरे द्वे तु निषेधे गघनन्दनः । पुष्करं पुष्करावण्यां पूर्वमेवामिषेचितम् ॥१०३॥  
 अयोध्यायां राघवेण स्थापयामास सैन्या स्त्रीभ्यां पुत्रैर्दामदाम्राज्याद्यैः परिवर्धितम् ॥१०४॥  
 ततो बृहते भरतस्तथा तक्षशिलाद्वये । नगरं स्थापयामास राघवेणाभिषेचितम् ॥१०५॥  
 अयोध्यायां पूर्वमेव महावगलपूर्वकम् स्त्रीभ्यां पुत्रादिभिस्तस्तस्यै तक्षशिलाद्वये ॥१०६॥  
 उभौ कुमारी सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् । गन्वा मल्लान्निनिजिन्य दुष्टान्सर्वाधिकारिणः ॥१०७॥  
 पुनरागत्य मरतो रामसेवापरोऽभवत् । ततः प्रीतो गघ्रघ्नो लक्ष्मण वाक्यमब्रवीत् ॥१०८॥  
 द्वावगदचित्रकेतू महामध्वपगक्रमां , मय मिषेचितो धीरौ स्त्रीभ्यां पुत्रवर्त्तयता ॥१०९॥  
 द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गज्राधधनशून्यकं । स्थापयित्वा तयोः पुत्रौ शीघ्रमागच्छ मां पुनः ॥११०॥  
 रामाज्ञां स पुष्कृत्य गज्राधवलवाहनैः गन्वा हत्वा त्रिपुनः यवान् गज्राधः क्रुद्धनामकः ॥१११॥  
 घनरत्ने चित्रकेतू स्थापयामास देहजी । म्वस्वस्त्रीभ्यां शलकैश्च दासीदासैर्वर्त्तान्वितौ ॥११२॥  
 सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् अथ रामः सभाह्वय गणकान् परिपूज्य च ॥११३॥

आगे आगे शत्रुघ्नको और गच्छ नियात वाहनको समेत बुझाहु एव दूधस्तूनी उपलब्धमगधक सेनाक साथ भजन दिया । वही पहुँचकर शत्रुघ्नन टंक बैठा ही किया, जेना रामन कहा था । इस प्रकार शीघ्र ही उन्होंने लवणामुक्तो मारकर मथुरा नगरी बसाया । मथुरावासियोंको अनेक प्रकारका राज मान देकर मथुराका कुछ दिनोंमें ही उन्होंने एक सुन्दर नगर बना के । मथुराके एक विशाल मनाक साथ सुबाहुका वहाँकी गद्दीपर बिठाला और स्त्री तथा पुत्रो समेत बुझने लगे । अपने साथ लेकर विदिशा नगर, का प्रस्थान कर दिया ॥ ९४-९८ ॥ वहाँ पहुँचकर घुषकेतुका गद्दीपर बिठाया । इसके बाद फिर मथुरा लौट आये और कुछ दिन वहाँ रहे । एक दिन प्रसन्न होकर शत्रुघ्नन बड़े कपिलकाश्याको मूर्ति सुबाहुका देता । आज भी मथुरामें वह मूर्ति विद्यमान है । इसके अनन्तर शत्रुघ्न सेनाक साथ रामक पास गया और वही पहुँचकर उन्होंने रामको मथुराका सब समाचार सुनाया । १०० ॥ १०० ॥ एक समय ॥ गघनन्दन भरत अपने मामा बुधाजित्के बुलावेपर रामकी आज्ञाम अनुसार सैनिकोंके साथ समिदास गया । वहाँ गन्धर्वोंका भारा और तीन करोड़ नागरिकोंको विमान करके रा पुरो बसाया । वहाँपर पूर्वमेव अभिषिक्त पुष्करका राजगद्दीपर बिठाया । तदनन्तर कितने ही दासी-दास तथा स्त्री-पुत्रोंका साथ लेकर पुष्कर वहाँ रहने लगे ॥ १०१-१०६ ॥ इसके बाद भरतने तक्षको तक्षशिला नामका नगराव अभिषिक्त करके बिठाया । यह सब काम करके भरत बयोध्या लौट आये और फिर पहुँचके तरह रामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे । इसके बाद एक दिन प्रसन्न होकर रामने लक्ष्मणसे कहा—लक्ष्मण ! तुम जितने दोनो पुरोंको साथ लेकर पश्चिम दिशाकी ओर जाओ , वहाँ सब लोगोंका अपकार करनेवाले दुष्ट मन्त्रोंको बतकर अगद तथा चित्रकेतु इन दोनों पेटोंको, जितका अभिषेक मैं पहले ही कर चुका हूँ, वहाँकी गद्दीपर बिठाया दो । वहाँ की पुरी बसाकर गज-वाजि तथा घनसे परिपूर्ण करके मेरे पास लौट आओ ॥ १०५-११० ॥ रामकी आज्ञा स्वीकार करके लक्ष्मण दोनो पुरोंको साथ लेकर बृहद्वेरी सेनाक साथ वहाँ पहुँच और वातको सतत

अवनीं जेतुमुद्युक्तो मुहूर्तं तानपृच्छत । तत्तप्तेर्गर्गकंदर्पो मुहूर्तः परमः शुभः ॥११४॥

त थूत्वा तान पुनः पूज्य सर्वान् रामो व्यसज्जयन् ।

ततो रामोऽब्रवीद्वाक्यं लक्ष्मण पुनः स्थितम् ॥११५॥

अवनिस्थाजपान् जेतुं सांज्ज गच्छामि पार्श्वदे । विमानेनैव गच्छामि सेनां चोदय सन्वयम् ॥११६॥

नानाशस्त्राणि यंत्राणि वाहनानि सप्ततनः । स्थापयस्व विमानेऽद्य सनच्चरः सनशोचराः ॥११७॥

धनधान्यतृणादीनां सग्रहं कुरु पुष्पके । पुणो गोमं सुमित्रोऽस्तु मेन्येन परिवर्धितः ॥११८॥

एवमाज्ञाप्य सौमित्रि श्रीरामो जानकीगृहम् । ययौ चकार सौमित्रि यथा रामेण शिशितः ॥११९॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय राज्यकाण्डे

पूर्वाह्णे राज्यविभागो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( रामकी यास्तवर्षपर चित्रव )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो ह्य सीतां स्वोद्योगमनदच्छतैः । अवनिस्थाशृणुषु जेतुं पुत्राभ्यां चन्धुभिर्नृपैः ॥ १ ॥

तद्रामवचनं श्रुत्वा जानकी प्राह लज्जिता । नहं त्वद्विम्बं सोढुं समर्था रघुनन्दन ॥ २ ॥

त्वयाऽहमवनीं द्रष्टुं शक्स्यामि जगतां प्रभो । नधेन्नुक्त्वा रघुश्रेष्ठो लालयामास जानकीम् ॥ ३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सर्वो उर्मिलाद्याः स्त्रियश्च नाः । कुशस्य च लवस्यापि पत्न्यः श्रुत्वाऽवनेर्जयम् ॥ ४ ॥

कर्तुं राममद्युद्योगं पुत्राभ्यां चन्धुभिर्नृपैः । जानकीं प्रार्थयामासुर्यास्यामोऽद्य त्वया सह ॥ ५ ॥

स्वस्वकान्तवियोगं च सोढुं नैव क्षमा नयम् । सीता तानां वचः श्रुत्वा राघवं श्राव्य तद्वचः ॥ ६ ॥

रघुओको परामर्श करते राजाश्वपुरभ अङ्गदका तथा वनरराजपुरमे विष्णुकेतुको विद्याल दिय और बहूँसे लौट-  
कार लक्ष्मण फिर रामको सेनामे लग गये । इसके अनन्तर रामने उद्यातिपियोंको बुलाकर उनकी पूजा  
की और पृथ्वीविजय करनके लिए शुभ मुहूर्त पूछा । इन गणकोन श्री रामको बहुत ही बढ़िया मुहूर्त बताया  
॥ १११-११४ ॥ मुहूर्त सुनकर रामने फिर उनकी पूजा की और विदा कर दिया । फिर रामने लक्ष्मणसे  
कहा-मैं पृथ्वीपर रहनेवाले समस्त राजाओंको जीतनके लिए विमानसे जाता करूँगा । तुम जाकर सेनाको  
तैयार करके भज । विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और सक्काको संख्यामे अच्छी-अच्छी ताप लेकर मेरे  
विमानमे रक्खनाओ । अन्नके लिए वन घान्य तथा घास आदिका डोकसे प्रबन्ध करने गुणक विमानमें  
रक्खवा दो । अयोध्यापुरीकी रक्षाके लिए कुछ सेनाके साथ लुमन्थ यहाँपर ही छोड़ दिये जायेंगे ॥ ११५ ॥  
॥ ११६ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर राम अपने निवासमे चले गये और लक्ष्मण रामके आज्ञानुसार सेना  
आदिकी तैयारीमे लग गये ॥ ११७-११९ ॥ इति श्रीभक्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ७० रासतेज-  
पाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वाह्णे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास फिर कहने लगे इसके पछान् राम एकान्तमे सांतासे बाले कि मैं अपने पुत्रों तथा बान्धवों-  
की साथ लेकर पृथ्वीके राजाओंको जीतनेके लिए जाऊँगा । इस प्रकारकी बात सुनी श्री लज्जित होकर सीताने  
रामसे कहा-हे रघुनन्दन मैं आपका विरह नहीं सहन कर सकूँगी । मैं भी इस पृथ्वीतलको देखनेके लिए  
आपके साथ-साथ चलूँगी । रामने सीताका माँग स्वीकार कर ली ॥ ११-३॥ यह खबर धार-धारे उर्मिलादिक स्त्रियों  
तथा कुछ लव आदिकी पत्नियोंके पास पहुँची और उन्होंने सीतासे प्रार्थना की कि आप हमको भी अपने साथ ले  
चलें । हम भी अपने-अपने पतिपोंका वियोग सहन करनेमे असमर्थ हैं । सीताने उनकी बातें सुनीं तो रामसे



रामाह्वया तदा सर्वोपेतोपयन्ती वचोऽवति । आगतव्यं मया माकं युष्माभिर्निश्च न हि ॥ ७ ॥  
 गच्छन् स्वोपगोदानि सर्वास्तुष्टा गतज्जगः । एवं सीतारचः प्रस्था तदा ताः कञ्चलोचनः ॥ ८ ॥  
 सीतां नन्वा ययु मयः मनुष्टा मु उदात्तना । स्वस्वगोदानि द्यौर्न रुक्मवत्पुर्गन स्तनाः ९ ॥  
 अब गमस्तु तां गत्रि निनाय मोनया नृपम् । महे मुहुर्ने भुन्वा य वन्दिमान मनोऽमम् ॥ १० ॥  
 गमः प्रबुद्धस्तु जयान्कृतार्थोपाधिमन्त्रिवः । स्नात्वा निष्पायधिं कृत्वा कृत्वा ह्रमोः प्रपूजनम् ॥ ११ ॥  
 कर्था पीराणिर्धो भुन्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः । कृत्वोद्योगाधेयानं च संपूज्य गणनायकम् ॥ १२ ॥  
 कृत्वाऽऽभ्युदयिकं भ्रातृ पुनश्च दत्तं मयिस्वरम् । कामयेन कल्पवृक्षं पुष्पकं च सुगन्धम् ॥ १३ ॥  
 मणिद्वयं वृषकं पूज्य मयः कृत्वा तु भोजनम् । घृत्वा वस्त्राणि शस्त्राणि वदूष्वा मानः प्रणम्य च ॥ १४ ॥  
 यथा स शिविकाहटः पुष्पकं वन्धुभिर्नृपः । पुत्राभ्या मयिर्व सन्यः सेवकैर्वादिनादिभिः ॥ १५ ॥

यानमारुह्य सर्वः सीताद्यास्ताः स्त्रियः शुभाः ॥ १६ ॥

सीतल्याद्या मातश्च तन्पुत्रान यथासुखम् । यत्राकाण्डे यथा शिष्य विमानरचना पुग ॥ १७ ॥  
 ते वणिता मया तद्वदभूताऽऽर्च्यन्तु पुनः । तदा निनेदूर्वाद्यानि तत्पुर्मागधादयः ॥ १८ ॥  
 तन्पुत्रैर्नार्यश्च तदा गानं प्रचक्रिरे । अब गमोऽवर्गधानं गच्छ एवंदित्र शनि ॥ १९ ॥  
 तथेन्धुवन्वा पुष्पकं तद्यथाशक्त्याधर्मना । तन्वा रामं सुमयाऽपि नर्था पुर्णं यथागुणम् ॥ २० ॥  
 पूजयेन्ने नृपाः सर्वे भुन्वा रामं समगनम् । प्रपूज्यम् राघवदं श्वद्वकर्मपुटः ॥ २१ ॥  
 प्रणेमुक्ते रमानाथ मानोपायनवर्णयः । पूजय मय आगम नान्वा राजर्षे निजं निजम् ॥ २२ ॥  
 रामाह्वया मयन्गाश्च तन्पुत्राने नृपंतमाः । स्वकोशादीनि राम य समर्प्य स्थिरमानवाः ॥ २३ ॥  
 मागधान् समतिक्रम्य विमानेन रघुनमः । पश्यन्नानाविधानं दशान् भूर्गकीर्तः पुरं ययौ ॥ २४ ॥

सलाह की । फिर रामक आज्ञाानुसार स ता राजका प्रस्थान करता हुई कहन लगीं -तुम लोग भी मेरे साथ चलो ।  
 अब कोई चिन्ता मत करो और अपने अपने महलोंमें जाकर हमारे साथ चलनेकी तैयारी करो । इस तरह सीताकी  
 बात सुनकर कमल मर खे नवीयानी उन विजयें सलाहकी प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक सुनहल नृपुणोंका  
 सकार करती हुई अपने महलोंका चली गयी ३ ६ । तब तब रामने सा राज साध बहु रात्रि सुखपूर्वक बितायी ।  
 बाह्य मुहुर्तमे उन्होंने कई जनाके नृपम नान्वा ता जयें । तब सीता सीतादि क्रियायें की और स्नानादि  
 नियमक करनेक पश्चात् अजयक १० धिज्ज पुन विग ॥ १० ॥ ११ ॥ बादमे पीराणिकी कथाएँ सुनी, अनेक  
 प्रकारके शान दिये और अनेक उपचारेन गणनायक पुजा की ॥ १२ ॥ तब आभ्युदयिक भ्रातृ तथा  
 धृताश्रद्ध करक कामयेन कल्पवृक्ष, पुष्पक पारिजात वृक्ष तथा बाँधों मणियोंका पूजन किया । इसके बाद  
 अपनी समस्त माताओंका प्रणाम करक वद्वक पदमे, अनेक प्रकारके गन्ध वस्त्रे और वन्धुओं तथा कितने ही  
 राजाओंके साथ पाल्कीमें सवार होकर पुष्पक पर चरक पास जा पड़्य ॥ १३-१४ ॥ वहाँ अपने पुत्रों,  
 मन्त्रियों, सेनाओं, सेवकों तथा बहनों संगत विमानपर चढ़ने सारादि क्रियाओं और कोपण्यादि माताएँ  
 सवार हुई । रामदासने कहा-हे शिष्य 'राजाक घरमें मे जिस प्रकार मानकी रचना कह आया है ॥ १६ ॥ १७ ॥  
 एक उसा तरह इस मानका भा रचना य । उनकी य वाक समय अनेक प्रकारक बाजे बजे और मगर  
 तथा बन्दीजनान स्तुति की, वेग्याय लार्की और गादकेने गन गये । इसके अनन्तर रामने विमानको पूर्व  
 दिशाकी ओर चलनका आज्ञा दी ॥ १८ ॥ १९ ॥ सब पुत्राक रामक आज्ञानुसार आकीशमार्गसे उड़ता हुआ  
 चला । रामका प्रणाम करके सुगन्ध अनेक पुष्पांश आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ २० ॥ अब पूर्व देशके लोगोंने  
 सुना कि राम आय है ता वहाँके बड़े-बड़े राजे हाथ जोड़कर उनके पास गये ॥ २१ ॥ सामने पहुँचकर  
 उन्होंने प्रणवान्का प्रणाम किया और अनेक प्रकारक भस्त्रे उनकी सेनामें उपस्थित की और विविध वृज्ज  
 किया ॥ २२ ॥ इसके बाद उन्होंने अपना समस्त राज आदि रामको अर्पण कर दिया और उनकी आज्ञासे

तैनातिपूजितो गमः शनैः शनैः दर्शयाम् । यथावच्छिन्नदेनेव द्राविडं देशमुत्तमम् ॥२५॥  
 कृष्णागारेप्रदेशांश्चान् पश्यन् गमः शनैः शनैः । कांतिं ययौ विमानेन कञ्चुकण्डोऽपि राघवम् ॥२६॥  
 पूजयामास विश्ववन्द्योद्गाद्य, सुहृदं निजम् । आगारं महादेशं तथा तृचोत्तमण्डलम् ॥२७॥  
 उमन्तिक्रम्य श्रीरामस्वयम्भुः पूजितो नृपे । ययौ स केरलान् देशान्त्रं कर्णाटकं ययौ ॥२८॥  
 पूजितो विजयवर्धनपि विजयापुरराजिनः । कौस्तुभस्थान्द्रागं जित्वा महागङ्गं ययौ श्रुतः ॥२९॥  
 दुर्गं दर्शयितुं नाम चकार स्ववशं भणार् । यथान्यान्यपि दुर्गाणि स्वाधीनान्पश्यन्नेति ॥३०॥  
 कृत्वा विमर्शं च दशान् विध्यान्नाश्रितान् । पश्यन् ययौ स रेवायास्तीरेणैकाग्र्यं खरम् ॥३१॥  
 मालवस्थान्द्रागं जित्वा ययौ गमः पञ्चगङ्गां । उदगाद्गङ्गे जित्वा ययौ हृदयपत्तनम् ॥३२॥  
 जित्वा प्रतीपं श्रीगमः स ययौ हस्तिनापुरम् । एतस्मिन्मन्त्रे मोमरंभ्रजस्ते श्रयो नृपाः ॥३३॥  
 पुरुषास्तथाऽगच्छन्पुनर्मन्येन वै पुनर् । रामेण संगतं कर्तुं नानाबाह्वनमस्थितः ॥३४॥  
 ययुववर्धः क्षत्राणि पुष्पकस्थं रघून्ममम् । पृष्टं बभूव तं, साकं त्रिदिन रोषहर्षणम् ॥३५॥  
 तदार्याद्रक्तपूगो सा जङ्घरी पापनाशिनी । चतुर्थं दिवसे राघवस्तान् जित्वा तन्पुरं ययौ ॥३६॥  
 सुगेणं वानराणां च वैद्यं वानरसेनया । गजहृदेपुरे स्थाप्य तान्स्त्रीन्मोमान्प्रसोक्तवान् ॥३७॥  
 कागमुदकेष्वनान् कृत्वा सुग्रीवश्च रघून्ममः । ययौ स मधुरां द्रष्टुं सुवाहुरपिपालिनाम् ॥३८॥  
 दृष्ट्वा सुवाहू राज्यस्थं विदिशानगरं ययौ । पुष्पकेतुं तत्र दृष्ट्वा राज्यस्थं तेन वन्दितः ॥३९॥  
 कुरुक्षेत्रं पुष्करं च दृष्ट्वा रामो विहायमा । मरुचं समन्तिक्रम्य ययौ गुर्जामुत्तमम् ॥४०॥  
 प्रभासं च वृत्तो गत्वा महदेशं ययौ ततः । गजाननगरं दृष्ट्वागदं राज्यपदम्वितम् ॥४१॥  
 धनान्नेतिव्रकेतुं दृष्ट्वा राज्यपदस्थितम् । अन्तर्तमं ययौ रामस्तत्रस्थैः परिपूजितः ॥४२॥

कपलः स्यात्क स, य पुष्पक विमानपर सवार हुकर रामक सज्ज सज्ज सजे ॥ २३ ॥ सगव देशका लोचकर  
 राम रास्तक अनेक देशीकी दम्प ॥ २४ ॥ भूस्कीर्ति नामक राजकी राजधानीमें पहुँच ॥ २४ ॥ तन्से पूजित  
 होकर विमान द्वारा धार धार दर्शन दिशाकी फल और सयुक्तदसे चलकर द्रविड देशमें जा पहुँचे ॥ २५ ॥  
 कृष्णा नदीके आसपासवाले देशकी दम्प ॥ २६ ॥ राम कांतिशाम जा पहुँच । वही कञ्चुकण्ड नामके राजाने  
 उनका आदरगन्तिकर किया और फिर बहोव आगार महादेश और तृचोत्तमण्डली लोचकर ॥ २६ ॥ २७ ॥  
 बहुकि राजाओं में पूजित हुअ हुअ केरल दण्डा गये वही विजयपुरम रहनव ल विजय नामके राजासे पूजित  
 हुअर कोपण्यदशमे रहनगले राजाओंका योग्य कर मरार, द्रुम पुर ॥ २८ ॥ २९ ॥ वही देवगिरि नामके  
 किलका क्षणभरमें ज्ञाने अर्चान करक और भा बहुतस विमानों अथवा कर्मेम कर लिया ॥ ३० ॥ इयं ज्ञान्तर  
 विरह दशम जाकर विद्वान्करक अ समस्तवाल राजाका दम्प ॥ ३१ ॥ रेवातले ओकागधर पहुँचे । वही मालव  
 देशक गङ्गाओकी ज्ञान्तर रहनगले गये । कर्णापर गजा उग्रवीहक जोनकर हेरपनगरमें गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥  
 उसके समपवर्ती राजाओका ह कर प रामचन्द्र हस्तिनापुरा पहुँच । तमें सोमवंशी सोम राजे तथा  
 पुष्करा नामक राजा चौदह ॥ ३३ ॥ मकर रामचन्द्रसे पुष्ट करनेके लिये आ पहुँचा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वही  
 पहुँचत ही पुष्पक विमानपर बैठे हुए मकर ऊपर उन आगीर अग्निकी वार् शरम्भ कर दी । तब उनके  
 साथ रहने तीन दिन तक लामहृषण बुद्ध किया । उस साथ जातकी रत्नसे पूर्ण हो गयी थी । चौथे दिन  
 रामान् उनका परास्त करके उनकी पुरापर अधिक र कर लिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हस्तिनापुराके वानरोंके नैष्ठ  
 सुपेणकी महापर विडाकर सोमवंशी राजाओका ज्ञान्द्रुम दिया और वहीसे सुवाहू पाँचप जित मयूरा दुरीको  
 देखनके लिये गये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सुवाहूका राज्यमहपर आसीन दखनर विदिशा नगरकी गये, वही  
 पुष्पकेतुन रामका विधिवत आदर सत्कार किया । वहीसे कुरुक्षेत्र पुष्कर आर्चि सौवीका देखकर आकाशमागस  
 रामचन्द्रकी महदेशका लोचन हुए गुम्फात गये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर प्रभासक्षेत्र जाकर मन्त्रदेत गये । वही  
 एजश्वपुरमें बहूदका राज्यसनपर दखनर धनरत्न नामक नगरक राजासनपर बैठे हुए विनकेतुको दखा ।

प्रययौ पुष्करं द्रष्टुं राज्यस्य पुष्करावतीम् । ततो रामो विमानेन ययौ तक्षशिलाह्वये ॥४३॥  
 तर्क्षं दृष्ट्वा पदस्थं तं ययौ भरतमातुलम् । युवाजिना पूजितः स रामो राजीवलोचनः ॥४४॥  
 ययौ विहायता शीघ्रं शकदेशं मनोरमम् । जिन्वा यवनदेशस्थाश्वरान् मर्कान् रघूत्तमः ॥४५॥  
 पश्यन्नात्राविधान् देशास्ताम्रदश ययौ ततः । ततो मायापुरीं गन्वा कलापग्राममावयौ ॥४६॥  
 नरनारायणौ दृष्ट्वा चोपास्यौ रघुनन्दनः । उपामकं नारदं च वर्षं भान्तमञ्जकं ॥४७॥  
 ताक्षत्वाऽर्च्यं रघुश्रेष्ठस्तत्रस्थैः परिपूजितः । भारतेर्षरणे दृष्ट्वा तत्पदे स्थाप्य स्वानुगम् ॥४८॥  
 भारतं पृष्ठतः कृत्वा पुष्पदेशं मनोरमम् । योजनानां सहस्रैश्च नवभिः परिविभूतम् ॥४९॥  
 अग्रे ददर्श श्रीरामो हिमालयमहाचलम् । योजनानां महस्राभ्यां गम्य विपुलमुत्तमम् ॥५०॥  
 त्रिसप्ततिसहस्रैश्च दीर्घः प्रोक्तस्तु योजनैः । तत्र नानाकौतुकानि ददर्श रघुनन्दनः ॥

दर्शयामास वैदेह्यै विमानस्थो मुदान्वितः ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे  
 भारतसंजयो नाम सुप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( रामद्वारा जम्बूद्वीप-विजय )

श्रीरामदास उवाच

अथ ह स किंपुरुषं नाम वर्षं नवसहस्रयोजनविस्तीर्णं स्वीयानादिभिर्द्वारामूर्तिदेवनोपास्य-  
 विराजमानपवनसुतोपासकमधिष्ठितमुपजगाम ॥ १ ॥ तत्र ह तत्र दर्शितनार्कौतुकस्तद्वर्षमुप-  
 समूहपरिवेष्टितः पुष्पकसमधिष्ठितो नववारास्वनपुरःसरः पुनोऽनुमगार ॥ २ ॥ अथ हेमकूटं नाम  
 पर्वतमतिकमनीयं द्विसहस्रयोजनविपुलमेकाशीतिमहस्रयोजनदीर्घं नानाधातुविराजितं समुन्नत-

इसके बाद आनर्त देशको गये । वहाँवालोंने रामका अन्तर्गत्तरह सत्कार किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वहाँसे पुष्करावती-  
 के राज्यासनपर बैठे हुए पुष्करको देखने गये । फिर तक्षशिलाकी राजधानीमें सिंहासनपर बैठे हुए तक्षको देख-  
 कर भरतके ननिहाल गये । वहाँ पहुँचनेपर राजा युवाजित्ने रामका पूजन किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके  
 बाद आकाशमार्गसे सुन्दर शकदेशको गये । वहाँ यवनदेशमें रहनेवाले राजाओंको जीतकर अनेक प्रकारके  
 देशोंको देखते हुए ताम्रदेशको गये । फिर मायापुरी हाते हुए कलापग्रामको गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सबके  
 उपास्य नरनारायणका दर्शन करके नारदका दर्शन किया । फिर भारतसंज्ञक देशमें गये । वहाँ संग्राम  
 करके भारतनरेशको मार डाला और अपने किसी सेवकको वहाँका राजा बनाकर नौ हजार योजन विस्तृत  
 पुष्पदेश ( पूना ) को गये ॥ ४७-४९ ॥ इसके अनन्तर महापर्वत हिमालयके पास गये, जो एक हजार  
 योजन है । वहाँ रामने अनेक प्रकारके कौतुक देखे । फिर विमानपरसे ही सीताभी भी वहाँका कौतुक  
 दिखाया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्ड्य-  
 विरचित"ज्योत्स्ना"भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर राम नौ हजार योजन विस्तृत किंपुरुष नामक देशको गये ।  
 वहाँ बहुतसे वेवताओं तथा हनुमान्जनोंकी मूर्तिक साथ रामकी अनादि मूर्ति स्थापित थी ॥ १ ॥ उस  
 देशमें अनेक प्रकारके कौतुक देखते हुए वहाँके राजाओंसे परिवेष्टित होकर पुष्पक विमानपर बैठे बैठे आगे  
 बढ़े ॥ २ ॥ जाते-जाते अतिशय कमनीय हेमकूट पर्वतपर पहुँच, जो दो हजार योजन विस्तृत

शिरसि राजमानं पुष्पकमधिष्ठितो रघुनाथ उपजगाम । ३ । अथ तृतीयं वर्षं नाम मरुमहस्य-  
योजनपरिमितं क्षमिहोषाम्यग्रहोपासकविगतमानमनिकमनीयं दशमवतनयं समनुययो । ४ ॥  
तद्वर्षवामिनृपप्रवृन्दतुमुलमयाममन्यादितजयश्रीरिपुकोशादिपुनितनृपदयितागार्जनिकनीगजिनजनक-  
जम्बूदिशमानकानुचध्वजपताकानोरगघटकिंकिणीविशजवानपुष्पकममधिष्ठितः श्रीरघुनन्दन उपज-  
गाम ॥ ५ ॥ अथ निषय राव पर्वते द्विमहस्ययोजनविपुलं चतुस्रिध्वजमहस्ययोजनदीर्घमनिकमनीयं स  
रघुनन्दनो नयनगोचरं चकार । ६ ॥ अथ सुवर्णाद्रिसमनतश्चतुर्दिक्षु समानमानमिलावृतं नाम  
चतुर्थं वर्षं चतुस्त्रिध्वजमहस्ययोजनपरिमितं स रघुनाथक उपजगाम ॥ ७ ॥ तत्र ह वात्र मेरोराभय-  
भूने मेरोर्दक्षिणदिक्स्थिते मेरुमहापर्वतेऽतिविगतमाने समुन्नतजटवृक्षमनिविशालं जम्बूदीपारूपवृक्षं  
सफलमपूर्वमतिकमनीयं स रामचन्द्रोऽवनिदृष्टिमे दर्शयामास । ८ ॥

ततो मेरुपार्श्वमनो मेरोराश्रयभूते सुपार्श्वपर्वते विगतमानकदम्बवृक्षमनिसमुन्नतमनिविपुल-  
मतिकमनीयं पुष्परजितं स रघुनाथको नैश्रविषयं चकार । ९ ॥ अथ मेरोरुत्तरगन्तराश्रयभूते  
कुमुदनाम्नि पर्वते विगतमानमनिसमुन्नतं वटवृक्षमनिविशालमनिस्थितं स कीमन्यानदनो नृपममृद-  
विगतजतो जनवज्जयं दर्शयामास ॥ १० ॥ अथ मेरुपूर्वतन्मन्याश्रयभूते मदपर्वते विगतमानमति-  
विशालमनिसमुन्नतमनिसम्यक्तं सहकारवृक्षमतिकमनीयं सुपकमभुग्घटतुल्यफलभागविभक्तं पश्यन्त्य  
रघवंशभूषणो जनकः जनिः ॥ ११ ॥ तत्रैलावृते विगतमानमरुषणं पात्यरुद्रोपासकं स रघुनाथको  
दयितामहायः शिरसा मगनास ॥ १२ ॥ तद्वर्षवामिनृपप्रवृन्दतुमुलमयाममन्यादितजयश्रीरिपुकोशादिपुनितनृपदयितागार्जनिकनीगजिनजनक-  
रघुनाथकः पूर्वादशमनुजगाम । १३ ॥ अथ स राधमादनपर्वतं द्विमहस्ययोजनविपुलं चतुस्त्रिध्वज-  
महस्ययोजनदीर्घं नयनगोचरं चकार ॥ १४ ॥ अथ भद्राश्वं नाम पञ्चमं वर्षमेकत्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं  
हयग्रीवोपास्यभद्राश्वोपासकमधिष्ठितं स रघुनाथक उपजगाम । १५ ॥ तत्र काचिन्संग्रामस्तद्वर्ष-  
विगतमाननृपममृदेभ्यः कश्चिच्छृणुमागतप्रवृत्तकाम्युगलावनिपतिभ्यः स्वकरभारान्त्वममादः स

तथा इत्यभी हजार योजन लम्बा था, जिसपर अनेक प्रवरकी घानों विद्यमान थीं । जिसके ऊँचे-ऊँचे शिखर  
आकाशसंवात कर रहे थे । ३ ॥ उसके आगे नामर दशम गज, जो नृसिंह भगवान्‌के चक्र प्रह्लादका बसाया  
हुआ था । ४ ॥ उस देशके राजाजोह नृपुन संग्राम करके राम के नाम स्तुति करते हुए शत्रुओंकी सम्पत्ति  
मगने लक्ष्मण के शीतलके मार्गमें निन्ध प्रकट करके राम के नाम स्तुति करने लगे । ५ ॥ इसके अनन्तर दो हजार  
योजन विस्तृत तथा दो हजार योजन लम्बा अति सुन्दर निषय पर्वत पड़ा । ६ ॥ उसके आगे पार्श्वों  
की ओर सुवर्णपर्वतोंसे परिर्वेष्टित इलावृत्त नामक पर्वत दशमें पड़े । जो चीवारिस्त हजार योजन लम्बा-  
थोड़ा था । ७ ॥ वहाँ माताका समय देवता दक्षिण और तट ऊँच और अतिशय विशाल जम्बू-  
दीपको सूचित करनेवाले एक बड़े भाले जानके वृक्षका निवास । ८ ॥ इसके अनन्तर पश्चिमकी ओर  
सुपार्श्व पर्वतपर बड़ा भारी वारम्भ वृक्षके दृश्य, जो बहुत ऊँचा जोह लम्बा हुआ था । ९ ॥ इसके अनन्तर  
मेरुके उत्तर और कुमुद नामके पर्वतपर अतिशय विशाल सहस्रवृक्ष एक वटवृक्ष सीताकी दिखाया । १० ॥  
मेरुके उत्तर और उसके पासवाले मंदर पर्वतपर स्थित खूब लम्बा जोह, खूब पके तथा चक्र भगवर फलोके  
रुदे एक आजनृपको देना । ११ ॥ उस इलाकृष्मे चक्रभगवत्‌के पूज्य शत्रुभगवान्‌को सीताके साथ रामने  
प्रणाम किया । १२ ॥ उस देशके निवासी राजाअने हाथ जोड़कर रामको प्रणाम किया और राम कहति  
जाने वृत्त दिशाकी ओर बड़े । १३ ॥ तदनन्तर ले गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन  
थोड़ा तथा चीलीस हजार योजन लम्बा था । १४ ॥ तदनन्तर भद्राश्व नामक पंचमं देशमें पहुँचे, जो एक-  
शीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ हयग्रीवके उपास्य भद्राश्व भगवान्‌ रहते थे । १५ ॥ उस देशके बहुतसे

जनकजात्रानिरुपययी पतिपुत्र्य पश्चिमाभिमुखः ॥ १६ ॥ अथ मेरोः पश्चिमदिक्स्थितं माल्यवतं  
पर्वतं द्विमहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुर्विंशत्सहस्रयोजनदीर्घमनिकमन्ताय स जनकजात्रजनो नयनगोचरं  
चकार ॥ १७ ॥ नन्पश्चिमनः केतुपाल नाम पट्ट वर्ष एकत्रिंशत्सहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुर्विंशत्स-  
हस्रयोजनदीर्घं कामदेवोपास्यलक्ष्म्युपासिकाममधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रोऽनुव्रजाम ॥ १८ ॥  
तदूर्ध्वपक्षमुत्सुकुटावनमपरागपूजितशरणाविंदयुगलः स रघुकुलदीपकः सीतया पुष्पकम्बोऽ-  
निमुदमवाप ॥ १९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतः स नीलपर्वतं द्विमहस्रयोजनविस्तीर्णं नवतिसहस्रयोजनदीर्घं  
रघुकुलतिलको नयनविषयं चकार । २० ॥ अथ रम्यकं नाम मममं वर्ष नवमहस्रयोजनपरिमितं  
मत्स्योपास्यमनूपासकविमानमधिष्ठितः स रघुनन्दन उव्रजाम ॥ २१ ॥ मधुर्यग्रनिपातः स्वको-  
शादिपूजितः स रघुनायकः र्मन्ताऽनुपमं पुण्डोऽनुममम् ॥ २२ ॥ तस्योत्तरतः श्वेतपर्वतं द्विमहस्र-  
योजनविस्तीर्णमकाशानिमहस्रयोजनदीर्घमनिकमन्ताय स स्वलोचनविषयं चकार । २३ ॥ अथ  
हिरण्यं नामाष्टमं वर्ष नवमहस्रयोजनपरिमितं कुम्भोपास्यार्थोपासकमधिष्ठितमनिकमन्ताय स  
समनुषयो । २४ ॥ तदूर्ध्वपक्षमिन्दुदपितारिणे भूपनमणिनेत्रोदापितजानकीचरणारविंदयुगलवीक्षमाणः  
स रघुनन्दनो मुदमवाप ॥ २५ ॥ तस्योत्तरतः शृङ्गवन्नं पर्वतं द्विमहस्रयोजनविस्तीर्णं त्रिपत्तिसहस्र-  
योजनदीर्घं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ २६ ॥ अयोत्तकुरुवर्षं नवमं नवमहस्रयोजनपरिमितं  
वागदोषास्यभूम्युपासिकाममधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रमनुषयो ॥ २७ ॥ तदूर्ध्वपक्षमिन्द्र-  
पितत्वचनूपमदावनममपिमुक्तचिराजितपदचलरुददंढः स रघुनायको मुदमवाप । २८ ॥ अथ  
रामो लवं जम्बूद्वीपमिति कृत्स्नार्मानि निश्चिन्य किमहिमं तदधिकारे विजय नाम स्वमन्त्रिणं  
स्थापयामास ॥ २९ ॥ तेषां जम्बूद्वीपांगणद्वीपां तथा सर्वद्वीपांगणद्वीपां यानि यानि आमावि

राजाओंके साथ राम व मध्याम किया और बहुतोंका शरणमें आ जानवा खाया प्रदान किया तदनन्तर लवन  
कर लेते हुए बहुतों लौटकर पश्चिम दिशाकी ओर चड़े ॥ १६ ॥ इसके बाद पट्ट पर्वतक पश्चिम माल्यवान् पर्वतपर  
पहुंचे, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा चौकोस हजार योजन लम्बा था ॥ १७ ॥ इसके आगे केतुपाल नामक  
छठ देशमें पहुँचे, जो इकतास हजार योजन विस्तृत एवं चौकोस हजार योजन लम्बा था और वहाँ कामदेवकी  
उपासिकाई रहती थी ॥ १८ ॥ जब उस देशक राजाओंने अपना मुकुटभूषण मत्स्यक रामचन्द्रजीके चरणोंपर  
रख दिया तो सांगे तदा रामकी बड़ा प्रमत्ता हुई ॥ १९ ॥ फिर मेर पर्वतके उत्तर ओर विराजमान नील  
पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा नव्व हजार योजन लम्बा था ॥ २० ॥ इसके अनन्तर रम्यक  
नामके सातवें देशमें पहुँचे, जो नी हजार योजन विस्तृत था । वहाँ मत्स्यभगवान्के बहुतस उपासक लोग  
रहा करने थे ॥ २१ ॥ वहाँके राजाआने अपना राजा आदि दकर रामकी पूजा की और रघुनाथजी सीताजी  
पसस करते हुए भाँसे बड़े ॥ २२ ॥ उनके उत्तर धार गमने ज्वत पर्वतका देखा, जो दो हजार योजन  
विस्तृत तथा इकतासी हजार योजन लम्बा था ॥ २३ ॥ इसके बाद हिरण्य नृमके जाठवें देशमें पहुँचे, वहाँ  
अधिकतम कुम्भ भगवान् तथा सुतं नागजक उपासक लोग रहा करने थे ॥ २४ ॥ उस देशके राजाओंकी स्त्रियोंन  
बड़े मानदारक चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया तो रामचन्द्रजीकी बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २५ ॥ उसके उत्तर  
ही हजार योजन विस्तृत तथा तिहत्तर हजार योजन लम्ब शृङ्गवान् नामक पर्वतका देखा ॥ २६ ॥ इसके  
अनन्तर नवें देश उत्तर कुम्भ पहुँचे, जो हजार योजन लम्बा-चौडा था । वहाँ विजय करके वागदू भगवान्के  
उपासक तथा भूमिकी उपासिका स्त्रियाँ रहा करती थी ॥ २७ ॥ जब उस देशके राजे संभाषभूमिमें भयसे  
काँपकर रामके चरणोंमें लोट गये, तब रामकी बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २८ ॥ इसके बाद रामने जम्बूद्वीपके  
राजाको मार डाला और मनमें यह निश्चय किया कि यहाँसे लौटकर अयोध्या पहुँचनेपर लवको जम्बूद्वीपका  
अधिपति बनाऊंगा । तत्काल कुछ दिनोंक लिए अपने विजय नामके मन्त्रीको वहाँको रेल भाल करनेक लिए  
छोड़ दिया ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपके अन्तर्गत जितने राज्य थे, वे सब विजय नामक राजाके जीनोंके नामसे प्रसिद्ध

तानि प्रियव्रतनृपपौत्रनाममुचिनानि सन्ति । तेषु ये ये नृपा जायन्ते ते तद्वर्षनाममुचिना एव  
 भवन्त्यतः सर्वेषां पृथक् नामानि मयाऽत्र नीक्ष्यन्ते ॥ ३० ॥ एवं जम्बूद्वीपभायामविस्ताराम्या  
 लक्षयोजनपरिमितमनिकमनीयं समवर्तुर्लं पृथक् पत्रोपमं नववर्षमण्डितं स रघुनाथकः स्ववशं चकार  
 ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वताग्रेऽष्टपुर्योऽष्टदिक्पालानां सन्ति । तन्पालकाः मुरगघाशत्रोहियमनिर्ऋतिवरुणवायु-  
 कुबेरेणाम्ने सर्वे समाज्ञा पतिपालयन्ति चेति निश्चिन्त्य स रघुनाथकस्तान् प्रति जगाम ॥ ३२ ॥  
 सा अष्टपुर्यः पृथक् पृथक् सार्धद्विंशत्यहस्रयोजनपरिमाणेनायासविस्तारतो ज्ञातव्याः ॥ ३३ ॥  
 मेरुलक्षयोजनमुन्नतो मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्यहस्रयोजनविततो मूले वायव्यहस्रयोजनविततश्चायः पौड्य-  
 सहस्रयोजनमितो भूम्यां प्रविष्टश्चतुर्शतिसहस्रयोजनमितो भूम्यां चतुर्विंशत्तुरगुणवद्दृश्यते ॥ ३४ ॥  
 तत्र मेरुपर्वतग्रेऽष्टदिक्पद्मगुणीणां मध्ये ब्रह्मपुरी दशसहस्रयोजनभायामविस्तारतो ज्ञातव्या ॥ ३५ ॥  
 सर्वे वर्षमर्यादाभूताष्टपर्वता दशसहस्रयोजनममुन्नता ज्ञातव्याः । ३६ । वर्षदीर्घता पर्वतसमाना  
 ज्ञातव्या ॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपम्योपद्वीपानष्टौ द्वेक उपदिशति ॥ ३८ ॥ मयरात्मजायान्वेषणं मदी  
 मदीं परितो निस्तनद्भिरुपकल्पितान् ॥ ३९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणकः  
 मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यं मिहलो लङ्का चेति ॥ ४० ॥ तेषु लकां विना मयसु यदा यद्यन्मर्षीषं  
 तदा तत्र तत्र सन्तः तत्रस्थानुपद्वीपपालकान् आरामचन्द्रः स्ववशं चकार । ४१ । भारतेला-  
 वृतवर्षाभ्यां रिना सप्तसु नवैष्वमरुपाका नद्यो गिर्यश्च सन्ति । तेषां विस्तारं को वक्तुं क्षमः ॥ ४२ ॥  
 अथेल्लवृवसस्थिता मूल्यनद्य एवाभ्यन । ४३ ॥ अरुणोदाजवृनदीषयोदधिघृतमधुगुडान्नांषर-  
 क्षम्यासनाभरणमंठा नदास्तदा पश्च मधुधानाद्यस्तथा सीतालकनंदाचक्षुर्भद्रेति मेरोरपश्चतुर्दिक्षु  
 पविता जाह्नवीभेदाश्चत्वार एवमिलाष्टनद्यः ॥ ४४ ॥ तागु सीता पूर्वमसुद्रं चक्षुर्भद्रा पश्चिमसमुद्रं  
 मद्रोषरसमुद्रमलकनदा दक्षिणस्यां दिशि भारते वर्षं जलनिधिं प्रविशति ॥ ४५ ॥ भारतेऽस्मिन्

वे । जहाँका जो राजा था, उसीके नामसे वह राज्य विख्यात था । इस जिये सबका अलग-अलग नाम मैं  
 नहीं बतला रहा हूँ ॥ ३० ॥ इस प्रकार एक लाख योजन लम्बी थी, अतिशय सुन्दर एवं बहुलाकार कमल-  
 पत्रक समान विराजमान जम्बूद्वीपका उन्हाल जौत लिया ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वतके आगे बाह्र लाखपादोका आठ  
 गुरिया है । वे सब भी मेरी आज्ञाका राजन कर । इस विनायक रामचन्द्रकी आज्ञा बढ़े ॥ ३२ ॥ वे माछों  
 पुरियां आराम-अराम अढ़ाई अढ़ाई हजार योजन लम्बी चौड़ा है । मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है और  
 उसकी चोरापर बत्तीस हजार योजन लम्बी चौड़ा मैदान है । नाच सारह हजार योजन विस्तार है और सोलह  
 हो हजार योजन बड़ पृथ्वीके भीतर सम या हुआ है । चोरासी हजार योजनको लम्बाई चोराविनाश यह  
 पर्वत समुद्रकी फुलकी तरह फैलता है ॥ ३३ ॥ ३४ । मेरु पर्वतके आगे पूर्वोक्त आठ पुरियोमें बह्मपुरीकी लबाई-  
 चौड़ाई विस्तारमें जोक इस हजार योजन है । ३५ ॥ जिन-जिन पर्वतोंपर व आठो पुरियां हैं, वे प्रत्येक  
 पर्वत लख-दस हजार योजन ऊँच है ॥ ३६ ॥ प्रत्येक पुरीका विस्तार पर्वतके विस्तारकी तरह ही समझना चाहिए  
 । ३७ ॥ जम्बूद्वीपके भी बाठ उपद्रोप है ॥ ३८ ॥ जिस समय महाराज सगरके साथ हजार पुत्र समुद्रके खोज रहे थे,  
 तब उन्हीन ही इन द्वीपोंकी रचना का था । ३९ । उन आठो द्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं । स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल,  
 आवर्तन रमणक, मन्दरहरिण पाञ्चजन्य, मिहल और लङ्का ॥ ४० ॥ इनमेंसे लङ्काको छोड़कर जेथे सब द्वीपोंमें  
 आकर वहाँके राजाओंको रामने अपने बशम कर लिया । ४१ । भारत और इलाकतोंको छ डकर सातों देशोंमें  
 कमन्ध पर्वत और नदियां हैं, जिनका दिग्गार बतलानम कोई समर्थे नही है । ४२ । इलाकत द्वीपम जो  
 मुख्य मुख्य नदियां हैं, -तब ही हम बतलाते हैं । वे हैं—॥ ४३ ॥ अरुणाक्ष, जमुनी, दूय, घी, मधु, गुड, अथ,  
 कम्प, कम्प, आसन और आभरणसंज्ञक नदियां हैं । इनमें पाँच नदियां तो ऐसी हैं, जिनमें तदा मधुको धारा  
 बहती रहती है । मेरु पर्वतसे सीता, अलकनदा, चक्षु, भद्रा तथा जाह्नवी ये पाँच नदियां निकली हैं

वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवः ॥ ४३ ॥ तद्यथा मलयो मंगलप्रस्थो मंजाकसिकूटः ऋषभः कुटकः  
सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेंद्रो वारिधरो विन्ध्यः शक्तिमानृक्षगिरिः वारियात्रो  
द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिश्चेत्यन्ये च  
शतसहस्रशः शैलास्तेषां नित्यप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसरुयाताः ॥ ४७ ॥ चन्द्रवशा ताम्रपर्णी  
अवटोदा कुतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावती तुंगभद्रा कृष्णा वेणा भीमरथी  
निर्विन्ध्या पयोध्नी तापी मही सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुः शोणश्च नदी महानदी वेदस्मृतिः  
अधिकुन्धा त्रिसामा कौशिकी मंदाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोषस्वती सप्तवती  
सुषोमा शतद्रुश्चन्द्रभागा मरुषन्वा वितस्ता अमिकनी विश्वेति महानद्यः । ४८ । एव शिष्य  
रघुनायको नायकः सोपद्वीपं जम्बुद्वीपं स्वयञ्च कृत्वा लक्षयोजनविस्तीर्णं जम्बुद्वीपपरिलोपमं  
समुत्क्षिप्य पुष्पकस्थः प्लक्षं नाम द्वितीयं द्वीपं ददर्श ॥ ४९ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्तरे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

पूर्वार्धे जम्बुद्वीपजयो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

## नवमः सर्गः

( राम द्वारा प्लक्षादि छः द्वीपोंकी विजय )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो ययौ श्रीमान् प्लक्षद्वीपं मनोरमम् । द्विलक्षयोजनमितं समवर्षसमन्वितम् ॥ १ ॥  
उपास्यो यत्र वै सूर्यो ब्राह्मणाश्च क्षुधामकाः । द्वीपाख्याकुञ्च यत्रास्ति प्लक्षवृक्षो हिरण्मयः । २ ॥  
यथाऽऽरामाद्बहिर्ज्ञेयाः परिक्लाभं समन्ततः । जम्बुद्वीपाच्च क्षारोदाद्बहिर्द्विपस्तथा त्वयम् ॥ ३ ॥

॥ ४४ ॥ उनमेंसे सातों पूर्व समुद्रमें, चतुर्भद्रा पश्चिम समुद्रमें और मल्लकलन्दा दक्षिण समुद्रमें जाकर मिलती है  
॥ ४५ ॥ भारतवर्षमें भी बहुत-सी नदियाँ और पर्वत हैं । ४६ ॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मंजाक, त्रिकूट, ऋषभ,  
कुटक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेंद्र, वारिधर, विन्ध्य, शक्तिमान्, ऋक्षगिरि, वारियात्र,  
द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि ये पर्वत हैं । इनके  
अतिरिक्त और भी बहुत से पर्वत हैं, जिसकी तलहटीसे बहुतसे नद और नदियाँ निकली हैं । जैसे—॥ ४७ ।  
चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कुतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुंगभद्रा, कृष्णा,  
वेणा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, तापी, मही, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती । सिंधु और शोण ये दोनों  
महानद हैं । वेदस्मृति, ऋषिकुन्धा, त्रिसामा, कौशिकी, मंदाकिनी, यमुना, क्षरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू,  
रोषस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुषन्वा, वितस्ता, अमिकनी और विश्वा ये महानदियाँ हैं  
॥ ४८ । हे शिष्य ! इस प्रकार उपद्वीपों समेत जम्बुद्वीपको अपने वशमें करके राम एक लाख योजन विस्तृत  
स्वर्णसमुद्र, जो कि जम्बुद्वीपको लाईके समान था उसे पार करके पुष्पक विमान द्वारा प्लक्ष नामके एक  
दूसरे द्वीपमें आ पहुँचे ॥ ४९ । इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्तरे श्रीमदानन्दरामायणे प० रामोऽपठ्यवि-  
धित'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते आनन्दरामायणे राज्यकाण्डे पूर्वार्धे अष्टमः सर्गः । ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके बाद श्रीमान् रामचन्द्र भतिषाय मनोरम प्लक्षद्वीपको गये, जो दो लाख  
योजन विस्तृत था और उसमें सात देश थे । १ ॥ वहाँ सबके बाराध्य देवता सूर्य और देवाराधक ब्राह्मण  
थे ; वहाँ सुवर्णका एक बड़ा सा प्लक्ष ( पाकड़ ) का वृक्ष था और उस प्लक्षके ही कारण उसका प्लक्षद्वीप नाम  
पड़ा था ॥ २ ॥ जिस तरह किसी बगीचेके चारों ओर साईं बना दी जाय, ठीक उसी तरह उसको चारों ओरसे

येनोः पूर्वदिशायां वै तत्र वर्षं शिवऋषम् । आदौ ययौ रामचन्द्रः क्षणादेव विहाय सा ॥ ४ ॥  
 नदी यत्रारुणा नाम्नी सर्वपापप्रणाशिनी । नस्यां ज्ञान्वा रघुश्रेष्ठः शीघ्रं तद्वर्षं ययौ ॥ ५ ॥  
 तेन वर्षाधिपेनैव युद्धमार्मान्मुदारुणम् । तं जित्वा पञ्चनामैश्च तैश्च पार्थिवमत्तमैः ॥ ६ ॥  
 पूजितो रघुनाथस्तु वज्रकुटाचलं ययौ । वज्रकुटं महाश्रेष्ठं द्वयोः सागरयोः स्थितम् ॥ ७ ॥  
 परम्परं वर्षयोश्च सीमाभूतं ददर्श यः । तं गिरिं पृष्ठतः कृत्वा वर्षं पश्यन् ययौ ॥ ८ ॥  
 नृम्णानदीजले स्नान्वा ययौ यावयमेश्वरम् । तेन सपूजितो गमन्तवस्तद्वर्षपार्थिवैः ॥ ९ ॥  
 सहितः पुष्पकेनैवमुपेन्द्रमेनपर्वतम् । दृष्ट्वा कृत्वा पृष्ठतस्तु सुनद्रं वर्षमाययौ ॥ १० ॥  
 आंगीर्ष्मानदीतोये स्नान्वा य रघुनाथकः । वर्षाधिपेन कौशैः संपूजितः पार्थिवैः सह ॥ ११ ॥  
 ज्योतिष्मन्तं गिरिं गत्वा तं कृत्वा पृष्ठतः क्षणम् । शान्तिवर्षेऽथ सावित्रानदीतोये विगाद्य च ॥ १२ ॥  
 तद्वर्षेऽथ नृप जित्वा तथा तद्वर्षं स्थितान् । नृपान् जित्वा क्षणादेव सुवर्णपर्वतं ययौ ॥ १३ ॥  
 ततो गत्वा क्षेमवर्षं सुप्रभातानदीजले । स्नान्वा रामः क्षेमयेन स्वकौशैः परिपूजितः ॥ १४ ॥  
 द्विग्वयष्टीवनामानं गिरिं शय्यं विलम्ब्य च । वयःमृते तन्मृपेण पार्थिवैः परिपूजितः ॥ १५ ॥  
 शतभगानदीतोये चकार स्नानमादयान् । मेघमालं गिरिं त्यक्त्वा पृष्ठतः पुष्पकेन हि ॥ १६ ॥  
 वर्षेऽभये तन्मृपतिं क्षणजित्वा गणे प्रभुः । मन्यधरा नदीतोये स्नान्वा य रघुमत्तमः ॥ १७ ॥  
 सुचन्द्रारव्यं नृपं प्लक्ष्मद्रापेशं तीक्ष्णमगारं । कृत्वा वै स्वपदाक्रान्तं तेन तद्द्वीपपार्थिवैः ॥ १८ ॥  
 वणिक्कुटं गिरिवरं समतिक्रम्य वै क्षणम् । इक्ष्वासोदनामानं द्वािलक्षयोजनं वरम् ॥ १९ ॥  
 तीर्त्वा तं सागरं भीमं प्लक्ष्मस्य परिक्षोपमम् । तथा च शाल्मलीद्वीपं चतुर्लक्षमितं ययौ ॥ २० ॥  
 द्वीपारूपाकुच्चं यत्रास्ति शाल्मली द्वीपपादपः । यत्रोपास्यश्चमोमोऽस्मि तत्रस्थास्तदुपासकाः ॥ २१ ॥  
 विस्तारद्वीपमानानि दीर्घनायाः स्मृतानि च । तत्र क्रमेण वर्षाणि कथ्यन्ते पूर्ववन्मया ॥ २२ ॥

स्वयं रामचन्द्र घेरें हुए था । ३ ॥ मेरुपर्वतकी पूर्ब ओर प्लक्ष्मद्रापेश शिवजीक नामका एक देश था । रामचन्द्रजी  
 क्षणमात्रमें वहाँ पहुँचे । ४ ॥ वहाँपर सब पोंका नाश करनेवाली अरुणा नदी बहती थी । जिस-  
 से उन्होंने स्नान किया और उस देशके राजाके पास गये । ५ ॥ उस राजाके साथ रामको पयश्चर युद्ध छिड़  
 गया । पीछे अतृप्तक घमामान युद्ध होनेके पन्थान् बहाँका राजा रामके बलमें आ गया और उसने उनकी पूजा  
 की ॥ ६ ॥ फिर वहाँसे वज्रकुटाचलपर गये । वह पर्वत दो सागरोंके बीचमें स्थित होकर दोनो देशोंकी सीमा-  
 का काम कर रहा था । उसकी लीधकर यवयस नामक देशका गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ वहाँ उन्होंने नृम्णा नदीमें  
 स्नान किया और यवयस देशवाले राजाके पास गये । उसने रामकी पूजा की । इसके बाद रामने वहकि  
 भी बहुतसे राजाओंको अपने पुष्पक विमानपर बिठा लिया और आगे उपेन्द्रसेन नामक पर्वतपर पहुँचे ।  
 उसे देखकर वे सुप्रभात देशको गये । ९ ॥ १० ॥ वहाँ आगरसे नदीमें स्नान करनेके पश्चात् वहकि राजासे  
 मिले । उसने बहुतसे धनका व्यय करके रामचन्द्र तथा उनके साथवाले राजाओंका मत्कार किया । ११ ॥  
 फिर ज्योतिष्मान् नामक पर्वतकी लीधकर वे शान्तिदेशको गये । वहाँ सावित्री नदीमें स्नान करके उस  
 देशके राजाको परास्त किया और उसके आगे सुवर्ण पर्वतपर गये । वहाँसे क्षेमदेशमें पहुँचे । वहाँ रामने  
 सुप्रभाता नामकी नदीमें स्नान किया और क्षेमदेशके राजाने रामका सिधिवस् पूजन किया ॥ १२-१५ ॥ इसके  
 पश्चात् चतुर्धरा नदीमें स्नान करके मेघमाल नामके पर्वतकी लीधें हुए राम अभय देशमें पहुँचे । वहाँके  
 राजाकी क्षणमात्रमें जीनकर सत्यधरा नदीमें स्नान किया । फिर सुचन्द्र नामक राजा जो प्लक्ष्मद्रापका  
 शासक था उसे भगानक युद्धमें हराकर वहाँके बहुतसे राजाओंको अपने साथ लेकर इक्ष्वासोद नामके पर्वतपर  
 समुद्रकी पार किया । वह प्लक्ष्मद्रापकी लीधें समान दो लाख योजन विस्तृत था । वहाँसे चलकर शाल्मली  
 द्वीपमें पहुँचे, जो चार लाख योजन विस्तृत था । १९-२० ॥ वहाँ एक विशालका शाल्मली ( सेमर ) का



सेरोः पूर्वदिशाभ्यः सर्वत्र क्रम इत्यनेन सुगोचनं सोमनन्दं तथा गमाकं शुभम् ॥२३॥  
 देववर्षं पाणिमद्रनामाप्यायनमनुभूयम् । अविज्ञानं ममम च नम वर्षाणि वै क्रमात् ॥ २४॥  
 अनुमती मिनीवाली तथैव च सरस्वती । कुहूश्च रजनी नन्दानं गका नद्यः प्रकीर्तिता ॥२५॥  
 अतमंगो वामदेवो कुहूश्च कुपुन्दमथा । पुष्पवर्षः पञ्चनद्यः सहस्रभृतिहजमः ॥२६॥  
 स्वरसः पर्वता सम ज्ञेयाः सोमासु वै क्रमात् । एतेषु ममवर्षेषु वर्षानाम् विजिज्य सः ॥२७॥  
 जिन्वा द्वीपेश्वरं रामः सुवाहू मुद्रमाथया । सुगन्ध च चतुर्लक्षमिन् तीर्था पयोनिधिम् ॥२८॥  
 कुशद्वीपमष्टलक्षमिन् रामो ययो भगवान् । यत्रोपास्यो जानवेदाः सर्वपा द्वीपवाणिनाम् ॥२९॥  
 द्वीपाख्याकुच यत्रास्ति कुशस्तवः सुरैः कृतः । तत्र क्रमेण वर्षाणि रक्ष्यन्ते मम वै मया ३०॥  
 वसु च वसुदानं च तथा दृढरुचि शुभम् । नाभिगुप्तं तथा सन्पत्रं विदित्तमुत्तमम् ॥३१॥  
 वामदेवं सममं च वर्षं ज्ञेयं क्रमेण हि । मधुकुल्या मधुकुल्या मिश्रविंदा नदी शुभा ॥३२॥  
 भ्रुतिविंदा देवमर्षा तथा चैव धृतच्युता । मन्त्रमाला क्रमणैव नद्यः ममसु वै क्रमात् ॥३३॥  
 वतुःशृङ्गश्च कपिलधित्रकूटो मनोरम । देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविणश्चक ईरितः ॥३४॥  
 एते सोमासु वर्षाणां गिरयः भवन् वै क्रमात् । एतेषु ममवर्षेषु मन्थितान्यायिवीजभाम् ॥३५॥  
 गधवः सगरे जिन्वा लब्ध्वा चानुत्तम यशः । कुशद्वीपपतिं जिन्वा महासेनं तुनोप सः ॥३६॥  
 अष्टलक्षमिन् तीर्था घृतोद सागरोत्तमम् । कौचद्वीपं ययो गमः पुष्पकेणानिमास्वता ॥३७॥  
 कुशद्वीपाच्च स ज्ञेयो द्विगुणो द्वीप उत्तम । द्वीपाख्याकुच यत्रास्ति कौश्वनामा गिरिर्महान् ॥३८॥  
 यत्रोपास्योऽस्मयो देवो हरिश्चन्द्रद्वीपवाणिनाम् । तत्रापि मम वर्षाणि रक्ष्यन्तेऽयं क्रमेण हि ॥३९॥  
 शर्म मधुरुह मधुपृष्ठ चैव मनोहरम् । सुधमानं च भ्राजिषु लोहितानां वनस्पतिम् ॥४०॥

वृत्त था । इसीलिए वह देश म हमने द्वीपके नामसे विख्यात था वहाँ चन्द्रदेव मन्दक आराध्य  
 देवता है और वहाँके निवासी चन्द्रमाकी ही उपासना करने हैं । पीछे जिन द्वीपोंका जो विस्तार  
 कहा आये हैं, उन्हींके अनुसार नदु भी विस्तृत था । वहाँके जो देश हैं, अब हमको बतलाता है  
 ॥ २१ ॥ २२ ॥ येसके पूर्व ओरसे लेकर क्रमशः सब देशोंका नाम कहता है । जैसे—सुरावन, सोमनस्य, रम-  
 णक, दन्ववर्ष, पारिभाद्र, आप्यायन और अविज्ञात ये सात देश उस द्वीपमें हैं ॥ २१ ॥ २४ ॥ वहाँपर अनुमती,  
 मिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्द और गका ये नदियाँ हैं ॥ २५ ॥ गतमृद्ग, वामदेव, कुन्द, कुपुन्द,  
 पुष्पवर्ष, सहस्रभृति और स्वरस ये उस देशके सात पर्वत हैं जो उसकी सोमाका काम कर रहे हैं । इन  
 सातों देशोंके राजाओंको रामने जीत लिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर उस द्वीपके अधीश्वरको जीतकर  
 चार लाख योजनके लक्षण लम्बे-चौड़े मन्त्रामुद्रको जीतकर वे मुवाहूके पास पहुँचे ॥ २८ ॥ फिर सगमाग्रमें  
 गम आठ लाख योजन विस्तृत समुद्रको लांघकर कुशद्वीप गये । उस द्वीपके समस्त निवासी अग्निके  
 उपासक हैं ॥ २९ ॥ द्वीपके नामका स्पष्ट करनेके लिए वहाँपर एक कुणका जंगल देवताओं द्वारा लगाया हुआ  
 है । अब वहकि जो सात देश हैं, उनको बतलाते हैं— ३० । वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत,  
 विदित्त और सातवीं वामदेव नामके देश हैं । उन सातों देशोंमें मधुकुल्या, मधुकुल्या, मिश्रविंदा, भ्रुतिविंदा,  
 देवमर्षी, धृतच्युता तथा मन्त्रमाला ये सात नदियाँ हैं । वतुःशृङ्ग, कपिल, धित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा,  
 द्रविण और चक ये सात पर्वत उस द्वीपमें हैं ॥ ३१-३४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीतकर  
 कुशद्वीपके अधिपति महासेन नामके राजाको भी उन्हींमें जीत लिया । इससे रामको प्रसन्नता हुई । ३५ ॥ ३६ ।  
 फिर आठ लाख योजन विस्तार घृतोद नामके सागरको पार करके वे अपने देशीयमान पुष्पक विमान द्वारा  
 कौचद्वीप गये ॥ ३७ ॥ कुशद्वीपको अपञ्च । ३८ द्वीप सुगुना लम्बा-चौड़ा है । वहाँ उस द्वीपका नाम सार्वक  
 करनेके लिये एक विशाल नीच पर्वत है ॥ ३९ ॥ वहाँके समस्त निवासी वरुणके उपासक हैं और विष्णुभगवान्



अपरं तद्वातकीन्यारूपानं ते कुरुणोपयम् नद्वर्षणी नमो जित्वा ततो द्वापेंधवं नृपम् ॥६०॥  
 उन्नरांगह्वये रामः परां मुदमवाय मः । ददर्श पुष्करं तत्र द्वापराकाङ्क्षकं व्रम् ॥६१॥  
 कम्बलासनस्य यज्ञोप वस्त्राणः परमासनम् तत्र कर्मसयं स्त्रिंशं वस्त्राणि जनोऽर्चयन् ॥६२॥  
 वर्षयोर्बहुला नक्षः पापनिवृत्तनक्षमाः दक्षतद्वसमानेन प्राशुर्होयः स परेतः ॥६३॥  
 तस्मिन् गिरी पूर्वाभागे पुगे मध्वतः ह्रमा । देवभार्गोति नाम्ना सा मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥६४॥  
 गिरी तस्मिन् दक्षिणस्यां दिशि संवमनी पुरी । यस्याज्जस्य सा ज्ञेया मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥६५॥  
 पश्चिमे वरुणस्याध पुगे निम्लोचनी स्मृता । उन्नम्यां तु कौशेयी पुगे खपाता विभावरी ॥६६॥  
 मिथ्याः पुण्यस्त्रिंशो ज्ञेया मेरुस्थाम्य शुभावहाः यथा नृपस्य स्थानानि खनेकानि तथा त्रिमाः ॥  
 सर्वे योऽपर्वतास्ते त्रिर्लिंगाश्च पृथक् स्मृताः । द्विदद्वययोजनैश्च प्राञ्चवर्गं ते वदाम्यहम् ॥६८॥  
 सर्वेषां दक्षमाहर्षयोजनैः प्रोच्यते, यत् । त्रिर्लिंगां तु शुद्धोद पुष्कार्द्वापममितम् ॥६९॥  
 सीतायाः कौतुकार्थं हि स जगाम नृपजमः । उद्दिशार्थं म्यावलोकानवस्थानां नृणामपि ॥७०॥

ततोऽग्रे भूमिं मार्घमसलश्रोतस्मार्द्धकोटि ( १५७५००-० ) परिमितं कञ्चिन् प्राणिमहितां  
 रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७१ ॥ तैः सर्वभूमिनिव मिभिः सपूजितो रघुनन्दनो मैथिलान्नानार्पमग्नं जगात्  
 ॥ ७२ ॥ मैरुचन्वार्णिष्ठश्रोतस्कोट्यष्ट ( १५७४००० ) योजनपरिमितं मेहमान-  
 मोत्तमचलयोरतगले माने ज्ञातव्यम् ॥ ७३ ॥ ततोऽग्रे आदयं तापसां कावर्णा भू स देवैर्गंधिष्ठितां  
 र्चकोनचन्वार्णिष्ठश्रोतस्कोट्यष्ट ( ८३१००००० ) परिमितं दृष्ट्वा देवैः सपूजितः श्रीरामचन्द्रो  
 मुदमवाप ॥ ७४ ॥ ततोऽग्रे लंकाकालीरुपर्वतं मार्द्धेडादशका दृ ( १२५०००००० ) परिमितं विस्ती-  
 र्णवितनया भूमिप्राकारोपमं केताप्ताश्लक्ष्यं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७५ ॥ पश्मिन्नष्टदिक्षु द्विरदप-  
 तयः श्वश्रमः पुंडरीकः पृथ्वरघूडः कुमुदो वामनः पुष्पादनेऽपराजितः सुवर्णीक इत्यष्टौ दिग्गजाः

[illegible]

सकललोकस्थानहेतवः ॥ ७६ ॥ तस्मिन्नेव गिरिवरे भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिः  
सकललोकहिताय आसन् ॥ ७७ ॥ ततः परस्ताद्योगेश्वरानि विश्वद्रुद्राष्टुदाहरन्ति ॥ ७८ ॥ एव पञ्चा-  
शत्कोटिगुणिता भूमालोका जयः ॥ ७९ ॥ एवं पञ्चविंशतिकोटिमितां भूमिं लोकालोकमध्यवर्तिनीं  
सुष्ठुनन्दनः स्ववशां कुन्वाऽऽकाशपथा परिक्लृप्त्य सर्वान् द्रुपान् पूर्ववत्पश्यन् जम्बुद्वीपं भारत-  
वर्षमप्यगतां ह्यां राजधानीमयाध्यां मष्टद्वीपनृपपरिवेष्टितांऽनुययी ॥ ८० ॥ ततो रामोऽप्योष्या-  
निकटं गन्वा हृतैः स्वागमनं सुमंत्रं सूचयामास ॥ ८१ ॥

समायातं रामचन्द्र श्रुत्वा स मंत्रिमनमः । अयोध्यां भूषयामास पताकाध्वजतोरणैः ॥ ८२ ॥  
वारणेन्द्रं पुष्करन्ध्रं पौरैर्ज्ञानवर्धः सह । मन्थुद्रस्य रामचन्द्र नन्वाऽप्योष्यां निवाय यः ॥ ८३ ॥  
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननुन्धाप्सरेगणाः । हृष्टुर्भुर्मागधाद्याश्च नटा गान प्रचक्रिरे ॥ ८४ ॥  
रामायमनमाकर्ण्य पौनर्यः सुभूषिताः । प्रामादस्त्रिखगकूडा ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ ८५ ॥  
राजद्वारं विमानेन अनेः स रघुनन्दनः । गृह्णन् पौरोपायनानि स्त्रीभिर्नोगत्रिनः पवि ॥ ८६ ॥  
ययी यानाद्वरुह्य सुमायां नित्र आगम । तस्थौ मधन्ततः सर्वैर्नृपैश्च परिवेष्टितः ॥ ८७ ॥  
ततः स्थलानि सर्वेषां वस्तुमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । दक्षिणादादि सम्पाद्य कृतकार्यममन्यत ॥ ८८ ॥  
आत्मानं सकलान्पूर्वाभ्यनान् जित्वा समुद्रतान् । तनर्स्तैः समर्द्धापस्थैः पार्थिवैः परिपूजितः ॥ ८९ ॥  
रामः स्वभ्रातरं विप्रैर्मन्तं भारताधिपम् । चकार पार्थिवैर्युक्तो लक्ष्मणानुमतेन सः ॥ ९० ॥  
आदावेद वसिष्ठेन दत्तं भरतनाम तन् । विचिन्वेद् भावि वृत्तं ज्ञानकर्मणि निश्चिनम् ॥ ९१ ॥  
पूर्वमाज्ञापितं स्वायत्तेवकं भग्नस्य च । रथणे तं रामचन्द्रः कार्यान्तरमकल्पयत् ॥ ९२ ॥

ज्यों रिसाजोंमें क्षेम, पुष्परीक, पुष्करपूड, कुमुद, वामन, पुष्पदन्त, अपराजित और मुप्रलोक के सभी  
लोकालोकों अपने अपने धारण करनेवाले आठ दिग्गज विद्यमान हैं ॥ ७६ ॥ इसी पर्वतकं ऊपर परममन्त्रा-  
पुरुष और महाविभूतिपति भगवान् रामने मगरके द्विकों कामनामें रहा करने हैं ॥ ७७ ॥ इसके आगे  
विशुद्ध योगेश्वरोंकी ही कृति है, ऐसा लाभ कहते हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सब मित्राकर पचास करोड़गुना  
विस्तृत भूमाल है उसमेंसे पंचमकी अपने वशाय करके राम आकाशमार्गसे उड़कर रामनक विविध द्वीपो-  
की देखते हुए जम्बुद्वीपके भाग्यवर्गस्थ अयोध्या नामकी अपने राजधानीमें सातो द्वीपोंके राजाओंके साथ  
बापस आये ॥ ७९ ॥ अयोध्याके समीर पञ्चवक्त्र रामन एक दूत द्वारा समन्त्रकी अपने आगमनकी सूचना दी ।  
सुमंत्रने रामका आगमन समा तो पताका, ध्वजा तथा तारपादिकसे अवाध्याकी समजिस्त करवाया ॥ ८२ ॥  
फिर एक बड़े भारी हाथोंकी आगे करके पुन्यामी जनोके साथ रामके समस्त पहुँच और उन्हे प्रणाम करके  
अयोध्या लाये ॥ ८३ ॥ उस समय अनेक प्रकारके बड़े दाँदे अमराएँ नाचीं गायकोने गाने गाये और  
बन्दोजनोंने मृत्ति की ॥ ८४ ॥ रामका आगमन सुन्दर अयोध्याकी स्त्रियाँ भीति भीतिकं वस्त्राभरण पहनकर  
अपने कोशोंपर चढ़ गयीं और वहाँसे फूलोंका वर्षा करने लगी ॥ ८५ ॥ रामचन्द्रजी धीरे-धीरे पुरवासियोंकी  
मेढें स्वीकार करते हुए पुष्पक विमान द्वारा अपने राजद्वारपर पहुँच । रामने तिनयोंन रामकी आरती  
उतारी ॥ ८६ ॥ राजद्वारपर पहुँच ना पुष्पक विमानसे उतरकर सभाभवनमें गये और अपने मिहसनपर  
बैठे । उनके साथ जा राज आग ये, वे भी मिहसनके चाने ओर बैठ गये ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर  
सब मेहसानोंकी ठहरनेक लिए स्थान धन्यानेके निमित्त लक्ष्मणने कहकर राम दक्षिणादादि कार्योंमें  
लग गये । इस प्रकार पृथ्वीपर रहनेवाले उद्भूत राजाआका परास्त करके रामने अपनेकी कृतकृत्य समझा ।  
इसके अनन्तर उन सातो द्वीपोंके राजाआने फिरसे रामकी पूजा की ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणने  
सलाह लेकर रामने भरतको भारतवर्षका अधिपति बना दिया ॥ ९० ॥ इस भावी बातको सोचकर ही  
वसिष्ठने भरतका नाम भरत रक्खा था ॥ ९१ ॥ पहले जिस सेवककी रामचन्द्रजीने भारत देशकी रक्षाके

जम्बूद्वीपतिं रामश्चकार स्वसुतं लवम् । लवोऽपि विजयं स्वीयसचिवं चाक्रगेन्मुदा ॥९३॥  
 तवस्वपि च वपेषु यातायार्तं पुनः पुनः । चकार विजयेनैव पुनः कार्यार्थमादरात् ॥९४॥  
 शत्रुघ्नो यौवराज्ये स्वे मतेनाभिषेचिनः यौवराज्यपदे स्वीये कृत्वा रामः कुशं सुतम् ॥९५॥  
 चकार लक्ष्मणं मुख्यं सचिवेषु सुमन्त्रिणम् । समद्वीपपतिः श्रीमान्स्वयमासीद्रघूत्तमः ॥९६॥  
 स्वस्वकार्येषु सर्वे ते ग्रामान् तत्परमानयाः । ततः सर्वाञ्चृपान्बुज्य ददावाज्ञां रघूद्वहः ॥९७॥  
 ततस्ते राघवं दत्त्वा ययुः स्वं स्व स्थलं मुदा । ततो भारतवर्षस्य पदामशं मदा मुदा ॥९८॥  
 चकार भरतः श्रीमान् भरताधिपतिः प्रभुः । जम्बूद्वीपपदामशं य चकार लवस्त्वया ॥९९॥  
 समद्वीपपदामशं रामचन्द्रः कुशं च । लक्ष्मणेन गद्वैवापि स्वयमेवाक्रोत्प्रभुः ॥१००॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धं  
 कृशादिषड्वीपविजयदशमं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

### दशमः सर्गः

( रामका संन्यासी, शूद्र तथा गृध्रको दण्डदान )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः सारमेयदीर्घगवं मुष्टुः । राजद्वाराद्वहि भ्रुत्वा समास्थो दूतमनवीत ॥१॥  
 कथं दीर्घस्वरेणैव स्वाऽद्य क्रोशति पश्यताम् । तथेति रामदूतोऽपि गत्वा राजसभाद्वहिः ॥२॥  
 न्यवारयन्सारमेयं राजद्वारात्स्वपर्वणैः । रामं कृत्वाऽश्रुवाद्वाक्यं तूष्णीं स्वा क्रोशति प्रभो ॥३॥  
 मया निवारतो दूर गतः स गवर्णांतक । ततो द्वितीयदिवसे तच्छब्दान् राघवोऽशृणोत् ॥४॥  
 हृतेन पूर्वकच्चापि सारमेयो निवारितः । तनस्सर्ताये दिवसे तद्रावानशृणोत्प्रभुः ॥५॥  
 तदाविचकितः ग्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् । स्वाऽयं दिनत्रयं बन्धो कथं क्रोशति संततम् ॥६॥

लिए नियुक्त किया था, उसे दूसरे काममें लगा दिया ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर अपने लव नामक बेटेको जम्बू-  
 द्वीपका अधिपति बनाया लवने विजय नामके उस सेनिकको मंत्री बना दिया, जिसे कि रामचन्द्रजीन कुछ  
 दिन तक भरतखण्डकी देखभाल करनेके लिए नियुक्त किया था ॥ ९३ ॥ लव विजयके साथ कार्यवशा नवों  
 द्वीपोंमें बराबर आशा-जाया करते थे ॥ ९४ ॥ भरतने अपनी जगह शत्रुघ्नका युवराजपदपर अभिषेक कर  
 दिया । रामने कुशको मुद्रराजके पदपर अभिषिक्त करके लक्ष्मणको अपना सर्वथेष्ट मंत्री बनाया । किन्तु  
 सातो द्वीपोंके अधिपति राम स्वयं थे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ये सब लोग अपने-अपने कार्योंको वही तत्परताके साथ निभाते थे ।  
 इसके अनन्तर रामने साथ आये हुए राजाओंको अपने देश जानिका आज्ञा दी और वे रामचन्द्रजीकी प्रणाम  
 करके अपने-अपने देशको चल गये ॥ ९७ ॥ भारतवर्षका शासन भरतजी प्रसन्नतापूर्वक करते थे । जम्बूद्वीपका  
 शासन लव करते थे और भरत, कुश तथा लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामचन्द्रजी सातों द्वीपोंका शासन कर रहे  
 थे ॥ ९८-१०० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-  
 'ज्योत्स्ना'शाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे । सहसा कई बार एक कुत्तेके रोनेकी  
 आवाज सुनी तो दूतसे बोले— १ १ । देखो तो हतने ऊँचे स्वरमें कुत्ता क्यों चिल्ला रहा है । रामके आज्ञानुसार  
 दूत कुत्तेके पास गया । उसे घमकाकर वहाँसे हटा दिया और रामने जाकर कहा—हे राक्षसात्मक ! उस  
 भौते दूर भगा दिया है, अब वह नहीं चिल्लायेगा । दूसरे दिन फिर रामने उसी प्रकार उस कुत्तेका रोदन  
 सुना तो दूतसे भगवाया ॥२-४॥ तीसरे दिन फिर उसका रोदन सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज तीन दिनसे

किं दुःखं सारमेयाय प्रहस्य मन्पुरस्त्वया । तथेति लक्ष्मणो दूतान्नवीन्सभ्रमन्वितः ॥७॥  
 समामाकारणीयः स्यात् पुष्पाभिस्त्वद्य मादगम् । तथेति रामदूतात्मे सारमेयं वचोऽब्रुवन् ॥८॥  
 आकाशितोऽपि रामेण त्वमेहि राघवातिक्रम । त्वद्वचं फलितं चाद्य पूर्वपुण्योदयेन हि ॥९॥  
 रामदूतवचः श्रुत्वा तुष्टः स्यात्तान्यनोऽमर्षात् । देवगृहे यत्रवाटडोमशालानु वै स्यात् ॥१०॥  
 पुन्दावने समीपां च मठे पारिग्रमगृहे । गोष्ठ पुण्यस्थले पुण्ये तीर्थं देशालयेऽपि च ॥११॥  
 पक्षस्थाने रतिस्थाने स्नानमन्ध्यामथलादिषु । गन्तु नार्हा वयं पापयोनिस्था वाक्यनां प्रभुः ॥१२॥  
 तत्रस्ते विस्मयाविष्टास्तद्वाक्यं राममब्रुवन् । गणरत्नद्वयः श्रुत्वा विहस्य सम्भ्रमेण च ॥१३॥  
 आनीयतां पादुके मे न्विति दूतान वचोऽब्रवीन् । नतर्त्तरारिते दिव्ये पादुके कृत्य पादयोः ॥१४॥  
 रत्नदण्डं करे धृत्वा शूनैः सर्वैः समन्वितः । सुद्रिकाग्नद्वारेण मणिद्वयविगञ्जितः ॥१५॥  
 शुकटेनाचरत्सेन केयुगम्यां समन्वितः । नृपुगम्यां कंकणाम्यां कुण्डलाम्यां सुशोभितः ॥१६॥  
 पदकैः भूस्वलाभिश्च वरदस्त्रैर्विगञ्जितः । राजद्वाराद्वहिर्देशे सारमेयानिकं ययौ ॥१७॥  
 कृत्वा दण्डम्यकषेऽथ किञ्चिद्रक्तः स्थितः प्रभुः । कृत्वा वामजान्वयो म्यां जंघां रामः स दक्षिणाम् ॥१८॥  
 अत्रवीत्सारमेयं तं किञ्चित्कृत्वा स्मिताननम् । वदमे वद किं दुःखं सारमेय त्वयस्मि पतु ॥१९॥  
 मद्रान्ये सदसा माऽस्तु दुःखं केषां कदापि च । इति रामगिर श्रुत्वा सारमेयः पुनः पुनः ॥२०॥  
 नमस्कृत्वा राघवेन्द्र छिन्नपादोऽब्रवीन्मुदा । मदर्थं श्रमिनोऽस्यत्र चिरं जीव दयानिधे ॥२१॥  
 निरपराधो यतिना प्राण्याऽवाह प्रसाहितः । छिन्नपादोऽस्मि राघेन्द्र स्वामद्य शरणं यत ॥२२॥  
 तद्वाक्यं राघवः श्रुत्वाऽऽकारयामास दण्डिनम् । रामाज्ञया यतिश्चापि विह्वलो राघव ययौ ॥२३॥  
 दृष्ट्वा यतिं तं श्रोतारमस्तदा वचनमब्रवीत् । स्वामिन किमर्थं पुष्पाभिर्ऽञ्जितः पादोऽस्य वै शुभः ॥२४॥

यह दुता क्यों राजदरबारके समक्ष आकर रुका है। मर सामने ब्याकर पूछा कि उसे किस बातका कह है। लक्ष्मणने भी धवसाकर दूतको आज्ञा दी कि जाओ और भारपूर्वक उस कुत्तेको सामने से आओ। "बहुत अच्छा" कहकर दूत कुत्तेके पास पहुँचे और उससे कहने लगे—॥ ९-८ ॥ आप पूर्वसंचित पुण्यसे नृपुंगुरा भाम्योदय हुआ है। चला, श्रीगमचन्द्ररा नृपद्वय रत है। ९॥ दूतोंकी बात सुनी तो प्रमथ हाकर कुत्ता कहने लगा—देवास्त्र्य, यज्ञगाम्ना, हवनगृह तुल्यका जंगीचा, सभा, मठ, राज-भवन, योशाल, पंचम तीर्थ, रसाईघर, रतिस्थान तथा स्नान-मन्ध्यादि कारमेके स्थानोपर से जानेके ल्योम्ह हैं। क्योंकि मेरा जन्म पापयोनिमें हुआ है। तूम आकर रामसे कह दो ॥ १० ॥ ११॥ इतनी सुनकर वे दूत वड़े विस्मित हुए और जंगी उमने कहा था, जाकर रामको सूना दिया। राम उसकी बात सुनकर देख पड़े और दूतोंसे कहा कि हमारा खयाल ले आओ। इतनी आज्ञाका पालन किया। रामने कहा कि पहिला, एक रत्नजटित छड़ी हाथमें ली और सब लोगोंके साथ उस कुत्तेको ओर खने। उस समय रामचन्द्रके हाथोम अंगुठियाँ थी, रत्नजटित हार गलम था, मस्तकपर मृदुत तथा कानोम कुण्डल प्रस रहे थे, भुजाओमे बिजायड और कटूण था। गलेम हार तथा सिकटियाँ शोभन हो रही थी। इनके सिवाय और भी कई प्रकारके माधुषण और सुन्दर कम्ब सुशोभित हो रहे थे। इस तरह सज-धजकर राम कुत्तेके पास आ पहुँचे ॥ १२-१७ ॥ वहाँ पहुँच तो छड़ी वगलमे दबा ली और बाएँ पुण्यको हनिक मोड़कर कुछ तिरछे खड़े हो गये ॥ १८ ॥ पुनकारकर राम कुत्तेसे बोले हे तगरसर नृपह जो कुछ कह हो वह मुझे बताओ ॥ १९ ॥ क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरे राज्यमे किसीको किसी प्रकारका कह न हो। इस तरह प्रभुकी बात सुनकर कुत्तेने रामको अनेकश प्रणाम किया और हथित होकर कहने लगा—हे दयानिधे! आपने मेरे लिए कहा कह किया, जो यहां पधरे। हे महाराज! मैने कोई अपराध नहीं किया था। फिर भी एक संन्यासीने पत्थरसे मुझे ऐसा मारा कि जिससे मेरा पैर टूट गया। इसीसे इसी होकर मैं आप की शरणमे आया हूँ। २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसकी बात सुनकर रामने उस संन्यासीको बुलवाया।

तद्रामवचनं श्रुत्वा यतिः प्राह शृणुममम् मिथार्थं भवतो मायं मिसाश्वं स्पृशितं मय ॥२५॥  
 शुनाऽनेन राघवेन्द्र मध्याह्नं क्षुधिनस्य च । मयाऽनः क्रोधचित्तेन शुनेऽस्मै अपराधिने ॥२६॥  
 धर्षितुं चोपलः क्षिप्तोऽनेन मित्तं पदं शुनः । तद्यनेवचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः ॥२७॥  
 शान्तहानः पशुभार्यं मत्स्यं स्वीयं निर्गदय च । स्पृशितस्त्वा तस्य दोषो नैवायं वेद्ययद् यने ॥२८॥  
 स्वमेवास्वस्थापराधी सख्यं मादुर्महमि । हन्युस्त्वा मार्गमेवं न राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥२९॥  
 यद्विश्रायं तेऽपराधी तव हस्तेऽपिनो मया । यं त्वमिच्छामि वै कर्तुं तस्मै दण्डं सुखं कुरु ॥३०॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मारमेयाऽब्रवीत् प्रभुम् । शिवालयाधिपस्ये च स्थापनीयो यतिः प्रभो ॥३१॥  
 तथेति रामचन्द्रोऽपि शिचिकायां निवेद्य तम् । सख्यसचन्दनार्थं सम्पूज्याय यतिं मुदा ॥३२॥  
 वाद्यघोषैर्नर्तनार्थं रुतमवैश्व शिवालपम् । नान्वा शिवालयास्थाधिपस्ये संस्थापयन्प्रभुः ॥३३॥  
 वदाऽध्यानाद्यनिर्देवं फलितं चैवमन्यत । ततो रामो जनैर्पुनः स्वां ममां सविदेशम् ॥३४॥  
 तत्सर्वं कर्तुं कं दृष्ट्वा पीडाः प्रोचुः शृणुममम् । कथं शुनाऽद्य यतये शिषेऽङ्गमाधिना प्रभो ॥३५॥  
 अन्नार्थं अमनस्स्य यनेर्देवं पदं मदन् । नैवानिर्मार्यं सञ्जातं यतये शिक्षितं न तद् ॥३६॥  
 तत्पौरवचनं श्रुत्वा राघवस्तान् वचोऽब्रवीत् । प्रहस्यः श्वा तु पुष्पाभिरैः सन्देहं हरिष्यति ॥३७॥  
 तथेति मार्गमेवं तं पश्यन्तुर्नागराश्च वत् । तान्प्रोवाच मारमेयः मृणुष्व यन्मयोप्यते ॥३८॥  
 कृषिगजानवाभ्यर्षोपचलसम्मानकाणिः । शिवालयामदारमदानग्रामाधिकारिणः ॥३९॥  
 अनाथस्त्रीवल्लभनृणाणिः कर्मान्स्वनाः । गोविघ्नशिवचित्तम्ब हारिणोऽन्यापकारिणः ॥४०॥

रामके आज्ञानुसार वह संवत्सी भा वि दूत भावने रामक नाम आया । ॥ २३ ॥ रामने उसको प्रणाम किया और कहने लगे—बहान् स्वामीजी आपने किस कारणसे इन कुत्तों को पैर लाड डाला ? ॥ २४ ॥ उसने उत्तर दिया कि मैं मिसा लिये गमनेसे आ रहा था । नवी हमने मेरा मिसाश्व छू दिया । वह मद्यगद्गुका समय था । मैं भूमा था । इसके उस अपराधसे मुक्त राख आ गया और हमको समझानेकी इच्छामें मैंने एक फणस फंकार मारा । वह हमके पैरमें लगा, जिससे हमका पैर दुःख गया । ॥ २५ ॥ २६ ॥ यतिजी बात सुनकर राम उसमें कहने लगे— ॥ २७ ॥ २८ ॥ यह एक जानविहीन पशु है । यदि हमने अपना फणस बदार्थ देकर आपको छू दिया तो मैं इसमें हमका कोई दोष नहीं समझता । यह तो हमकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है । इसलिए क्षमा हो इसके अपराधी है । यतिके प्रति इनका कटका कुत्तेमें कहने लगे—वह सगरामी तुम्हारा अपराधी है । मैं इसे तुम्हें सोपता हूँ । तुम जो दण्ड चाहो, उसे दे सकते हो ॥ २९ ॥ ३० ॥ रामका ज्ञान सुनकर कुत्तेने कहा—हमें किसी मित्रास्य को महन्त्र्य बना दिया जाय । ॥ ३१ ॥ रामने उनकी बात स्वीकार कर ली और मुन्दर वस्त्र, चन्दन तथा माला आदिसे यतिके मृगान्त्रिण करके एक दालकीमें चिताया और विविध प्रकारके दाज यजान हुए उत्सवके साथ एक क्षिप्रदयमें ले गये और उसे बहाना कटका बना दिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इस समय अज्ञानतावश यतिने अपना भाग्यादय समझा । कुछ देर बाद रामचन्द्रजी अपने सखियों समेत राजसभामें लौट आये ॥ ३४ ॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर यतिने ही उन्मुख नागरिकोंसे रामसे कहा—हे प्रभो ! इस कुत्तेने यतिको इस प्रकारका दण्ड क्यों दिया ? यतिज हा पश्चराम उसकी टांग में डी और जब आपने कुत्तेको उसके क्रियेका दण्ड दनक लिए कहा तो उसने दण्डक स्थानपर यतिको महन्त्र्य बनवा दिया । ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार नागरिकोंकी बात सुनकर रामने कहा कि आप ज्ञान उस कुत्तेसे ही पूछ लें कि उसने ऐसा क्यों किया । वह जान लोगेकी शङ्काका भयांश यति समझाने पर दण्ड । ३७ ॥ रामक आज्ञानुसार उस लोकोने कुरीते पूछा तो उसने कहा—मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे यादवान होकर आप लोग मुक्त ॥ ३८ ॥ यन्मं उन्मन्न अन्न रक्षानेवाले, शिवालये, मंड, कपीना शानग्राम इन स्थानोंके भक्षित, अनाथ स्त्री तथा बालकोंके धनका अपहरण करनेवाले, गांभीनालीज करनेवाले, गोविघ्न तथा शिवके लिए अर्पित धनका अपहरण करनेवाले, धन्याय करनेवाले, राजाके धरपर पहुँच हुए राजकका भगवान् दूसरेका धन हृदयनवाले, प्रार्थितक

नृपगेहे प्रविशन्तां याचकानां निवारिणः । परद्रव्यपहर्ताः । प्रत्यश्विनाभिकाशिः ॥ ४१ ॥  
 विप्रभोजनद्रव्यस्य होमद्रव्यस्य हारिणः । बहुद्रव्यापहर्ताश्चैते । सर्वेऽप्यज्ञान्यदि ॥ ४२ ॥  
 गच्छन्ति वै शुनो योनिं मन्त्रमेतद्रक्षा यम । मया गृहाधिपत्याम कन्या योनिः शुनः स्वयम् ॥ ४३ ॥  
 अतो यथाऽद्य यतये शिषितुं पदमर्चयेत् । इति गृहाध्यमाकर्ण्ये जागरादिछन्नमग्नयाः ॥ ४४ ॥  
 ते ययुः स्वीयगेहानि यस्याश्वाऽपि विजम्बलम् । इदानीं स यतिर्जानं शुनो योनौ ररकिन्विषत् ॥ ४५ ॥  
 आप मखाशुभा मुक्तिं मुक्तादी र्नीयकिन्विषम् । न हेयोऽयं यतिः शिष्य माकिनेऽद्र मृतस्त्विति ॥ ४६ ॥  
 स्थलान्तरे मृतश्चायं गतः कार्यार्थमन्मनः । अयोध्यायां मृतानां च पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ४७ ॥  
 क यतिः सारमेयश्च क स आ क मतिश्च सा । गृह्णा कर्मणश्चात्र गतिरुया गृह्णामासः ॥ ४८ ॥  
 क यतिः सारमेयः क न्यायश्चेन्धं रमापनेः । आसीत्सत्यः सर्वेवात्र ज्ञानपापमन्मृत्वेक्षणत् ॥ ४९ ॥  
 अर्थकदा तु साकेतवासिनो भृशुरस्य च । पञ्चत्न पञ्चवर्णीयः पुदः प्राभः शिशुः प्रियः ॥ ५० ॥  
 तदा विप्रः मपन्नीकस्तन्प्रतमरुणोदये । तावद्वा मयाभीयं करोदोन्ने, स्वर्गैर्दुः ॥ ५१ ॥  
 अवर्षीत् पुत्रशोकेन व्यथितः प्रोधमंयुत । मीनमालिभ्य गजेन्द्र कथं न निद्रितोर्भम हि ॥ ५२ ॥  
 न्वद्राज्येऽधर्मनः कस्य मृतो मे बालकः प्रियः । स्वर्गोऽधर्मोऽप्यतान्यान्व भानोऽधर्मो न वसपहम् ॥ ५३ ॥  
 नृपे पापिनि प्रियन्तो वरा क्षत्रवायुषः मृतम् । यस्य राज्ये जनेः सर्वेऽप्यधर्मः कियते हवि ॥ ५४ ॥  
 सोऽपि तेयो नृपस्यैव पतन्नेषां न शिषितम् । अन्नेऽधार्मो राजो राज्ये मंस्य शिशुर्मृतः ॥ ५५ ॥  
 उपायं चिन्तयन्वाप्य जीवनेऽद्य जवान्मृष । नोषेदावा चितिं चारोदावस्तनयेन हि ॥ ५६ ॥  
 स्मर वृत्तं भवणस्य हेतोर्येऽजनकाय ने जानं शापादिकं पूर्वं तद्ददवापि ते भवेत् ॥ ५७ ॥

शिष्ट दिव धनको ग्रहण करनेवाले । गृहणभावनाक लिए जुटाई सामग्रियोंसे चारी करखाते और बड़ेमानी करके अधिक धन इकट्ठा करनेवाले लोग । मरकर दूसरे जन्ममें कतेक गोल्डम जन्म पाते हैं ॥ ३४-४२ ॥ इस प्रसङ्गमें मैंने जो बात बड़ी है, वह सब सत्य है । मैंने स्वयं महाधिपत्यक कारण ही कुत्तेकी गोति पायी है ॥ ४३ ॥ इस संयास को उसकी करनाका फल होने से लिए, मैंने उसे यह पद दिलाया है । इस प्रकार उसकी बात गुनकर सारे पुत्रालियाजस से देह निवृत्त हो गया और सब लोग अपने-अपने धराको चले गये । कुत्ता भी अपने स्थानकी चला गया । उस संन्यासी ने महाधिपत्यक मर्दमें आकर आ पाप मिये, उनमें जन्मान्तरमें उसे कुत्तेकी गोति मिली ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह कुत्ता जिसने कि रामचन्द्रजीक यही दावा किया था उसे कुछ दिनों बाद शुभ गति मिली, किन्तु वह दिन जो अपने पापोंसे कुत्ता हुआ था । अथर्व्यामें न मरकर किसी दूसरे म्यान्तर मरा । इस लिए उसे मुक्ति नहीं मिली । जो लोग अपाध्याय गरीर त्याग करते हैं वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं । कर्मकी गति यही विनिय होती है । कहीं वह कुत्ता हाकर भी मुक्त हो गया और वह पति होकर भी मुत्ता हो गया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ कहीं कुत्ता और कहीं भन्यमी । रामने उन दोनोंका किशना अच्छा न्याय किया । सब ही यह है कि रामक राज्यमें किसीका पैह देखकर न्याय नहीं किया जाता था । बल्कि जो भ्याय्य बात होती, वही होती थी ॥ ४९ ॥ एक समय अयोध्यामें एक ब्राह्मणके पंचवर्षीय बालककी मृत्यु हो गयी ॥ ५० ॥ मरना होत था तो ब्राह्मणस्यकी मरनेके शवको लेकर राजद्वारपर जाये और बड़े आर-आरसे रोने लगे ॥ ५१ ॥ पुनर्जन्मसे मुक्ति होकर उस ब्राह्मणने कहा हे राम ! पीताको मोदमे लेकर तुम अब भी आनन्दके ताब पड़े स रहे हो ? ॥ ५२ ॥ कुम्हारों राज्यमें किसीके अवयस मेरे बन्धको मृत्यु हुई है । इसमें तुम्हाग कोई अधम है अथवा रिती दूसरका । यह मैं नहीं जानता ॥ ५३ ॥ मैंने ऐसा मुना है कि राजक अधम होनेसे ही उसका राजम अकाल मृत्यु होती है जिस राजाक राज्यमें अधम होता है, उसका भी कारण राजा ही होता है । क्योंकि वह अपने प्रजाका अच्छी तरह शिक्षा नहीं देता । इससे यह निश्चित है कि तुम अवर्षी हो । इसी लिए मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अनर्थ है राज्य । इसके लिए ही मैं कोई उपाय करो, नहीं तो हम दोनों ( स्त्री-पुरुष )



वतो विप्रप्रिया प्राह सागां प्रोक्ष्यन्दरेण हि । क्वं न्द एनिमान्द्रिय निद्रिनऽपि मुञ्च शुभे ॥१८॥  
 स्वमप्यमि पुत्रवती मे दुर्गं स्यान्मनः कुरु । उपायं कुरुयथाय भर्त्राऽप्य जीवने शिखोः ॥१९॥  
 इति तदंशनीवाक्यं श्रुत्वा सर्वे पुगीक्ष्मणः । आसन्नव्यग्रनिश्चास्य प्रतमाश्रये मन्थिताः ॥२०॥  
 सीतारामानपि तयोर्वाक्यं श्रुत्वाऽपि निद्रितौ । विनिर्गन्तौ रणिभ्रातावहिरस्वदूदःसुदुःखितौ ॥२१॥  
 निवार्य रंदिगीतानि राजद्वारं तयोः पुनः । वेगेन जम्बतुः पट्टिः सीतारामौ गतभिर्यौ ॥२२॥  
 दृष्ट्वा सीतां च रामं च तौ शोकं चक्रन्मुमुहुः । नाशायाम्य रामचन्द्रस्तदाऽऽह गद्गदाधरः ॥२३॥  
 मा शोकं कुरुतभोर्भौ मद्वि गृणुतस्मिरति । कृत्योपायं हि युवराः पुत्रं स जीवयाम्यहम् ॥२४॥  
 न जीदितश्रेयुवयोः पुत्रमर्हपये कुशम् । मित्र मन्थाभिर्षां नोर्भौ पश्यतस्मिह मेऽय हि ॥२५॥  
 ततः सीता विप्रपत्नीम आस्थाह गिरं शुभाम् । रामेण ते प्रतिदानं कुशदानेन मामिह ॥२६॥  
 अहमप्यस्य ते रन्मि तव दुःस्वस्य शान्तिने । न जीवि-श्रेयामेष स्याज्ज्य म्पिच्छुः प्रियः ॥२७॥  
 तर्हि त्वदुदु.त्वशान्प्रथमपदेऽह लव प्रियम् । नाभ्यां कुशलशङ्कां न्व पुत्रदुःखं न्यत्रिष्यामि ॥२८॥  
 भजिष्यसि न्व कर्मोपयन्तः शोकं वृक्षस्य सा । ततः प्राह द्वित्रं रामस्त्व पत्न्याऽत्र स्थितिं भव ॥२९॥  
 मा कुष्ठप्र मुहुः खेदं त्यज्युव विप्र्याम्यहम् । इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनैव तन्वद्राण्यौ यव शिखोः ॥३०॥  
 निधाय कृमिदुर्गन्धदुग्धमृगप्रशोभये । स्वयं स्नान्वा निर्व्याधिं चाक्रान्तिस्त्रयानमः ॥३१॥  
 ततः समासन्धितः सन् वसिष्ठ प्राह राषडः । राज्यं श्रमनि धर्मेण नश्यत्वं शिखुः कथम् ॥३२॥

अपने प्रिय पुत्रके साथ चित्तम जयकर भज्य रहा तब ॥ २९ ॥ धनपक गृह-तका स्मरण कर । जिस प्रकार तुम्हारे पिता द्वारा अपने पुत्रपक दुःख दुःख हुआ तब उसकी मरिष्यत दशरथकी साथ दकर अनन प्राग त्याग दिये थे, वही दणा हमारा भी होगा ॥ ३० ॥ इसकी अनन्तर ब्रह्मपान करारक साथ सीताकी सहायित करके कहा—हे शुभे । तुम दोनों पत्निका भातिगन्ध करके आनन्दक साथ सा रहा है ? तुम या पुत्रवती हो । इस कारण भर दुःखका आरम्भण दकर भर बन्धका जिलातक न्यत्र भयन पात हो । शास्त्र कोई उपाय करवाभा ॥ २९ ॥ ३० ॥ इस प्रकार उस विप्रवस्यताक मानस मुनकर वहाँक सब पुरवासी आमुल हो उठे और उस सबकी चारों ओरस धरकर रज्जु हो गया ॥ ३० ॥ उधर राम तथा सीता दोनों ब्राह्मणका भाषासे विह्वल होकर रतिशयान बहुर निकल आए । नाच आकर रामन वन्दायन का स्तुति तथा गान-बजानवालोंक दान-दान राक दिये और वरक सब दौड़ते हुए उन दोनोंक पास पहुँच । उस समय उस दुःखम सीता तथा रामका मुख वृक्षला गरा था ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ महाराज राम तथा सीताकी बखबर से दोनों ओर भी जोर-जोरसे चिल्ला चिल्ला कर गान लगे ॥ उनका आधासन बन हुए गद्गद कण्ठस रामन कहा कि आप लोग दत्तक श्याकुरु न हा, मे जा कुछ वह रहा है उस मुन । मे कोई उपाय करके तुम्हारे पुत्रको जीवित करेगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ बाद तुम्हारे बटका जीवित न कर सकूँगा तो मे अपना पुत्र कुश आपको दे दूँगा । मेरा दानका सत्त समझकर आप विचार कर ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर सीताने विप्रपत्नीक पास जाकर कहा—हे आसिमा । तुम मुन रहा है कि रामने क्या प्रतिज्ञा की है ? तुम्हारे मतपक लिए मे भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि रामचन्द्रजी आपका बन्धे का जीवित न कर सकें तो मे अपने छोट पुत्र लवका दे दूँगी । उन दोनों युवाक गानस तुम्हारा पुत्रगाक दूर हो जायगा ॥ ३६-३८ ॥ अन्त गन्ध मस्त करी । तुम्हारा पुत्र न गिया तो अभी जा मुक्त से भजन रहो हूँ, वह तुम्हको प्राप्त होगा । इसके अनन्तर रामने ब्रह्मपस कहा कि आप प्रयत्न पन्नाक साथ यहाँ बैठ और किसी प्रकारका खेद न करें मे शपथक बटका जीवित करेगा । इसका कर्कश रामन लक्ष्मणस कहकर एक तेलसे मरी हुई नौका मेंवायी । जिससे शान रहूँगा मेरी, उसमह दुर्गन्ध न निकल या काँड़े न पड़े । इस निचारसे उस शपथको उसने रखवा दिया और स्वयं लिङ्ग होकर सन्ध्यादि निरस्त करनकी चले गये । इसके अनन्तर समाधि बैठकर रामन भरत कुरुमुख वसिष्ठके कहा 'क जब मे धर्मपुत्रक राज्यशासन कर रहा हूँ तब

बालकमे दध्नां प्राप्तमश्रीपायं विचिन्त्यताम् । इति याददुःखं रामः प्रोवाच तावदम्बरात् ॥७३॥  
 नारदः प्रययां वानो रणरत्नं तत्त्वमां जवत् । श्रुत्वा द्रुम्याथ तं रामः परिपूज्य पथाविधि ॥७४॥  
 सत्रान्य सकलं वृत्तं पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् । त्वयापापोऽत्र बकव्यः शिशोश्चाप्यप्रजीवने ॥७५॥  
 पुत्राभ्यां हि प्रतिजान द्विजाय मानसा मया । किमर्थं मम राज्येऽवो मृतस्त्व्रीदृशन वेद्यहम् ॥७६॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवः श्राह नारदः । राम त्वद्विषयेऽधर्मं न काऽप्याचरते जनः ॥७७॥  
 भूम्यां सर्वत्र द्रष्टव्यं त्वया गत्वाऽद्य मद्दिगम् । यद्यप्यहं विजानामि भूम्यां वृत्तं च जानतः ॥७८॥  
 तथापि जनशिक्षार्थं स्वामेव प्रेषयाम्यहम् । त्वं दृष्ट्वाऽधमनिरतं जनं शिक्षय सादरम् ॥७९॥  
 अधर्मोऽप्येतेनायं जीवयिष्यति वै विशः । मथेति राघवश्चोक्त्वा विमर्ज्य नारदं मुनिम् ॥८०॥  
 मोक्षया नामरैः सर्वेभ्योऽभिमुखेणा महः । पुत्राभ्यां भन्विभिर्बुक्ताः पुष्पकं चारुगेहं सः ॥८१॥  
 एतस्मिन्नन्तरेऽग्रेऽभून्महान्कोलाहलम्वदा । तं श्रुत्वा चकितो रामः स ददर्श समन्ततः ॥८२॥  
 तावददर्शं पुरतः पौरैः मनेष्टिनां स्त्रियम् । अधमप्यपरं गृह्णन्तश्च ममागतम् ॥८३॥  
 राम दृष्ट्वा पुष्पकस्य कर्त्री माक्षणीं पुरः । दानस्वर्गेण प्रोवाच हस्त्राभ्यां हृदि तावत् ॥८४॥  
 राघव गम महाबाहो ते राज्यं गतमर्तुका । अहं जनाऽस्मि न्वदोषान्मां दृष्ट्वा न्व न लज्जसे ॥८५॥  
 मञ्जुनारं जीवयन् नोचेच्छापे उदामि ते । इति तस्या वचः श्रुत्वा राघवः विस्मयमानसः ॥८६॥  
 अश्वरिन्मभुरा वाक्यं माक्षणीं तोषयन्मुहुः । कोपं समश्च रम्भोरु ते भर्तारं प्रजोषये ॥८७॥  
 अर्ज्यं न हेतोर्गच्छामि न्व मद्गेहे सुखं वपः । इत्युक्त्वाऽऽश्वास्य तां रामस्त्वत्पुत्राणां पूर्ववत् ॥८८॥  
 तैस्तद्वेषयो स्थापयित्वा सुमित्रं वाक्यमश्वरीन् । भागमिष्याम्यहं यावत्तावन्कम्यसे नो शवम् ॥८९॥

इस बाह्यणके जन्मकी अवकाश मृत्यु कभी हुई ॥ ६०-२॥ इसका लिये क ई प्राय माचना चाहिये । इस प्रकार  
 रामने मृत्यु वसिष्ठसे प्रश्न किया ही था कि इसलिये अवकाशमानता क्या करता हूँ नारदजी उस सभाभवनाय  
 आ पहुँच । रामचन्द्रजीन उठकर नारदको पूजा की ओर सारा वृत्तान्त कह सुनाया । इसके पश्चात् वे बोले-  
 हे मुनिगण आप ही इस निद्रागुणके जीवनकी कोई उपाय बनलाइये । हमने तथा सातान यह प्रतिज्ञा की है  
 कि यदि हम बालककी मैं जीवित न कर सका तो अपने छोटी पुत्र पुत्र तथा सब उस निद्राको अपण कर दूँगा ।  
 मेरे राज्यमें इस प्रकार अकाल मृत्यु कैसे हुई, यह मुझ मारुम नहीं हो रहा है ॥ ७३-७५ ॥ इस प्रकार  
 रामके वचन सुनकर नारदने कहा—हे राम ! तुम्हारे राज्यमें बाई भा मनुष्य किसी प्रकारका अधर्म नहीं  
 करता । फिर भी मेरे कथनानुसार आपको यह उचित है कि आप राज्यभरमें घूमकर देखें । यदि कहीं कोई  
 किसी तरहका अधर्माचरण करता हुआ देखें तो उसे आप दण्ड दें । इस प्रकार अधर्मका मूलोच्छेद करनेपर  
 यह बाह्यणबालक जन्मि हा जायगा । रामने भी ना दको सलाह मान ली । नारद मुनिको सादर विदा  
 करके राम सीता, कुछ नगरवासों जना, अपने १३ लाक्षा, पुर वसिष्ठ दोनों पुत्रों तथा मन्त्रियोंकी साथ लेकर  
 पुष्पक विमानपर आरुढ़ हुए ॥ ७५-८१ ॥ उमें समय आगेक आगे जोरका बालाहल सुनाई पड़ा ।  
 उसे सुनकर राम और भी विस्मित हुए और चला आर निहारने लग्ये । तबतक उन्होंने देखा कि एक  
 स्त्रीको चारों ओरसे बहुतसे पुरुषोंकी पर हुए हैं । उनका आने पृथ्वीपुरकी तरफमें एक और शव लड़ा  
 हुआ आ रहा है । स्त्रीन जब रामको पुष्पक विमानपर बैठे देखा तो अपने हँसोसँहासा प टकर कहने लगी—हे  
 राम ! हे राम ! तुम्हारे राज्यकालमें दिव्य होकर मैं यहाँ आया हूँ । मृत्यु इस दशाभ शरकर तुम्हें साथ  
 नहीं जाती ? मेरे पतिता मृत्यु तुम्हारे ही अधर्मने हुई है । इस कारण जसे वने, वैसे मेरे पतिको जियेगा ।  
 मही ली मैं शपथ दे दूँगी । इस प्रकार उस स्त्रीकी बात सुनकर रामने निद्रा होकर मोड़ी बाणसे आश्वसन  
 देते हुए उत्तर दिया—हे रम्भोरु ! तुम कायका दण्डित्य करके शान्त होओ । मैं तुम्हारे पतिको जिला दूँगा ।  
 मैं भी इसी कामके लिए आ रहा हूँ । तुम आकरके साथ मेरे भवनमें चक्कर रह । इस तरह उसे समझा-  
 सुझाकर रामने उस स्त्रीको भी पहलेके समान डेलकी नोकाम रखवाया और सुमित्रको वचन कर दिया कि

त्वया रक्षो ज्वालनीयं रक्षणीयं प्रयन्नतः । सर्वानपि त्वया भूम्यां आस्य दृन्दुमितिःस्वनैः ॥९०॥  
 ए कस्यापि शर्वं दग्धं कापि कार्यं जनैस्त्रिभिः । तदेति गधर्वं चोक्त्वा दूर्तः संश्रान्य उदधः ॥९१॥  
 सुवेत्रः सकलान् भूम्यान् माकेने न्यवमन्मुखात् । रामोऽपि पुरुषकेनैव पश्चिमां चोत्तरां विधत् ॥९२॥  
 पूर्वामपि श्वनैः पश्यन् दक्षिणाभिमुखो पर्या । एतस्मिन्ननरयोष्यापुर्या पञ्च श्वानि हि ॥९३॥  
 समानीतानि तैलस्य द्रोण्यां तान्यपि पूर्ववत् । सुवेत्रः स्थापयामास श्रीगमस्याज्ञयाऽऽदरात् ॥९४॥  
 तेषु पञ्चश्वेष्वेव चैकं मधुपुरि स्थितम् । क्षत्रियस्य च तज्ज्ञेयं सनानीतं मुहुजनैः ॥९५॥  
 प्रयागस्य द्वितीयं च श्वं त्रैयस्य तन्मृतम् । पूर्वं वयमि पञ्चान्याममार्जानं हि तज्जनैः ॥९६॥  
 हस्तिनापुरमस्य नक्षत्रायां श्वमर्जितम् । तैलकास्य तज्ज्ञेयं समानीतं हि तज्जनैः ॥९७॥  
 श्वं चतुर्थं तज्ज्ञेयं हरिद्वारस्थितं द्विजं । तैलकास्तुपायाश्च समानीतं हि तज्जनैः ॥९८॥  
 उज्जयिनीस्य पञ्चमं च श्वं श्वयं महामते । चर्मकासदुहितायाः समानीतं हि तज्जनैः ॥९९॥  
 एवं पञ्च श्वान्यामन् पूर्वैर्द्वे बाह्वणस्य च । मयायोष्यापुरीषस्य श्वान्येव स्थितानि हि ॥१००॥  
 रामोऽपि दृढकं पश्यन् स वध्राम समन्ततः । यस्यां विध्याचलं धामान् रेवायाम्पि विस्तृतम् ॥१०१॥  
 तत्र वृक्षे संवमानं धूमं शानुमधोमुखात् । शूद्रं निर्गन्धं स्वर्गोच्छं न इतुं मधुपस्थितः ॥१०२॥  
 तदा तं राघवः प्राह भो शूद्रं मृणुं मद्वचः । बह्वणादिविभिर्वर्षेभ्यः कार्यं न चेत्तरः ॥१०३॥  
 शूद्रैश्च द्विभ्यश्च मदा कार्याऽनिवर्त्तितः । द्विजकुर्ये स्वयां चात्र कृतं पापं मनो जड ॥१०४॥  
 इदानीं त्वां हनिष्यामि जीवयिष्यामि तान्मृतान् । तुष्टोऽहं त्वां स्वनपया वर वरयं वल्लितम् ॥१०५॥  
 इति रामवचः श्रुत्वाऽधोमुखो गमपादजः । उवाच भयभीतः मन्नग्या गर्भं मुहुर्मुहुः ॥१०६॥  
 राम राघवदर्पेण यदि तुष्टोऽमि मां प्रभो । तर्हि ते वर्याम्यद्य येन शूद्रगतिर्भवेत् ॥१०७॥

मन्त्रक मै लौट न आऊँ । तबनक तुम किसी भी शयका जनिमयकार न करके देना ॥ ८२-८९ ॥ साध ही मेरे  
 कायमे यह दुगी पिटवा दो कि तबनक मै लौट न आऊँ । तबनक कोई भी शय न उलायत आय । सुमन्त्रने  
 राक्षसी आजा स्वीकार करके दुली द्वारा लिटार पिटवाकर रामको यह आजा सब ओंकोको सुनवा दी और  
 आनन्दपूर्वक राज-काज देखते हुए रहने लगे । तब रामचन्द्रजी गुणर विमानर बंटकर पश्चिम तथा  
 उत्तरकी दिशाओंको घीरे-घीरे अच्छी तरह तय्यन हुए दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े । इसी बीच अयोध्यामें  
 बीच रात और आकर एकत्र हो गये । उग्रे भी भूमन्त्रने पूर्ववत् तैलकी लौकाये लपटा दिया ॥ ९०-९४ ॥  
 उन लौकायसे एक शय मधुपर गर्वम रहनवाने एक हाथरका था । जिस उरव मुहुजन रामके दरबारमें से  
 भागे थे । दूसरा शय आगनिवासी एक रैणका था । थोड़ी ही भयभयमे उसका मृगु हो गयी थी । इसी  
 लिए उसके घरवाले रामके पास से भागे । तीसरा शय हस्तिनापुरनिवासी एक तैलीका था । उसे  
 भी उसके घरवाने रामके पास से भाग था । चौथा शय हरिद्वारनिवासी एक लहायका पुत्रवधुका था । पाँचवाँ  
 शय उज्जयिनीनिवासी एक अमायकी जडकीका था और उसका घरवाले उसे अयोध्या से भागे थे । इस प्रकार  
 ये पाँच शय तथा पूर्वके दो बाह्वणके मय मिलकर अब छय म मान शय एकत्र हो गये ॥ ९५-१०० ॥ राम-  
 चन्द्रजी भी दण्डकावण्यमें अच्छी तरह धूमकर रेवानर्दमे परिश्रुत दिग्दगर्पतको आर बढ़े । बहुत उन्हेने  
 देखा कि एक बूढ़ उलटा रंगा है और नीचे आगकी तूनी चपक रही है । वह बूढ़ पुत्री पीला हुआ मुँह बाये  
 लटका हुआ है । इस प्रकारकी उय तपस्या करके स्वर्ग चाहनेवाले उस शूद्रको राम मानके लिए संसार ही  
 गये और उसके पास जाकर रहने लगे-हे दूढ़ ! बाह्वण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिए ही तपस्या  
 करनेका विधान है, बूढ़के लिए नहीं । उन्हें तो सर्वदा इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी चाहिए । करें नह !  
 तुम पापीने अपने धर्मका उल्लंघन करके द्विजोंके समान कर्त किया है । १०१-१०४ ॥ उस समय मैं  
 तुझे शरकर उन लौकांको जीवित करूँगा जो तरे धर्मविह्व आचरणसे अकालमृत्युके शस बने हैं ।  
 मैं तेरी इस तपस्यासे प्रसन्न हूँ । बोल, तेरी क्या कामना है ? इस प्रकार रामकी बाणी सुनकर भयभीत हो

मयापि येन कीर्तिः स्यात्तं वरं दातुमर्हसि । इति शूद्रवचः श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽज्वरीद्वचः ॥१०८॥  
 मम रामेति वन्द्यम तच्छृष्टः सर्वदेव हि जपनेष्यं कीर्तनीयं चिंतनीयं मुहुर्मुहुः ॥१०९॥  
 भविष्यति सतिस्तेषामनेन वस्यसे भव तवानेनोपकारेण कीर्तिः शूद्रेषु वै भवेत् ॥११०॥  
 इति रामवचं श्रुत्वा पुनः शूद्रोऽज्वरीद्वचः । शूद्राः कर्त्ता मदाधियो भविष्यति रघूत्तम ॥१११॥  
 व्यग्रचित्ता भविष्यति कृपिकर्मादिभ्यः प्रभो । तदा तेषां कृतां बुद्धिर्जपादिषु भविष्यति ॥११२॥  
 अगस्त्यदुःखोऽयं यतो देवो विचार्य च । त्वत्स्य वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽज्वरी पुनः ॥११३॥  
 परवन्दनकालेषु रामरामेति सर्वदा । शूद्रा वदन्तु सर्वत्र तेन तेषां यतिमवेत् ॥११४॥  
 तवार्णय कथाकीर्तिः स्मरिष्यति मर्गप्रज्ञाः । त्वं मया निहतस्त्वद्य वैकुण्ठं प्रति यास्यमि ॥११५॥  
 पुनर्वयाये श्रीगम्य वरमन्यं स्वकारणम् । अस्मिन् जने मया निष्ठु संहातश्चणमंयुक्तः ॥११६॥  
 अंशतश्चेत् पूर्वमेव दर्शनं मम ये नराः । करिष्यन्ति ततः पश्चाद्ये नरास्तत्र दर्शनम् ॥११७॥  
 कुर्यान्ति सद्गतिं भक्त्या मोक्षमेव व्रजन्ति ते । मदर्शनं विना मन्योऽप्यप्यन्यविचारतः ॥११८॥  
 तेषामुद्धरणं राम कुरु मद्वचनात् प्रभो । तथोवाच तदा रामः भक्तिं तस्मै ददां इति ॥११९॥  
 इति कृत्वा सुमंतुष्टं कृत्वा शूद्रं रघूत्तमः । जीवयामास विशादीन्मम साकेनमभियतान् ॥१२०॥  
 तदारम्यात्र शूद्रेस्तु विष्णुदामावनीतके । परवन्दनकालेषु रामरामेति कीर्त्तयेत् ॥१२१॥  
 तं कृत्वा रघुवीरः स परिश्रुष्यं मुदान्वितः । सीतां नानाकौतुकानि दर्शयन्स्वर्गं पयी ॥१२२॥  
 एतस्मिन्नंतरे मार्गे शूद्रोऽरुको निरोभिर्नौ । विवदमानीं रामेण चान्तानं द्रष्टुमगतौ ॥१२३॥  
 तानुवाच रघुश्रेष्ठः किमर्थं हि युष्मदुर्भा । विवदमानीं मशार्थी सां ब्रूतस्त्वद्य निम्नरात् ॥१२४॥

और तीसरा मन्त्रव निचे हुए बार बार प्रणाम करके उस शूद्रन कहा—हे गवशके अधिमानका दूर करनेवासे राम । यदि वास्तवमें आप मेरे ऊपर प्रमथ है तो मुझ वह वादान दाजिय कि मिलत शूद्रजातिका भी सद्गति प्राप्त हो, साथ ही मेरा भी उद्धार हो जाय । इस तरह शूद्रकी दास्यपूर्ण बात सुनकर रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे— ॥ १०५-१०८ ॥ 'राम' इस पवित्र नामका ज शूद्र मदा जप, कीर्तन तथा चिंतन करने रहने, उन पापोंका सद्गति प्राप्त होगी और तुम भी इस तत्त्वज्ञानो साडकर मेरा चिंतन करो । तुम्हारे इस उपकारसे मुझमें तुम्हारी कर्ति होगी । इस प्रकार रामचन्द्रजीके द्वारा वर पाकर शूद्रन कहा— हे रघूत्तम ! आगे महाप्रसाद काम्ययुग आनवांग है । उसमें शूद्रजातिक लोग वदे पावेंगे । वे सर्वदा अपनी खेती-बारीक काममें ही व्यस्त रहने । ऐसा अवस्थाद उभ जप तथा कीर्तन कथनका अवसर हो कहीं मिलेगा । इन शुभ कर्मोंका और उनको दुःख कैसे जायगा । अतएव उनको अनुरूप कोई वरदान दाजिए । उसकी यह बात सुनी तो प्रसन्न होकर रामन कहा कि वे लोग एक-दूसरेको प्रणाम-आशं गके समय 'राम-राम' ऐसा कहें । इससे उनको उद्धार हो जाय । ॥ १०९-११३ ॥ उस शूद्रममाश्रम तुम्हारी वडा कीर्ति होगी । आज तुम हमारे हाथा सरकर श्रेष्ठप्राप्तिका प्राप्त होजाय । इसके अनन्तर उसने रामसे यह वर मांगा कि आप सीता तथा लक्ष्मणक साथ सर्वत्र हम परतगर निवास करें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ जो लोग गद्दी आकर पहने मेरा दर्शन करनेके पञ्चान् आपका दर्शन करें, उनको मोक्षपद प्राप्त हुआ करे । इसका सिवाय जो लोग भ्रमवश विना मेरा दर्शन किये ही आपका दर्शन कर लें उनका भी उद्धार हो जाय । रामन 'तथास्तु' कहकर भक्तिका वर दिला और उसे पारकर उन अकाल मुग्धोंमें धरे हुए लाल का रजित किया, जो बाहुल्य-क्षत्रियादि सात प्रणी अवस्थामें भर पड़े थे ॥ ११७-१२० ॥ हे विष्णुदास ! तभीसे इस पृथ्वीगलमें शूद्रलोग आपसमें प्रणाम-आशंयक अवसरपर 'राम राम' कहा करने है । शूद्रकी मारकर हृदयपूर्वक राम-चन्द्रजी सीताको रामके अनेक मनोहर रूपोंको दिलाते हुए अष्टांशके लिए भौट पड़े । उसी बीच एक गुप्त और उत्क परस्पर विवाद करते हुए रामके दर्शनोके लिए उनके सम्मुख आये । रामने उन्हें देखकर

तद्रामवचनं श्रुत्वा तदोन्मुखोऽग्रणीः प्रभुम् । मया पूर्वं कृतं रामं नगोपरि गृहं बने ॥१२५॥  
 तत्कालेन मया त्यक्तं तत्र गृध्रोऽस्मि सस्थितः । नानेन दीयते मया मम गेहं स्थूलम् ॥१२६॥  
 तदुन्मुखः श्रुत्वा गृध्रमाह गृध्रद्वयः । किमर्थं दीयते नास्व त्वया गृध्रं गृहं बने ॥१२७॥  
 तदा गृध्रोऽग्रणीश्चाकथं राक्षसं दीर्घनिःस्वनः । मया पूर्वं कृतं रामं नगोपरि गृहं बने ॥१२८॥  
 तत्कालेन मया त्यक्तं तदोन्मुखः किमस्ति नृप । किञ्चिन्मेनापि त्वत्कृतं तत्राह सस्थितः पुनः ॥१२९॥  
 इवाक्यं स्पष्टं नैव गम्यन् गेहं ममेति च । माऽधर्मं कुरु राजेंद्र त्वद्वशेषं पानकी ॥१३०॥  
 तावुवाच स्थुभ्रं पुत्राभ्यां हि यदा गृहम् । कृतं नम्यात्र कः साक्षी तदा तौ नेति शोचतुः ॥१३१॥  
 विमानस्थास्तदा सर्वात्रापि प्राह सस्मिन् । इदमप्यत्र नम्यामि दुर्यटं मां पुरःस्थम् ॥१३२॥  
 कथं न्यायोऽयं नैव कार्यः कस्मै गेहं प्रदायनाम् । तद्रामवचनं श्रुत्वाऽमन्त्रं निविस्मिताः ॥१३३॥  
 तदोन्मुखं विभुः प्राह कृतं गेहं त्वया कदा । उन्मुखः प्राह भूधरे यदा जाता तदा कृतम् ॥१३४॥  
 तदुन्मुखः श्रुत्वा गृध्रं गमोऽग्रणीकवत् । गृध्रः प्राह यदा येन महानारेऽवनिस्तदा ॥१३५॥  
 पुनश्च कृतं विद्धि पुनः गेहं मया विभो । तद्गृध्रवचनं श्रुत्वा तदा तं प्राह राक्षसः ॥१३६॥  
 कथं विनाऽऽश्रयेणान्महानारे नगम्यताम् । वोकाऽश्रयवटः सोऽपि चूतदृक्षन् त्वया स्मृतः ॥१३७॥  
 तस्माद्गृध्रा स्वयां गृध्रं स्वध्वनेऽनेन निश्चिनम् ।

मयाऽपि तत्र वाक्येन धिक् त्वां दृष्टपतत्रिणम् ॥१३८॥

इत्युक्त्वा राक्षसो हृत्स्मं गृध्रं पर्वतोपरि । त्रिगुलाग्रेषु चारोप्य प्रपणामास मयं यदम् ॥१३९॥  
 धन्यः स गृध्रो विभो यो गमाग्रं यस्य नैव मृतिः । अभूजदर्शनमपि यस्य देहविमर्शने ॥१४०॥

कहा कि तुम लोग क्यों लड़ रहे हो ? मुझे विस्मयपूर्वक कारण बताओ ॥ १२१-१२४ ॥ रामकी बात सुनकर उन्मुखने कहा कि मैंने एक बृक्षपर रहनेके लिए एक घोंसला बनाया था । कागजजैसी समथ उसे छोड़कर मुझे स्वाभाविकतासे चला आना पड़ा और वह गृध्र उतरने रहन लगा । जब मेरे चलेनेपर वह पुनः मेरा घोंसला नहीं बै रहा है । इस प्रकार उन्मुखकी बात सुनकर रामने गृध्रसे कहा कि तुम इसका घोंसला इसे क्यों नहीं डेने ? गृध्रने लजबकत कहा—हे राम ! रहन मेरे उस बृक्षपर वह घोंसला बनाया था । कुछ दिनोंके लिए मैं बाहर चला गया तो वह उन्मुख उसमें रहने लगा । फिर वह जब उसे छोड़कर कहीं चला गया तो मैं जाकर अपने घरमें रहने लगा । यह अर्थ हमसे मटाई कर रहा है । हे राम ! इसको जानो मैं अक्षर कहीं जाय मघर्म न कीजियेगा । क्योंकि आपके वशन कभी कोई पानकी नहीं हुआ है ॥ १२५-१३० ॥ उन दोनोंसे रामने कहा कि तुमने उस घोंसलको बनाया था, इसका कार्य जाता दे सकत हो ? इस प्रकारके प्रश्न होनेपर वे दोनों चुप हो गये । क्योंकि उन दोनोंके पास कोई बचाव नहीं था । ऐसी दशा में मुस्कराते हुए रामने विमानपर बैठे हुए लोगोंसे कहा कि यह बिकट समस्या जाने या भरी है । इस अवस्थाका कैसे निवारण हो ? किसको यह घोंसला दिया जाय ? इस तरह रामकी बात सुनकर सब लोग चौंकासे रह गये । किसको कोई भुक्त नहीं सुनो ॥ १३१-१३३ ॥ फिर रामने उन्मुखसे कहा कि तुमने कब अपना घोंसला बनाया था । उसने उत्तर दिया कि मैंने अपना विकासस्थान उस समय बनाया था, जब इस पृथ्वीकी रचना हुई थी । इस प्रकार उन्मुखकी बात सुनकर रामने गृध्रके आश्रय देना । गृध्रने उत्तर दिया कि मैंने उस घोंसलेको ब्रह्मके वृक्षपर उसी समय बना लिया था, जब पृथ्वी अन्तर्गत थी—उसका उद्धार ही नहीं हुआ था । गृध्रसे रामने कहा कि जब पृथ्वीकी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, जब वह आसका वृक्ष जिसके सहारे बड़ा था, गृध्रोस तुमने अक्षयवट भी नहीं बताया जो किसी तरह रह भी जाता है । इसलिए मैं तुम कहता हूँ कि तुम्हारी बात झूठ है । तुम उन्मुखका अर्थ सता रह हो । तुम जैसे दृष्ट पक्षाकी धिक्कार है ॥ १३४-१३६ ॥ इतना कहकर रामने पुनः द्वारा गृध्रको वृक्षपर बड़ाकर उस अपना परम घर दे दिया । वह गृध्र चला था, जिसका मृग्य रामके सम्मुख हुई और रामका रक्षण करते हुए उसने अपने आपोका परिचय किया । इस प्रकार उसे

दृष्ट्वा गौहमुन्मुक्ताय ययौ रामो निर्जा पुरीम् । विवेश नगरीं नृत्यवाद्यगीतपूरःसरम् ॥१४१॥  
 शिशुं विप्रं क्षत्रियं च वैश्यं चापि चतुर्थकम् । तैलकारं पञ्चमं च लोहकारस्तुषां तथा ॥१४२॥  
 चर्मकारदुहितरं सप्तैतान् हि सुजीवितान् । दृष्ट्वा रामः समावातानात्मानं द्रष्टुमादरात् ॥१४३॥  
 तुलोष नितरां पत्न्या तैः सर्वैः संस्तुतो मुहुः । ततः सपूज्यः तान् सर्वान् विसमर्जं रघूद्वहः ॥१४४॥  
 तदा महीन्स्रजश्चासीदयोध्यायां समन्ततः । एवं ज्ञानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः ॥१४५॥

इति श्रीमत्तकोटिरामचरितसंगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे

यत्तिषूद्रगृध्रशिक्षोपकरणं नाम दशमः सर्गः । १० ॥

## एकादशः सर्गः

( चार विप्रकन्याओंको रामका वरदान )

श्रीरामदास उवाच

अयैकदा रामचन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ । सीतया बन्धुभिः सैन्यैर्हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ॥१॥  
 पश्यन् वनानि सर्वाणि मृगयारसिको भृशम् । कौतूहलसमाविष्ट आसेटम्पूहसंश्रुतः ॥२॥  
 वषानद्गूढपादश्च नीलोष्णीधी हरिच्छदः । नीलगोधांगुलित्राणो धनुष्पाणिः शरी नृपः ॥३॥  
 अश्वारूढः सङ्गचर्मवारी भूपे पदानिभिः । वेष्टितः कवची रामो विवेश गहनं वनम् । ४॥  
 सीतया जालरंभैश्च वारं वारं निरीक्षितः । स रामो बन्धुवर्गेश पुत्राभ्यां नृपसत्तमैः ॥५॥  
 क्रीडां तदाऽकरोच्च कुञ्जेषु मृगयन्मृगान् । इन्धतां इन्धयामेषो मृगो वेगान्पलायते ॥६॥  
 इति जल्पन् स्वभृत्येषु स्वयमुत्पत्य इति च । गांधारेषु च रम्येषु वनेषु विपुलेषु च ॥७॥  
 उल्लङ्घितमहाश्रोता युवा पञ्चास्यविक्रमः । इतस्ततः पुनर्याति कचिन्पश्यन् वनम्यलीम् । ८॥

राज देकर घोसला तलुकाको दे दिया और वहाँसे अपनी अयोध्या नगरीकी ओर चल पड़े। अयोध्यामें पहुँचे तो क्या देखा कि वहाँ नाच-गान हो रहे हैं। ब्राह्मणका लड़का, मधुरपुरवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तेली एवं लोहारकी पताङ्ग तथा चमारकी लड़की ये सब जीवित होकर रामके दर्शनोंको सहे हैं। उनको जीवित देखकर सीता समेत राम अत्यन्त प्रसन्न हुए। वहाँ पहुँचे तो लोगोंने रामकी स्तुति की और रामने भी उनका सत्कार करके उनके नामोंको भोज दिया। उस समय अयोध्या भरमें चारों ओर उत्सव हो उत्सव सीखता था। इस तरह राम अनेक प्रकारका लीलायें करते रहते थे । १३६-१४५ ॥ इति श्रीमत्तकोटिराम-चरितसंगते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्ड्यविरचित'ज्वात्स्ना'भावाटीकासमन्विने राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके बहुत दिनों बाद रामचन्द्रजी एक समय शिकार खेलनके लिए सीता तथा भ्राताओं और बहुतसे हाथी-घोड़े आदिकी साथ लेकर वनमें गये। मृगयाके आनन्दसे आनन्दित होकर वे बहुतसे वनोंको देखते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। उस समय उनके साथ शिकार सेलानेवाले भीलोंका एक बहुत बड़ा दल था। रामचन्द्रजी जूता पहने थे, नीले रङ्गकी पगड़ी भस्त्रकपर बँधी थी हरे कपड़े पहने हुए थे और नीले ही रङ्गकी गोवांगुली उँगलियोंमें बँधी थी। हाथमें धनुष-बाण धारण किये थे । १-३ ॥ वे घोड़ेपर सवार थे, तलवार और डाल बगलमें झूल रही थी। वहुतसे पैदल चलनेवाले राजे उनके साथ थे और उनके शरीर पर कवच पहना था। इस प्रकारका वेश धारण किये वे गहन वनमें जा पहुँचे। उस समय सीता मालकीकी खिड़कियोंसे रामकी ओर निहार रही थीं और रामचन्द्रजी अपने भ्राताओं और मित्रोंके साथ कुञ्जोंमें मृगोंको दूँहते हुए हर्षपूर्वक मृगया कर रहे थे। कभी-कभी 'मारो-मारो, यह मृग वेगसे भागा जा रहा है' इस प्रकार चिल्ला पड़ते। यदि कोई उसे मारनका नहीं पहुँच पाता तो वे उसे स्वयं मार दिया करते थे। एक

निरपोहीनसंश्वस्तलीनकेकिकूलाकुलाम् । इतिर्गोपमयस्तां धावञ्छापददिङ्मुखात् ॥ ९ ॥  
 कचित्केशवकुन्कारद्विष्टगर्वावर्मापनाम् । सङ्गमर्थः कचिद्दुर्वो दधानामिव दतिनाम् ॥ १० ॥  
 कचिन्कोटरमविष्टशुकां नदविनादिनाम् । मृग निष्टमुशमिष्टुद्रितां च कचिन् कचिन् ॥ ११ ॥  
 शार्दूलनमनिभिन्नरोहिद्रकारुणां कचिन् । पावस्वत्तमारातमुम्बिन्धमहिषागर्भः ॥ १२ ॥  
 अपराधांजरभोगिं सूचयन्तामिव कचिन् । कचिद्बुधधनच्छायां वनगुप्पमुगधिनीम् ॥ १३ ॥  
 कचिद्धनायुददारभूयदसमनोगणाम् । अर्पनिःसृननिषेकनागर्भाः महद्विलाप ॥ १४ ॥  
 वृत्तस्याजगर्भ्यामां कचिन्निर्मुक्तसर्पिणाम् । कचिच्चदानलज्जालाशिखादिपामर्हीकदा ॥ १५ ॥  
 ज्वलन्निकुंजनिर्गच्छद्दृक्कथाप्रसङ्गदा ॥ १६ ॥  
 पञ्चलेषु च विश्रांतः पुनर्धाने वनातरम् । ततो मध्याह्नममघे निवासं यत्सस्तटे ॥ १७ ॥  
 कारयामास सेनायाः पीनायाश्च रघुतमः । स्वयं सुदऽकरोन्कोटामाखेटजुहपंथः ॥ १८ ॥  
 दुद्रक्ष पृगट्टेषु युक्त्वा वण जघान तान् । एवं खेलात्तं गजेन्द्रं म्यध्वर्गे च वै द्विज ॥ १९ ॥  
 तत्र कोलाहलवस्त्रः पञ्चस्यो निर्गतो वनात् । यं केमरा महावेगस्तीक्ष्णद्यूा भयावहः ॥ २० ॥  
 स्फुरद्वनमार्कांतदुर्गमार्गमहोत्तलः । कदाचिद्गगनारूढः कदाचिद्भूमिभ्रलः ॥ २१ ॥  
 न स्याल्लक्ष्यता याति चन्विनां पृष्ठगामिनाम् । कचिद्दर्शयथ याति दर्शनामोचराः कचिन् ॥ २२ ॥  
 वक्रमोतोऽतिमर्धेर कटर्काद्रुमपंकुलम् । शृङ्गवाधममार्कीर्णं पर्वतेश्च भयकरम् ॥ २३ ॥  
 श्रविष्टो विषमारण्यं गमस्तस्य पदानुसः । दृग्दूरं ततो गन्वा देशदेशं च निर्जनम् ॥ २४ ॥

बाढीको छोड़कर दूसरोंमें और दूसरोंको छोड़कर संभरीम, इन तरह बार बार इसर उधर वनस्थलीमें दौड़ रहे थे ॥ १-८ ॥ उस समय वहाँ वृक्षोंपर रहनवाले मनुष्यक परिवार भार डरक वृक्षाक छायामें छिप जाते, हरिणयो चकित नवाम इसर-उधर लहरता हुई भाग जाती, बनेले जाड़ कालाहृतम प्रसन्न होकर अपनी सीढ़से निकल पगल करने अपना विनम निकलकर सर्वेक्षण पुष्करट मारत थे और कला दीगुराको भयमन लनकर मुनाई दता थी । वहाँ गेंडोंके समान शोभाको धारण लिये हुए हाथी भाग रहे थे, वहाँ काटरमें बँटे हुए लोन अनेक एक रकी कोटिनी बोल रहे थे । वहाँ शराक पंशक निशान दिखाई दत थे और वहाँ किमी सिंहक द्वारा मार गये हरिणक रुधिरसे पृथ्वी रक्तवण हो गयी थी । वहाँकी भूमि बड़े-बड़े स्तनायात्रो भसासे अन्तःपुरके आगनसदृश था, म परला थी और वहाँके वृक्षो पत्र वृक्षाक छायासे छायामय हो गयो थी । वहाँ वनपुष्पकी सार्णिसम बहु स्थली लवणवनयी हो रही था और वहाँ प्राकृतिक गीतक स्तामण्डल बन गया था । उसपर जो भीरे मीणा रहे थे, वे उमर सारण सदृश जन पड़ते थे । वहाँ मौनक शरीरसे आवा कचरी छूटकर झिलक मुखपर लगी थी । इस प्रकार बड़े-बड़े मर्षोंकी दिले दिखाई पड़ती थी । ९-१४ । कहीं मुँह बने हुए बड़े-बड़े जनगर लगे बँटे थे । कहीं सानोका कंपुल्लिख दिखायी देती थी । वहाँपर दानानन लगनके कारण चलने हुए निद्र-जोमसे व्याध पत्र आदि बड़े-बड़े जस्तु निकल निकलकर भाग रहे थे । रामके साथ भाये हुए शिकारी लवणाशपर कुत्ते दौड़ा रहे थे । कोई तलैया मिल जानपर वे लोग वहाँ कुछ देर विश्राम करके आगे दूसरे वनमें चले जात थे और मध्याह्नक समय किमी बड़े सरोवरपर सीना आदिक लाप आवास करते थे ॥ १५-१७ ॥ वीहरे वृह उठकर फिर शिकारा मत जाने थे । रामचन्द्रजो किसी भी मृगको देखकर उसके पीछे दौड़ पड़ते और उस बाणसे मार डालते थे । इस प्रकार रामचन्द्रजो मृगया कर ही रहे थे, तभी दूसरी ओरसे 'सिंह आवा-सिंह आवा' यह कलाहल हान लगा । सिंह इसमें ऊँचकर और भा वेगसे चला । उसके बड़े बड़े दाँत थे । देखनेमें वह बड़ा भयवना मात्स्य पड़ता था । वह बड़े कालसे दुर्गम मार्गका मैं करता हुआ इन लोगोंकी ओर बढ़ता आ रहा था । वह वहाँ छल्लग मात्सर आकाशमार्गसे चरता और कभी वृक्षोंपर दौड़ता चलता था ॥ १८-२१ ॥ अतिशय वेगसे भागनके कारण उसका पीछा करनेवाले लोग कभी उसे देख पाते थे—कभी नहीं । इस तरह भागता हुआ वह एक ऐसे दुर्गम स्थानपर पहुँच गया, वहाँ एक देवा-

एकाकी हयमारुहो विवेश गिरगङ्गाहम् सर्वं व्याधाश्च दूताश्च लक्ष्मणाश्च चघवः ॥२६॥  
 रामादर्शनमश्रीता वध्रमुत्ता हतस्ततः । अथ रामः कैमरेण अधान श्रितपत्रिणा ॥२६॥  
 ततः स दिव्यरूपेण नन्वा ग्राह रघूत्तमम् । पुरा विद्याधरवाह मया भुक्ता पतिव्रता ॥२७॥  
 मुनिपत्नी दृष्टेनैव तया शशस्त्वह क्रुधा । सिंहवन्निग्रहो यस्मात्तया मयि कुतोऽद्य हि ॥२८॥  
 अतस्त्वं मद्विरा सिंहा भयार्थं महावने । तदा मया प्रायिता सा पुनर्मामाह राघव ॥२९॥  
 निराद्रावशस्पर्शाच्छापाभ्युक्तिर्मवेचच । अतोऽद्य न्वच्छस्पर्शाच्छापाभ्युक्तधिरादहम् ॥३०॥  
 इत्युक्त्वा राममामय स स्वर्गं प्रययौ मुदा । ततः स रामचन्द्रोऽपि तुरगस्थो मुदान्वितः ॥३१॥  
 तत्र तस्थौ क्षणं यावत्तावत्तद्विरिगह्वरे । गुहाद्वारे शिलामैका ददर्श योजनायताम् ॥३२॥  
 मदतीं तां शिलां दृष्ट्वा रामो विस्मिनमानसः । धनुष्कांट्याऽक्षिपद्दूरं गुहायां मविवेश ह ॥३३॥  
 क्षिपद्दूरं सतो गत्वाऽग्रे प्रकाशं ददर्श सः । तत्र द्रोण्यां पवनस्य तपस्येभ्यः स्त्रियः प्रभूः ॥३४॥  
 ददर्श रामश्चत्वारः किञ्चिदंतरांस्थिताः । अस्थिचर्मावशिष्टैश्च देहैर्दृग्गोचराकृताः ॥३५॥

धर्मः सर्वायिताश्चेति ज्ञातवान्मा रघूत्तमः ॥३६॥

निजरूपाणि चत्वारि कुत्वादी तत्पुर स्थित । अक्षरीन्मधुर वाक्यं भिन्नरूपेण ताः पृथक् ॥३७॥  
 वरयत्वं वरान्नार्यः प्रमन्नोऽहं रघूत्तमः । ननस्ता राममभ्यर्शन्मांस्तक्कादिधातुभिः ॥३८॥  
 पूरितानि शरीराणि ददृशुर्नयनेर्निर्जैः । श्रुत्वा तद्रामवाक्य नास्तदा स्वपुरतोऽक्षिभिः ॥३९॥

मेका नल्ला बहू रह्यथा बहुतसे कंठोले वृक्षोंकी सारिणी उसके आसपास गयीं । चांगे बांससे पर्वत-  
 की दीवारें लड़ी थीं और भाँड़य तथा व्याप्त आदि हिंसक जीव उसमें भरे पड़े थे । ऐसी अवस्थामें भी  
 राम उसके पीछे-पाछे दौड़ते चल जा रहे थे । उस समय रामचन्द्रजी अपने नाभियोंसे बिल्टुडकर बहुत दूर  
 निर्जन जगहों उसमें मांस निकल गये । अन्तमें वह सिंह पर्वतकी एक शिवाल कन्दरामें घुस गया और  
 रामचन्द्रजी भी थोड़ेपर थड़ हुए उसके साथ कन्दरामें घुस गये । इधर रामके लक्ष्मणादि आता, उनके  
 दूत तथा शिकार सेलानेवाले बहलिये घबराकर रामकी इधर-उधर खोजने लगे । उसी समय रामने सिंहकी  
 एक विकराल बाणसे मारा ॥ २२-२६ ॥ तब वह एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिणत हो और उनको प्रणाम करके  
 कहने लगा हे राम मैं पहल विद्याधर था । मैं एक बार एक पतिव्रता मुनिपत्नीके साथ हुआ भोग  
 किया । जिससे कृपित होकर उसने मुझे शाप दे दिया कि तुझे सिंहके समान वरवग मेंगे आबरू उतारी है,  
 इसलिए मेरा बाणसे तू अधो मिट हो जा । इस प्रकार शाप था जानपर मैंने उसमें विनयी की तो उसने  
 कहा कि बाणसे बहुत दिनों बाद जब रामचन्द्रजी तुझे अपने बाणसे मारेंगे तब तू सरस्पर्श होने ही शापसे  
 मुक्त हो जायगा । सो बहुत समय बाद आपकी दयामें आज उस शापसे मुक्त हो गया । इस तरह अपना  
 पूर्ववृत्तात् सुनातेके बाद उसने रामसे आज्ञा माँगी और अपने आँकड़ोंके चला गया । रामचन्द्रजी अपने थोड़े-  
 पर बैठे ही बैठ थोड़ी देर वहीं ठहर तो उन्होंने क्या देखा कि उस गुहाद्वारपर पाजनी लम्बा चौड़ी एक  
 शिला लगी हुई है । इतना बड़ा शिला देखकर राम विस्मित हुए और अपने धनुषकी कीरसे उसे दूर हटा  
 दिया । तब व उसकी भीतर घुसे । कुछ दूर आगे जानेपर उन्हें कृल प्रकाश सा दिखायी पड़ा । और आगे  
 बढ़े तो उन्होंने क्या देखा कि चार स्त्रियाँ तपस्या करती हुई बैठी हैं उनके गनीरमें हड्डो और बमड़ेक  
 शिवाय पाँसका नाम भी नहीं था । उनका स्वास चल रहा था । इनसे उनका यह ज्ञान हुआ कि ये स्त्रियाँ  
 अभी मरीं नहीं, प्रयुत जीवित हैं । ऐसी अवस्थामें रामने अपना चार गरीर बनाया और सबके सम्मुख  
 जाकर कहने लगे—‘हे नारियो ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो । मैं राम तुम लोगोंकी तपस्या-  
 से प्रसन्न हूँ ।’ इसके अनन्तर रामने अपने हाथों उनका करारका स्पर्श किया । जिसमें उनकी मूर्खी  
 देहमें रक्त-भासादिष्टा संसार हो गया ॥ २७-३६ ॥ गर्गर भर जानेपर उन सबोंने अपने नेत्रोंसे  
 रामको देखा । उस समय प्रत्येक स्त्रीके सामनेवाले राम काटि सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान



नार्यो विलोकयामासुः सर्वाः आसृष्टाश्चक्रुः । क ॥ ४० ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 ह्यारुहान्नुवेपेण सर्वाणां पुनः शिरान् । न ॥ ४१ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 अतिविस्मयमापन्नास्तदाचुस्मात्पुनरुपुनरु । के ॥ ४२ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 सूर्यं देवा दानवा वा सम्यगे क्वाधृता पुरः । अन्ता ॥ ४३ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 अस्माकं दुःशरीराणि कमनीयानि वै कथम् । ज ॥ ४४ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 इति ताम्ना वक्रः भुञ्ज राघवस्तः वक्रोऽज्ज्वलम् । प्र ॥ ४५ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 समर्पयपतिः श्रीमान् सूर्ययशमवुड्ब । मृ ॥ ४६ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 चतुष्कोट्या शिलां मय्यस्मात्पुनरुपुनरु । म ॥ ४७ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 मया कृतानि युष्माकं वातेसा दुर्दमिहतः । म ॥ ४८ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 समाप्तिं वगन् दातुं युयं नवा मयाऽयं हि । न ॥ ४९ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 यत्पुष्टं तन्मवा चोक्तं का युयं कथयतां मम । त ॥ ५० ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 तद्राश्वचक्रं भुञ्ज राघवस्तः वक्रोऽज्ज्वलम् । श ॥ ५१ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 ऊचुः सर्वास्तदा राममानन्दोऽपुड्बलोचनाः । व ॥ ५२ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 सहस्राणि नृपाणां च वेण्यानां क वक्राः पुनः । म ॥ ५३ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 लक्ष्मीभिर्विवाहांश्च सखानकादिने न्वदम् । क ॥ ५४ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 यानि यानि जहार श्रीरत्नानि मृगनन्दन । अ ॥ ५५ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 अचलां स्वद्विनान्यश्च श्रीः समानेपुमादरात् । पु ॥ ५६ ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर

हो रहे थे और घनुष-बाण तथा तलवार निपटे हुए थे । ३९ ॥ ४० ॥ वे मनुयका वेग धारण करके घोरर  
 सवार होकर एक-एक स्तम्भसे उन बागके सम्मुख लड़ रहे थे और उन सब रिपुओंका भा समान स्वरूप था और एक  
 ही तरहकी वेप-मुष्ठा थी । ऐसे रामका देखकर उन रिपुओंका बड़ा अ भ्रम हुआ और वे कहने लगी—“आप  
 लोग कौन हैं ? घाड़पर सवार होकर क्यों आप आ रहे हैं ? आप सब देवता हैं या दानव ? आप कहीं  
 जायेंगे ? कृपया हम यह भी समझाइये कि आप हमसे क्यों बात करना चाहते हैं ? हम आपके का यह बाण-कार्य  
 मगोर-इत प्रकार सुन्दर कैसे हो गया ? यह दुष्ट दुन्दुभे जाँवत है या मर गया ? ” ४१-४४ ॥ इस प्रकार  
 उनका बात-मनकर रामने उन सबसे कहा ‘सूर्ययशमवुड्ब और साता होशोंका अर्थ है राम नामका  
 मैं एक राजा हूँ । इस समय अपने एक ही रूपको चार भाग में विभक्त करके तुम सबके सम्मुख उपस्थित  
 हुआ हूँ । मैं यही जङ्गलमें निकलकर आया था और इसी कन्दराम में एक सिंहकी मारा है । फिर  
 तुम्हारे गुफा द्वारपर एक लम्बा-चोटी शिला दग्या । उसे अपने धनुषका कागसे दूर हटाकर तुम्हारे समीप  
 आया और अपने हाथके स्पणसे तुम्हारे जंघां करीबकी पवित्र तथा सुन्दर बना दिया है । दुन्दुभी रामसको  
 बालिक मार डाला । रामका विनाश करने में तुम सब मन उस वंश के भी मार डाला है । ४५-४८ ॥ केवल  
 तुम्हें करवाने इनका इच्छास मैंने तुमसे संभोधन किया है । अब जहाँसे आग जानेका हमारा कोई कार्यक्रम नहीं  
 है । इससे अपनी बर्बादगी बगलकी लोट जाऊँगा । तुम हमसे जानूँ पृथक्, मैंने उसका उत्तर दे दिया ।  
 जब यह बताओ कि तुम कौन हो ? दुन्दुभीको तुमने क्या पूछा ? तुम्हारा क्या कामना है ? इच्छित वर मुझसे  
 माँग लो ।” अब उन सबाने रामको सुनते यह सुना कि दुन्दुभी मार गया गया और हमारे द्वारपर लगी हुई  
 शिला भी हट गयी है तो वे बहुत प्रसन्न हुए और आनन्द प्रगुणित होकर उठो कह रहे राम । बहुत दिन  
 हुए यह दुन्दुभी राक्षस हम चार सहजानी धुविरे तथा सायूह हजार लक्षों तथा वेगोंकी कथाओंको  
 इरे लाया था । उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं एक ही दिन एक लाख स्त्रियोंके साथ विवाह करूँगा ।  
 इसी विचारसे वह अन्ध-अन्ध, कन्दाभास भगवतन प्रजा करता था । ४९-५४ ॥ हे मृगनन्दन यह जब  
 सुनरियोंको लाता था, उन्हें इसी कन्दराम छोड़कर दरवाजपर एक इतनी बड़ी शिला लगा दिया करता

वनन्तेऽग्रे नृपाणां च वैश्यानां चालिकाः प्रभो । वायुपर्णाशनाः सर्वाः श्राविष्णुर्वर्तमानमाः ॥६७॥  
 तत्तापो वचनं श्रुत्वा भिक्षुरूपं पुनः प्रभुः । ता उवाच त्रयः सोऽहं विष्णुरेव न सशयः ॥६८॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा पुनश्चा गणमब्रुवन् । दर्शयस्व निजं विष्णुरूपं चेन्मन्यवागमि ॥६९॥  
 ततस्वा दर्शयामास विष्णुरूपं निजं प्रभुः । तानि चत्वारि रूपाणि एगवन्त्यं तच्छूतमः ॥७०॥  
 ततस्वाः पुरतो विष्णुं दृष्ट्वा मेधुः स्वमन्तर्कः । ततो विष्णुः स ताः प्राह नः सदेहो गतो न वा ॥७१॥  
 ता ऊचुर्दर्शनात्तेऽयं भवकलेशा गता हि नः । किमास्तु तत्र सन्देहस्त्वज्ञानजनितः प्रभो ॥७२॥  
 ततः पुनः क्षणाद्रामो रूपं ता दर्शयन्मुदा । एकमेव हि सर्वार्थं मध्ये जनकजायनिः ॥७३॥  
 ततो रामोऽमर्षीताः स वरं वरयतामिति । ता ऊचुः कामवाणेन षोडशै राघवं मुदा ॥७४॥  
 भव भर्ता त्वमेवायं माधवविधिना वने ।

अस्माभिर्यत्र कुरुष्वत्र सुखं क्रीडां चिरं प्रभो ॥७५॥

ततो नय पुरीं स्वर्गां नस्त्वं भाग्यद्विचिन्तय । नत्तार्थं वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥७६॥  
 एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति न वक्ष्ये मम वै मृगा । ततस्वा वल्लभा श्रुत्वा निषेत्तुर्जगतीतले ॥७७॥  
 पुनस्ताः प्राह रामः स शृणुष्व वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण गूयं क्रीडां भजिष्यथ ॥७८॥  
 मित्रविदा नात्रजिनी मद्राज्या लक्ष्मणाह्वया । एवं नामानि युष्मार्कं सविष्यति तदा मया ॥७९॥  
 सविष्यति विशद्वाथ सर्वार्थां नात्र समयः । तदा नानाविधान् मोगान् भजष्व वै मया सह ॥८०॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा किञ्चित्तृप्तनाः स्त्रियः । रामं प्रोचुः पुनर्वीर्यं त्वमग्रे गन्तुमर्हसि ॥८१॥  
 तामिः शनैस्ततो गमो ययौ तुरगमस्थितः । षोडशोपरि नः सर्वाः सहस्रं षोडशाः शुभाः ॥८२॥

या कि जिस आपके सिवाय किसी अन्य व्यक्ति में हृदनका सामर्थ्य नहीं था, वह हम लोगोंका इस कन्दराम को लेकर कहो चला गया है। तब हम ब्रह्मर्षी, सर्वेश्वर और वंशाब्दोंकी कन्याएँ वहाँ पड़ो हुई हैं। वायु तथा वृषाका प्रतिष्ठा हमारा भाजन है और श्राविष्णुमगवान्के चरणाम हमने मन लगा दिया है। इस प्रकार उनकी बात सुनकर सबके समक्ष एक-एक स्वरूपमें खड़े श्रीरामचन्द्रजाने कहा कि जिन विष्णुम तुमने अपना मन लगा रखा है, वह मैं ही हूँ। रामका बात सुनकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि तुम यह सब कह रहे हो तो अपना विष्णुरूप हम दिखाओ। इसका अनन्तर भगवान्ने अपने उन चारों स्वरूपोंको अपनेमें समेट लिया और विष्णुरूपमें सबका दर्शन दिया। जब उन्होंने विष्णुभगवान्को अपने सम्मुख देखा तो मन्तक लुकाकर प्रणाम किया। विष्णुभगवान्ने उनमें पूछा कि अब तो तुम्हारा सन्देह निवृत्त हुआ? उन्होंने कहा कि आपके इन पुरातन दर्शनासे मया सब कलेश दूर हो गया तो फिर अज्ञानसे जायमान सन्देहक विषयम क्या कहना है ॥ ५२-६२ ॥ क्षणभरके बाद वे फिर रामके स्वरूपमें उनमें सम्मुख खड़े दिखाई दिये और उनसे बाल कि तुम लोगोंकी वा इच्छा ही, वह वर मांगो। तब कामवाणसे षोडश हाकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हम लोगोंके साथ माधव विवाह करके हमारे पति बनिये और अधिक समयतक अतन्द्रितक हम कन्दराम हम लोगोंके साथ विहार कीजिए। उनके यह प्रार्थना सुनकर रामने कहा कि ऐसा तो नहीं है, संभवता। क्योंकि मैं एकपत्नीव्रतवादी हूँ। मैं कभी खूड नहीं आया, तुमसे सब कह रहा हूँ, वह बात सुन लो। वे स्त्रियाँ मूर्खता हाकर पृथीवर गिर पड़ीं ॥ ६३-६७ ॥ ऐसे दर्शाम राम उनका समझाते हुए कहने लग—इस प्रकार अब और न होकर भरी बात सुनो। अब तो नहीं द्वापर गुणम कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंके साथ विहार करूँगा। मित्रविदा, नात्रजिनी, मद्रा तथा लक्ष्मणा इस प्रकार तुम लोग का नाम पड़गा और उस समय तुम सबका विवाह मेरे साथ होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस समय तुम सब मर साथ नाना प्रकारके सुख भोगांगे। रामकी बातोंको सुनकर उनका मन कुछ सन्तुष्ट हुआ और कहा कि अब आप नही तो आ सकते हैं। राम उन चारों कन्याओंके साथ चोरे-चोरे भाग बड़े। एक योजना आगे जाकर गण्डका नदीके किनारे एक झाड़ में

वदन्तं गण्डकीतीरे वृक्षपण्डे रघुदत्तः । निर्मलिनदृशः शुष्काम्बुपम्पा हम्भर्यावनाः ॥७३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितसंग्रहे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे  
द्विजकन्याचतुष्टयवरदानं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

## द्वादशः सर्गः

( सोलह हजार ललनाओं तथा कालिन्दी आदि चार स्त्रियोंको रामका वरदान )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः धनैः सर्वाः स्पृष्ट्वा निजकरेण ताः । कुन्दा तारुण्यपूर्णैश्चपूरिताः प्राह सादरम् ॥ १ ॥  
पूर्ववन्मकुलं पुनं सर्वाः मथान्व्य विस्तरान् । वरं वरयतां शीघ्रमिन्युक्त्वा च रक्षसमः ॥ २ ॥  
हतं तं दुन्दुभिं श्रुत्वा हर्षोन्कुलानना स्त्रियः । पूर्ववद्विष्णुरुषाणि महत्त्राणि हि बोद्धव्य ॥ ३ ॥  
सन्दर्शिनानि रामेण तारयति च स्थितानि हि । रामरूपाणि ता रघुा बान्धा विष्णु परापरम् ॥ ४ ॥  
तं वरान्दरपामासुस्त्वन्नो भर्ता मय प्रभो । ततो राममुक्त्वाऽऽकुन्वा चैकपत्नीव्रतस्थितम् ॥ ५ ॥  
परस्परं ता मम्मन्व्य श्रोतुं भर्ता मृगीदृशः । मया वृत्रम्बुधा चायं न्वया वृत्रस्तथा मया ॥ ६ ॥  
एवं तासु च पत्नीसु वदन्तीषु रघून्मयः । श्रुत्वा तद्वचनं शिष्य तदा चिचेजविचारयत् ॥ ७ ॥  
इमा वदन्ति किं पत्नी मां श्रुत्वाऽपि व्रतस्थितम् । बलात्कारेण मां भोक्तुं मन्त्रयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥

अक्षरद्वयमधवादयः सुरा ये च मिदमुनयः पुरातनाः ।

तैऽपि योगवलिनो विमोदितः लीलया तदवलाभिरञ्जितम् ॥ ९ ॥

योषिता नयनतीक्ष्णमापर्वर्धलतामुद्वचापनिर्गतेः ।

षन्विना मकरकेतुना इतः कस्य नो पतितो मनोमृगः ॥१०॥

तावदेव रद्वचित्तता मृणा तावदेव गणना कुलस्य च ।

तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव नियमव्रतादयः ॥११॥

उम सोलह हजार स्त्रियोंको देखा । वे सब आँखों मूँढ़े थीं, नयन्यासे उनका प्ररीर मूँछ गया था और यौवन नष्ट हो चला था ॥ ६५-७३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये १० रामतेजपाण्डेयनिरचिते ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके अनन्तर रामने ज्ञान हाथके स्पर्शसे उन सबको यौवनमग्नपूर्ण कर दिया तो वे भी पहनेवाली चारों स्त्रियोंके समान अपना वृत्तान्त बता गयीं । रामने उनसे कहा कि तुम्हारी जो बन्धन हो, वह वरदान मुझसे माँग लो । उन्होंने भी जब दुन्दुभीके मरनेका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुईं । इसके अनन्तर रामने उन्हें भी अपना विष्णुरूप विला तथा सोलह हजार रामरूप धरकर प्रत्येक स्त्रीको अलग-अलग दर्शन दिया । स्त्रियोंने इस प्रकार रामरूपको देखकर उन्हें सर्वश्रेष्ठ विष्णुमग्नभाव जाना । १-४ ॥ उन्होंने भी पहनेवालियोंकी तरह रामसे शार्थना की कि आप मेरे पति बनें । जब उनको रामने अपनेको एकपत्नीव्रती बतलाया तो वे आपसन सलाह करके कहने लगीं कि जैसे मैंने इनको परन्ध्र किया है, उसी तरह तुमने भी तो किया है । सब आओ, हम सब मिलकर कोई ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे हमारी कामना पूर्ण हो जाय । इस प्रकार जब रामने उनकी सलाह सुनी तो अपने हृदयमें विचार करने लगे कि एकपत्नीव्रतमें स्थित देखकर भी वे स्त्रियाँ बरबस मेरे साथ संभोग करना चाहती हैं ॥ ५-८ ॥ मृगा शत्रु, इन्द्रादिक देवता एवं जितने पुरातन सिद्ध-मुनि हो गये हैं, वे सब योगी होकर भी कामिनियोंकी वदमुत लीलासे मुग्ध हो गये थे ॥ ९ ॥ स्त्रियोंके नेत्ररूपी शायकको अनुपारी कामदेव जिसके ऊपर छोड़ता है तो किसका मनरूपी

यावदेव नितिनोन्मदसर्वमे मयति कुतमदेन पूरुषः ।  
 मोहयन्तु मदयन्तु रागिण योषिणः स्वचरितैर्मनहरेः ॥१२॥  
 मोहयन्ति मदयन्ति मामिमा धर्मरक्षणदमं हि कुर्गुर्मे ।  
 मामरक्तमन्त्रमुत्रपुमिन् शोषतां वपुषि निरुणेऽशुची ॥१३॥  
 कामिनस्तु परिकल्प्य चाकृतमारभन्ति सुविमृदचेतसः ।  
 दारुणः परिश्रान्तिताङ्गनामन्तिधिविमलवृद्धिर्वातभिः ॥१४॥  
 यावदेव न मदीयमागतान्तावदेव हि व्रजाम्यदृश्यताम् ।  
 तर्हि मे व्रतमिदं सुनिर्मलं नान्यथा कथमदं करोम्यदम् ॥१५॥

अथवा किं करिष्यन्ति मामेकदापिताप्रियम् । इति निश्चिन्त्य श्रीरामस्तत्र तूर्ण्यो स्थितोऽभवत् ॥१६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे मर्षाप्तास्तं प्रचतुर्धालमम् । धृतमन्त्रं नूनमस्माभिर्नात्र कार्या विचाणा ॥१७॥  
 एककर्त्तव्यत किं मे पश्चिदस्य शृणुतम । अस्ति मे-गतां प्रामे-फलं शोक्तुमर्हसि ॥१८॥  
 इत्युक्त्वा तास्तदा सर्वा गन्वा नन्मनिधिं ब्रवात् । सव्यापमन्त्रवन्धेन भुजपाशान् प्रचक्रिरे ॥१९॥  
 नन्ददृष्ट्वा राघवः प्राह शृणुध्वं वचनं मम । धृष्ट्या निरुद्धेन मद्रघनुकूलं प्रियं वचः ॥२०॥  
 वतितस्तन्न योग्यं मे वा ह्येदं गन्तुमर्हसि । आरुण्यं रामशकणानि तमुचुस्मा-समन्ततः ॥२१॥  
 मर्यामध्वनिनोन्मदगुहा, कोकिला इव साधवे ।

यावत्तमन्त्रमिदं कुतः

धर्मदयोर्धनः काम कामादुर्मफलैः दयः ॥२२॥

इत्येव निश्चयं द्वाभे वर्णयन्ति विपश्चितः । स कामो यतवाहल्यान्पुरस्ते ममृषाम्भितः ॥२३॥  
 सेव्यतां विविधधर्मैः स्वर्गधामिण्य मनः । श्रुत्वा तद्वचनं नागां गमस्ताः प्राह सन्धितः ॥२४॥

मुग उस वक्तोसे धायल नही जाता ॥ १० ॥ मनुष्यका चित्त तभी तब हर रहता है, तभी तक कुलकी मर्णा रहती है, तभी तब तपस्या में लगन है तभी तक निवृत्त व्रत भाँद होते हैं, जबतक शिववाके चमल कटाक्षों में पुरुषका मन भतवला नहीं हो जाता और जबतक स्वर्गो उनपर माहिता डालकर अपने मनोहारी हावभावोंसे पुरुष को दना दती ॥ ११ ॥ १२ ॥ मुग मुग अपना घमण्डाल तब जानकर भी अपना गुणोंसे मुग्ध करना चाहता है । भाँस रह और मल मुँसे पान्गुण मित्रोंकी अपवित्र देहपर कावी पुरुष मोन्दयकी कलना करके आनन्द लूतल है । मग कमलसे तो केवल मूरवाकल है । क्योंकि विमल वृद्धिवाले लोकोका कहता तो यह है कि मित्रोंका तपन बढ़ा तो शान्त गान्धानक ना होता है । अच्छा, जगतक ये मेरे समान नहीं आ जाये । इतने वचन मीरे अच्छा हुआ, मग व्रत निमल रह जाय । इसके शिवाय और कोई उपाय भी तो नहीं दायता ॥ १३-१४ ॥ अच्छा, यह भी दना है कि ये मेरे साथ क्या करती हैं यह निश्चय करके रामचन्द्रजी चुपचाप बस जाय ॥ १५ ॥ मुग मन्त्र तब सब शिवाये एक स्वरसे कहा कि हम मागोने आगके, अग्निके पति मान लयता है । अब अग्निके प्रचारका विचार मत करिय ॥ १७ ॥ हे राम क्या आपने एकलक में पायन किया है यह यदि कहे तो अब उससे प्राप्ति फलका उपयोग कीजिए ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर वे सब उनसे पाने पहुँचा और दाना दायी दना भवाओंसे रामको अपने भुजपाशों में लनकी चला करने लगे ॥ १९ ॥ एसी अवस्था में राम उनसे कहा कि आप सब जो कुछ कह रही हैं, वह ठीक ही है । बिना रक्षक के लन वगैरह तो वह उचित न है । इस लिए तुम सब किसी प्रकारका उदक लनके ऐसे दुर्दृष्टि लन लय जाय । इस तरह रामको बाणां मुनकर चारों आरस वे सब कहने लगी । इस समय रामवश उनसे बँडकी ध्वनि बलन्त शत्रुक कोकलके समान मधुर सुनाई दती थी ॥ २० ॥ २१ ॥ सँकड़ हजार हजारी बाल—धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होता है अर्थसे काम प्राप्त होता है और कामसे धर्मफल मिलता है । विद्वान् लोग शास्त्रोंका यही निगध बतलाते हैं । वही काम आपके

भीरमवस उवाच

कराम् रास्यापि पुष्पाई नान्यं श्रोम्यापि किंचन । इत्युक्ताः पुनरुचुम्माः किं त्वं वदसि राघव ॥२५॥

ता उचुः

दिव्यौषधं ब्रह्मभियो रमावने मिद्धिनिधिः साधुकृता वरांगनाः ।

मन्त्रमया ह्यमजले च धर्मतो नेमे निषेधाः सुभिया मयागवाः ॥२६॥

कार्यं तु देवाद्यदि निद्रिमामतं तस्मिन्नुपेक्षां च च मांति नीतिगाः ।

यम्मादुपेक्षा न पुनः कस्यदा तस्यान्न दीर्घीकृण प्रशमते ॥२७॥

सांद्धानुरागाः कुयजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्रचिन्ताः सुगिताः स्वयम्भराः ।

कथाः सुरूपाः परिपूर्वपौत्रना पन्था लभन्तेऽत्र वरास्तु नेतरे ॥२८॥

क वरं भूमिर्षोदयः कर्षकपत्नीवत् वव । तस्मादस्मानिहानी त्वं वा निराकर्तुमर्हसि ॥२९॥

माधवेव विराहेन मान्यथा मोऽस्तु ज्ञावितम् । श्रन्वा वाचयं तु तत्तानीं राघवः प्रहृता पुनः ॥३०॥

मो मृगादयः कश्च न्यउरो धर्मो धमरिचभूतैः । धर्मधार्थ्यं कामध मोक्षार्थं चतुष्टयम् ॥३१॥

बभोक्तं मफलं ज्ञेयं विपरीतं तु निष्फलम् । तस्मान्मयोक्तं यत् पूर्वमेकपत्नीवत् निजम् ॥३२॥

आस्वन् जन्मनि वन्नाई त्यक्तुमिच्छामि भोः शिवः ।

एवं भुत्वाऽऽश्रमं तस्य ताः सर्वास्त्य परस्परम् ॥३३॥

करालरान् प्रमुखास्व जगदूर्ध्वं तत्रऽवल्लः । अन्येभ्यमग्निं रामस्य हृदौ तु जगदृष ताः ॥३४॥

एवं तामिर्वेष्टमानमस्मान् धीदृश राघवः । अन्यर्धानमगात्प्र तामां बन्धे भुमात् प्रहृः ॥३५॥

किं कुरैति शिवः मया हन्तर्धानं गते मयि । एवं तामां कौतुकं हि गुप्तरूपे ददर्श कः ॥३६॥

इसकी प्रवृत्तासे स्वयं प्राप्त हुआ । २२ ॥ २३ ॥ विश्व प्रकाशक योगोका उपयोग करने को इसमें लक्ष्य नहीं है कि वह मर्यादालोक ही भ्रमके लिये स्वयं बन जायक । उनका बात गुनकर बरखाये हुए रामचन्द्रजी कहने लगे कि सिवाय वर मोक्षके ये नुस्खाने एक बात भी नहीं पुरोग । रामके ऐसा कहनेपर उन दिव्योदि कहा— हे राघव । आप कह क्या रह है ? ॥२४॥२५॥ शिव भोयारि, ब्रह्मको जननेसे सम्बन्ध रखनेवाली कान्, रामाय, सिद्धिके सजाने, निषिद्ध, अच्छी कलाये, अच्छा क्या और अश्र-जल पाकर सम्जनजन कभी नहीं छोड़ते ॥ २६ ॥ जो कोई काम वैराग्य सिद्ध हो सकता है । नोतिम वत उसकी कभी उपेक्षा नहीं करते । फिर उसकी उपेक्षा करनेसे कोई लाभ नहीं हो तो उसकी उपेक्षा ही क्यों की जाय । अथवा बाइजूर कहानेका क्या लाभकता ? ॥ २७ ॥ गढ़े प्रेमयुक्त, अच्छे कृत्यमें उत्पन्न, जिनका पित्त एतहम बाइ हो गया हो, जो अच्छी-बच्छी बातें करती ही, जो वरके काम स्वयं ही पटुचा हो, जिनका मन्दर स्वरूप ही और जिनका योश्र भी पूरी तरह उपकृ बाय हो । ऐसी श्रियाका जो लग पान है, वे कथ है । साधारण श्रेणीक लोग ऐसी श्रियोंको नहीं करते ॥ २८ ॥ कहाँ हम जैसी मन्दरी श्रिया और कहाँ आपका एकपत्नीवत् । इस कारण हब फिर भी कहते हैं कि आप हमारा निरादर न कीजिए ॥ २९ ॥ बिना आपके साथ गन्धर्व श्रियाह किसे हब लोग नहीं सो सकेगी । उनका बात गुनकर रामने कहा । भीरम बाये—हे वृगके समान मेजोवाली श्रिदी ! तुम कहे यह कह रही हो कि कामको पाप देखकर धर्मका परित्याग कर दो । बर, बर, काम और धर्म ये कर पार्य हैं । यदि एकके साथ एकका अच्छी तरह सम्बन्ध किया जाता है तो वह सफल होता है । अन्यथा निष्फल हो जाता है अथवा विपरीत फल हमने बताया है । कतः जो मेरे अपने एकरत्नीवत्ता कारण बालाया है, उसका परित्याग नहीं कर सकता । इस प्रकार रामका आह्वय जानकर वे आपसमें एक दूसरेका मुँह दिखाये लगी ॥ ३०—३१ ॥ तदनन्तर हाम छोककर श्रियोने रामका वर पकड़ लिया, किन्तु कुछ श्रियोने हब की पकड़े रखा ॥ ३२ ॥ इस वच्छ अब लोगोंसे अपनी पिरा हुआ देखकर राम कहाँ ही उत्तवीन हो बने ।

अदृष्टा राघवं सर्वास्ताः क्षणात्प्रमदोत्तमाः दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म विष्मयाविष्टमानसाः ॥३७॥  
 वित्रस्तहृदयाः सर्वाः कुलस्य इव कातराः । संभ्रातनयना दीना हन्यन्मुखाः परस्परम् ॥३८॥  
 व्याप्तं च हृदयं तासां तदैव विरहाग्निना ज्वलज्ज्वालाग्नेर्नैव मुखिर्घ्नं सार्द्रकाननम् ॥३९॥  
 स्यजैर्द्रजालिकां भार्या कांतं दर्शय मन्त्रम् । ध्यान्मान नर्मणा धृक् प्राग्प्रसे मक्षिकाऽपनत् ॥४०॥

स्त्रिय कचु

हा कष्टं दर्शितं कस्माद्वाचा किं रचितं त्विदम् ।

ज्ञातं महत्तमं तव दातुं नमन्व समागतः ॥४१॥

कच्चित्तं निर्दयं धैतः कच्चिदस्मान् परीक्षति ।

कच्चिद्रुष्टोऽसि हे कांत कच्चिन्मुष्णामि नो मनः ॥४२॥

कच्चिन्नो ग्रन्थयोऽस्मात् कच्चिदस्मात् नो रतिः

कच्चिद्विनोदयसि नः कच्चिन्माधाविशारदः ॥४३॥

कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं त्वं वेत्सि विज्ञानलाघवम् । कच्चिद्विनपरार्थं हि न्वमस्मात् प्रकुप्यसि ॥४४॥

कच्चिद्दुःखं न जानामि परेषां विप्रलम्भजम् । त्वदर्शनं विना नूनं हृदयेऽधर माप्रतम् ॥४५॥

न जीवामोऽय जीवामः पुनश्च दर्शनाशया । अस्मांस्तत्र नयन्तं हि यत्र नाथ गतो ह्यसि ॥४६॥

मर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज मर्वथा । पश्यन्तं न हि पश्यति कस्यचित्प्रयत्नना जनाः ॥४७॥

इत्थं विलप्य ताः सर्वाः प्रतीक्ष्य च बहुभुजम् ।

रामं द्रष्टुं बने सर्वा बभ्रमुम्भता हनन्वतः ॥४८॥

वृक्षान् बनेचरान् रामो दृष्टोऽस्माकं शनिर्न वा ।

एवं सर्वास्तु पप्रच्छ रामविश्लेषमज्वराः ॥४९॥

रे रे पिप्पल वृक्षाणामधिपस्त्वं त्रीहि नः । रामो दृष्टोऽथ वा नैव त्वं त्वां शरणं गताः ॥५०॥

किर श्री रे क्या कहते हैं, यह देखनेके लिए राम गुप्तकर्म वहाँ लगे-लगे देख रहे थे ॥ ३४ ॥ ३६ ॥ क्षणभरमें रामको बलशित दलचर ने बहुत चकरायी । किर व्याकुल होकर हरिणियों को नाई चञ्चल नेपासे इधर-उधर देखती हुई आपसमें कहने लगीं । ३७ ॥ ३८ ॥ इस समय उसका हृदय विरहाग्निमें पूर्ण हो गया था । उनकी उस विरहाग्निकी ज्वालासे उस प्रदलमें श्री खोली ढेरके लिए कम्पाकी धारा बहने लगी ॥ ३९ ॥ वे बोलीं— हे कान्त इस ऐन्द्रजाल ( उग्रहारी ) भावाना परिणाम करके हमें शत्रु वर्जित दीजिए । हमने आपसे हंसी की और पहले ही ग्राममें सबकी गिरनके समान इतना बड़ा विघ्न आकर उपस्थित हो गया ॥ ४० ॥ किसने दुःखकी बात है । हे विधाता । तुम्हारी क्या इच्छा है ? हे चित्तचोर । जान पड़ता है कि तुम हम सबको संताप देनेके लिए ही यहाँ नाथे व । ४१ ॥ तुम्हारा हृदय हा निष्ठुर है या हम लोगोंकी परीक्षा ले रहे हो । हमसे नाराज हो या हमारा चित्त चुरा रहे हो ? ॥ ४२ ॥ क्या हमारे ऊपर तुम्हारा विश्वास नहीं है ? क्या हमसे प्रेम नहीं करते हो ? हम लोगोंके साथ छटोली तो नहीं का रहे हो ? क्योंकि तुम मायाजाल फैलानेमें भी बड़े निपुण हो ॥ ४३ ॥ तुम किसीके चित्तमें पुगनेका काइ वैज्ञानिक एवं सूक्ष्म साधन जानते हो । बिना किसी अपराधके हमसे इनने क्यों रुठ गये हो ? ॥ ४४ ॥ हमसेको धोखा देनेमें जो दुःख होता है, क्या तुम उसे नहीं जानते ? बिना तुम्हारा दर्शन पाये हम लोग नहीं जा सकेंगे और यदि जीयगी भी तो तुम्हारे दर्शनोकी ही इच्छासे, धन्यवा नहीं । हे नाथ ! हमें भी यहाँ हो ले चन्दिये, जहाँ आप गये हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ क्या करके हमें दर्शन दीजिए । सज्जनजन कसो किसीका दुःख नहीं देख सकते ॥ ४७ ॥ इस तरह बहुत दरसक विलाप करके उन्होंने उनके आनेकी प्रार्थना की । तब भी जब वे नहीं आये तब वे उनको दूँदनेके लिए वनमें इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ४८ ॥ रात्रिके प्रत्येक वृक्ष और बनेने पशुओंसे वे रामविदहिणिया यह

भो भो तुलसि नो नाथस्त्वया रामो निरीक्षितः । वद शङ्खशृङ्ग त्वं नो वने रामो निरीक्षितः ॥५१॥

त्वं कोकिल सदा शब्दान् करोषि परमान् शुभाङ्ग ।

यदाद्य जानकीकातस्त्वयाऽरुण्ये निरीक्षितः ॥५२॥

भो कश्यपः कश्यप त्वं स व पृच्छामहे कश्यप । दीनानाथो रमानाथः सीतानाथस्त्वयेक्षितः ॥५३॥

पिब त्वमुत्तरं देहि सदा शब्दान् करापि हि । पातनः श्रोतवितः सीतापातेर्दृष्टोऽथवा न वा ॥५४॥

भो वसरा सदोन्मत्तं भुवारणसप्तः प्रभुः ।

सप्तदोषवतिः भीमान् रामोऽरण्ये निरीक्षितः ॥५५॥

शुक नः कथयाद्य त्वं प्रसूदृष्टोऽथ वा न वा ।

वद पुण्ये सरिच्छृङ्गे किं तूष्णीं संस्थिताऽधुना ॥५६॥

नः प्रभुः सप्तदोषानां प्रभुश्च निरीक्षितः ।

भो वायो कथयाद्य त्वं सीतारामो निरीक्षितः ॥५७॥

श्रीरामदास उवाच

एवं ता रामविश्लेषसभांताः क्षुशुचुर्वने । ततश्चा गङ्गातीरं गत्वा गीतं प्रचक्रिरे ॥५८॥

त्रिषु ऊचुः

किं प्रभो त्वया जानकी यदा तेन रक्षमाऽरण्यमध्यतः ।

स्वस्थं हृता गीतमोतटात्तच्छृणु त्वया नैव शोचितम् ॥५९॥ १॥

त्वद्वियोगस्तप्तमानसाः सर्वतो वने शोकमग्नाः ।

एकदा प्रभो देहि दर्शनं देहि नो वरान् माप्नुवं रतिः ॥६०॥ २॥

भो बाळामो राघव त्वच्छो रतिमयं यद्वदत भूमुरजाम्भो वरदानम् ।

तद्वन्नस्त्वं पूरय कामान्तरदानैर्वाङ्माम्भो सेवन्ममप्रये जननेऽपि ॥६१॥ ३॥

पूछनी जाती थी कि तुमने हमारे पति रामकी ता दृश्य नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ वे कहते भी कि हे नृकोके राजा विष्वक्सेव ! हम बताआ कि तुमने रामकी ता नहीं देखा है ? हम आपको शरणम है ॥ ५७॥ हे तुम्हारी देवी ! तुमने तो रामको नहीं देखा है ? हे वानरगण इस वनमें तुमने कहा रामका तो नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ हे कश्चित् ! तू बड़ा मोठा पाणा बोलता है, अब जमी बाणस हम यह बताव कि तूने वनमें कहा रामचन्द्रकी ता नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ हे कदम्ब तुजमें हम सब स्त्रियाँ गद्दी गूछना चाहती है कि तूने सीतापति रामका तो नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ अरे शुक ! तू सदा पोकहा-पोकहा बोलता रहता है । अब हम यह बता कि तूने कही जानकीवल्लभ रामको देखा है ? देखा हो तो बतलाव ॥ ५९ ॥ हे मतभाने बजराज ! मनुष्याम हावाक समान भ्रष्ट रामचन्द्रजीकी तो तूने नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ हे शुक ! तू ही बता दे कि इस वनमें कही रामकी देखा है ? हे दक्षिण नदी ! तू क्या चुप है, मरुद्गादक अकाश्वर और हम लोगोंके प्रभु रामचन्द्रज का ता तूने नहीं देखा है ? यदि देखा हो तो बताव । हे वायो ! कहो, तुमने इस वनमें कही सीतापति रामका देखा है ? ॥ ५९ ॥ ५७ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हम प्रकार रामके नियोगसे वनकी सी होकर वे स्त्रियाँ विलाप करती हुई चलती-चलती गङ्गातीर तक किनारे जाकर इस तरह प्रार्थनापरे गायन गाने लगी— ॥ ५९ ॥ हे प्रभु ! जब रात्रि वनमें सभावा हरण करके अपनी राक्षसानी लट्ठाको ले गया था, तब क्या उनके लिए आपने कोई साध नहीं किया था ? ॥ ५९ ॥ हे नाथ ! आपके नियोगसे हमारा हृदय जला जा रहा है । जोकरने दृष्टान्त हाँकर हम लय इस वनमें आ पहुँची है । हे प्रभो ! हमें एक बार अपना दर्शन दे दें और पद करवाने व दृष्टान्त । हे प्रभु ! हमने प्रेम नहीं करना चाहते तो न करिए ॥ ६० ॥ २ ॥ हे राघव ! जतना हम सब काँट-पेड़ा-मन-विनय-म-होती थी । अब उसकी दृष्टा भी नहीं रह गयी । जिस प्रकार भयानक दुःख-म-विनय-म-होती थी, उसी

अस्माभिर्यत्नचलभावादपराह तन्मत्तं न्व मा स्मर पूर्वं कुरुणातः ।  
 तः प्रणामे दर्शनहेतोस्तनुमज्जे निष्ठति त्नां पदगच्छन्वात्मा त्रिपसेज्य ॥६१॥४॥  
 ओ ओ राघव मा रुष्ट न्वं क्रोधं मा मत्तं दार्षाष्वद्य ।  
 पर्यंत न हि पर्यंतान्ध र्वाक्षावो न हि त्वत्तः कामम् ॥६२॥५॥  
 देहि त्वं निजदर्शनकामं जन्मप्रपंचेऽप्य नो वरदानम् ।  
 पाहि त्वं क्षण क्षुपयाना सर्वाभ्याम्य नः प्रणमामः ॥६३॥६॥  
 राम त्वं किं निर्दयदयस्त्वमि नः किं नापान्यथ स्त्रीजनकरुणा हृदये ते ।  
 इत्थं क्रोधं त्वत्पदयुगले पतितानु कर्तुं विष्णो नाहंमि वन्दो मय नोऽद्य ॥६५॥७॥  
 बाले दौने स्त्रीजनविमले तनये त्वं नो कुर्वन्तान्य बहुविधका मनिमनः ।  
 क्रूर क्रोधं न्वं त्यज वन्दो मय नोऽद्य वर वर करकपलैस्त्वा प्रणमामः ॥६६॥८॥  
 हे भव राघव रमेश्वर रावणारे मौलापने रिपुनिपूदन कञ्जनम् ।  
 त्वं देहि राम निजदर्शनमद्य विष्णो दुःखार्णवात्पान्तर नय कामिनीनः ॥६७॥९॥  
 अन्याद्व्यवसंवेदनमप्यसौ जन्मररं कुरु दयां कुरुणाममुद्र ।  
 नोवेत्तवाद्य विद्वांसिजजाधिरानि न्यदयाम एव निवत महनाऽद्य नद्याम् ॥६८॥१०॥

आनन्ददास उवाच

नारीर्गान राधवथापि श्रुत्वा प्रत्यक्षोऽभूत्कामिनीनामवाप्रे ।  
 दृष्ट्वा राम तः स्त्रियथानिपुष्टाः प्रोक्कुल्लास्यान् प्रणेतुः शिरोभिः ॥६९॥११॥  
 नारीर्गाने मानवथापि श्रुत्वा पदान् कामज्वाप्तुयान्निश्चयेन ।  
 तस्मादेतन्सवदा कोवेनायं स्त्रीकार्क्षां प्रापठे छन्दोचित्रम् ॥७०॥१२॥

४६१ ररदान देकर हमारे को कामना पूरा कर । हम किन्हीं अगल जन्ममें ही आपके सेवा करना चाहती हैं ॥६१॥४॥ हमने करुणावश अथवा घनज्ज्वास काई अपराध किया है तो उस आप भूल जायें । मेरे प्राण आपके दर्शनार्थ आकूल हैं । इस समय हम आपके दर्शन की ही भोख मग्न रहा है ॥६२॥५॥ हे राघव ! आप मर्यादा न हो और दारिद्र्यपर काय न दिखलाय । हम सब आपसे कामवासनाका पूर्ति नहीं चाहती ॥६३॥६॥ इस समय आप हमें अपना दर्शन और दूसरे जन्मके लिये वरदान दें । हम सब आपको प्रणमने हैं । आप हमारी रक्षा करके हमारा निस्तार करेंगे । हम आपको प्रणाम करते हैं ॥६४॥७॥ हे राम ! क्या आप अपने निर्दयो हैं कि ओ हम त्रिफोको हम प्रकार दुःखों देखकर या आपके द्वयमें क्या नहीं जाती ? ते विष्णो ! आपके चरोंमें पड़ी हुई हम अवदाआवर आपको हम प्रकार काय नहीं करना चाहिए । हमपर क्या करके हमें वरदान दायिए ॥६५॥८॥ बुद्धिमात्र लाभ वञ्चोपर, गरीब स्त्रियाँ पर नया वपवी सन्तानपर इस प्रकार क्रोध नहीं दिया करने । इस कारण आपन क्रूर आपका प्रत्याहार कीजिए । हम सब राम जोड़कर प्रणाम करती हैं, हम वरदान दायिए ॥६६॥९॥ हे नाय ! हे राघव ! हे रमेश्वर ! हे रावणारे ! हे मौलापते ! हे रिपुनिपूदन ! हे कञ्जनम् । हे विष्णो ! हे राम ! अपना दर्शन देकर आप हम कामिनीयोंको दुःखसमरसे वर काजिए ॥६७॥१०॥ हे करुणाके समुद्र ! अब दया कीजिए । हम दूसरे जन्ममें आपको सेवा करनेकी इच्छा है । हम आपसे बहुत प्रियता मोगतो हैं । यदि ऐसा नहीं करगे तो आपके विरहदुःखसे दुःखित हम सब स्त्रियाँ इसी गण्डकी नदीमें कूदकर अपने प्राण त्याग दया ॥६८॥११॥ रामदासने कतु — इस प्रकार वन कामिनीयोंका विलाप सुनकर रामचन्द्रजी उनके सामने पकड़ हा गये । रामकी प्रत्यक्ष देखकर ये स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुई और विकसित वदन हाकर वर बारप्रणाम करने लगी ॥६९॥१२॥ प्रत्येक मनुष्य इस गरीबोंकी पुनः वपनी अभिकर्षित कामनार्थ पूर्ण कर सकता है । इसलिए लोगोंकी चाहिए कि सदा इस गरीबीके



अथ रामो ददौ तान्यो वरास्तास्तोषयन् प्रभुः । पूर्वं भृगुर्वर्चो नार्थः पुरा कथावाग्रजे मया ॥७१॥

महुस्त्रीहेतुना हवममूर्तयः षोडशाभिनाः ।

तासां दानेन मनुष्यास्तै विषा मां मदाप्सुवन ॥७२॥

फलं सहस्रगुणितं तवास्तु रघुनन्दन । व्रतस्तत्कृतयथाहं द्वापरे कृष्णरूपधृक् ॥७३॥

करोमि पाणिग्रहण युष्माकं द्वारकापुरि ।

गूर्यं नानानृपाणां च भवज्जं बालिकास्तदा ॥७४॥

भीमासुरस्तदाप्य वै हुद्भिस्तु भविष्यति । भीमासुरश्च युष्माकं पूर्ववन्म हरिष्यति ॥७५॥

तदा सर्वा मोक्षयामि हत्वा तं जगतीसुतम् ।

ततो मया सुखेनैव क्रीडन्मं हि यथामर्चि ॥७६॥

एव तां रामावाक्यं तच्छ्रुत्वा प्रभुर्दिनामनाः ।

आनन्दोन्फुल्लनयनाः

सुखमापुर्वगाङ्गनाः ॥७७॥

एवन्मिमं तरे रामं पश्यन्तो लक्ष्मणादयः । शनैस्तत्रापयुस्तत्र पदांकितपया प्रभुम् ॥७८॥

षोडशसौमहस्राणां मध्ये दृष्ट्वा रघून्मम । परं विस्मयमाप्नुस्ते प्रणैर्मुर्जितशिरम् ॥७९॥

श्रुत्वा रामसुखात्मकं यथैव सां वस्तुम् । सर्वं मन्तुष्टमनस्तस्थुः क्षाराघवाग्रजः ॥८०॥

ततो रामाश्रया दृताः शतधाऽथ सहस्रशः ।

बाहनान्पानयामासुः सैरासकस्यलान्मुदा ॥८१॥

तेषु ताः स्त्रियाः सुमध्याप्य बाहनेषु रघून्ममः ।

शनैः सेनानिवासे स ययां मीर्तातिके प्रभुः ॥८२॥

ततस्तां जानकीं नेष्टुः सीतां वृत्तं रघून्ममः । यथा वृत्तं तथा सर्वं कथयामास कौतुकात् ॥८३॥

ततस्ताः पूजयामास दक्षराभरणरसाः । ततो रामः स कासारं सेनावाक्स्थलातिके ॥८४॥

के श्लोकोंका पाठ किया करे ॥ ७० ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर उनको वरदान देते हुए रामचन्द्रजी कहने लगे—हे स्त्रियों ! बहुत दिनोंकी बात है कि मैंने एक समय बहुत-सी स्त्रियोंका पानका इच्छासे व्यासजीके सम्मुख वृषभको सोलह स्त्रियां बनवाकर ब्राह्मणोंको दान दिया था । इससे प्रसन्न होकर उन विप्रोंने हमसे कहा—हे रघुनन्दन ! तुम्हें इस दानका सहस्रगुना फल प्राप्त होगा अर्थात् सोलहके बरसे सोलह हजार स्त्रियां प्राप्त होंगी । अतएव उनके आशीर्वादानुसार द्वापरम कृष्णका रूप धारण करके ॥ ७१-७३ ॥ मैं तुम सबोंका द्वारकापुरीमें पाणिग्रहण करूँगा उस जन्ममें तुम जनक राजाओंकी कन्याएं होगी । दु-दुकी राजस निकली कि बालिने मार डाला है, उस जन्ममें भीमासुर होगा और इस जन्ममें समान ही तुम्हारा हरण करेगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस समय मैं भीमासुरका मारकर तुम सबोंको छुड़ाऊँगा और तबसे कुछ कुछ शान्त होमारे साथ बिहार करोगी ॥ ७६ ॥ इस प्रकार रामके वाक्य सुनकर उनका चेहरा खिल उठा और वे अत्यन्त आनन्दित हुई ॥ ७७ ॥ इसी समय रामकी सौजते हुए उनके पैरोंके निजान देखते-देखते लक्ष्मणादि साथी भी वहीं आ पहुँच । अब उन्होंने सोलह हजार स्त्रियोंके बीचमें रामकी देखा की बड़े विस्मित हुए और जगदीश्वर रामकी उन लोगोंने प्रणाम किया । ७८ ॥ ७९ ॥ जब रामने उन स्त्रियोंका वात्सल्यपूर्ण वृत्तान्त बतलाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए और रामके साथ बैठ गये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे हजारों बाहन आये । जिनपर उन स्त्रियोंको बिठाकर रामचन्द्रजी शिविरकी ओर चले, वहाँ कि सीताजी बैठी थी ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वहाँ पहुँचकर उन सब स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और रामने उनका आ सच्चा-सच्चा हाल पा, सो कह सुनाया । ८३ ॥ इसके बाद सीताने अनेक वस्त्रों बाहरवासे उनकी छतार किया । मोढ़ा घेर कर रामने अपने शिविरके पास ही एक उत्तम सरोवर देखा, जो कन्या

ददर्श सुमहच्छ्रेष्ठं स्पन्दयितुमर्थां पतिम् । यत्नपादपमध्यस्थं सुगार्धसलिलं शुभम् ॥८५॥  
 विशालं विक्रान्तमोक्षमधुमसम्पुत्रतम् । पार्श्वनीरत्रमयुक्तं छन्नं मग्नकर्तृविव ॥८६॥  
 स्वच्छन्दमुत्तुल्लङ्घनस्य स्वच्छं मानुमनो यथा । चलन्मलवराङ्गिन्नीविगजिविगजिविगम् ॥८७॥  
 अन्तर्गोशरणकूरं खलानामिदं मानसम् । कचिच्छंतालदुर्गम्यं कृपास्पेक्षं मन्दिरम् ॥८८॥  
 नावाविद्वज्जस्रवर्तिं क्षमयत दिशाम्भुम् । उदारमिव सर्वस्वैरापन्नान्निहरे महत् ॥८९॥  
 तपयंत हिमाश्रमोभिः स्थापदान्भूपितनिव । हर्षं तत्रमनापि हिमाश्रुमिव चाहिकम् ॥९०॥

तं वृष्टाभूत्सुमत्तुष्टः सीतया रघुनन्दनः ।

तत्र स्नात्वा सुखं रामः कृतपाष्याहिकक्रियः ॥९१॥

शुक्ला वन्धुजनैः सर्वैरासेदगणसंहृतः । उग्राम मरुतस्तीरे स्मृताः मकथयन्कथाः ॥९२॥

ततः सरासिने चाणं कृत्वा रात्रीं स्थितास्ततः ।

व्याभाः संधानमास्थाय रुक्मः ककुमा पयः ॥९३॥

एव स्थितेषु क्षीणेषु धने विस्तार्य वायुरा । निक्षार्चं निर्गतं पूय शूकगर्भा सरस्वते ॥९४॥

चरित्वा सारसीकंदान् पपात व्याधमकुलं । गच्छा निद्रास्तदा कण्ठा व्याधैश्च बहो हताः ॥९५॥

क्षणेनैव वरदास्ते चिदाः पेरुर्मेहीनजे ।

तान्दत्वा तुमुलं नादं चक्रुर्व्याधाः मुदपिताः ॥९६॥

धावन्तोर्जपि मुदा तत्र मिलिता यत्र भूपतिः । तान्प्रदाय मर्त्यभूयः सेनावायं ययौ पुनः ॥९७॥

एवं सप्तदिनान्यथ स्थित्वा रामा वनं सुखम् ।

शुक्ला नानाविधान् भोगान् सीतया सरपुरा यया ॥९८॥

महाराजस समुद्रको यात्र कर रहा था । उसको उस पार्श्व में वृक्षावली लगी हुई थी, स्थान-स्थानपर घाट बन हुए थे और पवित्र जल भरा था ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उसके लम्बाई चौड़ाई का माप नहीं था । सिले हुए कमल के पूजापर गौर गुञ्जार रहे थे, फले हुए पुरस्कृत खड़े बड़े पत्त मरुतों के समान सुन्दर लग रहे थे ॥ ८६ ॥ सरस्वती आणके मनकी तरह स्वच्छन्दतापूर्वक मछी उगी रहने लगी थी । जलचर प्राणीयाँ इधर-उधर चलने लगी । कारण बार-बार उसमें लहर उठ रही थी ॥ ८७ ॥ सल मनुष्यक हृदयक समान उसमें किन्नर ही घड़ियाल भर थे । कहीं-कहीं कंगूस आणके चारों तरफ़ सवार भर थे, इससे जनम प्रविष्ट होता दुम्बर लगने लगी थी ॥ ८८ ॥ दिनरात कितनी ही ऐसा आश्रय लेकर अपना आकाशदूर कर रहा था । इससे वह सारावर कितनी ऐसी तन्द्रावक समान मानुष पहती थी जो अपना सुकवि छुट कर गरावत था । जो गणत जनको, क्षाम उत्तर हो ॥ ८९ ॥ अग्न उठ जलसे वह उसी तरह धनेन जावासी प्यास बुझा रहा था, जैसे चन्द्रमा दिन अन्क पराश्रमके दुःखी जनोका समस्त पाँहा रात्रि हरस लिया करता है ॥ ९० ॥ उस सरावकी दलकर उठा तथा रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए । उसमें स्नान किया, मछील्ल कारणका निरुत्तिपाय का और भोजन किया । फिर सारे शिकारियों का साथ लेकर उपा तड़ाकके समीप देरा डाल दिया और अन्क तरहकी पहानियाँ पहने-कहने समय काटने लगे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ जब रात्रिका समय हुआ तो वह विजय अन्क सामान खबर चारों ओरसे उस तड़ाककी घेर लिया और रामचन्द्रजी अपना बहुत बान् ठेक करके एक वृत्तक ऊपर जा बैठे ॥ ९३ ॥ जब कि व्याध अल भिछाकर सरस्वतीके साथ सरोवरके चारों तरफ़ बड़ मर और ठाक आधा रातका समय हुआ, तब बनेले शूकरा-का एक दूध का पट्टा ॥ ९४ ॥ रात्रिदमे उत्पन्न कन्द लेकर वह शूकरदूध दहीलियके ऊपर दूट पड़ा । उस समय बहुतसे शूकरोंको रामचन्द्रजीन भार डाला और बहुतोंको वहेन्द्रियान समाप्त कर दिया ॥ ९५ ॥ अग्नवरक से सारे शूकर भार डाले गये । इनको सारनके अनन्तर व्याधने प्रसन्नताका कोलाहल मचाया ॥ ९६ ॥ सब लहेलिये मारे सुशाक दीवत हुए उस स्थानपर पड़े व जहाँ रामचन्द्रजी बैठे थे । तब राम उन सबोंको साथ

ततो विप्रान्नुषान् वैश्यान् ममाह्वय रघूनमः ।  
 या यस्य दृष्टिता नागी या यस्य पुत्रपुत्रिका ॥९९॥  
 तस्मै तस्मै ददौ तां तामेयं मया उपमर्जयन् ।  
 उखलकम्भूषाद्यैः शोभयित्वा पृथक् पृथक् ॥१००॥  
 ते विप्राद्याः पुनर्जाता मेनिरे निजबालिकाः ।  
 सतः स्वं स्वं पुरं नीत्वा सृष्टा वैश्याः प्रमोदिताः ॥१०१॥

दृशुर्वैश्यापुत्रैस्तामां चक्रुः सुमंगलम् । रामप्रसादानाः प्राप्नुः पतिमगपुम्बं स्त्रियः ॥१०२॥  
 ताश्चापि द्विजपुत्र्यस्तु पितृणामेव सवसु ।  
 निन्तुः स्त्रीयापुष तत्र ब्रतचषोदिभिः सुखम् ॥१०३॥  
 विवाहकान्तिकमणिक्रान्ता उद्वाहिता द्विनैः ।  
 जन्मान्तरण ता मवाः कृष्णः पद्मीः करिष्यति ॥१०४॥  
 अथ रामः स्वाहोत्रं पुत्रम्भ मयुरां पुराम् । विवाहार्थं मातया म परं रज्जानपदययी ॥१०५॥  
 तत्र वैवाहिकं कर्म मयाच रघुनन्दनः । तस्यो तत्र क्षिप्यकाल मयुरायां यथामुखम् ॥१०६॥  
 एकदा जानकीशक्तिकालिदाः मङ्कने शुभे । निशायां हेमस्यंके मयः सुभाष गधवः ॥१०७॥  
 एतस्मिन्नन्तरे दार्पादामान् रघु विनिद्रितान् ।  
 स्त्रोरूपेणाह कालिदा गमात्रि मंशुश्चन्द्रनैः ॥१०८॥  
 ततो रामः प्रबुद्धाऽधुददशे पुनतः स्थिताम् ।  
 सूर्यस्य तनयां पुण्यां कालिदा कञ्जलोचनाम् ॥१०९॥  
 दिव्यलङ्कारवस्त्राढ्यां दिव्यन् पुग्गजिताम् । नीलोत्पलदलरामां हेमकुम्भपयोधराम् ॥११०॥  
 स्मिताननां मुग्धोक्त किंकिणाजालमालिकाम् ।  
 केयूरकुण्डलाढ्यां तां प्रोत्कृतधनां वराम् ॥१११॥

सीतकीको धार लेकर अपने निद्रिको लोट करे । इस प्रकार सत दिन वनम रहते हुए अनेक तरहके सुखोंका उपयोग करके राम अपनी अयाध्यापुरीका लोट पड़े ॥ १०० ॥ १०१ ॥ इसके अनन्तर दुग्धुवी द्वारा हस्त की सूर्य उन कन्याओंको जो जिसकी पुत्रा थी, उन उन राजाओं, ब्राह्मणों तथा वैश्योंको बुलाकर वे दी और उन बालिकाओंको वस्त्राभूषणादिसे अलङ्कृत करके विदा कर दिया ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ वे ब्राह्मणादिक अपनी कायाओंका पुनर्जन्म मानकर रामके आज्ञानुसार अवन-अवन पगोकी ने गये और कुनों तथा वैश्योंने अच्छी बरोंके साथ उनका विवाह कर दिया । रामचन्द्रजीको प्रणाम उन सबको पतिके साथ विहार करनेका सुख प्राप्त हुआ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ उनसेमे श्री ब्राह्मणकी व लिकाय थी, वे विवाहकाल अत्यंत ही अनेके कारण विवाह न करके सही पिलाके भरपर वस-उपवासादि करके अपना जीवन यापन करने लगीं । क्योंकि उनको यह विश्वास हो गया था कि दूसरे जन्ममें स्वर्ग श्रीकृष्णचन्द्रजी मेरे पति होंगे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ कुछ दिनों बाद मुवाहुका विवाह करनेके लिये रामचन्द्रजी सीताके साथ मयुरापुरी गये ॥ १०८ ॥ वहाँपर विवाहका सारा कार्य सम्पादन करके कुछ दिन मयुराव ही रहे ॥ १०९ ॥ एक दिन सीताके कहनेसे रामचन्द्रजी यमुनाके तटपर लगे । उस समय वहाँके सब दसों और दासियोंको निद्रित बनकर एक स्त्रीका रूप धारण किये यमुना स्वयं रामके पास गयी और चोरसे उनका पेर पकड़ा ॥ ११० ॥ १११ ॥ उसके ऐसा करनेपर रामचन्द्रजी आग गये और सामने मूर्गकी पुत्री तथा कमलके समान नेत्रोवाली कल्पिन्दीको देखा ॥ ११२ ॥ उस समय उसको शरीरमें दिव्य वस्त्राभूषण बड़े थे । चरोंमें सुन्दर मुरुर छनछना रहे थे । नील कमलकी पंखियोंके समान उड़कत रङ्ग था और सुवर्णकलशके समान उसके स्तन थे ॥ ११३ ॥ मृत्कराता हुआ मुख

तां तादृशीं प्रभृद्गुणं तूष्णीं व्यचिन्तयत् । घन्यो विधाता येनैयं कालिंदी रचिता पुरा ॥११२॥  
इत्याश्चर्यमना भूयः तस्मादर्थं व्यलोकयत् । अथ रामः स तां प्राह वदामनकारणम् ॥११३॥  
सा प्राह तं विलज्जती सर्वं त्वं येन्मि राघव । ततो रामोऽब्रवीद्वक्त्यं चैकपत्नीमतं मम ॥११४॥

इह अन्यनि कालिदि न्वं याहि स्वस्थलं जवात् ।

यावन्मीना प्रवृद्धा न जायेत तावदेव हि ॥११५॥

सा रामव कथनेनैव विराममस्थिता भूवि । मृच्छामवाप तत्रैव तां दृष्ट्वा सोऽब्रवीत् पुनः ॥११६॥  
उचिष्ठोचिष्ठ कालिदि गृणु म्य वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण त्वा करिष्याम्यहं क्षिपम् ॥११७॥

विवाहेनैव मच्छाद्य तदा भोक्ष्यामि मनुष्यम्

इति श्रुत्वा रामवाक्यं किञ्चिन्मृगमना नदी ॥११८॥

नवा रामं पयो तूष्णीं रामध्यानपराऽभवत् ।

ततो रामोऽपि सैन्येन सीतया स्वधुर्मं ययौ ॥११९॥

एवं स कैवल्यगरे राम स्त्रीवधुरेहर्जः ।

चरितान्यकरोन्नाना पापघनानि श्रवादिना ॥१२०॥

इति श्रीमत्कौटिल्यकचरितमार्गान् श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे  
षोडशसहस्रविककाण्डादियक्ष्मरत्रीवधश्च नाम द्वादश सर्गः ॥ १२ ॥

या, बेलेंके छम्बेकी माई उसकी जंघाएँ थीं विकर्णी केगर बुद्धल खादि बामूयन मयली छटा दिक्ता रहे ये ॥ १११ ॥ इस प्रकारकी एक अपरिचित नारीको अपने सामने देखकर राम थोड़ी देर तक यह सोचते रहे कि विधाता घन्य है, जिसने कालिन्दी जैसी नारीकी रचना की है ॥ ११२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे उसका सीन्दूर देखते रहे । इसके अनन्तर उससे कहने लग-तुम खरन आनेका कारण क्याबो ॥ ११३ ॥ रामकी बात सुनकर लक्ष्मणी हुई कालिन्दीने कहा - हे रामव ! तुम नव वृद्ध आनेते हो । फिर रामने कहा कि हे कालिन्दी ! इस जन्ममें मैंने एकवर्त्नयन धारण कर रखता हूँ । इसलिये सीता आग आय, इसके पहले ही तुम महीसे पसी जाओ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ रामके ये वाक्य व्रणके समान उसका हृदयम छे, जिससे वह वहींपर झुँकित होकर गिर पड़ी । फिर रामने कहा कालिन्दी ! उठो-उठो, मेरी बात तो सुनो । इसका पुण्यमें मैं कृष्ण हुकर तूम्हें अपनी रक्षा बनाऊँगा, आज तुम लोट जाओ । अन्तान्तरमें तुम मेरे साथ बिहार करके सुखी होओगी । इस प्रकारकी बात सुनकर लक्ष्मणी कुछ सन्तोष हुआ ॥ ११६-११८ ॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासुनकर उसका ध्यान करती हुई वह लोट गयी । उधर राम भी अपनी सेवा तथा सीताके साथ असीध्या चल गये ॥ ११९ ॥ इस तरह रामचन्द्रजी साकलपूरीम अपने पुत्रों तथा सीताके साथ अनेक श्रीरामों किया करते थे, जिनका श्रवण करतेस समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १२० ॥ इति कवकोटि-रामचरितमार्गान् श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय पं० रामतजवाडवाधिरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकप्रसक्तिले राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

॥ इति राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।

श्रीसीतापतये नमः

श्रीबाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## राज्यकाण्डम् (उत्तरार्द्धम्)

त्रयोदशः सर्गः

( राम द्वारा राज्यभरमें हास्यपर प्रतिबन्ध )

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा समाजानिः सुहृद्भिः सदयि स्थितः । वीजितधामरेणैव लक्ष्मणेनातिशोभितः ॥ १ ॥  
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पौरैः कश्चित्स्वर्गस्थितः । दशरुजानां नृन्यादि दृष्ट्वा हास्यं चकार सः ॥ २ ॥  
सहास्यं राघवः श्रुत्वा सस्मार पूर्वचेष्टितम् । लंकारां युद्धसमये रावणस्य शिरोंमि खातु ॥ ३ ॥  
रामबाणान्मृतिं लब्ध्वाऽस्माभिश्चेति विहस्य च । श्रीगमं वन्दनं कर्तुं पतन्ति स्म प्रभुं पुनः ॥ ४ ॥  
तेषां विकालनां दृष्ट्वा दंतादीनां रघूत्तमः । सभक्तुं हि पुनर्यान्ति शिरस्येतानि खादिति ॥ ५ ॥  
रामो भीत्या पुनस्तानि खे शिरस्यक्षिपच्छरैः । एकोत्तरशतान्मेव वारं वारं स्वरान्वितः ॥ ६ ॥  
सदृश राघवः स्मृत्वा किं दृष्ट्वास्वस्य वै शिरः । सभागत सभामध्येऽत्रेति पार्श्वेऽप्यलोकयत् ॥ ७ ॥  
मायाविनो राक्षसाश्च सत्यत्रेति विचिन्त्य च । एव यदा यदा हास्यं स गुथाव रघूत्तमः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी बोले—एक दिन रामचन्द्रजी अपने मित्रोंके साथ सभामें बैठे थे । उस समय रामपर चेंबर चल रहे थे और लक्ष्मण रामके पास बैठे हुए थे । इसलिए रामकी सोचा कईगुना अधिक दिखायी दे रहो थी ॥ १ ॥ इसी समय सभाका कोई नागरिक वैशाखीका नृत्य देखकर जोरोंके साथ हँस पड़ा ॥ २ ॥ उस हास्यको सुना तो रामको उस समयको एक बात याद आ गयी, जब वे लंकारमें रावणके मस्तकोंको अपने बाणोंसे काटकर आकाशमें उड़ा देने थे तो वे मस्तक यह समझकर कि रामके बाणोंसे भरो बुद्धि ठिकाने आयी है । इस भावसे हँसते हुए ऊपरसे फिर नीच आकर रामके चरणोंमें लोटते हुए वन्दना करने लगते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनके दानों आदिकी विकलान्ता देखकर रामको यह ख्याल होता था कि ये मस्तक मुझे खाने आ रहे हैं । इस लिए उन्हें फिर वणों द्वारा आकाशमें उड़ा दिया करते थे । यह उपन्य रामको एक दो बार नहीं पूरे एक सौ एक बार करने पड़े थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी बातको स्मरण करके रामने सोचा कि कहीं रावणके मस्तक ही तो इस सभामें आकर उड़ाया नहीं आर रहे हैं । इस भावसे उन्होंने अपने आस-पास विस्मयभरे नेत्रोंसे देखा । ७ ॥ क्योंकि उनका ख्याल था कि राक्षस मायावी होते हैं, शायद यहाँ भी आ जायें तो क्या आश्चर्य है । इस तरह राम जब कभी किसीका हास्य सुनते

तदा तदा पूर्ववत् स्मृत्या चार्थे व्यलोकयत् । ततो रामः श्रुत्वा चिन्ते चिन्तयामास सादरम् ॥ ९ ॥  
 यदा यदा श्रूयतेऽत्र हास्यं केनापि यन्मृतम् । तदा तदा दशान्वयस्य शिरे हास्यं स्मराम्यहम् ॥ १० ॥  
 मन्थाविनो राक्षसास्ते मां विस्मार्थं पुनश्चिन्तु । मामनुभव पाप्मनि स्त्रिणि मन्था स्वचेतनि ॥ ११ ॥  
 अन्यथा निर्दिष्ट हास्यं नानिशास्त्रेषु मर्यादा । प्रतो हास्यं वर्तयामि मर्षेणा भूनिशामिनाम् ॥ १२ ॥  
 इति निश्चिन्त्य हृदये लक्ष्मण वाक्यमब्रवीत् । दूर्ध्वं घोषयन्वाशं पुर्यां राट्तेऽवनीतके ॥ १३ ॥  
 स्मिताननो नमः कश्चिन्मागी वाऽथ सुहृन्व वा । माता वा तनयो बंधुः स मे दृष्ट्वा मर्षेदिति ॥ १४ ॥  
 नधेनि मयवाक्यमस्म घोषयामास रुन्दुभिम् । पौग जनपदाः सर्वे भून्वा शिवाश्चरि प्रभोः ॥ १५ ॥  
 रामदण्डमयात् सर्वे न चक्रुस्ते स्मिताननम् । वार्गागनान्नुपसीते नटगोतुप्रवर्तने ॥ १६ ॥  
 स्त्रोभिः मुहूर्तिभिर्विश्वं विनोदानुस्मरान् वरान् । भांगल्लथानि च कर्माण हास्यकारीणि नाचरन् ॥ १७ ॥  
 वगस्तथकलाभिष कान्तुकानि हि यानि च । नृगघोषादिमाङ्गल्यकमाणि विचित्राः कथाः ॥ १८ ॥  
 मायन्मगेऽमदान सर्वान् वात्रापहोन्मवान् शुभान् । कृतकानुस्मयार्थं विशीर्षादिषु कर्मसु ॥ १९ ॥  
 एतांश्चित्रकथाश्चापि न चक्रुश्च कदा जनाः । ययो नापश्यन्काकार्याद्विना सदसि कः प्रभुम् ॥ २० ॥  
 पुराणार्त्तानिहायश्च न पठन्ति स्म केनन । गर्भाधाने पुत्रजन्मनामर्द्धादिपुंसवान् ॥ २१ ॥  
 पौग जनपदाः सर्वे मप्रहोणनिवापिनः । एतानि हास्यकारीणि नानाकर्मोपि धृतले ॥ २२ ॥  
 रक्ष्यपि न चक्रुस्ते रामदण्डमयान् कदा । एवमार्त्ताद्वर्षमेकं तदा भूम्यां कदापि हि ॥ २३ ॥  
 स्मितानने कस्य नागीन्न चक्रुर्मटनादिकम् । तदोन्महदेवनाथ नानाकर्मज्ञदेवताः ॥ २४ ॥  
 इन्द्राय कथयामासुस्तदुच्यते जगतीयवम् । इन्द्रादीनां सुगणो च कर्मायूजनादि हि ॥ २५ ॥  
 नार्त्ताद्यदा जगत्या हि तदेद्रोऽकथयद्विधिषु । तदा सुमन्त्रिभिः प्राह न रामाग्रे वरु हि नः ॥ २६ ॥

तो जगत्का ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो आया करता था और अपने अगल-बगल निहारने लगते थे । इस समय रामने उस हास्यकी मुनकर दणभर दिवार किया और लगाप कहने लग्य—॥ ८ ॥ ९ ॥ जब कभी मैं किसीका हास्य सुनता हूँ तो मुझे राक्षसकी हँसी स्मरण आ जाता करता है और यह क्याल होता है कि ये आत्माकी राक्षस जिनका कि भैरु मार डाला है, बोला देकर मुझे खानेके लिए लिए लो मही आ गये हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ दूसरे नोतिशास्त्रमें भी हास्यकी निन्दा की गयी है । इसीलिए आजसे मैं भूलकर रहनेवालोंको हँसनेको मनाही करता हूँ । इसके बाद लक्ष्मणसे बोले कि मेरे राज्य तथा पृथ्वीतल परम दुर्गी पिटवाकर कहना दो कि कोई स्त्री पुरुष, केरा भिन्न, स्वयं सीता तथा मेरे बेटे या भाई भी न हों । जो इस आज्ञाके विपरित चलेंगा, उसे दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥ ११-१४ ॥ लक्ष्मणने रामक आज्ञा सुनी और दुर्दुष्को बजवाकर रामकी यह आज्ञा धारित कर दी । जिनने पुरवासी भयका देशवाला थे, उन्होंने प्रभुकी इस निन्ताम्बनि की मुनकर दण्ड भयसे हृषणके लिये हँसना छोड़ दिया । देखाआके नृत्य, गान, नाटक, स्त्रियाँ या मित्रोंके साथ हँस-दिल्लीगी आदि ऐसे सब कार्य बन्द कर दिये गये, जिनमें हँस आनका अन्तशा रहता था ॥ १५-१७ ॥ उस समय बौद्धाय नदकर नाचने आदिकी कथा, दुर्दुष्को-नगाड़े आदिके बाज, गाना, गज रावन्सरिक उत्सव, विवाह आदि मङ्गल कार्यों की हँसी आनवाले खल-कूद और वप राव आदि बातोंको बन्द कर दिया और बिना किसी विषय कामक कोई रामकी मन्नासे भी नहीं आता था । १८-२० । आगेमें पुराण-इतिहास आदिका भी पचना छुड़ दिया । गर्भाधान, पुत्रजन्म, नामकर्म आदि उत्सवमें हँसी न आने देनेका पूरा पूरा ध्यान रक्खा जान गया । मतलब यह कि सारे पुरवासी ऐसे देशवाला हास्य त्यागकर कामोंको नहीं करते थे । रामके दण्डभयसे कोई एकान्तमें भी नहीं हँसता था । यह अवस्था एक बड़ा बड़ा अन्तोरहो । इस बीचमें भूलकरने विद्योमेने किसीका भी पुष्पमण्डल धुस्करता हुआ नहीं देखा और किसीने भी अपना गृह्णार आदि नहीं किया । ऐसी अवस्थामें किसीने भी कर्मायूजदेवता और वरुतसे उस्ताहृदवता एकचित्त होकर इन्द्रके पास गये ॥ २१-२४ ॥ उन्होंने पृथ्वीतलके उस समाचारको कह सुनाया । अब इन्द्रने सुना कि हम देवताओं-

नैरोपदेष्टुं योग्यः स नमोऽपि जनकस्यु यः । पुत्रस्या कार्यं साधयामि येन कोऽपि हितं भवेत् ॥ २७ ॥  
 इत्याद्यास्य सुरान् सर्वान्निविर्भूमण्डलं ययौ । अयोध्यायाश्च सोमायां द्यूता वेधाः सुविप्रतम् ॥ २८ ॥  
 स्वयं दिवेषु तन्वप्ये दृष्ट्वा पाषाणं जहास यः । एतस्मिन्मन्त्रे कश्चिन्काष्ठमाग्रहः पुमान् ॥ २९ ॥  
 कुम्भा विष्णुलहास्यं जगत् दीर्घं जहास यः । ततः स अरकाहश्च ययौ ददुः प्रभोः पुगेष् ॥ ३० ॥  
 काष्ठभारविमथार्थं तत्र स्मृत्वा स्मितं हृदि । चतुष्पत्रस्य गोऽप्युत्सर्जनं मयर्थो निरोधितुम् ॥ ३१ ॥  
 भारवाहस्य हार्यं तद्वाज्रदूतोऽपि शुश्रूषे । राजदूतो जहापोत्सर्जनं मयर्थो निरोधितुम् ॥ ३२ ॥  
 राजदूतः सर्पां यत्वा भारवाहस्य यन् स्मितम् । हृदि स्मृत्वा जहापोत्सर्जनं च्छुन्वा नै ममामरः ॥ ३३ ॥  
 सभायां जहसुः सर्वे हन्तुन्वा नापनोऽपि यः । उत्सर्जंतां सदापि वरमिहामने स्थितः ॥ ३४ ॥  
 रामो विचारयामास किमर्थं हमितं यया । यच्चिस्मितं सदा दण्डं योगं जानपदाभिजान् ॥ ३५ ॥  
 अहं करोमि सोऽप्यहं सभायां हसितुः कथम् । दण्डयिष्यति मां कोऽपि किमां योगं वदति हि ॥ ३६ ॥  
 अस्माकमेव सिद्धाऽस्ति सर्पदा राघवस्य ना । न कथं हसितवाप्य सर्वेऽपि पुनः स्फुटन् ॥ ३७ ॥  
 सिद्धां कतिपयि विभोः कोऽस्य निद्रिनि वदति ते । मानयिष्यते नातस्ते ययापि शिखिनि वृत्त ॥ ३८ ॥  
 अर्थतन्त्रं व्रतं योग्यमिति राघवस्त्वयन्यतः । पुनर्ब्रह्म भोगमस्तन्निरोद्धुं न स क्षमः ॥ ३९ ॥  
 ततो रामाऽधरीन्वीरान् ममास्थानसंस्मिन्नागतम् । किमर्थं हसिता युष वेभो हार्य ममापि हि ॥ ४० ॥  
 जघामतं सभाबध्ये दीराः प्रोनुर्गुणोत्तमम् । द्यूता स्मृद्दहाम्य हि तेनाभ्यासं मनागतम् ॥ ४१ ॥  
 तद् पीरयन्तं श्रुत्वा दूतमाह रघुत्तमः । यया किमर्थं हसितं सोऽन्वीरपुनः पुनः ॥ ४२ ॥

के कर्मों का पूजनार्थि मन्त्रों से पुनः होने जा रहे हैं तो ब्रह्मांक पास आकर बहू बात बतानी । जघाम तद् किं राघव-दवाके अगो हन लोगमें कुछ भी शक्ति नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उन्हें उपदेश नहीं दे सकता । क्योंकि वे मर डेरा है । इसलिये मैं किसी युक्ति से अपना कायसाधन कर्मों का कि जिससे आप लोगों का कल्याण हो ॥ २७ ॥ इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर ब्रह्माजी दृष्टान्तों की ओर चल गये । आश्वासन की सीमापर एक विनाश विष्णु वृक्षों के लिये वे स्वयं उसका भीतर प्रविष्ट हो गये और उस राक्षस को आश्रय के लोगों को देख-देखकर आगे से हँसने लगे । उसी समय एक लकड़हारा लकड़ी का बाग़ साधारण रखत हुए वहाँ आ पहुँचा । उसे भी देखकर राघव के भीतर बैठे हुए ब्रह्माजी हँसे ॥ २८ ॥ २९ ॥ चौपलका हमी सुनकर लकड़हारा दूने आगे से हँसा और लकड़ी का बोझ लिये हुए अयोध्या नगर में जा पहुँचा । राक्षस उस चौपलकी हँसीवाली बात याद आ गयी और लकड़ी का भारकर हँस पड़ा । नाकन छग भर बाद उस रामकी जगहोका समान हो आया, जिससे बेकारा जड़ित हो उठा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ लकड़हारे को हँसना बन्द कर और (१-पर कड़ा लिपही भी जानी हँसी नहीं रोक सका । ३२ ॥ लिपही सभा में गया तो उसे वहाँ लकड़हारे का हँसी बाद आ गया, जिससे बहू हँस पड़ा । सिपाही को हँसते देखा तो मन्त्रों के होते हुए लोग भी अफसोस हो गये । रोके कके और वे भी हँसने लगे ॥ ३३ ॥ समय सभा में लोगों का हँसते देखकर रामचन्द्र का भी हँसने लगे । ३४ ॥ तब रामचन्द्र की गुरुमठ हँसी रोककर सोचने लगे—और लोग हँसे को हँसे, मैं क्यों हँसा ? अब मैं छारे धूम्रवाचिकों का इस कामसे रोक रहा हूँ और दण्ड दता हूँ । तब मैं क्यों हँसा ? मुझे क्यों दण्ड देना ? और वे गुरुवाली क्या कहेंगे ? यही मैं कि राम दूसरों के ही सिखा वेन हैं, प्रजा के बरत हा दण्डविधान करत है और स्वयं जो मन्त्रों काता है तो कर डालते हैं । सब लोगों के लिए तो हँसने की मनाही कर दी है, किन्तु स्वयं हँसते मन्त्रों के मन्त्रों के डटाकर हँसते हैं ॥ ३३-३४ ॥ इसका परिणाम यह होगा कि वे जड़ित होने में ही नहीं जानेगे । यह सब विचारकर राघव यह उद्वेग कि मैंने नहीं भागे धूम्र की है । लेकिन छगपर बाद ही रामकी फिर हँसी आ गयी । पूरी चेष्टा काके भी वे हँसनेसे नहीं रोक सके ॥ ३५ ॥ तब रामचन्द्र की सभा के लोगों से कहने लगे—आपलोग किम बातपर हँसे ? आप लोगों को हँसते देखकर मैं भी हँस गया । आपने बैठे हुए गुरुवाली को उतर दिया कि आपके सिपाहों को हँसते देखकर हँसे

भारवाहस्य हास्यं तन् स्मृत्वा प्रहमितं मया । तद्दूतवचनं श्रुत्वा भारवाहं तदा प्रभुः ॥४३॥  
 दुर्गतनीयं तदस्मि तस्माद् दधुनन्दनः । मा भीतिं भुजं ममस्त्वं सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥४४॥  
 तद्वै किमर्थं हमितं त्वयाऽद्य कथयन्व माम् । म भारवाहश्चकितः शुष्ककंटोऽनुतापितः ॥४५॥  
 वैपमानः स्खलद्वाचा राघवं वाक्यमब्रवीन् । प्रयोष्यायाश्च सीमायामश्वान्य मयाऽद्य हि । ४६॥  
 दधुः प्रहमितं राजन् तद्वै हास्यं तथा कृतम् । तदपूर्वं तद्विरं स प्रभुः श्रुत्वा मुविस्मितः । ४७॥  
 दूतानुवाच आगमस्त्वनेन महं वेदयः । युयं मन्वाऽद्य द्रष्टव्यं किं मन्य कथ्यते न वा । ४८॥  
 अनेन भारवाहेन ते नथेति त्वर्गान्विताः । गन्वाऽश्वान्यसर्षाप हि दृष्टुं स्नेह्यत मुहुः ॥४९॥  
 तदाश्चर्याच्च ते दूताः प्रहयतोऽतिप्रेमनः । अश्वान्यमहितं रामं गन्वा सर्वे न्यवेदयन् ॥५०॥  
 तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवधानिचिस्मितः । राज्ञे ममैन्दुधिद्वं मे जिहासेऽनुमयाम् ॥५१॥  
 इति निश्चिन्त्य मनसि दूतांश्चात्तापयन्तदा । त्रिद्युतो चलपत्रः स ममाज्ञाभगकाङ्क्षः ॥५२॥  
 तद्रामवचनादेव शतशोऽथ महस्रशः । कुटारपाणयः शीघ्रमश्वान्य ददुर्बुध्नदा । ५३॥  
 हास्यमानं नगं दधुः मे सर्वेऽर्ताश्च विस्मिताः । कुटारैस्तं तदा छेत्तुमुद्यता राघवाश्रया ॥५४॥  
 तांश्छेत्तुकामान् सकलान् ग्रामान् स्वनिकटं विधिः । दूतान्मन्वाऽपि रामोऽप्येव निगतेः । ५५॥  
 उपलेशिच्छन्नमिन्नाशास्ते दूता लोहितोकिताः । कोलाहलं प्रकुर्वता रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥५६॥  
 नगोजिनिधिस्मितो रामः पुनर्दूतान् महस्रशः । प्रेषयन्माय न छेत्तुं धनुवणसिधारिणः ॥५७॥  
 तेऽपि गन्वा नम तेन ताडिता उगलददम् । छिन्नागा राघवं वेगान्स्वये वृत्तं न्यवेदयन् ॥५८॥  
 नगो रामोऽतिमक्रुद्धः सुमत्रं सुनया युतम् । प्रेषयामास न वृक्षं छत्तुं बुद्धिपूरःसम् ॥५९॥

हंसो आ गयो । ॥ ३९-४१ ॥ परकाशित की बात सुनकर रामने सिवाहसे पूछा कि तुम क्यों हँसे ? उसने कहा कि एक लकड़हारेका हाथ दखकर तुम हँस आ गये । तुम्हारा बात सुनकर रामने दूतों द्वारा लकड़हारेका पकड़वा मगाया और उससे कहा कि ऐसा प्रकारका भय न करके मुझ यह बतलाओ कि तुम काजाल्थ क्यों हँस रहे ॥ ४२-४४ ॥ वहाँ से रामकी बात सुनकर चौकन्ना हो गया । उसके कद, मोठ और ताल सुन गये, शरीर कांपन लगा और मगाये हुए स्वरसे उसने उत्तर दिया कि जयोष्वाके समीप ही एक पीपलका वृक्ष है । मेरा बाजार आन समय उस वृक्षको हँसी सुना और हँस पड़ा । नगरमें बाया लो गयी भी एकाएक वह बात याद आ गयी और बेझा करके भी मे हँसाको नहीं रोक सका । उसकी यह बात सुनकर मुस्कराते हुए रामचन्द्रजाने दूतोंको आज्ञा दी कि तुम लोग इसके साथ जाकर देखो कि यह जो कह रहा है, वह ठीक है या नहीं ॥ ४५-४८ ॥ उस भारवाहकी साथ-साथ दूत चले, पीपलके समीप गये और उभारी हँसी सुनी तो खय खूर हँसे और लोटकर रामकी वहाँका सच्चा वृत्तांत सुना दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ दूतोंकी बात सुनकर राम बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे कि हमारे राज्यमें यह एक बड़ा दुश्चिह्न उत्पन्न होकर मर गासनको हँस लुप्त कर देना चाहता है । इस प्रकार विचार करके रामने दूतोंको आज्ञा दी कि इस पीपलके वृक्षका काट डालो । क्योंकि वह मेरी आज्ञा चङ्ग कर रहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ रामके आज्ञानुसार मकड़ों हमारी अग्नि कुडार ल लेकर उस वृक्षकी ओर चले पड़े । उस समय भी उस वृक्षका हँसते दखकर वे सब उस काटनेका उद्यत हो गये । उनका देखकर बड़ा उस वृक्षपरसे ही पत्थरके टुकड़े फट फटकर गिरने लगे । इस उस्कातामें मिलते ही लापका गहरी चोट लगी । शरीरसे उल्का शरीर भीग गया और चिल्लाते हुए उन्होंने रामके पास पहुँचकर वहाँका हाल बतलाया । ५३-५६ ॥ सो सुनकर रामकी और भी अश्रय हुआ और फिर हुआगे दूतोंका वह वृक्ष काटनेके लिए भजा । धनुष बाण एवं तलवार धारण किये ५७ व दूत जब वृक्षके पास पहुँच तो फिर प्रयोग करके फट फटकर मारा, जिससे भिन्नमस्तक हो उन सबने लोटकर रामकी यह समाचार सुनाया । ५८ ॥ ५९ ॥ सब रामने क्रुद्ध होकर बहुत सी सेनाके साथ



सुमन्त्रो राघवं मन्त्रा सैन्या नं मगं ययौ । मयदशधपाशैर्लग्ने मन्तुं न म भयः ॥६०॥  
 ततो राघवभीत्या स धनैः सैन्धवेन मन्त्रुः । ययौ नावन्नगोद्धृतं राघवेन्द्राङ्गोऽप्ययम् ॥६१॥  
 सुमन्त्रं पतितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । अयोध्यायां च तत्र तदङ्गमिवाभवत् ॥६२॥  
 सुमन्त्रं पतितं ध्रुवा पुत्राभ्यां हृत्पद्मिनः । सैन्धवेन त्रैलोक्यं मन्त्रुः न नगं पुनः ॥६३॥  
 ततस्तस्कोत्तुकं ध्रुवा पौरनार्यः महत्प्रशः । आमादशिवराजदा उच्चैर्यस्य स व्यलोकयन् ॥६४॥  
 तर्जन्या दर्शयामासुः योऽभ्यन्धयेति ता मिथः । चान्द्रहस्तं भूरोः स्वर्गस्य त्रिदीप्तोर्ध्ववारयन् ॥६५॥  
 कुम्भिनानलकान्नेऽपतितान् कर्मफलैः । स्त्रियो निर्गर्ह आमादगोपुङ्गवानसंस्थिताः ॥६६॥  
 निश्चार्यभ्रान्तनयमाचान्योन्यं दर्शयन्तगम् । एव मन्त्रगार सर्वं चरितं चाभवत्तदा ॥६७॥  
 अमुष्मनोऽथ पुराद्यावत्सैन्धवेन निशंनो बहिः । नावन्नदृशवाहः स संवेदता एव ते पथि ॥६८॥  
 ताडिता अपि धूमेन नोत्तमधुस्तुरगोत्तमाः । कुशस्थाय लघुस्फारि रथगहास्तथैव च ॥६९॥  
 ताडिता रुक्मदर्शैश्च नोत्तमधुः पथि मरिचतः । आश्चर्येण च तद्वृत्तं राघवाय न्यवेदयन् ॥७०॥  
 रामोऽपि श्रुत्वा चकितस्तदा चिन्तेऽपि च ययन् । विचारः कर्मपाथाश्च ह्यवित्र रोऽयं नोचितः ॥७१॥  
 अन्त्यत्र कारणं किञ्चिद्वष्टुं योऽयं पुरे हितः । जानन्नपि समावाहः स्वयं सर्वं तथापि मः ॥७२॥  
 मानुष भारमाभिन्य पुरोहितमथादयन् । सोऽपि समात्तवाञ्छं धं तां मयां प्रययी शुकः ॥७३॥  
 प्रत्युद्गम्य शुकं रामो दक्षारामनमृतमम् । ततः सम्पूज्य विधिवन् सर्वं कृत्वा न्यवेदयत् ॥७४॥  
 तच्छ्रुत्वा राघवं प्राह वमिष्ठो मुनिमशमः । वल्मीकिभ्यश्च प्रष्टव्यो येन ते चरितं कृतम् ॥७५॥  
 सत्पुंगुर्वचनं ध्रुवा चान्द्रार्किं च समाद्वयत् । सोऽपि समात्तवा ह्योमे ययौ धाराधयन्निति ॥७६॥

मुम्भन्तकी मूलकाटनके लिए राजा । समस्त रामकी प्रणाम करके उग्रशायकी आर वडे । किन्तु वृक्षमे बोरी  
 दरवर हो थ । इतनच कण्ठका उर्दी होन लगी । जिसमे उस वृक्षक पासतक नहीं पहुच सके ॥ ६१ ॥ ६० ॥  
 तकिन रामके धासे भयत दीडे न मोदका आग हो । बदन भय और उग्रमे दरावर पन्थरोकी वृष्टि होती  
 रही । जिसमे वे आगक होकर गिर पड ॥ ६१ ॥ मुम्भन्तकी गिरा दगा तो सनामे पड कोल हल होन लगा ।  
 सार अयध्याजामियाका बहुतक अनशना स सात मन्त्रम परो । ६२ ॥ मुम्भन्तकी घायल मुना तो रामने  
 अपने दोनो पुत्राके साथ एक बड़ी गना भेजी ॥ ६३ ॥ इस बातकी मुना सो नगरकी बहुत-स मित्रां  
 जयनो-अवर्ण अटारिधोपर बहुतक मन्त्रक उड द हल, उस वृक्षका दलत लगी और गुंके प्रकाशका निवारण  
 करनेके लिए अपना बायीं हाथ भीशपर रख-रखकर एक वृक्षकी दग-पर उमलिरि, मे बहु वृक्ष दिखाने  
 लगी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ नेचने सामन आये हुए केनोको हटाने हुई वे मित्रां सकलको छनो, कगुरी  
 और अटारिधोपर अधिक-से अधिक सामने एकत्र हो गयी ॥ ६६ ॥ मित्रनोकी आये उस वृक्षका निहारने-  
 निहारत मोदका बाजमे बाजिल हु गयी । इस तरह उस समय सारा नगर विस्मित हो रहा था । ६७ ॥  
 उधर मनुष्य अपनी सेना लेकर चले । नगरमे बाहर निकले ही थे कि उनके रथवामे धाड़े रास्तमे बैठ गये  
 और कोषकाशके बार-बार मरनेपर भी नहीं उठे । यह दशा पुन और लवक भी रथको हुई । उनके बोहे  
 भी रास्तमे बैठ गये और कितने ही बड खानपर भी नहीं उठे तो वे सब कोटकर माझर्यके साथ राघके पास  
 पहुँचे और यह हाक बसाया ॥ ६८-७० ॥ यह मुना हो वे मनमे विचारने लगे कि इस विषयमे आप बाल्मीकिजीसे पूछ-ताछ करें  
 विचार करके काम करनेकी आवश्यकता है । आज यदिचारिताम काम नहीं फटनेका है ॥ ७१ ॥ इसमे कबय्य  
 कोई कारण है । बात पहले पुराहितको बुलाकर पूछ लना जरूरी है । यद्यपि रामकन्नकी सब कुछ जानते थे,  
 फिर भी मनुष्यधारेमे उन्होंने पुरे ज्ञानको वृक्षवाया । रामके आज्ञानुसार तुरन्त गुरुजी राजसभामे जा पहुँचे ।  
 तब राजा गुरुके जाने वये और एक उत्तम आसनपर बिठाकर पूजन करनेके अनन्तर सारा वृक्षान्त कह  
 सुनाया ॥ ७२-७४ ॥ यह सब सुनकर गुरु बसिष्ठने कहा कि इस विषयमे आप बाल्मीकिजीसे पूछ-ताछ करें  
 तो अच्छा होगा । क्योंकि उन्होंने ही आपके चरितको बनाया है ॥ ७५ ॥ गुरुके आज्ञानुसार रामने बाल्मीकि

प्रत्युद्गम्य मुनिं रामो दशकामनमुत्तमम् । नत्वा समूह्य विधिवत् सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७७॥  
 ततो विहस्य बाष्पमीकितः श्रोत्राक्षरघुनन्दनम् । सर्वं वक्षेमि भवान् राम किमर्थं मां तु वृञ्छामि ॥७८॥  
 त्वं घेत्पृच्छामि रामाश्च मानुषं भावमाश्रितः । तर्हि ते कथयाम्यद्य मृणुष्य रघुनन्दन ॥७९॥  
 त्वयाऽत्र वर्जितं हास्यं त्वद्भिषा मकलैर्जनैः । हास्यकारिणि कर्माणि संन्यक्तान्यवनीतये ॥८०॥  
 विवाहादिसमुत्साहाः कथाशान्तिर्कौतुकम् । मङ्गलोत्साहगीताणि नृत्यं यज्ञादिमन्त्रिकाः ॥८१॥  
 यात्राः संवत्सरोत्सवाहास्यक्ता गवायनानके । यद्यद् कस्य तोषकाणि हास्यकारि च तन्मरैः ॥८२॥  
 एकवम्बत्सरं नात्र क्रियते रघुनन्दन उन्माददेवताः । मयास्तथा कर्माङ्गदेवताः ॥८३॥  
 इन्द्रादिलोकपालाश्च दृष्ट्वा स्वीयं प्रयोजनम् । क्षुभं भूम्पां तनो राम मद्रुच कथयन्विधिम् ॥८४॥  
 ततो विधिवन्नुन्मादममर्धस्त्वा निवेदितुम् । नयि कृतेनमाभ्यर्च्य मोऽभ्यर्च्य सप्रवेशितः ॥८५॥  
 हितार्थं निर्जगणो य मोऽद्य निष्ठति पिप्पलः । अजिक्कयुदलान राम छलुकामन् मयागतान् ॥८६॥  
 सन्मुनेर्वचनं श्रम्य राघवः काथमायधौ । भद्रमेवाय गच्छामि भार पश्यामि भक्षणः ॥८७॥  
 कथं नाम रघुमष्टः स्वशिष्या परिवर्तयेत् । इत्युक्त्वाहापयामास स्वीयां सेनां नरा मधुः ॥८८॥

ततस्तं बोधयामास वाल्मीकिमुत्तमनमः ।

क्रोधं त्यज रघुर्धेष्ट मृणुष्य वचनं मम । मस्विदानन्दरामस्यमादन्दधर्तितं तव ॥८९॥  
 मयाऽस्मि वर्जितं रामतत् किञ्चिन्पुत्रयोर्ममत्वात् । त्वयाऽपि यज्ञवमरे भूतं गच्छानटे पुनः ॥९०॥  
 यस्य मध्ववणाद्देवानन्दरूपो मध्वेन्नरः । हास्यं वक्ष्येपि त्वं चेत्तर्हि ते चास्त त्रिरम् ॥९१॥  
 न जनाः कीर्तयिष्यति सुखरूपं स्मितं विना । प्रन्यतु किञ्चित् प्रवक्ष्यामि प्रभो वृत्तं तदाग्रतः ॥९२॥  
 छतकोटिमिव देऽत्र चरितं यन्मया कृतम् । पुनः त्वया विविक्तं यत् सर्वं रघुनन्दन ॥९३॥

का वृत्तवाचा : यह सन्दर्भ गान ही वाल्मीकि रामके मिलनके चले पद ॥ ७६ ॥ तहाँ पहुँचनेपर रामने उठकर उनको अवधाना की ओर एक नुस्तर आसनपर बिट्ठला पूजन दिया । फिर जो कुछ वृत्तान्त बताना था, सो बताना ॥ ७७ ॥ यह सब सुनाता हुआ रामकर वाल्मीकिने कहा— हे राम ! आपसे कुछ छिपा नहीं है, आप सब जानते हैं । फिर हमसे क्यों पूछते हैं ? ॥ ७८ ॥ हाँ यदि गानवभावका आश्रय लेकर आप हमसे पूछते हैं तो बताना ही, मुनिर् ॥ ७९ ॥ आपने अपने राज्यमें सेनाको मराना कर दा है । इससे सब लायोन ऐसे गुप्त कार्यका करना बन्द कर दिया है, जो हमें—खुशास ही सम्भव ही—रहा है ॥ ८० ॥ विवाह, कथावार्ता, खेल-समय, नाच गान यज्ञादि सत्कियाएँ, यात्रा और साँव सत्किय उन्माद आदि कथ-कथनी कर रहे हैं । कहनेका मतलब यह कि जितने कार्य हृदयकी आनन्दित करनेवाले हैं, वे सब आज एक पल—बन्द हैं । इसमें व्याकुल होकर समस्त उन्माददेवता, कर्माङ्गदेवता तथा इन्द्रादि लोकपाल भूमण्डलपर—जहाँ पूजाकी वृत्त होते देख रहाके पास गये और उन्हें अपना दुःख सुनाया ॥ ८१ ८२ ॥ इसके बाद बहोजो बारसे कुछ कहने-सुननेमें अवसर्य होकर उस पीपल वृक्षमें गुप्तस्वरसे प्रविष्ट हो गये ? । देवताओं की कल्याणकामनामें वे आज भी उसमें बँडे हुए हैं । जो कोई उस वृक्षको काटनेके लिये जाना है, वे उसपर पत्थर बरसाने हैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ पुनिराज वाल्मीकिने मुखसे यह हाल सुनकर रामका प्रश्न आ गया और उन्होंने कहा कि आज मैं स्वयं जाकर बहोजको पराक्रम देखना हूँ । रघुवधका एक ओष्ठ सत्रिय अपने अ देशमें किसी प्रकार का उलट-फेर नहीं कर सकता । इतना कहकर रामने अपना सेना नैजार करनेकी आज्ञा दी ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ तब वाल्मीकि समझाने लगे—हे रघुधेष्ट ! इस प्रकार क्रोध न करके मेरी बात सुनिये । आप सत्सात् मस्विदानन्दरामस्य महा हैं और आपका चरित्र लोगोंकी आनन्दित करनेवाला है । उस पाले ही बनाकर आपके पुत्रोंके मुखसे यज्ञपालाई सुनवाया था, उसे आपने भी सुना है । फिर जिसके सुनते बाशमें अनुग्रह आनन्दमग्न हो जाता है, ऐसे पुनीत चरित्रको लोग यदि आप न होनेका नियम रखने लगे, तो नहीं गुन सकते । क्योंकि कथा सुनकर आनन्दकी प्राप्ति लोग इसे बिना नहीं रह सकेंगे । इसके सिवाय हे प्रभो ! मुझे आपसे कुछ और भी कहना

भागाद्भारतवर्षानर्भेताद्रामायणम् प्रभो । सारं सारं प्रगृह्याथ यद्यहम्य मनोरमम् ॥ ९४ ॥  
 कथानकं तेन तेन व्यासेन मुनिनाऽत्र हि । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥ ९५ ॥  
 कुतन्वन्त्येऽपि भुनक्तुः पटुशब्दादीन्वनेकशः । अग्रे सर्वे करिष्यन्ति सारं रम्यं प्रगृह्य च ॥ ९६ ॥  
 ततोऽत्र शोकरूपं च यन्मया इदं के वने । चतुर्दशवर्षं च केकेषीदुष्टभावनः ॥ ९७ ॥  
 कृतं चरित्रं मीमांसा विगृहादि च गद्यव । तत्र किञ्चिच्छेषभूतं हि चतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ ९८ ॥  
 तावन्मात्रं यदिष्टन्मि यद्वर्ष्माके कृतं स्थिति । तन्मयं सकलं ज्ञात्वा भावि ह्यथ रघूत्तम ॥ ९९ ॥  
 शोकस्तदुपयोगश्च पूर्वमेव मयेति नः । युद्धं प्रमाने धीमन्स्य शोकमैवापराधके ॥ १०० ॥  
 रतिनिर्गतायां धीमत्याऽऽनन्दगमायण मदा । युद्धं ज्ञेयं भाग्यं हि रतिर्भाग्यवतं स्मृतम् ॥ १०१ ॥  
 शेषभूतं चतुर्विंशत्सहस्रं शोक उच्यते । तत्र भाविष्येणतदानन्दचरितं तव ॥ १०२ ॥  
 अतकोटिभिरं पूर्वं यन्मयैव विनिर्मितम् । नवकाण्डमिति रम्यं यदुद्गादयन्मदसचम् ॥ १०३ ॥  
 नवीनगणनं सर्वं क्वचिन् स्थापयति भूतले । तत्र भाविष्येणतदानन्दचरितं तव ॥ १०४ ॥  
 अष्टोत्तरशतैः सर्वैर्निर्मिता येरुणान्विताम् । तत्र कीर्तनमायां नो सुदुष्यिष्यति भूतले ॥ १०५ ॥  
 नवकाण्डभूतं रम्यं दृष्ट्वा रत्नद्विहेतवे । एतद्दि रक्षाविष्यति यात्ररुचन्ददिवाक्यौ ॥ १०६ ॥  
 यदा तत् स्मरितं पूर्वं व्यासज मुनिना तव । अतकोटिभिरं गद्यचरितं यन्मया कृतम् ॥ १०७ ॥  
 तदा किञ्चिद्विदितं दृष्ट्वाऽहं तूष्णीमेव संस्थितः । मदिष्यति कलौ मन्दमन्दयोऽप्यायूषो नगः ॥ १०८ ॥  
 न यमर्षा मम ग्रन्थं विम श्रोतुं कदापि हि । अतो व्यासेन मुनिना मन्काण्डं वसृथक् कृतम् ॥ १०९ ॥  
 सप्तसप्तविंशत्सहस्रं पद्या तुष्टि गतः प्रभो । मनस्वरा प्रार्थयाम्यद्य नवकाण्डमिति त्विदम् ॥ ११० ॥  
 आनन्दरामचरितं न विरूपय तस्य च । वर्जयिष्यमि चेद्भाष्यं तदा दुःखमय प्रभो ॥ १११ ॥

हे । मैंने जो सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके चरित्रका वर्णन किया है, उसे हे रघुनन्दन ! आप कुछ समय पहले कई भाषाओं में लिख चुके हैं । ८९-९३ ॥ उसमें मैंने जो भाग भारतवर्षके लिये चुना था, उसके सार अतकोटि श्लोकों का कथानक अच्छे से, मुनिनेमानसे समझमें आ जाने वा कानोंको प्रिय लगते थे, उन्हींके आधारपर व्यासदेवने अष्टादश पुराणों तथा उपपुराणोंको बना दिया है । इनके अतिरिक्त भी बहुतसे श्रेष्ठ उन्हींकी सहायतासे वर्णनका आदि किये हैं श्राव्य बनाये हैं ॥ ९४-९६ ॥ कुछ ही समय बीतनेके बाद कीकेशीकी दुष्टतासे आपकी चौदह वर्ष वर्षतः जो दुःख भोगने पड़े थे, सोताक विरह आदिका दुःख जो चौबीस हजार श्लोकोंमें कुछ कम है, उसमें ही चरित्रकी योग्य मुक्त वाचनोक्तिका बनाया हुआ मानन । इस भावी स्मृतिको समझकर ही मैंने आपके उत्तरे श्लोकमें चरित्रको विगत उत्साहके साथ लिखा है । सब लोगोंको बार्तिये कि सबसे युद्ध-चरित्र तथा ईश्वरके बाद शोक-चरित्रका वर्णन करें युद्धचरित्रका महाकाव्य महाभारत, रति-चरित्रका श्रीमद्भागवत तथा बाकी चौबीस हजार श्लोकोंका मतलब शोकचरित्र माना गया है । आपके भावी वर्णनके प्रभावसे आपका यह आनन्दरामायण, सौ करोड़ श्लोकोंवाला मेरा बनाया रामचरित्र, भी काण्डोवाला द्वादश सहस्रात्मक रामचरित्र एवं एक सौ भी श्लोकोंवाली रामायण ये सब पृथ्वीतलमें कहीं न कहीं रहेंगे ही । आपके भावी वर्णनसे एक सुन्दर कालनमाया, जिसमें १०८ सर्ग हैं, सुमेरुकी मन्कासदृश अङ्गसे लगी है, इसका कोई भी वर्णन नहीं कर सकेगा । इस भी काण्डोवाले चरित्रको जोर आपकी इसप्रताके लिए तबतक सम्हालेंगे, जब तक कि तत्सारमें सूर्य-रश्मि विद्यमान रहेंगे ॥ ९७-१०६ ॥ मेरे बनाये सौ करोड़ श्लोकोंवाले रामचरित्रका वर्णन करके जब व्यासजीने १८ पुराण ब्रह्मसे थे, तब उससे किसी प्रकारका कल्याण देखकर ही मैं चुप रह गया था । उस समय मेरे विचारमें आया कि जो धूलकर कालियुगम साग मन्दबुद्धि तथा मत्पानु होंगे । इस कारण वे मेरे इतने बड़े ग्रन्थों कभी नहीं सुन सकेंगे । व्यासजीने मेरे काण्डसे कथाएं मलग करके जो पुराणोंको बनाया, सो बहुत अच्छा किया । उसमें

मविष्यति शेषवद्धि चैतच्छावि मनोदग्धम् । अगन्ते कथयाम्यथ येन ते शिक्षितं भुवि ॥११२॥  
 मविष्यति सृष्टा नैव येन तृष्टस्तु देवताः । मविष्यति जनाश्चापि मया मन्त्रयिता भवेत् ॥११३॥  
 जना हर्षस्तु सर्वत्र दानानां दानत विना । आप्यमान्छात्र वसेन कदा कौतुकदर्शनात् ॥११४॥  
 हास्य लक्ष्मीसूचकं हि हस्मिन् भोजनदारकम् । दास्यन् हस्मिन् चैतदस्यान्तर्हस्तं न किञ्चन ॥११५॥  
 नारी स्मिगानना यस्मिन् मेरे तन्मन्दिर इष्टम् । लक्ष्म्याऽपि स्थापने तत्र निश्चयं रघुनन्दन ॥११६॥  
 स एव पुरुषो धन्यो यस्य स्याच्च स्मिगाननम् । स एव पुरुषो निधो यस्यास्य कोपमयुतम् ॥११७॥  
 प्रमदा निरिन्ता सापि यस्याः क्रीडयुतं युतम् । गर्दभपञ्चहास्यं हि सर्वदा ते सुनीश्वराः ॥११८॥  
 उत्तस्वा शार्धदाम्येतन्मानसं त्वं वचो मम । न कगेति विधिर्गर्भे त्वी तात् वेति राघव ॥११९॥  
 जानयिष्यामि शरणं त्वाहं अनुगमनम् । एवं चान्मर्माकिञ्चनमर्गाकृत्य रघूत्तमः ॥१२०॥  
 एवमस्त्विति सं प्राह सुते तठ कथनीयम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा चान्मर्माकिञ्चनमर्गाकृत्य रघूत्तमः ॥१२१॥  
 शिष्यं संप्रेष्य ब्रह्मणामानयायाम पिप्लवत् । अक्षाः सर्वे समुत्तमधृष्टेयुक्ते नगरीं प्रति ॥१२२॥  
 ययौ सैन्येन अनुगतो रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् । रामगुर्वो ममागतां पिहुरग्रे निवेदतुः ॥१२३॥  
 गमात्तया भारवाद्भक्तो दुर्गार्थमत्रतः । कुनेद्रेण मुधावृष्टिः सुमन्त्राद्याः सुजीविताः ॥१२४॥  
 सुमन्त्राद्या रामदत्ताम्यभरणं राघवं ययुः । नन्वा राममुमन्त्रः स रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् ॥१२५॥  
 इतः सुर्येयाविद्रः श्रमार्थं प्रणमम म । गर्भं नय्याऽर्वापुश्रामा मया एवपराधिनम् ॥१२६॥  
 तन्ममस्व रघुभेष्टं स्वस्यान्याः सर्वदा वचम् । पुराऽस्माकं द्विषर्थे हि स्यात् रामवनीकले ॥१२७॥

मुझे मर्जी प्रमथता है । अतएव आज आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि हम जो काण्डवाने आनन्दगमायणकी गोष्ठा न दिगारिए । यदि आप भद्रके लिए लगे होंगे, सदा राक्षसों तो दहा सत्य होगा । मेरी रामायण लिखी कावकी नहीं रह जायगी । इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आपके आदेशमें भी बिना दशासका कलह न पड़ और दन्ता तथा मनुष्य की प्रमथ रहे और मेरी कवित्व भी सत्य हो जाय ॥ १०७-११३ ॥ लोग ऐसा सही किन्तु उनके साथ न दिगार्यो द । किसी कौतुकको देखकर यदि लोगोंको हँसा जा जाय तो कदस पुत्र होकर हँस ॥ ११४ ॥ क्योंकि हमें लक्ष्मीसूचक है । हमें सबको मुख देनेवाला वस्तु है और हमें मातृमयी मानी गयी है । कहनेवा साथ यह कि हमें लक्ष्मी कहकर कोई बाध है ही नहीं ॥ ११५ ॥ जिस घरमें मुक्तानों दुई नारी रहता है, वह घर दन्तभरके समान पवित्र होता है और लक्ष्मी वहाँपर ही निवास करती है । हे रघुनन्दन ! हममें किसी प्रकारका संशय नहीं है ॥ ११६ ॥ नही पुरुष धन्य है, जिसका सुमण्डल सदा हमला हुआ दीवे और नही पुरुष अधम है, जिसका मुख सदा कोपमें युक्त रहे ॥ ११७ ॥ वह स्या भी निन्द्य है, जो सदा परधुक्त मुँह बनाये रहती है । बड़े-बड़े सुनिगम आदि हस्त (१) सदासे निन्द्य कर आया है ॥ ११८ ॥ वसन्त मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी यह बात मान लीजिए । बहुत किसी तरह अभिमान व करके आपको भद्रने पित के समान मानते हैं ॥ ११९ ॥ मैं स्वयं जाकर बच्चाकी अपका सन्तान में ऊँचा ये आपसे जमा पाँगे । रामने कालीक के वाक्यगौरवको सम्झकर उनकी बात मान ली और कहा कि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा । रामकी स्वीकृति सुनकर कालीक परम प्रसन्न हुए और अपना एक मित्र भेजकर उस पीपलपरसे ब्रह्मजीको बुलाया । यह ही आनेपर अनुष्ठान तथा स्त्र-कुश के जो घोड़े अबलक रास्तेमें बँडे थे, वे उठ खड़े हुए और अपोष्ठाको वापस मल दिये । अनुष्ठान और लक्ष-कुश की अपनी सेना लिये हुए आये और रामके पास जाकर बैठ गये ॥ १२०-१२३ ॥ रामकी आज्ञासे हमने लक्षकुशको छोड़ दिया । हमने आकर ब्रह्मजीके वर्षा की । जिसने सुमन्त्रादि जो घोड़ा मूर्च्छित पड़े थे, वे गये हो गये ॥ १२४ ॥ इसके अनन्तर बृहको छोटनेके लिए गये हुए लोग रामके पास आये । सुमन्त्र रामके पास जाकर बैठ गये । घोड़ी देर बाद बैरावोंके साथ-साथ हम और ब्रह्मा भी रामकी समामें आये और बैठ गये । रामकी प्रणाम

अवताराय बहवो धृता नो रिपवो हताः । संजानुरो वेदहर्ता मत्सररूपेण दास्तिः ॥१२८॥  
 तथाऽस्माकं सुधां दातुं मज्जतं मंदराचलम् । द्यूा म कूर्मरूपेण स्वया एवो धृतो निरिः ॥१२९॥  
 मन्मथीरि स्पर्द्धमानं हिमण्याशं निहृत्स्व च । स्वया वाराहरूपेण जलात्पृथ्वी समुद्धृता ॥१३०॥  
 प्रह्लादवचनात्सम्भावाविर्भूय स्वया पुनः । नरविह्वयरूपेण हिमण्यकशिपुदंतः ॥१३१॥  
 तथा राज्यं हन द्यूा पुनः तु मथवस्त्वया । बलिर्वात्मनरूपेण पातले विनिवेशितः ॥१३२॥  
 नृपैरवर्मनिरर्तय्वा ध्यामी सुधं पुनः । त्वयैकविंशद्वारं हि जामदग्न्यस्वरूपिणा ॥१३३॥  
 पितृवैर पुरस्कृत्य निःसूत्रो पृथिवी कृता । दशम्यकुम्भकर्णो तौ रश्मरूपेण राक्षसौ ॥१३४॥  
 पत्नीवैर पुरस्कृत्य स्वया द्यूा हनान्विह । उद्धारितौ तौ स्वर्गणौ द्विवारं देवसाधनः ॥१३५॥  
 एकवारं पुनस्त्वमे त्वं तावेवोद्धरिष्यसि । तद्वत्प्रवचनं भुत्वा वसिष्ठो मुनिमचमः ॥१३६॥  
 सर्वे जानस्यपि अनान्धानुं एप्रच्छ तं विधिम् ॥१३७॥

इति श्रीमत्कालिकाचरितभाष्ये श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे  
 उत्तरार्धे रामहस्तप्रतिरोधी नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

### चतुर्दशः सर्गः

( राक्षसीकक्षी जन्मगाथा तथा बहुतेरे मंत्रोक्ता निरूपण )

श्रीरामदास उवाच

कौ गणै देवधत्तौ तौ कथमुद्धारितौ वद । पुनः द्विवारं रश्मेणाग्रे कथं वोद्धरिष्यसि ॥१॥  
 तद्वसिष्ठवचः भुत्वा विधिः प्राह विहस्य तम् । सर्वं वेत्ति भवान् लोकान् आपितुं वा हि पृच्छसि ॥२॥  
 वदा वदाम्यह सर्वं गणयोः आपकारणम् । एकदाऽपि महाविष्णुर्वैकुण्ठे रमया ररः ॥३॥  
 संस्थितश्च तदा द्वारि विष्णुं द्रष्टुं सुनेतरी । नावशिषीकुमारौ हि समाजग्मन्मुगदरात् ॥४॥

चरनेके पञ्चमः ब्रह्माने कहा—मैं जो कुछ अपनाच किया है, सो समा करें । हे रघुश्रेष्ठ ! आपका कर्तव्य है कि आप हमारी रक्षा करें । पहले भा आपन हमारी रक्षा करनेके लिए पृथ्वीतलपर कितने ही अवतार भेकर हमारे मन्त्रोको मारा है । वेदको बुरानेवाले शस्त्रासुरका आपन मत्सरका रूप धारण करके मारा था ॥१२८-१२९॥ हम सबको अमृत मिलानेकी उच्छाते, समुद्रमंथनके समय जब भन्वराचल डूबा जा रहा था, तब कूर्मरूप धारण करके उसे अपनी पीठपर रखा था । “यह पृथ्वी जेरी है” इस प्रकार कहकर जोंग मारनेवाले हिमण्याकको मारकर आपने वाराहरूप धारण करके जलमंथकी हुई पृथ्वीका उद्धार किया ॥ १२८ ॥ १३० ॥ प्रह्लादके बचनेसे आप सम्भ्रंस प्रकट हुए और हिमण्याकशिपुका संहार किया । जब दैत्योंने इन्द्रसे राज्य छीन लिया था, तब आपने वामनरूप धारण करके भीस मंत्री और बलिको पाताल लोक में डाल दिया ॥१३१ ॥ १३२॥ जब इस पृथ्वीतलमें परमो राजाश्रीका अवतार देखा तो परमुरामका रूप धारण करके पितृवैरके बजाते पृथ्वीको क्षतिपविहीन कर दिया । रावण और कुम्भकर्णकी आपने पत्नीवैरके बहाने मन्मथपुर पहुँचाया । दो बार आपने देवताओंके साथसे अपने गणोंकी रक्षा की है और अविध्यमे फिर एक बार उनका उद्धार करेंगे । ब्रह्माकी बातको सुनकर सब कुछ जानते हुए भी वसिष्ठने ब्रह्माजीसे पूछा—॥ १३३-१३७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामस्तंजण्डयविरचिते ‘ज्योत्स्ना’ भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

वसिष्ठजी कहन लगें—वे दोनों कौनसे गण थे, जिनको देवताओंका साथ प्राप्त हुआ था और आपने उनका उद्धार किया था और फिर भी उद्धार करेंगे, सो कहिए ॥ १ ॥ इस प्रकार वसिष्ठकी बातसुनकर ब्रह्माने हँसकर कहा—आप सब कुछ जानते हैं, किन्तु मुझे ज्ञान प्राप्त करानेके लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मैं भी उन गणोंके साथका कारण बतलाता हूँ । एक समय महाविष्णु एकान्तमें

समागतौ देववैद्यौ तौ द्रष्टुं हास्यच्छकी । जयविजयनाम्नौ तयोर्मये प्रथमतः ॥ ६ ॥  
 ताभ्यां वैद्यौ तदा प्रोक्तौ विष्णुस्तिष्ठति वै रडः । नायं कालो दर्शनस्य तच्छ्रुत्वा प्रोचतुः सुरी ॥ ७ ॥  
 मधुना इष्टुमिच्छाको विष्णुं कथयतां गणौ । दार्याधियोगगमनं पूर्वां मृणुत चेति ॥ ८ ॥  
 हस्तयोर्वचनं श्रुत्वा तौ पुनः प्रोचतुर्गणौ । न गच्छाको यदाविष्णुमया लब्ध्वा रडः स्थितम् ॥ ९ ॥  
 एवं त्रिवार ताभ्यां तौ प्रोक्तौ नेष्टुश्चतुर्गणौ । तदाऽपि नोकृपारौ तौ प्रोचतुः क्रोधमूर्च्छितौ ॥ १० ॥  
 भावयोर्वचनं नैव ध्रुवाभ्यां हि श्रुतं गणौ । यत्त्रिवारं तस्माद्धे पूर्वां जन्मत्रयं भुवि ॥ ११ ॥  
 लभयश्च न सर्वेदस्त्वच्छ्रुत्वा वचनं तयोः । गणावपि तयोः श्रापं ददतुर्देववैद्ययोः ॥ १२ ॥  
 विनाशराधनः श्रापो यस्मादस्तस्य चादयोः । एकवारं पूर्वां चापि जन्मान्धस्तु वै हवि ॥ १३ ॥  
 एवं परस्परं श्रापं लब्ध्वा द्वाहेति चक्रशुभ्र । तदा कोलाहलधासीदाह्वयामास तान् हवि ॥ १४ ॥  
 हतमनसकलं क्लृप्तं प्रोचुस्ते अगदीधरम् । यन्नास्ते महाविष्णुं प्रार्थयामश्नुतदगन् ॥ १५ ॥  
 पेन ग्रीष्मं विह्वलिः स्थापन्नो वद महेश्वर । तदा प्रोवाच तान् विष्णुर्भुक्तिः श्रीय शुभाऽत्र हि ॥ १६ ॥  
 मयि भक्त्या विरोधिन्या जायते नात्र संशयः । मयजन्मारेणैव मद्रक्त्या जायते गतिः ॥ १७ ॥  
 पुष्पाकं रोचते या सा भक्तिः कार्याऽञ्जनीतले । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्जगदीश्वरम् ॥ १८ ॥  
 नोऽस्तु मक्त्या विरोधिन्या श्रेष्ठं ते दर्शनं पुनः । नयेत्युक्त्वा रमानाद्यस्थानं सर्वान् स व्यमर्जयत् ॥ १९ ॥  
 ते जन्मानि ततः प्रापुर्जन्मार्थां भुविमग्नम् । जपो जानो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ २० ॥  
 आतोऽत्र विजयः पूर्वो तौ हतौ विष्णुना धृग । वाराहकृपिणाऽनेन हिरण्याक्षो विदारितः ॥ २१ ॥  
 भरसिंहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः । ततः पुनर्जन्म तौ हि द्वितीयं प्रप्तुर्भुक्ति ॥ २२ ॥

लक्ष्मण के साथ बैठे थे । उसी समय उनके दर्शनार्थ भक्तिरत्नकुमार वहाँ जा पहुँचे ॥ २-४ ॥ तब देववैद्योंको देखकर जय-विजय नामक दोनो द्वारपाल उनके सामने पहुँच और कहने लगे—इस समय भगवान् एकांतमें हैं । अतएव आप लोग दर्शन नहीं कर सकते हैं । यह सुनकर वे दोनों देवता बाल—विष्णुभगवान्से जाकर कहेंगे कि हम अभी इसी समय आपका दर्शन करना चाहते हैं । देवताओंको बाल सुनकर जय-विजयने कहा कि हम अभी उनके पास नहीं जायेंगे । वे लक्ष्मण साथ एकान्तमें बैठे हैं ॥ ५-८ ॥ इस तरह तीन बार भक्तिरत्नकुमारोंके कहनेपर भी जब जय-विजयने उनकी बात नहीं मानी तो क्रोध होकर उन्होंने आपसे बातें कर कहा कि तब बार लक्ष्मणसे मेरी बातका उल्लेखन किया है, इसलिए मुझे तीन बार विष्णुलोकमें जन्म लेना पड़ता । उनके इस बातको सुनकर तब विजयने भी भक्तिरत्नकुमारोंको शाप देने लगा, कहा कि बिना अवकाश हमने हमको शाप दिया है । अतएव तुम दोनोंका जो एक बार दुष्टील्लभपर जन्म लेना पड़ेगा ॥ ९-१२ ॥ इस प्रकार आनन्दसे शाप पाकर वे चारों दुष्टीकार करके पक्षपाते लगे और श्रीकृष्णभगवान्को लाहल्लास कर कहा तब विष्णुभगवान्ने उनकी अपन बात सुनायी ॥ १३ ॥ भगवान्ने तबका वृत्तान्त सुना । इसके अनन्तर आदर्शपूवक उन चारोंमें भगवान्से प्रार्थना की—॥ १४ ॥ हे महाशय ! जन्म दुष्टलाभ प्राप्ति इस शापसे मुक्त हो जायें, हम आपसे उपाय वचनायें । विष्णुभगवान्ने उन्हें समझाते हुए कहा कि द्वादशभोजन, शांति हों तुम लोग शांति सुन हो जायेंगे । किन्तु यहाँ दो हैं । एक यह कि तुमनाम द्वारी भक्तिसं विरोधभाव रक्ता । दूसरे उपायस हप्ताने यदि कष्ट दुर्लभ रावका चष्टा करे । यदि यही अन्नक विरह रहेंगे तो ग्रीष्म भुक्ति मिल जायगा और भक्तिसे साथ चष्टाग तो माग बार जन्म लेना पड़ता । उन दोनोंके जो वचन अन्त्य अन्त उसे सुन ली । इस प्रकार विष्णुकी वत्त सुनकर लक्ष्मणसे उनसे दिया कि हम आपको भक्तिके विरह भाव रक्ता, जिससे ग्रीष्म मुक्त हो जायें । भगवान्ने भी “अच्छी बात है” यह कहकर उन लोगोंको विदा कर दिया । ॥ १५-१८ ॥ तदनन्तर वे लोग मृगयुक्तकम आकर जन्म । उनमें जय हिरण्याक्ष नामका तथा विजय हिरण्यकशिपु राक्षस होकर जन्म । इसके अनन्तर वाराहकृप धारण करके विष्णुभगवान्ने हिरण्याक्षको मारा और वरसिंहस्वरूप धारक हिरण्यकशिपुका संहार किया ॥ १९ ॥ २० ॥ दूसरे जन्ममें

जयो आतो रावणोऽत्र कुम्भकर्णस्तथाऽपरः । जातो विजयनाभा हि रामेणानेन तौ इतौ ॥२२॥  
 तानदिनीकुमारी हि एक ऐरावण स्मृतः । मैरावणश्च स्वपर एव तौ अनित्यवधः ॥२३॥  
 पातालं चरदानाच्च रामहन्ताऽर्हति गर्ता । अग्रे जयः शिशुपालो भविष्यति न संशयः ॥२४॥  
 विजयो दन्तवधश्च भविष्यत्यदर्नातले । द्वापरे कृष्णरूपेण शिशुपालं हरिः स्वयम् ॥२५॥  
 भविष्यति दन्तवधं तथैव ह्युत्तिमवधम् । एवं जन्मत्रयं प्रापाद्भुक्त्वा तौ भगवद्गणौ ॥२६॥  
 जयविजयनामानौ पूर्ववन् स्थास्यतः गृध्री । दन्तदेशेऽप्य र्वं विष्णोर्वकुण्ठे दुःस्वर्जिते ॥२७॥  
 तानदिनीं देवर्ष्यौ पूर्ववदिति तौ स्थितौ । एवं ध्रुवे त्वया पूष्टं तन्मया परिवर्णितम् ॥२८॥  
 भगवद्गणयोः प्रापकाण्य च पुगतनम् । एव राघव चाग्रे त्व द्वापरे वरमे शुभे ॥२९॥  
 जरत्संधादिर्वारैश्च कसार्थरपि भूतलम् । स्थितं दुष्टाञ्चावतीर्य कृष्णरूपेण लीलया ॥३०॥  
 सर्वान्हुत्वा तोषयुक्तं करिष्यमि मर्दानलम् । तान् चोदान्बुद्धरूपेण कलावग्रे विज्ञेयसि ॥३१॥  
 वर्णसकरमालक्ष्णं कलेरुते रघूनाम । कल्पिरूपेण सकलान्संहरिष्यमि लीलया ॥३२॥  
 एव दशावताराश्च तथान्वेऽपि सहस्रशः । त्वया हितार्थमस्माकं धृताञ्चाग्रे परिण्यसि ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्तुवन्न भगवन् सवालित्य गृह्यतमः । मन्त्रिष्वेभ्यामने प्राह स्वधर्मं च ध्रुवेर्गिरा ॥३४॥  
 हास्यमाशाश्रितं किञ्चि जनाः कुरीतु ते सुखम् । यथा वाल्मीकिना प्रोक्तं तथा वा विस्तगस्तु वै ॥३५॥  
 तद्गामवचनं श्रुत्वा तदा दुष्टाः सुगन्धः । भवन्त्य च राज्ञीकिं समायां गृह्यतन्दनः ॥३६॥  
 महावतागतः पूर्व त्वया मन्त्रिभिर्न कृतम् । कथं ज्ञातं त्वया पर्व केन स्वामुपदेशितम् ॥३७॥  
 पूर्वजन्मनि कस्त्वं हि किं पुण्यं हि त्वया कृतम् । तन्मयं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां शति ॥३८॥

ये दोनों गायन और कुम्भकर्ण हाकर जन्म और भगवानने रामका रूप धारण करके उन्हें भाग्य ॥ २१ ॥ २२ ॥  
 दोनों भविष्यनाकुमारी से एक ऐरावण एवं दूसरा मैरावण के रूपसे धरतीपर आया और पाताललोकमें रामके  
 हाथों उन दोनोंको मृत्यु हुई । अगले जन्ममें जब शिशुपाल तथा विजय दन्तवधके नामसे जन्मेन । द्वापरमें  
 भगवान् कृष्णकृत उन दोनोंका संहार करगे । इस तरह भगवत्के प्राप्ता शायंसे वे लोग तीन जन्ममें अपनी  
 करनेका फल प्राप्तकर फिर पहनेकी तरह जय विजयके नामसे भगवान्के हाथों हो जायेंगे, जब उन्हें  
 फिर कोई केश नहीं होगा ॥ २३-२७ ॥ तबसे अश्विनीकुमार भी आनन्दके साथ स्वर्गलोकमें निवास  
 करेगे । हे मुनिराज ! आपने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया । इसका सारांश यह निकला कि उन  
 दोनों भगवद्गणोंके लिए एक प्राचीन प्राप कारण था । उसमें कोई नयी बात नहीं थी । हे राघव ! जब  
 द्वापर युगमें भी पृथ्वी, जब कम तथा जरत्संध आदि दुष्टोंके अन्धकारोंसे छकटा जायगी, तब आप कृष्ण अवतार  
 लेकर दुष्टोंका संहार करने हुए पृथ्वीका भाग उताग्य । उसी प्रकार कल्पयुगमें बुद्धका रूप धारण करके  
 आप बौद्धोंको पराजित करगे ॥ २८-३१ ॥ हे रघुनाम ! कल्पयुगके अन्तमें जब समस्त संसार वणशङ्खर हो  
 जायगा, तब आप बहिरुत्पन्न धारण करके सबका संहार करगे । इस तरह इस कथा, हजारों अवतार आपने  
 हम लोगोंके बच्य पाये लिया है और भविष्यमें भी तब ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीरामदास बोले—इस तरह स्तुति  
 करते हुए भगवान्को रामने हृदयमें लगा लिया और अपनी आलस्ये निडाकर कहा कि वाल्मीकिने कव्यनीतुसार  
 मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम्हारे सुखके लिये मैं हूँ पर जो कुछ करे, मुझे कोई आपत्ति नहीं है । वाल्मीकिने  
 जो कहा है, उसके अनुसार मेरी प्रजके लाभ प्राप्त करगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रामकी इस बातको सुनकर भित्तने देवस  
 से, वे सब प्रसन्न हो गए । इसके पश्चात् रामने वाल्मीकिसे कहा कि मेरे अवतारोंके पहूँचे हो आपने मेरा चरित्र  
 रामायण बना डाला है । सो भविष्यकी बात आपको कैसे मालूम हुई ? उन्हें किसने बताया थी ? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥  
 पूर्वजन्ममें आप कौन थे और आपने कौनसे पुण्यकार्य किये थे, मेरे मुँहसे कहिए । इस प्रकार रामके प्रश्न

उद्गमवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः । सभायां राघवं सर्वं वक्तुं समुपचक्रमे ॥३९॥

वाल्मीकिवचनं

सम्यक्पुष्टं स्वयां राम सावधानमनाः शृणु । राम स्वस्वाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ॥४०॥

यन्प्रमादादहं राम मन्मार्थिन्मवाप्नुवान् । शृणु राघव मल्लखं कथा मे पर्वजन्मनः ॥४१॥

षण्णदीरे द्विजः कश्चिच्छंखो नाम महायशः । गुणैः सिद्धिं गणश्चागाच्छदी गोदावरीं प्रति ॥४२॥

सीतार्त्ता भीमार्थी पुण्यां कोनारे कटकाविले । निजले विजने धीरे वैशाखे तापकषितः ॥४३॥

वनं चोपविशेशर्मा मध्याह्नसमये द्विजः । तदा कश्चिद्दुराचारी व्याधश्चापधरः शठा ॥४४॥

निर्धूष्य सर्वभूतेषु कालांतक इवापरः । तं कुण्डलधरं विप्रं दोषितं भास्करोपमम् ॥४५॥

सर्वेन मरिपित्वा तु जग्राह कुंडलादिकम् । उपानहो तच्छत्रं च वस्त्राणि च कमण्डलुम् ॥

पश्चाद्विन्यास्य तं विप्रं गच्छेन्महा म मूढधीः ॥४६॥

तथा स मच्छन्पथि शर्कराविले सुयशितमे अनवजिते स्वरे ।

संनमसादस्तृणोपिते स्थले क्वचिच्च वस्त्रोपरि संस्थितोऽभवत् ॥४७॥

स वै द्रुतं तापतप्तोऽपि निपुन्हादेति वादी प्रजगाम विप्रः ।

दृष्ट्वा मूर्तिं तं चतुर्विचक्षणम् मध्यं गते पूर्णि यदाऽतितीव्र ॥४८॥

व्याधस्य जाता भस्मिहृष्टी वै तस्मै ददामासि च पादरक्षे ।

स्वीयेन धर्मज्ञ तु तस्करेण वने गृहीत सकल च तन्मे ॥४९॥

वीथेन च स्वधर्मेण पवृश्रुजंत वनान्तरे । तदीयमेव तन्ममं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥५०॥

सन्मादुपानहो दास्ये हृद्दुःखापनुषमे । तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥५१॥

जीर्णो चोपानहावेनो हस्वी स्तश्च पदोभयम् । न चाभ्यामस्ति मे कार्यं तस्मात्तस्मै ददाम्यहम् ॥५२॥

करनेपर वाल्मीकिजीने वनसाला प्रारम्भ किया । उन्होंने कहा—आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर गनिये । हे राम ! आपके नामकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसके प्रभावसे आज मैं ब्रह्मर्षिपदपर बैठा हूँ । अच्छा, पहले अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त ही बतलाता हूँ । कम्पा सरोवरके पास कोई एक महान् यशस्वी ब्रह्म नामका ब्राह्मण रहता था । उसने दुरुके पाससे सिद्धि प्राप्त की और कुछ दिनों बाद गोदावरी नदीपर गया । उमे पार करके भीमरथी नदी पार किया और एक ऐसे निर्जन वनमें पहुँचा, जहाँ जलतक मिलना कठिन था । वह वंशाखका महाना था । मारे शर्माके उसका जी बेचैन था । दोपहरके समय धककर वह उमी वनमें बैठ गया । उसी समय धनुष-बाण क्रिये एक दुष्ट व्याध उसके पास आ पहुँचा । ३८-४४ । वह दूसरे यमराजके समान भयानक और निर्दयी था । उसने उस सूर्यके समान तेजस्वी ब्राह्मणको तलवारसे मथलीत करके उसके कुण्डलादि आभूषण, जूत, छतरी, वस्त्र तथा कमण्डलु आदि छीन लिये । इसके बाद उसने "जाओ" कहकर छोड़ दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बेचारा ब्राह्मण कङ्कड़-पत्थर तथा सूखे तापस जलती हुई बालुकाव्याप्त मार्गसे चलने लगा । जब उसके पैर ज्यादा जलन लगने लगे तब तो विसा नृण आदिपर पैर ठंडा करके आगे बढ़ता था । चलते-चलते थक पैर बहुत जलने लगे तो वह गमला बिछाकर एक स्थानपर बैठ गया ॥ ४७ ॥ थोड़ी देर बाद चढ़कर उस कङ्काकेपी घूपमें पैरके जलनेसे हानाकार करमा हुआ वह फिर अग्ये वहा । उस ब्राह्मणको जलती कुण्डरीमें इस तरह दूधिल देखकर व्याधके मनमें आया कि मैं इसका सारी वस्तुमें लो छीन लो हूँ । न ही, इसे इसके जूते छोड़ा हूँ । इसकी मग कोजे छं नकर मैंने अपने धर्मका पालन किया ही है । हे राम ! वनमें आनेआनेसे पथिकोंके सम्मान छीन लेना, उन कोनेक धर्ममें सम्मिलित है । उस चीरने सोचा कि इसके जूते इसे दे डालूँ तो इसका क्लेश दूर हो जायगा और उसस जो पुण्य होगा, सो मुझ



इति निर्धन्य मनमि नृगं गत्वा ददा चरौ । अकंठं तत्र पश्यन् । अन्तर्यामि । संदत्ते ॥५३॥  
 उपानहौ गृहीत्वाऽसौ निर्धृतिं च परीक्ष्यौ । सुतः । अर्धं । तं । म । द । अन्तः । पुनरब्रवीत् ॥५४॥  
 पूर्वपुष्पेन ते जाता शुभा । सुदूरैर्नगरैः । च । नृपः । अथ । दंष्ट्रैरेतः । दत्तः । पुनरब्रवीत् ॥५५॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा राज्ञो व्याधोऽमघोऽद्वयः । किं । मयाऽऽचरन् । पूर्वं । अस्मै । वक्तव्यमहमि ॥५६॥

अथ . १३

आतपो बाधते धौरी नमः छाया च वै जलम् । तन्मा पश्यन्तं गत्वा यत्र छायां तु दत्तते ॥५७॥  
 तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छतां च रम्यां चितः । न म्ने सुकृतं त्वं परिभ्रातः । यदाश्वहम् ॥५८॥  
 शयुको पुनिना तेन व्याधः प्राह कृताऽस्मिः । शौजं वदते । मदित्य । वनेने । च । संगेवरे ॥५९॥  
 कपिचास्तत्र वै सति कलमारंग पाडिनाः । गन्तव्यमत्र । मनुष्यैर्भाषिता । नात्र मशरः ॥६०॥  
 व्याधेनैव समादिष्टेन साकं यथा मुनिः । किमदृष्टं ततो गत्वा ददशांश्च संगेवम् ॥६१॥  
 स्नान्वा मय्याह्वेतापी तस्मिन्परमि विमले । जानपी परिधायाव कुन्वा पाश्चाद्विकीः क्रियाः ॥६२॥  
 देवपूजा तथा कृत्वा कल्पमूलमनदेनः । व्याधोपनीतं सुखादु कपिथ अयद्वारि च ॥६३॥  
 भुक्त्वा सुखं जलं पीत्वा सुच्छतां च समाश्रितः । सुखोपविष्टस्तं प्राह पूर्वपुष्पं यदापि ते ॥६४॥  
 शकते नगरे पूर्वं द्विजन्तुः । इदपारगः । कनधो नाम महःपापी तथा भ्याचन्मगोवदः ॥६५॥  
 तथेष्टा गणिका काचिचदाऽऽनीतमयोपयः । श्वकनिर्गक्रयोऽनित्यः । वृद्धश्चमूर्तिमार्गगः ॥६६॥  
 शून्याचारस्य मूढस्य परिन्दतक्रियस्य च । ब्रह्मर्षी ते तदाऽऽचार्योद्गाथा । वी. तमयी तथा ॥६७॥  
 सा त्वी पर्यचरन्सुभ्रुः मवेज्यः । प्राज्ञनाथमम् । अमयोः । क्षान्त्यनी च पदौ । न्यायप्रकाशप्रवा ॥६८॥  
 उभयोरप्यथः शौचं । उभयोरवचनं । गता । इत्यथा वादमावाऽपि दिनकार्ये द्वयोः स्थिता ॥६९॥

पापीके पासमें अच्छा ही होगा ॥ ५८-५९ ॥ नृप की पुत्र की ओर छोट है । इसलिए मेरे देशमें न जायेंगे । तब इसे दे ही लाऊँ । इस प्रकार निर्धन्य कपिक कीड़ना हुआ कि उस मुनि तथा कपिकोंके कहनेसे खुशी काक्षणके पास पहुंचा और उस जगह जून दिना ५८-५९ । जता मिलनेपर उसे बड़ा आनन्द मिला और काक्षणने कहा-तुम मुझी हाथों । ते वनचर । पुनः । तस्मिन् पुनःसे तुम्हारी गेहो तु द दई है । जिससे तुमने बेधास महीनेमें इस जलका दात रिया है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार कहकर जात मुनकर व्याधने कहा कि पूर्वजन्ममें मैंने कौनसा पुण्य किया था । म. काव बिलम्बपूर्वक मुने बताइए ॥ ६० ॥ काक्षणने कहा कि इस समय मुझे घाम ज्यादा लग रहा है । इस जगहपर न तो पानी है । न छ छा ही है । इसलिए किसी एक स्थान-पर चलो, जहाँ कि छाया और पानी मिले मर । वहीग । ते मे तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्मका कृतार्थ सुनाऊंगा ॥ ५७-५८ ॥ इस प्रकार काक्षणकी बात सुनी त व्याध आठकर व्याधने कहा कि घाम ही संगेवमें गनी है और इसका आल-वास बहुतए केके कृत्र फल मदे हुए निदियान है । बहपिर कमनेसे आप सन्तुष्ट हो जायेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ व्याधनेक रसा कहकर काक्षण उसके साथ चलकर उस सरो-वरके पास पहुंचा । दागहरके सद्य उमने स्नान किए, जगर पजने और मध्याह्नकाणको मियाये पूजे कीं । फिर देवताका पूजन करने व्याधके साथ हुए केके कल मशर, मरोवरका बँटा पानी पिया और छायामें सुसते बैठकर निद्रा जाता—अब मैं तुम्हारे पूर्वजन्मके पुण्य बतलाता हूँ ॥ ६१-६४ ॥ पूर्वजन्ममें काकस नामकी नगरीमें तुम केदपलाया । तम्भ नामके काक्षण था । आवस । तत्रसे तुम्हारा जन्म हुआ था, किन्तु तुम बड़े पाटे पापी थे । तुम बहुत इपवय तुम एक वैपारह मुग्ध हो गये । तुमने अपनी बारी निधि नियाये छोड़ दी और शूद्रके समान सुखों मर्गपर चलने लगे । तुम नेसे मूर्ख तथा लाचार बहोव काक्षणके घरमें एक अति कपलः गयाहो म वी मा थी । वह उस देशकी तथा तुम्हारी खूब सेवा करती थी । तुम्हें प्रसन्न रखनेकी इच्छामें वह तुम दोनोंके पीर जाती थी ॥ ६५-६६ ॥ तुम शानका अपेक्षा नीची कथार

एवं शुभ्रयन्त्या हि भर्ता वेद्यदा सह । जगाम सुमहान्कालो दुःखिताया महीतले ॥७०॥  
 अपरस्मिन्दिने भर्ता माहितं मूलकान्वितम् । अमक्षयच्छुद्धकर्मा निवृत्तांस्तिलमिश्रितान् ॥७१॥  
 तमप्यधमशिक्षा तु चमर्च्च न परेवयन् । अपश्यदाकणो रोगो व्यज्जयन भगदरः ॥७२॥  
 स दहमानो रोगेन दिवागच्छं तु भूतमः । यावदास्ते गृहे विस्त तावद्वेण्या च मस्थिता ॥७३॥  
 गृहीत्वा सकल विष पश्चात्प्रोवासा मन्दरे । अन्यस्य पात्रमामाद्य तस्यौ शोराऽतिनिर्भृता ॥७४॥  
 ततः स दीनवदनो व्याधिराधामूर्ध्ना हवः । उक्त्वान्मुरुदन्धमार्गं रुद्रा व्याकुलमात्रमः ॥७५॥  
 परिपालय मां देवि वेदवामन मुनिपुत्रम् । न मयोपकृतं किञ्चित्तत्र सुन्दरि पावनि ॥७६॥  
 यो मार्गं प्रणता पातो नानुवन्नेन मृच्छाः । स पटो भवतीत्यत्र दश जन्मानि मम च ॥७७॥  
 दिवागच्छं महामागे निन्दितः साधुभिर्जनैः । पापानिमित्तास्यामि न्या माप्नीयन्मम वै ॥७८॥  
 अहं काष्ठेन दग्धोऽस्मि सदा निपुणभाषणः । एवं ब्रूयात् भर्तारं कृताञ्जलिपुटऽब्रवान् ॥७९॥  
 न दैन्यं भवता कार्येन व्रीडा कृतं मां प्रति । न चापि त्वयि मे क्रोधो वर्तते मुमनामपि ॥८०॥  
 पुन कृतानि पापानि दुःखानि भवन्ति हि । तानि यः क्षमते माप्नोति पुरुषो वा स उत्तमः ॥८१॥  
 यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि । तदुज्जन्मया न मे दुःखं न विशादः कार्यचन ॥८२॥  
 इत्येवमुक्त्वा भर्तारं मा सुभ्रग्वशलयन् । आसीत् जनकाद्विनं वन्धुभ्यो वरवर्णिनी ॥८३॥  
 सीरोदवामिनं विष्णु मनुदेहं व्यचिन्तयन् । शोधयन्ती दिवागच्छीं पुगीपं मृगमेव च ॥८४॥  
 नखेन कर्षती मर्तुः कुर्मन्देहाच्छनैः शनैः । न मा स्वपिति रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥८५॥  
 मर्तुर्दुःखेन भतमा दृष्ट्विनेदमथावरीक्षुः । देवाश्च पातु भर्तारं पित्रो मे च विश्रुताः ॥८६॥  
 कुर्वंतु रोगहीन मे भर्तारं हनकन्मयम् । चरित्कार्यं प्रदास्यामि रक्तं मांसं मुखोद्भवम् ॥८७॥

सोसा और दोनोंकी आज्ञाका पालन करता रहता था । यद्यपि वेद्या उसे अपने सेवा करनेसे रोकती, फिर भी बहुत मानती और तुम दोनोंकी पवित्रताम तत्परिण लगी रहती थी । इस तरह सेवा करते करते उस दुःखियाके बहुत दिन बीत गये । एक दिन गन्धर्वने निर्दोषधित कुछ ऐसी चीजें लायी, जिससे केवल होव क्या और कुछ दिनों बाद उसने अतिशय आनन्दरोगका रूप धारण कर लिया ॥ ६९-७२ ॥ उस रोगसे स्वस्थ रात-दिन करने लगा । जब एक शाम स्पर्शित था, तब तक बेपया रहा । बादल घटकी रङ्गी-सही भूजी पुराकर निकल मागी और रिसा दूसरेके घर जा गये । ऐसे अवस्थाम रोगी हुआ स्वस्थ अपने स्पर्श से कहने लगा—॥ ७३-७५ ॥ हे देवि ! मुझे योग्य मया तथा निरुप पुण्यकी रक्षा करो । हे सुन्दरि ! हे पावनि ! मैंने जीवनभरम मुम्हारा काई उपकार नहीं किया है । ताम्र कहता है कि जो पापों मायवश भायोंका विरावर करता है, वह सचन जन्म तक नपुनक लका जन्म लेता है । अन्धे पुण्य ऐसे मनुष्योंकी रात-दिन निन्दा करते हैं । तुम जैसी कती माधवा नरका अपमान करके पुन शिक्षा नीच योगिनम जाणा पड़ना ॥ ७६-७८ ॥ क्योंकि मैं सदा मुम्हारे ऊपर क्रुपित रहता और दसी बात बोला करता था । इस प्रकार दीनभावसे प्रार्थना करने हुए पातरु स्त्रीन हाथ जेकर कहा— हे कान्त ! आप किसी प्रकार दुखी न हों और उन बीसी बातोंके लिए पश्चात्ताप न कर । मुन मुम्हारेपर उनका लिए काई बिन्दाया नाश नहीं है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अपने पूर्वजन्मके किय हुए पाप हो दुःखदरम प्राप्त होन है । जो स्वयं या पुण्य उन दुःखोंको सह लेता है, वे उत्तम हैं । दुःख परिनाम पूर्वजन्मम जो पाप किय थे, उनको भागत हुए मुझे किसी तरह का दुःख या विषाद नहीं है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इतना कहकर उसने अपने पतिके कारख भेवाया और बिना लप धालाघोसे पाससे घन मांग लाकर सेवा करने लगा । वह उस गमी पतिके कारखे कारसागरानवासी विष्णुमन्त्राका निवास जानती हुई रात-दिन मल-मूत्र उठाकर सेवा करती रही ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ पतिके कारखने रही हुए कोठेको लखूनसे निकालती रहती थी । इस प्रकार सेवा करनेसे रात-दिन कभी उसे सोनेतक की छुट्टी नहीं मिलती थी । स्वामीके दुःखसे दुःखित होकर वह देवताओंकी मनाती, पितरोंसे विमती करती

सुधुन्नं मादिपोषेन मर्तुसामेग्यहेतवे । मोदकानपि दास्यामि चित्प्रेक्षाय महान्मने ॥८८॥  
यन्द्वारे कल्पिष्यामि मर्दवद्वयपेक्षय । नोपमोक्ष्यामि मधुरं नोपमोक्ष्यामि वै धृतम् ॥८९॥  
तैलाम्बुजनिर्हीनं तदं तदा यद्यस्यामि भूले । जीवन्मय मेगदीनो भर्ता मे शम्भो जनम् ॥९०॥  
एवं सा स्याद्वरदेवी रामरे रामरे मने । तदा पागलमुनिः कश्चिन्महाम्ना देवताह्वयः ॥९१॥  
वैशाखमासे घर्मानः स ययौ तस्य वै गृहे । तदा ते भार्यया चोक्तं वैगोष्ठेन गृहमागतः ॥९२॥  
तेन ते रोमहानिः स्थानस्यानिर्घ्यं करोम्यहम् । यदाह पयसि स्व मां नोचेन्नैव करोम्यहम् ॥९३॥  
शान्ता त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन वक्षितम् । तस्य निधनं तु वै कर्तुं दनाऽऽहार्त्तं पुनस्तथा ॥९४॥  
तस्य पत्नी तदा तुष्टा पुत्रयामास सा मुनिम् । पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मुनिं तेऽहम् ॥९५॥  
पातुं सुखं ददौ तीर्थं त्वामुक्त्वा मेघजं त्विति । पानकं च ददौ तस्मै घर्मानपि महान्मने ॥९६॥  
दिन्यान्मैमोज्ञयामास सुगन्धन्वजने ददौ । त्वयाऽनुमोक्षिता माय धर्मनापं मयागम्यत् ॥९७॥  
स प्रातर्हृदि ते घृते मुनिर्घोषांतरं यया । अथ जाननेन कालेन मन्त्रिकोऽवसर ॥९८॥  
त्रिकटु मुख आधान्मा भर्ताऽङ्गुलिमन्त्रपट्टयेन । कंकेन हस्तपात्रिभ्यां मालिनीभ्यां दृढं तदा ॥९९॥  
वे रक्तेऽङ्गुलिपट्टे तस्मिन्मन्त्रानि कोमलम् । त्वदपि म्नागुनिं तस्याः पञ्चान्वत्त्वं गतः पुनः ॥१००॥  
अग्न्यायां सुमनोहायां स्मरन्तां पुष्पलीं हृदि । मृतं चित्तं मर्तारं भाषां कश्चिन्मया तव ॥१०१॥  
चिकीत्वा बलये स्वे त्वां गृहीत्वा चंदनं बहु । चक्रे चित्तेन माध्वा मध्ये कृत्वा पति तदा ॥१०२॥  
समाहितं धृष्टाभ्यां ते पार्दं चारिल्लय पदयोः । मुखे मुखं निजं कृत्वा हृदये हृदयं तव ॥१०३॥  
गुहं कृत्वा तु गुहं हरमेवं सा राममागता । दाहयामास कन्धारी मर्तुर्देहं रुजान्वितम् ॥

आत्मना सह कन्दर्पी वरलित आववेदसि । १०४॥

एवं वरा सा ललना पतिवरा दददस ने सुखसिद्धिबद्धौ ।

विष्णुश्च देह सहसा जगाम पतिं नमस्कृत्य स्यात्तन्नेकम् ॥१०५॥

और चण्डिकाके समीप पहुँच प्रार्थना करता-हे होव ! यद् यद् वदन्त्यस्य शब्द प्रसूतः शोभायै वा वै पश्चिमे  
एतत् और मांससे भिला हुआ भोजन आरका सम्पन्न करता। जो हृदय जीव अन्तर्गत जाये ताँ मैं वरजोको  
एतद् बहुत ही और प्रत्येक अविनाशक बन करेगा । मैं गिराई मरना डारूँगा, जो भी नहीं काटेंगे,  
और मेरे लेख और उद्योग ल्याता स्वामि दूँगा और मैं ही जनीयकर सँभालूँगा । लेकिन मेरे पतिद्वय रोगमुक्त हो  
जायें और संवत्सराय जीवित रहें ॥ ८५-८७ ॥ इस तरह वह निष्ठ मानव माना जातो था । इसा दोष एक दिन  
महामा देवता कवि माना उसके धार लहें । यह विलापना पहोना था । स्वम्भको स्त्री पक्षि के पास आकर  
कहने लगी कि एक कोई बेशरणाक मेरा धार ला गया है । वह अवश्य किसी उपायसे आपका रोग नष्ट कर  
देगा । जाय यदि आपका दंतो मैं उसको सेवा करूँ, नहीं तो नहीं ॥ ८९-९१ ॥ स्वम्भ ( तुम ) ने सेवा  
करनेकी आज्ञा दे दी । स्वम्भने वसन्त धनसे रत्नकी पूजा की । इनके चरणों को उर उर जलको साथे बढ़ाया  
और थोड़ा-सा जल दवाके अग्रजने स्वम्भ ( तुम ) को भी पिला दिया । फिर उन दवाक कवि को उसने दानी  
पिलाया । अन्धे-अन्धे परवान बनाकर मोचने कराया और तुम्हारे कहनेसे उनकी पत्नी भी छलकर उरका  
सन्ताप दूर किया ॥ ९४-९७ ॥ गतधर देवकवि उनका घर रहे और मेरे दुमरे गाँवको बने गये । मोरे  
दिन बाद स्वम्भको ( तुमको ) सन्निपात हो गया । स्वम्भने त्रिकटु ( तीक्ष्ण, मिष, रोष ) का काटा बनाकर  
स्वम्भके ( तुम्हारे ) मुखमें दिया, इतनेसे कफके प्रकोपसे दंत अरुह गये और तुमने स्त्रीको एक डोली  
काट ली । तुम्हारे मुखसे वह कामल उदनी पड़े हो रही और तुम्हारी मृत्यु हो गयी ॥ ९८-१०० ॥  
वरणकालमें उद्यापन पड़े हुए उही पुत्रने वरणाका स्मरण करनेकरते मुझे प्राण स्वामि दिया । जब  
उस वरने जला कि तुम्हारी मृत्यु हो गयी है तब अपने दोनो कण्ठ बँधकर बहुत-सी चन्दनकी लकड़ी  
जलीही और उसको चिता बनायी । फिर हानों भुजाओंसे भुजाएँ पैरसे पैर, मुखसे मुख तथा हृदयसे

त्वयान्तर्गते मलिकेच्छया हि देहं यन्मया त्यक्तकर्मा दुर्गत्या ।

व्याधजन्म प्राप्तिं धर्मधर्मं त्वयामक्तः सर्वदादेवकारी ॥१०६॥

दत्तं त्वया पानकमपि तु वै ममैव तु त्वं मायवे मद्बुद्धिजाय ।

मिथमव्याजानेव ज्ञाता सुबुद्धिधर्मं त्वं पादभर्जयते वै ॥१०७॥

पूतं पूर्णा पादभर्जयते वै त्वं त्वं सर्वपापवहारी ।

हेतवे त मङ्गलमे वनेऽस्मिन् जारा श्रीनुं श्रीयुष्म मनिष्य ॥१०८॥

पूसे कृष्णांगुलिं यस्मान्मृगः पूर्वमवतरे त मादत्र वने मां नाहामनेऽभूदनेवर ॥१०९॥

वेद्या सा भिक्षिणी ज्ञाता भार्या या तव वर्तते श्रयायां माणसेऽत्र श्रयने बुद्धि सर्वदा ॥११०॥

इति ते सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यन्मृगः तन्मृगं पुण्यं यं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥१११॥

अतः परं भारि वृक्षं मृगं तैः सह वदामि वै कृष्णनाम मुनिस्त्वमे कस्मिंश्चित् सरोवरे ॥११२॥

कस्मिंश्चित् तपस्तीव्रं चाश्रमं प्राप्य जितः । पञ्चाशद्योगिणामादि तन्नेत्राभ्यां बहिः स्नुम् ॥११३॥

वीर्यं दृष्ट्वाभी काचित्स्वरयं स्तुलितमञ्जसा । ग्रहं त्यजे श्वरोः काले तस्मात्तनुप्यतस्तदा ॥११४॥

किराताः पालयिष्यन्ति किरातस्त्रं मदिष्वासि । उपानदादिपिनेऽत्र यस्मात्तनुप्यतस्तदा ॥११५॥

मविष्यति सज्जतिस्ते वने मममुनीश्वरः । तेनं प्रसादाद्वाल्मीकिर्मुनिस्त्व हि मविष्यसि ॥११६॥

यस्मिन् रामकथां दिव्यां सुप्रबन्धैः करिष्यासि ।

वाल्मीकिश्वाच

इति व्याधं समादिश्य धर्मान्निर्वाणस्त्रजानपि ॥११७॥

उपदिश्य सविस्तारं प्रत्येयं गौतमी तदा स ज्ञानः कुण्डलाद्यैश्च तदचैस्तुष्टमानसः ॥११८॥

व्याधोऽपि शङ्खवत्तनं तस्मिन्नेव वने चिरम् । र्न्निर्वाणस्त्रजामाण्डमार्गान्निर्वाणान्दकरोच्छ्रुमान् ॥११९॥

इदं वक्ता वाल्मीकि करके तुम्हारे साथ चकारता विमान शायनी । व वर धर्म राममें रही पतिव्रता स्त्री सती  
ह कर वैकुण्ठलीकको चली गयी ॥ १०१-१०४ ॥ उस ने ब्रह्मण चित्त कायीको त्यागे हुए मुझे अन्तसमय-  
में वेण्याको चित्तन करन हुए प्राण त्याग प्ये । इससे प्रेता उदगारी गया हिमामे आसक्त इस योगकर्ममय  
कायीको शीतल उत्पन्न हुए ही । उस समय बंसाव्य - ही को प्राये हुए देवल करिणी पूजा के लिए तुमके आगनी  
स्त्रीको आजा वे की थी, उगी पुण्य तुम्हारे हाथमें यम दुष्ट उत्पन्न हुई है । इसीसे इस समय तुम्हारे मेरे जूते  
वापस दे दिये हैं । तुम्हारे समयमें इकाक व के बाल्मीकि करण जट तुम्हारे साथ चकारता था, उसी पुण्यसे  
आज हमारी भट हुई है और तुम अपने पूरजन्मके कृतज्ञ सुन रहे हो ॥ १०६-१०८ ॥ मुझे पूर्वजन्ममें  
अपनी स्त्रीकी उंगली काट लो दी । इसलिए हे वनेन्द । मैं समय तुम गौतमीको ही । वह वेद्या इस समय  
में लिखी है । मरने समय तुम जंगलपर हो पड़ रहे, इस कारण इस जन्ममें तुम्हें तबला भूमिपर जयन करना  
पड़ता है । मेरे अपनी योगदृष्टिने तुम्हारे पूरजन्मके पाप-पुण्य देखकर मुझे बतल या है ॥ १०६-१११ ॥  
इसके अनन्तर अब मैं तुम्हें तुम्हारे सती जीवनका हाल बतलाता हूँ मना । कृष्णनामक कोई तपस्वी अन्त  
त्यागकर एक सरोवरके निकट तपस्या कर रहे थे । तपस्याके अन्तमें उनकी आँखोंसे वीर्य निकलेगा । उसे  
देखकर कोई सपिणा सा जायगी । उसीके उदरमें तुम किशकि के रूपमें उत्पन्न होओगे ॥ ११२-११४ ॥  
किरात लोग तुम्हारे रक्षा करवा और तुम उहाँके साथ रहोने । जो तुम इस समय मुझे मेरा जन्म वापस दे रहे  
हो, इसी पुण्य एक बार तुम्हारे भट करिवाल भट होगी और उनकी दणमें तुम वाल्मीकि नामक करि  
होओगे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ अपनी अच्छी रचनासे तुम राजक्याका निमाण करागे । वाल्मीकिजी कहते हैं  
कि इस प्रकार वंशाव्य सासका धर्म तथा विद्वध उवदगी इकर व्याधसे कुण्डल आदि पाकर प्रसन्न मन बल्ल  
बोतमी नदीकी ओर चले गये । व्याधन या शायके उपदेशसे वनेके फलफूल द्वारा ही वंशाव्य सासके बलीकी

न्यायजन्मान्पये आते कृणः पुत्रस्त्वहं ततः । पद्मर्गाजउरोद्भूतस्त्वगप्ये रघूनन्दन ॥१२०॥  
 अहं पुन किमतेषु किरातैः सह वर्द्धितः । जन्ममात्रं विजयं मे शूद्राचार्यतः सदा ॥१२१॥  
 शूद्रायां बहवः पुत्राश्चोत्पन्ना संजज्ञताम्भनः । ततश्चाग्रेभ्यः सगन्ध्य र्हीमोऽहमभवं पुन ॥१२२॥  
 धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामतकंपमः । एकदा मूनयः यम दृष्ट्वा महानि कानने ॥१२३॥  
 स्वतेजसा प्रकाशतो ज्वलनार्द्धमवधायः । तानन्वधाय लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥१२४॥  
 गृहीतुकामस्तथाहं निष्ठुरां निष्ठुरामिनि । अत्रैव मूनयोऽपृच्छन् किमायामि द्वि जायम ॥१२५॥  
 अहं तानमव किंचिदादातु मुनिमनसाः । पुत्रदागदयः सति बहवो मे वृथाक्षिताः ॥१२६॥  
 तेषां संरक्षणार्थाय चगामि गिरिकानने । ततो मामृषुरभ्यग्राः पृच्छन्त्वा कुटुम्बकम् ॥१२७॥  
 यो यो मया प्रतिदिनं कियते पापमचयः । सृप गद्गागिनः किं वा नेति नेति पृथक् पृथक् ॥१२८॥  
 वयं स्थास्यामहे शिवदागमिष्यामि निश्चयान् । यन्मय ब्रह्महत्यायां यन्पाप मयपातत ॥१२९॥  
 तेन पापेन लिप्तामो यदि मञ्जुमहे वयम् । यन्मय हेमनीर्याय गुरुदागमपात्र यद् ॥१३०॥  
 तेन पापेन लिप्तामो त्वामपृष्ट्वा चनेचर । चेन्नृजया वयं भवे इत्यने पृष्ट्वो यदिः ॥१३१॥  
 संपर्यज्जनिने पाप ब्रह्मस्वहत्याकर यन् । नन पापन लिप्तामो यदि मञ्जुमहे वयम् ॥१३२॥  
 एवं तच्छपर्येनानाविधैः प्रत्यक्षमागतः । नये-पृक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्विद्वीरितम् ॥१३३॥  
 अपृच्छं पुत्रदत्तार्दीर्स्तुकोऽहं रघूनम । पतनं त्वयं ममर्षं यत् तु कलभागिनः ॥१३४॥  
 तच्छ्रुत्वा जातनिर्वदो विचार्य पुनरागतः । मुनरो यत्र निष्ठुनि कुरुग-पूर्णपात्रयाः ॥१३५॥  
 मुनीनां दर्शनादेव गुह्यातः करणोऽभवम् । धनुर्गादि परिन्वज्य दृष्ट्वा तन्वृत्तितोऽम्भहम् ॥१३६॥

निमाया । आधेका जीवन बितानक पश्चात् मैं पद्मर्गी की निसे कृणका पुत्र होकर जन्मा । मैं उस समय किरातो ही में बड़ा और उन्हीके साथ रहन लगा । केवल जन्म मरा ब्राह्मणके धीयमे हुआ था । किन्तु कर्म मेरा सर्वथा शूद्रोचित था ॥ ११७-१२१ ॥ एक कूड़ासे मरा विवाह हुआ और उसमे कई पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद मैं चोरोस जा मित्रा और घुप-बाण अरथ काके समानी जीवक लिए यमराज सहज भवान्क चोर हो गया । एक बार मैंने एक विकराल जटू-रूप सज्ज करियोका दत्ता ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ जल्दी हुई मणि तथा सूर्यके समान इनका प्रकाश था । उनके देखने का उनके कपड़ु करने हीनर्गक लिए मैं ओरोसे दीड़ पड़ा और "कहूँ उह-न" कहकर चिन्ता में लगा । तब कृष्णाने कहा—अरे द्विजामस ! क्यों रोषा का रहा है ? ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ मैंने उनसे दिया कि आपसे कुछ भेनक लिये । क्योंकि मेरे परिवारसे सब प्राण धूम रहे हैं । उहोका पालन-पोषण करनेक लिए मैं वन वन घूम रहा हूँ । सब सन्तपियोन हमसे कहा—अपने कुटुम्बियोसे जाकर पूछो कि मैं यो नित्य यह पावरी कामाई कर रहा हूँ । तुम लोग मल्ल-मल्ल वतलाओ कि उस पापका फल भी भाग्यो या नहीं ? ॥ १२६-१२८ ॥ यह विश्राम रखो कि जबल्क तुम लौटकर नहीं आओगे सब नक मैं यहाँ ही रहूँगा । जो पाप ब्रह्महत्या करनेमे और जो पाप मय दीनम म्भनत हैं, हुमलोग उन्ही पापोके भागी हो, जो जिना गुह्यारे जाये पहुँच जायें । जो बार लोग चुराने का गुल्मलोके साथ अपमिचार करनेम होता है, हुमलोग उन पापोन भागी हो, यदि तुमसे बिना पूछे यहाँस जाये ॥ १२९-१३१ ॥ संसर्गजनित अथवा ब्रह्मणका घन रूप लेनेसे जो पापक जगता हो हम सब उस पापके भागी हो, यदि यहाँसे पीड पीछे हटें ॥ १३२ ॥ इस तरह उनके विविध प्रकारको कसम लागेकर मुझे विश्राम हुआ और अपने घर गया । वहाँ जेहा उन कर्तव्योस कहा था, उसी तरह बरक लोभोको इकट्ठा करके मैं पुन-स्वी कर्तव्ये पूछा । उन्हीने उत्तर दिया कि तुम जो पाप कर रहे हो उससे हमें कोई फलनक नहीं । हम यो केवल फल चाहते हैं ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ उनको बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं लौटकर फिर वहाँ आया, जहाँ दयासे परिपूर्ण हृदयवाले मे सत्यवि बँडे मेरा रास्ता इस रहे थे ॥ १३५ ॥ उन मुनियोके दर्शन ही से मेरा हृदय परिवर्त हो गया । तुरन्त धनुष-बाण आदि वस्त्रास्त्र फेंककर मैं उनके चरणोस दण्डवत् झोट गया ॥ १३६ ॥

रक्षोघ्न मां मुनिश्रेष्ठाः पतितं नरकाणवे । अन्यथे पतितं दृष्ट्वा मामृचुर्मुनिवत्तमाः ॥१३७॥  
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मद्रं ते मफलः मन्ममागमः । उपदेश्यामहे तुभ्य किञ्चित्तेनैव मोक्षयसे ॥१३८॥  
परस्परं समालोक्य द्रुवृत्तोऽयं द्विजाधमः । उपदेश्य एव महत्तत्त्वथापि शरणं गतः ॥१३९॥  
रक्षणीयः प्रयन्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः । शृणु कथां राम ते नाम व्यस्यस्नाक्षरपूर्वकम् ॥१४०॥  
मुनयो मामुपदिदिशुर्मन्कृपापूर्वमानसाः । एकस्मिन्मयाऽर्चयं मरेति जप सर्वदा ॥१४१॥  
आगच्छामः पुनर्वाचनावदुक्तं सदा जपं शृणु कथां प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥१४२॥  
अहं यथोपदिष्टमस्मिन्मन्त्रादस्त्रयमजया । जपलेखायमनया वाद्यं चिन्मन्त्रानहम् ॥१४३॥  
साक्ष्यार्थं तपमस्तत्र दंडोऽग्रे स्थापितो मया एवं बहुविधे काले गते निश्चलरूपिणः ॥१४४॥  
सर्वमङ्गविहीनस्य बलमीकोऽधूममोपरि । दण्डोऽग्रे च जगो रम्यो बभूव मणयोबलान् ॥१४५॥  
ततो युयमहस्वाने श्लेषः पुनरागमत् । मामृचुर्निर्गमस्वेति मरुतृन्वा तूणेषुस्थितः ॥१४६॥  
बलमीकाभिर्गतवाहं नीदामादिव मास्कृतः । मामप्याहमुनिगणा बाल्मीकिस्त्वयुनीश्वरः ॥१४७॥  
बलमीकास्तमवो यस्माद्विहीनं जन्म तेऽभवत् । शृणु कथां ते यदुद्दिष्टां गतिं शृणु कृत्वात्मनः ॥१४८॥  
अहं ते रामनाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् । एकदा सम्भ्रुवचमाऽयं विधिः श्रुतवान्भव ॥१४९॥  
परितं वेदवाक्यं च कैलासे पामे शुभे । अनेन विधिना तच्च कथितं नारदाय हि ॥१५०॥  
नारदा कथयामास वेदवाक्यं मेमात्र तन् । ततः कींच हव दृष्ट्वा व्याधेन तममातटे ॥१५१॥  
शोचन्तीं सान्त्वयन्कींचीं समाख्यान्निर्गमस्तदा । त्रिंशदक्षरैः प्रोक्तः श्लोकः श्लोकान्वयमागतः ॥१५२॥

और कहने लगा—हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं नरक के महामधुदम गिर गया हूँ । मेरी रक्षा करिए ॥ १३७ ॥ इस तरह मुझे आगे पड़ा देखकर उन्होंने कहा—“उठा । उठा । आज हम आनीका समाराम नम्हारे लिये बड़ा ही कल्याणकारी हुआ । हम तुम्हें कोई ऐसा उपदेश द्यें, जिससे हम सब आपसे कुछ जानने ।” इसके बाद उन लोगों ने परस्पर संवशा करने लगा—नियम तो यह है कि गदाधर से मनुष्यका ही उपदेश देना चाहिये । यह साहायाधम एक असाधारण दुरात्मा है । फिर भा दण्डधारीकी जरूरत आता है । इसलिए इसे कोई उपदेश देकर इसकी रक्षा करना न हिये । हम प्रकार निश्चय करने दे राम । उन्होंने आपका उल्टे अक्षरोंके नाम ( मरा ) का उपदेश दिया और हमसे कहा कि तुम अक्षर ममम ‘मरा’ नामका जप करने रहो जब तक हमलोग उधरसे लौटकर न आयें, तब तक तुम बराबर इस नामका जप करने रहना । ऐसा कहकर वे दिव्यदृष्टि कृपागण वहाँसे चले गये ॥ १३६-१४२ ॥ जैसा उन्होंने बकलगा था, ईक उमी तरह मैं एकदम मनसे जप करने लगा । मरा मम उस जपमें इतना राम मरा कि मुझ अपने आँखकी भी मूषि नहीं रही ॥ १४३ ॥ साक्षीके गिरा मैंने अपने सामने एक दण्ड गाड़ दिया था, इस तरह निश्चय थावसे भजन करने करते बहुत दिन बीत गए और बलमीकी ( दीशकी ) ने मेरे आँखपर सिट्टीका छेद लगा दिया । मेरे तपोबलसे वह सागनेका गड़ा हुआ दण्ड एक सुन्दर वृक्ष बन गया । १४४ ॥ १४५ ॥ एक हजार युग बीतनेके बाद वे सप्तकृपागण फिर लौटे और मेरे द्विमीटके समीप जा कर होकर उन्होंने पकाग और कहा कि “निकलो” । उसे सुनकर मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ । जिस समय द्विमीटके आँखसे मैं निकला, उस समय मेरी शोभा बेसी ही थी, जैसी कि कुहोंके आँखसे निकल कर भूनागायणकी होती है । तब मुझसे मुनिगणोंने कहा कि बलमीक ( बिमीटे ) से तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है । इसलिए तुम मृताश्वर बलमीकि जा गये हो ॥ १४६-१४८ ॥ इतना कहकर वे कृपि दिव्य ( आकाश ) मार्गसे चले गये । आपके रामनामके प्रभावसे मैं ऐसा कृपि हो गया । एक बार क्षीणवर्जके मुखने इन ब्रह्मजके चेहरे सेचकर निकाले हुए आपके चरित्रकी मुना था । १४९ ॥ तब इन्हीं ( ब्रह्म ) ने उसे अपने बेटे नारदकी बाराग और इन्हींने वह मारा चरित्र हमें सुनाया । कुछ समय बाद एक व्याधे द्वारा मारे गये कीचक दुःखमें इ विना कीचकी केवत्तर मुझे जो शोक हुआ, वही शोक बलीस भकरोवाले श्लोकके रूपमें मेरे मुखमें निकल पड़ा ( श्लोक यह है—मा निषाद प्रतिष्ठा स्वमगम)

ततोऽपि विधिनाऽनेन चरितं ते प्रवर्णितम् । सनागत्य तु संक्षेपादपिता मे वरा अपि ॥१५३॥  
 ततोऽस्य वक्त्रो वाक्यात्कृतवर्णितं तव । आनन्ददायकं रम्यं शतकादिप्रविस्तरम् ॥१५४॥  
 एव त्वया यथा शृष्टं तथा सर्वं निवेदितम् । एवं वान्मीकिवाक्यं सर्वं जानन्नपि प्रभुः ॥१५५॥  
 पृष्ट्वा भोक्तुं जनान्सर्वान् श्रावयामास राघवः । एतास्मभन्तरे रामं वाचयतिः प्राह सादरम् ॥१५६॥  
 राम किं चरितं मेयं तवानन्दस्वरूपिणः । यस्य नामाद्यवर्णेश्च षण्दमात्रोऽयं नीयते ॥१५७॥  
 लौकिका वैदिका चापि अकारायास्तु षोडश । स्वगन्तव्यं च वर्णाश्च शतसिंशच्छ्रुमावदाः ॥१५८॥  
 ककाराद्याः क्षकाराता मन्त्ररूपाः शुभावदाः । एवं वर्णाश्च षड्चागुच्ये कीर्त्यन्ते नरैर्भुवि ॥१५९॥  
 ते न च नामाद्यवर्णाश्च सर्वं ज्ञेया रघूत्तम । तत्र नामाद्यवर्णं च न्यासं सर्वं चराचरम् ॥१६०॥  
 चराचराणां सर्वपां यानि नामानि तानि च । तेषु वर्णपरम्बेन नामान्दयं वदामि ते ॥१६१॥

संक्षेपाच्च च पञ्चाशदानि शृण्वन्तु सजनाः ।

ओमनन्ता १ नन्दमय २ शृष्टापूर्तफलप्रदः ३ ॥१६२॥

ईश्वरश्च ४ तथोत्कृष्ट ५ आध्वरेता ६ ऋतभरः ७ ।

शृणुक्तश्च ८ लृण्वर्थे ९ लृपक १० अरु ११ एव च ॥१६३॥

ऐश्वर्यद १२ ओजदश्च १३ तर्धर्वादार्यचंचुरः १४ ।

अंतरात्मा १५ चार्द्धगर्भ १६ स्तयैव करुणाकरः १७ ॥१६४॥

खड्गो च १८ गतिदर्वच १९ घनश्याम २० स्तयैव च ।

उणन २१ अमिताशेषदुष्कृतश्च २२ तथैव हि ॥१६५॥

छत्री २३ जगन्मय २४ अथैव अपरूपी २५ अटेश्वरः २६ ।

टण्कारिधनु २७ हानवन्धो २८ हयमहमन्करः २९ ॥१६६॥

दुणुल्लुनिनपापश्च ३० णकर्णश्च ३१ तथैव हि ।

तपोरूप ३२ स्थय ३३ यैव दक्षो ३४ धन्वी ३५ तथैव च ॥१६७॥

शाश्वतो. समा. ॥ वक्तव्यमिदमुनायकम् । यी काममाहितम् ॥ } ॥ १५०-१५१ ॥ इसके अनन्तर इन ब्रह्माजाने  
 आकर मुझे संक्षेपरूपसे आपका चरित्र सुनाया और वरदान भी दिया । तब इन्हींके कहनेसे मैंने सी  
 करोड़ श्लोकोंमें आपका चरित्र रचा ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ आपने जैसे पूछा वह सब पुरातन मैंने कह सुनाया ।  
 यद्यपि रामचन्द्रजी इन सब बातोंको जानते थे, किन्तु संसारक लागकर सुनानके लिये इन्होंने वान्मीकिजैसे  
 इस प्रकारके प्रबन्ध किये थे । इसके बाद ब्रह्माजी बोले — ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ हे राम ! आप जैसे आनन्दस्वरूप-  
 के चरित्रका कोई कहूँ एक गान करेगा । जिसके नामके पहले ही अक्षरमें संसारके सारे शब्द आ जाते हैं ।  
 लौकिक तथा वैदिक अकारादि सोलह मन्त्र और वक्तासे लेकर अकार पर्यन्त अतिस वर्णों में पचास अक्षर,  
 जिन्हें कि संसारी लोग जानते हैं । वे सब आपके नामके पहले ही अक्षरमें आ जाते हैं, आपके नामके पहले  
 अक्षरमें सारा विश्व व्याप्त है ॥ १५७-१६० ॥ इस चराचर संसारमें जितने नाम लिये जाते हैं । उन्हें वर्णक्रमसे  
 मैं आपको बतला रहा हूँ । संक्षेपमें वे पचास नाम हैं । उनकी हज्जन लोग सुनते जायें—अकारसे 'अनन्त' ।  
 वाकारसे 'आनन्दमय' । इकारसे 'इष्टापूर्तफलप्रद' । ईकारसे 'ईश्वर' । उकारसे 'उत्कृष्ट' । ङकारसे 'अध्वरेता' ।  
 ऋकारसे 'ऋतभर' । शृकारसे 'शृणुक्त' । लृसे 'लृप्त' । लृसे 'लृपक' । एसे 'एक' । ऐसे 'ऐश्वर्यद' । ओसे  
 'ओजद' । औसे 'औदार्यचंचुर' । अंसे 'अंतरात्मा' । असे 'अर्द्धगर्भ' तथा कसे करुणाकर ॥ १६१-१६४ ॥  
 खसे 'खड्गो' । गसे 'गतिद' । घसे 'घनश्याम' । डसे 'उणन' । चसे 'चमिताशेषदुष्कृत' । छसे 'छत्री' । जसे  
 'जगन्मय' । झसे 'हयस्वी' । झसे 'अटेश्वर' । टसे 'टण्कारिधनु' । ठसे 'हानवन्ध' । डसे 'हयमहमन्कर' ॥ १६५ ॥  
 ॥ १६६ ॥ ठसे 'दुणुल्लुनिनपाप' । णसे 'णकर्ण' । तसे 'तपोरूप' । थसे 'स्थय' । दसे 'दक्ष' । धसे 'धन्वी' ॥ १६७ ॥

नष्टोदरणधाराश्च ३६ तथैव परमेश्वरः ३७ ।  
 तथा फलप्रदश्चैव ३८ तथा बलिवरप्रदः ३९ ॥१६८॥  
 भगवान् ४० मधुघाती च ४१ तथा यज्ञफलप्रदः ४२ ।  
 रघुनाथश्च ४३ लक्ष्मीशो ४४ वशिष्ठश्च ४५ तथैव हि ॥१६९॥  
 शरण्याः ४६ षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नश्च ४७ तथैव हि ।  
 सर्वेश्वरो ४८ हयग्रीवः ४९ क्ष्मा ५० नामानि ते त्विति ॥१७०॥

पंचाशद्वर्णचिह्नानि चैभिर्वर्णैर्जगत्त्रयम् । व्याप्तं श्रीराम सर्वत्र एवर्णेन घटः स्मृतः ॥१७१॥  
 एवर्णेन एतो ज्ञेयस्त्वेवं वर्णात्मकं जगत् एकैकस्य च वर्णस्य भेदैर्नामानि ते पृथक् ॥१७२॥  
 नाहं समर्थोऽपारब्ध्यातुं पञ्चाशोऽपि न च क्षमः यत्र शेषः सारस्वतो वर्णने कुठितस्त्वयूत ॥१७३॥  
 एवं ते तदिमां राम कोऽत्र वर्णयितुं क्षमः । तथापि धन्यो वाल्मीकियेन ते चरितं कृतम् ॥१७४॥  
 सतकोदिमितं राम तवैव कृपया श्रमो ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा स गुरुर्देवं राघवेणापि पूजितः ॥१७५॥

पृष्ट्वा रामं ययो स्वर्गं सत्तल्लोकं ययौ चिचिः । वाल्मीकिश्चापि प्रययौ चित्रकूटं निजाश्रमम् ॥१७६॥  
 तदारभ्य जनाः सर्वे चक्रुहास्य मुदैव ते । मांगल्यकामाण्युत्साहिकर्माणि जगतीतले ॥१७७॥  
 चक्रुः सर्वे पूर्ववच्च नातिहास्य प्रचक्रिरे । स्वाभिर्नराः सुसन्तुष्टाः क'डाहास्यादि चक्रिरे ॥१७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे  
 वाल्मीकिजन्मतस्तन्मन्त्रवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

यस्य 'नष्टोदरणधारा' । यस्य 'परमेश्वर' । यस्य 'फलप्रद' । यस्य 'बलिवरप्रद' । यस्य 'भगवान्' । यस्य 'मधुघाती' ।  
 यस्य 'यज्ञफलप्रद' । यस्य 'रघुनाथ' । यस्य 'लक्ष्मीश' । यस्य 'वशिष्ठ' । यस्य 'शरण्या' । यस्य 'षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न' ।  
 यस्य 'सर्वेश्वर' । यस्य 'हयग्रीव' । यस्य 'क्ष्मा' ॥ १६८-१७० ॥ ये ही पचास नाम पचासों अक्षरीक  
 आधार हैं और इन्हींसे आकाश, वातावरण, मनुष्य ये तीनों लोक व्याप्त हो रहें हैं । एवणसे घटका बोध  
 होता है और एवणसे घट जाना जाना है । घट और घट इन दोनों शब्दोंक ही अन्तर्गत समस्त जगत् है ।  
 एक-एक वर्णके भस्से सम्पूर्ण नामोंका वर्णन करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ मैं ही नहीं,  
 यदि पंचास अर्थात् शिवजीका अतलावा पड़े तो वे भी असमर्थ हो रहेंगे । जिसकी महिमाका वर्णन करनेपर  
 एक महान् मुखवाले जेबजी भी असमर्थ हो गये, उसका वर्णन कौन कर सकेगा । फिर भी वाल्मीकिजी  
 क्या हैं, जिन्दगीने सो बरौड झलकाते आपके धरिबका वर्णन किया है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ हे श्रमो ! जो कुछ  
 वाल्मीकिजीने किया है, सो सब आपकी कृपा है । श्रीरामदास कहते हैं कि इतना कहकर समस्त देव-  
 गणोंके साथ देवगुरु बृहस्पति स्वर्गलोकको चले गये और ब्रह्माजी भी रामसे पूछकर अपने सत्स्थलको लौट  
 गये । वाल्मीकिजी अपने आश्रम चित्रकूटको चल दिये ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ उसी समय सब लोग आनन्दके  
 साथ हँसने-खिलने और संसारमें पहलेकी तरह मंगलप्रय तथा उत्साहमय सारे कार्य करने लगें । सबसे लोग  
 श्रमभराके साथ परस्पर हँसी-दिल्लगी करने लगे । फिर भी अतिहास्य कोई नहीं करता था ॥ १७७ ॥ १७८ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचो रामलक्ष्मणकण्ठेयविरचिते 'व्याख्या' भाषाटीकासहिते  
 राज्यकाण्डे उत्तरार्धे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥



## पञ्चदशः सर्गः

( राज और राजराज्यकी विशेषतायें )

श्रीरामदास उवाच

रामराज्ये मदानन्दः सर्वानाम्जीवनान्भुवि । न कीनकुत्रापि कन्दर्ध्वार्ये निदामय तदा ॥ १ ॥  
 राज्यमासीदमापन्न मसृद्रवन्गहन्गु प्रपिभिर्हृष्टपुष्टैश्च राज्यं हाटकभूषणम् ॥ २ ॥  
 संजुष्टमिष्टापूर्तानां धर्षणां नित्यकर्तृभिः मदा यंपन्नगम्य च मुनिरं क्षेत्रमकुलम् ॥ ३ ॥  
 सुदेश सुवर्ज सुखं सुशृणु बहुगोधनम् । देशः जनानां च गजिभिः परिगजितम् ॥ ४ ॥  
 सुगुणं यत्र वै ग्रामाः सुनविर्नादगतिनाः । सुपुष्टकृतिभेद्यतः सुसदाकलपादवाः ॥ ५ ॥  
 सुपद्मार्निककाभारा राजन्ते यत्र भूमयः । मदाभा निम्नगारा नरेरमन्त्रि न मानवाः ॥ ६ ॥  
 कुलान्येव कुलीनानि न चान्वापधनानि च । निम्नरो यत्र नार्णि न पिठन्मु च कर्हिचिन् ॥ ७ ॥  
 नयः कुटिलगामिन्यो न यत्र विषये प्रजाः । तमोयुक्ताः क्षत्रा यत्र बहुकेषु न मानवाः ॥ ८ ॥  
 रजोपुजः स्त्रियो यत्र न धर्मवद्व्या नराः । धर्मगन्धो यत्रास्ति तदा नैव च भोजनान् ॥ ९ ॥  
 अनयस्यास्पदं यत्र न च वै राजद्रूपः । दण्डः पशुकुटिलगान्धवन्नगजिषु ॥ १० ॥  
 आतपत्रेषु नान्यत्र कचिन् कोपोऽपराधजः । अन्यत्राक्षकद्वन्द्वेभ्यः चैव च पार्श्वेयनम् ॥ ११ ॥  
 आसिका एव दृश्यन्ते यत्र पार्श्वपाणयः । दृश्यन्तः स्वामध्या एव दृश्यन् ॥ १२ ॥

श्रीरामदास बाने—हे शिष्य रामचन्द्रजीक राज्यमें समाप्त के सब राजोंका सदा अनन्द ? अनन्द रहता था । उस समय न कहीं चांग होता, न सड़क जगड़ा होता, न काह किसीको निलाना करता और न कोई किसीसे डरता था ॥ १ ॥ राज्य था उस समय शान्तिपूर्ण रहित और विषय प्रकारके बाहुन तथा सेनासं परिपूर्ण था । रामराज्यमें अर्पणगुण हृष्टपुष्ट और राज्यक रहनेवाले राजा सत्त-वादीके गहनोंसे लदे रहने थे । इष्ट-आपूत आदि घासिक कृत्य हान रहने थे और सारसत्त धान्यसं परिपूर्ण रहा कन्त थे ॥ २ ॥ ३ ॥ गाव यह हे कि उस समय ममस्त राजा सुख था, प्रजा प्रसन्न थी और रहान्त-रहान उसका था । कौआके चरनेको सुन्दर वास उपगत था । न, यनक अधिकता था । सारा देश दशावर्षसे भरा पड़ा था ॥ ४ ॥ उस राज्यक सब गांवमें यज्ञक सुन्दर पुष गड हुए थे । प्रजाक सब लोग छन धान्यसं परिपूर्ण रहने थे और अन्धे-अन्धे कुन्ते तथा खद फर दनवान कृषम वर्गोचाम सारा राज्य भरा रहता था ॥ ५ ॥ सदा बहुनवालों कितना ही मर्दों राज्यकी भूमिपर बहु रहा थी । ऐस ही कुछ स्थान बचे नही कि मनुष्योंका निवास नही था । बाकी सारा पृथ्वी मनुष्याय भरा था ॥ ६ ॥ उस समयके सभी मनुष्य कुलीन थे । अन्याय नही होता था और धर्मकी कमी नही रहती थी । उस समय विषयोम विध्वंस ( लम्बा ) दीखता था, किन्तु परिश्रमोंमें विध्वंस ( लम्बी भूल ) नही रहता था ॥ ७ ॥ उस समय दण्डमें कुटिल ( टूटा बंडो ) बहुनवालों नर्दों था, किन्तु प्रजा कुटिलता ( दृष्टता ) से भरा था वचा दृई थी । कृष्णपक्षकी रात्रिमें केवल तम ( अंधकार ) था, मनुष्योंमें तम ( ताश्म गुण ) नही दीखता था । योना सार मनुष्य उस समय सात्त्विक थे ॥ ८ ॥ स्त्रियों रजोयुक्त ( रजस्वला ) होती थीं, पुरुष रजोयुक्त ( गजस गुणयुक्त ) नही थे । उस समय राज्यके लोग पैसेसे (अन्ध, अन्धे नही) थे, किन्तु अन्ध (अन्ध) से कोई अन्ध नही था । अर्थात् सब लोग जाने-धीनमें सबी दीखते थे । उस समय राजपुरुषों ( अधिकारियों ) में अन्याय नही दीखता था । दण्ड केवल कुल्हाड़ी, मृगाल तथा पत्थों ही में दीखता था । प्रजापर राजाको दण्डप्रयोगकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी ॥ ९ ॥ १० ॥ सन्ताप ( धाम ) केवल छनगियोंपर रहता था । रामराज्यका प्रजाम सन्ताप मानसिक दुःख नही रहता था । केवल रथ हाकिमोंवाले सारथियोंके हादम गाजा ( घोड़े या बैलकी रास ) रहता था, किन्तु प्रजाके किसी मनुष्यको पाश ( काँतीका दण्ड ) मिलता नही देखा गया । जटता ( ठंडक ) की बात केवल जलमें रहती थी ।

कठोऽहं यत्र गोमन्त्रिनो न नाम्नाः शीघ्रैश्च यत्रास्ति कुष्ठशानो न मानवे ॥१३॥  
 श्रेयोऽर्थस्तस्मै रत्नेषु शर्म मूर्तिरेषु वै । कंसः स त्विकमाशेत्यो न भयान्क्वपि कस्यचित् ॥१४॥  
 मरुतः कामता यत्र दामिदृश कटुष्वयम् । दुर्लभस्य पानकस्य सुकृतं न च पस्तुनः ॥१५॥  
 इमा एव प्रसन्ना वै युद्धाचारान्तेलाक्षये । दानदानशतपत्रा दुर्मयेव हि कण्टकाः ॥१६॥  
 जनेष्वेव बहगा वै न कस्यचिदुरःस्थिर्ह्यसि । शेषेषु गुणवैभवेण वन्द्योक्तिः पुस्तके दृढा ॥१७॥  
 दण्डव्याप सदैवास्ति यत्र शशुषा जने । दण्डवानां सदा यत्र कृतवन्त्यामकर्मणाम् ॥१८॥  
 मर्मणाश्चास्केष्वेव भिक्षुका व्रजभारणाः । यत्र क्षयणका एव दृश्यन्ते मलधारिणः ॥१९॥  
 प्राया मन्त्रिणा एव यत्र चन्द्रवृन्तयः । इन्द्रादिपुण्ड्रैश्च रामा राज्यशशमः सः ॥२०॥  
 धर्मण रजधर्मज्ञः सीतासमः प्रतापवान् । रामचन्द्रमयोऽप्याया मुनिबलम् ॥२१॥  
 विश्वस्य राजन् नो तौ विश्वतां पानेन त्विन्द्र । पञ्चमकं महाबुद्धं यत्रा धमण पालयन् ॥२२॥  
 तत्पक्ष्मिदं स दुर्हृदो हृदि नेत्रयोः । रामचन्द्रदृग् गोमन्त्रानसेषु स्वकेष्वपि ॥२३॥  
 अत्र पृष्ठमासुडलान् कादण्ड कलधन्यम् । पलायमानैर्गलेऽपि शत्रुर्मन्यमलाहकैः ॥२४॥  
 स धर्मगजादात्र धर्माधर्मविवेचकः । यदण्डसदृशयन्त्रानो दण्डाश्च परिदण्डयन् ॥२५॥  
 पार्श्वे पाशयाचकं वैरेचकं त्रिदृगम् । मोक्षपुण्यव्रजनाथासौ गिराशुमवर्द्धनः ॥२६॥  
 जगन्प्राणममाम्बु जगन्प्राणनन्पमः । राजराजः स एवाधुनमर्षेण धनदः सताम् ॥२७॥

किसी मनुष्यमें ब्रह्मा ( मूर्ति ) नहीं थी । केवल मित्राकी वरमन्त्र दुर्बलता रहती थी, मनुष्योंके हृदयमें नहीं ॥१३॥१४॥ कठारना शिवशक्त स्वरूप बना था, मन्त्रोंके प्रभाव नहीं । अत्र शीघ्रशोभ कृत् ( कूट औषधिविज्ञाप ) का याव दाखला था, किसी मनुष्यमें कुम्भराग नहीं था ॥१५॥ मंत्र ( छिद्र ) केवल रत्नोंमें रहता था । शूल ( छानी ) केवल मूर्ति बनानेवाले कारागराके हीनमें रहता था । केवल सान्त्वक भावके उदय होनेपर लोगोंको कम्प होता था—अपने नहीं । दुर्लभता यातकका था और । इनमें कोई वस्तु अलभ्य नहीं थी ॥१४॥१५॥ मरुतवाले हाथा होते थे, मनुष्य नहीं । युद्ध जनक लक्ष्मण ही जाता था । दानहृति ( मदके प्रवाहका स्फा जाना ) केवल हाथियामें था । वृक्षाम ही कलध ( काँटे ) रहते थे ॥१६॥ मनुष्योंमें विज्ञान होता था, मनुष्य किसीकी वरस्यलो ( छाना ) ऐसा नहीं देता । राम, जो सीताके साथ रहता है । केवल बाणाम गुणविभव ( श्रद्धावाका विषय ) था, दृष्टव्योक्ति ( काँटन वरमन्त्र ) यत्र । पुस्तकोंके लिए थी ॥१७॥ शिवमतके लिए केवल दण्डव्याप किया जाता था । रामचन्द्रमयोऽप्याया मुनिबलम् । यत्र जाता था, केवल मन्त्रासदोंमें दण्डवर्ता । दण्डग्रहण-सम्बन्धा दाखल न होने । ॥१८॥१९॥ यत्र क्षयणका यत्र प्रजापे कोई मागण ( भिखारी ) नहीं था । केवल ब्रह्मावारा भिक्षुक था । यत्र क्षयणका यत्र प्रजापे । लक्ष्मण ( चक्र वरुण ) धारी थे ॥१९॥ प्राय धीरोम वंशरता दाखला था । इस प्रवृत्तिके दृष्टान्त रामचन्द्रजी शश्वर करते थे ॥२०॥ धर्मका उत्तर जाननेवाले प्रतापशाली रामचन्द्रजी उनसे ब्रह्म दान तक त्रिद्विदसावर उग्र किया, उन्होंने अनेक प्रकारकी साहसास सुसज्जित करके अश्वारोही जानने राजधानी खाने और धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हुए प्रजाकी मलाभाति उन्नति का ॥२१॥२२॥ वे शशुषाके हृदयमें सदा सुखा भाति लपते थे और मित्रोंके हृदयमें धर्मका तरीह ईश्वर पहुँचाते थे । इन्द्रके समान समगणनाम अपना धनुष चमकाते हुए मन्त्रमालास्वी मेधोंका भाग देते थे । ऐसा बराबर देखा गया है, महाराज रामचन्द्रजी धर्मराजकी तरह भलीभाँति धर्मअधर्मकी विवेचना करके काम करते थे । जो दण्डके योग्य नहीं होते थे, उसे दण्ड नहीं देते थे और जो दण्डके योग्य होता, उसे अवश्य दण्ड देते थे । शत्रुओंके समुद्रकी यम राजकी तरह उन्होंने वीर रक्ता था । रिपुस्त्री राक्षसोंका भी उपकार करके रामचन्द्रजी संसारके सब महात्माओं को उग्र पक्षपर पहुँच चुके थे ॥२३-२६॥ रामचन्द्रजी रक्षार्थे तन्त्र रामचन्द्रजी जानके प्राण समान थे । अच्छे मनुष्योंकी धनकी सहायता देकर वे स्वयं राजराज ( कुंवर ) हो रहे थे । शत्रुओंको भय दिखाकर रुद्र बन गये थे । यही कारण था कि जिससे

स एव कद्रुमूर्तिश्च प्रैक्षितः शिषुभीषणे । विधेदेवाप्तनर्षं तु स्तुवन्ति च भजन्ति च ॥२८॥  
 अक्षान्यः स हि पाष्यानां वसुभ्यो वसुनाधिकः । प्रथमं विप्रदधो दत्तनोऽजस्ररूपवृक् ॥२९॥  
 मरुद्गुणानगणयन्तुर्निर्वासोपयन् गुणैः । पयोऽयधरो यन्तु नरोऽयधरोऽपि ॥३०॥  
 अगर्वातिव गन्धर्वाण्यधकं नित्रगांनिभिः । रत्नयुक्श्चामि तद्गुणं स्वर्गमोदयम् ॥३१॥  
 नागा नागास्तिरश्चक्रुस्तस्य राज्ये चलायमः । दनुज मनुजाचारं कृत्वा न तु विपान्तर ॥३२॥  
 जाता गुह्यचरा यस्य गुह्यकाः पशितो मृषुः । ममेदस्यामहे राज्यं मुगम्वां स्वस्ववैभवेः ॥३३॥  
 ययं ततस्त्रद्विषये सुरागामोऽपि दूर्लभः । इत्युक्त्वा गन्धचक्रं मे मयः प्रायाः शिष्यविरैः ॥३४॥  
 अशिक्षयन्क्षितिपतेरिह यस्य तुङ्गमानः । अशुभश्चाशुभमिह पात्रपात्रे पथि स्थितः ॥३५॥  
 अगत्रान्यस्य तु मजासगस्यस्यु ययमपः । अत्रास्यन्तिनो दृष्ट्वाऽन्यत्रान्येऽपि दानिनः ॥३६॥  
 सदोऽजिरे च योद्धारो योद्धारश्च गणाजिरे । न शार्ङ्गं न जदः काभ्यं न शर्षः केनचिन्कचिद् ॥३७॥  
 न नेत्रविषये जाना विषये यस्य भूभुजः । मदा नष्टपदा इत्यस्तथा जष्टावदः प्रजाः ॥३८॥  
 कलवानेक एवास्ति त्रिदिवेऽपि दिर्वाकाम् । तस्य शोर्णाभृतः शोण्यां जराः सर्वे कलालयाः ॥३९॥  
 एक एव हि कामोऽस्ति स्वर्गं मोक्षं कृत्व ननः । माह्वेन कृत्व मयः सर्वे कामा हि नङ्गवि ॥४०॥  
 तस्योपवर्तनेऽप्येको न भूनां मोत्रभिन्काचिन् । स्वयं स्वयंमदार्माज्ञां गोत्राभिन्काचिन् ॥४१॥  
 सयी च तस्य विषये कोऽप्यार्काणि न केनचिन् । त्रिदिवे अपानाधः पयो पक्षे अपिप्यते ॥४२॥  
 नाके नवग्रहाः भानि दशास्त्रस्यानवग्रहाः । हिमयमधः दान्ताकिं चक्र एव मकाजते ॥४३॥  
 हिरण्यमर्भाः सर्वेषां तर्फीगणां महालयाः । मयाश्च एतः मरुतः केऽनन्तं मयः श्रुमान् ॥४४॥

एव निषेदेन उनकी स्तुति और भजन करने के लिये सागर ( इन्द्राण्यन्त विषय ) के लिए भी अक्षान्य के ।  
 वसु ( वन ) की अधिकतासे वे अष्टवसुओं भी थे । उनमें से नाशान स्वरूप के और अश्विनीकुमारके  
 समान रुद्रा सुन्दर रूप धारण किये रहते थे । ॥ २८-२९ ॥ वे अपने समाचारण पराक्रमसे मानदमणोंसे भी  
 थे । कितने ही सद्युगोंसे वे छलास तृषितांकी समस्त कर नर । वे मन्तरावृत्त धारा ( शिरोमणि ) के  
 और अपने कीतके साधुसंख्योत गन्धर्वाका भी मन्त्र पत्र कर लिये थे । संसारभरक यक्षनाकस स्वर्गके  
 समान कमलाय गमक कितनी रक्षा करने थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ एतत्तत्तत्त हाथी रामके दृष्टिसमूहसे पराजित  
 हो गये थे । सारी दुनियाके राजन मनुष्यका नष्ट कराने का प्रयत्न करने थे ॥ ३२ ॥ उनके गुप्तचर  
 राज्यके मनुष्योंमें घुसकर अपना मन्त्र विद्वत्करण के लिए मनुष्यों ( मणिभट्ट दिव्य ) से भी बानी मार चुके थे ।  
 इन्द्रादि देवता रामके समीप जाकर कहते थे— 'गच्छ' । 'मया पामः' । 'वत्त वैभवं है, वह सब लवाकर हम  
 आपकी सेवा-गुह्या करनेको प्रस्तुत है' ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस मया मया 'ममेदस्यामहे राज्यं मुगम्वां स्वस्ववैभवेः'  
 सिखाते थे, जिसके पर्यन्तके समान ऊंचे बड़े-बड़े हाथियोंका अत्ररुदानित । (मन्त्र मद्रप्रवाह संयवा दानशीलता)  
 देखकर संसारके कृपण मनुष्य भी दाना बन गये थे । जिसका राजनमाके बुद्धिमान परिश्रम और सेनाके बड़े-  
 बड़े योद्धा शास्त्र तथा रणसे कभी पराजित नहीं हुए थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उन रामके राज्यमें जैसे राज नहीं नहीं  
 दीसता था, वैसे ही प्रजामें कभी किसी प्रकारकी विपत्ति भी नहीं दिखायी देती थी ॥ ३७ ॥ देवताओंके स्वर्ग  
 जैसे राज्यमें केवल एक कलावान् चन्द्रमा था, किन्तु रामके राज्यमें मरु शून्य कलाके चण्डाल थे । मरुगम  
 केवल एक कामदेव था, सो भी मन्त्र । अर्वाणि विना मन्त्रका । किन्तु रामराज्यके सारे मनुष्य पापापाप  
 कामदेव ( जैसे सुन्दर ) थे । रामके राज्यमें श्रीरज्जुया भी कोई गन्धधन । जानिसे बहिष्कृत ) मनुष्य  
 नहीं मिल सकला था, किन्तु स्वर्गमें देवताओंके राजा स्वर्ग गोचरिन् ( दृष्ट ) थे ॥ ३८-४१ ॥ राक्ष-  
 गणमें कोई सयी ( अपरोगी ) नहीं मृत गया, किन्तु स्वर्गमें चन्द्रमा एक पक्षम भव होन  
 पड़े हैं ॥ ४२ ॥ स्वर्गमें सर्वदा नौ ग्रह रहते हैं, किन्तु रामका राज्य अनवग्रह ( वानो आपकी

मदपुत्राः प्रसिद्धा बहुशामन्पूर्वाभ्यः । मदपुत्रा यथा स्वर्भूस्तन्पुत्रादि मदपुत्राः ॥४५॥  
 एकैव पद्मा वैकुण्ठे तीयते विष्णुबलभा । तस्यागणां सृष्टेष्वात्म्यलपद्मा पृथक् पृथक् ॥४६॥  
 अर्नतयश्चलद्वापा न राजपुत्राः कर्त्तव्यः । गृहे गृहेऽत्र धनदा नाक रकोऽन्यकापतिः ॥४७॥  
 एव रामो महान् श्रेष्ठः शौर्यगुणशोभनः । मौभाष्यशोभो रुपाक्ष्यः शौर्योदायगुणान्वितः ॥४८॥  
 विजितानेकममरः श्राममाप श्यागणः । नानारजितवर्माग उग्रः परपुत्रजयः ॥४९॥  
 अनेकगुणमपूर्णाः पूर्णचन्द्रनिभमुतेः । सनतावसृष्टिभक्तमूर्ध्वजः धिनिर्णमः ॥५०॥  
 प्रजापालनमपन्नः कोशप्रार्णानभृगुरः । शर्वनाकानचगुणयुगलप्यानतन्पुत्रः ॥५१॥  
 विश्वेश्वरकपालपपरिक्षिप्तदिनक्षप । शीतलमक्षालितपदम्पर्काडापरिकोपितः ॥५२॥  
 अशाम राज्यं धर्मेण बन्धुपुत्रममन्वित । रामे श्रामनि माकेनपुर्णं राज्यं सुखेन वै ॥५३॥  
 हृष्टाः पुष्टाः प्रजाः सर्वाः कलवंतोऽमवन्नगाः । आमन्मदा सुकुसुमैर्विभवाः पौरुषदा तृणाश्च ॥५४॥  
 एकपन्नामनाः सर्वे पुमामन्मम्य मण्डले । नारीषु कर्त्तव्यनैवामीदपन्निवर्धमिणी ॥५५॥  
 अनधीनो न विप्रोऽभून्न शूरो नैव बाहुजः । वश्योऽनभिज्ञो नैवामीदधोऽर्जनकर्मसु ॥५६॥  
 अनन्यकृतयः शूरा दिजगुभूषणं प्रति । तस्य राष्ट्रं समभवन्मनामस्य भूपतेः ॥५७॥  
 अविष्कृतमहाचर्याभिद्राष्ट्रे मरुचारिणः । निर्यं गुरुकुलार्थीना वेदग्रहणभरगः ॥५८॥

लडाई-सागड़ेसे रहित । य । स्वर्गमें केवल एक हिरण्यगर्भ ( विष्णुभगवान् ) रहते हैं, किन्तु रामराज्यके प्रत्येक घर हिरण्यगर्भ से अर्थात् उनमें गुर्गों चरें हुए थे । स्वर्गमें केवल एक सन्नाभ अशुमान् ( सूर्य ) है, किन्तु रामके राज्यमें प्रत्येक व्यक्ति अशुमान् ( केशके कपड़े पहननेवाले ) और तातकी बीज बड़े, विनये ही चोड़ बाँधनेवाले लोग विद्यमान थे । जिन तरह स्वर्गमें अच्छी-अच्छी अम्बरगर्भ हैं, उसी तरह रामके राज्यमें भी बहुत-सी अच्छी-अच्छी अम्बरगर्भ रहती थीं । ४५-४६ । ऐसा कहा जाता है कि स्वर्गमें केवल एक विष्णुकी प्रिया पद्मा ( लक्ष्मी ) है किन्तु रामके राज्यमें सबहोसे या अधिक पद्मपति ( पद्मसंस्पर्क स्वयं रहनेवाले ) लोग थे । रामके राज्यमें कर्म्म किसी प्रकारका प्रकाश नहीं पडा और ऐसे रामपुत्र नहीं थे, जो कान्तिविहीन रहे हों । स्वर्गमें कपल वृक्ष ( सेन दमके व्यवहारी ) हैं किन्तु रामके राज्यमें अतन्त्र धनद थे ॥ ४६ । ४७ । इस तरह रामचाह अनेक मन्त्रगुणोंमें पुत्र और सर्वश्रेष्ठ थे । रामचन्द्र सौभाग्य, स्वर्ग शौर्य और शौर्य आदि गुणोंसे युक्त थे । अनेक युद्धोंमें उन्होंने विजय पायी थी और संसारकी दृग्दृष्टताको उन्होंने लक्ष्मीके हृष्टा सौख्य दिया था । उनके शममागड़े बाँतजी बँडो रहती थी । इस कारण उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी । वे सबसे उग्र तथा शत्रुओंके नगरको विजय करनेमें सिद्धहस्त थे । अनेक गुणोंमें एकत्रित होमते थे धर्म हो चुके थे और पूर्ण चन्द्रमाके समान उनकी कान्ति थी । सर्वदा स्वमूर्ध ( राजा ) नान करनेसे उनके केश घीते रहते थे और सब राजओष श्रेष्ठ माने जा चुके थे ॥ ४८-५० ॥ प्रजाका पोस्न करतम वे पणतया दत्तचित्त रहते थे और स्वजानके धनस आहुणोंका प्रसन्न रहते थे । वे सदा निर्विके ध्यानम तत्पर रहते थे । वे सर्वदा विजयाका कथाई कहन मनेते दिन रात विनान थे । सीता उनके पंर सोया करती थी । उनके साथ विविध प्रकारका कोड़ावे करनेसे राम प्रसन्न रहते थे ॥ ५१ ५२ ॥ उन्होंने भाइयों और पुत्रोंके साथ रहकर अच्छी तरह राज किया । रामके शासनकालमें प्रजा सुखी तथा हृष्ट-पुष्ट रहती थी और वृक्ष फल-फूलसे लदे रहनेके कारण क्रूर रहने और मनुष्योंको मुर्खी रहते थे ॥ ५३ । ५४ ॥ उनके राज्यमें सब पुष्ट एक्यत्नयता थे और मित्रोंमें भी कोई ऐसी नहीं थी, जो अपने पालिपल्लवमका ध्यान न करती हो ॥ ५५ ॥ उस समय कोई ऐसा शत्रुण नहीं था, जो बिना रक्षा हो और कोई अनिध भी ऐसा नहीं था, जो छोड़ा न रहा हो । कोई ऐसा वंश्य नहीं था, जो धन कमानेकी कला-से अनभिज्ञ हो । राजा रामके शासनकालमें राज्य धर्मके शूर और किसी प्रकारकी कृति न करके एकमात्र द्विजों ( ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ) की सेवामें लगे रहते थे । उनके राज्यमें ब्राह्मणोंको राजा करते हुए

अन्येऽनुलोमजन्मानः प्रतिलोमभरा मणि । स्वधारण्यस्यो द्रष्टुं कृताश्चर्यं न तस्यतुः ॥५९॥  
 अनपस्यो न तद्वाष्टं धनहीनस्तु कोऽपि न विरुद्धमेव ना कश्चिदकालमृतिमाह्व ॥६०॥  
 न श्रुता नैव वाचादा वञ्चका नो न द्विसुखा । न पार्वडा नैव मडा न रडा नैव शीडिकाः ॥६१॥  
 अभिषोषा हि सर्वत्र स्रज्वाद्ः पदे पद । सर्वत्र सुभगालावा मुता मगलपूर्णयः ॥६२॥  
 वीणावेषुप्रचाराश्च मृगाधुरम्बनाः । सोमपानं विनाऽन्यत्र पानगोष्ठ्या न कर्णगा ॥६३॥  
 मांसाश्लिनः पुरोडाश नैवज्यत्र कथंचन न दूगंदग्निो यथाधर्मिणो न च तस्कगः ॥६४॥  
 पुत्रस्य पित्रोः पदयोः पूजन देवपूजनम् । उपवासो व्रत तीर्थ देशनाराधन परम् ॥६५॥  
 नारीणां मनुष्ययोः स्वर्चन सदचःश्रुतिः । यश्चरति सततं निजमत्रजमादरान् ॥६६॥  
 समर्चयति मुदिता भूयाः शमिदास्तुजम् । होतवर्णोऽयवर्णो वषयेने गुणगौरवः ॥६७॥  
 वरिचस्पति भूवोऽपि त्रिकाल भूमिदेवताः । सर्वत्र सर्वं विद्वान्मः समर्चये मनोरथैः ॥६८॥  
 विद्वद्भिष तपानिष्ठास्नपोनिर्द्वैजनेद्रियाः । जिनेऽप्येर्ताननिष्ठा क्षान्तिमिः चित्रलिभिः ॥६९॥  
 मंत्रपूतं महाहै च विधियुक्तं सुमस्कृतम् । वादवानां मन्त्राणां च हृयनेऽर्हानिष्ठ हरिः ॥७०॥  
 वागीकृष्टडागाभावागमणां परे परे । शुचिभिर्द्रव्यसंसारैः कर्तव्यं यत्र भूरिशः ॥७१॥  
 तद्वाष्टं दृष्टपुष्टाश्च दृष्टवन्त्रे सर्वज्ञानयः । भविष्यत्वेवामपन्ना विना मृगधूमनिकान् ॥७२॥  
 यस्य राज्ये पशुकास्तु च वन्य आर्नं राष्ट्रके । पशवस्तस्मैक एव शुभ्रः स्वर्गं गतो महान् ॥७३॥  
 चतुर्दन्तो रामराज्ये सदन्नागाः सहस्रशः । इन्द्रधर्मावुभावेन शोभेते गगनागणे ॥७४॥  
 रामराज्येऽत्र नारीणां सांभतस्था मनेकशः । वृषोऽस्म्येकः स कृतार्थो भीषते परमः मित्रः ॥७५॥

बुरुकुलमें रहकर केराध्ययन करते थे । ५९-६० ॥ अनुलोम जातिमें उत्पन्न स्त्रीगोत्रे यह कभी नहीं चला कि वे अपने दर्जेसे ऊँचे पद रहें । रामके राज्य काई सत्तानविहान तथा निघन नहीं था और कोई ऐसा भी नहीं था, जो अपनी मर्त्यादाके विरुद्ध आचरण करनेवाला हो । उनके राज्यमें कोई मन्त्राधुनिक धर्म नहीं बन सका । उस समय में कोई शत्रु, न चक्रवाती, न चंचक, न द्विसक, न पन्थको, न शीक, न स्त्रीविह्वल और न घुर्त ही था ॥ ५९-६१ ॥ पद पदपर वेदचरित तथा शास्त्रमन्त्रोंका वाद-विवाद मुनारा देता था । वारो और अच्यो-अच्यो बातें हमी-खर्गोके मालगोन, वीणा वगी तथा पुष्पाका मीठा स्वर मुनार्थ देता था । सोमपानके सिवाय और किसी मादक वस्तुके खाने-पीनेकी बात नहीं मुनारी देती थी । यज्ञके अतिथि दूसरे समयपर मांस खानेवाले मनुष्य, ब्रह्मर्षि, अश्वर्षी और चौर वही भी नहीं थे ॥ ६२-६४ ॥ एक लिए माता-पिताके पदपूजन ही देवपूजन, उपवास व्रत, देवनाग्ययन और तीर्थ था । नारीके लिए आने-जानेके चरण पूजन और उनकी बातें वेदवाक्य सहज मानना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म माना जाता था । सदा छंटा पाई बड़े-छेईकी पूजा करता था । सबक प्रत्यक्ष मनमें अपने आत्मिकको सेवा करता था । नीच जातिका मनुष्य अपनेसे ऊँचे वर्णवालेका पुण-गौरव बखानता था ॥ ६१-६३ ॥ सब लोग ब्राह्मणकी पूजा करते और विद्वानोंके मनोन्मत्त पूजकानेकी उद्यत रहते थे । विद्वान्में तपस्वी, तपस्वीके जिनद्विष तथा जिनद्विषसे जो जानी मनुष्य श्रेष्ठ माना जाता था और जानीये भी संन्यासी उच्च पदपर माने जाते थे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सदा मंत्रसंवित्र किया हुआ हवि विप्रोंके मुखागिने देता रहता था ॥ ७० ॥ बाल्मी, कूप सदा तथा वेद-व्यपार स्त्रीका रगवानेवाले और पवित्र इन्धोंको एकत्र करके पञ्चादि शुभ कार्य करनेवाले विशने ही वर्मात्मा कहा करते थे ॥ ७१ ॥ रामके राज्यमें सब जातिके मनुष्य दृष्टपुष्ट दिखायी पड़ने थे । शिकारी तथा सैनिकोंके सिवाय सब लोग ब्राह्मणीय कामोंमें लगे हुए थे । उनके राज्यमें लक्ष्मीकी चंचलता केवल वलाकामे रहती थी, राष्ट्रमें नहीं । स्वर्गमें केवल एक ऐरावत हाथी बड़ा, चतुर्दन्त और रवेत वर्णका है । किन्तु रामके राज्यमें हजारों हाथी चार दाँतवाले तथा श्रेष्ठ वर्णके थे । स्वर्गमें केवल सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश करती हैं, किन्तु रामराज्यकी स्थियोंके केन्द्रमें ( राजके ) बैसे-बैसे अनेक चन्द्रमा-सूर्य चमकते दिखाई देते थे ॥ ७२-७४ ॥ मुना

सहस्रं रामराज्ये कृषिकर्मणि योजिताः । एणोऽस्त्येकचद्रलोके कृष्णवर्णो मनोरमः ॥७६॥  
 सहस्रं शिशूनां हि क्रीडायां संप्रनेकशः । अप्सराःसु वरा स्वर्गे गीयते सा तिलोत्तमा ॥७७॥  
 गेहे गेहे सति नार्यः सर्वास्त्वत्र तिलोत्तमाः । रुक्मभूषणभूषाद्या गतिन् पुरनिःस्वनाः ॥७८॥  
 सहस्राक्षोऽस्त्येक एव महान्स्वर्गः प्रगीयते । रामराज्ये चामराणि महत्ताक्षीष्यनेकशः ॥७९॥  
 सुधापानं त्वेकमेव स्वर्गेऽस्ति परमं वरम् । तद्वन्नानासाक्षा च पानमत्र गृहे गृहे ॥८०॥  
 सुधापानेन सहृष्टा यथा स्वर्गसुरोत्तमाः । दयिताऽधरपानेन तथाऽत्र सुखिनो जनः ॥८१॥  
 सागरेष्वेव सा दृष्टा सर्वादा सर्वदा नरैः । रामराज्येऽत्र चालेषु सर्वादा सर्वदेक्ष्यते ॥८२॥  
 विचरति गवाक्षुदाः भूयते पार्थिवाः पुरा । पौरा जानपदाः सर्वे विचरन्त्यत्र ते गजैः ॥८३॥  
 पूर्वं भुवं शिशूनां हि चुंबनं दिवसे मुहुः । रामराज्येऽनिशं नारीचुवनानि मुहुर्मुहुः ॥८४॥  
 क्रीडा परिमलद्रव्यैः फाल्गुनं सा श्रुता पुनः । क्रीडा परिमलद्रव्यैः पौराश्चक्रः सदाऽत्र ते ॥८५॥  
 एवं सद्रामराज्यं हि महामगलसंयुतम् । आसीदनुपमेयं च श्रवणान्मंरालप्रदम् ॥८६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे कात्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तरार्धे रामराज्यधर्पणं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

## षोडशः सर्गः

( रामका लव-कुश तथा भ्राताभौको राजनीतिक उपदेश )

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवा श्रीमान्समाहूय कुशं लवम् । लक्ष्मण भरतं चापि ऋत्रुघ्नं रहसि स्थितः । १ ॥

भाता है कि कैलासपर एक ऐसा बेल है, जो अतिशय मयल वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें वैसे वैसे कितने ही बेल हल जोतनेका काम करते थे । पन्द्रलाकमें एक ऐसा मृग है, जो बड़ा सुन्दर और कृष्ण वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें लड़कोंको खेलनेके लिए वैसे-वैसे कितने ही मृग रूहा करते थे । सुनते हैं कि स्वर्गलोकमें कोई तिलोत्तमा नामकी बड़ी सुन्दरी अपना है ॥ ७५-७७ ॥ किन्तु रामराज्यमें घर-घरकी स्त्रियाँ तिलोत्तमाके समान सुन्दरी तथा सुवर्णके मूषणासे भूषित होकर चलते समय नूपुरका कनसुन पाव करती चलती थीं ॥ ७८ ॥ सुनते हैं कि स्वर्गमें केवल एक सहस्राक्ष ( हज़ार ) है, किन्तु रामके यहाँ मनेको सहस्राक्ष चमर चलते थे । स्वर्गमें केवल अमृत पान करनेकी वस्तु है और रामराज्यमें घर-घर विविध प्रकारकी रसमयी पेय वस्तुएँ विद्यमान रहा करती थीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ भित्त तरङ्ग अमृतको पीकर देवता स्वर्गमें प्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार स्त्रीके अघरोष्ठका पान करके अशोष्माके सब मनुष्य प्रसन्न रहते थे ॥ ८१ ॥ आजतक संसारी मनुष्योंने केवल समुद्रकी भर्यादा देखी थी ( वानी यह अपनी सोमाके बाहर जाता नहीं देखा गया ), किन्तु रामके राज्यमें छोटे-छोटे बच्चोंमें भी भर्यादा दिखायी देती थीं ॥ ८२ ॥ सुनते हैं कि पहले राजा ही लोग हाथियोंपर सवार होकर इधर-उधर घूमते-फिरते थे, किन्तु रामके राज्यमें सारे पुरुषासो और देशवासी हाथियोंपर सवार होकर घूमते फिरते दिखायी देते थे ॥ ८३ ॥ सुनते हैं कि पहले लोग बच्चोंको ही बार-बार घूमते थे किन्तु रामके राज्य स्त्रियोंको भी लोग बड़े आनन्दके साथ दिन रातमें खनेको बार घूमते थे ॥ ८४ ॥ सुना जाता है कि पहले फाल्गुनके महीनेमें ही रङ्ग तथा सुगन्धित वस्तुएँ एक-दूसरेपर छलते हुए लोग फाग खेलते थे, किन्तु रामके राज्यमें लोग सर्वदा वैसे खेल खेलते थे । ८५ ॥ इस प्रकार रामका राज्य महामङ्गलमय अनुसमेय और नाममय सुननेसे ही कल्याणदायक हो रहा था ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे पंच रामतेजपाब्देयकृतं ग्योत्स्ना नामाष्टाकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

श्रीरामदासने कहा कि एक बार श्रीमान् रामने एकान्तमें लव, कुश, लक्ष्मण, भरत तथा ऋत्रुघ्नको

राजनीतिं विस्तरेण शिक्षयामास साधुम् । मृणु वत्स कुशद्य त्वं नृप सर्वे लवादिक्ताः ॥ २ ॥  
 मृणुनात्र स्वस्थचित्ता राजनीतिं वदाम्यहम् । कुश त्वं पृथिवीपालो भविष्यसि गते मयि ॥ ३ ॥  
 वैकुण्ठं मृणु वस्माद्दं सात्वतानमना भव । अनृतं नैव वन्द्यं नृपेणा चिरर्जविना ॥ ४ ॥  
 नानिकासी न वै क्रोधी राजा यः सुखमहंति । परदारनिष्ठाज्यः सर्वथा पार्थिवेन हि ॥ ५ ॥  
 मत्स्यं शौचं दत्ता क्षातिरर्जुनं मधुरं वचः । द्विजगोयनिमद्भक्तिः सर्वमेतं शुभदा गुणाः ॥ ६ ॥  
 निद्रालस्यं मद्यपानं ह्यनं चाराग्ननाग्निः । अतिक््रीडाऽतिमृमया तप्त रोषा नृपस्य च ॥ ७ ॥  
 पुत्रवन्धालनीयाश्च प्रजा नृपतिना भुवि । पृथाशः कामाश्च राजा प्राद्याः सर्वेन हि ॥ ८ ॥  
 ज्ञेयं चारैः सदा वृत्तं पृथिव्याः पार्थिवेन वै । पाराष्ट्रे सदा दत्ता नानावेषविरूपिताः ॥ ९ ॥  
 पञ्च पंचायता औ औ प्रेषणोऽथ नृपेण हि । न विददसेन्पारकीयजने दूते नृगोचराः ॥ १० ॥  
 दण्डो मेदस्त्वया माम् दामं कालोचिनं खरेन् । स्वकार्यं माधयेषु कस्या काले ग्रामं नृपोऽहम् ॥ ११ ॥  
 मनसा विहितं कार्यं कथनीयं न कम्पयन् । कृत्वा कार्यं दर्शनीयं जनान्मत्रिजनानपि ॥ १२ ॥  
 मासे मासे स्वकोशस्य पगमर्शं नृपोत्तमैः । गृह्णीयः सर्वदैव विश्वमेतैर्वकेषु न ॥ १३ ॥  
 वर्षे वर्षे नगर्याश्च प्राकाशस्य नृपोत्तमैः । परिमार्शं पगमर्शः कार्यो यन्विजनैः सह ॥ १४ ॥  
 चतुर्मासेषु सखाणां मार्ग्याणां पार्थिवोत्तमैः । पगमर्शः सदा कोष्ठागारादीनां प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥  
 पञ्च पक्षे शाण्डानां तुरगाणां तथाऽष्टमि । दिवर्गैर्माममात्रेण वस्त्राणां पार्थिवोत्तमैः ॥ १६ ॥  
 पगमर्शः सदा कार्यः पिकादीनां विमिर्दिनैः । सीमानाग्ननानां च क्षण्यातैश्च नृपोत्तमैः ॥ १७ ॥  
 परामर्शः सदा कार्यस्तथा ज्ञानपदस्य च । मासे मासे स्वर्मन्यस्य वापीनामयत्नेन हि ॥ १८ ॥

वृत्ताया ॥ १ ॥ ऊर्ध्वे विस्तारपूर्वक राजनीतिकी शिक्षा इन हुए कहने लगे—हे वत्स कुश तथा मत्स्य आदिक  
 भ्राताओं । तुम लोग स्वस्थचित्त होकर मुनः । मैं तुम्हें राजनीतिकी शिक्षा दे रहा हूँ । हे कुश । मेरे वैकुण्ठ  
 चले जायेपर तुम राजा अभंग । इहलिये तुम विजय रात्रिमें मेरी शिक्षाको सुन स्वप्ना । जिस रात्राको  
 चिरकाल तक इस समारम्भ जोदित रहना हो, उस चाहिये कि वह नृत्य कला न बाले । २-४ ॥ जो राजा  
 कामी और क्रोधी मही होना, वही सुखस रत्न मवना है । राजाका चाहिये कि वह दूसरको स्वास्ते प्रेम न  
 करे ॥ ५ ॥ सत्य, शौच ( पवित्रता ), दत्ता, क्षमा स्वभावस कोमलता, मोक्ष वाते, शास्त्रानुसन्त  
 तथा सज्जनोपर श्रद्धा, ये सात गुण राजाके लिए परम कल्याणकारी है ॥ ६ ॥ निद्रा, मालस्य,  
 मद्यपान, ह्यन ( जुआ ), वेण्याभोग प्रेम, उग्रादा मन्त्र द और अधिक विकार सेवना, ये राजाके सात  
 दोष है ॥ ७ ॥ राजाको चाहिए कि वह राज्यकी प्रजाको पुत्रक समान पालन करे और उसमे आपका पक्षधर  
 कर सर्वदा लेता जाय ॥ ८ ॥ राजाका यह बर्तन्य है कि वह गुणवरी द्वारा राज्य भरका समाचार मालूम  
 करता रहे । दूसरे राजाके राज्यकी भी गति विधि देखनेके लिए वेध बदलकर पाँच पाँच या दस-दो दूत  
 नियुक्त कर दे अपने दूतोंके सिवाय किसी और व्यक्तिपर विश्वास न करे ॥ ९ ॥ १० । समय-समयपर  
 जैसा उचित समझे, साम-दान आदि नीतियोंका प्रयोग करता रहे । समय पाकर युक्तिके साथ अपना  
 कार्य सधम करे । ११ ॥ जो कार्य अपने मनमें मान, वह किसीसे न करे । स्वयं चुपचाप करता रहे ।  
 नौकरोंके विष्वासपर राजकाज न छोड़ दे । १२ ॥ महीने महीने अपने खजानेकी देख-भाल स्वयं करे ।  
 नौकरोंके ही विश्वासपर न छोड़ दे ॥ १३ ॥ साल-मासपर साद बदन मीरयके साथ नगरकी आदि  
 आदिकी भी जाँच करे ॥ १४ ॥ चार चार महानमे अपने शस्त्रों, मार्गों तथा कोठार आदिका निरीक्षण  
 करता रहे ॥ १५ ॥ एक एकमे या जाडवे राज हाथ छोड़े आदि देवे । महीने-महीने कपड़ोंकी देख-  
 रेख करे ॥ १६ ॥ प्रति तीसरे दिन अपने यहाँ पावे हुए सुगन्धोपल आदि पिण्डियोंकी देखे और हर  
 छठवें महीने अपने मीठापर नियुक्त अधिकारियोंकी निगरानी करे । सर्वथा अपने राज्यमें रहनेवाले  
 मनुष्योंपर शान रखे । महीने महीने सेवाकी देख-भाल करे और छठव महीने राज्यके कुर्त-बावली आदि

कार्यः पुष्पवाटिकानां मासे मासे नृपोत्तमैः । परामर्शः स्वयं गत्वाऽथ वा मन्त्रिजनोत्तमैः ॥१९॥  
 वर्षे वर्षे समुद्योगः पण्यसैरथवा त्रिमिः । मासैर्नृपेण स्वे गच्छे कार्यः सैन्येन यत्नतः ॥२०॥  
 देवानां भाषणानां च गुरुणा यतिनां तथा । अयंनोषो नैव कार्यः पार्थिवेन कदाऽपि हि ॥२१॥  
 द्रव्यादाय सदा पश्येन्स्वव्ययं तु निरीक्षयेत् । आदायस्य चतुर्थांशैर्व्ययः कार्यो नृपोत्तमैः ॥२२॥  
 मृतीयांशेन वा कार्यस्त्वर्धांशेन कदापि न ह्यहः । कार्यं मन्त्रिणस्य नानिकोपं समाचरेत् ॥२३॥  
 नातिमान्या मन्त्रिणस्य वर्षेर्नीयाः कदापि न । न विरोध्याः कदा राज्ञा दुर्गैरालम्ब्यैव च ॥२४॥  
 आकुशणां पट्टणानां दुर्गाणां गिरिवामिनाम् । अगण्यवामिनां मिथं तुषट्पापनिशामिनाम् ॥२५॥  
 सिन्धुतीरस्थितानां च नानादेशनिवामिनाम् । वर्षान्तरस्थितानां च द्वीपांतरनिवासिनाम् ॥२६॥  
 द्वीपे द्वीपे तृध्वर्षवामिनां पार्थिवोत्तमैः । परामर्शः सदा कार्यश्चरैः पक्षांतरेण हि ॥२७॥  
 पद्मप्रादुग्मरूपैः काश्यायाम्भारिभिः । अवभृतादिवैषश्च तथा कार्षाटिकोपमैः ॥२८॥  
 वणिग्पूषधरैर्दूर्तैर्दुर्तैः वंश नृपोत्तमैः । तत्र तत्राधिपाः सर्वेऽद्देऽद्दे कार्यास्तु नूतनाः ॥२९॥  
 एक एव चिरं राज्ञा न स्यान्व्यः सेवकः कचिन् । परमेष्ठ्यानि घेद्यनि द्रष्टव्यं स्ववलं सदा ॥३०॥  
 पराक्रान्तो दूतः स्वीयराष्ट्रे विलोकयेत् । पृष्टश्चेक्ष्व दण्ड्यः स परदूतं न शिष्ययेत् ॥३१॥  
 पादतो मोचनीयाः सम्मानेन मुपोत्तमैः । स्वसीमारक्षिणो दूताः शिष्यणीया मुहुर्मुहुः ॥३२॥  
 परदूतः कथं मुक्तः स्वीयराष्ट्रे पुरेऽथवा । अपारम्य सूक्ष्मदृष्ट्या द्रष्टव्यं चेति पार्थिवैः ॥३३॥  
 अश्वेभ्यः पार्श्वगौ च पश्चाद्भागस्य रक्षकम् । सेनापतिं मन्त्रिणं च स्वीयं प्रतिनिधिं तथा ॥३४॥  
 धृतं चामादृतं च दूतं निष्कटर्तितम् । दानमानैस्तोषयेच्च सदा राज्ञा सुवृद्धिना ॥३५॥  
 देशकालं बलं कीदृशं निवेदयन् नृपोत्तमैः । आदौ बृद्ध्या निरोध्याथ रिपोश्चापि परीक्षयेत् ॥३६॥

देसे ॥ १७ ॥ १८ ॥ महीने महीने बगोचोमे स्वयं जाकर देखभाल करे वा मन्त्रियोंको भेज दे ॥ १९ ॥  
 साल-साल भर काद, छठे अथवा तीसरे महीने मेनक हाथ-हाथ राजा अपने राज्यमें डींग बरे । इस बातका सदा ख्याल रख कि दलमात्रा, बहूनी, यतियों तथा मुसलमनोंमें किसी प्रकारका असंतोष न फैलने पाये ॥ २० ॥ २१ ॥ धनका आय-व्यय स्वयं देख और आयका अनुयोगमात्र व्यय करे । किसी बिकट समयमें आ जानेपर आयका मृतीयांश खर्च करे, किन्तु व्ययका आधा खर्च कभी भी न होने पाये । मन्त्रियोंकी सदा प्रसन्न रखे न विशेष कोष करे और न किसीसे विशेष प्रेम ही रखे । दुर्गकी रक्षा करनेवालोंके साथ कभी विशेष न करे ॥ २२-२४ ॥ खानोक पास रहनेवाले, राजधानीसे दूर किसी नगरमें रहनेवाले, दुर्ग तथा सर्वतन्त्रिवासी अंगलमें रहनेवाले, समुद्रके टापुओंमें निवास करनेवाले समुद्र-तटपर रहनेवाले, विदेशोंमें रहनेवाले, द्वीपान्तरके निवासियों तथा किसी भी देशके रहनेवाले लोगोंकी प्रत्येक वस्तुमें राजा देख भाल करता रहे ॥ २५-२७ ॥ धनरूपवाने, सम्यक्सेवेपचारी, अनपूत, वणिक् तथा नालाका बेग बनाकर दूसरेके राज्यमें घूमनेवाले मुतचरसे अन्य राष्ट्रका समाचार मालूम करता रहे । उन दूसरे-दूसरे देशोंमें प्रति वर्ष नये-नये अधिकारी बदलता जाय ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजाका यह उचित है कि किसी प्रदेशका अधिकारी बनाकर किसी नौकरकी उपादा त्रिनों तक उस प्रदेशमें न रहने दे । दूसरे राजाओंकी सेना तथा अपना सैन्यबल बराबर देखता रहे ॥ ३० ॥ यदि किसी दूसरे राष्ट्रका मुतचर अपने राष्ट्रमें दिखायी दे जाय तो उसे किसी प्रकारका दण्ड न दे । दूसरे राज्यके दूतको दण्ड न देना नीतिशास्त्रका नियम है । यदि दूसरे देशका दूत मिला जाय तो राजाको चाहिए कि उसे सम्मानपूर्वक छोड़ दे । अपने लोगोंमें रहने वाले निजी दूतोंको बराबर शिक्षा देना रहे । यदि दूसरे राष्ट्रका दूत मिला जाय तो राजाको चाहिए कि सूक्ष्मदृष्टिसे इस बातपर विचार करे कि उस देशके राजाने किस लिए मेरे राष्ट्रमें अपना दूत भेजा है ॥ ३१-३३ ॥ जो अपने आगे चलनेवाले हों वा पाछे चलते हों, उनकी तथा सेनापति मना, अपने प्रतिनिधि, सारथी, बमर दुलानेवाले तथा पास रहनेवाले लोगोंकी दान-मानमें प्रसन्न रखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ देश, काल,



मित्रमित्रा नृणाः सर्वे तथा स्वसुहृदो नृणाः । सुहृदा सुहृदेष्वपि मित्रमित्राग्ररोधयेत् ॥३७॥  
 मित्रमित्रबलं दृष्ट्वा मित्रमित्रबलं तथा । बलं स्वसुहृदो चापि स्वसुहृन्सुहृदो बलम् ॥३८॥  
 आदौ नृपैः परीक्षयाव मितोर्ध्वेन निर्गच्छयेत् । के स्वीयाः पार्थिवा राष्ट्रे पात्रकावा नृपस्य के ॥३९॥  
 सुहृदः स्वनृपाणां च बलं तेषां निर्गच्छयेत् । द्रष्टव्या रिपवः स्वीया मित्राणि रिपवश्च यः ॥४०॥  
 दृष्ट्वा रिपुषां मित्रमित्राः कार्या राज्ञा हि मैत्रिकी । परस्परं सन्तु, पान्थो न पान्थश्चेत् पराधयेत् ॥४१॥  
 पान्थं सन्तु बलं दृष्ट्वा सन्तुमित्रबलं तथा । पान्थं सन्तुमुहर्षेण्य दृष्ट्वा पान्थं सुगच्छयेत् ॥४२॥  
 परराष्ट्रे चारुनेत्रैर्यो दुर्गाणि चर्चताः । अग्न्यानि दृष्ट्वा मार्गाभ्यन्तराणां अज्ञाश्रयाः ॥४३॥  
 शत्रुणाः स्वपुत्रे पूर्वदुयोगश्च तन्मयेत् । परराष्ट्रेऽपि पुत्र्या हि गन्तव्यं पार्थिवैः सुखम् ॥४४॥  
 यत्राग्रे गमनं स्वीयं तेषां राज्यं न तन्मदा । पूर्वं गन्तुं निजेच्छा चेत्तिष्ठिषेदुत्तरे ध्वजम् ॥४५॥  
 उपारमिबुद्धः कार्यः सेनावाणो नृपेण हि । अत्रैव चोत्तरं हि नृपेण शत्रुस्य सादरम् ॥४६॥  
 क्रोधादान्ते गतं दृष्ट्वा गच्छेन्पूर्वं स्वयं नृपः । एव चरतः कदा याम्ये पथिमे वा पात्रिदृष्टि ॥४७॥  
 परराष्ट्रे रौरणीवश्चरन्तु च वेदयेत् । परराष्ट्रे गमनं यस्यां दिशि तस्या नृपस्य मेः ॥४८॥  
 रौरणीयां चरतः शोचन्तेः सेनासामन्त्र्याचरेत् । यन्त्रणायापुमानां च वाहयानां बलस्य च ॥४९॥  
 राज्ञा वृद्धिः कदा कार्या कार्या पान्थादिमग्रः । राष्ट्रे दुर्गे पुरे क्रीडे पत्तने निर्वले इने ॥५०॥  
 जनाश्रयाः शुभा कार्याः कृत्वा कोऽप्ययं वदुः । प्राकारार्थेऽथ दुर्गाभ्यं च जनार्थं यो व्यवहः कुरु ॥५१॥  
 न श्रेयः स नृपो राज्ञा श्रेयं रक्षणमात्मनः । धनार्थं यो व्यवहो भ्रातः सोऽग्रे श्रेयम् सङ्ग्रहः ॥५२॥  
 आपदर्थं धनं रक्षारान्नसङ्ग्रहेऽपि । अहमज्ज मत्तवं रक्षेद्दार्तरपि धनैरपि ॥५३॥  
 पश्यमुद्रामितं द्रुपं राज्ञा दासो निर्गच्छयेत् । नावलोक्यं यथाकालं व्यवसे तुरक्षेद्विमित्रम् ॥५४॥

बल, कोल और अपनी उम्माह देखकर अच्छी तरह विचारे और लड़के भी बल आदिका निरीक्षण-परीक्षण  
 करे । फिर अपनी बल, मित्रबल, मित्रके मित्रका बल और अपने महर्षके महर्षी का बल देखकर राजा के चार्हिदे  
 कि अपने सन्तुका केन्नाबल देख । अब इस बातपर उत्तर कर कि कौन राजे अपनी साथ देनेवाले हैं और  
 कौन सन्तुका ॥ ३६-४० ॥ इसके बाद उसे चार्हिद कि सन्तुको के जन्मे मित्रका करे । दूसरेके सन्तुकी बहूके  
 गो रक्षा हो न करे और यदि रक्षा करे भी गो सुव जन्मो तरह देख-संस्कार ॥ ४१ ॥ यदि सन्तुकी सेवा  
 किसी प्रकार करने पास का ही जाय तो उसकी रक्षा कर । सन्तुक मित्रकी सेवा एवं सन्तुक सुहृदका सेवाकी  
 भा रक्षा करे ॥ ४२ ॥ दूसरेके सन्तुक सुहृदका मित्र करके वहाँके बघातों, नदियों, बगी, दुष्टके रास्ती,  
 गुह्यके रास्ती तथा जलाशय आदिपर दृष्टि रखकर अच्छी तरह समझ ले । पहले अपने राज्यकी रक्षाकी  
 पूर्ण प्रवृत्ति करके ही किसी दूसरेके राज्यपर घटाई करे । ४३ ॥ ४४ ॥ जहाँ अपनेको जाना हो, वह जन्मी  
 बात कभी जिसकी जान न बनये । यदि दुर्वका और शत्रु करना हो तो उत्तरकी तरफ लपका भेजे और  
 सेनाके ठहरनका मित्र आदि भी उत्तरकी ओर हो बनवये । सेना भी उत्तरकी ओर ही चले, किन्तु  
 जाया कति मार्ग जाकर दुर्वकी ओर मुहर्ष राज्यको जहाँ जाना हो, जहाँ जाय । इसी तरह कभी अपनेको  
 दक्षिणकी ओर तथा कभी पश्चिम दिशाकी ओर भेजे ॥ ४५-४७ ॥ किसी दूसरे राजाके राष्ट्रेमें जायेकी  
 गाइकर गुह्यके द्वारा वहाँका हाल-बाल पालूम करे । अपने राज्यमें अभी और बड़ा पावे, जिस ओर  
 अपनेको जाना हो ॥ ४८ ॥ मित्र आदि भी उसी तरफ बनवये । राजाका चार्हिदे कि अपने सन्तु गोव-  
 सन्तु आदि पान्थ तथा पान्थ सन्तु और सेनाका सेवा बराता हुआ पान्थ-पान्थ आदिका भी पत्नी  
 प्रकार संग्रह करता रह । अपने राष्ट्र, किलाओ, बाजारों, जवनां लाल राजधानी तथा मित्र बननेके सन्तु के  
 लालं करके बड़े-बड़े जलाशय बनवा दे । जो घर भाम-पानकी आई, किने, यन्त्रापर आदिमें लालं हो,  
 उसे लालं न संग्रह । उसे तो अपने रक्षाका संग्रह माने । परंकार्यमें जो व्यव हो, उसे जानेके लिए संग्रह  
 माने ॥ ४९-५२ ॥ आपत्तिसे अपनेके लिए बनकी रक्षा करे, बनके भी भेद समझकर सीकी रक्षा

न सेनारहितं राजा । स्वयं कृत्वा ह्यहिः । नैकाकी विचरेद्ग्रामे नैकाकी कदापि मरिचो ॥५५॥  
 नैकाकी कदापि वै स्वयं न पद्मया विचरेद्बहिः । न गच्छेत्परमेष्ठेण चारं चारं नृपोत्तमः ॥५६॥  
 न विवसेद्द्वारपाल जलदं रजकं तथा । भीतयस्त्राणे मुद्रय हि नृपः सम्यक् परीक्षयेत् ॥५७॥  
 तच्चित्तवैटिकां प्राद्यांतया दृष्ट्वा परादिना परदत्तं जलं ग्राह्यं राज्ञः ऽक्षिभ्यां विलासयच्च ॥५८॥  
 फलाग्निं परदत्तानि पराक्षेप्त्वा विरोचनमः । दूर्गस्थितेनृपैर्भाष्यं न तेषां निकटे धरेत् ॥५९॥  
 सभां गच्छा प्रगतव्यं द्विवारं त्वेकदाऽथवा । उद्ययाम सभामध्ये स्वयं राज्ञा न वै चिरम् ॥६०॥  
 स्वद्वेष्टा स्माराद्राग्राह्यः कार्यो नृपोत्तमैः । पादो प्रभायं न स्वयं सभायां नृपसत्तमैः ॥६१॥  
 न बाहुवन्धनं जान्वाः कृत्वा स्वयं नृपोत्तमैः । नानिस्मिन्न कदा कार्यं सभायां पापिद्योत्तमैः ॥६२॥  
 सभायां समजैर्वस्त्रैः गन्तव्यं कदा नृपैः । गणिका गणका वैद्या गायक्य वन्दिनो नटः ॥६३॥  
 पण्डिता धर्मशास्त्रज्ञास्तार्किका वैदिका द्विजाः । मदा पाल्या नृपणैः दानमानैरहर्निशम् ॥६४॥  
 न चिरमसेकापितम् तोषयेत्तं धन्यादिभिः । प्रजानां गौरवं कार्ये दृण्डयेच्च श्रुत्या प्रजाः ॥६५॥  
 धनेशुपुक्ता प्रजाः तर्वा नैव कार्याः कदाचन । राज्यद्वारस्थितेनृपैः सप्तः ते पार्थिवोत्तमः ॥६६॥  
 मुक्तकचुकवन्धाश्च विमुक्तकचिबन्धनाः । सम्पदपु न्यस्तजम्बाः प्रेषणीया नृपोत्तमम् ॥६७॥  
 राजाज्ञया नृपं नेत्राऽऽपने चोपविशेत्केशाद् । नृपैर्भाण्डलिकैः सर्वैः स्थातव्यं पुरतोऽथवा ॥६८॥  
 सभान्त्य हन्तो पादो च राजन्यस्तविलोचनैः । न हसेद्राजपूरतो न जृम्भेत्तुल्येभ्युह ॥६९॥  
 तथा न धावनं कार्यं सर्वेभाण्डलिकैर्नृपैः । आगमे गमने सर्वैर्वन्दनापो नृपो मुहुः ॥७०॥  
 नान्यपुर्नरैः भवदेद्राजमाश्लिष्ये पार्थिवेतरैः । कञ्चुकेन विना राजा सभायां नोपमविशत् ॥७१॥

करे और स्त्री तथा खन भी बढ़कर अपना राजा कभी चाहिए ॥ ५३ ॥ अपने आपमें एक स्वयं  
 या किमोक्ष पाना हो तो लेकर छाड़ । किन्तु समय पड़नपर यदि कराहाके खचकी आवश्यकता पड़ जाय  
 तो खर्च कर दे, स्वयंका मुंह न देव । अपने नगरके बाहर बिना सेनाक छोड़ न जाय । अपने ग्राममें भी  
 अकेला न धूम-धुंकरे और न कहीं अकेला बैठे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ कहीं अकेला न उठे न पैदल चले और बार बार  
 किसीक घर न जाय । द्वाग्याल, पानी दन्वाले सेवक और धावा इन पर कभी भी विश्वास न कर । कपडा मुलकद  
 धाये तो राजका चाहिए कि अपनी बुद्धिसे खूब अच्छा तरह उसका परीक्षा करके ही पहने । पानका  
 बीडा खानेकी धाये तो पहने केन किसे दूसरा विशाकर स्वयं दूसरा बीडा खाय । पान पानकी  
 खाने तो अच्छा तरह उसका पाछा करके अपना खाना दवाकर पिय ॥ ५६-५८ ॥ दूसरेके लिये फलोंकी भी  
 भली चोखि परीक्षा कर ल । जो राजा मिलने जाय, उनके दुसरे हो न चंचल कर । न स्वयं उनके पास जाय  
 और न उन्हें अपने पास आने दे । अनिदिन एक या दो बार सभामें जाय और बाहे पहरमें अधिक कहीं  
 न उठे । अपनेसे द्वेष करनेवालोंको नगरसे बाहर कर दे । सभामें कभी बैन पैदल न बैठे और न पड़नकी  
 सिफाउकर हा बेंडा करे । राजाको चाहिए कि सभामें कभी ज्यादा न हँस ॥ ५९-६२ ॥ सभामें कभी भैन  
 कपडे पहिनकर न जाय । गणिका, गणक ( गानिका ), वैद्य, पायक, वन्दोत्तम, नट, पंडित, धर्मशास्त्री,  
 सैनिक, वैदिक तथा ब्राह्मण इनका दान मान आदिसे सदा सम्मान करता रहे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ नैद्वार कभी भी  
 विश्वास न करे । उसे हमसा खये-पसे दकर प्रसन्न रखे । सब लोगोंका सम्मान करता हुआ राजाको स्वयं बंड  
 न दे ॥ ६५ ॥ हम बातका सदा ध्यान रखे कि प्रजाके लालाका किसी प्रकारका वजन न होने पाये । राजद्वार-  
 पर रहनेवाले हुनोका चाहिए कि जो राजा मिलने जाये, उनके लज्जाद उतरवाकर पतले सुनवा द । जो  
 कुछ अन्य तद्वत् उनके पास हो, उनके जलन रखवा द । फिर अपनी तरह देख भावकर राजसे मिलनकी भीत  
 धाने दे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो कोई राजा मिलने जाय वह राजाका प्रणाम करके संकेतित आसनपर बैठे । जो  
 भाण्डलिक राज हो, उनके लिये राजाह सामन हुनो डाला जाय । वे राजाके सामने हाथ पैर सवेदकर  
 राजाकी ओर निहान्त हुए बैठे । राजाके सामने न हँसे, न गम्हई ल और न बार-बार छीके ॥ ६८ ॥ न बार-बार

सुमयायां वारणंदो नैव इत्यो नृपोत्तमैः । नतिर्वन्ती मृगी राज्ञा इत्यप्या विधिने कदा ॥७२॥  
 न निद्रितश्च इन्द्रियः पितृषीं वनेचरः । तथा स्वशरणं पाशो विश्वलो वा कदाचन ॥७३॥  
 कीडावन्तो वने प्राणी नैव इत्यो नृपोत्तमैः । भीमाचागनद्विजु संस्थाप्य सुमदां चरेत् ॥७४॥  
 राशौ मित्रेण सहितमूर्णमेव नृपोत्तमः । आप्ताय कश्चनेनैव सनाच्छाद्य बहिश्चरेत् ॥७५॥  
 पुष्टारविषतानां च शर्षलादि निर्गमयेत् । जनानां आपितं सर्वं भोतव्यं हि शुभशुभम् ॥७६॥  
 एवं हयं प्रगन्धमयसा श्रेयसेद्वितम् । राशौ राशौ पुनः बुद्ध्या भोतव्यं मकलेरितम् ॥७७॥  
 न कार्यः कलहो मेहे गृहकुल्य मभास्थितः । न वाच्यमणुषात्र हि न तूष्णीं धीवन् चरेत् ॥७८॥  
 न कङ्कयेच्च शिरो राज्ञा समायां स्वकरेण वै । धृक्ता गिराण्युत्कर्षं न त्यजेद्वैर्यमात्मनः ॥७९॥  
 पलमयं न मग्नमाद्राहा कार्यं कदाचन । न विप्लो निद्रा पृष्टिर्द्वन्द्वोऽपि कदाचन ॥८०॥  
 मोदयेन वरेद्राजा नदी मुन्यां कदापि हि । सेतुं विना नदी राज्ञा नोत्पीर्या हि कदाचन ॥८१॥  
 नोत्पीर्या नौकया राज्ञा नदी कापि मुनादिभिः । कार्या नैव त्रयकीडा नोदायां स्वमुनेः सह ॥८२॥  
 न स्थेयं इदमप्ये हि तथा नैव चतुःपथे । न ताडयेन्नडां पत्नी तथा पुत्र न ताडयेत् ॥८३॥  
 स्तम्भुद्राङ्गितपत्रेण विना केषां पुण्ड्रहि । न निर्गमः प्रकृत्यपमर्थवागमनं नृणाम् ॥८४॥  
 कर्तुमाज्ञावनीयं न मृदापत्राङ्गितं विना । नश्ये नृष्टन चौरैः पथि कार्यं नृपोत्तमैः ॥८५॥  
 न कार्यं पुण्डनं राज्ञा विना तार्धं कदाचन । परेकान्ते गृहे नैव स्नातव्यं पार्थिवोत्तमैः ॥८६॥  
 न पादेन स्पृशेज्जपा न पादेन शरं स्पृशेत् । नतिर्कडे-य रिकाभिर्द्विजवांश्च न वै चरेत् ॥८७॥  
 न तिष्ठेद्द्वारदेशे वै न स्थानव्यं नृपेभ्यः । राज्ञा मार्गे न वै स्थेयं न खेदं नृपतिर्भजेत् ॥८८॥  
 तोयानयनमार्गे हि स्त्रीणां स्नेयं नृपेण न । धान्यं समर्थं कर्तुं वै दण्डयेद्यवमायिन ॥८९॥

बुके । जब राजाके सामने जाय और जोड़, तब बराबर रजाका प्रणाम कर ॥ ७१ ॥ ७० ॥ राजाके सामने  
 ओर-ओरसे बाल न करे । राजाको चाहिए कि वह समय कबच पारण भिने बिना न बैठे । जब शिकार  
 खेलने जाय तो नहीं हाथी तथा गमिली मृगाका शिकार करना न करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जो जीव पानी की  
 रहा ही, जो सोया ही और जो बाग करके बराना जग्य आया हो, ऐसे जागोका शिकार कभी न करे ।  
 शिकार खेलने जाय, तब जागो दिमाजीम कुछ जागोका मित्रुन करके शिकार लेले । राजाके समय अपने  
 किसी मित्रके साथ कम्बल ओढ़कर महलस बाहर निकले ॥ ७३-७४ ॥ पुष्टाङ्गके कटक में सब हुए माला-  
 दण्ड आदि हल । राजाके लोग जो अटपटा वान कर रहे हैं, ऊपर साथवान मनसे मुने । इस प्रकार प्रत्येक  
 राजाको स्वयं जाय या अपने विश्व मग्न मिवका भव दिग कर, जो हर राजाके लोगोकी बसे गुनता  
 रहे । घरमें लड़ाई लगाया न करे । समाधि कोई करके काम-काज न कर । घरसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात  
 भी न करे । समाधि चुनचाप बैठे भीर बुके नहीं । समाधि निरन सजजावे । कबुका उक्त्यं सुनकर धैर्य न  
 छोड़े । राजाको चाहिए कि कभी संरामभूयस जागे नगी और गवूगी कभी जपता कीड न रिल्लये ॥ ७५-७६ ॥  
 राजाको चाहिए कि कभी अपने बालकवाक साथ नोकापर चढ़कर नदी न पार करे । अपने कलहोके साथ  
 नोकापर बैठकर जलकोड़ा न कर ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ बाजागम या किता बीराहपर न बैठे । अपनी स्त्री और  
 पुत्रको न समकावे । राजाका मुह सगा पत्र देकर लोगोको जयद मगरदे बाहर जाने दे । यही नियम  
 मगरके भीतर जानेवालाके लिए भी रहने । वनी तथा रास्तेमें चोरी करनेवालीको ऐसा भीका न मिलने  
 पावे, जिससे के चोरी कर सक । ७९-८० ॥ तार्धके लिये किया दूसरी अवह राजा पुण्डन न  
 करये । कोई पर्यकास जा पहुंच नो घरमें स्नान न कर, बल्कि किसी तार्धको चला जाय । वनुष भीर  
 बागको पैरसे न छूए । औरह पनीसो यदि न लेन । ब्राह्मणोंके साथ आदा बाद-विवाद न करे ।  
 अपने द्वारपर तथा खाली जमीनपर न बैठे । रास्तेम भी कभी न बैठे और किसी तरहका खेद न करे  
 ॥ ८६-८८ ॥ जिस रास्तेसे मित्रों पानी घरने जाती-आती हो, वही कभी न बैठे । भकीको बसे पावई

दृष्ट्वा किञ्चिन्महर्षं तु स्वीयराष्ट्रे हि भूमृता । न्यूनः कार्यः करभारः किञ्चिद्दशसुखाय च ॥९०॥  
 नातिशायं कदा कार्यमौदार्यं दर्शयेज्जनान् । द्रव्यं गृहीत्वा राजा हि भौचनीया न तस्कराः ॥९१॥  
 सुखं दृष्ट्वा न वै कार्यो राज्ञा न्यायः कदापि हि । न न्यायश्च परैः कार्यः स्वयमेव प्रकारयेत् ॥९२॥  
 अर्तानां सकलं वृत्तं श्रोतव्यं सादरं नृपैः । आर्त्त आकारणायो हि निकटे कृपया नृपैः ॥९३॥  
 आत्मानं मानयेन्मैव वैद्यं च मणिकं नटम् । पण्डितं वैदिकं वीरं गायकं कृतधर्मिणम् ॥९४॥  
 यज्ञो दानं जपो होमः सन्ध्या ध्यानं शिवार्चनम् । स्नानं पुराणश्रवणं मक्त्या कार्यं नृपोत्तमैः ॥९५॥  
 न मादकं वस्तु सेव्यं न कृच्छ्रादिकमाचरेन् । न यात्रा स्वपदा कार्यं समद्रीपाधिपेन हि ॥९६॥  
 फलाहारश्च कर्तव्यो राज्ञा एकादशीदिने । निर्जलश्रीपवासश्च न कार्यः पृथिवीभृता ॥९७॥  
 येन यद्याचितं राज्ञे भूसुरेणार्पयेष्व तत् । तस्मै त्रिष्राय राज्ञा हि नृपा भूसुरदेवता ॥९८॥  
 उत्साहे बन्धनान्मोच्या ये ये क्रोधान्पुरश्चिताः । निजान्नाभंगतां दृष्ट्वा क्षेमं स्वीयं हृतं शिर ॥९९॥  
 स्वीयदूतापमानो यः स स्वीयशिर्येन्नृपः । स्वीयदूतस्य सम्मानो राज्ञा ज्ञेयः स आत्मनः ॥१००॥  
 एवं कुञ्ज मया प्रोक्ता राजनीतिः सविस्तरा । दिनचर्या मया यद्वक्तव्यते त्वं तथा कुरु ॥१०१॥

इति श्रीमहाकविश्रीरामचरितमते श्रीमदानन्दरामायणे राजकाण्डे राजनीतिविक्षेपः

नाम षाडशः सर्गः ॥ १६ ॥

## सप्तदशः सर्गः

( कुशकी पुत्री हेमाका स्वयम्बर )

श्रीरामदास उवाच

एकदा कुञ्जकन्याया हेमायाश्च स्वयम्बरम् । अयोध्यायां चकाराथ रामश्चातिमहोत्सवैः ॥ १ ॥  
 समाहूता नृपाः सर्वे नानाद्वीपातिरस्थिताः । समाजग्मुः सुवेषाश्च सभायां तस्थुरासने ॥ २ ॥

विक्रान्तके लिए बनिषोको दण्ड देता रहे । यदि अपने राष्ट्रमें महंगी वस्त्र जाय तो राजाको चाहिये कि देशको सुखी रखनेके लिए करभार कुछ हल्का करदे ॥ ९६-९८ ॥ कभी अतिगठता न करे और रुपये लेकर धोरोको न छोड़े । राजाको यह उचित है कि भुँदसा न्याय न करे न्याय करनेका भार दूसरोके ऊपर न डालकर स्वयं करे । यदि कोई दुखी राजाके पास अपना दुःख सुनाने पहुँचे तो राजाको चाहिये कि दुखियोंके सारे दुःख आदरपूर्वक सुने । दुखिया मनुष्यसे किसी प्रकारकी घणा न करके उसे अपने पास बुलाने और उसकी दुःखमयी कहानी सुने । किसी तरहका धमण्ड न करे वैद्य, ज्योतिषी, नट, पण्डित, वैदिक, वीर, गायक और धर्मिणा इनका आदर करे । यज्ञ, दान, जप, हाम, सन्ध्या, शिवार्चन, स्नान और पुराणश्रवण आदि शुभ कार्य भक्तिपूर्वक करता रहे ॥ ९१-९९ ॥ राजाको चाहिये कि प्रत्येक एकादशीको केवल फलाहार करके रहे और कभी भी निर्जल उपवास न करे । राजाके समीप पहुँचकर ब्राह्मण जो मांगे, सो दे । क्योंकि ब्राह्मण देवताके समान होता है । शोधरथा जिन-जिन लोगोंको जेलमें डाल दिया गया हो, कोई उत्साहकाल समय आनेपर उन्हें छोड़ दे । यदि किसीके द्वारा आज्ञा भंग हो रहा हो तो अपना सिर कट गया समझे । अपने दूतका अपमान अपना अपमान और अपने दूतका सम्मान अपना सम्मान जाने । हे कुश इस प्रकार मैंने तुम्हें सारी राजनीति बतला दी । रह गयी दिनचर्याकी बात, सो मैं जता करता हूँ वैसे ही तुम भी करते चलो ॥ ९६-१०१ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे बालमोकोये पंचमोऽध्यायः पविरेचिष उयोत्सना भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे उत्तराह्णे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे रामने एक समय कुशकी पुत्री हेमाका स्वयम्बर बड़े छुगधामके साथ ठेका । इसमें द्वीप-द्वीपाभ्यन्तरे अनेक राजे अच्छे-बुरे बस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर आये और सुन्दर-सुन्दर

यपुर्देवाः सगन्धर्वाः पुनयोऽपि समाययुः ॥ ३ ॥

तदा सभायामानीता हेमालङ्कारभूषिता । आरुह्य शिखिकायां तु रुक्मवर्ष्या वरानना ॥ ४ ॥  
 मवरत्नवर्षीयां बालां विभ्रवीं सा स्वयम्बरा । ददर्श नृपनीन्मवांसपुत्रान्मचिन्ताम् ॥ ५ ॥  
 तद्भ्रूचापविनिर्मुक्तैस्तन्कटाभवनविभिः । सभिमतस्ते नृपाः सर्वे के वयं न विदुस्तदा ॥ ६ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्रावन्निनायसुतो महान् । चित्रांगदो सभायाश्च तां जहार कुशान्मजाम् ॥ ७ ॥  
 दृष्ट्वा कार्पाण्तरन्ध्रान्नामादोन्मेगवचरः । मोहनाश्रेण सकलान्वीरान् रुन्वातिमोहिनान् ॥ ८ ॥  
 श्वे निवेष्ट्य तां हेमां हेमामां वंगवत्सलः । चित्रांगदो बहिर्गन्वा बोधमात्रे स्थितोऽमरम् ॥ ९ ॥  
 किं तूष्णीं पीरन्नेया मयेव कुशराजिका । इति निश्चिन्त्य मेधावी तस्यै चित्रांगदो महान् ॥ १० ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे पुरां हाहाकारो महानभूत् । नीता रक्षा चोद्यवाहोः पुत्रेणातिवलीरता ॥ ११ ॥  
 नृपाः सर्वे महत्सस्युः समायां विन्नमानसाः । उपमहर्षिते तेन मोहनाश्रेण विमम्भयात् ॥ १२ ॥  
 चित्रांगदेन चोदुं ते स्वर्मेवैर्निर्घेषुर्नृपाः । बहिः साकेतनगरान् कोशदारक्तलोचनाः ॥ १३ ॥  
 वृष्णीधेनोश्चरादुः स ददर्श पुत्रकौतुकम् । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे तत्रां वार्ष्णिशेखराः ॥ १४ ॥  
 सर्वेष्ट्य कोटिष्ठः अस्मैर्वरपुंश्चोश्चरादुजम् । तदा चित्रांगदो वीरो वायव्याश्रेण वार्ष्णिवान् ॥ १५ ॥  
 गमने भ्रामयामास साहनाथैः समन्वितान् । ततो रामाज्या सह सवाया निर्ययुः पुनः ॥ १६ ॥  
 उत्सवाथं समायाताः स्वचराऽप्यान् बालकाः । अङ्गदाया निजैः सैन्यैः सल्लाः सप्तैर ययुः ॥ १७ ॥  
 तदा चभूव तमुनं पुट्टं सल्लामहर्षणम् । चित्रांगद रत्नगुप्ते नानाशस्त्राणि रापवाः ॥ १८ ॥  
 चित्रांगदः स्ववर्णार्पयिष्व। शस्त्राणि तानि हि । निजवर्णगुपकेतुं चकार विग्रहं सभात् ॥ १९ ॥  
 तथा चकार विग्रहं सुबाहुं पुष्करं तथा । तस्यैव चित्रकेतुं च सङ्गदं बलवचरः ॥ २० ॥

आसनोपर बैठे । वह बाद राजाको हा तक रहा सो, बकि स्वता, गन्धर्व, शूचि-मुनि, विद्याधर, मान, शिखर सो आ-आकर उस उत्सवमें सम्मिलित हुए थे । इन सबके आ जानेपर एक सुवर्णका पालकीमें बैठो सुमुखी सन्दरी हेमा हाथोंमें नवरत्नासे बना माना लिय आ पहुंचा । सभाके प्राङ्गणमें पहुँचकर उसने वहाँपर बैठ हुए समस्त राजाको तथा राजपुत्रोंको आर वचनसे बोला ॥ १ ॥ हेमान जोहूको वपुषस छूटे हुए कटाक्ष-की बाणसे घायल होकर सबके सब राज भवन में एक भुक्त गये । उनको यह भी ज्ञान न रहा कि हम कौन हैं । उसी समय अश्वनिशके राजा अग्रवाटिकापुत्र चित्रांगद कुशकी पुत्रीका हरण करके ले आया । उसने दत्ता कि राम आवि सब नृा अदन वर्गोंमें आगत हैं । वन उसने एक महानारव छोड़ा । जिससे वहाँ निबन्धनमें आये हुए राजे मोहित हो गये । तब वह सुवर्णके समान नेत्रस्विनी हेमाको रथपर बिठाकर भ्रम में गया और वहाँसे एक बौमकी दूरीपर जाकर रुका । उसने अपने भवन में आ कि चोरीकी तरह हेमाको लेकर आग जाना लोक नहीं है । इसलिए वहाँ वह ग्दुर गया ॥ १० ॥ उपर सारी पुरीमें वह हाहाकार मच गया कि राजा उपवाटुकी पुत्र चित्रांगद हेमाका हरण कर ले गया ॥ ११ ॥ चित्रांगदके द्वारा मोहनाश्रक सवरण हो जानेपर सब राज हाथमें आकर उठे और अपनी अपनी सेना लेकर क्रममें लाल-लाल आये विये अगोदरासे बाहर निकले ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर हं बैठ हुआ राजा उपवाटु अपने पुष्का कीटुक रक्त रहा था । उसी समय सब राज चित्रांगदके पास पहुँचे और उसका रथ बागे औरमें घेरकर शत्रुकी वधा करने लगे । तब चित्रांगदने वायव्य सश्र चलाया । जिससे सब राजे अपनी सेना तथा बाहनके साथ आकाशमें उड़ने लगे । इसके अनन्तर रामकी भ्रातामें सब आदि सत्तो बंद नगरमें निकल गये । उनके अतिरिक्त उत्सव-में आये हुए राजकुमार भी अपनी-अपनी सेना लेकर अपनेकी चल दिये । उस समय चित्रांगदके हाथ रौंगड़े करने कर देनेवाला तमुन पुट्ट होने लगा । रघुवंशके वे बालक चित्रांगदपर विविध प्रकारके अस्त्र-बाण चलाते लगे ॥ १४ ॥ १५ ॥ अपने बाणोंसे प्रहार करने हुए चित्रांगदने अपने लक्ष्योंसे आगबरमें वृषकेतुका रथ चला कर डाला । उस वीर आत्मेने सोको ही देखते सुबाहु, पुष्कर, तथा चित्रकेतु तथा आंगदकी भी विरथ कर

उद्दृष्ट्वा कौतुकं तस्य ज्ञात्वा तनयसः फलम् । लवश्चिच्छेद वार्णाधिपस्तदनु दिव्यमुगमम् ॥२१॥  
 ततो लवः स्ववार्णाधिपप्रवाहुसुतं मुदा । चकार व्याकुलं शीघ्रं तद्दृष्ट्वा लवचेष्टितम् ॥२२॥  
 उग्रवाहुर्नयौ योद्धुं लवेन येमवधरः । लवस्तमपि वार्णाधिपकार विरथं सणात् ॥२३॥  
 उग्रवाहुस्तदा वीगेऽन्ये रथे चारुगोह सः । ववर्ष निश्चितैर्वाणैर्मूर्छयामास तं लवम् ॥२४॥  
 लवं निमृष्टितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । तदा ययौ कुशो योद्धुमुग्रवाहुनृपेण वै ॥२५॥  
 कुशमागतमाज्ञाय हस्तदायास्तदा पुनः । रथस्था युगधुम्नेन उग्रवाहुनृपेण वै ॥२६॥  
 पुनस्तानद्गदादींश्च चकार विश्रान्नुपः । तदा कुशः स्ववार्णाधिपप्रवाहुं नृपं सणात् ॥२७॥  
 चकार विरथं वीरश्चिच्छेद तस्य कार्मुकम् । उग्रवाहुस्तदा व्यग्रो बभूव चक्रितस्तदा ॥२८॥  
 तं घृत्वा स कुशस्तोषादादयामास दुन्दुभीम् । अयोध्याहू यमुनं निन्ये भीगमसन्निविष्टम् ॥२९॥  
 रामस्त मोचयामास मत्वा तं मुहदं वम् । तदा रामो विजयिने कङ्कणं मुनिनाऽर्पितम् ॥३०॥  
 ददौ कुशाय प्रीत्या स पुनः कुम्भजन्मनः । कुशस्तदाऽतिशुशुभे वरकङ्कणमण्डितः ॥३१॥  
 तदा कुशो मुनिं प्राह नत्वा तं कुम्भनम्भवम् । त्वया लब्धं कुनखेदं कङ्कणं वर मां मुने ॥३२॥  
 तप्तस्य वचनं श्रुत्वाऽयस्मिः प्राह कुशं मुदा । पुरेन्द्रगिषो वत्स बहवः सागरेण हि ॥३३॥  
 कृताः स्वौतर्निवासश्च तदाऽहं नाकर्णार्थिनः । कुन्दा स्वचुल्लकेऽग्निं तं पीतवर्णीलयेव हि ॥३४॥  
 ततो पुनः द्वीपयोर्हि मर्यादो मध्यवर्तिनाम् । दृष्ट्वा पुनर्नकिपेन आर्धितो हतशत्रुणा ॥३५॥  
 मृगवन्ध्यामरं भीमं सजीवं मुक्तवानहम् । तदाऽग्निनाऽर्पितं मखं कुश तत्कङ्कणं वरम् ॥३६॥  
 नानारत्नविचित्रं च रवितेजोवराजितम् । तद्रामायार्पितं पूर्वं मया तेन त्वार्पितम् ॥३७॥

दिया । इस कौतुकको देखकर लवने समझ लिया कि यह सब चमत्कार उसकी तपस्याका है । यह विचार-  
 कर लवने अपना वाणवधोम चित्रागदक उस उत्तम वयुधको काट डाला और इतनी आग्रहासे वाणवधा की  
 कि चित्रागद व्याकुल हो गया ॥ १६-२२ ॥ ऐसी अवस्थामें उग्रवाहु चित्रागदका रिता, स्वयं लवके साथ  
 युद्ध करनेके लिये रणमें उतर पड़ा, किन्तु लवत थोड़ी ही दूरीमें उसका भी रथ ध्वस्त कर दिया । तब उग्रवाहु  
 तुरन्त एक दूसरे रथपर बैठकर युद्ध करने लगा और अपने तील बाणोंका मारस लवको मूर्छित कर दिया ।  
 उसे मूर्छित दशाकर संध्याभूमिमें हाहाकार मच गया । तभी तबसे हुए युद्ध करनेके लिये रामका दूसरा पुत्र कुश  
 भी आ पहुँचा । कुशका आवा देखकर वे अङ्गद आदि रघुवर्षी राजकुमार रथोपर बैठ बैठकर उत्साहपूर्वक  
 उपशान्त युद्ध करने लगे । किन्तु उग्रवाहुने अपने युद्धकोशमें से डाँही दण्डे अङ्गद आदि सभी राजकुमारके  
 रथोंको नष्ट कर डाला । उगरे अपने आहाओपर प्रहार करते देखकर वृषाणे उग्रवाहुको क्षणभरमें विरथ  
 कर दिया और उसका धनुष काट डाला । उग्रवाहु उस समय आश्रयके साथ व्यग्र हो उठा ॥ २३-२७ ॥  
 तब कुशने क्षणभ्रंश उठ बाणबेराको बन्दी बना लिया और अपनी विजयदुन्दुभी बजवा दी । चित्रागद तथा  
 उग्रवाहुको अपने साथ लेकर कुश रामचन्द्रजीके पासमें गये ; वहाँ पहुँचनेपर उग्रवाहुको अपना मित्र समझ-  
 कर रामने छुड़ा दिया और विजयी कुशको अग्रस्थ श्रष्टिके समक्ष अग्रस्थका ही दिया हुआ कङ्कण दिया । उस  
 कङ्कणके पहिनेसे कुशकी गोधा और भी बढ़ गई ॥ २८-३१ ॥ इसके बाद कुशने अग्रस्थकृपिते कहा—  
 हे मुने आपसे यह कङ्कण कहाँ पाया था ? मैं हमसे कहिए ॥ ३२ ॥ कुशको बात सुनकर अग्रस्थने कहा—  
 हे वत्स । आजके बहुत समय पहले इन्द्रके दहुरारे मध्य समुद्रके मत्तर घर बनाकर रहा करते थे । इन्द्रके  
 प्रायणत कानेपर मैंने समुद्रको सत्तुम भरकर पो लिया । जब इन्द्रने अपने सारे सन्तुओंको मार डाला, तब दो  
 हाथोंके मध्यकी लोहाकी नष्ट बजकर इन्द्रने मुगसे समुद्रको फिर पूर्णबत् बना देनेकी प्रार्थना की ॥ ३३-३५ ॥ तब  
 मैंने पत्रके मार्गसे फिर समुद्रकी सजीव करके बहा दिया । उसी समय समुद्रने मुझे उपहारके रूपमें यह कङ्कण  
 दिया था ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित तथा सूर्यके तेजकी नई तेजोमय यह कङ्कण मैंने रथको दे

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा कुशस्तं प्राह वै पुनः । त्वस्य जीवनोपायं वद मामद्य यो मुने ॥३८॥  
 कुशस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्तं प्राह सादरम् । विमृच्छितो यदा पूर्वं भरतः पथि पार्थिवैः ॥३९॥  
 मूर्च्छितः पतितश्चास्ति एषो म्पिशुरर्हयः । मुद्रकाश्रमसो वल्क्यस्तदाऽऽनीताः शुभाग्रहाः ॥४०॥  
 सीमित्रिणा तदाऽद्य त्वं मुद्रताश्रमनः पुनः । महोदधौ समानीय जीवनैर्न लवं जवान् ॥४१॥  
 अथवा त्वं हनूमतं प्रेषयस्वाश्रमं मुनेः । एवं यावच्च स मुनिः कथयामास त कुशम् ॥४२॥  
 तावच्चद्ववचनं श्रुत्वा मुनेर्महर्षिणा क्षणात् । समानीयाश्रमादस्त्रीमुद्गलस्य तपोनिधेः ॥४३॥  
 ताभिस्तं जीवयामास लवः सैन्यसमन्वितम् ।

विष्णुदास उवाच

गुरो उर्यैव च मुनेर्मुद्गलस्याश्रमे कथम् ॥४४॥

मृतसंजीवनीवज्यादिका वल्क्योऽत्र निमंताः । कथं ना हि समीपस्था विस्मृत्य द्रोणपर्वतम् ॥४५॥  
 प्रेषितोऽञ्जनिपुत्रः स तेन जावयता पुनः । जमु मत्स्यशयं छिधि कृपां कृत्वा मुनीश्वर ॥४६॥

श्रीरामदास उवाच

यदा मातुर्विमोक्षार्थममृतस्य सगाधिपः । कलशं स्वमुखे धृत्वा नाकलोकान्तमगमयत् ॥४७॥  
 तदा तत्कलशाद्देगाद्विदुस्तत्रापतरपुरा । तद्देवोर्मुद्गलस्यापि मुनेस्तपःप्रभावतः ॥४८॥  
 आसन् वल्क्यश्च तस्यैव आश्रमे हि द्विजोत्तम । नैका वेद शुभा कर्त्ता श्रविशान्त वनेचरः ॥४९॥  
 द्रोणाचलं स्वतस्तेन प्रेषितो वापुनन्दनः । इति त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् ॥५०॥  
 इदानीं मृषु शिष्यं त्वं शुभा तं प्राक्तनीं कथाम् । ततो लवादिकाः सर्वे यमुस्ते स्वपुर्णं मुदा ॥५१॥  
 नत्वा मुनिं च रामादींस्तत्पुं श्रीराघवाग्रजः । तत्र महोत्सवधार्माभ्युपार्णं तत्त्वदर्शनात् ॥५२॥  
 ततो दृष्ट्वा लव रामो जीवितं वायुजेन हि । समालिख्य दृढं प्रेम्णा परं तोषमवाप सः ॥५३॥

दिया और रामने इस आज तुम्हें दिया है ॥ ३७ ॥ मुनिकी बात सुनकर कुशने कहा— अब हम कोई ऐसा उपाय ढूँढला है, जिससे लव जीवित हो जाय । ३८ ॥ वह इस समय शत्रुओं के अस्त्रों से घायल होकर रणभूमि में पड़ा हुआ है । कुशकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्यने कहा— उस समय जब कि जनकपुरके मागम राजाओं ने भरत-को मूर्च्छित कर दिया था, तब मुद्गल ऋषिके आश्रमसे कल्याणदादिना लताएँ लक्ष्मण द्वारा आयी थी उसी प्रकार आज तुम मुद्गलके आश्रमसे वह लता लाकर लवका भी जिवित कर ला ॥ ३९-४१ ॥ अथवा हनुमान्जीका भेष दो । ये ही वह लता ले आया । मुनिकी आज्ञा सुनत ही हनुमान्जी। चल पड़े और पाड़ा ही दरम मुद्गल-ऋषिके आश्रमसे वह लता लाकर रस रा और उ-ही लताओंसे कुशन सणमागम सेना समेत लवको जीवित कर लिया । इतनी कथा सुनकर विष्णुदासने कहा— हे गुरो ! वे मृतसञ्जावर्ती लताएँ मुद्गल ऋषिके आश्रमपर आकर कैसे उग गयीं । फिर जब वे इतनी समीप थीं, तब लक्ष्मणका मृदाक समय आम्बवान्ने हनुमान्जीको द्रोणाचलपर क्यों भेजा-हे मुनीश्वर ! मरे ऊपर कृपा करके मेरी इस शकाका समाधान कीजिये ॥ ४२-४६ ॥ श्रीरामदासने कहा— जिस समय अपनी माताको छुड़ानेके लिए गरुड स्वर्गसे बोधम अमृतकलश लेकर चले तो मुद्गल ऋषिके आश्रमपर आते ही कलशमसे अमृतक एक दूध बह्नी गिर पड़ी । इसीलिए और ऋषिके तपोवनसे उसी स्थानपर वे मृतसञ्जावर्ती वल्करिणी उग गयीं । वनचर आम्बवान् इस स्थानकी लताओंको जानते ही नहीं थे । इसी कारण हनुमान्जीका द्रोणाचलपर भेजा था । ४७ ॥ ४८ ॥ गीता तुमने प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया । अच्छा, अब अपनी पुरानी कथापर आ जाओ—उसे समाधान मनसे सुनो । उस औषधिसे जीवित लव आदि वीर लौटकर सहर्ष अपनी अयोध्यापुरीमें आ गये ॥ ४९-५१ ॥ राक्षसी सभामें पहुँचकर लव आदिने वसिष्ठजीकी प्रणाम किया और रामके सामने बैठ गये । लवकी देखने से उस रीज पुरीभरमें बड़ा उत्साह था । जब रामने देखा कि हनुमान्जीके पुरुषापसे लव जीवित होकर

ततो गमो वायुजाप ककणे रत्नमण्डिते । ददौ परमसनुष्टम्भाभ्यां स शुशुभे कपिः ॥५४॥  
 ततो ललाप भोगमस्त्वपर कंकण वरम् । ददावतामिना दत्तं पूर्वं यद्वन्ममडितम् ॥५५॥  
 लवस्तेनानिशुशुभे वाककणमण्डितः । लवस्तदा मुनिं प्राह नन्वा तं कुम्भसम्भवम् । ५६॥  
 स्वयां लब्धं कृतधेदं कंकणं वद मां पुनः । ततस्तद्वचनं धुन्वाऽगमितः प्राह लव मुदा । ५७॥  
 एकदा ददृकान्धेऽहं स्नातुं हि शतः सरः । तस्मिन्स्नान्त्वा निम्नविभिं कृत्वा तत्र स्थितः क्षणम् ५८  
 एतमिन्नतरे तत्र स्नात्स्वर्गो मम प्रागतः । दिव्यं विमानमरूढः शतश्रीपरिवेष्टितः ॥५९॥  
 दिव्यमन्त्रावरणो दिव्यमन्त्रादिवर्धितः । स स्वर्गो स्नानसभायातो यावत्तावत्सरोवरम् । ६०॥  
 शवं विनिर्गतं श्रेष्ठं स्फुरितं हि मयैकम् । दुर्गन्धमहितं दृष्टं प्राप्तं तत्परममनन्दम् । ६१॥  
 अकृष्णं विमानमपाम् स्वर्गो तच्छवं दयौ । शिखा तच्छवमानं वै मञ्जयामास सादरम् ॥६२॥  
 ततः पीत्वा जलं स्वर्गी विमानं चारुगोह सः । निमज्ज तच्छवं चापि पुनस्तमिन्मरोवरे ॥६३॥  
 स्वर्गेण शतुकामं तदृष्ट्वाहं चाग्निरिच्छितः । अमुं च मयि वाक्यं वै रं दिव्यस्वरूपधृक् ॥६४॥  
 क्षणं तिष्ठान्तरं देहि कानुकं मे मयेक्षितम् । इदमस्ते शतदारः कथं स्वर्गनिवामिनो ॥६५॥  
 इति मद्रचनं भूत्वा स स्वर्गो प्राह मां तदा । सम्पदं पृष्टं स्वयां ममन् शृणु सर्वं मयोच्यते ॥६६॥  
 सुदेवाक्यो हि वैदमि नृपादिशामवन्पुंगव । मयि च धनं नृपायै श्रेष्ठेऽहं पार्थिवोऽभवम् ॥६७॥  
 नैव दानं मया नस्मिन् जन्मन्पत्रं कृतं कदा । स्वीयमज्जमरोऽस्नातः पापकर्मणः सदा ॥६८॥  
 ततोऽध्वरी त्वहं राज्यं कृत्वा तं सुगणानुजम् । वार्यके तु वनं प्राप्तपस्तीक्ष्णं समाचरम् ॥६९॥  
 एकदा स्नातुमुद्युक्तो निमग्नोऽहं सरोवरे । ततो मृतो दिवं प्राप्तस्तन्वहं स्वीयतपोवलाद् ॥७०॥

सामने बैठे है तो प्रेमपूर्वक वाचनको छानते लगे निज और बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्जीको स्नानसं चर्चित दा कंकण दिये । जिन्हें बहुततम हनुमान्जी बहुत सुन्दर दोलने लगे । फिर रामजीने एक दूसरा कंकण त्रिसे अग्रजजीने दिया था, वह लवजी ने दिया । उस बहुतमूर्ख कंकणको पहि-  
 ननेसे लव भी अतिशय नशाभिन हुआ । तब लवने मगधराज का प्रणाम करके कहा— ॥ ५४—५६ ॥ हे मुनिराज ! यह कंकण आपको कहाँ मिला था ? सो हमें बतलाइए । इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर अगस्त्य परम प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे ॥ ५७ ॥ एक बार मैं दण्डकारण्यमें एक सरोवरपर स्नान करने गया । वहाँ स्नान-नित्यकर्म आदि कर लेनेपर मैं डी बरके लिए बैठ गया ॥ ५८ ॥ इसी बीच आकाशमार्गसे एक स्वर्गीय प्रणी सैकड़ों स्त्रियोंसे घिरा हुआ दिव्य विमानपर आरुढ़ होकर वहाँ आया ॥ ५९ ॥ वह दिव्य मातृका आदि शरण मिले हुए दिव्य गन्धसं चर्चित था । उस स्वर्गीय प्राणी ही सरोवरसे एक मयानक द्रवित तथा दुर्गन्धपूर्ण शव निकलकर तटपर आ गया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वह स्वर्गीय प्राणी अपने विमानमें उतरकर उस शवक पास पहुँचा और उसके माथको उसका बड़े प्रेमसे लाया । फिर जल दिया और अपने विमानपर आ बैठा । ऊपर जब फिर देख गया । उस गमनानुगत स्वर्गीय के पास पहुँचकर मैंने उससे कहा— हे दिव्यस्वरूपधारिन् ! थोड़ी देरके लिए एककर मेरी बातोंका उत्तर देने जाओ । मुझसे इस कर्मको देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ है । अच्छा हमें यह बताओ कि इस प्रकार स्वर्गीय प्राणी होकर भी नृप पुरी क्यों खाते हैं ? ॥ ६२-६५ ॥ मेरी बात सुनकर उसने उत्तर दिया । हे ब्रह्मन् ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सुनो, मैं सब बतलाता हूँ । पूर्वममवम त्रिभं दशके अर्धवति मृदेव नामके एक राजा थे । उनके श्वेत और मुरख नामके दो पुत्र थे । जिनमें प्रवेत मैं था और राज्य भी मेरे ही हाथोंमें था ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस कथ्यसे राज्यपक्षसे भल होकर मैंने कोई दान नहीं किया । हुमेगा पापकर्ममें रत रहा ॥ ६८ ॥ मेरे कोई सन्तति नहीं थी । इसलिये बूढ़ावस्थामें अपने छोट भाई सुग्यकी मैंने राज्यपक्षपर बिठा दिया और जगलमें जाकर कठोर तपस्या करने लगा । एक बार स्नान करनेके लिए एक सरोवरमें डूबने लगा तो वही डूबकर घर गया । मरनेके बाद अपनी तपस्याके प्रभावसे मैं स्वर्गलोकमें पहुँचा । तपस्याके फलस्वरूप वहाँ



तपस्यश्च फलं स्वप्नं ममाग्रन्थर्वमपदः । अदृष्टा भक्षितुं किञ्चिन्मया पृष्टं सुराधिपः ॥ ७१ ॥  
वर्तन्ते विविधास्तत्र मम भोगाः सुदुर्लभाः । कथं नार्साद्भुतार्थं कथं मेऽत्र सुखं भवेत् ॥ ७२ ॥  
इति मद्भवनं श्रुत्वा मामिन्द्रः प्राह सस्मितः । नैव दानं न्वया भूर्मा कृतं राज्यमदनं हि ॥ ७३ ॥  
अदत्तं लभ्यते नैव नृप पुण्यैः कदेनरैः । अनस्यं प्रप्यहं मत्वा विमानेन सरोवरम् ॥ ७४ ॥  
मक्षयस्व शवं पुष्टं मिष्टान्नैः पापितं च यत् । चिरकालं भवेत्तत्तं क्षयं यास्यात् नैव तद् ॥ ७५ ॥  
इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा स पृष्टश्च पुनर्मया । दिव्यान्नानि कथं चाहं प्राप्नुयां तद्वदस्व माम् ॥ ७६ ॥  
इति मद्भवनं श्रुत्वा सदेन्द्रः प्राह मां पुनः । अधुना दण्डकारण्यं व्रतते हानमानुषम् ॥ ७७ ॥  
विष्यद्भिर्दिनपथार्थमगस्तिः । सुरयाचितः यदा यास्यति पन्न्या वै मुक्त्या काशीं हि दण्डकम् ॥ ७८ ॥  
सरस्यस्मिन्नुदा स्नात्वा स्थितं पश्यमि तं भुनिम् । तदा तस्मै कंकणं स्वं देहि तोर्यः परिप्लुतम् ॥ ७९ ॥  
तेन कंकणदानेन दिव्यांधः प्राप्स्यसे नृप । इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा तदारभ्य विरं भुने ॥ ८० ॥  
अत्रागत्य क्षणाद्वारः क्रियते च सदा मया । एतावत्कालवर्षं नान्न कश्चिन्मयेषितः ॥ ८१ ॥  
मया दृष्टस्त्वमेवात्र वैशि स्वी कुम्भमभवम् । अद्य न्वया तारिताऽहं दानं स्वांकुरु मे त्विदम् ॥ ८२ ॥

अगस्त्य उवाच

इत्थं स्वर्गोऽसमाप्नुक्त्वा ददौ कंकणमुज्ज्वलम् । मद्यं सार्द्रं ततः स्वर्गं पयीं स्वर्गीं मुदा पुरा ॥ ८३ ॥  
तदारभ्य शवं तोयासद्दहिलस्य पयीं कदा । दिव्यान्नानि तु संप्राप नाकलाके ययाभुसत् ॥ ८४ ॥  
इति यत्कंकणं लब्धं मया तव पुरा वने । अपितं राक्षसायेदं तेन तद्यापि तेषंपतम् ॥ ८५ ॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्त्यवचनं श्रुत्वा लवः पप्रच्छ तं पुनः । किमर्थं दण्डकारण्यं तद्भूय विजनं वद ॥ ८६ ॥

अगस्त्य उवाच

इत्थाकुर्वंशसंभूतोऽभून्नृपो विष्यदक्षिणे । नाम्ना दण्डकेति ख्यातः पापकर्मरतः सदा ॥ ८७ ॥

सब चीजें तो निश्चयान थीं, लेकिन खानेक लिए कुछ नहीं था। तब मेन इन्द्रसे कहा—हे देवेन्द्र ! यहाँ मेरे भागनेक लिए तो और सब कुछ है, किन्तु खानेक लिए कुछ भी नहीं दीखता। बताइए, इस तरह मे क्याकर सुखी रह सकूँगा ॥ ६९-७२ ॥ मेरा बातका सुनकर मुष्कराते हुए इन्द्र कहने लगे—तुमने राज्यमद वध पृष्ठीपर कोई बात नहीं किया था। बिना दिव्य कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए तुम प्रतिदिन विमानसे जाकर उस मिष्टान्नसे परिपुष्ट अपने शरीरको खा जाया करा। बहुत बहुत दिनों तक यह न होकर अयोका ल्यों बना रहेगा ॥ ७३-७५ ॥ इस प्रकार इन्द्रको बात सुनकर मैंने कहा—यह बतलाइये कि मुझे स्वर्गोप अन्न किस तरह प्राप्त होगे ? मेरी बात सुनकर इन्द्रने उत्तर दिया कि अभी तो दण्डकारण्य मनुष्यविहीन है। जब विन्ध्य पर्वतको वृद्धि रोकनेके लिए अगस्त्यजी देवताओंके प्रार्थना करनेपर काशी छोड़कर दण्डकारण्यको जाये, तब तुम उसा शरीरमें स्नान करके अपना कंकण उन ऋषिको दे देना ॥ ७९-७९ ॥ उस कंकणके दानसे तुम्हें स्वर्गोप अन्न मिलने लगेगा। अतएव इन्द्रके आज्ञानुसार मैं बहुत दिनोंसे जाकर यह सब खाया करता हूँ। इतने दिन बीत गये, किन्तु यहाँ मुझ कोई नहीं दिखाया पड़ा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ आज तुम्हो दीख रहे हैं। इससे ज्ञात होता है कि तुम अगस्त्य ऋषि ही हो। आज तुमने मेरा उद्धार कर दिया। अब कृपा करके मेरे दानको स्वीकार करो ॥ ८२ ॥ अगस्त्यने कहा कि इस तरह कहकर उस स्वर्गीय प्राणीने अपने कंकण उतारकर हमें दिये और असन्न मनसे विमानपर सवार होकर स्वर्गलोकको चला गया। तबसे वह सब उस सरोवरमें कभी नहीं उतराया और वह स्वर्गी स्वर्गलोकमें विष्णु मन्त्रोंको पाने लगा। हे लव ! मैंने जिस कङ्कणको उस समय दण्डकारण्यमें पाया था, उसे रामको दिया और रामने आज आपको दे दिया है। श्रीरामदासने कहा—हब लवने अगस्त्यसे पूछा कि उस वनका दण्डक यह नाम क्यों पड़ा ? अगस्त्य कहने

एकदा म वनं गतो मृगयार्थं स्वसेनया । ततो दृष्ट्वा मृगं राजा मृगपृष्ठे प्रदृष्टुवे ॥८८॥  
 एकाकी हयमारुहो देशार्हशान्तरं ययौ एवं हि मच्छतम्भस्य मृगोऽदृश्योऽभवत्तदा ॥८९॥  
 ततः सोऽनितपाकृतः प्रययौ वै जलाशयम् । तत्र पान्था उन्न स्तच्छं म राजा समन्तटे ॥९०॥  
 अशान्वा स्वगुणेष्वेति मृगोऽश्रममाययौ । तत्र तान् विहानां ताम्रजम्बा मृगोः सुताम् ॥९१॥  
 दृष्ट्वा चान्नानर्ता राजा सोऽपून्कामविमोहितः । ततस्ता प्रार्थयामास रम्यर्थं माऽत्र रीन्नुप ॥९२॥  
 स्ववशा नृप नैवाहं तानाधानाऽस्मि मां प्रनम् । बहिर्भुगुस्तव गुरुमनस्त्वा वेदुम्यहं नृप ॥९३॥  
 यदि मामिच्छसि त्वं हि नहिं न स्वगुरु भृगुम् । प्रार्थयिन्वा मज सुखं मां वन्तो न्य विवाप च ॥९४॥  
 हन्पुक्तोऽपि तथा राजा दंडवतां कामपीडितः । भुक्त्वा सुखं बलादेव जगाम नगरीं निजाम् ॥९५॥  
 ततोऽञ्जम्बा मां बाला दृष्ट्वा तानं ममागतम् । गावन्तो मकलं वृक्षं श्रवयामास विह्वला ॥९६॥  
 तद्वृत्तं स मुनिः श्रुत्वाऽञ्जलीं कृत्वा जलं कृषा । मज्जर्वं स्वगुती बाला मां वयन् रक्तलोचनः ॥९७॥  
 दंडेन सह दंडस्य राज्यं वै धनवीजनम् । भवन्त्य भगादृग्धं मद्भाक्याच्च समंततः ॥९८॥  
 इतोदकं तथा चास्तु तथा नष्टचराचम् । इति तच्छ्रापमाकुर्यं तात सम्प्रार्थ्य बालिका ॥९९॥  
 प्रार्थयामास शापस्य सवाञ्छिं विनयान्विता । ततो मृगुः सुतामाह यदा यास्यति कुंभजः ॥१००॥  
 मुनिः काश्यास्थश्च दैत्यं तदाऽयं मजलो भवेत् । देवस्तथाऽत्र दासं हि कुरिष्यति मुनीश्वरः ॥१०१॥  
 अरण्यं दंडवतां हि जाते तस्मान्सदा नराः । त्रमु देशं वदिष्यन्ति दंडकारण्यमत्र हि ॥१०२॥  
 यदा भविष्यत्प्रदेशं रामागमनमुत्तमम् । भविष्यन्ति तदाऽत्र तानाक्षेत्राणि दण्डके ॥१०३॥  
 रामप्रसादात् क्षेत्राणि भविष्यन्ति ततो जनाः । रामक्षेत्राणि सदा वदिष्यन्ति हि दण्डकम् ॥१०४॥  
 मुनिरामप्रवादाच्च देशोऽयं पूर्वभुजः । भविष्यन्मुत्तमं पुण्यः सौख्यदश्च मनोरमः ॥१०५॥

लक्ष्मि—इत्यादिवाक्यम उच्यते तत्र नाम्ना एक दंडाकारं राजा था। वह सदा पापकर्मम रत रहा करता था ॥ ८८-८९ ॥ एक बार वह निकार मज्जनक लिए अपनी सेनाके साथ वनमें गया। वहाँ एक मृगके पीछे राजाने अपना घोड़ा दौड़ाया। वह अफला ही उस मृगके पीछे पीछे आगता हुआ देशान्तरमें आ पहुँचा और वहाँ वह मृग गायब हो गया। इसके बाद बहुत प्यास। वह राजा एक अलाशयक तटपर गया। वहाँ जल पिया, किन्तु उस पद नहीं जल हुआ कि मैं अपने गुरु भृगुके आश्रमपर पहुँच गया हूँ। वहाँ भृगुजी कन्या था। जिसका कि अभी राजावसे नशा हुआ था उस चन्द्रमाक सदृश सुनवाली (चन्द्रानेता) कन्याको देखकर राजा काममाहित हो गया और उसके सनाप जाकर उनके लिए प्रार्थना की। कन्याने उत्तर दिया कि हे राजन्। मैं स्वाम्य नहीं हूँ। इस समय मेरे ऊपर विभिन्न अधिकार हैं और भृगु (मर पिता) इस समय कहीं बाहर गये हुए हैं मैं आपको जानता हूँ ॥ ८८-९३ ॥ यदि आप मुझे चाहते हैं तो अपने गुरु (भृगु) से जाकर कहें और मुझे अपनी पत्नी बनाकर आनन्दके साथ भाग कर। उसका ऐसा कहनेपर भी राजाने एक न सुनी और हुआ उसके साथ भाग करके अपनी मगराकी लोट गया। इसके अनन्तर जब उसके पिता भृगु घर आये तो विस्मय करती हुई उस अरजन्क कायान मारा समाचार कह सुनाया। इस वृत्तान्तको सुनते ही भृगु मार कावके जाल में गये और मज्जन्तम जल भरकर कन्याको सान्त्वन दन हुए उन्होंने आप दिया कि शपथक साथ साथ उसका ही योजन राज्य चारा औरस जलकर सम्म हो जाय ॥ ९४-९८ ॥ उसनी जगहपर जल भी न रहे और न कोई जीव ही निवास करे इस प्रकार आप सुनकर कन्याने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि अपने इस शापकी अवधि भी निवृत्त कर दीजिए। कन्याके प्रार्थना करनेपर भृगुने कहा कि जब भगवत्प नृप बाला छोड़कर बिन्दुके उत पार चले जायेंगे। उस समय वह स्थान सज्ज हो जायगा और वहाँ बड़े-बड़े श्रद्धि निवास करेंगे। राजा दंडकेके दुराचारसे उस देशको ऐसी दशा हुई है। इसीलिए लोग उसे दण्डकारण्य कहा करेंगे ॥ ९९-१०२ ॥ तभी चल्कर जब रामचन्द्रजी उस देशमें जायेंगे तो उसमें कितने ही शेष वन जायेंगे और सबसे लोंग उसी दंडकारण्यकी रामक्षेत्रके नामसे पुकारेंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ भगवत्प

रेशेभ्यः सकलेभ्यश्च सुपुण्यं दण्डकं भवेत् । दण्डकेन समो देशो न भूतो न भविष्यति ॥१०६॥  
 इति तां बालिकाशुक्ला भृगुस्तम् हिमालयम् । ययौ तां सुनये दत्त्वा विधिना मुनिसंवृतः ॥१०७॥  
 भृगोः शोभाञ्च दण्डेन द्रष्टुं तद्राज्यमुत्तमम् । शनयोजनमानं तदभवद्वि समततः ॥१०८॥  
 यद्रामाश्रयनाभ्यं च ततः स्वस्थं न भूव तत् । पूर्वदण्डकारण्यं वराचरासमाकुलम् ॥१०९॥  
 इति त्वया यथा पृष्टे तया लब्धं मयादत्ते । कंकणस्य दण्डकस्य विचित्रे त्वां कथानके ॥११०॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्तिमुखाच्छ्रुत्वा लब्धस्तुष्टोऽभवत्तदा । तत्त्वा मुनिं च श्रीरामसेवायां हृत्परोऽभवत् ॥१११॥  
 अथ रामश्चोत्सवनं तस्मै चित्रांगदाय ताम् । हेमां ददौ विवाहेन महार्मगलपूर्वकम् ॥११२॥  
 पारिरर्हं ददौ कोटिमित्तं वारणादिकम् । महान्महोत्सवश्चासीदयोध्यायां प्रदीर्घदे ॥११३॥  
 ततो विमर्जयामास चोग्रबाहुं नृपं प्रभुः । धुनयः पथिवाश्वापि ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥११४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे बाह्यभागीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे

हेमाश्रयवरो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

## अष्टादशः सर्गः

( राम द्वारा ब्राह्मणीको रामनाथपुर राज्यका दान )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्त्वयोध्यायां रजयामास जानकीम् । जगोप मेदिनीं कृत्स्नां सममागमेखलाम् ॥ १ ॥  
 राममुद्रां विना कस्य साकेते शस्त्रधारिणः । नैवासीन्सुप्रवेष्टश्च रामराज्ये कदाचन ॥ २ ॥  
 नैवासीन्निर्गमश्चापि विना मुद्रां कदा बहिः । राममुद्राङ्कितं पद्मं गृहात्वा ते नृपोत्तमाः ॥ ३ ॥  
 ममनागमने चकुर्भूयां कुत्राप्यकुण्डितः । राममुद्रास्वरूपं च ते वदामि शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥

मुनि तथा रामचन्द्रकी कृपासे वह देश फिर उग्रोकाक्षों हो जायगा और वहाँके लोग सुखी ही जायेंगे । फिर वहाँ सुन्दरता दिखायी देने लगेगी । वह पृथ्वीके समस्त देशोंसे पवित्र देश माना जाने लगेगा ॥ १०५ ॥ उस बालिकासे भृगुन कहा—भविष्यमे लोग कह्य कि दण्डकारण्यके समान न कोई देश हुआ है और न होगा ॥१०६॥ ऐसा कहकर भृगुने उसे एक मुनिकी और विद्या और सत्य ब्रह्मसे ऋषियोंके साथ समझा करनेकी हिमालय-पर्वतपर चले गये । इस प्रकार भृगुके शोभसे दण्डकका भी रोजन राज्य जल भुक्तार राम हो गया । १०७ ॥ १०८ ॥ हुण्णर और रामके आगमनसे वह फिर पूर्ववत् हो गया और उसमें विविध प्रकारके जीव जन्तु आकर निवास करने लगे । इस प्रकार ४ पद । मुनेने हमसे जो प्रश्न किये, जो दण्डकारण्य तथा इस कंकण-विषयक कथानक वह सुनाया ॥ १०९ ॥ ११० ॥ श्रीरामदासन कहा—इस तरह अगस्त्यकी बात सुनकर लब्ध परम प्रसन्न हुए और अगस्त्यजीका प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रकी सेवाभ्य लग गये ॥ १११ ॥ इसके अनन्तर रामने उत्सवके साथ उस हेमा कन्यका विचित्र ससमारोह विवाह करके निशाङ्गदकी दे दिया । चन्द्रोने कन्याके विवाहमें दहेजस्वरूप बहुतसे हाथ-पैड आदि करोड़ोंकी सम्पत्तिका दान दिया । इसके बाद महाराज उग्रबाहुकी विदा किया और निमंत्रणमें आये हुए राजे तथा ऋषियण अपने अपने स्थानकी लौट गये ॥ ११२-११४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे १७ रामतेजपाण्डंगविरचितं ज्योत्स्ना-भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बाले—इसके बाद रामचन्द्र सीताकी प्रसन्न करते हुए सप्तसागर मेखालावासी पृथ्वीकी रक्षा करते रहे । रामके राज्यमें कोई भी शस्त्रधारो मरुष्य विना राममुद्रा-अङ्कित पत्र लिये नहीं बाहर या और बिना पुत्राके कोई बाहर भी नहीं जाने पाता था । राममुद्रासे चिह्नित पत्र लेकर संसार भरके राजे जहाँ चाहें

तिर्यग्मुखं पञ्चदश रेखाः प्रकल्पयेत् । पीता श्यमिका पंक्तिस्तुर्दिक्षु प्रकाशयेत् ॥ ५ ॥  
 पंक्तिर्द्वितीया शुभ्रैव हातव्या च तथाऽष्टमी । त्रयश्चेकदिगाम्य चतुर्थायां प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥  
 वक्ष्यमाणपदान्येव कृष्णानि हि समाचरेत् । आरम्भश्चोत्तम्या हि समाभिर्दक्षिणे स्मृता ॥ ७ ॥  
 पश्चिमाभिमुखा स्थाप्या मुदा तत्रात्मसम्भूता । पूर्वस्येन सदा स्थेयं तदा कर्त्रा विनिश्चयात् ॥ ८ ॥  
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । अष्टमं नवमं चैव तथैकादशमुच्यते ॥ ९ ॥  
 तमश्चतुर्ध्यां पंक्तौ हि चतुर्थं षष्ठसप्तमे । तथैकादशमं ज्ञेयं पञ्चमायाः क्रमोऽधुना ॥ १० ॥  
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । नवमैकादशे चापि षष्ठायाश्च क्रमोऽधुना ॥ ११ ॥  
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमम् । नवमैकादशे चापि सप्तमो सङ्ख्याऽमिता ॥ १२ ॥  
 नवम्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं हि सप्तमं चापि नवमं दशमं स्मृतम् ॥ १३ ॥  
 तथैव द्वादश चापि दशम्याश्च क्रमोऽधुना । चतुर्थं च तथा षष्ठं सप्तमार्कं तथाऽमिते ॥ १४ ॥  
 एकादश्याश्च प्रथमं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं च नवमान्येव दशमार्कं तथाऽसिते ॥ १५ ॥  
 द्वादश्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं च सप्तमं चापि दशमं नवमं तथा ॥ १६ ॥  
 दशमार्कं तथा प्रोक्ता कृष्णा कृष्णना त्रयोदशी । एव मुद्रया पूरयित्वा राजा रामेति वै स्फुटम् ॥ १७ ॥  
 सितवर्णं गणनाममुद्रया हि निर्गमयेत् । एवं गममुद्रिकायाः स्वरूपं ते मण्योदितम् ॥ १८ ॥  
 एवं मुद्राङ्कितां रामां शिला विधेय्य आदरात् । ददौ साद्यापि भूम्या हि रामनाथपुरेऽस्ति हि ॥ १९ ॥

विष्णुदास उवाच

किमर्थं भूतुरेभ्यश्च राघवेण समर्पिता । रामनाथपुरे पूर्वं स्वीयमुद्राङ्किता शिला ॥ २० ॥  
 तत्त्वं विस्तरंयेव कथयस्वाद्य मां गुणे । आश्चर्यं च त्वया प्रोक्तं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखान् ॥ २१ ॥

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं श्रुत्वा विप्रा अलितदापिनम् । हर्षाद्ब्रह्मपुग्भ्याम्ते दाक्षिणात्या द्विजोत्तमाः ॥ २२ ॥

कहासे कहासे कहीं भी उन्हे रोक नहीं थी, जब मैं तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बताना हूँ, सो सुनो ॥ १-४ ॥  
 काल रंगकी सड़ो-बेड़ी पन्द्रह रेखाएँ खींचे । उनमें चारों ओरकी गूँठों पंक्ति देने लड़के रंगे ॥ ५ ॥ दूसरी  
 और आठवीं पंक्ति सर्वहूँ ही रहने दें ; इसके बाद ईशानकोणसे लेकर तीसरी रेखा तक आगे कहीं जानेवाली  
 पंक्तियाँ काँध रंगसे लिखें । जिस बट उत्तरकी तरफसे पारम्भ करके दक्षिणसे समाप्त करनी चाहिए ॥ ६ ॥  
 मुद्राका मुख सदा सामने अपनी पश्चिमाभिमुख बनाये और स्वयं पूर्वकी ओर मुख करके बैठे : = ॥ पहली,  
 दूसरी चौथी, छठवीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, द्वादशवीं और पौनर्वी रेखाएँ चौकिनी तथा पन्द्रहवीं, दूसरी, चौथी,  
 छठवीं, नवीं, द्वादशवीं तथा सातवीं चौकी गूँठ रख काले रङ्गकी रहनी । फिर नवीं रेखाकी पहली, दूसरी,  
 चौथी, छठी और हातवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहनी । ६-११ फिर द्वादशवीं रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी,  
 छठी, आठवीं, नवीं तथा दशवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहनी । बारहवीं रेखाकी पहली, तीसरी, दूसरी, चौथी,  
 छठी, सातवीं, आठवीं, नवीं दसवीं, बारहवीं तथा तेरहवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहनी । इस प्रकार अपनी  
 मुद्रिमें उपयुक्त कोष्ठकोंको पूर्ण करनेसे 'रामा राम' यह शब्द साफ साफ संकेत वर्षोंमें लिख जायगा  
 ॥ १२-१७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बतलाया । इस प्रकारकी मुद्रासे विहित किया रामने  
 ब्राह्मणोंकी दानस्वरूप दी थी जो आज भी रामनाथपुरमें रहनेवाले ब्राह्मणोंके पास विद्यमान है । १८ ॥ १९ ॥  
 विष्णुदासने पूछा कि रामने रामनाथपुरवाले उन ब्राह्मणोंको बहु अपनी मुद्रासे अङ्कित गिला, किस लिये दी  
 थी ? यह सब कथा विलारपूर्वक हूँ बतलाइये । आपने यह आश्चर्यमयी बात कह दी । इसका पूरा विवरण  
 मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ । २० ॥ २१ ॥ श्रीरामदास कहने लगे कि एक समय रामचन्द्रकी यह

ययुस्ते राघवं द्रष्टुमयोच्यायां मुदान्विताः । २३॥

गन्धर्वराजगेहे स भोजनं कर्तुमुद्यतः । स्नान्वा तत्र सुहृद्गेहे मीनपा बन्धूभिः सुखम् ॥ २४॥  
 पुत्राभ्यां भोजनं कर्तुमायते संस्थितोऽभवत् । गन्धर्वराजः शिरासं पूजयामास मादरम् ॥ २५॥  
 परिवेषितानि पात्राणि मुहूर्त्ताभिरुदा जवत् । दिव्यान्नैर्मधुरैश्चैः पक्वान्नैर्विविधैरपि ॥ २६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे विप्रा रामनाथपुरदिग्वाः । सुहृद्गेहे गतं रामं ध्रुवां तत्र कपुर्मुदा ॥ २७॥  
 गन्धर्वराजद्वारस्थैर्दूतैः शिरासं पूजयामास तदा शीघ्रं निवेदिनम् ॥ २८॥  
 तद्भुत्वचनं ध्रुवा राघवश्चामिमम्भ्रमात् । शत्रुद्रुम्य स्वयं विप्रान्ननाथं शिगमा प्रभुः ॥ २९॥  
 गन्धर्वराजगेहे तार्क्ष्यान्वा दृष्ट्वाऽऽपनावि हि । स्नातुमाज्ञापयन्मवांश्च भोजनार्थं रघूत्तमः ॥ ३०॥  
 तदा ते मन्त्रपण्यमुदिष्टाः सर्वे परस्परम् । भोजनपूर्वमेवैतं याचनीयं स्ववाञ्छितम् ॥ ३१॥  
 केचिद्वुस्तदा विप्रा निर्वैद्यं च रघूत्तमे । नोपेक्षाऽस्ति मर्दवाय ददाति द्विजवाञ्छितम् ॥ ३२॥  
 मन्त्रमेवायं रामस्य द्विजवाञ्छितपूरणम् । तत्र तान्मन्त्रमाणांश्च रामो दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः ॥ ३३॥  
 शतं मयाऽभिलषितं युष्माकं मुनिपुङ्गवाः । राज्ञेच्छया ममाद्यताः किमर्थं श्रमिन्ना द्विजः ॥ ३४॥  
 कथं न प्रेषितः सिध्यस्तदाक्येनैव वै मया । शीघ्राऽप्यविष्यद्युष्माकं पुरितां क्षणमावता ॥ ३५॥  
 एवं तान्ब्राह्मणानुक्त्वा लक्ष्मणं प्राह रामवः । मया ब्रह्मपुरस्याद्य विप्रैरभ्यो राजवमर्षितम् ॥ ३६॥  
 शिलायां लिख्य मन्नाम दानं दत्तमिदं न्विति । तथ्येति रामवाक्येन लक्ष्मणश्चातिमम्भयात् ॥ ३७॥  
 रघुङ्कारान्तरमाहूय शिलायामन्यतमिति । शीघ्रमज्ञापयामास ते जगद्वैराग्यचराः ॥ ३८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे विप्राः प्रोचुस्ते राघव मुदा । कृत्वाऽशनं लेखनीयां शिलां पश्चाद्रघूत्तम ॥ ३९॥  
 किमर्थं क्रियते राम त्वरा लेखनकर्तॄणि । परिवेषितानि पात्राणि त्रयं चापि क्षुधादिताः ॥ ४०॥

इणमा सुनकर कि वे ब्राह्मणोंको कामना पूर्ण करते हैं । दक्षिण देशके रहनेवाले बहुतसे ब्राह्मण हजारोंकी संख्यामें एकत्रित होकर रमते मिलने गये । उद्यत राम प्रसन्न मनसे गन्धर्वराजके भवनमें भोजन करने गये हुए थे । सीता तथा भ्रातृओंके साथ उन्होंने यहाँ ही स्नान किया था और जगने दोनों बेटोंके साथ भोजन करने बैठे थे । गन्धर्वराज मादर रामका पूजन किया ॥ २४-२५ ॥ गन्धर्वराजके घरकी स्त्रियों तथा मित्रों गोप्यतासे दिव्यान्न तथा विविध प्रकारके पक्वान्न आदि परमेश्वर प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥ इसी समय रामनाथपुरके निवासी विप्राण रामके द्वारपर जाये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि राम अपने सम्बन्धोंके घर गये हैं । बस, वे लोग भी गन्धर्वराजके यहाँ जा पहुँच और द्वारवालोंने रामको यह खबर दी कि रामनाथपुरके ब्राह्मण जाये है । दूतकी बात सुनकर स्वयं राम मुरन्त उठे और उन लोगोंके पास जाकर इणाम किया और उन्हें गन्धर्वराजके घरमें ले गये । आसत्पर्य विडाकर उनसे स्नान भोजन करनेके लिये कहा ॥ २७-३० ॥ उस समय उनके सबोंने संवत्सर करके निश्चय किया कि भोजन करनेके रहने ही हम लोग अपनी माँग उपस्थित कर दें । उनमेंसे कुछने कहा कि इतनी जल्दी बस है, राम क्यों राघवोंको उपक्षा नहीं करते । बल्कि वे सदा ब्राह्मणोंका याचना पूरी करनेको तैयार रहते हैं । इन रामका यही वचन है कि ब्राह्मणोंकी माँगें पूर्ण किया करें । इस प्रकार परस्पर सलाह करते हुए ब्राह्मणोंका दखकर रामने कहा कि हम आप लोगोंकी इच्छाको जान गये हैं । आप लोग राजकी इच्छासे मेरे पास जाये हैं । सो इसके लिए आपने इतना परिश्रम क्यों किया ? ॥ ३१-३४ ॥ आप अपने किसी मित्रको ही भोजन दिये होने तो मैं क्षणभरमें आपकी इच्छा पूर्ण कर देता ॥ ३५ ॥ इस तरह उन ब्राह्मणोंसे कहकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज मैंने ब्रह्मपुरका राजद ब्राह्मणोंको दान दे दिया है । एक शिखर मेरा नाम लिख ओ और उसमें यह भी लिखवा दो कि मैंने ब्राह्मणोंको ब्रह्मपुरका राज्य दान दे दिया है । "बहुत अच्छा" कहकर लक्ष्मणने तुरन्त पत्थर मोदनेवाले सन्तगसोंको बुलवाया बीच एक बड़ी शिला बाँटायी । दूत लक्ष्मणके आज्ञानुसार तुरन्त चले गये ॥ ३६-३८ ॥ तब तब विप्रा रामसे

कृतेषां वचनं धन्या फलभारान्वांचविनान् । पुष्पान्स्थापयामास विप्राणां वरमादरात् ॥४१॥  
 उवाच मधुरं वाक्यं राघवः स्मितपूर्वकम् । फलार्नीमानि भो विप्रा मन्त्रयच्च यथासुखम् ॥४२॥  
 लेखयित्वा शिलायां हि यदा मृदां करोम्यहम् । तदाऽश्ननादिकं कर्म सर्वमन्यत्करोम्यहम् ॥४३॥  
 क्षणं वित्तं धनं चित्तं क्षणिकं च स्वर्जीवितम् । यमोऽतिनिर्दृष्टः सोऽस्ति धर्मं शीघ्रमवधरेत् ॥४४॥  
 शतं विहाय भोक्तव्यं महस्रं स्नानमाचरेत् । लब्धं त्यक्त्वा तु दानव्यं कौटिं त्यक्त्वा शिवं भजेत् ॥४५॥  
 कौटिर्विघ्नानि गीतायां दण्डकोटानि आह्वयीम् । शतकोटानि जायन्ते दाने विघ्नानि भूमुखाः ॥४६॥  
 अतः कार्या त्वरा दाने सर्वदा तु नरोत्तमैः । निद्रायाः पूर्वकाले तु निद्रायाः परममथा ॥४७॥  
 भोजनान्पूर्वकाले तु भोजनान्परममथा । क्षणे क्षणे मार्ताभक्षा जायन्तेऽत्र द्विजोत्तमाः ॥४८॥  
 तस्मान्कार्या त्वरा दाने मुनिर्या प्रथमे क्षणे । कृता क्षणेनापरे माऽन्येतदेव मतं मम ॥४९॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र हृत्कारैः शिलां घग । यमानीना मण्डक्रीजा नवहस्ता ममन्ततुः ॥५०॥  
 तस्यान्ते लेखयामासुर्हृत्काराः स्फुटाररैः । सूर्यवद्योद्भवनाथ ममट्टीपैभ्यरेण हि ॥५१॥  
 त्रेतायां दाशरथिना रामराज्ञा द्विजोत्तमान् । यथा ब्रह्मपुत्रस्यैव राज्यदानं कृतं मृदा ॥५२॥  
 यावत्तपति स्ते भानुर्वायदस्यत्र मे कथा । पारम्यवर्तते वायुस्तावदानं ममास्त्विदम् ॥५३॥

सम्मान्योऽयं धर्मसेतुर्द्विजानां काले काले पालनीयो भवद्भिः ।

सर्वानेतान् मायिनः पार्थिवं द्रान् भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः ॥ ५४ ॥

एवं विलेख्य श्रीरामः शिलायां निजमुद्रिकाम् । रामनामांकितं वायुपुत्रेणारुपमं यदा ॥५५॥

आंजनेयस्य आरेण चित्रा जाता तदङ्किता । राजारामेति तस्यान्ते ददृशुश्च स्फुटाररम् ॥५६॥

कहा कि आप पहले भोजन कर लीजिये, तब शिलालेख लिखवाइयेगा है राम । आप लिखमकी इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं ? पाशोम सामग्रियां परामा जा चुकी है और हम लोग भी भुख है । ३९ ॥ ४० ॥ उनकी बात सुनी तो रामने बीसके बात विविध प्रकारके फल योग्यकर उनके सम्मने रखवा दिये और कहा-हे विप्रगण ! आप लोग सुखमे यह फल खाइए । हम तो जित्ना लिखवाकर और उसपर अपनी मुद्रा प्रहित कर देनेके बाद ही भोजन करेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वन क्षणस्थायी है, चित्तवृत्त क्षणिक है, अपना जीवन भी क्षणभंगुर है और पमराज वका निर्दयी है । इसलिये जियने साध हो तब, पाणिक काम पूरा कर हास ॥ ४४ ॥ सौ काम सामने हों तो उन्हें त्यागकर पहले भोजन करना चाहिए, महत्त्व कामोको त्यागकर पहले स्नान करना चाहिए, लाल कामोको त्याग करके पहले दान करना चाहिए एवं करोड़ों कामोको छोड़कर पहले शिवका भजन करना चाहिए ॥ ४५ ॥ हे विप्रो ! गीताका पाठ करना समय परावृत्ति विपर, गणस्नानमे दण्ड करोड़ विघ्न और वाय-कर्ममे ही करोड़ विघ्न आकर उपस्थित होते है ॥ ४६ ॥ इसलिये सज्जनोंको चाहिए कि दानमे यमदा ही धनदा करें । निद्राके पूर्वकालमे, निद्राम उठनेके बाद, भोजनके पहले और भोजनके बाद लण क्षणमे बुद्धि बदल करती है । इसीलिए प्रथम भक्षणम जैसी अपनी बुद्धि हो गयी हो उसके अनुसार रामकर्म ही भक्षण कर हासनी चाहिये । यह मेरा निजी मत है । ४७-४८ । उसी समय हनगमाने भी हाथकी लम्बी-चीड़ी मण्डकी नदीकी एक प्रच्छा-यी शिला ल्यकर रामके सामने रख दी ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर सत्तरासोने साफ-साफ सत्तरासे उस शिलापर सादकर लिखा कि 'सूर्यवद्यो उत्पन्न और सप्तद्वीपक अचोत्तर महाराज पनारपका पुत्र श्री राजा राम प्रमप्रतापुवक ब्रह्मपुत्रका राज्य दान करके ब्राह्मणोंको दे रहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यद्यत्क कि आकाशमे सूर्य चलता सदा रह, जब तक सत्तरास मंग नाम रहे और जब तक कि पवन चलता रहे, तब तक मंग यह दान दान माना जाय ॥ ५३ ॥ मेरे जाने ओ राजे होनेवाले हैं, उनसे मैं राम बार-बार यहो बात मागता हू कि 'ब्राह्मणोंके इस धर्मसेतुकी आप लोग सदा रक्षा करते रहिएगा' ॥ ५४ ॥ इस प्रकार लिखवाकर रामने हनुमन्तेका द्वारा उसपर अपनी रामनामांकित मुद्रा मयवा की ॥ ५५ ॥ हनुमान्तेका बारसे शिलापर रामकी मुद्रा खुद गयी और उसमे "राजा राम" यह शब्द साफ

रामनाथेन पदं पुरदानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुरं चेति तदारभ्य प्रयां गतम् ॥५७॥  
 तस्य ब्रह्मपुरमिति नाम प्राथमिकं स्मृतम् । रामनाथपुरं चेति तस्यैवाण्वाजपरा स्मृता ॥५८॥  
 शिलामारमितं द्रव्यं दक्षिणार्धं निधाय सः । तां शिलां पूज्य विप्रेभ्यः श्रीरायः सीताया ददौ ॥५९॥  
 ततोऽग्नवीक्ष्युपुत्रं भोजनानन्तरं त्वया । विमानेन शिला नेया रामनाथपुरं द्विजैः ॥६०॥  
 कषुकण्डं ततः पत्रं लेखयामास राघवः । ब्राह्मणानां त्वया कार्यं साहाय्यं सर्वदेति वै ॥६१॥  
 ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे ददुराशीः सहस्रशः । अकारं भोजनं रामस्ततस्तैः परिवेष्टितः ॥६२॥  
 ततः सर्वे विमानेन ययुर्विप्राः पुरं प्रति तान्मुष्टा सारुतिश्चापि विमानेन ययौ पुनः ॥६३॥  
 एवं अकारं दानानि समशीघ्रान्तरेषु हि । सहस्रशो रामचन्द्रस्तेषां सख्या न विद्यते ॥६४॥  
 रामनाथपुरस्थास्ते विप्राः कालान्तरेण वै दुष्टराज्यभयादग्रे तां शिलां भयविह्वलाः ॥६५॥  
 तदाके प्रविपिष्यन्ति ततः कष्टं भजन्ति ते । मर्तुकान् द्विजान्मुष्टा तटाकान्मारुतिः पुनः ॥६६॥  
 बहिर्निष्कास्यति शिलामग्नं कालान्तरेण हि ।

विष्णुदास उवाच

किं कष्टं भूतुरानग्रे भविष्यति स्वजीविते ॥६७॥  
 यतस्ते त्यक्तकामाश्च भविष्यन्ति वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

अग्रे कश्चिद्दुष्टराजा भविष्यत्यवनीतले ॥६८॥

स ताभिषेच्य विप्रांश्च तद्राज्यहरणेच्छया बदिष्यति कलौ राजा पुष्पाकं दानमर्पितम् ॥६९॥  
 यदि रामेन तदानपत्रं मे दृष्टिगोचरम् । कर्णीयं न चेच्छीघ्रं यावत्कालं पुणेद्भवम् ॥७०॥  
 पुष्पाभिर्वस्तु यद्भुक्तं तत्सर्वं दीयतां मम । नोदेत्पर्वान्वधिष्यामि भूतुराणां यदस्त्वहम् ॥७१॥  
 ततस्ते नाशनाः सर्वे भुन्वेद् वृषनेरन्वा । भयभीता मंत्रयित्वा नृपं प्रोत्तुस्त्वरान्विताः ॥७२॥

साकं शिलायी देने लगा ॥ ५६ ॥ रामने ब्राह्मणोंको वह पुर दान दिया था, इसीसे उसका रामनाथपुर नाम पड़ गया । ५७ ॥ पहले उसका ब्रह्मपुर नाम था । अबसे रामने उसको दान दे दिया, तभीसे रामनाथपुर उसकी संज्ञा हुई । ५८ ॥ उस शिलाक तौल भर द्रव्य दक्षिणाके निमित्त रखकर सीताके साथ रामने उन विप्रोंको पूजा की और वह शिला उनको दे दी ॥ ५९ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्जीसे कहा कि भोजन कर लेनेके बाद इन ब्राह्मणोंके साथ जाकर यह शिला रामनाथपुरमें पहुँचा आना ॥ ६० ॥ इसके बाद रामने कषुकण्डको एक पत्र लिखवाकर उन ब्राह्मणोंको दिया : जिसमें लिखा था कि आप सदा इन ब्राह्मणोंकी सहायना करते रहें ॥ ६१ ॥ तदनन्तर प्रसन्न मनसे विप्रोंने आशीर्वाद दिया और रामने इन सबके साथ बैठकर भोजन किया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर वे सब विप्र पुष्पक विमानपर बैठकर अपने आपसको बल और रामसे पूछकर हनुमान्जी को विमानपर बैठकर उनके साथ-साथ गये ॥ ६३ ॥ इस तरह सातों दिनोंमें रामने हजारों दान किये । ठीक तरहसे जितनी सही संख्या नहीं जानी जा सकती ॥ ६४ ॥ रामनाथपुरमें रहनेवाले वे विप्र भविष्यमें दुष्ट राजाओंके भयसे उस शिलाको ताम्बावर्ण फेंक देंगे, जिससे उनको बड़ा कष्ट प्राप्त होगा । जब वे मरनेपर उत्सारु हों जायेंगे तो हनुमान्जी उस शिलाको फिर निकालेंगे ॥ ६५ ॥ विष्णुदासने पूछा कि ब्राह्मणोंको जाने चलकर अपने जीवनमें कौन-सा कष्ट उठाना पड़ेगा । ६६ ॥ ६७ ॥ जिसके लिये उन्हें वह शिला त्यागनी पड़ेगी, सो कहिये श्रीरामदासने कहा कि पृथ्वीतलमें आगे चलकर एक कोई दुष्ट राजा होगा ॥ ६८ ॥ वह कलियुगी राजा उन ब्राह्मणोंको मारकर उनका राज्य छीननेकी इच्छासे कहेगा कि यदि रामने तुमको यह राज्य दान करके दिया है तो वह दानपत्र दिखाओ । नहीं तो इतने दिनों तक इस राज्यकी जितनी मात्र तुम लोगोंने ली है, वह सब लाकर दे दो । नहीं तो मैं सबको मार डालूँगा । क्योंकि ब्राह्मणोंके लिए मैं

मासेनैकेन पत्रं ते हर्षयिष्यामहे वयम् । ततो ह्युचोच तन्माजा तेऽपि तूष्णीं पुरं ययुः ॥७३॥  
 तटाकस्य तटं भिक्षा प्रवाहाः सुतशस्तवः । मोचयामासुः सर्वत्र नातं तस्य जलस्य ते ॥७४॥  
 ददृशुः सकला विप्रास्तवस्तौ प्राणसंकटम् । शान्ता तत्र निगहामा जिघेहूः समस्ततटे ॥७५॥  
 राघवं परमात्मानं चिन्तयामासुगदरान् । एवं मासे न्वनिकान्ते वर्षे शान्त्वान्मनो नृसत् ॥७६॥  
 भयान्प्राणांस्यक्तुकावाद्यास्तस्मिन् प्रलाशये । उदा तेषां शिवः पुत्राश्रकः कोटाहल भृशम् ॥७७॥  
 तान्सर्वान्सांत्वपामासुर्नानार्नान्युत्तरं द्विजाः । स्वयं ह्मात्वा द्विजाः सर्वे ददृशुः सान्त्वयनेकयः ॥७८॥  
 चक्रुः प्रदक्षिणाः सप्त तटाकायौत्तमाननाः । ऊचुर्दीर्घस्वरेणैव प्रथद्वकसंपुटाः ॥७९॥  
 हे राम जानकीकांत त्वहानादीदृशी गतिः । ज्ञाताऽहमाकं मृताश्रयत्वं सर्वान्पश्य रघूनम ॥८०॥  
 पुरोद्भवं तु यदुद्भव्यं पूर्वजैर्भुक्तमेव तन् । एतावन्कालपयन्त्यमममिश्राधुना कुतः ॥८१॥  
 तत्ररक्षेयमसंख्यातमनुरूपस्याम जीवितम् । ह्युक्त्वा त्राकणाः सर्वे निमीन्य नयनानि ते ॥८२॥  
 चिन्तयामासुः स्वीयेष्टा देवता मरणोत्सुकाः । एतस्मिन्मरणे तु त्र देवागारे हनूयतः ॥८३॥  
 बाणान्मूर्तेः प्रकटः संबभूवाङ्गनोमुतः । दीर्घस्वरेण तान् प्राह भूमुरान्मममादृतिः ॥८४॥  
 ह्य मा जीवितान्यय न्यत्राप्य त्राह्यगोचराः । आगतो राघवस्याह दामाऽज्ज नेममुद्भवः ॥८५॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा द्विजास्ते विस्मयान्विताः । उन्मील्य नयनान्यग्रे ददृशुर्वापूनन्दनम् ॥८६॥  
 दीर्घकाहु महाभोर पिङ्गकेशविराजितम् । जरठ पर्वताकारं रामनामप्रमाणम् ॥८७॥  
 तं दृष्ट्वा ते द्विजाः सर्वे प्रणेमुर्दृष्टमानसाः । कथयामासुस्त सर्व स्वीये वृत्त सविष्टाग्म् ॥८८॥  
 ततः स मासुर्विबेगाभ्यसस्तां क्षितां बहिः । निष्कास्य विप्रवर्यैस्तैः शिलां पृक्वा स्वयं कपिः ॥८९॥

यमराज हूँ ॥ ६९-७१ ॥ राजाकी ऐसी बात सुनकर बाहूण मथमात हो लयो परस्पर लल हू करके वससे बाले कि एक महीन्मे मै आपका बहु दानपत्र खाजकर दिखाऊंगा । यह मुनकर राजन्त ब.शणाको छोड दिया और वे धुपचाव लोटकर अपने-अपने घर चले गये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वही पटुनकर उन्होंने बहू ना गबका बाँध छोड दिया । जिससे सैवङ्गे सोते वह निकले और चारो ओर फँदकर बहूनपर भी बहागका ज. लहा चुका । जब बाहाणाने देखा कि अब प्राण सङ्कटम का गया है तो सन्नक सब उसाके एक ऊँच कारारन उपवास कर्त्त हुए बैठ गये और परमात्मा रामचन्द्रजीका ध्यान करने लग। इस प्रकार एक महान बार जानेपर जब उन विप्रोंने सोचा कि अब बहु दुष्ट राजा हमको मर डलेगा तो मयस अपने प्र.ग र.गनक लिए तैयार हो गये । उह समय उनके घरकी स्त्रिया तथा बच्चे आश्चर्यक दु.खित होनक कारण सबक सब विल्ला-चिन्सकर रोने लगे ॥ ७४-७५ ॥ तब उन्होंने शिवा बच्चाका मन्नक प्रकारका नातिमजी बात सुनाकर सान्त्वना डा । स्वयं उन विप्रोंने स्नान करके नाना प्रकारके दान दिये । फिर उन्होंने उस तालाबकी सात परिक्रमा की और उत्तरकी ओर मुख करके बड़े हो गये हाव जाडकर ऊँच स्वरसे वे कहने लगे हे राम ! हे जानकीकान्त ! तुम्हारे दिखे हुए वानसे आज हमारी यह दुर्दशा हो रहो है हे रघून्म ! अब तुम हम लोकोको मरा हुआ समझो ॥ ७८-८० ॥ पूर्वकालमें हमारे पूर्वजोंने जो धन इस राज्यसे पाया, वह सब उन्ही ल.गोन लबे कर दिया । अब हम कहसि असक्य घन लाकर इस राजाका दे. उनका घन कुटाना हमारी शान्तिके बहूर है । अतएव हम अपने शरीरको त्याग देंगे । इतना बहूकर उन मरणाभुल विद्यान नेम गूर लिये और अपने इष्टदेवका ध्यान करने लगे । उसी समय पासके देवालयमें प.प.णमय. मूर्तिसें हनुमानजी प्रवर हूर और नार.जोरसे चिन्सकर कहने लगे — ॥ ८१-८४ ॥ हे ब.हूणो ! तुम लोग अपने प्राण मत त्यागो । रामचन्द्रका सबक छञ्जनीपुत्र मै हनुमान् भागया । इस प्रकार उनकी बात सुनकर विरिम्त काशमे उन सबोंने नेम खोलकर हनुमान्जीको देखा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय उन हनुमान्जीका सम्भा.तया मयानक हाथ पा, पीले-पीले केश थे, बूकी अवस्था की, पर्वताकार शरीर था और वे निरन्तर रामनामका उच्चारण करते आते थे ॥ ८७ ॥ इनको देखत तो प्रसन्न नितसे उन बाहूणोंने प्रणाम किया और विस्तारपूर्वक अपने



लगाम दुष्टराजानं दशैशमाय तौ शिला ॥ १०० ॥  
 तं तदा रोषयाभाय शूराग्रं गण्डजो नृभ्यः ।  
 नृपं मोचयितुं ये ये रात्रिः समागतुः ।  
 द्विजहृत्पापशमनाद्घृतापशमनं ॥ १०१ ॥  
 राज्यदानेन रामस्वीकार्यं लोकांश्चरति पुनः ।  
 उदरमपारं चेत्येति नाम्ना मृतः प्रसिद्धिमतः ॥ १०२ ॥  
 स्नानं दिता तन्मर्यापि नृणां तपत्रय न हि ॥ १०३ ॥  
 ततः प्राह पुनर्विश्रान्धनूमास्तुष्टमनः ।  
 न भयं वोऽस्तु भो विद्या युष्माकं साधयाम्यहम् ॥ १०४ ॥  
 इन्द्रमुक्त्वा गुणरूपोऽभून्मर्षायमूर्त्तिं द्विजप्रभः ।  
 तौ शिलां स्थापयाम तुभूम्भ मेऽतीत्यस्तनतः ॥ १०५ ॥  
 ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे जम्मुः स्व स्व गृहे प्रति ।  
 एवं शिष्य मया प्रोक्ता कथा भाव्य तत्रागतः ।  
 अद्यापि तत्र तौर्ग्रैस्तद्राज्यं भुञ्जते सदा ।  
 ये ये जाता नृषा भून्वा रामाणां मानयन्ति ते ॥ १०६ ॥  
 एव नाना कौतुकानि रावयेण कुतानि हि ।  
 इति श्रीशतकोटि-रावयेण कुतानि हि ॥ १०७ ॥  
 इति श्रीशतकोटि-रावयेण कुतानि हि ॥ १०८ ॥  
 इति श्रीशतकोटि-रावयेण कुतानि हि ॥ १०९ ॥  
 इति श्रीशतकोटि-रावयेण कुतानि हि ॥ ११० ॥

सारा वृत्तान्त कहू मुनाया ॥ १०० ॥ इसक अनन्तर हुमायूँ ने शिला उस राजस निकालकर अपने  
 कामे रख दी और ब्राह्मणों से उस दुष्ट राजा के लक्षणों के विषय में पूछा । ब्राह्मणों ने कहा कि  
 उस शिलाको देखकर राजा बहुत चकराया ॥ १०१ ॥ १०० वर्षों के बाद में ३३ वर्ष का पकड़कर उस  
 सरोवरक तटपर ल गये और शूलोंपर बड़ा दण्ड मारना शुरू किया । जो सिंगहा उनके पास आये,  
 हुमायूँजीने अपनी लम्बी पूछके डारकर हल उन सबको मार डाला ॥ १०२ ॥ ब्राह्मणोंको सन्तान हनु-  
 मान्जीने उस सरोवरपर हरण किया । इसीसे ही 'उदरमपारं चेत्येति नाम' पड़ गया ॥ १०३ ॥  
 राज्यदानसे रामकी उदारता संसारका इशान के लिए उसी स्थानपर हुमायूँजीने उदारराषयेण नामक  
 शिवालिकी स्थापना की ॥ १०४ ॥ उस सरोवरमें स्नान करनेसे मनुष्योंके दोहन, दोबक और मानसिक ये  
 तीनों तप दूर हो जाते हैं ॥ १०५ ॥ इसके बाद हुमायूँजीने उन सरोवरके विषयमें कहा — पृथ्वी एक युष्मा-  
 कं बनाकर उसमें यह शिला रख दी ॥ १०६ ॥ इससे, तुमको किसी प्रकारका भय नहीं है । मैं सदा तुम्हारे  
 पास रहूँगा । तुम सब सर्वदा भगवान् रामका स्मरण करते रहो । इतना कहकर सबके समक्ष हुमायूँजी  
 अपनी उसी पाषाणमयी प्रतिमासे स्नान हुआ गया । जिस कि हुमायूँजीने व लाया था, विज्ञाने गुफा सावकर  
 बड़े यत्नसे यह शिला उसीके नीचे रख दी ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ इसक अनन्तर प्रसन्न मनसे व ब्राह्मण लौटकर  
 अपने-अपने घरोंको चले गये । तबसे इसी राजाने उन राज्यका हरण नही किया । आरामदास कहते  
 हैं—हे शिष्य ! मैंने भाषी वृत्तान्त तुम्हें कह मुनाया । अब अब वह ब्राह्मण उस राज्यका उपभोग कर  
 रहे हैं । पृथ्वीतलपर जितने राजे हुए, वे बराबर रामकी आज्ञाका मानते आते हैं । इस प्रकार अवशिष्टाये राम  
 अपने पुत्रों, सीता तथा भाइयोंके साथ नाना प्रकारके कौतुक करते रह ॥ १०९-११० ॥ इति श्रीशतकोटिराम-  
 चरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११० ॥

## एकोनविंशः सर्गः

( रामकी दिनचर्या )

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य वदाम्यद्य रामाज्ञः शुभावहः । दिनचर्या राज्यकाले कृता लोकान् हि शिषितुम् ॥ १ ॥  
 प्रभाते गायकगीतैर्विधितो रघुनन्दनः । नववाद्यनिनादाश्च सुखं शुभाव सीतया । २ ॥  
 ततो ध्यात्वा शिवं देवीं गुरु दशार्थं सुगन् । पुष्पगीर्वाणि मानव देवतापतनानि च ॥ ३ ॥  
 नानाक्षेत्राण्यरण्यानि पर्वतान्मातृगन्तथा । नदांश्चैव नदोः पुण्यास्तनः सीता ददर्श सः ॥ ४ ॥  
 प्रणमन्ती समुत्थाप्य घृत्वा सीताकर प्रभुः । मञ्चकाद्वतीयाथ दामोभिः परिवेष्टितः ॥ ५ ॥  
 वह्निः कसां क्षनैर्गत्वा सम्पाद्यावश्यकं प्रभुः । ययौ पुनः स दामीभिः कांडाशालां पशुतमः ॥ ६ ॥  
 कृत्वा शौचविधिं रामो दन्तशुद्धिं चकार स । ततः स्नानं कदा गेहे सगरां वाष्कगेत् प्रभुः ॥ ७ ॥  
 आरुह्य शिविकायां स भूसुर्यान्मन्थितैः । वेष्टितः सरयुं गत्वा पानं मुक्त्वा गेहे प्रभुः ॥ ८ ॥  
 पञ्चथामेव क्षनैर्गत्वा सरयुं प्रणिपद्य च । सरय्याः पुरतः स्थाप्य नारिकेलं सदक्षिणम् ॥ ९ ॥  
 ततानूलं पुनर्नत्वा स्तुत्वा सम्पक् प्रसाद्य च । स्नान्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुरःसरम् ॥ १० ॥  
 प्रातः सन्ध्यां ततः कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय च । दत्त्वा दामान्यनेकानि ययौ गेहं रथेन हि ॥ ११ ॥  
 कम्पबन्धैर्वेष्टितेन रौप्यरत्नमयेन च । सुस्नातघ्नतुरगयुक्तेन ज्वनितेन च ॥ १२ ॥  
 गृत्वा होमं विधानेन शिवं सम्पूज्य सादरम् । कौस्तुभां च तुमिर्वां च कीर्केपीं च समर्चयत् ॥ १३ ॥  
 कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातं तु पुष्करम् । विनामणि कौस्तुभं च पूज्य मीनायुनो हरिः ॥ १४ ॥  
 मुनिपुङ्खं वटं बिल्वमश्वत्थं तुलसीं तथा । शमीं पल्लवं दुर्वां च राजवृक्षमपूजयत् ॥ १५ ॥  
 मानुं सम्पूज्य स नत्वा सम्पूज्य द्वारदेवताम् । गोमृषाश्चक्षारणांश्च रथं शस्त्राणि भूगुरान् ॥ १६ ॥  
 कोट्टागाराणि कोशान् पाकशालामपूजयत् । मिहामने तथा छवं चाधरे कपजने तथा ॥ १७ ॥

श्रीरामदास ब.ले—हे शिष्य ! मुनो, अब मैं रामचन्द्रजीकी दिनचर्या बताता हूँ । जिसे वे सबको गिना देसके लिए किया करते थे । राम प्रतिदिन प्रातःकाल गायकों गीत तथा बाजोंके मोठे स्वर सुनकर सीताके साथ जागते थे । इसके अनन्तर शिव, देवी, गुरु, देवताओं, दशार्थ, पवित्र लीयों, माताको, देव-भन्दिरीं, अनेक प्रकारके भण्डों, अरण्यो, पवनों, सरोवरो, नदो और नदियोंका स्वरण करके सीताको बेलने थे ॥ १-४ ॥ प्रणाम करती हुई सीताको उठाकर राम उनका हाथ पकड़ हूँ भवसे उतगते थे । फिर बहुत-सी दासियों-के बिने हुए जाते और आवश्यक कार्योंका संग्रहण करते थे । इसके बाद दासियोंके साथ-साथ कांडाशालाको जाते और वहाँ शौचविधि करनेके पश्चात् दन्तशुद्धि करते थे । इसके अनन्तर कसां घरपर और कसां सरयुमें जाकर स्नान करते थे ॥ ५-७ ॥ जब सरयुस्नानको जाते तो पालकापर सवार हो तथा बहुतसे ब्राह्मणोंसँ परि-वेष्टित होकर जाते और तटपर पहुँचते ही पालकीसँ उतर जाते एवं पैदल चलकर सरयुके बाध पानदक्षिणा-युक्त नारियल रखकर प्रणाम और प्रार्थना करते थे । फिर ब्राह्मणोंके वेदघोषके साथ स्नान करते थे । इसके बाद प्रातःकालीन सन्ध्या तथा ब्रह्मयज्ञ करके ब्राह्मणोंकी विविध प्रकारके दान देते और रथपर सवार होकर ब्रह्मलोको लौटते थे ॥ ८-११ ॥ उस रथमें स्नान-स्नानपर मुखर्षसूत्रके बन्धन छोड़े रहते और श्वेसवर्णके वस्त्र पहनते रहते थे । सरयुमें सारथी तथा घोड़े नहाये रहते थे और उस रथमसे एक प्रकारकी शक्ति निकलती रहती थी ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर विधानपूर्वक हुक्म करके राम सादर शिवजीका पूजन करने और कौस्तुभा, तुमिर्वा और कीर्केपीकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥ फिर कामधेनु, कल्पवृक्ष, पारिजात, पुष्पकविमान, विनामणि, कौस्तुभ आदिकी सीताके साथ-साथ राम पूजा करते थे । पश्चात् अगस्त्य, वट, बिल्व, पीपल, तुलसी, शमी, पलाश, दुर्वा, राजवृक्ष तथा सूर्यभगवाद्की पूजा करके द्वारदेवताको नमस्कार और पूजन करते थे । तदनन्तर

संपूज्य मुहूर्तं रामः पूजयामास मन्त्रकम् । दीपिकां दर्पणं पूज्य पुस्तकादीनपूजयन् ॥१८॥  
 पुनः नपूज्य स्वगुरुं पूर्वं त्रिप्रेतं पूजितम् । उच्चासनस्थितं नन्वा कथां शुभाय तन्मुखात् ॥१९॥  
 पुत्रार्थां वन्धुभिः पन्था पण्डितैः पण्डितैः । ततः मन्त्रार्थिनो रामः सीतया स मुहुरमुहः ॥२०॥  
 विष्ठादिभिर्भोषाहारं चकार स्वस्थमानसः । कर्मधेनुर्द्रव्यधानैः कल्पवृक्षममुहूर्तं ॥२१॥  
 मणिद्वयनिर्मितं च बहीं रत्नान्कर्तुरपि । ततो मुक्त्वा हि तान्त्रिकं विभ्रट्टामां मिश्रयन् ॥२२॥  
 बभूवा कटे दिव्यवस्त्रैः शम्भोर्विदधत् सः । एतस्मिन्मन्त्रे पूर्वं मन्त्रो यथा भिषक् ॥२३॥  
 गणकोऽपि राघवणं प्रत्युद्गम्यानिमानिना । निषेत् राघवमेव पूजयामास तौ प्रभुः ॥२४॥  
 ततो भिषक् सुखं स्थित्वा राघवग्रं नदत्तवा । ददर्श दक्षिणकूले नाडीं राघवस्य सादरम् ॥२५॥  
 तन्मुद्राकंकशाद्यैः शोभितस्योज्ज्वलस्य च । कल्प्यांशुमृते वा धमती जीवमाक्षिणी ॥२६॥  
 तन्नेष्टुया सुखं दूतं ददाते च भिषगुर्यैः । मन्त्रो वैद्यार्थः स मन्त्रमुद्रया कालोक्तयन् ॥२७॥  
 रामकर्णे विदम्याह गत्रचाचरितः धमः । तद्वेद्यचक्रं धृत्वाऽकरोद्रामः सिमानवनम् ॥२८॥  
 ततो वैद्याय तान्त्रिकं ददौ रामः मदक्षिणम् । ततः स गणकः प्राह विनार्पं सुम्पुटाक्षम् ॥

पञ्चाङ्गपत्रं चित्रं च राघवग्रं स्थितः मूर्ध्नि ॥२९॥

विज्जेश्वरो ब्रह्मदर्शयन् सुगं भानुः सखी भूमिभूतो बुधः दूधः ।

गुरुश्च शुकः अनिरादुर्केनरः मरुं श्रुत्वा मंगलदां भवतु ते ॥३०॥

लक्ष्मीः स्यादवका निधिभक्षणो वातातथाऽऽवृष्टिः पञ्चत्रं कृत्वापमचयहरं योगो विद्योद्यारहः ।

सर्वाभीष्टकरं तथैव काण पचागमेनऽकृष्टं श्रान्त्य प्रनिवात्यरे द्विजमुत्तान्द्रुपदकरं मंगदम् ॥३१॥

स्वस्ति श्रीगणेशायाम्नि निधिश्च दशमी भिता । अनुवारः मुनक्षत्रं पुण्याख्यं स्वयं वर्तते ॥३२॥

वृष, मन्त्र, हथी, गध, शास्त्र, वाद्ययन्त्र, कडार, काज, वाक्जाला, गिट्टासन, छत्र, चमर, स्वयम्भू, मुकुट, मन्त्र, वाक्जाला और दर्पणको पूजा करके पुस्तकादिकोका पूजन करत थे ॥ १४-१८ ॥ फिर ऊँचे आसनपर बैठे अपने गुरुकी पूजा और नमस्कार करके उनके पुत्रम कथा सुनत थे ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर अपने भ्राताओं, पुत्रों और पण्डितोंसम साथ बार बार नीलाक प्रदत्त करनेपर बाह्यो क वृक्ष स्वयम्भू वनमें कायश्रेष्ठ, कल्प-पुत्र और इतनी मणियोंसम सम्यक् तथा मणित्वाय दवाय मन्त्रका पावन करके पान पाने थे । तदनन्तर मुन्वर कवडे पण्डित तथा निम्न पत्रसे कर्मर कर्तके मन्त्रि भाविके अन्त मन्त्र घोरण करत थे । इनके बाद पहलसे ही बुताये हुए बीच तथा अनेकिया जान । उनका आज देखकर राम उठ चढ़े होते और सो पण आरे बदकर स्वागत करके ऊँह लाते एवं अतिशय सम्मान करत थे । वे आकर सामने बैठ जाते और राम उनकी पूजा करते थे ॥ २०-२४ ॥ इसके बाद बीच मानन्दपूर्णक बैठकर रामके आज्ञाभुमार रहत, बुधा तथा कर्मका आदिसे सुगोपित उनके दाहिने हाथकी नाडी देखता था । हाथक अंगुली नीचेवाली जी जीवसाक्षिणी नामकी नाडी है, उसे देखकर वैद्यगण प्राणीके मृत्युद्वय जान लिया करत हैं । इसलिए वह बीच अपनी मुखम कुट्टिसे देखता और कहते कहते कि 'रामको ज्यादा मेहनत किये है न ?' बीचकी बात सुनकर राम मुस्करा देते थे ॥ २५-२८ ॥ इसके बाद राम दक्षिणके मास वैद्यजोको पान देने थे । तदनन्तर श्रोत्रियोंकी स्वच्छ आसतो और विशेषे पुनर्जित पञ्चांग फेंकाकर रामके सामने बैठते और इस प्रकार मङ्गलाचरण तथा पञ्चांग-अवगणका बाह्यस्व सुनते थे । विज्जेश्वर ( गणगजो ), ब्रह्मा, महता, समस्त देवता, सूर्य, शनि, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक, राहु, केतु आदि शारे यह भावके मंगलदाता हों ॥ २९ ॥ ३० ॥ त्रिविके सुननेसे लक्ष्मी अवगत होती है, चारके भक्षणस आधु बढती है, गजभक्षण पुनर्जित प्राणिके समूहको गट करता है, योग अपने प्रियजनके विरंगने बचाता तथा करण सब प्रकारकी मन कामना पूर्ण करता है । अतएव बाक्ष्यणके मुससे प्रतिदिन इनका भक्षण करना चाहिए । क्योंकि यह प्राणियोंका सब प्रकारसे कल्याण करता है ॥ ३१ ॥ स्वस्तिश्री रामचन्द्रजैः । आज शुक्लपक्षका दशमी तिथि है, रविनाक्षर है, पुष्यनामक मुनकाय है

ऐन्दयोगो महात्माश्च वराह्यं वरुणं शुभम् कर्कशतोऽप्य नन्दोऽपि द्वितीयस्ते रघुनम ॥३३॥  
 मामोऽप्य चैवमग्रेऽपि समन्तात्तस्य प्रत्यक्षम् ॥ ३४ ॥ सप्त दशमं सप्तमं च चिरं निष्ठावनीतले ॥३५॥  
 सर्वेऽपि सुखिनः सन्त सर्वे सन्त निःसन्तः ॥ ततोऽपि पटवस्तुमा दन्तिदुःखमाप्नुयान् ॥३६॥  
 एव ज्योतिरिदं भीतं पञ्चाङ्गं रघुनन्दन ॥ अन्ता मे दक्षिणां दद्यात् सतांशुर्लभनाम सः ॥३७॥  
 ततो गमं यथी वेतन्मादाशरी मीढगात्रं गमये ॥ वंशपातस्थान्पुण्यदागन्त्वेदयत् ॥३८॥  
 रामेनान्मकलेभ्यश्च दत्त्वाऽविभक्त्यर्थं तमः ॥ पुनरप्यपदवगाश्च दत्त्वाऽविभक्त्यर्थं करे ॥ ४१ ॥  
 एतस्मिन्नग्रे रामं नापि न प्रयत्नी जगन् ॥ मुक्तं ददर्श पादं स्वमन्त्रधनमञ्जितम् ॥३९॥  
 त्वादर्शं ददर्श च स्वमुक्तं रघुनन्दनः ॥ ततो मे सुखिने च कालो वनशोभितम् ॥४०॥  
 क्रमुशमं मांस्तु च तस्मै गच्छतु नृप ॥ चतुष्टयं कालं सप्तमं च दत्त्वा मुमुक्षुम् ॥४१॥  
 प्रकृतं दृष्ट्वा तु मुमुक्षुः किञ्चिद् दत्त्वा मुमुक्षुः ॥ तस्मै गच्छतु नृप ॥ ततोऽपि निशोभितम् ॥४२॥  
 एवं मुक्तं निशोभितं तु तेषां निःसन्तः प्रभुः ॥ ततो वनी पपमणिर्भूषणं प्रभोः पुरः ॥४३॥  
 तस्या रामं दृष्ट्वा च तस्मै दत्त्वा मुमुक्षुः ॥ ततो रामः किञ्चिदायां निवृत्त्या गेहाद्विर्हयौ ॥४४॥  
 ददर्श मागधांश्च बहिःकसन्निवृत्तं प्रभुः ॥ तन्मते मागधा रामं नत्वा दीर्घस्वरेण वै ॥४५॥  
 सूर्यवशभदान्मरन्तिपान्सर्वण्यंस्तदा ॥ तन्मते वान्दमः सर्वे तुष्टं रघुनन्दनम् ॥४६॥  
 नानातुक्तचारित्र्यं गच्छतादिरधार्मिकः ॥ तन्मते चाग्रे गच्छं प्रचक्षुर्मदितननाः ॥४७॥  
 तदा वेद्याश्च नमस्तुर्नानाधपुरःसगः ॥ तन्मते नकुदिनोदीश्च यैः मन्तुष्येन्य राघवः ॥४८॥  
 ततो निनैदुर्गस्थानि नववाद्यस्त्राणि अपि ॥ तन्मते नकुदीश्वरः ददर्श नृपनन्दनः ॥४९॥  
 शरणेद्राश्च तु गान् शिविकाश्च रथास्तथा ॥ नानातुक्तयुक्ताश्च वरवचैः तमन्विताम् ॥५०॥

ऐन्दयोग है और कर्क राशिमें बैठा कन्दमा आगकी र शिव दूसरा रत्नात्पर है ॥ ३३ ॥ ३३ ॥ यह चैवका  
 महीरा है, सदात्त क्रतु है आप ज्ञानपूर्वक राज्य कर और बहुत दिनातक इस पृथिवीपर रहे ॥ सब गुणा  
 हों, सब नीयोग हों, सब रूप सद्गुणमय दिन सब और कोई जिन्हा प्रकृति का दुःख न दे ॥ ३४ ॥ ३४ ॥ इस  
 प्रकार ज्योतिषोक्ते पहे रत्न का मत और उस नाथवन दक्षिणा देकर बिदा कहें ॥ ३५ ॥ इसके बाद  
 केके साथ माली बीसको शकरीद पनाका मायाजी नगर नामकी नहर करता था ॥ ३६ ॥ उन मायाजीको  
 वही उदरियन सब जेमेज उठकर राज स्वयं भी पटकते थे ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर लाई आया ॥ यह पृथग्वर  
 कौतुहसे समजित दण्ड रामका दिखाना था ॥ ३८ ॥ सप्तमं दशमं च दत्त्वा, मुमुक्षुः मुमुक्षुः मुमुक्षुः  
 और कमलके समान नेत्रों का अपना मुख देखने थे ॥ ४० ॥ तद् मुमुक्षुः छोटी सी तासिकासे युक्त, भरा हुआ,  
 गोलाकार, अन्तः अन्तः कृपणों तथा मातिरीके गुणों से अतिशय आभासमान एवं तेजोमय था ॥ ४१ ॥ वानी  
 कपोल उत थे, मुन्दरनी विदली अर्थात् तेजस्व दे मायेमे वही थीं ॥ वे मुमुक्षु और वनीसे सुशोभित मुमुक्षु  
 मस्तकपर धारण किये थे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार अपना मुखमण्डल देकर राम बहुत प्रसन्न होते थे ॥ इसके पश्चात्  
 एक सेवक आता, जिसके हाथों में सत्त्वानी हुई वस्त्र रहता थी ॥ वह धून्दाजी रामक सप्तमं दशमं तथा नमस्कार  
 करके दूतकि वचने प्रभुके समक्ष धीरे जाया करता था ॥ इसके अनन्तर निद्रिकाय बैठकर राम अपने बन्धु  
 निकटते थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बाहरके आगमन कापीजत कहे रहने थे ॥ उह राम देखने थे और जह राम  
 को वे देखते तो रणाल करके ऊँच स्वरसे रामके पूर्वपुद्गोका वन लगे लगते और फिर रामकी स्तुति करते थे  
 ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वे उनके किये रावणवच आदि चरित्रों का विचार वर्जन करने थे ॥ तदनन्तर चाणगण प्रसन्नमुख  
 होकर गाना गाते और नट तथा वेद्याय नाच प्रकृत आगोंके मायापर नाचने लगते थीं ॥ किसने ही हाथ  
 विभोद करने लाते जिससे कि राम प्रसन्न थे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इसके बाद कितने ही प्रकारक वाज बजने  
 लगते थे ॥ तब राम दूसरे आगमते सीसोंमें पहुँचने थे ॥ ४९ ॥ वही बहुतसे हाथी, घोड़े, पालकियाँ और

सद्यः सचक्रधारां नृपान्प्राप्तस्सहस्रजन्तः । सवागना-दर्शनार्थं ददर्श रघुनन्दनः ॥५१॥  
 ततः पञ्चमकक्षायां पुरस्कं पुष्पवाटिकाः । दृष्ट्वा ददर्श भोगयः शक्रहस्तान्सहस्रजन्तः ॥५२॥  
 ततः स षष्ठकक्षायां पञ्चकक्ष्यां सहस्रजन्तः । दृष्ट्वा ददर्श भोगयः प्रवृद्धकर्मसम्पुटान् ॥५३॥  
 ततः सप्तमकक्षायां वर्यां रायः शर्मा प्रति । शिबिकयाश्चान्तर्यामिणैः सिंहासनं वर्या ॥५४॥  
 सभ्यं कृत्वा नमस्कृत्य नोषानैः स भर्तुः प्रभुः । सिंहासनमासीत् वरच्छत्रमुपोभितम् ॥५५॥  
 दधत् छत्रं सौमित्रिश्चापः मस्तकस्तदा । सङ्गमनो व्यञ्जनं रम्यं पदके वायुनन्दनः ॥५६॥  
 सुप्रसिद्धो जलपात्रं च दग्धं निर्मीषणः । दधत् हस्ते शम्भुतपात्रं स बालिनन्दनः ॥५७॥  
 बल्लकोशं शार्ङ्गबाणं दधत् वेगवन्तरः । तस्यो सिंहासने रायः स पृष्टांकोपवर्द्धनः ॥५८॥  
 वस्थौ पृष्ठं लक्ष्मणश्च मरुतः सखपादके । सङ्गमनोऽर्क्षो वामपात्रे पुरतो वायुनन्दनः ॥५९॥  
 बाधम्यकोणे रावस्य सुप्रसिद्धः सन्निधौऽभवत् । ईमान्प्राप्तसेन्द्रः च आग्नेय्यावङ्गदः स्थितः ॥६०॥  
 नैर्ऋत्यां ज्ञानवाक्पाणिं दीप्तः सर्वं समन्ततः । राघवस्यै नृपाः सर्वे स्थिताः सम्प्रदूषणवः ॥६१॥  
 पार्श्वयोस्ते राघवस्य प्रोत्तरस्थाने मुनीश्वराः । पुनो जन्तुः सर्वा वारवेष्टयाः सहस्रजन्तः ॥६२॥  
 उग्रो वीरास्ततो दृताः समायां संस्थिताः क्रमात् । निषेदुर्हन्तवः स्ये राघवपुत्री निषेदतुः ॥६३॥  
 राक्षसिणा निषेदुस्ते तथा रामाक्षया नृपाः । ये ये मूक्या निषेदुस्ते तव । गैराः सुहृन्जनाः ॥६४॥  
 एभ्योऽन्ये ते स्थिता एव न निषेदुः प्रभोः पुरः । तेषां मध्ये रामचन्द्रः सुशुभेऽनुपमस्तदा ॥६५॥  
 सेवकाया न निषेदुः सुमन्त्र एव संस्थितान् । एवं स्थित्वा समायां स कृत्वा कार्पास्यनेकशः ॥६६॥  
 जन्माकार्येषु बन्धुंश्च पुत्रावाहाप्य राघवः । दृष्ट्वा नानाकौतुकानि पूर्ववद्गृहमापयौ ॥६७॥  
 तदा निषेदुर्वाद्यानि गोमुखादीन्यनेकशः । श्रुत्वा वाद्यनिनादाश्च जानकी सम्प्रमात्सुरः ॥६८॥

राम जाड़े रहने थे । जिनमें अनेक प्रकारके जालद्वार जाड़े रहते और अन्धे कपड़ोंका जोरदार पडा रहना था । ॥ ६० ॥ इसके बाद उस आँगनमें बाह्यमें जाड़े हुए उन राजाओं, पुरवासियों और मित्रोंको देखते थे जो वहाँ रामकी प्रतीक्षामें पहुँचे ही थे उपस्थित रहना करते थे । ॥ ६१ ॥ फिर पार्श्वीं चौकमें पुष्पकक्षिण, पुष्पवाटिका तथा मन्त्र पारण किसे हजारों विप्राहियोंको देखते थे ॥ ६२ ॥ फिर छठी चौकमें जाकर हाथ जोड़े हुए हजारों पादसवार वीरोंको देखते थे । ॥ ६३ ॥ इसके बाद सातवीं चौकमें पहुँचकर अपनी राजसभामें जाते थे । वहाँ रासकीसे उतरकर सिंहासनके पास जाते थे ॥ ६४ ॥ दाहिना ओर सिंहासनको प्रणाम करके जनें, जनें, सौहृद्योंसे कहकर सिंहासनपर बैठते थे । वह सिंहासन छत्रसं युजोभित रहना था ॥ ६५ ॥ रामके बैठ जाने-पर लक्ष्मण छत्र लेते, भरत चमर लेते, पद्मा जन्मुखजी लेकर लड़ते और हनुमानजी रामकी चरणपादुका लिये रहते थे । इनके सिवाय सूर्यचन्द्रमसी सारी, विष्णुएक सुन्दर-सा दर्पण, बङ्गर साम्बुलका पात्र और वस्त्रकी सम्पूरा आम्बवान् लिये रहने थे । राक्ष पीठपर लकियत लगाकर सिंहासनपर बैठते और उनके कंसे लक्ष्मण, दाहिनी ओर भरत, बायीं ओर जन्मुख, सामने पद्मकुमार, बाधम्य कोणमें सुवीर, ईशान कोणमें विभीषण और कार्पास कोणमें बङ्गर लड़े हुए थे । ॥ ६६-६७ ॥ नैर्ऋत्य कोणमें आम्बवान् रहते और बहुतसे पुरवासी चारों ओर खड़े रहने थे । रामचन्द्रजीके जाने सब राजे हाथ जोड़-जोड़कर खड़े रहा करते थे ॥ ६८ ॥ रामके दाहिने कार्ये दोनों ओर एक छत्रे जासनपर मुनिपण बैठते थे । सामने हजारों वैश्यायें जायती थी ॥ ६९ ॥ इसके बाद वीरवज्र ओर फिर दूतगण लड़ रहा करते थे । समस्त जगत्भर तथा दोनों राजकुमार भी जाकर अपने-अपने जासनपर बैठ जाते थे ॥ ७० ॥ रामके पिता तथा चाचे रामके जन्मा-गुमार बैठते थे । जो गगनके मुख्य निवासी थे वे तथा मित्रगण भी बैठते थे ॥ ७१ ॥ इनके सिवाय और लोग रामके सामने नहीं बैठते थे, उन्हें लड़े ही रहना पड़ना था । उन सबके बीचमें रायकी एक अनुपम शोभा होती थी । ७२ ॥ सेवक आदिमसे कंधे की गद्दी बैठता था । उनमेंसे केवल सुमन्त्र बैठते थे । इस प्रकार कमाने बैठ और बाना प्रकारके राजकार्य करने जाइयों और बेटोंको किलने ही अथ सौंफकर विविध प्रकार-

प्रनुद्विग्नोऽपि तोषहन्ता तन्मतीक्षां चकार सा । रामोऽपि पूर्वलोकान्ममकक्षास्वनुक्रमात् ॥ ६९ ॥  
 प्रविशन्मकलानां ददौ तांस्तान्स्वनोपपत् । ततोऽग्रे वन्धुभिर्मेहं पुषाभ्यां संविवेश सः ॥ ७० ॥  
 ददर्श जानकीं रामः पीतकीशेयवारिणीम् । साऽपि रामं ययौ सीतां कञ्जयाऽवनवानना ॥ ७१ ॥  
 वक्त्रनेत्रकटाक्षैश्च मोहयन्ती रघूत्तमम् । नामालङ्कारमयुक्ता वसन्पुरनिःस्वना ॥ ७२ ॥  
 ततो रामो जलं स्पर्ष्ट्वा घृत्वा सीताकरं मुदा लक्ष्मणादीन्परिमज्ज्यं सीतामेहं विवेश सः ॥ ७३ ॥  
 बहिर्दृष्टं ध्रुतं वाऽपि यद्यन्कीर्तुकमुत्तमम् । तन्मयं जानकीं प्राह तोषयामास तां मुहुः ॥ ७४ ॥  
 ततः सर्वान् समाहूय भोजनाय ममुद्यतः । स्नानं कृत्वा स मध्याह्नं कर्म चक्रे रघूत्तमः ॥ ७५ ॥  
 वर्षयित्वा पितृंश्चापि नैवेद्यान् शम्भवे ददौ । वैश्वदेवं ततः कृत्वा बलिदानं रिषाय सः ॥ ७६ ॥  
 दत्त्वा भूतबलिं चापि पितृंश्चापि स्वयेति च । बहिर्भ्यक्त्वा काकबलिं त्वनिधीन्पूज्य मादरम् ॥ ७७ ॥  
 यतींश्च ब्राह्मणान्पूज्य हैमपात्रेषु गघर्वा । परिवेष्टितेषु जानक्या विषदासु धृतेषु च ॥ ७८ ॥  
 तैः सर्वभोजनं चक्रे स्तुवाभिर्भीजितो मुदा । कश्चुदि ततः कृत्वा भुक्त्वा तांष्वनुत्तमम् ॥ ७९ ॥  
 ददौ वेभ्यो दक्षिणांश्च विप्रेभ्यो गृह्णायकः । गत्वा शतपदं रामो निद्राशालां ययौ यनैः ॥ ८० ॥  
 एतस्मिन्नतरे भीता भुक्त्वा रामान्निकं ययौ । बीजयामास आगमं मञ्जुकस्य पुरस्थिता ॥ ८१ ॥  
 चकार निद्रां भीरानो मञ्चके सीतया सह । ता दास्यो बीजयामासुर्दिक्ष्यालङ्कारभूषिताः ॥ ८२ ॥  
 ततः प्रनुदा सा सीता प्रनुद्वोऽभूद्रमापतिः । मारिभिः सीतया कीर्त्ता तथा बुद्धिबलेन हि ॥ ८३ ॥  
 नानाकृत्रिमैर्न्यैषाकरोदन्यैरपि प्रभुः । ततो द्राघायण्डपाथो जलप्रवाहिकीर्तुकम् ॥ ८४ ॥  
 दृष्ट्वा पक्षिकुलान्मर्वाण्यञ्जरस्थान्ददर्श सः । गत्वा मोषानमार्गेण ग्रामादाग्रं पुरीं निव्रात् ॥ ८५ ॥

के कीर्तुक देखनेके बाद पहिलेकी तरह अपने घरको लौट आत थे । ६९ ॥ ७० ॥ उस समय गोमुखादि बान्धवोंने लगते थे । उन बान्धवोंकी सुनकर सबकाही हुई सीता हाथमें जलकी काली लेकर रामके खानेकी प्रतीक्षा करने लगती थी । राम भी पहलकी तरह साता चौक लाँचकर ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ चम्पन हुए सब लोगोंको प्रसन्न करने आते थे । फिर भाई तथा पुत्रोंके साथ आगे बढ़त हुए वह प्रपन्न आत थे । ७० ॥ वही पीले रङ्गके रेशमी कपड़ पहन सौम्यको देखत और सीता भी लज्जाके मारे सिर मुकाये अपने तिरछ नेत्रकटाक्षोंसे रामका मुख बगती हुई सामने आती थी । "स समय साताके अलङ्कारों और तपुमणोंके अनेक प्रकारकी मनकार सुनायी पड़ती थी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इसके बाद राम जल लेकर हाथ-पीर धोत, कुल्ला करने और सीताका हाथ अपने हाथमें पकड़कर उठत थे । तब लक्ष्मण आदिकी विदा करके सीताके सहजसम आत थे । ७३ ॥ वहीपर बाहर जा कुछ कीर्तुक देख रहत वह सब एक-एक करके सीताको सुनाने हुए उन्हें प्रसन्न करने थे ॥ ७४ ॥ इसके बाद सब लोगोंकी भोजनका बुलावा भेजत और स्वयं स्नान करके मध्याह्नकालीन काम करत थे ॥ ७५ ॥ पितरोंका तर्पण करके जिवजोंके लिये नैवेद्य अर्पण करते थे । फिर बालवैश्वदेव करत और काकबलि आदि दत्त थे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर भूतबलि देकर पितरोंकी 'स्वर्चा' शब्दका उच्चारण करके तृप्त करत, काकबलि बाहर निकाल देते और उसके बाद आग्रपूर्वक वनिधियोंका स्तुकार करते थे ॥ ७७ ॥ ब्राह्मणों और वतियोंका पूजन कर लेनेके पश्चात् सामने निद्राशालामें खड़े हुए सुवर्णके पात्रोंमें आनकाके हाथों परोंसे अनेक प्रकारके एकबानोंकी सब लोगोंके साथ खाने थे । उस समय सब पुत्रवधुर्ने उन लोगोंका पंखा लगा करती थी । भोजन करनेके पश्चात् हाथ धाते और उत्तम ताज्जुन खाकर ब्राह्मणोंकी दक्षिणा देते थे । फिर सी पग चककर अपनी निद्राशालामें पहुँच जाती थी । ७८-८० ॥ इसी बीच सीता भी भोजन करके रामके पास पहुँच आती और वही मञ्चके ऊपर बैठे हुए रामके पास बैठकर पंखा खोलने लगती थी ॥ ८१ ॥ बादमें राम सीताके साथ लज्जापर शयन करते थे, तब दासियाँ ऊपर पंखा खोलने लगती थीं ॥ ८२ ॥ कुछ देर शयन करनेके बाद सीता उठ जाती और राम भी आग जात थे । उस समय सीताके साथ बुद्धिबलसे कुछ देवतक चौसर आदिके खेल खेलते थे । फिर आग्रकी बाड़ीके नीचे जाते

वनागमान्विता दृष्टा इदृशीभ्याऽतिरजिताम् । शनैर्पर्यो प्रभुर्गोष्ठं नानधेनुर्ददर्श सः ॥८६॥  
 तां सम्प्रेष्य गृहं यान्तां स्वदात्रीष्वभिवेष्टिताम् । द्वारानि च ययौ रामरात्रौ ते लक्ष्मणादयः ॥८७॥  
 चक्रुः प्रणामं भीरव्यैर्नैः सहैव शनैः सनैः । बाधित्वलां ययौ रामो दृष्ट्वा तत्र स बाधिनः ॥८८॥  
 गजशालासुष्ठुशाला दृष्ट्वा रामः शनैः शनैः । ददर्श सुस्रजान्तां च व्याघ्रशालां प्रभुर्ययौ ॥८९॥  
 दृष्ट्वाऽथ त्रिविक्रशालां माहिषेयीं त्रिकोक्य च । महिषाद्वयशालां च रथशालां ददर्श सः ॥९०॥  
 आकृष्य स्पर्धने राव्यः शनैः सर्वैरेहिर्ययौ । सवक्त्राः समुन्लप्य तत्रस्थः पूर्ववज्जनैः ॥९१॥  
 सर्वयुक्तश्चाहतां तां श्रेष्ठां कक्षां ददर्श सः । तत्र रथानि श्रेष्ठानि शतानीः शुकटस्थिताः ॥९२॥  
 तुणकाष्टादियमानि दूरस्थानान्यवश्यतः । ततो नवमकक्षायां ददर्श रघुनन्दनः ॥९३॥  
 अल्लपापीन्द्राणस्थान् तुणगस्थाननेकशः । रभयन्ति हि ये सर्वे स्त्रीयं गेहं त्वदनिष्टम् ॥९४॥  
 एवं स नवकक्षाय समुन्लप्य रघुनमः बहिः स नवनो दृष्ट्वा परिष्ठाः सज्जन्ता नव ॥९५॥  
 शनैः पर्यवस्योभ्यां तां राजमार्गे मुदान्वितः । शीघ्रं ययौ पुनर्द्वारं ददर्श द्वाररत्नकान् ॥९६॥  
 नवकक्षास्थयोभ्यासः समुन्लप्य शनैः प्रभुः । परिष्ठाश्च नरावश्यं ययुश्च्युत्तुष्टादिपुरिताः ॥९७॥  
 ततो नानारत्नारामकीटकानि रघुतमः । पश्यन्म वन्धुपुत्रैश्च सरस्वतीरमाययौ ॥९८॥  
 तत्र स्थित्वा सुनीकायां कीटां कृत्वा क्षिप-स्रजम् । नद्यास्नटे मभायां स तर्प्यः सैन्यपुनः प्रभुः ॥९९॥  
 यथापि वारवश्यानां परवक्तव्यानि राघवः । क्षिपन्कालमतिक्रम्य ययौ शीघ्रं ततः पुनर्द्वारं ॥१००॥  
 ततः शनैः समीं गत्वा पूर्वकिंशोरचारकैः । लक्ष्मणाद्यैः सेवित्रश्च तस्यां सिंहासनोपति ॥१०१॥  
 ततः कृत्वा हनेकानि नानाकषयाणि राघवः । आह्वाप्य बन्धुपुत्राश्च पूर्वजस्य गृहं ययौ ॥१०२॥

कीटार जाई देखत ये ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ फिर पोखरीमें पाने हुए पोलयका देखत ये । तत्रात्र न तोडाके मार्गमें सुषोन्म प्रासादपर चढ़ जाते और वहाँमें बनी और बसीबासी बनकुल, बाबागो तथा गान्गोसे अतिरजित अपनी अयाध्यापुरीको देखत ये । फिर पार-पारे गोलालाम जात और वहाँको बीओका देखा करते ये ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ इसक अनन्तर दासियों समस्त सीताकी घर नई दन और मय काहरका आर जाठ ये । वहाँ लक्ष्मण जाई आता रात्रका सविम्व प्रणाम करत ये ॥ ८९ ॥ फिर उनका साथ लेकर रथ धारे-धारे अश्वशालाका जाते । वहाँ धाहीका देखकर ॥ ९० ॥ रामशाला और सुष्ठुशालाका देखत हुए अश्वशाला तथा वारधशालाका अरलोहन करते ये ॥ ९१ ॥ फिर त्रिविक्रशाला और माहिषीशालामें जाकर त्रिविक्राओं तथा भेताको देखत ये बाद रथशाला देखत ये ॥ ९२ ॥ तत्रात्र एक रथपर सवार होकर शनैः शनैः बहुरकी तरफ जाया करते ये । बादमें महलके सातों बीकाका लापत एवं पहलके तरह उपस्थित सब लंगो देखत हुए जाठरें फाटकबाले आगनमें पहुँचत ये । वहाँपर लक्ष्मणास काम आनवास किनत ही बन्धु तथा बहन-सी साथ रखी रहती थी ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ उन्हें देखकर दूतोंके निवाससम्मान तथा तुण-बाष्ट दिके सुवृष्टवनका देखनेके अनन्तर नव आगनमें पहुँचत ये ॥ ९५ ॥ वहाँ यह देखत ये कि हासन शस्त्र लिये बाँडे और हाथपर लवार होकर सिंहाही रात-दिन अपने अपने स्थानोंकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ९६ ॥ इस प्रकार नया कक्षाओंका जाँचकर कोठके बाँटों और अन्दरें बरी बाहरकी नौ सादरीका देखत ये ॥ ९७ ॥ इसके बाद राजमार्गमें चमकर अशोण्याको देखत हुए शीघ्र पुनर्द्वारपर पहुँचत और वहाँपर रहनेवाले द्वाररत्नकोली देख-देख करते ये ॥ ९८ ॥ फिर अशोण्याकी नौ कक्षाओंको जाँचकर जन और आगन परिपूर्ण नौ परिष्ठाएँ और अनेक बाल-बगीचेके कीटुक देखते हुए अपने चाइयो और पुत्रोंके साथ सरगूके तीर पहुँचत ये ॥ ९९ ॥ १०० ॥ वहाँ एक अच्छी नौकापर बैठ तथा कुछ देखत हीर करके सेनके सिंघारमें जाते और सैनिकोंको साथ समानें बैठते ये ॥ १०१ ॥ वहाँ कुछ समय तक देखाओंके नृप देखकर पुरमें लोट जाया करते ये ॥ १०२ ॥ तदनन्तर समाने जाते और पूर्वमें जो वह थाये हैं, उन सबके साथ सकृद्वर्षादि आनाओंसे सेवित होकर सिंहासनपर बैठते ये ॥ १०३ ॥ वहाँ अनक कार्योंकी करनके पश्चात् मइनों और पुत्रोंको अपने-अपने घर जाने-

सायकाले ततः संध्यां कृत्वा हुत्वा यथाविधि । गंधार्घ्यैरुपधांश्च शिवं सम्पूज्य भक्तिनः ॥१०३॥  
 कृत्वोपहारं विप्रैश्च पुत्रार्घ्यां चतुर्भिः सह । शिविकायां पुनः स्थित्वा देवपायननेषु च ॥१०४॥  
 साकेतस्थेषु श्रीरामो गन्वान्वा शिवादिकान् । जानाविधान्देवमघान् फले पुर्वैरपूजयत् ॥१०५॥  
 देवालयेषु सर्वेषु सुगणैः तेषु राघवः । मृण्मन्त्रानाकीर्तनानि वास्य नर्तनाभ्यधि ॥१०६॥  
 पश्यन्मानाकीर्तुकानि परां मुदमवाप सः । बाहनाहूढदेवानामपश्यत्कीर्तुकानि च ॥१०७॥  
 सतो ययौ ब्राह्मणेन हृद्मार्गेण राघवः । रत्नदीपप्रकाशैश्च विप्रैश्च निव्रजमदिरम् ॥१०८॥  
 ततो नानाकथाभिश्च वार्ताभिः पुत्रचन्द्रभिः । साधयामां निशा नीत्वा रतिगृहे विवेश सः ॥१०९॥  
 एतस्मिन्नदरे तत्र सीताऽग्रे रतिमन्दिरे । पुत्रसंस्थानादि सम्पाद्य तन्वतीकां चकार सा ॥११०॥  
 तावदायांतमालोक्य महामोन्वाय जानकी । धृत्वा हस्ते राघवेन्द्र रतिशालां निनाय सा ॥१११॥  
 सर्वाविसर्ज्य दासीश्च श्रुत्वा जालज्यनेकशः । समततो विमृश्याद्य तस्थौ रामः स पचके ॥११२॥  
 ततस्तां मैथिलीं धृत्वा पचके सन्पवेशयत् । नाना क्रीडां विधायाश्च तस्थौ रामः स पचके ॥११३॥  
 ततस्तुष्टं रमानाथं जानकी लज्जित्वाऽनवीत् । राम राजावप्राप्त किंचिन्पृच्छामि मे वर ॥११४॥  
 कुत्रजन्मानन्तरं हि कथं गर्भो मया न वै । धार्यते कारणं त्वस्य किमस्ति तद्वदस्व माम् ॥११५॥  
 तत्सीतावचनं श्रुत्वा सस्मित प्राह राघवः । हे मीने कत्रनयने सम्यक् पृष्टं त्वया वर ॥११६॥  
 तत्सर्वं ते वदाम्यद्य तच्छृणुष्व सुमध्यामे । किमर्थं च बहुन् पुनस्त्वन्न त्वं वीक्षसि मिये ॥११७॥  
 सद्गते बहवः पुत्रा न योग्यास्त्वत्र वै भुवि । कर्तृकस्य दुर्गचारान्कुलस्य लाजिनं भवत् ॥११८॥  
 अतएव ममच्छ्रमं बहुपुत्रेषु मैथिलि । मदिच्छथा त्वया गर्भो धार्यते न कदाचन ॥११९॥  
 पुत्रस्त्वकः प्रतीक्ष्यो हि यः कुत भूययेद्गुणैः । किं ज्ञाता बहवः पुत्रा दुष्टास्ते कुमयो यथा ॥१२०॥  
 श्री आतां देकर स्वयं श्री आपने घर चले जात थे ॥ १०३ ॥ सायंकालके समय विविधपूर्वक उत्सवा और हवन  
 करके पुष्प-चांदन-मन्त्रादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीको पूजा करने से ॥ १०३ ॥ फिर भोजन करके पुत्री तथा  
 दासियों-साथ पालकोंमें बैठकर देवताओंके मन्दिरको जाते थे ॥ १०४ ॥ साकेतपुरी ( अयोध्या ) के सब  
 मन्दिरराम जाकर शिवादिक देवताओंको नमस्कार करके फल-फूलसे पूजन करने से ॥ १०५ ॥ उन्हीं  
 देवालयोंमें सोड़ी बैठ तक हरिकीर्तन सुनने तथा भण्डिकाओंका मृत्यु देखने से ॥ १०६ ॥ इस प्रकार विविध  
 कीर्तुकाको देखकर राघु बहुत प्रसन्न होते थे । तदनन्तर देवताओंका सवारिक कोतुक देखते थे ॥ १०७ ॥ इसके  
 बाद सवारीपत्र बदलकर रत्नके बने दीपकोंके प्रकाशसे चलते हुए राजमार्गमें अग्रन पर जाते थे ॥ १०८ ॥  
 फिर पुत्री तथा भ्राताओंके साथ कुछ दूरतक इसर उपरको जात करते और देह पहरे रात बीतनेके बाद  
 रतिशालामें प्रविष्ट होते थे ॥ १०९ ॥ उधर सीता अपना रतिशालामें फूलोंको शय्या बिछाकर रामके आनेकी  
 प्रतीक्षा करती रहती थीं ॥ ११० ॥ वे रामको आते देखती ही तुरन्त भावें बदली और उनका हाथ पकड़कर  
 रतिशालाके भीतर ले जाती थी ॥ १११ ॥ वहाँ सीताका सेवान उपरिपत दासियोंको बिदा करके राघवचन्द्र  
 कमरेकी सारी स्त्रियोंको खोलकर शय्यापर बैठने से ॥ ११२ ॥ इसके बाद सीताका हाथ पकड़कर उन्हें भी  
 बैठाते और विविध क्रीड़ा करके सीताको प्रसन्न करने लग जाते थे ॥ ११३ ॥ इस प्रकार प्रसन्न रामको देख-  
 कर एक दिन सीताने लज्जित भावसे कहा— हे राजीववन्दाश राम ! मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि कुलके  
 जन्म लेनेके बाद फिर मेरे गर्भ क्यों नहीं रहता ? इसका कारण क्या है ॥ ११४-११५ ॥ इस प्रकार सीता  
 का प्रश्न सुनकर मुस्कुराते हुए राम कहने लगे— हे कथञ्चनानी सीते ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं  
 सब कारण बतलाता हूँ ॥ ११६ ॥ हे सुमध्यामे ! पुन सावधान होकर सुनो । हे मिये ! पहले मुझे यह बतलाओ  
 कि तुम अधिक पुत्र क्या चाहती हो ? ॥ ११७ ॥ इस संसारके अच्छे कुलमें अधिक पुत्र होना ठीक नहीं है ।  
 बहुतरे पुत्रोंमें यदि एक पुत्र भी दुराचारी निकल गया तो मार कुत्तर लाज्जित बन जाता है ॥ ११८ ॥ इसलिये  
 हे मैथिलि ! तुम अधिक पुत्रको इच्छा नहीं है । मेरी इच्छा न रहनेके कारण ही तुम्हें गर्भ नहीं रहता ॥ ११९ ॥



इवेनास्मां वदामि यथा नेत्रे भुजौ यथा यथा नौ प्रजिमुर्गौ व यथाऽहं लक्ष्मणस्य ॥१२१॥  
 तथापि अर्को ह्यौ पुनौ माऽप्येऽनुमन्दन्ति ॥ १२२ ॥ अतः प्रहृष्टं पुनः सैन्यं न जनादृहिता मः ॥१२२॥  
 एकाऽपि काष्ण्ठे तत्र किमस्ति ननुदम्य मः ॥ यन्वाक्पुत्रेण श्रुत्वा जनाः प्राह गणैः ॥१२३॥  
 स्वत्कन्या च मया कर्म देयऽत्र जगताः के ॥ मन्त्रानां नृपः कऽत्र नमस्तीर्थाभिर्बहान ॥१२४॥  
 यस्य पश्येत्पुत्रा यार्ये निरामा ममन मः ॥ को गोऽत्र जगतां हि नृपः न परो ममान् ॥१२५॥  
 मथानजार्ग्यं वर्यां चित्वा यद्वै य मः ॥ अतएव मयेऽत्र हृदयं पापं रत्ना पिबे ॥१२६॥  
 कुशादीनां तु याः कन्याभ्याम्ने कर्मेव वानिकाः ॥ किं यावन्मदभ्याम्ने माहं प्राप्ताऽभि भूते ॥१२७॥  
 आभ्यान् विभृताऽम्बयः श्रुत्वा कपटननीमिति ॥ पश्य त्रिंशे स्त्राय २३३ने तनययज ॥१२८॥  
 पश्यन् दृष्ट्वा यच्च तच्च सर्वं समाश्रज ॥ अत्र स्नातृणां ये च ने पुत्रदृष्टिनाम्नव ॥१२९॥  
 पश्यन् बहवः पुत्रा यमकोऽपि गयां वनेन ॥ इति यद्वचनं माने मामन्व ॥ बद्ध नो यम ॥१३०॥  
 एकः स तनयो भवः कुत यमपेक्षितम् ॥ कुम्भेनृपात्र ने पुत्राः शनया दुष्टमार्गताः ॥१३१॥  
 इति यद्वचनं माने वरिष्ठं तन्मृतं वृषः ॥ अन्त्ये कारणं वानि यस्याच बहवः सुताः ॥१३२॥  
 मया नैवापिनाम्नव तन्मृतं गुर्विष्मिने ॥ विनादानं वदाम्यत्र माऽप्यथा कुरु मद्रवः ॥१३३॥  
 बहुपुत्रं मार्गीणां मारुषं व्याम्यने न हि ॥ मन्त्रे तत्र ताकाऽन्त्येदेनां बहुमन्त्राः ॥१३४॥  
 न मयाऽपिनाम्नव मृते पुत्रा विदोति मे विदे ॥ यदाऽप्यज्जि बहूनां ने तनयानां विदुजे ॥१३५॥  
 तर्हि वै द्यापरे कृष्णकपेन दारकापुत्रि ॥ दत्तं पुत्रान् पदाभ्यां नदा तेषां सुतं मत्र ॥१३६॥

केवल एक ऐसे पुत्रको इच्छा करना चाहिए कि जो अपने अन्तर्गत पुत्रों को विभूषित कर सके। जोहों-  
 की तरह वयं जन्म लेनवाले बहुत दुष्ट पुत्रों को प्राप्त ॥ १२० ॥ बस, ये दोनों चिरञ्जीवी रहें। वे मरे  
 तो मेरा, दो भुजा बन्ध मूर्ख और हमारे तथा लक्ष्मणके सटका दें। तुम्हारे दो बेटे तो हा हो गये हैं, अब जोड़  
 सन्तान न हो यहाँ तक है। फिर सात न बहो-अर्जुन हमारा कोई कन्या क्या नहीं हुई ॥ १२१ ॥ १२२ ॥  
 इसका क्या कारण है ? तो हमसे कहिये। सात का यह प्रश्न सुनकर रामने कहा कि यदि तुम्हारे कन्या हाता  
 तो मैं किसको दता ? सत्तरस कोन ऐसा है, जो मरा जायता बन सक ? हमारे बगवत कोन राखा है, जो  
 सत्तो हृषीकेश अर्थात्तर है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ जिसका स्वका पुत्र अत्यन्त दुष्टकर प्रमाण कर सक। संसारमें  
 कौन ऐसा बर मिल सकता है कि विवाहमें तिसक पैर में अन्न हायस घना। इस कारण मैंने पुत्रको इच्छा  
 नहीं की ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ फिर कुतः अधिक जो कर्ता उत्पन्न हुई है, वे क्या तुम्हारी नहीं हैं ? हे सात ! जीवन  
 का मदस तुम वाण्ड भी नहीं हो गयी हो ? ॥ १२७ ॥ जातना लाकाकी माता हुकर भी ऐसी छटपटीन  
 बात कर रहा हो। इस संसारमें जितना स्वाम्य दत्तता है, वह सब तुम्हारे ही अंगमें आवमान हुआ है ॥ १२८ ॥  
 संसारमें जितना भी दुष्टरूप है, वह सब अंगमें उत्पन्न हुआ है। यहाँ जितने दुष्टरूप हैं, वे सब तुम्हारे  
 लहक और लहकियां हैं ॥ १२९ ॥ जगजीव जो वह बात कहो गयी है कि 'एक हो' नहीं, मनुष्यको कई पुत्र  
 उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनी चाहिए। सम्भव है कि उनमेंसे कोई ऐसा सन्तान निकल जाय, जो ग्याय  
 आश करके कुलका उद्धार करे।' यह एक सामान्य बात है। वह कोई भेठ उक्ति नहीं कहा जा सकती  
 ॥ १३० ॥ मरने रायमें तो अपने कुलका विस्तार करनेवाला केवल एक पुत्र ही। दूधित मागवत चलनवाले  
 कंधेको तरह अन्त्य सेकड़ों बेटास कोई लाभ नहीं ॥ १३१ ॥ मैं जिस बातका कह रहा हूँ, बहुतसे विद्वानों-  
 ने उसे श्रेष्ठ माना है। दूसरा कारण था बतलाता हूँ कि मैंने तुमसे कई पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न किये।  
 हे मुनिप्रिय ! मैं विनोदवत् इस बातको कह रहा हूँ। इसे व्यर्थ मत माने बना, ठाकसे समझना  
 ॥ १३२ ॥ बहुत पुत्रोंके हानसे स्वाका लक्षणाई नहीं रह जाती। बहुत सन्तान हानसे तुम्हारे जीवनका  
 नाश हो जाता ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यहाँ सोचकर मैंने जिनके सन्तति नहीं कर सक। यह पुत्र स्वर  
 जन्मता है विद्वत्। फिर भी बहुत सन्तान पानेकी हूँ तुम्हारी इच्छा है तो दारसे कृष्णरूप है तुम्हें

कन्यामपि तदैका तेऽह दास्यामि न मरुघः । तदा ते बहुपुत्रं च तारुण्यं स्वास्यते न हि । १३७ ।  
 अत स्त्रीणां महत्तानि शोडशैकशतं पुनः । तथा मुख्यास्त्वष्ट नार्यस्त्वया मह करोम्यहम् ॥ १३८ ॥  
 तदा बहुनां पुत्राणां स्नुषाणां त्वं सुखं भज । अह चापि बहुस्त्रीणां तदा सौख्यं भजामि वै ॥ १३९ ॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तदा सीता स्मितानना , शयनं हर्षिता प्राह वाकचातुर्यं कृतः प्रभो ॥ १४० ॥  
 एतल्लब्धं त्वया राम येन रत्नयमोहं माम् । एवं प्रोक्ता मया शिष्यं दिनचर्यां समापतेः ॥ १४१ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदज्ञानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तरार्द्धे रामदिनचर्यावर्णनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

## विंशः सर्गः

( भगवानके विविध अवतार )

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा वसिष्ठ हि प्रभाते यात्रवील्लवः । किंचित् प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर । १ ॥  
 सर्वं यद्यपि जानामि वाल्मीकेश प्रसादतः । तथापि लोकान्सकलान् ज्ञातुं पृच्छामि तेऽद्य हि ॥ २ ॥  
 यदाऽस्मामिनिंशार्था हि सर्वेर्निद्रा विधीयते । तदा संभूयते कर्णे भस्त्रवरकस्य वै ध्वनिः ॥ ३ ॥  
 अमुं मत्संशयं छिधि पर कीर्तुहलं गुरो । लरस्येति वचः श्रुत्वा वसिष्ठस्तमयात्रवीत् ॥ ४ ॥  
 बहुयश्च मल्लहन्त्याश्च रावणो न कृतः पुरा । येन देहेन सोऽद्यापि लंकायां ज्वलते लव ॥ ५ ॥  
 रावणो रामहस्तेन बध्नान्मुक्तिं मनः क्षणात् । रामचित्तनपुण्येन वैरबुद्ध्या कृतेन च ॥ ६ ॥  
 आत्मना सकलं पापं तेन दग्धं पुरैव हि । देहेन न कृतं तस्य देवानां नमनं पुरा ॥ ७ ॥  
 सम्मार्जनादिकं कर्म देवागारेऽपि नो कृतम् । न कृता तीर्थयात्रा हि तेन देहेन भक्तिवः ॥ ८ ॥

दस घंटे दूंगा । उस समय तुम बहुत सन्तानका भी मुख भोग लेना । १३५ ॥ १३६ ॥ उस समय मैं तुम्हें एक कन्या भी दूंगा । इसमें कोई संशय नहीं है । किन्तु इतना अवश्य होगा कि अधिक सन्तान होनेसे तुम्हें रा यौवन हल जायगा ॥ १३७ ॥ इसी कारण मुझे सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंके साथ विवाह करना पड़ेगा और तुम्हारे साथ आठ मेरी मुख्य स्त्रियाँ भी होंगी ॥ १३८ ॥ उस समय तुम बहुतसे पुत्रों और बहुओंका सुख भोगोगे और मैं भी बहुतसी स्त्रियोंका सुख भोग दूँगा ॥ १३९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर स हाते मुसकाकर कहा—हे प्रभो ! तुमने बातचीत करनेका इतना अनुराग कहाँसे लाया ? जिससे इस तरह मेरा मनोरंजन कर रहे हो । इस तरह रामने बहुत देर तक आपसमें बातें कीं और दोनों एक दूसरेका वात्सल्य करने लगे रातके समय सो गये । हे शिष्य ! मैंने इस प्रकार तुम्हें रामचन्द्रकी दिनचर्या सुनायी । १४० ॥ १४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदज्ञानन्दरामायणे पाण्डुरामतजशास्त्रिकृत'ज्योत्स्ना' पाषाणिकासहित राज्यकाण्डे उत्तरार्धे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक दिन सवेरे लवने वसिष्ठसे कहा कि हे मुनीश्वर ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ उसे आप बताइए । १ । यद्यपि वाल्मीकिजीकी कृपासे मैं सब कुछ जानता हूँ । फिर भी संसारी लोगोंकी आन प्राप्त करानेके लिए आज आपसे पूछ रहा हूँ ॥ २ ॥ जब कि रात्रिमें हम लोग सोते हैं, तब कानमें चोंकनीकी तरह किसकी ध्वनि सुनायी देती है ॥ ३ ॥ मेरे इस संशयका निवारण करिए । इसका मुझे बड़ा कीर्तुहल है । लवकी बात सुनकर वसिष्ठने कहा— ४ ॥ रावणने जिस देहसे बहुतसी बहूहरपाए की थीं हे लव ! वह देह आज भी लंकामें जल रही है ॥ ५ ॥ रामके हाथों वध होने, रामका स्मरण करने और उसके साथ वैरबुद्धि रखनेसे रावण क्षण भरमें मृत हो गया । आत्माके सारे पापोंको वह पहले ही जला

न देहेन न निष्कारं तपश्चर्पात्रिनं कृतम् । न देहः भस्मिन्स्वस्य शीतोष्णमहनादिभिः ॥ १॥  
 एतादृशस्तदयं देहो बहुमात्रगतिमकः । लङ्कायां ज्वलनेऽद्यापि निष्कारां भूयनेऽत्र सः ॥ १०॥  
 ज्वालानां भस्मवच्छब्दो यः पृष्टो मां त्वया लव । ज्वलशब्दादिते नैव भूयनेऽत्र जनैः भदा ॥ ११॥  
 चितायां यस्य चाद्यापि वायुपुत्रेण प्रवृद्धम् । कण्ठमावृण्वन् नोत्वा लङ्कायां क्षिप्यते मृदुः ॥ १२॥  
 यदा तत्पापघ्नातिः दयालुता मग्नीभविष्यति । अग्नये कण्ठं दत्त्वा तच्छृणुष्व शिरो लव ॥ १३॥  
 देहान्ते रावणेनापि तामास पात्रिनो वर । वरेण येन लोकानां स्मरणं मे भविष्यति ॥ १४॥  
 म त्वया मे वरो देयस्तच्छृत्वा राघवोऽब्रवीत् । त्वद्देहज्वलिनि ज्वालाशब्दः सर्वे जना ह्रवि ॥ १५॥  
 भविष्यन्ति समद्वीपेषु तेन ते स्मरणं भदा । भविष्यति हि सर्वेषां प्रज्ज्वालागतिनिशमिनाम् ॥ १६॥  
 एवं चत्वा दशास्यः स वरं दासे लयं पर्या । एवं यत्नं त्वया पृष्टं तन्ममैव कथितं भया ॥ १७॥  
 गुरोर्गतिं वचः श्रुत्वा तं नत्वा स लवोऽपि च । स्वर्गेऽगममर्देहः प्रयवो शिविरास्थितः ॥ १८॥  
 एकदा बन्धुभिर्गोदं पुराभ्यां सीतया सह । मुनिमिर्युक्ता ताम् संस्थितः प्राह इषितः ॥ १९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

मृष्यंतु मुनयः सर्वे सर्वे मृष्यंतु बन्धवः । पुरो मीता मन्त्रिणश्च सर्वाः मृष्यन्तु मातरः ॥ १०॥  
 यथा यथाऽवतारेऽस्मिन् सुखं भुक्तं हि मीतया । न तथाऽन्येषु सर्वेषु अवतारेषु वै कदा ॥ २१॥  
 अवतारास्तु बहवः शतशोऽत्र मया पृताः । नानाकार्याणि वै कर्तुं तेषां संख्या न विद्यते ॥ २२॥  
 सप्तावतारास्तोषेव श्रेष्ठान्मम मया पृताः । ईदृशं न सुखं तेषु कदा भुक्तं मया ह्रवि ॥ २३॥  
 अस्मासुरो महादैत्यः पूर्वं जानो महोदधौ । येन वेदा हनाः सर्वे सन्त्यलोकात् कुत्रे ध्रुमे ॥ २४॥  
 तदर्थं मत्स्वरूपेण अवतारो मया धृतः । तं हत्वा क्षणमात्रेण विष्णुरूपे मया धृतम् ॥ २५॥

सुख या, किन्तु शरीरसे उसने कभी दवताओंकी सम्प्रकार भां नहीं किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ न कभी देवमन्दिरकी सम्प्रदाई को, न उस शरीरसे ताथेयाया को, न अपने शरीरसे कोई निष्काम तपश्चर्चा की और न शीत उष्णकी हो सहन करके शरीरसे परिश्रम किया । स हाथोंकी हत्या करनेवाली उसकी देह मात्र भी लङ्कामें जल रही है । उसका कद प्रत्येक मनुष्यको मुनाई देता है । ज्वालाकी घर्घकाहटका मिनाह धौंझीकी तरह मुनाई पड़ता है ॥ १० ॥ दिनक समय मनुष्योक्त बालाहकमें बहु गरम नहीं सुन पड़ता । जान भी हनु मान्दवीकी रोज सी बार लकड़, उसकी चितामें डालनी पड़ती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ जब उसके पाप नष्ट होवें, तब कही उसका शरीर जलगा । हे लव लव ! मैं एक समय कारण भी बनलता हूँ सो मुनो । १३ ॥ अपने देहान्तक समय रावणने रामसे यह वरदान माँगा था कि आव हमें कोई ऐसा वर दीजिए, जिससे संसारके लोग मेरा भी स्मरण किया करें ॥ १४ ॥ रामने कहा कि तुम्हारी देह जलानेवाली भावका चक् चक् शब्द शीतों हीषोंके दूर एक व्यक्तिको मुनाई पड़ना रहेगा । इसीसे सबको तुम्हारी याद आती रहेगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकारका वरदान पाकर वह रात्रिक शरीरमें लीन हो गया । इस तरह तुमने हमसे जैसा प्रश्न किया, वो सब कह मुनाया ॥ १७ ॥ गुप्तकी बात सुनकर लक्ष्मी सन्देह निवृत्त हो गया और वे पालकीमें बैठकर अपने घर चले गये ॥ १८ ॥ एक दिन सब माद्यों, पूजों संगता तथा गुरुके साथ रामचन्द्रजी बैठे थे । प्रसन्नवशा हृषित होकर राम कहने लगे — ॥ १९ ॥ समस्त ऋषि, मेरे सब चाई, दोनों भेटे, सीता, समस्त मन्त्री और माताएँ सब लोग मेरी बात सुनें । २० ॥ मैंने इस अवतारमें संताके साथ जितना सुख भीया है, उतना किसी भी अवतारमें नहीं मगा ॥ २१ ॥ विविध प्रकारके कार्यमाधन करनेके लिए मैंने इतने अवतार लिये, जिनकी कोई संख्या नहीं है ॥ २२ ॥ फिर भी मेरे साथ अवतार मूल्य है, लेकिन उन तातांमें भी मैंने इतना आनन्द नहीं पाया ॥ २३ ॥ जानसे बहुत दिनों पढ़ने महोदधिमैं एक काङ्क्षामूर नामका दैत्य हुआ था जो सत्यलोकसे चारों देवोंको बुझा ले गया था । उसके लिये मैंने मत्स्वरूप कारण किया और उसे मारकर फिर विष्णुरूपधारी बन गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस मत्स्व तथा विषय ( वस्तु ) दोनोंमें कोई विशेष सुख नहीं था ।

किं मुञ्च इत्यनन्तरं हि निर्योगोऽपि महिः ॥ १२६ ॥ ततश्चैवमवतारे न स्थितं हि तिरं मया ॥ १२६ ॥  
 ततः समुद्रमगने मज्जनं मन्दराचलम् । दृष्ट्वा कृत्वा कर्मरूपं रूपपुष्टे पर्वतो धृतः ॥ १२७ ॥  
 तच्चापि महितं कर्तुं मया त्रिं धृतम् । हि त्रिचरितम्भं हि सुखं तत्र मवेज्जले ॥ १२८ ॥  
 ततो दृष्ट्वा मामने हि मज्जनं पृथिवी मया । क्रोडरूपं महद्गुत्वा दृष्ट्वाशमवनिर्मुता ॥ १२९ ॥  
 मम पृथ्वीति ममधीं हिमपक्षो दया दत्तः । किं तुष पशुशेन्यां हि महिनायां मवेज्जले ॥ १३० ॥  
 अतश्चैवमवतारे न लब्धं न सुखं मया । प्रह्लादवचनाम्नममाश्रयमिदं स्वरूपधृक् ॥ १३१ ॥  
 अजनीर्णस्वहं भूम्यां त्रिगणकशिष्टः श्रमाम् मया तदा दत्तः । कोपात्तद्वयमनिमास्वरम् ॥ १३२ ॥  
 यद्वयान्निवृत्तं कोऽपि प्रह्लादाच्च विनाऽपरः । न मानवः स्थितो भूम्यां तत्र वार्ता सुखस्य का ॥ १३३ ॥  
 तदाऽतिक्रोधरूपेण सिंहरोम्पो न किं मुञ्च ॥ मयाऽणुभूतं त्रिपुण्ड्रं मुखेच्छान्निमाप न ॥ १३४ ॥  
 ततो बलेमहिमार्थं सर्वरूपं तु वापभात् । धृत्वा कृत्वा त्रिपक्षाश्च भूमेः पातालमाः कृतः ॥ १३५ ॥  
 तत्र किं मुनिदेहेन वने मौल्य भरेन्मम । न यत्रास्ति यथायोग्य देहमर्प्यतिसुन्दरम् ॥ १३६ ॥  
 तत्र का मुखवार्ताऽस्ति भूम्यां मे अह्नवशिष्टः । अन्धदेव महमा नाकलोर्कं गतं मया ॥ १३७ ॥  
 पुनर्दिशोऽवनेनैव आसदन्त्यमरूणि ॥ पञ्चमिहनिवारं हि निःस्रवा पृथिवी कृता ॥ १३८ ॥  
 महमार्तुननामा म महार्वागो हतहन्ता । तच्चापि क्रोधमयूक्तं मुनिरूपं मया धृतम् ॥ १३९ ॥  
 सुखवार्तां पुनीनां हि का तत्र वनधारिणाय । जन्मेन्य जन्मना तेन तपश्चर्य मया कृता ॥ १४० ॥  
 किं मुञ्च तपस्तप्तत्र वने मे जनमुत्तरम् । एवं पदं धृत्वाः पूर्वमरताग मया धृतिः ॥ १४१ ॥  
 न ताता मुखवार्ताऽपि तत्र कापि मुनिश्रमाः । दृष्ट्वाऽपि कृष्णरूपं लोकुलेऽत्र कपोम्यदम् ॥ १४२ ॥

इसीलिये उस अवलम्बमें उस रूपमें मैं उतरा दिशोनक नहीं रहा ॥ १२६ ॥ इसका बाद समुद्रमग्नयनके समय जब मैंने मन्दराचल पर्वतको दूबने देखा, तब पूर्व (बभ्रु) का रूप धारण करके उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया ॥ १२७ ॥ उस स्वरूपको भी अच्छा न समझकर मैं अधिक दिशोनक उस रूपमें नहीं रहा । भला अगर वह अस्ति तब जन्ममें रहकर मैं भूमा कैसे तो सकता था ? ॥ १२८ ॥ तदनन्तर पृथ्वीको समुद्रमें दूबनी देखकर मैंने क्रोड (गुस्सा) रूप धारण करके दृष्टको अपनी पीठपर रखकर उतारा ॥ १२९ ॥ इस पृथ्वीपर मेरा गडग है । अनन्तर यह पृथ्वी मेरा है । इस प्रकार क्रोध धारण करने द्विरुपाज्ञ सामक समुद्रका मैंने संहार किया । पशुपतिमें रहकर भी इस की ई विरोध सुख नहीं मिला । इसलिए उस रूपको भी अच्छी ही त्याग दिया, फिर प्रह्लादक वचनानुसार नृनिद्ररूप धारण करके जन्मसे निकलना पड़ा ॥ १३० ॥ १३१ । उस समय अन्तार लकन मैंने क्षणमात्र हीमपक्षिपुष्पी समाप्त कर दिया । मेरा वह रूप बड़ा तेजस्वी था ॥ १३२ ॥ उसके भरसे प्रह्लादके मित्रों मेरे पास जानरी मामर्या निमोम नहीं थी वलम्ब, ऐसी योनिव मैं क्यों कैसे रह सकता था । उस समय मेरा बड़ा क्रोधपूर्ण रूप था, दूसरे सिंहको योनि दे । उस योनिही मैंने अनुभव कर लिया । इच्छा थी कि इस रूपमें मैं कुछ आनन्द पाऊँ, लेकिन नहीं पा सका ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ तपश्चात् बलिको नीचा दिख लेके लिए मैंने बहुत ही छोटा वामनका रूप धारण किया और तब मैंने सारी विश्वको नाथवर बलिको पाताल लोकमें भेज दिया । १३५ ॥ उस समय भी एक ही मुनिको मेरा, दूसरे वसोप रहना, तीसरे शमार भी जितना चाहिए उतना सुन्दर नहीं था ॥ १३६ ॥ वनवरको दसाप पृथ्वीपर रहकर सुख कहाँ था ? इसी लिए उस रूपको भी मोघ त्यागकर मैं स्वर्गलोचली लोट गया ॥ १३७ ॥ फिर मैंने ब्राह्मणरूपसे परशुरामका अवतार लेकर इसकीस बार पृथ्वीको क्षत्रियभूय कर डाला । उसी समय महावीर महाभुवनका बध किया । उस समय भी एक नाथी मुनिका रूप धारण करना पड़ा था ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ वलम्ब रहनेवाले मुनिर्षीको मला कब सुख मिल सकता था । यह समझकर मैंने उस जन्ममें भी तपस्या ही की ॥ १४० ॥ उस तपस्वी जीवनमें वनेमें रहकर मुझे क्या सुख मिला होगा इसका आप लोग भी अनुमान कर सकते हैं । इस तरह मैंने छः

नेदृष्टं तत्र मोक्षयामि सुप्तं मृगं विस्मयम् । कारागृहस्थितिः पित्रोर्जन्मादायैव मे भवेत् ॥४३॥  
 मातृपितृविहीनश्च तदा स्थास्यामि शैशवे । एतच्छीरे मन्दगेहे वृद्धिं गच्छामि गोकुले ॥४४॥  
 गोपवेष्टस्य किं सौख्यं गोपुटे भवतो मम । स्त्रांगोनागाश्वाद्यादि बह्वैष्यन् निहन्म्यहम् ॥४५॥  
 देवपत्नीवशम्कुर्यां वार्ष्णीयमनादिकम् । नानार्थपादि दुष्कर्म कृत्वाऽहं गोकुले ततः ॥४६॥  
 मधुरायां हनिष्यामि लगजं कमलामुलम् । तत्र दास्या रविं कुर्यां नैष्ठुर्यं गोपिकादिभु ॥४७॥  
 बहूना गोपिकाः सर्वा रामो बन्धुर्मज्जिष्यमि । मन्यन् च बालयवनमयान्मे हि पराभरः ॥४८॥  
 न पराभवतो दुःखं किञ्चिदस्ति जगत्त्रये । ततोऽहं स्वल्पं न्यक्तवा तटाके सागरस्थ च ॥४९॥  
 स्थास्यामि स्वल्पकालं हि चिन्तकालं न मे स्थितिः । न स्थलं मत्पदेष्टे हि न राज्यं मे भविष्यति ॥५०॥  
 किंवा राज्येन किं मौल्यं वराह्याश्चरन्तिनः । छकादिराज्यभोगाश्च भविष्यन् जन्मनि मे व हि ॥५१॥  
 बहुर्लणधेकदेहस्नदाऽयं मे भविष्यति । तदा कामां मुञ्च दयं दुःखं कामां तदा मया ॥५२॥  
 एव यदा व्यग्रचित्तमामां रजनकमणि । तत्र का सुखवानांऽस्ति निश्रया भ्रमतो मम ॥५३॥  
 पटिकायां च पट्टिभूषणघनामृदाणि हि । पचन्त्यप्यष्टदिशास्त्रांगेहानि तदा मम ॥५४॥  
 श्रेणामि गंतुं नैवामि कालो मातुस्त्रेभ्यनि । विप्रदटीमयी रात्रिस्त्रेभं मे मा भविष्यति ॥५५॥  
 वदा मे भ्रमतो रज्ज्वी कुतो निद्रा कुत सुखम् । वदा मयेऽपि शत्रुदिः किञ्चिच्चिटो तदाऽऽनुगम् ॥५६॥  
 वस्येच्छाऽप्यत्र दुःखं हि मे नृ नेन नरेण हि । कर्मव्या यद्वयः पश्यो दृश्यं नक्तं ततः ॥५७॥  
 एवं भवेत् मे मौल्यं द्वापरे कुरुगजन्मनि । भविष्यन्परनाशश्च ममापिर्विप्रणाशनः ॥५८॥

अवतार लिये ॥ ४१ ॥ लेकिन उस छहोंमें मुझे मुक्तका नाम भी नहीं मिला । अपने द्वार पर युवमें इस पक्षीपर  
 गोकुलमें कुछकर्ममें मे अवतार नंगा ॥ ४२ ॥ लेकिन ऐसा मुझ उस अवतारमें भी नहीं पा सकूँगा । मुक्ति  
 उस अवतारका विरह्य विस्मयपूर्वक आज लोगोंको बननाही है । जन्मके पहले ही मेरे माता-पिता कारागारमें  
 रहे ॥ ४३ ॥ बंजर जन्ममें हो माता-पितासे विमुख होकर एक अन्य ध्याति ( नन्द ) के घर गोकुलमें रहकर  
 पालना । उस गोपवेष्टस गोशोक पीछे पीछे घूमनेमें मुझ क्या मुक्त मिलेगा ? फिर गो ( बन्धावुर ), रजो ( रजना ),  
 नाग ( कारिया ), अश्व ( बैली ) तथा पत्नी ( बकागर ) को मारना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ देवर्षियोंके चन्दालस परस्त्रीवसन  
 आदि ( पाप ) करने । फिर गोकुलमें चोरी आदि दुष्कर्म कर देनेके बाद यदरा जाकर हाथी कुवलयापंडके  
 साथ ममा कसको मर्दना । वहाँ मुझे गोपिकाके साथ निर्याई करके दामी ( दुबडी ) के साथ विवास भी  
 करना पड़ेगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जिन गोपिकाको मैंने भोगा होगा, भविष्यमें बलरामजी उन्हें मोनेने । फिर  
 बाल्यवनके समय मुझे परास्त भी होना पड़ेगा । ४८ ॥ पराजयमें बहुत ससारमें और कोई दुख नहीं हो  
 सकता । फिर समुद्रके किनारे अपना निवासस्थान बनाकर कुछ दिनों तक वहाँ ही रहेगा । वह निश्चित है  
 कि उस अवतारमें भी मैं अधिक दिनतक संसारमें न रहेगा । अच्छ वहाँके निवासस्थान न रहनेके कारण  
 मेरे हाथ कोई राज भी नहीं रहेगा । ४९ ॥ ५० ॥ राज्यरहित होकर दूसरेको आज्ञामें रहनेमें क्या क्या  
 मुक्त मिल सकता है ? उस जन्ममें गजाओंको उपभोग करने छत्र चमर आदि भी मेरे पास नहीं रहेने  
 ॥ ५१ ॥ बहुत सो निजोंके लोक मरा करुणा मरीर रहेगा । उस समय रात-दिन वही चिन्ता रहा करेगी कि  
 इनमेंसे किसे मुक्त दे और बिना दुःख । तदा मुझे इनका अनुहार करना पड़ेगा । मला रातभर एक घरसे  
 दूसरे घरकी दीड़ घरमें मुझे क्या मुक्त मिल सकता है ? ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उस समय एक बगीचे बीच में कलीह  
 बरोका चक्कर लगानेपर भी अर्द्धरात भर छूट जायेंगे और वही सोचना पड़ेगा कि सुषोदका समय हो रहा  
 है, अब किसीके वहाँ आनेका समय नहीं है । इस तरह तीस बगीची राते बतली ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उस समय  
 रातभर घूमनेमें निद्रा तथा मुक्त कोकर मिल सकेगा ? हाँ, जब रात कुछ बढ़ी होगी तो जाते बड़ी  
 आधी बड़ी सोनेके लिये समय मिल जाय ॥ ५६ ॥ जिस समुद्रको संसारमें दुःख भोगनेको इच्छा हो,  
 वह कई स्थियोंको रत्न के और फिर दत्त उसका फल ॥ ५७ ॥ साथ यह है कि मुझे उस अवतारमें भी कुछ मुक्त

ततो दैन्यान्यश्चकर्मसक्तान्दृष्ट्वा पुनस्तद्वद् ॥ कलाव्रजे सुदूरस्थे धनिष्याम्यतिमोहनम् ॥५९॥  
 निजवाक्यैर्मतिष्णेषां दैन्यानां यश्चकर्मतः ॥ परिवर्त्य कियत्कालं स्थास्यामि जगतीतले ॥६०॥  
 तदाऽहं मौनमाश्रिन्य मलिनः केशलुञ्चकः ॥ युगदिजीवधारी च सर्वेषामुपदेशकृत् ॥६१॥  
 अहिंयनघनं सर्वान् दर्शयिष्याम्यहं जनान् ॥ तज्जन्मन्यसिदुःखं मे केशयूकामलादिना ॥६२॥  
 ततोऽग्रेऽहं धनिष्यामि कल्मिषरूपं महत्कलेः ॥ भ्रंते रष्ट्रा जनानां च सर्वत्र वर्णसंकरम् ॥६३॥  
 भून्वाऽत्र विप्रदेहेन खड्गधारी हयस्थिनः ॥ सहारं क्षणमात्रेण दृष्टानां हि करोम्यहम् ॥६४॥  
 सोऽवतारो नातिचिरं मम स्थास्यति भूतले ॥ न नत्र सुखलेशोऽपि मे भविष्यति भूसुराः ॥६५॥  
 प्रवर्तयिष्यति पुनस्ततोऽग्रं तत्र कृतं यूयम् ॥ पूर्ववच्च पुनस्तत्र क्षवतारान्करोम्यहम् ॥६६॥  
 एवं नवावतारेषु न भुक्तं हि सुखं मया ॥ अतस्त्वस्मिन्नवतारे सुखं ब्रूत यद्येच्छया ॥६७॥  
 नानेन सदृशः कश्चिदवतारोऽस्तीतले ॥ पूर्वं भूतो मयाग्रेऽपि न भविष्यति वै कदा ॥६८॥  
 समलोकाधिपन्यं च नारी सीता च वर्तते ॥ यत्रैमौ बालकी पुत्री महार्थरी वनुर्धरी ॥६९॥  
 यत्र स्वते शंखश्च त्रैलोक्यजयिनः शुभाः ॥ कर्मधेन्वादिरत्नानि सप्त यत्र समान्तिके ॥७०॥  
 साक्षादयं वेदरूपो बसिष्ठस्त्वस्मि मे गुरुः ॥ आर्यावर्ते पुण्यदेशेऽयोध्यायां वसतिर्मम ॥७१॥  
 राज्यभोगादिभोगानां भोक्ताऽहं त्वत्र नोऽपरः ॥ यत्र सन्पवनं मेऽस्ति यत्रैकदयिताव्रतम् ॥७२॥  
 यत्रैकैव धाणेन मया बाल्यादिका हताः ॥ यत्रैकैव हि सीताया मम श्रुत्या न चापरा ॥७३॥  
 यत्राप्रतिहताज्ञा मे त्रैलोक्ये हि मुनीश्वराः ॥ यत्र यानं पुष्पकं तु यत्र दूतोऽञ्जनीसुतः ॥७४॥  
 सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ च यत्र मित्रे ममान्तिके ॥ कोदण्डमदृश चाप यत्र मेऽस्तिनिपूरनम् ॥७५॥  
 ह्यैवंसे यत्र जन्म ततो दशरथो वरः ॥ कौसल्या यत्र जननी यत्राहं स्ववशः सदा ॥७६॥

महीं मिलेगा । अन्तमें ब्राह्मणके मापसे मेरे उस अवतारकी समाप्ति होगी । ५८ । इसका अनन्तर कालमें दोपों की यज्ञकर्म करते देखकर मैं अतिशय मनोमंहेका क्रोध अवतार लेगा ॥ ५९ ॥ अपनी बालीसे उन कुट्टीकी मति घन्नकी ओरसे फेरकर कुछ दिनों तक मैं संसारमें रहूँगा ॥ ६० ॥ उस समय मैं मौनग्रव धारण करके मंजे-कुचेंसे कपड़े पहने और कितने ही जूँ बादि जीवोंकी शरीरमें पासे हुए सारे संसारके लोगोंको उपदेश दूँगा । सबकी अहिंसाश्रुतका अभिनय दिखाऊँगा । उस जन्ममें बाल्यमें पड़े हुए गुरे, कपड़ोंके फाँकर तथा मरमल आदिसे महान् दुःख उठाना पड़ेगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ फिर कालियुगके अन्तमें सब लोगोंको वर्णभेद होत देखकर मैं कल्मिष अवतार लूँगा ॥ ६३ ॥ उस जन्ममें एक निमक यहाँ उत्पन्न हो और घोड़ेपर सवार होकर क्षणमात्रमें दुष्टोंका संहार कर दानूँगा ॥ ६४ ॥ हे ब्राह्मणों ! वह अवतार भी विरम्यायी नहीं होगा । अनएव उसमें मा मे कुछ सुख नहीं भोग सकूँगा ॥ ६५ ॥ उसके बाद फिर सत्ययुग का जन्मगा और मैं पहूँलेकी तरह विर अवतार लेता रहूँगा ॥ ६६ ॥ इस तरह नौ अवतारोंमें कुछ सुख नहीं मिलेगा । किन्तु इस अवतारमें मैं अपने इच्छानुसार सुख भोग लिया है ॥ ६७ ॥ इस अवतारके समान कोई अवतार जगतीतलमें न हुआ है, न होगा ॥ ६८ ॥ जिसमें सगलें दोषोंका प्रभुत्व, सीता जैसी स्त्री, कुल-लव जैसे महार्थर और वनुर्धरी पुत्र, संगे लोगोंको जीतनेवाले ब्राह्म और कामधेनु आदि सात रत्न दिद्यमान हैं । ६९ । ७० ॥ जहाँ वेदक साखान् स्वरूप बसिष्ठ जैसे गुरु हैं । साधवित्त जैसे पवित्र देशमें निवासस्थान है, राज्यभोगक इन्द्रिन्द्रिया करनेवाला और कोई नहीं है, जहाँ सम्यक्का धत है, जहाँ बटल एकप-मोक्षत है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जहाँ केवल एक बाणसे धातुका मारनेकी सामर्थ्य है, जहाँ सीताकी और हमारी एक शत्रुता है ॥ ७३ ॥ जहाँ मुनिगण यैरक डोक जहाँ चाहें सहाँ आ जा सकते हैं । जहाँ कि पुष्पकविमान जैसा मशरी है ॥ ७४ ॥ सुग्रीव और विभीषण जैसे मित्र हैं, शत्रुओंका मार करनेवाला कोदण्ड जैसा धनुष है ॥ ७५ ॥ सूर्यवंशमें जन्म हुआ है, वनरज्य मेंसे पिता और कौसल्या जैसी



सुखं दुःखं मम सुखं सुखं इषो न मानयेत् शोकः कायो विषयी न चेति लोकान् प्रदर्शितम् ॥९४॥  
 राज्यमौग्यं मया न्यक्त्वा भुक्ताः कनेशास्त्रादा वने । कामाक्षीर्ना रिपूणां च दुष्टानां हि वधो भुवि ॥९५॥  
 जनैः कथं मदा चेति ह्यपदेष्टुं मया वने । यदत्र निहतास्तत्र रक्षणा मुनिहिंसकाः ॥९६॥  
 स्त्रीभयः सर्वदा त्याज्यस्वेकाकी च तन्ध्वरेत् । नास्त्य निजविन्द हि स्त्रेषु कापे नरैः कदा ॥९७॥  
 इत्थं मयोपदिशता यानाशय तदा वने । शिरोरो दशिनो लोकान् भक्तो भिक्षा न जानकी ॥९८॥  
 कदापि जायते विद्याः सत्य चेदं ब्रवीम्यहम् । आनन्दे रक्षणं कार्यं कार्यो दुष्टस्य निग्रहः ॥९९॥  
 मयोपदिशता चेत्थ जनान्मुग्धं प्रगल्भी । रक्षितो निदनी शान्तिरावणाविनरे इताः ॥१००॥  
 कीर्तिः कार्यो जनेष्वत्र मयोपदिशता न्विति । पापण्यमार्तिना नारे किमाकाशगतैर्न मे ॥१०१॥  
 यद्यपि शुद्ध स्वे चित्त विरुद्धं च जनयु यत् । न्यक्तस्य तन्निग्रहं चापि मयोपदिशता न्विति ॥१०२॥  
 जनानशयान् सुखाऽपि लक्षावो दिव्यदानतः । लोकाववादमोन्या सा पुनः स्यक्ताऽत्र जानकी ॥१०३॥  
 स्वयमेवात्र यन्त्यक्तं शुद्धं ज्ञानं हि तन्पुनः । अगोकार्यं जनैर्बुद्ध्या मयोपदिशता न्विति ॥१०४॥  
 जनानशयान् मीता पुनः स्यक्ता मया शुभा । एकपत्नीत्रयादाऽन गजकर्माप्यनेकशः ॥१०५॥  
 अश्वमेधादियज्ञश्च मदाचारो अस्तरः । स्नानमभ्यासश्च यथन्मया प्र क्रियते मदा ॥१०६॥  
 तन्मया जनशिक्षार्थं मुक्तस्वस्य किं मम । कर्मातिशयस्य भो विद्याः मदानन्दरूपिणः ॥१०७॥  
 अहं मदाऽऽनन्दमयः सुखात्मा सुखदो नृणाम् । अवतारपरन्वेन सुखं दुःखं मयाऽर्कथं ॥१०८॥  
 यदत्र भवतामग्रे कीनुकार्यं न मथ्यः । उपायकालो तेषां भवताः स्वयं मया ॥१०९॥

पुत्र आदिके मन्त्रोंमें अधिक आग्रह न हो जाना चाहिये । यह उपदेश देता है मैं लक्ष्मी परित्याग कर दिया था ॥ ९४ ॥ सुख दुःख दोनों का समान समानता चाहिये । सुख न विषय हूँ तो ही, न दुःख घबड़ाए । यह उपदेश दत्तके लिए है भक्तों के लक्ष्मीको ठीक से लेकर दत्तक लक्ष्मीको अपनाया था । काम-प्रान्त आदि दुष्ट शक्तियों का मानना चाहिये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ यह उपदेश दत्तके लिए है मैंने वनमें रहकर बहुतसे मुनिहिंसक राजाओं को मारा था ॥ ९७ ॥ उपदेश में अधिक आग्रह होता ठीक नहीं बल्कि उनका गल्लू त्यागकर दूर रहता हुआ लक्ष्मी कर ॥ ९८ ॥ यह उपदेश दत्तके लिए मैंने वनमें मन्त्रों का नजकर उनसे विरह उभाया था । शास्त्रवत् माना हमसे पूजक बना नहीं हो सकते ॥ ९९ ॥ हे वंशज ! यह सब बात मैंने सर्वथा मन्त्र कहा है । मनुष्यमात्रका चाहिए कि जो दुःख, जनका रक्षा कर और दुष्टों का वध दे ॥ १०० ॥ सुखान और विमोक्षणका रक्षा वरके दुष्ट को न और शत्रुओं का मरकर स्मरणका मैंने यही उपदेश दिया है ॥ १०१ ॥ इस मन्त्रमय मनुष्यका चाहिए कि यह जानना न उका विरह करे । इसलिये मैंने सद्गुरुक पानोम पत्रक पत्रावधे । वेम से चरणा ता वया बाधना न न कर लक्ष्मी नहीं पहुँच सकता था ॥ १०२ ॥ यदि कोई वस्तु अपनेको प्रयत्न हो किन्तु दुर्भाग्यवश विरह हो तो उस प्रिय वस्तुका भी परित्याग कर देना चाहिये । यह उपदेश दत्तके लिए है मैंने लक्ष्मी आत्मका सक्षा द तया पवित्र जानकर भी लोक पदार्थोंके भववशा सोचकर परित्याग कर दिया था ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ अथर्वण यदि किसी पवित्र वस्तुका पाप और बाधन सोच हो कि वह हृदय है तो उसको फिरसे बहूँ बार कर लेना चाहिये । यह उपदेश देतेके लिए है मैंने पूज्य त्याग हुई था मन्त्रों के फिर स्वर कर कर लिया । उर्मा प्रकार एकपत्नीप्रान्त, अनेक तरहके शत्रुकार्य आत्मप्राप्ति रक्ष, वराचर, जय, तप, स्नान, सन्त आदि जितना भी काम हम करन है, सो सब लक्ष्मीको उपदेश दत्तके लिए ही कर रहे हैं ॥ १०४-१०५ ॥ वैसे तो हमारी मायाहान्तिसे भक्तों मदा आनन्दस्वरूप, वनसे पर, मदा आनन्दमय, सुखात्मा और समस्त मनुष्योंके सुखदाता मुझ रामके लिए इन सब कृत्योंसे क्या मतलब ? ये सुख दुःख जो बताये, वे सबतरक मायापर आय लोकाक कीनुकके लिए कहे हैं, हममें कोई नश्य नहीं है । अपने भक्तोंके सत्संधार्य विशेष-गुणसम्पन्न वे अवतार गिनाये, वस्तुमें मेरे लिए सब अवतार बराबर हैं । किन्तु अपनी बुद्धिसे भक्तों की



विशेषगुणवानुक्तः सन्ति सर्वे समा मम । सम्प्रयुद्धया विचाराच्च नरिष्टः सकलेश्वरम् ॥ ११० ॥  
 द्वाचदारौ जलचरौ तथा वनचरौ च द्वौ । द्वौ तौ च वल्कलधरौ एको वैश्यश्च गोपकः ॥ १११ ॥  
 एकस्तु मलिनश्चापि परश्च क्षणिकमनया । एवं भूता भविष्याश्चावतारास्तोषदा न मे ॥ ११२ ॥  
 अयं सर्वविशिष्टोऽत्र ह्युपासकजनप्रियः अवतारस्त्वहं वैश्व सेयनान्ममलप्रदः ॥ ११३ ॥  
 चरित्राध्यतिरम्याणि पानकधनानि वै मया । कुतान्यस्मिन्नवतारे भवणान्मुक्तिदानि हि ॥ ११४ ॥  
 सदा बना भजन्त्यत्र ह्यवतारममुं मम । भक्ता येऽस्यावतारस्य ते मेऽतीव प्रिया मदा ॥ ११५ ॥  
 एवं सर्वभिद् विप्रा आनन्देन मयोदितम् । दोषमारोपयन्त्यस्मिन्नवतारेऽपि ये जनाः ॥ ११६ ॥  
 ते मद्द्रेष्या नरकेषु पतन्ति सह पूर्वजैः ।

श्रीरामदास उवाच

एवमुक्त्वा रामचन्द्रः सम्पूज्य हि मुनीश्वरान् ॥ ११७ ॥

विस्तृज्य सकलान्तीर्थां रंजयामास राघवः । एव शिष्य मया प्रोक्तमवतारप्रवणनम् ॥ ११८ ॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितात्मने श्रीरामदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे  
 अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

## एकविंशः सर्गः

( रामका अपने दासको वरदान देते हुए दो रूप धारण करना )

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकी दृष्टुं सप्तर्षीपांतरस्त्रियः । मुनीनां पाशिवानां च सुहृदो व्यवसायितम् ॥ १ ॥

सामान्यक्षत्रियाणां च वैश्यानां च सहस्रशः । चैत्रस्तानमिषेषैश्च द्यूवाहनमस्थितरः ॥ २ ॥

दृष्ट्वा समामतास्ताश्च जानकी गजगामिना । प्रन्युद्गम्यनयामास स्वाशालामनिसादरात् ॥ ३ ॥

विचार करके मैं इस निम्नोपर पढ़ना हूँ कि समस्त अवतारोंमें यह रामवतार सर्वश्रेष्ठ है । १०७-११० ॥  
 दो अवतार जलचर रूपके, दो वनचर, दो वल्कलधारी, एक वैश्यवर्णका गायरूप, एक मलिनवर्ण-  
 वाला और एक क्षणिक ये भूत तथा भावधरक रूपके अवतार मर मनक नहीं हैं—इनमें मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥ १११ ॥  
 ॥ ११२ ॥ मैं जहाँतक जानता हूँ, समस्त अवतारोंमें उपासक जनोका प्रिय तथा सेवनसमकलप्रद यही  
 रामावतार है ॥ ११३ ॥ इस अवतारमें मैंने जितने काम किये हैं वे सब अतिशय रम्य, पातकोका नष्ट करनेवाले  
 तथा सुननेसे मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ११४ ॥ भक्तोंका चाहिये कि मर इसी अवतारका भजन कर जो लोग इसको  
 उपासना करते हैं, वे मुझे सदासे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ११५ ॥ हे विप्रा ! यह सब कहकर मैंने आनन्दक साथ आप  
 लोगोंको बुलाया । जो लोग मेरे इस अवतारमें जो दोष आरोप करते हैं, वे मर शत्रु होकर अपने पूर्वजोंके साथ  
 नरकाग्नमें गिरते हैं ॥ ११६ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—इस एक रका बात करके रामने उन मुनीका पूजन किया  
 और सबको विदाई दी । ११७ ॥ तत्पश्चात् सातोंका प्रसन्न करनेवाला बात करने लग । हे शिष्य ! मैंने इस  
 तरह तुम्हारे समक्ष सभी अवतारोंका वर्णन किया । ११८ ॥ इति श्रीरामदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः  
 राज्यकाण्डे उत्तरार्धे अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

श्रीरामदास कहते हैं—एक बार सोताकी देखनेके लिये सातों द्वीपोंकी स्त्रियाँ जिनमें मुनीयोंकी, राजाओं-  
 की, मित्रोंकी, व्यवसायियोंकी ॥ १ ॥ सामान्य क्षत्रियोंके, क्षत्रियोंकी तथा वैश्योंका द्वाराका संख्यामें ताँरियाँ  
 चैत्रस्तानके ध्याजसे अनेक प्रकारके बाहुनोपर सवार हाड़-हाड़कर अयाध्या आयीं ॥ २ ॥ उन्हें मर्ती देखकर रामके  
 प्रमान मन्दगतिसे चलनेवाली सीता शीघ्र उनके आगे पड़ची और आँखोंके साथ अपनी दोनोंशालमें ले गयी । ३ ॥

पूजयामास ताः सर्वा नानालंकारभूषणैः । ताः सर्वाः पूजयामासुः सीतां सिंहासनस्थिताम् ॥  
 दिवपाल कारवस्त्राद्यैर्नानादेशोद्भवंवरैः । परिवार्य ततः सीतां तन्धुः सर्वाः स्त्रियश्च ताः ॥ ५ ॥  
 भ्रुवा सीतामुत्पन्नमचरित्राणि महामुखाः । तास्तुष्टाः श्रोतुमुग्रकास्तत्पाणिग्रहणं शुभम् ॥ ६ ॥  
 स्मितास्यास्ताः स्त्रियः सर्वास्तदा मोक्षुर्बिदेहजाप् स्वत्पाणिग्रहणांस्तदं श्रोतुं वाछामहे वयम् ॥ ७ ॥  
 तन्धुर्वं विस्तरेणाद्य इत्तुमहंमि जानकि । इति तर्मा वचः भ्रुवा लज्जया जानकी नदा ॥ ८ ॥  
 स्यां सर्वा नोदयामास तुलसीं रुक्मभूषिताम् ।

तुलस्युवाच

शृणुष्वं सकला नार्यः पाणिग्रहणमुत्तमम् । ९ ॥

जानक्याः कथयाम्यस्य महामंगलदायकम् । वन्दोपायं हि सत्संपादयन्नाम्पुण्यवर्द्धनम् ॥ १० ॥  
 साकेवाद्रघुनन्दनेन स मुनिर्धात्रा युवेनाश्रमं स्व गत्वा विनिहत्य राक्षसबलं तेनैव यज्ञं निजम्  
 संपाद्यात् स्थम्भितश्च मिथिलामार्गं हरेरघ्रिगः संप्रशस्तिनकल्मषा ममकरोद्भार्या मुनेर्माधिरः ॥ ११ ॥  
 गत्वा गाविजमंयुतश्च मिथिलां श्रान्ता समापरित्यज्वापाधः पतितं निरीक्ष्य च त्रिषु स्वोपं मुनेराहृता ।  
 तं नत्वा मिथिलेश्वरस्य च धनुः कृत्वा त्रिसदं भृगान्मन्त्राहस्तविसर्जिता निजगले मलां दर्पा राघवः ॥ १२ ॥  
 व-भूतां च निजं विधाय मिथिलापुर्यां विवादान् गुमान् पितृभ्यां सह भार्यया रघुपती राजाऽनिसंयुजितः  
 त्यक्त्वा नां मिथिलां ययौ निजपुत्रीं मार्गे क्रुधा निष्ठतो दुर्दर्पं जमदग्निं व्रत्य धनुषा मोषाहमृच्छीलया ॥ १३ ॥  
 एवं नार्यश्च सीताया विवाहः कथितो मया । पुष्पाभिः कौतुकान्पृष्टो यः सर्वमंगलप्रदः ॥ १४ ॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्त्रियश्च ताः भ्रुवा परमां मुदमाप्सुयुः । ततस्ताः पूजयामासुः पुनः सीतां मुदान्विताः ॥ १५ ॥

संज्ञाने अनेक तरहके भूषणों से उनकी पूजा की और उन सबको भी सिंहासनपर बिठलाकर दिया अलङ्कारों से सीताका पूजन किया । इसके अनन्तर वे सब सीताका चारों ओर घेरकर बैठ गयीं । ४ ॥ ५ ॥ सीताके मुखसे रामके सहजा चरित्र सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने सीताके मुखसे ही सीताका विवाहसम्बन्धी वृत्तान्त सुननेकी इच्छा प्रकट की । ६ ॥ वे मुकुटगता हुई सनत्कु कहने लगी कि हम आपके विवाहसमारोहकी वृत्तान्त सुनना चाहती हैं । ७ ॥ हे राम ! वह सारा हाल विस्तारपूर्वक हमको सुनाइए । इस प्रकार उनका प्रश्न सुनकर सीता लज्जयाश्रित कुछ नही बोली और अपनी सहेली तुलसीकी ओर स्त्रियमय आभूषण पहने बैठी थी, संकल किया और एकमी कहने लगी—आप लोग सीताके महामंगलमय विवाहका वृत्तान्त सुनें ॥ ८ ॥ ९ ॥ आप स्वर्गोका प्रसन्न करनेके लिए उस महामङ्गलदायी और सुननेसे पुण्य बढ़ानेवाले विवाहका मैं संक्षेपमें बर्णन करना हूँ ॥ १० ॥ अयोध्यापुरासे विभ्रामित्र राम और लक्ष्मणको साथ लिये हुए अपने साथमें पहुँचे । वहाँ राम लक्ष्मण राक्षसोंके प्रबल सेनाका सहार किया और मुनि विभ्रामित्रके यज्ञ कर लेनेके बाद रथपर बैठकर मुनिके साथ दोनों भाई मिथिलाकी ओर चले । रास्तेमें विभ्रामित्रने रामके चरणोंका स्पर्श कराकर गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याको शापसे मुक्त कराया ॥ ११ ॥ फिर मुनिके साथ जनकपुर पहुँचे । स्वयम्भरके समान रामने सभामें मुनि विभ्रामित्रको आज्ञासे स्त्रियके अनुग्रहकी प्रणाम किया और क्षण भरमें उसे तोड़कर तीन टुकड़ कर डाले । फिर सीताके हाथोंको चरमाणको रामने अपने गलेमें धारण किया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर रामने मिथिलापुरीमें ही अपना और अपने सब भाइयोंका विवाह किया । फिर पत्नी, पिता, माता आदिके साथ जनकसे पूजित होकर राम मिथिलासे अयोध्याकी चले । रास्तेमें कौषी परशुराम मिले और उनके योग्य अनुग्रहों कह कर रामने उनके दुर्दर्पको दूर कर दिया ॥ १३ ॥ हे नारियों ! सुनने केद्वारा वह सीताके जिस सर्वमंगलप्रद विवाहवृत्तान्तको पूछा था, सीताके कह सुनाया ॥ १४ ॥ श्रीरामदास कहते हैं कि इस प्रकार सीताके विवाहका वर्णन सुनकर वे स्त्रियाँ बहुत

सीतया पुत्रिताः सर्वास्तां नन्वाभ्यञ्ज्य जानकीम् । चैत्रस्नान समाप्याथ जगत् स्व स्व स्थलं प्रति ॥१६॥  
अथैकरा गुणोत्पादाभावे संस्थितो लवः । शृण्वन्पुण्यं पप्रच्छ भोतुं सर्वान् जनान्गुरुम् ॥१७॥  
गुणे ते प्रष्टुमिच्छामि सर्वं यद् गुणोत्तर । पुनर्केन च सर्वत्र पत्रे पत्रे पृथक् पृथक् ॥१८॥  
एकत्र लिख्यते श्रीति रामेन्येकत्र लिख्यते । किमर्थं मानर्वेज्जन्तु सन्मते कथयस्व मात् ॥१९॥

इति तद्वचने श्रुत्वा गुरुर्न शक्यमत्रवीत् ।

वसिष्ठ उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया इत्थं लोकमदेहदुर्गमम् । २०॥

श्रीरामचरितं पूर्वं स्वासेन मुनिना पृथक् । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥२१॥  
कृतान्यन्येषां मुनिभिः षट्शस्त्रादीन्यनेकशः । श्रीरामचरितादेव इलोकमात्रमपीह यत् ॥२२॥  
सर्वमस्तीति तद्विबुधादावेकत्र श्रीति च । विविच्यैकत्र गमेति तन्मध्ये परिलिख्यते ॥२३॥  
जनया संज्ञया सर्वे वाच्यन्त्यत्रे जना मुनि । श्रीराम मध्ये लिखितं श्रीरामचरितादिदम् ॥२४॥  
कृतमस्ति पृथक् मिथं पुरा व्यासादिभिस्त्रिवि । एतन्मात्रकाण्डात्तल्लेखनार्थं विलिख्यते ॥२५॥  
आरामेति पृथक् पत्रे सर्वत्र वसन्तीतले । अन्वये कारणं वन्धि तच्छृणुष्व शिष्यो लव ॥२६॥  
अष्टुर्लं लिखितं पञ्चाङ्गान्तो प्रातिगोऽपि हि । यत्र तच्छानिष्टुर्द हि भवतिवति मनीषया ॥२७॥  
श्रीरामेति च सर्वत्र पत्रे पत्रे विलिख्यते । यदकिं श्रीरामेति नाम्ना यत्र तु लेखकैः ॥२८॥  
श्रेयं तच्छानिष्टुर्द हि गतदोषस्तु लेखकः । भवत्यत्र जगत्या हि सत्यं लव वदाम्यहम् ॥२९॥  
इति श्रुत्वा पुनर्वाक्यं वसिष्ठं प्रविषत्य च । लवः स यत्तपन्देहस्तृष्णीयामोन्मुदाचिह्नतः ॥३०॥  
एकरा रघुनाथस्तु मन्त्रकोपरि संस्थितः । मुखात्पाञ्चुलस्य रत्नं प्रथमं दोषकारकम् ॥३१॥  
त्यक्तुर्काशी न दर्शय पात्रं निष्ठीवनस्य मः । नर्प्यातिकं स्थिता दासी नाम्ना च गुणोति च ॥३२॥

असल हुई और उन्होंने फिर से सीताका पूजन किया ॥ १५ ॥ माताने भी फिर उसका पूजन किया और वे सीताको प्रणाम करके और उनसे आज्ञा लेकर चंचलमान समाप्त हो जानेपर अपने-अपने घर चले गयी ॥ १६ ॥ इसके बाद एक दिन गुप्त बसिष्ठ बैठे पुण्यकी क्या सुना रहे थे । रामचन्द्रजी और लव भी बैठे हुए थे । क्या सुनते-सुनते लवने सब आदमीको जान प्राप्त करनेके लिए अभिप्रेत कहा—॥१७॥ हे गुरु ! मैं जानने कुछ पूछना चाहता हूँ, सो बताइए । प्रश्न ऐसा क्या आता है कि सब पुस्तकाके पन्ने-पन्नेमें एक कोर 'श्री' और दूसरी कोर 'राम' ऐसा लिखा जाता है । लोग ऐसा क्यों करते हैं ? यह कृपया हमें बतला दीजिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर वसिष्ठने कहा—हे लव ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इससे बहुतोका सन्देह दूर हो जायगा ॥ २० ॥ पहले व्यास मुनिने श्रीरामचन्द्रके चरित्रारम्भक अष्टादश पुराण और अष्टादश ही उपपुराण बनाये ॥ २१ ॥ उसी तरह श्रीराम-श्रीराम कृपिणोऽष्टादश आदि बनाकर तैयार किये । सब प्रदोके सभी श्लोक श्रीरामचरितस बने हैं । इसी बातको ज्ञानानेके लिए प्रत्येक पन्नेमें 'श्री' लिखकर 'राम' लिखा जाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस संकलसे सत्कारक मध्य पुण्यक देखकर यह समझने कि वे सब सब श्रीरामचरितके अन्तर्गत हैं । हे लव ! श्रीराम लिखनेका एक कारण यह है, जो बना चुका । दूसरा भी बतलाता है—हे लव ! सो भी सुन लो ॥ २४-२६ ॥ अज्ञानतासे जो भववत्त वन्दन जो कोई मन्द अशुद्ध मिला गया हो, वह पन्ना अन्दरत गूढ़ हो जाय । इस विचारसे जो पन्नेमें लेखकगण श्रीराम लिखते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ ऐसा करनेसे अशुद्ध या गूढ़ हो जाता है और लेखकको कोई दोष नहीं लगता । हे लव ! मैं तुमको यह सब सच्ची बात बतला रहा हूँ ॥ २९ ॥ इस प्रकार समाधान सुनकर लवका सन्देह निवृत्त हो गया और वे बुधवार बैठ गये ॥ ३० ॥ एक बार राम प्रथमर बैठे थे । सुनने साम्बूल था । साम्बूलका प्रथम रस शीतकारक होता है, इस स्थानसे उन्होंने पूछना चाह्य । किन्तु निष्ठीवनपात्र ( मोमकारदान ) नहीं दिखायी पड़ा । रामक पास ही कहीं गुणो नामको दासी रामकी इच्छा

तादृशं राममालोक्यं पार्श्वं दूरं चिलोक्य च । कुन्वा पार्श्वं स्वहस्ताभ्यामंत्रलावेव तद्रमम् ॥३३॥  
 रामेण मुक्तमाग्याच्च जग्राह वेगवभरा । ततः सा प्राशुनं रामोच्छिष्टं दासी चकार तद् ॥३४॥  
 महाप्रसादं तं मन्वा देवाल्लब्धं विविन्व च । तदाऽतिनुष्टः श्रीरामस्तस्यै तत्कर्मगाऽभवीत् ॥३५॥  
 परयन्त्रं चरं दामि यत्ने मनसि वर्तने तद्रामवचनं श्रुत्वा दासी प्राह रघूनायकम् ॥३६॥  
 एकदन्तीव्रतं तेऽस्मि माप्रतं निवृद्धं जन्मनि जमातिरे त्वया ममं वाछामि रघुनायकम् ॥३७॥  
 सत्तस्या वचनं श्रुत्वा रामवो वाक्यमब्रवीत् । यदाऽग्रे कृष्णारूपेण गोवृक्षेऽवनराभ्यदृष्टम् ॥३८॥  
 तदा गधेति नाम्नी न्व गोपिकासु भविष्यसि । तदा मया चिरं क्रीडां त्वं योक्ष्यसि न सशयः ॥३९॥  
 तदा ममानिप्रीता त्वं गोपिकासु भविष्यसि । इति दासी रामचन्द्राद्वरं लब्ध्वा तुनोष मा ॥४०॥  
 अन्वच्छृणु विष्णुदास रामचन्द्रकथानकम् । यन्प्रोच्यते मया तेऽग्रे महत्कौतुककारकम् ॥४१॥  
 एकदा राघवः श्रीमान्ममाग्रामान्तोपरि । मन्विनो वन्धुभिः पूर्वमन्विभिः पुत्रासिभिः ॥४२॥  
 गन्धिमन्त्रने कश्चिद्वल्लभागी ममाग्र्या युवा दण्डधरः श्रेष्ठः कमण्डलुकरः शुचिः ॥४३॥  
 ऐणकृष्णाजिनधरः काषापवमनो व्रती तं दृष्ट्वा राघवः श्रमानवगीर्षं वरामनात् ॥४४॥  
 प्रभुद्वन्द्वेऽप्य तं नत्वाऽऽमने समुपवेश्य च । पूजयामास विधिना धेनुमग्रे निवेश्य च ॥४५॥  
 ततः सम्पूजितं विप्रं राघवो वाक्यमब्रवीत् । अद्य धन्याऽऽभ्यहं विप्र यतन्ने दर्शनं मम ॥४६॥  
 कार्यमाज्ञाप्यतां किञ्चिदर्थं भवनाऽऽगतम् । तद्रापवचनः श्रुत्वा प्रसन्नासी वचोऽब्रवीत् ॥४७॥  
 वाक्मीकिना प्रेषितोऽहं यस्मात्तच्छृणु राघव । यदुक्तामो महायज्ञं मं बाल्योकिर्षहासुनिः ॥४८॥  
 स्वापाकागमितुं मां त्वच्छिष्टं वरावतरम् । प्रेषितवान्ततन्त्रं हि मां तया वन्धुभिः सह ॥४९॥  
 प्रस्थानं कुरु राजेन्द्र मुहूर्तमवद्य वर्तने । एवं वदति श्रीराम भूसुरे मदसि स्थिते ॥५०॥

रामजी गये, किन्तु पात्र दूर था । इसलिए भण्डी को बुकनेके लिए उसने अपनी बज्जली फेंका दी । ॥ ३१—३३ ॥ रामजी भी बहुत प्रसन्न हुए उसकी हायसे बुक दिया । दासी उसको लेकर तुरन्त आठ गयी । उसने मनम साक्षा कि यह महा प्रसाद है और भगवन् आज मुझे मिल गया है । उसने इस अवसरसे राम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा — ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ श्री दासा ने कहा जा इच्छा हो, वह घर मांग ले । रामजी बात सुनकर उसने कहा — इतना जमान आप एकका वरता है । इसलिए हे रघुनायक मैं तुम्हारे जन्ममें आपके से व एतन् सहवास करना चाहती हूँ । ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने कहा कि जगत् जन्ममें मैं कृष्णरूपसे गोवृक्षमें अवतार लेता, सब तुम राधा नामसे विष्णुसह एक गोपपत्नी होओगी । उस समय बहुत दिना तक तुम मेरे साथ नंदका सब भंगोली, इसमें कोई संकय नहीं है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बहुतका सारा गोदियेमें तुम मुझे भवने दिय होओगी । दासी इस तरह रामचन्द्रजीसे वरदान पारकर प्रसन्न हो गयी । ॥ ४० ॥ श्री रामजीसे रामचन्द्रजीकी एक दूसरी कथा भी मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ । वह बड़ा कीर्तनक है । ॥ ४१ ॥ एक समय राम मन्त्राग्रे मिहगवनपर आहूयी, पुर्वी तथा भविष्योके साथ बैठे थे ॥ ४२ ॥ उसी समय एक युवा बड़ाचारी दण्ड धरण किये और हाथमें कमण्डलु तथा पवित्र मृगचन लिय और वागाव वस्त्र धारण किये वहाँ आ पहुँचा । उसे देखते ही श्रीमान् रामचन्द्रजी आसनसे उठ खड़े हुए । थोड़ा आगे बढ़कर उसे प्रणाम किया और एक मन्त्रे आसनपर बिठलाया । फिर गोदान देकर उन्होंने उसका पत्रा का । ॥ ४३—४५ ॥ पूजन कर लेनेके पश्चात् रामने कहा—हे विप्र ! आज आपके दर्शनसे मैं आनेका मन्त्र समझता हूँ ॥ ४६ ॥ अच्छा, अब आप मुझे वह आगा दीजिए कि जिसके लिए आप यहाँ आये हो । रामजी यह बात सुनकर बड़ाचारी कहने लगा । ॥ ४७ ॥ श्री बाल्योकिजीने मुझे आपके पास भेजा है । वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं । इसीलिए आपको बुलानेके लिए हमे भेजा है । हे राजेन्द्र ! आज बड़ा अच्छा मुहूर्त है । अतएव सीता तथा अपने आस्तामके साथ आप शीघ्र प्रस्थान कर दीजिए । इस प्रकार वह

समाययौ ब्रह्मचारी द्वितीयो ग्राधिवाश्रमात् । तं दृष्ट्वा पूर्वदृष्टामः प्रपुष्टम्य द्विजेभ्यम् ॥५१॥  
 आसनेऽप्ये चोपवेश्य पूजयामास गार्गम् । तन्मन्त्रपुनः स्थित्वा स द्रवच्छ रघुचमः ॥५२॥  
 यदर्थं श्राप्तेनोऽसि त्वं तन्ममाज्ञायन् एन । तद्रामवचनं श्रुत्वा ब्रह्मचारी ब्रह्मव्रतान् ॥५३॥  
 राम त्वां ग्राधिजेनाहं श्रेयसाऽस्मि जज्ञेन हि । यन्तुक्तानो महयज्ञं विश्वामित्रोऽस्मि राघव । ५४ ।  
 त्वं तेनाकाशनिश्चामि प्रस्थानं कुरु मन्त्रम् । ब्रह्मचारिणोऽनङ्गाकषण्णयोः स रघुचमः ॥५५॥  
 भुञ्चा विदम्य प्रोक्ताश्च द्विजार्था वै तथेति च । तदाश्रयं उन्मः प्रादुः प्राचुस्ते तु परम्पराम् ॥५६॥  
 कथमयोमयोः सर्वं रामो गच्छति तन्मर्त्यं । केचिद्वृत्तं गार्ग्याय किमशक्यं तथोऽत्र हि । ५७ ।  
 यथा स्त्रीणां वने पूर्वं यथाऽस्माकं हि दर्शनम् । यथा गतोऽस्मि लकायाः पुनः भरतदर्शने ॥५८॥  
 भिक्षुरूपेण रामेण सर्वेषामपितं पृथक् । तद्वदपि द्विरिष्टा भुञ्चा गन्वा च तन्मर्त्यं । ५९ ।  
 किमाश्रयमिदं चाद्य किमशक्यं परात्मनि । एव वदस्य पौरुषे लक्ष्मण प्राह राघवः ॥६०॥  
 अद्यैवाहं गमित्य मि मे जनानन्तरं वदिः । वामोर्गेहानि नेयानि वदिः सेनां प्रचोदय ॥६१॥  
 आश्वासनायं वाद्यानां स्पर्शनं कर्तुं हे रोवकान् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेष्टुक्त्वा स लक्ष्मणः ॥६२॥  
 कारयामास वाद्यानां स्पर्शनं दूर्तश्च सश्रमान् । सर्वे प्रचोदयामास वदिर्वामोर्गुहाण्यपि ॥६३॥  
 नेनुमाज्ञापयामासुर्दूतास्ते निन्युहादगन् । नतो रामोऽपि विप्राभ्यां गृहं गत्वा विदेहजाय् ॥६४॥  
 सर्वं वृत्तं निवेद्याश्च कृत्वा विप्रहि भोजनम् । मातां च कर्मिणीं पृष्टे वंभुनाऽऽगेहयन् प्रभुः ॥६५॥  
 पुष्पके पौरुषाग्रेश्च कर्मिणीपूमिलादिकाः । सपारोदय-ह्युगामः स्वयं तर्था गजोपति । ६६ ॥  
 लक्ष्मणाद्या गजेभ्यश्च ते समाकृतमुत्तदा । निनेदुश्चाथ वाद्यानि ननुतुर्गाम्योपिनः ॥६७॥

बाह्यांग बहुत ही रहा था कि इनमेंसे एक दूसरा बड़ाचारा विश्वामित्रक आश्रमसे आ पहुँचा । पहलेका तरह रामने उसका भी स्वागत किया । ४८-५१ ॥ उस एक दूसरे आसनपर बिठाकर उन्होंने उसको भी उल्लो तरह पूजा की । इसके अनन्तर उसके भाँ आगे बैठकर उन्होंने कहा कि जिस कारण लिए आपने बहुत किया हो, मुझे आज्ञा दीजिए । रामकी बात सुनकर बड़ाचारोने कहा - ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे राम ! मुझे विश्वामित्र-जाने आपके पास भेजा है । वे एक भूयायन करना चाहते हैं । उसमें उन्होंने आपका पुत्रया है । इसलिये आप भी प्रस्थान कीजिए । रघुचम राम उन दोनों बड़ाचारियोंके सन्देश सुनकर मुनकराए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

तुष्टुर्मागधायाश्च प्रजगुः सुम्भरं नराः । एवं पृथक्पृथक् रामस्यादा मामोमृदाणि सः ॥६८॥  
 तां रात्रिं समनिक्रम्य प्रधाने रघुनन्दनः । क्वापि निष्पत्तिं कृत्वा मज्जरुदोऽभवन्पुनः ॥६९॥  
 क्रौञ्चद्वयं ततो गन्धाऽग्रे द्वौ मार्गौ निर्दिष्टौ च । सप्तमे द्वे निजरे देहे चकार रघुनन्दनः । ७०॥  
 सदा द्वयोर्मार्गयोश्च गन्धैर्गन्धी गन्धराः । पुनश्चानि वन्धुभिर्धनैः द्वौ मार्गौ सकला जनाः ॥७१॥  
 ददशुः पुष्पके द्वे च द्वौ जातौ व्रजचारिणौ । जन्मी तौ व्रजचरो ज्येष्ठः सत्त्वं गुरुं ययौ ॥७२॥  
 विश्वामित्राश्च तौ यः श्रममेषा मुदा यतः । मन्त्रिणो न श्रुत्वा तौ ज्येष्ठः सत्त्वं गुरुं ययौ ॥७३॥  
 बान्मीकैरञ्जरा चान्यः श्रममेषा यथा मुदा । एवं मे सत्यं तव सर्वदेहद्वयानि हि । ७४॥  
 निजानि ददृशुस्त्वत्र सत्त्वं देष्टुमनना । एवं तौ रघुमार्गौ हि तदोद्युन्योस्तदाश्रमे ॥७५॥  
 सप्तम्यौ मीनया युक्तौ वन्धुपुत्रमर्मान्तौ । जन्मपूर्वं सुमन्तौ हि प्रत्युद्गम्यानिरुजितौ ॥७६॥  
 तयोर्मार्गौ विधायाश्च पार्ष्णीं पुनः पार्ष्णी । नमजामरुः श्रममौ सप्तम्यौ पूर्ववन्मुदा ॥७७॥  
 यत्र द्वे निजदेहे वै कृते तत्र रघुनन्दो समागत्य पुनश्चक्रे निजदेहं चकार सः । ७८॥  
 बान्मीकीयो व्रजचारी विश्वामित्राद्विज्जन्तया । भिन्नदेहे स्वेष्टस्य भवन्मनौ सदा द्विजौ ॥७९॥  
 सप्तम्यं पुष्पकं चापि सभुर्वक्तुं तु पूर्वजन्तः । श्रीरामचन्द्रः स विंश नगरीं निजाम् ॥८०॥  
 तदा निजेदुर्वायानि रघुनृपाग्यानिनः । पौरनार्यौ विमानम्भा वरपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥८१॥  
 तुष्टुर्मागधायाश्च प्रजगुः मृदादयः । एवं नानार्कान्तुकाणि पश्यन्मार्गे शनैः शनैः । ८२॥  
 ययौ निजगृहं रामः समाप्तौ संचिवेश ह । सीताऽपि निजगोहं सा संचिवेशे मिलादिभिः ॥८३॥  
 एवं मृगुर रामेण कौतुहलं महान्ति च । अमानुषाणि यान्यत्र कृतानि च सदृशशः ॥८४॥  
 वान्मीकिना विस्तरेण वर्णना ने हि कृत्स्नशः । सारं सारं मया तेभ्यः सगृह्याथ कथानकम् ॥८५॥

मेध्यायें नाचने लगीं ॥ ६४-६७ ॥ बन्दीजन रामको विस्तारवली सुनाने तथा नटगण माठे मोठे स्वरोंसे गाने लगे । इस प्रकार अपने राजमवलम्ब ग्रहण करके राम रास्तेमें बने हुए रथेपर पहुँच ॥ ६८ ॥ वह रात्रि रामसे वहाँ बिलायी । सबसे उसे ता स्तनाद निष्पत्तियों को छोड़ फिर हृषीकेश भँदकर चल दिये ॥ ६९ ॥ दो कोस आगे जानकर अहाँसे विश्वामित्र तथा बान्मीकि आश्रम के रास्ते ऊपर होते थे, वहाँसे उन्होंने मेना सप्तम अन्ता दो स्तम्भ बना दिये ॥ ७० ॥ उस समय दोनों राज्यमें राम सेना, सीता तथा पुष्पवधु आदिये युक्त होकर चले । उस समय जितने भी मनुष्य गाय थे, वे सब एकत्र हो दिखायी दिये ॥ ७१ ॥ पुष्पक विमान भी दो द्वे गदा और दोनों व्रजचारिणोन्म एक रामको विश्वामित्रके आश्रमकी ओर ले चला, दूसरा बान्मीकि के आश्रमकी ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उस समय मनुष्यसे लेकर सापके कुत्ते तक दो हो होकर दिखायी दे रहे थे । वे लोग अपने दो जमीनोंको देख देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ७४ ॥ इस प्रकार वे दोनों राम अपनी-अपनी सेना, सीता और वन्धुओंके साथ दोनों आश्रमोंकी चले । जब कि आश्रमपर पहुँच तो दोनों ऋषियोंने अगयार्ण करके उनकी पूजा की । ७५ ॥ इस प्रकार पहुँच-पहुँचकर उस दोनोंका यज्ञ समाप्त हो जाने पर फिर वे दोनों राम चलेगी तरह ब्रजध्याके लीठे । ७६ ॥ ७७ ॥ जाने समय जिस रवातपर रामने अपना दो स्तम्भ बनाया था, वहाँ रघुनन्दन फिर गए हो गये । निजामित्रका व्रजचारी तथा बान्मीकि का व्रजध्या वे दोनों भी एक ही एक हो गये । ७८ ॥ ७९ ॥ वे तरह पुष्पकविमान और सेना भी एक हो गयी । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी आनन्दपुत्रके अपन अयोध्या नगरमें प्रविष्ट हुए ॥ ८० ॥ उस समय भी ताता प्रकारके बाजे बने और वेश्यायें नाची । गुरु गन्धिन। नाश्रीन दुःख निमज्जसे रामार फूलोंको बर्षा की, बन्दीजनेनि स्तुति की और गानेवालोंने अञ्जलि-अञ्जलि दान गये । इस प्रकार राज्यमें तरह-तरहके कीतुक देखते हुए चोरे-चोरे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वे अपने भवनमें तो और पत्तम पावकर राजमितामवर ब्रजे । सीता उमिला आदिके साथ महलके भीतर गयी ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ रामने बताया प्रकारके जिन महान् और अलौकिक कामों-को किया था, उनका बान्मीकिने लिख दान किया है और मैंने उससे सारमागमन लेकर सब कथा सुनायी

तवाग्रे कथ्यते शिष्य सक्षेपेणाज्ञया प्रमोः । त्वं चन्द्रोर्ध्वं वदस्य च राक्षेणाज्ञापितस्त्वरम् ॥८६॥  
 वक्तुं स्वचरितं पुण्यं रम्यमानन्ददायकम् । वान्नी पश्यति श्रव्यः । सा दे संवादमात्रयोः ॥८७॥  
 यः पूर्वं विरचितवान् स्वीयकालेऽत्र स्तवम् । यथाः समस्य चरितं पूर्वं रामानुजारतः ॥८८॥  
 एवं संवर्णितं कृत्स्नं गोप्यं यच्च हृतं रहः । न बालमो ज्ञेयमः कश्चित्क वेभर्तो भविष्यति ॥८९॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणं श्रीमन्महादेवराजकोण्डेउत्तराव

रातोत्तरावतं तथा रामाज्ञोनां संवदयकरणं नामकविशः सर्गः ॥ २१ ॥

## द्वाविंशः सर्गः

( सीता द्वारा दूता तुलसीपत्र पुनः डालमें जोड़ना )

श्रीरामदास उवाच

इदानीं रामचन्द्रस्य लीलाकीर्तुमग्रजम् । अन्यद्वयं चर्यते हि सथा तच्छृणु मदिरम् ॥ १ ॥  
 एकदा राघवस्तस्यौ सभायापारगपति । चन्द्रुभिर्षनिवर्जैश्च दीर्घजनिपदैः सह ॥ २ ॥  
 पुत्राभ्यां च सहजिश्च मित्रमन्त्रिजनीः मत । एतैर्भगवन्तः भुशिकीर्तय मुहदा चरैः ॥ ३ ॥  
 द्राक्षाफलादिभिः पूर्णान्तरा पुनैः सुसूतिभिः । कर्ण्डिकाः प्रेषिताश्च रथार्थं मास्त्रयः ॥ ४ ॥  
 ताः सर्वा राघवो दृष्ट्वा प्रेषयामास जालोत्तरे । सुकामस्य गिरिनीता वाक्कीडान् लब्ध्विता मुदा ॥ ५ ॥  
 दृष्ट्वा कर्ण्डिकाः सन्निवेशामुददयचदा । तस्मिन् समसमान्येन दृष्ट्वा रम्यं विमानकी ॥ ६ ॥  
 करेणादाय पत्रं च राघवायपण विना । तां चन्द्रुमन्त्रं जग्रह वाग्वाक् मुदान्विता ॥ ७ ॥  
 कर्ण्डिकां पूर्ववच्च यमाच्छ्रद्य विरहजा । स्वार्थमाया मेदपुस्यैश्च कर्ण्डिकाः ॥ ८ ॥  
 तद्वृत्ता रामचन्द्रोऽपि सव ज्ञानदा सना स्थितः । निचरैः विरथमस्य सव हृदयान्वितः ॥ ९ ॥  
 सातदेहं हृतं कर्म योग्यं सुखं स्मृतं न ह । शनैः शनैः हृत्केनैव कर्ण्डिकां तया ॥१०॥

हे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ चरितं प्रभुन पुनर्गुणं च राघवा । तवाग्रे कथ्यते शिष्य सक्षेपेणाज्ञया । त्वं चन्द्रोर्ध्वं वदस्य च राक्षेणाज्ञापितस्त्वरम् ॥८६॥ स्वयं पुनं कथा नूनमेकी अज्ञाती ह्यस्य । त्वं चरितं राघव विरचय है । शिष्य सक्षेपेणाज्ञया । त्वं चन्द्रोर्ध्वं वदस्य च राक्षेणाज्ञापितस्त्वरम् ॥८७॥ वक्तुं स्वचरितं पुण्यं रम्यमानन्ददायकम् । वान्नी पश्यति श्रव्यः । सा दे संवादमात्रयोः ॥८८॥ यः पूर्वं विरचितवान् स्वीयकालेऽत्र स्तवम् । यथाः समस्य चरितं पूर्वं रामानुजारतः ॥८९॥ एवं संवर्णितं कृत्स्नं गोप्यं यच्च हृतं रहः । न बालमो ज्ञेयमः कश्चित्क वेभर्तो भविष्यति ॥९०॥ इति श्रीकृतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणं श्रीमन्महादेवराजकोण्डेउत्तरावरातोत्तरावतं तथा रामाज्ञोनां संवदयकरणं नामकविशः सर्गः ॥ २१ ॥

श्रीरामदासने कहा : अब मैं सुम्हें रामकी एक दूसरी कथा और उत्तरावतं चन्द्रमुदात है । उसे आदरपूर्वक सुनी ॥ १ ॥ एक समय रामचन्द्रजी मिहलिनगर चले हुए थे । उन समय उनके सनस्त भ्राता, मन्त्री, पुरवासी, दोनो पुत्र सम्बन्धी तथा मित्र आदि भी उपस्थित थे । उन सब उनके सुद्ध राजा भुशिकीर्तने दुता द्वागखण्ड आदि विविध प्रकारके फलोंसे भरी हुई चन्द्रुमन्त्रा पिटाई के साथ ॥ २-४ ॥ उनको देखकर रामने उसे भीतर सीत्राके पास भेजवा दिया । उस समय सीता अव सज्जियोंके साथ कीडाभक्ष्यमें थी ॥ ५ ॥ उन पिटारियोंको देखा तो बड़ी कसुकाके साथ खोजायाका कुछ पिटारियाँ देखीं, किन्तु उनके भीतर कमलका फूल भरा दाख पड़ा ॥ ६ ॥ तब प्रसन्न मनमें सीताने उनमेंसे एक कमलका फूल निकाला और रामको अर्पण किये बिना ही सूँघ लिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर पिटारियोंका पहेलेको तरहु ठीक करके घरमें रखवा दिया ॥ ८ ॥ सभामें बैठे बैठे ही रामको यह बात आलूस हो गयी । उन्होंने बार-बार इसपर विचार किया ॥ ९ ॥ तब उन्होंने सोचा कि सीताने यह ठीक नहीं किया, जो मेरे सूँघ बिना ही कमल सूँघ

अग्रेऽप्येवं त्रियः सर्वाः करिष्यन्त्यत्र ईं भुवि । संनार्दश्रुतमार्गेण गम्पाम्बिलक्षो कमेक्यहम् ॥११॥  
 एव सन्निवि निधिन्य तनः य इष्यन्न्दनः नार्जमेव गृह गन्वा पूर्णज्जानकीं मुदा ॥१२॥  
 गच्छामास विविधैर्नानाकाहादिजोर्मुक्तं । मं तर्जयि पेटिका सर्वा नरकाग्रे महानशः ॥१३॥  
 आनीय ददयामास कलशुष्पादिदूर्जगाः । गमेऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वाः समुद्रं वा प्रयत्नं पृथक् ॥१४॥  
 प्रेषयामास गच्छता गेहेषु दश पञ्च च । पञ्चार्दनां पेटिकाश्च नानाचक्रविचित्रिताः ॥१५॥  
 मान्तरां मकलानां च गृहेष्वपि तथा पुनः । पुत्रयोः सुहृदां चापि मन्त्रिणां च दुर्गेष्टथा ॥१६॥  
 पौर्याणां चापि गेहेषु सेवकाणां गृहेष्वपि । दार्मीभ्यश्च सुभा दत्ता पेटिकाः सम पञ्च च ॥१७॥  
 सीतार्थं शनशो दत्त्वा मुदा तभ्यो गच्छन्ममः । कल्याणि दश पञ्चाष्ट काण भुक्त्वा ततः परम् ॥१८॥  
 एतद्दत्तं मुमुक्षुमाने रिमज्ज पदं पुनः । सतायै शनशो दत्त्वा स्तवसंगोचकस्ततः ॥१९॥  
 अज्ञात इव तद्वृत्तं गोपयमास केनसि । अर्थकदा जनकज हविर्दिन्यामृषेपणम् ॥२०॥  
 कृत्वाऽपरे दिने स्नान्वा गयी वृन्दावनान्तिकम् । तुलसीं पूजयित्वा तां सा चकार प्रदक्षिणाः ॥२१॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सीता निगदागं श्रमान्विता । त्यक्त्वा प्रदक्षिणाभ्याने किञ्चिदेव चचाठ सा ॥२२॥  
 चलितायाश्च सीतायाः पल्लवेन हि दामनः । पत्रमेकं तुलस्याश्च पथान् भुवि ईं तदा ॥२३॥  
 तन्वन जानकीं दृष्ट्वा द्वादश्यां वृत्तिम शुभम् । शान्त्युत्पत्तेः कृतश्चेति प्रथमागऽदवत्तदा ॥२४॥  
 ततः सा तत्करेणैव गृहीत्वा परमुत्तमम् । तन्वा इदाशन सीता चित्तैव परमादरात् ॥२५॥  
 ततः प्रदक्षिणां कृत्वा शार्धवित्वा भूर्भुवः । तुलसीं सा ययी गेहं गच्छामास राघवम् ॥२६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र नारदश्च मयाययी । वीणाशयस्वनेनैव कुर्वन्कीर्तनमुत्तमम् ॥२७॥  
 बाल्य मां दीनमिति तद्यवेति पुनः पुनः । बाल्य मां दीनमिति मनु पञ्चदशाक्षरम् ॥२८॥

लिया । १७ ॥ यदि मैं इस समय ना यह जाना हूँ तो सीतके दिवाये इस मार्गपर चक्कर मच मित्रवाँ ऐसा ही करने लगती । इसलिये मैं नाकी हाकी सजा देता हूँ । १८ ॥ जमा मित्रव करके राम बुधवार सीताके घर पहुँच ॥ १९ ॥ वहाँ सीताकी तरह विविध प्रकारक काहा-कोमुक्त करने उद्देश्य सीताका प्रसन्न किया । सीताने श्री चक्र सह पिटारियाँ मंगवाका लक्षक आगे रख दी । व सह न ना प्रकारक काहे कुत्तेसे भरी थीं । राघव भी उन्हें अलग-अलग खालकर दत्ता । २० ॥ २१ ॥ इनसे अच्छे मिटारियाँ भाङ्ग्योक्त यही विजवा दी । इसके बाद सह सीताओक्त पास मजा । उसी तरह दोनों पुत्र सखी-धने, पत्नियो गुप्तजनों, पुरवारियो, सबको तथा शालियोंके घर भी पांच रोज न न मान पिटारियाँ जिनजानी । इसके अन्तर मंग्यो पिटारियाँ सीताका दी और इनसे सह मा दस पांच पेट भिन्नकर साथ ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके बाद कमल आदि अष्ट-अष्ट फुलीक, पुष्पवत् विपक्ष करके देक दी एक सीताका दिव और स्वयं भी दिव ॥ २४ ॥ किन्तु सीताने रामकी अपण विद्य विना ही जा कुछ मुँह लिखा था उस बातको जानते हुए भी राम जनमान ऐसे बन रह । इसके अनन्तर एक दिन सीताने एकादशीका व्रत किया २० ॥ दूसरे दिन ये वृक्षवन ( तुलसीका बगीची ) में गया । वहाँ तुलसीका पूजा करके प्रदक्षिणा करने लगी ॥ २१ ॥ उस समय एकादशीका व्रत करनेसे उन्हें थकावट सी लगती थी । उसमें प्रदक्षिणाका मार्ग छोड़कर वे दूसरी ओर चलने लगी ॥ २२ ॥ चपल-चलत सीताके कपड़ोंका पल्ल लयानसे तुलसीका एक पत्र लेकर पुष्पीपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ द्वादशके दिन उस पत्रे धनको देखकर सीताने सोचा—‘ओह ! मेन वहा भारी अर्थ कर दाल्य’ यह सोचकर वे कुछ मयभीत सी हो गयीं ॥ २४ ॥ इसके पश्चात् सीताने वह पत्र उठा लिया और उसे प्रणाम करके आदरसे उसी वृन्दावनमें फेंक दिया ॥ २५ ॥ ऐसा करनेके बाद प्रदक्षिणा करके बारम्बार प्रार्थना की, फिर महदमे जाकर रामचन्द्रजीका स्तारज्जन करने लगीं ॥ २६ ॥ इसी समय दीना बजाये और मुर्कितन करत हुए नारदजी वहाँ आ पहुँचे ॥ २७ ॥ व आते ही ‘मुस दीन-



कीर्तयामास स मुनिर्विशं वारं मुदान्वितः । क्लृप्तकंठस्वरेणैव महापातकनाशनम् ॥ २९॥

॥ पालय मां दीनं गधव पालय मां दीनम् ॥ इति मन्त्रः

न मुनि गधवी दृष्ट्वा प्रमृष्टम्याथ भक्तितः । नन्दऽऽमने मनिः ॥ २९॥ नन्दः सादरम् ॥ ३०॥

गतः प्रक्षालय तस्यादां सीतया नन्दनन्दनः । धेनु निषेधे गधये, दूजक तं मुनिपुंगवम् ॥ ३१॥

हेमपात्रं भोजनार्थं हुनेत्ये निवेद्य च । पवित्रेणार्थं श्रीरामनन्दनः । नन्दः आभकीम् ॥ ३२॥

सीताऽपि कामधनुस्त्वभ्यासात् विमृष्टा मा । हेमपात्रं दत्त्वा दानाय च परिश्रवणम् ॥ ३३॥

कर्तुं कंकणमञ्जोरिकिङ्किणीन् पुष्पमाला । वा दधु नन्दः । दां गच्छ श्रीरामर्षं तदा ॥ ३४॥

राम राज्ञीवप्राथ नाह सीताममर्षितः । दिव्यकौण्डिनं च यः कक्षिष्यामि स्पृष्टम् ॥ ३५॥

नन्दमुनेर्वचनं श्रुत्वा सीताऽऽसीत् चक्रिका तदा । प्रहृतः स गमाऽपि रश्मिणः मुनि तदा ॥ ३६॥

एवमुक्तं कारणं व्यग्रः सर्वकर्ता स्वयं प्रभुः । किं कारणं यद् मुने विमर्षयतयार्षितः ॥ ३७॥

अमैस्त्वं भोजनं नाथ करोषि मुनेषुज्ज्व । इति रामवचः श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३८॥

नारद उवाच

सीतयाऽद्य कृतं पपं किञ्च देव्यि न वै प्रभो । यदि न्य नैव जानामि तद् शृणु वदामि त ॥ ३९॥

द्वादश्यां तुलसीपत्रमनयाऽद्य निकृषितम् । पद्यमस्य तर्हि पश्य गत्वा वृन्दावने प्रभो ॥ ४०॥

संकमेषु चतुर्दश्याद्वादश्याः पानपरं मु । तुलसी न हरेन्मयस्योभृश्वगारापगच्छके ॥ ४१॥

नष्टे सूर्येन्दुग्रहणे प्रसूतिमग्ने तथा । तुलसी ये निकृषति तं त्रिदति हरेः क्षिरः ॥ ४२॥

द्वादश्यां तुलसीपत्रं धार्मीपत्रं तु कार्तिके । कुनाति यो नरो मच्छन्निन्यायानतिगदितान् ॥ ४३॥

अकाले तुलसीपत्रं छेदयत्पः क्षिपः पुमान् । पत्रमेकं नमसहत्यासमनाहूर्मनीपिणः ॥ ४४॥

एवं तु वचनं सर्वमोनाभिर्हि प्रकाशयत् । पुरुषाणामयं दीपस्तत्र स्त्रीणां कथाऽत्र का ॥ ४५॥

कीर्तयामास स मुनिर्विशं वारं मुदान्वितः । क्लृप्तकंठस्वरेणैव महापातकनाशनम् ॥ २९॥ 'पालय मां दीनम्, गधव पालय मां दीनम्' यह पञ्चदश अक्षर मन्त्रका स्वरूप है । राम नारदको दखन ही उठ खड़े हुए । इन्होंने आज बहुतकर प्रणाम किया और आसनपर विराजित । तब सादर पूजन किया ॥ ३०॥ सीताक साथ नामने मुनिक पैर धाव और गोदान दिया । इसके पश्चात् उनके सामने मुखरु पात्र रख्य और शीघ्र परोसकर । यह संवाद कहा ॥ ३१॥ ३२॥ सीता मां कामधनुसे उन्मुख अर्जुन अर्जुन ममाम पराजित के लिये क्लृप्त मन्त्रकार तथा दूजका धनि करती हुई चली । सीताको चलती देखकर नारदने पाससे कहा । गध । हे राजावप्राथ ॥ मे आज सीताके हाथों परसे हुए दिव्यान्न मही खाऊंगा ॥ ३३-३४॥ मुनिको जान मुनकर सीता नकरा गयी और रुब कुछ करतवाले स्वयं प्रभु रामने भी अनजान बनकर विस्मित हो स्वयंभावसे बूझा—क्यों मुनिगज । आज आप सीताके हाथका अन्न क्यों नहीं ग्रहण करने ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर नारदने कहा—॥ ३५-३६॥ आज इन्होंने एक बड़ा पाप किया है । सी कथा आपको नहीं मालुम है ? प्रश्न में हूँ मुनाता हूँ ॥ ३७॥ आज द्वादश्याका इन्होंने तुलसीपत्र तो छेदाया है । यदि आप मेरी बात नच न मानन हो तो स्वयं चरकर देख लीजिये ॥ ४०॥ संक्रान्ति, चतुर्दशी, द्वादशी, प्रतिदिन सवेरे सांझके समय, भुज और मङ्गलके दिन तथा दोपहरके बाद, सूर्य-चन्द्रग्रहणके समय, वरमे सम्पत्ति होनेपर या किसीका देहास्त होनेपर जो लोग तुलसीका पत्र तोड़ते हैं, वे माको तुलसीका पत्र न तोड़कर भगवान्का सिर काटते हैं ॥ ४१॥ ४२॥ जो द्वादशीको तुलसीपत्र तोड़ता है या कार्तिकमासमें आविलेकी पत्तियाँ तोड़ता है, वह अतिशय निन्दित मरकमे जाता है ॥ ४३॥ जो लोग वस-मयमें तुलसीका एक भी पत्र तोड़ते हैं । विद्वान् लोग ऐसीको बहामुत्तारा कहते हैं ॥ ४४॥ इस प्रकारका वचन समस्त मुनियोने कहा है । फिर अब पुण्योके लिये ऐसा नियम बना हुआ है जो स्त्रियोके लिये क्या

एतन्निर्मितं भीरुम सीतया परिवेपितैः । यगन्नेर्भोजनं माद्य कविष्यामि प्रवस्थितः ॥४६॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह न पुनः पुन न्वमेव सीतां मे पूतां कर्तुमिदार्हमि ॥४७॥  
 वरदानं प्रत वाऽपि वेन पूता भवेन्मृणान् । न्यामहं प्रार्थयाम्यथ स्त्रीय पल्लवमृतमम् ॥४८॥  
 प्रसूय शिरसा चापि नमस्कृत्य पुनः पुनः । तत्रामवचनं श्रुत्वा नारदो शाक्यमश्वरीन् ॥४९॥  
 ब्रह्महत्यादिपापानां निःकृत्यै मुनीश्वरैः । प्रायश्चित्तानि चोक्तानि सति नानाविधानि च ॥५०॥  
 द्वादश्यां तुलसीपत्रं छेदनापप्रशोभये । प्रायश्चित्तं मया नैव दृष्टं राघवसत्तम ॥५१॥  
 उपायस्त्वेक एवात्र वर्तते रघुनन्दन । पानिग्रनक्षत्राण्योता एतं तुलसी पुनः ॥५२॥  
 योजयिष्यामि मेऽत्रोऽद्य तद्वि पूता भविष्यति क्षणादेव न मन्देहः सत्यमेव वचो मम ॥५३॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा रामः सीतां व्यलोकयन् । तदा सीताऽब्रवीद्वाक्यं शृणु ब्रह्ममुनोत्तम ॥५४॥  
 अद्याहं योजयिष्यामि पत्रं तुलसी पुनः । पानिग्रस्यधर्मेनैव तस्याग्रे पश्य कीनकम् ॥५५॥  
 इत्युक्त्वा जानकीं देवीं न्यात्रमन्नपूर्तिम् । पाकस्थाने पुनर्नीत्वा स्थापयामास वेगवतः ॥५६॥  
 ततो वृंदावनं सीता ययौ नृपुत्रनिघ्नया । नारदो रामचन्द्राद्या ययुर्बृन्दावनं प्रति ॥५७॥  
 तदा ता उर्मिलायाश्च चण्डिकायाः स्त्रियो ययुः । लक्ष्मणाद्या बभूवश्च कुप्रथाय लवस्तथा ॥५८॥  
 तेषां मध्यगता सीता तदा वृंदावनविभवा । नन्वा तां तुलसीं भवन्द्या प्राह वाचनं मन्त्रीयुता ॥५९॥  
 भो भो तुलसि मद्वाक्यं शृणुष्वथ सुशीमने । पानिग्रनक्षत्रं पूर्णं माय यद्यस्ति पावनम् ॥६०॥  
 तस्यैव तव पत्रस्य त्वयि सन्धिर्भविष्यति । एवमुक्त्वा जानकीं मा यावन्पश्यति वै पुरः ॥६१॥  
 सावन्पत्रं तुलस्यां मन्त्रं धि नैव गतं नदा । तदा विष्णुणा सा सीता बभूव चकितामपि च ॥६२॥  
 तदा देवाः सप्तर्षयः यक्षा नागाः सकिन्नराः । गुह्यतां श्रवणः सर्वे तद्द्रष्टुं कीनृकं ययुः ॥६३॥  
 एतः सीतां विष्णुर्वा तां दृष्ट्वा सु नारदो मुनिः । एकांते जानकीं नीत्वा बोधयामास मादरम् ॥६४॥

कहता ॥ ४१ ॥ इसी कारण आज प्रतेका कारण करतक समय ये सीताका पत्नीसा अथ नहीं ख ऊँगा ॥ ४६ ॥  
 इस प्रकार नारदकी बात सुनकर रामन बजा ह पुन । तब पुनो नालाया पवित्र कर दो । ४७ ॥ यह वरदान  
 तथा प्रत जिस उपायसे पवित्र हो सक, वैसा कर । एतदर्थ मे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ और अस्तक  
 नुकाकर पुन पुन नमस्कार करता हूँ । रामका त्रिनय मुनकर नारदने कहा— ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्यादि  
 पापसे छुटकारा पानेके लिये तो मुनाचरणे अनक प्रकारक प्रायश्चित्त बखल ये है ॥ ५० ॥ किन्तु द्वादशीको  
 तुलसापत्र सोखेस हो पालक हुना है । उसरा प्रायश्चित्त तो मेरा नहीं दसा हो नदी ॥ ५१ ॥ हे रघुनन्दन ।  
 इस विषयमे केवल एक उपाय है । उह यह कि माता अम्भ पानिग्रनके बलसे यह पत्र फिर नृतमे जोड़ ब हो  
 य सज्जमायमे पवित्र हो सकी है । इममे न ई म देख नहीं है । मे जो कह रहा हूँ सा सत्य है । ५२ ॥ ५३ ॥  
 नारदके ऐसा कहनेपर र भने सीता की ओर देखा । तै गाने कहा — हे रघु । पूताम प्रत पुन नारद । ॥ ५४ ॥  
 अभी मे आपके सामने हो अपने पानिग्रनके बलसे उस तुलसीपत्रका बालमे जोड़ हुंगी भाव यह कीनृक देखें  
 ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर सीता यह सज्जमाय वेगके साथ लीटा ले गयी और रक्त दिया ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर वे वृन्दा-  
 वनमे गयी । नारद और राम भी वहाँ पहुँचे ॥ ५७ ॥ उर्मिलायिका स्त्रियो तथा लक्ष्मणादि बन्धु एवं लव कुम  
 आदि पुत्र भी वृन्दावनमे पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन सबके बोधार्थ सीताके उस तुलसीके वृक्षको प्रणाम किया और  
 भक्तिपूर्वक कहने लगी— ॥ ५९ ॥ हे सुमोचने नुमति । मेरी बात सुनो । यदि तुझमे पानिग्रतका बल हो तो  
 यह दूटा हुआ पत्र फिर तुम्हारे अङ्गमे जुड़ जाय । ऐसा कहकर सीताने सामने पत्र देखा तो यह जुटा नहीं,  
 धो धो पड़ा पा । उस समय अत्रयके साथ-साथ सीताको बर विदाय भी हुवा ॥ ६०-६२ ॥ समस्त देवता,  
 गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर, गुह्यक तथा ऋषियगण यह कीनृक देखनेको एकत्रित हो गये थे । ६३ ॥ जब सीताको  
 इस प्रकार पुण्डित देसा तो नारद मुनि उन्हें एकान्तमे ले गये और आचरतुर्वक समझाया । नारदने

शृण्वन्न कारणं मीने सर्वं त्वां प्रवदाम्यहम् । पतिव्रताभिर्नार्तिभिर्विना स्वपतिना मुदा ॥६५॥  
 पुष्पादीनां सुगन्धोऽपि नान्ध्यायः कदम्बन । मेऽनन्धदिनः पूर्वं मुदा नाधरमस्य च ॥६६॥  
 तद्वपुर्वध्वा रामचन्द्रेण मयेय संचितऽयं हि । वदितुं तं तल्लयाश्च तत्र पतितं भुवि ॥६७॥  
 एवमुक्त्वपल्लवाग्रं विधां कर्तुं तयात्र हि । रामस्यांतर्गतं तात्वा दोशरंघः कृतम्वयि ॥६८॥  
 मया मीने समस्वाद्य मां कोऽर्थं यज मां प्रति । नाशणमृत्कर्मणं तेन न्व मय शिथिलम् ॥६९॥  
 नोचेन्नदक्षिणपथा म्रियः सर्वोऽपि विना । जग्मे तन्नरिष्यन्ति नानाभागान्मुदान्विताः ॥७०॥  
 इदानीं मृणु मद्वाक्यं येन श्रोतव्यराश्रयः । एतन्मया तुल्लयाश्च दृष्ट्वा मन्त्रिभ्यश्चिष्यति ॥७१॥  
 पुन्दावने पुनर्मया न्वं मृहि यन्मयोऽपने । विना पथपुगन्धरायां घातय दे मभितम् ॥७२॥  
 पतिव्रत्यां ममाम्यत्र तद्वनसुखमादलम् । तुल्लयां मां समागतान् नाचवाप्नोतु र्वं न्वियम् ॥७३॥  
 अनेन वचनेनाद्य तत्पथं मन्त्रिभ्यः पुनः । तुल्लयाः श्रवणमात्रेण पूर्ववच्च मविष्यति ॥७४॥  
 अतस्त्वं वाहि तुलसी विधां भज मां मे । इत्युक्त्वा सीतया शीघ्रं तुलसीं नागदो ययौ ॥७५॥  
 सीताऽपि तुलसीं नत्वा शृण्वन्मु सकलेष्वपि । समदृष्ट्वा सुनीतां च देशादीनां वचोऽब्रवीत् ॥७६॥  
 विना पथपुगन्धरायां घातय दे मभितम् । पतिव्रत्यां मयाऽन्यत्र तर्हेन तुलसीदलम् ॥७७॥  
 तुल्लयाः सविमानोतु नोचेन्नातोतु र्वं न्वियम् । एव रदति जानकया वचने पथ समेन वत् ॥७८॥  
 प्राप्तं मन्त्रिभ्यः पूर्ववच्च पश्यन्मु सकलेष्वपि । तदा नितद्व्याघाति देवानां रघवस्य च ॥७९॥  
 देवनाथो विमानाग्रे मस्थिताः पुष्पवृष्टिभिः । वरपूजां नत्वा रामं विना उचूर्जयस्वनान् ॥८०॥  
 तदा सीतां समातिष्ठ राघवं । मुदितावनान् । भवत् तुष्टमनः श्रीमान् वमनादाभूषिताः ॥८१॥  
 हे सीते कञ्जनयने सुनीतामपि मोहिनि । नेदं मया शिथिलं ते सर्वस्वीणां मुशिथिलम् ॥८२॥  
 धर्मसंस्थापनार्थाय मातुनां पालनाय च । दृष्ट्वा च विनाशाय मयेदं रूपमाश्रितम् ॥८३॥

कहा-हे सीते ! इस पत्रक में तुमसे जो कारण है वह मैं बतलाता हूँ । पतिव्रता विद्याको च 'हृत्' कि 'रि' उनके पतिने 'र'ों' ने मान्य न किया तो तो स्वयं भी पुष्पादिकों का मगन्ध न ल । जाने इस रोज़ आपके सुपे बिना ही कमलका पुष्प मृषि दिया था ॥ ६५-६६ ॥ रामको यह जाने मान्य हो गया था । इससे उन्होंने यह मया रकी है । तुलसीका पत्र भी उन्होंने अच्छासे पढ़ लिया था ॥ ६७ ॥ आपको शिशा देने ही के लिए उन्होंने ऐसा किया है । रामको अच्छा देखकर ही मैंने आपसे दोषराय किया है । सो समा कर । मेरे ऊपर कुपित न हो । नारीजातिको शिशा दनक लिए हो उन्होंने यह बोवक रचकर आपको उपदेश दिया है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ व यदि तम न करेंगे तो आपको बचने मार्गक अमुमर संसार की समस्त रिषयी अपने-अपने पतिको मलय करके स्वयं विविध प्रकारके पीतोंका उपभोग करने लगती ॥ ७० ॥ सुनिष्ट, अब मैं बतलाता हूँ कि किस तरह वह पत्र वृथया उदेगा ॥ ७१ ॥ आप फिर पुन्दावने जाकर कह कि उस कमलका पुष्प मृषयके सिवाय यदि मेरा पतिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह पत्र मुझ जाय और यदि मैं अपने धर्मको सुरक्षित न रख सका हूँ तो न उडे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ आपव इस वचनसे तरकाव यह मुडकर पहिलेकी तरह हुग-अग हो जायगा ॥ ७४ ॥ हे तुलसीस्वमिनी सीते ! अब चर्य किया प्रकारका विवाह न कर । ऐसा कहकर गारदजो सीतके साथ साथ उस वृद्ध को वास गये ॥ ७५ ॥ सीता भी जर समस्त परिवारके सभी लोग तथा लारे देवता एकत्र हुअर मुन हि थ, तब उन्होंने कहा - ॥ ७६ ॥ यदि उस कमलका पुष्प मेनके अतिरिक्त मेरा पतिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह तुलसीदल अपने स्वयं पर मुड जाय, अन्यथा नहीं जुड़े । सीतके ऐसा कहने ही अगमावय यह पत्र मुझे तो तरह मुड गया ॥ अब सीता परे यह कौतुक देख रहे थे । उनके जुड़ने ही देवताओंने बाजे लगाये और देवताओंने पुष्पवृष्टि की एवं बाइलोंने एक स्वरसे कयजयकार किया ॥ ७७-८० ॥ इसके बाद रामने सीताको हृदयन लग लिया और प्रत्यक्ष अपने कहा कि हे मुनियोंके धा मनको मोहनेवाली सीत ! यह मैंने तुम्हेंको भला समस्त नारीजातिको शिशा दे है । धर्मको

पान्तिग्रन्थे शब्दा संगमिः पलनीय प्रियेति च । मया ने प्रियेति मांते मा विपादं मज प्रिये ॥८४॥  
 इत्याश्चर्यं मुहुर् नानां कथा नमनिदपि कम् । विमर्शनां योगमः मुग्दीन्मम पूजयन् ॥८५॥  
 ततः सर्वान्नमदादीन् ज्ञानको परिशेषणम् । वेगचक्रात् सृष्टिना स्वेदविद्वक्तिना नना ॥८६॥  
 ततः सर्वं नारदस्य धकुर्योत्रमुनमम् । ततो मुग्दाय नानुत्तरं रापं तुष्टाय नमदः ॥८७॥

श्रीनारद उवाच

धीरामं मुनिविश्रामं जलमद्गमं हृदयाममं कीर्तनञ्जनमस्यमनावनरात्रारामं घनश्यामम् ।  
 नारीमस्तुतकान्दिदीनतामिदं प्रियतमभूशालं रामं त्वां शिरसा मन्तनं प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥८८॥  
 नानासुखमहन्तरं शरधन्तरं जलनाथरं वलीमदनमागरवन्धननानाकीर्तुकर्तारम्  
 पीयानन्दद्वानारीतोषकस्तुरापुनयज्ञानं रापं त्वां शिरसा मन्तनं प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥८९॥  
 धोकांतं जगतीकांतं स्तुतमद्भुतं बहुमद्भुतं सद्भुतहृदयेप्सितपूज्यश्यामं नृपताकांतम् ।  
 पूज्यं तापनिधिं मित्रमुविश्रं दायनमच्छीलं रामं त्वां शिरसा मन्तनं प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥९०॥  
 सौतारजिनिविश्रं धामपूज्यं सुरलोकेजं प्रबोद्धागणवपमर्दनदुष्प्रावृत्तलकेभम् ।  
 किष्किधोकुतमुशीवं प्लवगवृन्दाविशमन्पालं रामं त्वां शिरसा मन्तनं प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥९१॥  
 श्रीनाथं जगतीनाथं जगतीनाथं नृपतीनाथं भूतेश्वरं निर्गुणं नृगणेश्वरं नृपतीनाथं  
 कोदण्डधृतगूर्गादन्वित्रमप्रमे कृतभूशालं रामं त्वां शिरसा मन्तनं प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥९२॥  
 रामेशं जयतामसं जम्बुद्वीपेशं नललोकेभं वन्द्यं किन्तुमन्त्रवर्धितमीतालालितवर्णाशुम् ।  
 वृषीशं हनूमतरं ननयोर्गीतं उगूर्गादालं रामं त्वां शिरसा मन्तनं प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥९३॥

स्थापना करने में उद्योग रखा तथा दुष्टों को विनाश करने में प्रयत्न किया है । प्रियताका अवता बुद्धिसे पान्तिग्रन्थ घमशी रक्षा करने का शक्ति । यह मैं तुम्हें उपदेश दिया है । इससे कहीं कुरित न हो जाती ॥ ८४-८५ ॥ इस प्रकार शान्त्यार सत्ता की अवशमन देकर रामने उद्गिरित कर दिया और उस भये हुए उद्योग को पूज्य कहा ॥ ८६ ॥ फिर नन्दारि पुन्योका लय लेकर सहस्रम वध । एही मन्त्रोम संज्ञाने पावन पन्थ ॥ ८७ ॥ इस अन्तर में सर्वान्नमदादि विधि । फिर तापुल स्थापन नमद रामको स्तुति करने ॥ ८८ ॥ तत्पश्चात् ८९ ॥ मैं उन रापका मन्त्रक काकर प्रणम करता हूँ जो पुनर्यक विद्यामन्त्राने निरुत्तरक पुनरभाष दे, ९० का आनन्द दनवा, म हाका प्रणम रखनेवाले, सूर्य, सनातन राज राम, मधुर नर राम मन्त्र १५ गी, नृपती आदिनी वरिष्ठ, विद्वान् प्रियतम उन भूषण रामका, जिन्होंने उद्योग मान ९१ का वृषीका एक वधम गिर दिया था, मैं प्रणम करता हूँ ॥ ९२ ॥ मन्त्रक राक्षसोंके धान नराय, इन्द्रोण्य १ जायक मधुर, वालिक १ मकर, रामुद्रम सेतु बधित और अन्तर प्रत्येक कोनक करनेवाले, पुनर्व्यासोंके अन्तर, नारिणोंके प्रमथकर्ता और मधुर कम्परीका विलक लगानवाले अथ रामको मैं प्रणम करता हूँ ॥ ९३ ॥ लक्ष्मीके पति, जगत्पति, अक्षय वन्द्य पल्लव वन्दित, निनके सट्टनमे भक्त हैं, जो मान पर क मन्त्र पूर्ण करनेवाले तथा वृषीकां पुनो सीताके पति हैं विद्यामित्रका मुक्ति से विनका श्रेष्ठ मन्त्र हो गया है, ऐसे महान् साहसालके वृषीका काटने वाले आप रामको मैं मन्त्रक लवाकर प्रणम करता हूँ ॥ ९० ॥ सीताका प्रमथ करनेवाले ममस्त विश्वके ईश, वृषीकाके ईश देववृन्दके अचिन्ति, १ उद्योगवाले १ वरुणा उद्योग करनेवाले, भवणके विनाशकारी, रावणके आना विरोधका लक्ष्म वृत्तानेवाले १ लवको किष्किन्धका अधिपति वनानेवाले, वानरीके अधिपति सुपावक भव्य धाति रक्ष करनेवाले और मन्त्रक लव वृषीको कटनेवाले रामको मैं प्रणम करता हूँ ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीके नाथ, जगत्क नाथ, जम्बुद्वीप, राजाधिराज, विप्र, कर्ण, देवता, पञ्च तथा पञ्चोंके नाथक, धनुष और तरकस लेकर नृगमन्त्र सहनव से राजा राम जिन्होंने महान् तलवृक्षोंको काट गिराया था, मैं उनको प्रणम करता हूँ ॥ ९२ ॥ ईश, जगन्के ईश, जम्बुद्वीपके ईश, समस्त लोकपालाके

चिद्रूपं त्रितमद्रूपं नतसद्विषयं नतमद्रूपं समद्वीपजवर्षजकामिनिसनीराजितपृथ्वीपम् ।  
 नानापाथैरनानोपापनमम्यक्तोपितमद्रूपं रामं त्वां शिरसा मन्तं प्रणमामि ऋद्धेदितमणालम् ॥९४॥  
 ससेर्व्वं हुरिभिर्गणं कविभिः स्तव्यं हृदि मेधायै नानावपिदतर्कपुराणत्रयकगादिकृतमन्त्राकाङ्गम् ।  
 साकेनस्थितकौमल्यासुतगन्वाद्यकिन्मद्रूपं रामं त्वां शिरसा मन्तं प्रणमामि ऋद्धेदितमणालम् ॥९५॥  
 पूपात्तं पनसन्नीलं नृपमद्रूपं कालिमद्रूपं पीताम्बुजनिवरोत्पललोचनमन्त्रीमोचिनमन्त्राकाङ्गम् ।  
 भीषीनाकुतपयाम्बादन्मम्यक्शिखितनन्त्रालं रामं त्वां शिरसा मन्तं प्रणमामि ऋद्धेदितमणालम् ॥९६॥  
 हे राजन् नवभिः श्लोकैर्भुवि पापघ्नं नवकं त्वय्यं मे बुद्ध्या कृतमुत्तमनूतनमेतद्राधयन्मन्यानाम् ।  
 स्त्रीपौत्रान्नादिकक्षेमप्रदमस्मन्महर्दक्षालं रामं त्वां शिरसा मन्तं प्रणमामि ऋद्धेदितमणालम् ॥९७॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

एवं स्तुत्वा स्मान्नाथं राघवं मन्त्रवत्सलम् । प्रपन्नाज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रययौ नारदो मुदा ॥९८॥  
 ममरा मुनयः सर्वे जन्मृन्ने स्वश्रुतानि वै । त्वं श्रीरामचन्द्रेण नररूपधरेण च ॥९९॥  
 कौतुकानि विचित्राणि कृतानि उगतीतले । कम्पान्धत्र क्षमो वक्तुं विस्तरेण द्विजोत्तम ॥१००॥  
 तेषु यद्यद्यद्वाधयेण स्मृतिं निवह वै मम । तनःप्रकथ्यते शिष्यं तवाग्रे राघवाकृषा ॥१०१॥

इति श्रीकस्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तराद्धे सप्ततया नृदसोपक्रमन्धिनम्य द्वाविंश सर्गः ॥ २२ ॥

प्रभु वाल्मीकिसे नमस्कृत, प्रसन्न सीताके द्वारा लालित, वातीश पृथ्वीश, भृमारहारी, योगीन्द्रादि नमस्कृत, जगतोके पालक और विशाल तालवृक्षको काट गिरनेवाले रामको मैं मन्त्रक झुकाकर प्रणाम करता हूँ । ॥ ९४ ॥ चिद्रूप, अच्छे-अच्छे राजाओंको भी परास्त करनेवाले, अच्छे-अच्छे दिव्यात्मसे नमस्कृत, बड़-बड़ राजाओंसे नमस्कृत, सप्तद्वीप तथा समस्त देशमें उत्पन्न नागियोंसे नीराजित, पृथ्व के पालक, अनेक राजाओंके हाथ अनेक प्रकारके उपहार देकर प्रणम किये गये राजा राम जिन्होंने विशाल तालके वृक्षोंको काट गिराया था, उन रामको मैं मन्त्रक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९४ ॥ जो मुनियोंके सेव्य, मन्त्रियोंसे गौर, हृदयमें धारण करने योग्य, अनेक गर्दितों हाथ विविध प्रकारके सर्व्व पराण तथा काव्योंमें मन्कृत एवं माकेत-निवासिनी कौसल्याके पुत्र हैं और गन्वादि ब्रम्होंमें जिनका मन्त्रक अन्वषस है, सत्त तालके वृक्षोंको काट गिरानेवाले भाव रामको मैं मन्त्रक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९५ ॥ पूपात्त, मेघके समान पयामस्वरूप, महाराज दशरथके अच्छे पुत्र, पापोंके लिय काहलस्वरूप सीतापति, मन्दर, कमलकी नाई आलोचने प्रबल काम्यके गालसे अपने मन्त्रोंको सत्काल सुढ़ानेवाले पतिके बिना अर्पण किये कमलका फूल मुख लेनेपर सीताको भलीभाँति शिखाके दाता, विशाल तालके वृक्षोंको काट गिरावने उन रामको मैं मन्त्रक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९६ ॥ हे राजन् संसारके प्राणिमोंका पाप नष्ट करनेवाले इन नौ श्लोकोंमें मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति की है । मेरे बरतानसे यह स्तुति स्वीकृत आदि सब वस्तुओंको देनेवाली होगी । विशाल तालके वृक्षोंका भेदन करनेवाले रामको मैं मन्त्रक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार मन्त्रवत्सल, स्मान्नाथ, राघव, रामचंद्रका स्तुति करके और उनसे आज्ञा लेकर नारदजी प्रसन्नापूर्वक बहोमे चित्त हुए ॥ ९८ ॥ सब सब देवता तथा मुनिगण भी अपने अपने स्थान-को चले गये । नररूपधारी रामचंद्रके ऐसे-ऐसे कितने ही कीमूक किये हैं । हे द्विजोत्तम ! विस्तारपूर्वक उनका वर्णन करनेके लिए इस संसारमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ९९ ॥ १०० ॥ उन चरित्रोंमेंसे स्वयं रामचंद्रजीने जो जो चरित्र हथे स्मरण कराया है वह सब उन्हीकी आज्ञासे मैंने तुम्हारे भाई कहा है ॥ १०१ ॥ इति श्रीकस्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे १० रामोत्तरपाण्ड्यैकशत'ज्योत्स्ना'भाषा-टीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तराद्धे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

## त्रयोविंशः सर्गः

( आनन्दरामायणकी महिमा )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः स वैदेया एन्ध्रमिस्त्रनयादिभिः । वकार राज्य धर्मेण लोकव्यपदां वृजः । १ ।  
 एतस्मिन्नन्तरेऽयोध्यापुर्या धीमघ्नायकम् । नर्वैकदाऽमवीर्षुदतो हे राम कञ्जलोचन ॥ २ ॥  
 करोमि तव सेवां न तपश्चर्यां करोम्यहम् । इदस्वाशां मम त्व हि गच्छामि निजमन्दिरम् ॥ ३ ॥  
 तथेति राघवेणोक्तः स ययौ निजमन्दिरम् । तत्र गत्वा शुचिर्भूत्वाऽऽनन्दरामायणं शुभम् ॥ ४ ॥  
 पठित्वा नवरात्रं तु तनून् पूर्णं बहिर्ययौ । एतस्मिन्नन्तरे एकदेशे पीरा मृतं नृपम् ॥ ५ ॥  
 दृष्ट्वा तस्य सुतं गालं तान्वा कर्तुं हि मन्त्रिणम् । चक्रान्ते निश्चयं तत्र केचिद्गुर्यं शुभः ॥ ६ ॥  
 केचिद्गुर्यं नैव कार्यो मन्त्री खलस्त्वयम् । एवं विवदमानास्ते शकुर्वन् निश्चयं तदा ॥ ७ ॥  
 करिणी निजगुण्डाग्रमालया यं ररिष्यति । सोऽस्तु मन्त्री निश्चयेन तनस्तां करिणीं वरः ॥ ८ ॥  
 वसुलङ्कारभूषणः शोभयामासुगदरात् । तच्छृण्व्यायां रत्नमालां दत्त्वा तां प्रमुचुस्सदा ॥ ९ ॥  
 ततश्चे नववस्त्रानि वादयामासुगदरात् । तदा सा करिणीं ग्रामाह हिस्तूर्णं ययौ सूनैः ॥ १० ॥  
 अयोध्यायाः पथाऽयोध्यां ययौ देशान् विलप्य सा । तन्गृष्टे मकलाः पीरा नानावाहनमस्थिताः ॥ ११ ॥  
 ययुस्तूर्णं कौतुकेन कोटिशो मृदिताननाः । ततः सा कारिणी गन्वाऽयोध्यां हृष्टास्थितं तदा ॥ १२ ॥  
 तं दृष्ट्वा वरयामास येन पारायणं कृतम् । आनन्दरामचरितस्याहो तत्कर्तुं महत् ॥ १३ ॥  
 नभूव सकलान् लोकान् ततस्तं मालयां कृतम् । करिण्या मन्त्रिणं चक्रुस्ते पीरा ये समागताः ॥ १४ ॥  
 तं नित्युः करिणीमस्थं एन्धीपुत्रममन्त्रितम् । स्वदेशे मन्त्रिणं चक्रुस्तदद्भुतमिवाभरत् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर सत्तारसे मन्दिर राम जब सीता, पुत्री श्रीर आशाओंके साथ धर्मपूर्वक राज्य कर रहे थे : १ ॥ उसी समय एक दूतने अयोध्यापुरीमें रामके पास आकर कहा कि हे कमललोचन राम ! अब आपकी सेवा न करके मैं तपस्या करना चाहता हूँ । मुझे आज्ञा दीजिए तो अपने घर जाऊँ ॥ २ ॥ ३ ॥ रामन उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वह अपने घर चला गया । वहाँ पवित्र मनसु उसने नौ रात्रि तक इस कव्याण्डायक आनन्दरामायणका पाठ किया और बादमें घरके बाहर निकला उसी समय एक देशका राजा मर गया था ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसका पुत्र बालक था । तो उसके सिये किसीको मंत्री बनानेकी आवश्यकता पड़ी । अब पुरवासियोंमें मंत्रणा होने लगी कि किसीको मंत्री बनाया जाय । कोई किसीको कहता कि अधिक मनुष्य अच्छा है, उसे मंत्री बना दिया जाय । किन्तु उसको बात काटकर दूसरा कहता कि नहीं, वह बड़ा दुष्ट है । उसे मंत्री नहीं बनाया जा सकता । इस तरह परस्पर सगवा करने करते यह निश्चय हुआ कि ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजाकी हृषिनी अपनी सूँड़में माला लेकर जिसके बसेमें बाल दे रही थीकि राजकुमारका मंत्री बनाया जाय । तदनुसार अच्छ-अच्छे वस्त्र-आभूषण आदि पहिनाकर हृषिनीको समज्जित किया गया और उसकी सूँड़में एक माला देकर उसे छोड़ दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद वे लोग हृषिनीसे बाजे बजाने लगे । वह हृषिनी धीरे-धीरे नगरसे बाहर निकली ॥ १० ॥ वहाँसे चलकर वह अयोध्या पहुची । उसके पीछे जनक प्रकारके काहनोपर सवार होकर मागरिक लोग भी कौतुकवश बड़े वेगके साथ प्रसन्न मनसे अयोध्या तक चले आये । उस हृषिनीने बाजारमें छोड़े उस मनुष्यके गधेमें माला बांध ली जिसने नौ रात्रि तक आनन्दरामायणका पाठ किया था । उन लोगोंके लिये यह एक असाधारण कौतुकका बात हुई ॥ ११-१३ ॥ तब माला पहिने हुए उस दूतको छोड़ते राजकुमारका मंत्री चुन लिया । उसी हृषिनीपर लिटाकर एन्धीपुत्र समेत उसे अपने देश ले गये और राजकुमारके

ततः परस्परं श्रुत्वा राजदूताः सहस्रशः । नानादेशेषु सर्वत्र सत्केनेर्जाः तदा सुख ॥१६॥  
 राजसेवां परिम्वज्ज अमुष्णे स्वगृहाणि हि । ततः सर्वे स्वगृहानन्दरामायणस्य च ॥१७॥  
 केचिन्पलापणं चक्रुः केचित्तच्छूषणं मुदा । केचित्तत्पठनं राज्ञाय केचित्तकुशं कर्तनम् ॥१८॥  
 केचित्तच्छूषणं व्याख्यातयेव तन्निष्ठमानसाः । बभूवुः सकला इताः कोटशा जगतीवले ॥१९॥  
 तदा केन केन लब्धं केन लब्धं महद्गनम् । केन गजपदं लब्धं केन लब्धं पुरं क्व ॥२०॥  
 केन प्राणाधिक्यञ्च केन लब्धा कृषिर्वरा । केन वृत्तिः शुभा लब्धा केन स्वर्गो भवोरमः ॥२१॥  
 केन लब्धं तु पानातं केनैका विविधाः शुभाः । लब्धं केचित्तुपपदं लब्धं स्वर्गं मनोहरम् ॥२२॥  
 केचिदिन्द्रपदं प्रापुः केचिदग्निपुरं वना । केचित्ते धर्मराजस्य शार्ङ्गं वा निश्चितैरपि ॥२३॥  
 वरुणस्यापि बायोश्च इवमस्येभ्यस्य च । लाञ्छानं जगद्विस्तृता दृष्टान्तदङ्कृतमिवामवत् ॥२४॥  
 केचिज्जाम्बुदलोकं केचित्त्रुषपदं गता । केचित्ते भस्मलोकां च पशुष्टं चरिषि केचन ॥२५॥  
 एवं यथा यस्य पृथग्य दृष्टयान्यजनस्य च । आनन्दरामचरितपाठश्रावणतमन्त्र ॥२६॥  
 तथा तस्य गतिजानां सद्य एवाननावले । तदा कोऽपि न कम्पार्श्वगुदगी दृष्टान्तसम्बधि ॥२७॥  
 त्यक्त्वा सेवां यमस्ताञ्च राघवस्यापते गताः । रामं पृष्ट्वा गताः केचिदपुष्टं च गताः परे ॥२८॥  
 एव सर्वत्र देशेषु दृष्टान्तोऽप्यवसदा । एतदा राघव द्रष्टुं गन्तु सर्वे नृपाधिभाः ॥२९॥  
 सैन्याभ्यास्त्राग्यामामु र्गोपानि तु पुष्यक्षयकम् । यदा कुवापि सन्त्यानि ददुर्गुर्न नृपाधिभाः ॥३०॥  
 आः किमेतदिति प्रोक्त्वास्तमुद्विष्टः सुनार्दिभः । दयुस्ते राघव द्रष्टुं विष्मथावष्टमानसाः ॥३१॥  
 तावाधनान्पुष्यं चान्वा गान्पुरा गन्तुमादरात् । आकारयन्त्वमन्व्यानि न तदा राघव लक्ष्मणः ॥३२॥  
 भन्वि-मन्वर विष्टा स्या । यह पदना एक अर्धभुत प्रकारक यह तथा ॥ १४ ॥ क १२ ॥ फिर क्या था, जब  
 रामके पुत्रोंका यह खबर मिली तो अन्व्या-पुष्पक तथा अन्व्या-न्य दशाक हेजाग दून प्रकृतितोपक अपना अपना  
 मोकरी छाड़कर घर चले गये । घरपर कुछन आनन्दरामायणका पाठ करना प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ १७ ॥  
 कुछ इसी दूसरेके सुलस सुनने लग, कुछ इसका परायण करने लग और कुछ लोग इसक कर्तनमें लग गये  
 ॥ १८ ॥ कुछ लोग इसकी व्याख्या करने लग और कुछन बाग आरम अपना पालतूले दृष्टकर इसी  
 आनन्दरामायणमें लगा दी । इस तरह राजमज्जाछावर आनन्दरामायणका आश्रय करकेपल्लोके लम्बा  
 संसारमें करारके व्यवसाय हो गयी ॥ १९ ॥ ऐसा करतास कुछन कम मिल, कुछन बहुत अधिक लम्बदा  
 मिले, किसीको राज्यपर प्राप्त हुआ और किसीका बन्दोस्ता घर मिला ॥ २० ॥ कुछन धामका अधिकार  
 मिला, किसीको बच्छीं सती मिला, किसीका सुन्दर भावका मिली और किसीका मवारम स्वगृहक  
 प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ किसीका पाताललोक मिला और कुछ लोगका विविध प्रकारक अन्धे भच्छ लोक प्राप्त हुए  
 और कुछ लोगोंका सुलोक मिला ॥ २२ ॥ कुछ लोगोंका इन्द्रपद प्राप्त हुआ, कुछ आग्निपुरको पय, कुछ  
 धर्मराजके लोक तथा कितन ही लोग निश्चितिकारका बन गये ॥ २३ ॥ कुछ जलनगरका, कुछ पुष्यलोकका,  
 कुछ चन्द्रलोकका, कुछ धूमलोकका, कुछ इक्ष्वाकुका तथा कुछ लोग वैकुण्ठलोकमें भी पहुच ॥ २४ ॥ २५ ॥  
 इस तरह आनन्दरामायणक पाठस उन इतों तथा अन्य राजाओं में वे हा ललक प्रकृत हुए जिनका नेसा  
 पुष्य था । इस प्रकार पुष्पीलोकमें सर्वत्र शुभ गति प्राप्त हुई उस समय अन्व्या तथा दशान्वयम भी  
 कोई सिपहा नहीं रहा । २६ ॥ २७ ॥ सब रामका भा स, त्याग दशान्वयम बन गये थे । उनमेंसे कुछ लोग तो  
 रामसे पूछकर गये थे, कुछ जिना पूछे-जोष ही बन गये ॥ २८ ॥ इस तरह उठ समय सारा देश  
 दृष्टविहान हो रहा था । एक बार संसारके जितने अन्ध-अन्धे राजा थे, न सब रामचन्द्रजीके मन्त्रमें आनेके  
 लिये संसार हुए । उन्होंने जब ताब बलकक लिए सेवा पुत्रावी आ पता चला कि तारा है ही नहीं  
 । २९ ॥ ३० ॥ यह खबर पाकर राजाओं में कल-आहू उठ क्या हुआ ? विष्मत्प्रभावसे वे अपने-अपने  
 विषों और पुत्रोंका साथ लेकर अन्व्या-न्या भेजे ॥ ३१ ॥ जब अन्व्या-राम लक्ष्मणों यह संवाद मिला तो

ततो निवेदयामास तदुक्तं राघवाय तः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्यासीदिस्मयाविष्टमानसः ॥३३॥  
 सुहृज्जनैर्युतं बन्धु लभ्यते प्रेष्य पार्श्ववान् । स्वपुत्रीमानयामास ते नेमू रघुनायकम् ॥३४॥  
 ततश्चेतम्बुः सदसि सेनावृत्तं न्यवेदयत् । रामोऽपि कथयामास स्वसेनावृत्तमादराद् ॥३५॥  
 तदा विहस्य भ्रमरामः समाहूय निजं गुरुम् । पृष्टवान्मम सैन्यानि नृपाणां चापि वै गुरो ॥३६॥  
 किं जातानि क्व वै सन्ति तददस्व सविस्तरम् । तन्नामदचनं भुत्वा कुत्वा प्यानं क्षणं गुरु ॥३७॥  
 तदा प्राह ममामध्ये विहस्य रघुनन्दनम् । राम राम महाबाहो सर्वं वेत्ति त्वमेव हि ॥३८॥  
 यदि वृन्धसि मां राम तर्हि सर्वं वदाम्यहम् । श्रुतकोटिमितं रामचरितं तव पावनम् ॥३९॥  
 राजर्षीकिना कृतं पूर्वं तन्मध्ये रघुनन्दन । आनन्दरामचरितं नवकाण्डमन्वितम् ॥४०॥  
 तस्य भवणपाठाद्यैः सर्वसैन्येषु ये नराः । ते गतास्त्वत्पदं केचित्केचित्लोकांतरादिषु ॥४१॥  
 न तंति भुवि सैन्यानि तस्य राम बचो मम । नवकाण्डमिति तच्च रम्यमानन्ददायकम् ॥४२॥  
 तस्यैतच्छ्रवणादिदि फलं रघुकुलोद्भव । येन ते हीनजातस्या द्वाभ्य सुक्तिगामिनः ॥४३॥  
 सारकाण्डभावेन संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकाण्डेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥४४॥  
 यागकाण्डेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकाण्डभ्रवणादप्सरोभिर्विमोदने ॥४५॥  
 जन्मकाण्डेन ज्ञानोति नरः पुत्रादिमत्ततिम् । विवाहकाण्डभ्रवणाद्भवि रम्यां स्त्रियं लभेत् ॥४६॥  
 राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । काण्डं मनोहरं भुत्वा लभ्यते मानसंभितम् ॥४७॥  
 पूर्णकाण्डभवादेन पूर्णस्य परं लभेत् । सर्वं ज्ञानमानवैः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं भुवि ॥४८॥  
 सच्चिदानन्दरूपे ते लीनो भवति मानवः । एवं राम त्वया प्रष्टुं तन्मयं कथितं मया ॥४९॥  
 यदग्रेऽथ चिकीर्षां ते तत्कुरुष्व रघूत्तम । इति रामं वसिष्ठस्तु यावत्प्राह नृपाग्रजः ॥५०॥

उन्होंने राजाआजी अगवाना करनेके लिए सेना बुलवायी तो उन्हें भी पैना नहीं मिली ॥ ३२ ॥  
 लभ्यमाने रामने यह सुनान्त सुनाया तो राम भी चौकसे खड़े गये ॥ ३३ ॥ अन्तमें रामने जो  
 अपने परिवारके लोगोंकी भजकर राजाआजी अगवाना कराया । राजाआने अपनी-अपनी सेनाका  
 समाचार सुनाया । जो सुनकर रामने आदरपूर्वक अपना पा सब हाल कहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर  
 रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठको बुलवाया और हंसकर उनसे कहा हे गुरो! हमारा सना इन  
 राजाआकी सेना कहाँ चली गयी है, सो विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामकी बात सुनकर वसिष्ठने  
 कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आप स्वयं सब बातोंको जानते हैं ॥ ३६-३८ ॥ फिर भी यदि हमसे  
 पूछ रहे हैं तो बतलाता हूँ बहुत दिनों पहले महर्षि भार्गवीने सो करोड़ श्लोकोमें आपके वाचन चरित्रका  
 वर्णन किया था । इसका मध्यम नौ काण्डोंका आनन्दरामायण है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसका भ्रवण तथा पाठ  
 करनेमें आपको सेनाके सारे सैनिकोंसे कुछ तो आपके परमपद ( वैकुण्ठ ) की ओर कुछ अन्याय  
 लोकोंको चले गये हैं ॥ ४१ ॥ हे राम ! आप मेरी इस बातको सब मानिए । इस समय संसारमें कोई भी  
 सेना नहीं है । नौ काण्डोंवाला आनन्ददायक एवं रमणीक वह आनन्दरामायण है ॥ ४२ ॥ इसका भ्रवण  
 करनेसे सब जातिवाले लोग भी सुक्तिपद प्राप्त कर सेंगे हैं ॥ ४३ ॥ सारकाण्डके भ्रवणसे प्राणी संसारसे मुक्त  
 हो जाता है । यात्राकाण्डके भ्रवणसे शीशोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ यागकाण्डसे यज्ञोंकी शुभ  
 फल प्राप्त होता है । विलासकाण्डके भ्रवणसे प्राणी स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ ४५ ॥ जन्म-  
 काण्डके भ्रवणसे पुत्रादि सन्तति पाता है । विवाहकाण्डकी सुननेसे मनुष्य संसारमें सुन्दरी स्त्री पाता है ॥ ४६ ॥  
 राज्यकाण्डके सुननेसे प्राणी राज्यपद पाता है और मनोहरकाण्डके सुननेसे अपनी कमिलावाके अनुसार सब  
 वस्तुयें पा जाता है ॥ ४७ ॥ पूर्णकाण्डके भ्रवणसे पूर्णपद प्राप्त होता है और समस्त आनन्दरामायण भ्रवण  
 करके मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मामें लीन हो जाता है । हे राम ! आपने मुझसे जो पूछा, सो सब मैंने



शत्रुभ्यां हि किं जातं तच्छृणुष्व सविस्तरम् । गतिं श्रुत्वा तु शून्यानां जानादेशेषु ये नराः ॥५१॥  
 तेऽपि सर्वे तदानन्दरामायणश्रवादिभिः । जानातिमानसस्थान्ते ययुः स्वर्लोकमुपमम् ॥५२॥  
 शून्यं दुष्टा निर्वं लोकं यमी विधिममन्त्रितः । केलासे शक्रां यन्त्रा सर्वं कृतं न्यवेदयत् ॥५३॥  
 शिवः श्रुत्वा निहस्पाद्य यमेव केन दुर्गता । पर्याप्तं कृपमरुद्धः साकेतं वेष्टितीक्ष्णतः ॥५४॥  
 शिवमागतमाज्ञाय प्रण्युद्धम्य गृह्णहः । शिरामिजं शिव देव्या निवेशय पूजयं स्वधात् ॥५५॥  
 ससीतो ब्रह्मणश्चापि सुरार्णां च यमस्य च । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा राघवं प्राह वै तदा ॥५६॥  
 राम राजीवपत्राद्य यम पश्य निरुद्यमम् । शून्या संयमनी जातऽऽनन्दरामायणश्रवात् ॥५७॥  
 शून्योऽज्ञातोऽस्तिभूलोकः सेऽनकाशो न दृश्यते । सर्वेषां तत्र वै वस्तुमग्नं किञ्चिद्विचारय ॥५८॥  
 इति तस्य वचः श्रुत्वा समारूढ रघूणमः । शकुन्तलं वन्द्य गार्भ्यांकु तस्मै पूजं न्यवेदयत् ॥५९॥  
 सोऽपि श्रुत्वा विहस्याद्य राघवं वाक्यमद्रवात् । येन मन्त्रावितानाशो न भविष्यति वै हवि ॥६०॥  
 तथा सुखं च सर्वेषां नेन तच्छृणु राघव । तथेति राघवश्चोक्त्वा तदा वचनमब्रवीत् ॥६१॥  
 समजन्मार्जितं पुण्यं समार्जनममुद्रवम् । यस्य स्यात्तस्य चानन्दरामायणकथार्कचः ॥६२॥  
 भविष्यति न सर्वेषां भवन्वत्र कदाचन । इति रामवचः श्रुत्वा सर्वे स्मृतुश्मानसाः ॥६३॥  
 ययुः स्वं स्वं पदं देवाः स्व स्वं देशं नृपा ययुः । तदारभ्य विष्णुदाम शनकाटामतु शुभे ॥६४॥  
 रामायणे शिवेनाक्तमानन्दारुणामेह शुभम् । रामायणं कश्चिन्नुत्र काप्रदं स्पर्शति मानवः ॥६५॥  
 न भूम्यां सकला लोका वेत्स्यन्ति द्वापरं कला । समजन्मार्जितं पुण्यं येषां वेत्स्यति ते नराः ॥६६॥

कह चुनाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ भविष्यम ज्ञाप जो कुछ करना चाहत हो, सा वरत बनिए । इस प्रकार बसित  
 रामसे कह ही रहे थे, तब तक पृथ्वीमरदनम क्या हुआ सो कहते हैं । उन दूताका गति सुनकर हस्तरावे जितने  
 मनुष्य थे ॥ ५० ॥ वे सब आनन्दरामायणक पठन और श्रवणसे अत्यन्त प्रकारक विमानापर बहुत-बहुतकर जप्तम  
 स्वर्गलोकको चल गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अपने लोकका शून्य दल यमराज ब्रह्माको साथ लेकर लकराकीके पास  
 पहुँच और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह चुनाया ॥ ५३ ॥ शिवजी यह समाचार सुनकर बहुत, पानकी  
 और यमराजको साथ ले तथा बहुतसे देवताओंसे बहिन हाकर अयोध्यामें रामके पास गये ॥ ५४ ॥ जब  
 रामको यह समाचार मिला कि शिवजी आते हैं तो प्रेमपूर्वक भगवानी करके गायत्रीक साथ शिवजीको एक  
 दिव्य बिदासनपर बिठाकर उनको पूजा की ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा तथा शिवारि देवताओंकी भी  
 पूजा की । बाकी हर बार ब्रह्मान रामसे कहा—॥ ५६ ॥ हे राजीवपत्रा राम तबथा निरुद्य एव  
 यमराजको जोर निहारिए । आनन्दरामायणके श्रवणसे इनका संयमता पूर्ण मूना हो गयी है ॥ ५७ ॥  
 भूलोक काली हो चुका है और स्वर्गमें उन सबक रहनक लिए कुछ जगह ही नही रह गये हैं । जब उनको  
 रहनेके लिए कोई और स्थान साँचये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिवजीकी बात सुनकर रामने कानूनकी चुनाया  
 और उनको यह समाचार सुनानेके लिये बाल्मीकिक पत्र भजा ॥ ५९ ॥ कानून गय और बाल्मीकिका पुत्र  
 लाये । रामके मुखसे यह वृत्तान्त सुना तो गार्भ्यांकु हँसकर कहने लगे—जिस तरह संसारमें मेरी कविताका  
 भाव न हो ॥ ६० ॥ और सब साग प्रसन्न भी रह एसा कोई उचित उपाय साधकर करिये । रामने उनकी  
 बात मान ली और बोले—॥ ६१ ॥ मेरा पूजन करत-करत जिनके पास साठ बन्माका पुण्य एकत्रित होगे,  
 उनको ही शिव आनन्दरामायण सुन्नेकी होगी ॥ ६२ ॥ भविष्यम सधारण लागका रुचि ही यह और नही  
 होगी । इस प्रकार रामकी बाणी सुनकर सबका मन प्रसन्न हो गया ॥ ६३ ॥ तब दन्तगय अपने-अपने लोकको  
 तथा राजा लोग अपने-अपने देशोंको लौट गये । तभीसे है विष्णुदाम । बलकाटिरामचरितान्तर्गत यह  
 आनन्दरामायणके विषयमें ऐसा हो गया कि कहीं-कहीं कोई ही कोई मनुष्य आनन्दरामायणको जानने लगा  
 ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ द्वापर और कलियुगे तो बहुत ही कम साग इसे जाननवाले होंगे । क्योंकि इस समयसे यह  
 नियम बन गया है कि रामचन्द्रके पूजनसे बात कर्मोंके पुण्य जब एकत्रित होंगे, तब आनन्दरामायणके

तद्रामचर्याम्भ्यां बभूव पूर्ववत्सदा । नाभूत्कस्य कदा मेधाऽऽनन्दरामायणं प्रति ॥६७॥  
सहस्रेषु नरः कश्चित्सप्तवन्मसु पुण्यवान् । आनन्दरामचरितं वेद स्तोत्रं न चापरः ॥६८॥

इति श्रीमत्काटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय राज्यकाण्डे  
उत्तराद्ध आनन्दरामायणमहिमावणम् नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

### चतुर्विंशः सर्गः

( रामकी रामकी उपदेश, सुमन्त्रका वैकुण्ठगमन और प्रजाको रामकी शिक्षा )

श्रीरामदास उवाच

एकदा संस्थितं राम सभायां सेवकोऽजयीत् । राज्ञराज महाराज रविवश्रंकमण्डन ॥ १ ॥  
सुमन्त्रस्तेऽतिबुद्धः स मन्त्रो नाक गतः प्रभा । त्वत्पत्न्यस्तन गन्तु त्वामाश्रयं पृच्छन्ति राघव ॥ २ ॥  
सुदृढवचने भुक्त्वा चाकतः । सुखमानसः । शीघ्रं सुमन्त्रगद् स पर्यो यानन राघवः ॥ ३ ॥  
सुमन्त्रवन्मण्डु तस्यायुःसख्यार्थं ददश्वं सः । जन्मकान्तरसदसाणि यव नवगुणानि च ॥ ४ ॥  
नवनवतिरपाणि मातास्त्वकादमेव । इह । एकावश्रदिनाथास्तकानाः सेषा दिना नव ॥ ५ ॥  
श्रोतव्यं रामचन्द्रः स तदा प्राह गुरु प्रातः । कृतं पुनः तु लक्षायुः सहस्रं द्वापरे स्मृतम् ॥ ६ ॥  
शतवर्षं कलौ प्रोक्तं सहस्राण्यं दशवर्षं च । त्रतायां कायतं चायुस्तन्महाजये मृषा कृतम् ॥ ७ ॥  
यमेव मामवज्ञाय मरणं लब्धुमस्यता । दिनानिनव उपाणि सात मे मन्त्रिणः कथम् ॥ ८ ॥  
यमेव नीलस्त्वर्धेव यम बद्ध्वा नयाम्यहम् । सुमन्त्रं शोचयाम्यद्य यदयं मे त्वं पराक्रमम् ॥ ९ ॥  
इत्युक्त्वा गरुडारूढः कोदण्डं कलयन् कर । वंगनं शृणु नयः स पर्यो तयमनीं पुरीम् ॥ १० ॥  
तावन्मार्गे सुमन्त्रं तं पाशवदं यवानुग । गच्छन्त राघवो दृष्ट्वा तान्तर्वर्तिशयन्मृदुः ॥ ११ ॥  
सुमन्त्रं शोचयामास लिङ्गरूपधरं प्रभुः । तदा तु राघवं प्रोचुश्चापराद्धं तवाद्य किम् ॥ १२ ॥

लोगोर्क, लोचि हागो और रामा हाग इस जानन । तबसे रामक कहनानुसार किसीको दुई आनन्दरामायणकी और नहीं गयी ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ बरसक हजारोंमें कहो एक-आध मनुष्य हैं सात जन्मोंका पुण्यवान् हागा और सहो आनन्दरामायणको जान राखेगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीमत्काटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये २० रामचरणान्दमरान्तर्गते ज्योत्स्नाभावाटकासहित राज्यकाण्ड उत्तराद्ध त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

श्रीरामदास कहते लग—एक बार राम अपनी सभामें बैठे थे । तभी एक सेवकने आकर कहा—हे राज-राज । हे सूर्यवशके छट्छारस्वयं महाराज आपक दूढ़ मन्त्रा सुमन्त्रस्वयं चले गये । उनकी रिजयां सती होकर पतिका अनुसरण करनेके लिये आपकी आज्ञा चाहता है ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकारका कन्दास सुनकर राम एक खपर सवार होकर सुमन्त्रके घर गये ॥ ३ ॥ वहाँ उन्होंने उनकी जन्मकुण्डला मँगकर देखा, जिससे ज्ञात हुआ कि ९९९९ वर्ष ग्यारह महाना सुमन्त्रका आयु थी । जिसमें सब तो बातें भय, केवल नौ दिन बाकी रह गये थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा जानकर रामने गुरु वीरठका बुलवाकर उनसे कहा कि सत्यमुखमें मनुष्यकी आयु लाख वर्षोंकी, द्वापयुग हेतुकी, कालयुगमें ही सर्वको तथा त्रेतयुगमें दत्त हजार वर्षकी कहि गयी है । सो यमराजने मेरे राज्यमें मेरा अधिपति करके उस निमसका इच्छावश किया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऐसा बातें होता है कि वह मेरे द्वारा दण्ड पाना चाहता है । पर मन्त्राकी आयु नौ दिन बाकी है सो यम उसे यहाँसे बच ले गया । मैं आज यमका दायकर लाता हूँ और सुमन्त्रकी जिज्ञाता हूँ । परा पराक्रम देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर राम गरुडपर बैठ और चतुष्पदा टङ्कार करत हुए यमकी संयमनी पुरीको चल दिये । तब तक चरते ही वे उन्होंने पाशवद सुमन्त्रको ल जात हुए कुछ यमदूतोंका दृष्टा । देखते ही रामने दम्भुताका मारकर लिङ्गरूपधारा सुमन्त्रको छुड़ी लिया । तब यमदूतोंने विनयपूर्वक

अस्माभिश्चेदशो दशो यतोऽस्माकं कृतस्त्वया । तदा नान्नायकः प्राह दिनान्पान्पुनर्वाच्य हि ॥१३॥  
 वर्तन्ते शेषभूतानि कथमद्यैव नीयते । अविष्पन्ति दिनान्यग्रे यदा नव यमानुगाः ॥१४॥  
 तदाऽऽनेयः सुमेनायं न निषेधं करोम्यहम् । इति रामवचः श्रुत्वा तमनुस्ने यमानुगाः ॥१५॥  
 अपूर्वमवजन्म सुमन्त्रस्यास्य राघव । भानुर्योऽपि बहिष्कृत्य मुनं हन्तौ विनिर्गतौ ॥१६॥  
 पूर्वं ततोऽस्य दशमे दिवसे दैवयोगतः । उदग्दीन्यधोऽङ्गानि पदानि शनैः शनैः ॥१७॥  
 विनिर्गतानि भीरव सुमन्त्रं रक्षितो बुर्यः । यस्माज्जन्मन्वयं तस्मान्सुमन्त्राख्याप्य मार्पिना ॥१८॥  
 अतः पूर्वदिनारभ्य संख्ययाऽऽयुः प्रपूजितम् । अस्य त तदिनारभ्य संख्यया दिवसा नव ॥१९॥  
 शेषभूताश्च भवता कीर्त्यन्ते ये रघूत्तमाः । अतोऽस्माकं नापराधः संदिग्धं जन्म वास्य हि ॥२०॥  
 वृषाऽयं नीयते राम इया शिष्याऽपि नः कृता । इति तेषां वचः श्रुत्वा रामः प्राह यमानुगान् ॥२१॥  
 अस्य सौत्यदिनो ज्ञेयोऽप्रथमो हि यमानुगाः । यस्मिन् दिने सुप्रयतिर्भवत्काल्य मातृकाय ॥२२॥  
 उन्माददिवसो ज्ञेयः स एव जानकं तथा । तस्मिन्नेव दिनेऽप्यत्र कूर्मं पित्रा द्विजोत्तमैः ॥२३॥  
 ज्योतिर्विदा जन्मपत्रे स एव लिखितो दिनः । अतः शेषदिनाः मन्यं ज्ञेयान्स्याप्युक्तो नव ॥२४॥  
 अतो युष्माभिर्मान्त्र्यं नेपोऽयं दशमे दिने । पुनरागत्य सगन्निष्यान्मे निषेधं करोमि न ॥२५॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा तूष्णीमेव यमानुगाः । माधुनेयाश्च छिन्नांगा पयराजं धनैर्ययुः ॥२६॥  
 रामोऽपि परिवर्त्यथ ययौ म्वनगरीं प्रति । स्त्राभिर्नार्गजितो मार्गं विवेश मन्त्रिणो बृहद् ॥२७॥  
 तावत्सर्वान्प्रमुदितान्मुपश्रेण समन्त्रिणान् । ददर्श रामचन्द्रः स तावद्दृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥२८॥  
 प्रणामां सुमन्त्रः स पूजयामास राघवम् । ततो रामो ययौ गेहं मरुं प्रमुदिताननाः ॥२९॥  
 दिनानि नव शेषापुञ्जित्वा दानादिकं सुधीः । चकार प्रत्यहं प्रकृष्या सुमन्त्रो राघवाज्ञयाः ॥३०॥

कहा—हमने आपका नवर अपराध किया था, जिसके लिए आपने हमें ऐसा दण्ड दिया ? रामने कहा कि अभी इसके जीवनके नौ दिन बाकी है ॥ १०-१३ ॥ तब तुम आज जो हम क्यों भिये जा रहे हो ? जब हमके दिन पुरे हो जायें, तब आकर मानन्दपूर्वक ले जाना । तब मैं भी कुछ नहीं सोचेंगा । इस प्रकार रामभी बाकी सुनकर हमके अनुचर कहल लगे—॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राघव ! हमका जन्म भी एक अपूर्व प्रकारसे हुआ था । पहिले दिन माताको धीनिसे हमके दोनों हाथ तथा मुख बाहर निकल आया था । तदनन्तर हममें दिन धीरे-धीरे इसक ओर झुक निकल गये ॥ १६ ॥ १७ ॥ मन्त्रे तन्नामे यस्मिन्दिने हमको रक्षा कर ली थी । अतएव इसका सुमन्त्र नाम पड़ा था ॥ १८ ॥ इसके पूर्व दिनमें अर्धान् जिस दिन इसका हाथ तथा मस्तक बाहर आया, उस दिनसे लेकर आज तक हम इसकी आयु समाप्त हो गयी । आप जो हमके नौ दिन बाकी बतलाते हैं, वे संदिग्ध हैं । हमारा हे राम ! हमारा कुछ दोष नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ आप अपने इसे छीने लिये जात हैं, हमका स्वयं आपका भाग भी है । उनकी बात नमकर यमदुतांसे रामने कहा—॥ २१ ॥ हे यमानुचर ! वह अन्तका दिन अर्धान् जिस दिन माताके गर्भमें इसका अचञ्ची तरह अन्य हुआ है, वैही जन्मका दिन माना जायगा ॥ २२ ॥ जिस दिन इसका जन्मका उत्सव मनाया गया है, वास्तवमें वही जन्मदिन है । उसी राज हमके पिता तथा ज्योतिषियोंन इसका जन्म लिखा है । इसलिए अभी इसके नौ दिन बाकी है ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम लोग आज और दसवें दिन आकर इसे ले जाना । तब मैं तुम लोगका नहीं रोकूंगा ॥ २५ ॥ रामकी बात सुन और शिष्यभङ्ग होकर बाँचोम बाँसू चरे हुए वे दूत यम-लोकको लौट गये ॥ २६ ॥ राम भी लौटकर अरोण्या चले आये । वहाँ स्थितोंने उनकी आगती उनारी और राम सुमन्त्रके घर गये ॥ २७ ॥ वहाँ सब लंगीकी सुमन्त्रके साथ प्रणाम देखा । सुमन्त्रने रामको देखते ही प्रणाम किया और उनकी पूजा की । इसके बाद राम अपने भवन गये । तबसे सब लोग गरम प्रणम रहे ॥ २८ ॥ २९ ॥ सुमन्त्रने अपने जीवनके केवल नौ दिन बाकी जानकर रामके आज्ञानुसार बुरे दान-पुण्य

जब है यमदूताय साधुनेत्राः समानताः । उष्णीषाणि कर्तुः क्रोधादास्फास्य ह्रुदि बाधवन् ॥३१॥  
 कर्त्तुं करोष्यधिकारं तवाशाकारिणां त्विमां । इष्टाश्रम्या न लज्जा ते जायते हृदये यम ॥३२॥  
 तच्छास्त्रार्क राघवेण सुर्मशो मोक्षिः पथि । दिनानि बभूव शेषायुः पूर्वार्धमधुना वयम् ॥३३॥  
 दैहस्थानं जले कर्मो न जीविष्याम्य यो यम । तद्दूतवचनं श्रुत्वा प्रज्ज्वल्य यमधरा ॥३४॥  
 प्राह स्तानघ रामं वदस्वा दण्डं करोम्यहम् । चोरनीयानि सैन्यानि देवेन्द्रं सूच्याम्यहम् ॥३५॥  
 ह्युक्त्वा स्वरितो मन्वा हनमिदं न्यसेत्यन । पुनरिदं यमः प्राह महाशयं क्रियतां मम ॥३६॥  
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रो यममब्रवीन् । किं प्रांगोऽपि यमाश्रयं विष्णुना योद्धुमिच्छसि ३७॥  
 यच्छतूष्णीं संययनीं तामस्य किं करिष्यामि । मद्रिया हि पुन दत्तौ मया नौ सुरपादपौ ॥३८॥  
 एवं तद्वचनं श्रुत्वा बहिल्लोकं ययौ यमः । अग्रिना चाक्षिप्यैव निर्वर्त्ति वरुण तथा ॥३९॥  
 वायुं कुवेरमाश्वारं रविं चन्द्रं बुधं गुरुम् । शुक्रं जनेश्वरं राहुं केतुं भूमिभुजं ध्रुवम् ॥४०॥  
 प्रार्थयामास युद्धाय साहाय्यं क्रियतामिति । उतगभीन्द्रवस्मर्त्ते दूर्ध्वाङ्गं यमं हि ते ॥४१॥  
 ततो गत्वा विधिं चापि पातालान्तर्वासिमिः । ममर्द्धास्वाग्निनश्च यमः मप्रार्थयन्नुपजम् ॥४२॥  
 तैज्युचुर्न करिष्यामः साहाय्यं राघवाग्रजः । ततः क्रोधमनाविष्टः स्वयैन्द्रेण यमन्विनः ॥४३॥  
 रामेण सङ्गरं कर्तुमयोष्यां स यमो ययौ । स्वगणैः सह वेगेन महाभहिर्भसम्पितः ॥४४॥  
 ययोष्यां देहपात्राण नवद्वारविराजिताम् । नवप्राकारमहिनां स्रवर्णायन्त्रसंयुताम् ॥४५॥  
 नवविः परित्याभिश्च समन्तात्परिवेष्टिताम् । दृढरन्तकपाटव्यां रत्नविधिविराजिताम् ॥४६॥  
 परपूरेष्टितां रम्पां रविहोदिममघमां । नवाघासद्वन्द्वैश्च पताकापञ्जरोपिताम् ॥४७॥

बारम्ब कर दिया ॥ ३० ॥ उधर वे यमदूत यमके आगे पहुँचे और अपने पागड़ो समीपमें रुक कर कहने लगे—  
 ॥ ३१ ॥ हे यमराज ! तुम कैसे अपने अधिकारकी रक्षा करते हो ? अपने अज्ञाकारी तब सेवकोंकी यह रक्षा  
 कैसेकर तुम्हें आज नहीं आती ? ॥ ३२ ॥ गरतेये रामने मागकर मुमन्त्रको दुहा दिया । क्योंकि उसके  
 बीचनके नौ दिन बाकी थे । राम वह नौ दिन पूरा कर जनेपर मुमन्त्रको आने देंगे ॥ ३३ ॥ अब  
 हम साथ चलते हुएकर अपने प्राण दे देंगे । इस प्रकार दूतोंकी बात सुनकर यमराज मारे प्रेयके कात हो  
 गये ॥ ३४ ॥ उन्होंने दूसरेमें कहा—यवहाओ दत्त, आज ही रामको बाँधकर मैं उनकी इस दृष्टताका इष्ट  
 दूता । तुम जाकर सेना तैयार करो । तबतक मैं इन्द्रको सूचित करता आऊँ । ३५ ॥ ऐसा कहकर यमराज  
 तुरंत इन्द्रके पास गये । उनके सारा हुक्म सुनाया और सहायता करनेकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ यमराजकी बात  
 सुनकर इन्द्रने कहा—यमराज ! क्या तुम जगल हो गये हो, जो विष्णुभक्तकायके साथ युद्ध करना चाहते हो ?  
 ॥ ३७ ॥ क्याप अपने संवसनी नगरीको गौट गाओ । रातका तुम क्या करोगे ? उनसे उत्तर देते अपने  
 शेषोंसे परिजाल और कन्यापुत्र इन दोनों देवदूतोंको उठाकर दे आया था ॥ ३८ ॥ ऐसा बचन सुनकर यम  
 क्षम्यमोक गये, उनसे सहायता माँगी तो अग्निने भी वैसा ही उत्तर दिया । इसके अनन्तर निर्वर्त्ति, वरुण,  
 ॥ ३९ ॥ वायु, कुबेर, विजान रवि कन्द बुध गुरु, शक्र शनि, राहु, केतु तथा भृगुल्लोक गये ॥ ४० ॥  
 सर्वथ उन्होंने सहायताकी प्रार्थना की, किन्तु उस प्रसंगमें यमराजकी सबने इन्द्रके समान ही शुष्क उत्तर  
 दिया ॥ ४१ ॥ तब यमराज लौटकर ब्रह्मके पास गये । पातालमें रहनेवाले राजाओं तथा सप्तर्षीके राजाओंसे  
 भी आकर सहायताकी प्रार्थना की । ४२ ॥ किन्तु उन्होंने भी कहा कि रामके विरुद्ध मैं तुम्हारी सहायता नहीं  
 करूँगा । इसके बाद आधाविष्ट होकर यमराज अपनी ही सेना लेकर रामके साथ युद्ध करने ययोष्या चले ।  
 उस समय उनके समस्त गण भय से और यमराज एक बड़े भारी घेसपर सवार थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वहाँ पहुँच-  
 कर उन्होंने बागों छोड़ते यह अंगोष्ठा नगरको घेर लिया । जिसमें नौ बड़े बड़े फाटक थे और नौ ही  
 काइर्वां बड़ी थीं । जिसकी दूरी बन्दूकें और ताँबे रक्खी थीं जिनमें रत्नहटित कपट होने थे और रत्न ही की  
 दीवार बना हुई थी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिनके उत्तर भग्नू बह रही थी और करोड़ों दूरसे प्रकाशकी नाई जिसका

यमेन वेष्टिता दृष्टा पुरी रामो महाप्रभाः । लवश्चापयायास गच्छ योद्धुं यमेन हि ॥४८॥

लवस्तदा रथासुदो दुन्दुभीनां महास्वनेः ।

अयोध्याया बहिर्गत्वा चकार सङ्गं बहून् ॥४९॥

तदा लवशराधातुच्छिन्नदेहा यमगुणाः । निपेतुः अणमात्रेण कोटिहो रणभूमिषु ॥५०॥

तान्सर्वान्निहतान् दृष्ट्वा यमो महिषमस्थितः । चकार तुमुलं युद्धं लवेन क्रोधभासुरः ॥५१॥

स्वबाणोर्वैर्ममः शीरं रथं स्रुतं बलं धनुः ।

कवचं मुकुटं चापि चिच्छेद म लवस्य च ॥५२॥

तदा लवश्चातिकुद्धः स्वयैव्येन स्थित पुनः । चकार मङ्गरं घोरां यमेनानिधयंकरम् ॥५३॥

तदाऽपरा विमानस्था ददृशुर्गुदकांतुकम् । ततो लवः स्वबाणोर्वैर्महिषं मूर्छितं हवि ॥५४॥

कृत्वा तं काष्ठमाश्रयं शतराजैर्ममं जवान् ।

ततो यमोऽप्येनिकुद्धो यमदण्डं मुञ्चोच तम् ॥५५॥

तं दण्डं मोचितं दृष्ट्वा ब्रह्मास्र मन्दधे लवः । ब्रह्मास्रमागतं दृष्ट्वा यमदण्डो न्यवर्तत ॥५६॥

तदा यमोऽपि विकलः पलायनपरोऽभवत् । ब्रह्मास्रं तस्य पृष्ठं तद्यथा कालानलप्रमम् ॥५७॥

तदा दृष्ट्वा रविः शीघ्रं स्त्रीयां भिन्नां प्रकल्प्य च ।

रथे मूर्तिं ययौ वेगान् प्रार्थयामास तं लवम् ॥५८॥

रे रे बाल वमं शदि चोपसंहारम्याद्य हि । त्वयोन्मृष्टं ब्रह्मास्रं त्वमेवास्रविदां वरः ॥५९॥

त्व मे वंशसमुद्भूतम्वयं मे तनयो यमः कथं स्वप्नज त्वय न्व यमं हन्तुमिच्छसि । ६०॥

चेदेको मूर्ध्वर्ता पातः सर्वे मूर्त्ता भवन्ति न ।

शत्रुं रणान्पतिं ब्रष्टुं वीरान्तं रक्षयन्ति हि ॥६१॥

प्रकाश था । उसने माना प्रकारके बहुत बने थे और वह पुरी बहुत-सी पटाकाओं तथा रज्जुओंसे बलकृत थी ॥ ४७ ॥ यमराजसे घिरी अयोध्याकी दखकर रामने लवसे कहा—तुम यमराजसे युद्ध करनेके लिए जाओ ॥ ४८ ॥ तब दुन्दुभीके विकराल निनादके साथ लव रथपर आसढ़ होकर अयोध्याके बाहर जाये और यमराजके साथ मयङ्गुर युद्ध किया ॥ ४९ ॥ उस समय लवके बाणोंने निहून होकर यमके करोड़ों अनुयायी क्षणमात्रमें घरासायी हो गये ॥ ५० ॥ उन सबोंको मरा देखकर पाप्यमे तमनमाये हुए यमराजने स्वर्ग स्वर्गके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५१ ॥ यमराजने अपने विकराल बाणोंकी बरसि शीघ्र लवके रथ, सारथी, धनुष, कवच तथा मुकुटको काट डाला ॥ ५२ ॥ तब अत्यन्त क्रुपित लवने एक दूसरे रथपर आसढ़ होकर यमराजके साथ महाभयंकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५३ ॥ उस समय समस्त देवता अपने विमानोंपर आसढ़ होकर समरक्षेत्रमें जाये और वह युद्ध देखने लगे । इसके अनन्तर लवने अपने बाणोंकी बरसि यमराजके भैसेको मूर्छित कर पृथ्वीपर लीटा दिया और वगके साथ बाण चलाते हुए दो बाणोंकी बरसि यमराजपर प्रहार किया तब यमराजने अतिशय क्रुद्ध होकर लवपर यमदण्ड छोड़ा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यमदण्डको दखकर लवने घृष्टारूप भला दिया, जिससे यमदण्ड लोट पड़ा । तब यम विकल होकर पाप निकले और कालानलके समान लहाराउनके पीछे पीछे चला ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उस ब्रह्मास्त्रको देखकर सूर्यने समझा कि इससे वम नहीं बच सकता । मेरा बेटा अवश्य मारा जायगा तब सूर्यदेव स्वर्ग रथपर आसढ़ होकर लवके पास जाये और प्रार्थना करने लगे ॥ ५८ ॥ सूर्यने कहा—अरे अरे हे बच्चे ! इस अस्त्रकी लीटाकर यमकी बचाओ । तुम्होंने इसे चलाया है और तुम्हीं इसका निवारण भी कर सकने हो । तुम ब्रह्मविद्या जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ५९ ॥ तुम हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हो और यम भी मेरा ही पुत्र है । क्या अपने पूर्वज यमकी ही तुम नाम डालना चाहते हो ? ॥ ६० ॥ यदि एक लडका मूर्ख हो गया तो क्या उसके साथ सब मूर्ख हो

इत्यादिनानावचनैः प्रार्थितो रविणा यदा ।

तदा लघोऽपि मंदार चक्राश्रयस्य प्रक्षणः ॥६२॥

ततो लवं पुरस्कृत्य यमेन तपनः पुरीम । निवेश रघुनाथस्य दर्शनार्थं मुदान्वितः ॥६३॥

तदा के देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । लव ववर्षुरमरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६४॥

पौरुषार्थो लव मार्गे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । गोपुरादालयस्थाश्च ददशुस्त मुहुर्मुहुः ॥६५॥

नेदुर्नानासुराद्यानि ननृतुर्वाग्योयितुः । तुम्बुवर्मागधायाश्च जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥६६॥

एवं नानाममुन्मार्हैः स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ।

यसौ स विजयी बालः प्रणनाम रघूत्तमम् ॥६७॥

रविमागतमाज्ञाय प्रत्यूहम्य रघूत्तमः । नन्वा रथि करे पृथा समायां सधिवेश ह ॥६८॥

ततः सिंहासने भातु निवेश्य स्वीयपूर्वजम् । पूजयामास श्रीरामः षोडशैकाचारकैः ॥६९॥

तदाऽज्रर्वाद्भविं रामः समायां पुरतः स्थितः ।

पूर्वजान् च क्षमस्वाद्य यत्नत्वेनापराधितम् ॥७०॥

तद्गामवचनं श्रुत्वा रामं प्राह रविरतदा । त्वन्नामिकमलाद्ब्रह्मा समुद्भूतो रघूत्तम ॥७१॥

मरीच्याद्या विधेः पूरा मरीचैः कश्चपः सुतः ।

कश्यपान् च ममोपदिः पीत्रपीत्रस्त्वह तव ॥७२॥

क्षमस्व मम पुत्रेण यद्यमेनापराधितम् । एव संप्राप्य श्रीरामं चामने संन्यवेष्टयत् ॥७३॥

यमेन कारयामास रघुनाथाय वन्दनम् । तदा समापयुर्देवा नेष्टुः सर्वे रघूत्तमम् ॥७४॥

रामोऽपि सकलान् देवान् पूजयामास सादरम् ।

ततो रामाज्ञया चेन्द्रः सुधावृष्ट्या रणे मृतान् ॥७५॥

क्षीप्रहृत्थापयामास सर्वान्वीरान्सबाह्वनैः । ततो रामो यमं प्राह यावद्राज्यं करोम्यहम् ॥७६॥

पार्थिवे । श्रीर लोह संग्रामभूमिसे भागे हुए शत्रुकी भी रक्षा ही करते हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार कितनी ही बातोंमें सूर्यके प्रार्थना करनेपर लवने सह्याश्रयका सम्बरण कर लिया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर लवको आश करके यमराजके साथ-साथ सूर्य राक्षसद्वका दर्शन करनेके लिए हर्षपूर्वक अयोध्या नगरीमें गये ॥ ६३ ॥ उस समय देवताओंने अपने जाने देनासे, लवपर पुत्रोंकी वर्षा का और अप्सरायें माचने लगीं ॥ ६४ ॥ पुरवासिनी शिष्य भी रास्तेमें कोठपरसे फूल चरमाती हुई बार-बार लवकी निहार रही थी ॥ ६५ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे बजे, गणिकाय नाचने लगी और मागध, गन्धर्व तथा किन्नरमण स्तुति करने लगे ॥ ६६ ॥ इस तरह अनेक उत्सवोंने साथ रास्तेमें आरती उतरवाता हुआ वह विजया बाणक जय रामके पास पहुंचा और प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ रामने सूर्यभगवानका आगमन सुनकर उनकी अगवाजी की, प्रणाम किया और हाथ पकड़कर सभाभवनमें ले गये ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर अपने पूर्वज सूर्यको रामने सिंहासन पर बिठलाया और षोडशोपचारसे उनकी पूजा की ॥ ६९ ॥ फिर रामने सूर्यभगवानसे कहा—आप हमारे पूर्वज हैं । अतएव लवने जो कुछ अपराध किया हो, सो क्षमा कीजिये ॥ ७० ॥ रामकी ऐसी बात सुनकर सूर्यने भयवानुस कहा—हे रघूत्तम । आपहो के नामिकमलसे सह्याजी उत्पन्न हुए थे और उनसे भराचि आदि उत्पन्न हुए मरीचिसे कश्यप हुए और कश्यपसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ । अतएव मैं आपके पीत्रका पीत्र हूँ ॥ ७१ ॥ हमारे पुत्र यमने जो अपराध किया है, सो क्षमा करिय । इस प्रकार विनय करके सूर्यने रामको आसनपर बिठलाया और यमसे प्रणाम करवाया । इसके बाद समस्त देवतायुद्ध वहाँ आ पहुंचे और उन्होंने रामचन्द्रकी वन्दना की ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ रामने भी सादर सब देवताओंकी पूजा की । इसके बाद रामकी आज्ञासे इन्द्रने संग्राममें धरे हुए लोकोपर समृतकी वर्षा की और वाहनसमेत समस्त वीरोंकी उद्य-

तावत्स्या तु पूर्णापूर्वरो नेयो न चेतरः ।

तत्रामवचनं भ्रूया तथेष्ट्याह यमस्तदा ॥७७॥

ततः मासे सुदशमे दिने स्त्रीभिर्विगाद्य माः । सुमन्त्रो राघव कथा तदग्रे शीघ्रिणं जही ॥७८॥

ततः स दिव्यदेहाभिः स्वस्त्रीभिर्दिव्यदेहधृक् ७९॥

सुमन्त्रः पूजितः सर्वे विमाने वसिष्ठो वभौ । राधाग्रं यमणादेव सुरैः सर्वत्र वेष्टितः ॥८०॥

ततः दृष्ट्वा रवी रामं यमेन स्वस्थं ययौ ।

ययौ सुमन्त्रः स्वस्त्रीभिर्वकुण्ठं निर्जता दिवम् ॥८१॥

रामः सुमन्त्रपुत्रेण नरिकादि सुमन्तुना । कस्यिन्वा यथाशक्त तन्पदे तं व्यवेशयन् ॥८२॥

ततो रामो लक्ष्मणेन पृथिव्या धोषयन्मुहुः ।

गजन्वस्तां दन्दभिर् स्वां पाकाप्यजशोभिनाम् ॥८३॥

तथेति लक्ष्मणधापि दूतानाञ्चापयत्तदा । दूतान्तेऽथ मज्जाकटाः समदीपान्तरेषु दि ॥८४॥

रामाज्ञां श्रावयामासुर्जनान्दुन्दुभिनिःस्वनैः । अर्णायुर्भूतः कश्चिन्नेवरो राघव प्रणि ॥८५॥

पौगणिकाः स्थापनीया मेहे ग्रामे पृथक् पृथक् ।

निष्पन्नैर्मित्तिकं कर्म न त्वाज्य वै कदाचन ॥८६॥

नावमान्या भूसुराश्च द्वेपः कार्ये न कस्यचित् । इत्थं कथ्य मदा देव दण्डन वाच तत्कराः ॥८७॥

द्यास्तीया दुराचारान्वया ये जना भूयि । वन्दनीया मदा वाता वन्दनीय सदा पिता ॥८८॥

पूजनीयाः सदा देवा कार्ये धर्मो निरन्तरम् ।

चैश्वर्यानं सदा कार्यमयोप्यायामधापि वा ॥८९॥

रामतीर्थेषु सर्वत्र कार्या धर्मा विशेषतः ।

द्वारका तदा गन्वा कार्यं रंशात्तमज्जनम् ॥९०॥

ऊर्जे द्वारपा वञ्चनपदे स्नातव्यं विधिपूर्वकम् । गन्वा प्रयागं प्रत्यर्च्य कर्तव्यं माघमज्जनम् ॥९१॥

कर सदा किया । तदनन्तर रामने यमराजसे कहा कि जवनक से पृथ्वीपर शासन करता रहूँ, तबतक तुम उन्हीं मनुष्योंको अपने लोकमें ले जाओ जिनकी आयु पूर्ण हो गयी हो और किसीको नहीं । रामकी बात सुनकर यमराजने कहा कि “ऐसा ही होगा” । ७५-७७ । इस- पञ्चान् दशव दिन स्थियोंको साथ लेकर सुमन्त्रने रामको प्रणाम करके उनको सामने ही प्राण त्याग किया । ७८ । सुमन्त्रकी म्रिगोने था उसी समय शण त्याग दिया और उन स्थियोंके साथ दिव्यदेह धारण करके सुमन्त्र सब जोगोसे पूजित होत हुए विमान- पर बैठकर मरिचक लोभित हुए । रामने समस्त मरनेसे वे समस्त देवताओंके साथ दिव्यलोकको गये ॥ ७९ ॥ ८० ॥ इसके पश्चात् सूर्य भी रामसे आज्ञा लेकर उसके साथ लौट पड़े । रामने सुमन्त्रके पुत्र सुमन्त्रके हाथों सुमन्त्रकी निष्का करवाकी और पिताके अस्तनपर उसी पुत्रको बिठाला ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर रामने कदम्ब- की पृथ्वीतलमें इस बातकी घोषणा करनेकी आज्ञा दी ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणने भी “बहुत अच्छा” कहकर पुन्दुभी इसनेवालोंको आज्ञा दे दी । वे हाथीपर तयार हो तथा शार्ङ्गों छोड़ोष जा जाकर दगाड़े बनाते हुए रामकी आज्ञा सुनाये लगे । उन्होने कहा—राजा रामचन्द्रका आदेश है कि यदि मेरे राज्यमें कोई मनुष्य बिना आज्ञा पूर्ण हुए ही मरे तो उसे मेरे पाद ले जाया जाय ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ पश्चात् तथा गण-भावमें पुराणों- की आननेवाले पौराणिक रखे जाय । कोई मनुष्य अपने निष्पन्नैमित्तिक कर्मोंको न छोड़े ॥ ८६ ॥ बाह्यणोंका कोई अपमान न करे, कोई किसीके साथ द्वेषभाव न रखे, कोई किसीके दण्डको न ले और चोरोंको दण्ड दे ॥ ८७ ॥ जो लोग दुराचारी हों, उनपर कदा शासन किया जाय । धर्म कर्म सदा होता रहे । अयोध्यामें अपना किसी अन्य ऐमहीधर्मों जाकर लोग वैवर्धनन किया करें ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ विशेषतः

चातुर्मास्यव्रतादीनि कर्तव्यानि व्रतानि हि । पर्वण्येषु तुलसी पूजनीया हि सर्वदा ॥९२॥

न निगम्योपोऽत्र स्वतैश्च कदाचन ।

न निप्रयाञ्चा कर्तव्या मृषा क्वापि कदाचन ॥९३॥

यदीच्छेत्स ततो देवं सर्वस्य ब्राह्मणाय वै । प्राप्ते गृहे कचिन्नर कलह तु समाचरेत् ॥९४॥

तदा गुरुर्नन्दनीयः कर्त्तव्यं धनं सदा । प्रातःस्नानं सदा कार्यं होतव्या विधिनाऽप्ययः ॥९५॥

कार्यो जपः शक्यस्य ध्येयो निन्य मदेशाः । एकांते हि तपः कार्यं द्वायामन्ययनं तदा ॥९६॥

त्रिमिर्गोनानि कार्याणि चतुर्भिर्विचरेत्पथि ।

परदारविस्मयाज्वा नावलोचयाम्यकामिनी ॥९७॥

परसम्भ्याः स्रुता कार्या न नरेभ्य कदाचन । तीर्थं विना पुण्यकाले न स्नानम्य गृहेष्वपि ॥९८॥

न देव्या गणका वैद्यास्ते पापयात्र पुरे पुरे । न वेदशागमनं कार्यं न दापि स्पृहयेद्भुदि ॥९९॥

नित्यकर्म यथाकाले कर्त्तव्यं सदा नरैः ।

नाचमान्या हि गुरुवः परमिदा न कारयेत् ॥१००॥

जलाशया वने कार्या रोरर्णाया भगाः पथि । धर्मज्ञात्वा पृथक्कार्या न तत्रा वीक्ष्यदृष्टुम् ॥१०१॥

अशमयापि कार्याणि पुरे प्राप्ते वने तथा । प्रकुर्वन्तु वने रक्षां मागस्थानां वनेचराः ॥१०२॥

मयं साऽस्तु वने क्वापि निशार्था मार्गशामिनाम्

वैदेभ्यस्तु कमे शब्दो नेतव्यो कदाचन ॥१०३॥

पादयोः पादुके घृत्वा तीर्थं देवं गुरुं प्रति । ग्राष्टु वृन्दावनं ह्रीमशालां गच्छेत् सर्वदा ॥१०४॥

परायणानि व्रतानां वेदानां च सदा नरैः ।

कर्त्तव्यानि तु निष्कामं धामकार्याणि करयेत् ॥१०५॥

लोग धर्मकर्म करते रह । द्वारकापुरमें जाकर लोग वैशाखमान कर ॥ ६० ॥ कार्तिक मासमें काशीका पञ्चगक्रामे और प्रतिवर्ष भाषमासमें अयन्य जबर स्नान करें ॥ ९१ ॥ चातुर्मास आदिका सत्र करते रहे । हर एक घरके आँगनमें तुलसीकी पूजा हार्त रहनी चाहिए ॥ ९२ ॥ घर राखयें कभी कोई अग्ये हुए अतिथि-का अनादर न करें । कभी कोई किसी ब्राह्मणकी माँग खर्य न करे ॥ ९३ ॥ यदि वह चाहता हो तो ब्राह्मणके लिये अपना सर्वस्व दे डाले । किसी घर या गाँवमें कोई लड़ाई झगडा न करे ॥ ९४ ॥ सदा गुरुकी वन्दना करे, उनसे सर्वज्ञ धर्मपद सुनता रह, निरा प्रातःस्नान कर और विप्रिर्वक अतिनहान करता रहे ॥ ९५ ॥ नित्य शिवलीला व्यास और जप करता हुआ एकान्त तपस्या करे । दो व्यक्ति साथ बैठकर अध्ययन करें, तीन मनुष्य साथ बैठकर गद्य-वैयाय और चार मनुष्य साथ हाकर टहलने निकले । दूसरोंकी स्त्रीसे प्रेम न करे, दूसरोंकी स्त्राको देखे भी नहीं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ दूसरोंकी लक्ष्मीका धनको इच्छा न करे, किसी पर्वकाकके समय घरमें स्नान न करे, बल्कि किम्वा तीर्थम्यानवर पाल जाय ॥ ९८ ॥ वयोतिथी तथा वैद्यके साथ कोई विवाद न करे । यदि किसी दूसर गाँवमें वा रहते हों तो उनका पालन करे । न कोई वेपथगमन करे और न दासीमें प्रेम कर ॥ ९९ ॥ ठं क समयपर लोग अपने नित्यकर्म करते रहें । गुरुजनोका सम्मान कभी न करे और न दूसरोंकी निन्दा ही कर । वनामें अलगाध इनवाये । अलग-अलग धर्मशास्त्रों सम्पाये । कभी नङ्गो स्त्रोको न देखे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ पुर, घाम और वनोंमें जहाँ-तहाँ अशमय खोने । कनकर मनुष्य वनमें पहुँच हुए पाँवकोको रखा करे ॥ १०२ ॥ रात्रिके समय भी चक्रेवालोको वनमें किसी प्रकारका भय न रहे । केवल वैद्योसे कर लिया जाय और लोगोंसे नहीं ॥ १०३ ॥ पाँवमें जूता पहिनकर किसी तीर्थस्थान केवला तथा गुरुके पास न जाय । गोशाला तथा तुलसीकी बगीचीमें भी गृता पहिनकर न जाय ॥ १०४ ॥ धर्मोंकी और वेदोका परायण सर्वदा सत्र लोग निष्कामभावसे करते रहें ॥ १०५ ॥



पतयो वन्दनीयाश्च भोजनीयाः गृहे गृहे । पतये कमण्डलवः कौचीनं पादुकां तथा ॥१०६॥

रुग्णदण्डः मदा देवाः मदा तोषाः सुभाषणैः ।

न रोदयेद्वर्षं स्त्रीणां दिनं निद्रां न कारयेत् ॥१०७॥

रुग्दिन्यां न भोक्तव्यमुपोषां च चतुर्दशी ।

कृष्णवक्षसरा तस्यां रात्री कार्यं शिवाचनम् ॥१०८॥

नानामहोत्सवाद्यश्च यथाविधिपुत्रमरम् । मर्यादां कृष्णवक्षस्य पशोर्वाप्या शुभानि चिः ॥१०९॥

देवालयेषु कर्तव्या पतयो भक्त्यर्थकः । नानापञ्चाक्षर्यवेद्यान्देवभ्यश्च समर्पयेत् ॥११०॥

धेनुदानं वाजिदानं गजदानं प्रकारयेत् । भूमुरेभ्यः प्रदेवानि गृहदानानि सादरम् ॥१११॥

गृहे गृहे सदा कार्यं धेनुविप्रप्रजम्भम् ।

रमन्ते चन्दनं देयं छात्राणि व्यवसनानि च ॥११२॥

शानकं जलकुम्भाश्च कायं पादावनजनम् । इधं तत्र हि जर्षां देयं विप्रेभ्य आदरात् ॥११३॥

कार्तिके दीपदानानि शर्मा जाम्बवानि च । तुलसीसेवनं धार्वाज्यामाश्रित्य भाजनम् ॥११४॥

गीतनृत्यादिकर्णं विष्णोर्ग्रे निरन्तरम् ।

त्रिपुरारेः समोप हि पौर्णिमायां हि कार्तिके ॥११५॥

करणायो महादाहो घृताक्तवर्तिकादिभिः । माषदेवानि काष्ठानि कवलधत्त्रिनास्तथा ॥११६॥

चैत्रे तर्जुलदानं च तथा रश्माकवनि च । उर्वारकानि दद्यान् चन्दनं रविनकरम् ॥११७॥

आदर्शदानं करगुहीदानं जार्वाफलस्य च । पलाकपूरदानानि मृगमांसि प्रकारयेत् ॥११८॥

पदाऽञ्जनं न स्पृशेच्च न पादं पपयेन्पदा । द्वाभ्यांकराभ्यां कर्तुमिच्छतकस्य न कारयेत् ॥११९॥

दानेभ्यः करमारो हि विना विप्रैर्नृपाय हि ।

नोपेक्ष्यते यो राजश्च जनेदण्डः कदाचन ॥१२०॥

माननीयाश्च सद्गुराः पोष्याः पान्थाः सर्वत्र हि । सुहृदस्तोषणीयाश्च मित्रं कोपं न कारयेत् ॥१२१॥

महात्माभोकी सद्गुरु की जाय और घर घर भाजन कराया जाय । उन्हे कमण्डलु, कौचीन, चरणपादुका आदि दान दिया जाय ॥ १०६ ॥ उन्हे ब्राह्मणकी छड़ी भी द और भठा मन्त्र बातें प्रसन्न कर । कभी कभी भवनी स्त्रीको दुखित न कर और दिनभर शान न कर । एकादमीका अन्नका आहार न कर और कृष्णकाकी चतुर्दशीका भी यह किया करे । उस रातिसम लाग उत्साहस शिवजीका पूजन करे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ कृष्णवक्षकी अष्टमीका भी यह सब लोग किया करे । क्योंकि यह बड़ा शुभ तिथि है ॥ १०८ ॥ देवालयेमें अस्त्रपूर्वक पूजन करके विविध प्रकारके नैवेद्य देवताओंको समर्पित किये जायें ॥ ११० ॥ लाग सषय सम्यक्पर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि दान आवश्यक ब्राह्मणका दिया करे ॥ १११ ॥ घर घरमें सदा तीर्थों तथा विप्रोंका पूजन होता रहना चाहिये । वरान्त ऋतुमें चन्दन, छत्र तथा पत्रका दान करे ॥ ११२ ॥ पानी पीनेके लिये लोटा, जल मग्नेके लिए बड़ा, पैर धानके लिए झारी, इहो, छत्र और नीवूका दान ब्राह्मणोंको दे ॥ ११३ ॥ कार्तिक मासमें दीपदान, रात्रिकी जागरण, तुलसीका सेवा और मौवलेकी छयामें भोजन करे ॥ ११४ ॥ निरन्तर विष्णुभगवान्के सामने गावें-गायें । कार्तिकका पूणिमाको शिवजीके सामने चैत्रे जाती बली आदिका महाराज करे ॥ साथ मासमें लक्ष्मीयाँ सब रत्न निरर्थक चम्बलका दान करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ चैत्रमें ताम्रूल तथा केलेके फल दान काके अगर, चन्दन, इहो और महुआ आदि दे ॥ ११७ ॥ वैशाखके महोत्तमे शीका, करगुही, जायफल, इलायची तथा कपूरका दान करे ॥ ११८ ॥ वैशख बड़े धार्मिकों न कुछ पैरसे पैर न रगडे, दोनों हाथोंसे सिर न खुलवाये ॥ ११९ ॥ ब्राह्मणके अतिरिक्त सब लोग राजाको राज्यकर देते रहें । राजाके लिये यक्षकी उपासना न करे ॥ १२० ॥ अपने-अपने शत्रुओंकी हानि न करे

न कर्तव्यो विपुलां च विश्वापश्च कदाचन ।

कार्पण्यं नैव कर्तव्यं दानकर्तुं सर्वदा ॥१२२॥

न घृतेन कदा कार्या क्रीडा दारिद्र्यवृत्तिनी ।

न भोजन्या कदा चर्ता मद्यानी च नरोत्तमैः ॥१२३॥

तीर्थयात्रा सदा कार्या कृच्छ्रकादि ममाचरेत् । कार्यं लिगार्चनं निर्यं कोटिलियानि आवृजे ॥१२४॥

कर्तव्यानि नरैर्भक्त्या सर्वदाप्य च कारयेत् । लघुकृद्दानमहाकृद्दाननिरुद्दानमप्यचरेत् ॥१२५॥

दानानि पुष्पकानां च कर्तव्यानि निरन्तरम् ।

दानानि च कार्याणि देवपारैषु वा गृहे ॥१२६॥

साधूनां पूजनं कार्यं नमस्कार्यः सदा रविः । ग्रामे ग्रामे वायुपुत्रप्रतिमाः सर्वदा पूज्यम् ॥१२७॥

मिथुनाकाश्च तैलाक्ताः पूजनीया निरन्तरम् । चतुर्धर्मा गणराजस्य पूजनानि प्रकल्पयेत् ॥१२८॥

अपवेदगणराजाय मोदकान्पूजयित्वा ।

पञ्च खाद्यानि सिद्धरत्नादीन्पूजयेन्मदा ॥१२९॥

सदाऽऽज्यमर्च्य कर्तव्या स्नातृपाठान्प्रकारयेत् ।

गीतायाः पठनं वदानप्यापयेन्मदा ॥१३०॥

वृद्धैश्च शान्तिस्तुतानि पुष्पस्तुक्तान्यन्यैकम् । पुष्पं पुरुषस्तुक्तं च श्रावकादीनि च पठेत् ॥१३१॥

सदा धर्मं मतिः कार्या कार्या धनस्य संग्रहः । दुष्टवृद्धाः सदा तृपाज्या पातकं परिमार्जयेत् ॥१३२॥

ज्ञानस्य चपलं वायुः क्रुणु ज्ञयो यमो महान् ।

दारुणा नारकी पीडा स्मरन्त्या इति सर्वदा ॥१३३॥

गतस्तातो मृता माता गतश्च प्रपितामहः । पितामहो गतश्च गमनं स्वं निरीक्षयेत् ॥१३४॥

गतं यथाऽथ चाल्त्वं तारुण्यं च गतं यथा ।

यथा गच्छति वादिकश्च स्मरन्त्यं यमशासनम् ॥१३५॥

और लोकरोंका सदा पालन करता रहे । अपने जन्मदाताको प्रसन्न रखे । मित्रपर कोप न करे । १२१ ॥ कभी भी शत्रुपर विषकास न कर और दम्भादि कर्मों पर कृपा न करे । कभी जुगन न खेले । क्योंकि यह दारिद्र्य-को घास बुझानेवाला रोग है । अल्छ्य लोग कभी भोगोंको वत भी न सुन ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ सदा तीर्थोंको यात्रा करे और कभी कभी पृथ्वीवाग्द्वयपर अर्चन भी किया करे । प्रतिदिन शिवलिंगका पूजन करे और बालगणेशसम पूजा करे शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १२४ ॥ वन पड़े तो सदा ऐसा करे । लघुकृद्, महाकृद् एवं अतृप्त दान दोनोंको बराबर करता जाय ॥ १२५ ॥ निरन्तर पुस्तकदान करे । घरमें अथवा देवालयेमें जाकर प्रतिदिन कर्तव्य करे ॥ १२६ ॥ सब स्थान साधुओंका पूजन और प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करे । गाँव-गाँवमें हनुमानजीकी मूर्तियाँ रक्खा जायें ॥ १२७ ॥ देवस मिलकर सिद्धरत्नादिनां पूजा की जाय । प्रत्येक चतुर्धर्मी त्रिधर्मको गणेशजीका पूजन किया जाय ॥ १२८ ॥ मादक तथा पूरनपूरी आदि पक्वान्न बनाकर गणेशजीका अर्पण करे और सिद्धरत्न-रत्नादि भी चढ़ाये ॥ १२९ ॥ प्रतिदिन आत्मज्ञान-सम्बन्धी अर्चा, स्नातृपाठ, गीताका अध्ययन तथा वेदोंका अध्ययन-अभ्यास करता रहे ॥ १३० ॥ निरर्थ शान्तिस्तुत तथा श्रावस्तुत आदिका पाठ किया करे ॥ १३१ ॥ सदा अपनी बुद्धि धर्ममें स्थित रखे और धर्मका संग्रह करता चले । दुष्ट वृद्धोंका शिरच्छाद करे और हियं दुष्ट पापीसे छूटनेका उपाय करता रहे ॥ १३२ ॥ वायुको चपल तथा यमराजको महाकृद् समझे । नरकी दाहण पीडाओंका सदा स्मरण करता रहे ॥ १३३ ॥ यह सचता रहे कि पिताज, वन गये, माता मर गयी, पितामह और प्रपितामह भी चल गये, अब हमारा बारी है । जिस तरह व लटकाल गुजर गया, तृष्णाई बोल गयी, उसी तरह यह पृथ्वी-

गता दंष्ट्रा यत्ने नेत्रे श्लथ्या जाता त्वमग्र हि । कृष्णकेशाः मित्रा इ ता मृत्पुञ्जयः पुरःस्थितः ॥१३६॥  
दाने विलसो नो कार्यः कार्यं विधुं सुनिर्मलम् । सुपद्मं च धनं देयं मा । कार्यं पात्रमस्मरेत् ॥१३७॥

एवं भीरामदूतास्ते समर्द्धीपानरस्थितान् ।

आशयित्वा राघवाज्ञां महादुर्भिक्षिः स्वनैः ॥१३८॥

अयोध्यां स्वां ययुः सर्वे रामं दूतं न्यवेदयन् ।

मंभारिता तवास्माभिश्चाज्ञा मर्जान् जनान्मुहुः ॥१३९॥

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र दुर्दुमीनां महास्वनैः । दत्तेशां वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽभयपदा ॥१४०॥

एव रामेण भूम्प्रां हि चरित्राणि महानि च । आचरितान्मेकांश्चि कप्ताभ्यश्च वदिष्यति ॥१४१॥

एव शिष्य मया प्रोक्तं राज्यकाण्डं मनोरमम् ।

चतुर्विंशत्युपमैश्च

महामङ्गलकारकम् ॥१४२॥

राज्यकाण्डं शृणु यत्र पठन्ति भक्तिवन्धवाः । न ते राज्यान्परिभ्रष्टा भवन्ति हि वदाम्यहम् ॥१४३॥

राज्यकाण्डं महापुण्यं महामांगल्यदायकम् । ये शृण्वन्ति तत्र भूम्प्रां ते मांगल्यं भवति हि ॥१४४॥

एकैकरचितैः सर्गैरेकैकेन ध्येन च । समचत्वारिंशदिनैः श्रुत्वा न सुप्तिद्वयम् ॥१४५॥

आधिपत्यं मयाः प्राप्य राज्यकाण्डं पठन्ति ये ।

आधिपत्यान्परिभ्रष्टा न भवन्ति कदाचन ॥१४६॥

राज्यकाण्डं पठित्वा तु रामे वादे जगो भवेत् । शुष्णं श्रवणं शीघ्रं यत्पश्येत्तच्छ्रुत्वादिना ॥१४७॥

आनन्दरामायणमध्यमार्धं ये राज्यकाण्डं मनुजाः पठन्ति ।

राज्याभ्युना राज्येभ्यः लभन्ते भवन्ति भ्रष्टा न तु ते वदाम्यहम् ॥१४८॥

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं तत्रापि काण्डेषु विचित्रमुत्तमम् ।

भीरराज्यकाण्डं परमं सुमौख्यं दमदाऽनिभक्त्या श्रवणोपमादगत् ॥१४९॥

यस्या भी बालो जायगो, यह सोचकर उसके कठोर भासनका स्मरण करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ दांत टूट गये, जीभोसे कम सुमने लगा, शरीरके चढ़ते टूले पड़ गये और काले-काले बाल खेत हो गये । तब यह समझे कि अब मृत्यु सामने आकर खड़ा है ॥ १३६ ॥ दांतमें विलम्ब न कर और अपना चित्त निर्मल रखते । भूसीकी तरह समझकर धनका दान करे । कज्जम बनकर उसकी रक्षा न करे ॥ १३७ ॥ इस तरह सातों द्वीपोंमें रहनेवालोंको रामकी आज्ञा सुनाकर वे दूत रामके पास लौट गये और उनको सब समाचार सुनाते हुए कहने लगे हैं राघव ! हमने सप्तद्वीपके निवासियोंकी दुर्दुमीकी गर्जनाके साथ आपका आज्ञा सुना दी । उनकी बात सुनकर राम प्रसन्न हुए ॥ १३८-१४० ॥ इस प्रकार रामने इस पृथ्वीतलपर कितने ही बड़े-बड़े काम किये । उन सबकी पूरी तरह बतलानवाला कौन है ? ॥ १४१ ॥ हे शिष्य ! इस पीलित मैने तुम्हें चौबीस सर्गोंमें महा मङ्गलकारक मनोहारी राज्यकाण्ड सुनाया ॥ १४२ ॥ प्रति-तत्पर होकर राजा लोग यदि इस राज्यकाण्ड, पढ़ेंगे-सुनेंगे तो वे कभी भी अपने-अपने राज्यसे श्रुत न होंगे ॥ १४३ ॥ यह राज्यकाण्ड बड़ा पवित्र और महान् मङ्गलदायक है । जो मनुष्य पृथ्वीतलपर इसे सुनगें, उनका सदा कल्याण होगा ॥ १४४ ॥ प्रतिदिन एक एक सर्ग ब्रह्मा हुआ और पूरा होनेपर एक एक कम करता हुआ यदि इसका अनुष्ठान करे तो यह सब प्रकारकी सिद्धियां प्रदान करता है ॥ १४५ ॥ कहींका आधिपत्य पाकर जो इसका पाठ करते हैं, वे अपने नाशिवत्यसे कभी भी भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४६ ॥ राज्यकाण्डका पाठ-पूजन आदि करनेसे शत्रु शीघ्र अपनी तरफमें आ जाते हैं ॥ १४७ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस राज्यकाण्डको जो लोग पढ़ते हैं वे यदि राज्यसे भ्रष्ट हो गये हों तो फिर राज्यविकल्पी हो जाते हैं । फिर कभी वे उसमें भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४८ ॥ पढ़ने को आनन्दरामायण ही उत्तम है, फिर उसके सब काण्डोंमें यह राज्यकाण्ड उत्तम है । यह हर तरह सुलभायक

राज्यस्थितैर्वा व्यग्रमायतन्धरैः मदैव चाच्छ्रवणीयमादरात् ।  
 उन्माहकाले व्रतबन्धमङ्गले विशाहकाले पठनीयमुत्तमम् ॥१५०॥  
 श्रीराज्यकाण्डे श्रीमौल्यदायकं पुण्येषु कालेषु पठन्ति ये भवाः ।  
 तमिति मौल्यान्यनिमङ्गलानि न गच्छन्ति विष्णोर्वर्यान्महाः पदम् ॥१५१॥  
 पुण्यं पथिवं पश्यं विचित्रं श्रीरामचन्द्रस्य कथानकं भवा ।  
 भक्त्या मुनीनामपि मङ्गलप्रदं श्रीनन्दमनन्यतुनीयमादरात् ॥१५२॥

इति श्रीराजकीर्तिः । श्रीरामचन्द्रस्य मन्त्रोक्तं त्रैलोक्ये न कश्चिदप्युच्यते । उन्माहकाले तथा  
 रामदासोक्तं त्रैलोक्ये न कश्चिदप्युच्यते । ॥१५०॥

है, उन्मत्तता इत्यर्थः । उन्माहकाले १५० । उन्माहकाले १५० । उन्माहकाले १५० । उन्माहकाले १५० ।  
 काण्डे मुनिना कथितं । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ ।  
 मुनिना १५० ॥ १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ ।  
 सद्यमे विमानाः । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ ।  
 यह कथानकं मुनिना १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ ।  
 इति श्रीराजकीर्तिः । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ । १५१ ।  
 राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे ननुवशः संगः ॥ १५१ ॥

॥ इति राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्राय नमः ।



श्रीमन्नामोस्तुते नमः

श्रीबाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरिनान्तर्गतं-

# आनन्दरामायणम्

‘उद्योत्स्ना’ऽभिषया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

## मनोहरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( लघुरामायण )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि यत्तत्त्वं वक्षुमर्हसि । वदवाक्यं पुरा प्रोक्तं नारदेन महात्मना ॥ १ ॥  
रामायणं बाल्मीक्ये संक्षेपञ्चेति वेऽकथि । सावदेवार्थमादाय श्लोकरूपं वदस्व माम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्पक् पृष्ट त्वया वक्ष्ये सावधानमनाः शृणु यन्मृष्टं च त्वया सर्वं तद्वदामि तवाग्रतः ॥ ३ ॥  
नारदाद्देववाक्यं यथा बाल्मीकिना श्रुतम् । सावदेवार्थमादाय तेन बाल्मीकिना पुरा ॥ ४ ॥  
शतश्लोकमितं रामचरितं पापनाशनम् । शतकोटिभित्तार्णं स्वकवितायां मनोरमम् ॥ ५ ॥  
आदावेवोक्तमेवास्मि तत्तवाग्रे वदाम्यहम् । शतकोटिमितं स्मर्यं लघुरामायणाद्धयम् ॥ ६ ॥  
कूञ्जन्तं राम रामेति मधुरं मधुराश्रयम् । आरुह्य कविताशाखां वंदे बाल्मीकिशिरः ॥ ७ ॥  
बाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनवारिणः । शृण्वन्नरभकथ्यनाद को न यासि परी गतिम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो । मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि वेदवाक्योंका सारांश लेकर संक्षेपमें नारदजीने यहूँ बाल्मीकिसे कौन सो रामायण कहाँ थी ? उसी शर वस्तुको श्लोकरूपमें बनाकर बाल्मीकिने आपको सुनाया था, वह हमसे भी कहिए । १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वरुण ! तुममे अच्छा श्रवण किया है जब सावधान होकर सुनो तुमने जो प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ३ ॥ जब बाल्मीकिजीने नारदके मुखसे वेदवाक्योंसे संकलित रामचरित सुन लिया सब उसी अर्थको लेकर उन्होंने सी श्लोकोंमें पापनाशक लघुरामायणकी रचना की और अपने रामायणके आदिमें उन्होंने उसी लघुरामायणको स्तान दिया । वही ही श्लोकोंवाला लघुरामायण आज मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ४-६ ॥ कवितारूपिणी शाखापर बैठकर सीते सीठे अक्षरोंमें रामनामका गान करनेवाले बाल्मीकिरूपी कोकिलको मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥ कवितारूपी वनमें विहार करनेवाले रत्ना मुनियोंमें सिंह-सदृश बाल्मीकिजी रामकथाविणी गर्जनाको सुनकर संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो उत्तम गतिको न

रः पिबन्मतत रामचरितसूत्रमागमम् । अद्भुतं मुनिं वदे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ९ ॥

गोष्पदीकृतवारीशं मशदीकृतराक्षसम् । रामायणमहामालाग्नं वदेऽनिलात्मजम् ॥ १० ॥

भञ्जनीन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् । कर्पाक्षमक्षरं वदे लङ्काधपङ्कम् ॥ ११ ॥

उत्प्लव्य विधोः मन्त्रिन मलीतं पः शोकवह्निं जनकान्मजापाः ।

आदाय तेनैव दग्धं लंकां नमामि तं प्रजितिराजनेश्वरम् ॥ १२ ॥

मनोजवं मारुतुन्मयेवं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।

वानात्मजं वानरगुणगुण्यं श्रीरामदत्तं मनसा स्मरामि ॥ १३ ॥

गमाय मद्राय रामचन्द्राय वैधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ १४ ॥

जितं मगवता तेन हरिणा लोकधारिणा । अनेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणान्विता ॥ १५ ॥

इति मंगलाचरणम्

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्बिदां वरम् । नारदं पण्डितप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुमवम् ॥ १ ॥

को न्यस्मिन्माप्रतं लोके गुणवान्कथं वीर्यवान् । धर्मदक्ष कुतश्च मत्पराकरो दृढव्रतः ॥ २ ॥

वाग्बिदेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान्कः कं समयश्च कथं कः प्रियदर्शनः ॥ ३ ॥

ग्राम्यवान्को जितक्रोधो मुनिमान्कोऽनसूयकः । कस्य विश्वपति देवाश्च जातगोवस्य सपुत्रो ॥ ४ ॥

गृहदिच्छाम्यहं श्रोतुं वरं कौतूहलं हि मे । महर्षे त्वं समर्पेऽग्निं शानुमेषं विवं नरम् ॥ ५ ॥

भुज्या चैतन्निजलोकज्ञो बान्धवीकेर्नाग्दो वषः । भूयतामिन्पुत्रावप्य महर्षो वाक्यमनरीत् ॥ ६ ॥

बहवो दुर्जमार्थने ये त्वया कीर्तिता गुणाः । मुने वक्ष्याम्यहं वृद्ध्या तैर्युक्तः श्रूयतां वरः ॥ ७ ॥

ज्ञात होता हूँ ? कोई नहीं ॥ ८ ॥ जो निरन्तर रामचरितरूपी अमृतसागरका पान करत हुए भी कभी नहीं तृप्त होने आते, ऐसे कल्मषरहित श्रीवाल्मीकि मुनिको मैं प्रणाम करता हूँ । विशाल सपुत्रको जिन्होंने गौके खुर बूढ़ने गोशय बताया, गधसे को मच्छह सम्पत्ता और जो इस रामायणलापका महामालाके रत्न हैं, उन हनुमानजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ अञ्जनाके मृत्यु, जानकाक शोकनाशक, वानराके प्रभु, मलयकुमारके संहारकारी तथा लंकाके लिए पलायने कोर मारुनिवा मे वन्दना करता हूँ ॥ ११ ॥ जो सल वेषध सपुत्रको जलराशिको लानकर लड्डा पहुँचे, वहाँ सीताके शाकल्यों अग्निको लेकर जिह्वा उलाम से रो लंकाका मत्स्य कर दिया, उन अञ्जनेन्दनको मैं हाथ जड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ १२ ॥ जिनमे मनक समान वन है, वायुक सहस्र स्वर है, जिन्होंने इन्द्रियाँ जीत ली हैं, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ है, ऐसे वापुने पुत्र, वानरसभके मुखिया और श्रीरामके दूत हनुमान्को मैं मनमें स्मरण करता हूँ ॥ १३ ॥ राम, रामचद्र, रामचन्द्र, विशालाश्वरूप, रघुवशके नाथ, जगन्मलय और सीतापति रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ भगवान्, संसारके पालक, अज, और विश्वरूप उन रामने निर्गुण होकर भी सगुणस्वरसे सारे संसारका अपने वशमें कर लिया है ॥ १५ ॥

इति मङ्गलाचरणम् ।

विद्वानोमे श्रेष्ठ, तपस्या और स्वाध्यायमे सलस्य मुनिश्रेष्ठ नारदसे तपस्वी वाल्मीकिने पूछा— ॥ १ ॥ इस संसारमें इस समय गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ कुतश्च, सत्यवान् और अपने प्रभुवर दृढ़ कीन है ? ॥ २ ॥ कीन ऐसा है, जो सत्त्वचित्तयुक्त है ? कीन सब प्राणियोंके हितमें लगा हुआ है और कीन ऐसा है जो विद्वान् समय तथा देखनेमें सुन्दर है ॥ ३ ॥ कीनमा ऐसा पुरुष है जो अश्वमेजनी, कीशको वशमें किये हुए तथा लज्जका है और दूसरेने ईर्ष्या नहीं करता ? संसारभूमिमें जिसके कुपित होनेपर देवता भी भयभीत होजायें, ऐसा कीन है ? ॥ ४ ॥ यह मैं सुनता चाहता हूँ । उसे जाननेके लिए मुझ बड़ा कौतूहल है । हे महर्षि । आप उनके प्रकारके पुरुषको जान सकन है ॥ ५ ॥ बिलोकीके ज्ञाता नारद वाल्मीकिको बात सुनकर बोले—अच्छ, सुनो । इस तरह संबोधन करते महर्षि नारद कहने लगे— ॥ ६ ॥ हे मुने । आपने जिन गुणोंका वर्णन किया है, वे बहुत ही दुर्लभ हैं । फिर भी मैं अच्छी तरह विचार करके

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रवः । निष्कामा मदावायो ह्युत्तिमान्भूतिमन्त्रशी ॥ ८ ॥  
 बुद्धिमान्मतिमान्बार्मा श्रीमान् शत्रुनिवर्हणः विपुलांशो महाबाहुः कम्पुग्रीवो महाहनुः ॥ ९ ॥  
 महोरम्को महेश्वर्यो गृहजगुर्दिमः । आजानुबाहुः सुश्रेयाः सुनयटः सुविक्रमः ॥ १० ॥  
 समः समविभक्तांगः स्तिग्धवर्णः प्रवपवान् । धीमद्व्या विज्ञानाज्ञो लक्ष्मं यान् शुभलक्षण ॥ ११ ॥  
 धर्मरुः सत्यमन्धश्च प्रजानां च हिते शनः । यज्ञश्री जन्मपन्नः ह्युचिर्वर्यः समाधिमान् ॥ १२ ॥  
 प्रजापतिमयः श्रीमान् धाता गिणुनिवृत्तः । रक्षितः ज्ञानलोकस्य धर्मस्य पाशरक्षिता ॥ १३ ॥  
 रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता । वेदवेदांगतन्त्रज्ञो धनुर्वेद च निष्ठितः ॥ १४ ॥  
 सर्वेशान्त्रार्थतन्त्रज्ञः स्मृतिमान् प्रतिमानवान् । मयेलोकप्रियः साधुर्दोनाम्ना विचक्षणः ॥ १५ ॥  
 सर्वदाऽभियन्तः मद्भिः समुद्र इव विपुभिः श्रवः स्याममर्थव मर्दव प्रियदर्शनः ॥ १६ ॥  
 स च सर्वगुणोपेतः कौमन्वानन्दवर्धनः । समुद्र इव गांशोपै धैर्येण हिमवानिव ॥ १७ ॥  
 विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः । कलाग्निपदजः प्राधे क्षम्य पृथिवीममः ॥ १८ ॥  
 धनदेन समस्त्यागे मय्ये धर्म इवापराः । तमेव गुणवम्पन्नं रामं मन्यपगकमर् ॥ १९ ॥  
 ज्येष्ठ ज्येष्ठगुणयुक्त प्रियं दशरथः मुनय् । प्रकृतानां हिते युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥ २० ॥  
 यौवराज्येन मयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतेः । तस्याभिप्रेक्ष्य मम गन्दुष्टा भार्या च कैकयी ॥ २१ ॥  
 पूर्वं दत्तवरा इतो वग्मेनमवाचत । विद्यामन् च गमस्य भग्नस्याभिप्रेवजम् ॥ २२ ॥  
 स सन्धवचनाद्राज्ञा धर्मपाशनं मयत् । निशमयामास मुनः राम दशरथः प्रियम् ॥ २३ ॥

उन गुणों में युक्त मनुष्यको बतलाना है । ८ ॥ जिसके विराट् में आराम कुछ करना चाहता है । उन्हीं लोग राम कहते हैं । वे भाग्यवान्, मदावाय, नवम्बा, धर्मशाल और जितन्दिन हैं ॥ ९ ॥ वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, बलवान्, श्रीमान् और शत्रुओं के विनाशक हैं । उनका मुख लम्बा-चोटा कम्पा है । लम्बा-लम्बी भुजाएँ हैं । गलकी तरह उनकी माका है और विष्णुजगड़े हैं ॥ १० ॥ उनका विशाल छाता है । वे हाथों में विष्णु घनुष धारण कर रहे हैं । उनकी पसलियाँ उभर रही हैं । वे शत्रुभार्य धमन करने की प्रबल शक्ति रखते हैं । जानु (पुटनी) तक पहुँचनेवाले उनके हाव हैं, गन्दर गांश है, वक्षिण ललाट है, सराहनीय पराक्रम है, बराबर और मृदुल उनका गले, मन्त्राज्ञाज्ञा एव है और उनका प्रताप भी साधारण नहीं है । उनकी मूर्द्ध छाता है, बड़ा-बड़ा शक्ति है । वे लक्ष्मणमय हैं और उनमें सभी गुण लक्षण विद्यमान हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ वे धर्मज्ञ और समर्थ (अवना प्रतिज्ञा का निमन्त्रित) हैं । वे सदा प्रजा के हित में रह रहते हैं । वे धर्मवान्, ज्ञानमय, पवित्र, वशी और समाधिमान् हैं ॥ १२ ॥ वे राम प्रजापतिके समान श्रीमान्, जगत् के पालक एवं कर्तृक विनाशक हैं । वे गमस्त संसारकी तथा धर्मका सर्वथा रक्षा करते हैं । १३ ॥ वे धर्मक रक्षक हैं और निज जनता की रक्षा करते हैं । वे वेद-वेदाङ्ग के सारे तन्त्रोंको जानते हैं और घटुवरसे एक असाधारण प्रतिभा रखते हैं ॥ १४ ॥ वे संपूर्ण शास्त्रों के अर्थ तथा तत्त्वोंको जाननेवाले, समृद्धिमान् प्रतिभाशाली, सबको प्रिय, साधु, कष्टनाशक और पण्डित हैं ॥ १५ ॥ जैसे समुद्र लहरोंसे मिलता है वैसे ही वे सदा मज्जना में मिलते हैं और उनका दर्शन सबको सुख-दायी होता है ॥ १६ ॥ वे राम सर्वगुणमय, कौमन्गका आनन्द बढ़ानेवाले, समुद्र के तुल्य गम्भीर तथा हिमालय के समान धैर्यशाली हैं ॥ १७ ॥ वे वीर्य एवं बलम विष्णुज सदृश हैं । चन्द्रमा के सदृश सबको उनका दर्शन प्रिय है । वे ज्ञान के कालान्तिक सदान और सामान्य पृथ्वी के समान हैं ॥ १८ ॥ स्वामी कुबेर के सदृश, सत्यमं वृद्धे धर्मराज के समान तथा सब गुणोंसे युक्त हैं । सब पुरातन बड़े प्रज के हित में संलग्न एवं प्रजाप्रिय उन स्वयंपराक्रम रामका राजा दशरथ प्रजा के हित के लिए युवराज बननेका निश्चय किया । श्रीराम के अभिषेक की तैयारी देखकर पूर्वकाल में वरप्राप्त दशरथ की प्यारी रानी कैकेयी ने उसी समय अपने पतिसे राम के निर्वासन तथा वरस के राज्य-अभियेक का वर माँगा ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ तदनुसार

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् । पितुर्वचननिर्देशार्त्तकेश्याः प्रियकाङ्क्षान् ॥२३॥  
 तं ब्रजत प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । स्नेहादिनयसपन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः ॥२४॥  
 भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् । रामस्य दयिता भार्या निन्द्य प्राणममा हिता ॥२५॥  
 जनकस्य कुले जाता देवमायायेव निर्मिता । सर्वलक्षणमयमा नागीणामुत्तमा वधः ॥२६॥  
 भीताऽप्यनुगतं रामं शशिन रोहिणीं यथा । पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥२७॥  
 शृङ्गवेरपुरे छतं गग कूले वरमर्जयन् । गुह्यमाया धर्मात्मा निपादाधिपतिं प्रियम् ॥२८॥  
 गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया । ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥२९॥  
 चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शोभनान् । रम्यमावमथ कुन्दा रमणीया वनं त्रयाः ॥३०॥  
 देवगन्धर्वमकाशास्तथ ते न्यववन्सुखम् । चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुम्हादाः ॥३१॥  
 राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् । गते तु तस्मिन् भग्नो वमिष्टमसुर्यैर्द्विजैः ॥३२॥  
 निशृज्यमानो राज्ञाय नैच्छद्वाज्यं महाबलः । स जगाम वनं चोरो रामपादप्रभादकः ॥३३॥  
 गत्वा तु सुमहान्मानं रामं मन्यपराक्रमम् । अथावद्भ्रातरं राममार्यमावपुरस्कृतः ॥३४॥  
 त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽमरात् । गमाऽपि परमोदारः सुमुक्तः सुमहायशाः ॥३५॥  
 न चेच्छन्पितुरादेशाद्वाज्यं रामो महाबलः । पादुके चास्य राज्ञाय न्याम दत्त्वा पुनःपुनः ॥३६॥  
 निवर्तयामास ततो मरुतं मरुताग्रजं । स काममनवाप्यैव रामपादावुत्स्पृशन् ॥३७॥  
 तन्दिप्रामऽकरोद्वाज्यं रामागमनकांक्षया । गते तु भग्नो श्रीमन्सत्यमन्धो जितेन्द्रियाः ॥३८॥  
 रामम् पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च । तदागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥३९॥

मन्दवचनरूपी प्रथमक वन्दनम वंद्य हुए राजा दशरथन अपन प्रिय पुत्र रामको निर्वाचित कर दिया ॥ २३ ॥  
 वीर राम गत धौकेवीको भला और पिताको प्रतिज्ञाका पालन करनेके निमित्त उनकी आज्ञा मानकर  
 वनका चल दिये ॥ २४ ॥ सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले स्नेह और धनयसात्र प्रिय भ्राता लक्ष्मणने  
 भाईको वन जान देता तो उन्हें भी स्नेहजनित उत्क साध दिया ॥ २५ ॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मण भली  
 भाँति भ्रातृत्व निपात वे और रामके भार्या सीता मदैव रामका प्राणक समान प्रिय समझती हुई उनके  
 हितमें मग्न रहती थीं । वह जनकके कुलम उत्तम देवमायासे निर्मित, सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त एवं सब  
 तारियोंमें एक उत्तम नागी थी ॥ २६ ॥ २७ जिहा तरह रोहिणी चन्द्रमाका अनुगमन करती है सीताने  
 भी रामका उसी प्रकार अनुगमन किया । उस समय पुरवाणी तथा हिता दशरथ या आड़े दूरतक रामके  
 साथ गये ॥ २८ ॥ गंगाके किनारे शृङ्गवेरपुरमें पहुँचकर रामने सारथी ( सुमन्त्र ) को विदा किया और  
 निपादाके राजा धर्मात्मा एवं प्रिय मित्र निपादाकाजम भय की ॥ २९ ॥ निषाद, लक्ष्मण और सीताके साथ-साथ  
 राम एक वनके बाद दूसरे वन तथा वही बड़ी नदियोंको पार करके १०० दूरी में चित्रकूट वनमें  
 एक सुन्दर आश्रम बनाकर रहने लगे ॥ ३० ॥ ३१ देवताओं तथा गन्धर्व आदिक सबान वे तीनों वही  
 आनन्द रह रहे थे रामके वन जाने हो पुत्रविश्राम शोकात् राजा दशरथ पुत्र रामके लिए विलाप करने करते  
 अपन प्राण त्याग दिये । उनके दहावसानके अनन्तर बलिहारी मृग्य मुग्य ब्राह्मणोंने राज्य पट्टण करनेके लिए  
 भरतसे बहुत कहा, किन्तु और भरत राज्यके प्रति अलिच्छा प्रकट करने रामको मनानके लिए वमकी चल दिये  
 ॥ ३२-३४ ॥ भरतने पराक्रमी रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करने हुए कहा — हे धर्मज्ञ : आप ही अयोध्याके राजा  
 बनें । परमोदार सुमुख और कीर्तिमाली रामचन्द्रन पिताकी आज्ञाका पालन अपना धर्म समझकर राज्यसे  
 अलिच्छा प्रकट की और भरतको समझाकर राज्यके लिये अपनी पट्टना दौ और सीतनका बार बार अनुरोध  
 किया ॥ ३५-३७ ॥ इस प्रकार रामन भरतकी लोटाया और अपनी कामना सफल होउ न देख भरत भी  
 रामके चरणोंका स्पर्श करके अयोध्या लौट आये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर रामके आगमनको प्रतीक्षा करते हुए  
 भरत नदिप्राममें रहकर करने लगे । भरतने वन जानेपर सत्यसय, श्रामान् एवं जितन्त्रिय



प्रतिपद्य तु महाहर्षं रामो गजदले च ॥ ४१ ॥  
 सुनीक्ष्णं चाप्यगस्त्य च ह्यगस्त्यश्चापरा तथा अगस्त्यवचनात् ॥ ४२ ॥  
 खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयमायका जनकस्य रामस्य वन वनचरैः सह ॥ ४३ ॥  
 शूषरोऽभ्यागमन्पर्वं वधाषामराक्षसाम् । न तेषां प्रतिशुश्रूत राक्षसानां वधाय च ॥ ४४ ॥  
 प्रतिज्ञातश्च रामेण च धर्मपति रानाम् । कुर्यात्तम येन कन्याया दडकाप्यवामिनाम् ॥ ४५ ॥  
 तेन तत्रैव दमता जनपानमिव चरन्ति । तत्रैव गृहेण वा राक्षसां कामरूपिणी ॥ ४६ ॥  
 सतः शूर्पणखाया कथा द्यूनात् भवेत् ॥ ४७ ॥ तत्रैव राक्षसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥ ४८ ॥  
 निजघातं गणे रामस्तेषां चैव वानानाम् । वन वानमन्त्रियमता जनस्थाननिवासानाम् ॥ ४९ ॥  
 राक्षसां निहतान्याममहस्याणि चकुरन् । ततो जनिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ ५० ॥  
 महायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् । तस्मिन्, पुरहृता मागचेन स रावणः ॥ ५१ ॥  
 न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते । अतस्तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥ ५२ ॥  
 जगाम महमारीचस्तस्याश्चमरदं तथा । तेन मायाविना दूषणवाह नृपत्मजौ ॥ ५३ ॥  
 जहात मारीचं रामस्य हत्वा गृध्रं जटायुम् ॥ गृध्रं च निहतं द्यूना हतां श्रुत्वा च मैथिलाम् ॥ ५४ ॥  
 राघवः शोकमगमो विलसत्पादुलेट्टिवः । तस्मिन्नेव वाक्येन गृध्रं दग्ध्वा जटायुम् ॥ ५५ ॥  
 मार्गमाणां वने मारीचं राक्षसं स ददश ह । वदन्त्येव नाममपेक्षं निहृतं घातदर्शनम् ॥ ५६ ॥  
 तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वमेतश्च मः । स चाप्य कथयामास श्रुत्वा धर्मचारिणाम् ॥ ५७ ॥  
 श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छन्ति गच्छतः । सोऽभ्यगच्छन्महानेकाः शार्ङ्गं शत्रुमुदतः ॥ ५८ ॥  
 कथं वा पूजितं सम्यग्ग्रामो दशमघातमज्ञः । पपातीरे हनुमता गङ्गां यानरणं ह ॥ ५९ ॥

राम वहीं निज तमरवारिचोका ॥ ४१ ॥ आकाशवक्रं दण्डकारण्यकाचल पट ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ कमलकं सहज  
 मेघावासे रामेन उग्र मता पदमं प्रकाशितं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उस वनमे  
 सुतं ध्या, अगस्त्य तथा अगस्त्यके आर्षं उच्यते इति ॥ ५१ ॥ वही ही राक्षस की दिव्य दृष्टि द्रव्यनुप, तलवार, तरकस  
 तथा बाण सहज किये और जनपानक स व निवास करने लगे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ एक दिन वहीक सब अपि  
 राक्षसोंके व्यवसाय अनुरोध कर करि गये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राक्षसोंके व्यव करनेका प्रतिज्ञा की ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वही  
 ही रामने जनस्थाननिवासिना तथा कामरूपिणी राक्षसा शूर्पणखाकी नाककान काटकर कुत्स्य किया  
 ॥ ४६ ॥ तदनन्तर रामने गृध्र तथा जटायु नाम के पक्षि पहर, त्रिभिन्ना तथा दूषणार्द्र राक्षसोंको मारा  
 और जनस्थाननिवासी चौदह हजार राक्षसोंको मार कर पट्टेचा दिया इस प्रकार अपनी जातिका सहार  
 होत मृतेकर रावण क्रोधसे मूर्छित हो गया और अपने महाबलाके लिए मारीच नामक राक्षसको बुलाया ।  
 मारीचने अनेक प्रकारसे समझात हुए करके रावण को राजानुके साथ विरोध करना ठीक नहीं है, किन्तु  
 कालक्रमेण रावणने उसको एक भी बात नहीं मानी और उसको साथ रामके आश्रमपर पहुँचा । वही वह मायावी  
 मारीच मृग बनकर राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मणको दूर भगा ले गया ॥ ४७-५२ ॥ इसी बीचमे रावण  
 जटायु नामके सिद्धकी मन्त्रकर रामका पता लगाकर हत्या करने लगा । सिद्धका मारा हुआ देख एवं सीताका  
 हरण सुनकर राम को बड़े संताप हुआ किन्तु करने को नही उभरी शाश्वतकाम जटायुको अपने हाथोंसे  
 जलाकर परम पद पहुँचाया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ वनमे सीताका हत्या होकर रामने एक भद्राभयशूर तथा विचित्र  
 कथवाले कथन्य नामक राक्षसको दखा ॥ ५९ ॥ महाबाहु रामने उस मारकर जटा दिया जब वह स्वर्गको  
 जात लगा तो उसने धर्मचारिण शत्रुताका पता पताया ॥ ५९ ॥ और कहा-हैं राघव ! वह धर्मनिपुणा श्रमणा  
 नामकी शबरी है, आप उसके पास जाइए तदनुसार महापदजम्बी एवं शत्रुविनाशकारी रामचन्द्रजी शबरीके  
 पास गये ॥ ५९ ॥ शबरीने रामका बड़ा आदर किया । वहीसे पन्नासरपर जाकर राम हनुमान्जीसे मिले ॥ ५९ ॥

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समगतः सुग्रीवाय च तत्पर्व शम्भद्रामो महाबलः ॥६९॥  
 आदिनक्षत्रघातुं सीतायाश्च विद्वेषतः । सुग्रीवश्चापि तन्मर्षं ध्रुत्वा रामस्य वानरः ॥७०॥  
 चक्रत् मरुषं रामेन प्रतर्धनाग्निवाहिकम् । रत्ना वानरराजेन वरानुकथनं प्रति ॥६१॥  
 रामायाश्चेदित सर्वं प्रणयाद्दुर्गमनन च मानहानं च रामेण तदा बालिवश्च प्रति ॥६२॥  
 बालिनश्च पक्षं तत्र कथयामास वानरः । सुग्रीवः शङ्कितधामीभिर्यत्र वीर्येण राघवे ॥६३॥  
 राघवप्रणयार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् । दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वामन्त्रिभम् ॥६४॥  
 उन्मथयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य च स्थि महाबलः पाशोऽगुपुन । चक्षत् संपूर्णं दक्षयोजनम् ॥६५॥  
 विमोहं च पुनस्तालान्मर्षकेन महेगुणा । गिरि रत्नावलं चैव जनयन्प्रपश्य तदा ॥६६॥  
 ततः प्रीतमनास्तेन विशस्तः स भर्हापनिष् । किष्किन्धां राममहितो अगाम च गुहां प्रति ॥६७॥  
 ततोऽभर्जद्वारिवरः सुग्रीवो हर्मपिगलः । तेन नादेन सहता निजेताम हरीधरः ॥६८॥  
 अनुमान्य तदा तारा सुग्रीवेण समागतः । निवृत्तान च तत्रैव शूरेणकेन राघवः ॥६९॥  
 ततः सुग्रीववचनाद्भ्रुत्वा बालिनमाहव । सुग्रीवमेव तद्वाक्ये राघवः प्रत्यपादयन् ॥७०॥  
 स च सर्वान्ममातीय वाटशस्त्रानरपथः । दिङ्म प्रस्थापयामास दिङ्मुञ्चनकात्मजाम् ॥७१॥  
 ततो गृध्रश्च बचनान्मपातेर्हनुमान्यली । श्रुत्वा जनविष्णोर्णं पुण्यत्वे लवणाणवन् ॥७२॥  
 तत्र लङ्का समामाय पुरीं रावणरालिनाम् । ददर्श मीनां प्यारणीमशोकवनेकां गताम् ॥७३॥  
 निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं च निवेद्य च । ममाश्वास्य च वैदर्हो मर्दयामास नोरगम् ॥७४॥  
 पञ्च सेनाप्रगान्धवा मम मन्त्रिमुत्तानपि शृण्वन् विनिष्पिप्य ग्रहणं समुत्तममनु ॥७५॥

हनुमान्प्राकं कहनदर राम सुग्रीवस मिल ओर महाबली रामचन्द्रस न उम अरना तारा हाल कह सुनाया ॥ ६९ ॥ रापने भां नृपवंसे अरना सब गुनान्त कहा ओर सावाहरणका हाल विमथरुत्ते वर्णन किया । सा मुत्तकर सुग्रीवने प्रमत्तचित्तसे अग्निवो म र्गो दक्षर रामसे दिवता को ओर वानरराज सुग्रीवने श्री बालिके साथ वषन वरका हाल दतकाया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ दुर्गतिन गुणावने सबो नसता तथा प्रेमपुवक रामसे वपना सब हाल कहा । यह गुनकर रामने बालिको मारतका मण किया । ६२ ॥ जब सुग्रीवने बालिके मत्तकर वपन किया । पय कि उसे सन्देह था कि वे बालिका मार सकें या नहीं ॥ ६३ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीवने रामकी परीक्षा लेनके लिए पर्वतके समान लम्बा चोटा दुन्दुभ राक्षसका कहल दियाया ॥ ६४ ॥ महाबाहु रामने मुत्तकराकर उसे देखा और उस राक्षसको डडरका पय अ ॥ ७१ ॥ उन्मथर राम मानन दू वक दिया ॥ ६५ ॥ फिर सात ताणके पृष्ठाको एक ही काणसे काट तथा पर्वत और दमनकको भेदकर - य वक हृदयमें यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिया कि हम बालिको मारनस समथ है । ६६ ॥ रामने पराक्रमको देखा तो विस्मय करके सुग्रीव वही प्रसन्नतापुवक रामने साथ किष्किन्धा नामके पर्वतकी गुफाके द्वारपर पहुचा ॥ ६७ ॥ वहाँ पहुचकर सुवर्गके समान पीतवर्ण वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने धर गर्जन की । उस भयङ्कर गर्जनको सुनते ही बन्दरोंका राजा बालि किष्किन्धाके बाहर निकल आया । ६८ ॥ उन समय ताराको खान न मानते हुए और उसका मनाकर करके बालि सुग्रीवके साथ युद्ध करनेके लिए आया और एक ही काणसे उसे शम्भन यमपुर पहुचा दिया । ६९ ॥ सुग्रीवसे की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार ध्वनवद्ध होनेके कारण रामने बालिकी मृन्दुके पश्चात् किष्किन्धाका राज्य सुग्रीवको द दिया ॥ ७० ॥ इसक अनन्तर कपिराज सुग्रीवने सीताका पता खानेके लिए वसो दिगामोम व समे बरगको भेजा ॥ ७१ ॥ सम्पत्तो गिद्ध द्वारा सीताका पता पाकर महाबली हनुमानने सी याजन विन्मूक आरसन्दक लीधकर पार किया ॥ ७२ ॥ रावणसे सुरक्षित लङ्काम आकर हनुमानने अशाक वनमें बैठो तथा रामका वपन करती हुई सीताको देखा ॥ ७३ ॥ तब हनुमान्जीने सीतासे रामका सारा समाचार एवं सन्देश कहा । सीताको आश्वासन देकर रणमें पाँच सेनापतियों, साठ मन्त्रिपुत्रों और परमवार मलयकुमारको मारकर स्वयं बह्मपादनें वंच पड़े

मन्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा वैशाम्पायनान् । महेन्द्राक्षगान्भीरो मन्त्रिणस्तान्पटञ्जया ॥ ७६ ॥  
 सती दग्धा पुगी लङ्कां क्रान्ते सीता च मैथिलीम् । राधापथ्यमाख्यातुं पुनरायानमहाकपिः ॥ ७७ ॥  
 सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् । न्यवेदयदमंयात्मा दृष्ट्वा सीतेति तत्पतः ॥ ७८ ॥  
 ततः सुग्रीवमहितो गन्वा सीतं महोदधेः । समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यमभिर्भैः ॥ ७९ ॥  
 दर्शयामास आत्मानं समुद्रः तर्हिनां पतिः । समुद्रवचनाच्चैव नमं सेतुमकारयत् ॥ ८० ॥  
 तेन गन्वा पुगीं लङ्कां दग्धा रावणमादधे । रामः सीतामनुप्राप्य परी व्रीह्यामुपागमत् ॥ ८१ ॥  
 तानुवाच ततो रामः पुरुषं जनमगदि । अमृष्यमणा सा सीता शिवेऽथ शूलन प्रति ॥ ८२ ॥  
 सतीऽग्निश्चनान्भीतां ज्ञात्वा विभक्तमवपाप् । कर्मणा तेन मरुता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ८३ ॥  
 सदेवपिगाणं तुष्टं राघवंस्य महान्मनः । वभी रामः सुमंतुष्टः पूजितः सर्वदेवतैः ॥ ८४ ॥  
 अभिषिच्य तु लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । कृतकृत्यश्चदा रामो विजयरः प्रनुमोद ह ॥ ८५ ॥  
 देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् । अयोध्यां परित्यजो रामः पुष्पकेन सुहृद्भुवः ॥ ८६ ॥  
 भरद्वाजाश्रमं गन्वा रामः सत्यपराक्रमः । भरतस्यातिके रामो हनुमन्न व्यमर्जयत् ॥ ८७ ॥  
 पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवमहितश्चदा । पुष्पकं तस्ममाह्वय नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥ ८८ ॥  
 नन्दिग्रामे जटां हित्वा स्नातृभिः सहितोऽनघः । गमः सीतामनुप्राप्य गन्धं पुनरायानान् ॥ ८९ ॥  
 न पुत्रमरण केचिद्दृश्यति पुरुषाः कश्चित् । नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यति पतिव्रताः ॥ ९० ॥  
 महत्सुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुखाधिकः । निगमयो दमो गन्ध दुर्भिक्षमयवर्जितः ॥ ९१ ॥  
 ना चारिर्ज भय किञ्चिन्नाप्यु मज्जति जनदा । न चानत्र भयं किञ्चिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥ ९२ ॥  
 न चापि बुद्धयं तत्र न तस्य भयं तथा । नगराणि च गृहाणि धनधान्ययुतानि च ॥ ९३ ॥

॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसके बाद बह्मक बरदानसे ग वृद्धगजान अरुनको मुक्त दण्डकर हुमानुसे रावणके मन्त्रियों  
 तथा बड़े बड़े राजासोको मारा । तदनंतर सीताको निवासस्थानपर छ ड मारी लङ्का आयाकर रामको सीताका  
 वृत्तान्त मुक्तके लिये लौट आये ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ वही हनुमान्ने भरतमा रामचन्द्रको पास जाकर उनकी  
 प्रदक्षिणा की और लङ्काका मारा वृत्तान्त सुना दिया । ७८ ॥ तदनन्तर राम मुष्पक साथ समुद्रतटपर गये  
 और मूर्खके समान अपने सेतुकी जगाम समुद्रको अभिन किया ॥ ७९ ॥ तब नरिराक्ष पति समुद्र हाथ  
 जोड़कर रामके समक्ष आया और उसकी सलाहसे रामने नर दान मनु नगर करवाया ॥ ८० ॥ उस सेतुसे  
 लङ्कासे पहुँचकर रामने रावणका मारा फिर सीताको पाकर अ जन लज्जित हुए ॥ ८१ ॥ उस समय  
 रामने भरती समामे सीताका कुछ बहुत बचन कहे । तब महाम अभिमर्ष होकर परम सती सीता अभिनम  
 प्रविष्ट हो गयी ॥ ८२ ॥ तदनन्तर अरुनके कथन सुमार रामने सीताको निवास समझा । राक्षक इस  
 कर्मसे सचराचर जिनको दग्धा तथा क्रुदि सब लोग प्रमत्त हुए । प्रमत्त हुए राम देखनाअसे पूजित हाकर  
 बहुत शोभित हुए ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ तदनन्तर लङ्काय राजमज्ज विभीषणका राजतिलक डकर राम सन्ताप-  
 से मुक्त, कृतकृत्य एवं अभन्दित हुए ॥ ८५ ॥ वही देवताओंने वर पाकर वानरों तथा प्रियजनोके साथ  
 पुष्पक विमानसे अयोध्याको लौट पड़े ॥ ८६ ॥ भरद्वाजक आश्रम प्रयाग पहुँचकर सत्यपराक्रम रामने  
 हुमानुको चरणक पास भंजा ॥ ८७ ॥ फिर पश्चिम बार्ता राव करत हुए सुग्रीवक साथ पुष्पकविमानपर बैठे  
 राम नन्दिग्रामको चले ॥ ८८ ॥ वही पहुँच तो आइरोंके साथ जटा त्यागकर निजस्थ रामने सीताको पाकर  
 पुन राजव प्राप्ति किया ॥ ८९ ॥ रामके राज्यमें शांति हुई, पुष्ट मन्त्र मुखा, धार्मिक, नीराय तथा दुर्भि-  
 क्षादिके भरसे रहित रहते थे उस समय राजाके सामन रिद्धके पुत्रकी मृत्यु नहीं होती थी । उस  
 राज्यकी स्त्रियों सीमापवनी एवं पतिव्रता होती थी ॥ ९० ॥ ९१ ॥ इस समय अन्निका भय जन्म इवरक्त  
 भय, वायुसत्रकी भय, ज्वरारिका भय पटली चिन्ता तथा और प्रायिका भय नहीं रहता था । सब नगर  
 और शारे राज्य चक्रवर्त्यपूर्ण थे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ इस राज्यमें समुद्रकी भीति सब लोग सर्वत्र सुखी रहते थे । सी

नित्यप्रमुदिताः सर्वे यथा कृत्स्नमे तथा । अथ मेघशतैर्गिद्धा तथा बहुमुषणकैः ॥९४॥  
 सर्वा कोट्ययुतं दत्त्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति । जमरुदेयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महापद्माः ॥९५॥  
 राजवज्रान् शतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः । सानुवर्ग्य च लोकेऽभिमान्ये स्वे लोके निथोक्ष्यति ॥९६॥  
 दशवर्षमहस्त्राणि दशवर्षशतानि च । रामो राज्यमुपासिन्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥  
 इदं पत्रिध एषस्त्वं पुण्यं वेदैश्च संमितम् । यः पठेद्वापन्नान्तिं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥  
 एतदारुणानमायुष्य पठन् रामायण नरः । मपुत्रपौत्रः भवति, श्रेष्ठ्य स्वमे महीयते ॥९९॥

पठन् द्विष्टो वागृषभस्वमीयात्स्यात्क्षत्रियो भूमिपनिवर्धयान् ।

वणिग्जनः पण्यपनिवर्धमीयाज्जनध शूद्रोऽपि महस्वमीयात् १००॥

एवं क्षिप्य नारदेन मुनिना यरुच धीमता । बान्धोक्तये वदन्कपैर्याचनमात्रं विवदिनम् ॥१०१॥  
 तावदेवार्थमादाय श्लोकवद्धं मनोरमम् । बान्धोकिना कृतं पूर्वं लघुरामायणमभिधम् ॥१०२॥  
 शतश्लोकमिदं स्वीयकवितायां च नमसा । तत्राग्रे कथिता सर्वं श्रवणान्पुण्यवर्द्धनम् ॥१०३॥  
 ब्रह्मदक्षवरेणैव सर्वे ज्ञान्वा मयै मुनिः । शनकोर्गिभिरा रामक्रोडां श्लोकेभ्यश्च दत्तः ॥१०४॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे अनन्तरकाय लघुरामायणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( कौसल्यादि माताओंका वैकुण्ठवास )

श्रीनन्द उवाच

अर्थकदा समापन्ने पौरा ज्ञानपदादयः । ज्ञान्वा राम परत्मान् एप्रच्छन्निषान्विताः ॥ १ ॥  
 राम राम महागज किंचिदुपदिशन्त्य नः । विषयमक्तचिन्तानां ज्ञानं येन भविष्यति ॥ २ ॥  
 इति तेषां वचः श्रुत्वा राघवः गम्भिरोऽब्रवीत् । निरन्तरं हृषदशो पुष्पाभिः श्रूयन्ते न हि तू ॥ ३ ॥  
 ग्रहो ग्रहो रात्रौ मन्दर्न, क्रियते सदा । अन्तु तच्छ गतं पूर्वदिनानां सकलजर्नः ॥ ४ ॥

अनन्तर यज्ञ करके लक्षण युक्त अन्तर्क वर्गित गीर्ण विविध प्रकार विद्वान् ब्रह्मणोका देकर राम हुनारों राजाओंक संशयो स्थापना करके च रो पणोंको प्रवर्तन अपने अन्तर निगुण करने ॥ ६४-६६ ॥ स्मारक हुनार वर्ष तक गडग करके राम अपने अज्ञानताका चले जायंग ॥ ६७ ॥ यद्विध पापनाशक पुण्यकारा तथा वदसमस्त इस रामचरितका जो प्राणा पद ॥ यह सफल पापमो मुक्त हो जायंग ॥ ७० ॥ यह रामायणकी कथा आनु-यदिनी है, इसको पहलसे मनुष्य पद धोत्रोस धारित देकर अपनेके वार रत्न पापसे वृत्ति होत है ॥९९॥ इस लघु रामायणकी पहलसे ब्राह्मण विद्वान् होत है, क्षत्रिय भूमिका स्वामी होता है, वैश्य व्यापारम सफल होता है और गृह महन्त्र पाता है ॥१००॥ इस प्रकार है शिष्य ॥ बुद्धिमान् नारदने वेदवाक्योंक आधारपर बालमोकि जोसे जिसना रामचरित कहलाया ॥ १०१ ॥ इतना ही अर्थ देकर बान्धोकिने पहले १०० श्लोकोंसे श्लोकवद्ध करके अपनी कवितामें इस लघुरामायणकी रचना की । सोने लुहारे आगे कहा । इसे सुननेसे पुण्यका वृद्धि होती है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ सुनगज बन्दीकिने शत्रु जाके दिग हृष्ट वरदानके प्रभवसे सब मृष्ट जानकर मो करोड़ कलाकाम रामचरितका वर्णन किया ॥ १०४ ॥ इति आशतकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽऽनन्तरकायवृत्त उद्देश्यता भाष्यमीकासहिते मनोहरकाण्ड प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने भक्षा—१०० दिन सोने पुष्पाभिसे तथा जन्मदशमियोने रामको परमात्मा समझकर वितथपूर्यक कहा ॥ १०१ ॥ हे राम ! हे महाराज ! हम आपका कुछ उपदेश दीजिए । जिससे हम विषयसक्त मनबालोंके मन मन प्राप्त हो जाय ॥ १०२ ॥ उनकी बात सुनकर मुग्धता हुए रामने कहा—क्या नित्य आप लोग हमारे उपदेशोंका नही सुनते ? ॥ १०३ ॥ रात्रिक समय पहर-पहरपर मैं दूत उपदेश देते

अथ तद्वचनं निशायां वृद्धिर्वचम् । श्रुत्वा विचार्य पञ्चान्मां प्रष्टव्यं यत्तु रोचते ॥ ५ ॥  
 सथेति रामवचनान्मर्त्ये भूत्वा निजं निजम् । मेहं ते स्वस्थचिन्ताश्च स्वस्तीभिर्मन्त्रकादिषु ॥ ६ ॥  
 इत्युक्त्वा दत्तकर्णा राजौ तदभ्युपनिविताः । नात्रचं गमद्वाथ सार्द्धमासे सर्दापकाः ॥ ७ ॥  
 धृतशस्त्रा दण्डहस्ता नानाबाहुरभस्थिताः । गतेषु दुन्दुर्मान्धृन्वरा तथा बाधान्यनेकशः ॥ ८ ॥  
 धृत्वा पृथक् पृथङ्नाभयालेषु संशुक्रानि हि । राजमार्गेषु सर्वत्र दीर्घशब्दानुदीर्यम् ॥ ९ ॥  
 हे जनाः श्रूयतां सर्वे किं मोहेन विनिविताः । नेष निद्रा सर्वाचीना कदाऽनर्घा भविष्यति ॥ १० ॥  
 स्वस्थचिन्तास्त्वय सर्वे भूत्वा न श्रूयतां वचः । नवद्वाराण्ययोध्यायामेकं तु लघु वर्तते ॥ ११ ॥  
 रामगज्ये भयं नेति कारणाद्द्वारभक्तैः । दीयन्ते वा न दीयन्ते कवाटादीनि वै तदा ॥ १२ ॥  
 मार्गला भृमलादीनि मन्त्रि द्वारेषु भो जनाः । कुम्भारणो महोभ्रो धाम्पाधारां स्थितस्त्विनि ॥ १३ ॥  
 श्रूयते न कदा एह केनापि भूवि मां प्रतप । एव मन्यसि नोपेक्षा रोगशान्त्यै प्रकुर्यते ॥ १४ ॥  
 गुमरुपास्तस्य दत्ताः साकंने विचरन्ति हि । न ह्यायते कदाऽप्याभिर्नागरा इव संस्थिताः ॥ १५ ॥  
 आगतश्चेत्परो दूनस्येके दूरे तदा क्षणात् । मेहं कृत्वा तु सर्वत्र दुर्गपालो निरुप्यते ॥ १६ ॥  
 इत्थं धनं यदाऽप्याभिस्तनस्त्वस्यां मदघशः । वर्तन्ते पादनाश्च नानावेषभगा जनाः ॥ १७ ॥  
 जीरन्त्येवं चिरं राजा एव मन्यसि नो भयम् । प्रयोध्यायां जायते हि तच्छलं को वदित्पति ॥ १८ ॥  
 एभिर्दूतैस्तस्मात्तु आत्मारामस्य चात्र हि । करणीयं भभोः किं हि सच्चिदानन्दरूपिणः ॥ १९ ॥  
 तेषां भयं तु युष्माकं दुर्बलाणां सदाऽस्ति हि । यज्ञाणुवो दुर्बलोऽयं चन्यर्थं दीयते जनेः ॥ २० ॥  
 दत्तो बलिस्तु सिद्धस्य कदा केन श्रुतोऽत्र न । अतो मूयं हीनवन्ताः किं निशायां विनिविताः ॥ २१ ॥

रहते हैं, सो क्या बात नहीं जानते ? यम्तु, जो समय गया सो गया । आज सब लोग राजको बगानसे मेरे दूतोंको जाने मृते और उनपर विचार कर । इनके बाद जो आप लोगोंको डण्ठा हो मो फूटण ॥ ५ ॥ ६ ॥  
 "तथायम्" कहकर वे सब अपने अपने घर गये और अपना अपना निजक साथ पनङ्गाए पनपदे जाते हुए रामक दूतोंके बगानर कान लगाय रह । उह घंटे रात आतनपर हाथोप दीयक लिये, दण्ड तथा अन्येक प्रकारके शस्त्र धारण किये, एक हाथोपर दुन्दुभी तथा विविध प्रकारके कात्र बगाने हुए गलियो तथा राजमगापर घुमन और उन बाबाको धार निनाद करन हुए व दूत आये और कहने लग — ॥ ६-९ ॥  
 हे गुम्फालियो नजर नुम मोहनिद्राये पड़े सो रहे हो ? यह मोह अच्छी मल्लो है । इससे कभी क्या घातो अनर्थ हो जायगा । आज तुम लोग स्वस्थ चिन्ता में न जान मृता । इस अवस्थासे तुम मो द्वार है और एक छोटा सा दसवां द्वार भी है । १० ॥ ११ ॥ रामक राजासे कोई भय नहीं है । इस बगालसे द्वारपाल कभी द्वार बन्द करन हैं, कभी नहीं भी बन्द करवे । १२ ॥ इन द्वारोंमें न कोई अर्गलादण्ड है और न जंजरे ही लगी है । सुनल है कि नगररक्ष दक्षिण और कोई एक काला चोर रहता है, किन्तु इस नगरमें आज तक उस किमान नहीं देखा । यह जान हुए न रामशान्तिके विषयमें उपेक्षा न करना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसके दून गुमरायमें अवश्य में घुमने रहन है । यदि हम लोग असावधान रहे और उसका एक भी दूत मिले घुम आया तो वह डण्ठारके भीतर हमारा भेद लेकर सब युगियाओंको मार डालगा । १५ ॥ १६ ॥ हमने यह भी मृता है कि उस चारके हजारों दूत नाना प्रकारके वेष धारण करके घुमने हैं ॥ १७ ॥ हमारा राजा राम विशुद्धरत्न है । जिनके प्रभावसे उन कानूओंके इतना करनपर भी कोई भय नहीं है । उन रामके बलका प्रणन कौन कर सकता है ॥ १८ ॥ ननुके दून इन आत्माराम और सच्चिदानन्दरूप रामका बग कर सकते हैं ? ॥ १९ ॥ हाँ, उन दूतोंसे यदि कुछ भय है तो यह तुम्हरे जैसे दुर्बलोंको है । ससारी लोग दुबल जीव बकरेका ही बलिदान करते हैं ॥ २० ॥ आज तक कहीं यह नहीं सुना क्या किसीने सिद्धी बलि दी हो । इन प्रकार बिबल हाँकर भी तुम लोग दलको मोरे हो ? ॥ २१ ॥

कदा कृत्वाऽत्र ते मेदं चोरपञ्चानयति हि । स कालो ज्ञायते नैव तस्माच्चिद्रा शुभा न हि ॥२२॥  
 स्वस्थचित्तास्थकनिद्रास्त्वस्यां पुर्यामर्हतिशम् । दृष्ट्वा भूत्वा सदा स्वप्नं शिवा धार्यः स्वमग्निधी ॥२३॥  
 कवचानि शरीरेषु सदा धार्याणि यो जनाः । धैर्यं धृत्वा न भैतव्यं यो जागर्ति निरन्तरम् ॥२४॥  
 अयोध्यायां न तस्यास्ति चांगदपि कदा मयम् । नैव हि स्मरणीयं हि सदाऽस्माकं वचः शुभम् ॥२५॥  
 सावधानाः सावधानाः सावधानाः सदा जनाः । भवध्वं चात्र माकेतपुरि स्थाहि निरन्तरम् ॥२६॥  
 इत्युक्त्वा ते राजदूताः कृत्वा दृष्ट्विति स्वनात् । वादय मासुर्वाद्यानि मज्जुनानि महान्ति च ॥२७॥  
 एव सर्वत्र पुर्यां ते विचेरु रामसेवकाः । एवं निशार्पा नैव नैव विचार किंचिदवगतं ॥२८॥  
 पौराणा बोधिताः प्रापुञ्जान तस्य विचारतः । ततः प्रभाते ते सर्वे योगं जानपदादयः ॥२९॥  
 समायां रायवं नत्वा तुष्टाः प्रोचुः पुरः स्थिताः राम राजीवपद्मासु त्वद्दूतवचनानि हि ॥३०॥  
 भूयन्तेऽत्र सदाऽस्माभिर्न विचारस्तदा कुतः । अद्यास्माभिर्निशार्पा हि त्वद्दूतवचनं शुभम् ॥३१॥  
 श्रुत्वा कृतो विचारो हि हृदि घुट्टया तदाज्ञया । लब्धं ज्ञानं प्रयोऽस्माभिस्त्वज्ञानं तद्वत् हि नः ॥३२॥  
 नैदानीमुपदेशं हि त्वत्तो वाञ्छाम राघव । इति तेषां वचः श्रुत्वा तान् रामः प्राह सस्मितः ॥३३॥  
 कथं तस्य हि तज्ज्ञानं किं भवं किं विचिन्तितम् । तन्मेऽग्रे कथनीयं हि विस्तरेण यथाक्रमम् ॥३४॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा जनाः प्रोचुर्मुदन्विताः । शृणु राम महापादो यन्लब्धं ज्ञानमुन्यते ॥३५॥  
 मोक्ष एव निष्ठा ज्ञेया निद्रा भ्रातिस्तु कथ्यते । ज्ञेयं भ्रातिः सर्पाचानाऽनर्थो मृत्युर्ग्रमिष्यति ॥३६॥  
 अयोध्येयं स्वीयदेहस्त्वत्र छिद्राणि नैव नव । लघु तन्मस्तके ज्ञेयं दन्ताया द्वारसकाः ॥३७॥  
 पक्ष्मौष्ठादीनि द्वारेषु कपाटार्नावृतानि च । प्राणाश्च ते राजदूताः पुर्यां निन्दमरुति हि ॥३८॥

न जाने कब ये तुम्हारा भेद लेकर उस चोरको यहाँ बुला लावे । उस समयको कोई बात नहीं सकता ।  
 इसलिए इस प्रकार सोना ठीक नहीं है ॥ २२ ॥ तब सब निद्रा त्यागकर रात दिन इस पुरीमें जाग्न रहो  
 और अपने पास एक तीक्ष्ण खदग रखो ॥ २३ ॥ अतः यदि कवच कारण बना, हृदयमें योग रखो, किसीसे  
 डरो नहीं । जो इस तरह जागता है ॥ २४ ॥ उस वृत्त अचोक्षामे तब कारण कोई डर नहीं है । हमारे इन  
 हितकर वचनोंका कभी भूलना मत ॥ २५ ॥ हे अद्याद्यावाभिया ! फिर भी तुमसे कहता हूँ सावधान ।  
 सावधान ॥ इस पुरीमें सदा सावधान होकर रहना ॥ २६ ॥ इनका कहकर वे दूत दुन्दुभी तथा अन्यान्व  
 गकल्पय वाद्य मञ्जर लगे ॥ २७ ॥ इस शीतले दूत रातभर सारी अण्ड्यामें घूम घूमकर थोड़ी-थोड़ी देरमें  
 तीन-तीन बार लोगोंको वही बात सुना-सुनाकर सजग करते रहे ॥ २८ ॥ दूतोंकी बताया जातापर विचार  
 कर-करके वे सब नगरनिवासी जानो हा गये । सब नागरिक और जनपदवासी समाये रामके पास  
 पहुँचे और प्रणाम करके कहने लगे हे राजीवपद्मासु राम ! जैसे तो हम निश्चय आपके दूतोंकी बातें सुनते थे ।  
 किन्तु सर्पातक उसपर विचार नहीं किया था । आज रात्रिमें उनको बातें सुनकर हमने उनपर आपके  
 आज्ञानुसार विचार भी किया है । प्रभो ! अब हमारा अज्ञान नष्ट हो गया और ज्ञान प्राप्त हो गया है  
 ॥ २९-३२ ॥ हे राघव ! अब मैं आपसे उपदेश नहीं गुनना चाहता । हम तरह-उन्की बात सुनकर मुष्कराते  
 हुए राम कहने लगे- ॥ ३३ ॥ अच्छा हमें यह तो बताओ कि वह ज्ञान तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ और तुम लोगोंने  
 उसपर किस प्रकार विचार किया है । मैं विस्तारमें कहूँ मुनाओ ॥ ३४ ॥ रायका प्रश्न सुनकर वे लगे  
 प्रश्नप्रनासे कहने लगे हे राम ! ना ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो तुमकाय कहते हैं । सुनिश्च ॥ ३५ ॥ मोक्ष दाहि है और  
 भ्राति निद्रा है । यह भ्राति कभी अच्छा नहीं मनी जा सकती । इसके फेरमें पड़नेसे अनर्थ पड़ूँ होगा  
 कि एक न एक दिन मृत्यु घर दवावगी ॥ ३६ ॥ अयोध्या अपना शरीर है । इसमें मुँह-कान आदि तो द्वार हैं  
 और दसवां द्वार मस्तकमें है । जिसे लोच सङ्ग्रह कहते हैं और दाहि आदि इन द्वारोंके रक्षक हैं ॥ ३७ ॥  
 आँखोंकी पलकों और और जोड़ आदि इनके दरवाजे हैं । प्राण ही राजदूत है । जो सदा इस पुरीमें चक्कर लगाते

आत्मा श्रेयस्वव गता जीवधेन्द्रियदेवता । श्रेयाश्च देहनगरे पीताम्बर मयूकम् ॥३०॥  
 कानो श्रेयो महावीरः विदोषाद्य मदाश्च ये । कालम्ब सेवका श्रेया नागरा इव सम्भिताः ॥३१॥  
 दुर्बलास्तेऽत्र जीवाद्यास्तेषामेवाम्बि नञ्जयम् । किं मोहे पतिता आत्मा कानपञ्चानपन्ति ते ॥३२॥  
 न ज्ञायते मृन्मृकालस्तम्बाद्भ्रान्ति शुभाऽत्र न । ज्ञानमेव महाबुद्धो वैराग्यतांशुगता स्वमेः ॥३३॥  
 सच्छील कवचं शयं धैर्यं मक्तिर्दृढा न्वयि । आत्मज्ञानेन जागर्ति न तस्याम्बि भयं कदा ॥३४॥  
 सावधानं सावनिष्ठ भवितव्यं सदाऽत्र हि । वाद्यानि च वनान्येव माधनं बोधदानि वै ॥३५॥  
 सदा भूताभि दृश्ये नानि बुद्ध्याऽवलोकयेत् । मोहभयः प्रभानोऽप्यमिदानीं स्वप्नुरः स्थितः ॥३६॥  
 स्वमेशान्मा ममेयं ते निवायस्थानपीरितम् । तवाग्रे ये स्थिताः सर्वे वयं त्वां मुक्तिमामताः ॥३७॥  
 किमिदानीं ते शृणुष्वोपदेश्यं स्वपाऽद्य किम् । तव कीर्तनमात्रेण नग मुक्तिं लभन्ति हि ॥३८॥  
 वयं न्वदन्तिकाः सर्वे मुक्ता एव न मञ्जयः । इति तेषां वचः श्रुत्वा मस्मिन्तः पादु तान्मयः ॥३९॥  
 सम्यग्बुद्ध्या परिज्ञातं मुने स्थेयं सदा जनाः ।

नान्यथा स्वमतिः कार्याऽऽत्मनो राम पृथक् स्थितम् ॥४०॥

इत्युक्त्वा सकलान्नामो ययो मीतामृहं मुदा । पीतया गतमोक्षान्ने चान्मान येनिरे पम् ॥४०॥  
 एव गमेष मोः शिष्य दूतवाक्यं सुबोधिताः । पैराः सर्वे यथा तच्च मया ते विनिवेदिनम् ॥४१॥  
 एकदा कैकर्या रामनागराय प्रणिपत्य मा । अमरीन्मभुर वाक्यं विनया-पुगतः स्थिता ॥४२॥  
 राम राजावप्राश्रय मया यदपराधिनम् । पुगाऽहानाख्या सन्व सन्नत्यं वै कृपानुदा ॥४३॥  
 अहं ते शरणं प्राप्ता मामुद्रर जगन्पते । किञ्चिदुपदिशस्व न्व येनाज्ञानं विनश्यति ॥४४॥

रहते है ॥ ३८ ॥ इनमें आत्मा राजा है और ज व लया इन्द्रिया इस नगरक निवास है ॥ ३९ ॥ काल महान्  
 चार है और वात पित्त कफ आदि उसक सेवक लो देशमें नागरिकोंकी तरह रहते है ॥ ४० ॥ इस नगरमें  
 जीव आदि नागरिक स्वयं है । जतम्ब उन्हीकी चोरका विशेष भय रहता है । परि ने नागरिक मोक्षप्राप्त  
 होकर भ्रममें पड़ जाय लो अवस्था बाकर ये चोरके सेवक अवश्य रूपमें स्वामी कायका बुद्धा लावय ॥ ४१ ॥  
 मृ युका समय किसीको मानुस नहीं है । इस कारण नास्ति रहता ठाक नहीं है । हमके लिये जान स्वयं है  
 और बैराग्यको उगकी नीकी पार समझों चाहिए ॥ ४२ ॥ सदाचार वचन है और आपमें हर भक्तिता हेतु  
 ही धैर्य है । जो मनुष्य आ ममानपूर्वक लिये आगता रहता है उसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं रहता ॥ ४३ ॥  
 मदा सब आगोंका जाननिज हाना चाहिए, यही मावधान रहनेका मन्त्र है । साधुओंन ज्ञानदायक बातोंक  
 समान उन रूतोंके बाते है ॥ ४४ ॥ सब लोगोंको चाहिए कि उन बातोंको हृदयमें रखने और अपनी  
 बुद्धिहिमें दन । इस प्रकार है राम ' आज हमारे मोहनाशका प्रभाव आपके सामने व्यप्यित है ॥ ४५ ॥  
 आपही आत्मा हैं और यह मया आपका निवासस्थान है । आपके सामने हम जितने राग उपस्थित हैं,  
 सब मुक्त हो गये है ॥ ४६ ॥ और आपसे क्या वृत्तता है और नग हमारे लिये आपकी उपदेश देना है ? हमारा  
 ही यह विश्वास है कि आपके नामकी उन्नमात्रसे प्राणी मुक्त हो जाते है ॥ ४७ ॥ आपके समीप पहुँचे हुए हम  
 सब लोग मुक्त है । इसमें कोई मन्दरु नहीं है । इस तरह उनका काल सुनकर मुनकाने हुए राम बाले— ॥ ४८ ॥  
 तुम लोगोंने अपनी बुद्धिमें सब कुछ समझ लिया है । सब मानसपूर्ण रहो । कभी अपनी बुद्धिमें यह बात  
 न आने देना कि राम मुझसे अलग है ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर राम प्रसन्नतापूर्वक मीताके महलमें चले गये ।  
 जिन पुरवासियोंके किसी प्रकारका अज्ञान भा, अब यह सब नष्ट हो गया और वे आत्मज्ञानों बन गये ॥ ५० ॥  
 हे शिष्य ! जिस तरह रामके हुतासे उनका प्रक मानुस हुई, वह सारा कथ पने कह सुनाओ । ५१ । एक  
 समय कैकरी रामके पाल लयी और प्रणाम करके मोठे-मीठा बातोंमें कहने लगी— ॥ ५२ ॥ हे कमलपत्रको  
 समान नमोस्तु राम ! मैंने उस समय अज्ञानवश जो अपराध किया था उसे क्षमा कर दो । क्योंकि तुम  
 कृपानु हो ॥ ५३ ॥ मैं जगन्नाथ ! हे वृष्णारी शरणमें आयी हूँ । मेरा उद्धार करो और मुझे कोई ऐसा उपदेश

तत्तथा वचनं धृत्वा रामो राजावलोकनः । उवाच कैकेयी वक्त्रं मयि प्रहसन्निव ॥५५॥  
 न त्वया मेऽपराधं हि मच्छन्दोऽहं सम्यक् । स्थित्वा त्वाम्ये सा प्रह वरय आदि यन्पुरा ॥५६॥  
 न च कैकेयि शुद्धमि न्वपि क्रोधो न मेऽस्ति वै शस्त्रां नीत्वोपदेशं हि कारयिष्यति लक्ष्मणः । ५७॥  
 इदुक्त्वा तां चिमन्तर्गथ लक्ष्मणं गच्छोऽनरोत्तु । शिविकास्थां हि कैकेयी यः प्रभाते गिरि मम ॥५८॥  
 त्वया नैया वदितं पुण्याः मर्यादा तटं प्रति । अविमृष्टसंस्थानं वर्तते यत्र तत्र हि ॥५९॥  
 अविमृष्टानि कर्त्तव्या कैकेयी शिविकास्थिताम् । अविवाक्यानि आख्याणि मुहूर्तं मम वाक्यतः । ६०॥  
 आनेन्यस्य तव श्रेय कैकेयी मम मतिधी । इति तटामवचनं धृत्वा स लक्ष्मणोऽपि च ॥६१॥  
 तथेयुक्त्वा तदा राम तूष्णीं तस्थौ नदग्रतः । अथ प्रभाते मौमंत्रिर्गत्वा मरुमन्दिरे ॥६२॥  
 शिविकायां स कैकेयी समाकृता सुदान्विताम् । दासीभिः सेवकैश्च वैष्टिनां वैत्रराजिभिः ॥६३॥  
 तां निनाय षडिः पुण्याः मर्यादा तटे वरे । अविमृष्टानि कर्त्तव्या स्वपयामास लक्ष्मणः ॥६४॥  
 मुग्धानां कैकेयी विश्रामे ज्ञान्वा दक्षिणेऽङ्गुला । दृष्टुः शिविकापृष्ठे लक्ष्मणम्लान्यवापयत् ॥६५॥  
 अनिमृष्टां पद्माद्या ये हे ज्ञेया द्विजारयः । दानादाः पण्डिता नृते श्रोत्रिणा न प्रतिष्ठिता ॥६६॥  
 ततो दत्तान्तरं कृत्य मुक्ताजालानि लक्ष्मणः । ऊर्ध्वं कृत्वा स्वहस्ताभ्यां कैकेयी वाक्यमवर्गात् ॥६७॥  
 पठ्य कैकेयि मातृत्वमविगृह्य पुनःस्थितम् । रामेण मेमिताऽपि न्यमुपदेशमददात् ॥६८॥  
 तन्मा मित्रवचः श्रुत्वाऽऽश्चयमुक्ताऽथ कैकेयी । प्रतापिताऽहं रामेण किमत्र श्रेय माददम् ॥६९॥  
 इति तर्कान्कुर्वता सा तस्थौ तूष्णीं श्रुणु तदा । तावच्छ्राव सा मे मे स्वविवाक्यानि वै मुहुः ७०॥  
 तानि श्रुत्वाऽथ कैकेयी तदा चिन्तेऽविचारयत् । मे मे निवृत्तिं मुदुश्चात्र किमर्थं वचनानि हि ॥७१॥  
 अक्षयः सखा वदन्त्यत्र मुदोऽर्थस्त्वत्र वर्तते । ततो निमान्य कैकेयी नेत्रं पश्यन्वा श्रुणु हरे ॥७२॥

दो, जिसका मेरा अज्ञान नष्ट हो जाय ५४ ॥ इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर राजा राम  
 कहने लग्य -- ५५ ॥ हे माता ! तुमने हमारा कोई अपराध नहीं किया है । उस समय हमारी ही इच्छासे  
 समझताने तुम्हारे सुनने बैठकर यह सब सोचाया था ॥ ५६ ॥ ' कैकेयी ' तुम मुझे ही, तुम्हारे ऊपर मे-  
 ने कुछ भी कष्ट नहीं है । कष्ट लक्ष्मण तुम्हें नहीं वे आकर उपदेश दिया दोगे ॥ ५७ ॥ एसा कहकर उस विदा  
 कर दिया और लक्ष्मणसे कहा कि हमारे कथन-नुसार काल कैकेयीको तगरके बाहर सरयुतटपर लगी कि भेड़  
 मूलो है, यहाँ न जाओ और उन भेड़के मुगसे हूँ पाल्य उपदेशमय वाक्य सुनकर कैकेयीका यहाँ मर  
 पास न जाओ । इस प्रकार रामका आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने ऐसा करना स्वीकार कर लिया और चुपचाप  
 रामका समगल वेष ५८ ॥ इसके अनन्तर सरयुतटपर जा भारतके भवनमें पहुच ॥ ५९ ६० ॥ यहाँ कैकेयीको  
 पालकीय विदाकर राम रामो तथा लक्ष्मण आदिके साथ उस अशुभशुभक वदर सरयुतटपर लगी कि  
 भेड़ रहते थी, वगैरे । यहाँ पहुचकर उन्होंने सब रोक दिया ॥ ६१ ॥ ६४ ॥ जबकि सरयुतट पर लक्ष्मण  
 पारक के साथ गे रहें थे, तब प्रत्येक वाहगाने समझ कि कैकेयी स्नान करके लौट रहे हैं । तब राम, पु-  
 ण्य, इन्द्र इत्यादि शक्तिसे लटक लिये दीह बर । लक्ष्मणने लक्ष्मणका । क्योंकि वदर सरयुतट पर, पु-  
 ण्य और अन्य आदि थे । उससे कोई भी वाक्पण ऐसा न था, जो प्रतिष्ठित श्रेष्ठिय रहा हो ॥ ६३-६५ ॥  
 जब लक्ष्मणके मनमें कष्टपर था उन आशान पेड़ा नहीं छोड़ा तब विवश होकर उन्होंने ने लगी दानी उन्हें  
 हटवाया और शक्तिसे लक्ष्मणके जाने परका अपने हृदयसे उनकर कैकेयीसे कहा -- ॥ ६६ ॥ ' कैकेयी !  
 शक्तने मेहोका दुष्टकी ओर देखो । रामका दान, आरयपूर्वक तुम्हें इन्गीसे उपदेश लनके लिये भेजा है  
 ॥ ६८ ॥ लक्ष्मणकी बात सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह अपने मनमें सोचने लगी ' रामने यहाँ भेज  
 कर मुझ को ला तो नहीं दिया है ।' इस प्रकार मरहन्तरहके लक्ष्मणके करती हुई कैकेयी क्षणभर चुप-  
 चाप बैठा रहा । एसा उसने कई बार भेड़के मुगसे ' मे मे ' की शक्ति सुने ॥ ६९ ॥ ७० ॥ सो सुनकर  
 कैकेयीने अपने मनमें सोचा कि भेड़ बार बार ' मे मे ' क्यों करती है । इसमें कोई न कोई गुह्य भाव छुपा हुआ



सर्वं ज्ञत्वा मनाज्ञाना मुनोप निवर्गं तदा । मत्तः सिद्धिमानना प्राप्त लक्षणं पुरतः स्थितम् ॥७२॥  
 लक्ष्यं ज्ञानं मया च तत्त्वमसीदध्वं प्रति । इति तस्माद्यच्चः श्रुत्वा दुःखं ज्ञानान्निमुन्य मः ॥७३॥  
 दानान्द्रुगतान्वैशद्यं तर्गं प्रति । ईकेशं मन्दापाम् योनागेह विवेश मा ॥७४॥  
 तत्र दृष्ट्वा समर्पितं सीतया रत्नदन्तम् । चक्षुष्यान्तं साक्षिभिर्यत्रेण्योप करेण हि ॥७५॥  
 मीनाहमघुतादर्शं पश्यन्तं समुत्तेन्दितम् । तं जना पाया मज्जता केयं वाक् समर्पार् ॥७६॥  
 राम ते कृपा । लक्ष्मणेन कश्चित् ॥ ७७ ॥ अद्भुतं मे मनो मे हृदयदानी न प्रयोजनम् ॥७८॥  
 उपदेशेन ते गम मया मुक्ता । इति शब्दः । तन्मया च न श्रुत्वा मन्थितं प्रहता विभुः ॥७९॥  
 कथं ज्ञानं दत्त्वा जनं विचार्य चक्षुः कृत्वा । तं सर्वं शिखरेणोऽनमय रत्नं केकाय ॥८०॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा ईकेशो प्रादौ गायय ॥ शृणु राम । त्वं लक्ष्मणेन तव वदाम्यहम् ॥८१॥  
 मयाऽधिवचनाभ्येव तत्राभियुक्तमिदं । श्रुत्वा मे मे त्रितये मया हृदये मन्थितं क्षणम् ॥८२॥  
 मे मे त्रिति ममेनाश्र आश्रयति मुहूर्तेषु । श्रुत्वा मे मे त्रितये मया चक्षुष्य नहि वै मया ॥८३॥  
 मे मे प्रकृष्टवते निन्य पशुपुत्रपुङ्गवसु । मनो यक्षु नोपदेशाय मामताभिरुच्यते ॥८४॥  
 वक्ष्ये चोपदेशाय निषेधे मा प्रकर्तव्यते । जनोऽहं न कदाहं मे प्रवदामन्वत परम् ॥८५॥  
 मे माना मे सुतशाय मे यं गुणं कुरु वरम् । मे राज्य मे माननाय मे संपन्न्याप्तसम्पदम् ॥८६॥  
 मे श्रीरामिदं कर्तुं मे दिव्यामण्यं वरम् । मे मय्यग प्रिया दामो पुत्रादीन्पशुभा धनः ॥८७॥  
 यादृश्य मे मन्थितं वा त्यक्तव्येति मायना । योययामासुवचनः शीघ्रैः रपट् श्रुत्वा ॥८८॥  
 अन्धश्रुतं नरान्तर्गताधान्यो बोधयति हि । ममेवमुक्तं मदऽध्वनिः पूर्वज-मनि वर्तितम् ॥८९॥  
 दहस्वतो ह्यहर्लब्धो मूढमामिमं मलिङ्गु मा । सर्वतः साऽत्र स्थलक्या नगीकार्य कदाचन ॥९०॥

है । इसका मत उससे आदि मन्द कर ले आगे धारा इस तक नीर करके सोचने लगी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ उसका मारा भद्र जग ही न-पर वह बहुत प्राप्ति हुई । तद्भुतगुरुकर लक्षण म कहा-वत्स । मुझे आज प्राप्त हो गया । अब रामसे पास ले चला । उसकी बात सुनकर लक्ष्मण-पुत्राचार्य पद डाल दिया ॥७३॥ ७४॥ दूरपर बैठे हुए दोनों जागते दृष्टाया और मनसाक लीट जग । ईकेशकी सीताके महलोमें पहुँचा दिया और वह भीतर चला गया ॥७५॥ वही पट्टककर बंजारा । तत्र विजय राजाके पास बैठे हुए सिरपर एक निविष्ट प्रकारकी दासी बांध रह है ॥ ७६ ॥ सोना हुआ । तत्राभियुक्तम् । ओं राम कपला पुत्रकमल देव जा रहे है । ईकेशने पहुंचत है । रामका प्रणाम लया और कहते लगी- ॥ ७७ ॥ हे राम । आपका कृपाके मेने अहोंक वापसी द्वारा सज्जात भगवत नि । मया मन्थित हो गया । तब मुझे आपकी उद्देश्यकी आवश्यकता नहीं रही । हे नायक । मे मन्थित नि । तत्राभियुक्तम् । इस प्रकार केशकी बात सुनकर मुहुरात हं राव बोले- ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ मुझ ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? तत्राभियुक्तम् । मुझे वतलाया । ८० ॥ रामके हृदय प्रथमको सुन्दर कैकेशीन कह- ॥ ८१ ॥ मुनः श्रुत्वा मन्थितं मया हृदये मन्थितं क्षणम् है, तो सुनाती हूँ ॥ ८२ ॥ उस मुहूर्ते लक्ष्मणके पास पहुंचकर मैंने उक्तं मुन्यं नि । तत्राभियुक्तम् । मे मे का शब्द सुना । फिर बाड़ी देर तक हृदयम विचार किया । तब मैंने नि । तत्राभियुक्तम् । मे मे कहके मुझे यह सुनाती है कि संसारके लोग जो सर्वदा अपने साधवर्गों, ब्रह्मणः पशु कर्दिनः । मया-यह मेरा है । ऐसी बुद्धिके आश्रम पड़कर अपना सर्वस्व गह कर काजते हैं । यह ठीक है । इसलिए है राम । अबसे मे इस ममताके बन्धनमें कभी भी नहीं पड़ूंगी ॥ ८३-८५ ॥ अभा मर ता मे- ॥ ८६ ॥ यह भाई है, यह मेरा सुन्दर घर है, यह मेरा राज्य है, यह मेरी सोच है, यह सोचला लड़का, यह मेरा प्रिय है, ये दिव्य मेरे भल्लकार हैं, यह मेरी प्रिय दासी मयरा है, ये सब बन्धन हैं अति ममता, उक्तं मुन्यं नि । तत्राभियुक्तम् । मुझे स्पष्ट उपदेश दिया है कि ममता त्याग दो ॥ ८६-८८ ॥ तत्राभियुक्तम् । त्रितये मया हृदये मन्थितं क्षणम् । तब मुझे उपदेश देती रहती है कि पूर्वजन्मकी ममताबुद्धि ही मुझे इस जगत्को पहुंचाया है और यह वेकहा करीद मिल है । अतएव मुन



तदा केदं मानुषीन्वयनरजाभ्यां दृष्टेच्छ मे । तदाहं मानुषी नैव न चैवान्या कदाचन ॥१०९॥  
 मानुषी राक्षसी चेतीमानि सामानि नानि च । देहादिकञ्च पश्यते देहस्य नखराः स्मृतः ॥११०॥  
 देहादिकारिण काल्यन्या याऽह इयं ०० नैवदा । अगमि मर्ता भूयसा कऽह येति वेजिन ॥१११॥  
 इदानीं तु मया ज्ञात यथा विष्णुस्तथा स्वहम् । नानारूपाणि मोऽप्यत्र मन्त्रादीनि दधानि हि ॥११२॥  
 तथा नानास्वरूपाणि धार्यन्तेऽप्रापि वै मया । एवमेव हि वक्तव्यं तर्हि मे तस्य चामरम् ॥११३॥  
 स्ववशोऽस्ति महाविष्णुस्तदं विष्णुवशा मया । अतो विष्णोः कृत्वा चाहं मन्त्रमेव मशयः ॥११४॥  
 विष्णोर्मे नैव भेदोऽस्ति यथा गङ्गा काले ददे । गर्ककाभ्यश्च तद्वच्च विष्णुमेवादमस्मि हि ॥११५॥  
 अहमेव यदा विष्णुस्तदा किं चावग्रेषितम् । उन्मथ्यं त गमाय जीवन्मुक्ताऽहमस्मि वै ॥११६॥  
 एव सुमित्रा सचिष्य मयाज्ञाता मुदन्विता । अनिग्रह्य निजा नीमा प्रशान्ते राघवं ययौ ॥११७॥  
 मन्वराणाम तदा प्राह मया गार्गी निविनितः । का नर एता मया पूर्व तस्यं नक्त गधव ॥११८॥  
 स्वयो नान्यथा प्रष्टव्यं त्वद्विद्याऽह कदापि न । अन्यन्वा मा पथा गेहे जिते स्वे हृदि मद्रितम् ॥११९॥  
 तत्सर्वं भावयित्वा तं जीवन्मुक्ताऽभवत्तदा । सुमित्रो गधोऽप्याह मन्त्राय दया विधितितम् ॥१२०॥  
 जायन्मुक्ताऽपि चाभ्यन्तं गन्तुं गेहं सुखरम् । नर सुमित्रा मनुष्या गन्तोऽप्युत्तमम् ॥१२१॥  
 सीता चापि पृथक् जीन्वा गयी नरपथमर्हम् । एवं शिष्य मया शोक काण्ड येति विचारतः ॥१२२॥  
 जीवन्मुक्ता सुमित्रा मा बभूव सुचनिर्भय । अन्यच्च ते वदाश्च तच्छृणुष्व द्विजोत्तम ॥१२३॥

रामन हमस यही पूछा है न कि मे कोन हूँ ? तो उसका क्या उत्तर है । आखिर मे देवी हूँ, दलवी हूँ, राक्षसी हूँ या मानुषा हूँ क्या हूँ ? यदि रामसे जाकर कह दूँ कि मे मानुषा हूँ, तो भी नहीं बनता । क्योंकि ऐसा कहना हम नाटकक पात्रका तरह जेकर रूप धारण करने वाला है । इससे निश्चय हुआ कि मे न मानुषी हूँ, न और ही कुछ । पूर्वजिन मानुष राक्षसी अदि जातो गलत रूप देहकी हूँ और यह देह नाशवान् बदलने है । इससे यह मानूस जाना है कि जब मगरमे पृथ्वी मे बारी हूँ और पृथ्वीपर तरह तरहके रूप धारण करती हूँ । लेकिन यह जो मे है क्या ? ॥१०-१११॥ हाँ, सब यह जान हुआ । जिस तरह भगवान् जनक रूप धारण करके इस पूरुषमन्त्रसे अनेक देह धारण करके मे भी हूँ । ये भी मन्त्र-रूप अदि किसने भगवान् धारण करके आनन्द में जीता तब सम-सम-रूप विविध प्रकारके रूप धारण करके भगवान् मे भी करता जाता हूँ । फिर हमन और विष्णुसत्त्वकायल अन्तर है क्या है ? ॥११२॥ ॥११३॥ अन्तः यही है कि विष्णु स्वर्धीन है और मे विष्णुभक्त न हो बरबल हूँ । अन्तर वह निश्चय हुआ कि मे विष्णुभक्त-मानुषी एक कला हूँ ॥११४॥ अब यह भी निश्चय हो गया कि हममे और भगवान्मे कोई भेद नहीं है । जिस तरह गङ्गाका अन्त गङ्गाके प्रवाहमे रहना हुआ गङ्गाजल रहना है, उसी तरह भस्मे आकर भी गङ्गाजल ही रहता है । इसका सार यह निकल कि हममे और भगवान्मे कोई भेद नहीं है । हम और भगवान् एक ही है । अब मे स्वयं विष्णुभगवान् हूँ तो आपको क्या कहा जो जाकर रामसे पूछूँ । मे तो जीवन्मुक्त हूँ ॥११५॥ ॥११६॥ इस प्रकार विचार करनेसे इनकर अज्ञान नष्ट हो गया । वह जिन विचारक सबेरे ब्रह्मसत्तापूर्वक रामके पास पहुँचीं । ॥११७॥ वहाँ रामकी प्रणाम करके सुमित्रा कहने लगी-कल आपने मुझसे जो पूछा था कि मे कोन हूँ ? जो विचार करनेपर मुझे मानूस हुआ कि मे मानुष न हूँ ॥११८॥ अब मुझे आपसे कुछ भी नहीं पूछना है । क्योंकि मे आपसे पृथक् हूँ ही नहीं । ऐसा कहकर रात्रिसे उम्हनेने अपने हृदयमे जैसा विचार किया था सो कह सुनाया । वह सब सुनकर वह वास्तवमे जीवन्मुक्त हो गयी । यह सीकर रामने कहा- हे माता ! तुमने बहुत ठाक विचार किया है ॥११९॥ ॥१२०॥ अब तुम अन्तर्मुख हो गयी । जाकर आनन्दसे अपने घरमे विवास करो । इससे सुमित्राका मोह नष्ट हो गया और मे राम तथा मन्वा दोनोंको अलग अलग प्रणाम करके स्वमणक यही चला गयी । हे शिष्य ! इन विचारसे कि मे कोन हूँ, सुमित्रा जीवन्मुक्त हो गयी और उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा । हे द्विजोत्तम ! मे मुझे एक और वृत्तान्त बतलाता हूँ, जो सुनो



देहवृद्धिर्देहा मष्टा तदा किं शेषमस्ति हि सुखदुःखं तु देहाय न मे किञ्चिद्वृत्तम् ॥ ११ ॥  
 निष्ठान्वयं वा पततु देहो भोगाश्रयः प्रभो , अहं स्वर्गं गच्छत्य पृथगुपाधितः स्मृतः ॥ १२ ॥  
 यथा कृष्णे गीर्वाभयो दृश्यतेऽप्युपाधितः । स्वलोप्यते कदा भिष्यन्नर्थावधारणे ॥ १३ ॥  
 इति वन्मातृवचनं श्रुत्वा रामः स्मितवान्नतः । कीमन्पुत्रमस्मिन् सुखादप्यहं न मया ॥ १४ ॥  
 मम्ययि च रितं चित्तं दासदास्यं न येन्यम् । गच्छति पुत्रं मेहे त्विमां बुद्धिं ददां कृष्ण ॥ १५ ॥  
 किमयं न मया पूर्वं युष्मद्वचननेन हि । उपदेशः ह्यनम्यस्व नम्यते न्य निवेशय ॥ १६ ॥  
 उद्देशा गुरुर्हो यो युष्माकं जनयस्त्वहम् । कथं युष्माकं मातुस्तह्योषदिज्ञायते ॥ १७ ॥  
 श्रीर्गोपतिगुरुर्हो यः सर्वभिनान्यो गुरुः कदा । कार्यस्तस्याः मया नैव युष्माकं व्याख्योपदेशिन् ॥ १८ ॥  
 पीताम्बुजं च गुरुस्त्वान्नमथा सर्वभिनान्यो गुरुः । अतस्तेन मदि नया ह्यनयाप्योपदेशिन् ॥ १९ ॥  
 पगर्ह्यरेव युष्माकमुपदेशः कृतो मया । गच्छति मेहे पुत्रं निष्ठं मदा मां परि ॥ २० ॥  
 उद्यमवचनं श्रुत्वा कीमन्पुत्रो गुरुमानसा । राम न वा ययौ मेहे मनुष्या मस्थिता मुनयः ॥ २१ ॥  
 एव ना रावचन्येण वेधिता यादव शुभ्रः । स्वस्वापुः क्षये पर्याः स्वदेहात्समुत्तुः सुपत्न ॥ २२ ॥  
 रामसाक्षिश्चमात्रेण विमानवस्त्रमाश्रिताः । तस्मै न्यस्तु वकुण्ठ गच्छेत्तत्र मन्त्रिताः ॥ २३ ॥  
 शिष्य तासां महद्गुरुर्हो यो गमादिभिस्त्रिभिः । पण्डितैश्चैव कर्मैश्च हर्षादिभिः ॥ २४ ॥  
 एव शिष्य मया मोक्षा नास्मात्पूर्वगतस्त्वेव । उद्देशास्तथा तासां मोक्षाश्चैव ते मया ॥ २५ ॥  
 इति आश्रितकौटिल्यामवतितानर्गुं ध्यायन्तन्दरामाग्र्यं । अतस्त्वेव न्यस्तु वकुण्ठ गच्छेत्तत्र मन्त्रिताः ॥ २६ ॥

— **THE** —

नवम यह समझ लिया है कि यह 'अहं' शब्द देहम अर्थात् शरीर है—आत्मा नहीं। तबसे मैंने इसका  
विलक्षण कर दिया है। तबसे मेरा यह व बुद्धि भी नष्ट हो गई है कि मैं कौन हूँ ॥ १४०॥ जब कि यह  
बुद्धि नष्ट हो गयी, तब फिर वही हो गया यह मय । हे भगवन्तम ! मेने समझा कि मैं मय हूँ। मय  
इस दशा स्थिति में आत्मा कहलाता है ॥ १४१॥ आत्मा को आश्रयस्थिणी यह कथा रहे व नष्ट हो जाय ।  
हे प्रभो ! वास्तवमें तो मैं आपका एक अंग हूँ । मातापिता तो केवल उपस्थिमात्र हैं ॥ १४२॥ जना नरक होंगे  
कि धाममें पट १११ सेनापर उसमें एक सूर्य और दिव्य जल नवन ह । आपसे अमृत वर मांगी यह ही  
नहीं सकती । मैं ही सहा हूँ ॥ १४३॥ इस प्रकार मय व अहंकार मुक्त हो जाय । तबसे मैं ही हूँ ।  
तुम आनन्द हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ ।  
किया है । अब जाओ, जन्ममरण चरम रहो और अपने अहंकार को छोड़ दो ॥ १४४॥ तबसे मैं ही हूँ ।  
जब आप लोगोंने मुझसे उपदेश सुनना चाहा था और मैं मुँह बन्द कर दिया था, तबसे मैं ही हूँ ।  
उसका भी कारण सुनो ॥ १४५॥ इसमें यह भेद है कि उपदेश तो मैं ही हूँ, किन्तु मैं आपका पुत्र हूँ ।  
तो मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ ।  
उपदेश और कोई ही ही नहीं करता । मित्रों का कार्य वह है, जो वेदों में और किताबों में आता मुक्त  
न करता । इसी लिए मैंने अहंकार को छोड़ दिया । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ ।  
क मुँह तो उपदेश किया । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ ।  
बत मुक्त कर को । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ ।  
रामचन्द्रजीके द्वारा उपदेश देकर वे शकारों मुक्त हो गये । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ ।  
तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ ।  
गयी ॥ १४६॥ हे शिष्य ! तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ ।  
आ दन हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ । तबसे मैं ही हूँ ।  
बापों तथा उपदेश यदि कहूँ मुझसे ॥ १४७॥ इति श्रीभगवद्गीता उपनिषद्सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १४८॥

## तृतीयः सर्गः

( रामपूजाका विस्तार )

विष्णुदास उवाच

कथं श्रीगणेशाय रामोपासकमानवैः । कार्या वै मानसी पूजा बहिःपूजा तथा शुभा ॥ १ ॥  
 कथं श्रीपायना प्राप्ता गुरो श्रीगणेशाय च । का श्रेष्ठोपायना चात्र कः श्रेष्ठोऽत्र गुरुस्तथा ॥ २ ॥  
 के के मन्त्रा गणेशस्य भक्तानां विद्विदायकाः । निधिम्नेषदा मस्य किं किं ततोऽपवर्द्धनम् ॥ ३ ॥  
 कः श्रेष्ठोऽत्र चरो देवो यस्य ग्रन्था उपामना । तन्मते विस्तरेणैव गुरो त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्पक् पृष्टं स्वयं शिष्य सावधानमनाः शृणु । सर्वं तद्विस्तरेणाद्य स्वदग्धे कल्पने मया ॥ ५ ॥  
 आदौ गुरु परीक्षया तच्चिह्नैश्च द्विजोत्तम । उपदेशस्तत्तन्स्मादप्राप्तार्थं विधानतः ॥ ६ ॥  
 गुरोर्ध्वं च चिह्नानि तत्रादौ प्रयदास्पम् । क्रोधी कुप्टी महारोगी मलिनो निधूर्णो जडः ॥ ७ ॥  
 अपण्डितो निन्दकश्च लोभुषो विषयातुरः । दांभिको गर्वमयुक्तः पापात्मा दुष्टवशजः ॥ ८ ॥  
 घातो परद्रोहकर्ता परद्रव्यापहारकः । अज्ञितान्मा वेदवाद्यः परदारतः सदा ॥ ९ ॥  
 परदारोपकटव कृपणश्चाजिनेन्द्रियः । वेददेवद्विजानीनां यत्नित्यर्थगवापि ॥ १० ॥  
 तुलसीवद्विर्याणां द्वेषा योग्यो गुरुर्न हि । वेना मकलधर्माणां शास्त्रेषु परिनिष्ठितः ॥ ११ ॥  
 सन्धवाङ् मिनभुगज्ञानी कलाशब्दितवशजः । मन्कर्मनिष्ठो धर्माणामुपदेशा सुबुद्धिदः ॥ १२ ॥  
 योगास्पामकलाभिज्ञो योगकान्तमदर्शनः । कृतकर्मा तीर्थसेवी धर्मधर्मविवेचकः ॥ १३ ॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा ज्ञानप्रस्थाश्रमी यतिः । श्याश्रमाचारमनिष्ठो बुद्धिमान्विदितोन्द्रियः ॥ १४ ॥

विष्णुदास ने कहा—हे गुरो ! इस संसारमें रामका उपासना करनेवालाको रामका मानसी पूजा किस प्रकार करनी चाहिए ? ॥ १ ॥ और फिर गुरुके नामसे उपासना किस प्रकार ग्रहण करनी चाहिए ? सम्पूर्ण उपासनाओंमें सर्वश्रेष्ठ उपासना कौन सी है और श्रेष्ठ गुरु कौन होता है या भी बतला दीजिए ॥ २ ॥ साथ ही यह भी बतलाइए कि रामके तीन तीनसे ऐसे मात्र हैं जिनसे भक्तोंका आनन्द प्राप्त होता है । कौन-कौन-सी त्रिविधा ऐसी हैं, जिनसे भक्तोंका मन मन्त्रु होता है ॥ ३ ॥ इस संसारमें कौन श्रेष्ठ देवता है, जिसकी उपासना की जाय । हे गुरो ! यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ ४ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मारी बातें विस्तारपूर्वक कहता हूँ । संवधान होकर मुनी ॥ ५ ॥ लोगोंको चाहिये कि पहले गुरुकी परीक्षा करके उनके चिह्न समझें । इसके अन्तर किंसा पवित्र तीर्थमें उनसे विविध उपदेश ग्रहण करें ॥ ६ ॥ प्रकटवक्त्र पहले मैं तुम्हें गुरुके लक्षण बतलाता हूँ । जो क्रोधी, कुप्टी, महारोगी, रागी ( जिसको भून-बेतल आदि लगत हो ), मेल कुपेला, निर्दयी, जड ॥ ७ ॥ अपण्डित, अन्ध, बुरा न जाननेवाला, निन्दक, लोभू, विषयी, पाखण्डी, अभिमानो, पापी, दुष्ट कुलमें उत्पन्न ॥ ८ ॥ विश्वासघाती दूसरेसे दोह करनेवाला, दूसरेका घन अपहृण करनेवाला, अजितारमा ( जिसने अपनी आत्माको नहीं जाना है ) वेदसे बहिष्कृत ( नास्तिक ), दूसरेको स्त्रासे प्रेम करनेवाला ॥ ९ ॥ दूसरेपर दोषारोप करनेवाला, कृपण ( कटू ) तथा वेद, देवता, शास्त्र, सन्त, तीर्थ, गौ, तुलसी, अग्नि और सूर्य इनसे द्वेष रखनेवाला हो ऐसीको भूलकर भी गुरु नहीं बनाना चाहिए । जो सब धर्मोंका ज्ञाता, शास्त्रोंपर विश्वास करनेवाला ॥ १० ॥ ११ ॥ सब बोलनेवाला, गिताहारी, जात्री, कलाचिद् आह्वणके बंशमें उत्पन्न बन्धु कामोभ लगा हुआ, धर्मका उपदेश अच्छी बुद्धि देनेवाला ॥ १२ ॥ योगाभ्यासकी कलाओंका ज्ञाता, योगी, सबकी समान दृष्टिसे देखनेवाला, केवल उपदेश न देकर स्वयं कर्म करनेवाला, तीर्थसेवी, धर्म अधर्मकी विवेचना करनेमें निपुण ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, ज्ञानप्रस्थाश्रमी, योगी,

समी कृपासुर्धुवाक् सुमुखः सौम्यदर्शनः । अनिष्टश्च समयोगी शांतात्मा परतोषकः ॥१५॥  
 मोक्षार्थवान् ज्ञाननिष्ठः शुचिस्त्वक्पद्मिग्रहः । इत्यादिगुणयुक्तो यः स गुरुः परमोत्तमः ॥१६॥  
 तस्य सेरां निरं कृत्वा सेवया तं प्रसाद्य च । तस्मादुपासना प्राप्ता सुनिर्धे विधिपूर्विका ॥१७॥  
 उपासनास्त्रयः सन्ति सांख्यिकी राजयोगी तथा । ज्ञानयोगी च तृतीया सा गदिताश्च निगद्यते ॥१८॥  
 भूतदेवतकृष्णोदपिशाचानामुपासना । सा ज्ञेया तामसी घोरा देवानां सांख्यिकी स्मृता ॥१९॥  
 पद्माणां राक्षसानां च सा ज्ञेया सा तु राक्षसी । ज्ञेया योगेश्वरानेशाः शाक्ताश्च वैष्णवास्तथा ॥२०॥  
 अवतारास्त्रयमरुधाताः पञ्चानां मन्त्रि भूतजे । तेषामुपासना प्राप्ता गुणेशस्याद्भिर्वालिभिः ॥२१॥  
 पञ्चानामवतारेषु विष्णोरेव वदाम्यहम् । चतुश्चत्वारिंशन्मिमतानवतारान्महत्तमान् ॥२२॥  
 पुरुषोत्तमो विविधैव कृतो नारायणस्तथा । हनोज्ज्वलश्चात्रेश्वरः कुमारो कश्यपस्तथा ॥२३॥  
 हयग्रीवस्तथा मन्त्र्यः कूर्मो वराह एव च । नार्गमहो वामनश्च जामदग्न्यस्तथैव च ॥२४॥  
 रामः कृष्णस्तथा बौद्धः कल्किर्यहो हरिश्चनया । शाल्विन्धोद्वारकश्च पृथुर्धन्वंतरिश्चनया ॥२५॥  
 मोहिनी नारदो व्यासः कपिलः केशवस्तथा । माधवाश्च गोविन्दो मधुसूदन एव च ॥२६॥  
 त्रिविक्रमः श्रीधरश्च पद्मनाभस्तथा स्मृतः । दामोदरस्तथा मकरपङ्कः प्रद्युम्न एव च ॥२७॥  
 अनिरुद्धोऽञ्जनाश्च अक्षयूश्च जनार्दनः । उपेन्द्रश्च हरीकेशश्चैते ज्ञेया महत्तमाः ॥२८॥  
 मत्स्याश्च अवताराश्च दशतेरपि चोत्तमाः । द्वापरात्तमश्चेज्जि रामकृष्णो महत्तमौ ॥२९॥  
 ताम्रामपि वरः पूरः मन्यमंघ्री रघूत्तमः । एकपत्नीयनो बालस्त्वेकशानो नृपोत्तमः ॥३०॥  
 सप्तद्वीपपतिः श्रीमद्भुवचामाम्भितः । एवं ज्ञात्वा रामनाम्न प्राप्ता श्रीगणेशश्च च ॥३१॥  
 गुरुपदिष्टविधिना सुमुहूर्ते शुभम्यले । अथवा तत्तदेवानां प्राप्ता तज्जन्मपत्तिर्यो ॥३२॥

जिस आश्रममें हो उनके निषेधोंका पालन करनेवाला पुष्टिमान्, इष्टिवाका पञ्चम रखनेवाला, ॥ १५ ॥  
 समाजाल, कृत्वा मधुरमाया, अज्ज्ञे मुसवला, सौम्यदर्शी, कम सातेवाला, सदा उत्तममें भगवा हुआ,  
 शान्तात्मा, दूसरीका प्रसन्न करनेवाला तत्तत्, ॥ १६ ॥ उत्तर ज्ञाननिष्ठ पवित्र और दान आदि ग्रहण करनेवा  
 पराङ्मुख, इन गुणोंसे विभूषित पुरुष ही उत्तम गुरु होगा है । ॥ १६ ॥ ऐसे गुरुका बहुत विशेषत्व सेवा  
 करके उसे प्रसाद करे । तब किसी अच्छे तीर्थमें उसमें विधिपूर्वक उपासनाका उपदेश ग्रहण करे ॥ १७ ॥  
 उपासना भी तीन प्रकारकी होती है । सांख्यिकी, राजयोगी और तामसी । इनमें तामसी उपासना निन्दित  
 मानी गयी है ॥ १८ ॥ भूत, वंताल, कृष्णान्ध और पिशाच आदिनी योग उपासना तामसी कही गयी है ।  
 देवताओंकी उपासना सांख्यिकी कही जाती है ॥ १९ ॥ वहीं और राक्षसोंकी उपासना राक्षसी उपासना  
 कहलाती है शिव, सूर्य, गणेश, ब्रह्मा तथा विष्णु इन तीनों देवोंके समस्त अवतार हैं । सांख्यिकी आदिमें कि  
 गुरुके मुखसे इन्हों पांच देवोंमें किसी एककी उपासना ग्रहण कर ॥ २० ॥ २१ ॥ ऊपर कहे गये देवताओंमें मैं  
 यहाँ विष्णु अवतारोंके बड़े बड़े बीशल्लिख अवतार सत्तया रद्ध हैं ॥ २२ ॥ पुरुषोत्तम, गरुड नारायण, हंस,  
 वत्सार्धेश, कुमार, कश्यप हयग्रीव, मन्त्र्य, कूर्म वराह ताम्रश्च वामन परशुराम, ॥ २३ ॥ २४ ॥ राम कृष्ण,  
 बौद्ध, कल्कि, पञ्च, हरि, बालविष्णु, उदारक पृथु, धन्वंतरि मोहिनी, नारद व्यास, कपिल, वैष्णव, माधव,  
 गोविन्द, मधुसूदन, ॥ २५ ॥ २६ ॥ त्रिविक्रम श्रीधर, पद्मनाभ, दामोदर, मकरपङ्क प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अक्षो-  
 भव, अक्षुण् जनार्दन, उपेन्द्र और हरीकेश ये श्रेष्ठ अवतार माने गये हैं । इन अवतारोंमें भी मत्स्य-कूर्मादि  
 दस अवतार भी माने जाते हैं और इन दसोंमें भी राम और कृष्ण भी माने गये हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥  
 इन तीनोंमें भी सत्यव्रतिन रामचन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं । क्योंकि ये एककलौत्रतो और एक मातापिता और सब  
 राजाओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ ये सातों द्वीपोंके अधिपति, श्रीमान्, छत्र और चमरसे सुशोभित हैं । ऐसा शपथ-  
 कर सबको चाहिए कि गुरुके द्वारा उपदिष्ट विधिके अनुसार अच्छे मुहूर्त तथा पवित्र स्थानमें  
 श्रीरामचन्द्रजीकी उपासनाका मन्त्र लें । अथवा ऊपर लिखाये देवताओंमेंसे जिसपर निश्चयी शक्ति हो, उसीको





चतुर्वर्णात्मकश्चापि तथा वर्णप्रधानकः । द्रव्यधो राघवमन्त्रश्च मनुस्म्वेकाधरोऽपि च ॥५०॥  
 एवं नानाविधा मन्त्राः क्षतशोऽथ मद्रजशः । गुरोर्भवेको गृहीन्गाऽथ जपेन्स्त्रीताम्रमणिधौ ॥५१॥  
 उपासनाविधानं च रामोपायकमानरैः । यथा मन्त्रस्व रूपं हि विश्वं यत्र साक्षतः ॥५२॥  
 अपुना मानसी पूजाविधानं च मनोहरने । यदृष्टुं सुतीक्ष्णाय कथितं कुम्भजनमवा ॥५३॥  
 सुतीक्ष्णस्त्वेकदाऽगम्यं दृष्ट्वा रहसि मन्त्रपत्रम् । प्रपन्नं पश्यन् मनसा प्रायाच विनयान्वितः ॥५४॥

सुतीक्ष्ण उवाच

हृदये मानसी पूजा कीदृशी च वद प्रभो । उपकारैः कतिविधैः पूजयेत् राघुनन्दनः ॥५५॥

जगत्पुत्र उवाच

रामं पद्मविद्यालक्षं कालाभ्युदयमयमम् । कर्मनाशत्र सुखाधीनं चिन्तयेच्चित्तपुष्करे ॥५६॥  
 रामादिकल्पं विषं वैराग्येण मुनिर्बलिः । कुन्ता कपारं च दानं भक्त्यन्धविमुक्तये ॥५७॥  
 प्रातः सुदयपुष्पं च रात्रिं च शमितान्नम् । त्रिविक्रदेशपाशिनश्च क्वचन पूजां समारमेत् ॥५८॥  
 नाभिकुन्दसमुद्भूतं कदलीकुम्भोपमम् । यदृष्ट्वा चिन्तयन् च श्यायेद्दृष्ट्वा यथाकम् ॥५९॥  
 तन्मयं गमनाग्नौ कुन्तं कृत्वाऽप्य मयमे । शारङ्गेश्वरं मोनाग्निसमूहलानुगततरम् ॥६०॥  
 तस्पोषरे न्यसेदेव्यं पठेत् रत्नमयेज्जालम् । तन्मयं राघवं श्यायेत्सुवज्रोदयमयम् ॥६१॥  
 इदीवरनिर्मलं शतं त्रिंशद्वर्णं सुवचनम् । उद्यद्वाचितमद्भुतं कृष्णकण्ठं विराजितम् ॥६२॥  
 सुनसं सुकिरीटं च सुकपोलं शुचिस्मितम् । विज्ञानमुद्रं दिभुजं कंबुगीवं सुकुन्तलम् ॥६३॥  
 नानारत्नमयैर्द्वयहारैर्भूषितमव्ययम् । त्रिभु-पुञ्जश्रीकांठं यक्षपुष्पकरं हरिम् ॥६४॥

अक्षरोका, एक नौ अक्षरोका एक बाठ अक्षरोका, एक सात अक्षरोका, एक छ अक्षरोका, एक पांच अक्षरोका, एक चार अक्षरोका, एक तीन अक्षरोका, एक दो अक्षरोका और एक एक अक्षरका राममंत्र है ॥ ४७-५० ॥ एक तरह से एक प्रकारक राममंत्र है । उसका रक्षो चतुष्टय कि उनका जिसों को एक प्रकारको गुरुसे ग्रहण करे और श्रीरामचन्द्रको पास बैठकर उसका जप करे ॥ ५१ ॥ रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि उपासनाकी विधि और मन्त्रका अध्ययन मन्त्रका रक्षण समझ लें ॥ ५२ ॥ अब मैं यहाँ रामकी मानसी पूजाका विधान बतला रहा हूँ । जिसे कि द्वादश वदय आदरत्वभाव सुतीक्ष्ण अपिका बतलाया था ॥ ५३ ॥ एक दिन जगत्पुत्रजी एक-तम बैठे थे । उस समय मुनिकमल आकर दरम भक्तिस जगत्पुत्रको प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहने लगे ॥ ५४ ॥ गुरु-कमल कहने लगे—हूँ प्रभो । उपासकेका मानसी पूजा कैसे करनी चाहिये । इस पूजामें किन-किन उपचारेस रामका पूजन किया जाता है, सा भाव बतला दूँ ॥ ५५ ॥ जगत्पुत्रने कहा कि उपासकको चाहिए कि पहले वह अपने हृदयस्थी कमलपर बैठे हुए रामका इस प्रकार ध्यान करे—जिनके कमलको तरह विशाल नेत्र हैं । काल मयकं समान नील वर्ण हैं । मुष्कराता हुआ मुख है और वे आनन्दपूर्वक बैठे हैं । ५६ ॥ उपासकका यह भी बतला है कि रामदेव आपसे कल्पित विषको वैराग्यसे निर्गम कर लें । तब यक्षपणस मुक्त हृदयके लिए रामकी उपास करे ॥ ५७ ॥ सबरे शरीरको पवित्र करके तन्माको सर्वथा छोड़कर किसी एकान्त स्थानमें ध्यान और पूजन करे ॥ ५८ ॥ नाभिकुण्डलसे निकले हुए कदलीकुम्भके समान आठ दलीयाने और चिकने हृदयस्थी कमलका ध्यान करे ॥ ५९ ॥ उस कमलको रामनामसे विकसित करके बीचमें मूर्ति, सार एवं अग्निमण्डलसे द्वा अधिक प्रकाशमान तन्माका ध्यान करे ॥ ६० ॥ उसके रत्नमय उज्ज्वल बीको रखनेकी भावना करके उसके बीचोबीच कराड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान रामका ध्यान करे । ६१ ॥ कमलका बाई जितका विशाल काल है । दमकती हुई कीप्तिसे प्रकाशित कुण्डल जिनके कर्णोंमें पड़े हैं ॥ ६२ ॥ जिनकी सुन्दर नासिका है, जो सुन्दर किरीट धारण किये हैं, जिनका सुन्दर कपोल है, मोठी मुसकान है, वे विज्ञानमुद्रा धारण किये हैं, जिनकी दो भुजाएँ हैं, शस्त्रके समान सीधी हैं, उनके हाथों और चक्रोंसे हुए कैलाश है, जो अनेक रत्नोंसे पूरी दिव्य बाला पहने हैं, जिनका कभी भी

वीगसनस्य सतानतरुमूलनिवासिनम् । महासुगन्धलिङ्गाङ्गं वनमालविराजितम् ॥६५॥  
 वामपार्श्वे स्थितां सीतां चामाकम्बमप्रभाम् । लीलापद्मधरां देवीं चारुशर्मा शुभामनाम् ॥६६॥  
 पद्मंतीं स्निग्धया दृष्ट्वा विष्ट्वा कल्पविराजिताम् । छत्रचापमहस्तेन लक्ष्मणेन सुसेवितम् ॥६७॥  
 हनुमत्सुखनित्यं वानरैः परिवारितम् । स्तुयमानं ऋषेयैः सेवितं मरुतादिभिः ॥६८॥  
 सनन्दनादिभिश्चान्यैर्धोनिर्दुर्दैः स्तुतं सदा । सवशास्त्राथकुशलं योगिनं योगसिद्धिदम् ॥६९॥  
 एवं ध्यात्वा रामचन्द्रं मणिद्वयमुद्योमितम् । शुद्धेन मनसा रामं पूजयेन्मत्तं हृदि । ७०॥  
 इति ध्यानम् ।

आवाहयामि विश्वेशं ज्ञानविबुधं त्रिभुम् । श्रीमल्यातनयं विष्णुं श्रीगमं प्रकृतोः परम् ॥७१॥  
 राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महापते । रत्नमिदामत्र तुभ्यं दास्यामि स्वीकृ प्रभो ॥७२॥  
 श्रीरामागच्छ मगवन् रघुवीर रघूत्तम । ज्ञानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ७३॥  
 रामचन्द्र महेष्वास रावणाधिक राघव । यात्रिपूजा समाप्तेऽहं तवैव सन्निभो भव ॥७४॥  
 रघुनन्दन राजर्षे राम राजीवलोचन रघुवंशज मे देव श्रीगमाभिमुखो भव ७५॥  
 प्रसीद ज्ञानकीनाथ मुपसिद्ध सुरेश्वर प्रसन्नो भव मे राजन् सर्वश मधुसूदन ॥७६॥  
 शरणं मे जगन्नाथ शरणं भक्तप्रसन्न वन्दो भव मे राजन् शरणं मे रघूत्तम ॥७७॥  
 श्रीलोक्यपावनान्त नमस्ते रघुनाथक । पार्थ गृहाण राजर्ष नमो राजीवलोचन ॥७८॥  
 परिपूर्ण परानन्द नमो रामाय वेशमे । गृहाणाथ मेरा दत्तं कृष्ण विष्णा जनार्दन ॥७९॥  
 ॐ नमो वासुदेवाय तन्वजानस्वरूपिणे । मधुपर्कं गृहाणम राजागजाय ते नमः ॥८०॥

विनाश नहीं होता, जो विष्णुपुत्रके समान समस्त हुए वर्णोंके आगे पहने है, वीरासनसे बटे है, कल्पवृक्षके नीचे निवास करने है उत्तम सुगन्ध जिनके शरीरभरम मन्त्र छूट है और जो वरमान्ता धारण किये हुए है ॥६५॥ ६५॥  
 जिनके बायें बगलमें सीताजी बंठा है, उनका भी मुखण कर सा लज है, व हाथोंमें लीलापद्म लिये है, मुखपर मन्द मुस्कराव है, मुन्दर चढ़ा है और प्रसन्न, हृत्स रात्रका निहारत हुई कल्पवृक्षके नाच बंठा है हाथमें छत्र और चमर लेकर लक्ष्मणजी र मकी सेवा कर रहे हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ हनुमान् आदि वानरोस व नित्य घरे रहते हैं । कितने ही ऋषि स्तुति करते हैं और भक्त आदि आता उनका सेवा कर रहे हैं, सनन्दन आदि कितने ही पायी उनका स्तुति कर रहे हैं । व राम समस्त शरीरका भव ज्ञानन्म कुशल है । यागाक राको भी वे जानते हैं और यागाभिद्धक देता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ कोन्भुमतय विष्णुमणि इन दोनों माणसेस सुगोभित रामचन्द्रका ध्यान करके शुद्ध मनसे लोचनित्वा जायके अनुसार सदा हृदयमें उनका पूजन करे ॥ ७० ॥ संसारक ईश, ज्ञानकाय बल्लभ, कोप-शक पुत्र, प्रहृष्टस पर और प्रपुत्रपथरा औरमका मे जावाहन करता हूँ ॥ ७१ ॥ हे राजावाक राजा रामचन्द्र हे महापते । मे आपसे रत्नमय मिहासन देता हूँ, उसे स्वीकार कर ॥ ७२ ॥ हे श्रीराम, हे मगवन् हे रघुवीर ! हे रघूत्तम ! हे रामचन्द्र । आप ज्ञानकाशक साथ आइये और इस हृदयासनवर बाँटें ॥ ७३ ॥ हे रामचन्द्र हे महर्षिपुत्र धरण करनेवाले ! हे रावणाधिक ! हे राघव ! जब तक मे पूजन समाप्ति न करूँ, तब तक आप मेरे पास रहिए ॥ ७४ ॥ हे रघुनन्दन ! हे राजर्ष ! हे राजावलोचन राम हे रघुवंशज ! हे देव ! हे श्रीराम ! आप मेरे सम्मुख प्रकट हो ॥ ७५ ॥ हे ज्ञानकीनाथ ! हे मुपसिद्ध सुरेश्वर आप मेरेपर प्रसन्न हो, हे राजन् ! हे सर्वश ! हे मधुसूदन ! आप मेरेपर प्रसन्न हो ॥ ७६ ॥ हे जगन्नाथ ! मे ज्ञानकी शरणमें हूँ । हे भक्तप्रसन्न, आप मेरे बरदाता हो । हे रघूत्तम ! मे आपकी शरणमें हूँ ॥ ७७ ॥ हे जगन्तु हे त्रेलाभकपावन ! हे रघुनाथक ! आपका प्रणाम है । हे राजर्ष ! इस पद्मकी ग्रहण कारण । हे राजावलोचन राम ! आपकी प्रणाम है ॥ ७८ ॥ परिपूर्ण परमानन्द कृष्णधारी रामकी प्रणाम है । हे कृष्ण ! हे विष्णु ! हे जनार्दन ! मेरे दिने हुए नज्यका आप ग्रहण करें ॥ ७९ ॥ तत्त्वज्ञानके साक्षात् हरद्वय वासुदेवकी प्रणाम है । हे राजराज ! आपकी प्रणाम है । आप मेरे

नमः सन्याय शुद्धाय वृष्ण्याय ज्ञानरूपिणे । गृहापाचमनं देव सर्वलोकैकनायक ॥८१॥  
 ब्रह्मांडोदरमध्यैस्तीर्थैश्च रघुनायक । स्नाययिष्याम्यहं भक्त्या त्वं गृहाय जनार्दन ॥८२॥  
 संतप्तकाचनप्रस्थं पीताम्बरमिव हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥८३॥  
 श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव । प्रहसन् मोक्षरीपं गृहाय रघुनायक ॥८४॥  
 किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमेखलाः । प्रदेयकीर्तुमं हारं रत्नकंकणनूपुरान् ॥८५॥  
 एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि ग्रहूय । अहं दास्यामि त्वे भक्त्या संगृहाण जनार्दन ॥८६॥  
 कुंकुमागरुकस्तूरीकपूगेन्मिश्रचन्दनम् । तुभ्यं दास्यामि विशेष श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥८७॥  
 तुलसीकुन्दमन्दारजातिपुन्नागचरपकैः । कर्दवकम्बोरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः ॥८८॥  
 नीलांबुजं विज्वलैः पुष्पमाल्यैश्च राघव । पूजयिष्याम्यहं भक्त्या संगृहाण नमोऽस्तु ते ॥८९॥  
 वनस्पतिर्मदिव्यैर्गन्धाढ्यः सुमनोहरैः । रामचन्द्र महीशाल भक्त्यैः प्रणिगृह्याम ॥९०॥  
 ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे । गृहाय दीपकं राजसैलोक्यनिमिरापहम् ॥९१॥  
 इदं दिव्यान्नममृतं रसैः पङ्क्तिर्विगजितम् । श्रीराम राजराजेन्द्र नैवेद्यं प्रतिगृह्याम ॥९२॥  
 मागवल्लीदलैर्गुल्मं पूर्णाफलममन्वितम् । तांबूलं गृह्यातां राघव कर्पूरगदिममन्वितम् ॥९३॥  
 मङ्गलार्थं महोपाल नोराजनमिदं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥९४॥

अथ नामकाराष्टकमन्त्राः

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमान्मने । सर्वभूतान्तस्त्वाद्य परीताय नमो नमः ॥९५॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीराम रामचन्द्राय वेधसे । सर्ववेदान्तवेद्याय समीताय नमो नमः ॥९६॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीविष्णवे परमान्मने । परात्पराय रामाय नमोताय नमो नमः ॥९७॥

किये हुए इस पूजनका महान् करिए ॥ ८० ॥ सर्व गुण वृष्ण्य और ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को प्रणम है । हे देव !  
 हे सर्वलोकैकनायक ! मेरे दिये हुए इस आचमनको आप ग्रहण करें ॥ ८१ ॥ ब्रह्माण्डमें जितने तीर्थ हैं,  
 उनके अन्तसे भी आपको स्नान कराऊँगा । सो आप स्नान कर ॥ ८२ ॥ हे हरे ! अच्छी तरह तपाये हुए  
 सुवर्णके समान इस कंठास्त्रको आप ग्रहण कीजिए । हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ८३ ॥  
 हे श्रीराम ! हे अच्युत ! हे यज्ञेश ! हे श्रीधरानन्द ! हे राघव ! हे रघुनायक ! उत्तरीय वस्त्रके साथ दिये हुए  
 मेरे इस यज्ञपवीतका आप ग्रहण करें ॥ ८४ ॥ किरीट हार, केयूर, रत्नजटित कुण्डल, मखला, माला,  
 कीर्तुषका हार, रत्नजटित कंकण, नूपुर, इस प्रकार सब तरहके आभूषण मैं आपनो भक्तिपूर्वक दूँगा । सो  
 आप ग्रहण करिए ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ कुसुम, अमरु, कस्तूरी तथा वपुःस मिश्रित चन्दन हे विश्वेश ! हे  
 श्रीराम ! हे प्रभो ! मैं आपको दूँगा । सो आप स्वीकार करें ॥ ८७ ॥ तुलसी, कुन्द, मन्दार, जूही, पुन्नाग,  
 चम्पक, कदम्ब, करवीर तथा ज्ञानपत्रके फूल, नीलकमल, विज्वल और पुष्पमाल्योसे मैं आपका पूजन  
 करूँगा । उसे आप ग्रहण करें । मैं आपको प्रणम करता हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ वनस्पतिके दिव्य रसों और सुगन्धसे  
 मिश्रित दिव्य धूप आपको आश्रापन कराऊँगा । हे रामचन्द्र ! हे महोपाल ! आप इसे ग्रहण करें ॥ ९० ॥  
 संसारके सारे व्योतिर्भय पदार्थोंके पति हे राम ! हे वेध ! आपको नमस्कार है । हे राजन् ! तू तो लोकका भवकार  
 नष्ट करनेवाले इस दीपकको आप ग्रहण करिए । छः रसोंमें युक्त तथा अमृतके समान सुस्वादु यह दिव्यान्न तैयार  
 है । हे श्रीराम ! हे राजराजेन्द्र ! आप इस नैवेद्यको ग्रहण करिए ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ पानके पत्तोंसे जाड़े हुए, सुगरी  
 तथा कर्पूरदि मसालोंसे युक्त इस शम्भूषणको आप ग्रहण करें ॥ ९३ ॥ हे महोपाल ! हे हरे ! मङ्गलक निमित्त  
 दिये हुए मेरे इस नैवेद्यनको आप ग्रहण करें । हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ९४ ॥ अब आठ  
 नमस्कार बोलते हैं । भगवान्, श्रीराम, परमान्मा, सब प्रणियोंके भग्न रहनेवाले, सिद्धांक माय रामचन्द्रज-  
 को प्रणाम है ॥ ९५ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र, नैवेद्य और सब वेद्योंके जननेवाले संसारके पति रामको प्रणाम  
 है ॥ ९६ ॥ भगवान् विष्णु, परमात्मा, परात्पर एवं तै ताके साथ विद्यमान रामको प्रणाम है ॥ ९७ ॥

ॐ नमो भगवते श्रीगुणाधाय शक्तिणे । चिन्मयानन्दरूपाय समीताय नमो नमः ॥१८॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीराम श्रीकृष्णाय चक्रिणे । विशुद्धज्ञानदेहाय समीताय नमो नमः ॥१९॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीवासुदेवाय श्रीविष्णवे । पूर्णानन्दरूपाय समीताय नमो नमः ॥२०॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीराम रामभद्राय वेधमे । सर्वलोकप्रणवाय समीताय नमो नमः ॥२०१॥  
 ॐ नमो भगवते श्रीरामायामिनेजसे । ब्रह्मानन्दरूपाय समीताय नमो नमः ॥२०२॥

इति नमस्काराष्टकमन्त्रः ।

नृत्यगीतादिवाद्यादिपुराणपठनादिभिः । राजेपचारैर्विर्लैः सन्तुष्टो भव राघव ॥२०३॥  
 विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय विष्णवे । अन्तःकरणमशुद्धिं देहि मे रघुनन्दन ॥२०४॥  
 नमो नारायणानन भोगाय कृष्णनिधे । मायुद्धर जगन्नाथ योगान्तरसागरात् ॥२०५॥  
 रामचन्द्र महेश्वर शरणागतनपर । यदि मां सर्वलोकेश तापत्रयमहानलात् ॥२०६॥  
 श्रीकृष्ण श्रीहर श्रीग श्रीराम श्रीनिधे हरे श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीगुप्तिह कृपानिधे ॥२०७॥  
 गर्भजन्मजराव्याधिघोरसंसारसागरात् मायुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥२०८॥

श्रीराम गोविन्द मुहूर्द कृष्ण श्रीनाथ विष्णो भगवन्ममने ।

ग्रीडारिषड्दर्शनमहामयेभ्यो मां प्रादि नारायण विश्वमूर्ते । १०९॥

श्रीरामारघुन वधेश श्रीधरानन्द राघव । श्रीगोविन्द हरे विष्णो नमस्ते जानकीपते ॥११०॥

ब्रह्मानन्दकवित्तं त्वन्नामस्मरणं नृणाम् । त्वन्पदाचूतमद्भुतिं देहि मे रघुवल्लभ ॥१११॥

नमोऽस्तु नारायण विश्वमूर्ते नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वयोगे ।

त्वमेव विश्वं सचराचरं च त्वामेव सर्वं प्रवदति सन्तः ॥११२॥

नमोऽस्तु ते कारणकाण्डाय नमोऽस्तु कैवल्यकनकप्रदाय

ममो नमस्तेऽस्तु जगन्मयाय वेशान्तवेद्य नमो नमस्ते ॥११३॥

भगवान्, श्रीगुणाधाय, शक्ति, चिन्मयानन्दरूप और सीतापति राजका प्रणाम है । १८ ॥ भगवान्, श्रीरामकृष्ण चक्र, विशुद्ध ज्ञानदेहारी, सत् के साथ रामकी प्रणाम है । १९ ॥ भगवान् श्रीवासुदेव-  
 म्वरूप, विष्णु पूर्णानन्दरूप सीताके साथ रामकी प्रणाम है ॥ २० ॥ भगवान्, श्रीरामभद्र, वेद्य  
 ( ब्रह्मा ) और सब लोक शरणदाता सीत, क हाथ रामकी प्रणाम है ॥ २०१ ॥ जो अनन्त तेजवारी भगवान्  
 रामचन्द्रजी हैं । उन ब्रह्मानन्दके एकमात्र रूपधारी सीतारूप साथ रामकी प्रणाम है ॥ २०२ ॥ हे राघव !  
 मेरे नृत्य, गीत, वाद्य तथा पुराण पठन आदि सबमें राजाचित उपकारसे आप प्रसन्न हो । २०३ ॥  
 विशुद्ध ज्ञानरूप देह कारण करनेवाले श्रीगुणाधायका प्रणाम है । हे रघुनन्दन ! आप हमें अन्तःकरणकी  
 शुद्धि प्रदान करिए । २०४ ॥ हे नारायण ! हे अनन्त ! हे श्रीराम ! हे कृष्णनिधे ! आपको प्रणाम है ।  
 हे जगन्नाथ ! हमारा घोर संसारसागरे उद्धार करे ॥ २०५ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महेश्वर ! हे शरणागत-  
 सत्वर ! हे सर्वलोकेश ! हम तापत्रयरूपी महानरसे बचाइए ॥ २०६ ॥ हे कृष्ण ! हे श्रीग ! हे श्रीराम !  
 हे श्रीनिधे ! हे श्रीनाथ ! हे महाविष्णो ! हे श्रीगुप्तिह ! हे कृपानिधे ! गर्भ, जन्म, जरा तथा व्याधिस्वरूप  
 घोर संसारसागरसे मुक्त उबारिए । हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! ॥ २०७, २०८ ॥ हे श्रीराम !  
 हे गोविन्द ! हे मुहूर्द ! हे कृष्ण ! हे श्रीनाथ ! हे विष्णो ! हे भगवन् ! आपको नमस्कार है । हे नारायण ! हे  
 विश्वमूर्ति ! ग्रीडारिषड्दर्शनके महामयसे मेरी रक्षा करिए । २०९ ॥ हे श्रीराम ! हे अर्घुन ! हे योगेश ! हे  
 श्रीधरानन्द राघव ! हे गोविन्द ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे जानकीपति, आपका नमस्कार है । ११० ॥ हे रघु-  
 वल्लभ ! आपको नामस्मरण ब्रह्मानन्दक विज्ञानको उत्पन्न करता है । आप हम अपने चरणकमलकी सद्भुक्ति  
 प्रदान करिए ॥ १११ ॥ हे कारणोंके भी कारण ! आपको नमस्कार है । हे कैवल्यफल प्रदान करनेवाले उभो !  
 आपको प्रणाम है । हे जगन्मय ! हे वेशान्तवेद्य ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ११२ ॥ हे परमेश्वर !

नमो नमस्ते मरुताग्रजाय मनोऽस्तु वक्षप्रतिपालनाय ।

अनन्त यज्ञेय हरे सुहृद गोविन्द विष्णो भगवन्मुगरे ॥११४॥

श्रीवल्लभानन्त अगन्निवास श्रीराम राजेन्द्र नमो नमस्ते ।

श्रीजानकीकांत विशालनेत्र राजधिराज स्वयि मेऽस्तु भक्तिः ॥११५॥

तप्तजाम्बूनदेनैव निर्मित रत्नभूषितम् । स्वर्णगुप्तं रघुश्रेष्ठं दास्यामि स्वोदरु प्रभो ॥११६॥

हृषिकर्णिकामध्ये सीतया सह राघव । निवसन् रघुश्रेष्ठ सर्वेश्वरपतेः सह ॥११७॥

मनोवाक्यजनित कर्म यद्वा शुभाशुभम् । तन्मत्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शक्तिने ॥११८॥

अपराधमहस्तापि किर्यतेऽहर्निशं मया । दामोऽयमिति मां मन्वा क्षमस्व रघुपुंगव ॥११९॥

नमस्ते जानकीनाथ रामचन्द्र महीपते । पूर्णानन्दस्वरूप त्वं गृह्णाण्यस्य नमोऽस्तु ते ॥१२०॥

एवं यः कुरुते पूजां बहिर्वा हृदयेऽपि च । सकृन्पूजनमात्रेण राम एव भवेन्नरः ॥१२१॥

किं पुनः सततं ब्रह्मण्येवं पूज्य स्थितो हि नः । सर्वान्कामानवाप्नोति चेह लोके परत्र च ॥१२२॥

एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तं यथा पृष्ठं त्वया मम । हृदये मानसीरुजाविधानं राघवस्य च ॥१२३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य सुतीक्ष्णाय मुनयेऽपस्तिना पुरा । यन्प्रोक्तं तन्मया सर्वं तव प्रोक्तं सविस्तरात् ॥१२४॥

शिष्याधुना बहिः पूजाविधानं च मयोच्यते । नर प्राणः समुन्धाप कृत्वा शीचादिकाः क्रियाः ॥१२५॥

रत्नावा सख्यादिकं कृत्वा देवपूजां सप्तऋतेषु । तीर्थे देवालये वाऽपि गोष्ठे पुष्पस्थलेषु च ॥१२६॥

नद्यास्तटे देवगोहे तुलसीमन्निधौ तथा । लिप्त्वा भूमिं गोमयेन ततो यवानि लेखयेत् ॥१२७॥

सितरक्तहरिपीतनीलकृष्णादिमयैः । नानावर्णैश्चित्रितानि तत्र पूजां सप्तऋतेषु ॥१२८॥

हे एजरा प्रतिपालन करनेवाले । आपको नमस्कार है, नमस्कार है । हे अनन्त ! हे यज्ञेय । हे हरे ! हे सुकुन्द ! हे विष्णु ! हे मुरारे ! हे भावल्लभ ! हे अनन्त । हे अगन्निवास । श्रीराम ! हे राजेन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे श्रीजानकीकांत ! हे विशालनेत्र ! हे राज धिराज । आपसे मेरी भक्ति हो ॥ ११३-११५ ॥ तपाये हुए सुवर्णसे निर्मित और रत्नासे विभूषित यह सुवर्णगुप्त में आपको अर्पण करता हूँ । हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार कर ॥ ११६ ॥ हृदयरूपी कमलके बीच-बीच सीता तथा रामसे आपरणाके साथ उसपर बैठिए ॥ ११७ ॥ मन, वचन अथवा शरीरसे मेने जो शुभ वा अशुभ कर्म किया हो, वह सब आपकी प्रसन्नताका कारण बने । हे अनुवर्धारी राम ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ११८ ॥ हे रघुपुंगव ! रात-दिन मैं हजारों प्रकारके पलक करता हूँ । मुझे अपना दास समझकर आप क्षमा कर दें ॥ ११९ ॥ हे जानकीनाथ ! हे महीपते ! हे रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे पूर्णानन्दस्वरूप । मैं आपको अर्पण देता हूँ, इसे आप ग्रहण करें ॥ १२० ॥ इस रीतिसे जो मनुष्य हृदयके भीतर या बाहर पूजन करता है वह केवल एक बारके पूजनसे साक्षात् राम हो जाता है ॥ १२१ ॥ फिर उसके लिए क्या कहना, जो रात-दिन उससे लीन रहता हो ! वह प्राणी इहलोक और परलोक, दोनोंकी अभीष्ट कामनाएँ प्राप्त कर लेता है । हे मुनीश्वर ! मुझे हमसे जैसे पूछा, उस प्रकार मैंने आपकी पूजाका सारा विधान कह सुनाया ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ श्रीरामदासन कहता - हे शिष्य ! इस तरह सुतीक्ष्ण मुनिके लिए भगवन्तः कृपिने उस समय जो विधान ब्रह्मण्येन या, सो वेने विस्तारपूर्वक तुम्हें बतला दिया ॥ १२४ ॥ हे शिष्य ! अब मैं बाह्यपूजाका विधान बतला रहा हूँ । उसको कहिये कि प्रातःकाल उठे और लीलादि-से निवृत्त होकर हस्तानुसंध्या आदि करे । फिर किसी लाल, देवालये, गोक ला या बंदिश स्थानमें देवपूजा प्रारम्भ करे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ ऊपर बताये स्थानोंके सिवाय किसी नद्यावहनर, देवमन्दिर तथा तुलसीके पास गोबरसे जोड़कर लफेद, लाल, हरे, पीले, नीले, काले, इस तरह नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र-चित्रित पद्म बनाकर पूजन प्रारम्भ करे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ एक आसन एक हजार आठ श्रीरामनामका बनता है । एक आसन आठ

अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामलिंगात्मकासनम् वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामलिंगान्मकासनम् ॥१२९॥  
 अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामभद्रासनं हि वा । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामभद्रासनं शुभम् ॥१३०॥  
 बहून्यन्यानि शतशः सति लक्ष्म्यासनानि हि । तेषां मध्यादेकमेवामनं संस्थाप्य चित्रितम् ॥१३१॥  
 पीठोपरि कृतं वस्त्रं पद्मादिप्यपि वा कृतम् । आसनोपरि जानक्या राघवादीन्निवेशयेत् ॥१३२॥  
 आसने सर्वतोभद्रमध्ये पद्मोपरि न्यसेत् । सीतया राघवं रथ्यं वरविहामने धियम् ॥१३३॥  
 रामस्य पृष्ठभागे च लक्ष्मण स्थापयेत्ततः । रामस्य दक्षिणे पार्श्वे भरतं विन्यसेच्छुभम् ॥१३४॥  
 रामस्य वामपार्श्वे हि शत्रुघ्नं विन्यसेच्छुभम् । पुरतो रामचन्द्रस्य वायुपुत्रं तु विन्यसेत् ॥१३५॥  
 रामस्य वायुदिग्भागे सुग्रीवं स्थापयेत्ततः । ईशान्यां रामचन्द्रस्य विन्ध्यस्य च विभीषणम् ॥१३६॥  
 रामस्य दक्षिदिग्भागे विन्यसेद् भद्रं ततः । नैऋत्यां रामचन्द्रस्य जावन्तं तु विन्यसेत् ॥१३७॥  
 पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राग्दिक्केयाऽर्चने न्विद । सर्वशास्त्रेष्वेवमेव निर्णयः कथ्यते सुधीः ॥१३८॥  
 लक्ष्मणस्य करे देयं छत्रं मुक्ताविराजितम् । भरतस्य करे देयं चाभार रुक्ममण्डितम् ॥१३९॥  
 शत्रुघ्नस्य करे देयं न्यजनं चित्रितं शुभम् । हनुमानः करे देयं रामस्य पादुकाद्वयम् ॥१४०॥  
 सुग्रीवस्य करे देयं जलपात्रं मनोहरम् । करे विभीषणस्यापि देयं धुकुम्भुत्तमम् ॥१४१॥  
 देयं तपिलपात्रं च वालिनन्दनमन्करे । जावन्तः करे देयो वसुकोशो महत्तमः ॥१४२॥  
 नवायतनमेवं हि स्थापयेद्राघवस्थ च । अथवा पञ्चापतनं स्थापयेदामनोपरि ॥१४३॥  
 सीतया रामचन्द्रं च मध्ये पृष्ठे तु लक्ष्मणम् । भरतं सन्यपार्श्वे च शत्रुघ्नं वामपार्श्वके ॥१४४॥  
 पुरतो वायुपुत्रं च पूर्वोर्कटपचारकः एव संस्थापयेद्भक्त्या रामं भद्रासनोपरि ॥१४५॥  
 अथवा सीतया रामं मध्ये स्थाप्य ततः परम् । रामस्य पृष्ठे सीमित्रि रामात्रे वायुनन्दनम् ॥१४६॥  
 स्वार्थ्यं पूजयेद्भक्त्या रामं घृतशरासनम् । अथवा सीतया रामं लक्ष्मणं परिपूजयेत् ॥१४७॥

सी रामके नामसे अङ्कित करके बनाया जाता है । एक हजार आठ नामोंसे अङ्कित करके एक श्रीराम-भद्रासन बनता है । दूसरा एक सौ आठ नामोंसे अङ्कित करके श्रीरामभद्रासन बनता है ॥ १२९ ॥ १३० ॥  
 इसी तरह बहुतसे और भी छोटे-छोटे आसन बनते हैं । उनमेंसे एक-एक एक आसन बनाये ॥ १३१ ॥ इस आसनकी रचना वस्त्र बिसाकर पढ़पर करे । उसके ऊपर जानकी तथा राम आदिको बैठाये ॥ १३२ ॥  
 सर्वतोभद्रके मध्यमें बने हुए कमलके ऊपर रहने एक सुन्दर गिरासनपर राम तथा सीताको बिठाये ॥ १३३ ॥  
 रामके पीछे लक्ष्मणको स्थापित करे । रामके दाहिने बगल भरतको स्थापित करे और रामके पार्श्वमें शत्रुघ्नको बिठाये । रामचन्द्रजीके आगे हनुमानजीको स्थापना करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ रामके वायव्य कोणमें सुग्रीवकी स्थापना करे । ईशानकोणमें विभीषणको स्थापित करके अग्निकोणमें अक्षरको तथा नैऋत्यकोणमें वाम्बवान्की स्थापना करे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ पूज्य और पूजक इन दोनोंके लिए प्राची दिशा ही पूजन करनेमें श्रेष्ठ है ।  
 षष्ठितोका कहता है कि समस्त शास्त्रोंमें इसी प्रकारका निर्णय किया गया है ॥ १३८ ॥ लक्ष्मणके हाथमें मोतियोंसे गुसम्बित छत्र दे । भरतके हाथमें सुवर्णसे पण्डित चमरा दे ॥ १३९ ॥ शत्रुघ्नके हाथमें चित्रित न्यजन ( पत्ता ) दे और हनुमान्जीके हाथमें रामकी दोनों पादुकाएँ दे ॥ १४० ॥ सुग्रीवके हाथमें मनोहर जलपात्र और विभीषणके हाथमें उत्तम गीता दे ॥ १४१ ॥ अक्षरके हाथमें सुन्दर ताम्बूलपात्र दे, वाम्बवान्के हाथमें कपड़ोंकी पेटी दे । इस तरह श्रीरामचन्द्रजीके नवायतनकी स्थापना करे ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ मध्यभागमें सीताके साथ रामचन्द्रजीको बिठाये, पीछे लक्ष्मणको, दाहिने बगल भरतको बायें बगल शत्रुघ्नको तथा सामने हनुमान्जीको पूर्वोक्त उपचारोंके साथ बिठाये । इस तरह सुन्दर आसनपर रामकी स्थापना करे । इसे ही रामावायतन कहते हैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ अथवा सीताके साथ-साथ रामको मध्यमें बिठाकर रामके पीछे लक्ष्मण और आगे हनुमान्जीकी स्थापना करके अनुवर्ती रामका पूजन करे । अथवा सीताके साथ राम और लक्ष्मणकी पूजा

सीतामुग्रौ विना पूजा रामस्यैकस्य नाचरेत् । कुता वेदिविक्रमी सा भवदत्र न संशयः ॥१४८॥  
 नवायनपूजा सा भेदा तेषां शुभमदा । या पूजायतनी पूजा श्रेया सा मध्यमाऽत्र हि ॥१४९॥  
 त्रिदैवत्या तु या पूजा कनिष्ठा सा निमग्नये । अनिकनिष्ठा पूजा सा द्विदैवत्या स्मृता हि सा ॥१५०॥  
 कोदण्डं वामहस्ते च तृतीरं वामपार्श्वके । निजनामाद्भितं बाणं दधानं दक्षिणे करे ॥१५१॥  
 एवं भीरावर्चं स्थाप्य ततः पूजां ममारमेद् आत्मनो वामपादे च अन्तर्मुखं निधाय हि ॥१५२॥  
 आत्मनो दक्षिणे मागे पूजापात्रं निवेशयेत् । आत्मनः पृष्ठतः पादं स्थापयेद्विम्बं वरत् ॥१५३॥  
 प्राङ्मुखः सुखमासीनो धृतपद्मासनः शुचिः मौनी श्रुताश्रुतमोमालो निश्चलमानसः ॥१५४॥  
 बद्धप्रधिष्ठितः शुद्धवस्त्रो पृथग्विभक्तः । बुद्धदागतीमृदुचिलको मुद्रिकांकितः ॥१५५॥

नन्वादी गणगजं च निधिवारादि कीर्तयेत् ।

धूमिशुद्धिं भूतशुद्धिं न्यासी कृत्वा यथाक्रमम् । शोषणीपात्रमेकं तु जलपूर्णं प्रकाशयेत् ॥१५६॥  
 दूर्वागन्धाक्षतपुष्पैस्तन्पात्रं परिपूरयेत् । प्रोक्षयेत्तेन नीरेण पूजाद्रव्यं महान्मना ॥१५७॥  
 पाषाणार्चनार्थं तु शीणिपात्राणि विन्यसेत् । गणगजं पूजयित्वा सम्पूज्य हरुणं ततः ॥१५८॥  
 पञ्चजन्यं पूजयित्वा मोक्षयेत्तज्जलैरपि पूजाद्रव्यं पूर्ववत् स्थापमानं च धूर्त्वं तथा ॥१५९॥  
 चेतुश्चक्रकवधिराजमुद्राः प्रदर्शयेत् शैली दारुमयी लंही लेखा लेख्या च मैकरी ॥१६०॥  
 मनोमयी मणिधरा प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । अथ स्थापयेद्दामचन्द्रं सर्गात् पुनः स्थितम् ॥१६१॥  
 द्विध्वजं चतुर्भोर चापबाणधृतायुधम् । दिव्यलङ्कारमयं च पीनकीशेयजमयम् ॥१६२॥  
 स्तलस्वर्णं तश्चतुर्नं भारेण समन्वितम् । हनुमन्सेवितपद् विद्ध मनविराजि तम् ॥१६३॥  
 स्थितछत्रसमायुक्तं दिव्यकामार्चत्रितम् । निक्षीपणममायुक्तं सुग्रीवपरिवर्धितम् ॥१६४॥

करे ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ सीता और लक्ष्मणक बिना मकेल रामको पूजा कभी न करे यदि ऐसा पूजा का जाता है तो बहू पाप निम्न करनेवाली ही हुआ करती है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १४८ ॥ नवायनपूजा सवन्धे और पञ्चायतन पूजा मध्यम होती है ॥ १४९ ॥ त्रिदैवका पूजा कनिष्ठ कजा गयी है । यह पूजा तो अत्यन्त कनिष्ठ होती है जिसमें केवल दा दैवताओंको पूजा की जाती है ॥ १५० ॥ जिनके बाव हाथमें धनुष और बाजे बबल छरकछ है, अपने नामसे अद्भुत बाण दाहिने हाथमें है ॥ १५१ ॥ इस तरहके रामचन्द्रको स्थापना करके पूजा प्रारम्भ करे । पूजा करते समय वाममायमें एक कलश में अक्षय रख लेना चाहिए ॥ १५२ ॥ अपने दाहिने दैवता पूजापात्र रखना चाहिए और बाग को विरतन पात्र रखना उचित है । १५३ ॥ ज्ञानमको चाहिए कि ज्ञानव्यपूरेक पूर्वकी ओर मुख करके वामात्मसे बड़े ओर निम्न भग्न करके गुल्मीकी माला लिये, शिखाम प्रतिष्ठ दिग्ग, हामोम पवित्री तथा शरीरमें पवित्र वस्त्र धर्य किये, द्वारकाकी शृद्ध मूर्तिकाका तिलक लगाकर ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ पहले गणेशका प्रणाम करे : फिर लक्ष्मण निधिवार आदिका उच्चारण करके धूमिशुद्धि, भूतशुद्धि तथा अग्निस करन्वास करके शोषणीपात्रमें जल करे । दूर्वा, गन्धाक्षत, पुष्प व नि उसमें डाले और पञ्चणीपात्रके जलसे पास रखी हुई पूजनसामग्रिका प्रोक्षण करे । पाद्य, अक्षय एवं आचमनके लिये सामने तीन पात्र रखे । फिर गणेशजी, दैवता तथा पञ्चजन्य गजका पूजन काके उसके जलसे अपना, पूजन-सामग्री तथा गुल्मीका प्रोक्षण करे ॥ १५६-१५८ ॥ इसके अनन्तर मुग्धी, जल, चक्र, गरुड एवं राममुद्राका प्रदर्शन करे । परवरकी, काष्ठकी, चूना-ईंटकी रङ्गवे कनी, चित्रकारी का हुई, शालूकामरी, मानसी और मणिमयी के अठ घण्टारकी प्रतिमाई होती है । ऊपर कलसादी क्रियाये कर सेनके शब्द उपायककी चाहिए कि सीताके साथ बंटे हुए इस प्रकारके रामका ध्यान करे जिनके दो भुजाएँ हैं, जो तृतीर तथा चतुर्व-राज बादि विविध प्रकारके शस्त्र धारण किये हैं, उनके शरीरमें दिव्य अलङ्कार पड़े हैं और वे काला कीर्णय रम्य धारण किये हैं ॥ १६०-१६२ ॥ लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न उनके साथ हैं, हनुमान्को उनके चरणकी सेवा कर रहे हैं और राज वस्त्र सिंहासनपर बंटे हैं ॥ १६३ ॥ ऊपर लपेट छत्र लगा है, दिग्ग चक्र चल रहे हैं, विनीयम और सुपीय

जम्बवता तयापुक्तमङ्गदेन परिष्कृतम् अयोध्यावासिनं राममेवं हृदि विचिंतयेत् ॥१६५॥  
 सीताराम समागच्छ मद्रे त्वं स्थिरो भर गृहाण पुत्रां महर्तां कृतमावाहन तव ॥१६६॥  
 हिरण्यमयं रत्नयुक्तं नानाविधविचित्रितम् मिहामनं सयस्त्र च क्षामनार्थं ददामि ते ॥१६७॥  
 चन्दनागुरुसंयुक्तैर्जलैस्तीर्थसमुद्भवैः पादं गृहाण धीराम मया दत्तं प्रमोद मे ॥१६८॥  
 पुष्करादिषु तीर्थेषु गङ्गादिषु सरिषु च । पचोय तन्मयाऽऽर्जितं दत्तमर्घ्यं गृहाण भोः ॥१६९॥  
 सुगन्धदामितं शोभं बहुतीर्थसमुद्भवम् । आचमनार्थमार्जितं गृहाण त्वं सुरेश्वर ॥१७०॥  
 हरिद्राकुङ्कुमैर्युक्तं सुगन्धद्रव्यमिश्रितम् । सुगन्धस्नेहसमिश्रमुद्भूतमवाप्तुं ते ॥१७१॥  
 कमधेनूद्भवं क्षारं नन्दिन्या दधि सुन्दरम् । कपिलाया घृतं पेषु मधु विष्णाद्विषमवम् ॥१७२॥  
 सितोषलसमानाम् सिन्धुपुक्तं मनोहरम् । पञ्चामृतं मयाऽर्जितं स्नानार्थं त्वं गृहाण भोः ॥१७३॥  
 गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती । नर्मदा सिन्धुकावरी सरयु गण्डकी तथा ॥१७४॥  
 ताप्त्रपर्णी भीमरथी कृष्णा बेनी महानदी । गोमती सागराः सप्त पयोध्या भवनाशिनी ॥१७५॥  
 पूर्णा तारी तुङ्गभद्रा क्षिमा वेगवती तथा । पिनाकी प्रवरा सिन्धुकेणा सार्द्धं त्रयो वदाः ॥१७६॥  
 श्रुतमाला कृतमाला मही निक्षेपिका तथा । पयोष्णी प्रेमगङ्गा च चित्रगङ्गा करानदी ॥१७७॥  
 नारा चर्मण्वती वृद्धा बज्ररा च पुनः पुनः । सिन्धुक्षीरा च वैकुण्ठाऽलकनन्दा च वारणा ॥१७८॥  
 इत्यादिसर्वतीर्थेषु पचोयं वतंते शुभम् । तन्मयाऽर्जितममयाश्च स्नानं कुरु रघून्तम ॥१७९॥  
 पुनराचमनं रम्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् । गृहाण रघुनाथ त्वं दीयते यन्मया तव ॥१८०॥  
 सुवर्णवस्तुमिश्रितं पीतकीशेयसंभवम् । वस्त्रपुष्पं प्रदास्यामि गृहाण रघुनाथक ॥१८१॥  
 शिदं हेयमयं रम्यं नववस्तुसमुद्भवम् । मलप्रन्थिसमायुक्तं नक्षत्रं प्रगृह्यताम् ॥१८२॥

भाग्ये सहे नञ्चना कर रहे हैं ॥ १६४ ॥ जम्बवतारके साथ साथ अङ्गरकी सहे स्तुति कर रहे हैं । हम प्रकार  
 अयोध्यावासी रामका मनमें ध्यान करे ॥ १६५ ॥ और कहें—हे सीताराम ! आप मेरे सामने आकर बैठिए ।  
 मैं आपका पूजन करूँगा । मैं आपका आवाहन करना हूँ । आप आइए और मेरी पूजा स्वीकार करिए ॥ १६६ ॥  
 सुरणका बना हुआ तथा रत्नसजित हुआ मेसे चित्र-विचित्र मानूस पढनेवाला और सुन्दर वाजस सजित सिंहासन मैं  
 आपको बैठनेके लिए देता हूँ ॥ १६७ ॥ चन्दन और पुष्पसे मिश्रे हुए तीर्थोंके जलका पाय बनाकर आपको  
 देता हूँ । इसे आप स्वीकार करें और मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १६८ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदियों-  
 से लये जलका अर्घ्य बनाकर मैं आपको देता हूँ, इसे स्वीकार करिए ॥ १६९ ॥ सुगन्धों कासित एवं कितने  
 ही तीर्थोंसे लाया हुआ अल मैं आपको आचमनके लिए देता हूँ । हे सुरेश्वर ! इस आप गृहाण कीजिए ॥ १७० ॥  
 हरिणी कुम्कुम और बहुतेसे सुगन्धद्रव्योंसे मिश्रित तथा सुगन्धमय तैल अदिते मित्रा हुआ जल मैं आपको  
 स्नान करानेके लिये देता हूँ ॥ १७१ ॥ कामधुक्ता दूध नन्दिनी गौका बही, नन्दिनी गौका घृत विष्णु-  
 पर्वतसे उत्पन्न उत्तम मधु ॥ १७२ ॥ सफेद पत्थरके समान कमकती हुई चीर्नसे मिल्य पंचमृत मैं  
 आपको स्नान करनेके लिये देता हूँ । इसे आप गृह्य करिए ॥ १७३ ॥ गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती,  
 नर्मदा, सिन्धु, कावरी, सरयू, गण्डकी, ताप्त्रपर्णी, भीमरथी, कृष्णा, बेनी, महानदी, गोमती, सातों  
 सागर, भवनाशिनी, पयोष्णी, पूर्णा, तारी, तुङ्गभद्रा, क्षिमा, वेगवती, पिनाकी, प्रवरा, सिन्धुकेणा, सहे तीन  
 नद, श्रुतमाला, कृतमाला, मही, निक्षेपिका पयोष्णी प्रेमगङ्गा, चित्रगङ्गा, करानदी, नारा, चर्मण्वती, वृद्धा,  
 बज्रजरा, सिन्धुक्षीरा, वैकुण्ठा अलकनन्दा, वारणा इत्यादि ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ नदियोंमें जो पवित्र जल विद्यमान  
 है वह मैं आज यहाँ से लाया हूँ । हे रघून्तम ! आप इसीसे स्नान कीजिए ॥ १७६ ॥ सब तीर्थोंका पवित्र जल  
 मैं आपको पुनराचमनके लिये दे रहा हूँ । इस आप गृह्य कीजिए ॥ १८० ॥ सुवर्णके मूत्रोंसे बना तथा चित्र-विचित्र  
 दोखनेवाला पीठ कोनाय वस्त्र मैं आपको दे रहा हूँ, इसे स्वीकार करिए ॥ १८१ ॥ कुठ, सुवर्णमय,



वृष्टं कुण्डले रम्ये सुद्रिक्ताः कङ्कणे तथा । मृपूरे रत्ननामनाः केयूरे रत्नमण्डिते ॥१८३॥  
 हस्तादीन्वामान् दिव्यान्स्वर्णमाणिक्यनिर्मितान् । स्वर्णं च मयानीलमङ्कशान् गुह्यान् मोः ॥१८४॥  
 छत्रं सम्पन्नं रम्यं चामरद्वयसंयुतम् । स्वर्णं च मयाऽऽनीतं मूर्द्धं च त्रिपुञ्जयम् ॥१८५॥  
 सुगन्धं चदनं दिव्यं कुर्यात्पुरुषार्थमश्रयम् । रक्तचदनमयुक्तं गृह्यान् च मयाऽर्पितम् ॥१८६॥  
 अश्वगाधं वरान् दिव्यान्मुक्ताफलनिर्मितान् । कम्बूनां कुङ्कुमेनाञ्जानं गुह्यान् परमेश्वर ॥१८७॥  
 मालादीनि सुगन्धीनि मालाद्यादीनि वै प्रभो । मयाऽऽहूतानि पूजार्थं गुह्यान् रघुनाथक ॥१८८॥  
 वनस्पतिरमोद्भूतं गन्धं च गन्धमुल्लसम् । आग्रय सर्वदेवानां ऽप्य गृह्यान् राघव ॥१८९॥  
 भाज्यं विनिर्मितं युक्तं वह्निना योजितं मया । दाप्यं गुह्यान् यो गम्य त्रैलोक्यनिर्दिशयद् ॥१९०॥  
 भक्ष्यमर्चने लघुक्तं स्थापयन्धूतानि रघुम् । शर्करामधुमयुक्तं नैवद्यं प्रणिगृह्यान् ॥१९१॥  
 मास्यदीनि घृणकानि फलानि विविधानि च । ममर्शितानि ते राम गृह्यान् रघुनन्दन ॥१९२॥  
 पूगीफलमवायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् । ज्वरीयमुष्टययुतं तावन् स्वीकृतं प्रभो ॥१९३॥  
 हिरण्यं मङ्गलसम्पन्नं वह्निनेत्रसमुद्भूतम् । दाप्यते दक्षिणार्धे ते गृह्यान् रघुनन्दन ॥१९४॥

इत्थं मया पण्डितकोपचागः सविस्मरं ते कथिताः शिशुष्व ।

आशदनाद्यश्च हि दक्षिणांनः शेषा च पञ्चमस्तुतां हि वक्ष्ये ॥१९५॥

रचयितुमवायुक्तं कपिलाऽऽजयविमिश्रितम् । वह्निना योजितं रम्यं गृह्यान् स्व निरञ्जनम् ॥१९६॥  
 आती चंपकवन्दारी केरकी तुलसी तथा । रमनो मृनिहृन्दे च दानव त्वति वै नव ॥१९७॥  
 एभिर्नवविधैः पुष्पैर्मन्त्रपुष्पाणि राघव । मयाऽर्पितानि गृह्यान् प्रसीद तमेश्वर ॥१९८॥  
 यानि कानि च पद्मानि जन्मान्तरकृतानि च । तानि सर्वाणि नम्यन् प्रदक्षिण्य वदे वदे ॥१९९॥

रम्य नवीन पुष्पसे वरी तथा अश्वगाधियुक्तं मङ्गलसुत मे आपकी देता हूँ । इसे आप स्वीकार करिये ॥ १८३ ॥  
 मृपट, रङ्ग कुण्डल, मुद्रिका, कंकज, नूपुर मणानिमित्त ज्वीरको माला, रत्नमण्डित केयूर हस्तार्थ परम रम्य,  
 दिव्य, शर्ल और माणिक्य वन अलंकार मे आपके लिए लाया हूँ । इन्हें आप ग्रहण करिये ॥ १८४ ॥ १८५ ॥  
 अश्वज और चमर मयुक्त छत्र मे आपके लिए लाया हूँ । हे त्रिपुञ्जयन, इसे आप स्वीकार करिये ॥ १८५ ॥  
 सुन्दर गन्धयुक्त, दिव्य कुर्यात् अश्वमिश्रित तथा माला चन्दन मिला चन्दन मे आपके लिए लाया हूँ जो  
 आप ग्रहण करिये ॥ १८६ ॥ आनाके टुकड़ों मे बनाया हुआ कम्बूरा और नृमदममिश्रित अक्षत मे आपको  
 समर्पण करता हूँ, इसे आप ग्रहण करे ॥ १८७ ॥ मालती आदि सुगन्धित फूलसु बनी माला मे आपको  
 पूजाके निमित्त लाया हूँ, हे रघुनाथक । इस आप ग्रहण कीजिए ॥ १८८ ॥ वनस्पतक रससे उत्पन्न मङ्ग-  
 युक्त उत्तम सुगन्धकाया और मङ्ग दन्तादिक मुँहमे घोष्य छत्र आपके लिए लाया हूँ इसे ग्रहण करिये  
 ॥ १८९ ॥ बीसे बीसी तीन बलियोगने चंदकका लाया हूँ । हे तीनों लोकोंका अम्बकार दूर करनेवाले  
 राम ! इसे आप ग्रहण करिये ॥ १९० ॥ ज्वरे या र अग्र, द्वय, धी, चने तथा अधुमिश्रित नैवेद्य मे  
 आपको अर्पण करता हूँ, इसे ग्रहण करिये ॥ १९१ ॥ आस्य यदि खुर वके अङ्ग्रे अश्व फल मे आपको  
 अर्पण करता हूँ, इसे ग्रहण करे ॥ १९२ ॥ गुह्यान् युक्त मानके पत्तोंस आइ। हुआ और करेक ममालासे  
 युक्त ताम्बूल आप ग्रहण करे ॥ १९३ ॥ हे रघुनन्दन ! अहम उत्तम तथा अग्निसे तेजसे आपमान सुवर्ण  
 से दक्षिणाके लिए आपकी देता हूँ, इसे आप स्वीकार कर ॥ १९४ ॥ हे वत्स ! हम लम्ह मेने विस्तारपूर्वक  
 आवाहनसे दक्षिणा तकके सोइत उपचारोंको कह सुनाया । प्रेम् पूजाविधि माने अतन्त्रता हूँ ॥ १९५ ॥  
 दाप्य कथितबीसे मुक्त, कथिता तीसे मुँहसे मिश्रित चम्प अग्निसे लपेटित रम्य वीराजय मे आपको अर्पण  
 करता हूँ जो स्वीकार करिये ॥ १९६ ॥ मृदु, चम्पा, चन्दार, केतकी, तुलसी चमकक, लम्पट और दो  
 प्रकारके धनिकुल हम भी फूलोंका मङ्गलपुष्प मे आपकी देता हूँ । हे परमेश्वर ! इसे स्वीकार करिये और मेरेपु  
 माला होइए । १९७ ॥ १९८ ॥ जन्मान्तरमें भी मैंने जित किन्हीं पापोंको दिया हूँ, वे गह हों कार्य ।

उरमा शिष्या दृष्टया मनसा वचसा तथा । पद्मार्चा कराम्यां ज्ञानुभ्यां साष्टांगञ्च नमोस्तुते ॥२००॥  
 आवाहनं न जानामि न जानामि विमर्जनम् । पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर ॥२०१॥  
 मंत्रहानं क्रियाहीनं भक्तिहीनं रघूनम । यत्पूजितं स्याद्देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२०२॥  
 एवं श्रीरामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं प्रपूजनम् । निरन्तरं तथा कार्यं नवम्यां च विशेषतः ॥२०३॥

विष्णुदास उवाच

गुरो भवविधैः पुष्पैस्त्वया पुष्पाञ्जलिः कथम् । निवेदितोऽत्र रामस्य पूजने तद्ददस्व माम् ॥२०४॥  
 त्वत्तो नानाविधाः पूजाः मुमुक्षां च मया श्रुताः । पूर्वं तस्मै श्रुते नैव नवपुष्पाञ्जलिः कदा ॥२०५॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः मृगु । आसीत्पुनः द्विजवरः कावेर्यां उत्तरे तटे ॥२०६॥  
 रामनाथपुरे कश्चित्सुन्दराख्योऽतिभक्तिमान् । तस्यामश्रुतं पुत्राश्च रामचित्तनतपस्याः ॥२०७॥  
 चन्द्रोऽतिचन्द्रश्चन्द्रामचन्द्रास्यश्चन्द्रशेखरः । चन्द्रांशुजितचन्द्रश्च चन्द्रचूडोऽष्टमः स्मृतः ॥२०८॥  
 रामचन्द्रश्चाति नव गृहामाश्च नव स्मृताः । एकदा ते स्वयोध्यायां राम भक्तकुपाकम् ॥२०९॥  
 प्रष्टुं यद्युधैप्रभासे तस्मिन्नेव मरुतटे तावत्तत्र ममायाता नानादेशांतरस्थिताः ॥२१०॥  
 जलोधानां कोटयश्च नानावाहनवस्थिताः । सरस्वां रामकीर्णं हि चैवस्नानमादरान् ॥२११॥  
 तेषां समागतानां हि समदर्शतत्र वै सभूत् । समदर्शद्रामचन्द्रस्य तेषां नाभूच्च दर्शनम् ॥२१२॥  
 तदा ते मन्त्रयायास्तुर्नव विप्राः परस्परम् । कथं श्रीगणेशस्यात्र समर्पे दर्शनं भवेत् ॥२१३॥  
 खेज्जातं त्वनियन्त्रेण तर्हि तस्मिन् दर्शनम् । यावत्स्वस्थेन मनसा राक्षसो न निरीक्षितः ॥२१४॥  
 तावत्तदर्शनं नैव तुष्टिं नो जनयिष्यति । तदा चन्द्रोऽत्रत्रोज्ज्वलेष्टुस्त्वत्रैव रामदर्शनम् ॥२१५॥

एक-एक पग चलकर मैं आपको प्रदक्षिणा करता हूँ ॥ २०० ॥ हृदयसे, मस्तकसे, दृष्टिसे, मनसे, वचनसे, हाथोंसे, पैरोंसे और धूलियोंसे मैं साष्टांग प्रमाण करता हूँ ॥ २०० ॥ हे परमेश्वर ! मैं आवाहन करना जानता हूँ, मैं विमर्जन करना आता हूँ । पूजन करना भी मैं नहीं जानता । यदि कुछ भ्रम हुआ हो तो क्षमा करा ॥ २०१ ॥ हे रघूनम ! मंत्रसे, क्रियासे और भक्तसे हीन होने जा कुछ पूजा की है हे देव ! वह सब परिपूर्ण हो जाय ॥ २०२ ॥ इस तरह निरन्तर भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए और नवमीको विशेष करके ऐसा करना उचित है ॥ २०३ ॥ विष्णुदासने कहा-हे गुरो ! इस पूजनके प्रसङ्गमें आपने भी प्रकारके फूलोंसे पुष्पाञ्जलि देनेकी विधि वशी ब्रत शकी है ? सो आप हमसे कहिये ॥ २०४ ॥ अवलोक आपने मुझे बहुतसे देवताओंका विविध पूजन बताया, किन्तु उनमें नवपुष्पाञ्जलि आपने कहीं नहीं बतलायी ॥ २०५ ॥ आरामदासने कहा-हे शिष्य ! मुझे बहुत अच्छी प्रश्न किया है, सो तावत्तत्र मन होकर सुनो । बहुत दिनोंकी बात है, कावरी नदी के उत्तर तटपर रामनाथपुरम् अति भक्तिमान् सुन्दर नामका एक ब्राह्मण रहता था । वह रामका ध्यान करता था । रामका ध्यान करनेवाले उस भक्तके लीं बेटे थे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ चन्द्र, अति-चन्द्र, चन्द्राभ, चन्द्रास्य, चन्द्रशेखर, चन्द्रांशु, जितचन्द्र, चन्द्रचूड और गृहाम रामचन्द्र ये उन लड़कोंके नाम थे । एक बार चैत्रके महानमे वे नवीं सड़के भगवान् रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिये अयोध्या गये । वहाँ पहुँचकर वे सरयूके तटपर पहुँचे । तब तब समयके देशके रहनवाले कराड़ों मनुष्य चैत्रमास स्नानके लिये अनेक प्रकारकी सवारियोंपर चढ़कर वहाँ आ पहुँचे ॥ २०८-२११ ॥ उन भाये हुए लोगोकी भारी भीड़के कारण वे नवीं ब्राह्मणकुमार रामचन्द्रजीका दर्शन नहीं पा सके ॥ २१२ ॥ उस समय उन्होंने परस्पर मंत्रणा की कि इस प्रकारका भाइय रामचन्द्रजीका दर्शन कैसे हो ॥ २१३ ॥ बहुत प्रयत्न करनेपर यदि थोड़ा-सा दर्शन हो भी जाय तो जबसक अच्छी तरह उन्हें न देख सकूँ तो दर्शनसे लाभ हा क्या ? ॥ २१४ ॥ उस क्षणिक दर्शनसे हमें संतोष नहीं होगा । उनमेंसे ज्येष्ठ ज्ञाता चन्द्र बोल कि हमलोग तीव्र तपस्या करके यहाँ ही रामचन्द्रजीका

वयं लोकेषु तपसा प्राप्स्यामस्तुभ्यर्त्ता वयः । तच्चन्द्रवचनं श्रुत्वा पुनः प्रोत्तुर्द्विजोत्तमाः ॥२१६॥  
 एककाले तु सर्वेषां तत्सामन्तरेण हि । कम्पादौ रामचन्द्रश्च दास्यत्यत्र प्रदर्शनम् ॥२१७॥  
 कस्य दास्यति एवाञ्च निर्विर्षं तद्भविष्यति । कस्यश्मासु रडा भक्तिविदिता सा भविष्यति ॥२१८॥  
 एनं परस्परं लोक्त्वा ते सर्वे द्विजसूतवः । त्यक्तभारा वायुमश्वार्थकाने तन्परेण हि ॥२१९॥  
 गत्वाऽतिदूरं संमर्दात्तेषुः सर्वे तपो महत् । तत्सर्वं रात्रौ श्रुत्वा सर्वमाधी जगन्प्रभुः ॥२२०॥  
 तेषां स्वदर्शने दानुं नवमे दिवसे मुदा । मंत्रायामास धीरासः स्वर्गं चित्ते समास्थितः ॥२२१॥  
 एककाले तु सर्वेषां यदि दास्यामि दर्शनम् । तर्ह्येव तुष्टिः सर्वेषां भविष्यति न वैकहि ॥२२२॥  
 अनोऽद्याहं करिष्यामि नव रूपाणि विश्रयान् । एव संसृज्य भीरवो लक्ष्मण प्राह सादम् ॥२२३॥  
 शिविकामानयस्वाद्य बहिर्गच्छान्पहं मुदा । तथेति गन्वाक्येन शिविकी लक्ष्मणश्च ॥२२४॥  
 आनयामास दूतैः स राघवाय न्यवेदयन् । तदा भित्तामकाद्रामधोर्चार्य शिविसास्थितः ॥२२५॥  
 बन्धुभिर्मन्त्रितैर्यथ सुहृन्मित्रादिभिर्दूतैः । वाहे. शनैर्योष्याया यथा रामो मुदान्वितः ॥२२६॥  
 ततस्तं जनसंघं समनिकृष्य राघवः । चकार मय रूपाणि दान्मनः परमेश्वरः ॥२२७॥  
 शिविकाःसुहृदोऽभिलन्तान्मित्रान्महाह्वानान् । चकार मया राघवन्दो म भुजमाश्रयः ॥२२८॥  
 निरीक्षितुं मयायाता नात्मन् तान् जनानपि । चकार नवधा रामस्तद्वृत्तमिरामवत् ॥२२९॥  
 ततस्तैस्तैर्जनैर्मित्रैर्नवबन्धुजनैः सह । नवानां भूमराणां हि यथान्ये स्मृतयः ॥२३०॥  
 ततस्ते भूसुराः सर्वे तदैकमयमे प्रभुम् । आत्मनः पुरतो गम्य ददृशुर्न पृथक् पृथक् ॥२३१॥  
 तेषुष्टमनसः सर्वे प्रणेषू रघुनन्दनम् । शि चैकाग्र्यस्ततो रामस्त्ववकस्य पृथक् पृथक् ॥२३२॥  
 नवरूपधराः सर्वान्विधानालिख सादम् । ऊर्ध्वमधुरया वाचा प्रसन्नमुखपङ्कजाः ॥२३३॥

दर्शन मा लेने । चन्द्रको इस रात्रिको मुनकर वे सब बाल उठे कि यदि हम सब भाई एक साथ तपस्या करने  
 लग जायें तो रामचन्द्रजी किसको पहले दर्शन देने ॥ २१५-२१७ ॥ ओर जिसका सबसे पहले ? इससे बहु  
 बात भी बात हो जायगी कि हमसे किस्को भक्ति है ॥ २१८ ॥ इस तरह परस्पर बातचीत करके वे  
 सब बाहुणबालक उस पीठमे दूर जा बैठे और म जन त्यागकर केवल जन पंत हुए एकाग्र मनसे तपस्या  
 करने लगे । सारे सप्ताहके पाक्षा तथा निमित्त जगनके प्रभु रामचन्द्रसे यह बात छिपी नहीं रही ॥ २१६ ॥ २२० ॥  
 नवें दिन उन्होंने अपनी सभामे उनको दर्शन देनेके विषयमें सम्बन्ध की ॥ २२१ ॥ इसका बाद भ्रम भर अपने  
 मनमें विचार किया कि यदि उनकी एक ही समझमें दर्शन न होगा तो वे मगुष्ट नहीं होने ॥ २२२ ॥ इस  
 कारण आज मैं नी रूप धारण करूँगा । ऐसा निश्चय करके उन्होंने लक्ष्मणसे सादपूर्वक कहा ॥ २२३ ॥  
 हे लक्ष्मण ! पालकी मंत्राओं । आज मैं बाहर घूमने जाऊँगा बहुत अच्छा कह तथा तुमो द्वारा लक्ष्मणने पालकी  
 बैगवाकर रामचन्द्रजीको इसकी खबर दी । सब मित्रात्मने उत्तरकर राम पालकी में बैठे और भाईयों, मित्रियों,  
 सम्बन्धियों तथा मित्रोंके साथ घारे घारे जगोदरासे बाहर निकले ॥ २२४-२२६ ॥ उस विशाल भीड़को पक  
 करके रामचन्द्रने नी रूप धारण किया ॥ २२७ ॥ भ्रम भ्रमके भीतर रामने पालकी, लक्ष्मणों, सब भाई,  
 दूत तथा बाहुन समेत सब मित्रोंको नी रूपमें परिगत कर दिया ॥ २२८ ॥ केवल अपने तथा अपने  
 भावियों ही की उन्होंने नी सका रही बगली, बहिक जो लोग वहाँ दर्शन करने आये थे, उनको जो उन्होंने  
 नी संख्यामें विभक्त कर दिया । यह एक विचित्र बात हुई ॥ २२९ ॥ उनके अनन्तर उन वसुधियों, मित्रों दूतों,  
 वसुधियों तथा बाहुणोंके जाने-आने रामचन्द्रजी बल्लन लगे ॥ २३० ॥ फिर गया था, उन नवों बाहुणोंने एक  
 ही समयमें प्रभुको अपने-अपने भागे लड़े देखा ॥ २३१ ॥ इससे प्रसन्न होकर उन्होंने राजकी प्रणाम किया ।  
 इसके बाद वे नवों राम अपनी-अपनी बालकियोंसे उत्तरे और उन बाहुणोंको गलेसे लगाया । फिर मोड़ी-मोड़ी  
 राणोंमें उनसे बोले ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ उन्होंने कहा—हे भाइयों ! आप लोगोंने क्या कह किया है ।

मो विप्रः श्रमिता यूयं युष्माकं कृतनिश्चयम् । बुद्ध्वा ययं यूयकं रूपैर्जाताः स्मो नवघाट्य हि ॥२३४॥  
 एकाकालेऽत्र तेषां सर्वेषां दर्शनं निजम् । कस्य देवं तु पूर्वं हि पश्चान्कस्य प्रदीयताम् ॥२३५॥  
 इति सम्मन्त्र्य हृदयेन तयैकनमयेन हि । युष्माकं दर्शनं दर्शं वर्यध्वं वरानितः ॥२३६॥  
 रामाणां वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्धृमुजोत्तमाः । येनास्माकं मन्त्रेर्हार्तिः स वरो दीयतां तु नः ॥२३७॥  
 तसंयां वचनं श्रुत्वा रामाः प्रोचुर्द्विजन्धुनः । युष्माकं दर्शनार्थं हि नवरूपधरा वयम् ॥२३८॥  
 अद्य जाता यदस्माद्युष्माकं नामभिः सदा । नव रामाः पगं स्वार्तिं तमिष्यन्त्यवनीमले ॥२३९॥  
 अस्माकं नव यत्किंचित्प्रियं हि भविष्यति । ते तेषां नु रामाणां वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमाः ॥२४०॥  
 सन्तुष्टस्ते नृता नेमू स्वं स्वं रामं मृदुर्मदुः । तदा सर्वे जना रामान् लक्ष्मणान् भरतादिकान् ॥२४१॥  
 आत्मानं भवधा जातान्द्रुपा विस्मयमाश्रिताः । ततो रामाः शिविज्ञानु स्थित्वा पृष्ट्वा द्विजोत्तमान् ॥२४२॥  
 पगपृन्त्य ययुः सर्वे मार्गे स्वेकोऽभवन्पुनः । सर्वे जातास्त्वेकरूपास्तथा ते विस्मयं ययुः ॥२४३॥  
 सुतो रामो बन्धुभिश्च पूर्ववन्नगरीं ययौ । मन्वा गेहे तु सीतायै सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥२४४॥  
 अतस्ते नव विप्राणां नामभिर्जगतीमले । स्वार्तिं रामा ययुस्तत्र नव पद्यच्च तत्प्रियम् ॥२४५॥  
 यथाकीं द्वादश प्रोक्ता एकविंशद्द्वयाधिपः । रुद्रा एकादश प्रोक्ता यथाष्ट भैरवाः स्मृताः ॥२४६॥  
 नव दुर्गा यथा तत्र तथा गमा नव स्मृताः । प्रिय द्वादश सूर्याश्च एकादश शिरप्रियम् ॥२४७॥  
 एकविंशत्प्रियं यद्ब्रह्मणेशाश्च महान्मने । प्रियमष्ट भैरवाश्च दुर्गायै तु नव प्रियम् ॥२४८॥  
 यथा यथाऽत्र रामाय नव शिष्य प्रियं सदा । तस्मात्त्रयिभिः पुष्पैरङ्गुलिस्तत्प्रियो मतः ॥२४९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकांडे रामपूजाद्वयविष्णवो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

आपके कहती देखकर ही मैं अलग-अलग रूप धारण करके एक ही समयमें सबके समक्ष आया हूँ ॥ २३४ ॥  
 मैंने अपने मनमें सोचा कि ये सब सच हैं एक साथ एक ही समयमें तांग्या करने बैठे हैं ऐसी अवस्थामें मैं  
 किसे पहले दर्शन दूँ और किसे न दूँ ॥ २३५ ॥ यह विचारवार मैंने आज एक ही समय तुम लोगोंको दर्शन  
 दिया है । अब अपने इच्छानुसार वर भी माँग लो ॥ २३६ ॥ उनकी वाणी सुनकर बाह्यजोने कहा—हे प्रभो !  
 जिससे संसारमें हमारी कीर्ति हो, हमें आप वही वरदान दीजिये ॥ २३७ ॥ इस तरह उनकी बात सुनकर रामने  
 उन बाह्यजोने कहा कि आप लोगोंको दर्शन देनेके लिये मैंने नौ रूप धारण किया है । अतएव आप लोगोंके  
 नामसे ही मैं नौ रामके नामसे विख्यात होऊँगा ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ जो कोई भी नौ चीजें मुझे देगा, वे हमें  
 अतिशय प्रिय होंगी । इस तरह उनका बान सुनकर ब्रह्म मनसे उन बाह्यजोने बार-बार रामको प्रणाम किया ।  
 उधर रामके साथवाले लक्ष्मण भरत आदि लोग अपनेकी नौ स्थायों देखकर बड़े चकराये । सदनन्तर वे सब  
 राम पालकियोंमें बैठे और उन बाह्यजोने पूछकर अवस्थाके लिये सीट पड़े ॥ २४०-२४१ ॥ रस्तेमें रामने  
 उन नवीं राशिको रूप समेट लिया और फिर उनसे द्यो एक नाम हो गया । वह घटना देखकर भी लोगोंको  
 बड़ा विस्मय हुआ ॥ २४३ ॥ इस तरह राम अपने दानवोंके साथ नगरोंको गये वर पंहुँचकर उन्होंने  
 सीताको उस दिनका सारा समाचार कह सुनाया ॥ २४४ ॥ हे शिष्या ! इसी कारण राम उन नौ नामोंसे विख्यात  
 हुए और जो-जो चीजें नौ स्थायों दी जाती है, वे उन्हें दिव्य प्रिय हुआ करती हैं ॥ २४५ ॥ जैसे बारह  
 धातुस्थ माने गये हैं इसीस गणेशजी, ग्यारह छट, आठ भैरव तथा नौ दुर्गायें मानी गयी हैं उसी तरह राम  
 भी नौ माने जाते हैं ॥ २४६ ॥ बारह सदावाची चीजें सूर्यको एक दशरथका रुद्रको, इसीस गणेशजीको, आठ  
 भैरवको और नौ वस्तुयें दुर्गाका प्रिय होती हैं ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ इसी तरह जो चीजें नौ होंगी, रामको अत्यंत  
 प्रिय हुआ करेंगी । इसलिये नौ प्रकारके फूलोंसे अन्नब्रह्मदानका विधान मैंने बदलाया है ॥ २४९ ॥ इति श्रीशत-  
 कोटिशामबरिसांख्यते श्रीमदानन्दरामायणे श्रीरामाष्टकासहिते मनोहरकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( लघुरामतोमद्रका विस्तार )

श्रीविष्णुकास उवाच

स्वामिस्त्वया रामनाम्नामष्टोत्तरमहप्रकाश । मद्रमुक्तं तथा चाष्टोत्तरशतमुत्तमम् ॥ १ ॥  
रामनाम्ना मद्रमुक्तं रामचन्द्रप्रपूजने । तत्कीदृशे तै तु मद्रे लेखनीये मनोरमे ॥ २ ॥  
ते मां विस्तरतो ब्रूहि यथाऽहं वेष्टि तत्त्वतः । तयोर्वै ये विशेषाश्च मद्रघोस्तेऽपि मां वद ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

मृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि मद्राणां रचनाः शुभाः । यथा पृष्टा त्वया मह्यं रामनाम्नां मनोरमाः ॥ ४ ॥  
अष्टोत्तरशतं रामलिङ्गतोमद्रमुत्तमम् । आदौ मया विस्तरेण कथ्यते तन्मिश्रमय ॥ ५ ॥  
अत्रोपाध्या राममुद्रा रुद्रशोषामकः स्मृतः । श्रीरामलिङ्गतोमद्रमत एवोच्यते कुपैः ॥ ६ ॥  
तिर्धगूर्ध्वं तदा रेखा द्वे तथे रेखयाधिके । तत्रादौ कृष्णपरिविस्तृतो रक्तः सितस्त्वतः ॥ ७ ॥  
ततः पीतश्च परिवि कोणेन्दुस्त्रिपदा स्मृतः । चन्द्राग्रे मृत्सला कृष्णा स्मृता द्वादशपादिका ॥ ८ ॥  
हरिता च ततो वल्ली त्रयोविंशत्पदात्मिका । ततः पीता भृङ्गला च स्मृता द्वादशपादिका ॥ ९ ॥  
विंशत्पादमजं मद्रं रक्तं वापी सिता ततः । त्रयोदशपदा ज्ञेया लिङ्गं षट्त्रिंशत्पादजम् ॥ १० ॥  
कृष्णत्रयुष्पदो मूर्द्धा नाभिर्द्युग्मपदा स्मृतः । मूलस्कंधा षट्पदजौ पार्श्वे तुर्यद्वादशमके ॥ ११ ॥  
ततो रक्तश्च परिधिर्मर्यादाकुर्योर्जपादजः । ततो मुद्रा तुर्यतुर्यभूमिपादमिता स्मृता ॥ १२ ॥  
ततो मर्यादापरिधिर्लिङ्गमुद्राः पुनः पुनः । एवं इरा नव ज्ञेया मुद्रायाष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ १३ ॥  
परिधयः षोडशैव ह्यग्ने लिङ्गोर्ध्ववार्धके । निर्धेम् मद्रं नवपदैः पीतं वा हरितं कचित् ॥ १४ ॥  
रक्तमद्रोर्ध्वव. शेषपादनि यानि सति हि । परोक्षं चित्रवर्णैश्च भृङ्गलायै नियोजयेत् ॥ १५ ॥

विष्णुदासने कहा—हे स्व मित्र ! आपने हमें रामनामका अष्टोत्तर सहस्रका मद्र ( भासन ) और अष्टोत्तरशत नामका मद्र रामचन्द्रकी पूजाके प्रसङ्गमें बतलाया है । उन मद्रोंको किस प्रकार बनाना चाहिए, यह हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए । जिससे कि मैं उनके तरहसे समझ सकूँ । उनको जो विशेषताएँ हों, सो भी हमें बतला दीजिए । १-३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! उन मद्रोंकी रचनाका प्रकार जिस तरह तुमने पूछा है, सो मैं पहले अष्टोत्तरशत रामलिङ्गतोमद्रका रचनाप्रकार विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसमें राममुद्रा उपास्य है और रुद्र उपासक है । इसका कारण लोग इसे रामलिङ्गतोमद्र कहते हैं ॥ ६ ॥ यह मद्र बननेवालोंको चाहिए कि सीधी और बंदी दो सी रेखाएँ खींचे । उसमें पहलेकी परिवि काली, फिर काल, फिर सफेद रत्न ॥ ७ ॥ इसके बादकी परिवि वाली और फिर कागमे त्रिपद चन्द्रका आकार बनाये । चन्द्राग्रे आगे काले रङ्गकी ऐसी भृङ्गला बनाये, जिसमें द्वादश पाद ( कोष्ठक ) विशाल हों । फिर हरे रङ्गकी तेईस पादकी वल्ली बनाये । फिर द्वादश पादकी पीली भृङ्गला रखे ॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर खंभ पादका मद्र बनाये । तदनन्तर सफेद रङ्गकी पापीका निर्माण करे । जिसके तेईस पाद बने हों । फिर छर्व्वंश पादका लिङ्ग बनादे । फिर चार पाद । कोष्ठक का कान्ते रङ्गके मस्तक बनाये, फिर दो पादकी नाभि बनाये । उसके दो मुख रत्नर छ' छ' पादोंके बनाये और चार पादका पार्श्वभाग बनाये । फिर बारह पादकी मर्यादा बनाये, जो लाल रङ्गमें रहूँगे । फिर बार-बार पादोंकी मुद्रा बनाये । फिर मर्यादाकी परिवि एवं लिङ्गमुद्रा बनाये । इसी तरह नी शिव एवं बाठ मुद्राएँ बनायी ॥ १०-१३ ॥ फिर लिङ्गके ऊपर और कालमें संज्ञक परिविपीकी रचना करे । फिर नौ पादास कहीं पीले और कहीं भूरे रङ्गके मद्र बनाये ॥ १४ ॥ रक्त मद्रके ऊपर मिलने भी ध्यान हों, उनकी भृङ्गलाके लिए चित्र-

मध्यलिङ्गस्कंधयोश्च मिले नेत्रे स्मृते शुभे । पीते लिङ्गस्कंधयोश्च शृङ्खले त्रिनिषादजे ॥१६॥  
 अघोमुख हरोर्ध्वं च रक्त मद्रं द्विषट्पदम् । निर्यम्भद्रे तु हरिते स्मृतेष्टादशपादजे ॥१७॥  
 ततः पंक्तैरुर्ध्वभागे हरितः परिधिः स्मृतः । तत ऊर्ध्वं पीतवर्णः प्रोक्तश्च परिधिः शुभः ॥१८॥  
 एव प्रोक्ता प्रथमेयं पक्तिः सर्वत्र कार्येण । द्वितीयाया विशेषं च वक्ष्यामि न पुरेरितम् ॥१९॥  
 सप्त मुद्रा हरा ह्यर्धे परिषयश्चतुरदंश । मद्रं रक्तं षट्पदं च शेषं सर्वं तु पूर्ववत् ॥२०॥  
 तृतीयाया ततः पंक्तौ मुद्राः पञ्च शिवा रक्ताः । परिषयो दश ज्ञेया मद्रं त्रिंशत्पदान्मकम् ॥२१॥  
 ततः पंक्तौ चतुर्ध्यां तु त्रीणा मुद्राश्चतुष्टयम् । परिषयोऽष्ट विज्ञेया मद्रं च नव वेदजम् ॥२२॥  
 हरिपीतयोर्मध्ये हि लोहितः परिधिः स्मृतः । पञ्चमाया ततः पंक्तौ मुद्रैका शङ्करद्वयम् ॥२३॥  
 परिषयश्च चत्वारि मद्रं नवविषादजम् । हरिद्ररक्तपीतवर्णा परिषयश्च पूर्वतः ॥२४॥  
 षष्ठायां च ततः पंक्तौ मुद्रैका परिधिद्वयम् । नव वेदमयं मद्रं तिस्रः पश्चिमोऽपि च ॥२५॥  
 मध्येऽपि सर्वतोमद्रं वेदनेत्राग्निषादजम् । त्रिवददुः शृङ्खलाश्च कृष्णाः पञ्चपदा मताः ॥२६॥  
 एकादशपदा वल्ली मद्रं नवपदान्मकम् । चतुर्विंशत्पदा वापी पीतश्च परिधिः स्मृतः ॥२७॥  
 पदेषु षोडशेष्वेव मध्ये पञ्च यथारुचि । कर्णिका पीतवर्णा च शेष मुद्रया नियोजयेत् ॥२८॥  
 एतदष्टोत्तरशतं रामलिङ्गात्मकं स्मृतम् । तत्र मुद्रास्वरूपं च वेदवेदेदुभिः स्मृतम् ॥२९॥  
 राज्यकाण्डे उपागर्धस्य सर्गेष्टादशमे पुरा । उक्तं मुद्रास्वरूपं च तथाप्यत्र तु कथ्यते ॥३०॥  
 पंक्तयोऽर्कमिनाम्तत्र सर्वा द्वादशपादजाः । तासु पूर्वदिगारभ्य क्रमेणैव प्रपूरयेत् ॥३१॥  
 प्रथमा तप्तमी चोन्ने पंक्ती कुण्डे प्रपूरयेत् । ऊर्ध्वाभिः पञ्च एवैव पक्षयस्तत्क्रमं जुवे ॥३२॥  
 पञ्चपक्षिषु चोर्ध्वं हि प्रथमायाः प्रपूरयेत् । प्रथमं चेद्वदिगजं च कुम्भवर्णं न चापगम् ॥३३॥

विचित्र वर्णोंका बनाये ॥ १५ ॥ मध्यलिङ्गक दोनों कंधापर सुफट रङ्गके दो नेत्र रहें । लिङ्गके स्कन्धमें पीले रङ्गकी तीन-तीन पादोंवाली दो शृङ्खलाएँ रहें ॥ १६ ॥ शिवके ऊपर अघोमुखके वगपर माठ पाद (कोष्ठक) से लाल रङ्गका भाग रहेगा । अष्टादश पादका तिरछा मद्र हरे रङ्गसे बनेगा ॥ १७ ॥ पत्तिके ऊर्ध्वभागमें हरे रङ्गकी परिधि रहेगी । उसके ऊपर पीले वर्णकी परिधि रहेगी ॥ १८ ॥ उक्त रीतिसे प्रथम पंक्ति बनायी जायगी । अथ दूसरी पंक्तिकी विनियोगार्थ बतलाया है, ओ पहले नहीं बतलायी थीं ॥ १९ ॥ दूसरी पंक्तिये सात मुद्रा, आठ पाद एवं चौदह परिधियाँ रहेंगी । यह मद्र छ पंगेवाला एवं लाल रङ्गका रहेगा और तीस पादका मद्र बनेगा ॥ २० ॥ २१ ॥ चौथी पंक्तिमें तीन शिव, चार मुद्रा, आठ परिधियाँ और चार पादका मद्र बनेगा ॥ २२ ॥ हरे-पीलेके मध्यमें लाल रङ्गकी परिधि रहेगी । पाँचवीं पंक्तिये एक मुद्रा रहेगी और दो शिव रहेंगे ॥ २३ ॥ चार परिधि रहेगी और मध्य पादका मद्र बनेगा । षष्ठी हरे-लाल-पीले वर्णकी परिधियाँ पूर्ववत् रहेंगी ॥ २४ ॥ छठी पंक्तिमें एक मुद्रा, दो परिधि, चार पादकी नौ और सोन परिधियाँ रहेंगी ॥ २५ ॥ मध्यमें तीन सौ चौबीस पादका सर्वतोमद्र रहेगा, सोन पादकी चत्वारि शृङ्खला रहेगी और पाँच पादकी कृष्ण बलियाँ रहेंगी ॥ २६ ॥ इसमें एकादश पादकी वल्ली रहेगी और नौ पादका मद्र रहेगा । बीबीस पादकी वापी रहेगी और वह पीले रङ्गकी रहेंगी ॥ २७ ॥ सोलह पादोंके बीचमें अपनी पसन्दके माफिक कमल रहेगा । उसकी कर्णिकाएँ पीले रङ्गकी होंगी । बाकी सब अवयव अपने-अपने रङ्गके अनुसार होंगे ॥ २८ ॥ यह मैं अष्टोत्तरशत रामलिङ्गनामद्र बतलाया है । इसमें मुद्राका स्वरूप १४४ रहेगा ॥ २९ ॥ यद्यपि राज्यकाण्डके उपागर्ध भागके अष्टारहवें सर्गमें कह आये है कि भी मुद्राका स्वरूप यहाँ बतला रहे है ॥ ३० ॥ इसमें कुल बारह पंक्तियाँ होती हैं और हर पंक्तियोंमें चारह पाद (कोष्ठ) होते हैं । पूर्व दिशासे आरम्भ करके उन्हें पूर्ण करना चाहिए ॥ ३१ ॥ पहली ओर सातवीं पंक्ति काले रङ्गसे रंगी रहनी चाहिए । ऊपर-नीचे पाँच-पाँच पंक्तियाँ रहेंगी । उनका क्रम बतलाते हैं ॥ ३२ ॥ ऊपरकी पाँच



लघुमुद्रान्वितं रामलिङ्गाख्यं भद्रमुच्यते मया शिष्याधुना तत्र भूषणं स्वस्थमानसः ॥५३॥  
 निर्यगूर्ध्वमेव पञ्चाशद्रेखास्तत्पदेण च । मय ममपदा ने द्वौ परिधौ पानवर्णके ॥५४॥  
 कार्यौ तत्र कौण्डेयोप्यिन्दुस्त्रिपदशुक्लकः । भृङ्गलपदा कुम्भा त्रयोदशपदा लता ॥५५॥  
 हरितेशो जम्बूदः कुण्डलपः प्रकरयेत् । त्रिपदं लोहितं जयं भद्रं वल्लभान्निकम्पितम् ॥५६॥  
 पण्डिताद्यान्मिका मुदा तत्रेन्द्रियदिकम्पिता । न्यक्त्वा पत्तिकोणकोष्ठं मिथुं सूर्यस्मिन्नलथा ॥५७॥  
 विधत्तुं कृती च ममसायाः पक्वैः पदस्यधः । मयिणः पूरयेत्तु भाति रामेति सन्पदम् ॥५८॥  
 तत्रादावप्रमुद्रा स्यात्सीमापन्थियस्तथा । रक्तलिङ्गद्वयं भद्रं तथा लिङ्गोपरि स्थितम् ॥५९॥  
 पदद्वयं पानवर्णं योयंवल्लया निषोजदेन द्वितीये न्वकमुद्राङ्गे परिधा द्वौ शिखौ मर्त ॥६०॥  
 भद्रं नवपदं लिङ्गवल्लभैर्मध्ये स्यात्प्रकम् । भद्रं धान लिङ्गोपरि रक्तं तृपदस्यनकम् ॥६१॥  
 लिङ्गमन्त्रपदं द्वे द्वे द्वारते धीधिकाऽपि च । मद्राणि कौण्डेयानि पार द्वे लोहितेऽत्र हि ॥६२॥  
 ततोऽनः गङ्गेतोभद्रं कार्यं तत्र नृपायिका । चतुर्विंशत्पदं भद्रमकंकंष्टु लते मिते ॥६३॥  
 त्रिपदोऽञ्जः पञ्चपदा शृङ्खला परिधेस्ततः । मध्ये पद्मं रक्तवर्णं रचयेत्तु विविचित्रम् ॥६४॥  
 रत्नशुक्लरक्तकुण्डलाश्चाने परिधयो मताः । एतपोऽश्चमुद्रार्थं रामलिङ्गाख्यं भद्रं कम् ॥६५॥  
 गदानन्दमये राधे निज्योतिषमनापयम् । मयावधामकं निर्यं स्वस्थानं समुपस्थितम् ॥६६॥  
 चन्द्रकलं गणलिङ्गोभद्रं यद्विकल्पेन । निर्विकारं नास्ति तस्मिन्निवेकं साधयिष्यते ॥६७॥  
 कल्पितः स नरो राजा गणलिङ्गपुत्रः स्मृतः । रामगदाय इत्युक्ता योगिगम्पः परं भद्रः ॥६८॥  
 लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं ज्योतिर्मयुक्तं अन्नविदुर्गर्भं ॥६९॥

"गम" य दा अक्षर सप्तदशक्षर स्थिते । इन चारो नामोंका चारो अक्षर गम द ॥५१॥ ५२॥ हैं शिष्य  
 भन लघुमुद्रान्वित रामलिङ्गोभद्र वक्तव्य है । सा राम स्वस्थान होकर सुती ॥५३॥ लता और वृक्षा  
 ५४॥ रत्ना ॥ ५५॥ उनके सन सत लताम पान वृक्षा दो पानवर्ण वनेये ॥ ५६॥ कौण्डेयम रत्न  
 कौण्डेयम रक्त रक्त दो इन्द्र वनाव । छका रत्न एक मुद्रा और वरह क ज्योति लता वनाव ५५॥  
 आठ पादका हः रत्नका शिख वनाव । लाल रत्नसे कलिका व म हा लता पादका भद्र वनाव ॥ ५६॥ साठ  
 पादकी मुद्रा और चन्द्रमा वाम्पे कौण्डेय रहता ५७॥ क कौण्डेय और रत्न पादका छत्रकर छत्र वनायी  
 रत्नी मुद्रा गङ्गेतो भद्रि । इसके अनन्तर सती पानवर्ण तचरे कायका क र स्याहीसे भर दे तो  
 राम गम सप्तदशक्षर स्थिते लयता ॥ ५७॥ ५८॥ इसके अतिरिक्त अग्निमुद्रा और इसको बाकी परिधिमा  
 लता रत्नस रत्न । इन लताके भद्र तथा लिङ्गक छत्र मिथुन दाना पाद पानवर्णम रत्न वनाये । इसम  
 कई वना तथा वल्लिया वनाये चाहिये । दूसरे म एक मुद्रा, दो पानवर्ण दो शिख नी पादका भद्र, लता  
 और वल्लिक मध्यम छ, भद्र वनाये । निगत ऊर्ध्ववाता भद्र बाल रहता हो और वर कौण्डेयको लता रत्नसे  
 रत्ना चाहिये ॥ ५९-६१॥ निगत स्वस्थानम नामा हः रत्नक भद्र रत्ने और साधनी करे हः रत्नक,  
 रत्ना । रत्नपर लता भद्र रहता, एक पान और सा लता । इसक मद्रभक्तमे मर्त्योभद्र वना । त्रिपदे चौबीस  
 काल रहेये, नी कौण्डेयको लता वनाओ और शिख भ वनाये, ६२॥ तीन पादक अञ्ज ( कमल ) और चौब  
 पा की मुद्रा दो और परिधि रहता । मनीम रत्नवर्ण य कई रत्नक कमल वनाव ॥ ६३॥ ६४॥ इसके अन्तमे  
 पील, सप्तद लता और काले रत्नकी परिधि रहता । इन पाञ्चण मुद्राओंमे रामाख्योभद्र वनाता है ॥ ६५॥  
 सदा आनन्दमय, चित् ज्योतिष्य, स्वार्चरहित और सबके अवभक्त, मे भयं आ माया रामको मे  
 उपासना करती है ॥ ६६॥ सोलह कलाका यद् रामलिङ्गोभद्र जो मेन वतलाता है वह विचारविहीन  
 नहीं है उसमे आ विचार है, अब उसको विवेचना करना है ॥ ६७॥ रामायण इस लिङ्गका निर्माण करने-  
 व लता मुद्रा पद्म है । सब लोगोंकी अन्तम दान कारण रामका राम" पद नाम पदा है । योगीजनाके  
 ही प्रति अवगत है उसका सर्वकृष्ट रत्न है ॥ ६८॥ उन्हें सदाके सब भाषा लीन होता है और फिर



लिख्यते चिन्त्यते येन भावेन भगवान् दिवः । नितरुपां स रामेति लिंगं येन द्विनामकः ॥७०॥  
 बहूनि सन्ति नामानि रामेशस्य महात्मनः । शतानि रणवेङ्कोऽपि भूमिर्नैवाभिलेष्टितुः ॥७१॥  
 तस्मिन्मण्डपेनोन्नतं हृदयं तन्मूर्च्छितम् । तत्र पद्मपट्टपत्रं सकंपामकर्मिकम् ॥७२॥  
 तन्मूर्च्छानं रामलिंगस्य ध्यानाय परिकल्पितम् । अन्यथा सर्वशरणस्य कथं वेत्तादिभेदना ॥७३॥  
 दिव्योतिः परमानन्दं स्वपापशतनाशनः । धर्मोपकारमोक्षार्थं मूर्च्छयुगाच्च प्रविष्टवान् ॥७४॥  
 तस्य चैतन्यचन्द्रस्य षोडशोमा कलाः पराः । चिद्विषयश्च द्वाभूत्तु चट् द्वाविंशत्यभिह ॥७५॥  
 प्रकाशवन्नि गृहन्नि स्वजन्नि चमयमारता । बुद्धिरेकाग्र्यमभिरा मभिकृष्टा शिवस्मरः ॥७६॥  
 जनो ज्ञानप्रधाना सा तज्ज्ञानं चक्षुरादौ प्रमत्तं स्वजन्मदाशन् ज्ञानानं तु चक्षुषाः ॥७७॥  
 चतुर्दां वृत्तिभेदेन प्रोक्ता चत्वारद्विंशति मयेतन् न तेनात्र प्रकृतं पाद्विषयते ॥७८॥  
 क्रियाप्रधानः प्राणश्च पञ्चधाऽयौ स्ववृत्तिनः । प्राणपानी तथा ध्यानः समानोदानकविवि ॥७९॥  
 बाणादिकर्मेन्द्रियेषु क्रिया प्राणाश्रया मता श्रवणं नयनं घ्राणं स्पर्शचैन्द्रियं तथा ॥८०॥  
 पञ्चेमानि चैन्द्रियाणि ज्ञानदाशानि वै दिदुः । वाक्पाणिपादपायुष्मथाश्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥८१॥  
 एव षोडशसंख्यानं कलातमुच्यते तृधैः । ताम् सुवासु चैतन्यं रागनापति विश्रुतम् ॥८२॥  
 प्रविष्टं दीप्यते प्रकाशेन चित्तं चिन्त्यते । मनोदिग्गमस्तुतः कर्ममूलकलात्मकः ॥८३॥  
 देहाविमानिनो जीवाः कलबागावपक्षिणः । यथाकर्म सुखं दुःखं सादन्ति स्वस्वर्गापितम् ॥८४॥  
 कश्चिन्नमसहस्रेषु ज्ञातवान् जयते यदा । तदन्विमं रामस्य ज्ञाना मोक्षो भवत्यलम् ॥८५॥

उन्मत्तस्य आविर्भूतं होत है । ६९॥ कारण उन्मत्त ज्ञानवा ॥ ७०॥ अगति इस परम व्यास कहा है ॥ ६९॥  
 जिस अवस्था में भगवान् शिवकी पूजा को जाती है । वे ही पाप जिन और राम इन दो नामों से पुकार जात हैं  
 ॥ ७० ॥ उन महात्मा रामक चतुर्दश नाम हैं । ममरना क ६ प्राणी पृथ्वीके रजकणोंको भज ही गिन के ।  
 किन्तु भगवान् के नामोंकी गणना काई भी नहीं कर सका ॥ ७१॥ उन्मत्त जो सर्वतोभद्र हैं, वही हृदय आन्तरा  
 वाहिन्ये । उसमें आठ पत्रोंका केसर और पक्षुष्टिओं युक्त जो कमल है, बहु रामक चिह्नक ध्यान करनेके  
 लिए ही बनाया जाता है । नहीं तो सर्वव्यापी भगवद्भक्त वशादिभदता किस प्रकार मानी जाती  
 ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ चिज्ज्यातिमंथ के परमान्मा अपनी मायाक वशात्तुन हाकर घम, अर्थ, काम और मोक्ष इस  
 अनुवर्गका साधन कर्मक जित् हो समागम आये है ॥ ७४ ॥ उस चैतन्य मन्दक, पादका मन्त्राएँ सबश्रेष्ठ मानी  
 गयी है । वे समागमको सब वस्तुआप ज्ञानान चरन है ॥ ७५ ॥ १॥ समागम हा सबका प्रकाशित करती,  
 समय परनेपर फिर साहृदना और कला कला फिर समागम मन्दक जिया करता है । यवित आत्मावालाक  
 लिए बुद्धिमात्र कला है और बहु सबका पास रहती है ॥ ७६ ॥ १॥ गति बहु वस्तु अदिस रहती हुई ज्ञानप्रधान  
 मानी जाती है । बहु पापकारि मन्त्राएँ के तु हा, पाप का उन्मत्त तरह जन्मता है ॥ ७७ ॥ बहु वृत्तिभेदों  
 बाद प्रकाशकी मानी गयी है । वही उसके चिन्त्यते चिन्त्य विवेचनकी काई आशयकता नहीं जान पड़ती ।  
 ज्ञानेव इस विषयम वास्तविक विवेचना करत है ॥ ७८ ॥ अपनी वृत्तिके अनुसार प्राणज्या प्रधान मानी  
 जाती है और इसके पाँच भेद है—प्राण, अपान, दशाह, समान तथा उदान ॥ ७९ ॥ वाक्, आदि कर्मेन्द्रियों  
 की सातों क्रियाएँ प्राणज्या हुआ परती है । घनण, नयन, घ्राण ( नाक ), स्पर्श और श्रोत्र ॥ ८० ॥ वे  
 ही पाँच ज्ञानाश्रय मानी गयी है । वाक्, पाणि, हाथ, पाद, पायु ( भुजा ), ज्येष्ठ ( लिङ्ग ), वे पाँच  
 कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥ ८१ ॥ इन्द्रिय कलाओंका संग्रह सकल कहो गया है । उन सबोंमें उन समागमकी चैतन्य  
 शक्ति चिह्नमान रहती है ॥ ८२ ॥ उन्मत्त प्रवेष्टा यह समागम दशात्मक होता है और उन्मत्तको नेष्टाते लक्ष्य  
 रहा करता है । वे ज्ञानादि संसारकी बुद्ध है और सबको कर्मादुसार फल देते हैं ॥ ८३ ॥ देहा अभिमान  
 करनेवासे जीव पक्षियोंकी तरह अपने प्रभुके दिने हुए मूल-दुखकी कर्मोंकी भागत हैं ॥ ८४ ॥ हजारों  
 बाद जन्म लेनेके बाद कही कोई ज्ञानवान् होता है और अपनी आत्मा स्थित रामका रूप जानकर मोक्षपद-

इन्द्रियाणि पराण्येव तेभ्यो बुद्धिः परा मता । तत्परः परमात्मा च सर्वपात्री विनिश्चितः ॥८६॥  
 इी सुषण्वेकवृत्त समाश्रित्य स्थितौ भूयोः । एकः साफल्यं कदाचु खादन्यन्यो विचक्षते ॥८७॥

त्रिषु धामसु यद्भोग्य भोक्ता योग्यञ्च यद्भवेत्

तैभ्यो विवक्षणः सार्धान्याद् आधवणी भूतिः ॥८८॥

यच्चवास्नीह यन्मृगानि यच्चानन्दयति स्वयम् । यस्मिन् महसि शरये सर्वे पंदाः समन्विताः ॥८९॥

विषयादि शीघ्रयन्तं जडं मग्नमनात्मकम् । यन्मार्गे च त्रिषु चैतन्यगमान्सा महाश्रियः । ९०॥

सर्वेषां प्राणिनां स्वान्मा परमहन्पदा मता । स तु सर्वत्रक एव न्ह नावाप्तिं गच्छति ॥९१॥

चिक्षामं हृदयं ज्ञाना योऽगं नोद्धविर्नारया । आचारोऽनया गम्यन् परमोपायन मताः ॥९२॥

आशांशमहन्त्यापान्कल्याभूते परान्मदि । शब्दं ह्यं पुनस्तस्य न कार्यं विद्यते भवे ॥९३॥

सर्वेऽप्युपायाः शक्तेषु यज्ज्ञानार्थं पयोजिता । स चेदाशक्तशब्देन ह्यवाचिः किं परं तदा ॥९४॥

दृष्टेऽस्मिन् च ते भद्रं यद्यपि अभिचायते । तदा चित्तं परा प्रीतिर्जायते दिव्या सताम् ॥९५॥

जगो रामाय ज्ञानाय लिङ्गरूपधराय च शम्भवे विष्णवे नृभ्य शङ्कराय शिवात्मने ॥९६॥

अथवाऽऽद्ये स्थले भद्रं कार्यं तत्रपदामकम् । निषेगं भद्रं पदपदत्र रत्नपात्रेभ्य ते स्मृते ॥९७॥

द्विद्विपादात्मके कार्ये शेषं सर्वं हि पूर्वम् । रामो भद्रमेवञ्च कवलं रामतुष्टिदम् ॥९८॥

स्थले द्वितीयभद्रं हि रक्तं विसृज्यदात्मकम् । त्रयेण भद्रं त्रयपदं पात्रं चित्रं तु गृह्यते ॥९९॥

तन्वेशानं राममानन्दकन्दं मायानीतं निर्विकारं निर्गदम् ।

त्रियाशीशु षड्गुणैकाधये च ब्रह्मे भद्रं रामनामांकितं तत् ॥१००॥

को प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ पहले तो इन्द्रियां दुःप्रयत्न है, उनमें बुद्धि प्रवृत्ति है और उससे भी श्रेष्ठ स्वमायो परमात्मा है ॥ ८६ ॥ दो लोग एक वृक्षपर बैठे, एक तो मूढ है एक तो फल खा रहा है दूसरा दुष्ट दुष्ट लालच है ॥ ८७ ॥ तीनों धाम में जा भोग करने, भोग लवा भोग करने है। उन सबसे साक्षी परमात्मा विवक्षण है वह भाग्य बदलता है ॥ ८८ ॥ इस पारान्त जा चित्त प्रयत्न करना है और जिसके मनो आनन्दको प्राप्त होता है। उसका विषयम सब यद् एवम् हुकर कहा है कि विषयों लक्षण बुद्धिपरत सब वस्तुएं जड और अन्मन्निहीन है। जगके ८९ यद् एवम् प्रथम सत्य है, य परमात्मा राम सर्वप्रथम है ॥ ८९ ॥ ९० ॥ सम रक्त सब प्राणि लक्षा अनेको अन्मा सबसे वस्तुत्रिभुव होता है, यद्यपि वह एक है फिर भी अनेक कथित विशाल है ॥ ९१ ॥ जो प्राणी साक्षात् इस भावनाच चित्तमय रामका अपन हृदयमें मुदा वतमान रामलक्ष्मण अर्थात् इ गे च हुई ई साक्षी रामकी उपस्थिति करना है, वह परमात्माका दो हुई अन्माके कलीभूत होनेपर अनेकों बार इस संसारमें जन्म लेता है, किन्तु जनक रङ्ग हो जानेपर फिर सत्त्वम उस कुछ करना बाकी नहीं रह जाता अर्थात् उसका बुद्धि हो जाता है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ साक्षीमें जितने भी उपाय बतलाये गये हैं, उनका एकमात्र प्रयत्न ज्ञान प्रप्ता करना है। यदि वह सत्त्वार्थिक उपायोंसे प्राप्त हो सके तो फिर क्या कहना ॥ ९४ ॥ यदि उक्त प्रकारसे बतलाये हुए भद्रका प्रयत्न करके उसपर विचार किया जाय तो विद्वान्नाक हृदयमें ईश्वरक इति महती शक्ति उत्पन्न होता है ॥ ९५ ॥ शब्द, लिङ्गरूपधारा, शम्भु विष्णु, शङ्कर तथा शिवात्मा रामका प्रणाम है ॥ ९६ ॥ यदि उक्त प्रकारका भद्र अपनको न सचेता तो पादका भद्र बनावे। इस तिरछे भद्रम छः पाद ॥ काष्ठ, हुँग और दो मंजुल और दान रहने ॥ ९७ ॥ फिर दूसरा लाल भद्र बीस पादका होगा। तिरछा भद्र तो पादका होगा। इसका पता रङ्ग रहना और कई रङ्गाक भद्रस इसमें दोन्हा पादोंकी दो शृंखलाएँ बनावी जाँगे ॥ ९८ ॥ चक्रा सब पुत्रवत् रहेंगे। इस भद्रका नाम भ्रमसोमद्र है और वह कवल रामचन्द्रको प्रसन्न करनेवाला है ॥ ९९ ॥ आनन्दकन्द, मायार्तत, निर्विकार, निर्गद, विद्याके स्वामी और षड्गुणोंके एकमात्र आश्रय चित्रका यह भद्र नहीं प्रसन्न कर सकता। इसलिए ये

प्रागुक्ता द्विजनमंकनत्राधिका २९० श्व रेखाः ययाः सुरभिकल्प पदेषु तायाम् ।  
 कोणांगगज उपरीदुरकुलसख्यः २१ रीताश्च ते परिधयः पञ्चिकवर्णायाः ॥१०१॥  
 कोणाजम्बूसल्लताः मितकृष्णलीला गङ्गाणि भिन्नरचनान्यरुणानि तानि ।  
 मुद्राश्च नःपविष्यथ मितश्च रक्ताः सपणिश्च जनयन्ति र्नि मूर्नानाम् ॥१०२॥  
 मुद्रा तु षष्टिपदसरलिता च तत्र पर्क्षा विहाय समवापयदिवनमध्ये ।  
 ग्रन्थेककोणकेशानि चतुष्टयादि पञ्चिकव २५ तुरगधकमञ्जनाभम् ॥१०३॥  
 कृन्दा पदैकमयनस्त्वथ समपाः स्नेनानिमु द्गतरं परिभानि मारम् ।  
 रामेति द्वयसंमुखेशजपं निधान प्राणप्राणममये जपता मङ्गोदपम् ॥१०४॥  
 रचयेदादितः सम्यग्यार्धद्विशब्दानांश्च पर्वत्र राममुद्रासु मध्येषु परिधिद्वयम् ॥१०५॥  
 आदौ तन्त्रमिता मुद्रासुदेविशृङ्गितकान्तः द्वाविंशतिविंशतिपरमप्रदशमाप्ताः ॥१०६॥  
 षष्टचतुर्दशयोदशद्वादशमृदकः नवष्टमवपदसु च त्र्यंशकश्चाप्यनुक्रमम् ॥१०७॥  
 मर्द्रं षोडशपादं च त्रिंशन्विंशन्पदयोगिकम् ।  
 चतुर्दश तन्त्रमितं त्रिंश त्रिंशन्विंशकम् ॥१०८॥  
 तन्त्रपदप्रतिपदांशुनिविधिंशममोऽधिकम् ।  
 षट्त्रिंशन्षोडशपदं तन्त्रे त्रिंशद्द्विंशन्विंशकम् ॥१०९॥  
 त्रिंशत्कोष्ठं क्रमादेवं मन्त्रेणाश्वचतुष्टये एकविंशत्पदे अष्टमेककोष्ठं च त्रयिका ॥११०॥  
 चतुर्विंशपदा कार्या परिधयन्तोऽष्टाष्टकम् । भद्रोपरि यत्र यत्र पदान्पूर्वमिति च ॥१११॥  
 त्रिंशत् भद्रशृङ्गलाधै यथेच्छ पर्येद्विधा मन्त्रे भद्रशृङ्गाः पञ्चपदत्रैकांशी कृता ॥११२॥  
 त्रिपदश्च शशी श्रेयः परिधयो वहि क्रमान् । कृष्णारकशुक्लपौलाश्वतुर्दिक्षु समन्ततः ॥११३॥  
 एतदष्टाक्षरदशशतं १००८ त्रेय गणस्य भद्रकम् ।  
 यथा मनु १/४ रेखानां वृद्धिं कृत्वा प्रकल्प्य च ॥११४॥

एक दूसरा छद्म बतला रहा है ॥ १०० ॥ पहले चन्द्रको ओरसे ००१ रेखा खींचे । उसमें २१ कोष्ठकाले पीले रंगका परिधिवाँ बनावे ॥ १०१ ॥ काण्डे कमल बनकर ऊपर, लाले और नीले रंगकी मृदङ्गला ओर लताएँ बनावे । उसमें वन सब वा क भिन्न भिन्न प्रकारक लता रहके रहेंगे । उसमें चूरी सफेद और लाल रङ्गकी मुद्राश्च मुनियोंके प्रत्यक्ष भी अङ्गुली उत्पन्न भिन्ने बिना बहीं रहती ॥ १०२ ॥ इसमें साठ कोष्ठकोकी मुद्रा बनयी जाती है किन्तु दक्षिणमुख तथा दक्षिण काण्डकी पक्षियों सादी छाड़ दी जाती है । प्रत्येक कोणक चार पाद, दो पवित्र तथा छठी और चौथी पवित्र काल रङ्गकी रहेंगी ॥ १०३ ॥ इसके अतिरिक्त सातवीं पवित्रके नीचे एक पाद काम रङ्गका बनावे वा बहु भद्रके मारका तरङ्ग बहुत ही सुन्दर लगेगा । राम यह दो अक्षर शिवजीके जपपुञ्जका एक बड़ा लज्जना है । यदि प्राण निकलने समय इसका जप किया जाय तो बड़ा कल्याण हो ॥ १०४ ॥ आदिस लेकर बाईसवें कोष्ठक पर्यन्त भद्रको रचना करता जाय । हर एक शाय-मुद्राके अन्तर्मे दो परिधियाँ रहेंगी । १०५ ॥ पञ्च पञ्चभ मुद्रा रहेंगी । इनके आर बाईस, इक्कीस, बीस, अठारह, सत्तरह, सोलह, चौदह, तेरह, बारह, गारह, नौ, आठ पाँच, छ, चार, तीस, दो, एक ये मुद्राएँ रहेंगी ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इस प्रकार बीस बीस कोष्ठ च गे आर रहेंगे । इक्कीस कोष्ठका भद्र रहेंगा और नौ कोष्ठकोकी शशी बनेगी ॥ ११० ॥ चौबीस काण्डोमे परिधिके पास कमल बनाया जा पाद बाकी बचे हों, उन्हें अपनी बुद्धि से भरे । इसमें पाँच पादोकी शृङ्गला रहेंगी और बारह पादको लताएँ बनाया जायेंगी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ तीस पादका चन्द्रमा बनेगा और उदक आस-पास चारों ओर काशी, लाल, सफेद तथा

परिधिस्तत्र लिङ्गानामेविंशधिकं शतम् । वाप्यो मद्राणि चद्रादिचतुःपाशेषु योजयेत् ॥११५॥  
 चतुर्विंशपदं लिङ्गं वाप्यष्टशतपादिका । द्वे भद्रे नव नव पदे षष्ट षष्ट पदानि षट् ॥११६॥  
 त्रिंशल्लिङ्गानि वाप्यन्तु सप्तविंशन्मिता मताः । एकस्मिन् पार्श्वके लिङ्गाधिक्ये भद्रे प्रकल्पयेत् ११७॥  
 षष्टषष्टपदे शेषाण्यंशकोष्ठानि योजयेत् । लिङ्गं कृष्णं मिता वाप्यः शेषं सर्वं पुनोदितम् ॥११८॥  
 पदानि शेषभूतानि यत्र यत्रेह तानि च । मद्रश्चमलयोग्यानि तदर्थं विनियोजयेत् ॥११९॥  
 कृष्णरक्तशुक्लपीठा अने परिधयो मताः । छत्रं लिङ्गभूतं रामनोभद्रं परेकीर्तितम् ॥१२०॥  
 अनेन देवीं सुशीलौ रामेशीं मन्त्रस्मिन्वद् । रामस्य पूजनार्थं हि त्विदं प्रोक्तं ग्रामनम् ॥१२१॥  
 आचार्यान् तानमप्यत्र श्रुत्वा तेषां प्रसादतः । वक्ष्येऽहं रामनोभद्राकृतिं च संभ्रम्यपुताम् ॥१२२॥  
 प्रकृतिं रामनोभद्रं विकृतिं लिङ्गमधुनम् । अन्ये विकाराः संज्ञेया सर्वे कृतिस्त्रिधोऽप्यते ॥१२३॥  
 तिर्यग्धूर्ध्वमन्यधिकाः शनरेखाः प्रकल्पयेत् । तत्पदेषु परिधयः पन्चदन्ते गडेव तु ॥१२४॥  
 पीताः कोणेषु त्रिपदः शुक्लेन्दुः शृङ्खलाधमिता । पञ्चपदैः सादशिका वल्लुगी भद्रसंकमान् ॥१२५॥

चिन्तुषोडशसूर्यनुयुगषोडशकोष्ठकम्

कल्पयन्त्यष्टकोष्ठेषु राममुद्रां हि पूर्ववत् ॥१२६॥

अष्टौ षष्ठ च पञ्चमिधुवह्निचन्द्रमिताः शुभाः

तासां सीमापरिधयस्त्वेकान्तु लोहिताः १२७॥

रजनीशनेत्रविधुपेक्षिषु मध्यमाश्रयः । मर्यादाख्याः परिधयो भवन्ति द्विगुणीकृताः ॥१२८॥  
 अंतिमं तु परिध्वन्ते सर्वतोभद्रकं लिखेत् । विशेषस्तत्र वापी तु चतुर्विंशपदान्मिका ॥१२९॥  
 भद्रं नवपदं पञ्च परिध्वन्तः सुकोहितम् । पीता नन्वकणिका कार्या अन्ते परिधयोऽपि च ॥१३०॥

बीलीं परिधियां रहेंगी । ११३ । यह एक हजार आठ नानोका भद्र है । अथवा चौदह रेखाओंको कल्पना करके उनकी वृद्धि कर । इसमें एक भी इक्कीस कोष्ठोंको परिधि बनगी बादा-भद्र बादि पहलेकी तरह रखें ॥ ११४ ॥ ११५ । चौदास कोष्ठोंका लिङ्ग बनगा और अठारह पादकी वापी बनायी जायगी । दो भद्र मो-मो पादके रहेंगे और दस-दस पादोंके छ भद्र बनाने आवेंगे । ११६ ॥ उनमें सत्स तथा बीस पादोंके लिङ्ग रहेंगे और सत्त इस पादोंकी वापी बनायी जायगी । जो कुछ बाकी पाद बच उनमें दस दस पादोंमें दो भद्रोंको रखना करे ॥ ११७ ॥ बाकी नौ का कोकी मयास्थान रखें । इसमें लिङ्ग काला और वापी सूर्यर रहेंगी । बाकी सब पहलेके भद्रोंकी तरह ज्यों के त्यों रहेंगे । ११८ । बाकी जिनमें पाद है, दो सब भद्र और शृङ्खलाके काममें आ जायेंगे ॥ ११९ ॥ काल, लाल, सभद्र और पाले रङ्गको इसकी परिधियां रहेंगी । इस प्रकारके लिङ्गमें रामनोभद्रकी रचना बतलायी गयी ॥ १२० ॥ इस भद्रमें राम तथा विष्वजी दोनों घटभ होत हैं । यहाँ रामका पूजन करनेके लिये वरासन बतलाया गया ॥ १२१ ॥ अब मैं ज्ञानसम्पन्न आचार्योंको प्रणाम करके उनकी कृपासे हम्भसंयुक्त रामनोभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाऊँगा ॥ १२२ ॥ इसमें रामनोभद्रको प्रकृति विकृत रहती है और भी कई तरहकी विकृतियाँ इसमें होती हैं ॥ १२३ ॥ गड़ी और देड़ी कुल एक ही कीव रेखाएँ खींचे । इसमें भी छ-छ पादोंकी परिधिगी रहेंगी । १२४ ॥ कोनोंमें सोन-सीन पाद बीसे रङ्गके रहेंगे । चन्द्रमा उज्ज्वल रहेगा और शृङ्खला काले रङ्गकी रहेगी । सोलह पादकी वल्लुगी बनायी जायगी । १२५ ॥ चार, सोलह, बारह छ, चार, सोलह पादके जगसे कोष्ठोंमें पूर्ववत् राममुद्राकी रचना करे । १२६ । आठ, छ, पाँच, चार, तीन एक, इस पादक्रमसे इसकी परिधियां बनैगी और एक परिधि काल रङ्गकी रहेगी । १२७ । एक दो, चार और दस इनकी द्विगुणित क्रमसे मर्यादाख्या परिधियां होंगी ॥ १२८ ॥ अन्तिम परिधिके बीचमें सर्वतोभद्र बनाना चाहिये । यहाँ यह विशेषता है कि इसमें नीच स नीचीम कोष्ठोंकी वापी बनायी जायगी ॥ १२९ ॥ नौ काष्ठोंका भद्र बनगा और परिधिके भीतर काल

पीनशुल्करक्तकुण्डवर्णा यत्र पदानि च । भद्रोर्ध्वं शेषभूतानि तानि युक्त्वा प्रपूजयेत् ॥१३१॥  
तिर्यग्मद्रसुम्रलाद्यैः पीनचित्रं च ते स्मृते । एतदणोलगदानं रामतोमद्रर्माग्निम् ॥१३२॥

एकं संसागशून्यं सकलमुखनिधिं सच्चिदानन्दकन्दं

मायायोगेन विश्वात्मकमिदममलं श्रद्धाविष्ण्वीशसंज्ञम् ।

मृष्टिस्थित्यन्तरेतुं निगमकपिनुदं मनभूताम्भभूतं

सर्वज्ञं सर्वशक्तिं रणहृग्ममृत्तं तन्मदो भावयेद्धम् ॥१३३॥

तस्या आदेशिकेष्टस्य पादाब्जममप्रदम् । वक्ष्ये सा-शास्मितीं पवित्रं मार्गं चित्तचमस्कृतिम् ॥१३४॥  
पशूनां नस्तुगेमादि सर्वमर्थाय कल्पते । मृतस्य नग्देहस्य मृष्टिदोषावहोदिता ॥१३५॥  
एकमेवभूता माध्यं ज्ञानं यन्मयस्वरूपदम् । तद्विना तु पशुमयस्य नरो हीनतरो मनः ॥१३६॥  
प्रतिभाशान्पुण्यतमः श्रद्धावान् गुणधोषज्ञे । कोटिप्रेकः स्वयं साक्षात्तरो नागायणो भवेत् ॥१३७॥  
केनविद्रासतोपदे मृदा पटिपदास्मिदा । रामाकिना च संकरं विविच्यते च ते उभे ॥१३८॥  
लोकाः यत्र यथाहेर्मिगन्धा तत्र प्रकल्पिताः । तेनैव गन्धना तुल्या ज्ञान्या हृन्मयमुद्रयन्ते ॥१३९॥  
मन्त्रांडं रामतोमद्रं मुद्राभूतानि समताः । समर्पणपयुक्तानि सम्मतानि तु मृगिभिः ॥१४०॥  
यस्यां स्यान्मृष्टिश्च वस्तु या मृष्टेति निगद्यते । मृष्टेन विहितं चःच विहितं सधो भवेत् ॥१४१॥  
तद्वत्सवासु चैतासु त्रयमुद्रितमुच्यते । तदाप्यासां मयाद्यादर्वेनन्वः संव्रतागत ॥१४२॥  
आच्छादितोऽपिकरुहे रुद्रिकेऽन्नवैदिः किल । दीपः प्रकाशते काम लोपयेच्च न धेप्यते ॥१४३॥  
मृषाणिकनं साध्वन्मं तदाकारं पश्यते तथा जलं निगच्छन् मुद्राकारं विभावते ॥१४४॥

रङ्गका कमल स्तेवा । यत्ने रङ्गम उत्त कमरके रण कदाये आगि ॥ १३० ॥ यत्ने, साध्वन् काल और कामे रङ्गको परिणिया ३०॥ । भद्रमं चार्की चन जितन का च ह्ये, उत्त बुद्धिक साथ रनाम पूर्ण कर द ॥ १३१॥ इसकी श्रद्धावान् तथा भद्र बीजे और विविध शक्तके होये ॥ १३२ ॥ मैं भगवान्के इस रूपका ध्यान करका है जो कसारमं बकेला है समस्त मुखका विधान है सच्चिन् आर अन्नमन्दकन्द है । जिसमें अवनो म पात योवसे इस निमल विश्वकी प्रभुओंका रहता, विष्णु और शिवक नामस प्रतीयन कर रचना है । जो मृष्ट, पालन और विनाशका हेतु है । जिसक कृपिमान बर वर २०० ॥ २०० ॥ जो सब पाणिशका पाण है, जो सब कुछ जानता है, जिसके काम सब प्रकारकी जानिया है, जो लयासका अन्तक और अमृतमन्त्र है । ॥ १३३ ॥ अब मैं आदेशिकन्दक अमरपद प्राप्त कगनवाल चरणानन्दका पञ्चाय करक नञ्जनाक अलम समकर उत्पन्न करनवाली आश्विनिका गुनि गोवा अर्पित बसेगा ॥ १३४ ॥ मृद पशुशोक नस्तलोम आदि सब पदार्थ काम का जान है, किन्तु मनुष्यक अर जान्यक घट्ट म म दना है कि विद्यातने इसका मृष्टि करके बड़ा भारी अपराध किया है ॥ १३५ ॥ इस कर रसे आत्माका स्वरूप पहचाननेकी साधना को जा सकती है । यदि यह काम नहीं किया तो यह मन्त्र पशुसे भी होन आता जायगा ॥ १३६ ॥ करोड़ों मनुष्योंमें कहीं कोई एक मनुष्य पवित्र मृत् तथा भगवत्पुत्र भद्रं रत्नमय ता हुआ है । जो ऐसा होता है, वह साक्षात् नारायण ही है ॥ १३७ ॥ कुछ लोग और उन्नत व ह्ये मयल, भद्रही रचना करके उनमें साठ कोटिकाकी मुद्रा बनाकर इस प्रकार विवचना करने है — ॥ १३८ ॥ उस बड़ा, मन्त्र किजने ह्ये लोक है, ठाक गया तन्हु यह रामतोमद्र भी है ॥ १३९ ॥ रामतोमद्र मन्त्र पद है इसका मद्र में ही प्रणिमपूज्य बसता है । उसमें रामरूप चैतन्य ( जेव है । ऐसा कितने ही तन्त्रदर्शित न करा है ॥ १४० ॥ जिसमें काष्ठ वस्तु मुद्रन है ( अर्थात् लपटबट रक्खी हो ) उसे लोग मुद्रा कन्द है । मुद्रितका अर्थ है — चित्रित या विहित ( पिराया हुआ ) । यह सारी मृष्टि बड़ास मुद्रित है । फिर भा रामक सादृश चरचना प्रकाशित हो रही है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ स्फटिक मय का कलम बना और उसके भीतर दीपक रखकर बाहे वहु चारों ओरसे दीप दिया जाय, फिर भी दीपकका प्रकाश कोई लुप्त नहीं कर सकता । ठाक यही इसा इस कदाकी भी है ॥ १४३ ॥ जिस तरह कि

पुत्रश्चक्रं प्रकृः सर्वोः पुः पुरुष आदिजन । इत्युक्तं कमलाभाया प्रत्यवापि हि पञ्चने १४२॥  
 एको वती सर्वभूतान्तर्गमेति अनेवद्वयः । एको देवः सर्वभूतेश्विति चैवपग भुविः ॥ १४३॥  
 पुः सृष्टाः परेतेन नैव तामिस्तुनेष मः सृष्टां मानुषां सृष्टां परं तोपमगार सः ॥ १४४॥  
 देवताश्चामुक्त्वा यं दृष्ट्वां पुरुषं तनुम् । ह्यदादृष्टं मुकुतं वनेन श्रुते स्फुटम् ॥ १४५॥  
 पुरुषं त्वेवादिस्मरमानेन्यात् पुरिः इत्यम् । पुगं सृष्टः सर्वभूतेश्वरश्चः स्वरट् ॥ १४६॥  
 श्रद्धावलोमाश्रयण नर दृष्ट्वा सृष्टं गतः । इन्द्रस्माभिरिष्ट्वाप श्रुतं भगवद्वचः ॥ १४७॥  
 मुदं कगेनि देवस्य श्रुत्वादेवद्वचः । इति मुद्रानिर्गताश्च भगवताश्चैव श्रुते ॥ १४८॥  
 जनः सर्वेषु देवेषु सृष्ट्वापुष्टं कृत्वा स्वर्गोपरमेषु च रक्तोष्मिन् चैतरे ॥ १४९॥  
 लोके प्रविष्टिर्यः कश्चिदागमुद्रादितो नर । अधिकारीति सन्देहे पूज्यं न्यादादिर्यः ॥ १५०॥  
 तथानयाकृतोऽगोऽधिकारी शश्वभुविषु । नान्याभेगो निविष्टाः शक्यते स्ममनः पदम् ॥ १५१॥  
 तस्मिन्मैव लोपार्थो पशति यदि गति हि । तानि संश्रयन्, मन्वक् प्रदर्शयन्नेवद्वचः ॥ १५२॥  
 अविद्याकामकर्माणि भोक्तृभोगी मनुजिषु । एतानि न जगति देहे कायगणके ॥ १५३॥  
 एतोऽज्ञानमविद्यं हि शब्दं एकमेवास्ति न । अत्र गुणयुतो नात्र दृश्यते पदम् भो द्विज ॥ १५४॥  
 त्रिगो पुर्यष्टकेऽविद्या नामकमग्रदम् । त्रिगोपदं तु हेतुनाञ्जगतां ग्रहणं कृतम् ॥ १५५॥  
 कार्यमात्रेऽप्यवश्यं नाकारणे कारणमना । कावस्य कर्मणश्चात्र विद्यते शुभमरुपना ॥ १५६॥  
 अविद्या या मूल्यतोऽव विद्यते कारणमना । अस्तुतानु न कासोऽव कामना वा श्रमेर्मनम् ॥ १५७॥

सुवर्णसे सामा काया जाता है तो मनुष्य उसे अपने मूलम पिता जनक है । यही दशा नाम निराकर अद्वितीय भी है ॥ १४४ ॥ प्रतीति पढ़ने इस अर्थ का मत है । तदन्तर उसम पुरुषका समावेश किया । ऐसा कमल नाम कहा गया है । अन्य स्थान में भी इस अर्थ का मत है । उक्त भाष्यकारों का मत है ॥ १४५ ॥ श्रुतिका कथन है कि सब प्राणियोंको अन्तर्गत कर रहेवाला एक ही पुरुष या देव । पुरुषा अपि भी इस बातकी पुष्ट करनी हुई कांती है कि वह एक ही होता है, जो सत्कारक सब प्राणियों में विद्यमान रहता है । १४६ ॥ मुद्रिका नाम पहले सनक ताहकी मुद्रिका की, किन्तु उससे इस अर्थ का मत हुआ । फिर जब उसने इस मानुष मुद्रिकाकी सृष्टि की, तब उसे बड़ा प्रसन्नता हुई ॥ १४७ ॥ अथवा भगवत्कर्मके लिए देवताओंत पुरुषका शरीर देना तो हमसे मनुष्य होकर बड़ा उत्तम — प्राणत यह बहुत अच्छा विचार । जो पुरुषों पर रकी प्रति कर दी ॥ १४८ ॥ विस्तारविस्तार मूल्य मान्यता की धृतिने पुरुष करता है । वह पुरुषों में अत्र और प्राणियोंकी सृष्टि का, किन्तु उसके दृष्ट प्रमाण नहीं हुआ । और जब पुरुषों का प्राण कासेव ले आया तो उदात्त दृष्टता वरुण प्रसन्न हुए । हे विष्णु तम इस प्रकार इस जगत् में प्रसन्न होकर रहते हैं ॥ १४९ ॥ १५० ॥ वह देव देवताओंको प्रसन्न करता हुआ सब दृष्टों और पुरुषों को फोले पाली करके बड़ा देता है । इस प्रकार पुरुषोंको निर्विक्रम सत्कारों में भी की गयी है ॥ १५१ ॥ इसलिए उसने सब देहोंमें मनुष्यका जन्म पर अग्रणी है । स्वर्ग और अपवर्गका अधिकार भी इसी नरनातिका दिया गया है — श्रीगोकी मुद्रा १५२ ॥ मत्स्यमें भी यह बात प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्यके पास राजकी नृपका का प्रमाणपत्र होता है । उसका अधिकारी सम्मान है और उसको पूजा करने है । १५३ ॥ इसी प्रकार इस राजनामकी मुद्रा में अङ्गित जीव साक्षरूपाका अधिकारी माना जाता है । अन्य धार्मिक जात अवश्यावरण आरम्भ नहीं जान सकते । १५४ ॥ सत्का उपाधिम कुल साठ पद है । उनका जन्मके लिए बड़ी मर्यादा तद्वत् वतका है । १५५ ॥ कारणसंज्ञक दहम अविद्या, काम, कर्म चोत्ता पाप और भुविष्ठक स्थान ॥ १५६ ॥ हे द्विज तब, अज्ञान और अविद्या इन दोनों शब्दोंका एक ही मतारब है । इससे इसमें किला गुणका दृष्ट किया जाना नहीं दीवता ॥ १५७ ॥ सातवें शरीररूपम अविद्या, काम और कर्मका ग्रहण किया गया है । फिर भी कारण मनुष्य इन तीनोंको ग्रहण ही करना पड़ता है ॥ १५८ ॥ कारणका चाहे कोई कार्य हो या न हो, वह कारणरूपसे रहता ही है ।

अष्टत्रिंशत्पदानि ह विद्यन्ते सूत्रमिदं ह । दशोदितानि पञ्च प्रज्ञा बुद्धिमिदं विवर्धते ॥१६१॥  
सप्तदशान्मर्कं लिङ्गं प्रविशु शस्त्रवन्मनसम् । पञ्चविंशत्प्रज्ञा पञ्च कर्मणि वाच्यतः ॥१६२॥  
एवमप्राणव्यापारः सकलस्य निश्चयान्त्विति । समदश चैव धर्मः प्रविष्टाः शास्त्रमगताः ॥१६३॥  
स्वप्नादिमिमांसी भोगी रजश्चेति चतुष्टयम् । देवानामिन्द्रियाणां च स्यादाभावेऽपवृत्तिरुक्तः पदे ॥१६४॥  
सूत्रदेहे षोडशैव पदानि सम्भूतानि हि । मणाः समदश तेषामयानध्यानयोः पदे ॥१६५॥  
पापुन्यवस्थानयोर्ज्ञेये वाचोऽपि निकेतने । प्राणस्य मनसश्चापि बुद्धिस्थाने पदं निवति ॥१६६॥  
पदानि द्वादशैव मासि भोजनभोगौ तथा गुणः । श्रवस्था जागृतिद्वयेन कथितानि मनीषिभिः ॥१६७॥  
सुद्रामेतादृशीं प्राप्य वेद वेदान्मात्रमप्यदम् । तस्य जन्म कृतार्थं स्यान्महतो नष्टिरन्यथा ॥१६८॥  
सुद्रारूपं विचित्रैव यन्प्राप्तां मांकिनेति च । उक्तं वदतुना किञ्चित्सम्भेदेन निरुच्यते ॥१६९॥  
रायेति लोकस्मृणाद्रमन्ते योगिनोऽमले । परमानन्दरदं निन्य तेन राम इतीर्यते ॥१७०॥  
रसेनैवाहूना सर्वे जीवा जीवन्ति नान्यथा । इमे रमन्त्य लब्ध्वा भवन्त्य नन्दिनोऽविनाः ॥१७१॥  
विज्ञता येन विश्वं सर्वं चेतयने जगत् । न तं चेतयते कश्चिन्म राम इति कीर्यते ॥१७२॥  
सत्ता येनाविष्टं विश्वं स देवानां प्रीयते । अमन्मनाप्रदः साक्षाद्राम इत्यभिधीयते ॥१७३॥  
यथा प्रविष्टे रामति मन्त्रेण यत्प्रयानकम् । तथा लिङ्गं पदं व्याप्तं निष्कलः परमान्मनः ॥१७४॥  
हीयन्ते यदधून नि निगच्छन्ति यतः गुणः । तेन लिङ्गं पदं व्याप्तं निष्कलः परमः शिवः ॥१७५॥  
इति शास्त्रविदां वाणी श्रयते तत्पदाश्रयम् । अतः सर्वपापनाशानि कृपाण चानिरागताः ॥१७६॥  
सति तेन सुन्दरभेदे रूपभेदेऽपि सवधा । तत्पदो नैव भेदोऽस्मिन् त्वय्यस्यैकस्य चतुनः ॥१७७॥

उस तरीक़ेमें काम और काम में योग्य नुसख़ा मिल रहा है । १५१ ॥ इस कारणात्मासे अविद्याको प्रभावता है । अस्तव्यसे न उसमें काम रहता है और न बाधका हो रहता है । यह स्थिति सिद्ध है ॥ १६० ॥ इस लक्ष्म देहमें कुल साठ पद हैं । इस पद इन्द्रियका पाँच पद बाणका, यदि, मन और शरीरका सबह पद शास्त्रोंमें कहा गया है । पाँच पद विषय ग्रहण करनेवाले इन्द्रियका, पाँच कर्मोक्ताओंका और बाँच प्राणोंके स्थापनाका । कुल सबह ही पद समानात्म्यमान है । १६१ ॥ १६२ ॥ स्वयं प्रमिताली, भाग और रख ये चार दयताओं और इन्द्रियोंमें प्रवृत्ति न करनेवाले इन्द्रियोंमें स्वयं शरीरमें सालह ही पद माने गये हैं । किन्तु धन संग्रहका ही रहता । इनमें से दो पद अभाव और धन बाधका है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ पापु और स्वस्वमानका शरीर, काण और हृदयका ही पद प्राण मन तथा बुद्धि में एक एक पद ॥ १६६ ॥ ये बारह पद मोक्षा और भोगका पद, इन इन्द्रियोंमें एकाग्र, अवस्था तथा जागृति कहा है । १६७ ॥ इस प्रकारको मुद्रा प्राप्त करके प्रणालिका अन्तर्गत पद प्राप्त होता है । इसको धानस जन्म कृतार्थ हो जाता है । अन्यथा वह ही हो जाता है ॥ १६८ ॥ मुद्राके स्वयं विवेचना करके उसके नामोंसे संकलित मुद्राओंकी सब संक्षेपरूपसे बतलाते हैं ॥ १६९ ॥ संसारके अपि जीवोंका अन्तर्गत इनके कारण भगवानका 'राम' नाम पड़ा है । योगयोग इसी अमल परमानन्द पदमें आनन्द लब्ध है । इस लिए भी राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७० ॥ इसी जन्म संसारके सब जीव जन हैं, इस सारत परको पाकर लोग आनन्दमय हो जाते हैं ॥ १७१ ॥ जो भगवान प्रविष्ट होकर सारे जगत्को चेतन्य कर देता है । जिन रामका चेतन्य करनेवाला कोई भी नहीं है, वे ही राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७२ ॥ जिन भगवानका सत्ता समस्त विश्वमें है । वे इसी कारण देवता कहलाते हैं । वे भगवान् जगत्में भी अरुनी सत्ता बनाये रखते हैं । अतएव लोग उन्हें राम कहते हैं ॥ १७३ ॥ जिस तरह उनका राम यह नाम प्रसिद्ध हुआ । उसी तरह परमात्माके लिङ्ग और रूप भी हैं ॥ १७४ ॥ लोग लिङ्गका अर्थ इस प्रकार करते हैं—जिसमें जगत्के सब पापी अन्तर्गत लीन होते और मृष्टिके आदिमें जिसमें प्रादुर्भूत होते हैं उसीकी जिन सत्ता है । वह जिन, शुभ निष्कल और परम कल्याणकारी है ॥ १७५ ॥ इस प्रकार तत्त्वदर्शी शास्त्रोंकी बात सुनायी पड़ती है । इससे यह

न त्रया म शिवश्च म हरिः म सुरेश्वरः । मोक्षधरः परमेश्वर म स्वगतिरिति वेदवाक् ॥१७८॥  
 दम्प्ये मे म चित्तदानन्दाः म व्यासः सर्ववस्तुषु । तेनानि च त्रिव भावि वस्तुमात्र प्रदृश्यते ॥१७९॥  
 आ तरेषु च सर्वेषु समस्तव्याप्तकीर्तिषु । अदिनस्यायमानेषु श्रयणे गुप्तुप्रदान् ॥१८०॥  
 एतरेषुके आत्मा वा इदमकः पुन जनेः । आर्षाक्षेनेन लाकानां पालानां सृष्टिरिच्छया ॥१८१॥  
 कृत्यः स तद्देवानामन्नभुक्त्वाधर्मापितम् । इदंवायवत नन्न सृष्ट नैव्यस्वनः परम् ॥१८२॥  
 त्रिचार्ये म्यापन्नास्त्रिर्मासाश्च प्रविष्टवान् । तदाभान ब्रह्म तन हृष्ट्यवापेद्वतां किञ्च ॥१८३॥  
 काश्यपश्चानि सप्रज्ञः येन पश्यान् विवर्तते । इत्यादिभिर्विनिर्गोत्र तदेनदृष्ट्यादिभिः ॥१८४॥  
 ब्रह्मन्समस्य नामानि चोक्तवानन्यथेता यथा । एष ब्रह्मेत्यादिशब्देर्दोषान् चाखिल जगत् ॥१८५॥  
 प्रज्ञानेन च प्रज्ञाने प्रविष्टनेत्यनेन हि । प्रज्ञानं ब्रह्म अज्ञाने त्रिकालं पिरिति दर्शितम् ॥१८६॥  
 तद्रास मच्चित्तदानन्दप्रनामन्तं न सदायः । नैतिर्गयकशास्त्रयां ब्रह्मण लक्षणं पुन ॥१८७॥  
 अन्यं न भवन्न सङ्कीर्णं वेदगुहादिकम् । यश्चास्यवस्तुने कामान्मर्यान्मुषपदेव हि ॥१८८॥  
 फलज्ञानस्य चोक्तवाप्य तुस्माद्वसात्मकं किल । क्रमोन्पत्तिर्हि गुप्तानां कोशैश्चक्रेदनम् ॥१८९॥  
 नक्तल तदनात्मन्त्र मप्रदृष्ट्यान्नात्मन्त्रं । पुच्छं ब्रह्मेति निर्णय तदगम्यपरीवितः ॥१९०॥  
 मन्त्रमद्वयं धेनुं मकीर्णं च तत परम् । कामयितुं तदेवेह कदाचन जगदान्मना ॥१९१॥  
 कृत्वा तस्मिन् प्रविष्टैव मच्छासच्छाभवत्किल । अपानप्रणयोदरेण पश्चात्तेनैव प्रजायते ॥१९२॥  
 अन्तरमम एवैष आनन्दपति चाखिलान् । मयदेनुमन्तदेव वातादीनां प्रदयितम् ॥१९३॥  
 मानुषरभ्य ब्रह्माणां आनन्दा ये शनोत्तराः । विदवन् परब्रह्मानन्दम्येति विनिश्चितम् ॥१९४॥

निम्नोक्त द्वारा कि उस अन्तरात्मने ही नाम जो परमात्मा रहन हुए भी वास्तवमें सब एक हैं। इसकी कारणों से विचित्र कोई भी अन्तर नहीं आता ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ वही ब्रह्मा, वेद शिव, वही विष्णु और वही देवराज इन्द्र है। वही अक्षर ब्रह्म और वही चरवचन तथा विश्वरूपी है ॥ १८० ॥ वही सब वस्तुओं में सत्चित् और आनन्द का स्रोत मान्य है। इसका कारण सब चीज अच्छी लगती है ॥ १८१ ॥ सब वद में रामस्वामी का कर्तव्य विद्यमान है। भूतदेव के अमुष्म आदि, मरु, अन्य सब समयमें रामहोना कर्तव्य सुनायी रहता है ॥ १८२ ॥ एतरेय आचरम लिखा है कि सर्वप्रथम परमात्मा प्रकट था। तत्पश्चात् यह इच्छा हुई कि हम लोक और लोकपालों की सृष्टि करें ॥ १८३ ॥ ऐसा विचार होनेपर उसने सृष्टिकर्ता का रूप तथा सत् इत्यन्त का और उनमें पाने अन्न की सृष्टि की ॥ १८४ ॥ तत्पश्चात् उन्होंने अपने-अपने स्वमित्रता विचार किया और एक सामान्य देवताओं के राजा इन्द्र बने ॥ १८५ ॥ जो कि हम परमात्मा देवता तथा समाजों का स्रोत मान्य है वह कौन है? इसका ज्ञान आदि नाम बतलान हुए "यह सत्य ही सब कुछ है" अर्थात् वास्तव उन्होंने इस प्रश्नका जवाब और बतलाया कि सत्, चित् आनन्दम लेकर पने पयन्त राम ही राम है। पूर्व समय में तैत्तिरीयक शास्त्र में बतलाया रहता था कि सत्, चित्, ज्ञान और अनन्तता उपाधि दी है। इस संसार में जो एक साथ साक्षात् प्रकट और व्यापक-व्याप्य है, वह सत्य ही है ॥ इससे भी, यह से पाया गया कि परमात्मा सृष्टि ब्रह्ममयी है। सब प्राणियों का प्रयत्नार्थ, पंचकाशका जन्म और आत्मा की विभिन्नता आदि विचार कर बतलाया है कि सत् और असत् का प्रयोगपक्ष इन सबका मुख्य कारण ब्रह्म ही है ॥ १८६-१८७ ॥ १८८ ॥ कहकर कहा कि सत् और असत् यह क्या वस्तु है? इस प्रश्नको हल करने हुए कहते हैं कि जो अमूर्त अविनाश और अमृत का आत्मा बनकर कामनाओं का धारण द्वारा उनमें लान हो जाता है वह सत् है। जिसका अस्तित्वम प्रण और अपानकी चक्षु जायमान रहता है, उसे असत् कहते हैं ॥ १८९ ॥ १९० ॥ यह आत्मा ही सारे सत्त्वों को मानवित करती है। वास्तविक एकमात्र ब्रह्म भवहेतु है ॥ १९१ ॥ मनुष्यम लेकर ब्रह्मपरन्त तथा इसका भी आग जो आनन्दविन्दु है, वह एकमात्र परब्रह्मानन्दका ही आभास है।



स यस्मात् नरोपाधादिभ्योऽप्य चर्तते । स एक इति ज्ञात्वा पापं पुण्यं कृतकृते ॥१९५॥  
 न सनाययत्तमैवं सम्यक् सर्वं प्रकीर्तितम् । यद्ब्रह्म तदेवाऽपेक्ष्यः तद्विभेति न संशयः ॥१९६॥  
 छांदोग्येऽपि स वेदेति मनोएकस्य ब्रह्मणः । तेजोऽवस्थादिकः सृष्टिः यन्मूना मा भ्यनिर्हन्तिः ॥१९७॥  
 जीवात्मना प्रवेशश्च व्याकुलितामरूपयोः । धनकेनाम्बुपदस्य तत्पद्मैक्यताऽपि च ॥

मदसंभावना-ी च सङ्गरे च सहकृतिता ॥१९८॥

तद्वृत्तने च गुणैर्ज्ञानान्मोक्षोऽपुनर्भवः ।

मन्यवद्वाभिमंथयेन्मेव सवृत्तवर्तनम् । तद्रामान परं ब्रह्म सृष्टिरेवमनहेतुकम् ॥१९९॥  
 अन्यस्यापि ज्ञातव्या प्रदनप्रवृत्तिः स्फुटमेव । मनःप्रभेदिताणां यन्मनः प्राणैन्द्रियं हि तन् ॥२००॥  
 सर्वेषामनुभूतेः सद्भिदितादिदिताम्बरम् । विषयो नेन्द्रियार्थानामियुक्त्वा तस्य शोधनम् २०१ ॥  
 सर्वदर्शो सर्वेन्द्रदेवता जयकारजम् । तद्वृत्तानं च देशानां गुणज्ञानमुपाप्तिता ॥२०२॥  
 विषयं नान्यन्मानुष्यं प्राप्य जन्म न वेद चेत् । विनाष्टिमंढरी तस्य चेति श्लोकः ततः परम् ॥२०३॥  
 अप्याश्वाधिदेवमिदा गियापाधनमेव च । ब्रह्मज्ञानेन पापानां हानिस्तन्वाप्तिनिश्चयम् ॥२०४॥  
 मय्यसौ महिमा भूत्वा कर्तितोऽवशमनः प्रपद्यते । तद्रामानि गुणैर्ज्ञानं नान्यथा ग्रन्थकृतिभिः ॥२०५॥  
 ब्रह्मकेऽपि परा विद्या रिपया त्रयं ब्रह्मणः । सृष्टिश्चानेकदृष्टानैकता तस्मिन् सन्निविता ॥२०६॥  
 लवश्चापि हि सर्वं विधं सर्वं हि गन्धयम् । तारणं चतुषा रेव लहय आत्मापन्नं तथा ॥२०७॥

एसा निश्चित है । जो मनुष्य को उपोपय मूल मानता है । उस एकमेव मनुष्य को ज्ञान जनपद कर्त-  
 व्य है तथा पाप पुण्य कृत्त जगत् नीचे रह जाता है ॥१९५॥ ॥१९६॥ तब किन्हीं प्रकारका सम्पादन नहीं करना  
 पड़ता । ये सब गुण जिसमें हैं, वह ब्रह्म ही है । उसको कोटिमा देखकर निश्चित होता है कि वह ब्रह्म  
 आत्माचन्द्रनी है । इसमें नगर महा है ॥१९६॥ छां योग्य उपनिषद्में भी कहा है कि ब्रह्म ही  
 आत्मादिकों का मूल है और उनका आधार है इस जगत् का चलन-पैगम होता है । ॥१९७॥ जीवात्मा के  
 द्वारा ही आत्मा का प्रवेश होता है, किन्तु इसके अन्तर्गत उसका नाम और रूप में अन्तर पड़ जाता है ।  
 धनकेपुका उसके विज्ञान विधा की या कि उस पर जो । ज्ञान पर सात एकता प्राप्त हो पुनितका सर्वप्रमाण  
 साधन है । जब तक मनुष्य का मन नहीं होता, तब तक एकता रहता है और सद्भावक विद्यमान रहनेपर  
 एकता का स्थान पर ब्रह्म ही जाता है । उस मनुष्य का ज्ञान होने पर गुण द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है और  
 ज्ञान प्राप्त होने पर पुनः सर्वविध मनोभाव प्रपन्न होता है ॥१९८॥ सत्यता ब्रह्म विद्यका स्वरूप जगत्  
 माना है, उसका इतना ही प्रमाण है कि वह राम ही परब्रह्म है । उसीके द्वारा इस जगत् की सृष्टि,  
 धारण और प्रलय होता है ॥१९९॥ ब्रह्म ज्ञानात्मक भी प्रपन्न और उत्तरक रूप में अनेक प्रपन्न और प्रवृत्तियाँ  
 हुई हैं । उनमें भी यही प्रमाण होता है कि मन, वाक् और इन्द्रियाका जो मन, प्रण और इन्द्रिय है । वह ब्रह्म  
 ही है । वह स-यस्यस्य पद जगत् और अज्ञान इन दोनों में परे है । यह सबका अनुभव है । किन्तु वह  
 कृतिद्वेक विषयगोचर नहीं होता बल्कि अनुभव ही जाना जाता है । यह कहकर उसका संशोधन किया  
 गया है ॥२००॥ ॥२०१॥ वह पद सब कुछ ब्रह्म ही सब जानता है ब्रह्मानोके विषयका कारण है  
 और वह ब्रह्मात्मा के लिए भी अज्ञात रहता है । उसका इनमें करनेसे ही ज्ञान का प्राप्ति होती है ॥२०२॥  
 विद्या ही मनुष्य का मनुष्यत्व है । इस मयाम में अन्य प्रकार जिसने विद्या नहीं पायी तो यद् उसका एक  
 ब्रह्म ही विद्या है । ऐसा कहा गया है ॥२०३॥ अन्तर्गतका भी अन्तर् करनेवाले ब्रह्मात्मक विद्याका  
 साधन होता है, पारोका प्राप्त होता है और अन्तर् में उसे ब्रह्म का प्राप्ति होता है ॥२०४॥ बुद्धिने स्वयं  
 विस्तारपूर्वक ब्रह्म का महिमा का ज्ञान किया है । इसलिए जिज्ञासु का चाहिए कि वह गुणों राम का ज्ञान  
 प्राप्त कर । जैसे कराटो फल पकनेसे भी उसका सबका ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता ॥२०५॥ मुख्य उपनिषदमें  
 कहा गया है कि ब्रह्म और ब्रह्म का विषय ज्ञान के लिए गुण प्रधान है । उन उपनिषदों में अनेक उदाहरणों से  
 सृष्टि का वर्णन किया है ॥२०६॥ वह कहता है कि वह सारी सृष्टि उसी ब्रह्म में स्थित है और अन्तर् में उसी में



तद्राम परमं मय मोहिनामननयम् । अन्तनामकपेक्ष विशाकां स्वमायया ॥२३६॥  
 मन्वा सर्वेषु भूतेषु वरायुके भूतचन्द्रकम् । स्फुरन्मयस्फुट तेषामज्ञान स्वात्मनः सदा ॥२३७॥  
 प्रसन्नाने परो हेतुः सर्वेषु वरेषु उक्ता । मानसः सन्ति तेनेदं विदुषस्य न प्रकाशने ॥२३८॥  
 परां चि स्त्रानि प्रभुगा मृष्ट नि ये स्ने । नाशने मानसात्मान प्रसिद्धं भुत्पुदागितिम् ॥२३९॥  
 सर्वोऽपि मनुजो द मोः । कायान्मायाम् । किञ्च स्वः कायद्रामोय तनाशश्च काशने ॥२४०॥  
 यदि भूतान्मायाम् स्वामना म । नृपयम् । तदा किञ्चाम गोवेन व्यसद्व्यस्यस्य हि ॥२४१॥  
 आन्मान चैहिवाणीयादयामर्था । दृष्टः । तदा किञ्चाम कस्य कायश्च द्यामनुमन्त्रेण ॥२४२॥  
 इत्याह च श्रुतिः साध्या वृद्धाः यमा । यद् । यस्यान्मातिव स्वादान्मन्त्रश्च मानवः ॥२४३॥  
 आन्मये च मन्त्रमन्त्रा कार्यं न विद्यते । इति न प्राप्नोतनायोऽनुनाय प्रोक्तान्मन्त्रयम् ॥२४४॥  
 भोगामना पुमान्मन्त्रमेकाहो तदने न च । एतन्मायमन्त्रो यान्त्रोऽर्था विन्यदा ॥२४५॥  
 स लोकऽपुत्रा ध्रुवा पुत्रोऽपुत्रोऽपुत्रः । आया मन्पादयन्त्यादावतिगन्तन मृदर्थः ॥२४६॥  
 पुत्रानुपाद्य केशेन देवोऽपुत्रोऽपुत्रः । दुष्टमन्त्रोपाद्यं च यगर्थं य धनेऽपुत्रा ॥२४७॥  
 अग्निश दृष्टने चित्ते न प्राप्नोते तथे पन्तम् । कायद्रोदाय मन्त्रिकाजानथदायः प्रतिग्रहम् ॥२४८॥  
 धनं याव्यगवतां दमे काले च यश । द्युपन्नमन्त्रा तु काशना स्वात्मचित्तने ॥२४९॥  
 अनेकपुत्रयपुत्रं मन्त्रेण जन्मा । मन्त्रेण सद्भिरुक्तं मार्गेण हि पदा सदा ॥२५०॥  
 राममन्त्रद्वयार्थं मुद्रां स्वां पुरयन्मुन । मुक्त्या न दत्तवा मन्त्रे स्वपादमन्त्रा कचित् ॥२५१॥

योगियों के ध्यानमग्न और साधनात्मक अवस्था में अपने माता द्वारा विश्वक आकारवाले बनकर सब प्राणियोंमें विद्यमान रहते हुए मनुका सहायन करते हैं। जो लोग जाते-वसतुपुत्र है, उनको भांगे स्फुट या अस्फुट भावसे काममें लाइया भी वह ईश्वर की दासता ॥ २२२-२२४ ॥ इस महाकृतान्तमे अपनी आत्मा ही सर्वप्रधान है । यह प्रमाण है कि अन्तराष्ट्रियता का ज्ञानी स्वामी है । यही कारण है कि जब वह विश्वके शांतिप्रेमी होकर जाता है तो ॥ २२५ ॥ एक प्रसिद्ध भूतलमे भगवान् ने कहा है कि प्राणियोंकी आज्ञा मैंने बाहर बनायी है । इसलिए लोग अन्तर्जन्माना नहीं देख पाते ॥ २२६ ॥ संसारके सब मनुष्य अपने घन, स्त्री और पुत्रके दास बन रहते हैं । इसी कारण अन्तरात्मा उन्हें दीवती ही नहीं । २२७ ॥ यदि उनके शान्त होकर सदा आत्मसाधन कर, विष्णुमें परे हों और आत्मा आत्माकी मासी बनाकर सब कार्य कर तो उन्हें ईश्वर का बाल पक्ष ही नही ॥ २२८ ॥ यदि लोग आत्माका मानकर यह समझ लें कि मैं ही वह परम पुण्य कहे हैं तो फिर किसीके लिए अपना घर गृह सामाजिक उपायमें भून वह बहुदूरदर्शीपूर्णविषयमें कहा गया है । इसके अतिरिक्त मातामे जन्म भगवान् ने बहुतसे कहा है कि जो प्राणी और किसान और अपना विसृष्टि न लगाकर आत्मासे प्रेम करता है, जो मांस ही प्राप्त रहता है और वात्स्यामे सुतोष करता है । उसके लिए सुखमें कुछ भी करना प्रेष नहीं रहे जाना मनु उससे उसकी सब काम पूरा हो जाता है ॥ २२९-२३१ ॥ भांगोमें आसक्त प्राणी पहले एकएक इस मात्र नहीं रुकना । बहुतो तीन प्रकारकी दुःखात्मके चक्करमें पहुँचकर सदा मन पानेकी चेष्टा करता रहता है ॥ २३२ ॥ यह सूत्र किम्बत यदि स्वयं को अपुनी मुलना है तो पुत्रके उत्पादनमे तत्पर हो जाना है और इसके लिए 'अन्न' चला कर सबना है, करता है । २३३ ॥ देवताओं तथा तीर्थोंकी सेवासे यदि पुत्र उत्पन्न कर लेता है तो बुद्धिमत् धर्म-पापण लगा गङ्गाके लिए पत्नी इच्छासे मन ही मन रात दिन अन्ना करत है, फिर भी अपनी कामना नहीं पूर्ण कर पाता । यहै शास्त्रम पाठ्य तथा सत्यम क्रिया-वान हो क्यों न हो, यदि वह बनकर अभ्यास है तो धर्मदार घर कुलोका भरत दौड़ना रहता है । फिर यदि कोई भुग्भोगमति ( समसहार ) मरी है तो इनके निरा आत्मविश्वासकी बचाई किस कामकी ॥ २३४-२३६ ॥ इनके प्रकारके पुण्य एकाग्रित होनेपर प्राणा अर्थात् पुण्य काम और सुखमोकी संगति पाता है । फिर उनकी वातोपर चलत हुआ कभी-कभी रामरूप महाकृत दर्शनार्थ मुद्राओंकी भी पूर्ण करनेका उपाय करता है और

तं पूरणप्रकारं तु संक्षेपेणोच्यतेऽधुना । यथा लोकेऽञ्जनं सम्यक्कर्मदायं पूर्यतेऽसि च । २३९॥  
निधिः प्रत्यक्षतस्त्वस्य दर्शनं याति नान्यथा । एवमत्रापि तन्मन्त्रं साधनं यच्चतुष्टयम् । २४०॥  
सम्पाद्य क्षेत्रे शुद्धं रामेति पदमव्ययम् । सासक्त्यमित्यर्थं यद् धृतं तन्माधनं यथा ॥ २४१॥  
शुद्धाविद्याय चैति श्रोच्यते तत्त्वदर्शिनः । शास्त्रशास्त्रं च शास्त्रञ्च मिथ्याऽविद्यामयं त्रयम् ॥ २४२॥

ज्ञानोत्तरमिति मनः तस्माच्चतुर्णामितिम् ।

चतुष्पादसाधनं कृष्णमिन्द्रियविधीयते । ग्रन्थैकं साधनं यच्च चतुःसाधनमुच्यते ॥ २४३॥  
विवेकवैराग्यशमादिषट्कं मृगचूपा चेति प्रसिद्धमनम् ।

लक्ष्मणि ग्रन्थैकमुच्यमानि श्लोकान्यभीषां स्मृतिभूमिकाम् ॥ २४४॥

साधनानां चतुर्णं च क्षेपणान्यामपूर्वकम् । मन्यामत्र गुरोः श्रेयाश्रयणादित्रयं नतः ॥ २४५॥  
पूर्वोत्तरमभाधौ च पुञ्ज एकादशान्मकः । एतेषां तु मयः साश्चान्द्रायाद्या मङ्गलमिषया । २४६॥  
मृगधया तु न्यामादि षण्णां साधादिदोच्यते । समन्विहन्तरत्रापि पृथगेवेति सम्मतः ॥ २४७॥  
पूर्वत्रयाणां न विना मृगधया षड्विंशतः । षण्णः सधनमर्चश्च पदानि पूर्यन्त्यनम् ॥ २४८॥  
सर्वाणि तानि प्रोच्यन्ते श्रद्धणात्मवचुद्वये । दर्शनेऽप्याणि तेषां तु गोलकानि सर्वान् तु ॥ २४९॥  
श्राणाकानी मनोबुद्धौ तस्मादुर्माश्च तन्मिताः । बुद्धिर्ज्ञानं यथाऽप्योक्तं क्रिया तन्त्रयता मता ॥ २५०॥  
उभयेन्द्रियधर्माणां मनोऽर्मा साधनाग्रहः । समन्विष्टतिसंख्यानि पदानामानि साधनैः ॥ २५१॥  
योम्यानि लाञ्छितं सम्यक् पूर्यन्त्यैव सर्वथा । तदा यन्परमं त्रयं रामेति पदमव्ययम् ॥ २५२॥  
याति प्रत्यक्षतस्त्वेन कृतकृत्यो हि जायते । एतच्चतुः विधानेन रामतोभद्रमुद्रिके ॥ २५३॥  
रामश्च कथितश्चाथ सर्वतोभद्रमीयत । स्वान्तो नाभिरथापि भंशयस्यापनुत्तये ॥ २५४॥

यदि उसके साथी सञ्जन गुनिसे उसे सहो गान्धर्व ने जाना तो वह अपनी सधना पूरा का कर लेता है ॥ २३९॥ २४०॥ उसको पूरा करनेका प्रकार से यहाँ बताया गया है । जैव कुमारका इच्छा ब्रामा है कि ब्रामासे एक प्रकारका अञ्जन लेगाकर लोग फिर हुए । सञ्जनीका भी प्रस्ताव देसक नत है । उसी प्रकार पूर्वको द्वारा बताया हुए मार्ग साधनाका सम्पादन करने प्राणा "राम" इस शब्द और नाशरीरत पदको प्राप्त कर लेता है । जिस तरह कि बाबाबा और अन्तिन यणीव २. चन्द्र सदृशको प्राप्तकर साधन है । उसी तरह तन्त्रदर्शिनोंने शुद्ध और विश्रमान साधन चतुष्टये है । साधन, य मन्त्र और शास्त्र य तीनों मिथ्या और अविद्यामय है ॥ २४१-२४२॥ सधनम त्रितन या विद्वान् है । वे सब प्राणीका जानके पाय पहुँचाते हैं । त्रितन चतुष्पाद साधन है, वे पूर्ण कहें जाते हैं और प्रायः सब साधन सधनगद ही हुआ करता है ॥ २४३॥ स्मृतिको भूमिवासे विष्णुका वराह, राम, दस बाँदि ५. धर्म और साधको १० का उपग्रह होना ये सब धर्मके उत्तम निष्ठा बनगये गये है । २४४॥ यत साधनोय सबसे पहली साधन इच्छाशोका त्याग करना है । फिर मन्यास, गुरुकी सेवा, श्रवण, सञ्जन, कीर्तन, पूजातर समाधि तथा एकाग्रता प्रकारक पुञ्ज हो साधन है । इन सबके साथ प्राण आदिकी संयति होती है । २४५॥ २४६॥ मोक्ष धनके लिए यहाँपर छ. प्रकारके न्यास आदि काममें जान चाहिये । किन्तु उत्तर समाधि इससे अलग ही रहगी, वह जान सब लोग जान चुक है ॥ २४७॥ पूर्वको तीन समाधियोंके बिना मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता । इन साधनमभूगसे सब पद सरल होनिसे पूर्ण हो जाते हैं ॥ २४८॥ मुननेवालोंको बोध करनेकी इच्छा उनको यहाँ बताया गये है । उनके विचारमें कुछ बस इन्द्रियाँ हैं और नौ गोलक है । २४९॥ अन्तर्ब प्राण अरान, मन, बुद्धि, इन इन्द्रियाँ इतने ही प्रकारके धर्म उत्पन्न हुए । बुद्धिसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई । प्रणन्द्रिय अपने इच्छानुसार जो चाहे वह करे उसके लिए कोई नियम नहीं है । २५०॥ २५१॥ २५२॥ २५३॥ और कर्मेन्द्रिय इन दोनों प्रकारका इन्द्रियोंके धर्मों और प्रणके धर्मों कोई सम्बन्ध नहीं है । इस तरह इन सत्ताइस प्रकारके पदोंको साधन करके पूर्ण करना चाहिए । ऐसा करनेपर जो अव्यय पदमच्य रामका पद है वह प्रत्यक्ष देखने लगता है । जिसमें प्राणी कृतकृत्य हो

कलषाणं सर्वतः पुमां चित्तनाथस्य प्रस्रवणः तद्गद्गवाचकं मुख्यं मंगलानां च मंगलम् ॥ २५५ ॥  
 यत्र यद्व्यज्यते साक्षात्तन्मात्मा तदुदीर्यते, यद्विदेव तद्यच्छान्तिं सर्वतोभद्रमिच्छते ॥ २५६ ॥  
 विविच्यतेऽत्रोभयं च प्रोच्यते वस्तुव्यक्तये । आधिदैवे तु यद्वदं तदादायुष्यतेऽमरम् ॥ २५७ ॥  
 अङ्गद्वयकलोकस्तु सर्वतोभद्रमुच्यते । तेनैव भद्रं सर्वेषां लोकं न मित्रं हि स्थितिः ॥ २५८ ॥  
 तत्र स्वर्णमयं वैश्वं निर्मितं प्रभुणा स्वयम् । नन्दमिति विज्ञेयं यत्र कार्यचिन्तिः स्वयम् ॥ २५९ ॥  
 न्यासेन सर्वमन्त्रानां गतानां सर्वयोगिनाम् । प्राणोपासननिष्ठायां यद्यथा चित्तप्रकृतये ॥ २६० ॥  
 मन्त्राणां सह ते सर्वे इति स्मृतिश्चाममः । क्रममुक्तंस्वयं पथाः श्रान्त्युत्तममनोऽमल ॥ २६१ ॥  
 आभ्यात्मे हृदये यत्नमर्वतोभद्रमीर्यते । तेन भद्रेण कन्याणं सर्वप्रययवेत्तिह ॥ २६२ ॥  
 तत्र यन्पुण्डरीकं तन्मन्त्रणः स्थानमुच्यते । श्रुत्वा चैव प्रसिद्धिर्नि वदन्नुत्तमोऽमल ॥ २६३ ॥  
 साधनमप्यन्युक्तामनसिच्यते तु यथाहिना । मुक्त्यर्थादप्या मुक्त्या तेषां त्रयं प्रशस्तं ॥ २६४ ॥  
 परमः पुरुषो भूमौ स त्वाध्वन्योपरि । इत्यादिश्रुत्वा यन्प्रोक्तं तस्य पाशोऽस्मिन्धरि ॥ २६५ ॥  
 माह चाहमेवाध्वनादिन्यादित्यमन्त्रमिति । गृह्णानासपि सर्वेषां देहेऽहमिति दृश्यते ॥ २६६ ॥  
 माध्वन्यमन्त्रं ह्यन्धमन्त्रं न वि पुनर्वचः । एकात्मकपरोक्षयोर्भेदज्ञानानुत्तमये ॥ २६७ ॥  
 सर्वशुचिनिषत्त्वेन त्रयं द्वैतं सुनिश्चितम् । त्रैलोक्यममृतमिच्छाह चाध्वनेना श्रान्तः ॥ २६८ ॥  
 तत्त्वमेव त्वमेवेति किं कथ्यम् वचः । तत्त्वमसीति तांदीर्येभ्यस्तान्मैक्यं न भेदधीः ॥ २६९ ॥  
 एकत्वं वदयोः स्पष्टं ध्रुव्या यत्प्रतिपादितम् । साक्षात्मुक्तः कार्यो न ह्योपाधनेषां स एव हि ॥ २७० ॥

जाता है । इतने विचारोसे रामनोभद्रकी मुद्रासे बनायी और रामस्वरूपकी उतनाया अब मैं इस मन्त्र करनेके लिए प्रसंगवश सर्वतोभद्रका स्वरूप बतला रहा है ॥ २५१-२५४ ॥ जिस वदनाका स्मरण करनेसे प्राणियोंका सब प्रकार कल्याण होता है उसे लाभ भद्र कहते हैं । भद्र एक वस्तु है और मङ्गलका भा मङ्गलकारी है ॥ २५५ ॥ नहीं कि वह वदनासाक्षात् कामे अधिदेव या अध्यात्म रीतिसे ध्यातमान होता है, इसीको लोग सर्वतोभद्र कहते हैं ॥ २५६ ॥ सब गरी इसकी वास्तविकताको दिखाने के लिए उन दानो प्रकारको दिखलाते हैं । अधिदैवके अन्तर्गत जो भद्र रहता है उस विषय भद्रका पहलू बतलाते हैं ॥ २५७ ॥ इस अन्तर्को दृष्ट करकेवाला लोक कल्याणकारी कहलाता है और उसीकी सत्तामद सत्ता भी है क्योंकि सभी लोकसे सबका कल्याण होता है और उसीके सहज सब लोकाका स्थिति बना हुई है ॥ २५८ ॥ वहाँपर प्रभुने स्वयं एक नुवणमय घर बनाया है । उसे पद्म या कार्यको चेतना, जो चाहो सो कह लो ॥ २५९ ॥ व्यासके द्वारा जब प्रणिमी सब पाणियों तथा प्राणकी उपासन से लगे हुए प्रणिमियोंका वह चित्त एक ही स्थान स्थित है ॥ २६० ॥ इससे वदना भी प्राप्तमान होने लगता है । यह स्मृतिका मत है और वेद भी इसी मतको स्वीकार करते हैं । वास्तव्यम तो यह यत्रिव मार्ग श्रुति और स्मृति इन दोनोंको माध्य है ॥ २६१ ॥ अध्यात्मका जो हृदय है उसे लाभ मन्त्र भद्र कहते हैं । उस भद्रसे सब अवयवोंकी कल्याण होता है । २६२ ॥ वहाँपर जो कर्मल है, वह वदनाका स्थान है । श्रुतियोग भी यह बात प्रामाण्य है कि साधनरूपा सम्पत्तिके सम्पत्तिप्राप्ती जा योग यहाँ रहने है । उन लोगोंकी गुहजनोकी उपदिष्ट मुक्ति द्वारा वदना प्रकाशमान कीलने लगता है । २६३ । २६४ ॥ मन्त्र, ऊपर तथा मध्य इन तीनों स्थानोंसे वह रूप विद्यमान रहता है । इन श्रुतियोग जा कुछ कहा गया है, वह परोक्षमे नहीं प्रत्यक्ष ही जानना चाहिये ॥ २६५ ॥ प्रभुने स्वयं कहा है कि सूर्य आदिसे सब मैं समस्तमे उपास्य रहता हूँ और सबानी मन्त्रोंके लीरमे भी रहता हूँ ॥ २६६ ॥ किसीको भ्रम न हो इस विचारमे 'वात्मा एव' आदि बातोंकी विरक्तिर दूहराया गया है । 'एकात्मरूपी उस आत्माक बदकी शक्तोकी निवृत्त करनके लिए सब उपनिषदोंसे उस वदनाको अद्वैत बतलाया गया है । 'ब्रह्म एव इदं भूमृतं' आदि सबवे वेदमे कहा गया है ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ 'तत्त्वमेव' तथा 'त्वमेवेति' इन श्रुतियोंसे तथा 'तत्त्वमसि' इस छान्दोग्यके महावाक्यसे ब्रह्मके एकत्वका प्रति-

यच्छ त्रिचिह्नगतये दृश्यते आनेऽपि । अत्रैव तत्सर्वे उपस्य नारायण स्थितः ॥२७१॥

इदं सर्वं यद्यमर्त्यकमेवाहिनीयकम् । सर्वं सन्निदमिन्मादिश्रुतयो यत्रब्रुवन्ति हि ॥२७२॥

सर्वभूतेषु चान्मानं सर्वभूतानि चात्मनि सपदस्त्रात्मयाज्ञानि एवमात्रे मनोवचनः ॥२७३॥

एतदुक्तेन च धनं भूत्वा जगामसहपता । कृतकृपाः स्वयं सर्वार्थं सर्वदयान्प्राद्वयति च ॥२७४॥

अत्राकृतं अन्य भेषाय जानन्निति द्वयऽऽहन् । किं बहुकृतन चोदितं सक्षेपयोगमहम् ॥२७५॥

नारायणश्च न जनार्दन वासुदेव गोविन्द माधव मुकुन्द रमेश विष्णो ।

सकर्मणाञ्च नमसिह परावगन्मन्त्राधोक्तगणेश शिव आनन पाद्वि शिष्यन् ॥ २७६ ॥

येनेदं विकृतं विश्वं विग्रता येन चेतनम् । यन्निश्चयं यन्प्रविष्टं च तस्मै सर्वान्मते नमः ॥२७७॥

इदानीं गमनोपद्रव्याहोचरन्तस्य च । नानाभेदाः प्रकृपन्ने लघुमुद्रान्वितस्य हि ॥२७८॥

पूर्वोक्तंऽष्टाविंशतीनां रेखाश्रुतिं प्रकल्पयेत् । पृथिवी द्वारदिकौ तत्प्रकल्पनीयकानि याञ्जयत् ॥२७९॥

प्रथमे तिथिमिनीश्वरतुर्विंशत्पादकः । बाध्यः पोटुशमन्त्रावास्त्रोद्गमपदान्वितः ॥२८०॥

भद्रं तन्वमिनं चाथ द्वितीयऽर्कमिताः शिरः । पादस्य पोटुशमिताः सप्तदशपादकः ॥२८१॥

भद्रमर्कपदं शेषं यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । एतद्वास्त्रमनोभद्रमनं च वाच्यम् ॥२८२॥

अथवाऽऽद्ये रममुद्रा रसमां वापिकाश्च परः । त्रयोदश पादाः कार्या एव चन्द्रकान्तकम् ॥२८३॥

द्वितीये पञ्च मुद्राश्च लिङ्गपादक च वापिकाः । तन्मिताश्च भद्रकर्मपदमग्रेऽष्टमावधि ॥२८४॥

तुयेपचतुर्थेन चन्द्रमण्डलाथ मुद्रिका । पण्णेचनेन च ननेनेनेन्दुशङ्काधना ॥२८५॥

भद्रं पदपदमर्कमिन्द्र पदपदं विंशपादकम् । पोटुशमिन्द्रमपादकं कर्माङ्कय विचक्षणैः ॥२८६॥

पावन किया गया है । वही मुद्रिका कारण है और उसका बीच लेखन भी शार्ङ्ग साधन प्राप्त हो ही जाता है ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ इस जगन्मन्त्र बाह्य-आन्तर जा कुछ दया और भूला जगन्मन्त्र है, उन मन्त्रों को कहकर वह नारायण स्थित है । २८१ ॥ इस जगन्मन्त्र जो कृत है । उसमें एकमात्र वही अद्वितीय आत्मा है । "सर्वं सन्निदं" बाह्य आन्तर वाच्योक्त धर्मिणी भी यथा वात कहता है ॥ २८२ ॥ जो शार्ङ्गी संसारकी सब वस्तुओंमें सारमको देखता है और सब धार्मिकोंका प्रान्दिव्य आनन्द दत्तता है । उन आत्माओंके लिये वह कोई संचारण बात नहीं है । यह सब भगवान्का कथन है ॥ २८३ ॥ इस प्रकारक जगन्मन्त्र का बहुत ही अर्थ है और अपनी कृतकर्म मानते हुए स्वयं का तरन ही है साथ ही अपने अन्तर जगन्मन्त्र का यह स्वयंकायन विनियोग भवसागरसे पार उतार दत्त है ॥ २८४ ॥ एतद्वास्त्रमनोभद्रमनं च वाच्यम् ॥ २८५ ॥ है नारायण, अच्युत जनार्दन, वासुदेव, गोविन्द माधव, मुकुन्द, रमेश, विष्णो, सकर्मणाञ्च नमसिह, परावगन्मन्त्राधोक्तगणेश, शिव आनन । आप इस विष्णुकी उक्त कं जित ॥ २८६ ॥ संसारी जीनेसे प्रविष्ट होकर जिसने इस विष्णुको नमन किया है, जिसने उस जीव स्थित है जिसमें सब प्रतिष्ठा है, ऐसे सर्वान्मा रमको प्रणाम है ॥ २८७ ॥ अब लघुमुद्राक साधनाथ एक ही साठ रामनोद्वीक अनेक मन्त्र बतलाते हैं ॥ २८८ ॥ पूर्वाक्त २८ रेखाश्रुति का कुछ कर । उसमें ही वाच्य अधिक बनाव । फिर उनमें लिङ्गकी योजना कर ॥ २८९ ॥ प्रथम पंक्तिमें १२ ईश और साठ पादका २१ भद्र बनाते ॥ २९० ॥ फिर दूसरी पंक्तिमें १२ शिव और १८ पादका १२ कर्माङ्क बनाना चाहिए । तृतीयांका १८ पादका भद्र बनावे । यह रामानुजगीभद्र १०८ रमपाका है । २९१ ॥ २९२ ॥ अथवा छ मुद्रा, छ ईश और १३ पादसे छ वापिकर्म बनावे और १६ पादका भद्र बनाव ॥ २९३ ॥ दूसरी पंक्तिमें पांच मुद्रा बनावे और लिङ्ग तथा छ ही कपी बनावे । आगे आठवीं पंक्तिमें लेकर चार, पांच, दो, एक, इन संख्याओंको मुद्राय बनावे । फिर छ, दो, दो, दो, दो, एक इस क्रमसे शिवकी रचना करे । इनमें छ पादका, बाह्य पादका, दो पादका चौंस पादका सौल्लु पादका, चार पादका कर्माङ्क, प्रत्येक पंक्तिमें भद्र बनाने । ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिए ॥ २९४-२९५ ॥

अथवाष्टपदे मुद्रां विधाय तन्मालिगद्गम् । रचयन्मालिके तुयं भद्रं मिश्रनाशम्भम् ॥२८७॥  
 सर्वत्र सममुद्रानु मध्ये च परिधिद्वयम् । मुद्रा मीमांस्यगता वाप्यर्द्धा तुयंकोष्ठम् ॥२८८॥  
 लिगम्कन्धगता कोष्ठा र्णैरिष्टैः प्रकल्पयेत् । वह्निमग्नेनेष्वगानि वदन्तुर्वेस्तावत् ॥२८९॥  
 भद्रशृङ्खलयोग्यानि तदर्थं ।मानपाजम्भम् । अधगप्यथे दश मुद्रा मीमांस्यगता ॥२९०॥  
 भद्रमर्कपद मध्ये परिधा द्वे प्रकल्पयेत् । एवमग्नः परित्यज्यन्तर्धेऽष्टम् । मुद्रिकाः ॥२९१॥  
 चतुष्पादात्मकं भद्र पञ्च मुद्राश्च पञ्चमः । मर्कवाशमर्कं भद्र नात्र तौ परिधी स्मृता ॥२९२॥  
 समपेऽग्निमिता मुद्रा भद्र तुयं वदाम्भम् । द्वये त्रयोदशेशश्च वाप्यश्चापि चतुर्दश ॥२९३॥  
 भद्रं तच्चमितं तुयं नरेश दश वापिकाः । भद्रं तच्चमितं षष्ठे पञ्चेश वापिकाश्च षट् ॥२९४॥  
 भद्रं तच्चमितं शेष दधापूरं प्रकल्पयेत् । अथवाऽष्टमे पञ्चदश शिवा नत्रेऽष्ट मुद्रिकाः ॥२९५॥  
 शिवदशं त्रिषट्पादं त्रिषट्पादा च भद्रिकाः । पट्पुण्यं षेच मुद्राः स्थुर्वाणे मिश्रुमितास्तथा ॥२९६॥  
 षष्ठे द्वे मुद्रिके मुद्रा मिगे मुद्रा गजेभ्यथा । शिवदश वापिकश्च मममन्त्र भद्रद्वयम् ॥२९७॥  
 भद्रमान तन्मालिगद्गम् पट्पुण्यं इदमिति च । विमर्गे इदमिथापि क्रमेणैव प्रकल्पयेत् ॥२९८॥  
 यदा द्वौ मुद्रिके मेका मध्याग्निं प्रकल्पयेत् । भद्रमिदं कृत्वा तद्विग्न रचयेद्भजे ॥२९९॥  
 भद्रं गजे तच्चकोष्ठे शेष सर्वं तु पूजयेत् । अथवा त्रिषट्पादं पञ्चदशमि मितः प्रकल्पयेत् ॥३००॥  
 मुद्रामध्ये विधेयं च । मीमांस्यगता । भद्रमालिका न प्रथमा पट्पदा च द्वितीया ॥३०१॥  
 द्वितीया त्रिषट्पादा मध्याग्निं चतुर्थी च लिगम्कं रचयेन्मार्गयोः सम्पक् शेषं सर्वं पुणेदिनम् ॥३०२॥  
 अधवोक्तः प्रथमः मग पट्पाचतुर्थीकाः । वह्निमग्ने चन्द्रमुद्राः मीमांस्यगता ॥३०३॥  
 पट्पुण्ये च शिवान्तर्धमिता स्मृताः । विशेषतः लिगदश त्रयोविषट् त्रिषट् पदम् ॥३०४॥

अथवा आठ पादक मुद्रा बनाकर बांध रहा है । मालिका चतुर्था और त्रयोदश पादका भद्र बनावे ॥ २८७ ॥  
 जितनी समसंख्य मुद्रा रहे, उन सबमें २८ में दो परिधि बनाने । लिगकी सीमा में मुद्रा आठ पाद पादकी  
 बांधी बनाने ॥ २८८ ॥ लिगके कन्धके मुद्रा को अग्ने दक्षिणमुख किन्हीं रङ्गमें रङ्ग दे । बांधी और बांधीके  
 बीचवाले बीच काष्ठकावा, चतुर्थी भद्र बना । मालिका रचने में मग, हा ता ३०२ उमा कायम ले आवे । अथवा  
 बांधकी दस मुद्राई और सोमाकी परिधिवाला वह द्विग्न गतेन कर दे ॥ २८९ ॥ पञ्चम चारह पादका  
 भद्र बनाव और द पञ्चिकाकी रचना कर । इस तरह तीन रचने केवल में ३ मुद्राओंकी योजना करे  
 ॥ २९१ ॥ चार पादका भद्र बनाव और पञ्चम स्थान में मुद्रा के बांधकर चारह पादक भद्र बनाव । विशेषता  
 बलक इतनी होगी कि इनमें दो परिधिओं नहीं रहे । और चार पादका भद्र बनाया । इनमें चार पाद में और  
 चोदह बांधी बनाने ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ चौदम २५ पाद भद्र बनाने, नी ईने २५, दस बांधी बनाने और २५  
 भद्र बनाने । छठमें पांच ईश, छ बांधा, पञ्चवीस भद्र, बांधा सब पूजयेन रहगा । अथवा २५ मग पट्पुण्य शिव अष्टादश  
 मुद्राएँ, नौ पादक दश शिव और नौ ही पादक मुद्राएँ बनाने । चौदम छ बांधी मुद्राएँ, पञ्चवेस सात मुद्राएँ,  
 छठमें दो मुद्राएँ, सातवमें एक मुद्रा, अठवमें एक मुद्रा, दश शिव और दो बांधी रहेंगी । पट्पुण्य आदिसे लेकर  
 सातवें स्थान तक चलेगा । २९४-२९७ ॥ इनमें भद्रका मग पञ्चवीस, छ मालिग, चारह छ मग, सोलह, दश  
 प्रकार है । बनायेबांधा चाहिए कि जगता इनको याचना कर ॥ २९८ ॥ अथवा दस मुद्रा के बांधकर एकको लिग-  
 के मध्यमें रखे और सोलह के अकोका भद्र बनाकर सातवें त्रिषट्पाद रचना करे ॥ २९९ ॥ सातवमें पञ्चवीस  
 काष्ठकीका भद्र बनावे । बांधा सब पूजयेन रखे । अथवा आदिक तात पञ्चवीस पाद, सात मीमांस्य, मगओं  
 का शिव बनावे ॥ ३०० ॥ मुद्राके मध्यमें मर्कवाश और पञ्चिकाकी रचना करे । भद्रका मग पट्पुण्य जितनी हो  
 रहगी और छ, दो या चारह पाद उनमें रहे । ३०१ । दूसरा पञ्चम दश कोष्ठको रचनी और लिगके बगलमें  
 दो बांधीकी रचना कर । बांधी सब पूजयेन रहेगा । ३०२ ॥ अथवा आठसे लेकर छठे पञ्चम तथा सात, छ,

वाप्योऽपि तन्मिताः कार्या भद्राणि वक्ष्यमाणतः तच्चकोष्ठं कला कोष्ठं तुयकोष्ठं च षट्पदम् ॥३०५॥  
 षट्पदं च कलाकोष्ठं दृष सर्वं पुरोदितम् । अथवा प्रथमाद्यावत्पञ्चसंख्यानकारिणि ॥३०६॥  
 षट् षट् पञ्च तुर्यवह्निमुद्राश्च मध्यशङ्करान् । तुर्यनेत्रक्षिनेत्राक्षिमर्षादापरिधीनथा ॥३०७॥  
 विशेषस्तु लिङ्गद्वयं दार्ण्यं षट् त्रिषट् षट् । भद्रसंख्येन्दुकलेन्दुकलाकतुरसाम्मिकाश्च ॥३०८॥  
 प्रकल्प्यारचयेद्विबुद्ध्या शेषं सर्वं पुनः दत्तम् । वं नानाविधा भद्रा च ह्यत्रः सन्ति भो द्विजः ॥३०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे बालमीक्ये मनोहरकाण्डे श्रीरामदासविष्णुदास-  
 सम्पादिते लघुरामतीभद्रविस्तारो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

## पञ्चमः सर्गः

( रामलिङ्गतीभद्र तथा अनक लिङ्गतीभद्रोक्ता रचनाप्रकार )

श्रीरामदास उवाच

पूर्वोक्तश्रेष्ठमुदीये रामतीभद्रविस्तरान् । यदान्यहं तवाग्रं हि विष्णुदास शृणुष्व तान् । १ ॥  
 निर्यगूर्ध्वरक्तरत्नाः एकपट्टिमिताः शुभाः । अन्तःकृष्णरक्तशुद्धरीताः परिधयः क्रमान् । २ ॥  
 द्वादशांते रीतकृष्णरक्तशुक्लाः पुनः स्मृताः । पञ्चमः पीतवर्णादिः सर्वतीभद्रमालिखेत् । ३ ॥  
 बहिः पञ्ची द्वादशांते श्रीमापरिधयः स्मृताः । रीता वा लोहिताः कार्या मध्ये रीता परिधा स्मृतौ । ४ ॥  
 ततो मध्यमहयोर्द्वे मुद्रिके वेदवर्णके । चतुर्दार्श्वेषु चत्वारि नामानि पूर्वमल्लिखेत् ॥ ५ ॥  
 कोणमोहेषु कोणन्दुस्त्रिषदः शुक्लवर्णकाः । एतादशपदा कृष्णा शृङ्खला पीतवर्णका । ६ ॥  
 दशपदा शृङ्खलाज्ज्या बहुर्गं हरता स्मृता । एकोनविंशत्पदा भद्रं रक्तं नवार्त्तकम् । ७ ॥

चार पाँच, तीन, दो अथवा एक मुद्रा बनाव और सामांको पराधियोंकी ओर छोड़ो स्थानोमें चार-  
 चार शिबोका रचना करे । विजयना कहल इनता रहेगा कि पाँच या नौनो पादोंके लिय बनगें । बापियों  
 पूर्वोक्त संख्याके अनुसार ही रहेगी, लिखु चढ़का सत्य वक्ष्यमाण संख्याके अनुसार रहेगा । कुछ भद्र पञ्चोस  
 कोष्ठकीके, कुछ सोलह कोष्ठकीके, कुछ चार कोष्ठकीके, कुछ छ कोष्ठकीके, फिर छ कोष्ठकी, कुछ सोलह  
 कोष्ठकीके, इस प्रकार भद्र बनगें । बाकी सब पहलक समान हो हयें । अथवा पहली पंक्तिमें पाँचवी पंक्ति  
 पर्यन्त ॥ ३०३-३०६ ॥ छः, पाँच चार, तीन मुद्रा बनावे बनम चार, व, दो, दो, दो शिबोका रचना  
 करे और मर्षादा तथा परिधियोंकी ठाँकसे बन कर खन ३०७ । विशेषता इतना है कि पाँच, तीन, छ,  
 तीन, छ पादका लिय बनावे । इसमें भद्रका संख्या सोलह, सोलह तथा छ रहेगा इस तरह कल्पना  
 करके अपनी बुद्धिसे रचना करे । बाकी सब पूर्वान् रह्ये । इत प्रकार है द्विज । इस भद्रके बहुतो भद्र हैं,  
 ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे बालमीक्ये पंच रामदेवपाण्डेयकृत-  
 पद्मोत्सर्गभाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास कहते हैं—हे विष्णुदास ! अब मैं तुम्हारे आगे पूर्वोक्त रामतीभद्रका विस्तार बतलाता हूँ ।  
 उसे तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १ ॥ भद्र बननेके लिय चाहिए कि बडा और साया ६१ रेशम्ये खोच । अन्तमें  
 काली, लाल, सफेद तथा पीली परिधियाँ बनावे ॥ २ ॥ बारहवीं पंक्तिमें आगे पीत, कृष्ण, रक्त तथा शुक्ल  
 रङ्गकी सीमापरिधियाँ रहेंगी । चाहे ती पाँचवाँ स्थान पाले रखते भ बना सकता है । बारहके बाद बाहरकी  
 पंक्तिमें पीले या लाल रङ्गकी परिधि रहेगा । बीचमें और दो परिधियाँ बनेगी ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर  
 मध्यके दोनों पंक्तियोंमें चार रङ्गोंकी दो मुद्राएँ बनेगी । इसके अनन्तर चारों बगल पूर्ववत् चार नाम लिखने  
 चाहिए ॥ ५ ॥ कोणवाले कोष्ठकमें तीन पाद और शुक्लवर्णका इन्दु बनावे । आरह पादकी शृङ्खला बनावे  
 और उसे कृष्ण वर्णकी रहे । दस पादकी एक दूसरी शृङ्खला पीले रङ्गसे बनावे । हरे रङ्गसे उसीस पादकी



त्रयोदशपदा कापी ॥ ८ ॥ त्रिपदा मरुद रक्त भट्ट पीतभट्ट त्रिर्यङ्गवदन्मकम् ॥ ८ ॥  
 मट्टया मृत्पला रता त्रिर्यङ्ग ममन्त ॥ अष्टमुद्रामरु रामभोमट्ट ते मयोदितम् ॥ ९ ॥  
 त्यक्त्वा पीता भूयसा का ॥ १० ॥ कृष्ण रक्त ॥ मट्टा मृत्पलादस्य दजा मट्ट लोदितं रसैः ॥ ११ ॥  
 त्रिपदे, पीतवर्णं त्रिर्यङ्गं रक्तं तथा लिङ्गाभ्यं मालिका रक्ता त्रिपदा वा त्रिलोकना ॥ १२ ॥  
 अष्टमुद्रामरु चैव ॥ १३ ॥ ममभट्टम् त्रिर्यङ्गं त्रिपदा अष्टवाः सर्वं हि पूर्ववत् ॥ १४ ॥  
 मृत्पलापिधानी च पट्टक स्वेच्छ प्रपूयन् ॥ चतुर्मुद्रामरु चैवन्मलिनं वापि पूर्ववत् ॥ १५ ॥  
 त्रिर्यङ्गं त्रिपदा च रेखाः कापी तुल्यं ॥ १६ ॥ कामु चतुर्मुद्राभ्यं कर्पाः परिधरः क्रमात् ॥ १७ ॥  
 कृष्णरक्तशुक्लशोभा द्वार्याने पदेषु च ॥ कायः पुनश्चतुर्मुखं परिधिः पीतवर्णकः ॥ १८ ॥  
 तदग्रे रक्तगणेशं परिधिर्हि ममन्त ॥ ततोऽष्टपदः परिधः परिधिः पीतवर्णकः ॥ १९ ॥  
 ततः पट्टपदाध्वं च पुनः पीताः प्रकाशेत् ॥ आद्यस्थाने च सीमाख्याः पीता परिधोऽप्यवा ॥ २० ॥  
 रक्ता वेदांमताः काया द्वादशात पदेषु च ॥ काण्टद पूर्ववत् च मध्ये च मृत्पलात्रयम् ॥ २१ ॥  
 ततो द्वितीयस्थाने हि चट्टः कृष्णा च भूयसा ॥ ममरता वल्लरा च चतुर्दशसु पादिका ॥ २२ ॥  
 वल्लयः त्रिपदा जने काये रक्त भट्ट हि पट्टपदा ॥ त्रयोदशपदा काया वाप्या वदामताः पिताः ॥ २३ ॥  
 पट्ट वल्लपदजा कापीस्तृतीया ॥ कृष्णवर्णका ॥ वाप्यस्तृतीयादस्य लक्ष्या हि लिङ्गमभ्यं पदेषु च ॥ २४ ॥  
 रामाति रामनाम नि ॥ २५ ॥ कर्तव्यं ॥ २६ ॥ मृत्पला चतुर्पदा त्रयः पदाभ्यां कण्ठ ईरदा ॥ २७ ॥  
 चतुर्पदा लिङ्गद्वया पट्टक रता हि पट्टपदा ॥ त्रिपदा त्रयस्थाने शुक्ल द्व पद रचयेद्विधा ॥ २८ ॥  
 वाप्युपारिष्ठ कट्टपला ॥ पाल त्रिपदानं च ॥ तदुत्तरकांत त्रापार्दा पञ्च पादाने चोपरि ॥ २९ ॥  
 मध्येऽथ सप्तमीभट्टे पूर्ववत् चैव ना परन् ॥ सर्वं लङ्का ममभट्टप्रमक मपेरितम् ॥ ३० ॥

वल्लरी बनाये । ८ ॥ रक्त पीत रक्त भट्ट बनाये ॥ ९ ॥ १० ॥ सफेद रङ्गसे तरु वादका काया बनाये । तीन  
 पादसंख्या रङ्गक एक दुसरी भट्ट बनाये । रक्त पीत पादका एक तिरछा भट्ट और बनाये ॥ ११ ॥ इन  
 रता भट्टाका १३ पदा ॥ १२ ॥ रक्त और पीत रक्त कवल दो पादका रहण । इस प्रकार अष्टमुद्रामरु  
 रामभोमट्ट भैव मुमका बरालया ॥ १३ ॥ त्रयोदा पाला मृत्पलाका छाडकर काले रङ्ग पीत पादका लिङ्ग बनाये ।  
 चार पादका एक खण्डवदा और छ पदसंख्या रङ्गका भट्ट बनाये ॥ १४ ॥ ऊपर बल्लया तिरछे और  
 पाले भट्टम सात या चार पादका भट्ट बनाये । रक्त ऊपर लाल रङ्गका मालिका या तीन पादकं शिष  
 बनाये ॥ १५ ॥ यह मट्टमुद्रामरु सालङ्काभम भट्ट है । पूववत् साया और बडा तिरपन रेखाये कोये  
 ॥ १६ ॥ मुद्रा और पारधराक छ छ पादाका अवन इच्छानुसार पहलके समान पूर्ण करे । यह चतु-  
 र्मुद्रामरु रामा भूयसाभट्ट कहला है । इसके निचर सब जात्र पूर्ववत् रहता है ॥ १७ ॥ काल रङ्गसे  
 संधा और बडा तिरुत्तर रचये स्वच और कभा । चार बगल पार धरा बना दे । १८ ॥ बारह पादका  
 काला, लाल तथा शुक्ल रंगका भट्ट बनाये । सर उसके चारो ओर पाल वणका परिधि बनाये ॥ १९ ॥ इसके  
 आगे चारो मागस लाल रंगका परिधि बनाये । फिर आठ पादका परिधि उसके चारो तरफ बनाये  
 ॥ २० ॥ ऊपरका और छ पादका पर ध पाल रंगस बनाये । आदिम स्थानमे सीमा नामकी परिधिया  
 मपवा लाल रंगस चार परिधिया बनाये । पहलका तरु काणक बरामे सात मुद्राये बनाये ॥ २१ ॥ २२ ॥  
 इसके अनन्तर दूसर स्थानम मट्टमा बनाकर काल वणका मृत्पला बनाये । सात पादकी बलली मपवा पीरह  
 पाशेम वल्लारियाका विभाग कर और लाल रङ्गस छ पादका भट्ट बनाये । सात पादसे सफेद रंगकी वा-  
 पाधिया बनाये ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदन्तर काल रंगस छ पादका पादोके तीन शिष बनाये । निचरे  
 मध्यवासे काठकोम तरु व पिवा बनाये ॥ २५ ॥ फिर उत्तम स्थानसे कट्टाके समान रामके नाम लिखे ।  
 इसमे चार पदसं मस्तक, दो पादक कट्ट, चार पादसं लिङ्ग और वाप्यभाग, छ पादसे स्कन्ध, तीन पादसे  
 वीर बनाये । सफेद रंगके दो पादका रहने थे ॥ २६ ॥ २७ ॥ मपवा ऊपरसे गो बगल पार दाहि बये है

एतद्द्वादशमुद्राभी गणलिंगात्मकं शुभम् । अनन्य विविधं च रामायणधर्मास्ति ॥ २६ ॥  
 त्रिर्यगूर्ध्वमंकमप रेखाः सर्वे हि पूजयेत् । चतुर्मुद्रात्मकं नद्रं यथा तद्रूपं नम्यते ॥ २७ ॥  
 आये तिस्रः स्थले मुद्रा सीमं पारधयस्तथा । नम्य नपञ्चपात्रेपास्तुत द्वौ द्वौ शुभौ स्मृतौ ॥ २८ ॥  
 ततः षोडशमुद्राभी रामताम्रमात्रम् । अन्नमहं कृत्वा लिङ्गं मर्दिनं पादश्यामकम् ॥ २९ ॥  
 त्रिर्यगूर्ध्वभूमिवाणवेदरेखाः ४-१ सुकाहिनाः । अष्टमुद्रा मक मध्ये रामदीनद्वयं लिखेत् ॥ ३० ॥  
 त्रिर्यगूर्ध्वं परिधयः पानश्चैव नमन्ततः । द्वादशानि रचनां च बहूः परिवर्णोऽपि च ॥ ३१ ॥  
 पूर्ववत् कोणोद्गानि मुद्राणां च क्रमाद्गुणाः । उक्तं द्वै मुद्रिके पूर्वं तद्वत् वेदमुद्रिकाः ॥ ३२ ॥  
 मध्ये सर्वत्र एगिविद्वयं मान्यम्यलं कदा । तत्रा रमानना द्वादशशयः पञ्चम स्थले ॥ ३३ ॥  
 षण्मुद्रिका वेद वाप्यश्चतुर्भातिपादकाः । पादपद्मरत्नद्वयं कृष्णं द्वादशपादकम् ॥ ३४ ॥  
 बायीपार्श्वेषु भद्राणि चत्वारि लाहनि च । पूर्वम् पृथक् पृथक् पञ्चदशपर्यन्तं गानि गानि हि ॥ ३५ ॥  
 षष्ठे स्थाने द्वादशैव मुद्रा द्वादशैव चतुर्दश । पङ्कजाष्टदशाय चतुर्दशैव मुद्रिकाः ॥ ३६ ॥  
 चतुर्विंशाय पङ्कजैश्च द्वादशैव मुद्रिकाः । त्रिभङ्गवर्णमुद्राणां स्थाने पादश्याम मुद्रिकाः ॥ ३७ ॥  
 माप्यः पादश्यामप्येव वापादप स्मृतम् । अष्टाक्षरमहम् च रामताम्रमात्रम् ॥ ३८ ॥  
 त्रिर्यगूर्ध्वं हि वस्वकृष्णरत्नाः मुद्राहनाः । सप्तलिंगं नमस्त्रयमहं पुरातनम् ॥ ३९ ॥  
 तद्वत् मध्ये लेख्यं हि मध्यमुद्रात्मकं ततः । द्वि नालपरं ततः कृष्णं प्रकाशयेत् ॥ ४० ॥  
 षट्त्रिंशद्वामनामानं वै लेख्यान् च हस्तान् । कृष्णं ततः कालं चतुर्गुणं शिरः स्मृतम् ॥ ४१ ॥  
 कटिश्चतुर्पर्यः काया पार्श्वे द्वादशपादकं । कृष्णं त्रिभङ्गवर्णमुद्राणां स्थाने पादश्याम मुद्रिकाः ॥ ४२ ॥

उनके आदिवास तीन पादकी लाल रङ्गस और च व पल रङ्ग की रङ्ग ॥ २६ ॥ उनके बीचमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना कर । इस प्रकार में गुमवा ॥ २७ ॥ नमस्त्रयं शक्तिभेद उक्तया ॥ २८ ॥ यह द्वादश मुद्राओंस युक्त लिंगात्मक रामताम्र आनन्दराम ॥ २९ ॥ नमस्त्रयं कृष्ण रङ्ग की रङ्ग ॥ ३० ॥ तथा और बायी पार्श्वों पर भद्राणि चत्वारि लाहनि च ॥ ३१ ॥ पूर्वम् पृथक् पृथक् पञ्चदशपर्यन्तं गानि गानि हि ॥ ३२ ॥ षष्ठे स्थाने द्वादशैव मुद्रा द्वादशैव चतुर्दश । पङ्कजाष्टदशाय चतुर्दशैव मुद्रिकाः ॥ ३३ ॥ माप्यः पादश्यामप्येव वापादप स्मृतम् । अष्टाक्षरमहम् च रामताम्रमात्रम् ॥ ३४ ॥ त्रिर्यगूर्ध्वं हि वस्वकृष्णरत्नाः मुद्राहनाः । सप्तलिंगं नमस्त्रयमहं पुरातनम् ॥ ३५ ॥ तद्वत् मध्ये लेख्यं हि मध्यमुद्रात्मकं ततः । द्वि नालपरं ततः कृष्णं प्रकाशयेत् ॥ ३६ ॥ षट्त्रिंशद्वामनामानं वै लेख्यान् च हस्तान् । कृष्णं ततः कालं चतुर्गुणं शिरः स्मृतम् ॥ ३७ ॥ कटिश्चतुर्पर्यः काया पार्श्वे द्वादशपादकं । कृष्णं त्रिभङ्गवर्णमुद्राणां स्थाने पादश्याम मुद्रिकाः ॥ ३८ ॥

उनके आदिवास तीन पादकी लाल रङ्गस और च व पल रङ्ग की रङ्ग ॥ २६ ॥ उनके बीचमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना कर । इस प्रकार में गुमवा ॥ २७ ॥ नमस्त्रयं शक्तिभेद उक्तया ॥ २८ ॥ यह द्वादश मुद्राओंस युक्त लिंगात्मक रामताम्र आनन्दराम ॥ २९ ॥ नमस्त्रयं कृष्ण रङ्ग की रङ्ग ॥ ३० ॥ तथा और बायी पार्श्वों पर भद्राणि चत्वारि लाहनि च ॥ ३१ ॥ पूर्वम् पृथक् पृथक् पञ्चदशपर्यन्तं गानि गानि हि ॥ ३२ ॥ षष्ठे स्थाने द्वादशैव मुद्रा द्वादशैव चतुर्दश । पङ्कजाष्टदशाय चतुर्दशैव मुद्रिकाः ॥ ३३ ॥ माप्यः पादश्यामप्येव वापादप स्मृतम् । अष्टाक्षरमहम् च रामताम्रमात्रम् ॥ ३४ ॥ त्रिर्यगूर्ध्वं हि वस्वकृष्णरत्नाः मुद्राहनाः । सप्तलिंगं नमस्त्रयमहं पुरातनम् ॥ ३५ ॥ तद्वत् मध्ये लेख्यं हि मध्यमुद्रात्मकं ततः । द्वि नालपरं ततः कृष्णं प्रकाशयेत् ॥ ३६ ॥ षट्त्रिंशद्वामनामानं वै लेख्यान् च हस्तान् । कृष्णं ततः कालं चतुर्गुणं शिरः स्मृतम् ॥ ३७ ॥ कटिश्चतुर्पर्यः काया पार्श्वे द्वादशपादकं । कृष्णं त्रिभङ्गवर्णमुद्राणां स्थाने पादश्याम मुद्रिकाः ॥ ३८ ॥

उनके बीचमें अष्टमुद्रात्मक रामताम्र लिङ्ग ॥ ३९ ॥ इसके चारों ओर वस रङ्ग की पारोचनी रहना, व परिवर्णो द्वादश पादक अन्नस्वर बनानी मय ॥ ३९ ॥ पहलका तरह कायवला मुद्राओंकी कय बनना रहे हैं । सबके अगर दो मुद्राय और उनके बीच चार मुद्राय बनाने ॥ ३९ ॥ सब तरफ दो पारोचनी बनावे । इसके बाद छ मुद्राय बनाने फिर आठ मुद्राय बनाने । पञ्चम स्थाने कुछ विमायता हो, सा बनाने हैं । ३० ॥ इसमें छ मुद्राय, चौरासी पादकी चार वापाओ ३८ वापक अष्टाक्षरमहम् रङ्गस बाहर पादका कुंड बनाने ॥ ३१ ॥ बायीपार्श्वे कायवास लाल रङ्गके चार भद्र बनाने । व अन्न अलग पन्द्रह पादकी बने य जायें ॥ ३२ ॥ छठी पंक्ति में केवल बाहर ही मुद्राय रहना । अगर चौदह, फिर बास, बाइस, चौबीस, छत्तीस, अष्टा-  
 श, सौ, बत्तीस, ये मुद्राय रहना । और अपन स्थानपर पूर्ववत् व सालह मुद्राय रहना । इसमें बायी भी सालह रहनी और मध्यम दो बायी रहना । इस तरह में गुम्ह अष्टाक्षरमहम् रामताम्रमद्रा-  
 नम बतलाया ॥ ३३-३८ ॥ लाल रङ्गस लह, चढ़ा और २६५ रेखाएँ । जेहा कि में पड़े ही सर्वलिंगात्मक रामताम्रमद्राकी रचनाका प्रकार बतलाना है । उता तरह यही भी बनावे । उसके बीचमें मुद्राकी जगहपर बहुततर पादक शिवकी रचना कर । इसका कण लाल रहना । अथवा हायसे ३६ रामताम्र-  
 स्थिते । काले रंगसे उनकी कयिका और चर पादसे सिर बनावे ॥ ३९-४१ ॥ चार पादकी कटि

षडविंशपदजे जेणे हे बावीसकले मिने । द्वाभ्यां शिवस्य च त्रेणे मिने शेषपदानि हि ॥४३॥

एव स्तानि सप्तानि पीठानि शिवकर्णयोः ।

स्थाने तृतीये मुद्राश्च त्रिंशो द्वौ शंकरौ वरौ । स्थाने चतुर्थे मुद्राश्च चत्वारश्च शिवास्तथा ॥४४॥

एवमग्रे क्रमेणैव विंश पञ्चमस्तथा स्थाने चतुर्थे मुद्राश्चर्द्धश शिवास्तथा ॥४५॥

पञ्चदशे हि त्रिंशे । एवमग्रे शिवा त्रिंशे । शंकराभ्यां त्रिंशे । कारौ द्वौ शिवा च विषट्पदौ ॥४६॥

अष्टमुद्रात्मके भट्टे सन्निभे च कृतौ यथा । भट्टेभ्यो शिवावृद्धिर्द्वि कर्त्तव्या परमावधि ॥४७॥

स्थाने द्वि-त्रिंशामे मुद्रा द्वाभ्यां येनित्वा श्वरविंशच लिङ्गानि षडिः परिधयस्ततः ॥४८॥

एव युक्त्या रचयिष्ये शेष सर्वं पुरोहितम् ।

अष्टोत्तरमदस्रं च रामशिवात्मकं त्रिदशम् । रामात्मन उपेष्टुं हि गवस्त्वानितुष्टिदम् ॥४९॥

तिर्यग्मुखं चत्वारिंशत्पिण्डेषु पूर्वेण । अष्टमुद्रात्मके मध्ये परिधयः समन्ततः ॥५०॥

तिर्यग्मुख द्वादशाने सन्निभे परेवपञ्च । मध्ये संस्थापयिष्येद्वयं नान्यन्स्थाने कदा ॥५१॥

नेत्रस्थाने वैद्यमुद्रा । नेत्रे परे च त्रिके शिवा श्वरमश्चमुद्राश्च द्वयमेव चतुर्थके ॥५२॥

पञ्चमे दश मन्त्राश्च षड् पञ्च पदविंशच श्वरचरश्च । रामनामद्वे ने मयोदितम् ॥५३॥

तिर्यग्मुखं त्रिपुण्ड्रं त्रिंशो कार्ग्यश्च पूर्वेण । चतुर्विंश गवसद्वयमेके पुरोहितम् ॥५४॥

तदत्र मध्ये लेखः । द्वि मध्यमुद्रा स्थलेतिता । धाया कार्या द्वादशान परिधयश्च पूर्ववत् ॥५५॥

तिर्यग्मुखं शुभा कार्या षडिः परिधयस्तथा । स्थाने तृतीया मुद्राश्च त्रिंशो द्वौ शंकरौ वरौ ॥५६॥

चतुर्थे वैद्यमुद्राश्च त्रयस्त्रिंशो शिवाः स्मृताः । पञ्चमे पञ्च मुद्राश्च चत्वारश्च दश वराः ॥५७॥

षष्ठे स्थाने च षड्मुद्राः शिवाः सम प्रकीर्त्तनाः । काण्ठस्थोद्गयाः कार्या द्वौ द्वौ च विषट्पदौ ॥५८॥

वनन । बाह्य काटके शंको पाद्वं श्री शिव या शिवस्य बनावे ॥ ४९ ॥ छप्पीस पादसे शिव तथा बापी बनावे श्री शंकाय शिवर्षिक रूप । नमः कनक ॥ ४९ ॥ बाकी काटकाधस पांच कोष्ठक लाल रङ्गसे, चार पाद मुद्राव दशवी नवा योग पल्लव नमः मुद्राश्च कार्य दो शंकर वनाव । चौथी पल्लिमे बाव मुद्राये मौन तीन शिवा बनावे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार चतुर्थके बाव वर इसमे जो कुछ विशेषताये है, उन्हें बतला रहा है । चौथी पल्लि चोत्तर मुद्रा श्री शिव बनावे ॥ ४५ ॥ दशो प्रम परद्विती पल्लिमे श्री रहगा । बाकी सव ॥ ४६ ॥ त्रिदश मन्त्र रच करे । द्वायाक बावो घणाय नौनी पादके दो शिव बनावे ॥ ४६ ॥ अष्टमुद्रात्मक रामात्मक अष्टक शिवात्मक चार गवसक चार प्रत्ययश्च मुद्राके अनुसार लिङ्गको वृद्ध करता आय ॥ ४७ ॥ छप्पीस पल्लिमे बाव मुद्राये बनावे । उपाय नईम लिङ्ग बनाकर बाह्यकी परिधियां श्री बनावे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार युक्तिसे साथ इस रामशिवमदको बनावे । शेष अंश पहलेके समाप्त हो रहेगा । यह अष्टोत्तरमदस्र एक रामशिवमद रामचन्द्रका प्रमम कन्देवाला सर्वश्रेष्ठ ग्रामन है ॥ ४९ ॥ चौथी तथा तिरछी १५५ रेखाये खींचे और अष्टमुद्रात्मक रचना करे । उसके बीचम भद्र रहगा । बायी ओरसे बाह्यकी पल्लिके छठ परिधियां रहेंगी । मध्यमे मोमा शिचियां रहेंगी और किसी पल्लिम कुछ भी नहीं रहेगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसकी दूसरी पल्लिम चार मुद्राश्च रहगी । तीसरी पल्लिम कुछ विशेषता है, सो बतलाते हैं । बाउवी और चौथी पल्लिम क्रमश तीन बापी और तीन मुद्राये बनावे ॥ ५२ ॥ बावकी पल्लिम इस मुद्राये बनाकर बाकी पूर्ववत् रचन । यह मेम तुमको अष्टोत्तरमद रामशिवमद बनलाया ॥ ५३ ॥ छोथी और तीसरी २०३ रेखाएं बीच । फिर पूर्वोक्त रान्तिके अनुसार मद्रमयात्मक रामशिवमदकी रचना करके उसीके समान समस्त शिगोकी स्थापना करे ॥ ५४ ॥ इनके मध्य पहली पल्लिम सक्द रंगका एक भद्र और सक्द रङ्गकी ही एक बापी बनावे । फिर पहलकी तरह बाह्य पल्लियोंके बाद परिधियां बनावे ॥ ५५ ॥ बाह्यकी तीसरी और सावो परिधियां बनाकर तीसरी पल्लिम पांच मुद्रा और दो शिव बनावे ॥ ५६ ॥ चौथी पल्लिम चार मुद्रा और तीन शंकर बनावे । पांचवी पल्लिम पञ्च मुद्रा और चार शिवकी रचना करे ॥ ५७ ॥



कृष्णवर्णभृङ्गनासु पद्मावाह विभीषणम् । वल्गुषु च जाम्बवन्तं मेघ सङ्केतुषु स्मरेत् ॥ ७८ ॥  
 द्विविधं परिधिष्वेव मुद्रायां राघवं स्थिता मुद्रायाः पश्चिमे वायु दक्षिणे दक्षः पुरः ॥ ७९ ॥  
 लक्ष्मणं जगत् कापि सङ्ग्रहं वापुनन्दनम् । एतत्पूजकपोर्मध्ये सेया पूर्वदिग्मेघ दि ॥ ८० ॥  
 मितापणेधिष्वत्रैव सुवर्णं वसिचिन्तयेत् । सर्वत्र पटमात्रेण चित्रयेन्मूर्तवासरत् ॥ ८१ ॥  
 वहिष्पिपरिधिष्वेव चित्रेणीं वसिचिन्तयेत् । अनुदिक्पलामिमुक्ता हरा कदाच वापिकाः ॥ ८२ ॥  
 कर्तव्या बान्धविमुक्ताः कार्यं वा एवममुक्ताः । अनुदिक्पलामिमुक्ता एवं मात्रेषु मेऽकचि ॥ ८३ ॥  
 वज्रत्रये वसिष्ठाया वरुणीयं सुनीश्वराः । पूर्वोक्तमद्रे देवाद् हि सपूज्यादौ ततः परम् ॥ ८४ ॥  
 क्षमारमेद्राघनस्य धेनुं पूर्वां सन्निभशम् । पदस्य कर्णिकायां च सुमीनं राघवं स्यसेत् ॥ ८५ ॥  
 बहवदलेष्वेव तस्यावरणदेवताः । पूजयेदिति सर्वत्र बुधस्तु परिकल्प्यते ॥ ८६ ॥  
 एते सङ्क्षोषमात्रस्य प्रकागन्धमुत्पद्ये । सर्वगोभद्रकमले चाम्परश्रीं चटं न्यसेत् ॥ ८७ ॥  
 जलपूर्णं च तस्यास्य केतकीपत्रपुरिने । ताम्रपात्रं चित्रनं च न्यस्य तद्गुणपूजिम् ॥ ८८ ॥  
 सत्रं वसु सावर्णं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । सैनी दाहमयो लोही लेखा लेखा च मृकरी ॥ ८९ ॥  
 मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । सर्वेषु रामचन्द्रेषु मुद्रापूर्वो न्यूनमः ॥ ९० ॥  
 वज्रकचं द्विषो श्रेयो भद्राया राघवापदः । श्रीरामलिंगगोभद्रमत एवोच्यते पुनः ॥ ९१ ॥  
 एवं मानावधा मेदा बहवः संनि वा द्विज । श्रीमदाम्भोयद्राणां देवां संस्था न विद्यते ॥ ९२ ॥  
 यथा मेदाः कियतोऽत्र तथा च विनिवेदिताः । नर्तुं दद्यात् प्रकर्तव्याः पत्रमार्थं समावृतेः ॥ ९३ ॥  
 हेमन्तमयं चैवं कार्यमत्यजमुत्तमम् । राघवार्थं महन्क्षेत्रं शीघ्रेनानुभवं तु वा ॥ ९४ ॥

द्यवाभोका आवाहन करे । इसके बाद बाहरके लिगाय घटका, वायिपक्षे नलका, मद्रोमे मुपायका, तिरछे  
 मद्रोमे पीका ॥ ७३ ॥ ७५ ॥ और पीले गङ्गकी भृङ्गनासोमे मकरका आवाहन करे । ऊपरि मद्रकय पीले  
 भृङ्गनासका अमान हो तो तिरछे मद्रमे मकरका आवाहन करे ॥ ७७ ॥ कृष्णवर्णकी भृङ्गनासोमे विभीषणका,  
 बाल्मिकीय चाम्बरानुका और सङ्केतुको मेघन्दस्य आवाहन करे ॥ ७८ ॥ परिधिके भीतरवाली मुद्राके  
 सीठके साथ-साथ रामका आवाहन करे । मुद्राके पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तथा पूर्वकी ओर जम्बवन्त भृङ्गनास  
 भरत, सङ्ग्रह और हनुमान्जका आवाहन करे । वहाँ पूर्व-पूर्वक दोनोंके लिए पूर्वदिशा उत्तम मानी  
 गयी है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ सफेद रङ्गकी परिधिगोप सुरेणका तथा बाकी सब स्थानोंमें लारे बान्धवोंका आवाहन  
 करना चाहिए । बाहरकी ताला परिधिमें विभीषणीका आवाहन करे । हर, घट और वापिकाओंकी चारों  
 दिक्पालोंके अविमुख कर दे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ यह विद्या बननवासे काचार्यने मुझे बतलाया है कि  
 अष्टक मद्रमे हर, घट तथा वापिकाओंकी जाने सम्मुख कर वा पदके आकारका बना दे इसका  
 दिक्पालोंके अविमुख कर देना चाहिए ॥ ८३ ॥ पुनिगण ऐसा कहते हैं कि इन तीनों पक्षोंमें सर्वश्रेष्ठ  
 पक्ष यह है कि पूर्वोक्त मद्रमे देवता कर्णिककी पूजा करके रामचन्द्रोंका विस्तृत पूजन प्रारम्भ करे ।  
 पदकी कर्णिकायें होतके सहित राघवचन्द्रोंका स्थापन करे । आठ दलमें कमलमें उनके अविरण-  
 देवताओंका पूजन करना चाहिए । पण्डितोंका कथन है कि यह नियम सर्वत्रके लिए है ॥ ८४-८६ ॥  
 यदि कमलमें कोई सङ्क्षोष देखे तो उसका लिए प्रकारान्तर बतलाते हैं । सबत-मद्रके कमलमें आभ्यकी  
 वासिष्ठ चट स्थापन करे ॥ ८७ ॥ केतकीके पक्षमें परे हुए केतके मुँहपर काशलो मरा एक नकासा तामेका  
 बर्तन रखे । उसके सम्मुख आचरणदलका साथ भीरामचन्द्रोंकी पूजा करे । हरणक मद्रमे परशुराम,  
 कर्कसी, लोहेकी, बूटे-बूँटकी, बालूकी, रङ्गसे रङ्गका बनयी हुई मन्त्रे कतिपय बयवा अविमुख  
 इन आठ प्रकारोंमें जो रहे, उसकी प्रतिमा बनाकर श्रीरामका पूजन करना चाहिए ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥  
 शिवजी पञ्चक है और घट ऊपरि रामचन्द्रोंके पाण्ड है । इसोमिसे विद्वान् ज्ञान इसे श्रीरामलिंगगोपत्र  
 कहते हैं ॥ ९१ ॥ इति । इस तरह श्रीरामलिंगके बहुतसे भेद हैं । जिनको कोई संस्था ही नहीं  
 है ॥ ९२ ॥ यह भेद उनसे कुछ अलग मानाये हैं । लोगोको उचित है कि रामको पूजाने लिए बुद्धि

अथवा पट्टकल्प्य चैव कार्यं परामनम् अथवा लेखनेनैव सर्वमात्रे द्विजोत्तमैः ॥९६॥  
 भूर्जपत्रे विलिखितं विज्ञेयान्निद्रिदं मृणाम् वा वक्रोपरि लेख्यं वा कर्तव्यं चित्रान्ततुभिः ॥९७॥  
 विनामनेन या पूजा सा पूजा निष्फला भवेत् । रामभद्रामने पूजा सा पूजाऽतिफलप्रदा ॥९८॥  
 यद्यद्रामपरं कर्म तसञ्च द्विजपुंगवैः । रामामनन्वितं ताम् पुष्कलम् संपादयेत् ॥९९॥  
 रामभद्रामनेर्हानं यत्कर्म तस्य निष्कलम् । तस्मादेव क्रमेदेव कर्तव्यं रामपूजने ॥१००॥  
 अष्टोत्तमसहस्रं च रामलिंगात्मकं हि यत् । आननं तद्विष्णुं हि गद्यव्याप्तिलोपदम् ॥१०१॥  
 तदधो रामतोमद्रमष्टोत्तमसहस्रकम् । तदधो रामलिंगात्म्यमष्टोत्तरशतात्मकम् ॥१०२॥  
 तदधो रामतोमद्रमष्टोत्तरशतात्मकम् । तदधः पञ्चविंशच्छ्रारामभद्रामनं शुभम् ॥१०३॥  
 तदधो रामतोमद्रं षोडशात्मकमीशितम् । त्रयोदशात्मकं रामतोमद्रं तदधः स्मृतम् ॥१०४॥  
 द्वादशं च नवार्थं च सप्तमुद्रात्मकं तथा । चतुर्मुद्रात्मकं वापि सर्वत्रयापरं ह्यधः ॥१०५॥  
 एवं क्रमेण ज्ञेयानि रामभद्रामनानि हि । अष्टोत्तमेषु वा पूजा नम्याः श्रेष्ठं फलं स्मृतम् ॥१०६॥  
 लघ्यामनेषु वा पूजा तादृशं नन्फलं स्मृतम् । एवं ज्ञान्वा फलं बुद्ध्या श्रेष्ठमेषासनं धनैः ॥१०७॥  
 यन्नेनैव प्रकर्तव्यं रामोपामनं मानवैः । प्रतिवत् नवान्न च कार्यमामनमादरात् ॥१०८॥  
 एकस्मिन्धासने पूजा न वर्षादुच्यतेः शुभा । एवं शिष्टशान्तानां च भेदाः पृष्टास्त्वया पुरा ॥१०९॥  
 तत्राग्रे हि मयाख्याताः श्रीरामस्यातिशोभदाः । स्वगुणरामतोमद्रवर्णनस्य प्रसङ्गतः ॥११०॥  
 स्मरन्निना रामचन्द्रस्य किञ्चिच्छीला मयाऽयं हि । कदाच्यपि तत्राग्रं तो न्य शृणुस्व द्विजोत्तम ॥१११॥  
 प्रत्यब्दं श्रावणे मासे गुरुराक्यश्रुतममः । शन्वारिंशद्भूमिमुवर्गस्य पृथक् पृथक् ॥११२॥

लगाकर सदासि उनको रचना करे ॥ ९३ ॥ उत्तमका चाहिए कि मुद्राके ताराका एक सुन्दर आसन  
 रामचन्द्रजीके लिए बनवावे । यदि सुवर्णके तारका न हो सके तो चाँदिका तारका हा बनवा ले । वह भी  
 न बन पड़े तो रेशमके सूतका अच्छा सा आसन बसवावे । यदि इनमेंसे कोई भी न बनवा सके तो किसी  
 पत्तपर आसन लिखवा ले ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ भूर्जपत्रपर लिख हुआ आसन विशेष निद्रिदायक होता है ।  
 इसके अतिरिक्त कपड़ेपर लिखवा ले या रङ्गीन मृत्से बनावा ले ॥ ९६ ॥ चिना आसनके जो गुण की  
 जाती है, वह धर्म होती है और रामभद्रासनके ऊपर जो पूजाकी जाती है, वह अतिशय फलदायिनी  
 हुवा करती है ॥ ९७ ॥ द्विजश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको चाहिए कि धारामचन्द्रक प्रायश्चित्तोंका कार्य करना हो, वह  
 रामको मानने कर्मके उनके आगे हो करे ॥ ९८ ॥ रामभद्रासनसे रचित जो काम होता है, वह निष्कल होता  
 है । इससे रामके पूजनमें आसनकी रचना अवश्य कर ॥ ९९ ॥ जो अष्टोत्तरसहस्र रामलिंगात्मक भद्र है,  
 वह रामचन्द्रजीकी अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ १०० ॥ उससे कुछ मध्यम अष्टोत्तर  
 सहस्र रामतोमद्र है । उससे भी मध्यम अष्टोत्तरशत रामलिंगात्मक भद्र है ॥ १०१ ॥ उससे मध्यम  
 अष्टोत्तरसहस्र रामतोमद्र तथा उससे मध्यम पञ्चविंशत् श्रीरामभद्रासन है । १०२ ॥ उससे मध्यम षोडशात्मक  
 रामतोमद्र है । उससे मध्यम त्रयोदशात्मक रामतोमद्र है ॥ १०३ ॥ उससे भी न्यून क्रमका द्वादश रमक,  
 नवार्थक, सप्तमुद्रात्मक, चतुर्मुद्रात्मक भद्र है ॥ १०४ ॥ इस क्रमसे रामचन्द्रके आसनोंको जानना चाहिए ।  
 जितने ही श्रेष्ठ आसनपर पूजा की जाती है, वह उतनी ही अधिक फलवती हुवा करती है ॥ १०५ ॥ जितने  
 ही साधारण आसनपर पूजा की जाती है उतना ही साधारण फल भी प्राप्त होना है । ऐसा समझकर रामको  
 उपासना करनेवालोंको चाहिए कि बुद्धि लगाकर और धीरे धीरे श्रेष्ठ आसनकी ही रचना करे और श्रद्धापूर्व  
 पूजनके समय नयी-नयी किम्बदन्तियाँ आसन बनाया करे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ एक किस्मके आसनपर  
 एक वर्षसे अधिक समयतक पूजन करना अच्छा नहीं होता । हे शिष्य ! तुमने पहले हमसे आसनोंका  
 भेद पूछा था । तो रामका प्रसन्न करनेवाले उन भेदोंको मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया है, तुम्हारे  
 पूछे हुए रामतोमद्रके प्रसङ्गवश मुझे रामचन्द्रजीकी एक छीला बात भी गयी है । हे द्विजोत्तम ! उसे मैं

मत्स्यं लक्ष्मिगानि कृत्वा पत्न्या वृत्तोऽर्चयेत् । अष्टोत्तरसहस्रैश्च लिङ्गैर्बद्धद्रुममम् ॥११२॥  
 तच्छ्रमोत्तमं तेषां महामोनिचिचर्जनम् । तन्मध्यगतकमले चैकं लिङ्गं निवेशय च ॥११३॥  
 षोडशैरुपचारैस्तत्संपूज्य स रघुनमः । हेममुद्रां दक्षिणार्धं दत्त्वा मपूज्य भूमिम् ॥११४॥  
 तस्मै लिङ्गं मासनं तददा प्रत्येकमादरात् । एवं स कोटिलिङ्गं नि त्रयस्त्रिंशद्दिनेददी ॥११५॥  
 एव सर्वं भावणे हि शक्तिर्षोऽकरोद्विभुः । दिव्यैरामर्गैर्वस्त्रैर्द्विजा रामाविर्तवधुः ॥११६॥  
 हेमतनुममुद्भूतान्पक्रोदामनानि सः । उद्यापनं च हवनं चकार रघुनन्दनः ॥११७॥  
 विष्णुदास उवाच

अष्टोत्तरसहस्रैर्वलिङ्गैर्विभोमदधीरितम् । कथं कार्यं तस्य मेशा निस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥११८॥  
 हेमतनुममुद्भूतमक्रोदामनं विभुः । स हेमान्यपि लिङ्गानि आकरोष वगापि हि ॥११९॥  
 दिव्यैरामर्गैर्वस्त्रैरकरोत्स द्विजर्चनम् असक्तौ तद्वत् मिदृशैर्कथं तद्वक्तुमर्हसि ॥१२०॥  
 श्रीरामदास उवाच

शुक्लौ च पट्टकूलम्प्य कनकप्याथवा नरैः । कार्यं तदथवा वस्त्रं तनुमिथ प्रकाशयेत् ॥१२१॥  
 लेख्यं वस्त्रेऽथवा रत्नैर्लेख्यं पद्मादिवस्थले । अशुक्लौ रत्नान्येव लिङ्गानि ताम्रजानि च ॥१२२॥  
 किंवा पारदभूतानि स्फाटिकान्योपलानि वा । दारुजानि च दर्पणं गोमयेन मृदाऽपि वा ॥१२३॥  
 कृत्वा लिङ्गानि पूज्यानि स्वशक्त्या पूजयेद्द्विजान् । इदानीं लिङ्गतोमदध्वनीं ते वदाम्यहम् ॥१२४॥  
 त्रिर्भुजं रक्तरेखां च शनेऽष्टदश स्मृताः । तासां पदानामेकेन पूर्णमष्टका भवेद्विह ॥१२५॥  
 रीताः परिधयः कार्याः पट्पदान्तेऽत्र सर्वतः । युगंदुममिनास्तेषु लिङ्गादि रचयेद्विधा ॥१२६॥  
 चतुष्काणेषु शक्तिनस्त्रिपदैः परिकल्पयेत् । तदत्र भृङ्गस्त एव च पादः कार्या च सर्वतः ॥१२७॥

तुम्हारे जाने कतु रह्य है, मुझे ॥१०८॥१०९॥११०॥ गुण मन्त्रिने आशानुसार रामचन्द्रजी प्रत्येक आयनमास-  
 में श्रीरामचन्द्र एक सुवर्णसे प्रतिदिन एक-एक लाख शिवलिंग बनाकर अरुना स्त्रोकें साथ उनका पूजन करते थे ।  
 अष्टोत्तरसहस्रात्मक जो मठ है वह उत्तम माना जाता है । अष्टोर्ध्वाशिरसोक्त प्रीतिवर्द्धक मानन है ।  
 उसके मध्य विद्यमान कमलमें एक लिंग बनकर ये उसका पादपचारस पूजन करने और दक्षिणाके निमित्त  
 ब्राह्मणोंका सुवर्णमयी मुद्राका दान दिया करने थे । वह लिंग तथा आपन भी उन्ही ब्राह्मणोंको मिया करता  
 था । इस तरह श्रीरामचन्द्रजी दैनिक दिनोम एक करोड़ शिवलिंग बनाकर दान दिया करते थे ॥१११-११५॥  
 ये सर्वशायक भगवान् प्रतिगर्भ भावणसारमें इस व्रतका पालन करते थे । उन्ही समय विविध प्रकारके  
 दिव्य आभरण वा-वाकर रामराज्यके ब्राह्मण सुशोभित होत थे । ॥११६॥ उस समय रामचन्द्रजीने सुवर्ण-  
 तन्तुका ही आसन बनवाया और उद्यापन तथा हवन कराया ॥११७॥ विष्णुदासने कहा —अभी आपने जो  
 दो अष्टोत्तरसहस्र लिंगतोमदध्वनी बनाया है, उसके पेर किस प्रकार करने चाहिये सो बिलासगर्वक आप हुये  
 बगलामें ॥११८॥ मैंने आता कि रामचन्द्रजी सुवर्णतन्तुका आपन और सुवर्णके लिंग बनवाने थे । दिव्य  
 कम्पा और आभूषणामें ब्राह्मणोंका पूजा करते थे । लेकिन इसमें उतनी सामर्थ्य नहीं है, उसका मत किस प्रकार  
 सिद्ध हो, यह जो हमें बतलाये ॥११९॥ १२०॥ श्रीरामदासने कहा कि यदि न सामर्थ्य हो तो रेशमके या  
 कम्बलके धूँसे अथवा साधारण कपड़पर आपनकी सुवाई करा न ॥१२१॥ अथवा पत्र आदिपर रङ्गसे  
 लिखा स । यदि सुवर्णमय लिंग बनवानेकी शक्ति न हो तो चर्दो, लोहा, पारा स्फटिकपाँच, लकड़ी, चन्दन,  
 मोहर अथवा मिट्टीका लिंग बनाकर पूजन करे । जिसकी अपनी सामर्थ्य हो, उसने ही ब्राह्मणोंका पूजन  
 करे । जब मैं गुप्त लिंगतोमदध्वनी रचनाका प्रकार बतला रहा है ॥१२२-१२४॥ बेंडा और लडा २१८ रेखाएँ  
 लाल रङ्गसे जोई इस प्रकार रेखा खींचनेसे पूर्ण २१८ कोशक बन जायें ॥१२५॥ इस मठमें छ छ पाद-  
 कानी कीमे रङ्गकी परिधिवाँ बनेगी । उनमें अपनी बुद्धिमें षोडश लिंग आदि बनाये ॥१२६॥ उसके चारों  
 ओरोंमें तीन-तीन पादके बनाया बनावे । उसके आगे चारों तरफ पाँच पादकी भुंखलमें अथवा बाँधी

एकादशपदा नव्वी चारी त्रिदशपादिका । अष्टादशपदेः स्रग्भुः सर्वत्रैव स्त्रितेष्कमाय ॥१२८॥  
 तत्र प्रथमपरिधेरर्थाक् लिङ्गानि योजयेत् । त्रिरेकादशमंरूपानि वाप्यस्त्रेवाधिकान्ततः ॥१२९॥  
 मट्टेऽर्काकपदेः कार्या द्वितीये लिङ्गसंदतिः । एकत्रिंशन्मिता कर्पा भट्टे नवनवात्मके ॥१३०॥  
 तृतीये नवनवेशयस्या भट्टे तु षट् पदे । तुर्वे षड्विंशल्लिङ्गानि भट्टेऽर्काकपदे मते ॥१३१॥  
 पञ्चमे तुर्यनेत्रया भट्टे नवनवात्मके । षष्ठे द्वादशल्लिङ्गानि भट्टे षट् षट् पदे स्मृते ॥१३२॥  
 सप्तमे लिङ्गविनतिरेकीनविंशन्संख्यकाः । भट्टेऽर्काकपदे ज्ञेयेऽष्टवे सप्तदशेशराः ॥१३३॥  
 भट्टे नवनवपदे नवमे मनुशकगः । भट्टे शसिकलात्मरूपे दशमेऽर्कमिताः शिवाः ॥१३४॥  
 भट्टेऽर्काकपदे ज्ञेये तथा त्वेकादशे दश । शिवा नव नवपदे भट्टे ज्ञेये मनोरमे ॥१३५॥  
 द्वादशे सप्त लिङ्गानि भट्टे चन्द्रकलात्मके । त्रयोदशे पञ्च दश भट्टेऽर्काकपदे मते ॥१३६॥  
 चतुर्दशे त्रिंशल्लिङ्गानि भट्टे नवनवात्मके । चरमे ततस्तु रचयेत्सर्वतोमद्रूपतमम् ॥१३७॥  
 विडद्विपदः कोणे शृङ्खला षट्पदान्मिका । त्रयोदशपदा वल्ली चारी तन्वमितिर्मिता ॥१३८॥  
 भट्टे षोडश षोडशपदेऽन्तः परिधिर्भवेत् । तदन्तरे पञ्च पञ्च पदेः पञ्च समुद्रात् ॥१३९॥  
 विचित्र चित्रवर्णं च स्वेनेन्दुः शृङ्खलाऽसिता । चारी शुक्लाऽमिताः शूनू रक्त भट्टे प्रकल्पयेत् ॥१४०॥  
 नीला वल्लीश्चरम्बककोष्ठाश्रिता यथारुचि । यत्र यत्र पदानीद शेषभूतानि सानि तु ॥१४१॥  
 यथायोग्यं धिया तत्र शृङ्खलार्थे नियोजयेत् । शुक्लरक्तकृष्णवर्णा ह्येते परिधयस्तथा ॥१४२॥  
 वा पूर्वोक्तपरिधिं दत्त्वा देवास्तयन्ततः । एतेषां परिधौनां चैव दान्यष्टाधिकानि हि ॥१४३॥  
 नोक्तानि पूर्वमग्न्याया ज्ञान्वेत्थ वृद्धिमाचरेत् । अष्टोऽष्टेव हि षोडशेव परिधौनां चतुष्टये ॥१४४॥  
 एतदष्टोत्तरदशसर्वं भट्टं लिङ्गोद्भवं स्मृतम् । एकस्त्वयं प्रकारो हि प्रकारगतमुच्यते ॥१४५॥

॥ १२८ ॥ गारुह पादकी वल्ली और तैरह पादकी चारी बनायी जायगी । अष्टारह पादके शंभु बनाये जायेंगे । इसी समय लिख ॥ १२९ ॥ उममें पहली परिधिके पहलें लियोंकी योजना करे । इसके अनन्तर चौथीस बापियाँ बनावे ॥ १२९ ॥ सप्तपञ्चात् भट्टमें बारह बारह पादक ३१ लिङ्ग बनावे । फिर तात्तरी पक्षिम नीली पादके २९ भट्ट बनावे । फिर छः पादके दो भट्टोंकी रचना करे । चौथी पक्षिम बारह-बारह पादके २६ लिङ्ग बनावे ॥ १३० ॥ १३१ ॥ चौथी पक्षिम नीली पादके २४ लिङ्ग बनावे । छठी पक्षिम छ-छ पादके भट्टोंमें १२ लिङ्गोंकी रचना करे ॥ १३२ ॥ सातवी पक्षिम बारह पादवाली १९ लिङ्गोंकी योजना बनावे । आठवी पक्षिम नीली पादके भट्टोंमें १७ लिङ्ग बनावे । नवी पादके सोलह सोलह पादात्मक भट्टोंमें १८ शब्द बनावे । दसवी पक्षिम बारह-बारह पादके भट्टोंमें बारह लिङ्ग बनावे ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ गारुहकी पक्षिम नीली पादात्मक भट्टोंमें दस लिङ्गोंकी रचना करे । १३५ ॥ बारहकी पक्षिम सोलह मानह पादात्मक भट्टोंमें सात लिङ्गोंकी रचना करे । तैरहकी पक्षिम बारह-बारह पादात्मक भट्टोंमें दस लिङ्ग बनावे ॥ १३६ ॥ षोडहकी पक्षिम नीली पादात्मक भट्टोंमें तीन लिङ्गोंकी रचना करे । अन्तमें उममें सर्वतोभट्ट बनावे ॥ १३७ ॥ कोणभागमें तीन पादका एक संडेन्दु और छ पादकी शृङ्खला बनावे । तैरह पादकी वल्ली और पञ्चास बाप्यकी चारी बनावे । १३८ ॥ भट्टमें सालह-सालह पादका परिधि बनावे । इसके बाद पाँच पाँच पादका कमल बनावे ॥ १३९ ॥ उस कमलका रङ्ग विचित्र-विचित्र रहगा । दस स्वेतवर्ण और शृङ्खला कासे वर्णोंकी रचना । बायी छकेव, शिव गुरु, लाल भट्ट, नील वल्ली रहेंगी और वल्ली तथा शिवके स्कन्धवाले कोष्ठक अरने इत्यादिनुसार विचित्र-विचित्र वर्णक बनावे । इसमें सी सी पाद शेष बचें, वे बचन इत्यादिनुसार रङ्गसे रङ्गें बाकर शृङ्खलानिर्माणके काममें आ जायेंगे । अन्तकी तीन परिधियाँ सफेद लाल और काले वर्णोंकी रचना । १४० १४१ ॥ मयवा पहली परिधि पीले रङ्गकी बनाकर तीन परिधियाँ और बनावे । इन सब परिधियोंमें आठ पाद अधिक रहा करे ॥ १४३ ॥ किन्तु द बाद पूर्वस्थानकी गणना करके समझ नहीं गिना है । ऐसा समझकर वृद्धि करे । इसके आगे चारों परिधियोंमें भी यही क्रम रहेगा ॥ १४४ ॥ यही अष्टोत्तरदश रामतोभट्टका मय है । यह एक प्रकार हुआ । अब दूसरा प्रकार





मृङ्गला कुष्णवर्णा च पदेः पञ्चभिर्नृणा तस्याः पाशद्वये कार्ये बन्धयो हरिचरणके । १६४ ॥  
 पृथगेकादशपदैस्ततः धीने तु मृगले षड्भिः पदैरुभयतो मद्रं षोडशपादजम् ॥ १६५ ॥  
 आरक्तं च शिवा वाप्यो दद्याद्विष्णुपादजाः कृष्णान्वष्टादशपदैर्नैव लिङ्गानि कारयेत् ॥ १६६ ॥  
 मस्तकोपरि मद्रस्य लोहने मृङ्गलं शुभे द्वाभ्यां पराभ्या च पृथक् मध्ये हरिचर्मजला ॥ १६७ ॥  
 रचिता त्रिपदा रम्या वापीना मस्तकोपरि आरक्ते द्वे पदे कार्ये चैक हरिचर्मजला ॥ १६८ ॥  
 उभयोः पादयोर्लिङ्गमस्तकस्य निवे पदे . एव सर्वत्र वेद्वयं परिधिः पौनवणकः ॥ १६९ ॥  
 समाशीतपदैश्चैव समादा प्रथमा तानः । प्रोच्यतेऽथ द्वितीया तु पक्तिस्त्रिपदप्रथमा ॥ १७० ॥  
 शशी च मृङ्गलावल्लरी मृगले द्वेऽथ पूर्वपद । मद्रं त्रिपदैर्द्वयं नव वाप्यस्त्रयोदशः ॥ १७१ ॥  
 पदैरष्टात्र लिङ्गानि भद्रयोर्मस्तकेऽपि । द्वाभ्यां कार्ये मृगलेऽत्र लोहिते ह्युत्तरे तयोः ॥ १७२ ॥  
 द्विपदा मृङ्गला र्धोना इति त्रिपदा स्मृता । आरक्तं च दद कार्ये वापीना मस्तकोपरि ॥ १७३ ॥  
 पूर्ववत्सकलं स्रष्टुमेकपट्टिपदैः शुभः । परिधिः पौनवणश्च ज्ञाता पक्तिर्द्वितीयका ॥ १७४ ॥  
 उत्तरेकैव पदा पट्टिपदैः पक्तिश्चतुर्थिका भद्र पट्टिभिः पदैः प्रोक्तं समलिङ्गानि कारयेत् ॥ १७५ ॥  
 वसु वाप्यः स्मृताः शेष पूर्ववच्च प्रकीर्तितम् । समन्तवारिचमृदैः परिधिश्च प्रकीर्तितः ॥ १७६ ॥  
 जाता तृतीया पक्तिर्द्विचतुर्थ्या निगद्यते . पञ्चमन्वारिचमृदैर्यं पक्तिमष्टादशा ॥ १७७ ॥  
 भद्रमकपदैर्द्वयं पञ्च वाप्योऽत्र कीर्तिताः । तुर्यलिङ्गानि कार्याणि भद्ररत्न मस्तकोपरि ॥ १७८ ॥  
 आरक्ता षट्पदा वष्टो पारिधास्रत्रिभिः पदैः । जाता चतुर्थपक्तिरि पञ्चमैर्कात्रभिः पदैः ॥ १७९ ॥  
 मद्रं नवपदं शेषं त्रिवाप्यो द्वौ हरी स्मृता । त्रिपदा मृगला स्वभा मद्रस्यापरि कीर्तना ॥ १८० ॥  
 एकोनविंशतिपदैः परिधिः समकीर्तितः । ज्ञेयश्च पञ्चमा पक्तिश्चतुर्थश्च मद्रद्वयैः पदैः ॥ १८१ ॥

तीन पादका मस्तक पर त्रिपदा बनावे । तीन पादका पाद रंगका मृगल मृगला बनावे । उत्तक दागो वगल हरे रंगसे मृगल पादकी वगल बनावे । इसका व १७ पादसे पीले रंगका मृगला बनावे और सान्द्र पादसे दोनों ओर मद्र बनावे, जिसका रंग लाल रंगका ॥ १६३-१६५ ॥ मस्तकपर अष्टादश पादसे स्रष्टु व विव बनावे । अष्टादश पादसे काले रंगका भी लिङ्गको रचना कर । पञ्च मस्तकपर लाल रंगकी दो मृगलादे बनावे । दो पादसे मलग और बीच बीचसे हरे रंगका मृगला बनावे ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ जिससे मृगल तीन पाद रंग । बांधके मस्तकपर लाल रंगका दो पादोका मृगला हरे रंगकी बनावे । बास-वास तथा शिवाके मस्तकपर स्रष्टु रंगसे दो पादका मृगला बनावे । इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिये । इसकी परिधिर्वा रित वर्णका रहेगी । इस तरह सत्तली पादोकी पहली पक्ति समाप्त हुई । अब तिहत्तर पादोवाली दूसरी पक्ति के विषयमें कहते हैं ॥ १६८-१७० ॥ इसमें चतुर्मा, मृगला तथा वगलयां ये पूर्व पादका समाप्त रंग । बास पादका मद्र और स्रष्टु पादकी भी व विवे बनावे । स्रष्टु हा पादोसे मद्रक मस्तकपर आठ लिङ्ग बनावे जावेगा । इसी मृगल दो पादोसे लाल रंगकी दो मृगला बनावे । दो पादसे पादो मृगला और तीन पादकी हरी मृगला बनावे । बांधके मस्तकपर कुछ मात्र पाद रंगका ॥ १७१-१७३ ॥ बांधके सब चीज पहली पक्ति के समाप्त ६१ पादोसे बनेगी । दूसरी पक्ति की परिधि पीले रंगकी रहेगी । यह दूसरी पक्ति समाप्त हो गयी ॥ १७४ ॥ उनसठ पादकी तीसरी पक्ति रहेगी । छ-छ पादोसे एक मद्र, स्रष्टु लिङ्ग और आठ वापिव बनावे । ताकी सब पहली पक्ति का स्रष्टु रहेगा । इसमें सत्तलिस पादोका परिधि बनायी जायगी ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ इस प्रकार तीसरी पक्ति समाप्त हुई । अब चौथा पक्ति के विषयमें बतलाते हैं । यह चौथी पक्ति सत्तलिस पादोका रहेगी । १७७ ॥ इसमें चारह पादका एक मद्र बनावे । पाँच वापिव बनावे । मद्रके मस्तकपर चार लिङ्ग बनेंगे ॥ १७८ ॥ छ पादोसे विष्णुल लाल रंगका वगला बनावे । तीन तीन पादोकी परिधि बनावे । इस तरह चौथी पक्ति समाप्त हुई । पाँचवी पक्ति कुल इकतीस पादोका रहेगी ॥ १७९ ॥ इसमें भी पादका मद्र होगा, तीन वापिव बनेगी और दो शिवाके रचना की जायगी । मद्रक मस्तकपर लाल रंगकी तीन पादवाली

चतुष्कोणं समं तत्र सर्वतोभद्रमालिखेत् । तस्यपि कम एवायं त्रिपदश्च शशी मितः ॥१८१॥  
 कृष्णः पञ्चपदैः कार्पाः मृगलाः सर्वतः शुभाः । पर्दंष्टादशैल्लिगं पश्चिमे तस्य पार्श्वयोः ॥१८२॥  
 त्रयोदशपदैर्गोप्यो भद्रं तुर्यपदान्मके । पाम्यप्रानुत्तरेष्वेव मध्ये लिख्य च वापिकाः ॥१८३॥  
 भद्रं नवपदैः कार्पा वल्लये दशपदान्मिकाः । वल्लयोः म्याजे पश्चिमेऽथ क्षायन्ने हस्तिने वदे ॥१८४॥  
 मध्येऽथ धुनिता बह्वे भद्रं यच्च नवाभकम् । नभ्योऽपि पञ्चम्यां हि रक्तः पञ्चमृगलाः ॥१८५॥  
 शार्पणां मस्तके कार्ये द्वादशं च पार्श्वयोः । मिते द्वे द्वे पदैः कार्ये पश्चिमेः पञ्चशदत्रः ॥१८६॥  
 रक्तमष्टदलं मध्ये कार्ये तत्र द्वाभकम् । कविका पीतवर्णा च शल्याः पश्चिमेः क्रमात् ॥१८७॥  
 पीतशुक्लरक्तकृष्णैः सैकविंशत्यभकम् । कार्येन लिगनोभद्रं सर्वेषां कुक्ष्योऽभकम् ॥१८८॥  
 प्रकाशान्तरमन्यच्च मृगं शिष्यं ब्रवीमि ते । त्रिपदं पदैः तत्र रेखाकवधिकाः चतस्रः पदाः ॥१८९॥  
 शनं द्वाभकं कृष्णं रचयेद्विगपकदः । नदाष्टमचचारि द्वे पदमन्यथाश्रुतिदिशम् ॥१९०॥  
 लिगमन्यथाभिका शर्पा प्रतेवन्ति भवेद्विदः । पदं तु रचियन्मन्त्रं पदद्वये तु वापिकाः ॥१९१॥  
 कोपस्विदुः मृगला च वल्ली च रचयेन्क्रमात् । त्रिपदेऽष्टादशपदैः लिगं अष्टमिन त्रिपदं ॥१९२॥  
 शार्पी भद्राणि कमथः पदत्रिंशद्विंशत्यभकम् । विश्वपदत्रिंशं ज्ञेयं चतस्रपकं च पार्श्वके ॥१९३॥  
 एकस्मिन् रचयेद्विंशद्वयं भद्रे म्याभकं । तस्योऽपि भवन्मन्त्रे भद्रं तत्र वापिका ॥१९४॥  
 चतुर्विंशपदं भद्रमकमन्यथा ततः पदम् । पश्चिपन्ने तुर्यपदैः पञ्च मनुद्वये ॥१९५॥  
 चित्रं वा लोहितं लिगनृन्त्रके कृष्णवर्णके । इतिता बह्वे भद्रं रक्तं मृदेऽब्जत्रयाधिके ॥१९६॥  
 एकविंशत्यभकं लिगनोभद्रमभिरितम् । प्रकाशान्तरमन्यच्च मृगं शिष्यं ब्रवीमि ते ॥१९७॥

शुद्धता बनायी जायगी ॥ १८० ॥ उत्तम पदोको वर्णयि बनाये जायगा । इस तरह यह पांचवी पंक्ति समाप्त हुई । बागे छोटी पंक्ति ५५ सप्तह पदोकी रहेगी ॥ १८१ ॥ इसके आगे बालास सर्वतोभद्रकी रचना करे । उसका कम इस प्रकार है । इसमें तीन पदसे सप्त पदका चतुसा बनेगा ॥ १८२ ॥ पाँच पदोंसे कार्पा और काले रङ्गकी शुद्धता बनावे । अष्टपद पादका लिग बनाकर उसके दाने बगल देख पादकी दो पार्श्वों बनाये । दक्षिण, पूर्व तथा उत्तर दिशाप्रारंभ मध्यम तत्र जागिरे बराब ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ नौ पादोंसे भद्र बनाकर दस पादोंकी रचियगी बनावे । पार्श्वमवाकं पीत वर्णियगी हर पदकी रचना ॥ १८५ ॥ इस पंक्ति के बीचकी बाकी पूरा जायगी और नौ पादवाने भद्रके चतस्र माल रङ्गकी शुद्धता रहगी ॥ १८६ ॥ शार्पी के मस्तकपर काल रङ्गका पद रहेगी और आसवासक दो पद सप्त हो रहग पाँच परिधिगी बनेगी ॥ १८७ ॥ बीचम माल और नौ पादका अपदल कमल बनगा । इसकी कविका दोली रहेगी बीच परिधिगी कमल पीली माल और काली रहगी ॥ १८८ ॥ यह मैने एकविंशतिशताभक लिगनोभद्रका कम स्तलापद । बालक ब्रितने भी भद्र बनानाये है, उम्में सर्वतोभद्र कुक्ष्यके माल रहगा ॥ १८९ ॥ हे शिष्य । अब मैं प्रकाशान्तर मतलब हूँ सुनो । काले और दूरी कुल १०३ रेखाये लोच ॥ १९० ॥ उम्मेंसे १०३ कोषर्ष लिगकी पंक्तिगी बनावे । इसके बागे और नी, माड, छ, चर, दा और एक मन्त्रके कोष्क लिगके लिये निर्धारित हुंगे । १९१ ॥ प्रत्येक पंक्तिम लिगमन्त्रकी आशा शरीकी मन्त्रा अधिक रहगी । छ पादोंकी परिधिगी रहेगी । उसके बाद बापा रहेगी ॥ १९२ ॥ कालोंमें इन्दु शुद्धता तथा बली बनायी जायगी । कमलः तीन, पाँच और ध्याह पादसे २४ लिग बनावे जायगे और अष्ट रह बापा बनेगी । फिर कमल छलीस, बीस, पन्नीस, सोस छलीस और भीम भद्र बनाने जायगे । अन्तिम पंक्ति के बगल एक स्थानपर छ छ पादके भी भद्र बनावे । उसके ऊपर सर्वतोभद्र रहेगा । बाकीस पादकी शार्पी बनेगी और नौ भद्र बनाने जायगे । पश्चिमके अनन्तर सल्लहसल्लह पादके पद बनाव ॥ १९३-१९६ ॥ उन कमलोका रंग विशदण बनावे लाल रहेगा । लिग और शुद्धताये काले रङ्गकी रहेगी । बल्लये हरे रङ्गकी भद्र नाम और कमल तथा शार्पी सप्त वर्णकी होगी ॥ १९७ ॥ यह मैने तुम्हे एकविंशत्यभक लिगनोभद्रकी रचनाका प्रकार बताया ।

बह्विकाराणां निरुद्धास्ति यौगुर्वे प्रकल्पयेत् । पञ्चाशीति पदानि स्युः पञ्चयस्त्र सर्वतः ॥२९९॥  
 तत्र पदं पदं पदानि म्याल्पमिधिः ॥३००॥ । मर्यादोक्तं विधिना चतुःपञ्चिधयः क्रमात् ॥२००॥  
 तेषु वै पञ्चकोट्युप लिङ्गाणि रचयेद्विधा । कोट्येषु त्रिषदचन्द्रमन्दादि शृङ्खला मता ॥२०१॥  
 ततो बह्वी ततो भद्राशी लिङ्गं क्रमं दृष्टेन । तत्र प्रथमपञ्चौ तु शृङ्खला पञ्चपादिका ॥२०२॥  
 एकपादपदा बह्वी भवत्यः पदपदात्मिका । भद्रमेकपदं चार्धं त्रिषट् कोट्यैः प्रकल्पयेत् ॥२०३॥  
 ईशानस्तन्मते कार्यं तत्र ते तद्व्यवस्थया । भवन्ति चाप्येव दशना भद्रद्वयममीषितम् ॥२०४॥  
 द्वितीयपञ्चौ चार्धौ तु त्रयोदशपदा मता । भद्रं तु पदद्वयपदं द्वेप पूर्वं मयीषितम् ॥२०५॥  
 अष्टौ लिङ्गाणि वाप्यस्तु मयीषितं नवममिताः । तुर्यायायां तुर्यपदं भद्रं द्वेप तु पूर्ववत् ॥२०६॥  
 अष्टौ वाप्यः सप्तहमः क्रमदा स्युः सप्तदशपदाः । द्वेप त्रयं चानि मे न्युनेतिभिः कोट्यैस्तु संस्पृते ॥२०७॥  
 चतुर्थपञ्चौ वाप्यस्तु पञ्चमः क्रमवत्पद । भद्रं द्विदशकं त्रयं चोप पूर्ववद्दृष्टेन ॥२०८॥  
 चतुर्थपञ्चिधुपरि चाणान्ते परिधिमेव तु त्रयोपञ्चौ शृङ्खले न्युते पदेनैकेन बह्वी ॥२०९॥  
 द्वाभ्यां पदाभ्यां चन्द्रस्तु यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । भद्रद्वयं पदद्वयपदं न्युन्यं भद्रं नवममके ॥२१०॥  
 त्रयोदशपदैर्वाशी तत्र तत्र प्रकल्पयेत् । भद्रयोस्तु त्रयोदशपदं पदद्वयपदं शुभम् ॥२११॥  
 समुष्टानि पदान्येव मृग्यकार्ये नियोजन । तस्योपरि परिधिस्मिन् चाणान्ते परिकल्पयेत् ॥२१२॥

उभयोस्तन्त्रे चार्धौ त्रयोदशपदात्मिका ॥२१३॥

भद्रद्वयं पदद्वयपदं द्वेप सर्वं यथोदितम् । अन्तिमेष्टः पञ्चपञ्चपदैः एव मसुदरेत् ॥२१४॥  
 रक्तं वा निम्बवर्णं च येनश्चन्द्रोदमितः मता । शृङ्खला हरिना बह्वी पीतं स-शृङ्खलाद्वयम् ॥२१५॥  
 रक्तं भद्रं मिना चार्धौ लिङ्गं कृत्वा प्रकल्पितम् । लिङ्गकथगताः कोट्याः शोभाकोट्याः प्रकल्पयेत् २१६॥

हे शिष्य अथ मे गृह्य प्रमाणान्तरं वचना रहस्यं गुणो ॥ १६८ ॥ सोधी और टेडी छिमासी-छिमासी रेखायें सोधी रेखा कागजपर इसमें च गी और पचास पचास पादकी एक-एक पंक्ति में बना होंगी ॥ १६९ ॥ उसमें छ-छ पादके बाद पांच रेखाका परिधि रहेगी । इस रेखाके वरान् बाहर परिधि में बनगी उसकी परितः तथा कोष्ठकमें सपत्नी बुद्धिके अनुसार लिङ्ग आदिका रचना कर प्रत्येक जाहानमें तीन-तीन पादका छ-छ वरान् और उसके आदिमें १) इत्यादी रचना कर ॥ २००, २०१ ॥ फिर उसके बाद बह्वी, फिर छ पादकी शृङ्खला, एक पादका भद्र और अष्टादश पादकी चार्ध का निर्माण कर ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ उनका हो सगलके निब बनावे । इस प्रकार दस वापिद और दो भद्र बनगें २०४ ॥ इस १ पंक्तिमें तेरह पादकी व गी बनावे, सोलह पादका भद्र बनगा । बाकी सब चीज पढ़ना पढ़कर समाप्त रहेगा ॥ २०५ ॥ तसरी पंक्तिमें आठ लिङ्ग, दो वापिद और चार पादका एक भद्र रहेगा । बाकी सब चीज पूरवत् रहेगा ॥ २०६ ॥ अष्ट वापि, शान शिव एवं मन्त्रमें तीन पादकी दो वापी बनेगी ॥ २०७ ॥ चौथी पंक्तिमें चार वापि, तीन शक, चारह भद्र बनेंगे । बाकी सब बह्वी पंक्तिमें समान रहेगा ॥ २०८ ॥ चौथी पंक्तिमें ऊपर पाँचवी पंक्तिमें बाह्य परिधि रहेगी । इस पंक्तिमें पूर्व पंक्तिमें बह्वी एक क्रम भवत्यः रहेगी और एक पादका बह्वी बनवा जायगी ॥ २०९ ॥ तदनन्तर पहलेकी तरह दो पादोंका चन्द्रमा बनावे । छ-छ पादका दो भद्र बनावे बाकी दो भद्र तीनी पदके रहेंगे ॥ २१० ॥ अपने अपने स्थानपर तरह-तरह पादकी बनावे । दोनों भद्र के ऊपर छ-छ पादके दो भद्र बनावे ॥ २११ ॥ शृङ्खलाके लिये बने पादोंका निवृत्त कर । उसके ऊपर पाँच पादका अनन्तर पंक्तिमें रचना करे ॥ २१२ ॥ छन दोनोंके बीच तेरह पादका एक वापी बनावे गायगी ॥ २१३ ॥ छ-छ पादके बाद दो भद्र बनावे । बाकी सब पूर्ववत् रक्व । अन्तिम पंक्तिमें पाँच-पाँच पादोंका क्रम बनावे । समका दर्श आल अथवा बहुरंग रहे । पन्द्रमा सफेद और शृङ्खला काल वर्णका रहेगी । इसे प्रकार बनावरी हों, उसकी दोनी शृङ्खलायें पीली, लाल भद्र, सफेद वापी और काला लिङ्ग रहेगा । लिङ्गके स्कायगले कोष्ठक में पाके लिये रहेंगे ॥ २१४-२१६ ॥

पदानि शेषभूतानि यत्र क च भवन्ति हि तानि तत्र यथायोग्यं धिया मम्यङ्गनियोजयेत् ॥ २१७ ॥  
 यद्वा तुर्यपरिध्वर्णवेकादशपदाख्यम् । परिधि स्यात्तयोर्मध्ये कोणे चन्द्रो यथोदितः ॥ २१८ ॥  
 पृथ्वी दशपादा स्याद्वृत्ती रयादेकविंशतिः । पृथ्वीत्याख्या रुद्रपदा भद्रं त्रिंशद्वदन्मकम् ॥ २१९ ॥  
 एकपष्टिपदवापी मम्यगुदया प्रकल्पयेत् । अथवा द्वे पदे चान्ये संयोज्य गिग्गिहस्तिषु ॥ २२० ॥  
 पदेषु रचयेद्गुदया लिङ्गानां पक्षयः क्रमान् । नवाष्टरमश्रीष्वेका शेषं पूर्वं यथोदितम् ॥ २२१ ॥  
 विशेषस्तत्र भद्रेषु षडङ्गिणे षोडशान्मकम् । एकलिंगे त्रिंशदं द्वाभ्यामन्यत्र चाधिकम् ॥ २२२ ॥  
 पूर्ववत्सर्वतोभद्रं पञ्चवणास्तु पूर्ववत् । पीनशुक्लरक्तकृष्ण बहिः परिधयः स्मृताः ॥ २२३ ॥  
 एतदष्टोत्तरशतं लिङ्गतोभद्रमीरितम् । प्रकाशान्तर्मन्त्राद्ये मृषु शिष्यं श्रवीमि यत् ॥ २२४ ॥  
 तिर्यग्ध्वं गता रेखा नवाष्टलोदितः स्मृताः । तन्कोष्ठेष्वन्धिनैर्वाग्निर्कोष्ठकं रचयेद्विधा ॥ २२५ ॥  
 सर्वतोभद्रकं रम्यं परितः परिधिर्मेतः । ततो रमरमाने स्युस्तुःपरिधयः शुभाः ॥ २२६ ॥  
 तत्र चतुर्षु पार्श्वेषु कोणेषु स्त्रिपदः स्मृतः । मृषला पञ्चभिर्वल्ली स्वेकादशपदा मता ॥ २२७ ॥  
 लिङ्गं चतुर्विंशदं वापी त्र्यष्टादशा भवेत् । नव मम तथा पञ्चगुणनेत्रमिताः शिवाः ॥ २२८ ॥  
 पञ्चपक्षय एव स्युर्वापिकैकाधिका ततः । तुर्यलिङ्गानि द्वे वाप्यां त्रयोदशपदान्मिके ॥ २२९ ॥  
 षडङ्काकरमरसभद्रमख्या क्रमाकृतेन । सर्वतोभद्रके वापी युगनेत्रमिता तथा ॥ २३० ॥  
 नवकोष्ठमिव भद्रं शेषं सर्वं तु पूर्ववत् । ततोऽन्तःपरिधिः कावेस्वत्र पञ्च समुदरेत् ॥ २३१ ॥  
 खंडोऽब्जः पृथ्वी कृष्णा नीला बह्वङ्गिकाऽरुणा । भद्रवापी मिता कृष्ण लिङ्ग परिधयोऽन्तिमाः २३२ ॥  
 पीनशुक्लरक्तकृष्णा ज्ञेयाः पीनाश्च मध्यमाः । एतदष्टोत्तरशतं लिङ्गतोभद्रमीरितम् ॥ २३३ ॥

इनमें जहाँ कोई बोधक बाकी नब जग, उसे अपनी हकनाम जिस रंगसे चाहें रंग दे ॥ २१७ ॥ अथवा चौबी परिधिके ऊपर आगहमें पादके आगे एक परिधि बनावे । उसके बीचवाले कोणमें उक्त प्रकारसे चन्द्रमा बनावे ॥ २१८ ॥ इसमें पृथ्वी आठपादा दस तथा दूसरी आगह पादकी बन्नी और भद्र तीस पादका रहेगा ॥ २१९ ॥ एकसठ पादकी वापी बनेगी । उन सबको अच्छी तरह मन लगाकर बनावे । अथवा और दो पादोकी योजना करके सातवें और दसवें पादमें अपनी कृष्टिसे लिङ्गोंका रचना करे । नौ, आठ, छः, तीन और एक यह उनकी संख्या रहेगी । बाकी सब पूर्ववत् रहेगा ॥ २२० ॥ २२१ ॥ इन षट्ठममें छः लिङ्गवाले भद्रमें एक सोलह पादका और दूसरा बीस पादका लिङ्ग रहेगा । दाहिने अधिक लिङ्गवाले भद्रमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना होगी । इसके बाहरको परिधिवाँ पीन, रक्त तथा कृष्ण वर्णका रहेगी ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ यह भीने तुम्हें अष्टोत्तरशत लिङ्गतोभद्रका प्रकार बतलाया । अब दूसरा प्रकार बतलाता हूँ मुनी ॥ २२४ ॥ लडा और बडा कुछ नवासी रेखाएँ भीव । उसके मानवाने चार, दो तीन कोणकोमें सुन्दर सर्वतोभद्र बनावे । उसका चारों ओर परिधि रखे । इसके अन्तर छः छः पादोंके बाद परिधियोंकी रचना करे ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ उसके चारों ओरके कोनोंमें सोलसीन पादका चन्द्रमा बनावे । पाँच पादसे आठपादा और आगह पादकी बल्ली बनावे ॥ २२७ ॥ चौबीस पादका लिङ्ग और आठपाद पादकी वापी बनानी होगी । इसमें नौ, सात, पाँच, चार, दो क्रमशः शिव बनाये जायेंगे ॥ २२८ ॥ इसमें कुल पाँच पत्थियाँ रहेगी और वापियोंकी संख्या एक-एक करके बढ़ाती जायगी । इसमें चार लिङ्ग और त्र्यष्टादश पादकी दो वापियाँ रहेगी । २२९ ॥ छः, नौ, बारह, छः, छः, इस क्रमसे भद्रकी संख्या रहेगी । सर्वतोभद्रम चार और दो वापी बनेगी ॥ २३० ॥ इनमें नौ कोष्ठका भद्र बनेगा । बाकी सब बाग पहलेके समान रहेगी । इस प्रकार भद्रकी रचना कर लेनेके बाद उसके भीतर परिधि बनाकर कमलकी रचना करे ॥ २३१ ॥ कमलका रंग सफेद रहेगा और उसकी शृङ्खला काली रहेगी । अन्तरियाँ नीली तथा भद्र लाल रहेगा । बायाँ रुफद लिङ्ग काला और मन्तिम परिधिवाँ नीला, रक्त, लाल तथा कृष्ण वर्णकी रहेगी । यह भी एक प्रकारका अष्टोत्तरशत लिङ्गतोभद्र बतलाया ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ अथवा

त्रिष्वर्ध्वं पञ्च पञ्च रेखाः कार्या मुक्तोद्दिताः । तत्कोष्ठेषु परिधयः षट् षट्ते अयः स्मृताः । २३४॥  
 त्रिद्वयद्वयलिंगरचना चतुर्विंशतिपादिका । वापी नवपादशब्दा षट्त्रिंशद्द्विदशाङ्ककम् ॥ २३५॥  
 भद्रं भद्रं पीतमन्यद्भद्रपाद्वे प्रकल्पयेत् । प्रथमं नवपादं स्याद्द्वितीयं षट्पदान्धकम् ॥ २३६॥  
 वापीपाद्वे च विपदा शृंगला लोदिता भवेत् । त्रिनिपाद्वे भवेदेतच्छृंगला पञ्चपादिका ॥ २३७॥  
 एकादशपादा वल्ली त्रिपदश्चन्द्र ईरितः चतुर्विंशपदैर्जेयः लिंगं परममुन्दरम् । २३८॥  
 मध्ये चन्द्रः शृंगला च त्रिपदा षट्पदा लता ।

भद्रमर्कपदैः लिंगमष्टाविंशत्पदान्धकम् । लिंगमन्यकपाद्वेस्थे पदानि पीतकानि तु ॥ २३९॥  
 त्रिर्लङ्कणं मिता वापी भद्रं रक्तमितं शृंगी शृंगला कृष्णहस्तिना वल्ली वणास्त्रिर्नगमितः ॥ २४०॥  
 परिधिः पीतवर्णः स्यात्पदान्युर्वेगिनानि तु यथेष्टं रज्ज्वेदेन द्वाणां शिलिंगमाधनम् । २४१॥  
 पीतशुक्लरक्तकृष्णा शब्दाः परिधयः क्रमात् । प्रकाशतरमन्यपदा शृणु शिष्टं प्रवीन्यहम् । २४२॥  
 चन्द्राब्धिपदमण्ड्यासु सर्वतस्तत्त्वममिनम् । लिंगपादं विन्यसेन्पडने परिधीं मती । २४३॥  
 तपोस्वार्थलिंगपत्तिद्वयं सम्यक् प्रकल्पयेत् । अष्टादशपदं लिंगं वापी त्रिदशपादिका । २४४॥  
 त्रिपदोऽञ्जः शृंगला च पञ्चपादेऽञ्जवल्ली । प्रथमा युगलिंगाऽन्या पंक्तिर्निहृदयान्विता ॥ २४५॥  
 अष्टौ भद्रं नवपादं परं भद्रं तु षट्पदम् । परिधये त्रयस्त्रिंशत्कोष्ठैर्लेहं प्रकल्पयेत् । २४६॥  
 भृगुस्कर्षी ममममपद्वेऽष्टौ षट्पदैः शिगः । पञ्चपञ्चपदैः पार्थी कटिः शुभोन्निपादनः । २४७॥  
 चतुर्विंशु हस्त्यास्य चतुर्भद्रं नवाधिकम् । चन्द्रोऽथ त्रिपदो ज्ञेयः शृंगला द्विपदा स्मृतः । २४८॥  
 वल्ली पञ्चपादा स्याच्छृङ्खलाऽन्या त्रिपादिका । लिंगस्कन्धमताः कोष्ठाः पीनाः कार्याः शुभावहाः २४९॥

सीधी और साखी छाल वर्णकी पाँच-पाँच रेखायें खींच । उसके कोष्ठकों में छः परिधियाँ और छः परिधिके आगे फिर तीन परिधि बनाव । २३४ । चौदाव पादम तीन, दो अथवा नौ लिंग बनाना होगा । अष्टारह पादकी वापी बनानी । छत्तीस, बीस, नौ इन सङ्ख्याकोक भद्र बनावे ॥ २३५ ॥ उन पदोंके पास ही दूसरे पीत वर्णके दो भद्रोंकी रचना कर । जिसमें पहला नौ पादका और दूसरा छः पादका रहेगा ॥ २३६ । वापीके पास तीन पादकी माला आँसला रहनी । इस प्रकार हर दण्डमें पाँच पाँच पादका आँसलाना रहनी ॥ २३७ । इसमें मगारह पादकी वल्लरी और तीन पादकी लता चढ़नी । मगारह पादका त्रिपद बनना । २३८ ॥ मध्यमें एक चन्द्रमा, तीन पादकी शृंगला और छः पादकी लता रहनी । वरह पादका भद्र और अष्टादश पादका लिंग बनना । लिंगके सन्तवपर तथा वगलम पीले वर्णके कुछ खाली कोष्ठक भी रहन ॥ २३९ । इसमें लिंग कृष्ण, वापी पुण्ड्रवर्ण, छाल भद्र, उज्ज्वल चन्द्रमा वागी शृंगला, हरित वर्णकी वल्लरी ये वर्ण रहनी । २४० ॥ इसकी परिधि पीत वर्णकी रहनी । वापी जितने कोष्ठक बचे, उनका अपने इच्छानुसार भेदा च ह वंसा रक्त दे । पञ्चीस लिंग इस भद्रके प्रधान साधन मान गये है । २४१ । मगारका परिधियाँ बाला सफेद छाल तथा कार्त्तिका रहनी हे शिष्य । भद्र में मगारह इसी भद्रका प्रकारान्तर बहना रहनी है । २४२ । एकलालित पादोंमें पञ्चीस लिंग और छः लिंगके बाद दो परिधि बनावे ॥ २४३ ॥ उन दोनों परिधियोंके पहिले दो पत्तियोंमें लिंगोंकी रचना कर । इसमें मगारह पादका लिंग बनना और वरह पादकी वापी बनानी जायगा ॥ २४४ । तीन पादका कमल और पाँच-पाँच पादके शिख तथा वल्लरीकी रचना की जायगी । पहिली पंक्तिमें धार और अन्य पत्तियोंमें दो लिंग रहना करनी । २४५ ॥ पहला भद्र नौ पादका रहेगा । बाकी सब भद्र छः छः पादक रहने । परिधिके बाद तीस पादका लिंग बनना । २४६ ॥ इसके मध्य स्कन्ध सात सात पादके रहने । छः पादका भरतक, पाँच पाँच पादका पाश्र्वभाग और तीन पादकी कटि बनेगी ॥ २४७ ॥ शिखके चारो ओर नौनौ पादके चार भद्र बनाये जायेंगे । इसमें चन्द्रमा तीन पादका, शृंगला दो पादकी, वल्लरी पाँच पादकी और दूसरी शृंगला तीन पादकी रहनी । लिंगके स्कन्धबाले खाली कोष्ठक पीले रङ्गसे रङ्ग दिये

अन्यानि शेषभूतानि वदन्ति पर्येदिया । यथेच्छं वै परिश्रय कार्या वेदमिता बहिः । २५० ॥  
 पञ्चविंशच्छिरेर्गो प्रकारो ऽहो मयोदिता । अतिप्रिया शक्राय शान्त्या द्विजवचनम् । २५१ ॥  
 नमस्कृत्य महत्त्वम् गुरुपादमहात्म्यम् संवत्सरात्क वक्ष्ये कथामध्यात्ममग्राहाम् ॥ २५२ ॥  
 पञ्चविंशतिसख्याक लिङ्गतोभद्रमीप्सितम् । केनचित् कात्पदं तन्कि तन्व तन्कटयते स्फुटम् ॥ २५३ ॥  
 लिङ्गतोभद्रमित्येतन्मिदं कथं धेनु । लिङ्गं गमकमित्याहुर्ज्ञानं ज्ञापकमित्यपि ॥ २५४ ॥  
 पीयूषनापनाद्वर्षा भद्रं भद्रममीहवात् । मायश्चन्द्राः मणिद्रा हि वर्तन्ते नापनेष्वपि ॥ २५५ ॥  
 तस्मिन् शुक्लसुत नीलमित्यादिभुविष्ठमनात् । वर्णा अपि परमिन्पुष्पमनार्थं भवन्ति हि । २५६ ॥  
 तद्वत् परमं लिङ्गं मङ्गलं मद्रवाचकम् । मङ्गलं मङ्गलानां च शिखं शान्तमिति स्फुटम् ॥ २५७ ॥  
 लीपते यत्र भूतानि निगच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं कथं निष्कलः परमः शिवः । २५८ ॥  
 सत्त्वं रजस्तमोऽवर्णत्रयं मायाम् वेष्टितम् । मनश्चन्द्रो महापोहः शृङ्गला स्नेहवह्निका ॥ २५९ ॥  
 तदिदं सर्वत्रतन्त्रं वेष्टितं घटयामवन् । निर्घमूर्ध्वमहङ्कारः प्रसूनः पतन्तुवन् । २६० ॥  
 तेन स्थानानि आत्मानि लक्षाणां चतुरष्ट हि । गुणास्तेषु प्रपूर्यन्ते यथा चित्रपटा भवेत् ॥ २६१ ॥  
 आर्षादेकं पुगं तस्य तस्मिन्मायानियोगतः । कामो बहुधा भवति भवेष्विति मादगम् ॥ २६२ ॥  
 एकः सन्निधिः चान्मानं स्वयमकुरुतेति च । इन्द्रो मायाभिरिति च एकभा बहुधेति हि ॥ २६३ ॥  
 ऊचुश्च भुवयः मायो मङ्गलो भवनं प्रति । तज्जनातिनि च ध्रुवान् तनोऽस्ति हि किञ्चन ॥ २६४ ॥  
 यद्यप्येवं तथाप्यस्मिन् निविर्निर्बोहनो भवेत् । वायदहकृतो मायनाश्रमसर आवणः ॥ २६५ ॥  
 भिन्नोऽहमिति हृद्ग्रन्थी न समावस्तदाश्रयः । सन्नेनेत्रम्यंनु यानि स्वप्नो निद्रानुगो यथा । २६६ ॥

कार्यमे ॥ २५८ ॥ २५९ ॥ आर्षा विगत कोटक स्थानं वने, उन्हें अपने इच्छानुसार रङ्ग दे । बाहरकी ओर खिन्ने से आर परिश्रय बनाये । २५० ॥ यदना प्रकार मेन पञ्चास शिवके बनलाय है । हे द्विजवचन - ये दोनो घट शिवके जो परम प्रमत्त मन्त्रनान्ते है ॥ २५१ ॥ अब वे अपने गुरुके महत्त्वह्याम्वरण परमकमलको प्रणाम करके सलाहकारक एक आध्यात्मिक कथा सुनाऊंगा । २५२ ॥ किमीन पञ्चविंशति लिङ्गतोभद्र-का रचना क्यों की ? अब उसका स्पष्ट तन्त्र बतलाता हूँ ॥ २५३ ॥ पहले 'लिङ्गतोभद्र' इस शब्दका अर्थ बतलते हुए बतल है कि 'लिङ्ग' गमक, ज्ञान अथवा ज्ञापक नामसे पुकारा जाता है । २५४ ॥ पीयूष (मृत) का वपन करनेसे 'वापीका वापी' मङ्गलम पड़ा है । भद्र यानी कल्याणका समीक्षण करनेसे 'भद्र' का भद्र नाम रखना गया है । इत्येक म यनाम एक साध्य शब्द बनलावे जात है ॥ २५५ ॥ "तस्मिन् शुक्लसुत नोमम्" अर्थात् भविष्यक कथनानुसार उपमनाके लिए वपकी थी अन्वस्यकना पठनी है ॥ २५६ ॥ वह परब्रह्म ही लिए एवं मङ्गलवान् भद्र नामसे अभिहित होता है । मङ्गलका भी मङ्गल करनेवाला शिव अर्थात् शान्त कहलाता है । २५७ ॥ इत्येके समये त्रिमये सब धारण ज्ञान ही और मृत्तिकायमे उमीधसे निकल जाये उसीको 'लिङ्ग' कहते हैं । ऐसा क्यों है ? वह परम बोध, कल्याणित तथा परम मङ्गलकारी शिव है ॥ २५८ ॥ सत्त्व, रज और तम के तीन वर्ण मायाके आत्मसे वेष्टित है । हममें सब चन्द्रमा, महापोह शृङ्गला और स्नेह अम्बुगिरी है ॥ २५९ ॥ इन सबसे कथना इसी तरह वेष्टित है, जैसे श्याम (आकाश) से घट-पट अर्थात् कान्ते के वदार्थ वेष्टित रहते हैं । उनपर भी लघुके लगन अहङ्कारने उसे पारी मोरसे घेर रक्खा है । २६० ॥ इसीसे योगी एव धारिणीकी उत्पत्ति हुई है । उनमें गुणाका उसी तरह समावेश ही जाता है, जैसे एक कपड़ेपर कई रङ्ग बना दिये जायें तिससे उसका रङ्ग विविध प्रकारका हो जाय । २६१ ॥ मृत्तिके पहले केवल एक तन्त्र यानी ब्रह्म था । भाग्यसे आत्मे उसमें बहुत प्रणाली कामनायें उत्पन्न हुईं । तब उसे अकेले रहने मायायोगसे अपने इच्छानुसार उस अकेले रूपसे बहुरूप रूप बना दिया ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ इसके अनन्तर प्रतियोगि ब्रह्मकी उत्पत्तिके लिए 'सज्जमान्' इस भूतिये उस ब्रह्मकी प्रार्थना की तब ब्रह्मकी उत्पत्ति हुई । २६४ ॥ यद्यपि ये सब कार्य हुए हैं । तथापि मोहवशा इसमें ब्रह्मकी स्थिति नहीं हो सकती । जबतक

एतदर्थं विरक्तः सन् जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् । आश्रयेन्मद्गुरुं साधुं त्वग्रभूतं निरामयम् ॥ २६७ ॥  
 तेन प्रबोधितः सिद्धमान्मानं मनमान्मनि । ज्ञानीयाद्ब्रह्मभावेन जगच्चित्तं स्थितं मदा ॥ २६८ ॥  
 ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे संस्थितोऽमलः । एकोऽद्वितीयः परमो नान्तः प्रज्ञादिलक्षणः ॥ २६९ ॥  
 असरः सच्चिदानन्दोऽमरोऽजरः उद्यत्तमः । निर्विकारो निराकारो निरामय उदीगितः ॥ २७० ॥  
 अलिगोऽरूपः एवमावेकस्त्वगणनरूपरः । मायया लिङ्गरूपाव श्लोक इत्यभिधीयते ॥ २७१ ॥  
 पुरुषश्च प्रकृतिश्च व्यक्तोऽहंकार एव च । चतुर्लिङ्गानि प्रोक्तानि लक्षणानि शिवस्य च ॥ २७२ ॥  
 कार्यकारणभूतानामेकमेव हि पञ्चकम् । सत्त्वं रजस्वम इति त्रयमुक्तिमानि चान्मनः ॥ २७३ ॥  
 रशेन्द्रियाणि च मनो बुद्धिर्ज्ञानं च स्मृतम् । लिङ्गानां परमेशस्य विवेकोऽत्र प्रतिष्ठितः ॥ २७४ ॥  
 इति कारणलिङ्गानि कार्यलिङ्गान्यनेकशः । शतं सहस्रमथुतं कोटिशः सति संख्यया ॥ २७५ ॥  
 सर्वाणि ज्ञापकान्येव शिवस्य परमात्मनः । वस्तुनस्तु परं तत्त्वं यज्जातीयादिर्हीनकम् ॥ २७६ ॥  
 विचारे वर्तमाने तु तत्त्वाद्येव पथादि न । एवं सर्वं शिवो भाति न सर्वं शिव एव हि ॥ २७७ ॥  
 बिन्दुनादमकारादि सात्रयपद्मदीरितम् । आत्मैव पञ्चधा साक्षात्तया ब्रह्मेश्वरो हरिः ॥ २७८ ॥  
 विधिरुद्री एव पञ्च सद्योजानादिरूपकः । शुद्धः सार्धो नया प्राकृर्त्तजमो विश्व एव च ॥ २७९ ॥  
 सच्चिन्मूषश्च नामरूपे ब्रह्मैव केवलम् । ज्ञानं पञ्चात्मकं तान्परब्रह्मैवेदमिति श्रुतिः ॥ २८० ॥  
 प्रधानं महदहं च पञ्चतन्मात्रकं च तत् । अष्टपकृतिरित्येतच्छास्त्रेण परिगीयते ॥ २८१ ॥

ब्रह्मभाव है, तभीतक हम ससारका विस्तार है ॥ २६४ ॥ “बहु” इस अन्विते भिन्न होत हों न ससार रहता है और न उसका आश्रय ही रह जाता है । तेजके विभाग होना ही जल्का भी नाश ही जाता है । जैसा कि निद्राका नाश होनाके साथ ही स्वप्न भी नष्ट हो जाता है ॥ २६५ ॥ इमोऽत्र जिज्ञासका चाहिए कि वह विरक्त साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा गौरी कोकरहित ब्रह्मा मद्गुरुका कारण है ॥ २६७ ॥ जब कि अपने ऊपरसे वह प्रबुद्ध हो जाय और अपने आश्रय ही सिद्ध हो जाय, तब अपने जगत्स्वरूप चित्तका ब्रह्मभावसे दखे ॥ २६८ ॥ सब प्राणियोंके हृदयमें वह अमल ईश्वर निवास करता है । वह एक, अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ है । न उसका अन्त है और न प्रज्ञा आदि लक्षणोंसे ही वह जाना जा सकता है ॥ २६९ ॥ वह अक्षर ( कर्मा नष्ट न होनेवाला ), सच्चिदानन्द, अजर, अमर और सर्वसे श्रेष्ठ सिद्धांत है । इसलिये वह निर्विकार, निराकार और निरामय कहलाता है ॥ २७० ॥ उसका न कोई रूप है, न स्वरूप है । वह अकला रहकर भी गणनासे दरे है । वह अपनी मायाके साथ लिङ्गरूपमें दासता है किन्तु वास्तवमें रहता है अकारण ही ॥ २७१ ॥ पुरुष, प्रकृति, अक्षर, अहंकार, ये चित्त उस लिङ्गरूप ब्रह्मको पहचाननेके लिए बतलाते हैं ॥ २७२ ॥ प्राणियोंका कार्य, कारण, सत्त्व, रज, तम इनका भी कुछ लोग आत्माका लक्षण बतलाते हैं ॥ २७३ ॥ कुछ लोग हम इन्द्रिय तथा मन और बुद्धि, इन चारोंको भी उसका चित्त बतलाते हैं । हम प्रकार यही हम परमेश्वरके लीलाका विचार किया गया है ॥ २७४ ॥ उससे बतलाय हुए सब चित्त कार्यक है । इनके अस्तित्व कारणक भी बहुतसे लोग हैं । इन प्राणोंकी संख्या सैकड़, हजार, दस हजार एवं करोड़ों पर्यन्त है ॥ २७५ ॥ उस माद्वलम्बय परमात्माको तो ससारकी समस्त वस्तुएँ ही ज्ञापक हैं । लेकिन वास्तवमें वह सर्वज्ञान तत्त्व है और उसका कोई सजातीया और बिनाबीया नहीं है ॥ २७६ ॥ अच्छा तरह विचार हो न तब वहो निश्चित होता है कि वह केवल सन्तु ही है, पद आदि नहीं ॥ २७७ ॥ जिस तरह त्रिन्दुत्वसे वह अकारादि स, ज्ञान, मायात्मक कहा जाता है । उसी तरह वह ब्रह्मा, ईश्वर या हरि अकला रहता हुआ भी पंच प्रकारका है ॥ २७८ ॥ सद्योजानादि रूपधारी विधि ( ब्रह्मा ) और शिव भी पांच ही पंच प्रकारका है । वह स्वयं शुद्ध, साक्षी, प्राज्ञ, तैजस तथा विश्वश्रेष्ठ है ॥ २७९ ॥ नाम और रूपके अंदले वह सन्, चित् तथा आनन्द तीन प्रकारका है । किन्तु वह अनेका ही है । “ब्रह्मैवेदम्” इस श्रुतिसे भी यह सिद्ध होता है कि वह अनेका ब्रह्म ही पंच प्रकारका हुना सा ॥ २८० ॥ प्रधान, महत्, अहंकार, पंच तन्मात्राये और



अष्टमूर्तिस्वरूपं सद्भवश्चादिनामभूत् । इन्द्रपृष्ठस्वरूपेण मायया भाति सर्वतः ॥२८३॥  
 ज्योतिर्लिङ्गद्विषट्कं च द्वादशादिन्यनामकम् । दशैन्द्रियमनोबुद्धिनामभिर्भाति सन् स्फुटम् ॥२८३॥  
 दशैन्द्रियाणि च प्राणपचकं भोग्यपचकम् । केनश्चतुष्कमान्मत्र एवत्रिंशमतो बुधः ॥२८४॥  
 लक्षणां चतुरर्धाति भोगायतनविस्तरः । तस्यैव कल्प्यते भ्रान्त्या कर्मभिर्गुणभेदतः ॥२८५॥  
 जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिं च भोगस्थानानि चान्मनः । भोगो भोक्ता भोजयिता सर्वं ज्ञेयं न पूर्वम् ॥२८६॥  
 अण्वात्मपथिदेवं च अधिभूतमिति त्रिधा । स्थूल सूक्ष्मं कारणं च सर्वं ज्ञेयं न पृथक् ॥२८७॥  
 एतज्ज्ञानं च ध्यानं च विवेकश्च विरागिना । जीवेश्वरजगद्भानमात्मैवेति न तु पृथक् ॥२८८॥  
 सर्वं सत्त्विदमिति चेदं सर्वं यदयमात्मनः । ज्ञेयं चेदं सत्त्वमिति श्रुतम् । प्रवदति हि ॥२८९॥  
 अयं भिदस्य विषयो यन्मर्त्यान्मनि दर्शनम् । आरुरुक्षुः शान्तर्शनस्त्विन्दुः सर्वतो भवेत् ॥२९०॥  
 स्वदेष्टे प्राप्नुयुषु निवर्णन्ति वशाकृतम् । तेनार्था विषयाः प्रोक्ता मुमुक्षुस्तान् विवर्जयत् ॥२९१॥  
 विविक्तसेवी लभ्यार्थान्यादि भाषयत् वचः । किं बहुक्तेन विधिना समाप्तं शास्त्रद्वयम् ॥२९२॥

इति मे गुरुणा किमप्यजडमानदान्मनस्त्वद्वय

परस्मात् इदं तदात्मकमहं न्वं चाशु नष्टं तयः ।

आप्तुं सहसोदितं महं श्रुत्वा शर्मात्मव्याकृतं

येनाञ्जलिपिन्दुर्यपरतन् विश्वं विशेषान्मकम् ॥२९३॥

तिर्यग्गता रेखाश्चचारिशतसभाः शुभा । तामामकं शकाष्टेषु परिधीं द्वी प्रकल्पयेत् ॥२९४॥  
 समतिं प्रथमाज्ज्यास्तु ततो वाणां तकोष्टके । तन्मध्यं रुद्ररुद्रपु पदचष्टादशैः पदः ॥२९५॥  
 आठ प्रकृतियों के सातत्रोमे वगलामी मयी है । २८१ ॥ उन आठ मूर्तियोंका स्वरूप सद्भव-शर्मा अदि नामोंसे विख्यात है और मायावश से आठ वस्तुश्रक नामसे भी अभिहित होता है । २८२ ॥ आठ ज्योतिर्लिङ्ग, द्वादश आदिन्य, दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन नामोंसे भा वह विश्वम स्पष्ट दिखती देता है । २८३ ॥ दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राणवायु, भोग्यपचक और चार प्रकाशका चित्त यह सब मिलकर यह पञ्चीस प्रकारका माना गया है । २८४ ॥ चौरस माय यातिवी है उसका भोगरूप घटका विस्तर है । भ्रान्तिवश या गुण-कर्मक भेदसे उसमें इन सबका कल्पना की जाती है । २८५ ॥ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये आत्माके भोगस्थान हैं । भोग, भोक्ता, भोजय से सब यह प्रकृत हो है और कोई नहीं । २८६ ॥ अण्वात्म, अधिदेव, अधिभूत, स्थूल और सूक्ष्मका कारण एकमात्र प्रकृत हो है । २८७ ॥ एत ज्ञान, ध्यान, विवेक, विरागिता, जीव, ईश्वर, जगत्का भान यह सब यह आत्मा ही है और कोई नहीं । २८८ ॥ "सर्वं सत्त्विदं बहु" "यदयमात्मा" "अष्टैवदम्" ये धूमिका भी इसी बातको पुष्ट करती है । २८९ ॥ संसारको सब वस्तुओंके अपनी आत्मासे देखना, यह विषय सिद्धपुरुषोंका है । आ प्राणी सिद्धिक सिद्धरपर चढ़ना चाहता हो । उसे चाहिये कि वह दान्त, दान्त ( इन्द्रियोंका दमन करनेवाला ) और तितिल बुने ॥ २९० ॥ अपने देशमें आये हुए पुरुषोंके से सांसारिक विषय बाँध लेते हैं । इसीसे इन्हें लोग विषय ( विशेषेण त्विन्वन्तं ति विषयाः । अयं भू भला-शीति शकट लेनवान ) कहते हैं । मुमुक्षु प्राणीको चाहिए कि इनका परित्याग कर दे । २९१ ॥ "एकान्त स्वानमे रते, वासं ज्ञान" इत्यादि बात भगवानने मोक्षार्थ स्वयं कही हैं । यही विशेष विधि विद्याम बतलानेकी आवश्यकता नहीं है । इदमे ज्ञानका प्रकाश होते ही शरीर आरुण समाप्त हो जते हैं ॥ २९२ ॥ यदि किसी रुद्ररुद्रने कृपा करके जडतारहित आनन्दारमक ज्ञानरूप वस्तु से की हो 'बहु' 'हृत्' सब एक हैं । यह पाप उत्पन्न होरसे हृदयका अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया । एक अनिर्वचनीय प्रकाश और चन्द्रमा-सूक्ष्म तथा पवनपर भी अधिपत्य जन्मनेवाली गविशसे सहसा यह विश्व बालीकित हो उठा, तब और किसी उपदेशकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥ २९३ ॥ सीधे और टेढ़ी बालीक रेखायें बराबर-बराबर खींचे । उनके उनतालीस कोष्ठकोंमें वे परिधिसे बना दे ॥ २९४ ॥ शक

लिंगमेकं सङ्घवाप्या तुर्यतुर्यपदान्तिके । अष्टकोष्टान्तिके भद्रं प्रोक्तं पञ्चचतुष्टये । २९६ ।  
 शृङ्खला द्विपदा चन्द्र त्रिपदा चन्द्रार्धतथा । पञ्चपादः स्मृता वृत्त्यो त्रिपञ्चेषु निर्मातयेत् । २९७ ।  
 द्विर्नाये त्रिपदभद्रः शृङ्खला वेदपादिका । वृद्धो नवपदा भद्रत्रय नवपदान्तिकम् ॥ २९८ ॥  
 त्रयोदशपदं वापीद्वयं पार्श्वे तु शृङ्खले द्विपदे रक्तवर्णे च भद्रं तुर्यपदं हरिम् । २९९ ।  
 प्रणिपार्श्वं भद्रं देवप्रथमाधस्तु योजयेत् । प्रतिपार्श्वं चतुर्दिगं वापीर्ना पञ्चकं तथा । ३०० ॥  
 अष्टादशपदं त्रिगं वापी त्रयोदशान्तिका । भद्रं गणपदेर्हं वल्ली रुद्रपदान्तिका । ३०१ ॥  
 शृङ्खला पञ्चभिः पार्श्वैस्त्रिपदश्चंद्र ईरेतः । लिंगोपरितुना वापी नीलवल्गुया नियोजयेत् । ३०२ ॥  
 षष्ठा रगते परिधि त्रिषाव सप्तमन्तरम् । त्रिलिङ्गान्येकलिंगं च द्वयोः पञ्चयोः प्रकाशयेत् । ३०३ ॥  
 आदौ चन्द्रकलं भद्रं पदमर्कपदः स्मृतम् । शृङ्खलापञ्चमवेर्द्धा रुद्रकोष्टा सर्पारिना ॥ ३०४ ॥  
 वापीचतुष्टयं पूर्वं परं वापीद्वयं स्मृतम् । पूर्ववन्मकलं शेषं बाह्याः परिधयः क्रमात् ॥ ३०५ ॥  
 पीतशुद्धरक्तकुष्मा श्रेयाः सत्पदाधिका शुभाः । एतन्मर्मैन्दुलिङ्गात्म्यं पाठं सव्यमुदाहृतम् । ३०६ ॥  
 अथवाऽस्त्रिंशत्त्रिकोष्टानि वर्द्धयित्वा क्रमेण तु । षष्ठ्यंते परिधौ कार्या तत्र लिङ्गानि योजयेत् । ३०७ ॥  
 प्रथमं त्रीणि लिङ्गानि द्वितीये चैकमारितम् । चतुर्विंशत्तिलङ्गं वाप्यष्टादशपदजम् । ३०८ ॥  
 आदौ वेदमिश्रा वाप्यो द्वे वाप्यो च द्विर्नायके । आदौ नवपदं भद्रं द्विर्नायेऽर्कपदं स्मृतम् । ३०९ ॥  
 चन्द्रवल्गुपादिपूर्वोक्तं मध्ये लिंगं प्रकाशयेत् । षष्टिर्दशपदेर्हं चतुःपार्श्वः शिरः कटिः ॥ ३१० ॥  
 अर्कमर्कपदं सङ्घवाप्या द्विपदशृङ्खलाः । पञ्चपादा स्मृता वृद्धा त्रिपदा पीतशृङ्खला । ३११ ॥  
 अर्कपदं भद्रं द्विचतुष्टयम् । चतुर्थ त्रिपदाः कोणे शिवमन्त्रकपाश्वके ॥ ३१२ ॥

कोष्ठकोके बाद पहिली परिधि बनाकर बाकं परिधियाँ पाँच गँव कोष्ठकोके बाद बनावे । उनके बीचमें एक ही द्वाकेस पादोमेंसे अष्टारह-शृङ्खला पादका एक एक लिङ्ग बनावे । फिर चार-चार पादकी दो सङ्घवापियाँ बनाकर । इसमें चारों बगल कोष्ठकोष्टान्तिकय भद्र बनावे ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ इसके बाद दो पादकी शृङ्खला एकसे चन्द्रमा और तीन पादकी वल्गुया बनाकर इसमें तीन बगलमें पाँच पाँच पादकी वल्गुयाँ बनावे ॥ २९७ ॥ दूसरी परिधि तीन पादका चन्द्रमा, चार पादकी शृङ्खला, लो पादकी वल्गुया, लो-लो पादके तीन भद्र, तरह पादकी दो वापिरी, वल्गुय दालाल शृङ्खला और चार पादमें हरे भद्रकी रचना करे । २९८ ॥ २९९ ॥ यह क्रम प्रयोग पार्श्वभागमें रहेगा । इसमें पार्श्वभागमें चार लिङ्ग पाँच वापि, अष्टारह पादका लिङ्ग, तरह पादकी वापी, छ पादका भद्र, सारह पादकी वल्गुया, फिर पाँच पादकी वल्गुया और तीन पादकी चन्द्रमा बनेगा । लिङ्गक ऊपरकी बंधी न पड़े रहेगी और उसके साथ-साथ वल्गुया भी नाँची रहेगी ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥ अथवा छ कोष्ठकोके बाद परिधि बनाकर सत्र लिङ्ग गा एक लिङ्ग दोनों पंक्तिमें बनावे ॥ ३०३ ॥ पहले सोलह पादका भद्र बनाकर सत्र पादकी शृङ्खला और सारह कोष्ठकोमेंसे पाँच पादकी वल्गुया बनावे ॥ ३०४ ॥ पहले चार वापी और फिर दो वापकी रचना कर । बाकी सब पूर्ववत् रहेगे और बाहरकी परिधियाँ कमजोर कीली, मकर, खाल और काली रहगा । यह सप्तवन्दुलिङ्गात्मक पाठ मेंसे अच्छी तरह खालाया । ३०५ ॥ ३०६ ॥ अथवा इसी पीठमें दो कष्टक और बहाकर छ, क बाद दो परिधि बनावे और इस प्रकार लिङ्गोंकी योजना कर । ३०७ ॥ प्रथम पंक्तिमें तीन और दूसरेमें एक लिङ्ग बनावे । इसी पीठमें चौबीस पादका लिङ्ग बनेगा और अष्टारह पादकी वापी बनावे । ३०८ ॥ आदिमें चार वापिरी और दूसरेमें दो वापी रहेगी । आदिमें लो पादका भद्र बनेगा और दूसरेमें सारह पादका भद्र बनेगा । चन्द्रमा तथा वल्गुया आदि दूर्वाङ्ग नियमके अनुसार ही रहेगे और मध्यमें लिङ्गकी रचना की जायगी । उसमें अष्टादश पाद रहेगे और चार पादमें मिर तथा कमरके रचना होगी । सारह-सारह पादसे दो सङ्घवापियाँ बनायी जायेंगी । दो पादकी शृङ्खला बनेगी । पाँच पादकी व अर्क बनायी जायगी । तीन पादसे पीतवर्णकी शृङ्खला बनेगी ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ सारह पादसे बाटों ओरकी शृङ्खला बनेगी ।

नेत्रार्धे द्वे परे शुक्ले शेषाणि च वदानि हि । लिङ्गपार्श्वे पञ्च पञ्च पञ्चैव तानि पूरयेत् ॥३१६॥  
 पीतशुक्लरक्तकृष्णा बहिःपरिधयो मताः । एतन्ममदशलिङ्गैर्लिङ्गनोऽष्टमीरितम् ॥३१७॥  
 दशकं कारणानां च प्राणानां पञ्चक ममः । षोडशैवाः कला आत्मा साक्षी ममदशः स्मृतः ॥३१८॥  
 अकलिमात्मकं यद्र नृणु शिष्य मयोक्ष्यते । प्रागुदीच्या मता रेखाः पट्विंशति वक्ष्ययेत् ३१९॥  
 पदानि द्वादशशतं पञ्चविंशतिरेव च । स्वर्गद्विपदः कोणे भृङ्गना पदपदान्तिका ॥३२०॥  
 त्रयोदशपदा बल्लो मद्रं तु नवभिः पदैः । अष्टोत्तरे त्रिपदा शेषा द्वितीया पौतभृङ्गना ॥३२१॥  
 त्रयोदशपदा बायां लिङ्गमष्टदशैः स्मृतम् । त्रिंश नियम्य पक्षौ तु शोभा शोष्ठ्य अनुर्दध ॥३२२॥  
 तेषामुपरि पक्षौ तु कोष्ठाः ममदशैः तु । पूजापत्तिः मिता त्रया परितः परेकल्पिता ॥३२३॥  
 पूजापत्त्यन्तरापत्तौ कोठा अशानि सस्यया । परिधिः स च विंशति मंडला रशोर्दशोः ॥३२४॥  
 परिध्यांतरकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत् । विशेषधात्र चतुर्दो भृङ्गना पदरवा मदेत् ॥३२५॥  
 त्रयोदशपदा बल्लो मद्रं तु द्वादशैः पदैः । पञ्चविंशत्पदा बायां परिधिः षोडशात्मकः ॥३२६॥  
 मध्ये नवपदैः पक्षं कर्णिकाक्रेमगान्वितम् । सत्रं तत्रममोत्रयाः परितो मंडलस्य च ॥३२७॥  
 त्रयः परिधयः कार्यास्तत्र कारणि कारणेन । निर्दुः भृङ्गना कृष्णा बल्लो नीला मपूरयेत् ॥३२८॥  
 मद्रं रक्तभृङ्गनाऽन्यापौता बायां मिता स्मृता । त्रिंशानि कृत्वा त्रयोवि पार्श्वेषु द्वारैश्च तु ॥३२९॥  
 परिधिः पानवर्णः स्यान्वमनं पञ्चवर्षकम् । कर्णिका च क्रेम्याणि पौतवर्णानि कारयेत् ॥३३०॥  
 मकरांतरमन्यचे नृणु शिष्य मयोक्ष्यते । पूर्वोत्तरगता रेखा ममविंशतिमिताः शुभाः ॥३३१॥  
 तन्वट्विंशत्पदेष्वेव सर्वतोभद्रमुत्तमम् । अन्विनेत्र प्रिकंष्टुध रचयेत्पूर्वच्छुभम् ॥३३२॥

मन्त्रमें चार भद्र बनने । कोणमें तीन पादका बाटमा बनेगा । शिवजीके मस्तकका बाय बाय के लिए दो पाद साधा है छोड़ दे । जिसने पाद है, उनमेंसे लिखके आमन्य सवात्रे पंचपाद पादकी अपन इच्छानुसार पूज कर । ३१२ ॥ ३१३ ॥ बाहरकी सब परिधिवां पात, भृङ्गना, रक्त तथा कृष्ण कर्णकी भृङ्गना । यह उत्तरमालिगात्मक पदकी रचनाका प्रकार बतलाया गया ॥ ३१४ ॥ दस इन्द्रियोकी, बाँव प्राणोकी, एक मनकी ये सोन्त कल्पये होती है और मद्रवां मान्या साक्षा माना जाता है । ३१५ ॥ हे शिष्य ! अब मैं द्वादशमालिगात्मक लिङ्गलाभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाता हूँ, भुना । पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणका ओर छलीस छलीस रेखाय सोच ॥ ३१६ ॥ इसमें द्वादश पादकी एककील पाद होने । तीन पादसे लपेटेनु बनेगा और कोणकी ओर छ पादकी भृङ्गना रहेगा । ३१७ ॥ नव पादकी दस बल्लो, नौ पादका भद्र, मद्रक उत्तर तीन पादकी पौली भृङ्गना, तेरह पादकी बायी ओर मद्रनव पादका त्रिंश बनाकर पत्तिमें चोदह कात्मक शोभाके लिये रहने दें । उनक ऊपरवाला पत्तिम सवह कायक रत्न और पाग औरसे लफेद रङ्गका एक पुकार्यक रहेगी ॥ ३१८-३२० ॥ पूजापत्तिकी भावरवाला पत्तिम भस्मा कायक रहने । ये उन पत्तिओके बाँचव परिधिका काम देते । ३२१ ॥ परिधिसे पीतरवाले कोष्ठकोमें सबतोभद्रकी रचना करे । इस भद्रमें जो निरूपता है, उसे समझ लें । उसकी भृङ्गना छ पादका रहेगी । ३२२ ॥ तेरह पादकी बल्लो बनेगी । बाह्य पादका मद्र रहेगा । पञ्चस पादका बायां रहगा और मोलह पादका परिधि बनेगी ॥ ३२३ ॥ बीचमें नौ पादका एक कमल बनेगा, जिसमें बगिका तथा केसर आदि आ रहेंगे । पञ्चलके चारों ओर तरव, रज गम इस तीनों गुणोंकी रचना कर्ण रहेगी ॥ ३२४ ॥ इसमें तीन परिधिवां रहेंगी और कई द्वार भी रहेंगे । इसमें चन्द्रमल चन्द्रमा, काली भृङ्गना, मोल बल्लो और काल मद्र रहेगा । दूसरी भृङ्गना पीत कर्णकी और बायां लफेद रहेगी आम पान कृष्ण बणके बाह्य त्रिंश बनने ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ परिधि पीले रङ्गकी और कमल पंच रंगका बनना । उसकी कर्णिका तथा केसर पीतवर्णका रहेगा ॥ ३२७ ॥ हे शिष्य ! अब मैं इसका एक दूसरा प्रकार बतला रहा हूँ । पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण दोनों ओर सत्ताईस-सत्ताईस रेखाय लाव ॥ ३२८ ॥ इसके छलीस पादोसे सर्वतोभद्र तथा ३२९ पादसे अन्य बल्लुओकी रचना करे

परिधिनन्समंताच्च प्रकल्प्यः पीनवर्णकः । अष्टोनरगुनेर्निगमोभद्रं कथितं यथा ॥३३०॥  
 तस्य चतुर्षु पार्श्वेषु रचयेदूर्ध्वलिङ्गकम् । कोणे कोणे त्रिपदोऽब्जः शृङ्खला ममपादिका ॥३३१॥  
 वल्लीमनुषदा मद्र पट्पदं श्रीदुर्वापिका । लिङ्गं षड्विंशपदत्रं मद्रं स्याद्दर्शपकोपरि ॥३३२॥  
 लिङ्गयार्धपदान्मेव पट् पीनानि प्रकल्पयेत् । लिङ्गोपरितना र्धार्धा न ला वल्ग्वोर्निषोन्नयेत् ॥३३३॥  
 चतुष्पदौर्ध्वलिङ्गशिरस्नथा परिधयो बहिः । सर्वाणि तु यथापूर्वमुक्तवर्णः सुरज्जयेत् ॥३३४॥  
 चतुर्विंशतिरालेख्या रेखाः प्राग्दक्षिणायताः । कोणेषु शृङ्खला पञ्चपदा वल्ग्वश्च पाशतः ॥३३५॥  
 पदंनवभिगलेख्याभन्मिर्लेखुशृङ्खलाः । लघुवल्ग्वः पदं पट्मिस्तनोऽष्टादशभिः पदैः ॥३३६॥  
 कुन्दा लिङ्गानि बाण्यन्तु त्रयोदशभिर्नन्दा । ततो र्धार्धाद्वयेनैव पटं कुर्याद्वचश्चणः ॥३३७॥  
 तस्य पादाः पञ्चदश द्वागण्यपि तथैव च । एकार्धनिपदं मध्ये पञ्च स्वस्तिकमिष्यते ॥३३८॥  
 कोणेषु शृङ्खलाः कार्याः पदंस्त्रिभिरनः परम् । पदंश्चतुर्भिर्दिशु स्फुर्भद्राण्यर्पा समन्ततः ॥३३९॥  
 एकादशपदे वल्ग्वी मध्येऽष्टदलमालिखेत् । पदं नवपदं द्वेनलिङ्गमोभद्रमिष्यते ॥३४०॥  
 शृङ्खला कुण्डवर्णेन वल्ली नालेन पूरयेत् । रक्तेन भस्मका लङ्घी वल्ली पीतेन पूरयेत् ॥३४१॥  
 लिङ्गानि कृष्णवर्णानि श्वेतेनाप्य वापिका पीट प्यपादं श्वेतेन पीतेन द्वारपूरणम् ॥३४२॥  
 मध्ये स्फुः शृङ्खला रक्ता वल्लीनीलेन पूरयेत् । शट्पाणि पीनवर्णानि पीना पंकजकणिजा ॥३४३॥  
 दलानि श्वेतवर्णानि यद्वा चित्राणि कल्पयेत् । निम्नो रेखा बहिः कार्पाः नितरक्तासिताः क्रमान् ॥३४४॥  
 ऊर्ध्वलिङ्गोद्भवं जटलिङ्गमोभद्रमुच्यते । अन्यन्ययागिरम्य तच्छृणु शिन्वात्र कौतुकात् ॥३४५॥  
 अष्टविंशतिरेखाश्च निर्यतूर्ध्वं समन्ततः । सप्तविंशतिकोणेषु पदन्ते परिधयः स्मृताः ॥३४६॥  
 कोणेषु त्रिपदंश्चन्द्रः शृङ्खला पञ्चपादिका । बाण्यर्कपादजा भद्रपट्क षट्पट्पदात्मकम् ॥३४७॥

॥ ३२६ ॥ उसके चारों ओर पातकपकः परिधि बनावे । पहले जो मैत्र अष्टोनरगतात्मक लिङ्गमोभद्रसतलाया है, उसके चारों बगल छान्दस लिङ्गकी रचना करे । प्रत्येक काण्डमें तीन पादका कमल बनाकर सात पादकी शृङ्खला बनावे ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥ फिर चौदह पादकी शृङ्खला, छ पादका मद्र, तीन तीन पादका पञ्चमा और बापी तथा छत्राम पादका त्रिग वर्णिकाके ऊपर बनाया जायगा । ३३२ । लिङ्गक बगलवाले छः पाद पीले रङ्गसे रङ्ग दिये जायें । निम्नके ऊपरवाली शृङ्खला नीले वल्ग्वरिणाके बीचमें नियुक्त कर दे ॥ ३३३ ॥ चौदह पादसे लिङ्ग, भस्मक तथा परिधियाँ बनावे । बाकी सब जगत् ऊपर कट्टु आवे है । उसके अनुसार ही रहने दे ॥ ३३४ ॥ पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणकी ओर चौदह चौदह रखावे बीच । कोणमें पाँच पादकी शृङ्खला तथा नौ पादकी वल्ग्वरिणी बनावे । चार पादकी लाली शृङ्खला बनावे । छः पादकी लघु वल्ग्वरी बनावे । अष्टादह पादसे लिङ्ग एवं लेख पादकी वापियाँ बनावे । फिर दो वीधियोंसे पीछकी रचना करे ॥ ३३६-३३७ ॥ उस पादका पैर पाँच पादक तथा द्वार पाँच पादसे बनाकर मध्यमें हवयासी पादका कमल बनेगा ॥ ३३८ ॥ तीन-तीन पादोंसे कानोंमें शृङ्खलायें बनावे । चारों दिशाओंमें चार-चार पादके मद्र बनेंगे ॥ ३३९ ॥ प्याण्ड पादकी दो बाण्यरियाँ बनावे । नौ पादसे मध्यमें जट्टक कमलकी रचना करे । वह भी एक प्रकारका लिङ्गमोभद्र है । ३४० ॥ इनमें जो शृङ्खला कृष्ण वर्ण और वल्ग्वरी नीले रङ्गसे पूर्णकी जायगी । रक्त वर्णसे लघु शृङ्खला एवं पीत वर्णसे जेष्ठ वल्ग्वरीका पूर्ण की जायगी ॥ ३४१ ॥ इसका लिङ्ग कृष्ण वर्णके और बायी सफेद रङ्गकी रहूँगी । इसकी पीठ और इसका पाद भा प्यन रङ्गसे और पीत वर्णसे इसके द्वार रंगे जायेंगे ॥ ३४२ ॥ मध्यमें रक्त वर्णकी शृङ्खला और नीले वर्णसे वल्ग्वरी पूर्ण का जायगी । सब मद्र पीतवर्णके रहेंगे और कमलकी कणिका भी पीले रङ्गकी रहेंगी ॥ ३४३ ॥ कमलके हलोको सफेद या विजय वर्णसे पूर्ण करे । बाहुर सीम रेखायें रहेंगी और बमज उगका वर्ण उज्ज्वल, रक्त तथा कृष्ण रहेगा । ३४४ ॥ अब हम ऊर्ध्वलिङ्गमोभद्रक जटलिङ्गमोभद्रकी रचनाका दूसरा प्रकार बतलाते हैं, उसे मन लगाकर सुनो ॥ ३४५ ॥ सीधी और क्षिरछी शृङ्खला-शृङ्खला रेखायें बीच । सत्ताईस कोशक पर्यन्त छः छः पादके बाह परिधियाँ रहेंगी ॥ ३४६ ॥ कोणमें

ऊर्ध्वे भद्रे रविपदे पदैःष्टादशैः शिवाः । आत्मनोऽभिधृत्वाः सर्वे कार्पा ह्यष्ट शुभावदाः ॥३४८॥  
 त्रयोदशांशिवा वापी तन्वयं पश्चिमे स्मृतम् । ध्वे स्वेका द्वे शकले त्रैप सर्वं तु पूर्ववत् ॥३४९॥  
 निर्धामद्रे वेदपदे एकपुनोऽध्वेवल्ली । दक्षिणोत्तरनवापि वापीनां शकलाष्टकम् ॥३५०॥  
 तमघोर्लिङ्गयोर्माला मा त्रिभनेयनैः स्मृता । सर्वत्र नेत्रे द्वे त्रये दक्षिणोत्तरयोस्त्रिभिः ॥

पृथक् च-वारि भद्राणि सधोभद्रे चतुष्पदे ॥३५१॥

दक्षिणोत्तरदिग्भागे पूर्ववन्धौ च संघमेत् । इवन्ने मध्ये तु एभिः पञ्चविंशैर्त्रैलोक्यम् ॥३५२॥  
 शुक्ला द्विपदा मध्ये वल्ली पट्टादजा स्मृता । वापः पञ्चपदैर्ज्ञेया भद्रं वेदपदान्वकम् ॥३५३॥  
 शिवा वापी शिवः कृष्णः पद्मभद्रे च लोहिते । निर्धामद्रे लिङ्गमाले परिधी पीतवर्णकौ ॥३५४॥  
 नेत्रेन्दु धवली कृष्णः शृङ्खला हरिता लता । पदत्रयं हि वायुर्ध्वं तद्यथाशुचि पूरयेत् ॥३५५॥  
 पीतशुक्लरक्तकृष्ण बहिः परिधयः स्मृताः । अष्टलिङ्गान्मकं त्रयं लिङ्गनोभद्रमुत्तमम् ॥३५६॥  
 अथवाऽन्यौ द्वौ प्रकारौ प्रोच्येते शृणु तावपि । द्वाविंशच्चरमेध्वेवं चतुर्लिङ्गं तथाऽष्टकम् ॥३५७॥  
 युक्त्वा विरचयेन्नत्र विशेषोऽयं निगद्यते । प्राग लिङ्गं चतुर्विंशपदमष्टैर्दुवापिका ॥३५८॥  
 भद्रं विंशपदं चान्यलिङ्गमष्टादशान्मकम् । भद्रं नवपदं शेषं यावदवधि योजयेत् ॥३५९॥  
 रेखास्त्रयष्टादश प्रोक्तश्चतुर्लिङ्गममुद्रवे । कोणेन्दुस्त्रिपदः त्रैलोक्यपदः कृष्णशृङ्खला ॥३६०॥  
 वल्ली समष्टा नीला भद्रं रक्तं चतुष्पदम् । भद्रपादौ महालिङ्गं कृष्णमष्टादशैः पदैः ॥३६१॥  
 शिवपादौ तु वापी च कुर्यात्पञ्चपदां मितान् । पदमेकं तथा पीतं भद्रं वापस्तु सध्यतः ॥३६२॥  
 शिरशि शृङ्खला शार्ङ्गं कुर्यात्पीतं पदत्रयम् । लिङ्गानां स्कन्धतः कोष्ठा विंशत्यो रक्तवर्णकाः ॥३६३॥

हैं न पादका चन्द्रमा रहेगी और पाँच पादकी शृङ्खला बनायी जायगी । बारह पादकी वापी और छः छः पादके छः भद्र बनने ॥ ३४७ ॥ ऊपरके दानों भद्र बारह पादके रहने और अष्टादश पादके भद्र बनाने जायेंगे । इन सबको अपने अभिमुख बनावे ॥ ३४८ ॥ तरह पादकी कुल बाणियाँ रहेंगी । तिसमें पश्चिमकी ओर तीन वापी, पूर्वकी ओर एक वापी तथा दो खण्डवापी बनायी जायगी । शेष सब पूर्ववत् रहेंगे ॥ ३४९ ॥ इसमें बेटा छठ बार पादका और तीन पादकी ऊपरवल्ली रहेंगी । दक्षिण और उत्तरकी ओर खाण्डवापि रहेंगी ॥ ३५० ॥ तीन नेत्रोंसे इन दोनों लिङ्गोंको माना बनाया जायगा । दक्षिण और उत्तर दो-दो और तीन-तीन पादोंके दो नेत्र बनेंगे । चार भद्र पृथक् बनाये अर्थमें और उनमें नीचेवाले दोनों भद्र चार पादके रहेंगे ॥ ३५१ ॥ दक्षिण और उत्तरकी चार दक्षिणकी योजना को जायगी । तीन पादसे मध्यमें परिधि बनेगी और परकोष्ठ पादका कपल बनेगा । ३५२ ॥ इसमें शृङ्खला दो पादकी और मध्यमें छः पादसे वल्ली बनायी जायगी । पाँच पादकी वापियाँ बनगी और चार पादका भद्र बनेगा ॥ ३५३ ॥ इसकी वापियाँ सफेद, शिव कृष्ण, पद्म और भद्र रक्तवर्णके रहने । तिरछा भद्र लिङ्ग माला तथा दोनों परिधिपी पीत वर्णकी रहेंगी ॥ ३५४ ॥ नेत्र तथा हस्त व दोनों सदैव रहने । शृङ्खला काली और लता हरी रहगी । वापीके स्वरवाले तीन पादोंको जैसी अपनी रचि है, उस प्रकार रचकर बनावे ॥ ३५५ ॥ इसके बाहरकी परिधियाँ क्रमशः पीली, सफेद, लाल तथा काली रहगी । यह सैने पुमकी अष्टलिङ्गान्मक लिङ्गनोभद्र बनलाय ॥ ३५६ ॥ अब इसके अन्य दो प्रकार बतलाते हैं, उन्हें भी सुन लो । तैर्दस वर्णोंसे चार वा आठ लिङ्ग युक्तिपूर्वक बनावे । अब इसमें को विशेषतायें हैं, उन्हें बतलाते हैं । आदिवाली पक्षिमें चौदह पादकी भद्र रहूँ वापि रहूँ बनगी । ३५७ ॥ ३५८ ॥ दोस पादका भद्र बनेगा । दूसरा लिङ्ग अष्टादश पादका बनेगा । ती पादका भद्र बनेगा । बाकी सब पहलेके समाप्त बनेंगे ॥ ३५९ ॥ चतुर्विंशान्मक भद्रमें अष्टादश रत्नार्थे खोज । इसमें भी कोणका चन्द्रमा तीन पादका और कृष्ण वर्णकी शृङ्खला रहेगी । ३६० ॥ पास पादसे तीन रक्त वर्णकी बल्लरो, चार पादसे रक्त वर्णका भद्र और चार पादके पास अष्टादश पादसे कृष्ण वर्णका महादिग बनावे ॥ ३६१ ॥ शिवके पास पाँच पादकी सफेद वापी बनावे ।

परिधिः पीतवर्णस्तु पदैः षोडशभिः स्मृतः । पदैस्तु नवभिः पञ्चावयवं चित्रं मकरिणिकम् ॥३६४॥  
 त्रिर्गुणैर्गङ्गा रेखाः कार्याः स्निग्धास्तयोदश । कोणैर्द्वित्रिपदः कार्यः शृङ्खला त्रिपदा स्मृता ॥३६५॥  
 वल्ली च पदपदा नीला रक्तं भद्रं मकरन्दयेत् । पदैर्द्वादशभिः सप्तष्टुतरे पूर्वदक्षिणे ॥३६६॥  
 पश्चिमार्धं महाह्रदमष्टविंशतिकोष्ठके । लिङ्गपार्श्वं तथा मूर्ध्नि सप्त कोष्ठान्तु पीतकाः ॥३६७॥  
 लिङ्गमेकं तथा गौर्यास्तिलकं श्रोत्रमण्डले । पूजयेन्मण्डले चैव तस्य गौरी प्रसीदति ॥३६८॥  
 प्रागुदीच्या गङ्गा रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिः । स्वर्णैर्द्वित्रिपदः कोणे शृङ्खला पञ्चभिः पदैः ॥३६९॥  
 एकादशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । वतुविंशत्यदा वापी परिधिर्विंशकैः पदैः ॥३७०॥  
 मध्यं षोडशभिः कोष्ठैः पञ्चमष्टदलं स्मृतम् । श्वेतैर्द्विशृङ्खला कृष्णा वल्ली नीलेन पूरयेत् ॥३७१॥  
 भद्रारुणं सिना वापी पाते परिधिकर्णिके ।

रक्तं वा चित्रितं पथं बाष्पाः सन्वरजस्तभाः । सर्वतोभद्रकं चेद क्लृप्तं सर्वकर्मसु ॥३७२॥  
 एवं लिङ्गतोभद्राणां रचनाः कथिता मया । एताः शिवपरा ज्ञेया न योग्या विष्णुपूजने ॥३७३॥  
 रामलिङ्गात्मकं योग्यं श्रीविष्णोर्हृदयस्य च । पूजने न्येक एवात्र तद्विस्तारेण कथ्यते ॥३७४॥  
 शिवस्य पूजने लिङ्गपूजास्य परिचिनयेत् । उपासिका राममुद्रा ज्ञेया तद्वद्भगवानपि ॥३७५॥  
 लिङ्गतोभद्रवच्चात्र समावाह्याविबुद्धिनाः । रामतोभद्रकं यच्च ज्ञेयं विष्णुपरं हि तत् ॥३७६॥  
 रमा रामेति वर्णवन्निवृत्तं भद्रकं कुतम् । भिया देवीपरं तच्च शातन्यं सर्वकर्मसु ॥३७७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये मनोहरकाण्डे रामशसविष्णुशत-

संवादे रामलिङ्गतोभद्राणां तथा लिङ्गतोभद्राणां रचनाप्रकारकथनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ३ ॥

एक पादकर एक पोला भद्र बनावे । मध्यमें बापी, मस्तकपर शृङ्खला, वगलमें पीले रक्तके तीन पाद और लिङ्ग, स्कन्धमें लाल वर्णके वास कोष्ठक बनावे ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ सोलह पादोंमें पीत वर्णको परिधि और उष्ट्रके आगे ती पादोंमें विविध वर्णको कर्णिकायुक्त कमल बनावे ॥ ३६४ ॥ तीसरी ओर सीधे तेरह रेखायें खींचे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे ॥ ३६५ ॥ पीले वर्णसे छः पादकी बल्ली और रक्त वर्णका भद्र बनावे । फिर उत्तर पूर्व दक्षिण तथा पश्चिम कोणमें बारह पादोंसे खट्वाईस कोष्ठकोमें महाह्रदका निर्माण करे । लिङ्गके वगलमें तथा मस्तकके बाढ कोष्ठकोका पाते रक्तसे रक्ते ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ इसके मण्डलमें गौरीका लिङ्ग बनावे । जो बाणी इस मण्डलका पूजन करता है, उसपर गौरी प्रसन्न होता है । ३६८ ॥ पूर्व और उत्तरकी ओर १९ रेखायें खींचे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे । बाँव पादकी शृङ्खला, बारह पादकी बल्ली और ती पादोंसे भद्रकी रचना करे । चौत्रोस पादकी वापी और बीस पादकी परिधि बनावे । ३६९ ॥ ३७० ॥ मध्यमें सोलह पादका अष्टदल कमल बनावे । इस भद्रमें चन्द्रमा सफेद, शृङ्खला काली, बल्ली नीली, भद्र लाल, बापी सफेद, परिधि पीले वर्णकी, कर्णिका लाल और विविध वर्णका कमल बनावे । बाहुर सत्त्व, रज और तम रहेगा । इस सर्वतोभद्रकी सब कामोंमें बनाना चाहिए ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ यह सब लिङ्गतोभद्रकी रचनाका प्रकार मैंने बतलाया है । ये सब शिवकी प्रशाम ही काम देने विष्णुपूजनमें नहीं ॥ ३७३ ॥ विष्णुकी पूजायें श्रीरामलिङ्गतोभद्रका ही उपयोग करना चाहिए । प्रत्येक पूजनमें एक देवताकी ही प्रधानता रहती है । इसी बातको अब विस्तारपूर्वक बतला रहे हैं ॥ ३७४ ॥ शिवकी पूजामें लिङ्ग उपास्य रहता है । इसलिये उपाका ध्यान करना चाहिए । इसमें उपासिका राममुद्रा है और लिङ्गतोभद्रके ध्यान ही इसमें भी आवाहन किया जाता है । रामतोभद्र विष्णुपरक है ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥ इसमें रमा राम ये वर्ण चिह्नित किये हुए रहते हैं । इसलिए कुछ लोग रामतोभद्रकी देवीपरक भी कहते हैं । अस्तु, कहनेका भाव यह है कि यह भद्र सब कामोंमें प्रयुक्त किया जा सकता है ॥ ३७७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये पंच-  
 रामदेवजवाण्डेयकुसुमज्योत्स्ना'वापाटीकासहिते मनोहरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामनोमद्वये देवताओंकी स्थापनाविधि तथा रामनवमीकी कथा )

अथ सर्वतोमद्र तद्देवताश्च तिरुवन्ते । प्राणानायस्य देशकालौ स्मृत्वा रामनोमद्रदेवतास्थापनं वा रामलिंगनोमद्रदेवतास्थापनं वा रमानामनोमद्रदेवतास्थापनं वा रमानामनोमद्रदेवतास्थापनं करिष्ये इति संकल्प्य । ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रस्य वागदेवभूषिः त्रिष्टुप्छन्दः ब्रह्मादेवता मयास्थापने विनियोगः ॥ 'ब्रह्मजज्ञानं' सर्वतोमद्रमध्ये ब्रह्माणमावाहयामि ॥ १ ॥ उपरे वापीश्रीगमामे 'वाष्पायस्व' सोमाय नमः सोममावाहयामि ॥ २ ॥ ईशान्यां खड्डेदौ 'तमोशानं' ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि ॥ ३ ॥ पूर्वस्यां वाप्यां 'पतारमिद्रं' इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि ॥ ४ ॥ आग्नेयां खड्डेदौ 'अग्निदत्तं' अग्नये नमः अग्निमावाहयामि ॥ ५ ॥ दक्षिणस्यां वाप्यां 'यमायस्व' यमाय नमः यममावाहयामि ॥ ६ ॥ नैर्ऋत्यां खड्डेदौ 'असुन्दत्तं' निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि ॥ ७ ॥ पश्चिमायां वाप्यां 'तत्त्वायामि' वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि ॥ ८ ॥ वायव्ये खड्डेदौ 'जानोनिष्ठुद्भिः' वायवे नमः वायुमावाहयामि ॥ ९ ॥ वायुमोममध्ये मद्रे 'निवेशसीकं' ध्रुवं अर्ध्यां सोम आः अनिलं जनत प्रत्युष प्रभासमित्यहवभूनावाहयामि ॥ १० ॥ सोमेश्वरमध्ये मद्रे 'नमस्ते रुद्र' वीरभद्र सुदु मिमिक्षं अर्जकपादं अहिर्बुध्न्यं पिनाकेन ध्वरनाभीधर कपालिन दिक्पति रथाणुं रुद्रमिन्येकादश रुद्रानावाहयामि ॥ ११ ॥ ईशानेद्रमध्ये मद्रे 'वाकृष्णेन' भगं वरुण सूर्य वेदोर्गं भानु रवि तमस्ति द्विग्यरेतस दिवाकर मित्र आदित्यं विष्णुमिति द्वादशादिन्यानावाहयानि ॥ १२ ॥ इन्द्राग्निमध्ये मद्रे 'अधिवन्ता सैजसा चतुः' अश्विनीकुमराभ्यां नमः अश्विनौ देवावाहयामि ॥ १३ ॥ अग्निपममध्ये मद्रे 'समाभ्यर्णिर्गुतो' सवैहकान् देवानावाहयामि ॥ १४ ॥ यमनिर्ऋतमध्ये मद्रे 'अमित्वं देव' यमेभ्यो नमः यमानावाहयामि ॥ १५ ॥ निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये मद्रे

अथ सर्वतोमद्र और उसके देवताओं के आवाहन तथा स्थापन की विधि बखलाते हैं । प्राणायामपूर्वक दश काल दारिका उन्धारण करके "रामनोमद्र के देवता का स्थापन, गितापद्र के देवता का स्थापन, रामनामनोमद्र के देवता का स्थापन यथा रमानामनोमद्र के देवता का स्थापन कहें ।" ऐसा संकल्प करके "ब्रह्मजज्ञानम्" आदि मंत्र की पहला हुत्र विनियोज करे । "ब्रह्मजज्ञानम्" यह मंत्र पढ़कर ब्रह्मा का आवाहन करे । उत्तर वापी के पास 'वाष्पायस्व' यह मंत्र पढ़कर सोम का आवाहन करे ॥ १ ॥ २ ॥ ईशान के खड्डेन्दु में 'तमोशानं' इस मंत्र से ईश का आवाहन करे । ३ ॥ पूर्व की वापी में 'पतारं' इस मंत्र से इन्द्र का आवाहन करे ॥ ४ ॥ अग्निशोण के इन्दु में 'अग्निदत्तं' इस मंत्र से अग्निक का आवाहन करे ॥ ५ ॥ दक्षिण वापी में 'यमायस्व' इस मंत्र से यम का आवाहन करे ॥ ६ ॥ नैर्ऋत के खड्डेन्दु में 'असुन्दत्तं' इस मंत्र से निर्ऋतिका आवाहन करे ॥ ७ ॥ पश्चिम वापी में 'तत्त्वायामि' इस मंत्र से वरुण का आवाहन करे ॥ ८ ॥ वायव्य कीप के खड्डेन्दु में 'जानो निष्ठुद्भिः' इस मंत्र से वायु का आवाहन करे ॥ ९ ॥ वायु और सोम के मध्य वाले मद्र में 'निवेशसीकं' इस मंत्र से ध्रुव, अर्ध्वर, सोम आदि आठ वस्तुओं का आवाहन करे ॥ १० ॥ सोम और ईशान के मध्य वाले मद्र में 'नमस्ते रुद्र' इस मंत्र से वीरभद्र, शम्भु, दारुण, अर्जकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, भूनाभीधर, कपाली, दिक्पति, रथाणु और रुद्र इन एकादश रुद्रों का आवाहन करे ॥ ११ ॥ ईशान और इन्द्र के मध्य वाले मद्र में 'वाकृष्णेन' इस मंत्र से भग, वरुण, सूर्य, वेदोर्ग, भानु, रवि, तमस्ति, द्विग्यरेतस, दिवाकर, मित्र, आदित्य और विष्णु इन द्वादश सूर्यों का आवाहन करे ॥ १२ ॥ इन्द्र और अश्विन के मद्र में 'अधिवन्ता सैजसा' इस मंत्र से अश्विनोक्तुमारों का आवाहन करे ॥ १३ ॥ अग्नि और यम के मध्य वाले मद्र में 'समाभ्यर्णिः'

‘आर्यगौः०’ भूतनागोभ्यो नमः भूतनागावाहयामि ॥ १६ ॥ वरुणवायुमध्ये मन्त्रे नदीभ्यः  
 पौञ्चिकं गन्धर्वाप्सरोग्भ्यो नमः गन्धर्वाप्सरस आवाहयामि ॥ १७ ॥ ब्रह्मोसमध्ये वाप्या  
 ‘यदक्रन्दः प्रथमं०’ स्कन्दस्य नमः स्कन्दमावाहयामि ॥ १८ ॥ ‘नमः शंभवे०’ नन्दीश्वराय नमः  
 नन्दीश्वरमावाहयामि ॥ १९ ॥ ‘भद्रं कर्णेभ्यः०’ शृङ्गाय नमः शृङ्गमावाहयामि ॥ २० ॥ ‘विश्वकर्मा-  
 हज०’ महाकालाय नमः महाकालमावाहयामि ॥ २१ ॥ महेशानमध्ये वल्लीषु ‘आदितिर्यो०’  
 ऋक्षादिभ्यो नमः ऋक्षादीनावाहयामि ॥ २२ ॥ त्र्येदुमध्ये वाप्या ‘श्रीश्रुते०’ दुर्गायै नमः दुर्गामा-  
 वाहयामि ॥ २३ ॥ ‘इदं विष्णु०’ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि ॥ २४ ॥ ब्रह्माग्निमध्ये वल्लीषु  
 ‘उदीरिता०’ स्वधायै नमः स्वधामावाहयामि ॥ २५ ॥ ब्रह्मवृक्षमध्ये वाप्या ‘अरसृन्धो०’ सृन्धये  
 नमः सृन्धुमावाहयामि ॥ २६ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्या ‘गणनात्वा०’ गणपतये नमः गणपति-  
 मावाहयामि ॥ २७ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्या ‘शशोदेवी०’ अश्वीने नमः अश्व आवाहयामि ॥ २८ ॥  
 ब्रह्मवायुमध्ये वल्लीषु ‘मरुतोयस्य०’ मरुते नमः मरुतमावाहयामि ॥ २९ ॥ ब्रह्मणः पादमूले  
 कणिकावः ‘स्योनपृथिवि०’ पृथ्व्यै नमः पृथ्वीमावाहयामि ॥ ३० ॥ तत्रैव ‘पञ्च नद्यः सरस्वती०’  
 पञ्चादिसर्वनदीरावाहयामि ॥ ३१ ॥ तत्रैव धाम्नोघाम्नोभर्जस्तनोवरुण० समसागरैभ्यो नमः सम-  
 सागरानावाहयामि ॥ ३२ ॥ ततः कणिकोपरि नाममन्त्रेण मेरवे नमः मेरुमावाहयामि ॥ ३३ ॥ ततः  
 पीतपद्मिनी सोमादिसन्निधौ क्रमेण आयुधानि सोममर्मापे गदायै नमः गदामावाहयामि ॥ ३४ ॥  
 ईशानसमीपे शृङ्गाय नमः शृङ्गमावाहयामि ॥ ३५ ॥ इन्द्रसमीपे वज्राय नमः वज्रमावाहयामि ॥ ३६ ॥  
 अग्निमर्मापे शक्तये नमः शक्तिमावाहयामि ॥ ३७ ॥ यमसमीपे दण्डाय नमः दण्डमावाहयामि ॥ ३८ ॥  
 निर्ऋतिमर्मापे खड्गाय नमः खड्गमावाहयामि ॥ ३९ ॥ वरुणमर्मापे पाशाय नमः पाशमावाह-  
 यामि ॥ ४० ॥ वायुमर्मापे अंकुशाय नमः अंकुशमावाहयामि ॥ ४१ ॥ पुनः सोमस्योत्तरे सदा समीपे

इस मन्त्रसे सप्तैतुक विष्णुदेवता आवाहन करे ॥ १४ ॥ यम और निर्ऋतिके बीचवाले पदमे ‘ममिष्य देव’  
 इस मन्त्रसे यमना आवाहन करे ॥ १५ ॥ निर्ऋति और वरुणके बीचवाले मध्यमे ‘आर्यगौ’ इस मन्त्रसे भूतो  
 और नागोका आवाहन करे ॥ १६ ॥ वरुण और वायुक मध्यमे नदीभ्यः’ इस मन्त्रमे गन्धर्गों और अप्सराओं-  
 का आवाहन करे ॥ १७ ॥ ब्रह्मा और सोमक मध्यवाली वाप्यामे ‘यदक्रन्द’ इस मन्त्रमे स्कन्दका आवाहन करे  
 ॥ १८ ॥ ‘नमः शंभवे’ से नन्दीश्वर, ‘भद्रं कर्णेभ्यः’ से शृङ्ग और ‘विश्वकर्मा’ इस मन्त्रसे महाकालका आवाहन  
 करे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्रह्मा और ईशानक मध्यवाली वल्लीषोमे ‘आदितिर्यो’ इस मन्त्रसे ऋक्ष आदिका  
 आवाहन करे ॥ २२ ॥ ब्रह्मा और इन्द्रके मध्यवाली वाप्यामे ‘श्रीश्रुते’ इस मन्त्रके दुर्गाका आवाहन करे  
 ॥ २३ ॥ ‘इदं विष्णुः’ इस मन्त्रसे विष्णुका आवाहन करे ॥ २४ ॥ ब्रह्मा और अग्निक मध्यवाली वल्लीमे  
 ‘उदीरिता’ इस मन्त्रसे स्वधाका आवाहन करे ॥ २५ ॥ ब्रह्मा और यमके मध्यवाली वाप्यामे ‘अरं सृन्धो’ इस  
 मन्त्रसे सृन्धुका आवाहन करे ॥ २६ ॥ ब्रह्मा और निर्ऋतिके मध्यवाली वल्लीषोमे ‘गणनात्वा’ इस मन्त्रसे  
 गणपतिका आवाहन करे ॥ २७ ॥ ब्रह्मा और वरुणक मध्यवाली वाप्यामे ‘शशो देवी’ इस मन्त्रसे अश्वका  
 आवाहन करे ॥ २८ ॥ ब्रह्मा और वायुके मध्यवाली वल्लीषोमे ‘मरुतो यस्य’ इस मन्त्रसे मरुतका आवाहन  
 करे ॥ २९ ॥ ब्रह्माके पाँके पासवाला कणिकाके नीचे ‘स्योन पृथिवि’ इस मन्त्रसे पृथ्वीका आवाहन करे  
 ॥ ३० ॥ वही ही ‘पञ्चनद्य’ इस मन्त्रसे पञ्चा आदि सब नदियोंका आवाहन करे ॥ ३१ ॥ वही ही ‘धाम्नो  
 घाम्नो’ इस मन्त्रसे सप्त सागरोंका आवाहन करे ॥ ३२ ॥ इसके बाद कणिकाके ऊपर नाममन्त्रसे मेरुका  
 आवाहन करे ॥ ३३ ॥ पीत परिमिश्र सोम आदिके पास क्रमशः आयुधोंका आवाहन करे । गदाके नाम-  
 मन्त्रसे गदाका, ईशानके समीप शृङ्गके नाममन्त्रसे शृङ्गका, इन्द्रके समीप वज्रका, अग्निके पास शक्तिका  
 यमके समीप दण्डका, निर्ऋतिके पास खड्गका और वरुणके पास पाशका आवाहन करे ॥ ३४-४० ॥ फिर वायुके



गौतमाय नमः गौतमाय नमः ॥४२॥ ईशान्यां भरद्वाजाय नमः भरद्वाजाय नमः ॥४३॥  
 पूर्वै विश्वामित्राय नमः विश्वामित्राय नमः ॥४४॥ आग्नेय्यां कश्यपाय नमः कश्यपाय नमः ॥४५॥  
 दक्षिणे जमदग्निने नमः जमदग्निने नमः ॥४६॥ नैऋत्यां बलिष्ठाय नमः बलिष्ठाय नमः ॥४७॥  
 पश्चिमे अत्रये नमः अत्रये नमः ॥४८॥ वायव्यां अरुन्धत्यै नमः अरुन्धत्याय नमः ॥४९॥  
 पुनः पूर्वदिक्कमेण पूर्वै विश्वामित्रमर्माये ऐन्द्राय नमः ऐन्द्राय नमः ॥५०॥  
 आग्नेय्यां कौमर्यै नमः कौमर्यै नमः ॥५१॥ दक्षिणे ब्राह्मणे नमः ब्राह्मणे नमः ॥५२॥  
 नैऋत्यां वाराह्यै नमः वाराह्यै नमः ॥५३॥ पश्चिमे चासुन्दार्यै नमः चासुन्दार्यै नमः ॥५४॥  
 वायव्ये वैष्णव्यै नमः वैष्णव्यै नमः ॥५५॥ उत्तरे माहेश्वर्यै नमः माहेश्वर्यै नमः ॥५६॥  
 ईशान्यां वैनायक्यै नमः वैनायक्यै नमः ॥५७॥ अष्टदलमध्ये सूर्याय नमः सूर्याय नमः ॥५८॥  
 वायुपूर्वाद्यष्टदिषु यथाम्यानेषु पूर्वै सोमाय नमः सोमाय नमः ॥५९॥ आग्नेय्यां मौमाय नमः मौमाय नमः ॥६०॥  
 दक्षिणे बुधाय नमः बुधाय नमः ॥६१॥ नैऋत्यां बृहस्पतये नमः बृहस्पतये नमः ॥६२॥  
 पश्चिमे शुक्राय नमः शुक्राय नमः ॥६३॥ वायव्यां अन्नश्रवाय नमः अन्नश्रवाय नमः ॥६४॥  
 उत्तरे राहवे नमः राहवे नमः ॥६५॥ ईशान्यां केतवे नमः केतवे नमः ॥६६॥  
 एता देवताः सर्वतोमद्रे प्रतिष्ठाप्य ततः परिधिभूतपत्नी सुवेगाय नमः सुवेगाय नमः ॥६७॥  
 सर्वेषु लिङ्गेषु रुद्राय नमः रुद्राय नमः ॥६८॥ सर्वासु वायुषु नलाय नमः नलाय नमः ॥६९॥  
 सर्वेषु भद्रेषु सुधीशाय नमः सुधीशाय नमः ॥७०॥ सर्वेषु तिर्यग्भेदेषु गवयाय नमः गवयाय नमः ॥७१॥  
 सर्वासु पीतशृङ्गलासु अंगदाय नमः अंगदाय नमः ॥७२॥ सर्वासु कृष्णशृङ्गलासु विभीषणाय नमः विभीषणाय नमः ॥७३॥  
 सर्वासु रत्नीषु जायवते नमः जायवते नमः ॥७४॥ सर्वेषु खड्गेषु मेधाय नमः मेधाय नमः ॥७५॥  
 सर्वासु परिधिषु द्विविधाय नमः द्विविधाय नमः ॥७६॥ मुद्रायां रामजानकाभ्यां नमः रामजानकाभ्यां नमः ॥७७॥  
 मुद्रायाः पश्चिमे पीतपरिधौ लक्ष्मणाय नमः लक्ष्मणाय नमः ॥७८॥  
 मुद्रायाः उत्तरे भरताय नमः भरताय नमः ॥७९॥ मुद्रायाः दक्षिणे अशुभ्याय नमः अशुभ्याय नमः ॥८०॥  
 मुद्रायाः पुरतः वायुपुत्राय नमः वायुपुत्राय नमः ॥८१॥ बहिर्निषिद्धपरिधिषु इवतपरिधौ

सोमं अङ्गुष्ठाका आवाहनं करे ॥ ४१ ॥ तदनन्तरं सोमके उत्तर ओर रुद्रांक पश्चिम ओर आवाहनं करे ॥ ४२ ॥ ईशान कोणमें भरद्वाजका, पूर्व दिक्कामित्रका, आग्नेयमें कश्यपका, दक्षिणमें जमदग्निना, नैऋत्यमें बलिष्ठका, पश्चिममें अत्रय और वायव्यकोणमें अरुन्धत्यै का आवाहन करे ॥ ४३-४६ ॥ फिर पूर्व आदि दिशाओंमें कमल पुष्प विधायन करके सनाप एतिका आवाहन करे ॥ ४७ ॥ आग्नेय कोणमें कौमारीका, दक्षिणमें ब्राह्मणका, नैऋत्यमें वाराहका पश्चिममें चासुन्दारका, वायव्यमें वैष्णवका, उत्तरमें माहेश्वरीका और ईशान कोणमें वैनायकका आवाहन करे ॥ ४८-४९ ॥ अष्टदलक मध्यमें सूर्यका आवाहन करे, बाह्यके पूर्व आदि आठ दिशाओंमें यथाम्याने निम्नलिखित देवताओंका आवाहन करे पूर्वमें सोमका, आग्नेय कोणमें मौमाका, दक्षिणमें बुधका, नैऋत्यमें बृहस्पतिक, पश्चिममें शुक्रका वायव्यमें अन्नश्रवका, उत्तरमें राहका और ईशान कोणमें केतुका आवाहन करे ॥ ५०-५६ ॥ सर्वतोमद्रे द्वा देवताओंकी स्थापना करके परिधिभूत पत्नियोंमें सुवेगाका आवाहन करे ॥ ५७ ॥ सब लिङ्गोंमें रुद्रका सब वायुओंमें नलाका, सब भद्रोंमें सुधीशका, सब पीत शृङ्गलोंमें अङ्गदका और सब कृष्ण शृङ्गलोंमें विभीषणका आवाहन करना चाहिए ॥ ५८-७३ ॥ तब पत्नियोंमें रामजानका आवाहन करे ॥ ७४ ॥ उसी प्रकार सब कृष्णोंमें मेधाका, सब परिधिओंमें द्विविधका, मुद्राओंमें राम और जानकीका आवाहन करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ मुद्राकी पश्चिमवाली पीत परिधिमें लक्ष्मणका आवाहन करे ॥ ७८ ॥ मुद्राके उत्तर ओर भरतका आवाहन करे ॥ ७९ ॥ मुद्राके दक्षिण ओर अशुभका आवाहन करे ॥ ८० ॥ मुद्राके पुरतः

भागीरथ्यै नमः भागीरथीया० ॥ ८२ ॥ रक्तपरिधौ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीया० ॥ ८३ ॥ कृष्णपरिधौ यमुनायै नमः यमुनाया० ॥ ८४ ॥ एवमेव रमारामभद्रेऽप्यावाहनं कार्यम् । रमारामभद्रे मुदायामेव विशेषः । आरौ रमाभावाद्यै राममावाहयेत् । एवमावाहनं कृत्वा षोडशोपचारैः पूजयेत् । शेषान्नेन दिग्बलिः कार्यः ॥

इति आनन्दरामायणात्सौराष्ट्रमनोभद्रेरतादृशपत्रविधिः ।

### अथ रामनवमीकथा

श्रीरामदास उवाच

शिष्य यद्यन्विष्य तस्मै रामाय तद्ददात्पदम् । मत्सेषु चैवमावस्तु राघवस्यातिवन्तमः ॥ १ ॥  
पक्षयोः नितरधस्तु प्रियोऽस्ति राघवस्य हि सखासु त्रिदिषु श्रेष्ठा नवमी राघवप्रिया ॥ २ ॥  
सूर्यवज्रममुद्रितमन्मन्त्रं भानुवासरः । प्रियोऽतिराघवस्यैव नक्षत्रेषु पुनर्वसुः ॥ ३ ॥  
चंपकः पुष्पजाती हि तुलसी चै तथैव च । अथवा नवकं चापि पुष्पाणां राघवप्रियम् । ४ ॥  
जातिश्वपकर्मदारी तुलसी मुनिमालती । दमनः केतकी सिद्धी पुष्पाणां नवकं स्मृतम् ॥ ५ ॥  
तथा नवविधं चान्नं राघवस्यातिवन्तमम् । मोदको लड्डुको मण्डो पूर्णगर्भाय फेणिका ॥ ६ ॥  
बटकः पर्यटः स्वाद्यं घृतपक्वं नवं त्रिविधं । एतानि नव भक्ष्याणि राघवस्य प्रियाणि हि ॥ ७ ॥  
अथवाऽन्यथाप्यस्यामि दिव्याश्चनवकं शुभम् । मोदको लड्डुको मण्डो बटकः फेणिका तथा ॥ ८ ॥  
रत्नमोदनः शाकं पायसं नवकं शुभम् । अन्यश्चकृणुस्व भो शिष्य नशान्न राघवप्रियम् । ९ ॥  
एकाशीतिकुडवं च मोक्षीरं तण्डुलाश्चथा । सगदद्विकुडवाश्च मुद्राश्च त्रितुषाश्चथा ॥ १० ॥  
कुडवस्त्वेक एवाथ अकेरा कुडवा नव । त्रिकुडव मनु प्रोक्तं घृतं च कुडवद्वयम् ॥ ११ ॥  
मारीचं कुडवाष्टांशमितं नारीकलं तथा । कुडवस्त्वेक एवाथ जानीयन्निश्चयैव च ॥ १२ ॥

हुमा आवाहन कर ॥ ८१ ॥ नहरको लोभ परिधियोगसे अनेक परिधिम आवाहन करवाया जाता है । ८२ ॥ रक्त परिधिम सरस्वतीजीका आवाहन करे ॥ ८३ ॥ काला परिधिम यमुनाका आवाहन करे ॥ ८४ ॥ रमा और रामक भद्रम भी इसी तरह आवाहन करना चाहिए । रमारामक भद्रकी मुद्रामें ही विशेषता है । चहूँ रमाका आवाहन करके रामका आवाहन करना चाहिए । इस तरह आवाहन करके षोडशोपचारके पूजन कर और बाकी बचे अन्नसे दिग्बलि दे ॥

इति रामतोभद्रदेवतास्थापनविधिः ।

श्रीरामदासन कथा— हे शिष्य । रामचन्द्रजीका जो जो वस्तुये प्रिय है, अब उन्हें बसलाता हूँ । सब स्त्रीमें चैत्रका महोत्स रामको प्रिय है । १ । गुरुज कृष्ण इन दोनों वस्तुमें रामकी शुभलक्षणा प्रिय है । सब तिथियोंमें नवमी तिथि प्रिय है ॥ २ ॥ सूर्यवज्रमें रामका जन्म हुआ था । इसलिये उन्हें रविवार विशेष प्रिय है । सब नक्षत्रोंमें उन्हें पुनर्वसु नक्षत्र प्रिय है । ३ । फूलोंमें चम्पक तथा तुलसी प्रिय है । नौ पुष्प रामको विशेष प्रिय हैं । ४ ॥ जैसे जूँ, चम्पा, मन्दार, तुलसी, चम्पली, मालती, दमनक, केतकी और सिद्धी इन्हीं फूलोंको एकत्र करके रामचन्द्रको अर्पित करना चाहिये । ५ । उसी तरह नौ प्रकारका अन्न भी भगवान्‌की प्रिय है । वे नवों ये हैं—मोदक, लड्डुक, मण्ड, पूरनपूड़ी, बटक, बतारफेरी, पर्यट, स्वाद्य भीये बना हुआ पक्वान्न, ये नौ भी भगवत्पदार्थ रामचन्द्रजीको प्रिय हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ जब दूसरे नौ प्रकारके खाद्य पदार्थ बतलाते हैं—मोदक, लड्डुक, मण्ड, बटक, फेणिका, शाक, शाक, पर्यट और पायस ये ही नौ वस्तु हैं । हे शिष्य । अब रामको दूसरे प्रिय अन्न बतलाते हैं ॥ ८ । ९ ॥ एकाशी कुडव लीका दूध, उतना ही चावल, सदा दो कुडव छिन्का उतारी हुई मूँग ॥ १० ॥ एक कुडव चानी तीन कुडव महु, दो कुरव घी, एक कुडवका अष्टमांश अफीम मिर्च, एक कुडव नारियलकी गरी, एक कुडवका अष्टमांश जायत्रि, इनको मिलाकर बनाया हुआ पाक रामचन्द्रजीको प्रिय है । इसलिये स्त्रीको चाहिए कि ये पदार्थ बनाकर भगवान्‌की अर्पण करें । ११ ॥ १२ ॥

प्राक्षा मरिचमानेन नवाक्षं नवभिस्त्रिदश । तोषद रामचन्द्रस्य प्रकन्या कायै मदा नरैः ॥१३॥  
 लघु नवाक्षं वक्षामि वैवेद्यार्थं निरंतरम् । कुडवा नव गोधीरं नहुलाः कुडवस्य च ॥१४॥  
 चतुर्भासिपिना प्राक्षाः कुडवाष्टांशमभिनाः । प्राक्षा त्रिपुरमुद्राय कुडवार्थं भिता स्मृता ॥१५॥  
 पुत्रं सुदयम प्राक्ष्य तावन्मानं मधु स्मृतम् । तावन्मानं श्रीफल च मरिचं टंकसंमिनम् ॥१६॥  
 टकार्था जातिपत्रश्च नवाक्षं लघु कीर्तितम् । कुडरोऽर्कटकमितटको माषचतुष्टयम् ॥१७॥  
 लघु नवाक्षमेतच्च राधराय निवेदयेत् । निरतरं हि पूजायां राधवस्यातिहर्षदम् ॥१८॥  
 श्वजम्बुकपिन्धाश्च बीजपूरं च दादियम् । खड्गरीं नारिकेल च कदलीफलमेव च ॥१९॥  
 पनसं चेति रामाय फलानि नव सर्वदा । एतान्यतिप्रियाण्यत्र पूजायां तन्निवेदयेत् ॥२०॥  
 श्रीशफल च जनीरं मार्गं स्निग्धमजकम् । जार्तीफलं मातुलंगं तथा द्राक्षाफलं शुभम् ॥२१॥  
 उर्वाकं तथा धात्रीफलं चैतानि च नव । फलानि रामपूजायामुक्तानि मुनिभिः सदा ॥२२॥  
 नरोपचारस्तांबूलो राधराय निवेदयेत् । नामवल्लीः ककुत्थं च खडिगः मधु एव च ॥२३॥  
 जार्तीपत्रो लवणं च जार्तीफलवरागके । एता चेति नवविधस्तांबूलः कीर्त्यते वृद्धैः ॥२४॥  
 नवरात्रेपवाराश्च राधराय निवेदयेत् । छत्रं सिद्धामन यान चामरं व्यजनं तथा ॥२५॥  
 पानतांबूलश्च च पात्रं निष्ठोवनस्य च । वस्त्रकोशश्चेति राज्ञामुपचारा नव स्मृताः ॥२६॥  
 नवाद्य मोक्षयस्तूनि राधराय निवेदयेत् । चंदनं पुष्पमालां च द्रव्यं परिमलं तथा ॥२७॥  
 अवतंसः फलं चापि सुगधर्वलमुपमम् । ताम्बूलं कस्तुरी चापि तथा रक्ताजताः शुभाः ॥२८॥  
 एतानि मोक्षयस्तूनि राधराय निवेदयेत् । नवोपचाराः सस्याऽपि राधराय समर्पयेत् ॥२९॥  
 वर्षाङ्गुलिका रम्या विहानं चोषवर्द्धणम् । आदर्शो दीपिका तोयपात्रं प्रावरणं शुभम् ॥३०॥  
 व्यजनञ्चेति श्रद्धावाधोपचारा नव स्मृताः । नव वस्त्राणि रामाय देवान्पतिमदांति च ॥३१॥  
 पीतांबरधुनरीयं चोष्णीपं ककुत्थं तथा । उष्णापोर्व्यस्थितं दिव्यं तथा च कटिवंधनम् ॥३२॥

॥ १३ ॥ अब मैं अर्पण करने योग्य लघु नवाक्ष बतलाता हूँ— नौ कुडव गायका दूध, एक कुडवका चतुषाण चाक्स, कुडवका अष्टमाश जिना छिम्क्रेको धुलो मूंग, जावा कुरव चीनी, मूंगके बराबर ही घो, उठना ही मधु, उठना ही श्रीफल, एक टंक काली मिर्च, जावा टंक जार्तिपत्र, ये लघु नवाक्ष कहलाते हैं । बारह टंकका एक कुडव होता है और बार मासेके बराबर एक टंक होता है । यह लघु नवाक्ष रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए । यदि निरन्तर यह नवाक्ष राधचन्द्रजीको अर्पण किया जाय तो भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं ॥ १४-१८ ॥ माष, जामुन, केला, बीजपूर, अनार, कनूर नारियल, केला और कटहल ये नौ फल रामचन्द्रजीको अतिशय प्रिय हैं । पूजाम इन्हे भी अर्पण करना चाहिये । कुम्हड़ा, नीबू, नारंगी, कतरु, जामुन, बिजौर, अंगूर ककड़ी तथा मोक्षय ये नौ फल रामजी पूजाम आना आवश्यक हैं ॥ १९-२२ ॥ उसी तरह नौ उपचारोंके साथ ताम्बूल भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिये । ताम्बूलके नौ उपचार ये हैं—पान, सुपारी, खैर, चूना, जावित्री, मायफल, कपूर, कसर और इलायची । नौ राजोपचार भी रामचन्द्रजीको अर्पण करने चाहिए । जैसे—छत्र, सिद्धामन, श्व, चमर, पंका, विरास, पानदान, मोनाक्षान और कपड़ेकी पिटारी, ये ही रामजीके नौ उपचार बतलाये गये हैं । उसी प्रकार नौ मोक्ष वस्तु भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए । ये वस्तुये इस प्रकार जाननी चाहिये—कन्दन, फूलोंकी मालाएँ, रत्न आदि सुगन्धित द्रव्य, तरह-तरहके फल, उनमें सुगन्धित तेल ताम्बूल, कस्तूरी और लाल बरस, इन मोक्ष वस्तुओंकी रामचन्द्रजीको अर्पण करे । इसी तरह नौ उपचारपुल गव्या भी देनी चाहिये ॥ २३-२९ ॥ पलङ्ग, वहा, वहिवा चाँदनी, तकिया, लीबा, शीपक, जलपात्र, चदरा और व्यजन, ये गव्याके नौ उपचार हैं । इसी तरह अन्यन्त सुन्दर नौ कपड़े भी रामचन्द्रजीको अर्पण करे । ३० ॥ ३१ ॥ जैसे—पीताम्बर, उपरना, फाटी, कपुती, पदवाके ऊपर बँधनेवाला

मुख्यशोधनार्थं च त्रिपुलं हाकथोपयुक्तम् । तथा प्रावरण दिव्यं नव रत्नाणि भो दिज ॥३३॥  
 नव दिव्याण्यम्बुकरा देवाः श्रीगणेशाय हि । कुण्डले कंकणे माला वैद्युते नूपुरे तथा ॥३४॥  
 पदार्थं कटिसूत्रं च मृद्वला मुद्रेकेनि च । एते नव त्वलंकारा देवा रत्नाय भक्तितः ॥३५॥  
 नव गिण्यं यथा रामर्षाभेदानि महानि च । मरकतान्यजम्ब्याणि तथाम्रे रत्नितानि हि ॥३६॥  
 मुख्यान्तर्य पदार्था हि नवकैषु मया स्मृताः । एभ्यस्त्वन्य पदार्थाश्च ये ये सति महत्प्रदाः ॥३७॥  
 ते सर्वे राघवाशानिभक्त्या वेदास्तु पूजने । प्रत्यहं रामचन्द्रस्य त्रिकाल पूजनं नरैः ॥३८॥  
 कार्यं विधानुसारेण न कदा शक्यमाचरेत् । प्रतिपदिनमारभ्य पारम्भ्य नवमीतिथिः ॥३९॥  
 तत्रद्विशेषतः कार्यं प्रत्यहं गणपूजनम् । विविधैर्मण्डपार्थश्च मण्डप रघुनन्दनम् ॥४०॥  
 पारायण नद्रे हि कर्त्तव्यं तत्रभिदिनैः । अन्नदरमवगति पठतीयं तु सर्वदा ॥४१॥  
 नवम्यां राघवं गमतीर्थं वाहनमस्थितम् । नीत्वा मण्डपान्तर्यैर्ध्वजाद्यैर्द्वन्द्वभिरार्चनं ॥४२॥  
 अभिषेकस्तत्र कार्यो रुद्रसूक्तैः सुगुणदैः । तथा पुरुषसूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ॥४३॥  
 विष्णुसूक्तादिभिः सूक्तैरभिषिष्य रघुनन्दनम् । पूजनं विष्णुरेणाद्य कृत्वा भेदं समानयेत् ॥४४॥  
 ततो दरे कर्त्तव्यं स्वयं कार्याणि वा परैः । गायकैः कर्णापाणि श्रेष्ठशर्मिर्नर्चनान्यपि ॥४५॥  
 ततः स्वयमप्योपशाय भक्त्या विप्रप्रपूजनम् । कार्यं वै गायकानां च पूजनं विस्तरं हि ॥४६॥  
 रात्री जाग्राण कार्यं कथाभिर्गीतनृत्यकैः । दक्षम्यां प्राङ्मुखाय स्नात्वा मण्डप्य राघवम् ॥४७॥  
 मध्यह्नं रामचन्द्रस्य पूजनं नासजेषु हि । कार्यं तस्य विधानं ते वदाम्यद्य मृणुष्व तत् ॥४८॥  
 एकं धूमं तु विप्रस्य विप्राष्ट च निमज्जयेत् । भूमिं गृहे विलिख्याथ गोमयेनानिविस्तृणाम् ॥४९॥  
 रत्नवल्क्याश्च पद्मानि नीलपांतादिवर्णकैः । तत्र समंततः कृत्वा मध्ये सिंहासनं शुभम् ॥५०॥  
 स्थाप्य तत्र महावस्त्रैरामनं परिकल्पयेत् । अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं शुभम् ॥५१॥

दिव्य वस्त्रं कपडबन्धन, रुमाक, माला तथा दुग्धं ये नौ दिव्य वस्त्र श्रीरामचन्द्रजीकी देना चाहिए ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस तरह नौ प्रकारके दिव्य अलङ्कार भी समर्पण करे : कुण्डल, कंकण, माला, वैद्युत नूपुर, पदक, कटिसूत्र ( करचन ), मिकशा और मंथरी, ये नौ अलङ्कार रामचन्द्रजीकी अभिषेकपूर्वक देने चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इस तरह मेरे रामकी प्रमत्त कण्ठलावे अभिरुचि नरक ( नौ वस्तुओंका संघट्ट बतलाना ) । इसमें मेने पारम्भिक चोटीका ही दिग्दर्शन कर दिया है । इनके परिष्कृत भा हजारों पदार्थ हैं पूजान्द्रे भा भक्तिप्रवक्तु अर्पण करना चाहिए । अगला उाचन है कि प्रतिदिन रामचन्द्रजीकी त्रिकाल पूजन कर ॥ ३९-४० ॥ अपनी जैसी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार तर्ज सी कर । रामचन्द्रजीकी प्रार्थना कभी कर्त्तव्य तो करना ही नहीं चाहिए । प्रतिपदासे लेकर नवमी पर्यन्त प्रतिदिन विशेष पूजन करनेका विधान है । यह इस प्रकार है चित्र विविध मण्डप बनकर उसमें रामचन्द्रजीकी पूजा करके उनके आगे नौ दिनोंमें इस आनन्दसमायुक्ता पारायण करे ॥ ३९-४१ ॥ नवमीकी भण्णायकी सकारोपर विडाकर मंगलमय मुदही नगाड़े आदि बाजे तथा श्रवा आदिके साथ परम पवित्र रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त तथा विष्णुसूक्त आदिसे रामतीर्थमें रामचन्द्रजीक अभिषेक करे । इसके अनन्तर विष्णुसूक्तपूर्वक पूजन करके उम्ह घरपर ले आय ॥ ४२-४४ ॥ रातको स्वयं हरिकर्मन करे या और स्त्रोणमे करावे । तदनन्तर भक्तिपूर्वक विप्रों तथा गायकोंका पूजन करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कथा गीत तथा नृत्य आदि करना हुआ रात्रिभर जागरण करे । दक्षम्याकी सवेरे उठकर स्नान कर और रामचन्द्रजीका पूजन करके मध्याह्नके समय ब्राह्मणोंके बीचमें उनका पूजन करे । हे गिण्य ! मैं उसका विधान बतलाता हूँ सुनो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ एक ब्राह्मणस्मृती तथा आठ अन्य ब्राह्मणोंको नियोजित करे । बरकी चमिकी गोशरसे पूव कंठावम लिखावे । फिर नील रीत आदि वर्णोंसे चारों ओर चौक पुरवाकर बीचमें शुभ सिंहासन रखे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर बड़े-बड़े दम्तोंसे सिंहासनको

अथवाऽष्टोत्तरशतं रामलिंगात्मकं शुभम् । अष्टोत्तरशतम् वा रामनोभद्रमुत्तमम् ॥५२॥  
 अथवाऽष्टोत्तरशतं रामनोभद्रमुत्तमम् । विद्यामने निधापय रामस्यामनमुज्ज्वलम् ॥५३॥  
 अष्टोपरि सप्तलीकं तत्र विप्रं निवेशयेत् । पश्चिमाभिमुखे रामभागे तर्क्षीं निवेशयेत् ॥५४॥  
 सीतारामौ तु दम्पत्योराग्राद्यं तदनन्तरम् । तत्पुष्टे लक्ष्मणं विप्रं चित्तयेच्च ततः परम् ॥५५॥  
 भरतं राममग्रे तु अथाग्न भूयुरे तथा ॥५६॥

विप्रेऽञ्जनिमुतं चापि रामस्याग्रे विचित्रयेत् । रामस्य वायुदिग्भागांमुग्रीशदीन् विचित्रयेत् ॥५७॥  
 चतुष्कोणेषु विप्रेषु ततः पूजनमाचरेत् । नवपवनपूत्रेण देवा भोगमवश्यं हि ॥५८॥  
 अथवा पञ्चायतनं पञ्चविप्रेषु चित्रयेत् । समानं शक्तिहीनेन नरेण सर्वदा सुवि ॥५९॥  
 अथवा यत्निनं रामस्याग्ने भक्त्या निवेशयेत् । पूज्यं कल्पयति संतां यतिनाम्ने निवेश्य च ॥६०॥  
 कार्यं मध्यमपूजनं च ततो गेहे सुवायिनीम् । मोक्षं मन्त्रपुत्रः पूज्य भोजनीया मविस्तरम् ॥६१॥  
 आदौ मोक्षराषट्कोः कृत्वा पूजनमुत्तमम् । ततः पूजा तु सर्वेषां कार्या नान्येष्वपारकैः ॥६२॥  
 क्रमेण लक्ष्मणादीनामुपचारैस्तु पौडशं । अथवा सह तन्त्रेण रामपूजनमाचरेत् ॥६३॥  
 भादारवाह विप्रेषु देयमायनमुत्तमम् । ततः प्राश्नाल्पं पादौ च सर्वेषां च पृथक् पृथक् ॥६४॥  
 यत्निपद्मोदकं भिन्नं स्वार्थार्थं नमोत्तमं । ततः पृथक् पृथग्दर्शान् दत्त्वा मुच्यन्तर्दिभिः ॥६५॥  
 ततश्चानमनं दत्त्वा स्नानार्थं जरुमुत्सृजेत् । ततो वस्त्रमवस्थां देवान्यभगणानि हि ॥६६॥  
 समस्ये मन्त्रगुणानि गन्धं देयं मनोहरम् । ततो मन्त्राक्षता देवाः पुष्पमानाम्बुधाऽपगः ॥६७॥  
 ततो माङ्गल्यरक्षणं ततश्छत्रं च चाग्रम् । व्यजनं च ततो देयं देयस्तूर्गागस्तथा ॥६८॥  
 देवा वागाश्च चापानि देयानि हि पृथक् पृथक् । दत्त्वा परिमलादीनि मोक्षवस्तूनि विस्तरम् ॥६९॥  
 धूपो देवरत्नधा दीपो नैवेद्यो दीयतां ततः । अथवाऽन्यच्छर्करादि नैवेद्यार्थं समर्पयेत् ॥७०॥

हंकारे । उसपर अष्टोत्तरशतं अथवा अष्टोत्तरशतम् लिंगात्मकं अथ अथवा रामनोभद्र अथवा रामनोभद्रके ऊपर विप्रदम्पतीको विद्यामे, विप्रके कामपादमे पश्चिमाभिमुख उत्सर्ग स्त्री बैठे ॥५१-५४॥ तदनन्तर उसी विप्रदम्पतीस मातारामका आवाहन करके साक्षात्के पीछे लक्ष्मणका आवाहन करे ॥५५॥ साक्षात्के दाहिनी ओर भरतका स्नान करे । रामचन्द्रजीके आगे उस साक्षात्के ही अञ्जनीपुत्रका स्नान करे । रामके बायाँ कोणमें मुग्रीव आदिका स्नान करे ॥५६॥ ५७॥ फिर चारों कोनोंमें साक्षात्कोका पूजन कर । यह भोगमचन्द्रजीका नवायतन पूजन है । ५८॥ अथवा पंच साक्षात्कोस रामका पञ्चायतन पूजन करे । लेकिन वह शिषान उसीके लिए है कि जो सामर्थ्यविहीन हो ॥५९॥ अथवा रामचन्द्रजीके स्वात्म यतिजी स्थापना करे । सुगरीमें सीताकी कल्पना करके उसे यतिके बायें गम रख दे । ६०॥ तदनन्तर अच्छी तरह रामकी पूजन कर । इसके बाद सोडागिन विप्रपत्नीको सीता मानकर विस्तरपूर्वक पूजन कर और आजन कर ॥६१॥ पहले सीता अथ रामचन्द्रजीका पूजन करके अन्य लोगोंका भी नामा स्कारके उपचारोंसे पूजन करे । प्रथम लक्ष्मण आदिका पौडश उपचारोंसे पूजन करे । अथवा साम्राज्यसार रामकी पूजन करे ॥६२॥ ६३॥ पहले विप्रका आवाहन करके उनसे आसन है । फिर अस्त्र-अन्त्र उन लोगोंके पैर स्कार करके साक्षात्के अलग रख दे । तदनन्तर मन्त्रे मन्त्र आदिसे पृथक्पृथक् वस्त्र आदि दे ॥६४॥ ६५॥ तदनन्तर आचमनके लिए मन्त्र देकर स्नानके लिए जल छोड़ । तत्पश्चात् वस्त्र प्रदान करके अञ्जनी समर्पित करे ॥६६॥ फिर यज्ञोपवीत इकर मनोहर शब्ददान दे इसके बाद साम्ब अथवा एवं पुनः स्नान करे ॥६७॥ इसके पश्चात् माण्डव्य बन्धुके, फिर छत्र, चमर, व्यजन तथा तूणोर दे । तदनन्तर धूप-धन आदि देकर धूप आदि भोग वस्तुओंकी विस्तरपूर्वक प्रदान करे ॥६८॥ ६९॥ तदनन्तर धूप, दीप, नैवेद्य दे । यदि नैवेद्यके लिए कोई पक्वान्न आदि न बना सके तो उसके निमित्त शर्करा आदि प्रदान करे ॥७०॥

मानाफलानि देवानि दीयतांबूल उत्तमः दक्षिणां च ततो हत्वा देवो धुतुर उज्ज्वलः ॥७१॥  
नीराजनं ततः कृत्वा मंत्रपुष्पाणि दीपताम् । प्रदक्षिणानमस्काराश्च कृत्वा ततः परम् ॥७२॥  
सृष्ट्यंगीतार्दिकं कृत्वा प्रार्थयेद्गुनायकम् । विनिमोन्य कर्त्तुं पादौ राघवो संस्थितैर्वरैः ॥७३॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः

शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वद्वयोरन्यन्नकोणादिषु ।

सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारामुनो जम्बवान्

मण्यो नीलसरोजकोमलकृचिं राघवं भजे श्यामलम् ॥७४॥

रामो हत्वा दद्यात्स्यं द्विजवचनमुक्त्वेन यात्राऽक्षयज्ञान्

कृत्वा धुत्वातिभोगानवनिवृत्तविशर्त्तुं गृहीत्वाऽथ मीताम् ।

लब्ध्वा नानास्तुपास्तास्त्ववनिनलगतान्पार्थिवादींश्च जिम्वा

कृत्वा नानोपदेशान् गन्तुनिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥७५॥

नवकाण्डस्यः श्लोकः पठित्वाऽयं हरेः पुरः । ततः क्षमाप्य श्रीरामं पूजां तस्मै समर्पयेत् ॥७६॥

मया साधयते रामनवम्यां यन्मपूजनम् । पाशायणादिकं सर्वं नवरात्रेऽपि यत्कृतम् ॥७७॥

सन्मर्दं नैऽर्पितं त्वद्य ममन्नो भव मे प्रभोः नवायनपूजेयं या कृता नवमीदिने ॥७८॥

नवविप्रेषु साऽप्ययं तेऽर्पिता राघव वै मया । त्वं गृहाण यथाशक्यं कर्त्ता तां त्वं प्रसीद मे ॥७९॥

एवं समर्प्य रामाय सकलं पूजनादिकम् । ततो भोजनरोज्या तान् सन्निवेदयाम भोजयेत् ॥८०॥

पुनर्दत्त्वा तु शंखं दक्षिणां तु विमर्जयेत् । ततः स्वर्गं विप्रतीर्थं गृहीत्वा वै ततः परम् ॥८१॥

यसिपादोष्कं प्राश्य देवतीर्थं ततः परम् । गृहीत्वा भोजनं कार्यं सुहृन्मित्रजनैः सह ॥८२॥

समर्पितं यद्यतये ततश्च ब्राह्मणाय हि । देयं स्वगुणैर्व सर्वं ब्रह्मभूषादिकं शुभम् ॥८३॥

एवं सर्वं राघवस्य पक्षे पक्षे प्रकारयेत् । यथवा सुकल्पसे हि कार्यं व्रतमिदं शुभम् ॥८४॥

इसके बाद नाना प्रकारके फल, शम्बूल, दक्षिणा, सुन्दर दर्शन, नीराजन, मन्त्रपुष्प, प्रदक्षिणा, नमस्कार आदि कथ्याः समर्पण करे । तदनन्तर मूल्यहीन आदि करके सब लोग सामने खड़े होकर रामचन्द्रजीस प्रार्थना करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वामभागमें सीता, साकने हनुमान्जी, पीछे लक्ष्मणजी, दोनों बगल भरत और शत्रुघ्न, बायव्य आवि कोणोंमें सुग्रीव, विभीषण, युवराज बह्मद, जम्बवान् आदि सङ्ग हैं और उनके बीचमें बैठे हुए नील कमलके समान कोमल दीप्तिस्वरूपन यवाम स्वरूपधारी रामका ये भजन करता हूँ ॥ ७४ ॥ रामन रावणको मारकर ब्राह्मणके वाक्यरूपी गौरवसे प्रेरित हो यात्रा तथा अस्त्रयज्ञ आदि किय और विविध प्रकारके भोग भोगे । फिर पाशालम्बाक जाती हुई सीताको उन्होंने पृथ्वीसे वापस लिया । इसके बाद पृथ्वी-मण्डलके बड़े-बड़े राजाओंको परास्त करके हस्तिनापुरके आस-पासवाले वृक्षसे दशका जाता । उन राजाओं की कुमारियोंके साथ अपने पुत्रोंके व्याहृ किये और अन्तमें अपने परम धामको चले गये ॥ ७५ ॥ इस भी काण्डात्मक श्लोकको रामके सामने पढ़कर क्षमा माँगे और की हुई पूजा भगवान्को अर्पण कर ॥ ७६ ॥ साथ ही यह कहता था कि हे प्रभो ! मैंने इस समयतमें रामनवमी तथा नवरात्र ओ पूजन पाशायण आदि किया है, वह सब आपको अर्पण है । हे प्रभो ! आप मरे ऊपर प्रसन्न हो । रामनवमीके जो नौ विज्ञाये मैंने आपको नवायन पूजा की है, वह भी आपको अर्पित है । यथाशक्ति की हुई इस पूजा को स्वीकार करके आप मुझपर प्रसन्न हो ॥ ७७-७९ ॥ इस तरह रामका सब पूजन आदि समर्पण करके विचिक्त् उन विप्रोंको आसनपर बिठलाकर आज्ञा करायें ॥ ८० ॥ फिर शम्बूल और दक्षिणा देकर उन्हें विदा करे । तदनन्तर स्वर्ग ब्राह्मणोंके चरणोदक, यक्षियोंके पादोदक एवं देवताओंके चरणोंके पुष्प-चरणजलसे आचमन करके नागदारी, मित्रों तथा बान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर

मासे मासे सर्वदेव रामोपासकमानवैः । एवं मासव्रतं श्रेष्ठं राघवस्यादितोपदम् ॥८५॥  
 संति व्रतान्यनेकानि जगन्मां पुण्यदानि हि । तथाप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥८६॥  
 व्रतानामुत्तमं चैतद्धुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । अवश्यमेव कर्तव्यं रामोपासकमानवैः ॥८७॥  
 एवं विष्णु मया श्रेष्ठं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । सर्विस्तारं तत्राप्ये हि राघवस्यादितोपदम् ॥८८॥

विष्णुरास उवाच

श्रीरामनवमीमासव्रतस्योद्यापनं वद । कदा कार्यं कथं कार्यं गुरो कृत्वा कृपां मयि ॥८९॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया व्रतं मन्वधानमनाः शृणु । नन्मन्वन्मन्मासव्रतमोत्रनमुत्तमम् ॥ ९० ॥  
 कृत्वा चोत्थापनं कार्यं चैत्रे श्रीरामजन्मनि । नवम्यां समुपोष्याथ कर्तव्यमधिरामनम् ॥९१॥  
 गृहे इन्द्रावने वाप गोष्ठे देवगृहादिषु । समार्जनं गोमयेन कार्यं वा चन्दनादिभिः ॥९२॥  
 ततः पाषाणचूर्णैश्च नानाप्रकारादिकानि हि । भुवि संलेखनीयानि नीलसीतादिवर्णकैः ॥९३॥  
 रत्ननीयानि रम्याणि ततः पत्रादिमन्यके । पुत्राक्तुगमसद्गणां मध्ये त्वेकं वरासनम् ॥९४॥  
 लिखित्वा चित्रवर्णैश्च श्रेष्ठैरेव सुश्रयेन् । उपोपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णश्च षडधः ॥९५॥  
 देवो द्वागणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च । कदलीसमयुक्तानि चेलुदण्डयुतानि च ॥९६॥  
 नानापटाकिंकिणीभिर्वर्णितान्युज्ज्वलानि च । रम्यादर्शमण्डितानि विचित्राणि शुभानि च ॥९७॥  
 चित्रपञ्चैर्वैतानैश्च मुक्ताहारैर्वृतान्यपि । अथ तद्राममद्वरधे कलशे वारिष्पूरिते ॥९८॥  
 ताम्रशर्बं रामचन्द्रे नवावननचिह्नितम् । सावया वृजयेद्रात्री महोत्साहपुरःसरम् ॥९९॥  
 नवपलमिश्रं मूत्रं हवीं कृत्वा प्रपूजयेत् । सौता ईर्ष्या प्रकर्तव्या शुभाऽष्टपलममिता ॥१००॥  
 राजवास्ते लक्ष्मणाद्याः पृथक् पञ्चशतैः स्मृताः । अशर्का च तदर्धेन तदर्धार्धेन वै पुनः ॥१०१॥

यतिमो तया काह्णोको जा वृष्ठ दिया हा, नहीं अपने गुरुका जो दे ॥ ८३ ॥ इस तरह हर पक्षमें रामचन्द्र-  
 जीका व्रत करे । अपना दान, पक्षम न कर सके हा कबल मुक्त्यपेक्षाय यह रामव्रत करे ॥ ८४ ॥ रामकी  
 उपामना करनेवाले के लिए रामको प्रसन्न करनेवाला यह मासव्रत मेने बताया ॥ ८५ ॥ मर्यापि संसारमें  
 कतसे पुण्यदायक व्रत है किन्तु भी इस व्रत के बराबर न कोई व्रत हुआ है और न होगा ॥ ८६ ॥ यह सब  
 व्रतों में उत्तम और भुक्ति-मुक्ति देनेवाला व्रत है । रामके उपासकोंका यह व्रत अवश्य करना चाहिए ॥ ८७ ॥  
 हे शिष्य ! इस प्रकार रामका अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सब व्रतों में उत्तम व्रत मेने विस्तारपूर्वक तुम्हें कह  
 सुनाया । ८८ ॥ विष्णुदास ने कहा—अब अब मुझपर कृपा करके यह बताया कि श्रीरामनवमीके व्रतका  
 उत्थापन कब और कैसे करना चाहिए । ८९ ॥ श्रीराम ने सब कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी  
 है इसे माधवान मन हाकर सुना । दो वर्ष पूर्वसे राघवका मासनवमी व्रत करना चाहिए । इसके बाद  
 चैत्र मासमें श्रीरामनवमीके दिन इसका उत्थापन करना चाहिए ! यह कार्य नवमीको उपवास करके किया  
 जाना चाहिए । ९० ॥ ९१ ॥ धरम, इन्द्रावन ( तुलसीदास जीवांचा ) ये, गंगागाम अथवा किसी मन्दिरमें  
 चन्दन वा शङ्खसे दोहा दिलाकर पाषाणके तूप आदिस अनेक प्रकारके ताल-पीतल कमल आदि बनावे  
 ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ इसके बाद पत्र आदिकर पूर्वोक्त रामचन्द्राभसे किसी एक पक्षको बनावे । उसके बीचमें एक  
 सुन्दर आसन रखे ॥ ९४ ॥ आसन वा अनेक प्रकारके रत्न विरह रत्नोंमें रखे और उसके ऊपर अतिशय  
 सुन्दर और चित्रवर्णका मण्डप बनावे ॥ ९५ ॥ उसमें चार द्वार बनाकर केलेके लम्बे तथा इक्षुदण्डके साव-  
 ण्य तोरण लगावे ॥ ९६ ॥ उसमें अनेक प्रकारके चट्टा किंकिणी आदि बज बजाकर उसका शृंगार करे ।  
 उसे चित्र-विचित्र ध्वजा, वितान, मानियाके द्वार आदिस समुज्जत करे । इसके अनन्तर रामतोषकके दोषमें  
 अल्पपूर्ण कलशपर ताम्रका पात्र रखकर नवावननके चिह्नमें चिह्नित सोदा समेत रामका पूजन करे ॥ ९७-९९ ॥  
 भी पलकी सुवर्णमयी राममूर्ति बनवाना चाहिए । आठ पलकी सप्तामूर्ति बनेगी ॥ १०० ॥ लक्ष्मण आदि-

तस्याप्यर्थं तदर्थार्थं विचिंशार्थं न कारयेत् । षोडशैरुपचारैश्च पूजोक्ता निशि जागरः ॥१०२॥  
 दशम्यां प्रातरुन्धाय म्नात्वा सपूज्य राघवम् । राघवमंत्रेण हवनं कार्यं नवमद्वयकम् ॥१०३॥  
 तिलाद्यैः पायसाद्यैश्च नवाक्षेनाथ तत्स्मृतम् । तद्दद्यादेन क्षीरेण तर्पणं हि प्रकाशयेत् ॥१०४॥  
 तस्यापि च दशांशेन मार्जितं द्वित्रिभोजनम् । कर्ममुद्रां हर्म्यमुद्रां चयने नक्षत्रप्रकम् ॥१०५॥  
 चित्रामनघुसरोद्य सुकुरं स्रग्गरी तथा । कांस्यपात्रं भोजनस्य नवाक्षेन प्रपूरतम् ॥१०६॥  
 धूपपात्रं कांस्यमयं नवाक्षोपरि संस्थितम् । पादुके पृष्ठकं दिव्यं यत्किंचिद्राघवस्य च ॥१०७॥  
 तांबूलं दक्षिणां चापि प्रत्येकं भूमिगण हि । अर्पयेन्मङ्गलं चैवमेव सर्वान् समर्पयेत् ॥१०८॥  
 ततो गुरुं समभ्यर्च्य प्रणम्य च पुनः पुनः । तामर्चामर्पयेन्मर्चां गुरोर्दक्षिणान्विताम् ॥१०९॥  
 ततो गुरुं प्राचयेत्त प्रणम्य च पुनः पुनः । मासे मासे नवम्यां तु सोद्यपनत्रयं मया ॥११०॥  
 यत्कृतं नव वर्षाणि तेन तुष्यतु राघवः । अग्रेऽपि यावज्जीवामि तावत्कालं करोम्यहम् ॥१११॥  
 वतानामुत्तमं चेदं तुष्टयर्थं राघवस्य च । गुरोस्त्वंकृपया रामो मां प्रसीदतु मोदया ॥११२॥  
 एवमुवाच स्वयं तं गुरुं नन्वा विमर्जयेत् । ततः स्वयं हि भुञ्जते सुहृन्मित्रमुतादिभिः ॥११३॥  
 एवमुवाच न कृत्वा कार्यमग्रे इतः पुनः । मासे मासे राघवस्य न त्पाज्यं सर्वथा नरैः ॥११४॥  
 एकादशीव्रतं नित्यं यथा तन्क्रियते नरैः । तथा मासव्रतं चेदं नित्यमेव स्मृतं कुर्यात् ॥११५॥  
 अशक्तेन यथाशक्त्या कार्यमुवाच न व्रतम् । उपोष्या नवमी शुक्ला सर्वदेव नरैर्भुवि ॥११६॥  
 नवम्यां शक्त्यपेक्षे यो भुञ्जेज्जम् मृदुधीनरः । गौरवे कम्पयन्तं तस्य यावत् स्मृतो कुर्यात् ॥११७॥  
 एव शिष्यं स्वयां यच्च पृष्टं तच्चे निवेदितम् । का नेऽन्या भोऽनुमिच्छामि नो वदस्व वदामि ते ॥११८॥

की मूर्तियों पाँच-पाँच पल चाँदीकी बनवा । यदि ऐसा कर सक, सामर्थ्य न हो तो उसमें आधे वजनकी मूर्ति बनवाये और यदि वह भी न कर सके तो आधेरा आधे वजनकी मूर्तियाँ बनवाना चाहिए वह भी न हो सके तो उसके भी आधे वजनकी बनवाये, किन्तु कदांसा न कर । षोडश उन्नयनेमें पूजन तथा रत्निको जागरण अवश्य करना चाहिए । १०१ । १०२ ॥ दशमाको सदरे उदकर स्नान और राक्षका पूजन करके नौ हज्जार हवन करे ॥ १०३ ॥ हवन निरस, पत्रम अथवा नवाग्रस करना उचित है । तदनन्तर हवनके वक्रावा दूधसे तर्पण करे । उसका भी दशांश भोजन करे और भोजनका भी दशांश ब्रह्मणोंका भोजन करावे । इसके अनन्तर हस्तमुद्रा तथा कर्ममुद्राके साथ वस्त्र, यज्ञादृत विचसन, उत्तरीय वस्त्र, मुकुट, हारी, भोजनके लिए नवाग्रसे पूर्ण कांस्यपात्र, धूपपात्र, इन सबके साथ कांस्यमय पात्रोंमें नवाग्रपर भवकर चरणपादुका, दिव्य आनन्दरामायणकी पुस्तक, तांबूलन दक्षिणा ये सब वस्तुएँ प्रत्येक ब्राह्मणको दे ॥ १०४-१०७ ॥ तदनन्तर गुरुका पूजन करके उसे एक गी दे और दक्षिणा समस्त बहु पूजनमायगी गुरुको अर्पण करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इसके बाद गुरुको आश्चर्य प्रशंस करके कह—हे गुरो ! महानं महान उद्यापनके साथ मैं जो नौ दशपर्यंत रामव्रत किया है । उसमें भोगमन्त्रज्ञा प्रसन्न हो । अग्रा भी जब तक जंघिन रहूँगा, जगावर वह उत्तम वन भगवान्का प्रसन्न करनेके लिए करता रहेगा । हे गुरो ! आपकी कृपासे मुझपर साक्षा और राम प्रसन्न हों ॥ ११०-११२ ॥ इस प्रकार प्रायना करनेके बाद अपने गुरुजीका प्रशंस करके उनका विदा कर । इसके बाद सप्तर्षिकों, मित्रों और पुत्रादिकोंके साथ स्वयं भी पूजन कर ॥ ११३ ॥ इस तरह उद्यापन करके महर्षि-महीने यह व्रत करता रहे, त्यागे नहीं ॥ ११४ ॥ जिस तरह लक्ष्मी एकादशीका व्रत करते हैं । उसी तरह यह व्रतमात्र भी सदा करने रहना चाहिए ॥ ११५ ॥ यदि शिष्य सामर्थ्य न हो तो अपनी शक्तिके अनुसार ही इसका उद्यापन करे । संसारके लोकाको चाहिए कि सबदा शुभमयकी नवमीको अवश्य उपवास किया करे ॥ ११६ ॥ जो मूर्ख मनुष्य भुवलयज्ञकी तकनीकी अत्र खता है । उसे एक कल्पतक रौरव नरकमें तियास करना पड़ता है । उह बात किनसे ही विद्वानाकी बड़ी हुई है । ११७ । ११८ मन्त्रमन कहा—हे शिष्य ! तुमने भी पूजा, वह तेन तुमसे कहा । अब और क्या सुनना चाहते हो, यह जप्ताओंसे भी मैं कहूँ ॥ ११८ ॥



विष्णुनाम उवाच

गुरो त्वया राघवस्य शोभामनवर्धनम् । मये मत्से प्रकर्तव्यमिति प्रोक्तं समाग्रतः ॥११९॥  
तत्केनाचरितं पूर्वं मिद्विर्लब्धाऽथ केन हि । तन्मये विस्तरणं ह द कृत्वा कथं मये ॥१२०॥  
अन्यत्वे प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं यां वक्तुमर्हसि । अस्तु केन नरेणेव ज्ञतं कार्यं कथं मया ॥१२१॥

श्रीराघव उवाच

मम्यद् पूर्वं त्वया शिष्य सारधानमताः मृणु । आर्त्ताभ्यां द्विजः कश्चिकेहले गच्छत-पाः ॥१२२॥  
नाभूतस्य विवाहोऽत्र निधनस्य जनस्य च । नार्त्ताभ्यां पदमपि न माता न पिताऽपि च ॥१२३॥  
तत्सर्वको नियमभार्योद्विद्रव्य च तं मृणु । निर्वयं प्रातः समुन्वाय कृतमालानदां जले ॥१२४॥  
स्नात्वा नदीमिकतायां मिकतावदका नव । कृत्वा तत्र जनकजामहेत रघुन्दनम् ॥१२५॥  
पञ्चनिधितश्रीगमनिगमकरगमने । मम्यमायां वेदिकायां सख्यस्य धानुनिर्मितम् ॥१२६॥  
अष्टदिक्षु वेदिकाम् गुरुपशासने दृष्टम् । मननतो राघवस्य लक्षणादीन्वयवैश्वर्यम् ॥१२७॥  
ततः स राघवं प्राह राम राजारलोचनम् । कर्तुमशक्यं कथं गन्तुमर्हसि म-वरम् ॥१२८॥  
रघुवन्तार्त्तं स्वयं पृष्ठे निवेद्य रघुन्दनम् । किमदूर्ध्वं रक्षे हृत्पत्रे गन्वा द्विजेतमः ॥१२९॥  
रावं तुणभुवि स्थाप्य तदग्रं पात्रमुत्तमम् । नृजलम् तेषां चापि सखाप्य च जवनं हि ॥१३०॥  
किञ्चिदूर्ध्वं स्वयं गन्वा स्थितवान् न किमन्वणम् । रामानिधं पुनर्गता पदमद्वलनदिकम् ॥१३१॥  
मयोन्मूलितकशीरं च तस्य स्पर्शकं हि । दृष्ट्वाऽप्यवतोयेन रामायाचमने ततः ॥१३२॥  
दनकाष्टन नदतान्मशोभ्य भोक्तृपूर्वकम् । गद्वथं जल दधतः कवोऽण शीतल पुनः ॥१३३॥  
समर्थाचमनार्थं स वञ्चनास्यं प्रमादयन् । भंभाज्यं हस्ते वादो च रामस्य नाममा द्विजः ॥१३४॥  
त विगृह्य पुनः पृष्ठे नर्त्रीभूतः शूनं, शूनः । मिकतावेदिकायां च पूर्वस्थाने न्यवेदयत् ॥१३५॥  
एव सीतां लक्ष्मणं च भरतं लक्ष्मणात्कम् । सुग्रीवादीन् पृथक् नोन्वावदयकादीन्वकारयत् ॥१३६॥

विष्णुनाम कहा—हे गुरो ! अभी आपने हमसे कहा है कि बहुत मरने वालों को बचाने के लिये करना चाहिए ॥११९॥  
इस प्रसंग को किसने किया था और इसमें प्रसंगसे किसके सिद्धि प्राप्त हुई थी । कृत्वा कर्त्तव्य यह विस्तरपूर्वक  
हमें बतलाविये ॥१२०॥ हाँ, एक बात है आपसे और पूछना चाहता हूँ । बहुत यह कि आप प्रायः अस्मार्थ है वह  
यह बात क्यों करे ? ॥१२१॥ श्रीगमदासन कहा है शिष्य । दूसरे बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सारधान  
मनसे मृणु । एक समय रत्न ( केवल ) देवाने रामको प्रतिम तन्त्र एक बाहुय्य रहा करता था ॥१२२॥  
दीनताके कारण व उनका स्थापित हुआ था, न घर द्वार या और न भाला-पिता हूँ वे ॥१२३॥ किन्तु उस  
द्विद्रव्य एक नियम था, उसे भनो । बहुत प्रतिदिन तबसे उठने लगे एक सुन्दर माया बनाता । फिर नदीमें  
स्नान करके आलूने श्री शेरिया जनका उत्तर पर पञ्चनिधन करके श्रीगमनिगमके न सनदर सखावे-में धानु-  
निर्मित नामको प्रसिद्धा नैडाकर तरुणके नसनीय आने और राम लक्ष्मण आदिको बिट लता था ॥१२४॥ १२५॥  
॥१२६॥ १२७॥ इसके बाद श्रीगमलोचन रामसे कहता-हे राम ! मैं आपका पूजन करना, इसलिए  
कृत्वा करके चाहिए ॥१२८॥ ऐसा कहकर रामको अपनी पीठपर लादता और कुछ दूर गन्वा-तकी हाडियो-  
में से आकर किसी पास उगी हुई बगलपर बिटलता । उनके आगे जलने घना हुआ उनमें पाय और  
मृत्तिका रक्कर स्वयं वहीसे कुछ दूरीपर जाकर बैठता और थोड़ी देर बाद नोटकर जाता तो अपने हाथोंसे  
उनका पादप्रक्षालन और मृत्तिकागुच्छ आदि करता । फिर एक दूसरे पायके हाथ रत्न दकर रामकी दुन्ने  
कराता था ॥१२९-१३२॥ तदनन्तर बाहुकी बन्तीनसे उनके दोनों मोठकर पदोंमें कृत्वा पाय और बाजमें  
शीतल मल्लसे कुल्ले करताता था । इसके बाद तीनोंसे उनके मुँह आदि पाठकर हाथ पैर आदि  
पोंछता और फिर अपनी दोठपर लेकर छोटे-छोटे विजलाकी बनी हुई वेदिकापर बिटलन दिया करता  
था ॥१३३-१३५॥ इसी तरह सीता, लक्ष्मण, भरत, लक्ष्मण और सुग्रीव आदिको पृथक्-पृथक्

ततः पृथक् चोत्पन्नं तन्नाभ्यगान्विधाय मः । नीरेण स्नापयत् सर्वान् कृत्वा चोद्धर्तवान्दपि ॥१३७॥  
 ततो भूजादिवज्राणे वस्त्रार्थं य पृथग्दर्शो । ततः पत्रैः फलैः पुष्पैस्तर्पणस्तान्पर्यक्रमान् ॥१३८॥  
 ततः स स्थूलग्रीहीणां कुर्वीदनमनुत्तमम् । स्नात्वा माध्वाह्निकं कृत्वा पुनः सपूज्य राघवम् ॥१३९॥  
 दशवीदनस्य नैरेण वैश्वदेव विभाय च । किंचिद्विष्णुमूर्तिपदे परस्मान्नामण्डलदिकान् ॥१४०॥  
 दत्त्वा पृथक् पृथक् निमग्नं रामाज्जपाऽक्षनम् । ततो रामं पुनः पृष्ठे समारोहयत्तदरात् ॥१४१॥  
 ततः सोपां ततः सर्वान् लक्ष्मणादीन्क्रमेण हि । पूजोपकरणं सर्वं पेटिकायां निभाय तः ॥१४२॥  
 कृत्वा तां पेटिकां कक्षजनामाश्च शनैः द्वजः । स वनागमोपवनं गत्वा रामं बचोऽमवीत् ॥१४३॥  
 रामं राजावपवाध वनागमादिकीर्तुकम् । आजकीमहितः पश्यन्नामांडजमृगादिकान् ॥१४४॥  
 ततो ययौ ग्रामहट्टं दर्शयन्कीर्तुकं विभुम् । समर्प्य ताडयामास मार्गार्थं यान् स पट्टिना ॥१४५॥  
 तेऽपि तन्कीर्तुकाविष्टा जनाः कांषं न मेनिरे । एवं नानाकीर्तुकानि दर्शयामास राघवम् ॥१४६॥  
 ततः शून्यं तुलपुटं रामं तानवकम् च । काष्ठनिर्मितपर्यंके काययामास निद्रितान् ॥१४७॥  
 ततो वेणाद्विपश्ये गत्वा स नाभ्यगोपमः । याज्यानां तुलान् तैलं घृतं धातुं फलानि च ॥१४८॥  
 नामगुणदलादीनि कमुकं कुकुमदिकम् । लब्ध्वा ताम्रवर्णं किंचिद्द्रव्यं समान्वितं ययौ ॥१४९॥  
 तद्ग्रामरागिणः सर्वे ये ये हट्टे स्थिता जनाः । स्तब्धजनान्पश्यमायतयरास्ते द्विजोत्तमम् ॥१५०॥  
 भारामनिष्ठं न दृष्ट्वा ददुस्तथापि त मुदा । विप्रः शून्यपुटं रामं रामार्थं दीपयुतमम् ॥१५१॥  
 प्रज्वालपागतिं कृत्वा गन्धार्थैः परिपूज्य च । वीजयामास रामादीन् पल्लवं मुदान्वितः ॥१५२॥  
 ततः स्तुत्वा मुहुः प्रज्वाल कृत्वा चापि प्रदक्षिणाः । चकार कीर्तनं वक्ष्यमाणैः सन्मनुभिर्द्विजैः ॥१५३॥

ले जाकर ओर्जावि पूर्ण किया करता था । १३७ । तदनन्तर राम से तः आदिक गौरीरमे लेऊ लवाकर वोट परम जलसे स्नान करवाया । तदनन्तर भाजपत्र आदिक पत्तें कपड़के लिए प्रदान करता और पत्र, फल, पुष्प आदि ओ कृष्ण मिल जाता, ठस कमश उनको पूजन किया करता था ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ फिर मोटे चावरका उत्तम भात बगला और स्नान तथा मकराह्निकालको संध्या आदि क्रियायें कर लेनेके बाद रघुनाथजीको पूजा करता और बलिर्वैश्वदेव करक बहु भातका भाग उनके सामने रखता था । तदनन्तर उससे कुछ अतिथियोंके भिक्षाकर, पुष्प मण्डलिका और पक्षियोंके लिए कुछ गोश्री तथा घीटा आदिक लिए निकलकर रामका आशीर्वाद मानपर स्वर प्रोजन दिया करता था । तदनन्तर फिर राघवको आरक्षणक पीठपर लाकर कमश सान्नान्दमण आदिकों तथा पूजनकी मामणी भेजाय भरकर गटा बगलेमे दजाना और लवका पेटपर बँटाकर वहाँसे चलाता था । इसके बाद किसी सुन्दर वेशावमें पहुँचकर राममें कहता—हे राजाधलावन राम ! सीताके साथ आप इस वगलका तथा वणिर्देमें रहनेवाले पशुपतिजीका अवलोकन करिए ॥ १३६-१४४ ॥ इसके बाद वह गाँववाले बाजारमें जाता और वयन भगवान्की वहाँसे कीवुक दिखाता था । उस समय सीकुवे भगवान्के लिए रास्ता बनाते समय वह क्रियाका डण्डसे मार भा देता तो कोई बुरा नहीं मन्ता था इस तरह वह रित्य रामचन्द्रजीका न ना प्रकारके कीवुक दिखाता करता था ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ इसके बाद वह सुना गुणमालार्थ स जाकर उन लोगोंको उत्तारता और काष्ठकी लताओंपर सुला दिया करता था ॥ १४७ ॥ तदनन्तर पुनः वह बाजारमें जाता और चावल, तेल, घी, साग, फल, फूल, पान, सुगरी, कुमकुम तथा कुछ वसे मीठकर अपने रामक पास लौट आता करता था ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उस समयमें रहनेवाले जतेक प्रकारके व्यवसायोंमें नगे हुए लग उसे अद्वितीय राममक समझकर वह जो कुछ गोयता, सो दे दिया काते थे । विप्रसूने घरमें पहुँचकर रामके अगे उत्तम दायक अजता, फिर आरती उतारता और घूर, दीप, गन्ध आदिस उनही पूजा करके कितनी पल्लव आदिकी पत्र लता करता था ॥ १५०-१५२ ॥ तत्पश्चात् वह रामकी स्तुति, जप तथा प्रदक्षिणा करके जाग कह आनेवाले बंया द्वारा हरिकीर्तन किया करता था ।

ततस्तु पावितान्नेव वस्तूनि मिश्रितानि हि । पृथक्कुत्वा तु सर्वेषां त्रीन् भागान् चकार सः ॥१५४॥  
 द्वौ भागौ स स्वनिष्ठे स्थाप्यैकं भागमुत्तमम् । मित्रगेहे न्यायभूतं नवम्यर्थं चकार सः ॥१५५॥  
 ततः स्वयं द्वारमध्ये चकार शयनं द्विजः । पुनः प्रभाते चोन्मायाचम्य गीतादिभिः प्रभुम् ॥१५६॥  
 शालपाद्यैः प्रबोधाद्य तान्पृष्टे स्थाप्य पूर्ववत् । नदीतीरं ययौ विप्रः पूजयामास पूर्ववत् ॥१५७॥  
 एवं निस्पृजनं च चकाराद्यन्मानसः । नवम्यां च विशेषेण पूजयित्वाऽथ राघवम् ॥१५८॥  
 स्वयञ्चोषोषणं कुत्वा स्वयं चक्रे सुकीर्तनम् । राघौ जागरणं चापि राघवं पूज्य वै पुनः ॥१५९॥  
 चकार कीर्तनैश्चाथ नर्तनाद्यैः स्वयं कृतैः । ततः प्रभाते श्रीरामं दशम्यां परिपूज्य च ॥१६०॥  
 प्रतिपरिनिमारम्य नवगत्रेऽथ यत्कृतम् । आनन्दरामचरितपरायणमनुत्तमम् ॥१६१॥  
 तन्मयाप्य पूजयित्वा पुस्तकं ब्राह्मणाश्वम् । निमंत्रितान् समाहूय तेष्वेकं सपन्निकम् ॥१६२॥  
 द्विजमाकारयामास ततः संचित्तुल्लाः । मित्रगेहे न्यायभूतस्तेषां कुन्वीदनं शुभम् ॥१६३॥  
 यथा संचितशकादि तथा लम्बानि यानि सः । तानि यथाणि संस्कृत्य वरास्वीदीनि चाकरोत् ॥१६४॥  
 बालुकावेदिकायां वै मध्ये पर्नायुतं द्विजम् । अष्टकोणेषु विप्रांस्तानष्ट मवेश्य वै कमात् ॥१६५॥  
 षोडशरूपचांसान् पूजयामास भक्तिनः । रमादक्षेष्ु च तनो विष्णोर्णेषु द्विजेभ्यः ॥१६६॥  
 चक्रम तैः कृतैश्चैः च मुदा परिवेषणम् । ततस्तेभ्यो जत चक्रम् द्रुम्याऽपि मुदान्विताः ॥१६७॥  
 ततो दत्त्वा सुतायै दक्षिणां तान् प्रणम्य च । विमर्जयामास विप्रांस्तान् चक्रेऽशनं द्विजः ॥१६८॥  
 एवं विप्रो मामि मामि नवायतनपूजगम् । नवम्याः पारणायाश्च दिवसे दशर्मादिने ॥१६९॥  
 चकार नवविप्रेषु यात्रां कुत्वाऽपि भक्तिनः । एष यतानि वर्षाणि नव तस्य द्वि तन्मनः ॥१७०॥  
 एकदा भावणे मासि तदग्रामे सेनया नृपः । कर्षद्वयौ तदा विप्रः स्वस्थले निशि निद्रितः ॥१७१॥

या । कुछ देर बाद उस मौलिकर लाली हुई वस्तुओंका तीन भाग करके दो भाग तो अपने पास रख लेता, बाकी एक भाग अपने निकटवर्ती मित्रके इहाँ नवमाक उत्पन्नके लिये घराहरेके तीरपर रख भाया करता था । १५३-१५६ ॥ इन सब निम्न निगमोंसे निवृत्तकर वह द्वारपर गायन करता और फिर सबरे उठकर पीतापाठ आदिसे भगवान्‌जी स्तुति करता हुआ लाली बजाकर राम आदिको जमाता और नियम-नियमके अनुसार फिर उनको अपने कक्षपर आदकर नदीके तटपर पहुँच जाया करता और पूर्वोक्त विधिसे पूजन करता था ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ इस तरह आकर चरे मनसे बहुत नियम पूजन किया करता था किन्तु नवमोके उपवास करके विजय उपकरणोंके साथ पूजन करके भर्त्ता प्रकार कीर्तन और रात्रिके समय जागरण करता था ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ फिर दशमके दिन रामका पूजन करके प्रतिपदके लेकर नवगत्र फर्नद आनन्दरामायणका पारायण करता था ॥ १६० ॥ उसे सम्पन्न करके नौ ब्राह्मणोंका पूजन करता था । तदनन्तर एक ब्राह्मणदम्पत्यो बुलाकर मित्रके घरमें डकट्टा किये हुए तण्डुलसे बहिया भाल बनाकर जो कुछ शाक आदि एकत्र होता उन भी मन्त्री सान बना करके अच्छी तरह बालुकाकी बना हुई बेरीपर जोजमे उस उपवासके ब्राह्मणको खिलायता और कौनों उन आठ विप्रोंको बिलायकर थोड़ा उपचारोंसे भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता था । तदनन्तर केलेके पत्तोंकी उनके आगे बिछाकर उन बने हुए अच्छी बड़ी प्रमदनाके साथ परोचना था और वे ब्राह्मण उसकी भक्तिसे गद्गद होकर बड़े प्रेम्से भोजन करते थे ॥ १६१ १६२ ॥ इसके बाद बहिया पान तथा दक्षिण लेकर उन ब्राह्मणोंको बिदा करता । तब स्वयं भी भोजन करता था । १६३ ॥ इस तरह वह ब्राह्मण प्रतिभासकी नवमो तथा दूसरे पारणवान् दिन नौ ब्राह्मणोंमें नवायतनका पूजन किया करता था ॥ १६४ ॥ इस तरह उस ब्राह्मणके नौ वर्ष बीत गये ॥ १७० ॥ एक बार भावणके महीनेमें उसका वही एक बड़ी सेना अपने साथ लिये एक राजा था पहुँचा, किन्तु ब्राह्मण रात्रिके समय अपने घरमें पड़ा सो रहा था ॥ १७१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे इष्टिर्पादिता नृपसेवकाः । प्राप्ते गेहानि विविशुः शून्यगेद ययुर्दश ॥१७२॥  
 अथ रुदाः सद्यस्मास्ते द्वारमध्ये द्विजोत्तमम् । दृष्ट्वा विनिद्रितं शोचुर्द्विजोत्तिष्ठ जनेन हि ॥१७३॥  
 मार्गे देहि वयं दृष्ट्वा पादिताः स्मश्रुः बहिः शून्यगेदेऽत्र स्यान्वाम सुखसाध्याः पसेवकाः ॥१७४॥  
 तत्तथा वचनं श्रुत्वा सभ्रमेण द्विजोऽजवीन् रामचन्द्रः मीतपात्रनिद्रितोऽस्मि स्वबन्धुभिः ॥१७५॥  
 न वर्ततेऽत्र युष्माकं स्थलं मन्यं वचो मम गच्छध्वं नगरे नानास्थलान्यन्यानि मन्ति हि ॥१७६॥  
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा राजदूताः पुनर्द्विजम् । शोचुस्ते क्षप्ति श्रीरामः सोऽपि निर्धातुं वै बहिः ॥१७७॥  
 सौतया बन्धुभिर्युक्तैः स्यत्तं नो देहि भो द्विज । पुनराह द्विजस्तान् स कथं गमं विनिद्रितम् ॥१७८॥  
 प्रबुद्धं वै करोम्यद्य निशाया राजसेवकाः । पुष्पकं प्रार्थना स्वयं क्रियते वै मया सुदुः ॥१७९॥  
 प्रणम्य विधिवद्य गच्छध्वं वै स्थलानम् । तत्तस्मिन्निग्रहं दृष्ट्वा तेऽतिवृष्ट्या प्रपीडिताः ॥१८०॥  
 तं विप्रं तादृशोऽवकुम्भदा प्राह द्विजोत्तमः । रामं बहिः वराम्यद्य निष्टुध्वं राजसेवकाः ॥१८१॥  
 इत्युक्त्वाऽऽचम्य श्रीराम भूमरो वारपमत्रवीन् । रामोत्तिष्ठ बहिर्दृष्टाः स्थिताः सन्त्यक्षसंस्थिताः ॥१८२॥  
 सेवां वस्तु स्थलं देहि वयं पामो बहिर्निशि । इत्युक्त्वा निजपृष्ठे तानारोहयन्त्य पूर्ववत् ॥१८३॥  
 ततः कृत्वा महाकाशं वस्त्रादीनां द्विजोत्तमः । घृत्वा कक्षे तोयकुम्भं घृत्वा वामकरेण सा ॥१८४॥  
 यष्टिं घृत्वा सव्यहस्ते कर्नेदंशच्छिद्यिरी । ते द्विजं तादृशं दृष्ट्वा श्रान्तं स मेनिर सन्ताः ॥१८५॥  
 ततो दृष्ट्वाऽतिवृष्टिं स गेहाप्राधा बहिर्द्विजः । तस्मीधूनस्वदा तस्वी गेहे सविविशुः सलाः ॥१८६॥  
 ततोऽर्पितधर्मितो विप्रश्चितयाग्रामं चेतसि । पुराणे वायुपुत्रस्य मया सारं श्रुतं बहु ॥१८७॥  
 तत्सर्वं तु मया त्वद्य किमन्यत्र प्रयोजनम् । इति निश्चिन्य विप्रः स क्रोधेन मदना वृत्तः ॥१८८॥  
 शीघ्रं घटं हवि स्थाप्य वामहस्तेन भारुतेः । पुच्छं घृत्वा प्राक्षिपत्तमाकाशे वेगवत्तरः ॥१८९॥

इसी समय वरनातसे सताय हुए कुछ राजसेवक काष्ठणक बरका लाने समझकर द्वारपर पहुँचे ॥ १७२ ॥ वे समस्त सेवक बाह्यपर सवार थे । द्वारपर पहुँचते ही काष्ठणकों जगाने हुए उन्होंने कहा—हे काष्ठण ! लखी जहाँ, मुझ जगह हो । मैं बड़ी दारसे भौग रहा हूँ । इस घूम घूम मैं अपने सेवकों और पादोंके साथ ठहरूँगा ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ इस प्रकार उनका बात सुनकर वयडाहटक साथ काष्ठणने कहा कि इस घरमें रामचन्द्रजी अपने बन्धुओंके साथ सो रहे हैं । यहाँ आप लोगाँके लिए जगह खाली नहीं है । मरौ इस बातको खूब मानाँगा । तमरत्र चले जाइए । वहाँ आप लोगाँको बहुत अच्छे मिस जायँगा ॥ १७५ ॥ इस प्रकार काष्ठणकें बचन सुनकर मित्रहियोंने कहा कि यदि इस घरमें राम है तो उन्हें भी बाहर निकाल दो और हम लोगाँको ठहरनेके लिये जगह खाली कर दो । काष्ठणन कहा—हे राजसेवक भव कि राम सो रहे हैं तो उन्हें कैसे जग'ऊँ । मैं आप लोगाँसे मायना करना हूँ कि दूसरी जगह चल जाइए । इस प्रकार काष्ठणका हठ देखकर उन पुष्टिपादिन राजसेवकान् उसे मारा । काष्ठणने कहा—बच्छा, हे राजसेवको । ठहरिए, मैं अभी रामचन्द्रजीको बाहर किये देना हूँ ॥ १८०-१८१ ॥ ऐसा कहकर उसने आचमन किया और रामके पास जाकर कहा—हे राम ! उठिए । बाहर वे कुछ घुदसवार खड़े हैं । माय उनको रहनेके लिए यह जगह खाली कर दीजिए, हमारा राजोरात कहाँ दूसरे स्वामीपर चले चले । ऐसा कहकर काष्ठणने गोजकी तरह उनको अपनी पीठपर लाया ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ इसके बाद उसने कर्णोंकी एक बड़ी गठरी बनाकर बाँधिस दवायी, पानाका घड़ा बाँध हाथमें लिया और दहिने हाथमें छड़ी लेकर पीरे चले बाहर निकला । इस तरह सँभाले करके जते हुए काष्ठणको देखकर उन मित्रहियोंने समझा कि वह कोई पागल है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ विप्र बाहर निकला त देखो कि बड़े जोरोंसे धुष्ट हो रहा है । ऐसा बवम्याय वह काष्ठण सुनकर बारजके नचे लड़ा हो गया और मित्राही चँता घुम गये ॥ १८६ ॥ कदरे-कदरे जब तक क्या हो मन ही मन सोचने लगा कि मैंने तो पुराणीमे सुना था कि हरिमात्राँसे बड़ा बल है ॥ १८७ ॥ लेकिन वे सब बातें सही हैं । ऐसा सोचकर उसने छोटी दीवारसे छँटाकर सड़ी कर दी, बड़ी हाथके बड़े

तदा सा सारुतेधातुमयी मूर्तिः पुष्पावहा । गन्वाऽऽकाशे गर्जनां वै चकारानिमयकराम् ॥१९०॥  
 तां गर्जनां महार्चराः कावम्याम् बहिः स्थिताः । भुन्वाऽनिमयमग्रस्ता मृताः सर्वे क्षयेन हि ॥१९१॥  
 जया नागा इषाद्याश्च मृताः सर्वे नदा क्षणात् । तद्युगामे बहेवाऽपि परं पुरुषमस्त्रिमम् ॥१९२॥  
 पुत्रयमांश्च नारीणां सर्वे प्रापुः स्वयं तदा । तदा स पुरुषल्लवेको न मृतेऽपि ब्राह्मणोत्तमः ॥१९३॥  
 कृपया तमचन्द्रम् सारुते, कृपयाऽपि च । नत प्रमाने ता नार्यः सर्वान्स्वपुरुषान्मृतान् ॥१९४॥  
 दृष्ट्वाऽनिविस्मय प्रापुस्तामिनेव भूतो भूतिः । तदा विप्रं जीविनं त दृष्ट्वा पकेऽपि माकृतिम् ॥१९५॥  
 इतिव विस्मयविष्टाः पश्यन्तुर्न दित्रोत्तमम् । ततः स सकलं हृत् नारीः सभासयत्तदा ॥१९६॥  
 ततस्तः प्रार्थयित्वा तं चक्रः स्वीयपुगाधिपम् । मोऽपि रमाञ्जया गज्यं चक्रं तन्पुंस्य च ॥१९७॥  
 पुत्रम्यितानां नारीणां स एवामान्यनिगता । तन्मारुतेर्माननं हि काले काले तु पूर्ववत् ॥१९८॥  
 यथापि श्रूते तस्मिन्मगरे एनशुन्दवनम् । तच्छ्रुत्वा पुत्रयमांश्च प्रम्पलति हि योनिताम् ॥१९९॥  
 त्रियः सहस्रशुभापन् पुष्पस्त्र्येक एव सः । तदभ्य तन्मार्चराश्च कथ्यते मानरोषमैः ॥२००॥  
 ततः कालान्तरेण स विप्रश्च भूतो यदा । तदा स्वपूर्वपुण्येन रिणुमायुल्लभाय सा ॥२०१॥  
 ततस्ताभिस्तु नारीभिः कान्धियायः समगतः । न एव क्रियते मर्ता न न ता मोचयति हि ॥२०२॥  
 इत्येतां गर्जनाकालं पुरुषान्निवर्णे हि । गार्थयित्रा दृष्ट्वा नारीणां श्रम्यानां निःस्वजादिभिः ॥२०३॥  
 स श्रावयति तेषां तं ज्वनिं साकल्यमश्रमात् । प्रतिकालेऽयं तत्काले तान्पुनर्जीवितामिति ॥२०४॥  
 यत्वा नानोन्मर्दः पूज्य तैर्भक्तिं ता मर्जयति । नाथा तच्छ्रम्यते राज्यं सर्वं द्विजसमम् ॥२०५॥  
 र्त्वाणामेव मदोत्पत्तिर्जायते पुरुषस्य न । तद्रान्यनिकटस्था ये देशस्तेष्वपि यो द्विजः ॥२०६॥

कभीनमै रक्त रिया और बाये होयसे हनुमान्जीकी पूछ गहकर बड़े जोर और बेगके साथ जाकाहमें उछालकर फेंका ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ हनुमान्जीकी बहु धानुनयी मूर्ति जाकाहमें पहुँचकर बड़े जोरसे मरजी ॥ १९० ॥ यह भीषण गजना उन स्त्रियाँहियो, शिवकायो तथा बाहुकायोको भी मृतायें दी । उसे सुनत ही सब घबड़ा-घबड़ाकर मर गए । उन गर्जनमें बाँधे हाथी और बैल आदि पुरुषनामधारी जितने जीव थे उनमेंसे उक्त बाहुकाके शिष्य और कोई नहीं बचा । यहाँ तक कि स्त्रियोंके गर्भमें जो बच्चे थे, वे भी मर गये । किन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा और हनुमान्जीकी दयासे वह बाहुका ज्योंका त्यों सड़ा रह गया । तबसे हुआ ही उन नारियोंके, जिनके पति मलका मर गए थे अपने स्वामीको मृत देखा ता बड़ी चकरायी । तदनन्तर जब उन्होंने उस बाहुकाके मर्तित तथा हनुमान्जीकी मर्ति कीचक्ष्मे पढ़ी देखी तो उक्त बाहुकाय के सब पुत्र मरते । बाहुका उन स्त्रियोंको शपिदा सारा हाथ कट गुनाया । १९१ १९२ ॥ इसके अनन्तर उन स्त्रियोंन प्रार्थना करने बाहुकाका उक्त मर्तीका पाका बना दिया । रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वह विप्र वहाँका राज करत लगा ॥ १९३ ॥ उस समय उस नरकीकी सब स्त्रियोंका यही बात थी । हनुमान्जीकी बहु गर्जना कभी-कभी निराल मधगजनक समान अब सा मनाई पड़ जाया करती है । उस मुनकर जिन स्त्रियोंके उदरमें पुत्र रहता है, उनका गर्भ गिर जया करता है ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ उस विप्रके राम हुकारो स्त्रियाँ थी और उनके बीचमें बहु अश्रु पुरुष था । तर्थास योगेन उसे स्वीकार्य कहना आगम्य कर दिया । कुछ दिनों बाद जब उस विप्रका मृत्यु हुई तो जपन पुष्पमय पुष्पके प्रभावसे उसे विष्णुकी सादृश्य मुक्ति मिली ॥ २०० ॥ २०१ ॥ इसके बाद जो कोई रहीं पुरुष मित जाय, उस ही वे स्त्रियाँ अपना रति बन लिया करती थी और उसे किसी तरह नहीं छोटा थी ॥ २०२ ॥ यदि कभी हनुमान्जीका गर्जनका समय आ जाय तो वे स्त्रियाँ उस पुरुषको जिससे शिवादिवा करती । जिसमें उसे वह गर्जन न पुन परे इसलिये नमारे मल आदि बाजे बजाये गतों थीं । जब वह समय पुनःपूर्वक होत जाय तो नारियाँ अपने वर्तियोंका पुनर्जीवन जानकार बड़ी खुशियाको मनली और इसीके बाद जोष करती हुई अपना समद बिलाया करती थीं । हे द्विजे-सम ! सबसे बड़ा बड़ा स्त्रियोंका ही राज्य रहता है । स्त्रियाँ ही वहाँकी प्रजापर शासन करती हैं

मातुनेः शब्दसंस्पृष्टकथुना स्पष्टिता नराः । अञ्जका गव जायते न तेष्वर्थात्सुपौरुषम् ॥२०७॥  
 अतस्तेषामशक्तानां वीर्यक्षीणतया द्विव । भवन्ति दृढिनर एवं कश्चिन्पुत्रः प्रजायते ॥२०८॥  
 आधिक्ये रजसः कन्या शुक्राधिक्ये सुतो भवेत् । नपुंसकः समन्वेन यथेन्द्रा वाम्भेदवरो ॥२०९॥  
 अन्यत्वे काण शस्त्रि न भवन्ति सुता यत् । काण शृणु नय्येड विष्णुदाम द्विजोत्तम ॥२१०॥  
 तेषु देशेषु नार्यश्च निजराज्यमदेन हि । रत्निकालेऽथ पुरुष कृत्वा कीडां भजति ताः ॥२११॥  
 न स्त्रीणां रत्निकाले ताः पृष्टं भूमिस्पृशति हि । वनएव रत्निकाले शुकं तु म्वते बहिः ॥२१२॥  
 सुश्रमलिङ्गे तथा गर्भस्थाने तन्नेत्र गच्छति । नामानयनकर्णानां द्वे द्वे रश्मि प्रकीर्तिते ॥२१३॥  
 मेहनपरमवक्राणामेकैकं रश्मिमुच्यते । दशमं मस्तके श्लोकं रंध्राणीति नृणां विदुः ॥२१४॥  
 स्त्रीणां ग्रीव्यधिकानि स्युः स्वनयोर्गर्भवर्धनः । सुचिक्रममन्वेव नानि छिद्राणि सति हि ॥२१५॥  
 गर्भलिङ्गं रत्निकाले किञ्चिद्विक्रमिन द्विव । भूत्वा मार्गं तु वीर्यस्य ददाति पुरुषस्य च ॥२१६॥  
 तन्मार्गेण गत वीर्यं चेत् सम्यक् पुरुषस्य च । गर्भस्थाने तदा पुत्रो जायते नात्र संशयः ॥२१७॥  
 स्वल्पं प्रविष्टं वीर्यं च तदा कन्या प्रजायते । रजमभाधिकन्वेन जानीष्ट्वेवं विनिश्चयम् ॥२१८॥  
 तस्माद्यदाऽथः शोते वै तद्देशेषु नरोत्तमः । रत्निकाले तस्य वीर्यमूर्ध्वं गच्छति नैव तत् ॥२१९॥  
 यदि दैवशक्तिश्चिद्गतं सौम्यमार्गनः । तदा दैवशक्त्यपुत्रो जायते सोऽपि वद्वत् ॥२२०॥  
 मतएव हि तद्देशे बहुकन्या भवन्ति हि । एवं ते कारणं श्लोक कन्योन्वभेद्विजोत्तम ॥२२१॥  
 एवं सर्वेषु देशेषु चेन्नार्या अधिकं भलम् । अस्मि तर्हि भवेत्कन्या पुत्रः पुरुषसारतः ॥२२२॥

॥ २०३-२०५ ॥ वहाँपर विशेष करके कन्याओंको ही उत्पत्ति होता है, पुत्र तो बहुत ही कम होते हैं । हुत्मादुर्जाकी गर्भनासे मिली वायुके संगमशो उस गायक आभवाभक्त ले राज्यके लोग भी प्रायः अशक्त (नरामक) होत हैं । इसलिये वहाँके पुण्याका वायु कमजोर होता है और अधिकजान भन्दाय हो उत्पन्न होती है, पुत्र तो जायव ही कभी कहीं हो जाता हो ॥ २०६ ॥ ०७ ॥ २०८ ॥ जब कि स्त्रीके रजकी अधिकता होती है तो कन्या और पुरुषके वीर्यकी अधिकता होती है, तब पुत्र होता है । यदि पुण्याका वीर्य और स्त्रीका रज वे दोनों बराबर हो जाते हैं, तब नपुंसक उत्पन्न होता है । इन बातोंके सिवाय सबसे मुख्य बात तो यह है कि परमपरमको जैसी इच्छा सोही है, वही होता है ॥ २०६ ॥ हे द्विजोत्तम विशेष करके कन्याओंके उत्पन्न होनेका एक कारण और भी है उसे सुनो ॥ २१० ॥ उस देशकी स्त्रियाँ अपने राज्यमदसे मतवाली हो पुरुषको मोच सुन्य तथा स्वयं ऊपर सटकर रहि करती हैं । रत्निकालक समय वे अपनी पीठका जमीनमें नहीं लगते देतीं । इसलिये पुण्याका वीर्य बाहर ही रह जाता है । गर्भके मुख छिद्रतक वह नहीं पहुँच पाता । पुरुषके नाभ, भेज और कान इनमें दो-दो छिद्र रहते हैं ॥ २११-२१२ ॥ लिंग, गुदा तथा मुखम एक-एक छिद्र रहता है । ये सब मिलाकर नौ छिद्र और दसवाँ छिद्र अज्ञातम होता है । ऐसा लोगोंने बतलाया है ॥ २१४ ॥ किन्तु छिद्रोंके तीन छिद्र अधिक होते हैं । दो छिद्र दोनों स्त्रियों और एक गर्भके बाह्यमें । गर्भके मार्गवाला छिद्र सूईको नोकके समान बारीक होता है ॥ २१५ ॥ किन्तु रत्निकालमें गर्भवत्या छिद्र कुछ चौड़ा होकर पुरुषके वीर्यको भीतर जानक लिये समता दे देता है ॥ २१६ ॥ उस मार्गसे गया हुआ वीर्य यदि अच्छी तरह अपने स्थान तक पहुँच जाता है, तब पुत्रका उत्पत्ति होती है । इसमें कोई संशय नहीं है । यदि उस समय गर्भागममें कम वीर्य जाता है तो कन्याकी उत्पत्ति हुआ करता है । क्योंकि ऐसी वक्ताने स्त्रीका रज अधिक और पुण्याका वीर्य कम पड़ जाता है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ इससे जब वहाँवाले पुरुष नीच नेटते हैं, तब उनका वीर्य गर्भागमके छिद्र तक नहीं पहुँच पाता । यदि दैवतग कभी भोजन-या वीर्य उच्छ्वस्त ऊपर स्त्रीके गर्भागम तक पहुँच भी जाता है तब नपुंसक उत्पन्न होता है । २१९ ॥ २२० ॥ इसी कारण उस देशमें भीषकाश कन्याय हो जाती है । हे द्विजोत्तम ! मन इस प्रकार तुम्हें वहाँ विशेष कन्याओंके उत्पन्न होनेका कारण बतलाया ॥ २२१ ॥ यह प्रायः सब देशोंमें देखा जाता है कि जिस जगह स्त्री चल्ती होती है तो कन्या

तस्मान्पुत्रार्थिना नारी पोषणीया इदमपि न । पोषयेच्च सदाऽऽत्मानं नानास्वाद्यवसायनैः ॥२२३॥  
 भवत्येव हि वैद्याश्च पालनीयाः सदा नरैः । बलावलमवेष्टारस्तेर्ह्येव स्वबलावलम् ॥२२४॥  
 पुष्टदेहं निर्गेषाच्च न तेषां त्वयि च बलम् । वातेनापि पुमान्पुष्टो जायतेऽथ सर्वत्र हि ॥२२५॥  
 अतो वैद्यं विद्यां तच्च न शास्यसि इत्यावलय ॥ अतो वैद्यास्ते प्रष्टव्याः सदा भक्तिपुङ्गवराः ॥२२६॥  
 भवन्ते तोषे द्वित्रे देवे वैद्येऽथ गणके सुरी । यादृशी भावना स्वीया मिद्विर्भवति तादृशी ॥२२७॥  
 अतो वैद्योक्तमार्गेण सदा गच्छेन्नरोत्तमः । बलावलविचारेण पुत्रा एव भवन्ति हि ॥२२८॥  
 एक एव वरः पुत्रः किं ज्ञाना दश कन्यकाः । पुत्राप्तो नरकान्पुत्रमन्यतेऽथ कुलं क्षणान् ॥२२९॥  
 कन्या स्वीयदृग्गचारान्क्षणाभिजपितुः कुलम् । तथा भर्तुः कुलं चापि नरके पातयेच्च सा ॥२३०॥  
 तस्मान्नरैश्च पुत्रार्थं यत्नः कार्यस्त्वहनिष्ठम् । एष्टव्या बहवः पुत्रा यथेकोऽपि गपां भजेत् ।

यत्नेन वाऽयमेवेन नालं वा वृषहन्मुजेत् ॥२३१॥

जीवतो वाक्यकृष्णान्प्रयच्छ भूरि भोजनान् । गवय्यां विद्वदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥२३२॥  
 एवं शिष्य स्वयां पुष्टममर्तेन कथं यतम् । कार्यं तच्च मया सर्वं धूमुरस्य कथानकम् ॥२३३॥  
 तत्राग्रे कथितं रम्यं रम्यं त्वत्तोषार्थमनुचमम् । तस्य व्रतस्य सामर्थ्यान्स दग्धो द्विजोऽथः ॥२३४॥

तत्राग्रे तद्विपुलं राज्यं भुक्त्वा मोगान् मनोरमान् ।

मापुज्यं प्राप विष्णोश्च स्वायुषश्च सपे द्विज ॥२३५॥

एव तद्व्रतचन्द्रस्य व्रतं कोऽप्य तु नाचरेत् । सुमेन भुज्जेद्वात्र परलोकं विमुक्तिदम् ॥२३६॥  
 पुनिभिश्च सुरैर्नागैर्मन्त्रैः किन्नरैर्नृपैः । सदाऽनुभाषितं चेद् व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥२३७॥

ही जनमतो हैं और एक बल हो ता पुत्रकी उत्पत्ति अधिक शक्ति है ॥ २२२ ॥ इसलिये जिन लोगोंको पुत्रकी अभिलाषा हो उन्हें चाहिए कि विवाहका उपाय मात्र लिनाकर तबका न करे । बल्कि स्वयं ब्रह्मा जीने तथा रसायन साकर बलवान् बन ॥ २२३ ॥ लाओका यह भी उचित है कि बलावल जाननेवाले अच्छे बेलोको अपने नगरमें रखे और समय-समयपर उनसे परीक्षा करा लिया कर ॥ २२४ ॥ मरौर-को मोटा देखकर ही यह न समझ ले कि इसमें अधिक बल है । मदा ऐसा देखा गया है कि लोग बापुसे भी घाटे हो जाता कान है ॥ २२५ ॥ इसीसे बेटके बिना बलावल की तौल नहीं जाना जा सकता । बलएव लोकोको चाहिए कि सदा बेलोमें आदरपूर्वक अपने स्वाध्यायके विवरण सुलनाम करते रहे ॥ २२६ ॥ मंत्रमें, तोषमें, बाल्यमें, वैद्यमें, देवता और परोलोको, जंगल जिलकी जाचना रहनी है, मता ही उसे बल मिलता है ॥ २२७ ॥ अतएव बेटा जिस तरह व्रतनाये, उसी तरह साधन यदि अच्छा तरह बलावलका विचार करके पुष्ट हरीके साथ रनि करेता पुत्र हो होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २२८ ॥ केवल एक पुत्रका होना अच्छा, किन्तु दस कन्याओंका होना ठीक नहीं है । यदि पुत्र होता है तो वह सम्मानमें अपने कुलको 'पुनामक नरकसे' बच देता है ॥ २२९ ॥ इसके विपरीत कन्या दुराचार करके अपने पिता तथा पति दोनों कुलोको क्षणभरमें नरकमें गिरा देती है ॥ २३० ॥ इसलिये लोकोका चाहिए कि मदा पुत्रके लिये बल करे । एक ही पुत्रसे नष्टोप न कर ले, बल्कि कन्याको इच्छा रखे । न बापूम उनसे कोन गयामें जाकर पिद्वान कर जाये या अन्धमघ यज्ञ करे अथवा नील वृषभ ( काला मोड़ ) छारे ॥ २३१ ॥ जबतक पिता रहे तबतक उसका कहना माने । मर जानेपर प्रतिवर्ष बहुतसे दाहनोंको भोजन कराये और गयामें जाकर पिद्वान करे । इन्हीं नीच कामोसे पुत्रकी पुत्रता सर्वक होती है ॥ २३२ ॥ इस प्रकार हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो पूछा था कि अशक्त प्राणी किस प्रकार व्रत करे । मैंने एक ब्राह्मणकी कथा सुनाकर समझा दिया । इस व्रतकी शार्वर्षिक यह दग्ध दाहण विपुल राज्यकी तथा तरु-तरुके मनोरम मोवाका भोजनका आयु समाप्त होने-पर विष्णुजीवाका सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ २३३ ॥ २३४ ॥ इस प्रकार उन व्रतचक्रके व्रतकी कौन नहीं करेगा, जो इस लक्षमें आनन्दक साथ भुक्ति और परलोकमें मुक्ति प्रदान करनेवाला है ॥ २३५ ॥ अनेक

स्त्रीपुत्रधनदं चैतत्सर्वसौख्यप्रदं नृणाम् । इहलोके परे चापि विष्णोः सायुज्यदायकम् ॥ २३८ ॥  
 सति ब्रतान्यनेकानि स्वर्गं मर्त्ये रमानले । तथापि मामनवमोममानं ब्रतमुत्तमम् ॥ २३९ ॥  
 विष्णुरास द्वित्र्येष्ट न भूतं न भविष्यति । तस्मात्सदा नरैः कार्यं ब्रतं येदं महत्तमम् ॥ २४० ॥  
 एवं त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् । किमन्यच्छ्रोतुमिच्छास्ति तद्वद्वचं वदामि ते ॥ २४१ ॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीयं रासकाण्डं  
 आदिकाण्डे नवमीकषावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

## सप्तः सर्गः

( लक्ष्मणनामोद्यापनविधिः )

विष्णुदास उवाच

अन्यदुगुरो राघवस्य तुष्टिर्दं किं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

मृणुष्व विष्णुदास त्वं यनेष्टुं प्रयदामि च । तुष्ट्यर्थं रामचन्द्रस्य मित्यं पत्रे तु मानवैः ॥ १ ॥  
 लेखनीयं रामनामशतानि नव ग्रन्थहम् । अथवाष्टोत्तरशतं पूजनीयं सन्निस्तरम् ॥ २ ॥  
 एवं कोदमित लेख्यं लक्षं वा तु ततः परम् । हवनं हि दशशेन कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥  
 इदं विष्णुरिति श्रुत्वा तिलाज्यैः पापसेन वा । नयज्जन्नाथवा कार्यं राघवं परिपूज्य च ॥ ४ ॥  
 हवनाग्ने राघवादिदेवानां पूजने नरैः । आमनाथं तु भद्रं च स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ५ ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिगात्मकं शुभम् । अथवाष्टोत्तरशतं रामलिगात्मकं शुभम् ॥ ६ ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं वा रामतोभद्रमुत्तमम् । अथवाष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमुत्तमम् ॥ ७ ॥  
 एवं होमं लेखनं च पूजनाद च परकृतम् । अर्पयेद्रघुनाथाय तत्सर्वं त्वतिभक्तिदः ॥ ८ ॥

मुनियों, देवताओं, नागों, गन्धर्वों, किन्नरों और राजाओंने कितने ही और इस व्रतका अनुष्ठान किया है ॥ २३७ ॥ यह व्रत इस लोकमें स्त्री-पुत्र धन तथा सब सुख देनेवाला है और परलोकमें विष्णुपरायणान्को सायुज्य-मुक्ति प्रदान करता है ॥ २३८ ॥ हे द्वित्र्येष्ट विष्णुदास ! वेस तो स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें बहुतसे व्रत हैं । किन्तु उनमेंसे रामनवमी व्रतक बराबर न कोई व्रत है और न होगा । इसी कारण लोगोंको चाहिए कि सदा इस रामनवमीके महान् व्रतका करें ॥ २३९ ॥ २४० ॥ इस तरह तुमने जो कुछ हमसे पूछा, सो कह सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते, हो या नहीं । २४१ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये प० रामतेजपाण्डेयकृतं ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! रामचन्द्रजीको प्रणम करनेवाली कोई और मुक्ति बनलाई । रामदास कहने लगे—हे विष्णुदास ! मैं तुम्हें जो बतला रहा हूँ, उसे सुनो । रामकी प्रीतिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको चाहिए कि कामजपर प्रतिदिन नौ सौ या एक सौ आठ रामनाम लिखकर विस्तारके साथ उनका पूजन करें ॥ १ ॥ २ ॥ इस तरह लिखते हुए जब एक कराड़ अथवा एक लाख नामोंको लिख ले तो उनका दशाष्ट विधिवत् हवन करे ॥ ३ ॥ हवन 'इदं विष्णु' ०' इन मन्त्रसे करे । तिल, धी और खीरसे हवन करना चाहिए । यदि ये वस्तुएँ न इकट्ठी हो सकें तो नदीन अथवा रामका पूजन करके हवन करना चाहिए ॥ ४ ॥ हवनके अक्षोभे भद्रआदि बनाकर राघवआदि देवताओंका पूजन करके अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामलिगातोभद्र अथवा अष्टोत्तरशत रामलिगात्मक भद्र बनावे । अथवा अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्र या अष्टोत्तरशत रामतोभद्रकी रचना करे ॥ ५-७ ॥ इस तरह होम-लेखन-पूजन आदि जो कुछ करे, सब भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीको अर्पण कर दे ॥ ८ ॥



विष्णुदास उवाच

त्वया गुरो शुभं प्रोक्तं रामनामप्रलेखनम् । न तस्योद्यापनं प्रोक्तं तद्वदस्व ममाधुना ॥ ९ ॥

श्रीरामदास उवाच

भूणु शिष्य भविष्यति कथां वक्ष्यामि भूतवत् । रामनामोद्यापनस्य विस्तरेण मनोरमा ॥ १० ॥

पाण्डुपुत्रो महावीरो बंधुभिश्च युधिष्ठिरः । स्त्रिया मात्रा भ्रातराज्यो वने वासं कश्मिपति ॥ ११ ॥

तं द्रष्टुं ह्यपरो कृष्णः कदा गच्छति वै वने । तं कृष्णं पूजयित्वा स तस्मै प्रक्षं करिष्यति ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

देवदेव जगन्नाथ भक्तानां वरदायक । किंचित्त्वां प्रष्टुमिच्छामि यदि तुष्टोऽसि चेत्प्रभो ॥ १३ ॥

लक्ष्मीप्राप्तिकरं पुण्यं पुत्रपौत्रवर्द्धनम् । व्रतपारुषाहि देवेश राज्यभ्रष्टस्य मेऽधुना ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्लावुगुह्यतमं भोतुं यदि वाञ्छसि भूपते । तदा निगदतो मत्तः सकाशाच्छृणु सादरम् ॥ १५ ॥

रामनाम्नः परं नास्ति मोक्षलक्ष्मीप्रदायकम् । तेजोरूपं यदव्यक्तं रामनामाभिधीयते ॥ १६ ॥

तस्मात्तन्नाम जप्त्वा वै रामरूपो भवेन्नरः । एतदेव हि रामेण मारुतिं प्रति भाषितम् ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन्काले हनुमते रामेणैवोपदेशितम् । एतद्विस्तरतो ब्रूहि सुमते हविर्गगीपते ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा रामावतारे च सीता गीता हुरारिणा । हनुमंतं समाहूय रामचन्द्रोऽजरीद्वयः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वायुसुनो महावीर सीतान्वेषणहेतवे । समस्तां दक्षिणांदिशं गत्वा शुद्धिं समानय ॥ २० ॥

श्रीहनुमान् उवाच

रघुनाथ जगन्नाथ दक्षिणस्यां हि सागरः । महतो राक्षसाः सन्ति तत्र अक्तिः कथं मम ॥ २१ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामनाम लिखनेकी जो युक्ति बतलायी वह बहुत ही उत्तम है । लेकिन उसका उद्यापन नहीं बतलाया । उसे भी सुनें अभी बतला दीजिए ॥ ९ ॥ श्रीरामदास कहने लग्ये—हे शिष्य ! मैं तुम्हें भविष्यकी एक कथा भूतकालमें समवित्त करके बतला रहा हूँ ॥ १० ॥ पांडुके पुत्र युधिष्ठिर जब राज्यसे वंचित हो गये, तब अपनी माता तथा बन्धुओंको साथ लेकर वनमें निवास करने लगे ॥ ११ ॥ उनको देखनेके लिए कृष्णचन्द्रजा वनमें गये । सब उन लोगोंने बड़े आदरसे श्रीकृष्णकी पूजा की और युधिष्ठिरने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सबको वर देनेवाले ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे देवेश ! यह तो आप जानते ही हैं कि इस समय मैं राज्यसे भ्रष्ट हो चुका हूँ । यतएव आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलाइए । जो लक्ष्मीको देनेवाला, पवित्र और पुत्र पौत्रको बढ़ाने-वाला हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—हे भूपते ! यदि आप हमसे गुप्त व्रत सुनना चाहते हैं तो मैं कहता हूँ, आप सुनिये ॥ १५ ॥ रामनामके अपसं बहुर भास और लक्ष्मीको देनेवाला और कोई उपाय नहीं है । यह तेजोरूप और अव्यक्त है ॥ १६ ॥ इसी कारण रामनामका जप करके लोग रामरूप हो जाते हैं । यही बात स्वयं रामचन्द्रजीने हनुमान्जीसे कही की ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे वरिमाणपते ! रामचन्द्रने हनुमान्जीसे कब इस बातकी चर्चा की थी ? श्रीकृष्णजीने कहा—रामावतारमें जब कि रावण सीताको हर ले गया, तब रामने हनुमान्जीको बुलाकर कहा—॥ १८ ॥ १९ ॥ हे महावीर ! हे वायुसुनो ! तुम सीताजीको ढूँढनेके लिए सभी दक्षिण दिशामें भ्रमण करो और शीघ्र उनका समाचार लाओ ॥ २० ॥ आहनुमान् बोले—हे जगन्नाथ !

श्रीरामचन्द्र उवाच

मारुते रावणादीनां राक्षसानां निवारकम् । मंत्रं ददामि सुगमं येन सर्वजघ्नी भवेत् ॥२२॥

श्रीहनुमान्वाच

महाराज कृपासिन्धो दीनानां त्वं सुतारकः । उपदेशोऽभूना कार्यस्तस्य मंत्रस्य तत्त्वता ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं रक्षसाहूय तत्त्वरम् । मारुतेर्दक्षिणे कर्णे भीरामेऽप्युपदेशिता ॥२४॥

तस्य मंत्रस्य सकलं पुरश्चाणमुभयम् । लक्ष्मसरूपं विधायाशु प्रवक्ष्ये दक्षिणां दिक्षम् ॥२५॥

तन्मंत्रस्य प्रभावेण नानाजलचराचरम् । दुर्गमं सागर तीर्त्वा लंकांमध्ये समाचरौ ॥२६॥

न स लेहे तत्र शुद्धिमशोकारूपवनं गतः । वृक्षमूले स्थिता सीतां दूरतोऽप्ये ददर्श सा ॥२७॥

तां दृष्ट्वा क्षीणमागत्य हर्षनिर्भरमानसः । सीतायाश्चणौ नन्वा दंष्ट्रवस्पतितो भुरि ॥२८॥

अत्यतं सूक्ष्मवपुषं बालकाकारसंयुतम् । तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा सीता वचनमब्रवीत् ॥२९॥

आगतोऽसि कुतो बाल कुत्रस्थः कस्य बालकः ।

श्रीहनुमान्वाच

सीता माता पिता रामो रामचन्द्रसमीपनः ॥३०॥

समागतोऽस्मि हनुमान् प्रसैका मुद्रिका त्वया । रामनामांकितौ मुद्रौ शुद्धकाचननिर्मितम् ॥३१॥

ज्ञात्वा रामस्य सा सीता परमं तापमाययी । तां ज्ञात्वा तोषमहितामांजनेयोऽप्रवीक्ष्यः ॥३२॥

मातुः सुधाश्चरति मम त्वयादिक्लेशकारिणी । अस्मिन्वनेऽतिमधुरः फलसघोऽतिदुर्लभः ॥३३॥

तवाग्रायाऽहं सीतेऽद्य करिष्ये भक्षणं ध्रुवम् ।

सीतोवाच

भो बालक महार्घार रावणोऽस्ति वनाधिपः ॥३४॥

हे रघुनाथ ! दक्षिण दिशा में तो विशाल सागर है और बहुतसे राक्षस हैं, फिर वहाँपर मेरी शक्ति कैसे काम  
 बैगी ? ॥ २१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा : हे मारुते ! रावण आदि राक्षसोंका निवारण करनेवाला मैं एक बहुत  
 ही सरल मंत्र बताता हूँ जिसकी सहायतासे सर्वत्र तुम्हारी विजय होगी ॥ २२ ॥ हनुमान्जीने कहा—  
 हे महाराज ! हे कृपासिन्धो ! आप दीनोंका उद्धार करते हैं । हे प्रभो ! हमें उस मंत्रका अच्छी तरह उपदेश  
 दीजिए । २३ ॥ श्रीरामदास कहते हैं : हनुमान्जीके इस प्रकार विनय करनेपर रामने उन्हें एकान्तमें ले जाकर  
 उनके कानमें 'श्रीराम' इस नामका उपदेश दिया । २४ ॥ हनुमान्जीने उस मंत्रका उत्तम रीतिसे एक लाख  
 बार करके दक्षिण दिशाको प्रस्थान किया ॥ २५ ॥ उसी मंत्रके प्रभावसे विविध प्रकारके जलजन्तुओंसे भरे दुर्गम  
 सागरको पार करके वे लट्का पहुँच गये । २६ ॥ वहाँ बहुत खोज करनेपर भी सीताका पता न पाकर अशाक  
 बनमें गये, तब वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठी हुई सीताको दूरसे देखा । २७ ॥ सीताको देखकर उनका हृदय  
 हर्षसे भर आया और तुरन्त उनके पास पहुँचकर प्रणाम किया । फिर दण्डकी तरह पृथ्वीमें लाट गये ॥ २८ ॥  
 उस समय हनुमान्जीने बच्चोंके समान अपनी एक छोटी सी रूप धारण कर लीया था । उनको पृथ्वीमें पड़े  
 देखकर सीताने कहा—॥ २९ ॥ बच्चे ! तुम कहाँसे आये हो ? कहाँ तुम्हारा घर है और तुम किसके बेटे  
 हो ? हनुमान्जीने कहा कि सीता मेरी माता है और पिता श्रीरामचन्द्र हैं । इस समय मैं उन्हींके पाससे आ  
 रहा हूँ ॥ ३० ॥ मेरा नाम हनुमान् है । आज इस जंगूठीको लेजिये । यह शुद्ध सुवर्णकी बनी हुई है और  
 इसमें श्रीरामचन्द्रजीका नाम लिखा हुआ है ॥ ३१ ॥ अब सीताको यह ज्ञात हुआ कि यह मुद्रिका रामजी-  
 की है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं । जोता माताको प्रसन्न देखकर हनुमान्जीने कहा—भौं, मुझे बड़ी भूख लगी  
 है । इससे क्या कह हो रहा है । इस बगीचेमें मैं बहुत मोठे और दुर्लभ फल देख रहा हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि

न शक्तिर्न च शक्यं ते कथं त्वं भक्षयिष्यसि ।

हनुमानुवाच

श्रीरामेति परो मन्त्रः शस्त्रं मे हृदयसरे ॥३५॥

तेन सर्वाणि रक्षोसि तृणरूपाणि सांप्रतम् । इत्युक्त्वाऽथ नदीयाक्षां पृथीन्वा वनभूरुहान् ॥३६॥

उन्मूलनं चकाराय भुत्वा रक्षांसि चावपुः । युद्धं च तुमुल जातं पश्चान्मन्त्रप्रभावतः ॥३७॥

इलितं राक्षसवल्गं रग्धा लंका हनुमता । पुनर्गन्वाऽशोकवन सीतां नत्वा च मारुतिः ॥३८॥

तदलंकारमादाय रामचन्द्रं समाययौ । रामायालं कृतिं दत्त्वा तस्यौ तत्पादसन्निधौ ॥३९॥

रामोऽलंकृतिमादाय उच्छ्रुत्वा मुदितोऽभवत् । रामनामप्रभावोऽयं महाराज युधिष्ठिर ॥४०॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र रामनामजपं कुरु ।

युधिष्ठिर उवाच

कथं जपो विधेयोऽस्य पुरश्चरणकं फलम् ॥४१॥

कथमुद्यापनं चैव सर्वमाख्याहि यत्नतः ॥४२॥

श्रीकृष्ण उवाच

अथवा पुस्तके लेख्यं स्मरणं हृदयेऽथवा । कोटिमंखयापरिमितमथवा लघुसंमितम् ॥४३॥

मंत्रा ज्ञानाविधाः सन्ति अतश्चो राक्षसस्य च । तेष्वस्त्वेकं वदाम्यद्य तव मंत्रं युधिष्ठिर ॥४४॥

श्रीशब्दमाद्य जयशब्दमध्य जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःसप्तकृत्वो रघुनाथनामजपो निहन्त्याद्विजकोटिहस्याः ॥४५॥

अनेनैव च मन्त्रेण जपः कार्यः सुमेधसा । लक्ष्मंख्ये कृते तस्मिन्नुद्यापनविधिं चरेत् ॥४६॥

आप आज्ञा दें तो मैं थोड़ेसे फल तोड़कर खा लूँ । सीताने कहा—है महावीर बालक । इस बघोचेका मालिक रावण है ॥ ३४ ॥ तुममें कुछ भी शक्ति नहीं मानूँ मर रह्यो है । तब तुम किस तरह फल खाओगे ? हनुमान्जीने कहा कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम'के नामका एक प्रबल शस्त्र है । उसके प्रभावसे लक्ष्मणके सब राजस मेरे सामने तिनकेके बराबर है । ऐसा कह और सीताजीकी आज्ञा पाकर हनुमान्जी जंगलमें घुस पड़े और पेड़ोंको उखाड़ उखाड़कर फेंकने लगे । वह समाचार सुनकर बहुतसे राक्षस आ गये और उनके साथ तुमुल युद्ध हुआ । किन्तु अन्तमें श्रीरामनाममन्त्रके प्रभावसे हनुमान्जीने उन सब राक्षसोंको भार डाला और लक्ष्मणगीको भी अलाकर राख कर दिया । फिर लौटकर अशोकवनमें गये । वहाँ सीताको प्रणाम किया ॥ ३५-३६ ॥ फिर उनका अलंकार लेकर रामचन्द्रजीकी ओर लौट पड़े । रामके पास पहुँचकर उन्होंने वह अलंकार रामको दिया और उनके चरणोंके पास बैठ गये ॥ ३६ ॥ रामने वह अलंकार हाथमें ले लिया और सीताका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुए । हे युधिष्ठिर ! यह सब रामनामका माहात्म्य है ॥ ४० ॥ इसलिए है रावन् ! तुम भी रामनामका जप करो । युधिष्ठिरने कहा हे कृष्ण ! इस रामनामके जप करनेका क्या विधान है ? इसका पुरश्चरण कैसे किया जाना है और उद्यापनकी क्या विधि है ? यह सब आप हमें अच्छी तरह समझाइए । श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा हे राजेन्द्र ! आपको चाहिए कि स्नान करके किसी पवित्र स्थानपर बैठे और तुलसीकी मालापर रामनामका जप करे । अथवा किसी पुस्तकपर लिखे या हृदयमें स्मरण करे । अपनी संख्या एक करोड़ अथवा एक लाख होनी चाहिए । ४१-४३ ॥ वैसे तो रामचन्द्रजीके अनेक मन्त्र हैं, किन्तु उनमेंसे एक उत्तम मन्त्र मैं तुमको अल्लाहा हूँ ॥ ४४ ॥ पूर्वमें श्रीराम शब्द, मध्यमें जय शब्द और अन्तमें दो जय शब्दोंसे मिला हुआ ( श्रीराम जय राम जय जय राम ) राममन्त्र यदि इक्कीस बार जप जाय तो वह करोड़ों इन्द्रजित्वाओंके पापोंको नष्ट कर देता है । ४५ ॥ बुद्धिमान् पाषण्डको चाहिये कि

जपाच्छतगुणं पुण्यं रामनामप्रलेखने । लभे लभे पृथक्पुण्यमुद्यापनमनुचमम् ॥४७॥  
 उद्यापनविधाने च संक्षेपेण वदामि ते । पूर्वेषु कृतार्थां स्याद्राशौ महत्पिकीर्तने ॥४८॥  
 रामलिङ्गात्मके भद्रे रामनौभद्रकेऽथवा । अष्टोनरमहस्रात्म्ये अष्टोनरश्वनेऽथवा ॥४९॥  
 धान्यराशौ मध्यदेशे कलशं स्थापयेत्ततः । तन्मुखे स्वर्णपात्रं च कञ्चस्त्रापशोभिते ॥५०॥  
 सीतालक्ष्मणसंपुर्णां राघवप्रतिमां शुभाम् । आभूषाणपल्लवपेन्तां मौवर्णीं प्रतिमां यजेत् ॥५१॥  
 राजती वा ताम्रमयी विष्टशास्त्रं न कारयेत् । उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्सुमयाहितः ॥५२॥  
 रामनामांकितं द्वैमपत्रं तन्पुरतोऽर्चयेत् । कथां श्रुत्वा च विविचदेवदेवं क्षमापयेत् ॥५३॥  
 सपराधं च क्षणं भद्राक्षिनिर्गतं हि माम् । दीनानाय कृपामिन्धो त्राहि समारसगरात् ॥५४॥  
 राशौ जागरणं कृत्वा गीतवार्धश्च मंगलैः । ततः प्रभातसमये स्नान्वा होमं समाप्नोमेत् ॥५५॥  
 दशांशेनैव होमः स्यान्नदशांशेन तर्पणम् । रात्र्यन पयसा कार्यं राममंत्रेण यत्नतः ॥५६॥  
 तस्यापि च दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । आचार्याय भवन्मां गीं सालंकारां सुवाससाम् ॥५७॥  
 भक्त्याऽर्पयेन्ममगुवर्णं । त्रनमपनिहेतवे अन्त्यानपि द्वित्रास्तोष्य राज्यं लक्ष्मीं ममाप्नुयाम् ५८॥  
 पुत्रार्थं लभते पुत्रं धनार्थं लभते धनम् । नानादानानि तीर्थानि प्रदक्षिणतरीणि च ॥५९॥  
 तानि सर्वाणि लक्षांशमभ्यास्य भवन्ति च । निष्कामो वा मकामो वा यः कुर्याद्भक्तिमपूतः ६०॥  
 तस्य सर्वेऽपि लक्षांशमभ्यास्य भवन्ति च । लिखिन्वा पुष्पाकं वापि वरं रामायणस्य च ॥६१॥  
 एवमुद्यापनं कार्यं श्लोकमन्त्रयादभोजनः । पूर्ववद्वनं कथं नदशांशाच्च तर्पणम् ॥६२॥

इसी मन्त्रका रूप को छोड़ कर दूसरी मन्त्रका संज्ञा (कलश हो यात्रा एवं उद्यापन कर ॥ ४९ ॥) उसकी व्याख्या  
 सोचना अधिक पुण्य रामनामके लिखनेमें है । माधवका चाहिय कि जब जब रामनामकी लेखनका पूरा एक  
 लाख हो जाय, तब तब उद्यापन करे ॥ ४७ ॥ अब संक्षेपमें उद्यापनकी भी विधि बतलाता है । जिस दिन  
 उद्यापन करना हो, उस दिन एक दिन पहले उपवास करे और रात्रिके समय उद्यापनके लिये बनसी हुई  
 मण्डपिकामें या रामलिङ्गात्मक भद्र तथा रामलाभद्र, अष्टोनरमहस्रात्म्य या अष्टोनरश्वनात्म्य भद्रम धान्यराशि  
 स्थापित करके उसके मध्यमें कलश रखे । कलशके मुखपर एक स्वर्णपात्र रखकर उसपर सुन्दर कपड़ा  
 ओढ़ावे और सीता-लक्ष्मणके साथ साथ रामकी कृप प्रतिमा न्यापित करे । प्रतिमा कमसे कम एक मासे  
 सोतेकी होना चाहिये ॥ ४८-४९ ॥ यदि नुवर्गका प्रतिमा न बन सके तो धाँदी या लोहेकी बनवा ले । किन्तु  
 कच्ची करना ठीक नहीं है । प्रतिमा स्थापन करनेके अनन्तर पांडरा उपचारोंमें उसकी पूजा करे ॥ ५२ ॥  
 रामनामसे अंकित सुवर्णपात्र प्रतिमाके सामने रखकर उसका भी पूजा करे और मगवायकी कथा सुनकर लला-  
 प्रार्थना करे ॥ ५३ ॥ फिर बहे—हे दीनानाय हे कृपायनाय ! हे कृपामिन्धो मैं बड़ा अपराधी हूँ, किन्तु  
 क्षमा कर दो । मुझे इस संसार-सागरमें उधारिए ॥ ५४ ॥ रातभर गान और वाजे जाशिके साथ जागरण  
 करे और सबरे उठे तो स्नान आदि निर्याकर्मोंसे निवृत्तकर होम करे ॥ ५५ ॥ जितना जप करके पुण्यसंग्रह  
 किया गया हो, उसका दशांश द्वयन और द्वयनका दशांश तर्पण करना चाहिये । तर्पण गौके दूधसे करनेका  
 विधान है ॥ ५६ ॥ तदनन्तर तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन करावे और वन पूर्ण करनेके लिए आचार्यको  
 बस्त्राभूषणसं अन्कृत एक भवन्मा गौ दे ॥ ५७ ॥ आचार्यके आतिथ्य जो ओर-ओर ब्राह्मण आवे हों, उन्हें भी  
 प्रसन्न करे । ऐसा करनेसे प्राणोंकी रात्रय एक लक्ष्मिक प्राप्त होना है ॥ ५८ ॥ जो पुत्र चाहते हों, उन्हें  
 पुत्र जोर जो बन चाहते हों, उन्हें धनकी प्राप्ति होती है । संसारमें मिलने दान, तीर्थ, प्रदक्षिणा तथा उपस्कार्य  
 हैं, वे सब इस वरके लक्षणाके बराबर हैं जो मनुष्य निष्काम या सकाम भावसे भक्तिपूर्वक यह वन करता  
 है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । यदि इस आनन्दरामायणकी पुस्तक लिखकर किसी विद्वान्  
 ब्राह्मणकी भी नाय तो उसका पुण्यका तो किसी तरह वर्णन हो नहीं किया जा सकता ॥ ५९-६१ ॥ इसके  
 उद्यापनका विधान एक इस प्रकारका हुआ । दूसरा प्रकार यह है कि आनन्दरामायणकी जितनी श्लोकसंख्या है,

हस्यापि च दशांशेन कुर्यात्त्रक्षणभोजनम् । पूर्वश्लोकेन वाऽन्वेन हवनादि प्रकीर्तितम् ॥६३॥  
 अथवा ग्रन्थश्लोकानां दशांशैर्हवनं स्मृतम् । अथवाऽग्रे बह्व्यमणगीत्या वै अकृतस्य च ॥६४॥  
 श्लोकं निष्कास्य वै ग्रन्थादाचरेद्धवनादिकम् । अथवा रामगायत्र्या राममंत्रस्तु वाऽऽचरेत् ॥६५॥  
 हेमपत्रे त्वेक एव लेख्यः श्लोकः शुभारम्भः । अत्रेष्टित्वा पूर्वमन्त्रं ह्रस्वपत्रे सविस्तरम् ॥६६॥  
 राममूर्तेः पुनः स्याप्य सर्वं तद्गुण्वेदेयम् । श्रीरामचरितम् कृत्वा स्वेष्टमुद्यापनं नरैः ॥६७॥  
 अत्रैवमेव कर्तव्यं कविनाकल्पोत्तुपे । देवान्भक्तजानानां वृक्षाणां वापिह्रस्वयोः ॥६८॥  
 सर्वापणानां पणानां चिह्नार्थं गोपिनां नृणां च । काव्यानां च कवीनां च पद्यादीनां च सर्वथा ॥६९॥  
 राजप्रासादावास्तूनां नामकर्म विशिष्टरते । विना कर्णोपदेशेन स्थावराणां विधानकम् ॥७०॥  
 कृत्वा नामकर्मणश्च कार्यमुद्यापनं नतः । लघुपुष्पे, पूजनादि यद्यच्छ्रीराघवस्य च ॥७१॥  
 सतीपार्श्वं कृतं तस्य कायमुद्यापनं वरम् । एव राजन् प्रया मर्ये तवाग्रे विनिवेदितम् ॥७२॥

रामनामप्रभावेण स्वीयं राज्यं लभिष्यसि ।

श्रीरामदास उवाच

पुधिष्टिरस्तु तच्छ्रुत्वा कल्पिते यथाविधि । ७३॥

मानत्रयेण तत्पुंश्च राज्यप्राप्तिर्भविष्यति । अन्ते च परमं स्थानं लभिष्यसि मनोर्वलात् ॥७४॥  
 एव कथा भविष्या च तवाग्रे विनिवेदिता । रामनामस्य विधानमिमं नरः शृणोति यः ॥७५॥  
 परमभक्तियोगेनः पुत्रपौत्रजनसुखम् । सुखि भुक्त्वा प्राप्नुयात्परमं मोक्षपदं तु यः ॥७६॥  
 नित्यं व्याख्या श्रीरामांश्च कथय्यात्यन्तिमक्तिनः । आनन्दगणचरितव्याख्याऽन्यस्य विस्तरात् ॥७७॥  
 सर्गस्य चार्धसर्गस्य पादसर्गस्य वा तथा । नवश्लोकमित्तं चापि श्लोकवात्रस्य वा तथा ॥७८॥

उसके दशांशले हवन करे । हवनका दशांश प्राज्ञभोजन कराये । यह उद्यापनका दूसरा प्रकार हुआ । नव तीसरा प्रकरण चलता है । आगे बनलाये जानेवाले कर्मके अनुसार इस प्रकरणमें उक्त श्लोक निकालकर हवन आदि करे । अथवा रामगायत्रे या राममंत्रसे हवन आदि कर ॥ ६२-६५ ॥ मृगणके पत्रपर केवल एक श्लोक या पूर्वकांश्च विष्णुन रीतिसे कई श्लोक लिखकर उसकी पूजा करे और अंतमें उसे पुरुषके अर्पित कर दे । जयवा रामचन्द्रजीके विषयकी कई एक कविता बनाकर उद्यापन करे, ६६ । ६७ ॥ जिन श्लोकों कविताका फल मानकी इच्छा हो, उन्हें ही उद्यापन अवश्य करना चाहिए । कई रत्नाकर, गणेशालय तथा मधुशाला बनवाने समय, वृक्ष लगाने समय, मरने या दूधकी प्रतिष्ठाके समय, किसी पुरुष या स्त्रीके विवाहके समय यह उद्यापनविधि अवश्य करनी चाहिए । इनके अनिवार्य कविता या काव्य बनानेके समय और रामदासादिके निर्मलकाल में भी उद्यापन करना अधिक फलदायक है । उद्यापनके अनन्तर रामचन्द्रजीको प्रणम्य करके लिये जैसा कि पीछे चलता आये है, उसके अनुसार एक लाख पुण्यांश रामकी पूजा करे । इसके सिवाय जो श्रीरामचन्द्रजीको प्रणम्य करनेके लिये जो जा साधन बनलाये गये हैं उन्हें उद्यापनके समय अवश्य करे । इस प्रकार से राजन् ! मैंने आपके समक्ष उक्त कर्मकी विधि बतलायी ॥ ६०-७२ ॥ यदि ऐसा करेंगे तो इसमें कोई संशय नहीं है कि रामनामके प्रधानसे आप माने जाये हुए रामको फिर आपस का जायेंगे । श्रीरामदास कहते हैं - ४ कुण्डलचन्द्रजीकी बतलायी हुई रीतिके अनुसार पुधिष्टिर तीस मास तक इस कृतका विधान करनेसे अपना राज्य फिर वा जायेंगे और सभी मंत्रके बन्धे बन्धनसे परमप्राप्तको प्रदान करेंगे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे विष्णुदास ! मैंने तुम्हें यह भविष्यकी कथा बतलायी है । जो मन्दार भविष्यपूर्वक इस रामनामकी महिमाका वर्ण करता है वह संसारमें अत्रिचक्र रत्न है तबलक पृथक्पृथक् आदि सासारिक मन्त्रोंको भोगता है और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त करता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ रामचन्द्रका चाहिये कि प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीके सामने इस आनन्दरामरण अवदा किनी हमारे रामचरितकी अन्तिमर्धक विचारसे व्याख्या किया करे ॥ ७७ ॥ यह आवश्यक नहीं कि भगवान् ग्रन्थके अधिक अंशकी हो । यह चाहे एक सर्गकी,

श्लोकार्धं श्लोकपादं वाऽऽनन्दरामायणस्थितम् ये पठन्ति नरा नित्यं ते नरा मुक्तिमग्निनः । ७९॥

येऽनन्धमूले मुनिवृक्षमूले तथा तुलस्याश्च सर्गापदेशे ।

पुष्पस्थले भास्करभृगुरग्रे श्रीरामचन्द्रस्य पुरः सदैव ॥८०॥

तथा सभायां द्विजवृन्दमध्ये नद्याम्नटे वा रघुनायकस्य ।

आनन्दरामायणमादरेण पठन्ति धन्या भुवि मानवास्ते । ८१॥

रामायणं लिखित्वा तु दातव्यं भृगुराय हि । ममग्रं वा कांडमेकं सर्गो वाऽनिसुपुष्पयदः । ८२॥

सर्गस्त्वेकः श्रव्यं हि लिखित्वाभृगुराय हि सवृज्य देवशानंदरामायणममुद्भवः ॥८३॥

अशक्तेन तव श्लोकाः सदा देया निलेरुष च श्रेष्ठ्यर्थं रावचन्द्रस्य विप्रेभ्यः परिपूज्य वै ॥८४॥

नित्यदानमेतदेव कर्तव्यं सर्वदा नरैः, नित्यं सुवर्णमुद्राया दानेन यत्फलं मृतम् ॥८५॥

तत्फलं श्रव्यं सर्वदानेन लभ्यते नरैः । नानेन सदृशं दानं रघवस्यातिशेषदम् । ८६॥

तस्माद्वदयमेवैतदानं कार्यं निरंतरम् श्रीरामचन्द्रायैव नवपूजकैश्च । ८७॥

नामवल्लानन्दनैस्तान्मृतैः सोपचारकैः, पृथङ्मनभृगुरग्रेऽप्यो नित्यं सदक्षिणः । ८८॥

अशक्तेनैव एवापि देयस्तावत् उत्तमः । न तावत्तममं दानं किंचिदस्ति जगत्त्रये ॥८९॥

ताम्बूलः शुद्धिदः प्रोक्तस्ताम्बूलो मंगलप्रदः । ताम्बूलः श्रीरामो ज्ञेयस्तौभूतो राधाप्रियः । ९०॥

तस्मान्प्रयत्नतस्तस्या देयस्तावत् उत्तमः । सदा राम पूजयेच्च सदा राम विचिंतयेत् । ९१॥

श्रीरामस्मरणं नित्यं कार्यं मकर्या मुदुर्बुद्धः यस्तः चर्यां गमनाय हस्ती पूजनयन्तरी । ९२॥

श्रीरामचरितान्येव श्रोतुकामा च पञ्चरुतिः गमनीयानि राधेशान् रामभेदाणि यानि च । ९३॥

यदघ्नी गतुकामो तु गमपूजोत्सवान् व्रजान् । सद्रन्तुकामो यन्नत्री स धन्यः पुरुषः मृतः ॥९४॥

साधु सर्गकी, सर्गके चतुर्गणकी, जो प्रलोकोको, केवल एक प्रलोकोको, अपने प्रलोकोको, आरे या चौपाई प्रलोकोको जैसे बने ध्यान्या खचय करता जाय । जो लोग नित्य ऐसा करते हैं, वे मनुष्य अवश्य मुक्तिके भागी होते हैं । ७८ । ७९ । जो लोग दीपस्क नील, अमर्या वृक्षके नील, नृत्साक पाम, किसी पवित्र स्थानमें, मूर्गदेव या ब्राह्मणके सामने अथवा रामचन्द्रके समक्ष किया सभामें, ब्राह्मणोंको मण्डलीम या तरीके तदपः जो लोग आनन्दरामायणमें लिखे हुए चरित्रका पाठ करते हैं वे मनुष्य धन्य हैं । ८० । ८१ ॥ समग्र एक काण्ड अथवा एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर यदि किसी ब्राह्मणकी दिया जाए तो भा बड़ा पुण्य हुंका है । रामके उपासकको चाहिये कि नित्य एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर उसको पूजा करे और किसी ब्राह्मणको दान दे दे ॥८२॥८३॥ यदि पूजा सर्ग लिखनेमें असमर्थ हो तो तब केवल जो प्रोक्त हो लिखकर उसको पूजा करे और रामचन्द्रकी प्रसन्न करनेके लिये विप्रको दान दे दिया करे । ८४ । सर्गकी चाहिये कि लोग दान के चवकरम न पहकर सर्वदा इसोका दान दिया करे । नित्य सुवर्णको मुद्रा दान करनेमें जो फल मिलता है, वही फल केवल एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर दान देनेसे प्राप्त हुंका है । रामचन्द्रके प्रसन्न करनेवाला हमने बतकर और कोई भी दान नहीं है । ८५ ॥ ८६ ॥ बतपुत्र निरंतर अवश्यमेव हमका दान करना चाहिए । अथवा रामचन्द्रकी प्रसन्न करनेके लिए जो सुवर्ण अथवा अन्य वस्तुओं और दक्षिणके साथ ही पानके पत्ते की ब्राह्मणोंको दान दिया करे । यदि ऐसा न कर सके तो केवल एक ताम्बूलदान दिया करे । क्योंकि हीनो लोकमें ताम्बूलदानके बराबर और कोई भी दान नहीं है । ताम्बूल शुद्धि देनेवाला, मङ्गलप्रद, लक्ष्मीको बढ़ानेवाला और रामचन्द्रको प्रिय है ॥ ८७-९० ॥ इसीलिये लोगोंको चाहिये कि प्रयत्न करके उत्तम ताम्बूलका दान करे, सदा सब लोग रामकी पूजा करे रामका ध्यात करें और रामका स्मरण करें । जिनकी वंशोमें रामनाम विराजमान है, जिनके हाथ रामकी पूजामें लगे हुए हैं, जिनके कान रामका गुणानुवाद मनुमें लगे हैं, जिनके पाँव रामेश्वर रामतीर्थ और रामक्षेत्रम जात रहते हैं और जिनके तब रामपूजनोंसब देखतेमें लगे



राममुद्रा धार्ण्या गोपीचन्दनविह्वला । राममुद्रा मदाश्रेष्ठः सर्वदोषनिर्मुक्तनी ॥१११॥

सदा देहे नैर्भाया गोपीचन्दनविह्वला राममुद्रास्मिन् यदेहे त पाप स्पृशने न हि ॥११२॥

स्तुतिः सर्वत्र रामस्य स्नात्रैः कार्या त्वर्दानशम् । शार्वाणेश्वरार्वाणेश्वर स्वबुद्ध्या रचितगणि ॥११३॥

स चागिर्वर्गो जनताऽयत्रिप्सुवा यस्मिन्प्रतिश्लोकमवदूकन्यपि

नामान्धनवस्व यशोऽङ्गिना नि पञ्चदशानि गायन्ति गूणानि साधवः ॥११४॥

कवित्वमन्यमुद्र च रामनाम्नाङ्कितं च यत् । नञ्जयमनिमुद्र च भवणान्पलकपहम् ॥११५॥

यस्मिन् रामस्य कृष्णस्य चित्राणि मङ्गानि च । कश्चिन्ने नन्वप्ययम मदा येष महत्तमैः ॥११६॥

मृणु छिप्य नवाश्रेष्ठपद्मस्य किञ्चिद्वीर्यपदम् । कविताविषय यच्च सर्वमन्त्रैहनाशकम् ॥११७॥

अश्वन्धामा बलिर्धामो हनुमांश्च विभीषणः । कृपः परशुरामश्च सर्वमे चिरजीविनः ॥११८॥

एवं यद्वचनं शिष्य प्रोच्यते सर्वदा युधेः । तदग्रे सर्वदा मन्य ज्ञेय कल्मषुगेऽपि च ॥११९॥

येषु मन्त्रवत् भूम्यां वर्ततेऽत्र नरेषु हि । अश्वन्धामांशभूतास्ते ज्ञेयाश्च पुरुषा युधि ॥१२०॥

न्यायोपाजितद्रव्येण राज्यं कुर्वन्ति धर्मतः । कल्पश्रमरास्ते जगत्सर्वं जगतीयले ॥१२१॥

रामस्तुतिं कवित्वे ये चित्रं वर्णयन्ति च । ज्ञानांशभूतास्ते ज्ञेया मानवा जगतीयले ॥१२२॥

ये ये वीरास्त्वथ भूम्यां वायुपुत्रांश्चरन्ति । ते ते ज्ञेया नरान्धनस्य विजयावेत्यत्र रक्षाः ॥१२३॥

ये ये शान्ता रक्षभक्ताः मन्यत्र मानवा भुवि । विभीषणांशभूतास्ते ज्ञेयाश्च सकर्तृजर्माः ॥१२४॥

ये धर्मव्यवहारी योद्धारः मन्यत्र मानवा भुवि । कृपाचार्यांशभूतास्ते ज्ञेयाः सर्वं युधे मदा ॥१२५॥

ये वीराः क्रोधयुक्तास्तेऽत्र सर्वं जगतीयले । जामदग्न्यांशभूताश्च मदा ज्ञेया नरोत्तमैः ॥१२६॥

दोषोंको नष्ट करती है। अतएव लम्हा, गुहजन, शोभो कुक्षि, उत्तर, उत्तर, राजा भूताओं और अश्वत्थक इन स्थानोंमें जो राममुद्राओंको स्मरण करना चाहिये ॥ ११० ॥ १११ ॥ ये मुद्रा स्मरण करना परमावश्यक है। क्योंकि जिसके माग्यम राममुद्रा विद्यमान रहता है उसे किम् प्रकारका पापक नष्ट लगव ॥ ११२ ॥ उपालकोको यह भी उचित है कि विविध प्रकारके स्वर्गों द्वारा रामचन्द्रजीं नमस्कार करना। तत्पश्चात् प्रान्तीय हो, स्वर्ग हो या जपनी बुद्धिसे समझे गये हों ॥ ११३ ॥ रामक पणमे अङ्गित समस्तक गुणानुवादमन्त्रव्यो वचनोंका प्रवाह प्राणियोंके महान् पालकोंका भी होता है। जन्तु जगत्सर्व, पशु और मनुज कर्त रामक नामसे अङ्गित कविता चाहे अतिशय अशुद्ध है, फिर भी उसे अतिशुद्ध मानना चाहिये। उसके गुणनेसे एक तरहक पापक नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ जिस कवितामें राम और कृष्णके महान् चरित्रोंका वर्णन किया गया हो, वह अत्यन्त पवित्र होता है। बड़े लोगोंका चाहिए कि सदा ऐसा कविताका पान करें ॥ ११६ ॥ श्री रामदासजी विष्णुदासमें बहुत इच्छा है कि अब वे मुझसे आगे सब प्रकारके सन्दर्भका निवृत्त करनेवाला एक गुप्त कविताका विषय बह रहा है ॥ ११७ ॥ अश्वन्धामा, बलि, धाम, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम ये सभी चिरजीवी हैं ॥ ११८ ॥ प्रायः पण्डित लोग इस बातको कहा करते हैं। हमें इस कल्मषुगेमें जो सत्य ही मानना चाहिये ॥ ११९ ॥ इस पृथ्वीपर जितने लोगोंके पास मन्त्रवत् विद्यामान है, उनका अश्वन्धामाका अंशतः मानना चाहिये ॥ १२० ॥ जो राजे न्यायोपाजित द्रव्यसे धर्मवर्धक राज्य करते हैं, उनका इस संसारमें बलिके अंशसे उत्तराध समझना चाहिये ॥ १२१ ॥ जो लोग कविता करते हुए रामको स्तुति करने या उसके चरित्रोंका वर्णन करते हैं, जगतीयत्वमें उन मनुष्योंके अश्वत्थके अंशसे उत्तराध मानना चाहिये ॥ १२२ ॥ इस भूमण्डलमें जो जो वीर हैं वे सब हनुमान्जी के अंशज हैं। ऊपर बतलये हुए गुण ही उनके प्रकारके मनुष्योंके चिरजीवित्वकी सूचना देने रहते हैं ॥ १२३ ॥ इस पृथ्वीमें जितने मानव रामभक्त हैं, उन्हें सब लोभ विभीषणके अंशसे उत्तराध समझें ॥ १२४ ॥ इस संसारमें जो वीरोंके साथ युद्ध करनेवाले लोग हैं, उन्हें कृपाचार्यके अंशसे उत्तराध समझना चाहिये ॥ १२५ ॥ इस पृथ्वीमण्डलमें जितने क्रोधी वीर हैं, उन सब लोगोंको



चिरंजीवीति न्यासः कः कथं हेयो जनैर्दुर्वि । तस्य स्वरूपं बहूनि मावधानमनाः शृणु ॥ १२७ ॥  
 ये जीर्वाण्या कदिन्यानि करिष्यन्त्यवनीतले । व्यामोक्षभूतास्ते ज्ञेयाः पंडिता मानवास्त्विह ॥ १२८ ॥  
 ये रामचंद्रं कुण्ठं च शिवं स्तुभ्यस्तुवंति हि । वर्णयति चस्त्रिणि ते ज्ञेयाः व्यानमूर्तयः ॥ १२९ ॥  
 ये राजानं च गणिकां नारीं राज्ञः सर्वा तथा । नरं स्तुवंति स्तुभ्यः ते न ज्ञेयाः व्यानमूर्तयः ॥ १३० ॥  
 यावद्भूम्यां तु रामस्य चस्त्रिणि स्तुवीत हि । तावत्तु स्मृतौ व्यामोक्षतो मुक्तिरमिष्यति ॥ १३१ ॥  
 किं कलं कस्य पाठकश्च पदुन्नरीमि तवधुना । शृणु स्वस्थमना शिष्यः विस्तरेणोच्यते च यत् ॥ १३२ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकाण्डे रामनामलघोद्यानाद्विचर्जनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ८ ॥

## अष्टमः सर्गः

( वेदादिकोंको फलश्रुति )

श्रीरामदास उवाच

शिरोऽव्याहृतिभिरुक्ता गायत्री परिकीर्तिका वेदाक्षरार्था तुल्यः सा श्रुतेन मुनिभिः प्रवृत्ता ॥ १ ॥  
 चतुशतेन गायत्र्याः समितः परिकीर्तितम् । पाठशतं यत् एकं पदुन्नरं तदुन्नरम् ॥ २ ॥  
 तथोपनिषदः पुण्यं माधवपञ्चमख्यया । प्रोच्यते पुण्यं लोके पुण्यं कदापि नास्ति ॥ ३ ॥  
 सहितापाठनः प्रोक्तं द्विगुणं पदपठनः । त्रिगुणं क्रमपाठे व्याज्जटापाठे तु पदुन्नरम् ॥ ४ ॥  
 महाभारतपाठस्तु वेदतुल्यः प्रकीर्तितः । पुराणानां तदर्थेन स्मृतानां च तथोच्यते ॥ ५ ॥  
 भारते भगवद्गीता तथा नामगदसूक्तम् । गायत्र्याश्च समं श्रेष्ठं पुण्यं पापक्षयेऽपि च ॥ ६ ॥  
 पाठेन यत्फलं प्रोक्तमर्थतानाच्चतुर्गुणम् । पदुन्नरेभ्यः श्रवणं च पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ ७ ॥

परशुरामके अंगुष्ठ उद्भव समझता आश्रित । १२६ । निरञ्जनाकी अमकी इत संसारन कंस पहुँचाएना चाहिए । इसके लिए इसका स्वकी चतुशते है । गुण साधवान होकर गुण ॥ १२७ ॥ जो जो लोग संस्कृत वाणीने की ता करणे, ये पण्डित पुण्य गायत्री अशके उपस मान जावैने ॥ १२८ ॥ जो लोग रामचंद्र, कृष्णचंद्र तथा शिवजी स्तुति में काया उन्नत चस्त्रिणि बंधन कर उनको व्यासकी साक्षात् मुक्ति सम्पन्ना चाहिये ॥ १२९ ॥ जो लोग राजा, गणिका, स्त्री राज नभस तथा किसी व्यक्ति विशेषकी स्तुति करते हैं, वे व्यासकी मूर्ति नहीं माने जा सकत ॥ १३० ॥ इस पृष्ठद्वार प्रार्णा बचनक रामकी स्तुति करता है, तबतक वह स्थान मृतः है और अन्तमे मुक्तिपद प्राप्त करता है ॥ १३१ ॥ किसी ग्रन्थको पाठ करनेसे क्या फल होता है, अब मैं इस बातको बतलाऊँगा । हे शिष्य । तुम स्वस्थ मन होकर सुनो, मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ १३२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे ८० रामतेजवाण्डेपरिचरित-ज्योत्स्नाभाषाटीकासहित मनोहरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदास कहने लगे-वेदको शिरोऽव्याहृतिसे युक्त शी अक्षरोंवाली गायत्री कही जाती है ॥ १ ॥ बार शी गायत्रीके द्वारा पात्रमान नामक महासूक्त है, जिसमें छः शी कृचरोंका समावेश किया गया है ॥ २ ॥ गायत्रीकी अक्षरसंख्याके अनुसार उपनिषदोंके पाठसे पुण्य प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ सहितापाठको अपेक्षा दुगुना पुण्य पदपाठ करनेमें है । क्रमके पाठ करनेमें त्रिगुना पुण्य है और जटाके पाठसे छगुना पुण्य होता है ॥ ४ ॥ महाभारतका पाठ वेदपाठ सदृश होता है । पुराणोंका पाठ आद्ये वेदपाठका पुण्य देनेवाला है और उससे भी आधा पुण्य स्मृतिपोंके पाठसे होता है ॥ ५ ॥ महाभारतके अन्तर्गत भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम, वे दोनों गायत्रीके समान पुण्यदायक एवं साधककारी माने गये हैं ॥ ६ ॥ पाठसे जितना पुण्य होता है, उससे बीगुना पुण्य उसका अर्थ समझनेसे होता है और अच्छे-अच्छे भक्तोंको सुनानेसे दशगुना पुण्य प्राप्त होता





वेदार्थज्ञानतुल्याया द्वितीयायाः फलं भृशम् । प्रत्यक्षं तु लभते गायत्रीशतजं फलम् ॥४०॥  
 ये तु पशोगिनः पाशदुष्टान्य स्नेह्यते भवति हि । तेऽप्यर्थफलदा ज्ञेया व्यवधानाच्च पादशः ॥४१॥  
 वेदोपनिषदामर्थे शान्ताविक्रयाय चैव्यद्वेदः । प्रदीप सर्वविद्यानां यो जिहान्नायविस्तरात् ॥४२॥  
 वेदार्थज्ञानतुल्यं तु फलं तस्य तर्कानिहम केन जीवितायार्थं नृपः पठेन्न्यायविस्तरम् । ४३॥  
 हेतुवादरसो ब्रह्मानज्ञायां नैव यः पठेत् । स भृशलो भवेदेव यद्विदुः क्षाप्यमया ॥४४॥  
 वर्षाणि नष्टं नन्देन वृथासाधनस्य च । एरणं वैष्णवं मास्त्र्यं कीर्म भामरानु तथा ॥४५॥  
 आदिन्यं मरुड स्कान्द मार्कण्डेयमष्टमम् । ब्रह्मज्ज्ञादित्तैस्यानि ब्रह्मवर्तमेव च ॥४६॥  
 भविष्योत्तरमाश्रयं पाशं वामनमेव च । वाराहं चैव वासुदेव छष्टादशानि नै त्विति ॥४७॥  
 महापुरुषान्येतादि रामायणभवानि हि । रामायणान्पुराणानि व्यासेन खण्डितानि हि । ४८॥  
 मतः पुराणं नामाभूदेनेषां जगतीन्ते । आदौ कृतानि यान्यत्र तेषां ज्येष्ठस्त्वचकः ॥४९॥  
 महाशब्दः प्रोच्यते हि वैष्णवं दिगु पृथ्विषु । पुराणात्ता न सर्वेषां फलं शिष्यं ब्रवीम्यहम् ॥५०॥  
 वेदतुल्यफलं पाठे श्रवणे च तदुत्तमम् । अर्थश्रवणतथास्य पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥५१॥  
 वक्तुः स्याद्दिगुणं पुण्यं श्रवणपुण्यं शताधिकम् । अन्यान्यपुराणानि मति तेषां फलं शृणु ॥५२॥  
 विष्णुधर्मोत्तरं शैवं बृहन्नारदमेव च । भगवत्पुण्यं च लघुनाम्दम् च ॥५३॥  
 भविष्यत्पर्वण्यं स्यात्तन्त्रं भगवत् तथा । अष्टमं नारसिंहं स्यात्पुण्यं रेणुकाभिधम् ॥५४॥  
 दशमं तन्त्रमात्रं स्याद्वायुशोकं तथैव च । नदिप्रोक्तं द्वादशं स्यात्तथा वायुशोकाभिधम् ॥५५॥  
 वमनाम्दसत्वादस्तथा । हंसपुराणकम् विनायकपुराणं च बृहन्नारदमेव च ॥५६॥  
 पुण्यं विष्णुवहस्य स्यादिति सष्टादशानि वै । एतान्यपुराणानि पुराणार्थफलानि च ॥५७॥

फल मिलता है ॥ ४० ॥ जब ज्ञान बढ़ जाता है तो उसे व्यापसे आप वेदका अर्थ ज्ञात हो जाता है । भीमासा-  
 शास्त्रके दो प्रकार हैं । एक कर्मपरक दूसरा ब्रह्मपरक ॥४१॥ इन दोनोंमें पहले अर्थात् कारका मार्ग बतलानेवाले  
 भीमासाका अध्ययन करनेमें ब्रह्मपरकका पुण्य प्राप्त होता है और दूसरे ब्रह्मपरक भीमासाको पढ़नेसे जो  
 पुण्य होता है, उसे सूची । उत्तर भीमासाका अध्ययन करनेवाले, प्र जो जितने अक्षरोंको पढ़ता है, प्रत्येक अक्षरसे  
 उसे सौ गायत्रीके अर्थात् पुण्य प्राप्त होता है । ४० ॥ ऐसे लाभ बड़ हैं । जययोगी विद्वान् होता है और श्रव्योको  
 उत्पत्ति उन्हीं व्याससे होता है । ४१ ॥ जो भगुण्य वेदों और उपनिषदोंके अर्थोंमें विद्याभोक्त प्रदीपस्वरूप व्यास-  
 शास्त्र पढ़ते हैं, उन्हें वेदार्थके नवे पुण्य फल मिलता है । विष्णु जी कवल ज निकाले जिस व्यासका अध्ययन  
 करता है और केवल हेतुद्वारे सत्य रहकर ब्रह्मजित्तै साक निर्मित नहीं पढ़ता । वह सुडा मनुष्य व्यासके  
 जितने अक्षर पढ़े रहता है, उसमें ही वहाँ तब गुराण हो-हुकर जन्म लेता है । इसमें कोई संशय नहीं  
 है । अब पुराणोंका गिनान है । वायव्य परा, कुर्म, भामरानु, ॥ ४२-४५ ॥ आदित्य, मरुड स्कान्द, मार्कण्डेय,  
 ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ये सभी महापुराण रामायणसे ही उत्पन्न हुए हैं । किन्तु व्यासजीने रामायण और पुराण इन  
 दोनोंमेंसे बहुतसे अंग काट दिए हैं । ४८ ॥ इसी कारण इनका पुराण यह नाम पड़ा है । सबसे पहले  
 जो पुराण बतलाने लगे, उनका ज्येष्ठपूषक महाशब्द है । हे शिष्य । अब मैं तुम्हें पुराणोंके पाठका फल  
 सुना रहा हूँ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पुराणोंका पाठ करनेसे ब्रह्माडका फल मिलता है और उन्हें सुननेमें उससे आधा  
 फल मिला करता है । किन्तु पुराणोंके अर्थोंका अध्ययन करनेमें उसमें दशगुना अधिक फल होता है ॥५१॥ वक्ताको  
 दशगुना और व्यासका करनेवालेको सौगुना पुण्य होता है । इनके अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं । अब  
 सबका नाम सुनो— ॥ ५२ ॥ विष्णुवर्मोत्तर, शैव, बृहन्नारद, भगवत्पुण्य लघुनारद भविष्यत्का छह पर्व,  
 वायव्य, नारसिंह, रेणुका ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसकी नस्वसार वायु द्वारा कहा हुआ ग्यारहवीं, नदी द्वारा कहा  
 हुआ बारहवीं वायुवत्, मय और नारदका सन्वाह, हंसपुराण, विनायकपुराण, ब्रह्मज्ज्ञादित्तै और पवित्र

भारतं वेदतुल्यं स्वादर्थतोऽधिकमुच्यते । तत्रापि भगवद्गीता विष्णोर्नाममहत्त्वम् ॥५८॥  
 दशाधिकफलं मोक्षं भारतादापि सर्वशः । श्रोताऽर्थं कलमाज्जितं भक्तिनाः शृणुषुषुषः ॥५९॥  
 भारतं न्वितिहामअ गमायणममुद्रयम् । यद्देवशठपुत्र्यं दञ्जयेव रामायणस्य च ॥६०॥  
 पाञ्चनदद्वैतध्वने व्यासपात्रुध दशाधिकम् । नान्मभक्तिना कुत यच्च अतश्चोदयविश्वम् ॥६१॥  
 तत्सर्वेषमादिभूतं महाभंगलकारकम् । रामायणादव नाना भक्तिरामायणानि हि ॥६२॥  
 शेषमृतं चतुर्विंशसहस्रं प्रथमं स्मृतम् । तथा च योगं विष्णुमध्याम्याख्यं तथास्मृतम् ॥६३॥  
 बायुपुत्रकृतं चापि नादोक्तं तथा पुनः । लघुरामायणं चैव बृहदारामायणं तथा ॥६४॥  
 अमस्त्युक्तं महाश्रेष्ठं साररामायणं तथा । देहगरामायणं चापि वृत्तरामायणं पुनः ॥६५॥  
 मन्तरामायणं रम्यं भारद्वाजं तथैव च । शिरारामायणं कौव भारतस्य च जैमिनेः ॥६६॥  
 आत्मधर्मं श्वेतकेतुःकृपेऽर्थव जटायुषः ॥६७॥

रवेः पुलस्तकेदेव्याश्च सुहृदं मंगलं तथा । माथिज च गनी न च सुग्रीव च विभीषणम् ॥६८॥  
 तथऽऽनन्दरामायणमेतन्मंगलकारकम् । तत्र सहस्रतः पति श्रंरामचरितानि हि ॥६९॥

कः समर्थोऽस्ति तेषां हि सारं वाचकं सर्वस्तराज

इतकोऽस्तितादेव विभक्तानि सूचकं सूचकं ॥७०॥

सर्वेष्वप्यानंदमंजु परिष्टु श्रोच्यते निदमं अग्न पात्रेन यन्मुष्यं तच्च शिष्य वदाम्यम् ॥७१॥  
 श्वेतकेटिमित्रं श्रुत्वा दन्कन लम्पते जने । एतदस्य तदद्वैतं हि ज्ञेयं विषय शुभमदम् ॥७२॥  
 भवणाद्विगुण पट्टे व्यासपात्रुध दशाधिकम् । तस्मादेतन्महाऽऽनन्दमत आत्म नरोत्तमः ॥७३॥  
 नानेन सहस्रं किंचिद्वृतं नाथे भविष्यति सर्वेष्वपि च शस्त्रिण पाञ्चरात्रागमोऽधिकः ॥७४॥

विष्णुरहस्य से अष्टादश उपपुराण हुए । इनका पाठ करनेसे पुण्यपाठका अर्धाफल मिलता है ॥ ५५ ॥  
 ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ महाभारत तो मस्तक धारक जमान है । उसमें कही हुई भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम से होनेसे महाभारतसे भी दमगुना अधिक फल प्राप्त होता है । जो श्रोता भक्तिपूर्वक उन्हें सुनता है, वह आधा फल पाता है । महाभारत रामायणका ही निरुद्ध हुआ है । काम २ । वेदके पाठसे जो पुण्य होता है, वही फल रामायणके पाठसे है । ५८-६० । मूल-महाभारत, रामायण, अथर्ववेद, इत्यादि विष्णु विष्णुता है और व्याख्या करनेसे दसगुना अधिक फल प्राप्त होता है । श्री करार कल्याण । रामायण, रामायण, जिस रामायणकी रचना की है, वह सब रामायणोंका मूल और महत्त्व है । रामायण में ही विविध प्रकारकी रामायणोंकी रचना हुई है । ६१ ॥ उसीसे परिशिष्ट अंगन बना । जो रामायण सब रामायण तो हुई जोरसे हजार श्लोकोवाली कास्मीकिरा-  
 मायण, योगवासिष्ठ, अष्टात्मरामायण, रामायण ( शृणुमन्त्रो ) की रामायण, नारदरामायण, कबुरामायण, बृहदारामायण, अमृत्यजीक बनारसी महाभारत साररामायण, देहरामायण, वृत्तरामायण भारद्वाजरामायण, शिरारामायण, कौवरामायण, भरतरामायण, जैमिनिरामायण आदि बहुतसी रामायणें हैं । ६२-६६ ॥ इनके अतिरिक्त आत्मधर्मकी, जटायुकी, भदतकेतु करिकी, पुत्ररहस्यकी, देवाजाकी, दिग्भामिनीकी, मुतीक्षकी, सुग्रीवकी, विभीषणकी और यह महाभारत आनन्दरामायण, दम तद्वैत रामधर्मिका वर्णन करनेवाली हजारों रामायणें बनी हैं ॥ ६७-६९ ॥ उन सबको समित्कार सारा मतमानेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सकता । कास्मीकिजीके सी करार श्लोकात्मक रामायणमें ही इन सबका निर्माण हुआ है ॥ ७० ॥ किन्तु अगर जिनको हुई सब रामायणोंमें यह आनन्दरामायण ही श्रेष्ठ है । ऐसा लोगोंने कहा है । इसके पढ़नेमें क्या पुण्य होता है, सो हे शिष्य ! मैं तुमको इसका महात्म्य बतला रहा हूँ ॥ ७१ ॥ पूर्वक श्वेतकेटिमहाराजका कास्मीकिरामायणके सुननेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका आधा पुण्य इस आनन्दरामायणके पाठसे होता है । इसको सुननेसे दुगुना और व्याख्या करनेसे दसगुना पुण्य होता है । इस कारण लोगोंको चाहिए कि इस आनन्दरामायणका अवलोकन करें ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इसके अठार पात्रक कोई अन्य न बचतक हुआ है और न

भगवद्गीतया तुल्यं कर्म तस्याखिलस्य च । भर्तृव्यकर्मवत् सर्वकर्तृत्वे निश्चितम् ॥७५॥  
 तत्कार्यं यः पठेन्प्राज्ञो दशार्थं फलमाप्नुयात् । सङ्कर्तृनिमित्तं तच्च शतशतफलदं स्मृतम् ॥७६॥  
 यः करोति स्वयं काव्यं कल्पयित्वा स्वयंकथाम् । तच्छ्रुत्वा कश्चिन्मतेन तदर्थेना च दोषभाक् ॥७७॥  
 पौराणीं सारणीं चापि तथा रामायणस्थिताम् । तथा महापुराणस्थां कथां प्रयति यः स्वयम् ॥७८॥  
 रामभक्तोऽपि लभते शक्रलोकप्रियात्मनाम् । प्रत्यक्षं यस्मैकं रामस्वरूपं भवेद्भूयम् ॥७९॥  
 रामभक्तः पुराणेश्वरः कथां प्रयति यः पुनः । दयालुमूर्तिः स लभते बृहस्पतिमलोकनाम् ॥८०॥  
 दीदित्तपोपितः शिष्यः शरमश्च जन्माश्रमः । सङ्करवाणः पुनः स पुनर्ये स्वीकृतिः ॥८१॥  
 एवं भूषणमंशभूतनर्मते विचरति हि अधर्माणादयः स्रजं चित्तज्जोदितः सदा ॥८२॥  
 अतः श्रीरामभक्तश्च कश्चित्त्वैतन्नतुतिः कृता । सपि मन्त्राः सदा श्रुत्वा भटनीया बुधैर्हृद् ॥८३॥  
 भगवाणश्च श्लाघेन फलदात्री स्मृताऽत्र हि । निरतिशये भक्तकृतावर्तिनां ते स्वयः स्मृताः ॥८४॥  
 तत्तद्व्याकृतं काव्यं रामवर्णनमंभूतम् । भक्त्यनुरागस्यारुधेः प्रीतिः कर्म स्मृतम् ॥८५॥  
 निर्मातुस्तु मयैवपुण्यं सधुशुद्धशर्माश्रितः । श्रीरामायणस्यार्त्तं संप्रति व्याख्याशु ईषिता ॥८६॥  
 स्वस्वभावाकविद्वान् कलागन्धे कसेधगा । न विदितं नापि पदान्त्रयसमन्विता ॥८७॥  
 अर्थप्रमाणमहिता सर्वमान्या न येन । तन्नतुतिस्तु यः कुर्यात्तत्रैकार्थं कविः कश्चिन् ॥८८॥  
 निष्फलान्तरुमः प्रोक्तस्तदर्थेना च दोषभाक् । उन्मत्तेन तु यः कुर्यात्कार्त्तिकानां तु वर्णनम् ॥८९॥  
 स हि श्वेतीति प्राप्नोति वर्षाभ्यक्षरसंख्यया । वेदोक्तार्थानुसारेण सन्तुष्टः स्मरकाः स्मृताः ॥९०॥

मरिच्यम होता । सब शास्त्रोंमें पाञ्चरात्रके आगमको विशेष महत्त्व दिया गया है । उसका पाठ करनेसे भगवद्गीता पाठके मुख्य फल प्राप्त होता है । महाभारतमें कथानकीका और जिनका भन्दे भन्दे भगवद्गीतामें बताया है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उन काव्योंको जो मनुष्य पढ़ता है, उसे रामायणक पाठका दश, शत पुण्य प्राप्त होता है । अन्य जनोंके बनाने काव्योंका अध्ययन करनेमें मानाश फल मिलता है । ७६ ॥ जो मनुष्य काव्यकी कल्पना करके स्वयं काव्य बनाता है, उसका परिश्रम दाय जाता है और उसका पाठ करनेवाला भी दायका भागी बनता है ॥ ७७ ॥ जो कवि पुराणों, महाभारतमें राजाश्रम तथा उपव्रजणोंमें निजी हुई कथाओंका संग्रह करता है । वह रामभक्त होकर इन्द्राश्रम निवास करता है । वह प्राणी जितने अक्षरोंको लिखे रहता है, उतने ही वर्णतक इन्द्राश्रम रहता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो रामभक्त पुराणोंसे कथामेंका संग्रह करता है, वह साक्षात् भगवद्वक्के समान बूझ होता हुआ वृत्त्यनिक लक्षमें निवास करता है ॥ ८० ॥ अपनी लच्छकोका लच्छा, पोषा पुत्र, जिष्य बड़ेचा, ललाट तथा मङ्गल्यका रचना, अपना निजी पुत्र, इतने सन्तुष्ट मान गये हैं । ८१ ॥ वे लोग अशमन मनुष्यों अर्थान् अधव्यथा आदि जो सात चित्तजो वृत्तमाये गये हैं, उनके साथ पृथ्वीमटलपर विचरते हैं ॥ ८२ ॥ अतएव सङ्कर्तृ रामभक्तोंने अपनी कवितामें श्रीरामकी स्तुति की है । इन्हींमें लोग उनकी भी कविताओंका शिर कर, बारम्बार पुन और पढ़ ॥ ८३ ॥ रामभक्तोंकी कविता महाभारतका शतपथ फल देनेवाली होती है । जो लोग किसी रामभक्तकी बनायी कविताका निरुद्ध करत हैं वे एक प्रकारके मूर्ख हैं ॥ ८४ ॥ सङ्कर्तृमायक अनिश्चित और और भाषाओंमें रामके चरित्रवर्णन युक्त कवितामें आता-जानाको महाभारतक सहस्र अंशका फल देनेवाली होती हैं ॥ ८५ ॥ अच्छे शब्दोंमें की हुई कविता कविको शतश फल दती है । सङ्कर्तृमें कविता करनेवाला प्राणी भ्राताका अंश होता है ॥ ८६ ॥ अपनी-अपनी भाषामें कविता करनेवाले कथांशर मयया संस्कृतमें रचना करनेवाले कविगोत्रोंमें जिनकी कविता पद और अक्षय संयुक्त हो, जिसमें अर्थ तथा प्रमाण दोनों विद्यमान हों, वे ही राम्य हैं, और नहीं । जो कवि अपने स्वाधके लिए किसी मनुष्यकी स्तुतिमयी कविता करता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है अन्य उत्साह अध्ययन करनेवाला प्राणी भी दायका भागी बनता है । जो कवि उन्मादवश द्विजोंका वर्णन करता है, वह कवितामें लिखे हुए जितने अक्षर हैं, उतने वर्णतक भानकी योगिमें

[illegible][illegible]

चिन्वेकमन्स्य कर्तव्यो द्रव्यदाने विशेषतः । यन्नस्तु तेनः पात्रं पानीयस्य विधायितः ॥१०७॥  
 द्रव्यदाने तु कर्तव्यं विशेषतः पात्रधीक्षणात् । मन्त्राणां चरे द्रव्यं न तु द्रव्यमप्युपेतं विपन् ॥१०८॥  
 पात्रापात्रविचारणं मन्त्राग्रे दानमुत्तमम् । यथा पुण्यं पात्रं दानं तत्र न कन्याधिकम् ॥१०९॥  
 ज्ञानाधिक्याद्भवेत्पुण्याधिक्यान्पात्रं श्रेयसः सा । दानं न तु दानं न तु दानं न तु दानं ॥११०॥  
 रामदेवी वर्जनीयो दर्शनात्पानं दत्तम् । मन्त्राणां चरे द्रव्यं न तु द्रव्यमप्युपेतं विपन् ॥१११॥  
 पात्राधिक्यं दद्यान् दानं विशेषतः । विद्वत्पात्रेन यदा न तु दानं स्मृतं कुर्यात् ॥११२॥  
 दैवकालविशेषेण यत्तन्मन्त्रविशेषतः । दानस्य कर्मसुविशेषाधिक्यं न्यूनमेव च ॥११३॥  
 विप्रशुल्कं तु यो मृदो न दद्यात्तत्कर्मभवेत् । विद्याविशिष्टादपि सुगौरवेण मन्त्रव्या ॥११४॥  
 दिव्यवर्णापि नैवात्र स्वयां कार्यम् सन्नयः । यत्तु ज्ञानवता कर्म कियते पुण्यदायकम् ॥११५॥  
 अधिकं तत्फलं प्रोक्तमज्ञानिभूतकर्मणः । यथा यथाऽधिकं ज्ञानं तथैव विद्वत्पात्रव्या ॥११६॥  
 यत्तु ज्ञानवता कर्म कियते पापकर्मकम् । यत्तु ज्ञानवता कर्म कियते पुण्यदायकम् ॥११७॥  
 यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पादहानिभवेत् । यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पादहानिभवेत् ॥११८॥  
 ज्ञानाग्निर्दुष्टकर्माणि भस्मयान्मुक्तये नृणां । यथा यथाऽधिकं ज्ञानं तथैव विद्वत्पात्रव्या ॥११९॥  
 पुण्याधिक्यं तथा विप्र्यस्तं निमग्नं च । पुण्यं न तु पुण्यं न तु पुण्यं न तु पुण्यं ॥१२०॥  
 पापेन पापवृद्धिश्च पुण्यं स्वल्पं च जायते । यथा यथाऽधिकं ज्ञानं तथैव विद्वत्पात्रव्या ॥१२१॥  
 तथाप्येव विचार्य भ्यान्तत्तत्तत्तत्तत्तत्तत् । यत्तु सन्त्यधिकारेऽपि ज्ञानं न पठन्तपि सा ॥१२२॥

धनुर्वेद और वण्डनीति, ये दोनों आश्रमोंकी जविराये हैं ॥ १०३-१०५ ॥ किन्तु धर्मियोंकी वे वेदपठका फल देती हैं । ऊपर नतलागे हुई मन्त्र मन्त्रोंमें जन्मके अनुसार ही पुण्य होता है । इसलिये लोगको चाहिए कि विशेष करके द्रव्यदानके विषयमें विचार करे, धर्मकी अप्रदान और प्यासेकी पानी विद्याना श्रेष्ठ कर्म है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ द्रव्यदान दान समय पत्रका विचार करना आवश्यक है क्योंकि कुछ गोमें भी दूष होता है और सपक पटम पटम जानकर दूष या विष बन जाता है ॥ १०८ ॥ इस तरह पात्र और अपात्रका विचार करके सन्पात्रमें दान देना अच्छा है । दानका पात्र जितना ही अच्छा होगा, उतना ही अधिक पुण्य होगा ॥ १०९ ॥ इस पात्र और अपात्रका विचार, ज्ञानकी अधिकता, पुण्यका बाधकता तथा परिश्रमकी अधिकता सबकर किया जाता है । जो मनुष्य रामका भक्त है, वही पात्र है और जो रामभक्तिसे रहित है, उसका अपात्र जानना चाहिए । जो मनुष्य रामसे दूष रखता हो, उसका दर्शन और उसके सम्भाषण आदि कदापि न करे । जो मनुष्य भक्त्यावा साय के ग है, वह आरविच मनुष्य भी पवित्र हो जाता है ॥ ११० ॥ १११ ॥ अपनी जालसे अधिक जो दान दिया जाता है वही दान दान है और कमजोर साय जो दान दिया जाता है, वह दान दान नहीं है ॥ ११२ ॥ देवकाल एवं पात्र अपात्रका विचारकाके अनुसार अधिक या न्यून फल कहा गया है ॥ ११३ ॥ जो मनुष्य मन्त्रोंकी पारिश्रमिक नहीं रता, वह उन वैश्वकी सम्पाके अनुसार दिव्य वषों तक विद्याका विमि बना रहता है । इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिये । ज्ञानवान् मनुष्य जिन पात्रों कर्मोंका करना है अज्ञानियोंकी अपक्षा उसे अधिक फल मिलता है जैसे-जैसे ज्ञानकी मात्रा बढ़ता जाती है वैश्व-वैश्व उसका पाप नष्ट होने जाते है ॥ ११४-११५ ॥ ज्ञानी मनुष्य यदि कोई पाप करता है तो अज्ञानियों द्वारा जिन पात्रोंकी अपक्षा उस पापका भी न्यून ही फल मिलता है ॥ ११६ ॥ जैसे-जैसे ज्ञान होता जाता है वैश्व-वैश्व पाप अपन अपन नष्ट होते जाते हैं । जिस तरह जलही हुई अग्नि लकड़ियोंका गलाती है, उसी तरह ज्ञानाग्नि समस्त कर्मोंको भस्म कर डालती है । जिस तरह अग्निके सयोगमें कचनकी कान्ति अधिक हो जाता है, उसी तरह ज्ञानियोंका भक्त करनेसे पुण्यकी मात्रा बढ़ती जाती है । पुण्यस पुण्य बढ़ता है और पाप कम होता जाता है ॥ ११७-१२० ॥ पापसे पापकी वृद्धि होती है और पुण्य कम होता जाता है यह वक्ता ही भूम विचार है और स्थूलदृष्टिवालेके लिए तो कोर



प्रयत्न नैव कुर्यात् न नरो जायते पशुः । ज्ञात्वा ह्यस्य चरितं पुनरपि प्रयत्नं वर्धये ॥ १२३ ॥  
 इति संक्षेपतः योक्तव्येनृषु रामस्य । उक्तं च तस्मै न कथयन्त्याप वा ॥ १२४ ॥  
 धर्मास्तु बहवः सन्ति तथा पावनम् । तेषु न भवति नृपस्य । इति नैव कुर्यात् ॥ १२५ ॥  
 कर्तव्यानि जनैस्तानि सम्पश्युद्राविशमम् च । तर्पयन्ति न शोका रक्षसं दुःखम् ॥ १२६ ॥  
 ग्रहणीयं प्रयत्नेन न ह्यभक्ताव दास्यते । सुन्दरं शब्देन च रामं जाय शयनाम् ॥ १२७ ॥  
 इति शतकोटिरामचरितानामुक्तं कामदाचार्येण । रामचरितं आदि । ७२ अर्धे १, ७३  
 सर्वेषां ब्रह्मदेवाणां कलकृतिर्गोपि । यथा ॥ ८ ॥

### नवमः सर्गः

रामको नृपस्य ज्ञात्वा पूजाम् ।

विशेषं च पूजयेत् ॥

गुरोऽन्यद्रामचन्द्रस्य विशेषेण च पूजयेत् । अन्यत्र तु प्रकृतं न कालोऽयमस्य माम् ॥ १ ॥

नैव दास्यते न च

मृणु शिष्य प्रयत्नं नैव कालं पुनरपि पुनः । रामचन्द्रस्य पूजनं विशेषतः ॥ २ ॥  
 मायस्य शुक्लपद्मस्य वा पुष्पं च ध्वजो वा । पुष्पाश्च ध्वजौ चान्यथा । इति जगत्त्रये ॥ ३ ॥  
 तदारभ्य साधनामद्वयं रामं गच्छेत्तदा । पूजयेत्तद्वर्षे वाप्येकवारं कृष्णपञ्चजाम् ॥ ४ ॥  
 माघकृष्णचतुर्थ्याञ्च नवमीं मनुशुक्लञ्च । यावत्तत्पञ्चकलहरः चैवार्थाति दिनानि हि ॥ ५ ॥  
 सीतारामस्य नित्यं हि केचित्कुर्यान्ति पूजनम् । पौर्णिमांताः स्मृताश्चात्र मामाः सर्वत्र भो द्विज ॥ ६ ॥  
 प्रत्यहं बाह्मरूढं कृत्वा रामं महोत्सवः । भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्महापाद्यपुरःसरैः ॥ ७ ॥

भा० कठिन है ॥ १२१ ॥ यह सब हात हुए भी तत्त्वज्ञानके अनुसार इसपर विचार करना ही चाहिए । जो मनुष्य अविकारी होता हुआ भी जनक के प्रयत्न न होकर, वह पशु मानव जन्म पाता है । ज्ञान अथवा अध्ययनसे विप्रकाश पुष्प उदया है ॥ १२२ ॥ ॥ ३ ॥ ह्य जनवः । तुम्हें जो कुछ पूजा, मैंने उसे संक्षेपसे कह सुनाया । लोगोंको चाहिए कि इसका अनुष्ठान तार और पुष्पोंके, मिश्रण कर लिया करे । ॥ १२४ ॥ पुष्प और पाप ये दोनों बहुत प्रकारके हैं । पाण्डुरोग २ मदनमयपर पाप त प्रायश्चित्त बतलाये है । ॥ १२५ ॥ लोगोंको चाहिए, कि उत्पन्न ध्वजो इतिसे अच्छी तरह अभ्यासकर करे । सब धर्मोंका तार एव रहस्य मैंने तुम्हारे कार्य कह सुनाया । इस यत्नके साथ ग्रहण करना चाहिए । इस भक्तिविहिन प्रार्थकोंन दकर उसे दना चाहिए जा शुद्ध, साधु एवं रामभक्त हो । ॥ १२६ ॥ ॥ १२७ ॥ इति श्रमस्तथाऽप्येवमनिरुद्धाः श्रमस्तथाऽप्येवमनिरुद्धाः रामायणे पञ्च रामतज्जवाष्ट्यकृत उवाच । भाषायाः साहित्यं मनोहरकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो रामचन्द्रजीका विशेष पूजन किस समय करना चाहिए । वह समय आप मुझे बतलाइये ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । सुनो, मैं तुम्हें रामको पूजाका परम पुनीत समय बतलाता हूँ । रामचन्द्रजीका पूजन करनेके लिये वह समय बहुत ही उपयोगी होता है । माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथि वही ही पवित्र तिथि है । श्रीपञ्चमी उसका नाम है । इसी नामसे वह तीनों लोकमें विख्यात है ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ तबसे लेकर अथवा वैशाखके कृष्णपक्षकी पञ्चमी न आ जाय अर्थात् द्वादसी महीनेतक महान् उत्सवोंके साथ रामचन्द्रजीका पूजन करे ॥ ४ ॥ माघके कृष्णपक्षकी चतुर्थीसे ध्वजके शुक्लपक्षकी नवमी तक अर्थात् इसमासके दिन केवल फलाहार करके रहे ॥ ५ ॥ जो लोग नित्य सीतारामका पूजन करते हैं, उनके लिये पौर्णिमांत ही माना जाता है ॥ ६ ॥ प्रतिदिन बाह्मपर बड़े हुए रामको भेरी-दुन्दुभी आदि बाजे-गाजे, बैरावोंके तुल्य, छत्र, चमर, तोरण, विविध प्रकारकी पुष्पवर्षा, नाना प्रकारके स्तोत्रपाठ, तरङ्ग-उरङ्गके सुगन्धित

वारस्तीर्णा नृप्यर्गातेऽष्टत्रयामानन्दः । नानावसुमधार्घ्यैर्नानास्तोत्रादिसाधनैः ॥८॥  
 नानापरिमलद्रव्याञ्जलीनां शोचनदिभिः । नानामांगल्यवस्तूनामञ्जलीभिः सुशोभनैः ॥९॥  
 नानासुसुमङ्गानां तैलानां च वासपत्रम् । रत्न च वारतायश्च जलपत्रैः करे घृतैः ॥१०॥  
 मृदुमृदुः मिषनाशैस्तथा स्वाणां सुमन्त्रिनैः । द्विजानां वेदधोर्षश्च धूर्पनीयजनदिभिः ॥११॥  
 सहकाराराममध्ये नोन्मैवं परमोन्मैवः । यदकारवृक्षवददोलके न निवेशयेत् ॥१२॥  
 नाम्नेन वा पुष्पकेण शेषयानेन दन्तिना । श्वेन गरुडेनापि तथा सिंहामनेन च ॥१३॥  
 तथा शिविकया वापि वायुपुत्रेण वा तथा । गार्ग्यैर्वर्गभिर्नेत्रैश्च सदा नैवो रघुनमः ॥१४॥  
 आश्रयभाराममध्ये वल्लीपुष्पनमाम्बुजे । अश्वि चन्द्रनैलिन्व्या विकीर्णं कुसुमानि च ॥१५॥  
 आञ्जलय नानावस्त्रैश्च शोभनायाऽऽनिः शुभा । हेमनेहासनम्वैव कृत्वा दोलकमुत्तमम् ॥१६॥  
 चूलवृक्षस्य शाखायां तं च दृष्ट्वा भृङ्गलदिभिः । तत्र श्रौतामनोभद्रे रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥१७॥  
 नानानवविधैः पुष्पैः पौष्टिकरूपचारुभिः । नरस्य गोन्या वायुमुग्रवार्धैः समान्वनम् ॥१८॥  
 आंदोलयेदोलकं तं शिशुशालकाच्छतैः । नलिनव्या चारवेड्यास्तदाऽग्रे शनशो मुदा ॥१९॥  
 गायत्रीया गायत्र्याश्च नर्तितव्या गतादयः । चर्मायाणि चाद्यानि ज्वालनीयाः सुपुष्पाः ॥२०॥  
 पीवनीयश्चामराक्षः सीतया रघुनन्दनः । तटैर्मैः चार्तमन्त्रैश्च कारयित्वा महान्मर्चैः ॥२१॥  
 पुनः पुन्य पूर्ववच्च समानातो गृहं प्रति । मरूजनीचः श्रृंगारमः कुमदापार्तिकादिभिः ॥२२॥  
 एवं नित्यं सार्धमानद्वयं रामं प्रपूजयन् । चूनवृक्षतले नीत्वा पूजयेच्च सविस्तरम् ॥२३॥  
 यदा रामश्च सीता च बहिर्नेया निजगृहान् । तदा तयानयनाथः कम्पूपांगुलिनाऽसिताः ॥२४॥  
 देयश्च पिद्वो वस्त्राभ्यर्दुर्दृष्टिनाशनाः । एवं दोलापूजनं च शिष्य ते कथितं मया ॥२५॥  
 विशेषं शृणु तवापि कथ्यते यो मयाऽधुना । वस्तुपूजनान्पूर्वदिवसे गणनायकम् ॥२६॥  
 माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूजयोद्विघ्ननाशनम् । माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः ॥२७॥

द्वयोर्का अंजलीदान, विविध प्रकारके पुष्प, चूर्ण, तैल, चन्दन, चन्दनसे परस्पर वेष्टाओके पिचकारी छोटने, स्त्रियोंके सुन्दर गायन, ब्रह्मगोक वेदघोष, वृष, नगराज, जार, कर्ता हुआ आसक बगीचम ले जाय और वहाँ भगवानको आसनवृक्षसे पट्टे हिंडालपर बिठाल ॥ ८ ॥ ९ ॥ हाथसे, पुष्पकसे, शेषकी सवारीसे, घोड़ेसे, रथसे, गरुडसे, सिंहासनसे, शिविका द्वारा तथा वायुपुत्र द्वारा इन ती सबारायापर रामका ले जाना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ आश्रयवृक्षके बगीचे जिसमें कि बल्लारशों तथा पुष्पक वृक्ष लग हो, पृथ्वीको चन्दनसे लीपकर फूल बिखरे ॥ १५ ॥ नाना प्रकारके वस्त्रोंसे डीककर उस पुष्पावा आसन परे । सुवर्णका सिंहासन बनाकर भृङ्गला आदि-के द्वारा आसके वृक्षसे सूल्य डालकर रामका बिठाल और सर्वतोभद्र बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विविध तथा नौ प्रकारके फूलों एवं पाटश उपचाराने सीता, बन्धु तथा सुग्रीव आदि मित्रोंके साथ भगवान्का पूजन करके बच्चोंकी तरह उम झूलेकी धारे धीरे रास्ती खीचकर बुलाये । उनके आगे स्केकों बेशमार्ये नक्षत्रों, गायकोंसे गाने गवाये, नटोंसे नृत्य कराये, विविध प्रकारके धावे बजवाये और नाना प्रकारके सुपन्दीप आदि जलाये ॥ १८-२० ॥ सीता तथा रामपर चमर आदि हाँक और रामभर्तोंको बुलाकर कीर्तन आदि कराये ॥ २१ ॥ इसके बाद पूर्वोक्त विधिक अनुसार फिर पूजन करके रामचन्द्रजीको घरपर ले आये । घर पहुँचनेके बाद भी कलश, हाथ तथा मारती आदिसे रामकी पूजा करे ॥ २२ ॥ इस तरह प्रतिदिन पाई महीने तक आश्रवृक्षके नीचे भगवान् रामका पूजन करे ॥ २३ ॥ जब राम और सीताकी धरसे बाहर आना हो तो उनकी आँखोंके नीचे करतूरीकी काली चिन्दी लगा दे ॥ २४ ॥ इसको लगानेसे लोगोंकी दुईष्टि उनपर नहीं पड़ेगी । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दोलापूजनका प्रकार बतलाया । २५ ॥ इसमें भी जो

ये हुंति पूजयिष्यति तेऽन्याः स्थग्युद्गताय । माघमासे चतुर्थी तु तस्मिन्काल उपोषितः ॥२८॥  
 अर्चयित्वा विष्णुगर्जे क्षामं तत्र कायेन । चतुर्थी कुन्दनाभ्यां कुन्दपद्मैः प्रपूजयेत् ॥२९॥  
 माघशुक्लपंचमी मा संया भीषणो शुभा नमो नित्यं रक्षनाय तस्मै नमः ॥३०॥  
 माघशुक्लचतुर्थी तु वरमागम्य च श्रिया । पञ्चम्यां कुन्दकुम्भैः पूजां कुर्यान्मिष्टद्वये ॥३१॥  
 नीत्वा शयं चतुर्धनले दोलकाभिधनम् । सीतारामं पूजये च देहे वाऽथ प्रपूजयेत् ॥३२॥  
 प्रपूजे मधुमासे तु प्रतिपद्यदि ते रतौ । कुर्यात्पावप्रक्षाल्याणि मंत्रार्प्य पिङ्गेवनाः ॥३३॥  
 बंध्येद्वोलिकाभूमिं सर्वदुर्लोपघातये वदिकाऽपि मुद्रैश्च नम्रणा सकरेण च ॥३४॥  
 अतस्त्वं पाहि मां देवि भूते भूतिप्रदा भव । चैत्र ममि मदापुण्यं पुण्ये तु प्रप्तेपद्मिने ॥३५॥  
 यस्तत्र भपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कृण्वन्निरोत्तमः । न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाशयो व्याधयो नृप ॥३६॥  
 वृत्ते तुषारसमये मितपञ्चदश्याः प्रान्तर्मनममये नमृर्गच्छने च ।

मघाशय चतुर्मुने मह चंदनेन मन्य हि विप्रपुरुषोऽथ ममाः मुनी भ्यात् ॥३७॥

चतुर्मुने नमंतस्य माकश्च कुमुभं तत्र मन्दनं दिग्गजं सर्वदामार्चमिद्वये ॥३८॥  
 पञ्चम्यां माघमासेऽपि चतुर्थं यच्चन्दनं प्रागर्चय तत्रैकं वा तल्लक्ष्मीं भविष्यति ॥३९॥  
 चतुर्थपञ्चम्यानेन कोकिलारवावत्तथाः मदिष्यति मा-वर्णां कलकलै मनीरमः ॥४०॥  
 सीताराम चतुर्थपदैस्त्वया कामलपत्रैः पूजयेत्पद्मैः मकरैः देवैश्च महोत्तमैः ॥४१॥  
 चैत्रकृष्णप्रतिपदि चतुर्थं सचन्दनम् पीत्वा मदीयं देव सीतारामं प्रपूजयन् ॥४२॥

विशेष बातें हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। वसन्तपूजा में एक बात बताना जगन्नीका पूजन करे ॥२५॥ २६॥ माघशुक्ल चतुर्थीको गणपतिका पूजन तथा उपवास बताना च ॥२७॥ २८॥ माघमासे चतुर्थी और गणपतिका पूजन करता है, वह प्राणी देवताका तथा असुरोका भी पूजना होता है ॥२९॥ ३०॥ माघमासे चतुर्थीको चतुर्थीको तथा माघमासे के गणेशजीका पूजन और ॥३१॥ माघमासे के पञ्चम्याका पूजन इसका नाम 'कुन्द' चतुर्थी है। इसलिये २९ राज कुन्दक द्वारा गणेशजीका पूजन करना च ॥३२॥ ३३॥ माघशुक्ल पञ्चम्याको 'भीषणकी' सम्झकर उस राज रामचन्द्रजीका पूजन करना चाहिए। इससे यह मतलब निकला कि माघ शुक्ल चतुर्थीको भी पूजन करके पञ्चम्याका कुन्दक पूजन अपनी समृद्धिके लिये पूजन करे ॥३०॥ ३१॥ विशेष अच्छा तो यह हो कि रामचन्द्रजीका आशुपुत्रके नीचे में बाय और सूनेमें बिठाकर पूजन करे। यदि ऐसा न कर सके तो पत्रों से पूजन करने ॥३२॥ चैत्रमासे लगते ही प्रतिपदाको सुशोभनके समय मानवपक्ष का माघे विषाकर गतिशोक तर्पण करे और सब प्रकारके दुःखकी कान्तिके निमित्त होलिकाभूमिकी मन्दता मरणादृष्टा व ॥३३॥ ३४॥ इति, ब्रह्मा तथा मनुजोभ कापकी मन्दता की है ॥३३॥ ३४॥ अतएव दे देवि, तुम मेरे लिए माघ चतुर्थदिना वर जाओ। परम पवित्र चैत्रके महीनमें पुण्य तथा और प्रतिपदाका जो मन्त्र पञ्चम्याका पूजा को लेकर स्नान करता है, उसे न किसी प्रकारका पक्षक मरना है जो न निमित्त मरनाका आशुपुत्रकी ही समती है ॥३५॥ ३६॥ जाड़ेके दिन होत जाते और वसन्त ऋतुव अन्तर चतुर्धनपञ्चम्याका प्रतभाण चन्दनके साथ आमका वीर पड़े तो हे विप्र। यह प्राणी माघ वर पुण्यमें रहता है ॥३७॥ वीरको चाहते समय 'चतुर्मुने वसन्तस्य' यह मंत्र पढ़ता जाय, जिसका मतलब यह है कि हे महकाय पुत्र मैं वसन्त ऋतुके अविम भागमें तुम्हारा पूल चन्दनके साथ काम करने चाहता हूँ कि मेरी मद अभिर्वाधन कामनाये पूर्ण हो जाय ॥३८॥ माघमासेकी वसन्त पञ्चम्याका भी चन्दनक साथ और चाहता चाहिये। ऐसा करनेसे उसका स्वर कोकिलके समान मंठा हो जाता है ॥३९॥ उस दिन आशुपुत्रका प्राणन करनेसे पञ्चम्याका मनुष्यका स्वर कोबलके स्वरकी तरह मीठा हो सकता है ॥४०॥ प्रतिदिन सत्तया तथा रामकी मूर्तमें बिठाकर बायके और तथा कोपल पल्लवोंसे सांसात पूजन करे ॥४१॥ चैत्रकृष्णकी प्रतिपदाको चन्दनके साथ आमका



प्रत्यहं धर्मघटको चक्षुसैष्टितानमः । आश्विनस्य गृहे देवः शीतामलजलः शुचिः ॥६१॥  
 तांबूलफलधान्यैश्च दक्षिणामिः ममन्वितः । एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवस्मरकः ॥६२॥  
 अस्य प्रदानासफलाः सर्वे सन्तु मनोऽर्थाः । अनेन शिधिना यस्तु धर्मैर्भुवं प्रयच्छति ॥६३॥  
 प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः । तृतीयायां चैत्रशुक्ले सीतारामौ प्रपूजयेत् ॥६४॥  
 कुंकुमागुरुकूर्पूरमणिवस्त्रमुगधर्कः । समं धूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः ॥६५॥  
 आदोलवेणतः सीतारामौ च दोलकस्थिता । वसन्तमममामाद्य तृतीयायां द्विजोत्तम ॥६६॥  
 सीतामया च तदा स्त्रीभिः सीतामयायनवनम् । कार्यं महांस्यवेनेन गुह्यं पुत्रमुखैस्तुभिः ॥६७॥  
 विशेषं चात्र वक्ष्यामि तृतीयायां द्विजोत्तम । तृतीयायां तु नार्गमिः शुक्लपक्षे मघी शुभे ॥६८॥  
 स्नान्वा मृग्यदुर्गं हि कार्यं चित्रविचित्रितम् । तत्राष्टादश धान्यानि वापयेत्तदनंतरम् ॥६९॥  
 पुष्पपुष्पाक्षतुर्भास्त्रं वापयेत्सर्वतस्ततः । जनयत्राणि कार्याणि चित्राभ्यापि विलेखयेत् ॥७०॥  
 तूर्ध्वद्वारिण कार्याणि पूर्ववन्मण्डपादिकम् । यथा आगमपूजायामुक्तं तदनुप्रकाशयेत् ॥७१॥  
 दुर्गोपरि घटं स्थाप्य सज्जलं पुष्पगुणितम् । दोलकं च नतो न्यस्य घटपृष्ठे महच्छुभम् ॥७२॥  
 काचनीं राजनीं मूर्तिं सीतायाः परिकल्प्य च । रामस्यापि शुभां मूर्तिं कृत्वा तौ पूजयेत्ततः ॥७३॥  
 दोलकोपरि संस्थाप्य माममेकं प्रपूजयेत् । केचिच्छिडपात्र पादय्या शिवेन च प्रपूजनम् ॥७४॥  
 वदन्ति हनयस्तत्र निर्णयं शृणु शशपते । रामस्य हृदयं शंभुः श्रीरामो हृदयं स्मृता ॥७५॥  
 शंकरस्य तथा गौरीहृदयं जानकी स्मृता । जानक्या हृदयं गौरी शिवा नैरातिर कदा ॥७६॥  
 रामस्य च शिवस्यापि सीतागिरित्रयोन्मथा । ये मानयति वै भेदं तेषां वायस्तु शीरे ॥७७॥  
 अतश्चैत्रतृतीयायां सीतारामौ प्रपूजयेत् । अशक्नोतां तत्र मूर्ती कार्यं वा काष्ठनिर्मिते ॥७८॥

यदा बाघकर जलपारा देनेका प्रबन्ध करे ॥ ६० ॥ उन दिनों प्रतिदिन एक घण्टे उठता और निर्मल जल भरके उसका मुँह कपड़ेके बाघकर ताम्बूल, फल, धान्य तथा दक्षिणा आदिके साथ किसी सुगन्ध ब्राह्मणके घर दे आया करे । यह यद्वा विष्णुशिवमय घटदान करनेसे घर सब मनोारथ सकल हो जायें । दान करते समय यह कहना जाय । आ घण्टो इस रीतिसे धनमुग्धका दान करना है, उस प्रपादानका फल प्राप्त होता है । इससे कुछ संशय नहीं है ॥ ६१-६४ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीयाको दुर्गाम, अर्द्ध, कूर्पूर, मणि, वस्त्र तथा सुगन्धित मालाओं विप्रकर दमनकक फूलसे सात रामका पूजन करे ॥ ६५ ॥ इसक बाद मूलेपर बिठाकर प्रजा मलावे । जिसका पुत्रमुख आदि पाता है, व शिवां वसन्तमासमें नेकर तृतीया तक एक महान् उत्सवके साथ सीतामयायन व्रत करे ॥ ६६ ॥ तृतीयासे कुछ दिनपचार्य है, सो गुह्य कथ्यता है । उस चैत्रशुक्लकी तृतीयाको स्नान करके घटिका एक चित्र-विचित्र दुर्ग बनावे । उसमें बहुत रह प्रकारके धान्य बोये । बहीपर बन्द-बन्द फूलोंके वृक्ष लगाए और उसमें नाना प्रकारके ज्योत्स्नाको रचना करे ॥ ६७-७० ॥ उस दुर्गके पहलेकी तरह मण्डप आदि बनावे । जसा कि पहले आगमपूजा के प्रकरणमें बताया जाये है ॥ ७१ ॥ उस दुर्गके ऊपर बलसे पूण और पुरसे गुम्फित घटका स्थापन करे । घटके पांछ सुन्दा रखकर सुवर्ण या चाँदीकी सीताजीकी मूर्ति मनवाय और रामचन्द्रजीकी भी गुन्दर प्रणाम बनवाकर दोनोंकी पूजा करे । इस प्रकार मूलेपर बिठाकर एक मास तक पूजन करे । हे शिष्य पात्रंजीके साथ शिवजीकी पूजा करे, कुछ लोग ऐसा कहते हैं । अब इस विषयका निर्णय मुझ सुनाता है । रामचन्द्रजी शिवजीके हृदय है और शिवजी रामके हृदय है ॥ ७२-७५ ॥ उसी तरह गौरी सीताजीका हृदय है और सीताजी गौरीका हृदय हैं । इन दोनोंमें कोई अंतर नहीं है ॥ ७६ ॥ राम, शिव और सीता तथा गिरिजाजी जो लोग किसी प्रकारका भेदमान मानते हैं, वे तीरथ नग्नमें बास करते हैं ॥ ७७ ॥ इसीलिये चैत्रकी तृतीयाको सीतारामका पूजन करना चाहिए । यदि सामर्थ्य न हो तो सुवर्ण या चाँदीकी प्रतिमा न बनवाकर काष्ठ अथवा काष्ठकी बनवाये ॥ ७८ ॥

वाष्पानिर्मिते चापि मनीं कार्ये यथागुहम् अन्यहं मंगलद्वयैः भवेच्छीभिः प्रपूजयन् ॥७९॥  
 मामेकं न नागमिः स्नानं हि शीतलाभिधम् । अवश्यमेव कर्तव्यं मीनातीर्थे विशेषतः ॥८०॥  
 यत्र यत्र गमनं तत्र तत्र गच्छेत्तत्र तत्र मन्दारीयं तत्र तत्र ज्ञेयं मीनाकृतं शुभम् ॥८१॥  
 चैत्रशुक्लतृतीयायामाग्नौ सप्तम्यर्जिता । यद्यन्तर्गता रक्षाश्च शुक्ला तावन्निम्नम् ॥८२॥  
 शीतलामनकं मनसः स्तोत्रं मीनाभ्यमन्त्रेण चैव शुद्धतृतीयायामभ्यर्चयति तथापि च ॥८३॥  
 तृतीयायां तु नागीभस्मलाभ्यस्य प्रकारयन् अन्यत्र दिग्मे स्वाभिर्मलाभ्यस्य न कारयेत् ॥८४॥  
 अन्यहं चोन्मत्ताः कदाः सोतायां पुनः शुभाः नृवाभिर्नाम्नतं च कार्यं मन्त्र्या दिने दिने ॥८५॥  
 सुराभिर्नाना देवनि वायुनामि शुभाणि च । निरन्तरं पूजनाथे यदि शुक्तिर्न व्रजत ॥८६॥  
 तदा कार्यं चैकदिने सुधमार्गं प्रपूजयन् । सुराभिर्नाना देव हि अन्यहं भोजनं यत् ॥८७॥  
 नानाप्रकारेण सपुनः धुतपयससपुनः अन्नकामश्च वस्त्राणि रुचुक्यादि च यत्कुरुष्व ॥८८॥  
 भर्तृगोपुण्ड्रपुनः नागभिर्देवपुनः । एव मन्त्र्या मायसां शीतलास्नानमुत्तमम् ॥८९॥  
 अक्षर्यायां तृतीयायां पूजयिन्दा विशेषतः विजन्तुषां निर्वाहश्च ॥९०॥ भोजनादिकम् ॥९०॥  
 सुखपन्नं निजा पृथक् तस्यै सर्वं विमर्शयेत् । यत्र स्वागां यत्र पाकतः प्रयत्नः द्वितीये ॥९१॥  
 अन्योद्धरणं उच्छर्षितं तत्रापि भूषणं चोत्तमम् । अत्राकर्षकं चैव चैत्रशुक्लतृतीयादिन ॥९२॥  
 मीनाभ्यां पूजयित्वा महारण्यमप्युक्तम् । यत्राकर्षकं चैव चैत्रशुक्लतृतीयादिन ॥९३॥  
 चैत्रे मासि कितपुण्यां न ने शाकपत्राचुषः । यामशोककर्मभीष्टं यमुष्मासमपुनः ॥९४॥  
 पिबामि शोकमहमो मामशोकं सदा कुरु । पुनर्वसुधोपेना चैत्र मासि पिताष्टमीम् ॥९५॥

सावधानता, यत्नपूर्वक व्यवस्था, धनव्याय जा मरणा हे । इत तर्ह रति वनवाकर गुणपूजक  
 विविध मङ्गलमय इत्येवम श्रियाक साथ पूजन कर ७९ ॥ एक महाना स्त्रियोंके साथ शोचन नामक  
 स्नान करे । और माताला ईम कामर स्नान करे ता विजय अच्छा है । ८० ॥ जहाँ अहाँ रामतीर्थ है वहाँ-  
 वहाँके रागके वासनागम सातना वनाय सातना रे सी सिद्धमान रत्ना है ॥ ८१ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया-  
 से लेकर पञ्चमक वैशाखका अठार तृतीया न काय, तबत निरन्तर सोतातीर्थम जाकर शीतलास्नान कर  
 ॥ ८२ ॥ स्त्रियोंकी भी चाहिये कि सोताजाको प्रसाद करके देव स्नान कर । चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया तथा  
 अष्टम तृतीयाकी श्रियाक साथ शतरव लेवना श्रिया कराना चाहिये । इसके सिवाय और किसी रोज  
 स्त्रियाक साथ बैठ लगानकी विधान नहा है । ८३ ॥ ८४ । प्रतिदिन अन्योः साधन्याय मीनाक रूपेश तबह-  
 सरहक उत्सव करना चाहिए । निरन्तर भक्तिपूर्वक श्रियाका पूजन करना भी आवश्यक है । ८५ ॥ साहगिन  
 स्त्रियोंकी इन विशेष नागन रत्ना भी उन्नि है । यदि निरन्तर पूजन करनेकी सम्मर्थ्य न हो तो केवल  
 एक ही दिन शोहागन श्रियाकी पूजन करे और अन्य विविध पंचवाश पुन अच्छा उच्छा भोजन करावे  
 ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ नाना प्रकारके वस्त्र आभूषण आदि भी वे श्रिया अवश्य दिना करे, जो अपने पतिकी  
 आयुवृद्धि करना चाहती हो । इस तरह एक इहोना शीत-गन्धान करनेके बाद अक्षय तृतीयाका विशेष रातिसे  
 पूजन करके तब साहागन श्रियाकी ताना प्रयागक भोजन वस्त्र आदि र ८८-९० ॥ इसके बाद अपने  
 गुरुकी पत्नीका पूजन करके उसे भी वस्त्र-आभूषण आदि प्रदान कर । हे द्विजालभ ! इस तरह मैने तुम्ह  
 श्रियाके दिना एक मासका व्रत वनयाया । ९१ ॥ अब मैं कुछ विशेष बातें बतलाता हूँ, सो गुना चैत्रशुक्ल  
 अष्टमीकी अशोकको कलियोंसे सीसा और रागया पूजन करके आ लाग आक अशोककी कला पोसकर पुन-  
 र्बेनु नामक वस्त्रम पोत है । उन्ह कभी किसी प्रकारका शाक नहीं बनना पड़ता । उस कलीका पान करने  
 समय "त्वामशोककराभीष्ट" इत मन्त्रका पाठ करने रहना चाहिए । मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है - हे  
 अशोक ! तुम्हारा जैसा नाम है, उसी प्रकार तुम लोगोंको शोकमहित भी करने हो । इसी कारण चैत्रमासम  
 उत्पन्न तुम्हारी कलिकाका भे भी रहा है । तुम मुझे सदा शोकमहित किये रहता । जो लता पुनर्वसु तकव तथा

प्राकस्तु विधिवन्स्नान्वा वाजपेयकनं लभेत् । चैत्रे नवम्यां प्रक्षपते दिवा पुण्ये पुनर्वसौ ॥९६॥  
 उदरे गुरुगौराश्वोः स्वीचवस्थे शृङ्गचक्रे । मेवे पुण्ये संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाद्वये ॥९७॥  
 आश्विमासमाहाविष्णुः कौमल्यायां परः पुमान् । तस्मिन्दिने तु कर्त्तव्यमुपवासवनं नरैः ॥९८॥  
 तत्र आगम्य कुर्याद्विष्णुनाथपुरे जनेः । चैत्रशुद्धा तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ॥९९॥  
 मैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् । केवलाय मदीपोष्या नवमीश्रद्धमंग्रहात् ॥१००॥  
 तस्मान्नवम्यां नवम्यैः कार्यं वै नवमीयनम् । आगमनवमी प्रोक्ता कोटिद्वयग्रहादिका ॥१०१॥  
 उपोषणं ज्ञागम्य पितृनुहिष्य तृपणम् । तस्मिन्दिने तु कर्त्तव्यं ज्ञानप्राप्तिर्धर्मोपसृभिः ॥१०२॥  
 सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यर्थकसाधनः । अशुचिरपि पापिष्ठः कृन्वेद् व्रतमुत्तमम् ॥१०३॥  
 पूज्यः स्यान्मर्त्यभूतानां यथा राममर्थव सः । यस्तु रामनवम्यां वै भुंक्ते मोहान् मृदधीः ॥१०४॥  
 कुंभीपाकेषु घोरेषु पश्यते नात्र मरणम् । शकुन्वा रामनवमीव्रतं सर्वत्रनोचमम् ॥१०५॥  
 अगम्यन्याति कुरुते न तेषां फलमाभवेत् । आचार्यं चैव सपूज्य शृण्वान्प्राथम्येभिधि ॥१०६॥  
 श्रीरामप्रतिमदानं करिष्येऽहं द्विजोलम्भकः । एवमेव भव प्रीत श्रीरामोऽस्ति न्यमेव च ॥१०७॥  
 स्वगृहे चानमे देशे दानस्योज्ज्वलमडपम् । शत्वचकहन्मज्जः प्राद्वारे समलकृतम् ॥१०८॥  
 गहनमच्छद्वैराग्यं दक्षिणे समलकृतम् । महापद्माद्वैराग्यं पश्चिमे सुविभूषितम् ॥१०९॥  
 पद्मस्थितं नीलं च कौन्तेयं समलकृतम् । मध्ये हस्तचतुर्दशानां वैदिकाधुक्तसाधनम् ॥११०॥  
 अष्टाक्षरमहर्षेयं गङ्गासिन्धुकं सुतम् । अस्यायं रामनवम्यां वैदिकस्य भक्तुत्तमम् ॥१११॥  
 ततः सकलस्येदेव राममेव समरन् द्विज । अस्यां रामनवम्यां च रामायणनवम्यः ॥११२॥

तुलसीदास दुक्त चैत्रशुद्धा की अष्टमा की व्रत वर्य की विरचित स्तव गद्य उक्त रामनवम्यां राजा फल प्राप्ति  
 हुता है । चैत्रशुद्धा की नवमी का जब कि पुनर्वसु गुरुगौराश्व या उदित गुरुगौराश्व तथा चन्द्रमा की साय-साय रात्रि ग्रह  
 उच्च स्थान पर होय, भूरा मघर शिशिर रात्रि, सकलमन्त्री, उमै मन्त्र मन्त्रिणां भावान् राम कोमलपाश उत्पन्न  
 हुआ है । इसलिए लोगोंका उस राज उदय करन चाहिये ॥ ९२-९८ ॥ रामायण उक्ति है कि इस तिथिका  
 अपराधपुण्यमें जाकर रात्रिभर जागरण कर । चैत्रशुद्धा की नवमी यदि पुनर्वसु नवमसे पुक्त हो हो  
 वह महापुण्यवती मानी जाती है । यदि पुनर्वसु नवमसे नवमी तो है तो भी व्रत करना ही चाहिए क्योंकि  
 सत्य नवमी इस प्रकारका है नगह किया गया है, ९९ ॥ १०० ॥ इसीतिथि मन्त्र लोगोंका अच्छी तरह  
 नवमीका व्रत करना चाहिये । यह रामनवमी करने का गुरुग्रहणसे भी अधिक पुण्य माना जाती है ॥ १०१ ॥  
 मित लोगोंकी प्रह्लादप्रतिष्ठा ९८ ॥ १०२ ॥ वही कि उस दिन इन्द्राय, जागरण तथा पितृशकी कृत्त करनेके  
 उद्यमसे व्रत कर ॥ १०३ ॥ क्योंकि सब लोगोंके लिए यह उमै भुंक्ते और भुक्तिका साधक है । यदि  
 कोई मनुष्य अशुचि या पापी हो तो इस व्रतका करनेसे वह उमा प्रकार सब प्राणियोंका पूज्य हो जाता है,  
 जैसे रामचन्द्रकी स्वयं सबके आराध्यदेव हैं । जो मनुष्य रामनवम्यां भोजन करता है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥  
 वह बहुत समय तक कुम्भपाक अदि घर नरकोम पड़कर मड़मा है । सब उमा अथवा राम रामनवमीका  
 व्रत न करके जागरण और और व्रतको करता है, इस व्रत करनेका फल नही मिलता, व्रतके दिन  
 रात्रिको आवापकी पूजा करके प्रार्थना करे—हे द्विज नमः आत्र मे भक्तिमें श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतिमाका  
 दान करेगा । हे आचार्य ! आप मन्त्र उर प्रमत्त हो ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ तदनन्तर अपने घरके  
 किन्हीं उत्तम स्थानपर बसिया मण्डप बनावे । उसका पूर्वद्वारपर मन्त्रमन्त्र एवं हनुमान्जीकी स्थापना  
 करे ॥ १०८ ॥ दक्षिण द्वारपर गुरु भगुप तथा वायका स्थापित करे । उत्तर दिशामें कमल तथा  
 स्वस्तिककी स्थापना करके उमै अन्वृत्त करे । बायम द्वार हाथकी लम्बी चौड़ा खड़ी बनावे । वरीपर  
 महोत्तरखट्वा रामलगात्मक रामचन्द्रकी रचना करे ॥ १०९-१११ ॥ इसके अनन्तर हे द्विज !  
 श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता हुआ संकल्प करे कि इस रामनवमीको श्रीरामचन्द्रजीकी आराधनामें तत्पर

उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः ॥११३॥  
 श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते । प्रीतो रामो हरत्तशु पापानि सुबहूनि मे ॥११४॥  
 अनेकजन्मसमिद्वान्यभ्यस्तानि मदीति च ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमानतः ॥११५॥  
 निर्मितां द्विभुजा दिव्यां वामाङ्कस्थितज्ञानकीम् विभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां मनोरमाम् ॥११६॥  
 वामेनाश्रुकरेणारागहर्षमालिख्य संस्थिताम् विहायने राजते च पलद्वयविनिर्मिते ॥११७॥  
 अशक्तो यो महानत्र स तु विज्ञानुमारत । फलेन वा तदर्घ्येन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥११८॥  
 सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम् पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ घृष्टछत्रकराभौ ॥११९॥  
 चापद्वयमसमायुक्त लक्ष्मण चापि कारयेत् मातुरं कान्तं राममिद्वनीलसमप्रभम् ॥१२०॥  
 पञ्चामृतस्नानपूर्वं मध्पूज्य विधिवत्ततः अशोककुसुमधुंक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥१२१॥  
 दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च । राक्षसानां विनाशाय दैन्यानां निधनाय च ॥१२२॥  
 परित्राणाय साधुना जातो रामः स्वयं हरिः । गृहाणाज्यं मया दत्तं आद्युभिः सहितोऽनघ ॥१२३॥  
 दिव्यं विधिवत्कुत्वा रात्रीं जगारणं चरेत् ततः प्रातः समुत्थाय स्नानमध्यादिकाः क्रियाः ॥१२४॥  
 समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण मन्त्रवित् ॥१२५॥  
 पूर्वोक्तमण्डपे कुडे स्थण्डिले वा समाहितः लोकिकार्ग्यो विधानेन शतमष्टोत्तरं शनैः ॥१२६॥  
 साज्येन पायसेनैव स्मरन् रामभजन्यधीः । ततो भक्त्या सुमनोष्य ह्याचार्यं पूजयेद्बुद्धिजः ॥१२७॥  
 ततो राम स्मरन् दद्याद्देवं मन्त्रसूदीरपन् । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलंकृताम् ॥१२८॥  
 चित्रवस्त्रयुगाब्जनां रामोऽहं राघवाय ते । श्रीरामप्रीतये दास्ये सुष्टो भवतु राघवः ॥१२९॥  
 इति दत्त्वा विधानेन दद्याद् दक्षिणां भुवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१३०॥

होकर मे आठ प्रहसनक अवसान करके यह स्वर्णमयी प्रतिमा रामचन्द्रजीका प्रसन्नताके लिये किसी बुद्धिमान् रामभक्तको दूगा । उससे ध्यान रखकर जो प्रसन्न हो और मरे उस महापापीको हर दे, जो मेने अनेक जन्मोंके अन्त्यागवण किये हैं । तदनन्तर एक पल नवगनी बनी रामकी प्रतिमा, जिसमें दो भुजाएँ बनी हों, वाम-जाम सीताजी और दाहिना भुज में जानमुद्रा विराजमान है । ११३-११९ । ४ बायें हाथसे देवाका आश्रयन किये हैं । पल चारोंकी बनी चौकोर बैठे हों । ११५ । जो प्राणी सर्वथा असमर्थ हो वह अपन विज्ञानुसार एक पल अथवा पल अथवा आपके प्रो आठ पल मुखण वा चंदीकी प्रतिमा बनवाये । रामके पास हो छत्र और चमर रखे भक्त तथा शत्रुन खड़े हों और दो गज्य चारण किये लक्ष्मणजीका प्रतिमा बनाये । सा राखे गोरमें विराजमान ब्रह्मराजमणिको प्रभाप समान प्रभाशाली रामकी पंचामृतसे स्नान कराकर विधिवत् पूजन करे और वामाङ्क पुष्पयुक्त अथवा प्रदान करे अथवा दत्त समय 'दशाननवधार्थाय' आदि मन्त्र पढ़ना जाय । जिसका अर्थ इस प्रकार है ॥ ११८-१२१ । रावणको मारने धमका व्यापन, राक्षसोंका विनाश और राघुजीकी रक्षाके लिए स्वयं विष्णु भगवान्ने अवतार लिया था । सब घानाझाके मय आप मेरे इस अन्तरको स्वीकार करिए ॥ १२२ ॥ १२३ । यह सब विधि दिवान् दिनको कान्के र शिघर ज्ञानरण करे । तबसे ठहर स्नान संघरा आदि क्रियायें करके विधिवत् पूजन करे । फिर भक्तको ज्ञाननवाला यज्ञमान मन्त्रपन्थसे हास करे ॥ १२४ । १२५ ॥ यह हवनविधि पूर्वोक्त मण्डपमें अथवा स्थण्डिल में किया जाय और लोकिक अग्निमें विधानपूर्वक एक सौ आठ आहुतियाँ धीरे-धीरे दी जायें । इसका नामधूम घृत और खारजा रहता आवश्यक है । हवन करते समय अपने चित्तको इधर उधर न दोड़ाकर रामका स्मरण करने रहता चाहिए । १२६ ॥ १२७ ॥ तदनन्तर 'इमां स्वर्णमयीं' इस मन्त्रका उच्चारण करता हुआ प्रतिमा करे कि सब तरहसे अलंकृत यह सुवर्णमयी रामकी प्रतिमा श्रीरामचन्द्रजीका प्रसन्न करनके हनु में दान करुगा । इससे श्रीरामजी प्रसन्न हो ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ इस



एवं शिष्य चैत्रमासे नवम्यां भूभुगव हि । दानं देयं शयनस्य राजसमुत्तिष्ठतये ॥१३१॥

अथ द्वि शेषं ररुपाभि चैत्र सादि भृणुष्व नन । चैत्रस्य सुक्ल कदरुपा देलकस्य म्पुनवम् ॥१॥२॥

पूजयेन्मारवो भक्त्या आश्रयश्चनले स्थितम् । चैत्रमस्य शुक्लपक्षे कुरुष्व नु तेदर्शः ॥३३॥

आंदोलनीयो देवेयः सलक्ष्मीक्षे महोत्सव्यः द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लपक्षे दशम्यां नवतः ॥१३४॥

चौधायनार्दिभि ओक्तः कर्मण्यः प्रतिबन्धस्य ।

ऊर्जे प्रलम्बं सधौ दोला धावणे तत्पुनरनम् , यथा च दमनागवयकुसुमो ब्रजान्यथः ॥३५॥

इद्विविधो गिरिजा गणेशः कृपां विशाखो दिनकृन्महेशः ।

दुर्गास्तुको विघ्नहृतिः स्मरन् शतं उन्नी वै तिथिषु प्रपुन्या ॥१३६॥

अथ चैत्रपौर्णिमायां भक्त्या रावं प्रपूजयेत् । शान्त्या दोलकस्थं वै दमनेन महोत्सवं ॥१३७॥

सैत्री चित्रायुता चेन्द्रगन्तदा पूष्य महानिधिः ज्ञेया सर्वाधिका या हि भवान्दानत्रयार्दिषु ॥१३८॥

सोभिर्देयं विवस्वतु तस्याः सौभाग्यदायकम् । सादारणो विवस्वस्तेः पुत्रवर्धो मत्तोन्मरः ॥ १३७ ॥

संदे वाक्ये शुभं वापि व रेवनेषु चान्नह । नवाश्वमेधजं पृथक् स्नानाश्वाद्यादिभिर्लभेत् ॥१४०॥

सबस्सकृताचार्यः साकल्यासगिल्शन मुमान् । दमनेनान्यवेवंचेत्था । रसपग ग्युत्तमम् ॥१४१॥

चंद्रमालोद्घाटन च विधी नम्यां म्यून वृध. १०४२॥

अथ वैशाखशुक्लार्वा पञ्चम्या पश्चिमोत्तरः स चर मां प्रहृषाथ दौलकस्थौ तु वृद्धिभेः ॥१४३॥

उद्योपनं तत्र कार्यं सदाकलममाप्नुना , वेदाखे कृण्वसे तु ननुशरीरं मनुष्योप च । १४४ ।

[illegible]

निशाया च प्रकर्तव्यमधिवामनमुत्तमम् । शुची देशे मङ्गपादि कृत्वा पूर्वोक्तवच्छुभम् ॥ १४५ ॥  
 रामलिंगान्तके भद्रे धान्यराशौ महानमम् । यजल कलशं स्थाप्य नामपात्रं तु तन्मुखे ॥ १४६ ॥  
 स्थाप्य वस्त्रं दोलकस्थं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । हैमो वाराजो वापि दोलकस्त्रिपलः स्मृतः ॥ १४७ ॥  
 हैमो पलमिता राममूर्तिः कार्या मनोरमा । तारन्मिता ककुप्समूर्तिः सांतायाश्चार्पणं कारयेत् ॥ १४८ ॥  
 नानोपचारैः संपूज्य राशौ जागरणं चरेत् । नृपयोगीश्वरमालाद्यैः पुष्पाणश्च वादिभिः ॥ १४९ ॥  
 प्रभाते तं पुनः पूज्य रामं मीताभमन्वितम् । मन्त्रं हवनं कार्यं नित्यज्वपायमादिना ॥ १५० ॥  
 र्पणं राममंत्रेण छोरणेन प्रकाशयेत् । ततो गुरु मण्डीकं मपूज्य वमनादिभिः ॥ १५१ ॥  
 रामाय प्रार्थयेद्भक्त्या प्रबद्धकरलपुटः । सार्द्धंभामद्वयं राम वसन्ते तत्र पूजनम् ॥ १५२ ॥  
 दोलकस्थस्य जानक्या तथाशक्त्या मया कृतम् । प्रगादानेन श्रीरामं मामुद्धर मरणवान् ॥ १५३ ॥  
 एवं संप्राप्त्य श्रीरामं तामर्चां सुनिमग्नताम् । दद्यान्स्वर्गाय भक्त्या न प्रणम्य पुनः पुनः ॥ १५४ ॥  
 पंचसप्ततिघुमानि छष्टविंशन्निवानि वा । तत्र दान्यधराशक्त्या भोजयेद्गुरुणा सुखम् ॥ १५५ ॥  
 ततः स्वयं मुष्टिनिर्गम्य कार्यं च भोजनं कुर्यात् । अथ सोऽपि यथाशक्त्या वसन्तं सकृदपि ॥ १५६ ॥  
 करोतु रामनुष्टयं वसन्तपूजनं चरेत् । अथ शिष्ये न्ययं पृष्टं विशेषजं च पूजनम् ॥ १५७ ॥

सीतारामस्य तस्मिन्नेव दान्यधरास्य लेभया ।

विष्णु उवाच

गुरो ने प्रष्टुमिच्छामि यत्नं वद नदिमाराज ॥ १५८ ॥

कया कामतया कस्य कार्यं पूजनमुत्तमम् । तन्मयं दान्यधरास्य मयि कृत्वा पूर्णं कुर्यात् ॥ १५९ ॥

धामधराम उवाच

सम्पक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । मेऽनर्चयकामस्तु यत्नेन नमनस्यद्विष ॥ १६० ॥

इदमिद्विषकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतान् । देवीं मायां तु श्रीकामस्ते वक्तामो विभवास्तुम् ॥ १६१ ॥

कहते एक धर्म धारी धान्यराशिका स्थापन करके उसमें सजल कलश रखे और उनका सामने दत्तन अर्पण करे । फिर झूलपट कपड़ा बिछाकर रामजी की वस्त्राने और उनका पूजा करे वह जूना नान पन्थ मन्त्रों, श्रीरामा तथा रामका ध्यान, एक पल नू और रामका प्रणाम करे । राम वसन्तके मुखवास भगवती श्रीरामा भगवती च हूँ ॥ १४६-१४७ ॥ एक जनक रामा प्रहारके उपचारसे पूजन करके रातभर जागरण और उस समय लूरी पात्र अर्थात् मङ्गपात्र करके ॥ १४८ ॥ सबदे फिर रामजी पूजा करके निद्रा, धान्य राशौ और मा १५० सेतुव हवन और राममन्त्रः उच्चारण करता हुआ दूध दूधम र्पण करे । तत्पश्चात् सपत्नीके मुखको दन्त्य अभरण अर्थात् पता ॥ १५० ॥ १५१ ॥ उनके बाद हाथ जोंडकर रामकी प्रार्थना करता हुआ कह-हे राम ! मैं तेरी मङ्गलार्थ दान्यधरास्य तेव के साथ आपकी पूजा का हूँ । मर इस कायस आप प्रसन्न हो और भवतःपत्न्य मया उद्धर कर ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ इस तरह प्रार्थना करके अनन्तर प्रतिमा समत वह पूजना अपने मुखसे द दे और उन्हें बार बार प्रणाम करे ॥ १५४ ॥ इसमें बाद वेदु सो, दान्यधरास्य भगवती कान्तिक अर्थात् इसमें अर्चनार्थक काहणिको भोजन करावे ॥ १५५ ॥ इसके पश्चात् अपने सम्पूर्णधरो और मित्राक साथ साथ स्वयं भी भोजन करे । कोई प्राणा यदि भगवत हो तो उन अपनी मन्त्रिके अनुसार हो वह इन और वसन्तच्छुभे रामचन्द्रजीका पूजन करना चाहिए । हे शिष्य ! तुमने पुत्रसे रामजी पूजाके विषयमें जा प्रश्न किया था । सो मैंने दोलकस्थ राम तथा साक्षात् पूजनके विषयको सब ध्यान कह सुनाया । विष्णुदासन कहा-हे गुरो ! मैं आपसे कुछ और पूजना चाहता हूँ । वह आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए । यदि आप ऐसा करेंगे तो सबी कया होगी । दया करके आप हमें यह बतलाइए कि किस कामवास किस देवताका पूजन करना चाहिए ॥ १५६ ॥ श्रीरामदासने कहा-हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान मनसे सुनो ।

ही अपना सद्गुणज बढ़ाना हो, उसे दान्यधरास्यका पूजन करना चाहिए ॥ १५७ ॥ इन्द्रियकी कोई

वसुकामो वसन् रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् । प्रथादिकामस्त्वदिदि स्वर्गकामोऽदिनेऽनुतान् १६२॥

विद्वान् देवान् राज्यकामः साध्यान्मसाधको विशाम् ।

आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पृष्टिकाम इत्या गजेन्द्र १६३॥

प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदणो लोकमानसं । रूपप्रिकामो मन्थरान् सर्व कामोऽप्यर उदयोम् १६४॥

आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् । यज्ञ यज्ञेयशक्यकामः क्रोशकामः प्रचेरयम् ॥ १६५ ॥

विद्याकामस्तु गिरिश दापयार्थयुमां सर्गम् । धर्मार्थ उत्तमश्लोक यत्नं तन्वन विनन्दनेन ॥ १६६ ॥

रक्षाकामः पुण्यजनान्मोज्ज्वलामो मरुद्गणान् राज्यकामो मनुदेवान् निकर्ति न्वभिचरन्नेन १६७॥

कामकामो यजेत्सोमकामः पुरुष एवम् । उकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥ १६८ ॥

शीघ्रेण भक्तियोगेन यजेत मनुन्दनम् । रामेण मदगो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ १६९ ॥

रुद्रमान्सर्वप्रयत्नेन रामचन्द्रं प्रयुजयेत् । तस्याश्वत्थामासुपर्णद्वन्द्ववत् सादिकम् ॥ १७० ॥

परं श्रुत्वासापञ्च विस्मारेण वदाम्यहम् रुक्म रत्नं रथो रामा रक्षामो रत्नं रत्नः ॥ १७१ ॥

रथा रणो रमा रक्तं रजको रमराकटो , रत्नं रोमो रत्नी रम्री रज्यं रजस्वला तथा ॥ १७२ ॥

एवमदीन्यनेकानि भेष्टान्येवात्र मां द्विज । रुक्म पात्रं महर्हं च रत्नं रम्यं मरुत्तमम् ॥ १७३ ॥

रथो यानं वाहिष्ठ च रामा यस्या इदं जगत् । रक्षामो देवमण्यो रत्नं तन्मुदुनमम् ॥ १७४ ॥

रजः साक्षान्परमाणुनित्यः सोऽयं प्रकीर्त्यते । रथा रथाकरी ज्ञेया रणो जयकरः स्मृतः ॥ १७५ ॥

कामना पूर्ण करनेकी अभिलाषा हो तो इन्द्रकी, मत्स्यनकी इच्छा हो तो उज्जयिनीकी, श्रुतवृद्धकी इच्छा हो तो मायादेवीकी, उजावृद्धकी अभिलाषा हो तो नूरुभगवत्की, वनवृद्धकी इच्छा हो तो आठो वसुओंकी, पराक्रमका अभिलाषा हो तो मरुद्गणवाणकी, अन्न आदिकी इच्छा हो तो अदितिकी, स्वर्णकी इच्छा हो तो अदितिके पुत्रों अर्थात् देवताओंका ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ राज्यकी इच्छा हो तो इलाको, प्रविष्टा पाहुनेवालेकी कोकमताओकी, सौन्दर्यकी अभिलाषा हो तो गन्धर्वोंकी, स्त्रीका कामना हो तो उर्वशी आदि सप्तराओंकी और आधिपत्यकी इच्छा हो तो सब देवताओंका पूजा कर । जिसे यज्ञ पानेकी इच्छा हो उसे यज्ञ करना चाहिये । कोमकी इच्छा हो तो वरुणकी, विद्याकी इच्छा हो तो गिरिका र मरुत्तमोंकी इच्छा हो तो पार्वती जीका, धर्मकी अभिलाषा हो तो उत्तमश्लोक ( विष्णु भगवान् ) का और वशविस्तारका इच्छा हो तो पितराकी पूजा करना चाहिए ॥ १६३-१६६ ॥ आरमरक्षाकी इच्छा हो तो पुण्यजनको उज्ज्वलकी अभिलाषा हो तो मरुद्गणोंकी राज्यकी इच्छा हो तो लोहर मनुओंका आधिपत्यकी विरा करनी हो तो राक्षसोंकी, वनोद्विजयित काम पूर्णकी इच्छा हो तो चांद्रमाका, विद्याम हातेकी अभिलाषा हो तो परम पुरुष परमेश्वरकी, अकाम या सतामभावसे मोक्षकी कामना रखत हो तो उसे चाहिए कि तत्र भक्तियोगसे मनुन्दन रामचन्द्रकी पूजा कर । रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न हो व होगा ॥ १६७-१६९ ॥ अतएव हर तरह प्रयत्न करके रामचन्द्रजी पूजा करे । उनके नामके बादिम वर्षों 'र' की सामान्यतः समारम्भ जितनी वस्तुएं रकारादि हैं, वे सब अतिशय श्रेष्ठ मानी गयी हैं । इन वस्तुओंको जब मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ । जैसे-रुक्म ( सुवर्ण , रत्न, रण, राया स्था ), राजस ( विद्यापूर्ण आदि ), रजन ( चोरी , रज ( धूलि ), रक्षा, रण, रमा ( लक्ष्मी ), रक्त, रजक ( चोरी ), राग, रामठ ( हीन ), रजा, रोग, रवि ( सूर्य ), रात्रि, रज्य, रजस्वला आदि अनेक नाम श्रेष्ठ मान गये हैं । ऊपर बताया हुआ रुक्म ( सुवर्ण ) पीतवर्णकी बहुमूल्य धातु है । रत्न देखनेमें सुन्दर लगता है और कठिनार्द्धक पात्र होता है । रथ एक श्रेष्ठ सवारी है । रामा ( रथो , बहु वस्तु है, जिससे जगत् उत्पन्न हुआ है । रामस ऐसे समानक होते हैं, जिसे देवता भी समझीत रहा करते हैं । रजठ ( चोरी ) भी एक दुर्लभ वस्तु है । रज ( धूलि ) साधारण परमाणु और नित्य है, रजा रक्षाकारा है । रण ( संशय ) विजयादायक होता है ॥ १७०-१७५ ॥

रमा मा दुर्लभा मय्य रक्तेऽस्मि रक्तता परा । रजको निमलकरो रामः प्रीतिः सुखप्रदा ॥१७६॥  
 रामटः शुद्धिदोषस्य रुचिदश्च प्रकीर्तितः । राज्य मौर्यकरं श्रेष्ठ पुत्रदा मा रजस्वला ॥१७७॥  
 एवं यद्यदा गच्छ तस्य ह्येष्टं भुवि स्मृतम् । रामायणमेषां धर्म्यादिष्णुरास मयेरितम् ॥१७८॥  
 अन्धच्छिष्यः शृणुन्व न्धन्मया कथ्यते तव । यथा प्रेक्षा रमनाममुद्रा तव मया धृता ॥१७९॥  
 तथा नान्यस्य देवस्य नाममुद्रा प्रजायते । रामनाम धित्वा नाममुद्रिकार्तं स्फुटाक्षरम् ॥१८०॥  
 न कदा रूढाने वाद्यमेतच्च महदद्भुतम् । अत्र प्रभावो रामस्य न्व विद्धि द्विजपुत्रव ॥१८१॥  
 अतएव रामनाम कश्यप विद्वेत्तरा मदा । स्वयं जन्वोपदिशति जन्तूनां मुक्तिहेतवे ॥१८२॥  
 म मातृवमममनं नरं यस्मात्स्वेन्मनुः । स एव तारकस्तत्र राममग्रः प्रकथ्यते ॥१८३॥  
 तारकाख्यस्यैव रामनाममवो न चेतरः । अत एवातकालेऽपि मनुकामनस्य च ॥१८४॥  
 कर्णे मवेव देवेशरामनामोपदिश्यते । अन्तकाले नृणां रामस्मरणं च मुहुर्महः ॥१८५॥  
 इति कुर्वन्पुण्ड्रेश मानवा मुक्तिहेतवः । अन्येषांपि श्रवणार्हं सदा लोकेर्महर्षदुः ॥१८६॥  
 रामनामैव मुख्यार्थं श्रवस्य पश्चि कोन्यते । रामनाम्नः परो मत्रो न धृमो न मावस्यति ॥१८७॥  
 रामनाम्ना जपो निर्व्यं कियते शृङ्खलापि च । पावन्या नारदेनापि रामपुत्रादिभिः सदा ॥१८८॥  
 रमयति जनान् रामो रमते न मदात्मनि । राक्षसानां मारणाद्वा रामनाम महत्तमम् ॥१८९॥  
 रमान्मदाद्रुक्तागो हि त्वकारोऽवानिममवः । महर्लोकान्मकरगर्भे त्रिवर्षात्मकमुच्यते ॥१९०॥  
 रकारेण निर्जं भक्तं मवाच्येः परिरक्षति । अकारेणानिर्माक्यं हि स्वभक्तस्य करोति यत् ॥१९१॥  
 मनोरथान्मकारेण ददाति स्वजनस्य यत् । अथवा निजभक्तस्य मरणादि मुहुर्महः ॥१९२॥

रमा लक्ष्मी ) इस संसारमें दुःख है । रक्तवै एक असाधारण स्थितिमा विद्यमान रहा काती है । रजक ( रंजीत ) मलको धोकर साफ करता है । राम प्रीतिकार नाम है जिसने सारे संसारको अपनी मुट्ठीमें कर रक्खा है ॥१७६॥ रामट ( हीट ) अन्नको पक्का करनेवाले और एक इंचकर समुद्र है । राज्य मौर्यकारा होता है । रजस्वला स्त्री पुत्रदायिनी होती है । इस तरह जिसने भी रकारादि वर्णों का नाम है, वे सब श्रेष्ठ माने गये हैं । हे विश्वपुत्र ! जप करे तुम्हें बताया है, इन सबके श्रेष्ठ होनेका कारण वही रामके आश्रित वपकी समानता है । १७७ । १७८ । हे गोत्र ! अब दूसरी बात तुमसे कहना है, उस धृता । जिस तरह पहले मैं तुम्हें रामनामकी मुद्रा बतलाया था, वही नाममुद्रा और किम देवताकी नहीं है । रामनामके बिना किसी नाममुद्रामें इस प्रकार ( र जागम ) जैसा स्फुर मंदार नहीं चलता । यह एक अद्भुत बात है । हे द्विजपुत्र ! इसमें तुम रामका ही मभाव जानो । १७९-१८० । इमोऽपि कारण म विद्वानाथजी रामनामका जप करके प्राणियोंका मुक्त होनेका उपदेश स्वयं दिया करते हैं ॥ १८१ ॥ जो मन्त्र ससारक्षी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यों को तार लेंगे उसी राममन्त्रका तारक मन्त्र है । १८२ ॥ एकमात्र यह राक्षका नाम ही तारक है । इसीलिए सर्वत्र किसीके मरत समय उसके नामसे रामनामका ही उपदेश दिया जाता है । पुत्रपुत्र प्राणीकी मुक्तिके लिए उससे बार-बार यहाँ कहा जाता है कि 'राम' का स्मरण करो । सबको से मानेवाले लोग राम नामका ही कीर्तन करते हैं । रामनामके श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आज तक हुआ है और न होगा ॥ १८३-१८४ ॥ स्वयं शिवजी भी निज रामनामका ही जप किया करते हैं । उसी तरह हनुमान्जी, नारद तथा पावर्तजी भी सदा रामनामका जप करती हैं । १८५ ॥ भक्तोंके हृदयमें विहार करने या निज स्मरण करके अथवा राक्षसोंका मंहार करनेके कारण ही रामनाम सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ॥ १८६ ॥ 'राम' इस शब्दमें रकार स्मादन्त स्वरसे, मकार ध्रुमण्डलसे एवं सकार महर्लोकसे आया है । इसी कारण यह त्रिवर्णत्मक राममन्त्र है । १८७ ॥ वे श्रीरामचन्द्रजी रज रंके द्वारा मन्त्रित्वसे अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं । अकारसे निज भक्तोंकी अतिमम सौख्य प्रदान करते हैं । मकारसे अपने भक्तोंकी कामना पूर्ण करते हैं अथवा मकारसे बार-बार अपने भक्तोंकी मरण आदि बाधाएँ दूर करते रहते हैं ।

निरायति तत् छीघं रामनाम वरं ततः अयमेव सदा जप्यो रामेति द्रवक्षरो मनुः ॥ १७३ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वारुभीकीये मनाङ्गकाण्डे  
उत्तरार्द्धे विशेषकालपरत्वेन पूजाविस्तारो नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

## दशमः सर्गः

( अयोध्यामें चैत्रमासकी महिमाका वर्णन )

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पूर्वं ये ये प्रश्नाः कृताः शुभाः । श्रीरामविषये ते ते मयोक्ताः परमादरात् ॥ १ ॥  
इदानीं ते पुनः श्रोतुमिच्छाऽस्ति तां वदस्व माम् । यद्यन्पृच्छामि सो वत्स तत्सर्वं ते वदाम्यहम् ॥ २ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं गुरोर्वचः श्रुत्वा विष्णुदासोऽब्रवीन्पुनः ।

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वयाऽयोध्यायां चैत्रमासफलं मत् ॥ ३ ॥

प्रोक्तं तद्विस्तरेणाद्य कथयस्व ममादिकम् । किं दानं किं फलं तत्र कमुद्दिश्य चरेद्भवत् ॥ ४ ॥  
को विधिश्च कदारंभः सर्वं विस्तरतो वद । यत्सरस्वामं रामग्रीधे स्नातव्यं चेति कीर्तितम् ॥ ५ ॥

श्रीरामदास उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ शुभः प्रश्नः कृतस्त्वया । अधुना चैत्रमासस्य महिमा प्रोच्यते मया ॥ ६ ॥  
मासार्णा प्रथमो मासश्चैत्रमासः प्रकीर्त्यते । मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्टफलप्रदः ॥ ७ ॥  
दानयज्ञव्रतसमः सर्वपापप्रणशनः । धर्मसारः क्रियामारस्तपःसारः सदा र्जचितः ॥ ८ ॥  
विद्यानां वेदविद्येव मंत्राणां प्रणवो यथा । भूरुहाणां सुरतरुणानां कामधेनुवत् ॥ ९ ॥

इसलिए रामनाम सर्वश्रेष्ठ मंत्र है । अतएव लोगोको चाहिए कि 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रको सदैव जपते रहें ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंच रामतज्जापाण्डेयकृता-  
'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले—इस तरह हैं शिष्य ! अबतक तुमने हमसे रामविषयक जो-जो प्रश्न किये, मैंने उनका उत्तर आदरपूर्वक दिया ॥ १ ॥ अब तुम्हें जो कुछ सुनना हो, सो कहो । हे वत्स ! हमने तुम जो भी पूछोगे, वह सब मैं तुम्हें बतलाऊंगा ॥ २ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरुके इन बचनोंको सुनकर विष्णुदास फिर बोले । विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आप अयोध्यामें चैत्रमासका बड़ा फल कह आये हैं । अब उसे विस्तारपूर्वक कहिए । उसमें क्या दान करना चाहिए, उसके करनेसे क्या फल होता है और किस उद्देश्यसे वह व्रत किया जाता है । इस व्रतको करनेकी नया विधि है । इसे कब आरम्भ करना चाहिए । यह सब आप मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइए । सरभूके रामतीर्थमें स्नान करना चाहिए, यह जो आप कह चुके हैं । इसका भी विधि-विधान बता दोजिए ॥ ३-५ ॥ श्रीरामदासने कहा—ठीक है, हे महाबुद्धिमान शिष्य ! तुमने बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है । अब मैं चैत्रमासकी महिमा बतला रहा हूँ ॥ ६ ॥ सब मासोंमें चैत्रमास वर्षका सर्वप्रथम मास माना गया है । यह मास सब प्राणियोंका माताके समान हितकारी है और सबको अभीष्ट फल देता है ॥ ७ ॥ यह समस्त दानों यज्ञों और व्रतोंके समान फलदायक है । यह सब धर्मोंका सार, समस्त क्रियाओंका सार और सब प्रकारकी समस्याओंका सार है ॥ ८ ॥ यह मास सब विद्याओंमें [ वेदविद्याके समान, सब मन्त्रोंमें प्रणव ( अकार ) मन्त्रके समान, वृक्षोंमें पारिजातके समान, गोश्रांमें काम-

शेषवस्त्वनामानां रक्षिणां पुरुषो यथा देवानां तु यथा विष्णुवर्णानां वाङ्मनो यथा ॥१०॥  
 प्रागवन्निप्रयत्नानां मार्येव सुहृदां यथा । आपगानां यथा मृगा तैजसां तु रविर्धया ॥११॥  
 आयुधानां यथा वज्रं घातूनां कांचनं यथा । वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥१२॥

पुण्येषु च यथा पद्मं सगरां माननं यथा ।

मासानां धर्महेतूनां चैत्रमासस्तथा स्मृतः । जनेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ॥१३॥  
 चैत्रस्नाने च निरुते माने प्रागम्णोदयान् लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्कर्मफलम् ॥१४॥  
 जन्तूनां प्रीणनं यद्ददध्वंतेव हि जायते नृजन्त्रे च स्नानेन विष्णुः प्रीणत्यमंशयः ॥१५॥  
 यध्वंस्नाननिरगान् जनान् दृष्ट्वा सुमोदते । तारताऽपि विष्णुकाशे विष्णोर्लोके मर्हायते ॥१६॥  
 मकृत्स्नान्वासीनमस्ये सूर्ये प्रातः कृताह्निकः । महापार्ष्णिमुकोऽर्घ्या विष्णुपापुन्यमानुषान् ॥१७॥  
 स्नानानार्थं चैत्रमासे यः पादमेक चलेद्यदि । सोऽश्वमेधापुनानां च फलं प्राप्नोत्यसदृशः ॥१८॥  
 अथवा कृदचित्तप्तुं कुर्यात्सकल्पमात्रकम् । सोऽपि कतुश्च न पुण्यं लभन्त्येव न सद्यः ॥१९॥  
 यो गच्छेद्गुणायाम् स्नानं कौनगते रते । सर्ववधविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमानुषात् ॥२०॥  
 त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्मांडान्तर्गतानि च । तानि सर्वाणि भाशिष्य मति बाधजनेऽल्पके ॥२१॥  
 तारतम्येन पापानि गर्जन्ति यमशामने । यावन्न कुरुते ऋतुर्वत्रे स्नानं उदात्तम् ॥२२॥  
 तीर्थादिदेवताः सर्वाश्चैत्रे भासि द्विजोत्तम । वदिजेन यमाश्रित्य यदा सनिहिताः शिशोः ॥२३॥  
 सूर्योदयं समागम्य यावत् पङ्कटिकावधि । निष्ठति चाज्ञया विष्णोर्नगाणां दिनकाभ्यया ॥२४॥  
 तथैतन्मूर्ध्नि स्नानं शार्पं दद्यात् मुदाकृणम् । स्वस्थानं याति सोऽपि शिष्यः स्वमास्नानं समाचरेत् ॥२५॥

छेत्रके समास, सर्पोंमें ज्ञेय-नागके समान, पक्षिप्रांसे पक्षिके समान, देवताप्रांसे विष्णुभगवान्के समान और वर्णोंमें वाङ्मनके समान छेष्ट है ॥ १॥ १०॥ मंसायकी प्रिय वस्तुप्रांसे प्राणकी समान, मिश्रीमें मार्यकी तरह, रक्षिणाम गङ्गाकी तरह, तैजसिगोम नु को नादे, गरग्रांसे वज्रकी तरह पातुप्रांसे सुवर्णकी तरह, वैष्णवोंमें रुद्रभगवान्के समान, रत्नोमें कौस्तुभ मणिकी तरह पूजाय कल्पकके तरह मानाश्रीमें मानकौस्तुभकी तरह बने-हेतुक सब मागोंमें यह चैत्रमास सर्वोच्छेष्ट है । ममांसे विष्णुक प्रति प्रीति बतानेवाला और कोई मास नहीं है ॥ ११-१३॥ जब कि मान पतनपर सूर्य हो, ऐसे चैत्रमासमें अरुणोदयके पड़ने स्नान करनेसे लक्ष्मीके साव-साथ विष्णुभगवान् भी प्रसन्न होते हैं ॥ १४॥ जन्म लक्ष्मी मंसाके प्राणी अन्नमें जितन जवा प्रसन्न रहते हैं । उसी तरह चैत्रमासमें स्नान करनेसे विष्णुभगवान् वृष्टि प्राप्त होते हैं । इसमें कोई मास नहीं है ॥ १५॥ जो मनुष्य विष्णुकी चैत्रमासमें सलज्ज देसकर उसका अनुप्रायण करता है तो कौन हो म उमर सब पाप छूट जाते हैं और वह प्राणी विष्णुजीनमें सम्मान पाता है ॥ १६॥ जब कि सूर्य मान राशेपर हो, ऐसे समय कबल एक बार अस्त-नालके समय स्नान और निर्यकर्म करनेवाला प्राणी बड़े बड़े पापोंमें मुक्त होकर विष्णुभगवान्की सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ १७॥ चैत्रमासमें स्नानके निमित्त जो मनुष्य एक पग भी चलेता है वह उस हजार कल्पमें यज्ञका फल पाता है ॥ १८॥ जो प्राणी जिस विधानमें चैत्रमासका सकलप्रायण करता है, वह भी सैकड़ों यज्ञ करनेवाला फल प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई गणना नहीं है ॥ १९॥ सोमाय सूर्यके समय जो प्राणी एक क्षण विमन्त मार्ग भी चैत्रमासमें लिए चलेता है, वह सब बन्धनोंसे छूटकर विष्णुकी सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ २०॥ त्रैलोक्य या ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जितन भी तीर्थ हैं वे सब उस समय वृद्धोंके योग्यमें जलन विद्यमान रहते हैं ॥ २१॥ जब तक प्राणी चैत्रमासमें किसी प्रलयायमें स्नान नहीं करता, तभीतक यमराजक आज्ञानुसार सब फलक गरजते हैं ॥ २२॥ हे शिशु ! सभी तीर्थ और सब देवता चैत्रमासमें अपने बाहर आकर ठहर जाते हैं ॥ २३॥ सूर्योदयसे लेकर छः बड़ी दिन चले तक विष्णुभगवान्के आज्ञानुसार सब देवता मनुष्योंके कल्याणार्थ जम्मे बाहर बंटे रहते हैं ॥ २४॥ उस समय भी यदि कोई स्नान नहीं करता तो

न हि चैवममो मायो न कृतेन सम दूषणम् । न च वेदममं शास्त्रं न तीर्थं गमया समम् ॥२६॥  
 न जलेन सम शानं न सूर्यो मायया समम् । न हि चैवममं लोके पवित्रं कथ्यते हिदुः ॥२७॥  
 तस्यास्य चैवमायुः शेषशायिप्रियः मदा । अत्रनेन मयेषस्तु पांडालव स जल्पते ॥२८॥

यथा गृहं मरुगुणोपपन्नं परिच्छिन्नं हानमशोभने तथा ।  
 वयं च कन्या मरुगुणोपपन्ना अपि तेषाम्येतन्ममोच्छ्रिता ॥२९॥  
 शाकं तु पटुस्त्वन्नभेन हीनं न शोभने मरुगुणोपपन्नम् ।  
 यथा लज्जामेष विना ममा नैवमप्येव हीना लज्जया च क्षिप्य ॥  
 तथाभ्यमासेषु कृतो हि धर्मश्चैवम हीनश्च वृषैव बानि ॥३०॥

पुष्पमममप्रयत्नेन येन केनापि चेहिता । चैवमायस्य यो धर्मः कर्तव्य इति निश्चयः ॥३१॥  
 न नदननोः पृथगपि गमो न गमनोऽप्यो वसुदेवपुत्रुः ।  
 अन्यं यथाप्य पुनरात्मकस्य श्रेते तु कार्यं विधिवत्प्रयत्नम् ॥३२॥

अन्नकीकृतमुदिष्य मीनवस्थे दिशकर । प्रानः स्नान्वा जपेद्वापमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥३३॥  
 चैवममो हि सकृत् स ताराद्वरश्चनः । यद्यत्कर्षं हि हन्मव तमुदिष्य चरेन्नरः ॥३४॥  
 अन्नकीकृतं हि राम चैव मीनमने मदा । प्रानः स्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु राघव ॥३५॥  
 चैवमम मीनमे यावो प्रानः स्नानपरायणः । अयं तेऽहं मदास्यामि गृहाय मनुजानक ॥३६॥  
 मयायाः सखिः मरुगुणीयानि जगदा नदाः । प्रानेगृह्य मदा दत्तमयं ममवत् प्रमादव ॥३७॥  
 मयाया देवताः मया प्रपद्यो ये च केनसाः । न गृह्णतु मया दत्तं प्रमादमवर्ण्यदानवः ॥३८॥

उस दारण का प देकर न दस्ता भयन स्वात्मक चने जाते है । अतएव है शिष्य । इस समय ब्रह्म स्नान करना चाहिए । २६ ॥ चैवक समान कोई माय नहीं है, सत्यगुणक समान कोई पुण नहीं है, वेदक समान कोई शास्त्र नहीं है, तीर्थक समान कोई गम नहीं है, जलदानक समान कोई दान नहीं है, मायाक समान कोई सुख नहीं है, उक्त राहु चयक समान और व. २६ ॥ २७ ॥ इसीप्रकार यह चैवमाय सदा विघ्नमयवका प्रिय रहा है । जो मनुष्य बिना प्रान बिना ही यह मांस दिया दता है, वह चयक होता है ॥ २८ ॥ जिस तरह कि सवर्णमय्यय हार भी बिना अन्नक घर नहीं अच्छा लगता, जिस तरह कि कोई कन्या मरुगुणमय पुत्र होती हुई या अशोभितिका न हो तो वह नहीं अच्छे मालूम होता, जिस तरह कि नमक बिना शाक अच्छा नहीं लगता, जिस तरह बिना उत्पत्तिका तथा नहीं अच्छा समझी, जैसे वस्त्रविहिन नारी नहीं शासन होता, उस तरह भी-और मासोम ममकार्य करनर जो कोई लाभ नहीं हुआ अथवा वह व्यर्थ हो जाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ अतएव कोई भी मनुष्य हो, उसे चैवमायके चर्चक पालन करना ही चाहिए ॥ ३१ ॥ अकृपणवै वृष्ण अराय नहीं है और न अंगमसे वृष्ण अकृपण ही है । इतिहास यह उक्ति है कि चैवमायक अवाध्यायुमिातक अंगमचन्द्रजेका निर्विघ्न पुनर करे ॥ ३२ ॥ जब कि सुगंदक मीन राशिपर चने गये हो, उस समय प्रातः स्नान करके रामनामका जप करना चाहिए । जो ऐसा नहीं करता, वह नरकजायो होता है ॥ ३३ ॥ सारे चैवमायके वस्तु राम और सत्ता ही है । अतएव उस समय जो कुछ भी कार्य कर, वह सब उन्हीके दरेगले करे ॥ ३४ ॥ स्नानके रहने इस तरह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हे भस्मकाकाम्य ! हे राम ! मूरके मीन राशिपर जानके अनन्तर मैं चैवमायक प्रानः स्नान करूँगा । कृपया मेरे इस पुनीत स्नानकार्यको निर्विघ्न समाप्त होने लीजिए ॥ ३५ ॥ आज चैव-देवके मीन राशिपर चने जानके अनन्तर मैं प्रानः स्नान करके आपको अर्घ्य दूँगा । हे मनुजानक ! उस प्रातः स्नान करिएना । मीन कादि सब मई, सारे छीरे, मेघ तथा नद आदिकों जल लेकर मैं आपको अर्घ्य प्रार्थन कर रहा हूँ, इससे आप प्रसन्न हो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ बहुत बर्ग केवता, लाभस्तु यदि भी और हम केवता

त्रयमः पापिनो शास्त्रा वम न्ने समदर्शनः । गृहाणान्ये मया दत्तं यथोक्तमदो भव ॥३९॥  
 इति चार्थे मयप्याथ पश्चात्स्नानं समाधत्तेन् । वामनी परिधाया कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥४०॥  
 जानकीकान्तमभ्यर्च्य प्रयुनैर्मधुर्मभवेः । श्रुत्वा रामकथा दिव्यामेतन्माधप्रशंसिनीम् ॥४१॥  
 कोटिजन्मार्जितान्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् । चैत्रे यः कांस्यभोजी हि तथा चाश्रुनयन्कथः ॥४२॥  
 न स्नानश्चाप्यदाना च नरकमेव विंदति । यथा माघः प्रयागे ह स्नानवपः पुण्यमिच्छता ॥४३॥  
 कार्तिकेऽपि यथा काश्या पञ्चगङ्गाजले स्मृत । द्वारकायां यथा प्रोक्तो वैशाखो माधवप्रियः ॥४४॥  
 अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रे प्रकीर्तितः । प्रयागे माममात्रेण वत्फलं प्राप्यते नरैः ॥४५॥  
 अयोध्यायां रामतीर्थे सकृन्स्नानेन तत्फलम् । वैशाखद्रोदशमेव पुण्यं यद्रोमतीजले ॥४६॥  
 तत्पुण्यं सरयुतोषेऽयोध्यायां प्राप्यते नरैः । चैत्रे म मि त्रिभिः स्नानै रामतीर्थे न संशयः ॥४७॥  
 कार्तिके चैवगङ्गायां यैः स्नानं द्वादशान्दकम् । अयोध्यायां रामतीर्थे चैत्रे पक्षेण तत्फलम् ॥४८॥  
 अयोध्यायां यदाऽमावस्तदा रामकृतानि च । जगन्त्यां यानि तीर्थानि तत्र स्नानं विधीयताम् ५०॥  
 चन्द्रायोध्यापरी तान्ति स्नानार्थं मयूर्ध्वं च । रामतीर्थं न यत्रास्ति तदा तीर्थेषु कास्येद् ॥५१॥  
 तैलाभ्यंगं दिवास्वापस्तथा च कांस्यभोजनम् । अष्टशान्तिं गृहे स्नानं निषिद्धस्य च मक्षणम् ॥५२॥  
 चैत्रे तु वज्रवेदपी द्विभुक्तं नक्तभोजनम् । चैत्रे माघे तु मध्याह्ने श्रान्तानां च द्विजन्मनाम् ॥५३॥  
 पादावनेजनं कुर्याच्चवृत्तं तु श्रान्तमम् । मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यं प्रदातुं च चैत्रके ॥५४॥

अवि मेर इस अर्घ्यदानको ग्रहण करते हुए प्रसन्न हैं । ३८ । हे पण्डितोंपर आसन करनेवाले समदेवता । आप समदर्शी हैं । पर इस अर्घ्यदानको ग्रहण करिए और यथाचित्त फल दीजिए ॥ ३९ ॥ इस तरह अर्घ्य समर्पण करनेके अनन्तर स्नान करें । तदनन्तर कण्ठे वस्त्रमकर और कोई काम करना चाहिए ॥ ४० ॥ इसके बाद वसन्त ऋतुमें उत्पन्न फूलोंमें जानकीकान्तका पूजन करें और चैत्रमासको प्रार्थना करनेवाली कथाये सुने ॥ ४१ ॥ ऐसा करनेमें कराही जन्मक एकत्रित पातक नष्ट हो जात है । जो मन्थ्य चैत्रमासमें किसीके वाक्यमें भोजन करता है और मन्थो मन्थो कथाने नहीं सुनता, न किसी पवित्र तीर्थमें स्नान करता है और न दान ही देता है, उसे नरकके सिवाय और किसी गतिका प्रज्ञा नहीं होती । जिस तरह कि पुण्यप्राप्तिके लिए लोग माघमासमें प्रयागस्नान करने हैं । ४२ ॥ ४३ ॥ अंत कार्तिकमासमें काशीको पञ्चगङ्गामें स्नान करते हैं, वैसे वैशाखमासमें द्वारकाजामें स्नान करने हैं, वसी तरह रामपसाको चाहिए कि चैत्रमासमें अयोध्या-स्नान आवश्यक करें । एक महान्त प्रयागमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल अयोध्याके रामतीर्थमें केवल एक बारके स्नानसे मिल जाता है । बारह बार वैशाखमासमें द्वारकाका गोमती नदीमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल अयोध्याके सरयूजलमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है । किन्तु वह फल एक मिलता है, जब चैत्र मासमें तीन बार रामतीर्थमें स्नान किया जाय ॥ ४४-४७ ॥ बारह बारस तक कार्तिकमें काशीको पञ्चगङ्गामें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल केवल एक पक्षतक अयोध्याकी सरयूजीमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है । ४८ ॥ पाण्डित्य के लिए अयोध्या दुर्लभ तीर्थ है, पापगण सभी एक क्षण करते हैं, पक्षतक प्राणी अयोध्यापूरीका दर्शन नहीं कर लेता । ४९ । यदि किसी भावक भक्तको अयोध्या प्राप्त न हो सके तो रामचन्द्रज ने जिन तीर्थोंका निर्माण किया हो वहीपर स्नान करें ॥ ५० ॥ जहाँ कि न अयोध्या है, न सरयूजा हैं और न कोई रामतीर्थ ही है । वही जो कोई भी तीर्थ हो, उसीमें स्नान कर ले ॥ ५१ ॥ तेल लगाना, दिवमें सोना, कांस्यपात्रमें भोजन करना, चात्पाईपर सोना, घरमें स्नान करना, किसी प्रकारका निषिद्ध भोजन, रात्रिके समय भोजन तथा दिवमें दो बार भोजन इन सब बातोंको चैत्रमासमें छोड़ देना चाहिए । चैत्रमासमें जो प्राणी दोपहरके समय यके दृष्ट शाहूणोंके रैर होता है, वह मानो सर्वोत्तम सब करता है । जो प्राणी चैत्रमासमें राह चलतेवालोंको जल पिशाता है और रास्तेमें



मार्गे छायां तु यः कुर्यान्म स्वर्गं च मदायते । मलिनं माललाकां हि उग्रं च छायाभिस्तुति ॥५५॥

व्यजन व्यजनाकांक्षो दानमेतत्तु चैवके ।

जलं छत्रं तु व्यजनं दानं मीने विशिष्यते । चैत्रं मासे तु मशाय जलपाय कुरुष्वने ॥५६॥

मदस्वोदककुम्भं तु चानको भुवि जायते । चैत्रे देव जन चान्न इषा नमस मने रमा ॥५७॥

आदर्शदानं तांबूलगुडदानं प्रकारयेत् । गोत्रमनुवरं दानं दानं दद्यादन्वयं च ॥५८॥

घृतयुक्तं कांस्यपात्रं दानमित्युक्तमर्थं च । तथा श्रीकन्ददानं च दानं चात्र कल्पय च ॥५९॥

सूक्ष्मवस्त्रमन्त्रकयोः पानपात्रं कमण्डलुम् । पतानां दण्डदानं च तैलदानं मठेषु च ॥६०॥

जीर्णोद्धारं मठानां च घटानां कर्णं तथा । प्रासादकरणं चैव बाघाक्यादिकं तथा ॥६१॥

मार्गस्थानी छत्रदानं मध्याह्नं स्तिथिपूजनम् । कम्पात्रं यन्मना च एषोपाम तु गतावपि ॥६२॥

एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । कल शाक तु मूलं च चन्द्र पुष्पं तु चन्दनम् ॥६३॥

उशीरः शीतलं द्रव्यं कपूरं कस्तूरी शुभा । दीपदानं धेनुदानं गेहदानं तथा स्मृतम् ॥६४॥

गोरमानीं वृथगदानं पतिव्रातणमोजनम् । मुद्राभिर्नापूजनं च शमनामप्रलेखनम् ॥६५॥

पुस्तकानां तथा दानं तथा कुकुमकंधरे । जनाकलं लवणं च जलपत्रीशरीरं के ॥६६॥

धानकीं नागरं धूपं बीजपूरं कलिगन्धम् । जवारं पद्ममन्त्रं कपित्थं मातुलंगकम् ॥६७॥

कम्पाडदानमागमकरणं माधेशोधनम् । तथोपासनादानं च राजवाजेभवं तथा ॥६८॥

एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । यानि चैत्रं तु वर्ज्यानि तानि ते प्रवदाम्यहम् ॥६९॥

सर्वाणि चैव मांमानि शीघ्रं मार्याक तथा । राजमाणाश्च चापि चन्द्रस्नानी प्रवर्जयेत् ॥७०॥

परान्नं च परद्रोहं परदारागमं तथा । ताथ्यन्तानि सर्वत्र चैत्रस्नानी प्रवर्जयेत् ॥७१॥

द्विदलं विलतलं च तथा ऽन्नं शल्यदूषणम् । मावदृष्टं शब्ददृष्टं चैत्रस्नानी तु वर्जयेत् ॥७२॥

छायाका प्रवन्ध करना है, वह स्वर्गनाम आकर सर्वोपायक द्वारा पुत्रित होता है । इस मासमें जोशोको चाहिए कि जो मन्दिर बना चाहता है, उसे पक्का दे । जो छायाका इच्छुक हो, उसे छाया दे । जो पानी चाहता हो, उसे पानी जिलाये । यह दान विशेष करके चैत्रमासके लिए बड़ा ही उपयोगी है । जो मनुष्य चैत्रमास आनेपर जिसा गुहम्वा बाह्यणका जलपत्रा धनदान नहू टना, वह परकर पातक होता है । इसीलिए चैत्रमासमें जल अन्न तथा सुन्दर शब्दका दान देना चाहिए ॥ ५२-५७ ॥ इनके अतिरिक्त दर्पणका दान, ताम्बूल और गुडका दान, गहूँ, तारो दण्ड, चाकल, घास भर हुए कांस्यपात्रका दान, ऊँखके रसका दान, बलका दान, आमका दान, महेंद्र कपड़ और पलंगका दान, जल पीनका दान, कमण्डलु तथा संन्यासियोंके लिये कण्डरान, मठोम तलका दान, मठोका जीर्णोद्धार, घटाघर बनवाना मकान बनवाना, कुर्मी बाइली आदि बनवाना मार्गमें कमजोरोंके लिये छत्रदान, दीपहरक समय अतिथियोंका पूजन, दलियोंका कमण्डलु-दान और गोओको गोप्रासदान व चैत्रमासके दान बनलाये गये हैं । इनके अतिरिक्त चैत्रमासमें ये दान और वस्तुलाये गये हैं । जैसे—फल शाक, मूल, कन्द पुष्प, चन्दन ॥ ५८-६३ ॥ लस, इसी तरह और-और ठण्डो बीजे, कपूर, कस्तूरी, दीपदान धेनुदान गृहदान, मारसदान, दलियों और बाह्यणका पाजनदान, सोहार्गिन स्त्रियोंका पूजन, शमन मका लेखन, पुस्तकदान, पुष्पकुम्भ और केसरका दान, आयफल, सौंण, चाबियों । ६४-६९ ॥ घातकी, नागरमोषा, धूप, बीजपूर, तरकृत, जम्बोर नीबू, कटहल, कंधा, कूटमाण्डदान, मगीर, लगवाना, रास्ता साफ करवाना, जूनका दान, हाथ एवं घाटका दान, ये सब दान चैत्रमासके लिए कहे गये हैं । अब मैं तुम्हें यह बतलाता हूँ कि चैत्रमासमें किन-किन वस्तुओंका परित्याग करना चाहिए ॥ ६७-७९ ॥ चैत्रस्नान करनेवालेको सब प्रकारके मार, मधु, कांजो एवं राजमाग आदि वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ७० ॥ दूसरेका ब्रह्म, दूसरेसे झगड़ और दूसरी स्त्राके साथ समागम, चैत्रस्नानी इन कामोंको सर्वदाके लिये छोड़

देवदेवादिजाना च पुरुगोत्रतिनां तथा । स्त्रीराजमहतां निदां चैव स्नायी विवर्जयेत् ॥ ७२ ॥  
 माण्ड्यगममिष चूर्णं फले जर्वागमा मयम् । धान्ये मसूरिका प्रोक्ता घान्नं पर्युषितं तथा ॥ ७३ ॥  
 मल्लचपमन्त्रसुप्तः पञ्चावल्या च भोजनम् । चतुर्थेकाले भुञ्जीत कुर्यादेवं सदा व्रती ॥ ७४ ॥  
 सवत्सराष्टपदं तैलभ्यंगं तु कारयेत् । चैत्रस्नायी नरोऽन्यत्र तैलाभ्यंगं न कारयेत् ॥ ७५ ॥  
 अलानु चापि वृताक कूष्मण्डं पृथ्वीफलम् । श्लेष्मानकं कलिंगं च कपित्थं चैव वर्जयेत् ॥ ७६ ॥  
 राजस्वतां त्यज श्लेष्मपतिव्रतार्कः सह । दित्रिदिहृवेदवागैश्च न वदेन्मर्वदा व्रती ॥ ७७ ॥  
 पलादु लशुनं चैव छत्राकं गृजनं तथा । नालिकापूरकं शिर्षु चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥ ७८ ॥  
 एभिः स्पृष्टं श्वपार्कं च स्रतकान्नं च वर्जयेत् । द्विषाचिंतं च दम्बान्नं चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥ ७९ ॥  
 एतावद्व्रजयेन्नित्यं व्रती सर्वत्र तेष्वपि । कुन्डुशयं च प्रकुर्वीत स्वशक्त्या राममुद्यमे ॥ ८० ॥  
 कमान्द्रूपमांडवद्विहातृप्राक मूलकं तथा । श्रोकलं च कलिंगं च फलं धात्राभवत् तथा ॥ ८१ ॥  
 नारिकेलमश्वत्थं च पटोलं बदरीफलम् । चर्मवृन्ताककं बल्लीशाकं तुलामिर्जं तथा ॥ ८२ ॥  
 आकान्थेता न पर्ज्यानि क्रमान्प्रतिपदादिषु । धात्रं फलं रवीं तद्व्रजयेन्मर्वदा गृही ॥ ८३ ॥  
 एभ्योऽन्यद्व्रजयेत्किञ्चित्प्राप्तमप्रीत्यै नरः । दन्ता व्रजते विषाय मलयेन्मर्वदेव हि ॥ ८४ ॥  
 फल्गुर्नारीणमारभ्य यावच्चैत्रो तु पूर्णिमा । चैत्रस्नानं तु तावद्वि नरः कार्यं च मक्तिनः ॥ ८५ ॥  
 जयवा मीनगो मानुर्याश्चावन्प्रकारयेत् । दशमीं फाल्गुनीं शुद्धां समारभ्य षष्ठोः निवा ॥ ८६ ॥  
 यावद्भवेत् दशमीं तावत्स्नानं प्रकारयेत् । स्नानस्यैव व्रतो भेदाः शिष्ये ते समुदीरिताः ॥ ८७ ॥  
 चैत्रशुक्लतृतीयायां यावद्वैशाख्यममवा । तृतीया शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां चेति स्मृताऽत्र या ॥ ८८ ॥

हे । क्योंकि ये तीर्थक सब पुण्योक्तो तब करनवाने जन्वान हैं । ७१ ॥ दाह, तिलका तल, कंकड़-पत्थर  
 मिला हुआ जल, भावने दूषित और शब्ददूषित जलप्राप्त चैत्ररात्री मनुष्य न जाय । ७२ ॥ देवता वेद,  
 ब्रह्मण गुरुजन, गायत्री, स्त्री, राजा और अपनमे बड़ाका निन्दका भा परिव्राज कर दना चाहिए । ७३ ॥  
 प्रणिपात अहंका माम, मम मरस्थका चूर्ण कलास जभार नावू, धान्याम मसूर और गुडा अन्न ये सब  
 मासतृच हात है इसलिये इनका न खाये । कलायवे, पृथ्वीवर जवन, पलातले भाजन और नींद पदमे भजन  
 करता हुआ व्रती मनुष्य इन नियमाका बराबर पालन करे ७४ ॥ ७५ ॥ कथल संवत्सरका सम निवाली  
 प्रतिपदाका रात्रि रमे तल्य लताये और किसी समय नहीं ॥ ७६ ॥ लीज, भग, कुम्हड़ा, छाटा प्रण्ठा, रिसड़ा,  
 तलवृत्र तथा कीया इन वस्तुओका न खाने चाहिए । ७७ ॥ कथल परितह रजस्वला, चण्डाल द्विजद्वया तथा  
 वेदसे कहि कृत मनुष्यासे बत भा न करे । ७८ ॥ पाज, गहनूत, छत्राक ( भईकोर ), गान्धर, मूले तथा  
 सहित्य इन वस्तुओका भी चैत्ररात्रि मनुष्य न खाय । ७९ ॥ ऊपर बतलाये पातलो, कुनं तथा रीणम से पृष्ठ  
 एवं सुतकके अन्नका भी परित्याग कर दन चाहिए । दावाका वकाया और जला हुआ जल भा चैत्ररात्री  
 मनुष्य न खाय ॥ ८० ॥ ऊपर बतलाये भजे न खाय और अपनसे वन पड़तो रामचन्द्रका प्रसन्न करनेके  
 लिए कुच्छुवा हावण आदि व्रत भी करे ॥ ८१ ॥ कुम्हड़ा, भंटा भुइफ ड, मूली, बल, तरवृत्र, आवलका मल  
 नारियल, लोआ, परवल, वैर, चर्मवृन्ताक, बल्लीशाक और तुलसी, इन्ह कमरा प्रतिपदा आदि तिथियाका  
 न खाय । उसी तरह रविवारका आशफल ( आंवला ) न खाय ॥ ८२-८६ ॥ इनके अतिरिक्त भी रामको प्रसन्न  
 करनेके लिए अपनी तरफसे कुछ वस्तुओका परित्याग करे । किन्तु व्रतसमाप्तिके अनन्तर ब्राह्मणको उस वस्तु-  
 का दान दकर खाय तो कोई हर्ज नहीं है । ८७ ॥ फाल्गुनकी पूर्णिमासे लेकर चैत्रकी पूर्णिमा पर्यन्त मतिपूर्वक  
 चैत्रस्नानका व्रत करना चाहिये । ८८ ॥ जयवा जबतक सूर्य मने राशिपर रहें, तबतक व्रत करता रहे  
 फाल्गुन कृष्णपक्षकी दशम्यात लेकर चैत्रशुक्लकी दशमी तक स्नान करना चाहिए । इस तरह हे शिष्य ! इस  
 चैत्रस्नानके भेद मेम तुमको बतलाये ॥ ८९ ॥ ९० ॥ चैत्रशुक्लकी तृतीयासे लेकर वैशाख शुक्लपक्षकी

हावन् श्रीतला गौरी स्नातव्या मुखलक्ष्मणे । भीतार्ता ये तु नारीभिः पूजनीया च जानकी ॥९०॥  
 वर्नीया वा तु चैत्रस्य वितपशोऽदृश तदा । नैशान्वशुक्लपक्षे वा तृतीयाऽध्वर्यवश्रुतिः ॥९१॥  
 नारी वा प्रीतिन्यागौत्रनमनपरापणा अरुणधा क्रोन्धनपोमिन्द्रीनान्यादिने कदा ॥९२॥  
 त्रिप्रसन्न तिथयः पुष्पाधैत्रमासे महत्तमाः । तथापि हि विशेषोऽत्र तिथीनां श्रव्यते यथा ॥९३॥  
 चैत्रमासे कृष्णपक्षे पंचमी दशमी तथा । एकादशी द्वादशी च शिवरात्रिस्त्वपि तथा ॥९४॥  
 एताः शुभचैत्रकृष्णे यदापादकनाशनाः । इदानीं चैत्रमस्य पितृपशोऽदृश शुभाः ॥९५॥  
 वर्ण्यन्ते निययः श्रेष्ठा नराणां दिनकाम्यया । सर्वस्मरप्रतिपदवारस्य श्रवणीदिनम् ॥९६॥  
 यावत्तावच्छुभाः सूर्याः स्नानदानाधिकर्मणि । यन्कृतं च वर्णयति स्नातदानवनादिकम् ॥९७॥  
 द्वितीयायां च तृतीयायां द्विगुणं नात्र सशयः । यन्कृतं च द्वितीयायां सकन्या स्नानादिकं वरैः ॥९८॥  
 द्विगुणं तृतीयायां चैत्रमासे नृपैः सम । एवं सर्वान् तिथयः यद्व्यासवर्षा शुभाः ॥९९॥  
 एव विशेषो ज्ञानस्यो यथाश्वादिभूषणान् । यथा सीरं दधि प्रोक्तं दधाम्बु नवर्ननकम् ॥१००॥  
 नवर्नानावृष्टं यद्वनथाऽत्र विविचिन्तयेत् । चैत्रमस्य कामानां तत्र पथः स्थितो वारः ॥१०१॥  
 सितपक्षे कर्मण्यं यावत्सा नवमी तिथिः । तावदेकैकगः श्रेष्ठा भवन्तु नवमी वरा ॥१०२॥  
 यस्यां ज्ञानं रामतन्त्रं धर्ममध्यापनाय हि । तस्मात्तिष्ठन्तु मां कृता कर्मविमुक्तनधमा ॥१०३॥  
 तस्यां दत्तं दत्तं ज्ञानं यन्किञ्चिच्च कृतं शुभम् । सर्वं तदर्थं विद्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥१०४॥  
 प्रतिपदिनमारभ्य नवरात्रमुपवेशेन । प्र-०४ शुभरीत्यं वृत्तं चैत्रं कल्पयन् ॥१०५॥  
 सर्वस्मरप्रतिपदि चैत्राः सौम्योपरि स्थिताः । दिव्यदत्तं च सन्ध्यं सांझं च मनोऽरमाः ॥१०६॥

ब्रह्मसंहिता का एक इस संसारमें शततन्त्रा गौरीका निवास रहता है । इसलिए प्रियश्रीका मुखलक्ष्मण लिए  
 सोतातभय जाकर स्नान एक सप्ताहका व्रत करना चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ चैत्रपुष्यपक्षक तृतीया तथा  
 चैत्रासशुक्लकी तृतीया के दोनों तृतीयाय अरुणमजक भोजन करना है ॥ ९८ ॥ अतएव ता नारा ज्ञानला  
 गौरीका पत कर रहे हो, उसे कहिये कि इस दोनो तिथियोंको सप्ताहमें नम्र लगाने । इनके मिश्रण और  
 किसी अन्य दिनमें पढ़ा करना शक्ति है ॥ ९९ ॥ चैत्र ता चैत्रजसकी कोनो तिथियां पढ़ें ॥ फिर मा इतम  
 को विशेषता है, उस से शुभका मुनाता है ॥ १०० ॥ चैत्र कृष्णपक्षका पंचमा दशमा एकादशी, द्वादशा,  
 त्रयोदशी, अमावस्या, वे चैत्र कृष्णपक्षकी तिथिद्वितीया तृतीया और चतुर्थी पंचमी नाम करनशाला कहो  
 गया है । अब मैं चैत्रक कृष्णपक्षको शुभ तिथियां प्रिया बता रहा हूँ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ इसमें प्रत्येकका बड़ा कल्याण  
 होगा । यह सारा वर विश्वास है । सप्तस्मर-मन-तिथी प्रतिपद में लेकर रक्तम, पशुम जितना तिथियां हैं,  
 वे सब स्नान दान आदि कर्मोंमें शुभ कहा गया है । उनमें भी प्रतिपदको स्नान दान अदि कामका का फल  
 आनन्द कहा गया है उसमें द्वितीया द्विगुणत फलदायक हुना है । द्वितीयाको जो फल कहा है, उससे  
 तृतीयास द्विगुणित फल हुना है । इस तरह नवमी तिथि पर्यन्त सब तिथियां शुभ हैं । इनमें इतना प्रकारका  
 विशेषता है कि जैसे उसका एक प्रथम गठित गठन आखिरी पौर्णमास फलमें में ठा होता है । जैसे गोसे  
 दूध होता है, दूधसे दही तैयार हुना है, दही से मक्खन निकलता है और मक्खनसे घी तैयार हुना है । उसी  
 तरह यही तिथियोंका भी विशेष हुना है । पहले ता पञ्च मासोंमें चैत्रमास ही श्रेष्ठ है । उनमें भी कृष्णपक्ष  
 श्रेष्ठ है और शुक्लपक्षमें भी प्रतिपदमें लेकर नवमा तकका तिथियां श्रेष्ठ है । उनमें भी नवमा तिथि सर्व-  
 प्रधान तिथि है ॥ ९६-१०२ ॥ नवमी तिथिमा कर्मोंकी रचनाया करके सित रामका जन्म हुआ था,  
 इसीसे यह तिथि हमसब कर्मोंकी लक्ष करनवाला माना नहीं है ॥ १०३ ॥ उसमें जो कुछ दान दिया जाता,  
 हवन किया जाता, सब किया जाता अथवा जो कोई भी सब कर्म किया जाता है सब फल असफल होता है ।  
 इसमें प्रत्येक कार्य करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १०४ ॥ इसलिए सा तब, चाहिये कि प्रतिपदा तिथिमें लेकर मौ  
 रक्षिक उपवास करके रामचन्द्रजीका पूजन करें ॥ १०५ ॥ चैत्रपक्षकी प्रतिपदाको पञ्चमासे अंतर दिव्य वरन

रामजन्मसूचनार्थं प्रान्यथै गणवस्य च । गृहे गृहे नरैः कार्याः पूजनीयाश्च भाक्तेनः ॥१०७॥  
 गृहे देवालये वाऽथ गेष्टे इन्द्रावने श्रमे । समाजनाहिकं निर्व्यं कार्यं चन्दनवारिमिः ॥१०८॥  
 तत्र पापपचनेश्च नानापञ्चादिकानि हि । लेत्रनीयानि भूम्यां तु नीलपीतादिवर्णकैः ॥१०९॥  
 ग्रहचरपट्टाभयं रामतोभद्रमुत्तमम् । शतारूपं वा लिखेद्द्रुमधवाऽन्यन्मनोरमम् ॥११०॥  
 तत्पुष्पपरि मङ्गलं रम्याधिवर्णश्च मण्डपः । देवो द्वााराणि चत्वारि कार्याणि तोष्यानि च ॥१११॥  
 कदलीप्लवङ्गानि ह्यशुक्लपङ्कजानि च । नानावष्टाकिक्लिणीभिर्ध्वनितान्युज्ज्वलानि च ॥११२॥  
 रम्यादशमैडितानि विवित्राणे शुभानि च । नानाचित्रवितानैश्च मुक्ताहारैर्युतानि च ॥११३॥

तस्यां षोडशमार्गश्च प्रतिष्ठा काचनोद्भवा ॥११४॥

द्विभुजा रामचन्द्रस्य मूर्तिलक्षणलक्षिता । चतुर्दिशनिर्माणश्च प्रतिष्ठा रजतोद्भवा ॥११५॥  
 कौशल्यशायः शुभा कार्या पूजनाया मनोरमा । यथाशक्तानुपायेण पूजयेन्मत्स्यहं नरः ॥११६॥  
 भोगमृदगन्तुर्गन्तुं शक्तिरुन्म्यादं कर्मणः । नानापञ्चादिवर्णैश्च चरैः सुपूजयेत् ॥११७॥  
 प्रतिपदि नमस्कृत्य यावत् नवमीदिनम् । रामायणं तादृशं पठनीयमिदं शुभम् ॥११८॥  
 षष्ठं चाल्मीकिना गीतं श्रवणान्ममलग्नदम् । आनन्दमग्नकं रम्यं पठनीयं मनोरमम् ॥११९॥  
 नव कांडानि नवभिर्दिनेष्वेव पठन्नरः । दिवसे दिवसे कांडं पठनीयं मयन्नरः ॥१२०॥  
 अथवा प्रत्यहं सर्गाः पठितव्यास्तु द्वादश । शतमन्त्रैः कदा मध्येऽधिकः सोऽपि पठेन्नरः ॥१२१॥  
 अष्टोत्तरशतैः सर्गे रामकीर्तनमालिका । मेघयुक्ता पठेद्देवं रामाग्रे नवभिर्दिनैः ॥१२२॥  
 सर्वार्थार्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् । रामायणस्य पठनाच्चत्फलं नवरात्रके ॥१२३॥

और मान्य आदिसे अलंकृत देवालय रामजन्मकी सूचक तथा रामको प्रसन्न करनेके लिए घर-घर स्थापित करके भक्तिपूजक इनका पूजन करना चाहिए । १०७-१०९ ॥ घरमें, देवालयमें गोशालामें तथा तुलसीकी बगीचा-में उक्त दिनों चन्दनके जलका मिष्ठानत करना चाहिए । १०७ ॥ इसके बाद पत्थरके चूर्णके नील-पीत आदि वर्णोंवाले कमल आदि बनाने चाहिए । तदनन्तर अष्टाक्षरसहस्रनामके रामतोभद्र या बालारमक अथवा ओं अमरेश्वरी अथवा उस भद्रका स्तुति कर । १०८ । ११० । उसके ऊपर अतिशय सुन्दर चित्र-विविध वर्णोंका मण्डप बनावे । उक्त मण्डपमें चतुर्भुज बनाये और तत्पश्चात् रामायण पारणकी स्थापना करे । १११ ॥ अहाँ-तहाँ कमलें रखके तथा स्तवपत्र पढ़ कर । उनमें तरह-तरहके छन्द और विविध आदि लगा दे, जिनकी मधुर दर्शन सुगरी पड़ना रहे ॥ ११२ ॥ जहाँ-तहाँ सुन्दर और यत्न-यत्ने अंगे लगा दे विविध प्रकारके चित्र लगावे तादृशरूपकी चन्दन छत्र लगावे और मंत्रियोंके हाथ लटकावे । उसमें सुवर्णमय एवं रत्नमण्डित मन्त्रका रचना कर और इसपर अक्षर-अक्षर काटोके मन्त्र शान्त बिछावे । फिर उसपर सोनह मासेकी काचनमयी प्रतिष्ठा स्थापित करे ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ रामचन्द्रका वह सुवर्णमयी प्रतिष्ठा सब सुलक्षणोंसे लक्षित होनी चाहिए । इसके अनन्तर चौबीस दिनों रजतमयी प्रतिष्ठा कोसत्याकी बनावे और उसकी पूजा करे । जैसा अग्रज सामर्थ्य हो, तत्क अनुसार प्रतिदिन पूजन करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उनके सामने भेरी, मृदंग, नुदही अदि न न बजावे और नाचगाय । नाता उक्तमन्त्र नैराही और उपचारोंसे पूजन करे ॥ ११७ ॥ प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी तिथि पर्वत इस आने इनामापणका पाठ करे । ११८ ॥ इसका बाह्यार्थ मूर्तिमें मान किया है । यह नुतन-मंगलप्रद और मनोरम है । रम्यसे इसका पाठ आवश्यक है ॥ ११९ ॥ इसके नौ कांडोंको नौ दिनोंमें समाप्त करना चाहिए । पाठ करनेवालेको चाहिए कि प्रत्यहपूर्वक प्रतिदिन एक-एक न इसका पाठ करे । १२० ॥ यदि ऐसा न हो सके तो प्रतिदिन बारह सर्गोंका पाठ करे । ऐसा पाठ करनेसे एक सर्ग वाकी बचाए । उसे बीचमें किसी राज पूरा कर देना चाहिए ॥ १२१ ॥ इस तरह अष्टोत्तरशत सर्गात्मक इस रामकीर्तन-मालिकाका नौ दिनोंमें रामचन्द्रजीके समक्ष पाठ करना चाहिए ॥ १२२ ॥ सब

श्लोक वा श्लोकपाद वा यद्वाभाषणार्थमवस् । नवरात्रे कृष्टिष्यन्ति चैत्रे ते मोक्षभागिनः ॥१२४॥  
 एवं हि मन्यहं कार्यं कौण्डिन्यासमपूजनम् । यदुवाचा तु नागीजं तत्र कार्यं प्रपूजनम् ॥१२५॥  
 सपुत्रद्विजराधायां विशेषांपूजनं स्मृतम् । यद्वाचनद्वारायुतं चित्रभोजनभोजनम् ॥१२६॥  
 एव कृन्दा विधिं सर्वं नवरात्रौ च विज्ञेयः । पूजयित्वा रामचन्द्रं वाहनारुद्रमुत्तमम् ॥१२७॥  
 येनेमृदमशोर्बन्धं तुर्यदृन्दमितिःस्वनेः । तस्मात्कृतवृत्तैश्च गायकानां च गायनैः ॥१२८॥  
 एव ज्ञानामपुनस्तर्द्धमद्विनं सज्जोविनम् । चामांशोऽयमानं च पुष्पकैः संस्थितं वरम् ॥१२९॥  
 रावनीयार्थिकं नीत्वा रश्मामृतघट्टदंशैः । स्नाययेद्रघुवीरं हि पुण्यतोर्ध्वगतः वरम् ॥१३०॥  
 रुद्रमुक्तं विष्णुमुक्तंः सहस्रैर्वाग्भिरनु वा । सांगन्धद्रव्यमन्त्रिर्धर्मैर्जलमग्निरेवयेत् ॥१३१॥  
 सांगन्धद्रव्यैश्च पुनः तन्मंगलाभिषम् । प्रोक्ष्यते मंगलस्नानं तत्पश्चेत्तुल्यं नृणाम् ॥१३२॥  
 तत्पश्चात्पुनरीधं तु तीर्थमप्ये विनिश्चिपेत् । तत्र सर्वजनेः श्रेष्ठं स्नाययेत् तदनन्तरम् ॥१३३॥  
 नक्षत्रामृतस्नानैर्यत्कालं प्राप्स्यते तैः । तन्मङ्गलं राक्षसद्रव्यं मण्डलस्नानकालात् ॥१३४॥  
 पुष्करादिषु तीर्थेषु मङ्गलायासु यन्निम्बु च । प्राप्स्यते पञ्चमं स्नानान्मङ्गलं स्नानादनुच यत् ॥१३५॥  
 एवं रथं तु संन्यास्य सीतापुनर्त्तं प्रपूज्य च । पुनः पूर्वांकवाद्यादि मंगलमनवदुपहस्य ॥१३६॥  
 गृहे रामं पुनः पूज्य रामायणकृतं वरम् । पञ्चायण ममाप्याय पुनश्च पूजयेच्छुभम् ॥१३७॥  
 नानेत्सर्वैर्दिनं नीत्वा कार्यं ज्ञानात् न निश्चि । दक्षिणार्धप्रातर्कृत्वा च भोजयित्वा द्विजान् गृह्णात् ॥१३८॥  
 पूजयित्वा पुनः सर्वं गुरुषु तन्निवेदयेत् । पुनः स्वयं मुद्रनिर्मयं कुर्याद्भोजनमुत्तमम् ॥१३९॥  
 एवं कृतं समाख्यातं चैत्राय नवरात्रके । अहमन्तवरात्रे हि श्रेष्ठं चैत्रं महत्तमम् ॥१४०॥  
 नवरात्रेऽपि सा रामनरमी परमार्थदा । तन्ममाना विधिना न्या चैत्रमासे शुभग्रहा ॥१४१॥

तीर्थोंमें और तब दालीम जो पुण्य है, वहाँ फल नवरात्रम इस रामायणक पत्र करनेमें है ॥ १२३ ॥ नवरात्रमें जो लोग एक श्लोक कथवा श्लोकके एक पाणका जो पाठ करन, दे सीतार भा ॥ होमे ॥१२४॥ इस तरह प्रतिदिन कौन्त्या और रामका पुजन करना चाहिये । उन समय पुजवना श्रमके पुजनका विधान है ॥ १२५ ॥ इस सब सत्पर पुजवन् ब्राह्मणोंके भी पुजनका विधान मन्त्र-ज्ञ जाना गया है । पुजनक बाद उरु र्जिष्य चकारके वस्त्र, बलकुल और तरह-तरहके भोजन दे ॥ १२६ ॥ इस विधिसे नवरात्रम विरतकर स्वयं, भिक्षिकों काहुन्पा आरुद्र रामका पुजन करके धरो, मृग, गृह्णा, दुर्गुर्वा आदिके कभीर निनाद, मणिकुआक नृत्य, गायकाके गायन आदि माना प्रसारके आवाहम मन्त्रि, मुद्र छरहे मुनीभक्त, धर्मसे बलकृत, स्वयं विनायक आदि रामचन्द्रजीके रामतीर्थपर ले जाकर पञ्च पत्रक घड़ा तथा पवित्र जलसे स्नान करावे ॥ १२७-१३० ॥ स्नान करावे समय रुद्रमुक्त, विष्णुमुक्त अथवा मङ्गलवाश्रयका पाठ करना जय्य । वन्दे ही जलमें विविध प्रकारके मङ्गलमय द्रव्य मिला ले ॥ १३१ ॥ इस तरह मङ्गलद्रव्य मिले जरये स्नान कालमेंको मङ्गलस्नान करते हैं । यह चैत्रमासम विज आता है और बहो कठिनाईम मागेको ऐसा नृलोग प्राप्त हुआ है ॥ १३२ ॥ उस स्नानके पश्चात्पुनर्को रिमो च मंके जाय दे और पुनश्च जितन साथ मन्त्रिचित हुए हों, वे सब उस तीर्थमें जाकर स्नान करें । सभी प्राणाका मङ्गलमालका का प्राप्त हुआ है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ पुष्कर बादि तीर्थों तथा नङ्गा आदि मन्त्रिमें स्नान करावेसे जा फल मिलता है, वहाँ फल यज्ञस्नान वरदेवातेको प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥ इस तरह सीता समेत रामको स्नान कराकर उनका पूजा करे और पूर्वांक बाले-रात्रिके साथ फिर उन्हें अपने घर ले जावे ॥ १३६ ॥ बरबर रामको लाकर उनकी पूजा करे । तदनन्तर आरुद्रमासका वारपण समाप्त करके पुस्तककी पुजा करे ॥ १३७ ॥ माना प्रकारके उत्तम भोजना हुय दिन विनामे और रात-भर जाग्रत करे । दशमोंको सारे उठे और निद्राकृतसे जितकर रहुरे ब्राह्मणका मानन करावे ॥ १३८ ॥ इसके बाद गुरुकी पूजा करके उन्हें सब वस्तुमें दान दे । तत्पश्चात् तत्पश्चिमों और वित्रोके साथ स्वयं भोजन करे ॥ १३९ ॥ चैत्रके नवरात्रमें इस तरह उठ करनेका विधान बतलाया गया है । इसीलिए लोगोंके चैत्रके

अतः परं प्रवक्ष्यामि चैत्रोद्यापनक विधिम् । यच्छ्रुत्वा भक्तं सर्वं चैत्रस्नानं तु जायते ॥१४२॥  
 चैत्रे मासि मिते पक्षे वा चैत्रे एकादशी तिथिः । सर्वानु विधिषु श्रेष्ठा चोपोष्या वदकारिभिः ॥१४३॥  
 श्रेष्ठा सा एकादशी ज्ञेया मुख्यं तु पञ्चपूजनम् । कार्यं दध्योदनं दत्त्वा जलकुंभः प्रदीयताम् ॥१४४॥  
 तिस्रश्च तिथयः श्रेष्ठार्थेन मासं महत्तमाः । त्रयोदशी तथाधुना पूर्णमासी सर्वत्र च ॥१४५॥  
 यामु स्नानञ्च दानं च सर्वथाछिन्दयिष्यम् । यैर्न स्नानं चैत्रमासे न स्नानं नवरत्रके ॥१४६॥  
 तैस्तु चान्यदिने स्नान्वा चैत्रस्नानफलं न मेव । तानु श्रेष्ठः पूर्णिमा हि सर्वपापकनाशिनी ॥१४७॥  
 तस्यामुद्यापनं प्रोक्तं चैत्रस्नानफलप्रये । उपोष्य च चतुर्दशं पूर्ववन्मण्डपादिकम् ॥१४८॥  
 कृत्वा तस्मिन् धान्यराशी कलशं वारिपुरितम् । स्थापयित्वा तदुपरि हेमपात्रं सुविस्तृतम् ॥१४९॥  
 पञ्चरत्नगुणं ध्याप्य चमूणाच्छादयेच्च तत् । तस्मिन्गोतापुत्रं गम मांशनं विधिपूर्वकम् ॥१५०॥  
 आलमिवायुपुत्रेण सूर्यवेण समन्वितम् । विभीषणासदाभ्यां नु जगिष्वन्महिन तथा ॥१५१॥  
 बृजयेदेवदेवंश्च परमं गुह्यं नुत्तमा । उपचरैः षोडशभिर्नातामह्यपदन्वितैः ॥१५२॥  
 राशौ जागरणं कुर्याद्गोत्रवाद्यादिमण्डलैः । तस्मिन् पूर्णमास्यां च सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥१५३॥  
 शिश्नन्मितानश्नं वा स्वशक्या वा निमन्त्रयेत् । ततस्तान्भोजयेद्विशन्नाहमाज्जनादिना मयी ॥१५४॥  
 भोजो देवा इति ह्यस्यां गुरुशपितमुरिसा । गीन्त्यं देवदेवश्च देवासां च पूषक् पूषक् ॥१५५॥  
 दक्षिणां च यथाशक्त्या प्रदद्याच्च ततो नमेत् पुनर्देवं समभ्यर्च्य देवांश्च तुलसी तथा ॥१५६॥  
 ततो मां कपिला तत्र पूजयेद्विभिना यनो । गुरुग्रनोपदेशात् वस्त्रालकाग्रमण्डनैः ॥१५७॥  
 सपत्नीक समभ्यर्च्य ततो विप्रान् क्षमापयेत् । पुष्पन्प्रसादादेवंश्च सुप्रमन्नोऽस्तु वै मम ॥१५८॥

नवरात्रको बहुत ही श्रेष्ठ माना है । १४० ॥ नवरात्रम सो रामनवमी परमार्थदायिनी है । इसके समान गुप्तप्रद तिथि चैत्रमास भरमे कोई भी नहीं है ॥ १४१ ॥ इसके अनन्तर चैत्रके उस उद्यापनका विधान बतलाते हैं, जिसके करनेसे चैत्रस्नान सकल हो जाता है ॥ १४२ ॥ चैत्रमासक त्रयोदशीम जो एकादशी पहली है, वह सब तिथियोंमें श्रेष्ठ होती है । इसलिए चैत्रयत्र करनेवालोंको यह एकादशीयम अवश्य करना चाहिए । १४३ । इसी तरह चैत्र गुप्तपक्षको द्वादशी भी श्रेष्ठ है । इस राज वही बातें हमका पूजन करके जलसे पूर्ण घटेका दान करना चाहिए ॥ १४४ ॥ चैत्रमास भरमे तीन तिथियाँ श्रेष्ठ हैं । जैत्र-द्वादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा ॥ १४५ ॥ इनमें स्नान-दान करनेमें ये तिथियाँ सब कामलाआका पूर्ण करनी हैं । जिसने चैत्रस्नान नहीं किया और जो नवरात्रस्नान भी नहीं कर पाया, वह अन्तिम दिन अथवा पूर्णिमाको स्नान करके चैत्र स्नानका फल प्राप्त कर लेता है । क्योंकि चैत्र भरकी सब तिथियोंमें पूर्णिमा तिथि श्रेष्ठ है और सब पातकोंको नष्ट करती है । १४६ ॥ १४७ ॥ अतः चैत्रस्नानका फल पानके लिए इस पूर्णिमामें भी उद्यापन करना चाहिए । इसका विधान यह है कि यजुर्शांको उपवास करके पूर्ववत् मण्डप आदि बनाये और उसमें धान्यराशि तथा वर्णपूर्ण कपडा रखकर उसके ऊपर एक बड़ासा स्वर्णपात्र रख ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उसमें पञ्चरत्न डालकर अभ्यस्य शौक दे । नरनन्दर सीता, लक्ष्मण आदि भ्राताओ, हनुमान्जी, सुग्रीव, विभीषण, ब्रह्मा तथा जाम्बवान् सहित रामकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करके गुरुका आज्ञासे वेष रक्खे । रामकी षोडश उपचारों एवं विविध भक्षण पदार्थोंसे पूजन करे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ रात्रि भर जागरण करता हुआ गाव-बजावे और सबरे हाथ सगनीक दाहणों अथवा जैमा सामर्थ्य हो उसके अनुसार बाह्यणोंको बुलाकर खीर-पूड़ी आदि भोजन करावे ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ इसके बाद 'अतो देवा' इस मन्त्रके द्वारा बिल और घीसे हुवन करे । इस हुवनसे देवदेव राम तथा अन्योन्य देवताओंको प्रनम्र किया जाता है ॥ १५५ ॥ यह सब करनेके बाद दाहणोंको अद्यावन्ति दर्शना देकर प्रणाम करे । फिर सज्जत दवताओं तथा तुलसी देवीके फिरसे पूजन करके विधिपूर्वक कपिला गोका पूजन करे और नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण दकर स्नानके उपदेश सपत्नीक गुरुको पूजा कर ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ यह सब करनेके बाद ब्राह्मणोंसे क्षमाप्रार्थना करता हुआ

ब्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया । तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु संततिः । १५९ ॥  
 मनोरथास्तु सफलाः संतु नित्यं ममार्चनात् । देहांते वैष्णवं स्थानं मम चास्त्वतिदुर्लभम् । १६० ॥  
 इति कमाप्य तान् विप्रान् प्रसाद्य च निसर्जयेत् । तामर्च्य गुरवे दद्याद्भस्मपुष्पां सदा व्रती । १६१ ॥  
 ततः सुहृत्प्रियैर्युक्तः स्वयं भुञ्जीत भक्तिमान् । एवमुच्चापनविधिवैत्रस्नानफलाप्तये ॥ १६२ ॥  
 सविस्तरञ्च कर्तव्यवैत्रस्नानपरायणैः । एवं यः कुरुते सम्यक् चैत्रस्नानव्रत नरः । १६३ ॥  
 सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुमायुज्यमानुयात् । सर्वव्रतैः सर्वतार्थैः सर्वदानैश्च सफलम् ॥ १६४ ॥  
 तत्कोटिगुणितं पुण्यं सम्यगस्य विधानतः । देहस्थितानि पापानि नाशमायाति तद्भयात् ॥ १६५ ॥  
 क्व वास्यामो वदत्येवं यच्चैत्रव्रतकृत्तरः । तस्मादवश्यमेवैतच्चैत्रस्नानं समाचरेत् ॥ १६६ ॥  
 श्रीचैत्रव्रतकथनं पठन्ति भक्तया ये वै तद्भक्तिप्रयतिवैष्णवान्वदति ।  
 ते सम्यक् व्रतकरणात् फलं लभन्ते तत्सर्वं कलुषविनाशनं लभन्ते ॥ १६७ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीभट्टानन्दरामायणं वात्मीकीये मनोहरकाण्डे  
 आदिकाण्डे चैत्रमहिमवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

## एकादशः सर्गः

( चैत्रस्नानका महात्म्य )

विष्णुदास उवाच

किमर्थं सर्वमासेषु चैत्रमासः स्मृतो वरः । तत्कारणं वदस्वाद्य गुणे संतोषहेतवे ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य महाबुद्धे सम्पक् पृष्ठं त्वया मम । प्रश्नप्रार्थनया विष्णुर्यदा भूष्यां द्विजीत्तम ॥ २ ॥  
 अदोषापालकस्याथ राहो दशरथस्य हि । कौसल्यायास्तु भार्याया जठरत्रिगुर्वो बहिः ॥ ३ ॥

कहें कि आप लोगोंकी कृपासे बरेश रामचन्द्रजी हमपर सदा प्रसन्न रहें ॥ ११८ ॥ मैंने सात जन्म तक जो पाप किये हों, वे इस व्रतसे नष्ट होजायँ और मेरी सन्तति स्थायी हो ॥ ११९ ॥ इस व्रतके प्रभावसे मेरे सब मनोरथ सफल हों और देहांत होनेपर हम अतिपाप दुर्लभ वैकुण्ठ धाम प्राप्त हो ॥ १२० ॥ इस तरह समायाचना करके उन ब्राह्मणोंको प्रसन्न करता हुआ विदा कर और रत्न नया प्रतिमा समेत पूजनको सब वरपुत्रों गुरुको दान दे दे ॥ १२१ ॥ इसके बाद मातदारों और मित्रोंको साथ भोजन करे । इस तरह चैत्रमासका फल प्राप्त करनेके लिए उद्यापन करनेका विधान है ॥ १२२ ॥ जो लोग चैत्रमासके व्रतमें लगे हों, उन्हें विस्तारसे यह उद्यापन करना चाहिए । तो मनुष्य अच्छी तरह चैत्रस्नानका व्रत करता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुभक्तानुको सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है । समस्त व्रतों, सब तंत्रों और समस्त दानोंसे जो फल प्राप्त होता है, उसका करोड़गुना अधिक फल इस चैत्रमासके व्रतसे प्राप्त होता है । इसके भयसे चैत्रव्रतके देहमें रहनेवाले समस्त पापक नष्ट हो जाते हैं । वे पाप कहत हैं कि अब हम कहाँ जायँ ? अतः चैत्रव्रत करनेवाले मनुष्यको चैत्रस्नान अवश्य करना चाहिए । १२३-१२६ ॥ जो लोग इस चैत्रव्रतकी कथाको पढ़ते या विप्र तथा संन्यासी वैष्णवोंको सुनाते हैं, वे अच्छी तरह व्रत करनेका फल पाते हैं और उनके समस्त पापक नष्ट हो जाते हैं ॥ १२७ ॥ इति श्रीभट्टानन्दरामायणं वात्मीकीये प० रामचैत्रमासवैष्णवज्योत्स्ना-मावाटीकासहिते मनोहरकाण्डे वधमः सर्गः ॥ १० ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरुदेव ! सब मासोंमें यह चैत्रमास क्यों श्रेष्ठ माना गया है ? तो मेरे सन्तोषके लिए कहिए ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे महाबुद्धिमान् शिष्य ! तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । मैं

चेत्रे मासि मित्रे गमे नवम्या परमे दिने । पुनर्वसुर्नक्षत्र प्रोच्यस्थे ग्रहपंचके ॥ ४ ॥  
 भव्याङ्गे प्रकटो जातः श्रीगमो राजवयनि । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥  
 देवदुर्मुखो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाश्वत्थः । राजवयनि वायानां संधा नेदुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥  
 ननुतुर्वारिणश्च जगुर्गतिं मनोरमम् । तदा सर्वं हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशु शुभम् ॥ ७ ॥  
 प्रपपृर्नृपज वालं च्छ्वा मुदमवाप्नुयुः । न नाविमानभाकृदा दिवि देवाः यवासवाः ॥ ८ ॥  
 मिलित्वा राघवं द्रष्टुं कौमल्याजगुरुकृत्स्नम् । नत्वा रुद्रश्च पूषश्च देवेन्द्रादियुतः शुभाः ॥ ९ ॥  
 उन्सवान् विदधुः सर्वं तदा ध्यागमजन्मनि । एवमुन्माहवस्ये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥  
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तृण्डुविविधैः स्तवैः । प्रोचुस्तदा शुभाः सर्वे हर्षादिव रघूत्तमम् ॥ ११ ॥  
 अय धन्या ययं देव मुक्ताश्चासुरजाह्वयात् । यन्निमित्तं त्वया देव सवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥  
 अस्माकं हर्षकालोऽयं नैवदव कृपानिधे । तस्मादयं मदा पुष्पः श्रेष्ठः काष्ठो भविष्यति ॥ १३ ॥  
 त्वं चाप्यंगीकृत्स्व य देवस्मै सुबहून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥  
 तुतोष निवरा तेषु देवेषु भगवान्हरिः ।

श्रीराम उवाच

सम्पदं प्रोक्तं मुगः सर्वे तन्त्रैलोक्योपकारकम् ॥ १५ ॥

मयद्भिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले मत्तमे । शृणुष्वं वचनं मेऽद्य यत्रर्षान्प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥  
 सर्वणमेव मामानां श्रेष्ठथाय भविष्यति । वैशाखात्कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्मासः परः च ॥ १७ ॥  
 माघमासाऽथ वाय चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृतं दत्तं दुर्गं स्नानार्थं विचिंतिनम् ॥ १८ ॥  
 सर्वे कोटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः । यच्छ्रद्धया स्वमेधेन यद्रोगेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥  
 यत्फलं सोमयागेन तत्तन्त्रे स्नानमात्रतः । सर्वग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता है । मुनो-आ २ । अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथको रानी कौमल्याके वदनेसे चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथीकी पुनर्वसु नक्षत्रमें जब कि पांच ग्रह केन स्थानमें बँडे थे, तब मछाल्लके समय अवधका दशरथके घरमें श्रीरामचन्द्रजी अवतरे । उस समय जगतनरमें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताआने इन्दुमयी बजायी और पृथ्वीकी, राजाके महलोंमें आग-अग्नि विविध प्रकारके बाले बजे ॥ ६ ॥ वैश्याय नाचने और गाने लगे । उस समय पृथ्वीमण्डलके इन्द्र मण्डप उस वचनेको देखनेके लिए आये और उस देव वक्षकर नई प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोपर चढ़-चढ़कर इन्द्र आदि देवता भी एकत्र होकर कौसल्याके गमसे उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस समय ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा इन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका उपलक्ष्यमें विविध उम्मेद किये । इस तरह उत्साहके समय आकाशमें विद्यमान इमला रामको प्रणाम करके ना । प्रकारके गीतोंसे स्तुति कर रहे थे । समय पाकर देवताओंने रामसे कहा— ॥ ७-११ ॥ हे देव ! अब हम लोग धन्य हैं । अब हम लोग राजाओंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इमीन्द्र आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! हे कृपानिधे ! यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वत्र माना जायगा ॥ १३ ॥ अब भी इस बातको अङ्गीकार करते हुए इस समयको बहुतसे वरदान दीजिए । उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए और कहा— हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छा बात कहा है और तीनों लोकोंके उपकार करनेवाले विविध स्तवोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ ॥ १४-१६ ॥ यह मास सब भासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघमें भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कार्य करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विषय फल प्राप्त होगा जो फल सभमेधसे होता है, जो फल गोमेधसे होता है



चेत्रे मासि मित्रे पथे नवम्या परमे दिने । पुनर्वसुर्नक्षत्र प्रोच्यस्थे ग्रहपंचके ॥ ४ ॥  
 भव्याङ्गे प्रकटो जातः श्रीगणेशो राजवशनि । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥  
 देवदुर्मुखो नेदुः शुक्लवृष्टिः शुभाशुभतनुः । राजवशनि वायानां संधा नेदुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥  
 ननुतुर्वारिणश्च जगुर्गतिं मनोरमम् । तदा सर्वं हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशु शुभम् ॥ ७ ॥  
 प्रपपृर्नृपज वालं चतुः सुदमवाप्नुयुः । न नाविमानभास्वता दिवि देवाः यवासवाः ॥ ८ ॥  
 मिलिता रासनं द्रष्टुं कौमल्याजगुरुद्वयम् । नखा रुद्रश्च सूर्यश्च देवेन्द्रादियुतः शुभाः ॥ ९ ॥  
 उन्सवान् विदधुः सर्वं तदा ध्यागमजन्मनि । एवमुन्माहवस्ये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥  
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तृण्डुविविधैः स्तवैः । प्रोचुस्तदा शुभाः सर्वे हर्षादिव रघूत्तमम् ॥ ११ ॥  
 अयं धन्या सयं देव मुक्ताश्वासुरजाद्वयात् । यन्निमित्तं त्वया देव सवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥  
 अस्माकं हर्षकालोऽयं नैवदव कृपानिधे । तस्मादयं मदा पुण्यः श्रेष्ठः काळो भविष्यति ॥ १३ ॥  
 त्वं चाप्यंगीकुरुष्व यं देवस्मै सुबहून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥  
 तुतोष निवरा तेषु देवेषु भगवान्हरिः ।

श्रीराम उवाच

संयकं प्रोक्तं मुगः सर्वे तन्त्रैलोकयोपकारकम् ॥ १५ ॥

मयद्भिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले मत्तमे । शृणुष्वं वचनं मेऽद्य यत्रर्षान्प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥  
 सर्वणमेव मामानां श्रष्टुं शाय भविष्यति । वैशाखांशकार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्मास गच्छ ॥ १७ ॥  
 माघमासादय चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृतं दत्तं दुर्लभं स्नानं विचित्रितम् ॥ १८ ॥  
 सर्वं कौटिमुप प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः । यच्छ्रद्धया समर्पेण यद्रोगेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥  
 यत्फलं सोमयागेन तत्तन्त्रे स्नानमात्रतः । सर्वग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता है । मुनो-आ २ । अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथको रानी कौमल्याके वदनेसे चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथीकी पुनर्वसु नक्षत्रमें जब कि पांच ग्रह केन स्थानमें बँडे थे, तब मछाल्लके समय अवधका दशरथके घरमें श्रीरामचन्द्रजी अवतरे । उस समय जगतनरमें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताआने इन्दुमयी बजायी और पृथ्वीवृष्टि की, राजाके महलोंमें आगअरण्य विविध प्रकारके बाले बजे ॥ ६ ॥ वैश्याय नाचने और गाने लगे । उस समय पृथ्वीमण्डलके इन्द्र अर्थात् उस वचनेको देखनेके लिए आये और उस देव वक्षकर नई प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोपर चढ़-चढ़कर इन्द्र आदि देवता भी एकत्र होकर कौसल्याके गमसे उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस समय ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा इबन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका उपानक्षत्रमें विविध उम्भव किये । इस तरह उत्साहके समय आकाशमें विद्यमान इयत्ता रामको प्रणाम करके ना । प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे । समय पाकर देवताओंने रामसे कहा— ॥ ७-११ ॥ हे देव ! अब हम लोग धन्य हैं । अब हम लोग राजाओंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इभीन्द्रिय आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! हे कृपानिधे ! यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वत्र प्रेमाना जायग ॥ १३ ॥ अब भी इस बातको अङ्गीकार करते हुए इस समयको बहुतसे वरदान दीजिए । उनकी ऐसी आज्ञा सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए और कहा— हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छा बात कहा है और तीनों स्तोत्रोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ ॥ १४-१६ ॥ यह मास सब भासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघमें भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कार्य करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विषय फल प्राप्त होगा जो फल सभमेघसे होता है, जो फल गोमेघसे होता है



कुटुम्बभोजं हस्मै सख्यार्थं निवेद्यताम् । लक्ष्मणस्त्री तु मन्माना तनुभो रामतन्वरी ॥३५॥  
 पुत्रान्वाप्तमदृष्टुः शौचं वृद्धो पुत्राद्यमुद्यती । स्वदापमहिताथैवुपायं कर्तुमुद्यती ॥३६॥  
 निदासारुख्ये पुर गन्वा देवती मोहनी शुभाम् । स्वयेश्वदेवतामम्बा प्रवरातीरवासिनीम् ॥३७॥  
 दृष्ट्वा देव्याम् तौ सेवां नित्यं तत्र प्रचक्रतुः । गते बहुविधे काले वादा या महालया ॥३८॥  
 प्रसन्ना त द्विजं भूत्वा प्राह तदावशानये । हे नृपति महाबुद्ध गच्छायोध्यापुरीं मतिः ॥३९॥  
 एव वै सख्युपाये रामतीर्थे महामये । चैत्रमासि वसन्तीं यदा स्थान्मर्मानगा रविः ॥४०॥  
 चैत्रस्नानं मायमेकं कुरु तत्र द्विजोत्तम । पानकमकलं तपक्त्वा पुत्र प्राप्स्यस्यस्यनु नमस् ॥४१॥  
 इति देव्या वचः श्रुत्वा द्विजोत्तमस्तदा । यथा मार्गे हृदि स्थाप्य योष्यन्तुयां पुत्रीं शुभाम् ॥४२॥  
 चित्ता परया व्याप्तः कथं भर्तुं हि शक्यते । मयाऽयोध्यापुरीं दूरमिताः कष्टं च ज्ञेयम् ॥४३॥  
 इति चित्तायुतो मार्गे कश्चित्तिष्टन्पदविम्बुलम् । मार्गमात्रं करे धृत्वा वृद्धैर पत्नीं दिजः ॥४४॥  
 एवं गोदावरीतीरं गत्वा स्नान्वा द्विजोत्तमः । राममूर्तिं पुरः स्थाप्य पूजयामास मत्तितः ॥४५॥  
 तावन्मम प्रसन्नोऽभूद्रामो देव्याः प्रसादतः । द्विजं प्राह गच्छेद्यो मो नृपति द्विजोत्तम ॥४६॥  
 माऽयोध्यां स्वमिनो गच्छ शृणु मवचनं शुभम् । इनः पूर्वं श्रुत्वा हि याजनद्वयसमितम् ॥४७॥  
 प्रतिष्ठानामिधं क्षेत्रं गोदाया उत्तरे तटे । तत्रास्ति रामतीर्थं हि मन्माना च मया कृतम् ॥४८॥  
 तत्रैव गच्छ विप्रेन्द्र स्नान्वा श्रीं हि मार्जया । चैत्रमासे वसन्तीं यदा स्थान्मर्मानगा रविः ॥४९॥  
 तदा कुरु विष्णुपणं पूजयित्वा च मा शुभम् । रापस्य पुत्रलाभो भविष्यति न संशयः ॥५०॥  
 हन्युक्त्वा रघुवास्तु तत्रैवांतरधायतः । पत्रं संग्राह्य रामः प्रसन्नोऽभूद्विजोत्तम हि ॥५१॥  
 तस्मान्स वै रामदत्तो नाम्ना सर्वत्र कीर्तते । तद्रामवचनद्विषः प्रतिष्ठानपुरं पत्नी ॥५२॥  
 मासमेकं च वै स्थित्वा चैत्रस्नानं चक्रे ह । पूर्वोदये समुत्थाय कुतशोचादिरत्निकयः ॥५३॥

लक्ष्मणस्त्री म., माता और पिता से यतः अराधना रामायन से ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ किन्तु वृद्धावस्था में वे  
 पुत्रका अभिषेक करके उठने अपना दाव मांग करके पुत्र उपाय करना प्रारम्भ किया ॥ ३५ ॥ इसका ज्ञान वे  
 प्रवरा की तीर पर रहनेवाली अपनी दृष्टिवा अम्बा मातुल के पास गयी ॥ ३६ ॥ उनका वचन करके उन्होंने बहुत  
 दिना तक देवता आराधना का कृ० दिना की देवता प्रसन्न होकर कहने लगी—हे महाबुद्धिमान् नृपति ! तुम  
 भर्तृत्व मयाप्यपुत्रो जाओ । क्योंकि महान्तः सरजू तलाक जन्म जब प्रसन्न कृतुके समय नृप मातराश्रित  
 भाव, तब एक महान् चैत्रपूजन करो । ऐसा करनेसे तुम्हारे सब पातक नष्ट हो भाग्य और तुम्हें पुत्रकी  
 प्राप्ति होगी ॥ ३७-४१ ॥ देवता यह बात सुनकर वे अयोध्यापुरीका भ्रमण करते हुए चले । उन्हें यह बात  
 चिता थी कि अयोध्यापुरी तो यहाँसे बहुत दूर है और मुझ अपना जीवन भी भारी हो रहा है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥  
 ऐसा सोचते हुए वे कमावठ आते, कभी गिर पड़ते और कभी अपनी स्त्रिका हाथ पकड़कर वे मेरे वृद्ध पिता  
 चलते थे ॥ ४४ ॥ इस तरह कितना प्रकार के मोक्षधर के सततक पड़ते । वहाँ उन्होंने स्नान किया और सामने  
 रामकी मूर्ति रखकर भक्तिपूर्वक पूजन करने लगे ॥ ४५ ॥ तबतक देवता आशावदसे रामचन्द्रजी प्रसन्न  
 होकर सामने भाग्य और कहने लगी—हे द्विजोत्तम नृपति ! अब तुम अयोध्या मात जाओ । यहाँसे केवल शान्त  
 योजन दूर गोदावरीक उत्तर तट पर प्रतिष्ठान नामके क्षेत्र है । वहाँ मेरे नामसे प्रसिद्ध रामतीर्थ है ।  
 मैं ही उसका स्थापना की है ॥ ४६-४८ ॥ तुम वहाँ जाओ और चैत्रमास में जब सूर्य भाग्य राशिपर  
 भाव, तब धार्मिक साथ स्नान करके मेरा विषय पूजन करो । ऐसा करनेसे तुम्हारे सब पातक नष्ट हो  
 भाग्य और तुम्हें पुत्रका प्राप्ति होगी । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्रजी  
 वहाँ ही अन्तर्धान हो गये । जिस गङ्गा नामक सरावरक तट पर राम प्रसन्न हुए थे, वह स्थान रामलोक  
 नामसे विख्यात हुआ । रामके कथनानुसार बह्मवदवता अपनी धार्मिक साथ उस प्रतिष्ठानतीर्थकी गयी

स्नात्वा तस्मिन् रामतीर्थे सरयुसगममन्विते । रामचन्द्रं स्वर्णगिरीं पूजयामास भक्तिः ॥५४॥  
 प्रदक्षिणाः स्वर्णगिरेश्वकरं नव प्रणम्य । नवपुष्पैश्च नैवेद्यैः पूजयामास राघवम् ॥५५॥  
 पद्मशुक्लतृतीयायां यावद्वैशाखसमयः । तृतीया गीतला गौरी स्नानं चक्रे च भार्यया ॥५६॥  
 एवं भार्यं व्रतं कृत्वा स द्विजस्तुष्टमानसः । प्रयत्नं प्रति मार्गेण ययौ लक्ष्म्या समन्वितः ॥५७॥  
 यावन्मार्गे द्विजोऽमञ्जलावदृष्टमिन्दुरैः । पिशाचैः सुतृपकारेणानुदार्य सभार्यया ॥५८॥  
 ययौ स्वनगरं रम्यं गोदानाद्विगतिमयम् । चैत्रस्नानप्रभावेण जलस्पर्शान्मुनस्त्वहम् ॥५९॥

तस्मान्मया ते कथितं वरं हि स्नानं सधौ ते सरयुजले वै ।

साकेतपुर्यां नरनामतीर्थे भुक्तिप्रदं मोक्षदमुत्तमं च ॥६०॥

विष्णुदास उवाच

कथं पिशाचयोन्यास्ते भुक्ता विप्रैश्च वै प्रभुः । कस्मात्पापाच्च तेषाम् पैशाची योनिरभाश्रिताः ॥६१॥  
 तत्सर्वं विस्तरेणैव श्रोतुमिच्छामि त्वमुवाच ।

श्रीवाग्देवास उवाच

मृषु शिष्यं प्रवक्ष्यामि रम्भानाम्नी वराऽप्यमः ॥६२॥

चैत्रे स्नात्वा वरायोध्यासरयुनिर्गले जले । मातृवस्त्रपुता चक्रुःस्थालंकारमण्डिता ॥६३॥  
 गृहीत्वा सरयुतीर्थं रत्नकांचननिर्मिते । पञ्चे गमेश्वरं सेतौ द्रुपुं मनेन सा जरात् ॥६४॥  
 ययावाकाशमार्गेण पिशाचा यत्र ते प्रभुः । तदाद्रवस्त्रचांचनपाण्डिदुभिः प्रोक्षिताश्च ते ॥६५॥  
 क्रूरस्वभावमुत्सृज्य चाश्वर्यं परमं ययुः । पूर्वजन्मानुस्मरणमभूत्तेषां तदा नृप ॥६६॥  
 विस्मयाविष्टचित्तास्ते तां दृष्ट्वाऽप्यरमं दिवि । बहुधा शार्ङ्गयाषासुस्तान्वा पश्यन् संतप्या ॥६७॥

॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वहाँ रहकर उन्होंने एक मास धर्म-तत्त्व वेद-स्नान किया । उनका यह निमेष था कि प्रतिदिन सुबहो-  
 दयमें पहले सोकर उठ जात और निरपकृत्यसे निबटकर सरयुसङ्गमपर विद्यमान तीर्थमें स्नान करते और  
 भक्तिपूर्वक स्वर्णगिरिपर रामचन्द्रजीको पूजा किया करते थे ॥ ५३, ५४ ॥ प्रतिदिन वे उस स्वर्णगिरिकी नी  
 चरिक्का करते और सो पुष्पों और विविध प्रकारके तैवेद्योंसे रामका पूजन करते थे । वह वत उनका  
 सबसक चरुता रहा, जबसक वैशाखके शुक्लपक्षका तृतीया नहीं आयी । तृतीयाके आनेपर उन्होंने ही तलापौरी  
 नामक स्नान किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस तरह एक मास तक व्रत करके प्रसन्नचित्तसे वे माहात्म्यदेवता अपनी  
 पत्नीके साथ कमलपुरको चले ॥ ५७ ॥ जाते-जाते रात्रिमें उनको तीन पिशाच मिले । वे तीनों बड़े भूषे थे  
 मेरे पिता-माताने उनका उद्धार किया और अपने नगरको बड़े । उसी चैत्रमासके प्रभातसे वे उनका पुन होकर  
 अम्भा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसीलिए मैंने चैत्रमासमें अष्टाध्यायक वसिष्ठाजीके भुक्ति-भुक्तिप्रद सरयुजलमें स्नानका  
 विधान बतलाया है ॥ ६० ॥ विष्णुदासने कहा—वे तीनों पिशाच कितने तन्दु उस पिशाचपात्रसे छूट और  
 किस पायसे वे पिशाचगोत्रमें पड़े थे । यह वृक्षान्त सा विस्तारपूर्वक मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ ।  
 श्रीवाग्देव कहने लगे—हे शिष्य ! मुनी, यह कथानक भी मैं कहना हूँ । रम्भा नामकी एक सुन्दरी अक्सरी थी  
 ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उसने चैत्रमासमें अयोध्याके सरयुजलमें स्नान किया । उसका कपड़े झींग गये और मुस्कान  
 उसके होठोंपर खेल रही थी और उसके अंगमें पड़े हुए विविध प्रकारके आभूषण अपनी घसाधारण गोदा  
 दिया रहे थे ॥ ६३ ॥ स्नानके अनन्तर उसने रत्न और कांचनसे बने हुए पात्रमें रामेश्वर शिवको स्नान करानेके  
 लिये सरयुजल परा और मोन होकर आकाशमार्गसे रामेश्वरको चल पड़ी । जाते-जाते वह उस स्थानपर  
 पहुँची, जहाँ वे तीनों पिशाच रहते थे । रम्भाको सोने वस्त्रसे पानीकी कई बूँदें गिरकर इन पिशाचोंपर  
 पड़ी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इससे उनका क्रूर स्वभाव छूट गया और उन्हें पूर्वजन्मकी सब बात याद आ गयी ॥ ६६ ॥  
 तदनन्तर वे तीनों विस्मित होकर बहुत तरहसे शर्दना करने लगे । रम्भाने संस्तवमें उनसे पूछा—॥ ६७ ॥

कस्माद्यपि पिशाचा हि ज्ञानास्तन्कल्पतां मम । उति तन्करकृन्संतापेरितान्ते प्रयस्तदा ॥ ६८ ॥  
 तेषु द्वौ वर्तमानौ हि कथयामासमुध ताम् । शृणु भविषि चार्ता हि पूर्वजन्मनि भूमुरात् ॥ ६९ ॥  
 विज्ज्ञायां ममुपनी श्रीविद्यादृग्दर्शनाः । उगाधध्वयन कर्तुं कविशायणाह्वयम् ॥ ७० ॥  
 शुभ्रपया तोषयिन्ता शुभ नवैव मस्थतुः । नासायणमुतां चाकृडाया चन्द्रनिभादनाम् ॥ ७१ ॥  
 दृष्ट्वा परम्परं मैत्र्यं इच्छन् प्रार्थय तां स्त्रियम् । आवास्यां च हि या भृक्ता तज्ज न गुरुगाचिरात् ॥ ७२ ॥  
 आवास्यां च ददौ शपथं तस्यै चाप्यशुभकृष्ण । मुक्तां चापि कुमारीय पिशाचवर्धं भविष्यति ॥ ७३ ॥  
 नतोऽस्माभिस्त्रिभिस्तं तु मुनिं नन्वा पुन पुनः । प्रापस्यानन्ततो लब्धमनन्तशृङ्खलं मनोभये ॥ ७४ ॥  
 चैत्रमासे नृसिंहाकारः कश्चिद्विद्वश्च कानने । ददति स्नानजं पूषय तदोद्गमे भविष्यति ॥ ७५ ॥  
 एवं ज्ञाता पिशाचा हि यस्य त्वद्वक्त्रविदूषिः । प्रोक्षिताः स्मोऽस्य नैर्ताः पूर्वजन्मस्मृतिः शुभा ॥ ७६ ॥  
 तन्नेपां वचनं श्रुत्वा ज्ञान्या शायस्य मोक्षणम् । सान्वायन्वा कर्णाय शीघ्रं मे नृहरिः स्त्रिया ॥ ७७ ॥  
 आगमिष्यति मा चितां कुरुतेति वसंगता । ययौ रामेश्वर शीघ्रं पूजायन्वा गता दिवम् ॥ ७८ ॥  
 चैत्रमासे सतिशक्ते मरे स नृहरिर्द्विजः । मार्यदा मदितो रष्टः पिशाचवर्धः पिता मम ॥ ७९ ॥  
 स्थित्वा दूरं च ते सर्वे तमचर्तुर्दार द्विजम् । नैजं वृत्तं सुमनसि हि शायस्यापि विमलणम् ॥ ८० ॥  
 तच्छ्रुत्वा नृहरिर्विप्रस्तान्प्रीडाच मुदा न्यत । मा मेनस्य पिशाचवशाद्यथा समुद्विजेत सः ॥ ८१ ॥  
 राक्षसो मोचितः पूर्व मोचयिष्याम्यहं तथा ।

पिशाच उवाच

कः शशुध कदा मुक्तो राक्षसः कः मरिस्तरम् ॥ ८२ ॥

कुम्भयोग इस पिशाचयोगीको नती प्राप्त हुए हो सः कहो । उस प्रकार रामाके हाथोंका निकल पाकर उन दोनोंमेंसे दो बीजे—हे भविषी । मुनी पुनर्जन्म हम दोनों विरता नाम्नी स्त्री द्वारा हर पक्षा नामक साहाय्यसे उत्पन्न हुए थे । अवस्थानुसार हम दोनों विद्या पढ़नेके लिए नारायण नामक एक गुरुके यहाँ गये । वहाँ उनको सेवा करते हुए रहने लग । गुरुजीकी एक सुन्दरी कन्या थी । उसकी मनोहारिणी मुष्कान थी और चन्द्रमा के समान मुख था । ६८-७१ । उस राक्षस हम दोनोंके समक्ष निवृत्ता कर ली और समय पाकर बहुत अनुनय विनय करके हम दोनोंके साथ भाग किया । बहुत दिनों बाद यह बात गुरुजीको ज्ञात हो गयी ॥ ७२ ॥ उन्होने क्रोधित होकर हम लता उस कन्याको साथ लेने हुए कहा कि हम कुमारके साथ तुम दोनों पिशाच हो जाओ । ७३ ॥ इसके बाद हम तीनोंने उन मुनीश्वरको बार-बार प्रणाम करके किसी तरह भापके अलका वचन पाया । माँ भी मुन ली ॥ ७४ ॥ उन्होंने कहा कि चैत्रमासमें कोई नरसिंह नामका साहाय्य इस वनसे मार्गगा और वह अपने नैवमनका पण्य तुम्हें प्रदान करेगा तब कुमार उद्धार होगा । ७५ ॥ इस तरह हमलोगोंका यह विश्व वधान मिली । अजहम अरके चम्पवित्तुस प्रोक्षण हो गये । इस कारण हमें पूर्वजन्मको सब वलें याद आ गयीं ॥ ७६ ॥ इस प्रकार उनको बात सुनकर रामान संकल्प हो कहा कि तुम लोग देव रहो । अब जो देही तुम्हें साहाय्य अवती राक्षस साथ इस वनसे भागवाले है ॥ ७७ ॥ तुमलोग किसी प्रकारको चिन्ता न करो । इतना कहकर रामा रामेश्वर चली गयी । वहाँ उसने पिशाचोंका पूजन किया और साक्षात् मार्गसे ही लोटकर चली गयी ॥ ७८ ॥ चैत्रमास वनतर नरसिंह अपनी भार्याके साथ उस वनमें पहुँच और उन पिशाचोंको देखा । ७९ ॥ वे लता पिशाच नृसिंहके पास न आकर थोड़े दूरपर खड़े हो गये और अपने पूर्वजन्मका कृपाए एवं आपसी मुक्ति पाकर उपाय कह मुनया ॥ ८० ॥ उनकी बात सुनकर मेरे पिताजीने कहा—तुम लोग धन्य हो नहीं । जिस प्रकार शम्भुनामक साहाय्यने उस राक्षसको पिशाचयोगी से मुक्त किया था उसी तरह मैं भी तुम लोगोंको इस योगीसे मुक्त कर दूँगा । उनकी बात कहकर पिशाचोंमेंसे एकने कहा कि राक्षस विप्र कौन वे और वह राक्षस कौन था ? यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक भाव हमें

कथयस्व द्विजश्रेष्ठ कथां कथा तु कौतुकान् ।

नृमिह उवाच

मृणुष्वं कथयिष्यामि यद्वृत्तं च पुमानम् ॥८३॥

शिवकांचीपुरीमध्ये कश्चिदेवः शुचित्रनः संभुजः। चिरं कालं मन्थी स च स्वभार्यया ॥८४॥  
स कस्मिंश्चिदने विपश्चकांशगिर्वातिके । वैरागिकमुखात्तत्रमाममाहात्म्यवर्तिनीम् ॥८५॥  
कथां धोतुं समायान्तस्तत्र भुज्वा महत्कथम् । अयोध्यायां हि चैत्रस्य स्नानान्कैवल्यदायकम् ॥८६॥  
ततो बहुगते काले सम्पन्नं तां कथां शुभाम् । ज्ञात्वा मयाग्नं चैत्रं स्वपुत्रभिर्मेनम्यदा ॥८७॥  
भार्यया सहितो विप्रः शनैर्मार्गेण वै यया । तां तां तां आहूया रम्यां यावदग्रे स गच्छति ॥८८॥  
राजबुद्धो हि भिल्लेन कर्कशाख्येन कानने । गृहीत्वा मन्थरं चापं धर्ययिन्वा च भूमुरम् ॥८९॥  
छेत्तुं कर्कशः क्रुरो वस्त्रेणकेन नं द्विजम् । सुमोक्ष नस्य पाथेयं गृहीत्वा सकलं शुभम् ॥९०॥  
द्विजोऽपि प्रार्थयामास कर्कशं च पुनः पुनः । वस्त्रादिकं गृहाण त्वं मन्थरपिष्टं ददस्व माम् ॥९१॥  
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मुक्त्वा गदग्नयधनम् । सर्वं ददस्व पाथेयं नानाविधमनुनमम् ॥९२॥  
तस्मिन्ददर्श स व्याधो दश रत्नाफलानि वै । अयकान्यनिशुक्लाणि तनभित्तेऽविचारयन् ॥९३॥  
एते फलैर्न मे कार्यं जानामि ब्राह्मणोत्तमम् । तर्हि दास्याम्यहं दानं तुभ्याकर्तं च सखिकम् ॥९४॥  
इति निश्चित्य स व्याधो दश रानि द्विजन्मने । गृहीत्वाऽमक्षयद्विप्रः प्राग्गमे भार्यया मथी ॥९५॥  
सद्रंभाफलशनेन कर्कशस्य तदा शुभा जाना बुद्धिः धणादेव सान्त्विकी क्रूरा गता ॥९६॥

एवं पिशाचाः सकलान्ततः परं भिन्नाय तस्मै तु शुभा मतिर्धभूत् ।

समागतं चात्र कुतः स पृष्टवान् विप्रः स वै प्राह वने च कर्कशम् ॥९७॥

शम्भु उवाच

काचः पुर्याः सपापानो गम्पतेऽयोध्यायां पुरीम् । चैत्रमासेऽवगाहार्थं सरयूनिर्मले जले ॥९८॥

बतलाइए । हे द्विजश्रेष्ठ हमपर इतना कथा कहिए । नृमिह कहने लगे—अच्छ मुनो । मे एक पुरातन कथा तुम लोगको सुनाऊंगा ॥ ८१-८३ ॥ शिवकांचीपुरीमें पवित्रप्रणवारी एक ब्राह्मण रहता था । उसका नाम शम्भु था । वह बहुत दिनों तक अपनी स्त्रीके साथ उस नगर में रहा । ८४ ॥ एक दिन वह ब्राह्मण किसी वनमें एकावर रामक शिवके समीप वैरागिकके मुखसे चैत्रमाम माहात्म्यकी कथा सुनने गया । वहाँ पहुँचकर उसने चैत्रमासमें अयोध्यास्नानका बड़ा फल सुना ॥ ८५ ॥ बहुत दिनों बाद उस कथाका स्मरण करके वह चैत्रमास लगनके पहले ही अयोध्या जानके लिए अपने घरसे निकल पड़ा । उसने अपने साथ अपनी स्त्रीकी भी ले लिया था । वह धीरे धीरे अयोध्याकी ओर चला । राहमें गगाजी पड़ी तो उन्हें पार किया । वहाँसे थोड़ी दूर भागे वनः ही था कि वनमें कर्कश नामका एक मोठे वनस्पति मिले हुए मिला । उसने ब्राह्मण-देवताका घमकाकर सब कुछ छीन लिया और केवल एक कपड़ा पहनाकर छाड़ दिया । वहाँ तक कि उसने इन लोगोंका पवित्र पाथेय भी ले लिया ॥ ८६-८७ ॥ तब ब्राह्मणने उसमें शोधना की कि घर कपड़े-वस्त्रें सब कुछ ले ली । लेकिन रास्तेमें खानकी वस्तुओंवाली वह पोटली वापस दे दी ॥ ८८ ॥ ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने वह पोटली खोली और देखा कि उसमें बहुतसी खान पानकी चीजें थीं ॥ ८९ ॥ उस व्याधने उसमें दस केलेके फल भी देखे । वे फल कच्चे और मूठे हुए थे । उन फलोंको देखकर उसने मनमें सोचा कि इन फलोंकी तो हमें कोई बयासमकला है नहीं, फिर हम क्यों न खा दें ॥ ९० ॥ ऐसा निश्चय करने उसने केले कापस दे दिये और उस सपत्नीक ब्राह्मणने चैत्रमासके प्राग्भमं वे कलक फल खाये ॥ ९१ ॥ उस रत्नाफलके दानसे कर्कश व्याधके हृदयमें शुभ बुद्धिवा प्रादुर्भाव हो गया जिससे उसकी क्रूरता गह हो गयी और सान्त्विकता आ गयी ॥ ९२ ॥ हे पिशाचा ! जब उस भालकी मति पवित्र हो गयी तो उसने

इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । किं लभ्यते हि स्नानेन तन्मे वद सविस्तरम् ॥१०९॥  
 पुनः प्राह स विप्रेन्द्रः कर्कशं मत्कृतः कलम् । स्नानेन मधुमासे हि गृध्रायः प्रसादति ॥११०॥  
 प्रसादात्सकलान्भोगान् लभते मानवा भुवि । अंते मोक्षोऽपि मोक्षि लभ्यते नात्र संशयः ॥१११॥  
 इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । मोक्षस्वरूपं कथय कृपां कृत्वा ममोपरि ॥११२॥  
 तत्तम्य वचनं श्रुत्वा पन्नी प्राह द्विजोत्तमः । पश्य पश्य वरराहे कौतुकं महद्द्रुनम् ॥११३॥  
 यद्रसाफलदानेन चैत्रे मासि वगानने । अयं कं भिक्षुजानीयः कं प्रयत्नयेदृशः शुभः ॥११४॥  
 मोक्षस्वरूपज्ञानार्थं तस्मादानं प्रशस्यते । इत्युक्त्वा तां शिष्यां विप्रः कर्कशं प्राह मादरम् ॥११५॥  
 साधु साधु महाव्याधः सम्यक्प्रयत्नः कुतस्त्वया । इदानीं प्राच्यते मोक्षस्वरूपं तन्निशामय ॥११६॥  
 स मोक्षस्त्वं हि जानीहि यतो नास्ति पुनर्भवः । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः ॥११७॥

तस्य प्रामिर्यथा स्यान्मे तन्मे वद द्विजोत्तम ।

मृग्यु कर्कशं तत्प्रामिर्यथा व्याचक्ष्वदामि ते । ११८॥

दाग्ध्रपृष्टादीनां प्रीतिं मुक्त्वा जनार्दनम् दिवरात्रं चिन्तयित्वा सर्वदेहस्य बालकम् ॥११९॥  
 आत्मानं बहुपुण्यार्घनिर्मलीकृत्य मानसम् तन्स्वरूपे यदा निष्ठेन्य मुक्तो नेत्रगे जवः ॥१२०॥  
 एवं वदति विप्रेन्द्रे व्याधो मुक्त्वा शर घनुः । शुभादीं जगन्नन्वा प्राहि प्रादोने वै वदन् ॥१२१॥  
 प्रेषाच्च द्विजवर्ये स व्याधो मामुद्वरेति च । तन्स्मिन्नगरे तत्र गच्छतो योदर्शनः ॥१२२॥  
 दुद्राव दीर्घशब्देन यत्रामंस्ते त्रयो वने । आर्यान् राघवं दृष्ट्वा चक्रुस्ते तु पश्यायनम् ॥१२३॥  
 तावज्जवेन तान् धर्तुं निकटं राक्षसो ययौ । स दृष्ट्वा निकटं शुभ्रमुर्विको मज्जन्निजाम् ॥१२४॥

उन ब्राह्मण देवतासे पूछा कि आप किस कार्यसे इधर आ पहुँचे ? ॥ ११७ ॥ रामभुने उत्तर दिया कि मैं कांची-पुरसे आया हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ । वहाँ चैत्रमासमें स्नान करूँगा ॥ ११८ ॥ इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने कहा कि चैत्रस्नानसे क्या लाभ होता है ? यह आप विस्तारपूर्वक हम बतलाएँ ॥ ११९ ॥ ब्राह्मण भक्तिपूर्वक कर्कशको चैत्रमासके स्नानका फल बतलाने लगा । उसने कहा कि चैत्रस्नानसे भगवान् रामचन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥ १२० ॥ संसारिक प्राणी उन्हींकी कृपासे सब प्रकारके सुखको भोगते हैं और अन्तमें उन्हें मोक्ष भी मिलता है । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १२१ ॥ इस तरह विप्रका बात सुनकर कर्कशने कहा कि कृपा करके आप हमें मोक्षका स्वरूप बतलाएँ ॥ १२२ ॥ इस प्रकार कर्कशका प्रश्न सुनकर ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे कहा—प्रिये ! देखो तो कितने आश्चर्यकी बात है । चैत्रमासमें केलके फलोंके वानसे यह मोक्ष कैसे-कैसे प्रश्न कर रहा है । इसकी बात अपनी स्त्रीसे कहकर ब्राह्मण प्रेमपूर्वक कर्कशसे कहने लगा— ॥ १२३-१२४ ॥ हे महाव्याध ! तुम्हारा प्रयत्न बहुत ठीक है । अब मैं तुम्हको मोक्षका स्वरूप बतला रहा हूँ । तुम सावधान मनसे सुनो । १२५ । मोक्ष उस कहते हैं, जिस पाकर प्राणीको फिर जन्म न लेना पड़े । इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने फिर कहा—उसकी शर्तित मुझे जिस तरह हो सके, वह उपाय बतलाएँ । रामभुने ब्राह्मणने कहा—हे कर्कश ! जिस तरह तुम्हें मोक्षकी शर्तित हो सकती है । वह उपाय मैं बतलाता हूँ सुनो ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ जो मनुष्य स्वा, पुत्र, गृह आदिका शौनिका पत्न्याद्यग करके रात-दिन सब प्राणियोंके संचालक भगवान् जनार्दनका ध्यान करता है और बहुतसे पुण्योंसे अपने चित्तको निर्मल करके उन्हींके स्वरूपमें ली लगाने रहता है । वही प्राणी मुक्त होता है और कोई नहीं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ ऐसा कहने-पर कर्कशने अपना अनुग्रह-वाण फेंक दिया और वाकं साथ रामभुके परापर गिर पड़ा और कहने लगा—हे ब्राह्मणदेवता ! हमारी भक्षा करो । उसी समय एक राक्षस दौड़ता हुआ उस स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ वे दोनों बैठे वार्तालाप कर रहे थे । राक्षसको आते देखकर वे तीनों भागे । राक्षस भी उन्हें पकड़नेके लिए

कुन्तोच्छ्रां प्राप्तेदधम्मिन् रामपुत्रं मया हृत्वे । भवितुं रामनाम्ना च यतोय मधुमसि वै ॥११५॥  
 तस्मैकाद्रक्षमथापि जना पूज्यतः सति । ततः सगलानो दूरं स्थित्वा संभु मयिजिह्वम् ॥११६॥  
 वामुद्गरं हृनिभ्रेष्ट धेगाद्रक्षमदेवतः । दृष्ट्वा ते गतोऽन्त्यध जना पूज्यन्तिर्मम ॥११७॥  
 इति तत्कृतक दृष्ट्वा रक्षम प्रद स टितः । कम्पाने राक्षस्य हि जना मयि वदाऽनुना ॥११८॥  
 राक्षसः प्राह चेमेव चतु इने निज वदा जनस्थाने पुन चाह विप्रः कर्मवशाद्भुवः ॥११९॥  
 प्रतिवहपरः शशी दुर्योग्यवर्मा मदा । जन्मिन्मित्रं चैव मद भार्या मदी शुभा ॥१२०॥  
 स्नानार्थं गमनीयं ना मामपृष्ट्वा गृहायती । मा मागे च मया दृष्टा धृत्वा मर्गे चत्ता शुभा ॥१२१॥  
 शोका कोबन्धया गेहे ममपृष्ट्वा कयास्वसि । सा प्राह भवर्माय तु रामतीर्थं मगम्यते ॥१२२॥  
 मधुमसोऽयमाहयं न मया दृष्टुं कृतम् । एवं कुर्यापि तदाक्षयनाडिना मा मया गन्ता ॥१२३॥  
 मेषिता स्वगृहं मर्मायतः कालानरे गते । मृताऽहं च तदा नतो यमलोके ययातुमेः ॥१२४॥  
 चित्रगुप्तोऽपि दृष्ट्वा मां विदुः कुर्यापि पुनः पुनः । यमगते म वै प्राह धर्मवर्मा रक्षमर्तः ॥१२५॥  
 यो यमराज शयोऽयं चैव नानिवायकः । बुद्ध्यादी राक्षसां योनिं निरयान् मोक्षमुदति ॥१२६॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा यमः प्रादान्गाम्निदा । यो घटा राक्षसो योनिदीयतां निजने वने ॥१२७॥  
 शारितेऽस्यै च मडाक्षयसर्गं च मया पुनः । दशमे गजयो योनिं त्यक्त्य चात्र गता यमपु ॥१२८॥  
 तदावप्य वने चहं ह्यनृपपरिपोडितः । पञ्चाशद्वत्सहस्राणि वर्षाण्यत्र स्थितमिहम् ॥१२९॥  
 किं मया कृतं पूर्वं कृतं यस्याद्वेदे तव । संगतिश्चाय वै जना मधुमसो मदिषदः ॥१३०॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा संभुर्वासा धुनो हृदि । श्रान्त्वा तन्मुहुने पूर्वं राक्षसाय न्यवेदयन् ॥१३१॥  
 मृणु राक्षस यन्पूने कृतं वै कृतं न्वया । नस्याआता संगतिर्मे वने निर्माणुं शुभा ॥१३२॥

चित्रगुप्तः तस्मात् पटुं च मया । उम 'मरुट' दस्तक' लभ्यते । रामपुत्र इत्यत्र रामपुत्र करक अथवा सुप्रीका बल-  
 तस गद्यस्य मुद्रम पोक । ११५ । रामनाम्ना रक्षमिन्वत् जलकं पटु-से उम राक्षसवा अपर पूवजन्मका स्मरण  
 हो माया । इसलिए कह दूर ही खड़ा होकर धाड़णम बहने लग-ह मुनिपत्र । इस पार राक्षसदेह-  
 से जाय मेरी रक्षा दलिए । मैं आजकी शरण हूँ । शरण नम्रा निवेकसे मुझे अपने पूवजन्मका स्मरण हो  
 जाया है ॥ १११-११७ । इस प्रकारका कौतुक दस्तक बाह्य । उस राक्षससे कह-पहले तुम हमें यह अन्-  
 कायो कि इस राक्षसदेहका किस तरह प्राप्त हुए । ११८॥ गजयम अपन पूवजन्मका हाल बनावत प्रारम्भ किया ।  
 उसने कहा-इसके पहले मे अपने समान पराजित एक कृत्य था ॥ ११९ । उम सत्य मे जैसे जैसे दान  
 सेता हुआ दुराचार और व्यसन मे जाना गेवन किया रहा था । एता समय मेरी स्त्री दिना मुझसे पूछे हो  
 चैवत्यान करनेके लिए रामतीर्थको चला गया । मेने उम रामर्तन देव ता पकड़ लिया और उससे कहा-  
 बरी रीति ! बिना हमसे पूछे तू कहीं जा गे ? भयर्तन होकर हमने उत्तर दिया कि मे चैवत्यान करनेके  
 लिए रामतीर्थ (अयोध्या) जा रहा हूँ ॥ १२० ॥ १२० । तैमा करने समेत कई कल्प नष्ट समता बुनीलिये चल पड़ी ।  
 ऐसी निष्कपट बात सुनकर श्री भैरव के बहुत भय और पर लीटा दिया । कुछ दिन बाद पेरी कृपु हुए  
 और उसके दूत एक प्रकार पुने लपलप मे गये ॥ १२१ ॥ १२१ । चित्रगुप्तने मुझे देखा ही बहुत चिचकाया और  
 धमकाकर समझावते मया-हे चित्रगुप्त ! इस पातल ऊमनी मर्त्य का चैवत्यानस राक्षस था । अतएव यह  
 पहले राक्षसी यानिको योग्यकर दण्ड मया का अधिकारी है ॥ १२२ ॥ १२२ । इस प्रकार चित्रगुप्तको बाह  
 सुनकर चर्मराजने अपने अनुचरोंको ७ या ८ कि एने दिना नितन वनम मजर्मे जोरि दे दो । उनके आज्ञा-  
 गुमार यमदूत मुझ इस वनमे दृष्ट कर लीत हय । तभीसे भूलेभ्यासे रहकर मेने पैगम हजार वर्ष बितये है  
 ॥ १२३-१२९ ॥ मुझ नही मागुद कि दिन कौन ना पुण्य किया था, त्रिवक् पञ्चदशे दन निर्जट वनम आज जैसे  
 सज्जनक रुद्रगतिपद १७०० प्रगत हुए ॥ १३० ॥ उसको बाह सुनकर लगेने क्षमभर अपने हृदयम उसके  
 पूर्व कृतका दण्ड किया और कहने लगा- १३१ ॥ हे राक्षस ! तुमने पूर्वजन्ममे जो कृत किया था, यह



एकादश्यां चैत्रशुक्ले कृत्यान्वश्चादभोजनम् । तावन्तो दक्षिणापुक्तः कट्या बन्धं त्वया घृतः ॥१३३॥  
 द्वादश्यां प्रातरुन्वाय गत्वा स्नानं त्वया कृतम् । पानतः स हि तां वृत्तो लिप्सुन्या गौतमीतटे ॥१३४॥  
 दक्षिणामहिनीं दृष्टः स केनापि द्विजेन वै । गृहीत्वा स हि द्वादश्यां न ज्ञातश्च त्वया पुनः ॥१३५॥  
 तां वृत्तदानाद्वरचैत्रमासं जाना बने मेऽयं हि गमनिस्ते ।

तस्मान्मर्धो राक्षस मानर्वह तावृत्तदानं करणीयमेवम् ॥१३६॥

इत्युक्त्वा राक्षसः शम्भुवैत्रमाहात्म्यमुत्तमम् । उवाचैवांश्वर्ययित्वा पुनः कर्कशं वाक्यमब्रवीत् ॥१३७॥  
 यो कर्कशं महाबुद्धे भृगुपुत्र वचनं मम । आगच्छ त्वं सर्वेभ्यः मयाऽयोध्यापुरीं प्रति ॥१३८॥  
 सरयूस्नानमात्रेण मयी पाषाद्विभोक्ष्यसे । इत्युक्त्वा कर्कशं शम्भुजनः प्रोवाच राक्षसम् ॥१३९॥  
 यो राक्षस त्वमत्रैव माममात्रं स्थितो भव । अपोऽध्यायां प्रवेक्ष्य राक्षसानां न विद्यते ॥१४०॥  
 अतोऽहं मधुमसे हि स्नान्वाऽनेन पथा पुनः । यदागच्छामि कीर्त्तित्वा चोद्धृष्ट्याम्पद् तदा ॥१४१॥  
 मा संदेहोऽस्तु ते त्वित्ते शपथं न ब्रूयाम्यहम् । यन्पापं ब्रूहन्त्यायास्तथा गायन्ति निर्दनाद् ॥१४२॥  
 नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । मद्यपि न च यन्पापं हेमम्नेयादिकं च यत् ॥१४३॥  
 नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । यन्पापं ब्रूहन्त्यायास्तथा चैत्रे क्षमज्जनम् ॥१४४॥  
 नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । इत्याह शपथं न हि राक्षसं दययन् द्विजः ॥१४५॥  
 यावन्वश्यति सर्वत्र तावज्जातं हि कीर्तकम् । व्याधाय चैत्रमासस्य माहात्म्यस्योपदेशतः ॥१४६॥  
 तत्रः फलिनो जाता परिणो दक्षयोजनम् । पूर्वः पूर्णचिन्मन्त्राश्च मौगधः परनो यवौ ॥१४७॥  
 नद्यस्तोप बहन्त्यश्च ननुतुर्बहिर्णिगा बने । तद्दृष्ट्वा कर्कशश्चापि चैत्रमाहात्म्यकीर्तनात् ॥१४८॥  
 दुर्वनं सुवर्नं जातं चैत्रर्ध्वपृथगमन्यत । तत्रस्ते हि त्रयस्तस्माद्वनान्मार्गेण निर्गताः ॥१४९॥

यै कहला रहा है उस के प्रभावसे हमारे तुमहारे साक्षात्कार हुआ है । एक बार तुमने चैत्रशुक्ल एकादश्यांको किसीके यहां भोजन किया, तावृत्त दक्षिणा ली और एक बरतम रखकर उसे तुमने अपनी नगरमें लगट लिया ॥१३३॥ द्वादश्यांको तुम सवरे उठे और गङ्गातट के काने चले गये । वहाँ कबरम लिपटी हुई दक्षिणा और तावृत्त बूझसे गौतमी नदीके तटपर गिर गया । उस किसी साहायने उठा लिया, किन्तु उसके विषयमें तुम्हें कुछ ख्याल नहीं था । १३ - १३५ चैत्रमासमें उस दक्षिणा और तावृत्तके दानसे ही आज इस निर्जन वनमें हमसे साक्षात्कार हुआ है । देखो, चैत्रमासके दानका किन्तु बड़ा माहात्म्य है । अतएव इस मासमें तावृत्त दान अवश्य करना चाहिए ॥ १३६ ॥ इस तरह उस राक्षसको चैत्रमासका माहात्म्य सुनाकर शम्भुने कर्कशसे कहा—हे महाबुद्धिमान् कर्कश । मरी बात मानो और आज ही मेरे साथ अपोऽध्यापुरीकी चलो तो ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ चैत्रमासमें सरयूस्नानम यसे तुम सब पापों मुक्त हो जाओगे ऐसा कर्कशसे कहकर शम्भुने उस राक्षससे कहा कि तुम सर्वत्र भ्रमर इना भ्रमणपर रहो । क्योंकि अयोध्यानगरमें राक्षसजनों नहीं जा सकते ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इस कारण जब मैं चैत्रस्नान करके उधरसे लौटूंगा और वहाँ आऊंगा, तब तुम्हारा उद्धार करूंगा ॥ १४१ ॥ तुम इसमें कुछ सन्देह मत करो । मैं ब्रह्म लाला हूँ कि साहाय्यहत्या करने तथा गौ एवं मुनियोंकी मित्रता करनेसे जो पातक होता है, वह पातक मुझ लगे बाद में तुम्हारा उद्धार किये बिना अऊँ । मरु पीने और सुवर्ण पुराणमें जो पातक दाना है यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना आऊँ तो मुझे वे पातक लगे जो पाप ब्रूहन्त्या तथा चैत्रमासमें स्नान न करणसे लगता है वह मुझे लगे । यदि बिना तुम्हारा उद्धार किये बिना आऊँ । इस तरह विविध प्रकारके शपथें लाकर शम्भु उस बहाराक्षसका आश्वासन दिया । इसके बाद जब व्याघ्रन चारों ओर दृष्टि डाल कर देखा तो चैत्रस्नानका माहात्म्य सुननेके कारण उस वनके दस भोजन तक उसे सब वृक्ष फल मूलसे भर दियाया किये और सुगन्धित वायु चलने लग ॥ १४२-१४७ ॥ उस वनकी सब नदियाँ घनघोर निनाद करना हुआ जल बहने लगा और मयूरमण्डल

क्षुभैः क्षुभैरयोऽप्यादः पृथक्पृथक्स्थितम्भर्त्ताम् न चच्छब्दो मत्तान् ज्ञानं निहमात्मसम्भवः ॥१५०॥  
 धावन्त्यग्रे तु मार्गस्यः पृष्ठे धावन्त्यग्रे केयस्य । एवं तौ गच्छन्ति नित्यं प्रार्थयन् कन्दर्पकामिनी ॥१५१॥  
 मार्गरोधकम् दृष्ट्वा तौ दृष्ट्वा शशुरग्र्यान् । पश्य कर्कशं विद्वान् न चेत्स्नानं पदं पदं ॥१५२॥  
 सम्भवतीति वै सुदृष्ट्वा चैत्रस्नानं न लवयेत् । कश्यपं पिपादे रत्नित्वा गतायां रामाश्रितम् ॥१५३॥  
 चैत्रस्नाने महादाने विद्वानि संभवन्ति हि । एवं वदन्ति विप्रेन्द्रे नो दृष्टो करेभिर्हका ॥१५४॥  
 चैत्ररामश्रवान् पूर्वजन्मस्मृत्वाऽतिविस्मिता भूत्वा वै त्राहिवाद्यानि कृत्वा दार्षे महामयम् ॥१५५॥  
 शरणं द्विजवर्याय जग्मतुः शशुरग्र्येण मर्त्त्याय शशुरग्र्याभ्यां हि पृष्ट्वा तु तत्कृत्यान्वितः ॥१५६॥  
 क्षिप्रं दृष्ट्वातिर्हि प्रामा नृत्कृत्पतां मम इति विप्रवचः श्रुत्वा केयस्य वाक्यमत्रगीतम् ॥१५७॥  
 सेती रामेश्वरक्षेत्रे पूर्वजन्मन्यहं द्विजः । निदकः सर्ववशाणां पावण्डकन्दकनगरः ॥१५८॥  
 कदाचिर्ज्येष्ठमासे तु तत्र श्रीरामपंशके । त्वयै जनममूढं च श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥१५९॥  
 पौराणिकेन कथिता चैवपादान्मण्डनिकायम् । कृतवान् निदनं चाहं चारु चारु पुनः पुनः ॥१६०॥  
 तन्मन्त्रितं निदनं च कश्चिद्विरम्यन् प्रियतमः शूत्राव मरुतं दृष्ट्वा तत्र शम्भोऽप्यहं तदा ॥१६१॥  
 कुरा जातिं त्वं गच्छ यदा चैत्रशुक्लतीर्थेनम् । भवेत्पुनः महामयं शापशान्तिस्तदा न च ॥१६२॥  
 एवं प्रोक्तं मया सर्वं पूर्वजन्मनि शृणुतम् । तेन शापेन ज्ञातोऽस्मि कथं भवकारकः ॥१६३॥  
 चैत्ररामश्रवाज्जाता पूर्वजन्मनि तु नमः । इदानीं रक्ष मां विप्र त्वं चतुर्भिर्हृदयैः ॥

इति सिंहस्य वृत्तं तु शापवचनं गतं द्विजः ॥१६४॥

कस्मिन्च मानसं गतोऽस्मि दृष्ट्वा तौ च दम्बाय महाप्रमथान् ।

स चापि मानसवरः समस्तं वृत्तं निजं चाकथयन् च जाणयम् ॥१६५॥

नाचते लगी । वैष्णवार्थिक ज्ञानमयं माहात्म्यम वनका यह मुसमा दलकर ककशांसे भा चैत्रमासका सब मागोर खेड  
 माग । उदाहर वे ताना उस वने मागोर अ ॥१५०॥ १५१ । वे कन्दर्पलीकी शाभा देखते  
 हुए चले आ रहे थे । तदनक उन्होंने सिंह और हाथका महान् गजन सुना ॥१५०॥ आग भाव हाथी माग ज  
 रहा था और उसे पश्य मैं हृदय दया जाता था । लगे हुए वे शरीर उमा मागोर भा पहुँच, जहाँसे वे तानो  
 मयाप्या जा रहे थे ॥१५१॥ उन दृष्ट्वा रास्त्रा शक्य दलकर शम्भु ककशांसे कहा—दस्ता ककश ! चैत्रस्नान  
 करनेवालेके पद-पदपर विष्णु आति है । किन्तु लगीका चाहिए कि विष्णु-वाचात्रास हरकर पड़े न हट । काशी-  
 वाससे, पुत्र-पुत्राक विवाहसे, गोनापाठसे रामका कल्याण करनेसे चैत्रस्नानसे और कुश आदि महानाम बड़े-बड़े  
 विष्णु आया करते हैं । शम्भुगक उस ककशाका सुनकर उस लानो दुष्टी (ह या और सिंह) का अपने पूर्वजन्मका  
 स्मरण हो आया । जिसमें मरी रहण करो-मरी रक्षा करो इस तरह बहुत हुए वे चित्तलान लग ॥१५२-१५५॥  
 वे उस सम्भुनामक काष्ठधर्मी सरणमें गए । शम्भु भा उपपर दयानु होकर उनसे पूछने लगे कि तुम लोगोको  
 यह दुष्टमानि क्यों पिन्ने ? यह कुतान्न हम सुनाओ । इस तरह विप्रका प्रथम सुनकर सिंहने कहा—  
 ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ इसके पूर्ववाले जन्ममें मैं रामेश्वरक्षेत्रका निवासी एक ब्राह्मण था । मैं सब धर्मोका  
 निन्दक था और पाषण्डमें भग्न आने किया करता था ॥ १५८ ॥ एक बार चैत्रके महानेमें श्रीरामतीर्थमें एक  
 ब्राह्मणक मुझसे पूछा चैत्रमासका माहात्म्य सुन लिया और उसका भरपूर निन्दा की । मेरी उन निन्दाकी बातोंको  
 पाप ही बँट हुआ किसी तपस्वी ब्राह्मणने सुन लिया और उसने उसा समय मुझे बाप देने हुए कहा—तूने  
 चैत्रमासको निन्दा की है । इसलिये तू किसी कृत्तारमें जाकर जन्म ले । जब कि एक वनमें तू किसी  
 ब्राह्मणक मुखसे चैत्रमासका माहात्म्य सुनगा, उस समय तेरे मापकी कान्ति होगी ॥ १५९-१६२ ॥ हे विप्र ।  
 इस तरह मैंने आपको अपने पूर्वजन्मका ज्ञान कह सुनाया । उसाके आपसे मैं महाप्रयदाधिनो इस सिंहकी  
 शोचनेमें आ पड़ा हूँ ॥ १६३ ॥ आज आपको मुझसे चैत्रमासमें रामनाम सुननेसे मुझ मरे पूर्वजन्मकी आले  
 स्मरण हो गयी । हे विप्र । अब मुझे इस सिंहवाणिस बचाइए ॥ १६४ ॥ इस प्रकार सिंहको बच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पूर्वजन्तं मया कृतम् । रामनाथपुरे चाहं कावेर्या उत्तरे तटे ॥१६६॥  
 विप्रः परमदुर्जनः सर्वशास्त्रपगह्मण्यः । लक्ष्मीभरमदाकृतः पण्यस्त्राभोगकारकः ॥१६७॥  
 एकदा सुहृदा चाह भोजनार्थं निमग्नितः । आद्याहे मधुमासे हि शुक्ले श्रीनरर्मादिने ॥१६८॥  
 मया भुक्तं सुहृद्गोहे नवम्यां द्विजमचम । तेन शपेन जलोपस्थि करिजानी न मंशयः ॥१६९॥  
 सर्वदा प्रतिमासेऽपि नवम्यां न हि भोजनम् । कार्यं विशेषतो रामनवम्यां निदिनं च तन् ॥१७०॥  
 इदानीं न हि जानामि केन पुण्येन तेऽत्र वै । संगतिश्च वने ज्ञाना सर्वेषां परमानिहन् ॥१७१॥  
 इति तस्य वचः श्रुत्वा शशुष्यन्नेऽविचारयत् । ज्ञत्वा मानसपुण्यं नु प्रोवान् करिणं द्विजः ॥१७२॥  
 शृणु मानस वक्ष्यामि यत्पुण्यं न त्वया कृतम् । पूर्वजन्मनि तन्मयं येन मे मगतिर्नि ॥१७३॥  
 जाता त्वामुद्दिष्यामि मा चित्तां कुरु सर्वथा । रामनाथपुरे रम्ये कावेरीतटशोभिने ॥१७४॥  
 रामायणकथा चैव धृत्वा श्रीनरर्मादिने । रत्ननीये त्वया स्नानं दृष्ट्वा रामेश्वरः शिवः ॥१७५॥  
 तेन पुण्येन ते जाता मगतिर्मम कानन । इदानीं शृणु मिह न्य गृणोतु च कवी महान् ॥१७६॥  
 साकेते मधुमासे हि स्नान्वाऽनेन यथा पुनः । यदा गच्छामि तां कांचीं युवामुद्धारयाम्यहम् ॥१७७॥  
 मा सर्वहोऽत्र कर्तव्यः क्षपथैः प्रजर्षाम्यहम् । मन्त्रोपायं युवाम्भ्यां हि प्रोच्यन्ते क्षपथा मया ॥१७८॥  
 पार्श्वीगमनात्पथ तथा मित्रवधादिकम् । पुरां नोद्धृत्य गच्छामि तदि तन्मयि लिष्टु ॥१७९॥  
 अक्षयवह्णान्पार्श्व यत्स्मृतं माहनिदनान् । पुरां नोद्धृत्य गच्छामि तदि तन्मयि लिष्टु ॥१८०॥  
 हस्तुक्त्वा द्विजवर्यः न स्त्रिया भिल्लेन सपुनः । कार्तिहो वने स्थाप्य गच्छन्मार्गं शुनैः शुनैः ॥१८१॥

सुनकर बाह्यणने हाथीने कहा कि तूम किस पापसे इस दुर्घटानिमे आये हो ? सब हाथीन अपने पूर्वजन्मका हाल सुनात हुए कहा-हे विप्र ! मैं भी अपने पूर्वजन्मका कृतान्त सुगता हूँ, गुनिण । उस जन्ममे मैं कावरी नदीके उत्तरी तटपर रामनाथपुर नामक नगरमे बड़ा दुख्तारी, सब हाथीमे पराटपुत्र, पलके मदसे भतवाला और बेध्याम्यत बाह्यण था । एक बार चैत्रमासी नक्षत्राका मेर किसी मित्रन आदम्य भोजन करनक लिए मुझे निमन्त्रण दिया ॥१६४-१६५॥ तबनुसार ह द्विजश्रेष्ठ ! नक्षत्राक दिन मेन विप्रने यही भोजन किया । उनी पापसे इस हाथीकी दानिम खा पडा हूँ । ॥१६६॥ क्योंकि शास्त्राका यह विधान है कि प्रत्येक मासकी नवमाकी किसी के यहाँ भोजन न कर । यदि ऐसा न हो सक तो चैत्रशुक्ल रामनवम की तो अवश्य इस बातपर ध्यान दे ॥ १७० ॥ मैं नहीं जानता कि किस पुण्यने इस समय सब प्रकारके वनमाको हरनेवाला बाष्पा ससंन प्राप्त हुआ ॥ १७१ ॥ उसका यह बात सुनकर बाष्पन सपनामे अपने मनमे ध्यान किया और उसके पुण्यको जानकर कहन लगा-हे मातंग ! सुनो, तुमन जो पुण्य किया है सो मैं तुम्ह बतलाता हूँ । उसीक प्रभावसे आज हमस पट हुई है ॥ १७२ ॥ ॥ १७३ ॥ अब तुम पक्षियों मत, मैं तुम्हारा हर तरहसे उद्धार करूँगा । उस जन्ममे तुमने रमणीक कावरीके तटपर स्थित रामनाथपुरमे श्रीरामनवमीकी रामकी कथा सुनी थी । उस दिन तुमन रामनवमे स्नान और रामचर चित्रका दर्शन भी किया था ॥ १७४ । १७५ ॥ उना पुण्यसे आज इस वनमे हमसे पट हुई है । अब हे मातंग और सिंह ! सरो बात सुनो मैं इस समय चैत्रमासका स्नान करनक लिए मयाधा जा रहा हूँ । स्नान करके जब मैं कांचीकी ओर लौटूँगा, तब यहाँ आकर तुम दानोका उद्धार करूँगा । ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ मागे बातपर किसी प्रकारका संदेह मत करना । तुम्हारे विश्वासके लिए मैं शपथ खाता हूँ, सुनो ॥ १७८ ॥ यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ तो परस्वागमन करन और मित्रको मानसे जा पालक लगता है, मैं उस पालकका मागी बनूँ ॥ १७९ ॥ आ पाप बाह्यणका धन हड़पने और माताका निन्दा करनेमे हाता है, उन सब पापोंका भागी बनूँ, यदि तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ ॥ १८० ॥ इतना कहकर उस श्रेष्ठ बाह्यणने अपनी स्त्री तथा उस भोलका साथ लिया और वहाँसे जयंभ्याके लिए पल पड़ा । उसने हाथी तथा सिंहको उस वनमे ही छोड़ दिया । १८१ ॥

ददर्शन्यपथा यान्तं श्रेष्ठं कार्पटिकोत्तमम् । बहन्तं रत्नलिङ्गाय श्रेष्ठं भागीरथीजलम् ॥ १८२ ॥  
शम्भुः पप्रच्छ तं नन्वा नम्रं कार्पटिकोत्तमम् । कुतः समागतं त्रिप्र गम्यते काधुना वर ॥ १८३ ॥

कार्पटिक उवाच

प्रयागाद्रागतं विद्धि मां त्वं भूमुरयत्तम । मधुमासेऽवगाहार्थमयोध्यां प्रति गम्यते ॥ १८४ ॥  
इदानीं त्वं निजं वृत्तं वद ब्राह्मणयत्तम । कुतः समागतं त्रिप्र गम्यते काधुना वर ॥ १८५ ॥  
इति तद्वचनं श्रुत्वा शम्भुः शोभाय तं तदा । शिवकाव्याः मयायत्तमयोध्यां प्रातः गम्यते ॥ १८६ ॥  
चैत्रमासेऽवगाहार्थं गम्यते कथितं मया । इति शम्भुवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोत्तमः ॥ १८७ ॥  
पप्रच्छ द्विजवर्याय कौतुकाविष्टमानसः । शिवकाव्यां शम्भुना कथिद्विप्रोऽग्नि भो द्विज ॥ १८८ ॥  
तस्यैव वचनं श्रुत्वा पुनः शम्भुस्तमत्रयात् । बहवः शम्भुनामाता वरन्ते द्विज तत्र हि ॥ १८९ ॥  
कस्त्वया पृच्छयते तस्य वद गोत्रापनामना । इति त्रिप्रवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोऽब्रवीत् ॥ १९० ॥

भारद्वाजकुलान्पन्न

चक्रगाधूपनामकम्

महादेवमुतं सर्ववेदशास्त्रविशारदम् । प्र क्षणं शम्भुनामानं ज्ञानीपे त्वं न वा वद ॥ १९१ ॥

एवं महाकार्पटिकेन सर्वं गोत्रापनायादिकमादरेण ।

प्रोक्तं यथा तत्र म भूमुरोऽपि ज्ञान्वा निजं मयमथावदत्तम् ॥ १९२ ॥

भो भो कार्पटिकश्रेष्ठ किमर्थं त्वं हि पृच्छसि तद्वदस्य सविस्तारं मा शंकां कुरु चात्र हि । ॥ १९३ ॥

कार्पटिक उवाच

शृणु त्रिप्र प्रवक्ष्यामि यदर्थं पृच्छयसे मया । यदाऽहं गतवान् गंगायागरं द्रष्टुमादरात् ॥ १९४ ॥  
सीताकुण्डमसीपे हि देशे कैरटनामके । दृष्टोऽहं मार्गमध्वे च पिशाचिनोऽग्ररूपिणा ॥ १९५ ॥  
मां हन्तुं निकटं प्राप्तं तं दृष्ट्वाऽहं तदा द्विज । द्वांगामकीर्तनं दीर्घं कृतवान् भयकम्पितः ॥ १९६ ॥  
कीर्तनाद्रामचन्द्रस्य म पिशाचः पलायनम् । मनः कृत्वा दूरदेशे स्थित्वा शुभाय कीर्तनम् ॥ १९७ ॥

रास्तेमें शम्भुने एक कार्पटिकी विप्रकी देखा, जो रामचन्द्र शिवक लिए गंगाजा का उत्तम जल लिये जा रहा था ॥ १८२ ॥ उस दानकर शम्भुने पूछा - हे विप्र ! इस समय तुम कहाँसे आ रहे हो और कहीं जाओगे ? ॥ १८३ ॥ उसने उत्तर दिया - हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस समय मैं प्रयागमें आ रहा हूँ और चैत्रमास करनेके लिए यत्रोत्था जा रहा हूँ ॥ १८४ ॥ अब आप अपना वृत्तान्त बतलाने शुरू करिए कि कहाँसे आये है और कहाँ जायेंगे ? ॥ १८५ ॥ ब्राह्मणका प्रश्न सुनकर शम्भुने कहा कि मैं शिवकाव्य से आता है और यत्रोत्था जा रहा हूँ ॥ १८६ ॥ हय भी चैत्रमास करना है । इस प्रकार शम्भुकी बात सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हे द्विज ! शिवकाव्याम कोई शम्भु नामका ब्राह्मण रहता है ? ॥ १८७ ॥ ॥ १८८ ॥ ब्राह्मणकी बातके उत्तरमें शम्भुने कहा कि शिवकाव्याम बहुतसे शम्भु नामक ब्राह्मण हैं ॥ १८९ ॥ आप किस शम्भुकी पूछते हैं ? जितने पूछने हों, उनका गोत्र और उपनाम बतलाइए । शम्भुका बात सुनकर उस ब्राह्मणने कहा कि बिल्हे में पूछता हूँ, वे भारद्वाज कुलमें उत्पन्न हुए हैं और चक्रगाध उनका उपनाम है । वे महादेवके पुत्र हैं । वे मन्त्रवेदों और शास्त्रोंकी जानते हैं ; उन शम्भुकी आप जानते हैं या नहीं, मैं बतलाइए ॥ १९० ॥ ॥ १९१ ॥ इस तरह ब्राह्मणके मुखसे अपना गोत्र और उपनाम बारी सुनकर शम्भुने कहा - हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम शम्भुकी क्यों पूछ रहे हो, मुझे विस्तारपूर्वक बतलाओ । इसमें किसी प्रकारका सन्देह मत करो ॥ १९२ ॥ ॥ १९३ ॥ कार्पटिकने कहा - हे विप्र ! जिसलिए मैं उन्हें पूछ रहा हूँ सो बतलाना है । जब कि मैं गंगासागरका दर्शन करने गया था तो सीताकुण्डके समीप कैरट देशमें मुझे एक उग्ररूपधारी पिशाचने देख लिया ॥ १९४ ॥ ॥ १९५ ॥ वह रास्तेके लिये बिल्कुल मेरे पास आ पहुँचा । मैं उसे देखकर जोर-जोरसे रामनामकी कीर्तन करने और अपने कर्पिते लगा ॥ १९६ ॥ रामनामके कीर्तनसे वह भाग खड़ा हुआ और मेरे पाससे थोड़ी दूरपर रुककर कीर्तन

तस्माज्जाता पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य शुभावहा । ब्राहि आहीति मां प्राह मया पृष्टः सर्वै पुनः ॥ १९८ ॥  
 कस्मान्पिशाचदेहं न्व जानस्तद्वद सन्ध्याम् । इति मे वचनं श्रुत्वा पिशाचः प्राह मां पुनः ॥ १९९ ॥  
 कार्वापूर्या द्विजधाटं दुण्डिनामा पुरा स्थितः । नास्नदानं मया पूर्वं कृतं स्वल्पमपि कर्त्तव्यम् ॥ २०० ॥  
 तस्मान्पिशाचदेहं प्रापं कर्पटि लोचनम् । इति तस्य वचः श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः सर्वै मया ॥ २०१ ॥  
 कथं पिशाचयान्याम्लुते मुक्तिश्च भविष्यति । ननु पुनः स मां प्राह यदि मे वचनं श्रुतिः ॥ २०२ ॥  
 चैत्रे दशौ ममोद्देशादन्नदानं कर्त्तव्यम् । भविष्यति ममोद्देशात्स्वल्पान्नात्र सशयः ॥ २०३ ॥  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः सर्वै मया । वर्तते क सुतस्ते हि किंतामा वद मां प्रति ॥ २०४ ॥  
 तस्मत्तेन यथा प्रोक्तं भागद्वज्जाय चिह्नवत् । तत्प्रोक्तं च मया सर्वै निकटे तव भो द्विज ॥ २०५ ॥  
 पिशाचं हि पुनश्चाहमुक्तवान् तद्वदाम्यहम् । रामेशार्थं भो पिशाचं नीयते जाह्नवीजलम् ॥ २०६ ॥  
 मया काष्ठमध्ये हि यदा गच्छामि दक्षिणाम् । निर्गं कस्मिन् कार्वा हि प्रवेश्यमि यदा तदा ॥ २०७ ॥  
 तत्र पुत्राय वृत्तं हि कथयिष्याम्यहं तव । इति तद्वचनं श्रुत्वा यन्तेन परमं गतः ॥ २०८ ॥  
 पिशाचः प्राह मां विप्र स्तुत्वा नन्वा पुनः पुनः । अवश्यमेव वक्तव्यं मे वृत्तं राम सुतव ॥ २०९ ॥  
 यथा दृष्टं त्वया पांच यथोक्तं च मया तव । अन्यत्तु कथयतां मस्मै मम पुत्राय सादरम् ॥ २१० ॥  
 मयुर्दशोऽन्नदानस्य मादमा भूषते दिनि । शतम्भं हि ममोद्देशेनान्नदानं सर्वौ कुरु ॥ २११ ॥  
 एवमुक्त्वा स पिशाचः प्रपद्य मां चकार ह । न अपि स्मरणं कृत्वा मम पुत्राय तद् द्विज ॥ २१२ ॥  
 भविष्यति कृथा सर्वथापि नव मदासने । इति तद्वचनं श्रुत्वा सान्त्वयित्वा च तं पुनः ॥ २१३ ॥  
 निर्गतोऽस्मि सर्वौ स्नानुसयोऽपरां रां दुमादरात् । कृत्वाऽप्योऽप्यपुगेमध्ये चैव स्नानं महाफलम् ॥ २१४ ॥  
 यदा गच्छामि तां कार्वां तदा तस्मै वदाम्यहम् । अतएव मया प्रहृष्टवत् शुर्द्धिजातयः ॥ २१५ ॥

सुतने लया ॥ १९३ । उस कान्तके श्रवणमे उसने अपने पूर्वजन्मका स्मरण का मया कोन आशक साथ  
 'ब्राहि नाहि कहकर निकल आया । मेरा हमसे पूछा कि तुम क्या इस पिशाचवशीरको प्राप्त हुए हो, सो मुझे  
 सीधे बताया । मेरी बात सुनकर पिशाचन कहा— ॥ १९८ ॥ १९९ । यदि । पिशाचने कार्वापूर्या में  
 दुण्डिनामका किला था । उस जन्ममें मैं वही था । मेरे अन्नदान नहीं किया था ॥ २०० ॥ इसी कारण इस  
 पिशाचदेहको प्राप्त हुआ हूँ । उसकी बात सुनकर मैंने कहा— जिस आशने में पिशाचय जिसे मुक्त होना है ?  
 यह सुनकर उसने कहा कि यदि चैत्रकी अमावस्या की मेरी पुत्र मेरे लिए अन्नदान करे तो तत्क्षण मेरा उद्धार  
 हो जाय इसमें कोई शक्य नहीं है । ॥ २०१ ॥ २०२ । २०३ । इस प्रकार उसका बात सुनकर मैंने पूछा कि  
 तुम्हारा यह लक्ष्य कहाँ रक्ता है ? इस बात को सुनकर मैंने कहा— ॥ २०४ ॥ २०५ । इस बात को सुनकर मैंने  
 कहा, जो अमा मेरे आशने कहा है । ॥ २०६ ॥ फिर मैंने कहा— हे पिशाच ! मैं हम कान्तके गंगाजल लिये  
 रामेश्वर शिवेश्वर चलाया जा रहा हूँ । तब दिनों बाद जब मैं दक्षिण दिशाको जाऊँ तो कार्वापूर में जाऊँगी  
 अवश्य जाऊँगी । वहाँ पाँचवार तुम्हें न कहना । मेरी शक्ति का आवाज नही सुनूँगी । मेरी बात सुनकर  
 वह बहुत प्रसन्न हुआ और मुझे बार-बार प्रणाम करके उसने कहा— हे विप्र ! मेरा कृतज्ञ मेरे पुत्रसे तब तक  
 कहोगा ॥ २०८ ॥ २०९ । आपने मने जो अन्नदान कहा है । तब मैंने आपका अन्नदान है और इसके  
 अतिरिक्त जो जो उचित समझिए, वह सब मैंने कर दिया है । ॥ २१० ॥ मुक्तता है कि स्वल्पस्वल्प  
 अन्नदान करनेका बड़ा महाफल है । इसीलिए पुनः चैत्रमास में । ॥ २११ ॥ अन्नदान करी । ऐसा कहकर  
 उसने मुझे शपथ दिलायी कि यदि आप अन्नदान करके मेरे सम्बन्धकी मेरी पुत्रसे नहीं कहेंगे तो है महाफल  
 आपका साथ व्यर्थ हो जायगा । इसकी बात सुनकर मैंने बार-बार उसे आश्वस्त की और चैत्रमास  
 करनेके निमित्त अयोध्या चल पड़ा । महाफलका चैत्रमासका स्नान करनेके अनन्तर जब मैं कार्वा जाऊँगा  
 तो उसके पुत्रका पिशाचका संदेश मुझे दूँगा । इसीलिए मैंने आपसे सम्बन्धके विषयमें पूछा है ।

शोकं गोत्रादिभिरिह वर्णते चेददस्व माम् । इति शंसुः पितुर्वृत्तं तावत् सृष्टं मज्जता ॥२१६॥  
आशामितश्च भिन्नेन रिपुः प्रोवाच नं पुनः । भो भोः कर्षटिकभेष्ट न मनोऽस्मि नरोऽधमः ॥२१७॥  
यस्त्वया वृष्टयते शत्रुः नोऽहं विदि न मशयः । मया पुत्रेण न कृतं स्वशितुर्मक्षिदायकम् ॥२१८॥  
जमदानादिकं कथं धिग्भिर्भूमेऽयं कृत्वा भवः । इदानीं तव वाक्येन दाक्षयाम्यस्य मया रितुः ॥२१९॥

एवं शम्भुः कर्षटिकाय चोक्त्वाऽपोध्या रम्यां दूरीं वै ददर्श ।

ते प्रणेमुन्ता दपनीषां धमिह्मन्तः शंसुश्चावदन्कर्मणं मः ॥२२०॥

शंभुश्चाव

पश्य पश्य महाभिल्ल महापोध्यापुर्नं शुभाम् । यस्यास्मात् समयावा दृश्यते कोटिहो जनाः ॥२२१॥  
जनीधानां च निश्चायं श्रयते मैत्रशब्दवत् । नानाध्वजपताकाश्च रज्यते चेन्द्रनाथम् ॥२२२॥  
यथा वाद्यप्रतिधाय श्रूयते हि मनोहरः । अश्विदोत्राग्निधर्मैर्विख्यातं पश्य नमोऽङ्गणम् ।

कैलासगिरिमाश्रयानि पश्य योधानि कर्कश ॥२-३॥

मरप्रतोलीपगिरिमाश्रयार्णवमेखलाम् । उग्राङ्गदम्पती विलम्बनाकशतयक्रुताम् ॥२२४॥  
अश्रल्लिहमदामी समुवर्णकलजोज्ज्वलाम् । पश्यामांघ्र्यापुर्नं श्रेष्ठा मरपुत्रीरनादिनाम् ॥२२५॥  
हाटकाडाटिता रत्नस्रविनैर्या कषाटके । मृमशूर्नचिह्नैः श्रेष्ठैर्मिषैर्या च लक्ष्यते ॥२२६॥  
दाधृषमानैर्मरुता यथाकांचनपुञ्जनः । शृङ्खलावपुःशो लक्ष्यते पथिकान् जनान् ॥२२७॥  
अधःकुतापो सुवना जेतुमेकामरवर्ताम् । शम्भुद्वजलज्वालेन सन्नदंवाद्य लक्ष्यते ॥२२८॥  
पवित्रेऽभिरुन्महाभेत्र निवसन्ति तिमोदिताः । ब्रह्मेष्टद्वारमिः मरुदवाग्ने कषरोऽधमः ॥२२९॥  
कुवेरस्पर्द्धया यत्र चिन्त्यन्ति वसुमन्त्रयान् । दानु मोक्त जनाः सर्वे स्वधर्मनिगताः मदा ॥२३०॥  
मेहे मेहे मदानन्द एवार्मायत्र वै पुत्रे । येषां पञ्चालयनि रम्य चरणान्वायवदिकाः ॥२३१॥

इस तरह अपने पिताजी तावत हुनकर शम्भु भक्ति करने गया । २११-२१५ । उसकी यह दया इसका उद्योग भील और काहणने उसे बहुत कुछ आश्वासन दिया । होमम आनाट सम्मान बड़ा-ही कार्पेटिकभेष्ट ! जिस शम्भुके बारेमें आप पूछ रहे हैं, वह मैं ही हूँ । मर उग्राङ्ग अवम और कोई नहीं हो सकता । मुझ समकालीन अपने पिताको पुत्रिके लिए कुछ भी अग्रहार नहीं किया । मेरे जन्मका विवरण है : मे अथ जायक कथन-नुसार इस संवत्सरे में अवगत अग्रदान हुआ । २२० । २२० ॥ २२० ॥ २२१ ॥ ऐसा कहकर शम्भु चल बहा और शम्भु अवाच्या नगरका दुम्भ दम्भर मय पुत्र, उच्च पदिक एवं भीलने प्रणाम किया और शम्भुने वक्त्रमें कहा - हे महार्पण ! हम अथ एतदूर्णको देवा जिह्म स्तम्भ करनेके लिए करोड़ों मनुष्य लाये हुए हैं ॥ २२० ॥ २२१ ॥ महान् जनसमुदायवा इति मराजके समाप्त सुनायी दे रही है । उद्यती हुई विविध प्रकारकी पताकायें इन्द्रवज्रके समान दृश्य होती हैं । बाणोंकी सजावट इतनी सुनारा इती है । अग्निहोत्रके घूमस सारा जाकाशमण्डल सर-रूप है । हे कर्मण ! यहाँ कैलासगिरि के समान उज्ज्वल और ऊँचा अट्टनिकायें दीख रही हैं । २२० । २२१ । इनकी अट्टनिकायें और पारिवाश्रित सारी नगराधारी हुई हैं । ऊँच ऊँच भवन बने हैं और उनमें मेकः यथाकायें कट्टी रहती हैं । आकाशको वृम्भवाले बड़े बड़े भवनावर सुषणोंके कलभोरी सर्वप्रयापुरी शक्ति हो रही है । यामें लज्जित और मृगमय मण्डित दरवाजोंसे सारी नगरी उनके घुलने कीर बन्द है नगर मया ॥ २२१ ॥ कि वह एक ही मण्डित रहती है । पताकाकपी भीचल यान द्वारा उद्यन्त जात होता है कि वह नगर दूर ही न पंखवा हुआ रहा है ॥ २२१-२२३ । हम नगरमें अपनी ओरसे पताकालोककी भी मोचा विष्णु दिया है । सब समय सगराया पुताको अतना वक्तो है । तो ऐसा लगता है कि प्रसादरूपी शूरको लिये हुए वह पुरी उसे भी जीवनेकी सैरगी भर रही है । इस पुनीत क्षेत्रमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवके साय-साय सब देवता और अथे मुत्तरूपसे निवास करते हैं ॥ २२८ । २२९ ॥ यहाँके निवासी कुवेरको आतनके लिए और दान लक्ष्य मागके आतने सब बड़ी रहे हैं ॥ २३० ॥ इसी पुरीमें

ते द्विजाः कस्य नो वद्या अयोध्यानगरीम्विताः । औदार्ये कल्पतरुो गांभीर्ये मागग इव ॥२३२॥  
 क्षमया क्षमया तुल्या जगमा निगमा इव । दैन्यप्रादमदाम्भाधियापामस्यमहर्षयः ॥२३३॥  
 निवसन्ति द्विजा यत्र वद्याः सर्वमहीभुजाम् । चतुर्वर्गफलैः पेव चतुराश्रममुज्ज्वलम् ॥२३४॥  
 चातुर्वर्ण्यमिदं वास्ते चतुराश्रममागमम् । कुमिकाटपतङ्गानां विना ज्ञानममाभिभिः ॥२३५॥  
 अत्र निर्वाणपदवी सुलभाश्रित वनेचर । एनःपानघटान् भोक्तु तरंगानंकुशानिव ॥२३६॥  
 विभक्तिं सरयुतोषं निःश्रेणिमोगमोक्षयोः । पश्य स्फाटिकमोषाननिविष्टमुनिनस्तुताम् ॥२३७॥  
 सरयूनदीमुत्तरीयां कृतामिव पुगन्तगा । इन्द्रनीलमहातुंगप्रनोलीचरुदर्शनः ॥२३८॥  
 रामचन्द्रस्य दिव्योऽयं प्रामादस्तुङ्गनागणः । प्रनोली यस्य घटिना काश्मीररूपलैरलम् ॥२३९॥  
 सीतापाथ महानेव प्रामादो रत्नतोयणः । नानागन्धैर्मण्डितश्च हेममन्मविराजितः ॥२४०॥  
 स्फाटिकैरुपलैश्चित्रः मयूरीशमंथितः । रामतोर्ध्वमपीपेऽयं मीनशामस्य वै पर ॥२४१॥  
 प्रामादो विमनो माति तप्तकाचजनिर्मितः । पताकाभिर्जिह्विचामिः कलशैः सुविराजितः ॥२४२॥

उत्पन्नजांवनदरत्नकुम्भः

प्रवालवैदर्ष्यनिबद्धभूमिः ।

हेमप्रनोलीरचिनः स एव प्रामादवर्षोऽस्ति हि लक्ष्मणस्य ॥२४३॥

चातुर्यं यत्र विश्रान्त मञ्जरीं विश्वकर्मणः । मोक्षमस्तरोजः प्रामादो हेमतोयणः ॥२४४॥  
 तथा त्रैदीप्यमानोऽयं रत्नभित्तिविनिर्मितः । प्रामादो दृश्यते रम्यः शत्रुघ्नस्य शुभाग्रहः ॥२४५॥  
 स्फाटिकैर्मित्तिभिश्चित्रः प्रोच्चः कनकरेखितः । प्रामादो वायुपुत्रस्य दृश्यतेऽयं महोज्ज्वलः ॥२४६॥

य एव मुक्ताफलजालशोभी सुर्यनाकः खगराजकेतुः ।

कुशस्य रम्यस्त्वयमाविराग्ने प्रामादकुम्भं क्रिमु बालमूर्धः ॥२४७॥

सदा आनन्द छाया रहता है । जहाँक निवासो ब्राह्मणोंके पैर इन्द्रादि देवता भी घोंसा करते हैं, तब व  
 भय किसके वन्दनीय न होंगे । यहाँक निय उत्तारनाम कलशमूक, गन्दीयनाम समुद्र, अमाम पृथ्वी, जग-  
 मोमे मद तथा द रिद्धधरुणो महान् समुद्रक शाश्वतम अपस्तम्बके सदृश हैं । तलारके सब रात इनको मस्तक  
 मुकाकर प्रणाम करता है । इनको घर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पदार्थोंपर किसकी भी कमी नहीं  
 रहती । ये आनन्दके मध्य ब्रह्मनर्ग, महेश्वर, दानप्रम्य एवं सन्ताप, इन चारो आश्रमोंका उपयोग करने हैं  
 ॥ २३१-२३४ ॥ महापर चारों वेदोंके अनुसार चार वर्गके लोग निवास करते हैं । हे वनचर यहाँ ज्ञान और  
 समाधिके बिना ही काट-पतङ्ग आदिकाक लिए भी मृत्क नृत्त्य है । यहाँ पापसुखी घड़ोंका जल पानिके  
 लिए योग और मोक्षकी निसेनी बनकर सरयुका जल मभिन्न हो रहा है । देखो न स्फटिक मणिकी बनी  
 सोविशेषर मुनिगण बैठे हुए स्तुति कर रहे हैं । अयोध्याका उत्तर दिशासे इन्द्रनीलमणिसे बने मार्गके समान  
 सुन्दर सरयू नदी बह रहा है ॥ २३५-२३८ ॥ यह रामचन्द्रका दिव्य और ऊँचा प्रासाद है, जिसमें ऊँच  
 बगुने बने हुए हैं । इसके आस-पासके मार्ग कर्मयोगक फलयोग बने हैं ॥ २३९ ॥ इस ओर सीताका महाप्रजन  
 दिखाई पड़ता है । जिसमें रत्नके तोरण और सुवर्णके स्तम्भ लगे हुए हैं ॥ २४० ॥ जहाँतहाँ स्फटिक मणिक  
 पत्थर लगे हैं, जिससे यह चित्रविचित्र मानुष पर रहा है । रामलावक पास ही सीता-रामका एक दूसरा  
 भवन सुवर्णसे बना है । उसमें भी विचित्र प्रकारको पताकाए लगी हैं और सुन्दर कलश सुशोभित हो रहे हैं  
 ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ जिसमें उपारे सुवर्ण तथा रत्नके कलश हैं सुन्दर प्रवाल और वैदूर्यमणिकी दीवारें बना  
 हैं । इसको भी आस पास सुवर्णके मार्ग बने हैं । यह भालक्ष्मणजोंका भवन है ॥ २४३ ॥ यह सामनेका भवन  
 जिसके बनानेमें विष्णुकमार्कटी सारी चातुरी समाप्त हो चुकी है, श्रीमरुतजोंका भवन है । इसमें भी सुवर्ण  
 तोरण लगे हुए हैं ॥ २४४ ॥ रत्नोंसे बनी दीवारवाला यह रम्य प्रासाद शत्रुघ्नजोंका है ॥ २४५ ॥ वासिष्ठा  
 ऊँचा और स्फटिक मणिसे बनी दीवारका यह सुवर्णमय प्रासाद वायुपुत्र बंधुदुमान्जीका है ॥ २४६ ॥

प्रामादोऽयं लवस्यात्र बहुगन्धविराजितः । यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति मृगोदृशात् ॥ २४८ ॥

चक्षुषि जातरागाणि योगिनामपि मानसम् । विन्यस्तगन्धविन्यासः शानकुंभश्रुवो षडिः ॥ २४९ ॥

रेवशतीव सत्तन रन्नमानुषहाप्रभात् । रन्नप्रासादसंपृक्तमगोप्यां पश्य सुप्रभात् ॥ २५० ॥

यद्गणं क्षालयतो नदीपं स्पर्शजैर्लः सोऽयमनर्प्यगन्धः ।

अभ्रकपटैर्ममयैः स्वकृते वरगजितोऽयं सलु चित्रकैर्लोः । २५१ ॥

दिव्यप्रवालपरिदेहे कपाटे यत्र चक्षले । प्रामादोऽयमगदस्पृह रुक्मभिन्निरिनिमित्तः ॥ २५२ ॥

गरुडोद्गमस्थितप्रतोलीपरिशोभितः । प्रामादः पुष्करग्यायं नयनानंदतो नृणां ॥ २५३ ॥

विशुद्धजायुनददिव्यभूमिर्लसन्पातकश्चिदशामिवयः ।

प्रामाद एषः परमो मनोज्ञस्तमस्य वीरस्य महान् दिभानि ॥ २५४ ॥

यस्याधिभूमिं नवगन्धमिहाम्बुभिः पश्ये विजिनामयोऽपि ।

लोकश्चतुर्थो न हि दृश्यतेऽनः पदं पश्यत्य किमाविराम्ने ॥ २५५ ॥

अधोवमलकणिं घटा दाग्यितुं किमु । उद्गमचग्नो यत्र रन्नमिहो विराजते । २५६ ॥

सोऽयं हेमभित्तमयः प्रामादः प्रान्नतः शुभः । सुवाहो पश्य मे प्रिहृगन्धमानुविर्गाजितः । २५७ ॥

रन्नप्रवालस्फटिकर्नलकाश्च निर्मितः । प्रामादोऽयं वृक्षैर्लोर्महान् दोषिवरः शुभः । २५८ ॥

कल्लाररुन्धलः क्षेणैरगविन्दैः सनत्तटैः । विराजित पापहर गमनीयं प्रदृश्यते ॥ २५९ ॥

इदन्धलं रविदलेनिवृद्धा यत्र भूमयः । हार्ति गोप्यमनसं निषण्णमोक्षोन्मूर्तः । २६० ॥

अमंदकुरुविदानीं विन्यामयैत्र चक्षुषिः । मयन्ति शुकचेनापि मृदुदाडिमयकया । २६१ ॥

एवं पश्य सुभां रम्यां पलाकाभिविगजिताम् । मित्रापोप्यां मुक्तिपुर्णं द्वितीयासममरावतीम् ॥ २६२ ॥

जिसमें म तिथीकी सालरानी है, सुदर्शन चक्र एवं गरुडके चित्रमें चित्रित पलाकायें बहुरंग रंगी हैं, बाग्यसूयकी तरह सुन्दर यह भवन नृणांका है ॥ २४८ ॥ बहुरंग रत्नसे विराजित यह लवका दिव्य भवन है, जिसमें बने हुए विष स्थियोंका मन मोह लेते हैं ॥ २४९ ॥ जहां कि शक्तिशाली नगः और बहुतकरा पागमनी बन जाती है, जिस नगरीके भवनमें विविध प्रकारके रत्नोंकी पञ्चाकारी की हुई है, जिसकी बाहरकी भूमि सुवर्णमयी है, जिसकी बटारियां मृदुलकटको तरह दृश्यामान हैं महा है, उस अगदगदरीको देखो । जिसके प्राणणको मोहा हुई यह सगु नदी वराजमान है । भाकणकी नृणांका वराजमान शोक कलशोंसे सुशोभित यह पुरी साक्षात् विषकेतु गन्धर्वकी पुरीके समान सुन्दर रंग रंगी है ॥ २४९-२५१ ॥ दिव्य प्रवाल मणिसे बने हुए कपाट जिसमें लगे हैं और सुवर्णकी दावारें बनी हैं यह आनंदका भवन है । गरुडमणिकी जिहसे प्रतोलियां बनी हैं, नयनोंका मानन्द दनवाला यह भवन लुकरका है । जिसके ऊपर विशुद्ध सुवर्णकी बनी है और सुन्दर पलाकायें जिसमें फहुरा रही हैं, यह परम मनोज्ञ प्रामाद की रचना है ॥ २५२-२५४ ॥ इधर दलो, नवरत्नमय सिंह विद्यमान है । इस नवरत्नमय मणिकी बड़ी महिमा है । रुक्म प्रभावसे वामन भगवान्ने तीन वेगसे तीनों लोकोंको मान लिया था । चौथा कई लोक ही नहीं बना था, जिसे नापते ॥ २५५ ॥ जिसके घरमें ऊपरकी वेर उड़ ये नवरत्नका सिंह विराजमान हो तो अध ( ५५ ) रवी सतवाल हाथियोंका उसे कुछ भी भय नहीं रह जाता ॥ २५६ ॥ हेमभित्तमय रत्नक जिसमें विराजित यह प्रामाद सुवर्णका है ॥ २५७ ॥ रत्न प्रवाल, स्फटिक और नील काष्ठीयोंसे निर्मित यह प्रामाद पुष्करका है ॥ २५८ ॥ कल्लार उरग, क्षेण, अरविन्द तथा शतपत्रसे विराजित समस्त पापीको हरनेवाला यह गमनीय दिव्यकापी पद रखा है ॥ २५९ ॥ जिसकी भूमि चन्द्रकान्त मणिसे बनी है । मयन्ति शुकचेनापि मृदुदाडिमयकया । २६० ॥ मनुका सन्ताप दूर हो जाता है । दयकले हुए कुरुविन्द मणिके लगे रहनेसे वहाँ गुप्तोंको मृग और अनारके फलका भय ही जाता है ॥ २६० ॥ २६१ ॥ इस प्रकारकी सुन्दर, रम्य और पलाकाओंसे विराजित दूसरी



यत्र कार्त्तिकम्बरघटाः प्रदीप्तीक्षिणसि स्थिताः । रामं द्रष्टुमनन्तान्न प्राप्ताः सूर्या हवानधुः ॥२६३॥

नर्मिह उवाच

एतमुक्त्वा कर्कशेन पन्था कार्पटिकेन च । सहितश्च तदा शंभुम्भी पूर्णं संविवेश सः ॥२६४॥

शमर्त्तायै नमो गन्वा कृत्वा क्षौमादिकं विधिम् उपोष्य दिनमेकं हि शीर्षश्चाह चकार सः ॥२६५॥

अमात्रास्यां शुभां चैत्रे प्राप्तां ज्ञान्वा द्विजोत्तमः । मुक्यर्थं स्वपितृश्रुते अन्नदानं यथाविधि ॥२६६॥

तत्त्वैत्रमासे रजनीश्रमक्षये दत्तं पितृर्षष्टुभदं मनोहरम् ।

विशेषेण चासं पथिकस्य वाक्पत्रस्याम्मान्पिशाचः सुरमश्च निस्थितः ॥२६७॥

अयोध्यायां ततः शङ्खः कृत्वा चैत्रेऽवमगहनम् । उद्यापनविधिं चापि यथोक्तं च चकार सः ॥२६८॥

कर्कशोऽपि मधो स्नान्वा मुक्त्वा पापीयभूधरम् । अयोध्यानगरीमध्ये साधुशृङ्गावमचिचरम् ॥२६९॥

श्रीरामचिन्तनं कुर्वन्निनायायुष्यमक्षयम् । ततः प्रायः हरेर्लोकयोध्यामरणेन सः ॥२७०॥

शंभुश्चापि मधो स्नानं कृत्वा कांचीपुरीं पुनः । गतुं प्रतस्थे श्रीराम तवाऽयोध्यां पुनः पुनः ॥२७१॥

भार्यया सहितः शंभुस्तेन कार्पटिकेन च । ययौ पूर्वेषु मर्गणं यत्र तौ करिकाहर्ता ॥२७२॥

स्याविती शपथः कृत्वा अनेस्तत्र मत्सगमन् । दत्त्वा दिनद्वयं पुण्यमुभाभ्यां मधुमासजम् ॥२७३॥

दत्त्वा स्वीयांजलीं तोयं सयोर्मुक्तं चकार सः । ततस्तौ करिमिहो च दिव्यमान्यं सुलेपितौ ॥२७४॥

दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकं गतावभौ । ततोऽग्रे द्विजवर्गः सः ययौ मार्गेण भार्यया ॥२७५॥

स यत्र राक्षसः पूर्वं स्थापितः शपथं वने । तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं मार्गं प्राह द्विजोत्तमः ॥२७६॥

अपि काश्याह्वये रम्भे मृगु मे वचनं शुभम् । या त्वया शीतला गौरी स्नाता वै सरयून्तले ॥२७७॥

तस्यैकदिवसस्याद्य देहि पुण्यं शुभाग्रहम् । राक्षसाय हि मद्वाक्याद्गृहीतं जलमत्रलो ॥२७८॥

अध्यायतीतुरांक सुमान ददीप्यमान इस अयोध्यापुरीका दसो ॥ २६२ ॥ जहाँ कि प्रहलीक मस्तकपर विराजमान सुवर्णक भवन ऐस दीप्त रहे हैं, जैसे अमल सूर्य एक साथ रामचन्द्रजीका दर्शन करने आ गये हों ॥ २६३ ॥ नर्मिहने कहा—इस तरह कहकर अपनी पत्नी, कार्पटिक तथा कर्कशके साथ-साथ शम्भु अयोध्या पुरीमें प्रविष्ट हुआ ॥ २६४ ॥ पहले रामजीपर पहुँचकर उसने शीघ्र खादि कराया और एक दिनका उपवास करके तपश्चाह किया ॥ २६५ ॥ अब चैत्रकृष्ण अमावास्या तिथि आधी ला उसने अपने पिताकी मुक्ति के लिए विधिवत् अन्नदान किया ॥ २६६ ॥ तब चत्रमासमें अमावास्या का शम्भुने कार्पटिकके कथनानुसार जो अन्नदान किया, उसके पुण्यसे तन्नाक उसका पिता पिशाचयोनिसे मुक्त होकर स्वर्गको चला गया ॥ २६७ ॥ तदनन्तर शम्भुन अयोध्यामें चैत्रस्नान और शास्त्राक्त विधिसे उसका उद्यापन किया ॥ कर्कश भी चैत्रस्नान करके सब पपासे मुक्त हो गया और साधुवृत्तिसे उसने अयोध्यामें ही बहुत दिन बिताये ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ अन्तमें रामका स्मरण करने करने उसने शरीर त्याग दिया ॥ अयोध्यामें मरनेसे उसे विष्णुलोककी प्राप्ति हुई ॥ २७० ॥ शम्भुने भी स्नान करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीकी बारम्बार प्रणाम करके काशीपुरीकी जानकी देवारी की ॥ २७१ ॥ अपनी स्त्री और उस कार्पटिकको साथ लेकर शम्भु उसी मार्गसे छोड़कर उधर चला, उहाँ कि अयोध्या आने समय सिंह और हाथीको छोड़ दिया था ॥ २७२ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने भुषण जल लिया और चैत्रस्नानके पुण्यसे दो दिनका पुण्य देकर उन दोनोंकी उस योनिसे मुक्ति कर दी ॥ इसके अनन्तर वे दोनों हाथी और सिंह दिव्यमान्यसे अलंकृत हो और दिव्य विमानपर आरोह होकर विष्णुलोकको चले गये ॥ इसके बाद शम्भु अपनी स्त्रीके साथ आगे चला ॥ २७३-२७५ ॥ जात जात यह उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ कि जते समय शपथ करके उस राक्षसकी वनमें छोड़ दिया था ॥ वहाँ राक्षसकी सामने देखकर शम्भुन अपनी स्त्रीसे कहा—हे काशिके ! जो तुमने वीरतन्त्र मोहका कृत किया है ॥ हाथमें जल लेकर उसके एक दिनका पुण्य इस राक्षसको दे दो ॥ २७६-२७८ ॥

इति संश्रुयन् भुक्त्वा पचनेन कृशोदरी । काशीनाम्नी द्वित्रयनी ददौ पुण्यं निज तदा ॥२७९॥  
 तदा स राक्षसभेष्टस्त्यक्त्वा देहं मलीमपम् । दिव्यं विमानमारुह्य गन्धामार्गयुतं द्विजम् ॥२८०॥  
 दिव्यमारवापरध्वो हरिलोकं जगाम सः । मधुधापि पिपायुक्तो मधुमानं निवर्णयन् ॥२८१॥  
 कयो कांशीपुरीं भेषां जनान् वृत्तं निवेदयन् । भो पिशाचा यथा वृष्टं भवद्विषं कथानकम् ॥२८२॥  
 तत्सर्वं च मयाऽऽख्यातं राक्षसोद्धारणादिकम् ।

श्रीरामराज उवाच

इत्युक्त्वा नृदगिर्विप्रो दृष्टीन्वा स्वान्तर्गते जलम् ॥२८३॥

ददौ दिनद्वयस्यास्य पुण्यं चैत्रकृतं निजम् । ततः शीघ्रं च मार्गं तु रम्ये चन्द्रमये मिये ॥२८४॥  
 वा त्वया श्रीरत्नागौरी स्नाता मोहाकुले बरे । तीर्थे तस्य दिनैकस्य देहि पुण्यं शुभानने ॥२८५॥  
 पिशाचिन्यै समुद्रतुं मा विचारोऽस्तु वे इदि । इति मर्त्यवचः भुक्त्वा रम्या पद्मवतीवना ॥२८६॥  
 कृशोनाम्नी मम माता ददौ पुण्यं निज तदा । ततः पिशाचास्ते सर्वे मुक्ताः शीघ्रं शुभारहाः ॥२८७॥  
 निजरूपाणि वै प्रापुः प्रणेमुर्नृदगिं जवान् । नन्वा स्तुत्वा पुनरन्वा नृमिह तं प्रियायुतम् ॥२८८॥  
 आपृच्छन् जग्मिरे सर्वं रसगुणैरभयं प्रति । मुकुम्भापि सुतां स्वीयां तां दत्तावतिद्विपिता ॥२८९॥  
 तपोर्ज्वेष्टाय शिष्याय कनिष्ठयावतां सुताम् । स्त्रीषोदसमुन्पत्तां ददामप्रतिमां वराम् ॥२९०॥  
 ततस्तौ सखिषौ विप्रौ जग्मतुर्भौ नृद निवर्ता । स्वस्वपितृश्चाश्रमं हि तथास्तां चितरावपि ॥२९१॥  
 दृष्ट्वा पुत्रौ समापावौ सखिषौ तेषमायतु । नृदनिश्च पिपायुक्तोऽङ्गत्रयं प्रति समावपौ ॥२९२॥  
 चैत्रस्नानेन तन्पुत्रौ रामदामाभिषेकवदम् । जानस्ततस्तौ देहान्ते जग्मतुर्वेक्षणं पदम् ॥२९३॥  
 एवं शिष्यं मधुस्नानमहिषा चद्रमिनेरै । देवैः सिद्धेश्वरगधर्वैः सदाऽनुमन्त्रिताऽस्तं हि ॥२९४॥  
 तस्मान्मपावतस्य हि स्नातृर्धर्मं मानवोत्तमैः । रामतीर्थं च सर्वत्र रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥२९५॥

इतः प्रत्येक संश्रुती मात्रा पुनःकर उस काशा नाम्ना द्वित्रयनाम कपना पुण्य उसका दे दिया ॥ २७९ ॥ इसके प्रभावसे उस राक्षसने अपना वह अवयव देह छोड़ दा और दिया विमानपर चढ़कर साहस्य तथा साहस्य-पत्नीको प्रणाम करता हुआ दिव्यलोकको चला गया । शम्भु भा चैत्रमासक माहात्म्यका वर्णन करता हुआ काकापुत्रोका बल पडा । हे पिशाचवर्ग ! आप लोगों ज. कथा पूछा, ता राजमाक उद्धारस सम्बन्ध रखनवाले सब बात कह मुताबी । रामदामन कहा-नासा कहकर लोमह्वन अजनाम जल लिया और अपने चैत्रस्नानके पुण्यमस दो दिनका पुण्य उस दे दिया । फिर अपना स्वास कहा कि तुमने बचस जो शास्त्रा गोरिका स्नात किया है । उसमेस एक दिनका पुण्य इस पिशाचिनीका दे दो ॥ २८०-२८१ ॥ इससे इसका उद्धार हो जायगा । इसपर कुछ विचार मत करो । इस प्रकार स्वार्थको मात्रा पुनःकर उस कमलनयनाने अपना पुण्य दे दिया । तब श्रीम ही ने सब पिशाचमोनिसे मुक्त होकर ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ अपने-अपने रूपको प्रप्त हो गये । इसके अनन्तर उन्होंने नृसिंहको प्रणाम किया, शारङ्गार उनका स्तुति की और उनसे पृथक्कर अपने गुरुके आश्रमको चल गये । गुरुन भी अतिमय इष्टित हाकर अपना कन्या उन्हें दे रा । उनमेस ज्येष्ठ आताको ज्येष्ठ कन्या तथा करिषको एक दूसरी सखी कन्या समर्पित की ॥ २८८-२९० ॥ इसके अनन्तर वे दोनों अपना-अपनी स्त्रीको साथ लेकर पिताके आश्रमपर गये ॥ २९१ ॥ उनके माता पिता भी उनके साथ करने बैठको माने देखकर प्रसन्न हुए । नृसिंह भी अपनी भार्याके साथ अजक मगरको चल गये ॥ २९२ ॥ चैत्रस्नानके पुण्यसे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रामदास है और वह मेहू । कुछ दिनों बाद मेरे माता पिताका देहात हो गया और वे विष्णुलोकको प्राप्त हुए ॥२९३॥ हे शिष्य ! इस प्रकार चैत्रस्नानकी महिमाका कितने ही अनुष्ण, रेवता, सिद्ध तथा पञ्चवीन अनुष्ण किया है ॥ २९४ ॥ इस कारण कन्ये अनुष्णको चाहिए कि चैत्रमासमें अवश्य

एवं त्वया यथा पूर्णं तथा सर्वं निवेदितम् । मया काऽन्या स्पृहा तेऽस्ति श्रोतुं नद्वन्द्वमहम् ॥ २९ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनाहरकांडे  
चैत्रम्नानमाहात्म्ये एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

## द्वादशः सर्गः

( श्रीरामचन्द्र द्वारा अर्जुनभावका प्रदर्शने )

विष्णुदास उवाच

गुरोऽन्वक्षामचन्द्रस्य चरित्रं वद मां प्रति । मृण्यतो मे मुद्गनास्ति तृप्तिः श्रोतुं स्पृष्टवते ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ट त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । एकदा हयमारुहो पुत्रवभुवलेः सह ॥ २ ॥  
वनं ययौ विहारार्थं रामचन्द्रो मुदान्वितः । तत्र दृष्ट्वा मृगं श्रेष्ठं तं हन्तुं स्पृहन्न्दनः ॥ ३ ॥  
बाणमारुह्य तत्पृष्ठे ययौ वेगेन सादरम् । वनादूर्नातरं रामा मृगस्य च पदानुगः ॥ ४ ॥  
एकाकी हयमारुहो विदेय गहनं वनम् । पश्चाद्दुर्गस्थिताः सर्वे लक्ष्मणाद्या बलैः सह ॥ ५ ॥  
रामोऽपि निजबाणेन मृगं हन्य चनेऽचरत् । निर्जलेऽतिवृषाक्रान्तः क्षुधाव्याप्नोऽप्यभून्मदा ॥ ६ ॥  
ततो रामो वृक्षनले क्षणं तस्थौ भ्रमान्वितः । तावत् क्षणं काचिद् दृष्ट्वा गमं मुदान्विता ॥ ७ ॥  
रूपं ज्ञात्वा राजचिह्नं प्रणम्य पुनःस्थिता । तां दृष्ट्वा राघवोऽप्याह वाक्यं श्रवणे मे शृणु ॥ ८ ॥

लक्ष्मणाद्याः स्थिता दूरं क्षुत्तृड्मयां पाण्डितोऽस्म्यहम् ।

किंचिद्यत्नं कुरुष्वन्न येन मेऽयं सुखं भवेत् ॥ ९ ॥

तदामवचनं श्रुत्वा श्रवणी वाक्यमब्रवीत् । इतोऽविदुरे आरामं दुर्गाम्नि सरसस्तटे ॥ १० ॥

शौमवारेऽयं कार्यश्च बहवोऽत्र समागताः । तत्र त्वं च मया राम यदि यास्यसि साप्रतम् ॥ ११ ॥

स्नान करके रामतीर्थमें जाकर रामचन्द्रजीका पूजन करने ॥ २९८ ॥ तुमने जो पूजा, मैंने अब कुछ कह सुनाया । अब क्या सुननेका इच्छा है, तो कहो । मैं सुनाऊँ । २९९ । इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतजपाण्ड्यकृत ज्योत्स्ना भगवद्गीतासहित मनाहरकांड एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरो ! अब रामचन्द्रजीका माई और चरित्र सुनाइए । क्योंकि रामचरित्र सुनते-सुनते मुझ तृप्ति नहीं होती । जितना ही सुनता हूँ, सुननेका इच्छा बढ़ता जाती है । १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत ही अच्छी बात कह दी है, अब सावधान मनसे मेरी बात सुनो । एक बार जोड़बंद सवार होकर रामचन्द्रजी अपने भाइयों, पुत्रों तथा सनासे साथ मृगयाविहार करनेके लिए वनमें गये । वहाँ एक अच्छा-सा मृग बेसा और उसे पारनेके लिए वनूपर बाण चलाकर उसके पीछे-पीछे दौड़ चले । जाते जाते वे गहन वनमें पहुँच गये । फिर भी राम एक वनसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे वनमें मृगके पंछे पाछे दौड़ते चले जा रहे थे । लक्ष्मण भाई साथी सेनाके साथ-साथ बहुत पाछे छूट गये— २-५ ॥ अन्तर्ग बली बुर जाकर रामने उस मृगको मारा । वह स्थान निर्जल था और उन्हें सुख-व्यास जोरासे लगी थी ॥ ६ ॥ वहाँ ही वे एक वृक्षके नीचे बैठ गये । उसी समय किसी शबराने रामको देखा और उनको बंश-भूषादि पहचान लिया कि वे कोई राजा हैं । वह रामके पास जा तथा प्रणाम करके सामने बैठ गयी । उसे घेसकर रामने कहा—हे शबरी ! तू मेरी बात सुन ॥ ७ ॥ ८ ॥ मेरे लक्ष्मण आदि साथी पाछे छूट गये हैं । मैं भूख-व्याससे बहुत दुखी हूँ । तू कोई ऐसा उपाय कर कि जिससे मेरा दुःख दूर हो जाय ॥ ९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर शबरीने कहा—हे राम ! वहाँसे बाँझो दूरपर ताशबके

उदि तत्र विचित्रान्नेस्तुष्टं प्रक्षयसिर्व क्षमात् । तनया वचनं धृत्वा क्षयते प्राह साधरः ॥११॥  
 महमत्रैव सिद्धामि प्रतीक्षार्थं कुक्ष्यम् च लक्ष्य लक्ष्मणादीनां सैन्यस्य वनवासिनि ॥१२॥  
 गच्छ त्वदेव तां दुर्गां श्रीमे कृत निवेदय । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथैवैवन्वा श्रान्तिना ॥१३॥  
 श्रोगन्वा क्षयते प्राह भृश्वर वचनं मम गता गतावपराश्रो मृग्यां कर्तुमागतः ॥१४॥  
 अविदूरे पृथग्ने कुधाकांतः स्थितोऽस्ति हि । तैसाह प्रपन्नाऽप्यथ क्षयार्थं श्रान्तनः ॥१५॥  
 पुष्पाक कथितं पुं तस्य गच्छाम्यहं पुनः । शत्रयोस्तद्वचः श्रुत्वा तां ताम्यः मममाश्रिताः ॥१६॥  
 अभिनय निर्मलाक्षरे क्षयते तां मृदुपुङ्गुः । परस्परं तदा प्रोचुन्वा वायोः शत्रो मृदा ॥१७॥  
 धन्योऽयं दिव्योऽस्माकं यास्मिन् राघवदशनम् । स वैऽस्ति वरान्नेथ तोरयायो स्पृष्टमम् ॥१८॥  
 आदौ दुर्गां पुरायित्वा नैवेद्यं तं निवेद्य च । ततः समर्थं स्वमाय मोक्षयामश्च यत् ततः ॥१९॥  
 इति ममश्रुतां तार्यां कृष्णालक्ष्मणपिहताः । पवनकीशेयशमिन्यो वरान्नेथ मृगलोचनाः ॥२०॥  
 वप्रक्षत्रिषवैश्यानां सुद्राणां यापि वेगतः । नैवेद्यपर्वणां दुर्गां ययूर्पुर्गमिः स्वनाः ॥२१॥  
 एतस्मिन्नतरे देवी स्वालयस्य समन्तः । कपाटानि दृढं बद्ध्वा तृणामामाद्रोन्द्रजा ॥२२॥  
 तनूना द्वारभावाद्य द्वाग् बद्ध निर्गन्ध च । वप्रमुः सर्वद्राणि न मार्गं लेभिरे स्त्रियः ॥२३॥  
 तदाश्रयमनाः सर्वा द्वारदेशे स्थिताः जगम् । तत्रदेवालयाच्छब्दो निर्गतः शुश्रूवः श्रियः ॥२४॥  
 महमेशत्र मीनाऽस्मि गतः शालाभदेभ्यः । ये भिन्ने धान्यस्यत्र मां मीनां गधर इव ॥२५॥  
 ते कोटिकल्पपर्यन्तं पृथक्ते गेहेषु हि । जतो मृग हि सो तार्यां मन्त्रार्थं च जगत्प्रसू ॥२६॥  
 दोषयत्नं वरान्नेथ तच्छेषेण त्वहं ततः । तुष्टा मशमि मच्छद्व्यं क्षुधितं तं रक्षुषम् ॥२७॥  
 इति तार्यां वचः श्रुत्वा देव्याभ्या विश्वयान्विताः । दृढदुर्गजगामिन्यः क्षयते वरान्नुगाः ॥२८॥

विनारे एक दुर्गा मन्दिर है ॥ १० ॥ आज मन्त्रालयार है । इसलिए वहाँ बहुत-सा स्थिति आयी होगी । यदि मेरे साथ वही चलें तो आपका माना प्रकारके विचित्र वस्त्र खानका मिले । जिससे आप क्षयभवमें तुल्य हो जायेंगे । गवरीको सलह मुनकर रामने उत्तर दिया कि मैं यहाँ कुछ बहिरी प्रतीक्षा करता हूँ वरान्ने है । हे वनवासिनि । तू ही जाकर उन शत्रुओं को मेरा हाल सुना दे । रामके आज्ञानुसार वनसे तुम्हें सल गयी ॥ ११-१४ ॥ उसने कई पट्टकर उन शत्रुओं को कर्ण-कमलके समान नवीनसे जगत्प्रसू राजकाय वहाँ बिकार चलन आयी । वे पास ही पटक न च भूमिगामे बैठे हैं । उन-ने आज लोकोको यह सदन सुननेके लिये धृष्ट भेजा है । १५ ॥ १६ ॥ अब आराम जा कुछ कर, वह बकर मैं गमकन्यगीको सुना दूँ । गवरीको बात सुनी तो विभिन्न भावसे उन्होंने लवराका चयवाद दिया और कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ इसारे लिए आजका दिन बन्द है जिसमें योगमन्त्र-इत्यादि दर्शन प्राप्त होते और हम अथर्व-वचन शत्रुसे उन्हें सन्तुष्ट करेंगे ॥ १९ ॥ हम वहाँ दुर्गा का पूजा करके उनको नैवेद्य पढ़ायेंगे । उसके बाद रामको भोजन कराकर स्वयं भोजन करेंगे ॥ २० ॥ यह मुनकर सुवर्णक जनकारास मन्त्रकृत, पैसे काहे पढ़ने, मुन्दर मुख एवं दुर्गाके समान देव शाला के बहुरा, श्रुति, शत्रु तथा मृदक धर्मका श्रुति तुम्हें तुम्हें तुम्हें नैवेद्यके साथ लेकर तुम्हारी वनाहर इति करना दूँ चल गयी ॥ २१ ॥ २२ ॥ उपर दुर्गाश्रमे तार्यां कोसे मन्दिरका फाटक बन्द कर लिया और भीतर वृत्तव्य बंद गयी ॥ २३ ॥ हे हिमाली मन्दिरम फूँकी का द्वार बन्द पाया । एक एक करके वे सब शत्रुपर छुप गयी । लेकिन कितने तरफसे भी उन्हें फँसकर जानेका मार्ग नहीं मिला ॥ २४ ॥ ऐसी कल्पनाओं के विभिन्न होकर वहाँ बैठ गयी । चारों देर बाद मन्दिरके भीतरसे यह वाणी सुनायी दी, जिसे उन शत्रुओंने सुना—॥ २५ ॥ मैं हाँ जाता हूँ और राम साधन श्रुति है । जो हमसे और छीतावे, रामसे तथा शत्रुसे नैवेद्य प्राप्त है, वे करो को आज पर्यन्त और नरकम सदन है । इस कारण हे शत्रु । वहाँ तुम्हें मन्त्रे मन्त्रे जगत्से मेरे धनु रामको प्रसन्न करो । उनसे आँ बने, छोड़कर मेरी पूजा करो । इससे मैं प्रसन्न हूँगी । अच्छा, अब तुम लोग जानी । रामकन्यगी मन्त्रे जाते बैठे हैं ॥ २६-२८ ॥

ततः सा अश्वी ताव्यो दशयामाम राघवम् । ता नेत्रपंकजैः सर्वा शृङ्गा नम्रा रघून्मयम् ॥३०॥  
 दिव्यशक्तानि पुरः स्थाप्य देवसाध्वैर्जलान्पयि । तनुस्त्रिं प्रार्थयामासुः स्त्रियः सर्वा पुरःस्थिताः ॥३१॥  
 स्वपादेषु तागिता राम वयं नार्यः सहस्रशः । वषटीं प्रेष्य गहने वनेऽत्र परमादरात् ॥३२॥  
 अस्मानि स्वीकुरुष्वन्व देव्या त्वां प्रेषितानि हि । तन्नामो वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह सस्मितः ॥३३॥  
 देव्या किमुक्तं यो नार्यः कथयामास ममाद्य तन् । ताः श्रेष्ठ रघवं नार्यो दुर्गावाक्यं सविस्तारम् ॥३४॥  
 दुर्गावाक्यं शृणुष्वद्य स्वहमेवमत्र जानकी । रामः सारधान्महादेवो नात्र मेदः कदाचन ॥३५॥  
 मानवस्यत्र मेदः ये गौरवेषु पनन्ति ते । मनो रामं तोषयिष्याददुच्छिष्टं त्वहं ततः ॥३६॥  
 मोक्षयामि नार्यो गच्छन्तं तुभानं रघुनन्दनम् । देव्येन्य भाषितं राय तनुस्त्वां समुपागताः ॥३७॥  
 अग्रे त्वं पूर्वपुण्यैर्नो भूषणान्नं रघुनन्दन । तनुस्त्वाः प्राह श्रीरामो विहस्य मुदिताननः ॥३८॥  
 यदि देवीवचः सत्यं तर्हि गहने वने । सीतारूपेण सा दुर्गा मां समाधातु सत्वरम् ॥३९॥  
 पुष्पन्नारीममृदात्तु काचिन्नारी गिरीश्वराम् । गन्वा मदचनं दुर्गा आवयन्वद्य कोतुकात् ॥४०॥  
 तत्रमवचनं श्रुत्वा स्वेका श्री लोकादवकात् । गन्वा दुर्गा राघवाक्यं आवयामास सादरम् ॥४१॥

दुर्गा श्रुत्वा रामवाक्यं तथेन्मुक्त्वा तु तां स्त्रियम् ।

किञ्चिन्कपाटमुदाटय मानारूपेण निर्ययी ॥४२॥

ततः पुनर्दृष्ट्वा कपाटं जानकी जवाम् । तोषपात्रं करे धृत्वा यशो रामं स्मितानना ॥४३॥  
 नमस्कृत्वा रामचद्र वत्पार्श्वं सरिषिताऽभवत् । तदा ताः सकला नार्यस्तभूवन् विस्मिता इति ॥४४॥  
 ततो रामो वगन्नानि विश्वर्ध्वाणां तथा पुनः । सत्रिधाणां च नारीणां भोक्तुं स्नानार्थमुपतः ॥४५॥  
 ततः श्वरासने बाण संधाय जगदीश्वरः । भुवं भित्वाऽप्य पातालाज्जालं तत्र समानयत् ॥४६॥

इस तरह देवाकी बात सुनकर ये सब वज्रगाथिनी स्त्रियें विस्मित हुकर शवरीके पीछे-पीछे चली ॥ ३६ ॥  
 वहीं जाकर शवरीने उन सब स्त्रियोंको रामचन्द्रजीका दर्शन कराया । उन नारियोंने कमल सरोवर नेत्री-  
 वाले रामको देखा और प्रणाम किया । इसके बाद दिव्य भोजन सामने रखकर पुष्पोंके पानीमें जल भरकर  
 रक्षा और उन सब स्त्रियोंने एक स्वरसे भगवान्स प्रार्थना की— ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राम ! आपने शवरीके द्वारा  
 अपने जानेका संशय प्रेरक हम लोगको तार दिया है ॥ ३२ ॥ सामान्य दुर्गाजीके द्वारा भेषवाये इन स्त्री-  
 वदार्थोंको आप स्वीकार करें । उनकी बातोंको सुन तो सुनकर राम बाले-हे नारियें ! दुर्गाजीने हमारे  
 विषयमें क्या कहा था, सी तो बतलाओ । स्त्रियां विस्तारपूर्वक दुर्गाजीके द्वारा कही गयी व त बतलाता हुई कहने  
 लगी—उन्होंने कहा था कि राम साक्षात् इहेश्वर हैं और मैं जानकी हूँ जो लोग हम दोनोंमें किसी प्रकारका  
 भेद मानते हैं, वे गैरव्यवहार करते हैं । इसलिए तुमलोग वहुने रामको भोजन कराके प्रसन्न कर आओ ।  
 उनमें जो कुछ वचन सी मैं मधुर स्वीकार करूँगी । हे स्त्रिया ! अब तुमलोग उन भूमे रामजीके पास  
 जाओ । इस तरह देवीकी बात सुनकर हम सब आपके पास दौड़ आयी ॥ ३३-३७ ॥ अब हमारे पूर्वसंचित  
 पुण्योंके प्रतापसे इस अन्नको प्रदूषण करिए । इसके अनन्तर होकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा— ॥ ३८ ॥ यदि  
 देवीकी बात सच है तो वे सीतारूपमें यहीं भरे पास आवें ॥ ३९ ॥ तूममेंसे कोई स्त्री जाकर घेरा यह सन्देश  
 दुर्गाजीको सुना आवे । ४० ॥ रामके आज्ञानुसार उनमेंसे एक स्त्री बीशरी हुई दुर्गाजीके पास पहुँचा  
 और रामका संदेश कह सुनाया ॥ ४१ ॥ उस स्त्रीके मुँहसे इस प्रकार रामका संदेश सुनकर दुर्गाजीने  
 पीछाछा दरवाजा खोला और सीतारूपमें बाहर निकल आया । ४२ ॥ उन्होंने मन्दिरके दरवाजेको  
 ध्वजस्तंभ बन्द किया और हाथमें जलपात्र लेकर सुनकराली हुई रामकी ओर चल पड़ी ॥ ४३ ॥ वहीं  
 पहुँचकर उन्होंने रामको प्रणाम किया और उनकी वचनमें जाँचें । गङ्गा कीपुत्र देवकर सब स्त्रियां बहुत  
 विस्मित हुई ॥ ४४ ॥ इसके बाद राम उन जाहूणों, सत्रिणी तथा वीर्याकी स्त्रियोंका अन्न खानेके लिए स्वन्न  
 करनेको उद्यत हुए ॥ ४५ ॥ एतदर्थ रामने अपने अनुपपर बाण चढ़ाया और पृथ्वीको धोकर पाताल-

दृष्ट्वा सुखी रामचन्द्रः कृत्वा मायादिकं ततः । यावद्भोक्तुं मनश्चक्रे तावत्तैऽपि समापयुः ॥४७॥  
 कृत्वाघाः सर्वमन्यैश्च रामराजिषदानुगाः । ते मये जानकी दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययुः ॥४८॥  
 ततस्तैः शशगीवाक्षशम्भवे भुक्त्वा कृष्णादिकाः । मनबोद्धा रामचन्द्रं मेजिरे चन्द्रशेखरम् ॥४९॥  
 सीतां गिरिशिखरं चापि मेजिरे ते विनिश्चयात् । ततो रामः कुशार्थम् सुदा तन्येन सीतया ॥५०॥  
 धुक्त्वा सीन्वा जलं स्वच्छं शक्यं स्त्रीः प्राह सादरम् । वरपथं वराभाष्यो युष्माकं यत्तु रोचते ॥५१॥  
 वद्राजपथनं भुक्त्वा स्त्रियः प्रोचू रघूत्तमम् । येनास्माकं महेच्छांतिस्त्वं ररं दानुर्महसि ॥५२॥  
 ततः प्राह रामचन्द्रस्त्वा नारीपुष्टमानयः । मम नामास्तु युष्माकं शप्तेति जगतीवले ॥५३॥  
 युष्माकं मयि सद्भक्तिः पुरुषेभ्योऽपि चाभियः । भविष्यति सदा त्वयो वरेण मम निश्चयात् ॥५४॥  
 देवे त्रिवे कृपायां च धर्मे भक्तिर्निरुपति । मदा पुनः पतिनाथ सर्वध्वं सधवाः स्त्रियः ॥५५॥  
 वागम्ये सकृन्ने सर्वकर्मसु च पुरःसराः । युय भवध्वं सर्वत्र त्रिवेर्णापुनमस्तुताः ॥५६॥  
 मम वागानुकुलं त्वयो मन्वाप्नेदं भविष्यति । इति रामवचः भुक्त्वा स्त्रियः प्रोचू रघूत्तमम् ॥५७॥  
 जन्मातिरेजपि त्वं गम दक्षिणं देहि नः पुनः । तन्मातां वचनं भुक्त्वा शपयो शक्यमत्रयात् ॥५८॥  
 द्वापरं कृष्णरूपेण युष्माकं दक्षिणं मम । भविष्यति वने यद्ये त्वमयात्माप्रमंगवः ॥५९॥  
 दिव्यरम्भस्तदा युवं भविष्यथ स्त्रियो वने । इयं तु शशरी पत्नी विशम्भैव भविष्यति ॥६०॥  
 यदर्थनार्थमुत्तमायेनामभ्याः पतिर्वेदा । स्तम्भे वदन्का मदादण्डं स करिष्यति वै पुरे ॥६१॥  
 उदेयं मद्रवमना वने यावति मां प्रति । भिन्नवेदेन क्वरी कौतुकं तद्भविष्यति ॥६२॥  
 तदा युय स्त्रियः सर्वास्तिदृष्ट्वा कौतुकं महत् । भूषाञ्च मद्रवमना मां व्याख्या सर्वदा हृदि ॥६३॥  
 जते मल्लोक्तमासाय मोक्षय सुमधुनमम् । रामेति तां क नाम मम निव्य हि सदा ॥६४॥

सोनसे जल निकाला ॥ ४६ ॥ उससे स्नान किया और मन्वाहु तावको विगासोसे फुरस्त पायो । तब जैसे ही भोजन करनेको तैयार हुए, तैसे ही कुछ आदि धो लेनाके साथ राम स्वान्तर आ पड़ेके । उ-होने वहाँ जानकी-को देखा तो उनके आश्चर्यका टिकना नहीं रहा ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फिर शशरीके मुखस ज-होने सब समाचार सुना, तब इन लोगोका विश्वास हुआ कि रामचन्द्रको साक्षात् जित ही है ॥ ४९ ॥ और सीतानी साध न पावती है । उत्पन्नात् रामच-वाने कुछ आदि याददा तथा लेनाके साथ भोजन किया, तब उन जल पिपा और उन स्त्रियासे कहा—हे स्त्रियो ! अब तुम लानी हो जा दृष्ट्य हो, यह वर मांग लो ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उस तरह रामकी बात सुनकर स्त्रियो बोली कि जिससे मन्वासे हमारी मुक्ति हो, कोई देना वादाय कीजिये ॥ ५२ ॥ श्रीरामच-न्द्रोंने प्रसन्न होकर उन नारियल कहा कि जो नाम हमारा है, वही तुम्हारा भी “राम” बहुत नाम बिरगल होगा ॥ ५३ ॥ हे स्त्रियो ! हमारे वरदानके प्रभावसे पुरुषोकी अप्रमा मारिगोकी हमारेमें विश्वास भक्ति रहगी ॥ ५४ ॥ देवता, ब्राह्मण, इन्द्रिया एवं धर्मम तुम्हारी विशेष रुचि रहा करेगी । तुम जैसे सबका स्त्रियो सदा पवित्र रहेंगी ॥ ५५ ॥ अपने मन्त्रकवर तीन बेनी धारण करनेवाली स्त्रियो किसी मङ्गलमय कार्य लपन करन आदि सब कार्योंमें जागे जागे चलेगी ॥ ५६ ॥ मेरे वाकसे इस शरीरको रचना हुई है । कतएक यह तीर्थ मेरे ही नामसे बिरगल होगा । इस तरह रामके द्वारा वरदान पाकर उन स्त्रियोने कहा—हे राम ! आज मन्वा-न्तरम भी हम लोगोको अप्रमा दर्शन दीमिगा । उनकी बात सुनकर रामने कहा—हापरसे अब मागनक प्रसन्न हो फुरतकरसे ये तुम लोगोकी रक्षन हुआ ॥ ५७-५८ ॥ उस समय अब वनमें कुछ हुये मिश्रीको, सब तुम सब ब्राह्मणका स्त्रिय रहगी । यह मन्त्रो भी उस समय द्विजपत्नी होगी ॥ ५९ ॥ मेरे दर्शनके लिए जानकी उसीन इस नाराका अब इसका पति करनेव बाँधकर रण देवा तो यह अप्रमा मन मुझे सर्वत्र काके अन्य कससे मेरे समीप चली जायेगी । उस समय यह कौतुक देखकर तुम सब बड़े विस्मित होगी । और अबसे मुझसे अपना मन लगाकर सर्वत्र मेरा काम करोगी ॥ ६०-६३ ॥ अन्तमें मेरे

पुष्पाभिर्जपनीयं वै तेनास्तु गन्धिरामा । इति दध्वा वरांस्ताम्यः सीतामह पुरःस्थिताम् ॥ ६५ ॥  
 सुखं याद्वि स्थल स्वीयं तथैव्यक्त्वा विदेहता । राघवं प्रणम्य स्त्रीपुक्ता ययी वैश्वानरं पुनः ॥ ६६ ॥  
 देवालयगता भूत्वा दुर्गारूपं दध्वा मा । तदतिविम्बं प्रापुष्ता नर्यो निजचेति ॥ ६७ ॥  
 तास्तां दुर्गां प्रपूजयामास जग्मुः स्वर्गं निजम् । रामोऽपि चन्द्रपुत्रागैर्वयी निजपुर्गं प्रति ॥ ६८ ॥  
 ततो गेहे कृत्वा सीतां वप्रच्छ वनचेष्टितम् । दृष्टवत्स यथा वृत्तं तदा सीता न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥  
 ततस्ते लक्ष्मणाश्वश्च मेनिरे राघव हम् । सीतां मातन्महादुर्गां मेनिरे गनविभ्रमाः ॥ ७० ॥  
 एवं क्षिप्य जनानां च रामेण वरमन्मता । देववृद्धिः सङ्गितः च ये कृत्वा तु कौतुकम् ॥ ७१ ॥  
 एवं वरेण राघवस्य रामा नः यत्र कथ्यते । तावामपि वनुश्वाय स्मृतौ रामेति द्वयस्यः ॥ ७२ ॥  
 नान्यो मन्त्रोऽस्ति ज्ञातीया शूद्राणां चापि भो द्विज । सर्वस्यो मन्त्ररसेभ्यो रामस्याय मनुजैः ॥ ७३ ॥  
 प्राप्ते मये महापापे वाचायां मयेह नरैः । रामेति द्रव्यमयः को-र्यते जगतीतले ॥ ७४ ॥  
 कृत्वा पापं महाजोरं पथाचपेन भो नर । मरुद्वेति मर हि को-र्यते दुष्टमास्तुरान् ॥ ७५ ॥  
 रामेति मन्त्रराजोऽयं रामेन भोजने तथा शयने क्रीडने रात्रौ स्थिते कार्यान्तरे नरैः ॥ ७६ ॥  
 जपनीयः सर्वदेव संख्यगोरमगौरपि । चतुर्वर्णं मदा जप्यधुराश्रमयामि मेः ॥ ७७ ॥  
 नारय मन्त्रस्य कलौऽस्ति जगद्यै कालरुषिणः । तस्माज्जनेजपर्ययः सर्वदा मनुजस्यः ॥ ७८ ॥  
 राममन्त्रो मुने यस्य देवो मुद्राकितस्तथा । राममुद्राकितं वस्त्र यस्य तं नेष्टुमेष्टमः ॥ ७९ ॥  
 राममुद्राकितं वस्त्रं समुद्रं वस्त्रमन्वते । सर्ववस्त्रेषु तच्छ्रेष्ठं पवित्रं पापनाशकम् ॥ ८० ॥  
 समुद्रं वसनं वेदे विभ्रत मानवीजमम् । कुत पाप न लियेत पश्यत्रमिवावसा ॥ ८१ ॥  
 समुद्रवस्त्रसपुच्छं दृष्ट्वा भुवि नरोत्तमम् । यमदत्ताः पलायते मिह दृष्ट्वा मृदा यथा ॥ ८२ ॥

शोकका प्राप्त करके तुम सब उत्तम मुख योगी । मेर 'राम' इस तावत मन्त्रको तुम ज्ञाप सदा जपता रहना,  
 इससे तुम्हें उत्तम भक्ति प्राप्त होगी । इस तरह उन जिनमेंही वरदान देकर सामने बैठी हुई मातावासि कहा  
 कि अब आप आनन्दसे अपने मन्दिरका आहूत, 'तपस्तु' कहकर व भी उन स्थितिके साथ मन्दिरकी ओर  
 चली गयी ॥ ६४-६६ ॥ देवालयमें पहुँचकर उन्होंने फिर मन्त्रको समस्त देवोंका रूप धारण कर लिया ।  
 उस समय वे स्थितों ओर भी विस्मयत हुई ॥ ६७ ॥ इसका बाद उन स्थितों देवोंकी पूजा की और  
 अपने-अपने घरोंका चली गयी । राम भी अपने वन्धुओं पुत्रों एवं सत्ता आदिकी साथ लेकर आयाव्या  
 चल दिये ॥ ६८ ॥ घर पहुँचकर कुशने मोक्षसे वह वृत्तांत पूछा । तब माता राम तरह मन कह पुत्राय कि जैसे  
 उन्होंने अपनी जानी सब कुछ दत्ता है ॥ ६९ ॥ तबरा लक्ष्मण आदिने सन्देशरहित होकर रामकी भगेश्वर और  
 सोताकी महादुर्गा गता ॥ ७० ॥ हे शिष्य ! अपने मन्त्रका देव वृद्धिकी दूर करनेके लिए ही रामन वनमें  
 इस प्रकारका कौतुक किया था ॥ ७१ ॥ रामकाद्वज्रोंके वरदानसे ही 'स्वर्ग' रामा कहगती है । उन लीकोंके  
 लिए भी 'राम' यह दो शब्दोंका मन्त्र वतलाया गया है ॥ ७२ ॥ मित्रों और शत्रुओंके लिए इसके सिवाय और  
 कोई मन्त्र नहीं है । सब मन्त्रोंमें यह राममन्त्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥ किसी प्रकार भक्त बोधा या भक्त मान्य  
 ह्याम इसी नामका उच्चारण करने है ॥ ७४ ॥ महाभारत पढ़ करके ये जो प्राणी पञ्चतान्त्रपूर्वक 'राम' इस  
 मन्त्रका कीर्तन करता है, उसको सुख ही जन्तो है ॥ ७५ ॥ लोगोंका यह है कि नहीं जाने समय, भोजन  
 करते समय, सोने समय विगत कृत समय प्रवृत्ता कोई भी कार्य करने समय और साधकालका, चाहे वे  
 किसी वर्ण तथा किसी आश्रमके हों, राम इस मन्त्रका जप करने रहे । क्योंकि यह बड़ा उत्तम मन्त्र है  
 ॥ ७६-७८ ॥ जिसके मुखमें राममन्त्र है, जिसका हाथों रामनामसे अस्ति है और जिसकी देहपर राममुद्रा-  
 स अंकित वस्त्र पहना रहता है, उसे यमराज नहीं डर जाने ॥ ७९ ॥ राममुद्राके अंकित वस्त्र समुद्र वस्त्र कहलाता है ।  
 यह वस्त्र सबसे श्रेष्ठ, पवित्र और पापनाशक होता है ॥ ८० ॥ इस समुद्र वस्त्रधारों प्राणोंकी किसी प्रकारका  
 पतक नहीं लगता । जैसे कमलके पत्तोंपर जलका असर नहीं होता ॥ ८१ ॥ समुद्र वस्त्र धारण किये हुए मनुष्यकी

पुनैकदा तु मुनयः संमन्योन् रघून्ममम् । राम मेव महाबाहो कलावशे द्विजोत्तमाः ॥८२॥  
 वशप्रविना मंदधियो मदिष्यत्यधनीनके निजजाट्यपूर्वधे दारादूढारं भ्रमं हि ॥८३॥  
 कुतोऽवकाशः स्मरणे तव तेषां मदिष्यति । अनग्नेषां हितार्थाय त्वां याचामोऽयं राघव ॥८४॥  
 तेषां हितार्थं किंचिच्छृणुयां वक्तुमर्हसि । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा मुनीनां रघून्मन्दनः ॥८५॥  
 तत्राद्यं वाक्यं सत्पुण्यान्मुनीन्प्रहसन्मयम् । मम्यमुक्तं मुनेर्भूषणं शृणुन् वचनं मम ॥८६॥  
 मम मुद्राङ्कितं वस्त्रं कलां धार्य जनैः सुखम् । मम मुद्राङ्कितं वस्त्रं विश्रुतं मानसोत्तमम् ॥८७॥  
 न स्पृष्ट्वैवाङ्कितं किञ्चिन्मृतं चपि नरेण हि । शङ्खचक्रमदापन्नममुद्राङ्कितं शुभम् ॥८८॥  
 वस्त्रं धार्य नरैर्भक्त्या मुद्रपैदाङ्कितं तु वा । शङ्खादिभ्यविर्गुक्तं सदा वस्त्रं मम प्रियम् ॥८९॥  
 मन्मुद्रपङ्कितं वापि वस्त्रं मत्तोषदं स्मृतम् । स्नान्वा धार्य सदा तत्त्वं जपकाले विशेषतः ॥९०॥  
 मलमूत्रोन्मर्जने च शयने कण्ठने तथा । अशुभं च तथे वृद्धौ हृष्टे राजसभासु च ॥९१॥  
 पथि दुर्जनसमर्थे मुद्रावस्त्रं न धारयेत् । न च भोजनकालेऽपि विहारे नैव धारयेत् ॥९२॥  
 स्नानकाले अने तीर्थे पूजायां चित्तमर्पयेत् । होमे दाने जपे कृच्छ्रं वांछायावृत्तादिषु ॥९३॥  
 नित्यकर्मसु काम्येषु तथा नैमित्तिकेऽपि । तथा तत्रसु मन्मुद्रावस्त्रं धार्यं मदीयं हि ॥९४॥  
 मम मुद्राङ्कितं वस्त्रं विश्रुतं मानसोत्तमम् । अहं मोक्षं प्रदत्तव्यमि मयं मन्य मुनीश्वराः ॥९५॥  
 एव श्रुत्वा राघव कथं मुनयस्ते मुदन्विताः । राम पृष्ट्वाऽऽश्रमं स्वं तत्र गच्छते मुद्रिनामनाः ॥९६॥  
 तस्मान्मया मममुद्रावस्त्रं धार्यं न भूयते । रामेति द्वयश्रुते मतो यन्नीयं तु सर्वदा ॥९७॥  
 राममुद्रा शुभा धार्या गोपीनन्दनसमुता । सदाश्च मानसैर्भक्त्या रामतापार्थमादरात् ॥९८॥

शेषकर ममके दूत उसी तरह आया है, जैसे मिहका शेषकर मृग भाग जाते हैं ॥ ८२ ॥ एक बार बहुतसे मुनि एकत्र होकर रामसे बोले - हे महाबाह ! अगर चलकर कलिदुग्धमं चक्षुष्य बड़े मन्दबुद्धि होंगे और पद पालनेके लिये शयन रहने हुए दारद्वार घूमने ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ उनका आपका स्मरण करनेके लिए अवकाश कैसे मिलेगा । अतएव उनका कल्याणार्थ हम अपने यह भिक्ष माग रहे हैं कि उनके हितके लिये कोई उपाय बतला दीजिए । उन मुनिश्रीकी बात सुनकर रामचन्द्रजी प्रसन्न मनसे बोले कि आपने बहुत उत्तम प्रश्न पूछा है । अथवा मुनि ८४-८७ । उन लोगोंका चाहिए कि सदा मेरी मुद्रासे अङ्कित वस्त्र धारण करें । जो मेरी मुद्रासे अङ्कित कपड़े पहन रहेंगे, उनसे यदि किसी प्रकारका पातक भी हो जायगा तो वह उनका नहीं लगगा । इसलिए वे सदा शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे अङ्कित कपड़े पहन । यह भी न हो सक तो बसल मेरे नाम ही से चिह्नित कपड़े पहने । जब आदिसे चिह्नित वस्त्र भी मुझ बड़े प्रिय हैं ॥ ८८ ९० ॥ राममुद्रासे अङ्कित वस्त्र मुझे प्रसन्न करता है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि स्नान करके ऐसे ही कपड़े पहने और जबकि समय इसके लिए विनाश होना रक्ख ॥ ९१ ॥ मलमूत्र त्यागते समय, विछोनेपर, मलते समय, अपवित्राश्रयाम, किसी दुर्गन्धके घरनपर, बाजारमें, राजसभामें, शरतेम और दुर्जनके ससमये इस मुद्रावस्त्रको कभी भी न पहन । भोजन करने समय और स्त्रीके साथ विहार करते समय भी इसे न पहने ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ स्नान करनेके अनन्तर, व्रतमं तार्थमें पूजा करते समय, पितृश्राद्ध करने समय, होम, दान, जप आदि करने समय, वांछायावृत्तादि भक्तमें, नित्यकर्म करते समय, काम्य कर्ममें, कोई नैमित्तिक कर्म करते समय और तपस्या करते समय मेरी मुद्रासे अङ्कित वस्त्र अवश्य पहनना चाहिए ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ हे मुनीश्वरों ! यह बात विष्णुल सत्य है कि मेरी मुद्रासे अङ्कित वस्त्र पहननेवालोंको मैं स्वयं मुक्ति देता हूँ ॥ ९६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और रामसे आका लेकर अपने अपने आश्रमोंको चले गये । ९७ ॥ इसीलिये लोगोंको यह चाहिए कि हमेशा राममुद्रासे अङ्कित कपड़े पहन और 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रका जप करें ॥ ९८ ॥ गोपीचन्दनसे राममुद्रा



पूजा सदा राघवस्य कार्पाऽत्र मानवैर्भुवि सदा स्नानं रामनीधे नरैः कार्यं प्रयत्नतः ॥१००॥  
 सदा रामायणं चेद् श्रवणीयं नरैर्भुवि चिन्तनीयः सदा रामो जन्ममृत्युनिवारकः ॥१०१॥  
 स्तोत्रव्यः कीर्तनीयश्च वन्दनीयोऽत्र गद्यवः । न किञ्चिदणुमात्रं हि विनारामं सदाऽऽचरेत् ॥१०२॥  
 हनुमत्कवचं दिव्यं पठित्वाऽऽदौ नरैर्भुवि । ततः श्रीरामकवचं पठनीयं हि सर्वदा ॥१०३॥  
 पठन्ति रामकवचं हनुमत्कवचं विना । अरण्ये रोदनं तैस्तु कुतमेव न संशयः ॥१०४॥  
 स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रं सर्वभीतिनिवारकम् । श्रीरामकवचं नित्यं पठनीयं नरैर्भुवि ॥१०५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोर्द्धं श्रेतुमिच्छामि हनुमत्कवचं शुभम् । तथैव रामकवचं वद कृत्वा कृपां मयि ॥१०६॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु हनुमत्कवचं रामकवचं च वदामि ते ॥१०७॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे पार्वतीकोमे मनोहरकाण्डे  
 आदिकाव्ये रामणाट्टतन्त्रदर्शनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

## त्रयोदशः सर्गः

( हनुमत्कवच तथा रामकवच )

श्रीरामदास उवाच

एकदा सुखमासीनं शकरं लोकशंकरम् । पश्यन्तु गिरिजाकांतं कर्पूरधवलं शिवम् ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच

ममवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्प्रभो श्लोकाकुलानां लोकानां केन रक्षा भवेद्भ्रुवम् ॥ २ ॥  
 सप्राप्ते संकटे घोरे भूतप्रेतादिके भये दुःखदावाग्रिसतप्रचेनसा दुःखभागिनाम् ॥ ३ ॥

धारण करें । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होंगे । ६६ ॥ संसारमें मनुष्योंकी चाहिए कि सदा रामचन्द्रजीकी पूजा करें और प्रयत्न करके रामतीर्थमें स्नान करें ॥ ६७ ॥ सर्वदा इस आनन्दरामायणका पाठ करने हुए जन्म और मृत्युका दुःख दूर करनेवाले रामचन्द्रजीका ध्यान करते रहें । जन्हींकी स्तुति करें और जन्हींका गुणानुवाद गावें कहतेका भाव यह है कि रामचन्द्रक भजनक मित्राय कोई और काम न करें ॥१०१॥१०२॥ पहले हनुमत्कवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ किया करें । १०३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये बिना ही श्रीरामकवचका पाठ करते हैं, वे मानो अरण्यरोदन करते हैं इसमें कोई संशय नहीं है । १०४ ॥ सब स्तोत्रोंमें उत्तम तथा सब प्रकारके भयका निवारण करनेवाले श्रीरामकवचका पाठ सांसारिक मनुष्योंको अत्यन्त आवश्यक चाहिए ॥ १०५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! हम आपके मुखसे हनुमत्कवच और रामकवच सुनना चाहते हैं । मेरे ऊपर कृपा करके बतलाइए ॥ १०६ ॥ रामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं हनुमत्कवच और रामकवच इन दोनों कवचोंको कहूँगा । तुम सावधान होकर सुनो ॥ १०७ ॥ इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामनेज्याण्डेयविरचित'उपोत्सना भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक द्वार संसारका कल्याण करनेवाले शिवजी बैठे हुए थे । उसी समय पार्वतीजीने कहा—हे ममवन् । हे देवदेव ! हे लोकनाथ ! हे जगत्प्रभो ! जो लोग किसी प्रकारके शोकसे व्याकुल हों उनकी किस प्रकार रक्षा की जा सकती है ? जो लोग घर संग्राम, महान् संकट, भूत प्रेत आदिकी बाधाओं अथवा दुःखरूपी दावानलसे जल रहे हों, उनके उद्धारार्थ कौन उपाय किया जा सकता है ? । १३ ।

मृगु देवि प्रवक्ष्यामि लोकानां हितक्षाम्यया । विभीषणस्य रावेण प्रेम्णा दत्तं च पशुम् ॥ ४ ॥  
 कवचं कविनाथस्य वायुपुत्रस्य धीमतः । गुह्यं तत्ते प्रवक्ष्यामि विशेषाच्छृणु सुन्दर ॥ ५ ॥  
 लघदादित्यसंकाशमुदात्तभुजत्रिकमम् । कंदर्पकोटिलाचरणं सर्वविद्यान्धारदम् ॥ ६ ॥  
 श्रीरामहृदयानन्दं मन्त्रकल्पमहीरुहम् । अमरं वरदं दोर्म्यां कलये माह्वान्मजम् ॥ ७ ॥  
 हनुमानं जनीसुतुर्वायुपुत्रो महारथः । रामेष्टः काल्पानुमयस्य विगाधोऽमितविक्रमः ॥ ८ ॥  
 उदबिम्बवर्णमैव सीताशोकविनाशनः । लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा ॥ ९ ॥  
 एवं द्वादश नामानि कर्षीद्रव्य महात्मनः । स्वापकाले शोभे च यात्राकाले च यः पठेत् ॥ १० ॥  
 तस्य सर्वमयं नास्ति शोच्यं च वितपी भवेत् । राजद्वारे गह्वरे च भव नास्ति कदाचन ॥ ११ ॥

उल्लस्य मित्रोः सलिल मलालं यः शोकवह्निं जनकन्मजायाः ।

अदाव तेनैव ददाह तर्कां नयामि तं प्राणलिङ्गजनेयम् ॥ १२ ॥

ऐनको हनुमते सर्वग्रहान् भूतमविष्यद्वर्तमानान् समीपस्थान् सर्वकालदुष्टबुद्धीनुच्चाट्य  
 परबलान् क्षोभय मम सर्वकार्येणि साधय माधव अँहां ह्रीं कृत् । वे वे वे अँश्वरसिद्धे  
 अँहां अँहीं अँह् अँहं अँहो अँहः स्वाहा । परकृतयश्चमन्त्रपगाहकारभूतप्रेतापिशाचवृष्टिष्वविघ्न-  
 दुर्जनचेष्टाकुविद्यामर्षोद्दिग्गमानि विवारय निवारय बन्ध बन्ध लुठ लुठ विलुं च विलुं च किलि किलि किलि  
 सर्वकृष्णानि दुष्टबाध अँहत् स्वाहा । अँहस्य श्रीहनुमत्करचस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीगमचन्द्र शक्तिः ।  
 श्रीहनुमान् परमत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । मास्तुतात्मज इति वीजम् । अत्रनीधस्तुतिर्ते शक्तिः ।  
 लक्ष्मणप्राणदातेति कीलकम् । रामदूतयेत्यस्त्रम् । हनुमान् देवता इति कुवचम् । विगाधोऽमित-  
 विक्रम इति मन्त्रः । श्रीरामचन्द्रप्रणवा रामचन्द्रप्रार्थनार्थं मम सकलकामनामिदं यत्तु अपे विनि-  
 योगः । मर्धागुलिन्पासः । अँहां अजर्नस्तुताय अगुष्टाभ्यां नमः । अँहां रुद्रमूर्तये तजनीभ्यां नमः ।  
 अँह् रामदूताय मध्यमाभ्यां नमः । अँहं वायुपुत्राय अनामिकभ्यां नमः । अँहां वाग्मनाय कनिष्ठ-  
 काभ्यां नमः । अँहः नमस्तु निवारणाय परबलकापृष्टाभ्यां नमः । एवं हृदयार्थगन्यासं कृत्वा ।

अथ वयातम्

स्वायैद्रालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापरं

शोभहादेवजोने कहा है देवि । मैं मन्वाको कल्याणकामनासे तुम्हें यह हनुमत्कवच बतलता हूँ, जिसे  
 रामने विभीषणको दिया था । यद्यपि यह एक गुप्त वस्तु है, फिर भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ । हे मुन्दरो ।  
 सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ उदयकालीन सूर्यके समान प्रकाशवान्, लम्बी भुजाओं और अनुपम पराक्रमवाले, करोड़ों  
 कामदेवके समान सुन्दर, सब विद्याओंमें विगारद, श्रीरामजीके हृदयके मास्त्र वेनवाले, भक्तोंके लिए  
 कल्पवृक्षके समान मधुरहित एवं वरदाता हनुमान्जीकी मैं हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥  
 हनुमान्, अजङ्गनीपुत्र, वायुपुत्र, महाबलवान्, रामके प्रिय, कर्तुनके मित्र, पीली माँसावाले, अन्तर्बल-  
 वाली, समुद्रको क्षमिनेवाले, हाताका शोक नष्ट करनेवाले, लक्ष्मणक प्राणदाता, रावणको अभिमान दूर करने-  
 वाले, इन बारह नामोंको जो मनुष्य सीते या आगत समय अथवा कहीं जाते समय पढ़ता है, उसे  
 कहीं किसी प्रकारका भय नहीं रह जाता और स्याममे उसकी विजय होती है । राजद्वार-कन्दरा आदि किसी  
 भी स्थानमें उसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता । जिसने समुद्रको जलराशिको सेल सेलमें क्षोभकर होताको  
 शोकविपी नागको लेकर उससे सारी लका जसाकर राल कर बली, ऐसे हनुमान्जीको मैं हाथ जोड़कर  
 प्रणाम करता हूँ ॥ ८-१२ ॥ इस प्रकार प्रणाम करनेके अनन्तर 'ऐनको हनुमते सर्वग्रहान्' यहति लेकर  
 एवं 'हृदयार्थगन्यासं कृत्वा' उसके अन्वोका उच्चारण करता हुआ विनियोग और अंगन्यास आदि करे । प्रातः-

देवेन्द्रप्रभुनं प्रशस्नरहमं देदीप्यमानं रुचा ।

सुग्रीवादिममस्वशानमग्रुतं सुव्यक्ततन्त्रप्रियं

सम्कारणलोचनं पवनजं पीताम्बरालंकृतम् ॥ १ ॥

उद्यन्मार्गैश्चकोटिप्रकर्षविभुतं आरुचोरामनम्भं

मीजीयज्ञोपवीताभरणरुक्मिशिखं शोभितं कुण्डलीकम् ।

भक्तानामिष्टं तं प्रणम्युनिजने वेदनादप्रभोदं

व्यथेदेवविषेः एतन्मकुलपतिं गोपदीभूदवार्धिम् । २ ।

वज्राग पिङ्गकेशाख्यं स्वर्णकुण्डलमंडितम् । निगूरमुपगमस्य पारावारपराक्रमम् । ३ ॥

स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजं च कुलाजलिम् । कुण्डलद्वयमंशोभि सुवर्णभोजं हरिं भजे । ४ ॥

सख्यदहस्ते मदायुक्तं तामहम्ने कमण्डलुम् । उग्रदक्षिणदोदण्डं हनुमनं विचिंतयेत् ॥ ५ ॥

अथ मंत्रः

ॐ नमो हनुमते शोभिताननाय यशोऽलंकृताय भजनीयभेमम्भूताय रामलक्ष्मणानन्दाय  
रूपिसैन्यप्रकाशरपरितोषाटनाय सुग्रीवमाधकरणापरोच्चाटनकुमारवृद्धचर्यभंभीरश्वरोदय हौ सर्वदृष्ट-  
ग्रहनिवाणाय स्वाहा । ॐ नमो हनुमते यदि एहि एहि सर्वग्रहभूतानां आकिनीडाकिनीनां  
विषमदुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय ऐश्य ऐश्य मर्त्यान्मामय मामय शोषय शोषय  
प्रज्वल प्रज्वल भूतमण्डलविज्ञाचमण्डलतिरमगाय भूतज्वरप्रेतजडान्तुथिकज्वरमक्षराक्षमपिशाच-  
छेदनक्रियाधिष्णुज्वरमहज्वरान् छिधि छिधि वि वि विवि भक्षिगुले श्लिगेऽभ्यन्तरे क्षक्षिगुले गुल्मशूले  
पित्तशूले नगराक्षमकुलप्रचलनागकुलवेपनिविष झट ने झटिति ॐ ह्रीं फट् घे घे स्वाहा । ॐ नमो  
हनुमते पवनपुत्र वैद्यानमुखवापदृष्टिहनुमतेऽहो आत्राफुरे स्वाहा । स्वगृहे द्वारे पट्टके  
तिष्ठ तिष्ठति तत्र रोगगय राजकुलभर्या नास्ति तस्योत्पारणमात्रेण सर्वे ज्वरा नश्यन्ति ।  
ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ फट् घे घे स्वाहा ।

कालक मूढ सरीखा जिनका तेजस्वी स्वरूप है जो राक्षसोंका अभिमान दूर करनेमें समर्थ है और जो  
देवताओंमें एक प्रमुख देवता माने जाते हैं । जिनका प्रशस्न रत्न तामा ल'काम फेंका हुआ है ।  
जो अपनी जपधारण शोभासे दर्शनमान्य हो जाते हैं । सुग्रीव भादि बड़बड़ बान्तर जिनके साथ है ।  
जो मुदगत तत्त्वक प्रेमी है । जिनकी अंग अतिशय लाललाल है । पीले वस्त्रोंसे अलंकृत उस हनुमान्-  
जीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥ उदय होत हुए करे डो सुषोंके समान जिनका प्रकाश है । जो सुन्दर  
बोरासनसे बँडे हुए हैं । जिनके शरीरमें साजा मस्तकसे आदि पडे हैं और उनको किरणोंसे जो ओर भी  
जाभासम्पन्न दोस्त रहे हैं । जिनके कानोंमें पडे हुए कुण्डल अपना मरोहर भोभा दिखा रहे हैं । भनोंकी  
कामना पूर्ण करनेवाले, नृनिजानान दान्दित, बड़के मन्त्रोंकी आवा सुनकर प्रदक्ष हातेवाले, बानरकुलके  
अग्रणी और सनुओंकी ओके खुर भर नलकाला बना देवाले हनुमान्जीका ध्यान करना चाहिये ॥ २ ॥ वज्रके  
समान कठोर जिनका शरीर है, मस्तकपर पीला केश भुकोभित हो रहा है और कामोंमें सुवर्णके कुण्डल पडे  
हैं, ऐसे हनुमान्जीका मैं अतिशय आग्रहक साथ ध्यान करता हूँ । क्योंकि उनके पराक्रमरूपा समुद्रकी कोई  
बाहू नहीं है ॥ ३ ॥ स्फटिकमणिक समान ममजा सुवर्ण सरीखी जिनकी कान्ति है, दो भुजायें हैं, जो हाथ  
जोड़े खडे हैं, दोनों कानोंमें पडे हुए सुवर्णके कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं ऐसे कमलके समान सुन्दर मुखवाले  
हनुमान्जीका मैं ध्यान करता हूँ । ४ ॥ जिनको द हिना भुजायें मदा है, साथ हाथमें कमण्डलु है और जिनकी  
दाहिनी भुजा कुछ ऊपर उठी हुई है, ऐसे हनुमान्जीका ध्यान करता चाहिये । ५ ॥ अथ मन्त्रः—“ॐ  
नमो हनुमते” यहूषि लेकर ‘हा, हा, हूँ, फट् घे घे स्वाहा’ यहाँ तक हनुमत्कवचमन्त्र कहा गया है ।

**ਭੀਰਮਚੰਦ੍ਰ ਰਵਾਥ**

हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणे वचनन्मज्ज । पातु प्रतीकपां गभोदनः पातु सागरवर्धनः ॥ १ ॥  
 उदीच्यामूर्धनः पातु केतरोदियनन्दनः । अथन्तु रिणुवकन्तु पातु मध्यं च वायनिः ॥ २ ॥  
 ललाविदाहकः पातु सर्गपट्टया निगन्तम् । सुग्रीवचरित्रः पातु मन्दक वायुनन्दनः ॥ ३ ॥  
 शालं पातु महाजारी अवीमध्ये निगन्तम् । नेत्रे छायापदार्थी च पातु नः प्लवंगेश्वरः ॥ ४ ॥  
 कपोले कर्णमूले च पातु श्रीगणेशिका । नासग्र्यर्त्तमानु पातु गङ्गा दराश्वरः ॥

याचं स्तुष्टिः पातु जिह्वा शिखरमोचनं ॥ ५

पातु देवः कान्तगुनेशश्चिबुक्तं देवदत्तं । पातु कण्ठं च ईशानिः कनकं वा सुगन्धिधः ॥ ६ ॥  
 भुजो पातु महाभोजः कुर्याच्च चक्रादुधः । स्वर्गात्पातु पातु कुर्याच्च चक्रादुधः ॥ ७ ॥  
 वसो मुद्रापहातो च पातु पार्श्वे भुजयथ । ललाटे च पातु पातु पातु पातु ॥ ८ ॥  
 नाभि च रामदुग्धं कर्दि पञ्चमालम्भनम् । गुह्यं पातु महाप्राज्ञो लिङ्गं पातु जिह्वस्थिधः ॥ ९ ॥  
 ऊरु च ज्ञानुनी पातु ललाटे मादमनतः । जघने पातु रुदिश्रेष्ठो गुह्यं पातु महाभलः ॥

प्रत्यक्षद्वारा २१। दोनो मरुभूमिनिम्न । १ । ॥

अङ्गान्पमितसत्त्वाद्वाः पान् पार्श्वगुह्योन्मत्ता । मर्शगात्रि मगशः पान् रे व णि तान्म वेत् ॥१॥  
 इनुमन्त्रवच यन् पठेद्विद्या-नवधः । म एव पुरुषभेष्टो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥१२॥  
 त्रिशल्मेककाल वा पठेन्म मन्त्रं नरः सर्वान् रिदून् भूषाञ्जिन्वा सपुमान् श्रियमाप्नुयान् ॥  
 मय्यरात्रि तले स्थित्वा यमगारं पठयति । भगवत्पाराङ्कुष्टादिनापत्रपां जेतव्यम् ॥१४॥

अब हनुमानकवच प्रारम्भ होता है । १ ॥ १ ॥ तत् सर्वेन्द्राणां पुर्वे लिखितं रक्षा कर पञ्चात्मजे दक्षिणे दिशाका रक्षा कर और अधोत्प । २ ॥ २ ॥ मध्यभागे, हनुमान्जी दक्षिण दिशाकी रक्षा कर ॥ ३ ॥ समुद्रकी पार करनेवाले हाथीद्वारा लाने वाला रक्षा कर, वन के पितृपुत्र जाति के रक्षा कर, नौकरी और विष्णु भक्त रक्षा कर, मध्यभागकी रक्षा कर ॥ ४ ॥ ४ ॥ गन्ध प्रकाशक प्राणी होने लक्ष्मणकी रक्षा करने वाले रक्षा करें, सुगन्धके मन्त्रों मस्तककी रक्षा कर, गन्धुन-द्वारा रक्षा करने वाले रक्षा कर, कोड़क मध्यभागकी रक्षा करने वाली रक्षा करें, छायाका अपहरण करनेवाले हुताग्नेय रक्षा करने वाली रक्षा कर ॥ ५ ॥ ५ ॥ कबीरोंका अक्षरभर रक्षा करें, श्रीरामचन्द्रजीके सेवक कानके मुख रक्षा कर, नासिक की अर्धभागका अक्षरानुगुणा कर, हृत्पञ्च मुखकी रक्षा करें ॥ ६ ॥ ६ ॥ रुद्रप्रिय शक्यकी रक्षा कर, ७ ॥ शीघ्रा ८ ॥ तुम्हारी जिह्वाकी रक्षा करें, धनुनके भिन्न श्रीहनुमान्जी चिबुकभागकी रक्षा करें, ९ ॥ रक्षा रूप १० ॥ करन करने वाला रक्षा करें, चरणसे आमुषका काव सेनेवाले हाथकी रक्षा करें, नलके आमुष घातण करनेवाले हनुमान् तलाकी रक्षा करें, कपिलके श्वर कुक्षिकी रक्षा करें ॥ ११ ॥ ११ ॥ मुद्राका अपहरण करनेवाले अश्वमेधकी रक्षा कर अश्वमेध ही शक्यका काम लेने वाले वासुधादकी रक्षा कर, रक्षाका शिलाश करनेवाले मरुतृणभागकी रक्षा करें ॥ १२ ॥ १२ ॥ रत्नके दूत नाभिभागकी रक्षा करें, वायुके पृथक् विभागकी रक्षा करें, मन्त्रानुगुणाकी गुणभागकी रक्षा करें शिवके द्विज लिखी रक्षा करें ॥ १३ ॥ १३ ॥ नलके शालाशरीर लाने करनेवाले चर्मकी तला जातुभागकी रक्षा कर, कपिलप्र जयकी रक्षा करें, महाबलवान् पुष्कलभागकी रक्षा कर ॥ १४ ॥ १४ ॥ पर्वतकी उर्वर इनेवाल मरे दानो पैरीकी रक्षा करें, सुगन्ध समान कलित की हनुमान्जी मेरे पमस्त अंगका रक्षा कर, अमित कल्पवृक्ष हनुमान्जी मेरे पैरकी अर्गुलि-योकी रक्षा करें, महाशूरवीर मरे सब अङ्गकी रक्षा कर, आमासी जन्तेश्वर हनुमान्जी मेरे शरीरको समस्त रोगसे रक्षा करें ॥ १५ ॥ १५ ॥ ओं श्री विष्णवे विद्मः इमं हनुमान्कवचं पाठ करता है, बड़े सब पृथ्वीमें बोल होता है और सभी भुक्त-भुज्जित सबको मिलती है ॥ १६ ॥ १६ ॥ ओं मन्त्र के पाठ गहरा तक तीनों काल जबया एक ही हाथमें इस हनुमत्कवचका पाठ करता है, वह सब शत्रुओंको पराजित करके अगुल कर्मोंका भंडार प्राप्त करता है ॥ १७ ॥ १७ ॥ यदि किसी रत्नके समय जन्ममें सदा होकर सात बार इस कवचकी पाठ करे तो भय, अपरकार, दुष्ट एवं वैदिक, वैदिक और भौतिक ये तीनों प्रकारके ताप दूर हो जाते हैं ॥ १८ ॥

अधश्चमूलेऽर्कवारे स्थित्वा पठति यः पुमान् । अचलां श्रियमाप्नोति मंत्राग्ने विशयं तथा ॥१५॥  
 बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयन्मरोगताम् । सुदृढं वाक्पुङ्गव च हनुमन्मरणाद्भवेत् ॥१६॥  
 माणवैरिणां मद्यः शरणं सर्वमप्यदाम । श्लोकस्य हारणे दध्मं वदेत् तं रणदारुणम् ॥१७॥  
 लिखित्वा पूजयेद्यस्तु सर्वत्र विजयी भवेत् । यः करे द्वायेष्वित्य स पुमान् श्रियमाप्नुयात् ॥१८॥  
 स्थित्वा तु बन्धने यस्तु जपं कारयति द्विजैः । नक्षत्रान्भुक्तिमाप्नोति विगदान् तथैव च ॥१९॥

ईश्वर उवाच

मान्निदोभ्रणारविंदयुगलं कौशीनभौजीधरं कांचिश्रंणिधरं दृढलवमनं यज्ञोपवीताजिनम् ।  
 हस्ताभ्यां धृतपुष्पकं च त्रिलपद्मागवलिं कुण्डलं यज्जालं विक्षिप्यं प्रमन्नवदनं श्रीवायुपुत्रं भजे । २०॥  
 यो वारानिधिमन्त्रपञ्चलापिवीर्यलंघ्य प्रतापान्वितो वंदेहीघनशोकनापहरणो त्रैकुण्ठभक्तप्रियः ।  
 अधाद्यजित्ताम्रसेश्वरमहादर्पापहारी त्वमे मोऽयं वानरपुङ्गवोऽवतु सदा योऽस्मान्ममीताम्भजः ॥२१॥

वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसकुण्डलाकांतगण्डं  
 दम्भोलिस्तंभसारं प्रहरणमुदरार्धभुजगभोविनायम् ।  
 उग्रशलागूलसप्तप्रचलचलधरं भीममूर्तिं करीन्द्र  
 प्यायेत्त रामचन्द्रं प्रवरदृढकरं सच्चसारं प्रमन्नम् ॥२२॥  
 वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसकुण्डलं शोभनीयं  
 सर्वापिदयदिनाथं करतलविधृतं पूर्णकुम्भं दृढं वा ।  
 भक्तानामिष्टकारं विदधति च सदा सुप्रमन्नं द्वापदं  
 त्रैलोक्यप्राप्तुकामं सकलभूतिं यत्नं राघवदत्तं नमामि ॥२३॥

श्री मनुष्य रविवारको दोपलके नीचे बैठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, (उसे) बचल लक्ष्मी प्राप्त होती है और वह विजयी होता है । १५ । बुद्धि, बल, पण, धैर्य निर्भयता, अरोगता, दृढ़ता और वाक्पुङ्गव, ये सब हनुमान्जीके रथानसे प्राप्त हो सकते हैं ॥ १६ ॥ जो सब वैरियोंको मारनेवाले और सब संपत्तियोंके निधान है, जो शोकका क्षयरण करनेमें अतिशय कुशल है, ये उन रणदारुण हनुमान्जीको प्रणाम करता है ॥ १७ ॥ श्री मनुष्य लिखकर इस कवचका पूजन करता है, वह सत्र विजयी होता है और जो अपनी मुखाग्नमें हुयेला बांधे रहता है, उसे लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ यदि प्रणी कितो तरह बन्धनमें पड़ गया हो, वह बाह्यणों द्वारा इस कवचका जप कराये तो तरुण भवनमें मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ शिवजी बाल सुय और कद्रमाक समान आभासम्पन्न जिनके चरणकमल हैं, जो कोपीन और भीमो धारण किये हैं, जो काकी श्रेणियों को पहने हैं, वस्त्र धारण किये हैं यज्ञोपवीत तथा मुण्डभस्म अलग भुजोर्मित रहा है, जो हाथमें पुस्तक लिखे हैं और धमकता हुआ हार जिनके वक्षःफलपर मुण्डोर्मित हो रहा है ऐसे प्रसन्न मूलवाले वायुपुत्रको मैं प्रणाम करता हूँ । जो समुद्रको एक सामाग्य लहैया क्षयकर लीध गये, जिन्होंने सोताके महाभीक और तापको हार लिखा, विष्णु भगवान्को अलिके प्रेमी, संग्राममें अक्षरकुमार आदि उद्दंड राक्षसोंके दर्पको दूर करनेवाले वानर पुंगव तथा वायुके पुत्र हनुमान् हमारी रक्षा करें । जिनका वज्रके समान शरीर है, पोलो-रीलो आँखें हैं, सुवर्णमय कुंडलोंसे जिनका कपोलभाग भरा हुआ है, नजरतोंके समान जिनका भजवत् शरीर है, राक्षसका मारनेके लिए जिन्हें कुरुरक्ष ण्डय मिल गया था, उन पुंछ ऊपर उठाये सात पर्वतोंको लखे और भयङ्कर रूपवारी हनुमान्जीका प्रणाम करना चाहिये । साथ ही तब आरामचन्द्रजीका भी स्नान करना उचित है, जो सब सत्त्वोंके सार है और सदा प्रसन्न रहते हैं । २०-२२ ॥ वज्रके समान कठिन जिनकी देह है मुनर्षके कुंडल जिनके कानोंमें गड़े हैं, जो सब माधूयणोंके स्वामी हैं, जिन्होंने अपनी हुयेलीसे पूर्णकुम्भको धारण कर रक्खा है, जो भक्तोंको कामना पूर्ण करते हैं, जो सर्वदा प्रसन्न रहते हैं और हीनों लोकोंकी रक्षा करनेका कामना रखते हैं, समस्त भुवन

कामे करे वैरिभिर्दं वहांतं सैलं परं मृदुलहाटकंम् ।  
 दधानमादृष्टाय सुपर्णवर्णं भजे ज्वलन्कुंडलमांजनेयम् ॥२४॥  
 पथरागमणिकुंडलन्विता पारुषीकृत्तकपोलमंडलम् ।  
 दिव्यदेहकदलीचरनीतरे भावयामि पद्ममानन्दनम् ॥२५॥  
 यत्र यत्र रघुनाथकर्तारं तत्र तत्र कृतमस्तकानतिम् ।  
 काप्सरारिव निष्पूर्णलोचनं मारुतिं नमस्त राक्षसानिकम् ॥२६॥  
 मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां नमिषुम् ।  
 नाताम्रजं धामरघुधमुल्यं श्रीगामदूर्तं शिरसा नमामि ॥२७॥

विवादे दिव्यकले च घृते रात्रकुले रणे । दक्षिणं पटेद्रात्री मितहागे जितेन्द्रियः ॥२८॥  
 विजयं लभते लोके मानवेषु नरेषु च । भूते प्रेते महादुर्गेऽप्येव मागर्मप्लवे ॥२९॥  
 सिंहव्याघ्रधये चंघ्रे शरशस्त्रास्त्रपानने । भृंग्यलार्धवने चैव कामागृहयिष्वधने ॥३०॥  
 क्रोषे स्तम्भे बाहिवक्त्रे भेदे घोरे मुद्राकणे । शोके मदारणे चैव भ्रमग्रहनिचक्षणम् ॥३१॥  
 मर्ददा तु पटेन्नित्यं जयमाप्नोति निश्चितम् । भूर्जे वा वयने रत्ने श्रीधरे वा तान्त्रपत्रके ॥३२॥  
 त्रिशंभिना वा मध्या वा विलिख्य धारयेन्नरः । पञ्चमत्रिलोहैर्वा गोपितः सर्वतः शुभम् ॥३३॥  
 करे कट्यां बाहुभूले कंठे शिरसि धारितम् । सर्वान्कामनवाप्नोति सत्यं श्रीरामभाषितम् ॥३४॥  
 अपराजितं नमस्तेऽस्तु नमस्ते रामर्तुजित । प्रस्थानं च कर्त्तव्यमि विद्भिर्भवतु मे सदा ॥३५॥  
 ह्युक्त्वा यो वजेद्दूषां देवं तीर्थान्तरं गणम् । आगमिष्यामि शीघ्रं नु क्षेमहृयो गृहं पुनः ॥३६॥

इति वदति विशेषाद्राघवं राक्षसेन्द्रः प्रमुदिनवरचितो रावणस्यानुजो हि ।

रघुवरपदवर्णं वदयामास भूयः कुलमहितकुतार्थः सुर्मद मन्यमानः ॥३७॥

गुप्तनम विराजमान रत्न रामदूत हनुमान्जीकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ जो वीरों हाथमें शत्रुओंको मारने  
 वाला परमंत लिये हैं, जिनके कण्ठमें भृङ्गलालाका हार और देहोपमान मृगवर्णका कुण्डल बानोंमें पड़ा हुआ है,  
 मैं ऐसे हनुमान्जीकी प्रणाम करता हूँ ॥ २४ ॥ कुण्डलमें जड़ हुए पुष्कराक्ष मणिकी कान्तिसे जिनका कपोल  
 पाटल वर्णका हो गया है, केलेके वनमें खड़े और दिव्य रूप धारण किये हनुमान्जीका मैं प्दान करता हूँ  
 ॥ २५ ॥ प्रह्लादजी रामकी कथा हानी है, वहाँ शायी भका तथा हाथ जातकर जो खड़े रहने हैं और बाँसूमें  
 बिनके नेत्र धरे रहने हैं, राजमाका अन्त कामेवाक उन हनुमान्जीकी प्रणाम करो ॥ २६ ॥ मनके समान  
 जिनका वेग है जिन्होंने इन्द्रियोंकी जीत लियी है और जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ है, ऐसे वायुपुत्र एवं वानरधूयके  
 मुलिया श्रीरामदूतकी मैं भरतक झुककर प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ किसीसे बहम करते समय, बुद्धि भेलते  
 समय कण्ठ लाल सुन्दर, राजकुलम्, मणाममें और रात्रिमं मिहान्तर हाकर त्रिनन्दिनतापूर्वक दस बार जो  
 हस्त करचका पाठ करता है, वह सब मनुष्यों और जन्तुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है । भूत, प्रेत महादुर्ग,  
 अरुण्य और सागरमें बड़े जानवर, मिहगण्य आदिका सब आ जानेर, बाण तथा अस्त्र जन्तुके तिरनेपर,  
 जजोरेसे बँध जानेपर, कारागृहमें बन्द हो जानेपर जिसके कृपित होनेपर, अग्निकी जलमें पड़ जानेपर  
 किसी दारुण क्षयमें, शोकके भयमें, महायंगलमें और महागमकका निवारण करते समय इन सब समयोंमें  
 इसका पाठ करना चाहिए ऐसा करनेसे उसकी विजय होती है । भूर्जवन्धर, लाल कण्ठवर, रोगनी बस्त्रवर,  
 तालपत्रवर ॥ २८-३२ ॥ त्रिशंभु अपना रयाहीसे लिय एवं पञ्च, सप्त तथा त्रिलोहसे बनी ताबीजमें  
 रत्नकर हाथ, कमर, भुजा, कण्ठ या अस्तककर दो मनुष्य इसे बाँधता है, उसकी सब कामनाये  
 पूर्ण होती हैं । यह रामका कहा बचन कभी झूठ नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कभी भी पराजित नहीं  
 होनेवाले और रामसे प्रसिद्ध है हनुमान्जी । मैं आजकी प्रणाम करता हूँ । मैं जिस कामसे बाहर जा

तं वेदशास्त्रपरिनिष्ठितशुद्धबुद्धिं धर्मप्रदं सुगुणीन्द्रजुतं कर्णोद्गमम् ।

कुण्डलवचं कनकपिंगलटाकलापं व्यासं नमामि शिरसा तिलकं मुनीनाम् ॥३८॥

य इदं प्रातरुत्थाय पठेत् कवचं सदा । आपुराणैर्मयमंजानैस्तस्य स्तव्यः स्तवो भवेत् ॥३९॥

एवं गिरीन्द्रजे श्रीमद्भुमत्कवचं शुभम् । स्वया पृष्टं मया प्रीत्या विस्तरादिनिवेदितम् ॥४०॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिवमुखान्छ्रुत्वा पार्वती कवचं शुभम् । हनुमन्तः सदा भक्त्या पथाङ्ग वन्दनाः सदा ॥४१॥

एवं शिष्य त्वयाऽप्यत्र यथा पृष्ट तथा मया हनुमत्कवचं चेद् तथाये विनिवेदितम् ॥४२॥

इदं पूर्वं पठित्वा तु रामस्य कवचं ततः । पठनीयं नैर्मलक्या नैकमेव पठेत्कदा ॥४३॥

हनुमत्कवचं चात्र श्रीरामकवचं विना । ये पठन्ति नराधाम पठनं तद्गृहा भवेत् ॥४४॥

तस्मात्सर्वैः पठनीयं सर्वदा कवचद्वयम् । रामस्य ज्ञानपुत्रस्य मद्भक्तेश्च विशेषतः ॥४५॥

इति हनुमत्कवचम्

अथ रामकवचम्

इदानीं रामकवचं शृणु शिष्य वदामि ते । परं गुह्यं पवित्रं च सर्वगोष्ठितपूरकम् ॥४६॥

सुतीक्ष्णस्त्वैकदाऽमर्षितं प्रोवाच रहसि स्थितम् ।

भगवन् परमानन्द तत्त्वज्ञ कल्पानिधे । गुणे त्व मां वदस्वद्य स्तोत्रं रामस्य पावनम् ॥४७॥

आजानुवाहूमर्षिर्ददत्तापनायमाजन्मशुद्धरमहापदसुप्रभादम् ।

श्यामं गृहीतशङ्खापमुदाररूपं तम सराममभिराममनुष्मसामि ॥४८॥

शृणु वक्ष्याम्यहं सर्वं सुतीक्ष्ण मुनिमत्तम । श्रीरामकवचं पुण्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥४९॥

रहा हूँ, यह काम पूरा हो जाय ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर जा जिसो दूसरे गाँवको जाता है, वह कुण्डलपूर्वक अपना काम पूरा करके शीघ्र लौटता है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीके कहनेपर रावणके भ्राता विभीषण परम प्रसन्न हुए । उन्होंने रामके चरणोत्ती वन्दना की और मर्षिस्वार भगनेका अन्य माना ॥ ३७ ॥ समस्त वेदों और शास्त्रोंमें जिनकी बुद्धि प्रविष्ट है, देवता तथा मुनिगण जिनकी वन्दना करते हैं, ऐसे शुभदाता हनुमान्जी और जिनके शरीरकी त्वचा कृष्णवर्णकी है, सुवर्णके समान पालो जिनको जटा है, ऐसे मुनियोंके अपनी श्रोत्र्यासनोंको भी मल्लक झुकाकर प्रणाम करना है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य सच्चे उठकर सदा इस कवचका पाठ करता है, उसे आपु आरोग्य और सन्तान आदि सब वस्तुय प्राप्त हो जाती है और सब लोग उसकी स्तुति करने लग जाते हैं ॥ ३९ ॥ हे गिरीन्द्र ! जैसा तुमने प्रश्न किया, उसके अनुसार मैंने तुम्हें हनुमत्कवच बतलाया ॥ ४० ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! इस तरह शिवजीके मुखसे हनुमत्कवच सुनकर पार्वतीजीन उसी दिनसे तन्मयताके साथ उसका पाठ आरम्भ कर दिया ॥ ४१ ॥ जैसे तुमने पूछा, मैंने भी तुमका हनुमत्कवच कह सुनाया ॥ ४२ ॥ पहले इसका पाठ करके ही भक्तिपूर्वक श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिये । अकेले किसी भी कवचका पाठ न करे ॥ ४३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये बिना रामकवचका पाठ करेंगे, उनका वह पाठ व्यर्थ हो आयगा ॥ ४४ ॥ इस लिए सब लोगोंको चाहिए कि सदा दोनों कवचोंका पाठ किया करें । रामके चक्र तो इस बातपर विशेष ध्यान रख ॥ ४५ ॥ हे शिष्य ! अब तुमकी रामकवच बतलाता हूँ । यह भी परम श्रेष्ठ, परम पवित्र और सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला कवच है ॥ ४६ ॥ एक बार सुतीक्ष्णने अपने गुरु भगवन्को एकान्तमें देखकर कहा है भगवन् ! हे परमानन्ददास ! हे तत्त्वज्ञ ! हे कल्पानिधे ! आज हम श्रीरामचन्द्रजीका कोई पुनीत स्तोत्र सुनाइए ॥ ४७ ॥ भगवन्ने कहा कि आपुपरम जिनकी बाहु है, कमलदलके समान जिनके विशाल नेत्र हैं, जन्मसे ही जिनका प्रसन्नमुख है, जिन्होंने धनुष और बाणको धारण कर रक्खा है, जिनका उदार हृदय है, ऐसे अभिराम रामका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४८ ॥ हे मुनिसन्त

अद्वैतानन्दचैतन्यगुह्यमर्चकलक्षणः । बहिरतः सुनीक्ष्णाय रामचन्द्रः प्रकाशते ॥५०॥  
 सत्त्वविषादिनो निरय रमते चित्सुखात्मनि । इति रामपदेनामी परमशक्तिमिधीयते ॥५१॥  
 जय रामेति यन्मात्रं कीर्तयन्निवर्णयेत् । सर्वपापैर्दिनिर्मुक्तो याति रिपुः परं पदम् ॥५२॥  
 श्रीरामेति परं मन्त्रं तदेव परमं पदम् ।

तदेव तावत् विद्धि जन्ममृत्युमथापहम् । श्रीरामेति वदन् ब्रह्ममावसाप्नोन्ममंशयम् ॥५३॥  
 अस्य श्रीरामकरचक्षुः प्रगल्भ्यश्रुतिः मनुष्यकन्दः पातालक्ष्मणोपेतः श्रीरामचन्द्रो देवता  
 श्रीरामचन्द्रप्रसादमिदं श्रुत्वा जपे विनियोगः ।

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वाभीष्टफलप्रदम् । नीलजाम्बवकाश्च विद्युदण्डाश्चराचूतम् ॥५४॥  
 कोमलांग विशालाक्षं ध्रुवानमनेगुन्दम् । सीतामौमित्रिमहितं जटामुकुटधारिणम् ॥५५॥  
 सासितूष्णधनुर्वाणपाणिं दानवमर्दनम् । सदा चोरभये राजभये शत्रुभये तथा ॥५६॥  
 प्यास्वा रघुरतिं युद्धे कालानलमपममम् । चीरकृष्णाक्षिनधरं भस्मोद्गन्तविग्रहम् ॥५७॥  
 आकर्णाकुष्ठमश्वकोदण्डमुज्जमङ्गितम् । रणे गिरून् शत्रुणादीर्घास्त्रमार्गणवृष्टिभिः ॥५८॥  
 मरुतं महावारमुग्रमेद्रगन्धिनम् । लक्ष्मणार्यमहं वीरैर्भूतं हनुमदादिभिः ॥५९॥  
 सुग्रीवार्चमंदावीरैः कैलशकरोद्यतैः । वैशान्करालहृकारं भृशं शत्रुघ्नद्वारवहारैः ॥६०॥  
 नदद्भिः परिवादद्भिः समरे रावण प्रति । धीराम शत्रुघ्नपान्थे हन मर्दय स्वादय ॥६१॥  
 भूतप्रेतपिशाचादीन् श्रीरामास्तु विनाशय । एवं ध्यात्वा जपेत्तामकरचं सिद्धिदायकम् ॥६२॥  
 सुतीक्ष्णं पञ्चकवचं धृष्टं वक्ष्याम्यनुत्तमम् । श्रीरामः पातु मे पूर्ध्वं पूर्वं च पृथ्वंश्चतः ॥६३॥  
 दक्षिणे मे रघुरारः पश्चिमे पातु पावनः । उत्तरे मे रघुपदिर्भासं दशरथात्मजः ॥६४॥

सुनीक्षण ! सुनिष्ठ, मैं आज सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाला रामकरचक्षुः बतलाऊँगा ॥ ५१ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस संसारके बाहर-भीतर सब स्थानोंमें मैं अद्वैत, अनन्तस्वरूप, गूढ़ और सत्तागुणमय रामचन्द्रजी प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५० ॥ परमात्माके तत्त्वकी जाननेकी इच्छा रखनेवाले लोग जिसके चित्सुखमय आनन्द छूटते हैं, वे ही परब्रह्म 'राम' इस नामसे पुकारे जाते हैं ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य 'जय राम' इस मन्त्रका कीर्तन करता है, वह सब पापास दूर कर विष्णुप्राणवातुके परम पदकी प्राप्ति होता है । ५२ ॥ श्रीराम यह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है, यह परमपद है, यह मृत्युभय आदिको दूर कर देता है और मैं 'राम' कहता हुआ प्राणी परब्रह्मकी प्राप्ति होता है । इसमें कोई संशय नहीं है । विनयागके बाद सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला धरम बतला रहा है । जिनका नील मेषक समान श्याम शरीर है, जो बिजलीके समान चमकने लगे होने चमकते धारण किये हुए हैं, जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, जो अतिशय मृदुर और युवा हैं, जिनके माथे साना और लक्ष्मण विद्यमान हैं, जो जटामुकुट धारण किये हैं, तलवार, तरकस, धनुष-राण हाथमें लिये हैं और जो दानवोंका संहार करते हैं । मनुष्यका चाहिए कि राजभय, चोरभय और शत्रुभयका भय आ जाय तो कालानलके समान गूढ़ रामचन्द्रजीका ध्यान करे । जो वीरताम्वर तथा कृष्णमृगचर्म धारण किये हैं और अलिसे जिनका शरीर धूसरित हो रहा है ॥ ५३-५७ ॥ कानसक जिन्होंने धनुषकी डारी खींच रखी है मयागभूमिमें रावण आदि राक्षसोंपर जो तोड़ग बाणवृष्टि कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ इन्द्रके रथपर बैठे जो महावीर शत्रुघ्न संहार करनेमें लगे हुए हैं और जो लक्ष्मण हनुमान्जी आदि वीरोंसे घिर हुए हैं ॥ ५९ ॥ जिनके साथ मृगचर्मा आदि मोड़ा हाथमें पाषाणसङ्घ और बड़े-बड़े वृक्ष लिये बाणोंका संहार कर रहे हैं । ऐसे हैं राम ! इसका भारो—इसको जानाओ और भूल प्रेत, पिशाच आदिको नष्ट कर दो । इस प्रकार रामचन्द्रजीका ध्यान करके सिद्धिदायक रामकरचक्षुःका जप करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ भगवत्पूजा कहते हैं कि हे सुतीक्ष्ण ! मैं अक्षिपय उत्तम पञ्चकवच कहता हूँ । श्रीराम मेरे अस्त्रक और पूर्व दिशाको रक्षा करें । दक्षिणकी ओर रघुवर तथा



भ्रुवोर्दृषादलदवायस्तयोर्मध्ये जनार्दनः । ओत्र मे पातु राजेशो दृष्टौ राजीवलोचनाः ॥६५॥  
 प्राण मे पातु राजपिंगेद मे जानकीपतिः । कर्णप्रले सुखध्वंसो मार्ज मे रघुवल्लभः ॥६६॥  
 जिह्वा मे वाक्पतिः पातु दंतवन्त्रयो रघून्ममः । ओष्ठी श्रीरामचन्द्रो मे मुखं पातु परात्परः ॥६७॥  
 कंठ पातु जगद्गुरुः स्कन्धौ मे रावणांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदय हरिः ॥६८॥  
 सर्वाण्यंगुलिपर्वणि दस्तौ मे राक्षसांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदय हरिः ॥६९॥  
 स्तनौ सीतापतिः पातु पार्श्वौ मे जगदीश्वरः । मध्य मे पातु लक्ष्मीशो नाभि मे रघुनायकः ॥७०॥  
 कौमन्धेयः कटि पातु पृष्ठं दुर्गतिनाशनः । गुह्यं पातु हृषीकेशः सन्निधौ सत्यविक्रमः ॥७१॥  
 ऊरु शार्ङ्गधरः पातु बाहुनी हनुमन्निग्रहः । जघ्ने पातु जगद्गुरु पी पादौ मे तटिकांतकः ॥७२॥  
 सर्वाणि पातु मे विष्णुः सर्वमधीननामयः । ज्ञानेन्द्रियाणि प्राणार्दीन्पातु मे मधुसूदनः ॥७३॥  
 पातु श्रीरामभद्रो मे शब्दादीन्विषयानपि । द्विषदादीनि भूतानि मत्सर्वधानि चानि च ॥७४॥  
 जामदग्न्यमहादर्पदहनः पातु तानि मे । सौमित्रिपूर्वजः पातु वामादीनीन्द्रियाणि च ॥७५॥  
 रोमांकुशण्यशेर्षाणि पातु सुप्रोवराज्यदः । बाह्मनोबुद्धयहकारिहोनाशनकृतानि च ॥७६॥  
 जन्मान्तरे कृतानीह पापानि विविधानि च । तानि सर्वाणि दम्बाश्च हर्षकेदहसुडनः ॥७७॥  
 पातु मां सर्वतो रामः शार्ङ्गनाथधरः सदा । इति श्रीरामचन्द्रस्य कवच वचनमिति ॥७८॥  
 गुह्याद्गुह्यतम दिव्य सुतोक्ष्ण मुनिमत्तम यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहितः ॥७९॥  
 स याति परमं स्थानं रामचन्द्रप्रसादतः । महापातकपृक्तो वा गोघ्नो वा भ्रूणहा तथा ॥८०॥  
 श्रीरामचन्द्रकवचपठनाच्छुद्धिमाप्नुयात् । मयहन्यादिभिः पार्ष्ण्यैर्न्यते नात्र संशयः ॥८१॥

पश्चिमकी पावन ( पवनपुत्र ) रक्षा कर । ऊपरकी और उपरति और लडाटकी दणरयात्मज रक्षा करें । दूरदिकके समान ज्योति जनार्दन श्रीशिवके मध्यभागकी रक्षा कर । कानोको राजेन्द्र मालिकी राजीवलोचन ॥ ६३-६५ ॥ नाककी राजपि, मंडस्थलकी जानक पति, कर्णभूमकी सुखध्वंस और रघुवल्लभ ललाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ उमो प्रकार जिह्वाकी रक्षा वाक्पति, दन्तवन्त्रका रघुन्मम दाते हुंठा और मुखकी रक्षा परात्पर भगवान् करें ॥ ६७ ॥ कंठकी जगद्गुरु दोनों कन्धा रावणांतक और मेरी दोनों भुजाओंकी रक्षा शालिको मारनेवाले धनुर्वणिधारी राम करें ॥ ६८ ॥ मेरी सब उंगलियों और दोनों हाथोंका रक्षा राजसामंतक, वक्षस्थलकी काकुत्स्थ और हरिभागवान् मेरे हृदयका रक्षा कर ॥ ६९ ॥ दाया स्तनाका सीतापति, पारवमायकी जगदीश्वर, मध्यभागकी स्कन्धापति और नाभिकी औरगुनराज रक्षा करें ॥ ७० ॥ कयरकी कौमन्धेय, पीठकी दुर्गतिनाशन, गुप्तभागकी हृषीकेश और सत्यविभ्रम भगवान् हृष्टियोंकी रक्षा कर ॥ ७१ ॥ बाहूधर भगवान् दोनों घुटनोंकी, हनुमानजीके प्रिय दोनों आनुभागका, जगद्गुरु दायाँ बायाँ और ताड़काका नाश करनेवाले मतवान् मर पेशकी रक्षा कर ॥ ७२ ॥ विष्णुभगवान् मेरे सब अङ्गोंकी, अनामय मेरे शरीरकी, सन्निधौकी और मधुसूदन भगवान् मेरे प्राणादि तथा ज्ञानेन्द्रियोंकी रक्षा कर ॥ ७३ ॥ श्रीरामभद्र मेरे शब्दादि विषयोंकी रक्षा कर । मुखसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने दो ईरक बन्तु ( मनुष्य ) हों, उनको रक्षा महान् दर्पको नष्ट करनेवाले परशुनाथ भगवान् करें । सौमित्रिपूर्वज ( राम ) मेरी बाक् आदि इन्द्रियोंकी रक्षा कर ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ सुप्रोवको राघव देनेवाले श्रीरामचन्द्रको मेरे सारे रोमक्योंकी रक्षा करे । मन, बुद्धि, अहङ्कार, माद एव अज्ञानसे किय हुए इस जन्म तथा जन्मन्तरके पापोंका जलाकर घट्ट करत हुए शिवजीका धनुष छोड़नेवाले धनुर्वणिधारी धाराम मेरी सब और रक्ष कर । हे मुनिस्तम मुनिमत्त । यह वज्रसदृश रामकवच गुरुसे भी गूढ़ है । जो प्राणी इसे पढ़ता, सुनता या वृत्तोंकी सुनता है, वह रामचन्द्रकी कृपासे परम भगवकी प्राप्ति करता है । वह चाहे महापातकी, गोघाती वा भ्रूणहत्याकारी ही क्यों न हो ॥ ७६-८० ॥ इस श्रीरामकवचका पाठ करनेसे प्राणा शुद्ध होकर ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे भी मुक्त हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है ।

भोः सुदीक्ष्य यथा पृष्टं त्वया मम पुरा शुभम् । तथा श्रीरामकवचं मया ते विनिवेदितम् ॥८२॥

श्री रामदास स्वामी

एवं शिष्य त्वया पृष्ट श्रीरावकवचं वरम् । हनुमत्कवचं चापि तथा ते विनिर्दिष्टम् ॥८३॥

वायुपुत्रस्य रामस्य कदम्बेऽथ नरैर्मुषि । विना सीताकवचेन पृथगीयं न वै कदा ॥८४॥

आदौ पठित्वा कवचं वायुपुत्रस्य धीमताः । पठनीयं ततः सीताकवचं सौख्यवर्द्धनम् ॥८५॥

ततः श्रीरामकृष्णं पठनीये महत्तमम् । एवमेव हि मन्त्राश्च जपनीयास्तथाः क्रमात् ॥८६॥

विष्णुदास सुबाब

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सोतायाः कवचं शुभम् । तथान्यान्यपि वैदेहाः स्तोत्रादीनि वदस्व तत् ॥ ८६ ॥

सीतायास्तोपद् भूम्यां तत्सर्वं विस्तरेण च ।

શ્રીમહાદેવ હયાત

इति तद्वचनं श्रुत्वा रामदासोऽब्रवीद्वचः ॥८८॥

इति श्रीमदानन्दरामायणं वाल्मीकीये मन्त्रोद्धरकाण्डं कवचद्वयवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

**चतुर्दशः सर्गः**

( सीताकवच आदिका निरूपण )

श्रीरामदास इत्यादि

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि सीतायाः कथञ्च शुभम् , पुरा प्रोक्तं सुतीक्ष्णाय पृच्छते कुंभजन्मना ॥ १ ॥

एकदा कुम्भजन्मान सुतीक्ष्णः प्राह वै मुनिः । एहं स्थितं गुरु दृष्ट्वा प्रणम्य भक्तिपूर्वकम् । २ ।

सुर्वे क्षम उद्य।प

सुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः प्रीतिदानि हि ।

यानि स्तोत्राणि कथाणि तानि त्वं वक्ष्यमर्हसि ॥ ३ ॥

अगस्तिन सूत्राच्च

सम्पदं पृष्टं त्वया वन्तः सावधानमनः शृणु । भद्रौ वक्ष्याम्यहं त्व्यं सीतायः कवचं शुभम् ॥ ४ ॥

॥ ८१ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! जैसा तुमने मुझसे पूछा था, मैंने श्रीरामकवच सुन्ना दिया । ८२ ॥ श्रीरामदास कहते हैं-हे विष्णु ! तुमने हमसे श्रीरामकवच और हनुमत्कवच पूछा था, तां मैंने कह चुकाया । ८३ ॥ रामकवच तथा हनुमत्कवचका पाठ सीताकवचके बिना न करना चाहिए । ८४ ॥ पहले बुद्धिमान् वायुपुत्रके कवचका पाठ करके सुख बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करना चाहिए । ८५ ॥ उसके बाद सर्वश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रकवचका पाठ करना चाहिए । इस तरह इन तीनों कवचोंका एक साथ पाठ करे । ८६ ॥ विष्णुदासने कहा-हे गुरु ! मैं सीताकवच तथा सीताके खन्यान्व स्त्रीवोंको सुनना चाहता हूँ, सो आप मुझसे कहिए । ८७ ॥ जिससे सीताजी प्रसन्न हो सकें, वह सब स्तुतिपौ विस्तारपूर्वक कहें । श्रीमद्वादेवजोने कहा कि इस प्रकार विष्णुदासकी बात सुनकर रामदास बोले । ८८ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमद्वातन्दरामायणं पं० रामतेज-पाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहितं मनोहरकाण्डं त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

श्रीरामदास कहते लगे—हे शिष्य ! अब मैं सीताकवच पहलाता हूँ, जिसे अगस्त्यजीने मुहीक्षणसे कहा था ॥ १ ॥ एक बार जब कि अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे थे, सतीश्वरने आकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—हे गुरु ! मैं सीताजीको प्रसन्न करनेवाले स्तोत्र और कवच सुनना चाहता हूँ। आप कृपा करने

या सताऽर्चनितश्च ५४ गन्धर्वैश्चैत मय्यर्चिता पद्माञ्जनूदयेः सुता नन्दगता या मातुलुङ्गोद्भवा ।  
 या रत्ने लयम गता उन्म नर्ध्वं सा उपाय गत उन्म या ना मृगला च ना दाशमूखा मां पानु रामप्रिया॥५॥

[illegible]

## नयं ध्यानम्

सौता कमलपत्रार्थी विद्यन्मुञ्जयममाम् । द्विभुजां मुरुषारंगीं पञ्चकेशेयत्रागिर्भाम् । ६ ।

मिहामुने रामचन्द्रवामभयमिहामुने ॥ ७ ॥

गृहाककणकेष्टयनान्पृगविश्राम  
मासते रश्चन्द्राभ्यां निटिले विलकेन च ॥ ८ ॥

मयागन्तव्येनाह प्रगडितशोभना गगम् । दग्धिकां कान्तल दिव्य कुटुम्बं कुसुमानि च । ९ ।

स्मिन्नेति सुमिद्वयं सुमन्वन्नेदमुत्तमम् । स्मिन्नततां र्माग्वर्णं मदात्कुमुदं कुरु ॥१०॥

विभ्रन्तीमपरे हस्ते मातुदुग्धमनुवमम् । रथ्यहावां च विचोर्त्ता चन्द्रवाहनलोचनाम् ॥११॥

कलानाथयमानायाः कलरुद्रमतांगमायुः । मानुजज्ञाद्वयां देशे एतावद्विवां शुभम् ॥१२॥

मैथिली रामदयितां दार्ढ्याभिः पञ्चवज्रिताम् । एवं ध्यात्वा जनहर्ता हेमकुम्भपराधगम् ॥१३॥

सतीनाया. कवच दिव्य वृत्तीयं शुभाशुभम् १५ ।

श्रीमती पूर्वन पातु दक्षिणेऽवतु जानकी । प्रताप्या पातु वैदेही पान्दीन्यां च मेधिली । १५॥

अथः पानु मानुङ्गी उर्ध्वं यथाक्षुजऽश्नु मध्येऽवनिमुना पानु मवंतः पानु मां रमा ॥१६॥

कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ अगस्त्यजीन कहौ—हूँ वस नृपन बहुत मन्त्र प्रश्न किया है, सावधान होकर सुनो । पहले मैं सीमाशोक कवच सुनाता हूँ ॥ ४ ॥ जो सीमा ५० गांठे उरपर हुई और मिथिल नगेशक द्वारा पाली-पासी गयीं, जो मातृ-दूधसे उत्पन्न होकर अष्टाक्ष नामक राजाकी पुत्री कहा गयीं, जो समुद्रके रत्नोंमें स्नीत हुई और बार बार छड़ी गयीं, ऐसी चन्द्रावती, मृगशान्ता और २ मन्त्र प्रेषसी सीता मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥ "अल्पश्री" से लेकर "एक हृदय चक्षुःश्याम" यह तक विभिन्नोक्त नथ अङ्गन्यासका विधान बतलाया गया है । इसके बाद ध्यान है । जिसका अर्थ इस प्रकार जानना चाहना—कनकका पञ्चद्विदिक समान जिनके नेत्र हैं, विशाखद्विजक समान जिनका दाहिना है, त्रिनक दो पुनाये है और जो पताम्बर पहन हैं । जो सहस्रसमस्त राजकी वामभागमें बसे हैं, काशीम कुण्डल पहन हैं, शृङ्गमणि भुजाभोमें केयूर तथा कमरमें करधनी पहने हैं, जिनके समस्तभागमें सूर्यचन्द्रमाक समान आभूषण मुणीभूत हो रह हैं साथमें तिलक लगा हुआ है नाकमें मण्डूके आकारका सुन्दर आभूषण पट है ॥ ६-९ ॥ हरिता, काञ्चल, कुंकुम, विविध प्रकारके फूल तथा तरह तरहके सुगंधित द्रव्य और इत्र आदि धमक रहे हैं, जिनका मुखकाता हुआ मुखमण्डल है, गौरवर्ण है, जो एक हाथमें मन्दारक फूल धिये है, दूसरे हाथमें उत्तम मातृपुङ्गु विराजमान है, जिनकी मृदु मुस्कान है, विश्वके समान जाग्र है, मूक नेत्रोंक समान जिनके नेत्र हैं, अक्षमाके समान मुक्त है, काञ्च-के समान जिनकी माटा साणी है, जो मातृपुङ्गु (विश्वीर सीमा) से उत्पन्न होनेवाली पञ्चाक्ष नृपतिकी पुत्री और राजकी भविनी है, जिन्हें दाहिनी पक्ष अन्तरही है, सुवर्णकलशक समान जिनके स्तन हैं, ऐसी सीमाका ध्यान करके इस दिव्य सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥ १०-१४ ॥ गूर्वकी ओर सीता मेरी रक्षा करें, रक्षितकी तरफ जानकी रक्षा करें, पश्चिमकी वंदेही रक्षा करें, उत्तरकी मैथिली रक्षा करें ॥ १५ ॥ निचन

स्मितानना शिरः पातु पातु सार्धं नृपान्मजा । दद्यात्तु भ्रगोर्ध्वे सगन्धौ नयनेऽवतु ॥१७॥  
 कपोले कर्णमूले च पातु श्रीरामवल्लभा । नागाग्र सार्वभौमो पातु पातु यवर्ध तु मञ्जरी ॥१८॥  
 रामसौ पातु रक्षाणी पातु जिह्वां पतिव्रता । दानं पातु भगमाया विवृक्त करकप्रभा ॥१९॥  
 पातु कंठ सीम्परुषा मूर्ध्नी पातु मुखाचिना । भुजौ पातु वरगोहा कर्णौ कर्कणमण्डिता ॥२०॥  
 मस्तकं रक्तमस्ता पातु कुक्षौ पातु लघूदरा । यक्ष पातु गमगन्ती यक्ष्य गवत्सोदिनी ॥२१॥  
 पृष्ठरेखे वह्निगुताऽवतु मा गर्वदेव हि । दिव्यप्रदा पातु नाभि कटं मन्त्रमोदिनी ॥२२॥  
 गुह्यं पातु रत्नगुप्ता निधं पातु हृदिप्रिया । ऊरु पातु रक्तैरजन्तुना । प्ररभापिणी ॥२३॥  
 जघे पातु मदा सुश्रुगुल्फौ चामरवीजिता । पादौ लज्जमुता पातु पादगान्धौ कृपाविका ॥२४॥  
 पादांगुली मदा पातु मम नृपुत्रविभवा । गोपाण्यवरु मे निम्ब रंगकौशेयवासिनी ॥२५॥  
 गर्भौ पातु कालरुषा दिने दानैरुत्तरा सर्वरक्षितु मा पातु मूलकापरधासिनी ॥२६॥  
 एवं सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते मयेतिम् इदं प्र तः मयूनाय स्नाना निम्ब वटैः नृपः ॥२७॥  
 जानकी पूजयित्वा च सर्वान्कामानवाप्नुवान् । धनार्थं वाप्तुं च दत्तं पुत्रा नी पुत्रमवाप्नुवान् ॥२८॥  
 श्रीकामार्थं शुभां भारी सुखार्थं मौन्यमवाप्नुवान् । अष्टवार जपनीय मीमांसा कान्च मदा ॥२९॥  
 अष्टम्यो विप्रवर्येभ्यो नमः प्रीत्याऽर्पयेन्मया । फल्गुशशिदार्शन्यानि यानि तानि पृथक् पृथक् ॥३०॥  
 सीतायाः कवचं चेह पुण्य पापहराजम् । ये पठन्ति नमः सकन्या ते वन्द्या मानवा भूवि ॥३१॥  
 पठन्ति रामकवचं सीतायाः कवचं विना । नदा विना लक्ष्मणस्य कारयेन वृथा स्मृतम् ॥३२॥  
 सम्प्राप्त्यदा सर्वज्ञानं कवचानां चतुष्टयम् । आदौ तु चापुत्रवन्ध लक्ष्मणस्य ततः परम् ॥३३॥  
 ततः पठेच्च सीतायाः श्रीरामस्य ततः परम् । एवं यदा सर्वार्थं कवचानां चतुष्टयम् ॥३४॥  
 इति सीताकवचम् ।

जानकी, मातुली, उपर पद्माञ्जला, मध्यभागकी अन्तिमुता और चर्मा और रमा रक्षा करें ॥ १६ ॥  
 स्मितानना मुखकी, नृपान्मजा अस्तककी, भौहोके बीचम पद्मा और मर नगीसी मृगशी रक्षा कर ॥ १७ ॥  
 श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेयसा कपाल और कर्णमूला रक्षा करें सार्वभौम, नाजिकाक अयभाकी, राजसी, पुष्पकी,  
 रामसौ वार्णाकी, पतिव्रता जिह्व की, मदा माया हीनका, नन्दकप्रभा विवृक्तकी, सीम्परुषा कपर्दका मर विता  
 कर्णोंकी, वरारोहा बाहुकी और कंठणमण्डिता हाथोंकी रक्षा कर ॥ १८-२० ॥ रक्तमस्ता माण्डीकी लघूदरा  
 कुक्षिकी रामप सी रक्षा करकी, गवत्सोदिनी प गर्वभगकी और वह्निगुता सदा मेरे नृपदशका रक्षा कर ।  
 दिव्यप्रदा मेरी नाभिका और नाक्षत्रमोहना कमरकी रक्षा कर ॥ २१ ॥ २२ ॥ रत्नगुता गुताकी और हृदिप्रिया  
 सिरकी रक्षा कर । रभाह मर दानो वृटनाकी और विषमपिणी जानुपादकी रक्षा कर ॥ २३ ॥ मृग जानकी,  
 चामरवीजिता गुल्फकी तथा कुशाग्रका जगत्के सब भङ्गाकी रक्षा कर ॥ २४ ॥ मृगरविजयता पेरकी कुलियो-  
 की और पीताम्बरधारिणी मेरी रक्षा कर ॥ २५ ॥ सादिक समय कालरुषा, दिनकी दानैरुत्तरा और  
 सब समय मूलकापरधासिनी मेरी रक्षा करे ॥ २६ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इन प्रकार मेने मुझे सीत कवच रत्नाया ।  
 जो प्राणी सबरे स्नानके बाद निम्ब इसका पाठ करके जायका जोका पुत्रा करता है, वह अपनी सब इच्छायें  
 पूर्ण कर लेता है । इनको चाहनेवाला मन और पुत्रकी अभिलाषा सम्पन्नवाला पुत्र पाता है ॥ २७ ॥ २८ ॥  
 स्त्रीकी कामनावाला सुखरी स्त्री और सब चाहनेवाला सोय पाता है । उपासकका चाहिए कि सदा जाठ  
 बार सीता-कवचका जप करे । जाठ बाहुओंकी फल्गुपद्म आदि वस्तुयें पृथक्-पृथक् दान दे ॥ २९ ॥ ३० ॥  
 यह सीतकवच बड़ा शक्ति और पापीका नाशक है । जो लोग बलिद्वारा इसका पाठ करते हैं, वे  
 प्राणी ससारमें बन्द हैं ॥ ३१ ॥ जो लोग सीता तथा लक्ष्मणकवचका पाठ करते हैं, उनका वह पाठ व्यर्थ हो  
 जाता है ॥ ३२ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा इन चारों कवचोंका पाठ करे । इसका नाम इस प्रकार है-  
 पहली हनुमान्जीका, फिर लक्ष्मणका, इसके बाद सीताका, तदनन्तर श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिए

पर सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते मयेतिहम् । वनः परं मृगुष्वान्यन्मीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥३५॥  
 यस्मिन्महोत्तराक्षरं श्रीकृष्णामानि सन्ति हि । अष्टोत्तरशतं सीतानाम्नां स्तोत्रमनुत्तमम् ॥३६॥  
 ये पठन्ति नरास्तत्र तेषां च सकृन्नो मयः । ते धन्या मानवा लोके ते वैकुण्ठं प्रवर्ति हि ॥३७॥

अथ श्रीसीतानामष्टोत्तरशतमन्त्रस्य अगन्तिश्रुतिः । अनुष्टुप् छन्दः । रमेति बीजम् ।  
 मातुलुंगीति शक्तिः । पञ्चाक्षरेति कीलकम् । अवनिजेत्यक्षम् । जनकचेति कवचम् । मूलकासुर-  
 मर्दिनीति परमो मन्त्रः । श्रीसीतारामचन्द्रबीम्बार्थे सकलकामनासिद्धयर्थे जपे विविधयोगः ।  
 अर्धांगुलिन्यामः । ॐर्षादायै अंगुष्ठार्था नमः । ॐशर्म्यै नर्जनीम्या नमः । ॐमातुलुंग्यै  
 मध्यमाभ्यां नमः । ॐपञ्चाक्षत्रायै अनादिकाभ्यां नमः । ॐप्रवनित्रायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।  
 ॐजनकत्रायै कर्तलकरपृष्ठाभ्यां नमः । अथ हृदयादिन्यामः । ॐसीतार्यै हृदयाय नमः ।  
 ॐशर्म्यै शिखरे स्वाहा । ॐमातुलुंग्यै शिखार्यै वषट् । ॐपञ्चाक्षत्रायै नेत्रत्रायै वषट् ।  
 ॐजनकान्तत्रायै अस्त्राय कट् । ॐमूलकामुरमर्दिन्यै इति दिग्बन्धः ।

अथ सीताष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम् ।

वामांगे रघुनाथस्य रुचिरे वा यस्मिन्ना शोभना वा विषाधिवथानरस्यनयना वा विप्रणालावना ।  
 विद्युन्पुञ्जविगजमानवमना मकार्तिमखण्डना श्रीमद्राघवपदपद्मयुगलन्यस्तोत्रना आङ्गत् ॥३८॥  
 श्रीसीता वानकी देवी वैदेहा राघवप्रिया । रमाऽवनिमुता राधा राक्षसान्तप्रकारिणी ॥३९॥  
 रत्नगुप्ता मातुलुंगी मैथिली भक्तोपदा । पञ्चाक्षत्रा कञ्जनेत्रा स्मिताभ्या नूपुरस्वना ॥४०॥  
 वैकुण्ठनिलया मा श्रीकुण्डिका कामपूरणी । नृपान्तजा हेमवर्णा सृङ्गुली सुभाषिणी ॥४१॥  
 कुशाग्रिका दिव्यदा च लवमाता मनोहरा । हनुमद्वन्दितपदा मुग्धा केयूरधारिणी ॥४२॥  
 अशोकवनमध्यस्था रावणादिकमोहिनी । विमानमस्थिता सुभ्रुः सुकेयी रश्मिनाम्बिता ॥४३॥

॥ ३३-३४ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं—हे सुतीक्ष्ण ! हम तरह सेने तुम्हें सीताकवच सुनाया । इसके अनन्तर  
 सीताजीका एक दूसरा स्तोत्र सुनाता है ॥ ३५ ॥ जिसमें एक ही वाक्य साक्षात्कार के नाम गिनाये गये हैं । इसलिये  
 इसका नाम "सीताष्टोत्तरशतनाम" रखा गया है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य इसका पाठ करते हैं, उनका जन्म  
 सफल हो जाता है । वे मनुष्य धन्य हैं और वे अन्तर्में वैकुण्ठलोककी जाने हैं ॥ ३७ ॥ "अथ श्री" यह शक्ति  
 "मूलकासुरमर्दिनी" सहित तक विविधयोग तथा आख्यात आदिका विधान बतलाया गया है ॥ अथ व्यासम् ॥  
 जो एक सुन्दर सिंहासनावर रामके सामागन बैठी है, मुनके नेत्रोंकी शक्ति जिनके नेत्र हैं, जो चन्द्रवदनी हैं,  
 जो बिजलीके समझकी तरह दमकनेवाले कपड़े पहने हैं, जो अपने घनोंकी पीड़ा दूर करनेमें कुछ भी कसर  
 नहीं रखती, जिनके नेत्र श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लगे हुए हैं, वे सीता हमारी रक्षा कर ॥ ३८ ॥ अथ वह नि  
 शतनाम बतला है । जैसे—(१) श्रीसीता, (२) जनका (३) देशी, (४) वैदेही अर्थात् विदेह जनककी पुत्रा,  
 (५) राघवप्रिया, (६) रमा (७) अवनिमुता ( पृथ्वीकी कन्या ) । (८) राधा, (९) राक्षसान्तप्रकारिणी ( राक्षसों-  
 का नाश करनेवाली ), (१०) रत्नगुप्ता, (११) मातुलुंगी (१२) मैथिली, (१३) भक्तोपदा ( जनको प्रसन्न  
 करनेवाली ) (१४) पञ्चाक्षत्रा ( पञ्चाक्षरवाक्य शायकी करती ) (१५) कञ्जनेत्रा ( कमलके समान नेत्रोंवाली ),  
 (१६) स्मिताभ्या ( जिनका मुखगता हुआ मुख है ), (१७) नूपुरजना, (१८) वैकुण्ठनिलया ( वैकुण्ठलोकमें  
 निवास करनेवाली ), (१९) मा ( २० ) श्री, ( २१ ) मुनिदा, ( २२ ) कामपूरणी ( अपने भक्तोंकी इच्छा पूरी  
 करनेवाली ), (२३) नृपान्तजा, (२४) हेमवर्णा, (२५) सृङ्गुली ( जिनका कोमल ऊङ्ग है ), (२६) सुभाषिणी  
 ॥ ३९-४१ ॥ (२७) कुशाग्रिका ( कुशाकी माता ) ( २८ ) दिव्या ( लंकासे लौटनेपर रामके कटु वाक्य सुनकर  
 शपथ करनेवाली, २९ ) लवमाता, ( ३० ) मनोहरा, ( ३१ ) हनुमद्वन्दितपदा ( हनुमान्जीने जिनके चरणोंकी  
 चन्दना की पी ), ( ३२ ) मुग्धा ( ३३ ) केयूरधारिणी, ( ३४ ) अशोकवनमध्यस्था ( अशोकवनमें निवास करनेवाली )

राजोदया सत्वरूपा तामसी बह्वामिनी । हेमसुगायकचिता बान्धवकाधमवासिनी । ४४॥  
 पतिव्रता महामाया पीतकौशेयवासिनी । मृगनेत्रा च विरोधी धनुर्विद्याविशारदा । ४५॥  
 सौम्यरूपा दशरथस्तुता चामरकोजिना मुग्धबाहुहिना दिव्यरूपा त्रैलोक्यपालिनी ॥ ४६ ॥  
 अवपूर्णा महालक्ष्मीर्धौलंज्वा च सरस्वती । शान्तिः पुष्टिः क्षमा गौरी प्रभाऽयोध्यानिशामिनी । ४७॥  
 वसन्तशीतला गीगा स्वानमतुष्टमानसा रमानाममदसंस्था हेमकण्ठमण्डिता ॥ ४८॥  
 सुरार्चिता वृत्तिः क्षान्तिः स्मृतिर्मेधा विभावरी । लघूदरा वरारोहा हेमकण्ठमण्डिता ॥ ४९॥  
 द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा राघवतोषिणी । श्रीरामसेवनरता रत्नवाटकपाणिनी । ५०॥  
 रामवामागमंस्था च रामचन्द्रैकरजनी सन्वृजलसंक्रोडाकाणिनी राममोहिनी । ५१॥  
 सुवर्णतुलिना पुष्पा पुष्पकर्तिः कलचरी । कमलपट्टा कम्बुकण्ठा रभेरुर्गजवासिनी । ५२॥  
 रामपिण्डमना रामवदिता रामरन्ध्रता । श्रीरामवदचिह्नाका रामरत्नेनि भविणी । ५३॥  
 रामपर्यङ्कशयना रामाग्निधामिनी चरा । कामधेन्वसमस्तुष्टा मातुर्भुवकरे धृता । ५४॥  
 दिव्यचन्दनसम्पा श्रीमूलकासुरमर्दिनी । पञ्चमष्टोत्तरशतं सीतानाम्ना सुपुष्पदम् । ५५॥  
 ये पठन्ति नरा भूम्यां ते चरन्त्याः स्वर्गवासिनः । अष्टोत्तरशतं नाम्नां सीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् । ५६॥  
 जपनीयं प्रपन्नेन सर्वदा भक्तिपूर्वकम् । सन्निस्तोत्राण्यनेकानि पुष्पदानि महानि च ॥ ५७ ॥

[३१] रावण विक्रमाहिनी, [३६] विमानमयिता [३७, सुभ्र ३८] मुनेश, [३९] रमानाचिता [४०, रमानावा  
 [४१] सत्वरूपा [४२] तामसी, [४३] बह्वामिनी (अग्निमं निशाम करनेवाली), [४४] हेमसुगा-  
 सत्वरूपा (सुवर्णक सुगम जिनका मन काम करनेवाली था) [४५] बालमायकाधमवासिनी (बालमार्ग के पथ के  
 मायकम निवास करनेवाली) । ४२-४४॥ [४६] पतिव्रता [४७] महामाया, [४८] पीतकोशेयवासिनी  
 (रेशमी पीठाम्बर धारण करनेवाली), [४९] मृगनेत्रा, [५०] विशारदा, [५१] धनुर्विद्याविशारदा (धनु-  
 र्विद्यामें निपुण) [५२] सौम्यरूपा [५३] दशरथस्तुता [५४] चामरकोजिना [५५] मुग्धबाहुहिना, [५६]  
 दिव्यरूपा, [५७] त्रैलोक्यपालिनी [५८] अवपूर्णा [५९] महालक्ष्मी, [६०] श्री, [६१] रजता,  
 [६२] सरस्वती, [६३] शान्ति, [६४] पुष्टि [६५] क्षमा [६६] गौरी, [६७] प्रभा, [६८] आर्या, [६९]  
 निवासिनी, [७०] वसन्तमानसा, [७१] गीरा [७२] स्वानमतुष्टमानसा (वसन्तकृत मूर्ति सीतला की),  
 वसन्त के अवसरपर स्वान करनेसे सन्तुष्ट होनेवाली [७३] रमानाममदसंस्था, [७४] हेमपुष्पधरोपर, [७५]  
 सुरार्चिता, [७६] वृत्ति [७७] क्षान्ति, [७८] स्मृति, [७९] मेधा, [८०] विभावरी, [८१] लघूदरा,  
 [८२] वरारोहा [८३] हेमकण्ठमण्डिता ॥ ४८-४९॥ [८४] द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा (जिसने अपने सब  
 मायुष्य एक कालाणीको द दिया थे), [८५] राघवतोषिणी, [८६] श्रीरामसेवनरता, [८७] रत्नवाटक-  
 पारिणी, रत्नके बने कर्णपूज्य पहननेवाली ॥ ५० ॥ [८८] रामवामास्था, [८९] रामचन्द्रैकरजनी,  
 [९०] सरयुजलसंक्रोडाकाणिनी (सन्वृजलसंक्रोडाका जलमं शिखार करनेवाली), [९१] राममोहिनी, [९२] मरण  
 तुलिता, [९३] पुष्पा [९४] पुष्पकर्ति, [९५] कलचरी, [९६] कमलपट्टा, [९७] कम्बुकण्ठा, [९८]  
 रम्भोद, [९९] गजवासिनी, [१००] रामपिण्डमना, [१०१] रामरन्ध्रता, [१०२] रामरत्नेनि,  
 श्रीरामवदचिह्नाका, जिनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रका चरित्रका चिह्न विद्यमान है, [१०३] रामरामनिधामिनी  
 (सदा राम राम कहनेवाली) [१०४] रामवर्णकशयना, [१०५] रामाग्निधामिनी (रामके पैर में अन्न चढ़ाये),  
 [१०६] कामधेन्वसमस्तुष्टा, [१०७] मातुर्भुवकरे, [१०८] दिव्यचन्दनसंस्था मूलकासुरपादनी  
 (दिव्य चन्दनपर स्थित एवं मूलकासुरका नाश करनेवाली) ये एक ही आठ सीताजीके नाम हैं  
 पुष्पदाम्नी हैं ॥ ५१-५५ ॥ जो लोग इस अष्टोत्तरशतनामका पाठ करते हैं, वे स्वयं और स्वयंभक्त  
 होते हैं । यह स्तोत्र सर्वोत्तम है ॥ ५६ ॥ इसलिए लोगोंने चाहिए कि सदा भक्तिपूर्वक इसका पठ  
 किया करें । यद्यपि बहुतसे बड़े-बड़े और-और पुष्पदायक स्तोत्र हैं, किन्तु हे भूभूर ! ये सब एक

कानेन सहस्रमीह तानि सर्वाणि भृशम् । स्तोत्राणामुत्तमं चंदं भुक्तिभुक्तिप्रदं लुणाम् ॥५८॥  
 एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तमष्टोत्तरशतं शुभम् सीतानाम्नां पुण्यदं च शरणाभ्यंगलप्रदम् ॥५९॥  
 नरैः प्रातः समुत्थाय पठितव्यं प्रधानम् । सीतापूजनकालेऽपि सर्वत्रोद्धितदायकम् ॥६०॥  
 अन्यत्सीतातोषदानि व्रतादीनि मत्तानि च । यानि संन्यस्य ते शिष्य गानि मन्थवदाभ्युदयम् ॥६१॥  
 नारीभिस्तु सदा कार्यं सीतायास्तुष्टिहेतवे । वसन्तशीतलागौरीस्नानं तथैव तु तत्कृते ॥६२॥  
 यत्र सीताकृतं तीर्थं रामतीर्थं न वदने । तथा लक्ष्म्याश्च गौरीयाश्च मन्थवन्धादियोविनाम् ॥६३॥  
 तीर्थेषु च सदा कार्यं तदभावे नदीषु च । यत्र यत्र रामतीर्थं तद्वामे जानकीकृतम् ॥६४॥  
 येष तीर्थं तु सर्वत्र नैकं तेन तु राघवम् । वसन्तशीतलागौरीस्नानं सीताभ्यवर्द्धनम् ॥६५॥  
 न कुर्वन्त्यथ या नार्यः स्नानं नरः समजन्मगु । भवन्ति विधवाण्युष्मान्मदा स्नानं समाचरेत् ॥६६॥

सुतीक्ष्ण इति च

भो गुरो सीतलागौरीस्नानम्योद्यायन कथम् । स्त्राभिः कार्यं वदन्त्याय मविस्तार शुभायहम् ॥६७॥

अगस्त्यस्याय

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सुतीक्ष्ण शृणु मादम् । चैत्रमासे मिते स्त्राभिस्तुतीयायाः सदाऽत्र वै ॥६८॥  
 कार्यं तु शीतलागौरीस्नाने त्रिशदिनानि हि ईशानस्याय मिते पक्षे द्वितीयायाः शुक्लेऽप्य च ॥६९॥  
 श्रीमिश्र विधिना कार्यं निश्चायामभिराम्यनम् । सूत्रेणैव प्रकृतव्यं मण्डपादिकमुत्तमम् ॥७०॥  
 तत्र स्थापनीयं मन्थवेष्टे तन्मण्डपे एकजोपरि । धान्यरार्धं तोयपूर्णः स्थापनीयो घटः शुभः ॥७१॥  
 तन्मुखे ताम्रपार्श्वं च स्थापनीयं तु विस्तृतम् आच्छाद्य पात्रं कीशवचस्रं तन्मनोरथम् ॥७२॥  
 तस्मिन्सोत्तरामयोश्च द्वे मूर्तौ रुक्मनिर्मिते स्थापनीये पूजनीये पौंडरीक्यचारकः ॥७३॥  
 नवमाषात्मको रामः सीताऽष्टमापनिर्मिता । निवृत्तकृपाऽथवा कार्ये द्वे मूर्तौ गजतम्य वा ॥७४॥

करावर नहीं हो सकते । यह स्तोत्र सब स्थावरोमें उत्तम तथा भुक्ति-भुक्तिदायक है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥  
 हे सुतीक्ष्ण ! इस तरह मेम तुममें सीताजीका अष्टोत्तरशतनाम कहा, जो पुण्यदायक और सुननेसे  
 मङ्गलदाता है ॥ ५९ ॥ लोगोंका चाहिय कि रात्रि सबर उठकर और सीताका पूजन करके अवश्य  
 इतका शठ करे । ऐसा करनेमें उनका कामनाय पूर्ण हो जायगा । इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे ऐसे व्रत  
 बादि हैं, जिनसे सीताजी प्रसन्न हो सकती हैं । हे शिष्य ! उन्हें आज मैं कुछ बतलाया है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ सीताजी-  
 को प्रसन्न करनेके लिए मित्रोंको चाहिए कि आनाके द्वारा स्थापित किसी भी तीर्थमें जाकर सीतलागौरीका  
 स्नान करे ॥ ६२ ॥ यदि आस पास कोई सीतातीर्थ न हो तो छद्मी, गोरी तथा सरस्वती आदि किसी भी  
 देवीके तीर्थमें उक्त व्रत करे । यदि वह भी न हो तो किसी नदीके तटपर जाकर व्रत करे । जहाँ-उहाँ  
 रामतीर्थ है, उसके बाग़बाग़में सीतातीर्थ अवश्य रहता है । वहीँपर भी अकेला रामतीर्थ नहीं रहता ।  
 वसन्तशीतला गौरी नामक व्रत मित्रोंका सीधाय बढाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जो स्त्रियाँ इस व्रतको नहीं करती,  
 वे सात जन्म तक बह विधवा रहकर जीवन बिताती हैं । इससे मित्रोंको सदा सीतलागौरीका स्नान करना  
 चाहिए ॥ ६५ ॥ सुतीक्ष्णने कहा-हे गुरो ! इस सीतला गौरीका स्नान करनेके अनन्तर इसका उद्यायन कैसे  
 करना चाहिए । तो मुझे आप विस्तारपूर्वक बताइए ॥ ६७ ॥ अगस्त्यजीने कहा-हे शिष्य सुतीक्ष्ण !  
 तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, मुनो । चैत्रशुक्ल सुतीथासे लेकर तिस दिनतक सीतलागौरीका स्नान करे  
 और नवमास शुक्ल द्वितीयाको उपवास करके रात्रिके समय पूर्वोक्त विधिक अनुसार मण्डप आदि बनावे  
 ॥ ६८-७० ॥ उसमें अष्टोत्तरशतनामक रामनामस्तोत्र, अष्टोत्तरशतनामक या और कम संख्याका मंत्र  
 बनाकर उसके मध्यमें कमलपर धान्यनाश रखकर जलसे भरा घट स्थापित करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ कलपाके  
 मुखपर एक बड़ा-सा ताम्रपात्र रखे और उसको रेशमी वस्त्रसे ढाँक दे ॥ ७३ ॥ उसपर सुवर्णकी बनी हुई सीता

गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यवसनादिकम् । सर्वं पृथगष्टविधं जानक्यै तु निवेदयेत् ॥७६॥  
 ततः स्त्रोणां वायनानि वस्त्रालंकारश्चतुभिः । कुकुमादिपूतितानि देशानि विविधानि च ॥७७॥  
 देशानि कांस्यपाशाणि पक्वाण्यपूरितानि च । त्रयस्त्रिंशत्तथा यादृशी स्त्रीभिर्देयानि शक्तितः ॥७८॥  
 त्रयस्त्रिंशच्च भुग्मानि भोजयेच्च प्रयत्नतः । अथवाऽष्टौ यथाशक्या भोजनीयानि पदुर्यैः ॥७९॥  
 रात्रौ जगरणं कार्यं शीतवाद्यादिगर्लैः । प्रातःकाले तृतीयायां स्नान्वा सम्पूज्य जानकीम् ॥८०॥  
 हापश्वापि प्रकर्तव्यः भीतामन्त्रेण यत्नतः । निलाब्धैः पायसैश्चापि महस्त्राण्यष्टभूसुरैः ॥८१॥  
 सुदहीनं नवान्नं च ज्ञेयमष्टाक्षमुत्तमम् । तन्मीनातोपरं ज्ञेयं तेन वा जुहुयात्सुखम् ॥८२॥  
 ततः स्वयं सुहृन्मित्रैर्भाक्तव्यं च यथाशुक्लम् । एवमुद्यापनविधिस्तत्राग्रे विनिवेदितः ॥८३॥

श्रीरामदास उवाच

अगस्तिना सुनीक्ष्णाय यदिदं कथितं पुरा । तत्सर्वं च त्वया पृष्टं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥८४॥

श्रीगुहास उवाच

कथं रमानामभद्रं कार्यं स्त्रीभिः प्रपूजने । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्व मयाश्रितः ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

यथा श्लोक्तं मया शिष्य रमानामभद्रमुत्तमम् । कार्यं रमानामभद्रं तथैव सकलं शुभम् ॥८६॥  
 किञ्चिद्दिशेषस्तत्राग्रे नृपुण्यं कथयाम्यहम् । लिङ्गस्वल्पेण कर्तव्या वापिकाश्चैव पूर्ववत् ॥८७॥  
 मुद्रायामेव किञ्चिच्च त्रिशोऽस्ति गृण्यतम् । नकारश्च मकारश्च पूर्ववद्भेदधः ॥८८॥  
 ऊर्ध्वं रमेत्यक्षरे ड रचनीये तु पूर्ववत् । एवं कृत्वा रमानाम श्वेत्वरणं निरीक्षयेत् ॥८९॥  
 एतद्भगवानामभद्रं देवानां पूजनादिषु । नाताक्रमेण सार्वेषु कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥९०॥  
 विना रमानामभद्राद्यानि देवाः कृतानि हि । पूजनादीनि कर्माणि तानि ज्ञेयानि मानवैः ॥९१॥

और नामकी दो मूर्ति रखें और पादक्षपचारसे उनका पूजा करे ॥ ७४ ॥ मूर्तियोंमें जो माते सुवर्णसे रामकी और बाई मासे सुवर्णसे सीताकी मूर्ति बनवावे । यदि ऐसा न हो सके तो अपनी शक्तिक अनुसार चाँदीकी दो प्रतिमाएँ बनवा ले ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप नैवेद्य तथा आठ प्रकारके वस्त्र आदि सीताको अर्पण करे ॥ ७६ ॥ इसके बाद वस्त्र-अलंकार आदि वस्तुयें तथा कुमकूम आदिके साथ विविध प्रकारके वायन दे ॥ ७७ ॥ सदनन्तर तरह-तरहके पक्वान्धे भरकर तैलीय, आठ अथवा तीन कांस्यपात्र अर्पण करे ॥ ७८ ॥ इसके बाद तैलीय सहायणदम्पती, आठ सहायण अथवा जैसी अपनी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार सहायणदम्पतीओंको आवाहन करवे ॥ ७९ ॥ रात्रिमें गोम बाछ आदि मङ्गलमय कार्य करता हुआ जागरण करे । तृतीयको प्रातःकाल स्नान करके जानकीजीका पूजन करे और तिल, घी तथा स्त्रीरसे आठ सहायणोंके साथ तातामन्त्रसे हाप करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥ मूर्तको छोड़कर अन्य नौ प्रकारके अथ सीताजीको बहुत प्रिय है यदि हो सके तो जल्दीमें हवन करे ॥ ८२ ॥ इसके बाद अपने हित मित्रादिके साथ सुखपूर्वक भोजन करे । इस तरह उद्यापनविधि मैंने तुमसे कहो ॥ ८३ ॥ श्रीरामदासने कहा—गुप्तहारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह सब बातें कह दीं, जो सुनीक्ष्णको आस्त्वजीने बतलायी थीं ॥ ८४ ॥ विष्णुदासने कहा कि जब स्त्रियाँ पूजन करने लगीं तो रमानामभद्रकी रचना किस प्रकार कर । यह आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ ८५ ॥ श्रीरामदासने कहा—पहले मैंने जो रमानामभद्र रचनाका विधि बताया है, ठीक उसी तरह रमानामतोभद्रकी भी रचना होगी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ इसकी मुद्राम आठोसो विरोधता है । सो मैं तुमको बतलाये देता हूँ, सुनो । चाकार और मकार ये दोनों पहलेकी ही तरह लिखे भागमें बनावे ॥ ८८ ॥ ऊपर रचा इन दो अक्षरोंकी भी पहले ही की तरह रचना करे । ऐसा कर लेवेके बाद रमा इस नामका भद्रके एवम् भागमें उमड़ा देवे ॥ ८९ ॥ देवी आदिकी पूजाके अवसरपर अथवा और-और प्रकारके शुभ कर्ममें प्रयत्न करने इस रमानामतोभद्र-



वक्तुमन्यत्र तस्माद्भि कर्तव्यं यत्नतस्मिदम् । कृता रमानामभद्रं या पूजा मानवैर्भुवि ॥९२॥  
 सा देव्यै तोयदा ज्ञेया तस्मान्कार्या प्रपत्नतः । पूर्वोक्तानि देवतानि तान्येवात्र विचिन्तयेत् ॥९३॥  
 आब्रूहेच्च मुद्रायां जानकीं रघुनन्दनम् । अन्यच्छृणुष्व भी शिष्य सीतारामप्रपूजने ॥९४॥  
 रमानामतोभद्रं च कार्यं वा मानवैर्भुवि । तत्त्वापि पूर्ववन्मत्तं कर्तव्यं मानवैर्भिया ॥९५॥  
 इदं सीतारामयोश्च पूजनार्थं प्रकल्पयेत् । रामनाम्ना रमानाम्ना इदं भद्रं महत्तमम् ॥९६॥  
 यत्र द्वयोर्नामनी च रमा रामेति चोत्तमे । रमानामतो भद्रं च तस्माच्छ्रेष्ठं प्रकारयेत् ॥९७॥  
 रमानामनोभामन्येव देवान्यत्र विचिन्तयेत् । एवं शिष्य त्वया पृष्टं यद्यत्तत्तन्मयोदितम् ॥९८॥

का तेऽन्यास्ति स्पृहा श्रोतुं वदतां तद्वदाम्यहम् ।

विष्णुदास उवाच

कवचं लक्ष्मणस्यापि पठनीयमिति स्मृतम् ॥९९॥

पुरा गुरो न्वया तच्च मां वदस्व सविस्तरात् । भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ॥१००॥

श्रीरामदास उवाच

एवमेव सुतीक्ष्णेन पृष्टं च कुंभजन्मना । पुरा तद्विस्तरेणाद्य तवाग्रे कथयाम्यहम् ॥१०१॥

सुतीक्ष्ण उवाच

गुरो न्वया पुरा प्रोक्तं कवचं लक्ष्मणस्य च । पठनीयं वर्ततेति तन्मामद्य प्रकाशय ॥१०२॥

भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ।

अगस्त्य उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया क्वम सावधानमनाः शृणु । आरीर्मांभि त्रेकवचं कथ्यतेऽत्र मया शुभम् ॥१०३॥

इति श्रीमहाकविश्रीरामचरितमानसं श्रीआनन्दरामायणे वारणीकीये मनीहूरकाण्डे

सीतारामकवचादिनिर्णयं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

की रचना करे ॥ ९० ॥ बिता रमानामतोभद्रक देवापूजन आदि जितना भी कृत्य किया जाता है, वह सब कार्य ही आधा करता है । जनएव रमानामतोभद्रकी स्थापना अवश्य करनी चाहिये । रमानामतोभद्र-म लाग जो पूजन आदि करते हैं, वह सफल होता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसरो देवी प्रसन्न होती है । इस कारण यत्नपूर्वक ऐसा करना चाहिए । पूर्वम जितन देवता कह साये हैं, वे सब इस भद्रमे भी रहेगे ॥ ९३ ॥ हाँ, यह बात अवश्य है कि इस भद्रमे राम और सीताका अङ्गुलन करे । हे शिष्य ! सीतारामके पूजनके विषयम और भी कुछ विगण बातें हैं । उन्हें कहता हूँ मनो ॥ ९४ ॥ कोई भी पूजन करते समय रमानाम-तोभद्रकी स्थापना अवश्य करे । उस भद्रमे पूर्वाक्त रीतिके अनुसार ही सब बातें रहेगी ॥ ९५ ॥ सीता और रामकी पूजाके निमित्त हस्तको स्थापना की जाती है और केवल रमानामतोभद्र अथवा केवल रामतोचद्रसे यह भद्र श्रेष्ठ है ॥ ९६ ॥ इस भद्रमे रमा और राम इन दोनोंके नाम आ जाते हैं । इसीलिए यह भद्र सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥ ९७ ॥ रामतोभद्रमें कहे हुए ही देवता इस भद्रमे रहेगे । हम तरह हे शिष्य ! तुमने हमसे जो पूछा, वह मैंने तुमसे कहा ॥ ९८ ॥ अब वया तुमनेका इच्छा है सा बताओ, मैं कहूँ । विष्णुदास बोले- आपन कहा था कि लक्ष्मणके कवचका भी पाठ करना चाहिए । तो उसे भी बताइए ॥ ९९ ॥ श्रीरामदास- ने कहा कि इस तरह सुतीक्ष्णने भी अगस्त्यजीसे प्रश्न किया था तो उन्होंने सुतीक्ष्णमे जो कुछ कहा था, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १०० ॥ सुतीक्ष्णने कहा है गुरो । आपने एक बार हमसे कहा था कि लोगोंकी लक्ष्मणकवचका भी पाठ करना चाहिए । तो कृपा करके आप हमें लक्ष्मणकवच बताइए । उसके साथ साथ भरत तथा शत्रुघ्नकवच भी बतला दीजिए । अगस्त्यने कहा-हे बत्स ! तुमने बहुत उसम प्रश्न किया है । साथ-साथ लेकर सुनो । पहले मैं लक्ष्मणकवचका ही वर्णन कर रहा हूँ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे पृ० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासांख्ये मनीहूरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः । १४ ॥

## पञ्चदशः सर्गः

( लक्ष्मण-भरत तथा शत्रुघ्नकवच )

सौमित्रि रघुनाथकस्य चरणद्वेक्षण उद्यमलं विभ्रन्तं स्वकरेण रामशिरसि छत्रं विनिर्जं वरम्  
विभ्रन्तं रघुनाथकस्य सुमहन्मोदोदवातामने ॥ १ ॥ वन्दे रत्नलक्षण जनकजगद्वन्द्वे मया तत्परम् ॥ १ ॥

ॐ अस्य श्रीलक्ष्मणकवचमन्त्रः । अस्मत्कृपिः । अनुष्टुप्छन्दः । श्रीलक्ष्मणे देवता ।  
षोडशैति वीरम् । सुमित्रानन्दन इति कृत्तिकः । रामानुज इति श्रीलक्ष्मणः । रामदास इत्यश्वत्थम् ।  
रघुवंशज इति कवचम् । सौमित्रिणिनि मन्त्रः । श्रीलक्ष्मणप्रार्थनार्थं सकलमनोजेमिलपितृमित्रैश्च जपे  
यिनिर्गोमः । अर्धांगुलिन्याम् । ॐ लक्ष्मणाय अंगुष्ठार्था नमः । ॐ शेषाय तर्जनाभ्यां नमः ।  
ॐ सुमित्रानन्दनाय मध्यपाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामदासाय  
कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ रघुवंशजाय कर्णलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयश्चगन्यासः ।  
ॐ लक्ष्मणाय हृदयाय नमः । ॐ शेषाय शिखिसे व्रजहा ॐ सौमित्राय शिखिसे व्रजहा । रामा-  
नुजाय कवचाय हुम् । रामदासाय नेत्रत्रयाय त्रीपट् । रघुवंशजाय अस्त्राय फट् ।  
ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः ।

अथ सप्तार्च लक्ष्मणकवचम्

रामपृष्ठस्थितं रम्यं रत्नकुण्डलधारिणम् । नीलोत्पलदलदयाम् रत्नकङ्कणमण्डितम् ॥ २ ॥  
रामस्य मस्तके दिव्यं विभ्रन्तं छत्रमुत्तमम् । वीरं पीताम्बरं मुकुटेनानिशोभितम् ॥ ३ ॥  
तूणीरे कर्णके चारि विभ्रन्तं च विमलाननम् । रत्नमालाधरं दिव्यं पुष्पमालाविर्भाजितम् ॥ ४ ॥  
एव ध्यात्वा लक्ष्मणं च पादरन्दनलोचनम् । कृच जप तीर्थं हि ततो भक्त्याऽप्य मानवैः ॥ ५ ॥  
लक्ष्मणः पातु मे पूर्वं दक्षिणं राघवानुजः । प्रार्थ्या पातु सौमित्रिः पातु दीर्घा रघूत्तमः ॥ ६ ॥  
अथः पातु भद्राश्रीश्चोर्ध्वं पातु नृपनामजः । मध्ये पातु रामदासः सर्वतः सत्यपालकः ॥ ७ ॥  
स्मिताननः शिरः पातु भाल पादूमे शश्वतः । अश्वमेधे धनुर्धारी सुमित्रानन्दनोऽक्षिणी ॥ ८ ॥  
कपोले राममन्त्री च सर्वदा पातु मे भयं । अंगुष्ठे मया पातु कवचधनुजखड्गनः ॥ ९ ॥

कमलसजीव कह्ना—मे उन लक्ष्मणजीको धन्यता करता हूँ जो सदा रघुनाथजीके दोनों चरणकमल  
देखा करते हैं, जो अपने हाथसे रत्नचक्रजाले छत्रपर छत्रकी छाया किये रहते हैं । जो कन्धेपर रामचन्द्रजीका  
धनुष धारण किये रहते हैं । जो सर्वदा जानकीजीकी आज्ञाका पालन करतमें तत्पर रहते हैं और कमलके  
समान जिनकी आँखें हैं ॥ १ ॥ “अथ श्री” से लेकर ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः” यहाँ तक विनियोग और  
मंगलार्थकी विधि दन्तत्रयी सही है । उनके अंग लक्ष्मणजीका ध्यान है—जो रामचन्द्रजीके पाये बँडे हैं,  
जिनका मनोहर स्वरूप है, पराजित १ ॥ २ ॥ जनक कानोंके झण्डे हैं, नीले कमलके समान जिनके मुखका  
भाभा है और जिनके हृदय में रत्नचक्रित क्षाण गह्वर है ॥ ३ ॥ और लक्ष्मण रामके ऊपर दिव्य छत्र लगाये हुए हैं,  
सुन्दर पीताम्बर धरते हैं और मुकुटमें जो अनन्त मोक्षायमान दीप्त रहे हैं ॥ ४ ॥ जो तूणीर तथा धनुष धारण  
किये हैं, मुस्कयता हुआ जिनका मुखानन्दित है, रत्नोंकी माला जिनके गलेमें पहनी है, जिनका दिव्य वेष है और  
जो कर्णोंकी मालातीसे और भी सुन्दर दीप्त रहे हैं ॥ ५ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीपर दृष्टि लगाये लक्ष्मणजीका  
ध्यान करके लोगोंको जागिए कि भक्तिपूर्वक लक्ष्मणकवचका पाठ करें ॥ ६ ॥ लक्ष्मणजी मेरे पूर्वप्राणकी रक्षा  
करें और दक्षिणभागमें राघवानुज पश्चिम ओर सौमित्र तथा उत्तर भागकी रघूत्तम रक्षा करें ॥ ७ ॥ विचले  
भागमें रघुवीर, ऊपर नृपनामज मध्यमें रामदास और चारों ओर सत्यपालक रक्षा करें ॥ ८ ॥ शिरकी स्मिता-

नासाय मे मदा पातु मुदिजानशर्द्धनः । रामश्चर्येक्षणः पतु मदा मेऽत्र मुख भुवि ॥१०॥  
 भीतावाक्यकरः पतु मम बाणी मदाऽत्र हि । वीर्यरूपः पातु त्रिहृष्यननः पातु मे हि तान् ॥११॥  
 चिबुकः पातु गण्डोन्नतः कटु पातु सुगर्भकः । कर्णौ पातु निगर्भितौ पङ्कजलाननः ॥१२॥  
 कर्गो ककण्ठधारी च च न न रक्ततपोऽभवत् । दक्षिण पातु त्रिनिद्रा मे वक्ष पातु त्रिनेन्द्रियः ॥१३॥  
 पादौ गघनपुटस्थः । हृष्टदेश मनोमयः नाभि रत्नारनभिमत् कटि च हृष्यमेखलः ॥१४॥  
 मुखं पातु महामकरः पातु निभ हरीत्रियः । ऊरु पातु त्रिष्णुकरः सुमुखाऽतु जनुनी ॥१५॥  
 नासोटः पातु मे जघे मुग्धा नृपश्चर्यमस । गदादण्डराजोऽन्धान पादमणि मुलाचनः ॥१६॥  
 चित्रकतुषिता पातु मम पार्श्वगुलः मदा गोपाणि मे मदा पातु रीतिशममुद्रवः ॥१७॥  
 दक्षगघमुतः पातु निशायो मम सादरम् । भृगोऽधर्या पातु दिगमे दिग्मे सुदा ॥१८॥  
 सर्वकलेषु र्माभिर्द्रिजिद्वजऽभवत् । पद्म र्मानिद्रिकाश्च सुतोऽक्ष कथितं मया ॥१९॥  
 इदं प्रातः समुन्धाय य पटुयत्र मानवा । न चन्गाभाना लोके तर्प च मफलो भवः ॥२०॥  
 र्मानिद्रिः कञ्चम्यास्य पटुनाञ्जवरेन हि । पुत्रार्थं लभो पुत्रान् जनार्थं धनमाप्नुयान् ॥२१॥  
 पत्नीकामो लभेन्पत्नी गोधनानां तु गोधरम् । धान्यार्थं प्राप्नुयादन्व गन्धार्थं गन्धमाप्नुयात् ॥२२॥  
 पटितं रामकवच र्माभिर्द्रिकाश्च पितृ । पुत्रे र्द्विगो नान्त्रिनेर दत्तः न नारः ॥२३॥  
 केवलं रामकवच पटितं मानवैरदि तेषां । सुननुदा न नष्टयुनदनः ॥२४॥  
 जतुः प्रयन्नतश्चेद् र्माभिर्द्रिकाश्च नर्मा । पटुनाय मवदथ परैर्वाञ्छितान्कम् ॥२५॥

ततः, अर्थात् राम उचितवसन भोजन वाचन अनुवागे और आचार मुमिक्षानन्दन रक्षा करे ॥ १० ॥ कर्णकी  
 रामगन्धा रक्षा रक्षा करे ॥ ११ ॥ कर्णोका जलन पवन्धका सुगन्धा रक्षा करे ॥ १२ ॥ कर्णोका रक्षा  
 करे ॥ १३ ॥ मुमिक्षा आनन्द भरणवान मम गोपाणि लक्ष्मणको रक्षा करे ॥ १४ ॥ रामको आनन्द निद्रा  
 हृष्टदेश सवदा मर मुग्धा रक्षा करे ॥ १५ ॥ मन्त्रा आर्जुनको पटन लक्ष्मणको रक्षा करे ॥ १६ ॥  
 राक्षसको वधकरी मर चिबुककी रक्षा करे ॥ १७ ॥ कर्णोका रक्षा करे ॥ १८ ॥ कर्णोका रक्षा करे ॥ १९ ॥  
 पादौ गघनपुटस्थः । हृष्टदेश मनोमयः नाभि रत्नारनभिमत् कटि च हृष्यमेखलः ॥ २० ॥  
 मुखं पातु महामकरः पातु निभ हरीत्रियः । ऊरु पातु त्रिष्णुकरः सुमुखाऽतु जनुनी ॥ २१ ॥  
 नासोटः पातु मे जघे मुग्धा नृपश्चर्यमस । गदादण्डराजोऽन्धान पादमणि मुलाचनः ॥ २२ ॥  
 चित्रकतुषिता पातु मम पार्श्वगुलः मदा गोपाणि मे मदा पातु रीतिशममुद्रवः ॥ २३ ॥  
 दक्षगघमुतः पातु निशायो मम सादरम् । भृगोऽधर्या पातु दिगमे दिग्मे सुदा ॥ २४ ॥  
 सर्वकलेषु र्माभिर्द्रिजिद्वजऽभवत् । पद्म र्मानिद्रिकाश्च सुतोऽक्ष कथितं मया ॥ २५ ॥  
 इदं प्रातः समुन्धाय य पटुयत्र मानवा । न चन्गाभाना लोके तर्प च मफलो भवः ॥ २६ ॥  
 र्मानिद्रिः कञ्चम्यास्य पटुनाञ्जवरेन हि । पुत्रार्थं लभो पुत्रान् जनार्थं धनमाप्नुयान् ॥ २७ ॥  
 पत्नीकामो लभेन्पत्नी गोधनानां तु गोधरम् । धान्यार्थं प्राप्नुयादन्व गन्धार्थं गन्धमाप्नुयात् ॥ २८ ॥  
 पटितं रामकवच र्माभिर्द्रिकाश्च पितृ । पुत्रे र्द्विगो नान्त्रिनेर दत्तः न नारः ॥ २९ ॥  
 केवलं रामकवच पटितं मानवैरदि तेषां । सुननुदा न नष्टयुनदनः ॥ ३० ॥  
 जतुः प्रयन्नतश्चेद् र्माभिर्द्रिकाश्च नर्मा । पटुनाय मवदथ परैर्वाञ्छितान्कम् ॥ ३१ ॥

अतः परं भरतस्य कवचं ते वदामहम् । सर्वपापहं पुण्यं तदा श्रीगमनक्तिदम् ॥ २६ ॥  
कैकेयीनयनं सदा रघुरत्नपद्मेश्वरं श्यामलं समद्वीपपतेरिन्दुहृतनयान्तरम् वक्ष्ये रतम्  
श्रीमीताभवमन्यपाशेनिरुद्धे स्थित्वा वरं य मयं घृत्वा दक्षिणं त्करेण भर्तुं न शक्नुयस्य भजे ॥ २७ ॥

ॐ अस्य श्रीभक्तकवचमंत्रस्य अगम्यकृपेः । श्रीभक्तो देवता अनुष्टुप्छन्दः । अक्षरं  
इति बीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । भरतखण्डेश्वर इति कीलकम् ।  
रामानुज इत्यस्त्रम् । समद्वीपेश्वर इति कवचम् । रामाक्षर इति मन्त्रः । श्रीभक्तप्रीत्यर्थं  
सकलमतोरथमिद्वयं जपे विनियोगः । अथागुलित्यामः ॐ भरताय अगुण्याय नमः ।  
ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरतखण्डेश्वराय त्रनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय  
कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॐ श्रवाय शिरसे स्वाहा ॐ कैकेयीनन्दनाय त्रिपदाय वषट् । ॐ  
भरतखण्डेश्वराय कवचाय हुम् । ॐ रामानुजाय त्रेत्रयाय वीम् । ॐ समद्वीपेश्वराय अक्षाय  
फट् । रामाक्षराय चेति दिग्बन्धः ।

अथ सन्ध्याय न भरतकवचम्

रामचन्द्रमन्यपाशे स्थितं कैकेयजासुतम् । रामाय चामरेणैव बीजयन्तं मनोरमम् ॥ २८ ॥  
रत्नकुण्डलकेयूरकंकणादिविभूषितम् । पीताम्बरपरोधानं वनमालाविराजितम् ॥ २९ ॥  
माण्डवीधौतचरणं रघुनान्पुण्ड्रान्वितम् । तालोत्पलदलश्यामं द्विजराजमभातनम् ॥ ३० ॥  
आज्ञानुवाहं भरतखण्डस्य प्रतिपालकम् । रामानुजस्मिताख्यं च शत्रुघ्नपरिवर्द्धितम् ॥ ३१ ॥  
रामन्यस्तेश्वरं सौम्यं विद्युत्पुञ्जममप्रभम् । रामभक्तं महावीरं वदे त भरतं शुभम् ॥ ३२ ॥  
एवं ध्यात्वा तु भरतं गमयादेश्वरं हृदि । कवचं पठनीयं हि भरतस्येदमुत्तमम् ॥ ३३ ॥  
ॐ पूर्वतो भरतः पातु दक्षिणे कैकेयीसुतः । नृपात्मजः प्रतीच्या हि पातुः शीघ्रं रघूत्तमः ॥ ३४ ॥  
अधः पातु श्यामलांगशोर्ध्वं दशरथात्मजः । मध्ये भारतवर्षेशः सर्वतः सूर्यवशजः ॥ ३५ ॥

लोगोंकी चाहिए कि प्रयत्न करके सब प्रकारकी कामना पूर्ण करनेवाले इस लक्ष्मणकवचका पाठ अवश्य करें ॥ २५ ॥ हे मुनि राज ! अब मैं तुम्हें श्रीभरतजीका कवच बताऊंगा, जो पापोंकी हरनेवाला, पवित्र एवं श्रीरामचन्द्रकी भक्ति देनेवाला है ॥ २६ ॥ मैं उन भरतजीकी चन्दना करता हूँ, जो श्रीरामचन्द्रजीकी ओर निहार रहे हैं । जिनका श्याम स्वरूप है । जो सातो द्वीवोंके अधिराज रामचन्द्रजीकी आज्ञामें तत्पर रहते हैं । जो रामकी दाहिनी ओर बैठकर दाहिने हाथसे सुन्दर चमर हाँक रहे हैं । उन भरतजीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ २७ ॥ "अस्यधो" से लेकर "रामाक्षराय चेति दिग्बन्धः" तक अगम्यास आदिनी विधि बतलायी गयी है । इसके बाद ध्यान है—श्रीरामचन्द्रजीकी दाहिनी ओर बैठकर रामवर चमर चलाते हुए सुन्दर रत्नजटित कुण्डल, केयूर तथा कंकण आदिसे विभूषित, पीताम्बर धारण किये, वनमालासे अलङ्कृत, जिनके चरण माण्डवी धौती है, रघुना और नूपुरसे विराजित, तालकमलके समान श्यामस्वरूप एवं चन्द्रमाके समान मुखवाले ॥ २८-३० ॥ जानुपर्यन्त भुजाओंवाले, भरतखण्डके प्रतिपालक, रामके छोटे भ्राता, शत्रुघ्नसे परिवर्द्धित, मुसकुराहटयुक्त मुखवाले, रामकी ओर दृष्टि लगाये हुए, सौभाग्यस्वरूप, विद्युत्पुञ्जक समान प्रभाशाली, रामभक्त एवं महापराक्रमी भरतजीका ध्यान करके थोड़ी देरतक रामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करें उसके बाद इस भरतकवचका पाठ करें ॥ ३१-३३ ॥ पूर्वकी ओर भरत मेरी रक्षा करें, दक्षिणकी तरफ कैकेयीपुत्र और पश्चिमकी ओर नृपात्मज मेरी रक्षा करें । उत्तरकी ओर रघूत्तम मेरी रक्षा करें ॥ ३४ ॥ नीचे श्यामल अङ्गुलीवाले, ऊपर दशरथात्मज, मध्यमें भारतवर्षके प्रभु चारों ओर सूर्यवर्गमें उत्पन्न होनेवाले

शिख्यर्क्षिता पातु भाल पातु हरिप्रियः श्रुयोर्मध्यं जन्कजावचपैकन्यसोऽवतु ॥३६॥  
 पातु जन्कजाभाता मम नेत्रे मदाऽत्र हि । करे त्वे मांडरीकानः कर्णयुक्ते स्मिताननः ॥३७॥  
 नागाग्र मे सदा पातु त्रिकेपीशेषवर्धनः । दन्त मे हृष्ये पातु पातु पार्श्वौ जटाधरः ॥३८॥  
 पातु पुष्कगन्तौ मे जिह्वा दंतान् प्रक्षामयः । चिबुकः कवचलधरः कटे पातु वगननः ॥३९॥  
 स्कन्धौ पातु त्रिवर्णानिभुजौ हस्तधनवद्विभः । ऊर्ध्वं कवचधरो च नवान् लङ्घधरोऽवतु ॥४०॥  
 कुक्षौ रामानुज पातु । वक्षः श्रीरत्न-ल्लभः पार्श्वे राघवपार्श्वधरा । पातु हृत् सुभाषणः ॥४१॥  
 जटारं च धनुवरा नाभिं शङ्खगोचरात् । नाभे पद्मेक्षणः पातु गुह्यं रमेकमानसः ॥४२॥  
 रामवित्रः पातु लिङ्गानुर धीमममैवकः । नाडग्रामस्थितः पातु ज्ञानुनी मम सर्वदा ॥४३॥  
 श्रीरामसादृकाधारो पातु जघे मदा मम शुक्लौ श्रीरामयन्त्रौ च पारो पातु गुग्गुविनः ॥४४॥  
 रामाङ्गाणलकः पातु मर्मांगान्यत्र सर्वदा मम पादागुनी । पातु मूर्ध्वगदिभूषणः ॥४५॥  
 रोमाणि पातु मे रम्यः पातु रात्रौ सुधार्मिकं । नृणां रक्षक दिवसे दिवशतु मम सर्वदा ॥४६॥  
 सर्वकालेषु मां पातु पौत्रजन्यः मदा भुवि । एव श्रीरामवन्देदं सुतीक्ष्णं कवचं शुभम् ॥४७॥  
 मया प्रोक्तं त्वयामे हि मदार्यगदकाङ्कम् । स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रमिदं त्वेव सगुण्यदम् ॥४८॥  
 पठनीयं मदा भक्त्या रामचन्द्रस्य हर्षदम् । पठित्वा भक्त्येव कवचं सगुण्यदम् ॥४९॥  
 पश्चाद्याति परं तोष तथा कवचवचनं न । तस्मै देतुमदा जर्ण कवचानामनुत्तमम् ॥५०॥  
 अग्न्याश्च पठनान्धन्यैः सर्वान्कामानवाप्नुयात् । विद्याकामो लभेद्विद्यां पुत्रकामो लभेत्पुत्रम् ॥५१॥  
 एतन्नीकामो लभेत्पत्नीं धनार्थी धनमाप्नुयात् । यद्यन्मनोभिः कल्पितं तत्तत्कवचपाटकः ॥५२॥

भरत मरु रक्षा कर ॥ ३५ ॥ तदक पिता मेर मन्त्रवकः रक्षा कर हे रघुव मेर ललाटका रक्षा करे जानकीको  
 आजाय नाराय रहनकाले भरतजी भोडुके मणमगारी रक्षा कर ॥ ३६ ॥ नागाको भाताके समान मानन  
 वाले भरतजी मेरा छात्राको रक्षा कर । मण्डर्षक त्रिस्तम मेर कपायकी रक्षा करे दुग्गान मुख-  
 मण्डलवाले भरतजी मेर कर्णमण्यक रक्षा कर ॥ ३७ ॥ ऊर्ध्वको आनन्दको उद्गानकाले मेर नासाग्रको,  
 उग्र अङ्गवाने मुखको और अग्रापी भरत मेरी वणार रक्षा कर ॥ ३८ ॥ नाडग्रक पित विद्वाको, प्रभासय  
 शीनोको, वल्कलधारी चिबुर्का और गुन्दर मुखकाले अङ्ग मेरे कण्ठक रक्षा कर ॥ ३९ ॥ शत्रुही नाहनवाले मेर  
 कन्धोकी, शङ्खधरविरत भजाओकी, कवचधरा हाथीकी और लङ्घधारी नागाया रक्षा करें ॥ ४० ॥ रामके  
 छोट भाता उदरकी, श्रीरामनन्दन लक्ष्मणकी, रामक दास वैद्यनाथ भरतजी गणेशिकाकी और सुन्दर भाषण  
 करनेवाले पुष्टभणकी रक्षा कर ॥ ४१ ॥ धनुर्वारे जटारकी शङ्खकर न भिक्षो, कमण्डल सदान नरकावाले कमरकी  
 और एकमात्र रामनामका स्मरण करनेवाले मेरे गुह्यभागकी रक्षा कर ॥ ४२ ॥ रामक मेघ लिङ्गकी रक्षा करें,  
 श्रीरामके सेवक अहमानकी और नन्दिराममें रहनवाले भरत सर्वदा मेर ज्ञानुभागी रक्षा करें ॥ ४३ ॥ श्रीरामकी  
 बाहुकाको धारणकरनेवाले मेरी जंघाओकी, श्रीरामकधनुर्दातो गुग्गुभागाका तथा गुग्गुविन भरतजी मेरे पङ्ककी  
 रक्षा करें ॥ ४४ ॥ रामकी आज्ञा पालन करनेवाले सर्वदा मेर मन्त्र अङ्गाकी और मूर्ध्वक उन्म भूषण मेरे  
 पैरकी उगलियेकी रक्षा कर ॥ ४५ ॥ रम्य नृणां रक्षक भरतजी मेर पित नोमीकी, १ किञ्च समस्त गुन्दर बुद्धिवाले  
 और दुर्गाधारी भरत दिवसे समस्त सब दिनाओकी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ पाञ्चजन्य सब समय मेर रक्षा करत रह ।  
 हे सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मेन तुम्हें श्रीभरतजीका कवच कह भुजाया । यह वडा म हुलकारी, सब मनोबोमें उत्तम  
 और भली भाँति पुण्यदाता है । ४७ । ४८ ॥ लोगोंको च हिन् किञ्च रामकक्षत्रीको आनन्द देनेवाले इस भरत-  
 कवचका पाठ करके ही रामकवचका पाठ किया करे । इस कवचक पठने रामचन्द्र जितन प्रसन्न होत हैं,  
 उतने भवने कवच अर्थात् रामकवचका पाठ सुनकर बड़ी प्रमत्त होते । इस कारण लोगोंको बाहिये कि सब  
 कवचोंमें श्रेष्ठ इस कवचका पाठ अवश्य कर ॥ ४६ ॥ ५० ॥ इस कवचका पाठ करनेसे प्राणी सब कामनाओंको  
 प्राप्त कर लेता है । विद्याकी कामनावाला विद्या, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुत्र, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और

लभ्यते मानचैत्र सत्यं सत्यं नदाभ्यहम् । तस्मात्सदा जपनीयं रामोपासकमानवैः ॥५३॥

अथ अनुष्णकवचम्

अथ अनुष्णकवचं सुतीक्ष्णं मृणु मादरम् । सर्वसाधनं रम्यं राममङ्गलवर्द्धनम् ॥५४॥

अनुष्णं धृतकामुकं धृतमहानुगीरवाणोत्तमं पश्ये श्रीगुणनन्दनस्य विनयाद्वामे स्थितं सुन्दरम् ।

रामं स्वीयकरेण तालदलजं घृण्वाडनिवित्रं वरं सूर्याभे न्यज्जलं सभास्थितमहं तं वीक्ष्यतं भजे ॥५५॥

ॐ अथ श्रीशुष्णकवचमंत्रस्य अशक्तिः। श्रीशुष्णो देवता। अनुष्णकवचं । सुदर्शन इति बीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । श्रीमन्नानुज इति कीलकम् । भरतमन्त्रीत्यस्यम् । श्रीरामदाम इति कवचम् । लक्ष्मणांशुज इति मंत्रः । श्रीशुष्णप्रीत्यर्थं सकलमनःकामनापिद्वयार्थं जपे विनियोगः । अर्थागुलिन्पासः । ॐ शुष्णाय अनुष्ण्या नमः । ॐ सुदर्शनाय सर्वनीम्णा नमः । ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरतानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ भरतमन्त्रिणे कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीरामदासाय कतरलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्पासः । लक्ष्मणांशुजैति दिग्बन्धः ।

अथ ध्यानम्

रामस्य संस्थितं वामे पार्श्वे विनयपूर्वकम् । कैकेयीनन्दनं रम्यं मुकुटेनातिरजितम् ॥५६॥

रत्नककणकेयूरवनमालाविराजितम् । रशनाकुंडलधरं रत्नहारमनुपुरम् ॥५७॥

व्यज्जनेन रीजयतं जानकीकांतमादरात् । रामनपस्नेक्षणं वीरं कैकेयीशेषवर्द्धनम् ॥५८॥

दिभुजं कंजनपनं दिव्यपीतांबरान्वितम् । सुधुजं सुंदरं मेघउपामलं सुन्दराननम् ॥५९॥

रामवाक्ये दत्तकर्णं रक्षोघ्नं खड्गधारिणम् । धनुर्वीरधरं श्रेष्ठं धृततुण्डीरमुत्तमम् ॥६०॥

सभायां संस्थितं रम्यं कस्तूरीनिलकांकिनम् । मुकुटस्थावतसेन शोभितं च स्मिन्नाननम् ॥६१॥

रविवंशोद्भवं दिव्यरूपं दशरथान्मजम् । मधुरावासिनं देवं लवणभूरमर्दनम् ॥६२॥

एवं पश्चात् तु शुष्णं रामपादेक्षणं हृदि । पठनीयं वरं चेदं कवचं तस्य पावनम् ॥६३॥

पूर्वं स्वयं शुष्णं पातु वाग्ये सुदर्शनः । कैकेयीनन्दनः शानु प्रतीक्ष्य सर्वदा भव ॥६४॥

धनार्थं धन प्राप्त करता है । इस तरह उसे जिस किसी वस्तुकी इच्छा होती है, वे सब इस कवचके पठने प्राप्त हो जाते हैं । ५१ ॥ ५२ ॥ यह बात मैं विस्तृत सब कह रहा हूँ—भूढ़ कुछ भी नहीं । रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि सदा इस कवचका पाठ किया करे । ५३ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! अब मैं तुम्हें अनुष्णकवच बताऊँगा । तुम आदरपूर्वक सुनो । यह अनुष्णकवच भी सब कामनायें पूर्ण करने और रामकी सद्भक्ति बढ़ानेवाला है ॥ ५४ ॥ अनुष्ण धारण करनेवाले बड़ा-सा तरकस धारण किये, श्रीरामचन्द्रजीके पास रामभागमें लहे, अपने हाथसे त इका पंखा झलते हुए, सूर्यके समान अक्षिण्य विविध उस पंखेकी दीप्ति है, ऐसे अनुष्णजीकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५५ ॥ 'अथ श्री' से लेकर 'लक्ष्मणांशुजैति दिग्बन्धः' तक अङ्ग-म्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है । इसके आगे पढ़ात है—रामके पास रामभागमें विनयपूर्वक सहे कैकेयीके जाननन्दनाता, सोम्यस्वरूप, मुकुटसे अतिरंजित, रत्नजडित कंकण, नेयूर तथा वनमालासे अलंकृत सिकड़ी और गुण्डल धारण किये रत्नहार तथा सुन्दर नूपुर पहने, आदरपूर्वक रामचन्द्रजीकी पंखा झलते और रामकी ओर निहारत हुए कैकेयीका जाननन्द बड़ा-बड़े वीर, उनके दो भुजायें हैं, कमल जंघे नेच है, दिव्य पीताम्बर पहने, सुन्दर भुजावाले, मेघके सदृश राममल तथा सुन्दर गुलवाले, रामकी बातीमें काश लगाये, राजशेकी धारनेवाले, खड्ग धारण किये, धनुष और बाणसे सुनजित बड़ा-सा तुण्डीर धारण किये, सभामें स्थित, रम्य, कस्तूरीका तिलक लगाये, मुकुट और गुण्ड-से सुशोभित, मुस्कराते मुखवाले, सूर्यके समान जापमान, दिव्यरूपधारी, दशरथके पुत्र, मधुरावासी सबणभूरका मर्दन करनेवाले और श्रीरामके चरणोंमें

शत्रुदोष्या रामचन्द्रः पान्वधो भरतानुजः । रविवशोद्भवधोर्ध्वं मध्ये दशार्थान्मजः ॥६५॥  
 सर्वतः पातु मामत्र कैकेयीपोषवर्द्धनः । श्यामलाग शिरः पातु मान् श्रीलक्ष्मणीश्रजः ॥६६॥  
 भ्रुवोर्मध्ये सदा पातु मुमुक्षोस्वभावनीलले । ध्रुवकीर्तिपतिर्मेरे कपोले पातु राघवः ॥६७॥  
 कर्णौ कुण्डलकर्णोऽव्याकामाग्र नृपवश्रजः । मूत्र मम यूना पातु गणी पातु म्फुटाक्षरः ॥६८॥  
 जिह्वां सुवाहूनातोऽव्याघ्रपकेतुपिना द्विज नृ । चिबुकं रम्यचिबुकः कटं पातु सुमाधगा ॥६९॥  
 स्कन्धौ पातु महानेजा भुजौ गवशवावकृन् । कर्ग मे कर्कणधरः पातु खड्गो नखन्मम ॥७०॥  
 कुक्षिं रामपियाः पातु पातु वक्षो रघुनमः । पार्श्वे सुराचनः पातु पातु पृष्ठिं वगाननः ॥७१॥  
 अटं पातु रसोदकः पातु नाभि सुन्दोवनः । कटं भक्तमर्त्री म गुह्य श्रीरामसेवकः ॥७२॥  
 रामाश्रितमखाः पातु त्रिगामूरु मिमनाननः । कोदण्डपणिः पान्वत्र जानुनी मम सर्वदा ॥७३॥  
 गममित्रः पातु जघं गुल्फौ पातु सन्तपूरः । पार्श्वे नृपतिपूज्योऽव्याकृत्युमान्पादां गुनीमप ॥७४॥  
 शान्वमानि समस्तानि हृदयार्गः सदा मम । शेषः शिरःपार्श्वोऽव्याट्टार्थी पातु सुधार्मिकः ॥७५॥  
 दिवसे मायसधोऽव्याट्टोत्तने शरमन्करः । गमने कटकटोऽव्यान्मवदा लवणतक ॥७६॥  
 एवं शत्रुघ्नकवचं मया ते मयुर्दीर्घिनम् । ये पठन्ति नराण्यन्वच नरः श्रीरामभक्तिनः ॥७७॥  
 वज्रघ्नस्य चरं चेद् कवचं मंगलप्रदम् पठन्त्यै नरेभ्यस्तथा पुनर्पात्रमवर्द्धनम् ॥७८॥  
 मस्य स्तोत्रस्य पाठेन यं यः कथं नरोऽर्षियेन । तं तं लभेन्निराधेन सत्यमेतद्वचो मम ॥७९॥  
 पुत्रार्थी प्राप्नुयान्पुत्र धनार्थी धनमाप्नुयान् । इच्छाकामं नृ कामार्थी प्राप्नुयान्पठनादिना ॥८०॥  
 कवचस्यास्य भूम्या हि शत्रुघ्नस्य गितिथयात । नमोऽदेनममदा भक्त्या पठतोय नरैः शुभम् ॥८१॥

नेत्र लगाये हुए शत्रुघ्नकी का आनन्द करने हम उनमें शत्रुघ्नकवचका पाठ करना चाहिये ॥६५-६७॥ पूर्वकी ओर शत्रुघ्न, दक्षिण तरफ सुभजन की ओर पश्चिम ओर कैकेयीनन्दन हमारी रक्षा करें ॥ ६४ ॥ उत्तरमें रामचन्द्र, नीचे भरतके छोटे भ्राता, ऊपर मृगशज और मध्यम दशरथः मज मेरे रक्षा कर ॥ ६५ ॥ कैकेयीकी आनन्द देनेवाले मेरी चारों ओर रक्षा कर ॥ श्यामल व हनुमान शत्रुघ्न भरतका और लक्ष्मणके अंशज मेरे कलाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ सुन्दर मुणवले सदा मेरे भौतिक मकरमागकी धनकीर्तिके पनि मेरीका तथा राघव दोनों कपोलोंकी रक्षा करें ॥ ६७ ॥ कानामें कुण्डल बाण करनेवाले मेरे कानोंका नृपवंशज नाभिकाके अग्रभागकी मुखारूपधारी शत्रुघ्न मेरे मुखकी एवं मूत्र अक्षर जोड़नेवाले मेरी नाभ की रक्षा कर ॥ ६८ ॥ सुवाहूके पिता कर्णोंकी, पुष्पकेतुके पिता दाँतोंकी, सुन्दर चिबुकवले मेरे चिबुकका और सुन्दर वतें करनेवाले सर कण्ठकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ महातपस्वी कर्णोंकी गमका अज्ञा बालन करनेवाले भुजका, कर्कणधारी मेरे हाथोंकी और खड्गकी बाण करनेवाले शत्रुघ्न नमकी रक्षा करें ॥ ७० ॥ रामके विष मेरे उदरकी, रघुलज वलाम्बककी, सुरचित पार्श्वभागकी और वरानन पूरमागकी रक्षा करें ॥ ७१ ॥ रक्षार्थ उठरकी, मुलोचन नाभिकी, भरतके भव्य कटिभागकी और श्रीरामसेवक गुह्यप्रदशकी रक्षा करें ॥ ७२ ॥ जिन्होंने अपना मन रामको अर्पित कर दिया है वे शत्रुघ्न नाभकी मुखवाले ऊर्ध्वभागकी और हाथोंमें वज्र बाण करनेवाले सर्वदा मेरी जानुओंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ राममित्र बाँधोंकी, सुन्दर नृपूर पहननेवाले गुल्फकी, नमतिपूज्य पैरोंकी और श्रीमान् मेरी उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ उदार भङ्गवाले शत्रुघ्न सदा मेरे समस्त अङ्गोंकी रक्षा करें ॥ रमणीय आकृतिवाले मेरे लोमोंकी, रात्रिके समय सुराचक, दिवसके समय सत्यसंध, पावनके समय सुन्दर बाण धारण करनेवाले, वसनके समय सुन्दर बाण धारणनेवाले और सब समय लवणामुरकी मारनेवाले शत्रुघ्न मेरी रक्षा करें ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ इस तरह मेने मुझ शत्रुघ्नकवच का सुनाया ॥ ओ लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे सुखभाग्यी होव हैं ॥ ७७ ॥ यह कवच बड़ा सुन्दर, मंगलप्रद तथा पुनर्पौष बढ़ानेवाला है ॥ ७८ ॥ इन स्तोकका पाठ करनेवाला प्राणी जो-आ वस्तुमें चाहता है, उन्हें अवश्य पाता है ॥ मेरी बात सच मानो ॥ इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ७९ ॥ पुत्र चाहनेवाला पुत्र, धन चाहनेवाला धन तथा जो प्राणी जो

आदौ नरैर्मालिनेष पठित्वा कवचं शुभम् । ततः शत्रुघ्नकवचं पठनीयमिदं शुभम् ॥८२॥  
 पठनीयं भरतस्य कवचं परमं ततः । ततः सौमित्रिकवचं पठनीयं सदा नरैः ॥८३॥  
 पठनीयं ततः सीताकवचं भाग्यवर्द्धनम् । ततः श्रीरामचन्द्रस्य कवचं सर्वशोचनम् ॥८४॥  
 पठनीयं नरैर्भक्त्या सर्ववर्त्तिनदायकम् । एवं पठ् कवचाभ्यञ्ज्य पठनीयानि सर्वदा ॥८५॥  
 पठनं षट्कवचानां भेष्टं मोक्षकथाधनम् । स्नात्वाऽत्र मानवैर्भक्त्या कार्यं यः पठनं सदा ॥८६॥  
 अशक्तोऽपि चत्वारि पठनीयानि मादृशम् । इदमप्यथ मौमित्रेः सीताया राघवस्य च ॥८७॥  
 इमानि पठनीयानि चत्वारि कवचानि हि । चतुर्णां कवचानां च पठने मानवस्य च ॥८८॥  
 न यद्यत्रात्रकाशश्चैनदा श्रीणि पटेश्वर । मारुतेऽप्यथ सीतायामनुया श्रीगणकस्य च ॥८९॥  
 त्रयाणां कवचानां च न पाठ्यसमे यदा । पठनार्थं मानवस्य तदा द्वे कवचे स्मृते ॥९०॥  
 मारुतेऽप्यथ रामस्य सीताया राघवस्य वा । तैकमेव षट्कवाञ्ज्य श्रीरामकवचं शुभम् ॥९१॥  
 अवकाशे कवचानां षट्कमेव सदा नरैः । पठनीयं क्रमेणैव कर्तव्यं नालम् । कदा ॥९२॥  
 यदाऽवकाशो नास्त्येव तदा तेषां सुखमपे । यथा विशेषः प्रोक्तोऽयं न सर्वेषां मयैरितः ॥९३॥

इति शत्रुघ्नकवचम् ।

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य स्वमा यद्यन्वृष्टं नचन्मयोदितम् । अन्यन्किञ्चिन्नरक्षामि नः शत्रुघ्नाय मादृशम् ॥९४॥  
 शीतः प्रवयः श्रीगणः सदा मेवोऽत्र मानवैः । वीणावाद्यादिभिर्भक्त्या नृगण्यपि समाचरेत् ॥९५॥  
 दशरथनन्दनेति सर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघदूषामेति वै चोक्त्वा तथा रविकुलेति च ॥९६॥  
 मन्दनराजामेति हार्विशाश्चतुष्पथ्यपम् । मनुः सदा जयनीयो वीणावाद्येन सुस्वरम् ॥९७॥

दशमयनन्दन मेघश्याम रविकुलमण्डन राजाराम इति मनुः ।

कीर्तनेऽस्य मनोर्नैव कार्यो न्यासो जपे स्मृतः । एवं सर्वेषु मर्षेषु चोद्भूयं मानवैर्धुवि ॥९८॥

भा. चाहता है, तो उस मिलता है ॥ ८० ॥ इस भूषण्डालमें शत्रुघ्नकवच बड़ा उत्तम है । अतएव मनुष्यको सर्वप्रथम इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८१ ॥ लोगोंको चाहिए कि पहले हनुमत्कवचका पाठ करके इस शत्रुघ्न-कवचका पाठ करें । ८२ ॥ इसके बाद भरतकवच और भरतकवचके बाद सौमित्रकवचका पाठ करें ॥ ८३ ॥ इसके बाद भाग्यको बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ करें ॥ ८४ ॥ इस तरह सब वांछित फल देनेवाले छः कवचोंका प्रतिस्ति पाठ करते रहें ॥ ८५ ॥ इन छहों कवचोंका पाठ अथ और मोक्षका साधन है । ऐसा सम्झकर लोगोंको सर्वदा इनका पाठ करने रहना चाहिए ॥ ८६ ॥ यदि ऐसा न कर सके तो हनुमान्जी, लक्ष्मण, सीता तथा रामके कवचका पाठ करे । यदि इन चारोंके पाठ करनेका समय किसी प्राणीको न मिले तो हनुमन्जी, सीता तथा रामके कवचका ही पाठ करे ॥ ८७-८८ ॥ यदि तीन कवचके पाठ करनेका भी अवसर न मिल सके तो हनुमान तथा राम इन दोनों कवचोंका ही पाठ करे । किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखते कि ऊपर बतलाये कवचोंमेंसे किसी एकका अवकाश रामकवचका ही पाठ करके न रह जाय ॥ ९० ॥ ९१ ॥ जब समय मिले, तब सुते कवचोंका क्रमशः पाठ करे । आलस्यवश दास न दे ॥ ९२ ॥ यदि किसी विशेष अवचनके कारण कुछ भी समय न मिल सके, तबोंके लिए यह परिहार बतलाया गया है । यह सब सम्भव और सबके लिए लाभ नही है ॥ ९३ ॥ रामदासने कहा-है मिया । तुमने हमसे जो पूछा, वह सुनाया । अब और कुछ बताने बतला रहा हूँ, उह आदरपूर्वक सुनो ॥ ९४ ॥ लोगोंको यह भी चाहिए कि एदा गीत-कविता आदिसे रामचन्द्रजीका गुण गाज करे और शीघ्र आदि कायाकलाप भक्तिपूर्वक पावे ॥ ९५ ॥ पहले 'दशरथनन्दन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' फिर 'रविकुलमण्डन' ऐसा कहकर 'राजाराम' कहते हुए 'दशरथनन्दन मेघश्याम रविकुलमण्डन राजाराम' इस मन्त्रका कोहन और जप किया करे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ईश



रामजयेति चोक्त्वा तु विशारं चाथ सुस्वरम् । रामेति द्वेऽधरे न्वन्ते सोक्त्वा वीणास्वरेण च ॥१०९॥

चतुर्दशाक्षरं चार्त्तनार्थं मयेति ॥१००॥

राम जय राम जय राम जय राम इति मनुः ।

मंत्रशास्त्रेषु ये मंत्रास्ते जगर्थे प्रकीर्तिताः । इमे मंत्राः कीर्तनार्थं ज्ञान्या मानवोत्तमैः ॥१०१॥

एतेषामपि चेद्वक्त्या मंत्राणां च जपः कृतः । तदा मर्म्मोपविश्यति तेषां पापानि त्रैलोक्यात् ॥१०२॥

अन्धान् मंत्रान् प्रवक्ष्यामि तान् शृणुष्व द्विजोत्तम । राजीवलोचनेन्युक्त्वा मेघश्यामेति वै ततः ॥१०३॥

तथा सीतारंजनेति राजारामेति वै ततः । एकोनविंशद्वर्णश्च राममंत्रस्तथ स्मृतः ॥१०४॥

राजीवलोचन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम इति मंत्रः ।

अथ मंत्रः सुस्वरेण कीर्तनादौ मुहुर्मुहुः । वीणास्वरेण सपुक्तश्यामे गमनेऽपि च ॥१०५॥

श्रीसुन्दर्यै जयशब्दमप्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःसप्तकृत्वा शृणुताश्च नाम जपं निहन्त्याद्द्विविधोद्दिह्याः ॥१०६॥

श्रयोदशाक्षरश्चाथ राममंत्रः शुभाग्रहः । जानीयः कीर्तनीयः सर्वदाऽप्यं मुहुर्मुहुः ॥१०७॥

श्रीगम जय राम जय जय राम इति मनुः ।

अथ मंत्रः सुस्वरेण तथा वीणास्वरादिना । कीर्तनीयो मुदा मन्त्रैर्मंत्रशास्त्रेऽप्ययं स्मृतः ॥१०८॥

तस्मान्ममदा जपनीयः सर्वमदिप्रदायकः । अष्टादशाक्षर मंत्र न्वन्य शृणु शुभाग्रहम् ॥१०९॥

उक्त्वा सीतारंजनेति मेघश्यामेति वै ततः । कीर्तयामुनेन्युक्त्वा च राजारामेति वै ततः ॥११०॥

सीतारंजन मेघश्याम कीर्तयामुन राजाराम इति मनुः ।

अष्टादशाक्षरश्चाथ कीर्तनीयो महामनुः । वीणास्वरादिनाश्च कलकठन सुस्वराः ॥१११॥

रविवाक्यलज्जानं वन्दे चेति प्रकीर्त्यं च । सुरभूमिगुण्युक्त्वा अग्रे गीतं चेति ततः परम् ॥११२॥

मन्त्रका जप करते मन्त्र श्याम आदि कान्की कोई आवश्यकता नहीं प्रहृतः । इसी तरह अली मतलब ज्ञानवान् मन्त्रोंको भी विशेषतः जानना चाहिए ॥ १०८ ॥ 'रामजय' ऐसा तीन बार कहकर वीणाके स्वरसे 'राम' इस दो अक्षरवाले उच्चारण करना चाहिए । यह च ईशान्श्याम मन्त्र का प्रथम सन्तोको कर्त्तव्य करनेके लिए बतलाया है । 'राम जय राम जय राम राम जय राम' यह मन्त्र है । मन्त्रशास्त्रसे जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जप करनेके लिए हैं । किन्तु ये मन्त्र कीर्तन करनेके लिए भी लिखे गये हैं ॥ १११ ॥ यदि भक्तिपूष्क इतका जप भी किया जाय तो ज्ञानमन्त्रसे जप करनेवाले को सब प्रकार ज्ञान आयेगा ॥ ११० ॥ हे द्विजोत्तम । मुझ से और भी बहुतसे मन्त्र बतला दूँगा । 'राजीवलोचन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' तथा 'सीतारंजन' और 'राजाराम' ऐसा कहे । यह चतुर्विंश अक्षरका मन्त्र है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ राजीवलोचन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम' यह मन्त्र है । अली तरह माँटे स्वरसे बारम्बार इस मन्त्रका कीर्तन करता रहे । चलते फिरते उठते बैठते सदा इस मन्त्रका कीर्तन करे ॥ १०१ ॥ आदिमें 'श्री' उसके बाद 'जय' फिर दो जयके बीचमें 'राम' बक्कीस बार नाम जपनेवाला मनुष्य करोड़ों सहस्रहत्याके पापक नष्ट कर देता है ॥ १०६ ॥ यह त्रयोदशाक्षर राममन्त्र बड़ा कल्याणदायक है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि बारम्बार इस मन्त्रका जप और कीर्तन करते रहे ॥ १०७ ॥ 'श्रीराम जय राम जय जय राम' यह मन्त्र है । लोगोंका उचित है कि इस मन्त्रको वीणा आदिके स्वरके साथ साथ प्रतिपूर्वक कर्त्तव्य करे । मन्त्रशास्त्रमें भी इस मन्त्रका उल्लेख है ॥ १०८ ॥ इसलिए सर्वदा इस मन्त्रका जप भी करना चाहिए । क्योंकि यह सब प्रकारको सिद्धियोंको देनेवाला है । अब मैं एक और अष्टादशाक्षर मन्त्र बतला रहा हूँ । वह भी बड़ा माण्यकारी है ॥ १०९ ॥ 'सीतारंजन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' फिर 'कीर्तयामुन' कहकर 'राजाराम' कहना चाहिए ॥ ११० ॥ 'सीतारंजन मेघश्याम कीर्तयामुन राजाराम' यह मन्त्र है । इस अष्टादशाक्षर महामन्त्रका कीर्तन करना चाहिए । कीर्तन वीणाके स्वरके साथ तथा कोकिलके समान मोठे स्वरोंमें होनेसे विशेष लाभदायक होता है ॥ १११ ॥ 'रविवाक्यलज्जानं

ममदशसुवणम् राममंत्रस्तव्यं शुभः । कीर्तनीयः सुस्वरं हि शोणादाद्यस्त्रादिका ॥११३॥  
रविवरकुलजान वन्दे सुमधुरमोक्षम् इति मनुः ।

विष्णुदाममृण्मन्त्रान् राममंत्रान् शुभायहः । येन स्मरणमात्रेण मदनपारं कृतं मजेन ॥११४॥  
कीमन्पासुतेन्युक्त्वाथ रामेति द्वेऽक्षरे तथा नया मीठारंजनेति मेनश्शामेति च ततः ॥११५॥  
गोदशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः शुभायहः । वीणास्वरपूर्वकश्च कलकटेन सुस्वरः ॥११६॥  
कीमन्पासुतराम मानारजन मेनश्शाम इति मनुः ।

गोदशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः सदा नरैः । गर्वपापक्षयकरः सर्ववर्षाधिपदायकः ॥११७॥  
दशरथनन्दनमि पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मधुश्यामतिवै चोक्त्वा भीतेति द्वेऽक्षरे तथा ॥११८॥  
मंजनेति ततश्चोक्त्वा राजारामेति च ततः । विंशत्क्षरपञ्चधार्यं महापातकनाशनः ॥११९॥  
दशरथनन्दन मेघश्याम मंतरारजन राजाराम इति मनुः ।

अथ विंशत्क्षरो मन्त्रः कीर्तनीयः सुखप्रदः । वीणस्वरममेतश्च महापुण्यप्रदः स्मृतः ॥१२०॥  
वदे रघुवीरमिति चोक्त्वा चैव ततः परम् । उक्त्वा सांज्ञाकान्तमिति रणधीरमिति क्रमात् ॥१२१॥  
चतुर्दशाक्षरश्चायं राममंत्रः शुभायहः । कीर्तनीयो जनैर्भक्त्या महामंगलकारकः ॥१२२॥  
वदे रघुवीरं पीनाकान्तं रणधीरम् इति मनुः ।

अथ राम अथ राम संकीर्त्यं सुस्वरं ततः । जय जयान् संकीर्त्यं रामेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२३॥  
चतुर्दशाक्षराय हर्षायः कथितो मनुः । कीर्तनीयो जनैर्भक्त्या महामंगलकारकः ॥१२४॥  
अथ राम अथ राम जय जय राम इति मनुः ।

मनुः मीठागधवेति पञ्चवर्णान्वितः स्मृतः । जयन्त्ययः कीर्तनीयो वीणावाणेन सुस्वरः ॥१२५॥  
मीठागधव इति मनुः

मन्द" इसका उच्चारण करके "मृदुमृदु" ऐसा कहकर 'न तत्' का उच्चारण करे ॥११३॥ तबहु सुन्दर वर्णों-  
से इस शुभ राममंत्रका रचना की गयी है । न मात्रो चाहिए कि शोण आदि वाजोंके साथ मीठे स्वरसे  
इस मंत्रका कीर्तन किया करे ॥ ११३ ॥ "रविवरकुलजान वन्दे सुमधुरमोक्षम्" यह मंत्रका स्वरूप है । राम-  
दास कहते हैं कि ये विष्णुदास । अब मैं भी और कहूँ तो शुभ मंत्र सुन्ने बता रहा हूँ, सुनो । जिनके  
स्मरणमात्रसे बड़े बड़े पाप भूल जाते हैं । ॥ ११४ ॥ 'कीमन्पासुत' ऐसा कहकर 'राम' इसका उच्चारण  
करे । तदनन्तर 'मीठारंजन' और उसके बाद 'मनश्शाम' कहें । ॥ ११५ ॥ यह पारशरमी मंत्र बड़ा शुभ है ।  
इसीलिए लोगोका चाहिए कि मंडा आराजस बाणा आदि वाशक माधन्याय इसका कीर्तन करे ॥ ११६ ॥  
"कीमन्पासुत राम से राजंजन मधुश्याम" यही मंत्रक स्वरूप है । इस पारशरमी मंत्रका श्रेष्ठ सर्वज्ञ कीर्तन  
करे । क्योंकि यह समस्त पापोंका नाशक और सब प्रकारका अधिलक्षित कामनामोक पूर्ण करनेवाला महाभंत्र  
है ॥ ११७ ॥ "दशरथनन्दन" ऐसा कहकर पहले 'मधुश्याम' और उसके बाद "राजा" इन दो अक्षरोंको  
कहकर 'रञ्जन' ऐसा कहने हुए "रामराम" कहें । यह बीस अक्षरोंवाला राममंत्र बड़े-बड़े पातकोंका  
नाशक है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ "दशरथनन्दन मेघश्याम मंतरारजन राजाराम" यही इस मंत्रका स्वरूप है ।  
जन्तोंको चाहिए कि सब प्रकारका सुख देनेवाले इस विंशत्क्षर मंत्रका मीठे स्वर तथा वीणा आदि वाजोंके  
साथ कीर्तन करे । क्योंकि यह बड़ा पुण्यदायक मंत्र है ॥ १२० ॥ "वदे रघुवीरम्" ऐसा कहकर "पीनाकान्तम्"  
तथा "रणधीरम्" ये वाक्य कहें ॥ १२१ ॥ बड़े परम पवित्रात्मक चतुर्दशाक्षरमंत्र राममंत्र है । लोगोको जानित  
है कि महामंगल करनेवाले इस मंत्रका मतिपूर्वक कानन करें ॥ १२२ ॥ "वन्दे रघुवीरं पीनाकान्तं रणधीरम्"  
यह इस मंत्रका स्वरूप है । "जय राम जय राम" ऐसा कहकर "जयजय" ऐसा कहते हुए "राम" ये दो  
अक्षर कहें । "जय राम जय राम जय जय राम" यह इस मंत्रका स्वरूप है । चतुर्दशाक्षर मंत्रमें यह तीसरा  
मंत्र है । लोगोको चाहिए कि महाराजकाका नश करनेवाले इस मंत्रका कीर्तन किया करें ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

भजेति द्वेऽक्षरे पूर्वं सीताराममिति क्रमात् । मानसेति ततश्चोक्त्वा भजेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२६॥  
ततो राजाराम इति मंत्रः पञ्चदशाक्षरः । कीर्तनीयो मनुष्याय वीणावाद्येन सुख्यः ॥१२७॥

भज सीताराम मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

श्रीसीताराममित्युक्त्वा वन्दे चोक्त्वा ततः पुनः । श्रीराजाराममिति च कीर्तयेन्सुखं मुहुः ॥१२८॥  
द्वादशाक्षरमश्रोष्य कीर्तनीयः सदा ज्ञेयः । वीणावाद्यादिना पुष्पः सर्ववाञ्छितदायकः ॥१२९॥

श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम् इति मनुः ।

गवणमर्दनेऽप्युक्त्वा रामेऽप्युक्त्वा ततः परम् । राघवसि ततश्चोक्त्वा वाली चेति ततः क्रमात् ॥१३०॥  
मर्दनेति पुनश्चोक्त्वा रामात् द्वेऽक्षरे पुनः । स्मृतोऽष्टादशवर्णश्च द्वितीयोऽप्य मनुः शुभः ॥१३१॥

राघवमर्दन राम राघव वालीमर्दन रामेति मनुः ।

अयं मंत्रः कीर्तनीयः सर्वदा मानवोचमैः श्रीसीताराममिति च मानसेति ततः परम् ॥१३२॥  
यजेति द्वेऽक्षरे चोक्त्वा राममिति द्वेऽक्षर पुनः । रामासात् द्वेऽक्षरे च मश्रोऽयं परमः शुभः ॥१३३॥  
चतुर्दशाक्षरश्चायं चतुर्थस्य मयोग्नः कीर्तनीयः सुखीऽयं वीणावाद्यपुरःसरः ॥१३४॥

श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

सीताराम जयेत्युक्त्वा राज रामोति वै ततः अयं दशाक्षरो मंत्रः कीर्तनीयोऽप्य सुख्यः ॥१३५॥  
सीताराम जय राजाराम इति मनुः ।

श्रीसीताराममिति च वद राममिति क्रमात् । जय रामं ततश्चोक्त्वा अष्टोदशाक्षरो मनुः ॥१३६॥  
कीर्तनीयः सदा मर्त्यैः सर्वफलकनाशनः । वीणावाद्यादिना मन्त्रं द्वितीयोऽप्य मनुः स्मृतः ॥१३७॥  
श्रीसीतारामं वद राम जय रामम् इति मनुः ।

मां पाश्वतीति चोक्त्वादीं दीनं राघव चेति द्वि स्वल्पदयुगलीनं वै जेत्येष षोडशाक्षरः ॥१३८॥

‘सीतारामव’ यह पंचदशलिखित राममंत्र है । पुनश्च छोटे स्वर और वीणा आदि वाद्योंके साथ इस मंत्रका कीर्तन और जप करे ॥ १२७ ॥ “सीतारामव” यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘भज’ यह शब्द कहकर ‘सीतारामम्’ कहे । उसके बाद “मानस” यह शब्द कहकर ‘भज सीतारामम्’ ऐसा कहें । यह पंचदशाक्षराम्त्रक राममंत्र है । इसे जो जप या छोटे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके साथ कलन करे ॥ १२६-१२८ ॥ “भज सीताराम मानस भज राजारामम्” यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘श्रीसीतारामम्’ ऐसा कहकर ‘वन्दे’ कहे और उसके बाद ‘श्रीराजारामम्’ कहकर इस मंत्रका कलन करे । यह द्वादशाक्षराम्त्रक मंत्र है । ‘श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम्’ यह इस मंत्रका स्वरूप है । लोगोंको उचित है कि सब प्रकारकी कामनाओं पूर्ण करनेके लिये इस मंत्रका जप और कीर्तन करे ॥ १२९ ॥ पहले ‘राघवमर्दन’ फिर “राम” उसके बाद “राघव” फिर “वालीमर्दन” तदनन्तर “राम” ऐसा कहें । अष्टादशाक्षर मंत्रोंमें यह दूसरा मंत्र है । ‘राघवमर्दन राम राघव वालीमर्दन राम’ यह इस मंत्रका स्वरूप है । मन्त्रजनोंको चाहिए कि सर्वदा इस मंत्रका जप किया करे । पहले “सीतारामम्” उसके बाद “मानस” फिर ‘भज’ और उसके पश्चात् “राजारामम्” ऐसा कहें । यह बड़ा पवित्र मन्त्र है ॥ १३०-१३४ ॥ चतुर्दशाक्षरात्मक मंत्रोंमें यह चौथा मन्त्र है । इसका जो वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन तथा जप करना चाहिए । श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम्” यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘सीताराम जय’ फिर ‘राजाराम’ ऐसा कहें । यह दशाक्षर राममंत्र है । लोगोंको चाहिए कि सोठे स्वरसे इस मंत्रका जो कीर्तन किया करें ॥ १३५ ॥ ‘सीताराम जय राजारामम्’ यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “सीतारामम्” फिर “वन्दे रामम्” और इसके बाद “जय राम” ऐसा कहें । यह त्रयोदशाक्षर राममंत्र है । संसारके प्राणियोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ नियम इस मंत्रका कीर्तन करे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ “श्रीसीतारामं वन्दे रामं जय रामम्” यह मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘मां पाश्वतीति’

कीर्तनीयो मनुर्मर्त्यैः सर्वपातककृतनः । वीणावाद्यस्वरेणोच्चैः कलकंठेन सुस्वरः ॥१३९॥

मां पाक्षतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनमिति ।

द्वितीयोऽयं मया प्रोक्तो मंत्रो वै षोडशाक्षरः । १४०॥

जय जयेति वै चोक्त्वा राघवेति ततः परम् मन्त्राक्षरमनुधाप्य कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४१॥

जय जय राघव इति मनुः ।

जयजयेति संकीर्त्य तथा रघुवरेति च । अष्टाक्षरमनुधाप्य कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४२॥

जय जय रघुवर इति मनुः ।

त्वं मां पालयेन्मुक्त्वा सीतारामेति वै पुनः । नवाक्षरमनुधाप्य मनुधाप्यं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४३॥

वीणावाद्यस्वरेणैव महापातकनाशनः ॥१४४॥

त्वं मां पालय सीतागम इति मनुः

सीताराम जयेन्मुक्त्वा मनुः षडक्षरः स्मृतः कीर्तनीयः सदा मन्त्र्यर्वीणावाद्येन सुस्वरः । १४५॥

सीतागम जय इति मनुः ।

श्रीसीतारामेति मनुर्ज्ञेयः पञ्चाक्षरः शुभः । कीर्तनीयः सदा मन्त्र्यर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४६॥

श्रीसीताराम इति मनुः ।

सीतारामेति मनुश्चतुर्वर्णात्मकः स्मृतः ।

सीतागम इति मनुः ।

श्रीरामेति त्र्यक्षरश्च रामेति द्व्यक्षरो मनुः ॥१४७॥

श्रीराम इति मनुः । राम इति मनुः ।

राकारो बिंदुना युक्तश्चैकवर्णात्मको मनुः । अयं सदा जपनीयः कीर्तनीयो न वै कदा ॥१४८॥

रां इति मनुः ।

रामजयेति चोक्त्वाऽऽदी सीतारामेति वै ततः । राघवेति ततश्चोचन्वा मंत्रस्त्वैकादशाक्षरः ॥१४९॥

किर 'दीनं राघव' इसके बाद 'त्वत्पदयुगलीनम्' ऐसा कहे । यह षोडशाक्षर मन्त्र सब प्रकारके पापोंको काटनेवाला है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा वादि बाजों और कोकिला जैसे कीड़े तथा ऊँचे स्वरसे इस मन्त्रका कीर्तन करें ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ "मां पाक्षतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनम्" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । षोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह दूसरा मन्त्र है । १४० ॥ पहले 'जय जय' ऐसा कहकर "राघव" कहे । यह सप्ताक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४१ ॥ "जय जय राघव" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "जय जय" कहकर "रघुवर" कहे । यह अष्टाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी जप करते रहना चाहिए ॥ १४२ ॥ "जय जय रघुवर" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "त्वं मां पालय" ऐसा कहकर "सीताराम" ऐसा कहे । यह नवाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इस मन्त्रका भी जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिये । क्योंकि यह बड़े बड़े पापोंका नाशक है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ "त्वं मां पालय सीताराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम जय" यह षडक्षर राममन्त्र है । संसारके लोगोंको चाहिए कि वीणा वादि बाजोंके साथ इस मन्त्रका भी कीर्तन करें । "सीताराम जय" यह मन्त्रका स्वरूप है । "श्रीसीताराम" यह पञ्चाक्षर राममन्त्र है । यह भी महान् पातकोंका नाशक है । इसलिए लोगोंको इसका जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ "श्रीसीताराम" यह मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम" यह चतुर्वर्णात्मक राममन्त्र है । "श्रीराम" यह त्र्यक्षर राममन्त्र है । "राम" यह द्व्यक्षर मन्त्र कहा गया है ॥ १४७ ॥ "श्रीराम" और "राम" यह मन्त्रका स्वरूप है । राकारको बिंदुयुक्त ( रा ) कर देनेसे एकाक्षर राममन्त्र हो जाता है । लोगोंको

राम जय सीताराम राघवेति मनुः ।

दशरथनन्दनेति रघुकुलेति वै ततः धूपणेति तत्रश्लोकत्वा कौमल्येति तत्र परम् ॥१५०॥

विश्रामेति तत्रश्लोकत्वा पंकजलोचनेति च रामेति द्वेऽक्षरे चापि एकाविंशाक्षरे मनुः ॥१५१॥

अयं सदा कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः प्रोक्तः पानकविश्वम्पी सर्वदा छिन्द्यायकः ॥१५२॥

दशरथनन्दन रघुकुलधूपण कौमल्यविश्राम पंकजलोचन रामेति मनुः

सीताराम जय-युक्त्वा राघवेति ततः परम् । रामेति द्वेऽक्षरे चापि मन्त्रस्वेक एवाक्षरः ॥१५३॥

कीर्तनीयः सुस्वरोऽयं मन्त्रो वीणावाद्येन च । महापानकहस्तप्रोक्तः सर्वदा छिन्द्यायकः ॥१५४॥

सीताराम जय राघव रामेति मनुः ।

एकादशाक्षराय मन्त्रः प्रोक्तो मन्त्रोऽयं द्विः द्वितीयः पन्मः श्रेष्ठो महापानकनाशनः ॥१५५॥

पञ्चवटीस्थितेन्युक्त्वा रामजयजयेति च दशरथनन्दनेति रामेति द्वेऽक्षरे तथा ॥१५६॥

एकविंशाक्षराय कीर्तनीयो महामनुः । कलकण्ठेन मन्त्रेण महापानकनाशनः ॥१५७॥

पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन रामेति मनुः ।

दशरथसुतेन्युक्त्वा पालं वदे विविति क्रमात् राम घननीलमिति मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥१५८॥

द्वितीयोऽयं मन्त्रो प्रोक्तः कीर्तनीयो मनोरमः वीणावाद्यस्वरेण च महापुष्पविषर्जनः ॥१५९॥

दशरथसुतपालं वदे राम घननीलमिति मनुः ।

कोदण्डखड्गेन्युक्त्वा दशशिरमर्दनेति च । कौमल्यासुत रामेति सीतारजन चेति वै ॥१६०॥

राजारामेति वै चोक्त्वा ऐकोनविंशवर्णकः । कीर्तनीयो मनुश्राय वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१६१॥

कोदण्डखड्गेन दशशिरमर्दनेन कौमल्यासुत राम सीतारजन राजारामेति मनुः ।

बाहिए कि इस एकाक्षर मन्त्रका कवल जय कर, कीर्तन नहीं ॥ १५० ॥ 'रा' यह एकक्षर मन्त्रका स्वरूप है । पहले 'राम जय' कहकर 'सीताराम' और इसके बाद 'राघव' ऐसा कह । यह एकादशाक्षरमन्त्रक राममन्त्र है । ॥ १५१ ॥ "राम जय सीताराम राघव" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । पहले "दशरथनन्दन" फिर "रघुकुल" फिर "धूपण" फिर "कौमल्याविश्राम" फिर "पंकजलोचन" और इसके बाद 'राम' ऐसा कहे । यह अट्ठाईस अक्षरोंका राममन्त्र है ॥ १५० ॥ १५१ ॥ लोगोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे सदा इस मन्त्रका जप और कीर्तन करना चाहिए, क्योंकि यह सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला और अभीष्ट कामनाओंका पूरा करनेवाला मन्त्र है । "दशरथनन्दन रघुकुलधूपण कौमल्य विश्राम पंकजलोचन राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम जय" ऐसा कहकर 'राघव' और उसके बाद 'राम' ऐसा कहे । यह एकादशाक्षर मन्त्र है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ यह भी सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला है । "सीताराम जय राघव राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे इसका जप और कीर्तन करे । क्योंकि यह प्रकारकी कामनाय इससे पूर्ण हो जाती हैं ॥ १५४ ॥ "पञ्चवटीस्थित" ऐसा कहकर "राम जय जय" और इसके बाद "दशरथनन्दन राम" ऐसा कहे । यह एकविंशाक्षर राममहामन्त्र है । इसका भी मीठे स्वरसे कीर्तन करना चाहिए । क्योंकि यह महा-मन्त्र बड़े-बड़े पातकोंको नष्ट कर देता है । १५५ ॥ १५६ ॥ "पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन राम" यह इस एकविंशाक्षर राघवमन्त्रका स्वरूप है । "कादण्डखड्गेन" ऐसा कहकर "दशशिरमर्दन" इसके बाद "कौमल्यासुत राम सीतारजन" और "राजाराम" कहे । यह मन्त्र एकोनविंशाक्षरमन्त्रक है । इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे

कोदण्डमञ्जनेन्युक्त्वा रावणमर्दनेति च । कौसल्यायैति तत्रश्लोकश्च विश्रामेति ततः परम् ॥ १६२ ॥  
सीतारञ्जनेति ततो राजारामेति वै ततः । मन्त्रविशालम्भार्थं मनु प्रोक्तः शुभपदः ॥ १६३ ॥

कोदण्डमञ्जन रावणमर्दन कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजारामेति मनुः ।

कोदण्डमञ्जनेन्युक्त्वा वालीताडन चेति वै । ललाटादनेति ततः । पाशाग्रनसर्पणेति च । १६४ ।  
रावणमर्दनेन्युक्त्वा रविकुलेति वै ततः । भूषणेति तत्रश्लोकश्च कौसल्यायैति ततः परम् ॥ १६५ ॥  
विश्रामेति तत्रश्लोकश्च मानारजन चेति वै । २ राजारामेति वै चक्षुषा पचासदस्यो मनुः । १६६ ॥  
अयं सदा कीर्तनीयो वंणवाद्येन सुस्वरः । मन्त्रः । हि त्रिष्टुप्पद्यं महापावननाशनः ॥ १६७ ॥

कोदण्डमञ्जन वालीताडन ललाटादन पाशाग्रन रावणमर्दन रविकुलभूषण

कौसल्याविश्राम मानारजन राजारामेति मनुः ।

एवं नानाविधा मन्त्राः सन्नि शिष्य मदम्भुगः । सदसर्पद्वयेन कम्पान् दत्तुं मयेन समः । १६८ ॥  
एते सर्वे कीर्तनाया शीघ्रं च येन सुस्वरा । इमे मन्त्रा अपनीया न शेषा मानगोचरम् । १६९ ॥  
मन्त्रशास्त्रेषु ये प्रोक्तास्ते जप्यः एव मन्त्राः । ते मन्त्राः त्रिनेत्राधान कीर्तनीपास्त्रिमेष्मिताः १७० ॥  
एतान् मन्त्रान् पुरस्कृत्य प्रचक्षते विविधः शम्भुः । रचनीयाः कुट्टनद्विर्नामानां पाणिनादरात् ॥ १७१ ॥  
ये ये नोक्ता मया मन्त्राणां पुण्याः स्वयेभ्यः । यस्मै तैव देवैः स तेनैव देवैः त्रिनेत्रादेनैव हरिः ॥ १७२ ॥  
मन्त्रैः पञ्चमैः कार्यैश्च स्तुतिभिः कीर्तनैश्च । प्रार्थनैर्वा कल्पितैर्वा रामो मेवः मदानरैः ॥ १७३ ॥  
येन केन प्रकारेण कार्यं राघवावितनम् । पापघातिः क्षणं हृष्या भीताववितनेन हि ॥

भवस्यैव न मदेहः पारकं न यथा कुटी ॥ १७४ ॥

दंभेन वातिभक्त्या वा निष्कामाद्वा सकामतः । यद्यत्र राघवो गीतस्तेन वापि हुनं मयेत् ॥ १७५ ॥

स्वरसे कीर्तन करना कहिए ॥ १६९ ॥ १७० ॥ 'कोदण्डमञ्जन दशकिरमर्दन कौसल्यापुत्र राम सीतारञ्जन राजाराम' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । 'कोदण्डमञ्जन' कहकर 'रावणमर्दन' इसके बाद 'कौसल्याविश्राम' और 'सीतारञ्जन राजाराम' कहे । यह सप्तविंशत्यक्षरक शुभ राघवमन्त्र है ॥ १६९ ॥ १७० ॥ "कोदण्डमञ्जन रावणमर्दन कौसल्या विश्राम सीतारञ्जन राजाराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । 'कोदण्डमञ्जन' कहकर 'वालीताडन' और इसके बाद क्रमशः ललाटादन पाशाग्रनाराण 'रावणमर्दन' 'रविकुलभूषण' 'कौसल्याविश्राम' और 'सीतारञ्जन राजाराम' ऐसा कह । यह पञ्च इमांशमन्त्रक राघवमन्त्र है । इसे भी जोणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए । यह मन्त्र सत्य राममन्त्रोक्त श्रेष्ठ है और बड़े बड़े पातक नष्ट कर देता है ॥ १६९-१७५ ॥ 'कोदण्डमञ्जन वालीताडन ललाटादन पाशाग्रनाराण रावणमर्दन रविकुलभूषण कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजाराम' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । हे शिष्य ! इस प्रकार हजारों राममन्त्र हैं । जिन्हें कोई हजारों वर्ष तक कहुना जाय, फिर भी पूरी तोरसे नहीं कह सकना । १७७ ॥ ऊपर बतलाये सब मन्त्रोंकी शीघ्रा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए । धन्य मनुष्योंको यह भी जान लेना चाहिए कि ये सब मन्त्र जपनेके लिए नहीं बल्कि कवन कामके लिए हैं । इनके अतिरिक्त मन्त्रकार्योंमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जपनेके लिए हैं, बल्कि कामके लिए नहीं । बुद्धिमान् कवियोंको चाहिए कि इन्हों मन्त्रोंके आधारपर विविध मायाओंमें विविध प्रकारके प्रसन्नोत्तर रचना कर ॥ १७८-१७९ ॥ मैंने जिन जिन मन्त्रोंको नहीं बतलाया है उन्हें भी बुद्धिमान् लोग चहे वा अगच्छ कथ्यमाना सकते हैं । जब मन्त्रोंकी रचना करनेमें कोई दोष नहीं होता, बल्कि ऐसा करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं । १७९ ॥ मन्त्र, प्रसन्न, काव्य, स्तुति, कीर्तन ये सब प्राचीन हों वा अरुण भीम नवें बनाये गए हों, उनका कानन करना चाहिए । किन्तो भी प्रकारमें रामका स्मरण करना जरूरी है । क्योंकि राघव ही न रहनेमें मही पदपाणि उठा तबहु अण्धरमें बल आता है । जैसे फूलकी कुटीमें आग भजन है तब भी मन्त्र उठे जलाकर मन्त्र कर देता है । १७९-१७८ ॥ दम्भसे, भक्तिसे, निष्काम वा सकाम जिस किसी तरह भी राघवनामका कानन करनेमें वाप अल अल है ॥ १७५ ॥

यथा बह्विस्तूलाणि स्पर्शिनः कामनां विना । कामेन वा दहत्येव सणात्तद्वन्न संशयः ॥१७६॥

मन्त्रैः प्रबन्धैः काव्यैश्च नानाचारित्र्यवर्णनैः

अत्यशुद्धैः स्तुतो रामः कल्पितैरपि स्वेच्छया । तैश्च तुष्टो भवत्यत्र श्रीरामो नात्र संशयः ॥१७७॥

विनाश्रयेण रामस्य यत्कृतं स्तवनादिकम् । तेनापि तुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥१७८॥

आश्रयेणापि वा निन्दा कृता श्रीरावजस्य च । सा भवेन्नकार्येन नात्र कार्या विचारणा ॥१७९॥

किं शास्त्रैश्च पुराणैश्च पठितैः पाठितैरपि । यदि रामे रतिर्नास्ति तर्भवेन्मानवस्य किम् ॥१८०॥

रामप्रीतिपुतस्यात्र भूर्जस्यापि नरस्य च । तद्वापाकृतस्तुत्याद्यैः प्रमत्तो जायते हरिः ॥१८१॥

रामचन्द्रस्य प्राप्तयथै यत्कृतं मानवैर्भुवि । तेनानितुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥१८२॥

रामो मेयश्चिन्तनीयोऽत्र रामः स्तव्यो रामः सेवनीयोऽत्र रामः ।

ध्येयो रामो वंदनीयोऽत्र रामो दृश्यो रामः सर्वभूतान्तरेषु ॥१८३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनीष्यहंकारे

लक्ष्मणादीनां कवचादिनिर्दण्डेण नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १४ ॥

## षोडशः सर्गः

( हनुमन्पताकागोपणं व्रत )

श्रीरामदास उवाच

एवं यद्यप्यद्या पृष्टं तन्मया परिवर्णितम् । किमन्यच्छ्रोतुकामस्त्वं तद्वदस्व वदामि ते ॥ १ ॥

विष्णुदास उवाच

रामायणं नरः श्रुत्वा किं विधानं सशचरेत् । तच्च वद महाभाग यद्यस्ति तत्सर्वस्तरम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

रामायणे श्रुते दद्याद्रथं हेममयं सुयोः । चतुर्भिर्वाजिभिर्बुक्तं तथा सौमयताकया ॥ ३ ॥

जिस तरह बड़ीसे बड़ी हईकी राशिकी अग्नि जला डालती है, उसी तरह किसी कामनासे या विना कामना होके रामका कीर्तन तत्क्षण पापराशिकी भस्म कर देता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७६ ॥ मन्त्र प्रबन्ध तथा विविध प्रकारके चरित्रासे पूर्ण काव्योंसे या अपने बनाये अतिअशुद्ध पदोंसे ही रामका कीर्तन किया जाता है तो भी भगवान् प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७७ ॥ विना किसी आधारके भवने काव्योंसे रामकी स्तुति करतेसे रामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं । यदि रामका आधार लेकर काव्य बनाना जाय और उसमें भगवान्की निन्दा की जाय तो वह नरकका ही साधन होता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ यदि राममें प्रीति नहीं है तो बहुतेरे शास्त्रों और पुराणोंके पठन-पाठनसे कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ १८० ॥ राममें प्रीति रखनेवाला मनुष्य चाहे भूर्ज ही हो किन्तु वह यदि अपनी रूटी-फूटी भाषामें भगवान्का गुण गाता है तो उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १८१ ॥ इनके अतिरिक्त रामचन्द्रजीकी प्राप्तिके लिए जो कुछ भी उपाय किये जाते हैं, उनसे भगवान् अतिसय प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १८२ ॥ इसलिए लोगोको चाहिए कि सदा रामका गुण गाये, उनका स्मरण करें, सेवा करें, ध्यान करें, और ससारके प्रत्येक प्राणीमें भगवान्की अलौकिक उपोत्तिका वर्णन कर ॥ १८३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचदशोऽध्यायः पञ्चदशः सर्गः ॥ १४ ॥

श्रीरामदास बोलें—हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह सुनाया । अब क्या सुनना चाहते हो, सो कहूँ ॥ १ ॥ विष्णुदासने कहा—आनन्दरामायण सुननेके अनन्तर लोगोको क्या-क्या विधान करना चाहिये, सो आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस रामायणको सुननेके अनन्तर

एतैश्चैव समायुक्तं किञ्चिन्नीनादनादितम् । संपादितैश्च सम्पद्यै चेतुं दद्यात्पथम्विनीम् ॥ ४ ॥  
 व्याख्यान् भोजयेत्पश्चान् शतमष्टोत्तरं सुधीः । एवं कृते विधाने तन्महाकाव्यं कलप्रदम् ॥ ५ ॥  
 रामायणं भवेन्नूनं नात्र कार्यं विचारणा । यस्मिन् रामस्य संस्थानं रामायणमष्टोत्थने ॥ ६ ॥  
 एवं त्वया यथा पृष्टं मया कृते निवेदितम् ।

विष्णुदास उवाच

किञ्चिद्व्रतं हनुमतस्त्वं मां वक्तुमिहाहंसि ॥ ७ ॥

श्रीरामदास उवाच

यदा रामश्चिकूटादौ नागपाशैस्तु पीडितः । नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मर चिन्तासुतम् ॥ ८ ॥  
 तदाऽसौ कारयको वीरः समागन्त्य रणागणे । प्रणाममकरोत्तस्मै रामायामित्वैजसे ॥ ९ ॥  
 निवार्य यक्षगास्त्रं तन्मेषनादसमीरितम् । तुष्टान् रघुवीरं तं ससैन्यं च सलक्ष्मणम् ॥ १० ॥  
 उवाच प्रणिपत्याथ रामभद्रं स्वगेश्वरः ।

गरुड उवाच

आश्चर्यमिदमन्यतं यद्ववानस्परद्वि माम् ॥ ११ ॥

सति वीरे महारुद्रे सगणे श्रीहनुमति सुग्रीवे च नले नीले सुषेणे जम्बवत्यपि ॥ १२ ॥  
 अक्रवे दधिवक्त्रे च तारे च ताले तथा । मैत्रे मणि महतीष्वे किं मेऽवास्ति प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

श्रीराम उवाच

भवद्भ्रीविमुपासया विदुनाथ भुजङ्गमाः एतेषु सन्सु वीरेषु क्रियु सैन्यमपीडयन् ॥ १४ ॥

गरुड उवाच

रामदेव महाबलौ कपीनां चरित शृणु । आत्मनोऽपि समाविष्टान्मा कुरुष्वान गर्हणम् ॥ १५ ॥  
 साक्षत्वं भगवान्विष्णुर्लक्ष्मीस्तु जनकान्मजा । सौमित्रिः कणिरत्रोऽयं रुद्राश्च कपयः स्मृताः ॥ १६ ॥

बुद्धिमान् भक्त्युत्पन्नो उच्यते द्वे किं बहु चर धोहो जुते श्रीर रेवामी पताकासे मुग्धोपित रथ कयावाचक  
 ब्रह्मणको दान दे । विविच प्रकारस अलकन गौता दान करे । इसके बाद एक सौ आठ बाह्याणोंको भोजन  
 कराये । श्री प्रण, आनन्दर, मावण सुनकर ऐसा करता है, उसे इस महाकाव्यके श्रवण करनेका फल प्राप्त  
 होता है । इसने कोई संग्रह नहीं करना चाहिए । जिसमें श्री रामचन्द्रजी का निवास हो, वही रामायण है  
 अथवा जिसमें राम विद्यमान रहें, वह रागायण है । ३-६ । इस तरह तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया, मैंने  
 संतका उत्तर दे दिया । विष्णुदासने कहा—हे, रुरो ! अब मुझे हनुमान्जीका भी कुछ बात बतला दीजिए  
 ॥ ७ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय राम चिकूट पर्वतपर नागपाशमें बँध गये थे, उस समय  
 उन्होंने नारदके कथनानुसार गरुडका स्मरण किया । उसी समय गरुडजी वहाँ जा पहुँचे और उन्होंने  
 संग्रामभूमिम भगवान्को प्रणाम किया ॥ ८ । ९ । हृदयन्दर मेषनाद द्वारा प्रेरित नागपाशका निवारण  
 करके समस्त सेना और लक्ष्मण सहित रामकी स्तुति की । फिर प्रणाम करके गरुडजी भववान्  
 रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे प्रभो ! यह सोचकर मुझे आश्चर्य होता है कि श्रीहनुमान्जीके रहते  
 हुए भी मुझ दासको आपने स्मरण किया ॥ १० ॥ ११ ॥ हनुमान्जीके अतिरिक्त सुग्रीव, नल, नील,  
 सुषेण, आम्बवान्, अक्रव, दधिवक्त्र, तार, ताल, मैत्र आदि वीर थे । इन वीरोंके रहते हुए श्रीमान्को  
 मुझे स्मरण करनेकी आवश्यकता क्यों पड़ी ? ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—आपके भयसे  
 सब सर्प भाग गये, किन्तु ये लोग यहाँ रहकर भी स्वयं उनके पाशमें बँध गये थे ॥ १४ ॥ गरुडजी बोले—मैं  
 आपको बानरोंका चरित सुनाता हूँ, सुनिए । यद्यपि यहाँ बहुतसे आत्मीय बानर बँटे हैं फिर भी मैं कहूँगा ।  
 इन लोगोंके चाहिए कि मेरी बातको अपनी निन्दाके रूपमें न मानें ॥ १५ ॥ आप साक्षात् विष्णु भगवान्





पताका त्रिविधाः कृत्वा चित्रनोरणमयुताः । भक्ष्यभोज्यानि स्वाद्यानि तेषां पेयं च सर्वशः ॥३४॥  
 युष्मानुद्दिश्य ये मन्या जुहन्ति हि हुताग्ने । इति पुण्यतमं कर्त्तास्तेषां सिद्धिर्बलं संशयः ॥३५॥  
 पायसेनैव साज्येन तर्पेत्तिलमपि वा । यजति भवतां पुत्रं ते याति परमं परम् ॥३६॥  
 एवं वै रुद्रमल्लिख माघा वैश्वानरीस्तथा । मानस्तोकेति वा मन्त्री मनोज्योतिरधापि वा ॥३७॥  
 भवतां यजनं चात्र सायज्या वा पक्कीर्तितम् । एवं ये मानवा लोके विधानं परिकुर्वते ॥३८॥  
 यथापि सुकन्या सुवासीनास्त्वन्ते धात्वक्षयं पदम् ।

गहड़ उवाच

इति राम पुण्यतमं कपीनां कथितं मया ॥३९॥

एषु कर्तव्येषु सर्वेषु हनुमान्मद्रनायकः ॥४०॥

विधानं तत्र कर्त्तव्यं यथास्ते हनुमन्नुतः । गोपुरे हनुमन्मूर्तिः शिलायां च प्रतिष्ठिता ॥४१॥  
 तत्र सर्वं प्रकर्त्तव्यं विधानं सुरसचमः ।

श्रीराम उवाच

केन केन प्रकारेण क्रियते कविपूजनम् ॥४२॥

पताकाः कीदृशीस्तत्र कति कार्या विद्वज्जर । इदं कति सख्याक किं द्रव्यं कीज्योऽत्र वै ॥४३॥  
 किं दानं केन विधिना तन्मन्त्राचक्ष्व सुमतः ।

गहड़ उवाच

जनसारे समुत्पन्ने प्राप्ते वा पतनेऽपि वा ॥४४॥

प्रसवत्यौषधं नैव मणिमन्त्रपुरःक्षिप्तः । विधानं तत्र कर्त्तव्यमेकादश्यां विधौ नृप ॥४५॥

प्रसक्तकाले समुत्थाय कुवशीचो द्विजोषमः । स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये तिलामलकमस्कृतः ॥४६॥

एकादश द्विजान् श्रेष्ठान्श्लोषवासान्निमन्त्रयेत् । जागरस्तंष्टु कर्त्तव्यः सर्वोपस्कासयुतः ॥४७॥

आदौ तु भण्डपं कृत्वा सर्वत्रापि मुशोमितम् । पुष्पमण्डपकामध्ये मण्डपे स्थःपयेद्भगान् ॥४८॥

शरीरकी पूजा और स्मरण करने । विभिन्न रङ्ग की पताकाये, चित्र विभिन्न कारण, परह तरहकें भक्ष्य भोज्य तथा पेय पदार्थ आपके उद्देश्यसे जो आत्ममें हुनन करने । उगक एवसिद्धि प्राप्त होगी । इसमें कई संशय नहीं है ॥ ३४-३५ ॥ जो लोग धर्म मिलाकर खाना-पान करने करते हैं उनका परम पद प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार "एवं वै रुद्रमल्लिख" इस मन्त्रसे अथवा "वैश्वानर" या "मानस्तोके" इस मन्त्र तथा "मनोज्योति" इस मन्त्र अथवा माघशामन्त्रसे आपके लिए हुनन करनेका विधान है । जो लोग संसारमें इस विधिका पालन करते हैं, वे सब प्रकारकी अपाधिकोस सुख होकर अक्षय पद प्राप्त करते हैं । गहड़जीने कहा है राम । यह मैंने बानरोंका एक प्राचीन इतिहास कह सुनाया ॥ ३७-३८ ॥ इन चारहो खंडमें हनुमान्जी सबके मुक्तिया हैं । इसलिए ऊपर बलये हुए सब विधान उसी स्थानपर करने चाहिए, जहाँ कि हनुमान्जीकी मूर्ति विद्यमान हो । अथवा गोपुर या किसी पक्कणखण्डपर हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापित करके पूर्वलिखित विधिसे पूजन करे । श्रीरामचन्द्रजीने पूछा-है पक्षिराज । किन्तु किस प्रकारसे कविपूजन करना चाहिए ॥ ४०-४२ ॥ इनकी पूजामें कैसी पताका बनवाये, कितनी ब्राह्मणों दे, किन्तु मन्त्रका जप करे और किस-किस विधिसे क्या दान करे ? से सुनत ! वे सब जाते हुन बतलाए । गहड़ने कहा है प्रभो ! जिस समय रामोण या माघरिक मनुष्योपर महाभारी वैसी विपत्ति आ पड़े । माँग-मन्त्र आदिका प्रभाव कोई काम न करे तो एका-दशी तिथिको यह विधान सम्पन्न करे ॥ ४३-४५ ॥ किसी उन्नत ब्राह्मणकी चाहिए कि यह प्रसक्तकाल उठे । शरीरमें तिल और आवले लगाकर पवित्र जलसे स्नान करे । इसके अनन्तर उपवास किये हुए भाखू ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और सब सामग्रिये एकत्रित करके उन लोगोंके साथ रातभर जागरण करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पहले चारों ओरसे सुशोभित मंडप तैयार करवाये और उसमें फूलोंका एक छोटा-सा मन्दिर बनाकर बीचमें

पंचामृतैस्तु स्नपनं रुद्रैः पञ्चैकलप्यन् । ततस्तु कुपुर्मैः पूजा शनपत्रादिभिः शुभैः ॥४९॥  
 चन्दनं च मकरं रुद्रैः लेपनं वरम् । दशांगधूरमादयः हापैर्नीराजयेत्ततः ॥५०॥  
 नैवेद्यं विविधं दद्यान्नाचूडेनैव मधुनम् । एकादशं पत्राकाम्बु पटैः सुपरिकल्पयेत् ॥५१॥  
 या या यस्मै मनुहिष्ठा पत्राका च सुशोभना । तस्य तस्यैव रूपं तु तस्यामेव प्रकल्पयेत् ॥५२॥  
 एव कृते विधाने च सुपत्राकासुतोर्णैः । श्रावःकाले तु राजेन्द्र जागराति द्विजोत्तमः ॥५३॥  
 कृतस्नानो नद्यानाये होमं कुर्यान्महाहितः । पश्यसेन तु साज्येन तथैव तिलमर्पितः ॥५४॥  
 अयुतं हवनं कुर्यात् पूजः पत्रा प्रकल्पयन् । पत्राका हनुमद्दारे तस्यैव च निधाययेत् ॥५५॥  
 राजद्वारे तु सौम्यांघ्रीं सौपेणोपात्तये न्यसेत् । नलनीलपत्रके च शिवद्वारे तु विन्रसेत् ॥५६॥  
 सारस्यं नरसस्यापि मैदस्यं दण्डस्यं च । प्रायश्चित्तभित्तित्तु मार्गेषु स्थापयेद्ध्रिया ॥५७॥  
 जलस्थाने जायवन्तीं दाधिवक्त्रीं चतुष्पथे । स्थापयन्मर्मां दिव्यां महावाद्यादिमण्डलैः ॥५८॥  
 द्वारवेशे वनानां च रुद्रमूर्तिं त्रिकेयके चित्रितां पञ्चार्णवैः प्रायश्चित्तैश्च वेष्टयेत् ॥५९॥  
 प्रत्यहं कारयेद्विद्वान् भक्त्या ब्राह्मणवर्णेणम् । दद्यात्तस्य निष्कन्दिगम्भी मालकाराणि भूरिशः ॥६०॥  
 छत्राणि कम्पवैश्च पादुकाश्च विष्टेयकाः । धेनुं पारस्विनीं दद्यादाचार्याय सवन्मकाय ॥६१॥  
 सदसिणां सवस्त्रां च मालकाणां गुणान्वितान् । द्विजैश्च महिषीं दद्यात्तस्यैव पृथ्वीगते ॥६२॥  
 अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च मनः प्रान्त्यानि भूरिशः । लवणं मधुनं देव तैलं च सगुडं तथा ॥६३॥  
 सुदधादानानि भूर्गुणि लवाणि विविधानि च । पत्रकृन्वा विधानं च राजा क्षेमयसाप्नुयात् ॥६४॥  
 रुद्र एवात्र निर्दिष्टो जपः सर्वैः सुलक्षणः । अथवा हाने शस्त्रं मानस्योक्तं इति स्फुटम् ॥६५॥

इति हनुमत्पत्राकाभिधानं प्रथम् ।

इति श्रीशतकोटिरामचरितानामेव श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे

हनुमत्पत्राकाभिधानं प्रथमोऽंशः समाप्तः ॥ १६ ॥

शतकोटी स्थापित करे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उस राजाको पञ्चामृतमे स्नान कराय और शनपत्र आदिक गून्नोंसे विधिवत् पूजन करे । कपूर मिल हुए चन्दनका लेपन, दण्डा घूरका आघ्राण और नीराजन करे । फिर हाम्बूलके साथ विविध प्रकारके नैवेद्य समर्पित करे और रुद्र वज्रास ग्यारह पत्राका देखावे । जो पत्राका जिस रुद्रके लिए निर्धारित की गयी है, उसका उसका चित्र बनवाये ॥ ४९-५२ ॥ ये विधियाँ करनेके अनन्तर सुन्दर पत्राका आदि समर्पित करे । यह सब हवन सत्र उठे और नदीके जलमें स्नान करके सावध, नतापूर्वक तिल और घी मिले सौम्य अर्घ्यगुण्डमें दस हजार अर्घ्यर्पा दे । इसके बाद फिर उन सबको पूजा करे । हनुमान्जीके द्वारपर हनुमान्जी की पत्राका गण्ड पर मुग वला पत्राका, बाण ( बाजार ) में गुणेलका और शिवद्वारपर नल-नीलसा पत्राका स्थापित करे ॥ ५३-५६ ॥ पत्राका लार, तरल, मैद और वाङ्गुली पत्राकाको ग्रामके बाहर चारों दिशाओंमें स्थापित करे ॥ ५७ ॥ जलस्थानपर आम्बशान् और चोराहपद धविषपत्रकी पत्राकाको विविध वस्त्रों से श्रुतिक साथ स्थापित करे । मधुगोंके द्वारदेगपर पाँच बर्गोंके चित्रित रुद्रमूर्ति बनाये और प्रायश्चित्तसे उसे परिवेष्टित करे ॥ ५९ ॥ ५९ ॥ समस्तद्वार लोगोंको बाहिए कि प्रतिदिन ब्राह्मणोंको अच्छी तरह भोजन करावे और क्रन्दिगोंकी विविध आभूषण और वस्त्र दान दे ॥ ६० ॥ छत्र, पादुका तथा दूध इनवाले सवन्मा गो आचार्यको दे । उस गौके साथ पारितु दक्षिणा, अलंकार, मस्त्र आदि भी दे । उस यज्ञमें जो ब्राह्मण ब्रह्मा बना है, उसे एक भैरवका दान दे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसके अतिरिक्त और जिसने ब्राह्मण हों, उन्हें भी सवधादान और छत्र आदि दे । जो राजा इस विधानसे रुद्रयज्ञ करता है, उसका सब प्रकारसे कल्याण होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इस विधानमें रुद्रमन्त्र बयवा "मानस्योक्तं" यह मन्त्र जयना लाभकारी होता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितानामेव श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये १० रामायण-पाण्डेयकृत 'मनोहर' नामाष्टीकासहिते मनोहरकाण्डे बीसवाँ सर्गः ॥ १६ ॥

## सप्तदशः सर्गः

( श्रीरामचन्द्रोपदिष्ट साररामायण )

श्रीरामदास उवाच

विष्णुदास स्वया यद्यन्वृष्टं तत्तन्मयेरितम् । रामाज्ञया तव प्रीत्याऽऽनन्दचारित्र्यमुत्तमम् ॥ १ ॥  
 रामेर्णैव ममऽस्येन तत्रोपदिष्टमादरात् । त्वय्यस्ति रामसंप्रीतिस्तस्माद्रामेण मे द्विज । २ ॥  
 आशुपितं पूजनानि पुरा तव तपोबलात् आनन्दरामचरितं ममेदं मंगलप्रदम् ॥ ३ ॥  
 विष्णुदासाय विप्राय कथयस्वेति वै गृह्युः । त्वदर्शं पूजनानि मे दर्शनं दत्तवान्निजम् ॥ ४ ॥  
 नक्षेत्रशतलोकसाररामायणेन च पुरा मे ग्रथितेनत्र रामेण स्मारितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥  
 श्रीरामोपदिष्टेन महामंगलदेन च नवाधिकशतलोकसाररामायणेन च । ६ ॥  
 यद्यन्मया विस्मृतं च धृतं पूर्वकथानकम् यम तच्चापि स्मारितं वाल्मीकिमुखनिर्गतम् । ७ ॥  
 ततो मया विष्णुदाम राघवस्य तथा तव । शृण्वेतिमिदाद्रामचरितान्यविविच्य च । ८ ॥  
 सारं सारं च कथितं महामामूल्यकारकम् ।

विष्णुदास उवाच

त्वयैतत्कथितं चेदमानन्दमन्तकं मम ॥ ९ ॥  
 श्रीरामचरितं रम्यं मम तोषार्थमुत्तमम् । इतकोटिमितातन्त्रिकं कथितं च विविच्य च । १० ॥  
 अथवा भाग्यसुखार्थमपिादुक्तं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

शतकोटिमितं कुरुते मया रामायणं शुभम् ॥ ११ ॥  
 विविच्य ज्ञानदृष्ट्याऽत्र तवेदमुपदेशितम् । विद्वेषात्स्मारितं चापि साररामायणश्रवात् ॥ १२ ॥  
 रामोपदेशिताद्रम्यात्तस्ते कथितं मया ।

विष्णुदास उवाच

शतकोटिमिते रामचरिते पातकापहे । १३ ॥  
 कति काडानि सर्गाश्च तन्मां वक्तुं त्वमर्हसि ।

श्रीरामदास कहा है विष्णुदास ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह चुनाया । यह समस्त आनन्दरामायण रामचन्द्रजीकी आज्ञासे अथवा यूँ कहो कि साक्षात् रामचन्द्रजीत ही मेरे मुखसे कहा है । तुम्हारे हृदयमें रामकी भक्ति है । इसीलिये उस दिन पूजनके अन्तमें तुम्हारे तपोबलसे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे तुमको आनन्दरामायण सुनानेकी आज्ञा दी थी । उन्होंने कहा था - यह आनन्दरामायण बड़ा मंगलकारी ग्रन्थ है, तुम इसे विष्णुदासकी सुनाओ । तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर ही मैं पूजनके अन्तमें तुम्हें अपना दर्शन दे रहा हूँ । १-४ ॥ रामचन्द्रजीक स्मरण करानेपर ही मैंने एक सौ भी श्लोकोंमें रामायणका सार सुनाया था । त्रिनविंश कथानकोको मैं सूच गया था । वे भी वाल्मीकिजीके मुखसे निकले रामायण द्वारा स्मरण होते गये ॥ ५-७ ॥ इसके बाद मैंने रामचन्द्रजीकी आज्ञासे रामायणके मुख्य-मुख्य अंश लेकर कहा है । विष्णुदास बोले कि आपने मुझे आनन्द देनेके लिये यह रम्य आनन्दरामायण कहा है तो कृपा करके अब यह भी कतलाह कि सी कपोल सज्जात्मक रामायणसे आपने कहाँ कहाँसे क्या-क्या अंश लेकर कहा है? ॥ ८-१० ॥ अथवा भारतखण्डसे कौन-कौन अंश लिये हैं ? श्रीरामदास कहने लगे—पूरी रामायण सी करीब श्लोकोंकी है ॥ ११ ॥ ज्ञानकी दृष्टिसे विवेचना करके मैंने तुम्हें इसका उद्देश दिया है । हमें तो रामायणके शारका अर्थ

श्रीरामचन्द्र उवाच

नव लक्षणि कांदानि शतकोटिमिते द्विज ॥१४॥

सर्गो नवतिरुवाच ज्ञानव्या मुनिकीर्तिताः । कोटानां च शत श्लोकमानं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥१५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि यथा श्रोतावशेन द्वि । उपदेष्टुं मदर्थं द्वि साररामायणं शुभम् ॥१६॥

नरोत्तमश्च श्लोकवर्णिन च मनोहरम् । तस्य वदन्तुना पुण्यं यः कौतूहलं मम ॥१७॥

श्रीरामदास उवाच

सम्बद्धं पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । साररामायणं तेऽद्य प्रोक्ष्यते रामकीर्तिम् ॥१८॥

आविर्भूत्वा रजनान्ते मरुते आत्पिः श्रिया । मां प्रोवाच गुरुवंतु प्रयत्नपुत्रपुत्रकजः ॥१९॥

( अथ साररामायणम् )

श्रीरामचन्द्र उवाच

रामदास शृणुस्वाद्य यन्मां प्रोच्यते नव । चरितं सकल स्वीयं यथा तस्य भविस्वरम् ॥ १ ॥

विष्णुदासाय शिष्याय मद्भक्तिनिरताय च । कथयामि तथाऽन्यच्च ज्ञानाद्गृष्टं यथाश्रुतम् ॥ २ ॥

यथा भारतखंडान्तर्माणे चापि स्वयेश्विनम् । स्मरणार्थं त्वहं किञ्चिन्नरं वक्ष्यामि मादरम् ॥ ३ ॥

पार्वतीशिवसंवादः सूर्यचन्द्रार्धपार्थिवः । मन्वित्रोर्हरणं लंकां रावणेन विमर्जेनम् ॥ ४ ॥

दशरथविवाहश्च कैकेयं द्विवर्षणम् । कैकेयं द्विजशपथश्च वरदानकराय च ॥ ५ ॥

राजः शायो वैद्यपहत्या शृष्यभृगार्धमुग्रमः । ऋष्यभृङ्गमुनेर्मेजःप्रतापद्वहिताऽपिनम् ॥ ६ ॥

पायसं तद्विभक्तं च गृध्री भागं गिरौ नयन् । अन्तर्यामी नृपास्त्यम्भामासायन्मुदोढदाः ॥ ७ ॥

सनो भूम्भश्च ब्रह्मणा मे प्रार्थनं मधुगर्जना । नैत्रे मामि ममोन्वत्तिर्वैभुश्विहं हन्मता ॥ ८ ॥

चालकीडा मन्कृता च यतवधमनो मम । वेदाभ्यासी वमिश्राञ्च नीर्थपात्रा च वधुभिः ॥ ९ ॥

करनसे ही बहुत-सी जाने याद आ गये थी । उन्हीको रामका अज्ञाय होने मुझे मुताप है ॥ १२ ॥ १३ । विष्णु-दासने पूछा उस जनकीरिसंग्रहनामक रामायणमें कितने काण्ड और कितने सर्ग हैं ? सो कृपा करके हमें बतलाइए । श्रीरामदासने कहा—हे द्विज ! सी कराइ साररामनामक रामायणमें कुल भी पचास काण्ड तथा नब्बे अस्त्र सर्ग हैं ॥ १४ ॥ कुल भिन्नकर उस रामायणमें सी कराइ बराक है ॥ १५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरु । अब मैं आपसे बहुत मागण मुनना चाहता हूँ, जिसे स्वयं रामचन्द्रजीन आपकी बतलाया था ॥ १६ ॥ जिसमें एक सो नौ श्लोक हैं । कथया अब मुझे वह मुताप है । उसको मुझनेके लिए मर हृदयमें बड़ा कौतूहल है ॥ १७ ॥ श्रीरामदासने कहा—हो शिष्य । तुमने बहुत बकझा प्रानि किया है । भावधन हाकर मुनो । आज मैं तुम्हें वह साररामायण सुनाऊँगा, जिसे श्रीरामचन्द्रजीन सुझन कहा था ॥ १८ ॥ एक दिन जब कि मेरा पूजन समाप्त हो गया था, तब भगवान् जपने लगे तो आनाओंके साथ मेरे समक्ष आये । उन्होंने प्रमत्त होकर यही सार-रामायण कहा था ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे रामदास ! मेरे चरित्रोंका जो सार अंश है, सो तुमसे कह रहा हूँ । इसे विष्णुनामसे तुम विष्णुदास नामके अवन शिष्यको सुनाता । क्योंकि वह मेरी भक्तिये नियत है । इन चरित्रोंके चरित्रिक तुमने अवन जानने जा कुछ देखा सुना हो या भारतखंडमें देखा हो, वह सब भी उसे मुताप देना । स्मरण रखनेके लिए कुछ चरित्र मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ॥ १-३ ॥ गिव पार्वती-संवाद, आधे मूर्खगज राजाओंका चरित्र, मेरे मातापिताका हरण, रावण द्वारा उनका लंका भेजा जाना, वसिष्ठविवाह, कैकेयको दो वरदान देना, कैकेयके लिए बाल्मिकका भार, वरदान देनेवाले विप्रको राजाका काय, वैद्यपहत्या, ऋष्यभृङ्गका लंकेका उल्लंघन, शृष्यभृङ्गके प्रेम वसे अभिषेक्षा महारज दशरथको पायस मिलना ॥ ४-६ ॥ उसके द्विसे लगात्पर उनका एक भाग एक गृध्रीका पर्वतपर लेकर चले जाना, रनिपोंका गर्भिणी होना, भूमिके साथ दह्याका साकर मेरी स्तुति करना, मंषराकी उत्पत्ति, जैमिनासने अपने सब भाइयों तथा हनुमान्जीके साथ मेरी उत्पत्ति, मेरी की हुई बालकीलायें, मेरा यज्ञोपवीतसंस्कार, वसिष्ठके पास वेद, इत्यन

विधमित्राद्भुविद्या ताडिकामर्दन रणे । प्राग्भो रणदीप्तायाः सुबाहोर्मर्दन मत्से ॥१०॥  
 मारीचक्षेपण चापि महत्प्रयोद्धरणं मया । स्वयंवरं च ज्ञापय मुनिपत्न्याः सविस्तरम् ॥११॥  
 नौकापेन हि गङ्गायां मदशिक्षालनं कृतम् । धीमं धनुर्जामदन्यन्यस्तं भयं सभाशणे ॥१२॥  
 सीतोन्यत्तिष्ठ सीताया लङ्कागमननिर्गमौ । वंशनी मे विवाहाश्च आमदन्यपराजयः ॥१३॥  
 दीपावल्गुस्तवश्चापि मृपैः पयि महारणः । जीवन भरतस्यापि मज्जापि मुचिनेरितम् ॥१४॥  
 वृन्दाशयः पितुः पुण्यं कैकेयीपूर्वकर्म च । नतो मरिचचर्या च गर्माधानमहोत्सवः ॥१५॥  
 नारदाग्रे प्रतिष्ठा मे यौवराज्यार्थमुद्यमः । कैकेयीवर्दानेन दंडके गमनं मम ॥१६॥  
 दर्शनं शुहकस्यापि सीतावाक्यं च माहुरीम् । भारद्वाजश्चमोक्षयोर्दर्शनं च गितौ स्थितिः ॥१७॥  
 काकाक्षिभेदनं चापि राक्षस्य वरणं वुरि । दर्शनं भरतस्यापि भरतस्य विसर्जनम् ॥१८॥  
 सीतावास्तिलकोऽरण्येऽनसूयामृषणार्पणम् । विराधमर्दनं मागं नानाऽश्वमविलोकनम् ॥१९॥  
 अगस्त्येऽश्वय गृध्रस्य दर्शनं साध्वमर्दनम् । विरूपणं शूर्पणखायाः सरादीनां प्रमर्दनम् ॥२०॥  
 सीतादेहविभागाश्च मारीचस्य वधो मया । सीताया हरणं लंका संगमश्च जयपुषः ॥२१॥  
 इन्द्रेण पायसं दत्त सीतायै गिरिजेश्वरम् । चक्रवर्त्मर्दनं मागं शर्वपां पूजितस्त्वहम् ॥२२॥  
 ततः सख्यं कपीन्द्रेण शिरशः क्षेपण मया । छेदनं सप्तगङ्गायां मर्षेण मालिका हुता ॥२३॥  
 बालेर्षातो मया तत्र सीताशुद्ध्यर्थमुद्यमः । हनुमताऽन्धितरणं लंकायां जानकीधनम् ॥२४॥  
 मंदोदरीमनुपत्तिर्वनपाश्चादिमर्दनम् । लङ्कादाहश्च देहान्तं कर्तुं मिद्वोऽभवत्कपिः ॥२५॥  
 जांबूनदंष्ट्रश्चास्त्राकयाऽरण्येस्तारणं पुनः बहुबुद्धादर्शनं च सेतुबंधस्तनः परम् ॥२६॥  
 विभीषणाभिषेकश्च निम्बनाथकथा शुभा । गंधमादनैश्चारुपानं संगरश्च ततः परम् ॥२७॥

आगमनोंके साथ तार्थपात्र, विष्णुमित्रसे धनुर्विद्याकी प्राप्ति, ताडिकामर्दन, रणदीप्ताका प्रारम्भ, मज्जभूमिमें सुबाहुका मर्दन मारीचका समुद्रपार फेंका जाना, मेरे द्वारा महत्प्रयाका उद्धार, सीतास्वयंवरमें गमन, महत्प्रयाके ज्ञापकी विस्तृत कथा ॥७-११॥ गंगामं निषाद द्वारा मंदोदरी धोया जाना, परशुरामजीके द्वारा लाकर रखे हुए मझुरजीका वनुष मेरे द्वारा तोड़ा जाना, सीताकी उत्पत्ति, सीताका लंका जाना और वहाँसे फिर वापस जाना, मेरा हथी मेरे भ्राताओका विवाह, परशुरामकी पराजय, ॥१२॥ १३॥ बांपावलीका उत्सव, रास्तेमें राजाओके साथ मझान् संगम, भरतका पुनर्जीवन, वृन्दाका ज्ञाप मेरे पिताके पुण्य, कैकेयीके पूर्वकर्म, मेरी दिनचर्या रम्याधानमहोत्सव, ॥१४॥ १५॥ युवराज न वनके लिए नारदके समक्ष मेरी प्रतिष्ठा, मुझे युवराजपदपर अभिषिक्त करनेकी तैयारियाँ कैकेयीके वर्दानसे दण्डकवनगमन निषादके साथ वार्तालाप, गङ्गाजीके लिए सीताकी कुल मनोनिदा, भारद्वाज और वानमीकि ऋषिक दर्शन, चित्रकूट पर्वतपर निवास, जयन्ताके नेमभोजन, अयोध्यामें महाराज वज्ररथका मृत्यु, भरतजीका वंशव और विसर्जन ॥१६-१८॥ वनमें मेरे द्वारा सीताके माथमें तिलक लगाया जाना, अनुसूया द्वारा भूषणार्पण, विराधमर्दन, अनेक आश्रमोंके दर्शन, ॥१९॥ अगस्त्य और गृध्रके दमन, शूर्पणखाका विरूपकरण, बजर आदि राक्षसोंका संहार, सीताके मारीचका विभाजन, मेरे द्वारा मारीचका वध, सीताहरण, रावण-जयपुष्पगम, इन्द्र द्वारा सीताके लिए पायस प्रदान, चक्रवर्त्मर्दन, मंदरी द्वारा पूजित होकर मुग्धीवके साथ मिश्रता, दुन्दुभीके अस्थि-को फेंकना, सात तालोंका भेदन सप्तगङ्गा मालिकाहरण, मेरे द्वारा मालिका संहार, सीताका पता पानके जलोजली तैयारियाँ, हनुमानजी द्वारा समुद्रतथन, लंकामें जानकीजीका दर्शन मन्दोदरीकी उत्पत्ति-कथा, बलीकवनमें हनुमान्जीके द्वारा राक्षसोंका मारा जाना, लङ्कादाहन, हनुमान्जीका मरीर त्याग करनेका वायोधम, ॥२०-२४॥ जाम्बूनद वृक्षकी शाखाका वृत्तान्त, पुनः सिन्धुसतरण, बहुबुद्धादर्शन, सेतुबंधन, विभीषणका अभिषेक, निम्बनाथकी कथा, गन्धमारन पर्वतस्थ विभीषणकी वृत्तान्त, राम-रावणसंवाद, काक-

कालनेमिवधञ्चाथ तथैरावणमर्दनम् । मैरावणमर्दनं च मया मंचकभञ्जनम् ॥२८॥  
 कुम्भकर्णवधश्चापि मेघनादस्य मर्दनम् । ततो होमस्य विश्वंसस्ततो रावणमर्दनम् ॥२९॥  
 सीताया दिव्यदानं च स्वपुरीषमनं मम । रणदीक्षासमाप्तिश्च राज्याभिषेचनं मम ॥३०॥  
 उत्पत्ती रावणादीनामिन्द्रजेतृपराक्रमः । मानमगो रावणस्य वालिसुग्रीवजन्मनी ॥३१॥  
 वायुपुत्रजन्मकर्म वरदानं हनुमतः । छापोऽपि वायुपुत्राञ्च क्षणस्तेष्व विसर्जनम् ॥३२॥  
 इति सारकाण्डम् ॥ १ ॥

गंगायात्रासमुद्योगः सरयुभेदनं ततः । मया स्ववाणरेखा च सीतावाक्यविसर्जनम् ॥३३॥  
 कुम्भोदरस्य वाक्येन पृथ्वीयात्रा मया कृता । कुमारीवरदानं च सुरभी केन भेर्षिता ॥३४॥  
 चिन्तामणेः शिवान्तामस्ततोऽयोध्याप्रवेशनम् ।

इति यात्राकाण्डम् ॥ २ ॥

आरंभो वाजिनेचरस्य पृथ्व्यां यात्री विमोचितः ॥३५॥

नुराग्य सत्सैन्याय मार्गदानं तु गंगया । पृथ्वीप्रदक्षिणां कृत्वा वाटेऽश्वस्य प्रवेशनम् ॥३६॥  
 तपसातटशाला च कुम्भोदरप्रदर्शनम् । अष्टोत्तरशत नाम्नां मम स्तोत्रं गुनीरितम् ॥३७॥  
 दिनचर्याश्वजारोपाववभृथोत्सवो मम । सीतादानं च हनुमुक्ती रामतीर्थादिवर्णनम् ॥३८॥  
 ततो यज्ञसमाप्तिश्च दश यज्ञा विशेषतः ।

इति यागकाण्डम् ॥ ३ ॥

ततो यम स्तवराजः क्रीडाशालाप्रवर्णनम् ॥३९॥

पक्षिणां नवकं स्तोत्रं शानक्या वर्णनं मया । देहगमायणं पर्य्यै मया कथितमुपमम् ॥४०॥  
 दिनचर्या पुनर्मे हि सीतालङ्कारवर्णनम् । एकवासानां च विस्तारो जलकीडा च सीतया ॥४१॥  
 माध्याह्निकं भोजनादि मम कर्मप्रवर्णनम् । द्विजपत्न्यै भूषणानां दानं जनकजाकृतम् ॥४२॥  
 राज्ञौ नानास्थलेष्वत्र क्रीडाश्च विविधाः स्त्रियः । हवमपोदशमूर्तीनां न्यासाग्रे दानमर्पितम् ॥४३॥

नेमिवध, ऐरावणमर्दन, मैरावणवध, मंचकभञ्जन, कुम्भकर्णवध, मेघनादमरण, होमाञ्छर्वस तथा रावणवध, ॥ २८-२९ ॥ सीताकी वाग्य मयोज्या पुनरागमन, रणदीक्षाकी समाप्ति, मेरा राज्याभिषेक, रावण आदि-की उत्पत्ति और मेघनादके पराक्रमकी कथा, रावणका मानभंग, वालि-सुग्रीवके जन्मकी कथा, वायुपुत्रके जन्म कर्मका वृत्तान्त, हनुमान्जीके लिए वरदान, हनुमान्जीके लिए शाय और अगस्त्यकृतिका विसर्जन, इतनी कथायें सारकाण्डमें कही गयी हैं ॥ १ ॥ ३०-३२ ॥ गंगायात्राकी तैयारी, सरयुभेदन, मेरे द्वारा वाणकी रेखा खिचना, कुम्भोदरके वाक्यसे मेरी पृथ्वीयात्रा, कुमारीको वरदान, मेरे लिए ब्रह्मा द्वारा सुरभी-दानका वृत्तान्त ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शिवजीके पाससे चिन्तामणिकी प्राप्ति और फिर जयोध्या वापस आना, ये इतनी कथायें यात्राकाण्डमें कही गयी हैं ॥ २ ॥ अश्वमेध यज्ञका आरम्भ, पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए घोड़ेका छोड़ा जाना, गङ्गाजीका मेरी सेना तथा घोड़ेके लिए रास्ता देना, समस्त पृथ्वी घूमकर घोड़ेका वापस आना, कुम्भोदर द्वारा तपसा-की तटशालाका अवलोकन, कुम्भोदर द्वारा कहा हुआ मेरा शतनामस्तोत्र, ॥ ३५-३७ ॥ मेरी दिनचर्या, श्वजारोपण अवभृथोत्सव, सीतादान, रामतीर्थ आदिका वर्णन, यज्ञसमाप्ति और दश यज्ञोंका वर्णन, ये इतनी कथायें यागकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ३ ॥ इसके बाद मेरा स्तवराज क्रीडाशालाका वर्णन, ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ नौ पक्षियोंका स्तोत्र, मेरे द्वारा जलकीकी शोभाका वर्णन, मेरे द्वारा सीताके लिए देहुरामायणका वर्णन ॥ ४० ॥ मेरी दिनचर्या, सीताके जलझारोंका वर्णन, एकवासोंका विस्तार और सीताके साथ जलकीडा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भोजन यदि मेरे मध्याह्निकालीन कर्मोंका वर्णन, सीताजीके द्वारा विप्रपत्नीके

ततो निजैरङ्गनीम्भो वरदानं यवाञ्जितम् । गुणरूपै वरदानं विमलायै वरापणम् ॥४४॥  
सीतायाः प्रत्ययार्थं च दिव्यदानं यथा मुदा । कुरुक्षेत्रेऽगस्तिपत्न्या संशये जानकीव्रतः ॥४५॥  
इति विलासकाण्डम् ॥ ४ ॥

सीताया दोहदार्थं हि लीलाऽऽज्ञातदिष्ट कृता । सोमलोन्नयनादीनि नानाकर्माणि वै ततः ॥४६॥  
विसृजितश्च जनको बाल्मीकेगणम् यथा । सीतया हि निजे रूपे कृतं मद्वचनमीत्यात् ॥४७॥  
अंगुष्ठलोभो लिखितः कैकेय्या शरणे महान् । लोकानां रजकस्यापि क्षयरादादिदेहना ॥४८॥  
मया रक्तसोपुक्ता मृत्काऽऽनीतश्च वङ्गश्च । गुमरूपेण पुत्रस्य कृतं गत्वा तु जातकम् ॥४९॥  
इत्यपि मया गत्वा कृताः शोभाहर्षागदे । वार्षाकिना लवणा च ततः पुनः कृतं वरः ॥५०॥  
तयोः कृतं तु इतिना राजरक्षादिमरणम् । कमलानां च हरणे लवस्य विजयो महान् ॥५१॥  
राजपणस्य भवन् पुत्रास्याभ्यां मयाऽम्बरे । मुदं लवकृतं चाथ जलैस्तस्यामिववनम् ॥५२॥  
मम मुदं हुतेनाथ सीतायाः क्षयधस्ततः । सोऽभ्या मरणं चापि विप्रत्या भूतले पुनः ॥५३॥  
ततो यज्ञमयासिञ्च बन्धुपुत्रजनिस्ततः । बालकीडोषनयनं वेदानां ग्रहणं क्रमात् ॥५४॥  
बालानां शुभचिह्नानि सीतायाः पुत्रलालनम् । मर्जेनां व्रतधाम्य द्वेषां यात्रास्ततः परम् ॥५५॥  
इति अन्मकाण्डम् ॥ ५ ॥

भूरिकीर्तः पत्रिकया तन्पुत्रं समनं मम । मन्त्राऽऽम्नोपुम्नीणां दर्शनार्थं तदा मम ॥५६॥  
वरितोऽयं मूर्धः नर्वस्तदा राजममोगणे । क्रमेण वर्णनं चापि पार्थिवानां हि नदया ॥५७॥  
कुरुक्षेत्रे चम्पिकया रत्नमालाविभर्जनम् । क्रमेण वर्णनं चाथ पार्थिवानां मुनन्दया ॥५८॥  
सुमत्या रत्नमालाया लवकण्ठे विमर्जनम् । उत्ताडोऽथ विवाहस्य नानामभ्यामपूर्वकः ॥५९॥  
गमनं हि स्तुवाभ्यां च सीतया त्वपुत्री मम । निष्ठो जलदेवीनां बालकानां प्रमोचनम् ॥६०॥

लिये भूषणदान, बहुत-सी स्त्रियोंके साथ रात्रिके समय जंगल और लुचर्यमयी सोइला स्त्रियोंका साथ, वेक्यान्मियोंके लिये मेरा वरदान, गुणवती और चिह्नकाके लिये करार ॥ ४२-४४ ॥ सीताके विचारार्थ मेरी वचन, कुरुक्षेत्रके जगस्यकी पत्नीके साथ बातचीतमें आजकाके विजय इतनी कमसे विलासकण्ठमें मिलित है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सीताकी ममेकालीन एकका पूर्ण करनेके लिये वनेके जारिमे विहाय, सोमलोन्नयन कादि विविध संस्कार, मेरे द्वारा राजा जनको बाल्मिकिके बाधनपर भेजा जाना, मेरे कहनेसे सीताका दो रूप कारण करना, ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सीताके अद्भुत अंगुष्ठके अनुसार कंकरी द्वारा रावणका पूरा स्वप्न बनाया जाना, अपनी प्रजाके कलिपत्र लोनों और एक घातोंके मुक्तसे अपनी मित्रा पुनकर मेरे द्वारा सीताका चरितमम और उनकी मुदा काटकर भेजवाना, गुमरूपसे बाल्मिकिके बाधनपर पहुँचकर। बन्धेका जलकर्म-संस्कार करना, मङ्गायाके सदर मेरे द्वारा सीतामें मम मन्त्रादि होना, बालमणि द्वारा जल-विन्दुकोसे रूप नामक दूसरे पुत्रीकी सृष्टि होना, फिर उन दोनों बच्चोंका बाल्मिकि द्वारा रामदाःपणसे अभिमन्त्रित होना क्रमशः करके समय तककी एक बड़ी विजय ॥ ५६-५८ ॥ यमभूमिसे लवपुत्रके मुक्तसे मेरा रामविजयवचन, उनके साथ मेरे लीलाकोका मुद और बन्धके कहनेसे लवको स्नायन किया जाना, मेरे साथ कृत्वा संगम, सीताकी रूप, पृथ्वी प्रवेश करती हुई सीताको मेरे द्वारा पुनः प्रहृण करना, वनधमार्ति, मेरे मातृकोकी पुत्रोत्पत्ति, बन्धोकी बालकाडा, बन्धोका उपनयनसंस्कार, बन्धोका वेदाध्ययन, बालकोके गुण चिह्नका वर्णन, सीता द्वारा पुत्रका लालन-पाजन, सब पुत्रोका व्रतधाम ( उपनयनसंस्कार ) ॥ ५९-६० ॥ ये इतनी कथामें अन्मकाण्डमें हैं ॥ ५ ॥ भूरिकीर्तकी पुत्रोके स्वयमरका समाचार पाकर मेरा अभ्यास, उस पुत्रोकी स्त्रियों की मेरे दर्शनके लिये व्यग्रता, वह कि सब राजाओंका मेरी बन्धना करवा, मेरा द्वारा सब राजाओंको लोभा और रंभयका वर्णन, बाल्मिकीका पुत्रके गलेमें रत्नमाला बाँधना, सुमति द्वारा लवके कण्ठमें बालमण्डल, विविध संभामपूर्वक विवाहोत्सव, होना और अपनी पुत्रभुषोंके साथ रामका लोभ्याकी सोइना, जन्मेवी द्वारा



सर्वेषां तु विवाहाश्च पृथक् पुत्रगृहाणि हि । कान्तिपुर्याश्च मदत्सुन्दरीहरणं ततः ॥६१॥  
यूपकैतोर्विवाहश्च पौत्राणां गणना ततः । पौत्राणां गणनाच्चापि सर्वैः सौकर्यं कृतो मय ॥६२॥

इति विवाहकाण्डम् ॥ ६ ॥

सहस्रनामस्तोत्रं मे कल्पवृक्षसुगुप्तम् । तन्मानीतो मया स्वर्गाद्भवं दुर्वाससेक्षणम् ॥६३॥  
मत्कुम्भोपासकयोश्च संवादश्च परस्परम् । काक्याय वरदानं च शतस्त्रीणां वगर्पणम् ॥६४॥  
स्थानान्युक्तानि निद्राये कृतः कोधोऽनुमादिषु । शनशात्पर्णे रावणस्य पौंड्रकस्य वधोऽपि च ॥६५॥  
सीताया विरहो जातो हतश्च मूलकासुरः । सीतायाश्च स्तुतिः केन लकायां च प्रवेशनम् ॥६६॥  
लकायाः पतितश्चार्प आमयिन्वा पुनी मतः लाभः कपिलवाराहयूतेर्दत्ता च वंचने ॥६७॥  
लवणामुरघातश्च मधुरायां निवेशनम् । पुत्राणां राज्यभागश्च समद्वीपजयो मया ॥६८॥  
यतिशूद्रगृध्रसिंश्चा मत्प्रप्तसुजीवनम् । शूराणां वरदानं च द्विजस्त्रीणां वगर्पणम् ॥६९॥  
रोदवस्त्रीमहत्पाणां वराश्च मृगया मम कालिंसे वरदानं च पिप्पल छेत्तुमुद्यमः ॥७०॥

इति राज्यकाण्डं पूर्वार्धम् ॥ ७ ॥

राज्यलोकेर्वचनाद्वाम्यं कृतमाज्ञापितं जनान् । आपोऽग्निनीकुमाराभ्यां गणयोश्च परस्परम् ॥७१॥  
ब्रह्मणा मऽवताराणां व्रजनं च पृथक्कृतम् । जन्मत्रयं च वान्मीकेर्वरदानस्मृतिर्मम ॥७२॥  
मद्राभ्यवर्णनं वाथ हेमायाश्च स्वपंचरम् । त्रिशांगदेन संग्रामः कथा कंकणयोस्तथा ॥७३॥  
लवस्य जीवदानं च राममुद्रा सविस्तरा । रामनाथपुरदानं विप्रैर्दृष्टश्च माकृतिः ॥७४॥  
दिनचर्या मम ततः स्वल्पसंततिकारणम् । कर्णध्वनेः कथा चापि मेऽवतारेण्ययं वरः ॥७५॥  
एवंपार्श्वे श्रीरामेति लेखनस्य च कारणम् । सुगुणायै वरदानं द्वे रूपे च मया दत्तम् ॥७६॥  
तुलसीपत्रसंधिश्च रामायणध्वनेः फलम् । सुषत्रजीवदानं च संग्रामश्च यमेन हि ॥७७॥

बच्चोका लियह और मेरे द्वारा उनका उद्धार ॥ ५९-६० ॥ सब बच्चोंका विवाह, सब बालकोंके लिए अलग-अलग गृहनिर्माण, कान्तिपुरीसे मदत्सुन्दरीका हरण, यूपकनुका विवाह मेरे पोतों और पोतियोंकी गणना, सब लोगोंक साथ मेरा सौन्दर्यवर्णन, ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ये इतनी कथायें विवाहकांडमें कह्यो गयी है ॥ ६ ॥ मेरा सहस्रनामस्तोत्र, मेरे द्वारा कल्पवृक्ष और पारिजातका स्वर्गसे उद्योतना लाया जाना, मेरे और कुष्णके उपासकका संवाद, कोणके लिए मेरे द्वारा वरदान, सौ त्रिशांग लिए वरदान, अपने अनुचर माखिर काय, निद्राके लिए स्थानकयन, शतमुख नावण तथा पौंड्रकका वध, मेरा और सीताका विरह, मूलकासुरका वध, मद्रा द्वारा सीताकी स्तुति और मेरा लकामें प्रवेश, ॥ ६३-६६ ॥ लकाको चारों ओर घनुरकी रेखा बनाकर अपनी पुरीको प्रस्थान, बन्धुके लिए कपिलवाराहको भूतिपात्र दान, लवणामुरका वध, मधुर में प्रवेश, पुत्रोंके लिए राज्यविभाजन, मेरे द्वारा सातों द्वीपोंकी रजय यति-शूद्र और गृध्रका न्याय, सप्त प्रेताका पुनर्जीवन शूरांको वरदान, द्विज स्त्रियोंके लिए वगर्पण, संह्रह हजार स्त्रियोंके लिए वरदान, मृगयाव्रजन, कालिंदीक लिए वरदान, पोषल वृक्ष काटनेके लिए उद्योग ॥ ६७-७० ॥ ये इतना कथायें राज्यकाण्डके पूर्वार्द्धमें वर्णित है ॥ ७ ॥ मेरे द्वारा हास्यमय प्रतिबध, वान्मीकिके परामर्शानुसार लोगोंको ईमानक लिए मेरे द्वारा आज्ञा दिया जाना, अग्निनीकुमारों और मेरे गणसे परस्पर आपप्रदान, ब्रह्मजोंके द्वारा मेरे अवतारोंका वर्जन, बालमीकिके वरदानसे तीन कल्पोंतकका स्मरण रहना, मेरे राज्यका वर्णन, हेमाका स्वमेववर्णन, त्रिशांगदेके साथ संग्राम, दोनों कंकणोंको कथा, लवकी जीवदान, सविस्तार राममुद्राका वर्णन, रामनाथपुरका दान, विप्रों द्वारा हनुमान्जीका दर्शन ॥७१-७४॥ मेरी दिनचर्या, स्वल्प सन्तुष्टिका कारण, कर्णध्वनिकी कथा, अन्य अवतारोंमें एक विशेष वरदान, पौण्ड्रक पत्नेकी वगर्पणे "श्रीराम" यह लिखनेका कारण, मगूणाको वरदान, मेरा ही रूप वारण करना ॥७५ ॥ ७६ ॥ तुलसीपत्र-

समर्द्धीषेयु सर्वत्र धर्मशिक्षा मया कृता ।

इति राज्यकाण्डमुत्तरार्धम् ॥ ७ ॥

नारदीकं शतश्लोकैश्चरितं मम पञ्चनम् ॥७८॥

पौराणामुपदेशश्च मन्त्रातृणां पराश्रयतः । मन्तःपूजा बहिःपूजा नगरपथस्त्वहम् ॥७९॥  
रामलिंगतोमद्राणां नानाभेदा विचित्रिताः । मामनरम्या विस्तारः कथा स्वारज्यमर्मभक्ता ॥८०॥  
मम नामलेखनस्योद्यापनं दानविस्तारः । विभज्जीवित्रविस्तारा देवादीनां धुनेः फलम् ॥८१॥  
सार्द्धमामद्वयं नाम ते व्रतं विविचिस्तरः । गौरीव्रतस्य विस्तारो दोलके मम पूजनम् ॥८२॥  
नवम्यां मूर्तिदानं च मदनोत्सवविस्तारः । काम्यदेवताविस्तारो रक्षागणनो गुणः ॥८३॥  
मम नाम्नश्च भदिमा मन्त्रामार्य उदाहृतः । चैत्रव्रतस्य विस्तारो गणसादिगतिः स्मृता ॥८४॥  
अद्वैतं दधित्वं लोकान्नारीणां च वरार्पणम् । मन्दुद्रावस्यमहिमा कवचं मे हनुमतः ॥८५॥  
सीताया लक्ष्मणादीनां कवचानि पृथक् पृथक् । शान्तलाघवनमाहात्म्यं तस्य बोध्यापनं तथा ॥८६॥  
रामनामतोमद्रं च मंत्राश्च कर्तव्याश्च । पदाकारोष्णं नाम व्रतं माह्विनोपदम् ॥८७॥  
पयोपदिष्टमंतच्छे साररासापणं त्वयि । हनुमता सुरसेनैर्गर्जुनस्पात्र खडगम् ॥८८॥

इति मनोहरकाण्डम् ॥ ८ ॥

वाल्मीकिना सोमवंशवृत्तचरितेनम् । पुत्रपौत्रभिषेकश्च प्रस्थानं हस्तिनापुरम् ॥८९॥  
ततो भटान्संगश्च पुत्रयोश्च जयो मम । वज्रणा प्रार्थना मेऽत्र वाल्मीकिश्च कुशस्य च ॥९०॥  
रिपुस्त्राणां प्रार्थनया सीता पुत्रं न्यवारयत् । ततो दिवंश्च वाक्येन वैकुण्ठं मन्तुमुद्यमः ॥९१॥  
सोमवशीद्धवापाय दत्तं वै हस्तिनापुरम् । आजमीडाभषेकश्च मवज्ञं च विसर्जनम् ॥९२॥  
कुशस्य वसनं स्वीयपुत्रि राज्यं शशाम मः । मपेम्बधुः कुमुदित्या दाम्बजसमुद्भवः ॥९३॥

की सन्धि, रामायणभक्तका फल, ममभक्तों के लिए जीवनदान, यमराजक साथ संधान, सप्तद्वीपमें सर्वत्र मेरी धर्मशिक्षाका प्रचार किया जाता, ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ये इतनी कथाएँ राज्यकाण्डक उत्तरार्धमें वर्णित हैं ॥ ७ ॥ नारद द्वारा सौ श्लोकोंमें मेरे पञ्चन चरित्रका वर्णन, पुरवासियों के लिए उपदेश दूसरों द्वारा अपनी याताओं के लिए उपदेश, मन्तपूजा, बहिःपूजा, रामलिंगनामद्वय अनेक भट, मामनरम्याका विस्तार, स्वारज्यको उत्पत्ति की कथा, मेरे नामलेखनका उद्यापन, दाना विस्तार विभज्जीवित्रका विस्तार बंदक धारणका फल ॥७९-८८॥ बहई महानेके के लिए व्रत, तिथिका विस्तार, गौरीव्रतका विस्तार, दोलकमें मेरी पूजा, नवमीका मूर्तिदानकी विधि, मदनोत्सवका विस्तार, काम्य देवताओंका विस्तार, रक्षादि अक्षरोंके गुणगणन मेरे नामकी महिमा, मेरे नामके लिए उदाहृत चैत्रव्रतका विस्तार, राक्षसादि गतिजोना बर्णन, लक्ष्मीको अद्वैत स्वक्यका दर्शन, स्त्रियोंके लिए वरापण, मेरी मुद्रा, मेरे नामसे अद्भुत वस्तुकी महिमा, हनुमन्कवचका वर्णन ॥८२-८८॥ राम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नकवच, शान्तलाघवनमाहात्म्य, सीतालाघवका उद्यापन, रामनामतोमद्र मंत्रका काशंन, पदाकारोष्ण और हनुमान्पूजाको अस्तत्र करनेवाले व्रतका वर्णन ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें सारराशायण सुना दिया । इसी रामायणके अन्तर्गत हनुमान्पूजाका द्वारा अर्जुनके शरमेतुके खण्डनकी भी कथा वर्णित है ॥ ८८ ॥ इतनी कथाएँ मनाहूकाण्डमें वर्णित हैं ॥ ८ ॥ वाल्मीकिवर्णित सोमवंशके राजाओंका वृत्तान्त, दोनों पुत्रोंका अभिषेक, हस्तिनापुरक स्थानका वर्णन, दोनों पुत्रोंके साथ मेरी महासंधान, मेरी विजय, सह्याजीके द्वारा मेरी, वाल्मीकिका तथा समकुणकी मूर्ति, रिपुस्त्रियोंकी प्रार्थनासे सीताका अपने पुत्रोंको मुक्त करनेके रोकना, सह्याके बाधसे मेरी वैकुण्ठगमनाकी तैयारी, सोमवंशियोंके लिए हस्तिनापुरका राज्यदान, आजमीदका राज्यअभिषेक, सब लोगोंकी विहई, ८९-९२ ॥ लवपूजाका अपनी राक्षसोंमें पहुँचना और वहाँ शासन करना, कुमुदितसे सन्तानत्पत्ति, लक्ष्मण एवं सुग्रीव आदि वालरो तथा

वरदानं लक्ष्मणाय वानरैर्मयस्तथा मया । अयोध्यासंस्थितानां च सती देहविसर्जनम् ॥९४॥  
 वानरास्ते सुग जाताः सीता जाता रमा मम । लक्ष्मणः वज्रगो जातः शत्रोऽभूद्भरतस्तदा ॥९५॥  
 सुदर्शनं च शत्रुघ्नो विष्णुरूपधरस्त्वहम् । तदोर्मिलादिकानां च प्रयाणं मर्ययोधिनम् ॥९६॥  
 नीराजनं सुरस्रीभिस्तेषां सतिगतिः पदम् । शत्रुघ्ना संस्तुतवाहं गरुडारोहणं मम ॥९७॥  
 पुष्पवृष्टिर्मयि तदा वैकुण्ठे भवनं मम । वैकुण्ठे रमया स्थित्वा देवानां च विसर्जनम् ॥९८॥  
 सूर्यवंशानुक्रमश्चानन्दरामायणस्य च । कांडसंख्या सर्गसंख्या ग्रंथसंख्या फलश्रुतिः ॥९९॥  
 रामायणश्रवणस्योद्यापनं च महत्तमम् । प्रयदानमनुष्ठानं प्रकाराः चैव वै ततः ॥१००॥  
 अनुष्ठानोद्यापनं च शत्रुघ्नस्य च विस्तरः । सवाहस्य पूर्णतापि युवयोर्गुरुशिष्ययोः ॥१०१॥  
 आशुकाछेदनं देव्याः कलास्य पठनस्य च । रामायणस्य महिमा चैकश्लोकेन वै त्विदम् ॥१०२॥

मम ध्यानं वेशदेव्योः संवादस्यापि पूर्णता ।

इति पूर्णकाण्डम् ॥ ९ ॥

एवं मया रामदास साररामायणं तव ॥ १०३ ॥

स्मरणार्थं चरित्राणां संक्षेपेण निवेदिनम् । इदं गोप्यं स्वयां कार्यं महन्पुण्यप्रदं स्मृतम् ॥१०४॥  
 अतकोटिभित्तग्रन्थात्सारं सारं मयोदिनम् । कः समः सकलं वक्तुं विना वाक्सीकिना मुदि ॥१०५॥  
 स एव धन्यो वाक्सीकिर्येन मन्वचरितं कृतम् । साररामायणमिदं मे वदन्त्यत्र मानवाः ॥१०६॥  
 तैम्प्यो भुक्तिश्च मुक्तिश्च द्वित्रिदास्याम्पहं मुदा । कुन्स्म रामायणं श्रोतुं पठितुं वा नरोत्तमान् ॥१०७॥  
 अथक्कण्ठो यदा नास्ति तर्दतस्सपटंभरः । अन्यद्यद्यन्मया कर्म कृतं पूर्वं शुभाशुभम् ॥१०८॥  
 कुन्स्मच्छन्दापन्नमुवाभिर्गमिष्यसि निधयम् । स्ववृद्धिर्गोचरं कुन्स्मं चरितं मे वरिष्यसि ॥१०९॥  
 विष्णुदामाय शिष्याय च त्वमनुना सुखम् ॥११०॥

अयोध्यावासियोंके लिए वरदान अपनी देहका त्याग, वानरोंका भयना शरीर छोड़कर फिर देवता बनना, सीताका लक्ष्मी बन जाना, लक्ष्मणका सेवरूप हो जाना, भरतका पाचजन्य ग्राह्य होना, शत्रुघ्नका सुदर्शन धनुष हो जाना और मेरा विष्णुरूप धारण करना, उर्मिला आदि स्त्रियोंका प्रयाण, देवाङ्गनाओं द्वारा सब लोगोकी आरती, शिवजी द्वारा मेरी स्तुति मेरा गरुडारोहण मेरे ऊपर पुष्पवृष्टि, मेरा वैकुण्ठभवन, वैकुण्ठमे लक्ष्मीके साथ विराजमान होकर देवताओंका विसर्जन, ॥ ९३-९८ ॥ सूर्यवंशी अनुक्रमणिका, ज्ञानन्दरामायणकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या, रामायणश्रवणका महाफल, श्रवणविधि, अनुष्ठानके पाँच प्रकार, ॥ ९९ ॥ १०० ॥ अनुष्ठान, उद्यापन, शत्रुघ्नका विस्तर, तुम दोनों गुरु शिष्योंके संवादकी पूर्णता, देवीका आणकाछेदन, इसके पाठको कलाएँ, रामायणक एक-एक श्लोकके पाठकी महिमा, मेरा ध्यान और शिव-पार्वतीके संवादकी समाप्ति, ये इसकी कथाएँ पूर्णकाण्डमें कहली गयी हैं ॥ ९ ॥ हे रामदास इस तरह मैंने तुम्हें संक्षेपमे साररामायण बताया है । इससे तुमको मेरे चरित्रोका स्मरण करनेमें बड़ा सहायता मिलेगी । यह बड़ी पुण्यदायक रामायण है । इसलिए इस सदा गुप्त रखना । सी करोड़ संख्यावाली रामायणका सार भव लेकर ही इसे मैंने तुमको बताया है । वाक्सीकिने शिष्याय भोज और कोन है, जो पूरे तीरसे रामायणका वर्णन कर सके ॥ १०१-१०५ ॥ वे वाक्सीकिजी काव्य हैं, जिन्होंने अच्छी तरह मेरे चरित्रोका वर्णन किया है । जो लोग इस साररामायणका पठ करते हैं । उन्हें मैं भुक्ति और मुक्ति सब कुछ देता हूँ । यदि किसी सज्जनको पूरे रामायण पढ़ने या सुननेका अवकाश न मिले तो उन्हें इस साररामायणका ही पाठ कर लेना चाहिए । इनके अतिरिक्त भी मैंने जो गुप्त अनुभूति कर्म किये हैं, वे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे चरित्र वर्णन करते समय अपने-आप स्मरण होते जाएंगे । मेरे सारे चरित्र तुम्हारे दृष्टि-गोचर होंगे । १०६-१०९ ॥ अब तुम इसे अपने शिष्य विष्णुदासको ज्ञानन्दके साथ सुनाओ ॥ ११० ॥

श्रीरामदास उवाच

एवं श्रीरामचन्द्रेण यथाञ्च कथितं मया : साररामायणं रम्यं तदिदं ते निवेदितम् ॥१११॥  
इदं रम्यं पवित्रं च महापातकनाशनम् । सर्वदा मानवैर्जप्य मुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥११२॥  
कृत्स्नं रामायणं श्रुत्वा यत्फलं प्राप्यते ततः । तदस्य पठनादेव सत्यं सत्यं वचो यम ॥११३॥  
वस्माद्भूमिः सदा जप्य सर्वेषां शान्तिकारकम् । पुत्रपौत्रप्रदं सौख्यं महत्सौख्यप्रदं नृणाम् ॥११४॥  
रामायणमग्निं शतशः सन्नि शिष्यान्नीतले । सथाऽप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥११५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे मनोहरकाण्डे रामदास  
विष्णुसंवादे श्रीरामचन्द्रोपदिष्टं साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः । १७ ॥

## अष्टादशः सर्गः

( हनुमान्जीके द्वारा अर्जुननिर्मित भरसेतुमंजव )

श्रीविष्णुवाच उवाच

कपिञ्जलोऽर्जुनश्चेति मया पूर्वं भूतं गुरो । तन्नामकारणं मां त्वं विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥१॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । द्वापरान्तं भाविकथां त्वां वदामि क्षमन्कृताम् ॥२॥  
एकदा कृष्णरहितोऽर्जुनः स्वन्दनसंस्थितः । यथावरण्ये विचरन्मृतवार्थं हि दक्षिणाम् ॥३॥  
एकाकी वृत्तसंस्थाने स्थित्वा तच्छ्रुत्यमाचरन् । हत्वा वने मृगान्धन्वी मध्याह्ने स्नातुमुद्यतः ॥४॥  
यसौ रामेश्वरं सेतौ वक्रुष्कोट्या विमास च । मध्याह्नकृत्यं संपाद्य पुनः स्वन्दनसंस्थितम् ॥५॥  
अग्रेस्तटे विचवार किञ्चिद्वसमन्वितः । एतस्मिन्नतरेऽप्ये पर्वतोपरि संस्थितम् ॥६॥  
ददर्श मासति वीरः सामान्यकपिरूपिणम् । राम रामेति जल्पतं विंगलोमधरं शुभम् ॥७॥

दास बोले—जित तबहु रामचन्द्रजीने मेरे समस्त साररामायणका वर्णन किया था, सो मैंने कत सुनाया ॥१११॥ यह साररामायण दिव्य, पवित्र और महान् पातकोंको नष्ट करनेवाला है । लोगोंको चाहिए कि भूति और मुक्ति देनेवाले इस रामायणका पाठ करें ॥११२॥ पूरी रामायणके सुननेसे भी फल प्राप्त होता है, वही फल इस साररामायणके भी श्रवण करनेसे प्राप्त हो जाता है । मेरी बात सच थी है । ११३ ॥ इसीलिए लोगोंको सर्वदा इसका पाठ करते रहना चाहिए । क्योंकि यह सबको शान्ति प्रदान करता है । यह पुत्र, पौत्र, स्त्री तथा महान् सुखोंका दाता है ॥११४॥ हे शिष्य ! जैसे तो इस पृथ्वीतलमें संकड़ों रामायण हैं, किन्तु इसके समान अमूर्तक न कोई रामायण हुई है और न आगे होगी ॥११५॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामतेजपाण्ड्यकृष्णज्योत्स्नाभावाटीकासहिते मनोहरकाण्डे साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरो ! मैं कभी आपके मुखसे अर्जुनका कपिञ्जल यह नाम सुन चुका हूँ । उनका यह नाम क्यों पड़ा, सो कृपा करके आप हमें बतलाइए ॥ १ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! तुमने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । यद्यपि यह कथा द्वापरके अन्तकी है, फिर भी तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २ ॥ एक दिन कृष्णजीकी छोड़कर अकेले अर्जुन वनमें शिकार खेलने गये और घूमते घूमते दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥ ३ ॥ उस समय सारथीके स्थानपर वे स्वयं वे और घोड़ोंकी हाँकते हुए चले जा रहे थे । इस तरह वनमें घूम-घूमकर दोपहरके समय तक उन्होंने बहुतसे वनजन्तुओंको मारा । इसके बाद स्नान करनेकी तैयारियाँ करने लगे ॥ ४ ॥ स्नान करनेके लिये वे सेतुज्ज्वल रामेश्वरके वनुरकोटितीर्थमें गये, वहाँ स्नान किया और कुछ गरसे सगुड़के इटपर घूमने लगे । तभी उन्होंने एक पर्वतके ऊपर साधारण धावरकी स्वल्प धारण करके हनुमान्जीकी बैठे देखा । उस समय हनुमान्जी रामनाम जप रहे थे ।

तमर्जुनोऽर्वाङ्माक्यं किं नापस्मि कपे नव । तदर्जुनवचः श्रुत्वा विहस्य कपिरब्रवीत् ॥८॥  
 यन्मृगायाश्च रामेण शिलाभिः शतशोजनम् । बह्वीष्य सागरे सेतुम् मां त्वं विद्धि वायुजम् ॥९॥  
 इति तद्दर्शयितुं वार्ष्णेयः श्रुत्वाऽर्जुनस्यदा । गर्वाद्दिदृक्ष्य प्रोवाच मारुतिं पुनः स्थितम् ॥१०॥  
 बुधा शमेण सेतुर्वर्ध भूमिः पूर्वं कृतस्त्वयम् । कथं तेन शरैः सेतुं कृत्वा कार्यं कृतं न हि ॥११॥  
 तदर्जुनवचः श्रुत्वा मारुतिः प्राह तं पुनः । मय्यन्यकपिभारं न शरसेतुः पयोनिधौ ॥१२॥  
 न्युत्तिष्ठतीति मत्वा त नाक्रोद्ध पुनन्दनः । तत्कपेर्वचनं श्रुत्वाऽर्जुनो मारुतिमब्रवीत् ॥१३॥  
 कपिमारुतस्य सेतुजले मानो भविष्यति । धनुर्विद्या चन्द्रिनः का तदा धनरत्नतम ॥१४॥  
 अधुनाऽहं करिष्यामि शरसेतुं तवाग्रतः । त्वं तमोपति नृप्यादि कुरुष्व शत्रु यथासुखम् ॥१५॥  
 धनुर्विद्या मया त्वं कपे पश्यतुमर्हसि । तदर्जुनमिदं श्रुत्वा तमाह सस्मितः कपिः ॥१६॥  
 मयाऽङ्गुष्ठभारेण शरसेतुस्त्वया कृतः । चेन्ममः स्फात्ममुद्रे हि तदा कार्यं त्वयाऽत्र किम् ॥१७॥  
 तत्कपेर्वाक्यमाकर्ण्य मोऽर्जुनः प्राह तं पुनः । यदि ममः शरसेतुस्त्वया कृतस्तर्ह्यहं कपे ॥१८॥  
 विश्राम्यत्रान्तं मयं त्वं चाप्यद्य पण वद । मत्प्रतिज्ञां कपि, श्रुत्वाऽर्जुन वचनमब्रवीन् ॥१९॥  
 मयाऽङ्गुष्ठभारेण शरसेतुश्चेन्न लोपितः । तर्हि त्वदध्वजपद्मोऽहं तव महाशयसाधरे ॥२०॥  
 तथाऽस्ति त्वयर्जुनः प्राह दण्डमन्व महद्भुजः । निपते अस्मज्जलैः सेतु दृढतरं पनम् ॥२१॥  
 शतशोजनविस्तीर्णं सागरस्याध्वेत, स्थितम् । तं सेतुं मारुतिर्दृष्ट्वाऽर्जुनाग्रऽङ्गुष्ठभारतः ॥२२॥  
 अकरोन्सागरे भूमिं क्षणमात्रेण लीलया । तदा देवाः सर्गधराः किन्तिराग्यराश्रयाः ॥२३॥  
 विद्याधराश्चाप्सरसः सिद्धाद्या गगनस्थिताः । मारुतिं शरुनस्पाशे वधयुः पुष्पकृष्टिभिः ॥२४॥  
 सत्कर्मणाऽर्जुनस्यापि चितां कृत्वाऽग्निरोधमि । निवारितोऽपि कपिना वेद त्वक्तुं समुद्यतः ॥२५॥

दीप्ते रङ्गके रोई उनके आँखोंपर बड़े अच्छे लग रहे थे ॥ ५-७ ॥ उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—हे बानर ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? अर्जुनका प्रश्न सुना तो हंसकर हनुमान्जी बोले कि जिनके प्रनामों से अश्वत्थामा ने समुद्रपरमौ लोजन निर्मृत सन्तु बनाया था, मैं वही बाधुपुत्र हनुमाय हूँ ॥ ८-९ ॥ इस तरह सर्वभर तबल मुनकर अर्जुनने भी पूर्वसे हंसकर कहा कि रामने ध्येय इतना कह दिया । उन्होंने बाणाका सेतु बनाकर क्यों नहीं अपना काम पूरा किया ॥ १० ॥ ११ ॥ अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जीने कहा हम जैसे बड़े बड़े बालरौक बाजसे यह बाणका सेतु दृढ़ जाता, यही सोचकर उन्होंने ऐसा सही किया ॥ १२ ॥ १३ ॥ अर्जुनने कहा—हे बानरसन्तत यदि बानरक बोझसे सेतु दृढ़ मानेका भय हो तो उस धनुर्धारिका धनुर्विद्याका ह्म क्या विफलता रही ॥ १४ ॥ अभी इसी समय मैं अपने कोशस्थ बाणोंका सेतु बनाये दता हूँ, तुम उसका ऊपर आनन्दसे नाचा-कूदो ॥ १५ ॥ इस प्रकार सारे धनुर्विद्याका नमूना भी तबल आनन्दका ऐसी बात मनकर हनुमान्जी मुसकरान हुए कहने लगे कि यदि घेरे पैरोंके आगूक दक्षसे हो आपका बनाया सेतु दृढ़ जाय तो क्या कठिना ? ॥ १६ ॥ १७ ॥ हनुमान्जीकी धान सुनकर अर्जुनने कहा कि यदि तुम्हारे शरसे सेतु दृढ़ जायगा तो मैं चिता लगाकर उसकी आगमें जल भरूँगा । अरुण जब तुम भी कोई बाज लगाओ अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जी कहने लगे कि यदि मैं अपने अंगूठे हा धारम मुझसे बनाये सेतुको न हुआ सन्तुगा तो तुम्हारे रथको ध्वजक पास बैठकर जीवनपर मुझारी सहजता करूँगा ॥ १८-२० ॥ “अच्छा, यही सही” ऐसा कहकर अर्जुनने अपने धनुषका दण्ड लिया और अपने बाणोंके सङ्ग्रहमें बहुत थोड़े समयमें एक मुट्ठ सेतु बनाकर तैयार कर दिया ॥ २१ ॥ उस सेतुका विचार तो लोजन था और वह बाणरके ऊपर ही उतरा रहा था । उस सेतुको देखकर हनुमान्जीने उनके सामने ही अपने अंगुष्ठके भारसे दृढ़ा दिया । उस समय गन्धर्वोंके साथ-साथ देवताओंने हनुमान्जीपर फूलोंकी वर्षा की ॥ २२-२४ ॥ हनुमान्जीके इस कर्मसे सिन्न होकर अर्जुनने

एतस्मिन्मन्त्रे कृष्णस्तं प्राह बहुरूपधृक् । ज्ञात्वाऽर्जुनमुखात्सर्वं पूर्ववत् पणादिकम् ॥ २५ ॥

उभाभ्यां पद्मचरितं पूर्वं तस्य प्रथा गतम् ।

माभित्वेन विना कर्म सत्यं मिथ्या न बुध्यते ॥ २७ ॥

साक्षित्वेनाधुना मेऽत्र पुनर्भावा कर्म पूर्ववत् ।

कर्तव्यं तदहं दृष्ट्वा सत्यं मिथ्या वदाम्यहम् ॥ २८ ॥

तद्दोर्बचनं श्रुत्वा द्वावन्तुस्तथेति च । तदथकार मांडीवी असेतुं हि पूर्ववत् ॥ २९ ॥

सेनोरतर्गतं चक्रं श्रीकृष्णश्चाकरोत्तदा ।

ततः स्वांगुष्ठमारेण कपिः सेतुं प्रपीडयत् ॥ ३० ॥

सेतुं दृढं कपिर्जातना पादजानुकरादिभिः ।

बलेन पीडयामास स सेतुस्त्वथचाल न ॥ ३१ ॥

सदा तूष्णीं हनुमान्त संव्रणमास चेतसि । पूर्वं परांगुष्ठमारान्सेतुश्चाब्धौ विलोपितः ॥ ३२ ॥

हस्तादिभिः कथं नायविद्वानो न विलुप्यते ।

कारणं बहुवेवाश्व बहुनाय हरिस्त्वयम् ॥ ३३ ॥

अस्तीत्यहं विजानामि स्मृतं पूर्ववरादिकम् ।

मद्वैवपरिहारोऽयं कृष्णेनानेन कर्मणा ॥ ३४ ॥

कुतोऽस्त्यत्र क कृष्णाग्रे मन्मर्कटमुपौरुषम् । इति निश्चिन्त्य मनसि कपिः सोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

जितं स्वयां बटोर्योगाच्च साहाय्यमाचरे ।

नाय बहुस्त्वयं कृष्णः सेतुचकमनेशकृत् ॥ ३६ ॥

स्वन्माहाय्यार्थमायातः सत्यं ज्ञातो मयाऽर्जुन ।

अनेन रामरूपेण त्रेतायां मे वरोऽदितः ॥ ३७ ॥

समुद्रके तटपर ही चिता तेंगर की और हनुमान्जीके रोकनेपर भी वे उसमें कूदनेको उद्यत हो गये ॥ २५ ॥ इसी समय एक बहूचारीका रूप धारण करके श्रीकृष्णचन्द्रजी वहाँ आय और उन्होंने अर्जुनसे चित्तमें कूदनेका कारण पूछा । अर्जुनके मुत्तसे ही सब बात मालूम करने कहा कि तुम लोगोंने उस समय जो बाजी लगायी थी, वह निःसाह थी । क्योंकि उस समय तुम्हारी बातोंका कोई साक्षी नहीं था । साक्षीके बिना सब झूठका कोई ठिकाना नहीं रहता । इस समय मैं तुम्हारे समय साक्षीके रूपमें विद्यमान हूँ । अब तुम लोग किंच पहने-की तरह कार्य करो तो मैं तुम्हारे कर्षोंको देखकर विजय-मराजयका निर्णय करूँगा ॥ २६-२८ ॥ बहूचारीजी बात सुनकर दोनोंने कहा—ठोक है और फिर अर्जुनने पूर्ववत् सेतुकी रचना की ॥ २९ ॥ सबकी बाएँ सेतुके नीचे कृष्णचन्द्रजीने अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया । सेतु तेंगार हानपर हनुमान्जी पूर्ववत् अपने अंगूठेके भारसे उसे डुबाने लगे ॥ ३० ॥ जब हनुमान्जीने सबकी बार सेतुकी मजबूत देखा तो वैरों, छुटनों तथा झूठोंके बलसे उसे दबाया, किन्तु वह भी भर भी नहीं डूबा ॥ ३१ ॥ पुनःपुनः हनुमान्जीने सोचा कि पहले तो मैंने अंगूठेके ही बोझसे सेतुको डूबा दिया था तो फिर यह हाथ-पैर आदि मरे पुर शरीरके बोझसे भी क्यों नहीं डूबता । इसमें वे बहूचारीजी ही कारण हैं । ये साक्षात् कृष्णचन्द्रजी हैं और मेरे गर्वका परिहार करनेके लिए ही इन्होंने ऐसा किया है । वास्तवमें है भी ऐसा ही । भला, इन पापकारके सामने हम जैसे क्षात्रकी सामर्थ्य ही क्या है । ऐसा निश्चय करके हनुमान्जीने अर्जुनसे कहा कि आपने इन बहूचारीकी सहायतासे मुझे परास्त कर दिया है । वे कोई बटु नहीं, साक्षात् भगवान् हैं । इन्होंने सेतुके नीचे अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया है ॥ ३२-३५ ॥ हे अर्जुन ! हमें यह बात मालूम हो गयी है कि ये आपकी

दास्यामि दर्शनं तेऽहं शायरे कृष्णरूपधृक् । तत्सत्यं वचनं चाद्य कृतं त्वत्सेतुदेतुतः ॥३८॥

इत्यर्जुनं कपिर्माविद्वन्वीसान्वदप्रतः ।

बहुरेवाभवन्कृष्णः पीतवामा धनप्रभः ॥३९॥

सदर्शनोर्ध्वरोमाऽभूत्प्रणनामाञ्जनीसुतः ।

आलिङ्गिनोऽपि कृष्णेन स मेने ककुतस्थताम् ॥४०॥

अतः ययौ यथास्थानं श्रीकृष्णस्याज्ञया तदा । सागरेण स्वकल्लोलैः खरसेतुर्विलोपिता ॥४१॥

तदाऽर्जुनो गर्वहीनो मेने कृष्णेन जीवितः ।

कृष्णस्तदाऽर्जुनं ग्राह त्वया गमेण स्पर्द्धितम् ॥४२॥

हनुमता धनुर्दिष्टा तवातोऽथ मृषा कृता ।

यत्प्रतापदिति शिरा न्वयाऽपि वायुनन्दन ॥४३॥

रामेण स्पर्द्धितं यस्मात्तस्मादर्जुन संजितः । अतः परं वीरगर्वम्भं मां भद्र निरन्तरम् ॥४४॥

इत्युक्त्वा मारुतिं पृष्ठाऽर्जुनेन तन्पुर ययौ ।

अतः कपिष्वजश्चेति जनैर्गर्जुन ईर्यते ॥४५॥

इति भाविकषा गृष्टा त्वया साऽपि मयोदिता ।

किमग्रे श्रोतुकामोऽसि तन्पृच्छस्व वदामि ते ॥४६॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽधुना राघवस्य वैकुण्ठारोहणोन्मथम् ।

मां वदस्व सविस्तारं येनाहं तीक्ष्णमनुयाम् ॥४७॥

श्रीरामदास उवाच

पूर्वकांडं तावाग्राहं वदिष्यामि शृणुष्व सत् ।

सहायताके लिए ही यहाँ आये हैं । यही रूप धारण करके जेलामें रामने हमें वरदान दिया था कि आपके अन्तमें मैं तुम्हें कृष्णरूपसे दर्शन दूँगा । आपके सेतुके बहाने उन्होंने अपना वरदान भी आज पूरा कर दिया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हनुमान्जी अर्जुनसे ऐसा कह ही रहे थे कि इन्होंने भगवान् अपने बटरूपको त्यागकर कृष्ण बन गये । उस समय वे पोसे वस्त्र पहने थे और नवनीरदके समान उनका श्याम शरीर था । उन कृष्णचन्द्रको दर्शन करते ही हनुमान्जीके रोंगटे खड़े हो गये और उन्होंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया । जब श्रीकृष्णने हनुमान्जीको तठाकर अपने हृदयसे लगाया, तब हनुमान्जीने अपनेको कृतकृत्य मान लिया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णक साक्षानुसार अक्र सेनसे निकलकर अपने स्थानको चला गया और अर्जुनका बनाया सेतु भी समुद्रकी तरंगोंमें लुप्त हो गया ॥ ४१ ॥ इस तरह अर्जुनका गर्व नष्ट हो गया और उन्होंने समझा कि कृष्णने हमें जीवित रख लिया । कुछ देर बाद श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा कि तुमने रामके साथ स्पर्धा की थी । इसलिए हनुमान्जीने तुम्हारी धनुर्विद्याको व्यर्थ कर दिया था । इसी प्रकार हे वचनसुत ! तुमने भी रामसे स्पर्धा की थी । इसी कारण तुम अर्जुनसे परास्त हुए । तुम्हारा गर्व नष्ट हो गया । अब आनन्दके साथ मेरा भजन करो । ऐसा कह और हनुमान्जीसे गूँछकर श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ हरितनापुर चले गये । हे शिष्य, इसी कारण अर्जुन कपिष्वज कहे जाते हैं ॥ ४२-४३ ॥ यद्यपि तुमने हमसे यह भविष्यकी कथा सुनी थी, फिर भी मेने कह सुनाया । अब आगे क्या सुनना चाहते हो सो बताओ । मैं तुमको सुनाऊँ ॥ ४५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरु ! अब मैं रामचन्द्रजीके वैकुण्ठारोहणका वतावत सुनना चाहता हूँ । सो आप विस्तारपूर्वक हमें बताइए, जिससे हमारे हृदयको सन्तोष हो । श्रीरामदासने कहा—मागे मैं तुमसे पूर्वकांड कहनेवाला हूँ । उसमें भगवान्के वैकुण्ठारोहणका वृत्तान्त तुम्हें अच्छी तरह सुननेको मिलेगा ॥ ४७ ॥

यस्मिंश्च रामचन्द्रस्य वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ॥४८॥  
 इदं मनोहरं काण्डं मया ते समुदीक्षितम् ।  
 ये शृण्वन्ति नरा भूम्यां तेषां रामे रतिर्भवेत् ॥४९॥  
 मनोऽभिलषितान् कार्मास्ते लभन्ते न संशयः ।  
 पुत्रार्थो प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थो धनमाप्नुयात् ॥५०॥  
 इदं रम्यं पवित्रं च श्रवणान्मगलप्रदम् ।  
 पठनीयं प्रयत्नेन रामसद्भक्तिवर्द्धनम् ॥५१॥  
 आनन्दरामायणमध्यसंस्थ मनोहरं काण्डमिदं विचित्रम् ।  
 पठति शृण्वति गृणन्ति मर्त्यास्तै स्त्रीयकामानखिलान् लभते ॥५२॥  
 इदं पवित्रं परमं विचित्रं नानाचरित्र त्वतिपुण्यदं च ।  
 सुदा नरैः श्राव्यमिदं सुदा भीतीतापतेर्भक्तिविवृद्धिकारि ॥५३॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे रामदासविष्णु-  
 दाससंवादे हनुमता शरसेतुभंगो नाम अष्टादश सर्गः ॥ १८ ॥

मनोहरकाण्डे सर्ग आनन्दरामायणेऽष्टादश शतव्याः ।  
 एकत्रिंशच्छतः श्लोका रामदासमुनिना पापनुदः प्रोक्ताः ॥ १ ॥

अथ मनोहरकाण्डे प्रकरणानुक्रमः ।

लघुगमयणम् ॥ १०४ ॥ वैकुण्ठारोहणम् ॥ १५५ ॥ रामपूजा ॥ २७५ ॥ लघुरामतोमद्रम् ॥ ३०९ ॥ रामलिंगतोमद्रम् ॥ ३७७ ॥ नवमीव्रतम् ॥ २४१ ॥ रामनवमीउद्यापनम् ॥ १३२ ॥ वेदा-  
 दिकाव्यपूजा ॥ १२७ ॥ विशेषकालपूजा ॥ १९३ ॥ चैत्रमहिमावर्णनम् ॥ १६७ ॥ पिशाचमुक्तिः

॥ ४८ ॥ मैंने तुम्हें यह मनोहरकाण्ड सुनाया है । जो लोग इस काण्डको सुनते हैं, उन्हें रामचन्द्रजीकी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ वे अपना मनोऽभिलषित फल प्राप्त कर लेते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है । इसको सुननेवाला यदि पुत्र चाहता हो तो पुत्र और धनार्थो धन पाता है ॥ ५० ॥ यह काण्ड बड़ा रम्य, पवित्र और सुननेसे मङ्गलदायक है । इसलिए लोगोंको प्रयत्न करके इसका पाठ करना चाहिए । इसके पाठसे रामके चरणोंमें भक्ति बढ़ती है ॥ ५१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत यह मनोहरकाण्ड बड़ा विचित्र है । जो लोग इसका पठन-श्रवण तथा मनन करते हैं, वे अपना सारी कामनाएँ पूर्ण कर लेते हैं ॥ ५२ ॥ यह काण्ड परम पवित्र, विचित्र, मगवान्के विविध चरित्रोंसे भरा हुआ और भक्तिमय पुण्यदायक है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि रामकी भक्ति बढ़ानेवाले इस मनोहरकाण्डका अवश्य श्रवण करें ॥ ५३ ॥ इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामसेतुभङ्गेयकृत 'शरसेतु' अष्टादशोकासहिते मनोहरकाण्डे अष्टादश सर्गः ॥ १८ ॥

इस मनोहरकाण्डमें कुछ अठारह सर्ग हैं और इसमें रामदास मुनिने पापनाशकारी एकतीस सौ श्लोक कहे हैं । १ ॥ मनोहरकाण्डका प्रकरणानुक्रम—लघुरामायणमें १०४ श्लोक, वैकुण्ठारोहणमें १५५, राम-पूजामें २७५, लघुरामतोमद्रमें ३०९, रामलिंगतोमद्रमें ३७७, नवमाश्रममें २४१, रामनवमीउद्यापनमें १३२,



॥ २९६ ॥ अद्वैतवर्णनम् ॥ १०७ ॥ कवचद्वयम् ॥ ८८ ॥ सीताकवचम् ॥ १०३ ॥ लक्ष्मण-भरत-  
शत्रुघ्नकवचानि ॥ १८२ ॥ हनुमत्पताकारोपणम् ॥ ६५ ॥ सारसामायणम् ॥ १५२ ॥ शरसेतुमङ्गः  
॥ ५३ ॥ इति प्रकरणानि । एवं मिलित्वा मनोहरकाण्डे श्लोकसंख्या ॥ ३१०० ॥ इयं मंत्रवृत्तादि-  
रहिता संख्याऽस्ति ।

वेषादिकाव्यपूजामें १२७, विशेषकालकी पूजामें १९३, जैत्रमहिमावर्णनमें १६७, विगाथमुक्तिमें २९६,  
अद्वैतवर्णनमें १०७, हनुमत्कवच तथा रामकवचमें ८८, सीताकवचमें १०३, लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नकवचमें  
१८२, हनुमत्पताकारोपणमें ६५, सारसामायणमें १५२ और शरसेतुमङ्गमें ५३ श्लोक कहे गये हैं और ये ही १८  
प्रकरण वर्णित हैं । सब मिलाकर ३१०० श्लोक इस काण्डमें हैं । किन्तु यह संख्या मन्त्र और वृत्त आदि-  
की संख्या छोड़कर बतायी है ।

॥ इति आनन्दरामायणे मनोहरकाण्डं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।



श्रीसीतापठके नमः  
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्



## पूर्णकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( सीमवंशी राजाओंकी कथाका विस्तार )

श्रीरामदास उवाच

अथ श्रासति राजेन्द्रे रामे सीताभिगञ्जिते । समाधामेकदा दूतं सुपेभस्य गजाह्वयात् ॥ १ ॥  
समाधायो स विक्रलो रामं नत्वाऽवर्षाद्वचः । राम राजावपश्चात् सोमवन्शोद्धवर्नृपैः ॥ २ ॥  
सवेष्टितं गजपुरं नलार्थश्चिर्जीविभिः । तद्दूतवचनं श्रुत्वा राषभोऽर्धव विस्मितः ॥ ३ ॥  
वसिष्ठं प्राह मद्राज्ये न कदा पार्थिवान्तरमाः । समागता मया योद्धुं किमिशर्नो हि श्रूयते ॥ ४ ॥  
किं कारणं गुरो सत्र विचारय सर्वेस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तं गुरुः प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥  
प्रष्टव्यमथ वाल्मीकिं येन ते चरितं कृतम् । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणं प्रष्टुं समाहूयाथ तं मुनिम् ॥ ६ ॥  
सीतया पूजनं कृत्वा रामो धृतं न्यवेदयत् । वाल्मीकिस्तु तदा प्राह राम किंचिद्विद्वस्य सः ॥ ७ ॥  
किं त्वं न वदस्व राजेन्द्र विनोदान्मां तु पृच्छसि । शृणुष्व तदि मे वाक्य सर्वं शृण्वन्तु ते प्रियाः ॥ ८ ॥  
एकादश सहस्राणि वत्सराणि तथा पुनः । एकादश समाश्रापि मासास्त्वकादशत्र वि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—जब कि रामचन्द्रजी सीताके साथ सुख भोगते हुए अयोध्याका राज कर रहे थे । उन्हीं दिनों सुपेभका एक घबड़ाया हुआ दूत द्वास्तिनापुरसे आ पहुँचा । उसने भगवान्‌की प्रणाम करके कहा—हे राजावपश्चात् राम ! सोमवंशी राजे नल आदिन द्वास्तिनापुरका चारों ओरसे घेर लिया है । दूतकी यह बात सुनकर रामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए ॥ १-३ ॥ वे गुरु वासिष्ठसे बोले—हे गुरुवर ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? आज तक तो कभी ये राज मेरे साथ युद्ध करने नहीं आये थे ॥ ४ ॥ कृपा करके आप इसपर सावस्तर विचार करिए । रामकी बात सुनकर वासिष्ठजीने कहा कि यह बात आप वाल्मीकिजीसे पूछें । क्योंकि उन्होंने ही आपके चरित्रकी रचना की है । यह सुनकर रामने लक्ष्मणका भेजकर वाल्मीकिताको बुलवाया ॥ ५ ॥ ६ ॥ वाल्मीकिने जानेपर सीताके साथ-साथ रामने उनकी पूजा की और द्वास्तिनापुरका सब समाचार कह सुनाया । वाल्मीकिने हैसकर कहा—क्या आपको ये बातें नहीं मालूम हैं ? मालूम हैं । किन्तु कौशुक वश आप हमसे पूछ रहे हैं । अच्छा, आपको वही इच्छा है तो सुनिए । आपके त्रियजन भा सावधानीके साथ मेरी बात सुनें ॥ ७ ॥ ८ ॥ ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष, ग्यारह महीना, ग्यारह दिन, ग्यारह घंटा और ग्यारह पलका समय

एकादश दिनान्यत्र षट्काश्चापि सन्मिताः । एकादश फलान्येव ते राज्यं निश्चितं मया ॥१०॥

शुश्रूकोदिमिने काण्डे पुर्य तेऽवधारतः ।

तन्मध्येऽत्र क्षत्रीयानि सदस्त्राणि तथा सेनाः । अतीताः शेषभूताश्च मासाः शेष दिनादिकम् ॥११॥  
 षष्ठादष्टादिनैर्न्यूनमग्रं वर्षं प्रमोऽत्र यत् शेषभूतं सङ्गरेण परिपूर्णं भविष्यति ॥१२॥  
 अयं कालोऽवतारस्य समाप्तेस्ते समागतः गत्वा भागीरथीं पुण्यां पर्वतेनावनीतलम् ॥१३॥  
 प्रापितां तत्र राजेन्द्र तस्यां स्नात्वा यथाविधि स्तुतो ब्रह्मादिकैः सर्वैः पदं स्थाप्य गमिष्यति ॥१४॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमनवीत् एतावत्कालपर्यन्तं नलायाः कुत्र संस्थिताः ॥१५॥  
 कुतोऽयुना ममायातास्तन्मवं विस्तराद् ॥ तद्वा मयं वचनं श्रुत्वा बाल्मीकिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥  
 मृणु गम महाबाहो सर्वं ते कथयाम्यहम् । अत्रिर्मुनिः पुनः गमं पुनिमायां कृते युगे ॥१७॥  
 वैशाख्यामेकदा सोमो दृष्टः नातोमुखायमम् । युषोच वीर्यं भूम्यां स तस्मान्पुत्रो बभूव ह ॥१८॥  
 सोमस्य दर्शनाज्जातः सोमरूपः स बभूव ह । सोऽरण्ये जाह्नवीतरे चकार तप उत्तमम् ॥१९॥  
 एतस्मिन्समये तत्र कश्चिदस्ती समापयो । निहतः पक्षिभिस्तत्र तद्दृष्ट्वा कौतुकं महत् ॥२०॥  
 सोमो विचारयामास पक्षिभिर्निहतः कर्म । अस्या भूम्याः प्रभावोऽयं पुनः तत्र चकार सः ॥२१॥  
 हस्तिनाशान्पुनं जातं तस्मात्तदहस्तिनापुरम् । तत्र पर्यैः कुतो राजा सोम एव रघूवम ॥२२॥  
 तस्य जातो पुत्रः पुत्रस्यायुषी जगतां तलम् । सद्दीपं स्ववशं कृत्वा सुरलोकं प्रजग्मनुः ॥२३॥  
 तत्र त्रित्वा तुगन्सरान्पुनस्त्रौमिष मयुतां हुकरा देवान्धर्मलोके निवासं चकतुर्मुदा ॥२४॥  
 तपोर्ददौ वरान्प्रजा युवां महत्प्रमथौ । युवाभ्यां मोक्षितम्वद्य देवमघपुनरुवदम् ॥२५॥  
 युवाभ्यां तर्षाहं वन्मि वराश्छृणुत बालकौ युष्मदंशे नृपाः केचिदग्रे त्रिपुरुषोर्व्वतः ॥२६॥

भाषको राज्य करनेके लिए मैने निर्धारित किया था ॥ १० ॥ १० ॥ ये बातें मैं आपके अवतारके पहले ही अपने गतकोटिसंसारमयक रामायणमें लिख चुका हूँ । वे ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष चलेंगे ही गये । अब ग्यारह महीना और ग्यारह दिन तथा चड़ी-चल आदि हो बाकी बच है ॥११॥ सब मिलाकर अष्टादश दिवस ग्यून एक वर्ष बाकी है । यह समय मंग्र मंग्र समाप्त होगा ॥ १२ ॥ आपके अवतारका समय समाप्त हो रहा है । अब आप अपने पूर्वज अर्षात् भगोरय द्वारा लायो हुई गङ्गामें विधिवत् स्नान करके ब्रह्मादिक समस्त देवताओंसे संस्तुत होकर अपने परम धामका आरोग्य ॥ १३ ॥ १४ ॥ बाल्मीकिजी मात्र पुनकर राघव कहते कि अवतक ये मन्त्र आदि शब्द कहाँ थे ? ॥ १५ ॥ इस समय कहाँसे आ गया है, यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामका वचन सुनकर गतमीकि बोले-हे राम ! हे महाबाहो ! मैं सब कुछ कहता हूँ, सुनिए । बहुत दिन हुए, सत्ययुगमें अत्रि ऋषिने वैशाखकी पूर्णिमाका अष्टमाका मुन एक वर्षक समान सुन्दर देसकर अपना वीर्य राम दिया और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६-१७ ॥ चन्द्रमाको दलनस वह पुत्र उत्पन्न हुआ था । इसलिए वह सोम कहलाया और बनमें जाकर गङ्गाजोंके तटपर ठाम तप करने लगा ॥ १८ ॥ उसी समय वहाँ एक हाथी आ गया । उस हाथीको कुछ पक्षियोंने मिलकर मार डाला । यह महावीरुके देखकर सोमने अपने मनमें सोचा कि यहाँके पक्षियोंने हाथीका मार डाला है । यह अवश्य इस भूमिक ही प्रभाव है । ऐसा विचार करके सोमने उसी स्थानपर एक नगर बसाया ॥ २० ॥ २१ ॥ उसी स्थानपर पक्षियोंने हाथीका विनाश किया था । इस कारण उसका हस्तिनापुर नाम पड़ गया । हे रघूवम ! यहाँके पुरव सियोंने आपसे करके सोमको ही यहाँका राजा बनाया । २२ ॥ सोमके पुत्र नामका पुत्र हुआ । फिर क्या था, पुत्र और सोमने मिलकर सब द्वीवोंको अपने अधीन कर लिया और कुछ दिनोंके अनन्तर स्वर्गलोकको गये ॥ २३ ॥ उन्होंने स्वर्गमें देवताओंको आतकर छोड़ दिया और वे सस्योक वहाँ रहने लगे ॥ २४ ॥ उन सोमोंको बहाने अनेक वरदान दिये । बहाने

अन्यैः पराजिताः सप्त पुरुषा न भवन्ति हि । इति दश वा वरं ब्रह्मा ययौ निजपदं प्रति ॥२७॥  
 ततः सोमाय दौहित्री दत्ता । यथावती शुभा । इन्द्रेण तत्र तौ सोमबुधौ श्वरं विधत्तौ चिरम् ॥२८॥  
 बुधदय तनयो भूम्नो नाम्नाग्न्यातः पुरुखाः । अकार राज्यं धर्मेण तथा वदन्तिनापुरे ॥२९॥  
 तस्य पुत्रश्च नन्धोऽभूद्रन्यपुत्रोऽन्य उच्यते । अल्पपुत्रो नल भीमान् दिवशालान् जेतुमुद्यतः । ३०॥  
 राज्ये पुरुखादीन् श्रीन् स्यात्प निजपूर्वजान् । समद्वीपनृपयुक्तः प्रययौ मेरुमुन्नतम् ॥३१॥  
 आदौ जिन्वा स बह्विदि यय निन्वाश्च निरुक्तिम् प्रययौ वरुण जेतुं गवणादिभिरन्विणः ॥३२॥  
 इतस्मिन्नंतरे राम तूर्णं मैन्येन रावणः । प्रययौ नाकलोकं हि सुराभिद्रादिकान् रणे ॥३३॥  
 जिम्बा निनाय स्वां लंकां सोमो पुद्गाय पा-मज्ज । निर्धयौ मुहुराः सर्वान्नेन्द्रान् मोचयितुं सुरान् ३४॥  
 तदा निवारयामास ममा सोमं स्वराज्यतः । निष्पृभू-चा तृषेपेण गवणं हि इतिष्यति ॥३५॥  
 एवं माऽद्य रावणं यदि वरुणस्मै मशार्जितः । तद्वाग्राचन भुन्वा ययौ मोघोऽवरावर्तीम् ॥३६॥  
 भूम्नो मलस्तनो गम्या वरुण पवनं तथा । जिन्वा इवेरमीशान् कृत्कार्यममन्यत ॥३७॥  
 आत्मानं च ततः स्वर्गे चैव जेतुं समुद्यतः । एवं तलेन भ्रमता गत तद्य च कृत बुगम् ॥३८॥  
 त्रेतायुगसमामो स ददर्श सकलं बलम् । तत्रादृष्ट्वा रावणं स दृष्ट्वा बुधोऽवर्तौ न्विति ॥३९॥  
 देवान्बलशालान् कुन्वा लंकां स्वां स गतः पूगः । तत्र माघे तु भ्रमन्तो बलकर नगुरु सुतः ॥४०॥  
 बुधदयस्य आनीकगहनन्मुनो बभूवुः स्मृतः । तस्य पुत्रो लघुभुजः सुरधस्तन्सुतः स्मृतः ॥४१॥  
 अजमीढस्तु तन्पुत्रस्त्वेव चन्द्रोऽभवत्पथि । ततः स मशयामास नलो मंविजनेः सह ॥४२॥  
 किमर्थमिदलोकं तं गन्तव्यमधुना यदि । भुवि देवाः समानोता लङ्कायां गवणेन हि ॥४३॥

कहा-तुम दोनों परे बंशज हो। तुमने मेरा महिम्न सभार दशनाओंको जीतकर भी छाड़ दिया है। इसलिये मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ कि तुम्हारे बंगम तल पर द के भाये सात पुत्र तक बिलने गाने होगे वे किसीसे भी पराजित नहीं होगे। इस प्रकार वरदान देकर ब्रह्मा अपने स्थानका चल गये ॥ २५-२७ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रने यथावत) नामकी अपनी मुद्रसे नन्दिनी सामको दलो। इस तरह वे सोम और बुध जानन्दके साथ बहुत दिनों तक स्वर्गलोकमें रहे ॥ २८ ॥ बुधरा पुत्र इस संसारमें पुरुखा न मों विख्यात हुआ। उसने धर्मपूर्वक हस्तिनापुरमें राज्य किया ॥ २९ ॥ उसका पुत्र गव्य हुआ। गव्यका पुत्र अक्षर और अन्नका पुत्र तल हुआ। बले इन्ना प्रबल होर था कि उसने दसा दिवस लोका जीतनेकी इच्छा की। सेनाकी तैयारी करके वह हस्तिनापुरमें पुरुखा आदि तीन पूर्वजोंको छोड़कर सभी द्वीपोंके राजाओंके साथ उन्नत शिकरवाने मेरु-पर्वतपर चढ़ गया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वही पटंचदर उसने बहुत आगिको, फिर यमकी ओर उनका बाद निरु-क्तिको जीतकर रावण आदि देवोंके साथ वरुणको जीतनेके लिए गया ॥ ३२ ॥ उसी समय रावण अपनी सेनाके साथ स्वर्गलोक पहुंचा और इन्द्रादि देवताओंको संग्राममें जीतकर अपनी लंकाको वापस चल गया। तब सोम अपने मित्रों तथा पूर्वजोंके साथ लेकर रावणस मुद्र करने तथा इन्द्रादि देवोंको मुझानेके लिए चल पडा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसी समय ब्रह्माजीने आकर सामको रावणपर चढ़ ई कानेसे लोक दिया और कहा कि स्वर्ग विष्णुचतुर्वान् अनुपगत रूप धारण करके रावणका संहार करेंगे। तुम आज रावणके पास मत जाओ। ब्रह्माकी बात मानकर सोम लंका न जाकर समरावतपुती गया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर वही सोम मरुत्पते इस पृथ्वीपर भवतीर्ण हुआ और अपने पराक्रमसे कुबेर एवं ईशानको परास्त करके उसने अपनेकी कृतकृत्य माना ॥ ३७ ॥ कुछ दिनों बाद इन्द्रको जीतनेके लिए बल स्वर्गलोकमें आ पहुंचा। इस तरह उनके घूमते फिरते सत्ययुग बीत गया ॥ ३८ ॥ त्रेतायुगके समाप्त हो अनन्तर चलने सब बीरोंकी तो देसा, जिन्नु रावण मही मिला। अन्तमें मरने फिर सब देवताओंको यशमे किया। अन्तपर भी आधिपत्य जमाया। सभी चलकर चलके नखुच, मचुचके जातोकर, जातोकरके बभूव, बभूवके लघुभुज, लघुभुजके सुरध, सुरधके अजमीठ पुत्र हुआ और इस प्रकार बलकी सन्तति बज। एक दिन मरने अपने मांश्यों-

अस्माकं सेवकः सोऽस्ति दशास्यः करमादः । निजं पुत्रं प्रमत्तव्यमनुना चिरकालतः ॥४४॥  
 दिग्गथादयं सर्वे ज्ञातिनाः मम चिरं निवहन् । पुरुरवादिनास्ते नः पूर्वजाः सति वा मृताः ॥४५॥  
 नास्माभिश्चिकालं हि तद्रूपं भ्रमकः श्रुतम् । अतः स्वीयं पुत्रं गन्दा द्रष्टव्यास्तेऽत्रिपूर्वजः ॥४६॥  
 चेन्मोमपुत्रयोर्नाकं गन्तव्यं दर्शयेच्छया । तर्हि ताम्यां पुत्रा देवाः किं जेता रावणेन हि ॥४७॥  
 किं ताम्यां रक्षिता इवा जिताश्चेति न वैशयहम् । तत्र भवन्मकलं कृतं विदितां हस्तिनापुरे ॥४८॥  
 भविष्यति ततो यदि कर्त्तव्यं त- रं मया । अति निश्चितं यं नलः शनैः स्वनगरं ययौ ॥४९॥  
 एवमिन्मन्तरे राम स्व जतोऽत्यन्तमलम् । हन्तव्यं तं रावणं देवा मोक्षितास्ते दिवं गताः ॥५०॥  
 समद्वोपातरम्या ये नृगाम्ने रावणकृताः । पुरुरवादिनाः स्त्रीश्च निष्कारपात्र गङ्गाह्वये ॥५१॥  
 सुपेयः स्थापितः पूर्वं वानरैः सहितमन्या । ततः पुरुरवाद्याम्ने स्वकालेन मृतास्त्वह ॥५२॥  
 इदानीं ते समायाताः मोक्षयेज्जङ्गमं नृगम् । नस्त्राघाः मम स्वपुत्रं समद्वीपनृपोत्तमाः ॥५३॥  
 स्वतकृताः स्ववपुषा ये च डीर्घावरकिन्नाः । नृगस्तेषां पूर्वजाश्च स्वमैर्न्यस्ते नृपोत्तमाः ॥५४॥  
 बलिनः कौटिभः सर्वे ममायाता गङ्गाह्वये । भविष्यति स्वपुत्रं तैश्च ममरः सोमवशजैः ॥५५॥  
 रुद्रा मया सुर्ययुक्तः समगन्धर्व तर्वातिरुम् । पश्योम्ने प्रणामांश्च नलाद्यैः कागयिष्यति ॥५६॥  
 कृत्वा कः प्रार्थनां तेऽपि न्वा वैकुण्ठमणेष्यति । एव राम तवेस्तार तवाग्रे कथितं तथा ॥५७॥  
 यन्पृष्टं मां त्वया पूर्वं नन्दादीनां कथानकम् । विनाहकाडमारुह्य रम्यं रामायणं शुभम् ॥५८॥  
 समग्रं हि मया राम पुण्यं श्रावितं तव पुत्रारूपाधनुना सर्वं शृणुष्व रघुर्नन्दन ॥५९॥  
 इत्युक्त्वा कुशलवयोश्चकाशतां सुनिश्चयः । निवहन्तान्काण्डानि चत्वारि जगतुः शिशू ॥६०॥

वे मन्त्रणा की कि जब रावण सब देवताओंको पकड़कर पृथ्वीमण्डपर ही ले आया है, सब हम स्वर्गलोककी वशो  
 चला । ३६-४३ । रावण हमारा सेवक है, सब हमें कर देना है । हम लोगोंको घुमते-घुमते भी बहुत दिन हो  
 गये है । इसलिये अब अपने पुत्रोंको लोट करके आगिये । जिनकी रिजाओंमें घुमते फिरते हमलोग  
 बहुत समय तक आबित रहे, किन्तु पुरुरवा आदि हमारे पुत्र ज वित है या मर गये । मुझ उनकी कुछ  
 भी खबर नहीं है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अतएव चर, अतएव राजवंताओं वायस चल । वहांका हाल-बाल देख  
 और अपने लोनों पूर्वजोंकर दर्शन करें ॥ ४६ ॥ तर्हि नन्दा । बात भी नहीं जानत है कि सोम और पुष भी  
 तो और और देवताओंके साथ रघुम द्वारा बन्दी नही बना निव गये । हस्तिनापुर सजनेसे ये बात भी जान  
 हो जायेंगी । उसके बाद जा करना उचित होगा, सा दिया जायगा । ऐसा निश्चय करके वह अपने नगरको  
 लौटा ॥ ४७-४८ ॥ इसी समय हे राम ! आगम अवतार हो गया । आगम रावणको मार डाला और  
 देवताओंको छुड़ा दिया । जिसने व सब देवता स्वतकृताकी चले गये ॥ ४९ ॥ मानों द्वापार रहनेवाल  
 राजाओंकी आपन अपने वशम कर लिया, वे पुरुरवा आदि तन राज भे आदक वशम हो गए । तब आपने  
 उनको हस्तिनापुरसे निकालकर वाङ्मोक साथ सुगणको उसका नईगर दिखाए दिया । कुछ दिनों बाद समय  
 आनेपर पुरुरवा आदि भी मर गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इस समय नल आदि मादवंशी रात उन सत्त राजाओंके  
 साथ यहाँ मा रहे हैं । जिनका कि आपन अपने वशम कर लिया था और अब तक वे किसी दूसरे द्वापमें  
 रखा करते थे । वे राज अहेले नही बन्धक अपने पूर्वजों तथा करेड़ों के विनाश सेन के साथ हस्तिनापुरपर  
 चढ़े आ रहे हैं । उन सोमवंशियोंके साथ आपका युद्ध करना पड़ेगा ॥ ५३-५५ ॥ इस समय सब देवोंके  
 साथ ब्रह्माजी वाकर नल आदिसे आदका प्रणाम करवायम् । ५६ ॥ इसके बाद रुद्रा आपकी विविध स्तुति  
 करके अपने साथ आपको वैकुण्ठलोक ले जायेंगे । हे राम ! इस तरह देने आपको आज्ञाते उन नल आदि  
 भन्धवकी राजाओंका पुत्रात विस्तारपूर्वक बताया ॥ ५७ ॥ हे 'पुनन्दन ! बहुत दिन हुए, जब मैं विवाहकांड-  
 से लेकर सारी रामायण आपको सुनायी थी । अब अब अपने पुत्रोंके मुखमें वह पुनीत कथ सुनि  
 ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इतना कहकर वाङ्मोकिने कुश और लक्ष्मी रामचरित्र सुनानकी आज्ञा दी और वे विवाहकांड-

तत्सर्वं राववः भूम्या पसां युद्धवशात् सः । विदुः सर्वं जनाश्चापि वैकुण्ठारोहणं प्रभोः ॥५१॥

इति शतकोटिरामचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये अदिकाव्ये मनोहृत्काण्डे  
सोमवंशानुसङ्गादिस्तारो नाम प्रथमः सर्गः ॥ ८ ॥

## द्वितीयः सर्गः

( रामका सोमवंशियोंसे युद्धके लिए प्रस्थान )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्तदा ब्रह्म वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् । आमन्त्रय्य त्वया तत्र मुनिभिस्तु गज्राह्वयम् ॥ १ ॥  
तथेति स मुनिः प्राह राघवं भक्तवत्सलम् । ततः स लक्ष्मणं शीघ्रं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥  
पत्राणि प्रेषयन्वाद्यं कुमारान् राजसंस्थितान् । स्वस्वाज्ये मन्त्रिणश्च कृत्वाऽशमभ्यतो बलः ॥ ३ ॥  
एवमेव प्रलेख्यानि जम्बूद्वीपपतीन्व्रजान् । तथा शोषपर्वीधरपि दूतास्तस्त्विह नः ॥ ४ ॥  
तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा तदा चक्रे यथोदितम् । गदवेण समायुधे वाल्मीकिगुरुमभिधौ ॥ ५ ॥  
ततः ब्रह्म पुनः श्रीमान् राघवो लक्ष्मणं ब्रूयात् । वासोमेधानि मेघानि बहिर्मम रघूदर ॥ ६ ॥  
युद्धतो वृत्तते शो वै सेनां चोदय सादरात् । आयुधान्पथ यत्राणि जीर्णानि च बहूनि हि ॥ ७ ॥  
पूर्वजैर्निहितान्येव कोशागारेषु वै सदा । तानि निष्कामनीयानि तेषां कालोऽद्य वर्तते ॥ ८ ॥  
अन्तःपुराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि मेऽद्यतः । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य सांताप्यग्रेऽनुगच्छतु ॥ ९ ॥  
कोशागाराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि नाहनैः । इत्यथशरधपादास्ता मेघाः सर्वे बहिस्त्वया ॥ १० ॥  
इत्याह्वय्य रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं निनयान्वितम् । मन्त्रिणौ नैगमाश्चैव अविष्ट चेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥  
अभिपेक्षयामि सरतं समद्वीपवतैः पदे । लक्ष्मणो मां विना नैव भूम्यां वासं करिष्यति ॥ १२ ॥

के बादवाले काण्डोंको कथाओंको सिंग जुद्धकर गान लगे ॥ ६० ॥ यह सब कथाएँ सुनकर रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और सर्वसाधारणके लोगोंको भा भगवान्की स्वार्थारोहणसम्बन्धी बातें ज्ञात हो गयीं ॥ ६१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ भाषाटीका-सहिते पूर्णकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले—इतनी कथा सुनकर रामचन्द्रजीने वाल्मीकिसे कहा कि आप भी हस्तिनापुर अवश्य आइएगा ॥ १ ॥ महीं वाल्मीकिने मन्त्रवत्सल रामसे कहा—“बहुत अच्छा” । इसके बाद राम लक्ष्मणसे कहन लगे कि सब गज्योक मिह्रासनपर बैठे हुए कुमारोंके पास पत्र लिख दो कि वे अपने अपने मन्त्रियोंके ऊपर राज्यका भार छोड़कर अपना सेनाके साथ यहाँ आ जायें ॥ २ ॥ ३ । उन्हें प्रकारक पत्र जम्बूद्वीपवाले तथा द्वीपान्तरनिवासी राजाओंके पास लिख दो और दूतोंको कहा कि उन्हें जय पत्र अर्पण कर ॥ ४ ॥ “तथास्तु” कहकर लक्ष्मणजीने भी वंसा ही किया, जेवा कि रामचन्द्रजी ने अपना वाल्मीकि तथा गुरु दमिष्ठके सम्मुख कहल था ॥ ५ ॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणसे कहा कि हमारे लम्बू-कनक आदि सामान बाहर ले चलो ॥ ६ ॥ कल बड़ा अच्छा सुनल है । सेनाको भी शीघ्र मैदान हो जानकी आज्ञा दे दो । बहुतसे शस्त्र जीर्ण हो गये हैं, जिनको ग्रे पूर्वजोंने धरेनि बन्द कर दिये हैं उनका निकाल लो । क्योंकि आज उनके उपयोगका समय आ पहुँचा है ॥ ७ ॥ ८ ॥ जल पुरकी जितनी शिखरी है, उनको भी बाहर ले जाओ । अग्निहोत्र लेकर सीता भी मेरे साथ चले ॥ ९ ॥ मेरे जितने खजाने हैं उनको हाथी घोड़े तथा रथकी सहायतासे बाहर ले जाओ ॥ १० ॥ इस तरह लक्ष्मणजीको आज्ञा देकर मन्त्रियों, विद्वानों तथा बसिष्ठजीसे कहा कि अब मैं सातों द्वीपोंके राजापरतके पदपर भरतजीको बिठाऊंगा । क्योंकि मेरे दिना लक्ष्मण इस भूमिफल-

एवं वदति राजेंद्रे पौरस्त्ये मयविह्वलाः । दुःखा इव छिन्नमूला दुःखार्ताः पतिता मुनि ॥१३॥  
 मूर्च्छितो भगवन्वापि श्रुत्वा रामाभिभाषितम् । गर्हयामास राज्यं स प्राह दुःखाद्रघुनामम् ॥१४॥  
 मत्प्रेन तु ज्ञापे नाहं त्वां विना दिवि वा हवि । कांक्षे राज्यं रघुश्रेष्ठ ज्ञापे त्वयाप्योः प्रभो ॥१५॥  
 अहं योग्यं वरं राज्ञमभिविचिन्स्व रम्यं । अयोध्यायां कुशं वीरं समद्वीपपतेः पदे ॥१६॥  
 अस्यधुरगुरुकृपया जम्बुद्वीपपतेः पदे । लघोऽभिषेचितः पूर्वं स एव तेषु गच्छतु ॥१७॥  
 भरतेनोदितं श्रुत्वा रतिनास्ताः समीक्ष्य च । प्रजा वै मयमविह्वला रामविह्वलेपकातराः ॥१८॥  
 वमिष्ठो भगवान् राममुवाच सद्यं वचः । पश्यतामादरात्सर्वाः पतिता भूतले प्रजाः ॥१९॥  
 तायां मानानुबं राम प्रसादं कर्तुमर्हसि । श्रुत्वा वमिष्ठवचनं ताः समुत्थाप्य पूज्य च ॥२०॥  
 सस्नेहोऽधुनायन्ताः किं करोमीति चाब्रवीत् । ततः प्राञ्जल्यः प्राचुः प्रजा भक्त्या रभूदहम् ॥२१॥  
 गन्तुमिच्छसि वैकुण्ठं त्वमस्माकं नय प्रभो । यत्र गच्छसि त्वं राम शत्रुगन्धर्वाभ्यो वयम् ॥२२॥  
 अस्माकमेव परमां प्राप्तिर्धर्मोऽश्मद्वयः । तत्रानुममने गम हृदता नो दृष्टा मतिः ॥२३॥  
 पुत्रदारादिभिः सार्द्धमनुयायीऽयं सर्वथा । तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ॥२४॥  
 शान्त्वा तेषां मनोदाह्ये कारुण्याद्रघुनायकः । भक्तं पौरजनं दीने वादमित्यब्रवीद्वचः ॥२५॥  
 कृन्तनं निश्चयं राक्षसस्मिन्नेवाहनि प्रभुः । कुशं तमभिषेक्तुं वै चोदयामास लक्ष्मणम् ॥२६॥  
 सौमित्रिश्चापि गुरुणा विप्रैः पौरजनेभ्यस्तदा । शोभयित्वा स्वनगरीं कुशं तमग्यवेचयत् ॥२७॥  
 अभिषेके कुशस्यार्मान्महोत्साहो गृहे गृहे । रामावरोधे शुभदान्यमुत्साहस्तदाऽभवत् ॥२८॥  
 तदा सिंहासनारूढं छत्रचामरशोभितम् । प्रजाः कुशं पतिं प्राप्य प्रणमं चक्रुरादरात् ॥२९॥

पर नहीं रह सकते ॥ ११ ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके पैना कहनेपर ये सब पुरवासी घरसे कटे हुए नृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े । रामकी बात सुनकर भरतजी भी मूर्च्छित हो गये । होश आनेपर उन्होंने राज्यकी भरपूर निष्ठा की और दुःखित होकर उन्होंने रामचन्द्रजीसे कहा—मैं आपको चरगाकी कृपाय आकर कहता हूँ कि आपके बिना मैं पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकका भी राज्य नहीं चाहता ॥ १३-१५ ॥ हे राजन् ! हे राघव ! आप और कुशको इस जम्बुद्वीपपतिके आसनपर बिठाकर दोजिए ॥ १६ ॥ उत्तरकुश नामके देशमें जम्बुद्वीपपतिके दरबार हो आपने स्वका बहुत दिनों पहले ही अभिषेक कर दिया है वह अपने पदपर चला जाय ॥ १७ ॥ इस प्रकार भरतकी बात सुनकर वहाँके जितने प्रजाजन हैं, वे सब रामके वियोगरूपा दुःखमें विह्वल और अशुभीत हो गये ॥ १८ ॥ उनकी यह दशा देखकर दयानु भगिन्नजीने रामसे आदरपूर्वक कहा— हे राम ! देखिए, ये सब कितने दुःखी हैं । जब जिस तरह इनकी सन्तोष हो सके, वही काम करिए । वमिष्ठजीकी बात सुनकर रामने उन लोगोंको उठाया, उनका उत्कार किया और पूछा कि मैं क्या करूँ, जिससे आप लोग जोर प्रसन्न हो सकेंगे । यह सुना तो सब लोग हाथ जोड़कर पश्चिम्पूर्वक रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे राज ! आप कब यदि वैकुण्ठलोकको जाना चाहें हों तो हम भी अपने साथ लेते चलिए, हम सब भी आपके साथ-सम्य चलेंगे ॥ १९-२२ ॥ इससे बहकर हमको और कोई साथ नहीं होगा हम लोगोंके लिए यह अक्षय्य वनकायों है । हे राम ! आपके साथ चलनेके लिए हमसे हृद निश्चय कर लिया है ॥ २३ ॥ आज हम सब अपने परिवारके साथ आपके साथ वैकुण्ठलोकको, तपोवनको, स्वर्गको अथवा अयोध्याको जायेंगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रजीने जब मत्स्य और पुरजनोंकी हतनी दृष्टा देखी तो साथ ले चलनेकी स्वीकृति दे दी ॥ २५ ॥ इस तरह निश्चय करके रामने उसी दिन कुशका अभिषेक करनेके लिए लक्ष्मणसे कहा और रामके आशानुसार गुप्त, विप्र एवं पुरवासियोंके साथ लक्ष्मणने उसी दिन कुशका राज्याभिषेक कर दिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ कुशका अभिषेक करते समय अयोध्याके घर घरमें महान् उत्सव मनाया गया । विशेषकर रामके आत्मापूरकी त्रिरिपेनि उत्सव मनाया ॥ २८ ॥ जब कि छत्र और चमर आपसे सुसज्जित होकर कुश सिंहासनपर

सदा कृशो नृपो विमान्धनं बहुतरं ददाति । प्रजास्त पूजयामासुवच्चलकारसादनैः ॥३०॥  
 यतः प्रापुजन्त्यर्चाः प्रजाः स कुलभूषतिः । भवप्रदामासु विमोहकोटिभ्यः स कुशेश्वरः ॥३१॥  
 अथ रामाज्ञया ज्ञाथ सोमिषि मोक्षदा मह । अन्नः पुण्यानि सर्वाणि निनाय नमगद्गदहः ॥३२॥  
 नावावाहनमंभ्यानि नृत्यवाद्यादिमग्नैः । कले गतः स्वयं बन्धुपुत्राद्यैः सर्वतो दृतः ॥३३॥  
 हनिभिर्जयमुर्द्वश्च स्तुतो मंगलनिःस्वनैः । प्रयोधराया दद्विः पार्ययेवा मायप्रस्तुतः ॥३४॥  
 रथस्त्रधामराधिवीजिअ धर्ममृदा । विजित कामोमेदहनि नदा राक्षो जय ॥३५॥  
 अनृतुर्वारिवार्वथ सदा धर्मरथवाहनः । नकः पौगः सादरो वावांडालान् ॥३६॥  
 निन्युस्ते माग्नेयानान् पुर्वाः पौगवतुषद्वत् । कामन्पक्षिकुली गवास्तः पुर्वा त इरिययुः ॥३७॥  
 नासीन्कोटिपि तदा पुर्वा अनशून्या बभूव सा । अये स्थानदरा पुण्या गववृक्तकपिन्यरत् ॥३८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वे द्रोणांश्च निधामिनः । जघ्नापातिरस्वाथ पयुः सर्वैर्नृपो नवाः ॥३९॥  
 कोटिस्तो रापय नेमुनको नेमु कुशेश्वरत् । उपालभानि तामाद्य कृत्वा च वृधत् पृथक् ॥४०॥  
 दध्वा संपूजितामात्रां तस्वः सदा हृतेतमाः । ततोऽहं शिवश्रेष्ठैः पुत्रैश्चैव च ॥४१॥  
 सुरादृष्टुं पदेतुश्च ययुः सर्वे निजैरर्तैः । साकंवाः मपुत्रश्च सर्वत्राम्ने स्तुषादिभिः ॥४२॥  
 प्रयेषु राधिकादीश्च सीतादीश्चैव सादगत् । रामेणान्विति ॥ सर्वे सीताया मोक्षिता अपि ॥४३॥  
 तस्युः सर्वे सदायां ते स्वस्वर्पद्वयः ॥४४॥ नदापतन् नृपात्मनां गयो पुर्वं न्यवेदयत् ॥४५॥

[illegible]



पुनः पप्रच्छ तान्मन्त्रान्मन्त्रिणान् रघुनन्दनः । युष्माकं पूर्वज्ञाः सर्वं समाधाता गजान्धुषे ॥४५॥  
 भवतां गोपने युद्धं यदि नैः पूर्वज्ञैः सह । आगन्तव्यं तर्हि सर्वं मया सह गजान्धुषम् ॥४६॥  
 नोपेन्द्रद्विर्गन्तव्यमित एव निजम्बन्धम् । निर्वन्धोऽयं न मे तेषां सर्वैः पार्थिवमन्त्रमैः ॥४७॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा वृषा राघवमब्रुवन् । राम राम महावीर्यं वरं सर्वं त्वधानुगतः ॥४८॥  
 स्वयैव वीर्यवानः सर्वं त्वान्नैः पोषिता वयम् । वीर्याः क्षत्रियवंशीया रणे नानप्रहाप्तिनाः ॥४९॥  
 तवाज्ञया वधानोऽयं पितृपुत्राश्च त्वाश्रिते । नाम्नांस्त्वं विद्धि राजेन्द्र स्वामिकायै वराहपुत्रान् ॥५०॥  
 इति तेषां वचः श्रुत्वा तानादिग्य स राघवः । मण्डूक्याभार्णवमैः मुखं मुग्धाय सीतया ॥५१॥  
 वनः प्रभाते श्रीरामो गन्वा न गगनदीप्तिम् । स्नात्वा दानादि वै दत्त्वा सीतया विधिपूर्वकम् ॥५२॥  
 कृत्वा तां मण्डूक्यां पुण्यां गन्तुं पप्रच्छ नैः मुहुः । वट्टामवचनैः श्रुत्वा मण्डूक्यं राममब्रवीत् ॥५३॥  
 एतावन्कालपर्यन्तं स्थिता नृहर्षिनेच्छया । अहमद्य त्वया राम यास्यामि न्यन्पदं त्वित ॥५४॥  
 तपस्या वचनं श्रुत्वा नामाह राघवः पुनः । यावन्कथा मम ह्युभा स्वाम्यन्यत्राघनाश्विनी ॥५५॥  
 तावन्ममभरूपाऽत्र वयं लोकावनाश्विनी । तथेति रामवचनादशरूपं निधाप मा ॥५६॥  
 साकेलेऽथ पूर्णरूपं ययौ रामेण न्यपदम् । अथ तमः मण्डूकाऽपौ परिक्रम्य निजां पुरीम् ॥५७॥  
 साष्टांगं तां नमस्कृत्य गन्तुं पप्रच्छ पूज्यताम् । श्रौण्येभ्य नमस्तेऽस्तु नृपाऽहं रक्षितस्मिन् ॥५८॥  
 आशीं ददस्व पुच्छामि स्वस्वले गन्तुमुद्यत । क्षमस्व नृपगन्धोस्व पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥५९॥  
 इति रामवचः श्रुत्वा पुरीं राघवमब्रवीत् । एतावन्कालः परं स्थिता नृहर्षिनेच्छया ॥६०॥  
 यास्ये त्वया समर्था न मोदुं त्वद्विग्रहं स्वहम् । तनय्या वचनं श्रुत्वा पुरीम्नाह रघूत्तमः ॥६१॥

ये बड़े । और-और राम भी वहाँ रक्षा करने हुए तो राम ने उनकी अपनी विचार सुनाया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर राम ने उन राजाओं से कहा कि आपको पूजा है इन्द्रियापुरीय बुद्धि रहित तो हैं ॥ ४५ ॥ ना यदि आत्माओं-को भी बुद्धि करना हो तो मेरे साथ ही गन्तव्य है चरित् । ४६ ॥ यदि न इच्छा है तो आप लोग अपनी अपनी राजधानी को लौट आइये , मैं आत्माओं से किसी परमात्मा का यह नहीं करना चाहता ॥ ४७ ॥ इस प्रकार राम की बात सुनकर उन राजाओं ने कहा-हे राम ! हे महाबली ! हम सब आपके मनभावो हैं ! आपने ही हम लोगों का अभ्युदय किया है । आपको ही बलमें हम पन हैं , वार क्षत्रियों के वंश में मेरा जन्म हुआ है । इस कारण आप यदि आज्ञा दें तो हम अपने पित्र्यादिभक्तों के संवागमें अवश्य मानेंगे । हे रामन्द्र ! आप कभी भी ऐसा न मझिना कि हम स्वयः (अपने) के काममें परादुष्ट हो जाएं । ४८-५० ॥ इस प्रकार उनको बलपूर्वक तो राम ने उन सब राजाओं की इच्छा के अनुसार, विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणोंसे उनको राजा का और जाकर आनन्दपूर्वक सेवाके साथ तपन किया ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर सबसे सीतिका साथ रामकटजों में मण्डूक मण्डप जाकर स्नान दान किया । इसके बाद उन्होंने प्रणाम करके सन्तुली से अपने लिए वस्त्र बाद जानकी आगत मार्गः । राम की प्रार्थना सुनकर सन्तुल कह- ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जबतक आपको उसीकी इच्छासे मैं भी पूर्ण हो किन्तु हे राम ! अब आप जा रहे हैं तो मैं भी आपको श्रीचरणोंके साथ चढ़ाऊँ ॥ ५४ ॥ सन्तुली ने न पुनः रामसे कहा-जबतक मैं दासोंकी मष्ट करन-वाली बेटी पुनीत कथा इस समाज में विद्यमान है, तबतक मैं स्वयंसे इस भी यहाँ रहूँगी दुई सत्रके पास बूट करती रहूँ । रामके कहनेपर सन्तुल तब तो अपनी एक अशक्त बलावा, जिसके वह जवाबदायि रह गयी और पूर्णरूपसे रामके साथ चल पड़ी । सन्तुली ने यह कर , मन्त्र अपनी दास्य पुनीती पत्रिमा का और साष्टांग प्रणाम एवं पूजन करके वरमधाम जात्रको आज्ञा सीती और कहा-हे अम्ब प्रयों दो ! तुमने मेरी रक्षा की है । मैं अब अपने नेकुटुल्य जात्रकी अती सीतिका हूँ । मैं अपनाईकी क्षमा करी और पुनः आधादि हो कि फिर कभी मैं तुम्हारा शोक कर सकूँ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार राम की बात सुनकर अशक्यापुरीय कहा कि इतने दिनों तक मैं आपका दर्शन कर सका हूँ नहीं रही । आपके चल जानेपर दुःख

यावत्कथा मम शुभा स्थास्यवाधनाशिनी । तावत्प्रमदशरपेण वमात्र मृन्मयी चिम्ब ॥६२॥  
तथेति रामप्रचारादशरपाडय मृमयी अयोध्या सन्निधौ दिवता हेमा गोणेन सा वर्या ॥६३॥  
अयोध्याया मर्यादापि रामः सेनामन्त्रणं वर्या । अयोध्याया मर्यादा प्रभादी न गती चिनः ॥६४॥  
अथ सीता मदानागीमाश्लोह मर्षाजनैः । पृथक् नाभ्युमिदायाम्नाः समाकलनमना ॥६५॥  
अथ रामो मुदा वेगात्ममाहृत्य गतोपरि । उवाच लक्ष्मण वाक्यं कृष्णकै मकलान् जनान् ॥६६॥  
पौगनागोहयस्व न्वं स्ववधुभ्यां सुनादिमि । नाग रक्षः पृथक् शत्रुं समाकृत्य गतोपरि ॥६७॥  
अनुगच्छाम्ब मपृष्टे लक्ष्मणः स तथा उकरान् । प्रथमं नृपतया नानाधानेषु सन्निधयः ॥६८॥  
ययुः स्वर्षवसैपुंक्ताः शत्रि श्रीगामनाथनः । यथावग्रे मप्रमगो रजजुहुदालधरिभिः ॥६९॥  
दृषन्कारैस्तवर्कैश्च कुटानटकागिभिः । ननो ययो मदानागः पताकाध्वजसोभितः ॥७०॥  
ततो ययुर्यन्त्रहस्ता नावावाहनमस्थिताः । ननो ययुः जनकनाभिः पूग्निताः शकटा शुभाः ॥७१॥  
ततोऽथमस्था बाघानि वादयन्तो ययुर्भटाः । ननोऽथ रम्भः शनयो ययुस्ते ववपाणयः ॥७२॥  
ततो ययुर्मागवाध नदिनो यानमस्थिताः । नना नटाध्वजवाध पानस्थाः मुविभूतिताः ॥७३॥  
ततस्ता वारनायश्च काष्ठमचक्रगाहनाः । भरकेषु भटनार्गे नृनयः प्रययुः मुखम् ॥७४॥  
ततो ययुर्भूषितावतो श्रीगामनाथं तुरङ्गमः । नाः पुनः पदपान्निभ्रम्यः प्रमदतमा ॥७५॥  
ययुस्तरुण्यः शतशः शस्त्रहस्तः गुनूतिशः । गोपिताम्याः कपुकिन्यस्तुर्गता देव म वर्याः ॥७६॥  
ततो ययुर्दंडहस्ता दासीपुत्राः सुभूतिना । ननो ययो रजनन्दरुणपृष्ठ उद्वेग्या वर्या ॥७७॥

रहती हुई वे आपक वियोगका दुःख नहीं सह सकूँगे । इससे मैं भी आपक साथ ही चलनेका तैयार बँडी हूँ । उसकी ऐसी बात मन्तर रामन अयोध्यापुंगव कहा कि जबतक दानुमे मर पावनाशिनी कथा विद्यमान रहे तबतक तुम अण्णमि मृम ॥ ६२-६३ ॥ रामन कनतापुमार उराने अन्न अन्नकरन मृमजी हाकर रज्जा मर पाव कर दिवता गोम मृमम, नव मृमम ॥ ६४ ॥ रामके साथ चल पड़ा ॥ ६५ ॥ इससे बाद राम काटो नया मरक मावे चान्नाका करव नोम गव । एतानि अयोध्या तथा मरुत ये दाता वरन जय मरक मर मर , मिन् ममा म उरका प्रभाव कनाका न्यो बना रहा । वह गही गया ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर मर पावक अरुण, दियन पन मरार हुई और उमिला आदि दूसरी हविर्दियापर जा बँठी ॥ ६७ ॥ इससे बाद राम भ ॥ ६८ ॥ अनापूर्वक हाकर पवन दुग और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त वन्धु-वन्धवोंके साथ अयोध्या गिरीको पुनः विमानपर मरार ६९ । ७० ॥ इसके बाद तुम अपने परिवारवालोंको हाथीपर बिठाकर मर पछे पीछे जाओ । रामर आज्ञापुमार लक्ष्मणन मर उरक टाक कर दिया । इसके बाद मव राज अलक प्रकारकी कर्वाटियापर मवार हो-हाकर अयोध्या-अयोध्या सनाके माथ रामके पास आये । आगे-आगे वे मजदूर चले, आरम्भिय तथा कुशल चिह्न थे । पन्तर काटनेवाले तथा बट्टई आदि विविध प्रकारके औजार लिये थे । उनक पीछे पीछे एक बडा हाथी पनाका और वरजाओत अलकृत हाकर चला । उसक पीछे अयन-अयन हाथीस वन्धुस जाद विविध प्रकारक शस्त्रवाता सैनिक सगु-तरहके बाहनोपर सवार हाकर चले । उनक पीछे पृथक् आदिने तथा वेमार्डि चरा जा रहो थी ॥ ६६-७१ ॥ उनके पीछे पीछे अनेक प्रकारके वज्र वरानेवाले लोग घाटापर बँड बँडकर चले । उनक पीछे बहुतस पृष्ठ-सवार हाथम बन लिये हुए चले ॥ ७२ ॥ उनक पीछे बरनापर आम्ब होकर बहुतसे मागव और वन्दजन चले आ रहे थे । उनक पीछे नदलाग और मर्जा चौक रोपर बँड हुई वरनावे गयी वगातो और नाचती हुई चली आ रही थी ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ उनके पीछे रामके रुकावे हुए भ ॥ ७५ ॥ और उनके पीछे पुण्यक समान वेद धारण किये, अनेक प्रकारक अलंकार पहन, सगु सगु शस्त्र लिये, पदसे अयन, मुख जिगये और घांटे आदि विविध सवारियापर मवार चिह्न चली आ रही थी ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ उनक पीछे हाथमे लिये लिये तरह-तरहके आभूषण पहने दासीपुत्रगण चले आ रहे थे । उनके पीछे भावान् रामचन्द्र और लक्ष्मण, भरत,

तत्पृष्ठे भरतश्चापि सन्नुन्नश्च ततो ययौ । ततः कुशो लवश्चाथ ततः सोऽप्यमदो ययौ ॥७८॥  
 ययौ ततश्चित्रकंतुः पुष्करश्च ततो ययौ । तनस्तक्षः सुवह्वश्च युषकेतुस्ततो ययौ ॥७९॥  
 ततः सीता ययौ शीघ्रमुर्मिला च ततः परम् । मांडवी श्रुतकीर्तिश्च स्तुषाः सर्वाः क्रमाच्चयुः ॥८०॥  
 तनुस्ते मन्त्रिणः सर्वे शिबिकः सन्धिना ययुः । ततो ययुर्वानरश्च कोटिशः पर्वतोपमाः ॥८१॥  
 ततो ययुर्नृपाः सर्वे कोटिशो वारगन्धिताः । ततो नृपाणां मैत्र्यानि ययुर्वानिन्धितानि हि ॥८२॥  
 ययुस्तवस्ते यंत्राणां शकटाः कोटिशो वराः । शनघ्नीखड्गचर्मादिपूरिताः शकटास्तदा ॥८३॥  
 ततो वारणमूढपाश्च नववाद्यसमन्विताः । ततश्चोष्ट्राः सुवणानां ततः पृष्ठे सरादयः ॥८४॥  
 एवं रामः शनैर्मार्गं चामराद्यैः सुवीजितः । सीताया आलम्ब्यैव वीक्षितश्च मुहुर्मुहुः ॥८५॥  
 ययौ शनैः शनैः श्रीमान्स्तुतो मामश्ववंदिभिः । पश्यन्नुन्यान्पश्यन्मरसां शृण्वन्स गायनान्यौष ॥८६॥  
 सेनानिवेशस्थानानां यात्राकांडे यथोदिता मया पूर्वं सुरचना तद्वदासीत्पुनस्त्विह । ८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणं गाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकाण्डे

रामदासविष्णुमवादे रामप्रस्थानं नाम द्वितीयः सर्गः । २ ॥

## तृतीयः सर्गः

( रामका सोमशिशियोंके साथ युद्ध )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैर्मार्गे नानादेशान्विलम्ब्य च एकादशदिनैः प्राप सेनया तद्बलाह्वयम् ॥ १ ॥  
 राममागममाज्ञाय सुपेणो वैगवस्तरः । प्रन्दुशयो म्वरुदिविविशलक्षममन्वितैः । २ ॥  
 नत्वा रामं च सीतां च सर्वं वृत्त न्यवेदयेत् राम राम महाबाहो द्रवापाचव वै मया ॥ ३ ॥

भावार्थः— कुश, अङ्गद, चित्रकंतु, पुष्कर, तक्ष और इनके पीछे राजकुम सुवह्व चल जा रहें थे । राज पुत्रोंकी सेनाके पीछे सीता उमिला, मांडवी, श्रुतकीर्ति और इनके पीछे उनकी पत्नीद्वय चली जा रही थीं । उनके पीछे रामके मन्त्रिगण पालकियोंपर बैठ चले जा रहें थे । उनके पीछे पर्वतक समान बड़े-बड़े आकारवाले वानर और उनके पीछे विविध प्रकारकी सवारियोंपर सवार सब राज चले जा रहें थे । उनके पीछे उन राजाओंकी सेनामें घोषादय सवार हाकर चली जा रही थी । उनके पीछे कितनी ही बैलगाड़ियोंपर लड़े हुए तोप आदि यन्त्र चल जा रहें थे ॥ ७७-८३ ॥ उनके पीछे मूढ-मूढ हाथी अनेक प्रकारके बाघ लादे हुए चले जा रहें थे और उनके पीछे एक बहुत बड़ा हाथी चल रहा था जिसपर राजकी पताकी सुशोभित हा रही थी । उनके पीछे सुवर्णसे लड़े हुए ऊँट और उनके पीछे और-और सामान लादे हुए गधे तथा सव्वर आदि चल रहें थे ॥ ८४ ॥ इस तरह राम और वारे चले जा रहें थे । उनके ऊपर चमर व्यजन आदि चल रहें थे और सीताजी अपनी सवारीके सरीखीमें वार वार रामकी निहार रही थीं । ८५ ॥ मागध-बन्दीजन आदि विविध प्रकारकी मूर्तियों कर रहें थे और कितनी ही अप्सराओंके नृत्य-नाच हो रहें थे ॥ ८६ ॥ राम-चन्द्रजीके पड़ाव ठीक उसी तरह इस समय भा वे, जैसे कि पीछे यात्राकांडमें बतलाये जा चुके हैं ॥ ८७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणं पूर्णकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २

इस तरह धीरे-धीरे चलते हुए राम अपनी सेनाके साथ अनेक देशोंको लाँघते हुए ग्याह् विनमे इस्तिनापुर पहुँच । १ ॥ रामके पहुँचनेका समाचार पाते ही सुपेण वीर लाल सैनिकोंको लेकर आ पहुँचा । २ ॥ रामके समक्ष पहुँचकर उससे सीता रामका प्रणाम किया और कहन लगा—हे महाबाहो राम ! आपके

चतुर्दशदिने युद्धं कृतमेषिः सुसुक्कम् । अनुनाम्नं मयायात सर्वेने स्थास्यन्ति भूतले ॥ ४ ॥  
 सुषेणस्य वधः श्रुत्वा ममप्याश्रमयन्प्रभुः । अथ रामः स आहूय्याश्वोत्तरे परमे तटे ॥ ५ ॥  
 सेनानिवासमकरोद्ददधे रिपुवार्हिनीम् । तां निश्चां समतिक्रम्य द्वितीये दिवसे ततः ॥ ६ ॥  
 शोदयामास युद्धाय वानरान् रघुनन्दनः । ततस्ते वानराः सर्वे जाह्नव्यामवप्युच्य च ॥ ७ ॥  
 राम सीतां नमस्कृत्य निर्ययुः समरं मुदा । ततस्ते वानराश्चक्रुः सिंहनादान्प्रपकरान् ॥ ८ ॥  
 शोदयामासुर्वाद्यानि दृष्टुः शत्रुवार्हिनीम् । नलाशस्त्रेऽपि श्रौण्मसेनां दृष्ट्वाऽनिविस्मिताः ॥ ९ ॥  
 चकित्वा मयसीताश्च निर्ययुः संगरं जगान् । ततस्ते वानराः सर्वे गङ्गामुत्तंज्य वेगतः ॥ १० ॥  
 दृषत्किः सर्वैर्नृक्षैः शिन्वादिमुष्टिभिः पदैः । निजघ्नुः शत्रुवीर्यास्त्रे कर्तयतो मृगमम् ॥ ११ ॥  
 नलशिराश्च ते सर्वे शस्त्रैर्वीर्यैः कर्षीश्वरान् । निजघ्नुः समरे वेगाद्वभूव तुपुलो रणः ॥ १२ ॥  
 अथ तैर्वानरैः सर्वे बलाद्वधैः प्रपीडिताः । पराङ्मुखाः कृताः सर्वे स्थाने नरसैनिकाः ॥ १३ ॥  
 सान् दृष्ट्वा ने ननायाश्च रणाङ्गीरान् पराङ्मुमान् । निहतजङ्घपि शीर्षाचोदयस्यपतीस्तदा ॥ १४ ॥  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जयार्द्रापरिवामिनः । तथा द्वीपान्गोद्रवा ये मुदाश्च पुगोदिताः ॥ १५ ॥  
 पयुर्गुडाय समुद्रा नानाबाहदमस्थिताः । तन्मयानागतान्दृष्ट्वा ययुः श्रौण्मसैनिकाः ॥ १६ ॥  
 जयार्द्रापांतरस्थाश्च तथा द्वीपतिमस्थिताः । पुरानश्च नृपाः सर्वे नानाबाहदमस्थिताः ॥ १७ ॥  
 सुग्रीवश्चागदश्चाश्च हनुमाश्च विभीषणः । जायसाश्च सुषेणश्च मयातिर्महत्प्रवजः ॥ १८ ॥  
 शुहको भूर्गिकर्णश्च कंकुषः प्रगावदान् । तथाऽन्ये जनकाश्चाश्च ययुः सग्रामभूतलम् ॥ १९ ॥  
 लक्ष्मणोर्महानागीर्मैन्ययोर्वीर्यनिःस्वनः । नरवाद्यानि च नेदुरुभयोः सैन्ययोः पृथक् ॥ २० ॥  
 तदा बभूवो देवाः शिवेन सहिताश्च स्त्रे । सवधनाथ सोमन देवेद्रेण युता मुदा ॥ २१ ॥  
 नानाविमानमारुढा ददशुर्बुद्धकौतुकम् । अथ चन्द्रादयो देवाश्चक्रमन्त्रं परस्परम् ॥ २२ ॥

अलापसे मेने बौरहू दिनो तक इन लोगोके साथ भयंकर युद्ध किया है । अब आप भी जान्ये हैं तो ये दुष्ट बचकर कहाँ जायेंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ सुषेणकी बात सुनकर रामने भी उसे आश्वामन दिया और गङ्गाके उत्तरी तटपर अपना सेनानिवास बनवाया ॥ ५ ॥ वहाँसे ही शत्रुको सेना देखी । रात बीत जानेपर सबरे ही रामने वानरोंको युद्धके लिए बिदा किया । रामकी आज्ञासे वे लाग सीता तथा रामकी आज्ञास्य कर्के बड़ी प्रसन्नतासे गङ्गाजीको पार करके संग्रामभूमिमें आ पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने भयंकर सिंहनाद किया, विविध प्रकारके मारु बाजे बजाये और शत्रुकी सेवापर घावा खोल दिया । रामकी सेनाकी देखकर वे नल आदि राजे बड़े विरिमत हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ वे तुरन्त अपनी सेनाके साथ युद्धके लिए आ डटे । इसके अनन्तर वे सब वानर परपरके बड़े-बड़े लण्ड और वृद्ध ले-लेकर रामचन्द्रजीकी जयजयकार करते हुए शत्रुपक्षके बाँगी-का संहार करने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥ उधर नलकी सेनाके भी बाँर अपने लोखे शस्त्रोंसे वानरोंको मारने लगे । इस तरह कुछ देर तक प्रतापसाम युद्ध हुआ और वानरोंन अपनी पूज्य बाबागवर्गोंसे शत्रुओंके लुपके छुदा दिये । जिससे नलके सैनिकोंको बहूँसे पीछे हटना पड़ा ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस तरह अपने बाँरोंकी भागते देखकर नल आदिने और-और राजाओंका प्रोत्साहन किया । १४ ॥ इससे जम्बूद्वीपके अन्यान्य द्वीपोंके राजे जिनकी गणना पीछे कर जाये हैं, वे सब अनेक प्रकारके वाहनोपर आरुढ़ हो-होकर बड़ी तैयारीके साथ पिबल पड़े । उन लीगोंकी युद्धभूमिमें उपस्थित देखकर रामकी सैनिक आ डटे ॥ १५ ॥ १६ ॥ उधर जम्बूद्वीप तथा अन्यान्य द्वीपोंके राजे उपस्थित थे । इधर सुग्रीव, अहूद, हनुमान् विभीषण, कामववान्, सुषेण, सम्पाती मकरध्वज, भूर्गिकर्ण, कंकुष तथा जनक आदि कीर करनेके लिए शत्रुसंग्रामभूमिमें डटे हुए थे । उस समय दोनों ओरके सैनिक बहुत जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहे थे और विविध प्रकारके बाजे दब रहे थे ॥ १७-२० ॥ उस समय शिव, बुध, सोम और इन्द्र आदि देवताओंकी साथ सेकर

महाभयं समुपपन्नं प्रलयोऽहं मयि ध्याते । ब्रह्मदनशराश्वने सोमवंशोद्भवा नृपाः ॥ २३ ॥  
 रामो विष्णुरयं साक्षात्कथं जयपराजयौ । मविष्यन्तः कथं युद्धाभितृनिरुमयोरपि ॥ २४ ॥  
 भविष्यन्ति उपायः कः कार्यो युद्धानवाग्ने । तदा मेका सुगताहं किंचिद्दृष्ट्वा वयं रणम् ॥ २५ ॥  
 कौरव्यामस्तयोः सख्यं राममोमजयोस्त्विह । इत्युक्त्वा मकलान्वेधा ददर्श ग्णाकीतुकम् ॥ २६ ॥  
 तथोमयोः सैन्ययोश्च वसुधुवैश्रानिःस्वनाः । यत्रोन्धवद्विज्यालाभिष्याम्ना दशदिक्षोऽभवन् ॥ २७ ॥  
 यत्रोन्धनानागटिकाभिर्निजनुस्ते परम्परम् । शत्रुधनो मेस्तथा जम्मुः गकटस्थाभिरादगत् ॥ २८ ॥  
 तथा वीरा निजनुस्ते वीर्यैः सङ्घैः एवैवैः । परम्परं तोमरैश्च मिदिपालैश्च सुदरैः ॥ २९ ॥  
 परैर्यैश्चक्रवर्णैश्च कुर्वैः शूलैश्च पट्टिजैः । तदा जघान पितरं पुत्रः पुत्रं तथा पिता ॥ ३० ॥  
 पितामहस्तथा पौत्र पौत्रश्चापि पितामहम् । प्रयोन्धं कुलजातपाददादिकं मश्रान्प वै मुहुः ॥ ३१ ॥  
 तथा गणे प्रपौत्रं च जघान प्रपितामहः । तथा वीर्यं प्रपौत्रोऽपि जघान प्रपितामहम् ॥ ३२ ॥  
 मातामहं तु दीदिविमादा वीर्यैश्च उग्रम् । तथा जालमहश्चापि दीदिवि च रणेऽहनत् ॥ ३३ ॥  
 एवं परम्परं धार्माद्युद्धं गच्छोमहर्षणम् । तत्र दे दे तदा वीरः सगरे रामसेवकाः ॥ ३४ ॥  
 तान्सर्वान् जीवयामास तदा पवननन्दनः । द्रोणावर्त्यैर्पथभिश्च वारं वारं स्वयैर्निजान् ॥ ३५ ॥  
 विपुर्मन्ये मृता ये ते मृता एव तु नोन्धिताः । पथं तदा सोमवशनुग्राम्ने क्षीणतां ययुः ॥ ३६ ॥  
 तदा लोहितवर्गा मा बभूव सुरनिम्नगा । अरुपममिता सेना नलादीनां तदा रणे ॥ ३७ ॥  
 निपातिता शस्त्रार्थैर्नृपैः सा दरसंगरैः । एवं बभूव ममरः कण्ठमार्गं हस्तिनापुरे ॥ ३८ ॥  
 ततस्ते सोमवशस्या नृपाः किंचिद्वर्लद्विताः । निशङ्गा विगमोन्माहा निर्ययुः सगरं स्वयम् ॥ ३९ ॥  
 तानामर्गाम्भदा वीर्यं कुशाघा बालकादयः ते । रामदीर्घा ययुस्त्वयं ग्थस्था रणभूतलम् ॥ ४० ॥

अपने बाहुमपर लैके हुए ब्रह्माजी आकाशमण्डलमें आ पहुँचे और उन लोगोंका वह भवानक युद्ध देखने लगे । कुछ देर बाद चन्द्रमा आदि दैवताओंने आपसमें कहा कि यह बड़ा भयावह समय आ पहुँचा है , ऐसा लगता है कि आज प्रलय हो जायगा । इधर ये सोमवश राज ब्रह्मासे वर प्राप्त किये हुए हैं इसलिए किसीसे पराजित नहीं होंगे , उधर रामरूप धारण किये साक्षात् विष्णुसमवात् लक्षण आये हैं । ऐसी अवस्थामें जय-पराजय कस ही सकता है ? और यदि यह झगड़ा ते कर नका विचार किया जाए तो कैसे हो । २१-२४ ॥  
 उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी कहा कि हम दोनो दैवतक इनका युद्ध दलगत इन लोगोंमें मन्त्रि करवा दोगे । ऐसा कहकर ब्रह्माजी युद्धकीतुक देखने लगे । उस समय गंगा देवाओंसे आपसमें आदिकी भयंकर गर्जना सुनायी पड़ रही थी । उन दोनोंके मुखसे निकलें अरुणो लवटें से इती दिक्क वयं न हो गयीं । २१-२७ ॥  
 दैवकी शक्तिगोशे आपसमें एक दूसरेकी मार रहा था । दूसरी ओर वीर-वीर मस्तिगपर रस्त्रों हुई लार अस्त्रों का उगल रही थी । दोनों पक्षों का वार कावमों पट्टिका आदिसे लड़ रहे थे । उस समय युद्धके मदसे मतवाले हुए कर पिता पुत्रको, पुत्र पिताको, पौत्र पितामहको तथा पितामह पौत्रका अपना ग्राम-कुल आदि बहलाकर मार रहा था , प्रपितामह प्रपौत्रको, प्रपौत्र प्रपितामहको, दीदिव मातामहको और मातामह दीदिवको निशङ्कभावसे मार रहा था ॥ २८-३३ ॥ इस तरह परम्पर रामहटक युद्ध हो रहा था उस समय संशाम-भूमिमें जान्ना रामके सैनिक मारे थे , उन्हें हृन्नादों द्रोणावर्त्यका हजोवनी वदसे आवित कर लिया करते थे ॥ ३४ ॥ किन्तु गह्वरी नेत्रोंमें जो धरे, वे धरे ही रह गये । इस कारण वे सब सोमवशी राजे धीरे-धीरे क्षण्यल हो गये । ३५ ॥ उस संशामस रुधिरको गंगा बहु चली और रामके सैनिकोंने मल आदि राजाओंकी वारह पथ सेनाका संहार कर डाला । इस तरह छः महीने तक हस्तिनापुरमें बहुत महासंग्राम होता रहा । ३७ ॥ ३८ ॥ अन्तमें वे सोमवशी राजे अपनी पोड़ी-सी सेना लेकर स्वयं सदावभूमिमें आये ॥ ३९ ॥ उनकी आये देखकर कुश आदि बालक रण-

नतं ययौ कुशः क्षीयं नष्टकं स ययौ लवः । आनीकमगदय तथा च वसुदं नृपम् ॥४१॥  
 चित्रकेतुर्वयौ क्षीयं तथा लघुभूतं नृपम् । ययौ च पुष्करः क्षीयं तष्टुकः सुरथं ययौ ॥४२॥  
 अजयीदं सुबाहुश्च गृपकेतुर्वयौ बलम् । गृपकेतुर्हि तत्सैन्यं चकारामोचरं सुरैः ॥४३॥  
 बापव्याभ्रेण चिक्षेप लवस्तं तदजांभसि । तदा मे सप्त वीराश्च नत्प्रधाः पर्वता इव ॥४४॥  
 सुधृष्टं तष्टुरोरस्य बालकैः सह संगरे । न विरेचुर्बलैर्हीनाः स्वधर्हीनमगोपयाः ॥४५॥  
 कुक्षौ दिव्याश्च बाणैस्त नतं संशममूर्धनि । तदा नतः प्रमिकागाः स्वबाणैस्त व्यतर्जयन् ॥४६॥  
 वतः कुशः स्वबाणैर्धनं तस्याभ्यान्वजं धनुः । छत्रं मार्गपिनं जिह्वा नमं बाणैरताडयन् ॥४७॥  
 नष्टुकं चापि दिव्याश्च स्वबाणैर्धनं वमनः । नष्टुकश्च लघु बाणैस्तादा व्याकुलमानवनेव ॥४८॥  
 नष्टुकं निजबाणैर्धनकम् चिरञ्च लवः । एव आनीकर बाणैरवदाः संशमादयन् ॥४९॥  
 श्लाघ्य आनीकरः परिषेणागदं तदा । तनो आनीकरं बाणैरगदोऽशानयद्गुवि ॥५०॥  
 चित्रकेतुः स्वबाणैर्धनं प्रोक्षेन वसुदं नृपम् । चिक्षेप स्यदनाद्रेमाचदङ्गनमिश्रामवन् ॥५१॥  
 तथा लघुभूतो बाणैर्हृदि दिव्याश्च पुष्करम् । तदा स पुष्करः कोपाद्बाणैर्लघुभूतं रणे ॥५२॥  
 विशिचित्रोपमं कृत्वा बादयामास दुन्दुभिम् । सुगन्धापि तस्य स वक्त्रं यरवृद्धिभिः ॥५३॥  
 तनमक्षः स्वबाणैर्धनं सुरथं गगनादपे । वरदं आमिशामास शुष्कपर्णं यथा मरुत् ॥५४॥  
 अजयीदमृता सर्वान्धर्वाजान् व्यकुलीकृतान् । वीर्यं गमान्मजाद्येभ्योर्वरं अरुद्धिभिः ॥५५॥  
 सुबाहुस्तं स्वबाणैर्धनं चिरञ्च तदा । अजनीदस्तनोऽन्वे स रणे स्थित्वा ययौ पुनः ॥५६॥  
 हृमोच वदनात्तं च कशादीनां रणे क्रुधा । तं दृष्ट्वा गृपकेतुस्तं वज्रगानं हृमोच सः ॥५७॥  
 तदा मे कोटिभः सर्पाः वसुस्तं कपनं क्षणात् । रथस्थः च नतः सर्पान्बद्धा गच्छन्वृत्तमव ॥५८॥

[illegible]

सुमौष पद्मरात्रस्य निवृत्त्यर्थं ततोऽब्रवीत् । तदा कुशः प्रसुमौष राक्षसांश्च भगवद्दम् ॥५९॥  
 ननुकश्च तदा वेगाद्ब्रह्मं तं व्यसर्जयत् । तदा कोषाहवक्ष्ये मेघास्त्रं तं व्यसर्जयत् ॥६०॥  
 तदा लघुश्रुतश्चापि पवनार्थं सुमौष सः । तदा स हनुमान् शीघ्रं व्यादाय विकटाननम् ॥६१॥  
 प्रपिबन्मरुतं वेगान्ननाद जलदस्वनः । एवं तच्च महायुद्धं पुष्पकारामस्थितौ ॥६२॥  
 सीतागमौ मृदा युक्तौ लक्ष्मणार्धदर्शयुः । एवं युद्धं शस्त्रप्रमान्संकादश दिनान्वभूत् ॥६३॥  
 एकादशे दिने मार्गे गतास्तेऽस्मिन्समीरिताः । एवमेकादशैर्मार्गैकादश दिनैरपि ॥६४॥  
 त्रेतायुगमयैर्दिव्यैः समाप्तिं संगरस्य च । अदृष्ट्वा यः कुशो वेगाद्ब्रह्मं संदधे तदा ॥६५॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे रामदास-  
 विष्णुदाससंवादे सोपवर्णोद्बन्धनाणां युद्धवर्णनं नाम षोडशः सर्गः । ३ ॥

## चतुर्थः सर्गः

( सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंमें मंत्री )

श्रीरामदास उवाच

महास्त्रं संदधानं तं दृष्ट्वा वेधाः सुरा सह । सोमेन च बुधेनापि विमानेन ययौ ध्रुवम् ॥१॥  
 विमानादवरुणाथ तदा मया कुशं ययौ । कुशं तं प्रार्थयामास श त्वमस्त्रं विसर्जय ॥२॥  
 पालयस्व वचो मेऽद्य भाके सोमाय वै मया । द्वापरार्तं वरो दक्षस्त्वजेयश्च एणाजिरे ॥३॥  
 भविष्यन्ति नलाद्याश्च सर्वे पुष्पकुलोद्भवाः । पुरा न्विति सुराग्ने हि कस्मिद्विचकारणांतरे ॥४॥  
 अतस्त्वं कुश माऽस्त्रं मे नलाग्रेषु विसर्जय । तद्वज्रवचनं श्रुत्वा कुशो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५॥  
 अधुना क्षणमात्रेण सर्वान्दग्धान्करोम्यहम् । नोषेत्कथय रामाय तस्याह्नां भानयाम्यहम् ॥६॥

रथपरसे नलने जब पद्मरात्र देखा तो महास्त्रास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५८ ॥ उसकी निवृत्तिके लिए कुशने बड़े ही प्रयत्नकर राक्षसास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५९ ॥ उसी समय ननुकने ब्रह्मस्त्र चलाया जब माने कोषके लगे उसपर मेघास्त्रका प्रयोग कर दिया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर लघुश्रुतने पवनार्त्र छोड़ा । इसी समय हनुमान्जीने अपना मुख फँसाकर सब हवा पी ली और मेघकी तरह बीभत्स स्वरमें गरने । ऊपर विमानपर बैठे हुए पुष्कर, रास तथा सीताजी उस महायुद्धको देख रही थीं । इस सभ्य वह युद्ध पाँच महीना म्यारह दिन चला ॥ ६१-६३ ॥ म्यारह ही दिनके लगभग मयोध्यासे हरितनापुर जानेमें लगे थे । सब मिलाकर त्रेतायुगके दिनोंके हिसाबसे उस युद्धमें म्यारह महीने और म्यारह दिन लगे ॥ ६४ ॥ तबजब कुशने देखा कि अब कोई शत्रु उपस्थ नहीं है तो ब्रह्मास्त्रका संधान किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये ६० राम-  
 तेजकाण्डेऽवकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासने कहा-जब ब्रह्मने देखा कि कुश ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करने जा रहा है तो मैं बहुतसे देवताओं और बुध तथा सोमको साथ लिये हुए विमानपर बैठकर पृथ्वीतलपर आये । यहाँ पहुँचे तो विमानसे उतरकर कुशके पास गये और प्रार्थना की कि तुम इस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग मत करो ॥ १ ॥ २ ॥ आज मेरे कहनेसे मेरी बात मान लो । क्योंकि एक बार मैंने स्वर्गलोकमें इन सोमवर्षियोंको भरदान दिया था कि द्वापर तक संवत्सभूमिमें तुम किसीसे भी पराजित नहीं होओगे ॥ ३ ॥ जाये चलकर कुम्हारों वंशमें नल आदि बड़े शतापशाली राखे होंगे ॥ ४ ॥ इस कारण है कुश ! तुम इन नल आदि राजाओंपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग न करो । ब्रह्माकी बात सुनकर कुशने कहा कि मैं अभी क्षणमात्रमें इन दुष्टोंको भस्म किये देता हूँ । यदि कल्प कुछ कहना चाहते हों तो आकर रामधन्वजोंसे कहिए, मैं उनकी बात मानूँगा ॥ ५ ॥ ६ ॥

पदा त्वया परो दक्षस्तदा किं विदितं तव । नार्साच्छीराममामर्ष्यं ह्यनुता शार्ध्यसं सुधा ॥ ७ ॥  
 त्वयि चेद्वर्तते किंचित्सारं धर्तुं रण मया । तर्हि कुक्ष्य साहाय्यं नलादीनां सुरैर्घृतः ॥ ८ ॥  
 रथया रणे सगरोऽयं वयं पश्यतु राघवः । सीताऽपि पुष्पकाम्पीना जालरथैश्च पश्यतु ॥ ९ ॥  
 एवं कुक्ष्य वचनं श्रुत्वा लज्जयुवो विधिः । सोमेनाथ कुपेनादि नलाद्यान्प्राद वेगतः ॥ १० ॥  
 रे रे मृडाः मृणुषं मे वचनं हि भगानुषः । माक्षामारायण रामं पुत्रं योद्धुं समुद्यताः ॥ ११ ॥  
 केनेवं शिथिला बुद्धिः सर्वेषां धानकारिणी । गच्छन् चरणं राम नोवेष्टं मरिष्यथ ॥ १२ ॥  
 ममार्य जनकः साक्षाद्गमो विष्णुर्न मशयः । इति धिक्कृत्य हान्वेधाः कुक्षं वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥  
 यावधास्वाभ्यर्हं रामान्पुनस्त्वां कुक्ष्यालक । तावच्चेन्मोक्षयसे बाणं तर्हि मां इतरानसि ॥ १४ ॥  
 इत्युक्त्वा तं कुक्षं वेधा नल यैः वगिवेष्टितः । पयो रामं सुरैर्घृतः पुरस्कृत्य वृषन्वजम् ॥ १५ ॥  
 शिवमामतमाशाय पुष्पकाद्रघुनन्दनः । शत्रुद्रम्य शिवं नत्वा प्रणनाम ततो विधिम् ॥ १६ ॥  
 ततस्तान्पूजयामास शिवादीन्प्रघुनन्दनः । तदा सभायां रामस्य तिष्ठन्वेधा नलादिभिः ॥ १७ ॥  
 प्रणामान्करयामास सोमेन च कुपेन च । ततस्तान्महामोरथाय रामचन्द्रः करेण हि ॥ १८ ॥  
 श्रुत्वा तेषां हि नामानि विधेरास्यान्पृथक्पृथक् । ततः पप्रच्छ वेगेन नलाणं पुरत्रः स्थितम् ॥ १९ ॥  
 सर्वे किमर्थमानीतास्त्वत्रैते सोमरक्षकाः । वद त्वं कारणं शीघ्रं सत्यमेव ममाग्रतः ॥ २० ॥  
 सद्रामवचनं श्रुत्वा रामं वेधा वचोऽब्रवीत् । राम राम महाबाहो पालयस्वाद्य मे वचः ॥ २१ ॥  
 शत्रुसैतान्पानिष्य वग्दानान्मम प्रभो । द्वापरार्थमजेयत्वं द्रवमस्ति मया पुरा ॥ २२ ॥  
 ममास्त्रं सन्दधानं निवाग्य कुक्षं सुतम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनायकः ॥ २३ ॥  
 सभायामाह मत्प्राणमजेयत्वं त्वयोदितम् । क मत्वं चाद्य समारतिकमर्थमिह चागताः ॥ २४ ॥  
 अब जागने जनको वरदान दिना या तव क्या रामकी सामर्थ्यका आपका ध्यान नहीं था ? तब ही रामको कुछ समयसे गहरी, अब मृत मृदवी प्राप्ति करने आया है ॥ ७ ॥ मैं कहता हूँ कि यदि आपमें कुछ शक्ति हो तो स्वनामोंको साथ लेकर आप नल आदिकों महामता करिए । मैं आपके साथ पनचोरें युद्ध करें और रामचन्द्रजी सभा सभा गुप्तक विमानके मरोखेंसे मेरा और आपका सर्वय दक्ष ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार कुक्षकी बात सुनी तो ब्रह्माना लज्जित हो गये और नल आदिका फटकारते हुए कहने लगे—अरे मूर्ख ! जान पड़ता है कि तुम लोगको आयु समाप्त हो गयी है, जो साक्षात्परायणस्वरूप रामचन्द्रजीसे युद्ध करने आये हो ॥ १० ॥ ११ ॥ सर्वनाश उपस्थित करतवालों यह दुबुद्धि तुमका किसन दी है ? अब यदि अपना कल्याण चाहते हो तो रामकी शरणमें जाओ, नहीं तो एक एक करके तुम सब मार डाले जाओगे ॥ १२ ॥ मेरे पिता विष्णुभगवान् ही तो रामरूपसे इस पृथ्वीतरूप में अवतरे हैं । इस तरह अब लोगोंको खीट-फटकार करके ब्रह्माजी कुणसे कहने लगे कि मैं रामके पास जा रहा हूँ । जबतक उनके पाससे न खीट आऊँ, जबतक आपका प्रहार न करना । ऐसा करोगे तो मानो उनका नहीं, नुस्ते मरा बघ दिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ ऐसा कुणसे कहकर ब्रह्माजी शिवजीको आह करके नल आदिके साथ-साथ भीरामचन्द्रजीके पास गये । जब रामने सुना कि शिवजी आ रहे हैं तो पुष्पक विमानसे उतरकर उनका स्वागत और प्रणाम करके ब्रह्माजीकी भी अभिवादन किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर रामने शिवजी आदिकों विधिवत् पूजा की और सब लोग सभाप्रबन्ध गये । वहाँ ब्रह्माने मोक्ष और कुक्षसे भीरामको प्रणाम करवाया । तब रामने उनको अपने हाथोंसे उठा लिया और ब्रह्माजीके मुखसे उनका नाम सुना । कुछ देर बाद रामने ब्रह्मा से पूछा कि आप इन सोम-वर्षियोंको यहाँ किस लिए लाये हैं ? जो इसका शास्त्रविक कारण हो, यह मुझे बतलाइए ॥ १७-२० ॥ रामको बात सुनकर ब्रह्माने कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आज आप मेरा बाढ़ मानकर इन नल आदि राजाओंको रक्षा कीजिए । मैं इन लोगोंको यह वरदान दे रक्खा हूँ कि द्वापरवर्षमें तुम लोग किसीसे पराजित नहीं होओगे । २१ । २२ ॥ उपर कुक्ष मेरे शत्रु ( ब्रह्मास्त्र ) का सुन्धान करके आये हैं । उन्हें भी



नृदामपचनं भुत्वा रामः प्राह विधिः पुनः । सर्वेषां पुनो मेऽस्ति परं न तु तथाग्रतः ॥२५॥  
 त्वं तु मे जनकः साक्षादनन्तां प्रार्थयाम्यहम् । ततो रामः पुनः प्राह विद्वस्य चतुर्गन्धनम् ॥२६॥  
 न भोऽप्यसि बभौ मेऽयं कुशोऽयं पौनस्त्ययः । प्रायः कुपारा इदानीं वाक्यमग्रे सन्नन्धि न ॥२७॥  
 अन्धकारि मृगुध्वं न यच्छास्त्रोऽप्युच्यते वचः । लालयेन्मैत्रं वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेन् ॥२८॥  
 प्राप्ते तु पौडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेन् । अल्पे बालकाः सर्वे कृपायाः स्वार्थतन्त्राः ॥२९॥  
 न भोऽप्यसि बभौ मेऽयं तान्गन्धः प्रार्थयाम्यहम् । ततः प्राह पुनर्जना रणक्रोधान्कुशो मया ॥३०॥  
 वाक्यं श्रुत्वा मनुजः च नैवायं बदति प्रभो । ततः प्राह विधिं रामः पुनर्वाक्यं विनोदयन् ॥३१॥  
 विधे त्वं गच्छ बालमीकिं स त्वां युक्तिं वदिष्यति । ततः स रामवाक्येन बालमीकिं पुनरपि स्थितम् ॥३२॥  
 हृनिभिर्मुनिशालायां सर्वैः स्थित विधिः । तलायैः सहितो गन्वा वृत्तं सर्वं न्यवेदयत् ॥३३॥  
 विधिमादाय बालमीकिर्ज्ञात्वा राममनोयतम् । स्त्रीमन्त्रत्रोदितार्थेने भवन्तु मुनिनम्रिन्वति ॥३४॥  
 नन्दादीनां स्त्रियः सर्वाः प्रार्थयन्तु विद्वज्जाम् । कुशोऽपि जानकीवाक्याच्छान्तिमेष्यति बालकः ॥३५॥  
 तथेति ते नन्दाद्याश्च दूतान् प्रेषाय पादरम् । जानीर स्वकलत्राणि सप्तशतानि तदा जवात् ॥३६॥  
 जानकी प्रेषयामासुस्ताः सर्वाः पार्थिवस्त्रियः । उपायनानि मृगया जानकी प्रययुर्जवान् ॥३७॥  
 ददृशुर्जानकी नारीशलायां स्वमर्मादृताम् । स्त्रियाभिः सेवितापदां पर्यङ्के निद्रितां मुदा ॥३८॥  
 ततः स्त्रीः समागताः मीना दृष्ट्वा चामरजीवेता । मयकादवक्रमाय घृताश्वेषिवहगा ॥३९॥  
 त्वष्ट्रे मंचकं कुन्वा मरिचिताऽर्ज्यान्मर्मादृता । स्त्रियाभिर्गीत्रं श्रुत्वा प्रणेषुतां परस्त्रियः ॥४०॥  
 तस्मां मीमन्तरस्तौ च प्रभया पदपकजं । त्रिजनुम्ते मोनायाश्चित्रगगविचित्रिने ॥४१॥  
 उपायनानि संगृह्य ताम्य सा जनकात्मजा । समाहित्य निवेदयत् ततः प्राह सुस्वरं वचः ॥४२॥

आप रोक दीजिए । बह्मकी बात सुनकर रामन बहू हि आपन जब इनकी अवय कर दिया था, तब फिर  
 ये लोग संशयपूर्ण हो छोटकर यहाँ पर पास गया आज है । ॥ २३ ॥ २४ ॥ रामकी यह बात सुनकर बह्मा कहने  
 लगे—सब लोगोंके लिए तो मेरे पास बन् है, किन्तु आपके लिए मेरे पास कुछ भी सामर्थ्य नहीं है ॥ २५ ॥  
 आप मेरे पिता हैं, इसी नाते मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । फिर राम बाले कि कुल युवावस्थामें है ।  
 ससारम प्रायः दखा जाता है कि कुमार लोग बुद्धका बाल नहीं मानते ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अतिरिक्त  
 आश्वमेधी कहा गया है कि पाँच वर्षकी अवस्थातक बच्चका दुआर करे, दस वर्षकी अवस्था तक इराये-  
 चमकाये, किन्तु सोलह वर्षका हो जाअपर बटक साथ मित्रताका व्यवहार करना चाहिए । इसी कारण मैं  
 स्वार्थी बालक मेरी बात नहीं मानेंगे आप स्वयं जाकर उनसे प्रार्थना कीजिए । बह्माने कहा कि संप्राप्त-  
 बलित कोवके कारण आप तो यह हमसे सीधी बात भी नहीं करता । फिर विनादवश रामने बह्मसे कहा  
 कि आप बालमीकिके पास जाएँ । मैं आपको कोई युक्ति बगलयेँगे । रामके कथनानुसार बह्मा नल मारिकी  
 अपन साथ लेकर बालमीकिके पास गये । बालमीकिजी इस समय रामके साथ पृथक् विमानपर ही रहा करते  
 थे । इससे उनके पास पहुँचनेमें विशेष समय नहीं लगा । वही जाकर बह्माने बालमीकिको सब वृत्तांत कह सुनाया  
 ॥ १८-३३ ॥ रामका मनोगत अविश्राम जानकर बालमीकिने बह्माजीसे कहा कि अपनी स्त्रियोंको कृपाय ये लोग  
 जीवनदान पा सकते हैं । उसका उपाय यह है कि मन्त्र आदिका स्त्रियाँ सीताके पास जाकर अपने पतिजोंके  
 जीवनकी पीछ माँगे । यदि सीता प्रसन्न हो गयी तो कुल भी मान आयगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ बालमीकिके कथन-  
 अनुसार बल आदिने अपनी स्त्रियोंको लिवा लानेके लिए सैकड़ों दूत भेज मोर ये तुरन्त उनको लिये हुए जा  
 पहुँचे । इसके अनन्तर ये स्त्रियाँ विविध प्रकारके उपहार लेकर सीताके पास गयीं । वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियों-  
 ने देखा कि सीता अपनी स्त्रियोंमें धिरी हुई बैठी आपकी मे रहो है और बलेहुएँ उनकी सेवामें तत्पर हैं  
 ॥ ३६-३८ ॥ जब सीताने उन स्त्रियोंको देखा तो तत्प्रायः बगलमे कर ली और उठ बैठी । उस समय उन स्त्रियों  
 ने उनकी प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उन राजदनियाँकि सीमन्तरनकी प्रभासे सीताके पैर चित्रविचित्र

किमर्थमागता त्वं वा मेनटगमिनः पाम् । कथयन्त्यं वक्ष्यामिष्टः । नदीऽथ करोम्यहम् ॥४३॥  
 तदा साः कथयामासुः सर्वं वृत्तं परिस्तरम् । देहि ककुण्ठाशानि कुतं युद्धाभिवारय ॥४४॥  
 तथेति जानकी चोक्त्वा क्षान्त्वा राममनोगतम् । नारीहस्ताभ्यामधीयार्थेन निजैर्गवेष्यति ॥४५॥  
 आरुह्य द्विद्विकायां सा ताभिर्धुक्ता कुशं पथी । तदा तं मानवगामाय शोधं न्यज कुशाधुना ॥४६॥  
 निवर्त्तन्व रणदक्षं नृपुं वे वचनं जिहो । तथेति जानकीशक्त्यादिहम्याथ वृत्रमन्दा ॥४७॥  
 आवा तैर्धूमिर्धुक्तः सेनया संन्यस्रतः । पुष्पकं प्रययौ यौना नृपस्त्रीपरिदेहिता ॥४८॥  
 कुशाद्याम्बो कुमागश्च सभायां शयनं ययुः । ततो वान्माहिना मद्या नलायैः संहितमन्दा ॥४९॥  
 सनिर्जगः सभां गन्वा तस्यो श्रंगधरं व्रतः । कुशाग्रान्तेऽपि र्माय प्रणम्य तस्य सनिधौ ॥५०॥  
 तत्पुष्पेनलिगिताथ शोभिर्नारी गता अपि । तदा रामोऽनर्वादावयममन्त्राणि मदमि स्थितम् ॥५१॥  
 रणाभशनिता बालाः किमत्रं तव वाञ्छितम् । न मे गजये छत्रपतिर्द्वितीयोऽत्र मविष्यति ॥५२॥  
 करणीय नलायैः किं तद्वदस्व मविस्तरम् । तदाऽऽसनादुत्थितः सः शेषा राधाग्रतः स्थितः ॥५३॥  
 उवाच सधुरं वाक्यं मन्मथो गधुनन्दनम् । राम राम मदानादौ भूभारश्च त्वया हतः ॥५४॥  
 चिरकालं कुत राज्यं वैकुण्ठं पादयाधुना । कुरु मन्थे वचो मेऽथ तदस्व दाम्पिनापुरम् ॥५५॥  
 नलादिस्वस्वयोध्यायां कुशो राज्यं प्रशमयतु । तदा रामो विधिं प्राह समाप्तेन स रोचते ॥५६॥  
 वैकुण्ठं चो गविष्यामि गौमया बन्धुभिश्चुतः । दधनैर्बहस्यमणि प्रोक्तमायुर्गुणैश्च हि ॥५७॥  
 तन्मया र्वादसामर्थ्यान्कृतमयः वेषं मृषा । पञ्चदश महस्त्राणि समस्तवकारदशं तु ॥५८॥  
 त्वैकादशं मामाश्च गता मे दिवया अपि । शेषमायुःश्च किञ्चिन्मे तच्छू पूर्णं मविष्यति ॥५९॥

प्रकारके दीव रहे थे ॥ ४१ ॥ इसके बाद सत्तान उनकी भेंट पर कार को और उनकी हृष्यत लगाकर कहने लगे कि तुम लोग यहाँ किस कामसे बाग हो ? जयश इच्छा पकट कर। तुम या कुछ भी चाहोगा मैं उसका प्रबन्ध कर दूँगी । ४२-४३ ॥ अब उन रानिधान युद्धतन्त्रणा सब गुणात् क्षतान हुए कहा हे देवि ! आप आप मेरी बरतती हुई बहुत रक्तक लिए कुशको युद्ध कान्त राक शीत ॥ ४४ ॥ सत्तान मन ही मन रामकी इच्छा जान ली । उन्होंने सोचा-वे चाहते हैं कि मित्रों के हाथ नर आदिकों के बन्दान दिन । यह सोचकर उन्होंने उन रिशकोंसे कहा-अच्छी बात है । इसका अन्तर के पुनर्त पापकंपर लान दूँ और कुशक बात या पहली और कहा-कट दूँ । अब तुम अपने शोधको परदश कर दो ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तब बात मानकर सवामधूमिसे लौट बस । जानकीकी बात सुनकर कुश मुक्ताये और अपने बन्धु-बान्धवों तथा सेनाको साथ लेकर लौट रहे । सीता कुलक तथा उन रिश्याली अपने साथ लिये अपने पुष्पक विमानपर जा पहुँचें । यहाँ पहुँचनेपर कुश आदि बालक सभाम रामचन्द्रजीके पास बने गये । इनके अनन्तर ब्रह्माजी भी वात्सीकि तथा बल आदिक ५० सेकर सभाम रामचन्द्रजीके पास पहुँचे । कुल आदि बालक भगवान्को प्रणाम करते एक ओर बहे ॥ ५० ॥ ५१-५२ ॥ रामने उनकी अवत हृदयसे लवा लिवा और रिश्योंने उनकी आरती उतारी । कुछ देर बाद रामने ब्रह्माजीसे कहा कि आपके इच्छासुसार कुल आदि बालक ती सवामधूमिसे लौट आये । अब अपनी क्या इच्छा है । इससे मेरे राज्यमें कोई दुमगा छत्रपति राजा नहीं रहेगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अब आप यह भी बतला देंगिए कि मल आदिको क्या करना चाहिए । रामने यह बात सुनते ही ब्रह्माजी उठकर रामके आगे जा बैठे और कहने लगे-हे राम ! हे महाबाहो ! आपने पृथ्वीका भाग छतार लिया । बहुत दिनोंतक पृथ्वीपर राज्य था किश । अब चलकर वैकुण्ठधामकी रक्षा करिए और मेरी आज्ञा साथ करनेके लिए मल आदिको हस्तिनापुरी से बालिए । ५३-५४ ॥ कुल मानवके साथ जयोध्याका रत्न्य करे । तब रामने ब्रह्मासे कहा कि यहाँ बात मुझे भी ज्ञेय रही है ॥ ५५ ॥ कल है सीता तथा अपने बान्धवोंके साथ वैकुण्ठधामका चल दूँगा । इस युगमें बन्धुपका आयु दस हजार वर्ष निर्वाणित की गयी है । किन्तु है ब्रह्माजी । मैं अपनी सामर्थ्यसे उर नियमका व्यव करके आर्यह हजार आर्यह वर्ष और आर्यह

इदंवाचां घटिकायां सोऽहं वैकुण्ठमाश्रये । ततो विधिं कुशः प्राह नलाद्या यदि मां विधे ॥६०॥  
 दास्यति करभारं मे तर्हि विष्टु च प्र ते । मदाह्वां पालयन्वेते तव नाक्यात्सुरक्षिताः ॥६१॥  
 छत्रहीनाः सुरां त्वया वसन्तु हस्तिनापुरे । तद्वाक्यं स विधिं श्रुत्वा पुनः प्राह कुशः प्रति ॥६२॥  
 छत्रमाज्ञापयस्वैतांस्तवाज्ञावशावर्तिनः । दास्यति करभारं त्वां मम वाक्यं हि पालय ॥६३॥  
 तथेति स कुशः प्राह विधिं किञ्चिन्स्मृताननः । अथ ते शोभयंशस्था नृपाः सर्वे विधिं तदा ॥६४॥  
 प्रोचुर्वपं त्वया स्त्रीभिर्वास्यामो दिवमद्य वै अजमादोऽद्य नृपनिर्भवत्स्व गजाद्वये ॥६५॥

तथेति तान् विधिश्चोक्त्वा सभायां ममुपाविशत् ।

अथ मयाऽजमीढाय मातृणैरभिषिञ्च्य च । गजाद्वये तं राजानं चकार राघवाज्ञया ॥६६॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे  
 सोमसुर्ववंशजयो मंत्रीकरणे नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

### पञ्चमः सर्गः

( रामका मियों तथा राजाओंको बिदा करना )

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामं सुषेणश्च सुग्रीवश्च विभीषणः । वानराः प्रार्थयामासुर्वपं राम त्वया दिवम् ॥ १ ॥  
 यास्यामो नात्र जीवामस्त्वया राम विना भुवि । ददस्वाज्ञां त्वया गतुं तथाह राघवोऽपि सः ॥ २ ॥  
 विभीषण त्वया स्थेयं लंकायां मम वाक्यतः । प्रचरिष्यति यावन्मे रामनामावनीतले ॥ ३ ॥  
 त्वं गच्छाद्येव मे वाक्यान्मयेति स विभीषणः । नन्वा राम ययी लंकां राघवेणातिमानितः ॥ ४ ॥  
 ततः प्राह ब्राह्मवर्तं राघवः पुरतः स्थितम् । हे जाम्बवंस्त्वया स्थेयं पाददुभूम्पां कथा मम ॥ ५ ॥

महीने इस संसारमें रहा ॥ १७ ॥ १८ ॥ योडी-सी आदु जेय बचो यो, सा भी कल पूरी हो जायगी ॥ १६ ॥  
 ठीक बारह बड़ी बाद में वैकुण्ठधामक लिए चले दूंगा । तबनंतर कृष्णने ब्रह्माजीसे कहा कि यदि नल  
 आदि राजे मुझे करभार दें और भरे आजानुसार चलें तो मैं आपकी आज्ञासे इनको हर तरहसे सुरक्षित  
 रखूंगा । इनको छत्र धारण करनेका अधिकार नहीं रहेगा । अर्थात् छत्रविहीन होकर ये लोग आनन्दके साथ  
 रह सकेंगे । कुशकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा कि आप इन्हें छत्र धारण करनेका आज्ञा दे दीजिए । हाँ, ये  
 सदैव आपकी आज्ञाका पालन करते हुए करभार दते रहेंगे ॥ ६०-६४ ॥ मुगन ब्रह्माकी बात स्वीकार कर ली ।  
 इसके अनन्तर उन शोमवंशी राजाओंने ब्रह्मासे कहा कि हमलोग अपनी स्थितियों लिये हुए आपके साथ  
 स्वर्गको चले चलेंगे । अब इस हस्तिनापुरीका राजा यह अजमाद बनेगा ॥ ६५ ॥ ब्रह्माने भी उनकी बात  
 स्वीकार कर ली और सभासे बैठ गये । इसके बाद रामकी आज्ञासे ब्रह्माने ब्राह्मणों द्वारा अजमोदका राज्या-  
 भिषेक कराके हस्तिनापुरीका राजा बना दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे  
 वाल्मीकीये पंचमः रामतेजपाण्ड्यकृतज्यात्मना साधाष्टोकावहित पूर्णकाण्ड चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा-इसके बाद सुषेण, सुग्रीव, विभीषण तथा अन्यान्द वानरोंने भगवान्से प्रार्थना की-  
 हे राम ! हमलोग भी आपके साथ स्वर्गको चलेंगे । आपके बिना हमारा इस पृथ्वीपर जोवित रहना  
 कठिन है । कृपया हमें भी अपने साथ चलनेकी आज्ञा दीजिए । यह सुनकर रामने कहा-हे विभीषण ! तुम मेरे  
 कहनेसे तबतक लंकामें ही रहो, जबतक संसारमें मेरे नामका प्रचार होता रहे । तुम आज ही लंका चले  
 जाओ । विभीषणने भी भगवान्की बात मान ली और प्रणाम करके लङ्काको प्रस्थान कर दिया । चलते समय  
 भगवान्ने विभीषणका बहुत सम्मान किया ॥ १-४ ॥ इसके अनन्तर जाम्बवान्से बोले-हे जाम्बवान् ! जबतक  
 इस संसार मेरी कथा प्रचलित रहे, तब तक तुम इसी लोकमें रहो । आपरके अन्तमें फिर तुम हमारा दर्शन

प्रचरिष्यति नावञ्च द्वापरांते पुनर्मम । भरिष्यति दर्शने ते गच्छत्यैव सुखं वस ॥ ६ ॥  
 स्वया कर्तुं वन्माहाय्यं लकायां मे वनेऽपि च । वनमन्त्रं भृगुमे भूत्वा द्वापरे कथयिष्येऽपि ॥ ७ ॥  
 तथेति गमवचनाद्वामं सीतां प्रणम्य यः । जारामभिर्ययौ श्रींश्च गन्धर्वेणानिपूजितः ॥ ८ ॥  
 रामः प्राह हनुमन्त्रं श्रुत्वा निष्ठु यथाशुक्लम् । यदा मेनौ पणम्ये हि द्वापरांतेऽर्जुनेन वै ॥ ९ ॥  
 भरिष्यति शरीः सेतुं कर्तुं मे दर्शने तदा । न्व लभिष्यामि गच्छत्य सुखं वस भद्रम् माव ॥ १० ॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा नन्वा गमं च लक्ष्मणम् । सीतां प्रणम्य हनुमान् गमनायोपचक्रमे ॥ ११ ॥  
 ततो रामो निजान्कण्ठान्नवमन्त्रविभूषितम् । हार ददौ तथा सीता त ददौ बाहुभूषणे ॥ १२ ॥  
 ततो नन्वा रामचन्द्रं मार्त्तनेत्रः प । मारुतिः । शक्तिरूप ययौ वेगान्त्र्योपुत्रे तु हिमपर्वतम् ॥ १३ ॥  
 ततोऽद्भुत गमचन्द्रः पूज्य वस्त्रादिमण्डनैः । प्रणमामास किङ्किण्या भृंगवैरं तु गूढकम् ॥ १४ ॥  
 पातालं प्रेषयामास गणयो मकरध्वजम् । वस्त्रादिभिस्तोषयित्वा सुदृढः स्वगन्धलानि हि ॥ १५ ॥  
 ततो रामः समाहूय यूपकेतु महाबलाः । वस्त्रादिभिस्तोषयित्वा विदिशानगरं प्रति ॥ १६ ॥  
 प्रेषयामास सैन्येन सीतां नन्वा रघुनन्दनम् । जानकीं च ययौ वेगान्त्र्योपुत्रैः परिवारितः ॥ १७ ॥  
 एवं रामः सुब्रह्म तं मधुर्गं प्रेषयच्चदा । एव गमः पुष्करं च प्रेषयामास बालकम् ॥ १८ ॥  
 सैन्येन पुष्करावन्वां सशं लक्षशिलाह्वये । ततोऽद्भुत गजाश्वं च प्रेषयामास राक्षसः ॥ १९ ॥  
 धनरत्नं चित्रकेतुं स्त्रीपुत्रवल्गवादनैः । प्रेषयामास श्रीरामस्तोषितं वसनादिभिः । २० ॥  
 ततो लब्धं समाहूय सीतां रघुनन्दनः । वस्त्रालंकारयानार्घ्यस्तोष्य स्त्रीपुत्रसंयुतम् ॥ २१ ॥  
 उत्तरेषु कुरुष्वन् प्रेषयामास सैनयाः । कामधेनुं ददौ सीता लवाच प्रयते हृदा ॥ २२ ॥  
 ततः कुशं समाहूय रामः स्त्रीपुत्रसंयुतम् । प्रेषयामास साकेतं सैन्येन पार्थिवैर्मुक्तम् ॥ २३ ॥

करागो । तुम भा आज हो प्रस्थान कर दो और आनन्द के साथ किसी स्थान पर निवास करो ॥ ५ ॥ ६ ॥  
 तुमने लका और वनप्र भरा जो रहस्यता की है उसीके प्रभावसे द्वापरम तुम मेरे भृगुन्के रूपमे विख्यात होओगे । ७ ॥ रामकी वान स्वीकार करके जाम्बवान् सीताजी तथा रामको प्रणाम करके चल दिवै । चलते समय रामने उनका भी अच्छा तरह सम्मान किया । ८ ॥ तदनन्तर हनुमान्जीसे रामने कहा—हे बन्स ! तुम भी आनन्द के साथ इसी लोकमे निवास करो । द्वापर युगके अन्तमे जब तुम्हारी वरुणके छाप सेतुविषयक होइ होगी, उस समय तुम मेरा दर्शन करोगे । अब जाओ और मेरा भजन करते हुए आनन्द के साथ रहो । ९ ॥ १० ॥ रामकी यह बात सुनकर हनुमान्जीने राम-सदृश तथा सीताको प्रणाम किया और चलनेकी तैयारी कर ली । ११ ॥ चलते समय रामने अपने वस्त्रमे एक रत्नमाला उतारकर हनुमान्जीको दी और सीताने अपना बाहुभूषण उतारकर दे दिया । १२ ॥ इसके पश्चात् हनुमान्जीने आश्विं अश्व भरकर भगवान्को प्रणाम किया और पार्श्वमा करके तपस्या करनेके लिए हिमवान् पर्वतपर चले गये । १३ ॥ इसके बाद रामने अद्भुतके विविध प्रकारके वस्त्र आभूषण दिये और उन्हें किङ्किण्या भेंट दिया । निषादराजकी शृंगधरपुर भेज दिया । १४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मकरध्वजकी पातालपुरी भेजा । मकरध्वजकी चलते समय रामने विविध प्रकारकी घट दीं । इनके अतिरिक्त और-और मित्रोंकी भी आदर-सत्कार करके अपने-अपने स्थानको भज दिया । १५ ॥ पाताल के बाद रामने यूपकेतुकी मुलगा और विविध प्रकारके वस्त्र-भूषण देकर विदिशानगरीका भेंट दिया । यूपकेतुने भी राम तथा सीताको प्रणाम किया और अपनी सेना तथा परिवारकी साथ लेकर चल पड़े । १६ ॥ १७ ॥ इसी तरह रामने सुब्रह्मको मपुरा भेज दिया । पुष्करकी भी उनकी सेनाके साथ पुष्करावली तथा लक्षकी लक्षशिला भेंट दिया । फिर अद्भुतकी हस्तिनापुरी-के लिए और चित्रकेतुकी स्त्री-सेना तथा बाह्नोंके साथ उनकी राजधानीको भेज दिया । चलते समय विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणसे रामने इनका भी सत्कार किया । १८-२० ॥ तदनन्तर राम और सीताने सबकी बुलाकर कितने ही प्रकारके वस्त्र-भूषण प्रदान किये और उनको स्त्री तथा पुनके साथ उन्हें उत्तररूप देखने

दत्तवाच्योपनिषद्वाणि कौटिल्येन नन्देनैव लिखितम् । नानाधानानि वस्त्राणि रामश्चितामणि ददौ ॥२४॥  
 मर्त्यापुत्रं कुरुष्व तोष्य राक्षसो वाक्पयमत्रात् । वन्य गच्छ सुखं निष्ठु भूमिं धर्मेण पालय ॥२५॥  
 त्रयद्विपत्तयन्त्यर्थास्तथा । त्रिपत्तयार्थसत् । सप्तमन्तान्तालपम् । पुनर्वत्कश्यालक ॥२६॥  
 इत्युक्त्या तन्नुपान्यास्य वृषभामि कण्व, लका । मन्त्राग्ने मातृनापोऽयं रथशोयम्बर्हर्दिशम् ॥२७॥  
 तद्वापयचन शुभं नृपः । पयः शुभं नृपः । नात्र पूजिते वाक्यम्बर्होऽप्याक अताधिकः ॥२८॥  
 बभूवेव नात्र मदहः सन्त्य । इति मधुनम् । पयः श्वया प ले ॥ स्मो वर नद्वन्कशोऽप्ययम् ॥२९॥  
 रक्षिष्यति मदाऽस्मकं कृष्णश्चालनसकः । इत्युक्त्या रयं नन्वा मयं ने पारिगोचराः ॥३०॥  
 गमेण पूजिताः सप्तकं तस्मात्कालावर्तने । यदः कृतं पुष्कं य सप्तमन्त्रमन्त्रमन्त्रेशाः ॥३१॥  
 कृष्णोऽपि राक्षसं नवा मूर्तिर्नानाकाव्यापित । वसिष्ठेन मये विद्वन्ता पुर्णं गन्तुं प्रचक्रमे ॥३२॥  
 तदा रमन्त्यं त्रयं मयः । त्रयः पुरा । कुतः । मयः । यमेन । यद्दृशय नादम् ॥३३॥  
 पूर्वैश्चमनुस्मृत्यं । नात्र । नात्रमर्थमर्गः । कुतः । मयः । त्रयः । त्रयोऽभवत् ॥३४॥  
 मयः । पुनः । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । ॥३५॥  
 पश्चिन्त्यं मुनिं पुष्टं । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । ॥३६॥  
 मूर्तिनः सन्त्यर्गः । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । ॥३७॥  
 गन्ताः पुर्णं । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । त्रयोऽभवत् । ॥३८॥

तेऽपि नत्वा कुशं स्वं स्वस्थं तत्रमुत्प्रेमयाः । करभारं ददुस्वस्मै तदाज्ञावशवर्तिनः । ४२ ॥  
मन्थरमलकौ द्वौ नौ देवान्पूर्यां बहेरुतां प्राणतुर्जन्य साकेने वृत्तानां न पुनर्भवः ॥ ४३ ॥  
अथ रामोऽब्रवीन्मर्षान्वानगन् जाह्नवीतटे । मयि भूमिनाः मरं युष वानरमन्मयाः ॥ ४४ ॥

द्वापराग्रे पुनः सर्वे व्रजे गोषा भविष्यथ ।

पुष्पाभिः सहिता धीन्या कम्पिषाम्पञ्चनादिकम् ॥ ४५ ॥

सदाऽनवीत्य सौमित्रि रामः प्रीत्या पुरःस्थितम् महान् श्रमः कृतः पूर्वं सेवायां मम दण्डके ॥ ४६ ॥  
भव त्वं द्वापरे ज्येष्ठः शुभ्रर्षा तौ कर्मोपदम् । नग्नान्नागधवः प्राह आभान्पौरान्कषीनपि । ४७ ॥  
सचनित मया मार्गं प्रयतेति दधान्वितः ततो ददौ कल्युषणारिजातौ सुगन्धिपम् । ४८ ॥

ततस्तं पुष्पकं प्राह कुवेरं सह सादरम् ।

मन्त्रछाद्यैव तथेन्युकन्वा रामं नत्वा तु पुष्पकम् ॥ ४९ ॥

सीतां पृष्ट्वा ययौ शीघ्रं गधवेणानिमग्नितम् । ततः प्राह रघुश्रेष्ठश्रीमिलां मांहवीं तथा । ४९ ॥  
भूतकीर्तिं मनाह्वय चान्मर्षाकेश मुनेः पुरः पुष्पाभिर्भर्तृदेहेभ्य निजदेहादि वेगतः । ५० ॥  
शोऽहो दग्धवा स्वर्गलोकं गन्तव्य मम ये कुरुः । तथेति गधव प्रोचुस्तदा ताश्चोर्मिलादिकाः । ५१ ॥  
रामं नत्वा ययुः सर्वोः स्व म्य नद्वयमगृहम् । अथ रामोऽपि तां गन्धिं सीतया रुक्ममन्त्रके । ५२ ॥  
कपिभिः शिवदत्त आकृतकृत्यैश्च संगणः । सौमित्राद्याः परमोभिः शिशियरे परया मुदा । ५३ ॥

इति श्रीशङ्खकोटिरामचरितोत्तमं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे

सर्वेषां विसर्जनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

पूजन अन्तिम करके किया ॥ ३८ ॥ वे राम भी पुष्पाको प्रणाम करके अपने अपनी नगरीको चले गये और वहाँपर कशक अज्ञात रहते हुए पूर्ववत् करभार दत्त रह ॥ ३९ ॥ देववश वह रामनिन्दक घोवो तथा दासी मन्थरा ये दोनों व्याघ्रपाशोंमें न मरकर अब दण्डके बाहर मरे । इसी लिए उन्हें फिर मन्म लना पड़ा । वैसे ला लाय परामे जो लोग मरने है, उन्हें फिर माताय गर्भमें नहीं जाना पड़ता ॥ ४० ॥ कुवेर सब लोगोंको विदा करके रामने सब वानरोंमें कहा—ह वानरगण ! तुम सबने मेरे लिए बड़ा कष्ट उठाया और मरे साथ शरीर में न फिरते रह । आज चलकर द्वापरम् तुम सब गोय होओगे । उस समय मैं तुम्हारे साथ भाजन तथा विविध प्रकारका लालने करेगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इसमें बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि उस समय तुमने दण्डकवनमें मेरी सेवा करने समय बड़ा कष्ट उठाया था । अब द्वापर युगमें तुम मरे ज्येष्ठ आता चलराम होओगे और मैं स्वर्ग नुसरोगे सेवा करेगा । इसमें अमन्तर गतते उन भ.नु.श वानरों तथा पुरवासियोंसे कहा कि तुम लोग मेरे साथ चलो । तत्पश्चात् रामसे अण्वृक्ष और परिजात ये दोनों वृक्ष इन्द्रको दे दिये फिर पुष्पक विमानसे कहा कि तुम आज ही जाकर आदरगुरु कुशकी स्वारांका काम करो । यह सुनकर पुष्पक राम तथा सीताको प्रणाम करके चले पड़ा । चलते समय भावानने उसका भी अच्छा तरह आदर-सत्कार किया । बारम्बारिके समक्ष रामने माण्डव ( भरतपत्नी ), उमिला ( लक्ष्मणकी स्त्री ) तथा युतर्कति ( कान्वासकी पत्नी ) से कहा—तुम सब अपने अपने पति के शरीरों के साथ कल अपना शरीर चित्ताकी अग्निमें जलाकर रागलोक चला जाना । उमिला आदिने भगवान्के आज्ञा स्वीकार कर ली ॥ ४२-४९ ॥ वे रामको प्रणाम करके अपने-अपने सम्बुधोंमें चली गयीं । इसके अनन्तर राम उस रात्रिमें सीताके साथ एक सुवर्णमय मन्थरका गये । शिव-सहस्र आदि देवता भी ऋषियोंके साथ वहाँ ही ठहरे रहें और लक्ष्मण आदि ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इति श्रीशङ्खकोटिरामचरितोत्तमं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठः सर्गः

( रामका वैकुण्ठारोहण )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः मधुनाय प्रमत्ते सीतया सह । अजर्मादं समाहूय मञ्जुलं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥  
 अथाह मातया स्वीये एद मच्छामि बन्धुभिः । वानरैः सकलैः परैस्त्वया चेपं तु यज्जगत् ॥ २ ॥  
 वक्ष्येपूडादिकं सर्वं प्रेषणीयं कुशं प्रति । यन्वर कोटकानं तन्मया मास्यति वै दिवम् ॥ ३ ॥  
 अनस्त्वं तं कुशं गन्वा सर्वं वृत्तं निबंदय । करोत्तुल्यकार्याणि कुशोऽस्माकं मविस्तरम् ॥ ४ ॥  
 मा कोनु कुशोऽस्माकं स्वेदं तत्त्वं निवारय । इति गमवचः श्रत्वा साश्रुनेत्रस्तयेति मः ॥ ५ ॥  
 अजर्मादभ्यर्ता प्राह ननाम रघुनायकम् । अथ रामः कृतैः परैः स्नान्वा मार्गार्थीजले ॥ ६ ॥  
 कृन्वा निन्यविधिं पूजं हुन्वा वह्निं मविस्तरम् । ददौ दानान्यनेकानि गङ्गासंकृतमम्बतः ॥ ७ ॥  
 ततः प्रास्थानिकं कर्म चकार स यथाविधि । वह्निं विमर्जयामास वैकुण्ठं प्रति राघवः ॥ ८ ॥  
 तदा रामस्य पद्मा सा गता दक्षिणद्वस्ततः । धूर्तिरूपधरा वेदा वैकुण्ठपादपुष्पदा ॥ ९ ॥  
 त्रिपदा प्रपदेनैव भोगमास्याद्विनिर्यता । नन्वा रामं ययौ शान्तिः क्षमा मेधा धृतिर्दया ॥ १० ॥  
 तेजो बलं यशः शौर्यं पथी सर्वं तदा पुरः ततः पीता वानराश्च सर्वे मार्गार्थीजले ॥ ११ ॥  
 स्नान्वा निरुप्य वायुं च निजदेहानि तन्पनुः । अथ रामो मुदा गङ्गां स्पृष्ट्वा दर्भातनोपरि ॥ १२ ॥  
 दर्भपाणिः स्थितस्तृण्यीधुनराभिमुखः स्त्रिया शान्तसर्वे ददृशुस्ते देवा निष्णुं पुरःस्थितम् ॥ १३ ॥  
 चतुर्भुजं भोलकांति पीतकीशेयघाणिम् कोम्तुमाकिताहंशं श्रीवर्माकोपशोभितम् ॥ १४ ॥  
 सीता बभूव सा लक्ष्मीर्विष्णोर्वाभाक्रमस्थिता । शेपो बभूव सीमित्रिः कपाभिरनिभासुरः ॥ १५ ॥

श्रीरामदासने कहा — हमने रामचन्द्रजी सीताके साथ वानर उठे तो अजमे रका मञ्जुकर जीठी बातोंने समझाकर कहने लगे कि आज मैं सीता बन्धुओं समस्त वानरों और प्रजापतियोंके साथ अपने परमधामकी यात्रा करूंगा ॥ १ ॥ २ ॥ मेरे जितने भी मादू-कनान आदि बन्धुगृह हैं, उन्हें तुम्हें पास भेज देना । वही जीवसे लेकर कीट पक्ष्य सब प्राणी मेरे साथ वैकुण्ठ जायेंगे । मर चले जानवर तुम तुम्हें पास चले जाना और मेरा सब समाचार कह सुनाना और यह भी कह देना कि तुम हमारी ओधवदेहिके कियाअके सब अच्छा तरह सम्भाल करे । यदि मेरे परमधाम जानके कारण कुछ किमा प्रकारका भेद करने लगे तो तुम उसे अच्छी तरह समझा देना । रामकी बात सुनकर अजमोड़ने उगड़ामे आसू भरकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और भगवानकी इनाम किया । इसके अनन्तर रामने स्वक साथ गङ्गाजाम स्नान किया, निन्यकृत्य किये, हुवन किया और गङ्गातटपर स्थित बाहुओंको तरह-तुहक दान दिए । ३-७ ॥ इसके बाद राजासे सम्बन्ध रखनवाले जितने कर्म थे, वह सब किये । चलते समय हुवनकी अग्निको वैकुण्ठतक भेज दिया ॥ ८ ॥ उक्त समय रामस्वचारी विद्युत्की लक्ष्मी शान्तिकी सीता रामके दक्षिण भागने वैकुण्ठधामका चला गयी । उस समय सब वेद अपने मूर्तकयमे वैकुण्ठतक जा पहुँचे ॥ ९ ॥ रामके प्रणयाम करने ही शान्ति, क्षमा, धृति और दया आदि गुण चले गये ॥ १० ॥ उता तरह तेज, बल, यश और शौर्य आदि भी कूच कर गये । इसके अनन्तर सब पुरवासियों तथा वानराने भी गङ्गाजाम स्नान और प्राणायाम करके अपने शरीरका परिस्वय कर दिया । इसके बाद सीताके साथ रामने गङ्गाजम्बका स्पर्श किया और कुशासनपर बैठे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हाथमें कुशा लेकर वे उत्तरार्क और मुख करके बैठे । उसी समय राम देवताओंके समुत्पन्न विष्णुभगवान्के रूपमें परिणत हो गये ॥ १३ ॥ उन भगवान्के चार भुजायें थीं । नालकमलके समान श्याम शरीर था । वे अपने शरीरपर पीले वस्त्र धारण किये हुए थे । कोम्तुममणिते उनका हृदय सुशोभित हो रहा था और भीषण अक्षी जितार चला ही दिता रहा था ॥ १४ ॥ गङ्गाजीके तटपर रामके सामागमें बैठी हुई सीता लक्ष्मीके

स्रष्टो कथं भवतः श्रावित्वाः मन्त्रवत्करे शप्ते करे वभूशथ शत्रुघ्नश्च सुदर्शनम् ॥१६॥  
 देवेषु विविधः सर्वे वनाग्ने क्षयागताः चांडालाहमिकांटाणा अगोस्वापुस्त्राणिनः ॥१७॥  
 प्राप्नुस्ते दिव्यदेहानि विमाने मन्थिता बहूः । तदा निनर्वाद्यानि देवानां गगनागणे ॥१८॥  
 श्वर्तुर्देवपश्यन् पुष्पहृष्टिभिरादरात् नन्दतुर्न दम्पत्यो जगुर्गेभ्यस्त्रिषराः ॥१९॥  
 प्रणनाम तदा ताक्षर्यः श्रावित्वा गविशमुग्धम् । देहानि मृनुनुः सर्वे श्रीभिः सोमादिकाश्च वे ॥२०॥  
 पतिदेहानि चालिष्य तदा ना उविशदिका । ददान्त्रयी जहूः सर्वा रम्ये मार्गाग्यानरे ॥२१॥  
 अथ ता देवकन्यथ रत्नदर्पैः मास्यन्तः । विष्णुं नीगजवामासुर्लक्ष्मीयुक्तं महाभुजम् ॥२२॥  
 विष्णुस्ततोऽत्रवीहकयं रथम् मञ्जुल शनैः । प्रदोष्यावामिनः सर्वे निर्वह्युपाश्रयः सुभा ॥२३॥  
 एते समगताः त्रयश्रेयां स्थानं पद्मभुजा । तद्विष्णोर्यत्नं ध्यात्वा तदा प्रज्ञाऽभिदिशः ॥२४॥  
 यल्लोकादुपरिष्ठाच्च लोकभ्यां नानिकाञ्चुभान् । एते यांतु जनाः सर्वे श्वर्तुर्नमदोऽम्बलाः ॥२५॥

ततः प्राह पुनर्विष्णुरपोन्वाथां मृगाश्च वे ।

अथ नेऽपि मयायांतु लाशन्मन्त्रानिकाञ्चुभान् ॥२६॥

तथैविस गिधिः प्राह महाविष्णुं सुदर्शनः । नन्दने दिव्यदेहाश्च मर्केनपुत्राभिनः ॥२७॥  
 नानाविमानमन्धाश्च दिव्यवस्त्रविभूषिताः । दिव्यालंकारायुक्ता दम्पत्योभिरिन्धेपिताः ॥२८॥  
 नानागुणवगभाष्यदिव्यताभरतीजिताः । विरेनुमोदने चद्रवदना रश्मिमागुराः ॥२९॥  
 नतो मत्तादयो देवाः प्रभेमुर्विष्णुवादरात् । हृष्टुर्विविधैः स्तोत्रैर्देवैर्भुनाधराः ॥३०॥  
 तदा तुष्टाश्च श्रुत्वा विष्णुं त्रैलोक्यपलकम् । वनशालां दधानं न दिवाचन्दनचार्चनम् ॥३१॥

रूपमें और लक्षण फलोंसं सुशोभन रूप भगवान्‌को स्वरूपमें परिणत हुआ मये ॥ १५ ॥ भरतजी मलक रूपमें परिवर्तित होकर विष्णुभगवान्‌को दाहिने हाथमें आ विराजत । हाथमें विष्णुको सुदर्शनचक्र वनकर बाण गुणाव बहुत जमा लिया ॥ १६ ॥ यहाँपर जितने धातु रत्न वे सब सब भग्ये अपने अंशरूपसे दत्त ओक शरीरमें प्रविष्ट हो गये । बाणदात्र सब कुम्भकोट पर्यन्त सभी अयाध्यानिवासों अपने-अपने शरीरको छोड़कर दिव्य देह धारण करके दिशावापर गुणोन्मि होत लग । उस समय गगनागण्य दत्तनाओंके विविध प्रकारके आगे बज रहे थे ॥ १७ ॥ देवागनाद प्रेमपूर्वक नमस्कार कर रही थीं । अस्तरार्च नाच रही थीं और गन्धवगण तरङ्गनरङ्गक गायन वा रहे थे ॥ १८ ॥ उनी सबमें गुरुदेव आकर सुपसहस्र दत्तवमान भगवान्‌को दण्डवत् प्रणाम किया । ऊपर हाथ बाँधे राजाओने भी अपना मित्रकी समेत अपने-अपने शरीरको छान दिया ॥२०॥ इन सागर परम धाम चने जानक बाद उमिल्य, माण्डवी तथा धनुकाहित अपने-अपने पतिके शरीरका आलिंगन करके चिनम्ये जलकर तारेर छड़ दिया ॥ २१ ॥ ऊपर समस्त देवताओंकी स्त्रियोन हजारों रत्न-मय होकर अन्तकर कपडाके समन विष्णुभगवान्‌की आरती उताता ॥ २२ ॥ कुछ दूर बाई विष्णुभगवान्‌ने बहाम कहा कि मेरे साथ जो अधोभक्त सब गुरुवासी तथा शिष्यानि भक्तके प्राणी बहुत आये हैं, इनके लिए कोई स्थान बतलाइए । विष्णुभगवान्‌को बात सुनकर ब्रह्माजी बोले कि आपने दशान्से ये पवित्र प्राणी मेरे लोकसे यह ऊपर एक सात्त्वानिक लोक है-वही है आकर निवास करें ॥ २३-२४ ॥ इसने बाद विष्णु भगवान्‌ने फिर कहा कि इनके अतिरिक्त भा जे प्राणी अधोभक्त शरीर त्याग करे वे सब सात्त्वानिक लोक प्राप्त कर ॥२६॥ कह्याने भगवान्‌की यह बात भा श्रुति कर जो । इसके अनन्तर ने सब अधोभक्तावासी दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारके विमानोंपर जा बैठे । उस समय वे सोच अच्छे-अच्छे पहने-करके बहने थे और कितनी ही नुत्तरग आगरा । उनके शरीरमें सुगन्ध बल रहा थी । उनपर दिव्य कमर पट रहे थे । नृसिंहे सकात देवपद्मन तथा अम्बुजा मार्गवा सब प्रकारकी देवाये कर रही थीं ॥ २७-२८ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा भारि देवताओंके विष्णुभगवान्‌को प्रणम किया और बड़े-बड़े कृषि वेदकी श्रुताओंसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ अब लोक बाद श्रीशरीरकी त्रैलोक्यभरतके विष्णुभगवान्‌की स्तुति करने लगे । उस



शंभुनाच

१५१ कुरुगन्धर्व भवनाशन दृगितापह माधव स्वर्गसन्नि तुरुहविण पद्मेधरम् ।  
 पालक जननामक मवहारकं त्रिपुरारकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३२॥  
 धूम्रव वनमालिनं धनरूपिण धारणीधरं श्रीहरिं त्रिगुणान्धक तुलसीधरं नन्दस्वरम् ।  
 १५२ शरभप्रदं मधुमरकं ब्रह्मपालकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३३॥  
 त्रिभुज मधुरस्मिन् रजकानकं गजमन्त्रकं मन्त्रुनं वक्रमरकं शृङ्गवानकं तुङ्गादेनम् ।  
 १५३ वन्द्य वन्दनजं बलिपङ्कजं सुपालकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३४॥  
 केवल कान्तधरं कविमरकं मृगसर्पदंतं सुंदरं द्विजपालकं शिनिजर्दनं दनुजादनम् ।  
 १५४ शालकं स्वर्भादनं क्षपिपतिनं मुनिचिन्तितं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३५॥  
 शरजं जलशायिनं कुशरालकं रथदाहनं मधुननं त्रिषण्डकं त्रिषधुसुरं लवशालकम् ।  
 १५५ श्रीधरं मधुसूदनं भवनाश्रितं गरुडध्वजं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३६॥  
 गन्धर्वं गुरुपुत्रदं चंदनं वरं कुरुगानिधिं मन्त्रपं जनलोपदं सूरपतिनं अतिभिः स्तुतम् ।  
 १५६ कन्द जनमुक्तिदं जनरजनं नृपनन्दनं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३७॥  
 विद्वानं विभज्जीवनं माणमालिनं वरदानमुद्य श्रीधरं शूलरथकं बलधरं गजदायकम् ।  
 १५७ शालिनीं जननारकं शरधारिणं गजगमिनं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३८॥  
 क्षीरक्षेत्रं कम्पाननं कपलादृशं पदपङ्कजं कपामलं रत्नभाणं अग्निमोक्षदं करुणार्णवम् ।

समय भगवान् वनमाला धारण किए थे और उनके हाथों में दिव्य चन्दनका लपटियां हुआ था ॥ ३१ ॥  
 श्रीशुवर्जन कदा रघुनन्दन तुलसी, शरभ, शर, मधुमर, ब्राह्मणनम, मुक्त करनवान, पावनशालकार, लक्ष्मीके  
 पति, जलमाला परमधर, सखर पालक, भक्तोंका नरनवाने, धरदाशर नालक, पाणमहारकारी नररूप  
 धारी है जगदीश्वर रघुनन्दन । मैं आपका प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ त्रिभुज वनमालाधारी, मधुनामक  
 रात्रमका मन्देवान, रजक पालक मन्त्रम मोरदक ममान शालकार, तुलसीका रक्षा करनवाने, सत्त्व, रज  
 और तम इन तीनों गुणोंमें मुक्त नृपमका पति, मन्दस्वरनन गणवाका विस्तार करनवाने, नररूपधारी  
 जगदीश्वर है रघुनन्दन । मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३३ ॥ द्विभुजवर्ग माणम निवास करनेवाले,  
 रजनभारी गजास्तकारी, सज्जनोष मन्त्रुत, क्षमाकर, नृपाल और कणाकी मारनेवाले, वन्दसुवन वसुदेवके  
 पुत्र कान्तधरमें बलिक पङ्कज जानेवाले देवताओंके पावन, नररूपधारी है जगदीश्वर रघुनन्दन । मैं आपका  
 भजना करता हूँ ॥ ३४ ॥ केवल, कान्तधरमें घिरे हुए, क्षपि पावनका मारनवाने, मृगधरधारी मारीषको  
 मारनेवाले, सुन्दर, बाह्यणीक रक्षक राक्षसोंका महार मन्त्रुद, लवदा बालमयधर, लवका मारनेवाले,  
 क्षपिधरमें दूजन, मुनिधर द्वारा चिन्तित और नररूपधारी है जगदीश्वर रघुनन्दन । मैं आपका भजन  
 करता हूँ ॥ ३५ ॥ संसारका नाश करनेवाले, जिनका कुरु जैसे परमेश्वरी बालक है, रथजिदकी सवारा  
 है, मधुस्वर्ज जिनको नमस्कार करती है, जिनकी शरक विमान विषय प्रिय है, जो ब्रह्माणम अतिप्रिय मम  
 रहन है लव नामका जिनका बालक है जो लक्ष्मीका रक्षण करन है, जिन्होंने मधुनामक ईश्वर संहार  
 किया था जो भरतके बड़े भ्राता है और जिनका परजाम वन्दनका चिह्न वग हुआ है, ऐसे नररूपधारी है  
 जगदीश्वर रघुनन्दन । हम आपका भजन करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनकी लो विषय प्रिय है, जो यमलोकमें गुरुपुत्रकी  
 लोटा लाये थे, जो वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, जो नररूपक समृद्ध हैं जो सब तरहसे अपने धर्मोंका रक्षा करते हैं,  
 जो अपने धर्मोंको प्रसन्न रखते हैं, रत्नधारण जिनकी पूजा करने हैं पालने केर जिनकी स्तुति करने हैं, जो  
 शेष प्रसारक भोग प्रदान करते हैं और जो अपने भक्तोंको मृत्ति प्रदान करते हैं, महाराज दशरथके पुत्र है  
 जगदीश्वर रघुनन्दन । मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३७ ॥ विद्वानस्वर, विरञ्जकी मणियोंकी मन्त्र धारण  
 करनेवाले, मन्त्र-पुत्र, श्रीधर, धर्म प्रदान करनेवाले, गजदायक, नरधरनकारी, शालिनी जननारक, शर  
 धारी, गजगमि, नररूप धारण करनेवाले है जगदीश्वर रघुनन्दन । मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३८ ॥ मधु

सत्पतिं नृपबालकं नृपवदितं नृपनिप्रियं श्रीं भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३९॥  
 निर्गुणं मधुगान्धर्वं नृपमण्डनं वनिवर्द्धनचन्द्रं पुरुषोत्तमं परमेश्वरं शिवरामादिपम् ।  
 ईश्वरं हनुमन्नुतं कमलाधिपं जनगर्भाक्षिणं श्रीं भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥४०॥  
 ईश्वरोक्तमेतदुत्तमादाश्चतुर्नामकं यः पठेत्प्रति मानस्यथ मक्तिर्मांस्तवनोदये ।  
 स्वल्पदं निजयन्मुद्रामुत्तमैर्धिरमेव नो मोऽस्तु ते पदसेवने बहुवन्द्यो मय वाक्यतः ॥४१॥  
 इति स्तुत्वा महाविष्णुं श्रीरात्रिं मित्रिवापदिः । आरुह्य गन्धर्वं सहस्रोपरि वेगजः ॥४२॥  
 वैकुण्ठरोहणस्याय कान्तो वान्मोहिना कृतः एकादश महाबाध यमास्त्रैकादशैव च ॥४३॥  
 तथैकादश बाधाश्च दिनान्येकादशैव च । तथैकादश नाडीश्च पलान्येकादशैव च ॥४४॥  
 भक्तानि वेऽत्र भूम्यां हि जन्मादभ्य राघव । चतुर्विधं तनोः स्त्री तिदिर्भवाग्निनाऽद्य हि ॥४५॥  
 पुण्येऽहि स्वपदं गन्तुं स्वर्गं कुरु मेश्वर । तदा विद्वन्मित्राविष्णुर्गन्तुर्मां किं मुनिपुङ्गवम् ॥४६॥  
 समालिख्य मुनीन्पृष्ट्वा तस्मै मम सहस्रोपरि । ध्यानम् देवगणेषु स्तुतम् नारादादिषु ॥४७॥  
 पुष्पर्वणेषु देवेषु प्रवर्तन्स्वप्नसु च । नानाविधानां तान्ध्रं मयैव परिचयितः ॥४८॥  
 ययौ विष्णुः स वैकुण्ठं लोकलघयन्धनैः शर्तुः । वैकुण्ठे स्ववदे शिवन्वा विममत्र शिवादिकान् ॥४९॥  
 तस्मै लक्ष्म्याऽऽनन्दमयः परिपूर्णमनोमयः । एतद्गुहाद्वयपदः शेषतन्वर्षाभिभूषणः ॥५०॥  
 अयोध्यावासिनः सर्व ययुः मातादनक पदम् । तस्मै मुनयः सर्वे ययुः सर्वं स्वं स्थलं प्रति ॥५१॥  
 रामवाक्यान्माऽजर्मादः सास्त्रयासास तं कुशम् । रामारोहणं दम्भारं कथयामास तं कुशम् ॥५२॥

धारण किये, कमलक समान मुखवान, कमलक भाति नयोराने, कमलक ही सगंध धरणकमलवाने, श्याम  
 वर्ण, मृदुके समान देहीप्रमान, चन्द्रमाकी मुख दनवान, कलसाक मण्ड एक बरु प्रभु राजाभाके रक्षा,  
 राजाभाके वरिष्ठ, राजाभाके प्रिय और नररूपधरा २ जगदाश्वर रघुनन्दन । ये भागवत भजन करता है  
 ॥ ३९ ॥ निर्गुण हुंते हुए भी सगुणस्वरारा, राजाभाके मूलभूषण बुद्धवद्वतका, परम पूजनीय, मृक-  
 राकर बालित्वान, जगत्क प्रभु, हुमानजम नररूप धनाक मेश, लक्ष्मण गति और नररूपधारा है  
 जगदाश्वर रघुनन्दन ये भागवत भजन करता है ॥ ४० ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए शिवजीने मन्त्रमें  
 कहा कि प्रातःकाल सुषोऽयक समय जो कोई प्रार्थना करे वह हुए इस मन्त्रामन्त्रावली पाठ करेगा, वह  
 मेरे आर्जोवर्षमें अपने बन्धुओं तथा स्वपुत्रादिकों साथ पढ़ी भाकर बहुत कालतक आपके चरणोंकी  
 सेवाका सुयोग पावेगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार स्तुति करने के पश्चात् निवृत्त हो कहा—हे रामानन्द आप जगद्ध  
 गुरुपर आरुह्य ही चरोंक वात्माकिवन आरक वृकुण्ठराहणाय यह समय अपने रामावधाने निर्वाचित  
 किया है । इस समय रागह हकार गवारह मय, गवारह महाता, गवारह दिन, गवारह नाड तथा गवारह पल  
 पूरे हो रहे हैं । आज यंत्र भूषणलकी पञ्चमा तिथि है ॥ ४२-४५ ॥ इस पवित्र दिवसका भव परमधाम  
 आनेक लिए प्रार्थना करिए । उस समय प्रभु नुक्ताय । उन्होंने मुनपुङ्गव वात्माकि कथिका हृदसे लगाया,  
 कर्णोसे माला माला और गुरुक उतर मकार हा गये, तब देवताओंके विविध प्रकारके वस्त्र बनाये,  
 नारद आदि महर्षिोंने स्तुति की, देवताओं भगवन्वर पुत्र बरसान कगे और अप्सराय जाकने लगीं  
 ॥ ४६-४८ ॥ इस तरह गुरुवर वंदन भगवान् राम सब लोकाक दखन देखते वैकुण्ठलकाको पसे गये । उस  
 वाममे पहुंचकर वे अपने मित्रावर वेड और भाव आदि देवताओंको बिदा कर दिया । वे आनन्दमय  
 महाप्रभु हर प्रकारसे परिपूर्ण मन्तरह हकर लक्ष्मण साथ आनन्दपुत्रक वडी गहन लगे । उस समय गुरु  
 भगवानक चरणोंकी सेवा करने थे और तत्पश्चात् भगवान् देवकी प्रसावर मान थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वे सब  
 अयोध्यावामा भगवान्के कथयानुसार सामान्य निकल निकल ज विरजे । इसके अनन्तर भगवान्का स्वर्ग-  
 रोहण दसमक लिए भावे हुए अथवा अथवा अपने आश्रमोंका चल गये ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रजीके कथनी-  
 नुसार हस्तिनापुरके राजा अजमल अयोध्यामे कुशक पास गये और भगवान्को परमधामयाग-सम्बन्धी

रुणेन मानितः सोऽपि ययौ स्वाय राजाह्वयश्च लब्ध्वा कुमुदनी तस्यां कुशः पुत्रान्म निर्मये ॥५३॥  
 एवं श्रीरघुनाथस्य स्वर्गारोहणकृतिकम् । ये सृण्वन्त नरा नकन्वा तेऽपि स्वर्गं प्रयाति हि ॥५४॥  
 वैकुण्ठारोहणाध्यायमिमं नित्यं पठन्तु यः । सोऽन्ते गच्छति वैकुण्ठं रामचन्द्रप्रसादात् ॥५५॥  
 इति श्रीशतबोर्गटरामधरितान्तर्गते श्रीरामचन्द्ररामादणेवत्स्यक य पूजकादे वैकुण्ठारोहणं नाम सप्तः सर्गः । ६ ॥

ससुमः सगः

( चरित्रचर्चा )

श्रीरामदास कुमाव

एवं त्वया यथा पृष्टं स्वर्गसिंहासनादम् । श्रीरामस्य मया चैतत्तथाग्रज्य निवेदितम् ॥ १ ॥  
किमन्यच्छ्रोतुमिच्छादन्ति ता त्वं वद वदाम्यहम् । एव सुगर्वकः श्रुत्वा विष्णुदामस्तमववीत् ॥ २ ॥  
विष्णुदास उवाच

कुशांतः सूर्यवंशोऽत्र गुणे पूर्वं त्वयेऽनतः । कृष्णाय श्रोतुमिच्छामि सूर्यवंशं सविस्तरम् ॥ ३ ॥  
श्रीरामदास उवाच

विष्णोरात्म्यं कथितं एकपादितमाः पुगः । एकपादित्वा घये तान्वादामि मन्त्रिस्तम् ॥ ४ ॥  
 श्रीरामस्य कुशः पुत्रोऽतिविः पुत्रः कुशस्य सः । निषधस्यातथेः पुत्रो निषधस्यात्मजो नभः ॥ ५ ॥  
 बभ्राजतो पुद्गरकः समधन्वा तु तत्सुतः । दधानीकस्तत्सुताऽभूद्धानीकसुतो महान् ॥ ६ ॥  
 अर्हानः मान्यत सद्भ्यः पायावस्तत्सुतः स्मृतः । पायावस्य बलः पुत्रः स्थलः पुत्रो बलस्य हि ॥ ७ ॥  
 स्थलस्य वज्रनाभस्तु खगणस्तस्य कान्त्यने । खगणाद्वधूतिजानो विघृतेस्तनयः शुभः ॥ ८ ॥  
 जाता हिण्यनामस्तु तस्य पुष्यः प्रकाश्यत । पुष्यास्त ध्रुवसंधिस्तु ध्रुवसंधः सुदहनः ॥ ९ ॥  
 सुदर्शनावाग्रवपस्तस्माच्छात्रः प्रकाश्यत । शिघ्राज्जाना मरुः पुत्रा मनोश्च प्रभुनः सुतः ॥ १० ॥  
 प्रभुनस्य च साधाई सधेः पुदस्तु मयणः । मयणस्य महस्वाध विश्वनाथस्तत्सुतः ॥ ११ ॥  
 सब गार्ह वलगायो और समसा दिवा कि आप विसा प्रकारका शक म कर ॥ १२ ॥ कुषाद भा अजमोदका  
 मन्पुर आदर-साकार किया । कंद दिवा अजाधाम रहकर वे हस्तिनापुर को चले गये । कुछ दिनों  
 बाद कुशको कुमुदती नामका एक दूसरा भावा प्राप्त हुई । उससे कुशक बहुतस पुत्र हुए ॥ १३ ॥ इस  
 प्रकार पागवाक स्वर्णराहुण-वर्तारो जा लाए प्राप्तिपूर्वक मुनते है, वे भा स्वर्णलाक प्राप्त करत है ॥ १४ ॥  
 आ प्राणी वैकुण्ठराहुणक इस सर्गका निधि पाठ करता है, वह रामचन्द्रजीको कुशसे अन्तम वैकुण्ठ  
 घामको प्राप्त करता है ॥ १५ ॥ इति श्रीजनकाश्रयामर्चितान्तगत श्रीमदानन्दरामायणे साहसोक्तये १०  
 रामउवाचोऽयम्कृतव्यात्मना भाषाशकासहितपूर्णकाण्ड एव समाप्तः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने जिस तरह हमसे भगवान्‌का स्वर्गलोहण वृत्तान्त पूछा, वह मैंने कह सुनाया । अब तुम क्या सुनना चाहते हो सा कहो । वह भी मैं बतलाऊँगा । इस तरह गुरुजी बाह्य सुनकर विष्णुदास कहने लगे—हूँ सुखर । आपने गुणवत् सूर्यवंशका वर्णन किया, तो मैंने सुना । अब यह जानना चाहता हूँ कि कुशके भागे कौन-कौन राज हुए । यह हूँ विस्तारपूर्वक बतलाएँ ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामदास बाले—हे शिष्य, विष्णुभगवान्‌से लेकर एकसठ राजाओंका परिचय मैंने पहले सुनाया है । उनके बाद ओ एकसठ राजे और हुए हैं, उन्हें मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीक पुत्र कुश, कुशके पुत्र अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके नभ, ॥ ५ ॥ नभके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानोष, देवानोषके अहीन, अहीनके पार्यात्र, पार्यात्रके वरु, वरुके पुत्र स्थल ॥ ६ ॥ ७ ॥ स्थलके वज्रनाभ, वज्रनाभके क्षमण, क्षमणके पुत्र विधूत, विधूतके हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभके पुण्य, पुण्यके ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिके सुदर्शन, ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुदर्शनके अग्निवर्ण, अग्निवर्णके पुत्र शीघ्र, शीघ्रके मरु, मरुके पुत्र अश्वत,

तस्मात्प्रसेनजि-प्रोक्तस्तस्माज्जातस्तु तक्षकः । बृहद्वल्लभक्षकाश्च तस्माज्जातो बृहद्रथः ॥१२॥  
 तस्मादुरुक्रियः प्रोक्तो वत्सवृद्धस्तु तन्मुतः शम्भुवृद्धस्य व्योमस्तु व्योमाद्वास्तुः प्रकीर्त्यते ॥१३॥  
 भानोः पुत्रो दिवाकस्तु सहदेवश्च तन्मुतः सहदेवाभ्यनो वीगे वीरस्य तनयः शुभः ॥१४॥  
 बृहदश्व इति ख्यातस्तस्य पुत्रस्तु भानुमान् । भानुमनः प्रतीकाशः सुप्रतीकश्च तन्मुतः ॥१५॥  
 सुप्रतीकस्य पुत्रोऽभून्मरुदेव इति स्मृतः मरुदेवाभ्यनक्षत्रः मुनक्षत्राच्च पुष्करः ॥१६॥  
 पुष्करस्यार्तिरश्वश्च सुतया अन्तरिक्षतः । सुतयाभ्यनयो मित्रो मित्रजितस्तुतः शुभः ॥१७॥  
 बृहद्राज इति ख्यातस्तस्य बर्हिः स्मृतो बृध्नः । बर्हः कृतजयः पञ्चमस्य पुत्रो रणजयः ॥१८॥  
 रणजयाभ्यजयस्तु संजयाच्छक्य ऊच्यते शक्यपुत्रस्तु शुद्धोदः शुद्धोदाल्लामलः स्मृतः ॥१९॥  
 प्रसेनजिह्वागलस्य तन्पुत्रः क्षुद्रकः स्मृतः क्षुद्रकाद्रणकः प्रोक्तो रणकाभ्युत्थः स्मृतः ॥२०॥  
 सुधातनयो जातस्तनयस्य सुतो महत् । नाम्ना मुमित्र कामा पूर्णं वंशजननः परम् ॥२१॥  
 पूर्वमुक्तो मरुरिति नाम्ना यो नृपनिर्मेया कलापश्रममाश्रित्य हिमार्द्रा वदिकाश्रमे ॥२२॥  
 स तपधिरकालं हि करोन्त्यत्र ममाधिमान् । कृते युगे इनः प्रते सूर्यवंशं कम्पिष्यति ॥२३॥  
 एव मया ममारुथानः सूर्यवंशा मनेश्वरम्, विष्णोश्चरभ्य कविना एकपष्टितमा मया ॥२४॥  
 एकपष्टिनृपाश्चाग्रे मध्ये रामो विगजते । त्रयोविंशोत्तमस्तत्र श्वः विष्णोर्मेयोदिताः ॥२५॥  
 एवं यथाऽवया पृष्ट शिष्य दशानुकीर्तिभु । तन्मया कथितं सर्वं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥२६॥

विष्णुश्च उवाच

गुरो मया श्रुतं कस्यचिन्मुनेर्मृतः पुनः । रामायणं सविस्तरं तच्चेदं नैव भासते ॥२७॥  
 तस्माद्वाक्तरं प्रोक्तं त्वया सर्वत्र मां गुरो । सदेहोऽनेन मे जातस्तं न्वं छेदुमिद्वार्हसि ॥२८॥

श्रीरामदास उवाच

पुनः पुनः कल्पभेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च । अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः कचिन्कचित् ॥२९॥

॥ १० ॥ प्रद्युतके संधि, संधिके पृथ मर्षण, मर्षणक महत्त्व न, महत्त्वानके विश्ववह ॥ ११ ॥ विश्ववाहके प्रसेनजित्, प्रसेनजित् वैतक्षक तक्षकके बृहद्रथ बृहद्रथक उरुक्रिय उरुक्रियक वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धके व्योम, व्योमके भानु ॥ १२ ॥ १३ ॥ भानुके पुत्र दिवाक, दिवाकके सहदेव, सहदेवके नोर, वीरके पुत्र बृहदश्व, बृहदश्वके भानुमान्, भानुमान्के प्रतीकाश, प्रतीकाशके पुत्र नृप्रर्णक ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुप्रतीकके मरुदेव, मरुदेवके मुनक्षत्र, मुनक्षत्रके पुष्कर, ॥ १ ॥ पुष्करक अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षके सुतया, सुतयाके पुत्र मित्र, मित्रके मित्रजित् ॥ १७ ॥ मित्रजित्के बृहद्राज, बृहद्राजक बर्हि, बर्हिके कृतजय कृतजयके पुत्र रणजय ॥ १८ ॥ रणजयके संजय, संजयके शक्य शक्यक शुद्धोद शुद्धोदके लाल्ल ॥ १९ ॥ लाल्लके पुत्र प्रसेनजित् प्रसेनजित्के क्षुद्रक क्षुद्रकके रणक, रणकके मुत्थ ॥ २० ॥ मुत्थके तनय वीर तनयके पुत्र मुमित्र हुए । वत्स, गह्वर् ही तक चलकर सूर्यवंश पूरा हो जाता है । २१ ॥ पूर्वमं हम मरु नामक राजाका नाम गिना आये हैं । वे हिमा-लयपर वदिकाआश्रममें तप कर रहे हैं । सम्ययुग आतपर वे फिर सूर्यवंशका विस्तार करेंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस तरह मैंने विष्णुभागवानस लेकर एकसठ राजाओं तक मूलवंशका वर्णन किया ॥ २४ ॥ एकसेठ राजाओंके मध्यमें भगवान् रामचन्द्रजी विशाजमान है और उनके आगंवाले एकसठको लेकर कुल एक सौ लेईस राजे हुए ॥ २५ ॥ इस तरह हे शिष्य ! मैंने सुन्दे सूर्यवंशका विवरण कह सुनाया । इसके सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥ विष्णुदासन् कहते-हैं नृप ! मैंने किसी मुनिसे सुनाया कि रामायण इससे भी विस्तृत है, किन्तु पूरी रामायण इस संसारमें विद्यमान नहीं है । फिर आपसे जो रामायण सुनायी है, वह जो सब रामायणोंसे भिन्न है, यह एक प्रकारका भन्देह मेरे हृदयमें उत्पन्न होना है । क्या करके आप इसका निवारण करिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीरामदासने कहा कि कल्पभेदसे रामके कितने ही अवतार हुए हैं और

कृतोऽस्मि राघवेणैव न सर्वे सदृशाः कृताः । रामायणान्यपि तथा पुरा वाल्मीकिनैव हि ॥३०॥  
 अनेकान्यत्रेणैव कीर्तितानि सविस्तरात् । शतकोटिसिता तेषां सर्वेषां गणना कृता ॥३१॥  
 तस्मान्नया न सदेहः कार्यः शिष्यात्र बुद्धिमन् । यन्मया कथितं ते हि तस्यैव विद्धि मान्यथा ॥३२॥  
 शाराङ्गरतखंडातर्गताद्रामायणान्धुस । नारदादिपुराणानि व्यासेनात्र कृतानि हि ॥३३॥  
 तेषु भक्तकथितं चेदं सम्यग्विस्मयितं द्विज । तत्र ज्ञातो यथा शिष्य सदेहोऽत्र कथांतगत् ॥३४॥  
 भविष्यति तथाऽन्येषामग्रे यदि कदा क्वचित् । नारदादिपुराणेषु दर्शनीयं हि तैर्जनैः ॥३५॥  
 एषा मदुक्तं सर्वेषु पुराणादिषु ण्डितं । न्यक्तव्याः स्वायम्भवेहाः सन्य ज्ञेयं मयैरितम् ॥३६॥

इति शतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दराभायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकाण्डे

सूर्यवंशवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

## अष्टमः सर्गः

( आनन्दराभायणकी सर्गानुक्रमणिका )

श्रीविष्णुदास उवाच

पुरोऽधुना वदस्व न्व यन्मया पृच्छयते तव । अनुक्रमणिकासमं तथा पाठादिभिः फलम् ॥ १ ॥  
 काँहसरख्यां सर्गसरख्यां इलोकसरख्यां सविस्तरम् । उद्यापनं ग्रन्थदानफलं वै शकुनेक्षणम् ॥ २ ॥  
 अनुष्ठानविधानं च श्रोतुं कालविनिर्णयम् । कांडानां च पृथक् संख्यां सर्वं त्व वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

अनुक्रमणिकासर्गः प्रोच्यतेऽयं मयाऽधुना । यस्याः संश्रवणान्मोक्तं सर्वप्रथमं शुभम् ॥ ४ ॥  
 सर्वोऽत्र प्रथमे प्रोक्तं कौमल्यायाः स्वयंवरम् । रामादीनां सुजन्मानि द्वितीये कीर्तितानि हि ॥ ५ ॥  
 सीताम्बयवरं प्रोक्तं तृतीये मिथिलापुरि । भृशशापादिकथनं चतुर्थे मृदुलेन हि ॥ ६ ॥

इन अवतारोंमें कुछ न कुछ भेद पड़ हो गया है । यद्यपि रामकी जीवन् प्रत्येक रामायणमें वर्णित हैं, किन्तु इन सबमें कुछ न कुछ भेद है । स्वयं वाल्मीकिजीने जो शतकोटि पद्यात्मक रामायण बनायी है, उसमें भी अन्तर विद्यमान हैं । इस कारण है शिर । तब किसी प्रचारकी सन्देह न करके मैंने जो कुछ कहा है, उसे सब मानो ॥ २१-३२ ॥ भरतचण्डके अन्तर्गत विद्यमान रामायणके भागके ही आधारपर व्यासजीने नारदादि विविध पुराणोंका रचना की है । उसी खण्डके सहारे मैं भी इस सर्गपर आनन्द-रामायणकी वर्णन किया है । जिस तरह आज तुम्हें भरा यह कथा सुनकर सन्देह उत्पन्न हुआ है, उसी तरह यदि आगे चलकर और किसी आता वक्ताको सन्देह हो तो उसे चाहिए कि उन नारद आदि पुराणोंको देखकर सन्देह निवृत्त कर लें ॥ ३३-३५ ॥ पण्डितोंको भी उचित है कि सब पुराणोंका खेन और उनमें भेदों को जाते देखकर अपना सन्देह मिटा लें और समझ लें कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वे बातें सच हैं या नहीं ॥ ३६ ॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दराभायणे वाल्मीकीये षष्ठे राश्लेजपाण्डववृत्त व्यासने भाषा-टीकासहिते पूर्णकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा-हे गुरु । अब आप हमें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका तथा इसकी पठका फलें बताइए ॥ १ ॥ साथ ही इसकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या और श्लोकसंख्या आदि भी विस्तरपूर्वक कहिए । इसका उद्यापन, ग्रन्थके दानका फल, शकुनेक्षणविधान, अनुष्ठानविधि, इसके श्रवणका समय और काण्डकी संख्या आदि भी कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा-अब मैं तुम्हें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका बताता हूँ । जिसके श्रवणमात्रसे समस्त रामायणके श्रवणका फल मिल जाता है ॥ ४ ॥ सारकाण्डके पहले सर्गमें कौमल्याका स्वयंवर, दूसरेमें राम आदिका जन्म, तीसरे सर्गमें जनकपुरमें सीताका स्वयंवर, चौथे

दशम्यूर्जजन्म कैकेयाश्चापि ॥ ७ ॥ वनप्रयाण रामस्य श्रेष्ठं पुत्रे मन्त्रितम् ॥ ७ ॥  
 विराघवगमानीचवधादिमममेऽकथि ॥ ८ ॥ विविधानि वार्तितानि रामस्य पुत्रे कृतम् ॥ ८ ॥  
 नवमे जानकीदुर्दिलंका दम्भात्तया दशमे येन सायकम् ॥ ९ ॥ श्रेष्ठयोगमः ॥ ९ ॥  
 एकादशे गणपतिवधाः प्रोक्ताश्च राघवान् ॥ सीतया कान्तं मन्त्रं दत्तं दशरथो विभुः ॥ १० ॥  
 त्रयोदशे राघवस्य विक्रमश्च हनुमन्तः समान् मरुतः हि ॥ ११ ॥ वनप्रयाणम् ॥ ११ ॥  
 अष्टमांके प्रथमे सर्गे श्रेष्ठोत्पत्तिः प्रकीर्तिता रामाणाम् ॥ १२ ॥ दशरथः पशुदहनः ॥ १२ ॥  
 तृतीये सीतया गमो यात्रार्थं प्राथितो मुदा ॥ चतुर्थे रामचन्द्रस्य प्रस्थानं च ह्यहं प्रावे ॥ १३ ॥  
 पञ्चमे मुनिराक्षसेन यात्री गतुं निनिश्चयः ॥ षष्ठे प्रोक्तं पृथग्देवोर्धगाया मविस्तरम् ॥ १४ ॥  
 प्रोक्ता दक्षिणार्धार्थानां यात्रा रामस्य सप्तमे ॥ तथैवैतं पश्चिमाश्रमस्य च ॥ १५ ॥  
 यात्रोत्तरप्रदेशस्य रामस्य नवमेऽहनि ॥ यात्राकाण्डसमाप्तं तु यागकाण्डमुदीर्यते ॥ १६ ॥  
 सप्तमे प्रथमे रात्रौ गतोपकरणं गुरुः ॥ द्वितीये रामचन्द्रस्य यात्रासंभोदयं वर्णितम् ॥ १७ ॥  
 तृतीये प्रदक्षिणा प्रोक्ता तृतीयेऽधस्त्यजिनः ॥ चतुर्थे दशरथ रामस्य यागस्य चतुर्थके ॥ १८ ॥  
 पञ्चमे गमनाम्ना र्वं हृष्टं लभ्यते शुभम् ॥ षष्ठेऽपि हि सर्गेण गतिमेव प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥  
 अजारीपरिधानं च सप्तमे समुदाहृतम् ॥ अष्टमेऽनमुद्वेगान् राघवस्यात्र वर्णितम् ॥ २० ॥  
 नवमे अविसेचस्य ममाग्निं कीर्तिताश्च मा ॥ रामचन्द्रं दशमं हि विलम्बकारमुदीर्यते ॥ २१ ॥  
 प्रथमे श्वरीस्य स्ववगडोऽत्र कीर्तितः ॥ द्वितीये निजालाया जानक्याश्चापि वणनम् ॥ २२ ॥  
 तृतीये राघवेणोक्तं देहगमायणी स्त्रियै ॥ दिनचर्याभूषणानि जानकराघ चतुर्थके ॥ २३ ॥  
 अन्त्यवचना कौंडा पञ्चमे श्रेष्ठमाह्वयम् ॥ द्विजस्य पञ्चमे प्राणादे पटुं शकारमण्डनम् ॥ २४ ॥  
 सर्गस्य मुद्रा कृषिका मिलिता तथा वृन्दापान आदि वर्णितम् ॥ २५ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥  
 पञ्चमे सर्गस्य रामस्य वनगमन और सातवम विराघ-जटायु-मारोच आदिका वध तथा आठवें सर्गमें किष्किन्ध्या पर्वतपर वाञ्छिवध दर्जित है ॥ ३ ॥ ४ ॥ नवें सर्गमें सीताकी खोज और लङ्कादहन, दसवें सर्गमें सेतुबन्धन तथा काजी किष्किन्ध्याके आगमनका वर्णन है ॥ ५ ॥ एकादश सर्गमें रामके द्वारा राघव आदिक वध तथा बारहवें सर्गमें सीताके साथ रामके अंगोष्ठ ॥ सोहन और राज्य अधिकका वर्णन है ॥ १० ॥ तस्य सर्गमें राम और हनुमान्जीके पराक्रमका वर्णन है ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥  
 यात्राकाण्ड कहते हैं। इसके पहले सर्गमें वाल्मीकि का दृष्ट ॥ वाल्मीकि उन्मत्त हमारे गमन रामाश्रमका विभाजन वर्णित है ॥ १२ ॥ तस्य सर्गमें सीता द्वारा यात्राका वर्णन और वनप्रयाण का वर्णन है ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥  
 पञ्चवें सर्गमें कुम्भादर मुनिका संवाद का वर्णन है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥  
 सातवें सर्गमें दक्षिण भारतके लोकोक्त यात्रा और यात्रा सर्गमें अगले प्रदक्षिणा वध सीताकी यात्राका वर्णन है ॥ २४ ॥ नवें सर्गमें उत्तर प्रदेशके लोकोक्त यात्राका वर्णन है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥  
 दशम सर्गमें रामचन्द्रकी द्वारा यागारम्भ, सोनरे सर्गमें यज्ञाय अश्वकी गृहीप्रदक्षिणा, गौध सर्गमें राम और कुम्भादर मुनिका संवाद है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥  
 पञ्चवें सर्गमें रामकी अष्टात्तराशनाम स्तुति है ॥ २८ ॥ सप्तम अश्वमेध यज्ञ का जानवाले रामकी दिनचर्याका वर्णन है ॥ २९ ॥ सातवें सर्गमें अजारीपरिधान आठवें अन्त्यवस्त्राव और नव सर्गमें अश्वमेध यज्ञकी समाप्ति वर्णित है ॥ ३० ॥  
 दस, यहाँ यागकाण्ड समाप्त हुआ जाता है। अब विष्णु काण्ड प्रारम्भ होता है ॥ २१ ॥ इसके प्रथम सर्गमें रामस्तवराज और दूसरे सर्गमें जानक्याकी रत्नित यात्रा वर्णन है ॥ २२ ॥ तीसरे सर्गमें सीताकी राघवने देहगमायण मुनायी है। चौथे सर्गमें सीताका विनय कि वर्णन है ॥ २३ ॥ पंचवें सर्गमें अन्त्यवस्त्र की शोभा और आन्तिक दृष्टका विवेचन है। छठे सर्गमें बाह्यांगपरम के लिए सीता द्वारा अलङ्कारदानका वर्णन है।

मूर्तीनां सममे दानं देवसीणा वगन्वथा । गुणवन्था पितृन्नाथा वन्दानमथाष्टमे ॥२५॥  
 कुरुक्षेत्रस्य पात्रापां नवमे जानकोजयः । विलासकाय समाम हि जन्मकांडमुदीर्यते ॥२६॥  
 आरामे दोहदक्रांडा सीतायाः प्रथमेऽकथि द्वितीये विविधाः क्रीडाः सर्मनोजयनोत्सवः । २७॥  
 रजकस्योदितं भुञ्जा सीतायासमृतीयके जन्मकर्म चतुर्थेऽथ कृष्णाय लवस्य च ॥२८॥  
 सर्गेऽत्र पञ्चमे प्रोक्ता रामरक्षा सुखावहा । पष्टे लवस्य कमलहरणे जय ईरितः ॥२९॥  
 युद्धादिकौतुक प्रोक्तं पुत्रयोः सप्तमे विभोः । सीतादिच्यं च तहामोऽष्टमे प्रोक्तोऽत्र मंडपे ॥३०॥  
 जन्मोपनयनादीनि बालानां नवमेऽकथि जन्मकाण्डं समाम हि विवाहाख्यमुदीर्यते ॥३१॥  
 स्वयंवराथे गमनं रामस्य प्रथमेऽकथि स्वयंदं चांपिकाया द्वितीये समुदाहृतम् ॥३२॥  
 स्वयवरं तुमस्याथ तृतीये पत्नीर्निर्गतम् । कुरुपाथ लवस्यापि विवाहौ द्वौ चतुर्थके ॥३३॥  
 गन्धर्वनाराकन्यानां मोचनं पञ्चमेऽकथि । षष्टे तार्यां विवाहानां निधयः समुदाहृतः ॥३४॥  
 विवाहा द्वादशे प्रोक्ताः सर्वाणां सप्तमेश्च हि । अष्टमे युषकेतोश्च तर्पणेश्च पराक्रमः ॥३५॥  
 प्रोक्तो भदनमुन्दर्या विवाहो नवमे महान् । पूर्णं विवाहकाण्डं च राज्यकाण्डमुदीर्यते ॥३६॥  
 रामनाममहम्बं च नवमे प्राथमिकेऽकथि । द्वितीयेऽत्र ममाजीनो रामेण गुरपादर्पो ॥३७॥  
 रामकृष्णोपासकयो सवादथ तृतीयके । शत्रुह्नाया च निद्रायां वरदान तथा पुनः ॥३८॥  
 रामविश्लेषपरिहः सीतायाः पञ्चमेऽकथि । मृगकामुरयावथ कण्ट राज्यानि चैष्टयम् ॥३९॥  
 जयो भगवन्कुंडस्य रामेण सप्तमे कृतः । जम्बूद्वीपत्रयः प्रोक्तोऽष्टमे रामस्य विस्तरान् ॥४०॥  
 पद्मीपानां जयः प्रोक्तो नवमे राघवस्य च । यनिशूद्रगृध्रशिक्षा रामेण दशमे कृता ॥४१॥  
 चतुःक्षीणां वरदान रामेर्णकादशे कृतम् । खोरोडशयहस्याणां द्वादशेऽथ वगर्पणम् ॥४२॥  
 अधन्धहमित्त हास्यमुक्तेराज्ञा त्रयोदशे । चतुर्थे बानर्वाकिना मजन्मवधर्मनिम् ॥४३॥

॥ २५ ॥ सप्तमं संगम मल्लिकार्जुन दान और देवप्रियशोक वन्दानका विधान है । अष्टम संगम गुणवन्ता और पितृन्नाथके वन्दानका वर्णन है । २५ । नवम संगम कुरुक्षेत्रकी पात्रापा जानकीवजयका वर्णन है । बस, यहाँ ही विलासकाण्ड समाप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ अब गतमें जन्मकाण्डका वर्णन करना है—सहस्र सर्गोंमें दोहदक्रांडा तथा दूसरे संगमें विविध प्रकारका क्रीडा प्रो और सीताका स्वयं सव्यारका विधान है ॥ २७ ॥ तृतीय संगमें सीतात्याग तथा चौथे सर्गमें कृष्णलवका जन्म-कर्म वर्णित है । पाँचव संगमें रामरक्षा रत्नोत्सवा विधान है । छठे संगमें लवका कमलहरण और उनका विजय वर्णित है । २८ ॥ २९ ॥ अष्टम संगमें युद्धादिक बौन्क-का विधान है और अष्टम संगमें सीताकी वधका वर्णन है ॥ ३० ॥ नवम संगम बालकाके अन्य और उपनयनका विधान है । बस, जन्मकाण्ड यहाँ हो समाप्त हो जाता है । अब महान विवाहकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ ३१ ॥ इसके प्रथम संगमें रामके गमनकी बातें हैं । दूसरे संगमें चांपिकाके विवाहका वर्णन है । तीसरे संगमें पुमदिके विवाहका वर्णन है । चोथे संगमें कुन और लवके विवाहकी बातें हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ पंचम संगमें गन्धर्वों तथा नगोंकी कन्याओंके लुप्तानका हाल है । षष्ठ संगमें इन लोगोंके विवाहकी बात एककी हो जाती है ॥ ३४ ॥ सप्तम संगमें शत्रु विवाहका वर्णन तथा अष्टम संगमें रूपकेतुके पराक्रमका वर्णन है ॥ ३५ ॥ नवम संगमें भदनमुन्दराके विवाहका वर्णन है । बस विवाहकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब राज्यकाण्ड चलता है ॥ ३६ ॥ राज्यकाण्डके प्रथमसंगमें राममहामनाम तथा दूसरे संगमें रामके द्वारा स्वर्णसे कलानक्ष और गरिजात नामक नृपोंके लज्जकी बातें हैं ॥ ३७ ॥ तीसरे संगमें रामकृष्णके उपासकोंका सम्वाद, चौथे संगमें निद्राके लिए वन्दान, पाँचवें संगमें सीतारामका विगोप और मृगकामुद-का वध, छठे संगमें गन्धर्वकार्यका वर्णन है ॥ ३८ ॥ ३९ । सातवें संगमें रामके द्वारा चतुस्रण्यकी विजय और अठार्व संगमें जम्बूद्वीपविजय, नवें संगमें रामके अन्य छ. द्वीपोंकी जीतनेका वर्णन है । दसवें संगमें सम्यासी, शूद्र तथा गृध्रकी शिक्षाका वर्णन है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ अग्राहव संगमें रामके

पंचदशे रामराज्यवर्णनं चिन्तरान्कनम् । वर्णिता गवर्नतिः आगवर्णेनात्र पौडशे ॥४४॥  
 सप्तदशेऽत्र कथितं कुश इत्याम्यवर्णम् । अष्टदशे गवतःपुत्र दत्त द्वित्रिंशताम् ॥४५॥  
 एकोनविंशे रामस्य दिनचर्येतिता शुभा । गवां विंशेऽवतारे तुल्येष्टे प्रोक्तस्तत्र महात् ॥४६॥  
 एकविंशे शपथेन हार्ये दत्तो रणे मुदा । नानया तुल्योऽत्र द्वात्रिंशे सञ्चितं शुभम् ॥४७॥  
 त्रयोविंशे स्मृताऽऽनन्दरामागणकधृतिः । यमजिज्ञा चतुर्विंशे यमजिज्ञा च भूतले ॥४८॥  
 राज्यकांडं समाप्तं हि मनोहरमुरीयते । सर्वेऽत्र प्रथमे प्रोक्तं ननुमापायणं शुभम् ॥४९॥  
 नागराणां च मानुषासुपदेशं द्वितीयके । रामपुत्रोपासनं हि त्रितीये ॥५०॥  
 रामनोपद्रविसंज्ञानुर्थे मयुदासिनः । रामस्निगतोपद्रवाणां महाः प्रोक्ताश्च पचमे ॥५१॥  
 नवमीश्वरविस्मयः षष्ठे दोनतः च सत्कथा । योगद्वयान्तां लक्ष्म्याशयनादिनि सप्तमे ॥५२॥  
 वेददीना हि सर्वेषामष्टमे कर्मभारिणम् । गार्हमासद्वारा पूजा कथिता नवमे विंशे ॥५३॥  
 दशमे चैत्रमासस्य महिमा मयुदासिनः । एकादशे मयुदासनागवर्षां निर्गतिता ॥५४॥  
 अर्द्धेनं दक्षिणं गता द्वात्रिंशे स्यादुदयः । यशुदस्य रामस्य कथने द्वे त्रयोदशे ॥५५॥  
 सीतायाः कथनं दीनं प्रोक्तान्तरं चतुदशे । पंचदशे कथयानं ननुन्यता स्मृतानि हि ॥५६॥  
 वनं हनुमनः प्रोक्तं पचाशत्य हि पौडशे । प्रोक्तं सप्तदशे यागगणपणमनुनयम् ॥५७॥  
 अष्टादशे शरमनोः मृडनं च हनुमता । त्रारं मनोहर काण्डं पूजकाण्डमष्टोदशे ॥५८॥  
 बाल्मीकिना मोक्षवर्तिनारः पचमेऽकथितः । रामचन्द्रस्य ज्ञानं द्वितीये इस्तिनापुरम् ॥५९॥  
 स्वर्णोमयं कृतयोर्पुत्रं प्रोक्तं तृतीयके । सोमशराशत्रुपार्थत्रिका च चतुर्थके ॥६०॥  
 कुशादीनां च यथेय पचमेऽत्र विगर्जनम् । वैकुण्ठाहणे षष्ठे गद्गारां शयनस्थ च ॥६१॥  
 सप्तमे स्वर्णशायनप्राणां वर्णनं कृतम् । अनुक्रमणिकागमं प्रोक्तं षष्ठमष्टमो महात् ॥६२॥  
 हाग वार विमोको ननुनयमिति, शरह्वे सप्तमे सोमशराशत्रुपार्थत्रिका वारन वारका वृत्तात्, शरह्वे सप्तमे योषलके  
 कृतको ईर्ष्या, चौरह्वे कावर्णानि सार जन्मका वृत्तान्त है ॥६३॥ ६४॥ पन्द्रहवें सर्गमें रामके राज्यका विस्तार  
 वर्णन और सोरहवें सर्गमें रामकी वही राज्यनीतिकी वर्णन है ॥६५॥ तत्रह्वे सर्गमें कुशको कथनका स्वयम्बर,  
 यदारह्वे सर्गमें ब्राह्मणोंके लिए रामकापुत्रके गणपका दान ॥६४॥ तत्रह्वे सर्गमें रामकी दितचर्या और दोषवर्ष  
 सर्गमें सब अणगणोंमें रामराज्यका प्रवेश कही गयी है ॥६६॥ तत्रह्वे सर्गमें दासीके लिये रामका वरदान,  
 काईसर्वे सर्गमें सीता द्वारा दूत तुल्योपायकी पुत्र जोरनका कथ है । नईसर्व सर्गमें अ ननुनयमणकी श्रवणफल,  
 चौकीसर्वे सर्गमें यमका शिवा एवं यमजिज्ञाका वर्णन है ॥६७॥ ६८॥ षष्ठ, ७ उरकाट यही ही समाप्त  
 हो जाता है । अब मनोहरकांड प्रारम्भ होता है । इसका पहल - नम ननुनयमाया, दूसरे सप्तम महरवर्तिनयो  
 तथा मानुषोंके लिए उपदेशान्त, तीसरे सर्गमें रामपुत्रा और यमसभाका विस्तार वर्णन है ॥६९॥  
 ॥७०॥ चौथे सर्गमें रामतोषणका विस्तार, पांचवें सर्गमें रामनिगठध्वका विस्तार, छठे सर्गमें नवमीश्वरका  
 विस्तार, सातवें सर्गमें राज रामगणपणका उद्घाटन है । ५१ ॥ ५२ ॥ आठवें सर्गमें वैन्दिक मुनिकों का और  
 नव सर्गमें दाई महीने तक रामके पुत्रका विधान है ॥५३॥ दसवें सर्गमें चैत्रमासमें पुत्रन करनेकी  
 महिमा, अत्रह्वे सर्गमें चैत्रमाससे सबको सद्गति देनेका उपाय और शरह्वे सर्गमें रामन बहुरमं शिवाकी  
 अर्द्धेन पदकी व न ननुनयम है । पन्द्रहवें सर्गमें राम द्वारा हनुमान्जीका कथन और चौदहवें सर्गमें मानुष  
 मारिका वर्णन है । पन्द्रहवें सर्गमें रामका बालाश्रम कथन आदिका वर्णन है ॥५४॥ ५५॥ सोरहवें सर्गमें  
 हनुमान्जीका पलाकारोपणव्रत है । सप्तदश सर्गमें माररामागण कही गया है । अठारहवें सर्गमें हनुमान्जीका द्वारा  
 कर्तुनक वनाके चारकेनका कथन वर्णन है । दत्त, मनाहरकाट यही ही समाप्त हो जाता है । अब पूजकांडके  
 विषय विनाते हैं ॥५७॥ ५८॥ पूजकांडके प्रथम सर्गमें मोक्षार्थी राजाओंकी शलाघना, दूसरे सर्गमें रामचन्द्रजी  
 की इस्तिनापुरके लिए यात्रा ॥५९॥ त्रारमें सर्गमें दूर और सामग्री राजाओंका गुड और चौथे सर्गमें राम-



ग्रंथश्रुतिकथादीनि नवमे कीर्तितानि हि । नवमं पूर्णकाण्डं सम्पूर्णं नवमं त्विदम् ॥६३॥  
 अनुक्रमणिका चेयं मया शिष्य प्रवर्णिता । ग्रन्थाः भवणमात्रेण रामायणश्रुतैः फलम् ॥६४॥  
 रामायणपुस्तकस्य नित्यं कार्यं प्रपूजनम् । विदेष्टुं पूजनमपि शृणु शिष्य वदामि ते । ॥६५॥  
 सारकाण्डं विभीः स्थाने लक्ष्मणाये द्वितीयकम् । नवाः सप्तगन्धेन्यं शेषाणि स्थापयेत् क्रमात् ॥६६॥  
 सप्त काण्डानि विधिवत्तेषां पूजनमाचरेत् । अथवा राज्यकाण्डस्य पूर्वार्धं रामस्तदस्थले ॥६७॥  
 राज्यकाण्डस्योत्तरार्धं सीतास्थाने निवेशयेत् । लक्ष्मणाये सारकाण्डं शेषाण्यग्रे क्रमण तु ॥६८॥  
 एवं संस्थाप्य काण्डानि तेषां पूजनमाचरेत् । नवायननपूजायाः फलमेतेन कीर्तितम् ॥६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितारण्ये श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये पूर्णकाण्डे

अनुक्रमणिकावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ८ ॥

## नवमः सर्गः

( ग्रन्थकी फलश्रुति )

आरामचन्द्र उवाच

सारं यात्रा च यागाख्य विलासाख्यं तु जन्मद्वयं । सहाख्यं हि राज्याख्यं श्रीमनोहरपूर्णकं । १ ।

काण्डान्यनुक्रमेण आनन्दरामायणे नव । पञ्चदश सारकाण्डं सप्त सारकाण्डेति ॥२॥

यात्राकाण्डे नव शेषा यागकाण्डेऽपि वै नव । नव सप्त सहा विलासाख्ये जन्मकाण्डेऽपि वै नव ॥३॥

नव शेषा विवाहाख्ये चतुर्विंशत्यं राज्याख्ये । मनोहराख्ये सातव्या सर्गा अष्टादशात्र वै ॥४॥

पूर्णकाण्डे नव शेषाः सर्गाः पापहरा नृणाम् । एवं नवोत्तरशतं १-९ सप्त शेषाः शुभावहा ॥५॥

वंशो और सूर्यवंशो राजाओंकी मित्रताका वर्णन है । ६० ॥ पाँचवें सर्गमें रामचन्द्रजीके द्वारा कुश आदिके विसर्जनकी कथा है । छठें सर्गमें राजाओं के तदपर रामकी परमदामयानका वर्णन है ॥ ६१ ॥ सातवें सर्गमें सूर्यवंशो राजाओंका वर्णन है और आठवें सर्गमें आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बतलायी गयी है ॥ ६२ ॥ नवें सर्गमें आनन्दरामायणके श्रवणका फल यदि वर्णित है । वस्तु, पूर्णकाण्ड यही समाप्त हो जाता है, हे शिष्य, इस प्रकार मैं तुमको समस्त आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बता दौं । इस अनुक्रमणिकामात्रके सुननेसे समस्त रामायण सुननेका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ भक्तोंको चाहिए कि निश्चय इस रामायणका पूजन करें । अब इतनी पूजाएँ जो विशेषताएँ हैं उन्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ ६५ ॥ सारकाण्डको भगवान् रामचन्द्रजी, दूसरे काण्डको लक्ष्मण तथा तीसरे काण्डको सीता समझकर स्थापित करें । इस तरह सात काण्डोंमें क्रमशः नवायननकी स्थापना करके पूजन करें अथवा राज्यकाण्डके पूर्वार्धभागको रामके स्थानमें तथा उत्तरार्धको सीताके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए और सारकाण्डको लक्ष्मणकी जगहपर स्थापित करके पूजन करें । इसी तरह शेष काण्डोंको क्रमशः भरत आदिके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए । इस तरह इस रामायणकी पूजा करनेसे रामनवायनन-पूजनका फल प्राप्त होता है ॥ ६६-६९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितारण्ये श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये पंच रामतेजपाब्देयकृत-अयोध्या-अष्टादशोकाख्ये पूर्णकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । सार, यात्रा, याग, विलास, जन्म, विवाह, राज्य, मनोहर तथा पूर्णकाण्ड ये हो इस रामायणके नौ काण्ड हैं । सारकाण्डग बाल्मीकिजीने तरह सर्ग, यात्राकाण्डमें नौ सर्ग, जन्मकाण्डमें नौ सर्ग, विवाहकाण्डमें नौ सर्ग, राज्यकाण्डमें चौदावें सर्ग, मनोहरकाण्डमें अठारह सर्ग और पूर्णकाण्डमें पाँचोंको हरण करनेवाले कुल नौ सर्ग हैं । इस तरह इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर एक ही नौ ( १+९ ) सर्ग हैं ॥ १-९ ॥

सारकाण्डे पंचविंशच्छतं श्लोकाः सविंशकाः । यात्राकाण्डे सप्तशतं धनत्रिंशच्चरं स्मृताः ॥ ६ ॥  
 यागकाण्डे षट्शतं च पञ्चविंशच्छतं शुभाः । विद्याकाण्डे षट्शतं च सप्तशतं सम्मृताः । ७ ॥  
 जन्मकाण्डे सप्तशतं सविंशच्छतं प्रकीर्तिताः । विद्याकाण्डे पञ्चशतं कानिनाः सप्तशतं च । ८ ॥  
 सप्तविंशतिं राज्यकाण्डे मुषड्विंशच्छतं स्मृताः । एकविंशच्छतं श्लोकाः प्रोक्ताः काण्डे मनोहरे । ९ ॥  
 पूर्णकाण्डे पञ्चशतं सप्तममणिमिथिनाः । आनन्दरामचरिते सप्तममणिमिथिनाः हि द्वादश ॥ १० ॥  
 द्वैशते च द्विपञ्चाशच्छ्लोका नृपा मनोपिभिः । एव शिष्यमया प्रोक्तं यथा पृष्टं त्वया पुरा ॥ ११ ॥  
 रामस्य तोषचरितं श्रवणारपानकापहम् । पूर्णकाण्डमिदं शेषं श्रवणानुपुण्यवर्धनम् ॥ १२ ॥  
 सारकाण्डाभवादेव समस्तानुबन्धने नरः । यात्राकाण्डेन यात्राणां लभ्यते मानयः फलम् ॥ १३ ॥  
 यागकाण्डेन पञ्चानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विद्याकाण्डाभवादिभिरपि विमोदने ॥ १४ ॥  
 जन्मकाण्डेन प्राप्नोति नरः पुत्रादिमन्तानि । विद्याकाण्डाभवादिभिरपि लभ्यते भुवि ॥ १५ ॥  
 राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानयैर्भुवि लभ्यते । काण्डे मनोहरं धनं लभ्यते मानसस्मितम् ॥ १६ ॥  
 पूर्णकाण्डाभवादेव विष्णोः पूणपदं लभेत् । सर्वं विष्णुः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं त्विदम् ॥ १७ ॥  
 सविषदानन्दस्वरूपं न कोनो भवति मारुतः । गगापतं नरः श्रुत्वा कायमुद्यमनं नरो ॥ १८ ॥  
 रामायणे भूते दद्यात्तु देवमयं सुधीः । चतुर्धा हि विभक्तं तदा श्रीमन्नकायम् ॥ १९ ॥  
 यत्रैश्वर्यं समगच्छति किञ्चित्कालादनन्तरम् । यदा तत्स्वयं मम्यते धेनुं दद्यात्तदाऽनन्तरम् ॥ २० ॥  
 ब्राह्मणान्भोजयेत्तदाऽपि तदाऽपि नृपः । तदा तदाऽपि नृपः तदा तदाऽपि नृपः फलपदम् ॥ २१ ॥  
 रामायणं भवन्तं नान्यं कदा विचारया । यद्विष्णुमयं सत्त्वं तदा तदाऽपि नृपः ॥ २२ ॥  
 नरः प्रातः सप्तम्याऽनन्दरामायणं पठेत् । यः सत्त्वं तदा तदाऽपि नृपः तदा तदाऽपि नृपः ॥ २३ ॥

सारकाण्डे २५३० श्लोक, यात्राकाण्डे ७२५ श्लोक, यागकाण्डे ६२५ श्लोक, विद्याकाण्डे ६७८ श्लोक,  
 जन्मकाण्डे ८०२ श्लोक, विद्याकाण्डे ५५३ श्लोक । १-८ ॥ राज्यकाण्डे २६०२ श्लोक, मनोहरकाण्डे  
 ११०० श्लोक और पूर्णकाण्डे ५७७ श्लोक । इस आनन्दरामायण में कुल मिलाकर १२३५२ श्लोक हैं  
 ॥ ९ ॥ हे गिष्पद ' तुमने हमसे देव पूछा, मैं रामचन्द्रजीका प्रसन्न करने और पापीका नष्ट करनेवाले  
 रामचरितका कह चुनाया । यह पूर्णकाण्ड पुष्पको बड़ा गद्गद ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ सारकाण्डके सुननेसे प्राणी  
 इस संसारसे मुक्त हो जाता है । यात्राकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी सब साधकों यात्राका पुण्य प्राप्त करता  
 है ॥ १३ ॥ यागकाण्डके सुननेसे प्राणी यज्ञोक्त करणका फल पाता है और विद्याकाण्डके सुननेसे स्वर्गको  
 अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ १४ ॥ जन्मकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी सत्पत्त पाता है और विद्या-  
 काण्ड सुननेसे मुन्दर स्त्री मिलता है ॥ १५ ॥ राज्यकाण्डके सुननेसे संसारका राजा प्राप्त होता है, मनोहरकाण्डको  
 सुननेसे अपनी इच्छित कामना पूर्ण होता है और पूणकाण्डका सुननेसे प्राणी साक्षात् विष्णुपञ्चाननाका  
 पूणपद पाता है । जो प्राणी समस्त आनन्दरामायण सुन लेता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ वह सविषदानन्दस्वरूप  
 भगवान्में स्थित हो जाता है । जो लोग यह रामायण सुनें, उन्हें इसका उद्यमन भी करना चाहिए ॥ १८ ॥  
 रामायण सुन लेनेके बाद श्रोता मुक्तानन्दके एक ऐसा स्वरूप है, जिसमें चार चरनें जुन हो और ऊपर  
 रेशमी वस्त्रका पहारा रही हो ॥ १९ ॥ उसमें विविध प्रकारके वस्त्र लगे हों और किञ्चित्कालके पीछे वह  
 निकल रही हो । इसके बाद एक दुबारा गौ दे ॥ २० ॥ इसके पश्चात् १०८ ब्राह्मणोंका भोजन कराये ऐसा  
 करनेपर वह महाकाम्य पूर्ण फलशायी होता है । इसमें किता प्रकारका सङ्कल्प करना चाहिए । जिसमें भगवान्-  
 का निवास हो, उसे 'रामायण' कहते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ जो प्राणी सच उद्यमन इस आनन्दरामायणका पठ  
 करता है तो देवताओंको भी दुर्लभ उसका कामना पूर्ण होता है ॥ २३ ॥ चैव श्रुत्वा नवमका रामचन्द्रके अवसर

चैत्रमासे विने यः कृष्णं रामजन्मनि । शतमापसुवर्णेन चतुष्टयं विधाय च ॥२४॥  
 एकविंशति मर्षैः यः श्रवणं उवाच नरः । नष्टपुत्र सचिव आनन्दरामायणं निबद्ध ॥२५॥  
 मौल्यद्वारा निमित्तं राज्ञोर्जायमाना भवद्वस्तु ॥ तं दत्तं श्रवणं दध्मेपिन सुविशोभितम् ॥२६॥  
 वेष्टितं पद्मनूलाग्रैः नमो भुजैर्न शुभम् । कुरुष्व कामाक्षिने रूपं पूजार्थं दक्षणाभ्यस्तम् ॥२७॥  
 मन्त्राह्वे वाक्पथे वृद्धं न न ददाति सरदम् । तस्मै देयं पुस्तकं तन्नायुष्यसमन्वितम् ॥२८॥  
 एवं यः कुरुते दानं तस्य पुण्यं वदाम्यहम् । कर्त्तिभारगुणैश्च कुरुक्षेत्रे रघुपदे ॥२९॥  
 दानेन पुण्यं यन्नाक्तं तस्माद् च्यवति हि न । अक्षय्यं यः पावति सति आनन्दमहत्के ॥३०॥  
 तावद्युगलहन्त्राणे वैकुण्ठे संदत्तं नरः । भजन्म सः कुरुष्व भोऽयं वेदपात्रकः ॥३१॥  
 रम्यं पावत्रमनन्ददायकं च मते ह्यहम् । जनैर्दम्यतः रामचारितं पुण्यवद्भनम् ॥३२॥  
 रामायणमिदं वेदं भक्त्या भुज्यान् मनसा । पुनः पार्थः सहस्रद्विधं न विचार्य लभान्त ते ॥३३॥  
 रामायणमिदं वेदं न कः भुज्यान् मानसा । तत्र भ्रातृवराणाञ्च न कस्यिदि ज्ञायते ॥३४॥  
 आनन्दमहत्कं पुण्यं यः भुज्येत स वै । स्वर्गं नन्दयामां ता न गच्छन्ति यथा समा ॥३५॥  
 श्राव्यं देशान्तरं तत्रैव नराधिर नराः । तन्मागन्नाथ हि पठनायमिदं सदा ॥३६॥  
 येषां श्रवणं न कः शक्नोति कुरुते मनः । आनन्दमहत्कं तस्य पठनाय प्रयत्नतः ॥३७॥  
 भवमेव ददसे काण्डेन हि न । पठेत् पुनर्न यः पठेत् स वै ॥३८॥  
 एवं कुरुते काण्डेनैव हि न । न न दत्तं न न दत्तं न न दत्तं न न दत्तं ॥३९॥  
 अष्ट काण्डानि ददसे क्षयस्त्वर्कने च भवति । न तदस्ति हि न न न न न न न न न न ॥४०॥  
 अथवा कथं काण्डानि ददसे प्रथमं प्रथमं पठेत् । तत्राव न हि न न न न न न न न न न ॥४१॥  
 दशमं दशमं मोक्ष क्षयः कायः कथं हि । स न दत्तं न न न न न न न न न न ॥४२॥

पर सो मास हनुमान् की भूति बनारस । उसका अभयम इवकास मास अथवा जेसा जाना मासि हा, उसके अनुसार म. स. त. व. भूत बनवाया जात है । इसका जनन १ । ख. २ दकर या बचन हत्यसे यह ग्रन्थ लिखकर इसमें विविध प्रकारक चित्र बनये और अच्छे तरह सजाया कर । फिर राजशाह, साय इस रामाणकी रमशां कवच दृष्टि कर बांधकर हनुमान् की अपर पत्र ॥२६-२७॥ फिर राघव के समय इसका कथा कहने-वाल विविध शस्त्राक न. ३ अथवा पूजा कर । उस अच्छे-अच्छ कवच पहनये और वह हनुमान् की प्रतिमा तथा पुस्तक उस ब्राह्मणका दान दे दे । २८ ॥ इस ता-ह दान करनेका जो फल होता है, वह मे तुमका मतलाता है । मूरखदृष्ट लगनेपर कुछक्षण एक कथ डभार सुख देने करत जा फल प्राप्त होता है उससे सनडा-गुना अधिक फल इस प्रकार आनन्दरामायणका दान करनेवाला होता है । एत. करणपर इस आनन्दरामायणमे जितन अक्षर है उतन हजार गुण तक प्राण वैकुण्ठ तकमे आनन्द करना है । इसका बाद सात जन्म तक विप्रक घरमे इसका भोग होना है और इसके बाद एक कथा रामा ब्राह्मण होना है ॥ २६, ३१ ॥ यत् आनन्दरामायण पावये स्व. सन्तोष एव पुण्य अर्जत । ग. ३३ । इसका श्रवण करत है वे अपने पुत्र पीत तथा मिश्रस कथा भा विबुक्त नही होत । ३२ । ३३ । जो ३० रामायणकी भक्तिपूजक सुनते हैं वे अपनी स्त्रियोंस कथा भा विबुक्त नही होत । जो स्वामी ३० रामायणका भोग करत, वे, वे लक्ष्मीका तरह सुखी रहता हुई कथा भा अपने अपने रातस विबुक्त नही होत । ३४, ३५ । इदं विगतं परवाले कियो गवि, दशा-स्तर अथवा ताथेवाशका मय हो तो उन्हे पुण्यव. ३६ । ३७ । इस आनन्दरामायणका पाठ करना चाहिए ॥ ३६ ॥ जिनका अपने किसी भाव का दशा वि. ग. भक्त हो और उसे भ. पू. पूर्ण करना चाहत हो तो वे प्रथमपूजक इस आनन्दरामायणका दान ३७ । ३८ । राजा बचन एक कांड, दूसरे राज बहुत और दूसरा इन दो कांडका पाठ कर । न पर इन पहल, दूसरा और तीसरा इन तीनों काण्डोंको, इस क्रम-से बड़ाता हुआ नवे रोज तब काण्डका पाठ कर । ३९ । ४० ॥ फिर भाव्य राजे कांड कांड, सातवें दिव

अथवा पृथक् काण्डेषु सर्गशुद्धिभ्यः क्रमात् । एवमेकदिनानुष्ठानसमाप्तेश्वरेद्वयम् ॥४३॥  
 अथवा प्रथमे सर्वस्वेऽह एव पठेत् । द्वौ सर्गौ च द्वितीयेऽह्नि शुद्धिस्त्वेव क्रमेण हि ॥४४॥  
 नवोत्तरशते प्राप्ते दिने इत्यन्तं निवृत्तं पठेत् । पुनः अष्टोत्तरशतमप्येव सप्तदिनोत्तरैः ॥४५॥  
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं कार्यैकमाधत्तम् । अथवा प्रथमे चाहि सर्गं प्राथमिकं पठेत् ॥४६॥  
 द्वितीयेऽह्नि द्वितीयश्च तृतीयेऽह्नि तृतीयकम् । नवोत्तरशते प्राप्ते दिने च चर्म पठेत् ॥४७॥  
 दशोत्तरशते प्राप्ते द्वाष्टोत्तरशतमिधत् । पठेन्नर्तकदंगैश्च शिष्य सप्तदिनोत्तरैः ॥४८॥  
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं साधारणं नृणाम् । पञ्चानुष्ठानभेदाश्च मयेव परिकीर्तिताः ॥४९॥  
 अनुष्ठानमप्यसौ हि होमः कार्यो यथाविधि । पृथक् श्लोकं पञ्चवार्यं स्याद्वातं पायसं फलैः ॥५०॥  
 नवाश्वेनाथवा कार्यो होमो द्वित्यरैः सह । प्राज्ञगान्धर्वो ज्ञेयश्च अनुष्ठानदिनैर्वितान् ॥५१॥  
 एतत्प्रातः समुत्थायानन्दरामायणं सुभम् । ये पठन्ति तदा भवन्त्यने सुखं प्राप्नुवन्ति हि ॥५२॥  
 द्वादशमपि चैतद्वै पठनीयं प्रयत्नतः । पञ्चदशं नवदिनैः सायं तथा सुप्तावहम् ॥५३॥  
 कांडं सर्गोऽथवा श्लोकस्त्वानन्दरामस्य प्रत्यहम् । च नराः द्वाभ्यां च तेषां सप्त निरर्थकम् ॥५४॥  
 पुत्रार्थं रतिशालायां भृगोर्नि पुरुषः क्षिप्वा । निवायः ततश्चक्रेऽपुत्री पुत्रमाप्नुयात् ॥५५॥  
 नवराशिषु व्रीहीणां घ्नात्वा कार्यं तु विनश्येत् । पूर्वाफलानि चत्वारि पूर्णं कांडमुच्यते ॥५६॥  
 द्वितीयेन हि सर्गस्तु तृतीयेन फलेन हि । वजनोऽप्यत्र च विज्ञेयश्चतुर्थेन फलेन च ॥५७॥  
 श्लोके ज्ञेयः पूर्वराशेः सर्वेषां गणने रता । सर्वैरात्मेन श्लोकेन विपरीतं फलं स्मृतम् ॥५८॥  
 एवं सर्वदर्शनीयः शङ्कनश्च सुभोऽनुभूतः । एवं शिष्य स्वयां यद्यन्पूजं तत्तन्मयोदितम् ॥५९॥

सात काण्ड, छठे दिन छ काण्ड इस क्रमसे घटाता हुआ सप्तह दिनमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे । वैसे न कर सके तो पहले रोज पहला, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे नौ रोजमें नौ काण्ड समाप्त करे । फिर दसवें रोज आठवां काण्ड, ग्यारहवें रोज सातवां काण्ड, इस क्रमसे घटाता हुआ सप्तह दिनोंमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४०-४२ ॥ अथवा अष्टोत्तर कांडमें सर्गशुद्धिके क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनोंमें अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४३ ॥ ऐसा भी न कर सके तो पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा सर्ग, तीसरे दिन तीसरा सर्ग, इस क्रमसे एक सौ सौ दिनोंमें पूर्ण करके फिर उसी क्रमसे घटाये । इस अनुष्ठानमें भी सात ही महीनेका समय लगता है । इस अनुष्ठानको करनेसे एक कार्यकी सिद्धि हो सकती है । अथवा पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे पाठ करता हुआ एक सौ नवें दिन अन्तिम सर्गका पाठ करे ॥ ४४-४७ ॥ फिर एक सौ दसवें दिन एक सौ आठवां सर्ग, एक सौ ग्यारहवें दिन एक सौ सातवां सर्ग, इस क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनेमें इसे समाप्त करे । इस तरह मैंने अनुष्ठानके पांच भेद बताये । अनुष्ठान समाप्त हो जानेपर शिषिभू हवन करना चाहिए । होम करते समय बाह्याणोंके साथ बैठकर आनन्दरामायणके एक-एक श्लोकका उच्चारण करता हुआ स्तोर, फल वधवा नवे जलसे हवन करे । हवन हो जानेपर जितने दिनोंका अनुष्ठान किया हो, उतने बाह्याणोंको भोजन कराये ॥ ४८-५१ ॥ जो लोग सबरे उठकर इस रामायणका पाठ करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं । द्वारवासीको तो अवश्य इसका पाठ करना चाहिए । नौ दिनोंमें इसका सुप्तावह पारायण पूर्ण करना चाहिए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जो लोग इस रामायणके एक काण्ड, एक सर्ग अथवा एक श्लोकका भी पाठ नहीं करते, उनका जन्म निरर्थक है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य अपनी स्त्रीके साथ रतिशालामें पुत्रप्राप्तिके लिए इस रामायणका ध्यान करता है, वह यदि पुत्रविहीन हो तो अवश्य पुत्र प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ अब प्रजनकी रीति बताते हैं । अन्नकी नौ रागियें बनाकर अपने कार्यका ध्यान करे । इससे आठ चारों दिशाओंमें चार पूर्वाफल ( सुपारी ) रखे । पहली सुपारीमें कांड, दूसरीमें सर्ग, तीसरीमें दशक तथा चौथी सुपारीमें श्लोकका स्थापन करे । पूर्वकी राशिके सबकी मणना करनी चाहिए । सब जगह जो अन्तिम श्लोक निकले, उससे विपरीत फल होता है ॥ ५६-५८ ॥ फल

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं नवोत्तरं सर्गार्थं मथेरितम् ।  
 कांडानि यन्मित्रव कीर्तितानि ते हे विष्णुदासायहरं मनोहरम् ॥६०॥  
 दिने दिने पापत्रयान्कुर्वन्नरः पठेत् श्लोकमपीह भक्त्या ।  
 विमुक्तसर्वापचयः प्रयाति रामस्य सालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥६१॥  
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं दे रामदासस्य मुखेन कीर्तितम् ।  
 श्रीराघवेणैव जनाधनाशनं नानाचरित्रैर्वैरकौतुकैर्युतम् ॥६२॥  
 धन्यः स बाल्मीकिमुनिः कवीश्वरो रामायणं वै शतकोटिनमितम् ।  
 कुरुं पुरा येन सविस्तरं शुभं यस्माच्च सारं कथितं मया तव ॥६३॥  
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं श्रीजानकीकांडनकौतुकैर्युतम् ।  
 शृण्वन्ति गावन्ति वदन्ति वाऽपराङ्मुखेन परायणमादराच्च ये ॥६४॥  
 लभन्ति पृथगतिर्बुद्धिमत्तरान्स्त्रीश्चापि पौत्रान्परमान्मनोहरान् ।  
 धनानि धान्यानि पशूश्च मान्वाः श्रीरामचन्द्रस्य पदं प्रयाति ते ॥६५॥  
 आनन्दमंजं पठतश्च नित्यं श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः ।  
 अतिप्रमत्तश्च सदा सर्वपे सीतासमेतः श्रियमातनोति ॥६६॥  
 आनन्दरामायणजह्नुवीर्यं पाशापहंत्री मलिनस्य जंतोः ।  
 आनन्दरामायणकामधेनुस्त्रियं जनानामतिकामदोन्धी ॥६७॥  
 रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यं ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि संस्तुतं च ।  
 श्रद्धान्वितः पठति शृण्वान्स नित्यं विष्णोः प्रयाति सदनं स विशुद्धदेहः ॥६८॥  
 नवोत्तरश्चतैः सर्गैः रामकीर्तनमालिकाम् । कुरवा कण्ठे सुखं तिष्ठ शिष्येमां त्वं मयोदितम् ॥६९॥

श्रीशिव उवाच

आनन्दरामचरितमिदं स्वीयपुरोर्मुखात् । श्रुत्वा स विष्णुदासस्तं ननामार्च्यं पुनः पुनः ॥७०॥

प्रकार लोगोंको चाहिए कि शुभाशुभ फल जानना हो तो इस अनुसारे जान लें । हे शिष्य ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया ॥ ६९ ॥ इस तरह हमने तुमको एक सी नी सगीवाली यह उत्तम रामायण सुनायी । इसमें समस्त पापोंको हरनेवाले नौ कांड कहे गये हैं ॥ ६० ॥ दिनों दिन पाप करनेवाला मनुष्य भी यदि इस रामायणके एक श्लोकका भी पाठ करता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह रामके चरणोंकी सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ६१ ॥ इस आनन्दरामायणको श्रीरामदासने सुनाया है, जिसमें रामचन्द्रजीकी अनेक कीतुकामयी कथाये वर्णित हैं ॥ ६२ ॥ कवीश्वर बाल्मीकि ऋषि धन्य हैं कि जिन्होंने सी करोड़ श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक रामचरितका वर्णन किया है । उसीका सारांश मैंने तुम्हें सुनाया है ॥ ६३ ॥ जो लोग श्रीसीताजीकी कीड़ाओंसे मुक्त इस आनन्दरामायणका सादर श्रवण और गायन करते अथवा औरोंको सुनाते हैं, वे बड़े बुद्धिमान् लोग पुत्र, स्त्री, विशाल धन, अन्न तथा उत्तम पशुओंको प्राप्त करते हैं और अन्तमें रामचन्द्रजीके चरणोंकी प्राप्ति होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जो प्राणी नित्य इस आनन्दरामायणका पाठ करते, सुनते अथवा लिखते हैं । उनपर रामचन्द्र परम प्रसन्न होकर सीताके साथ उनके हृदयमें विराजमान रहते हुए सब तरहसे उनका कल्याण करते हैं ॥ ६६ ॥ यह आनन्दरामायणरूपिणी गङ्गा पापियोंके समस्त पाप हरती है और आनन्दरामायणरूपिणी यह कामधेनु मत्तोंकी सब कामना पूर्ण करती है ॥ ६७ ॥ यह आनन्दरामायण अति मनोहर और ब्रह्मादि देवताओंसे भी संस्तुत है । जो श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे लोग विशुद्धकाम होकर अन्तमें विष्णुभगवान्के लोकको पाते हैं । हे शिष्य ! एक सी नी सगीवाली इस रामकीर्तनरूपिणी मालाको धारण करने तुम जहाँ चाहो, सुखसे रहो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरु श्रीरामदासके मुखसे इस

रामदासः स्वशिष्यायानन्दरामायणं प्रिये । एवमुक्त्वा मुनिः संध्यां कर्तुं गोदां गमिष्यति ॥७१॥  
एवं देवि तवाग्रंऽथ मयाऽपि परिकीर्तितम् । आनन्दरामचरितं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥७२॥  
रामकीर्तनमालायां मेरुस्थाने त्वयं नहान् । सर्गो मया ते काचितः श्रवणान्मगलप्रदः ॥७३॥

श्रीपार्वत्युवाच

यदा वाल्मीकिना देव कृतं रामायणं वरम् । तदा क रामदासः स संवादोऽभिस्त्वयाऽकथि ॥७४॥  
क तदा विष्णुदासोऽपि संशयो मेऽत्र जायते ।

श्रीशिव उवाच

त्रिकालया ज्ञानदृष्ट्या मुनिनाऽत्र कथांतरे ॥७५॥  
उमयोर्मिश्रसंवादः सोऽपि पूर्णं प्रवर्णितः । यथा रामस्य चरितं रामान्पूर्वं प्रवर्णितम् ॥७६॥  
संदेहोऽत्र न्यया नैव कार्यः पर्वतकन्यके । रामदासमुखेनैतद्रायदर्शनेन वर्णितम् ॥७७॥

आनन्दरामायणमादरेण श्रीरामचन्द्रेण मुनेर्मुखेन ।

तद्रामदासस्य मुदैव चोक्तं भक्तिप्रदं मुक्तिदमेतदत्र ॥७८॥

आनन्दरामायणमादरेण पुत्रे प्रजाने पठनीयमेतत् ।

विवाहकाले व्रतवन्धकाले श्राद्धे पठेत्पर्वणि पशाले च ॥७९॥

आनन्दरामायणमादरेण कारागृहस्थस्य विमुक्तये च ।

उत्पातजातये भयनाशनाय प्रभोः कृपार्थं पठनीयमादरात् ॥८०॥

आनन्दरामायणमादरेण शृणोति वा श्रावयते च भक्त्या ।

स स्वीयकामानखिलानवाप्स्य वैकुण्ठलोके खलु गच्छति स्वैः ॥८१॥

आनन्दरामायणतोऽधिकानि न सन्ति तीर्थानि हरेः स्थलानि ।

प्रेक्षापि दानान्यपि पुण्यदानि तथा पुगणान्यथ कीर्तितानि ॥८२॥

प्रकार आनन्दरामायणकी सुननेके बाद विष्णुदासने इस ग्रन्थका पूजन करके बारम्बार प्रणाम किया ॥७०॥  
हे प्रिये ! रामदास अपने शिष्यकी यह आनन्दरामायण सुनाकर संध्या करनेके लिए गोदावरीके तटपर चले गये ॥ ७१ ॥ हे देवि ! जिस तरह रामदासने अपने शिष्यकी यह आनन्दरामायण सुनायी थी । उसी तरह मैंने भी पुण्यवर्द्धक इस उत्तम रामचरित्रका वर्णन कर दिया है ॥ ७२ ॥ रामके गुणोंका गान करनेवाली अनेक संवमाख्याएँ हैं । उनमें यह आनन्दरामायण सुनेके समान विराजमान है । इस रामायणमें भी जो सर्गोंकी माला है, उसमें यह सर्ग सुनेकी तरह है । इसका श्रवण करनेसे सर्वथा मङ्गल होता है ॥ ७३ ॥ श्रीपार्वतीजीने कहा — हे देव ! जब श्रीकालमीकिजीने यह रामायण बताया थी, तब रामदास और विष्णुदास कहाँ थे ? जिनका संवाद आपने मुझे सुनाया । यह मेरे हृदयमें एक महान् संवेष्ट उत्पन्न हो गया है । श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! वाल्मीकिजीने अपनी त्रिकालदर्शिता दृष्टिसे इस भावी संवादको पहले ही जान लिया था । इसी कारण संवाद होनेके पहले ही उसका वर्णन कर दिया । जैसे उन्होंने रामजन्मसे पहले रामायण लिख री थी । हे पर्वतकन्यके ! तुम इस विषयमें किसी प्रकारका संदेह न करो । रामदासके मुखसे साक्षात् रामचन्द्रजीने स्वयं इस चरित्रका वर्णन किया है । उम मुनिके मुखसे स्वयं रामचन्द्रजीने आदरपूर्वक इस रामायणकी कहा है । इसीलिए यह इस संसारमें मुक्ति और मुक्ति देनेवाली वस्तु बन गयी है ॥ ७४-७८ ॥ लोगोंको चाहिए कि पुत्र होनेपर, विवाहमें, व्रतवन्धकालमें, श्राद्धमें तथा किसी मङ्गलमय कार्यके समय आनन्दरामायणका पाठ अवश्य करें ॥ ७९ ॥ यदि कोई मनुष्य कारागारमें हो और उसे छुड़नेकी आवश्यकता आ पड़े अथवा किसी उत्पात तथा भयको शांत करना हो अथवा भयनाशकी कृपा प्राप्त करनी हो तो आदरपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८० ॥ जो मनुष्य आनन्दरामायणका आदरपूर्वक पाठ करते या सुनते-सुनाते हैं, वे अपनी समस्त कामनायें पूर्ण करके अन्तमें वैकुण्ठलोको जाते हैं ॥ ८१ ॥ आनन्दरामायणसे बढ़कर तीर्थ, भगवन्मन्दिर, क्षेत्र, दान तथा पुण्य

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं श्रोतुं मया ते गिरिजे सविस्तरम् ।  
 त्वं स्तितवस्वावहर् निरन्तरं मनोहरं लप्स्यमि राधवे भक्तिम् ॥८१॥  
 आदौ हस्ताः स्वास्यं द्विजवचनगुरुत्वेन यात्राय यज्ञान्  
 कृत्वा ब्रुवन्नातिभोगानयन्तितलविश्रुतां गृहीत्वाऽथ सीताम् ।  
 लब्ध्वा नानास्तुपास्तान्स्वर्गानालम्बान्पार्विकादींश्च जित्वा  
 कृत्वा नानोपदेशान् गङ्गपुरनिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥८४॥  
 ग्रामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान्पृष्ठे सुग्रीवासुतः  
 शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वापय्यकोणादिषु ।  
 सुग्रीवश्च विभीषणश्च दुराद् तत्रासुतो जाम्बवान्  
 मध्ये नीलकमलकामलरुचिं रामं भजे ज्यमलम् ॥८५॥  
 आनन्दरामायणहारकोपमं ये पूर्णकाण्डं चरमं नरोत्तमाः ।  
 पठन्ति शृण्वन्ति हरेः परं पदं गच्छन्ति पूर्णोप्सितमालभन्ति ते ॥८६॥  
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं जप्यं पवित्रं श्रवणीयमादरान् ।  
 यन्मङ्गलातामपि मङ्गलप्रदं स्मरामि नित्यं प्रणमामि सादरम् ॥८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे गोण्डामण्डलान्तर्गतसिंह-  
 संवादे तथा रामदासविष्णु सप्तम्यादे प्रोक्तश्रुतिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

आदिका श्रवण, इनमेंसे एक भी नहीं है ॥ ८२ ॥ हे गिरिजे ! मैंने विस्तरपूर्वक यह उत्तम आनन्द-  
 रामायण तुम्हें सुना दिया । तुम इस पापापहारी चरित्रका निरन्तर मनन किया करो । ऐसा करनेसे  
 तुम्हें सुन्दर भगवद्भक्ति प्राप्त होगी और तुम्हारा बुद्धि दमकी और दीड़ पड़ेगी ॥ ८३ ॥ रामने  
 पहले रावणका वध किया । फिर ब्राह्मणके पवनका सम्मान करते हुए तीर्थोंकी यात्रायों की और बहुतसे  
 यज्ञ किये । फिर विविध प्रकारके भोगोंका भोग करके पातालमें जातो हुई सीताको उवाच । तदनन्तर  
 पृथ्वील्लके अनेक राजाओंकी जातकर बहुतसा पताझूट आये । तत्पश्चात् लोगोंको विविध प्रकारका उपदेश  
 देकर वे हस्तिनापुरीय समीप गंगातटमें अपने परम धामकी चले गये ॥ ८४ ॥ जिन रामचन्द्रजीके वाम  
 भागमें सीता, आगे हनुमान्जी, पीछे लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा भरत, दाहिने-बायें एवं वायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव,  
 विभीषण, अङ्गव तथा जाम्बवान् निराजमान हैं । उन सबके मध्यमें नीलकमलको नाई सुग्रीवित ययामर्षण  
 श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ ८५ ॥ जो लोग हारकी भीति सुन्दर इस अन्तिम पूर्णकाण्डका पाठ करते  
 या सुनते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं और उतको सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ ८६ ॥ लोगोंको चाहिए  
 कि इस पवित्र आनन्दरामायणका आदरपूर्वक कीर्तन तथा श्रवण किया करें । क्योंकि यह मङ्गलका भी मङ्गल-  
 दाता है । इसी कारण मैं तो नित्य इसका आदरपूर्वक स्मरण और नमन करता हूँ ॥ ८७ ॥ इति ध्योतकोटि-  
 रामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे गोण्डामण्डलान्तर्गतसिंह (टिकरिया) ग्रामनिवासि पं० रामदत्तात्मज पं०  
 रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

॥ इति पूर्णकाण्डं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

समाप्तोऽयं ग्रन्थः